CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भारतीय

हित्य शास्त्र

डॉ॰ राजवंश सहाय 'हीरा'

बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी-पटना

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भारतीय साहित्यशास्त्र कोश
(Bharatiya Sahityashastra Kosh)

द.नं. १८४२२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भारतीय साहित्यशास्त्र कोश

लेखक

डॉ० राजवंश सहाय 'हीरा'

प्राध्यापक, हिंदी विभाग, सच्चिदानंद सिन्हा कॉलेज
औरंगाबाद (बिहार)

बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी
पटना-३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

© बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, १९७३

विश्वविद्यालय-स्तरीय ग्रंथ-निर्माण-योजना के अंतर्गत भारत-सरकार (शिक्षा एवं समाज-कल्याण मंत्रालय) के शत-प्रतिशत अनुदान से बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी द्वारा प्रकाशित।

प्रकाशित ग्रंथ-संख्या : ५२

प्रथम संस्करण : १९७३
३०००

मूल्य : रु० ५०/ (पचास रुपये मात्र)

प्रकाशक :
बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी
सम्मेलन भवन, पटना-३

मुद्रक :
हिंदुस्तानी प्रेस,
पटना-४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूज्य आचार्य डॉ० नगेंद्र

को

जिन्होंने भारतीय साहित्यशास्त्र को नई दिशा दी ।

—हीरा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रस्तावना

शिक्षा संबंधी राष्ट्रीय नीति-संकल्प के अनुपालन के रूप में विश्वविद्यालयों में उच्चतम स्तरों तक भारतीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा के लिए पाठ्य-सामग्री सुलभ करने के उद्देश्य से भारत-सरकार ने इन भाषाओं में विभिन्न विषयों के मानक ग्रंथों के निर्माण, अनुवाद और प्रकाशन की योजना परिचालित की है। इस योजना के अंतर्गत अंग्रेजी और अन्य भाषाओं के प्रामाणिक ग्रंथों का अनुवाद किया जा रहा है तथा मौलिक ग्रंथ भी लिखाए जा रहे हैं। यह कार्य भारत-सरकार विभिन्न राज्य-सरकारों के माध्यम से तथा अंशत: केंद्रीय अभिकरण द्वारा करा रही है। हिंदी-भाषी राज्यों में इस योजना के परिचालन के लिए भारत-सरकार के शत-प्रतिशत अनुदान से राज्य-सरकार द्वारा स्वायत्तशासी निकायों की स्थापना हुई है। बिहार में इस योनना का कार्यान्वयन बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी के तत्त्वावधान में हो रहा है।

योजना के अंतर्गत प्रकाश्य ग्रंथों में भारत-सरकार द्वारा स्वीकृत मानक पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया जाता है, ताकि भारत की सभी शैक्षणिक संस्थाओं में समान पारिभाषिक शब्दावली के आधार पर शिक्षा का आयोजन किया जा सके।

प्रस्तुत ग्रंथ 'भारतीय साहित्यशास्त्र कोश' डॉ० राजवंश सहाय 'हीरा' की मौलिक कृति है, जो भारत-सरकार के शिक्षा तथा समाज-कल्याण मंत्रालय के शत-प्रतिशत अनुदान से बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी द्वारा प्रकाशित की जा रही है। यह ग्रंथ विश्वविद्यालय-स्तर के छात्रों के लिए तथा शोधकर्त्ताओं के लिए भी संदर्भ ग्रंथ के रूप में अत्यंत महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगा।

आशा है, अकादमी द्वारा मानक ग्रंथों के प्रकाशन-संबंधी इस प्रयास का सभी क्षेत्रों में स्वागत किया जायगा।

हस्ताक्षर

अध्यक्ष
बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी

पटना
दिनांक ३०/४/७२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रकाशकीय वक्तव्य

भारत-सरकार की विश्वविद्यालय स्तरीय हिंदी ग्रंथ-निर्माण-योजना के अंतर्गत 'भारतीय साहित्यशास्त्र कोश' शीर्षक ग्रंथ प्रस्तुत करते हुए हमें प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। विश्वविद्यालयों में हिंदी के अध्ययन-अध्यापन का जो विस्तार हुआ है उसको देखते हुए यह आवश्यक है कि विश्वविद्यालय के उच्चवर्गीय छात्रों के लिए साहित्यशास्त्र के ऐसे संदर्भ ग्रंथ सुलभ किए जाएँ, जिनके सहारे वे अल्प समय में ही गंभीर से गंभीर विषयों की अपेक्षित जानकारी प्राप्त कर सकें। 'भारतीय साहित्यशास्त्र कोश' ऐसी दिशा में एक प्रयास है। हिंदी में अब तक इस विषय का ऐसा कोई दूसरा कोश सुलभ नहीं था, जिसमें इतने विस्तार से भारतीय काव्यशास्त्र के पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या, तत्संबंधी विवेचन और उदाहरण तथा प्रामाणिक संदर्भ-निर्देश अत्यंत सुबोध शैली में दिए गए हों। प्रस्तुत ग्रंथ से बहुत दूर तक इस अभाव की पूर्त्ति हुई है, ऐसा हमारा विश्वास है।

इस ग्रंथ के लेखक डॉ० राजवंशसहाय 'हीरा' अपने विषय के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् और अनुभवी सुलेखक हैं। अध्ययन-अध्यापन के व्यापक अनुभव के अतिरिक्त डॉ० हीरा को विषय पर पर्याप्त अधिकार है। इनके अनेक ग्रंथ, जो अन्य प्रतिष्ठित प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित हैं, यथेष्ट समादृत हुए हैं। हमें विश्वास है, हमारे प्रस्तुत प्रकाशन का भी विश्वविद्यालय के छात्र और विद्वज्जन समान रूप से स्वागत करेंगे।

इसका मुद्रण-कार्य हिंदुस्तानी प्रेस, पटना-४ में हुआ है। प्रूफ-संशोधन का कार्य हिंदी के वरिष्ठ साहित्यसेवी श्री प्रफुल्लचंद्रओझा 'मुक्त' जी ने किया है। आवरण-शिल्पी श्री बी० के० सेन हैं। आवरण का ब्लॉक-निर्माण एवं छपाई-संबंधी कार्य हिंद आर्ट कॉटेज, पटना-४ में हुआ है। जिल्दसाजी का काम लक्ष्मी बाइंडिंग हाउस, पटना-४ में हुआ है। ये सभी हमारे धन्यवाद के पात्र हैं।

हस्ताक्षर

शिवचन्द्रप्रसाद

पटना-३ | निदेशक

दिनांक ३०-४-७३ | बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आमुख

'भारतीय साहित्यशास्त्र-कोश' को हिंदी साहित्य-संसार के समक्ष उपस्थित करते हुए मैं परम संतोष का अनुभव कर रहा हूँ। इसमें भारतीय (संस्कृत) काव्यालोचन के सभी संप्रदायों (रस, अलंकार, रीति-गुण, ध्वनि, वक्रोक्ति तथा औचित्य के अतिरिक्त चमत्कार) का ऐतिहासिक एवं सैद्धांतिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस संदर्भ में तत्तत् संप्रदायों से संबद्ध ग्रंथों, ग्रंथकारों तथा तद्विषयक विरोधी तथा अविरोधी मतों का अकारादि क्रम से परिचय देकर उनके मूल स्रोतों तथा आधारभूत मामग्रियों का निदर्शन किया गया है। इसमें लगभग साढ़े बारह सौ विषयों का विवरण प्रस्तुत किया गया है, जिनमें ग्यारह सौ के आसपास पारिभाषिक शब्दों की संख्या होगी। इस कोश में प्रसिद्ध पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या कर उनका ऐतिहासिक विकास दिखलाया गया है और विषय के स्पष्टीकरण के लिए संस्कृत तथा हिंदी के उदाहरण देकर उनकी व्याप्ति (संबद्ध विषयों में) दिखलाई गई है। अप्रसिद्ध शब्दों की या तो संक्षिप्त व्याख्या की गई है या उनपर टिप्पणियाँ दी गई हैं।

इसमें साहित्यशास्त्रीय संप्रदायों के अतिरिक्त जिन विषयों को स्थान दिया गया है, उनकी सूची इस प्रकार है—

भारतीय साहित्यशास्त्र का विकास एवं नामकरण, भरत से विश्वेश्वर पंडित तक लगभग ४४ आचार्यों एवं १५ ग्रंथों का पृथक् परिचय। कवि, कवि के भेद, काव्य-गोष्ठी, काव्य-संवाद, काव्य-पाठ, काव्यलक्षण, काव्य-हेतु, काव्य-प्रयोजन, काव्य-भेद, गद्यकाव्य, महाकाव्य, खंडकाव्य, मुक्तककाव्य, चंपूकाव्य, रूपक, उपरूपक, नाट्य-सिद्धांत, नायक-नायिका-भेद, नायिकाओं के अलंकार, काव्यगुण, काव्यदोष, काव्यपाक, भावक, कविचर्या, नायिका की सखी, दूती और नायक के सखा तथा सहायक आदि।

प्रस्तुत कोश में अलंकार तथा नायक-नायिका-भेद के प्रसंग में रीति-कालीन आचार्यों के मत भी दिए गए हैं तथा रस-सिद्धांत के निरूपण में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आधुनिक (हिंदी) आचार्यों—आचार्य रामचंद्र शुक्ल, डॉ० श्यामसुंदर दास, पंडित केशवप्रसाद मिश्र, पंडित रामदहिन मिश्र, डॉ० नगेंद्र, आचार्य नंददुलारे बाजपेयी—के विचार देकर आधुनिक अनुसंधायकों के ग्रंथों का भी उल्लेख किया गया है। यत्र-तत्र पाश्चात्य तथा भारतीय मतों की तुलना भी की गई है; जैसे वक्रोक्ति और अभिव्यंजना तथा रस और सौदर्यबोध में।

इसमें काव्य-सिद्धांतों तथा वादों के विवेचन-क्रम में, विषय से संबद्ध अद्यतन शोधों का सार प्रस्तुत कर, अपेक्षित संदर्भ-सूची संलग्न की गई है तथा ऐतिहासिक विवेचन एवं शास्त्रीय विषयों के निरूपण—विशेषतः शास्त्रार्थ के प्रसंगों में मूल ग्रंथों से उद्धरण देकर विषय को प्रामाणिक बनाया गया है। कोश में प्रत्येक विषय पर स्वतंत्र निबंध लिखकर उनमें सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया गया है और यथासंभव प्रामाणिक और स्पष्ट विवरण प्रस्तुत किए गए हैं।

इसके लेखन में लेखक मौलिकता का दावा नहीं कर सकता; पर विवेच्य सामग्री से संबद्ध विद्वानों के ग्रंथों से भरपूर लाभ उठाकर उन्हें अपने ढंग से रखने का उसने स्वल्प प्रयास अवश्य किया है। इस कार्य में उसे कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई है, इसका निर्णय विद्वत्समुदाय ही करेगा। 'भारतीय साहित्यशास्त्र-कोश' का लेखन-कार्य अत्यंत कठिन और श्रमसाध्य है। मेरे-जैसे अल्पज्ञ का इस ओर प्रवृत्त होना ही अनधिकार चेष्टा है; फिर भी राष्ट्रभाषा की सेवा की प्रेरणा से उत्साहित होकर यह कार्य जिस रूप में संपन्न हुआ, उसमें गुरुजनों का ही आशीर्वाद है।

इस कोश के निर्माण में मेरे उन (पूज्य) गुरुजनों का बहुत बड़ा योग है, जिनके चरणों में बैठकर मैंने इस विषय का अध्ययन किया था। ऐसे विद्वान हैं—आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, आचार्य देवेंद्रनाथ शर्मा, डॉ० शिवनंदन प्रसाद, डॉ० भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव', प्राचार्य शिवबालक राय, प्रो० हरेश्वरी प्रसाद, प्रो० सीताराम 'प्रभास', प्रो० आचार्य सिद्धनाथ मिश्र, आचार्य नित्यानंद पाठक एवं आचार्य बनारसीलालजी 'काशी'। वस्तुतः इसमें मेरा अपना कुछ नहीं है, जो कुछ भी है, वह उक्त गुरुजनों का प्रसाद है। मैं सभी गुरुजनों के प्रति अपनी प्रणति निवेदित करता हूँ। मैंने भारतीय साहित्यशास्त्र पर लिखनेवाले हिंदी के विद्वानों के ग्रंथों से पर्याप्त सहायता ग्रहण की है, इसके लिए उनके प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। प्रस्तुत ग्रंथ का उद्देश्य भारतीय साहित्यशास्त्र-संबंधी सभी सामग्रियों को एक स्थान

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पर एकत्र कर इस विषय के छात्रों एवं अनुसंधायकों को प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध कराना है। इसमें आकर ग्रंथों के हिंदी भाष्यों एवं अनुवादों की भी सूचना यथास्थान दे दी गई है।

अंत में यही कहना है कि मैं इस कोश को जो रूप देना चाहता था, वह विषय की गंभीरता और अपनी सीमाओं के कारण न हो सका। इसमें त्रुटियों एवं भ्रांतियों का होना सहज संभाव्य है, यदि विद्वानों का ध्यान उस ओर गया तो लेखक उनका स्वागत करते हुए त्रुटियों का मार्जन करेगा। मेरे सहयोगियों में आदरणीय प्रो० रामकुमार सिंह, प्रो० ठाकुर उमाशंकर प्रसाद, प्रिय डॉ० लक्ष्मण प्रसाद सिंह, डॉ० गुप्तेश्वर प्रसाद, प्रो० कृष्णानंद झा, प्रो० उमेशचंद्र मिश्र 'शिव', प्रो० त्रिभुवननाथ सिन्हा ने कोश के लेखन में मेरा उत्साह-वर्द्धन किया है, इसके लिए इन्हें धन्यवाद देता हूँ।

मैं 'बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी' के सदस्यों एवं पदाधिकारियों का भी हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने इसके प्रकाशन में रुचि ली।

—राजवंश सहाय 'हीरा'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

साहित्यशास्त्र कोश

अ

अंक—रूपक का एक भेद। इसे उत्सृष्टिकांक भी कहते हैं। [दे० उत्सृष्टि-कांक] [दे०—'अङ्क' के अंतर्गत]।

अंकमुख—नाटकीय कथा की सूचना देने की एक विधि। जब एक ही अंक में दूसरे अंक की समस्त कथा की सूचना दे दी जाय तो उसे अंकमुख कहते हैं। भरत के अनुसार इसकी सूचना देनेवाले पात्र स्त्री या पुरुष कोई भी हो सकते हैं।

विश्लिष्टमुखमंकस्य स्त्रिया वा पुरुषेण वा।
यत्र संक्षिप्यते पूर्वं तदंकमुखमिष्यते ॥

—नाट्यशास्त्र, २१/११६

यत्र स्यादंक एकस्मिन्नंकानां सूचनाऽखिला ॥
तदंकमुखमित्याहुर्बीजार्थख्यापकं च तत् ॥

—साहित्यदर्पण, ६/५९,६०।

अंकावतार—अर्थोपक्षेपक का एक भेद। [दे० अर्थोपक्षेपक] नाटक की भूत या भावी घटनाओं की सूचना देने की एक विधि। जब प्रथम अंक या पिछले अंक के अंत में उसी अंक के पात्र आगामी अंक की घटना की सूचना दें तो उसे अंकावतार कहते हैं। इसमें पूर्व अंक की कथावस्तु का बिना विच्छेद किए ही दूसरे अंक की कथा चलती रहती है।

अंकावतारस्त्वंकांते पातोऽङ्कस्याविभागतः ॥

—दशरूपक, १/६२।

अंकास्य—अर्थोपक्षेपक का एक भेद। [दे० अर्थोपक्षेपक] नाटकीय कथावस्तु की सूचना देनेवाला एक साधन। इसका निबंधन अंक के प्रारंभ में होता है। इसमें किसी अंक के अंत में उसके आगे के अंक में घटनेवाली

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कथा के आरंभ की सूचना दी जाती है। जैसे 'महावीरचरित' नाटक के द्वितीय अंक के अंत में सुमंत्र का वशिष्ठ, विश्वामित्र तथा परशुराम के आगमन की सूचना देना। तीसरे अंक का प्रारंभ इन्हीं पात्रों के प्रवेश-द्वारा होता दिखाया गया है। धनंजय के अनुसार एक अंक के समाप्त होते समय उसी अंक के पात्रों-द्वारा जब किसी छूटे हुए अर्थ (वस्तु) की सूचना दी जाय तो अंकास्य होगा।

अंकांतपात्रैरंकास्यं छिन्नांकस्यार्थसूचनात् ।

—दशरूपक, १/६२ ।

अंकुरितयौवना—मुग्धा नायिका का अन्य नाम। [दे० मुग्धा] जिस नायिका के शरीर में यौवन-सचार हो रहा हो या यौवन का उन्मेष हो, उसे अंकुरितयौवना कहते हैं।

अंगज अलंकार—नायिका की प्राकृतिक भंगिमा को अंगज अलंकार कहते हैं। ये उसके (नायिका के) सौंदर्य की अभिवृद्धि करनेवाले स्वाभाविक अलंकार हैं। [**दे० नायिका के अलंकार**] इनकी संख्या तीन है—हाव, भाव और हेला। ये यौवन के अलंकार हैं।

देहात्मकं भवेत्सत्त्वं सत्त्वाद्भावः समुत्थितः ।
भावात्समुत्थितो हावो हावाद्धेला समुत्थिता ॥

—नाट्यशास्त्र २२/६ ।

शरीर से संबंध रखने के कारण इन्हें अंगज कहा जाता है।

अंगरस का अत्यधिक विस्तार—रसदोष का ७वाँ भेद। [**दे० रसदोष**]

अंगी का अननुसंधान—रसदोष का ८वाँ भेद। [**दे० रसदोष**]

अंगी रस—काव्य या नाटक के प्रधान रस को अंगी रस कहते हैं।

अंक—रूपक या नाटक के प्रधान खंड को अंक कहते हैं। इसमें नायक के कार्यों का प्रत्यक्ष वर्णन किया जाता है; अतः इसे रस एवं भाव से पूर्ण होना चाहिए। प्रत्येक अंक में शृंगार या वीर इन दो रसों में से एक का प्राधान्य तथा अन्य रसों का स्थान गौण होना चाहिए। वे प्रधान रस के सहायक रूप में आएँ और अद्भुत रस का समावेश अंक के अंत में किया जाय। अंकों का रसपूर्ण होना आवश्यक है; पर रस का इतना आधिक्य न हो जाय कि वह कथा-व्यापार से असंबद्ध लगने लगे। प्रत्येक अंक की कथा स्वतः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूर्ण न हो अर्थात् उसमें अवांतर कार्य भले ही पूर्ण हो जाय; पर मुख्य कथा की समाप्ति न हो। इसमें नायक के अतिरिक्त अन्य तीन-चार पात्रों को ही स्थान मिले तथा एक अंक में एक दिन की घटना का ही निबंधन किया जाय। एक के बाद अन्य अंकों की योजना की जाय, जिनमें कार्यावस्था' अर्थप्रकृति तथा अर्थोपक्षेपक का भी ध्यान रखा जाय।

अंक इति रूढि शब्दो भावै रसैश्च रोहयत्यर्थान् ।
नाना विधानयुक्तो यस्मात्तस्माद् भवेदंकः ॥
अंकसमाप्तिः काव्यचच्छेदो न बीजसंहारः ।
वस्तुव्यापी बिंदुः काव्यसमुत्थोऽत्र नित्यं स्यात् ॥
ये नायका निगदितास्तेषां प्रत्यक्षचारिसंयोगः ।
नानावस्थांतरितः कार्यस्त्वंको यथार्थरसः ॥
नायकदेवीपरिजनपुरोहितो ह्यंकः खलु वेदितव्यः सः ॥
एकदिवसप्रवृत्तः कार्यस्त्वंकोऽथ बीजमधिकृत्य ।
आवश्यककार्यानामविरोधेन प्रयोगेषु ॥—नाट्यशास्त्र, २०

अकांडछेदन—रसदोष का छठा भेद। [दे० रसदोष]

अकांडप्रथन—रसदोष का ५वाँ प्रकार। [दे० रसदोष]

अक्रमता—वाक्यदोष का १९वाँ भेद। [दे० वाक्यदोष]

अक्रमातिशयोक्ति—अतिशयोक्ति अलंकार का पंचम प्रकार। [दे० अतिशयोक्ति]

अक्षरमुष्टि—साहित्यिक मनोविनोद का एक प्रकार। [दे० काव्यगोष्ठी]

अगम्या—ऐसी नायिकाओं को अगम्या कहते हैं, जिनके साथ रति-क्रिया वर्जित हो। इनका वर्णन कामशास्त्रीय ग्रंथों में होता है। आचार्य केशवदास ने अगम्या (जिनके साथ संभोग न किया जाय) का वर्णन किया है। इनके अनुसार संबंधी की स्त्री, ब्राह्मण की स्त्री, अपने से उच्च वर्ण की स्त्री, अंग-भंग स्त्री (अंगों से रहित या टूटे हुए अंगवाली), विधवा, शूद्र की स्त्री, जिसे दुख में तथा भूखी होने पर भोजन दिया जाय और पूजनीया स्त्री के साथ रमण नहीं करना चाहिए।

तजि तरुणी संबंध की, जानि मित्र द्विजराज
राखि लेइ दुख भूख ते, ताकी तिय तैं भाज ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अधिक वरण अरु अंग घटि, अंत्य जनन की नारि ।
तजि विधवा अरु पूजिता, रमियहु रसिक विचारि ॥
—रसिकप्रिया, ७/४२,४३

अगूढ़व्यंग्य—गुणीभूत व्यंग्य का प्रथम प्रकार। [दे० **गुणीभूत व्यंग्य**] जो व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ की भाँति स्पष्टतः प्रतीत हो, उसे अगूढ़व्यंग्य कहते हैं। यह असहृदय व्यक्तियों की भी समझ में आ जाता है। अगूढ़ का अर्थ है स्पष्ट। यह लक्षणामूलक भी होता है और अभिधामूलक भी। पर, अभिधामूलक में यह संलक्ष्यक्रम ही होता है, असंलक्ष्यक्रम नहीं। असंलक्ष्यक्रम में व्यंग्य गूढ़ रहता है।

अर्थांतर संक्रमितवाच्य का उदाहरण—

यस्यासुहृत्कृततिरस्कृतिरेत्य तप्त सूचीव्यधव्यतिकरेण युनक्ति कर्णौ।
कांचीगुणग्रथनभाजनमेष सोऽस्मि जीवन्न संप्रति भवामि किमाहवामि ॥

यहाँ बृहन्नला बने हुए अर्जुन की विवशता का वर्णन है—"पहले जिसका शत्रु अपना तिरस्कार होने पर मेरी शरण में आकर गरम लोहे की शलाका से अपने कानों को छेदता था, मैं वही हूँ, जो इस समय करधनी के सूत्र का गूँथनेवाला बन गया हूँ, इस समय मैं जीवित होकर भी जीवित नहीं हूँ; अतः कर ही क्या सकता हूँ।" यहाँ 'जीवन्' पद निंदित जीवन के अर्थ में चला गया है या संक्रमित हो गया है।

पुत्रवती युवती जग सोई। राम भगत जाकर सुत होई ॥—रामायण।

जिसका पुत्र राम-भक्त है, वही युवती पुत्रवती है। इस कथन में अर्थ बाधित है; क्योंकि संसार में ऐसी भी माताएँ हैं, जिनके पुत्र राम-भक्त नहीं हैं। इससे यह लक्ष्यार्थ प्रकट होता है कि जिनके पुत्र राम-भक्त नहीं हैं, उनका पुत्रवती होना नहीं के बराबर है। इससे यह व्यंग्य निकलता है कि जिनके पुत्र राम-भक्त हैं, ऐसी माताएँ संसार में प्रशंसा के योग्य हैं। यह व्यंग्य वाच्यार्थ की भाँति स्पष्ट है और इसका वाच्य अर्थांतर में संक्रमित हो गया है।

अत्यंत तिरस्कृत वाच्य—

उन्निद्रकोकनदरेणुपिशंगितांगा
गायंति मंजु मधुपा गृहदीर्घिकासु।
एतच्चकास्ति च रवेर्नबन्धुजीव
पुष्पच्छदाभमुदयाचलचुंबिबिंबम् ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विकसित कोकनद (लाल कमल) के पराग से जिन भौंरों के शरीर पीले हो गए हैं, वे घर की बावड़ियों में मधुर गुंजार कर रहे हैं तथा दुपहरिया के फूल के समान लाल वर्णवाले उदयाचल को स्पर्श करनेवाला सूर्य का बिंब सुशोभित हो रहा है। यहाँ 'चुंबि' शब्द में अर्थ बाधित है। अचेतन सूर्य का चुंबन करना संभव नहीं है; अतः इसका वाच्यार्थ अत्यंत तिरस्कृत होकर स्पर्श करना या संयोग-मात्र को लक्षित करता है। यहाँ सूर्य के उदयाचल के चुंबन से 'प्रभात का होना' व्यंजित हो रहा है। यह वाच्यार्थ की तरह स्पष्ट है।

वियोगिनी यह विरह की रात।
आँसुओं की बूँद ही में बह गई अज्ञात ॥

—रामकुमार वर्मा

'विरह की रात' का आँसुओं में बह जाना, इस कथन में अर्थ बाधित है। इसका लाक्षणिक अर्थ होगा कि वियोगिनी सारी रात रोकर ही बिता रही है। इससे यह व्यंग्य प्रकट होता है कि विरह के कारण रात में नींद नहीं आती, विरह में दुःख अत्यधिक बढ़ जाता है। यहाँ मुख्यार्थ 'रात बह गई' को अत्यंत तिरस्कृत कर अन्य अर्थ 'रात व्यतीत हो गई' ग्रहण किया गया है। यह व्यंग्य वाच्यार्थ की अपेक्षा अत्यंत स्पष्ट है। [**'काव्यालोक' से**]

अगूढ़व्यंग्या—प्रयोजनवती लक्षणा का एक भेद। [**दे० प्रयोजनवती लक्षणा**] जब व्यंग्य स्पष्ट (अगूढ़) या अगंभीर हो, जिसे सभी समझ सकें तो अगूढ़व्यंग्या लक्षणा होगी। गूढ़व्यंग्या का व्यंग्य सहृदय-संवेद्य होता है। [**दे० गूढ़व्यंग्या**]

श्री परिचयाज्जडा अपि भवंत्यभिज्ञा विदग्धचरितानाम्।
उपदिशति कामिनीनां यौवनमद एव ललितानि ॥

लक्ष्मी को प्राप्त कर मूर्ख व्यक्ति भी चतुर जनों के व्यवहार को जान लेते हैं। यौवनमद युवतियों को रति-क्रीड़ा आदि का उपदेश देने लगता है।

यहाँ 'उपदिशति' (उपदेश देता है) में मुखयार्थ का बाध है; क्योंकि जड़ पदार्थ (यौवनमद) कैसे शिक्षा देगा ? लक्षणा से इसका अर्थ प्रकट करना होगा। यह व्यंग्य अगंभीर या स्पष्ट है, जिसे सभी समझ लेते हैं।

पल न चलै जकि-सी रही, थकि-सी रही उसास।
अबही तन रितयो कहा, मन पठयो केहि पास ॥—बिहारी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'मन पठयो केहि पास' में मुख्यार्थ का बाध है। इसका भाव मन का अनुरक्त होना है। यह व्यंग्य स्पष्ट है।

अग्निपुराण—इसे भारतीय विद्या का विश्वकोश कहा जाता है, जिसमें शताब्दियों से प्रवहमान भारतीय संस्कृति एवं तत्त्वज्ञान का सार उपन्यस्त है। इसके रचयिता का पता नहीं है। इसमें व्याकरण, सुश्रुत, औषधशास्त्र, शब्दकोश, काव्यशास्त्र तथा ज्योतिष आदि विषयों का समावेश है। इसके अंत में कहा गया है कि 'अग्निपुराण' में समस्त विद्याएँ प्रदर्शित की गई हैं। [**दे० अग्निपुराण, ए स्टडी—डॉ० एस० डी० ज्ञानी, चौखंबा प्रकाशन**] **'आग्नेये हि पुराणेऽस्मिन् सर्वाविद्याः प्रदर्शिताः।'**—३८३/५२

इसके ३३७ से ३४७वें अध्याय तक काव्यशास्त्रीय विषयों का विवेचन है। ३३७वें अध्याय में काव्य का लक्षण, काव्य के भेद, गद्यकाव्य, उसके भेदोपभेद तथा महाकाव्य का वर्णन है। अग्निपुराणकार ने ध्वनि, वर्ण, पद एवं वाक्य को वांग्मय कहकर शास्त्र, काव्य और इतिहास तीनों को उसके (वांग्मय के) अंतर्गत रखा है। इसमें गद्यकाव्य के पाँच प्रकार वर्णित हैं—आख्यायिका, कथा, खंडकथा, परिकथा तथा कथानिका; और पद्य के सात भेद—महाकाव्य, कलाप, पर्याबंध, विशेषक, कुलक, मुक्तक और कोष—किए गए हैं। अध्याय ३३८ में रूपक-विवेचन है, जिसमें रूपक के भेद, अर्थप्रकृति नाटकीय संधि तथा श्रेष्ठ नाटक के गुणों की चर्चा है। अध्याय ३३९ में श्रृंगारादि रसों का निरूपण है। रस के सभी अंग—स्थायी, संचारी, विभाव, अनुभाव—के वर्णन के पश्चात् नायिका-भेद का वर्णन है। इसमें ब्रह्म की अभिव्यक्ति को चैतन्य (चमत्कार) या रस कहा गया है। ब्रह्म के आदिम विकार को अहंकार कहते हैं; जिससे अभिमान का उदय होता है। अभिमान से ही रति की उत्पत्ति होती है और रति, व्यभिचारी आदि भावों से परिपुष्ट होकर श्रृंगार रस के रूप में परिणत हो जाती है।

श्रृंगार से हास्य, रौद्र से करुण, वीर से अद्‌भुत और वीभत्स से भयानक रस की उत्पत्ति होती है। ३४०वें अध्याय में रीति-निरूपण है, जिसमें चार प्रकार की रीतियों—पांचाली, गौडी, वैदर्भी और लाटी या लाटता का वर्णन है। ३४१वें अध्याय में नृत्यादि का विवेचन तथा ३४२वें में अभिनय का विवरण प्रस्तुत किया गया है। ३४३वें अध्याय में शब्दालंकारों का भेदोपभेद सहित विवेचन है जिसमें अनुप्रास, यमक, चित्र और बंध नामक आठ अलंकार हैं। ३४४वें अध्याय में अर्थालंकार वर्णित

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। इसमें सर्वप्रथम आठ अलंकारों का निरूपण है—स्वरूप, सादृश्य, उत्प्रेक्षा, अतिशय, विभावना, विरोध, हेतु और सम। इसके बाद उपमा, रूपक, सहोक्ति, अर्थांतरन्यास आदि अलंकारों का भेद-सहित विवेचन किया गया है। ३४५वें अध्याय में शब्दालंकारों का विवेचन है, जिनकी संख्या ६ है—प्रशस्ति, क्रांति, औचित्य, संक्षेप, यावदर्थता और अभिव्यक्ति। ३४६वें अध्याय में काव्य-गुण-विवेक एवं ३४७वें अध्याय में काव्य-दोषों का वर्णन है। गुण के तीन भेद किए गए हैं—शब्दगुण, अर्थगुण और शब्दार्थ गुण। शब्दगुण के सात भेद कहे गए हैं—श्लेष, लालित्य, गांभीर्य, सुकुमारता, उदारता, सत्य और यौगिकी। अर्थ के ६ प्रकार हैं—माधुर्य, संविधान, कोमलता, उदारता, प्रौढ़ि एवं सामयिकत्व तथा शब्दार्थगुण के भी ६ भेद वर्णित हैं—प्रसाद, सौभाग्य, यथासंख्य, प्रशस्ति, पाक और राग। (**'अग्निपुराण' के रस, अलंकार-संबंधी मत को जानने के लिए दे० रस एवं अलंकार-संप्रदाय**) 'अग्निपुराण' का अँगरेजी अनुवाद डॉ० एम्० एन० दत्त ने किया है (चौखंबा)। संपूर्ण अग्निपुराण का प्रकाशन चौखंबा संस्कृत सीरीज, वाराणसी से हुआ है। संपादक हैं आ० बलदेव उपाध्याय। संपूर्ण ग्रंथ का हिंदी अनुवाद गीता प्रेस, गोरखपुर से। केवल काव्यशास्त्रीय भाग के अनुवादक डॉ० रामलाल वर्मा। हिंदी एवं संस्कृत मूल—श्री रामआचार्य (खुरजा)।

अचित्य—शोभाकर मित्र-वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। अविलक्षण से विलक्षण कार्य की उत्पत्ति का वर्णन अचित्य अलंकार है।

अविलक्षणाद्विलक्षणकार्योत्पत्तिश्चाचित्यम् ॥५८॥

—अलंकाररत्नाकर, पृ० १००

अचित्यनिमित्ता—विशेषोक्ति अलंकार का तृतीय भेद, जिसमें कार्य की अनुत्पत्ति (न होने) का कारण अचित्य (अज्ञात) होता है। [दे० **विशेषोक्ति**]

अजहत् स्वार्था—उपादान लक्षणा का एक अन्य नाम, जिसमें अन्य अर्थ को ग्रहण करने पर भी अपना अर्थ नहीं छूटता। [दे० **उपादानलक्षणा**]

अज्ञातयौवना—मुग्धा नायिका का एक भेद [दे० **मुग्धा**]। जिस नायिका को यौवन के चिह्नों का ज्ञान न हो, उसे अज्ञातयौवना कहते हैं।

अतद्गुण—लोकन्यायमूलक अलंकार। संभव होने पर भी, निकटवर्ती उत्कृष्ट वस्तु के गुण का अग्रहण अतद्गुण अलंकार है। यह तद्गुण अलंकार

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का विरोधी है, जिसमें निकटस्थ उत्कृष्ट गुणवाली वस्तु के गुण को अल्पगुण-वाली वस्तु ग्रहण कर लेती है। अतद्गुण का अर्थ है, उसके गुण को नहीं ग्रहण करना। इसमें अल्प गुणवाली वस्तु उत्कृष्ट गुणवाली वस्तु के समीप रहकर भी उसके गुण का ग्रहण नहीं करती।

इस अलंकार के पुरस्कर्ता आचार्य मम्मट हैं। परवर्ती आचार्यों ने इनके मत का ही अनुकरण कर अतद्गुण का वर्णन किया है। मम्मट ने बताया कि योग्यता के होने पर भी न्यूनगुणवाला पदार्थ अन्य पदार्थ (उत्कृष्ट गुणवाले निकटस्थ पदार्थ) के गुण को ग्रहण न करे तो अतद्गुग अलंकार होगा।

तद्रूपानुहारश्चेदस्य तत् स्यादतद्गुणः॥—काव्यप्रकाश, १०/१३८

रुय्यक के अनुसार कारण के रहते हुए भी एक वस्तु दूसरी वस्तु का गुण ग्रहण न करे तो अतद्गुण अलंकार होगा।

सति हेतौ तद्गुणाननुहारोऽतद्गुणः।

तद्गुणप्रस्तावात्तद्विपर्ययरूपोऽतद्गुण उच्यते। इह न्यूनगुणस्य विशिष्ट-गुणपदार्थधर्मस्वीकारः प्रत्यासत्त्या न्याय्यः। यदा पुनरुत्कृष्टगुणपदार्थ सन्नि-धानाख्ये हेतौ सत्यपि तद्रूपस्योत्कृष्टगुणस्याननुहरणं न्यूनगुणेनाननुवर्तनं भवति सोऽतद्गुणः। तस्योत्कृष्टगुणस्यास्मिन्गुणा न संतीति यद्वा तस्याप्रकृतस्य-रूपाननुपहारः स सत्यननुहरणहेतौ सोऽतद्गुणः। —अलंकार सर्वस्व, पृ० १४२

विद्याधर, विद्यानाथ एवं विश्वनाथ ने रुय्यक के विचार को अपनाकर अतद्गुण अलंकार का विवेचन किया है।

सति हेतौतद्रूपादाननुहारो ऽतद्गुणः कथितः।—एकावली, ८/६५

सति हेतावन्यगुणास्वीकारः स्यादतद्गुणः।—प्रतापरुद्रीय, पृ० ३००

तद्रूपाननुहारस्तु हेतौ सत्यप्यतद्गुणः।—साहित्यदर्पण, १०/९०

अप्पयदीक्षित ने जयदेव के लक्षण को उद्धृत कर दिया है और पंडित-राज जगन्नाथ तथा विश्वेश्वर पंडित ने मम्मट के ही मत का अनुसरण किया है।

संगतान्यगुणानंगीकारमाहुरतद्गुणम्।—चंद्रालोक, ५/१०५

संगतान्यगुणानंगीकारमाहुरतद्गुणम्॥—कुवलयानंद, १४४

तद्विपर्ययोऽतद्गुणः—रसगंगाधर, पृ० ६६३

अन्यगुणासंबंधे प्रकृतस्यातद्गुणः प्रोक्तः। स्वनिष्ठगुणस्यान्यगुणनिष्ठप्रति-बंधकतानिरूपितप्रतिबंधतानाश्रयत्वेऽतद्गुणः॥—अलंकार कौस्तुभ, पृ० ४०५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जयदेव के लक्षण में बताया गया है कि अपने से संबद्ध किसी पदार्थ के गुण को (अन्य पदार्थ-द्वारा) नहीं ग्रहण करना अतद्गुण है। वस्तु की समीपता तथा गुण की न्यूनाधिकता के अभाव में यह लक्षण अपूर्ण है। विश्वनाथ ने अपनी परिभाषा में बताया है कि कारण के रहते हुए भी यदि प्रकृत पदार्थ अप्रकृत के गुण को ग्रहण न करे तो अतद्गुण होगा। पंडितराज ने अतद्गुण को तद्गुण अलंकार का विपर्यय या विरोधी कहा है।

रीतिकालीन आचार्यों ने 'काव्य-प्रकाश' तथा 'चंद्रालोक' (कुवलयानंद) के लक्षणों को अनुमित कर अतद्गुण अलंकार का वर्णन किया है।

चिंतामणि और कुलपति ने मम्मट की परिभाषा का रूपांतर किया है—

और वस्तु गुन को ग्रहन जहं न करै कछु बात।
ताहि अतदगुन कहत हैं जो कवि मति अवदात ॥

—कविकुलकल्पतरु, ३/१३३

संभवहू में नहिं गहै, मिलत जानि गुणहीन।
ताहि अतदगुन कहत हैं, जे कविजन परबीन ॥

—रसरहस्य, ८/२०३

सु अतदगुन संगतिभएँ जब गुन लागत नाहिँ ॥

—भाषाभूषण, १७०

जहाँ संग मैं और को रंग कछू नहिं लेत।
तहाँ अतदगुन कहत हैं, कबिजन बुद्धि निकेत ॥

—ललितललाम, ३३७

लहै न संगति के गुनहिं सु अतदगुन ठहराइ ॥

—पद्माभरण, २४०

भेद—मम्मट, रुय्यक और विश्वनाथ ने अतद्गुण के दो भेदों का निरूपण किया है।

क. गुण-ग्रहण की संभावना के होने पर भी अप्रस्तुत का प्रस्तुत के गुण को ग्रहण न करना।

ख. प्रस्तुत-द्वारा अप्रस्तुत के गुण का अग्रहण।

पंडितराज ने ऐसे अन्य आचार्यों का मत उद्धृत किया है, जो अतद्गुण को विशेषोक्ति से अभिन्न मानकर विशेषोक्ति में ही इसका (अतद्गुण का) अंतर्भाव करते हैं। उनके अनुसार उत्कृष्ट वस्तु का संनिधान गुण-ग्रहण का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कारण होता है; किंतु अतद्गुण में 'उस गुण का ग्रहण' रूप कार्याभाव रहता है; अतः इसे विशेषोक्ति का ही अवांतर भेद माना जा सकता है, स्वतंत्र अलंकार नहीं।

—दे० रसगंगाधर, पृ० ६६३-६४

उदाहरण—

क. गांगमंबु सितमंबु यामुनं कज्जलाभमुभयमज्जतः।
राजहंस ! तव सैव शुभ्रता चीयते न च न चापचीयते ॥

हे राजहंस ! तुम उजले एवं काले गंगा तथा यमुना के जल में स्नान किया करते हो; किंतु तुम्हारी उज्ज्वलता न तो कम होती है और न अधिक होती है। वह जैसी की तैसी बनी रहती है। यहाँ गंगा तथा यमुना के जल के रंगों का राजहंस पर प्रभाव न पड़ना, अतद्गुण है।

ख. लाल रंग गुन में गुही फटिक माल छबि देत।
तऊ न लीनो लालिमा, रही सेत की सेत ॥

स्फटिक की माला लाल रंग के डोरे में गूँथी जाने पर भी उसकी लालिमा ग्रहण न कर सकी; अतः यहाँ अतद्गुण अलंकार हुआ।

अतिशय—शोभाकर मित्र-वर्णित एक अल्पप्रसिद्ध अलंकार। संभव या असंभव का उत्तरोत्तर आतिशय्य वर्णन अतिशय अलंकार है।

संभावनयान्यथा वातिशयऽतिशयः ॥ ९५ ॥
क्रमेणोतरोत्तरस्मिन्संभावनयाऽसंभावनयातिशयोऽतिशयालंकारः।

—अलंकार रत्नाकर, पृ० १६४

अतिशयोक्ति—अलंकार। जब उपमान उपमेय को छिपाकर उसके साथ अभेदस्थापन करे या उपमान के द्वारा ही उपमेय-ज्ञान हो तो अतिशयोक्ति अलंकार होगा। अतिशयोक्ति का अर्थ है अतिशय कथन। इस अलंकार में उपमान-द्वारा उपमेय की प्रतीति या उपमान का उपमेय को निगरण कर उसके साथ अभेद स्थापन स्वतः एक अतिशय कथन है अर्थात् उपमान के साथ उपमेय का अभिन्नत्व ही अतिशय कथन का द्योतक है।

यह अत्यंत प्रसिद्ध अलंकार है; जिसका विवेचन सभी आचार्यों ने किया है। इसके पुरस्कर्ता भामह हैं। इनके अनुसार अतिशयोक्ति (वक्रोक्ति) समस्त अलंकारों का बीज तथा सामान्य चमत्कार का बोधक है और इसके द्वारा ही अर्थ में चमत्कार का समावेश होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सैषा सर्वैव वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते ।
यत्नोऽस्यां कविनाकार्यः कोऽलंकारोऽनया विना ।।

—काव्यालंकार, २/८५

भामह से पूर्व ३६ काव्यलक्षणों के अंतर्गत भरत ने इसका उल्लेख किया है। इनके अनुसार सामान्यों में विशेष का कीर्त्तन ही 'अतिशय भूषण' है।

बहूनगुणानकीर्तयित्वा सामान्यजनसंभवान् ।
विशेषः कीर्त्यते यस्तु ज्ञेयः सोऽतिशयो बुधैः ।।

—नाट्यशास्त्र, १६/२०

भामह के मत से यदि किसी विशेष निमित्त से लोकातिक्रांत या अलौकिक अर्थ का वर्णन किया जाय तो अतिशयोक्ति अलंकार होगा।

निमित्ततो वचो यत्तु लोकातिक्रांतगोचरम् ।
मन्यंतेऽतिशयोक्ति तामलंकारतया यथा ।।

—काव्यालंकार, २/८१

दंडी ने बताया कि प्रस्तुत विषय का 'लोकसीमातिक्रांतरूप' में वर्णन ही अतिशयोक्ति है।

विवक्षा या विशेषस्य लोकसीमातिवर्त्तिनी ।
असावतिशयोक्तिः स्यादलंकारोत्तमं यथा ।।

—काव्यादर्श, २/२१४

उद्भट ने भामह के ही लक्षण को उद्धृत किया; पर तीन नवीन तथ्य भी प्रस्तुत किए। इन्होंने भेद में अभेद, अभेद में नानात्व तथा कार्यकारण के पौर्वापर्य-विपर्यय के रूप में इसके प्रकारों का निरूपण कर अतिशयोक्ति का स्वरूप-विस्तार किया।

निमित्ततो वचो यत्तु लोकातिक्रांतगोचरम् ।
मन्यंतेऽतिशयोक्ति तामलंकारतया बुधाः ।।

—काव्यालंकारसारसंग्रह, २/११

भेदेनन्यत्वमन्यत्र नानात्वं यत्र बध्यते ।
तथा संभाव्यमानार्थनिबंधेतिशयोक्तिगीः ।।
कार्यकारणयोर्यत्र पौर्वापर्यविपर्ययात् ।
आशुभावं समालंब्य बध्यते सोपि पूर्ववत् ।।

—वही, २/१२,१३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वामन ने बताया कि संभाव्यधर्म एवं उसके उत्कर्ष-वर्णन को अतिशयोक्ति कहते हैं।

संभाव्यधर्मतदुत्कर्षकल्पनाऽतिशयोक्तिः।

—काव्यालंकारसूत्र वृत्ति, ४/३/१०

कुंतक वर्णनीय धर्म के अतिशय विच्छित्तिपूर्ण वर्णन में अतिशयोक्ति मानते हैं।

यस्यामतिशयः कोऽपि विच्छित्त्या प्रतिपाद्यते।
वर्णनीयस्यधर्माणां तद्विदाह्लाददायिनाम् ॥

—वक्रोक्तिजीवित, ३/२६

रुद्रट अतिशयोक्ति को अलंकार न मानकर अलंकारों का वर्ग स्वीकार करते हैं।

अतिशयोक्ति के स्वरूप-विकास में मम्मट ने महत्त्वपूर्ण योग दिया। यद्यपि इन्होंने इसकी कोई सामान्य परिभाषा नहीं दी, तथापि इसके चार प्रकारों का उल्लेख कर इसे ठोस आधार दिया। इनके अनुसार उपमान द्वारा उपमेय का निगरण एवं उसके साथ अभेद-स्थापन, प्रस्तुत का अन्य प्रकार से कथन, यदि अर्थवाले शब्दों का कथन कर असंभव अर्थ की कल्पना एवं कारण-कार्य का पौर्वापर्य वर्णन अतिशयोक्ति अलंकार है। ये निगीर्या-ध्यवसान का समावेश कर औपम्य को अतिशयोक्ति का आधार मानते हैं।

निगीर्याध्यवसानंतु प्रकृतस्य परेण यत्।
प्रस्तुतस्य यदन्यत्वं यद्यर्थोक्तौ च कल्पनम् ॥
कार्यकारणयोर्यश्च पौर्वापर्य विपर्ययः।
विज्ञेयातिशयोक्तिः सा ॥—काव्यप्रकाश, १०/१००-१०१

रुय्यक ने अतिशयोक्ति का सामान्य लक्षण प्रस्तुत किया और उसे वैज्ञानिक आधार दिया। ये इसका आधार अध्यवसाय या अध्यवसान को मानते हैं। विषयी (उपमान) द्वारा विषय (उपमेय) का निगरण ही अध्यवसान है। इनके अनुसार अध्यवसित (उपमान) की प्रधानता ही अतिशयोक्ति है। रुय्यक लोकातिक्रांतगोचरता को अतिशयोक्ति का समानार्थक स्वीकार नहीं करते। परवर्ती आचार्यों में विद्याधर, विद्यानाथ एवं विश्वनाथ के लक्षण रुय्यक से प्रभावित हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अध्यवसित प्राधान्येत्वतिशयोक्तिः। अध्यवसाने त्रयं संभवति—स्वरूपं, विषयो विषयी च। विषयस्य हि विषयिणाऽन्तर्निगीर्णत्वे अध्यवसायस्य स्वरूपा-त्थानम्। तत्र साध्यत्वे स्वरूप प्राधान्यम्। सिद्धत्वेत्वध्यवसित प्राधान्यम्। विषय-प्राधान्यमध्यवसाये नैव संभवति। अध्यवसित प्राधान्ये चातिशयोक्तिः।

—अलंकार सर्वस्व, पृ० ८३

अध्यवसितिसिद्धत्वं प्रकृतस्यान्यत्वकल्पनं यद्वा।
संबंधासंबंधौ तद्व्यत्यासे भवेदतिशयोक्तिः॥

—एकावली, ८/१३

विषयस्यानुपादानाद्विषय्युपनिबध्यते।
यत्र सातिशयोक्तिः स्यात् कविप्रौढोक्तिजीवितम्॥

—प्रताप रुद्रीय, पृ० २८७

सिद्धत्वेऽध्यवसायस्यातिशयोक्तिर्निगद्यते॥
विषयनिगरणेनाभेदप्रतिपत्तिर्विषयिणोऽध्यवसायः।

—साहित्यदर्पण, १०/४६

जयदेव ने अतिशयोक्ति का लक्षण न देकर उसके छह प्रकारों का निरूपण किया। उनके नाम हैं—अक्रमातिशयोक्ति, अत्यंतातिशयोक्ति, चपला-तिशयोक्ति, संबंधातिशयोक्ति, भेदकातिशयोक्ति एवं रूपकातिशयोक्ति।

अक्रमातिशयोक्तिश्चेद् युगपत्कार्यकारणे।
अत्यंतातिशयोक्तिस्तत् पौर्वापर्यव्यतिक्रमे॥
चपलातिशयोक्तिस्तु कार्ये हेतुप्रसक्तिजे।
संबंधातिशयोक्तिः स्यात्तदभावेऽपितद्वचः॥
भेदकातिशयोक्तिश्चेदेकस्यैवान्यतोच्यते।
रूपकातिशयोक्तिश्चेद् रूप्यं रूपकमध्यगम्॥

—चंद्रालोक, ५/४१-४६

अप्पयदीक्षित का अतिशयोक्ति-निरूपण 'चंद्रालोक' पर आधृत है। इन्होंने जयदेव-कृत उपर्युक्त छह भेदों के अतिरिक्त असंबंधातिशयोक्ति तथा सापह्नवातिशयोक्ति नामक दो अन्य प्रकारों का भी वर्णन किया। ये रूपका-तिशयोक्ति का ही प्रथम वर्णन करते हैं।

रूपकातिशयोक्तिः स्यान्निगीर्याध्यवसानतः॥

—कुवलयानंद, ३६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पंडितराज प्राचीन एवं नवीन लक्षणों में समन्वय स्थापित करते हुए विषयी-द्वारा विषय के निगरण को अतिशय कथन कहते हैं और अतिशय कथन को ही अतिशयोक्ति मानते हैं।

विषयिणा विषयस्य निगरणमतिशयः।
तस्योक्तिः॥—रसगंगाधर, पृ० ४१०

विश्वेश्वर पंडित के लक्षण में मम्मट तथा रुय्यक के मतों का अनुमोदन किया गया है।

अप्रकृतेन निगीर्णे साध्यवसानाश्रयात्कृते।
प्रकृतस्यान्यत्वोक्तौ यद्येव स्यात्तथापत्तौ॥
स्याज्जन्यजनकपौर्वापर्यत्यागश्चत्वतिशयोक्तिः॥

—अलंकारकौस्तुभ, पृ० २७७

पंडितराज ने सौंदर्यपूर्ण या चमत्कारयुक्त अतिशयोक्ति को ही अलंकार माना है। जहाँ चमत्काराभाव होगा, वहाँ अलंकार न होकर केवल अतिशयोक्ति ही होगी।

सुंदरत्वे सत्युपस्कारकत्वमलंकारसामान्य लक्षणमिहापि न विस्मरणीयम्।

—रसगंगाधर, पृ० ४१०-४२०

रीतिकालीन आचार्य चिंतामणि तथा कुलपति ने मम्मट की परिभाषा का भावानुवाद किया तथा जसवंतसिंह, मतिराम एवं पद्माकर ने 'कुवलयानंद' के लक्षण को अनूदित किया।

तहाँ ज्ञान उपमेय को उपमानहिं में होइ।
प्रस्तुति को जो अन्यता कहैं दूजै कवि जोइ॥
जो यह यौं तौं होइ जौ या विधि के अभिधान।
कारज पहिले कहै पीछे कहै निदान॥
अतिशयोक्ति ए चार विधि मम्मट कथन प्रकार।

—कविकुलकल्पतरु, ३/१०९-१११

अति अभेद जिय राखि जहँ नहिं कहिए उपमेय।
उपमानै कहिए जहाँ, अतिसय उक्ति सो भेव॥

—रसरहस्य, ८/८१

अतिसयोक्ति रूपक जहाँ केवल ही उपमान॥

—भाषाभूषण, ६९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जहँ केवल उपमान ते प्रगट होत उपमेय।
रूपकातिसय उक्ति तहँ वरनत सुकवि अजेय ॥

—ललितललाम, १११

दीक्षित तक आकर अतिशयोक्ति अलंकार के आठ भेद मान्य हुए। रूपकातिशयोक्ति, भेदकातिशयोक्ति, संबंधातिशयोक्ति, असंबंधातिशयोक्ति, अक्रमातिशयोक्ति, चपलातिशयोक्ति, अत्यतातिशयोक्ति एवं सापह्नवातिशयोक्ति।

१. रूपकातिशयोक्ति—जहाँ उपमान के द्वारा उपमेय का बोध हो, वहाँ रूपकातिशयोक्ति होती है।

रूपकातिशयोक्तिः स्यान्निगीर्याध्यवसानतः।

—कुवलयानंद, ३८

उपमेयहिं को कहत जहं, तजि सु अर्थ उपमान।
अतिसयोक्ति रूपक तहाँ, भाषत सुकबि सुजान ॥

—पद्माभरण, ६२

उदाहरण—

क. कथममुपरि कलापिनः कलापो
विलसति तस्य तलेऽष्टमींदुखंडम्।
कुवलययुगलं ततो विलोलं
तिलकुसुमं तदधः प्रवालभस्मात् ॥

किसी सुंदरी के सौंदर्य का वर्णन करते हुए किसी की उक्ति है—सबसे ऊपर मोर की पूँछ है तथा उसके नीचे अष्टमी का चाँद सुशोभित हो रहा है। उसके नीचे दो चंचल नीलकमल हैं एवं उसके नीचे तिल का फूल और उसके नीचे मूँगा है। यहाँ मयूरपिच्छ (पूँछ) से सुंदरी के केशपाश का, अष्टमी के चाँद से भाल का, नीलकमलों से आँखों का, तिलपुष्प से नासिका का तथा विद्रुम से अधरोष्ठ की प्रतीति होती है। सभी उपमान उपमेय का बोध कराते हैं।

ख कनक-थली ऊपर लसै, कंचन-कलस बिसाल।
तहँ देखे द्वै द्वैज के चंद, बिराजत लाल ॥

—पद्माभरण, ६३

यहाँ कनकथली (सुवर्णस्थली) से गोरी नायिका का, कंचन कलस से स्तनों का, द्वै द्वैज के लाल चंद से नखक्षत का ज्ञान हो रहा है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२. *भेदकातिशयोक्ति*—जब विषय या उपमेय को अन्य रूप में वर्णित किया जाय या उपमेय में उपमान से अभेद होने पर भी भेद दिखाया जाय तो भेदकातिशयोक्ति होगी।

भेदकातिशयोक्तिस्तु तस्यैवान्यत्ववर्णनम् ॥

—कुवलयानंद, ३८

अतिसयोक्ति-भेदक, जु पद औरै तिहि स्तुति काज ॥

—पद्माभरण, ६५

इसमें अन्यत्, और, न्यारे आदि वाचक पद होते हैं।

उदाहरण—

क. **अन्यदेवांगलावण्यमन्याः सौरभसंपदः।**
तस्याः पद्मपलाशाक्ष्याः सरसत्वमलौकिकम् ॥

उस सुंदरी के अंग का लावण्य कुछ और ही है, उसका मुख-सौरभ और ही प्रकार का है तथा उसकी सरसता भी और ही प्रकार की है। यहाँ और शब्द-द्वारा सुंदरी के शरीर को अन्य प्रकार से कहकर अभिन्नत्व में भिन्नता का प्रदर्शन किया गया है।

ख—अनियारे दीरघ दृगनि, किती न तरुनि समान।
वह चितवनि औरै कछू, जिहि बस होत सुजान ॥

—बिहारी।

यहाँ और शब्द के द्वारा आँखों का वैशिष्ट्य-प्रदर्शन कर उपमेय को उपमान से भिन्न बताया गया है।

ग—वह कबिता औरै जु सुनि घूमत सुघर-समाज ॥

—पद्माभरण, ६५

३. *संबंधातिशयोक्ति*—जहाँ असंबंध (अयोग्य) में संबंध (योग्यता) की कल्पना की जाय, वहाँ संबंधातिशयोक्ति होगी।

संबंधातिशयोक्तिः स्यादयोगे योगकल्पनम्।

—कुवलयानंद, ३९

उदाहरण—

संबंधातिसयोक्ति सुजानो। जहँ अजोग में जोग बखानौ ॥

—पद्माभरण, ६६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उदाहरण—

क. सौधाग्राणि पुरस्यास्य स्पृशंति विधुमंडलम् ॥

—कुवलयानंद, ३९

इस प्रासाद (महल) के अग्रभाग चंद्रमंडल को छू रहे हैं। यहाँ सौधाग्र (राजप्रासाद का अग्रभाग) में अयोग्यता में भी योग्यता है, चंद्रमंडल का स्पर्श करने में।

ख. फबि फहरैं अति उच्च निसाना।
जिन महँ अँटकत बिबुध-बिमाना ॥

—पद्माभरण, ६६

ऊँची ध्वजा में देव-विमानों का अटक जाना अयोग्यता में योग्यता-प्रदर्शन है।

४. **असंबंधातिशयोक्ति**—संबंध में असंबंध का कथन किया जाय या योग्य में अयोग्यता दिखाई जाय, तो असंबंधातिशयोक्ति होगी।

योगेऽप्ययोगोऽसंबंधातिशयोक्तिरितीर्यते ॥

—कुवलयानंद, ४०

दूजी ताहि कहत कबि लोगू। जहँहि जोग में भनत अजोगू ॥

—पद्माभरण, ६६

उदाहरण—

क. त्वयि दातारि राजेंद्र ! स्वद्रुमान्नाद्रियामहे ॥

—कुवलयानंद, ४०

हे राजन् ! आपके समान दानी होने पर हम कल्पतरु का भी आदर नहीं करते। कल्पतरु के प्रति आदर न दिखाने में संबंध में भी असंबंध का भाव है।

ख. अति सुंदर लखि सिय मुख तेरो।
आदर हम न करत ससि केरो ॥

चंद्रमा का आदर न करने में योग्य में अयोग्यता दिखाई गई है।

ग. जेहि बर बाजि राम असवारा।
सो सारदउ न बरनै पारा ॥

यहाँ शारदा में वर्णन की असमर्थता योग्य में अयोग्यता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

५. *अक्रमातिशयोक्ति*—जब कारण और कार्य का बिना क्रम के या एक ही साथ वर्णन किया जाय तो अक्रमातिशयोक्ति होगी।

अक्रमातिशयोक्तिः स्यात् सहत्वे हेतुकार्ययोः ॥

—कुवलयानंद, ४१

अतिसयोक्ति अक्रम, जु सँग कारन-काज-बखान ॥

—पद्माभरण, ६७

उदाहरण—

क. आलिंगंति समं देव ! ज्या शराश्च पराश्च ते ॥

—कुवलयानंद

हे राजन् ! आपके बाण तथा शत्रु दोनों एक ही साथ पृथ्वी का आलिंगन कर लेते हैं। बाण का संधान एवं शत्रु-हनन दोनों के एक ही साथ वर्णन में अक्रमातिशयोक्ति हुई।

ख. कढ़त साथ ही म्यान तें असि, रिपु-तन तें प्रान ॥

म्यान से तलवार एवं शत्रु के शरीर से प्राण का एक ही साथ निकलना अक्रमातिशयोक्ति है।

६. *चपलातिशयोक्ति*—कारण के ज्ञान-मात्र से (देखने-सुनने से) ही कार्य होना चपलातिशयोक्ति है।

चपलातिशयोक्तिस्तु कार्ये हेतुप्रसक्तिजे ॥

—कुवलयानंद, ४२

यों चपलातिसयोकति छाजै। हेतु-प्रसंगहिं ते सिधि काजै ॥

—पद्माभरण, ६९

उदाहरण—

क. यामिन यामीति धवे वदति पुरस्तात्क्षणेन तन्वंग्याः।
गलितानि पुरो वलयान्यपराणि तथैव दलितानि ॥

—कुवलयानंद, ४२

प्रिय के ऐसा कहने में कि 'मैं जाता हूँ; अच्छा, नहीं जाता', इस प्रकार की विभिन्न बातों को श्रवण कर सुकुमारी के कुछ कंकण तो हाथ से गिर पड़े तथा कुछ टूट गए। यहाँ कारण के श्रवण से ही कार्य का होना वर्णित है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ख. सुनत पयान-मुहूरत पीको।
दरक्यो मुकत-हार तचि तीको॥

—पद्माभरण।

प्रिय के जाने का मुहुर्त सुनकर ही विरहाग्नि से नायिका का हार जलकर चटक गया। यहाँ श्रवण-मात्र से कार्य होने का वर्णन है।

७. *अत्यंतातिशयोक्ति*—जब कारण के पूर्व कार्य होने का वर्णन किया जाय तो यह भेद होगा।

अत्यंतातिशयोक्तिस्तु पौर्वापर्यव्यतिक्रमे।

—कुवलयानंद ४३

अत्यंतातिसयोकति चीतौ। जहँ पूरब-पर क्रम बिपरीतौ॥

—पद्माभरण, ७०

उदाहरण—

क. प्रागेव हरिणाक्षीणां चित्तमुत्कलिकाकुलं।
पश्चादुद्भिन्नबकुलरसालमुकुलश्रियः॥

—साहित्यदर्पण

पहले ही मृगनयनियों का मन उमंग से पूर्ण हो गया। विकसित बकुल एवं आम्र-मंजरियों की छटा पीछे उत्पन्न हुई। यहाँ वसंत-शोभा का पीछे आना (कारण) एवं मन का उमंगित होना (कार्य) पहले वर्णित है।

ख. पहिलेई प्रभु आइ उबार्‌यौ।
पीछू गज हरि-नाम पुकार्‌यो॥

—पद्माभरण

स्पष्ट है।

८. *सापह्नवातिशयोक्ति*—जब अतिशयोक्ति निषेधयुक्त हो तो सापह्नवातिशयोक्ति होती है।

क. त्वत्सूक्तिषु सुधा राजन्भ्रांताः पश्यंति तां विधौ॥

हे राजन्! आपके सुंदर कथन में (सूक्ति में) अमृत है, मूर्ख उसे चंद्रमा में कहते हैं।

ख. सु अलि कमल तेरे तनहि, सर में कहत अजान॥

—पद्माभरण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भारतीय काव्यशास्त्र में अतिशयोक्ति की परिभाषा दो प्रकार की प्राप्त होती है। प्राचीन आचार्य अतिशय कथन या लोकातिक्रांत कथन को अतिशयोक्ति अलंकार कहते हैं। इस परिभाषा का रूप अत्यंत व्यापक है अर्थात् लोकातिक्रांतगोचरता अतिशयोक्ति अलंकार न होकर एक व्यापक काव्य-तत्त्व है। अतिशय सामान्यतः सभी अलंकारों में पाया जाता है, अतः इसे केवल अतिशयोक्ति की सीमा में आबद्ध कर देना उपयुक्त नहीं कहा जा सकता। अतः प्राचीन आचार्यों के लक्षण समीचीन नहीं कहे जा सकते। इसके द्वितीय लक्षण में उपमान-द्वारा उपमेय के ज्ञान का वर्णन है अर्थात् जब उपमान उपमेय को अपने में छिपाकर उसके साथ अभेद-स्थापित करे तो अतिशयोक्ति अलंकार होगा। कालांतर में यही लक्षण मान्य हुआ।

रूपक और रूपकातिशयोक्ति—दोनों ही अभेद प्रधान अलंकार हैं। अतिशयोक्ति में अध्यवसान की प्रधानता होती है और रूपक में ताद्रूप्य की। रूपक में उपमेय एवं उपमान दोनों का स्पष्टतः कथन किया जाता है, किंतु रूपकातिशयोक्ति में उपमान द्वारा उपमेय का ज्ञान होता है।

अत्यंततिरस्कृत अविवक्षितवाच्यध्वनि—लक्षणामूलाध्वनि का द्वितीय भेद। [दे० **लक्षणामूलाध्वनि**] वाच्य अर्थ का सर्वथा तिरस्कार कर अन्य या भिन्न अर्थ को ग्रहण करने में अत्यंततिरस्कृत वाच्यध्वनि होती है। चूँकि इसमें वाच्यार्थ का सर्वथा तिरस्कार किया जाता है, अतः इसे 'अत्यंततिरस्कृत' कहते हैं। इसमें वाच्यार्थ को बिल्कुल छोड़ दिया जाता है। इसके मूल में प्रयोजनवती लक्षणा होती है। [दे० **प्रयोजनवती लक्षणा**] **'यत्र पुनः स्वार्थं सर्वथा परित्यजन्नर्थांतरे परिणमति, तत्र मुख्यार्थस्यात्यंततिरस्कृतत्वादत्यंततिरस्कृतवाच्यत्वम्।'**

—साहित्यदर्पण, ४/३, वृत्ति।

इसके वाक्यगत और पदगत भेद होते हैं।

उपकृतं बहुतत्रकिमुच्यते सुजनता प्रथिता भवता परम्।
विदधदीदृशमेव सदा सखे सुखितमास्व ततः शरदां शतम्॥

अपकारी मित्र के प्रति किसी का कथन—आपने मेरा बहुत उपकार किया है, उसे कहाँ तक कहा जाय! हे मित्र! सदा इसी प्रकार करते हुए आप सौ वर्षों तक जीवित रहें। यहाँ विपरीत लक्षण से 'उपकृत' तथा 'सुखितमास्व' शब्दों के अर्थ बिल्कुल बदल गए हैं। इसका अर्थ इस प्रकार

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होगा कि तुम बड़े अपकारी हो, तुम्हारी जितनी भी निंदा हो, थोड़ी है। तुम वास्तव में दुष्ट हो, तुम्हारे ऐसे व्यक्ति का शीघ्र ही मरना ठीक है।

सुबरन फूलन की धरा जोरत हैं नर तीन।
सूर और विद्यानिपुन सेवा में जु प्रवीन॥

'सोने के फूलों की पृथ्वी को इकट्ठा करना' इस वाक्य में मुख्यार्थ बाधित है। स्वर्णपुष्पों का होना संभव नहीं है और न पृथ्वी को इकट्ठा किया जा सकता है। यहाँ 'बहुमूल्य धन प्राप्त करना' अर्थ हुआ। तीनों पुरुष अपने पौरुष, विद्या तथा सेना के द्वारा बहुमूल्य संपत्ति प्राप्त कर सकते हैं। यह अर्थ लाक्षणिक है। यहाँ शूर, विद्वान् तथा प्रवीण सेवकों का 'प्रशस्तिगान' व्यंग्य है।

अत्यंतातिशयोक्ति—अतिशयोक्ति अलंकार का सप्तम प्रकार। [**दे० अतिशयोक्ति**]।

अत्युक्ति—अलंकार का एक भेद। जब किसी वस्तु का अत्यंत बढ़ा-चढ़ाकर मिथ्यापूर्ण वर्णन किया जाय तो अत्युक्ति अलंकार होगा। अत्युक्ति का अर्थ अतिशय (अति) कथन (उक्ति) है। इसमें वीरता, दानशीलता, प्रेम, सौंदर्य, विरह आदि का अत्यंत बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन किया जाता है। यह अतिशयमूलक अलंकार है।

इस अलंकार का प्रथम विवेचन जयदेव ने किया है, तत्पश्चात् दीक्षित ने इसका वर्णन किया। नागेश एवं पंडितराज जगन्नाथ इसका अंतर्भाव उदात्त के प्रथम भेद में करते हैं। [**दे० उदात्त**] जयदेव के अनुसार शौर्य, औदार्य आदि का अद्भुत एवं मिथ्यापूर्ण वर्णन अत्युक्ति है।

अत्युक्तिरद्भुतातथ्य शौर्यौदार्यादिवर्णनम् ॥

—चंद्रालोक, ५/११६।

दीक्षित ने 'चंद्रालोक' का लक्षण उद्धृत कर दिया है।

अत्युक्तिरद्भुतातथ्य शौर्यौदार्यादिवर्णनम् ॥

—कुवलयानंद, १६३।

रीतिकालीन आचार्यों ने 'चंद्रालोक' को आधार बनाकर अत्युक्ति अलंकार का वर्णन किया।

जसवंत सिंह ने किसी विषय के अतिशय वर्णन को अत्युक्ति कहा और मतिराम ने सुंदरतादि के मिथ्या वर्णन को। भूषण शूरतादि के अतिशय को

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा पद्माकर उदारता और शूरता के अद्भुत तथा मिथ्या वर्णन को अत्युक्ति कहते हैं।

अलंकार अत्युक्ति यह बरनत अतिसय रूप ॥

—भाषाभूषण, १९०।

जो सुंदरतादिकनि की अधिक झुठाई होय ॥
ताहि कहत अत्युक्ति हैं कबि पंडित सब कोय ॥

—ललितललाम, ३८१

जहँ सूरतादिकन की अति अधिकाई होइ।
ताहि कहत अत्युक्ति हैं, भूषण सब कबि लोइ ॥

—शिवराजभूषण, ३१६।

जहँ उदारतासूरतादिक को करै बखान।
अद्भुत झूठ लिए तहाँ सो अत्युक्ति पहिचान ॥

—पद्माभरण, २६९।

उद्योतकार नागेश तथा विश्वेश्वर पंडित उदात्त के प्रथम भेद में अत्युक्ति का अंतर्भाव कर, इसके अलंकारत्व का खंडन करते हैं। प्रथम उदात्त में भी वस्तु की समृद्धि तथा शौर्यादि की अद्भुतता का वर्णन होता है। [दे० उदात्त]

एतेन शौर्यादेस्तदुक्तौ अत्युक्तिनामा पृथगलंकारः इत्यपास्तम्।

—उद्योत, पृ० ५३१

एतेनात्युक्तेः पृथगलंकारत्वं संपदुत्कर्षे उपात्तम्। शौर्योत्कर्षेत्युक्तिरिति-भेदकथनं न परास्तम्। तत्तदनंतोत्कर्षकथनेनांतालंकारसिद्धत्वात् ॥

—अलंकारकौस्तुभ, पृ० ३४७।

अप्पय दीक्षित का कथन है कि अत्युक्ति एवं अतिशयोक्ति में मात्रा या तारतम्य का अंतर होता है। अतिशयोक्ति में असदुक्ति होती है और अत्युक्ति में अत्यंत असदुक्ति।

—कुवलयानंद, १६३

दीक्षित के अनुसार उदात्त के प्रथम भेद तथा अत्युक्ति में अतर है। उदात्त के प्रथम भेद में संपत्ति की समृद्धि का वर्णन होता है, जब कि अत्युक्ति में शौर्य या औदार्य का अतिशय कथन।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उदाहरण—शौर्य का अतिशय वर्णन :

(क) राजन् ! सप्ताप्यकूपारास्त्वत्प्रतापाग्निशोषिता ।
पुनस्त्वद्वैरिवनितावाष्पपूरेण पूरिता ॥

हे राजन् ! आपके प्रतापानल ने सातों समुद्रों को सोख लिया; किंतु आपके वैरियों की स्त्रियों की अश्रुधारा से वे पुनः पूर्ण हो गए ।

(ख) सौंदर्य का अतिशय वर्णन—

भूषन भार सँभारिहैं क्यों इहि तन सुकुमार ।
सूधे पाँय न धर परत, सोभा ही के भार ॥ —बिहारी ।

(ग) विरहात्युक्ति—

गोपिन के अँसुवन भरी, सदा असोस अपार ।
डगर डगर नै ह्वै रही, अगर-बगर के बार ॥

—बिहारी ।

यहाँ गोपियों के अश्रुप्रवाह से चारों ओर नदी का प्रवाहित हो जाना विरह का मिथ्यापूर्ण बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन है ।

अदिव्य—नायक का एक प्रकार [दे० नायक] । मनुष्य को अदिव्य कहते हैं ।

अद्भुत रस—आश्चर्यजनक पदार्थों के दर्शन से अद्भुत रस उत्पन्न होता है । इसकी उत्पत्ति लोकोत्तर वस्तु या घटना के कारण भी होती है । भरत ने बताया है कि अद्भुत रस की उत्पत्ति दिव्यजनों के दर्शन, अभीष्ट मनोरथ की प्राप्ति, उपवन एवं देवमंदिर में जाने, सभा, विमान, माया, इंद्रजाल की संभावना आदि कारणों से होती है । यह विस्मय स्थायी भावात्मक रस है अर्थात् इसका स्थायी भाव विस्मय है [दे० विस्मय] । इसके आलंबन हैं अलौकिक या आश्चर्यजनक पदार्थ । उद्दीपन के अंतर्गत आश्चर्यजनक पदार्थों का विवेचन आता है और अनुभावों में स्तंभ, स्वेद, रोमांच, स्वर गद्गद होना तथा संभ्रम आदि हैं । अद्भुत रस के संचारी भाव हैं—वितर्क, आवेग, स्मृति, हर्ष, मति आदि । इसका वर्ण पीत है और देवता हैं गंधर्व ।

'अथाद्भुतो नाम विस्मयस्थायिभावात्मकः । स च दिव्यजनदर्शनेप्सितमनोरथावाप्त्युपवनदेवकुलादिगमनसभाविमानमायेंद्रजालसंभावनादिविभावैरुत्पद्यते ।'

—नाट्यदर्पण, ७/७५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"अद्भुतो विस्मयस्थायिभावो गंधर्वदैवतः ॥
पीतवर्णो, वस्तु लोकातिगमालंबनं मतम् ।
गुणानां तस्य महिमा भवेदुद्दीपनं पुनः ॥
स्तंभः स्वेदोऽथ रोमांचगद्गदस्वरसंभ्रमाः ।
तथा नेत्रविकासाद्या अनुभावाः प्रकीर्तिताः ॥"

—साहित्यदर्पण, ३/२४२-२४४

आचार्यों ने लोकोत्तर घटना तथा विस्मयजनक पदार्थों के अतिरिक्त अत्युक्ति, भ्रमोक्ति, चित्रोक्ति तथा विरोधाभास आदि को भी अद्भुत रस का कारण माना है।

'अत्युक्तिभ्रमोक्तिचित्रोक्तिविरोधाभास प्रभृतयो अद्भुता एव ।'

—रसतरंगिणी, पृ० १५८

भरतमुनि ने अद्भुत रस के दो भेदों का कथन किया है—दिव्य एवं आनंदज। दिव्य के दर्शन से दिव्य अद्भुत उत्पन्न होता है और हर्षमय विस्मय या आश्चर्य से आनंदज की उत्पत्ति होती है।

"दिव्यश्चानंदजश्चैव द्विधा ख्यातोऽद्भुतो रसः ।
दिव्यदर्शनजो दिव्यो हर्षादानंदजः स्मृतः ॥"

—नाट्यशास्त्र, ७/८२

शारदातनय ने अद्भुत रस के तीन भेदों का उल्लेख किया है—वाचिक, आंगिक तथा मानस। ध्यान, नेत्रविस्तार, प्रसादपूर्ण मुख और दृष्टि, आनंदाश्रु, रोमांच, अनिमेष दृष्टि, मनःचांचल्य, मानस अद्भुत के रूप हैं। आंगिक में चेलांगुलि भ्रमण, उठ-उठ पड़ना, वलगन, नटन, परस्पर आश्लेष आदि आते हैं। हाहाकार, साधुवाद, कपोलस्फालन ध्वनि, उच्चहास, हर्ष-गीत, उच्च-वचन आदि विकार वाचिक अद्भुत हैं। [दे० भावप्रकाशन, पृ० ६५]

इसके अन्य भेद दृष्ट, श्रुत, संकीर्तित एवं अनुमित के नाम से किए गए हैं। देखने में आश्चर्य प्रकट होनेवाला अद्भुत दृष्ट होता है और अलौकिक कार्य के श्रवण से श्रुत विस्मय होता है। आश्चर्यवत् प्रशंसित विस्मय को संकीर्तित कहते हैं और अलौकिक घटना के अनुमान से होनेवाला विस्मय अनुमित कहा जाता है। [बाबू गुलाबराय—नवरस, पृ० ५१४]

उदाहरण—

क. चराचरजगज्जाल-सदनं वदनं तव ।
गलद्गगनगांभीर्यं, वीक्ष्यास्मि हृतचेतना ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"जो संपूर्ण स्थावर और जंगम संसार का निवास-स्थान है और जिसके सामने गगन की गंभीरता नष्ट हो जाती है, उस तेरे मुख को देखकर मेरा चैतन्य लुप्त हो गया है, आश्चर्य से मैं हतबुद्धि हो गई हूँ।"

श्रीकृष्ण के खुले वदन को देखकर यशोदा की उक्ति—आलंबन श्रीकृष्ण का विवृत (खुला) मुख, उसके भीतर सभी स्थावर-जंगम को देखना उद्दीपन है। अनुभाव हैं—चैतन्य-लोप तथा उससे उत्पन्न रोमांच। संचारी भाव त्रास है।

ख. इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा।
मतिभ्रम मोरि कि आन बिसेखा॥
तन पुलकित मुख बचन न आवा।
नयन मूँदि चरनन सिर नावा॥—रामायण

यहाँ रामचंद्र के अनेक रूपों को देखकर कौशल्या के विस्मय का वर्णन है। रस-सामग्री इस प्रकार है—

स्थायी भाव—विस्मय, आलंबन—शिशु राम, यहाँ-वहाँ राम के कई रूपों को देखना उद्दीपन तथा अनुभाव—रोमांच और स्वरभंग। संचारी—वितर्क।

अधमकाव्य—काव्य का एक भेद [दे० **काव्य-भेद**]। यह काव्य अलंकार-प्रधान होता है।

अधमनायक—प्रकृति के आधार पर किया गया नायक का एक भेद। [दे० **नायक**]। यह नीच प्रकृति का व्यक्ति पापी, आलसी, कृतघ्न, हीनसत्त्व, स्त्री लोलुप, और जड़ होता है।

अधमा—नायिका का भेद विशेष। [दे० **नायिकाभेद**] प्रिय के हित करने पर भी क्रोध करनेवाली नायिका अधमा है। भानुदत्त के अनुसार हित करनेवाले प्रिय के साथ अहित करनेवाली नायिका अधमा होती है। यही जब बिना किसी निमित्त के प्रिय पर क्रोध करे तो उसे चंडी कहते हैं।

हितकारिण्यपि प्रियतमेऽहितकारिण्यधमा।
एषैवानिमित्तकोपना चंडीत्यभिधीयते।
अस्या निष्कारणकोपत्वादधमैव चेष्टा।

—रसमंजरी, पृ० २३१।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पद्माकर का लक्षण—

ज्योंही ज्यों पिय हित करत, त्यों-त्यों परति सरोष।
ताहि कहत अधमा सुकबि, निठुराई को कोष।।

—जगद्विनोद, २७६।

उदाहरण—

क. रसमंजरी से—

प्रस्थाने तव यः करोति कमलच्छायां मुखांभोरुहे
श्रीखंडद्रवधारया शिशिरया मार्गं पुनः सिंचति।
तस्मिन् प्रेयसि विद्रुमद्रवनदीरिंगत्तरंगभ्रमि-
भ्रांतक्लांतसरोजपत्रसदृशा भूयोदृशा क्रुध्यसि।।९१।।

"जब तू प्रस्थान करती है, तब कुम्हलाने के डर से जो तेरे मुख रूपी कमल पर छाया करता है और मार्ग को चंदन के द्रव की ठंडी धारा से सींचता है, ऐसे हितकारी अपने प्रियतम पर, प्रवाल-रस की बहती हुई नदी की तरंगों की भँवरी में चकराते हुए मलिन कमल की भाँति, अपनी आँखें नचाकर तू फिर कोप करती हैं?"

ख. दरपन में निज छाँह सँग लखि प्रीतम की छाँह।
खरी ललाई रोस की ल्याई अँखियन माँह।।

—बिहारी

रुद्रट—स्निह्यति विनापि हेतुं कुप्यत्यपराधमंतरेणैव।
स्वल्पादप्यपकाराद्विरज्यते साधमा प्रोक्ता।।

—काव्यालंकार, १२/४०

अधमा दूती—दूती का एक भेद। [दे० दूती] नायक अथवा नायिका से कटु वाणी बोलनेवाली दूती अधमा कही जाती है।

अधम दूतिका जानिए बचन कहत सतराय।
ग्रंथन को मत देखिकै बरनत सब कबिराय।।

—रसराज, ३०६।

कै पिय सौं कै तियहिं सों, कहै परुष ही बैन।
अधमा दूती कहत हैं, ताही सों मति-ऐन।।

—जगद्विनोद, ३६६।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उदाहरण—

कै गुमान गुन-रूप के, तें न ठान गुनमान।
मनमोहन चित चढ़ि रहीं, तो-सी किती न आन॥

—जगद्विनोद, ३६८।

अधिक—विरोधमूलक अलंकार। आधाराधेय के आधिक्य वर्णन में अधिक अलंकार होता है। इस अलंकार में आधार अथवा आधेय दोनों में से किसी एक की अधिकता का चमत्कारपूर्ण वर्णन किया जाता है। आधार उसे कहते हैं, जिस पर कोई वस्तु आश्रित हो या स्थित रहे, और जो वस्तु रखी जाती है, उसे आधेय कहते हैं। इस अलंकार में आधाराधेय के आधिक्य-वर्णन में विरोध का भाव सन्निहित रहता है।

अधिक अलंकार के उद्भावक आ० रुद्रट हैं। कालांतर में सभी आचार्यों ने इसका वर्णन किया है। दंडी कृत अतिशयोक्ति अलंकार के प्रसंग में आश्रयातिशयोक्ति के रूप में अधिक अलंकार का संकेत है, यही रुद्रट का स्रोत ज्ञात होता है।

अहो विशालं भूपाल भुवनत्रितयोदरम्।
भातिमातुमशक्योऽपि यशोराशिर्यदत्र ते॥

—काव्यादर्श, २/२१९।

रुद्रट ने अधिक के दो प्रकारों का उल्लेख किया है। प्रथम अधिक में एक ही कारण से परस्पर विरुद्ध-स्वभाववाले दो पदार्थों के उत्पन्न होने का वर्णन है। स्पष्ट है कि अधिक का परवर्ती विकास इस भेद के आधार पर नहीं हुआ।

इसके द्वितीय प्रकार में कहा गया है कि विशाल आधार में भी यदि किसी कारण से छोटी वस्तु के समा नहीं सकने का वर्णन हो तो अधिक होगा।

यत्रान्योन्यविरुद्धं बलवत् क्रियाप्रसिद्धं वा।
वस्तुद्वयमेकस्माज्जायत इति तद्भवेदधिकम्॥
यत्राधारे सुमहत्याधेयमवस्थितं तनीयोऽपि।
अतिरिच्येत कथंचित्तदधिकमपरं परिज्ञेयम्॥

—काव्यालंकार, ९/२६,२८।

रुद्रटकृत द्वितीय प्रकार में अधिकालंकार का स्वरूप स्पष्ट हुआ है और इसीके आधार पर पश्चाद्वर्ती आलंकारिकों ने इसका वर्णन किया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मम्मट ने इसके दो प्रकारों का निरूपण कर इसके स्वरूप को व्यवस्थित किया। आधार एवं आधेय के आधिक्य का वर्णन ही अधिक है। यदि वर्ण्यविषय की विशेषता का प्रतिपादन करने के लिए विशाल आधाराधेय से अल्प आधेयाधार को बड़ा बतलाया जाय तो अधिक अलंकार होगा।

महतोर्यन्महीयांसावाश्रिताश्रयतोः क्रमात्।
आश्रयाश्रयिणौ स्यातां तनूत्वेऽप्यधिकं तु तत्॥

—काव्यप्रकाश, १०/१२८।

विश्वनाथ तथा पंडितराज जगन्नाथ ने मम्मट का अनुकरण कर अधिकालंकार का वर्णन किया है।

आश्रयाश्रयिणौरेकस्याधिक्येऽधिकमुच्यते॥

—साहित्यदर्पण, १०/७२।

आधाराधेययोरन्यतरस्यातिविस्तृतत्वसिद्धिफलकमितरस्यातिन्यूनत्वकल्पनमधिकम्॥

—रसगंगाधर, पृ० ६१०।

पंडितराज ने आधाराधेय में से किसी एक को अतिविस्तृत सिद्ध करने में अन्य की अतिन्यूनता की कल्पना को अधिक कहा है।

रुय्यक आधाराधेय की अननुरूपता को अधिक कहते हैं। यहाँ उनका अभिप्राय आश्रय के आधिक्य में आश्रयी की न्यूनता का वर्णन तथा आश्रयी की अधिकता में आश्रय की न्यूनता के कथन से है। रुय्यक का प्रभाव विद्याधर तथा विद्यानाथ के लक्षणों पर है।

आश्रयाश्रयिणोरानुरूप्यमधिकम्। विरोधप्रस्तावादिह निर्देशः। अननुरूपस्य विरोधोत्थापकत्वात्। तच्चानुरूप्यमाश्रयस्य वैपुल्येऽप्याश्रितस्य परिमितत्वाद्वा भवति यद्वाश्रितस्य वैपुल्येऽप्याश्रयस्य परिमितत्वाद्वा स्यात्॥

—अलंकार सर्वस्व, पृ० १६९।

अधिकमिदंगदितं यद्यत्राननुरूपताश्रयाश्रयिणोः।
अत्र विरोधस्य प्रक्रांतत्वमेवैतन्निरूपणकारणम्।
अत्रानानुरूप्ये हि विरोधस्य जागरूकत्वात्॥

—एकावली, ८/१०, पृ० २९१।

आधाराधेययोरानुरूप्याभावोऽधिकोमतः॥

—प्रतापरुद्रीय, पृ० ३०४।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जयदेव आधार से आधेय के आधिक्य-वर्णन में अधिक मानते हैं। इनका अनुकरण दीक्षित ने किया है।

अधिकं बोधमाधारादाधेयाधिकवर्णनम् ॥

--चंद्रालोक, ५/८३।

दीक्षित ने विशाल आधार से भी आधेय के आधिक्य को अधिक माना है।

अधिकं पृथुलाधारादाधेयाधिक्यवर्णनम् ॥

—कुवलयानंद, ९५।

विश्वेश्वर पंडित का अधिक निरूपण मम्मट से प्रभावित है।

आधारस्याधेयादाधेयस्यापिवाधारान् ।
यदि वर्ण्यंते महत्त्वं तत्कशयंत्यधिकमधिकज्ञाः ॥

—अलंकार कौस्तुभ, पृ० ३६९।

मम्मट से पंडितराज तक अधिकालंकार के संबंध में तीन सोपान दिखाई पड़े।

क. विशाल आधेय एवं आधार की अपेक्षा छोटे आधार एवं आधेय का बड़ा होना,

ख. आधाराधेय की अनुरूपता,

ग. आधार की अपेक्षा आधेय के आधिक्य का वर्णन।

रीतिकालीन आलंकारिकों के अधिक-निरूपण पर, 'काव्यप्रकाश', 'चंद्रालोक', 'प्रतापरुद्रीय', 'साहित्यदर्पण' तथा 'कुवलयानंद' का ऋण है।

चिंतामणि ने अपने लक्षण-निर्माण में मम्मट तथा विद्यानाथ से प्रभाव-ग्रहण किया है और कुलपति मम्मट के ऋणी हैं। जसवंतसिंह, मतिराम तथा पद्माकर ने 'कुवलयानंद' के लक्षण को अनूदित कर अधिकालंकार का निरूपण किया है।

जो आधार आधेय की अनुरूपता न होइ ।
दोऊ को आधिक्य क्रम अधिक अलंकृत सोइ ॥

—कुलकल्पतरु, ३/१५५।

छोटि बड़े हू में बड़े, बस्तु ठौर जहिं ठौर ॥
छोटे हू क्रम सों कहैं, अधिक सुद्व त्रिधि ठौर ॥

—रसरहस्य, ८/१९३।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अधिकाई आधेय की जब आधार सों होइ।
जो आधार आधेय तें अधिक अधिक ये दोइ॥

—भाषाभूषण, १२६।

जहाँ बड़े आधार तैं बरनत बढ़ि आधेय।
कहत सुकविजन अधिक तहँ, जिनकी बुद्धि अजेय॥
जहाँ बड़े आधेय तैं बरनत बढ़ि आधार।
तहाँ अधिक औरौ कहत कविजन बुद्धि अपार॥

—ललितललाम, २३६-३८।

अधिक सु अधिक अधार तें, जु आधेय अधिकाय।
अधिक अधिक आधेयतें, जहाँ अधिक आधार॥

—पद्माभरण, १५६, १५७।

भेद—अधिक अलंकार के दो भेद माने गए हैं। मम्मट ने दो भेदों का वर्णन किया था, जिसका अनुसरण सभी आलंकारिकों ने किया। केवल जयदेव ने एक भेद का कथन किया है।

इसके दो भेद हैं—प्रथम अधिक तथा द्वितीय अधिक।

प्रथम अधिक—जब आधेय से आधार को बड़ा बनाया जाय तो प्रथम अधिक होगा।

क. अहो विशालं भूपाल ! भुवनत्रितयोदरम्।
भातिमातुमशक्योऽपि यशोराशिर्यदत्र ते॥

हे भूपाल ! तीनो भुवन का उदर अत्यंत विशाल है, उसमें आप की यशोराशि नापने में अयोग्य होने पर भी समा गई है। यहाँ आधेय (यशोराशि) से आधार (तीनों भुवन) को बड़ा बनाने में प्रथम अधिक हुआ।

ख. तीन पेंड़ जाके अहो, त्रिभुवन में न समाहिं।
धनि राधे राखति तिन्हें, लोयँन कोयँन माँहि॥

यहाँ कृष्ण आधेय हैं और राधा आधार। श्रीकृष्ण के तीन पैर त्रिभुवन में भी नहीं समाते, पर उन्हें राधा अपने नेत्रों के कोर में रखती हैं। यहाँ आधेय (श्रीकृष्ण) की अपेक्षा आधार (राधिका के नेत्र) के आधिक्य का वर्णन है, अतः प्रथम अधिक हुआ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्वितीय अधिक—जब आधार से आधेय को बड़ा बनाया जाय तो द्वितीय अधिक होगा।

क. युगांतकालप्रतिसंहृतात्मनो जगंति यस्यां सविकाशमासतः।
तनौ ममुस्तत्र न कैटभद्विषस्तपोधनाभ्यागमसंभवा मुदः ॥

प्रलय के समय समस्त प्राणियों को अपने भीतर समेट लेनेवाले विष्णु भगवान् के शरीर में सारा संसार समा जाता है, उसी कैटभ के शत्रु श्रीकृष्ण के शरीर मे, नारद मुनि के आने पर उत्पन्न हुआ आनंद, न समा सका। यहाँ श्रीकृष्ण के शरीर का अपेक्षा नारद मुनि के हर्ष को विशाल कहने में द्वितीय अधिक है।

ख. तीन लोक चौदह भुवन, जो ब्रह्मांड लखात।
तामें तुव पद पद्म की प्रभुमहिमा न समात ॥

यहाँ भगवान् का चरण आधेय है और तीनों लोक तथा चौदहों भुवन आधार। भगवान् का चरण तीनों लोक तथा चौदहों भुवन में नहीं समाता, अतः आधेय (भगवान् के चरण) के बड़ा होने से द्वितीय अधिक हुआ।

अधिक और विरोध—दोनों में विरोध का भाव रहता है और उसे हटाया जाता है, यह विरोध वास्तविक नहीं होता। विरोधालंकार में विरोध की परिधि विस्तृत होती है और अधिक में परिमित। अधिक अपवाद है और विरोध नियम। विरोध में विरोधी वस्तुओं को एक साथ रखकर उनमें संबंध स्थापित किया जाता है, किंतु अधिक में आधाराधेय की अधिकता का वर्णन कर चमत्कार उत्पन्न किया जाता है।

अधिक अभेद रूपक—रूपक अलंकार का एक भेद। [दे० रूपक अलंकार]

अधिकतद्रूप रूपक—रूपक अलंकार का एक भेद। [दे० रूपक, अलंकार]

अधिकपदता—वाक्यदोष का छठां भेद। [दे० वाक्यदोष]

अधिकार—नाटक के मुख्य फल या लक्ष्य (उद्देश्य) को अधिकार कहते हैं अर्थात् फल का स्वामित्व ही अधिकार है। अधिकार को प्राप्त करनेवाला अधिकारी कहा जाता है।

अधिकारः फले स्वाम्यमधिकारी च तत्प्रभुः ॥

—साहित्यदर्पण, ६/४३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अधिकारी—नाटक के फल या मूल उद्देश्य को प्राप्त करनेवाले व्यक्ति को अधिकारी कहते हैं अर्थात् प्रधान नायक का नाम अधिकारी है।

अधीरा—स्वकीया नायिका का मान की स्थिति में किया गया एक भेद। [दे० स्वकीया] जो नायिका अपराधी पति के प्रति प्रकट रूप से कोप प्रदर्शित करे, उसे अधीरा कहते हैं।

अव्यंग्यकोपप्रकाशाऽधीरा।—रसमंजरी, पृ० २८

यह भेद मध्या एवं प्रौढ़ा दोनों पर घटित होता है।

१. मध्या अधीरा—जो नायिका कटुवचनों से अपराधी पति का निरादर करे, उसे मध्या अधीरा कहते हैं। इस संबंध में विश्वनाथ तथा भानुदत्त ने समान विचार व्यक्त किया है। विश्वनाथ के अनुसार मध्या अधीरा कर्कश वाणी-द्वारा प्रिय को चोट पहुँचाती है।

प्रियं सोत्प्रासवक्रोक्त्या मध्याधीरा दहेद्रुषा॥
धीराधीरा तु रुदितैरधीरा परुषोक्तिभिः॥

—साहित्यदर्पण, ६१,६२

भानुदत्त का कथन है कि मध्या अधीरा अप्रिय या परुष शब्दों का व्यवहार कर अपना क्रोध प्रकट करती है।

अधीरायाः परुषवाक्।—रसमंजरी, पृ० २९

मतिराम के मत से मध्या अधीरा कठोर वाणी बोलकर पति के प्रति अपना क्रोध प्रकट करती है।

मध्या कही अधीर तिय बोलै बोल कठोर।
पियहिं जनावति कोप सो बरनत कबि सिरमौर॥

—रसराज, ४०

पद्माकर ने बताया कि मध्या अधीरा प्रकट रूप से क्रोध प्रदर्शित कर प्रिय का अनादर करती है।

करै अनादर कंत को प्रगट जनावै कोप।
मध्य अधीरा नायिका, ताहि कहत करि चोप॥

—जगद्विनोद, ५८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उदाहरण—

क. सार्धं मनोरथशतैस्तवधूर्त ! कांता
सैव स्थिता मनसि कृत्रिमहावरम्या ।
अस्माकमस्ति नहि कश्चिदिहावकाश-
स्तस्मात्कृतं चरणपातविडंबनाभिः ।।

अरे धूर्त ! मेरे चरणों पर गिरने का अभिनय न कर। तेरे मन में कृत्रिम हाव-भाववाली, रतिक्रीड़ा की एकमात्र लालसा, तेरी प्रेमिका विराजमान है, तो फिर मेरे लिए स्थान कहाँ है ?

—साहित्यदर्पण।

ख. बलय पीठि तरिवन भुजन उर कुच कुंकुम-छाप।
तितै जाहु मनभावते जितैं बिकाने आप ।।

—रसराज, ४२

२. *प्रौढ़ा अधीरा*—जो नायिका अन्यासक्त नायक पर क्रोधित होकर उसका ताड़न एवं तर्जन करे, उसे प्रौढ़ा अधीरा कहते हैं। इसे प्रगल्भा अधीरा भी कहा जाता है।

धनंजय के अनुसार प्रगल्भा अधीरा क्रोध में आकर नायक को पीटती तथा झिड़कती है।

सावहित्थादरोदास्ते रतौ, धीरेतरा क्रुधा।
संतर्ज्य ताडयेद्, मध्या मध्याधीरेव तं वदेत् ।।

—दशरूपक, २/१९

विश्वनाथ ने नायक को डराने-धमकाने तथा मारपीट करनेवाली नायिका को प्रौढ़ा अधीरा कहा है।

धीराधीरा तु सोल्लुंठभाषितैः खेदयत्यमुम् ।।
तर्जयेत्ताडयेदन्या प्रत्येकं ता अपि द्विधा ।।

—साहित्यदर्पण, ३/६३,६४

भानुदत्त ने भी इसी प्रकार का मत व्यक्त किया है—

अधीरायास्तर्जनताडनादि।—रसमंजरी, पृ० २९

मतिराम प्रिय को डराकर सुमन की मार करनेवाली नायिका को प्रौढ़ा अधीरा कहते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

डरु दै कै प्रिय को प्रिया देय सुमन की मारु ।
प्रौढ़-अधीरा कहत हैं ताहि सुकबि मति चारु ॥

—रसराज, ४९

पद्माकर का लक्षण स्पष्ट एवं सटीक है। इनके अनुसार पति का अपराध देखकर तर्जन और ताड़न करनेवाली नायिका प्रौढ़ा अधीरा है।

कछु तरजन ताड़न कछू, करि जु जनावै रोष ।
प्रौढ़ अधीरा नायिका, निरखि नाह को दोष ॥

—जगद्विनोद, ६७

उदाहरण—

क. प्रतिफलमवलोक्य स्वीयमिंदोः कलायां
हरशिरसि परस्या वासमाशंमाना ।
गिरिशमचलकन्या तर्जयामास कंप-
प्रचलवलयचंचत्कांतिभाजा करेण ॥

—रसमंजरी, १६

भगवान् शिव के सिर पर स्थित इंदुकला को देखकर पार्वती को संदेह हुआ कि कोई अन्य स्त्री तो यहाँ आकर नहीं डटी हुई है? तब उन्होंने चंचल कंकण की कांतिवाले अपने कंपित कर से शंकरजी का तर्जन किया।

ख. तेह-तरेरे दृग नहीं, राखति क्यों न अँगोट ।
छैल छबीले पै कहा, करति कमल की चोट ॥

—जगद्विनोद, ६९

अध्यवसान—आरोप के विषय का विषयी (आरोप्यमाण) द्वारा निगरण या आरोप के विषय का विषयी-द्वारा तिरोधान होने को अध्यवसान कहते हैं। [दे० सारोपालक्षणा]

अध्येय—यह भोज-वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध शब्दालंकार है। जहाँ विधि, निषेध एवं व्युत्पत्ति के कारण लोकयात्रा का प्रवर्तन हो, उसे अध्येय कहा गया है। इसके अंतर्गत काव्य, शास्त्र, इतिहास, काव्यशास्त्र, काव्येतिहास तथा शास्त्रेतिहास का कथन किया गया है।

यद्विधौ च निषेधे च व्युत्पत्तेरेवकारणम् ।
तदध्येयं विदुस्तेन लोकयात्रा प्रवर्तते ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

काव्यशास्त्रेतिहासौ च काव्यशास्त्रं तथैव च।
काव्येतिहासः शास्त्रेतिहासस्तदपि षड्विधम् ॥

—सरस्वतीकंठाभरण, २/१३८,१३९

अनन्वय—सादृश्यमूलक अलंकार। जब एक ही पदार्थ को उपमेयता एवं उपमानता प्रदान की जाय तो वहाँ अनन्वय अलंकार होगा। 'अनन्वय' का अर्थ है अन्वय या संबंध का न रहना—न अन्वयेतीति अनन्वयः। इस अलंकार में अन्य उपमानों का निराकरण करने के लिए उपमेय को ही उपमान मान लिया जाता है। न विद्यते उपमेयस्य उपमानांतरेण अन्वयः संबंधो वाऽत्रेति अनन्वयः। अभिप्राय यह कि संसार में उपमेय के समान अन्य वस्तु को न देखकर, उसकी अद्वितीयता सिद्ध करने के लिए, जब एक ही वस्तु (उपमेय) को उपमान मान लिया जाय तो अनन्वय अलंकार होगा अर्थात् एक ही वस्तु का उपमेय और उपमान मानना अनन्वय है। इसमें एक ही वाक्य में उपमेय तथा उपमान का कथन किया जाता है।

इस अलंकार का वर्णन सभी आचार्यों ने किया है। सर्वप्रथम भामह ने इसका वर्णन किया। 'नाट्यशास्त्र' में भरत ने सदृशी नामक उपमा के एक प्रकार में अनन्वय अलंकार का संकेत किया है। दंडी, भोज और हेमचंद्र इसे स्वतंत्र अलंकार न मानकर उपमा का एक प्रकार स्वीकार करते हैं।

यत्त्वयाद्य कृतं कर्म परिचितानुरोधिना।
सदृशं तत्तवैवस्यादिति मानुषकर्मणः॥

—नाट्यशास्त्र १६/५०

इसकी व्याख्या में अभिनवगुप्त ने अनन्वय का संकेत किया है—यत्रोपमेयस्यैवोपमानतासेयं सदृशी। अभिनवभारती, पृ० ३२४

चंद्रारविंदयोः कांतिमतिक्रम्यमुखं तव।
आत्मनैवाभवत्तुल्यमित्यसाधारणोपमा॥

—काव्यादर्श, २/३५

दंडी इसे साधारणोपमा के नाम से पुकारते हैं।

अथोत्पाद्योपमा नाम तुरीयानन्वयोपमा॥

—सरस्वतीकंठाभरण, ४/२३

भामह ने सर्वप्रथम इसे स्वतंत्र अलंकार के रूप में स्थान दिया है। इनके अनुसार इस बात को सिद्ध करने के लिए कि उपमेय के सदृश अन्य वस्तु नहीं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है, जब एक ही पदार्थ को उपमेय और उपमान बना दिया जाय तो अनन्वय अलंकार होगा।

यत्र तेनैव तस्य स्यादुपमानोपमेयता।
असादृश्यविवक्षास्तमित्याहुरनन्वयम्॥

—काव्यालंकार, ३/४५

उद्भट ने भामह के ही लक्षण को उद्धृत कर दिया है।

—काव्यालंकारसारसंग्रह, ६/४

वामन एक ही वस्तु को उपमेय और उपमान मानने में अनन्वय स्वीकार करते हैं।

एकस्योपमेयोपमानत्वेऽनन्वयः।

—काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, ४/३/१४

मम्मट ने इसके स्वरूप को व्यवस्थित करते हुए कई नवीन तथ्यों का समावेश किया। इनके अनुसार अनन्वय में 'इतरोपमान-व्यवच्छेद' होता है अर्थात् अन्य उपमान का निषेध रहता है। इसमें एकवाक्यगत्व होना है अर्थात् उपमेय और उपमान का कथन एक ही वाक्य में होता है। जब एक ही पदार्थ को एक वाक्य में उपमेय और उपमान कहा जाय तो अनन्वय अलंकार होगा। इसमें उपमान के संबंध का अभाव होता है।

उपमानोपमेयत्वे एकस्यैवैक वाक्यगे।
अनन्वयः। उपमानांतर संबंधाभावोऽनन्वयः॥

—काव्यप्रकाश, १०/९१

रुय्यक ने एक ही पदार्थ को उपमेय एवं उपमान कहने को अनन्वय माना। अपने से अतिरिक्त अन्य उपमान के निषेध में उन्होंने अनन्वय की स्थिति स्वीकार कर लक्षण में 'द्वितीय स ब्रह्मचारिनिवृत्ति' का सन्निवेश किया।

एकस्यैवोपमानोपमेयत्वेऽनन्वयः। एकस्य तु विरुद्धधर्मसंसर्गो द्वितीय सब्रह्मचारिनिवृत्त्यर्थः। अतएवानन्वय इति योगोऽप्यत्रसंभवति।

—अलंकारसर्वस्व, पृ० ३७-३८

जयदेव, विद्याधर, विद्यानाथ और विश्वनाथ पर मम्मट और रुय्यक का प्रभाव है।

उपमानोपमेयत्वे यत्रैकस्यैव जागृतः॥

—चंद्रालोक, ५/१२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एकस्यैवोपमानोपमेयत्वेऽनन्वयोमतः ।

—प्रतापरुद्रीय, पृ० २६७

अनुगतिरूपमंगानामेकस्मिन्नेव जायते वाक्ये ।
यद्येकस्य तदानीमन्वर्थोऽनन्वयः कथितः ॥

—एकावली, ८/४

विश्वनाथ एक ही वाक्य में एक पदार्थ को उपमेय और उपमान बनाने को अनन्वय कहते हैं ।

उपमानोपमेयत्वमेकस्यैवत्वनन्वयः ।

—साहित्यदर्पण, १०/२६

शोभाकर मित्र के अनुसार उसके एक भाग या उसी के समान पृथक् मानकर उपमेय के साथ जो काल्पनिक सादृश्य होता है, उसे अनन्वय कहते हैं । उन्होंने अनन्वय के तीन भेदों का वर्णन किया है ।

क. उपमेय को उपमान रूप में कल्पित करना ।

ख. उपमेय के एक देश को उपमान के रूप में कल्पित करना ।

ग. उपमेय को ही प्रतिबिंब आदि के कारण भिन्न मानकर उपमान के रूप में कल्पित कर लेना ।

तेन तदेकदेशेनावसितभेदेनवोपमानतया
कश्चितेन सादृश्यमनन्वयः ।
तेनैव तदेक देशेनावसितभेदेन वाऽनन्वयः ॥९॥

—अलंकाररत्नाकर, पृ० १०

अप्पय दीक्षित ने एक ही वस्तु के उपमानत्व तथा उपमेयत्व वर्णन को अनन्वय कहा है । कवि उपमेय की अनुपमता सिद्ध करने के लिए ही अन्य वस्तु को उपमान नहीं बनाता ।

उपमानोपमेयत्वं यदेकस्यैव वस्तुनः । एकस्यैव वस्तुनः उपमानोपमेयत्ववर्णनमनन्वयः । वर्ण्यमानमपि स्वस्य स्वेन साधर्म्यं नान्वेतीति व्युत्पत्तेः । अनन्वयिनोऽप्यर्थस्याभिधानं सादृश्यांतरव्यवच्छेदेनानुपमत्वद्योतनाय । ततश्च स्वस्य स्वेनापिसादृश्यसंभवादनुपमेयत्वे पर्यवसानम् ॥

—कुवलयानंद, १०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'चित्रमीमांसा' में दीक्षित ने कहा कि यदि एक पदार्थ की उपमा, केवल अनुगामी धर्म के आधार पर, स्वयं उसी से दी जाय तो वहाँ अनन्वय अलंकार होगा।

स्वस्य स्वेनोपमा या स्यादनुगाम्येकधर्मिका।
अन्वर्थनामधेयोऽयमनन्वय इतीरितः॥

—चित्रमीमांसा, पृ० ४६

पंडितराज ने कहा कि द्वितीय सदृश का निवारण ही जिसका फल हो, उस वर्णन में आनेवाला तथा एक ही उपमान उपमेयवाला सादृश्य अनन्वय है। वह जब अन्य अर्थ का उपस्कारक हो तभी अनन्वय अलंकार होगा, शुद्ध अनन्वय के वर्णन में अलंकारत्व का अभाव होता है।

द्वितीय सदृश व्यवच्छेदकफलवर्णनविषयीभूतं यदेकोपमानोपमेयकं सादृश्यं तदनन्वयः।—रसगंगाधर, पृ० २७०

इन्होंने इसके ६ भेदों का वर्णन किया है—श्रौत वाक्यगत अनन्वय, श्रौत समासगत, आर्थवाक्यगत, आर्थसमासगत, आर्थतद्धितगत तथा श्रौत-तद्धितगत। इन्होंने लुप्त एवं पूर्ण के रूप में दो भेदों की कल्पना की। पूर्वोक्त ६ भेद पूर्णानन्वय के हैं। लुप्त के भी पाँच प्रकार होते हैं।

विश्वेश्वर पंडित ने अन्य सदृश का निषेध करने के लिए एक ही पदार्थ को उपमेय तथा उपमान मानने को अनन्वय कहा है।

यत्रैकावच्छिन्नेस्तामुपमानोपमेयत्वे।
अन्य सदृशं निषेद्धुं तमनन्वयसंज्ञमाचख्युः॥

—अलंकार कौस्तुभ, पृ० १६८

अनन्वय के विवेचन-प्रवाह में तीन तथ्यों पर बल दिया गया—

क. एक ही पदार्थ की उपमेयोपमानता।

ख. असादृश्यविवक्षा या अन्य उपमान का निषेध।

ग. एक वाक्यगतत्व।

पंडितराज ने अन्य अर्थ के उपस्कारकत्व को इसका प्रधान तत्त्व माना है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रीतिकालीन आचार्यों का अनन्वय-विवेचन 'काव्यप्रकाश', 'चंद्रालोक' तथा 'कुवलयानंद' पर आश्रित है। चिंतामणि पर मम्मट और विद्यानाथ दोनों का प्रभाव है और कुलपति ने 'काव्य प्रकाश' के लक्षण का भावानुवाद किया है। जसवंत सिंह, मतिराम और पद्माकर ने 'चंद्रालोक' एवं 'कुवलयानंद' को आधार बनाकर अनन्वय का वर्णन किया है।

कहिये जो उपमेय अरु वहै जहाँ उपमान।
ताहि अनन्वय कहत हैं, पंडित सुकवि सुजान॥

—कविकुलकल्पतरु, ३/२५

नहिं पाइये समता जगत, जाकी तत उपमान।
उपमेयै कीजे तहां, ताको अनन्वय जान॥

—रसरहस्य, ८/२३

उपमे ही उपमान जब कहत अनन्वय ताहि॥

—भाषाभूषण, ४५

जहाँ एक ही बात कौं उपमेयो उपमान।
तहाँ अनन्वय कहत हैं कवि 'मतिराम' सुजान॥

—ललितललाम, ५३

सु अनन्वय एक वस्तु हीं, उपमेयहु उपमान॥

—पद्माभरण, २६

उदाहरण—

क. न केवलं भाति नितांतकांतिर्नितंबिनी सैव नितंबिनीव।
यावद्विलासायुधलास्यवासास्ते तद्विलासा इव तद्विलासा॥

वह अत्यंत सुंदरी नितंबिनी उस नितंबिनी के ही समान शोभ रही है, जिसमें कामदेव थिरक रहा है, ऐसे उसके हाव-भाव उसी के विलास की तरह हैं। यहाँ नितंबिनी को उसी के समान और उसके हावभाव को उसी के समान कहने में अनन्वय अलंकार है।

ख. राम से राम सिया सी सिया उपमा सिरमौर विरंचि बिचारे।

उदाहरण स्पष्ट है।

ग. सुंदर नंदकिसोर सो सुंदर नंदकिसोर॥

उपमा और अनन्वय—उपमा में उपमेय तथा उपमान दोनों भिन्न होते हैं, किंतु अनन्वय में दोनों भिन्न नहीं होते। इसमें एक ही पदार्थ को उपमेय एवं उपमान दोनों कहा जाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनन्वय और लाटानुप्रास—लाटानुप्रास में शब्द तथा अर्थ दोनों की आवृत्ति होती है, पर अनन्वय में केवल अर्थ का आवर्तन होता है। अनन्वय में शब्द की एकता प्रासंगिक है, पर लाटानुप्रास में वही उसका साक्षात् प्रयोजक है।

अनवीकृत—अर्थदोष का ग्यारहवाँ भेद। [दे० अर्थदोष]

अनादर—शोभाकरमित्र-वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। इसमें किसी वस्तु की अस्वीकृति या अनादर का भाव होता है। अप्राप्त पदार्थ के सदृश या तुल्यवस्तु के अनादर को अनादर अलंकार कहते हैं।

अप्राप्तार्थं तत्तुल्यानादरोऽनादरः ॥७०॥

—अलंकाररत्नाकर

अनियमपरिवृत्तता—अर्थदोष का तेरहवाँ भेद। [दे० अर्थदोष]

अनुकर्त्ता—नाटक में अनुकर्त्ता का अर्थ अभिनेता है। यह पात्रों (कामादि) के चरित्र का अनुकरण कर रंगमंच पर प्रदर्शित करता है।

अनुकार्य—नाटक में मूल पात्र को अनुकार्य कहा जाता है। जिसके रूप या वेशभूषा का अनुकरण कर अभिनेता रंगमंच पर प्रदर्शित करे, उसे अनुकार्य कहते हैं। उदाहरण के लिए दुष्यंत या राम अनुकार्य हैं।

अनुकूल—एक प्रकार का अलंकार। इसके उद्भावक महापात्र विश्वनाथ हैं। यदि प्रतिकूलता अनुकूलता का कार्य करे तो अनुकूल अलंकार होगा। इसमें प्रतिकूल आचरण अनुकूलता का साधक होता है।

अनुकूलं प्रातिकूल्यमनुकूलानुबंधि चेत् ॥

—साहित्यदर्पण, १०/६४

उदाहरण—

कुपितासि यदातन्वि निधाय करजक्षतम्।
बधान भुजपाशाभ्यां कंठमस्य दृढं तदा ॥

हे सुंदरि, यदि तुम कुपित हो गई हो तो मेरे (नायक के) शरीर में नखक्षत करके मेरे कंठ को बाहुपाश से दृढ़तापूर्वक बाँध दो। यहाँ नखक्षत करना एवं आलिंगनपाश में बांधना प्रतिकूल होने पर भी आनददायक है।

क्यों आवाज लगाती हो, हाजिर हूँ बंदी कर लो।
जंजीरों का कौन काम है, मंजु अंक में भर लो ॥

—'नूरजहाँ' से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनुकूल—पति (नायक) का एक भेद। [दे० पति] परस्त्री से सदा विमुख रहकर अपनी स्त्री से अनुराग रखनेवाला नायक अनुकूल होता है। विश्वनाथ ने एक नायिका में अनुरक्त नायक को अनुकूल कहा है। धनंजय भी एक ही नायिका के प्रति आसक्त नायक को अनुकूल कहते हैं।

सार्वकालिकपरांगनापरांग्मुखत्वे सति सर्वकालामनुरक्तोऽनुकूलः।

—रसमंजरी, पृ० १७३

अनुकूल एकनिरतः।—साहित्यदर्पण, ३/३७

अनुकूलस्त्वेकनायिकः।—दशरूपक, २/७

रीतिकालीन आचार्यों में दास, मतिराम और पद्‌माकर ने स्वकीया या एक पत्नी में अनुरक्त नायक को अनुकूल की संज्ञा दी है।

इक तियव्रत अनुकूल है।—रससारांश, १६७

सदा आपनी नारि सों राखै अतिही प्रीति।

परनारी तें विमुख जो सो अनुकूल सुरीति॥

—रसराज, २४४

जो पर-बनिता तें बिमुख, सोऽनुकूल सुखदानि।

—जगद्विनोद, २८६

उदाहरण—

क. अस्माकं सखि ! वाससी न रुचिरे, ग्रैवेयकं नोज्ज्वलं।

नो वक्ता गतिरुद्धतं न हसितं, नैवास्ति कश्चिन्मदः।

किंत्वन्येऽपि जना वदंति सुभगोऽप्यस्याः प्रियो नान्यतो,

दृष्टिं निक्षिपतीति विश्वमियता मन्यामहे दुःस्थितम्॥

कोई सुंदरी अपनी सखी से कह रही है कि मेरे वस्त्र भी सुंदर नहीं हैं और न गले का आभूषण स्वच्छ है, चाल में लोच नहीं और हँसी में किसी प्रकार की विचित्रता और मद भी नहीं है। परंतु, तब भी जब लोग यह कहते सुनाई पड़ते हैं कि मेरा सुंदर पति भी मेरे अतिरिक्त किसी अन्य सुंदरी पर आँख नहीं डालता, तब मुझे ऐसा ज्ञात होता है कि मुझको छोड़कर सारा संसार दुःखी है।

ख. मनमोहन-तन घन-सघन, रमनि राधिका मोर।

श्री राधा-मुखचंद को, गोकुलचंद चकोर॥

—जगद्विनोद, २८८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनुकृति—शोभाकरमित्र-वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। इसमें निमित्तांतर या हेत्वंतर से (अन्य हेतु के कारण) किसी वस्तु के साथ तथात्व या ताद्रूप्य प्राप्ति का कथन होता है। हेत्वंतर से अन्य का उसी प्रकार हो जाना अनुकृति है।

हेत्वंतरादन्यस्यापि तथात्वमनुकृतिः ॥ ७२

—अलंकाररत्नाकर।

अनुक्तनिमित्ता—विशेषोक्ति अलंकार का द्वितीय प्रकार, जिसमें कार्य की अनुत्पत्ति का कारण कहा नहीं जाता। [दे० विशेषोक्ति]

अनुगुण—लोकन्यायमूलक अलंकार। परसन्निकर्ष से अपने पूर्व-सिद्ध गुण की वृद्धि को अनुगुण अलंकार कहते हैं : 'अनुगुण' का अर्थ है—(अनु—अनुकूल, अनुगत, उत्कर्ष) गुणोत्कर्ष या गुण-वृद्धि। इस अलंकार में दूसरे की समीपता से अपने गुण की वृद्धि हो जाने का वर्णन होता है। अनुगुण में किसी वस्तु की गुणवृद्धि पूर्वकाल में न होकर पश्चात् काल में होती है।

अनुगुण अनुकूलोगुणो यस्य, अनुकूले, अनुगते अनुरूपे च। वाचस्पत्या

—भाग १, पृ० १७२।

इस अलंकार की उद्भावना जयदेव ने की है और अप्पय दीक्षित ने उनके लक्षण को उसी रूप में उद्धृत कर दिया है। जयदेव ने बताया कि अन्य पदार्थ के सन्निकर्ष से अपने गुण के उत्कर्ष को अनुगुण कहते हैं।

प्राक्सिद्ध स्वगुणोत्कर्षोऽनुगुणः परसन्निधेः ॥

—चंद्रालोक, ५/१०६, कुवलयानंद, १४५।

महाराज जसवंत सिंह तथा मतिराम ने 'चंद्रालोक' की परिभाषा का अनुवाद कर अनुगुणालंकार का वर्णन किया है।

अनुगुन संगति तें जबै पूरब गुन सरसाइ ॥

—भाषाभूषण, १७१।

समरुचि संगति और के बढ़त आपनौ रंग।
अनुगुन तासौं कहत हैं, जे कबि बुद्धि उतंग ॥

—ललितललाम, ३३९।

संगति तें पूरबजु गुन, बढ़ै सु अनुगुन आइ ॥

—पद्माभरण, २४१।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नागेश और विश्वेश्वर पंडित इसे स्वतत्र अलंकार नहीं मानते। उनके अनुसार अपने पूर्वसिद्ध गुण की वृद्धि तद्गुण ही है, अतः इसका अंतर्भाव तद्गुण में हो जाता है। [उद्योत पृ० ५७४ तथा अलंकार-कौस्तुभ, पृ० ४०५]

उदाहरण—

क. **नीलोत्पलानि दधते कटाक्षैरतिनीलताम्।**

—कुवलयानंद, १४५।

नायिका के कान में लगे हुए नीले कमल कटाक्षों के कारण और भी अधिक नीलिमा धारण कर रहे हैं। यहाँ कटाक्षों के संसर्ग से नील कमलों का अधिक नीला हो जाना अनुगुण है।

ख. **मुक्तमाल हिय हास तें अधिक सेत ह्वै जात॥**

हृदय की मोती-माला का हँसी के प्रकाश से अधिक उज्ज्वलता धारण करने में अनुगुण है।

अनुचारिका—सभी अवस्थाओं में राजा के साथ रहनेवाली दासी को अनुचारिका कहते हैं। यह राजा के अंतःपुर में रहनेवाली एक आयुक्ता है, जिसका कार्य मुख्यतः आगार की सुरक्षा करना है।

अनुचितार्थ—शब्ददोष का षष्ठ प्रकार। [दे० शब्ददोष]

अनुज्ञा—एक गौण अलंकार। जब दोष में (दोषयुक्त पदार्थ में) किसी विशेष या उत्कृष्ट गुण की स्थिति देखकर उसकी लालसा की जाय तो अनुज्ञा अलंकार होगा। अनुज्ञा का अर्थ है अनुकूल (अनु) ज्ञान (ज्ञा)। इस अलंकार में दोष में गुण देखकर, या दोषयुक्त वस्तु को अनुकूल जानकर उसकी इच्छा करने का वर्णन होता है। [अनुज्ञा—अनु√ज्ञा (जानना)+अङ्+टाप्, अनुज्ञप्त, आज्ञा] मानक हिंदी कोश, भाग १, पृ० १०५। इस अलंकार में किसी विशेष उद्देश्य से ही दोष-ग्रहण होता है।

इसका प्रथम विवेचन अप्पय दीक्षित ने किया है, तत्पश्चात् पंडितराज जगन्नाथ ने इसका निरूपण किया। उद्योतकार नागेश इसे स्वतंत्र अलंकार नहीं मानते और विशेष में इसका अंतर्भाव कर देते हैं। दीक्षित ने बताया कि जब विशेष गुण की स्थिति के कारण दोष की इच्छा की जाती है तो अनुज्ञा अलंकार होता है।

दोषस्याभ्यर्थनानुज्ञा तत्रैव गुणदर्शनात्॥

—कुवलयानंद, १३७।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पंडितराज की परिभाषा में दीक्षित का ही विचार व्यक्त हुआ है। उनके अनुसार किसी उत्कट गुण की लालसा से दोष रूप में प्रसिद्ध वस्तु की प्रार्थना करना अनुज्ञा है।

उत्कटगुणविशेषलालसया दोषत्वेन प्रसिद्धस्यापि वस्तुनः प्रार्थनमनुज्ञा ॥

—रसगंगाधर, पृ० ६८७।

रीतिकालीन आचार्य जसवंत सिंह, मतिराम और पद्माकर ने दीक्षित के लक्षण का अनुवाद कर अनुज्ञा अलंकार का वर्णन किया है।

होत अनुज्ञा दोष को जब लीजै गुण मान ॥

—भाषाभूषण, १६३।

करत दोष की चाह जहँ ताही में गुन देखि।
वहाँ अनुज्ञा कहत हैं कविजन ग्रंथनिलेखि ॥

—ललितललाम, ३२१

दोष चहै मन मानि गुन सु अवज्ञा ठहराइ ॥

—पद्माभरण, २३१।

उदाहरण—

क. प्रणिपत्य विधे ! भवंतमद्धा विनिबद्धांजलिरेकमेव याचे।
जनरस्तु कुले कृषीबलानामपि गोविंदपदारविंदभाजाम् ॥

हे ब्रह्मा, हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ कि मेरा जन्म कृषकों के भी वंश में हो, किंतु ऐसे कृषकों के, जो गोविंद के चरण-कमल का भजन करते हों। भगवान् की भक्ति की आकांक्षा से कृषकों के भी वंश में उत्पन्न होने की कामना करने में अनुज्ञा अलंकार हुआ।

ख. रामहि चितव सुरेस सुजाना।
गौतम-साप परमहित माना ॥

—रामायण।

हजार आँखों से रामचंद्र को देखकर इंद्र का गौतम के शाप को कल्याण-कारक समझना अनुज्ञा अलंकार है।

ग. चेरिये पै जो गुपाल रचैं तो
चलौ री सबै मिलि चेरी कहावैं ॥

अनुनायक—नायक का एक भेद। यह पात्र नायक (प्रधान पात्र) से किंचित् न्यून होकर भी कथा-शरीर में उपयोगी सिद्ध होता है। उदाहरण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के लिए रामकथा में सुग्रीव और विभीषण को अनुनायक कहा जा सकता है। यह मुख्य नायक का भक्त होकर उसके कार्यों में सहयोग देता है।

अनुप्रास—(शब्दालंकार का एक प्रकार)। जहाँ व्यंजनों की समता हो, किंतु उनके स्वर मिलें अथवा नहीं, वहाँ अनुप्रास अलंकार होता है। अनुप्रास शब्द अनु+प्र+आस के योग से निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है— अनु (अनुकूल या बार-बार), प्र (प्रकर्ष या नैकट्य) तथा आस (रखना या विन्यास करना) अर्थात् वर्णों का क्रमिक विन्यास या वर्णनीय रस के अनुकूल व्यंजनों का बार-बार एक ही क्रम से (निकट) विन्यास करना। [अनु+प्र+अस्+घञ। समान ध्वनियों, अक्षरों या वर्णों की पुनरावृत्ति] **रसादिभिरनुगतः प्रकृष्ट आसो न्यासो ह्यनुप्रास शब्दार्थः। न च स्वरमात्र सादृश्ये रसानुगमः न वा सहृदय-हृदयावर्जकत्वलक्षणप्रकर्षः। प्रदीप**, पृ० ४०७—८। इसमें एक वर्ण के पश्चात् उसी वर्ण का बार-बार आवर्त्तन होता है या उसी का प्रयोग किया जाता है। अनुप्रास में वर्णसाम्य अथवा वर्ण सादृश्य का विधान रसानुकूल होने के कारण ही किया जाता है। इससे यह ज्ञात होता है कि रस के प्रतिकूल वर्णों की रचना या प्रयोग में अनुप्रास नहीं होगा। अनुप्रास के लिए स्वरों की समता (आवृत्ति) आवश्यक न होकर वैकल्पिक है, किंतु व्यंजन-साम्य के बिना इसकी (अनुप्रास की) कल्पना संभव नहीं है।

व्यंजनस्यावृत्तिरनुप्रासः। —शब्दानुशासन, पृ० २९५।

अलंकार प्रस्तावे केवल स्वरपौनरुक्त्यमचारुत्वान्न गण्यते।

—अलंकार सर्वस्व, पृष्ठ,१६।

आचार्यों ने स्पष्ट निर्देश किया है कि स्वरवैसादृश्य में भी व्यंजन-साम्य के कारण अनुप्रास होगा। यदि किसी रचना में स्वर एवं व्यंजन दोनों में साम्य हो तो उसमें उभय साम्य के कारण अधिक चारुता का समावेश होगा। इसमें व्यंजन की आवृत्ति का व्यवधान-रहित होना आवश्यक है अर्थात् एक व्यंजन के बाद उसी के पास ही अन्य व्यंजन की आवृत्ति होनी चाहिए। अनुप्रास के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह शब्द के आदि में ही हो। शब्द के आदि अथवा अंत में भी वर्ण-साम्य के कारण चमत्काराधान होता है।

अनुप्रास का इतिहास—अनुप्रासालंकार का सर्वप्रथम विवेचन भामह ने किया है। तत्पश्चात् सभी आचार्यों ने इसका वर्णन किया। अप्पय दीक्षित एवं पंडितराज के नाम अपवाद-स्वरूप हैं। इनके ग्रंथों में अनुप्रास का वर्णन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नहीं है। भामह के अनुसार समान रूपवाले वर्णों की आवृत्ति को अनुप्रास कहते हैं। इनका कहना है कि अनुप्रास नानार्थक, सदृशाक्षर एवं वाणी की चारुता के द्योतक हैं. इसमें अर्थ भिन्न हों, पर अक्षरों में भिन्नता नहीं आनी चाहिए। इसके समावेश से वाणी में चारुता का विधान होता है।

सरूपवर्णविन्यासमनुप्रासं प्रचक्षते ।
नानार्थवंतोऽनुप्रासा न चाप्यसदृशाक्षराः ।
युक्त्यानया मध्यमया जायंते चारवो गिरः ॥

—काव्यालंकार, २/५,७।

दंडी ने बताया कि पाद एवं पदों में होनेवाली वर्णावृत्ति को अनुप्रास कहते हैं। इनके अनुसार उस वर्णावृत्ति को अनुप्रास कहेंगे, जो वाक्य अथवा पदों में हो। वर्णावृत्ति में पूर्वानुभूत संस्कार का बोध हो तथा उसमें अदूरता या निकटता भी रहे। दंडी ने अनुप्रास के लिए वर्ण-व्यवधान या वर्ण-अदूरता को स्वीकार कर नवीन तथ्य प्रकट किया और इसके विवेचन को आगे बढ़ाया।

वर्णावृत्तिरनुप्रासः पादेषु च पदेषु च ।
पूर्वानुभवसंस्कारबोधिनी यद्यदूरता ॥
इत्यनुप्रासमिच्छंति नातिदूरांतर श्रुतिम् ॥

—काव्यादर्श, १/५५,५८

उद्भट तक आकर अनुप्रासालंकार के स्वरूप में स्पष्टता आ गई थी। इन्होंने सरूप में व्यंजनों की आवृत्ति अथवा 'सरूप-व्यंजनन्यास' को अनुप्रास मानकर इसके रूप को और भी अधिक स्पष्टता प्रदान की। उद्भट ने वर्ण के स्थान पर व्यंजन का प्रयोग कर अनुप्रास के लक्षण-विकास में नवीनता का संधान किया। इनके विवेचन की अन्य नवीनता है अनुप्रास के निरूपण में वृत्तियों का समावेश। उपनागरिका, परुषा तथा कोमला वृत्तियों के आधार पर अनुप्रास का वर्गीकरण उद्भट की नवीन कल्पना है।

सरूप व्यंजनन्यासं तिसृष्वेतासु वृत्तिषु ।
पृथक् पृथगनुप्रासमुशंति कवयः सदा ॥

—काव्यलंकारसारसंग्रह, १/७

वामन का लक्षण उद्भट से प्रभावित है। इन्होंने एकार्थक अथवा अनेकार्थक नियत स्थानवाले पदों का अन्य प्रयुक्त पदों के साथ सादृश्य अथवा आवृत्ति में अनुप्रास माना है। इनके अनुसार अनुल्वण या मधुर वर्णों के कारण ही अनुप्रास सुंदर होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शषः सरूपोऽनुप्रासः। १,१,८

पदमेकार्थमनेकार्थं च स्थाननियतं तद्विधमक्षरं च शेषः। सरूपोऽन्येन प्रयुक्तेन तुल्यरूपोऽनुप्रासः। अनुल्बणोवर्णाऽनुप्रासः श्रेयान्। उल्वणस्तु न श्रेयः॥

—काव्यालंकारसूत्र-वृत्ति।

रुद्रट ने पूर्ववर्ती आचार्यों के मतों का सन्निवेश करते हुए नई धारणाएँ प्रस्तुत कीं। इन्होंने अनुप्रास के लिए स्वर की 'अविवक्षिता' की स्थिति को स्वीकार कर नवीन मत स्थापित किया। इनके अनुसार व्यंजनों की अनेकधा आवृत्ति अनुप्रास है। इसमें आवृत्त वर्णों के बीच एक, दो अथवा तीन अन्य व्यंजनों का व्यवधान होना चाहिए। स्वर के व्यवधान के संबंध में कोई नियम नहीं है।

एकद्वित्रांतरित व्यंजनमविवक्षित स्वरं बहुशः।
आवर्त्यंते निरंतरमथवा यदसावनुप्रासः॥

—काव्यालंकार, २/१८

भोज के लक्षण में किसी प्रकार की नवीनता न होकर दंडी के ही मत का सार उपन्यस्त है।

आवृत्तिर्या तु वर्णानां नातिदूरांतरस्थिता।
अलंकारः स विद्वभिरनुप्रासः प्रदर्श्यते॥

—सरस्वतीकंठाभरण, २/७०

मम्मट ने पूर्ववर्ती आचार्यों से सर्वथा भिन्न पद्धति का आश्रय लेकर अनुप्रास का निरूपण किया तथा इसके स्वरूप को व्यवस्थित किया। इन्होंने वर्ण-साम्य तथा रसानुकूल वर्णनिबंधन का प्राधान्य स्थापित करते हुए अनुप्रास की परिभाषा प्रस्तुत की। मम्मट ने मात्रा के वैसादृश्य में भी अनुप्रास माना तथा सर्वप्रथम रसानुगत वर्णन्यास को अनुप्रास का आवश्यक तत्त्व स्वीकार कर भाव एवं वर्ण-उच्चारण के बीच संगति स्थापित की।

वर्णसाम्यमनुप्रासः।—काव्यप्रकाश, ९/७९
स्वरवैसादृश्येऽपि व्यंजनसदृशत्वं वर्णसाम्यम्।
रसाद्यनुगतः प्रकृष्टो न्यासोऽनुप्रासः।—वही

परवर्ती आलंकारिकों में रुय्यक, जयदेव, विद्याधर एवं विद्यानाथ आदि ने अनुप्रास अलंकार का स्वतंत्र रूप से वर्णन न कर उसके भेदों का ही उल्लेख किया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विश्वनाथ का अनुप्रास विवेचन मम्मट से प्रभावित है, इन्होंने वर्ण-साम्य के स्थान पर शब्द-साम्य की प्रतिष्ठा की तथा स्वर-वैषम्य में भी अलंकार स्वीकार किया। मम्मट की भाँति विश्वनाथ भी रसानुगत शब्दन्यास को अनुप्रास मानते हैं।

> अनुप्रासः शब्दसाम्यं वैषम्योऽपि स्वरस्य यत्।
> स्वरमात्रसादृश्यं तु वैचित्र्याभावान्न गणितम्।
> रसाद्यनुगतत्वेन प्रकर्षेण न्यासोऽनुप्रासः।
>
> —साहित्यदर्पण, १०/३

विश्वनाथ के अनुसार स्वर-साम्य में वैचित्र्याभाव के कारण अनुप्रास की स्थिति अमान्य है।

भामह से विश्वनाथ पर्यंत अनुप्रास के ऐतिहासिक विकास में निम्नांकित तथ्य सन्निविष्ट हुए।

१. वर्णों की समानता या वर्णसाम्य को अनुप्रास कहते हैं।

२. इसमें व्यंजनों की समता हो, स्वरों या मात्राओं की आवृत्ति में कोई नियम नहीं है अर्थात् मात्रा (स्वर) के वैसादृश्य या असमानता में भी व्यंजन-साम्य के कारण अनुप्रास संभव है।

३. रसानुगत वर्णविन्यास अनुप्रास का अनिवार्य तत्व है।

४. आवृत्ति (वर्णावृत्ति) का व्यवधानरहित होना आवश्यक है अर्थात् आवृत्त वर्ण दूर न रहकर निकट रहें।

५. अनुप्रास पद के आदि अथवा अंत में कहीं भी हो सकता है। इस प्रकार अनुप्रास की परिभाषा ऐसी हुई—अनुप्रास में सरूप व्यंजनों की आवृत्ति एवं स्वर वैसादृश्य के होने पर भी आवृत्ति का व्यवधान-रहित होना चाहिए तथा वर्ण-योजना रसानुकूल होनी चाहिए।

रीतिकालीन आचार्यों के अनुप्रास-विवेचन पर मम्मट के लक्षण की स्पष्ट छाप है। चिंतामणि एवं कुलपति ने मम्मट के ही लक्षण का छायानुवाद प्रस्तुत किया है।

> समता जो आखरन की अनुप्रास सो जानि।
> छेक वृत्ति द्वै भाँति सो द्वै विधि ताहि बखानि॥
>
> —कविकुलकल्पतरु, २/८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बरन एक से फिरै जहाँ अनुप्रास है सोय।
छेक विदग्धा वृत्ति करि, सो पुनि द्वै विधि होय ॥

—रसरहस्य, ७/७०

देव का लक्षण दंडी से प्रभावित है और उस पर मम्मट का भी ऋण है। सोमनाथ ने कुलपति के ही शब्दों को, किंचित् परिवर्तित कर, ग्रहण कर लिया है।

पर पूरब पद, एक ते, आवै अर्थ अदूर।
अक्षर लपटे संग लौं, अनुप्रास रसपूर ॥

—शब्दरसायन, पृ० १३९

फिरे बरन जहँ एक से अनुप्रास सो जानि।
लाटा छेकावृत्ति पुनि त्रिविध हियें पहिचानि ॥

—रसपीयूषनिधि, २१/२०

भिखारीदास की परिभाषा मम्मट से अनुप्राणित है, पर पद के आदि और अंत दोनों में ही वर्णों की आवृत्ति का उल्लेख कर इन्होंने नवीन तथ्य प्रकट किया, जिस पर संस्कृत आलंकारिकों की भी दृष्टि नहीं जा सकी।

बचन आदि कै अंत जहँ अक्षर की आवृत्ति।
अनुप्रास सो जानि द्वै भेद छेक औ वृत्ति ॥

—काव्यनिर्णय, १९/३५

रीतिकाल में अनुप्रासालंकार का लक्षण-निरूपण परंपरागत है।

अनुप्रास का भेद-निरूपण—संस्कृत आलंकारिकों में भामह, उद्भट, रुद्रट, भोज, मम्मट एवं विश्वनाथ ने अनुप्रास का स्वतंत्र रूप से विश्लेषण करते हुए इसके भेदों का विस्तार किया है। भामह ने इसके दो भेद किए—ग्राम्यानुप्रास तथा लाटानुप्रास, पर इनके स्वरूप का निरूपण नहीं किया। [काव्यालंकार, २/६] उद्भट ने स्वतंत्र अलंकार के रूप में छेक, वृत्ति एवं लाटानुप्रास की गणना की है तथा परुषा, उपनागरिका एवं ग्राम्या नामक वृत्तियों को वृत्त्यनुप्रास के भेदों के रूप में स्वीकार किया है। उद्भट के अनुसार दो-दो पद-समुदायों की एक ही समय में आवृत्ति होने को छेकानुप्रास कहते हैं। रुद्रट ने अनुप्रास के पाँच भेदों का निरूपण किया है। वर्णों के नाना प्रकार के प्रयोग के कारण अनुप्रास की पाँच वृत्तियाँ कही गईं—मधुरा,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रौढ़ा, परुषा, ललिता एवं भद्रा। इनमें नामों के समान ही वर्ण-योजना का वर्णन है।

[दे० प्रत्येक का विवरण उनके नाम के अक्षर में] काव्यालंकार, २/१९, २०, २१, २४, २६, २८, २९।

भोज ने अनुप्रास के भेदों का सविस्तार वर्णन किया, पर ये भेद पश्चाद्वर्त्ती आचार्यों द्वारा गृहीत नहीं हुए। सर्वप्रथम उन्होंने अनुप्रास के ६ भेद किए—श्रुति, वृत्ति, वर्ण, पद, नाम तथा लाट। श्रुत्यनुप्रास के तीन प्रकार किए गए—ग्राम्य, नागर एवं उपनागर। इनमें भी ग्राम्य के चार प्रकार माने गए—मसृण, वर्णमसृण, वर्णोत्कट तथा वर्णानुत्कट। नागर के भी समान अथवा असमान स्थानों पर उच्चरित वर्गों के आधार पर कई भेद किए गए हैं। भोज ने वृत्त्यनुप्रास के बारह प्रकारों का निरूपण किया है—कार्णाटी, कौंतली, कौंकी, कौंकणी, बाणवासिका, द्राविडी, माथुरी, मात्सी, मागधी, ताम्रलिप्तिका, औंड्री एवं पौंड्री। वर्णानुप्रास एवं पादानुप्रास के भी बारह-बारह भेद हैं। नामानुप्रास के चार प्रकार हैं—स्वभावतः, गौणी, वीप्सा तथा आभीक्षण। वीप्सा के भी गुण, जाति एवं क्रिया के आधार पर अनेक भेद कथित हैं तथा आभीक्षण के पुनरुक्ति नामक कई भेदों का उल्लेख हुआ है।

श्रुतिभिर्वृत्तिभिर्वर्णैः पदैर्नामद्भिरुक्तिभिः।
लाटानामुक्तिभिश्चायं षट् प्रकाराः प्रकाशते॥

—सरस्वतीकंठाभरण, २/७१

सा त्रिधा—ग्राम्यः, नागरः, उपनागरश्च। तेषु ग्राम्य चतुर्धा, मसृणः, वर्णमसृणः, वर्णोत्कटः, वर्णानुत्कटश्च॥ —वही, पृ० २२९

वर्णावृत्तिरनुप्रास इति यः कृत लक्षणः।
सोऽयं द्वादशधा भेदैः प्रविभज्य प्रदर्शितः॥

—वही, २/९२

मसृणो दंतुरः श्लक्ष्णः संपुटं संपुटावली।
खिन्नः स्तबकवान्स्थानी मिथुनं मिथुनावली॥
गृहीतमुक्तनामान्यस्ततोऽन्यः पुनरुक्तिमान्।
इति द्वादश भेदोऽयं मनीषिभिरिहेष्यते॥

—सरस्वतीकंठाभरण, २/९५

मम्मट ने अनुप्रास के दो भेद किए—वर्णानुप्रास एवं शब्दानुप्रास। वर्णानुप्रास के अंतर्गत छेकानुप्रास एवं वृत्त्यनुप्रास का समावेश किया गया

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और शब्दानुप्रास लाटानुप्रास को कहा गया। विदग्ध या चतुर जनों को प्रिय होने के कारण छेकानुप्रास नाम दिया गया। छेक का अर्थ है चतुर। वृत्त्यनुप्रास में रसानुकूल वर्णविन्यास का वर्णन किया जाता है। इसमें मधुरादि रसों के लिए कोमल वर्ण तथा कठोर रसों के लिए परुष वर्णों का प्रयोग होता है। मम्मट ने अनेक व्यंजनों की एक बार आवृत्ति में छेकानुप्रास माना तथा वृत्त्यनुप्रास में एक अथवा अनेक व्यंजनों की समता दिखाने का वर्णन किया। मम्मट तीन गुणों के आधार पर उपनागरिका, परुषा एवं कोमला वृत्तियों का निरूपण करते हैं और इन्हें वृत्त्यनुप्रास के भेद के रूप में स्थान देते हैं। इन्होंने बताया कि इन्हें ही लोग वैदर्भी, गौड़ी एवं पांचाली कहते हैं। लाटानुप्रास की परिभाषा देते हुए मम्मट ने कहा कि शब्दार्थ के अभिन्न होने पर भी तात्पर्यमात्र से भेद का उपस्थित होना लाटानुप्रास है। इसके पांच प्रकार किए गए—प्रथमतः दो प्रकार माने गए—पदगत एवं नामगत। पदगत के दो प्रकार हैं—अनेकपदगत एवं एकपदगत। नामगत लाटानुप्रास भी तीन प्रकार का होता है—एकसमासगत, भिन्नसमासगत तथा समास एवं असमासगत। लाट गुजराज का प्राचीन नाम है, अतः उन्हें प्रिय होने के कारण इसका नाम लाटानुप्रास हुआ।

छेकवृत्तिगतोद्विधा।

छेकाः विदग्धाः वृत्तिर्नियतवर्णगतो रसविषयो व्यापारः। गत इति छेकानुप्रासो वृत्त्यनुप्रासश्च।

सोऽनेकस्य सकृत्पूर्वः।

अनेकस्य अर्थाद्व्यंजनस्य सकृदेकवारं सादृश्यं छेकानुप्रासः एकस्याप्यसकृत्परः।—काव्यप्रकाश, ९/७९

माधुर्यव्यंजकैर्वर्णैरुपनागरिकोच्यते।
ओजः प्रकाशकैस्तैस्तुपरुषाकोमला परैः॥—९/८०

शाब्दस्तु लाटानुप्रासो भेदेतात्पर्यमात्रतः।—वही, ९/८१

शब्दगतोऽनुप्रासः शब्दार्थयोरभेदेऽप्यन्वयमात्रभेदात् लाटजनवल्लभत्वाच्च लाटानुप्रासः। एष पदानुप्रास इत्यन्य। पदानां सः पदस्यापि वृत्तावन्यत्र तत्र वा।
नाम्नः सवृत्त्यवृत्त्योश्च तदेवं पंचधा मतः॥

—काव्यप्रकाश, ९/८२

विश्वनाथ ने अनुप्रास के पाँच भेद किए हैं—छेक, वृत्ति, श्रुति, अंत्य एवं लाट। इनमें श्रुत्य एवं अंत्य नामक भेद नवीन हैं। इन्होंने छेकानुप्रास

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का रूप तो परंपरागत रखा है, पर अनेक वर्णों की एक बार आवृत्ति स्वरूपतः और क्रमतः कहकर नया विचार दिया। लाटानुप्रास की परिभाषा वही है, जो मम्मट की है, पर वृत्त्यनुप्रास के स्वरूप-कथन में नवीनता है। इसकी (वृत्त्यनुप्रास की) पाँच स्थितियाँ मानी गई हैं।

क. अनेक व्यंजनों की स्वरूपतः एक बार आवृत्ति।

ख. अनेक व्यंजनों की स्वरूपतः अनेक बार आवृत्ति।

ग. एक व्यंजन की एक बार आवृत्ति।

घ. एक व्यंजन की अनेक बार आवृत्ति।

ङ. अनेक व्यंजनों की स्वरूपतः एवं क्रमतः अनेक बार आवृत्ति।

श्रुत्यनुप्रास में एक ही स्थान पर उच्चरित व्यंजनों या वर्णों का एक रचना में प्रयोग होने का कथन होता है। अंत्यानुप्रास में पदों के अंत में पड़नेवाले स्वर सहित व्यंजनों की आवृत्ति होती है।

छेको व्यंजनसंघस्य सकृत्साम्यमनेकधा ।।—साहित्यदर्पण, १०/३

छेकश्छेकानुप्रासः। अनेकधेति स्वरूपतः क्रमतश्च।—साहित्यदर्पण

अनेकस्यैकधा साम्यमसकृद्वाप्यनेकधा ।।
उच्चार्यत्वाद्यदेकत्र स्थाने तालुरदादिके ।।
सादृश्यं व्यंजनस्यैव श्रुत्यनुप्रास उच्यते ।।
व्यंजनं चेद्यथावस्थं सहाद्येन स्वरेण तु।
आवर्त्यतेऽन्त्ययोज्यत्वादंत्यानुप्रास एव तत् ।।
शब्दार्थयोः पौनरुक्त्यं भेदे तात्पर्यमात्रतः।
लाटानुप्रास इत्युक्तोऽनुप्रासः पंचधा ततः ।।

—साहित्यदर्पण, १०/४,५,६,७

इस प्रकार अनुप्रास के पाँच भेद मान्य हुए—छेकानुप्रास, वृत्त्यनुप्रास, लाटानुप्रास, श्रुत्यनुप्रास एवं अंत्यनुप्रास।

रीतिकालीन आचार्यों ने अधिकांशतः मम्मट एवं विश्वनाथ के ही मत का आधार ग्रहण कर अनुप्रास के भेदों का विवेचन किया है। कुलपति का विचार देखें—

ललितैहै आखरन की बारक समता होइ।
चिंतामणि कवि कहत यों छेक कहावै सोइ ।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एक अनेकाक्षर रचत बार-बार सरि होइ।
चिंतामनि कवि कहत हैं वृत्य कहावै सोइ॥
माधुर्यौं विंजक वरन उपनागरिका होइ।
मिलि प्रसाद पुनि कोमला परुषा बीज समोइ॥
वैदर्भी पांचाल जौ गौडी धरम नवीन।
रीति कहत कोऊ उन्हैं वृत्ति जे हैं ए तीन॥
तातपर्य के भेद तें दीन्हों जो पद देइ।
सो लाटानुप्रास है समुझ सज्जनै लेइ॥

—कविकुलकल्पतरु, ३/९,११,१३,१४,१६

संस्कृत काव्यशास्त्र में अनुप्रास-निरूपण की दो परंपराएँ हैं। प्रथम श्रेणी में ऐसे आचार्य आते हैं, जिन्होंने छेकानुप्रास वृत्त्यनुप्रास एवं लाटानुप्रास को अनुप्रास के भेदों के अंतर्गत माना है, पर द्वितीय वर्ग के आचार्य इन्हें स्वतंत्र अलंकार का रूप प्रदान करते हैं। उद्भट, रुय्यक, जयदेव, विद्याधर एवं विद्यानाथ ने इन्हें भिन्न-भिन्न मानकर स्वतंत्र अलंकार के रूप में उपस्थित किया है, शेष आलंकारिकों ने अनुप्रास के भेदों के अंतर्गत ही इनका निरूपण किया।

उदाहरण—

चारुचांद्रमसं भीरु बिंबं पश्यैतदंबरे।
मन्मथोमन्मथाक्रांतं निर्दयं हंतुमुद्यतम्॥

हे भीरु! कामदेव से पीड़ित मुझे मारने के लिए प्रस्तुत इस चंद्रमा के बिंब को आकाश में देखो।

यहाँ चारु, चांद्र में 'च' की आवृत्ति होने से अनुप्रासालंकर हुआ।

बंदउँ गुरु पद पदुम परागा।
सुरुचि सुबास सरस अनुरागा॥

यहाँ पद, पदुम और पराग में 'प' की तथा सुरुचि, सुबास एवं सरस में 'स' की आवृत्ति हुई है, अतः यह अनुप्रास का उदाहरण हुआ।

शब्द के अंत का अनुप्रास—

जै महेस भामिनी अनेक रूप नामिनी।
समस्त लोक स्वामिनी हिमसैल बालिका॥

—विनयपत्रिका।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनुभाव—रस का एक अंग। [दे० रस का स्वरूप] अनुभाव को रस का कार्य कहा जाता है, क्योंकि इनके द्वारा ही रसानुभूति या रसास्वादन की सूचना प्राप्त होती है। ये भावों के सूचक हैं। अनुभाव का अर्थ है भाव के पीछे (अनु) उत्पन्न होनेवाला। ये विभाव के बाद उत्पन्न होते हैं, इसलिए इन्हें अनुभाव कहा जाता है। भरत ने बताया कि अनुभावों के द्वारा वाचिक, आंगिक तथा सात्त्विक अभिनय अनुभावित होते हैं, अतः उनको अनुभाव कहते हैं।

> अनुभाव्यतेऽनेन वागंगसत्वकृतोऽभिनयः इति अनुभावः।
> वागंगाभिनयेनेह यतस्त्वर्थोऽनुभाव्यते।
> वागंगोपांगसंयुक्तस्त्वनुभावस्ततः स्मृतः॥
>
> —नाट्यशास्त्र, ७/५।

अनुभावों के द्वारा हृदयस्थित भावों की अभिव्यक्ति होती है या आंतरिक भावों के व्यक्त बाह्य रूप को अनुभाव कहते हैं। ये मन के भीतर निहित भावों को प्रकट कर उन्हें अनुभवगोचर बनाते हैं या भावों का साक्षात्कार कराते हैं।

शाब्दिक दृष्टि से अनुभाव के दो अर्थ होते हैं—भाव के पश्चात् उत्पन्न होनेवाली चेष्टाएँ तथा भाव का अनुभव करानेवाला। एक व्यक्ति को देखकर दूसरे व्यक्ति के मन में कुछ भाव जागते हैं और उसकी अभिव्यक्ति उस पर पड़े प्रभाव को व्यक्त करनेवाली चेष्टाओं, विकारों या सहज प्रतिक्रियाओं-द्वारा होती है। ये विकार या चेष्टाएँ चार प्रकार की होती हैं—शारीरिक चेष्टाएँ या क्रियाएँ (विभिन्न अंगों से उत्पन्न होने के कारण इन्हें आंगिक कहते हैं), शब्दों के द्वारा व्यक्त क्रियाएँ (संवाद, वार्त्तालाप आदि, इन्हें वाचिक कहा जाता है), सूक्ष्म मानसिक क्रियाएँ या स्वतः स्फुरित भाव या क्रियाएँ (इन्हें सात्त्विक कहते हैं) तथा आहार्य (वेशभूषा विषयक परिवर्त्तन)।

धनंजय ने भावों के सूचक या भावों के भावन करानेवाले विकार को अनुभाव कहा है। कटाक्ष तथा भुजाक्षेप आदि अनुभाव हैं।

> अनुभावो विकारस्तु भावसंसूचनात्मकः।
> हेतुकार्यात्मनोः सिद्धिस्तयोः संव्यवहारतः॥
> स्थायिभावान् अनुभावयंतः सामाजिकान्
> सभ्रूविक्षेप कटाक्षादयो रसपोषकारिणः अनुभावाः।
>
> —दशरूपक, ४/३।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विश्वनाथ ने बताया कि हृदय में उद्बुद्ध रत्यादि भावों को बाहर प्रकाशित करनेवाले अंगादि व्यापार अनुभाव हैं।

उद्बुद्धं कारणैः स्वैः स्वैर्बहिर्भावं प्रकाशयन् ।
लोके यः कार्यरूपः सोऽनुभावः काव्यनाट्ययोः ॥

—साहित्यदर्पण, ३/१३२, १३३ ।

अंगादि लौकिक व्यापार जो कार्य माने जाते हैं, वे ही काव्य में अनुभाव की अलौकिक संज्ञा से विभूषित होते हैं। इनके द्वारा हृदयस्थ रत्यादि भावों की अभिव्यक्ति होती है तथा उनका अनुभव होता है। ये मनोगत भावों के अभिव्यंजक बाह्य उपादान हैं।

स्थायिव्यभिचारिलक्षणं चित्तवृत्तिविशेषं सामाजिकजनोऽनुभवनमनुभाव्यते साक्षात्कार्यंते यैस्तैरनुभावै कटाक्षभुजक्षेपादिभिः । —काव्यानुशासन, पृ० ८८ ।

अनुभावों से सामाजिकों या सहृदय को रत्यादि भावों की अनुभूति होती है। इनसे (अनुभावों से) वह (सामाजिक अथवा सहृदय) यह अनुभव करता है कि किस पात्र में कौन से स्थायी भाव की अनुभूति होती है। "मनोगत भावों के साक्षात् अभिव्यंजक उपादान इसलिए 'अनुभाव' कहे जाया करते हैं, क्योंकि रत्यादि रूप मनोगत भावों के उद्बोधन में इनकी उत्पत्ति संभव है। भ्रूविक्षेप आदि का 'अनुभाव' होना यह सिद्ध करता है कि इनके हेतु-भूत रत्यादि भावों की अभिव्यक्ति हुआ करती है।" डॉ० सत्यव्रत सिंह, हिंदी साहित्यदर्पण, पृ० २०१ (प्रथम संस्करण, चौखंबा)

भरत तथा धनंजय ने अभिनय को दृष्टि में रखकर ही अनुभावों का वर्णन किया है। ये अनुभाव को अभिनयरूप वाचिक तथा आंगिक चेष्टाओं का द्योतक मानते हैं, जिनसे आश्रय के आंतरिक भावों की अभिव्यक्ति होती है और दर्शक को भाव-विशेष का बोध होता है। आगे के काव्याचार्यों ने अनुभाव का व्युत्पत्तिपरक अर्थ भी ग्रहण किया है अर्थात् जो भावों के पश्चात् उत्पन्न होते हैं, वे अनुभाव हैं। इस दृष्टि से ये स्थायी भावों के बाद होने से कार्य-रूप माने जायंगे।

'स्थायिभावानां यानि कार्यतयाप्रसिद्धानि तानि अनुभाव शब्देन व्यपदिश्यंते। अनु पश्चाद् भावः उत्पत्तिः येषाम्, अनुभावयंति इति वा व्युत्पत्तेः।

—रसगंगाधर, पृ० ३३ ।

'अनुपश्चाद् भावो यस्य सोऽनुभावः कार्यम् ।

—साहित्यकौमुदी, पृ० २९ (टीका)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनुभाव के भेद—भरत ने अभिनय को दृष्टि में रखकर अनुभावों के तीन भेद किए हैं—वाचिक, आंगिक तथा सात्त्विक। भानुदत्त ने इनका पृथक नामकरण करते हुए चार भेदों का उल्लेख किया है—कायिक, मानसिक, आहार्य तथा सात्त्विक। भुजक्षेपादि कायिक अनुभाव हैं और प्रमोदादि मानसिक। नाटक में चतुर्भुजत्व का ज्ञान होना आहार्य और रोमांचादि सात्त्विक अनुभाव हैं। **'स चानुभावः कायिकमानसाहार्यसात्त्विकभेदाच्चतुर्धा। कायिका भुजक्षेपादयः मानसाः प्रमोदादयः, चतुर्भुजत्वज्ञानादय आहार्याः, सात्त्विका रोमांचादयः।**

—रसतरंगिणी, पृ० ४९।

अनुभावों के वर्गीकरण में शारदातनय, शिंगभूपाल तथा रूपगोस्वामी ने अत्यंत नवीनता प्रदर्शित की है। शारदातनय ने अनुभावों के तीन वर्ग किए हैं—मनारंभानुभाव, वागारंभानुभाव तथा बुद्ध्यारंभानुभाव। शिंगभूपाल ने इनके सभी प्रकारों को स्वीकार कर लिया है, पर मनारंभानुभाव को चित्तारंभानुभाव कहा है। रूपगोस्वामी ने अनुभावों के तीन नए नाम दिए हैं—अलंकार, उद्भास्वर एवं वाचिक। [**दे० भावप्रकाशन, पृ० ६, रसार्णवसुधाकर, पृ० ४८ तथा उज्ज्वलनीलमणि, पृ० २९९**]

मानस अनुभावों को मनारंभानुभाव कहा जाता है और कायिक अनुभावों को गात्रारंभानुभाव। शारदातनय के अनुसार इनका संबंध स्त्रियों से है और इनके पृथक-पृथक दस-दस भेद माने गए हैं। मानसानुभाव में भाव, हाव, हेला, शोभा, कांति, दीप्ति, माधुर्य, प्रागल्भ्य, धैर्य तथा औदार्य को रखा गया है। गात्रारंभानुभाव में लीला, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम, किलकिंचित, मोहायित, कुट्टमित, बिब्बोक, ललित तथा विहृत को रखा गया है।

अनुभाव के मुख्यतः चार भेद माने गए हैं—कायिक, मानसिक सात्त्विक और आहार्य। आंगिक चेष्टाओं को कायिक अनुभाव कहते हैं, जैसे कटाक्ष आदि। 'अंतःकरण की वृत्ति से उत्पन्न हुए प्रमोद आदि को मानसिक अनुभाव कहते हैं।' काव्यदर्पण, पृ० ५९। कृत्रिम वेशरचना को आहार्य अनुभाव कहा जाता है। शरीर के स्वाभाविक अंग-विकार को सात्त्विक अनुभाव कहते हैं। इनकी संख्या आठ है—स्तंभ, स्वेद, रोमांच, स्वर-भंग, कंप, वैवर्ण्य, अश्रु, प्रलय। **[प्रत्येक का विवरण इनके नाम के अक्षर पर देखें]** उक्तियों के द्वारा प्रकट होनेवाला अनुभाव वाचिक कहा जाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनुमान—तर्कन्यायमूलक अलंकार।

साधन-द्वारा साध्य के चमत्कारपूर्ण ज्ञान को अनुमान अलंकार कहते हैं। 'अनुमान' में अनु और मिति दो शब्द हैं, जिनका अर्थ है लक्षण या चिह्न (अनु) का ज्ञान (मिति)। चिह्न या लक्षण के द्वारा किसी पदार्थ का ज्ञान प्राप्त करना अनुमान है। अनुमान न्यायशास्त्र या तर्कशास्त्र का (पारिभाषिक) शब्द है, पर जब इसका चमत्कारपूर्ण ढंग से प्रयोग होता है तो काव्यशास्त्र में अनुमानालंकार कहा जाता है अर्थात् न्यायशास्त्र का अनुमान कवि-प्रतिभोत्थापित चमत्कार से अनुस्यूत होने पर ही अलंकार की कोटि में आता है। सिद्ध की जानेवाली वस्तु को साध्य तथा जिससे वह सिद्ध की जाती है, उसे साधन कहा जाता है। अनुमान अलंकार में साधन-द्वारा साध्य के चमत्कारक ज्ञान का वर्णन होता है।

अस्य कविप्रतिभोल्लिखितत्वेन चमत्कारित्वे काव्यालंकारता।

—रसगंगाधर, पृ० ६४०

अनुमानालंकार के प्रवर्त्तक आ० रुद्रट हैं। इनके पश्चात् भोज, मम्मट, रुय्यक, शोभाकरमित्र, जयदेव, विद्याधर, विद्यानाथ, विश्वनाथ, अप्पय दीक्षित तथा पंडितराज जगन्नाथ ने इसका विवेचन किया।

रुद्रट ने बताया कि जब कवि परोक्ष साध्य पदार्थ को पहले उपन्यस्त कर बाद में साधन का उपन्यास करे तो वहाँ अनुमान अलंकार होगा। इन्होंने इसके पाँच प्रकारों का वर्णन किया है। भोज ने लिंग या कारण द्वारा लिंगी या कार्य के ज्ञान को अनुमान कहा। इनकी परिभाषा न्यायशास्त्रीय अनुमान के अधिक निकट है। इन्होंने पूर्ववत्, शेषवत् और सामान्यतोदृष्ट के नाम से इसके तीन प्रकारों का उल्लेख किया है।

वस्तुपरोक्षं यस्मिन्साध्यमुपन्यस्य साधकं तस्य।
पुनरन्यादुपन्यस्ये विपरीतं चैतदनुमानम्॥

—काव्यालंकार, ७/५६

लिंगाद्यल्लिगिनो ज्ञानमनुमानं तदुच्यते।
पूर्ववच्छेषवच्चैव दृष्टं सामान्यतश्च यत्॥

—सरस्वतीकंठाभरण, ३/४७

मम्मट ने अनुमान का वैज्ञानिक लक्षण प्रस्तुत करते हुए बताया कि साध्यसाधनभाव के कथन को अनुमान कहते हैं। वृत्ति में इन्होंने इस तथ्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का स्पष्टीकरण किया कि साध्य-साधन के द्वारा न्यायशास्त्रीय अन्य शब्दों का बोध हो जाता है।

अनुमानं तदुक्तं यत् साध्यसाधनयोर्वचः ॥

—काव्यप्रकाश, १०/११७

रुय्यक के लक्षण में इस तथ्य का कथन किया गया कि साध्य-साधन के स्वरूप-निर्देश में अनुमानालंकार होता है। इन्होंने बताया कि चमत्कारपूर्ण अनुमान के वर्णन में ही यह अलंकार होगा।

साध्यसाधननिर्देशोऽनुमानम्।
विच्छित्तिविशेषश्चात्रार्थादाश्रयणीयः।

—अलंकारसर्वस्व, पृ० १८४

शोभाकर का लक्षण अत्यंत स्पष्ट है। इन्होंने साधन के द्वारा साध्य की प्रतीति को अनुमान कहा।

साधनात्साध्यप्रतीतिरनुमानम्।

—अलंकाररत्नाकर, ७८

जयदेव के अनुसार कारण के द्वारा कार्य के निश्चय को अनुमान कहते हैं।

अनुमानं च कार्यादेः कारणाद्यवधारणम् ॥

—चंद्रालोक, ५/२६

विद्याधर एवं विद्यानाथ ने रुय्यक के आधार पर अपना विवेचन प्रस्तुत किया है।

अनुमतमनुमानमिदं यत्र स्तः साध्यसाधने कथिते ॥

—एकावली, पृ० ३०२

साध्यसाधननिर्देशे त्वनुमानमुदीर्यते ॥

—प्रतापरुद्रीय, पृ० ३२२

साहित्यदर्पणकार का लक्षण अत्यंत सुंदर एवं स्पष्ट है। इन्होंने साधन द्वारा साध्य के चमत्कारपूर्ण ज्ञान को अनुमानालंकार माना है।

अनुमानं तु विच्छित्या ज्ञानं साध्यस्य साधनात् ॥

—साहित्यदर्पण, १०/६३

दीक्षित ने अनुमान की परिभाषा न देकर केवल उदाहरण प्रस्तुत किया।

—कुवलयानंद, १०९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पंडितराज ने बताया कि कविप्रतिभा के कारण तर्कानुमान के चमत्कारी होने में अनुमान अलंकार होता है। इनकी परिभाषा में कोई नवीनता नहीं है, पर इसके चार प्रकारों के कथन में आचार्य की सूक्ष्म दृष्टि के दर्शन होते हैं।

वाच्यानुमान, लक्ष्यानुमान, प्रतीयमानानुमान तथा ध्वन्यमानानुमान इसके चार प्रकार कहे गए हैं।

अनुमितिकरणमनुमानम्।

अनुमितिश्चानुमितित्ववती। अनुमितित्वं चानुमिनोमीति मानससाक्षात्कारसाक्षिको जातिविशेषः। व्याप्तिप्रकारकपक्षधर्मतानिश्चयजन्य ज्ञानं वानुमितिः। तस्याश्च करणं व्याप्तिप्रकारकलिंगनिश्चय इत्येके। व्याप्यत्वेन निश्चीयमानं लिंगमित्यपरे। इदं च साधारणमनुमानम्। अस्य च कविप्रतिभोल्लिखितत्वेन चमत्कारित्वे काव्यालंकारता।।—रसगंगाधर, पृ० ६४०

रीतिकाल में मम्मट, विद्यानाथ तथा जयदेव के लक्षण उपजीव्य बने। चिंतामणि ने विद्यानाथ के आधार पर और कुलपति ने मम्मट के लक्षण के अनुसार अपनी परिभाषाएँ निर्मित कीं।

जुहै साध्य साधन कथन सो बरनत अनुमान।
तर्कन्यायमूलक सु तो अलंकार अज्ञान।।

—कविकुलकल्पतरु, ३/२४२

उक्तिकाज अरु हेतु कौ जहाँ जु है अनुमान।।

—रसरहस्य, पृ० ११०

पद्माकर ने चंद्रालोक का आधार ग्रहण कर अनुमान का निरूपण किया।

सत्य हेतु के ज्ञान तें पच्छ माँहि थिति थान।
अलख साध्य को ज्ञान तहँ है अनुमान प्रमाण।।

—पद्माभरण, ३१४

उदाहरण—

क. जानीमहेऽस्या हृदिसारसाक्ष्या विराजतेऽन्तः प्रियवक्त्र चंद्रः।
उत्क्रांतिजालैः प्रसृतैस्तदंगेष्वापांडुता कुड्मलताक्षि पद्मे।।

मैं जानती हूँ कि कमलनयनी के हृदय में प्रिय का मुखचंद्र विराज रहा है अर्थात् उसने हृदय में प्रियतम को धारण कर लिया है, क्योंकि उसकी चतुर्दिक फैलनेवाली उज्ज्वल चमक से उसके अंग श्वेत हो गए हैं और नेत्र-कमल मुँदे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हुए दिखाई पड़ रहे हैं। यहाँ नेत्रों के मुँदे रहने तथा शरीर-कांति के पांडु हो जाने के साधन से (कारण से) प्रिय के प्रति आकर्षण (कार्य या साध्य) का ज्ञान या अनुमान होता है।

ख. नाचि अचानक ही उठे, बिनु पावस बन मोर।
जानति हौं नंदित करी, इहि दिसि नंद किशोर॥—बिहारी

बिना वर्षा के वन में मोरों का नाच जाना, यह साधन या हेतु है, जिससे कृष्ण के आगमन (कार्य) का ज्ञान होता है।

हेतु और अनुमान—हेतु में कारण तथा कार्य का अभेद कथन किया जाता है, पर अनुमान में कारण में कार्य का या साधन से साध्य का ज्ञान होता है। दोनों में कारण-कार्य का वर्णन किया जाता है।

काव्यलिंग और अनुमान—दोनों में कार्य की सिद्धि के लिए हेतु का प्रयोग होता है। काव्यलिंग में निष्पादक हेतु होता है और अनुमान में ज्ञापक हेतु।

अनुमितिवाद—[**दे० रस-निष्पत्ति**] [**श्रीशंकुक का रस-विषयक मत**]

अनुवादायुक्त—अर्थदोष का २१ वाँ भेद। [**दे० अर्थदोष**]

अनुशयना—परकीया नायिका का भेद। [**दे० परकीया**] अनुशयना का अर्थ अनुशय या पश्चात्ताप करनेवाली है। संकेत स्थल के नष्ट होने पर दुःखित होनेवाली नायिका अनुशयना कहलाती है। वह इसलिए पश्चात्ताप करती है कि प्रिय-मिलन के लिए बनाया हुआ संकेतस्थल विघटित हो जाता है। इसे संकेतविघट्टना भी कहते हैं। अनुशयना के तीन प्रकार हैं—प्रथम अनुशयना, द्वितीय अनुशयना एवं तृतीय अनुशयना।

अनुशयना का सर्वप्रथम निरूपण भानुदत्त ने किया है, तत्पश्चात् इन्हीं के आधार पर रीतिकालीन आचार्यों ने इसका विवेचन किया। यहाँ मतिराम, पद्माकर और बिहारी लाल भट्ट के मत दिए जा रहे हैं।

अनुशयना यथा—वर्तमानस्थानविघटनेन भाविस्थानाभावशंकया स्वानधिष्ठितसंकेतस्थलं प्रति भर्तुर्गमनानुमानेन चानुशयना त्रिधा।

—रसमंजरी, पृ० ६५

जाकों निज संकेत कौ अधिक अनुशयन होय।
तिहि अनुशयना नायिका कहत सकल कवि लोय॥

—साहित्यसागर, भाग २

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१—प्रथम अनुशयना या वर्त्तमान संकेत विघट्टना—वर्त्तमान संकेत-स्थल के विघटित होने से पश्चात्ताप करनेवाली नायिका प्रथम अनुशयना है।

कही सु अनुसयना त्रिबिध प्रथम भेद यह जानि।
वर्तमान संकेत के विघटन तें सुख-हानि॥

—जगद्विनोद, ११२

केलि करे जहँ कंत सों सो थल मिट्यौ निहारि।
कहि अनुसयना तासु सों सोच करै बर नारि॥

— रसराज, ८५

उदाहरण—

क. समुपागतवति चैत्रे निपतति पत्रे लवंगलतिकायाः।
सुदृशः कपोलपाली शिव-शिव तालीदलद्युति लभते॥

—रसमंजरी, २७॥

किसी नायिका ने लवंगलता के झुरमुट में अपना संकेत बना रखा था, किंतु वसंत ऋतु के आने से उसकी पत्तियाँ झड़ गईं, जिससे उसे कष्ट हुआ कि अब निश्चित रूप से प्रिय का मिलन न हो सकेगा। इसलिए उसके कपोल धीरे-धीरे ताल के पत्ते की भाँति पीले पड़ने लगे।

ख. सौतिं-जोग न रोग कछु, नहिं बियोग बलवंत।
ननद होत क्यों दूबरी, लागत ललित बसंत॥

—जगद्विनोद, ११४

२—द्वितीय अनुशयना, भावी संकेत विघट्टना—भावी संकेत स्थल के लिए चिंता करनेवाली या भविष्य के संकेतस्थल के न मिलने से पश्चात्ताप करनेवाली नायिका द्वितीय अनुशयना कहलाती है।

होनहार संकेत को जहँ अभाव उर आनि।
अनुसयना कहियो यहौ हिये दुखनि की खानि॥

—रसराज, ८८

होनहार संकेत को, धरि अभाव उर माहि।
दुखित होत जो, दूसरी कह अनुसयना ताहि॥

—जगद्विनोद, ११५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उदाहरण—

क. निद्रालुकेलिमिथुनानि कपोतपोत-
व्याधूतनूतनमहीरुहपल्लवानि ।
तत्रापि तन्वि ! न वनानि कियंति संति
खिद्यस्व न प्रियतमस्य गृहं प्रयाहि ॥२८॥

—रसमंजरी ।

हे सखि ! प्रिय के घर जाती हुई तुम खेद न करो। तुम्हारे पति के गाँव में भी बहुत से ऐसे वन हैं, जहाँ बिना किसी शंका के मोर सोते हैं और कबूतरों के बच्चे वृक्षों के नए पत्रों को कँपाते रहते हैं। अतएव, तुम दुखी न हो, प्रियतम के घर जाओ।

ख. केलि करैं मधुमत्त जहँ घन मधुपन के पुंज।
सोच न कर तुव सासुरे सखी सघन बन कुंज ॥

—रसराज, ९०

३—*तृतीय अनुशयना*—प्रिय के संकेतस्थल पर पहुँच जाने पर, किसी कारणवश स्वयं न जाने के कारण खिन्न होनेवाली नायिका तृतीय अनुशयना है।

प्रीतम गए सहेट कों जानैं हेतुहि पाय।
तृतिया अनुसयना कही हौं न गई पछिताय ॥

—रसराज, ९१

जो तिय सुरत-सँकेत को, रमन-गमन अनुमान।
व्याकुल होति सु तीसरी, अनुसयना पहिचान ॥

—जगद्विनोद, ११८

परपति पहुँचै केलि थल, आप सकै ना जाय।
करै अनुशयन कहत हैं भेद तीसरो जाय ॥

—साहित्य-सागर, भाग २

उदाहरण—

क. कर्णकल्पितरसालमंजरीपिंजरीकृतकपोलमंडलः।
निष्पतन्नयनवारिधारया राधया मधुरिपुर्निरीक्ष्यते ॥

—रसमंजरी, २९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कृष्ण के कान पर रसाल की मंजरी को देखकर राधिका के कपोल पीले पड़ गए और वह आँखों से जलधारा बहाती हुई कृष्ण को देखती रही। राधा ने रसाल वृक्ष के झुरमुट में कृष्ण को मिलने के लिए कहा था। कृष्ण उससे पहले ही पहुँच गए, किंतु राधा नहीं आई। इस पर वे रसाल की मंजरी को कान पर रखकर राधा के पास चले गए जिन्हें देखकर वह अत्यंत दुःखित हुई।

ख. कल करील की कुंज में, उठत अतर की बोय।
भयो तोहि भाभी कहा, उठी अचानक रोय ॥

—जगद्विनोद, १२०

अनूढ़ा—परकीया नायिका का एक भेद। [दे० परकीया] अनूढ़ा का अर्थ अविवाहिता है। जो अविवाहिता कन्या किसी से प्रेम करे तो उसे अनूढ़ा कहते हैं।

अनंगकथन—रसदोष का १० वाँ भेद। [दे० रसदोष]

अंतलीपिका—चित्रालंकार का एक भेद। [दे० चित्रालंकार] जब किसी छंद में दिए गए प्रश्नों के उत्तर उस छंद में ही विद्यमान रहें तो अंतलीपिका होती है। इसमें उत्तर के अक्षर छंद में ही वर्तमान रहते हैं।

अंत्यानुप्रास—शब्दालंकार। अनुप्रास का एक भेद। [दे० अनुप्रास]

प्रथम स्वर के साथ यथावस्थ व्यंजन की आवृत्ति होने पर अंत्यानुप्रास होता है, जो पद या पाद के अंत में पड़ता है। पद या पाद के अंत में पड़ने के कारण यह अंत्यानुप्रास कहा जाता है।

जयदेव ने इसे स्फुटानुप्रास की संज्ञा दी है। जब श्लोक के पूर्वार्द्ध या उत्तरार्द्ध अथवा पाद में वर्णों की आवृत्ति हो तो स्फुटानुप्रास होगा।

श्लोकस्याद्ये तदर्धो वा वर्णवृत्तिर्यदि ध्रुवा
तदा मता मतिमतां स्फुटानुप्रासता सताम्।

—चंद्रालोक, ५/५

विश्वनाथ प्रथम स्वर के साथ यथावस्थ व्यंजन की आवृत्ति में अंत्यानुप्रास मानते हैं। यथावस्थ से अभिप्राय है कि इसमें यथासंभव अनुस्वार, विसर्ग.. स्वर आदि पूर्ववत् ही रहें।

व्यंजनं चेद्यथावस्थं सहाद्येन स्वरेण तु।
आवर्त्यतेऽन्त्ययोज्यत्वादंत्यानुप्रास एव तत् ॥

—साहित्यदर्पण, १०/६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यह पाद के अंत में अथवा कभी-कभी पद के अंत में पड़ता है।

यथावस्थमिति यथासंभवमनुस्वारविसर्गस्वरयुक्ताक्षरविशिष्टम्। एष च प्रायेण पादस्य पदस्य चांते प्रयोज्यः।

—साहित्यदर्पण, पृ० ८४, विमला भाग २, प्रथम संस्करण

उदाहरण—

क. केशः काशस्तबकविकासः, कायः प्रकटित-करभविलासः।
चक्षुर्दग्धवराटककल्पं, त्यजति न चेतः काममनल्पम्॥

—साहित्यदर्पण

केश काश के पुष्प के समान श्वेत हो गए हैं। शरीर ऊँट की तरह बेढंगा हो गया है। आँखें जली हुई कौड़ी की तरह प्रकाशहीन हो गई हैं, फिर भी मन अभी भी काम की तृष्णा में संलग्न है।

ख. पदांत का उदाहरण—

मंदं हसंतः पुलकं वहंतः।—आदि

ग. पारथ के पूत की लपालप कृपाण बक्र,
शक्र अशनि लौं चक्रब्यूह माँहि चमकी॥ —रत्नाकर

घ. जै महेश भामिनी, अनेक रूपनामिनी।
समस्त लोक स्वामिनी हिमशैल बालिका॥

—तुलसीदास

अन्यसन्निधिवैशिष्ट्योत्पन्नवाच्यसंभवा—आर्थीव्यंजना का षष्ठ प्रकार। [दे० आर्थीव्यंजना]

अन्यसंभोगदुःखिता—नायिका का भेदविशेष। [**नायिका भेद**] जो अन्य स्त्री के शरीर पर अपने प्रिय द्वारा किए गए रतिचिह्नों को देखकर दुखी होती है, उसे अन्यसंभोगदुःखिता कहते हैं। यह नायिका अपने पति या प्रियतम से रमण करनेवाली अन्य नायिका को देखकर दुखित होती है। इसमें और खंडिता में अंतर स्थापित करते हुए भानुदत्त का कहना है कि "अन्यसंभोगदुःखिता नायिका का दुख स्वप्रिय कृत संभोगचिह्नों को धारण करनेवाली परनायिका से उत्पन्न होता है और खंडिता का दुःख परनायिका संभोगचिह्न धारण करनेवाले नायक से उत्पन्न होता है।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वप्रियसंभोगसूचकचिह्नवद्वनिताऽवगमजन्यत्वेन नायिका विशिष्टदुःखत्त्वमन्य-संभोगदुःखितात्वम् ।

खंडिताया व्यावृत्तयेऽवगमविषयत्वं ।

—रसमंजरी, पृ० ७८ ।

यदा सद्यः स्वप्रियसंभोगसूचक लक्षणजुषः परस्या अवगमनेन दुःखोद्गमः तदाऽन्यसंभोगदुःखिताः, यदा स्वभिन्नायाः सद्यः संभोगं सूचयंति चिह्नानि बिभ्रतो नायकस्यावगत्या खेदोदयस्तदा खंडितायाः । —वही ।

रीतिकालीन आचार्यों ने भानुदत्त के आधार पर ही अन्यसंभोगदुःखिता का वर्णन किया है ।

निज पति के रतिचिह्न जो लखे और तिय देह ।
अन्यसुरतिदुखिता कहो करै पेच रिस तेह ।।

—रसराज, ९८ ।

प्रीतम-प्रीति-प्रतीति जो और तिया तन पाइ ।
दुखित होइ सो जानिये, अन्यसुरति-दुखिताइ ।।

—जगद्विनोद, १२६ ।

रीतिकालीन आचार्यों ने इसे 'अन्यसुरतिदुःखिता' कहा है ।

उदाहरण—

क. त्वं दूति ! निरगाः कुंजं न तु पापीयसो गृहम् ।
किंशुकाभरणं देहे दृश्यते कथमन्यथा ।।३३।।

—रसमंजरी ।

अरी दूती, तुम इधर से कुंज की ओर चली गईं, उस पापी के घर नहीं गईं । तुम्हारे शरीर पर पलाश के लाल-लाल फूलों के आभूषण कैसे दिखाई पड़ रहे हैं ? यदि तुम उसके घर गई होतीं तो ये फूल कहाँ से दिखाई पड़ते ? भाव यह है कि नायक-द्वारा किए गए नखक्षत तुम्हारे शरीर पर टेसू के लाल-लाल फूलों की तरह दिखाई पड़ते हैं । इससे ज्ञात होता है कि तुमने उसके साथ रति-क्रीड़ा की है ।

ख. धोइ गई केसरि कपोल कुच गोलन की,
पीक-लीक अधर-अमोलनि लगाई है ।
कहैं 'पदमाकर' त्यों नैन हूं निरंजन भे,
तजत न कंप देह पुलकनि छाई है ।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बाद मति ठानै झूठ वादिनी भई री अब,
दूतिपनो छोड़ि धूतपन में सुहाई है।
आई तोहि पीर न पराई महापापिन तू,
पापी लौं गई न कहूँ बापी न्हाइ आई है ॥

—जगद्विनोद, १२८

अन्यसुरतिदुःखिता—नायिका का भेद विशेष। अन्यसंभोगदुःखिता का अन्य नाम। [दे० **अन्यसंभोगदुःखिता**] अपने पति से रमण करनेवाली अन्य नायिका के शरीर पर रतिचिह्नों को देखकर दुःखित होनेवाली नायिका।

अन्यस्त्री—काव्यशास्त्र में परकीया का नाम अन्यस्त्री है। [दे० **परकीया**] इसे अन्या भी कहा जाता है। [दे० **अन्या**]

अन्या—परकीया नायिका का अन्य नाम अन्या है। अन्य से विवाहित होकर अन्य से प्रेम करनेवाली नायिका अन्या कही जाती है। [दे० **परकीया**]

अन्यापदेशी—कवि का एक प्रकार [दे० **कवि**]। जो कवि स्वयं कविता कर दोष के भय से अपनी रचना को अन्य की रचना कहकर उसका प्रचार करे, उसे अन्यापदेशी कहते हैं। राजशेखर ने इसका लक्षण इस प्रकार दिया है—**यः स्वयमपि काव्यं दोषभयादन्यस्येत्यपदिश्य पठति सोऽन्यापदेशी।**—काव्यमीमांसा, पंचमोऽध्याय; पृ० ५०; चौखंबा संस्करण (हिंदी अनुवाद)

अन्योन्य—विरोधमूलक अलंकार। जब दो पदार्थ परस्पर एक ही क्रिया संपादित करें तो अन्योन्य अलंकार होगा। 'अन्योन्य' का अर्थ परस्पर है। इसमें दो वस्तुओं-द्वारा परस्पर एक ही क्रिया करने का वर्णन होता है।

इस अलंकार के उद्भावक आचार्य रुद्रट हैं। कालांतर में मम्मट, रुय्यक, शोभाकर, जयदेव, विद्याधर, विद्यानाथ, विश्वनाथ, अप्पय दीक्षित, पंडितराज जगन्नाथ तथा विश्वेश्वर पंडित ने इसका वर्णन किया।

रुद्रट के लक्षण में कहा गया कि जब दो पदार्थों में क्रिया-द्वारा विशिष्टता को पुष्ट करनेवाले एक ही कारक-भाव का वर्णन हो तो अन्योन्य अलंकार होगा। यहाँ एक क्रिया-द्वारा दो पदार्थों के परस्पर उपकार करने का वर्णन है।

यत्र परस्परमेकः कारकभावोऽभिधेययोः क्रियया।
संजायेत स्फारिततत्त्व विशेषस्तदन्योन्यम् ॥—काव्यालंकार, ७-९१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मम्मट ने बताया कि जब एक क्रिया दो पदार्थों का परस्पर कारण बने या एक क्रिया-द्वारा परस्पर दो पदार्थों की उत्पत्ति हो तो अन्योन्य अलंकार होता है।

क्रियया तु परस्परं ॥

वस्तुनोर्जननेऽन्योन्यं अर्थयोरेकक्रियामुखेन परस्परं कारणत्वे सति अन्योन्यनामाऽलंकारः ॥

—काव्यप्रकाश, १०/१२०

रुय्यक ने बताया कि अन्योन्य अलंकार के मूल में विरोध की स्थिति होती है; क्योंकि परस्पर क्रियाजनकता स्वतः विरोधी तथ्य है। इन्होंने परस्पर क्रिया की जनकता को अन्योन्य कहा।

परस्परक्रियाजनने अन्योन्यं। इहापिविरोधप्रस्ताव एव निर्देश कारणम्। परस्पर जननस्य विरुद्धत्वात्। क्रियाद्वारकं यत्र परस्परोत्पादकत्वम् (परस्पर निष्पादकत्वम्), न स्वरूपनिबंधनं स्वरूपस्य तयात्वोक्तिविरोधात्, तत्रान्योन्याख्योऽलंकारः। —अलंकारसर्वस्व, पृ० १७०

शोभाकर दो वस्तुओं के स्वरूप तथा धर्म के परस्पर निबंधन को अन्योन्य कहते हैं।

रूपधर्मयोः परस्परनिबंधनत्वमन्योन्यम् ॥—अलंकाररत्नाकर, ५६

जयदेव के अनुसार जब दो पदार्थ परस्पर उपकारक हों या एक वाक्य में एक पदार्थ दूसरे पदार्थ का उपकारक हो तो अन्योन्य अलंकार होगा।

अन्योन्यं नाम यत्र स्यादुपकारः परस्परम् ॥—चंद्रालोक, ५/८४

विश्वनाथ के अनुसार जब दो पदार्थ एक ही क्रिया की उत्पत्ति के कारण बनें तो अन्योन्य होगा।

अन्योन्यमुभयोरेकः क्रियायाः कारणं मिथः ॥ —साहित्य-दर्पण, १०/७२

दीक्षित ने जयदेव का लक्षण उद्धृत कर दिया है।

अन्योन्यं नाम यत्र स्यादुपकारः परस्परम् ॥—कुवलयानंद, ९८

पंडितराज के मत से जब दो पदार्थों में से एक, दूसरे की विशेषता उत्पन्न करे या एक पदार्थ दूसरे में विशेषता उत्पन्न करे तथा यह कार्य दोनों द्वारा संपन्न हो तो अन्योन्य होगा।

द्वयोरन्योन्येनान्योन्यस्य विशेषाधानमन्योन्यम् ॥—रसगंगाधर, पृ० ६१२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विश्वेश्वर पंडित दो वस्तुओं के परस्पर उत्कर्ष के हेतु को अन्योन्य कहते है ।

अन्योन्यं वस्तूनां परस्परोत्कर्षहेतुत्वे ॥—अलंकारकौस्तुभ, पृ० ३६०

रसगंगाधरकृतस्तु—स्वव्यधिकरणव्यापारसाध्यस्यैव परोपकारस्य चमत्कारा-धायकत्वं न तु स्वसमानाधिकरणव्यापारसाध्यस्यापि तुषारशीतलीकरणवत् स्वव्यापारसाध्यस्योपकारस्या चमत्कारकत्वादतो नेदमन्योन्यांतरमित्याहुः ॥

—वही, पृ० ३६२

रीति-काल में 'काव्यप्रकाश' और 'कुवलयानंद' ही अन्योन्यालंकार के मुख्याधार रहे हैं। चिंतामणि और कुलपति ने 'काव्यप्रकाश' का आधार बनाकर अपने लक्षण प्रस्तुत किए तो जसवंतसिंह, मतिराम और पद्माकर ने 'कुवलयानंद' की परिभाषा का अनुवाद किया ।

जहाँ वस्तु द्वै बात कछु करत परस्पर काज ।
अलंकार अन्योन्य यह बरनत सब कबिराज ॥—कविकुलकल्पतरु, ३/१६७

जनक परस्पर बात कै, दोइ अर्थ तब होय ।
एक क्रिया के जोग तें, सो अन्योन्य गोय ॥

—रसरहस्य, ८/१७३

अन्योन्यालंकार है अन्योन्यहि उपकार ॥—भाषाभूषण, १२९

जहाँ परस्पर उपकरत, तहाँ परस्पर नाम ।
बरनत सब ग्रंथनि मते कबि कोविद मतिराम ॥

—ललितललाम, २४२

सो अन्योन्य जु परस्पर करै जु भल उपकार ।
अन्योन्यहु अपकार जहँ सो अन्योन्य अलोक ॥
रहे जु दुहुं दुहुं में तहाँ, सो अन्योन्य विलास ।

—पद्माभरण, १६०-१६२

उदाहरण—

क. त्वया सा शोभते तन्वी त्वया त्वमपि शोभते ।
रजन्या शोभते चंद्रश्चंद्रेणापि निशीथिनी ॥

वह सुंदरी तुमसे सुशोभित हो रही है और उससे तुम सुशोभित होते हो। रात्रि से चंद्रमा की शोभा बढ़ती है एवं चंद्रमा से रात्रि की। स्पष्ट है।

ख. अँगुरिन उचि अरु भीति दै, उलमि चितै चख लोल ।
रुचि सों दुहूँ दुहूँन के चूमे चारु कपोल ॥—बिहारी ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ नायक-नायिक का एक दूसरे का चुंबन करना वर्णित है। दो व्यक्ति एक ही क्रिया करते हैं; अतः अन्योन्य अलंकार हुआ।

अपदयुक्तता—अर्थदोष का सत्रहवाँ भेद। [दे० अर्थदोष]

अपरांग व्यंग्य—गुणीभूत व्यंग्य का द्वितीय भेद। [दे० गुणीभूत व्यंग्य]

जब एक व्यंग्यार्थ किसी दूसरे व्यंग्यार्थ का अंग हो तो अपरांग-व्यंग्य होगा। अपरांग का अर्थ 'दूसरे का अंग होना' है। अंग होना अप्रधान होने का वाचक है। इसमें एक प्रधान व्यंग्य होता है और दूसरा उसका अंग होने से अप्रधान या सहायक होकर रहता है। इसमें रस, भाव, रसाभास, भावाभास आदि का रस अंग होकर वर्णित होता है। जब रस अपरांग होते हैं तो वहाँ अपरांगता स्थायी भाव की ही मानी जाती हैं; क्योंकि रस किसी अन्य का अंग नहीं होता।

रस में रस की अपरांगता—जब रस किसी अन्य रस का अंग होकर आए तो रस में रस की अपरांगता होती है।

अयं च रशनोत्कर्षी पीनस्तनविमर्दनः।
नाभ्यूरुजघनस्पर्शी नीवीविस्रंसनः करः॥

यहाँ भूरिश्रवा के कटे हुए हाथ को देखकर उसकी पत्नी का विलाप वर्णित है। "यह करधनी को खोलनेवाला, पीन पयोधरों का मर्दन करनेवाला, नाभि, ऊरु एवं जाँघों का स्पर्श करनेवाला तथा नीवी को खोलने वाला मेरे पति का हाथ है।" यहाँ शृंगार रस करुण रस का अंग होकर वर्णित है। श्लोक में करुण रस की व्यंजना (मृत्यु के कारण) है; किंतु विलाप के क्रम में भूरिश्रवा की पत्नी का रतिकाल की विविध क्रियाओं का स्मरण करना शृंगार रस है। स्मरण के रूप में वर्णित शृंगार रस करुण रस का अंग होकर आया है।

उरु-जघनन सपरसकरन, कुचन विमर्दनहार।
हा! यह प्रिय कर है वही! नीवी खोलनहार॥

इसी प्रकार भाव में रस की अपरांगता, भाव में भाव की अपरांगता, भाव में भावाभास की अपरांगता आदि को समझना चाहिए।

भाव में भावोदय की अपरांगता—जब किसी दूसरे भाव का भावोदय अंग होकर आए तो भाव में भावोदय की अपरांगता होती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भाव में भावशबलता की अपरांगता—भावशबलता जब किसी भाव का अंग होकर आए तो भाव में भावशबलता की अपरांगता होती है।

[विशेष विवरण के लिए दे० लेखक कृत 'भारतीय काव्यशास्त्र के प्रतिनिधि सिद्धांत' नामक ध्वनि-प्रकरण]

अपवारित—[**दे० नियतश्राव्य**]

अपस्मार—संचारी भाव। [**दे० संचारी भाव**] अत्यंत दुःख तथा मोहादि के कारण चक्कर खाकर गिर जाना अपस्मार है। अपस्मार का अर्थ 'मृगीरोग' है। इसमें मुख से फेन आना, श्वास का तेजी से चलना, चक्कर खाकर गिर जाना आदि चिह्न दिखाई पड़ते हैं। अपस्मार संचारी भाव वहाँ होता है, जब मानसिक कष्ट के आधिक्य से संबद्ध व्यक्ति की अवस्था 'मृगीरोग' के रोगी की भाँति हो जाय।

भरत, अपस्मार नामक संचारी भाव की उत्पत्ति देव, यक्ष, नाग, ब्रह्मराक्षस, भूत, प्रेत, पिशाच से आविष्ट होने, उनका स्मरण करने, उच्छिष्ट अन्न का सेवन करने, शून्यागार में निवास करने तथा आघात एवं व्याधि के कारण मानते हैं। इसका अभिनय जोर से श्वास के चलने, कंप, दौड़ना, पृथ्वी पर गिरना, स्वेद चलना, मुँह से फेन आना आदि अनुभावों-द्वारा होता है।

'अपस्मारो नाम—देवयक्षनागब्रह्मराक्षसभूतप्रेतपिशाचग्रहणानुस्मरणोच्छिष्टशून्यागारसेवनाशुचिकालांतरापरिपतनव्याध्यादिभिर्विभावैः समुत्पद्यते। तस्यस्फुरितनिःश्वसितोत्कंपितधावनपतनस्वेदस्तंभवदनफेनजिह्वापरिलेहनादिभिरनुभावैरभिनयः प्रयोक्तव्यः।'—नाट्यशास्त्र, ७/७३,७४

धनंजय ग्रहजनित दुःख के कारण उत्पन्न आवेश को अपस्मार कहते हैं। इसके अनुभाव भूमिपतन, कंप, स्वेद, लार टपकना, मुँह से फेन का निकलना आदि हैं।

आवेशो ग्रहदुःखाद्यैरपस्मारो यथाविधिः।
भूपातकंपप्रस्वेदलालफेनोद्गमादयः॥—दशरूपक, ४/२५

विश्वनाथ के अनुसार ग्रह, भूत, प्रेत आदि के आवेश से उत्पन्न मानसिक विक्षिप्तता को अपस्मार कहते हैं।

मनःक्षेपस्त्वपस्मारो ग्रहाद्यावेशनादिजः।
भूपातकंपप्रस्वेदफेनलालादिकारकः॥

—साहित्यदर्पण, ३/१५३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भानुदत्त ने भूतप्रेतादि बाधाजन्य रोग को अपस्मार कहा है, जिसमें व्यक्ति असंबद्ध प्रलाप करता है।

ग्रहाद्यावेशोऽपस्मारस्तत्र विभावः। अपावित्र्यशून्यगृहस्थितिधातुवैषम्योत्कटदुःखभयादयः अनुभावाः। कंपफेननिःश्वासभूपतनविपर्यासजिह्वालोलनादयः।'
—रसतरंगिणी, पृ० ३६५, पंचम तरंग।

पंडितराज जगन्नाथ ने वियोग, शोक, भय, जुगुप्सा आदि के आधिक्य से तथा ग्रहग्रस्त होने के कारण हुई मानसिक व्याधि को अपस्मार कहा है।

वियोगशोकभयजुगुप्सादीनामतिशयाद्ग्रहावेशादेश्चोत्पन्नो व्याधिविशेषोऽपस्मारः।

—रसगंगाधर, पृ० ११९

उदाहरण—

क. हरिमागतमाकर्ण्य मथुरामंतकांतकम्।
कंपमानः श्वसन् कंसो निपपात महीतले॥

श्रीकृष्ण को अपने वध के लिए आया जानकर कंस काँपता तथा श्वास लेता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा।

यहाँ मृत्यु-भय से कंस का काँपना तथा पृथ्वी पर गिर जाना अपस्मार है।

ख. देखी व्याधि असाधि नृप, परेउ धरनि धुनि माथ।
कहत परम आरत बचन, राम राम रघुनाथ॥

अत्यंत दुःख के कारण राजा दशरथ का पृथ्वी पर गिर जाना अपस्मार है।

अपह्नुति—सादृश्यमूलक अलंकार। जब प्रकृत या उपमेय का निषेध कर अप्रकृत या उपमान की स्थापना की जाय तो अपह्नुति अलंकार होगा। 'अपह्नुति' का अर्थ है— गोपन, निह्नव, निषेध, वारण या छिपाना। इस अलंकार में सत्य या वास्तविक (उपमेय) तथ्य को छिपाकर (निह्नव कर) असत्य या अवास्तविक (उपमान) तथ्य की स्थापना की जाती है; अतः इसे अपह्नुति कहते हैं। इसके निम्नांकित तत्त्व हैं—

क. किंचित् सादृश्य या पूर्णसादृश्यमूलकता।

ख. इसका लक्षण सादृश्य की परिधि से बाहर होकर सादृश्येतर संबंध में भी स्वीकार किया जाता है।

ग. विषय एवं विषयी (उपमेय तथा उपमान) दोनों के ही निषेध में इसकी स्थिति स्वीकार की गई है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

घ. आरोप्यमाण के लिए आहार्य निश्चय (काल्पनिक)का होना आवश्यक समझा गया।

अपह्नुति अत्यंत प्रसिद्ध अलंकार है, जिसका वर्णन सभी आचार्यों ने किया है। इसके प्रवर्तक आचार्य भामह हैं। भामह ने अपह्नुति में किंचित् सादृश्य या उपमा का रहना आवश्यक माना है और वास्तविक वस्तु को छिपाने के लिए इसकी संज्ञा अपह्नुति दी है।

अपह्नुतिरभीष्टा च किंचिदंतर्गतोपमा।
भूतार्थापह्नवादस्याः क्रियते चाभिधा यथा॥

—काव्यालंकार ३/२१।

दंडी ने पहले तो अपह्नुति को उपमा का एक भेद माना, किंतु पीछे इसे स्वतंत्र अलंकार का रूप दिया। इनके अनुसार, धर्मी का निषेध कर अन्य धर्म के आरोप में अपह्नुति होती है।

अपह्नुतिरपह्नुत्य किंचिदन्यार्थदर्शनम्॥

—काव्यादर्श, २/३०४।

दंडी अपह्नुति के लिए सादृश्यमूलकता को आवश्यक नहीं मानते। उद्भट ने भामह के ही लक्षण को उद्धृत कर दिया है।

—काव्यालंकारसारसंग्रह, ५/३

वामन ने बताया कि समान वस्तु के द्वारा अन्य वस्तु का निषेध अपह्नुति है।

समेवस्तुनाऽन्यालापोऽपह्नुतिः॥

—काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, ४,३,५।

रुद्रट के अनुसार अत्यंत सादृश्य के कारण उपमेय का निषेध कर (असत्य सिद्धकर) वास्तविक उपमान की सत्यता स्थापित करने में अपह्नुति अलंकार होता है।

अतिसाम्यादुपमेयं यस्यामसदेव कथ्यते सदपि।
उपमानमेव सदिति च विज्ञेयापह्नुति सेयम्॥

—काव्यालंकार, ८/५७।

मम्मट ने रुद्रट का प्रभाव ग्रहण करते हुए कहा कि प्रकृत का निषेध कर अप्रकृत की सत्यता-सिद्धि में अपह्नुति होती है।

प्रकृतं यन्निषिध्यान्यत्साध्यते सात्वपह्नुतिः॥

—काव्यप्रकाश, १०/९६।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपमेयमसत्यं कृत्वा उपमानं सत्यतया यत्स्थाप्यते सात्वपह्नुतिः ।।

—वही ।

रुय्यक के अनुसार, विषय (उपमेय) का निषेध कर वस्त्वंतर की प्रतीति को अपह्नुति कहते हैं ।

विषयस्यापह्नवेऽपह्नुतिः । वस्त्वंतरप्रतीतिरित्येव । प्रक्रांतापह्नववैधर्म्येणेदमुच्यते । आरोपप्रस्तावादारोपविषयापह्नुतावारोप्यमाणप्रतीतावपह्नुत्याख्योऽलंकारः ।। —अलंकारसर्वस्व, पृ० ६३ ।

जयदेव ने सादृश्यांतर संबंध में भी अपह्नुति की स्थिति स्वीकार कर इसके पाँच प्रकारों का निरूपण किया । इनके अनुसार सत्य का निषेध कर असत्य के आरोप में अपह्नुति होती है ।

अतथ्यमारोपयितुं तथ्यापास्तिरपह्नुतिः ।।

—चंद्रालोक ५/२४ ।

शोभाकर ने सादृश्य तथा सादृश्येतर उभय संबंधों में अपह्नुति की सत्ता स्वीकार की है । उन्होंने उपमेय तथा उपमान दोनों के निषेध में अपह्नुति अलंकार माना है ।

विषयस्यमुख्यस्य वापह्नवे अन्यविधिरपह्नुतिः ।।२६

आरोप विषयस्य निषेधे विषयिणो विधानेका । मुख्यस्य चंद्रादेरन्यस्य मुखचंद्रादेगौंणस्य विधिरपराऽपह्नुतिः ।।............एवं नोपमेयस्यैव निषेधेऽपह्नुतिः । क्वचिदुपमानादेरपि निषेधात्, नापि प्रकृतस्यैवाप्रकृतनिषेधेऽप्युदाहृतत्वात् ।। —अलंकाररत्नाकर, पृ० ४०, ४२ ।

विद्याधर, विद्यानाथ तथा विश्वनाथ के लक्षण मम्मट से प्रभावित हैं ।

कलयतिविषयेऽपह्नवमारोप्यं यत्र भासते सुतराम् ।
आहुरपह्नुतिमेतां बंधच्छाया त्रयी चास्याः ।।

—एकावली, ८/११ ।

निषिध्य विषयं साम्यादन्यारोपेह्यपह्नुतिः ।

—प्रतापरुद्रीय, पृ० २७६

प्रकृतं प्रतिषिध्यान्यस्थापनं स्यादपह्नुतिः ।

—साहित्यदर्पण, १०/३८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विश्वनाथ ने अपह्नुति के विवेचन-क्रम में निश्चय नामक अलंकार का वर्णन किया है, जिसमें उपमान का निषेध कर उपमेय की स्थापना की जाती है।

गोपनीयं कमप्यर्थं द्योतयित्वा कथंचन ॥
अन्यन्निषिध्य प्रकृतस्थापनं निश्चयः पुनः।

—साहित्यदर्पण, १०/३९

दीक्षित ने जयदेव के सभी भेदों को अपनाकर कुछ नवीन भेदों का वर्णन किया है। इन्होंने कुल मिलाकर छह भेदों का निरूपण किया। इनके मत से सादृश्य के कारण प्रकृत का निषेध कर अप्रकृत की कल्पना में अपह्नुति होती है।

सादृश्य व्यक्तये यत्रापह्नवोऽसावपह्नुतिः।
अपह्नवाय सादृश्यं यत्रास्त्येषाप्यपह्नुतिः ॥

—चित्रमीमांसा, पृ० ८५

पंडितराज ने कहा कि उपमेय का निषेध कर समानाधिकरण्य के द्वारा उपमान का आरोप कर तादात्म्य का स्थापन अपह्नुति है।

निषेधसामान्याधिकरण्येनारोप्यमाणमुपमानतादात्म्यमपह्नुतिः ।

—रसगंगाधर, पृ० ३६६

विश्वेश्वर पंडित के अनुसार प्रकृत का शब्दतः या अर्थतः निषेध कर उसके साथ उपमान केताद्रूप्य-स्थापन को अपह्नुति कहते हैं।

प्रकृतं निषिध्यभिन्नात्मतया प्रोक्तावपह्नुतिः कथिता ॥

—अलंकार कौस्तुभ, पृ० २३५

रीतिकालीन आचार्यों ने दंडी, मम्मट, विद्यानाथ, विश्वनाथ और दीक्षित को आधार बनाकर अपह्नुति अलंकार का वर्णन किया। केशव का लक्षण दंडी का अनुवाद है। चिंतामणि और कुलपति ने क्रमशः विद्यानाथ और मम्मट के लक्षण का भावानुवाद किया है। जसवंतसिंह, मतिराम और पद्माकर आदि ने 'कुवलयानंद' के लक्षण को अनूदित किया।

मन की बात दुराइ मुख, औरै कहियै बात।
कहत अपह्नुति सकल कवि, या सों बुधि अवदात ॥

—कविप्रिया, ११/८१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विषई को आरोप कै करि जो विषय निषेध।
ताहि अपह्नुत कहत हैं धर्महि समुझि सुमेध॥

—कविकुलकल्पतरु, ३/१०१

करि निषेध उपमेय कौं जहं थापै उपमान।
बहु विधि वाचक भेद ते, ताहि अपह्नुति जान॥

—रसरहस्य, ८/६०

धर्म दुरै आरोप तें, सुद्ध अपह्नुति जान॥

—भाषाभूषण, ६१

औरै को आरोप करि, साँच छपावत धर्म।
शुद्धापह्नुति कहत हैं, जे प्रबीन कवि कर्म॥

—ललितललाम, ८७

सुद्धापह्नुति जहँ थपै सुद्ध वस्तु छपि जात॥

—पद्माभरण, ४५

भेद—अपह्नुति के भेद-विस्तार में दंडी, भोज, रुय्यक, जयदेव, विश्वनाथ तथा अप्पय दीक्षित का विशेष योग है। दंडी ने विषयापह्नुति, स्वरूपापह्नुति तथा उपमापह्नुति नामक भेदों का वर्णन किया है।—काव्यादर्श, २/३०९। भोज ने औपम्यवती एवं अनौपम्या नामक दो भेदों का वर्णन किया; पुनः वाच्य और प्रतीयमान सादृश्य के आधार पर दोनों के दो-दो भेदों का उल्लेख किया। अनौपम्या के भी दो भेद किए—पूर्वा तथा अपूर्वा।

—सरस्वतीकंठाभरण, ४/४१-४३

रुय्यक ने तीन भेदों का कथन किया है—अपह्नवपूर्वक आरोप, आरोप-पूर्वक अपह्नव तथा छलादि अपह्नवसूचक शब्दों का स्वरूप। जयदेव ने अपह्नुति के पाँच भेदों का वर्णन किया—शुद्ध, पर्यस्त, भ्रांत, छेक और कैतव। दीक्षित ने जयदेव-कृत भेदों के अतिरिक्त हेतु अपह्नुति का भी उल्लेख किया और छह भेदों की प्रतिष्ठा की। रीतिकालीन आचार्यों ने दीक्षित के सभी भेदों को मान्यता दी।

१. शुद्धापह्नुति—जब वास्तविक उपमेय का निषेध कर उपमान का आरोप किया जाय तो शुद्धापह्नुति होगी।

शुद्धापह्नुतिरन्यस्यारोपार्थो धर्मनिह्नवः॥

—कुवलयानंद, २६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क. नायं सुधांशुः किं तर्हि ? व्योमगंगासरोरुहम् ।।

"यह चंद्रमा नहीं है, तो क्या है ? आकाशगंगा का कमल है ।" यहाँ चंद्र का निषेध कर आकाशगंगा के आरोप में प्रथम भेद है ।

ख. नहिं सुधांसु यह है सखी, नभगंगा को कंज ।।

२. *हेत्वपह्नुति*—जब वास्तविक उपमेय का निषेध कर उपमान के स्थापन में कारण या हेतु की कल्पना की जाय तो हेत्वपह्नुति होगी ।

स एव युक्तिपूर्वश्चेदुच्यते हेत्वपह्नुतिः ।।

—कुवलयानंद, २८

युक्ति सहित 'मतिराम' जहँ शुद्धापह्नुति होय ।
हेत अपह्नुति कहत हैं तहाँ सुकबि सब कोय ।।

—ललितललाम, ८३

क. नेंदुस्तीव्रो न निश्यर्कः सिंधोरौर्वोऽयमुत्थितः ।।

यह चंद्रमा नहीं है, क्योंकि यह तीव्र है । यह सूर्य नही है, क्योंकि यह रात्रि में नहीं होता । यह तो समुद्र की बड़वाग्नि है, जो जल रही है । यहाँ दो हेतुओं की कल्पना करते हुए चंद्रमा का निषेध कर बड़वाग्नि की स्थापना की गई है ।

ख. रात माँझ रबि होत नहिं, चंदन तीव्र सुलाग ।
उठी लषन अवलोकिये सागर सो बड़वागि ।।—रामायण

३. *पर्यस्तापह्नुति*—जब उपमान के धर्म (एक वस्तु) का निषेध कर उपमेय में उसकी स्थापना की जाय तो पर्यस्तापह्नुति होगी ।

अन्यत्र तस्यारोपार्थः पर्यस्तापह्नुतिस्तु सः ।।

—कुवलयानंद, २८

धर्म और मैं राखिए, धर्मी साँच छपाय ।
परजस्तापह्नुति कहत ताहि बुद्धि सरसाय ।।

—ललितललाम, ९१

क. नायं सुधांशुः, किं तर्हि ? सुधांशुः प्रेयसीमुखम् ।।

यह चंद्रमा सुधांशु नहीं है, तो कौन है ? सुधांशु तो प्रिया का मुख है । यहाँ चंद्रमा के गुण को प्रिया के मुख पर आरोपित करने से पर्यस्त हुआ ।

ख. होइ सुधाधर नाहिं यह, वदन सुधाधर ओप ।।

यहाँ चंद्रमा के गुण को मुख पर आरोपित किया गया है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

४. *भ्रांतापह्नुति*—जब किसी को किसी पदार्थ में अन्य पदार्थ का भ्रम हो जाय और उसका निवारण सत्य बात कहकर किया जाय तो भ्रांतापह्नुति होगी।

भ्रांतापह्नुतिरन्यस्य शंकायां भ्रांति वारणे ।।—कुवलयानंद, २९

जहाँ और संका भए करत झूठ भ्रम दूरि।
भ्रांतापह्नुति कहत हैं तहाँ सुकवि मतिधीर ।।

—ललितललाम, ९३

क तापं करोति सोत्कंपं, ज्वरः किं? न सखि ? स्मरः ।।

'ताप कर रहा है' इसे सुनकर सखी ताप का कारण ज्वर समझकर कहती है कि क्या ज्वर ताप कर रहा है? इस पर सखी ने भ्रम को दूर करते हुए कहा कि ज्वर नहीं, कामदेव ताप कर रहा है। भ्रम के निवारण के कारण यहाँ भ्रांतापह्नुति है।

ख. बेसर-मोती दुति झलक, परी अधर पर आय।
चूनो होय न चतुर, तिय, क्यों पट पोंछो जाय ।।—बिहारी

यहाँ नायिका को नकबेसर के मोती की छाया में अधर पर चूना लगने का भ्रम हो गया था, जिसे उसकी सखी ने वास्तविक बात कहकर दूर कर दिया।

५. *छेकापह्नुति*—किसी व्यक्ति के द्वारा अपने विश्वस्त व्यक्ति के रहस्य का कथन करते समय यदि उसे अन्य व्यक्ति सुन ले तो उस व्यक्ति द्वारा उसका मिथ्या समाधान प्रस्तुत कर उसे छिपाने में छेकापह्नुति होती है। इसमें गुप्त रहस्य के प्रकट होने पर उसे छिपाते हुए अवास्तविक तथ्य की स्थापना की जाती है। **छेकापह्नुतिरन्यस्य शंकास्तथ्यनिह्नवे ।**—कुवलयानंद, ३०

जहाँ और की संक ते साँच छिपावत बात।
छेकापह्नुति कहत हैं तहाँ बुद्धि अवदात ।।—ललितलालाम, ९५

क. प्रजल्पन्मत्पदे लग्नः कांतः किं ? नहि, नूपुरः ।।

प्रिय शब्द करता हुआ मेरे पैरों पर आकर लग गया। इसे सुनकर अन्य सखी ने कहा कि क्या प्रिय ? इस पर नायिका ने कहा कि नहीं, नूपुर। यहाँ नूपुर कहकर प्रकटित रहस्य का गोपन किया गया है।

ख. करत अधर छत, प्रिय ? नहीं, सखी सीत रितु बाइ ।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नायिका सखी से कहती है कि अधर पर छत (क्षत) या घाव करता है। इसे सुनकर अन्य सखी कहती है कि क्या, प्रिय ? तब नायिका उसे छिपाने के लिए कहती है कि नहीं, शीत ऋतु की हवा।

६. *कैतवापह्नुति*—जब कैतव, छल, मिस, व्याज आदि शब्दों-द्वारा उपमेय का निषेध हो तो कैतवापह्नुति होगी।

कैतवापह्नुतिर्व्यक्तौ व्याजाद्यैर्निह्नुते पदैः ॥

—कुवलयानंद, ३१

जहँ छलादिक पदनि सौं साँच छपावन बात।
तहँ छलपह्नुति कहत हैं कविजन मति अवदात ॥ —ललितललाम, ९८

क. निर्यांति स्मरनाराचाः कांतादृक्पातकैतवात् ॥—कुवलयानंद, ३१

कामदेव के बाण कांता के कटाक्षपात के बहाने निकल रहे हैं। यहाँ बहाने या ब्याज के द्वारा कांता के दृक्पात का निषेध करने में कैतवापह्नुति है।

ख. सावन की अंधी रजनी, वारिद मिस रोती आयी ॥—हल्दीघाटी।

यहाँ मिस शब्द के द्वारा जल-वर्षा का निषेध कर अश्रु-वर्षा के आरोप में कैतवापह्नुति है। पर्यस्त, भ्रांत एवं छेक नामक भेदों में अपह्नुति का लक्षण घटित नहीं होता; क्योंकि इनमें उपमान का निषेध कर उपमेय की स्थापना का कथन किया जाता है; अतः आचार्यों ने इन भेदों का खंडन किया है।

—दे० रसगंगाधर, पृ० ३६९

रूपक और अपह्नुति—रूपक में निषेध-रहित आरोप होता है और अपह्नुति में उपमेय में उपमान के निषेध-सहित आरोप का वर्णन किया जाता है।

अपह्नुति एवं वक्रोक्ति—वक्रोक्ति तथा छेकापह्नुति में कथन का विपर्यय कर अर्थ बदलने की प्रक्रिया दिखाई पड़ती है। इनमें अंतर यह है कि वक्रोक्ति में अन्य व्यक्ति के कथन को उलटकर अन्यार्थ की कल्पना की जाती है, किंतु छेकापह्नुति में अपने कथन का ही अर्थ बदलने का वर्णन होता है।

व्याजोक्ति तथा छेकापह्नुति—दोनों में ही सत्य का गोपन किया जाता है। अपह्नुति में सादृश्य का प्राधान्य होता है तो व्याजोक्ति में गूढ़ता का।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

छेकापह्नुति में गोप्यवस्तु को पहले स्वयं प्रकट कर तत्पश्चात् उसका गोपन किया जाता है; पर व्याजोक्ति में गोपनीय पदार्थ किसी प्रकार प्रकट हो जाता है, इसके बाद उसका निषेध या गोपन होता है।

अपुष्ट—अर्थदोष का प्रथम प्रकार। [दे० अर्थदोष]

अप्पय दीक्षित—इनका समय १५५४ से १६२६ ई० के मध्य है। इन्होंने वेदांत, मीमांसा, व्याकरण तथा साहित्यशास्त्र पर समान अधिकार के साथ ग्रंथों की रचनाएँ की हैं। इनके ग्रंथों की संख्या १०४ के आस-पास है। दीक्षित ने अलंकार शास्त्र-संबंधी तीन ग्रंथ लिखे हैं—वृत्तिवार्त्तिक, कुवलयानंद तथा चित्रमीमांसा। कुवलयानंद की रचना बेंकट नामक राजा के अनुरोध पर हुई थी, जो विजय नगर के नरेश बेंकट प्रथम से अभिन्न माने जाते हैं। बेंकटपति का एक दान-पत्र १५८३ शक (१६०१ ई०) का पाया जाता है। अप्पय दीक्षित का उल्लेख कमलाकर भट्ट ने किया है, जिनका समय १७वीं शती का प्रथम चरण है। इससे दीक्षित के उपर्युक्त समय की पुष्टि होती है। इनकी 'चित्रमीमांसा' का खंडन पंडितराज जगन्नाथ ने भी किया है।

अमुं कुवलयानंदमकरोदप्पदीक्षितः।
नियोगाद्वेंकटपतेनिरुपाधिकृपानिधेः ॥—कुवलयानंद

'वृत्तिवार्त्तिक' यह शब्द-शक्ति-विषयक एक लघु रचना है। इसमें दो परिच्छेदों में अभिधा तथा लक्षणा वृत्ति का विवेचन है। (काव्यमाला से प्रकाशित)

'चित्रमीमांसा' अलंकार-संबंधी प्रौढ़ कृति है, जिसमें १२ अलंकारों का विस्तृत विवेचन है। इसमें वर्णित अलंकार हैं—उपमा, उपमेयोपमा, अनन्वय, स्मरण, रूपक, परिणाम, संदेह, भ्रांतिमान्, उल्लेख, अपह्नुति, उत्प्रेक्षा तथा अतिशयोक्ति। 'चित्रमीमांसा' अतिशयोक्ति अलंकार के वर्णन के साथ समाप्त हो जाती है। यह अपूर्ण कृति है। इस पर अनेक टीकाएँ रची गई हैं। श्रीधरानंदविरचित—'सुधा' संस्कृत व्याख्या। पं० जगदीश चंद्र मिश्र प्रणीत 'भारती' नामक हिंदी व्याख्या के साथ 'चित्रमीमांसा' का प्रकाशन (१९७१ ई० में) चौखंबा संस्कृत सीरीज, वाराणसी से हो चुका है।

'कुवलयानंद' अलंकार-विषयक लोकप्रिय कृति है, जिसमें १२५ अलंकारों का विवेचन है। [दे० कुवलयानंद] यह मौलिक कृति न होकर जयदेव के प्रसिद्ध ग्रंथ 'चंद्रालोक' की विस्तृत व्याख्या है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

[इसका हिंदी अनुवाद डॉ० भोलाशंकर व्यास ने किया है जो चौखंबा संस्कृत सीरीज, वाराणसी से प्रकाशित है।] 'कुवलयानंद' में १७ नवीन अलंकारों का विवेचन है—प्रस्तुतांकुर, अल्प, कारकदीपक, मिथ्याध्यवसिति, ललित, अनुज्ञा, मुद्रा, रत्नावली, विशेषक, गूढ़ोक्ति, विवृत्तोक्ति, युक्ति, लोकोक्ति, छेकोक्ति, निरुक्ति, प्रतिषेध तथा विधि। इसमें शब्दालंकारों का विवेचन नहीं किया गया है, केवल अर्थालंकारों एवं मिश्रालंकारों (संकर और संसृष्टि) का निरूपण है। दीक्षित ने अधिकांश स्थलों पर 'चंद्रालोक' के ही लक्षण एवं उदाहरण को ग्रहण कर लिया है, पर अपनी ओर से गद्य में अलंकारों का विस्तृत विवेचन किया है। 'कुवलयानंद' की रचना बालबुद्धि के व्यक्तियों के लिए हुई है। लेखक के अनुसार इसमें 'चंद्रालोक' में निर्दिष्ट अलंकारों के ही लक्षण एवं उदाहरण ग्रहण किए गए हैं तथा जिनका उसमें वर्णन नहीं है, उनके लक्षणोदाहरण दीक्षित ने प्रस्तुत किए हैं।

'अलंकारेषु बालानामवगाहनसिद्धये।
ललितः क्रियते तेषां लक्ष्यलक्षणसंग्रहः ॥
येषां चंद्रालोके दृश्यंते लक्ष्यलक्षणश्लोकाः।
प्रायस्तएव तेषामितरेषां त्वभिनवा विरच्यंते ॥—कुवलायानंद, ४/५.

अप्रकृत—उपमान का अन्य नाम। [दे० उपमान]

अप्रतीत—शब्ददोष का एकादश भेद। [दे० शब्ददोष]

अप्रयुक्त—शब्ददोष का तृतीय प्रकार। [दे० शब्ददोष]

अप्रस्तुत—उपमान का अन्य नाम। [दे० उपमान]

अप्रस्तुत प्रशंसा—अर्थालंकार का एक प्रकार। जहाँ अप्रस्तुत के कथन से प्रस्तुत की प्रतीति हो, वहाँ अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार होता है। अप्रस्तुत-प्रशंसा का अर्थ है अप्रस्तुत का वर्णन। यहाँ 'प्रशंसा' शब्द वर्णन का वाचक है—अप्रस्तुतप्रशंसावर्णनम्, प्रदीप पृ० ४८३।

प्रशंसनं च वर्णन मात्रं न तु स्तुतिः, —रसगंगाधर पृ० ६३६।

इस अलंकार में प्रस्तुत और अप्रस्तुत दो पदार्थों का वर्णन होता है और अप्रस्तुत वाच्य होता है तथा प्रस्तुत व्यंग्य। इसमें अप्रस्तुत का वर्णन होने पर भी प्रस्तुत का ही प्राधान्य होता है; क्यों कि कवि अप्रस्तुत के कथन-द्वारा ही प्रस्तुत की प्रतीति कराता है। प्रस्तुत और अप्रस्तुत का संबंध पाँच प्रकार का होता है—सामान्य विशेष का, कार्यकारण भाव का एवं सारूप्य का।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अप्रस्तुत प्रशंसा का विवेचन सर्वप्रथम भामह ने किया, तत्पश्चात् रुद्रट के अतिरिक्त सभी आचार्यों ने इसका उल्लेख किया। भामह से लेकर विश्वेश्वर पंडित तक इसके स्वरूप में किसी प्रकार का अंतर नहीं आया है, फलतः इसके विकास के अवसर कम आए हैं।

भामह के अनुसार अप्रस्तुत के वर्णन को अप्रस्तुतप्रशंसा कहते हैं। इनका लक्षण पूर्ण नहीं है।

अधिकारादपेतस्य वस्तुनोऽन्यस्य वा स्तुतिः।
अप्रस्तुतप्रशंसेति सा चैवं कथ्यते यथा ॥

—काव्यालंकार ३/२९

दंडी ने बताया कि प्रस्तुत की निंदा के लिए की गई अप्रस्तुत की प्रशंसा अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है। भामह ने स्तुति का तात्पर्य वर्णन से लिया है; पर दंडी प्रशंसा का अर्थ स्तुति करते हैं।

अप्रस्तुतप्रशंसास्यादप्रकांतेषु या स्तुतिः ॥

—काव्यादर्श, २/३४०

उद्भट ने भामह के लक्षण में किंचित् परिष्कार कर, इस अलंकार का वर्णन किया। इन्होंने 'प्रस्तुतार्थानुबंधिनी' का समावेश कर भामह की त्रुटियों को दूर कर दिया। इनके मत से अप्रस्तुत के वर्णन से प्रस्तुत की प्रतीति में यह अलंकार होगा।

अधिकारादपेतस्य वस्तुनोन्यस्य या स्तुतिः।
अप्रस्तुतप्रशंसेयं प्रस्तुतार्थानुबंधिनी ॥

—काव्यालंकारसारसंग्रह, ५/८

वामन के लक्षण और उदाहरण दोनों से ही रूपकातिशयोक्ति की प्रतीति होती है। इन्होंने बताया कि उपमेय के किंचित् लिंगमात्र से कथन करने पर समान वस्तु के न्यास को अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार कहते हैं।

किंचिदुक्तावप्रस्तुतप्रशंसा। ४,३,४

उपमेयस्य किंचिल्लिंगमात्रेणोक्तो समान वस्तुन्यासे अप्रस्तुतप्रशंसा। अप्रस्तुतार्थस्यप्रशंसनमप्रस्तुतप्रशंसा। —काव्यालंकारसूत्रवृत्ति।

मम्मट ने बताया कि अप्रस्तुत के कथन से प्रस्तुत विषय का आक्षेप करना अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है। इन्होंने अप्रस्तुतप्रशंसा के पाँच संबंधों का निरूपण कर इसके स्वरूप को व्यवस्थित कर दिया।

अप्रस्तुतप्रशंसा या सैवप्रस्तुताश्रया ॥ —काव्यप्रकाश, १०/९८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अप्रस्तुतप्रशंसा की पाँच स्थितियाँ हैं—कार्यकारणभाव, कारणकार्यभाव, सामान्यविशेष, विशेष्यसामान्य तथा सारूप्यसंबंध। इन्होंने तुल्य के अप्रस्तुत होने पर प्रस्तुत तुल्य के वर्णन को तीन प्रकार का माना है—श्लेष, समासोक्ति तथा सादृश्य-द्वारा।

रुय्यक के लक्षण में अप्रस्तुतप्रशंसा के पाँच प्रकारों का समावेश है। इनके अनुसार सामान्यविशेषभाव, कार्यकारणभाव तथा सारूप्य के कारण अप्रस्तुत से प्रस्तुत की प्रतीति होने पर अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार होगा।

अप्रस्तुतात्सामान्यविशेषभावे कार्यकारणभावे सारूप्ये च प्रस्तुतप्रतीतावप्रस्तुतप्रशंसा। —अलंकारसर्वस्व, पृ० १३२

परवर्ती आचार्यों में जयदेव, विद्यानाथ, दीक्षित, पंडितराज जगन्नाथ एवं विश्वेश्वर पंडित के लक्षण मम्मट से प्रभावित हैं और विद्याधर तथा विश्वनाथ पर रुय्यक का प्रभाव है।

अप्रस्तुतप्रशंसा स्यात् सा यत्र प्रस्तुतानुगा॥

—चंद्रालोक, ५/६६

अप्रस्तुतस्य कथनात् प्रस्तुतं यत्र गम्यते।
अप्रस्तुतप्रशंसेयं सारूप्यादि नियंत्रिता॥

—प्रतापरुद्रीय, पृ० ३१९

अप्रस्तुतप्रशंसा स्यात् सा यत्र प्रस्तुताश्रया॥

—कुवलयानंद, ६६

अप्रस्तुतव्यवहारेण सादृश्यादि वक्ष्यमाण प्रकारान्यतमप्रकारेण प्रस्तुत व्यवहारो यत्र प्रशस्यते साऽप्रस्तुतप्रशंसा।—रसगंगाधर, पृ० ५३७

अप्रस्तुतप्रशंसा प्रकृतप्रतिपत्तिरेतया यत्र।
कार्ये हेतौ व्याप्यव्यापकयोरन्यगीः समेतस्य॥ —अलंकार कौस्तुभ

सामान्यविशेषत्वे सारूप्ये कार्यकारणत्वे च।
अप्रस्तुतप्रशंसा निर्दिष्टा प्रस्तुतस्य गम्यत्वे॥

—एकावली, ८/२७

क्वचिद्विशेषः सामान्यात्सामान्यं वा विशेषतः।
कार्यान्निमित्तं कार्यं च हेतोरथ समात्समम्।
अप्रस्तुतात्प्रस्तुतं चेद् गम्यते पंचधा ततः।
अप्रस्तुतप्रशंसा स्याद्॥ —साहित्यदर्पण, १०/५९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रीतिकालीन आचार्यों ने इस अलंकार के निरूपण में मम्मट और अप्पय दीक्षित के लक्षणों का अनुवाद किया है। चिंतामणि एवं कुलपति ने 'काव्य-प्रकाश' की परिभाषा का अनुवाद किया है।

अप्रस्तुत के कथन ते प्रस्तुत जान्यौ जाइ।
अप्रस्तुति परसंस सो सज्जन सुनौ बनाइ ॥

—कविकुलकल्पतरु, ३/२२१

दास और पद्माकर के लक्षण 'कुवलयानंद' के अनुवाद हैं।

अप्रस्तुत के कहत जहँ प्रस्तुत जान्यो जाइ।
अप्रस्तुत परसंस तेहि, कहैं सकल कविराइ ॥

—काव्यनिर्णय, १२/६

अप्रस्तुत बिरतांत महँ जहँ प्रस्तुत को ज्ञान।
अप्रस्तुत परसंस सो, पंच प्रकार प्रमान ॥

—पद्माभरण, १०७

अप्रस्तुतप्रशंसा के पांच प्रकार माने गए हैं—कारणनिबंधना, कार्य-निबंधना, विशेषनिबंधना, सामान्यनिबंधना तथा सारूप्यनिबंधना। मम्मट-कृत भेद-वर्णन इस प्रकार है—

कार्यें निमित्ते सामान्ये विशेषे प्रस्तुते सति।
तदन्यस्य वचस्तुल्ये तुल्यस्येति च पंचधा ॥—काव्यप्रकाश, १०/९९

तुल्येप्रस्तुतेतुल्याभिधाने त्रयः प्रकाराः श्लेषः समासोक्तिः सादृश्यमात्रं वा तुल्यातुल्यस्य हि आक्षेपे हेतुः।—वही

१. कारणनिबंधना—जब अप्रस्तुत कारण के वर्णन से प्रस्तुत कार्य का प्रतीति हो तो यह प्रकार होगा।

अप्रस्तुत कारनहुँ तें फुरै जु प्रस्तुत काज।
यों कारन सु निबंधना भाषत हैं कविराज ॥—पद्माभरण, ११९

क. हृतसारमिवेंदुमंडलं दमयंती वदनाय वेधसा।
कृतमध्यबिलं विलोक्यते धृतगंभीर खनीखनीलिमाम् ॥—नैषध, २/२५

दमयंती के मुख को बनाने के लिए ब्रह्मा ने चंद्रमंडल का सार भाग ले लिया, इसी कारण चंद्रमा में छिद्र हो गया, जिसमें आकाश का नीलारंग (नीलिमा) झलकता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ अप्रस्तुत कारण चंद्रमंडल का सार-हरण के द्वारा प्रस्तुत कार्य दमयंती के मुखसौंदर्य का ज्ञान होता है।

ख. कोउ कह जब बिधि रति मुख कीन्हा। सारभाग ससि कर हरि लीन्हा ॥
छिद्र सो प्रगट इंदु उर माहीं। तेहि मग देखिय नभ परिछाहीं ॥
—रामायण

पूर्वश्लोक का अनुवाद।

२. *कार्यनिबंधना*—जब अप्रस्तुत कार्य के वर्णन से प्रस्तुत कारण की प्रतीति हो तो कार्यनिबंधना नामक भेद होगा।

अप्रस्तुत कारजहु तें प्रस्तुत कारन ज्ञान।
ताकों काज-निबंधना पद्माकर उर आन ॥ —पद्माभरण, १२०

क. नाथ! त्वदंघ्रिनखधावनतोयलग्नास्तत्कांतिलेशकणिका जलधिं प्रविष्टाः।
ता एव तस्य मथनेन घनीभवंत्यो नूनं समुद्रनवनीतपदं प्रपन्नाः ॥

'हे नाथ, आपके चरणों के नखों को धोने के जल में लगे हुए उन नखों के कांतिलेश के जो कण समुद्र में प्रविष्ट हुए, वे ही उसके मंथन के कारण सघन बनकर समुद्र के नवनीतत्व को प्राप्त हो गए हैं।' यहाँ चंद्रमा का वर्णन समुद्र के नवनीत के रूप में हुआ है। चंद्रमा अप्रस्तुत कार्य तथा भगवान् के चरणनखों की छवि प्रस्तुत कारण है।

ख. गोपिन के अँसुवन भरी, सदा असोस अपार।
डगर-डगर नै ह्वै रही, बगर-बगर के बार ॥ —बिहारी

यहाँ गोपियों के वियोग वर्णन प्रस्तुत कारण की प्रतीति घर-घर, गली-गली में अश्रु की नदी प्रवाहित होनेवाले अप्रस्तुत कार्य के द्वारा होती है।

३. *विशेषनिबंधना*—जब अप्रस्तुत विशेष के वर्णन से प्रस्तुत सामान्य का ज्ञान हो तो विशेषनिबंधना होती है।

अप्रस्तुत सु विसेष तें जहँ सामान्य फुरै हि।
ताहि बिसेषनिबंधना कविजन भाषत है हि ॥—पद्माभरण, ११६

क. हारं वक्षसि केनापि दत्तमक्षेन मर्कटः।
लेढि जिघ्रति संक्षिप्य करोत्युन्नतमाननम् ॥—रसगंगाधर।

मूर्ख द्वारा दिए गए हार को बंदर चाटता है तथा सूँघता हुआ उसे मरोड़कर मुँह ऊँचा कर लेता है। यहाँ अप्रस्तुत मर्कट वृत्तांत से मूर्खों की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चेष्टा-रूपी प्रस्तुत सामान्य की प्रतीति होती है कि मूर्ख सुंदर पदार्थ को नष्ट कर देता है।

ख. सेस सहसफन बिस धरैं, नहिं अभिमान अतंक।
वृश्चिक एकहिं बिंदु पै, चलत उठाये डंक॥

यहाँ शेष और वृश्चिक रूपी अप्रस्तुत विशेष के द्वारा बड़े का शक्तिशाली होने पर भी गर्व न करने तथा छोटे का अल्प शक्ति प्राप्त कर गर्वीला बनने का वर्णन है। यह प्रस्तुत सामान्य का द्योतक है।

४. *सामान्यनिबंधना*—जब अप्रस्तुत सामान्य के वर्णन से प्रस्तुत विशेष का बोध हो तो यह भेद होगा।

अप्रस्तुत सामान्य तें प्रस्तुत फुरै बिसेष।
सो सामान्य-निबंधना पदमाकर अवरेख॥—पद्माभरण, ११९-१२०

क. कृतमपि महोपकारं पय इव पीत्वा निरातंकः।
प्रत्युत हंतुं यतते काकोदरसोदरः खलो जगति॥

संसार में सर्प का सहोदर भाई दुष्ट मनुष्य कृत उपकार को भी दूध की तरह बिना शंका के पीकर तथा उल्टे मारने को तैयार हो जाता है। यहाँ दुष्टों का व्यवहार अप्रस्तुत सामान्य है, जिससे प्रस्तुत विशेष किसी खल के कार्य का बोध होता है।

ख. सबल पुरुष सों निबल नर, वैर करत हठ जोर।
ते अपने मुख आपही, पियत हलाहल घोर॥

यहाँ सबल पुरुष से निर्बल का वैर करना हलाहल पीने की भाँति वर्णित है, जो अप्रस्तुत सामान्य है, जिससे प्रस्तुत विशेष या विशिष्ट व्यक्ति को समझाया गया है।

५. *सारूप्यनिबंधना*—जहाँ अप्रस्तुत सामान्य या तुल्यवस्तु के द्वारा प्रस्तुत सामान्य या तुल्य वस्तु का ज्ञान हो, वहाँ सारूप्यनिबंधना होगी।

प्रस्तुत अप्रस्तुतहु को है जहँ धर्म समान।
सो सारूप्यनिबंधना पदमाकर ठिकठान॥—पद्माभरण, ११०

क. अंतश्छिद्राणि भूयांसि कंटका बहवो बहिः।
कथं कमलनालस्य माभूवन् भंगुरा गुणाः॥

इस कमलनाल के रेशे (गुण) क्यों न टूटनेवाले (भंगुर) हों, जबकि इसके भीतर बहुत-से छिद्र तथा बाहर बहुत-से काँटे हैं। यहाँ कमलनाल का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वृत्तांत अप्रस्तुत है, जिससे तत्सदृश अन्य व्यक्ति के वृत्तांत का ज्ञान होता है, जिसके घर के भीतर तो दोष हो ही, साथ ही घर के बाहर के भी दुष्ट लोग उसके पीछे पड़े हों।

ख. माली आवत देखि कै कलियाँ करी पुकार।
फूली-फूली चुनि लियो, काल्हि हमारी बार ॥—कबीर

यहाँ माली एवं कली के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति की मृत्यु का संदेश दिया गया है।

अप्रस्तुतप्रशंसा और दृष्टांत—अप्रस्तुतप्रशंसा में अप्रस्तुत वाच्य होता है और प्रस्तुत व्यंग्य, किंतु दृष्टांत में दोनों ही वाच्य होते हैं। अप्रस्तुतप्रशंसा में धर्म का कथन एक ही बार होता है; पर दृष्टांत के दोनों ही वाक्यों में धर्म का पृथक्-पृथक् उल्लेख किया जाता है।

अप्रस्तुतप्रशंसा और समासोक्ति—[**दे० समासोक्ति**]

अप्राकरणिक—अलंकारशास्त्र में अप्राकरणिक का अर्थ उपमान होता है। [**दे० उपमान**]

अभ्यास—काव्य-रचना का एक हेतु। [**दे० काव्यहेतु**] काव्य को सुंदर एवं आकर्षक बनाने के लिए सतत प्रयास एवं अभ्यास अत्यंत आवश्यक है। काव्यज्ञों से शिक्षा प्राप्त कर निरंतर अभ्यास करने से कवि की रचना में निखार आता है और वह व्यवस्थित होकर मँज जाती है।

अभवन्मतसंबंध—वाक्यदोष का १० वाँ भेद। [**दे० वाक्यदोष**]

अभाववाद—ध्वनि-विरोधी मत। आनंदवर्द्धन ने ध्वनि-विरोधी अनेक संभावित मतों की, पूर्वपक्ष के रूप में, कल्पना कर उनका खंडन किया है, उनमें एक अभाववाद है। अभाववादियों के अनुसार ध्वनिसिद्धांत के आविर्भाव के पूर्व काव्यमीमांसा या काव्यालोचन के अनेक तत्त्व थे, जिनमें अलंकार, गुण एवं रीति प्रमुख हैं और उनसे ही ध्वनि का कार्य संपन्न हो जाता है, अतः एक अतिरिक्त काव्य-सिद्धांत की कल्पना व्यर्थ है। [**दे० ध्वनि की स्थापना**] यह ध्वनि का स्पष्ट निषेध करता है। इसके अनुसार प्राचीन ग्रंथोंमें ध्वनि का अभाव है।

अभिधामूला ध्वनि—ध्वनि का द्वितीय भेद। [**दे० ध्वनि के भेद**] इसे विवक्षितान्यपरवाच्यध्वनि भी कहते हैं। इसमें वाच्यार्थ की विवक्षा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होती है; अतः इसे अभिधामूलाध्वनि कहते हैं। वाच्यार्थ विवक्षित होने पर भी इसमें वह अन्यपरक या व्यंग्यनिष्ठ होता है। यह ध्वनि वाच्य अर्थ को प्रकाशित करती हुई व्यंग्य अर्थ को प्रकाशित करती है। अभिधामूलाध्वनि में वाच्यार्थ का अस्तित्व बना रहता है; क्योंकि इसके मूल में अभिधा रहती है। वाच्यार्थ का बोध होने पर ही इसमें व्यंग्यार्थ की प्रतीति होती है। वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ की प्रतीति का क्रम इनमें कहीं लक्षित होता है और कहीं अलक्षित अर्थात् क्रम कहीं तो स्पष्टतः प्रतीत होता है और कहीं स्पष्ट प्रतीत नहीं होता। इस दृष्टि से इसके दो प्रकार होते हैं—**संलक्ष्यक्रमव्यंग्यध्वनि** और **असंलक्ष्यक्रमव्यंग्यध्वनि**।

विवक्षितचान्यपरं वाच्यं यत्रापरस्तु सः।
कोऽप्यलक्ष्यक्रमव्यंग्यो लक्ष्यव्यंग्यक्रमः परः॥

—काव्यप्रकाश, ४/२५

[दे० असंलक्ष्यक्रम तथा संलक्ष्यक्रमव्यंग्यध्वनि]

अभिधामूलाव्यंजना—व्यंजना का विशिष्ट भेद। [दे० **व्यंजना**] यह शाब्दीव्यंजना का एक प्रकार है। [दे० **शाब्दीव्यंजना**] अभिधामूलाव्यंजना में सदा द्व्यर्थक शब्द प्रयुक्त होते हैं। संयोगादि अनेकार्थक शब्दों के एक अर्थ का नियंत्रण या निर्णय अभिधा शक्ति से हो जाने पर जिसके द्वारा अन्य अर्थ का बोध हो, उसे अभिधामूला व्यंजना कहते हैं। आचार्य मम्मट के शब्दों में इसकी परिभाषा इस प्रकार है—

अनेकार्थस्य शब्दस्य वाचकत्वे नियंत्रिते॥
संयोगाद्यैरवाच्यार्थधीकृद् व्यापृतिरंजनम्॥ —काव्यप्रकाश, २/१९

"जहाँ संयोगादि अर्थनियामकों के द्वारा शब्द की अभिधाशक्ति एक स्थल पर नियंत्रित हो जाती हैं; पर फिर भी किसी अमुख्यार्थ की प्रतीति हो ही जाती है, वहाँ अभिधामूला व्यंजना होती है।" विश्वनाथ ने इसका लक्षण इस प्रकार दिया है—

अनेकार्थस्य शब्दस्य संयोगाद्यैर्नियंत्रिते।
एकार्थेऽन्यधीहेतुर्व्यंजना साभिधाश्रया॥ —साहित्यदर्पण, २/१४

अभिधामूला शाब्दी व्यंजना में संयोगादि अनेकार्थक शब्दों का एक विशेष अर्थ नियंत्रित हो जाता है। इस प्रकार विशेष अर्थ के निश्चित हो जाने पर अनेकार्थक शब्दों के अन्य अर्थ अवाच्य हो जाते हैं। वे अर्थ अभिधाशक्ति से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रकट नहीं होते, अभिधामूला व्यंजना से बोधित होते हैं। अभिधा पर आश्रित होने के कारण इसे अभिधामूला कहते हैं। अनेकार्थवाची शब्दों के एक अर्थ का निर्णय १५ प्रकार से संभव है—संयोग, विप्रयोग (वियोग), साहचर्य, विरोध, अर्थ, प्रकरण, लिंग, अन्यसन्निधि, सामर्थ्य, औचित्य, देश, काल, व्यक्ति, स्वर, चेष्टा।

> संयोगो विप्रयोगश्च साहचर्यं विरोधिता।
> अर्थः प्रकरणं लिंगं शब्दस्यान्यस्य सन्निधिः॥
> सामर्थ्यमौचिती देशः कालोव्यक्तिस्वरादयः।
> शब्दार्थस्यानवच्छेदे विशेषस्मृतिहेतवः॥ —मुक्तावली।

१. *संयोग*—अनेकार्थक शब्द के एक अर्थ का निर्णय प्रसिद्ध संयोग के कारण होता है।

जैसे 'सशंखचक्रो हरिः'

संखचक्र युत हरि लसैं।

यहाँ 'हरि' शब्द अनेकार्थक है; पर शंखचक्र के प्रसिद्ध संयोग के कारण इसका (हरि) अर्थ विष्णु होगा।

२. *विप्रयोग*—जब अनेकार्थक शब्द के एक अर्थ का निर्णय प्रसिद्ध वियोग के कारण हो तो विप्रयोग होगा।—

जैसे 'अशंखचक्रोहरिः'।

यहाँ 'शंखचक्र से रहित हरि' के कथन में हरि का अर्थ विष्णु होगा। यह अर्थ प्रसिद्ध वियोग (शंखचक्र से रहित) के कारण होगा।

३. *साहचर्य*—जब किसी प्रसिद्ध सहचर (साथ में रहनेवाला) के कारण अनेकार्थक शब्द का एक अर्थ किया जाय तो साहचर्य होगा—

जैसे 'रामकृष्ण ब्रजभूषण जानौ'

यहाँ राम का परशुराम तथा दशरथ-सुत राम अर्थ न होकर कृष्ण के साहचर्य के कारण बलराम अर्थ होगा।

४. *विरोध*—जब प्रसिद्ध विरोध के कारण एक अर्थ का नियंत्रण हो तो विरोध होगा।

जैसे 'राम बाहु अर्जुन को छेदौ'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ 'राम' और 'अर्जुन' शब्द अनेकार्थक हैं। अर्जुन (सहस्रार्जुन) के प्रसिद्ध विरोध के कारण राम का अर्थ परशुराम होगा और अर्जुन का सहस्रार्जुन।

५. *अर्थ*—जब किसी शब्द के अर्थ-बल से अनेकार्थक शब्द के एक अर्थ का निर्णय हो।

स्थाणुं भज भवच्छिदे।

'भव-खेद छेदन के लिए क्यों स्थाणु को भजते नहीं।' 'स्थाणु' शब्द का अर्थ सूखा वृक्ष और 'शिव' है। यहाँ 'संसार के दुःख को हटाने' इस अर्थ के बल से स्थाणु का अर्थ शिव होगा।

६. *प्रकरण*—प्रकरण देखकर (प्रसंग देखकर) अनेकार्थवाची शब्द का एक अर्थ निश्चित किया जाय तो प्रकरण होगा।

सैंधव लाओ जीभ तें घोरा को कह काम।

यदि रसोइया 'सैंधव लाओ' कहे तो इसका अर्थ नमक होगा, घोड़ा नहीं। सैंधव के घोड़ा और नमक दोनों ही अर्थ हैं।

७. *लिंग*—किसी विशेष धर्म या चिह्न को देखकर अनेकार्थवाची शब्द के एक अर्थ का निर्णय होता है।

कुपितो मकरध्वजः।
कुपित मकरध्वज हुआ मरजाद सब जाती रही।

यहाँ 'मकरध्वज' का अर्थ है समुद्र एवं कामदेव। कुपित (कुपितो) चिह्न के कारण मकरध्वज का अर्थ कामदेव होगा।

८. *अन्यसन्निधि*—जब दूसरे अर्थ के सान्निध्य से एक विशेष अर्थ का बोध हो। जैसे—

दान लसत है नाग सिर।

'दान' तथा 'नाग' दोनों अनेकार्थक शब्द हैं। दान का अर्थ गजमद तथा दक्षिणा है और नाग हाथी एवं सर्प का बोधक है। यहाँ दान के सान्निध्य से नाग का अर्थ हाथी एवं नाग के कारण दान का अर्थ गजमद होगा।

९. *सामर्थ्य*—जब किसी कार्य के संपादन में किसी वस्तु की सामर्थ्य से अनेकार्थक शब्द के एक अर्थ का निर्णय हो तो सामर्थ्य होगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मधुनामत्तः कोकिलः

'मधु से माती कोकिला'

यहाँ कोकिल को मत्त करने की शक्ति से मधु का अर्थ वसंत होगा, शराब या शहद नहीं।

१०. *औचित्य*—जब औचित्य या योग्यता के आधार पर अनेकार्थक शब्द का एक अर्थ किया जाय।

तरु पर द्विज बैठ्यो कहे, होत बिहंग प्रतीति।

यहाँ वृक्ष पर बैठने (योग्यता) के कारण द्विज का अर्थ पक्षी होगा, ब्राह्मण या चंद्रमा नहीं।

११. *देश*—किसी स्थान या देश की सहायता से अनेकार्थक शब्द के एक अर्थ का निर्णय किया जाता है।

मरु में जीवन दूरि है।

जीवन का अर्थ है प्राण तथा जल। यहाँ मरुभूमि के कारण इसका अर्थ जल होगा।

१२. *काल*—समय के बल से अनेकार्थक शब्द के एक अर्थ का निर्णय होता है।

कुबलय निसि फूल्यौ सखी।

'कुबलय' का अर्थ कमल और कुमुद दोनों है। पर, निशा में फूलने का वर्णन होने से कुमुद अर्थ होगा।

१३. *व्यक्ति*—जहाँ व्यक्ति (स्त्रीलिंग या पुल्लिग) के द्वारा एक अर्थ का निश्चय हो।

एरी, मेरी बीर जैसे तैसे इन आँखिन तें
कढ़िगो अबीर पै असीर तो कढ़ै नहीं॥

यहाँ 'बीर' का अर्थ होगा सखी; क्योंकि उसका संबध 'मेरी' (स्त्रीलिंग) के साथ है। इसके अन्य अर्थ भाई और पति भी हैं।

१४. *स्वर*—इसका वर्णन वेद में होता है।

१५. *चेष्टा*—चेष्टा भी अर्थ का नियामक है।

'इती-तनिक सी छोहरी' यहाँ हाथ से किए गए इशारे से लघुता का बोध होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अभिधाशक्ति—जो शक्ति वाचक [दे० वाचक] शब्द के द्वारा वाच्यार्थ [दे० वाच्यार्थ] का बोध कराए, उसे अभिधा शक्ति कहते हैं। इसे आचार्यों ने 'शब्द की प्रथमा शक्ति' कहा है। जिस शक्ति (अर्थबोधक व्यापार) के द्वारा साक्षात् संकेतित अर्थ का बोध या ज्ञान हो, उसे अभिधा कहते हैं। इसके द्वारा शब्द के सामान्य प्रचलित अर्थ का ज्ञान होता है।

तत्र संकेतितार्थस्य बोधनादग्रिमाभिधा ॥

—साहित्यदर्पण, २/४

स मुख्योऽर्थस्तत्र मुख्यो व्यापारोऽस्याभिधोच्यते ॥

—काव्यप्रकाश, २/८

भर्तृहरि के अनुसार अभिधान (वाचक) एवं अभिधेय (वाच्य) का संबंध अभिधा शक्ति से आबद्ध है।

क्रियाव्यवेतः संबंधो दृष्टः करणकर्मणोः ।
अभिधा नियमस्तस्मादभिधानाभिधेययोः ॥

—वाक्यपदीय, २/४०८

अभिधेयार्थ का ज्ञान मुख्यतः लोक-व्यवहार से होता है।

लोकतोऽर्थप्रयुक्ते शब्दप्रयोगे शास्त्रेण धर्मनियमः ॥

—महाभाष्य, प्रथम आह्निक, पृ० १७

सभी शक्तियों में मुख्य होने से (लक्षणा तथा व्यंजना शक्तियों का स्थान अभिधा के बाद आता है) इसे 'मुख्या' या प्रथमा शक्ति कहते हैं। सभी प्रकार के अर्थों में पहले मुख्य अर्थ (वाच्यार्थ) का बोध होता है। साक्षात् संकेतित अर्थ ही सभी अर्थों का मुख है और इसकी प्रतीति सभी अर्थों के बोध होने के पूर्व ही हो जाती है; अतः अभिधा को भाषा की प्रथमा (अग्रिमा) शक्ति कहते हैं। अभिधा शक्ति शब्द के प्रसग-प्राप्त अर्थ का बोध कराती है। संकेत का अर्थ है मुख्य। शब्द के श्रवण-मात्र से ही उसका जो अर्थ प्रकट हो, उसे मुख्य अर्थ कहा जायगा और वही प्रसंगप्राप्त अर्थ भी है। अभिधाशक्ति उसी मुख्य अर्थ को बतलाती है। शब्दकोष में प्रत्येक शब्द का जो अर्थ दिया जाता है, उसका आधार अभिधाशक्ति ही है। मुकुलभट्ट ने अपनी 'अभिधावृत्तिमातृका' में बतलाया है कि जिस प्रकार शरीरावयवों में से प्रथमतः मुख दृष्टिगत होता है, उसी प्रकार सभी प्रकार के अर्थों में से पहले इसी अर्थ (वाच्यार्थ) का बोध होता है। अतः, मुख की भाँति मुख्य होने के कारण इसे अन्य सभी प्रतीत अर्थों का मुख कहते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स हि यथा सर्वेभ्यो हस्तादिभ्योऽवयवेभ्यः पूर्वं मुखमवलोक्यते, तद्वदेव सर्वेभ्यः प्रतीयमानेभ्योऽर्थांतरेभ्यः पूर्वमवगम्यते । तस्मान्मुखमिवमुख्यः । शाखादि-यांतेन मुखशब्देनाभिधीयते ॥ —अभिधावृत्तिमातृका, पृ० १

अभिधाशक्ति के द्वारा जिन वाचक शब्दों का बोध होता है, वे तीन प्रकार के होते हैं—रूढ़ि, यौगिक एवं योगरूढ़ि ।

१. *रूढ़ि*—जब शब्द समुदाय-रूप में अर्थ का बोध कराए तो रूढ़ि होगी । रूढ़ि शब्दों के टुकड़ों का पृथक्-पृथक् अर्थ नहीं होता, जैसे—पेड़, पौधा आदि । इसमें शब्द की अखंड शक्ति से ही एक अर्थ का ज्ञान होता है ।

अखंडशक्तिमात्रेणैकार्थप्रतिपादकत्वंरूढ़ि ।

—अप्पयदीक्षित, वृत्तिवार्तिक, पृ० १ ।

अजौं तर्‌यौना ही रह्यौ, स्रुति सेवत इक अंग ।
नाक, बास, बेसरि लह्यौ, बसि मुकतन के संग ॥

—बिहारी ।

यहाँ, तर्‌यौना, श्रुति, नाक तथा बेसर आदि शब्दों में रूढ़ि हैं ।

२. *यौगिक*—जब शब्द की अवयव शक्ति के द्वारा अर्थ की प्रतीति हो तो यौगिक अभिधा होगी । इसमें शब्दों के अवयव का पृथक् अर्थ होता है। इन शब्दों का अर्थ उनमें अवयवों से जाना जाता है ।

अवयवशक्तिमात्रसापेक्षं पदैकस्यैकार्थप्रतिपादकत्वं योगः ।

—वृत्तिवार्तिक, पृ० २ ।

—जैसे भूपति, सुधांशु आदि ।

भूपति में भू का अर्थ पृथ्वी तथा पति का अर्थ स्वामी हैं । इन दोनों को मिलाने पर अर्थ होगा 'पृथ्वी का स्वामी' । पृथ्वी का स्वामी राजा के लिए यौगिक हुआ ।

३. *योगरूढ़ि*—जब एक ही अर्थ की प्रतीति के लिए समुदायशक्ति तथा अवयवशक्ति, दोनों की आवश्यकता पड़े तो योगरूढ़ि होगी ।

अवयव समुदायोभयशक्तिसापेक्षमेकार्थप्रतिपादकत्वं योगरूढ़ि ।

—वृत्तिवार्तिक, पृ० २ ।

जैसे 'गणनायक' शब्द गणेश के अर्थ का द्योतक है, अन्य गण के नेता को गणेश नहीं कहा जा सकता ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मुख्यार्थप्रतिपाद्यशब्दस्य व्यापारो अभिधा अर्थ ।
"वाचक तासों कहत है जे कवि सुमति समर्थ ॥
जो पद सों ऐसो अरथ अविधा व्यवहार ।
जो इच्छा जगदीश की सु है शक्ति निरधार ॥

—प्रतापसाहि, काव्यविलास, २/७,१०

अभिनवगुप्त—ये भारतीय काव्यालोचन, नाट्यालोचन तथा दर्शन के अप्रतिम आचार्य हैं। इन्होंने साहित्यशास्त्र-विषयक दो व्याख्या-ग्रंथों की रचना की है, जो मौलिक रचना से भी अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। 'नाट्यशास्त्र' पर 'अभिनवभारती' और 'ध्वन्यालोक' पर 'लोचन' नामक इनकी टीकाएँ हैं। इन्होंने लगभग ४१ ग्रंथों की रचना की है, जिनमें ११ कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं—'बोधपंचदर्शिका', 'परात्रींशिका-विवरण', 'मालिनीविजयवार्त्तिक', 'तंत्रालोक', 'तंत्रसार', 'तंत्रवटधानिका', 'ध्वन्यालोकलोचन', 'अभिनवभारती', 'भगवद्गीतार्थसंग्रह', 'परमार्थसार', 'ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिणी' तथा 'ईश्वर-प्रत्यभिज्ञाविवृत्तिविमर्शिणी'। अभिनवगुप्त ने अपने परिवार, गुरु तथा ग्रंथों का परिचय अपनी रचनाओं में दिया है; अतः इनका जीवन-चरित तमसाच्छन्न नहीं है। इनके पितामह का नाम वराहगुप्त, पिता का नाम चुरवल तथा अनुज का नाम मनोरथगुप्त था। ये काश्मीरनरेश ललितादित्य के आश्रित थे। इन्होंने अपनी माता का नाम विमला या विमलकला लिखा है। [दे० मालिनीविजयवार्त्तिक, आरंभिक श्लोक], अभिनवगुप्त ने अपनी रचना 'ईश्वरप्रत्यभिज्ञा-विवृत्ति-विमर्शिणी' (श्लोक १५) का लेखनकाल कलि का ४११५वाँ वर्ष अर्थात् १०१४-१५ ई० दिया है। इनके साहित्यिक गुरुओं में भट्टेंदुराज और भट्टतौत हैं।

अभिनवगुप्त के व्यक्तित्व में दर्शन और काव्य-दर्शन का अद्भुत समन्वय है। इन्होंने शैवागम-सिद्धांत के आधार पर रस-सिद्धांत की समस्याओं को नए दृष्टिकोण एवं नवीन साधनविधि के द्वारा समझने का प्रयास कर रस-मत को सर्वथा वैज्ञानिक रूप दिया है। इन्होंने तत्कालीन प्रचलित भारतीय विद्या की समस्त ज्ञान-राशि को आत्मसात् कर नवीन रस-सिद्धांत की स्थापना की, जो अद्यावधि उसी रूप में मान्य है और उसका संशोधन नहीं किया जा सका। इनका रस-विषयक मत अभिव्यक्तिवाद के नाम से प्रसिद्ध है।

[दे० रसनिष्पत्ति]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इन्होंने 'ध्वन्यालोकलोचन' का प्रणयन कर न केवल ध्वनि-सिद्धांत का पल्लवन एवं स्पष्टीकरण किया, अपितु ध्वनि-विरोधी आचार्यों के समस्त आक्षेपों का निरास कर उसे प्रौढ़ काव्य-चिंतन का रूप दिया है। इसमें 'ध्यन्यालोक' के विचारों के विशदीकरण तथा पुष्टीकरण के अतिरिक्त तत्संबंधी ऐसे नवीन मंतव्य भी प्रकट किए गए हैं, जिनसे ध्वनि-मीमांसा को नई गति मिली है। [दे० **ध्वनि-संप्रदाय**] इन्होंने रस-विषयक अपनी नवीन स्थापना यह स्थापित की कि व्यंजना व्यापार के द्वारा ही रस की सिद्धि होती है। इन्होंने रस के कारण ही ध्वनि को महत्त्व दिया और बतलाया कि रस के द्वारा ही काव्य जीवित रहता हैं। अलंकार, गुण तथा औचित्य आदि को ये रस का सहायक सिद्ध करते हैं और रस के अस्तित्व से ही अलंकारों की उपयोगिता का समर्थन करते हैं। इन्होंने औचित्य का मूल तत्त्व रस को माना है और रस के बिना औचित्य के समावेश को मूल-रहित पल्लवों के सिंचन की तरह व्यर्थ सिद्ध किया है। शैवाद्वैत का सुदृढ़ आधार प्रदान कर अभिनव ने रस को आनंद-स्वरूप माना तथा भट्टनायक के युक्तिवाद का परिष्कार कर रस को भावना का व्यापार नहीं, व्यंजना का परिणाम स्वीकार किया। ये रस को वीतविघ्नप्रतीतिग्राह्य मानकर उसे अलौकिक या लोकोत्तर सिद्ध करते हैं।

इन्होंने सहृदयत्व में तारतम्य की भी कल्पना की है। जो अत्यंत सहृदय नहीं होता, वह पदार्थ को समझने के पश्चात् ही व्यंग्यार्थ को समझता है। [**ध्वन्यालोक लोचन, पृ० १००**] इनके अनुसार विमलप्रतिभाशाली हृदय ही काव्य का अधिकारी हो सकता है—अधिकारी चात्रविमलप्रतिभाशालिहृदयः, अभिनवभारती, प्रथमखंड, पृ० २८०। इन्होंने साध्यात्मक मूल्य (अल्टीमेट वैल्यू) के रूप में प्रीति या आनंद को ही काव्य का उद्देश्य स्वीकार किया है—'तत्र कवेस्तावत्कीर्त्याऽपि प्रीतिरेव संपाद्या। लोचन पृ० ४०। अभिनव शुद्ध आनंद-वादी विवेचक हैं। इन्होंने इस मत की पुष्टि के लिए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति में भी आनंदोपलब्धि के तथ्य को स्वीकार किया है। चतुर्वर्ग व्युत्पत्तेरपि चानंद एव पार्यंतिकं मुख्यं फलम्।'—वही, पृ० ४१। 'सहृदयों में कोटि-भेद मानकर भी ये रसास्वाद में कोटि-भेद को स्वीकार नहीं करते। इनका कहना है कि "सभी सामाजिकों की प्रतीति एकघन होती है; क्योंकि रस-परिपोष की दृष्टि से अनादि वासना से युक्त सब के मन एक-से होते हैं।" इनके मतानुसार रस की अभिव्यक्ति होती है और वह प्रतीति के द्वारा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ही आस्वादित होता है। इन्होंने शांतरस के अस्तित्व को मान्यता प्रदान कर तर्कपुष्ट प्रमाण उपस्थित किया है तथा उसके विरोध में उठाए गए इस मत का खंडन किया है कि उसमें (शांत में) हृदय-संवाद नहीं होता अर्थात् शांतरस का आस्वादन नहीं किया जा सकता। इनके मत से सभी व्यक्तियों का सभी रसों के साथ हृदय-संवाद संभव नहीं होता। वीरों को भयानक रस का आस्वाद नहीं होता; पर वैरागियों को शांतरस का आस्वाद सम्यक् रूपेण प्राप्त होता है। मौलिक चिंतन और उद्भावन की दृष्टि से अभिनवगुप्त ने भारतीय काव्यालोचन के विकास में जो आलोक स्तंभ स्थापित किया था, उनके बाद वह समाप्त हो गया।

अभिनीति—भोज-वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध शब्दालंकार। इसके अंतर्गत आंगिक, वाचिक, सात्त्विक, आहार्या, सामान्याभिनय एवं चित्राभिनय का वर्णन होता है। भोज अभिनीति को अलंकार मानकर इसके उपर्युक्त छह प्रकारों का कथन करते हैं।

अंगवाक्सत्त्वजाहार्यः सामान्यश्चित्रइत्यमी।
षट् चित्राभिनयास्तद्वदभिनेयं वचो विदुः॥

—सरस्वतीकंठाभरण, २/१५७

अभिनेता—नाटक में अभिनय करनेवाले व्यक्ति को नट या अभिनेता कहते हैं। यह पात्रों के रूप या वेशभूषा का अनुकरण कर रंगमंच पर प्रस्तुत करता है।

अभिलाषा—वियोग दशा का भेद। [दे० वियोगदशा] वियोगावस्था में प्रिय-मिलन की कामना या इच्छा को अभिलाषा कहते हैं।

विश्वनाथ ने प्रियमिलन की इच्छा को अभिलाषा कहा है।

अभिलाषः स्पृहा—साहित्यदर्पण, ३/१६१
भानुदत्त प्रिय-मिलन की इच्छा को अभिलाषा कहते हैं।
तत्र संगमेच्छाऽभिलाषः।—रसमंजरी, पृ० ११८

(चौखंबा)

मतिराम ने मिलाप की चाह को अभिलाषा कहा है।

ताहि कहत अभिलाष हैं जो मिलाप की चाह।
प्रेम कथन तें जानिये बरनत सब कबिनाह॥ —रसराज, ४००

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उदाहरण—

क. तस्यां सुतनुसरस्यां चेतो नयनं च निष्पतितम् ।

चेतो गुरु तु निमग्नं लघुनयनं सर्वतो भ्रमति ॥

उस सुंदरी रूपी नदी में (सरसी में) मेरा मन और नेत्र दोनों ही गिरे। मन तो भारी होने के कारण डूब गया; पर हल्का होने के कारण नेत्र सर्वत्र भ्रमण कर रहा है। अभिप्राय यह कि नायक का मन तो नायिका में ही लगा हुआ है और आँखें भी उसी को खोज रही हैं।

ख. मो मन सुक लौं उड़ि गयो अब क्यों हूँ न पत्याय ।

बसि मोहन बनमाल में रहो बनाउ बनाय ॥

दास का लक्षण

नैंन बैन मन मिलि रह्यो चाह्यो मिलन सरीर ।

कथन-प्रेम लालस दसा उर अभिलाष गभीर ॥—शृंगार निर्णय, ३०२

ज्यों जल ही में जियैं झषियाँ लखियाँ जउ संगिन के दुखदुंदहि ।

त्यों तरसाइ मरैं सखियाँ अँखियाँ चहैं मोहनलाल मुकुंदहि ॥—वही

अभिव्यक्ति—अग्निपुराण में वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। भाव के प्रकटीकरण को अभिव्यक्ति अलंकार कहते हैं। इसके दो भेद हैं—श्रुति और आक्षेप।

प्रकटत्वमभिव्यक्तिः श्रुतिराक्षेप इत्यपि ।

—अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग ९/७

अभिव्यक्तिवाद—[दे० रस-निष्पत्ति] [अभिनवगुप्त का रस-विषयक मत]

अभिसार—प्रिय-मिलन के लिए संकेत-स्थल पर जाना अभिसार है। किसी नियत स्थान (संकेत स्थल) पर नायिका का नायक के पास कामार्त्त होकर जाने को अभिसार कहते हैं और ऐसी नायिका अभिसारिका कही जाती है। [दे० अभिसारिका]

अभिसारिका—अवस्थानुसार नायिका का भेद। [दे० नायिका भेद] वह स्त्री, जो प्रिय से मिलने के लिए संकेत स्थान (मिलन स्थान) पर जाए।

कांतार्थिनी तु या याति संकेतं साभिसारिका ।—अमरकोश

जो कामार्त्त होकर संकेत-स्थल पर स्वयं प्रिय के पास जाय या प्रिय को बुलावे तो ऐसी नायिका अभिसारिका कही जायगी। इसके तीन प्रकार हैं—कृष्णाभिसारिका, दिवाभिसारिका एवं शुक्लाभिसारिका। इन्हें क्रमशः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तमिस्राभिसारिका, दिवसाभिसारिका एवं ज्योत्स्नाभिसारिका कहते हैं। यह समयानुरूप आभूषण एवं वेषभूषा धारण करती है। अभिसारिका या तो स्वयं मिलन-स्थल पर जाती है या दूती को भेजकर प्रिय को बुलाती है।

आचार्यों ने अभिसार के कई ढंग बतलाए हैं। यदि कुलीन स्त्री अभिसरण करे तो वह लज्जा-भार से दबी दीख पड़ेगी। वह अलंकारों की ध्वनि (झंकार) को बचाती हुई, घूँघट में अपने को छिपाती रहती है। वेश्या की वेष-भूषा रंगीन एवं चित्र-विचित्र होती है। उसके आभूषण (कंकण, नूपुर) झंकृत होते रहते हैं और मुख आनंद के हास्य से विभूषित रहता है। अनुचरी (प्रेष्या) का अभिसार और ही प्रकार का होता है। वह कामोन्माद में मस्त होकर बोलती है या काम की उन्मत्तता उसके मुँह पर खेलती रहती है और विभ्रम-विलास उसके नेत्रों के हास्य में झलकता रहता है तथा उसकी गति में विचित्र प्रकार की मस्ती होती है। भरत ने इस विषय का सर्वप्रथम निरूपण किया है और उनके आधार पर विश्वनाथ ने भी संबद्ध विषय का उल्लेख किया है।

वेश्यायाः कुलजायाश्च प्रेष्यायाश्च प्रयोक्तृभिः।
एभिर्भावविशेषैस्तु कर्तव्यमभिसारणम्॥
समदा मृदुचेष्टा च तथा परिजनावृता।
नानाभरणचित्रांगी गच्छेद्वेश्यांगना शनैः॥
संलीना स्वेषु गात्रेषु त्रस्ता विनमितानना।
अवगुंठन संवीता गच्छेत्तु कुलजांगना॥
मदस्खलितसंलापा विभ्रमोत्फुल्ललोचना।
आविद्धगतिसंचारा गच्छेत् प्रेष्या समुद्धतम्॥
गत्वा सा चेद् यदा तत्र पश्येत्सुप्तं प्रियं तदा।
अनेन तूपचारेण तस्य कुर्यात् प्रबोधनम्॥
अलंकारेण कुलजा वेश्या गंधैस्तु शीतलैः।
प्रेष्या तु वस्त्रव्यजनैः कुर्वीत प्रतिबोधनम्॥

—नाट्यशास्त्र, २२/२२६-२३१

संलीना स्वेषु गात्रेषु मूकीकृत विभूषणा।
अवगुंठनसंवीता कुलजाऽभिसरेद्यदि॥
विचित्रोज्ज्वलवेषातु रणन्नूपुरकंकणा।
प्रमोदस्मेरवदना स्याद्वेश्याऽभिसरेद्यदि॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मदस्खलितसंलापा विभ्रमोत्फुल्ललोचना ।
आविद्धगतिसंचारा स्यात्प्रेष्याऽभिसरेद्यदि ॥

—साहित्यदर्पण, ३/७७-७८

विश्वनाथ ने अभिसारिका के मिलन-स्थल (संकेत-स्थल) का भी वर्णन किया है, वे हैं—खेत, बारी (बगीचा), भग्नदेवालय, दूतीगृह, वन, शून्य स्थान, श्मशान, नदी का तट तथा कोई अँधेरा स्थान ।

क्षेत्री वाटी भग्नदेवालयो दूतीगृहं वनम् ।
मालापंचः श्मशानं च नद्यादीनां तटी तथा ॥
एवं कृताभिसाराणां पुंश्चलीनां विनोदने ।
स्थानान्यष्टौ तथा ध्वांतच्छन्ने कुत्रचिदाश्रये ॥

—साहित्यदर्पण, ३/८०,८१

भरत के अनुसार, प्रबल काम-भाव के कारण लज्जा त्यागकर जो स्त्री अभिसरण करे, उसे 'अभिसारिका' कहते हैं ।

—नाट्यशास्त्र, २२/२५

रुद्रट ने बताया कि जो दूती या दूत के साथ या अकेली ही पूर्व-निश्चित स्थल पर प्रिय के साथ अभिसार करे, उसे अभिसारिका कहते हैं ।

अभिसारिका तु सा या दूत्या दूतेन वा सहैका वा ।
अभिसरति प्राणेशं कृतसंकेता यथास्थानम् ॥

—काव्यालंकार, १२/४२

इन्होंने कहा कि वेश्या कांची (कमरधनी) आदि गहनों की रण-रण ध्वनि करती हुई खुलकर अभिसार करती है, पर स्वकीया एवं परकीया वर्षा, अंधकार तथा चाँदनी में छिपकर अभिसार करती हैं ।

कांच्यादिरणत्कारं व्यक्तं लोके प्रयाति सर्वस्त्री ।
वृष्टितमोज्योत्स्नादिच्छन्नं स्वीया परस्त्री च ॥

—काव्यालंकार, १२/४३

धनंजय के मत से जो नायिका कामार्त्त होकर स्वयं प्रिय (कांत) के पास जाय (अभिसरण करे) या नायक को अपने निकट बुलाए, उसे अभिसारिका कहते हैं ।

कामार्ताऽभिसरेत्कांतं सारयेद्वाऽभिसारिका ॥

—दशरूपक, २/२७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विश्वनाथ ने कहा कि जो काम के वशीभूत होकर या तो प्रेमी को अपने पास बुलाती है या स्वयं उसके पास पहुँच जाती है, वह अभिसारिका है।

अभिसारयते कांतं या मन्मथवशंवदा।
स्वयं वाभिसरत्येषा धीरैरुक्ताभिसारिका॥

—साहित्यदर्पण, ३/७६

भानुदत्त के मत से उस स्त्री को अभिसारिका कहते हैं, जो स्वयं प्रिय के पास अभिसरण करती है या उसे अपने पास बुलाती है।

स्वयमभिसरति प्रियमभिसारयति वा या साऽभिसारिका।

—रसमजरी, पृ० १४०

इन्होंने इसके तीन भेद किए हैं—ज्योत्स्नाभिसारिका, तमिस्राभिसारिका एव दिवसाभिसारिका तथा मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा, परकीया एवं सामान्या के रूप में भी इसे मान्यता दी है।

१. जो चाँदनी रात में अभिसार करे, उसे ज्योत्स्नाभिसारिका (शुक्लाभिसारिका) कहते हैं। ऐसी स्थिति में यह श्वेत वस्त्राभूषण धारण कर प्रिय के पास जाती है, जिससे कि चाँदनी के रंग में मिलकर वह जानी नहीं जा सके।

२. जो अँधेरी रात में अभिसरण करे या प्रिय से मिलने के लिए जाय, उसे कृष्णाभिसारिका या तमिस्राभिसारिका कहते हैं। यह काले रंग का वस्त्र धारण कर अभिसरण करती है।

३. जो दिन में अभिसार करे, उसे दिवसाभिसारिका कहते हैं। यह पीले रंग का वस्त्राभूषण पहनती है।

रीतिकाल के अधिकांश आचार्यों ने 'रसमंजरी' के आधार पर अभिसारिका का स्वरूप-निरूपण कर तीन भेदों—कृष्णाभिसारिका, दिवाभिसारिका तथा शुक्लाभिसारिका—का वर्णन किया है। ये मुग्धादि भेदों की भी चर्चा करते हैं। मतिराम, दास और पद्माकर पर भानुदत्त का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।

पियहिं बुलावैं आपकै आपहिं पिय पै जाय।
ताहि कहत अभिसारिका जे प्रबीन कविराय॥

—रसराज, १९०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मिलन साज सब करि मिलै अभिसारिका सुभाय।
पियहिं बोलावै आपु कै आपुहि पिय पै जाय॥

—शृंगार निर्णय, १६४

बोलि पठावै पियहिं कै, पिय पै आपुहिं जाय।
ताही कों अभिसारिका, बरनत कवि-समुदाय॥

—जगद्विनोद, २२७

केशवदास ने प्रेम के कारण, गर्व से अथवा कामार्त्त होकर अभिसार करनेवाली नायिका को अभिसारिका कहा है। इनके आधार पर इन्होंने प्रेमाभिसारिका, गर्वाभिसारिका तथा कामाभिसारिका नामक भेदों की कल्पना की है।

हित तें कै मद मदन तें, पिय पै मिलै जु जाइ।
सो कहियै अभिसारिका, बरनी त्रिविध बनाइ॥

—रसिकप्रिया, ७/२५

उदाहरण—

(क) ज्योत्स्नाभिसारिका

चंद्रोदये चंदनमंगकेषु विहस्य विन्यस्य विनिर्गतायाः।
मनो निहंतुं मदनोऽपि बाणान् करेण कौंदान् बिभरांबभूव॥

चंद्रोदय हो जाने पर अपने अंगों में चंदन का लेप लगाकर और हँसकर निकली हुई नायिका के मन को मारने के निमित्त कामदेव ने अपने कर में कुंद फूल का बाण धारण किया।

(ख) मलिन करी छबि जोन्ह की तन छबि सों बलि जाउँ।
क्यों जैहौं पिय पै सखी लखि जैहै सब गाउँ॥

—रसराज, २००

(ग) कृष्णाभिसारिका

स्याम बसन में स्याम निसि दुरी न तिय की देह।
पहुँचाई चहुँ ओर घिरि भौंर भीर पिय गेह॥

—रसराज, १६८

(घ) दिवाभिसारिका

ग्रीषम ऋतु की दुपहरी चली बाल बनकुंज।
अंग लपटि तीछन लुएँ मलय पवन के पुंज॥

—वही, २०२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अभिसंधिता—नायिका का भेद। जो नायिका विनय और क्रोध करके प्रिय के प्रसन्न करने पर भी प्रसन्न न हो और अंततः उसका प्रिय रुष्ट होकर चला जाय, उसे अभिसंधिता कहते हैं। इसका वर्णन रुद्रट ने यों किया है—

अनुनयकोपं कृत्वा प्रसाद्यमानापि न प्रसन्नेति।
अस्या रुषेव दयितो गच्छत्यभिसंधिता सेयम्॥

—काव्यालंकार, ११/४०

केशवदास ने इस नायिका का वर्णन किया है। इनके अनुसार जो नायिका नायक के मनाने पर उसका अपमान करे और उसके बिना उसे अत्यधिक दुःख हो (अपमानित होकर नायक के चले जाने पर) तो उसे अभिसंधिता कहते हैं।

मान मनावतहूँ करै, मानद को अपमान।
दूनो दुख तिन बिन लहै अभिसंधिता बखान॥

—रसिकप्रिया, ७/१३

इन्होंने प्रकाश और प्रच्छन्न के रूप में इसके दो भेदों का निरूपण किया है।

उदाहरण—प्रच्छन्न का।

बार-बार बोले जब बौल्यो न बालिस तब,
बालक ज्यों बोलिबे कौं कत बिललात है।
ज्यों ज्यों परे पाइन त्यों पाहन तें पीन भयो,
होतु कहा अब कियें माखन सो गात है॥
केसौदास सब छाड़ि कियो हठ ही सों हेत,
वाहू छोड़ि जिस जिये बिन कहा जात है।
ऐसे प्यारे पीय ही सों मान्यो न मनायो तब,
ऐसी तोहि बूझिबैं जु पाछें पछितात है॥१४॥ —वही

अभिहितान्वयवाद [दे० तात्पर्यवृत्ति]

अभेद—शोभाकरमित्र-वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। अभेद अलंकार का विकास रूपक से हुआ है। [दे० रूपक] इसमें आरोप्यमाण के नियत या निश्चित धर्म का निषेध कर उसके अन्य गुणों के साथ अभेद प्रतिपादन का कथन होता है।

नियतधर्महानावारोप्यमाणस्यातिसाम्यमभेदः॥२७॥

—अलंकाररत्नाकर, पृ० ३८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अभेदरूपक—रूपक अलंकार का एक भेद। [दे० रूपक अलंकार]

अमतपरार्थता—वाक्यदोष का २० वाँ भेद। [दे० वाक्य दोष]

अमतयोग—वाक्यदोष का ११ वाँ भेद [दे० वाक्यदोष]

अमर्ष—संचारी भाव। [दे० संचारी भाव] अपमान तथा तिरस्कारादि के कारण उत्पन्न प्रतिकार की आकांक्षा को अमर्ष कहते हैं।

भरत ने बताया कि अमर्ष भाव का उदय ऐसे व्यक्तियों में होता है, जो विद्या, ऐश्वर्य शौर्य तथा बल में अपने से अधिक व्यक्ति-द्वारा अपमानित होता है। इसका अभिनय (शिरःकंप) सिर के कँपने, पसीना चलने (स्वेद), नीचे मुँह करने (अधोमुख), चिंतन तथा सहायकों के अन्वेषण प्रभृति अनुभावों-द्वारा होता है।

'अमर्षोनाम— विद्यैश्वर्यशौर्यबलाधिकैरधिक्षिप्तस्यावमानितस्य वा समुत्पद्यते। तमभिनयेच्छिरःकंपनप्रस्वेदनाधोमुखचिंतनध्यानाध्यवसायोपायसहायान्वेषणादिभिरनुभावैः।'

आक्षिप्तानां सभामध्ये विद्याशौर्यबलाधिकैः।
नृणामुत्साहसंयोगादमर्षो नाम जायते॥

—नाट्यशास्त्र, ७/७८

उत्साहाध्यवसायाभ्यामधोमुखविचिंतनैः।
शिरःप्रकंपस्वेदाद्यैस्तं प्रयुंजीत पंडितः॥ —वही, ७/७९

धनंजय ने तिरस्कार, अपमान आदि के कारण प्रतिकार के भाव (बदला चुकाने) को अमर्ष कहा है। इसके अनुभाव सिर कँपाना, स्वेद, तर्जन तथा मारपीट आदि हैं।

अधिक्षेपापमानादेरमर्षोऽभिनिविष्टता।
तत्र स्वेदशिरःकंपतर्जनाताडनादयः॥

—दशरूपक, ४/१८

विश्वनाथ ने बताया कि अमर्ष की उत्पत्ति किसी के द्वारा निंदित, अपमानित, तिरस्कृत या धमकाए जाने पर होती है।

निंदाक्षेपापमानादेरमर्षोऽभिनिविष्टता।
नेत्ररागशिरःकंपभ्रूभंगोत्तर्जनादिकृत्॥

—साहित्यदर्पण, ३/१५६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भानुदत्त के अनुसार दूसरे के अहंकार को नष्ट करने की उत्कट इच्छा को अमर्ष कहते हैं। इसके विभाव हैं दूसरे के द्वारा अपमान या भरी सभा में तिरस्कार। स्वेद, शिरःकंप तथा आँखों का लाल होना इसके अनुभाव हैं।

पराहंकारप्रशमोत्कटसमीहाऽमर्षः। विभावा अवमानाऽधिक्षेपादयः। अनुभावाः स्वेदशिरःकंपननयनाऽऽरुणादयः।—रसतरंगिणी, पृ० ३६८, पंचम तरंग।

पंडितराज जगन्नाथ परकृत अपमानादि अपराधों से उत्पन्न चित्तवृत्ति को अमर्ष कहते हैं। इसके अनुभाव मौन तथा कटुवचन बोलना हैं।

परकृतावज्ञानादिनानापराधजन्यो मौनवाक्यपारुष्यादिकारणीभूतश्चित्तवृत्तिविशेषोऽमर्षः।
—रसगंगाधर, पृ० १०८

उदाहरण—

(क) प्रायश्चित्तं चरिष्यामि पूज्यानां वो व्यतिक्रमात्।
न त्वेव दूषयिष्यामि शस्त्रग्रहमहाव्रतम्॥

"इस स्थल पर जो पूज्य ऋषि एवं महर्षि विद्यमान हैं, उनकी आज्ञा का उल्लंघन करने के कारण मैं उसका प्रायश्चित्त करूँगा; किंतु शस्त्र धारण करने के महाव्रत को अर्थात् शूर पुरुष के व्रत को मैं भंग नहीं कर सकता।" यहाँ पर परशुरामजी के अमर्ष का वर्णन है।

(ख) रे नृप बालक! काल-बस, बोलत तोहि न सँभार।
धनुही सन त्रिपुरारि-धनु, विदित सकल संसार॥

यहाँ परशुराम के वचन में अमर्ष का भाव है।

अमित—आचार्य केशवदास-वर्णित एक नूतन अलंकार। जब साधक की शुभ सिद्धि का भोग साधना ही करे तो अमित अलंकार होगा। इसमें साधक को नहीं, अपितु साधना को ही कार्य-सिद्धि का महत्त्व प्राप्त होता है।

जहाँ साधना भोगई, साधक की शुभ सिद्धि।
अमित नाम तासों कहत, जाकी अमित प्रसिद्धि॥

—कविप्रिया, १२/२६

अयत्नज अलंकार—नायक अथवा नायिका के स्वाभाविक गुणों (सात्त्विक) को अयत्नज अलंकार कहते हैं। इनका नाम सात्त्विक अलंकार भी है। [दे० सात्त्विक अलंकार] नायिका के अयत्नज अलंकार सात हैं—शोभा, कांति, दीप्ति, माधुर्य, प्रगल्भता, औदार्य तथा धैर्य।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शोभा कांतिश्च दीप्तिश्च तथा माधुर्यमेव च ।
धैर्यं प्रागल्भ्यमौदार्यमित्येते स्युरयत्नजाः ॥

—नाट्यशास्त्र, २२/२६

ये नायिका की प्राकृतिक भावभंगिमाएँ या अदाएँ हैं, जिनके कारण उसका सौंदर्य अधिक बढ़ जाता है। ये यत्न या कृति से साध्य नहीं होते; अतः इन्हें अयत्नज कहा जाता है।

अयोनि—कवि की मौलिक रचना को अयोनि कहते हैं।

[दे० काव्य-संवाद]

अर्थचित्र—चित्रकाव्य का एक भेद। [दे० चित्रकाव्य]

अर्थदोष—जब कविता में निहित अर्थ के द्वारा इष्ट या वांछित तात्पर्य की प्रतीति न हो तो अर्थदोष होता है। इसके २३ प्रकार होते हैं।—

अर्थोऽपुष्टः कष्टो व्याहत पुनरुक्त-दुष्क्रम-ग्राम्या ॥
संदिग्धोनिर्हेतुः प्रसिद्धि विद्याविरुद्धश्च ।
अनवीकृतः सनियमानियमविशेषाविशेषपरिवृत्ताः ॥
साकांक्षोऽपदयुक्तः सहचरभिन्नः प्रकाशितविरुद्धः ।
विध्यनुवादायुक्तस्त्यक्तपुनः स्वीकृतोऽश्लीलः ॥—काव्यप्रकाश, ७/५५-५७

(१) अपुष्ट, (२), कष्ट, (३) व्याहत, (४) पुनरुक्त, (५) दुष्क्रम, (६) ग्राम्य, (७) संदिग्ध, (८) निर्हेतु, (९) प्रसिद्धि-विरुद्ध, (१०) विद्या-विरुद्ध, (११) अनवीकृत, (१२) सनियमपरिवृत्त, (१३) अनियमपरिवृत्त, (१४) विशेषपरिवृत्त, (१५) अविशेषपरिवृत्त, (१६) साकांक्ष, (१७) अपदयुक्त, (१८) सहचरभिन्न, (१९) प्रकाशितविरुद्ध, (२०) विध्ययुक्त, (२१) अनुवादायुक्त, (२२) त्यक्त पुनः स्वीकृत, (२३) अश्लील ॥

१. अपुष्ट—काव्य में ऐसे पद का प्रयोग हो, जिसके अभाव में भी अर्थ को क्षति न पहुँचे तो अपुष्ट दोष होगा। विश्वनाथ के अनुसार जब कोई पद मुख्य अर्थ का अनुपकारी हो तो अपुष्ट दोष होगा।

अत्रापुष्टत्वं मुख्यानुपकारित्वम् ॥—साहित्यदर्पण, ७/९
अतिविततगगनसरणिप्रसरणपरिमुक्त मिश्रमानंदः ।
मरुदुल्लासित सौरभ कमलाकरहासकृद्रविर्जयति ॥

अतिविस्तृत आकाश के पथ में चलने से सुख को छोड़ देनेवाला एवं मरुत के द्वारा जिसकी सुगंधि फैलाई जा रही है, इस प्रकार के कमलों के समूह को प्रस्फुटित करनेवाला सूर्य सर्वोत्कृष्ट है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यदि यहाँ आकाश के विशेषण 'अतिवितत' इत्यादि का प्रयोग न भी किया जाय तो भी अर्थ-बोध में किसी प्रकार की बाधा न होगी।

ज्यौं अति बड़े गगन में उज्ज्वल चारु मयंक।
मान मानिनी मोचिबे, हेतु मनहु इक अंक॥

यहाँ गगन के लिए 'अति बड़े' तथा चंद्रमा के लिए 'उज्ज्वल' विशेषणों का प्रयोग व्यर्थ है। गगन अतिविस्तृत है और चंद्रमा भी अति-उज्ज्वल है; अतः इन शब्दों के बिना भी अर्थ में कोई क्षति नहीं होती। अधिकपददोष की व्यर्थता अन्वय के समय तथा अपुष्ट दोष की व्यर्थता अर्थ करते समय जानी जाती है।

२. *कष्टार्थ*—जब अर्थबोध कठिनाई से हो तो कष्टार्थ दोष होता है।

सदा मध्ये या सामियममृतनिस्यंद सुरसा
सरस्वत्युद्दामा वहति बहुमार्गापरिमलम्।
प्रसादं ता एता घन परिचिताः केन महतां
महाकाव्यव्योम्नि स्फुरितमधुरा यांतु रुचयः॥

कवियों के काव्य-रूप जिन अभिप्रायों के वर्णनों के बीच अमृत की धारा बहानेवाली रसीली और सयानी सरस्वती—वैदर्भी, गौड़ी और पांचाली इन तीन रीतियों से अपने तीन मार्ग बनाकर जो चमत्कार उत्पन्न करती हैं, वे बड़े-बड़े कवियों के अनेक बार के भली भाँति अभ्यस्त काव्य-रूप अभिप्रायानुभव में धँसकर अभीष्ट बन महाकाव्य-रूप अपरिमित आकाश में छोटे कवियों की भाँति सुबोध कैसे हों? इसका दूसरा अर्थ इस प्रकार है—"जिन सूर्य की चमक के बीच जल बहानेवाली मीठी त्रिपथगामिनी गंगा की सुगंधि को धारण किए बहती हैं वे प्रकाश-युक्त मनोहर बारहों सूर्यों की प्रभाएँ महाकाव्य-सदृश विस्तृत आकाश में वर्षा-कालीन मेघ का संपर्क पाकर (शरत्काल के) आकाश के समान स्वच्छ कैसे हों?"

इसके दोनों ही अर्थ अत्यंत क्लिष्ट हैं।

तो पर बारौं चार मृग, चारि बिहँग फल चारु॥

यहाँ चार मृग से अभिप्राय है—नेत्र पर मृग, घूँघट पर घोड़ा, गति पर हाथी और कटि पर सिंह। चार विहंग हैं—बोली पर कोयल, गर्दन पर कपोत, केश पर मोर और नाक पर सुग्गा। चार फल हैं—दाँत पर अनार, स्तन पर श्रीफल, अधर पर बिंबाफल तथा कपोल पर मधूक। इस प्रकार का अर्थ अत्यंत कठिनाई से निकलता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कष्टत्वदोष में शब्द-परिवर्तन से अर्थ-प्रतीति में क्लिष्टता नहीं रहती; पर क्लिष्टार्थ दोष में शब्द-परिवर्तन के बाद भी क्लिष्टता बनी रहती है।

३. *व्याहत*—जब किसी पदार्थ का महत्त्व प्रदर्शित कर, पुनः उसका तिरस्कार किया जाय तो व्याहत दोष होता है। इसमें कभी हीनता प्रदर्शित करके भी महत्त्व प्रकट किया जाता है।

उत्कर्षोवापकर्षोवा प्राग्यस्यैव निगद्यते ।
तस्यैवाथ तदन्यश्चेद् व्याहतोऽर्थस्तदा भवेत् ॥—बालबोधिनी, पृ० ३८१

जगति जयिनस्ते ते भावा नवेंदुकलादयः
प्रकृतिमधुराः संत्येवान्ये मनो मदयंति ये ।
मम तु यदियं जाता लोके विलोचन चंद्रिका
नयनविषयं जन्मन्येकः स एव महोत्सवः ॥

संसार में नूतन चंद्रकला आदि उत्कृष्ट, मन को अच्छी लगनेवाली एवं प्रकृत सुंदर वस्तुएँ हैं; किंतु मेरे लिए तो उनका कोई महत्त्व नहीं है। मेरे लिए तो यह मालती ही संसार में आँखों की चंद्रिका है। यही मेरे लिए जन्म-भर का महोत्सव हैं। यहाँ पर जिसको (माधव को) चंद्रिका आदि पदार्थ तुच्छ सिद्ध हुए, वही मालती में उत्कर्ष के लिए आरोपित हुए। अतः, यहाँ अव्याहत दोष हुआ।

चंद्रमुखी के वदन सम, हिमकर कह्यो न जाय ।
कमलदृगी के नैन-सम, कंज न एकौ भाय ॥

यहाँ चंद्रमुखी कहकर पुनः चंद्रमा को उसके मुँह के समान न कहना व्याहत दोष है। इसी प्रकार 'कमलनयनी के नेत्र के समान कमल नहीं हो सकते' में भी व्याहत दोष है।

४. *पुनरुक्त*—जब एक ही शब्द तथा अर्थ की बार-बार आवृत्ति हो तो पुनरुक्त दोष होता है।

कृतमनुगतं दृष्टं वा यैरिदं गुरुपातकं
मनुज पशुभिर्निर्मर्यादैर्भवद्भिरुदायुधैः
नरकरिपुणा सार्धं सभीमकिरीटिनां
अयमहमसृङ् मेदोमांसैः करोमि दिशां बलिम् ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"जिन मर्यादाहीन नरपशु गुरुवध के पापियों ने शस्त्र उठाकर यह महापाप किया है, करने की अनुमति दी है या इसे देखा है, मैं कृष्ण के साथ अर्जुन एवं भीम आदि उन सभी के रक्त, चर्बी एवं मांस से दिशाओं को बलि दूँगा।" इसमें 'अर्जुन' एवं 'भवद्भिः' (आप लोगों से) आदि शब्दों से सबोधित करने पर भी 'सभीमकिरीटिनाम्' इस पद का प्रयोग करने में 'अर्जुन-पद' का अर्थ कई बार आवृत्त हुआ है।

मृदु बानी मीठी लगै, बात कबिन की उक्ति।

बानी, बात और उक्ति का एक ही अर्थ है। मृदु और मीठी के प्रयोग में भी पुनरुक्ति हुई है।

५. *दुष्क्रमत्व*—जब लोक एवं शास्त्र के कथित नियमों का उल्लंघन किया जाय तो दुष्क्रमत्व दोष होगा।

भूपालरत्न निर्दैन्यप्रदानप्रथितोत्सव !
विश्रायण तुरंगं मे मातंगं वा मदालसम् ॥

"उदारतापूर्ण दान करने में प्रसिद्ध हे राजाओं के रत्न ! आप हमें एक घोड़ा दीजिए अथवा मद से युक्त एक हाथी हीं।" यहाँ हाथी का नाम पहले होना चाहिए था और घोड़ा का उल्लेख पीछे। जो घोड़ा नहीं दे सकता, वह हाथी कैसे देगा ?

बर बाजी कै, बारनें दैहैं रीझि दयाल ॥

—ऊपर के श्लोक का अनुवाद

६. *ग्राम्य*—ग्राम्यभाषा के प्रयोग में यह दोष होगा।

स्वपिति यावदयं निकटे जनः
स्वपिमि तावदहं किमपैतिते।
तदयि ! सांप्रतमाहरकूर्परं
त्वरितमूरुमुदंचय कुंचितम् ॥

अरी ! जब तक यह व्यक्ति तुम्हारे पास सोता है, तब तक मैं भी तेरे निकट शयन करता हूँ। इसमें तुम्हारा क्या बुरा होता है ? अतएव अपनी कोहनी को हटाओ एवं संकुचित जांघों को फैला दो। यहाँ पता चलता है कि वक्ता अशिष्ट व्यक्ति है।

हौं सोवत इत आय तू मेरे नेरे सोय।

इस कथन में अभद्रता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

७. *संदिग्ध*—किसी निश्चित अर्थ का ज्ञान नहीं होने में संदिग्ध दोष होता है।

मात्सर्यमुत्सार्य विचार्यकार्यम्
आर्याः समर्यादमुदाहरंतु।
सेव्याः नितंबाः किमुभूधराणा—
मुत स्मर स्मेर विलासिनीनाम् ॥

हे श्रेष्ठ पुरुषो ! द्वेषभाव का त्याग कर उचित ढंग से विचार कर युक्ति-युक्त कार्य बतलाइए कि पर्वतों के नितंब (मध्य भाग) सेवन करने योग्य हैं या काम-भाव से स्मितमुखवाली युवतियों के नितंब सेवन के योग्य हैं। इस कथन में यह संदेह बना रह जाता है कि वक्ता यति है या शृंगारी।

सेवनीय रमनीन के अथवा गिरिन नितंब।

८. *निर्हेतुत्व*—किसी बात के हेतु का कथन न करना निर्हेतुत्व दोष है।

गृहीतं येनासीः परिभवभयान्नोचितमपि
प्रभावाद्यास्याभून्न खलु तव कश्चिन्न विषयः।
परित्यक्तं तेनत्वमसि सुतशोकान्न तु भयात्
विमोक्ष्ये शस्त्र ! त्वामहमपि यतः स्वस्ति भवते ॥

"हे शस्त्र ! ब्राह्मणों के लिए उचित न होने पर भी तिरस्कृत होने के भय से जिन्होंने (गुरु द्रोणाचार्य ने) तुम्हें धारण किया था, और उनके प्रभाव से कोई भी तुम्हारा अविषय नहीं था अर्थात् ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं था, जिसे तुम्हारे द्वारा प्रहार नहीं किया जा सकता था। उन्होंने तुम्हारा त्याग भय से नहीं, अपितु पुत्र-शोक के कारण किया। अतएव, मैं भी तुम्हारा परित्याग करता हूँ, तुम्हारा कल्याण हो।" यहाँ अश्वत्थामा के अस्त्र-त्याग का कारण दिखाया नहीं गया है।

घर-घर घूमत स्वान सम लेत नहीं कुछ देत।

यहाँ श्वान का घर-घर घूमना तथा लेने पर भी कुछ नहीं देने में निर्हेतुत्व दोष है।

९. *प्रसिद्धिविरुद्धता*—जब कवि लोक या कवि-संप्रदाय के विरुद्ध किसी अप्रसिद्ध कथन का उल्लेख करे तो प्रसिद्ध-विरुद्धता दोष होगा। इसमें अप्रसिद्ध तथ्य का वर्णन होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इदं ते केनोक्तं कथय कमलातंकवदने !
यदेतस्मिन् हेम्नः कटकमिति धत्से खलु धियम् ।
इदं तद्दुःसाध्याक्रमणपरमास्त्रं स्मृतिभुवा ।
तव प्रीत्याचक्रं करकमलमूलेविनिहितम् ॥

"हे कमलों को भयभीत करनेवाले चंद्रमा के समान मुखवाली ! बताओ तो, किसने तुमसे ऐसा कहा है कि यह सोने का कंकण है। यह तो जितेंद्रिय नवयुवकों को आकृष्ट करनेवाला कामदेव का चक्र है, जो तुम्हारे हाथ में स्थापित कर दिया गया है।" यहाँ कामदेव के चक्र का वर्णन किया गया है, जो लोक में अप्रसिद्ध है।

भूलि न जइयो पथिक ! तुम तिहि सरितापथ ओर।
तरुणिपदाहतअंकुरित, नव अशोक उँहि ओर ॥

यहाँ कवि-प्रसिद्धि-संबंधी दोष है। तरुणियों के पैर से आहत होकर अशोक फूलता है, अंकुरित नहीं होता।

१०. *विद्याविरुद्ध*—शास्त्रविरुद्ध-वर्णन को विद्याविरुद्ध दोष कहते हैं।

सदा स्नात्वा निशीथिन्यां सकलंवासरं बुधः ।
नानाविधानिशास्त्राणि व्याचष्टे च शृणोति च ॥

"यह पंडित निरंतर आधी रात में स्नान कर शास्त्रों का अर्थ करता है एवं सुनता भी है।" यहाँ ग्रहण आदि विशेष कारणों के बिना रात में स्नान शास्त्र-विरुद्ध है।

रद-छद सर नख-पद लगे कहे देत सब बात।

यहाँ अधरों पर नखक्षत का वर्णन कामशास्त्र के विरुद्ध है।

११. *अनवीकृत*—यदि अनेक अर्थों का एक ही प्रकार से कथन किया जाय और उसमें कोई विलक्षणता न रहे तो अनवीकृत दोष होगा।

प्राप्ताः श्रियः सकलकामदुघास्ततः किं
दत्तं पदं शिरसि विद्विषतां ततः किम् ।
संतर्पिताः प्रणयिनो विभवैस्ततः किं
कल्पं स्थितं तनुभृता तनुभिस्ततः किम् ॥

"सभी मनोरथ सिद्ध करनेवाली संपत्ति प्राप्त कर ली तो इससे क्या ? बैरियों के सिर पर पैर रख दिया तो क्या ? प्रेमीजनों को धन से तृप्त कर दिया तो क्या ? शरीरधारियों का शरीर कल्प तक स्थित रहे तो भी क्या ?"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ 'ततः किम्' का बारबार कथन अनवीकृत दोष है।

सदा करत नभ गौन रवि सदा चलत है पौन।
सदा धरत भुवि शेषसिर धीर सदा रह मौन॥

यहाँ सभी चरणों में सदा का प्रयोग हुआ है और यह अनवीकृत दोष है।

१२. *सनियमपरिवृत्तता*—जहाँ नियम के साथ बात का कथन करना चाहिए, वहाँ बिना नियम का कथन करना सनियमपरिवृत्तता दोष है।

यत्रानुल्लिखितार्थमेव निखिलं निर्माणमेतद्विधे-
रुत्कर्षप्रतियोगिकल्पनमपिन्यक्कारकोटिः परा।
याताः प्राणभृतां मनोरथगतीरुल्लंघ्य यत्संपद-
स्तस्याभासमणीकृताश्मसुमणेरश्मत्वमेवोचितम्॥

"जिस चिंतामणि के समक्ष ब्रह्मा की सारी सृष्टि ही निष्प्रयोजन-सी जान पड़ती है, जिसके उत्कर्ष के समक्ष किसी वस्तु की कल्पना भी उसका तिरस्कार है, जिसकी संपत्ति शरीरधारियों के मनोरथ की गति को भी पार कर गई है, जिसकी चमक के द्वारा पत्थर भी मणि हो जाते हैं, उस मणि का पत्थर ही बना रहना उचित है।" यहाँ चिंतामणि का उत्कर्ष इस तरह के वर्णन में प्रकट होता (छायामात्र से पत्थर को मणि के समान बना देने वाला), इस तरह के नियम-पूर्ण कथन के अभाव में यहाँ उक्त दोष हुआ।

देखत के रमनीय ये जग में विषय-विलास।
ह्वै तिनमें रत तू बृथा, करत कहा सुख आस॥

यहाँ देखत के साथ 'ही' का प्रयोग होना चाहिए था।

१३. *अनियमपरिवृत्तता*—जिस अर्थ को (तथ्य को) नियमपूर्वक नहीं कहना चाहिए, उसे नियमपूर्वक कहना अनियम परिवृत्तता दोष है।

वक्त्रांभोजे सरस्वत्यधिवसति सदाशोणएवाधरस्ते
बाहुः काकुत्स्थवीर्यस्मृतिकरणपटुर्दक्षिणस्ते समुद्रः।
वाहिन्यः पार्श्वमेताः क्षणमपिभवतो नैवमुंचंत्यभीक्ष्णं
स्वच्छेऽन्तर्मानसेऽस्मिन् कथमवनिपते! तेम्बुपानाभिलाषः॥

हे राजन्! आपके मुख-कमल में निरंतर सरस्वती (नदी एवं देवी) निवास करती है एवं आपका अधर शोण ही है (लाल एवं नदी), रामचंद्र

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जी के पराक्रम को याद कराने में समर्थ आपका दक्षिण बाहु, दक्षिण समुद्र ही है। ये वाहिनियाँ (सेना तथा नदी) थोड़ी देर के लिए भी आपका साथ नहीं त्यागतीं। आपके अंतस्तल में स्वच्छ मानस है; फिर आपको जलपान करने की इच्छा कैसे होती है ?"

यहाँ 'शोण एव' आपका अधर सोन ही है, ऐसा नहीं कहना चाहिए था। यहाँ कवि का उद्देश्य है 'पिपासा के अनौचित्य की प्रतीति'। अधर को 'शोण-एव' कहने से जल पीने की अभिलाषा का अनौचित्य सिद्ध नहीं होता; अपितु यहाँ वास्तविक अनौचित्य प्रतीत होने लगता है।

हैं नेत्र नील-अरविंद खिले सुहाएँ
तन्वंगि ! मंजुल मृणालमयी भुजाएँ।
आवर्त ही ललित नाभि न क्या बता तू ?
लावण्य-अंबु-परिपूरित बाहिका तू ॥

यहाँ 'ही' का प्रयोग 'आवर्त' के साथ नहीं होना चाहिए, केवल आवर्त ही ठीक है। ही के प्रयोग से यह नियम प्रकट होने लगता है कि अन्य कोई नाभि नहीं है, अपितु आवर्त ही नाभि है।

१४. विशेषपरिवृत्तता—जिसका कथन विशेष रूप से होना चाहिए था, उसे विशेष रूप से न कहकर सामान्य रूप से कहने में विशेषपरिवृत्तता दोष होता है।

श्यामां श्यामलिमानमानयत भोः सांद्रैर्मषीकूर्चकैः
मंत्रं तंत्रमथ प्रयुज्य हरत श्वेतोत्पलानांश्रियम्।
चंद्रं चूर्णयत क्षणाच्च कणशः कृत्वाशिलापट्टके
येन द्रष्टुमहं क्षमे दश दिशस्तद्वक्त्रमुद्रांकिताः ॥

"हे सेवको ! गहरी गाढ़ी काली स्याही की कूंची से रात को अत्यंत काली बना डालो एवं तंत्र-मंत्रों के प्रयोग-द्वारा श्वेत कमलों की श्री को दूर कर दो। चंद्रमा को किसी चट्टान पर पटककर क्षणमात्र को चूर्ण-विचूर्ण कर दो, जिससे मैं उस सुंदरी के मुख-चिह्नों से विभूषित दशों दिशाओं को देखूँ।"

यहाँ श्यामा शब्द, जो रात्रि का सामान्य शब्द है, उसका कथन किया गया है। इसके स्थान पर 'ज्योत्सिनीम्' या चाँदनी रात कहना चाहिए था; क्योंकि यहाँ विशेष रात का ही कथन अभीष्ट है, सामान्य का नहीं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्यों न करहु काजर छिरक सजनी ! रजनी कारि ।
काहू विधि चूरन करहु ससिहि सिला पै डारि ।।

यहाँ रजनी के स्थान पर 'उजेरी रात' का प्रयोग उचित था। रजनी अँधेरी और उजेरी, दोनों (रातों) का बोधक है। यह रात के लिए सामान्य शब्द है, यहाँ विशेष शब्द के प्रयोग (उजेरी) की आवश्यकता थी।

१५. **अविशेषपरिवृत्तता**—जब सामान्य पदार्थ के स्थान पर विशेष पदार्थ का उल्लेख हो तो अविशेषपरिवृत्तता दोष होगा।

कल्लोलवेल्लितदृषत्परुषप्रहारौ-
रत्नान्यमूनि मकरालय ! मावमंस्थाः ।
किं कौस्तुभेन विहितो भवतो न नाम
यांचाप्रसारित करः पुरुषोत्तमोऽपि ।।

"हे समुद्र ! चंचल ऊर्मियों के द्वारा ताड़ित कठोर पाषाणों पर प्रहार करके तुम रत्नों का तिरस्कार न करो। क्या तुम्हारे एक कौस्तुभ मणि ने तुम्हारे समक्ष भगवान् को हाथ पसारकर याचना करने के लिए बाध्य नहीं कर दिया था ?"

यहाँ रत्न सामान्य का कथन न कर रत्नविशेष कौस्तुभ के कथन में दोष है।

कहा सिंधु लोपत मनिन, बीचिन कीच बहाइ ।
सक्यौ न कौस्तुभ जो रितू, हरिसों हाथ बुड़ाइ ।।
—पूर्व श्लोक का अनुवाद

१६. **साकांक्ष**—जब अर्थ की संगति के लिए किसी अन्य पद (शब्द) या वाक्य की आकांक्षा बनी रहे तो साकांक्ष दोष होगा।

अर्थित्वे प्रकटीकृतेऽपि न फल प्राप्तिः प्रभो ! प्रत्युत
द्रुह्यन् दाशरथिविरुद्धचरितो युक्तस्तया कन्यया।
उत्कर्षंच परस्य मानयशसोर्विस्त्रंसनं चात्मनः
स्त्रीरत्नंच जगत्पतिर्दशमुखो देवः कथं मृष्यते ।।

"हे प्रभो ! याचकता प्रकट करने पर भी आपको फल प्राप्त नहीं हो सका—सीता नहीं मिली। प्रत्युत् आपके बैरी रामचंद्र के साथ उस कन्या का समागम हुआ। शत्रु के उत्कर्ष एवं मान की वृद्धि, अपना तिरस्कार एवं स्त्री रत्न की 'उपेक्षा' भला स्वामी रावण कैसे सह सकेंगे ?"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ स्त्रीरत्न के पश्चात् उपेक्षा पद के प्रयोग की आवश्यकता की आकांक्षा बनी रह जाती है।

इधर रह गंधर्वों के देश, पिता की हूँ प्यारी संतान ॥

यहाँ प्रथम पंक्ति में 'में' की तथा द्वितीय पंक्ति में 'अपने' शब्द की आकांक्षा बनी रहती है।

१७. अपदयुक्तता—जब अनुचित स्थान में अनावश्यक पदों का प्रयोग हो तो अपदयुक्तता दोष होता है।

आज्ञाशक्रशिखामणिप्रणयिनी शास्त्राणि चक्षुर्नवं
भक्तिर्भूतपतौ पिनाकिनिपदं लंकेति दिव्यापुरी ॥
उत्पत्तिर्द्रुहिणान्वये च तदहो नेदृग्वरोलभ्यते
स्याच्चेदेष न रावणः क्वनु पुनः सर्वत्र सर्वे गुणाः ॥

"रावण की आज्ञा इंद्र के लिए भी शिरोधार्य है, जिसकी नवीन आँखें शास्त्र ही हैं। जिसकी भक्ति पिनाक को धारण करनेवाले शंकरजी में है तथा जिसकी निवास-स्थली लंका ऐसी दिव्यपुरी है। जिसका जन्म ब्रह्मा के वंश में हुआ है, उस रावण-जैसा अच्छा तथा सर्वगुण संपन्न वर और कहाँ प्राप्त हो सकता है? क्या कहीं सभी गुण मिलते हैं?"

यहाँ 'स्याच्चेदेष न रावणः' तक ही श्लोक को समाप्त कर देना औचित्यपूर्ण था, पुनः 'क्वनु पुनः सर्वत्र सर्वेगुणाः' कहने से रावण के प्रति उपेक्षा का भाव हट जाता है, जो अभीष्ट अर्थ के प्रतिकूल पड़ जाता है।

सद्वंशज लंकाधिपति शैव सुरजयी और।
पर रावण, रहते कहाँ सब गुण मिलि इक ठौर ॥

—पूर्वश्लोक का अनुवाद।

१८. सहचरभिन्न—जब उत्कृष्ट वस्तु के साथ निकृष्ट वस्तु का एवं निकृष्ट वस्तु के साथ उत्कृष्ट वस्तु का वर्णन हो तो सहचरभिन्न दोष होता है।

श्रुतेनबुद्धिर्व्यसनेन मूर्खता मदेन नारी सलिलेन निम्नगा।
निशाशशांकेनधृतिः समाधिना नयेन चालंक्रियते नरेंद्रता ॥

"शास्त्रों के श्रवण से बुद्धि, बुरी आदतों से मूर्खता, मद से स्त्री, सलिल से नदी, चंद्रमा से रात, धैर्य से समाधि एवं नीति से राजपद शोभते हैं।"

यहाँ श्रुति आदि उत्तम वस्तुओं के साथ व्यसन आदि निकृष्ट पदार्थों के गुणों को मिला देने में सहचरभिन्न दोष हुआ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गलितपयोधर कामिनी, सज्जन संपति-हीन ।
दुर्जन को सनमान यह हियदाहक हैं तीन ॥

यहाँ कामिनी और सज्जन के साथ दुर्जन के वर्णन में सहचरभिन्न दोष है ।

१९. *प्रकाशितविरुद्धता*—व्यंजना के द्वारा अभीष्ट अर्थ के विरुद्ध अर्थ का ज्ञान होना प्रकाशितविरुद्धता दोष है ।

कुमारस्ते नराधीश, श्रियं समधिगच्छतु ॥

"हे राजन् ! आपके कुमार राजलक्ष्मी को प्राप्त करें ।" यहाँ व्यंजना से यह अर्थ प्रकट होता है कि आपकी मृत्यु हो जाय । यह अर्थ अभीष्ट के विरुद्ध है ।

मनु निरखने लगे यों यामिनी का रूप ।
वह अनंत प्रगाढ़ छाया फैलती अपरूप ॥

यहाँ अपरूप शब्द का प्रयोग कवि ने शोभन या सुंदर के अर्थ में किया है । अपरूप का अर्थ विकृत रूप होता है, जो कवि के अभीष्ट अर्थ के विरुद्ध है ।

२०. *विध्ययुक्त*—विध्ययुक्त का अर्थ है अयुक्त विधि या विधि का अनुचित होना । इस दोष में जो विधि का विषय नहीं होता है, उसे भी विधि बनाया जाता है । अविधेय अर्थ को विधेय बनाना विध्ययुक्त दोष है ।

प्रयत्नपरिबोधितः स्तुतिभिरद्यशेषे निशा-
मकेशवमपांडवं भुवनमद्य निःसोमकम् ।
इयं परिसमाप्यते रणकथाद्य दोःशालिना-
मपैतु रिपुकाननातिगुरुरद्य भारो भुवः ॥

अश्वत्थामा की दुर्योधन के प्रति उक्ति—"आज रात को आप इस प्रकार सुख से शयन करेंगे कि कल स्तुति करनेवालों के द्वारा प्रयत्नपूर्वक जगाने से ही जागेंगे । आज पृथ्वी श्रीकृष्ण, पांडव तथा पांचाल राजाओं से रहित हो जायगी । आज विश्व के भुजबल का दर्प करनेवाले योद्धाओं का युद्ध-कथा समाप्त हो जायगी । आज भूमि का शत्रु-रूपी गहन वन का भार कम हो जायगा ।"

यहाँ विषय होना चाहिए था कि जब आप प्रयत्न से जगाए जाइएगा 'शयितः प्रयत्नेनबोध्यसे' । सोनेवाला व्यक्ति ही जगाया जाता है, न कि जगाया गया व्यक्ति सोता है । यह अविधेय का विधि रूप से कथन है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बंदिन सों प्रतिबुद्ध ह्वै अब सुख सोय नृपाल।
करौं अपांडव भुवि अबै काटौं सब रन जाल॥

—पूर्वश्लोक का अनुवाद

२१. अनुवाद अयुक्त—अनुवाद अयुक्त का अर्थ हुआ अयुक्त कथन। जब कोई अर्थ अनुचित अनुवाद या कथन से युक्त हो तो अनुवाद अयुक्त दोष होगा।

अरे रामाहस्ताभरण! भसलश्रेणिशरण!
स्मरक्रीडाव्रीडाशमन! विरहिप्राणदमन!
सरोहंसोत्तंस! प्रचलदलनीलोत्पलसखे!
सखेदोऽहं मोहंश्लथय कथय क्वेंदुवदना॥

"हे सुंदरियों के हाथ के आभरण, हे भ्रमरों के समुदाय को शरण देनेवाले, स्मरक्रीड़ा की लज्जा को हटानेवाले, विरहियों के प्राण को नष्ट करनेवाले, उत्तम तालाब के अलंकार, चंचल पत्तियोंवाले नील कमल, मैं दुःखी हूँ, मेरे दुःख को दूर करो और बताओ कि वह चंद्रमुखी कहाँ है।"

यहाँ विधि है 'बताओ वह चंद्रमुखी कहाँ है'—'कथय क्वेंदुवदना'? नीलोत्पल को 'विरहि प्राणदमन' कहा गया है, जो विरुद्ध है; क्योंकि विरही अपने विरह दुःख को शांत करने के लिए ही नील कमल से विनय करता है। अतः, उसे इस विशेषण से युक्त करना अनुचित है।

गौरीपति-चूड़ाभरन, हरन बिरहि-जन प्रान।
निरदयता कीजै न ससि! मुहि अबला जिय जान॥

यहाँ चंद्रमा को 'हरन विरहिजन-प्रान' कहना विरही की विनय के विरुद्ध है। जो विरहीजनों का विनाशक है, उसीसे दया की प्रार्थना करना अनुचित लगता है।

२२. त्यक्तपुनःस्वीकृत—किसी विषय को एक बार समाप्त कर पुनः उसे ग्रहण करने में यह दोष होता है।

लग्नं रागावृतांग्या सुदृढमिह ययैवासियष्ट्यारिकंठे
मातंगानामपीहोपरि परपुरुषैर्या च दृष्टा पतंती।
तत्सक्तोऽयंनकिंचिद् गणयतिविदितंतेऽस्तु तेनास्मिदत्ता
भृत्येभ्यः श्रीनियोगाद्गदितुमिवगतेत्यंबुधिंयस्यकीर्तिः॥

"जो तलवार राग (रुधिर का रंग या अनुराग) से युक्त होकर शत्रुओं के गले लगी थी और अन्य लोगों ने जिसे मातंगों के भी ऊपर गिरते देखा है,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उसी में सक्त (आसक्त या तत्पर) होकर यह राजा मेरी कुछ परवाह नहीं करता—तुम्हें मालूम रहे, उसने मुझे भृत्यों (मंत्री आदिकों) के अधीन कर रखा है—मानों लक्ष्मी की आज्ञा से यह संदेश सुनाने के लिए इस राजा की कीर्त्ति लक्ष्मी के पिता समुद्र के पास पहुँची है।" तात्पर्य यह कि किसी वीर राजा की कीर्त्ति समुद्रपर्यंत पहुँची है। इस पर कवि उत्प्रेक्षा करता है कि राजा तलवार पर आसक्त होकर उसी का हो रहा है; अतः लक्ष्मी को सपत्नीद्रोह उत्पन्न हुआ है और उसने इसकी कीर्त्ति को अपने पिता के पास शिकायत करने भेजा है, जिसमें तलवार (सपत्नी) की बुराई, राजा की लापरवाही और दुर्दशा का हाल है। यहाँ 'विदितंतेऽस्तु' इतने तक ही वाक्य पूर्ण हो गया है। 'तेनास्मिदत्ता' से पुनः इसे उठाया गया है, अतः त्यक्त पुनः स्वीकृत अथवा समाप्तपुनरात्त दोष हुआ।

मानि ठानि बैठ्यौ इत परम सुजान कान्ह,
भौहें तानि बानक बनाइ गरबीली को।
कहैं 'रतनाकर' विसद उत बाँको बन्यौ
बिपिन बिहारी वेष बानक लडीली को ॥
लखि-लखि आज की अनूप सुखमा को रूप
रोपै रस रुचिर मिठास लौन-सीली को।
ललकि लचैबो लोल लोचन लला कौ इत
मचलि मनैबो उत राधिका रसीली को ॥

यहाँ तीन चरणों तक वर्णन समाप्त हो गया है, पुनः चौथे चरण में उसी का वर्णन है; अतः समाप्तपुनरात्त दोष है।

२३. *अश्लील*—लज्जास्पद अर्थों के ज्ञान में अश्लील दोष होता है।

हंतुमेव प्रवृत्तस्य स्तब्धस्य विवरैषिणः।
यथास्य जायते पातो न तथा पुनरुन्नतिः ॥

हिंसा करने के लिए उद्यत, उद्धत एवं छिद्रों या दोषों के अन्वेषक का जिस प्रकार शीघ्र पतन होता है, उसी तरह उसकी पुनः उन्नति नहीं होती" यहाँ दुष्ट की भाँति पुरुष लिंग का भी बोध होने में अश्लीलत्व दोष है।

मारन उद्यत ह्वै रह्यौ छिद्रान्वेषी स्तब्ध।
करिये याको पतन पुनि तो न वेगि ह्वै क्षुब्ध ॥

—पूर्वश्लोक का अनुवाद।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अर्थप्रकृति—नाटकीय कथावस्तु का एक तत्त्व । [दे० नाट्यसिद्धांत] नाटक के फल के साधन या उपाय को अर्थप्रकृति कहते हैं। धनंजय एवं विश्वनाथ इसे नाटक की प्रयोजन-सिद्धि का कारण मानते हैं। इसके पाँच भेद [भरत के अनुसार] हैं—बीज, बिंदु, पताका, प्रकरी और कार्य ।

—नाट्यशास्त्र, १९/२२

अर्थप्रकृतयः प्रयोजनसिद्धिहेतवः ।

—साहित्यदर्पण, ६/६४

—वृत्ति ।

बीजं बिंदुः पताका च प्रकरी कार्यमेव च ।।
अर्थप्रकृतयः पंच ज्ञात्वा योज्या यथाविधि ।

—साहित्यदर्पण, ६/६४

अर्थप्रकृति का संबंध इतिवृत्त की शारीरिक रचना से है। वस्तुतः बीज प्रभृति पाँच अर्थप्रकृति वस्तु के उपादान कारण हैं, इन्हें वस्तु का उपादान (मैटेरियल) कहा जा सकता है। इनकी विद्यमानता में कथा का ढाँचा खड़ा हो जाता है। विद्वानों ने अर्थप्रकृति को नाटकीय कथावस्तु का औपदानिक विभाजन (फिजिकल डिविजन) कहा है और कार्यावस्था को वे वस्तु का मनोवैज्ञानिक विभाजन कहते हैं।

[—प्रो० कांतानाथशास्त्री तैलंग]

संस्कृत नाट्यशास्त्रियों ने अर्थप्रकृति को इष्ट लक्ष्य की प्राप्ति का साधन माना है। 'ये अर्थप्रकृतियाँ या तो नायक के इष्ट लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक होती हैं अथवा कथानक को नाटकीय रूप देने में नाटककार के लिए साधन-स्वरूप होती है।' स्वतंत्रकलाशास्त्र, पृ० ४३७।

नाटक में मानव-जीवन के प्रधान तीन अर्थों—धर्म, अर्थ और काम—की प्राप्ति का वर्णन होता है अर्थात् उसका इतिवृत्त इन्हीं से संबद्ध हुआ करता है। कवि इन्हीं अर्थों या उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए जिन उपायों का वर्णन करता है, उन्हें अर्थप्रकृति कहा जाता है। ये इतिवृत्त के प्रधान लक्ष्य (फल) की ओर अग्रसर होनेवाले चमत्कारपूर्ण अंश हैं।

१. बीज—यह रूपक या नाटक के प्रधान लक्ष्य या फल का वह हेतु है, जो क्रमशः विस्तृत होता है। यह मुख्य फल का प्रधान हेतु या उपाय है। प्रारंभ में 'बीज' अत्यंत सूक्ष्म होता है, पर कथाश्रृंखला के अग्रसर होने पर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्रमशः विस्तृत एवं विकसित हो जाता है। अभिप्राय यह कि बीज नाटक के इतिवृत्त में 'घटना-बीज' के वपन होने पर उत्तरोत्तर विकसित होते हुए फल-रूप में परिणत होता है। जिस प्रकार लोक में अल्पाकार बीज की फल-रूप में समाप्ति होती है, उसी प्रकार नाटक की कथा का बीज भी उत्तरोत्तर पल्लवित होकर फल के रूप में समाप्त होता है। यह मुख्य इतिवृत्त से सर्वथा संबद्ध रहता है।

उदाहरण के लिए 'वेणीसंहार' (नाटक) में द्रौपदी का केश-संयमन (संवारना) नाटक का प्रधान फल है, जिसका हेतु है भीम के क्रोध से परिपुष्ट युधिष्ठिर का उत्साह, यही नाटक का बीज है।

> **स्वल्पोद्दिष्टस्तु तद्धेतुर्बीजं विस्तार्यनेकधा।**—दशरूपक, १/१७
> **अल्पमात्रं समुद्दिष्टं बहुधा यद्विसर्पति॥**
> **फलस्य प्रथमो हेतुर्बीजं तदभिधीयते।**—साहित्यदर्पण, ६/६५/६६

२. *विंदु*—यह नाटक की कथा का अत्यंत महत्त्वपूर्ण अंश है, जो कथानक के अंत तक विद्यमान रहता है। इसमें नायक के प्रयत्नों का उसी प्रकार विस्तार होता है, जिस प्रकार तेल की बूँद का जल पर विस्तार होता है। इसका उद्देश्य है अवांतर कथा से रूपक के विच्छिन्न होने पर इतिवृत्त को आगे बढ़ाना तथा प्रधान कथा को अविच्छिन्न रखना। इसका निबंधन मुखसंधि के आरंभ में न होकर उसके बाद होता है, जबकि बीज प्रारंभ में ही उपनिबद्ध हो जाता है।

> **प्रयोजनानां विच्छंदे यदविच्छेदकारणम्।**
> **यावत्समाप्तिबंधस्य स बिंदुः परिकीर्तितः॥**—नाट्यशास्त्र, १९/२२
> **अवांतरार्थविच्छेदे बिंदुरच्छेदकारणम्॥**—दशरूपक, १/१७

उदाहरण के लिए 'रत्नावली' नाटिका में वासवदत्ता-द्वारा अनंग-पूजा के पश्चात् राजा की पूजा होने पर, कथा में विच्छिन्नता आ आती है, वह समाप्त होने को हो जाती है; पर नेपथ्य से मागधों के कथन-द्वारा सूचना पाकर सागरिका अपने मन में कहती है कि 'क्या ये वही राजा उदयन हैं, जिनके लिए पिताजी ने मुझे भेजा है?' इस उक्ति को कहलाकर कवि कथा का अच्छेद (संधान) कर देता है, उसे आगे बढ़ाता है।

३. *पताका*—प्रधान फल के सहायक प्रासंगिक वृत्त को पताका कहते हैं। जब कथावस्तु अनुबंध-सहित हो अर्थात् रूपक में बराबर चलती रहे, तो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उसे पताका कहते हैं। जैसे; 'रामायण' में सुग्रीव और विभीषण का वृत्तांत, जो दूर तक चलता है।

सानुबंधं पताकाख्यं प्रकरी च प्रदेशभाक् ।।—दशरूपक, १/१३
व्यापि प्रासंगिकं वृत्तं पताकेत्यभिधीयते ।—साहित्यदर्पण, ६/६७

'पताका' नामक प्रासंगिक इतिवृत्त का भी नायक होता है; पर उसका कोई निजी फल नहीं होता, अपितु प्रधान पात्र या नायक के फल को सिद्ध करने के लिए ही उसके सारे कार्य-व्यापार उपनिबद्ध किए जाते हैं। जैसे, सुग्रीव का राज्यलाभ। पताका को गर्भ अथवा विमर्श-संधि में ही समाप्त कर दिया जाता है।

पताकानायकस्य स्यान्न स्वकीयं फलांतरम् ।।
गर्भे संधौ विमर्शे वा निर्वाहस्तस्य जायते ।।—साहित्यदर्पण, ६/६७/६८

४. *प्रकरी*—प्रसंग प्राप्त अल्प वृत्तों को प्रकरी कहते हैं। यह अल्पदेश-व्यापक वृत्त है, जैसे, 'रामायण' में जटायु का वृत्तांत।

प्रकरी के नायक का अपना कोई स्वतंत्र उद्देश्य नहीं होता।

फलं प्रकल्प्यते यस्याः परार्थायैव केवलम् ।
अनुबंधविहीनत्वात् प्रकरीति विनिर्दिशेत् ।।

—नाट्यशास्त्र, १६/२५

प्रासंगिकं प्रदेशस्थं चरितं प्रकरी मता ।।
प्रकरी नायकस्य स्यान्न स्वकीयं फलांतरम् ।

—साहित्यदर्पण, ६/६८,६६

५. *कार्य*—कार्य उस साध्य को कहते हैं, जिसके लिए सारे उपायों को आरंभ किया जाता है और जिसकी सिद्धि के लिए सारे साधन एकत्र किए जाते हैं। प्रधान इतिवृत्त का प्रयोग प्रधान नायक, पताका-नायक तथा प्रकरी-नायक-द्वारा होता है और उसके सहायक-रूप में अन्य सामग्रियाँ भी प्रयुक्त होती हैं। इन्हीं समस्त (त्रिवर्ग साधक) नाट्यव्यापारों को कार्य कहते हैं, जैसे 'रामायण' में रावण का वध तथा 'रत्नावली' नाटिका में राजा उदयन एवं रत्नावली (नागरिका) का विवाह।

यदाधिकारिकं वस्तु सम्यक् प्राज्ञैः प्रयुज्यते ।
तदर्थो यः समारंभस्तत्कार्यं परिकीर्तितम् ।।

—नाट्यशास्त्र, १६/२६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अपेक्षितं तु यत्साध्यमारंभो यन्निबंधनः ॥
समापनं तु यत्सिद्ध्यै तत्कार्यमिति सम्मतम् ।

—साहित्यदर्पण, ६/६९,७०

अर्थवक्रोक्ति—एक प्रकार का अर्थालंकार। जब स्वाभाविक एकार्थ प्रतिपादक शब्दों के द्वारा वक्ता के अन्य अभिप्राय से कथित वाक्य को श्रोता अन्यार्थ कल्पित करे तो अर्थवक्रोक्ति होगी। [दे० वक्रोक्ति]

अर्थशक्ति-उद्भव अनुरणनध्वनि—ध्वनि का एक भेद। [दे० ध्वनि के भेद] जिस ध्वनि में शब्द-परिवर्तन होने पर भी व्यंग्यार्थ की प्रतीति हो अर्थात् उन शब्दों के पर्यायवाची शब्दों के द्वारा भी व्यंग्यार्थ का ज्ञान हो तो अर्थशक्ति-उद्भव अनुरणनध्वनि होती है। इसमें ध्वनि अर्थाश्रित होती है, शब्दाश्रित नहीं। इसके तीन भेद किए गए हैं—स्वतःसंभवी, कविप्रौढ़ोक्तिमात्रसिद्ध तथा कवि-निबद्ध-पात्र-प्रौढ़ोक्तिमात्रसिद्ध। इनमें भी प्रत्येक के चार-चार प्रकार होने से बारह भेद होते हैं। इनमें वाच्यार्थ तथा व्यंग्यार्थ कहीं वस्तु-रूप होते हैं और कहीं अलंकार-रूप। प्रत्येक के चार प्रकार होंगे—

वस्तु से वस्तुध्वनि, वस्तु से अलंकार ध्वनि, अलंकार से वस्तुध्वनि तथा अलंकार से अलंकारध्वनि।

स्वतःसंभवी—काव्य में वर्णित विषय या कवि-द्वारा प्रस्तुत अर्थ लोक-व्यवहार में संभव हो तो स्वतःसंभवी भेद होता है। यह कवि-कल्पित मात्र नहीं होता। स्वतःसंभवी का अर्थ है स्वयं उत्पन्न होनेवाला। इसके चार प्रकार हैं—

(क) स्वतःसंभवी वस्तु से वस्तु व्यंग्य—जब वाच्यार्थ भी वस्तुरूप हो और व्यंग्यार्थ भी, तो यह भेद होता है।

(ख) स्वतःसंभवी वस्तु से अलंकार व्यंग्य।

(ग) स्वतःसंभवी अलंकार से वस्तुव्यंग्य।

(घ) स्वतः संभवी अलंकार से अलंकार व्यंग्य।

१. स्वतःसंभवी वस्तु से वस्तुव्यंग्य—इसमें वाच्यार्थ भी वस्तु-रूप होता है और उससे प्रतीत होनेवाला व्यंग्यार्थ भी।

अलसशिरोमणिधूर्त्तानामग्रिमः पुत्रि धनसमृद्धिमयः।
इति भणितेन नतांगी प्रफुल्लविलोचना जाता॥
'सुनि-सुनि प्रीतम आलसी, धूर्त, सूम धनवंत।
नवल बाल हिय में हरख, बाढ़त जात अनंत॥'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ किसी कन्या से उसके प्रस्तावित पति के प्रति कोई स्त्री कह रही है—"बेटी ! तुम्हारा वर आलसियों में श्रेष्ठ, अत्यधिक धूर्त्त और धनवान् है।" ऐसा कहने पर उस नम्रमुखी की आँखें प्रफुल्लित हो गईं।

यहाँ नायिका की प्रसन्नता का कारण यह है कि पति आलसी होने के कारण घर से बाहर नहीं जायगा; अतः वियोग की संभावना ही न रहेगी। वह धूर्त्त है; अतः उसे कोई धोखा नहीं दे सकता। वह चतुर है; अतः कामशास्त्रीय कलाओं को भली भाँति जानता होगा, उसके साथ सहवास-सुख में अधिक आनंद प्राप्त होगा। उसका धनवान् होना आर्थिक चिंताओं से मुक्ति पाकर जीवन के आनद की वृद्धि है। यहाँ तीन विशेषणों के द्वारा अपने भावी पति के संबध में जानकर नायिका आनंदित हुई। यहाँ वस्तु से वस्तु की व्यंजना हुई है। इसमें कोई अलंकार नहीं है।

२. *स्वतःसंभवी वस्तु से अलंकारव्यंग्य*—इसमें वाच्यार्थ वस्तु-रूप होता है और व्यंग्यार्थ अलंकार-रूप।

धन्याऽसि या कथयसि प्रियसंगमेऽपि
विश्रब्धचाटुकशतानि रतांतरेषु।
नीवीं प्रति प्रणिहितेतु करे प्रियेण
सख्यः ! शपामि यदि किंचिदपि स्मरामि॥

"तुम धन्य हो कि प्रियतम के साथ रतिक्रीड़ा के समय एवं उसके बाद भी नाना प्रकार की चाटुकारितापूर्ण बातें विश्वस्त होकर कर लेती हो; किंतु सखि, मैं शपथ खाकर कहती हूँ कि ज्योंही मेरा पति नीवी को पकड़ता है, मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं रहता।"

इस वाच्यार्थ से यह व्यंग्य निकलता है कि धन्य तुम नहीं हो, मैं हूँ। इस प्रकार की अधिकता के प्रदर्शन से यहाँ व्यतिरेक अलंकार की ध्वनि निकलती है।

रवि-प्रतापहू घटत है दच्छिन दिसि जब जाय।
रघु-प्रताप नहिं सहि सक्यौ नृपन तिहीं दिसि माँय॥

यहाँ रघु के प्रताप का वर्णन है। दक्षिणायन होने पर सूर्य का ताप या प्रताप कम हो जाता है; किंतु उस दिशा में भी राजा रघु का प्रताप कम नहीं हुआ। यहाँ के राजा उनके प्रताप को सहन नहीं कर सके। इसमें सूर्य के प्रताप से राजा रघु का प्रताप अधिक दिखाया गया है। यहाँ वस्तु से व्यतिरेक अलंकार की ध्वनि प्रकट होती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

३. *स्वतःसंभवी अलंकार से वस्तुव्यंग्य*—जब वाच्यार्थ अलंकार-रूप और व्यंग्यार्थ वस्तु-रूप हो तो यह ध्वनि होती है।

> दर्पांधगंधगजकुंभकपाटकूट-
> संक्रांतिनिघ्नघनशोणितशोणशोचिः।
> वीरैर्व्यलोकि युधिकोपकषायकांतिः
> काली कटाक्ष इव यस्य करे कृपाणः॥

"युद्ध-भूमि में मदमत्त गंधगज के कपाट सदृश विस्तीर्ण गंडस्थल में घुसने के कारण लगे हुए प्रचुर रक्त से लाल वर्ण की जिसके हाथ की तलवार को वीरों ने दुर्गा के क्रोध से रक्तवर्णवाले कटाक्ष के समान देखा।" यहाँ दुर्गा के कटाक्ष के सदृश इस उपमालंकार से यह व्यंग्य निकलता है कि वह राजा क्षणमात्र में ही समस्त शत्रुओं का संहार कर देगा। यह स्वतःसंभवी अलंकार से वस्तुव्यंग्य का उदाहरण है।

> ले चंपक को फूल कर पिय दीन्हों मुसुकाय।
> समुझि सुघरि मन में दियो किंसुक फूल चलाय॥

—'काव्यालोक' से

यहाँ कुपित नायिका को पति ने चंपा का फूल देते हुए यह भाव प्रकट किया कि "मैं तुम्हारे अतिरिक्त किसी अन्य स्त्री को प्यार नहीं करता अर्थात् जिस प्रकार भौंरा चंपा फूल के पास नहीं जाता, उसी प्रकार मैं भी अन्य स्त्री से संबंध नहीं रखता।" इस रहस्य को समझकर नायिका ने उसकी ओर पलाश का पुष्प फेंक दिया। इससे उसने यह आशय प्रकट किया कि तुम्हारी लाल आँखें यह बताती हैं कि तुमने रात कहीं अन्य नायिका के साथ बिताई है। अतः, रात्रि-जागरण के कारण तुम्हारी आंखें लाल हैं। इसलिए तुम दोषी हो। यह वर्णन कवि-कल्पित न होकर स्वतःसंभवी है। यह व्यंग्य सूक्ष्म अलंकार-द्वारा प्रकट होता है।

४. *स्वतःसंभवी अलंकार से अलंकारव्यंग्य*—जब वाच्यार्थ भी अलंकार-रूप हो और व्यंग्यार्थ भी (अलंकार रूप हो), तो यह भेद होता है।

> गाढ़कांतदशनक्षतव्यथासंकटादरिवधूजनस्य यः।
> ओष्ठविद्रुमदलान्यमोचयन्निदर्शयन् युधि रुषा निजाधरम्॥

"शत्रुओं की जो स्त्रियाँ, पति-द्वारा प्रवाल-जैसे अपने अधरों के दंशन की तीव्र पीड़ा झेल रही थीं, समर में क्रुद्ध उस राजा ने अपने होंठ चबाते हुए,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उन्हें उससे मुक्त कर दिया।" यहाँ विरोधाभास अलंकार-द्वारा तुल्ययोगिता तथा उत्प्रेक्षालंकार की ध्वनि निकलती है।

रिपु-तिय-रद-छद अधर को दुख सब दियो मिटाय।
नृप ! तुम रन में कुपित ह्वै, अपनो अधर चबाय॥

होठ चबाने से शत्रुओं का मारा जाना विरोधाभास अलंकार है। इसमें विरोध है और यह विरोध स्वतःसंभवी है। इससे यह ध्वनि प्रकट होती है कि राजा के होठ काटते ही शत्रु का नाश हो गया। अपने अधर का काटना और शत्रु का वध, दोनों का एक समय में घटित होना एक धर्म से युक्त है। अतः, यहाँ तुल्ययोगिता अलंकारव्यंग्य है। इससे एक अन्य व्यंग्य यह भी निकलता है कि राजा का यह सोचना कि मानो मेरी क्षति भले ही हो जाय, किंतु हमारे शत्रुओं की स्त्रियों का दुःख दूर हो जाय। इसमें उत्प्रेक्षा अलंकार का व्यंग्य निकलता है।

कवि प्रौढ़ोक्तिमात्र सिद्ध—जो पदार्थ केवल कवि-कल्पना में सत्य हो और व्यावहारिक जगत में उसकी प्रत्यक्ष सिद्धि न हो, उसे कवि प्रौढ़ोक्ति-(कल्पना) मात्रसिद्ध कहते हैं। उदाहरण के लिए—यश का रंग उजला होना, कामदेव का पुष्पबाण अनुराग का रंग लाल होना आदि। इसके चार भेद हैं—

१. कविप्रौढ़ोक्तिसिद्ध वस्तु से वस्तुव्यंग्य,
२. कविप्रौढ़ोक्तिसिद्ध वस्तु से अलंकारव्यंग्य,
३. कविप्रौढ़ोक्तिसिद्ध अलंकार से वस्तुव्यंग्य,
४. कविप्रौढ़ोक्तिसिद्ध अलंकार से अलंकारव्यंग्य।

१. कविप्रौढ़ोक्तिसिद्ध वस्तु से वस्तुव्यंग्य—

कैलासस्य प्रथम शिखरे वेणुसंमूर्च्छनाभिः
श्रुत्वा कीर्त्ति विबुधरमणीगीयमानां यदीयाम्।
स्रस्तापांगा सरस बिसिनीकांडसंजातशंका
दिङ्मातंगाः श्रवणपुलिनं हस्तमावर्तयंति॥

किसी राजा के यश का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि "कैलास पर्वत की प्रमुख चोटी पर देवताओं की स्त्रियों-द्वारा बाँसुरी के राग-विशेष से राजा के यश का गान सुनकर दिग्गज सरस कमलनाल की शंका से आँखें तिरछी कर कान के पास सूंड को घुमा रहे हैं।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ राजा के यश का देवताओं की स्त्रियों-द्वारा गायन करना एवं दिग्गजों का उसे सुनना तथा श्वेत कमलनाल के सटने की शंका से उसे हटाने का प्रयत्न करना, ये सारी बातें कवि-कल्पनाप्रसूत हैं और व्यावहारिक जगत् में देखने को नहीं मिलतीं। इससे वस्तु-रूप व्यंग्य यह प्रकट होता है कि राजा के यश को ऐसे प्राणी भी समझते हैं, जिनको अर्थ का ज्ञान नहीं है। यहाँ राजा की कीर्त्ति का चमत्कारव्यंग्य है।

> **कुसुमबान सहकार के मधु केवल न सजातु।**
> **करि सम्मुख तरुनीन के स्मर कर में पकरातु ॥**

यहाँ आम की मंजरी को वसंत का बाण बनाना, कामदेव का योद्धा होना तथा स्त्रियों का लक्ष्य बनना; ये सारे वर्णन लोक-बाह्य हैं। ये सभी कवि-कल्पना-प्रसूत हैं। इससे यह व्यंग्य प्रकट होता है कि वसंत ऋतु अत्यंत कामोद्दीपक होती है।

२. *कविप्रौढ़ोक्तिमात्रसिद्ध वस्तु से अलंकार व्यंग्य—*

> **केशेषु बलात्कारेण तेन समरे जयश्रीर्गृहीता।**
> **यथा कंदराभिर्विधुरास्तस्य दृढं कंठे संस्थापिता ॥**

"उस राजा ने समर भूमि में विजयश्री को केश पकड़कर बलपूर्वक खींच लिया एवं पर्वत की कंदराओं ने उसके वैरियों को गले में दृढ़तापूर्वक लिपटकर रोक लिया।" यहाँ उत्प्रेक्षालंकार व्यंग्य है। मानो राजा के द्वारा केश पकड़कर खींचने की क्रिया देखकर मदनातुर हो कंदराएँ उसके विरोधियों के गले में लिपट जाती हैं। संग्राम में विजय देखकर शत्रुओं का कंदरा में छिपना काव्यलिंग अलंकार है।

> **निसि ही में ससि करतु है केवल भुवन प्रकाश।**
> **तेरो जस निसि-दिन करत त्रिभुवन धवल उजास ॥**

राजा के यश का त्रिभुवन में प्रकाशित होना कवि-कल्पना-संभूत है। यहाँ चंद्रमा से राजा की कीर्त्ति का आधिक्य दिखलाया गया है। राजा की कीर्त्ति का आधिक्य व्यंग्य है। यहाँ व्यतिरेक अलंकार की ध्वनि है।

३. *कविप्रौढ़ोक्तिमात्रसिद्ध अलंकार से वस्तु व्यंग्य—*

> **गाढालिंगनरभसोद्यते दयिते लघु समपसरति।**
> **मनस्विन्या मानः पीडनभीत इव हृदयात् ॥**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"प्रियतम-द्वारा नायिका का गाढ़ालिंगन करने के लिए प्रस्तुत होते ही उस मानिनी का मान दबने के डर से मानो हृदय से निकलकर भाग गया। दबने के डर से मान का हृदय से निकल जाना, उत्प्रेक्षा अलंकार है। इससे वस्तु-रूप व्यंग्य यह निकलता है कि मानिनी स्वयं आलिंगन में संलग्न हो जाती है।

सियमुख सरद कमल जिमि किमि कहि जाइ।
निसि मलीन वह निसि दिन यह बिगसाइ॥

यहाँ सीता के मुख को शरत्कालीन चंद्रमा से अधिक सुंदर कहने में व्यतिरेक अलंकार है। इससे वस्तुरूप व्यंग्य यह निकलता है कि सीता का मुख अत्यंत सुंदर है।

४. *कविप्रौढ़ोक्तिमात्रसिद्ध अलंकार से अलंकारव्यंग्य—*

या स्थविरमिव हसंती कविवदनांबुरुहबद्धविनिवेशा।
दर्शयति भुवनमंडलमन्यदिव जयति सा वाणी॥

कवि की वाणी की प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि उसकी जय हो, जो कवि के मुख-कमल में बैठकर मानो बूढ़े ब्रह्मा का उपहास करती हुई समस्त भुवनमंडल में कुछ और ही विलक्षण प्रकार का चमत्कार दिखाती है।

यहाँ ब्राह्मी सृष्टि से कवि की सृष्टि को उत्कृष्टतर दिखाया गया है। उत्प्रेक्षालंकार के द्वारा ब्रह्मा का मानो उपहास-सी करती हुई व्यतिरेक अलंकार की ध्वनि निकलती है कि कवि की वाणी अत्यंत चमत्कारजनक नूतन जगत् का निर्माण करती हुई चेतन आसन (कवि के मुख) पर रहती है, वह ब्रह्मा की भाँति जड़ आसन (कमल) पर नहीं बैठती।

नाहिन ये पावक प्रबल लुवैं चलैं चहुँ पास।
मानहु बिरह वसंत के ग्रीसम लेत उसास॥—बिहारी

वसंत ऋतु के विरह में लू के द्वारा ग्रीष्म ऋतु का श्वास लेना—इस वाच्य अर्थ में निषेध सहित उत्प्रेक्षा अर्थात् सापह्नोत्प्रेक्षा है। इससे यह प्रकट होता है कि जब ग्रीष्म ऋतु जलकर साँस ले रही है तो जीवधारी मनुष्यों की तो कोई बात ही नहीं है। इस प्रकार यहाँ अर्थापत्ति अलंकार की ध्वनि प्रकट होती है।

कविनिबद्धपात्र प्रौढ़ोक्तिमात्रसिद्ध—इसमें कवि-द्वारा निर्मित पात्रों के कथन या उक्ति का वर्णन किया जाता है। यहाँ स्वयं कवि वक्ता नहीं होता,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वरन् उसके द्वारा कल्पित पात्र बोलते हैं। ध्वनि के इस भेद में नायक-नायिका आदि के द्वारा लोक-बाह्य उक्ति का कल्पनात्मक वर्णन किया जाता है। इसके भी चार प्रकार होते हैं—

१. कविनिबद्धपात्रप्रौढ़ोक्ति वस्तु से वस्तुव्यंग्य।
२. कविनिबद्धपात्रप्रौढ़ोक्ति वस्तु से अलंकारव्यंग्य।
३. कविनिबद्धपात्रप्रौढ़ोक्ति अलंकार से वस्तुव्यंग्य।
४. कविनिबद्धपात्रप्रौढ़ोक्ति अलंकार से अलंकारव्यंग्य।

१. कविनिबद्धपात्र-प्रौढ़ोक्ति वस्तु से वस्तुव्यंग्य—

शिखरिणि क्व नु नाम कियच्चिरं
किमभिधानमसावकरोत्तपः।
सुमुखि तेन तवाधर पाटलं
दशति बिंबफलं शुकशावकः॥

"हे सुमुखि ! इस शुकशावक ने किस पहाड़ पर रहकर कितने दिनों तक तपस्या की है, जिससे वह तुम्हारे अधर के सदृश लाल बिंबा के फलों को चख रहा है?" यहाँ वक्ता कविकल्पनाप्रसूत व्यक्ति (नायक) है। इसके कथन से यह ध्वनि निकलती है कि तुम्हारे अधर का स्वाद अत्यधिक पुण्यों के द्वारा ही प्राप्त करने योग्य है।

करी विरह ऐसी तऊ, गैल न छाँड़त नीच।
दीन्हेऊ चसमा चखनि, चाहत लखै न मीच॥

—बिहारी

यहाँ वक्ता है विरह का निवेदन करनेवाली दूती। वह नायक से नायिका के विरह का वर्णन कर रही है। यहाँ मृत्यु के नेत्र के चश्मे का वर्णन किया गया है, जो इस संसार में नहीं दिखाई देता। यह वर्णन कविकल्पनाजन्य है। यहाँ नायिका का अत्यधिक दुर्बल होना व्यंजित हो रहा है। दूती के कथन का अभिप्राय यह है कि नायिका तुम्हारे विरह में अत्यधिक दुर्बल हो गई है।

२. कविनिबद्धपात्र-प्रौढ़ोक्ति वस्तु से अलंकार व्यंग्य—

सखि, विरचय्यमानस्य मम धीरत्वेनाश्वासम्।
प्रियदर्शनविभ्रंशखलक्षणे सहसेति तेनापसृतम्॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"हे सखि ! (तुमने मान की शिक्षा दी थी, वह) धैर्य, प्रियतम के दर्शन-मात्र से हमारे मान को ढाढ़स बंधाकर भाग गया।" यहाँ बिना प्रार्थना के ही प्रसन्न होने में कारण के अभाव में कार्य का होना वर्णित है। अतः विभावना अलंकार की ध्वनि हुई। अथवा प्रियतम के देखने से प्राप्त सौभाग्य के बल को धैर्य नहीं सहन कर सकता है, ऐसा उत्प्रेक्षालंकार व्यंग्य है।

मदन बान की पंचता कीन्हीं हाय अनंत।
बिरहिन कों अब पंचता दीन्हीं हाय बसंत॥

यहाँ कवि-निबद्ध नायिका की उक्ति है—'हे सखि ! वसंत ऋतु में कामदेव के बाणों की पंचता अनंत हो गई है अर्थात् वसंत ने कामदेव के पाँच बाणों की संख्या अनंत कर दी है तथा उनके द्वारा विरहियों का प्राण ले रहा है। यह वाच्यार्थ है, जो वस्तु रूप है। इससे यह व्यंग्य निकलता है मानो वसंत ने कामदेव के बाणों की पंचता को लेकर वियोगी जनों को दे दिया है। यहाँ उत्प्रेक्षालंकार की ध्वनि है।

३. कविनिबद्धपात्र-प्रौढ़ोक्तिसिद्ध अलंकार से वस्तुव्यंग्य—

आद्रार्द्रकरजरदनक्षतैस्तवलोचनयोर्मम दत्तम्।
रक्तांशुकप्रसादः कोपेन पुनरिमे नाक्रांते॥

प्रिय के शरीर पर सपत्नीकृत नखक्षतों को देखकर कुपित नायिका का कथन—"मेरे नेत्र क्रोध से भरे हुए नहीं हैं, अपितु तुम्हारे शरीर पर सपत्नी-द्वारा प्रदत्त ताजे नखक्षत एवं दंतक्षतों ने मेरे नेत्रों को लाल रंग का आवरण प्रसाद के रूप में दे दिया हैं।" यहाँ नायक के यह पूछने पर कि तुम्हारी आँखें क्रोध से लाल क्यों हैं, नायिका का यह कथन है। यहाँ उत्तरालंकार से यह व्यंग्य निकलता है कि तुम नखक्षतों को ही नहीं छिपा रहे हो, अपितु उसके प्रसार का पात्र मुझे भी होना पड़ा है अर्थात् तुम नखक्षतों को छिपाने के लिए ही मेरा आलिंगन कर रहे हो।

मरिबो को साहस कियो बढ़ी विरह की पीर।
दौरति है समुझै सखी सरसिज सुरभि समीर॥

—बिहारी

यहाँ कविनिबद्ध दूती की उक्ति है। नायिका की विरह-दशा का वर्णन करती हुई वह कहती है—वह मरने के लिए चंद्रमा, कमल एवं हवा की ओर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दौड़ रही है। यहाँ विचित्र अलंकार है। मृत्यु की कामना से चंद्रमा, कमल एवं सुरभित वायु की ओर दौड़ना इच्छा के विरुद्ध प्रयत्न करना है। इससे यह ध्वनि निकलती है कि नायिका का विरह-दुःख अत्यधिक बढ़ गया है।

४. कविनिबद्धपात्र-प्रौढ़ोक्ति अलंकार से अलंकार व्यंग्य—

> महिला सहस्रभरिते तव हृदये सुभग, सा अमांती।
> अनुदिनमनन्यकर्मा अंगं तन्वपि तनयति॥

यहाँ विरह-व्यथिता नायिका की स्थिति का वर्णन करनेवाली नायिका की उक्ति है—"सुभग, सहस्रों स्त्रियों से भरे तुम्हारे हृदय में समा न सकने के कारण वह तन्वी सभी कार्यों को छोड़कर अपने कृश शरीर को और भी दुर्बल बना रही है।" यहाँ काव्यलिंग अलंकार से विशेषोक्ति अलंकार की—शरीर को कृश बनाने पर भी तुम्हारे हृदय में नहीं समाने की—ध्वनि निकलती है। 'शरीर के कृश होने पर भी स्थान नहीं मिल रहा है,' यह विशेषोक्ति अलंकार की ध्वनि निकलती है।

> हिय तेरो बहुतिय भर्‌यौ मिलत न ताको ठौर।
> छाँडि सबहि वह करत नित कृस तन अब कृस और॥

अर्थश्लेष—अर्थालंकार का एक प्रकार। [दे० श्लेष] जब स्वाभाविक एकार्थप्रतिपादक शब्दों के द्वारा अनेक अर्थ प्रकट हों तो अर्थश्लेष होता है।

अर्थांतरैकवाचकता—वाक्यदोष का ९वाँ भेद। [दे० वाक्यदोष]

अर्थांतर संक्रमित वाच्यध्वनि—लक्षणामूलाध्वनि का प्रथम भेद। [दे० लक्षणामूलाध्वनि]

अर्थांतर (अन्य अर्थ) संक्रमित (चला जाना) वाच्यध्वनि का अर्थ है, 'वाच्यार्थ का अन्य अर्थ में संक्रमण करना या चला जाना (बदल जाना)।' जब वाच्यार्थ अपने स्वरूप में अनुपयुक्त होने के कारण अर्थांतर (अपने से भिन्न अर्थ) में संक्रमित हो जाय या बदल जाय तो वहाँ अर्थांतरसंक्रमित-वाच्यध्वनि होती है।

यत्र स्वयमनुपयुज्यमानो मुख्योऽर्थः स्वविशेषरूपेऽर्थांतरे परिणमति तत्र मुख्यार्थस्य स्वविशेषरूपार्थांतरसंक्रमितवादर्थांतरसंक्रमितवाच्यम्।

—साहित्यदर्पण, ४/३ वृत्ति

> कदली कदली करभः करभः करिराजकरः करिराजकरः।
> भुवनत्रितयेऽपिबिभर्ति तुलामिदमूरुयुगं न चमूरुदृशः॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"कदली (केला) तो कदली ही है, करभ करभ ही है तथा हाथी की सूँड़ भी हाथी की सूँड़ ही है। मृगनयनी सीता की दोनों जाँघों की उपमा संसार के किसी भी पदार्थ से देने योग्य नहीं है।" यहाँ प्रथम कदली का अर्थ केला एवं द्वितीय कदली का अर्थ केले का गुण जड़ता है। दूसरा कदली शब्द मुख्यार्थ में बाधित होकर अन्य अर्थ में परिवर्तित हो जाता है। इसी प्रकार करभ एवं करिराजकर भी अन्य अर्थ में बदल जाते हैं। इसका अर्थ होगा कदली तो जड़ पदार्थ है।

तो क्या अबलाएँ सदैव ही अबलाएँ हैं बेचारी।—गुप्तजी

यहाँ द्वितीय अबला शब्द नारियों की 'निर्बलता' के अर्थ में संक्रमित कर गया है। लाक्षणिक अर्थ होगा कि स्त्रियाँ निर्बल हैं; पर इससे व्यंग्यार्थ यह प्रकट होता है कि स्त्रियों को असमर्थ और पराधीन नहीं समझना चाहिए और न वे दया का पात्र बनें।

यह पदगत तथा वाक्यगत, दोनों प्रकार का होता है। पदगत में केवल शब्द का अन्य अर्थ में संक्रमण होता है और वाक्यगत में संपूर्ण वाक्य ही अन्य अर्थ में परिवर्तित हो जाता है।

सेना छिन्न, प्रयत्न भिन्न कर पा मुराद मनचाही।
कैसे पूजूँ गुमराही को मैं हूँ एक सिपाही॥

—भारतीय आत्मा

यहाँ 'मैं हूँ एक सिपाही' यह पूरा वाक्य ही अन्य अर्थ में बदल गया है—देशप्रेमी या वीर के अर्थ में।

अर्थांतरन्यास—सादृश्यमूलक अलंकार।

सामान्य का विशेष के साथ अथवा विशेष का सामान्य के साथ समर्थन करना अर्थांतरन्यास अलंकार है। अर्थांतरन्यास का अर्थ है (अर्थांतर) अन्य अर्थ का न्यास या रखना। इस अलंकार में किसी कथन का समर्थन करने के लिए अन्य अर्थ का न्यास होता है अर्थात् सामान्य बात का विशेष से एवं विशेष का सामान्य कथन से समर्थन किया जाता है। अर्थांतरन्यास के मूल में सादृश्य होता है, जो शाब्द होता है, आर्थ या व्यंग्य नहीं।

अर्थ्यंते वर्णनीयत्वेन इष्यते इति अर्थः प्रस्तुतम्। अन्य अर्थ अर्थांतरं अप्रस्तुतम्। तस्य (अप्रस्तुतस्य) प्रस्तुत समर्थकत्वेन न्यासः अर्थांतरन्यासः।

—गजेंद्र गदकर-काव्यप्रकाश, पृ० ३५० टिप्पणी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अर्थांतरन्यास के पुरस्कर्ता आचार्य भामह हैं, तत्पश्चात् इसका निरूपण सभी आचार्यों ने किया। भामह के अनुसार पूर्व अर्थ से संबद्ध कथित अर्थ के अतिरिक्त अन्य अर्थ के वर्णन में अर्थांतरन्यास अलंकार होता है। इन्होंने बताया कि 'हि' शब्द के प्रयोग से यह अलंकार अधिक स्पष्ट होता है।

उपन्यसनमन्यस्य यदर्थस्योदितादृते।
ज्ञेयः सोऽर्थांतरन्यासः पूर्वार्थानुगतो यथा॥
हि शब्देनापि हेत्वर्थप्रथनादुक्तसिद्धये।
अयमर्थांतरन्यासः सुतरां व्यज्यते यथा॥

—काव्यालंकार, २/७१/७३

दंडी प्रस्तुत कथन के द्वारा अन्य या अप्रस्तुत कथन के साथ समर्थन को अर्थांतरन्यास कहते हैं। इन्होंने इसके आठ भेदों का वर्णन किया है—विश्वव्यापी, विशेषस्थ, श्लेषाबिद्ध, विरोधवान्, अयुतकारी, युक्तात्मा, युक्तायुक्त तथा विपर्यय।

ज्ञेयः सोऽर्थांतरन्यासः सुतरां प्रस्तुत्य किंचन।
तत्साधनसमर्थस्य न्यासो योऽन्यस्य वस्तुनः॥

—काव्यादर्शः, २/१६९

उद्भट ने अर्थान्तरन्यास की सामान्य परिभाषा न देकर उसके चार तत्वों का निरूपण कर चार भेदों का वर्णन किया है।

(क) 'हि' का प्रयोग कर समर्थक का प्रथम कथन कर समर्थ्य का बाद में कथन करना।

(ख) समर्थक का पहले कथन कर समर्थ्य का बाद में कथन करना, पर 'हि' की अनुक्ति।

(ग) समर्थ्य का प्रथम उल्लेख तथा समर्थक का बाद में एवं 'हि' का अनिवार्य प्रयोग।

(घ) समर्थ्य का प्रथम कथन कर समर्थक का बाद में उल्लेख; किंतु 'हि की अनुक्ति।

समर्थकस्य पूर्वं यद्वचोन्यस्य च पृष्ठतः।
विपर्ययेण वा यत्साद्धिशब्दोक्त्यान्यथापि वा।
ज्ञेयः सोर्थांतरन्यासः प्रकृतार्थसमर्थनात्।
अप्रस्तुतप्रशंसाया दृष्टांताच्च पृथक् स्थितः॥

—काव्यालंकार सार संग्रह, २४५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वामन के अनुसार कथित अर्थ की सिद्धि के लिए अन्य अर्थ के न्यास को अर्थांतरन्यास कहते हैं।

उक्तसिद्धये वस्तुनोऽर्थांतरस्यैव न्यसनमर्थांतरन्यासः।

—काव्यालंकार सूत्र वृत्ति, ४/३/२१

रुद्रट ने प्राचीन आचार्यों में सर्वप्रथम सामान्य-विशेषभाव का समावेश किया तथा इसकी सादृश्यमूलकता स्वीकार की। इन्होंने विशेष का सामान्य के साथ तथा सामान्य का विशेष के साथ समर्थन को अर्थांतरन्यास कहा।

धर्मिणमर्थविशेषं सामान्यं वाभिधाय तत्सिद्ध्यै।
यत्र सधर्मकमितरं न्यस्येत्सोऽर्थांतरन्यासः।
पूर्ववदभिधायैकं विशेषसामान्ययो द्वितीयंतु।
तत्सिद्धयेऽभिदध्याद्विपरीतं यत्र सोऽन्योऽयम्॥

—काव्यालंकार, ८/७९/८२

रुद्रट साधर्म्य तथा वैधर्म्य के आधार पर दो भेदों का निरूपण करते हैं। भोज ने बताया कि अर्थांतरन्यास में अर्थांतर-द्वारा समर्थन साधर्म्य के साथ-ही-साथ वैधर्म्य-द्वारा भी होता है।

ज्ञेयः सोऽर्थांतरन्यासो वस्तु प्रस्तुत्य किंचन।
तत्साधन समर्थस्य न्यासो योऽन्यस्य वस्तुनः॥
स उपन्यस्तवस्तूनां साधर्म्येण च कथ्यते।
वैधर्म्येण च विद्वद्भिर्वैपरीत्येन कुत्रचित्॥

—सरस्वतीकठाभरण, ४/६७/६८

मम्मट ने पूर्ववर्ती आचार्यों के विवेचन का समाहार कर इस अलंकार का रूप व्यवस्थित किया।

इन्होंने अर्थांतरन्यास की परिभाषा प्रस्तुत करते हुए बताया कि साधर्म्य तथा वैधर्म्य के द्वारा सामान्य का विशेष के साथ एवं विशेष का सामान्य के साथ समर्थन में यह अलकार होता है।

सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते।

सत्तु सोऽर्थांतरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा॥—काव्य प्रकाश, १०/१०९

रुय्यक ने मम्मट का अनुकरण करते हुए भी कारण-कार्य-भाव के समर्थन का उल्लेख कर नया विचार दिया। इनके मत से कथित अर्थ का सामान्य का विशेष भाव के साथ तथा कार्य का कारण के साथ समर्थन में अर्थांतरन्यास अलंकार होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सामान्यविशेष कार्यकारणभावाभ्यां निर्दिष्ट प्रकृतसमर्थनमर्थांतरन्यासः।.... ....तत्र सामान्यं विशेषस्य, विशेषोवासामान्यस्य समर्थक इति द्वौ भेदौ। तथा कार्यकारणस्य कारणं वा कार्यस्य समर्थकमिति द्वौ भेदौ। तत्र भेदचतुष्टये प्रत्येकं साधर्म्यं वैधर्म्याभ्यां भेदद्वयेऽष्टौभेदा :॥

—अलंकारसर्वस्व, पृ० १३९

रुय्यक ने आठ प्रकारों का कथन किया है। विशेष का सामान्य से समर्थन एवं सामान्य का विशेष के साथ समर्थन में दो भेद, पुनः कारण का कार्य के साथ तथा कार्य का कारण के साथ समर्थन में दो भेद। इनके भी साधर्म्य एवं वैधर्म्य के आधार पर दो-दो भेद होने पर कुल आठ भेद हुए। परवर्ती आचार्यों में जयदेव, शोभाकर, विद्याधर, अप्पय दीक्षित, पंडितराज जगन्नाथ तथा विश्वेश्वर पंडित ने मम्मट के आधार पर और विद्यानाथ तथा विश्वनाथ ने रुय्यक के आधार पर अर्थांतरन्यास का वर्णन किया। इनके विवेचन में किसी प्रकार का नावीन्य नहीं है।

भवेदर्थांतरन्यासोऽनुषक्तार्थांतराभिधा ॥

—चंद्रालोक, ५/६८

विशेषस्यानेन समर्थनमर्थांतरन्यासः।
अयं साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां द्विविधः॥

—अलंकार रत्नाकर, पृ०, २९-३०

सामान्येन विशेषः सामान्यं वा यदाविशेषेण।
कथितः समर्थ्यतेऽर्थो भवति तदार्थांतरन्यासः॥

—एकावली, ८/२८

उक्तिरर्थांतरन्यासः स्यात् सामान्यविशेषयोः।

—कुवलयानंद, १२२

सामान्येन विशेषस्य, विशेषेण सामान्यस्य
वा यत्समर्थनं तदर्थांतरन्यासः॥

—रसगंगाधर, पृ० ६३४

यदि सामान्य विशेषौ समर्थयेते विशेष सामान्ये।
साधर्म्याद्वैधर्म्यादपि वा सोऽर्थांतरन्यासः॥

यत्र विशेषेण सामान्यम्, सामान्येन विशेषः समर्थ्यते सोऽर्थांतरन्यासः। साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां प्रत्येकं द्वैविध्यमिति भेदचतुष्टयमित्यर्थः॥

—अलंकार कौस्तुभ, पृ० ३१८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कार्यकारणसामान्यविशेषाणां परस्परम् ।
समर्थनं यत्र सोऽर्थांतरन्यास उदाहृतः ॥

—प्रतापरुद्रीय, पृ० ३२४

सामान्यं वा विशेषेण विशेषस्तेन वा यदि ।
कार्यं च कारणेनेदं कार्येण च समर्थ्यते ॥
साधर्म्येणेतरेणार्थांतरन्यासोऽष्टधा ततः ॥

—साहित्यदर्पण, १०/६२

कार्यकारणभाव में अर्थांतरन्यास की स्थिति स्वीकार करने के लिए जयरथ तथा पंडितराज ने रुय्यक के मत का खंडन किया है। इनके अनुसार कार्यकारकभाव के समर्थन में काव्यलिंग होगा, अर्थांतरन्यास नहीं। विमर्शिनी, पृ० १२६ तथा रसगंगाधर, पृ० ६३८ (काव्यमाला संस्करण)

रीतिकालीन आचार्यों का अर्थांतरन्यास-निरूपण 'काव्यप्रकाश' तथा 'कुवलयानंद' पर आधृत है। चिंतामणि तथा कुलपति ने 'काव्यप्रकाश' के लक्षण का भावानुवाद किया तो जसवंतसिंह, मतिराम और पद्माकर आदि ने 'कुवलयानंद' के लक्षण को अनूदित किया।

करत परस्पर समर्थन जो सामान्य विशेष ।
सो अर्थांतरन्यास कहि लखि पंडितगन लेष ॥

—कविकुलकल्पतरु, ३/२४९

जहाँ अर्थ सामान्य कौ, पोषण करै विशेष ।
पुनि सामान्य विशेष कौ जेहि ठां पोषन लेष ॥
सो अर्थांतरन्यास है और अर्थ जहाँ होय ।
स्वधर्म विधर्म भेद करि चार भाँति है सोय ॥

—रसरहस्य, ८/११८,११६

सामान्य तें बिसेष दृढ़ तब अर्थांतरन्यास ॥

—भाषाभूषण, १५१

कहि बिसेस सामान्य पुनि कै सामान्य विसेष ।
सो अर्थांतरन्यास है, बरनत मति उल्लेख ॥

—ललितललाम, २८९

जहँ सामान्य बिसेष को, करै समर्थन अर्थ ।
है अर्थांतरन्यास कहि, अर्थहि उलटि समर्थ ॥

—पद्माभरण, २०५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भेद—अर्थांतरन्यास अलंकार के चार भेद माने गए हैं।

१. प्रथम अर्थांतरन्यास—जब सामान्य का विशेष के साथ साधर्म्य-द्वारा समर्थन हो तो प्रथम अर्थांतरन्यास अलंकार होता है।

(क) निज दोषावृतमनसामतिसुंदरमेव भाति विपरीतम्।
पश्यति पित्तोपहतः शशिशुभ्रं शंखमपि पीतम्॥

जिसका मन अपने ही दोषों से व्याप्त है, उसे अत्यंत सुंदर वस्तु भी बुरी मालूम पड़ती है। पित्त या पांडु रोग से पीड़ित व्यक्ति को चंद्रमा के समान उज्ज्वल शंख भी पीला दिखाई पड़ता है। यहाँ साधर्म्य-द्वारा विशेष से सामान्य का समर्थन है। प्रथम पंक्ति में सामान्य कथन है और उसका समर्थन विशेष कथन से किया गया है।

(ख) गुन ग्राहक के पास ही होत गुनी कौ मान।
निकट जौहरी के खुलत जौहर रतन निदान॥

'गुणग्राहक के पास ही गुणी का आदर होता है।' यह सामान्य कथन है (पूर्वार्द्ध में) इसका समर्थन उत्तरार्द्ध के वाक्य-द्वारा किया गया है कि जौहरी के पास ही रत्न की वास्तविकता प्रकट होती है। यह विशेष कथन है।

२. द्वितीय अर्थांतरन्यास—जब सामान्य का विशेष के साथ वैधर्म्य-द्वारा समर्थन हो तो द्वितीय अर्थांतरन्यास होगा।

(क) गुणानामेव दौरात्म्यात् धुरि धुर्यो नियुज्यते।
असंजातकिणस्कंधः सुखं स्वपिति गौर्गलिः॥

गुण के दोष से कार्य-कुशल व्यक्ति को कार्य-भार से दबा रहना पड़ता है। उत्तम बैल सदा बोझ को ढोता रहता है; किंतु दुष्ट या गर बैल के कंधे पर दाग भी नहीं पड़ता और वह सुख से सोता रहता है। यहाँ 'गुणानां नियुज्यते' के द्वारा सामान्य वस्तु का कथन कर उसका वैधर्म्य के द्वारा उत्तरार्द्ध में दुष्ट बैलरूपा विशेष कथन से समर्थन किया गया है।

(ख) कोटि जतन कोऊ करै, परै न प्रकृतिहिं बीच।
नलबल जल ऊँचो चढ़ै, अंत नीच को नीच॥

'कोई करोड़ों उपाय करे, पर किसी की प्रकृति में अंतर नहीं पड़ता' यह सामान्य कथन है और निषेधात्मक भी। इसका समर्थन नल के विशेष वाक्य से किया गया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

३. *तृतीय अर्थांतरन्यास*—जब विशेष का सामान्य से साधर्म्य-द्वारा समर्थन किया जाय तो तृतीय अर्थांतरन्यास होगा।

(क) सुसितवसनालंकारायां कदाचन कौमुदी-
महसि सुदृशि स्वैरं यांत्या गतोऽस्तमभूद्विधुः।
तदनु भवतः कीर्त्तिः केनाप्यगीयत येन सा
प्रियगृहमगान्मुक्ताशंका क्वनासि शुभप्रदः॥

"हे राजन्! एक बार चाँदनी के उजाले में वस्त्र तथा आभूषणों से सुसज्जित होकर नायिका अभिसार के लिए प्रिय के पास जा रही थी, उसी समय चंद्रमा डूब गया और चारों ओर अँधेरा छा गया। तत्क्षण किसी ने आपके यश का गान किया और वह निःशंक होकर प्रियतम के पास चली गई। आप कहाँ नहीं कल्याणकारक हैं?"

(ख) उड़ाती है तू घर में कीच।
नीच ही होते हैं बस नीच॥—साकेत

यहाँ मंथरा को संबोधित कर कैकेयी का कथन है। यहाँ प्रथम वाक्य में विशेष कथन है और द्वितीय में सामान्य। और, प्रथम वाक्य का द्वितीय वाक्य से साधर्म्य-द्वारा समर्थन किया गया है।

४. *चतुर्थ अर्थांतरन्यास*—जब विशेष का सामान्य से वैधर्म्य-द्वारा समर्थन हो तो चतुर्थ अर्थांतरन्यास अलंकार होगा।

(क) अहो हि मे बह्वपराद्धमायुषा यदप्रियं वाच्यमिदं मयेदृशम्।
त एव धन्याः सुहृदः पराभवं जगत्यदृष्ट्वैव हि ये क्षयं गताः॥

मेरी दीर्घ आयु ने मेरा बड़ा अपकार किया है, जो मुझे अपने मित्र के इस अप्रिय समाचार का कथन करना पड़ा है। संसार में वे ही लोग धन्य हैं, जो मित्र की आपत्ति को बिना देखे ही मृत्यु को प्राप्त होते हैं। यहाँ प्रथम पंक्ति में विशेष कथन है, जिसका समर्थन सामान्य कथन के साथ द्वितीय पंक्ति से किया गया है। यह कथन निषेधात्मक है।

(ख) हरि ल्यायो हरि कल्पतरु, जीति इंद्र को ताहि।
यह अचरज न बड़ेन को, है दुर्लभ कछु नाहिं॥

पूर्वार्द्ध में विशेष वाक्य है, जिसका समर्थन उत्तरार्द्ध के सामान्य वाक्य से किया गया है। 'है दुर्लभ कछु नाहिं' में समर्थन निषेधात्मक है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अर्थांतरन्यास और दृष्टांत—दृष्टांत के दोनों ही वाक्यों में बिंब-प्रतिबिंब भाव होता है तो अर्थांतरन्यास में समर्थ्यसमर्थक भाव। दृष्टांत में या तो दोनों वाक्य सामान्य होते हैं या विशेष; पर अर्थांतरन्यास में एक वाक्य सामान्य होता है और दूसरा विशेष।

अर्थांतरन्यास और काव्यलिंग—काव्यलिंग का समर्थ्य-समर्थक भाव कार्य-कारण पर आश्रित रहता है; किंतु अर्थांतरन्यास में सामान्यविशेष भाव पर। अर्थांतरन्यास में दोनों ही वाक्य परस्पर स्वतंत्र होते हैं एवं स्वतः में पूर्ण; पर काव्यलिंग में दोनों निरपेक्ष या स्वतंत्र नहीं होते। काव्यलिंग में दोनों ही वाक्य प्रस्तुत होते हैं; किंतु अर्थांतरन्यास में एक वाक्य प्रस्तुत होता है और दूसरा अप्रस्तुत।

अर्थापत्ति—वाक्यन्यायमूलक अलंकार। दंडापूपिकान्याय से अन्य अर्थ की सिद्धि होने के वर्णन को अर्थापत्ति अलंकार कहते हैं। 'अर्थापत्ति' का अर्थ है अर्थ की आपत्ति या आ पड़ना। इस अलंकार में एक कार्य की सिद्धि से या एक कार्य करते हुए अन्य अशक्य कार्य की स्वतः सिद्धि का वर्णन किया जाता है। इसमें 'दंडापूपिकान्याय' एवं 'कैमुतिकन्याय' के आधार पर अन्य कार्य की सिद्धि का उल्लेख होता है। दंडापूपिकान्याय का अर्थ दंड एवं पुए की रीति से है। डंडे में पुआ खोंसकर रखा हुआ था, जिसे चूहे ने खा लिया। जब उसने डंडे को खा लिया तो उसमें संलग्न मालपुए को अवश्य खा लिया होगा अर्थात् डंडा खानेवाले चूहे के द्वारा उसमें लगे मालपुए का खा जाना स्वतः सिद्ध हो जाता है। अर्थापत्ति अलंकार में इसी रीति से एक प्रधान कार्य की सिद्धि के साथ अन्य अप्रधान कार्य की स्वतः सिद्धि की कल्पना की जाती है। कैमुतिक या कैमुत्यन्याय का अभिप्राय यह है कि जिसके द्वारा कठिन या दुष्कर कार्य सिद्ध किया जा सकता है, उससे सुगम कार्य संपन्न करना क्या कठिन है? कठिन कार्य के संपन्न होने से सुगम कार्य की सिद्धि में तर्कानुकूल संगति दिखाई पड़ती है। इसमें श्लिष्ट शब्दों के प्रयोग से अधिक रमणीयता आ जाती है। जैसे कहा जाय कि जब तुम्हारे मुख ने चंद्रमा को अपने सौंदर्य से जीत लिया तो कमल की क्या बात है? यहाँ चंद्रमा को जीत लेने से कमल को जीत लेना स्वतः सिद्ध हो जाता है। 'अर्थापत्ति' मीमांसादर्शन का एक प्रमाण है, जिसमें अनुपपद्यमान अर्थ को देखकर उसके उपपादक अर्थ की कल्पना की जाती है। मीमांसक इसी के आधार (अर्थापत्ति) पर एक कार्य की सिद्धि से अन्य कार्य की सिद्धि की कल्पना करते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस अलंकार का सर्वप्रथम विवेचन भोज ने किया है, तत्पश्चात् रुय्यक, शोभाकर, जयदेव, विद्याधर, विद्यानाथ, विश्वनाथ, दीक्षित तथा पंडितराज जगन्नाथ ने इसका निरूपण किया। भोज से पूर्व भरत के 'नाट्य-शास्त्र' में ३६ 'काव्यलक्षणों' के अंतर्गत अर्थापत्ति का उल्लेख है, जिसमें बताया गया है कि अर्थांतर के कथन से अन्य अर्थ का बोध होने पर अर्थापत्ति होती है।

अर्थांतरकथने यत्रान्यार्थः प्रतीयते।
वाक्यमाधुर्यसंयुक्तः सार्थापत्तिरुदाहृता ।।

—नाट्यशास्त्र, १६/३२

भोज ने बताया कि जब प्रत्यक्षादि प्रमाणों-द्वारा ज्ञात अर्थ उपपन्न न हो और उससे अन्य अर्थ का ज्ञान हो तो अर्थापत्ति अलंकार होगा।

प्रत्यक्षादि प्रतीतोऽर्थो यस्तथानोपपद्यते।
अर्थांतरं च गमयत्यर्थापत्तिं वदंति ताम् ।।

—सरस्वतीकंठाभरण, ३/५२

रुय्यक ने दंडापूपिकान्याय से अन्य अर्थ की प्रतीति को अर्थापत्ति अलंकार कहा। सर्वप्रथम दंडापूपिकान्याय का समावेश कर रुय्यक ने इसे वैज्ञानिक आधार प्रदान किया।

दंडापूपिकयार्थांतरापतनमर्थापत्तिः। ततश्च यथा दंडभक्षणादपूपभक्षणमर्थायातं तद्वत्कस्यचिदर्थस्य निष्पत्तौ सामर्थ्यात्समानन्यायत्वलक्षण यदर्थांतरमापतति सार्थापत्तिः।

--अलंकार सर्वस्व, पृ० १९६-९८

परवर्त्ती आचार्यों में शोभाकर, विद्याधर, विद्यानाथ एवं विश्वनाथ ने रुय्यक के लक्षण को आधार बनाकर अर्थापत्ति अलंकार का वर्णन किया है। रुय्यक ने इसके दो भेदों का कथन किया है—प्राकरणिक अर्थ से अप्राकरणिक अर्थ का आना तथा अप्राकरणिक अर्थ से प्राकरणिक अर्थ की आपत्ति।

इयं च द्विविधा प्राकरणिकादप्राकरणिकस्यार्थस्यापतने एकः प्रकारः। अप्राकरणिकात् प्राकरणिकस्यार्थादापतने द्वितीयः।

—अलंकार सर्वस्व, पृ० १९६-९८

दंडापूपिकयापतनमर्थापत्तिः ।।८१।।

मूषकैर्दंडानां भक्षणेऽपूपभक्षणमर्थात् सिद्धमिति न्यायो दंडापूपिका अनेन न्यायेन कस्यचिदर्थस्य निष्पत्तावर्थादर्थांतरस्यापत्तिरिति। अस्याश्च प्रकृतात्प्रकृतस्याप्रकृतात्तथाविधस्य प्रकृतादन्यस्य विपर्ययेण वार्थादर्थांतरस्यापत्तिरिति चत्वारो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भेदाः। प्रत्येकमर्थांतरस्य साम्यं न्यूनताधिकत्वं वेति द्वादश भेदाः। तत्रापि संभवेऽसंभवोऽसंभवे च संभव इति चतुर्विंशतिः ॥

—अलंकाररत्नाकर, पृ० १३९

शोभाकर ने अर्थापत्ति के चौबीस भेदों का उल्लेख किया है।

दंडापूपिकया यत् स्यादेवार्थांतरापतनम्।
अर्थापत्तिरियं सा कथितालंकारपारगैर्द्वेधा ॥

—एकावली, ८/५५

एकस्यावस्तुनो भावाद्यत्र वस्त्वन्यपदापतेत्।
कैमुत्यन्यायतः सा स्यादर्थापत्तिरलंक्रिया ॥

—प्रतापरुद्रीय, पृ० ३२५

दंडापूपिकयान्यार्थागमोऽर्थापत्तिरिष्यते ॥

—साहित्यदर्पण, १०/८३

जयदेव ने अर्थापत्ति के निरूपण में किसी न्याय का सहारा न लेकर एक पदार्थ की सिद्धि से अन्य पदार्थ की सिद्धि में इसका अलंकारत्व सिद्ध किया।

अर्थापत्तिः स्वयं सिध्येत् पदार्थांतर वर्णनम् ॥

—चंद्रालोक, ५/३७

विद्यानाथ ने कैमुत्यन्याय का सर्वप्रथम समावेश कर इस अलंकार के स्वरूप का वर्णन किया है।

दीक्षित ने विद्यानाथ के कैमुत्यन्याय को अपनाकर अर्थापत्ति का वर्णन किया। इनके अनुसार कैमुत्यन्याय से अर्थ-सिद्धि को अर्थापत्ति कहते हैं। ये चमत्कारपूर्ण अर्थापत्ति को अलंकारत्व प्रदान करने के पक्ष में हैं।

कैमुत्येनार्थसंसिद्धिः काव्यार्थापत्तिरिष्यते।
तांत्रिकाभिमतार्थापत्तिव्यावर्तनाय काव्येति विशेषणम् ॥

—कुवलयानंद, १२०

पंडितराज ने दीक्षित के मत का खंडन करते हुए बताया कि अर्थापत्ति में कैमुत्यन्याय की स्थिति न होकर 'तुल्यन्याय' की स्थिति मान्य है। चूँकि कैमुत्यन्याय न्यून अर्थ में ही होता है; अतः अधिक अर्थवाली अर्थापत्ति की उसमें अतिव्याप्ति हो जाती है। पंडितराज के मत से तुल्यन्याय से अन्य अर्थ की प्रतीति में अर्थापत्ति अलंकार होता है। न्याय से इनका अभिप्राय कारण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का है। इनके मत से कारण-साम्य के द्वारा अन्य अर्थ के उपस्थित हो जाने में ही यह अलंकार (अर्थापत्ति) होगा। इन्होंने शोभाकर की भाँति इसके चौबीस भेदों का उल्लेख किया है। प्रथम इसके चार प्रकार माने गए—प्रकृत से प्रकृत की प्रतीति में, अप्रकृत से अप्रकृत की, प्रकृत से अप्रकृत की तथा अप्रकृत से प्रकृत की प्रतीति में। ये पुनः समानता, अधिकता एवं न्यूनता के आधार पर बारह हुए और भावकत्व तथा अभावकत्व के कारण चौबीस।

'कैमुत्येनार्थसंसिद्धिः काव्यार्थापत्तिरिष्यते' इति कुवलयानंदकृता अस्या लक्षणं निर्मितं, तदसत्। कैमुतिकन्यायस्य न्यूनार्थविषयत्वेनाधिकार्थपत्तावव्याप्तेः॥

—रसगंगाधर, पृ० ६५७

रीतिकालीन आचार्य चिंतामणि ने 'चद्रालोक' के आधार पर तथा जसवंतसिंह, मतिराम, दास और पद्माकर ने 'कुवलयानंद' का अनुकरण कर अर्थापत्ति अलंकार का निरूपण किया।

एक वस्तु के भए तें और भई जो होइ।
ताको कहिए यह कहा अर्थापत्ति सु कोइ॥

—कविकुल कल्पतरु, ३/२५४

कवि कैमूतिक न्याय कों काव्यार्थापत्ति गात।
काव्यार्थापत्ति कों सबै इहि विधि बरनत जात॥

—भाषाभूषण, १४६

जो पै जीतो यह कहा, इहिं बिधि जहाँ बखान।
कहत काव्यपद सहित तहँ अर्थापत्ति सुजान॥

—ललितललाम, २८७

वह जु कियो तौ यह कहा, यों काव्यार्थापत्ति॥

—पद्माभरण, १६६

उदाहरण—

(क) हार्योऽयं हरिणाक्षीणां लुठति स्तनमंडले।
मुक्तानामप्यवस्थेयं के वयं स्मरकिंकराः॥

"यह हार मृगनयनी स्त्रियों के स्तन पर लोट रहा है। जब मुक्तों या मोतियों की यह स्थिति है तो हमलोगों के समान कामियों या काम के दासों की क्या स्थिति होगी।" यहाँ यह बतलाया गया है कि जब मुक्त पुरुष स्तनों का स्पर्श कर रहे हैं तो साधारण व्यक्ति रमणियों के कुच का स्पश क्यों न करे। यहाँ 'मुक्त' पद श्लिष्ट है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(ख) जीत्यौ जब चंदहिं अमंद मुख तेरो,
तब 'चिंतामनि' मुकुर सरोज सनमाने को ॥

जब नायिका के मुख का सौंदर्य चंद्रमा से भी बढ़कर है तो आईने और कमल की क्या बात है ?

अर्थालंकार—अर्थगत अलंकरण या चमत्कार होने पर अर्थालंकार होता है। इसका सौंदर्य या चमत्कार अर्थ में निहित रहता है या अर्थ के कारण होता है। इसमें शब्द-परिवर्तन की क्षमता होती है। आचार्य मम्मट ने अन्वयव्यतिरेक-सिद्धांत को शब्दालंकार एवं अर्थालंकार का नियामक माना है। किसीके विद्यमान रहने पर किसी की सत्ता का बना रहना अन्वय एवं किसी के अभाव में कोई न रहे तो उसे व्यतिरेक कहते हैं। [दे० अन्वय-व्यतिरेक]

तत्सत्त्वे तत्सत्त्वम् अन्वयः, तदसत्त्वे तदसत्त्वं व्यतिरेकः ।

अर्थालंकार में अर्थ का प्राधान्य होता है और शब्द-परिवर्तन के कारण भी इसका चमत्कार नष्ट नहीं होता, जबकि शब्दालंकार में शब्द-परिवर्तन से उसका अलंकरण नष्ट हो जाता है। अर्थालंकार में शब्द-परिवर्तन की क्षमता होती है अर्थात् किसी शब्द के बदले यदि उसका पर्यायवाची शब्द रख दिया जाय, तब भी उसका सौंदर्य बना रहेगा। उदाहरण के लिए कहा जाय कि 'सीता का मुख चंद्रमा के सदृश मोहक है', यदि यहाँ चंद्रमा के बदले इंदु एवं सदृश के बदले समान, सीता के बदले जानकी तथा मोहक के बदले आकर्षक रख दिया जाय तो भी इसका चमत्कार बना रहेगा, अक्षुण्ण रहेगा। अतः, शब्दालंकार और अर्थालंकार में यही अंतर हुआ कि जब शब्द-परिवर्तन के कारण चमत्कार नष्ट हो जाय तो शब्दालंकार और शब्द-परिवर्तन के बाद भी चमत्कार बना रहे तो अर्थालंकार होगा। [दे० शब्दालंकार]

अर्थालंकार की संख्या अधिक है और इसके लगभग एक सौ प्रकार होते हैं। वे हैं—उपमा, अनन्वय, उपमेयोपमा, रशनोपमा, मालोपमा, समुच्चयोपमा, प्रतीप, परिणाम, उल्लेख, स्मरण, संदेह, भ्रांतिमान, अपह्नुति, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, तुल्ययोगिता, दीपक, कारकदीपक, मालादीपक, प्रतिवस्तूपमा, दृष्टांत, उदाहरण, निदर्शना, व्यतिरेक, सहोक्ति, विनोक्ति, समासोक्ति, परिकर, परिकरांकुर, अर्थश्लेष, अप्रस्तुतप्रशंसा, पर्यायोक्ति,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

व्याजस्तुति, आक्षेप, विरोधाभास, विभावना, विशेषोक्ति असंभव, असंगति, विषम, सम, विचित्र, अधिक, अल्प, अन्योन्य, विशेष, व्याघात, कारणमाला, एकावली, सार, यथासंख्य, पर्याय, परिवृत्ति, परिसंख्या, विकल्प, समुच्चय, समाधि, प्रत्यनीक, अर्थापत्ति, काव्यलिंग, अर्थांतरन्यास, विकस्वर, प्रौढ़ोक्ति, ललित, उल्लास, अवज्ञा, लेश, मुद्रा, तद्गुण, अतद्गुण, मीलित, सामान्य, उन्मीलित, उत्तर, सूक्ष्म, व्याजोक्ति, लोकोक्ति, स्वभावोक्ति, भाविक, उदात्त, निरुक्ति, अत्युक्ति, हेतु, अनुमान, मिथ्याध्यवसिति, प्रहर्षण, विषादन, अनुज्ञा, तिरस्कार, रत्नावली, अनुगुण, गूढ़ोक्ति, विवृतोक्ति, लोकोक्ति, छेकोक्ति, अत्युक्ति, प्रतिषेध, विधि, अनुकूल। [दे० प्रत्येक अलंकार का विवरण उसके नाम के अक्षर में]

अर्थोपक्षेपक—दृश्य काव्य या रूपक का एक तत्त्व। [दे० नाट्य-सिद्धांत] जिसके द्वारा नाटक में सूच्य वृत्तांतों की सूचना दी जाय, उसे अर्थोपक्षेपक कहते हैं। जिन दृश्यों या वृत्तांतों का अभिनय करना शास्त्र-सम्मत नहीं होता या ऐसे घटनांश, जिनका प्रदर्शन रंगमंच पर नाट्यशास्त्र के विरुद्ध माना जाता है या कथा का ऐसा अंश, जो नीरस या अनुचित होने के कारण दृश्य-रूप में प्रकट करने योग्य नहीं होता; उनकी सूचना देने के लिए जिस प्रणाली का आश्रय ग्रहण किया जाता है, उसे 'अर्थोपक्षेपक' कहते हैं। [दे० नाट्यशास्त्र, १६/११०]

धनंजय ने इस विषय का वर्णन इस प्रकार किया है—

नीरसोऽनुचितस्तत्र संसूच्यो वस्तुविस्तरः।
दृश्यस्तु मधुरोदात्त रसभाव निरंतरः॥
अर्थोपक्षेपकैः सूच्यं पंचभिः प्रतिपादयेत्।
विष्कंभकचूलिकांकास्यांकावतारप्रवेशकैः॥

—दशरूपक, १/५७,५८

अर्थोपक्षेपक का अर्थ है कथावस्तु (अर्थ) का सूचक (उपक्षेपक)। सूच्य-वस्त्वंशों की सूचना जिस ढंग से दी जाती है, उसके पाँच प्रकार हैं—विष्कंभक (विष्कंभ), चूलिका, अंकास्य, अंकावतार तथा प्रवेशक।

(क) **विष्कंभक**—इसके द्वारा नाटक में घटित घटनाओं या भविष्य में घटनेवाली घटनाओं की सूचना दी जाती है। [दे० विष्कंभक]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(ख) प्रवेशक—यह विष्कंभक की भाँति अतीत तथा भावी घटनाओं की सूचना देनेवाला अर्थोपक्षेपक है। [दे० प्रवेशक] इसमें नीच पात्र प्रयुक्त होते हैं।

(ग) चूलिका—नेपथ्य या जवनिका में स्थित पात्र जब कथावस्तु की सूचना दें तो उसे चूलिका कहा जायगा। [दे० चूलिका]

(घ) अंकास्य—जब एक अंक के अंत में उसके आगे के अंक में घटनेवाली घटना की सूचना दी जाय तो उसे अंकास्य कहा जाता है। [दे० अंकास्य]

(ङ) अंकावतार—एक अंक के समाप्त होते ही जब दूसरे अंक की कथा-वस्तु का संकेत हो तो उसे अंकावतार कहते हैं। [दे० अंकावतार]

भरत ने इस प्रकार की व्यवस्था की है कि एक वर्ष में घटित घटनाओं की ही अर्थोपक्षेपक-द्वारा सूचना दी जाय; एक वर्ष से अधिक समय की घटना का कभी भी उपनिबंधन नहीं किया जाय।

अंकेष्वदर्शनीया या वक्तव्यैव च संमता।
या च स्याद्वर्षपर्यंतं कथा दिनद्वयादिजा॥
अन्या च विस्तरा सूच्या सार्थोपक्षेपकैर्बुधैः।
वर्षादूर्ध्वं तु यद्वस्तु तत्स्याद्वर्षादधोभवम्।
दिनावसाने कार्यं यद्दिने नैवोपपद्यते।
अर्थोपक्षेपकैर्वाच्यमंकच्छेदं विधाय तत्॥

—साहित्यदर्पण, ६/५१,५३

अरिसिंह-अमरचंद्र—दोनों लेखकों की सम्मिलित रचना 'काव्यकल्पलता' है। दोनों जिनदत्त सूरि के शिष्य थे। 'काव्यकल्पलता' का प्रारंभ अरिसिंह ने किया था और उसकी पूर्त्ति अमरचंद्र ने की थी। इस पर अमरचंद्र ने 'कविशिक्षा' के नाम से वृत्ति की भी रचना की है। दोनों ग्रंथकारों का समय १३वीं शती का मध्य है। 'काव्यकल्पलतावृत्ति' में चार प्रतान या खंड हैं और प्रत्येक प्रतान में अनेक स्तवक हैं। इसमें क्रमशः 'छंदःसिद्धि', 'शब्दसिद्धि', 'श्लेषसिद्धि' तथा 'अर्थसिद्धि' का वर्णन है। इस ग्रंथ में कवि-शिक्षा या काव्यरचना के नियमों का निरूपण है और बताया गया है कि कवि बनने के लिए किन-किन तथ्यों की आवश्यकता है। 'काव्यकल्पलतावृत्ति' में 'छंदोरत्नावली', 'काव्यकल्पलतापरिमल' और 'अलंकार प्रबोध' नामक ग्रंथों का उल्लेख है, जो अमरचंद्र की रचनाएँ हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अरोचकी—आलोचक या भावक का एक प्रकार। जिस आलोचक को किसी प्रकार की रचना अच्छी नहीं लगती, उसे अरोचकी कहते हैं। राजशेखर के अनुसार इसकी अरोचकता दो प्रकार की है—नैसर्गिक और ज्ञानयोनि। नैसर्गिक अरोचकिता स्वाभाविक होती है और सैकड़ों संस्कारों से भी परिवर्तित नहीं होती; उदाहरण के लिए विंग धातु, जो सैकड़ों परिशोधनों के द्वारा भी अपना संस्कार नहीं छोड़ता और उसका रंग काला बना रहता है। ज्ञानयोनि या ज्ञानजन्य अरोचकिता विशिष्ट अर्थवान् वचन पर रीझ जाती है। वामन के अनुयायी अरोचकी भावक को विवेकी मानते हैं।

अरोचकिता हि तेषां नैसर्गिकी, ज्ञानयोनिर्वा। नैसर्गिकीं हि संस्कारशतेनाऽपि वंगमिव कालिकां न ते जहति। ज्ञानयोनौ तु तस्यां विशिष्ट ज्ञेयवति वचसि 'रोचकितावृत्तिरेव' इति यायावरीयः।

—काव्यमीमांसा, अध्याय ४, पृ० ३५-३६; चौखंबा संस्करण

अलंकार—(**स्वरूप-विवेचन**) काव्य का तत्त्व-विशेष। अलंकार शब्द 'अलम्' और 'कार' इन दो शब्दों के योग से बना है, जिसका अर्थ है—शोभा-कारक पदार्थ—'अलंकरोति इति अलंकारः' इसके अनुसार शोभावर्द्धक तत्त्व को अलंकार कहते हैं। जो अलंकृत या विभूषित करे, वह अलंकार है। जिस प्रकार लोक में कटक, कुंडल आदि विविध अलंकार कामिनी के शरीर को विभूषित करते हैं, उसी प्रकार उपमादि अलंकारों के द्वारा कविताकामिनी का भी सौंदर्य बढ़ जाता है। काव्य के शरीरभूत धर्म शब्द और अर्थ हैं तथा अलंकारों के योग से इनकी (शब्द और अर्थ की) शोभा-वृद्धि होती है। आचार्य वामन के अनुसार अलंकृत करनेवाले तत्वों से अभिप्राय है उपमादि का।

अलंकृतिः अलंकारः। करणव्युत्पत्या पुनः।
अलंकार शब्दोऽयमुपमादिषु वर्तते॥

—काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, १/१/२

भारतीय काव्यशास्त्र में अलंकारों का अत्यधिक महत्व है। इनकी महत्ता इस बात से भी द्योतित होती है कि काव्यशास्त्र अलंकार के ही नाम से अभिहित किया जाता रहा है। राजशेखर ने इसकी महिमा का आख्यान करते हुए इसे वेद का सातवाँ अंग माना है। उनके अनुसार अलंकार वेद के अर्थ का उपकारक होता है और अलंकारों के अभाव में वेदार्थ की अवगति नहीं हो सकती।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपकारत्वात् अलंकारः सप्तममंगमिति यायावरीयः। ऋते च तत्स्वरूप-परिज्ञानात् वेदार्थानवगतिः।

काव्य में शब्द और अर्थ शरीर के विविध अवयवों की भाँति मान्य हैं। रस उसकी आत्मा तथा गुण, अलंकार और रीति की स्थिति उसके बाह्यशोभा-कारक धर्म के रूप में स्वीकार की गई है। इस दृष्टि से अलंकार काव्य का उत्कर्षाधायक तत्त्व है, स्वरूपाधायक या जीवनाधायक तत्त्व नहीं। काव्य का प्रधान तत्त्व है रस (आचार्य विश्वनाथ के मत से) और रसों के साथ गुणों का अनिवार्य रूप से संबंध स्थापित किया जाता है। जहाँ रस होगा, वहाँ गुण भी निश्चित रूप से रहेंगे। गुण काव्य के नित्यधर्म माने गए और अलंकार अनित्य धर्म। अलंकारों के बिना भी काव्य की स्थिति संभव है; किंतु गुण एवं रस काव्य के लिए आवश्यक हैं। गुण को काव्य का स्थिर धर्म स्वीकार किया जाता है और अलंकार को अस्थिर धर्म कहकर उसकी स्थिति की अपरिहार्यता पर प्रश्नवाचक चिह्न लगा दिया जाता है। जिस प्रकार लोक में जो स्त्री एवं पुरुष अलंकार-रहित होते हैं, उन्हें भी स्त्री एवं पुरुष कहा जाता है; किन्तु अलंकारों से विभूषित नर-नारी को उत्कृष्ट कहा जाता है, उसी प्रकार अलंकारविहीन रचना काव्य की पंक्ति से खारिज नहीं की जा सकती।

अलंकार की मान्य परिभाषा आचार्य दंडी की है, जिसके अनुसार काव्य के शोभाकारक धर्म को अलंकार कहते हैं—

काव्यशोभाकरान्धर्मानलंकारान्प्रचक्षते।—काव्यादर्श २/१

वामन के मतानुसार काव्य का शोभाकारक धर्म गुण है और उसके (काव्य-शोभा के) वर्धक धर्म को अलंकार कहते हैं। आनंदवर्द्धन ने अलंकार को काव्य का (शब्दार्थ का) आभूषक धर्म कहा—

अंगाश्रितास्त्वलंकारः मंतव्या करकादिवत्।—ध्वन्यालोक, २/६

इस लक्षण में अलंकार का रस के साथ क्या संबंध है; इसका निर्देश नहीं किया गया है; पर यह कार्य कालांतर में मम्मट एवं विश्वनाथ-द्वारा संपन्न हुआ। इन्होंने बतलाया कि अलंकार शब्दार्थ का शोभावर्धन करते हुए मुख्यतः रस का उपकारक सिद्ध होता है। यह शब्दार्थ का अस्थिर या अनित्य धर्म है और इसका स्थान कटक, कुंडल प्रभृति आभूषणों की भाँति अंग को विभूषित करना है।

हारादिवदलंकारास्तेऽनुप्रासोपमादयः॥—काव्यप्रकाश, ८/६७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिनः ।
रसादीनुपकुर्वंतोऽलंकारास्तेंऽगदादिवत् ।।—साहित्यदर्पण, १०/१

पंडितराज जगन्नाथ ने अलंकार को काव्य की आत्मा व्यंग्य का रमणीयताप्रयोजक धर्म मानते हुए आनंदवर्द्धन प्रभृति आचार्यों के ही विचार की पुष्टि की है—

काव्यात्मनो व्यंग्यस्य रमणीयताप्रयोजका अलंकाराः ।—रसगंगाधर

सभी आचार्य मुख्यतः अलंकार के इस वैशिष्ट्य से सहमत हैं कि उसका मुख्य प्रयोजन है—काव्यशोभाजनकत्व या अलंकारिता । अलंकारवादी एवं रसध्वनिवादी आचार्यों ने इसे शब्दार्थ का शोभाकारक धर्म कहा है; पर रसवादियों के अनुसार इसका प्रधान लक्ष्य है शब्दार्थ का शोभा-वर्द्धन करते हुए रस का उपकार करना ।

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकला कि—

(क) अलंकार काव्य का सहज एवं अनिवार्य गुण न होकर उसका अस्थिर धर्म है । काव्य में इसकी स्थिति अनिवार्य नहीं मानी जा सकती, यह कभी वर्त्तमान रह सकता है और कभी नहीं भी ।

(ख) काव्य की शोभा या सौंदर्य अलंकार पर आश्रित नहीं रहता । सत्काव्य में अलंकार विद्यमान भी रहता है तो वह केवल शोभावृद्धि करता है सौंदर्य की सृष्टि नहीं ।

(ग) काव्य का सौंदर्य रस में निहित है और अलंकार की महत्ता उसका उपकारक बनने में ही है । अभिप्राय यह कि सत्काव्य में अलंकार की स्वतंत्र सत्ता अमान्य है ।

अलंकार वाणी के शृंगार एवं काव्य-सौंदर्य के साधन हैं । भारतीय आचार्यों ने इसे सौंदर्य का पर्याय मानते हुए 'सौंदर्यमलंकारः' अभिधा प्रदान की है । आचार्यों ने अलंकारों का अत्यधिक महत्त्व आँकते हुए भी इन्हें कथन को आकर्षक एवं प्रभावोत्पादक बनानेवाले साधनों के रूप में प्रस्तुत किया है । अलंकारों का महत्त्व इससे भी प्रकट होता है कि कतिपय आचार्यों ने इसे काव्य का अनिवार्य तत्त्व मानते हुए पृथक् रूप से अलंकार-संप्रदाय की स्थापना की है । यह अवश्य है कि काव्य में अलंकारों के स्थान-निर्धारण में काव्याचार्यों के विचार परस्पर विरोधी एवं भिन्न-भिन्न रहे हैं । आलंकारिकों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का एक वर्ग ऐसा है, जो इसे काव्य का शोभाकारक धर्म स्वीकार करते हुए अलंकारविहीन रचना को उष्णतारहित अग्नि की भाँति व्यर्थ एवं वाणी को विधवा मान लेता है; किंतु इस अतिवादी दृष्टिकोण के विपरीत ऐसे भी विचार प्रकट किए गए हैं, जिनमें अलंकारों को काव्य का अनिवार्य तत्त्व नहीं स्वीकार किया गया। दूसरे खेवे के आचार्य (रसध्वनिवादी) अलंकार को काव्य में वही स्थान प्रदान करते हैं, जो स्थान किसी सुंदरी के शरीर में प्रसाधन के साधनों—जैसे कटक, कुंडल आदि को प्राप्त है। ये आचार्य इस बात के पोषक हैं कि काव्य में अलंकार न भी रहें तो उसका महत्त्व कम नहीं होता। अतः, अनलंकृत काव्य भी महनीय बन सकता है। भारतीय आचार्यों ने अलंकारों के प्रयोग-विषयक तथ्य पर विचार करते हुए काव्य में इसके आधिक्य पर बल नहीं दिया। उनके अनुसार अलंकारों से बोझिल रचना काव्य न रहकर उक्तिवैचित्र्य मात्र बन जायगी। अलंकारों के प्रयोग में कवि को सतर्क रहने की आवश्यकता पड़ती है और सिद्धहस्त कवि के काव्य में तो अलंकार स्वतःस्फुटित हो जाते हैं, उसे इनके लिए प्रयास नहीं करना पड़ता। अलंकारों के उचित निर्वाह में ही कवि-कर्म की सार्थकता सिद्ध है।

संस्कृत साहित्यशास्त्र के इतिहास में एक तथ्य अत्यंत विलक्षण दिखलाई पड़ता है कि अलंकार-विरोधी आचार्य भी अपने ग्रंथों में इसे महत्त्वपूर्ण स्थान देकर इसका विशद विवेचन करते हैं। अंतिम खेवे के आचार्यों ने, जो वस्तुतः अलंकारवादी नहीं हैं, अलंकारों का गंभीर विवेचन करते हुए तद्विषयक नवीन तथ्य प्रस्तुत किए हैं और अलंकारवादी आचार्यों की अपेक्षा इसके स्वरूप का अधिक वैज्ञानिक मूल्यांकन किया है। अलंकारों के वैज्ञानिक वर्गीकरण एवं समकोटिक अलंकारों में अंतर स्थापन, उनका सीमा-निर्धारण, उनके स्वरूप का स्थिरीकरण-विषयक महनीय स्थापनाएँ परवर्त्ती काल के आचार्यों की ही हैं।

विरोधी आचार्यों के प्रबल विरोध के कारण भी अलंकारों का विकास होता गया और अंततः इनकी संख्या १२५ हो गई। वस्तुतः आठ शब्दालंकार, एक सौ अर्थालंकार और दो मिश्रालंकार या उभयालंकार ही वास्तविक अलंकार हैं और शेष अमान्य ठहरा दिए गए हैं। अलंकार भारतीय सौंदर्य-दर्शन की महनीय देन हैं। इनकी कितनी भी आलोचना क्यों न हो; पर इनके महत्त्व को कम नहीं किया जा सकता।

अलंकार न केवल काव्य के शोभाधायक या उत्कर्ष के हेतु हैं, अपितु ये चित्रविधान एवं बिंबविधान में कविकर्म के महत्त्वपूर्ण साधन के रूप में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रतिष्ठित किए जा सकते हैं। ये कवि की मन:स्थिति के मापन के महत्त्वपूर्ण मानदंड हैं। किस परिस्थिति में एवं किस मानसिक स्थिति में कवि किस विषय का किस प्रकार वर्णन करता और उसके भावों को अभिव्यक्त करने में भाषा कहाँ तक सहायक होकर उसकी कल्पना को रूपायित करती है, इन तथ्यों को जानने में अलंकारों का महत्त्वपूर्ण योग निरूपित किया जा सकता हैं। किसी चित्र को प्रस्तुत करते समय कवि-कल्पना किस प्रकार विविध रूपों को प्रदर्शित करती है, इस कार्य में अलंकारों का महत्त्वपूर्ण हाथ रहता है। बिंबविधान के तो ये (अलंकार) मानो प्राण ही हैं। आज का विवेचक अलंकार को हेय दृष्टि से न देखकर इनके मनोवैज्ञानिक महत्त्व को स्वीकार करते हुए काव्य एवं जीवन में इनकी व्यावहारिकता पर संदेह नहीं प्रकट करता। भाषणकला के लिए तो अलंकारों की उपयोगिता निर्विवाद सिद्ध होती है। आज अलंकार-विषयक समस्त विरोधी भावनाएँ खंडित हो चुकी हैं और काव्य में इनकी महत्ता पुनः स्वीकार की जाने लगी है। अप्रस्तुतविधान के नियोजन में अलंकार महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत करते हैं। अतः, इनकी उपयोगिता को कम नहीं किया जा सकता।

अलंकार काव्य की उत्कृष्टता के महनीय साधन के रूप में प्रतिष्ठित हैं या काव्य के महत्त्वपूर्ण माध्यम हैं। जब वे रसाभिव्यक्ति में सहायक हों तो उनका बहिरंगत्व नहीं रह जाता, इस तथ्य की स्वीकारोक्ति अभिनवगुप्त ने की है—**न तेषां बहिरंगत्वं रसाभिव्यक्तौ**—ध्वन्यालोक, पृ० १४७

इस संबंध में महाकवि सुमित्रानंदन पंत के विचार ध्यातव्य हैं। 'अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए नहीं, वे भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार हैं। भाषा की पुष्टि के लिए, राग की परिपूर्णता के लिए उपादान हैं। वे वाणी के आचार, व्यवहार, रीति-नीति हैं, पृथक् स्थितियों के पृथक् स्वरूप हैं, भिन्न-भिन्न अवस्थाओं के भिन्न चित्र हैं। वे वाणी के हास, अश्रु, स्वप्न, पुलक, हाव-भाव हैं।' —पल्लव की भूमिका, पृ० ३२

भावावेश की स्थिति में (काव्य में) अलंकारों का स्वतः प्रस्फुटन हो जाता है और कल्पना या भावावेश के कारण भाषा का अलंकृत होना सहज संभाव्य है। "वास्तव में अलंकार काव्य के बाह्य धर्ममात्र न होकर आंतरिक उक्ति के साथ मन में आए हुए भाषा के रत्न हैं, जिनमें कल्पना का नित्य विहार है।"—रीतिकालीन अलंकार-साहित्य का शास्त्रीय विवेचन, पृ० ४७२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अलंकार का स्थान कलामूलक शास्त्र के अंतर्गत आता है। वह कवि के हाथ में कला एवं काव्यशास्त्री के लिए शास्त्र के रूप में प्रतिष्ठित है।

अलंकार (वर्गीकरण)—भारतीय काव्यशास्त्र में अलंकारों के वर्गीकरण के वैज्ञानिक आधार अन्वेषित हुए हैं और भरत के समय से ही यह प्रयास प्रारंभ हो गया है। आचार्य भरत ने अलंकारों के वर्गीकरण के संबंध में अपना कोई अभिमत प्रकट न कर 'शब्दाभ्यासस्तु यमकम्' कहकर यमक को शब्दालंकार के नाम से अभिहित किया; पर यह विचार केवल अनुमानाश्रित है। भामह ने सर्वप्रथम अलंकारों के वर्गीकरण की दिशा में प्रयास किया। इन्होंने शब्दालंकार और अर्थालंकार के रूप में अलंकारों का वर्गीकरण कर उसके स्थूल आधार प्रस्तुत किए। उनके बाद उद्भट ने अलंकारों के छह वर्ग किए और वर्गीकरण के क्षेत्र में मौलिक योग दिया। उनके द्वारा विभाजित अलंकारों के वर्ग इस प्रकार हैं—

प्रथम वर्ग—पुनरुक्तवदाभास, छेकानुप्रास, वृत्त्यनुप्रास, लाटानुप्रास, रूपक, उपमा, दीपक, प्रतिवस्तूपमा।

द्वितीय वर्ग—आक्षेप, अर्थांतरन्यास, व्यतिरेक, विभावना, समासोक्ति एवं अतिशयोक्ति।

तृतीय वर्ग—यथासंख्य, उत्प्रेक्षा और स्वभावोक्ति।

चतुर्थ वर्ग—प्रेयस्, रसवत्, ऊर्जस्वि, पर्यायोक्त, समाहित, उदात्त और श्लेष।

पंचम वर्ग—अपह्नुति, विशेषोक्ति, विरोध, तुल्ययोगिता, अप्रस्तुतप्रशंसा, व्याजस्तुति, विदर्शना, उपमेयोपमा, सहोक्ति, संकर तथा परिवृत्ति।

षष्ठ वर्ग—अनन्वय, ससंदेह, संसृष्टि, भाविक, काव्यदृष्टांत और हेतु।

इनके उपरांत महत्त्वपूर्ण प्रयत्न आचार्य रुद्रट का हुआ, जिन्होंने अलंकारों के वर्ग-विभाजन के चार आधार निरूपित किए—वास्तव, औपम्य, अतिशय और श्लेष।

अर्थस्यालंकाराः वास्तवमौपम्यमतिशयः श्लेषः।
एषामेव विशेषा अन्ये तु भवंति निःशेषाः॥

—काव्यालंकार, ७/९

वस्तु के स्वरूप-कथन को वास्तव कहा गया और इसके अंतर्गत सहोक्ति, समुच्चय, जाति, यथासंख्य, भाव, पर्याय, विषम, अनुमान, दीपक, परिकर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परिवृत्ति, परिसंख्या, हेतु, कारणमाला, व्यतिरेक, अन्योन्य, उत्तर, सार, सूक्ष्म, लेश, अवसर, मीलित और एकावली-अलंकारों को रखा गया।

औपम्य का लक्षण प्रस्तुत करते हुए रुद्रट ने कहा है कि जब एक वस्तु (प्रस्तुत) के स्वरूप के साथ अन्यवस्तु (अप्रस्तुत) के स्वरूप की समता स्थापित की जाय तो औपम्य होगा।

सम्यक् प्रतिपादयितुं स्वरूपतो वस्तु तत्समानमिति।
वस्त्वंतरमभिदध्याद् वक्तार्यस्मिस्तदौपम्यम्॥

—काव्यालंकार, ८/१

इस वर्ग में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अपह्नुति, संशय, समासोक्ति, मत, उत्तर, अन्योक्ति, प्रतीप, अर्थांतरन्यास, उभयन्यास, भ्रांतिमान्, आक्षेप, प्रत्यनीक, दृष्टांत, पूर्व, सहोक्ति, समुच्चय, साम्य तथा स्मरण अलंकार आते हैं। अतिशय से रुद्रट का आशय अर्थ तथा धर्म के विपर्यय से है, जिसमें लोकातिक्रांतता विद्यमान रहती है। इस वर्ग के अलंकार हैं—पूर्व, विशेष, उत्प्रेक्षा, विभावना, तद्गुण, अधिक, विरोध, विषम, असंगति, पिहित, व्याघात और हेतु।

यत्रार्थधर्मनियमः प्रसिद्धिबाधाद्विपर्ययं याति।
कश्चित्क्वचिदतिलोकं स स्यादित्यतिशयस्तस्य॥—काव्यालंकार, ९/१

श्लेषवर्ग के अंतर्गत दस अलंकार रखे गए हैं—अविशेष, विरोध, अधिक, वक्र, व्याज, उक्ति, असंभव, अवयव, तत्त्व एवं विरोधाभास। इन्होंने श्लेष का लक्षण प्रस्तुत करते हुए बताया कि जब अनेकार्थक शब्दों (पदों) से रचित एक वाक्य अनेक अर्थों की प्रतीति कराए तो श्लेष होगा।

यत्रैकमनेकार्थैर्वाक्यं रचितं पदैरनेकस्मिन्।
अर्थे कुरुते निश्चयमर्थश्लेषः स विज्ञेयः॥—काव्यालंकार, १०/१

उस समय तक यह वर्ग-विभाजन उपयुक्त था; किंतु रुद्रट को भी इसकी अपूर्णता का भान हो चुका था; क्योंकि इन्होंने कतिपय अलंकारों को दो-दो वर्गों में रखा—जैसे सहोक्ति और समुच्चय को वास्तव तथा औपम्य वर्ग में, विषम और हेतु को वास्तव तथा अतिशय वर्ग में तथा पूर्व और उत्प्रेक्षा को औपम्य और अतिशय वर्ग में। रुद्रट ने शब्दालंकार का पृथक् विवेचन किया है और तिलतंडुल एवं दुग्धजल के आधार पर संकर की भी चर्चा की है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रुद्रट के बाद भोज ने शब्दालंकार, अर्थालंकार एवं उभयालंकार के रूप में अलंकारों का विभाजन किया। इन्होंने प्रत्येक के चौबीस भेद कर बहत्तर अलंकारों का वर्णन किया; पर इनका विवेचन मान्य नहीं हुआ। आचार्य रुय्यक ने अर्थालंकारों के वर्गीकरण का वैज्ञानिक आधार प्रस्तुत करने का प्रथम प्रयास किया है। इन्होंने अलंकारों के पाँच वर्ग किए और उनके भी अवांतर-भेदों का उल्लेख किया। इनके पाँच भेद हैं—सादृश्य वर्ग, विरोध वर्ग, शृंखला वर्ग या शृंखलामूलक अलंकार, न्यायमूल (तर्कन्यायमूल, वाक्य न्यायमूल तथा लोकन्यायमूल), गूढ़ार्थप्रतीतिमूल।

१. सादृश्य वर्ग—इसका मूल साधर्म्य माना गया है और इसके (साधर्म्य के) तीन प्रकार किए गए हैं—भेदाभेद-तुल्यप्रधान, अभेदप्रधान, गम्यमानौपम्य।

भेदाभेदतुल्यप्रधान : इस वर्ग में चार अलंकार हैं—उपमा, उपमेयोपमा, अनन्वय तथा स्मरण।

अभेदप्रधान : इसमें छह अलंकार आरोपमूलक और दो अध्यवसानमूलक हैं—रूपक, परिणाम, संदेह, भ्रांतिमान्, उल्लेख और अपह्नुति। उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति को अध्यवसानमूलक कहा गया है।

गम्यमानौपम्य : इसमें सोलह अलंकार हैं—तुल्ययोगिता, दीपक, प्रतिवस्तूपमा, दृष्टांत, निदर्शना, व्यतिरेक, सहोक्ति, विनोक्ति, समासोक्ति, परिकर, श्लेष, अप्रस्तुत प्रशंसा, पर्यायोक्ति, अर्थांतरन्यास, व्याजस्तुति तथा आक्षेप। इनमें औपम्य या सादृश्य व्यंग्य (गम्य) रूप में रहता है, वाच्य नहीं।

२. विरोधवर्ग—इस वर्ग में बारह अलंकार हैं—विरोध, विभावना, विशेषोक्ति, सम, विषम, विचित्र, अधिक, अन्योन्य, विशेष, व्याघात, असंगति, अतिशयोक्ति।

३. शृंखलामूलक—इस वर्ग में चार अलंकार हैं—कारणमाला, एकावली, मालादीपक, सार।

४. न्यायमूलक—इस वर्ग में १७ अलंकार हैं। तर्कन्यायमूलक—काव्यलिंग, और अनुमान। वाक्यन्यायमूलक (काव्यन्यायमूलक)—यथासंख्य, पर्याय, परिवृत्ति, अर्थापत्ति, विकल्प, परिसंख्या, समुच्चय और समाधि। लोकन्यायमूलक—प्रत्यनीक, प्रतीप, मीलित, सामान्य, तद्गुण, अतद्गुण तथा उत्तर।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

५. *गूढ़ार्थप्रतीतिमूलक*—इस वर्ग में तीन अलंकार हैं : सूक्ष्म, व्याजोक्ति तथा वक्रोक्ति। यद्यपि रुय्यक का विभाजन अधिक वैज्ञानिक है, फिर भी इसमें पूर्णता का अभाव है। उन्होंने कई ऐसे अलंकारों को छोड़ दिया है और इन्हें किसी भी वर्ग में नहीं रखा। स्वभावोक्ति, भाविक, उदात्त, संकर, संसृष्टि तथा रसवत्, प्रेयस, ऊर्जस्वि, समाहित आदि ऐसे ही अलंकार हैं। रुय्यक ने वैज्ञानिक दृष्टि से अलंकारों के संगत मूलाधार को ढूँढ़ने का प्रयास किया है।

रुय्यक के आधार पर विद्यानाथ ने 'प्रतापरुद्रीय' में अलंकारों का वर्गीकरण किया। विद्याधर ने अर्थालंकारों के निम्नांकित वर्ग निर्धारित किए—

भेदप्रधान : इसके अंतर्गत उपमा, उपमेयोपमा, अनन्वय तथा स्मरण को स्थान मिला।

अभेदप्रधान : रूपक, परिणाम, संदेह, भ्रांतिमान्, उल्लेख तथा अपह्नुति को अभेदप्रधान अलंकारों में रखा गया।

उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति अध्यवसायप्रधान अलंकार हैं।

गम्यौपम्याश्रयी : इस वर्ग के अलंकारों में तुल्ययोगिता, दीपक, प्रतिवस्तूपमा, दृष्टांत, निदर्शना, व्यतिरेक, सहोक्ति, विनोक्ति, अर्थांतरन्यास, पर्यायोक्त, परिकर, आक्षेप, परिकरांकुर, श्लेष, समासोक्ति तथा अप्रस्तुतप्रशंसा हैं।

विरोधगर्भ : इस वर्ग के अलंकारों में विरोध, विभावना, विशेषोक्ति, अतिशयोक्ति, असंगति, विषम, सम, विचित्र, अधिक, अन्योन्य, विशेष और व्याघात हैं।

शृंखलाकार : इस श्रेणी में कारणमाला, एकावली, मालादीपक, सार, काव्यलिंग, अनुमान, यथासंख्य, पर्याय, परिवृत्ति, परिसंख्या, अर्थापत्ति, समुच्चय तथा समाधि अलंकार हैं।

लोकन्यायाश्रयी : इसमें प्रत्यनीक, प्रतीप, मीलित, सामान्य, तद्गुण, अतद्गुण, उत्तर और प्रश्नोत्तर अलंकार हैं।

बलाद्गूढार्थप्रीतिमूलक : इस वर्ग में सूक्ष्म, व्याजोक्ति, वक्रोक्ति, स्वभावोक्ति, भाविक और उदात्त अलंकार हैं।

अन्योन्याश्लेषपेशल—इसमें संसृष्टि और संकर रखे गए हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विद्याधर ने यथासंभव रुय्यक के ही वर्गीकरण को स्पष्ट रूप में रखने का प्रयास किया है।

विद्यानाथ का वर्गीकरण रुद्रट, रुय्यक और विद्याधर से प्रभावित है। इन्होंने शब्दार्थ और उभयालंकार के रूप में शब्दालंकार तथा उभयालंकार का वर्णन कर अर्थालंकार को कई वर्गों में विभक्त किया है।

प्रतीयमानवास्तव : इसमें समासोक्ति, पर्यायोक्ति, आक्षेप, व्याजस्तुति, उपमेयोपमा, अनन्वय, अतिशयोक्ति, परिकर, अप्रस्तुतप्रशंसा और अनुक्तनिमित्ता विशेषोक्ति हैं।

प्रतीयमानौपम्या : इस वर्ग में रूपक, परिणाम, संदेह, भ्रांतिमान्, उल्लेख, अपह्नुति, उत्प्रेक्षा, स्मरण, तुल्ययोगिता, दीपक, प्रतिवस्तूपमा, दृष्टांत, सहोक्ति, व्यतिरेक, निदर्शना और श्लेष को स्थान मिला है।

प्रतीयमानरसभावादय : इस वर्ग में रसवत्, प्रेयस्, ऊर्जस्वि, समाहित, भावोदय, भावसंधि तथा भावशबलतादि हैं।

स्फुटप्रतीयमाना : उपमा, विनोक्ति, अर्थांतरन्यास, विरोध, विभावना, उक्तनिमित्ता, विशेषोक्ति, विषम, सम, चित्र, अधिक, अन्योन्य, कारणमाला, एकावली, व्याघात, मालादीपक, काव्यलिंग, अनुमान, सार, यथासंख्य, अर्थापत्ति, पर्याय, परिवृत्ति, परिसंख्या, विकल्प, समुच्चय, समाधि, प्रत्यनीक, प्रतीप, विशेष, निमीलन, सामान्य, असंगति, तद्गुण, अतद्गुण, व्याजोक्ति, वक्रोक्ति, स्वभावोक्ति तथा अधिक इस वर्ग के अलंकार हैं।

विद्यानाथ ने अर्थालंकारों का एक अन्य वर्गीकरण भी उपस्थित किया है—प्रथमतः साधर्म्य के तीन विभाग किए गए हैं—अभेदप्रधान, भेदप्रधान और भेदाभेदप्रधान।

अभेदप्रधान साधर्म्यनिबंधन : इसमें रूपक, परिणाम, संदेह, भ्रांतिमद्, उल्लेख तथा अपह्नुति को रखा गया है।

भेदप्रधान साधर्म्यनिबंधन : इस वर्ग में दीपक, तुल्ययोगिता, निदर्शना, दृष्टांत, प्रतिवस्तूपमा, सहोक्ति प्रतीप तथा व्यतिरेक हैं।

भेदाभेद साधारण साधर्म्यमूलक : इसमें उपमा, अनन्वय, उपमेयोपमा तथा स्मरण हैं।

अध्यवसायमूलक : इस वर्ग में केवल दो अलंकार हैं: उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विरोधमूलक : इस वर्ग में विभावना, विशेषोक्ति, विषम, चित्र, असंगति, अन्योन्य, व्याघात, अतद्गुण, भावित तथा विशेष हैं।

वाक्यन्यायमूलक : इसमें यथासंख्य, परिसंख्या, अर्थापत्ति, विकल्प और समुच्चय हैं।

लोकव्यवहारमूलक : इस वर्ग में परिवृत्ति, प्रत्यनीक, तद्गुण, समाधि, सम, स्वभावोक्ति, उदात्त तथा विनोक्ति हैं।

तर्कन्यायमूलक : इस वर्ग के अलंकार हैं : काव्यलिंग, अनुमान तथा अर्थांतरन्यास।

शृंखलावैचित्र्यमूलक : कारणमाला, एकावली, मालादीपक तथा सार अलंकार को इस वर्ग में रखा गया है।

अपह्नवमूलक : व्याजोक्ति, वक्रोक्ति तथा मीलन।

विशेषणवैचित्र्यमूलक : इस वर्ग में समासोक्ति और परिकर हैं।

'एकावली' के टीकाकार मल्लिनाथ ने अपनी 'तरला' टीका में रुय्यक तथा विद्याधर के वर्गीकरण को सुबोध रूप प्रदान किया है—

१. सादृश्य वर्ग—

(क) भेदाभेदप्रधान—उपमा, उपमेयोपमा, अनन्वय तथा स्मरण।

अभेदप्रधान—

१. आरोपमूलक—रूपक, परिणाम, संदेह, भ्रांतिमान्, उल्लेख और अपह्नुति।

२. अध्यवसायमूलक—उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति।

२. औपम्यगर्भ अलंकारवर्ग—

पदार्थगत—तुल्ययोगिता तथा दीपक

(ख) वाक्यार्थगत—प्रतिवस्तूपमा, दृष्टांत एवं निदर्शना।

(ग) भेदप्रधान—व्यतिरेक, सहोक्ति और विनोक्ति।

(घ) विशेषण-विच्छित्ति—समासोक्ति, परिकर।

(ङ) विशेष्य-विच्छित्ति—परिकरांकुर।

(च) विशेषण-विशेष्य-विच्छित्ति—श्लेष।

३. विरोधगर्भ—विरोध, विभावना, विशेषोक्ति, विषम, चित्र, असंगति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

४. *शृंखलाकार*—कारणमाला, एकावली, मालादीपक तथा सार।

५. *न्यायमूलक*—

(क) तर्कन्यायमूलक—काव्यलिंग, अनुमान।

(ख) वाक्यन्यायमूलक—यथासंख्य, पर्याय, विकल्प, अर्थापत्ति, समुच्चय।

(ग) लोकन्यायमूलक—प्रत्यनीक, प्रतीप, तद्गुण, समाधि, सम, उदात्त, विनोक्ति।

६. *गूढ़ार्थप्रतीतिमूलक*—सूक्ष्म, व्याजोक्ति, वक्रोक्ति, भाविक।

रीतियुग में भिखारीदास ने अलंकारों का नवीन वर्गीकरण किया; पर उनका आधार वैज्ञानिक नहीं है। आधुनिक युग में भी इस प्रकार के कई प्रयास किए गए हैं; पर उन्हें संतोषजनक नहीं कहा जा सकता। डॉ० नगेंद्र ने स्पष्टता, विस्तार, आश्चर्य, अन्विति, जिज्ञासा तथा कौतूहल को अलंकारों का मनोवैज्ञानिक आधार मानकर इनके मूर्त रूप को साधर्म्य, अतिशय, वैषम्य, औचित्य, वक्रता और चमत्कार कहा। इस संबंध में अभी कोई निश्चित आधार प्रस्तुत नहीं हो सका, जिसे अलंकारों का सर्वमान्य वर्ग कहा जाय।

अलंकार—(ऐतिहासिक विकास) अलंकारों का विकास वैदिक साहित्य से होता है। ऋग्वेद में 'अरंकृति', 'अरंकृत' आदि शब्दों का प्रयोग अलंकार के लिए हुआ है।

वायवायाहि दर्शतेमे सोभा अरंकृताः। —ऋग्वेद, १/ २/१

का ते अस्त्यरंकृतिः सूक्तैः। वही, ७/२९/३

'शतपथब्राह्मण' एवं 'छांदोग्य उपनिषद्' में अलंकार शब्द स्पष्टतः प्रयुक्त है तथा महर्षि यास्क ने 'निरुक्त' में 'अरंकृत' के पर्याय के रूप में अलंकार का प्रयोग किया है।

अंजनाभ्यंजने प्रयच्छत्येव ह मानुषोऽलंकारः।

—शतपथ ब्राह्मण, १३/८/४

वसनेन अलंकारेणेति संस्कुर्वंति। —छांदोग्य उपनिषद् ८/८/५

महर्षि पाणिनि ने 'अलंकरिष्णु' शब्द की सिद्धि के निमित्त अपनी अष्टाध्यायी' के सूत्र में 'अलंकृञ्' का समावेश किया। —अष्टाध्यायी ३/२/१३६। तत्पश्चात् 'रामायण' एवं 'महाभारत' में अलंकारों के सुंदर उदाहरण ही नहीं मिलते, अपितु इसका प्रयोग भी दृष्टिगोचर होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'ऋग्वेद' में उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति, अनुप्रास, यमक, श्लेष, व्यतिरेक, उत्प्रेक्षा आदि के अनेक उदाहरण उपलब्ध होते हैं। प्राचीन ग्रंथों में अलंकार का सैद्धांतिक स्वरूप प्रथमतः यास्क के 'निरुक्त' में विवेचित हुआ है। 'निघंटु' में उपमा के अर्थ में प्रयुक्त होनेवाले लगभग बारह शब्दों का निर्देश है। यास्क ने उपमा के कई भेदों का भी उल्लेख किया है—कर्मोपमा, भूतोपमा, रूपोपमा, सिद्धोपमा तथा अर्थोपमा या लुप्तोपमा। 'निरुक्त' में उपमा अर्थ के वाचक निपात पाँच हैं—यथा, न, चित्, नु और आ। यास्क के पूर्ववर्ती आचार्य गार्ग्य ने उपमा को परिभाषित करने का प्रयत्न किया था। उनके अनुसार उपमा का विषय वह होता है, जो ऊपर से भिन्न होने पर भी समान हो।

यद् असत् सत्सदृशमिति गार्ग्यः। तदासां कर्म।

—निरुक्त, ३/३/१४

अधिक गुणवाले या अत्यंत प्रसिद्ध उपमान के साथ अप्रसिद्ध उपमेय की समानता उपमा में दिखलाई जाती है।

ज्यायसा वा गुणेन प्रख्याततमेन वा, कनीयांसं वा अप्रख्यातं वा उपमीयते।

—निरुक्त, ३/३/१४

निरुक्त के इस विवेचन से प्रमाणित होता है कि यास्क से पूर्व गार्ग्य आदि आचार्यों ने उपमा का विवेचन किया था। साथ ही इसकी (उपमा की) व्याख्या भी वेदमंत्रों के अर्थों में प्रारंभ हो गई थी। यास्क का उपमा-विवेचन शाब्दिक अर्थों पर ही अधिक अवलंबित है। शास्त्रीय विवेचन की दृष्टि से उसका महत्त्व गौण है। उपमा के अतिरिक्त अन्य अलंकारों के भी नाम निरुक्त में मिलते हैं—निदर्शना, आशीः आदि। निदर्शनायोदाहरिष्यामः। १, २, २

इत्याशीः, वही १०/४३

भरत से पूर्व पाणिनि की 'अष्टाध्यायी', कात्यायन के 'वार्तिक' तथा पतंजलि के 'महाभाष्य' में अलंकारों का शास्त्रीय विवेचन उपलब्ध होता है। पाणिनि ने 'निरुक्त' से भी अधिक स्पष्ट रूप में उपमा का निरूपण किया है।

तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम्।

—अष्टाध्यायी, २/३/७२

अलंकारों का वास्तविक विवेचन भरत कृत 'नाट्यशास्त्र' से होता है—

भरत—(समय २५७ वि० पू० से २५७ वि० सं० के मध्य)—भारतीय काव्यशास्त्र के आद्याचार्य भरतकृत 'नाट्यशास्त्र' में ही सर्वप्रथम अलंकारों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का संकेत है। भरत का ग्रंथ मुख्यतः नाट्यशास्त्रीय रचना है, अतः इसमें काव्यालंकारों का वर्णन न होकर नाट्यालंकारों का विवेचन है। उन्होंने रूपक की दृष्टि से केवल चार ही अलंकारों का निरूपण किया है—उपमा, रूपक, दीपक और यमक का। रूपक की भाषाशैली पर विचार करते समय उपर्युक्त अलंकारों का उल्लेख किया गया है।

उपमा रूपकं चैव दीपकं यमकं तथा।
अलंकारास्तु विज्ञेयाश्चत्वारो नाटकाश्रयाः ॥

—नाट्यशास्त्र, १६/४३

इन अलंकारों का संबंध वाचिक अभिनय से ही है।

यदा सर्वे समुदिता एकीभूता भवंति हि।
अलंकारः स तु तदा मंतव्यो नाटकाश्रया ॥

—वही, २७/९२

इनके अतिरिक्त उन्होंने ३६ काव्यलक्षणों का भी निर्देश किया है, जिनमें से कुछ को परवर्ती आचार्यों ने अलंकार का रूप दिया—जैसे उदाहरण, निरुक्त, अतिशय, हेतु, मिथ्याध्यवसाय, सिद्धि (विधि), प्रतिषेध, दृष्टांत, संशय, अर्थापत्ति, आशी, युक्ति। भरत ने उपमादि को अलंकार कहा तथा काव्यलक्षणों को काव्यभूषण।

काव्यबंधास्तु कर्त्तव्याः षट्त्रिंशल्लक्षणान्विताः।

—वही, २६/१६९

उन्होंने जिन्हें लक्षण कहा है, वे कालक्रम से लक्षणों की परिधि से हटकर अलंकार के रूप में परिगृहीत हुए; जैसे, उदाहरण, निरुक्त, अतिशय, हेतु, प्रतिषेध, मिथ्याध्यवसिति, संदेह, दृष्टांत, निदर्शना एवं अर्थापत्ति।

तत्र गुणालंकारारादिरीतिवृत्तश्च काव्येषु प्रसिद्धो मार्गः। लक्षणानि तु न प्रसिद्धानि।

एतानि वा काव्यभूषणानि।
प्रोक्तानि वै भूषण संमितानि ॥

—नाट्यशास्त्र, १६/४१

'नाट्शास्त्र' के १६वें अध्याय में अलंकारों का विवेचन है। भरत-वर्णित अलंकारों में तीन अर्थालंकार एवं यमक नामक एक शब्दालंकार का कथन है। उन्होंने उपमा और यमक के भेदों का विश्लेषण किया, पर दीपक और रूपक के भेदों का उल्लेख नहीं किया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपमा की परिभाषा इस प्रकार है—यदि गुण या आकृति की समानता के कारण काव्यबंधों में सादृश्य के द्वारा तुलना की जाय तो उपमा होती है।

यत्किंचित्काव्यबंधेषु सादृश्येनोपमीयते।
उपमानाम सा ज्ञेया गुणाकृतिसमाश्रया ॥

—नाट्यशास्त्र, १६/४१

उपमा के पाँच प्रकार हैं—प्रशंसा, निंदा, कल्पिता, सदृशी तथा किंचित्सदृशी।

उपमा चार प्रकार से संभव है—एक की एक के साथ, एक की अनेक के साथ, अनेक की एक के साथ एवं अनेक की अनेक के साथ।

प्रशंसा चैव निंदा च कल्पिता सदृशी तथा।
किंचिच्च सदृशी ज्ञेया ह्युपमा पंचधा पुनः ॥
एकस्यैकेन साकार्या ह्यनेकेनाथवा पुनः।
अनेकस्य तथैकेन बहूनां बहुभिस्तथा ॥

—वही, १६/४२,४६

विभिन्न अधिकरणवाले अर्थ को बतलानेवाले शब्द को एक ही वाक्य में संयुक्त करने का वर्णन दीपक है।

नानाधिकरणार्थानां शब्दानां संप्रदीपकम्।
एकवाक्येन संयुक्तं तद्दीपकमिहोच्यते ॥

—नाट्यशास्त्र, १६/४३

रूपक में गुणसाम्य के आधार पर उपमेय एवं उपमान की अभेदता सिद्ध की जाती है।

स्वविकल्पेन रचितं तुल्यावयव लक्षणम्।
किंचित्सादृश्यसंपन्नं तद्रूपं रूपकं तु तत् ॥
नाना द्रव्यानुरागाद्यैर्यदौपम्यं गुणाश्रयम्।
रूपनिर्वर्णनायुक्तं तद्रूपकमिति स्मृतम् ॥

—नाट्यशास्त्र, १६/५३,५७

यमक का वर्णन विस्तार के साथ किया गया है और इसके दस भेद वर्णित हैं। भरत के अनुसार शब्दाभ्यास को यमक कहते हैं।

शब्दाभ्यासस्तु यमकं पदादिषु विकल्पितम् ॥

—वही, १६/५९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यमक के दस प्रकारों के नाम हैं—पादांतयमक, कांचीयमक, सनुद्गयमक, विक्रांत, चक्रवाल, पादादि, आम्रेदित एवं चतुर्व्यसित यमक। भरत के समय तक ये ही अलकार स्वीकृत थे।

भट्टिकाव्य या रावणेश्वरवध—भट्टिकाव्य का समय ५५० से ६९० वि० सं० है। इसके १०वें, १२वें तथा १३वें सर्ग में अलंकारों के उदाहरण उपस्थित किए गए हैं। स्वयं भट्टि ने अलंकारों के लक्षण नहीं दिए, टीकाकारों ने ही उनके श्लोकों में अलंकारों का निदर्शन करते हुए उनका विवेचन किया है। दशम सर्ग के प्रसन्नकांड में ३८ अलंकारों के उदाहरण दिए गए हैं, जिनमें दो शब्दालंकार हैं और शेष अर्थालंकार।

शब्दालंकारों में अनुप्रास और यमक का उल्लेख है और यमक के बीस भेदों का भी निर्देश है। शेष अलंकारों में दीपक के तीन प्रकार, रूपक के चार भेद, उपमा के छह प्रकार, अर्थांतरन्यास, आक्षेप, व्यतिरेक, विभावना, समासोक्ति, कारणमाला, काव्यलिंग, अतिशयोक्ति, यथासंख्य, उत्प्रेक्षा, वार्त्ता, प्रेयस, रसवत्, ऊर्जस्वी, पर्यायोक्ति, समाहित, उदार (सार), श्लिष्ट के दो प्रकार, अपह्नुति, विशेषोक्ति, व्याजस्तुति, उपमारूपक, तुल्ययोगिता, निदर्शन, विरोध, उपमेयोपमा, सहोक्ति, परिवृत्ति, ससंदेह, अनन्वय, उत्प्रेक्षावयव, संसृष्टि, आशी, हेतु एवं निपुण हैं। बारहवें सर्ग में भाविक एवं तेरहवें सर्ग में भाषासम का उल्लेख है। कुल मिलाकर अलंकारों की संख्या ३८ है। अलंकार-विवेचन की दृष्टि से इस ग्रंथ का महत्त्व भले ही न हो, पर अलंकारों का संकेत कर टीकाकारों ने इसकी महत्ता सिद्ध कर दी है।

भामह—भामह का समय वि० सं० ५५७ से ६७७ तक है। इनके 'काव्यालंकार' से ही भारतीय साहित्यशास्त्र का क्रमिक एवं व्यवस्थित रूप प्रारंभ हो जाता है, अतः भामह को ही काव्यशास्त्र का प्रथम आचार्य स्वीकार किया जाता है। राजानक रुय्यक ने इन्हें अलंकार-परंपरा का प्राचीनतम आचार्य घोषित करते हुए इनको 'अलंकारतंत्रप्रजापति' तथा चिरंतन आलंकारिक के रूप में परिगणित किया है।

इह तावद्भामहोद्भटप्रभृतयश्चिरंतनालंकाराः प्रतीयमानमर्थं वाच्योपस्कारतयालंकारापक्षनिक्षिप्तं मन्यन्ते।—अलंकारसर्वस्व, पृ० ३

इनका प्रसिद्ध ग्रंथ 'काव्यालंकार' छह परिच्छेदों में विभक्त है, जिसके द्वितीय एवं तृतीय परिच्छेदों में अलंकार-विवेचन है। भामह ने सर्वप्रथम काव्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में अलंकारों के महत्त्व को सूचित करते हुए उन्हें काव्य का वास्तविक शोभाधायक तत्त्व स्वीकार किया है। इनके अनुसार काव्य, वनिता के मुख की भाँति, भूषा या अलंकार के बिना सुशोभित नहीं हो सकता। इन्होंने विदग्धमंडना नारी की भाँति अर्थमर्मज्ञों की अलंकृत वाणी के विभूषित होने का वर्णन करते हुए अलंकारों की गरिमा का आख्यान किया है।

न कांतमपि निर्भूषं विभाति वनितामुखम् ॥

—काव्यालंकार, १/१३

अनेन वागर्थविदामलंकृता विभाति नारीव विदग्धमंडना ॥

—वही, ३/५८

भामह-द्वारा निरूपित अलंकारों की संख्या ३८ है, जिनमें २ शब्दालंकार हैं।

शब्दालंकार—अनुप्रास, यमक।

अर्थालंकार—रूपक, दीपक, उपमा, आक्षेप, अर्थांतरन्यास, व्यतिरेक, विभावना, समासोक्ति, प्रेय, रसवत्, ऊर्जस्वी, पर्यायोक्त, समाहित, उदात्त, श्लिष्ट, अपह्नुति, विशेषोक्ति, विरोध, तुल्ययोगिता, अप्रस्तुतप्रशंसा, व्याजस्तुति, निदर्शना, उपमारूपक, उपमेयोपमा, सहोक्ति, परिवृत्ति, ससंदेह, अनन्वय, उत्प्रेक्षावयव, संसृष्टि, भाविकत्व एवं आशीः।

भामह ने वक्रोक्ति को सभी अलंकारों का मूल माना है। वक्रोक्ति के अभाव के कारण ही वे हेतु, सूक्ष्म एवं लेश को अलंकारत्व प्रदान नहीं करते।

सैषा सर्वैव वक्रोक्तिरनयाऽर्थो विभाव्यते।
यत्नोऽस्यां कविना कार्यो कोऽलंकारोऽनया विना ॥

—काव्यालंकार, २/८५

अलंकारवादी आचार्य होते हुए भी इन्होंने अलंकार का कोई सामान्य लक्षण नहीं प्रस्तुत किया। परवर्त्ती आचार्यों ने भामह के विवेचन को आदर देते हुए उपमारूपक एवं उत्प्रेक्षावयव के अतिरिक्त सभी अलंकारों को स्वीकार कर लिया।

भामह के अलंकार-निरूपण के अपने गुण-दोष हैं, किंतु कुल मिलाकर इनका अलंकार-विधान संतोषप्रद है।

दंडी—(समय सप्तम शतक का उत्तरार्द्ध) भामह के पश्चात् अलंकारवाद के अन्य प्रधान पोषक आचार्य दंडी हैं। इनका प्रधान ग्रंथ है 'काव्यादर्श',

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जो तीन परिच्छेदों में विभक्त है। इसके द्वितीय एवं तृतीय परिच्छेदों में अलंकारों का विस्तृत विवेचन है। इन्होंने अनुप्रास, यमक, चित्र और प्रहेलिका नामक चार शब्दालंकारों एवं ३५ अर्थालंकारों का वर्णन किया है।

शब्दालंकार—अनुप्रास, यमक, चित्र, प्रहेलिका।

अर्थालंकार—स्वभावोक्ति (जाति), उपमा, रूपक, दीपक, आवृत्ति-दीपक, आक्षेप, अर्थांतरन्यास, व्यतिरेक, विभावना, समासोक्ति, अतिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा, हेतु, सूक्ष्म, लेश, यथासंख्य, प्रेयस्, रसवत्, ऊर्जस्वि, पर्यायोक्त, समाधि, उदात्त. अपह्नुति, श्लेष, विशेष, तुल्ययोगिता, विरोध, अप्रस्तुत-प्रशंसा, व्याजस्तुति, निदर्शना, सहोक्ति, परिवृत्ति, आशीः, संसृष्टि, भाविक।

दंडी ने भामह की कतिपय मान्यताओं को स्वीकार करते हुए भी कुछ के प्रति असहमति प्रकट की है। इन्होंने अलंकार की सामान्य परिभाषा प्रस्तुत कर उसे काव्य का शोभाकारक धर्म कहा है, जबकि भामह ने अलंकार का सामान्य लक्षण नहीं दिया। भामह ने वक्रोक्ति को अलंकार का प्राण माना था, किंतु दंडी ने उसे वांग्मय का एक प्रकार स्वीकार किया।

काव्यशोभाकरान्धर्मानलंकारान् प्रचक्षते।

—काव्यादर्श, २/१

भिन्ना द्विधा स्वभावोक्तिर्वक्रोक्तिश्चेति वांग्मयम्॥

—वही, २/३६३

प्रकारांतर से दंडी भी अलंकारों की वक्रोक्तिमूलकता स्वीकार करते हैं। उन्होंने वांग्मय का अर्थ उक्ति से ग्रहण किया है। उन्होंने जाति या स्वभावोक्ति को काव्य की आद्य अलंकृति स्वीकार कर उसका साम्राज्य शास्त्र एवं काव्य में समान रूप से प्रदर्शित किया है।

भामह सूक्ष्म, लेश एवं हेतु को अलंकारत्व प्रदान नहीं कर सके थे, किंतु दंडी ने इन्हें अलंकार का उत्तम भूषण मानकर इनका विवेचन किया। इन्होंने अलंकारों के संबंध में कई नवीन उद्भावनाएँ कीं और कतिपय अलंकारों के भेदों का विस्तार किया। जैसे, उपमा के ३२ भेद किए। श्लेष एवं अतिशयोक्ति को भी इन्होंने विशेष महत्त्व दिया। दंडी ने अलंकार एवं गुण दोनों को काव्य का शोभाधायक तत्त्व स्वीकार किया है तथा सदलंकारता में ही काव्य की अमरता की घोषणा की है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दंडिनापि काव्यशोभाकरान्धर्मानलंकारान् प्रचक्षते इति ब्रुवता गुणमध्य एव तत्र प्रसादादीनभिदधता च गुणालंकार विभागोऽप्यसंभवीति सूचितं भवति………।

—अभिनवभारती, भाग २, पृ० २९५

काव्यं कल्पांतस्थायि जायते सदलंकृति।

—काव्यादर्श, १/१९

उद्भट (समय, नवम शतक का पूर्वार्द्ध)—उद्भट भी भामह एवं दंडी की भाँति अलंकार-संप्रदाय के पोषक हैं। इनका प्रसिद्ध ग्रंथ है 'काव्यालंकार-सारसंग्रह'। इसके अतिरिक्त 'भामह-विवरण' नामक ग्रंथ की भी इन्होंने रचना की थी, किंतु संप्रति वह उपलब्ध नहीं है। 'काव्यालंकारसारसंग्रह' छह वर्गों या अध्यायों में विभक्त है, जिसमें उनासी कारिकाओं में एकतालीस अलंकारों का विवरण है। उन्होंने प्रायः उन सभी अलंकारों का वर्णन किया है, जिनका विवेचन भामह ने किया था; पर उनके तीन अलंकारों को स्थान नहीं दिया या उन्हें अनावश्यक समझकर छोड़ दिया है। वे हैं—यमक, उत्प्रेक्षावयव तथा उपमारूपक। इन्होंने कुछ नए अलंकार भी बढ़ाए हैं; जैसे—पुनरुक्त-वदाभास, छेकानुप्रास, लाटानुप्रास, काव्यहेतु, काव्यदृष्टांत एवं संकर। इन अलंकारों की उद्भावना कर उद्भट ने अपनी मौलिक चिंतनशक्ति का परिचय दिया है। यही नहीं, इन्होंने लक्षण एवं भेद-प्रतिपादन में भी स्वच्छंदता का परिचय दिया है। उद्भट की सबसे बड़ी विशेषता है, सर्वप्रथम अलंकारों का वर्गीकरण। इन्होंने अलंकारों को छह वर्गों में रखा है।

वर्ग १—पुनरुक्तवदाभास, छेकानुप्रास, वृत्त्यनुप्रास, लाटानुप्रास, रूपक, दीपक, उपमा, प्रतिवस्तूपमा।

वर्ग २—आक्षेप, अर्थांतरन्यास, व्यतिरेक, विभावना, समासोक्ति, अतिशयोक्ति।

वर्ग ३—यथासंख्य, उत्प्रेक्षा, स्वभावोक्ति।

वर्ग ४—प्रेयस्वत्, रसवत्, ऊर्जस्वि, पर्यायोक्त, समाहित, उदात्त, श्लिष्ट।

वर्ग ५—अपह्नुति, विशेषोक्ति, विरोध, तुल्ययोगिता, अप्रस्तुतप्रशंसा, व्याजस्तुति, निदर्शना, संकर, उपमेयोपमा, सहोक्ति, परिवृत्ति।

वर्ग ६—ससंदेह, अनन्वय, संसृष्टि, भाविक, काव्यलिंग, दृष्टांत।

उद्भट ने आक्षेप, विरोध, यथासंख्य, विभावना, पर्यायोक्त, अतिशयोक्ति, अनन्वय, अप्रस्तुतप्रशंसा, सहोक्ति, अपह्नुति एवं ससंदेह का विवेचन करते हुए

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भामह के ही लक्षणों को ग्रहण कर लिया और अनुप्रास, उत्प्रेक्षा, रसवत् तथा भाविक के निरूपण में उनका प्रभाव ग्रहण किया।

इन्होंने प्रायः आधे अलंकारों के लक्षण भामह से ही लिए हैं या शब्दांतर से उन्हें ग्रहण किया अथवा अनूदित कर दिया है। 'काव्यालंकारसारसंग्रह' की दो टीकाएँ प्रसिद्ध हैं—प्रतिहारेंदुराज की लघुवृत्ति तथा राजानक तिलक की उद्भट विवेक टीका। इसका हिंदी अनुवाद डॉ० राममूर्त्ति त्रिपाठी ने किया है।

वामन (समय, संवत् ८५७ के निकट)—आचार्य वामन रीति-संप्रदाय के प्रवर्त्तक एवं 'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति' नामक ग्रंथ के प्रणेता हैं। इस ग्रंथ की रचना सूत्रशैली में हुई है तथा उनके भावों को वृत्ति द्वारा स्पष्ट किया गया है। 'काव्यालंकारसूत्र' पाँच अधिकरणों में विभक्त है। इसके चतुर्थ अधिकरण में अलंकारों का विवेचन है। इन्होंने रीति को काव्य की आत्मा मानकर नवीन संप्रदाय या काव्य-सिद्धांत का उपस्थापन किया है। ये अलंकार, गुण एवं रीति का महत्त्व काव्य के लिए स्वीकार करते हैं। इनके अनुसार सौंदर्य ही अलंकार है।

विशिष्टापदरचना रीतिः। १,२,७
रीतिरात्माकाव्यस्य। १, २, ६
सौंदर्यमलंकारः। १, १, २
काव्यं ग्राह्यमलंकारात्। १/१/१
काव्यशोभायाः कर्त्तारो धर्मा गुणाः—
तद्तिशयहेतवस्त्वलंकाराः। ३/१/२

—काव्यालंकारसूत्रवृत्ति

इनके पूर्व गुण एवं अलंकार काव्य के शोभाधायक तत्त्व के रूप में स्वीकृत थे; किंतु वामन ने सर्वप्रथम दोनों के पार्थक्य का निदर्शन करते हुए सर्वथा नवीन विचार व्यक्त किया। इन्होंने बताया कि दोष के त्याग तथा गुणालंकार के ग्रहण से काव्य में सौंदर्याधान होता है। अलंकार के कारण ही काव्य ग्राह्य है। काव्य की शोभा को उत्पन्न करनेवाले गुण हैं; किंतु उसके (शोभा के) अतिशय हेतु को अलंकार कहते हैं। अलंकार-विवेचन में भी इन्होंने मौलिकता प्रदर्शित की है तथा उपमा को प्रधान अलंकार मानकर अन्य सभी अलंकारों को उपमा-प्रपंच कहा है। वामन-द्वारा निरूपित अलंकारों की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संख्या बत्तीस है—उपमा, प्रतिवस्तु, समासोक्ति, अप्रस्तुतप्रशंसा, अपह्नुति, रूपक, श्लेष, वक्रोक्ति, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, संदेह, विरोध, विभावना, अनन्वय, उपमेयोपमा, परिवृत्ति, व्यर्थ, दीपक, निदर्शना, अर्थांतरन्यास, व्यतिरेक, विशेषोक्ति, व्याजस्तुति, व्याजोक्ति, तुल्ययोगिता, आक्षेप, सहोक्ति, समाहित, संसृष्टि, उपमारूपक, उत्प्रेक्षा, अवयव।

शब्दालंकार—यमक एवं अनुप्रास।

वामन 'व्याजोक्ति' अलंकार के उद्भावक हैं। काव्यालंकारसूत्र का हिंदी-अनुवाद आचार्य विश्वेश्वर ने किया है।

रुद्रट (समय, ८२५ से ८७५ के मध्य)—भारतीय साहित्यशास्त्र के इतिहास में रुद्रट का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इन्हें संक्रांतियुग का आलंकारिक माना जाता है। इनके ग्रंथ का नाम है 'काव्यालंकार', जो ध्वनि-पूर्व युग एवं आनंदवर्द्धन के मध्य अनिवार्य कड़ी के रूप में प्रतिष्ठित है। ये अलंकार-संप्रदाय के आचार्य होते हुए भी रस-संप्रदाय से प्रभावित हैं। 'काव्यालंकार' में सोलह परिच्छेद या अध्याय हैं, जिसके द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, सप्तम, अष्टम, नवम एवं दशम अध्यायों में विस्तारपूर्वक अलंकारों का निरूपण है। इन्होंने प्रथमतः शब्दालंकार एवं अर्थालंकारों का विभाजन कर इन्हें पृथक् स्थान दिया है और अलंकारों के वैज्ञानिक विवेचन की ओर प्रवृत्त हुए हैं। अर्थालंकारों को चार वर्गों में विभाजित कर वास्तव, औपम्य, अतिशय एवं श्लेष नामक वर्ग किए गए हैं। इनके कुल अलंकारों की संख्या बासठ है।

अर्थस्यालंकारा वास्तवमौपम्यमतिशयः श्लेषः।
एषामेव विशेषा अन्ये तु भवंति निःशेषाः॥

—काव्यालंकार, ७/९

वास्ववर्ग—सहोक्ति, समुच्चय, जाति, यथासंख्य, भाव, पर्याय, विषम, अनुमान, दीपक, परिकर, परिवृत्ति, परिसंख्या, हेतु, कारणमाला, व्यतिरेक, अन्योन्य, उत्तर, सार, सूक्ष्म, लेश, अवसर, मीलित, एकावली। २३

औपम्यमूलक—उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अपह्नुति, संशय, समासोक्ति, मत, उत्तर, अन्योक्ति, प्रतीप, अर्थांतरन्यास, उभयन्यास, भ्रांतिमत्, आक्षेप, प्रत्यनीक, दृष्टांत, पूर्व, सहोक्ति, समुच्चय, साम्य, स्मरण। २१

अतिशयमूलक—पूर्व, विशेष, उत्प्रेक्षा, विभावना, तद्गुण, अधिक, विरोध, विषम, असंगति, पिहित, व्याघात, अहेतु। १२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

श्लेष—श्लेष (एवं उसके दस भेद)। १

शब्दालंकारों में वक्रोक्ति, अनुप्रास, यमक, श्लेष एवं चित्र हैं।

रुद्रट ने पूर्ववर्ती आचार्यों की अपेक्षा अनेक नवीन अलंकार बढ़ाए हैं—समुच्चय, भाव, पर्याय, परिवृत्ति, परिकर, अनुमान, परिसंख्या, कारणमाला, अन्योन्य, विषम, उत्तर (प्रथम), उत्तर (द्वितीय), अन्योक्ति, प्रतीप, उभयन्यास, मीलित, एकावली, मत, भ्रांतिमान्, प्रत्यनीक, पूर्व, साम्य, अवसर, स्मरण, तद्गुण, अधिक, असंगति, पिहित, व्याघात, अहेतु, व्याजश्लेष। इनमें से भाव, मत, अवसर, साम्य एवं पिहित को परवर्ती आचार्यों-द्वारा मान्यता नहीं मिली। 'भाव' को मम्मटादि ने गुणीभूतव्यंग्य के अंतर्गत स्थान दिया है और व्याजश्लेष तो व्याजस्तुति ही है। रुद्रट ने सर्वप्रथम अलंकारों के वैज्ञानिक वर्गीकरण की आधारशिला रखकर परवर्ती आचार्यों का मार्ग प्रशस्त किया तथा अनेक नवीन अलंकारों की उद्भावना कर वाच्यवैचित्र्य के नूतन स्रोतों का उद्घाटन किया। इनके प्रसिद्ध टीकाकार हैं नमिसाधु। काव्यालंकार के हिंदी अनुवादक हैं डॉ० सत्यदेव चौधरी। नमिसाधु की टीका के सहित काव्यालंकार का अनुवाद पं० रामदेव शुक्ल ने किया है।

कुंतक (समय, वि० सं० १०५०)—राजानक कुंतक वक्रोक्ति-संप्रदाय के पुरस्कर्त्ता हैं। इन्होंने 'वक्रोक्ति-जीवित' नामक ग्रंथ का प्रणयन किया हैं। ये वक्रोक्ति को ही काव्य का प्राण या जीवित मानते हैं। इन्होंने वक्रोक्ति-विवेचन के क्रम में कतिपय अलंकारों का भी वर्णन किया है और तत्संबंधी सर्वथा नवीन मत व्यक्त किया है। इन्होंने यथासंभव अलंकारों की संख्या का नियमन करते हुए समस्त अलंकारों का अंतर्भाव वाक्यवक्रता में किया है।

यत्रालंकारवर्गोऽसौ सर्वोऽप्यंतर्भविष्यति।

—वक्रोक्तिजीवित, १/२०

अवशिष्ट अलंकारों को चमत्काराभाव के कारण इन्होंने अलंकार न मानकर इन्हीं अलंकारों में गतार्थ कर दिया है। कुंतक-द्वारा वर्णित अलंकारों की संख्या बीस है—दीपक, रूपक, उत्प्रेक्षा, अप्रस्तुतप्रशंसा, पर्यायोक्त, अतिशयोक्ति, उपमा, उपमेयोपमा, तुल्ययोगिता, अनन्वय, परिवृत्ति, श्लेष, व्यतिरेक, सहोक्ति, दृष्टांत, अर्थांतरन्यास, आक्षेप, विभावना, ससंदेह, अपह्नुति।

भूषणांतरभावेन शोभाशून्यतया तथा।
अलंकारास्तु ये केचिन्नालंकारतयामनाक्॥—वक्रोक्तिजीवित, ३/४४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुंतक ने 'सालकारस्य काव्यता' कहकर अलंकार को काव्य का अनिवार्य तत्त्व स्वीकार किया। 'वक्रोक्तिजीवित' का हिंदी अनुवाद आ० विश्वेश्वर ने किया है। दूसरे अनुवादक पं० राधेश्याम मिश्र (चौखंबा) हैं।

भोज (समय, वि० सं० १०५७ से ११५७ तक)—धारानरेश भोज ने 'सरस्वती-कंठाभरण' तथा 'शृंगारप्रकाश' नामक दो काव्यशास्त्रीय ग्रंथों की रचना की है। 'सरस्वती कंठाभरण' में पाँच परिच्छेद हैं, जिसके द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ परिच्छेदों में अलंकारों, अर्थालंकारों तथा उभयालंकारों की संख्या बहत्तर मानी है और प्रत्येक वर्ग के अंतर्गत चौबीस का कथन किया है। इनका अलंकार-निरूपण परंपरागत न होकर स्वतंत्र है। इनके कतिपय अलंकारों को मान्यता नहीं प्राप्त हो सकी।

द्वितीय परिच्छेद में चौबीस शब्दालंकारों का विवेचन है—जाति, गति, रीति, वृत्ति, छाया, मुद्रा, उक्ति, युक्ति, भणिति, गुंफना, शय्या, पठिति, यमक, श्लेष, अनुप्रास, चित्र, वाकोवाक्य, प्रहेलिका, गूढ़, प्रश्नोत्तर, अध्येय, श्रव्य, प्रेक्ष्य एवं अभिनय।

तृतीय परिच्छेद में चौबीस अर्थालंकार हैं—जाति, विभावना, हेतु, अहेतु, सूक्ष्म, उत्तर, विरोध, संभव, अन्योन्य, परिवृत्ति, निदर्शन, भेद, समाहित, भ्रांति, वितर्क, मीलित, स्मृति, भाव, अनुमान, प्रत्यक्ष, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति, अभाव।

चतुर्थ परिच्छेद में चौबीस उभयालंकार वर्णित हैं—उपमा, रूपक, साम्य, संशयोक्ति, अपह्नुति, समाध्युक्ति, समासोक्ति, उत्प्रेक्षा, अप्रस्तुतस्तुति, तुल्ययोगिता, लेश, सहोक्ति, समुच्चय, आक्षेप, अर्थांतरन्यास, विशेष, परिष्कृति, दीपक, क्रम, पर्याय, अतिशय, श्लेष, भाविक, संसृष्टि। भोज ने बाह्य, आभ्यंतर एवं उभयालंकारों के तीन वर्ग बनाए तथा अलंकार की अपेक्षा काव्य में गुण का अधिक महत्त्व प्रतिष्ठित किया। इनके प्रसिद्ध टीकाकार हैं जगद्धर एवं रत्नेश्वर। भोज अलंकार शब्द का व्यवहार बड़े व्यापक अर्थ में करते हुए गुण एवं रस को भी अलंकार मानकर उन्हें काव्य का शोभाकारक धर्म स्वीकार करते हैं।

शब्दार्थोभयसंज्ञाभिरलंकारान्कवीश्वराः।
बाह्यानाभ्यंतरान्बाह्याभ्यंतरांश्चानुशासति॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अलंकृतमपि श्रव्यं न काव्यं गुणवर्जितम् ।
गुणयोगस्तयोर्मुख्यो गुणालंकारयोगयोः ।।

—सरस्वतीकंठाभरण, १/५६, २/१

तत्र 'अलंकार संसृष्टेः' इत्येववक्तव्ये नानालंकारग्रहणं गुणरसानामुपसंग्रहार्थम् । तेषामपि काव्यशोभाकरत्वेनालंकारत्वात् ।—वही, पृ० ७०३ । सरस्वतीकंठाभरण का हिंदी अनुवाद सहित प्रकाशन, चौखंबा विद्याभवन से हुआ है ।

मम्मट (समय, वि० सं० ११५०)—मम्मट ध्वनिवादी आचार्य एवं समन्वयवादी विचारक हैं। इनका ग्रंथ 'काव्यप्रकाश' १० उल्लासों में विभक्त है, जिसके नवम एवं दशम उल्लासों में अलंकारों का विवेचन है। अलंकार-निरूपण की दृष्टि से इनकी कई महत्त्वपूर्ण स्थापनाएँ हैं। इन्होंने अलंकारों की संख्या सीमित करते हुए उनके स्वरूप को स्थिर किया तथा पूर्ववर्ती आचार्यों के अलंकार-विवेचन का परिष्कार करते हुए उसके स्वरूप का संस्कार किया। इन्होंने सम, सामान्य, विनोक्ति एवं अतद्गुण, इन चार नवीन अलंकारों की उद्भावना भी की। इनके लक्षण सारगर्भ एवं संक्षिप्त हैं। मम्मट ने आलंकारिकों की मान्यता का खंडन करते हुए इसे काव्य का अनिवार्य तत्त्व नहीं माना। इन्होंने बताया कि कभी-कभी अलंकाररहित रचना भी काव्य की संज्ञा से विभूषित होती है। ये अलंकार को हारादि की भाँति रस का उपकारक मानते हैं। काव्य में रस अंगी है और गुण उसका स्थिर या नित्यधर्म है। अलंकार आभूषणादि की भाँति काव्य का अस्थिर या अनित्य धर्म है तथा इसका उद्देश्य रस का उपकार करना है।

ये रसस्यांगिनोधर्माः शौर्यादय इवात्मनः ।
उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः ।।
उपकुर्वंति तं संतं येऽङ्गद्वारेण जातुचित् ।
हारादिवदलंकारास्तेऽनुप्रासोपमादयः ।।

—काव्यप्रकाश, ८/६६,६७

शब्दालंकार एवं अर्थालंकार के विभेदक तत्त्व अर्थात् 'अन्वय व्यतिरेक सिद्धांत' की स्थापना मम्मट की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। इनके अनुसार किसी शब्द के परिवर्त्तन से यदि अलंकार का अस्तित्व नष्ट न हो तो वहाँ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अर्थालंकार और शब्दपरिवर्त्तन के बाद अलंकार की सत्ता अक्षुण्ण न रहे तो शब्दालंकार होगा। मम्मट ने कुल मिलाकर सड़सठ अलंकारों का वर्णन किया है।

शब्दालंकार : वक्रोक्ति, अनुप्रास, यमक, श्लेष, चित्र, पुनरुक्तवदाभास।

अर्थालंकार : उपमा, अनन्वय, उपमेयोपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अपह्नुति, श्लेष, समासोक्ति, निदर्शना, अप्रस्तुतप्रशंसा, अतिशयोक्ति, प्रतिवस्तूपमा, दृष्टांत, दीपक, मालादीपक, तुल्ययोगिता, व्यतिरेक, आक्षेप, विभावना, विशेषोक्ति, यथासंख्य, अर्थांतरन्यास, विरोध, स्वभावोक्ति, व्याजस्तुति, सहोक्ति, विनोक्ति, परिवृत्ति, भाविक, काव्यलिंग, पर्यायोक्त, उदात्त, समुच्चय, कारणमाला, पर्याय, अनुमान, परिकर, व्याजोक्ति, परिसंख्या, अधिक, प्रत्यनीक, मीलित, एकावली, स्मरण, भ्रांतिमान्, प्रतीप, सामान्य, विशेष, तद्गुण, अतद्गुण, व्याघात, अन्योन्य, उत्तर, सूक्ष्म, सार, असंगति, समाधि, सम, विषम।

उभयालंकार : संकर, संसृष्टि।

अग्निपुराण (समय, १२वीं शताब्दी का मध्य)—अग्निपुराण के ३४२ से ३४४ अध्यायों में अलंकार-निरूपण है। इसमें कुल तेईस अलंकारों का उल्लेख है, जिनमें नौ शब्दालंकार, आठ अर्थालंकार एवं छह उभयालंकार हैं। इसमें अर्थालंकार के अंतर्गत सादृश्य के अवांतर-भेद में उपमा, रूपक, सहोक्ति और अर्थांतरन्यास का समावेश किया गया है और उभयालंकार के अभिव्यक्ति नामक भेद में आक्षेप, स्तुति, समासोक्ति, पर्यायोक्ति तथा अपह्नुति संज्ञक भेदों का निरूपण है। इसमें अलंकारों के संबंध में बड़े ही क्रांतिकारी विचार व्यक्त किए गए हैं। इनका कहना है कि अर्थों के चमत्कार को अर्थालंकार कहते हैं। इसके अभाव में शब्द-सौंदर्य से युक्त रहने पर भी काव्य मनोरम नहीं होता। अर्थालंकार के बिना वाणी या काव्य-कृति विधवा के सदृश हो जाती है। अग्निपुराणकार ने दंडी-द्वारा उपस्थापित अलंकार के लक्षण को ही ग्रहण कर लिया है।

> **अलंकरणमर्थानामर्थालंकार इष्यते।**
> **तं विना शब्दसौंदर्यमपि नास्ति मनोहरम्॥**
> **अर्थालंकार रहिता विधवेव सरस्वती।**
>
> —अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग, ८/१,२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

काव्यशोभाकरान्धर्मानलंकारान्प्रचक्षते ।
अलंका(क)रिष्णवस्ते च शब्दमर्थमुभौ त्रिधा ॥
ये व्युत्पत्यादिना शब्दमलंकर्तुमिह क्षमाः ॥

—वही, ६/१७,१८

शब्दालंकार के अंतर्गत छाया, मुद्रा, उक्ति, युक्ति, गुंफन, वाकोवाक्य, अनुप्रास, चित्र एवं दुष्कर नामक अलंकारों की गणना की गई है। अर्थालंकारों के आठ प्रकारों में स्वरूप, सादृश्य, उत्प्रेक्षा, अतिशय, विभावना, विरोध, हेतु और सम हैं। सादृश्य के चार प्रकार हैं—उपमा, सहोक्ति, रूपक और अर्थांतरन्यास। शब्दालंकार के छह भेद हैं—प्रशस्ति, कांति, औचित्य, संक्षेप, यावदर्थता एवं अभिव्यक्ति।

अग्निपुराण का अलंकार-निरूपण साधारण है तथा इसमें संग्रह की प्रवृत्ति अधिक है। इसके विवेचन पर भामह, दंडी एवं भोज का प्रभावाधिक्य है।

राजानक रुय्यक (समय, १२वीं शती का मध्य)—'अलंकारसर्वस्व' नामक ग्रंथ के रचयिता राजनक रुय्यक ने ध्वनिवादी आचार्य होते हुए भी अलंकारों का प्रौढ़ विवेचन एवं वैज्ञानिक वर्गीकरण किया है। इस ग्रंथ का निर्माण सूत्र-शैली में हुआ है तथा इसमें उनके क्रम एवं वर्गीकरण भी प्रस्तुत किए गए हैं। इनके अनुसार काव्य का जीवन व्यंग्य है और गुणालंकार तो उसके चारुत्व के हेतु हैं। व्यंग्य नामक विषय ही काव्य की आत्मा है। अलंकार काव्य के उपस्कारक होते हैं और रसादि प्राण; अतः इन्हें अलंकार-रूप में नहीं रखना चाहिए। काव्य में रस प्रधान होने के कारण उपस्कार्य या आत्मा है। इन्होंने शब्दालंकार, अर्थालंकार एवं उभयालंकार के रूप में अलंकारों का विभाजन कर पुनः अर्थालंकारों को सात वर्गों में विभक्त किया है।

तस्माद् विषय एव व्यंग्यनामा जीवितत्वेन वक्तव्यः। यस्य गुणालंकारकृत-चारुत्वपरिग्रह साम्राज्यम्। —अलंकार सर्वस्व, पृ० ८

शब्दालंकार—पुनरुक्तवदाभास, छेकानुप्रास, वृत्त्यनुप्रास, यमक, लाटानुप्रास तथा चित्र।

अर्थालंकार के अंतर्गत सर्वप्रथम साधर्म्यमूलक अलंकारों का वर्णन है, जिसके तीन उपविभाग किए गए हैं—भेदप्रधान, अभेदप्रधान एवं भेदाभेदप्रधान।

भेदाभेदप्रधान—उपमा, उपमेयोपमा, अनन्वय, स्मरण।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अभेदप्रधान अलंकारों के तीन उपविभाग हैं—आरोपमूलक, अध्यवसाय-मूलक एवं गम्यमान औपम्यमूलक।

आरोपमूलक अलंकार वर्ग में रूपक, परिणाम, संदेह, भ्रांतिमान, उल्लेख, एवं अपह्नुति का समावेश किया गया है।

अध्यवसायमूलक के भी दो उपविभाग किए गए हैं—साध्य अध्यवसायमूलक एवं सिद्ध अध्यवसायमूलक—प्रथम वर्ग में उत्प्रेक्षा एवं द्वितीय में अतिशयोक्ति आती है। गम्यमान औपम्यमूलक के दो प्रकार हैं—पदार्थगत गम्यमान औपम्य-मूलक एवं वाक्यार्थगत, गम्यमान औपम्यमूलक। प्रथमवर्ग में तुल्ययोगिता और दीपक आते हैं तो द्वितीय में प्रतिवस्तूपमा, दृष्टांत और निदर्शना। भेदप्रधान-वर्ग में व्यतिरेक, सहोक्ति एवं विनोक्ति को रखा गया है। विशेषणविच्छित्ति में समासोक्ति एवं परिकर रखे गए तथा विशेषण-विशेष्य-विच्छित्ति में श्लेष, अप्रस्तुतप्रशंसा, अर्थांतरन्यास, सपर्यायोक्त, व्याजस्तुति एवं आक्षेप को स्थान मिला। विरोधगर्भ अलंकारों में विरोध, विभावना, विशेषोक्ति, अतिशयोक्ति, (द्वितीय) असंगति, विषम, सम, अधिक, अन्योन्य, विशेष एवं व्याघात आते हैं। शृंखलामूलक अलंकार हैं—कारणमाला, एकावली, मालादीपक, सार।

तर्कन्यायमूलक—काव्यलिंग, अनुमान।

वाक्यन्यायमूलक—यथासंख्य, पर्याय, परिवृत्ति, अर्थापत्ति, विकल्प, परिसंख्या, समुच्चय, समाधि।

लोकन्यायमूलक—प्रत्यनीक, प्रतीप, मीलित, सामान्य, तद्गुण, अतद्गुण तथा उत्तर।

गूढ़ार्थप्रतीतिमूलक—सूक्ष्म, व्याजोक्ति एवं वक्रोक्ति।

इन अलंकारों के अतिरिक्त संकर और संसृष्टि को अलंकार संश्लेष पर आश्रित माना गया तथा भाविक, उदात्त, स्वभावोक्ति, रसवत्, प्रेयस्, ऊर्जस्वि, समाहित, भावोदय, भावसंधि एवं भावशबलता को किसी विशेष वर्ग के अंतर्गत नहीं रखा गया। रुय्यक ने अलंकार-वर्ग का निर्धारण चित्तवृत्ति के अनुसार किया है।

चित्तवृत्तिगतत्वेनालंकारा लक्षिताः।—अलंकार सर्वस्व, पृ० २१४

इन्होंने कुल बयासी अलंकारों का निरूपण किया, जिनमें परिणाम, उल्लेख, विकल्प और विचित्र ये चार नए अलंकार हैं। अलंकारों के लक्षण, वर्गीकरण तथा नवीन अलंकारों की उद्‌भावना की दृष्टि से रुय्यक का अप्रतिम योगदान है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गौण आचार्य—रुय्यक के पश्चात् हेमचंद्र, वाग्भट द्वय, केशव मिश्र, विद्याधर और विद्यानाथ प्रभृति आचार्य आते हैं, किंतु अलंकार-निरूपण की दृष्टि से इनका कोई महत्त्वपूर्ण योग नहीं है। हेमचंद्र का प्रसिद्ध ग्रंथ है 'काव्यानुशासन', जिसमें छह शब्दालंकारों एवं उनतीस अर्थालंकारों का निरूपण है। वाग्भट के 'वाग्भटालंकार' में चार शब्दालंकार एवं चौदह अर्थालंकार वर्णित हैं। हेमचंद्र, वाग्भट एवं केशव मिश्र अल्प-प्रसिद्ध आचार्य हैं, इनकी अपेक्षा विद्याधर एवं विद्यानाथ की महत्ता असंदिग्ध है।

विद्याधर की प्रसिद्ध रचना 'एकावली' है और इनका समय १३वीं शती का अंत एवं चौदहवीं शती का पूर्वार्द्ध है। इनपर मल्लिनाथ ने 'तरला' नामक टीका लिखी है। संपूर्ण पुस्तक में आठ उन्मेष हैं, जिनमें 'काव्य-प्रकाश' एवं 'अलंकारसर्वस्व' के विचारों का सार उपन्यस्त है। 'एकावली' के सप्तम उन्मेष में शब्दालंकार एवं अष्टम में अर्थालंकार का निरूपण है। अलंकार-निरूपण पर 'काव्य-प्रकाश' एवं 'अलंकारसर्वस्व' का प्रभाव है। इन्होंने अलंकारों का वर्गीकरण भी किया है; किंतु उसमें किसी प्रकार की नव्यता न होकर रुय्यक का ऋण है।

विद्यानाथ का समय १४वीं शती है। इनका काव्यशास्त्रीय ग्रंथ है 'प्रतापरुद्रयशोभूषण', जिस पर कुमारस्वामी कृत 'रत्नापण' नामक व्याख्या प्रसिद्ध है। इस पर भी 'काव्यप्रकाश' एवं 'अलंकारसर्वस्व' का प्रभाव है। इसमें काव्यशास्त्र के दशांगों का, यहाँ तक कि नायक-नायिका-भेद एवं रूपक का भी वर्णन है। ग्रंथ का विशेष महत्त्व नहीं है; किंतु सिद्धांत-प्रतिपादन स्पष्ट एवं ऋजु है।

अलंकार-विवेचन पर मम्मट एवं रुय्यक का प्रभाव परिलक्षित होता है। इन्होंने अलंकारों का वर्गीकरण भी किया है। इस ग्रंथ को कतिपय रीतिकालीन आचार्यों ने अपना उपजीव्य बनाकर सिद्धांत-कथन किया है।

प्रौढ़ आचार्य—अलंकारों के परवर्त्ती विकास में शोभाकर मित्र, जयदेव, विश्वनाथ, अप्पय दीक्षित, पंडितराज जगन्नाथ एवं विश्वेश्वर पंडित का महत्त्वपूर्ण योग है। उक्त सभी आचार्य काव्यशास्त्र के प्रौढ़ आलंकारिक हैं।

शोभाकर मित्र—ये रुय्यक के परवर्ती तथा जयदेव के पूर्ववर्ती थे। इनका समय वि० सं० १२५० से १३५० है। शोभाकर मित्र ने शताधिक अलंकारों का विवेचन कर उनका विस्तार किया है। मम्मटोत्तर जिन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आलंकारिकों का ध्यान अलंकार-विस्तार की ओर गया, उनमें शोभाकर मित्र का योग महत्त्वपूर्ण है। इन्होंने 'अलंकाररत्नाकर' नामक ग्रंथ की रचना की है, जिसमें सूत्र-शैली में अलंकार-विवेचन तथा वृत्ति के रूप में उसकी विस्तृत व्याख्या एवं खंडन-मंडन है। शोभाकर मित्र ने अलंकारों के स्वरूप-निर्धारण एवं भेद-कथन के संबंध में कतिपय नवीन एवं मौलिक स्थापनाएँ प्रस्तुत की हैं।

इन्होंने लगभग एकतालीस नवीन अलंकारों की उद्भावना की है; वे हैं— असम, उदाहरण, प्रतिभा, विनोद, व्यासंग, वैधर्म्य, अभेद, वितर्क, प्रतिमा, क्रियातिपत्ति, निश्चय, विध्याभास, संदेहाभास, विकल्पाभास, विपर्यय, अचिंत्य, अशक्य, व्यत्यास, समता, उद्रेक, तुल्य, अनादर, आदर, अनुकृति, प्रत्यूह, प्रत्यादेश, व्याप्ति, आपत्ति, विधि, नियम, प्रतिप्रसव, तंत्र, प्रसंग, वर्धमानक, अवरोह, अतिशय, शृंखला, विवेक, परभाग, उद्भेद एवं गूढ़। परवर्ती आचार्यों में अप्पय दीक्षित एवं पंडितराज के विवेचन पर शोभाकर मित्र का प्रभाव देखा जा सकता है। इन्होंने रूपक, संदेह, स्मरण, भ्रांतिमान्, अप्रस्तुतप्रशंसा तथा समासोक्ति के संबंध में अत्यंत ही क्रांतिकारी विचार व्यक्त किए हैं तथा परंपरागत मान्यताओं का खंडन करते हुए नवीन सरणी का अवलंब ग्रहण किया है। उभयालंकारों में शोभाकर ने केवल संकर को ही मान्यता दी है, उन्हें संसृष्टि का अलंकारत्व स्वीकार्य नहीं है।

न संसृष्टि पूर्वहानाच्चारुत्वाभावाच्च।

—अलंकाररत्नाकर- सूत्र १११

जयदेव (समय, वि० सं० १२५७—१३५७)—जयदेव की बहुचर्चित रचना 'चंद्रालोक' है। इसपर तीन टीकाएँ प्रसिद्ध हैं—प्रद्योतन भट्ट की 'शरदागम' टीका, वैद्यनाथ पायगुंडे की 'रमा' तथा गागाभट्ट विरचित 'राकागम' टीका।

'चंद्रालोक' में कुल दस मयूख हैं; किंतु अलंकार-निरूपण केवल पंचम में है। जयदेव ने खंडन-मंडन-रहित ऋजुशैली में अलंकार-विवेचन किया है तथा मम्मटादि के विचारों के विरुद्ध अलंकार को काव्य का नित्य धर्म या अनिवार्य तत्त्व माना है। लक्षणोदाहरण युक्त संक्षिप्त रीति से अलंकारों का निरूपण जयदेव का निजी वैशिष्ट्य है। इनके अनुसार जिस प्रकार अग्नि का धर्म है उष्णता, उसी प्रकार अलंकार भी काव्य का अनिवार्य तत्त्व है। अलंकार-रहित काव्य उसी प्रकार अस्वाभाविक होता है, जिस प्रकार उष्णता-रहित

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अग्नि व्यर्थ है। अलंकारों के विकास एवं संख्या-वृद्धि की दृष्टि से जयदेव की देन महनीय है। इन्होंने कुल एक सौ चार अलंकारों का वर्णन किया है, जिनमें वास्तविक अलंकार सतासी हैं।

अंगी करोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलं कृती॥

—चंद्रालोक, १/८

उपमा, अपह्नुति, आक्षेप एवं अतिशयोक्ति आदि के भेदों को ही पृथक् अलंकार मान लिया गया है, जिनकी संख्या अठारह है। सतासी अलंकारों में से सत्रह अलंकार नवीन हैं, शेष सत्तर वे ही हैं, जिनका विवेचन रुय्यक ने किया है। बढ़ाए गए अलंकार हैं—उन्मीलित, प्रौढोक्ति, संभावना, प्रहर्षण, विषादन, आवृत्तिदीपक, विकस्वर, असंभव, उल्लास, पूर्वरूप, अनुगुण, अवज्ञा, पिहित, भाविकच्छवि, अत्युक्ति, परिकरांकुर एवं उदारसार।

महापात्र विश्वनाथ (समय, वि० सं० १३५७ से १४४१)—विश्वनाथ का 'साहित्यदर्पण' काव्यशास्त्र का अत्यंत लोकप्रिय ग्रंथ है, जिसमें काव्य के दशांगों का निरूपण सरल एवं पांडित्यपूर्ण शैली में किया गया है। इसके दशम परिच्छेद में विस्तारपूर्वक अलंकारों का विवेचन है। इन्होंने निश्चय एवं अनुकूल, दो नवीन अलंकारों का वर्णन किया है, शेष सभी अलंकार 'अलंकारसर्वस्व' के ही हैं। विश्वनाथ ने कुल छियासी अलंकारों का विवेचन किया है, जिनमें आठ शब्दालंकार, छिहत्तर अर्थालंकार एवं दो उभयालंकार हैं। 'साहित्यदर्पण' मौलिक कृति न होकर 'काव्यप्रकाश' एवं 'अलंकार सर्वस्व' के प्रभाव से युक्त है। विश्वनाथ ने अलंकार को बाह्य उत्कर्ष का तत्त्व माना है—'उत्कर्षहेतवः प्रोक्ता गुणालंकाररीतयः। इनके अलंकार-प्रकरण के आदर्श रुय्यक हैं।

अप्पय दीक्षित (समय, १७वीं शती का पूर्वार्द्ध)—पिछले खेवे के आलंकारिकों में शास्त्रीय दृष्टि से निश्चित योग प्रदान करनेवालों में दीक्षित का भी स्थान है। इन्होंने न केवल अलंकार ग्रंथों की रचना की, अपितु एक सर्वतंत्र स्वतंत्र पंडित की तरह व्याकरण, मीमांसा एवं वेदांत पर भी लेखनी चलाई है। इनके काव्यशास्त्र-विषयक तीन ग्रंथ प्रख्यात हैं—'वृत्तिवार्तिक', 'चित्रमीमांसा' एवं 'कुवलयानंद'। 'वृत्तिवार्तिक' शब्दशक्तियों का विवेचन उपस्थित करनेवाली छोटी रचना है, जिसमें अभिधा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एवं लक्षणा का विवरण है। 'चित्रमीमांसा' अलंकार-संबंधी प्रौढ़ ग्रंथ है। इसमें उपमा, उपमेयोपमा, अनन्वय, स्मरण, रूपक, परिणाम, ससंदेह, भ्रांतिमान्, उल्लेख, अपह्नुति, उत्प्रेक्षा एवं अतिशयोक्ति का खंडन-मंडन का शास्त्रीय एवं तर्कप्रधान शैली के आधार पर विशद विवेचन किया गया है तथा पूर्ववर्त्ती आचार्यों की मान्यताओं का निरास कर अपने निर्दुष्ट निर्णय दिए गए हैं।

दीक्षित की लोकप्रियता का कारण उनकी प्रसिद्ध कृति 'कुवलयानंद' है, जिसमें लगभग एक सौ पचीस अलंकारों का मीमांसन है। 'कुवलयानंद' का मुख्याधार जयदेवकृत 'चंद्रालोक' है तथा इसमें उसीकी शैली अर्थात् एक ही श्लोक में लक्षणोदाहरण-निरूपण की पद्धति अपनाई गई है। दीक्षित ने कतिपय अलंकारों के भेद का विस्तार कर अलंकार-निरूपण के क्षेत्र में नवीनता लाने का प्रयास किया है तथा लगभग सत्रह नए अलंकारों की उद्भावना कर मौलिक चिंतन का उदाहरण उपस्थित किया है। बढ़ाए गए नवीन अलंकार हैं—प्रस्तुतांकुर, अल्प, कारकदीपक, मिथ्याध्यवसिति, ललित, अनुज्ञा, मुद्रा, रत्नावली, विशेषक, गूढ़ोक्ति, विवृतोक्ति, मुक्ति, लोकोक्ति, छेकोक्ति, निरुक्ति, प्रतिषेध एवं विधि। उपर्युक्त सभी अलंकारों के विधान का श्रेय दीक्षित को नहीं दिया जा सकता; क्योंकि इनमें से कतिपय अलंकार भोज, शोभाकर मित्र एवं यशस्क कृत 'अलंकारोदाहरण' में भी प्राप्त होते हैं।

पंडितराज जगन्नाथ (समय, १७वीं शती का पूर्वार्द्ध)—पंडितराज जगन्नाथ संस्कृत साहित्यशास्त्र के अंतिम प्रौढ़ आचार्य हैं, जिन्होंने अपनी विद्वत्ता एवं सूझ-बूझ के द्वारा काव्यशास्त्र के क्षेत्र में कई मौलिक स्थापनाएँ की हैं। इनका युग-प्रवर्त्तक ग्रंथ है 'रसगंगाधर', जो अपनी प्रौढ़ता के कारण 'ध्वन्यालोक' एवं 'काव्यप्रकाश' की श्रेणी में परिगणनीय है। इन्होने नव्य-न्याय की शैला में इस ग्रंथ का प्रणयन किया है, जिसमें पूर्ववर्ती सभी प्रसिद्ध आलंकारिकों के मत का विद्वत्तापूर्ण खंडन किया गया है। 'रसगंगाधर' में कुल सत्तर अलंकारों का निरूपण है, जिनमें 'तिरस्कार' नामक एक नवीन अलंकार भी है। पंडितराज ने अलंकारों का वर्णन शब्दशक्ति के अंतर्गत करते हुए उन्हें शब्दशक्तिमूलक सिद्ध किया है। 'रसगंगाधर' पर नागेशभट्ट की 'गुरुमर्मप्रकाश' नामक संक्षिप्त टीका है, जो अपने में एक स्वतंत्र ग्रंथ ही है।

गोविंद ठक्कुर ('काव्यप्रकाश' की 'प्रदीप' टीका के रचयिता) नागेश तथा वैद्यनाथ तत्सत् (कुवलयानंद की टीका अलंकारचंद्रिका के प्रणेता)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भारतीय काव्यालंकार के इतिहास में मौलिक विचारकों की भाँति समादृत हैं। इनकी टीकाओं में अलंकारविषयक मौलिक विचार बिखरे हुए हैं। नागेश ने कतिपय स्थलों पर पंडितराज से असहमति प्रकट करते हुए नई धारणाएँ प्रस्तुत की हैं। 'काव्यप्रकाश' की टीका 'उद्योत' (उद्योत 'प्रदीप' की टीका है) में इन्होंने 'चंद्रालोक' तथा 'कुवलयानंद' में बढ़ाए गए लगभग बत्तीस अलंकारों का खंडन कर उनका अंतर्भाव मम्मट-वर्णित विभिन्न अलंकारों में किया है और 'काव्यप्रकाश' के मत की पुष्टि की है। वैद्यनाथ ने भी 'अलंकारचंद्रिका' में पंडितराज द्वारा की गई दीक्षित की आलोचनाओं का विद्वत्तापूर्ण उत्तर दिया है। इसी क्रम में इन्होंने अलंकार-संबंधी कई नवीन विचार भी प्रस्तुत किए हैं।

विश्वेश्वर पंडित (१८वीं शती का पूर्वार्द्ध)—विश्वेश्वर पंडित का 'अलंकारकौस्तुभ' अलंकार-विषयक अत्यंत प्रौढ़ कृति है। रुय्यक ने सर्वप्रथम अलकारों की संख्या में वृद्धि की थी; कालांतर में शोभाकर, जयदेव, विश्वनाथ, अप्पय दीक्षित एवं पंडितराज ने भी योग दिया। विश्वेश्वर पंडित ने अनावश्यक एवं चमत्कारहीन अलंकार-वृद्धि को रोककर उन्हें मर्यादित एवं व्यवस्थित करने के निमित्त ही 'अलंकारकौस्तुभ' की रचना की थी। इसमें लगभग बत्तीस अलंकारों का खंडन कर उन्हें मम्मट-वर्णित एकसठ अलंकारों में गतार्थ कर दिया गया है। 'अलंकारकौस्तुभ' में 'रसगंगाधर' की नव्यन्यायी शैली का निबंधन है। विश्वेश्वर पंडित ने अलंकारों के खंडन में नागेश-कृत 'उद्योत' टीका से प्रभूत साहाय्य ग्रहण किया है, अतएव वे उद्योत से पूर्णतः उपकृत हैं। इन्होंने 'अलंकारप्रदीप' एवं 'अलंकारमुक्तावली' नामक अन्य दो अलंकार-ग्रंथों की भी रचना की है; किंतु ये उनकी साधारण कृतियाँ हैं। 'अलंकारप्रदीप' में एक सौ सत्रह अलंकार हैं और जिन अलंकारों का कौस्तुभ में खंडन किया गया था, उन्हें भी स्वतत्र अलंकार के रूप में उपस्थित किया गया है।

संस्कृत में भरत से लेकर विश्वेश्वर पंडित तक अलंकार-विवेचन का यही इतिवृत्त है, तत्पश्चात् हिंदी काव्याचार्यों ने इस विषय के निरूपण में महत्त्वपूर्ण योग दिया। रीतिकालीन आचार्यों ने अलंकार-निरूपण की समस्त पद्धतियों को अपनाकर संस्कृत काव्यशास्त्र की उद्धरणी हिंदी में प्रस्तुत की। दंडी, मम्मट, जयदेव, विश्वनाथ एवं अप्पय दीक्षित ही हिंदी आचार्यों के उपजीव्य रहे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रीतिकाल में लगभग चालीस आचार्यों ने अलंकार-विवेचन में महत्त्वपूर्ण योग दिया है, जिनमें कुछ का यहाँ परिचय दिया जा रहा है।

आचार्य केशवदास (रचनाकाल, वि० सं० १६५८)—हिंदी में अलंकार-निरूपण का विधिवत् प्रारंभ केशवदास से हुआ। इनके पूर्व तुलसीदास ने 'बरवैरामायण' में अलंकारों के सुंदर उदाहरण प्रस्तुत किए थे और करनेस कवि ने 'श्रुतिभूषण', 'भूपभूषण' एवं 'कर्णाभरण' प्रभृति अलंकार-विषयक ग्रंथों की रचना की थी, किंतु संप्रति ये ग्रंथ अनुपलब्ध हैं। केशवदास ने 'कविप्रिया' एवं 'रसिकप्रिया' नामक दो रीति-ग्रंथों का प्रणयन किया है। 'रसिकप्रिया' में रस एवं नायिका-भेद का निरूपण है तो 'कविप्रिया' अलंकार एवं कवि-शिक्षा-विषयक ग्रंथ है। 'कविप्रिया' में सोलह प्रभाव हैं। प्रथम में वंदना, राजवंश-वर्णन, ग्रंथप्रणयन हेतु तथा द्वितीय में कवि-वंश का वर्णन है। तृतीय से सोलहवें प्रभाव तक कविशिक्षा, अलंकार एवं दोषों का विवेचन है। इस ग्रंथ की रचना कविशिक्षा के निमित्त हुई थी। केशव मुख्यतः अलंकारवादी आचार्य हैं और काव्य में उसकी सत्ता अनिवार्य मानते हैं।

> **अलंकार कवितान के सुनि सुनि विविध विचार।**
> **कविप्रिया केशव करी, कविता को सिंगार ॥** ३/२
> **सगुन पदारथ अर्थयुत, सुबरन भय सुभसाज।**
> **कंठमाल ज्यों कविप्रिया, कंठ करौ कविराज ॥** ३/३
> **जदपि सुजात सुलक्षणी, सुबरन सरस सुवृत्त।**
> **भूषण बिनु न विराजई, कविता, बनिता, मित्त ॥** कविप्रया, ५/१

'कविप्रिया' में अलंकारों के दो विभाग किए गए हैं—साधारण और विशिष्ट (सामान्य और विशेष)। साधारण के चार प्रकार किए गए—वर्ण, वर्ण्य, भूश्री तथा राजश्री और विशिष्टालंकार के अंतर्गत उपमादि चालीस अलंकारों का निरूपण है।

> **कविन कहै कवितान के अलंकार द्वै रूप।**
> **एक कहै साधारणै, एक विशिष्ट सरूप ॥** कविप्रया, ५/२

अलंकारों को महत्त्व देते हुए इन्होंने दोष-प्रकरण में अलंकार-रहित काव्य को सदोष माना है—नग्नजु भूषणहीन। केशव का अलंकार-विवेचन दंडी, उद्भट, वामन, तथा केशव मिश्र से प्रभावित है; पर यत्र-तत्र इन्होंने मम्मट,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रुय्यक एव जयदेव से भी सहायता ली है। केशव का प्रधान उपजीव्य दंडी-कृत 'काव्यादर्श' ही है। 'कविप्रिया' के नवें प्रभाव से सोलहवें प्रभाव तक चालीस अलंकारों का वर्णन है, जिन्हें आठ प्रभावों में विभक्त किया गया है।

नवाँ प्रभाव—स्वभावोक्ति, विभावना, हेतु, विरोध, विशेष, उत्प्रेक्षा।

दसवाँ प्रभाव—इसमें केवल आक्षेप का विस्तारपूर्वक वर्णन है।

ग्यारहवाँ प्रभाव—क्रम, गणना, आशिस, प्रेम, श्लेष, सूक्ष्म, लेश, निदर्शना, ऊर्जा, रसवत्, अर्थांतरन्यास, व्यतिरेक एवं अपह्नुति।

बारहवाँ प्रभाव—उक्ति (इसके अंतर्गत वक्रोक्ति, अन्योक्ति, व्यधिकरणोक्ति, विशेषोक्ति तथा सहोक्ति का वर्णन है) व्याजस्तुति, व्याजनिंदा, अमित, पर्यायोक्ति एवं युक्त।

तेरहवाँ प्रभाव—समाहित, सुसिद्ध, प्रसिद्ध, विपरीत, रूपक, दीपक एवं परिवृत्त।

चौदहवाँ प्रभाव—उपमा।

पंद्रहवाँ प्रभाव—यमक।

सोलहवाँ प्रभाव—चित्र।

इनमें से गणना, व्यधिकरणोक्ति, व्याजनिंदा, अमित, युक्त, प्रसिद्ध और सुसिद्ध केशव-द्वारा उद्भावित नवीन अलंकार हैं। केशव ने कविप्रौढ़ोक्तिसिद्ध बातों को भी अलंकार का अंग मानकर उसकी परिधि का विस्तार किया है।

चिंतामणि (जन्मकाल, वि० सं० १६६६)—चिंतामणि को रीतिकाल का प्रवर्त्तन करने का श्रेय दिया गया है। ये सकलांग निरूपक आचार्य हैं। इन्होंने 'काव्यविवेक', 'काव्यप्रकाश', 'श्रृंगारमंजरी' तथा 'कविकुलकल्पतरु' नामक रीति ग्रंथों की रचना की है। इनमें प्रथम दो अनुपलब्ध हैं। 'कविकुल-कल्पतरु' में काव्य के दशांगों का वर्णन है। इसमें आठ प्रकरण एवं कुल ग्यारह सौ तैंतीस पद्य हैं तथा क्वचित्-कदाचित् गद्य का भी प्रयोग किया गया है। इसके प्रथम प्रकरण में गणेश एव पार्वती की वंदना, काव्य-भेद, काव्य-लक्षण, गुण तथा काव्य-पुरुष का वर्णन हैं। द्वितीय-तृतीय प्रकरणों में शब्दालंकार तथा अर्थालंकारों का निरूपण और चतुर्थ प्रकरण में दोष-कथन है। पंचम प्रकरण में शब्दशक्ति, ध्वनि एवं श्रृंगारांतर्गत नायिका-भेद-वर्णन है। छठे, सातवें एवं आठवें प्रकरणों में क्रमशः हाव-भाव, श्रृंगाररस एवं श्रृंगारेतर रसों का वर्णन है। 'कविकुलकल्पतरु' का मुख्याधार 'काव्यप्रकाश'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। चिंतामणि के अलंकार-निरूपण पर 'काव्यप्रकाश' तथा 'प्रतापरुद्रीय' का प्रभूत ऋण है और कतिपय स्थलों पर 'साहित्यदर्पण' एवं 'कुवलयानंद' से भी सहायता ली गई है। 'कविकुलकल्पतरु' में सात शब्दालंकार एवं सड़सठ अर्थालंकारों का निरूपण है। इन्होंने उल्लेख एवं परिणाम का वर्णन 'प्रतापरुद्रीय' एवं विश्वनाथ के आधार पर किया है तथा दोनों अलंकारों का इसलिए खंडन भी किया कि इन्हें आचार्य मम्मट ने अपने ग्रंथ में स्थान नहीं दिया है।

परिनामा उल्लेख ये दोऊ रूपक माँहि।
भिन्न असंकृत रूप तौ मम्मट बरनै नाँहि॥

—कविकुलकल्पतरु, ३/१०७

महाराज जसवंत सिंह (रचना-काल, सं० १७००)—महाराज जसवंत सिंह कृत 'भाषाभूषण' रीतिकाल का अत्यंत लोकप्रिय ग्रंथ है। इसकी रचना 'चंद्रालोक' एवं 'कुवलयानंद' की पद्धति पर हुई है, जिसके एक ही दोहे में अलंकारों के लक्षण एवं उदाहरण उपन्यस्त हैं। 'भाषाभूषण' में अलंकारों के अतिरिक्त हाव-भाव एवं नायिका-भेद भी वर्णित हैं। इस पर 'चंद्रालोक' तथा 'कुवलयानंद' का प्रभाव है। इसमें लक्षणों के अतिरिक्त उदाहरणों के भी अनुवाद किए गए हैं तथा कहीं-कहीं मम्मट, वाग्भट एवं विश्वनाथ के भी ग्रंथों से सहायता ली गई है। इस (भाषाभूषण) में कुल एक सौ एक अर्थालंकारों एवं सात शब्दालंकारों का वर्णन है।

मतिराम—(रचना-काल, १७१६ से १७४५ वि० सं०)—मतिराम ने 'ललितललाम' नामक प्रसिद्ध अलंकार-ग्रंथ की रचना की है। इसमें अलंकारों के लक्षण दोहे में तथा उदाहरण कवित्त और सवैया में दिए गए हैं। इस ग्रंथ की रचना 'कुवलयानंद' के आधार पर हुई है तथा अलंकारों के लक्षण-निर्माण में 'कुवलयानंद' का या तो छायानुवाद किया गया है या भावानुवाद। मतिराम के लक्षण अत्यंत सरल एवं स्पष्ट हैं और उदाहरण आश्रयदाता के प्रशस्तिगान में दिए गए हैं। इनके उदाहरणों में लक्षणों का पूर्ण विनियोग है। 'ललितललाम' में केवल अर्थालंकारों का ही वर्णन है, जिनकी संख्या एक सौ है। मतिराम ने 'रसराज' नामक नायिका-भेद का भी ग्रंथ लिखा है।

कुलपति मिश्र (रचना-काल, वि० सं० १७२७)—कुलपति मिश्र, चिंतामणि की भाँति रीतिकाल के प्रौढ़ आचार्य हैं। इनका एकमात्र ग्रंथ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'रसरहस्य' है। ये मम्मटानुयायी ध्वनिवादी आचार्य हैं। ये अलंकार को काव्य का भूषण मानते हैं। 'रसरहस्य' में आठ वृत्तांत एवं छह सौ बावन पद्य हैं और विषय की स्पष्टता के लिए कतिपय स्थलों पर गद्य का भी प्रयोग किया गया है। प्रथम वृत्तांत में काव्य का स्वरूप, प्रयोजन, कारण, काव्य-पुरुष एवं काव्य-भेद का विवेचन हैं। द्वितीय वृत्तांत में अड़तालीस पद्यों में शब्दशक्तियों का वर्णन और तृतीय एवं चतुर्थ वृत्तांत में ध्वनि तथा गुणीभूत व्यंग्य का कथन है। इसके पंचम एवं षष्ठ वृत्तांतों में गुण-दोष-निरूपण तथा सप्तम एवं अष्टम वृत्तांतों में शब्दालंकार एवं अर्थालंकार वर्णित हैं। ध्वनिवादी आचार्य होने के कारण इन्होंने अलंकार को अवर या चित्रकाव्य कहा है।

कुलपति का अलंकार-निरूपण संस्कृत-आचार्यों की भाँति प्रौढ़ तथा गंभीर है। इन्होंने 'काव्यप्रकाश' में वर्णित अलंकारों का ही विवेचन किया है। इनका मुख्य उपजीव्य 'काव्यप्रकाश' है और सारे निर्णय उसी पर आधृत हैं। इन्होंने 'काव्यप्रकाश' की कारिका एवं वृत्ति, दोनों के मत का सार ग्रहण कर अलंकार-मीमांसन किया है और कतिपय स्थलों पर मौलिक उद्भावनाएँ भी की हैं। 'काव्यप्रकाश' के अतिरिक्त एकदेशविवर्तिनी, उपमा, परिणाम एवं उल्लेखालंकार के निरूपण में 'साहित्यदर्पण' का भी आधार ग्रहण किया गया है। रूपक में 'समता का व्यंग्य' होना 'साहित्यदर्पण' के ही आधार पर कथित है।

व्यंग जीव ताको कहत शब्द अर्थ है देह।
गुण गुण भूषण भूषणौ दूषण दूषण एह ॥ १/३४
शब्द अर्थ है चित्र जहँ, व्यंग्य न, अवर सु होई। १/४०
जेते साज हैं कवित के मम्मट कहे बखानि।
ते सब भाषा मैं कहे, रसरहस्य में आनि ॥

—रसरहस्य, ८/२१

कुलपति ने विश्वनाथ की भाँति रूपक में सादृश्य को शाब्द न मानकर आर्थ या व्यंग्य कहा है। शब्दालंकार में वक्रोक्ति को प्राथमिकता देने के कारण का उल्लेख कर कुलपति ने नया विचार दिया है। इनके अनुसार अलंकारों का चमत्कार उक्तिविशेष पर आधृत रहता है और वक्रोक्ति में इसकी प्रधानता होती है। अतः, सर्वप्रथम इसका वर्णन किया जाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उक्ति भेद तें होत है, अलंकार यह जानि।
वक्र उक्ति यातें कही, द्वै विधि प्रथम बखानि।।

—रसरहस्य, ७/३

इनकी निरूपण-शैली तीन प्रकार की है—कहीं तो 'काव्यप्रकाश' की शास्त्रीय एवं कठिन शब्दावली के बदले सरल शब्दों का प्रयोग किया गया है तो कहीं उसका सरल भावार्थ प्रस्तुत किया गया है और कहीं अन्य सामग्री की वृद्धि कर विषय का प्रतिपादन किया गया है। 'रसरहस्य' का अलंकार-निरूपण प्रौढ़ एवं पांडित्यपूर्ण है।

भूषण (रचनाकाल, वि० सं०, १७३०)—भूषण का 'शिवराजभूषण' अलंकार-विषयक शास्त्रीय ग्रंथ है, जिसमें शिवाजी की प्रशस्ति एवं शौर्य-संबंधी कविताएँ उदाहरण-स्वरूप न्यस्त हैं। अलंकार-निरूपण की दृष्टि से भूषण का अधिक महत्त्व नहीं है। इन्होंने तद्‌युगीन शृंगारी रचनाओं के विपरीत वीररस की धारा प्रवाहित कर तत्कालीन जनता के हृदय में राष्ट्रीय चेतना का उन्मेष किया, अतः इनकी महत्ता इसी के कारण है। इन्होंने लगभग १०० अलंकारों का वर्णन किया है, जिनमें पाँच शब्दालंकार एवं एक उभयालंकार संकर भी है। भूषण के अलंकार-निरूपण पर 'चंद्रालोक', 'कुवलयानंद' एवं मुख्यतः मतिराम-कृत 'ललितललाम' का प्रभाव है। जिनके अलंकारों का क्रम चंद्रालोकानुसारी है और जिन अलंकारों का वर्णन 'चंद्रालोक' में नहीं है, उनके लिए इन्होंने 'कुवलयानंद' का आधार ग्रहण किया है। भूषण ने अधिकांश अलंकारों के लक्षण मतिराम के ही ले लिए हैं। इन्होंने जयदेव (चंद्रालोक) के 'भाविकच्छवि' अलंकार का भी उल्लेख किया है और 'सामान्यविशेष' नामक एक नवीन अलंकार की भी उद्‌भावना की है। वस्तुतः यह नया अलंकार न होकर 'विशेषनिबंधना' में ही गतार्थ हो जाता है। इनका अलंकार-विवेचन सफल नहीं कहा जा सकता; क्योंकि कतिपय अलंकारों के लक्षण अपर्याप्त एवं भ्रामक हैं तथा कुछ के उदाहरणों का विनियोग नहीं हो सका है। कुल मिलाकर भूषण आचार्य नहीं माने जा सकते और न इनका अलंकार-विवेचन निर्भ्रांत कहा जा सकता है।

देव (रचनाकाल, वि० सं०, १७६० के निकट)—देव के 'भावविलास' एवं 'काव्यरसायन' नामक दो रीति-ग्रंथों में अलंकार-निरूपण है। 'काव्य-रसायन' को 'शब्दरसायन' भी कहते हैं। 'भावविलास' इनकी प्रथम कृति है, जिसमें रस एवं नायिका-भेद के अतिरिक्त अलंकारों का भी विवेचन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। 'शब्दरसायन' में ध्वनि के अतिरिक्त सभी काव्यशास्त्रीय विषयों को स्थान दिया गया है तथा यह 'भावविलास' से अपेक्षाकृत परिपक्व कृति है। 'भावविलास' में उनचालीस अर्थालंकार एवं 'शब्दरसायन' में चालीस मुख्य तथा तीस गौण अर्थालंकारों के अतिरिक्त शब्दालंकारों का भी निरूपण है। देव के अलंकार-विवेचन पर दंडी, वामन, कुवलयानंद (अप्पय दीक्षित) एवं केशवदास का प्रभाव है। इनके मुख्य आधार केशव हैं तथा इन्होंने कहीं-कही 'भाषा-भूषण' से भी सहायता ली है और कई स्थानों पर 'भाषाभूषण' के लक्षणों को ही उद्धृत कर दिया है; जैसे—निदर्शना, परिकर एवं तद्गुण के लक्षणों में।

अलंकार मुख्य उनतालीस हैं देव कहैं,
येई पुराननि मुनि मतनि मैं पाइए।
आधुनिक कविन के सम्मत अनेक और,
इनहीं के भेद और विविध बताइए॥
—भावविलास, पृ० १४१

मुख्य गौण विधि भेद करि, है अर्थालंकार।
मुख्य कहे चालीस विधि, गौन सुतीस प्रकार॥
—शब्दरसायन, पृ० ६४

देव रसवादी आचार्य हैं; अतः इन्होंने अलंकारों का उद्देश्य रसोत्कर्ष-विधायकत्व को ही स्वीकार किया है; इसीलिए रस-रहित अलंकार चित्र के निरूपण में इन्होंने आस्था नहीं दिखाई है।

कविता कामिनि सुखदप्रद, सुबरन सरस सुजाति।
अलंकार पहिरे अधिक, अद्भुत रूप लखाति॥
—शब्दरसायन, पृ० ९४

कहीं-कहीं केशव के प्रभाव के कारण देव ने, परंपरा-प्रवाह में बहकर कविता-कामिनी के लिए अलंकारों का विधान आवश्यक माना है। देव ने गुणवत्, लेख, संकीर्ण एवं प्रत्युक्ति इन चार अर्थालंकारों एवं सिंहावलोकन नामक यमक के भेद का कथन कर नवीन अलंकारों की सृष्टि की है। इनका अलंकार-निरूपण संतोषप्रद नहीं कहा जा सकता। अनेक स्थलों पर न तो इनके लक्षण स्पष्ट हैं और न उदाहरणों की संगति बैठती है। कतिपय नवीन अलंकारों की उद्भावना एवं अलंकारों के प्रति शुद्ध रसवादी दृष्टिकोण का परिचय देते हुए उन्हें रसोत्कर्ष-विधायक मानना तथा चित्र-काव्य को मृतक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एवं प्रेत काव्य कहने के कारण हिंदी-अलंकार-साहित्य के विकास में देव का स्थान विशेष महत्त्व का है। पर, इतना अवश्य है कि इनका आचार्यत्व कवित्व की अपेक्षा शिथिल है।

सोमनाथ (रचनाकाल, वि० सं० १७९४)—सोमनाथ कृत 'रस-पीयूषनिधि' नामक ग्रंथ में काव्य के दशांगों का विवेचन बाईस तरंगों में किया गया है। इसके इक्कीसवें एवं बाईसवें भाग में शब्दालंकारों तथा अर्थालंकारों का निरूपण है। सोमनाथ के अलंकार-विवेचन का विशेष महत्त्व नहीं है; क्योंकि 'भाषाभूषण' के ही आधार पर अलंकारों का वर्णन किया गया है। वैसे 'कुवलयानंद' एवं कतिपय स्थलों पर 'काव्यप्रकाश' से भी सहायता ली गई है। इन्होंने 'भाषाभूषण' के ही लक्षणों को अपने ढंग से ढाल दिया है। इस कार्य में कहीं तो 'भाषाभूषण' की शब्दावली के पर्याय ग्रहण किए गए हैं या कहीं उसकी शब्दावली के क्रम को परिवर्त्तित कर रख दिया गया है अथवा जसवंत सिंह के लक्षण की व्याखया कर दी गई है। जहाँ तक विषय की सरलता एव स्पष्टता का प्रश्न है, सोमनाथ का अलंकार-निरूपण अवश्य ही महत्त्व रखता है; पर इसमें पाण्डित्य एवं प्रौढ़त्व नहीं दिखाई पड़ता। इन्होंने पाँच शब्दालंकारों, एक सौ पाँच अर्थालंकारों एवं दो उभयालंकारों का वर्णन किया है।

भिखारीदास (रचनाकाल. वि० सं० १८०३) — भिखारीदास-कृत 'काव्य-निर्णय' हिंदी-रीति-शास्त्र का प्रौढ़ ग्रंथ है। यह पचीस उल्लासों में विभक्त है, जिसमें काव्यशास्त्र-संबंधी सभी विषयों का वर्णन है। 'काव्य-निर्णय' के तृतीय उल्लास में 'चंद्रालोक' की शैली पर 'अलंकार मूल वर्णन' संक्षिप्त रूप से है तथा आठवें से इक्कीसवें उल्लास तक विस्तारपूर्वक अलंकार-निरूपण है। इस ग्रंथ के निर्माण में 'काव्यप्रकाश', 'साहित्यदर्पण', 'चंद्रालोक', 'कुवलयानंद' एवं 'भाषाभूषण' को प्रमुख आधार बनाया गया है तथा चित्रालकार के निरूपण में 'सरस्वतीकंठाभरण' से भी सहायता ली गई है।

दास की अलंकार-विषयक धारणा ध्वनिवादी आचार्यों की भाँति है। शरीर के हारादि लौकिक अलंकारों की भाँति इन्होंने अनुप्रास एवं उपमादि अलंकारों को काव्य का वाह्य भूषण माना है। अतः, इनके अनुसार अलंकार काव्य के बाह्य शोभाकारक आभूषण मात्र हैं। दास अलंकार को काव्य का अनिवार्य तत्त्व नहीं मानते तथा इसके बिना भी काव्य की सरसता का अस्तित्व स्वीकार करते हैं। इनका कहना है कि सुकवि अपनी रचनाओं में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रस और अलंकार में समन्वय स्थापित कर उसे विमंडित करते हैं। इन्होंने अलंकारप्रधान काव्य को 'अवर' अथवा 'चित्रकाव्य' कहा है, जिसका एक मात्र उद्देश्य है मन में रोचकता भरना।

अनुप्रास उपमादि जे शब्दार्थालंकार।
ऊपर तें भूषित करैं जैसे तन कों हार॥
अलंकार बिनु रसहु है, रसौ अलंकृत छंडि।
सुकबि बचन रचनानि सों, देत दुहुन को मंडि॥

—काव्यनिर्णय, १९/६५/६६

बचनारथ रचना जहाँ, ब्यंगि न नेकु लखाइ।
सरल जान तेहि काव्य कों, अबर कहैं कबिराइ॥
अबर काव्यहू में करै, कबि सुघराई मित्र।
मनरोचक करि देत है, बचन अर्थ को चित्र॥ —वही, ७/२५,२६

दास-द्वारा वर्णित अलंकारों की कुल संख्या एक सौ अठारह है। अलंकार-निरूपण के क्षेत्र में, कई दृष्टियों से, दास की महत्त्वपूर्ण देन दिखाई पड़ती है। इन्होंने हिंदी में सर्वप्रथम अलंकारों का नियमानुमोदित नवीन वर्गीकरण प्रस्तुत किया। दास ने उपमावर्ग, उत्प्रेक्षावर्ण, व्यतिरेकवर्ग, अन्योक्तिवर्ग, विरुद्धवर्ग, उल्लासवर्ग, समवर्ग, सूक्ष्मवर्ग, स्वभावोक्तिवर्ग, यथासंख्यवर्ग, एवं दीपकवर्ग में छियानबे अलंकारों को निबद्ध किया है। अलंकारों के उपर्युक्त ग्यारह वर्ग हैं। इन्होंने कतिपय नवीन अलंकारों की उद्भावना कर इसके (अलंकार के) विकास में नई कड़ी जोड़ दी है। सिंहावलोकन का स्वरूप-निदर्शन (देव ने इसका नामोल्लेख एवं उदाहरण दिया था), अंत्यानुप्रास के अंतर्गत तुकों का विस्तारपूर्वक वर्णन, वीप्सा नामक नवीन शब्दालंकार की उद्भावना, स्वगुण तथा देहरीदीपक का निरूपण। दास ने पंडितराज जगन्नाथ की भाँति समस्त अलंकारों को शब्दशक्तिमूलक मानकर शब्दशक्ति और अलंकारों के पारस्परिक संबंध का निदर्शन कराया है।

भूषण छ्यासी अर्थ के आठ वाक्य के जोर।
त्रिगुन चारि पुनि कीजिए, अनुप्रास इक ठौर॥
शब्दालंकृत पाँच गनि, चित्रकाव्य इक पाठ।
एकइ रसना दिक सहित, ठीक सै ऊपर आठ॥

—काव्यनिर्णय, २१/९२,९३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इन पाँचहु कों अर्थ को भूषन कहै न कोइ।
जदपि अर्थ-भूषन सकल, सब्दसक्ति में होइ ॥ —वही, २०/२

इन्होंने कतिपय अलंकारों के नवीन भेदों का भी निर्देश किया है; जैसे—अपह्नुति, संसृष्टि, मालोपमा, अर्थांतरन्यास तथा अतिशयोक्ति के नवान भेदों का कथन। कुल मिलाकर दास का अलंकार-निरूपण महत्त्वपूर्ण एवं अलंकारों के विकास में नूतन शृंखला जोड़नेवाला माना जा सकता है। साथ ही इसकी अपनी सीमाएँ भी हैं।

पद्माकर (रचना-काल, वि० सं० १८६७)—रीतिकालीन अलंकार-ग्रंथों में पद्माकरकृत 'पद्माभरण' लक्षणों की स्पष्टता, सरलता एवं उदाहरणों की सरसता के लिए अत्यधिक प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका है। इसमें 'चंद्रालोक' की संक्षिप्त शैली में 'कुवलयानंद' में वर्णित सभी अलंकारों का वर्णन है। पद्माकर ने शब्दालंकार का वर्णन न कर केवल अर्थालंकारों का ही निरूपण किया है। इनके अलंकार-विवेचन पर 'साहित्यदर्पण', 'चंद्रालोक', 'कुवलयानंद', 'भाषाभूषण' एवं विशेषतः बैरीसाल-कृत 'भाषाभरण' का प्रभावाधिक्य है। अलंकार के सामान्य स्वरूप-निर्णय में इन्होंने शब्दालंकार, अर्थालंकार एवं उभयालंकार का भी कथन किया है; किंतु विवेचन-क्रम में शब्दालंकार को स्थान नहीं दिया। एक स्थल पर अनेक अलंकारों की स्थिति होने पर उनकी प्रधानता का निर्णय कवि की इच्छा पर छोड़ देने का कथन किया गया है।

सब्दहुँ तें कहुँ अर्थ तें, कहुँ दुहुँ तें उर आनि।
अभिप्राय जिहि भाँति जहँ, अलंकार सो मानि ॥
अलंकार इक थलहि में, समुझि परै जु अनेक।
अभिप्राय कवि को जहाँ, वही मुख्य गनि एक।

—पद्माभरण, २, ३

रीतिकाल के अन्य प्रसिद्ध अलंकार-ग्रंथ हैं—बलवान् सिंह-कृत 'चित्र-चंद्रिका' (सं० १८८९ वि०), ईश्वर कवि-विरचित 'चित्रचमत्कृतकौमुदी' (सं० १८९०), गिरिधरदास का 'भारतीभूषण' (सं० १८९०), अमीरदास का 'श्रीकृष्ण साहित्य-सिंधु' (सं० १८९१), ग्वाल कवि का 'अलंकार भ्रम-भंजन' (सं० १९००)। इन ग्रंथों के अतिरिक्त दूलह का 'कविकुलकंठाभरण' (सन् १६४३ ई०), ऋषि की अलंकारमणिमंजरी (सन् १७७४), रामसिंह का 'अलंकारदर्पण' (सन् १७७८), सेवादास का 'रघुनाथ अलंकार' (सन् १७८३) आदि ग्रंथ हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आधुनिक युग के लेखकों ने अलकार-विषयक अनेक ग्रंथों की रचना की है, जिससे अलंकारों के विकास में गति आई है। ऐसे ग्रंथों में मुरारिदान का 'जसवंतजसोभूषन' (सन् १८९३), जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' का 'काव्यप्रभाकर', (सन् १९०९), लाला भगवानदीन की 'अलंकार-मजूषा' (सन् १९१६), अर्जुनदास केडया का 'भारतीभूषण' (१९३० ई०), बिहारीलाल भट्ट का 'साहित्यसागर' भाग १, २ (१९३७ ई०), सेठ कन्हैयालाल पोद्दार की 'अलंकारमंजरी' (१९४५ ई०), प० रामदहिन मिश्र का 'काव्यदर्पण (१९४७ ई०), आचार्य देवेंद्रनाथ शर्मा की 'अलंकार मुक्तावली' (१९५० ई०) के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

हिंदी में संप्रति भारतीय साहित्यशास्त्र के प्रत्येक संप्रदाय का अनुशीलनात्मक अध्ययन किया जा चुका है। अलंकार-विषयक शोधपरक ग्रंथों में प्रसिद्ध हैं—अलंकारपीयूष (भाग १, २), डॉ० रमाशंकर शुक्ल 'रसाल'; 'हिंदी अलंकार साहित्य', डॉ० ओम्प्रकाश; 'रीतिकालीन अलंकार-साहित्य का शास्त्रीय विवेचन', डॉ० ओम्प्रकाश शास्त्री (१९६५ ई०); 'रीतिकालीन अलंकार ग्रंथों पर संस्कृत का प्रभाव', डॉ० फुंदनलाल उप्रेती; 'संस्कृत के सादृश्यमूलक अलंकार', डॉ० ब्रह्मानंद शर्मा; 'अलंकार-मीमांसा', डॉ० रामचंद्र द्विवेदी; 'भारतीय साहित्यशास्त्र' और 'काव्यालंकार', डॉ० भोलाशंकर व्यास; 'हिंदी के शब्दालंकार', डॉ० देशराज सिंह भाटी; 'अलंकारानुशीलन', 'अलंकार-मीमांसा' (१९७०) एवं अलंकारों का ऐतिहासिक विकास: भरत से पद्माकर तक, डॉ० राजवंश सहाय 'हीरा' तथा 'आधुनिक हिंदी कविता में अलंकार-विधान', डॉ० जगदीशनारायण त्रिपाठी।

अलंकार भारतीय काव्यशास्त्र एवं सौंदर्यशास्त्र के महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं। आधुनिक हिंदी-साहित्य में बड़े अभिनिवेश के साथ अलंकारानुशीलन की गति तीव्र होती जा रही है।

अलंकारौचित्य—औचित्य का पाँचवाँ भेद। **[दे० औचित्य के भेद]**

अलंकारशास्त्र—काव्यशास्त्र या अलंकारशास्त्र का अन्य नाम। **[दे० काव्यशास्त्र का नामकरण]**

अलंकार और अलंकार्य—जो अन्य को सुशोभित करे उसे अलंकार कहते हैं और जो अन्य के द्वारा सुशोभित हो, उसे अलंकार्य कहा जाता है। उदाहरण के लिए कटक, कुंडल आदि आभूषण अन्यों को विभूषित करने के कारण अलंकार कहे जाएँगे और मनुष्य के शरीर को अलंकार्य कहा जाएगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अलंकार्य का अलंकरण अलंकार-द्वारा होता है। काव्य में जब उपमादि अलंकार शब्दार्थ को विभूषित करें तो उन्हें अलंकार की संज्ञा प्राप्त होगी; पर व्यंग्यार्थ में स्वयं जब उनकी स्पष्टतः प्रतीति होगी तो वे अलंकार्य की परिधि में आ जाएँगे। अभिप्राय यह कि व्यंग्य अर्थ में प्रधान रूप से अलंकारों की प्रतीति होने से वे अलंकार अलंकार्य हो जाते हैं। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि जो अलंकार्य है, वह अलंकार कैसे हो सकता है? अर्थात् अलकार-ध्वनि में उपमादि अलंकार के ध्वनित होने से प्रधानता के कारण उनमें अलंकारत्व कैसे रह सकेगा? अलंकार का गुण है दूसरे को सुशोभित करना, ऐसी स्थिति में वे (अलंकार) गौण होते हैं; पर व्यंग्यार्थ में प्रधान होने के कारण उनका यह धर्म नहीं रह सकेगा। यदि व्यंग्यार्थ में उन्हें गौण माना जाएगा तो उनमें ध्वनित्व का नितांत अभाव रहेगा। तब एक ही पदार्थ को किस प्रकार प्रधान और अप्रधान माना जाय, ऐसी शंका उपस्थित होती है। आचार्यों ने इसका समाधान ब्राह्मणश्रमण-न्याय के द्वारा किया है। जैसे कोई व्यक्ति पहले ब्राह्मण रहा हो, पीछे वह श्रमण (बौद्ध-संन्यासी) हो जाय तो उस रूप में भी, उसमें ब्राह्मणत्व का अभाव होने पर भी अर्थात् चोटी यज्ञोपवीत के बिना भी उसे ब्राह्मण-श्रमण कहा जाता है। उसी प्रकार अलंकार्य की स्थिति में आ जाने पर भी अलंकारों को इसलिए अलंकारध्वनि कहा जाता है; क्योंकि पहले ये अलंकार थे। अलंकार्य की स्थिति में अलंकारों की अलंकारिता गौण हो जाती है, फिर भी उनको अलंकारध्वनि का नाम, पहले के अलंकारत्व के आधार पर दिया जाता है।

अलंकारस्यापि ब्राह्मणश्रमण न्यायेनालंकारता।—काव्यप्रकाश, ४/३९

अलंकार्य का अर्थ वर्ण्यवस्तु या वर्ण्यविषय माना जाएगा और अलंकार विषयवस्तु को विभूषित करनेवाले तत्त्व को कहेंगे।

अलंकार और गुण—गुण एवं अलंकार के अंतर के संबंध में संस्कृत के प्राचीन आचार्यों के दो प्रकार के मत हैं। उद्भट ने अपने 'भामहविवरण' नामक ग्रंथ में उक्त भेद को 'मिथ्या कल्पना' की संज्ञा देकर गुण एवं अलंकार में अभेद-संबंध की कल्पना की है। "लौकिक गुण तथा अलंकारों में तो यह भेद किया जा सकता है कि हारादि अलंकारों का शरीरादि के साथ संयोग-संबंध होता है और शौर्यादि गुणों का आत्मा के साथ संयोग-संबंध नहीं अपितु समवाय संबंध होता है, इसलिए लौकिक गुण तथा अलंकार में भेद माना जा सकता है। परंतु, काव्य में तो ओज आदि गुण तथा अनुप्रास,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपमा आदि अलंकार दोनों की ही समवाय-संबंध से स्थिति होती है, इसलिए काव्य में उनके भेद का उपपादन नहीं किया जा सकता।"

—हिंदी काव्यप्रकाश, आचार्य विश्वेश्वर, पृ० ३७८

समवायवृत्त्या शौर्यादयः संयोगवृत्त्या तु हारादयः इत्यस्तु गुणालंकाराणां भेदाः, ओजःप्रभृतीनामनुप्रासोपमादीनां चोभयेषामपि समवायवृत्त्या स्थितिरिति गड्डलिकाप्रवाहेणैवेषां भेदः। —काव्यप्रकाश, ८/६६

उद्भट ने गड्डलिकाप्रवाह के द्वारा यह संकेत किया है कि गुण एवं अलंकार में कोई भेद नहीं है, जो लोग इनमें अंतर मानते हैं, वह केवल 'भेड़चाल' है। दूसरा मत आचार्य वामन का है, जिसके अनुसार काव्यशोभा-वर्द्धक तथा उत्पादकधर्म को गुण एवं काव्यशोभा को अतिशायित करने या बढ़ानेवाले धर्म को अलंकार कहते हैं।

शब्दार्थ के वे धर्म, जो काव्यशोभा को उत्पन्न करनेवाले हैं; उन्हें गुण कहा जाता है, वे ओज और प्रसादादि हैं। यमक एवं उपमादि शब्दार्थालंकारों को काव्यशोभा का उत्पादक न होने के कारण गुण नहीं कहा जा सकता। गुण के अभाव में केवल अलंकार ही काव्य के शोभाधायक धर्म नहीं हो सकते; किंतु अलंकार के बिना भी ओजादि गुण काव्य के शोभाधायक धर्म होते हैं। अतः, वे ही काव्य के गुण कहे जा सकते हैं, अलंकार नहीं।

वामन ने अलंकार और गुण में अन्य अंतर यह दिखलाया कि गुण काव्य के नित्य धर्म हैं और अलंकार अनित्य धर्म अर्थात् अलंकार के बिना तो काव्य का काम चल जायगा; किंतु गुण के अभाव में उसमें शोभाधान नहीं हो सकता।

काव्यशोभायाः कर्त्तारोधर्माः गुणाः तदतिशयहेतवस्त्वलंकाराः। ये खलु शब्दार्थयोः धर्माः काव्यशोभां कुर्वंति ते गुणाः। ते च ओजः प्रसादादीनांतु केवलानामस्तिकाव्यशोभाकरत्वमिति। तदतिशयहेतवस्त्वलंकाराः।

—काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, ३/१/२

तस्याः काव्यशोभायाः अतिशयस्तदतिशयः, तस्य हेतवः। पूर्वेनित्याः।

—वही, ३/१/३

पूर्वे गुणाः नित्याः। तैर्विना काव्यशोभानुपपत्तेः।"

—काव्यालंकारसूत्रवृत्ति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वामन का मत भेदवादी है। इन्होंने दो कारणों से अलंकार एवं गुण के भेद की स्थापना कर दोनों का अंतर स्पष्ट किया—

१. गुण काव्य के उत्पादक धर्म हैं एवं अलंकार गुणों द्वारा उत्पादित धर्म की शोभा में वृद्धि करते हैं। अतः, गुण को काव्य का स्वरूपाधायक धर्म एवं अलंकार को उत्कर्षाधायक धर्म कहा जा सकता है।

२. गुण काव्य के नित्य या अनिवार्य तत्त्व हैं, किंतु अलंकारों की स्थिति अनित्य या अनिवार्य नहीं है।

आनंदवर्द्धन ने उपर्युक्त दोनों विचारणाओं के अतिरिक्त अपनी नवीन धारणा की स्थापना करते हुए गुण को रस का धर्म एवं अलंकार को शब्दार्थ का धर्म स्वीकार किया है। रसध्वनि काव्य में आत्मा की भाँति है; किंतु शब्द एवं अर्थ अंगादि की तरह हैं। मम्मट ने आनंदवर्द्धन के आधार पर ही अपने मत का प्रतिपादन किया है। उनके अनुसार आत्मा के शौर्यादि गुणों के समान रस के उत्कर्षाधायक एवं अपरिहार्य धर्म गुण हैं तथा काव्य में अलंकारों की स्थिति अंगों के उपकारक हारादि आभूषणों की भाँति है, जो उसे यदा-कदा उत्कर्षयुक्त करते हैं।

ये रसस्यांगिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः।
उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः॥
उपकुर्वंति तं संतं येऽङ्गद्वारेण जातुचित्।
हारादिवलंकारास्तेऽनुप्रासोपमादयः॥

—काव्यप्रकाश, ८/६६,६७

काव्य में गुण एवं अलंकार की स्थिति का विचार करते हुए यह निष्कर्ष निकलता है कि अलंकार काव्य के अस्थिर धर्म हैं, वे रस की भाँति नित्य नहीं हैं। अलंकार एवं गुण, दोनों ही काव्य के उत्कर्षाधायक हैं; किंतु दोनों में अंतर यह है कि जहाँ गुणों के द्वारा काव्य में काव्यात्मकता का सन्निवेश होता है, वहाँ अलंकार उसे केवल उत्कृष्ट बना सकते हैं, उसमें बाह्य चमत्कार भरते हैं। कहने का अभिप्राय यह कि गुण काव्य के आंतर सौंदर्य हैं तो अलंकार बाह्य शोभा-मात्र। अलंकारों के समावेश से काव्य की बाहरी चमक भले ही बढ़ जाय; किंतु गुणों के द्वारा तो उसकी आंतरिक विभूति प्रकाशित हो उठती है अलंकारों की स्थिति नीरस काव्य में भी संभव है; किंतु गुण सरस काव्य में ही रहता है। कारण यह कि गुण रस के नित्य धर्म हैं, जहाँ रस होगा, वहाँ गुणों की स्थिति अनिवार्य है और जब गुण वर्तमान रहेंगे तो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रसोत्कर्ष करेंगे ही। गुण सदा रस का उपकार करते हैं, किंतु अलंकारों के घटाटोप में काव्य का स्वारस्य नष्ट हो जाता है। अतः, गुण को काव्य का नित्यधर्म और अलंकार को उसका बाह्यधर्म (अनित्यधर्म) कहा गया है। अलंकार स्वयं शोभा उत्पन्न नहीं कर सकते, उत्पन्न की गई शोभा को बढ़ाते हैं। इसलिए विश्वनाथ ने इन्हें 'काव्य का अस्थिरधर्म' कहा है। ये शब्दार्थ के अस्थिर धर्म हैं. इनकी स्थिति शरीर के बिजाइठ प्रभृति आभूषणों की भाँति (अंग का) बाह्य शोभावर्द्धन करने की है। प्रायः सभी आचार्यों ने गुण को अचल, नित्य या स्थायी माना है, जिसके अभाव में रचना असफल हो जा सकती है।

अलंकार और ध्वनि—अलंकारवादी आचार्यों के समय तक ध्वनि-सिद्धांत का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था, किंतु, उनके ग्रंथों में 'प्रतीयमान' अर्थ की स्थिति का पता चलता है। आचार्य रुय्यक के अनुसार अलंकारवादी आचार्यों ने व्यंग्य-अर्थ को अलंकार में ही गतार्थ कर दिया है। उन्होंने व्यंग्य अर्थ को वाच्य अर्थ का सहायक सिद्ध कर इस प्रकार के नियम का निर्धारण किया।

इह तावत् भामहोद्भटप्रभृतयश्चिरंतनालंकारकाराः प्रतीयमानमर्थ-वाच्योपस्कारकतया अलंकारपक्षनिक्षिप्तं मन्यंते। —अलंकार सर्वस्व, पृ० ३

भामह ने समासोक्ति एवं पर्यायोक्त अलंकार के लक्षण में प्रतीयमान अर्थ की कल्पना की है। पर्यायोक्त अलंकार में वाच्यवाचक वृत्ति के अतिरिक्त अन्य प्रकार के अर्थ की प्रतीति होने का वर्णन होने से व्यंजना की स्वीकृति स्पष्टतः प्रतिभासित होती है।

पर्यायोक्तं यदन्येन प्रकारेणाभिधीयते।
वाच्यवाचक वृत्तिभ्यां शून्येनावगमात्मना ॥ —काव्यालंकार, ३/८

इसी प्रकार रुद्रट के 'काव्यालंकार' में वर्णित रूपक, अपह्नुति, तुल्य-योगिता, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों में भी उपमा के सूत्र उपलब्ध होते हैं। अलंकारवादी आचार्यों के कई उदाहरणों को ध्वनिवादी आचार्यों ने ध्वनि या गुणीभूत व्यंग्य के उदाहरण के रूप में ग्रहण किया है। इससे यह पता चलता है कि अलंकारवादी ध्वनि-सिद्धांत से परिचित अवश्य थे; किंतु उन्होंने अलंकार में ही उसे गतार्थ कर दिया था। आनंदवर्द्धन ने अपने ग्रंथ 'ध्वन्यालोक' में विस्तार के साथ अलंकारवादियों की धारणाओं का खंडन कर यह सिद्ध किया है कि समासोक्ति, आक्षेप, दीपक, अपह्नुति,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनुक्तनिमित्ता, विशेषोक्ति, पर्यायोक्ति एवं संकर में ध्वनि का समाहार नहीं किया जा सकता। इन अलंकारों में वाच्यगत चमत्कार रहता है; किंतु ध्वनि में व्यंजना का महत्त्व है अर्थात् अलंकारों में शब्दार्थगत चमत्कार होने के कारण व्यंग्य-व्यजक भाव पर आधारित ध्वनि को अलंकार में अंतर्भूत नहीं किया जा सकता। अलंकार ध्वनि के अंग हो सकते है, अंगी नहीं। ध्वनि काव्य की आत्मा है, अलंकार नहीं। ध्वनिवादियों ने ध्वनि के तीन भेदों—वस्तुध्वनि, अलंकारध्वनि एवं रसध्वनि—में अलंकार को मानकर उसकी स्वतंत्र सत्ता का महत्त्व कम कर दिया है। आनंदवर्द्धन ने ध्वनि को काव्य के प्राणभूत तत्त्व के रूप में स्थापित कर अलंकार, रीति आदि का निरूपण उसके (ध्वनि के) अंगरूप में किया। रसादि ध्वनि की भाँति अलंकार की भी ध्वनि होती है और काव्य में ध्वनित होने पर अलंकार काव्य को उत्तम श्रेणी में लाता है। ध्वनि के रूप में प्रकट होकर अलंकार गौरवास्पद बन जाता है; पर वाच्य होने पर इसकी स्थिति रसादि के उपकारक तत्त्व के रूप में ही मान्य होती है। आनन्दवर्द्धन ने बताया कि अलंकार को प्रधान मान कर उसका काव्य में विधान नहीं होना चाहिए, अपितु वह रसादि के अंग-रूप में ही विवक्षित हो।

रसाक्षिप्ततया यस्य बंधः शक्यक्रियो भवेत्।
विवक्षातत्परत्वेन नांगित्वेन कदाचन॥ —ध्वन्यालोक, २/१७

अलंकार और रस—अलंकारवादी आचार्य भामह एवं दंडी ने अलंकार को गौरव देते हुए भी रस के महत्त्व को स्वीकार किया है। ऐसी बात नहीं है कि उन्हें रस-तत्त्व का ज्ञान न था या वे रसों की सरसता से अनभिज्ञ हों। फिर भी, उन्होंने इसे अपने विवेचन में स्वतंत्र स्थान न देकर अलंकार का ही एक अंग माना है। भामह एवं दंडी, दोनों ने ही महाकाव्य के लिए रस को आवश्यक तत्त्व के रूप में स्वीकृति दी है।

युक्तं लोकस्वभावेन रसैश्च सकलैः पृथक्। —काव्यालंकार, १/२१

अलंकृतमसंक्षिप्तं रसभावनिरंतरम्॥ —काव्यादर्श, १/१८

इन्होंने रसवत् प्रेय, ऊर्जस्वि आदि अलंकारों का वर्णन करते हुए रस के सभी विषयों एवं अंगों का विवरण प्रस्तुत किया है। शृंगार आदि रसों की स्पष्टतः प्रतीति की दशा में वे रसवत् अलंकारों की स्थिति अस्वीकार भी कर देते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रसवद्दर्शितस्पष्टश्रृंगारादि रसं यथा।
देवी समागमद् धर्ममस्करण्यतिरोहिता॥
—काव्यालंकार, ३/६

दंडी ने रसवत् अलंकार का वर्णन करते हुए उसके अंतर्गत आठ रसों एवं आठ स्थायी भावों का उल्लेख किया है तथा माधुर्य गुण में रसों को सन्निविष्ट कर दिया है।

इह त्वष्टरसायत्ता रसवत्ता स्मृता गिराम्।
—काव्यादर्श, २/२९२

प्राक् प्रीतिर्दर्शिता सेयं रतिः श्रृंगारतां गता।
—वही, २/२८१

मधुरं रसवद्वाचि वस्तुत्यपि रसस्थितिः॥
—वही, १/५१

इस विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि अलंकारवादी आचार्य रसों के महत्त्व को अमान्य नहीं ठहराते; किंतु अलंकारों के प्रति अतिशय व्यामोह के कारण अलंकारों के अंतर्गत ही रसों को मान लेते हैं या अलंकार के अंग-रूप में रसों की स्थिति स्वीकार करते हैं। रसवादी आचार्यों का दृष्टिकोण अलंकारवादियों से सर्वथा भिन्न है। अलंकारवादी अलंकार को काव्य का जीवनाधायक (जीवातु) तत्त्व मानकर रस, गुण, रीति आदि को काव्य का बाह्य शोभाकारक तत्त्व मानते हैं तथा उन्हें अलंकार की संज्ञा से अभिहित करते हैं। ठीक इसके विपरीत रसवादियों ने अलंकार को काव्य का बाह्य शोभाकारक धर्म माना है। काव्य में अलंकारों की स्थिति अनित्य है, वे कटक, कुंडल आदि आभूषणों की भाँति काव्य के अस्थिर धर्म हैं। इनका मुख्य कार्य है रस का उपकारक सिद्ध होना या रससिद्धि में गति प्रदान करना। रस मूलतः काव्य का आत्मधर्मी है और अलंकार उसके उपकारक साधन हैं। इस प्रकार रसवादी अलंकार को सौंदर्योत्पादन का एक साधन ही स्वीकार करते हैं। रसवादियों ने अलंकारवादियों-द्वारा निरूपित 'रसवदादि' अलंकारों की स्थिति एवं विवेचन को अमान्य ठहरा दिया है। रसवादियों के अनुसार रसवत्, ऊर्जस्वि, प्रेयस् आदि अलंकार उसी स्थिति में अलंकार हो सकते हैं, जब उनका वर्णन प्रधान रूप से न होकर गौण रूप से हो। इस लिए ध्वनिकार ने इसे गुणीभूत व्यंग्य के अंतर्गत सन्निविष्ट कर दिया है। ये गुणीभूत व्यंग्य के एक प्रकार 'अपरस्यांगव्यंग्य' के अंतर्भूत मान लिए गए हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रधानेऽन्यत्र वाक्यार्थे यत्रागंतुरसादयः ।
काव्ये तस्मिन्नलंकारो रसादिरिति मे मतिः ॥

—ध्वन्यालोक, २/५

जहाँ अन्य मुख्य वाक्यार्थ हो और रसादि अंग रूप से हों, वहाँ रसादि अलंकार होते हैं अर्थात् रसादि का अंगभूत होना ही रसवदलंकार का विषय होता है। यहाँ अन्य से अभिप्राय है रस, वस्तु या अलंकृति-रूप वाक्यार्थ का।

इस प्रकार उद्भट-द्वारा उद्भावित यह सिद्धांत, जिसमें रसवदादि अलंकारों के अंतर्गत रसों को (अंगभूत रसों को) अंतर्भूत किया जाता है, खंडित हो जाता है। रसवादी आचार्य रस को अलंकार्य मानते हैं तथा अलंकार को उसके सौंदर्यवर्द्धक तत्त्व के रूप में मान्यता देते हैं। अलंकार्य स्वयं चमत्कार नहीं उत्पन्न कर सकता; यह अलंकारों का कार्य है। अलंकार ही अलंकार्य या रस की सौंदर्यवृद्धि में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। रसवादियों ने काव्य के तीन भेद मानकर, अलंकार-प्रधान काव्य को अधम या अवर काव्य कहा है। इस प्रकार के विवेचन से अलंकारों का स्थान या महत्त्व अत्यंत गौण पड़ जाता है। अलंकार वाणी के विलास या कथन के प्रकार हैं और रस काव्य का सर्वस्व या प्राणतत्त्व है। रस के द्वारा काव्य का आंतरिक सौंदर्य बढ़ जाता है, अलंकार तो शब्द एवं अर्थ के उपकारक होकर उसकी बाह्यशोभा का वर्द्धन करते हैं। रस आत्मतत्त्व के सौंदर्य की वृद्धि कर चित्त का प्रसादन करता है।

अलंकारध्वनि—ध्वनि का एक भेद। [दे० ध्वनि के भेद] जब व्यंग्यार्थ में कोई अलंकार ध्वनित हो तो अलंकार-ध्वनि होती है।

अलंकार-प्रयोग में औचित्य—अलंकार मूलतः काव्य-सौंदर्य वृद्धि के साधन हैं। काव्य में इनका उपयोग भावों को सजाने एवं रमणीयता प्रदान करने के लिए होता है। अलंकारों के द्वारा (प्रयोग से) अभिव्यक्ति में तीव्रता एवं भावों में प्रभावात्मकता का समावेश होता है। सुंदर एवं भव्य विचार यदि मोहक शैली में व्यक्त किए जाएँ तो उसमें 'सोने में सुगंध' की चरितार्थता सिद्ध हो जाती है। पहुँचे हुए कवि की वाणी में अलंकार स्वतः स्फुरित हो जाते हैं, उनके लिए उसे प्रयास नहीं करना पड़ता। अलंकार स्वयं 'अहमहमिका' की भावना से भरकर टूट पड़ते हैं। इस प्रकार का विचार ध्वनिकार का भी है—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अलंकारांतराणि हि निरूप्यमाणदुर्घटान्यपि रससमाहितचेतसः प्रतिभानवत कवेः अहंपूर्विकया परापतंति । —ध्वन्यालोक, २/१६ की वृत्ति

अलंकार की अलंक्रियता उसके औचित्यपूर्ण प्रयोग पर निर्भर करती है और यह प्रश्न संस्कृत आलंकारिकों के समक्ष महत्त्वपूर्ण तथ्य के रूप में उठा है। आचार्य भरत के अनुसार 'विभिन्न शरीरावयव पर धारित आभूषण शोभा उत्पन्न करने के स्थान पर हास्योत्पादक ही होता है—जैसे उरस्थल पर मेखला का बंधन। वामन ने आभूषणों के आदर्श प्रयोग के लिए एक ऐसे शरीर को अधिकारी माना, जो सभी प्रकार से सुपात्र हो। अपने कथन को स्पष्ट करते हुए उन्होंने बताया कि न तो निष्प्राण शव, और यति का शरीर अथवा किसी नारी का यौवनवंध्य वपु ही इसके लिए उपयुक्त हो सकता है।

—काव्यालकार सूत्रवृत्ति ३/१/२ पद्य

यहाँ भरत एवं वामन का उद्देश्य अलंकारौचित्य का ही प्रदर्शन है। भोजराज ने अपने ग्रंथ 'सरस्वतीकंठाभरण' में कहा है कि सजीव, स्वस्थ एवं शोभन शरीर पर ही अलंकारों या भूषणों का उपयोग औचित्यपूर्ण है; जैसे अंजन की कालिमा के लिए उपयुक्त स्थान बड़ी-बड़ी आँखें ही हैं और मोती का हार पयोधरों पर ही सुशोभित होता है।

दीर्घापांगंनयनयुगलं भूषयंत्यंजनश्री—
स्तुंगाभोगौ प्रभवति कुचावर्चितुं हारयष्टिः ॥ —१/१६

इसी प्रकार का कथन 'औचित्यविचार चर्चा' के यशस्वी लेखक क्षेमेंद्र का भी है। जिस प्रकार मुक्ताहार मृगाक्षी के पीनस्तन पर ही विभूषित होता है, उसी प्रकार अर्थौचित्य सूक्ति के द्वारा अलंकार हो सकता है।

अर्थौचित्यवता सूक्तिरलंकारेण शोभते ।
पीनस्तन स्थितेनेव हारेण हरिणेक्षणा ॥ १५

इन कथनों का अभिप्राय यह है कि अलंकारों के प्रयोग में सुंदर एवं स्वस्थ शरीर के साथ-ही-साथ औचित्य भी एक आवश्यक तत्त्व है। जहाँ सरस काव्य में अलंकारों के समुचित प्रयोग के द्वारा सौंदर्याधान होता है, वहाँ नीरस काव्य में अनुस्यूत अलंकार उक्तिवैचित्र्य ही होकर रह जाते हैं। आचार्य मम्मट ने भी इसी प्रकार का विचार व्यक्त किया है—

यत्र तु नास्ति रसः तत्र (अलंकारः) उक्ति वैचित्र्यमात्रपर्यवसायिनः ।

—काव्यप्रकाश, ८ उल्लास

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आचार्य क्षेमेंद्र मे अलंकारौचित्य पर विचार करते हुए कहा कि उचित स्थान पर धारण करने पर ही लौकिक या काव्यात्मक अलंकारों की अलंकृति स्थिर हो सकती है।

उचितं प्राहुराचार्याः सदृशं किल यस्य यत्।
उचितस्थानविन्यासादलंकृतिरलंकृतिः ॥

—औचित्यविचारचर्चा, पृ० ६

अलंकारों के उचित स्थान पर विन्यास करने को ही औचित्य कहते हैं।

अलंकृतिः उचितस्थान विन्यासादलंकर्तुं क्षमा भवति, अन्यथा तु अलंकृति-व्यपदेशमेव न लभते।—वही।

अलंकार तभी शोभा बढ़ा सकते हैं, जब उनका विन्यास उपयुक्त स्थान पर हो, अन्यथा वे नाममात्र को ही अलंकार रह जाते हैं। क्षेमेंद्र का कहना है कि यदि काव्य में औचित्य के दर्शन न हों तो अलंकारों एवं गुणों की गणना व्यर्थ है, निरर्थक है। गुणों की क्या आवश्यकता, जहाँ आत्मा या जीवन ही न हो। अलंकार तो अलंकार ही हैं और गुण भी गुण हैं, केवल औचित्य ही रससिद्ध काव्य का स्थायी जीवन-प्राण है।

काव्यस्यामलंकारैः कि मिथ्यागणितैर्गुणैः।
यस्य जीवितमौचित्यं विचिंत्यापि न दृश्यते ॥

क्षेमेंद्र ने अलंकारौचित्य के पांच विभाग किए हैं—

क. अलंकारों के प्रयोग में स्वाभाविकता एवं कविप्रतिभा का संस्पर्श हो।

ख. अलंकार सायास न होकर स्वतः उद्भूत रहें।

ग. अलंकारों का प्रयोग भावों की पुष्टि के लिए किया जाय।

घ. अलंकारों का काव्य में गौण स्थान हो, मुख्य नहीं। इनकी स्थिति ऐसी नहीं हो कि पाठक का ध्यान प्रतिपाद्य से हटकर अलंकार-वैचित्र्य पर ही टिका रहे।

ङ. यमक, श्लेषादि शब्दालंकारों का प्रयोग केवल चमत्कार-प्रदर्शन के लिए न होकर काव्यबंध में संश्लिष्ट होना चाहिए।

अलंकारों के प्रयोग के संबंध में ध्वनिकार आनंदवर्द्धन तथा उनके टीकाकार अभिनवगुप्त के विचार भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। ध्वनिकार के अनुसार अलंकार रस से गौण हैं। रस-सिद्धि में इनका कार्य गति देना ही है अर्थात् रस का पोषण करना ही अलंकारों का मुख्य कर्त्तव्य होना चाहिए।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जिस अलंकार की रचना रस से आक्षिप्त हो, वही अलंकार मान्य है। यह मुख्यतः रस का अंग भी होता है।

प्रयत्न-साध्य अलंकारों का प्रयोग काव्य में मान्य नहीं है।

रसाक्षिप्ततया यस्य बंधः शक्यक्रियो भवेत् ।
अपृथग्यत्न निर्वर्त्यः सोऽलंकारो ध्वनौ मतः ॥

—ध्वन्यालोक, २/१६

कवि-द्वारा सोच-समझकर प्रयुक्त किए गए रूपकादि अलंकार शृंगारादि रसों के चारुत्व हेतु होने के कारण ही अलंकार नाम को सार्थक कर सकते हैं। बाह्य आभूषणों के समान ही प्रधानभूत रस के चारुत्व हेतु ही रूपकादि अलंकार हैं।

१. इनका वर्णन सदा रस को प्रधान मानकर ही होना चाहिए अर्थात् अलंकारों की विवक्षा रसपरत्वेन ही हो।

२. ये किसी भी स्थिति में प्रधान रूप से न दिखाई पड़ें।

३. उचित स्थान पर इनका ग्रहण एवं त्याग होना चाहिए।

४. प्रारंभ से अंत तक (काव्य में) इनका निर्वाह प्रयत्नपूर्वक न हो।

५. यदि कहीं अलंकारों का अनायास आद्यंत निर्वाह हो जाय तो ऐसी स्थिति में भी वे अंग रूप से ही रहें।

ध्वंत्यात्मभूते शृंगारे समीक्ष्य विनिवेशितः ।
रूपकादिरलंकारवर्ग एतियथार्थताम् ॥

—ध्वन्यालोक, २/१७

विवक्षा तत्परत्वेन नांगित्वेन कदाचन ।
काले च ग्रहणत्यागौ नातिनिर्वहणैषिता ॥ २/१८
निर्व्यूढापि चांगत्वे यत्नेन प्रत्यवेलक्षणम् ।
रूपकादिरलंकारवर्गस्यांगत्वसाधनम् ॥—वही, २/१९

अभिनवगुप्त का कहना है कि आत्मा के अभाव में अचेतन मृत शरीर के ऊपर कुंडल शोभा उत्पन्न नहीं कर सकता। जिस प्रकार यति के शरीर पर अलंकार्य के अनौचित्य के कारण कटकादि अलंकार हास्यास्पद होते हैं, उसी प्रकार अनौचित्यपूर्ण अलंकार भी निरर्थक हैं।

'तथा हि अचेतनं शरीरं कुंडलाद्युपेतमपि न भाति, अलंकार्यस्याभावात् । यतिशरीरं कटकादियुक्तं हास्यावहं भवति अलंकारस्य अनौचित्यात् ।—लोचन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

महिमभट्ट ने बतालाया कि कवि वस्तुओं में उत्कर्ष लाने के लिए ही अलंकारों का प्रयोग करता है। उन्होंने चारुता को ही अलंकार माना है, जो (चारुत्व) वैचित्र्य का ही पर्याय है।

इसलिए शब्द एवं अर्थ की विच्छित्ति को ही अलंकार कहते हैं। वस्तुओं में उत्कर्ष या अपकर्ष के बिना उनका कुछ भी स्वाद नहीं होता।

भंगिभणितिभेदानामेव अलंकारत्वोपगमात्—चारुत्वं हि वैचित्र्यापर-पर्यायं प्रकाशमानमलंकारः। चारुत्वमलंकारः।—व्यक्तिविवेक
विनोत्कर्षापकर्षाभ्यां स्वदंतेऽर्था न जातुचित्। तदर्थमेव कवयोऽलंकारान् पर्युपासते॥
—वही

भंगियों एवं उक्तियों के भेद को अलंकार कहते हुए महिमभट्ट ने कहा है कि कवि का मुख्य उद्देश्य है सौंदर्य या रस की सिद्धि। वह सौंदर्य-सिद्धि के लिए ही काव्य की रचना करता है, न कि अलंकारों के प्रयोग के लिए। अलंकार तो सिद्ध कवि की वाणी में स्वतः आ जाते हैं।

किंच सौंदर्यातिरेकनिष्पत्तयेऽर्थस्य काव्य-क्रियारंभः कवेः न तु अलंकार-निष्पत्तये, तेषां नांतरीयकतयैव तत्सिद्धेः, भंगिभणितिभेदानामेव अलंकार-त्वोपगमात्।
—व्यक्तिविवेक

वस्तु में सौंदर्याधिक्य की सिद्धि के लिए कवि काव्य-क्रिया प्रारभ करता है, न कि अलंकारों की सिद्धि के लिए; क्योंकि वे तो अविनाभाव से ही सिद्ध हो जाते हैं, कारण कि भंगियों और उक्तियों के भेद को ही अलंकार कहते हैं।

न चालंकारनिष्पत्त्यै रसबंधोद्यतः कविः।
यतते, ते हि तत्सिद्धि वांतरीयक सिद्धयः॥ —वहीं

रसबंध में उद्यत कवि अलंकारों की सिद्धि के लिए प्रयत्न नहीं करता, क्योंकि उसकी सिद्धि रससिद्धि के साथ अविनाभूत है।

महिमभट्ट का विचार है कि अलंकार रस के आश्रित होते हैं। रस के साक्षात् निष्पादक होने के कारण विभाव आदि ही रस के अंग हैं। उनके वैचित्र्योक्ति-रूप शरीरवाले अलंकार तो उनके आश्रित ही हैं।

रसस्यांगं विभावाद्याः साक्षान्निष्पादकत्वतः।
तद्वैचित्र्योक्तिवपुषोऽलंकारस्तु तदाश्रयाः॥ —व्यक्तिविवेक

ध्वनिकार ने भी रसों के प्रकाशक वाच्यविशेष को ही रूपकादि अलंकार माना है। रसों की अभिव्यक्ति में अलंकार बहिरंग नहीं हैं। रसों का आक्षेप

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वाच्यविशेषों से अथवा उनके प्रतिपादक शब्दों से ही होता है और यही उचित भी है।

युक्तं चैतत्। यतो रसा वाच्यविशेषैरेव आक्षेप्तव्या, तत्प्रतिपादकैश्च शब्दैः तत् प्रकाशिनो वाच्यविशेषा एव रूपकादयोऽलंकाराः। तस्मान्न तेषां बहिरंगत्वं रसाभिव्यक्तौ। —ध्वन्यालोक

भोज ने कटक-कुंडलादि की भाँति अलंकारों को काव्य का बाह्य सौंदर्य ही नहीं माना है। उन्होंने शरीर के ऊपर स्थित कटकादि की उपमा को अलंकारों के लिए अपर्याप्त माना। 'शृंगार प्रकाश' में अलंकारों के तीन विभाग किए हैं—शब्द अर्थात् बाह्य, अर्थ अर्थात् आभ्यंतर एवं शब्द और अर्थ अर्थात् बाह्याभ्यंतर। इनमें प्रथम अर्थात् शब्दालंकार शरीर के बाह्य-शोभाकारक धर्म हैं। भोज ने इनकी उपमा शरीर को सजानेवाले बाह्य आभूषणों, जैसे वस्त्र, हार एव कटक-कुंडलादि से दी है। द्वितीय अर्थात् अर्थालंकार की उपमा उसने दाँतों की स्वच्छता, नखच्छेद एवं केशों के सँवारने आदि कार्यों से दी है। इसी प्रकार बाह्याभ्यंतर वर्ग के शब्दालंकारों की स्थिति स्नान, धूप एवं विलेपन आदि की भाँति है।

अलंकाराश्च त्रिधा, बाह्याः आभ्यंतराः बाह्याभ्यंतराश्च। तेषु बाह्याः वस्त्र-माल्य-विभूषणादयः। बाह्याभ्यंतराः—स्नान-धूप (विलेपनादयः)।

—शृंगारप्रकाश

उन्होंने अपने दूसरे ग्रंथ 'सरस्वतीकंठाभरण' में यह सिद्ध किया कि अलंकारों का प्रयोग रस के उन्मीलन के लिए ही किया जाता है। अलंकार की उपयोगिता इस अर्थ में है कि वे रसानुकूल हों। काव्य की बाह्यशोभा के आधायक होने से ही अलंकारों की महत्ता नहीं बढ़ती, अपितु उसके जीवन-रस के अनुकूल होने पर ही उनकी सार्थकता सिद्ध होती है।

रसवंति हि वस्तूनि सालंकाराणि कानिचित्।
एकेनैव प्रयत्नेन निर्वर्त्यंते महाकवेः॥ —५/१७३
रसभावादिविषयविवक्षाविरहे सति।
अलंकारनिबंधो यः स कविभ्यो न रोचते॥ —५/१७५

—सरस्वतीकंठाभरण

इस प्रकार के विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि काव्य में अलंकारों की स्वतंत्र सत्ता नहीं है; वे उसके बाह्य आभूषण हैं। अलंकारों का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अस्तित्व अलंकार्य (रस आदि या जिस वस्तु को अलंकार के द्वारा सुशोभित किया जाय) की स्थिति पर निर्भर करता है। अलंकार्य से अभिप्राय है रस का और काव्य में वही मुख्य है। अलंकार्य-रहित काव्य में अलंकारों की सत्ता आधार-विहीन चित्र के समान निरर्थक है। अतएव रस-भाव आदि को गति देने के लिए ही यदि अलंकारों का प्रयोग किया जाय तो उनका प्रयोजन सिद्ध हो सकता है। इनका प्रयोग यथासंभव स्वाभाविक रूप से होना चाहिए। अलंकार भाषा के भूषण हैं, किंतु उससे (भाषा में) भाव का प्राधान्य न होकर भूषण का ही अधिक महत्त्व बढ़ जाय तो वहाँ प्रभविष्णुता भले ही आ जाय, किंतु रचना सजीव नहीं हो सकती। भिन्न-भिन्न विधान और ढंग के नाम को ही अलंकार कहते हैं।

अलंकार-संप्रदाय—अलंकार-संप्रदाय का अभिप्राय उस काव्य-सिद्धांत से है, जिसके अनुसार काव्य का प्राण या जीवनाधायक तत्त्व अलंकार है। इस संप्रदाय के अनुसार अलंकार ही काव्य का सौंदर्यबोधक तत्त्व है और उसके अंतर्गत रस आदि सभी अंतर्निहित हो जाते हैं। इस संप्रदाय के प्रवर्त्तक हैं भामह और उनके मत का पोषण दंडी एवं उद्भट करते हैं। इनके अतिरिक्त रुद्रट, प्रतीहारेंदुराज, जयदेव एवं अप्पय दीक्षित भी अलंकारवादी आचार्य हैं, पर इनमें रुद्रट की स्थिति कुछ भिन्न है। इन्होंने अपने ग्रंथ 'काव्यालंकार' में रसों का भी महत्त्व स्वीकार किया है। इन्होंने अलंकारवादी आचार्यों की तरह रसवत् आदि अलंकारों का वर्णन नहीं किया और रस का सविस्तार विवेचन चार अध्यायों (अध्याय बारह से पंद्रह तक) में किया है। अलंकारवादी आचार्यों ने अलंकार को काव्य का सर्वस्व एवं सर्वोपरि तत्त्व तथा अनिवार्य अंग के रूप में स्वीकृति प्रदान की और रस तथा ध्वनि को भी उसके अंगभूत तत्त्व के रूप में मान्यता दी। दंडी ने नाटक के तत्त्वों को अलंकार मानकर इसके (अलंकार के) स्वरूप को विस्तृत किया। इनके अनुसार संधि, संध्यंग, वृत्ति, लक्षण आदि भी अलंकार हैं।

यच्च संध्यंगवृत्त्यंग, लक्षणाद्यागमांतरे।
व्यावर्णितमिदं चेष्टं अलंकारतयैव नः ॥ —काव्यादर्श

भामह के अनुसार स्वाभाविक सुंदर होने पर भी वनिता का मुख अलंकार के बिना विभूषित नहीं होता।

न कांतमपि निर्भूषं विभातिवनितामुखम्। —काव्यालंकार, १/१३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस प्रकार के कथन के द्वारा इन्होंने अलंकार को अत्यंत गौरवास्पद सिद्ध किया। इंदुराज ने भी अपने ग्रंथ में अलंकार को ही काव्य का जीवातु स्वीकार किया है। आगे चलकर जयदेव ने 'चंद्रालोक' में अलंकार-रहित काव्य को उष्णतारहित अग्नि की भाँति व्यर्थ माना। ये सभी आचार्य विशेषत: भामह, उद्भट एवं दंडी अलंकार को काव्य का मूल तत्त्व मानते हुए रस को भी उसीके अंतर्गत समाहित कर देते हैं। यह ठीक है कि इन लोगों ने भी रस की महत्ता स्वीकार की है, किंतु अलंकार के समक्ष उसे गौण स्थान दिया है। इन लोगों ने रस, भाव, रसाभास, भावाभास एवं भावशांति को रसवत्, प्रेयस्वत्, ऊर्जस्वि एवं समाहित अलंकारों के नाम से अभिहित किया है। भामह को महाकाव्य में रस की स्थिति अनिवार्य रूप से मान्य है। उन्होंने स्वीकार किया कि शृंगारादि रसों की स्पष्ट रूप से प्रतीति होने पर रसवत् आदि अलंकारों की सत्ता अमान्य हो जाती है।

रसवद्दर्शितस्पष्टशृंगारादिरसं यथा।
देवी समागमद्धर्ममस्करण्यतिरोहिता॥—काव्यालंकार, ३/६

दंडी ने रसवत् अलंकार के ही अंतर्गत आठ रसों एवं आठ स्थायी भावों को निर्दिष्ट किया है तथा माधुर्य गुण के अंतर्गत ही रस का समावेश किया है।

इह त्वष्टारसायत्ता रसवत्तास्मृता गिराम्।—२/२९२
प्राक्प्रीतिर्दर्शितासेयं रतिः शृंगारतां गता।—२/२८१
मधुरं रसवद्वाचि वस्तुन्यपि रसस्थितिः॥—१/५१
—काव्यादर्श

उद्भट के संबंध में अलंकारसर्वस्वकार रुय्यक ने कहा है कि वे गुण एवं अलंकार में किसी प्रकार का पार्थक्य नहीं मानते। वे रूपक आदि अलंकारों को प्रतीयमान रूप में भी प्रदर्शित करते हैं। उन्होंने गुण एवं ध्वनि दोनों को ही अलंकार रूप में ग्रहण किया है।

उद्भटादिभिस्तु गुणालंकाराणां प्रायशः साम्यमेव सूचितम्। तदेवमलंकारा एव काव्ये प्रधानमिति प्राच्यानां मतम्।—अलंकारसर्वस्व

भरत से लेकर पंडितराज जगन्नाथ तक अलंकार-विवेचन की धारा अनवरत गति से प्रवाहित होती रही। भरत-द्वारा निरूपित चार अलंकार—उपमा, रूपक, दीपक एवं यमक—अप्पय दीक्षित तक पहुँचते-पहुँचते एक सौ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पचीस के लगभग हो गए। परवर्ती आचार्यों ने अलंकारों का विवेचन, मूल्यांकन, वर्गीकरण तथा विस्तार कर इसे महत्त्व प्रदान किया। रससंप्रदाय एवं ध्वनिसंप्रदाय के उदय के साथ अलंकारों का महत्त्व गौण हो गया तथा मम्मट एवं विश्वनाथ ने ध्वनिकार के मत का अनुकरण करते हुए इसे काव्य का अनित्य धर्म माना। मम्मट ने काव्य के लिए अलंकारों की स्थिति अनिवार्य नहीं मानी। रसवादी आचार्यों ने अलंकारों को गौण पद देते हुए भी उसे अपने ग्रंथों में विस्तारपूर्वक निरूपित किया तथा रुद्रट ने 'काव्यालंकार' में अलंकारों का वर्गीकरण कर इस क्षेत्र में मौलिक देन दी। उन्होंने अलंकारों को चार भागों में विभाजित किया। तदनंतर आचार्य रुय्यक ने अलंकारों का विवेचन एवं वर्गीकरण वैज्ञानिक आधार पर प्रस्तुत किया। मम्मट, जयदेव एवं विश्वनाथ ने अलंकार-विवेचन को गति दी और उनके सूक्ष्म भेदों का निरूपण किया। पंडितराज ने अलंकारों का भेद-प्रस्तार, परिभाषा में तर्कात्मकता तथा स्वरचित उदाहरणों से विभूषित कर 'रसगंगाधर' में सत्तर अलंकारों का विवेचन किया। इस प्रकार रसवादी एवं ध्वनिवादी आचार्यों ने भी अलंकार-निरूपण की दिशा में महत्त्वपूर्ण योग देकर एवं अपने ग्रंथों में इसे स्थान देकर इसकी महत्ता प्रतिष्ठित की।

अलंकारों की बढ़ती हुई संख्या को देखकर सर्वप्रथम कुंतक ने उनका परिसीमन कर एक अलंकार में अन्य अलंकार को अंतर्निहित करने का प्रयत्न किया था। पंडितराज के पश्चात् विश्वेश्वर पंडित ने 'अलंकारकौस्तुभ' नामक अलंकार विषयक प्रौढ़ ग्रंथ की रचना की, जिसमें इन्होंने मम्मट-द्वारा निरूपित साठ अलंकारों को ही मान्यता देकर अन्य अल्प-प्रसिद्ध अलंकारों को उन्हीं में गतार्थ कर दिया। ये अलंकार को प्रौढ़ि प्रदान करनेवाले अंतिम आचार्य थे।

अलंकार सर्वस्व—इसके रचयिता राजानक रुय्यक हैं। [दे० राजानक रुय्यक] 'अलंकार-सर्वस्व' में छह शब्दालंकार—पुनरुक्तवदाभास, छेकानुप्रास, वृत्त्यनुप्रास, यमक, लाटानुप्रास एव चित्र तथा पचहत्तर अर्थालंकारों एवं एक मिश्रालंकार का वर्णन है। मिश्रालंकार के दो भेद किए गए हैं—संकर और संसृष्टि। इसमें चार नवीन अलंकार है—उल्लेख, परिणाम, विकल्प एवं विचित्र। 'अलंकार सर्वस्व' के तीन विभाग हैं—सूत्र, वृत्ति और उदाहरण। सूत्र तथा वृत्ति की रचना रुय्यक ने की है और उदाहरण विभिन्न ग्रंथों से दिए गए हैं। इसके सूत्र एव वृत्ति के रचयिता के संबंध में विद्वानों में बहुत मतभेद रहा है। इसके टीकाकार जयरथ ने सूत्र एवं वृत्ति का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रचयिता रुय्यक को ही माना है। ग्रंथ के मंगलश्लोक से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है।

नमस्कृत्य परां वाचं देवीं त्रिविधविग्रहाम्।
निजालंकारसूत्राणां वृत्त्या तात्पर्यमुच्यते ॥

किंतु, दक्षिण भारत में उपलब्ध प्रतियों में 'गुर्वलंकार सूत्राणां वृत्त्या तात्पर्यमुच्यते' पाठ देखकर विद्वानों ने विचार किया कि वृत्ति की रचना रुय्यक के शिष्य मंखक ने की होगी। पर, अब यह तथ्य स्पष्ट हो गया है कि दोनों के ही प्रणेता रुय्यक थे। परवर्ती आचार्यों में अप्पय दीक्षित ने रुय्यक को वृत्तिकार के रूप में भी मान्यता दी है, अतः दक्षिण की परंपरा को पूर्ण प्रामाणिक नहीं माना जा सकता।

'अलंकार सर्वस्व' में अलंकारों का वैज्ञानिक वर्गीकरण किया गया है और उनके पाँच वर्ग किए गए हैं—सादृश्यवर्ग, विरोधवर्ग, शृंखलावर्ग, न्यायमूलवर्ग (तर्कन्यायमूल, वाक्यन्यायमूल तथा लोकन्यायमूल) एवं गूढ़ार्थ-प्रतीतिवर्ग।

सादृश्यगर्भ मूलक—इसके तीन उप-विभाग हैं—भेदाभेदतुल्यप्रधान, अभेद-प्रधान तथा भेदप्रधान। भेदाभेदतुल्यप्रधान वर्ग के अंतर्गत चार अलंकार हैं—उपमा, उपमेयोपमा, अनन्वय एवं स्मरण। भेदप्रधान के दो विभाग हैं—आरोपमूला तथा अध्यवसानमूला। प्रथम वर्ग में छह अलंकार हैं—रूपक, परिणाम, संदेह, भ्रांतिमान्, उल्लेख एवं अपह्नुति। द्वितीयवर्ग में उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति का समावेश किया गया है। सादृश्यमूलक वर्ग के अंतर्गत औपम्यगर्भ अलंकार में सोलह अलंकार हैं। इनके भी सात वर्ग हैं—पदार्थगत, तुल्ययोगिता और दीपक। वाक्यार्थगत—प्रतिवस्तूपमा, दृष्टांत एवं निदर्शना; भेदप्रधान—व्यतिरेक, सहोक्ति एव विनोक्ति; विशेषणविच्छित्ति—समासोक्ति, परिकर; विशेष्यविच्छित्ति—परिकरांकुर; विशेषणविशेष्यविच्छित्ति—श्लेष। अप्रस्तुतप्रशंसा, आक्षेप, अर्थांतरन्यास, पर्यायोक्ति एवं व्याजोक्ति इसी वर्ग में हैं।

विरोधगर्भ—विरोध, विभावना, विशेषोक्ति, असंगति, विषम, सम, विचित्र, अन्योन्य, विशेष, व्याघात।

शृंखलाबंध—कारणमाला, मालादीपक, एकावली एवं सार।

तर्कन्यायमूलक—काव्यलिंग, अनुमान।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वाक्यन्यायमूलक—यथासंख्य, पर्याय, परिवृत्ति, परिसंख्या, अर्थापत्ति, विकल्प, समुच्चय एवं समाधि।

लोकन्यायमूलक—प्रत्यनीक, प्रतीप, मीलित, सामान्य, तद्गुण, अतद्गुण एवं उत्तर।

गढ़ार्थप्रतीतिमूलक—सूक्ष्म, व्याजोक्ति, वक्रोक्ति। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी अलंकार हैं, जिन्हें किसी भी वर्ग में नहीं रखा गया है। वे हैं—स्वभावोक्ति, भाविक, उदात्त, संसृष्टि, संकर तथा रस एवं भाव से संबद्ध सात अलंकार—रसवत्, प्रेयस् ऊर्जस्वि, समाहित, भावोदय, भावसंधि एवं भावशबलता। अलंकारों का यह वर्गीकरण चित्तवृत्ति की दृष्टि से किया गया है—

तदेतेचित्तवृत्तिगतत्वेनालंकारालक्षिताः।

—अलंकारसर्वस्व, पृ० २१४

इसकी अनेक टीकाएँ हुई हैं, जिनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण टीका जयरथ कृत 'विमर्शिणी' है। टीकाकारों का विवरण इस प्रकार है—

१. राजानक अलक—'अलंकार सर्वस्व' की सबसे प्राचीन टीका अलक की है, पर वह नहीं मिलती।

२. जयरथ—इनकी 'विमर्शिणी' टीका काव्यमाला से मूल ग्रंथ के साथ प्रकाशित है।

३. समुद्रबंध—इनकी टीका अनंतशयन ग्रंथमाला से प्रकाशित है। इस टीका में रुय्यक के भावों की सरल व्याख्या है।

४. विद्याधर चक्रवर्त्ती—इनकी टीका का नाम 'संजीवनी' है। इन्होंने 'अलंकारसर्वस्व' की श्लोकबद्ध 'निष्कृष्टार्थ कारिका' नामक अन्य टीका भी लिखी है। दोनों टीकाओं का संपादन डॉ० रामचद्र द्विवेदी ने किया है। 'अलंकार सर्वस्व' का हिंदी अनुवाद डॉ० रामचंद्र द्विवेदी ने किया है, जो 'संजीवनी' के साथ प्रकाशित है। इसका अन्य हिंदी अनुवाद डॉ० रेवाप्रसाद द्विवेदा ने किया है, जिसमें मूल के अतिरिक्त जयरथ-कृत 'विमर्शिणी' की भी टीका है। [रुय्यक के संबंध में विस्तृत जानकारी के लिए दे० डॉ० रामचंद्र द्विवेदी का शोधप्रबंध 'अलंकार-मीमांसा]।

अलक्षणीयतावाद—ध्वनिविरोधी मत। इसके अनुसार ध्वनि का कोई लक्षण नहीं हो सकता। [**दे० ध्वनि की स्थापना**]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यह मत ध्वनि को सहृदय-हृदय-संवेद्य मानकर उसे वाणी से परे स्वीकार करता है। इसके विचार से ध्वनि का केवल संवेदन हो सकता है, उसका लक्षण नहीं प्रस्तुत किया जा सकता।

अल्प—विरोधमूलक अलंकार।

अत्यधिक छोटे आधार की अपेक्षा उससे भी छोटे आधेय के वर्णन में अल्प अलंकार होता है। यह अधिक अलंकार का विलोम है, जिसमें आधाराधेय के आधिक्य का वर्णन किया जाता है। [दे० अधिक] इस अलंकार का सौंदर्य आधेय तथा आधार की अल्पता के वर्णन में निहित है।

इस अलंकार के उद्भावक अप्पय दीक्षित हैं। दीक्षित के अनुसार सूक्ष्म आधेय से भी सूक्ष्म आधार का वर्णन करना अल्प अलंकार है। रीतिकालीन आचार्यों ने दीक्षित के ही लक्षण का भावानुवाद किया है। जसवंतसिंह, मतिराम और दास के लक्षण इसके प्रमाण हैं।

अल्पं तु सूक्ष्मादाधेयाद्यदाधारस्य सूक्ष्मता।

—कुवलयानंद, ९७

अलप-अलप आधेय तें सूछम हो आधार।

—भाषाभूषण, १२८

जहँ सूछम आधेय तें अति सूछम आधार।
अल्प अलंकृत कहत हैं, कबिजन बुद्धि उदार।

—ललितललाम, २४०

अलप-अलप आधेय तैं अतिसूछम आधार॥

—काव्यनिर्णय, ११/४१

नागेश और विश्वेश्वर पंडित ने अल्पालंकार के अलंकारत्व का खंडन कर इसका अंतर्भाव अधिक में किया है। इनका कहना है कि आधाराधेय में से किसी एक की सूक्ष्मता के कथन में वस्तुतः किसी एक की अधिकता का ही वर्णन होता है, अतः यह अधिक से भिन्न न होकर अभिन्न है।

तेन यत्र सूक्ष्मत्वातिशयवत आधाराधेयतावा तदन्यतरस्यातिसूक्ष्मत्वं वर्ण्यते।.... इतेनेदृशे विषयेऽल्पंनाम पृथगलंकार इत्यपास्तम्।

—उद्योत, पृ० ५५९

आधारापेक्षया आधेयस्य महत्त्वकल्पनारूपाधिक्यभेद एव पर्यवसानात्।

—अलंकारकौस्तुभ, पृ० ३८०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उदाहरण—

क. यन्मध्यदेशादपि ते सूक्ष्मं लोलाक्षि ! दृश्यते ।
मृणालसूत्रमपि ते न सम्माति स्तनांतरे ।।

हे चंचल नेत्रवाली ! जो कमल का रेशा तुम्हारी कटि से भी अधिक सूक्ष्म दिखाई देता है, वह भी तुम्हारे स्तनों के मध्य में नहीं समाता ।

ख. तू पूछत कहि मुद्रिके मौन होत या नाम ।
कंकन की पदवी दई तुम बिन या कहँ राम ।।

—रामचंद्रिका

यहाँ हाथ आधार है और मुद्रिका आधेय । छोटे आधेय से भी आधार की सूक्ष्मता के वर्णन में अल्प अलंकार है ।

अवगलित—प्रस्तावना का पंचम प्रकार । नाटक या रूपक के आमुख को प्रस्तावना कहते हैं । [दे० प्रस्तावना]

अवज्ञा—एक गौण अलंकार । एक के गुण-दोष से दूसरे में गुण-दोष का आधान न होना अवज्ञा अलंकार है । अवज्ञा का अर्थ अनादर या अवहेलना है । इस अलंकार में एक के गुण-दोष को अन्य-द्वारा अग्रहण या अनंगीकार का भाव रहता है । यह उल्लास का विलोम या प्रतिपक्षी है । [दे० उल्लास]

इस अलंकार के उद्भावक जयदेव हैं । परवर्ती आचार्यों में केवल अप्पय दीक्षित तथा पंडितराज जगन्नाथ ने इसका विवेचन किया है । उद्योतकार नागेश इसका खंडन कर इसे विशेषोक्ति में गतार्थ कर देते हैं ।

जयदेव का कथन है कि किसी के गुण-दोष से अन्य में गुण-दोष का आधान न होना अवज्ञा है ।

अवज्ञा वर्ण्यते वस्तु गुणदोषाक्षमं यदि ।

—चंद्रालोक, ५/१०७

दीक्षित एक के गुण-दोष से दूसरे को गुण-दोष का लाभ न होने के वर्णन को अवज्ञा कहते हैं । इन्होंने इसके दो प्रकारों का कथन कर इसके विवेचन को आगे बढ़ाया ।

ताभ्यां तौ यदि न स्यातामवज्ञालंकृतिस्तु सा ।
ताभ्यां गुणदोषाभ्यां तौ गुणदोषौ ।।

—कुवलयानंद, १३६

पंडितराज ने इसे उल्लास का विलोम बताकर कहा कि इसमें अन्य के गुण-दोष का अन्य द्वारा अग्रहण का भाव रहता है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तद्विपर्ययोऽवज्ञा ।

तस्योल्लासस्य विपर्ययोऽभावः । अन्यस्यान्यदीयगुणदोषप्रयुक्तगुणदोषाधानाभाव इति पर्यवसितोऽर्थः ।—रसगंगाधर, पृ० ६८५-८६

रीतिकालीन आचार्यों में जसवंतसिंह ने 'चंद्रालोक' के लक्षण का तथा मतिराम ने 'कुवलयानंद' की परिभाषा का अनुवाद कर अवज्ञा अलंकार का वर्णन किया । पद्माकर पर 'भाषाभूषण' का प्रभाव है ।

होत अवज्ञा और के लगैं न गुन अरु दोष ।

—भाषाभूषण, १६२

औरै के गुन दोष ते औरै के गुन दोष ।
जहँ न अवज्ञा तहँ कहत कबिजन बुद्धि अदोष ॥

—ललितललाम, ३१७

जु गुन दोष कछु और को औरै जहाँ न होय ।
सु अवज्ञा सर-सिंधु में चातक लहत न तोय ॥

—पद्माभरण, २२६

अवज्ञा के भेद—दीक्षित ने इसके दो प्रकारों का उल्लेख किया है—

प्रथम—गुण से गुण का न होना ।

द्वितीय—दोष से दोष का न होना ।

अत्र कस्यचिद् गुणेनान्यस्यगुणालाभे द्वितीयार्धमुदाहरणम् ।

—कुवलयानंद, १३६

प्रथम अवज्ञा—अन्य के गुण से अन्य को गुण की अप्राप्ति प्रथम अवज्ञा है ।

उदाहरण—

क. **निष्णातोऽपि च वेदांते वैराग्यं नैति दुर्जनः ।**
चिरं जलनिधौ मग्नो मैनाकइव मार्दवम् ॥

—रसगंगाधर ।

वेदांत में पारंगत होने पर भी दुर्जन को वैराग्य की प्राप्ति नहीं होती, जैसे बहुत समय तक समुद्र में मग्न रहने पर भी मैनाक पहाड़ कोमल न हो सका । वेदांत में पारंगत होने पर भी दुष्ट को वैराग्य न होना तथा मैनाक का जल में रहने पर भी कोमल न होना—गुण से गुण की अप्राप्ति है ।

ख. **मेरे दृग बारिद बृथा, बरसत वारि-प्रवाह ।**
उठत न अंकुर नेह को, तौ उर ऊसर माँह ॥—मतिराम

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एक के प्रेम-भाव का अन्य पर प्रभाव नहीं पड़ने में प्रथम प्रकार हुआ।

द्वितीय अवज्ञा—अन्य के दोष से अन्य का प्रभावित न होना, द्वितीय अवज्ञा है।

क. मध्येगलं विहरतां गरलं निकामं
नागाधिपः शिरसि भालतले हुताशः।
ध्याता भवज्ज्वलनमध्यगतैस्तथापि
तापं तदैव हरते हरते तनुश्रीः॥

शिवजी के प्रति भक्त की उक्ति—हे शिवजी, आपके गले के मध्य विष, सिर पर सर्पराज और भाल पर अग्नि भले ही रहें, फिर भी आपके शरीर की सुंदरता संसार रूपी अग्नि के बीच मनुष्यों के द्वारा ध्यान किए जाने पर शीघ्र ही ज्वाला को हरण करती है। गरल आदि के दोष का शिवजा पर प्रभाव न पड़ना द्वितीय प्रकार है—दोष की अप्राप्ति।

ख. कहा भयो जो तजत है, मलिन मधुप दुख मानि।
सुबरन बरन सुबात जुत, चंपक लहै न हानि॥

यहाँ भ्रमर के त्यागने में चंपक को हानि का न होना वर्णित है।

अवर्ण्य—उपमान का अन्य नाम। [दे० उपमान]

अवंतिका—रीति का एक प्रकार। [दे० रीति के प्रकार]

अवमर्श—संधि का चतुर्थ भेद। [दे० संधि]

अवरकाव्य—अधमकाव्य को अवरकाव्य कहते हैं। यह काव्य का एक भेद हैं। [दे० काव्य-भेद]

इसमें केवल शब्द-सौंदर्य या अर्थ-चमत्कार पर बल दिया जाता है। ऐसे काव्य में अलंकार की प्रधानता होती है।

अवरोह—शोभाकरमित्र-वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। यह रूप एवं वस्तुओं के अपचय का द्योतक है। इसका अंतर्भाव सार अलंकार के द्वितीय प्रकार में संभव है। [दे० सार]

विपर्ययोऽवरोहः।—अलंकाररत्नाकर, ९४

अवसर—आचार्य रुद्रट-द्वारा उद्भावित एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। यदि न्यून पदार्थ या अर्थ के प्रसंग में अन्य उत्कृष्ट एवं सरस पदार्थ का कथन किया जाय तो वहाँ अवसर अलंकार होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अर्थांतरमुत्कृष्टं सरसं यदि वोपलक्षणं क्रियते ।
अर्थस्य तदभिधानप्रसंगतो यत्र सोऽवसरः ॥
—काव्यालंकार, ७/१०३

इस अलंकार का अंतर्भाव उदात्त के द्वितीय भेद में हो जाता है, जिसमें महान् जनों के चरित्र को किसी प्रसंग में रखा जाता है। रुद्रट ने इसके उदाहरण में वही श्लोक उद्धृत किया है, जिसे मम्मट उदात्त [दे० उदात्त] के द्वितीय भेद का उदाहरण मानते हैं। अवसर तथा उदात्त के द्वितीय भेद में महान् जनों का चरित्र उपलक्षणरूप में रहता है।

अवहित्थ—संचारी भाव [दे० **संचारी भाव**] लज्जादि भावों को चतुरता से छिपाना अवहित्थ है। इसका (अवहित्थ का) अर्थ है अपने स्वरूप को छिपाना।

भरत ने आकार-गोपन को अवहित्थ कहा है। इसकी उत्पत्ति भय, लज्जा, पराजय, गौरव तथा छल प्रभृति विभावों-द्वारा होती है। अवहित्थ का अभिनय अन्यथाकथन, अवलोकन, कथाभंग, बनावटी धैर्य आदि अनुभावों-द्वारा होता है।

'अवहित्थं नाम—आकारप्रच्छादनात्मकम्। तच्च लज्जाभयापजयगौरवजैह्म्यादिभिर्विभावैः समुत्पद्यते। तस्यान्यथाकथनावलोकितकथाभंग कृतकधैर्यादिभिरनुभावैरभिनयः प्रयोक्तव्यः।'

'धाष्टर्यजैह्म्यादिसंभूतमवहित्थं भयात्मकम्।
तच्चागणनया कार्यं नातीवोत्तरभाषणात् ॥'
—नाट्यशास्त्र, ७/८०

धनंजय लज्जादि के कारण हृदय का विकार (भाव) छिपाने को अवहित्थ कहते हैं। इसका अनुभाव अंग में विकार होता है।

'लज्जाद्यैर्विक्रियागुप्ताववहित्थांगविक्रिया।' —दशरूपक, ४/२९

विश्वनाथ भय, गौरव, लज्जा आदि के कारण हर्षादि विकारों के गोपन को अवहित्थ कहते हैं।

'भयगौरवलज्जादेर्हर्षाद्याकारगुप्तिरवहित्था।
व्यापारांतरसक्त्यन्यथावभाषणविलोकनादिकरी ॥' ३/१५८
—साहित्यदर्पण।

भानुदत्त ने आकार-व्यवहार की वृत्ति के गोपन को अवहित्थ कहा है। यह लज्जा, धृष्टता, धूर्त्तता तथा गौरव आदि विभावों-द्वारा उत्पन्न होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसके अनुभाव अन्यथा या उलटा कार्य करना, अन्य ओर देखना तथा कुछ और ही कहना है।

आकारव्यवहार (विहार) संगोपनमवहित्थम् । विभावा व्रीडाधार्ष्ट्य-कौटिल्यगौरवादयः । अनुभावा अन्यथाकारणऽन्यथाप्रेक्षणान्यथाकथनादयः ।

—रसतरंगिणी, पृ० ३६९, पंचमतरंग ।

पंडितराज जगन्नाथ के अनुसार लज्जादि कारणों से उत्पन्न उस चित्तवृत्ति को अवहित्थ कहते हैं, जिसमें हर्षादि अनुभावों का गोपन (छिपाया जाना) होता है।

व्रीडादिभिर्निमित्तैर्हर्षाद्यनुभावानां गोपनाय जनितो भावविशेषोऽवहित्थम् ।

—रसगंगाधर, पृ० १०९

निष्कर्ष यह कि आकार का गोपन ही अवहित्थ है, जो लज्जादि विभावों-द्वारा उत्पन्न होता है।

उदाहरण—

क. **एवंवादिनि देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी ।**
लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती ॥ —कुमारसंभव ।

इस प्रकार देवर्षि नारद के कहने पर अर्थात् शिव को पार्वती का भावी पति होने की बात कहने पर, पिता के पास बैठी हुई पार्वती ने अपना सिर नीचे कर लिया और वह हाथ से लीलाकमल की पंखुड़ियों को, हर्ष के कारण, गिनने लगी। यहाँ पार्वती द्वारा लीलाकमल की पंखुड़ियों की गणना करने में अवहित्थ संचारी है।

ख. **निरखत ही हरि हरषि कै रहे सु आँसू छाइ ।**
बूझत अलि केवल कह्यो, लग्यो धूम की धाइ ॥

यहाँ कृष्ण को देखकर हर्ष से उत्पन्न आनंदाश्रु को छिपाने में अवहित्थ संचारी है।

ग. **देखन मिस मृग बिहँग तरु, फिरइ बहोरि-बहोरि ।**
निरखि-निरखि रघुबीर छबि, बाढ़इ प्रीति न थोरि ॥ —रामायण

यहाँ सीता-द्वारा मृग, तरु आदि के देखने के बहाने राम को देखने में अपने भावों को छिपाया गया है।

अवाचक—शब्ददोष का आठवाँ भेद। [दे० शब्ददोष]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अविच्छेदी—कवियों का एक भेद। [दे० कवि]। राजशेखर के अनुसार जो कवि इच्छानुसार जब चाहे तब धाराप्रवाह रूप से कविता करे, उसे अविच्छेदी कहते हैं। इसकी इच्छा में कभी विच्छेद (व्यवधान) नहीं होता, अतः इसे यह संज्ञा प्राप्त है।

यो यदैवेच्छति तदैवाविच्छिन्नवचनः सोऽविच्छेदी।

—काव्यमीमांसा, पंचम अध्याय, पृ० ५१

अविमृष्टविधेयांश—शब्ददोष का १५वां प्रकार। [दे० शब्ददोष]

अविवक्षितवाच्यध्वनि—लक्षणामूला ध्वनि का अन्य नाम। इसमें वाच्यार्थ की विवक्षा नहीं होती, अतः विवक्षितवाच्यध्वनि कहते हैं। [दे० लक्षणामूला ध्वनि]

अविशेष परिवृत्तता—अर्थदोष का १५वां भेद। [दे० अर्थदोष]

अशक्य—शोभाकर मित्र-वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। प्रतिबंधक के विधान में असमर्थता का वर्णन ही अशक्यालंकार है।

प्रतिबंधकादेर्विधानासामर्थ्यमशक्यम् ॥६५॥

—अलंकाररत्नाकर, पृ० १००

अश्राव्य—नाटकीय कथावस्तु या संवाद का वह अंश, जो किसी भी पात्र के सुनने योग्य न हो। इसे स्वगतकथन भी कहते हैं। हिंदी में इसके लिए 'आप ही आप' का भी प्रचलन है।

[दे० सर्वश्राव्य] जो वृत्त दूसरों के लिए गोप्य तथा अपने ही मन में रखने योग्य हो, उसे स्वगत या अश्राव्य कहा जाता है। अश्राव्य (स्वगत) केवल रंगमंच पर स्थित पात्रों के लिए होता है, दर्शक या सामाजिक के लिए नहीं। अभिनय करते समय पात्र या अभिनेता स्वगत-कथन को भी उच्च स्वर से कहता है अर्थात् वह गोपनीय होते हुए भी सामाजिकों के लिए गोप्य नहीं होता, केवल अभिनेता या पात्र के लिए गोपन-योग्य होता है। पात्र अपनी मुख-मुद्रा-द्वारा इस प्रकार अभिनय करता है कि प्रेक्षक उसे स्पष्टतः सुनकर भी यह अनुमान करता है कि वह आत्मगत भाव का श्रवण कर रहा है।

अश्रु—सात्त्विक भाव। [दे० अनुभाव]

हर्ष, शोक, भय, क्रोध आदि के कारण नेत्रों से जल टपकना अश्रु है। भरत हर्ष, रोष, दुःख, भय, आनंद, अमर्ष, धुआँ लगने, अंजन लगने, शीत, रोग, निर्निमेष देखने तथा जृंभा के कारण अश्रु की उत्पत्ति मानते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'आनंदामर्षाभ्यां धूमांजन जृंभणाद्भयाच्छोकात्।
अनिमेषप्रेक्षणतः शीताद्रोगाद्भवेदश्रु ॥'

—नाट्यशास्त्र, ७/९७

विश्वनाथ के अनुसार क्रोध, दुःख, हर्ष के कारण उत्पन्न नेत्रजल को अश्रु कहते हैं।

'अश्रु नेत्रोद्भवं वारि क्रोधदुःखप्रहर्षजम्।'

—साहित्यदर्पण, ३/१३९

भानुदत्त ने किसी विकार के कारण नेत्रों में जल भर जाने को अश्रु कहा है। यह हर्ष, धूम, अमर्ष, भय, शोक, जृंभा, शीत तथा अनिमेष देखने से उत्पन्न होता है।

'विकारजनितमक्षिसलिलमश्रु। अस्य विभावा हर्षामर्षधूमभयशोकजृंभा-शीतर्निनिमेषप्रेक्षणानि।'

—रसतरंगिणी, पृ० ३२९, चतुर्थ तरंग।

उदाहरण—

क. विसृजविसृजचित्तदुःखधारामयमुपकंठमुपागतो मुरारिः।
इति कथयितुमश्रुविंदुरक्ष्णोर्निपतति वक्षसि पक्ष्मलायताक्ष्याः ॥

अरे मन! अब मत घबड़ा, मत घबड़ा, देख, श्रीकृष्ण सामने से आ रहे हैं। ऐसा कहकर मन को धैर्य बंधाने के लिए मानो नेत्रों की पलकों से अश्रु ढलकर दीर्घ नेत्रवती नायिका के वक्ष पर बरस रहे हैं। यहां श्रीकृष्ण को सम्मुख देखकर किसी गोपिका के नेत्र से अश्रु निकलने का वर्णन है।

ख. एहि बिधि कहि-कहि वचन प्रिय, लेहिं नयन भरि नीर।
किमि चलिहंहि मारग अगम, सुठि सुकुमार सरीर ॥

यहाँ रामचंद्र के वनगमनजन्य दुःख की कल्पना से उत्पन्न अश्रु का वर्णन है।

अश्लील—शब्ददोष का ९वाँ भेद। [दे० शब्ददोष]

अश्लील—अर्थदोष का २३ वाँ भेद। [दे० अर्थदोष]

अस्थानपदता—वाक्यदोष का १३वाँ भेद। [दे० वाक्यदोष]

अस्थानसमासता—वाक्यदोष का १४वाँ भेद। [दे० वाक्यदोष]

अस्फुटव्यंग्य—गुणीभूत व्यंग्य का चतुर्थ भेद। [दे० गुणीभूत व्यंग्य]
इसमें व्यंग्यार्थ अत्यंत अस्फुट रहता है, या अच्छी तरह प्रकट नहीं होता। इसे मार्मिक सहृदय भी नहीं समझ पाते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अदृष्टे दर्शनोत्कंठा दृष्टे विच्छेदभीरुता ।
नादृष्टेन न दृष्टेन भवता लभ्यते सुखम् ॥

प्रिया द्वारा प्रियतम के प्रति उक्ति—आपके न देखने पर दर्शन की उत्कंठा बनी रहती है और देखने पर अलग हो जाने का डर रहता है। अतएव न तो आपके देखने से सुख होता है और न नहीं देखने से। इस कथन से यह व्यंग्य बहुत कठिनाई से प्रतीत होता है कि आप सदा मेरे निकट रहें और ऐसा उपाय करें, जिससे वियोग का भय न रहे।

अनदेखे देखन चहैं देखै बिछुरन भीत ।
देखे बिन, देखेहु पै, तुम सों सुख नहि मीत ॥

—पूर्वश्लोक का अनुवाद।

असम—शोभाकरमित्र-वर्णित एक नवीन एवं अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। अनन्वय से ही असम का विकास हुआ है तथा उसके (अनन्वय के) बाद ही इसका वर्णन किया गया है। अनन्वय में उपमेय और उपमान एक ही पदार्थ रहता है, किंतु असम में उपमान का अभाव या विरह होता है और इसमें अनन्वय वाच्य रहता है। असम में उपमान की प्राप्ति नहीं होती।

तद्विरहोऽसमः ॥ १० ॥

उपमानस्य विरहोऽसंभवस्तत्प्रतिपादनमसमाख्योऽलंकारः।

उपमानांतरविरहस्त्रिष्वपि भेदेषु गम्यते येन ।
तदनन्वयस्त्रिधासावसमे स तु मुख्यतो वाच्यः ॥

—अलंकार रत्नाकर, पृ० ११

असमर्थ—शब्ददोष का चतुर्थ प्रकार [दे० शब्ददोष]।

असंबंधातिशयोक्ति—अतिशयोक्ति अलंकार का चतुर्थ भेद। [दे० अतिशयोक्ति]

असुंदर व्यंग्य—गुणीभूत व्यंग्य का आठवाँ प्रकार। [दे० गुणीभूत व्यंग्य] व्यंग्यार्थ का वाच्यार्थ से कम चमत्कारक होना असुंदर व्यंग्य है। इसमें वाच्यार्थ में अधिक सौंदर्य होता है।

वानीर कुंजोड्डीनशकुनिकोलाहलं शृण्वंत्याः ।
गृहकर्मव्यापृताया वध्वाः सीदंत्यंगानि ॥

बेंत-कुंज में पक्षियों के कोलाहल को सुनकर गृह-कार्य में निरत वधू के अंग शिथिल हो रहे हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इससे यह व्यंग्यार्थ प्रकट होता है कि उसका उपनायक (प्रेमी) निश्चित समय पर लताकुंज में आ गया है। इस व्यंग्यार्थ से 'अंग शिथिल हो रहे हैं' यह वाच्यार्थ कहीं अधिक चमत्कारक है। लताकुंज में नायक के आने पर भी नायिका विवशतावश न जा सकी, इससे उसके अंग शिथिल हो रहे हैं।

उड़े बिहग सुनि कुंज में यह धुनि सुनि ततकाल।
सिथलित तन विकलित भई गृहकारज-रत बाल॥
—पूर्व श्लोक का अनुवाद

असूया—संचारी भाव। [दे० **संचारी भाव**] दूसरे का उत्कर्ष नहीं सहन करना तथा उसकी निंदा करना असूया है। इसके अनुभाव हैं—अन्यों का दोषकथन, भृकुटि-भंग, क्रोध आदि।

भरत के अनुसार असूया संचारी भाव नानापराध, द्वेष, परैश्वर्य, सौभाग्य, मेधा, विद्या, लीला आदि विभावों द्वारा उत्पन्न होता है। इसका अभिनय अन्य दोषदर्शन, अन्यों के गुण की अवज्ञा करने, ईर्ष्यापूर्ण नेत्रों से देखने, भ्रूकुटिल करने तथा अधोमुख प्रभृति अनुभावों द्वारा करना चाहिए।

'असूया नाम—नानापराधद्वेषपरैश्वर्यसौभाग्यमेधाविद्यालीलादिविभावैः समुत्पद्यते। तस्याश्च परिषदि दोषप्रख्यापनगुणोपघातेर्ष्याचक्षुःप्रदानाधोमुख-भ्रुकुटीक्रियावज्ञानकुत्सनादिभिरनुभावैरभिनयः प्रयोक्तव्यः।'
—नाट्यशास्त्र ७/३६, पृ० ३५८

पर सौभाग्येश्वरतामेधालीलासमुच्छ्रापांदृष्ट्वा।
उत्पद्यते ह्यसूया कृतापराधो भवेद्यश्च॥ —वही, ७/३६

धनंजय ने गर्व, दुष्टता तथा क्रोध के कारण अन्य के उत्कर्ष को सहन न करने में असूया नामक संचारी की स्थिति स्वीकार की है। इसके अनुभाव हैं—दोषयुक्तकथन, अवज्ञा, भ्रुकुटिभंग, क्रोध आदि।

परोत्कर्षाक्षमाऽसूया गर्वदौर्जन्यमन्युजा।
दोषोक्त्यवज्ञे भ्रुकुटिमन्युक्रोधेंगितानि च॥ —दशरूपक, ४/१७

विश्वनाथ औद्धत्य के कारण अन्य के गुणवैभव को नहीं सहने को असूया कहते हैं।

असूयान्यगुणर्द्धीनामौद्धत्यादसहिष्णुता।
दोषोद्घोषभ्रूविभेदावज्ञाक्रोधेंगितादिकृत्॥
—साहित्यदर्पण, ३/१९६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भानुदत्त ने अन्य के उत्कर्ष (उन्नति) को न सहन करने तथा दूसरे का अनिष्ट (हानि) करने की इच्छा को असूया कहा।

'परोत्कर्षासहिष्णुता परानिष्टचिकीर्षा वा असूया। तत्र विभावा मन्यु-दौर्जन्यादयः। अनुभावाः कोपचेष्टादोषोद्भावनादयः।'

—रसतरंगिणी, पृ० ३४४, पंचम तरंग।

पंडितराज जगन्नाथ उस चित्तवृत्ति को असूया कहते हैं, जो परोत्कर्ष-दर्शन के कारण उत्पन्न होती है और परनिंदा आदि अनुभावों द्वारा प्रकट होती है।

'परोत्कर्षदर्शनादिजन्य परनिंदादिकारणीभूतश्चित्तवृत्तिविशेषोऽसूया।'

—रसगंगाधर, पृ० ११५

उदाहरण—

क. कुत्र शैवं धनुरिदं क्व चायं प्राकृतः शिशुः।
भंगस्तु सर्वसंहर्ता कालेनैव विनिर्मितः॥

यहाँ जनकपुर में धनुषयज्ञ के अवसर पर पधारे राजाओं की उक्ति में असूया भाव है। कहाँ तो यह शिवजी का धनुष और कहाँ यह साधारण बालक। इसे तो काल ने ही तोड़ दिया है, जो संसार के सभी पदार्थों को नष्ट कर डालता है। राम को 'प्राकृत शिशु' कहकर वे उनकी निंदा करते हैं।

ख. जैसे को तैसो मिलै, तबहीं जुरत सनेह।
ज्यों त्रिभंग तन स्याम को, कुटिल कूबरी देह॥

कुब्जा के प्रेम की ईर्ष्या के कारण गोपियाँ उनकी निंदा करती हैं और इसी में असूया की अभिव्यक्ति हुई है।

असूर्यपश्य—कवि का एक प्रकार। यह भेद काव्योपासनामूलक है। [दे० कवि]। असूर्यपश्य का अर्थ है सूर्य को नहीं देखनेवाला। यह कवि जागतिक प्रपंच से दूर रहकर, एकांत स्थान में, निरंतर काव्य की उपासना करने में संलग्न रहता है। इसके लिए सभी समय काव्य-रचना के लिए उपयुक्त होते हैं, इस कार्य के लिए उसका कोई नियत समय नहीं होता।

असंगति—विरोधमूलक अलंकार। जब कारण और कार्य की भिन्न-भिन्न स्थानों में स्थिति दिखाई जाय, तो वहाँ असंगति अलंकार होता है। 'असंगति' का अर्थ है संगति या साहचर्य का अभाव। इस अलंकार में कारण और कार्य के नियत संबंध का परित्याग दिखलाया जाता है और विरोध का आभास भी रहता है। जब कारण और कार्य की भिन्नदेशता का वर्णन हो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अर्थात् कारण कहीं हो और कार्य कहीं हो जाय तो ऐसी स्थिति में असंगति अलंकार होगा। जिन पदार्थों का स्वाभाविक निवास जहाँ प्रसिद्ध हो, यदि उनकी अन्यत्र अवस्थिति दिखलाई जाय तो वहाँ भी असंगति अलंकार होगा।

असंगति अलंकार का सर्वप्रथम विवेचन रुद्रट ने किया है। आगे चलकर सभी आचार्यों ने इसका वर्णन किया। रुद्रट ने इसके मूल में अतिशयता की स्थिति स्वीकार की है। यहाँ अतिशयता चमत्कारिता का वाचक है। इनके अनुसार जब एक ही समय में कारण तथा कार्य की भिन्न स्थिति का वर्णन हो तो असंगति होगी।

विस्पष्टे समकालं कारणमन्यत्र कार्यमन्यत्र।
यस्यामुपलभ्येते विज्ञेयासंगतिः सेयम्॥

—काव्यालंकार, ९/४८

परवर्त्ती आचार्यों ने इस अलंकार का वर्णन रुद्रट के मत के आधार पर किया। मम्मट ने कहा कि जब कार्य-कारण-रूप धर्म की भिन्न स्थान में एक साथ प्रतीति हो तो असंगति अलंकार होगा।

भिन्नदेशतयाऽत्यंतं कार्यकारणभूतयोः।
युगपद्धर्मयोर्यत्र ख्यातिः सा स्यादसंगतिः॥

—काव्यप्रकाश, १०/१२४

रुय्यक ने कारण और कार्य के भिन्न-देशत्व को असंगति कहा। इनके विवेचन पर मम्मट का प्रभाव है।

तयोस्तु भिन्नेदशत्वेऽसंगतिः।

तयोरिति कार्यकारणयोः। यद्देशमेव कारणं तद्देशमेव कार्यं दृष्टम्। नहि महानसस्थो वह्निः पर्वत देशस्तं धूमं जनयति। यदा त्वन्यदेशस्थं कारण-मन्यदेशस्थं च कार्यमुपनिबध्यते, तदोचित संगतिनिवृत्तेरसंगत्याख्योऽलंकारः। स च विरुद्धकार्यकारणभावप्रस्तावादिह लक्ष्यते॥

—अलंकारसर्वस्व, पृ० १६४

परवर्त्ती आलंकारिकों में जयदेव, विद्याधर, विद्यानाथ और विश्वनाथ मम्मट के ऋणी हैं। इनके असंगति-निरूपण में कोई नवीनता नहीं है।

आख्यान भिन्नदेशत्वे कार्यहेत्वोरसंगतिः।

—चंद्रालोक, ५/७९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एषासंगतिरुक्ताहेतोः कार्यस्य भिन्नदेशत्वे ॥

—एकावली, पृ० २८६

कार्यकारणयोर्भिन्नदेशत्वे सत्यसंगतिः ॥

—प्रतापरुद्रीय, पृ० ३०६

कार्यकारणयोर्भिन्नदेशतायामसंगतिः ॥

—साहित्यदर्पण, १०/६९

शोभाकर ने असंगति अलंकार के आठ प्रकारों का वर्णन कर इसके क्षेत्र का विस्तार किया है। इनके अनुसार एक स्थान के प्रसिद्ध कार्य को भिन्न स्थान पर अथवा भिन्न देश के कार्य को अन्य स्थान पर, बाद में होनेवाली घटना को पूर्वकाल में, एक साथ होनेवाली का भिन्न-भिन्न काल में होने अथवा देर से होने के वर्णन में विपर्यय का होना असंगति है।

तयोर्देशकालान्यत्वमसंगतिः ॥५५

तयोरितिहेतुफलप्रत्यवमर्शः। हेतुफलयोर्यौ देशकालौ प्रसिद्धौ तयोरन्यथात्वमसंगतिः ॥ —अलंकाररत्नाकर

अप्पय दीक्षित ने असंगति के तीन भेदों का कथन कर नया विचार प्रस्तुत किया और कालांतर में ये ही भेद मान्य हुए। इनके भेदों का विवरण इस प्रकार है—

क. कारण और कार्य की भिन्नदेशता।

ख. अन्यत्र करणीय कार्य को अन्यत्र करना।

ग. किसी कार्य में प्रवृत्त व्यक्ति-द्वारा उसके विरुद्ध कार्य करने में लग जाना।

विरुद्धं भिन्नदेशत्वं कार्यहेत्वोरसंगतिः।
अन्यत्रकरणीयस्य ततोऽन्यत्र कृतिश्च सा ॥
अन्यत् कर्तुं प्रवृत्तस्य तद्विरुद्धकृतिस्तथा ॥

—कुवलयानंद, ८५/८६

पंडितराज ने बताया कि असंगति अलंकार में आपाततः विरोध की प्रतीति होती है अर्थात् उसमें विरोध का आभास होता है। उन्होंने दो समानाधिकरण पदार्थों की व्यधिकरणता को ही असंगति अलंकार माना है, कार्यकारण के भिन्नदेशत्व को नहीं।

विरुद्धत्वेनापाततोभासमानं हेतुकार्ययोर्वैयधिकरण्यमसंगतिः।

—रसगंगाधर, पृ० ५९०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पंडितराज दीक्षित के भेदों का खंडन करते हैं। उन्होंने प्रथम को चमत्कारहीन कहा और द्वितीय प्रकार का अंतर्भाव विरोध में किया। तृतीय को वे विभावना से अभिन्न स्वीकार करते हैं। वही, पृ० ५६४-६५

विश्वेश्वर पंडित का लक्षण मम्मट तथा पंडितराज से प्रभावित है।

हेतु व्यधिकरणं स्यात्कार्यं चेत्सा त्वसंगतिः प्रोक्ता। इह खलु कार्यंकारण-भावोऽसमानाधिकरणयोरेव धर्मिणोः प्रसिद्धः। कार्यतावच्छेदकसंबंधेन कार्या-धिकरणयोर्वर्तमानस्यकारणतावच्छेदकसंबंधावच्छिन्नप्रतियोगिताभावस्य प्रति-योगितानवच्छेदको यो धर्मस्तद्वत्त्वस्य कारणपदार्थत्वात्।

पदार्थांतरत्वमतेऽपि तत्रैव तत्कल्पनात्। न च कारणं विना कार्यानुपपत्तिः। समानाधिकरणकारणांतराक्षेपेणविरोधसमाधानात्।

—अलंकारकौस्तुभ, पृ० ३६६

रीतिकालीन आचार्यों के असंगति-निरूपण पर 'काव्यप्रकाश' तथा 'कुवलयानंद' का ऋण है।

चिंतामणि का लक्षण 'काव्यप्रकाश' का अनुवाद है, पर कुलपति ने मौलिक या स्वतंत्र परिभाषा दी है।

हेतु और थल मैं कहू काज और थल होइ।
अलंकार ज्ञाता कहत होति असंगति सोइ॥

—कविकुलकल्पतरु, ३/१६३

कारन कारज बरनिये न्यारे न्यारे ठौर।
समुझावे जु विरोध सों, सु असंगति शिरमौर॥

—रसरहस्य, ८/१८३

जसवंतसिंह, मतिराम आदि ने 'कुवलयानंद' के लक्षण का भावानुवाद किया है।

तीन असंगति काज अरु कारन न्यारे ठाम।
और ठौर ही कीजिये और ठौर को काम॥
और काज आरंभिये औरै करिये दौर॥

—भाषाभूषण, ११६-११७

होत हेतु जहँ और थल काज और थल होय।
तहाँ असंगति कहत हैं कवि रसबुद्धि समोय॥
और ठौर करनीय जो करत और ही ठौर।
बरनत सब कबिराज हैं यहौ असंगति और॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करन लगै जो काज कछु, तातें करै बिरुद्ध ।
यहौ असंगति कहत हैं कवि मतिराम बिबुद्ध ।।

—ललितललाम, २१४-२१९

भेद—असंगति के तीन भेद हैं—

१. *प्रथम असंगति*—जब कारण कहीं हो और कार्य कहीं हो जाय तो वहाँ प्रथम असंगति होगी।

क. यस्यैव व्रणस्तस्यैव वेदना भणति तज्जनोऽलीकम् ।
दंतक्षतं कपोले वध्वा वेदना सपत्नीनाम् ।।

जिसे घाव होता है उसी को पीड़ा होती है, यह बात लोग ठीक नहीं कहते; क्योंकि दंतक्षत तो वधू के कपोल पर है और सौतों को वेदना होती है। यहाँ कारण (दंतक्षत) एवं कार्य (पीड़ा) की भिन्नदेशता वर्णित है।

ख. लागत जो कंटक तिहारे पाँइ प्यारे हाइ
आइ पहिले-ही हिय बेधत हमारे हैं ।।

काँटा नायक के पैर में लगता है और पीड़ा नायिका को होती है।

२. *द्वितीय असंगति*—अन्यत्र करणीय कार्य को अन्यत्र करने में द्वितीय असंगति होती है।

त्वत्खड्गखंडितसपत्नविलासिनीनां
भूषाभवंत्यभिनवा भुवनैकवीर !
नेत्रेषु कंकणमथोरुषु पत्रवल्ली
चोलेंद्रसिंह ! तिलकं करपल्लवेषु ।।

हे चोलेंद्र-सिंह ! आप संसार के एकमात्र वीर हैं। आपके खड्ग-द्वारा मृत्यु को प्राप्त हुए शत्रुनृपों की स्त्रियों में नई सजावट दिखाई पड़ती है। उनके नेत्रों में कंकण (पति की मृत्यु से नेत्रों में अश्रु) जघनों में पत्रवल्ली (पैर में लगी बनैली लता) तथा हस्तपल्लव में तिलक है।

यहाँ कंकण, पत्रवल्ली एवं तिलक को जहाँ धारण करना चाहिए, वहाँ न धारण कर अन्यत्र धारण करने में द्वितीय असंगति हुई।

ख. पायन की सुधि भूलि गई अकुलाइ महावर आँखिन दीन्हीं ।।

महावर को आँखों में लगाने के वर्णन में द्वितीय असंगति है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

३. *तृतीय असंगति*—जिस कार्य को करने में (कर्त्ता) प्रवृत्त हो, यदि उसके विरुद्ध कार्य करने लगे तो तृतीय असंगति होगी।

क. मोहं जगत्त्रयभुवामपनेतुमेत-
दादायरूपमखिलेश्वर देहभाजाम् ।
निःसीमकांतिरसनीरधिनामुनैव
मोहं प्रवर्धयसि मुग्धविलासिनीनाम् ॥

हे कृष्ण, आप तीनों लोकों के मोह को दूर करने के लिए अवतीर्ण हुए; किंतु असीम शोभा के सागर अपने इस रूप से आपने सुंदरियों के मोह को बढ़ा दिया। यहाँ मोह को दूर करने के लिए अवतार लेकर कृष्ण का स्वयं नारियों को मोहित करने में तृतीय भेद है।

ख. मोह निवारन हेतु प्रभु, लीनी तुम अवतार।
उलटे मोहन रूप धरि, मोही सब ब्रजनारि ॥
—पूर्व श्लोक का अनुवाद

असंभव—विरोधमूलक अलंकार। किसी कार्य की सिद्धि के विषय में असंभवता का वर्णन किया जाना असंभव अलंकार है। इस अलंकार के उद्भावक जयदेव हैं। दीक्षित के अतिरिक्त किसी भी आचार्य ने इसका वर्णन नहीं किया है। नागेश इसे स्वतंत्र अलंकार का दर्जा नहीं देते और इसका अंतर्भाव विरोध में कर देते हैं। जयदेव के अनुसार किसी कार्य की उत्पत्ति के संबंध में असंभवत्व का वर्णन करना असंभव अलंकार है।

असंभवोऽर्थनिष्पत्तावसंभाव्यत्ववर्णनम् ॥
—चंद्रालोक, ५/७६

दीक्षित ने 'चंद्रालोक' के ही लक्षण को उद्धृत कर दिया है।
—कुवलयानंद, ८४

रीतिकालीन आचार्य जसवंत सिंह, मतिराम आदि जयदेवकृत लक्षण को अनूदित कर इस अलंकार का वर्णन करते हैं।

कहै असंभव होत जब बिन संभावन काज ॥
—भाषाभूषण, ११५

जहाँ अर्थ की सिद्धि को संभव बचन न होय।
तहाँ असंभव होत है, बरनत है सब कोय ॥
—ललितललाम, २१२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उदाहरण—

क. को वेद गोपशिशुकः शैलमुत्पाटयिष्यति ॥ —चंद्रालोक ।

कौन जानता था कि ग्वाले का बालक (कृष्ण) पहाड़ को उठा लेगा। यहाँ गोप बालक का पहाड़ उठाना असंभवत्व का सूचक है।

ख. गिरबर धरिहै गोपसुत को जानै यह आज ॥

ग. यह को जानत हो जु कपि, जैहै लंका जारि ॥

असंलक्ष्यक्रमव्यंग्यध्वनि—अभिधामूलाध्वनि का भेद। [दे० **अभिधामूलाध्वनि**] वाच्यार्थ तथा व्यंग्यार्थ का क्रम संलक्षित न होने पर असलक्षितक्रमव्यंग्य होता है अर्थात् वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ का पूर्वापर क्रम स्पष्टतः दिखाई नहीं पड़ता। इसमें वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ के बोध में आगे-पीछे के क्रम (पौर्वापर्य) का पता नहीं चलता, वाच्यार्थ की कब प्रतीति हुई और व्यंग्यार्थ कब प्रकट हुआ, यह ज्ञात नहीं होता। असंलक्ष्यक्रमव्यंग्य में भाव, रस, रसाभास और भावाभास आदि व्यंजित होते हैं। इसमें विभाव, अनुभाव और संचारी के साथ स्थायी का क्रम रहता है, फिर भी शीघ्रतावश उसके क्रम का पता नहीं चलता। रस आदि के व्यंग्य होने से इसे रसध्वनि भी कहते हैं। विभावादि की प्रतीति होने पर ही रस-बोध होता है, अतः उसमें क्रम तो रहता ही है; किंतु उसका (क्रम का) पता नहीं चलता। आचार्यों ने इसके लिए 'शतपत्रभेदनन्याय' का सहारा लिया है। जैसे कमल के सौ पत्रों में यदि सुई से छेद किया जाय तो उनमें छेद तो एक ही साथ होगा और उस समय छेदन-क्रिया में क्रम भी रहता होगा, क्रमशः प्रथम को छेदती हुई सुई सौवें पत्ते को छेदती होगी, किंतु भेदनकार्य इतनी शीघ्रता से होता है कि उसके क्रम का ज्ञान नहीं होता। यह आठ प्रकार की होती है – रस, भाव, भावाभास, रसाभास, भावशांति, भावोदय, भावसंधि और भावशबलता। विश्वनाथ ने इन सबको एक ही भेद माना है।

तत्राद्यो रसभावादिरेक एवात्र गण्यते।
एकोऽपि भेदोऽनंतत्वात् संख्येयस्तस्य नैव यत् ॥

—साहित्यदर्पण, ४/५

अहेतु—आचार्य रुद्रट द्वारा उद्भावित एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। अहेतु अलंकार वहाँ होता है, जहाँ कोई अर्थ (वस्तु) स्थैर्य के कारण, बलवान् या पुष्ट कारण के होते हुए भी विकृत नहीं होता या उसमें विकार नहीं आता। इस अलंकार का अंतर्भाव अतद्गुण (दे० अतद्गुण) में किया जा सकता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बलवति विकारहेतौ सत्यपि नैवोपगच्छति विकारम् ।
यस्मिन्नर्थः स्थैर्यान्मंतव्योऽसावहेतुरिति ॥

—काव्यालंकार, ९/५४

आकाशभाषित—जब कोई पात्र आकाश की ओर मुँह करके स्वयं प्रश्न तथा प्रत्युत्तर करे, तो उसे आकाशभाषित कहते हैं। वह 'क्या कहते हो ?' इस प्रकार कहता हुआ, बिना किसी अन्य पात्र के ही, बातचीत करता है तथा—

किं ब्रवीष्येवमित्यादि विना पात्रं ब्रवीति यत् ।
श्रुत्वेवानुक्तमप्येकस्तत्स्यादाकाशभाषितम् ॥

—दशरूपक, १/६७

इसी मुद्रा के द्वारा पूर्वापर घटनाओं का ज्ञान होता है।

आकांक्षा—वाक्य का अंग विशेष। [दे० तात्पर्यवृत्ति]

आक्रांतनायका—प्रगल्भा नायिका का एक भेद। [दे० प्रगल्भा] जो नायिका रतिक्रीड़ा में नायक को पराजित (आक्रांत) कर दे, उसे आक्रांतनायका कहते हैं।

आक्षेप—विरोधमूलक अलंकार। अभीष्ट वस्तु की विशेषता का प्रतिपादन करने के लिए उसका निषेध-सा किया जाय तो आक्षेप अलंकार होगा। 'आक्षेप' का अर्थ है—प्रतिषेध, निषेध, छोड़ देना या फेंक देना। इस अलंकार में कवि वांछित अर्थ को बिना पूरा किए बीच में ही छोड़ देता है, इसलिए इसे आक्षेप कहते हैं। इस प्रकार की आकस्मिक विरति (व्यवधान) से जो चमत्कार उत्पन्न होता है, उसे आक्षेप अलंकार कहा जाता है। इस अलंकार में निषेध वास्तविक न होकर निषेधाभास होता है। यदि वास्तविक निषेध होगा तो आक्षेप का प्राणतत्त्व निःशेष हो जायगा या उसका अलंकारत्व खंडित हो जायगा।

इस अलंकार के प्रवर्त्तक भामह हैं। भामह से पंडितराज जगन्नाथ तक आक्षेप का विवेचन होता रहा। भामह के अनुसार कथन में विशिष्टता लाने के लिए वक्ता उसका (अभीष्टार्थ का) निषेध करे तो आक्षेपालंकार होगा।

प्रतिषेध इवेष्टस्य यो विशेषाभिधित्सया ।
आक्षेप इति तं संतः शंसंति द्विविधं यथा ।

—काव्यालंकार, २/६८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दंडी ने आक्षेपालंकार का विस्तारपूर्वक वर्णन कर इसके चौबीस भेदों का कथन किया—वृत्ताक्षेप, कार्याक्षेप, अनुज्ञाक्षेप, भविष्यदाक्षेप, अनादराक्षेप, धर्माक्षेप, धर्म्याक्षेप, कारणाक्षेप, प्रभुत्वाक्षेप, आशीर्वचनाक्षेप, परुषाक्षेप, साचिव्याक्षेप, यत्नाक्षेप, परवशाक्षेप, उपमाक्षेप, रोषाक्षेप, मूर्च्छाक्षेप, सानुक्रोशाक्षेप, श्लिष्टाक्षेप, अनुशयाक्षेप, अर्थांतरक्षेप तथा हेत्वाक्षेप।

दंडी प्रतिषेधात्मक उक्ति को आक्षेप कहकर उसकी परिधि को भूत, भविष्य एवं वर्त्तमान तीनों में स्वीकार करते हैं। वे वास्तविक निषेध में ही आक्षेपालंकार की स्थिति स्वीकार करते हैं।

प्रतिषेधोक्तिराक्षेपस्त्रैकाल्यापेक्षया त्रिधा।
अथास्य पुनराक्षेप्य भेदानंत्यादनंतता॥

—काव्यादर्श, २/१२०

उद्भट ने भामह के ही लक्षण को उद्धृत कर दिया है।

—काव्यालंकारसारसंग्रह, २/२

वामन का लक्षण सभी आचार्यों से भिन्न और प्रतीप के निकट है। इन्होंने उपमान के प्रतिषेध को आक्षेप कहा है।

उपमानाक्षेपश्चाक्षेपः। ४, ३, २७

उपमानस्याक्षेपः प्रतिषेधः उपमानाक्षेपः। तुल्यकार्यार्थस्य नैरर्थक्यविवक्षायाम्। उपमानस्याक्षेपतः प्रतिपत्तिरित्यपि सूत्रार्थः॥

—काव्यालंकारसूत्र

कुंतक ने कांतिप्रथन या शोभावर्द्धन के लिए कथन के निषेध की छाया या प्रतिषेध को आक्षेप कहा।

निषेधच्छाययाऽक्षेपः कांति प्रथयितुं पराम्।
आक्षेप इति स ज्ञेयः प्रस्तुतस्यैव वस्तुनः॥

—वक्रोक्तिजीवित, ३/४०

रुद्रट ने आक्षेप के लक्षण में परंपरागत विचार को ग्रहण करते हुए भी नवीनता प्रदर्शित की है। इनके अनुसार यदि वक्ता लोकप्रसिद्ध या विरुद्ध वस्तु का कथन कर उसका आक्षेप करते हुए उसकी पुष्टि या समर्थन के लिए अन्य वस्तु का कथन करे तो आक्षेपालंकार होगा।

वस्तुप्रसिद्धमिति यविरुद्धमिति वास्य वचनमाक्षिप्यम्।
अन्यत्तथात्वसिद्ध्यै यत्रब्रूयात्स आक्षेपः॥

—काव्यालंकार, ८/८९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भोज ने विधिहेतु या प्रतिषेध हेतु के द्वारा प्रतिषेध के कथन को आक्षेप कहा। इन्होंने विधि में भी निषेध का कथन कर नया विचार दिया है।

विधिनाथ निषेधेन प्रतिषेधोक्तिरत्र या।
शुद्धा मिश्रा च साक्षेपो रोधोनाक्षेपतः पृथक् ॥

—सरस्वतीकंठाभरण, ४/६४

मम्मट ने भामह के विचार का अनुसरण करते हुए कहा कि यदि कथन की विशेषता का प्रतिपादन करने के लिए उसका निषेध-सा किया जाय तो आक्षेप होगा। इन्होंने वक्ष्यमाण विषयक तथा उक्त विषयक इसके दो भेदों का कथन किया है।

निषेधो वक्तुमिष्टस्य यो विशेषाभिधित्सया।
वक्ष्यमाणोक्तविषयः स आक्षेपो द्विधा मतः ॥

—काव्यप्रकाश, १०/१०६

रुय्यक ने प्राकरणिक अर्थ की विशिष्टता के लिए या इष्टसिद्धि के निमित्त निषेधाभास को आक्षेप कहा।

उक्त वक्ष्यमाणयोः प्राकरणिकयोर्विशेषप्रतिपत्त्यर्थनिषेधाभास आक्षेपः।
इह प्राकरणिकोऽर्थः प्राकरणिकत्वादेववक्तुमिष्यते।
तथाविधस्य विधानार्हस्य निषेधः कर्तुं न युज्यते ॥

—अलंकारसर्वस्व, पृ० १४४

मम्मट की भाँति इन्होंने भी दो भेदों का वर्णन किया है।

जयदेव ने बताया कि जब उपमान रूप में वर्णित कथन का, कारण विशेष का विचार करते हुए, निषेध हो तो आक्षेप अलंकार होगा। इन्होंने गूढ़ाक्षेप नामक एक अन्य आक्षेप का भी निरूपण किया है, जिसमें विधि स्पष्ट रहती है, पर निषेध स्पष्ट नहीं रहता।

आक्षेपस्तु प्रयुक्तस्य प्रतिषेधो विचारणात्।
गूढ़ाक्षेपो विधौ व्यक्ते निषेधे चास्फुटे सति ॥

—चंद्रालोक, ५/७२,७३

विद्याधर, विद्यानाथ तथा विश्वनाथ ने मम्मट के ही मत का अनुवाद किया है।

कथमपि विशेषं वक्तुं प्रकृतस्योक्तस्य वक्ष्यमाणस्य।
यः प्रतिषेधाभासः कथितः सोऽयं द्विधाक्षेपः ॥

—एकावली, ८/३१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विशेषबोधायोक्तस्य वक्ष्यमाणस्य वा भवेत् ।
निषेधाभास कथनमाक्षेपः स उदाहृतः ॥

—प्रतापरुद्रीय, पृ० ३१७

वस्तुनो वक्तुमिष्टस्य विशेषप्रतिपत्तये ।
निषेधाभास आक्षेपो वक्ष्यमाणोक्तगो द्विधा ॥

—साहित्यदर्पण, १०/६५

दीक्षित ने 'चंद्रालोक' के ही लक्षण को उद्धृत कर दिया है। इन्होंने इसके अन्य दो भेदों का भी उल्लेख किया है। दीक्षित का निजी मत निषेध को ही आक्षेप मानने का है।

आक्षेपः स्वयमुक्तस्य प्रतिषेधोविचारणात् ।
निषेधाभासमाक्षेपं बुधा केचन् न मन्यते ॥
आक्षेपोऽन्यो विधौ व्यक्ते निषेधे च तिरोहिते ।

—कुवलयानंद, ७३,७४,७५

पंडितराज ने निषेधाभास या प्रतिषेधाभास को आक्षेप कहा है। इन्होंने सर्वथा निषेध को अस्वीकार कर प्रतिषेधाभास को मान्यता दी।

निषेधमात्रमाक्षेपः। चमत्कारित्वं चालंकारसामान्यलक्षणप्राप्तमेव च। तच्च व्यंग्यार्थे सति संभवतीति सव्यंग्यो निषेधः सर्वोऽप्याक्षेपालंकारः।

—रसगंगाधर, पृ० ५६७

रीतिकालीन आचार्यों ने दंडी, मम्मट तथा अप्पय दीक्षित को आधार बनाकर आक्षेपालंकार का वर्णन किया।

केशवदास का आक्षेपनिरूपण दंडी पर आधृत है। इन्होंने इसके बारह प्रकारों का वर्णन किया है; इनमें मरणाक्षेप, प्रेमाक्षेप, अधीराक्षेप तथा शिक्षाक्षेप नामक भेद नवीन हैं। मरणाक्षेप तो दंडी का मूर्च्छाक्षेप है, शेष भेद नए हैं।

कारज के आरंभ ही, जहँ कीजत प्रतिषेध ।
आक्षेपक तासों कहत, बहुबिधि बरनि सुमेध ॥
तीनो काल बखानिजै, भावी भयो जु होइ ।
कविकुल दोऊ कहत हैं, यहि प्रतिषेधींह दोइ ॥

—कविप्रिया, १०/१,२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चिंतामणि और कुलपति ने 'काव्यप्रकाश' की परिभाषा का सरल अनुवाद प्रस्तुत किया है और जसवंतसिंह, मतिराम तथा पद्माकर ने 'कुवलयानंद' के लक्षण को अनूदित कर आक्षेपालंकार का वर्णन किया।

जहं विशेष अभिधान की इच्छा कथन निषेध।
चिंतामनि कवि कहत हैं सो आछेप निषेध।

—कविकुलकल्पतरु, ३/२१५

कह्यौ चहै न कहै बरजि, अधिकाई के हेत।
कहीरु कहिवे भेद द्वै आक्षेपा कहि देत॥

—रसरहस्य, ८/१०९

तीन भाँति आक्षेप हैं एक निषेधाभास।
पहिलें कहिये आप कछु बहुरि फेरियै तास॥
दुरं निषेद जु बिधि कथन लक्षत तीनौ लेखि॥

—भाषाभूषण, १०४,१०५

जहाँ कही निज बात कौं समुझि करत प्रतिषेध।
तहाँ कहत आछेप हैं कबिजन सति उत्षेध॥
जहाँ न साँच निषेध है, है निषेध आभास।
तहँ औरो आछेप को कविजन करत प्रकास॥
जहँ बिधि प्रगट बखानिए छप्यौ निषेध प्रकास।
तहँ औरो आक्षेप कहि बरनत बुद्धि विलास॥

—ललितललाम, १८७-१९१

करत निषेध जु उक्ति को, यहै प्रथम आक्षेप।
झूठ निषेध-आक्षेप भन, वहै निषेधाभास॥
सु आक्षेप जहँ विधि प्रगट दुयो निषेध बखान॥

—पद्माभरण, १३२-१३४

भेद—भामह ने आक्षेप के दो भेदों का कथन किया था और दंडी ने चौबीस भेद माने थे। मम्मट ने दो भेदों का वर्णन किया और रुय्यक ने चार प्रकार माने। दीक्षित ने इसके तीन भेदों का कथन किया और कालांतर में ये ही भेद मान्य हुए। ये भेद हैं—उक्ताक्षेप, व्यक्ताक्षेप और निषेधाक्षेप।

१. उक्ताक्षेप—जब वक्तव्यवस्तु को पहले कहकर पीछे उसका निषेध किया जाय तो उक्ताक्षेप होगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क. ए एहि किमपि कस्या अपि कृते निष्कृप भणामि अलमथवा।
अविचारितकार्यारंभकारिणी म्रियतां न भणिष्यामि॥

हे निष्ठुर ! आओ, मैं किसी के निमित्त तुम से कुछ कह रहा हूँ। अथवा यह कहना व्यर्थ है, मैं कुछ भी नहीं कहूँगी; वह बिना विचारे काम करनेवाली मर जाय। यहाँ 'अलम्' शब्द के द्वारा कथन का निषेध कर चमत्कार उत्पन्न किया गया है। यहाँ दूती पहले विषय का कथन कर बाद में उसका निषेध करती है। दूती के निषेध से नायिका के विरह का महत्त्व विशेष बढ़ गया है।

ख. तव वियोग दुख सों भई, बाल विकल बेहाल।
कस 'रसाल' कहिये अधिक, भयो जु वाको हाल॥

यहाँ दूती नायिका की विरह-दशा का वर्णन करते हुए बीच में ही उसका निषेध कर देती है।

२. *व्यक्ताक्षेप*—जब विषय के कथन के पूर्व उसका निषेध किया जाय तो व्यक्ताक्षेप होगा।

क. ज्योत्स्ना मौक्तिकदामचंदनरसः शीतांशुकांतद्रवः
कर्पूरं कदलीमृणालवलयान्यंभोजिनी पल्लवाः।
अंतर्मानसमास्त्वया भगवता तस्याः स्फुलिंगोत्कर-
व्यापाराय भवंति हंत किमनेनोक्तेन न ब्रूमहे।

चाँदनी, मोती की माला, चंदन का रस, चंद्रकांतमणि, कपूर, केला, कमल की डंडी के कंकण तथा कमलिनी के पत्ते, तुम्हें हृदय में रखने के कारण उस नायिका के लिए आग बरसाने का कार्य कर रहे हैं। तुम से इन सारी बातों के कहने का लाभ ही क्या है ? अतएव मैं न कहूँगी। यह बात कहने के पूर्व उसका निषेध किया गया है।

ख. रे खल ! तेरे चरित यैं, कहिहौं सबहिं सुनाय।
अथवा कहिबो हत कथा, उचित न मोहि जनाय॥

यहाँ दुष्ट के चरित के कहने की बात कही गई है, पर उसका कथन नहीं किया गया और कहने के पूर्व ही उसका निषेध कर दिया गया है।

३. *निषेधाक्षेप*—जहाँ विधि मे ही निषेध का भाव हो या स्वीकृति में अस्वीकृति का भाव रहे।

न चिरं मम तापाय तव यात्रा भविष्यति।
यदि यास्यसि यातव्यमलमाशंकयापि ते॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हे प्रिय ! तुम्हारी यात्रा मेरे लिए अधिक तापकारक या कष्टदायक न होगी। तुम्हें जाना है तो जाओ, मेरे संबंध में किसी प्रकार की शंका मत करना। यहाँ नायिका ने 'आपकी यात्रा मेरे लिए अधिक कष्टदायक न होगी' कहकर अपनी मृत्यु की सूचना दी है और इससे नायक की यात्रा या विदेश-गमन का निषेध किया है।

ख. सुख सों पीय सिधारिए, पग-पग हो कल्यान।
हौं हू जनमौंगी तहाँ, तुव जेहि देस पयान ॥

पहले नायिका नायक को विदेशगमन की स्वीकृति देती है, पर यह कहकर कि मेरी मृत्यु हो जायगी, वह उसकी यात्रा का निषेध करती है। यहाँ स्वीकृति (विधि) में अस्वीकृति (निषेध) है।

आख्यान—गद्यकाव्य का एक भेद। [दे० **गद्य**]

आख्यायिका—[**गद्यकाव्य का एक भेद**] यह गद्यकाव्य के दो सुप्रसिद्ध प्रकारों—कथा और आख्यायिका—मे से एक है। संस्कृत के आचार्यों ने आख्यायिका और कथा में अंतर स्थापित करते हुए बताया है कि कथा का विषय काल्पनिक होता है और आख्यायिका का सत्य। इनके उदाहरण क्रमशः 'कादंबरी' और 'हर्षचरित' हैं। आख्यायिका का सामान्य अर्थ सुसंगत कहानी है, पर इसका प्रयोग (संस्कृत काव्यशास्त्र में) एक विशेष अर्थ में गद्यकाव्य के एक भेद के रूप में होता है। 'अमरकोश' में आख्यायिका का लक्षण बताया गया है कि जिसका विषय सत्य या ज्ञात हो—आख्यायिकोपलब्धार्था १/६/५। इसके स्वरूप विधान के संबंध में भामह, दडी, रुद्रट, अग्निपुराणकार एवं विश्वनाथ ने विस्तृत विचार प्रकट किए हैं।

आचार्य भामह के अनुसार आख्यायिका ऐसी गद्य-रचना है, जिसके शब्द, अर्थ एवं समास (पद-संघटना आदि) अक्लिष्ट एवं श्रुति-सुखद हों। इसका विषय उदात्त हो एवं कथानक का विभाजन उच्छ्वासों में किया जाय। इसमें घटना का वृत्तांत नायक स्वयं कहता है और समय-समय पर भावी घटनाओं की सूचना देने के लिए वक्त्र एवं अपरवक्त्र छद प्रयुक्त होते हैं। यह कवि के अभिप्रायविशिष्ट किसी कथन से चिह्नित होती है। इसमें कन्याहरण, युद्ध, विप्रलंभ शृंगार तथा नायक के अभ्युदय का वर्णन होता है।

संस्कृतानाकुलश्रव्य शब्दार्थपदवृत्तिना।
गद्येनयुक्तोदात्तार्था सोच्छ्वासाऽऽख्यायिका मता ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वृत्तमाख्यायते तस्यां नायकेन स्वचेष्टितम् ।
वक्त्रं चापरवक्त्रं च काले भाव्यर्थशंसि च ॥
कवेरभिप्रायकृतैः कथनैः कैश्चिदंकिता ।
कन्याहरणसंग्रामविप्रलंभोदयान्विता ॥

—काव्यालंकार, १/२५-२७

दंडी ने भामह-द्वारा निर्धारित आख्यायिका एवं कथा के अंतर को अमान्य सिद्ध कर दोनों को एक ही मान लिया है। उनके अनुसार दोनों में कोई सुनिश्चित भेदक तत्त्व दृष्टिगोचर नहीं होता। [दे० कथा]

—काव्यादर्श, १/२३-७०।

रुद्रट ने आख्यायिका का वर्णन इस प्रकार किया है—इसमें कवि देवता एवं गुरुओं को नमस्कार कर कवियों की प्रशंसा करे, तत्पश्चात् वह काव्य-रचना में प्रवृत्त हो। इसके उपरांत वह नृप में भक्ति तथा दूसरों के गुण का वर्णन करे। ऐसा करने के लिए उसे कारण का भी उल्लेख करना चाहिए। आख्यायिका में सर्ग के लिए उच्छ्वास को स्थान दिया ज़ाता है। साथ ही प्रथम उच्छ्वास के अतिरिक्त शेष सभी उच्छ्वासों में प्रारंभ में प्रस्तुत अर्थ के सूचन के लिए सामान्य अर्थ का निर्देश करनेवाले, श्लेष से युक्त दो-दो आर्या छंद प्रस्तुत किए जाते हैं। आख्यायिका की रचना कवि गद्य में करे तथा अपने एवं अपने वंश का भी वर्णन गद्य में प्रस्तुत करे। किसी संशय-प्रसंग के उपस्थित होने पर भूत, भविष्यत्, परोक्ष एवं प्रत्यक्ष अर्थ को निश्चित करने के लिए, संशयशील व्यक्ति के संशय को प्रत्यक्ष रूप से दूर करने के लिए, प्रसंग के अनुकूल अन्योक्ति, समासोक्ति, श्लेष से युक्त किसी एक या दो पद्यों का पाठ होना चाहिए। इसमें कथावस्तु के आधार पर आर्या, अपरवक्त्र, पुष्पिताग्रा में से किसी एक छंद का प्रयोग करना चाहिए या प्रायः मालिनी छंद का ही व्यवहार होना चाहिए।

पूर्ववदेव नमस्कृतदेवगुरुर्नोत्सहेत् स्थितेष्वेषु ।
काव्यं कर्तुमिति कवीन्शंसेदाख्यायिकायां तु ॥
तदनु नृपे वा भक्ति परगुणकीर्तनेऽथवा व्यसनम् ।
अन्यद्वा तत्करणे कारणमक्लिष्टमभिदध्यात् ॥
अथ तेन कथैव यथा रचनीयाख्यायिकापि गद्येन ।
निजवंशं स्वं चास्यामभिदध्यान्न त्वगद्येन ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुर्यादत्रोच्छ्वासान्सर्गवदेषां मुखेष्वनाद्यानाम् ।
द्वे द्वे चार्ये श्लिष्टे सामान्यार्थे तदर्थाय ।।
संशयशंसावसरे भवतो भूतस्य वा परोक्षस्य ।
अर्थस्य भाविनस्तु प्रत्यक्षस्यापि निश्चितये ।।
संशयितुः प्रत्यक्षं स्वावसरेणैव पाठयेत् कंचित् ।
अन्योक्तिसमासोक्तिश्लेषाणामेकमुभयं वा ।।
तत्रच्छंदः कुर्यादार्यापरवक्त्र पुष्पिताग्राणाम् ।
अन्यतमं वस्तुवशादथवान्यन्मालिनीप्रायम् ।।

—काव्यालंकार, १६/२४-३०

'अग्निपुराण' में बताया गया है कि जिस गद्यकाव्य में ग्रंथकार के वंश का विस्तृत वर्णन हो, कन्याहरण, संग्राम, विप्रलंभ-जन्य विपत्तियाँ हों, रीति, वृत्ति एवं प्रवृत्ति को चमत्कारपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया गया हो, जिसके कथा-भाग का नामकरण उच्छ्वास के रूप में किया गया हो एवं चूर्णक नामक गद्य का प्रयोग हो और कथा का वर्णन नायक के मुख से या किसी अन्य पात्र के द्वारा कराया गया हो तथा उसमें वक्त्र या अपरवक्त्र छंद हो तो उसे आख्यायिका कहते हैं ।

कर्तृ वंशप्रशंसास्याद्यत्रगद्येनविस्तरात् ।
कन्याहरण-संग्राम-विप्रलंभविपत्तयः ।
भवंति यत्र दीप्ताश्च रीतिवृत्तिप्रवृत्तयः ।
उच्छ्वासैक परिच्छेदो यत्र या चूर्णकोत्तरा ।।
वक्त्रं वाऽपरवक्त्रं वा यत्र साऽख्यायिका स्मृता ।।

—अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग, १/१३-१५

साहित्यदर्पणकार (विश्वनाथ) ने कहा है कि आख्यायिका कथा के ही समान होती है । इसमें कविवंश का वर्णन, अन्य कवियों या वृत्तांत और कहीं-कहीं पद्य का भी प्रयोग होता है । आख्यायिका में कथा-भाग का नाम आश्वास होता है और आगे होनेवाली कथा की सूचना आर्या, वक्त्र या अपरवक्त्र छंद में अन्योक्ति के द्वारा आश्वास के प्रारंभ में ही दी जाती हैं । इन्होंने अन्य आचार्यों के इस मत का खंडन किया है कि आख्यायिका की कथा का वर्णन नायक के मुख से हो; क्योंकि आचार्य दंडी के अनुसार इसमें भी अन्य लोगों के वचन निबद्ध होते हैं, केवल नायक के नहीं ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आख्यायिका कथावत्यस्यात्कवेर्वंशानुकीर्तनम् ।
अस्यामन्यकवीनां च वृत्तं पद्यं क्वचित्क्वचित् ।।
कथांशानां व्यवच्छेद आश्वास इति वध्यते ।
आर्यावक्त्रापवक्त्राणां छंदसा येन केनचित् ।।
अन्यापदेशेनाश्वासमुखे भाव्यर्थ सूचनम् ।

'अपित्वनियमो दृष्टस्तत्राप्यन्यैरुदीरणात्' इति दंड्याचार्यवचनात्केचित् 'आख्यायिका नायकेनैव निबद्धव्या' इत्याहुः, तदयुक्तम् । आख्यानादयश्च कथाख्यायिकयोरेवांतर्भावान्न पृथगुक्ताः ।

—साहित्यदर्पण, ६/३३४-३३६

आगच्छत् पतिका—नायिका का अवस्थानुसार भेद। [दे० नायिका-भेद]। इसका वर्णन संस्कृत के आचार्यों ने नहीं किया है। रीतिकालीन आचार्यों ने इसका निरूपण किया। रसलीन ने इसे स्वतंत्र नायिका के रूप में स्थान दिया है, किसी का भेद नहीं माना। इनके अनुसार जो नायिका (विदेश से) प्रिय के आगमन को सुने, उसे आगच्छत् पतिका कहते हैं। दास के अनुसार जिसका पति विदेश से आनेवाला हो, उसे आगच्छत् पतिका कहते हैं।

आगच्छतपतिका जहाँ प्रीतम आवनहार ।
पत्री सगुन सँदेस तें उपजै हर्ष अपार ।।

—रससारांश, १४२

उदाहरण—

कंचन कटोरे खीर खाँड भरि-भरि तेरे
हेत उठि भोर ही अटान पर धारिहौं ।
आपने ही हार तें नीको मोती कंठ
भूषन सँवारि नीको तेरे गल डारिहौं ।
एरे कारे काग तेरे सगुन सुभाय आज
जो मैं इन अँखियन प्रीतम निहारिहौं ।
औन प्रान प्यारे पै निछावरि करैंगी, मैं
लै तन मन धन प्रान तोहि पर बारिहौं ।

—रससारांश, १४३

आगतपतिका—(जिसका प्रिय देशांतर से आ गया हो) अवस्थानुसार नायिका का भेद। [दे० नायिका भेद] जिसे प्रिय या पति के आगमन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(परदेश से) पर हर्ष हो या आंतरिक प्रसन्नता हो तो उसे आगतपतिका कहते हैं। यह प्रिय के दूर देशागमन से हर्षित होती है, साथ ही उसे उसके आगमन का आभास भी हो जाता है। वह प्रिय-मिलन का शुभ-शकुन (शुभांग स्फुरण या काक की वाणी) जानकर अपने को सजाती है। इस नायिका का वर्णन संस्कृत आचार्यों ने नहीं किया है। डॉ० सत्यदेव चौधरी के अनुसार श्रीधरदास-संकलित संस्कृत-पद्य-कोश 'सदुक्ति-कर्णामृत' में बालक-सज्जा के एक रूप में आगतपतिका का उल्लेख है और संभवतः वही हिंदी के आचार्यों का स्रोत रहा हो। [हिंदी रीतिपरंपरा के प्रमुख आचार्य, पृ० ४५६] आगतपतिका का स्वरूप-विवेचन रीतिकालीन आचार्यों ने किया है। इस संबंध में उनके दो दल हैं। दास और प्रतापसाहि इसे बालकसज्जा का एक भेद स्वीकार करते हैं। दास ने इसे प्रोषितपतिका का भी भेद माना है।

कहिये प्रोषितभर्तृका पति परदेसी जानि।
चलत रहत आवत मिलत चारि भेद उनमानि॥
प्रथम प्रबत्स्यत्प्रेयसी प्रोषितपतिका फेरि।
आगच्छतपतिका बहुरि आगतपतिका हेरि॥

—शृंगारनिर्णय, १९७, ९८

पियआगम परदेस तें आगतपतिका भाउ।
है बालकसज्जाहि में वहै बढ़ै चित चाउ॥

—वही, १६२

प्रतापसाहि ने बताया है कि बालकसज्जा की दो स्थितियाँ हैं—

ऋतुकाल-स्नानोपरांत प्रिय के आगमन की प्रतीक्षा करनेवाली तथा परदेस से पति के आगमन की बाट जोहनेवाली। (व्यंग्यार्थकौमुदी, १००, टीका) वासकसज्जा के दूसरे रूप को इन्होंने आगतपतिका की संज्ञा दी है।

पति विदेश ते आवै सोय, हर्षित आगतपतिका होय।

—वही, ११४

हिंदी में आगतपतिका का प्रथम उल्लेख रसलीन ने किया है। जिसका प्रिय परदेश से आकर मिले, वह आगतपतिका है।

आइ मिलै जो बिदेस तें आगतपतिका जानु।

—रसप्रबोध, ३६२

रसलीन, मतिराम और पद्माकर ने स्वतंत्र रूप से आगतपतिका का वर्णन किया है, इसे किसी का भेद नहीं माना।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जा तिय को परदेस तैं आयो प्यौ मतिराम।
ताहि कहत कवि लोग हैं आगतपतिका बाम॥

—रसराज, २१६

आवत बल्लभ बिदेस तैं, हरषित होत जु बाम।
आगतपतिका नाइका, ताहि कहत रसधाम॥

—जगद्विनोद, २५७

रीतिकालीन आचार्यों ने मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा, परकीया और सामान्या के रूप में आगतपतिका का उल्लेख किया है।

उदाहरण—

मुग्धा आगतपतिका का

आए बिदेस तें प्रानपिया मतिराम अनंद बढ़ाय अलेखैं।
लोगन सों मिलि आँगन बैठि घरी ही घरी सिगरी घर पेखैं।
भीतर भौन के द्वार खरी सुकुमारि तिया तन कंप बिसेखैं।
घूँघट को पट ओट दिये पट ओट किये पिय को मुख देखैं॥

—रसराज, २१७

आच्छादक कवि—मौलिकता की दृष्टि से कवि का एक भेद। जो कवि अन्य कवियों की रचना को छिपाकर तत्समान अपनी रचना का प्रचार करे, उसे आच्छादक कवि कहते हैं। [दे० कवि]

आदर—शोभाकरमित्र-वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। जब त्यक्त पदार्थ की स्वीकृति का वर्णन हो तो आदर अलंकार होगा। यह अनादर अलंकार का प्रतिलोम है। [दे० अनादर] त्यक्तस्वीकार आदरः ॥७१

—अलंकार रत्नाकर

आधिकारिक—काव्य या नाटक की मुख्य कथा को आधिकारिक कथा कहते हैं। नाटक के फल का स्वामी अधिकारी (प्रधानपात्र) कहा जाता है और उससे संबद्ध कथा को आधिकारिक कहते हैं। यह कथा संपूर्ण रूपक या नाटक में परिव्याप्त रहती है। अधिकार नाटक के फल को कहते हैं।

अधिकारः फले स्वाम्यमधिकारी च तत्प्रभुः।
तस्येतिवृत्तं कविभिराधिकारिकमुच्यते॥

—साहित्यदर्पण, ६/४३

मुख्य वृत्त या मुख्य कथा का संबंध मुख्य फल या अधिकार से होता है। जैसे रामायण में राम और सीता की कथा प्रधान या आधिकारिक कथा है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आनंदवर्द्धन—ये ध्वनि-संप्रदाय के उन्नायक [**दे० ध्वनि-संप्रदाय**] एवं 'ध्वन्यालोक' नामक युगप्रवर्त्तक ग्रंथ के प्रणेता हैं। [**दे० ध्वन्यालोक**] 'ध्वन्यालोक' की रचना कर इन्होंने संपूर्ण प्राचीन काव्य-तत्त्वों का समाहार ध्वनि-सिद्धांत में किया है। आनंदवर्द्धन काश्मीरक थे और काश्मीर-नरेश अवंति वर्मा के समसामयिक भी। 'राजतरंगिणी' से इस तथ्य की पुष्टि होती है।

मुक्ताकणः शिवस्वामी कविरानंदवर्धनः।
प्रथां रत्नाकरश्चागात् साम्राज्येऽवंतिवर्मणः॥ —५/४

अवंति वर्मा का शासनकाल ८५५-८८४ ई० माना गया है और यही समय अर्थात् नवम शती का मध्य या उत्तरार्द्ध आनंदवर्द्धन का भी है। आनंदवर्द्धन ने अपने ग्रंथ में उद्भट का नामोल्लेख किया है और राजशेखर ने 'काव्य-मीमांसा' में 'ध्वन्यालोक' का उद्धरण प्रस्तुत किया है। राजशेखर का समय ९०० ई० से ९२५ ई० के मध्य है, अतः अंतःसाक्ष्य के आधार पर भी आनंदवर्द्धन के उक्त समय की पुष्टि होती है। इन्होंने अन्य ग्रंथों की भी रचना की है—'अर्जुनचरित', 'विषमबाणलीला', 'देवीशतक' एवं बौद्धदार्शनिक धर्म-कीर्त्ति के 'प्रमाणविनिश्चय' नामक ग्रंथ की 'धर्मोत्तमा' टीका।

'ध्वन्यालोक' की रचना कारिका एवं वृत्ति के रूप में हुई है। विद्वानों में इस प्रश्न पर पर्याप्त मतभिन्नता पाई जाती है कि कारिका एवं वृत्ति के रचयिता भिन्न व्यक्ति थे। कतिपय विद्वान् कारिका का लेखक अज्ञातनामा ध्वनिकार को मानकर आनंदवर्द्धन को वृत्तिकार के रूप में मान्यता देते हैं। 'ध्वन्यालोक' के प्राचीन हस्तलेखों में इसका नाम 'सहृदयालोक' भी मिलता है, जिसके आधार पर लोगों का कहना है कि मूलग्रंथकार सहृदय नामक व्यक्ति था और वही ध्वनिकार था, पर प्राचीन ग्रंथों में ही इस बात के प्रभूत प्रमाण प्राप्त होते हैं कि कारिका एवं वृत्ति दोनों ही भागों के रचयिता आनंदवर्द्धन थे। महिमभट्ट ने 'व्यक्तिविवेक' में कारिका और वृत्ति को एक ही ग्रंथ मानकर इसका (ध्वन्यालोक का) खंडन किया है। जल्हण-रचित 'सूक्तिमुक्तावली' में आनंदवर्द्धन को ही ध्वनिकार माना गया है। राजशेखर भी जल्हण के उक्त मत को उद्धृत कर कारिकाकार और वृत्तिकार को एक ही व्यक्ति मानते हैं तथा क्षेमेंद्र, जयरथ, विश्वनाथ आदि आचार्य भी उक्त मत के पोषक हैं। ठीक इसके विपरीत अभिनवगुप्त 'ध्वन्यालोक' की टीका 'लोचन'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में कारिकाकार को मूलग्रंथकृत् तथा वृत्तिकार को ग्रंथकार शब्द से अभिहित करते हैं। प्राचीन ग्रंथों में परस्पर विरोधी मत को देखकर आधुनिक विद्वान् भी इस संबंध में कुछ निश्चित निर्णय नहीं देते, फिर भी बहुमत के आधार पर आनंदवर्द्धन को ही मूल ध्वनिकार मानना पड़ता है।

आनंदवर्द्धन ने ध्वनि-सिद्धांत की स्थापना कर अन्य काव्यीय चिंतना का उसमें समाहार किया है। [**इनके ध्वनि-संबंधी मत को जानने के लिए दे० ध्वनि-संप्रदाय, ध्वनि के भेद-प्रभेद, ध्वनिविरोधि आचार्य एवं ध्वनि-सिद्धांत का विकास**] ध्वनिसिद्धांत के विवेचन-क्रम में इन्होंने काव्य के अन्य तत्त्वों जैसे, काव्य के भेद, रीति, प्रबंध, रस, रस-विरोध एवं उसका परिहार, वृत्ति, गुण तथा अलंकार का भी निरूपण किया है। इन्होंने काव्य की आत्मा ध्वनि को मानकर उसके दो प्रकारों का उल्लेख किया है—वाच्य और प्रतीयमान। वाच्य अर्थ की प्रसिद्धि उपमा आदि अलंकारों से है और प्रतीयमान (व्यंग्य) अर्थ सुंदरी रमणी के प्रसिद्ध अवयवों से भिन्न लावण्य की भाँति महाकवियों की वाणी में निहित रहता है। [**ध्वन्यालोक, १/२,४**] इन्होंने काव्य में ध्वनि को आत्मा के सदृश तथा अलंकार, गुण, वृत्ति आदि को उसके विविध अंगों की भाँति स्वीकारा है। इनके मतानुसार महाकवि प्रतीयमान अर्थ तथा उसकी अभिव्यक्ति में सक्षम शब्दों की महनीयता को समझने की शक्ति से संपन्न होता है। प्रतिभावान् कवि ही प्रतीयमान अर्थ को समझ सकता है, अतः महाकवियों की वाणी में इसकी अनिवार्यता असंदिग्ध है। [**दे० ध्वन्यालोक, ४/६,१/८, १,६,१,७**] इन्होंने व्यंग्य की प्रधानता एवं अप्रधानता तथा अभाव के आधार पर काव्य के तीन भेद किए हैं—ध्वनिकाव्य, गुणीभूतव्यंग्य एवं चित्रकाव्य।

आनंदवर्द्धन प्रधानभूत रस के आश्रित होनेवाले को गुण कहते हैं और अलंकार को काव्य का बाह्य शोभाधायक धर्म मानकर उसे कटक-कुंडल की भाँति स्थान देते हैं। ध्वनिसंप्रदाय की स्थापना के पूर्व अलंकार, गुण, रीति और वृत्ति ही काव्यालोचन के मुख्य मानदंड थे। आनंदवर्द्धन ने ध्वनि के स्वरूप की व्याख्या तथा ध्वनि-विरोधियों का खंडन कर प्रकारांतर से रस की महत्ता स्थापित की है। इन्होंने ध्वनि के तीन प्रकार किए हैं—वस्तुध्वनि, अलंकारध्वनि एवं रसध्वनि तथा तीनों में रसध्वनि का श्रेष्ठ सिद्ध किया है। [**इनके वृत्ति, रस, गुण, अलंकार तथा काव्य रूपों के विवेचन के लिए तत्तत् प्रसंगों को देखें**] ध्वनि-सिद्धांत की स्थापना कर आनंवर्द्धन ने काव्यालोचन का कायाकल्प कर सार्वभौम काव्य-सिद्धांत की उद्‌भावना की है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आनंदसम्मोहिता—प्रगल्भा नायिका का एक भेद।

आनुषंगिकफलवक्रता—प्रबंधवक्रता का चतुर्थ भेद। [दे० **प्रबंध-वक्रता**]

आपत्ति—शोभाकरमित्र-वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। किसी कार्य को करते-करते अनिष्ट की प्राप्ति होने के वर्णन को आपत्ति अलंकार कहते हैं।

अनिष्टापादनमापत्तिः ॥८०॥—अलंकाररत्नाकर, पृ० १३२

आभीक्षण—नामानुप्रास का तृतीय भेद। [दे० **नामानुप्रास**]

आभ्यासिक—कवि का एक प्रकार। [दे० **कवि**] जो कवि अभ्यास-कर्म के द्वारा काव्य-रचना में सफल हो, उसे आभ्यासिक कहते हैं। उसकी कविता इस जन्म के अभ्यास से ही प्रतिभासित होती है। उसकी प्रतिभा सीमित होती है।

इह जन्माभ्यासोद्भासितभारतीक आहार्यबुद्धिराभ्यासिकः।

—काव्यमीमांसा, अध्याय ४, पृ० ३२, चौखंबा-संस्करण

आरभटी—यह नाट्यवृत्ति का तृतीय प्रकार हैं। [दे० **वृत्ति**] अभिनव-गुप्त के अनुसार 'अर' (उत्साही) भट (योद्धा) से संबद्ध होने के कारण इसे आरभटी कहते हैं। इस वृत्ति में माया, इंद्रजाल, संग्राम तथा क्रोधोद्भ्रांत चेष्टाएँ प्रदर्शित की जाती हैं। यह वृत्ति उद्धत नायक की होती है।

'इयर्ति' इति अराः भटाः सोत्साहा अनलसा। तेषामियं आरभटी।

—अभिनवभारती, पृ० २०-२१

इसके चार प्रकार हैं—संक्षिप्तक, अवपातक, वस्तुत्थापन एवं संफेट।

आरभटप्रायगुणा यथैव बहुवचन कपटा च।
दंभानृतवचनवती त्वारभटीनाम विज्ञेया॥
प्रस्तवापातप्लुतिलंघितानि
चान्यानि मायाकृतमिंद्रजालम्।
चित्राणि युद्धानि च यत्र नित्यं
तां तादृशीमारभटीं वदंति ॥२२/५५,५७

—नाट्यशास्त्र

भयानके च वीभत्से रौद्रे चारभटी भवेत्॥—वही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यह वृत्ति औद्धत्य एवं इंद्रजाल का प्रतिनिधित्व करती है। नाटक में अभिमान और औद्धत्य का प्राधान्य होने पर आरभटी का क्षेत्र हो जाता है। इसका उद्‌भव अथर्ववेद से माना जाता है, जिसमें माया, अभिचार आदि वर्णित हैं। कुछ आलंकारिक इसका संबंध तांडव नृत्य से स्थापित करते हैं।

आरभटी के भेद—संक्षिप्ति, संफेट, वस्तूत्थापन और अवपात।

संक्षिप्तिका स्यात्संफेटो वस्तूत्थानावपातने ॥—दशरूपक, २/५७

१. संक्षिप्ति—शिल्प या अन्य कारण से संक्षिप्त वस्तु-रचना को संक्षिप्ति कहते हैं।

संक्षिप्तवस्तुरचना संक्षिप्तिः शिल्पयोगतः ॥—दशरूपक, २/५७

२. संफेट—जब क्रोध से उत्तेजित होकर दो पात्र परस्पर संघर्ष करें तो सफेट होगा।

संफेटस्तु समाघातः क्रुद्धसंरब्धयोर्द्वयोः ॥—दशरूपक, २/५८

३. वस्तूत्थापन—मंत्रबल के द्वारा माया से उत्पन्न वस्तु को वस्तूत्थापन कहते हैं।

मायाद्युत्थापितं वस्तु वस्तूत्थापनमिष्यते ॥—दशरूपक, २/५९

४. अवपात—किसी पात्र के रंगमंच पर प्रवेश करने से पात्रों में भय उत्पन्न होने एवं भगदड़ मच जाने को अवपात कहते हैं।

अवपातस्तुनिष्क्रामप्रवेशत्रासविद्रवैः ॥—दशरूपक, २/४६

आरंभ—नाटकीय कथा के विकास की प्रथम अवस्था। [दे० **कार्यावस्था**]

आरोप—एक पदार्थ में अन्य पदार्थ के अभेदज्ञान या तादात्म्यप्रतीति को आरोप कहते हैं। [दे० **रूपक अलंकार**]

आरोप का विषय—उपमेय को आरोप का विषय कहते हैं। [दे० **उपमेय**]

आरोपवाद—[दे० **रस-निष्पत्ति, भट्ट लोल्लट का मत**]

आरोप्यमाण—उपमान का अन्य नाम आरोप्यमाण है। [दे० **उपमान एवं उपमा**]

आरोप्यमाण—जिस पदार्थ का अन्य पदार्थ पर आरोप हो, उसे आरोप्यमाण या विषयी (उपमान) कहते हैं। अर्थात् जिस वस्तु का आरोप हो, उसे आरोप्यमाण कहा जायगा। [दे० **सारोपालक्षणा**]

आर्थी उपमा—उपमा का एक भेद। [दे० **उपमा**]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आर्थी व्यंजना—व्यंजना का एक भेद। [दे० **व्यंजना**] आर्थी व्यंजना में व्यंग्य अर्थजनित होता है। यह शब्द पर आश्रित नहीं होती अर्थात् इसमें अर्थ की सहायता से व्यंग्य की प्रतीति होती है। जब वक्ता, बोद्धव्य, काकु, वाक्य, वाच्य, अन्यसन्निधि, प्रस्ताव, देश, काल, चेष्टा आदि के वैशिष्ट्य के कारण व्यंग्यार्थ का बोध हो तो आर्थी व्यंजना होती है। आचार्य मम्मट के शब्दों में इसका लक्षण इस प्रकार है—

वक्तृबोद्धव्यकाकूनां वाक्यवाच्यान्यसन्निधेः ॥
प्रस्तावदेशकालादेर्वैशिष्ट्यात्प्रतिभाजुषाम् ।
योऽर्थस्यान्यार्थधीहेतुर्व्यापारो व्यक्तिरेव सा ॥

—काव्यप्रकाश, ३/२१,२२

विश्वनाथ की परिभाषा इस प्रकार है—

वक्तृबोद्धव्यवाक्यानामन्यसन्निधिवाच्ययोः ।
प्रस्तावदेशकालानां काकोश्चेष्टादिकस्य च ॥
वैशिष्ट्यादन्यमर्थं या बोधयेत्सार्थसंभवा ॥

—साहित्यदर्पण, २/१६,१७

उपर्युक्त दस प्रकारों के भी वाच्य, लक्ष्य एवं व्यंग्य के आधार पर तीस भेद होते हैं।

१. वक्तृवैशिष्ट्योत्पन्न वाच्य संभवा—वक्ता या कविकल्पित व्यक्ति के कथन के वैशिष्ट्य के कारण व्यंग्यार्थ की प्रतीति हो तो यह भेद होगा। वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ के उत्पन्न होने से इसे वाच्यसंभवा कहते हैं।

अति पृथुलं जलकुंभं गृहीत्वा समागतास्मि सखि त्वरितम् ।
श्रमस्वेदसलिलनिःश्वासनिःसहा विश्राम्यामि क्षणम् ॥

यह उपनायक से चौर्य रति संपन्न कर जल लाने के लिए गई हुई किसी नायिका का कथन है—मैं बहुत बड़ा घड़ा लेकर शीघ्रता से आ रही हूँ। परिश्रम के कारण पसीना एवं साँस के चलने से घबड़ाकर थोड़ी देर आराम करना चाहती हूँ। यहाँ नायिका चौर्यरति के कारण उत्पन्न स्वेद एवं श्रम को छिपाने के लिए बातें बना रही है, जिससे उसकी सखी को पर-पुरुष-संभोग की शंका न रहे। उसका कहना है कि पानी से भरा घड़ा ढोने के कारण ही पसीना चल रहा है और थकावट हो गई है। वक्ता की विशेषता के कारण यह व्यंग्य उत्पन्न है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जिहि निदाघ दुपहर रहै, भई माघ की राति।
तिहि उसीर की रावटी, खरी आवटी जाति॥

—बिहारी

यहाँ वक्ता दूती है, जो विरहिणी नायिका की वियोगजन्य व्यथा का निवेदन करती है (नायिका के प्रेमी से)।

जिस खस की रावटी में जेठ की दुपहरी भी ठंड के कारण माघ की रात के समान लगती हैं, उसी रावटी में तुम्हारी प्रेमिका गर्मी से उबल रही है, जल रही है। यहाँ व्यंग्यार्थ है नायक की निष्ठुरता तथा नायिका की दुःखद दशा का वर्णन। दूती के कथन का अभिप्राय है कि नायिका तुम्हारे वियोग में बेचैन है, उनकी दशा दयनीय हो गई है, पर तुम इतने निष्ठुर हो कि उस पर ध्यान नहीं देते। यह व्यंग्य अर्थ पर आश्रित है, किसी शब्द पर नहीं।

२. *बोद्धावैशिष्ट्योत्पन्नवाच्यसंभवा*—बोद्धा या श्रोता की विशेषता के कारण व्यंग्यार्थ का बोध हो तो बोद्धव्यवैशिष्ट्योत्पन्नवाच्यसंभवा होगी।

औन्निद्र्यं दौर्बल्यं चिंतालसत्वं सनिःश्वसितम्।
मम मंदभागिन्याः कृते सखि त्वामप्यहह! परिभवति॥

अपने पति से दूती को रति-क्रीड़ा कराकर आई हुई देखकर तथा उसके चिह्नों से इस स्थिति को भाँपकर किसी नायिका का उसके प्रति कथन है—हे सखि! इसके लिए मुझे अत्यंत दुःख है कि मुझ अभागिनी के कारण तुम भी अनिद्रा, श्वास का चलना, दुर्बलता, चिंता और आलस्य से पीड़ित हो रही हो। यहाँ व्यंग्य है कि तुमने मेरे पति से संभोग कराया है।

घर न कंत हेमंत रितु, राति जागती जात।
दबकि द्यौस सोवन लगी, भली नहीं यह बात॥

—बिहारी।

किसी नायिका से उसकी सखी कहती है कि तुम्हारा पति आजकल घर पर नहीं है और तुम रात में जागती तथा दिन में छिपकर सोती हो। हेमंत ऋतु में दिन का सोना उचित नहीं है। यह वाच्यार्थ है। इससे यह व्यंग्य प्रकट होता है कि तुम किसी उपपति के साथ रातभर रति-क्रीडा में व्यस्त रहती हो। यह व्यंग्यार्थ श्रोता की विशेषता के कारण है अर्थात् सुननेवाली ही इस अर्थ को समझती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

३. *काकुवैशिष्ट्योत्पन्नवाच्यसंभवा*—कंठध्वनि की भिन्नता के वैशिष्ट्य के कारण व्यंग्यार्थ की प्रतीति हो तो काकुवैशिष्ट्योत्पन्नवाच्यसंभवा आर्थी व्यजना होगी।

गुरुपरतंत्रतया बत दूरतरं देशमुद्यतोगंतुम्।
अलिकुलकोकिलललिते नैष्यति सखी सुरभिसमयेऽसौ ॥

यहाँ सखी से नायिका की उक्ति है। गुरुजनों के अधीन होने के कारण मेरा नायक दूर देश जाने को उद्यत है। क्या भ्रमरों एवं कोकिलों से सुहावन वसंत में नहीं आयेगा ? नायिका के इस कथन से ज्ञात होता है कि मेरा पति बहुत दूर जा रहा है और वह गुरुजनों के अधीन है। जबतक उनकी आज्ञा न मिले, तबतक वह मेरे निकट आने में असमर्थ है। पर, सखी की कंठध्वनि की भिन्नता से यह व्यंग्य निकलता है कि गुरुजनों के अधीन होते हुए भी वह वसंत ऋतु में अवश्य आयगा।

दृग लखिहैं मधु चंद्रिका, सुनिहै कल धुँनि काँन।
रहिहैं मेरे प्रान तँन, पीतम करौ पयाँन ॥

नायिका का कथन है कि आपके (नायक के) परदेश-गमन से मेरे शरीर में प्राण नहीं रहेंगे। यहाँ व्यंग्य है कि आप मत जाइए, आपके बिना मैं जीवित नहीं रहूँगी। नायक को परदेश जाने से रोकने का व्यंग्य यहाँ कंठ-ध्वनि की भिन्नता से प्रकट होता है।

४. *वाक्यवैशिष्ट्योत्पन्नवाच्यसंभवा*—संपूर्ण वाक्य की विशेषता के कारण व्यंग्यार्थ की प्रतीति हो तो वाक्यवैशिष्ट्योत्पन्नवाच्यसंभवा होगी।

तदा मम गंडस्थलनिमग्नां दृष्टिं नानैषीरन्यत्र।
इदानीं सैवाहं तौ च कपोलौ न सा दृष्टिः ॥

नायक की पत्नी तथा प्रेमिका दोनों एक साथ हैं और उसकी पत्नी के कपोल पर प्रेमिका के मुख का प्रतिबिंब दिखाई पड़ रहा है। नायक एकटक उसी ओर देख रहा है; इससे नायिका भी प्रसन्न है। अचानक उसकी प्रेमिका चली जाती है और नायक अपनी पत्नी की ओर दृष्टि नहीं डालता। इसपर उसकी पत्नी का कथन है—उस समय मेरे कपोल पर आपकी दृष्टि गड़ी हुई थी, आप अपनी आँखें अन्य ओर नहीं फेरते थे। इस समय मेरे वे ही कपोल हैं और मैं भी वही हूँ किंतु आपकी वह दृष्टि नहीं है। यहाँ नायक का परस्त्री-प्रेम व्यंग्य है। नायिका के कथन से यह व्यंग्यार्थ प्रकट होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कि तुम मेरे कपोल की ओर प्रेम के कारण नहीं, अपितु अपनी प्रेमिका के रूप को देखने के लिए ही देख रहे थे।

आपु दियौ मन फेरि लै, पलटै दीन्हीं पीठि।
कौन चाल यह रावरी, लाल लुकावत दीठि॥
—बिहारी

नायक के प्रति नायिका की उक्ति—आपने पहले अपना मन दिया था, अब उसके बदले पीठ दी है अर्थात् मेरी ओर से प्यार हटा दिया है। आपकी यह कौन-सी रीति है कि मुझ से आँखें छिपाने लगे। संपूर्ण वाक्य से यह व्यंग्य निकलता है कि आप अन्य स्त्री पर आसक्त हैं और मेरे प्रति आपका प्रेम समाप्त हो गया है।

५. *अन्यसन्निधिवैशिष्ट्योत्पन्नवाच्यसंभवा*—अन्य व्यक्ति की सन्निधि (साथ रहने) के कारण वक्ता श्रोता से जो कथन करे और उसके कारण व्यंग्य प्रकट हो तो अन्य सन्निधिवैशिष्ट्योत्पन्नवाच्यसंभवा आर्थी व्यंजना होती है। इसमें एक व्यक्ति वक्ता, दूसरा श्रोता तथा तीसरा समझनेवाला होता है।

नुदत्यनार्द्रमनाः श्वश्रूर्मां गृहभरे सकले।
क्षणमात्रं संध्यायां भवति न वा भवति विश्रामः॥

कोई नायिका अपने प्रेमी को लक्षित कर अपनी सखी से कहती है—मेरी कठोर सास घर के सभी काम मुझ से ही कराती रहती है, केवल संध्या समय क्षणमात्र के लिए मुझे विश्राम करने का समय मिलता है, नहीं तो कभी नहीं मिलता। नायिका यहाँ पास में ही खड़े उपपति को यह सूचित करती है कि मैं संध्या समय आपसे मिलूँगी। यह व्यंग्यार्थ सखी की सन्निधि के कारण प्रकट होता है। यहाँ कहनेवाली नायिका, सुननेवाली सखी तथा समझनेवाला नायक है।

सदा करौं गृह काज दिन, बीतत याही माँझ।
ईठि लहौं फल एक पल नीठि निहारे साँझ॥—दास
—पूर्व श्लोक का अनुवाद

६. *वाच्यवैशिष्ट्योत्पन्नवाच्यसंभवा*—वाच्य की विशेषता के कारण व्यंग्य की प्रतीति हो तो वाच्य वैशिष्ट्योत्पन्न वाच्यसंभवा आर्थी व्यंजना होती है। इसमें वाच्यार्थ (वाच्य) की विशिष्टता का महत्त्व है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उद्देश्योऽयं सरसकदलीश्रेणिशोभातिशायी
कुंजोत्कर्षांकुरितरमणीविभ्रमो नर्मदायाः ।
किंचैतस्मिन् सुरतसुहृदस्तन्वि ते वांति वाता
येषामग्रे सरति कलिताकांडकोपो मनोभूः ॥

नायिका के प्रति नायक की उक्ति—

हे तन्वि ! यह नर्मदा नदी का ऊँचा प्रदेश हरे-हरे केलों की पंक्ति से अति सुहावना लगता है। इसकी झाड़ियों में फूलों की अधिकता के कारण रमणियों के हृदय में विशेष प्रकार के प्रेमजन्य भाव उत्पन्न होने लगते हैं। यहाँ रति-क्रीड़ा की सहायता करनेवाले उसके मित्र वायु बहते रहते हैं, जिससे रतिजन्य श्रम दूर हो जाता है, जिसके आगे अनवसर में भी कामदेव धनुष धारण किए हुए चलता रहता है। यहाँ यह व्यंग्य निकलता है कि तुम सुरत क्रीड़ा के लिए चलो। तन्वि शब्द कामवेदना से युक्त होने का द्योतक है, 'उद्देश' से ऊँचे प्रदेश का व्यग्य प्रकट होता है। रति-क्रीड़ा के समय ऊँचे स्थल के कारण नीचे का आदमी नहीं देख सकता। सरस तथा श्रेणी शब्द शुष्क पत्रों के अभाव और छाया की व्यंजना करते हैं। कुंज के वर्णन में रति-क्रीड़ा की स्वच्छता व्यंजित हैं। कुपित तथा मनोभूः शब्द काम की प्रचंडता प्रकट करते है। इसमें वाच्य की विशेषता है।

सन सूक्यो, बीत्यो बन्यो, ऊखो लई उखारि ।
हरी-हरी अरहर अजौं, धरि धरहर जिय नारि ॥—बिहारी

यहाँ अनुशयना (संकेत-विघट्टना) नायिका के प्रति उसकी सखी की उक्ति है। [दे० अनुशयना]

नायिका के यह कहने पर कि मेरे सहेट (संकेत-स्थल) के सभी स्थान नष्ट हो गए, सन भी सूख गए, कपास तोड़ लिए गए एवं ऊख भी उखाड़ ली गई, उसकी सखी कहती हैं कि किसी प्रकार की चिंता मत करो, अभी अरहर हरी-भरी है। यहाँ हरी-हरी अरहर से यह व्यंग्य निकलता है कि उसमें (अरहर में) रतिक्रीड़ा निर्विघ्न चल सकती है। यहाँ बिहार-योग्य स्थान का होना व्यंग्य है।

७. *प्रस्ताववैशिष्ट्योत्पन्नवाच्यसंभवा*—विशेष प्रकरण या प्रस्ताव के कारण व्यंग्य की प्रतीति हो तो प्रस्ताव वैशिष्ट्योत्पन्नवाच्यसंभवा आर्थी व्यंजना होती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

श्रूयते समागमिष्यति तव प्रियोऽद्य प्रहरमात्रेण।
एवमेव किमिति तिष्ठसि तत् सखि सज्जय करणीयम् ॥

प्रेमी के पास अभिसार करने के लिए उद्यत किसी नायिका को उसके नायक के आगमन की सूचना देकर, उसकी सखी रोक रही है।

हे सखि ! सुन रही हूँ कि एक पहर में ही तुम्हारे पति आ रहे हैं, अत: ऐसे ही क्यों बैठी हो, उनसे मिलने के योग्य कार्यों को करो।

यहाँ अभिसार के योग्य वेश एवं श्रृंगार का प्रकरण है और उसकी (प्रकरण की) विशेषता के कारण व्यंग्य अर्थात् अभिसरण-क्रिया को रोकना वाच्यार्थ से प्रकट होता है।

सुनियत तव पिय आतु है साँझ समय सखि आज।
करत न क्यों उपकरन तू क्यों बैठी बेकाज ॥

—ऊपर के श्लोक का अनुवाद

८. देश *वैशिष्ट्योत्पन्नवाच्यसंभवा*—स्थान या देश की विशेषता के कारण व्यंग्यार्थ की प्रतीति हो तो देशवैशिष्ट्योत्पन्नवाच्यसंभवा आर्थी व्यंजना होती है।

अन्यत्र यूयं कुसुमावचायं, कुरुध्वमत्रास्मि करोमि सख्यः।
नाहं हि दूरं भ्रमितुं समर्था प्रसीदतायं रचितोऽञ्जलिर्वः ॥

नायक से एकांत में मिलने को इच्छुक कोई नायिका सखियों से कह रही है—"तुमलोग कहीं दूसरी जगह जाकर फूल तोड़ो, मैं इस स्थान पर फूल तोड़ रही हूँ। अधिक दूर घूमने में समर्थ नहीं हूँ, तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ, तुमलोग प्रसन्न हो जाओ। यह एकांत स्थान है, यहाँ तुम नायक को भेज दो,"—ऐसा कथन किसी सखी से नायिका कर रही है। यह एकांत के कारण व्यंग्य है। उस स्थल पर (एकांत में) रतिक्रीड़ा अच्छी तरह सपन्न हो सकेगी।

सघन कुंज कुसुमित बिटप, किये असम सर ऐन।
जमुना तीर तमाल ढिग, तजत न छिन-पल नैन ॥

—प्रतापसाही

यहाँ यमुना-तीर के निकटवर्ती सघन कुंजों में प्रेमी से मिलना व्यंग्य है। यह कथन परकीया नायिका का सखी के प्रति है। यहाँ स्थान की विशेषता के कारण व्यंग्य प्रकट होता है कि नायक को यमुना के किनारे सघन निकुंज में भेज दो।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

९. *कालवैशिष्ट्योत्पन्नवाच्यसंभवा*—काल या समय की विशेषता के कारण व्यंग्यार्थ की प्रतीति हो तो कालवैशिष्ट्योत्पन्नवाच्यसभवा आर्थी व्यंजना होती है।

गुरुजनपरवश प्रिय किं भणामि तव मंदभागिनी अहकम् ।
अद्य प्रवासं व्रजसि व्रज स्वयमेव श्रोष्यसि करणीयम् ।।

परदेश जाने को उद्यत पति के प्रति नायिका की उक्ति—"गुरुजनों के अधीन रहनेवाले हे प्रिय, मैं अभागिनी आप से क्या कहूँ ? यदि आप इस वसंत ऋतु में जा रहे हैं तो जाइए, मुझे क्या करना चाहिए, सो आप स्वयं ही सुन लेंगे ।"

यहाँ वसंत ऋतु के कारण पति को बाहर न जाने देना व्यंग्य है। नायिका के कथन से यह अभिप्राय प्रकट होता है कि पति के परदेश जाने पर वह जीवित नहीं रहेगी। इससे यह भी व्यंग्य प्रकट होता है कि वसंत ऋतु का समय घर पर ही रहने का है, विदेश जाने का नहीं।

छकि रसाल सौरभ सने, मधुर माधवी गंध ।
ठौर-ठौर झूमत, झपत, झौंर झौंर मधु अंध ।। —बिहारी

मानिनी नायिका से उसकी सखी वसंत के मादक रूप का वर्णन कर उसके मान को दूर करना चाहती है। यहाँ व्यंग्यार्थ है कि मधुर वसंत ऋतु में तुम्हारा मान नहीं रह सकता। यह समय प्रिय से मिलकर आनंद लेने का है; मान करने का नहीं। इस प्रकार का व्यंग्य वसंत (काल या समय) की विशेषता के कारण है।

१०. *चेष्टावैशिष्ट्योत्पन्न वाच्यसंभवा*—चेष्टा या हाव-भावादि के द्वारा व्यंग्यार्थ का बोध हो तो चेष्टावैशिष्ट्योत्पन्न वाच्यसंभवा होती है।

संकेतकालमनसं विटं ज्ञात्वा विदग्धया ।
हसन्नेत्रार्पिताकूतं लीलापद्मं निमीलितम् ।।

—चतुर सखी ने विट को संकेत-काल का जिज्ञासु जानकर विकसित नेत्रों से भाव बताते हुए लीलाकमल बंद कर दिया। यहाँ कमल को मूँदकर यह संकेत किया कि संध्या समय मिलना। यह व्यंग्य चेष्टा के कारण उत्पन्न है; अर्थात् कमल को मूँदने से संध्या-काल में मिलने का संकेत है।

कंटक काढ़त लाल के चंचल चाह निबाहि ।
चरन खैंचि लीनो तिया, हँसि झूठे करि आहि ।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ झूठी आह भरने एवं हँसते हुए पैर को खींच लेने में चेष्टा-द्वारा व्यंग्य की उत्पत्ति हुई है। नायिका का किलकिंचित हाव व्यंजित है।

उपर्युक्त सभी भेद वाच्य, लक्ष्य एवं व्यंग्य के आधार पर तीस हैं। जब वाच्य से व्यंग्यार्थ का ज्ञान हो तो वाच्यसंभवा, लक्ष्य से व्यंग्यार्थ की प्रतीति हो तो लक्ष्यसंभवा तथा व्यंग्य से व्यंग्यार्थ के बोध में व्यंग्यसंभवा होती है।

आवंती—प्रवृत्ति का एक भेद। इसका वर्णन भरत-कृत 'नाट्यशास्त्र' में है। [**दे० रीति-संप्रदाय**]

आलंबन—विभाव का भेद। [**दे० विभाव**] जिस पर भाव या रस टिकता या अवलंबित होता है, उसे आलंबन कहते हैं। प्रत्येक रस के पृथक्-पृथक् आलंबन होते हैं। जिसका अवलंब लेकर रस उत्पन्न होता है, उसे आलंबन विभाव कहा जाता है।

यमालंब्य रस उत्पद्यते स आलंबन विभावः।

—रसतरंगणी, द्वितीय तरंग

शृंगार रस में आलंबन विभाव के अंतर्गत नायक-नायिका-भेद का वर्णन किया जाता है। [**दे० नायक-भेद, नायिका-भेद**] आलंबन की चेष्टाएँ उद्दीपन कही जाती हैं; क्योंकि इनको देखकर ही आश्रय के मन में रस की उत्पत्ति होती है।

आलस्य—संचारी भाव। [**दे० संचारी भाव**] जागरण, गर्भ, श्रम, व्याधि आदि के कारण उत्पन्न जड़ता को आलस्य कहते हैं। इस स्थिति में शक्ति या सामर्थ्य के होने पर भी कार्य करने में उत्साह नहीं दिखाई पड़ता। इसके अनुभाव हैं—जँभाई लेना तथा एक स्थान पर बैठा रहना।

भरत ने आलस्य की उत्पत्ति खेद, व्याधि, गर्भ, श्रम, रोग आदि विभावों से मानी है। उन्होंने इसे नीच प्रकृति के स्त्री-पुरुषों से संबद्ध माना है। आलस्य का अभिनय सभी कार्यों में अरुचि, शयन, बैठना, निद्रा, जँभाई आदि अनुभावों द्वारा होना चाहिए।—

आलस्यं नाम—खेदव्याधिगर्भस्वभावश्रमसौहित्यादिभिर्विभावैः समुत्पद्यतेस्त्रीनीचानाम्। तदभिनयेतुसर्वकर्मानभिलापशयनासननिद्रातंद्रासेवनादिभिरनुभावैः।"

—नाट्यशास्त्र, ७/४८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आलस्यं त्वभिनेयं खेदोपगतं स्वभावजं वापि ।
आहार वर्जितानामारंभाणामनारंभात् ॥—वही

धनंजय ने परिश्रम, गर्भ आदि जन्य जड़ता को आलस्य कहा है—

आलस्यं श्रमगर्भादेर्जाड्यं जृंभासितादिमत् ॥

—दशरूपक, ४/२७

विश्वनाथ भी श्रम तथा गर्भादि के कारण उत्पन्न जड़ता को आलस्य कहते हैं ।—

आलस्यं श्रमगर्भाद्यैर्जाड्यं जृंभासितादिकृत् ।

—साहित्यदर्पण, ३/१५५

भानुदत्त ने किसी भी प्रकार के कार्य को करने में मन के अनुत्साह को आलस्य कहा है, जो गर्भ-भार आदि विभावों-द्वारा उत्पन्न होता है । इसके अनुभाव हैं कार्य करने में कातरता दिखाना आदि ।—

उत्थानाद्यक्षमत्वमालस्यम् । तत्र विभावा गर्भादयः । अनुभावाः क्रियाकातर्यादयः । —रसतरंगिणी, पृ० ३४८, पंचम तरंग

पंडितराज जगन्नाथ ने चित्त की उस दशा को आलस्य कहा है, जो अतितृप्ति, गर्भ, व्याधि, श्रम आदि के कारण उत्पन्न होती है तथा उसमें कार्य करने के प्रति उन्मुखता का भाव नहीं होता ।

अतितृप्तिगर्भव्याधिश्रमादिजन्या चेतसःक्रियाऽनुन्मुखताऽऽलस्यम् ।

—रसगंगाधर, पृ० ११४

अत्र च नासामर्थ्यम् । नापि कार्याकार्यविवेकशून्यत्वम् । तेन कार्याकरणरूपस्यानुभावस्य तुल्येऽपि ग्लानेर्जडतायाश्चास्य भेदः । —वही

उदाहरण—

क. न तथा भूषयत्यंगं न तथा भाषते सखीम् ।
जृंभते मुहुरासीना बालागर्भभरालसा ॥

गर्भ के भार से अलसाई बाला केवल एक स्थान पर बैठकर जँभाई लेती रहती है । वह न तो पहले की तरह भूषण पहनती है और न सखियों से वार्त्तालाप ही करती है ।

यहाँ गर्भजन्य (बाला के) आलस्य का वर्णन है ।

ख. निसि जागी लागी हिये, प्रीति उमंगत गात ।
उठि न सकति आलस बलित, सहज सलोने गात ॥

यहाँ रात्रि-जागरण से उत्पन्न आलस्य का वर्णन है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आलेख्यप्रख्य—काव्य का वह भेद, जिसे कोई कवि किसी प्राचीन रचना को परिष्कृत कर भिन्न रूप में प्रस्तुत करे। [दे० **काव्य-संवाद**]

आवेग—संचारी भाव। [दे० **संचारी भाव**] इष्ट अथवा अनिष्ट की अचानक प्राप्ति से जो मानसिक घबराहट होती हैं, उसे आवेग कहते हैं।

भरत आवेग नामक संचारी भाव की उत्पत्ति उत्पात, वात, वर्षा, अग्नि, हाथी का इधर-उधर भागना, प्रिय या अप्रिय (वार्त्ता) श्रवण तथा जन-विद्रोह प्रभृति विभावों-द्वारा मानते हैं।

आवेगो नाम—उत्पातवातवर्षाग्निकुंजरोद्भ्रमणप्रियाप्रियश्रवणप्रकृतव्यसनाभिघातादिर्भिविभावैः समुत्पद्यते। —नाट्यशास्त्र, ७/६३

धनंजय मन के संभ्रम को आवेग कहते हैं। इसकी उत्पत्ति विप्लव, झंझावात, वर्षा, उत्पात, अनिष्टकारी वस्तुओं, अग्नि, हाथी, प्रिय तथा अप्रिय वार्त्ता के श्रवण आदि कारणों से होती है। इनके विवेचन पर भरत का पूर्ण प्रभाव है।—

आवेगः संभ्रमोऽस्मिन्नभिसरजनिते शस्त्रनागाभियोगो
वातात्पांसूपदिग्धस्त्वरित पदगतिर्वर्षजे पिंडितांगः।
उत्पातात्रस्ततांगेष्वहितहितकृते शोकहर्षानुभावा
बह्नेर्धूमाकुलस्य करिजमनुभयस्तंभ कंपापसाराः।

—दशरूपक, ४/२८

विश्वनाथ संभ्रम या घबड़ाहट को आवेग कहते हैं। इन्होंने इसके हर्षज तथा उत्पादज, दो भेदों का वर्णन किया है। हर्षज में अंगों का संकोचन होता है तो उत्पादज में अंग शिथिल पड़ जाते हैं। इष्टजन्य आवेग हर्षोत्कारक होता है और अनिष्टजन्य आवेग शोकोत्पादक।

आवेगः संभ्रमस्तत्र हर्षजे पिंडितांगता।
उत्पादजे स्रस्ततांगे धूमाद्याकुलताग्निजे॥
राजविद्रवजादेस्तु शस्त्र नागादियोजनम्।
गजादेः स्तंभकंपादि, पांस्वाद्याकुलतानिलात्॥
इष्टाद्धर्षाः शुचोऽनिष्टाज्ज्ञेयाश्चान्ये यथायथम्॥

—साहित्यदर्पण, ३/१४३-१४५

भानुदत्त के अनुसार, अकस्मात् इष्ट या अनिष्ट घटना होने पर, मन में जो घबराहट होती है, उसे आवेग कहा जाता है। इसके कारण या विभाव हैं—शत्रुदर्शन, प्रियवार्त्ताश्रवण, उत्पात आदि तथा अनुभाव—शरीर का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

घबराकर गिरना, विपर्यास (किसी वस्तु को कुछ और ही समझना) आदि हैं।

आकस्मिक इष्टानिष्टोपपातविवर्तः संभ्रमो वा आवेगः। वैरिदर्शन प्रियश्रवणोत्पातादयो विभावाः। अनुभावास्त्वराशरीरस्खलनविपर्यासादयः।

—रसतरंगिणी, पृ० ३५८, पंचम तरंग

पंडितराज जगन्नाथ ने अतिशय अनर्थ के कारण उत्पन्न संभ्रम नामक चित्तवृत्ति को आवेग कहा है।

अनर्थातिशयजनिता चित्तस्य संभ्रमाख्यावृत्तिरावेगः।'

—रसगंगाधर, पृ० ११२

निष्कर्ष यह कि आवेग मन की उद्विग्नता है, जो असमय या अस्थान में उत्पन्न उत्पात के कारण उत्पन्न होता है। इसके कारण शारीरिक विकार होते हैं।

उदाहरण—

क. तनुत्राणं तनुत्राणं शस्त्रं शस्त्रं रथो रथः।
इति शुश्रुविरे विष्वगुद्भटाः सुभटोक्तयः॥

युद्धक्षेत्र में वीरों की उत्कट उक्तियां इस प्रकार सुनाई पड़ती थीं—कवच-कवच, शस्त्र-शस्त्र, रथ-रथ। यहाँ रणभूमि में योद्धाओं की आवेगमयी उक्तियों का वर्णन है।

ख. सुनि आहट पिय-पगन की भभरि भजी यों नारि।
कहुं कंकन कहुं किंकिनी, कहूं सुनूपुर डारि॥

यहाँ प्रिय के आगमन की आहट सुनकर नायिका के भागने का वर्णन है, जिसमें आवेग संचारी है।

आवेशिक—कवियों का एक प्रकार। [दे० कवि] जो कवि (राजशेखर के अनुसार) मंत्रादि के उपदेश से सिद्धि प्राप्त कर आवेश के समय में काव्य-रचना करे, उसे आवेशिक कहते हैं।

यो मंत्राद्युपदेशवशाल्लब्धसिद्धिरावेशसमकालं कवते स आवेशिकः।

—काव्यमीमांसा, पंचम अध्याय, पृ० ५०-५१ चौखंबा संस्करण, (हिंदी अनुवाद)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आशाधर भट्ट—इन्होंने काव्यशास्त्र-विषयक तीन ग्रंथों का प्रणयन किया है—'कोविदानंद', 'त्रिवेणिका' और 'अलंकारदीपिका'। इनका समय अठारहवीं शती है। लेखक ने 'अलंकारदीपिका' में अपना परिचय दिया है, जिसके अनुसार इनके पिता का नाम रामजी और गुरु का नाम धरणीधर था।

शिवयोस्तनयं नत्वा गुरुं च धरणीधरम्।
आशाधरेण कविना रामजी भट्ट सूनुना॥

'कोविदानंद' और 'त्रिवेणिका' में शब्दशक्तियों का विवेचन है और 'अलंकारदीपिका' अप्पय दीक्षित-रचित 'कुवलयानंद' पर आधृत अलंकार-ग्रंथ है। 'अलंकारदीपिका' तीन प्रकरणों में विभक्त है, जिसके प्रथम प्रकरण (अध्याय) में 'कुवलयानंद' की कारिकाओं की बोधगम्य व्याख्या की गई है। द्वितीय प्रकरण में रसवत्, ऊर्जस्विन् तथा समाहित प्रभृति रसवदलंकारों का नाममात्र से कथन है। इसमें अप्पय दीक्षित की शैली में अलंकारों का निरूपण किया गया है। इस प्रकरण का नाम उद्दिष्टालंकार प्रकरण है। तृतीय प्रकरण में संकर और संसृष्टि का वर्णन है और संकर के पाँच भेद किए गए हैं। 'अलंकारदीपिका' में कुल एक सौ पचीस अलंकार हैं। 'त्रिवेणिका' में अभिधा, लक्षणा और व्यंजना का विवेचन है। इसमें अभिधा को गंगा कहकर उसकी प्रधानता सिद्ध की गई है और लक्षणा को यमुना बनाकर उसे अभिधाश्रित माना गया है। सहृदय संवेद्य अर्थ की प्रतिपादिका व्यंजना यहाँ सरस्वती है और इसी कारण इसका नाम 'त्रिवेणिका' सार्थक है।

शक्ति भजंति सरला लक्षणां चतुरा जनाः।
व्यंजनां नर्ममर्मज्ञाः कवयः कमना जनाः॥

इन्होंने 'अद्वैतविवेक' और 'प्रभापटल' नामक ग्रंथ भी लिखे हैं।

आशीः—एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। इसका संकेत भामह ने किया है। उनके अनुसार कुछ लोग आशीः को भी अलंकार मानते हैं। भामह ने इसके दो उदाहरण देकर दो भेदों का निरूपण किया है—सौहार्द में आशीः तथा अविरोधविषयक आशीः।

आशीरपि च केषांचिदलंकारतया मता।

—काव्यालंकार, ३/५५

आशीः का अर्थ है शुभाशंसा। दंडी ने सर्वप्रथम इसका लक्षण प्रस्तुत करते हुए बताया कि अपने प्रिय व्यक्तियों की अभीष्ट वस्तु के प्रति स्वेच्छाप्रकाशन को आशीः कहते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आशीर्नामाभिलषिते वस्तुन्याशंसनं यथा।
पातु वः परमं ज्योतिरवाङ्मनस गोचरम्॥
—काव्यादर्श, २/३५७

विश्वनाथ आशीः को नाट्यालंकार की संज्ञा देते हैं। उनके अनुसार प्रियजनों का आशीर्वाद ही आशीः है।

आशीरिष्टजनाशंसा। विमला, पृ० २९८
आशीराक्रंदकपटाक्षमागर्वोद्यमाश्रयाः।
.... नाट्यभूषणहेतवः॥—साहित्यदर्पण, ६/१९८

आश्रय—विभाव का भेद। [दे० विभाव] जिसके मन में रस की उत्पत्ति होती है या जिसे रसानुभूति हो उसे आश्रय कहते हैं। आश्रय की चेष्टाओं को अनुभाव कहा जाता है। [दे० अनुभाव]

आसत्ति—वाक्य का एक अंग। [दे० तात्पर्य वृत्ति] इसे सन्निधि भी कहते हैं।

आहार्य—अभिनय का एक प्रकार, जिसमें वस्त्र बदलने का प्रदर्शन होता है। अनुभाव का एक प्रकार भी आहार्य है। कृत्रिम वेष-रचना को आहार्य कहते हैं।

आहार्यनिश्चय—साहित्यशास्त्र में आहार्यनिश्चय का अर्थ काल्पनिक है।

ईषत्प्रगल्भवचना—मध्या नायिका का एक भेद। [दे० मध्या] जो नायिका प्रेमालाप में हिचकनेवाली न हो, उसे ईषत्प्रगल्भवचना कहते हैं।

ईर्ष्यामान—मान का भेद। [दे० मान]

ईहामृग —रूपक का एक भेद। [दे० रूपक] ईहामृग का अर्थ है मृग की चेष्टा या मृग की इच्छा। जिसमें मृग के सदृश केवल स्त्री के लिए चेष्टा की जाय, उसे ईहामृग कहते हैं।

ईहा चेष्टा मृगस्येव स्त्रीमात्रार्था अत्र इति ईहामृगः।
—नाट्यदर्पण, ८/ ९१, वृत्ति

इसमें नायक मृगी की तरह किसी अलभ्य नायिका को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। इसका कथानक मिश्रित अर्थात् ख्यात और कवि-कल्पित का मिश्रण होता है। ईहामृग का नायक दिव्य कोटि का (देवता) होता है, जो किसी दिव्य नारी को प्राप्त करने के लिए संघर्ष-रत रहता है। इसमें चार अंक होते हैं और मुख, प्रतिमुख तथा निर्वहण संधियाँ होती हैं। इसके नायक-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रतिनायक उद्धत स्वभाव के होते हैं और अन्य पात्र भी उद्धत होते हैं। इसके अंगी रस, वीर और रौद्र हैं तथा बारह नायकों की भी व्यवस्था की जाती है। इसके नायक धीरोद्धत मनुष्य भी हो सकते हैं। इसका प्रतिनायक किसी ऐसी दिव्य नारी को प्राप्त करना चाहता है, जो उसे प्यार नहीं करती। वह इस कार्य में रत होकर पापाचरण करता रहता है। प्रतिनायक उस नारी को भगाकर (हरण कर) ले जाना चाहता है। इस दृष्टि से इसमें शृंगाराभास की पूरी संभावना रहती है।

इसका नायक प्रतिनायक को छल से पराजित कर उस रमणी को अपना लेता है। इसमें युद्ध की पूरी संभावना हो जाती है अर्थात् नायक और प्रतिनायक का विरोध पूर्णता को प्राप्त कर जाता है; पर किसी कारण से उसे शांत कर दिया जाता है। कवि वध की स्थिति को उत्पन्न करके भी इसमें उसे प्रदर्शित नहीं करता। इसमें कैशिकी के अतिरिक्त अन्य सभी वृत्तियों का उपनिबंधन होता है। प्रारंभ और यत्न अवस्था के पश्चात् इसमें फलागम का वर्णन किया जाता है।

भरत का मत—

दिव्य पुरुषाश्रयकृतो दिव्यस्त्रीकारणोपगतयुद्धः ।
सुविहित वस्तुनिबद्धो विप्रत्ययकारकश्चैव ॥
उद्धतपुरुषप्रायः स्त्रीरोषग्रथित काव्यबंधश्च ।
संक्षोभविद्रवकृतः संफेटकृतस्तथा चैव ॥
स्त्रीभेदनापहरणावमर्दनप्राप्तवस्तुशृंगारः ।
ईहामृगस्तु कार्यः सुसमाहितकाव्यबंधश्चैव ॥
ईहामृगेऽपि ते स्युः केवलममर स्त्रिया योगः ।
यत्र तु वधेप्सितानां वधो ह्युदग्रो भवेद्धि पुरुषाणाम् ।
किंचिद्व्याजं कृत्वा तेषां युद्धं शमयितव्यम् ।

—नाट्यशास्त्र, १८/७८-८२

धनंजय का मत—

मिश्रमीहामृगे वृत्तं चतुरंकं त्रिसंधिमत् ॥
नरदिव्यावनियमान्नायकप्रतिनायकौ ।
ख्यातौ धीरोद्धतावंत्यो विपर्यासदयुक्तकृत् ॥
दिव्यस्त्रियमनिच्छंतीमपहारादिनेच्छतः ।
शृंगाराभासमप्यस्य किंचित्किंचित्प्रदर्शयेत् ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संरंभं परमानीय युद्धं व्याजान्निवारयेत् ।
वधप्राप्तस्य कुर्वीत वधं नैव महात्मनः ॥

—दशरूपक, ३/७२-७५

रामचंद्र का मत—

ईहामृगः सवीथ्यंगो दिव्यशो दृप्तमानवः ।
एकांकश्चतुरंको वा ख्याताख्यातेतिवृत्तवान् ॥
दिव्यस्त्रीहेतुसंग्रामो निर्विश्वासः सविड्वरः ।
स्त्र्यपहार-भेद-दंडः प्रायो द्वादशनायकः ॥
व्याजेनात्र रणाभावो वधासन्ने शरीरिणि ।
व्यायोगोक्ता रसाः संधि-वृत्तयोऽनुचिता रतिः ॥

—नाट्यदर्पणम्, २/९०-९२

विश्वनाथ का मत—

ईहामृगो मिश्रवृत्तश्चतुरंकः प्रकीर्तितः ।
मुखप्रतिमुखे संधी तत्र निर्वहणं तथा ॥
नरदिव्यावनियमौ नायकप्रतिनायकौ ।
ख्यातौ धीरोद्धतादन्यो गूढभावादयुक्तकृत् ॥
दिव्यस्त्रियमनिच्छंतीमपहारादिनेच्छतः ।
श्रृंगाराभासमप्यस्य किंचित्किंचित्प्रदर्शयेत् ॥
पताकानायका दिव्या मर्त्या वापि दशोद्धताः ।
युद्धमानीय संरंभं परं व्याजान्निवर्तते ॥
महात्मनो वधप्राप्ता अपि वध्याः स्युरत्र नो ।
एकांको देव एवात्र नेतेत्याहुः परे पुनः ॥
दिव्यस्त्रीहेतुकं युद्धं नायकाः षडितीतरे ।

—साहित्यदर्पण, ३/२४५-२४९

इसका उदाहरण 'कुसुमशेखरविजय' है।

उक्तनिमित्ता—विशेषोक्ति अलंकार का प्रथम भेद, जिसमें कार्यानुत्पत्ति का कारण कथित होता है। [दे० विशेषोक्ति]

उक्ताक्षेप—आक्षेप अलंकार का प्रथम भेद। [दे० आक्षेप]

उक्ति—भोज-उद्भावित एक अल्प-प्रसिद्ध शब्द का अलंकार। जब विधि अथवा निषेध के द्वारा विशिष्टार्थ की कल्पना की जाय तो उक्ति अलंकार

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होगा। इसके विधि, निषेध, अधिकार, विकल्प, नियम और परिसंख्या नामक भेद वर्णित हैं।

विधि द्वारेण वा यत्र निषेधेनाथवा पुनः।
प्रतीयते विशिष्टोऽर्थः सोक्तिरत्राभिधीयते ॥
विधेरथ निषेधात्स्यादधिकाराद्विकल्पतः ।
नियमात्परिसंख्याया उपाधेः सेह षड्विधा ॥

—सरस्वतीकंठाभरण, २/४२,४३

उग्रता—संचारी भाव। [दे० संचारी भाव] शूरता, अपराध, निंदा, अपमान आदि के कारण निर्दयता की इच्छा का उत्पन्न होना उग्रता है।

भरत इसकी उत्पत्ति चोरों के पकड़े जाने, राजा के प्रति अपराध करने तथा असत्य भाषण करने आदि अनुभावों-द्वारा मानते हैं। इसका अभिनय वध, बंधन, ताड़न, तर्जन प्रभृति अनुभावों-द्वारा होता है।

उग्रता नाम—चौर्याभिग्रहण नृपापराधासत्प्रलापादिभिर्विभावैः समुत्पद्यते। तां च वधबंधनताडननिर्भर्त्सनादिभिरनुभावैरभिनयेत्।

'चौर्याभिग्रहणवशान्नृपापराधादथोग्रता भवति।
वधबंधताडनादिभिरनुभावैरभिनयस्तस्याः।'

—नाट्यशास्त्र, ७/८१

धनंजय ने दुष्ट व्यक्ति द्वारा किए गए दुष्कर्म, बुरे वचन, क्रूरता आदि से क्रोध के भाव के उत्पन्न होने तथा उससे स्वभाव में कर्कशता आने को उग्रता कहा है।

दुष्टेऽपराध दौर्मुख्य क्रौर्यैश्चंडत्वमुग्रता।
तत्र स्वेदशिरःकंपतर्जनाताडनादयः ॥'

—दशरूपक, ४/१५

विश्वनाथ के अनुसार शूरता, अपराध तथा अपकारादि के कारण अत्यधिक क्रूरता या चंडता का प्रदर्शन उग्रता है।

शौर्यापराधादिभवं भवेच्चंडत्वमुग्रता।
तत्र स्वेदशिरःकंपतर्जनाताडनादयः ॥

—साहित्यदर्पण, ३/१४९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भानुदत्त ने निर्दयतापूर्ण व्यवहार को उग्रता कहा है, जो अपराध करने, दोष या चोरी करने आदि विभावों-द्वारा उत्पन्न होती है।

उग्रता निर्दयता। विभावा अपराधदोषकीर्तनचौर्यादयः। अनुभावास्तर्जन-ताडनादयः। —रसतरंगिणी, पंचमतरंग, पृ० ३७०

पंडितराज ने निंदा तथा तिरस्कार से उत्पन्न ऐसी चित्तवृत्ति को उग्रता कहा है, जिसमें यह भाव रहता है कि अपराधी का क्या कर दिया जाय ?

आक्षेपापमानादिप्रभवा किमस्य करोमीत्याद्याकारा चित्तवृत्तिरुग्रता।

—रसगंगाधर, पृ० १०९

नृपापराधोऽसद्दोषकीर्तनं चोरधारणम्।
विभावाः स्युरथो बंधो वधस्ताडनभर्त्सने॥
एते यत्रानुभावास्तदौग्र्यं निर्दयतात्मकम्॥

—वही

उदाहरण—

क. अवाप्यभंगं खलु संगरांगणे
नितांतगंगाधिपतेरमंगलम्।
परप्रभावं मम गांडिवं धनु-
र्विनिंदतस्ते हृदयं न कंपते॥'

अर्जुन की युधिष्ठिर के प्रति उक्ति—"युद्धक्षेत्र में अंगाधिपति कर्ण से अमंगल पराजय को पाकर तुम हमारे अत्यधिक प्रभावशाली गांडीव धनुष की निंदा करते हो। क्या इस प्रकार के कार्य से तुम्हारा हृदय कंपित नहीं होता ?"

यहाँ अर्जुन की उक्ति में उग्रता का भाव है।

ख. मातु पितहि जनि सोच बस, करसि महीप किसोर।
गर्भन के अर्भक दलन, परसु मोर अति घोर॥

—रामायण

यहाँ फरसे की प्रशंसा करने में परशुराम के कथन में उग्रता का भाव है।

उड्मागधी—प्रवृत्ति का एक भेद। इसका वर्णन भरतकृत 'नाट्यशास्त्र' में है। [दे० रीति-संप्रदाय]

उत्कंठिता—नायिका का अवस्थानुसार भेद। [दे० नायिका भेद] प्रिय की देर तक प्रतीक्षा करने के कारण दुःखित एवं चिंतित होनेवाली नायिका उत्का या उत्कंठिता कही जाती है। यह संकेतस्थल पर प्रिय के न

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आने पर उसके अनागम का कारण सोचकर दुःखित होती है। इसे विरहोत्कंठिता भी कहते हैं।

इसका सर्वप्रथम निरूपण भरत मुनि ने किया है। इनके अनुसार अनेक प्रकार के कार्य में व्यस्त होने के कारण जिसका पति न आए और उसके न आने से जो पीड़ित हो, उसे विरहोत्कंठिता नायिका कहते हैं।

अनेककार्यव्यासंगाद् यस्यानागच्छति प्रियः ।
तदानागतदुःखार्त्ता विरहोत्कंठिता तु सा ॥

—नाट्यशास्त्र, २२/२१४

रुद्रट के अनुसार अत्यंत महत्त्वपूर्ण कार्य में व्यस्त होकर जिसके पति के आगमन में बाधा आ जाय तो उस व्याकुलचित्ता नायिका को उत्कंठिता कहते हैं।

नोपगतः प्राणेशो गुरुणाकार्येण विघ्नितागमनः ।
यस्याः किं तु स्यादित्याकुलचित्तेत्यसावुत्का ॥

—काव्यालंकार, १२/४०

धनंजय ने अपने लक्षण में बताया कि जो नायिका प्रिय के अपराधी न होने पर भी देर से आने के कारण उत्कंठित मन से उसकी प्रतीक्षा कर उदास हो, उसे विरहोत्कंठिता कहते हैं।

चिरयत्यव्यलीके तु विरहोत्कंठितोन्मनाः ॥

—दशरूपक, २/२५

विश्वनाथ के अनुसार जब आने का निश्चय करके भी उसका प्रिय न आए तो उसके न आने से दुःखित होनेवाली नायिका विरहोत्कंठिता कही जाती है।

आगंतुं कृतचित्तोऽपि दैवान्नायाति यत्प्रियः ।
तदानागम दुःखार्त्ता विरहोत्कंठिता तु सा ॥

—साहित्यदर्पण, ३/८६

भानदत्त उस नायिका को उत्का या उत्कंठिता कहते हैं, जो प्रिय के संकेत-स्थल पर न आने का कारण सोचकर चिंतित हो।

संकेतस्थलं प्रति भर्तुरनागमनकारणं या चिंतयति सोत्का ।

—रसमंजरी, पृ० १२२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इन्होंने इसे मुग्धा, मध्या, प्रौढा, परकीया और सामान्या के रूप में भी दिखाया है, जिसका अनुसरण मतिराम, पद्माकर प्रभृति रीतिकालीन आचार्यों ने भी किया।

आप जाय संकेत में पीव न आयो होय।
ताको मन चिंता करै उत्का कहिये सोय॥

—रसराज, १५६

लहि सँकेत सौचै जु तिय, रमन-आगमन-हेत।
ताही कों उतकंठिता, बरनत सुकबि सचेत॥

—जगद्विनोद, १६१

उदाहरण—

क. किं रुद्धः प्रियया कदाचिदथवा सख्या ममोद्वेजितः।
किं वा कारणगौरवं किमपि यन्नाद्यागतो वल्लभः।
इत्यालोच्य मृगीदृशा करतले विन्यस्य वक्त्रांबुजं
दीर्घं निःश्वसितं चिरं च रुदितं, क्षिप्ताश्च पुष्पस्रजः॥

क्या नायक को किसी अन्य प्रिया ने रोक लिया या मेरी सखी ने ही अप्रसन्न कर दिया ? या कोई ऐसा कार्य आ गया, जिससे मेरा प्रिय अब तक न आ सका ? इस प्रकार सोचकर मृगनयनी ने करतल पर मुख-कमल को रखकर लंबी साँस ली तथा देर तक रोती रही, तत्पश्चात् फूल की माला उठाकर फेंक दी।

ख. कत न कंत आयो अली लाजन बूझि सकै न।
नवल बाल पलिका परी पलक न लागत नैन॥

—रसराज, १५८

उत्कलिका—गद्यकाव्य का एक भेद। [दे० गद्य]

उत्का—नायिका का एक भेद। इसका अन्य नाम उत्कंठिता है। [दे० उत्कंठिता] जब आने का निश्चय करके भी उसका प्रिय न आए और इससे जो नायिका दुःखित हो, उसे उत्का कहते हैं।

उत्तमकाव्य—काव्य का एक भेद, जिसमें वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ का प्राधान्य हो। [दे० काव्य-भेद]

उत्तम नायक—प्रकृति के अनुसार किया गया नायक का एक भेद। यह विनम्र, त्यागी, दक्ष, प्रियंवद, वार्त्तालाप में चतुर, युवक, बुद्धिमान्, उत्साही और मान से युक्त होता है। [दे० नायक]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तमा—नायिका का एक प्रकार । [दे० नायिका-भेद] प्रिय के दोष को देखकर भी क्रोध न करनेवाली नायिका उत्तमा है ।

भानुदत्त के अनुसार प्रिय-द्वारा किए गए अहित को जानकर भी उसका हित करनेवाली नायिका उत्तमा कही जाती है ।

अहितकारिण्यपि प्रियतमे हितकारिण्युत्तमा ।

—रसमंजरी, पृ० १५८

सुपिय-दोष लखि-सुनि जु तिय, धरै न हिय में रोष ।
ताहि उत्तमा कहत हैं, सुकबि सबै निरदोष ॥

—जगद्विनोद, २६६

उदाहरण—

क. पतिश्शयनमागतः कुचविचित्रितोरस्थलः
प्रसन्नवचनामृतैरयमतपि वामभ्रुवा ।
अर्चचि सुभगस्मितद्युतिपटीरपंकद्रवै-
रपूजि विलसद्विलोचनचमत्कृतैरंबुजैः ॥ —रसमंजरी, ८६

अन्य स्त्री के गाढ़ आलिंगन से चित्रित वक्षवाले प्रिय को शयन पर आया देखकर सुंदर भौंहोंवाली नायिका ने आनंदित्र होकर उसे मीठे वचनों के अमृत से तृप्त किया । उसने अपने सुंदर मंदहास्य की प्रभा-रूपी चंदन के पंकद्रव से उसे चर्चित किया तथा अपने सुशोभित नेत्रविभ्रमों के कमलों से उसकी पूजा की ।

ख. धरति न नाह-गुनाह उर, लोचन करति न लाल ।
तिय पिय की छतियाँ लगी, बतियाँ करति रसाल ॥

—जगद्विनोद, २७१

रुद्रट—अपराधे प्रमितं या कुप्यति मुंचति च कारणात्कोपम् ।
स्निह्यति नितरां रमणे गुणकार्यात्सोत्तमा ज्ञेया ॥

—काव्यालंकार, १२/४०

उत्तमादूती—दूती का एक भेद । [दे० दूती] जो दूती मधुर वचन बोलकर नायिका का हितसाधन करे, उसे उत्तमा कहते हैं ।

मोहै जो मृदु बोलिकै मधुर वचन अभिराम ।
ताहि कहत कबिराज हैं उत्तम दूती नाम ॥

—रसराज, ३००

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हरै सोच उचरै बचन, मधुर-मधुर हित मानि।
सो उत्तम दूती कही, रस-ग्रंथन में जानि॥

—जगद्विनोद, ३६०

उदाहरण—

कालिह कलिंदी के निकट, निरखि रहे हौं जाहि।
आई खेलन फाग वह, तुम ही सों चित चाहि॥

—जगद्विनोद, ३६२

उत्तर—लोकन्यायमूलक अलंकार। जब उत्तर का चमत्कारपूर्ण वर्णन हो तो उत्तर अलंकार होता है। चूँकि इसमें कविकल्पनाजन्य या चमत्कार-पूर्ण उत्तर का वर्णन होता है, इसलिए इसे उत्तर अलंकार कहते हैं। इसमें उत्तर की विचित्रता कई रूपों में दिखाई पड़ती है।

क. उत्तर से ही प्रश्न की कल्पना करना।

ख. अनेक प्रश्नों के अनेक अप्रसिद्ध उत्तर का दिया जाना।

ग. प्रश्न से ही उत्तर का निकलना।

इस अलंकार में प्रश्नोत्तर की पटुता या चातुर्य प्रदर्शित किया जाता है।

उत्तरालंकार के प्रतिष्ठापक आचार्य रुद्रट हैं, तत्पश्चात् भोज, मम्मट, रुय्यक, शोभाकर, जयदेव, विद्याधर, विद्यानाथ, विश्वनाथ, अप्पय दीक्षित, पंडितराज जगन्नाथ तथा विश्वेश्वर पंडित ने इसका विवेचन किया।

रुद्रट ने 'काव्यालंकार' के वास्तव तथा औपम्य दोनों वर्गों के अंतर्गत इसका वर्णन किया है। इनके अनुसार उत्तर के श्रवण-मात्र से ही पूर्व वचन का निश्चय होने एव प्रश्नों से उत्तर का निश्चय होने पर उत्तर अलंकार होता है। इन्होंने वहाँ भी उत्तर अलंकार माना, जहाँ 'वक्ता ज्ञात प्रसिद्ध उपमान से भिन्न वस्तु उपमेय के पूछे जाने पर उपमान के सदृश वस्तु का कथन करता है।'

उत्तरवचनश्रवणादुन्नयनं यत्रपूर्ववचनानाम्।
क्रियते तदुत्तरं स्यात्प्रश्नादप्युत्तरं यत्र॥ —७/९३
यत्र ज्ञातादन्यत्पृष्टस्तत्त्वेन वक्ति तत्तुल्यम्।
कार्येणानन्य समख्यातेन तदुत्तरं ज्ञेयम्॥

—काव्यालंकार, ८/७२

मम्मट ने उत्तर के श्रवण-मात्र से प्रश्न की कल्पना को उत्तर कहा। इसके द्वितीय भेद में इन्होंने बताया कि इसमें प्रश्न करने पर अनेक बार अप्रसिद्ध उत्तर दिया जाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तर श्रुतिमात्रतः
प्रश्नस्योन्नयनं यत्र क्रियते तत्र वा सति ।।
असकृद्यसंभाव्यमुत्तरं स्यात्तदुत्तरम् ।।

—काव्यप्रकाश, १०/१२१

रुय्यक ने बताया कि उत्तर से ही प्रश्न का ऊहापोह करने एवं अनेक प्रश्न के अनेक असंभाव्य उत्तर देने में उत्तर अलंकार होता है। मम्मट की भांति इन्होंने भी इसके दो भेदों का कथन किया है। इनका उत्तरालंकार-निरूपण मम्मट से प्रभावित है।

उत्तरात्प्रश्नोन्नयनमसकृद् संभाव्यमुत्तरं चोत्तरम्। यत्रानुपनिबध्यमानोऽपि प्रश्न उपनिबध्यमानादुत्तरादुन्नीयते, तदेकमुत्तरम्। यत्र च प्रश्नपूर्वक संभावनीयमुत्तरं, तच्च न सकृत् तावन्मात्रेण चारुत्वाप्रतीतेः। अतश्चासकृन्निबंधे द्वितीयमुत्तरम् ।।

—अलंकार सर्वस्व, पृ० २१६

विद्याधर, विद्यानाथ तथा विश्वनाथ ने मम्मट और रुय्यक के ही विचार का अनुकरण किया।

यत्र प्रश्नपुरःसरमेवासंभाव्यमुत्तरं किमपि ।
असकृद्भवति निबद्धं तदुत्तर तावदेकत्र ।।
यत्र त्वनुपनिबद्धः प्रश्नः स्यादुत्तरोन्नेयः ।
कमपि तदीयं भेदं द्वितीयमाचक्षते सुधियः ।।

—एकावली, ८/६७-६८

उत्तरात् प्रश्न उन्मेषो यत्र प्रश्नोत्तरे तथा ।
बहुधा च निबध्येते तदुत्तरमुदीर्यते ।।

—प्रतापरुद्रीय, पृ० ३२७

उत्तरं प्रश्नस्योत्तरादुन्नयो यदि ।
यच्चासकृदसंभाव्यं सत्यपि प्रश्न उत्तरम् ।।

—साहित्य-दर्पण, १०/८२

जयदेव ने इस अलंकार का नाम प्रश्नोत्तर रखा है। इनके अनुसार क्रमशः प्रश्नोत्तर के कथन में आगे-आगे उत्तर की संलग्नता प्रश्नोत्तर अलंकार है।

प्रश्नोत्तरं क्रमेणोक्तौ स्यूतमुत्तरमुत्तरम् ।।

—चंद्रालोक, ५/१०८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दीक्षित ने बताया कि जब विशेष अभिप्राय से गूढ़ उत्तर दिया जाय तो वहाँ उत्तर अलंकार होगा। इनके मत से श्लिष्ट शब्दों के प्रयोग से इसमें विशेष सौंदर्याधान होता है। दीक्षित ने इसके अन्य दो भेदों का भी उल्लेख किया है—निबद्ध प्रश्नोत्तर तथा चित्रोत्तर। चित्रोत्तर में प्रश्न तथा अन्य उत्तर से मिश्रित उत्तर देने का वर्णन होता है और जब प्रश्न तथा उत्तर एक स्थल पर निबद्ध हो तो वहाँ निबद्ध प्रश्नोत्तर होगा।

किंचिदाकूतसहितं स्यात् गूढ़ोत्तरमुत्तरम्।
प्रश्नोत्तराभिन्नमुत्तरं चित्रमुच्यते ॥

—कुवलयानंद, १४९-५०

पंडितराज ने प्रश्न के प्रतिबंधक ज्ञान के विषयीभूत अर्थ को उत्तर अलंकार कहा। इनका अभिप्राय यह है कि किसी पदार्थ का ज्ञान हो जाने के बाद प्रश्न करना बंद कर दिया जाय तो वहाँ उत्तर अलंकार होगा।

प्रश्नप्रतिबंधकज्ञानविषयीभूतोऽर्थ उत्तरम्। प्रश्नोत्तरयोराकूत गर्भत्वे तावतैव चमत्कारान्नासकृदुपादानापेक्षा। आकूतविरहेत्वसकृदुपादानकृतश्चमत्कारोऽपेक्ष्यते निबद्धप्रश्ने। —रसगंगाधर, पृ० ७०३

विश्वेश्वर पंडित ने मम्मट के आधार पर उत्तर अलंकार का वर्णन किया है।

उत्तरमात्रात्प्रश्नोन्नयने स्यादुत्तरं नाम। यत्र प्रतिवाक्यश्रवणादेव प्रश्नवाक्यं कलयते तदुत्तरं नामालंकारः। प्रश्ने लोकाविदितोत्तरस्य तच्चासकृत्प्रोक्तौ।

—अलंकारकौस्तुभ, पृ० ३६२-६३

रीतिकालीन आचार्यों का उत्तर-विवेचन मम्मट, विद्यानाथ, जयदेव तथा कुवलयानंद पर आधृत है।

चिंतामणि ने 'काव्यप्रकाश' के लक्षण का अनुवाद किया और कुलपति ने 'प्रतापरुद्रीय' के लक्षण का भावानुवाद प्रस्तुत किया। महाराज जसवंत सिंह, मतिराम, दास तथा पद्माकर 'कुवलयानंद' के ऋणी हैं।

उत्तर सुनि जहां प्रश्न को अटक रही ते ज्ञान।
कहुं पिष्टा उत्तर कथन प्रश्नोत्तर सज्ञान ॥

—कविकुलकल्पतरु, ३/२७१

उत्तर में ते प्रश्न पुनि, प्रश्नहिं पहिले होय।
उत्तर प्रश्न बहुत जहाँ, उत्तर कहिये सोय ॥

—रसरहस्य, ८/१७५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गूढ़ोत्तर कछु भाव तें उत्तर दीन्हें होत ।
चित्रप्रस्न उत्तर दुहू एकबचन में सोइ ॥
—भाषाभूषण, १७६-७७

अभिप्राय सौं सहित जो उत्तर कोऊ देय ।
तिहि गूढ़ोत्तर कहत हैं सुकवि सरस्वति सेय ॥
—ललितललाम, ३४८

जहँ बूझत कछु बात कौं, उत्तर सोई बात ।
चित्र कहत 'मतिराम' कबि सकल सुमति अवदात ॥
बहुती बातन को जहाँ उत्तर दीजे एक ।
चित्र बखानत हैं तहाँ कबि जन बुद्धि बिबेक ॥
—वही, ३५०,३५३

गूढ़ोत्तर उत्तर जहाँ साभिप्राय उचार ।
चित्रबचन जो प्रस्न को उत्तर वहै प्रकास ॥
उत्तर इक बहु प्रस्न को, चित्र कहो को स्याम ॥
—पद्माभरण

भेद—रुद्रट ने उत्तरालंकार के भेदों का वर्णन किया है। भोज इसके छह भेदों का कथन करते हैं—अंतःप्रश्न, बहिःप्रश्न, बहिरंतरप्रश्न, जातिप्रश्न, पृष्टप्रश्न एवं उत्तरप्रश्न। मम्मटादि ने दो भेदों का कथन किया है और दीक्षित ने तीन भेदों का उल्लेख किया।

क. अभिप्राययुक्त गूढ़ उत्तर का वर्णन,

ख. प्रश्न एवं अन्य उत्तर से मिश्रित उत्तर देने में चित्रोत्तर,

ग. प्रश्न और उत्तर के एक स्थल पर निबद्ध होने में निबद्ध प्रश्नोत्तर।

पंडितराज ने आठ भेदों का उल्लेख किया है। उन्नीतप्रश्न तथा निबद्धप्रश्न। इनमें से प्रत्येक के साभिप्राय और निरभिप्राय के नाम से दो-दो प्रकार होने से चार भेद हुए। इनके अतिरिक्त अन्य प्रकार भी वर्णित हैं।

उत्तर के मुख्यतः दो भेद किए गए हैं—

प्रथम उत्तर—जहाँ उत्तर से ही प्रश्न की कल्पना की जाय।

द्वितीय उत्तर—अनेक प्रश्नों के अनेक असंभाव्य या अप्रसिद्ध उत्तर देने में द्वितीय उत्तर होगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उदाहरण—प्रथम उत्तर का :

क. वीक्षितुं न क्षमा श्वश्रूः स्वामी दूरतरं गतः ।
अहमेकाकिनीबाला तवेह वसतिः कुतः ॥

"सास देखने में असमर्थ है और पति परदेश गए हैं। मैं बाला एकाकिनी हूँ। तुम्हें यहाँ रहने का स्थान कैसे मिल सकता है ?"

यहाँ नायिका के उत्तर से ही पथिक के स्थान माँगने का प्रश्न सूचित होता है।

ख. बाल ! कहा लाली भई, लोयन कोयन मांह !
लाल ! तिहारे दृगन की, परी दृगन महँ छाँह ॥ —बिहारी

ग. पूछ रहे हो घर में रहना, सास नहीं घर, नाथ विदेश ।
मैं अबला बाला एकाकिनि, दूँ कैसे तुमको आदेश ॥

यहाँ उत्तर से पता चलता है कि कोई रहने के लिए स्थान माँग रहा है।

द्वितीय उत्तर—

क. का विषमा दैवगतिः किं लब्धव्यं यज्जनो गुणग्राही ।
किं सौख्यं सुकलत्रं किं दुःखं यत् खलो लोकः ॥

सबसे विषम क्या है ? दैव की गति । पाने योग्य क्या है ? गुणग्राही-जन । सुख क्या है ? उत्तम स्त्री । दुःख क्या है ? दुष्ट व्यक्ति । यहाँ कई प्रश्नों के असंभाव्य उत्तर दिए गए हैं।

ख. गौरव क्या है ? जन भार वहन करना ही ।
सुख क्या है ? बढ़कर दुःख सहन करना ही ॥ —गुप्तजी

यदि प्रश्न के वाक्य से ही उत्तर प्रकट हों या बहुत से प्रश्नों का एक उत्तर हो तो वहाँ तीसरा भेद होगा।

ग. कहलाने एकत बसत, अहि, मयूर, मृग, बाघ ।
जगत तपोबन सों कियो, दीरघ दाघ निदाघ ॥ —बिहारी ।

प्रश्न—सर्प, मोर, मृग और बाघ एक साथ क्यों (कहलाने) रहते हैं ?

उत्तर—गर्मी से व्याकुल (कहलाने) होकर। अनेक प्रश्नों का एक उत्तर।

घ. पाठ गया क्यों भूल ? क्यों भाजन दीखत मलिन ?
कट्यौ पतंग क्यों मूल ? कह बिहार मांजा नहीं ॥

पाठ क्यों भूला, बर्त्तन क्यों मैला हुआ और पतंग क्यों कटी ? ये तीन प्रश्न हैं। इनका उत्तर है कि माँजा नहीं था।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तर और काव्यलिंग—दोनों में ही एक के कथन से दूसरे का बोध होना वर्णित होता है। काव्यलिंग में एक कथन दूसरे कथन का कारक हेतु होता है; पर उत्तर में एक कथन दूसरे कथन का ज्ञापक हेतु। काव्यलिंग में कारण से कार्य की उत्पत्ति का वर्णन होता है; किंतु उत्तर अलंकार में प्रश्न से उत्तर का उद्भव नहीं होता, अपितु उसके पूर्व अस्तित्व का संकेत प्राप्त होता है तथा प्रतिवचन से प्रश्न की कल्पना की जाती है। काव्यलिंग में कारण तथा कार्य दोनों वर्णित होते हैं; पर उत्तर में कारण-रूप उत्तर का कथन किया जाता है और पाठक स्वयं प्रश्न की कल्पना कर लेता है।

उत्तर और अनुमान—दोनों ही अलंकारों में ज्ञापक हेतु विद्यमान रहता है, जिससे किसी तथ्य का उद्भावन होता है। अनुमान में साध्य और साधन, दोनों की ही अभिव्यक्ति अनेक शब्दों द्वारा होती है। उत्तर में एकधर्मी में स्थित साध्य एवं साधन का निर्देश नहीं होता। इसमें साधन-मात्र या उत्तर का ही वर्णन किया जाता है और साध्य-रूपी प्रश्न की कल्पना अपने आप की जाती है।

उत्पत्तिवाद—[**दे० रस-निष्पत्ति**] [**भट्ट लोल्लट का मत**]

उत्पादक कवि—कवियों का एक प्रकार। मौलिकतामूलक कवि-भेद। रचना की मौलिकता की दृष्टि से कवियों के चार प्रकार किए गए हैं, उनमें एक प्रकार उत्पादक कवि का है। [**दे० कवि**] जो कवि किसी का भाव-ग्रहण नहीं करता तथा अपनी प्रतिभा-द्वारा काव्य में नूतन कल्पना एवं नवीन अर्थ का सन्निवेश करता है, उसे उत्पादक कवि कहते हैं।

उत्पाद्य—वस्तु या कथा (इतिवृत्त) का एक भेद अर्थात् काल्पनिक कथा। [**दे० वस्तु**]

उत्पाद्य लावण्य—प्रकरणवक्रता का द्वितीय भेद। [**दे० प्रकरणवक्रता**]

उत्प्रेक्षा—सादृश्यमूलक अलंकार।

प्रस्तुत में अप्रस्तुत की संभावना को उत्प्रेक्षालंकार कहते हैं। 'उत्प्रेक्षा' शब्द उत् + प्र + ईक्षा के योग से बना है, जिसका अर्थ है उत्कृष्ट पदार्थ की संभावना या बलपूर्वक देखना। उत्प्रेक्षा में उपमान या अप्रस्तुत को प्रकृष्ट रूप से देखने का वर्णन होता है। यहाँ देखना संभावना का वाचक है।

उत्कृष्टा प्रकृष्टस्योपमानस्येक्षाज्ञानमुत्प्रेक्षा।

—उद्योत, पृ० ४५८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रकृत या उपमेय की अप्रकृत या उपमान के रूप में संभावना ही उत्प्रेक्षा है; यदि वह संभावना सादृश्यमूलक होगी तभी यह अलंकार घटित होगा, असादृश्यमूलक होने पर नहीं।

एवं चासदृशयोः संभावनं नोत्प्रेक्षालंकार सादृश्यातिरिक्तमूलस्मरणादिवत् किं तु वस्तुमात्रमिति फलितम्। —बालबोधिनी, पृ० ५८५

उत्प्रेक्षा अत्यंत प्रसिद्ध अलंकार है, जिसका वर्णन सभी आचार्यों ने किया है। भामह के अनुसार उत्प्रेक्षा में सामान्य की विवक्षा नहीं रहती (कवि का ध्यान संभावना पर रहता है); पर उसमें सादृश्य या उपमा का किंचित् योग होता है। इसमें उपमेय में जिस गुण एवं क्रिया का अभाव हो, उसकी उसमें संभावना की जाय तथा वह (उत्प्रेक्षा) अतिशयोक्ति से युक्त रहे।

अविवक्षित सामान्या किंचिच्चोपमया सह।
अतद्गुणक्रिया योगादुत्प्रेक्षातिशयान्विता॥

—काव्यालंकार, २/९१

दंडी ने बताया कि जब अन्य प्रकार से स्थित चेतन अथवा अचेतन पदार्थ की अन्य प्रकार की वस्तु के रूप में संभावना करें तो वहाँ उत्प्रेक्षा होगी। प्रस्तुत में अप्रस्तुत की संभावना का वर्णन कर दंडी ने उत्प्रेक्षा के स्वरूप को स्पष्ट कर दिया।

अन्यथैव स्थिता वृत्तिश्चेतनस्येतरस्य वा।
अन्यथोत्प्रेक्ष्यते यत्र तामुत्प्रेक्षा विदुर्यथा॥

—काव्यादर्श, २/२२१

दंडी ने उत्प्रेक्षा के वाचक शब्दों में मन्ये, शंके, ध्रुवम्, प्रायः आदि का कथन किया।

मन्ये शंके ध्रुवंप्रायो नूनमित्येवमादयः।
उत्प्रेक्षा व्यंज्यते शब्दैरिव शब्दोऽपि तादृशः॥—वही, २/८,३३

उद्भट ने दो लक्षण प्रस्तुत किए। प्रथम तो भामह से प्रभावित हैं; पर द्वितीय में नवीन तथ्य प्रकट किए गए हैं। इनके अनुसार लोकातिक्रांत संभावना को उत्प्रेक्षा कहते हैं। उद्भट संभावना और उत्प्रेक्षा को अभिन्न मानते हैं।

साम्यरूपाविवक्षायां वाच्येवाद्यात्मभिः पदैः।
अतद्गुणक्रियायोगादुत्प्रेक्षातिशयान्विता॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लोकातिक्रांतविषयाभावाभावाभिमानतः ।
संभावनेयमुत्प्रेक्षा वाच्येवादिभिरुच्यते ।।

—काव्यालंकारसारसंग्रह, ३/३,४

वामन के मत से जो वस्तु जैसी न हो, उसके अतिशय सौंदर्य को द्योतित करने के लिए अपने यथार्थ रूप से भिन्न रूप में संभावना करना उत्प्रेक्षा है। ये अतद्रूप के अन्यथा अध्यवसान को उत्प्रेक्षा कहते हैं।

अतद्रूपस्यान्यथाध्यवसानमतिशयार्थमुत्प्रेक्षा ।।

—काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, ४/३,६

रुद्रट के अनुसार उपमान तथा उपमेय में अतिशय सादृश्य के कारण, उपमान के प्रसिद्ध होने से उसमें अभेदस्थापन तथा असंभव होने पर भी उपमान के गुण और क्रिया के उपमेय में आरोप को उत्प्रेक्षा कहते हैं।

अतिसारूप्यादैक्यं विधाय विद्धोपमानसद्भावम् ।
आरोप्यते च तस्मिन्नतद्गुणादीति उत्प्रेक्षा ।।
सान्येत्युपमेयगतं यस्या संभाव्यतेऽन्यदुपमेयम् ।
उपमानप्रतिबद्धापरोपमानस्य तत्त्वेन ।।
यत्रातितथाभूते संभाव्येत क्रियाद्यसंभाव्यम् ।
संभूतमतद्वति वा विज्ञेया सेयमुत्प्रेक्षा ।।

—काव्यालंकार, ८/३२,८/३४,६/११

भोज तथा अग्निपुराणकार ने दंडी के ही मत का अनुवर्त्तन किया है।

अन्यथोपपस्थितावृत्तिश्चेतनस्येतरस्य च ।
अन्यथा मन्यते यत्र तामुत्प्रेक्षां प्रचक्षते ।।

—सरस्वतीकंठाभरण, ४/५०

अन्यथोपस्थितावृत्तिश्चेतनस्येतरस्य वा ।
अन्यथा मन्यते यत्र तामुत्प्रेक्षां प्रचक्षते ।।

—अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग, ८/२४

मम्मट ने पूर्ववर्ती विवेचन का समाहार करते हुए उत्प्रेक्षा का लक्षण प्रस्तुत किया। इनके अनुसार प्रकृत की अप्रकृत के साथ एकरूपता या तादात्म्य की संभावना को उत्प्रेक्षा कहते हैं।

संभावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत् ।

—काव्यप्रकाश, १०/९२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रुय्यक ने संभावना तथा अध्यवसाय के स्थान पर साध्य अध्यवसाय का प्रयोग किया। इनके अनुसार अध्यवसाय व्यापार की प्रधानता को उत्प्रेक्षा कहते हैं। इन्होंने अप्रकृत (उपमान) के गुणक्रियादि के रूप में प्रकृत की संभावना को उत्प्रेक्षा कहा। रुय्यक ने उत्प्रेक्षा के ९६ भेदों का कथन किया है—

अध्यवसाये व्यापारप्राधान्ये उत्प्रेक्षा। विषयनिगरणेनाभेदप्रतिपत्तिर्विषयिणोऽध्यवसायः। स च द्विविधः साध्यः सिद्धश्च। साध्यो यत्र विषयिणोऽसत्यतया प्रतीतिः। असत्यत्वं च विषयिगतस्य धर्मस्य विषय उपनिबंधे, विषयिसंभवित्वेन विषयासंभवित्वेन च प्रतीतेः। धर्मोगुणक्रियारूपः तस्य संभवासंभवप्रतीतौ संभवाश्रयस्य तत्रापरमार्थतया सत्यत्वम्।....तदेवमप्रकृतगुणक्रियाभिसंबंधादप्रकृतत्वेन प्रकृतस्य संभावना उत्प्रेक्षा। —अलंकारसर्वस्व, पृ० ७१,७२

परवर्ती आचार्यों में विद्याधर, विद्यानाथ तथा विश्वनाथ ने रुय्यक के आधार पर उत्प्रेक्षा का विवेचन किया।

अप्रकृतत्वेन स्यादध्यवसायो गुणाभिसंबंधात्।
साध्यः प्रकृतस्य यदा कथितोत्प्रेक्षा तदा तज्ज्ञैः॥
—एकावली, ८/१२

यत्रान्यधर्मसंबंधादन्यत्वेनोपतर्कितम्।
प्रकृतं हि भवेत् प्राज्ञास्तामुत्प्रेक्षां प्रचक्षते॥
—प्रतापरुद्रीय, पृ० २७८

भवेत्संभावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना।
वाच्या प्रतीयमाना सा प्रथमं द्विविधा मता॥
—साहित्यदर्पण, १०/४०

जयदेव के मत से वस्तु, हेतु तथा फल के कारण एक वस्तु की अन्य वस्तु के रूप में संभावना करना उत्प्रेक्षालंकार है।

उत्प्रेक्षोन्नीयते यत्र हेत्वादिर्निह्नुतिं विना।
इवादिकपदाभावे गूढोत्प्रेक्षां प्रचक्षते॥
—चंद्रालोक, ५/२९,३०

शोभाकर मित्र ने विषय का विषयी के रूप में संभावना करने को उत्प्रेक्षा कहा। इनके मत से उत्प्रेक्षा में अध्यवसानगर्भत्व न होकर अनिश्चयात्मक संभावना होती है तथा इसके मूल में संदेह होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विषयित्वेन संभावनमुत्प्रेक्षा ॥३२

विषयित्वेनार्थाद् विषयस्य संभावनं भवितव्यमनेन स्थाणुनेत्याद्यनिश्चयात्मक-वितर्कादिशब्दाभिधेयसंभावनाप्रत्ययविषयीकृतत्वमुत्प्रेक्षा। अतश्चानिश्चयात्मकतया संभावनायाः संदेहमूलत्वं न त्वध्यवसायगर्भता। —अलंकाररत्नाकर, पृ० ४७

अप्पय दीक्षित ने प्रस्तुत की अप्रस्तुत के साथ वस्तु, हेतु या फल के रूप में संभावना करने को उत्प्रेक्षा कहा।

संभावना स्यादुत्प्रेक्षा वस्तुहेतुफलात्मना।

—कुवलयानंद, ३२

पंडितराज के लक्षण में संभावना पर बल दिया गया। इन्होंने कहा कि जिसका जिस पदार्थ से भिन्न होना यथार्थतया ज्ञात हो, उस पदार्थ की वैसे भिन्न पदार्थ के रूप में की जानेवाली ऐसी संभावना, जो उन दोनों पदार्थों में किसी सुंदर धर्म को निमित्त मानकर की गई है।

तद्भिन्नत्वेन तदभावत्वेन वा प्रमितस्य पदार्थस्य रमणीयतद्वृत्तितत्समानाधिकरणान्यतरतद्धर्मसंबधनिमित्तकं तत्त्वेन तद्वत्त्वेन वा संभावनमुत्प्रेक्षा।

—रसगंगाधर, पृ० ३७४,७५

विश्वेश्वर पंडित ने संभावना और सादृश्य को उत्प्रेक्षा के लिए आवश्यक माना और संदेहालंकार की अतिव्याप्ति के लिए लक्षण में 'उत्कटकोटि' विशेषण का समावेश किया।

संभाव्यते सह यदा साम्यप्रतियोगिना तदुपमेयम्।
तामुत्प्रेक्षामाहुर्भिन्ना हेत्वादिविषयत्वात्॥

—अलंकारकौस्तुभ, पृ० १८०

संभावनपदस्योत्कटकोटिकसंदेहार्थत्वात्……संदेहालंकारेऽतिव्याप्तिवारणाय उत्कटकोटि विशेषणम्॥ —वही, पृ० १८१

भामह से विश्वेश्वर पंडित तक उत्प्रेक्षा के स्वरूप-निरूपण में अध्यवसान, संभावना एवं आरोप का प्रयोग कर इसके क्षेत्र का विस्तार हुआ।

रीतिकालीन आचार्यों ने उत्प्रेक्षा के विवेचन में विद्यानाथ, विश्वनाथ तथा अप्पय दीक्षित को आधार बनाया। केशव ने अन्य वस्तु में अन्य वस्तु के तर्क किए जाने को उत्प्रेक्षा कहा है।

केशव और वस्तु में और कीजिए तर्क।
उत्प्रेक्षा तासों कहैं जिनकी बुद्धि समर्थ॥

—कविप्रिया, ६/३०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चिंतामणि ने विद्यानाथ के लक्षण का भावानुवाद किया है और कुलपति ने अपना स्वतंत्र लक्षण प्रस्तुत किया।

सदृस धर्म सो अन्यता संभावन यों होइ।
वर्ण्यमान कछु वस्तु को उत्प्रेच्छा कहि सोइ ।।

—कविकुलकल्पतरु, ३/२६

संशय में जो सांच सों, तेहि विधि को उपमान।
अधिक होय उपमेय तें, सो उत्प्रेक्षा जान ।।

—रसरहस्य, ८/३४

जसवंत सिंह, मतिराम और पद्माकर ने 'कुवलयानंद' के लक्षण का भावानुवाद प्रस्तुत कर उत्प्रेक्षा का निरूपण किया।

उत्प्रेक्षा संभावना बस्तु हेतु फल लेखि ।।

—भाषाभूषण, ६७

जहं कीजे संभावना सो उत्प्रेक्षा जानि।
बस्तु-हेतु फल रूप ते ताको त्रिबिध बखानि ।।

—ललितललाम, १०७

कीजै जहं संभावना, बस्तु हेतु फल माह।
उत्प्रेक्षा तासों कहत जे सुकबिन के नाह ।।

—पद्माभरण, ५४

भेद-वर्णन—भामह से लेकर विश्वनाथ तक उत्प्रेक्षा का भेद-विस्तार होता रहा और उनकी संख्या १७४ तक पहुँच गई।

उत्प्रेक्षा का भेद-विस्तार उद्भट से प्रारंभ हुआ तथा रुद्रट, भोज, रुय्यक, विद्यानाथ और विश्वनाथ ने इसमें वृद्धि की। दीक्षित और पंडितराज तक आकर इसकी स्थिति व्यवस्थित हो गई और भेदों का विस्तार परिमित हो गया। उद्भट ने भाव तथा अभाव के आधार पर दो भेदों का वर्णन किया। भोज ने द्रव्य, गुण, क्रिया के आधार पर द्रव्योत्प्रेक्षा, गुणोत्प्रेक्षा और क्रियोत्प्रेक्षा नामक भेदों का वर्णन किया है। रुय्यक ने उत्प्रेक्षा का भेद-विस्तार करते हुए छियानबे प्रकारों का उल्लेख किया। पहले वाच्या तथा प्रतीयमाना के नाम से दो भेद किए गए। वाच्योत्प्रेक्षा के जाति, गुण, क्रिया तथा द्रव्य के आधार पर चार प्रकार किए गए तथा प्रत्येक के भाव और अभाव के कारण आठ प्रकार हुए। इनके गुण और क्रिया के निमित्त से सोलह प्रकार किए गए और उत्पादन तथा अनुपादान के आधार पर बत्तीस

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रकार हुए और इनके भी स्वरूप, हेतु और फल के आधार पर छिआनबे भेदों की कल्पना की गई।

सा च वाच्या इवादिभिः प्रदर्श्यते। प्रतीयमानं पुनरिवाद्य प्रयोगः। सा च जातिक्रियागुणद्रव्याणामप्रकृतामध्यवसेयत्वेन चतुर्धा। प्रकृतस्यैतद्भेद-योगेऽपि न वैचित्र्यमिति न ते गणिताः। प्रत्येकं च भावाभावाभिमानरूपतया द्वैविध्येऽष्टविधत्वम्। भेदाष्टकस्य च प्रत्येकं निमित्तस्यगुणक्रियारूपकत्वे षोडशभेदाः। तेषां च प्रत्येकं निमित्तस्योपादानानुपादानाभ्यां द्वात्रिंशत्प्रभेदा तेषु च प्रत्येकं निमित्तस्योपादानानुपादानाभ्यां द्वात्रिंशत्प्रभेदः तेषु च प्रत्येकं हेतुस्वरूपकत्वे फलोत्प्रेक्षणरूपत्वेन षण्णवतिर्भेदाः॥

—अलंकारसर्वस्व, पृ० ७२

विश्वनाथ ने वाच्योत्प्रेक्षा के ५६ भेद किए हैं और इनके भी प्रस्तुत के प्रतिपादन और अप्रतिपादन के कारण ११२ भेद हुए। प्रतीयमान के ६४ भेद हैं और इस प्रकार उत्प्रेक्षा के १७६ प्रकार हुए।

वाच्या प्रतीयमाना सा प्रथमं द्विविधा मता।
वाच्येवादिप्रयोगे स्यादप्रयोगे परा पुनः॥
जातिर्गुणः क्रिया द्रव्यं यदुत्प्रेक्ष्यं द्वयोरपि।
तदष्टधाणि प्रत्येकं भावाभावाभिमानतः।
गुणक्रियास्वरूपत्वान्निमित्तस्य पुनश्च ताः॥
द्वात्रिंशद्विधतां यांति तत्र वाच्याभिधापुनः।
विना द्रव्यं त्रिधासर्वाः स्वरूपफलहेतुगाः॥
उक्त्यनुक्त्येः प्रस्तुतस्य प्रत्येकं ता अपि द्विधा॥

—साहित्यदर्पण, १०/४०-४५

दीक्षित ने 'कुवलयानंद' में उत्प्रेक्षा के छह भेदों का वर्णन कर इसके भेदों की संख्या परिमित कर दी और कालांतर में ये ही भेद मान्य हुए। उप्रेक्षा के मुख्य तीन भेद किए गए—वस्तूत्प्रेक्षा, हेतूत्प्रेक्षा तथा फलोत्प्रेक्षा। वस्तूत्प्रेक्षा के उक्तविषया और अनुक्तविषया तथा हेतूत्प्रेक्षा और फलोत्प्रेक्षा के सिद्धास्पदा एवं असिद्धास्पदा के नाम से चार भेद होने पर कुल छह भेद हुए। इन सभी भेदों में वाचक शब्दों का प्रयोग होता है और वाचक शब्द के बिना जो उत्प्रेक्षा होती है, उसे गम्योत्प्रेक्षा कहते हैं। पंडितराज ने भी इन्हीं भेदों को मान्यता दी है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१. वस्तूत्प्रेक्षा—जब एक वस्तु में दूसरी वस्तु की संभावना की जाय तो वस्तूत्प्रेक्षा होगी। इसके भी दो प्रकार हैं—उक्तविषया एवं अनुक्तविषया।

(अ) उक्तविषयावस्तूत्प्रेक्षा—जब उत्प्रेक्षा के विषय का पहले कथन कर बाद में उसकी संभावना का वर्णन किया जाय तो उक्तविषयवस्तूत्प्रेक्षा होगी।

क. धूमस्तोमं तमः शंके कोकीविरहशुष्मणाम् ॥

"संध्याकाल का अंधकार ऐसा लगता है, मानो यह चक्रवाकी के विरह का धुआँ हो।" यहाँ संध्याकाल के अंधकार का पहले कथन कर बाद में उसकी संभावना का वर्णन करने में उक्तविषयावस्तूत्प्रेक्षा हुई।

ख. सोहत ओढ़े पीत पट स्याम सलोने गात।
मनो नीलमणि सैल पर आतप पर्‌यौ प्रभात ॥ —बिहारी।

यहाँ पीतांबर ओढ़े श्रीकृष्ण की कल्पना नीलमणि पर्वत पर पड़नेवाले प्रभात से करने में वस्तूत्प्रेक्षा है। विषय का प्रथम कथन कर बाद में उसकी उत्प्रेक्षा करने में उक्तविषया है।

(आ) अनुक्तविषयावस्तूत्प्रेक्षा—जब उत्प्रेक्षा के बिना कथन किए ही उत्प्रेक्षा या संभावना की जाय तो अनुक्तविषया उत्प्रेक्षा होगी।

क. लिंपतीव तमोऽगानि वर्षतीवांजनं नभः ॥

रात्रि का अंधकार क्या है, मानो अँधेरा अंगों को लीप रहा हो। यहाँ अंधकार का बिना कथन किए ही काजल की वर्षा और अंधेरा के लेपन-कार्य के रूप में संभावना का वर्णन होने से अनुक्तविषयावस्तूत्प्रेक्षा हुई।

ख. अंजन बरसत गगन यह मानो अथये भानु ॥

२. हेतूत्प्रेक्षा—जब अहेतु में हेतु की संभावना की जाय अर्थात् जो जिसका कारण नहीं है, उसे उसका कारण मान लिया जाय तो वहाँ हेतूत्प्रेक्षा होगी। इसके दो प्रकार हैं—सिद्धास्पदा और असिद्धास्पदा।

सिद्धास्पदाहेतूत्प्रेक्षा—जब उत्प्रेक्षा का विषय सिद्ध या सत्य हो तो सिद्धास्पदाहेतूत्प्रेक्षा होगी।

क. रक्तौ नवांघ्री मृदुलौ भुवि निक्षेपणाद् ध्रुवम् ॥

ख. मनो कठिन आँगन चली ताते राते पाँव ॥

यहाँ नायिका के स्वाभाविक अरुण चरणों के पृथ्वी पर चलने से रक्तिम होने के वर्णन में हेतूत्प्रेक्षा है, इसलिए सिद्धास्पदाहेतूत्प्रेक्षा हुई।

असिद्धास्पदाहेतूत्प्रेक्षा—जब उत्प्रेक्षा का आधार असिद्ध या असत्य हो तो असिद्धास्पदाहेतूत्प्रेक्षा होगी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क. त्वन्मुखामेच्छया नूनं पद्मैर्वैरायतेशशी ।।

हे सुंदरि, यह चंद्र तुम्हारे मुख की शोभा को प्राप्त करने के लिए सौंदर्य से युक्त कमल से बैर कर रहा है। चंद्रमा के उदय होने पर कमल का बंद होना स्वाभाविक है; पर कवि इस प्रकार की कल्पना करता है कि चंद्रमा कमलों से बैर करने के कारण उन्हें बंद कर रहा है। यह कल्पना असत्य या असिद्ध है।

ख. भाल लाल बेंदी ललन, आखर रहे विराजि।
इंदुकला कुज में बसी, मनहु राहु-भय भाजि ।। —बिहारी।

नायिका के ललाट पर स्थित बेंदी में अक्षत (आखत) ऐसे शोभते हैं मानो चंद्र-किरण राहु के भय से मंगल में जाकर बसी हो। यह कल्पना असिद्ध या असत्य है।

२. फलोत्प्रेक्षा—जहाँ अफल में फल की संभावना की जाय, वहाँ फलोत्प्रेक्षा होती है। इसमें जो जिसका वास्तविक फल या उद्देश्य नहीं होता, उसे भी मान लिया जाता है। इसके दो प्रकार हैं—सिद्धास्पदाफलोत्प्रेक्षा तथा असिद्धास्पदाफलोत्प्रेक्षा।

सिद्धास्पदाफलोत्प्रेक्षा—जहाँ फल का आधार सत्य या संभव हो, वहाँ सिद्धास्पदा फलोत्प्रेक्षा होती है।

क. मध्यः किं कुचयोर्धृत्यैर्बद्धः कनकदामभिः ।।

"हे सुंदरि, क्या तुम्हारे स्तनों को धारण करने के लिए ही कटि प्रदेश या मध्य भाग को सोने की सिकड़ी (त्रिवली) से बाँध दिया गया है?" मध्य भाग में त्रिवली की रचना स्तनों को बाँधने के लिए की गई है, यह कल्पना सत्य है।

ख. किए पीन कुच बिधि मनो, लंक लचहिं के हेत ।।

असिद्धास्पदाफलोत्प्रेक्षा—जिस उत्प्रेक्षा में फलों का आधार असिद्ध या असंभव हो, उसे असिद्धास्पदा फलोत्प्रेक्षा कहते हैं।

क. प्रायोऽब्जं त्वत्पदेनैक्यं प्राप्तुं तोये तपस्यति ।।

—हे सुंदरि, तुम्हारे चरणों की अद्वैतता या समता प्राप्त करने के लिए ही ये कमल जल में तपस्या करते हैं।

ख. तव पद समता को कमल जलसेवत इक पाय।

चरणों की शोभा की समता करने के लिए कमल का जल-सेवन करना, इस प्रकार की कल्पना असिद्ध है। हेतूत्प्रेक्षा में क्रिया किसी हेतु या कारण से कही जाती है; पर फलोत्प्रेक्षा में क्रिया का संबंध फल की इच्छा से होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

४. *गम्योत्प्रेक्षा*—जब उत्प्रेक्षा के वाचक चिह्नों का प्रयोग न हो तो गम्योत्प्रेक्षा होती है।

क. त्वत्कीर्तिर्भ्रमणश्रांता विवेश स्वर्गनिम्नगाम्।

—'आपकी कीर्त्ति भ्रमण करती हुई आकाशगंगा में समा गई।' यहाँ वाचक पद का प्रयोग नहीं है।

ख. इनहिं देखि बिधि मन अनुरागा।
पटतर जोग बनावन लागा॥
बहुत कीन्ह जब एक न आए।
इहि इरषा वनवास पठाए।—रामायण

यहाँ वाचक पदों का प्रयोग नहीं किया गया है।

५. *सापह्नोत्प्रेक्षा*—जब निषेधपूर्वक उत्प्रेक्षा की जाय तो सापह्नोत्प्रेक्षा होती है। इसमें अपह्नुति और उत्प्रेक्षा का योग होता है।

नाहिन ये पावक प्रबल, लुवैं चलैं चहुं पास।
मानहु विरह बसंत के, ग्रीषम लेत उसास॥—बिहारी

उपमा और उत्प्रेक्षा—उपमा में उपमेय तथा उपमान में समता प्रदर्शित की जाती है; किंतु उत्प्रेक्षा में प्रकृत में अप्रकृत की संभावना की जाती है।

उत्प्रेक्षा और संदेह—उत्प्रेक्षा और संदेह, दोनों में संशय होता है, किंतु संदेह का संशय दोलायमान होता है और उत्प्रेक्षा में उत्कटकोटिक या उपमान के प्रति होता है या एककोटिक रहता है। संभावना भी संशय का एक रूप है।

उत्प्रेक्षावयव—भामह-द्वारा उद्भावित एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। श्लिष्ट अर्थ से संयुक्त तथा किंचित् रूपक एवं उत्प्रेक्षा-अन्वित अलंकार को उत्प्रेक्षावयव कहते हैं।

श्लिष्टस्यार्थेन संयुक्तः किंचिदुत्प्रेक्षयान्वितः।
रूपकार्थेन च पुनरुत्प्रेक्षावयवो यथा॥

—काव्यालंकार, ३/४७-

परवर्ती आलंकारिकों ने इस अलंकार को मान्यता नहीं दी और भोज ने इसका अंतर्भाव उत्प्रेक्षा में ही कर दिया। वस्तुतः यह स्वतंत्र अलकार न होकर श्लेष, उत्प्रेक्षा और रूपक का ही मिश्रित रूप है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्प्रेक्षावयवो यश्च या चोत्प्रेक्षोपमा मता।
मतं चेति न भिद्यंते तान्युत्प्रेक्षास्वरूपतः ॥

—सरस्वतीकंठाभरण, ४/५१

उत्साह—वीररस का स्थायी भाव। [दे० वीररस] दान, दया तथा शूरता के कारण उत्तरोत्तर बढ़ते हुए मन के चाव को उत्साह कहते हैं। इसका सर्वप्रथम विवेचन भरत मुनि ने किया है। वे इसे उत्तम प्रकृति के व्यक्तियों से संबद्ध मानते हैं। उत्साह की उत्पत्ति अविषाद, शक्ति, धैर्य तथा शौर्य प्रभृति विभावों-द्वारा होती है। इसका अभिनय धैर्य, त्याग (दानशीलता) आदि अनुभावों-द्वारा होता है।

उत्साहो नाम—उत्तमप्रकृतिः । स चाविषादशक्तिधर्मशौर्यादिभिर्विभावै-रुत्पद्यते। तस्य धैर्यत्यागवैशारद्यादिभिरनुभावैरभिनयः प्रयोक्तव्यः।

—नाट्यशास्त्र, पृ० ३८३

असम्मोहादिभिर्व्यक्तो व्यवसायनयात्मकः।
उत्साहस्त्वभिनेयः स्यादप्रमादोत्थितादिभिः ॥

—वही, ७/२१

हेमचंद्र के अनुसार स्थिरतर आवेश का नाम उत्साह है।

संरंभः स्थेयानुत्साहः।—काव्यानुशासन, पृ० १२६

नाट्यदर्पणकार धर्म, दान तथा युद्धादि कार्यों के प्रति आलस्य के अभाव को उत्साह कहते हैं।

धर्मदानयुद्धादिकर्मण्यनालस्यं उत्साहः।

—नाट्यदर्पण, ३/१२६, पृ० ३३०

विद्यानाथ लोकोत्तर कार्यों में अत्यधिक स्थिरता के प्रयत्न को उत्साह कहते हैं।

लोकोत्तरेषु कार्येषु स्थेयान् प्रयत्नः उत्साहः।

—प्रतापरुद्रीय, पृ० १६६

विश्वनाथ के अनुसार कार्यारंभ में अत्यंत स्थिर हृदय के आवेग को उत्साह कहते हैं।

कार्यारंभेषु संरंभः स्थेयानुत्साह उच्यते॥

—साहित्यदर्पण, ३/१७८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भानुदत्त ने शौर्य (शूरता), दान, दया में से किसी एक के कारण उत्पन्न होनेवाले परिमित मनोविकार को उत्साह कहा है।

शौर्यदानदयान्यतमकृतः परिमितो मनोविकार उत्साहः।

—रसतरंगिणी, पृ० २३२

पंडितराज जगन्नाथ दूसरे के पराक्रम तथा दान आदि के स्मरण से उत्पन्न औन्नत्य नामक चित्तवृत्ति को उत्साह कहते हैं।

परपराक्रमदानादिस्मृतिजन्मा औन्नत्याख्य उत्साहः।

—रसगंगाधर, पृ० ३९

उत्साह असाधारण कर्म की ओर प्रवृत्त करानेवाला मनोविकार है। यह उस मनःस्थिति का द्योतक है, जिसमें व्यक्ति अध्यवसाय के लिए प्रयत्नशील रहा करता है तथा आरब्ध कार्य के प्रति उसके मन में उत्तरोत्तर आवेश बना रहता है और संबद्ध कार्य को पूर्णता की ओर ले जानेवाली प्रवृत्ति सदा विकसित होती रहती है। इसकी अभिव्यक्ति शक्ति, शौर्य तथा धैर्य के प्रदर्शन में होती है। इसके संचारी भाव हैं—हर्ष, मति, गर्व, धृति, दया तथा आवेग।

लखि उद्भट प्रतिभट जु कछु जगजगात चित चाव।
सहरष रनहित बीर को सु उतसाह थिरभाव॥

—जगद्विनोद, ५९२

उदाहरण—

क. आकर्णपलितः श्यामो वयसाऽशीतिपंचकः।
रणे पर्यचरद्द्रोणो वृद्धः षोडशवर्षवत्॥

पचासी वर्ष की अवस्था में भी श्यामवर्णवाले जिस द्रोणाचार्य के केश श्रवण तक पक चुके थे, वे वृद्ध होने पर भी रणक्षेत्र में षोडशवर्षीय किशोर की भाँति उछल रहे थे।

ख. सुनहु भानुकुल पंकज भानू। कहेउँ सुभाव न कछु अभिमानू॥
जौं तुम्हार अनुशासन पावउँ। कंदुक इव ब्रह्मांड उठावउँ॥
काँचे घट जिमि डारौं फोरी। सकउँ मेरु मूलक इव तोरी॥
तव प्रताप महिमा भगवाना। का बापुरो पिनाक पुराना॥

—रामायण

यहाँ लक्ष्मण की उक्ति में उत्साह भाव की अभिव्यक्ति हुई है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्सुकता—[दे० संचारी भाव] अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति में विलंब सहन नहीं करना उत्सुकता या औत्सुक्य है।

भरत इष्टजनों के वियोग, उनका स्मरण तथा उद्यानदर्शन प्रभृति विभावों से औत्सुक्य की उत्पत्ति मानते हैं। इसका अभिनय दीर्घनिःश्वास, नीचे मुख करने (अधोमुख), चिंतन, निद्रा, तंद्रा तथा शयन की अभिलाषा प्रभृति अनुभावों द्वारा होता है।

औत्सुक्यं नाम—इष्टजन वियोगानुस्मरणोद्यानदर्शनादिभिर्विभावैः समुत्पद्यते। तस्य दीर्घनिःश्वसिताधोमुखविंचितननिद्रातंद्राशयनाभिलाषादिभिरनुभावैरभिनयः प्रयोक्तव्यः। —नाट्यशास्त्र, ७/७०

इष्टजनस्य वियोगादौत्सुक्यं जायते ह्यनुस्मृत्या।
चिंतानिद्रातंद्रागात्रगुरुत्वैरभिनयोऽस्य ॥—वही

धनंजय ने मनोरम अभिलाषा, रमण या संभ्रम के कारण विलंब को न सह सकने को औत्सुक्य कहा है। इसके अनुभाव उच्छ्वास, त्वरा, श्वास, हृत्ताप, स्वेद, भ्रम आदि हैं।

कालाक्षमत्वमौत्सुक्यं रम्येच्छारतिसंभ्रमैः।
तत्रोच्छ्वासत्वराश्वासहृत्तापस्वेदविभ्रमाः ॥

विश्वनाथ के अनुसार अभीष्ट पदार्थ की अप्राप्ति के कारण समय के विलंब को न सह सकना औत्सुक्य है। इसके अनुभाव हैं—त्वरा, चित्ताप, स्वेद तथा दीर्घनिःश्वास आदि।

इष्टानवाप्तेरौत्सुक्यं कालाक्षेपासहिष्णुता।
चित्ततापत्वरास्वेददीर्घनिःश्वसितादिकृत् ॥

—साहित्यदर्पण, ३/१५६

भानुदत्त ने अभीष्ट या प्रिय को प्राप्त करने में विलंब न सहन करने अथवा एक ही साथ समस्त इंद्रियों को क्रियाशील कर देने को औत्सुक्य कहा है। प्रिय का स्मरण आदि इसके विभाव हैं और तंद्रा, शरीर की गुरुता आदि अनुभाव।

औत्सुक्यं कालासहिष्णुता सकलेंद्रियाणामेकदैव क्रियारंभो वा। प्रियसंस्मरणादयो विभावाः। अनुभावास्तंद्रागात्रगौरवादयः।

—रसतरंगिणी, पृ० ३६३ पंचमतरंग।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पंडितराज जगन्नाथ के अनुसार 'इसी समय मुझे यह प्राप्त हो जाय' इस प्रकार की इच्छा को औत्सुक्य कहते हैं।

'अधुनैवास्य लाभो ममास्त्विवतीच्छा औत्सुक्यम् ॥' इष्टविरहादिरत्र विभावः। त्वराचिंतादयोऽनुभावाः। —रसगंगाधर, पृ० ११२/११३

उदाहरण—

क. निपतद्वाष्पसंरोधमुक्तचांचल्यतारकम्।
कदा नयननीलाब्जमालोकेयमृगीदृशः ॥

"मेरी प्रिया की आँखों की पुतली गिरते हुए अश्रुओं के अवरोध के कारण स्थिर हो गई थी, हरिणाक्षी के नयन-रूपी उन नील कमलों को मैं कब देखूँगा ?" यहाँ प्रिया को देखने की अभिलाषा में औत्सुक्य संचारी है।

ख. सजे बिभूषण बसन सब, सुपिय मिलन की हौस।
सह्यौ परत नहिं कैसहूँ, रह्यौ अधघरी द्यौस ॥

यहाँ नायिका की प्रिय-मिलन की उत्सुकता का वर्णन है।

उत्सृष्टिकांक—रूपक का एक भेद। [दे० रूपक] उत्सृष्टिका + अंक = उत्सृष्टिकांक। उत्सृष्टिका का अर्थ है ऐसी स्त्री या स्त्रियाँ, जिनकी सृष्टि (जीवन) उत्क्रमणोन्मुख है। उनसे अंकित रूपक उत्सृष्टिकांक कहलाता है। शोकग्रस्त स्त्रियाँ उत्सृष्टिका कही जाती हैं। इसमें एक ही अंक होता है और नायक कोई साधारण व्यक्ति या मर्त्यपुरुष हुआ करता है। इसका कथानक प्रख्यात होता है; पर कवि कल्पना-द्वारा उसका विस्तार भी कर देता है। इसमें दुःखात्मक करुणरस की प्रधानता होती है; अतः नायक दिव्य या देवता नहीं हो सकते। युद्ध का वृत्त होने से इसमें वध तथा वध आदि के कारण इष्ट वियोग का प्राबल्य होता है। पात्र शौर्यादि मद में लिप्त होकर परस्पर वाग्युद्ध करते हैं; अतः भारती-वृत्ति का समावेश किया जाता है। इसमें एक ही दिन की घटना वर्णित होती है और मुख तथा निर्वहण दो ही संधियों की योजना की जाती है। इसका उद्देश्य है शोकसंतप्त दर्शकों के समक्ष और भी अधिक शोकग्रस्त घटनाओं का प्रदर्शन कर उनके मन के भार को हल्का करना। [अभिनव भारती, भाग २ पृ० २४७] इसमें दुःखतापित नारियों के विलाप का प्राचुर्य रहता है और जय-पराजय का वर्णन किया जाता है।

भरत का मत—

प्रख्यातवस्तुविषयस्त्वप्रख्यातः कदाचिदेवस्यात्।
दिव्यपुरुषैर्वियुक्तः शेषैर्युक्तो भवेत्पुंभिः ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करुणरसप्रायकृतो निवृत्तयुद्धोद्धतप्रहारश्च ।
स्त्री परिदेवितबहुलो निर्वेदितभाषितश्चैव ॥
नानाव्याकुलचेष्टः सात्त्वत्थारभटिकैशिकीहीनः ।
कार्यः काव्यविधिज्ञैः सततं ह्य् उत्सृष्टिकांकस्तु ॥

—नाट्यशास्त्र, १८/६४-६६

धनंजय का मत—

उत्सृष्टिकांके प्रख्यातं वृत्तं बुद्ध्या प्रपंचयेत् ।
रसस्तु करुणः स्थायी नेतारः प्राकृता नराः ॥
भाणवत्संधिवृत्त्यंगैर्युक्तः स्त्रीपरिदेवितैः ।
वाचायुद्धं विधातव्यं तथा जयपराजयौ ॥

— दशरूपक, २/७०-७१

रामचंद्रगुणचंद्र का मत—

उत्सृष्टिकांकः पुंस्वामी ख्यातयुद्धोत्थवृत्तवान् ।
भाणोक्तवृत्तिसंध्यंको वाग्युद्धः करुणांगिकः ॥
निर्वेदवाचो भूम्नात्र योषितां परिदेवितम् ।
नरा निवृत्तसंग्रामाश्चेष्टाश्चित्राविसंस्थुलाः ॥

—नाट्यदर्पणम्, २/८८-८९

विश्वनाथ का मत—

उत्सृष्टिकांकः एकांको नेतारः प्राकृता नराः ॥
रसोऽत्र करुणः स्थायी बहुस्त्रीपरिदेवितम् ।
प्रख्यातमितिवृत्तं च कविर्बुद्ध्या प्रपंचयेत् ॥
भाणवत्संधिवृत्त्यंगान्यस्मिंजयपराजयौ ।
युद्धं च वाचा कर्त्तव्यं निर्वेदवचनं बहु ॥

—साहित्यदर्पण, ६/२५०-२५२

विश्वनाथ ने उदाहरण के लिए 'शर्मिष्ठा-ययाति' नामक रचना का नाम दिया है।

उदात्त—अलंकार का एक भेद। जहाँ वस्तु की समृद्धि का वर्णन हो अथवा महाजनों का चरित उपलक्षण के रूप में आकर उसका (वस्तु का) उत्कर्ष बढ़ावे तो वहाँ उदात्त अलंकार होता है। उदात्त का अर्थ है उत्कर्ष के साथ किसी का ग्रहण। उत् (उत्कर्षेण) आदीयते (गृह्यते) स्म इत्युदात्तम्। (उत्+आ+दा)। यह (उदात्त) ऐश्वर्य एवं औदार्य का भी बोधक है—

उदात्त शब्दस्य औदार्यम् ऐश्वर्यं चार्थः। —समुद्रबंध, पृ० २०७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२७५

उदात्त

इस अलंकार में किसी पदार्थ की समृद्धि का वर्णन होता है, जिससे उसकी महत्ता प्रतिष्ठित हो अथवा महापुरुषों का चरित उपलक्षण के रूप में आकर अर्थात् वर्ण्यवस्तु का अंग होकर उसका महत्त्व प्रदर्शित करता है।

महतां यदुपलक्षणम् अंगभावः अर्थात् वर्णनीये तदपि उदात्तम्।

—प्रदीप, पृ० ५२२

यह अतिशयमूलक अलंकार है, इसमें बीज रूप से अतिशयोक्ति वर्त्तमान रहती है।

यह अत्यंत प्रसिद्ध एवं प्राचीन अलंकार है, जिसका वर्णन भामह ने किया है। इनके पूर्व भट्टिकाव्य में भी इसका उल्लेख है। संस्कृत 'काव्यशास्त्र' में इसके तीन नाम मिलते हैं—उदात्त (भामह), उदार (भट्टि) तथा अवसर (रुद्रट)। वामन एवं पंडितराज के अतिरिक्त सभी आचार्यों ने इसका वर्णन किया है।

भट्टिकाव्य के दसवें सर्ग (१०/५२,५३) में उदारालंकार के उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं। इसके टीकाकार (जयमंगलाकार) ने उदार के दो प्रकारों का वर्णन किया है—महापुरुषों का वर्णन एवं विविध रत्नों का चित्रण।

नानारत्नवियुक्तं यत्तत्किलोदारमुच्यते।
उदारो द्विविधः।— जयमंगला, १०/५२-५३

भामह ने उदात्त की परिभाषा न देकर इसके स्वरूप का निदर्शन किया है।

उदात्तं शक्तिमान् रामो गुरुवाक्यानुरोधकः।
विहायोपवनं राज्यं तथा वनमुपागतम्॥
एतदेवापरेऽन्येन व्याख्यानेनान्यथा विदुः।
नानारत्नादियुक्तं यत्तत्किलोदात्तमुच्यते॥

—काव्यालंकार, ३/११-१३

इन उदाहरणों में चरित्र की महत्ता तथा संपत्ति की समृद्धि का उल्लेख है। दंडी ने उदात्तालंकार को शास्त्रीय रूप देते हुए आशय अथवा संपत्ति के अतिशय वर्णन में उदात्त की प्रतिष्ठा की।

आशयस्य विभूतेर्वा यन्महत्त्वमनुत्तमम्।
उदात्तं नाम तं प्राहुरलंकारं मनीषिणः॥

—काव्यादर्श, २/३००

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ व्यक्ति का महाशयत्व (आशय) तथा वैभव की विशालता (संपत्ति) के वर्णन को उदात्त कहा गया है। उद्भट ने इस अलंकार के वास्तविक स्वरूप का उद्‌घाटन करते हुए वस्तु की समृद्धि तथा महान् जनों के चरित को उपलक्षण या वर्ण्य-विषय के अंग-रूप में प्रस्तुत करने को उदात्त कहा।

उदात्तमृद्धिमद्वस्तु चरितं च महात्मनाम्।
उपलक्षणतां प्राप्तं नेति वृत्तत्वमागतम्॥

—काव्यालंकारसारसंग्रह, ४/८

रुद्रट का लक्षण सर्वथा भिन्न है। इनके विचार से न्यून वस्तु के प्रसंग में अन्य उत्कृष्ट या सरस वस्तु का उपलक्षण किया जाय तो अवसर (उदात्त) अलंकार होगा। यहाँ उद्भट के द्वितीय भेद को ही उदात्त मान लिया गया है।

अर्थांतरमुत्कृष्टं सरसं यदि वोपलक्षणं क्रियते।
अर्थस्य तदभिधानप्रसंगतो यत्रसोऽवसरः॥

—काव्यालंकार, ७/१०३

मम्मट के लक्षण में इस अलंकार का स्वरूप व्यवस्थित हो गया। इन्होंने वस्तु की समृद्धि का वर्णन तथा वर्ण्य-वस्तु के अंग के रूप में महापुरुषों के चरित्र-उपस्थापन को उदात्त कहा।

उदात्तं वस्तुनः संपत् महतां चोपलक्षणम्।
उपलक्षणमंगभावः अर्थादुपलक्षणीयेऽर्थे॥

—वृत्ति, काव्यप्रकाश, १०/११५

परवर्ती आचार्यों में रुय्यक, विद्याधर, विद्यानाथ तथा विश्वनाथ के लक्षण मम्मटानुसारी हैं।

समृद्धिवस्तुवर्णनमुदात्तम्।
अंगभूतमहापुरुषचरितवर्णनं च॥ —अलंकारसर्वस्व, पृ० २३०

अभिमतमेतदुदात्तं समृद्धिमद्वस्तुवर्णनं यत्र।
यच्च महापुरुषाणामंगतया चरितवर्णनं भवति॥

—एकावली, ८/७४

तदुदात्तं भवेद्यत्र समृद्धं वस्तु वर्ण्यते। —प्रतापरुद्रीय, पृ० ३३६

लोकातिशयसंपत्तिवर्णनोदात्तमुच्यते।
यद्वापि प्रस्तुतस्यांग महतां चरितं भवेत्॥

—साहित्यदर्पण, १०/९४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शोभाकर मित्र उदार चरितों का अन्य वस्तु के अंग-रूप में आने के वर्णन को उदात्त मानते हैं। इन्होंने संपत्ति की समृद्धि के वर्णन को 'असंबंधे संबंधरूपा अतिशयोक्ति' स्वीकार किया है।

उदारचरितांगत्वमुदात्तम्॥—१०८

उदारचरितानां यत्र चरितं वस्त्वंतरांगतामुपयाति तदुदात्तम्। इत्यादावसंभव प्रतापसमृद्धिवर्णनात्समृद्धिमद्वस्तुवर्णनमुदात्तमित्युदात्त भेदो न वाच्यः। असंबंधे-संबंध इत्येवंरूपाया अतिशयोक्तेः शुद्धविषयत्वात्॥

—अलंकाररत्नाकर, पृ० १८८

जयदेव और विश्वेश्वर पंडित के लक्षण मम्मट से प्रभावित हैं और अप्पय दीक्षित ने जयदेव के ही लक्षण को उद्धृत कर दिया है।

उदात्तमृद्धेश्चरितं श्लाघ्यं चान्योपलक्षणम्।

—चंद्रालोक, ५/११५

वस्तुप्रचय उदात्तं महतामंगत्व वचनं वा। संपदादिवस्त्वतिशयवर्णनमुदात्तम् उत्कृष्टानां वर्णनीयनिष्ठांगित्वप्रतियोगित्वमंगत्वं च यत्रोच्यते तदपीत्यर्थः।

—अलंकारकौस्तुभ, पृ० ३४५

उदात्तमृद्धेश्चरितं श्लाघ्यं चान्योपलक्षणम्॥

—कुवलयानंद, १६२

रीतिकालीन आचार्य चिंतामणि तथा कुलपति ने 'काव्यप्रकाश' के आधार पर तथा जसवंतसिंह, मतिराम एवं पद्माकर ने 'कुवलयानंद' को आधार मानकर उदात्त का वर्णन किया है।

जहाँ-जहाँ संपति कथन सो उदार मन आनि।
जो उपलक्षन बडेन को, वहौ वहै पहिचानि॥

—कविकुलकल्पतरु, ३/३०७

बहुत अर्थ को जोग जहं कहै उदातक ताहि।
बड़े अंग के जोग तें, अंगी जहं सरसाय।
बहुरि उदातक दूसरो, अलंकार सु कहाय॥

—रसरहस्य, ८/१४८

है उदात्त संपति चरित श्लाघ्य चरित अति अंग॥

—भाषाभूषण, पृ० १४८

उपलक्षन दै सोधिये अधिकाई सु उदात॥ —वही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संपति को अधिकार जो, अरु उपलक्षण और ।
सो उदात द्वै भाँति को, बरनत कबि सिरमौर ॥

—ललितललाम, ३७७

अति उत्तम कछु वस्तु सो, है काहू को अंग ।
कै समृद्धि अँग आनकी, द्विविधि उदात्त अभंग ॥

—पद्माभरण, २६६

भिखारीदास का लक्षण अत्यंत स्पष्ट है—

संपति की अत्युक्ति कों, सुकबि कहैं उदात्त ।
जहं उपलक्षन बड़ेन्ह को, ताहू की यह बात ॥

—काव्यनिर्णय ११/३२

उदात्त के दो प्रकार माने गए हैं—प्रथम उदात्त में संपत्ति की समृद्धि का वर्णन होता है और द्वितीय में महान् जनों के चरित की उपलक्षणता का कथन किया जाता है।

प्रथम उदात्त—

क. रत्नस्तंभेषु संक्रांतैः प्रतिबिंबशतैर्वृतः ।
ज्ञातो लंकेश्वरः कृच्छ्रादांजनेयेन तत्त्वतः ॥ —कुवलयानंद

—"सभाभवन में रत्नस्तंभों से संक्रांत सैकड़ों प्रतिबिंबों से घिरे होने के कारण हनुमानजी रावण को बहुत कठिनता से पहचान सके।" रावण के सभाभवन की समृद्धि के वर्णन में उदात्त का प्रथम प्रकार हुआ।

ख. जगत-जनक बरनै कहा, जनक नगर को ठाट ।
सहल महल हीरन बने, हाटबाट करहाट ॥

यहाँ राजा जनक के महल की समृद्धि का वर्णन है।

द्वितीय उदात्त—

क. तदिदमरण्यं यस्मिन्दशरथवचनानुपालनव्यसनी ।
निवसन् बाहुसहायश्चकार रक्षःक्षयं रामः ॥

—"यह वही दंडकारण्य है, जहाँ रहकर राजा दशरथ के वचन के पालन में संलग्न रामचंद्रजी ने राक्षसों का विनाश किया था।" यहाँ दंडकारण्य के उत्कर्ष को बढ़ाने के लिए रामचंद्र के चरित का वर्णन है।

ख. करत भये जाके तरे, राधा-कृस्न बिहार ।
सो न होइ क्यों तरुन को, बंसीबट सिंगार ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

—यहाँ राधाकृष्ण के बिहार का वर्णन करने से वंशीवट की महिमा अधिक बढ़ गई है।

महापुरुषों के अंगभूत चरित्र के वर्णन के संबंध में यह आवश्यक है कि उसके द्वारा अंगीभूत वर्ण्यवस्तु का उत्कर्ष-प्रकाशन अवश्य हो, यदि महापुरुष के चरित्र-द्वारा वर्ण्य-वस्तु का उत्कर्ष न दिखाई पड़े तो वहाँ उदात्त घटित नहीं होगा।

अंगभूतस्य वस्तुनो महापुरुषचरितमुत्कर्षप्रतिपादयिष्यांगतयोपनिबध्यमान-मेतदलंकारांगम्। न तूपलक्षणमात्रपरतयोपात्तमिति तात्पर्यार्थः ॥

—जयरथकृत विमर्शिनी, पृ० २३१

उदारसार—जयदेव-वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार, जिसमें उत्कृष्ट गुण में भिन्नता होने पर भी उसमें अभिन्नता दिखाई जाती है। [दे० सार]

—चंद्रालोक; ५/९१

उदाहरण—सादृश्यमूलक अलंकार।

'उदाहरण' दृष्टांत से मिलता-जुलता अलंकार है। [दे० दृष्टांत] इसमें कोई बात कहकर उसको स्पष्ट करने के लिए उसी प्रकार की अन्य बात कही जाती है तथा ज्यों, जैसे, इव आदि वाचक पदों का प्रयोग किया जाता है।

अलंकार-रूप में इसका सर्वप्रथम विवेचन शोभाकर मित्र ने किया है, तत्पश्चात् केवल पंडितराज जगन्नाथ ने इसका निरूपण किया।

शोभाकर के अनुसार सामान्य द्वारा उद्दिष्ट वस्तुओं में से एक इवादि सादृश्यसूचक शब्द के प्रयोग से उस सामान्य कथन की स्पष्टता का निदर्शन उदाहरण है।

सामान्योद्दिष्टानामेकस्यनिदर्शनमुदाहरणम् ॥

—अलंकाररत्नाकर, पृ० १२

पंडितराज ने उदाहरण के स्वरूप को अधिक स्पष्ट किया है। इनकी परिभाषा इस प्रकार है—"सामान्य रूप से निरूपित अर्थ का सरलता से बोध होने के लिए उसके एक देश का निरूपण करके, सामान्य पदार्थ और उसके एक देश का शब्द से उक्त अंगांगिभाव 'उदाहरण' कहलाता है।"

सामान्येन निरूपितार्थस्य सुखप्रतिपत्तये तदेकदेशंनिरूप्य तयोरवयवावयवि-भाव उच्यमान उदाहरणम् ॥ —रसगंगाधर, पृ० ४८१

भरत-कृत 'नाट्यशास्त्र' में काव्य-लक्षणों के अंतर्गत उदाहरण का वर्णन है, जिसमें एक अर्थ से अन्य अर्थ की सिद्धि की बात कही गई है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यत्र त्वल्पार्थयुक्तेन वाक्येनाभिप्रदर्शनात् ।
साध्यंतेनिपुणैरर्थास्तदुदाहरणं स्मृतम् ॥

—नाट्यशास्त्र, १६/६

उदाहरण-अलंकार का स्रोत 'नाट्यशास्त्र' का लक्षण रहा होगा। उदाहरण में एक कथन उपमेय-रूप होता है तथा दूसरा उपमान-रूप। इसमें सामान्य कथन का समर्थन विशेष कथन से होता है; पर यह कोई आवश्यक नहीं। कहीं-कहीं दोनों ही कथन सामान्य या विशेष हो सकते हैं अर्थात् सामान्य का सामान्य के साथ या विशेष का विशेष के साथ समर्थन होता है और उसमें इवादि सूचक पदों का प्रयोग अनिवार्य रूप से किया जाता है।

क. अमित गुणोऽपि पदार्थो दोषेणैकेन निंदितो भवति।
निखिल रसायनराजो गंधेनोग्रेण लशुन इव॥

अमित या अत्यधिक गुणों से युक्त पदार्थ एक दोष के कारण निंदित हो जाता है, जिस प्रकार सभी रसायनों का राजा लहसुन गंध के कारण ही निंदा का पात्र बनता है। यहाँ सादृश्यवाचक पदों के द्वारा सामान्य कथन को (पूर्वार्द्ध) उत्तरार्द्ध के विशेष कथन-द्वारा स्पष्ट किया गया है।

ख. जगत जनायो जेहि सकल, सो हरि जान्यो नाँहि।
ज्यौं आँखिन सब देखिए, आँखि न देखी जाँहि॥

—बिहारी

यहाँ ज्यों पद के द्वारा सामान्य कथन को विशेष कथन से स्पष्ट किया गया है।

उद्दीपन—विभाव का भेद। [दे० विभाव] रस को उद्दीप्त या तीव्र करनेवाले भाव को उद्दीपन कहते हैं। प्रत्येक रस के पृथक्-पृथक् उद्दीपन विभाव होते हैं।

यो रसमुद्दीपयति स उद्दीपन विभावः।

—रसतरंगिणी, द्वितीय तरंग

उद्दीपन विभाव के अंतर्गत आलंबन की चेष्टाएँ तथा देश-काल आते हैं। इसके चार प्रकार हैं—आलंबन के गुण, आलंबन की चेष्टाएँ, उसका अलंकरण एवं तटस्थ। आलंबन के गुण में उसके रूप-यौवन को स्थान मिला है और चेष्टाओं में हावभावादि आते हैं। अलंकरण के अंतर्गत अंगराग और नूपुर आदि का धारण करना आता है और तटस्थ में चंद्रमा, मलयानिल आदि हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इतरत्कारणजातमुद्दीपनविभावः। स चतुर्विधः। तथा चोक्तं शृंगारतिलके—

आलंबनगुणश्चैव यच्चेष्टा तदलंकृतिः।
तटस्थश्चेति विज्ञेयश्चतुर्धोद्दीपन क्रमः॥
आलंबनगुणो रूपयौवनादिरुदाहृतः।
तच्चेष्टा यौवनोद्भूत हावभावादिका मताः॥
नूपुरांगदहारादि तदलंकरणं मतम्।
मलयानिल चंद्राद्यास्तटस्थाः परिकीर्तिताः॥

—प्रतापरुद्रयशोभूषण, पृ० १५९

उद्धातक—प्रस्तावना का प्रथम भेद। प्रस्तावना रूपक या नाटक का आमुख है। [दे० प्रस्तावना]

उद्भट—ये अलंकारवादी आचार्य हैं। इनकी काव्यशास्त्र-संबंधी सुप्रसिद्ध रचना 'काव्यालंकारसारसंग्रह' है। [दे० 'काव्यालंकारसारसंग्रह'] इसके अतिरिक्त इन्होंने भरत के 'नाट्यशास्त्र' तथा भामह के 'काव्यालंकार' पर 'भामहविवरण' नामक टीकाओं की रचना की है; किन्तु ये ग्रंथ अनुपलब्ध हैं। ['भामहविवरण' का एक हस्तलेख पाकिस्तान प्राप्त में हुआ था और उसका प्रकाशन इटली में हुआ; पर भारत में यह अभी नहीं मिलता] उद्भट ने 'कुमारसंभवकाव्य' की भी रचना की है; पर यह उपलब्ध नहीं है, इसके कुछ उदाहरण 'काव्यालंकारसारसंग्रह' में उद्धृत हैं। 'काव्यालंकारसारसंग्रह' पर भट्टेंदुराज ने 'लघुविवृति' नामक टीकाग्रंथ की रचना की है तथा राजानक तिलक ने 'उद्भटविवेक' लिखा है।

नाम से, उद्भट काश्मीर के ज्ञात होते हैं। कल्हण की 'राजतरंगिणी' में 'भट्ट-उद्भट' नामक किसी विद्वान् का उल्लेख है।

विद्वान् दीनारलक्षेण प्रत्यहं कृतवेतनः।
भट्टोऽभूदुद्भटस्तस्य भूमिभर्तुः सभापतिः॥—४/४९५

यह वर्णन महाराज जयापीड से संबद्ध है। इससे पता चलता है कि जयापीड इनके संरक्षक रहे होंगे। जयापीड का राज्यकाल ८३६ से ८७० वि० सं० तक है, अतः उद्भट का समय नवम शतक का पूर्वार्द्ध निश्चित होता है। कहा जाता है कि राजा ने अंतिम समय में प्रजाओं को बहुत पीड़ित किया था, इससे ब्राह्मणों ने उनसे अपना संबंध हटा लिया था। डॉ० याकोबी ने जयापीड के राज्यकाल के प्रथम चरण में ही उद्भट की स्थिति उनके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दरबार में स्वीकार की है। आनंदवर्द्धनाचार्य ने 'ध्वन्यालोक' में उद्भट का नामोल्लेख किया है (ध्वन्यालोक, पृ० ९६ तथा १०८, निर्णयसागर प्रेस)। उनका समय ९१२-९४५ वि० सं० माना जाता है। आनंदवर्द्धन अवंति वर्मा (काश्मीर नरेश) के शासन-काल में हुए थे और उनका राज्यकाल पूर्वोक्त है। अतः, अंतःसाक्ष्य के आधार पर भी उद्भट का यही समय निश्चित होता है। [दे० आनंदवर्द्धन]

'अलंकारसारसंग्रह' में छह वर्ग हैं और उनासी कारिकाओं में इकतालिस अलंकारों का विवेचन किया गया है। इसमें 'कुमारसंभव-काव्य' के एक सौ उदाहरण हैं। उद्भट के काव्यालोचन-संबंधी मत विभिन्न ग्रंथों में बिखरे हुए हैं। मम्मट ने इनके 'गुणालंकारविभाग' को 'काव्यप्रकाश' के गुण-प्रकरण में उद्धृत किया है। उद्धृत मत के अनुसार उद्भट, दंडी प्रभृति द्वारा उपस्थापित गुणालंकार-भेद को प्राचीनता का अंधानुकरण करनेवाला कहते हैं, जो गड्डलिकाप्रवाह का द्योतक है।

एवं च समवायवृत्त्या शौर्यादयः संयोगवृत्त्या तु हारादय इत्यस्तु गुणालंकाराणां भेदः। ओजः प्रभृतीनामनुप्रासोपमादीनां चोभयेषामपि समवायवृत्त्या स्थितिरिति गड्डलिकाप्रवाहेणैवैषां भेदः।

—काव्यप्रकाश, ८/६६ (वृत्ति)

इनके विचार से ओज प्रभृति गुण तथा अनुप्रास और उपमा आदि अलंकार शब्दार्थ में समान रूप से समवाय वृत्ति से उपस्थित होते हैं।

रुय्यक ने 'अलंकारसर्वस्व' में उद्भट का मत उद्धृत किया है। इसमें कहा गया है कि गुण और अलंकार समान रूप से ही काव्य का सौंदर्य-वर्द्धन करते हैं, यदि इनमें कुछ अंतर है तो केवल विषय और आश्रय के ही विचार से। अलंकार शब्दार्थ के धर्म हैं और संघटनाश्रित होने के कारण काव्य-संघटन के धर्म हैं।

उद्भटादिभिस्तु गुणालंकाराणां प्रायशः साम्यमेव सूचितम्। विषयमात्रेण भेद प्रतिपादनात्। संघटनाधर्मत्वेन शब्दार्थधर्मत्वेन चेष्टेः।

—अलंकारसर्वस्व, पृ० ६

इन्होंने गुण एवं अलंकार, दोनों के साथ शब्दार्थ का समवाय संबंध स्वीकार किया है। अर्थभेद से ही शब्दभेद होता है, ऐसा उद्भट का मत है। इन्होंने शब्द की दो वृत्तियों—अभिधा तथा गुणवृत्ति (लक्षणा)—को मान्यता दी है। इनके अर्थ-भेद से ही शब्द-भेदवाले सिद्धांत के अनुसार

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नानार्थक शब्दों की सत्ता अमान्य हो जाती है। इस दृष्टि से जितने अर्थ होंगे, उतने ही शब्द होंगे।

भट्टोद्भटोबभाषे, 'शब्दानामभिधानम् अभिधा व्यापारः मुख्यः गुणवृत्तिश्च।
—ध्वन्यालोकलोचन, पृ० ३२ (चौखंबा संस्करण)

'अर्थभेदेन तावच्छब्दाभिद्यंते' इति भट्टोद्भटस्य सिद्धांतः।

राजशेखर ने 'काव्यमीमांसा' में उद्भट का मत उद्धृत किया है। उसके अनुसार काव्य और शास्त्र-इतिहास का अर्थ दो प्रकार का है—अविचारित रमणीय और विचारित सुस्थ। प्रथम अर्थ काव्य का होता है और द्वितीय शास्त्र-इतिहास का।

किंतु द्विरूप एव असौ विचारित सुस्थो अविचारित्त रमणीयः। तयोः पूर्वमाश्रितानि शास्त्राणि तद्बुत्तरं काव्यानीत्यौद्भटाः। —काव्यमीमांसा

उद्भट ने अलंकार-विवेचन में भी बहुत कुछ मौलिकता प्रदर्शित की है। ये पहले व्यक्ति हैं, जिन्होंने अलंकारों के वर्गीकरण का प्रयास किया और व्याकरणिक आधार पर उपमालंकार के भेदों का विभाजन किया। यों तो इनका अधिकांशतः अलंकार-निरूपण भामह के 'काव्यालंकार' की प्रतिकृति है, तथापि ये अंधानुकरण नहीं करते। इनकी अपनी मौलिक विचारभूमि पद-पद पर दिखाई पड़ती है। भामह-द्वारा वर्णित 'उपमारूपक' तथा 'उत्प्रेक्षा-वयव' को इन्होंने अलंकार-रूप में मान्यता नहीं दी। उद्भट ने पुनरुक्तवदा-भास, संकर, काव्यलिंग, दृष्टांत एवं छेकानुप्रास नामक पाँच नवीन अलंकारों की उद्भावना की है। रसवत्, प्रेय, ऊर्जस्वि, समाहित एवं श्लिष्ट का वर्णन भामह और दंडी दोनों ने ही किया था; किंतु वे इनका स्वरूप स्पष्ट नहीं कर सके थे। उद्भट ने इन सभी अलंकारों के स्वरूप को स्पष्ट कर साहित्य-शास्त्र में अपनी विशिष्टता स्थापित की है। भामह से अनुप्राणित होकर अलंकारों के लक्षण प्रस्तुत करते हुए भी इन्होंने उनके कई लक्षणों को व्यव-स्थित कर उनकी त्रुटियों का परिमार्जन किया है। इन्होंने 'काव्यलिंग' की संज्ञा 'काव्यहेतु' देकर हेतु' को 'काव्यलिंग' से अभिन्न स्वीकार किया। सर्वप्रथम अनुप्रास के भेदों के रूप में परुषा, कोमला और उपनागरिका नामक काव्यवृत्तियों का निरूपण करने का श्रेय उद्भट को ही है। भामह ने लाटानुप्रास का केवल नामोल्लेख किया था; पर उद्भट ने उसकी परिभाषा प्रस्तुत की। श्लेषालंकार के संबंध में इनकी नवीन व्यवस्था प्रसिद्ध ही है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इन्होंने शब्दश्लेष और अर्थश्लेष के रूप में इसका विभाजन कर इसे अर्थालंकार के रूप में मान्यता दी है।

शृंगारादि रसों को भामहादि की भाँति उद्भट ने भी अलंकार माना था और इस संबंध में अपना नवीन मत यह प्रस्तुत किया कि इन रसों की अभिव्यक्ति शृंगार, वीर, करुण आदि शब्दों द्वारा ही होती है तथा स्थायी, संचारी, विभाव, अनुभाव की अभिनय-द्वारा। पर, पश्चाद्वर्ती आचार्यों ने स्वशब्दनिवेदित्य दोष मानकर इस विचार का खंडन किया। उद्भट अलंकारवादी आचार्य होते हुए भी रस के पृष्ठपोषक हैं। ये एक ओर तो अलंकार-मत के अनुयायी दिखलाई पड़ते हैं और दूसरी ओर भरत के भी निकट हैं। भरत और भामह दोनों के अनुयायी होने के कारण इनके विषय-प्रतिपादन पर भी दोनों का प्रभाव परिलक्षित होता है।

उद्भेद—शोभाकर मित्र-वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। किसी प्रकार से छिपे या निगूढ़ पदार्थ का प्रकट हो जाना उद्भेद अलंकार है। इस अलंकार का अंतर्भाव दीक्षित-कृत विशेषक अलंकार में हो सकता है। [दे० विशेषक]

निगूढस्य प्रतिभेद उद्भेदः ॥ १०१ —अलंकाररत्नाकर

उद्रेक—शोभाकर मित्र-वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। जब सजातीय और विजातीय गुण या दोष से तुच्छता प्रकट की जाय तो उद्रेक अलंकार होता है।

सजातीयविजातीयाभ्यां तुच्छत्वमुद्रेकः ॥६८॥ —अलंकाररत्नाकर

उद्वेग—वियोगदशा का भेद। [दे० वियोगदशा] प्रिय के वियोग में व्याकुल हो जाने पर किसी विषय में किसी प्रकार भी चित्त (मन) का न लगना उद्वेग है।

भानुदत्त के अनुसार कामक्लेश से उत्पन्न सभी विषयों के प्रति हेयता का भाव या ज्ञान उद्वेग है।

कामक्लेशजनितसकलविषयहेयताज्ञानमुद्वेगः।

—रसमंजरी, पृ० १२० (चौखंबा)

मतिराम का कहना है कि विरहव्यथा की विकलता के कारण मन को कुछ अच्छा न लगना उद्वेग है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बिरहबिथा की बिकलता जहाँ कछू न सुहाय।
ताहि कहत उदबेग हैं जे प्रबीन कबिराय ॥

—रसराज, ४१२

दास के अनुसार वियोग के कारण जहाँ सुखद पदार्थ भी दुखद लगें और कहीं भी मन न लगे तो उद्वेग दशा होती है।

जहाँ दुखदरूपी लगैं सुखद जु बस्तु अनेग।
रहिबो कहुँ न सोहात सो दुसह दसा उद्वेग ॥

—शृंगारनिर्णय, ३१३

उदाहरण—

क. गरलद्रुमकंदमिंदुबिंबं करुणावारिजवारणो वसंतः।
रजनी स्मरभूपतेः कृपाणी करणीयं किमतः परं विधातः ?॥

"हे विधाता ! यह इंदुमंडल विषवृक्ष की जड़ ज्ञात होता है और वसंत करुणा रूपी कमल को उखाड़नेवाला हाथी हो गया है, यह रात कामनृपति के हृदय को विदीर्ण करनेवाली कृपाणी प्रतीत हो रही है। अतः, ऐसी दशा में मुझे क्या करना चाहिए ?"

ख. बिष से बसन लागैं आगि से असन जारैं
जोन्ह को जसन कला मानहु कलप है।
दसौ दिसि दावा सी पजावा सी टवरि भई
आवा सी अजिर-औनि तावा सी तलप है ॥

उन्नतकामा—मध्या नायिका का एक भेद। [दे० मध्या] जिसमें काम अधिक झलके, उसे उन्नतकामा कहते हैं।

उन्नतयौवना—मध्या नायिका का एक भेद, जिसमें यौवन उभार पर हो। [दे० मध्या]

उन्माद—संचारी भाव। [दे० संचारी भाव] भय, सन्निपात, इष्टजन-वियोग, शोक, धननाश आदि के कारण उत्पन्न चित्त-विभ्रांति को उन्माद कहते हैं। इसमें मन का अविचारित आचरण प्रकट होता है।

भरत उन्माद की उत्पत्ति इष्टजनवियोग, वैभवनाश, अभिघात, वात, पित्त, कफ के प्रकोप आदि विभावों-द्वारा मानते हैं। इसका प्रदर्शन अनिमित्त हास, अकारण रुदन, असंबद्ध प्रलाप, चिल्लाना, सोना आदि अनुभावों-द्वारा होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उन्मादो नाम—इष्टजनवियोगविभवनाशाभिघातवातपित्तश्लेष्मप्रकोपादिभिर्विभावैरुत्पद्यते। तमनिमित्तहसितरुदितोत्क्रुष्टासंबद्धप्रलापशयितोपविष्टोत्थितप्रधावितनृत्तगीतपठितभस्मपांस्ववधूलनतृणनिर्माल्यकुचेलीरघटकपालशरावाभरणधारणोपभोगैरनेकैश्चानवस्थितैश्चेष्टानुकरणादिभिरनुभावैरभिनयेत्।

—नाट्यशास्त्र, ७/८४,८५

धनंजय सन्निपात या ग्रह-ग्रस्त होने पर बुद्धि के अव्यवस्थित हो जाने को उन्माद कहते हैं। इस अवस्था में मनुष्य अनुचित कार्य करने में प्रवृत्त होता है।

अप्रज्ञाकारितोन्मादः सन्निपातग्रहादिभिः।
अस्मिन्नवस्थारुदितगीतहासासितादयः ॥

—दशरूपक, ४/३०

विश्वनाथ काम, शोक, भय आदि से उत्पन्न मन के व्यामोह को उन्माद कहते हैं। इसके अनुभाव अकारण हास एवं रुदन तथा प्रलाप आदि हैं।

चित्तसंमोह उन्मादः कामशोकभयादिभिः।
अस्थानहासरुदितगीतप्रलपनादिकृत् ॥

—साहित्यदर्पण, ३/१६०

भानुदत्त, बिना विचारे कुछ भी कार्य करने को उन्माद कहते हैं। प्रिय-वियोग, संपत्तिनाश आदि से उन्माद की उत्पत्ति होती है। इसके अनुभाव हैं—व्यर्थ की बातें बोलना, व्यर्थ की हँसी और अकारण रोना आदि।

विना विचारमाचार उन्मादः। न चागम्यागमनेऽतिव्याप्तिः विना विचारमितिपदेन। तद्व्यावर्तनात्। तत्र सुखमुद्देश्यम्, तदंशे विचार एव क्रिया न समीचीनेत्यन्यदेतत्। अप्रेक्ष्यकारिता उन्माद इति यस्य मतं तत्रेदं दूषणम्। तत्र विभावाः प्रियवियोगविभवभ्रंशादयः। अनुभावा वृथालपितवृथाहसितवृथारोदनादयः।'

—रसतरंगिणी, पृ० ३७५, पंचम तरंग

पंडितराज जगन्नाथ ऐसी चित्तवृत्ति को उन्माद कहते हैं, जो प्रियजन-वियोग, महाविपत्ति तथा अत्यन्त आनंद के कारण अन्य वस्तु में अन्य वस्तु के भ्रम को उत्पन्न करनेवाली होती है।

विप्रलंभमहाविपत्तिपरमानंदादिजन्माऽन्यस्मिन्नन्यावभास उन्मादः।

—रसगंगाधर, पृ० ११०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उदाहरण—

क. अकरुणहृदय ! प्रियतम ! मुंचामि त्वामितः परं नाहम् ।
इत्यालपति करांबुजमादायालीजनस्य विकला सा ॥

"हे हृदयहीन (निष्ठुर) प्रिय ! मैं अब तुम्हें नहीं छोड़ सकती ।" इस प्रकार वह सखी के हस्तकमल को पकड़कर तथा विकल होकर बातें करती है । यहाँ नायिका के असंबद्ध प्रलाप में उन्माद संचारी भाव है ।

ख. छिन रोवति, छिन हँसि उठति, छिन बोलति छिन मौन ।
छिन-छिन पर छीनी परति, भई दसा धौं कौन ॥

यहाँ नायिका की वियोगावस्था के कारण उत्पन्न उन्माद का वर्णन है ।

उन्माद—वियोगदशा । [दे० वियोगदशा] वियोगजनित व्यथा से दुःखित होकर विरही का जड़-चेतन के विवेक को खो देना तथा उन्मत्त की तरह कार्य करना उन्माद है ।

विश्वनाथ ने जड़-चेतन के विवेक के न रहने को उन्माद कहा है ।

उन्मादश्चापरिच्छेदश्चेतनाचेतनेष्वपि ।

—साहित्यदर्पण, ३/१६१

भानुदत्त के अनुसार उत्सुकता एवं संताप प्रभृति कारणों से मन में व्याकुलतापूर्ण व्यापार द्वारा उत्पादित प्रिय-विषयक व्यर्थ का कार्य उन्माद है ।

औत्सुक्यसंतापादिकारितमनोविपर्याससमुत्थप्रियाश्रितवृथाव्यापार उन्मादः ।

—रसमंजरी, पृ० १२१ (चौखंबा)

मतिराम के अनुसार, उत्कंठा के कारण मोहमय व्यर्थ का कार्य करना उन्माद है ।

उतकंठा तें मोहमय बृथा करत कछु काज ।
ताहि कहत उन्माद हैं कवि कोबिद सिरताज ॥

—रसराज, ४१८

भिखारीदास ने ऐसी दुःसह दशा को उन्माद कहा है, जिसमें पागलपन का रूप धारण कर लिया जाता है ।

सो उन्माद दसा दुसह धरै बौरई साज ।
रोज-रोज बिनबत उठै करै मोहमै काज ॥

—शृंगारनिर्णय, ३२०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उदाहरण—

क. किं रे विधो ! मृगदृशो मुखमद्वितीयं
कंदर्प ! दृप्यसि दृगंबुजमन्यदेव ।
झंकारमावहसि भृंग ! तनुर्न तादृक्
कर्माणि धिङ् न पुनरीदृशमीक्षणीयम् ॥

"अरे इंदु ! तू क्यों गर्व कर रहा है कि मृग के समान नेत्रोंवाली प्रिया का तेरे-जैसा आनन है । उसका मुख अद्वितीय है । अरे कंदर्प ! तू यह जानकर भी क्यों गर्व कर रहा है कि प्रिया के नेत्र-कमल तेरे बाण हैं, वे तेरे बाणों से भिन्न हैं । अरे भ्रमर ! तू प्रिया के शरीर को लता समझकर या उसके केशों की समता प्राप्त करने के लिए व्यर्थ क्यों गुंजार करता है ? तुम सबों को धिक्कार है, तुम सभी प्रिया के अंग का उपमान नहीं बन सकते ।"

ख. तो बन बिहारी मैं निहारी गति औरई मैं
बौरेई के बृंदनि समेटत फिरत है ।
दाड़िम के फूलन में 'दास' दार्यौ दानो भरि
चूमि मधु रसनि लपेटत फिरत है ।
खंजनि चकोरनि परेवा पिक मोरनि
मराल सुक भौंरनि समेटत फिरत है ।
कासमीर हारनि कों सोन जुही भारनि कों
चंपक की डारनि कों भेटत फिरत है ॥

उन्मीलित—लोकन्यायमूलक अलंकार । एक वस्तु में दूसरी वस्तु के छिप जाने पर, किसी कारण-विशेष से, भेद का ज्ञान होना उन्मीलित है । यह मीलित अलंकार का प्रतिपक्षी है, जिसमें सादृश्य के कारण एक वस्तु में अन्य वस्तु के छिप जाने का वर्णन होता है । [दे० मीलित] 'उन्मीलित' का अर्थ है खुला हुआ । चूँकि इसमें दो पदार्थों में भेद स्पष्ट या खुला रहता है; अतः इसे उन्मीलित कहते हैं ।

इस अलंकार के उद्भावक जयदेव हैं । उनके अनुसार जब अत्यंत सदृश पदार्थों में किसी विशेष कारण से भेद का ज्ञान हो तो उन्मीलित अलंकार होगा ।

हेतोः कुतोऽपि वैशिष्ट्यात् स्फूर्तिरुन्मीलितं मतम् ॥
—चंद्रालोक, ५/३५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जयदेव के पश्चात् इस अलंकार का वर्णन अप्पय दीक्षित ने किया। इन्होंने मीलित में किसी कारण-विशेष से भेद के प्रकट होने को उन्मीलित कहा।

भेदवैशिष्ट्योः स्फूर्तावुन्मीलित विशेषकौ ॥

—कुवलयानंद, १४८

जसवंत सिंह, मतिराम तथा पद्माकर ने अप्पय दीक्षित के लक्षण का अनुवाद किया और भूषण ने 'चंद्रालोक' के लक्षण को अनूदित कर उन्मीलित का विवेचन किया।

उन्मीलित सादृस्य तें भेद फुरै तब मानि ॥

—भाषाभूषण, १७४

जहँ मीलित सामान्य में पैयत भेद बिसेख।
उन्मीलित सबिसेष कवि बरनत मति उल्लेख ॥

—ललितललाम, ३४५

भेद फुरै मीलित विषै उन्मीलित चित चेप ॥

—पद्माभरण, २४४

सदृस वस्तु में मिलत पुनि जानत कौनहु हेत।
उन्मीलित तासों कहैं भूषन सुकवि सुचेत ॥

—शिवराजभूषण, २७६

पंडितराज जगन्नाथ, नागेश तथा विश्वेश्वर पंडित उन्मीलित को स्वतंत्र अलंकार नहीं मानते। पंडितराज ने इसका अंतर्भाव अनुमान में किया और शेष दोनों ने मीलित से इसे अभिन्न सिद्ध किया।

[दे० रसगंगाधर, पृ० ६६७, उद्योत, पृ० ५६१ तथा अलंकारकौस्तुभ, पृ० ३६४]

पंडितराज के मत का खंडन चंद्रिकाकार (कुवलयानंद के टीकाकार) वैद्यनाथ ने किया है। वे दीक्षित के पक्ष की पुष्टि करते हैं। [दे० अलंकार-चंद्रिका, उन्मीलित प्रकरण]

उदाहरण—

क. हिमाद्रिं त्वद्यशोमग्नं सुराः शीतेन ज्ञायते ।

—कुवलयानंद

"हे राजन् ! हिमालय आपके यश की श्वेतता में छिप गया है; पर उसका ज्ञान शीतलता के कारण ही देवताओं को होता है।" शीतलता के कारण हिमालय का ज्ञान होना उन्मीलित है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ख. जुवति जोन्ह में मिल गई, नेंकु न परति लखाइ।
सोंधें के डोरे लगी, अली चली सँग लाइ॥

—बिहारी

चाँदनी रात में नायिका (गोरापन के कारण) उसमें (चाँदनी में) इस प्रकार मिल गई कि उनमें किसी प्रकार का अंतर नहीं रहा; पर शरीर की सुगंध के सहारे सखियाँ पाछे-पीछे चली गईं।

उपकथा—गद्य-काव्य का एक भेद। [दे० गद्य]

उपग्रहवक्रता—पदपरार्द्ध वक्रता का पंचम प्रकार। [दे० पदपरार्द्ध वक्रता]

उपचार—उपचार का अर्थ है अत्यंत सादृश्य। साहित्यशास्त्र में इसका कथन शब्दशक्ति के अंतर्गत किया गया है। गौणीलक्षणा [दे० गौणीलक्षणा] में उपचार को स्थान मिला है। गौणी और शुद्धालक्षणा का विभाजन उपचार के कारण किया गया है। [दे० शुद्धालक्षणा] गौणी में उपचार की स्थिति मान्य है, शुद्धा में नहीं। उपचार की परिभाषा आचार्य विश्वनाथ के शब्दों में इस प्रकार है—

उपचारो हि नामात्यंतं विशकलितयोः (पदार्थयोः) सादृश्यातिशयमहिम्ना भेदप्रतीतिस्थगनमात्रम्। —साहित्यदर्पण, २/१०

"अत्यंत भिन्न अर्थात् पृथक् रूप से भिन्न-भिन्न प्रतीति के विषय—एक दूसरे के साथ अत्यंत निराकांक्ष—दो पदार्थों के भेदज्ञान का, सादृश्यातिशय (अत्यंत समानता) के कारण छिप जाना ही उपचार कहलाता है।"

उपचार मनोज्ञता—पदपूर्वार्द्ध वक्रता के अंतर्गत क्रियावैचित्र्यवक्रता (अष्टम भेद) का तृतीय अवांतर भेद। [दे० पदपूर्वार्द्ध वक्रता]

उपचार वक्रता—पदपूर्वार्द्ध वक्रता का तृतीय प्रकार।

[दे० पदपूर्वार्द्ध वक्रता]

उपनागरिकावृत्ति—[दे० वृत्त्यनुप्रास] वृत्त्यनुप्रास का एक प्रकार, जिसमें माधुर्य गुणव्यंजक वर्णों का प्रयोग होता है।

उपनायक—नायक का एक भेद। जो व्यक्ति नायक (प्रधान पात्र) के समान ही पूजनीय एवं उत्कृष्ट हो; पर उसे नृप आदि का पद न मिले, उसे उपनायक कहते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपपति—नायक का एक प्रकार। [दे० नायक] परकीया [दे० परकीया] या अन्यस्त्री से अनुरक्त रहनेवाला नायक उपपति कहलाता है। इसके अनुकूल, दक्षिण, धृष्ट, शठ नामक भेद होते हैं। भानुदत्त ने कहा है कि जो पति स्त्री के आचार या धर्मानुंष्ठान को नष्ट करने का कारण बने, उसे उपपति कहते हैं। उसे जार भी कहते हैं।

आचारहानिहेतुः पतिरुपपतिः। —रसमंजरी, पृ० १६८

उपपतिरपि चतुर्धा। अनुकूलदक्षिण धृष्टशठभेदात्।

—वही, पृ० १६८

रीतिकालीन आचार्य दास, मतिराम और पद्माकर के विचार इस प्रकार हैं—

आसिक और तियान को उपपति ताकों जानि।

—रससारांश, १०

जो परनारिन को रसिक उपपति ताहि बखानि॥

—रसराज, २५६

उपपति ताहि बखानहीं, जु परबधू को मीत।

—जगद्विनोद, २६७

उदाहरण—

क. नैन जोरि मुख मोरि हँसि, नैसुक नेह जनाय।
आगि लेन आई हियै मेरे गई लगाय॥

—मतिराम, रसराज, २५८

ख. सुंदरि सरल सब अंगन सिंगार साजे
सहज सुभाव निशि नेह कछु कै गई।
× × ×
निपट निकट ह्वै कै कपट छुवाय अंग
लाय की सी लपटि लपेटि मनु छै गई॥

—वही, २५७

उपमा—सादृश्यमूलक अलंकार। किसी प्रकार की समानता (सधर्मता) के कारण जब एक पदार्थ दूसरे पदार्थ के समान कहा जाय तो उपमालंकार होता है। इसमें दो पदार्थों (उपमेय तथा उपमान) में भिन्नता रहते हुए भी साम्य स्थापन होता है। 'उपमा' का अर्थ है निकट रखकर (उप) तौलना (मा) या मापना।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उप समीपे मीयते परिच्छिद्यते अनयेत्युपमा ।

—बालबोधिनी (काव्यप्रकाश) पृ० ५४४-४५

इस अलंकार में दो पदार्थों को समीप रखकर एक दूसरे के साथ साम्य-स्थापन किया जाता है; अतः इसे उपमा कहते हैं। उपमा में 'मा' या माप (तौलना) समानता का द्योतक है। यह साधर्म्य या सादृश्यमूलक अलंकार है, जिसमें सादृश्य या समानता की प्रधानता रहती है। उपमालंकार में दो भिन्न पदार्थों में सादृश्य-प्रतिपादन किया जाता है। उपमा सादृश्य, तुल्यता एवं समानता का वाचक है; इसमें गुणक्रियादि के साम्य के कारण एक वस्तु की तुलना अन्य वस्तु के साथ की जाती है। इसका सौंदर्य सादृश्य में निहित है और सादृश्य भारतीय सौंदर्यशास्त्र की आधारशिला है। धर्म या गुण-साम्य के कारण दो पदार्थों में साम्य-स्थापन ही उपमा है। यह कोई आवश्यक नहीं कि दो पदार्थों में सर्वात्मना साम्य हो, सभी प्रकार से समानता हो; किंचित् साम्य के कारण भी उपमा संभव है। देश, काल, क्रिया एवं स्वरूपादि के कारण भिन्नता होने पर भी उपमेयोपमान में अल्प साम्य के कारण भी उपमा होती है। इसमें चमत्कारपूर्ण साधर्म्य या सादृश्य का कथन होना चाहिए। उपमा में दो पदार्थों में साधर्म्य रहने पर भी वैधर्म्य के तत्त्व विद्यमान रहते हैं। मुख को चंद्रमा के सदृश कहने पर भी मुख चंद्र नहीं हो सकता। उपमा में सादृश्य के कारण जो सौंदर्यानुभूति होती है, उसीकी प्रधानता है या यों कहें कि सादृश्य ही उपमा का प्राण है। जिस सादृश्य या समानता के कारण सहृदयों का चित्त आह्लादित हो जाय, वही उपमा होती है, अन्यथा उसके अभाव में इसका अस्तित्व संभव नहीं अर्थात् चमत्कारयुक्त सादृश्य के वर्णन में ही उपमा का अलंकारत्व घटित हो सकता है। कवि दो भिन्न पदार्थों में सादृश्य की योजना कर उपमा के द्वारा उन्हें एक धरातल पर उपस्थित कर देता है।

उपमा के अंग—उपमा के अंग हैं उपमेय, उपमान, वाचक और धर्म या साधारण धर्म।

उपमेय—उपमेय के लिए अन्य शब्द भी प्रयुक्त होते हैं—विषय, प्रस्तुत, वर्ण्य, प्रकृत, प्राकरणिक तथा प्रासंगिक। जिसकी उपमा दी जाय या जिसका वर्णन किया जाय, उसे उपमेय कहते हैं। उपमेय का अर्थ है उपमा देने योग्य। उपमालंकार में यह (उपमेय) सर्वाधिक महनीय तत्त्व है। जिस पदार्थ का साम्य अन्य पदार्थ के साथ स्थापित किया जाय, उसे उपमेय कहते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपमान—उपमेय को जिसके समान कहा जाय या जिसके साथ उपमेय की समता स्थापित की जाय, उसे उपमान कहते हैं। उपमेय को अल्पगुणशाली तथा उपमान को उत्कृष्ट गुणशाली माना जाता है। उपमान उपमेय में गुणाधान करने के कारण नियमेन अधिक गुणवान् होता है और चूँकि उपमेय में उपमान-द्वारा गुणाधान होता है; अतः उसकी अल्पगुणता स्वाभाविक है।

उपमीयते सादृश्यमानीयते येनोत्कृष्टगुणेनान्यत् तदुपमानम्, यदुपमीयते न्यूनगुणं तदुपमेयम् ॥

—काव्यालंकारसूत्र, वृत्ति, पृ० १८६

उपमान के अन्य नाम हैं—**अप्रस्तुत, अप्रकृत, अवर्ण्य, विषयी, अप्राकरणिक, अप्रासंगिक।**

वाचक—औपम्यसूचक शब्दों को वाचक कहते हैं अर्थात् उपमेय और उपमान में सादृश्य स्थापित करनेवाले शब्द को वाचक कहते हैं। इनकी संख्या (दंडी के अनुसार) अनेक हैं। वे हैं—**इव, वत्, वा, यथा, समान, तुल्य, निभ, संनिभ, सम, लौं, इमि, जिमि, जैसा, वैसा आदि।**

धर्म (साधारण धर्म)—उपमेय और उपमान में जिस धर्म या गुण या विशेषता के कारण साम्य-स्थापन होता है, उसे धर्म कहते हैं। जब गुणविशेष, जिसके कारण दो पदार्थों में साम्य स्थापित किया जाता है, उभयनिष्ठ होता है, तभी उपमेय एवं उपमान में तुलना की जाती है। साधारण धर्म के अनेक प्रकार किए गए हैं, जिनमें तीन प्रधान हैं—अनुगामीधर्म, वस्तुप्रतिवस्तुभाव तथा बिंबप्रतिबिंबभाव।

अनुगामी धर्म—उपमेय और उपमान में जब धर्म एक रूप से स्थित हो तो उसे अनुगामी धर्म कहते हैं। यह जिस रूप में उपमेय में होता है, उसी रूप में उपमान में भी।

वस्तुप्रतिवस्तुभाव—जब साधारण धर्म उपमेय तथा उपमान में एक होने पर भी भिन्न-भिन्न वाक्यों में विभिन्न शब्दों द्वारा व्यक्त हो तो उसे वस्तुप्रतिवस्तुभाव धर्म कहते हैं।

बिंबप्रतिबिंबभाव—जब उपमेय तथा उपमान-वाक्यों में साधारण धर्म भिन्न-भिन्न रहें; पर दोनों में भिन्नता होने पर भी पारस्परिक सादृश्य के कारण उनमें अभिन्नता स्थापित की जाय तो उसे बिंबप्रतिबिंबभाव कहते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उदाहरण के लिए कहा जाय कि 'राम का मुख चंद्रमा के समान सुंदर है' तो इस वाक्य में उपमा होगी। यहाँ राम उपमेय, चंद्रमा उपमान, सुंदर धर्म एवं समान वाचक है। यहाँ उपमा के चारों अवयव स्पष्टतः विद्यमान हैं। जब उपमा के चारों अंग विद्यमान हों तो उसे पूर्णोपमा कहते हैं और एक, दो, तीन या चार अंगों के लुप्त होने पर लुप्तोपमा कहा जाता है।

उपमा का महत्त्व—प्राचीनता, व्यापकता, लोकप्रियता तथा सौंदर्य-प्रियता की दृष्टि से उपमा का अत्यधिक महत्त्व है। सादृश्य मन की सर्वाधिक सरल, सहज एवं ऋजु क्रिया है और सरलता के कारण ही उपमा में व्यापकता का समावेश होता है। उपमा का प्राण है सादृश्य, जो अधिकांश अलंकारों में दिखाई पड़ता है। अतः, इसी तत्त्व की प्रधानता के कारण उपमा की सर्वालंकारता सिद्ध होती है। इसे राजशेखर अलंकारों का शिरोरत्न कहते हैं और रुय्यक ने अर्थालंकारों का बीजभूत तत्त्व माना है। अप्पय दीक्षित इसकी महिमा का बखान करते हुए इसे उस नटी के समान कहते हैं, जो चित्र की भूमिका में विविध रूप में आकर अपनी नृत्य-कला से सहृदयों का रंजन करती है। वे उपमा के ज्ञान को ब्रह्मज्ञान की भाँति मानते हैं। दंडी, वामन तथा रीतिकालीन आचार्य कुलपति, भूषण, देव, सोमनाथ आदि सभी उपमा की महिमा का बखान करते हैं।

अलंकार शिरोरत्नं सर्वस्वं काव्य संपदाम्।
उपमा कवि वंशस्य मातैवेति मतिर्मम॥

—अलंकारशेखर, पृ० ३४

उपमैवानेकप्रकारवैचित्र्येणानेकालंकारबीजभूतेतिप्रथमं निर्दिष्टा॥

—अलंकारसर्वस्व, पृ० २६

उपमैका शैलूषी संप्राप्ता चित्रभूमिकाभेदान्।
रंजयति काव्यरंगे नृत्यंती तद्विदां चेतः॥

—चित्रमीमांसा, पृ० ६

तदिदं चित्रं विश्वं ब्रह्मज्ञानादिवोपमाज्ञानात्।
ज्ञातं भवतीत्यादौ निरूप्यते निखिल भेद सहिता सा॥

—वही

उपमा नाम सा तस्याः प्रपंचोऽयं प्रदर्श्यंते॥

—काव्यादर्श, २/१४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संप्रत्यर्थालंकाराणां प्रस्तावः तन्मूलं चोपमेति सैव विचार्यते।

—काव्यालंकारसूत्र, पृ० १८५

सो उपमा सिरमौर, ८/२

उपमा अरु उपमेय हैं, अलंकार के प्रान।
ताते इनकौं प्रथम हीं, कहियत रूप बखान॥

—रसरहस्य, ८/१

भूषन सब भूषननि में उपमै उत्तम चाहि।
याते उपमा आदि दै, बरनत सकल निवाहि॥

—शिवराजभूषण, ३०

अलंकार में मुख्य हैं, उपमा और सुभाव।
सकल अलंकारनि विषै, परसत प्रगट प्रभाव॥

—शब्दरसायन, पृ० १४८

अलंकार के मूल हैं उपमेय रु उपमान।
ताते तिनकौ प्रथम ही बरनत सुनौ सुजान॥

—रसपीयूषनिधि, २२/१

अप्पय दीक्षित ने 'चित्रमीमांसा' में उपमा की सर्वालंकारता पर विचार किया है।

उपमा—मुख चंद्र के समान सुंदर है।

अनन्वय—मुख के समान मुख ही है।

उपमेयोपमा—मुख चंद्र के समान एवं चंद्र मुख के समान है।

प्रतीप—मुख के समान चंद्रमा है।

रूपक—मुख चंद्र है।

परिणाम—मुख-चंद्र से ताप का शमन होता है।

उल्लेख—कोई उसके मुख को चंद्रमा और कोई उसे कमल कहता है।

स्मरण—चंद्र को देखकर मुख का स्मरण कर रहा हूँ।

संदेह—यह मुख है या चंद्रमा ?

अपह्नुति—यह चंद्रमा है, मुख नहीं।

उत्प्रेक्षा—मुख मानो चंद्रमा है।

भ्रांतिमान्—चंद्र समझकर चकोर तेरे मुख के पीछे-पीछे दौड़ता है।

अतिशयोक्ति—यह चंद्रमा है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तुल्ययोगिता—मुख से चंद्र और कमल पराजित हो गए।

दीपक—रात्रि में तुम्हारा मुख और चंद्रमा आनंदित होते हैं।

प्रतिवस्तूपमा—तुम्हारे मुख को देखकर मैं तृप्त होता हूँ, चंद्र को देखकर चकोर आनंदित होता है।

दृष्टांत—तुम्हारा मुख स्वाभाविक मनोरम है, चंद्रमा को प्रसाधन की आवश्यकता ही क्या है?

निदर्शना—मुख में चंद्र की शोभा है।

व्यतिरेक—चंद्रमा कलंकी है और मुख निष्कलंक। अतः, वह चंद्रमा से बढ़कर है।

सहोक्ति—तुम्हारे मुख के साथ चंद्रमा रात्रि में हँसता है।

अप्रस्तुतप्रशंसा—मुख के समान चंद्रमा निष्प्रभ हो गया है।

चंद्र इव मुखमिति सादृश्यवर्णनं तावदुपमा। सैवोक्तिभंगीभेदेनानेकालंकार भावं भजते। तथाहि—चंद्र इव मुखं, मुखमिव चंद्रः इत्युपमेयोपमा। 'मुखं-मुखमिव' इत्यनन्वयः। 'मुखमिवचंद्रः' इति प्रतीपम्। 'चंद्रं दृष्ट्वा मुखं स्मरामि' इतिस्मरणम्।' 'मुखमेवचंद्र' इतिरूपकम्। 'मुखचंद्रेण तापः शाम्यति' इति परिणामः। 'किमिदंमुखमुताहो चंद्रः' इति संदेहः। 'चंद्र इति चकोरास्त्वन्मुख-मनुधावंति' इति भ्रांतिमान्। 'चंद्र इति चकोराः कमलमिति चंचरीकास्त्वन्मुखे रज्यंति' इत्युल्लेखः। 'चंद्रोऽयं न मुखम्' इत्यपह्नवः। 'नूनं चंद्रः' इत्युत्प्रेक्षा। 'चंद्रोऽयं' इत्यतिशयोक्तिः। 'मुखेन चंद्रकमले निर्जिते' इति तुल्ययोगिता। 'निशिचंद्रस्त्वन्मुखं न हृष्यति' इति दीपकम्। 'त्वन्मुखं एवाहं रज्यामि चंद्र एव चकोरे रज्यते' इति प्रतिवस्तूपमा। 'दिविचंद्रो भुवित्वन्मुखम्' इति दृष्टांतः। 'मुखं चंद्रश्रियंविभर्ति' इति निदर्शना। 'निष्कलंकं मुखं चंद्रादतिरिच्यते' इति व्यतिरेकः। 'त्वन्मुखेन समं चंद्रो निशासु हृष्यति' इति सहोक्तिः। 'मुखं नेत्रांकरुचिरं स्मितज्योत्स्नोपशोभितम्' इति समासोक्ति। 'अब्जेन सदृशं वक्त्रं हरिणासहितसक्तिना' इति श्लेषः। 'मुखस्य पुरतः चंद्रो निष्प्रभः' इत्यप्रस्तुत-प्रशंसा।

—चित्रमीमांसा, पृ० ६

उपमा का ऐतिहासिक विवेचन—शास्त्रीय दृष्टि से उपमा का विवेचन यास्क के 'निरुक्त' में हुआ। और, उससे भी पूर्व गार्ग्य नामक आचार्य-द्वारा उपमा के स्वरूप का निरूपण हो चुका था। पाणिनि तथा पतंजलि प्रभृति वैयाकरणों ने भी उपमा का उल्लेख किया है। गार्ग्य के अनुसार भिन्न वस्तु का उपमान के साथ सादृश्यप्रतिपादन ही उपमा है, जिसमें गुणवान् की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न्यूनगुणवाले के साथ या न्यूनगुणवाले की अधिकगुणवाले के साथ तुलना की जाती है। 'निरुक्त' में उपमा के चार प्रकारों का वर्णन है—कर्मोपमा, भूतोपमा, रूपोपमा तथा सिद्धोपमा। यास्क ने लुप्तोपमा को अर्थोपमा कहा है, जिसमें उपमावाचक निपातों का प्रयोग नहीं होता।

यद् अतत् तत्सदृशमितिगार्ग्यः। तदासां कर्म। ज्यायसा वा गुणेन प्रख्याततमेन वा कनीयांसं वा प्रख्यातं वोपमीयते। तथापि कनीयसा ज्यायांसम्॥

—निरुक्त, ३/४

अथेदानीं येषु लुप्यंते उपमा शब्दा इवादयस्तान्यवसरप्राप्तानि लुप्तोपमानि व्याख्यास्यामः। तानि पुनरिमानि अर्थोपमानि इत्येवमाचक्षते।—वही, पृ० १४२

पाणिनि ने 'अष्टाध्यायी' में उपमान, उपमित और सामान्यवचन आदि शब्दों का प्रयोग किया है और महाभाष्यकार (पतंजलि) भी उपमा का निर्देश करते हैं।

उपमानानिसामान्यवचनैः।—२/१/५५

उपमानाच्च।—५/४/१३७

उपमानादाचारे।—३/१/१०

उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्य प्रयोगे।—अष्टाध्यायी, २/१/५६

उपमा का सभी आचार्यों ने वर्णन किया है। भरत से लेकर आचार्य जगन्नाथ और विश्वेश्वर पंडित तक उपमा के विवेचन में सादृश्य, साम्य तथा साधर्म्य शब्दों का प्रयोग किया गया है। कतिपय आचार्य 'गुणलेश' या इसके समानार्थी शब्दों का भी प्रयोग कर उपमा का निरूपण करते हैं।

भरत-कृत 'नाट्यशास्त्र' में उपमा को चार अलंकारों—उपमा, रूपक, दीपक और यमक—में प्रथम स्थान प्राप्त है। इनके अनुसार दो पदार्थों में सादृश्य-निबंधन को उपमा कहते हैं। यहाँ समान गुणाकृति के आधार पर सादृश्य मात्र को ही उपमा स्वीकार किया गया है। भरत के अनुसार उपमा चार प्रकार से दी जाती है—एक की एक से, एक की अनेक से, अनेक की एक से तथा अनेक की अनेक से।

यत्किंचित् काव्यबंधेषु सादृश्येनोपमीयते।
उपमा नाम सा ज्ञेया गुणाकृति समाश्रया॥
एकस्यैकेन सा कार्या ह्यनेकेनाथवा पुनः।
अनेकस्य तथैकेन बहूनां बहुभिस्तथा॥

—नाट्यशास्त्र १६/४१,४२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भरत के विवेचन को गति देकर भामह ने नवीन तथ्यों का समावेश किया। इन्होंने बताया कि विरुद्ध या भिन्न उपमान के साथ देश, काल तथा क्रियादि के द्वारा उपमेय का साम्य यदि गुणलेश से हो तो उपमालंकार होगा। भामह के लक्षण में स्पष्टतः उपमेय और उपमान का कथन किया गया और इस बात का संकेत किया गया कि उपमेयोपमान में देश, काल, क्रिया तथा स्वरूपादि के कारण भिन्नता संभव है। यदि इनमें किंचित् साम्य भी हो तो उपमा होगी। भामह के मत से उपमेयोपमान में सर्वात्मना साम्य संभव नहीं है, थोड़ी भी समता के कारण उपमा हो सकती है।

विरुद्धेनोपमानेन देशकालक्रियादिभिः ।
उपमेयस्य यत्साम्यं गुणलेशेन सोपमा ॥

—काव्यालंकार, २/३०

दंडी दो पदार्थों के सादृश्य-संपादन में उपमा मानते हैं। यथाकथंचित् उद्भूत सादृश्य को ही उपमा कहा जाता है। दंडी ने उपमावाचक शब्दों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया।

यथाकथंचित् सादृश्यं यत्रोद्भूतं प्रतीयते ।
उपमा नाम सा तस्याः प्रपंचोऽयं प्रदर्श्यते ॥

—काव्यादर्श, २/१४

उद्भट ने अन्य बातें तो भामह से लीं; पर 'चेतोहारि' का उल्लेख कर उपमेयोपमान के आकर्षक या चमत्कारपूर्ण साम्य-वर्णन को उपमा स्वीकार किया। इन्होंने बताया कि उपमेय तथा उपमान में आकर्षक साम्य रहता है तथा उनके देश, काल, गुण, क्रियादि भिन्न होते हैं और उसकी अभिव्यक्ति उपमावाचक शब्दों द्वारा होती है।

यच्चेतोहारि साधर्म्यमुपमानोपमेययोः ।
मिथो विभिन्नकालादि शब्दयोरुपमा तु तत् ॥

—काव्यालंकारसारसंग्रह, १/१५

वामन ने किसी प्रकार की नवीनता प्रदर्शित न कर भामह के ही विचार को अपने शब्दों में प्रकट किया। इन्होंने भामह की भाँति उपमा के दोषों का भी वर्णन किया; पर उपमा-प्रयोग के क्षेत्र की चर्चा कर नया तथ्य प्रस्तुत किया। उपमा-दोष के छह प्रकार हैं—हीनत्व, अधिकत्व, लिंगभेद, वचनभेद, उपमेयोपमान का असादृश्य तथा असंभवत्व। इन्होंने बताया कि प्रशंसा, निंदा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा तत्त्वाख्यान (तत्त्वकथन) में उपमा का प्रयोग होता है। इन्होंने उपमा की सर्वालंकारता तथा उपमाप्रपंच का कथन कर नवीन विचार प्रकट किया।

उपमानोपमेयस्य गुणलेशतः साम्यमुपमा ॥ —४,२,१

उपमीयते सादृश्यमानीयते येनोत्कृष्टगुणेनान्यत् तदुपमानम्। यदुपमीयते-न्यूनगुणं तदुपमेयम् ।....तत्कृतं लोकप्रसिद्धिपरिग्रहार्थम्। यदेवोपमेयमुपमानंच लोकप्रसिद्धं तदेव परिगृह्यते नेतरत् ॥

स्तुतिनिंदातत्त्वाख्यानेषु ॥ —४,२,७

हीनत्वाधिकत्वलिंगवचनभेदासादृश्यासंभवास्तद्दोषाः ॥

—काव्यालंकारसूत्रवृत्ति

रुद्रट के अनुसार जब समान साधारण धर्म के कारण उपमेयोपमान में साम्य दिखाई पड़े तो उपमालंकार होगा। इन्होंने गुणादिसिद्ध समान की महत्ता स्वीकार की, जिसके अनुसार उपमेयोपमान में समान गुण का होना आवश्यक है।

उभयोः समानमेकं गुणादिसिद्धं भवेद्यथैकत्र ।
अर्थेऽन्यत्र तथा तत्साध्यत इतिसोपमा त्रेधा ॥

—काव्यालंकार, ८/४

वक्रोक्तिवादी कुंतक के उपमा-विवेचन में पदार्थ की सौंदर्य-वृद्धि, उपमावाचक शब्दों का चमत्कारपूर्ण क्रियादि के साथ संबंध तथा वर्णनीय पदार्थ के मनोहारित्व की सिद्धि को महत्त्व दिया गया है। इनका लक्षण इस प्रकार है—"वर्णनीय पदार्थ के स्वभाव की सुंदरता की सिद्धि के लिए, उस (सौंदर्य) के उत्कर्ष से युक्त किसी वस्तु के साथ साम्य (प्रदर्शन करना) उपमा (अलंकार कहा जाता) है। उस उपमा को साधारण धर्म का कथन होने पर अथवा (साधारण धर्म का लोप या अभाव में आक्षिप्त रूप से) वाक्यार्थ में उसका अन्वय होने से जहाँ इवादि पद तथा क्रियापद भी सुंदरता के साथ उस (साम्य) को कहते हैं (वह भी उपमा होती है)।"

विवक्षितपरिस्पंदमनोहारित्वसिद्धये ।
वस्तुनः केनचित् साम्यं तदुत्कर्षवतोपमा ॥
तां साधारणधर्मोक्तौ वाक्यार्थे वा तदन्वयात् ।
इवादिरपि विच्छित्त्या यत्रवक्तिक्रियापदम् ॥

—वक्रोक्तिजीवित, ३/३०,३१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भोज ने बताया कि जब दो पदार्थों में प्रसिद्धि के कारण परस्पर अवयव की समानता का योग हो तो उपमालंकार होता है।

तत्प्रसिद्ध्यनुरोधेन यः परस्परमर्थयोः ।
भूयोऽवयवसामान्ययोगः सेहोपमा मताः ॥

—सरस्वतीकंठाभरण, ८/३

मम्मट ने पूर्ववर्ती आचार्यों के लक्षणों का समाहार कर प्रौढ़ लक्षण प्रस्तुत किया। इनके अनुसार उपमेयोपमान में भेद होने पर भी उनके साधर्म्य को उपमा कहते हैं। इन्होंने दो भिन्न पदार्थों में साम्य-स्थापना को उपमा कहा। मम्मट उपमेय एवं उपमान के ही साधर्म्य को उपमा कहते हैं, कार्य-कारण आदि के नहीं, अर्थात् उपमेय एवं उपमान का समान धर्म के साथ संबंध-स्थापन ही उपमा है।

साधर्म्यमुपमाभेदे ।

उपमानोपमेययोरेव नतु कार्यकारणादिकयोः साधर्म्यं भवतीति तयोरेव समानेन धर्मेण संबंध उपमा । भेदग्रहणमनन्वयव्यवच्छेदाय ॥

—काव्यप्रकाश, १०/८७

रुय्यक के अनुसार साधर्म्य के कारण उपमेय तथा उपमान में भेदाभेद तुल्यत्व प्रदर्शित करने को उपमालंकार कहते हैं। इन्होंने तीन प्रकार के साम्य का उल्लेख किया—भेद-प्रधान (व्यतिरेक में), अभेदप्रधान (रूपक में) तथा भेदाभेदप्रधान (उपमा में)।

उपमानोपमेययोः साधर्म्ये भेदाभेदतुल्यत्वे उपमा। साधर्म्ये त्रयः प्रकाराः भदप्राधान्यं व्यतिरेकवत् । अभेदप्राधान्यं रूपकवत् । द्वयोस्तुल्यत्वं यथा स्याम् । यदाहुः 'यत्र किंचित् सामान्यं कश्चिच्च विशेषः स विषदः सदृशतायाः ।'

—अलंकारसर्वस्व, पृ० २१,२२

जयदेव ने उपमा-निरूपण में 'सादृश्य-लक्ष्मी' शब्द का प्रयोग कर चमत्कार-निबंधन का प्राधान्य स्वीकार किया। इन्होंने बताया कि जब चमत्कारजनक सादृश्य के कारण उपमेय तथा उपमान में समता स्थापित की जाय तो उपमालंकार होगा।

उपमा यत्र सादृश्यलक्ष्मीरुल्लसतिद्वयोः ॥

—चंद्रालोक, ५/११

शोभाकर ने प्रसिद्ध गुणवाले उपमान तथा अप्रसिद्ध गुणवाले उपमेय के सादृश्य-वर्णन को उपमा कहा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपमानोपमेयस्य सादृश्यमुपमा ।।७।।

प्रसिद्धगुणेनोपमानेनाप्रसिद्धगुणस्योपमेयस्य सादृश्यहेतुना गुणादिना धर्मेण साधर्म्यप्रतिपादनमुपमा ।

—अलंकाररत्नाकर,

विद्याधर ने कहा कि जहाँ स्वतः सिद्ध, स्वयं से भिन्न, संमत (योग्य) अन्य (अवर्ण्य) के साथ किसी धर्म के कारण एक ही बार वाच्य-रूप में साम्य-निबंधन किया जाय तो उपमालंकार होगा।

स्वतः सिद्धेनभिन्नेनसम्मतेन च धर्मतः ।
साम्यं अन्येन वर्णस्य वाच्यं चेदेकदोपमा ।।

—प्रतापरुद्रीय, पृ० २५४

विश्वनाथ ने अपने लक्षण में बताया कि एक वाक्य में उपमान एवं उपमेय के वैधर्म्यरहित वाच्य-साम्य को उपमा कहते हैं। यहाँ यह बताया गया कि उपमा में शाब्द या वाच्य सादृश्य होता है आर्थ या व्यंग्य नहीं।

साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमा द्वयोः ।।

—साहित्यदर्पण, १०/१४

अप्पय दीक्षित ने 'कुलयानंद' तथा 'चित्रमीमांसा', दोनों ही ग्रंथों में उपमा का वर्णन किया है। 'चित्रमीमांसा' में कहा गया कि उपमा वहाँ होती है, जहाँ सादृश्य या समानता के कारण उपमिति क्रिया की उत्पत्ति हो। इनके मत से उसी सादृश्य-वर्णन को उपमा कह सकते हैं, जो दोषरहित, वाच्य तथा उपमिति क्रिया से उत्पन्न हो। 'कुवलयानंद' का उपमा-वर्णन जयदेव से प्रभावित है।

उपमितिक्रियानिष्पत्तिमत्सादृश्यवर्णनमुपमा । अलंकारभूतोपमालक्षणत्वं तदेवादुष्टाव्यंग्यत्वविशेषितम् ।

—चित्रमीमांसा पृ० २०

उपमा यत्र सादृश्यलक्ष्मीरुल्लसति द्वयोः ।।

—कुवलयानंद, ६

यत्रोपमानोपमेययोः सहृदयाह्लादकत्वेन चारुसादृश्यमुद्भूततयोल्लसति व्यंग्यमर्यादां विना स्पष्टं प्रकाशते तत्रोपमालंकारः ।

—वही

पंडितराज ने वाक्यार्थ के उपस्कारक सुंदर सादृश्य को उपमा कहा। इनके अनुसार वाक्यार्थ को सुशोभित करनेवाले सादृश्य को उपमा कहते हैं।

सादृश्यं सुंदरं वाक्यार्थोपस्कारकमुपमामिति सौंदर्यचमत्कृत्याधायकत्वम् । चमत्कृतिरानंदविशेषः सहृदयहृदयप्रमाणकः ।।

—रसगंगाधर, पृ० २०४

रीतिकालीन आलंकारिकों ने दंडी, मम्मट तथा 'चंद्रालोक' या 'कुवलयानंद' को आधार बनाकर उपमालंकार का वर्णन किया। केशव दंडी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

से प्रभावित हैं और चिंतामणि तथा कुलपति के लक्षण मम्मट पर आश्रित हैं। केशव का उपमा-विवेचन दंडी, वामन तथा रुद्रट से अनुप्राणित है तथा उसमें इनका अपना योग भी है। चिंतामणि पर 'चंद्रालोक' का भी आंशिक प्रभाव है। मतिराम और पद्माकर 'चंद्रालोक' तथा 'कुवलयानंद' के ऋणी हैं—विशेषत: पद्माकर।

रूप, शील, गुण होय सम, जो क्योंहू अनुसार।
तासों उपमा कहत कवि, केशव बहुत प्रकार।।

—कविप्रिया १४/१

जामैं मंजुल भाँति सों समता बरनी होइ।
वर्णमान कछु वस्तु जो उपमा कहियै सोइ।।

—कविकुलकल्पतरु, ३/२

शब्द अर्थ समता कहे दोउन की जेहि ठौर।
नहिं कलपित उपमान जेहि सो उपमा सिरमौर।।

—रसरहस्य, ८/३

जाको बर्नन कीजिये सो उपमान प्रमान।
जाकी समता दीजिये ताहि कहत उपमान।।
जहाँ बरनिये दुहुनि की सम छबि को उल्लास।
पंडित कबि मतिराम तहँ उपमा कहत प्रकास।।

—ललितललाम, ३९,४०

उपमेयहु उपमान को, इक-सम धरमु जु होइ।
उपमा-बाचक पद मिलें, उपमा कहिये सोइ।।

—पद्माभरण, ७

रीतिकाल की एक नवीनता यह है कि कई आचार्यों ने पूर्णोपमा को ही उपमा मानकर इसका वर्णन किया।

इहि बिधि सब समता मिलै उपमा सोई जानि।
बाचक धर्म रु बर्ननिय है चौथो उपमान।।

—पद्माभरण, ४२,४३

भेद—भरत ने उपमा के पांच भेदों का वर्णन किया है—प्रशंसोपमा, निंदोपमा, कल्पितोपमा, सदृशी उपमा तथा किंचित्सदृशी उपमा। भामह उपमा के तीन भेदों का वर्णन करते हैं—

क. यथा, इव प्रभृति सादृश्यबोधक शब्दों पर आधृत उपमा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ख. सादृश्यबोधक शब्दों के अभाव में केवल समास-द्वारा होनेवाली उपमा—इसे समासगा भी कहा गया है।

ग. वति प्रत्यय के द्वारा क्रिया-साम्य को बतानेवाली उपमा।

भामह प्रतिवस्तूपमा को भी उपमा का एक भेद मानते हैं।

प्रशंसा चैव निंदा च कल्पिता सदृशी तथा।
किंचिच्च सदृशी ज्ञेया उपमा पंचधा बुधैः॥

—नाट्यशास्त्र, १६/४६

तदुक्तं त्रिप्रकारत्वं तस्याः कैश्चिन्महात्मभिः।
निंदाप्रशंसाचिख्यासाभेदादत्राभिधीयते॥
सामान्यगुणनिर्देशात्त्रयमप्युदितं ननु।
मालोपमादि सर्वेऽपि न ज्यायान्विस्तरोमुधा॥

—काव्यालंकार, २/३७,३८

दंडी ने उपमा के पैंतीस भेदों का वर्णन किया है—धर्मोपमा, वस्तूपमा, विपर्यासोपमा, अन्योन्योपमा, नियमोपमा, अनियमोपमा, समुच्चयोपमा, अतिशयोपमा, उत्प्रेक्षितोपमा, समुच्चयोपमा, अतिशयोपमा, उत्प्रेक्षितोपमा, अद्भुतोपमा, मोहोपमा, संशयोपमा, निर्णयोपमा, श्लेषोपमा, समानोपमा, निंदोपमा, प्रशंसोपमा, आचिख्यासोपमा, विरोधोपमा, प्रतिषेधोपमा, असाधारणोपमा, चटूपमा, तत्त्वाख्यानोपमा, अभूतोपमा, असंभावितोपमा, बहूपमा, विक्रियोपमा, मालोपमा, वाक्यार्थोपमा, प्रतिवस्तूपमा, तुल्ययोगोपमा, हेतूपमा।

—काव्यादर्श, २/१४,५१

भेद-निरूपण की दृष्टि से उद्भट का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन्होंने पूर्णा तथा लुप्ता के रूप में भेदों का कथन किया है। पूर्णा के पाँच प्रकार हैं और लुप्ता के बारह। उद्भट का वर्गीकरण व्याकरणिक प्रयोगों पर आधृत है। रुद्रट ने इसके तीन भेद माने हैं—वाक्योपमा, समासोपमा तथा प्रत्ययोपमा। इनमें वाक्योपमा छह प्रकार की होती है और शेष दो के एक-एक प्रकार हैं। मम्मट ने उपमा के पचीस भेदों का निरूपण किया है। इन्होंने पूर्णोपमा के छह तथा लुप्तोपमा के उन्नीस भेदों का कथन किया। इनका वर्गीकरण उद्भट पर आश्रित है। पूर्णोपमा या पूर्णा के मम्मट-कृत दो भेद हैं—श्रौती तथा आर्थी और इनके वाक्यगा, समासगा तथा तद्धिता के नाम से छह भेद हैं। लुप्ता के तीन प्रकार हैं—धर्मलुप्ता, उपमानलुप्ता तथा वाचकलुप्ता। धर्मलुप्ता पाँच प्रकार की है—वाक्यगा श्रौती, वाक्यगा आर्थी, समासगा श्रौती, समासगा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आर्थी और तद्धितगा आर्थी। उपमान लुप्ता के दो प्रकार हैं—वाक्यगा तथा समासगा और वाचक लुप्ता छह प्रकार की है—समास द्वारा, कर्म से उत्पन्न क्यच् प्रत्यय द्वारा, अधिकरण से उत्पन्न क्यच् प्रत्यय द्वारा, कर्त्ता से विहित क्यङ् प्रत्यय द्वारा, कर्म उपपद होने पर णमुल् एवं कर्त्तृ उपपद होने पर णमुल् प्रत्यय द्वारा। —(काव्यप्रकाश, १०/८८)।

विश्वनाथ ने सत्ताइस भेदों का वर्णन किया है—पूर्णोपमा के छह तथा लुप्तोपमा के इक्कीस। दीक्षित ने 'चित्रमीमांसा' में तीन भेदों का वर्णन किया है—स्ववैचित्र्यमात्रविश्रांता, उक्तार्थोपपादनपरा एवं व्यंग्यप्रधाना।

'कुवलयानंद' में पूर्णोपमा और लुप्तोपमा के रूप में भेदों का कथन है। लुप्तोपमा के आठ प्रकार किए गए हैं—वाचकलुप्ता, धर्मलुप्ता, धर्मवाचक-लुप्ता, वाचकोपमेयलुप्ता, उपमानलुप्ता, वाचकोपमानलुप्ता, धर्मोपमानलुप्ता तथा धर्मोपमानवाचकलुप्ता। पंडितराजकृत उपमा के भेदों की संख्या एक सौ पचीस हो जाती है। ये मम्मट-कृत सभी भेदों (पचीस) को स्वीकार कर प्रत्येक के पाँच-पाँच प्रकार मानते हैं; इस प्रकार एक सौ पचीस भेद होते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य पैंतीस भेदों का भी इन्होंने वर्णन किया है; जैसे—केवल निरवया, मालारूप निरवया, समस्तवस्तुविषया सावयवा, एकदेशविवर्त्ति सावयवा, केवलश्लिष्ट परंपरिता, मालारूपश्लिष्टपरंपरिता, केवल-शुद्धपरंप-रिता और मालारूपपरंपरिता।

रीतिकालीन आचार्यों में सर्वाधिक विलक्षण वर्गीकरण देव एवं पद्माकर का है। देव उपमा का विस्तार करते हुए अन्य अनेक अलंकारों को भी उपमा का प्रकार मान लेते हैं—सकलवाक्योपमा, सर्वांगोपमा, स्वभावोपमा, सम्यक् योगोपमा, एकदेशोपमा, संकीर्णभावोपमा, स्मृतिउपमा, निश्चयोपमा, भ्रमोपमा, सदेहोपमा, नियमोपमा, तर्कोपमा, अधिकोपमा, तुल्ययोगोपमा, आक्षेपोपमा, मालोपमा, असंभवोपमा, अनामोपमा, प्रतिकारोपमा, उल्लेखोपमा।

पद्माकर ने पूर्णा, लुप्ता, श्रौती और आर्थी भेदों का निरूपण किया है। इन्होंने लुप्तोपमा के पंद्रह भेदों का वर्णन किया है, जिनमें उपमा के एक, दो, तीन एवं कहीं चारों तत्त्वों या अंगों (उपमेय, उपमान, वाचक और धर्म) के लोप का कथन है।

> एक द्वै तीन रु चार को, जहाँ लोप पहिचान।
> यों सु पंचदस-भेदजुत, लुप्तोपमा प्रमान॥
>
> —पद्माभरण, १०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपमा के वर्गीकरण का आधार—आचार्यों ने उपमा के भेदोपभेदों के वर्गीकरण के कई आधार निरूपित किए हैं।

क. साधारण धर्म का उत्कर्षापकर्ष—इसके अंतर्गत प्रशंसोपमा, निंदोपमा तथा तत्त्वाख्यानोपमा आदि भेद आते हैं।

ख. उपमानों और साधारण धर्मों के आधार पर—इस वर्ग में मालोपमा, परस्परोपमा, समुच्चयोपमा आदि हैं।

ग. अवयवों के उपादान तथा अनुपादान के कारण—पूर्णोपमा एव लुप्तोपमा।

घ. व्याकरणिक आधार—वाक्य, समास, प्रत्यय, तद्धित, तिङ्न्त, क्यच् आदि के आधार पर अनेक प्रकार माने गए हैं।

श्रौती उपमा—जब यथा, इव आदि शब्दों के श्रवण-मात्र से ही साधर्म्य की प्रतीति हो तो श्रौती उपमा होती है।

आर्थी उपमा—जब साधर्म्य का बोध अर्थ-बल से हो तो आर्थी उपमा होती है। इसमें तुल्य, सदृश प्रभृति वाचक शब्द प्रयुक्त होते हैं।

पूर्णोपमा—जब उपमा के चारों अंग—उपमेय, उपमान, वाचक और धर्म स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ें तो पूर्णोपमा होती है।

लुप्तोपमा—जब उपमा के अंगों में से एक, दो, तीन अथवा चार का लोप हो तो लुप्तोपमा होती है। इसके पंद्रह प्रकार कहे गए हैं। उदाहरण के लिए उपमेयलुप्ता, उपमानलुप्ता, वाचकलुप्ता, धर्मलुप्ता आदि।

उपमेयलुप्ता—जब उपमान, धर्म और वाचक का कथन किया जाय और उपमेय लुप्त रहे तो उपमेयलुप्ता होती है।

उपमानलुप्ता—जब उपमेय, वाचक और धर्म का वर्णन हो और उपमान लुप्त रहे।

वाचकलुप्ता—उपमेय, उपमान और धर्म का वर्णन हो, पर वाचक लुप्त रहे।

धर्मलुप्ता—इसमें उपमेय, उपमान और वाचक का कथन किया जाता है; पर धर्म लुप्त रहता है।

वाचकधर्मलुप्ता—इसमें केवल उपमेय और उपमान का कथन किया जाता है; पर वाचक और धर्म लुप्त रहते हैं।

धर्मोपमानलुप्ता—जहाँ उपमेय और वाचक का कथन किया जाय; पर धर्म और उपमान न रहें।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धर्मोपमेयलुप्ता—जहाँ धर्म और उपमेय का लोप हो और वाचक तथा उपमान का कथन किया जाय।

वाचकोपमानलुप्ता—जहाँ धर्म और उपमेय का कथन किया जाय, पर वाचक और उपमान लुप्त रहें।

वाचकोपमेयलुप्ता—जहाँ वाचक और उपमेय का लोप हो; किंतु धर्म और उपमान विद्यमान रहें।

वाचकधर्मोपमानलुप्ता—जहाँ केवल उपमेय का कथन किया जाय और शेष तीन लुप्त रहें। जैसे—

अति अनूप जहँ जनक निवासू।

यहाँ केवल 'जनक निवासू' उपमेय का वर्णन है।

उपमा और रूपक—दोनों सादृश्यमूलक अलंकार हैं। इनमें अंतर यह है कि उपमा का सादृश्य वाच्य होता है और रूपक का व्यंग्य, या वह अर्थ पर आश्रित होता है। उपमा में साधर्म्य की प्रधानता होती है और रूपक में ताद्रूप्य या अभेदता की। उपमा में दो पदार्थों में तुलना की जाती है; पर रूपक में दो पदार्थों में अभेद होता है।

उपमा और उत्प्रेक्षा—उपमा में उपमेय की उपमान के साथ तुलना की जाती है किंतु उत्प्रेक्षा में उपमेय की उपमान रूप में कल्पना या संभावना की जाती है। उपमा भेदाभेदप्रधान अलंकार है और उत्प्रेक्षा अभेद या अध्यवसानमूलक।

उपमा और प्रतीप—उपमा का चमत्कार साधर्म्य के कारण है; किंतु प्रतीप का सौंदर्य उपमा और उपमेय के स्वाभाविक संबंध के विपर्यय में निहित रहता है। उपमा में उपमेय की तुलना उपमान से की जाती है; किंतु प्रतीप में उपमान के निरादर का वर्णन होता है। उसमें प्रसिद्ध उपमान का उपमेय द्वारा निरादर किया जाता है।

उपमा और उपमेयोपमा—उपमा एक-वाक्यगत होती है और उपमेयोपमा सदा दो वाक्यों में होती है। उपमेयोपमा में दो उपमाएँ रहती हैं और प्रथम वाक्य का उपमेय द्वितीय उपमा का उपमान बन जाता है और प्रथम उपमा का उपमान द्वितीय उपमा का उपमेय हो जाता है।

उपमा और अनन्वय—उपमा में उपमेय तथा उपमान, दोनों भिन्न रहते हैं; पर अनन्वय में दोनों एक हो जाते हैं। अनन्वय में एक ही वस्तु को उपमेय एवं उपमान मान लिया जाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उदाहरण—

क. स्वप्नेऽपि समरेषु त्वां विजयश्री न मुंचति ।
प्रभावप्रभवंकांतं स्वाधीनपतिका यथा ॥

"हे राजन् ! स्वाधीनपतिका नायिका की तरह आपकी विजयलक्ष्मी प्रभाव के कारण आपको स्वप्न में भी युद्ध में नहीं छोड़ती है।" यहां उपमा के सभी अंग विद्यमान हैं : स्वाधीनपतिका—उपमान, विजयश्री—उपमेय, यथा—वाचक, न मुंचति—धर्म।

ख. सोनजुही सी जगमगै, अँग-अँग जोबन जोति ।
सुरँग कुसंभी चूनरी, दुसँग देह दुति होति ॥ —बिहारी

उपमेय—जोबन जोति, उपमान—सोनजुही, वाचक—सी, धर्म—जगमगै।

उपमान—उपमा का एक अंग। [**दे० उपमा**] जिससे उपमेय की उपमा दी जाय या तुलना की जाय, उसे उपमान कहते हैं। इनके अन्य नाम हैं—अप्रस्तुत, अवर्ण्य, विषयी, अप्रकृत तथा अप्राकरणिक। तुलना या समता स्थापित करने योग्य पदार्थ को उपमान कहा जाता है।

उपमारूपक—एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार, जिसका वर्णन भामह ने किया है। उनके अनुसार उपमान के साथ उपमेय का अभेद ही उपमारूपक है।

उपमाने तद्भावमुपमेयस्य साधयम् ।
यां वदत्युपमामेतदुपमारूपकं यथा ॥

—काव्यालंकार, ३/३५

उपमारूपक का यह लक्षण रूपक से भिन्न नहीं है, यही कारण है कि परवर्ती आचार्यों ने इसका न तो विवेचन किया और न इसे मान्यता ही दी। दंडी ने रूपक के ही एक भेद को उपमारूपक मानकर इसे रूपक में ही गतार्थ कर दिया।

इष्टं साधर्म्यवैधर्म्यदर्शनाद् गौणमुख्ययोः ।
उपमाव्यतिरेकाख्यं रूपकद्वितयं यथा ॥

—काव्यादर्श, २/८८

उपमेय—उपमा का एक अंग। [**दे० उपमा**] जिसका वर्णन किया जाय उसे उपमेय कहते हैं। इसके अन्य नाम हैं—वर्ण्य, विषय, प्रस्तुत, प्रकृत तथा प्राकरणिक।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपमेयोपमा—सादृश्यमूलक अलंकार। जब उपमेय और उपमान परस्पर उपमान और उपमेय कहे जाएँ तो वहाँ उपमेयोपमा अलंकार होता है। इस अलंकार में उपमेय और उपमान को परस्पर उपमान और उपमेय इसलिए कहा जाता है कि कवि को तृतीय पदार्थ की आवश्यकता नहीं पड़ती। उपमेयोपमा में तृतीय सदृश का निराकरण करने के लिए दो वाक्यों में उपमेयोपमान को उपमानोपमेय के रूप में निबंधित किया जाता है। इसमें तीन तत्त्व प्रधान हैं।

क. उपमेय और उपमान को परस्पर उपमान और उपमेय कहना।

ख. तृतीय उपमान का निराकरण।

ग. वाक्यद्वय का नियोजन।

अस्याश्चोपमानांतरतिरस्कार एव फलम्। अतएवोपमेयेनोपमा इत्यस्या अन्वर्थाभिधानम्। यत्र पुनरुपमानांतरतिरस्कारो न प्रतीयते तत्र नायमलंकारः।

—विमर्शिनी, पृ० ३२

इस अलंकार का सर्वप्रथम विवेचन भामह ने किया है। दंडी इसे 'अन्योन्योपमा' के नाम से उपमा का एक भेद मानते हैं। तत्पश्चात् सभी आचार्यों ने इसका विवेचन किया। भामह पर्याय से उपमेय को उपमान तथा उपमान को उपमेय मानने में उपमेयोपमा मानते हैं।

उपमानोपमेयत्वं यत्र पर्यायतो भवेत्।
उपमेयोपमां नाम ब्रुवते तां यथोदिताम्॥

—काव्यालंकार, ३/३७

उद्भट ने अन्य तृतीय वस्तु के अभाव में उपमेय तथा उपमान को परस्पर उपमान एवं उपमेय मानने को उपमेयोपमालंकार कहा।

अन्योन्यमेव यत्र स्यादुपमानोपमेयता।
उपमेयोपमाहुस्तां पक्षांतरहानिगाम्॥

—काव्यालंकारसारसंग्रह, ५/१४

वामन पर भामह का प्रभाव है। इन्होंने एक ही अर्थ का क्रम से उपमेयत्व एवं उपमानत्व के वर्णन को उपमेयोपमा कहा।

क्रमेणोपमेयोपमा।
एतस्यैवार्थस्योपमेयत्वमुपमानत्वं च क्रमेणोपमेयोपमा॥

—काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, ४,३,१५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मम्मट ने उपमेयोपमा के विवेचन में वाक्यद्वय का कथन कर नया विचार प्रस्तुत किया। इसमें दो उपमाएँ होती हैं, अतः दो वाक्यों का होना आवश्यक है। इन्होंने प्रथम वाक्य के उपमेय एवं उपमान को द्वितीय वाक्य में उपमान और उपमेय होने को उपमेयोपमा कहा।

विपर्यास उपमेयोपमा तयोः। १०/९१

तयोः उपमानोपमेययोः। परिवृत्तिः अर्थात् वाक्यद्वये इतरोपमानव्यवच्छेदपरा उपमेयेनोपमा इति उपमेयोपमा।

—काव्यप्रकाश

रुय्यक का लक्षण मम्मट से प्रभावित है, पर साधारणधर्मपरक तथा वस्तुप्रतिवस्तु के आधार पर दो भेदों का वर्णन कर इन्होंने नया तथ्य प्रस्तुत किया।

द्वयो पर्यायेण तस्मिन्नुपमेयोपमा।
इयं च धर्मस्य साधारण्ये वस्तुप्रतिवस्तु निर्देशे च द्विधा॥

—अलंकारसर्वस्व, पृ० ४०

परवर्ती आचार्यों में जयदेव, शोभाकर, विद्याधर, विद्यानाथ, विश्वनाथ, अप्पय दीक्षित आदि पर मम्मट एवं रुय्यक का प्रभाव है।

पर्यायेण द्वयोस्तच्चेदुपमेयोपमा मता।

—चंद्रालोक, ५/१३

परस्परमुपमानोपमेयत्वमुपमेयोपमा॥

उपमानस्योपमेयताप्युपमेयस्याप्युपमानत्वमित्युपमेयोपमालंकारः। स चोपमांतर निषेधार्थः॥

—अलंकाररत्नाकर, पृ० ११

यद्युभयोः पर्यायात् स्यादुपमानोपमेयत्वम्।
सन्निहित वाक्ये भेदे सत्युपमेयोपमा द्विधा॥

यत्रोपमेयस्योपमानत्वकरणमुपमानांतर निरसनैकप्रयोजनम्। द्विविधा धर्मस्य वस्तुप्रतिवस्तुतया निर्देशसाधारण्ये चेति॥

—एकावली, ८/३; प्रतापरुद्रीय, पृ० २६७

पर्यायेणद्वयोरेतदुपमेयोपमा मता॥ —साहित्यदर्पण, १०/२७

अन्योन्येनोपमा बोध्या व्यक्त्या वृत्त्यंतरेण वा।
एकधर्माश्रया या स्यात्सोपमेयोपमा स्मृता॥

—चित्रमीमांसा, पृ० ४६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'कुवलयानंद' में दीक्षित ने जयदेव का लक्षण उद्धृत कर दिया है।

पर्यायेण द्वयोस्तच्चेदुपमेयोपमा मता ॥

—कुवलयानंद, ११

'चित्रमीमांसा' के लक्षण में बताया गया कि जब एक धर्म का आश्रय लेकर उपमेय तथा उपमान में परस्पर व्यंजना या अन्य वृत्ति से उपमा का प्रतिपादन हो तो उपमेयोपमा होगी।

पंडितराज ने परस्पर उपमेय एवं उपमान बने हुए पदार्थों के सुंदर सादृश्य को उपमेयोपमा के लिए आवश्यक माना है। इनके अनुसार किसी अन्य अर्थ, वस्तु, अलंकार या रस का उपस्कारक होने पर ही उपमेयोपमा का अलंकारत्व फलित होगा, इसके अभाव में नहीं। इन्होंने 'तृतीय सदृशव्यवच्छेद' को उपमेयोपमा का आवश्यक तत्त्व माना है। इनका लक्षण इस प्रकार है—

"तृतीय सदृश पदार्थ की निवृत्ति का बोध अर्थात् इन दोनों पदार्थों की परस्पर ही तुलना हो सकती है, अन्य किसी से नहीं, यह ज्ञान जिसका फल है उस वर्णन में आनेवाला, परस्पर उपमान-उपमेय बने पदार्थों का सुंदर सादृश्य उपमेयोपमा है।"

तृतीयसदृशव्यवच्छेदबुद्धिफलकवर्णनविषयीभूतं परस्परमुपमानोपमेयभावमापन्नयोरर्थयोः सादृश्यं सुंदरमुपमेयोपमा। —रसगंगाधर, पृ० २६२

इयं चोपमेयोपमा यदिकस्याप्यर्थस्योत्कर्षाधायिका तदालंकारः। अन्यथा तु स्ववैचित्र्यमात्रं पर्यवस्यति। एवमलंकारांतरेऽपि ज्ञेयम् ॥ —वही, पृ० २६६

इन्होंने उपमेयोपमा के कई भेद किए हैं। प्रथमतः दो भेद किए गए—उक्तधर्मा तथा व्यक्तधर्मा। उक्तधर्मा के अनुगामी प्रभृति अनेक भेदों का कथन है तथा उपमा की भाँति इसके भी पूर्णालुप्ता प्रभृति प्रकारों का निरूपण है।

विश्वेश्वर पंडित का लक्षण परंपरागत है—

उपमायां पूर्वस्यां प्रतियोग्यनुयोगिनौ यौ सः।
तौ विपरीतौ परतश्चेदुपमेयोपमात्वेषा ॥
पूर्वोपमायामुपमेयस्य द्वितीयोपमायामुपमानत्वं।
तत्रोपमेयस्योपमानत्वं यत्र सोपमेयोपमेत्यथा ॥

—अलंकारकौस्तुभ, पृ० १७५

दंडी, रुद्रट और भोज ने उपमेयोपमा को उपमा का एक प्रकार माना है। दंडी ने इसे अन्योन्योपमा कहा है और रुद्रट तथा भोज उभयोपमा कहते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तवाननमिवांभोजमांभोजमिव ते मुखम् ।
इत्यन्योन्योपमा सेयमन्योन्योत्कर्षशंसिनी ।।

—काव्यादर्श, २/१८

वस्त्वंतरमस्त्यनयोर्न सममिति परस्परस्य यत्र भवेत् ।
उभयोरुपमानत्वं सक्रमम् ुभयोपमा सान्या ।।

—काव्यालंकार, ८/६

विपर्यासोपमा तासु प्रथमाथोभयोपमा ।
अथोत्पाद्योपमा नाम तुरीयानन्वयोपमा ।।

—सरस्वतीकंठाभरण, ४/२३

रीतिकालीन आचार्यों ने उपमेयोपमा के निरूपण में 'काव्यप्रकाश' तथा 'चंद्रालोक' को उपजीव्य बनाया है। चिंतामणि और कुलपति ने 'काव्यप्रकाश' के आधार पर उपमेयोपमा का वर्णन किया और जसवंतसिंह, मतिराम तथा पद्माकर के आदर्श जयदेव रहे।

जहाँ वर्ण्य उपमान को बदलौ बरन्यौ होइ ।
उपमेयो उपमान कहि बरनैं हैं सब कोइ ।।

—कविकुलकल्पतरु, ३/२७

उपमानो उपमेय कौ, उपमेयँ उपमान ।
जहाँ सु उपमेयोपमा, बरनत सकल सुजान ।।

—रसरहस्य, ८/२५

उपमा लागै परस्पर सो उपमा उपमेय ।

—भाषाभूषण, ४६

जहाँ होत है परस्पर उपमेयो उपमान ।
तहाँ उपमेयोपमा कहि वरनत सुकबि सुजान ।।

—ललितललाम, ५५

उपमेयोपम परस्पर उपमेयहु उपमान ।।

—पद्माभरण, २७

उदाहरण—

क. कमलेव मतिर्मतिरिव कमला तनुरिव विभा विभेव तनुः ।
धरणीव धृतिर्धृतिरिव धरणी सततं विभाति बत यस्य ।।

"उस राजा की, लक्ष्मी के समान बुद्धि और बुद्धि के समान लक्ष्मी है। उसके शरीर के समान कांति तथा कांति के समान शरीर है। पृथ्वी के समान

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उसकी धृति एवं धृति के समान धरणी सदा सुशोभित होती है। उदाहरण स्पष्ट है।

ख. तो मुख सो ससि सोहत है,
बलि सोहत है ससि सो मुख तेरो ॥

मुख के समान चंद्रमा तथा चंद्रमा के समान मुख के कथन में उपमेयोपमा है।

ग. पूरनमासी सी तू उजरी,
अरु तोसी उजारी है पूरनमासी ॥

उपरूपक—दृश्यकाव्य का भेद। [दे॰ दृश्यकाव्य] नाटक या दृश्यकाव्य में रस, नृत्य एवं नृत्त (नाच) की प्रधानता होती है और इन्हीं तथ्यों के आधार पर रूपक तथा उपरूपक के रूप में इसका विभाजन किया जाता है। रूपकों में [दे॰ रूपक] रस का प्राधान्य होता है तो उपरूपकों में नृत्य एव नृत्त का। उपरूपकों के अठारह प्रकार होते हैं—नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाट्यरासक, प्रस्थान, उल्लाप्य, काव्य, प्रेंखण, रासक, संलापक, श्रीगदित, शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणिका, हल्लीश एवं भाणिका—

[प्रत्येक उपरूपक का विवरण पृथक्-पृथक् देखें। उनके नामों के अक्षर-क्रम से उपरूपकों का विवरण दिया गया है]

नाटिका त्रोटकं गोष्ठी सट्टकं नाट्यरासकम्।
प्रस्थानोल्लाप्यकाव्यानि प्रेंखणं रासकं तथा ॥
संलापकं श्रीगदितं शिल्पकं च विलासिका।
दुर्मल्लिका प्रकरणी हल्लीशो भाणिकेति च ॥
अष्टादश प्राहुरुपरूपकाणि मनीषिणः।

—साहित्यदर्पण, ६/४-६

भरत ने 'नाट्यशास्त्र' में उपरूपकों का उल्लेख नहीं किया है। अभिनवगुप्त ने (अभिनवभारती में) डोंबिका, भाण, प्रस्थान, षिद्गक, भाणिका, रामाक्रीडम्, हल्लीसक और रासक का वर्णन किया है; पर उन्होंने इन्हें उपरूपक की संज्ञा नहीं दी। दशरूपककार धनंजय भी उपरूपकों को स्थान नहीं देते; पर उनके टीकाकार धनिक सात उपरूपकों का नामांकन करते हैं। वे हैं—डोंबी, श्रीगदित, भाणी, भाण, प्रस्थान, रासक तथा काव्य। अग्निपुराणकार ने त्रोटक, नाटिका, सट्टक, कर्ण, दुर्मल्लिका, प्रस्थान, भाणिका, भाणी, गोष्ठी तथा हल्लीसक का उल्लेख किया है; किंतु न तो इन्हें उपरूपक के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नाम से अभिहित किया है और न इनका विवरण ही प्रस्तुत किया है। 'भावप्रकाशन' में उपरूपकों के बीस प्रकारों का निरूपण है—त्रोटक, नाटिका, गोष्ठी, सल्लाप, शिल्पक, डोंबी, श्रीगदित, भाण, भाणी, प्रस्थान, काव्य, प्रेक्षणक, नाट्यरासक, लासक, उल्लोप्यक, हल्लीस, दुर्मल्लिका, कल्पवल्ली, मल्लिका तथा पारिजातक।

त्रोटकं नाटिका गोष्ठी सल्लापः शिल्पकस्तथा।
डोंबी श्रीगदितं भाणो भाणी प्रस्थानमेव च॥
काव्यं च प्रेक्षणं नाट्यरासकं लासकं तथा।
उल्लोप्यकं च हल्लीसमथ दुर्मल्लिकाऽपि च॥
कल्पवल्ली मल्लिका च पारिजातकमित्यपि।

—भावप्रकाशन, पृ० २५५, नवम अधिकार।

विश्वनाथ ने उपरूपकों के अठारह प्रकारों का विधिवत् विवरण प्रस्तुत कर इनका महत्त्व प्रतिष्ठित किया और कालांतर में इन्हें मान्यता प्राप्त हुई।

उपसर्गौचित्य—औचित्य का बारहवां भेद। [दे० औचित्य के भेद]

उपहतविसर्गता—वाक्यदोष का द्वितीय प्रकार। [दे० वाक्यदोष]

उपादानलक्षणा—शुद्धालक्षणा का प्रथम प्रकार। [दे० शुद्धालक्षणा] जब प्रयोजनप्राप्त अर्थ की सिद्धि के लिए अन्यार्थ के ग्रहण करने पर भी मुख्यार्थ (अपना अर्थ) न छूटे तो उपादानलक्षणा होती है। 'उपादान' का अर्थ है ग्रहण करना। इसमें मुख्यार्थ को नहीं छोड़ा जाता या उसे ग्रहण कर लिया जाता है, इसलिए इसे उपादानलक्षणा कहते हैं। इसका दूसरा नाम अजहत्स्वार्था भी है अर्थात् जहाँ अपना अर्थ या स्वार्थ न छूटे (अजहत्) वहाँ अजहत्स्वार्था होती है। आचार्य मम्मट के अनुसार मुख्यार्थ की अन्वयसिद्धि के लिए दूसरे अर्थात् अमुख्य अर्थ को उपस्थित करना उपादान (कहलाता) है तथा दूसरे (अशक्य-तीरादि) के लिए अपने अर्थ (शब्दार्थं प्रवाहादि) को समर्पित कर देना या त्यागना लक्षण-लक्षणा है।

स्वसिद्धये पराक्षेपः पदार्थं स्वसमर्पणम्।
उपादानं लक्षणं चेत्युक्ता शुद्धैव सा द्विधा॥

—काव्यप्रकाश, २/१०

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार 'वाक्यार्थ में, अंगरूप से अपने अन्वय की सिद्धि के लिए जहाँ मुख्य अर्थ अन्य अर्थ का आक्षेप कराता है, वहाँ आत्मा अर्थात् मुख्यार्थ के बने रहने से, उस लक्षण को उपादान लक्षणा कहते हैं।'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मुख्यार्थस्येतराक्षेपो वाक्यार्थेऽन्वयसिद्धये ।
स्यादात्मनोऽप्युपादानादेषोपादानलक्षणा ॥

—साहित्यदर्पण, २/६

फूटी कौड़ी पर विनोदमय जीवन सदा टपकता ।

फूटी कौड़ी का अर्थ 'तुच्छ धन' है। यहाँ फूटी कौड़ी का अर्थ छूटता नहीं; अतः उपादान लक्षण हुई।—जैसे 'कुंताः प्रविशंति' (भाले प्रवेश कर रहे हैं)—यहाँ कुंत या भाले से भालावाला या भाला धारण करनेवाला व्यक्ति अर्थ करने पर उपादान लक्षणा होगी। भाला अपना अर्थ नहीं छोड़ते हुए भी अन्यार्थ की प्रतीति कराता है।

उपालंभ—सखी का एक कार्य। [दे० सखी] नायक अथवा नायिका में से किसी एक के प्रति अनुचित व्यवहार के लिए उलाहना देना उपालंभ है। उपालंभ का अर्थ है उलाहना।

उपालंभोऽनुचिताचारे भर्त्सनम् ॥ —रसमंजरी, पृ० १६२
उपालंभ सो उरहनो, —जगद्विनोद, ३५०
दैबो कछू उराहनो उपालंभ तब होत ॥

—साहित्य-सागर।

उदाहरण—

क. सांद्रध्वानैर्मुखरितदिशश्श्रेणयस्तोयदानां,
धारासारैर्धरणिवलयं सर्वतः प्लावयंति ।
तेन स्नेहं वहति विपुलं मत्सखी युक्तमेव,
त्वं निःस्नेहो यदसि तदिदं नाथ ! मे विस्मयाय ॥

—रसमंजरी, ९३

"हे स्वामी, गंभीर गर्जनों से दिशाओं को मुखरित कर देनेवाले मेघों के समूह मूसलाधार वर्षा से पृथ्वीमंडल को प्लावित कर रहे हैं। वर्षा में काम से उद्दीपित होकर मेरी सखी स्नेह को धारण करती है; यह ठीक ही है। परंतु, तुम जो स्नेह-रहित हो यही मेरे विस्मय का कारण है।"

ख. मोहन ऐसी निठुरता, तुम्हैं न सोभा देत ।
हेर हियौ हर लेत हौ फेर नहीं सुधि लेत ॥

—साहित्य-सागर।

उपेक्षा—मानमोचन का पंचम साधन। [दे० मान]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उभय—आचार्य रुद्रट-द्वारा उद्भावित एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। जब दो सामान्य अर्थ या पदार्थ उपमा से भिन्न अर्थ में निर्दिष्ट हों तो उभय साम्य अलंकार होता है। यह अलंकार अर्थांतरन्यास के विपरीत है [दे० अर्थांतरन्यास] तथा इसमें सामान्य से सामान्य का कथन किया जाता है।

सामान्यावप्यर्थौ स्फुट मुपमायाः स्वरूपतोऽपेतौ।
निर्दिश्येते यस्मिन्नुभयन्यासः स विज्ञेयः ॥—काव्यालंकार, ८/८५

उभयालंकार—जब शब्दार्थगत चमत्कार हो या शब्द और अर्थ दोनों में सौंदर्य हो तो उभयालंकार होता है। उभयालंकार शब्द द्विसंख्यावाची है। जब दो या दो से अधिक अलंकार एक स्थान पर मिलें, वे या तो दोनों शब्दालंकार हों या अर्थालंकार या एक शब्दालंकार एवं एक अर्थालंकार। इसमें दो से अधिक का भी समावेश होता है; पर दो की न्यूनतम सीमा है। इसे मिश्रालंकार या शब्दार्थालंकार भी कहते हैं। [दे० मिश्रालंकार] उभयालंकार के अंतर्गत संकर और संसृष्टि नामक दो अलंकारों का वर्णन होता है; जिनमें एकाधिक अलंकार क्रमशः दूध एवं पानी की भाँति या तिल-तंडुल की तरह मिले रहते हैं। भोज ने उभयालंकार का वर्णन करते हुए बताया है कि शब्दों तथा अर्थों में प्रतीत होनेवाले उपमादि अलंकार ही कवियों के विशिष्ट अर्थवाले उभयालंकार हैं।

शब्देभ्यो यः पदार्थेभ्यः उपमादि प्रतीयते।
विशिष्टोऽर्थः कवीनां सा उभयालंक्रिया मता॥

—सरस्वतीकंठाभरण, ४/१

उल्लाप्य—उपरूपक का एक भेद। [दे० उपरूपक] इसमें एक अंक होता है और नायक धीरोदात्त। नायिकाएँ चार रहती हैं और शृंगार, हास्य तथा करुण रसों का वर्णन किया जाता है। किसी-किसी आचार्य के मत से इसमें तीन अंक होते हैं।

उदाहरण—

'देवी महादेव'। इसमें देवताओं का वृत्त रहता है।

उदात्त नायकं दिव्यवृत्तमेकांकभूषितम्।
शिल्पकांगैर्युतं हास्यशृंगारकरुणै रसैः॥
उल्लाप्यं बहुसंग्रामममस्त्रगीतमनोहरम्।
चतस्रो नायिकास्तत्र त्रयोऽका इति केचन॥

—साहित्यदर्पण, ६/२८२-२८३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उल्लास—अर्थालंकार का एक प्रकार। एक के गुण-दोष से दूसरे को गुण-दोष की प्राप्ति का होना उल्लास अलंकार है। उत् एवं लस के योग से उल्लास शब्द बना है। [उद् +√लस्+घञ्]

—मानक हिंदीकोश, भाग १, पृ० ३८२

उद् – लस्+घञ् – प्रकाशे, आह्लादे

—वाचस्पत्यम्, भाग २, पृ० १३७२

उत् का अर्थ है प्रबल और लस् का संबंध अर्थात् प्रबल संबंध। इस अलंकार में एक व्यक्ति या वस्तु के प्रबल गुण-दोष के कारण अन्य में गुण या दोष उत्पन्न होने का वर्णन होता है।

इस अलंकार के उद्भावक जयदेव हैं; तत्पश्चात् दीक्षित तथा पंडितराज जगन्नाथ ने इसका विवेचन किया। नागेश ने इसका अंतर्भाव विषम में किया है, वे इसे स्वतंत्र अलंकार नहीं मानते।

जयदेव के अनुसार जब अन्य पदार्थ के गुण से अन्य वस्तु के दोष का वर्णन किया जाय तो उल्लास होगा।

उल्लासोऽन्यमहिम्ना चेद्दोषोह्यन्यत्र वर्ण्यते ॥

—चंद्रालोक, ५/१०१

दीक्षित ने जयदेव का आधार ग्रहण करते हुए उल्लास के चार प्रकारों का वर्णन कर इसके क्षेत्र का विस्तार किया। इनके मत से एक पदार्थ के गुण या दोष से अन्य पदार्थ में गुण या दोष की प्राप्ति का वर्णन ही उल्लास है।

एकस्य गुणदोषाभ्यामुल्लासोऽन्यस्य तौ यदि ॥

—कुवलयानंद, १३३

पंडितराज अन्यदीय गुण-दोष से अन्य में गुण-दोषाधान को उल्लास कहते हैं।

अन्यदीय गुणदोषप्रयुक्तमन्यस्यगुणदोषयोराधानमुल्लासः ॥

—रसगंगाधर, पृ० ६८३

रीतिकालीन आचार्यों का उल्लास-विवेचन दीक्षित पर आधृत है। जसवंत सिंह, मतिराम तथा पद्माकर ने दीक्षित के ही लक्षण को अनूदित किया है।

गुन औगुन जब एक तें और धरै उल्लास।

—भाषाभूषण, १६१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

औरैं के गुन दोष ते औरैं को गुन-दोष ।
बरनत यों उल्लास हैं, जे पंडित मति कोष ॥

—ललितललाम, ३१२

जा गुन दोष तें और के थपै अनत गुन-दोष ।
ताहि कहत उल्लास कवि पाइ हिये संतोष ॥

—पद्माभरण, २३३

दीक्षित ने उल्लास के चार प्रकार माने हैं और वे ही भेद रीतिकाल में भी मान्य हुए ।

क. प्रथम उल्लास—गुण से गुण की प्राप्ति ।
ख. द्वितीय उल्लास—दोष से दोष की प्राप्ति ।
ग. तृतीत उल्लास—गुण से दोष की प्राप्ति ।
घ. चतुर्थ उल्लास—दोष से गुण की प्राप्ति ।

यत्र कस्यचिद्गुणेनान्यस्य गुणो दोषेण दोषो गुणेन दोषो दोषेण गुणो वा वर्ण्यते स उल्लासः ।

—कुवलयानंद, १३३

प्रथम उल्लास—एक के गुण से अन्य में गुण का आधान प्रथम भेद है ।

औरैं के गुन और को गुन पहिलें उल्लास ॥

—काव्यनिर्णय, १४/३

उदाहरण—

अ. यदयंरथसंक्षोभादंसेनासो निपीडितः ।
एकः कृती मदंगेषु शेषमंगं भुवोभरः ॥ —कुवलयानंद

रथ पर नायिका के साथ बैठे हुए नायक का कथन—"रथ के हिलने पर मेरा कंधा उसके कंधे पर लगकर टकरा गया, इसलिए मेरे सभी अंगों में केवल यही सौभाग्यशाली अंग है और सभी तो पृथ्वी के लिए भारस्वरूप हैं ।" यहाँ नायिका के सौंदर्य के गुण से नायक के कंधे का सुंदर बन जाना वर्णित होने से प्रथम उल्लास हुआ ।

ब. ये सखि सुंदर स्याम की, लखि मुख-सोभा-साज ।
दीरघताई को जु फल, दृगनि लह्योई आज ॥

—पद्माभरण, २२४

कृष्ण की शोभा देखकर नेत्रों को दीर्घत्व के फल की प्राप्ति में प्रथम उल्लास हुआ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्वितीय उल्लास—अन्य के दोष से अन्य में दोष का आधान द्वितीय प्रकार है ।

उल्लासै जहँ और के दोष और कों दोष ॥

—काव्यनिर्णय, १४/९

उदाहरण—

क. काठिन्यं कुचयोः स्रष्टुं वांछंत्यः पादपद्मयोः ।
निंदंति च विधातारं त्वद्धाढीष्वरियोषितः ॥

—कुवलयानंद

किसी राजा की प्रशंसा करते हुए कवि के द्वारा उसकी शत्रुनारियों का वर्णन—"हे राजन् ! आपको रण-यात्रा के लिए तैयार होता देख आपकी शत्रुनारियाँ अपने स्तनों के काठिन्य को पैरों में चाहती हैं तथा इसके लिए वे ब्रह्मा की निंदा करती हैं कि उसने पैरों को कोमल क्यों बनाया । यहाँ ब्रह्मा के दोष से पैरों में दोषाधान का वर्णन है ।

ख. संगति को गुन साँच है, कहैं जु गुनी 'रसाल' ।
कूटिल कुबरी संग ते, भये त्रिभंगी लाल ॥

कुटिल कुब्जा के दोष से कृष्ण का त्रिभंगी या तीन स्थान पर टेढ़ा होना दोष से दोष की प्राप्ति है ।

तृतीय उल्लास—किसी के गुण से किसी को दोष की प्राप्ति का होना तृतीय उल्लास है ।

औरे के गुन और कों दोष उलासं होत ॥

—काव्यनिर्णय, १४/११

दानार्थिनो मधुकरा यदि कर्णतालै-
र्दूरीकृताः करिवरेण मदांधबुद्ध्या ।
तस्यैव गंडयुगमंडनहानिरेषा
भृंगा पुनर्विकचपद्मवने चरंति ॥

हाथी की मूर्खता एवं मदांधता का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि यदि मूर्ख तथा मदांध हाथी ने अपने कानों से मदजल को पीने की इच्छा करनेवाले मधुकरों को उड़ा दिया तो इसमें उनका कुछ भी बुरा न हुआ । इससे तो हाथी के ही कपोलों की शोभा-हानि हुई । भौंरे तो पुनः खिले हुए

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कमलों के वन में बिहार करने लग जाते हैं। हाथी के कपोलों के सौंदर्य-रूप भ्रमरों का हाथी-द्वारा तिरस्कार-वर्णन गुण से दोष की प्राप्ति है।

बरसे बारिद के लता, तृन तरु सब हरियात।
भाग लखो या आक को, जलहू सो जरि जात॥

जल से आक के जलने में गुण से दोष की प्राप्ति है।

चतुर्थ उल्लास—किसी के दोष से किसी में गुण कान चतुर्थ प्रकार है।

दोष और के और कों गुन उल्लासै लेखि॥

—काव्यनिर्णय, १४/५

क. आघ्रातं परिचुंबितं परिमुहुर्लीढं पुनश्चर्वितं
रक्तं वा भुविनीरसेन मनसा तत्र व्यथां मा कृथाः॥
हे सद्रत्न! तवैतदेव कुशलं यद्वानरेणादरा-
दंतःसारविलोकनव्यसनिना चूर्णीकृतं चाश्मना॥

"हे सुंदर रत्न! बंदर के हाथ में आ जाने पर उसने तुम्हारा घ्राण लिया, चुंबन किया, फिर चाटकर मुँह में डालकर चबाया। किसी प्रकार का स्वाद न पाकर उसने तुम्हें नीरस मन से पृथ्वी पर फेंक दिया। इसके लिए तुम्हें दुखी होने की आवश्यकता नहीं है कि उसने तुम्हारा सम्मान नहीं किया। तुम्हारा इसी में कल्याण था कि तुम्हारे भीतरी हिस्से को देखने के लिए उसने पत्थर से तुम्हें चूर्ण-विचूर्ण नहीं किया।" बंदर की चंचलता के दोष से उसका मणि को चूर्ण न करना गुण का वर्णन है।

ख. खल परिहास होत हित मोरा। —रामायण

दुष्टों के उपहास से हित होने में दोष से गुण की प्राप्ति है।

उल्लेख—सादृश्यमूलक अलंकार। ज्ञाता या विषय के भेद से एक वस्तु का अनेक प्रकार से वर्णन उल्लेख अलंकार है। 'उल्लेख' का अर्थ है लिखना या वर्णन करना (उल्लेखन)। एक पदार्थ का अनेक प्रकार से वर्णन करने के कारण इसे उल्लेख कहा जाता है। इस अलंकार में अनुभविता को एक पदार्थ का ज्ञान अनेकधा होता है। एक पदार्थ का अनेकधा ज्ञान दो प्रकार से संभव है—ग्रहीतृ-भेद से एवं विषय-भेद से। जब अनेक व्यक्ति या ग्रहीता एक पदार्थ का अनेक प्रकार से वर्णन करें तो ग्रहीतृ-भेद कहते हैं और एक व्यक्ति एक पदार्थ का अनेकधा उल्लेख करे तो विषय-भेद होता है। वस्तु का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनेक प्रकार से चित्रण किसी विशेष उद्देश्य के ही कारण होता है। अतः इस अलंकार में तीन तत्त्व महत्त्वपूर्ण हैं—

क. प्रमाता के भेद से एक पदार्थ का अनेकधा चित्रण।

ख. विषय-भेद से एक व्यक्ति-द्वारा एक विषय का अनेक प्रकार से वर्णन।

ग. किसी विशेष प्रयोजन से व्यक्ति या वस्तु का अनेकधा उल्लेख।

उल्लेख अलंकार के उद्भावक राजानक रुय्यक हैं। कालांतर में जयदेव, शोभाकरमित्र, विद्याधर, विद्यानाथ, अप्पय दीक्षित तथा विश्वनाथ ने इसका निरूपण किया।

रुय्यक के अनुसार किसी निमित्त से एक वस्तु का अनेकधा वर्णन या ग्रहण उल्लेख है। इन्होंने ज्ञातृ-भेद तथा विषय के भेद से इसके दो प्रकारों का उल्लेख किया है।

एकस्यापि निमित्तवशादनेकधाग्रहणमुल्लेखः ॥

यत्रैकं वस्त्वनेकधा गृह्यते स रूपबाहुल्योल्लेखनादुल्लेखः। न चेदं निमित्तमुल्लेखमात्रमपि तु नानाविधधर्मयोगित्वाख्य निमित्तवशादेतत्क्रियते। तत्र च रुच्यर्थित्वव्युत्पत्तयोयथायोगं प्रयोजिकाः। पूर्वत्र गृहीतृभेदेनानेकधात्वोल्लेखः इह तु विषयभेदेन ॥ —अलंकारसर्वस्व, पृ० ३१

शोभाकर ने एक वस्तु की अनेक रूप में कल्पना करने को उल्लेख कहा है।

एकस्य वस्तुनस्तद्धर्मयोगादनेकधाकल्पनमुल्लेखः ॥ —३४
अयं च प्रमातृभेदेनविषयभेदेन च भवति ॥
—अलंकाररत्नाकर, पृ० ५४

जयदेव के मतानुसार जब एक पदार्थ का अनेक मनुष्यों-द्वारा अनेक प्रकार से वर्णन हो तो उल्लेख होगा।

बहुभिर्बहुधोल्लेखादेकस्योल्लेखिता मतः ॥
—चंद्रालोक, ५/२३

विद्याधर तथा विद्यानाथ ने रुय्यक के ही मत का अनुकरण कर उल्लेखालंकार का निरूपण किया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तत्र निमित्तभेदादेकमनेकैरनेकधा यत्र ।
उल्लिख्यते स धीरैरुल्लेखः कथ्यतेऽन्वर्थः ॥

—एकावली, ८/१०

अर्थयोगरुचिश्लेषैरुल्लेखनमनेकधा ।
गृहीतृभेदादेकस्य स उल्लेखः सतां मतः ॥

—प्रतापरुद्रीय, पृ० २७७

विश्वनाथ का लक्षण अधिक स्पष्ट है । इन्होंने ज्ञाता या विषय के भेद से एक वस्तु के अनेक प्रकार से वर्णन को उल्लेख कहा ।

क्वचिद्‌भेदाद् ग्रहीतृणां विषयाणां तथा क्वचित् ।
एकस्यानेकधोल्लेखः यः स उल्लेख उच्यते ॥

—साहित्यदर्पण, १०/३७

दीक्षित ने 'कुवलयानंद' तथा 'चित्रमीसांसा' दोनों ग्रंथों में उल्लेखालंकार का वर्णन किया है। 'कुवलयानंद' पर जयदेव का प्रभाव है । दीक्षित और पंडितराज, दोनों के ही लक्षण परंपरागत हैं ।

निमित्तभेदादेकस्य वस्तुनोयदनेकधा ।
उल्लेखनमनेकेन तमुल्लेखं प्रचक्षते ॥

—चित्रमीमांसा, पृ० ७७

बहुभिर्बहुधोल्लेखादेकस्योल्लेख इष्यते ।
एकेन बहुधोल्लेखेऽप्यसौ विषयभेदतः ॥

—कुवलयानंद, २२,२३

एकस्य वस्तुनो निमित्तवशाद्यनेकैर्ग्रहीतृभिरनेकप्रकारकं ग्रहणं तदुल्लेखः ॥

—रसगंगाधर, पृ० ३५८

रीतिकालीन आचार्यों के प्रधान आधार जयदेव, विश्वनाथ और दीक्षित रहे हैं। चिंतामणि और मतिराम पर विश्वनाथ का प्रभाव है तो जसवंत सिंह और पद्माकर पर जयदेव और दीक्षित का ।

कहुँ ग्राहक के भेद कहुँ विषय भेद सो होइ ।
एकहि को उल्लेख बहु कहि उल्लेख जु सोइ ॥

—कविकुलकल्पतरु, ३/१०३

कै बहुतै कै एक जहँ, एकहि को उल्लेख ।
बहुत करत उल्लेख जहँ, कहत सुकबि सबिसेख ॥

—ललितललाम, ७७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सो उल्लेख जु एक कों बहु समुझें बहुरीति ॥

—भाषाभूषण, ५७

द्वि उल्लेख इक कों जु बहु बहु बिधि समुझै जत्र ।
विषय-भेद सों इकहि इक बरनै बहु बिधि तत्र ॥

—पद्माभरण, ४१

नागेश ओर विश्वेश्वर पंडित उल्लेखालंकार का खंडन कर इसका अंतर्भाव क्रमशः अतिशयोक्ति एवं अभेदे भेदरूपा तथा अभेदरूप अतिशयोक्ति में करते हैं ।

—दे० उद्योत, पृ० ४६३ तथा अलंकारकौस्तुभ, पृ० २८२-२८३

भेद—रुय्यक ने उल्लेख के दो भेदों का कथन किया है—प्रथम एवं द्वितीय उल्लेख ।

१. *प्रथम उल्लेख*—जब ज्ञाताओं के भेद से एक विषय का अनेक प्रकार से वर्णन किया जाय तो प्रथम उल्लेख होगा अर्थात् एक वस्तु का विभिन्न व्यक्तियों द्वारा विभिन्न प्रकार का वर्णन होना ।

क. प्रिय इति गोपवधूभिः शिशुरितिवृद्धैरधीश इति देवैः ।
नारायण इति भक्तैर्ब्रह्मेत्यग्राहियोगिभिर्देव ॥

गोपियों ने प्रियतम, नंदादि वृद्धों ने बालक, देवताओं ने देव, भक्तों ने नारायण तथा योगियों ने उनको (श्रीकृष्ण को) ब्रह्म समझा । यहाँ विभिन्न व्यक्तियों-द्वारा श्रीकृष्ण का अनेक प्रकार से वणन करने में उल्लेख का प्रथम प्रकार हुआ ।

ख. जानति सौत्ति अनीति है, जानति सखी सुनीति ।
गुरुजन जानति लाज है, प्रीतम जानति प्रीति ॥

—बिहारी

यहाँ सौत, सखी, गुरुजन तथा प्रिय-द्वारा नायिका को विविध प्रकार से देखने के वर्णन में उल्लेख है ।

२. *द्वितीय उल्लेख*—जब विषय-भेद के कारण एक वस्तु का एक व्यक्ति-द्वारा अनेक प्रकार से वर्णन हो तो द्वितीय उल्लेख होगा ।

क. कातराः परदुःखेषु निजदुःखेष्वकातराः ।
अर्थेष्वलोभा यशसि सलोभाः संति साधवः ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परदुःख में कातर तथा अपने दुःख में निडर; अर्थ या धन के प्रति लोलुपता से रहित तथा यश के प्रति लोलुप सत्पुरुष हैं। यहाँ सत्पुरुष का अनेकधा वर्णन में द्वितीय उल्लेख हुआ।

ख. हम सागर के धवल हास हैं, जल के धूम, गगन की धूल।
अनिल फेन ऊषा के पल्लव, वारि-वसन, वसुधा के मूल॥

—पंत

यहाँ बादल का अनेक प्रकार से वर्णन है।

ऊर्जस्वी—एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। इसका प्रथम उल्लेख भामह ने किया है (काव्यालंकार, ३/७); पर उन्होंने इसकी परिभाषा नहीं दी। परवर्ती आलंकारिकों में दंडी, उद्भट, विश्वनाथ एवं पद्माकर ने इसका निरूपण किया। दंडी के अनुसार गर्वयुक्त कथन या अहंकार की अभिव्यक्ति को ऊर्जस्वी कहते हैं। उद्भट के मत से काम-क्रोध आदि के कारण भावों एवं रसों का अनौचित्यपूर्ण उपनिबंधन ही ऊर्जस्वी है।

अनौचित्यप्रवृत्तानां कामक्रोधादिकारणात्।
भावानां च रसानां च बंध ऊर्जस्वि कथ्यते॥

—काव्यालंकारसारसंग्रह, ४/५

विश्वनाथ ने भी अनौचित्य प्रवृत्ति में ऊर्जस्वी अलंकार माना तथा पद्माकर ने भी यही मत व्यक्त किया। वे (पद्माकर) रसाभास एवं भावाभास नामक इसके दो भेदों का उल्लेख करते हैं।

रसभावौ तदाभासौ भावस्य प्रशमस्तथा।
गुणीभूतत्वमायांति यदालंकृतयस्तदा॥
रसवत्प्रेय ऊर्जस्वि समाहितमिति क्रमात्॥

—साहित्यदर्पण, १०/९५-९६

अनुचित कर्महि तें जहाँ काज, सु रस को भाव।
रसाभास सो प्रथम, बिय भाव सु बस रस गाव॥

—पद्माभरण, २९२

ऊढ़ा—परकीया नायिका का एक भेद। [दे० परकीया] ऊढ़ा का अर्थ विवाहिता है। जो अन्य व्यक्ति से प्रेम करे और जिसका विवाह अन्य पुरुष से हो, उसे ऊढ़ा कहते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एकदेशविवर्त्ति—रूपक-अलंकार का एक भेद। [दे० रूपक अलंकार]

एकानेकोत्तर—चित्रालंकार का एक भेद। [दे० चित्रालंकार] एक ही उत्तर में जब अनेक उत्तर निकल जाएँ तो एकानेकोत्तर होगा।

एकावली—शृंखलामूलक अलंकार। जब पूर्व-पूर्व में कथित वस्तु के प्रति उत्तर-उत्तर में कथित वस्तु का वीप्सा के विशेषण भाव से स्थापन (ग्रहण) या निषेध (त्याग) हो तो वहाँ एकावली अलंकार होता है। 'एकावली' का अर्थ है मोती की माला या एक लड़ी की माला। जिस प्रकार अनेक मोतियों के पिरोने से माला (हार) बनती है, उसी प्रकार एकावली अलंकार में अनेक विशेषण-विशेष्य की लड़ी पिरोई जाती है। इस अलंकार में पूर्व-पूर्व में कथित पद उत्तरोत्तर पद के या तो विशेषण होते हैं या विशेष्य और विशेषणों का मुख्य उद्देश्य विशेष्य की उत्कृष्टता प्रदर्शित करना होता है। इसमें प्रत्येक विशेषण प्रसंगानुकूल, अभीष्ट का पोषक एवं सार्थक होना चाहिए। एकावली में वीप्सा के द्वारा या अनेक बार विशेषण-रूप में स्थापन या निषेध का कथन होता है। विशेष्य-विशेषण की माला साधारण न होकर उक्ति-वैचित्र्यपूर्ण हो। कहीं विशेष्य-विशेषण-भाव के अभाव में भी एकावली संभव है; अर्थात् केवल गृहीत-मुक्त रीति से शृंखला के निर्माण में भी एकावली का अलंकारत्व हो सकता है।

इस अलंकार के जनक आचार्य रुद्रट हैं। इन्होंने अर्थों की परंपरा को उत्तरोत्तर उत्कृष्ट किए जाने को एकावली अलंकार माना है। ये स्थापन तथा अपोह (निषेध) के रूप में इसके दो प्रकारों का कथन करते हैं। इनके मत से अर्थ की परंपरा जहाँ पूर्व में कथित वस्तु के प्रति उत्तर की वस्तु विशेषण भाव से स्थापित या निषेधित हो ता एकावली अलंकार होता है।

एकावलीति सेयं यत्रार्थ परंपरा यथालाभम्।
आधीयते यथोत्तरं विशेषणा स्थित्यपोहाभ्याम्॥

—काव्यालंकार, ७/१०९

भोज ने परिकर अलंकार के अंतर्गत एकावली का वर्णन कर इसे परिकर से अभिन्न मान लिया है। वे एकावली का लक्षण न देकर इसके तीन प्रकारों का उल्लेख करते हैं—शब्द की एकावली, अर्थ की एकावली एवं उभयैकावली।

एकावलीति सापि भिन्ना परिकरान्नहि।
त्रिधा सापि समुद्दिष्टा शब्दार्थोभयभेदतः॥

—सरस्वतीकंठाभरण, ४/७६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मम्मट ने अपनी परिभाषा में वीप्सा के विशेषण-भाव से स्थापन तथा निषेध का समावेश कर एकावली के विवेचन में नवीन तथ्य जोड़ दिया। इनके अनुसार पूर्व-पूर्व वस्तु के प्रति उत्तरोत्तर वस्तु विशेषण रूप से स्थापित की जाय या हटाई (निषेध की) जाय तो वहाँ एकावली अलंकार होगा। मम्मट ने स्थापन एवं अपोहन (निषेध) के आधार पर इसके दो भेदों का विवेचन किया है।

स्थाप्यतेऽपोह्यते वापि यथा पूर्वं परं परम्।
विशेषणतया यत्र वस्तु सैकावली द्विधा ॥

—काव्यप्रकाश, १०/१३१

पूर्वंपूर्वंप्रति यथोत्तरस्य वस्तुनो वीप्सया विशेषणभावेन यत्स्थापनं निषेधो वा संभवति सा द्विधा बुधैरेकावली भण्यते ॥

—वही, वृत्ति

पश्चात्‌वर्ती आचार्यों में रुय्यक, विद्याधर, विद्यानाथ तथा विश्वनाथ ने मम्मट को आधार मानकर एकावली अलंकार का विवेचन किया।

यथापूर्वं परस्य विशेषणतया स्थापनापोहने एकावली।

—अलंकार-सर्वस्व, पृ० १७७

यत्र विशेषणभावं पूर्वंपूर्वं प्रतिक्रमेणैव।
भजति परं परेषालंकृतिरेकावली कथिता ॥

—एकावली, ८/४६

यत्रोत्तरोत्तरेषां स्यात् पूर्वं पूर्वं प्रतिक्रमात्।
विशेषणत्व कथनमसावेकावली मता ॥

—प्रतापरुद्रीय, पृ० ३३८

पूर्वं पूर्वं प्रति विशेषणत्वेन परं परम्।
स्थाप्यतेऽपोह्यते वा चेत् स्यात्तदैकावली द्विधा ॥

—साहित्यदर्पण, १०/७७,७८

क्वचिद्विशेष्यमपि यथोत्तरं विशेषणतया स्थापितमपोहितं च दृश्यते ॥

—वही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जयदेव गृहीत मुक्त-रीति से अनेक पदार्थों की शृंखला बन जाने में एकावली स्वीकार करते हैं।

गृहीतमुक्तरीत्यर्थ श्रेणिरेकावली मता।

—चंद्रालोक, ५/८८

दीक्षित ने जयदेव के लक्षण को ग्रहण कर लिया है; पर वे इसकी दो स्थितियों का कथन कर दो प्रकार स्वीकार करते हैं—

क. उत्तरोत्तर पद का पूर्व-पूर्व का विशेषण होना और

ख. पूर्व-पूर्व पद का उत्तरोत्तर पद का विशेषण होना।

गृहीतमुक्तरीत्यर्थ श्रेणिरेकावलिर्मता ॥
उत्तरोत्तरस्य पूर्वपूर्वविशेषणभावः पूर्वपूर्वस्योत्तरोत्तर विशेषणभावो वा गृहीतमुक्तरीतिः। —कुवलयानंद, १०५

पंडितराज ने एकावली में विशेष्य-विशेषणभाव की स्थिति को अनिवार्य माना है। इन्होंने इसके दो प्रकारों को मान्यता दी—पूर्व-पूर्व पदार्थ का उत्तरोत्तर पदार्थ के प्रति विशेष्य होने तथा पूर्वपूर्व पदार्थ का उत्तरोत्तर पदार्थ के प्रति विशेषण होने में। स्थापन एवं निषेध में प्रथम की भी दो स्थितियाँ स्वीकार कर इन्होंने तीन भेदों का कथन किया।

सैव शृंखला संसर्गस्य विशेष्य विशेषणभाव रूपत्वे एकावली। सा च पूर्वपूर्वस्योत्तरोत्तरं प्रति विशेष्यत्वे विशेषणत्वे चेति द्विधा। तत्राद्ये उत्तरोत्तर विशेषणस्य स्थापकत्वापोहकत्वाभ्यां द्वैविध्यम्। स्वसंबंधेन विशेषतावच्छेदक नियामकत्वं स्थापकत्वम्। स्वव्यतिरेकेण विशेष्यतावच्छेदकव्यतिरेकबुद्धिजनकत्वं स्थापकत्वम्। स्वव्यतिरेकेण विशेष्यतावचछेदकव्यतिरेकबुद्धिजनकत्वम्।

—रसगंगाधर, पृ० ६२४

विश्वेश्वर पंडित ने एकावली के दो प्रकारों का कथन कर मम्मट के मत का अनुकरण किया है।

प्रथमं विशेषणं तद्विशेष्यमग्रे भवत्यसकृत्।
विरह प्रतियोगी वा तद्वानेकावली सोक्ता ॥

—अलंकार-कौस्तुभ, पृ० ३८४

रीतिकाल में, इस अलंकार के वर्णन में, मम्मट तथा जयदेव को उपजीव्य बनाया गया है। चिंतामणि ने 'काव्यप्रकाश' के आधार पर तथा जसवंत सिंह,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मतिराम एवं पद्माकर आदि ने जयदेव कृत 'चंद्रालोक' के आधार पर अपने लक्षण निर्मित किए।

कै थपियै कै दूषियै बिसे बिसेषन भाउ।
यथा प्रथम पर फेरि कहि एकावली गनाउ॥
—कविकुलकल्पतरु, ३/२९५

ग्रहितमुक्त रीति जब एकावलि तब मान॥
—भाषाभूषण, १३६

एक अर्थ लै छोड़िये और अर्थ लै ताहि।
अर्थ पाँति इमि कहत हैं, एकावली सराहि॥
—ललितललाम, २५९

किये जँजीरा-जोर पद, एकावली प्रमान॥
—काव्यनिर्णय, १८/६

पूरब गहहि जु उत्तरहि, उत्तर तजि पूरब्ब।
गहै पदारथ और यों एकावलि कहि सब्ब॥
—पद्माभरण, १७५-७६

भेद—स्थापन एवं अपोहन के आधार पर एकावली के दो भेद स्वीकार किए गए हैं—

प्रथम एकावली—इसमें विशेष्य-विशेषण-भाव से स्थापना का वर्णन होता है। विशेषण भाव से स्थापन :

उदाहरण—

क. पुराणि यस्यां सवरांगनानि वरांगनारूप पुरस्कृतांग्याः।
रूपं समुन्मीलित सद्विलासमस्त्रं विलासाः कुसुमायुधस्य॥

जिस उज्जयिनी में भवन सुंदरियों से युक्त हैं तथा सुंदरियाँ सौंदर्य से पुरस्कृत अंगोंवाली हैं, उनके रूप से हावभाव प्रकट हो रहे हैं एवं वे विलास कामदेव के अस्त्र का काम कर रहे हैं। यहाँ (प्रथम चरण में) पुर का विशेषण वरांगना तथा (द्वितीय चरण में) वरांगना का विशेषण 'रूपपुरस्कृतांग्यः' है। तृतीय में रूप का विशेषण 'समुन्मीलित सद्विलासं' है और चतुर्थ चरण में विलास का विशेषण 'कुसुमायुध के अस्त्र' है।

ख. कलावंत कैसो कहिय, जैसो सुधा प्रमान।
कैसो सुधा-प्रमान है, जैसो रस अधरान॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'कलावंत' विशेष्य तथा 'सुधाप्रमान' विशेषण, पुनः 'सुधाप्रमान' (विशेष्य) का विशेषण 'रस अधरान' हो जाता है।

द्वितीय एकावली—निषेध की एकावली। इसमें विशेषण-भाव से निषेध का वर्णन होता है।

उदाहरण—

क. न तज्जलं यन्न सुचारु पंकजं न पंकजं यद्यदलीन षट्पदम्।
न षट्पदोसौ कलगुंजितौ न यः न गुंजितं तन्न जहार यन्मनः॥

"ऐसा कोई जल नही था, जिसमें मनोहर कमल विकसित न थे; ऐसा कोई कमल न था, जिस पर भौंरे बैठे न हों, ऐसा कोई भ्रमर न था, जो मधुर गुंजार से रहित हो और ऐसी गुंजार नहीं थी, जो सबका मन न मोह रही हो।

ख. सो नहि सर जित सरसिज नाहीं।
सरसिज नहिं जेहि अलि न लोभाहीं॥
अलि नहिं जो कल गुंजन हीना।
गुंजन नहिं जु न मन हरि लीना॥

विशेषण-विशेष्य भाव के बिना एकावली—

ग. कान्ह कहा अधरान में तिय मुख लाग्यो ठीक।
तिय मुख में लागे पलक पलकनि लागी लीक॥

—पद्माभरण, १७७

एकावली तथा कारणमाला—दोनों शृंखलामूलक अलंकार हैं, दोनों में ही पूर्व-पूर्व पद के साथ उत्तर-उत्तर पद का शृंखलाबद्ध होना कथित होता है। इनमें अंतर यह है कि एकावली में पूर्व तथा उत्तर पदार्थ में विशेष्य-विशेषण-भाव की शृंखला दिखाई पड़ती है तो कारणमाला में कार्यकारण-भाव की।

ओज गुण—काव्य-गुण का एक भेद। [दे० गुण] ओज का शाब्दिक अर्थ है प्रताप, तेज तथा दीप्ति। जिस काव्य-रचना के श्रवण से चित्त का विस्तार तथा मन में तेज की उत्पत्ति हो उसे ओज गुण कहते हैं। इसकी अभिव्यक्ति कठोर तथा परुष वर्णों (ट, ठ, ड, ढ ड़, ढ़,) द्वित्व वर्णों, संयुक्त वर्णों, रेफ, तथा लंब-लंबे समासों-द्वारा होती है। इसका प्रयोग वीर, वीभत्स तथा रौद्र रसों में होता है और इन रसों के आस्वादन से मन में तेज या

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दीप्ति की उत्पत्ति होती है। ओजगुण-युक्त रचना मन में दीप्ति, आवेग, वीरता, उत्साह और आवेग का भाव उत्पन्न करती है।

भरत, भामह तथा दंडी—तीनों ने समास-बाहुल्य या समस्तपदता का ओज का आवश्यक तत्त्व माना है।

[नाट्यशास्त्र, १७/१०२,—काव्यालंकार, २/१]

वामन के अनुसार रचना की गाढ़ता ही ओज है। यहाँ गाढ़ता से इनका अभिप्राय अवयवों अथवा अक्षर-विन्यास का परस्पर संश्लिष्टत्व है।

गाढबंधत्वमोजः ॥ —काव्यालंकारसूत्र, ३,१,५

ध्वनिकार ने ओजगुण को चित्त का विस्तारक कहा, यह चित्त को दीप्त करता है और इसका प्रकाशन दीर्घ समास रचनालंकृत वाक्य से होता है। इसका प्रयोग रौद्र, वीर तथा बीभत्स रसों में होता है।

रौद्रादयोरसा दीप्त्यालक्ष्यंते काव्यवर्तिनः।
तद्व्यक्तिहेतू शब्दार्थावाश्रित्यौजो व्यवस्थितम् ॥

—ध्वन्यालोक, २/९

मम्मट ने बतलाया है कि जो गुण मन में उत्साह, वीरता आदि को जागृत करे, उस दीप्ति-प्रधान गुण को ओज कहते हैं। इसका उत्तरोत्तर विकास वीर, वीभत्स तथा रौद्र रसों में देखा जाता है।

दीप्त्यात्मविस्तृतेर्हेतुरोजो वीररसस्थितिः।
वीभत्सरौद्ररसयोस्तस्याधिक्यं क्रमेण च ॥

—काव्यप्रकाश, ९/७०

विश्वनाथ ने अन्य तत्त्व तो मम्मट से ही लिए पर संयुताक्षरता, दीर्घ-समस्तता एवं उद्धतपद-संघटना, रेफ आदि के प्रयोग को ओजगुण के लिए आवश्यक माना।

ओजश्चित्तस्य विस्ताररूपं दीप्तत्वमुच्यते।
वीर वीभत्सरौद्रेषु क्रमेणाधिक्यमस्तु तु ॥
वर्गस्याद्यतृतीयाभ्यां युक्तौ वर्णौ तदंतिमौ।
उपर्यधो द्वयोर्वा सरेफाष्टठडढैः सह ॥
शकारश्च षकारश्च तस्य व्यंजकतां गताः।
तथा समासो बहुलो घटनौद्धत्यशालिनी ॥

—साहित्यदर्पण, ८/४-६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अदाहरण—

क. चंचद्भुजभ्रमितचंडगदाभिघात
संचूर्णितोरुयुगलस्य सुयोधनस्य ।
स्त्यानापविद्धघनशोणितशोणपाणि-
रुत्तंसयिष्यति कचांस्तव देवि भीमः ॥

"इन फड़कती हुई भुजाओं से घुमाई गई गदा के भीषण प्रहार से जिसकी दोनों जंघाओं को चूर-चूर कर दिया गया है, उस सुयोधन के जमे हुए गाढ़े रक्त से रँगे हुए हाथवाला यह भीम, हे देवि ! तेरे केशों को बाँधेगा ।"

ख. बरसे आग जलद जल जायें
भस्मसात् भूधर हो जायें ।
पाप-पुण्य सदसद्भावों की
धूल उड़ उठे दाँयें बायें ॥
नभ का वक्षस्थल फट जाये
तारे टूक-टूक हो जाँयें ।
कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ
जिससे उथल-पुथल मच जाये ॥

—नवीन

यहाँ ओज भाव की व्यंजना हुई है ।

रीतिकालीन आचार्य चिंतामणि ने मम्मट के ही मत का अनुसरण कर ओजगुण का वर्णन किया है ।

दीप्त चित्त-विस्तार कौ हेतु वोज गुन जानि ।
सु तौ वीर बीभत्स अरु रौद्रक्रमाधिक मानि ॥

—कविकुलकल्पतरु, १/१६

औचित्य और ध्वनि—औचित्य सिद्धांत के प्रबल समर्थकों में आनंदवर्द्धन भी हैं । उनका 'ध्वन्यालोक' औचित्यसिद्धांत का 'आकर ग्रंथ' माना जा सकता है । क्षेमेंद्र औचित्य को काव्य की आत्मा या सर्वोच्च तत्त्व के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं और ध्वनिकार के अनुसार औचित्य-संवलित रसध्वनि ही काव्य का परम तत्त्व है । अतः, एक मिलन-विंदु पर दोनों ही समान विचार रखते हुए दिखाई पड़ते हैं । दोनों में अंतर यह है कि यदि रसादि ध्वनि काव्य की सिद्धि है तो औचित्य साधन-रूप में प्रतिपादित होने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

योग्य है। क्षेमेंद्र ने ध्वनिकार की संपूर्ण सरणि का अनुकरण करते हुए पद, वाक्य, प्रबंध, क्रिया, कारक आदि में औचित्य की सत्ता दर्शाई है। वस्तुतः ध्वनि की पद्धति को अपना कर उसके समकक्ष लाने के प्रयास में ही औचित्य-सिद्धांत की उद्भावना हुई है। ध्वनिकार अनौचित्य के अतिरिक्त रसभंग का अन्य कारण नहीं मानते और औचित्य से बढ़कर रस का परम गुह्य रहस्य अन्य को स्वीकार भी नहीं करते। उन्होंने रसौचित्य, गुणौचित्य, अलंकारौचित्य का विस्तृत विवेचन कर औचित्य की महिमा गाई है। इस प्रकार औचित्य और ध्वनि परस्पर निकट दिखाई पड़ते हैं।

औचित्य के भेद—औचित्य-संप्रदाय के प्रवर्त्तक आचार्य क्षेमेंद्र ने औचित्य के सत्ताइस भेदों का वर्णन किया है। [दे० **औचित्य-सिद्धांत**] वे इस प्रकार हैं—

> **पदे वाक्ये प्रबंधार्थे गुणेऽलंकरणे रसे।**
> **क्रियायां कारके लिंगे वचने च विशेषणे॥ ८॥**
> **उपसर्गे निपाते च काले देशे कुले॰ व्रते।**
> **तत्त्वे सत्त्वेऽप्यभिप्राये स्वभावे सारसंग्रहे॥ ९॥**
> **प्रतिभायामवस्थायां विचारे नाम्न्यथाशिषि।**
> **काव्यस्यांगेषु च प्राहुरौचित्यं व्यापि जीवितम्॥ १०॥**
>
> —औचित्य विचार चर्चा

१. पद, २. वाक्य, ३. प्रबंधार्थ, ४. गुण, ५. अलंकार, ६. रस, ७. क्रिया, ८. कारक, ९. लिंग, १०. वचन, ११. विशेषण, १२. उपसर्ग-१३. निपात, १४. काल, १५. देश, १६. कुल, १७. व्रत, १८. तत्त्व, १९. सत्त्व, २०. अभिप्राय, २१. स्वभाव, २२. सारसंग्रह, २३. प्रतिभा, २४. अवस्था, २५. विचार, २६ नाम, २७. आशीर्वाद।

क्षेमेंद्र का कहना है कि जिस प्रकार शरीर के किसी एक मर्मस्थल के नष्ट हो जाने पर जीवन समाप्त हो जाता है, उसी प्रकार काव्य तथा उसके जीवन-भूत औचित्य की समाप्ति भी उपर्युक्त तत्त्वों में से किसी एक के नष्ट हो जाने से हो जाती है:

एतेषु पदप्रभृतिषु स्थानेषु मर्मस्विव काव्यस्य सकल शरीरव्यापि जीवितमौचित्यं स्फुटत्वेन स्फुरदवभासते।

—औचित्य विचार चर्चा, ८,९,१० की वृत्ति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्षेमेंद्र ने औचित्य के अनेक भेदों की कल्पना की है, जिनमें प्रधान सत्ताईस प्रकारों का उल्लेख किया है।

अन्येषु काव्यांगेषु अनयैव दिशा स्वयमौचित्यमुत्प्रेक्षणीयम्, तदुदाहरणानि आनंत्यान्न प्रदर्शितानीति अलमतिप्रसंगेन। —वही, अंतिम वाक्य

भेदों का विवरण—

१. पदौचित्य—काव्य में उपयुक्त या उचित पदों का प्रयोग समस्त सूक्ति को सुंदर बना देता है।

एकमेव उचितं पदं (तिलकायमानं) बिभ्राणा सूक्तिः समुचितपरभाग-शोभातिशयेन रुचिरतामावहयति।

समस्त सौंदर्य का एक पद में आ जाना—

तिलकं बिभ्रती सूक्तिर्भात्येकमुचितं पदम्।
चंद्राननेन कस्तूरीकृतं श्यामेव चांदनम्॥ ११॥

—औचित्य विचार चर्चा

उदाहरण—

क. परिम्लानं पीनस्तनजघन संगादुभयत-
स्तनोर्मध्यस्यांतः परिमिलनमप्राप्य हरितम्।
इदं व्यस्तन्यासं श्लथभुजलताक्षेपवलनैः,
कृशांग्याः संतापं वदति विसिनीपत्रशयनम्॥

—'रत्नावली'

यहाँ सागरिका के विरह का वर्णन है। "कमल की पंखुड़ियों की शय्या कृशांगी की विरह-व्यथा की सूचना दे रही है। क्योंकि, यह (शय्या) मांसल जघनों एवं पुष्ट स्तनों के संस्पर्श से म्लान या मलिन पड़ गई है अर्थात् शय्या के दोनों ही पार्श्व रगड़ के कारण मलिन हो गए हैं; किंतु इसका मध्य भाग हरा का-हरा है। क्योंकि, उसका शयन-काल में स्पर्श नहीं हो सका है। शिथिल भुजाओं के आक्षेप (इधर-उधर फेंकने) से इसकी रचना जहाँ-तहाँ उखड़ गई है।" यहाँ 'कृशांग्या' पद पदौचित्य का सुंदर उदाहरण है; क्योंकि इसके द्वारा ही सागरिका की विरह-व्यथा प्रकट हो रही है।

ख. मुझे फूल मत मारो।
मैं अबला, बाला, वियोगिनी कुछ तो दया विचारो॥

—साकेत

यहाँ अबला, बाला, वियोगिनी शब्द वियोग श्रृंगार के द्योतक हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२ *वाक्यौचित्य*—औचित्यपूर्वक रचित वाक्य काव्यमर्मज्ञों को आकृष्ट करता है या उन्हें अभीष्ट होता है।

औचित्यरचितं वाक्यं सततं सम्मतं सताम्।

—औचित्य विचार चर्चा, १२

उदाहरण—

क. संबंधी पुरुभूभुजां मनसिजव्यापारदीक्षागुरु-
गौरांगीवदनोपमापरिचितस्तारावधूवल्लभः।
सद्यो मार्जितदाक्षिणात्यतरुणीदंतावदातद्युति-
श्चंद्रः सुंदरि दृश्यतामयमितश्चंडीशचूड़ामणिः॥

"सुंदरी! इस चंद्रमा को तो देखो, यह शिवजी के भाल का आभूषण, पौरव नृपों का संबंधी, कामदेव के व्यापार की दीक्षा देनेवाला गुरु तथा गौरवदनी सुंदरियों के मुख का उपमान है। यह तारावधू का प्रिय एवं सद्यःमार्जित दक्षिण की तरुणियों के दाँतों की भाँति उज्ज्वल द्युतिवाला है।"

यहाँ श्रृंगार रस के कामोद्दीपक पदों के द्वारा वाक्यार्थ योजित हुआ है। चंद्रमा का वर्णन औचित्यपूर्ण है।

ख. दिवस का अवसान समीप था,
गगन था कुछ लोहित हो चला।
तरुशिखा पर थी अब राजती,
कमलिनी कुल वल्लभ की प्रभा॥ —प्रियप्रवास

यहाँ 'दिवस के अवसान की समीपता' के वर्णन में अन्य वाक्य प्रयुक्त हुए हैं, जो औचित्यपूर्ण हैं अर्थात् सभी वाक्य संध्या-वर्णन के सूचक हैं। वाक्यौचित्य में समस्त पद एक ही वाक्य में सौंदर्य का प्रदर्शन करते हैं।

३. *प्रबंधौचित्य*—जब कवि ऐसे अर्थ का उपनिबंधन करे, जिससे समस्त प्रबंध चमक उठे तो उसे प्रबंधौचित्य कहेंगे। उचित अर्थ के समावेश से समग्र प्रबंध का चमक जाना कवि-प्रतिभा का द्योतक है। इसका सुंदर उदाहरण महाकवि कालिदास का 'मेघदूत' है।

क. उचितार्थ विशेषेण प्रबंधार्थः प्रकाश्यते।
गुणप्रभावभव्येन विभवेनेव सज्जनः॥

—औचित्य विचार चर्चा, १३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां
जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः ।
तेनार्थित्वं त्वयिविधिवशाद्दूरबंधुर्गतोऽहम्
यांचा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ।।

यक्ष मेघ से कह रहा है कि तुम पुष्पकावर्त्तक नामक मेघ के विश्वविख्यात कुल में जन्मे हो। तुम इंद्रदेव के प्रधान पुरुष एवं इच्छानुसार रूप धारण करने वाले हो। यह सोचकर ही मैं, जो दुर्भाग्य से प्रिया से वियुक्त हूँ, तुम्हारे पास याचने के लिए उपस्थित हुआ हूँ; क्योंकि श्रेष्ठ व्यक्तियों से सफल न हुई याचना भी उत्तम है, पर अधम पुरुष की सफल याचना ठीक नहीं। यहाँ अचेतन मेघ पर चेतनता का आरोप तथा उसकी वंश-प्रतिष्ठा एवं दान-प्रियता आदि का कल्पित वर्णन समग्र काव्य को चमत्कृत कर देता है, जिससे संपूर्ण रचना औचित्य की मनोरम व्यंजना में समर्थ हो जाती है।

ख. अविगत गति कछु कहत न आवै।
ज्यों गूँगै मीठे फल को रस अंतर्गत ही भावै ।।
परम स्वाद सबही जु निरंतर अमित तोष उपजावै।
मन वाणी को अगम अगोचर सो जानै जो पावै ।।
रूप रेख गुन जानि जुगति बिन निरालंब तन चक्रित धावै।
सब विधि अगम विचारहिं ताते सूर सगुन लीला पद गावै ।।

'सगुण लीला पद का गान' ही सूर के काव्य का मूल स्वर है। इसी का औचित्ययुक्त वर्णन इस पद्य में है।

४. *गुणौचित्य*—जब प्रस्तुत अर्थ या विषय के अनुरूप माधुर्य, ओज एवं प्रसाद गुणों का विधान किया जाय तो गुणौचित्य होगा।

प्रस्तुतार्थोचितः काव्ये भव्यः सौभाग्यवान् गुणः।
स्पंदतींदुरिवानंदं संभोगावसरोचितः ।।
—औचित्य विचार चर्चा, १४

उदाहरण—

क. हारो जलार्द्रवसनं नलिनीदलानि,
प्रालेयशीकरमुचः तुहिनांशुभासः।
यस्येंधनानि सरसानि च चंदनानि,
निर्वाणमेष्यति कथं स मनोभवाग्निः ।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ बाणभट्ट ने वियोगविधुरा कादंबरी की दशा का वर्णन किया है। मोतियों का हार, भीगा वस्त्र, कमलिनी के कोमल पत्ते, शीतल चांदनी तथा सरस चंदन का लेप जिस कामाग्नि के इंधन हों, वह कामाग्नि भला कैसे बुझ सकती है? विरहव्यथा की व्यंजना माधुर्य गुण में करके कवि ने गुणौचित्य का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत प्रसंग के अनुरूप माधुर्य गुण की योजना संपूर्ण श्लोक को सुंदर बनाती है।

ख दावा द्रुम दंड पर, चीता मृग झुंड पर,
भूषण वितुंड पर जैसे मृगराज हैं।
तेज तम अंस पर, कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों मलेच्छ बंस पर सेर शिवराज हैं॥ —भूषण

यहाँ वीररसोचित वर्णन में ओजगुण का सुंदर प्रयोग गुणौचित्य का रूप प्रस्तुत करता है।

५. *अलंकारौचित्य*—प्रस्तुत अर्थ के अनुरूप (उचित अर्थ को संपन्न करने के कारण) अलंकार का विन्यास किसी भी सूक्ति को चमत्कृत कर देता है। अलंकार का रसोत्कर्ष-विधायकत्व ही उसकी अलंकारत्व की सिद्धि है।

अर्थौचित्यवता सूक्तिरलंकारेण शोभते ॥ १५ ॥
—औचित्य विचार चर्चा

उदाहरण—

क. अपसारय घनसारं कुरु हारं दूर एव किं कमलैः।
अलमलमालि मृणालैरिति वदति दिवानिशं बाला ॥

यहाँ किसी वियोगिनी की विरह-व्यथा का वर्णन सिसकती हुई भाषा में किया गया है। वह (बाला) दिन-रात यही कहा करती है कि "कपूर का लेप दूर करो, हार को हटाओ, कमलों की क्या आवश्यकता? हे अली! मृणाल को दूर रखो, यह व्यर्थ है।" यह श्लोक विप्रलंभ शृंगार का है। इसकी प्रथम पंक्ति में 'र' की एवं द्वितीय पंक्ति में 'ल' की आवृत्ति होने में अनुप्रास अलंकार है। यहाँ यह अलंकार वियोग-व्यथा की अभिव्यक्ति में साधक होने के कारण उचित रूप में विन्यस्त हुआ है। अतः, यह अलंकारौचित्य का उदाहरण हुआ। [दे० अनुप्रास]

ख. दृग उरझत टूटत कुटुम जुरत चतुर चित प्रीति।
परति गांठ दुरजन हिये दई नई यह रीति ॥
—बिहारी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस दोहे में असंगति अलंकार का सुंदर विन्यास है। [दे० असंगति]

६. *रसौचित्य*—औचित्यपूर्ण रस अत्यंत हृदयहारी एवं आकर्षक होता है अर्थात् औचित्य के कारण ही रस सहृदयहृदयावर्जक होता है।

कुर्वन् सर्वाशये व्याप्तिमौचित्यरुचिरो रसः ।

—औचित्य विचार चर्चा, १६

उदाहरण—

क. बालेंदुवक्त्राण्यविकासभावाद्,

बभुः पलाशान्यतिलोहितानि ।

सद्यो वसंतेन समागतानां,

नखक्षतानीव वनस्थलीनाम् ॥

—कुमारसंभव, ३/२९

यहाँ बताया गया है कि पलाश के लाल-लाल पुष्प, जो अभी पूर्णतः विकसित नहीं हुए हैं, वे बालचंद्र की भाँति टेढ़े लगते हैं, वे ऐसे शोभ रहे हैं मानो प्रिय वसंत ने अपनी प्रिया वनस्थली को सद्यः नखक्षत किया हो। वसंत का उद्दीपक वर्णन औच्दित्यपूर्ण है। वसंत के ऊपर कामुक पुरुष का आरोप एवं वनस्थली को नायिका बनाकर पलाश पुष्प की कल्पना नवसंगम के समय किए गए नखक्षत के रूप में की गई है।

ख. करता हुआ बध वैरियों का वैर-शोधन के लिए ।
रणमध्य वह फिरने लगा अति दिव्यद्युति धारण किए ॥
वह वीरवर जिस ओर को संग्राम करने पर तुला ।
भगते हुए अरि-वृंद से मैदान खाली हो चला ॥
रथ-पथ कहीं भी रुद्ध उसका दृष्टि-पथ आया नहीं ।
सम्मुख हुआ जो वीर वह मारा गया तत्क्षण वहीं ॥

—गुप्तजी

यहाँ वीर रस का औचित्यसंपन्न प्रयोग हुआ है। यहाँ केवल प्रधान भेदों का दिग्दर्शन कराया गया है, शेष जितने भी भेद हैं, उनके उचित वर्णन में औचित्य होता है। उदाहरण के लिए—

७. *प्रतिभौचित्य* में कवि-प्रतिभा के उचित प्रयोग से काव्य का चमत्कृत होना कहा गया है। प्रतिभा का आभरण प्राप्त कर काव्य का शोभन होना।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

८. *सारसंग्रहौचित्य*—में दार्शनिक विचारों का काव्य में सार-ग्रहण किया जाता है।

६. *विचारौचित्य*—उचित विचार के समावेश से काव्य का सुंदर बन जाना आवश्यक है।

१०. *नामौचित्य*—में कर्मानुसार नाम के द्वारा गुण एवं दोष की अभिव्यक्ति का कथन किया जाता है।

नाम्ना कर्मानुरूपेण ज्ञायते गुणदोषयोः।
काव्यस्य पुरुषस्येव व्यक्तिः संवादपातिनी ॥

—औचित्य विचार चर्चा, ३८

११. *अवस्थौचित्य*—अवस्थागत औचित्य के निर्वाह से काव्य संसार में पूज्य होता है।

१२. *व्रतौचित्य*—सच्चे व्रतौचित्य के नियोजन से काव्यार्थ का साधुवादार्ह होना आवश्यक है।

१३. *तत्वौचित्य*—जब कवि किसी तात्त्विक बात की उद्भावना करे तो काव्य अधिक उपयोगी बन जाता है। इस प्रकार का काव्य दूसरों के सामान्य सत्य की अभिव्यक्ति कर विशेष महनीय बनता है।

१४. *आशीर्वचनौचित्य*—जिस प्रकार मनीषियों का उचित आशीर्वाद प्राप्त कर राजा अभ्युदयी होता है, उसी प्रकार पूर्ण अर्थ का प्रकाशन करते हुए विद्वानों को संतुष्ट करनेवाला काव्य भी आदर का पात्र बनता है।

पूर्णार्थदातुः काव्यस्य संतोषितमनीषिणः।
उचिताशीर्नृपस्येव भवत्यभ्युदयावहा ॥ ३६ ॥

—औचित्य विचार चर्चा

यहाँ कुछ हिंदी उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

क. प्रतिभौचित्य—

राम एक तापस तिय तारी। नामु कोटि खल कुमति सुधारी ॥
रिषि हित राम सुकेतु सुता की। सहित सेन सुत कीन्ह बिबाकी ॥
सहित दोष दुख दास दुरासा। दलइ नामु जिमि रवि निसि नासा ॥
भंजेउ राम आपु भव चापू। भव भय भंजन नामु प्रतापू ॥

—रामायण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ राम-नाम को उत्कृष्ट बनाने में कवि-प्रतिभा का उचित प्रयोग हुआ है।

ख. क्रियौचित्य—

राम भालु कपि कटक बटोरा।
सेतु हेतु श्रम कीन्ह न थोरा॥
नाम लेत भव-सिंधु सुखाहीं।
करहु बिचारु सुजन मनमाहीं॥

यहाँ 'बटोरा' क्रिया का प्रयोग औचित्यपूर्ण है।

ग. व्रतौचित्य—

जिय बिनु देह नदी बिनु बारी।
तैसेइ नाथ पुरुष बिनु नारी॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे।
सरद बिमल विधु बदन निहारे॥
—रामायण

यहाँ पति के साथ वन जाने के लिए तैयार सीता के कथन में व्रतौचित्य है।

घ. तत्त्वौचित्य—

धीरज धरम मित्र अरु नारी।
आपत काल परखियेउ चारी॥
—रामायण

ङ. सारसंग्रहौचित्य—

सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि-लाभ, जीवन-मरन, जस-अपजस विधि हाथ॥
—रामायण

च. विचारौचित्य—

भलो भलाइहि पै लहइ, लहइ निचाइहि नीच।
सुधा सराहिय अमरता, गरल सराहिय मीच॥
—रामायण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

छ. स्वभावौचित्य—

वह आता
दो टूक कलेजे करता, पछताता पथ पर आता।
पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक
चल रहा लकुटिया टेक
मुट्ठी भर दाने को—भूख मिटाने को
मुँह फटी पुरानी झोली को फैलाता।

—निराला

पहले ही कहा जा चुका है कि औचित्य के प्रकारों की कोई इयत्ता नहीं है। इनके अतिरिक्त भी औचित्य के अनेक भेद संभव हैं। डॉ० चंद्रहास पाठक ने अपने शोध-प्रबंध 'औचित्य संप्रदाय का हिंदी काव्यशास्त्र पर प्रभाव' में अन्य चौंतीस भेदों की भी सूची दी है।

१. साहित्यौचित्य
२. कांता संमितौचित्य
३. लोकौचित्य
४. शास्त्रौचित्य
५. काव्यौचित्य
६. संघटनौचित्य
७. वृत्तौचित्य (छंद)
८. नामकरणौचित्य
९. उद्भावनौचित्य
१०. प्रसंगोद्भेदौचित्य
११. अवसरौचित्य
१२. प्रकरणौचित्य
१३. संदर्भौचित्य
१४. कथावृत्तौचित्य
१५. मिथ्यौचित्य
१६. अवाच्यौचित्य
१७. अवचनौचित्य
१८. प्रकरणौचित्य
१९. इतिहासौचित्य
२०. इतिहासविरुद्धौचित्य
२१. संवादौचित्य
२२. सामान्यौचित्य
२३. गूढौचित्य
२४. संबोधनौचित्य
२५. वार्त्ताक्रमौचित्य
२६. वर्णनौचित्य
२७. भेदौचित्य
२८. अभेदौचित्य
२९. प्रकरणद्वयौचित्य
३०. पूर्वभासौचित्य
३१. शकुनौचित्य
३२. उपगूहनौचित्य
३३. भावावेशौचित्य
३४. प्रयोगौचित्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

औचित्य और रस—क्षेमेंद्र के अनुसार रससिद्ध औचित्य ही काव्य का प्राण है। दोनों में परस्पर प्राण और आत्मा का संबंध होता है। रस के साथ औचित्य का संयोग ही सहृदय के हृदय में आह्लादकता अंकुरित करता है और रसों का औचित्यपूर्ण संयोजन ही काव्य का प्राण है। आनंदवर्द्धन के अनुसार, अनौचित्य से बढ़कर रसभंग या रसवैरस्य का अन्य कारण नहीं है और रसों का औचित्यपूर्ण प्रयोग ही रस-सिद्धि का परम रहस्य है। यदि अभीष्ट रस के अनुरूप ही विभावादि का विधान किया जाय तो रसोत्कर्ष का कारण होगा, अन्यथा प्रकृत रस के प्रतिकूल विभावादि का संयोजन रसवैरस्य उत्पन्न करेगा। ध्वनिकार ने रसौचित्य को ध्यान में रखकर ही यह विधान किया है कि कवि परंपरागत इतिवृत्ति में से प्रकृत रस के प्रतिकूल अंश को हटाकर रसादि के समुचित संयोजन का प्रयास करे अर्थात् प्रकृत रस के प्रतिकूल पड़ने-वाले कथा के अंश का त्याग किया जाय। ध्वनिकार के अनुसार औचित्य के अभाव में ही प्रबंध में अकांडछेदन, अकांडप्रथन, अंगी का अनुसंधान आदि रस-संबंधी दोष होते हैं। औचित्य काव्य के मूल तत्त्व रसध्वनि का प्रमुख सहायक है और रस के अभाव में वह (औचित्य) भी प्रभावहीन हो जाता है।

औचित्य और रीति—औचित्य-समर्थक आचार्यों ने काव्य के सभी अंगों एवं तत्त्वों में औचित्य का विधान कर उन्हें सुंदर बनाने का सुझाव दिया है। इस दृष्टि से विचार करने पर रीति के साथ औचित्य का अत्यंत घनिष्ठ संबंध स्थापित हो जाता है। ध्वनिकार ने संघटना या रीति का नियमन कर उसमें अपूर्व सौंदर्य भरने का प्रयास किया है। उनके अनुसार संघटना के नियामक तत्त्व हैं—वक्त्रौचित्य, वाच्यौचित्य एवं विषयौचित्य। कवि वक्ता, विषय एवं काव्यरूप के अनुरूप ही रीति का विधान कर उसे सुंदर एवं भव्य बना सकता है। प्रत्येक रस के अनुसार ही रीति का नियोजन होने से उसकी सफल अभिव्यक्ति संभव है। रीति का औचित्यपूर्ण निर्वाह प्रबंधगत पात्रों की प्रकृति एवं मनःस्थिति के अनुरूप संघटन में निहित है। उद्धत पात्र के भावों की अभिव्यक्ति परुष पदों के द्वारा एवं कोमल तथा सौम्य पात्र के विचार ललित एवं मधुर शब्दावली में प्रकट किए जाएँ। इसी प्रकार प्रबंध, मुक्तक, नाटक, कथा, आख्यायिका के अनुकूल होकर ही रीति सुंदर हो सकती है।

औचित्य और वक्रोक्ति—वक्रोक्तिवादी कुंतक औचित्य को वक्रोक्ति का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्राण या जीवन-सर्वस्व मानते हैं। उनके अनुसार औचित्य के अभाव में सहृदय के हृदय में आह्लादकता उत्पन्न नहीं हो सकती।

उचिताभिधानजीवितत्वात् वाक्यस्याप्येकदेशेऽप्यौचित्यविरहात् तद्विदाह्लादकारित्वहानिः ।

—वक्रोक्तिजीवित, १/५७, वृत्ति

कुंतक की दृष्टि में औचित्य काव्य का एक आवश्यक तत्त्व है। कुंतक तथा क्षेमेंद्र दोनों ने ही रस की महत्ता स्वीकार की है। इस प्रकार औचित्य और वक्रोक्ति में घनिष्ठ संबंध स्थापित हो जाता है। वक्रोक्ति-सिद्धांत का सर्वोत्तम रूप प्रबंध-वक्रता में दिखाई पड़ता है और प्रबंध-वक्रता का प्राण है रस। इस प्रकार रस वक्रोक्ति-संप्रदाय का अत्यंत महनीय तत्त्व है। क्षेमेंद्र ने भी रस की महत्ता स्वीकार कर रससिद्ध औचित्य को ही काव्य का स्थिर जीवन माना है और कुंतक ने वक्रता के विभिन्न रूपों के निरूपण में औचित्य का समावेश कर उसको महत्त्व दिया है। मार्गों के विवेचन में कुंतक सौभाग्य-गुण का वर्णन करते हुए औचित्य की आवश्यकता समझते हैं—

पदस्य तावदौचित्यं बहुविधभेद भिन्नोवक्रभावः।

उनके पद, वाक्य तथा प्रबंधवक्रता आदि भेदों तथा क्षेमेंद्र-कृत औचित्य के तत्तद् प्रकारों में भी साम्य परिलक्षित होता है; पर दोनों में अभिन्नत्व स्वीकार न कर एक दूसरे के सौंदर्य का साधक माना जा सकता है। वक्रोक्ति की वक्रता-सिद्धि का साधन औचित्य है।

औचित्य—अग्निपुराण में वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। जब विषयानुरूप रीति, वृत्ति एवं रस का समावेश किया जाय तो वहाँ औचित्य अलंकार होता है। यह अलंकार न होकर औचित्य-सिद्धांत या संप्रदाय के निकट है।

यथावस्तु यथा रीतिर्यथा वृत्तिस्तथा रसः।
ऊर्जस्विमृदुसंदर्भादौचित्यमुपजायते ॥

—अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग, ९/५

औचित्य और अलंकार—अलंकार और औचित्य में अत्यंत घनिष्ठ संबंध है। काव्य में अलंकार का औचित्यपूर्ण विधान ही उसके चमत्कार या सौंदर्याभिव्यक्ति का कारण बनता है, अन्यथा उसका अनुचित प्रयोग वैरस्य उत्पन्न करनेवाला सिद्ध होगा। अलंकारों के अलंकारत्व का कारण औचित्य ही है और उचित स्थान में प्रयुक्त होकर ही अलंकार शोभा-साधक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बनता है। काव्य में अलंकारों का विधान रसोत्कर्ष-विधायक होना चाहिए अर्थात् वे रसानुकूल हों। उनका इस प्रकार विन्यास हो कि रससिद्ध कवि को उनके लिए प्रयास नहीं करना पड़े। अलंकार रस के अंगरूप में प्रयुक्त होकर एवं रस-सिद्धि में सहायक बनकर ही अलंकारत्व को सार्थक करते हैं। लौकिक अलंकार की भाँति साहित्यिक अलंकार भी उचित रूप में उचित स्थान पर विन्यस्त होकर काव्य का शोभावर्द्धन करते हैं। आनंदवर्द्धन की अलंकार-विषयक पंचसूत्री उनके औचित्यपूर्ण विन्यास का घोषणापत्र है।

क. अलंकार रसादि के अंगरूप में विन्यस्त हो,

ख. वह कभी भी अंगी रूप में प्रयुक्त न हो,

ग. रसादि की प्रधानता के आधार पर अलंकारों का प्रयोग विषय एवं मुख्य वस्तु के अनुकूल हो,

घ. अलंकारों का यत्नसाधित विन्यास न हो और

ङ. यदि प्रयत्नपूर्वक भी अलंकारों का विधान किया जाय तो वे अंगरूप न हों।

औचित्य-संप्रदाय—औचित्य-संप्रदाय के प्रतिष्ठापक आचार्य क्षेमेंद्र हैं, जिन्होंने 'कविकंठाभरण,' 'औचित्य विचार चर्चा' एवं 'सुवृत्ततिलक' नामक काव्यशास्त्रीय ग्रंथों की रचना की है। उन्होंने अपने ग्रंथ 'औचित्य विचार चर्चा' में औचित्य को आत्मसंस्थापनीय तत्त्व के रूप में उपस्थापित किया है। यद्यपि इस संप्रदाय के प्रवर्त्तक क्षेमेंद्र माने जाते हैं; पर इसका शृंखलाबद्ध विवेचन भरत मुनि से प्रारंभ हो जाता है; इसलिए औचित्य की महनीयता के आद्य उद्भावक भरत सिद्ध होते हैं। उन्होंने औचित्य को सिद्धांत का रूप न देकर एक प्रसिद्ध काव्यतत्त्व के रूप में उपस्थापित किया है। नाटक के विविध अंगों का विवेचन करते हुए भरत मुनि ने बताया है कि नाटक के औचित्यविधान का नियामक शास्त्र न होकर लोक-व्यवहार है। लोकचरित के अनुकरण को नाट्य की संज्ञा देकर उन्होंने इस तथ्य का रहस्योद्घाटन किया है। प्रत्येक नाटककार के लिए लोक-स्वभाव का ज्ञान आवश्यक है। नाट्य में कौन-कौन से तत्त्व ग्राह्य एवं अग्राह्य हैं और किसका अभिनय अभिनंदनीय और किसका वर्ज्य है, इसका निराकरण लोक-व्यवहार-द्वारा ही संभव है। अतः, नाटक में लोकसिद्ध पदार्थों का सम्यक् विधान होना चाहिए। अभिनय के अवसर पर पात्रों की वेशभूषा का वर्णन करते हुए भरत मुनि ने औचित्य-तत्त्व का अनुसंधान किया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नाटक में पात्रों का वेष अवस्थानुकूल हो तथा वेष के अनुसार गति, एवं क्रिया, गति के अनुकूल पाठ्य तथा पाठ्य के अनुकूल अभिनय वांछनीय है—

नानाभावोपसंपन्नं नानावस्थांतरात्मकम्।
लोकवृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मया कृतम्॥१/१०९
लोकसिद्धं भवेत्सिद्धं नाट्यं लोकस्वभावजम्।
तस्मान्नाट्यप्रयोगे तु प्रमाणं लोक इष्यते॥२६/११३
लोकस्य चरितं यत्तु नानावस्थांतरात्मकम्।
तदंगाभिनयोपेतं नाट्यमित्यभिसंज्ञितम्॥२६/११५
नोक्तानि च मया यानि लोकग्राह्याणि तान्यपि।२४/२१४
नानाशीलाः प्रकृतयः शीले नाट्यं प्रतिष्ठितम्।
तस्माल्लोकप्रमाणं हि कर्त्तव्यं नाट्ययोक्तृभिः॥२६/११९

—नाट्यशास्त्र

वयोऽनुरूपः प्रथमस्तु वेषः, वेषानुरूपश्च गतिप्रचारः।
गतिप्रचारानुगतं च पाठ्यं, पाठ्यानुरूपोऽभिनयश्च कार्यः॥१४/६८

—वही

भरत ने औचित्य का नाम न लेते हुए भी क्षेमेंद्र के अनुरूप ही इसका विवेचन प्रस्तुत किया है।

विन्यासं भूमिकानां तु संप्रवक्ष्यामि नाटके।
सादृश्यो यस्य कर्त्तव्या विन्यासे भूमिकास्ततः॥३५/१

उन्होंने औचित्य के पर्याय-रूप में 'अनुरूप' शब्द का प्रयोग किया है। 'नाट्यशास्त्र' में औचित्य का निर्धारण पाठ्यभाषा, रसस्वरूप, नाट्यस्वरूप, प्रवृत्ति-निरूपण, प्रकृति-विचार, भूमिका-विन्यास आदि का वर्णन करते हुए किया गया है। भरत ने देश के प्रतिकूल वेष के वर्णन में औचित्य-दोष का जो निदर्शन किया है, उसकी छाया क्षेमेंद्र में प्राप्त होती है।

अदेशजो हि वेषस्तु न शोभां जनयिष्यति।
मेखलोरसि बंधे च हास्यायैवोपजायते॥—वही, २१/७१

भरत का आलोच्य विषय नाट्य और साध्य रस था। अतः, उन्होंने रस के विचार से ही अनुरूपता एवं अननुरूपता का विवेचन किया है। वे औचित्य या अनुरूपता को रस का सहायक सिद्ध करते हैं।

भामह ने औचित्य के लिए 'न्याय्य' 'युक्तता' का प्रयोग किया है। वे भरत की भाँति औचित्य का नियामक लोक-स्वभाव को मानते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

युक्तं लोकस्वभावेन रसैश्च सकलैः पृथक् ॥

—काव्यालंकार, १/२१

चारुताघटक उपादानों की चर्चा करते हुए वे औचित्य का निरूपण करते हैं। उन्होंने महाकाव्य में नायक का वध तथा आख्यायिका में नायक-द्वारा स्वगुण के वर्णन को अनौचित्य दोष से संवलित माना है।

स्वगुणमाविस्कृतिं कुर्यादभिजातः कथं जनः ।—१/२६

दोष-मुक्ति का निर्देश कर भामह ने बताया है कि दुष्ट उक्ति भी सन्निवेश-विशेष के कारण सुंदर बन जाती है। असाधु पदार्थ भी साधु आश्रय को प्राप्त कर उसी प्रकार शोभन होता है, जिस प्रकार स्वाभाविक काला कज्जल भी रमणी के नेत्रों में लगकर शोभाधायक हो जाता है।

सन्निवेशविशेषात्तु दुरुक्तमपि शोभते ।
नीलं पलाशमाबद्धमंतराले स्रजामिव ॥ १/५४
किंचित् आश्रयसौंदर्यात् धत्तेशोभामसाध्वपि ।
कांताविलोचनन्यस्तं मलीमसमिवांजनम् ॥

—काव्यालंकार, १/५५

दंडी ने 'काव्यादर्श' में दोष-परिहार के अवसर पर औचित्य-तत्त्व का निर्देश किया है। उनके अनुसार सभी दोष कविकौशल का संस्पर्श प्राप्त कर गुण बन जाते हैं। यहाँ औचित्य और अनौचित्य की कसौटी ही दोष में गुणाधान करनेवाली मानी गई है।

विरोधः सकलोऽप्येष कदाचित् कविकौशलात् ।
उत्क्रम्य दोषगणनां गुणवीथीं विगाहते ॥

—काव्यादर्श, ४/१७९

भामह और दंडी औचित्य के अप्रत्यक्षदर्शी आचार्य हैं। उनके ग्रंथों में इसका प्रत्यक्ष वर्णन नहीं है; पर इसका संकेत अवश्य है।

यशोवर्मा के 'रामाभ्युदय' नाटक में औचित्य तत्त्व का उल्लेख है, जिसमें नाटक के आवश्यक गुणों का वर्णन है।

औचित्यं वचसां प्रकृत्यनुगतं सर्वत्र पात्रोचिता,
पुष्टिः स्वावसरे रसस्य च, कथामार्गे च चातिक्रमः ।
शुद्धिः प्रस्तुतसंविधानकविधौ, प्रौढिश्च शब्दार्थयोः,
विद्वद्भिः परिभाव्यतामवहितैः, एतावदेवास्तु नः ॥

—शृंगारप्रकाश भाग २, पृ० ४११

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रुद्रट के 'काव्यालंकार' में औचित्य-विषयक उन अनेक तत्त्वों का संकेत है, जिनका मौलिक विवेचन 'ध्वन्यालोक' में प्राप्त होता है। कविता में अनुप्रास की प्रायोगिक स्थिति का विचार औचित्य की दृष्टि से किया गया है। रुद्रट रसोत्कर्ष-विधायक यमक-निबंधन के पक्ष में अपना मत व्यक्त करते हुए औचित्य का आख्यान करते हैं।

एताः प्रयत्नादधिगम्यसम्यगौचित्यमालोच्य तथार्थसंस्थम्।
मिश्राः कवींद्रै रघनाल्पदीर्घाः कार्या मुहुश्चैव गृहीतमुक्ताः ॥

—काव्यालंकार; २/३२

इनके मतानुसार औचित्य गुण का नियामक और अनौचित्य दोष का है।

औचित्य-सिद्धांत के विकास में आनंदवर्द्धन की देन अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने रस के साथ इसका संबंध स्थापित कर इसकी महत्ता और भी अधिक बढ़ा दी है। वे ध्वनिवादी आचार्य होते हुए भी रस को ही काव्य का आत्मभूत तत्त्व स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार अनौचित्य से बढ़कर रसभंग का दूसरा कारण नहीं है और औचित्य ही रस का 'परा उपनिषद्' या परम रहस्य है।

अनौचित्यादृते नान्यद् रसभंगस्य कारणम्।
प्रसिद्धौचित्यबंधस्तु रसस्योपनिषत् परा ॥

—ध्वन्यालोक, ३/१५

आनंदवर्द्धन ने बताया कि औचित्य ही रस-निरूपण का मुख्य तत्त्व है और रस का औचित्यपूर्ण विधान ही सौंदर्योद्बोधक होता है। उन्होंने इसी क्रम में अलंकार, गुण, संघटना एवं प्रबंध के वर्णन में भी औचित्य का महत्त्व दर्शाया है। विभाव, अनुभाव और संचारी की उचित योजना रस-बोध का कारण है। रसोत्कर्ष की दृष्टि से किया गया अलंकार, गुण एवं रीति का विधान ही अलंकारत्व एवं गुणत्व का विधायक है। सघटना का औचित्य माधुर्यादि गुणों के अनुरोध से है। संघटना का उद्देश्य रसाभिव्यक्ति है और गुण रसनिष्ठ होते हैं; अतः रसानुकूल शब्दों का चयन संघटना के चारुत्व का द्योतक है।

गुणानाश्रित्य तिष्ठंती माधुर्यादीन्व्यनक्ति सा।
रसांस्तन्नियमे हेतुरौचित्यं वक्तृवाच्ययोः ॥ —वही ३/६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आनंदवर्द्धन ने रसौचित्य, प्रबंधौचित्य, वाचकौचित्य, वृत्त्यौचित्य, संघटनौचित्य, वक्तृऔचित्य, विषयौचित्य तथा अलंकारौचित्य का सम्यक् विवेचन कर औचित्य का महत्त्व प्रतिष्ठित किया है।

अभिनवगुप्त ने ध्वनिकार के मार्ग का अनुसरण करते हुए औचित्य का महत्त्व स्वीकार किया। उनके अनुसार औचित्य के बिना रसवत्ता नहीं है और वह (औचित्य) रस-ध्वनि पर आश्रित रहता है। उन्होंने रस तथा ध्वनि के साथ औचित्य के संबंध को स्थापित कर नई व्यवस्था दी है।

औचित्यवतीजीवितमितिचेत्, औचित्यनिबंधनं रसभावादिमुक्त्वा नान्यत् किंचिदस्तीति तदेवांतर्भासि मुख्यं जीवितमित्यभ्युपगंतव्यं न तु सा।

—लोचन, पृ० २६०

वक्रोक्तिवादी कुंतक औचित्य के प्रबल पोषक हैं। उन्होंने वक्रोक्ति के कई भेदों के निरूपण में औचित्य की आवश्यकता प्रदर्शित की है। उनके अनुसार रस, वस्तु आदि को अनौचित्य से रहित होना चाहिए। कुंतक वक्रता के अनेक प्रकारों को औचित्य से युक्त मानकर दोनों में (वक्रता और औचित्य) अभिन्नत्व सिद्ध कर देते हैं। पदौचित्य का लक्षण प्रस्तुत करते हुए उन्होंने इसे औचित्य से अभिन्न सिद्ध किया है—

तत्र पदस्य तावदौचित्यं बहुविधमेतदभिन्ने वक्रभावः।

यहाँ वक्रता और पदौचित्य को अभिन्न माना गया है। काव्य-प्रयोजन का वर्णन करते हुए कुंतक ने काव्य के प्रयोजनीय सौंदर्य को नूतनौचित्य की अभिधा प्रदान की है।

व्यवहारपरिस्पंदसौंदर्यं व्यवहारिभिः।
सत्काव्याधिगमादेव नूतनौचित्यमाप्यते॥

—वक्रोक्तिजीवित, १/४

काव्य के प्रयोजनीय सौंदर्य तत्त्व के दो प्रकार किए गए हैं—साधारण और असाधारण और साधारण के भी दो भेद माने गए हैं—औचित्य और सौभाग्य। यहाँ औचित्य को काव्य का साधारण गुण स्वीकार कर प्रकारांतर से यह सिद्ध किया गया है कि औचित्य के अभाव में काव्य व्यर्थ है। असाधारण गुण के अंतर्गत सुकुमार, विचित्र तथा मध्यम मार्गों का विवेचन किया गया है। इन्हें कुंतक वृत्त्यौचित्य के नाम से पुकारते हैं और बताते हैं कि इनका अस्तित्व रस के परिपोषण के ही कारण है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वृत्त्यौचित्यं मनोहारि रसानां परिपोषणम् ।
स्पर्धया विद्यते यत्र यथास्वमुभयोरपि ॥

—वक्रोक्तिजीवित, १/३५

कालवक्रता के अंतर्गत उन्होंने कालौचित्य का निरूपण किया है ।

औचित्यांतरतम्येन समयो रमणीयताम् ।
याति यत्र भवत्येषा कालवैचित्र्यवक्रता ॥

—वही, २/२६

उनके अनुसार औचित्य का अर्थ है किसी पदार्थ के स्वभाव का उत्कर्ष—

औचित्यं वस्तुनः स्वभावोत्कर्षः । २/२६

कुंतक ने औचित्य की दो स्थितियों का उल्लेख किया है । प्रथम स्थिति में पदार्थ के स्वभाव का तद्रूप चित्रण किया जाता है और दूसरे में वक्ता अथवा श्रोता के रमणीय स्वभाव-द्वारा अभिधेय वस्तु सर्वथा आच्छादित हो जाती है या कुछ-का-कुछ बन जाती है ।

आंजसेन स्वभावस्य महत्त्वं येन पोष्यते ।
प्रकारेण तदौचित्यमुचिताख्यानजीवितम् ॥
यत्र वस्तु प्रमातुर्वा वाच्यं शोभातिशायिना ।
आच्छाद्यते स्वभावेन तदप्यौचित्यमुच्यते ॥

—वक्रोक्तिजीवित, १/५३-५४

अनुमितिवादी महिम भट्ट ध्वनिकार के कट्टर विरोधी होते हुए भी उनके रस एवं औचित्य-विषयक मतों के समर्थक हैं । वे औचित्य को काव्य का स्वरूपाधायक तत्त्व मानते हैं । 'महिम रस-प्रतीति को एकमात्र औचित्य का ही फल मानते हैं। उन्होंने एकमात्र काव्य-दोष अनौचित्य को ही स्वीकार कर उसका लक्षण रसाप्रतीति किया है अर्थात् रस के विघातक तत्त्व को अनौचित्य माना है ।

तस्य (औचित्यस्य) काव्यस्वरूपनिरूपणसामर्थ्य सिद्धस्य पृथगुपादान वैयर्थ्यात् ।....रसात्मकं च काव्यमिति कुतस्तत्रानौचित्यसंस्पर्शः संभाव्यते, यन्निरासार्थमित्थं काव्यलक्षणमाचक्षीरन् विचक्षणम्मन्याः ।

—व्यक्तिविवेक, २/१२६

एतस्य (अनौचित्यस्य) विवक्षित रसादि प्रतीतिविघ्नविधायित्वं नाम सामान्य लक्षणम् ।

—वही, २/१५२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

महिम भट्ट का उपर्युक्त विवेचन औचित्य का महत्त्व प्रदर्शित करनेवाला है।

भोज ने 'सरस्वतीकंठाभरण' तथा 'शृंगारप्रकाश'—दोनों ही ग्रंथों में यत्र-तत्र औचित्य का विवेचन किया है। वे गुण, रस एवं अलंकार के वर्णन में औचित्य की भावदृष्टि स्वीकार करते हैं। सरस्वतीकंठाभरण में 'अनुमानविरोध' दोष के अंतर्गत 'औचित्य-विरोध' नामक दोष का वर्णन किया गया है।

युक्त्यौचित्यप्रतिज्ञादिकृतो यस्त्विह कश्चन।
अनुमानविरोधः स कविमुख्यैर्निगद्यते॥

इसी ग्रंथ के द्वितीय परिच्छेद में जाति नामक शब्दालंकार के अंतर्गत 'भाषौचित्य' का सुंदर विवेचन है। संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश में से किस भाषा का कहाँ व्यवहार होना चाहिए और किस पात्र-द्वारा इनका प्रयोग हो, इसका उचित विधान काव्य-सौंदर्य का साधक है।

तत्र संस्कृतमित्यादिर्भारती जातिरिष्यते।
सा त्वौचित्यादिभिर्वाचामलंकाराय जायते॥

—वही, २/६

कथा-प्रबंध में पात्र एवं रस के अनुकूल घटनाओं के निरूपण में औचित्य का विचार किया गया है।

वाक्यवच्च प्रबंधेषु रसालंकारसंकरान्।
निवेशयंत्यनौचित्य परिहारेण सूरयः॥

—वही, ५/१२६

यह प्राक् क्षेमेंद्रीय औचित्य-विवेचन का इतिहास है, जो विभिन्न आचार्यों द्वारा सामान्य या विशेष रूप में प्रकाशित हुआ है। इसके बाद क्षेमेंद्र का आविर्भाव हुआ, जिन्होंने संप्रदाय का रूप देकर औचित्य को काव्य का अविनश्वर जीवित सिद्ध किया।

क्षेमेंद्र ने औचित्य को पद, वाक्य, रस, अलंकार, रीति, गुण, प्रबंध आदि में व्याप्त मानकर इसे काव्य का जीवनाधायक तत्त्व स्वीकार किया। इनके अनुसार उचित का भाव औचित्य है और जो जिसके अनुरूप हो उसे उचित कहते हैं। औचित्य के बिना न तो गुण की गुणता और न अलंकार का अलंकारत्व सिद्ध होगा। औचित्य का साम्राज्य सर्वत्र है, लोक में और काव्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में भी। क्षेमेंद्र ने इसके सताइस प्रभेदों की नामावली प्रस्तुत की है और इसके अनंत प्रकारों का निर्देश किया है। [**विशेष विवरण के लिए दे० औचित्य सिद्धांत**]

कालांतर में औचित्य-संप्रदाय को महत्त्व नहीं मिला; पर काव्यीय तत्त्वों को समुचित, संतुलित एवं व्यवस्थित करने की दृष्टि से रस एवं ध्वनिवादी आचार्यों ने भी इसकी उपयोगिता स्वीकार की। औचित्य को ध्वनि-सिद्धांत से पृथक् नहीं माना जा सकता, वस्तुतः इसका समाहार उसी में हो जाता है। आधुनिक युग में म० म० कुप्पु स्वामी शास्त्री ने सभी काव्य-सिद्धांतों का समावेश औचित्य में ही किया है; पर अधिकांश विद्वान् इस मत से सहमत नहीं हैं।

औचितीमनुधावंति सर्वे ध्वनिरसोन्नयाः।
गुणालंकृतिरीतीनां नयाश्चानृजुवाङ्मयाः॥

सहायक ग्रंथ—

भारतीय साहित्यशास्त्र भाग २—पं० बलदेव उपाध्याय;

सम कंसेप्टस् ऑफ अलंकार-शास्त्र—डॉ० राघवन्;

औचित्य-विमर्श—डॉ० राममूर्त्ति त्रिपाठी; औचित्य-संप्रदाय का हिंदी काव्यशास्त्र पर प्रभाव।

औचित्य-सिद्धांत—औचित्य-सिद्धांत के प्रवर्त्तक हैं आचार्य क्षेमेंद्र, जिनके अनुसार काव्य की आत्मा या परम तत्त्व औचित्य है। [**दे० औचित्य-संप्रदाय**] जो जिसके अनुरूप होता है, उसे उचित कहते हैं और उचित का भाव ही औचित्य है।

उचितं प्राहुराचार्याः सदृशं किल यस्य यत्।
उचितस्य च यो भावस्तदौचित्यं प्रचक्षते॥

—औचित्य विचार चर्चा, ७

मानव जीवन में सर्वत्र औचित्य का भाव परिलक्षित होता है और उसके अभाव में समाज में अव्यवस्था फैल जाती है। काव्य में भी औचित्य की स्थिति अनिवार्य रूप से मान्य है। काव्य के सभी रूपों में—दृश्य और श्रव्य—आचार्यों ने औचित्य की आवश्यकता का अन्वेषण किया है। काव्य के सभी तत्त्वों का औचित्यपूर्ण विधान ही उसके चमत्कार या सौंदर्याभिव्यक्ति का साधन है, अन्यथा रस, अलंकार, गुण, रीति आदि का अनौचित्यपूर्ण निबंधन न केवल काव्य को दूषित करता है, बल्कि कवि को भी हास्यास्पद

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बना देता है। अतः, विषय, समय, अवसर आदि के अनुरूप ही काव्य में सौंदर्यमूलक तत्त्वों का समावेश होना चाहिए। औचित्यसमर्थक आचार्यों ने इसी कारण काव्य में उसकी महत्ता स्वीकार की है। मुनिचंद्र के अनुसार औचित्य के कारण ही काव्य में गुण-समुदाय की स्थिति मान्य है अर्थात् जहाँ औचित्य है, वहीं गुणराशि विद्यमान रहती है और औचित्य के बिना गुणों का समुदाय भी व्यर्थ हो जाता है।

औचित्यमेकमेकत्र गुणानां राशिरेकतः।
विषायते गुणग्रामः औचित्यपरिवर्जितः॥

—ध० वि० टी०, पृ० २६

ध्वनिकार ने काव्य में औचित्य का महत्त्व स्वीकार करते हुए अनौचित्य को रसभंग या रसव्याघात का प्रधान कारण माना है। वे औचित्य को रस का परमगुह्य रहस्य स्वीकार करते हैं।

अनौचित्यादृते नान्यद्रसभंगस्यकारणम्।
प्रसिद्धौचित्यबंधस्तु रसस्योपनिषत्परा॥

—ध्वन्यालोक, ३/१४

क्षेमेंद्र का कहना है कि काव्य में अलंकार तो अलंकार या बाह्यशोभाकारक धर्म की भाँति हैं और गुण वीरता आदि गुणों की तरह; किंतु उसका अविनश्वर जीवन तो औचित्य ही है। यदि काव्य में उसका जीवन औचित्य ढूँढ़ने पर भी न मिले तो गुण और अलंकार सब व्यर्थ हो जाते हैं।

अलंकारस्त्वलंकारा गुणा एव गुणाः सदा।
औचित्यं रससिद्धस्य स्थिरं काव्यस्य जीवितम्॥
काव्यस्यालमलंकारैः किं मिथ्याजनितैर्गुणैः।
यस्य जीवितमौचित्यं विचिंत्यापि न दृश्यते॥

—औचित्य विचार चर्चा, ५/४

औचित्य को व्यापक काव्य-तत्त्व का रूप प्रदान करते हुए आचार्यों ने बताया है कि रस और अलंकार में रसत्व एवं अलंकारत्व का समावेश औचित्य के ही कारण होता है। अभिप्राय यह कि यदि रस का उचित रूप से विषय एवं अवसर के अनुरूप विधान किया जाय, तभी रचना रसमयी होगी अन्यथा इसका अनौचित्यपूर्ण नियोजन रसाभास या रस-दोष को प्रस्तुत करेगा, जिससे पाठक या सहृदय के मन में काव्य के प्रति वैरस्य उत्पन्न हो जाएगा। इसी प्रकार अलंकारों का उचित विधान एवं गुण तथा रीति का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

औचित्यपूर्ण निबंधन ही काव्य की उत्कृष्टता एव शोभावृद्धि का कारण बनेगा। अतः, काव्य में आह्लादकत्व के समावेश के लिए औचित्य का विधान आवश्यक है। इसीलिए औचित्यवादी आचार्य औचित्य को काव्य का आत्म-स्थानीय मानने के पक्ष में हैं।

साहित्य में औचित्य के अभाव में पदार्थ तथा शब्दार्थ का बोध भी संभव नहीं है। काव्य के प्रत्येक क्षेत्र में औचित्य की व्याप्ति दिखलाकर आचार्यों ने इसका महत्त्व प्रदर्शित किया है। उनके अनुसार, काव्य को महान् बनाने के लिए उसके प्रत्येक अंग में औचित्य का होना अनिवार्य है। काव्य का प्रत्येक तत्त्व उचित स्थान पर ही गुणाधानकारक होगा।

क्षेमेंद्र ने बताया है कि उचित स्थान पर विन्यस्त होकर ही अलंकार में अलंकारत्व आता है और औचित्य से च्युत न होने पर ही गुण गुणत्व का कारण बनता है।

उचितस्थानविन्यासादलंकृतिरलंकृतिः।
औचित्यादच्युतानित्यं भवंत्येव गुणागुणाः॥

—औचित्य विचार चर्चा, ६

लोक में भी औचित्य का महत्त्व दिखलाई पड़ता है। लौकिक अलंकार स्वयं में कितना भी सुंदर क्यों न हो; यदि वह रमणी के सौंदर्य को बढ़ाता नहीं है, तो उसका कुछ भी मूल्य नहीं है। यदि स्वर्णहार को गले में धारण न कर सुंदरी के नितंब पर लटका दिया जाय तो वह अपने सौंदर्य को तो नष्ट ही कर देता है, उसके साथ ही सुंदरी के फूहड़पन को भी व्यक्त करता है। इसी प्रकार की स्थिति रस, अलंकार, गुण आदि की काव्य में भी है। यदि उनका उपयुक्त विधान किया जायगा तभी वे शोभाधायक होंगे, अन्यथा उनका मूल्य नष्ट हो जायगा। क्षेमेंद्र ने एक उदाहरण द्वारा इस तथ्य को अधिक स्पष्ट किया है। यदि कोई सुंदरी कंठ में मेखला (कमरधनी), नितंब पर हार, हाथ में नूपुर तथा पैरों में केयूर (बिजाइठ) धारण कर ले तो उसे देखकर कौन नहीं हँस देगा? इसी प्रकार कोई पुरुष शरणागत पर वीरता प्रदर्शित करे और शत्रु पर दया दिखावे तो लोग उसकी मूर्खता की खिल्ली उड़ावेंगे। अतः, औचित्य के अभाव में न तो अलंकार ही शोभावर्द्धक होते हैं और न गुण सौंदर्य-वृद्धि करते हैं।—

कंठे मेखलया नितंबफलके तारेणहारेण वा,
पाणौ नूपुर बंधनेन चरणे केयूरपाशेन वा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शौर्येण प्रणते रिपौ करुणया नायांति के हास्यताम्,
औचित्येन विना रुचिं प्रतनुते नालंकृतिर्नो गुणः ।।

—औचित्य विचार चर्चा, ६ की वृत्ति

औचित्य अनुरूपता का वाचक है जो काव्य के विविध तत्त्वों में समाविष्ट होकर उसमें संतुलन एवं संगति लाता है। यह भारतीय आलोचनाशास्त्र का व्यावहारिक काव्यतत्त्व है, जिसकी न केवल साहित्य में अपितु जीवन में भी आवश्यकता दिखाई पड़ती है।

यहाँ एक प्रश्न विचारणीय है कि औचित्य सिद्धांत है या संप्रदाय? सिद्धांत और संप्रदाय में अंग-अंगी-संबंध होता है अर्थात् सिद्धांत अंग होता है और संप्रदाय अंगी। सिद्धांत के ही आधार पर संप्रदाय का प्रवर्त्तन होता है। इस दृष्टि से विचार करने पर सिद्धांत की परिधि परिमित होती है और संप्रदाय की व्यापक। यदि औचित्य के संबंध में विचार किया जाय तो वह सिद्धांत निश्चित होता है, संप्रदाय नहीं। भारतीय साहित्यशास्त्र में जितने भी संप्रदाय हैं, उनकी अपनी परंपरा है और प्रवर्त्तक-विशेष के पश्चात् भी उनके अनुयायी रहते हैं, जो उसमें गति लाते हैं। प्रत्येक संप्रदाय को विरोधियों का भी सामना करना पड़ता है, अर्थात् उसकी मान्यताओं का प्रबल विरोध उनके प्रतिपक्षियों-द्वारा होता है। साहित्यिक संप्रदायों ने अपने सिद्धांत के अनुरूप काव्य के स्वरूप, तत्त्व एवं भेद का भी विवेचन किया है और अपने संप्रदाय को प्रमुख मानकर अन्य संप्रदायों का उसी में समाहार किया है। इस दृष्टि से विचार करने पर औचित्य संप्रदाय सिद्ध न होकर, सिद्धांत ज्ञात होता है। उसकी कोई पूर्ववर्ती परंपरा भी नहीं है और न क्षेमेंद्र के बाद किसी आचार्य ने ही इसका समर्थन किया है। भरत, भामह, आनंदवर्द्धन, अभिनवगुप्त, कुंतक आदि ने रस को अंगा मानकर ही औचित्य का विवेचन किया है अर्थात् उनके अनुसार औचित्य रस की अभिवृद्धि का एक साधन है, जिसके कारण रस में सौंदर्याधान होता है। वस्तुतः क्षेमेंद्र ने आनंदवर्द्धन के विचारों का ही पल्लवन किया है, उन्होंने औचित्य-विषयक कोई नवीन तथ्य प्रकट नहीं किया। औचित्य-सिद्धांत का विरोध भी नहीं हुआ और न इसके अनुसार काव्य के स्वरूप, भेद एवं अन्य अंगों का निरूपण किया गया है। अतः, इसे सिद्धांत ही माना जा सकता है, संप्रदाय नहीं। अवश्य ही, औचित्य काव्य का एक अनिवार्य तत्त्व है, जिसके समावेश के कारण उसके सभी अंग सुंदर बन सकते हैं। क्षेमेंद्र ने भी अपने सिद्धांत के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दुर्बल पक्ष को समझकर रस को औचित्य का जीवित माना था और औचित्य को रसजीवितभूत काव्य का प्राण कहा था। औचित्य को व्यावहारिक समीक्षा का एक आवश्यक उपकरण माना जा सकता है और उसकी महत्ता इसी रूप में आँकी जा सकती है। औचित्य स्वयं साहित्य-शास्त्र के किसी सिद्धांत का निर्माण न कर अनेक काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों में अंतर्भूत होकर उनका संयमन एवं एकीकरण करता है। इसकी व्याप्ति रस, अलंकार रीति, गुण आदि विविध विचारणाओं में देखी जा सकती है। औचित्य-सिद्धांत पश्चिमी सिद्धांत अंग-संगति के समकक्ष है, जिसमें साहित्य या काव्य के कलापक्ष पर अधिक बल दिया गया है, पर औचित्य उससे उत्कृष्ट तत्त्व है। उसकी परिधि में छंद-योजना, भाषा-योजना एवं अलंकार-योजना प्रभृति व्यापक तत्त्वों का भी समावेश हो जाता है। इस प्रकार उसकी दृष्टि अपेक्षाकृत व्यापक सिद्ध होती है। औचित्य का संबंध काव्य के नैतिक प्रश्न से भी नहीं माना जा सकता; क्योंकि इस दृष्टि से वह साहित्यालोचन में नैतिकता के प्रश्न को बहिरंग वस्तु से संबद्ध कर देता है। किंतु, नैतिकता एवं सामाजिक व्यवहार गतिशील हैं; क्योंकि, प्रत्येक युग में इनकी मान्यताओं में परिवर्त्तन होता रहता है।

अतः, औचित्य भी गतिशील काव्य-तत्त्व के रूप में प्रतिष्ठापित है; क्योंकि नैतिकता की भाँति इसका भी कोई सुनिश्चित प्रतिमान नहीं माना जा सकता। औचित्य, लोक को निकष मानकर चलनेवाला एक महत्त्वपूर्ण काव्य-तत्त्व है। आधुनिक युग के दो मनीषियों ने औचित्य को स्वतंत्र काव्य-दर्शन का रूप देने का प्रयास किया है; वे हैं—श्री कुप्पुस्वामी शास्त्री एवं डॉ० वेंकट राघवन् तथा उन्हीं का संकेत प्राप्त कर आचार्य बलदेव उपाध्याय ने इसके स्वरूप को और भी अधिक विस्तृत किया है; पर वे इसे स्वतंत्र संप्रदाय का रूप प्रदान करने में असमर्थ रहे हैं। फिर भी औचित्य के महत्त्व का निषेध या प्रतिषेध नहीं किया जा सकता।

आधार ग्रंथ—

सम कंसेप्ट्स ऑफ अलंकारशास्त्र—डॉ० वी० राघवन्

भारतीय साहित्यशास्त्र, भाग २—आचार्य बलदेव उपाध्याय

औचित्य-विमर्श—डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी

औचित्य-संप्रदाय का हिंदी काव्यशास्त्र पर प्रभाव—डॉ० चंद्रहंस पाठक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

औचित्य-विमर्श की भूमिका—आचार्य नंददुलारे वाजपेयी

भारतीय काव्यालोचन—डॉ० राजवंश सहाय 'हीरा'

आचार्य क्षेमेंद्र—डॉ० मनमोहन गौतम

औदार्य—नायिका का अयत्नज अलंकार। [**दे० नायिका के अलंकार**] सदा विनय का भाव रहना औदार्य है।

औपदेशिक—प्रतिभा की दृष्टि से किया गया कवि का एक प्रकार। [**दे० कवि**] जो कवि गुरु के उपदेश से काव्य-कौशल का प्रदर्शन करे, उसे औपदेशिक कहते हैं। इसकी रचना सुंदर किंतु सारहीन होती है।

उपदेशितदर्शितवाग्विभवा दुर्बुद्धिरौपदेशिकः।

—काव्यमीमांसा, अध्याय ४ पृ० ७२, चौखंबा-संस्करण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क

कंचुकी—[दे० कंचुकी]

कर्णकटु—श्रुतिकटु दोष को कर्णकटु कहते हैं। यह (श्रुतिकटु) शब्ददोष का प्रथम प्रकार है। [दे० शब्ददोष]

कर्णाटी—आचार्य भोज-वर्णित अनुप्रास का एक भेद। [दे० अनुप्रास] कर्णाटी में 'क' की आवृत्ति होती है। अर्थात् ऐसी रचना को कर्णाटी कहते हैं, जिसमें 'क' की आवृत्ति हो। यह वृत्त्यनुप्रास का एक भेद है।

—सरस्वतीकंठाभरण पृ० २३६-२३८

कथा—गद्यकाव्य का एक प्रकार। कल्पित या मनगढंत कहानी। यह आख्यायिका से सर्वथा भिन्न गद्यकाव्य है। [दे० आख्यायिका] इसकी व्युत्पत्ति कथ् + अङ् + टाप् से होती है। कथा का वर्णन भामह, दंडी, रुद्रट, अग्निपुराणकार एवं विश्वनाथ ने किया है। भामह के अनुसार संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश की उस रचना को कथा कहते हैं, जिसमें न तो वक्त्र-अपरवक्त्र छंद हों और न उच्छ्वास। इसमें किसी अन्य व्यक्ति-द्वारा नायक के चरित्र का वर्णन होता है। नायक स्वयं अपनी कथा नहीं कहता।

न वक्त्रापरवक्त्राभ्यां युक्तानोच्छ्वासवत्यपि।
संस्कृतासंस्कृता चेष्टा कथाऽपभ्रंशभाक्तथा॥
अन्यैः स्वचरितं तस्यां नायकेन तु नोच्यते।
स्वगुणाविष्कृतिं कुर्यादभिजातः कथं जनः॥

—काव्यालंकार, १/२८, २९

दंडी ने भामह-द्वारा निर्धारित आख्यायिका और कथा के अंतर को अमान्य सिद्ध कर दोनों में कोई सुनिश्चित भेदक तत्त्व नहीं माना। उनका कहना है कि प्राचीनों ने कथा और आख्यायिका में अंतर स्थापित करते हुए बताया है कि आख्यायिका का नायक स्वयं अपनी कथा कहता है और कथा में कहीं तो नायक स्वयं अपनी कथा कहता है और कहीं अन्य व्यक्ति उसकी कथा का वर्णन करते हैं। इस प्रकार का भेद संगत नहीं ज्ञात होता। क्योंकि, ऐसा भी देखा गया है कि आख्यायिका में कथा का वर्णन अन्य व्यक्ति-द्वारा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होता है। कथा में अध्यायों या परिच्छेदों के लिए लंबक शब्द प्रयुक्त होता है और आख्यायिका में उसका अभिधान उच्छ्वास रहता है। कथा में वक्त्र और अपरवक्त्र छंद नहीं रहते, उसमें आर्या छंद का प्रयोग होता है। इसलिए छंद के आधार पर किसी रचना में भेद स्थापित करना तर्कसंगत नहीं लगता। किसी में कोई छंद रहे और किसी में कोई—इस नियम में कोई पुष्ट आधार नहीं है। अतः, दोनों में नाम मात्र का ही भेद है, तत्त्वतः इनमें कोई अंतर दिखाई नहीं पड़ता। कन्याहरण, संग्राम, वियोग, सूर्योदय आदि का वर्णन आख्यायिका में होता है; अतः, इस वर्णनीय भेद के आधार पर दोनों में विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती। यदि कन्याहरणादि कार्य केवल आख्यायिकामात्रनिष्ठ हों, तब तो भेदक तत्त्व माना जा सकता था; पर कन्याहरण आदि का वर्णन तो महाकाव्य में भी होता है; अतः इनके वर्णन से दोनों (कथा और आख्यायिका) में किसी प्रकार की भिन्नता नहीं दिखाई पड़ती। अतः, दंडी ने दोनों को एक ही जाति की रचना मानने पर जोर दिया है।

अपादः पदसंतानो गद्यमाख्यायिका कथा।
इति तस्य प्रभेदौ द्वौ तयोराख्यायिका किल॥
नायकेनैव वाच्यान्या नायकेनेतरेण वा।
स्वगुणाविष्क्रियादोषो नात्त भूतार्थशंसिनः॥
अपि त्वनियमो दृष्टस्तत्राप्यन्यैरुदीरणात्।
अन्यो वक्ता स्वयं वेति कीदृग्वा भेदलक्षणम्॥
वक्त्रं चापरवक्त्रं च सोच्छ्वासत्वं च भेदकम्।
चिह्नमाख्यायिकायाश्चेत्प्रसंगे न कथास्वपि॥
आर्यादिवत् प्रवेशः किं न वक्त्रापरवक्त्रयोः।
भेदश्च दृष्टो लंभादिरुच्छ्वासो वास्तु किं ततः॥
तत् कथाऽख्यायिकेत्येका जातिः संज्ञा द्वयांकिता।
अत्रैवांतर्भविष्यंति शेषाश्चाख्यानजातयः॥
कन्याहरणसंग्राम विप्रलंभोदयादयः।
सर्गबंधसमा एव नैते वैशेषिका गुणाः॥
कविभावकृतं चिह्नमन्यत्रापि न दुष्यति।
मुखमिष्टार्थसंसिद्धौ किं हि न स्यात् कृतात्मनाम्॥

—काव्यादर्श, १/२३-३०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दंडी का कहना है कि गद्यकाव्य के अन्य प्रकार भी इन्हीं में गतार्थ हो जाएँगे।

अग्निपुराणकार ने कथा के स्वरूप-विवेचन में कतिपय नवीन तथ्यों का नियोजन किया है। इसमें ग्रंथकार श्लोकों में अपने वंश की प्रशंसा प्रस्तुत करता है तथा मुख्य कथा की अवतारणा के लिए अवांतर कथा की सृष्टि की जाती है। जिस कथा में अध्याय का विभाजन परिच्छेद के नाम से नहीं किया जाता, उसका नाम लंबक होता है।

श्लोकैः स्ववंशं संक्षेपात्कविर्यत्र प्रशंसति ॥
मुख्यार्थस्यावताराय भवेद्यत्र कथांतरम्।
परिच्छेदो न यत्र स्याद्भवेद्वा लंबकैः क्वचित् ॥
सा कथा नाम;

—अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग, १/१५,१६,१७

विश्वनाथ ने 'साहित्यदर्पण' में कथा की परिभाषा इस प्रकार दी है—कथा में सरस वस्तु का निर्माण गद्य के द्वारा होता है। इसमें कहीं तो आर्या छंद का और कहीं वक्त्र या अपरवक्त्र छंद का प्रयोग होता है। इसका उदाहरण कादंबरी है।

कथायां सरसं वस्तु गद्यैरेव विनिर्मितम्।
क्वचिदत्र भवेदार्या क्वचिद्वक्त्रापवक्त्रके ॥६/६३२

कथा के प्रारंभ में पद्यमय नमस्कार तथा खलादि का वृत्त कथित होता है।

आदौ पद्यैर्नमस्कारः खलादेर्वृत्तकीर्तनम् ॥—साहित्यदर्पण, ६/६३३

संस्कृत आचार्यों ने कथा के स्वरूप-विधान में एकरूपता प्रदर्शित नहीं की है और विभिन्न आलंकारिकों ने विभिन्न तत्त्वों का निर्देश किया है।

कथानिका—गद्यकाव्य का एक प्रकार। इसका वर्णन 'अग्निपुराण' में किया गया है। इसका केंद्रीभूत विषय उदात्त न होते हुए भी सुनियोजित होता है। इसमें करुण, भयानक एवं अद्भुत रसों का परिपाक होता है। कथानिका के प्रारंभ में भयानक रस, मध्य में करुण एवं अंत में अद्भुत रस का विधान किया जाना चाहिए। [दे० गद्य]

भयानकं सुखपरं गर्भे च करुणोरसः।
अद्भुतोऽन्ते सुक्लृप्तार्थो नोदात्ता सा कथानिका ॥

—अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग, १/२०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कथाविच्छेदवक्रता—प्रबंधवक्रता का तृतीय भेद। [दे० प्रबंधवक्रता]

कथोद्घात—प्रस्तावना का द्वितीय भेद। नाटक या रूपक के आमुख को प्रस्तावना कहते हैं। [दे० प्रस्तावना]

कन्यका—परकीया नायिका का एक भेद। [दे० परकीया] कन्यका अविवाहिता को कहते हैं। इसका अन्य नाम अनूढ़ा भी है।

कम्प—सात्विकभाव। [दे० अनुभाव] रोग, हर्ष, शीत, रोष, प्रिय के स्पर्श आदि से शरीर का काँपना कंप है। इसे वेपथु भी कहते हैं।

[दे० वेपथु]

करंभक—काव्य का एक प्रकार। विश्वनाथ ने विविध भाषाओं में निर्मित रचना को करंभक कहा है। उदाहरण के लिए उन्होंने अपनी षोडशभाषामयी रचना 'प्रशस्तिरत्नावली' का नाम दिया है।

करंभकं तु भाषाभिर्विविधाभिर्विनिर्मितम्।

—साहित्यदर्पण ६/६३७

करुण रस—इष्टनाश एवं अनिष्ट की प्राप्ति से उत्पन्न होनेवाला रस करुण कहा जाता है। इसका स्थायी भाव शोक है। [दे० शोक] करुण रस का वर्ण कपोत है ओर देवता हैं यमराज। इसकी उत्पत्ति शोक, क्लेश, विनिपात, इष्टजन-विप्रयोग, विभवनाश, वध, बंधन, उपद्रव, उपघात आदि विभावों द्वारा होती है। इसके आलंबन हैं—मृत व्यक्ति, कोई संबंधी या दीन-हीन अवस्थाप्राप्त कोई व्यक्ति। करुण रस के उद्दीपन हैं—मृतक व्यक्ति का दाह कर्म, उसका गुण-श्रवण एवं उसकी वस्तुओं को देखना। रोना, कलपना, भूमिपतन, उच्छ्वास, प्रलाप, सिर पटकना आदि इसके अनुभाव हैं और संचारी हैं—मोह, अपस्मार, निर्वेद, विषाद, जड़ता आदि।

भरत ने बतलाया कि करुण रस शोक (स्थायी) से उत्पन्न होता है। यह शाप एवं क्लेश में पड़े प्रियजन के वियोग, धननाश, बध, बंध, देश-निर्वासन, अग्नि में जलकर मरने या व्यसन में फँसने आदि विभावों से उत्पन्न होता है।

अथ करुणो नाम शोक स्थायिप्रभवः। स च शापक्लेशविनिपतितेष्टजनविप्र-योगविभवनाश-वध-बंध-विद्रव-उपघातव्यसनसंयोगादिभिर्विभावैः समुपजायते।

—नाट्यशास्त्र, ६/५६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धनंजय ने इष्टनाश या अनिष्ट की प्राप्ति से करुण रस की उत्पत्ति मानी है।

इष्टनाशादनिष्टप्राप्तौ शोकात्मा करुणोरसः ॥

—दशरूपक, ४/८१

करुण रस के संबंध में श्रीशंकुक का मत है कि इसमें करुणा या दया का अनुकरण होता है; अतः इसे करुण कहते हैं। संसार में सदय सहृदयता 'करुणा' के ही नाम से प्रसिद्ध है। वह सम्मुख होनेवाले रुदन आदि लिंगों के द्वारा अनुकर्त्ता में विद्यमान शोक का अनुभव करनेवाले सामाजिक या प्रेक्षक में वर्तमान रहती है। इसलिए इसका नाम करुण सार्थक है। अभिनवगुप्त ने श्रीशंकुक के इस विचार के प्रति विमति प्रकट करते हुए कहा कि जब करुण शोक का अनुकरण है एवं दया दूसरों की रक्षा की इच्छा है तो उसे (करुण) शोक का अनुकरण-रूप क्यों कहा जाय? साथ ही यह बात भी विचारणीय है कि किसके प्रति दर्शकों की दया होगी? अतएव, साधारणीकरण व्यापार के द्वारा सर्वसाधारण के रूप में आस्वादित होनेवाला शोक ही करुण रस है।

करुण रस के भेद पर विचार करते हुए भावप्रकाशनकार (शिंगभूपाल) ने मानस, वाचिक तथा कर्म नामक भेद किए हैं। भानुदत्त स्वनिष्ठ एवं परनिष्ठ के नाम से दो भेद मानते हैं। अपने शाप, बंधन एवं क्लेशादि से उत्पन्न करुण स्वनिष्ठ एवं दूसरे के नाश से उत्पन्न करुण परनिष्ठ होता है।

स च स्वनिष्ठः परनिष्ठश्च। स्वशापबंधनक्लेशानिष्टैर्विभावैः स्वनिष्ठः परेष्टनाशशापबंधनक्लेशादीनां दर्शनस्मरणैर्विभावैः परनिष्ठः।

—रसतरंगिणी, पृ० १५६

उदाहरण—

क. विपिने क्व जटानिबंधनं तव चेदं क्व मनोहरं वपुः।
अनयोर्घटनाविधेः स्फुटं ननु खड्गेन शिरीषकर्तनम् ॥

वन में जाकर कहाँ जटा का बाँधना और कहाँ तुम्हारा यह कोमल एवं मनोहर शरीर। ब्रह्मा ने इस घटना को खड्ग से शिरीष के फूल को काटने की भाँति जोड़ दिया है। यहाँ राजा दशरथ के विलाप में करुण रस है।

ख. सोक बिकल सब रोवहिं रानी। रूप सीलु बल तेज बखानी।
करहिं विलाप अनेक प्रकारा। परहिं भूमि तल बारहिं बारा ॥

—रामायण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करुणविप्रलंभ—विप्रलंभ श्रृंगार का भेद। [दे० श्रृंगार रस] नायक तथा नायिका का किसी कारणवश परस्पर मिलन न होना या मिलन की आशा का न रहना करुणविप्रलंभ है। इस स्थिति में मिलन की आशा के अभाव मे भी दोनों के मन में रतिभाव विद्यमान रहता है; पर दोनों में से किसी एक के दिवंगत हो जाने से वह शुद्ध करुण हो जाता है; करुणविप्रलंभ नहीं। अतः, करुणविप्रलंभ तथा करुण रस में यह अंतर हुआ कि जब नायक-नायिका का किसी कारण से मिलन संभव न हो तो करुणविप्रलंभ होगा और दोनों में से किसी एक की मृत्यु होने पर शुद्ध करुण रस। करुणविप्रलंभ का स्थायी भाव है रति और करुण का शोक। करुणविप्रलंभ में मिलन के असंभव होने पर भी रति भाव बना रहता है; परंतु करुण रस में मृत्यु के फलस्वरूप रति की स्थिति अकल्पनीय हो जाती है। करुणविप्रलंभ में वियोग की पराकाष्ठा होती है और इसका संबंध जीवन के साथ होता है तथा जीवन के अवसान के साथ वह भी समाप्त हो जाता है। मृत्यु हो जाने पर वह शुद्ध करुण के रूप में परिणत हो जाता है।

कर्षक कवि—अर्थापहरणमूलक कवि का एक भेद। [दे० कवि] जो (कवि) अन्य कवियों के वाक्यार्थ को लेकर नवीन काव्य की रचना करे, उसे कर्षक कवि कहते हैं।

परवाक्यार्थमाकृष्य यः स्ववाचि निवेशयेत्।
समुल्लेखेन केनापि स स्मृतः कर्षकः कविः॥

—काव्यमीमांसा, अध्याय १२, पृ० १६४ : चौखंबा संस्करण

कलहांतरिता—नायिका का अवस्थानुसार भेद। [दे० नायिका-भेद] कलहांतरिता का अर्थ है कलह के पश्चात् अनुताप या पश्चात्ताप करनेवाली। प्रार्थना करते हुए प्रिय का निरादर कर पुनः अपने कृत्य पर पश्चात्ताप करनेवाली नायिका कलहांतरिता है। यह पहले तो प्रार्थना करते हुए प्रिय का अनादर करती है; पर पुनः अपने इस कार्य पर पछताती है। खंडिता प्रिय पर ईर्ष्या करती है; पर कलहांतरिता को अपने कृत्य पर पश्चात्ताप करना पड़ता है। खंडिता के मन में प्रियसंगम की अभिलाषा बनी रहती है; किंतु कलहांतरिता कलह के कारण प्रेम-संगम के प्रति निरभिलाष या उदासीन रहा करती है।

इसका सर्वप्रथम वर्णन भरत ने किया है। उनके अनुसार ईर्ष्या अथवा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कलह से दूर देश गया प्रिय जब नहीं लौटता, तब उसके कारण अमर्ष के आवेश में पड़ी नायिका कलहांतरिता कहलाती है।

ईर्ष्याकलहनिष्क्रांतो यस्यानागच्छति प्रियः।
सामर्षवशसंप्राप्ता कलहांतरिता भवेत्॥

—नाट्यशास्त्र, २२/२१७

धनंजय का कथन है कि जो नायिका नायक के अपराध करने पर क्रोध से उसका तिरस्कार कर बाद में अपने किए पर पश्चात्ताप करे, उसे कलहांतरिता कहते हैं।

कलहांतरिताऽमर्षाद्विधूतेऽनुशयार्तियुक्।

—दशरूपक, २/२६

विश्वनाथ ने बताया कि प्रणयप्रार्थना करने पर भी प्रिय का रोष से निरादर पुनः पश्चात्ताप करनेवाली स्त्री को कलहांतरिता कहते हैं।

चाटुकारमपि प्राणनाथं रोषादपास्य या।
पश्चात्तापमवाप्नोति कलहांतरिता तु सा॥

—साहित्यदर्पण, ३/८२

भानुदत्त ने मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा, परकीया और सामान्या के अंतर्गत कलहांतरिता का निरूपण किया है। इनके मत से पति का अपमान कर बाद में अपने कृत्य पर खेद प्रकट करनेवाली नायिका कलहांतरिता है।

पतिमवमत्य पश्चात्परितप्ता कलहांतरिता।

—रसमंजरी, पृ० १०६

इसकी चेष्टाएँ हैं—भ्रांति, संताप-संमोह, विश्वास, ज्वर तथा प्रलाप।—

अस्याश्चेष्टा भ्रांतिसंतापसंमोहनिश्श्वासज्वरप्रलापादयः।

—वही, पृ० १०९

मतिराम और पद्माकर ने भानुदत्त का अनुकरण कर कलहांतरिता के रूप को मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा, परकीया तथा गणिका में भी दर्शाया है।

कह्यो न मानै कंत को पुनि पीछे पछताय।
कलहंतरिता नायिका ताहि कहत कबिराय॥

—रसराज, १३३

प्रथम कछू अपमान करि पिय को, फिरि पछिताय।
कलहंतरिता नायिका, ताहि कहत कबिराय॥

—जगद्विनोद, १६८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उदाहरण—प्रौढ़ा कलहांतरिता का।

क. अकरोः किमु नेत्र! शोणिमानं किमकार्षीः कर पद्मतर्जनं वा।
कलहं किमधा मुधा रसज्ञे! हितमर्थं न विदंति दैवदष्टाः ॥५१

—रसमंजरी

"हे नेत्र! जब प्रिय मुझे प्रसन्न करने के लिए मुझे प्रणाम कर रहा था तो तुमने लाली धारण कर क्यों क्रोध किया? हे हाथ! तुमने कमल के द्वारा उसे क्यों तर्जन किया? अरी रसज्ञे जिह्वा, उसके साथ तू क्यों कलह कर बैठी?" इस पर वह कहती है कि "इसमें तुमलोगों का कुछ भी दोष नहीं है। जिन्हें प्रतिकूल होकर दैव देख लेता है, उसे हित की बात नहीं दिखाई पड़ती।"

प्रौढ़ा कलहांतरिता का उदाहरण—

ख. ए अलि इकंत पाइ पाइन परे हे आइ,
हौं न तब हेरी या गुमान बजमारे सों।
कहै 'पद्माकर' वै रूठि गे सु ऐसी भई,
नैनन तें नींद गई हाय के दवारे सों॥
रैन-दिन चैन है न मैन है हमारे बस,
ऐन मुख सूखत उसास अनुसारे सों।
प्रानन की हानि-सी दिखान-सी लगी है हाय,
कौन गुन जानि मान कीन्हों प्रानप्यारे सों॥

—जगद्विनोद, १७७

कलापक—मुक्तक काव्य का एक भेद। [दे० मुक्तक काव्य]

कवि—काव्य का प्रणेता या रचयिता कवि है; क्योंकि काव्य को कवि-कर्म की संज्ञा दी गई है। संस्कृत-साहित्यशास्त्र में कवि को अत्यंत महत्त्व दिया गया है और उसे क्रांतद्रष्टा की अभिधा प्रदान की गई है। राजशेखर के अनुसार कवि शब्द की उत्पत्ति कवृ 'वर्णे' धातु से हुई है, जिसका अर्थ वर्णनकर्ता है। कवि को रस और भाव का विमर्शक कहा गया है—कौति शब्दायते विमृशति रसभावानिति कविः। मम्मट ने लोकोत्तरवर्णना में निपुण कविकर्म को काव्य की संज्ञा देकर कवि की अलौकिक वस्तु-वर्णन-क्षमता की महत्ता सिद्ध की है। भट्टतौत भी कवि को वर्णना-निपुण मानते हैं। अभिप्राय यह कि ये किसी वस्तु या घटना के लोकोत्तर चित्रण को ही कविकर्म स्वीकार करते हैं। वेदों में विश्वनियंता ब्रह्म भी कवि के नाम से अभिहित

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

किए गए हैं—'**कविर्मनीषीपरिभूः स्वयंभूः**' आदि उपनिषद् वाक्य इस तथ्य के समर्थक हैं।

संस्कृत-साहित्यशास्त्र में कवि के स्वरूप, भेद आदि के संबंध में विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। कवि के संबंध में राजशेखर का [दे० **राजशेखर**] कथन है कि जिसमें (कवि में) स्वाभाविक कवित्वशक्ति का अभाव हो; पर वह काव्य-रचना में उत्सुक हो तो उसे सरस्वती मंत्रादि के द्वारा सिद्धि प्राप्त करनी चाहिए। इन्होंने कवि के तीन भेद किए हैं—शास्त्रकवि, काव्य कवि एवं उभय कवि।

शास्त्रकवि तीन प्रकार के होते हैं—शास्त्र का निर्माता, शास्त्र का काव्य में निवेशक तथा शास्त्रीय अर्थों का निवेशक। काव्यकवि आठ प्रकार के होते हैं—रचनाकवि, शब्दकवि, अर्थकवि, अलंकारकवि, उक्तिकवि, रसकवि, मार्गकवि एवं शास्त्रार्थकवि। कवि की दस अवस्थाएँ होती हैं—काव्य-शिक्षास्नातक, हृदयकवि, अन्यापदेशी, सेविता, घटमान, महाकवि, कविराज, आवेशिक, अविच्छेदी तथा संक्रामयिता। कवित्व-प्राप्ति के लिए गुरुकुल में जाकर काव्यांगों का अध्ययन करनेवाला कवि काव्य-शिक्षास्नातक है। जो मन-ही-मन रचना कर दोष के भय से दूसरे को अपनी रचना न सुनाए, वह हृदय कवि है। दोष-भय से अपनी रचना को दूसरे की रचना कहकर सुनानेवाला कवि अन्यापदेशी होता है। जो कवि कुछ-कुछ रचना कर पूर्ववर्ती कवियों में से किसी एक को अपना आदर्श बनाकर उसीके अनुकरण पर रचना करे, वह सेविता है। प्रकीर्ण रूप से विभिन्न विषयों पर फुटकर रचना करनेवाला कवि घटमान कहा जाता है तथा महान् या पूर्ण प्रबंधकाव्य का रचयिता महाकवि होता है। विभिन्न भाषाओं एवं विभिन्न रसों में निर्बाध गति से रचना करनेवाला कवि कविराज कहा जाता है; पर ऐसे कवि संसार में बिरले होते हैं। मंत्र-द्वारा कवित्व-शक्ति प्राप्त करनेवाला कवि आवेशिक होता है। किसी विषय पर जब कभी धाराप्रवाह रचना करनेवाले कवि को या आशुरचना करनेवाले को अविच्छेदी कहते हैं। अविवाहित कन्याओं पर या कुमारों पर मंत्र-द्वारा काव्य-रचना करनेवाला संक्रामयिता कहा जाता है।

राजशेखर ने बुद्धि के तीन प्रकार—स्मृति, मति और प्रज्ञा—बतलाकर कवि के लिए तीनों का होना उपयोगी और आवश्यक माना है। पूर्वानुभूत विषयों का स्मरण रखनेवाली बुद्धि को स्मृति, वर्तमान विषयों का मनन करनेवाली बुद्धि को मति एवं भविष्यदर्शिनी अथवा दीर्घ-दर्शिनी बुद्धि को प्रज्ञा कहते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कविकर्म के लिए समाधि की आवश्यकता पर बल देते हुए इन्होंने श्यामदेव नामक आचार्य का मत उद्धृत किया है। मंगल ने अभ्यास को काव्य-निर्माण का आवश्यक तत्त्व माना है; पर राजशेखर के अनुसार शक्ति ही काव्य-हेतु का आवश्यक तत्त्व है। शक्ति, प्रतिभा एवं व्युत्पत्ति से भिन्न वस्तु है। शक्ति कर्तृरूप होती है और प्रतिभा एवं व्युत्पत्ति कर्मरूप। प्रतिभा कवि के हृदय में शब्द-समूह, अर्थसमुदाय, उक्तिमार्ग एवं काव्य के अन्य उपादानों को प्रतिभासित करती है। प्रतिभा-संपन्न व्यक्ति अपरोक्ष पदार्थ को प्रत्यक्षवत् देख सकता है तथा प्रतिभा-हीन व्यक्ति के लिए प्रत्यक्षरूप से दिखाई पड़नेवाले पदार्थ भी अप्रत्यक्ष-से ज्ञात होते हैं। प्रतिभा दो प्रकार की होती है—कारयित्री एवं भावयित्री। कवि की उपकारक प्रतिभा कारयित्री कही जाती है और वह उसमें जन्मजात होती है। कारयित्री प्रतिभा भी तीन प्रकार की होती है—सहजा, आहार्या और औपदेशिकी। जन्मांतर (पूर्वजन्म) संस्कार से उत्पन्न जन्मजात प्रतिभा सहजा, काव्य तथा शास्त्र के अध्ययन से उत्पन्न प्रतिभा आहार्या एव मंत्र-तंत्र आदि के उपदेश से उत्पन्न प्रतिभा औपदेशिकी है। सहजा कारयित्री प्रतिभा जन्मजात होने के कारण अल्प संस्कार से ही स्फुरित हो जाती है; पर आहार्या के लिए अधिक संस्कार तथा अभ्यास अपेक्षित हैं। औपदेशिकी का उदय इसी जन्म के उपदेश तथा वरदान आदि के कारण होता है। उपर्युक्त तीन प्रकार की प्रतिभाओं से उत्पन्न कवि क्रमशः तीन प्रकार के होते हैं—सारस्वत, आभ्यासित और औपदेशिक। पूर्वजन्म के संस्कार से जिसकी सरस्वती उत्पन्न हो वह सारस्वत, अभ्यास से सरस्वती का उन्मेष होने पर आभ्यासिक तथा मंदबुद्धि होने पर भी मंत्र-तंत्र के द्वारा वाणी के वैभव को प्रदर्शित करनेवाले कवि औपदेशिक होते हैं।

आनंदवर्द्धन ने कवि को स्वयं ब्रह्मा (प्रजापति) और काव्यसंसार को उसकी सृष्टि के रूप में वर्णित किया है।

अपारे काव्यसंसारे कविरेकः प्रजापतिः।
यथास्मै रोचते विश्वं तथा विपरिवर्तते ॥

—ध्वन्यालोक, पृ० ४२२

आचार्य मम्मट इनसे भी एक पग आगे बढ़कर कवि की सृष्टि को ब्रह्मा की सृष्टि से उत्कृष्ट मानते हैं। ब्रह्मा की सृष्टि नियतिकृत-नियम से युक्त है; पर कवि की सृष्टि इन सब बंधनों से परे है। ब्रह्मा की सृष्टि सुखदुःख-स्वभावा है अर्थात् उसमें सुख और दुःख, दोनों का अस्तित्व रहता है; पर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कवि की सृष्टि तो एकमात्र आनंदमयी है। ब्रह्मा की सृष्टि अन्य किसी के नियम के अधीन रहनेवाली है; पर कवि की सृष्टि अनन्यपरतंत्रा है अर्थात् वह अन्य किसी के अधीन रहनेवाली नहीं है। ब्रह्मा की सृष्टि में मधुर, कषाय, तिक्त, अम्ल लवण एवं कटु—केवल छह रस होते हैं, जो सब को प्रिय नहीं होते; पर कवि की सृष्टि 'नवरसा' एवं रुचिरा होने के कारण ब्रह्मा की सृष्टि से उत्कृष्टतर है अर्थात् कवि की सृष्टि श्रृंगारादि नौ रसों से युक्त होती है और वे रस केवल आनंदमय होते हैं।

नियतिकृतनियमरहितां ह्लादैकमयीमनन्यपरतंत्राम्।
नवरसरुचिरां निर्मितिमादधती भारती कवेर्जयति॥

—काव्यप्रकाश, १/१

कवि कर्णपूर—इन्होंने 'अलंकारकौस्तुभ' नामक काव्यशास्त्रीय ग्रंथ की रचना की है। कवि कर्णपूर बंगाल के निवासी थे। इनका जन्म १५२४ ई० में नदिया जिले में हुआ था। इनके पिता का नाम शिवानंद था, जो चैतन्य महाप्रभु के शिष्य थे। कवि कर्णपूर का नाम परमानंद दास था; पर आगे चलकर ये 'कवि कर्णपूर' के नाम से विख्यात हुए। इन्होंने १५७२ ई० में 'चैतन्य चंद्रोदय' नाटक की रचना की थी, जो महाप्रभु चैतन्य के जीवन पर आश्रित है।

'अलंकारकौस्तुभ' में दस किरण या अध्याय हैं और काव्यलक्षण, शब्द-शक्ति, ध्वनि, गुणीभूतव्यंग्य, रस, भाव, गुण, शब्दालंकार, अर्थालंकार, रीति एवं दोष का विवेचन है। इस पर विश्वनाथ चक्रवर्ती की 'सारबोधिनी' नामक टीका प्रकाशित हो चुकी है और वृंदावनचंद्र तर्कालंकार चक्रवर्ती की 'दीधिति-प्रकाशिका' तथा लोकनाथ चक्रवर्ती की टीका अभी तक अप्रकाशित है।

कवि-कोटि—कवि-भेद को कविकोटि कहते हैं। राजशेखर ने कवियों के तीन प्रकार किए हैं—शास्त्रकवि, काव्यकवि और उभयकवि। यह वर्गीकरण काव्य के विषय की दृष्टि से किया गया है। श्यामदेव नामक आचार्य ने बताया है कि इनमें क्रमशः परस्पर श्रेष्ठ होता है। इस दृष्टि से उभय कवि सर्वोत्तम कवि है। पर, राजशेखर इस मत से सहमत नहीं हैं। इनकी सम्मति में प्रत्येक कवि अपने विषय में श्रेष्ठ है।

शास्त्रकविः काव्यकविरुभयकविश्च। 'तेषामुत्तरोत्तरगरीयान्' इति श्यामदेवः। 'न' इति यायावरीयः। यथा स्वविषये सर्वो गरीयान्।

—काव्यमीमांसा, अध्याय, ५ पृ० ४३ (चौखंबा संस्करण)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शास्त्रकवि काव्य में रस-संपत्ति का समावेश करता है और काव्यकवि शास्त्र के तर्ककर्कश कथन को मनोरम बना देता है। उभय कवि दोनों ही विषयों में सुदक्ष होता है। शास्त्रकवि एवं काव्यकवि समान प्रभाववाले होते हैं और उनमें परस्पर उपकार्य-उपकारक भाव होता है। शास्त्रकवि काव्य की मधुरता एवं सरसता को ग्रहण कर वाणी को आकर्षक बनाता है और काव्यकवि शास्त्र का समावेश कर अपने काव्य में गंभीरता ला देता है।

शास्त्रकवि के तीन प्रकार हैं—शास्त्र का निर्माण करनेवाला, शास्त्र में काव्य का समावेश करनेवाला एवं काव्य में शास्त्र का निवेश करनेवाला।

काव्यकवि के आठ भेद हैं—

१ **रचनाकवि**—जिस कवि का पद-विन्यास अत्यंत रमणीय हो, वह रचना कवि है। यह सानुप्रासिक सौंदर्य के लिए अपनी रचना में अनावश्यक, अधिक तथा अपुष्टार्थक पदों का प्रयोग करता है।

२. **शब्दकवि**—जिस कवि की रचना में शब्द-योजना सुंदर हो, उसे शब्दकवि कहते हैं।

३. **अर्थकवि**—नवीन अर्थ एवं नूतन घटना की कल्पना करनेवाला कवि अर्थकवि कहलाता है।

४. **अलंकारकवि**—जो कवि अलंकार-योजना में कुशल हो, उसे अलंकार-कवि कहते हैं।

५ **उक्तिकवि**—जिस कवि की उक्ति या कथन विलक्षण हो, वह उक्तिकवि कहलाता है।

६. **रसकवि**—जो कवि काव्य में रस का प्राधान्य प्रदर्शित करे, उसे रसकवि कहते हैं।

७. **मार्गकवि**—किसी रीति विशेष को काव्य में स्थान देनेवाला कवि मार्गकवि है। [दे० रीति]

८. **शास्त्रार्थकवि**—जो कवि शास्त्र के विशिष्ट अर्थ का समावेश काव्य में करता है, उसे शास्त्रार्थ कवि कहते हैं।

अवस्था को दृष्टि में रखकर कवियों के दस प्रकार किए गए हैं—

१. **काव्यविद्यास्नातक**—जो कवि काव्य की विद्याओं (व्याकरण, छंदःशास्त्र एवं काव्यशास्त्र) तथा उपविद्याओं (चौंसठ कला) के अध्ययन के लिए गुरुकुल में जाकर निवास करे, उसे काव्यविद्यास्नातक कहते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२. **हृदयकवि**—जो कवि काव्य-निर्माण कर उसे संकोच से प्रकाशित न करे और अपने हृदय में ही धारण करे, उसे हृदयकवि कहते हैं

३. **अन्यापदेशी**—जो स्वयं कविता करे, पर दोष के भय से उसे अन्य की रचना बताए तो ऐसा कवि अन्यापदेशी कहा जाता है।

४. **सेविता**—प्राचीन कवियों की रचनाओं की छाया ग्रहण कर कविता करनेवाला कवि सेविता है।

५. **घटमान**—जो फुटकल काव्य की रचना तो करता है; पर प्रबंध नहीं लिखता, ऐसा कवि घटमान है।

६. **महाकवि**—प्रबंधकाव्य का रचयिता महाकवि कहा जाता है।

७. **कविराज**—जो अनेक भाषाओं में समान अधिकार के साथ प्रबंधकाव्य की रचना करे, उसे कविराज कहते हैं। कवियों में यह मर्वोत्तम है। ऐसे कबि संसार में इने-गिने होते हैं।

८. **आवेशिक**—आवेश में आकर रचना करनेवाले कवि को आवेशिक कहते हैं। यह मंत्र-तंत्र की सिद्धि कर आवेश में आकर रचना करता है।

९. **अविच्छेदी**—जो कवि इच्छानुसार जब चाहे तब, अनबरत गति से रचना करे, उसे अविच्छेदी कहते हैं।

१०. **संक्रामयिता**—जो मंत्र की स्वयं सिद्धि कर बालक-बालिकाओं एवं कन्याओं में काव्य-रचना की शक्ति भर दे, उसे संक्रामयिता कहते हैं।

काव्यकला की उपासना की दृष्टि से कवि के चार प्रकार हैं—

१. **असूर्यंपश्य**—जो भूमिगृह या गुहागर्भ में एकांत रूप से काव्य-रचना में प्रवृत्त हो, उसे असूर्यंपश्य कहते हैं।

२. **निषण्ण**—जो कवि रसावेश की स्थिति में कविता करे, उसे निषण्ण कहा जाता है।

३. **दत्तावसर**—जो जीविकोपार्जन करते हुए भी काव्य-रचना करे, उसे दत्तावसर कहते हैं।

४. **प्रायोजनिक**—जो कवि किसी विशेष लक्ष्य की सिद्धि के लिए या किसी प्रयोजन-विशेष के कारण काव्य-रचना करे, उसे प्रायोजनिक कहते हैं।

प्रतिभा के आधार पर कवि के तीन प्रकार होते हैं—

१. **सारस्वत**—जिस कवि की सरस्वती (वाणी) जन्मांतर के संस्कार से ही काव्य-रचना में प्रवृत्त हो, वह सारस्वत कहलाता है। उसे अपने काव्य की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रौढ़ता के लिए अभ्यास की आवश्यकता नहीं पड़ती। वह अत्यंत प्रतिभाशाली हुआ करता है।

२. आभ्यासिक—जो कवि अभ्यास के बल से काव्य-रचना करने में प्रवीणता प्राप्त कर ले, उसे आभ्यासिक कहते हैं।

३. औपदेशिक—गुरु के उपदेश एवं तंत्र-मंत्र की सिद्धि से जो काव्य-रचना करे, उसे औपदेशिक कहते हैं।

इनमें सारस्वत श्रेष्ठ है। आभ्यासिक की कविता परिमित एवं औपदेशिक की हीन होती है।

रचना की मौलिकता के विचार से कवि चार प्रकार के हैं—

१. उत्पादक कवि—जो काव्य-रचना में किसी का ऋणी नहीं होता तथा अपनी प्रतिभा के बल से नवीन भाव एवं नूतन अर्थ की संघटना करता है, उसे उत्पादक कवि कहते हैं।

२. परिवर्त्तक कवि—जो प्राचीन कवियों की रचनाओं में परिवर्त्तन कर उनके भावों को बदलकर अपना ले, उसे परिवर्त्तक कहते हैं।

३. आच्छादक—जो अन्य कवियों की रचना को छिपाकर तत्समान कविता को अपनी रचना कहकर प्रचारित करे, उसे आच्छादक कहते हैं।

४. संवर्गक कवि—'संवर्गक' डाकू को कहते हैं, यह कवि अन्य के काव्य को बिना किसी हिचक के अपनी रचना कहता है, अतः इसे संवर्गक कहते हैं।

अर्थापहरण की दृष्टि से कवि के पाँच प्रकार किए गए हैं—

१. भ्रामक कवि—जो कवि प्राचीन कवि की रचनाओं के भावों का वर्णन कर पाठक पर अपनी मौलिकता का भ्रम डाल दे, उसे भ्रामक कहते हैं।

२. चुंबक कवि—जो कवि अन्य के कथन में नया रंग देकर उसे आकर्षक बना दे, उसे चुंबक कहते हैं।

३. कर्षक कवि—जो कवि अन्य कवियों की रचनाओं के शब्द एवं अर्थ को ग्रहण कर अपनी रचना में निबद्ध करे, उसे कर्षक कहते हैं।

४. द्रावक कवि—जिस कवि की रचना में प्राचीन कवियों का भाव इस प्रकार विन्यस्त हो कि उसे जाना नहीं जाय तो वह द्रावक होता है।

५. चिंतामणि कवि—यह अद्वितीय कवि होता है। यह किसी भी कवि के द्वारा न देखे गए अर्थ का वर्णन करता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कविराज—कवियों का एक प्रकार। [दे० कवि] राजशेखर के मत से कवियों का सर्वोत्तम प्रकार कविराज का है। जो कवि विभिन्न भाषाओं, विभिन्न प्रबंधों तथा विभिन्न रसों में काव्य-रचना करने में पूर्णतः निपुण हो, उसे कविराज कहते हैं। कवियों का यह सर्वोच्च पद है और इसके अधिकारी संसार में बिरले होते हैं।

यस्तु तत्र तत्र भाषाविशेषे तेषु तेषु प्रबंधेषु तस्मिन्तस्मिश्च रसे स्वतंत्रः स कविराजः। ते यदि जगत्यपि कतिपये।

—काव्यमीमांसा, पंचम अध्याय, पृ० ५०
चौखंबा संस्करण, (हिंदी अनुवाद)

कविराज विश्वनाथ—इन्होंने 'साहित्यदर्पण' नामक अत्यंत लोकप्रिय सकलांगनिरूपक रीतिग्रंथ का प्रणयन किया है। ये उत्कल प्रांत के निवासी थे। इनके पिता का नाम चंद्रशेखर था, जो कवि, विद्वान् और किसी राजा के सांधिविग्रहिक थे। इन्होंने अपने पिता के दो ग्रंथों—पुष्पमाला तथा भाषार्णव—का उल्लेख अपनी रचनाओं में किया है। इनके वृद्ध पितामह का नाम नारायण पंडित था, जो अद्भुत रस को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान करते थे।

श्रीचंद्रशेखर महाकविचंद्र सुनुः।—साहित्यदर्पण, अंतिम श्लोक

तत्प्राणत्वं चास्मद् वृद्धपितामहसहृदयगोष्ठीगरिष्ठकवि पंडितमुख्यश्रीमन्नारायणपादै·······। वही, ३/२,३

विश्वनाथ प्रसिद्ध कवि एवं नाटककार हैं। इनके ग्रंथ हैं—राघवविलास (महाकाव्य), कुवलयाश्वचरित (प्राकृत भाषा का काव्य), प्रभावती परिणय, चंद्रकला नाटिका, प्रशस्ति-रत्नावली (सोलह भाषाओं में रचित करंभक), नरसिंहविजय (काव्य)। इन्होंने 'काव्यप्रकाश दर्पण' नामक 'काव्यप्रकाश' की टीका भी लिखी है। 'साहित्यदर्पण' में गीतगोविंद तथा नैषध के श्लोक उद्धृत हैं [गीतगोविंद, ३/११—साहित्यदर्पण, ४/३; नैषध, ३/११६—साहित्यदर्पण, १०/५०]। इससे इनका समय बारहवीं शती से पूर्व सिद्ध नहीं होता। साहित्यदर्पण के अंतःसाक्ष्य से ये अल्लाउद्दीन खिलजी के समसामयिक सिद्ध होते हैं।

संधौ सर्वस्वहरणं विग्रहे प्राणनिग्रहः।
अल्लावदीन नृपतौ न संधिर्न च विग्रहः॥

—साहित्यदर्पण, ४/१४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस प्रकार इनका समय १३०० ई० से १३५० ई० के मध्य प्रतीत होता है। अल्लाउद्दीन ने १२९६ से १३१६ ई० तक राज्य किया था।

'साहित्यदर्पण' में दस परिच्छेद हैं तथा काव्य के सभी अंगों एवं भेदों का (दृश्यकाव्य का भी) वर्णन है।

इस पर ध्वन्यालोक, सरस्वतीकंठाभरण, दशरूपक, काव्यप्रकाश तथा अलंकारसर्वस्व का पूर्ण प्रभाव है। प्रथम परिच्छेद में काव्य के स्वरूप एवं भेद का वर्णन है और इस प्रकरण में मम्मट के विचारों का खंडन किया गया है। द्वितीय परिच्छेद में वाक्य, पद तथा शब्द-शक्तियों का विवेचन है। तृतीय परिच्छेद में रस, भाव, नायक-नायिका-भेद का विस्तृत विवेचन है और चतुर्थ में ध्वनि एवं गुणीभूतव्यंग्य का वर्णन है। पंचम परिच्छेद में व्यंजना की स्थापना की गई है और षष्ठ में दृश्य तथा श्रव्यकाव्यों के भेदों का विशद वर्णन है। सप्तम, अष्टम तथा नवम परिच्छेदों में क्रमशः दोष, गुण और रीति का वर्णन है और दशम परिच्छेद में शब्दालंकार (८), अर्थालंकार (७०), रसवदादि अलंकार (७) तथा मिश्रालंकार (२) का निरूपण है। इन्होंने 'भाषासम' नामक नवीन शब्दालंकार का वर्णन किया है। [दे० भाषासम]

'साहित्यदर्पण' विषय-विस्तार तथा प्रतिपादन की सुबोधता के कारण अत्यंत लोकप्रिय है। इस पर चार टीकाएँ प्राप्त होती हैं—विश्वनाथ के पुत्र अनंत-दास रचित 'लोचन' तथा रामचरण तर्कवागीश-कृत 'विवृत्ति' (रचनाकाल १७०१ ई०)। दोनों ही टीकाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। अन्य टीकाओं में मथुरानाथ शुक्ल-कृत 'टिप्पण' और गोपीनाथ कृत 'प्रभा' हैं। [अप्रकाशित] इस पर 'लक्ष्मी' नामक संस्कृत टीका की रचना आधुनिक युग की है, जो चौखंबा-संस्कृत-सीरीज, वाराणसी से प्रकाशित है। साहित्यदर्पण के दो हिंदी अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। प्रथम, पंडित शालिग्राम शास्त्री-कृत 'विमला' टीका है और द्वितीय डॉ० सत्यव्रतसिंह-रचित 'शशिकला' व्याख्या—चौखंबा प्रकाशन, वाराणसी [इनके काव्य, (स्वरूप, भेद, प्रयोजन) नाटक, रस, ध्वनि, गुण, दोष, तथा अलंकार-संबंधी मत को जानने के लिए तत्तत् प्रकरणों को देखें।] विश्वनाथ ने अंत्यानुप्रास, अनुकूल तथा निश्चय नामक नवीन अलंकारों का निरूपण किया है।

ये रसवादी आचार्य हैं। इन्होंने रसात्मक वाक्य को काव्य कहा है। ये रसास्वाद को अलौकिक, अखंड, आनंदमय तथा प्रकाशस्वरूप मानते हैं। इनके अनुसार रसास्वाद की स्थिति में रजोगुण और तमोगुण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हट जाते हैं और सतोगुण का उद्रेक होता है। [दे० रस का स्वरूप] इन्होंने रस को ध्वनि का भेद न मानकर उसे स्वतंत्र काव्य-सिद्धांत स्वीकार किया है। ये अलंकारों को काव्योत्कर्ष का कारण मानकर उन्हें शब्दार्थ का अस्थिर धर्म स्वीकार करते हैं—रस काव्य की आत्मा है और अलंकार, गुण तथा रीतियाँ उसके उत्कर्षाधायक धर्म हैं। ये काव्य में गुणों की स्थिति आवश्यक मानते हैं, पर अलंकार की नहीं। संस्कृत-काव्यशास्त्र के इतिहास में विश्वनाथ की गणना मध्यम श्रेणी के आचार्यों में होती है। इन्होंने मुख्यतः मम्मट तथा रुय्यक के विचारों को ग्रहण कर लोकप्रिय एवं बोधगम्य ग्रंथ (साहित्यदर्पण) की रचना की है। मूलतः ये कवि हैं, फिर भी इनकी लोकप्रियता 'साहित्यदर्पण' के कारण ही है।

कष्टार्थ—अर्थदोष का द्वितीय भेद। [दे० अर्थदोष]

काकतालीय न्याय—[दे० समाधि अलंकार]

काकुवक्रोक्ति—वक्रोक्ति अलंकार का एक भेद। [दे० वक्रोक्ति] जब काकु या कंठध्वनि-विकार से अन्यार्थ की योजना हो तो काकुवक्रोक्ति होती है। इसमें श्रोता काकु के द्वारा वक्ता के कथन का अन्य अर्थ कल्पित करता है।

काकुवैशिष्ट्योत्पन्नवाच्यसंभवा—आर्थीव्यंजना का तृतीय प्रकार। [दे० आर्थीव्यंजना]

काक्वाक्षिप्त व्यंग्य—गुणीभूत व्यंग्य का सप्तम प्रकार। [दे० गुणीभूत व्यंग्य] काकु के द्वारा आक्षिप्त व्यंग्य को काक्वाक्षिप्त व्यंग्य कहते हैं। काकु का अर्थ है कंठध्वनि-विकार। कंठध्वनि-विकार से वक्ता के कथन का अर्थ, वाच्यार्थ के विपरीत होता है। यह अर्थ व्यंग्य-रूप होता है। काक्वाक्षिप्त-व्यंग्य में काकु या कंठध्वनि-विकार से उसके द्वारा आक्षिप्त व्यंग्य शीघ्र ही प्रकट हो जाता है।

मथ्नामि कौरवशतं समरे न कोपाद्
दुःशासनस्य रुधिरं न पिवाम्युरस्तः।
संचूर्णयामि गदया न सुयोधनोरू
संधिं करोतु भवतां नृपतिः पणेन॥

क्रुद्ध भीमसेन की सहदेव के प्रति उक्ति—क्या मैं रणक्षेत्र में सभी कौरवों का विनाश नहीं करूँगा ? दुःशासन के हृदय का रक्त नहीं पिऊँगा ? दुर्योधन की जाँघ को गदा से चूर्ण नहीं करूँगा ? आपके राजा युधिष्ठिर शर्त से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संधि कर लें।" यहाँ 'अवश्य करूँगा' ऐसा व्यंग्यार्थ ध्वनि के विकार से निकलता है।

हैं दससीस मनुज रघुनायक। जाके हनूमान से पायक।।

—रामायण।

राम के प्रति अंगद की उक्ति—"हे रावण ! जिसके दूत हनुमान-जैसे लोग हैं, वे रामचंद्र जी मनुष्य हैं?" यहाँ काकु-द्वारा यह व्यंग्य निकलता है कि रामचंद्र जी मनुष्य नहीं हैं।

कांति—नायिका का अयत्नज अलंकार। [**दे० नायिका के अलंकार**] स्मरविलास या कामविलास के कारण बढ़ी हुई शोभा को कांति कहते हैं।

कांति—अग्निपुराण में वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। सभी प्रकार से रुचिकर शब्दार्थ की संगति 'कांति' कही जाती है।

कांतिः सर्वमतो रुच्यवाच्यवाचक संगतिः ।।

—अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग, ९/४

कामदशा—इसे वियोगदशा भी कहते हैं। [**दे० वियोगदशा**]

कामवती—मध्या नायिका का एक भेद। [**दे० मध्या**] जो नायिका कामवासना से पूर्ण हो चुकी है, उसे कामवती कहते हैं।

कायिक—अनुभाव का एक भेद। [**दे० अनुभाव**] कृत्रिम आंगिक चेष्टाओं को 'कायिक अनुभाव' कहा जाता है।

कारकगूढ़—चित्रालंकार का एक भेद। [**दे० चित्रालंकार**] जब किसी श्लोक या पद्य में कर्त्ता आदि कारक गूढ़ या छिपे रहें तो कारकगूढ़ नामक चित्रालंकार का भेद होगा।

कारकदीपक—एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। जब एक कारक या कर्त्ता की क्रमशः अनेक क्रियाएँ कही जायँ तो कारकदीपक होगा। इसमें दीपक की भाँति एक ही कर्त्ता अनेक क्रियाओं से अन्वित होता है या उन पर आलोक फैलाता है। इसमें क्रियाओं के वर्णन में पूर्वापर क्रम परिलक्षित होता है।

कारकदीपक को स्वतंत्र अलंकार के रूप में वर्णन करने का श्रेय अप्पय दीक्षित को है।

रुद्रट, मम्मट, रुय्यक और विश्वनाथ इसे दीपक अलंकार के एक भेद के अंतर्गत मानते हैं। रुद्रट ने दीपक के दो भेदों का कथन किया है—क्रियादीपक तथा कारकदीपक। और, कारकदीपक के भी तीन विभाग किए हैं—आदिगत, मध्यगत तथा अंतगत।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यत्रैकमनेकषां वाक्यार्थानां क्रियापदं भवति ।
तद्वत्कारकपदमपि तदेतदिति दीपकं द्वेधा ॥
—काव्यालंकार, ७/६४

मम्मट ने बहुत-सी क्रियाओं के एक कारक होने में कारकदीपक माना है।

सैवक्रियाषुवह्वीषुकारकस्येति दीपकम् ॥
—काव्यप्रकाश, १०/१०३

विश्वनाथ ने मम्मट के ही मत का अनुमोदन किया है।

अथकारकमेकंस्यादनेकासु क्रियासुचेत् ॥
—साहित्यदर्पण, १०/४९

दीक्षित ने एक कारक की अनेक क्रियाओं के क्रमिक निबंधन को कारक-दीपक कहा। यहाँ क्रमिक निबंधन का कथन कर इन्होंने समुच्चय अलंकार से इसे सर्वथा भिन्न सिद्ध कर दिया।

क्रमिकैकगतानां तु गुंफः कारकदीपकम् ॥
—कुवलयानंद, ११७

रीतिकालीन आचार्यों ने मम्मट तथा दीक्षित दोनों के मत को अपनाकर कारकदीपक का वर्णन किया है। चिंतामणि और कुलपति ने मम्मट को आधार बनाया तो जसवंत सिंह, मतिराम, पद्माकर आदि ने 'कुवलयानंद' के मत का समर्थन किया।

कारक की बहु क्रियन में दीपक उक्ति उदार ॥
—कविकुलकल्पतरु, ३/१८६

द्रव्य एक व्यौपार बहु, द्वै विधि दीपक नाऊँ ॥
—रसरहस्य, ८/९१

कारक दीपक एक में, क्रम तें भाव अनेक ॥
—भाषाभूषण, १४७

एकहि मैं क्रम सौं भए, तिनको गुंफ जु होय।
सो कारकदीपक कह्यौ, कबिन ग्रंथ मत जोय ॥
—ललितललाम, २८१

क्रम सों इक में बहु क्रिया कारकदीपक मान ॥
—पद्माभरण, १९६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उदाहरण—

क. दूरं समागतवति त्वयि जीवनाथे
भिन्नामनोभवशरेण तपस्विनी सा ।
उत्तिष्ठति स्वपिति वासगृहं त्वदीय-
मायाति याति हसति श्वसिति क्षणेन ।।

"तुम उसके जीवननाथ हो। तुम्हारे बिना वह बेचारी काम के बाण से बिद्ध होकर कभी तो उठती है और कभी लेट जाती है। कभी तुम्हारे वासगृह की ओर जाती है और पुनः शीघ्र ही लौट जाती है। कभी तो वह हँसती है और कभी लंबी-लंबी सांस लेने लगती है।" यहाँ एक कर्त्ता (नायिका) की अनेक क्रियाएँ—हँसना, साँस लेना आदि वर्णित हैं।

ख. कर लै चूमि चढ़ाइ सिर, उर लगाय भुज भेंटि।
लहि पाती पिय की तिया, बाँचति, धरति, समेटि ।।

—बिहारी

यहाँ नायिका-द्वारा प्रिय की पत्री को सिर चढ़ाने, हृदय से लगाने, बाँचने आदि अनेक क्रियाओं के संपादन में कारकदीपक है।

कारकवक्रता—पदपरार्धवक्रता का द्वितीय भेद। [दे० पदपरार्धवक्रता]

कारकौचित्य—औचित्य का आठवाँ प्रकार। [दे० औचित्य के भेद]

कारणनिबंधना—अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार का एक भेद।
[दे० अप्रस्तुतप्रशंसा]

कारणमाला—एक प्रसिद्ध अलंकार। यदि पूर्व-पूर्व में कथित पदार्थ उत्तर-उत्तर में कथित पदार्थों के कारण बनते जायँ तो कारणमाला अलंकार होगा। यह शृंखलामूलक अलंकार है। 'कारणमाला' का अर्थ है कारण का समूह (माला)। इस अलंकार में माला की भाँति अनेक कारणों के समूह गुंफित रहते हैं, इसलिए इसे कारणमाला कहते हैं। इसके मूल में कार्य-कारण का अनुक्रम रहता है और कवि शृंखला का निर्माण कर सौंदर्योद्भावन करता है। इसमें कारण-कार्य में परस्पर संगति हो तथा अंततः उन्हीं शब्दों का प्रयोग हो, जिनका (प्रयोग) प्रारंभ में किया गया है। कारण-कार्य का गुंफन साभिप्राय या सोद्देश्य होना चाहिए अर्थात् कारणमाला में कवि विशेष निमित्त से ही या किसी वस्तु के महत्त्व को प्रतिष्ठित करने के लिए कारण-कार्य के अनुक्रम का वर्णन करता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस अलंकार के पुरस्कर्त्ता आचार्य रुद्रट हैं, तत्पश्चात् सभी आचार्यों ने इसका विवेचन किया।

रुद्रट ने पूर्ववर्ती अर्थ का परवर्ती अर्थ के कारण-रूप में उपस्थित होने को कारणमाला कहा है। यहाँ पूर्वकथित पदार्थ का उत्तरकथित पदार्थों के कारण-रूप में उपन्यस्त होने का वर्णन है।

कारणमाला सेयं यत्र यथापूर्वमेति कारणात्।
अर्थानां पूर्वार्थाद्भवतीदं सर्वमेवेति ॥

—काव्यालकार, ७/८४

भोज ने हेतु अलंकार के अंतर्गत कारणमाला का उल्लेख कर हेतु से इसे अभिन्न माना है।

यस्तु कारणमालेति हेतुसंतान उच्यते।
पृथक्पृथगसामर्थ्यात्सोऽप्यहेतोर्न भिद्यते ॥

—सरस्वतीकंठाभरण, ३/१६

मम्मट के अनुसार जब उत्तर-उत्तर अर्थ के प्रति पूर्व-पूर्व अर्थ कारण या हेतु-रूप में वर्णित हों तो कारणमाला अलंकार होगा।

यथोत्तरं चेत्पूर्वस्य पूर्वस्यार्थस्य हेतुता।
तदा कारणमाला स्यात् ॥—काव्यप्रकाश, १०/१८६

रुय्यक, विद्याधर, विद्यानाथ एवं विश्वनाथ ने मम्मट के ही विचार का अनुसरण कर कारणमाला का वर्णन किया है। रुय्यक ने इसकी कल्पना में विशेष निमित्त या उद्देश्य का भी कथन किया।

पूर्वस्य पूर्वस्योत्तरोत्तरहेतुत्वे कारणमाला।
यदा पूर्वं-पूर्वं क्रमेणोत्तरमुत्तरं प्रति हेतुत्वं भजते,
तदा कारणमालाख्योऽयमलंकारः ॥
कार्यकारणक्रम एवात्र चारुत्वहेतुः।

—अलंकारसर्वस्व, पृ० १५७

यद्यत्पूर्वं तत्तद्यथोत्तरं चेत् क्रमेण संश्रयति।
हेतुत्वं भवति तदा कारणमालेत्यलंकारः ॥

—एकावली, ८/४५

पूर्वं पूर्वं प्रति यदा हेतुः स्यादुत्तरोत्तरम्।
तदा कारणमालाख्यमलंकरणमुच्यते ॥

—प्रतापरुद्रीय, पृ० ३३८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परं परं प्रति यदा पूर्वपूर्वस्य हेतुता।
तदा कारणमालास्यात्। —साहित्यदर्पण, १०/७६

रुय्यक कार्य-कारण-क्रम चारुत्व-निदर्शन को ही कारणमाला के चमत्कार का हेतु मानते हैं।

जयदेव ने कारणमाला की दो स्थितियों का उल्लेख किया है। इनके अनुसार जहाँ पूर्व पद उत्तर-उत्तर पदों के कारण-रूप में आएं एवं उत्तर-उत्तर पद पूर्व-पूर्व पदों के कारण हों तो कारणमाला अलंकार होगा।

गुंफः कारणमाला स्याद्यथा प्राक्प्रांतकारणैः॥
—चंद्रालोक, ५/८७

दीक्षित ने जयदेव के ही लक्षण को उद्धृत कर दिया है।

गुंफः कारणमाला स्याद्यथा प्राक्प्रांतकारणैः।
—कुवलयानंद, १०४

उत्तरोत्तरकारणभूत पूर्वपूर्वैः पूर्व-पूर्व कारणभूतोत्तरोत्तरैर्वा वस्तुभिः कृतो गुंफः कारणमाला। —वही

पंडितराज जगन्नाथ कारणमाला का वर्णन शृंखलालंकार के अंतर्गत करते हैं, जिसमें कारणमाला, एकावली एवं सार का उल्लेख है। इनके अनुसार शृंखला का कार्य-कारणभाव के संसृष्टत्व में कारणमाला होती है। ये जयदेव की भाँति इस अलंकार की दो स्थितियाँ मानते हैं। इन्होंने इस अलंकार के संबंध में दो नवीन तथ्य प्रस्तुत किए—इनके अनुसार कारणमाला के लिए यह आवश्यक है कि प्रारंभ में जिस शब्द का प्रयोग किया गया हो, उसका निर्वाह अंत तक किया जाय तथा उस शब्द के बदले उसके पर्याय का प्रयोग न हो। इनकी अन्य नवीनता यह है कि कारणमाला में संगति के कारण ही चमत्कार का समावेश होता है।

सैव शृंखला आनुगुण्यस्य कार्यकारणभावरूपत्वे कारणमाला॥
तत्र पूर्वं पूर्वं कारणं परं परं कार्यमित्येका।
पूर्वं पूर्वं कार्यं परं परं कारणमित्यपरा।
—रसगंगाधर, पृ० ६२१

सर्वथैव यः शब्दः कार्यकारणतोपस्थापक आदौ प्रयुक्तः स निर्वाह्यः।
एवं क्रमेण निबंधनमाकांक्षानुरूपत्वाद्रमणीयम्।
अन्यथा तु भग्नक्रमं स्यात्॥ —वही, पृ० ६२१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विश्वेश्वर पंडित, पंडितराज जगन्नाथ के मत का अनुवर्त्तन कर इस अलंकार का वर्णन करते हैं।

कारणमाला पूर्वं पूर्वं कार्यं यथोत्तरं हेतौ।

प्रथमं कार्यत्वापन्नस्य पश्चादन्यं प्रति हेतुत्वमित्येवंरीत्या यत्र कार्यकारण-भाव वर्ण्यते सा कारणमाला॥ —अलंकारकौस्तुभ, पृ० ३६०

रीतिकालीन आचार्यों ने कारणमाला के लिए तीन नाम दिए—हेतुमाला (मतिराम), कारणमाला (चिंतामणि) तथा गुंफ (जसवंत सिंह)। इस युग में मम्मट, जयदेव तथा दीक्षित के विवेचनों को आधार बनाकर इस अलंकार का वर्णन किया गया।

चिंतामणि तथा कुलपति ने 'काव्यप्रकाश' के लक्षण का सरल अनुवाद प्रस्तुत कर कारणमाला के स्वरूप का निरूपण किया है।

पूरब पूरब अर्थ जहँ उत्तर उत्तर हेत।
कारणमाला होतु सो सुनै बढ़ै चित चेत॥

—कविकुलकल्पतरु, ३/२६३

पहिलो पहिलो हेतु जहँ, पिछले कारन होय।
हेतन ही कौं गूथिबो, कारनमाला सोय॥

—रसरहस्य, ८/१७१

जसवंत सिंह कारणों की शृंखला को गुंफ कहते हैं। इन्होने 'चंद्रालोक' के लक्षण को आधार बनाया है।

कहिए गुंफ परंपरा कारन की जब होय॥

—भाषाभूषण, १३५

मतिराम, भूषण, पद्माकर आदि ने 'कुवलयानंद' की वृत्ति को आधार बनाकर कारणमाला के दो प्रकारों का उल्लेख किया है। दास भी दो भेदों का कथन करते हैं; पर इनका लक्षण स्वतंत्र है।

पूरब-पूरब हेतु जब उत्तर-उत्तर काज।
तहाँ हेतुमाला कहत, कबि कोबिद सिरताज॥
उत्तर-उत्तर हेतु जहँ पूरब-पूरब काज।
इहौ हेतुमाला कहत, कबिजन दुद्धि जहाज॥

—ललितललाम, २५५,२५७

कारन तें कारज जनम, कारनमाला चारु।

—काव्यनिर्णय, १८/८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कारणमाला के दो भेदों का उल्लेख जयदेव, दीक्षित तथा पंडितराज जगन्नाथ ने किया है। रीतिकालीन आचार्य मतिराम, भूषण, दास तथा पद्माकर भी दो भेदों का वर्णन करते हैं।

प्रथम कारणमाला—पूर्व-पूर्व के पदों का आगे आनेवाले पदों के कारण-स्वरूप वर्णित होने में प्रथम कारणमाला होती है।

उदाहरण—

क. लभ्येत पुण्यैर्गृहिणी मनोज्ञा
तया सुपुत्राः परितः पवित्राः।
स्फीतं यशस्तैः समुदेति नूनं
तेनास्य नित्यः खलु नाकलोकः ॥

—रसगंगाधर।

"पुण्यकार्य करने से मनोहर पत्नी प्राप्त होती है और उससे अत्यंत पवित्र पुत्र उत्पन्न होते हैं, उनसे यश का उदय होता है एवं उससे निश्चय ही स्वर्ग का लाभ होता है।" यहाँ गृहिणी कारण और पुत्र कार्य, पुत्र कारण तथा यश कार्य, यश कारण एवं स्वर्ग-प्राप्ति कार्य-रूप हैं।

—पुण्य का महत्त्व-वर्णन।

ख. सतसँग तें वैराग है, तातें मन-संतोष।
संतोषहिं तें ज्ञान है, होत ज्ञान तें मोष ॥

—पद्माभरण, १७१

सत्संग की महत्ता की प्रतिष्ठा। यहाँ सत्संग वैराग्य का, वैराग्य मन-संतोष का, संतोष ज्ञान का एवं ज्ञान (मोष) मुक्ति का कारण कहा गया है।

द्वितीय कारणमाला—जब उत्तर-उत्तर के पद पूर्व-पूर्व के कारण-रूप में रखें जाएँ तो द्वितीय कारणमाला होगी।

उदाहरण—

क. स्वर्गापवर्गौ खलु दानलक्ष्मी
दानं प्रसूते विपुला समृद्धिः।
समृद्धमल्पेतरभागधेयं
भाग्यं च शंभो ! तव पादभक्तिः ॥

—रसगंगाधर।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"दान-लक्ष्मी स्वर्ग-अपवर्ग को उत्पन्न करती है, दान को विपुल समृद्धि उत्पन्न करती है, समृद्धि को महान् भाग्य उत्पन्न करता है और हे शंभो! भाग्य को आपके चरण की भक्ति उत्पन्न करती है।" यहाँ स्वर्ग और अपवर्ग कार्य हैं तथा दान-लक्ष्मी कारण, दान कार्य है और समृद्धि कारण।

ख. है सुख-संपति सुमति तें, सुमति पढ़ें तें होइ।
पढ़ब होत अभ्यास तें, ताहि तजहु मति कोइ॥

—पद्माभरण, १७४

यहाँ सुमति कारण, सुख-संपत्ति कार्य; पढ़ना कारण, सुमति कार्य; अभ्यास कारण एवं पढ़ना कार्य-रूप में वर्णित हैं।

कारयित्री प्रतिभा—कवि या लेखक में काव्य-रचना की शक्ति प्रदान करनेवाली प्रतिभा को कारयित्री प्रतिभा कहते हैं। यह कवि की उपकारक होती है तथा इससे युक्त होकर कवि परोक्ष पदार्थ का प्रत्यक्षवत् वर्णन करता है। इसके द्वारा कवि के हृदय में शब्दसमूह, अर्थसमुदाय, उक्तिमार्ग तथा काव्य के अन्य उपादान प्रतिभासित होने लगते हैं। कारयित्री प्रतिभा के तीन प्रकार हैं—सहजा, आहार्या और औपदेशिकी। जन्मांतर (पूर्वजन्म) के संस्कार से उत्पन्न प्रतिभा को सहजा कहते हैं। अध्ययन-द्वारा उद्भूत प्रतिभा आहार्या है और तंत्र, मंत्र आदि के उपदेश से उत्पन्न प्रतिभा को औपदेशिकी कहा जाता है। कवि में सहजा प्रतिभा का स्फुरण अल्प संस्कार से ही हो जाता है; किंतु आहार्या के लिए अधिक संस्कार तथा अभ्यास अपेक्षित हैं। औपदेशिकी का उदय इसी जन्म के उपदेश एवं वरदान आदि के कारण होता है।

—कवेरुपकुर्वाणा कारयित्री। साऽपि त्रिविधा सहजाऽहार्यौपदेशिकी च। जन्मांतरसंस्कारोपेक्षिणी सहजा जन्मसंस्कारयोर्निराहार्या। मंत्रतंत्राद्युपदेश-प्रभवा औपदेशिकी। ऐहिकेन कियतापि संस्कारेण प्रथमां तां सहजेति व्यपदिशंति। महतापुनराहार्या। औपदेशिक्याः पुनरैहिक एव उपदेशकालः। ऐहिक एव संस्कारकालः।

—काव्यमीमांसा, अध्याय ४, पृ० २८-३१
[राष्ट्रभाषा-परिषद्-संस्करण]

उपर्युक्त प्रतिभाओं से उत्पन्न कवि भी तीन प्रकार के होते हैं—सारस्वत, आभ्यासिक तथा औपदेशिक। जिसकी सरस्वती पूर्वजन्म के संस्कार से उत्पन्न हो उसे सारस्वत, अभ्यास के द्वारा सरस्वती के उत्पन्न होने पर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आभ्यासिक एवं मंद बुद्धि होने पर भी मंत्र-तंत्र के द्वारा वाणी के वैभव को प्रदर्शित करनेवाले कवि औपदेशिक होते हैं।

—त इमे त्रयोऽपि कवयः सारस्वतः, आभ्यासिकः, औपदेशिकश्च। जन्मांतर-संस्कारप्रवृत्तसरस्वतीको बुद्धिमान्सारस्वतः। इह जन्माभ्यासोद्भासितभारतीक आहार्यबुद्धिराभ्यासिकः। उपदेशितदर्शितवाग्विभवो दुर्बुद्धिरौपदेशिकः। तस्मा-न्नेतरौ तत्रशेषमनुतिष्ठताम्।

सारस्वतः स्वतंत्रः स्याद्भवेदाभ्यासिको मितः।
औपदेशकविस्त्वत्र वल्गुफल्गु च जल्पति॥

—काव्यमीमांसा, अध्याय ४, पृ० २८-३१

[राष्ट्रभाषा-परिषद्-संस्करण]

कारुक—रंगमंच के लिए उपयोगी सामग्री प्रस्तुत करनेवाला व्यक्ति। एक प्रकार का शिल्पकार या कर्मकार।

कार्य—[दे० अर्थप्रकृति]

कार्यनिबंधना—अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार का एक भेद।

[दे० अप्रस्तुतप्रशंसा]

कार्यावस्था—नाटकीय कार्य (व्यापार-शृंखला) की अवस्था। [दे० नाट्य-सिद्धांत] नाटक या रूपक में साध्यफल की प्राप्ति के लिए नायक को अनेक कार्य या पुरुषार्थ करने पड़ते हैं। इसके लिए नायक जिस कार्य या व्यापार-शृंखला का प्रसार करता है, उसकी पाँच स्थितियाँ या अवस्थाएँ होती हैं। इसे 'नाट्यशास्त्र' में भरत ने 'अवस्थापंचक' की संज्ञा दी है, जिसे परवर्ती आचार्यों ने कार्यावस्था के नाम से अभिहित किया। ये अवस्थाएं हैं—आरंभ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम।

संसाध्ये फलयोगे तु व्यापारः कारकस्य यः।
तस्यानुपूर्व्या विज्ञेयाः पंचावस्था प्रयोक्तृभिः॥
प्रारंभश्च प्रयत्नश्च तथा प्राप्तेश्च संभवः।
नियता च फलप्राप्तिः फलयोगश्च पंचमः॥

—नाट्यशास्त्र, १९/७,८,

अवस्थाः पंच कार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभिः।
आरंभयत्नप्राप्त्याशानियताप्तिफलागमः॥

—दशरूपक, १/१९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इन अवस्थाओं का प्रदर्शन कहीं तो नायक के कार्य-द्वारा होता है और यदा-कदा प्रतिनायक, सहायक या दैव-व्यापार-द्वारा; पर फलागम अवस्था की प्राप्ति तो केवल नायक को ही होती है।

१. *आरंभ*—किसी फल की प्राप्ति के लिए नायक के मन में इच्छा होती है और उसके प्रति औत्सुक्य भी पाया जाता है। इसी उत्सुकता की भावना का नाम आरंभ है। यह आवश्यक नहीं कि नाटकीय कार्य का आरंभ सदा नायक-द्वारा ही हो, नायिका या अमात्य-द्वारा भी यह कार्य संपन्न होता है।

औत्सुक्यमात्रमारंभः फललाभाय भूयसे।

—दशरूपक, १/२०

उदाहरण के लिए शकुंतला नाटक में राजा दुष्यंत के मन में शकुंतला को देखने की उत्कंठा 'आरंभ' की अवस्था है।

२. *यत्न*—फल की प्राप्ति के लिए या साध्य की प्राप्ति के निमित्त शीघ्रतापूर्वक जो योजनायुक्त व्यापार किया जाता है, उसे यत्न या प्रयत्न कहते हैं।

प्रयत्नस्तु तदप्राप्तौ व्यापारोऽतित्वरान्वितः।

—दशरूपक, १/२०

'शकुंतला' नाटक में राजा दुष्यंत का शकुंतला से पुनः मिलने का उपाय सोचना प्रयत्न या यत्न अवस्था है।

३. *प्राप्त्याशा*—जब फल-प्राप्ति की संभावना, उपाय एवं अपाय (विघ्न) के बीच दोलायित हो तो प्राप्त्याशा की स्थिति होती है। इसमें उपाय तथा बाधा की आशंका से फल-प्राप्ति का ऐकांतिक निश्चय नहीं होता।

उपायापायशंकाभ्यां प्राप्त्याशा प्राप्तिसंभवः।

—दशरूपक, १/२१

इसमें सफलता या कार्य-सिद्धि की संभावना भी रहती है और विफलता की आशंका भी।

'शकुंतला' नाटक में दुर्वासा का शाप एवं प्रसन्न होने पर उनका शांति की अवधि जताना 'प्राप्त्याशा' है।

४. *नियताप्ति*—विघ्नाभाव से फल-प्राप्ति का निश्चय होना नियताप्ति है। इस अवस्था में सारे प्रतिबंधक नष्ट हो जाते हैं और कार्य-सिद्धि या

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सफलता का निश्चय हो जाता है। जैसे, शकुंतला नाटक में धीवर-द्वारा राजा को अंगूठी की प्राप्ति नियताप्ति है।

अपायाभावतः प्राप्तिर्नियताप्तिः सुनिश्चिता ॥

—दशरूपक, १/२१

५. *फलागम*—समस्त फल की प्राप्ति या कार्य की पूर्ण सिद्धि को फलागम कहते हैं। इस अवस्था में समस्त अभीष्ट फलों का लाभ हो जाता है। जैसे, दुष्यंत का शकुंतला से मिलना फलागम है।

समग्रफलसंप्राप्तिः फलयोगो यथोदितः ॥

—दशरूपक, १/२२

कालवैचित्र्यवक्रता—पदपरार्धवक्रता का प्रथम भेद। [**दे० पदपरार्ध-वक्रता**]

कालवैशिष्ट्योत्पन्नवाच्यसंभवा—आर्थी व्यंजना का नवम प्रकार। [**आर्थीव्यंजना**]

कालौचित्य—औचित्य का चौदहवां भेद। [**दे० औचित्य के भेद**]

काव्य—उपरूपक का एक भेद। [**दे० उपरूपक**] काव्य की रचना एक अंक में होती है और हास्य रस का प्राधान्य रहता है। आरभटी के अतिरिक्त सभी वृत्तियों का प्रयोग होता है और गीतों की बहुलता होती है। इसके नायक और नायिका उदात्त प्रकृति के होते हैं और मुख तथा निर्वहण—दो संधियों का निबंधन किया जाता है। इसका उदाहरण 'यादवोदय' है।

काव्यमारभटीहीनमेकांकं हास्यसंकुलम्।
खंडमात्राद्विपदिकाभग्नतालैरलंकृतम् ॥
वर्णमात्राछगणिकायुतं शृंगारभाषितम्।
नेता स्त्री चाप्युदात्तात्र संधी आद्यो तथांतिमः ॥

—साहित्यदर्पण, ६/२८४-८५

काव्यकवि—कवियों का एक प्रकार। [**दे० कवि**] राजशेखर ने विषय की दृष्टि से कवियों के तीन प्रकार किए हैं, उनमें एक काव्यकवि भी है। इसके आठ प्रकार किए गए हैं—रचनाकवि, शब्दकवि, अर्थकवि, अलंकार-कवि, उक्तिकवि, रसकवि, मार्गकवि तथा शास्त्रार्थकवि।

१. जिस कवि की पद-रचना अत्यंत रमणीय एवं आकर्षक हो, उसे रचना-कवि कहते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२. शब्दकवि उसे कहते हैं, जिसकी रचना में शब्दयोजना के द्वारा चमत्कार उत्पन्न किया गया हो।

३. अर्थकवि नवीन अर्थ एवं नूतन घटना की कल्पना करने में प्रवीण होता है।

४. अलंकारकवि उसे कहते हैं, जिसकी रचना में अलंकारों की छटा दिखाई पड़े। यह अलंकृत रचना करने में सिद्धहस्त होता है।

५. उक्तिकवि उसे कहते हैं, जिसकी रचना में उक्तिवैचित्र्य या कथनगत चमत्कार हो।

६. रसकवि काव्य में रस को प्रधानता देकर उसका महत्त्व स्थापित करता है।

७. मार्गकवि विशिष्ट रीति को काव्य में स्थान देकर उसका समावेश करता है।

८. जो कवि काव्य में शास्त्र के विषय का समावेश करे या मधुर पदावली में शास्त्र का वर्णन करे, उसे शास्त्रार्थकवि कहते हैं।

काव्यगोष्ठी—इसके अंतर्गत साहित्यिक मनोविनोद का वर्णन किया जाता है। प्राचीन समय में राजदरबार में काव्य-चर्चा के लिए काव्यगोष्ठी का आयोजन किया जाता था। उनमें अनेक प्रकार के साहित्यिक मनोविनोद किए जाते थे। ऐसे मनोविनोदों में प्रतिमाला या अंत्याक्षरी, दुर्वाचनयोग, मानसी-कला, अक्षरमुष्टि आदि प्रसिद्ध हैं।

प्रतिमाला—एक व्यक्ति एक श्लोक पढ़ता था और उसका प्रतिद्वंद्वी उस श्लोक के अंतिम अक्षर से अन्य श्लोक कहता था। इस प्रकार का क्रम अनवरत गति से चला करता था। इस प्रतियोगिता में जो श्लोक कहना बंद कर देता था, उसकी पराजय हो जाती थी।

दुर्वाचनयोग—इसके अंतर्गत ऐसे श्लोक रखे जाते थे, जिनका पढ़ना अत्यंत दुस्साध्य था। वे श्लोक कठोर उच्चारणवाले हुआ करते थे।

मानसीकला—राजसभा में अक्षरों के स्थान पर कमल या अन्य पुष्प रख दिए जाते थे और कवि को उन्हें पढ़ना पड़ता था। कवि या पढ़नेवाला व्यक्ति इकार-उकार आदि मात्राओं के द्वारा इस प्रकार का छंद बना लेता था, जो छंदशास्त्र के अनुसार अशुद्ध न हो।

अक्षरमुष्टि—इस विनोद के दो प्रकार थे—साभासा तथा निरवभासा। संक्षिप्त ढंग से बोलने को साभासा अक्षरमुष्टि कहते हैं। उदाहरण के लिए

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

राम, श्याम एवं मोहन के लिए राश्मो होगा। सभा में प्रत्येक शब्द के आदि अक्षर के आधार पर श्लोकों के अर्थ करने पड़ते थे। जैसे अ, प्र, शि और ख अक्षर पर निम्नांकित श्लोक—

अनेन तव पुत्रस्य, प्रसुप्तस्य वनांतरे।
शिखामारुह्य पादेन, खड्गेन निहितं शिरः॥

निरवभासा अक्षरमुष्टि—यह गुप्त-रूप में वार्त्तालाप करने की एक कला का नाम है। इस कार्य के लिए प्राचीन युग में अनेक प्रकार के संकेतों का प्रचलन था। उदाहरण के लिए कवर्ग के अक्षर की सूचना मुष्टि बाँधकर दी जाती थी और चवर्ग के लिए हथेली को पत्ते की भाँति बनाना पड़ता था। इस कार्य के लिए अँगुलियों की भी सहायता ली जाती थी। 'त्रिदुच्युतक' नामक मनोविनोद में संपूर्ण श्लोक से अनुस्वारों को हटा देने पर उसकी सार्थकता सिद्ध होती थी अर्थात् वह अर्थवान् होता था। ठीक इसके विपरीत 'विंदुमती' में श्लोकों के अक्षरों को हटाकर केवल विंदुओं को रखा जाता था और कवि उन पर अक्षरों का नियोजन कर श्लोक बनाते थे।

काव्यपाक—काव्य की परिपक्वावस्था या सिद्धावस्था का नाम काव्यपाक है। कवि सतत अभ्यास के द्वारा भाषा पर असाधारण अधिकार प्राप्त कर लेता है और उसके वाक्य परिपक्व हो जाते हैं। संस्कृत आचार्यों ने सुकवि बनानेवाले इस तत्त्व का उन्मीलन कर काव्य एवं कवि के असामान्य तत्त्व का निरूपण किया है। काव्यपाक के संबंध में आचार्यों में मतैक्य नहीं है, पर इसकी महत्ता सभी ने एक स्वर से स्वीकार की है। राजशेखर ने आचार्य मंगल का मत उद्धृत करते हुए बताया है कि परिणाम ही पाक है। वे (मंगल) व्युत्पत्ति को ही पाक कहते हैं या व्युत्पत्ति की ही अन्य अभिधा पाक है। उनके अनुसार सुबंत तथा तिङंत पदों के सतत श्रवण करने से जो ज्ञान उत्पन्न होता है, उसे पाक कहते हैं। इसी की अन्य संज्ञा व्युत्पत्ति है।

कः पुनरयं पाक इत्याचार्याः। परिणाम इति मंगलः। कः पुनरयं परिणामः इत्याचार्याः। सुपां तिङां च श्रवः सैषा व्युत्पत्तिः इति मंगलः।

—काव्यमीमांसा, अध्याय ५, पृ० ५१,

पर, प्राचीन आचार्य इस मत के प्रति विमति प्रकट करते हुए कहते हैं कि यह पाक न होकर, सौशब्द्य या सुंदर शब्दों का विलास है। आचार्य भामह तथा भोज ने सुप् एवं तिङ् की व्युत्पत्ति को सौशब्द्य (सुशब्दता) की संज्ञा दी है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सुपां तिङां च व्युत्पत्तिं वाचां वांछंत्यलंकृतिम् ।
तदेतदाहुः सौशब्द्यम् । —काव्यालंकार, १/४
व्युत्पत्तिः सुप्तिङा या तु प्रोच्यते सा सुशब्दता ।
—सरस्वतीकंठाभरण

कतिपय आचार्य पदगुंफन में निष्कंपता को ही पाक कहते हैं तथा इसकी पुष्टि के लिए वे किसी प्राचीन मत को भी उद्धृत करते हैं—

आवापोद्धरणे तावद्यावद्दोलायते मनः ।
पदानां स्थापिते स्थैर्ये हंत सिद्धा सरस्वती ।।

"पदों को रखने तथा हटाने में प्रवृत्ति तभा तक रहती है, जब तक मन दोलायमान रहता है। जब पदों के स्थापन में स्थिरता आ जाय तो समझना चाहिए कि कवि की सरस्वती सिद्ध हो गई।"

आचार्य वामन एवं उनके अनुयायी इस मत को स्वीकार नहीं करते। उनके अनुसार कवि आग्रहवश किसी पद-विशेष को किसी विशेष स्थान पर स्थिर करने के पक्षपाती होते हैं; अतः परिवृत्ति-विमुखता या पदों की परिवृत्ति से विमुखता ही पाक है। पदों की स्थिरता तभी संभव है, जब उनके स्थान पर पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किसी भी स्थिति में न किया जाय।

आग्रह परिग्रहादपि पदस्थैर्यपर्यवसायस्तस्मातपदानां परिवृत्तिवैमुख्यं पाकः इति वामनीयाः ।—तदाहुः

यत्पदानि त्यजंत्येव परिवृत्तिसहिष्णुताम् ।
तं शब्दन्यासनिष्णाताः शब्दपाकं प्रचक्षते ।।
—काव्यमीमांसा, अध्याय ५, पृ० ५१-५२ (चौखंबा)

अवंति-सुंदरी इस मत का खंडन करती हुई कहती है कि इसे पाक नहीं कहा जा सकता, यह तो कवि की अशक्ति है। उसके अनुसार रसोचित शब्दार्थ एवं सूक्तियों की रचना ही पाक है। इस संबंध में एक कथन प्रस्तुत कर उसने अपने मत का समर्थन किया है—

गुणालंकाररीत्युक्तिशब्दार्थग्रथनक्रमः ।
स्वदते सुधियां येन वाक्यपाकः समां प्रति ।। —वही

जिस पाक के द्वारा रसज्ञों को गुण, अलंकार, रीति, युक्ति एवं शब्दार्थ का गुंफन आनंद प्रदान करे, उसे वाक्यपाक कहते हैं। राजशेखर ने अपना मत प्रस्तुत करते हुए काव्य के व्यावहारिक पक्ष को ध्यान में रखा है। उनके अनुसार पाक का निर्णय रसिक आलोचक ही कर सकते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कार्यानुमेयतया यत्तच्छब्दनिवेद्यः परं पाकोऽभिधाविषयस्तत्सहृदय-प्रसिद्धिसिद्ध एव व्यवहारांगमसौ, इति यायावरीयः ।

—काव्यमीमांसा, पृ० ५२

उन्होंने पाक के नौ प्रकारों का उल्लेख किया है ।

१. *पिचुमंदपाक*—जो रचना आदि से अंत तक नीरस हो, उसे 'पिचुमंद-पाक' कहते हैं । पिचुमंद का अर्थ है नीम ।

२. *बदरपाक*—आदि में नीरस एवं अंत में रसयुक्त रचना बदरपाक है । बदर का अर्थ है बेर का फल ।

३. *मृद्वीकापाक*—प्रारंभ में नीरस एवं अंत में सरस रचना को मृद्वीका पाक कहते हैं । मृद्वीका का अर्थ है द्राक्षा ।

४. *वार्त्ताकपाक*—जो रचना पहले कुछ कम मधुर एवं अंत में अत्यंत नीरस हो, उसे वार्त्ताकपाक कहते हैं । वार्त्ताक का अर्थ है बैंगन ।

५. *तिंतिडीकापाक*—जो रचना आदि और अंत दोनों में ही मध्यम स्वाद की हो, उसे तिंतिडीकापाक कहते हैं । तिंतिडीका का अर्थ है इमली ।

६. *सहकारपाक*—जो रचना प्रारंभ में मध्यम एवं अंत में सुस्वादु हो, उसे सहकार या आम्रपाक कहते हैं । सहकार का अर्थ आम है ।

७. *क्रमुकपाक*—जो रचना आदि में उत्तम तथा अंत में मध्यम हो, उसे क्रमुकपाक कहते हैं । क्रमुक का अर्थ है ककड़ी ।

८. *त्रपुसपाक*—त्रपुस का भी अर्थ ककड़ी है । जो रचना प्रारंभ में उत्तम एवं अंत में मध्यम हो, उसे त्रपुसपाक कहते हैं ।

९. *नारिकेलपाक*—जो रचना आदि से अंत तक सुस्वादु बनी रहे, उसे नारिकेलपाक कहते हैं । [प्रत्येक पाक के विस्तृत विवेचन के लिए दे० उनके नाम के अक्षर]

राजशेखर ने उत्तम, मध्यम एवं अधम के रूप में सभी पाकों का विभाजन किया है । पिचुमंद, वार्त्ताक एवं क्रमुकपाक अधम हैं तथा बदर, तिंतिडीका एवं त्रपुसपाक मध्यम; उत्तमपाक में मृद्वीका, सहकार एवं नारिकेल पाक की गणना होती है । इनमें से प्रथम तीन को आचार्य ने त्याज्य माना है । जिस रचना में पाक व्यवस्थित नहीं हो, वह कपित्थपाक है । कपित्थपाकवाली रचना में कदाचित् ही कहीं कोई सूक्ति मिल जाती है । अधमपाक का अभ्यास करनेवाले कुकवि और सर्वत्र निंदनीय होते हैं । राजशेखर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ने कुकवि होने को मृत्यु से भी निकृष्ट माना है। मध्यम पाकवाले लेखक परिष्कार के द्वारा सुंदर बन सकते हैं; पर अधमों का संस्कार असंभव है। उत्तमपाक के कवि सदा आदरास्पद बने रहते हैं।

काव्यपाठ—संस्कृत काव्यशास्त्र में काव्यपाठ को भी अत्यधिक महत्त्व दिया गया है और इसे भी एक कला की संज्ञा दी गई है। उसी कवि को काव्यपाठ में सफलता प्राप्त होती है, जिसे सरस्वती सिद्ध हो। राजशेखर ने 'काव्यमीमांसा' के सातवें अध्याय में इस विषय का विवेचन किया है। उनका कहना है कि संस्कृत आत्मावाला कवि किसी प्रकार काव्य की रचना कर सकता है; पर काव्य का पाठ तो वही कर सकता है, जिसे सरस्वती सिद्ध हो।

करोति काव्यं प्रायेण संस्कृतात्मा यथा तथा।
पठितुं वेत्ति स परं यस्य सिद्धा सरस्वती ॥

—काव्यमीमांसा, अध्याय ७ पृ० ८७ (चौखंबा)

जिस प्रकार कंठ की मधुरिमा जन्म-जन्मांतर के अभ्यास से होती है, उसी प्रकार पाठ-सौंदर्य भी एक जन्म में नहीं बनता।

यथा जन्मांतराभ्यासात्कंठे कस्यापि रक्तता।
तथैव पाठसौंदर्यं नैकजन्मविनिर्मितम् ॥

—काव्यमीमांसा, वही

उत्कृष्ट कोटि के काव्य-पाठ का वर्णन करते हुए राजशेखर कहते हैं कि वह सुंदर (ललित), काकुयुक्त, उज्ज्वल, अर्थानुकूल विभक्त, श्रुतिसुखावह (कानों को मधुर लगनेवाला) हो।

ललितं काकुसमन्वितमुज्ज्वलमर्थवशकृतपरिच्छेदम्।
श्रुतिसुखविविक्तवर्णं कवयः पाठं प्रशंसंति ॥

—काव्यमीमांसा, अध्याय ७, पृ० ८८

राजशेखर के मतानुसार काव्यपाठ के चार प्रकार हैं—गंभीरता, अनिष्ठुरता, तार तथा मंद स्वर का निर्वाह एवं संयुक्त वर्ण-लावण्य।

गंभीरत्वमनैष्ठुर्यं निर्व्यूढिस्तारमंद्रयोः।
संयुक्तवर्णलावण्यमिति पाठगुणाः स्मृताः ॥

—काव्यमीमांसा, अध्याय ७, पृ० ८८

उत्तम काव्य-पाठ में विभक्तियाँ स्पष्ट होती हैं, समास स्पष्ट रहते हैं तथा संधियाँ सुस्पष्ट होती हैं। पाठ करते समय कवि न तो व्यस्त पदों को

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मिला दे और न समस्त पदों को पृथक् करे और आख्यात या क्रिया पदों को विकृत भी न करे। कवि इस प्रकार कविता का पाठ करे कि वह चरवाहों से लेकर स्त्रियों को भी रुचिकर प्रतीत हो।—

विभक्तयः स्फुटा यत्र समासश्चाकदर्थितः ।
अम्लानः पदसंधिश्च तत्र पाठः प्रतिष्ठितः ॥
न व्यस्तपदयोरैक्यं न भिदां तु समस्तयोः ।
न चाख्यातपदम्लानिं विदधीत सुधीः पठन् ॥
आगोपालकमायोषिदास्तामेतस्य लेह्यता ।
इत्थं कविः पठन्काव्यं वाग्देव्यातिवल्लभः ॥

जो न तो शब्द के ज्ञाता हैं और न अर्थ के मर्मज्ञ, उनके भी पाठ श्रवण-सुखद होते हैं।—

ये ऽपि शब्दविदो नैव नैव चार्थविचक्षणाः ।
तेषामपि सतां पाठः सुष्ठुः कर्णरसायनम् ॥

—काव्यमीमांसा, अध्याय ७, पृ० ८६

राजशेखर ने निंद्य या अधम पाठ के दोषों को भी दर्शाया है। अत्यंत शीघ्रता एवं अत्यंत विलंब से पाठ करना, उच्च स्वर से पढ़ना, ध्वनिहीनपाठ, पदच्छेदरहित, अव्यक्त अत्यंत मृदु एवं परुष पाठ निंद्य हैं।

राजशेखर ने भारतवर्ष के विभिन्न प्रांतों के पाठों पर भी विचार किया है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। मगध-निवासी (वाराणसी से पूर्व) संस्कृत का पाठ सुंदर करते हैं; पर प्राकृत के पाठ में उनकी वाणी कुंठित हो जाती है। गौड़ देशवासियों का पाठ न तो अत्यंत स्पष्ट होता है और न श्लिष्ट। उनका पाठ न तो अतिरुक्ष होता है और न अति मृदु तथा न अति गंभीर और न अति उच्च। कर्नाटक के निवासी किसी भी रस, रीति या गुण का गर्व के साथ और अंत में टंकार सहित पाठ करते हैं। द्रविड़ देशवासी चाहे गद्य, पद्य या चंपू सभी का पाठ गाकर करते हैं। गुजरात या लाट देश के लोग प्राकृत का अत्यंत मनोहारिता के साथ पाठ करते हैं; पर वे संस्कृत के द्वेषी हैं। उनकी मुद्रा जिह्वा के सुष्ठु संचालन के कारण सुंदर हो जाती है। सौराष्ट्र तथा त्रव देशवासी संस्कृत एवं अपभ्रंश, दोनों का ही सुंदर पाठ करते हैं। काश्मीरक कवियों पर सरस्वती की विशेष कृपा रहती है। उनका काव्य-पाठ अत्यंत मधुर, गुडूची के रस के समान होता है। उत्तरापथ के कवि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

व्याकरण में निपुण होते हुए भी सदा सानुनासिक उच्चारण करते हैं। पांचाल देश के कवियों का पाठ रीति के अनुकूल, ध्वनि के गुणों की निधि के अनुरूप तथा समस्त वर्ण विभक्तियों में विभक्त होने के कारण सुंदर होता है।

काव्यप्रकाश—इसके रचयिता आचार्य मम्मट हैं। [दे० मम्मट] 'काव्यप्रकाश' की रचना दस उल्लासों में हुई है और इसके तीन विभाग हैं—कारिका, वृत्ति तथा उदाहरण। कारिका और वृत्ति का प्रणयन मम्मट ने किया है और उदाहरण विभिन्न ग्रंथों से लिए गए हैं। कारिकाओं की कुल संख्या एक सौ बयालीस है और कुल उदाहरण छह सौ चार हैं। इसके प्रथम उल्लास में काव्य-हेतु, काव्य-प्रयोजन, काव्य-लक्षण तथा काव्य-भेद—उत्तम, मध्यम एवं अवर—का निरूपण है। द्वितीय उल्लास में शब्दशक्तियों का विवेचन तथा तृतीय में व्यंजना एवं उसके भेदों का निरूपण है। चतुर्थ उल्लास में ध्वनि तथा रस का (भेदोपभेद सहित) विश्लेषण और पंचम में गुणीभूत व्यंग्य और व्यंजना का प्रतिपादन किया गया है। इस उल्लास में व्यंजना-विरोधी तर्कों का सयुक्तिक खंडन कर उसकी (व्यंजना की) सिद्धि की गई है। षष्ठ उल्लास में अधम या चित्रकाव्य के दो भेदों—शब्दचित्र और अर्थ-चित्र—का वर्णन किया गया है और सप्तम में सत्तर प्रकार के काव्य-दोषों का सोदाहरण वर्णन है। अष्टम उल्लास में काव्यगुणों का वर्णन कर तीन गुणों—माधुर्य, ओज और प्रसाद—की स्थापना की गई है और पूर्ववर्ती आचार्यों के दस गुणों का अंतर्भाव इन्हीं में किया गया है। नवम उल्लास में शब्दालंकारों के अंतर्गत वक्रोक्ति, यमक, श्लेष, चित्र तथा पुनरुक्तवदाभास का वर्णन है और दशम में साठ अर्थालंकारों, दो मिश्रालंकारों—संकर और संसृष्टि—तथा अलंकार-दोषों का विवेचन है। वर्णित अर्थालंकारों की नामावली इस प्रकार है—उपमा, अनन्वय, उपमेयोपमा, उत्प्रेक्षा, ससंदेह, रूपक, अपह्नुति, श्लेष, समासोक्ति, निदर्शना, अप्रस्तुतप्रशंसा, अतिशयोक्ति, प्रतिवस्तूपमा, दृष्टांत, दीपक, मालादीपक, तुल्ययोगिता, व्यतिरेक, आक्षेप, विभावना, विशेषोक्ति, यथासंख्य, अर्थांतरन्यास, विरोध, स्वभावोक्ति, व्याजस्तुति, सहोक्ति, विनोक्ति, परिवृत्ति, भाविक, काव्यलिंग, पर्यायोक्त, उदात्त, समुच्चय, पर्याय, अनुमान, परिकर, व्याजोक्ति, परिसंख्या, कारणमाला, अन्योन्य, उत्तर, सूक्ष्म, सार, असंगति, समाधि, सम, विषम, अधिक, प्रत्यनीक, मीलित, एकावली, स्मरण, भ्रांतिमान्, प्रतीप, सामान्य, विशेष, तद्गुण, अतद्गुण और व्याघात।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'काव्यप्रकाश' में शतियों से प्रचलित काव्यशास्त्रीय मान्यताओं का सारसंग्रह कर उन्हें व्यवस्थित किया गया है। यह अपनी गंभीर शैली के कारण काव्यशास्त्र का महनीय ग्रंथ बन गया है। इसी महत्ता के कारण इस पर लगभग पचहत्तर टीकाएँ रची गई हैं। इसकी प्राचीनतम टीका माणिक्यचंद्र कृत 'संकेत' है, जिसका रचना-काल ११६० ई० है। प्रसिद्ध टीकाकार वामन झलकीकर ने (समय १७७४ ई०) अपनी 'बालबोधिनी' में छियालीस टीकाओं का विवरण प्रस्तुत किया है। माणिक्यचंद्रकृत 'संकेत', सरस्वतीतीर्थ-कृत 'बालचित्तानुरंजिनी टीका' (सं० १२९८), जयंतभट्टकृत दीपिका टीका (सं० १३५०), सोमेश्वरकृत 'काव्यादर्श टीका', विश्वनाथकृत 'दर्पण टीका', परमानंददासकृत 'विस्तारिका टीका', आनंदकविकृत 'निदर्शना टीका', श्रीवत्सलांछनकृत 'सारबोधिनी टीका', महेश्वरकृत 'आदर्श टीका', कमलाकर भट्टकृत 'विस्तृता टीका', नरसिंहकृत 'नरसिंहमनीषा टीका', भीमसेनकृत 'सुधासागर टीका', महेंद्रचंद्रकृत 'तात्पर्यविवृत्ति टीका, गोविंदकृत 'प्रदीपच्छाया व्याख्या', नागेशभट्टकृत 'लघ्वी टीका', वैद्यनाथकृत प्रदीप की 'उद्योत' नामक टीका, नागेशभट्टकृत 'बृहती टीका', वैद्यनाथकृत 'प्रभा' टीका, वैद्यनाथ रचित 'उदाहरणचंद्रिका' टीका, राघवरचित 'अवचूरि' टीका, श्रीधरकृत टीका, चंडीदासकृत टीका, देवनाथकृत टीका, भास्करकृत 'साहित्यदीपिका' टीका, सुबुद्धिमिश्रकृत टीका, पद्मनाभकृत टीका, मिथिलेश के मंत्री अच्युतकृत टीका, अच्युततनय रत्नपाणिकृत टीका, भट्टाचार्यकृत 'काव्यदर्पण' टीका, भट्टाचार्य के पुत्र रविविरचित 'मधुमती' टीका, 'तत्त्वबोधिनी' टीका (अज्ञात), 'कौमुदी' टीका (अज्ञात), 'आलोक' टीका, रुचककृत 'संकेत' टीका, जयरामकृत 'प्रकाशतिलक' टीका, यशोधर कृत टीका, विद्यासागर निर्मित टीका, मुरारि मिश्र कृत टीका, मणिसारकृत टीका, पक्षधरकृत टीका, सूरिकृत 'रहस्यप्रकाश' टीका, भास्करकृत 'रहस्यनिबंध' टीका, रामकृष्णकृत 'काव्यप्रकाशभावार्थ' टीका, वाचस्पतिमिश्रकृत टीका, वामनझलकीकरकृत 'बालबोधिनी' टीका। विद्याधरचक्रवर्तीकृत संजीवनी टीका (आंग्लानुवाद सहित मोतीलाल बनारसीदास द्वारा प्रकाशित भाग १, २, अनुवादक एवं संपादक डॉ० रामचंद्र द्विवेदी), नागेश्वरी टीका (आधुनिक टीका, चौखंबा प्रकाशन)। माणिक्यचंद्र से लेकर वामनझलकीकर तक पाँच सौ वर्षों में 'काव्यप्रकाश' की लगभग पचास टीकाएँ हैं। अँगरेजी में डॉ० गंगानाथ झा, श्री सुखथंकर एवं डॉ० रामचंद्र द्विवेदी के 'काव्यप्रकाश' के अनुवाद प्रसिद्ध हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हिंदी में इसका सर्वप्रथम अनुवाद पं० हरिमंगल मिश्र ने किया है, जो हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग से प्रकाशित है।

[अधुना अप्राप्य], डॉ० सत्यव्रत सिंहकृत हिंदी अनुवाद, सटिप्पण भाष्य तथा विस्तृत भूमिका, चौखंबा विद्याभवन, वाराणसी से प्रकाशित, डॉ० हरदत्तशास्त्रीकृत हिंदी भाष्य एवं आचार्य विश्वेश्वरकृत हिंदी भाष्य, ज्ञानमंडल, वाराणसी से प्रकाशित, २०१७ संवत्।

काव्य-प्रयोजन—काव्य-प्रयोजन का अर्थ काव्य-रचना का उद्देश्य है। भारतीय काव्याचार्य काव्य या साहित्य को सोद्देश्य मानते हैं, फलतः भरत से कविराज विश्वनाथ पर्यंत सभी आचार्यों ने काव्य के प्रयोजन पर विचार किया है। संस्कृत ग्रंथों की परिपाटी के अनुसार प्रयोजन, विषय एवं अधिकारी का निर्देश आवश्यक होता है। यह प्रयोजन शब्द ही इस तथ्य का द्योतक है कि काव्य प्रयोजन-रहित नहीं होता; और कवि या साहित्यकार काव्य की रचना निरुद्देश्य या निष्प्रयोजन नहीं करता। विश्व की प्रत्येक वस्तु सोद्देश्य है एवं मानव के कार्य-कलाप सापेक्ष हैं, तो काव्य का निष्प्रयोजन होना युक्तिसंगत नहीं। धर्मप्रधान देश भारत में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, ये जीवन के चार पुरुषार्थ माने गए हैं; जिनके द्वारा आमुष्मिक एवं ऐहिक; दोनों विचारधाराओं में सामंजस्य स्थापित हो जाता है।

भारतीय काव्यशास्त्र के आद्याचार्य भरत ने नाटक के प्रयोजन का उल्लेख करते हुए बताया है कि यह (नाटक) धर्म, यश एवं आयु का साधक, कल्याणकारक, बुद्धिवर्द्धक एवं लोकोपदेशक होता है। यही नहीं, इसके द्वारा लोक का मनोरंजन होता है और शोकपीड़ित एवं परिश्रांत जन विश्रांति प्राप्त करते हैं।

> **उत्तमाधममध्यानां नराणांकर्मसंश्रयम्।**
> **हितोपदेशजननं धृतिक्रीडा सुखादिकृत् ॥**
> **दुःखार्त्तानां श्रमार्त्तानां शोकार्त्तानां तपस्विनाम् ।**
> **विश्रामजननं लोके नाट्यमेतद् भविष्यति ॥**
> **धर्म्यं यशस्यमायुष्यं हितं बुद्धिविवर्धनम् ।**
> **लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद् भविष्यति ॥**
>
> **—नाट्यशास्त्र, १/११३-१५**

भामह—इन्होंने काव्य-प्रयोजन का विवेचन करते हुए बताया कि काव्य-रचना के द्वारा 'पुरुषार्थ चतुष्टय' (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) के अतिरिक्त

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समस्त कलाओं में निपुणता एवं कीर्ति तथा प्रीति (आनंद) की प्राप्ति होती है।

भामह के अनुसार काव्य का मूल उद्देश्य आनंदोपलब्धि है, साथ ही वे कीर्ति का भी महत्त्व प्रदर्शित कर कवि को शाश्वत यश का भागी सिद्ध करते हैं। यहाँ प्रणेता एवं गृहीता, दोनों की दृष्टि से काव्य-प्रयोजन पर विचार किया गया है। प्रीति या आनंद-प्राप्ति सहृदय का लक्ष्य है तो कवि या प्रणेता कीर्ति का अधिकारी होता है। भामह ने आनंद तत्त्व का समावेश कर रसवादी भरत के मत को गति दी है।

> धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।
> करोति कीर्त्ति प्रीतिं च साधुकाव्य-निबंधनम् ॥
>
> —काव्यालंकार, १/२

> उपेयुषामपि दिवं सन्निबंधविधायिनाम्।
> आस्त एव निरातंक कांतं काव्यमयंवपुः ॥
> रुणद्धि रोदसी चास्य यावत्कीर्त्तिरनश्वरी।
> तावत्किलायमध्यास्ते सुकृती वैबुधं पदम् ॥
>
> —वही, १/६,७

वामन—आचार्य वामन के अनुसार काव्य के दो प्रयोजन हैं—दृष्ट एवं अदृष्ट। दृष्ट प्रयोजन है प्रीति तथा अदृष्ट कीर्ति। प्रथम के द्वारा लौकिक तथा अन्य के द्वारा आमुष्मिक फल की प्राप्ति होती है।

> काव्यं सत् दृष्टादृष्टार्थं प्रीतिकीर्त्तिहेतुत्वात्।
> काव्यं सत् चारु, दृष्टप्रयोजनं प्रीतिहेतुत्वात्।
> अदृष्ट प्रयोजनं कीर्त्तिहेतुत्वात्।
>
> —काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, १/१/५

रुद्रट—इन्होंने बताया कि काव्य का प्रयोजन चतुर्वर्ग की फल-प्राप्ति के अतिरिक्त अनर्थोपशम, विपद्‌निवारण, रोगविमुक्ति तथा अभीष्ट वर की प्राप्ति है।

> ननु काव्येन क्रियते सरसानामवगमश्चतुर्वर्गे।
> लघुमृदुनीरसेभ्यस्ते हि त्रयस्संति शास्त्रेभ्यः ॥
> अर्थमनर्थोपशमं शमसममथवा मतं यदेवास्य।
> विरचितरुचिरसुरस्तुतिरखिलं लभते तदेव कविः ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नुत्वा यथा हि दुर्गा केचित्तीर्णा दुस्तरां विपदम्।
अपरे रोगविमुक्ति वरमन्ये लेभिरेऽभिमतम् ॥

—काव्यालंकार, १२/१, १/८,६

कुंतक—वक्रोक्तिवादी कुंतक ने तीन प्रकार के प्रयोजनों का वर्णन किया है।

क. धर्मादि चतुर्वर्ग की प्राप्ति की शिक्षा,
ख. व्यवहारादि के सुंदर रूप की प्राप्ति,
ग. लोकोत्तर आनंद की उपलब्धि।

धर्मादिसाधनोपायः सुकुमारक्रमोदितः।
काव्यबंधोऽभिजातानां हृदयाह्लादकारकः ॥
व्यवहार परिस्पंद सौंदर्यं व्यवहारिभिः।
सत्काव्याधिगमादेव नूतनौचित्यमाप्यते ॥
चतुर्वर्गफलस्वादमप्यतिक्रम्य तद्विदाम्।
कायामृतरसेनांतश्चमत्कारो वितन्यते ॥

—वक्रोक्तिजीवितम्, १/३,४,५

मम्मट—आचार्य मम्मट ने काव्य-प्रयोजन-विषयक समस्त पूर्ववर्ती परंपराओं का समाहार करते हुए विस्तृत पीठिका पर इस विषय का निरूपण किया।

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये कांतासम्मिततयोपदेशयुजे ॥

—काव्यप्रकाश, १/२

"यश की प्राप्ति, संपत्ति-लाभ, सामाजिक व्यवहार की शिक्षा, रोगादि विपत्तियों का विनाश, तुरंत ही उच्च कोटि के आनंद का अनुभव और प्यारी स्त्री के समान मनभावन उपदेश देने के लिए काव्यग्रंथ उपादेय है।"

मम्मट ने काव्य-रचना के छह प्रयोजनों का उल्लेख किया है—यश की प्राप्ति, संपत्तिलाभ, व्यावहारिक ज्ञान की प्राप्ति, अमंगलनाश, शीघ्र ही आनंदोपलब्धि तथा कांतासम्मित उपदेश।

यश की प्राप्ति—काव्य-सृष्टि के पीछे रचयिता का मुख्य उद्देश्य यशप्राप्ति होता है। साहित्यकार विपुल कीर्त्ति-लाभ के लिए ही काव्य-रचना में प्रवृत्त होता है और उनकी कीर्त्ति-कौमुदी देश-काल की सीमा का अतिक्रमण कर संपूर्ण विश्व में प्रोद्भासित हो जाती है। उसका भौतिक शरीर भले ही नष्ट हो जाय; पर यशःशरीर अमर होता है। इसीलिए भर्तृहरि ने रससिद्ध

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कवीश्वरों को जरा और मृत्यु के भय से रहित सिद्ध कर उनकी वाणी की जय मनायी है—

जयंति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः ।
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम् ।।

अर्थकृते—काव्य-रचना-द्वारा कवि को पुष्कल मात्रा में अर्थ की भी प्राप्ति होती है। प्राचीन समय के राज्याश्रित कवि आश्रयदाताओं के द्वारा प्रचुर संपत्ति प्राप्त करते थे। संस्कृत के धावक तथा बाणभट्ट को अपने संरक्षकों से अधिक धन मिला था। आधुनिक युग में पुस्तकों के विक्रय एवं पुरस्कारों से लेखकों को पर्याप्त धन-लाभ होता है।

रवींद्रनाथ ठाकुर को नोबल पुरस्कार के द्वारा, हिंदी कवि सुमित्रानंदन पंत को ज्ञानपीठ पुरस्कार से तथा पं० रामरूप पाठक एवं डॉ० सत्यव्रत शास्त्री को साहित्य-अकादमी पुरस्कार से धन की प्राप्ति हुई है।

व्यवहारविदे—काव्य की रचना तथा अध्ययन के द्वारा कर्त्ता तथा पाठक या सहृदय दोनों को ही व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त होता है। राजसभा के नियम, सामाजिक शिष्टाचार, युगविशेष की मान्यताएँ, रीति-रिवाज एवं जीवनमूल्यों का ज्ञान काव्यानुशीलन एवं अध्ययन से संभव है।

शिवेतरक्षतये—काव्य के प्रणयन एवं लेखन से अमंगल-नाश होता है। कवि किसी देवता या इष्टदेव की वंदना कर अपना अथवा विश्व का कष्ट-निवारण करता है। किंवदंती के अनुसार संस्कृत-कवि बाणभट्ट एवं मयूर ने क्रमशः 'चंडीशतक' तथा 'सूर्यशतक' की रचना कर कुष्ठरोग से मुक्ति प्राप्त का थी।

सद्यःपरनिर्वृतये—पूर्वोक्त सभी प्रयोजन काव्य या साहित्य के गौण प्रयोजन हैं; उसका प्रधान उद्देश्य आनंदोपलब्धि या आनंदानुभूति है। काव्य के श्रवण या अध्ययन से तत्काल आनंद की अनुभूति होती है और मनुष्य उस क्षण के लिए जागतिक प्रपंचों से दूर हटकर अलौकिक सुख का अनुभव करता है। काव्यानंद को ब्रह्मसुख के समान माना जाता है।

कांतासम्मित उपदेश—काव्य के अध्ययन से उपदेश या नीति-ज्ञान की भी शिक्षा मिलती है; पर वह ज्ञान आचारशास्त्र या नीतिशास्त्र के ज्ञान या उपदेश की भाँति शुष्क न होकर सरस होता है। काव्य-द्वारा प्राप्त शिक्षा सामान्य शिक्षा से सर्वथा भिन्न, प्रिया के उपदेश की भाँति मोहक एवं आकर्षक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होती है। जिस प्रकार प्रेयसी अपनी मोहक भंगिमाओं के द्वारा प्रिय को मधुर शिक्षा देकर उसके मन में रसोद्रेक करती है, उसी प्रकार काव्य के अध्ययन से भी सहृदय सरस एवं मनमोहक शिक्षा ग्रहण करता है, जो उसके हृदय पर अमिट प्रभाव छोड़ती है। काव्य में सुंदर रमणी की भाँति आकृष्ट करने की अद्भुत क्षमता है।

शास्त्रों में उपदेश देने की तीन प्रकार की शैलियाँ प्रचलित हैं—प्रभुसम्मित, सुहृत्सम्मित एवं कांतासम्मित। वेदशास्त्रों की शिक्षा से विधि-निषेध या कर्त्तव्याकर्त्तव्य का ज्ञान होता है; क्योंकि उनकी शिक्षा-शैली शब्दप्रधान होती है। जिस प्रकार राजकीय आज्ञा या विधान का पालन आवश्यक है, उसी प्रकार वेदशास्त्रों में निहित उपदेशों का पालन करना भी जीवन का अपरिहार्य कर्त्तव्य है। इस शैली में आदेश का भाव रहता है; अतः इसे प्रभुसम्मित उपदेश की शैली कहते हैं। यह उपदेश सेवक एवं स्वामी-भाव का है। सेवक के लिए स्वामी की आज्ञा का पालन आवश्यक है, उसी प्रकार वेद-शास्त्रों का उपदेश भी मान्य होता है। ये उपदेश राजकीय आज्ञा की तरह शब्दप्रधान होते हैं और उनका अक्षरशः पालन अनिवार्य है।

सुहृत्सम्मित—यह शैली इतिहास और पुराणों की है। इसमें शब्द की प्रधानता नहीं होती, अर्थ का प्रामुख्य होता है। पुराणादि में कथित उपदेशों का अक्षरशः पालन करना अनिवार्य नहीं होता, बल्कि उनके आशय या तात्पर्य का अनुसरण किया जाता है। मित्र विविध प्रकार के उदाहरणों द्वारा अपने मित्र को उपदेश देकर कर्त्तव्याकर्त्तव्य की शिक्षा देता है, उसी प्रकार पुराणादि के उपदेश भी उचितानुचित की शिक्षा देते हैं।

कांतासम्मित उपदेश—काव्य-द्वारा प्राप्त उपदेश कांतासम्मित होता है। इसमें शब्द एवं अर्थ पर बल न देकर रस का वैशिष्ट्य दिखलाया जाता है। यह शैली भावनाप्रधान होती है। यह उपदेश रमणी की मधुर वाणी की भाँति सरस तथा मधुरिमाविमंडित होता है। कवि प्रत्यक्ष रूप से उपदेश न देकर व्यंजना के द्वारा अप्रत्यक्ष शिक्षा देता है—अर्थात् काव्य में निहित उपदेश शाब्द न होकर आर्थ या प्रतीयमान होता है। वह प्रकारांतर से अपनी मान्यताओं को व्यक्त कर पाठक के समक्ष करणीय एवं अकरणीय का भाव प्रकट करता है तथा अपने प्रतिपाद्य विषय का इस प्रकार संयोजन करता है; जिससे पाठक अभिभूत होकर राम अथवा रावण की भाँति आचरण करने में प्रवृत्त हो जाय। कवि प्रत्यक्षतः यह नहीं कहता कि यह करणीय है और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वह अकरणीय, अपितु उसके काव्य से ही यह ध्वनि प्रकट होती है कि जीवन में क्या उचित है और क्या अनुचित ।

परवर्ती आचार्यों ने मुख्यतः आचार्य मम्मट के ही मत का अनुधावन किया है । हेमचंद्राचार्य के अनुसार काव्य के तीन प्रयोजन प्रमुख हैं—आनंद, यश तथा कांतासम्मित उपदेश ।

काव्यमानंदाय यशसे कांतातुल्यतयोपदेशाय च ॥

सद्यो रसास्वादजन्मा निरस्तवेद्यांतरा ब्रह्मास्वादसदृशी प्रीतिरानंदः । इदं सर्वप्रयोजनोपनिषद्भूतं कविसहृदययोः काव्यप्रयोजनम् । यशस्तु कवेरेव । यत इयति संसारे चिरातीता अप्यद्य यावत् कालिदासादयः सहृदयैः स्तूयंते कवयः । × ×

—काव्यानुशासनम्, पृ० ३-४

धनमनैकांतिकं व्यवहारकौशलं शास्त्रेभ्योऽप्यनर्थनिवारणं प्रकारांतरेणापीति न काव्यप्रयोजनतयास्माभिरुक्तम् ।

—वही, पृ० ५

हेमचंद्र आनंद को काव्य का सर्वश्रेष्ठ प्रयोजन मानते हैं; क्योंकि यही एक ऐसा तत्त्व है, जो कवि एवं सहृदय—दोनों के लिए मान्य है । यश की लिप्सा से कवि काव्य-प्रणयन करता है; अतः यह तत्त्व कविगत है । काव्याध्ययन करने से पाठक को उपदेश की प्राप्ति होती है, अतः यह (उपदेश) सहृदयगत होता है । हेमचंद्र प्रकारांतर से मम्मट की आलोचना करते हुए यह सिद्ध करते हैं कि धनलाभ, व्यवहार-ज्ञान तथा अनर्थ-निवारण तो अन्य साधनों से भी संभव हैं अतः इन्हें काव्य का मुख्य लक्ष्य नहीं स्वीकार किया जा सकता । यह कोई आवश्यक नहीं कि काव्य के द्वारा धन की प्राप्ति हो ही; क्योंकि अनेक कवि अभावग्रस्त रहे हैं; अतः धन को काव्य का अनैकांतिक हेतु माना जा सकता है । व्यावहारिक ज्ञान शास्त्राध्ययन से भी हो सकता है और यह कोई आवश्यक नहीं कि अमंगलनाश काव्याध्ययन से ही हो; वह देवाराधन से भी संभव है ।

विश्वनाथ—इन्होंने काव्य-प्रयोजन का वर्णन करते हुए चतुर्वर्ग की प्राप्ति को महत्त्व दिया है । इनके अनुसार शास्त्र का भी यही उद्देश्य है । पर, शास्त्रानुशीलन कष्टसाध्य है और सर्वजनसुलभ नहीं है । काव्य के अध्ययन से जन-साधारण को भी धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है ।

काव्य आनंदात्मक होने के कारण सहज-सुलभ है; पर वेद-शास्त्रादि के अध्ययन से जीवन के दुःखों तथा संतापों को दूर करना कठिन है; वह कड़वी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

औषध की नाईं है। काव्याध्ययन तो मीठी खांड की भाँति है, जिससे जीवन के सभी संताप सहज ही नष्ट हो जाते हैं।

चतुर्वर्गप्राप्तिर्हि वेदशास्त्रेभ्यो नीरसतया दुःखादेव परिणत बुद्धीनामेव जायते। परमानंदसंदोहजनकतया सुखादेव सुकुमार बुद्धीनामपि पुनः काव्यादेव। ननु तर्हि परिणतबुद्धिभिः सत्सु वेदशास्त्रेषु किमिति काव्ये यत्नः करणीय इत्यपि न वाच्यम्। कटुकौषधोपशमनीयस्य सितशर्करोपशमनीयत्वे कस्य वा रोगिणः सितशर्कराप्रवृत्तिः साधीयसी न स्यात्।

—साहित्यदर्पण, १/२

चतुर्वर्गफलप्राप्तिः सुखादल्पधियामपि। —वही १/२

ऐतिहासिक पर्यवेक्षण के द्वारा हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारतीय काव्याचार्य साहित्य या काव्य को सोद्देश्य मानकर उसके द्वारा जीवन का परिष्कार करते हैं। भारतीय साहित्य का प्रधान लक्ष्य रसोद्रेक होते हुए भी प्रकारांतर से जीवनमूल्यों का उद्योतन एवं सामाजिक कल्याण है। वह सत्यं, शिवं एवं सुंदरम् का सच्चा वाहक है।

काव्य-भेद—(काव्य का प्रकार) संस्कृत काव्यशास्त्र में काव्यों का वर्गीकरण अत्यंत वैज्ञानिक आधार पर हुआ है। यद्यपि एतद्विषयक दृष्टिकोण में मतवैभिन्य भी कम नहीं है, तथापि काव्य-संबंधी विभाग में मौलिक अंतर नहीं दिखाई पड़ता। ध्वनि-सिद्धांत की स्थापना होने के पूर्व एवं पश्चात् किए गए काव्य के वर्गीकरण में स्पष्टतः अंतर देखा जा सकता है। चूंकि ध्वनि-समर्थक आचार्यों की दृष्टि में उत्तम काव्य ध्वनि है; अतः उन्होंने काव्य के आंतर पक्ष का अधिक उद्घाटन किया। ध्वनिपूर्व-युग के आचार्यों ने काव्य के बहिरंग को अधिक महत्त्व दिया है। बाह्य उपादानों को प्राधान्य देने के कारण काव्य-विभाजन के प्रमुख आधार भाषा, शैली, छंद, विषय एवं स्वरूप-विधान रहे हैं। प्रथमतः, उन्होंने भाषा के आधार पर काव्य के तीन प्रकार किए—संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश। छंद को आधार मानकर, उसके सद्भाव एवं अभाव में, दो भेद किए गए—गद्य और पद्य। जहाँ तक काव्य-सौंदर्य का प्रश्न है, संस्कृत के आचार्यों ने गद्य एवं पद्य में किसी प्रकार का मौलिक भेद नहीं माना है। उनका मुख्य निकष था सरसता एवं रमणीयता, जिसके अभाव एवं सद्भाव में ही काव्यत्व की परीक्षा की जाती थी। रमणीयता के अभाव में पद्य भी काव्यीय गुण से रहित माना जाता था और सरसता के कारण गद्य को भी काव्य का रूप दिया जाता था। संस्कृत-आचार्यों ने गद्य को कवियों की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कसौटी कहकर उसकी महत्ता स्वीकार की है—गद्यं कवीनां निकषं वदंति। गद्य तथा पद्य के मिश्रण में भी काव्यत्व मानकर चंपू नामक मिश्रित काव्य की कल्पना की गई है।

स्वरूप-विधान की दृष्टि से काव्य के पाँच प्रकार माने गए हैं—महाकाव्य, रूपक, आख्यायिका, कथा तथा मुक्तक। विषय को आधार मानकर भी काव्य के चार प्रकार किए गए हैं—ख्यातवृत्त, कल्पित, कलाश्रित एवं शास्त्राश्रित। गद्यकाव्य के अनेक प्रकारों की भी कल्पना की गई है—वृत्तगंधि, चूर्ण, उत्कलिका। समास के आधार पर गद्यकाव्य के तीन प्रकार किए गए—मुक्तक (समास का सर्वथा अभाव), चूर्णक (जिसमें अल्प समास हो), उत्कलिका (समासों का बाहुल्य तथा लंबे-लंबे समासों का प्रयोग)। बंधाबंध के विचार से भी भारतीय काव्याचार्यों ने काव्य के भेदों पर विचार किया है—प्रबंध और मुक्तक। प्रबंध के भी दो प्रकार हैं—महाकाव्य और खंडकाव्य।

संस्कृत के जिन ग्रंथों में काव्यरूपों का विचार किया गया है वे हैं—काव्यालंकार (भामह), काव्यादर्श (दंडी), काव्यालंकारसूत्रवृत्ति (वामन), काव्यालंकार (रुद्रट), ध्वन्यालोक (आनंदवद्धन), वक्रोक्तिजीवितम् (कुंतक), काव्यमीमांसा (राजशेखर), काव्यप्रकाश (मम्मट), अग्निपुराण तथा साहित्यदर्पण (विश्वनाथ)। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक ग्रंथ हैं, जिनमें काव्यरूपों की चर्चा की गई है; पर उनमें पूर्वोक्त ग्रंथों की ही छाया है। उनके विभाजन या तो पूर्वोक्त ग्रंथों के पुनराख्यान हैं या उनमें विशिष्ट काव्य-रूप का विवेचन है।

इंद्रियों की ग्राहकता के आधार पर काव्य के दो प्रकार किए गए हैं—दृश्यकाव्य और श्रव्यकाव्य। दृश्यकाव्य के अंतर्गत रूपक एवं उनके भेद तथा श्रव्यकाव्य में महाकाव्य, खंडकाव्य, मुक्तक एवं गद्यकाव्य के अन्य भेद आते हैं। प्रायः सभी आचार्य मुक्तक की अपेक्षा प्रबंध को तथा प्रबंध में भी महाकाव्य को अधिक महनीय मानते हैं। इसी प्रकार काव्य के सभी रूपों में नाटक को रम्य मानकर उसकी प्रशस्ति की गई है—**काव्येषु नाटकं रम्यम्**।

ध्वनि-सिद्धांत की स्थापना के पश्चात् व्यंग्य या व्यंजना की प्रधानता के आधार पर काव्य के तीन भेद किए गए—उत्तम, मध्यम और अधम या अवर। आनंदवर्द्धन, मम्मट और विश्वनाथ ने इन्हीं भेदों को अपने ग्रंथों में स्थान दिया है; इन्हें ही ध्वनि, गुणीभूतव्यंग्य तथा चित्र काव्य की भी संज्ञा दी जाती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गुणप्रधान भावाभ्यां व्यंगस्यैवं व्यवस्थिते।
काव्ये उभे ततोऽन्यत् तच्चित्रमभिधीयते॥
चित्रं शब्दार्थ भेदेन द्विविधं च व्यवस्थितम्।
तत्र किंचिच्छब्दचित्रं वाच्यचित्रमतः परम्॥

—ध्वन्यालोक, ३/४२, ४३

व्यंग्य की प्रधानता एवं अप्रधानता के आधार पर या प्रधान और गौण (गुणभाव) होने से ध्वनि तथा गुणीभूत व्यंग्य के रूप में काव्य का विभाजन होता है। किंतु, इनसे भिन्न स्थिति में अर्थात् व्यंग्य के अभाव के कारण जो काव्य होता है, उसे चित्रकाव्य की संज्ञा प्रदान की जाती है। शब्द एवं अर्थ के आधार पर चित्रकाव्य के भी दो प्रकार माने गए हैं—शब्दचित्र और अर्थ-चित्र। शब्दचित्र में यमक, श्लेष प्रभृति शब्दालंकारों का प्राधान्य होता है और अर्थचित्र में उपमादि अर्थालंकार प्रधानता से स्थित होते हैं। चित्रकाव्य रसादि तात्पर्य से रहित होता है और उसमें व्यंग्यार्थ-विशेष की प्रकाशनशक्ति की शून्यता रहती है—

व्यंग्यस्यार्थस्य प्राधान्ये ध्वनिसंज्ञित काव्यप्रकारः गुणभावे तु गुणीभूत-व्यंग्यता। ततोऽन्यद्रसभावादि तात्पर्यरहितं व्यंग्यार्थविशेषप्रकाशनशून्यं च काव्यं केवलवाच्यवाचकवैचित्र्यमात्राश्रयेणोपनिबद्धमालेख्यवदाभासते तच्चित्रम्। न तन्मुख्यं काव्यम्। काव्यानुकारोह्यसौ। तत्र किंचिच्छब्दचित्रं, यथा दुष्कर यमकादि। वाच्यचित्रं ततः शब्दचित्रादन्यद् व्यंग्यार्थसंस्पर्शरहितं प्राधान्येन वाक्यार्थतया स्थित रसादितात्पर्यरहितमुत्प्रेक्षादि।

—ध्वन्यालोक, ३/४२, ४३ की वृत्ति

आनंदवर्द्धन के काव्य-विषयक मत का समर्थन आचार्य मम्मट ने भी किया है। इन्होंने वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ के अधिक चमत्कारक होने में ध्वनि या उत्तम काव्य, वाच्य की अपेक्षा व्यंग्य के अधिक चमत्कारी न होने पर गुणीभूतव्यंग्य या मध्यम काव्य एवं व्यंग्यार्थ से रहित शब्दचित्र तथा अर्थ-चित्र को अवर या अधम काव्य कहा—

इदमुत्तममतिशायिनि व्यंग्येवाच्याद् ध्वनिर्बुधैः कथितः। १/४
अतादृशि गुणीभूतव्यंग्यं व्यंग्य तु मध्यमम्।
शब्दचित्रं वाच्यचित्रमव्यंग्यं त्ववरं स्मृतम्॥

—काव्यप्रकाश १/५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मम्मट के पश्चात् राजानक रुय्यक ने भी पूर्वोक्त तीनों प्रकारों को ही मान्यता दी।

तत्र व्यंग्यस्य प्राधान्याप्राधान्याभ्यां ध्वनिगुणीभूतव्यंग्याख्यौ द्वौ काव्य-भेदौ। व्यंग्यस्यास्फुटत्वेऽलंकारत्वेन चित्राख्यः काव्यभेदस्तृतीयः तत्रोत्तमो ध्वनिः।

—अलंकारसर्वस्व, पृ० ९-१० (शारदा संस्कृतमाला)

विश्वनाथ ने मम्मट के इस त्रेधा विभाजन का खंडन करते हुए काव्य की दो ही कोटियाँ निर्धारित कीं। इन्होंने काव्य को उत्तम एवं मध्यम अभिधा न देकर उसे ध्वनि तथा गुणीभूतव्यंग्य के रूप में स्वीकार किया और चित्रकाव्य या अधम काव्य का अस्तित्व नहीं माना।

विश्वनाथ उत्कृष्ट व्यंग्यार्थ से युक्त काव्य को ध्वनि या उत्तम काव्य कहते हैं और व्यंग्यार्थ तथा वाच्यार्थ के समान चमत्कार होने पर गुणीभूत-व्यंग्य या मध्यम काव्य।

काव्यध्वनिगुणीभूतव्यंग्यं चेति द्विधा मतम्।
वाच्यातिशयिनि व्यंग्ये ध्वनिस्तत्काव्यमुत्तमम्॥
अपरं तु गुणीभूत व्यंग्यं वाच्यादनुत्तमे व्यंग्ये।

—साहित्यदर्पण, ४/१, १६

मम्मट के मत का खंडन करते हुए विश्वनाथ ने कहा कि कोई चित्रकाव्य नामक तृतीय काव्य-भेद मानते हैं। वह व्यंग्यरहित काव्य दो प्रकार का होता है—शब्दचित्र तथा अर्थचित्र। यह विभाजन उपयुक्त नहीं है। यदि अव्यंग्य पद से यह अभिप्राय हो कि वह व्यंग्यार्थ से नितांत शून्य है, तब तो उसे काव्य ही नहीं कहा जा सकता। किंतु, यदि 'ईषद्' अर्थ में 'नञ्' का प्रयोग मानकर 'अव्यंग्य' पद का अर्थ 'ईषद् व्यंग्य' माना जाय तो प्रश्न यह है कि इस पद का क्या तात्पर्य है? क्या आस्वाद्य वस्तु के थोड़े व्यंग्य होने पर 'ईषद्व्यंग्यत्व' विवक्षित है? अथवा अनास्वाद्य वस्तु के व्यंग्य होने पर? यदि प्रथम पक्ष को माना जाय, तो इसका अंतर्भाव प्रथम दो प्रकारों (ध्वनि एवं गुणीभूतव्यंग्य) में ही हो जायगा और दूसरा पक्ष (अनास्वाद्यव्यंग्यत्व) मानने पर तो काव्यत्व ही खंडित हो जायगा अर्थात् वैसी स्थिति में काव्य ही नहीं होगा। ऐसा इसलिए कि आस्वाद्य ही काव्य होता है और अनास्वाद्य होने पर उसे क्षुद्र कहेंगे और क्षुद्रता होने पर ही अनास्वाद्यत्व हुआ करता है—

केचिच्चित्राख्यं तृतीयं काव्यभेदमिच्छंति। तदाहुः—
शब्दचित्रं वाच्यचित्रमव्यंग्यं त्ववरं स्मृतम्॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इति, तन्न, यदि हि अव्यंग्यत्वेन व्यंग्याभावस्तदा तस्य काव्यत्वमपि नास्तीति प्रागेवोक्तम्। ईषद्व्यंग्यत्वमितिचेत्, किं नामेषद्व्यंग्यत्वम्? आस्वाद्यव्यंग्यत्वम्, अनास्वाद्यव्यंग्यत्वं वा? आद्ये प्राचीनभेदयोरेवांतःपातः। द्वितीयेत्वकाव्यत्वम्। यदि चानास्वाद्यत्वं तदा क्षुद्रत्वमेव। क्षुद्रतायामनास्वाद्यत्वात्।

—साहित्यदर्पण, ४/१४ की वृत्ति

विश्वनाथ के इस कथन में—"व्यंग्यरहित पद्य काव्य नहीं हो सकता; अतः चित्रकाव्य की स्थिति अमान्य है"—'वदतोव्याघात' दोष है। कारण, एक ओर तो वे चित्रकाव्य को काव्यत्व की श्रेणी से च्युत कर उसे मान्यता नहीं देते और दूसरी ओर दशम परिच्छेद में अलंकारों का विस्तार-पूर्वक वर्णन करते हैं। उन्होंने मम्मट के विचार का तो खंडन किया; पर इसके मूल में स्थित ध्वनिकार की मान्यताओं पर दृष्टि-निक्षेप नहीं किया। ध्वनिकार स्पष्टतः स्वीकार करते हैं कि चित्रकाव्य में ध्वनि का संस्पर्श रहता है और इसी कारण उसे काव्य कहते हैं। उसमें रसादि के प्रति आकर्षण न होकर शब्दादि के चमत्कार की प्रधानता होती है। इस संबंध में डॉ० भोलाशंकर व्यास के विचार ध्यातव्य हैं—

'वस्तुतः चित्रकाव्य-जैसा अधम काव्य अवश्य होता है। यदि इस कोटि को न माना जायगा तो कवि संप्रदाय जिस अलंकार-युक्त काव्य को काव्य मानता है, उसे अकाव्य मानना होगा। यदि विश्वनाथ का ही श्रेणी-विभाजन माना जाय तो क्यों न काव्य एक ही प्रकार का मान लिया जाय—जिसमें व्यंग्यार्थ हो, वह काव्य तथा जिसमें व्यंग्यार्थ न हो, वह अकाव्य। यह श्रेणी-विभाजन सुगम भी होगा और बोधगम्य भी। किंतु, इस श्रेणी-विभाजन को स्वीकार करने पर काव्यगत तारतम्य का पता न चल सकेगा, जो कि काव्यशास्त्र के अनुशीलनकर्त्ता के लिए आवश्यक है। अतः, चारुत्व के तारतम्य को जानने के लिए सूक्ष्म श्रेणी-विभाजन करना ही होगा।"

—ध्वनिसंप्रदाय और उसके सिद्धांत, पृ० ३३७

अप्पय दीक्षित पूर्वोक्त श्रेणी-विभाजन को स्वीकार कर 'चित्रमीमांसा' में इसका वर्णन करते हैं तथा अधम काव्य का ही विस्तृत विवेचन करते हैं। वे कहते हैं कि प्रथम दो प्रकारों का वर्णन अन्यत्र किया जा चुका है। शब्दचित्र नीरस होने से कवियों के लिए आदरास्पद नहीं बनता; क्योंकि उसमें कोई

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विचारणीय तथ्य नहीं रहता। अतः, शब्दचित्र को छोड़कर इस ग्रंथ में अर्थचित्र का विवेचन किया जाता है—

तदेवं त्रिविधे गुणीभूतव्यंग्ययोरन्यत्रास्माभिः प्रपंचः कृतः। शब्दचित्रस्य प्रायोनीरसत्वान्नात्यंतं तदाद्रियंते कवयः न वा तत्र विचारणीयमतीवोपलभ्यत इति शब्दचित्रांशमपहार्यार्थचित्रमीमांसा प्रसन्न विस्तीर्णा प्रस्तूयते।

—चित्रमीमांसा, पृ० ४

पंडितराज जगन्नाथ ने ध्वनि-सिद्धांत की मान्यताओं का परिष्कार कर निजी दृष्टिकोण के आधार पर काव्य का चतुर्धा विभाजन प्रस्तुत किया, जिसमें ध्वनि-सिद्धांत की विचार-सरणि भी सुरक्षित है। 'रसगंगाधर' में काव्य की चार कोटियाँ निर्धारित की गई हैं—उत्तमोत्तम, उत्तम, मध्यम तथा अधम। वे व्यंग्य की अतिशयता-मात्र को ही विभाजन का आधार न मानकर चमत्कार का भी समावेश करते हैं। वे उत्तमोत्तम काव्य को ध्वनि काव्य कहते हैं, जिसमें शब्द और अर्थ अपने को अप्रधान या गुणीभूत बनाकर किसी विशेष अर्थ को व्यंजित करते हैं। उत्तम काव्य वहाँ होता है, जहाँ व्यंग्य अप्रधान होते हुए भी चमत्कार का कारण बने। जहाँ वाच्य के चमत्कार से व्यंग्य का चमत्कार हीन हो, वहाँ मध्यम काव्य होता है। जहाँ अर्थ चमत्कार से परिपोषित शब्द-चमत्कार ही प्रधान हो, वहाँ अधम काव्य होता है। पंडितराज शब्दचित्र एवं अर्थचित्र में एक-सा चमत्कार नहीं मानते; अतः वे दोनों का पृथक् विभाजन करते हैं। उनके अनुसार दोनों के चमत्कार में न्यूनाधिक भाव दिखाई पड़ता है और शब्दचित्र की अपेक्षा अर्थचित्र में चमत्काराधिक्य होता है—

कमपीति चमत्कारभूमिम्। तेनातिगूढ़स्फुटव्यंग्ययोर्निरासः। अपरांग-वाच्यसिद्ध्यंगव्यंग्यस्यापि चमत्कारितया तद्वारणाय गुणीभावितात्मानाविति स्वापेक्षया व्यंग्यप्राधान्याभिप्रायत्वम्। —रसगंगाधर पृ० १०

शब्दार्थौ यत्र गुणीभावितात्मानौ कमप्यर्थमभिव्यक्तस्तदाद्यम्।

—वही, पृ० ९

यत्र व्यंग्यमप्रधानमेव सच्चमत्कारकारणं तद्द्वितीयम्।

—वही, पृ० १७

यत्र व्यंग्यचमत्कारासमानाधिकरणो वाच्यचमत्कारस्तत्तृतीयम्। —पृ० १९

यत्रार्थ चमत्कृत्युपस्कृता शब्दचमत्कृतिः प्रधानं तदधमं चतुर्थम्।—पृ० १९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तत्रार्थचित्रशब्दचित्रयोरविशेषेणाधमत्वमयुक्तं, तारतम्यस्य स्फुटमुपलब्धे।

—पृ० २४

यद्यपि यत्रार्थचमत्कृतिसामान्यशून्या शब्दचमत्कृतिस्तत् पंचममधमाधममपि काव्यविधासु गणयितुमुचितम्।

—पृ० २३

पंडितराज ने काव्य के एक अधमाधम नामक पंचम प्रकार की भी कल्पना की है, जिसमें अर्थगत चमत्कार न होकर केवल शब्द का ही चमत्कार होता है। ऐसे काव्य में एकाक्षर-पद्य, अर्धावृत्तियमक, पद्मबंध आदि आते हैं—

काव्य के वर्गीकरण के संबंध में मम्मट का मत अधिक महत्त्वपूर्ण है, यद्यपि कई दृष्टियों से पंडितराज की भी मान्यताओं की अवहेलना नहीं की जा सकती। मम्मट ने ध्वनिकार के ही वर्गीकरण को अपना उपजीव्य बनाकर व्यंग्यार्थ की प्रधानता, गौणता एवं अभाव के आधार पर काव्य के तीन प्रकार माने हैं—उत्तम, मध्यम और अवर (अधम)। जहाँ वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ में अधिक चमत्कार हो, वहाँ उत्तम या ध्वनिकाव्य होता है—

इदमुत्तममतिशयिनि व्यंग्ये वाच्याद् ध्वनिर्बुधैः कथितः।

—काव्यप्रकाश, १/४

आचार्य मम्मट की परिभाषा का स्रोत ध्वनिकार का यह श्लोक है, जिसमें कहा गया है कि जब शब्द और अर्थ अपने अभिप्राय को गौण कर एक विशेष अर्थ को व्यक्त करें तो उसे ध्वनि कहेंगे। ध्वनिकाव्य में वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ अधिक चारुताप्रकर्षक होता है।—

यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ।
व्यक्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः॥

—ध्वन्यालोक, १/१३

उत्तम काव्य का उदाहरण—

मम्मटाचार्य ने महाकवि अमरुक का यह श्लोक ध्वनिकाव्य के उदाहरण के रूप में उद्धृत किया है—

निश्शेषच्युतचंदनं स्तनतटं निर्मिष्टरागोऽधरो
नेत्रे दूरमनंजने पुलकिता तन्वी तवेयं तनु।
मिथ्यावादिनि दूति बांधवजनस्याज्ञातपीडागमे
वापीं स्नातुमितो गताऽसि न पुनस्तस्याधमस्यांतिकम्॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ किसी नायिका का अपनी दूती के दुर्व्यवहार पर कुपित होने का वर्णन है। उसका कहना है—"अरी ! असत्य भाषण करनेवाली एवं मेरी (प्रियजन) पीड़ा को न जाननेवाली दूती, तू तो बावड़ी में स्नान करने गई थी, उस नीच के पास नहीं। इसका कारण यह है कि तुम्हारे स्तनों के कोर का चंदन हट गया है और अधरों की अरुणिमा दूर हो गई है। तुम्हारी आँखों का अंजन धुल गया है और पतला शरीर रोमांचित हो रहा है।"

यहाँ कवि ने स्नान की स्थिति का वर्णन किया है। दूती स्वयं नायक के पास जाकर उसके साथ संभोग-क्रिया में रत हो चुकी है। स्नान की दशा का वर्णन वाच्यार्थ है; पर उससे संभोग-क्रिया के वर्णन की व्यंजना हो रही है। यही व्यंग्यार्थ है। वापी के स्नान-वर्णन से यह अर्थ ध्वनित होता है कि उसने नायक से संभोग कराया है। वह वापी में स्नान करने क्यों जाने लगी ? यहाँ 'अधम' पद वाच्यार्थ है; पर वक्ता एवं श्रोता के ज्ञान से इसका अर्थ 'अन्य नायिका से संभोग करनेवाला' प्रकट होता है। अतः, मुख्यतः यहाँ अधम शब्द में ही व्यंग्य है और उसी के साथ अनुस्यूत होकर चंदन आदि का हटना आदि पद (चंदनच्यवन) रति-क्रिया के द्योतक हो गए हैं। वाच्यार्थ से अधिक चमत्कार व्यंग्यार्थ में होने के कारण यह श्लोक उत्तम या ध्वनिकाव्य का उदाहरण है।

सीता हरन पिता सन, तात कहेहु जनि जाइ।
जो हौं राम तो कुल सहित, कहिहि दसानन आइ॥

—रामचरितमानस

यहाँ 'राम' शब्द में व्यंग्य है, जिसका अर्थ केवल दशरथ सुत-राम न होकर सपरिवार रावण को मारनेवाला है।

सीताहरण होने के पश्चात् रामचंद्र मरणासन्न जटायु से कह रहे हैं कि हे तात ! आप स्वर्ग में मेरे पिता राजा दशरथ से सीताहरण का संवाद न कहेंगे। यदि मैं राम होऊँगा तो कुलसहित रावण जाकर कहेगा। यह अर्थवाच्य है और इससे यह व्यंग्यार्थ निकलता है कि रामचंद्र सपरिवार रावण का विनाश कर देंगे। यहाँ वाच्य अर्थ से अधिक चमत्कार व्यंग्य अर्थ में है।

मध्यमकाव्य वहाँ होता है, जहाँ वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ गौण हो।

अतादृशि गुणीभूतव्यंग्यं व्यंग्ये तु मध्यमम्।

—काव्यप्रकाश, १/३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आचार्य मम्मट का यह लक्षण भी आनंदवर्द्धन एवं अभिनव गुप्त की परिभाषा से प्रभावित है। आनंदवर्द्धनाचार्य के अनुसार व्यंग्य अर्थ की प्रधानता में ध्वनिकाव्य एवं उसके गुण-भाव (गौण) होने में गुणीभूतव्यंग्य होता हैं।—

व्यंग्यस्यार्थस्य प्राधान्ये ध्वनिसंज्ञित काव्यप्रकारः गुणभावे तु गुणीभूत व्यंग्यता। —३/४२

प्रकारोऽन्यो गुणीभूतव्यंग्यः काव्यस्य दृश्यते।
यत्र व्यंग्यान्वये वाच्यचारुत्वं स्यात् प्रकर्षवत्॥
—ध्वन्यालोक, ३/३७

उदाहरण—

ग्रामतरुणं तरुण्या नववंजुलमंजरीसनाथकरम्।
पश्यंत्या भवति मुहुर्नितरां मलिना मुखच्छाया॥

"नवीन अशोक की मंजरी को ग्राम-युवक के हाथ में देखकर उस तरुणी के मुख की छाया अत्यंत मलिन पड़ रही थी।" इससे यह व्यंग्य प्रकट होता है कि नायिका अशोक-निकुंज में मिलने का संकेत देकर भी नहीं गई। यहाँ व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ की अपेक्षा गौण है; अतः यह गुणीभूतव्यंग्य का उदाहरण हुआ।

बैठी गुरुजन बीच में, सुनि मुरली की तान।
मुरझति अति अकुलाय उर, परे साँकरे प्रान॥

"राधा गुरुजनों के बीच बैठी हुई थी कि उसे श्रीकृष्ण की मुरली की तान सुनाई पड़ी। वह उस मधुर स्वर-लहरी को श्रवण कर उदास हो गई और उसका हृदय व्याकुल हो गया; उसके प्राण संकट में पड़ गए।" इसका वाच्यार्थ यह हुआ कि कृष्ण की बाँसुरी की मधुर ध्वनि श्रवण कर भी राधिका उनके पास जाने में असमर्थ है। वाच्यार्थ में राधिका का मुरझा जाना कथित है, जो व्यंग्यार्थ से अधिक चारु है। अतः यह मध्यम काव्य का उदाहरण हुआ।

अवर या अधम काव्य में व्यंग्यार्थ का सर्वथा अभाव तथा अलंकार या चमत्कार का प्राधान्य होता है। इसमें अर्थालंकार के प्राधान्य के कारण 'अर्थचित्र' तथा शब्दालंकार की प्रधानता में 'शब्दचित्र' होता है।

शब्दचित्रं वाच्यचित्रमव्यंग्यं त्ववरं स्मृतम्।
चित्रमिति गुणालंकारयुक्तम्।
अव्यंग्यमिति स्फुटप्रतीयमानार्थरहितम्। अवरमधमम्।
—काव्यप्रकाश, १/५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अधम काव्य में कवि का मूल उद्देश्य आलंकारिक चमत्कार उत्पन्न करना होता है। इसमें व्यंग्यार्थ की स्पष्टतः प्रतीति नहीं होती। अवर काव्य में भी व्यंग्य की सत्ता संभव है; पर उसकी स्पष्टतः प्रतीति नहीं होती। यद्यपि इसमें रसादि का भी व्यंग्य होना संभव है; पर वे कवि के लिए अभीष्ट नहीं होते। आचार्य मम्मट की इस परिभाषा पर आनंदवर्द्धन के विचार की छाप है।

ततोऽन्यद्रसभावादि तात्पर्यरहितं व्यंग्यार्थविशेषप्रकाशनशक्तिशून्यं च काव्यं केवलं वाच्यवाचकवैचित्र्यमात्राश्रयेणोपनिबद्धमालेख्यप्रख्यं यदाभासते तच्चित्रम्। —ध्वन्यालोक वृत्ति, ३/४३

ध्वनिकार के अनुसार ऐसा काव्य, काव्य न होकर उसका अनुकरण मात्र है—

न तन्मुख्यं काव्यम्। काव्यानुकारो ह्यसौ।

इस प्रकार का काव्य व्यंग्यादि के संस्पर्श से शून्य एवं रसादि तात्पर्य से रहित होता है। शब्दचित्र में दुष्कर यमकादि अलंकार गुंफित रहते हैं और अर्थचित्र में उत्प्रेक्षादि अलंकारों का प्राधान्य रहता है—

तत्र किंचिच्छब्दचित्रं यथा दुष्करयमकादि। वाच्यचित्रं ततः शब्दचित्रादन्यद् व्यंग्यार्थसंस्पर्शरहितं, प्राधान्येन वाक्यार्थतयास्थितं रसादि तात्पर्यरहितमुत्प्रेक्षादि। —ध्वन्यालोक, ३/४३ की वृत्ति

पूर्वपक्ष के रूप में प्रश्न का समाधान प्रस्तुत करते हुए ध्वनिकार का कहना है कि जहाँ वस्तु या अलंकारादि व्यंग्य का अभाव हो, वहाँ चित्र का विषय नहीं होगा, उसे काव्य नहीं स्वीकार किया जा सकता। इसका उत्तर आनंदवर्द्धन के अनुसार यह है कि रसादि की प्रतीति के न होने पर काव्य की संभावना नहीं की जा सकती। किंतु रस, भाव आदि की इच्छा से रहित होकर जब कवि शब्दालंकार या अर्थालंकार का उपनिबंधन करता है, तब उसकी विवक्षा की अपेक्षा काव्य में रसादि की शून्यता की कल्पना की जाती है। चित्रकाव्य में कवि का ध्येय रसादि की विवक्षा करना नहीं होता और ऐसी स्थिति में भी यदि उसकी प्रतीति हो तो वह दुर्बल होती है। अतएव उसे नीरस समझकर ही चित्रकाव्य का विषय मान्य होता है।

सत्यं न तादृक् काव्यप्रकारोऽस्ति यत्र रसादीनामप्रतीतिः। किंतु यदा रसभावादि विवक्षाशून्यः कविः शब्दालंकारमर्थालंकारं वोपनिबध्नाति तदा तद्विवक्षापेक्षया रसादिशून्यतार्थस्य परिकल्प्यते। विवक्षोपारूढ एव हि काव्ये शब्दानामर्थः। वाच्य सामर्थ्यवशेन च कविविवक्षाविरहेऽपि तथाविधे विषये

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रसादि प्रतीतिर्भवंती परिदुर्बला भवतीत्यनेनापि प्रकारेण नीरसत्वं परिकल्प्य चित्र-विषयो व्यवस्थाप्यते ।

—ध्वन्यालोक, ३/४ की वृत्ति

शब्दचित्र का उदाहरण—

स्वच्छंदोच्छलदच्छकच्छकुहरच्छातेतरांबुच्छटा
मूर्च्छन्मोहमहर्षिहर्षविहितस्नानाह्निकाह्नायवः ।
भिद्यादुद्यदुरारदर्दुरदरीदीर्घादरिद्रद्रुम-
द्रोहोद्रेकमहोर्मिमेदुरमदा मंदाकिनी मंदताम् ।।

"स्वच्छंद रूप से उछलती हुई निर्मल किनारों के गड्ढों में प्रबल वेग से जानेवाली जलधारा से जिसका अज्ञान नष्ट हो गया है, ऐसे महर्षि आनंद के साथ जिस (गगा) की कंदरा में वड़े-बड़े (उदार) मेढक दिखलाई देते हैं, दीर्घ तथा समृद्ध वृक्षों के पतन से उठनेवाली बड़ी-बड़ी तरंगों से पुष्ट हो गया है गर्व जिस (गंगा) का, ऐसी गंगा तुम्हारे अज्ञान या पाप को तुरत नष्ट करे ।"

—यहाँ आनुप्रासिक सौंदर्य के कारण शब्दचित्र हुआ ।

कूलन में केलि में कछारन में कुंजन में,
क्यारिन में कलित कलीन किलकंत हैं ।
कहैं 'पद्माकर' पराग हू में पौन हू में,
पानन में पिक में पलासन पगंत हैं ।।
द्वार में दिसान में दुनी में देस-देसन में,
देखो दीप-दीपन में दीपत दिगंत हैं ।
बीथिन में ब्रज में नबेलिन में बेलिन में,
बनन में बागन में बगर्‌यौ बसंत है ।।

अर्थचित्र का उदाहरण—

विनिर्गतं मानदमात्ममंदिराद्भवत्युपश्रुत्य यदृच्छयाऽपि यम् ।
ससंभ्रमेंद्रद्रुतपातितार्गला निमीलिताक्षीव भियाऽमरावती ।।

यहाँ हयग्रीव के आतंक का वर्णन है । "शत्रुओं के मान का मर्दन करने-वाले जिस हयग्रीव को अपने राजमहल से इच्छानुसार ही निकला हुआ जानकर घबराए हुए इंद्र के द्वारा जिसकी अर्गला (कील) लगा दी गई है, ऐसी अमरावती ने मानो भय के कारण आंखें बंद कर ली हैं ।" यहाँ 'भियानिमी-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लिताक्षीव अमरावती जाता' अर्थात् मानो अमरावती ने भय से आँखें बंद कर ली हों' में उत्प्रेक्षालंकार का सौंदर्य है। अतः, यह अर्थचित्र का उदाहरण हुआ। कवि का अभीष्ट वीररस की व्यंजना नहीं है।

> भाल गुही गुन लाल लटैं लपटी लर मोतिन की सुख दैनी,
> ताहि बिलोकत आरसी लै कर आरस सों इक सारस नैनी।
> 'केसव' कान्ह दुरे दरसी परसी उपमा मति कौं अति पैनी,
> सूरज-मंडल में ससि मंडल मध्य धँसी जनु जाहि त्रिबैनी॥

यहाँ कवि ने आरसी में अपना मुँह देखनेवाली किसी गोपी का वर्णन किया है। केशों में लाल की डोरियाँ तथा मोती की लड़ी की कल्पना, सूर्यमंडल में चंद्रमंडल एवं चंद्रमंडल में शोभित होनेवाली त्रिवेणी के रूप में की गई है। यहाँ उत्प्रेक्षालंकार का चमत्कार प्रदर्शित किया गया है।

आधार-ग्रंथ

भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका—डॉ० नगेंद्र
ध्वनि-संप्रदाय और उसके सिद्धांत—डॉ० भोलाशंकर व्यास
रसगंगाधर का शास्त्रीय अध्ययन—डॉ० प्र मस्वरूप गुप्त
भारतीय काव्यशास्त्र के प्रतिनिधि सिद्धांत—डॉ० राजवंश सहाय 'हीरा'
भारतीय काव्यालोचन— ,, ,,

काव्य-मीमांसा—इसके रचयिता राजशेखर हैं। [दे० राजशेखर] 'काव्यमीमांसा' कविशिक्षा-संबंधी ग्रंथ है। इसमें अट्ठारह अध्याय हैं और यह अधूरा या अपूर्ण है। इसके प्रथम अध्याय में काव्यशास्त्र के उद्भव की कथा है, जिसमें कहा गया है कि काव्य-पुरुष ने अष्टादश अधिकरण युक्त काव्य-विद्या का उपदेश अपने शिष्यों को दिया था। अट्ठारह विद्वानों के अट्ठारह ग्रंथ इस प्रकार हैं—कविरहस्य—सहस्राक्ष, उक्ति—उक्तिगर्भ, रीतिनिर्णय—सुवर्णनाभ, यमक—यम, अनुप्रास—प्रचेता, चित्रकाव्य—चित्रांगद, शब्दश्लेष—शेष, स्वभावोक्ति—पुलस्त्य, उपमा—औपकायन, अतिशयोक्ति—पराशर, अर्थश्लेष—उतथ्य, उभयालंकार—कुबेर, हास्य—कामदेव, रूपक—भरत, रस—नंदिकेश्वर, दोष—धिषण, गुण—उपमन्यु, औपनिषदिक विषय—कुचमार। द्वितीय अध्याय में शास्त्र-निर्देश है, जिसमें वाङ्मय के दो विभाग किए गए हैं—काव्य और शास्त्र। इसमें साहित्य विद्या को 'पंचम विद्या' कहा गया है। तृतीय अध्याय में काव्य-पुरुष की उत्पत्ति का उल्लेख है और चतुर्थ अध्याय में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पदवाक्य का विवेक । इस अध्याय में कवियों के प्रकार तथा प्रतिभा का वर्णन है। प्रतिभा के दो प्रकार माने गए हैं—कारयित्री तथा भावयित्री। पंचम अध्याय में व्युत्पत्ति एवं काव्यपाक का वर्णन है। इसमें कवि के तीन भेद वर्णित हैं—शास्त्रकवि, काव्यकवि और उभय कवि। पुनः शास्त्रकवि के तीन प्रकार तथा काव्यकवि के आठ प्रकारों का वर्णन कर आलोचकों के भेदों का विवेचन किया गया है। षष्ठ अध्याय में पद का एवं सप्तम में वाक्य का विश्लेषण है। सप्तम में ही काकु का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है। अष्टम अध्याय में काव्यार्थ का स्रोत वर्णित है और उसकी सोलह योनियाँ कही गई हैं। नवम अध्याय में अर्थ के सात प्रकारों का तथा मुक्तक और प्रबंध-काव्य का विवेचन है। दशम अध्याय में कवि एवं राजचर्चा का वर्णन है। इसमें कवि के गृह, मित्र, परिचारक, लेखक एवं उसकी भाषा की चर्चा की गई है और बतलाया गया है कि कवि किस प्रकार काव्य-पाठ करे। इसी अध्याय में राजाओं के लिए कवि-गोष्ठियों के आयोजन का भी निर्देश है। एकादश अध्याय में शब्द-हरण तथा उसके गुण-दोष वर्णित हैं और द्वादश अध्याय में अर्थ-हरण एवं उसके प्रकारों का निरूपण है। चतुर्दश से षोडश अध्याय तक कवि-समय का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। सप्तदश अध्याय में भूगोल का वर्णन है। अष्टादश अध्याय का नाम कालविभाग है। इसमें प्राचीन कालविभाग का निरूपण है। इस अध्याय में यह भी दिखाया गया है कि कवि किस विषय का किस ऋतु में वर्णन करे। 'काव्यमीमांसा' में वर्णित विषयों को देखकर ज्ञात होता है कि यह विविध विषयों का ज्ञान देने-वाला विशाल ज्ञानकोश है। इस पर पंडित मधुसूदन शास्त्री ने संस्कृत में 'मधुसूदनी विवृत्ति' लिखी है, जो चौखंबा संस्कृत सीरीज, वाराणसी से प्रकाशित है। 'काव्यमीमांसा' के दो हिंदी अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं।

१. पंडित केदारनाथ शर्मा-कृत हिंदी अनुवाद, राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना से २०११ संवत् में प्रकाशित तथा २. डॉ० गंगासागर राय-कृत हिंदी अनुवाद, चौखंबा से १९६४ ई० में प्रकाशित।

काव्य-लक्षण—काव्य-लक्षण के अंतर्गत काव्य के स्वरूप या परिभाषा पर विचार किया जाता है। भारतीय साहित्य शास्त्र में सर्वप्रथम काव्य की परिभाषा आचार्य भामह की प्राप्त होती है। उनके पूर्व भरत ने 'नाट्यशास्त्र' में काव्य के सात लक्षणों का उल्लेख किया है, पर वे लक्षण अधिकतर नाटक पर ही घटित होते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मृदुललितपदाढ्यं गूढशब्दार्थहीनं,
जनपदसुखबोध्यं युक्तिमन्नृत्ययोज्यम् ।
बहुकृतरसमार्गं संधिसंधानयुक्तं,
स भवति शुभकाव्यं नाटकप्रेक्षकाणाम् ॥

—नाट्यशास्त्र, १६/११८

यहाँ क्रमशः सात विशेषताएँ प्रस्तुत की गई हैं—मृदुललितपदावली, गूढ़शब्दार्थहीनता, सर्वसुगमता, युक्तिमत्ता, नृत्योपयोगयोग्यता, बहुकृतरसमार्गता तथा संधियुक्तता। इनमें पंचम एवं सप्तम तत्त्व नाटक की दृष्टि से उपन्यस्त हैं, शेष में गुण, रीति, रस एवं अलंकार का वर्णन है।

काव्य लक्षण का वास्तविक विकास भामह से होता है। उनके अनुसार शब्द एवं अर्थ का सहभाव ही काव्य है। उन्होंने शब्दार्थयुगल को काव्य की संज्ञा देकर वाणी के समस्त प्रपंच को काव्य मान लिया है; अतः सहज ही अतिव्याप्ति दोष आ जाता है। पर, विचार करने पर ज्ञात होता है कि शब्दार्थ की सहभावापन्नता या शब्द तथा अर्थ के तुल्यकोटिक महत्त्व से भामह का अभिप्राय काव्य में शब्दालंकार एवं अर्थालंकार के सम्यक् नियोजन से है—

शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्। —काव्यालंकार, १/१६

भामह ने स्वतः इस समस्या का समाधान करते हुए तत्कालीन प्रचलित या पूर्व परंपरा के रूप में प्राप्त परस्पर विरोधी दो विचार-सरणियों का उल्लेख किया हैं। एक विचार के अनुसार काव्य-सौंदर्य का विधायक शब्दालंकार है तो दूसरे के अनुसार अर्थालंकार।

रूपकादिरलंकारस्तथान्यैर्बहुधोदितः।
न कांतमपि निर्भूषं विभाति वनितामुखम् ॥
रूपकादिरलंकारं बाह्यमाचक्षते परे।
सुपां तिङांच व्युत्पत्तिं वाचां वांछंत्यलंकृतिम् ॥
तदेतदाहुः सौशब्द्यं नार्थव्युत्पत्तिरीदृशी।
शब्दाभिधेयालंकारभेदादिष्टं द्वयं तु नः ॥

—वही १/१३-१५

आचार्य कुंतक ने भी इस तथ्य की पुष्टि की है—

केषांचिन्मतं कविकौशलकल्पितकमनीयातिशयः शब्द एव केवलं काव्यम् इति, केषांचिद् वाच्यमेव रचनावैचित्र्य चमत्कारकारि काव्यम् इति।

—वक्रोक्तिजीवित, १/१७ की वृत्ति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भामह ने उभय अतिवादी विचारधाराओं में समन्वय स्थापित करते हुए बताया कि शब्दालंकार एवं अर्थालंकार, दोनों का सहभाव ही काव्य-सौंदर्य का द्योतक है। वे शब्द और अर्थ को समान महत्त्व देते हुए दोनों के सहभाव या साहित्य की उपयोगिता सिद्ध करते हैं।

दंडी—दंडी ने काव्य की परिभाषा में बताया कि इष्ट या चमत्कृत अर्थ से पूर्ण शब्दावली ही काव्य है।

शरीरं तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली ।।

—काव्यादर्श, १/१०

यहाँ विवक्षित अर्थ से परिपूर्ण पदावली को काव्य-शरीर कहा गया है।

दंडी शब्द या पदावली को ही काव्य मानते हैं; शब्दार्थ को नहीं। इनके मत का विकसित रूप पंडितराज के लक्षण में प्राप्त होता है। इनका लक्षण निश्चित बढ़ाव का सूचक है। ये भामह की भाँति शब्दालंकार को काव्य न मानकर अर्थालंकार एवं रस को काव्य का अनिवार्य तत्त्व स्वीकार करते हैं।

कामं सर्वोप्यलंकारो रसमर्थे निषिंचति ।।

—काव्यादर्श, १/६२

दंडी के काव्य-लक्षण की भी अपनी सीमाएँ हैं। यह अवश्य है, कि वह सीमा भामह की अपेक्षा किंचित् व्यापक है; किंतु उनका इष्टार्थ अलंकारों से आगे नहीं जा सका।

वामन ने काव्य का कोई स्वतंत्र लक्षण नहीं दिया, परंतु उनके रीति-वर्णन में तद्विषयक विचार उपलब्ध होते हैं। उनके अनुसार काव्य सौंदर्य के कारण ग्राह्य हैं और सौंदर्य अलंकार को कहते हैं। काव्य में सौंदर्याधान दोषों के त्याग एवं गुणों के ग्रहण के कारण होता है। वे गुण और अलंकार से युक्त शब्दार्थ को काव्य कहते हैं। वामन अलंकारों की अपेक्षा गुण को काव्य के लिए अधिक महत्त्वशाली सिद्धकर काव्य-चिंतन को न केवल नई दिशा प्रदान करते हैं, अपितु भामह एवं दंडी की विचारणा को आगे बढ़ा देते हैं।

काव्यं ग्राह्यमलंकारात्। सौंदर्यमलंकारः। काव्यशब्दोऽयं गुणालंकार-संस्कृतयोः शब्दार्थयोर्वर्तते। भक्त्या तु शब्दार्थमात्रवचनोऽत्रगृह्यते।

—काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, १/१/१,२,३

काव्यशोभायाः कर्त्तारो धर्मा गुणाः।
तदतिशयहेतवस्त्वलंकाराः ।। —वही, ३/१/१,२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वामन दोष को काव्य के लिए अग्राह्य तथा असह्य मानकर गुण को ग्राह्य एवं उसका नित्य धर्म स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार काव्य में अलंकार की स्थिति वांछनीय है, अनिवार्य नहीं; पर गुण उसका अनिवार्य तत्त्व है। वे शब्द और अर्थ को काव्य का मूल अंग मानते हैं। विश्वनाथ ने वामन की आलोचना करते हुए कहा कि रीति काव्य की आत्मा नहीं है। रीतिवादी वामन के अनुसार रीति ही काव्य की आत्मा है। विश्वनाथ रीति को संघटना विशेष मानते हैं। वह तो काव्य-पुरुष के अवयव-संस्थान के रूप में ही मान्य है।

यत्तु वामनेनोक्तम्—'रीतिरात्माकाव्यस्य' इति, तन्न; रीतेः संघटना-विशेषत्वात्। संघटनायाश्चावयवसंस्थानरूपत्वात्, आत्मनश्च तद्भिन्नत्वात्।

—साहित्यदर्पण, प्रथम परिच्छेद।

कुछ भी हो, सौंदर्य को काव्य का मूल तत्त्व स्वीकार कर वामन ने काव्यालोचन के नए आयाम का अन्वेषण किया है। वे सुंदर शब्दार्थ को ही काव्य कहते हैं या सुंदर शब्दार्थ ही काव्य है।

रुद्रट—काव्य-लक्षण में रुद्रट की कोई महत्त्वपूर्ण देन नहीं है। वे शब्द एवं अर्थ, दोनों को ही काव्य मानते हैं—**शब्दार्थौ काव्यम्**। —काव्यालंकार, २/१

काव्यात्म-तत्त्व के विवेचन-क्रम में भामह से रुद्रट तक काव्यतत्त्वानुसंधान में विशेष प्रकार का क्रम परिलक्षित होता है। भामह एवं रुद्रट ने शब्दार्थ को काव्य के लिए महत्त्वपूर्ण मानकर दोनों की आवश्यकता स्वीकार की; पर दंडी को केवल शब्द ही अभीष्ट हुआ। वामन ने काव्य की सौंदर्य-चेतना का उद्घाटन कर बताया कि अलंकार एवं गुणों के समावेश तथा दोषाभाव के कारण ही काव्य में सौंदर्याधान होता है। ये सभी आचार्य काव्य के बाह्य तत्त्व पर ही दृष्टिनिक्षेप करते रहे, उन्होंने उसके आंतर पक्ष का उद्घाटन नहीं किया। ये भारतीय काव्य-चिंतन के इतिहास में शरीरधर्मी आचार्य के रूप में विख्यात हैं।

कुंतक—वक्रोक्तिवादी कुंतक ने ध्वनि-सिद्धांत का विरोध करते हुए अपने कलावादी दृष्टिकोण का परिचय दिया है। उनके अनुसार अलंकार से युक्त शब्द और अर्थ काव्य है। वे अलंकार को काव्य का बाह्यशोभाधायक धर्म न मानकर उसका मूलाधार स्वीकार करते हैं। वे काव्य का व्यवस्थित लक्षण प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि काव्यमर्मज्ञों को आह्लादित करनेवाली

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वक्रतामय, कविकौशल-युक्त रचना में स्थित शब्द और अर्थ ही काव्य है। कुंतक शब्द तथा अर्थ, दोनों के साहित्य को काव्य की संज्ञा देते हैं।

शब्दार्थौ सहितौ वक्रकविव्यापारशालिनि।
बंधे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाह्लादकारिणि ॥

—वक्रोक्तिजीवितम्, १/७

उनके अनुसार जब "सहभावापन्न शब्दार्थयुगल कवि के वक्रोक्तिमय व्यापार-युक्त बंधन में व्यवस्थित हो जाता है तो काव्य कहलाता है।"

भोज—भोज की प्रतिभा संग्राहिका है, उनके काव्य-लक्षण पर पूर्ववर्ती आचार्यों का पूर्ण प्रभाव है। उनके अनुसार काव्य दोषरहित, गुणयुक्त, अलंकारसंवलित तथा रससिक्त हो।

निर्दोषं गुणवत्काव्यमलंकारैरलंकृतम्।
रसान्वितं कविः कुर्वन्कीर्त्तिप्रीतिं च विंदति ॥

—सरस्वतीकंठाभरण, १/२

मम्मट—आचार्य मम्मट का लक्षण अत्यंत प्रौढ़ तथा सुदीर्घ चिंतन का परिणाम है। उनके अनुसार दोषरहित, गुणसहित तथा यथासंभव अलंकार-युक्त शब्द और अर्थ काव्य है। मम्मट ने काव्य में अलंकार की स्थिति वैकल्पिक मानकर उसे गौण स्थान का अधिकारी बना दिया है।

तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि ॥

—काव्यप्रकाश, १/४

इस परिभाषा में शब्दार्थों के तीन विशेषण दिए गए हैं—अदोषौ, सगुणौ एवं अनलंकृती पुनः क्वापि। मम्मट न केवल शब्द और अर्थमात्र को ही काव्य मानते हैं, अपितु वे शब्दार्थ की समष्टि को काव्य कहते हैं। उनके अनुसार शब्दार्थयुगल में अदोषता का होना अनिवार्य है तथा माधुर्यादि गुण भी आवश्यक हैं। तीसरे विशेषण के अनुसार काव्य में अलंकार की स्थिति अनिवार्य न होकर क्वचित्कदाचित्क अर्थात् वैकल्पिक है। 'सगुणौ' का उल्लेख कर मम्मट ने काव्य में रस की अनिवार्य सत्ता मान ली है; क्योंकि रस के अभाव में गुण की कल्पना असंभव है। वस्तुतः उनका उद्देश्य काव्य में रस की व्यंजना या अभिव्यक्ति कराना ही है।

आचार्य मम्मट के लक्षण पर अनेक आचार्यों ने आपत्तियाँ उठाई हैं—जिनमें आचार्य विश्वनाथ का प्रहार अत्यंत भीषण है। 'अदोषौ' पद पर उनकी चार आपत्तियाँ हैं।—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(१) उनके अनुसार ध्वनि या उत्तम काव्य भी दोषयुक्त हो तो उसे काव्य की सीमा से बहिष्कृत कर दिया जाएगा तथा दोषरहित शब्दार्थ को काव्य मानने पर कोई भी रचना काव्य की परिधि में नहीं समा सकेगी। संभवतः, इस प्रकार का काव्य तो मिलेगा ही नहीं और यदि मिल भी गया; तो उसकी संख्या विरल होगी। इस प्रकार मम्मट का 'अदोषौ' विशेषण अतिव्याप्ति दोष से पूर्ण है।—**एवं काव्य प्रविरलविषयं निर्विषयं वा स्यात्।**

—साहित्यदर्पण, प्रथम परिच्छेद, १/३

तत्किंस्वरूपं तावत्काव्यमित्यपेक्षायां कश्चिदाह—'तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि' इति। एतच्चिंत्यम्। तथाहि यदि दोषरहितस्यैव काव्यत्वांगीकारस्तदा अस्य श्लोकस्य विधेयाविमर्शदोषदुष्टतया काव्यत्वं न स्यात्। प्रत्युत् ध्वनि (स) त्वेनोत्तमकाव्यताऽस्यांगीकृता, तस्मादव्याप्ति-र्लक्षणदोषः।—वही, १/३

यदि दोषराहित्य को काव्य का अनिवार्य तत्त्व माना जाय तो ऐसा काव्य यथार्थता से दूर हो जाएगा।

(२) विश्वनाथ का दूसरा आक्षेप यह है कि काव्य का जो अंश सदोष हो, उसे अकाव्य घोषित कर शेष निर्दुष्ट भाग को उत्तम काव्य माना जाय तो ऐसी स्थिति में वह रचना काव्यत्व एवं अकाव्यत्व से दोलायमान होकर महत्त्वहीन हो जायगी।

ननु कश्चिदेवांशोऽत्र दुष्टो न पुनः सर्वोऽपीति चेत्, तर्हि यत्रांशे दोषः सोऽकाव्यत्वप्रयोजकः यत्र ध्वनिः स उत्तम काव्यत्वप्रयोजक इत्यंशाभ्यामुभयतः आकृष्यमाणमिदं काव्यमकाव्यं वा किमपि न स्यात्। न च कंचिदेवांशं काव्यस्य दूषयंतः श्रुतिदुष्टादयो दोषाः, किं तर्हि सर्वमेव काव्यम्। तथाहि काव्यात्मभूतस्य रसस्यानपकर्षकत्वे तेषां दोषत्वमपि नांगीक्रियते। अन्यथा नित्यदोषानित्यदोषत्वव्यवस्थाऽपि न स्यात्। —वही, १/३, वृत्ति

(३) विश्वनाथ की तृतीय आपत्ति यह है कि किसी भी रचना में कोई-न-कोई दोष देखा जा सकता है; अतः दोषराहित्य को काव्य का आवश्यक तत्त्व नहीं माना जा सकता। यदि 'अदोषौ' विशेषण में 'नञ्' का 'ईषद्' अर्थ किया जाय तो इसका अर्थ यह होगा कि अल्प या किंचित् दोष से युक्त रचना ही काव्य कही जाय; पर इससे एक अनर्थ की भी संभावना हो जायगी कि निर्दुष्ट रचना किसी भी प्रकार से काव्य की कोटि में नहीं आ सकेगी; अतः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'ईषद् दोष' को भी काव्य का अनिवार्य तत्त्व नहीं स्वीकार किया जा सकता। यदि अधिक दोषयुक्त रचना को काव्य न कहकर अल्प दोषवाली रचना को काव्य कहा जाय तो फिर 'अदोषौ' विशेषण की स्थिति व्यर्थ हो जायगी। उदाहरण के लिए, रत्न का कोई ऐसा लक्षण नहीं उपस्थित किया जा सकता कि वह पूर्ण एवं निर्दुष्ट हो और यदि उसके कुछ अंश में कीड़ा लगा हो तो उसे रत्न नहीं कहा जा सकता। यह भले ही हो कि कीड़ा लगने से रत्न का मूल्य कम हो जाय; पर उसका रत्नत्व नष्ट नहीं होगा।

इसी प्रकार दोष के विद्यमान होने पर भी कोई काव्य काव्य की श्रेणी में परिगणित हो सकता है।

नन्वीषदर्थे नञः प्रयोग इति चेत्तर्हि 'ईषद्दोषौ शब्दार्थौ काव्यम्' इत्युक्ते निर्दोषयोः काव्यत्वं न स्यात्। सति संभवे 'ईषद्दोषौ' इति चेत् एतदपि काव्यलक्षणेऽवाच्यम्, रत्नादिलक्षणे कीटानुवेधादिपरिहारवत्। न हि कीटानुवेधादयो रत्नस्य रत्नत्वं व्याहंतुमीशाः किंतूपादेयतारतम्यमेव कर्तुम्। तद्वदत्र श्रुतिदुष्टादयोऽपि काव्यस्य।' उक्तं च—

कीटानुविद्धरत्नादिसाधारण्येन काव्यता।
दुष्टेष्वपि मता यत्र रसाद्यनुगमः स्फुटः॥

—वही, १/३

(४) विश्वनाथ का चतुर्थ तर्क इस प्रकार है—दोष की स्थिति रसापकर्ष पर निर्भर करती है; अतः अदोषौ विशेषण संगत नहीं ज्ञात होता। इसी लिए श्रुतिकटु, पुनरुक्त, ग्राम्य प्रभृति दोष अनित्य हैं तथा च्युतसंस्कृति आदि दोष नित्य। यदि 'अदोषौ' की सत्ता स्वीकार कर ली जाय तो 'श्रुतिकटु' प्रभृति दोष, जहाँ दोष नहीं होते या वे गुण रूप हो जाते हैं, वहाँ भी वे अनुपयुक्त हो जायंगे।

विश्वनाथ के तर्क सूक्ष्म होते हुए भी हठधर्मिता से युक्त हैं। मम्मट ने काव्य का मुख्य अर्थ रस को मानकर, मुख्यार्थ के विघातक तत्त्व को दोष कहा है; अतः उनका दोष-निरूपण रसापकर्षकता पर आधृत है।

यदि दोषयुक्त काव्य में भी रस का अपकर्ष न हो तो उसे दोषपूर्ण नहीं कहा जा सकता। उदाहरण के लिए 'न्यक्कारो ह्ययमेव' वाला पद्य विधेयाविमर्श दोष से युक्त होने पर भी रसापकर्षकता से रहित है। इसके व्यंग्यार्थ पर किसी प्रकार की आँच नहीं आई है, भले ही इसका वाच्यार्थ अपकर्षक हो गया हो। मम्मट के टीकाकार भी 'मुख्यार्थहति' का अर्थ 'उद्देश्यप्रतीति प्रति-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बंधकत्व' करते हुए गौण दोषों को नगण्य समझकर उनके कारण भी काव्य को अकाव्य या दोषपूर्ण नहीं मानते। साहित्यदर्पणकार भी इस आशय से परिचित हैं कि रसानुभूति के बाधक प्रबल दोषों से रहित शब्द तथा अर्थ की समष्टि ही काव्य है अर्थात् साधारण दोषों के होने पर भी रसबोध में बाधा न आए तो वह काव्य दोषयुक्त होते हुए भी काव्य माना जा सकेगा। इसलिए विश्वनाथ का खंडन पांडित्य-प्रदर्शन के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

'सगुणौ' विशेषण की आलोचना करते हुए विश्वनाथ का कहना है कि गुण रस के धर्म होते हैं, शब्द तथा अर्थ के नहीं; अतः उनकी विद्यमानता शब्द एवं अर्थ में संभव नहीं है। फलतः, रस को सगुण भले ही कहा जाय, शब्द और अर्थ को सगुण कदापि नहीं कहा जा सकता। अतः, मम्मट का 'सगुणौ' विशेषण असंगत है। वे 'सगुणौ' की अनुपपन्नता प्रदर्शित कर उसके बदले 'सरसौ' विशेषण की उपादेयता पर बल देते हैं।

किंच शब्दार्थयोः सगुणत्वविशेषणमनुपपन्नम्। गुणानां रसैकधर्मत्वस्य 'ये रसस्यांगिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः' इत्यादिना तेनैव प्रतिपादितत्वात्। रसाभिव्यंजकत्वेनोपचारत उपपद्यत इति चेत्, तथाऽप्ययुक्तम्। तथाहि तयोः काव्यस्वरूपेण अभिमतयोः शब्दार्थयोः रसोऽस्ति न वा। नास्ति चेत्, गुणवत्त्वमपि नास्ति। गुणानां तदन्वयव्यतिरेकानुविधायित्वात्। अस्ति चेत्, कथं नोक्तं रसवंताविति विशेषणम्। गुणवत्त्वान्यथानुपपत्त्यैतल्लभ्यत इति चेत्, तर्हि सरसावित्येव वक्तुं युक्तम्, न सगुणाविति। × × × × ननु शब्दार्थौ सगुणौ इत्यनेन गुणाभिव्यंजकौ शब्दार्थौ काव्ये प्रयोज्यावित्यभिप्राय इति चेत्, न। गुणाभिव्यंजक शब्दार्थवत्त्वस्य काव्ये उत्कर्षमात्राधायकत्वम्, न तु स्वरूपाधायकत्वम्॥

—साहित्यदर्पण, १/३, वृत्ति

मम्मट के समर्थकों ने भी विश्वनाथ के इस आक्षेप का उत्तर दिया है। मम्मट 'सगुणौ' के दोनों ही अर्थों—सरसौ तथा गुणाभिव्यंजकौ—को मान्यता देते हैं; पर 'सरसौ' अर्थ की, उनकी दृष्टि में सीमा है। ध्वनिवादी मम्मट के अनुसार ध्वनि के तीन प्रमुख प्रकारों—रसध्वनि, अलंकारध्वनि एवं वस्तुध्वनि—में सरसौ के साथ केवल रसध्वनि का संबंध घटित होता है, शेष दो के साथ नहीं। शेष दो ध्वनियाँ तभी काव्यत्व प्राप्त करेंगी, जब वे गुणाभिव्यंजक शब्दार्थ से युक्त हों। मम्मट यह मानते हैं कि गुण रस के धर्म हैं, शब्द और अर्थ के नहीं। उनके अनुसार गौणीवृत्ति से शब्द तथा अर्थ के साथ भी गुण का संबंध स्थापित हो जाता है—गुणवृत्त्या पुनस्तेषां वृत्तिः शब्दार्थयोर्मता।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसी कथन को ध्यान में रखकर वे शब्दार्थ के विशेषण के रूप में 'सगुणौ' का प्रयोग करते हैं।

अनलंकृती पुनः क्वापि—मम्मट-कृत परिभाषा के इस विशेषण की आलोचना चंद्रालोककार जयदेव ने की है। उनके अनुसार अलंकाररहित शब्दार्थ उष्णतारहित अग्नि की भाँति व्यर्थ है।

> अंगीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती ।
> असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृती ॥
>
> —चंद्रालोक, १/१२

ध्वनि-सिद्धांत की स्थापना के बाद प्रत्येक साहित्यशास्त्रीय मान्यता का स्वरूप स्थिर हो गया है और उसके आलोक में जयदेव का यह कथन अतिवादी विचार का प्रतिपादक है। काव्य में अलंकारों का स्थान कटक-कुंडल की भाँति है। उसे अनिवार्य तत्त्व नहीं माना जा सकता।

आचार्य विश्वनाथ ने इस विशेषण का खंडन करते हुए कहा कि गुण की भाँति अलंकार भी काव्योत्कर्ष के कारण हैं, उन्हें स्वरूप का घटक नहीं कहा जा सकता। विश्वनाथ यह भी स्वीकार करते हैं कि अलंकार के स्फुट न होने पर भी काव्य का काव्यत्व खंडित नहीं होता; पर वे परिभाषा में 'अनलंकृती पुनः क्वापि' का प्रयोग समीचीन नहीं मानते।

एतेन 'अनलंकृती पुनः क्वापि' इति यद्युक्तम्, तदपि परास्तम्। अस्यार्थः—सर्वत्र सालंकारौ क्वचित्त्वस्फुटालंकारावपि शब्दार्थौ काव्यमिति। तत्र सालंकार शब्दार्थयोरपि काव्ये उत्कर्षमात्राधायकत्वात् ।

—साहित्यदर्पण, १/३, वृत्ति

मम्मट ने उक्त विशेषण की व्याख्या करते हुए 'स्फुटालंकार विरह' कहा है, जिसका अभिप्राय अलंकारराहित्य नहीं है। उनका कहना है कि यदि किसी रचना में स्पष्टतः अलंकार न भी दिखाई पड़े तो उससे काव्यत्व नष्ट नहीं होता।

पंडितराज ने 'शब्दार्थौ' पद पर आपत्ति प्रकट करते हुए केवल शब्द को काव्य कहा, शब्दार्थ को नहीं। वे शब्द एव अर्थ को समष्टि में काव्यत्व स्वीकार नहीं करते और न दोनों की व्यष्टि में मानते हैं; उनके अनुसार तो एक-मात्र शब्द ही काव्य है।

यत्तु प्रांच (काव्यप्रकाशकारादयः) शब्दार्थौ काव्यत्वमित्याहुः तत्रापि च काव्यपद-प्रवृत्तिनिमित्तं शब्दार्थयोर्व्यासक्तं (व्यासज्यवृत्ति) प्रत्येक पर्याप्तं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वा । नाद्य एको न द्वौ इति व्यवहारस्येव श्लोकवाक्यं न काव्यमिति व्यवहारापत्तेः । न द्वितीयः एकस्मिन् पद्ये काव्यद्वयव्यवहारापत्तेः तस्माद्वेदशास्त्रपुराणलक्षणस्येव काव्यलक्षणस्यापि शब्दनिष्ठतैवोचिता ।

—रसगंगाधर, पृ० ५

अर्थात् जो काव्यप्रकाशकार आदि प्राचीन आचार्य शब्द और अर्थ दोनों को काव्य कहते हैं, उसके विषय में यह विचार करना है कि वह काव्यत्व शब्द तथा अर्थ, दोनों में 'व्यासज्य-वृत्ति' अर्थात् दोनों में मिलकर रहनेवाला धर्म है अथवा प्रत्येक पर्याप्त अर्थात् एक-एक से अलग भी रह सकता है । इनमें से पहला अर्थात् 'व्यासज्य-वृत्ति' वाला पक्ष नहीं बन सकता है, क्योंकि उस दशा में 'एको न द्वौ' इस व्यवहार के सामने यह श्लोक-वाक्य तो है, परंतु काव्य नहीं है, इस प्रकार का व्यवहार होने लगेगा……इसी प्रकार काव्यत्व को 'प्रत्येक-पर्याप्त' अर्थात् शब्द तथा अर्थ दोनों में अलग-अलग रहनेवाला धर्म भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उस दशा में एक ही श्लोक-वाक्य में शब्द और अर्थ दोनों की दृष्टि से दुहरा काव्यत्व आ जायगा । इसलिए एक पद्य में दो काव्यों का व्यवहार होने लगेगा । इसलिए शब्द तथा अर्थ में न 'व्यासज्य-वृत्ति' काव्यत्व बनता है, न 'प्रत्येक-पर्याप्त' । फलतः काव्यत्व शब्दार्थ उभयनिष्ठ धर्म नहीं है, अपितु केवल शब्दनिष्ठ धर्म है ।

—आचार्य विश्वेश्वर कृत हिंदी भाषा, काव्यप्रकाश पृ० २३ से उद्धृत ।

पंडितराज के टीकाकार नागेश भट्ट ने उनके इस विचार का खंडन करते हुए कहा कि काव्यत्व का प्रयोजक 'रसास्वाद व्यंजकत्व' शब्द तथा अर्थ दोनों में ही है । लोक में काव्य पढ़ा, काव्य सुना, काव्य समझा—ऐसे प्रयोग होते रहते हैं । ऐसे उदाहरणों में शब्द तथा अर्थ दोनों के ही काव्यत्व की प्रतीति होती है । केवल शब्द या केवल अर्थ की नहीं ।

दूसरी आपत्ति का समाधान करते हुए नागेश कहते हैं कि मुख्यतः काव्य 'व्यासज्य-वृत्ति' धर्म है; परंतु लक्षण के द्वारा केवल शब्द एवं केवल अर्थ में ही काव्यता स्वीकार की जा सकती है । अतएव 'एको न द्वौ' के समान 'श्लोकवाक्यं न काव्यं' इस प्रकार के व्यवहार का अवसर नहीं प्राप्त होता । अतः, काव्यप्रकाशोक्त शब्दार्थ को काव्य मानने में किसी प्रकार की बाधा नहीं आती ।

आस्वादव्यंजकत्वस्योभयत्राप्यविरोधात् चमत्कारिबोधजनकज्ञानविषयतावच्छेदकधर्मत्वरूपस्थानुपहसनीयकाव्यलक्षणस्य प्रकाशाद्युक्त लक्ष्यतावच्छेदकस्योभय-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वृत्तित्वाच्च काव्यं पठितं श्रुतं, काव्यं बुद्धमित्युभयविधिव्यवहारदर्शनाच्च काव्यपदप्रवृत्तिनिमित्तं व्यासज्यवृत्ति। अतएव वेदत्वादेरुभयवृत्तित्व प्रतिपादकः 'तदधीते तद्वेद', ५,२,५९ इति सूत्रस्थो भगवान् पतंजलिः सगच्छते। लक्षण-यान्यतरस्मिन्नपि तत्वात् 'एको न द्वौ' इतिवत् न तदापत्तिः। तेनानुपहसनीय-काव्यलक्षणं प्रकाशोक्तं निर्बाधम्।

—रसगगाधर, पृ० ७

नागेश के अनुसार यदि 'काव्य सुना' इत्यादि वाक्यों में काव्य शब्द का बोधक है तो काव्य समझा में अर्थ का वाचक।

मम्मट के लक्षण को ही आदर्श मानकर परवर्त्ती आचार्यों ने अपनी परिभाषाएँ निर्मित की हैं।

अदोषौ सगुणौ सालंकारौ च शब्दार्थौ काव्यम्।

—शब्दानुशासन, पृ० १६२

शब्दार्थौ निर्दोषौ सगुणौ प्रायः सालंकारौ च काव्यम्।

—वाग्भट, वाग्भटालंकार, पृ० १४

गुणालंकारसहितौ शब्दार्थौ दोषवर्जितौ।

—प्रतापरुद्रीय, पृ० ४२

निर्दोषा लक्षणवती सरीतिर्गुणभूषणा।

—चंद्रालोक

सालंकाररसानेकवृत्तिर्वाक् काव्यनामभाक्।

—अलंकारशेखर १/७

विश्वनाथ—इनके अनुसार रसात्मक वाक्य ही काव्य है—वाक्यं रसात्मकं काव्यम् (साहित्यदर्पण, प्रथम परिच्छेद, पृ० १९)। जहाँ तक रस को काव्य की आत्मा मानने का प्रश्न है, विश्वनाथ से पूर्व शौद्धोदनि तथा चंडीदास (काव्यप्रकाश दीपिका) ने यही दृष्टि प्रस्तुत की थी।

काव्यं रसादिमद्वाक्यं श्रुतं सुखविशेषकृत्।

—अलंकारशेखर, पृ० २

आस्वादजीवातुः पदसंदर्भः काव्यम्।

—काव्यप्रकाशदीपिका, पृ० १३

मम्मट के काव्य-लक्षण का खंडन कर विश्वनाथ ने रस-मात्र को काव्य की आत्मा स्वीकार कर रसवाद को नई गति दी। इनका लक्षण भावपरक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। मम्मट के काव्य-लक्षण में संकेतित रूप में रस को महत्त्व दिया गया था; पर रसात्मक वाक्य को काव्य मानकर विश्वनाथ ने गुणालंकार की सहितता के साथ रस का प्राधान्य सिद्ध किया। विश्वनाथ से पूर्व अनुमानवादी आचार्य महिमभट्ट ने भी कहा था कि कवि के जिस वचन में अनिवार्य रूप से रसाभिव्यक्ति होती है, वह काव्य हैं।

कवि व्यापारो हि विभावादि संयोजनात्मा रसाभिव्यक्त्यव्यभिचारी काव्यम्।
—व्यक्तिविवेक, पृ० ९५

अग्निपुराणकार काव्य में वाच्यवैचित्र्य की प्रधानता होने पर भी रस को ही उसका जीवन मानते हैं।

वाग्वैदग्ध्यप्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम्।

विश्वनाथ ने अपने कथन को अधिक स्पष्ट करते हुए कहा कि जिसमें जीवनाधायक तत्त्व रस प्रधान है, वही वाक्य काव्य है। उसके बिना कोई भी वाक्य काव्य नहीं कहला सकता। जो आस्वादित हो, उसे रस कहते हैं। इसके अंतर्गत रस, रसाभास, भाव, भावाभास आदि आ जाते हैं।

रस एवात्मा साररूपतया जीवनाधायको यस्य। तेन विना तस्य काव्यत्वाभावस्य प्रतिपादितत्वात्। 'रस्यते इति रसः' इति व्युत्पत्तियोगाद्भावतदाभासादयोऽपि गृह्यंते।
—साहित्यदर्पण, १/३, वृत्ति

यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि प्रबंध-काव्यों में जहाँ अनेक वाक्य नीरस होते हैं, वे काव्य होंगे या नहीं? क्योंकि सरस वाक्य को काव्य मानने पर तो अनेक नीरस पद्य काव्य की कोटि में नहीं आ सकेंगे। इसका उत्तर देते हुए विश्वनाथ ने कहा कि ऐसी बात नहीं है। जिस प्रकार रसयुक्त पद्य के कुछ नीरस पद भी उसी रस के द्वारा रसवान् माने जाते हैं, उसी प्रकार प्रबंधांतर्गत नीरस पदों में भी उसी प्रबंध के रस से रसवत्ता मानी जायगी।

ननु तर्हि प्रबंधांतर्वर्तिनां केषांचिन्नीरसानां पद्यानां काव्यत्वं न स्यादिति चेत् न। रसवत्पद्यांतर्गतनीरसपदानामिव पद्यरसेन प्रबंध रसेनैव तेषां रसवत्तांगीकारात्।
—वही, १/२ की वृत्ति

पंडितराज ने विश्वनाथ के रसपरक लक्षण पर आपत्ति की और उसे अनिर्णीत कहा। उनके अनुसार रसात्मक वाक्य को काव्य मानने पर वे काव्य, जिनमें केवल वस्तुवर्णन या अलंकार-वर्णन है, काव्यत्व की परिधि से बहिष्कृत हो जाएँगे। ऐसी स्थिति में तो महाकवियों का संप्रदाय ही उच्छिन्न हो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जाएगा। वाल्मीकि, कालिदास प्रभृति कवियों ने जल-प्रवाह, वेग, पतन, भ्रमण एवं कपि-बालादि की क्रीड़ा का स्थल-स्थल पर वर्णन किया है, वह अकाव्य माना जाएगा। कहा जा सकता है कि यथाकथंचित् रसस्पर्श मानकर उन्हें भी काव्य की सीमा में रखा जा सकता है अर्थात् वे वर्णित विषय किसी-न-किसी रस के उद्दीपन विभाव के रूप सिद्ध हो जाएँगे। इसका समाधान करते हुए पंडितराज का कथन है कि ऐसा रसस्पर्श 'गौश्चलति, मृगो धावति' आदि वाक्यों को भी काव्य की श्रेणी में ला देगा अर्थात् संसार के सभी काव्य एवं महाकाव्य रस-स्पर्श से ही काव्य की सीमा में आ जाएँगे, फलतः ऐसा लक्षण युक्ति-युक्त नहीं माना जा सकता।

यत्तु 'रसवदेव काव्यम्' इति साहित्यदर्पणे निर्णीतम्, तन्न, वस्त्वलंकार-प्रधानानां काव्यानामकाव्यत्वापत्तेः। न चेष्टाऽऽपत्तिः। महाकविसंप्रदायस्याकुलीभावप्रसंगात्। तथा च जलप्रवाहवेगनिपतनोत्पतनभ्रमणानि कविभिर्वर्णितानि कपिबालादिविलसितानि च। न च तत्रापि कथंचित् परंपरया रसस्पर्शोऽस्त्येवेति वाच्यम्। ईदृश रसस्पर्शस्य 'गौश्चलतिमृगोधावति' इत्यादावतिप्रसक्तत्वेनाप्रयोजकत्वात् अर्थमात्रस्य विभावानुभावव्यभिचार्यन्यतमत्वादितिदिक्।

—रसगंगाधर, प्रथम आनन, पृ० २४

पंडितराज ने अपना काव्य-लक्षण प्रस्तुत करते हुए कहा कि रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करनेवाला शब्द ही काव्य है अर्थात् जिस शब्द से रमणीय अर्थ का बोध हो, उसे काव्य कहते हैं—

रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।

—रसगंगाधर, पृ० ६

काव्य में रमणीयता या रमणीय अर्थ का क्या तात्पर्य है, इसकी व्याख्या करते हुए पंडितराज ने कहा कि जिसके द्वारा या जिसके ज्ञान से लोकोत्तर आनंद की अनुभूति हो, उसे काव्य कहा जाएगा। यहाँ रमणीयता का अर्थ है लोकोत्तर आनंद के उत्पादक ज्ञान का विषय होना। लोकोत्तरता का अर्थ है सहृदयों का अनुभव, जिसका साक्षी है आनंद में रहनेवाला वह जाति-विशेष, जिसे दूसरे शब्दों में 'चमत्कारत्व' कहा जा सकता है और उस चमत्कारत्व से अवच्छिन्न (चमत्कार) का कारण (उत्पादक) है एक प्रकार का बार-बार अनुसंधान रूप अर्थात् वह चमत्कार बार-बार अनुसंधान करने से उत्पन्न होता है। सारांश यह कि जिस अर्थ को सुनकर सहृदय चमत्कृत हो जाएँ, वह अर्थ यहाँ 'रमणीय' कहा गया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अतः उक्त आपत्ति को यहाँ स्थान नहीं; क्योंकि इस विवेचन से यह अलौकिकता, साधारण अलौकिकता तथा ब्रह्मवादी अलौकिकता, दोनों से पृथक् हो जाती है।

यदि हम से आकर कोई कहे कि आपको लड़का पैदा हुआ है, आपको इतने रुपए दिए जाएँगे तो इन वाक्यों के ज्ञान से—उनके बार-बार अनुसंधान से—भी हमें आनंद प्राप्त होता है; पर वह आनंद अलौकिक नहीं, लौकिक है; इस कारण उन वाक्यों को हम काव्य नहीं कह सकते।

—रसगंगाधर (हिंदी अनुवाद, भाग १), पृ० १

रमणीयता च लोकोत्तराह्लादजनकज्ञानगोचरता। लोकोत्तरत्वं चाह्लाद-गतश्चमत्कारत्वापरपर्यायोऽनुभवसाक्षिको पुनरनुसंधानात्मा। 'पुत्रस्ते जातः' 'धनं ते दास्यामि' इति वाक्यार्थधीजन्याह्लादस्य न लोकोत्तरत्वम्। अतो न तस्मिन् वाक्ये काव्यत्वप्रसक्तिः।

—रसगंगाधर, पृ० ९-१०, प्रथम आनन

पंडितराज की परिभाषा से ज्ञात होता है कि वे 'विशिष्ट शब्दवादी' हैं तथा रमणीयता को 'लोकोत्तर आह्लाद-जनक ज्ञान का विषय बननेवाला एक वस्तुधर्म मानते हैं। पंडितराज शब्दार्थवादियों की आलोचना कर केवल शब्द को ही काव्य मानने का निर्णय देते हैं।

भरत से पंडितराज पर्यंत संस्कृत-आचार्यों के काव्य-स्वरूप (लक्षण) विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि उन्होंने तीन प्रतिमानों के आधार पर काव्य की परिभाषा प्रस्तुत की है—शब्द, शब्दार्थ और रस। शब्दार्थोभय लक्षण प्रस्तुत करनेवालों में भामह, रुद्रट, कुंतक, राजशेखर, मम्मट, वाग्भट, हेमचंद्र तथा विद्यानाथ आदि हैं और शब्दप्रधान काव्यलक्षण दंडी, अग्निपुराण तथा पंडितराज का है। रसान्वित लक्षण के पुरस्कर्त्ता हैं—महिमभट्ट, भोज, शौद्धोदनि, चंडीदास तथा कविराज विश्वनाथ। उपर्युक्त सभी आचार्यों में मम्मट, विश्वनाथ तथा पंडितराज के लक्षण अधिक वैज्ञानिक तथा भारतीय काव्य-लक्षण-अवधारण के तीन सोपान हैं। अदोषता, रसवत्ता एवं रमणीयता—इन तीन विशिष्टताओं से युक्त लक्षण प्रस्तुत कर संस्कृत-आचार्यों ने काव्य में भाव, कला एवं बुद्धितत्त्व का समाहार किया है। भारतीय साहित्यशास्त्र अत्यंत व्यावहारिक तथा संतुलित है। रस से उनका अभिप्राय आनंदबोध या सौंदर्यबोध से है और रमणीयता जीवन के उस तत्त्व का प्रतिनिधित्व करती है, जिसमें अलोकसामान्य भावना का सौंदर्य निहित हो। जीवन का राग

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्पंदित करनेवाले काव्य-लक्षण की प्रस्तुति भारतीय काव्यशास्त्र की महान् उपलब्धि है, जिसमें उसके बाह्य एवं आंतर—उभय पक्षों का समन्वय हुआ है।

काव्यलिंग—तर्कन्यायमूलक अलंकार। जब वाक्यार्थ या पदार्थ किसी कथन का कारण हो तो काव्यलिंग अलंकार होगा। 'काव्यलिंग' में काव्य और लिंग—दो शब्द हैं, जिनका अर्थ काव्य का कारण (लिंग) है अर्थात् ऐसा कारण, जिसका वर्णन काव्य में किया जाय। काव्य के कारण का आशय यह है कि ऐसे कारण का उपयोग केवल काव्य में किया जाता है। काव्यलिंग अलंकार में कवि जिस तथ्य को सिद्ध करना चाहता है, उसका कारण वाक्य के अर्थ में अथवा पद के अर्थ में दे देता है। इस प्रकार इसकी दो स्थितियाँ होती हैं—वाक्यार्थगत काव्यलिंग एवं पदार्थगत काव्यलिंग। जब संपूर्ण वाक्य का अर्थ किसी कथन का कारण बने तो प्रथम एवं एक पद (शब्द) के अर्थ में कारण कहा जाय तो पदार्थगत या द्वितीय काव्यलिंग होगा।

हेत्वभिधानं काव्यलिंगमित्यर्थः। काव्याभिमतं लिंगं काव्यलिंगम्। तर्कशास्त्राभिमत-व्यावर्तनाय काव्यपदम्। लिंगमत हेतुः ॥

—बालबोधिनी, पृ० ६७७

इस अलंकार का सर्वप्रथम विवेचन आचार्य उद्भट ने किया है, तत्पश्चात् मम्मट, रुय्यक, जयदेव, विद्याधर, विद्यानाथ, विश्वनाथ, अप्पय दीक्षित, पंडितराज जगन्नाथ तथा विश्वेश्वर पंडित ने इसे स्थान दिया।

उद्भट इसे काव्यहेतु अलंकार कहते हैं। इनके अनुसार एक वस्तु का श्रवण कर वस्त्वंतर का अनुभव या स्मरण हो तो ऐसी स्थिति में काव्यहेतु अलंकार होगा।

श्रुतमेकं यदन्यत्र स्मृतेरनुभवस्य वा।
हेतुतां प्रतिपद्येत काव्यलिंगं तदुच्यते ॥

—काव्यालंकारसारसंग्रह, ६/७

मम्मट ने इस अलंकार के स्वरूप को व्यवस्थित कर इसके तीन प्रकारों का विवेचन किया है। इन्होंने बताया कि जब वाक्यार्थ या पदार्थ के रूप में कारण का कथन किया जाय तो काव्यलिंग अलंकार होगा। हेतु वाक्यार्थगत, अनेकपदार्थगत एवं एकपदार्थगत होता है।

काव्यलिंगं हेतोर्वाक्यपदार्थता ॥

—काव्यप्रकाश, १०/११४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रुय्यक ने तर्कशास्त्र से भिन्नता प्रदर्शित करते हुए काव्यलिंग में तर्क के वैलक्षण्य को काव्य में ग्रहण कर अलंकारत्व की बात कही। इनके अनुसार वाक्यार्थ या पदार्थ-रूप से हेतु का कथन काव्यलिंग अलंकार है।

हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिंगम्।

अत्र हेतुः कारणरूपो वाक्यार्थगत्या विशेषणद्वारेण वा पदार्थगत्या लिंगत्वेन निबध्यते, तत् काव्यलिंगम्। तर्कवैलक्षण्यार्थं काव्यग्रहणम्।

—अलंकारसर्वस्व, पृ० १८१

परवर्ती आचार्यों में विद्याधर, विद्यानाथ तथा विश्वनाथ ने रुय्यक एवं मम्मट के विचार को अपनाया।

वाक्यार्थो यदि हेतुर्भवति पदार्थो विशेषणद्वारा।
द्विविधं कथयंति तदालंकारं काव्यलिंगम्॥

—एकावली, ८/४६

हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिंगमुदाहृतम्॥

—प्रतापरुद्रीय, पृ० ३२३

हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिंगं निगद्यते॥

—साहित्यदर्पण, १०/६२

जयदेव के अनुसार नवीन अर्थ का बोधक पद या वाक्य काव्यलिंग कहा जाता है।

स्यात् काव्यलिंगं वागर्थो नूतनार्थ समर्पकः॥

—चंद्रालोक, ५/३८

दीक्षित ने समर्थनीय अर्थ के समर्थन को काव्यलिंग कहा—

समर्थनीयस्यार्थस्य काव्यलिंगं समर्थनम्॥

—कुवलयानंद १२१

पंडितराज ने अपनी परिभाषा में कहा कि अनुमान की कारणता तथा सामान्यविशेष भाव से रहित जो अर्थ प्रकृत अर्थ के समर्थक के रूप में कथित हो, उसे काव्यलिंग कहते हैं—

अनुमितिकरणत्वेन सामान्यविशेषभावाभ्यां चानालिंगितः प्रकृतार्थोपपादकत्वेन विवक्षितोऽर्थः काव्यलिंगम्। —रसगंगाधर, पृ० ६६३

विश्वेश्वर ने मम्मट से प्रभाव-ग्रहण कर काव्यलिंग का विवेचन किया—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वाक्यपदार्थत्वाभ्यां हेतूक्तिः काव्यलिंगं स्यात्। हेतु वचनं काव्यलिंगमिति लक्षणम्। वाक्यपदार्थत्वाभ्यां तस्योक्तिरिति द्वौभेदौ।

—अलंकारकौस्तुभ, पृ० ३३७

रीतिकालीन आचार्यों ने मम्मट एवं दीक्षित (कुवलयानंद) को आधार बनाकर काव्यलिंग अलंकार का वर्णन किया है।

चिंतामणि और कुलपति ने 'काव्यप्रकाश' का आधार ग्रहण किया तो जसवंत सिंह, मतिराम और पद्माकर आदि ने 'कुवलयानंद' के लक्षण को अनूदित किया।

हेतुवाक्य को अरथ कैं अर्थ पदन को होइ।
काव्यलिंग तासों कहत हेतु बखानत कोइ॥

—कविकुलकल्पतरु, ३/२०४

पद समूह को अर्थ ए, हेतुनि द्वै विधि होय।
तहाँ सु काव्यलिंग है, है पुनि द्वै विधि सोय॥

—रसरहस्य, ८/१४३

काव्यलिंग जब जुक्ति सों अर्थ समर्थन होय॥

—भाषाभूषण, १५०

जहं समर्थिबो अर्थ को प्रगट समर्थन होय।
तहाँ हेतु औरों कहत कबि कोबिद सब कोय॥

—ललितललाम, ३९६

अर्थ समर्थहि जोग जो करै समर्थन तास।
काव्यलिंग तासों कहत जिनके सुमति प्रकास॥

—पद्माभरण, २००

भेद—काव्यलिंग के दो भेद माने गए हैं—पदार्थगत और वाक्यार्थगत। जब संपूर्ण वाक्य किसी कथन का कारण हो तो वाक्यार्थगत काव्यलिंग और जब पद के अर्थ में कारण निहित रहे तो पदार्थगत काव्यलिंग होगा। मम्मट, रुय्यक, विश्वनाथ आदि ने काव्यलिंग के तीन भेदों का कथन किया है। अनेक पदों एवं एक पद-द्वारा हेतु के कथन में दो भेद होने पर वाक्यार्थगत भेद सहित ये तीन प्रकार माने गए हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१. वाक्यार्थगत काव्यलिग—

उदाहरण—

क. वपुः प्रादुर्भावादनुमितमिदं जन्मनिपुरा,
पुरारे न प्रायः क्वचिदपि भवंतं प्रणतवान् ।
नमन्मुक्तः संप्रत्यहमतनुरग्रेऽप्यनतिभाक्
महेश, क्षंतव्यं तदिदमपराध द्वयमपि ॥

"हे शिवजी ! इस शरीर-धारण के द्वारा मैंने ऐसा अनुमान किया है कि पूर्वजन्म में मैंने आपको प्रणाम नहीं किया था। इस समय मैं आपको प्रणाम कर मुक्त हो रहा हूँ और शरीर-रहित होकर भविष्य में भी प्रणाम करने से वंचित रहूँगा। इसलिए हे महेश ! हमारे इन दोनों अपराधों को आप क्षमा करें।"

यहाँ प्रणाम न करना (अनमन्) 'पुरा क्वचिदपि भवंतं प्रणतवान्' तथा 'अग्रेऽहमनतिभाक्' इन दोनों में हेतु की सार्थकता है।

ख. हठ न हठीली करि सकै यह पावस ऋतु पाय।
आन गाँठ घुटि जाय ज्यों मान गाँठ छुटि जाय ॥
—बिहारी

यहाँ प्रथम वाक्य में जो बात कही गई है—'वर्षा ऋतु में मानिनी मान नहीं कर सकती !' उसका कारण नीचे के पूरे वाक्य में दिया गया है; इस ऋतु में अन्य गांठें कड़ी हो जाती हैं, किंतु मान की गाँठ ढीली पड़ जाती है।

२. पदार्थगत काव्यलिंग—

उदाहरण—

क. त्वद्वाजिराजिनिर्धूतधूलीपटल पंकिलाम् ।
न धत्ते शिरसा गंगा भूरिभारभिया हरः ॥

"राजन् ! आपके घोड़ों के समूह-द्वारा उड़ाई हुई धूल से गंगा पंकिल हो गई हैं, अतः अधिक भार से डरकर शिवजी उन्हें अपने सिर के ऊपर नहीं रखते हैं।"

ख. जनि कछु और उपाय करु, रहु 'रसाल' निरसंक।
हिय-तम नासन को धरो, राधा वदन-मयंक ॥

यहाँ राधा का मुखचंद्र हृदय के अंधकार को नष्ट करने का कारण है। 'राधा-वदन' इस समस्त पद में अर्थ का कारण निहित रहने से यहाँ पदार्थगत काव्यलिंग हुआ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

काव्यलिंग और अर्थांतरन्यास—दोनों ही अलंकारों में समर्थ्यसमर्थक-भाव रहता है। काव्यलिग में कार्यकारणभाव का प्राधान्य रहता है और अर्थांतर-न्यास में सामान्य-विशेषभाव का। अर्थांतरन्यास में एक वाक्य प्रस्तुत होता है और दूसरा अप्रस्तुत; पर काव्यलिंग में दोनों ही वाक्य प्रस्तुत होते हैं।

काव्यलिंग और हेतु—हेतु में कारण और कार्य में अभेद दिखाया जाता है, पर काव्यलिंग में बिना कारण के वाक्यार्थ सिद्ध नहीं होता।

काव्यलिंग और अनुमान—काव्यलिग में निष्पादक कारण होता है और अनुमान में ज्ञापक कारण। दोनों ही अलंकारों में किसी कथन की सत्यता के प्रतिपादन के लिए हेतु का कथन किया जाता है। काव्यलिग में कार्यकारण-भाव होता है और अनुमान में साध्यसाधकभाव। काव्यलिग में कार्यकारणभाव व्यंग्य होता है, वाच्य नहीं; किंतु अनुमान में साध्यसाधनभाव वाच्य होता है।

काव्यविद्यास्नातक—कवियों का एक प्रकार। [दे० कवि] राजशेखर के अनुसार अवस्था की दृष्टि से कवियों के दस भेद हैं, उनमें से एक प्रकार है काव्यविद्यास्नातक। जो कवि कवित्व-शक्ति प्राप्त करने के निमित्त काव्य की विद्याओं (व्याकरण, छंदःशास्त्र, अलंकारशास्त्र आदि) एवं उपविद्याओं (चौंसठ कला) का गुरुकुल में जाकर अध्ययन करे, उसे काव्यविद्यास्नातक कहते हैं।

यः कवित्वकामः काव्यविद्योपविद्या ग्रहणाय गुरुकुलान्युपास्ते स विद्या-स्नातक।

—काव्यमीमांसा, पंचम अध्याय, पृ० ५०

काव्यशास्त्र—[**नामकरण**] काव्य या साहित्य का मूल्यांकन करनेवाला या साहित्यसौंदर्य की परख करनेवाला शास्त्र (विद्या) काव्यशास्त्र कहलाता है। संस्कृत में इस शास्त्र के लिए अनेक शब्द प्रचलित हैं—अलंकारशास्त्र, काव्यशास्त्र, साहित्यशास्त्र, साहित्यविद्या, क्रियाकल्प आदि। इस शास्त्र में काव्यसौंदर्य का परीक्षण कर आचारभूत सिद्धांतों का प्रतिपादन किया जाता है और उनके आधार पर ही काव्य के विविध अंगों का मूल्यांकन या परीक्षण किया जाता है। भारतीय काव्यशास्त्र के प्रारंभिक युग में इसके लिए प्रचलित शब्द 'काव्यालंकार' था, फलतः तत्कालीन आचार्यों के ग्रंथ 'काव्यालंकार' के नाम से अभिहित किए गए हैं। भामह-कृत 'काव्यालंकार,' उद्भट का 'काव्यालंकारसारसंग्रह' वामन-रचित 'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति' एवं रुद्रट-प्रणीत 'काव्यालंकार' नामक ग्रंथ इस तथ्य के द्योतक हैं। यद्यपि इन ग्रंथों में केवल

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अलंकारों का ही विवेचन नहीं है, फिर भी सौंदर्य का बोधक होने के कारण इन्हें अलंकार कहा गया है। वामन अलंकार और सौंदर्य को अभिन्न मानते थे। दंडी भी अलंकार को काव्य का शोभाधायक धर्म कहते हैं। संभवत: प्राचीन आलंकारिकों ने काव्य में अलंकार के प्राधान्य के कारण ही अपने ग्रंथों का नामकरण 'काव्यालंकार' किया है। कालांतर में यह शास्त्र अलंकारशास्त्र के नाम से विख्यात हुआ।

'प्रतापरुद्रीय' की टीका में इसका उल्लेख है—**यद्यपि रसालंकाराद्यनेक-विषयमिदंशास्त्रं तथापि छत्रिन्यायेन अलंकारशास्त्र उच्यते।** भोजकृत 'सरस्वतीकंठाभरण' (ग्यारहवीं शती) में काव्यशास्त्र शब्द का प्रयोग हुआ है।

काव्यं शास्त्रेतिहासौ च काव्यशास्त्रं तथैव च।
काव्येतिहासः शास्त्रेतिहासस्तदपि षड्विधम्॥

—सरस्वतीकंठाभरण, २/१३९

मध्ययुग तक इस शास्त्र की अभिधा 'साहित्यशास्त्र' हुई। राजशेखर ने काव्यशास्त्र के लिए साहित्यविद्या अभिधान स्वीकार किया—पंचमी साहित्य विद्या इति यायावरीयः—काव्यमीमांसा, पृ० ४। रुय्यक-कृत 'साहित्यमीमांसा' और विश्वनाथ का 'साहित्यदर्पण' इसी के उदाहरण हैं। उपर्युक्त सभी नामों में 'क्रियाकल्प' अधिक प्राचीन है। इसका उल्लेख वात्स्यायन के 'कामसूत्र' में है, जो ६४ कलाओं में से एक है। यह शब्द 'काव्यक्रियाकल्प' का संक्षिप्त रूप है। ललितविस्तर' में भी यह शब्द आया है, जिसकी व्याख्या करते हुए जयमंगलार्क ने 'क्रियाकल्प इति काव्यकरणविधि' कहा है। वाल्मीकि रामायण (उत्तर कांड, ९४-७) में 'क्रियाकल्प' तथा 'काव्यविद्' शब्द प्रयुक्त हुए हैं, जो काव्यशास्त्री के बोधक हैं। वहाँ काव्यविद् सहृदय के लिए एवं क्रियाकल्प-विद् काव्यशास्त्री या आलोचक के लिए आया है—**क्रियाकल्पविदश्चैव तथा काव्यविदोजनान्।** इस प्रकार यह शब्द अत्यंत प्राचीन सिद्ध होता है।

काव्यशास्त्र का उद्भव—भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा अत्यंत प्राचीन है, यहाँ तक कि इसके स्रोत वेद में भी प्राप्त होते हैं। 'ऋग्वेद' में रस, अलंकार, रीति आदि शब्दों का अनेक स्थानों पर प्रयोग हुआ है और उनके उदाहरण भी प्राप्त होते हैं। वेदों में उपमा, अतिशयोक्ति और रूपक के सुंदर उदाहरण मिलते हैं तथा उपनिषदों में भी ऐसे अलंकारों के अनेक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उदाहरण भरे पड़े हैं। 'ऋग्वेद' की उषा-संबंधी ऋचा में उपमालंकार का सुंदर संगुंफन हुआ है—

अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची, गर्तारुगिव सनये धनानाम्।
जायेव पत्य उशती सुवासा, उषा हस्रेव निरिणीते अप्सः ॥

—ऋग्वेद, १/१२४/७

'कठोपनिषद्' में रूपक का उदाहरण देखिए—

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि, मनः प्रग्रहमेव च ॥१/३/३

'ऋग्वेद' में उपमा शब्द उपमान या दृष्टांत के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। [दे० ऋग्वेद—५/३४/९,१/३१/१५] 'ऋग्वेद' में 'अरंकृत,' 'अरंकृति' एवं 'अरंकृत्' शब्द अलंकार के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। 'शतपथ ब्राह्मण' एवं 'छांदोग्य उपनिषद्' में भी अलंकार शब्द का प्रयोग है। 'निरुक्त' में 'अलंकृत' शब्द 'अरंकृत' के ही पर्याय में व्यवहृत किया गया है।

वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः, —ऋग्वेद, १/२/१

का ते अस्त्यरंकृतिः सूक्तेः। —वही, ७/२९/३

अंजनाभ्यंजने प्रयच्छत्येव ह मानुषोऽलंकारः।

—शतपथब्राह्मण, १३/८/४

वसनेन अलंकारेणेति संस्कुर्वंति। —छांदोग्य उपनिषद्, ८/८/५

सोमा अरंकृताः अलंकृता। —निरुक्त, १०/१/२

'निरुक्त' में यास्क ने उपमा का विवेचन कर उसके अनेक भेदों का उल्लेख किया है—कर्मोपमा, भूतोपमा, रूपोपमा, सिद्धोपमा तथा लुप्तोपमा आदि। वहाँ उपमा का अर्थ सादृश्य है।

अथात उपमाः। यदतत् सदृशमिति गार्ग्यः। —निरुक्त, ३/३/१४
यथेति कर्मोपमा। भूतोपमा। रूपोपमा। वदिति सिद्धोपमा।

—वही, ३/४/१८

पाणिनि-कृत 'अष्टाध्यायी' में उपमान, उपमित, सामान्यवचन आदि शब्दों का व्यवहार हुआ है तथा उपमा के शाब्दी और आर्थी भेदों का भी उल्लेख है—

उपमानानि सामान्यवचनैः। २/१/५५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपमानाश्च । ५/४/१३७
उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्य प्रयोगे । २/१/५६

—अष्टाध्यायी

यास्क के 'निरुक्त' में उपमाद्योतक निपात का भी उल्लेख है—इव, यथा, न, चित्, नु तथा आ। इसी प्रकार रस का प्रयोग भी वेद, उपनिषद्, वेदांग, आदि में प्राप्त होता है। रस शब्द वहाँ विविध अर्थों में प्रयुक्त है—जल सार, वीर्य, द्रव्य, स्वाद, विष, धातु, षड्रस, पारद, परमात्मा, सुरा, शोणित तथा श्रृंगारादि काव्यरस।

रसेन समगंस्महि—१/२३/२३ (जलसार का बोधक)

जंभे रसस्य वावृधे—१/३७/५ (गोदुग्ध का वाचक)

परिदाय रसं दुहे—१/१०५/२

मध्वो रसो सुगमस्ति—५/४३/४

सोम इंद्रियो रसः—८/३/२०

धनंजयः पवते कृत्व्यो रसो विप्रः कविः काव्यन—९/८४/५

—ऋग्वेद

रसं ह्येवायं लब्ध्वानंदी भवति।

—रसरूप परमात्मा, तैत्तिरीय उपनिषद्, २/७

रसो वै सः। —वही

उपनिषदों में प्रणव रसों में रसतम माना गया है तथा ऋक्, यजु, साम परमात्मा-रूप से उत्पन्न कहे गए हैं (छांदोग्य उपनिषद्, ४/१७, ५, ६)। वहाँ (उपनिषदों में) रस का प्रयोग लौकिक एवं अलौकिक दोनों ही अर्थों में हुआ है। ऋग्वेद में प्रयुक्त 'श्रृंग' शब्द श्रृंगार रस का वाचक भले ही न हो; पर ज्वाला, उज्ज्वल तथा श्रेष्ठ अर्थ का बोधक अवश्य है। कालांतर में इसी अर्थ के आधार पर श्रृंगार रस की उत्पत्ति हुई है। रस-ग्रंथों में 'श्रृंग' श्रेष्ठ अर्थ का वाचक बना है। 'ऋग्वेद' में हास्य, वीर, भयानक तथा करुण शब्दों के भी उल्लेख हैं। इस प्रकार वैदिक साहित्य में व्यवहृत रस, श्रृंगार, वीर, भयानक, हास्य आदि शब्द इनके काव्यशास्त्रीय अर्थ के भी द्योतक हैं। वैदिक ग्रंथों के अतिरिक्त 'वाल्मीकि रामायण', 'महाभारत' आदि में भी रस का संकेत है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रसैः शृंगार करुण हास्य वीर भयानकैः।
रौद्रादिभिश्च संयुक्तं काव्यमेतदगायताम् ॥

—रामायण, १/४,९

यहाँ आदि काव्य को शृंगारादि रसों से युक्त कहा गया है। 'महाभारत' में सभी रसों के उदाहरण प्राप्त होते हैं। आनंदवर्द्धन के अनुसार इसका अंगी रस शांत है। इसके 'गृद्धगोमायु संवाद' को 'ध्वन्यालोक' में प्रबंधध्वनि का उदाहरण मानकर उद्धृत किया गया है। उपर्युक्त विवेचन से सिद्ध होता है कि वेद, पुराण, रामायण आदि में अलंकार तथा रसों का पूर्ण उल्लेख है और कालांतर में उन्हीं स्रोतों से इनका काव्यशास्त्रीय अर्थ विकसित हुआ है। पाणिनि की अष्टाध्यायी में कृशाश्व एवं शिलालि के नटसूत्रों का उल्लेख यह सिद्ध करता है कि उनके पूर्व भी नाट्यशास्त्र की रचना हुई थी।

पराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः।

—४/३/७१०

शिलालेखों के आधार पर भी काव्यशास्त्र की प्राचीनता सिद्ध होती है। जूनागढ़ १५० ई० के रुद्रदमन के शिलालेख से ज्ञात होता है कि उस समय तक काव्यशास्त्र का पूर्ण विकास हो चला था। इसमें व्यक्त स्फुट, मधुर, कांत तथा उदार गुण परवर्ती आचार्यों के प्रसाद, माधुर्य, कांति एवं उदारता नामक गुणों के ही नाम हैं। ऐसा लगता है कि शिलालेख के रचयिता ने तत्कालीन प्रचलित काव्यादर्श के आधार पर ही इसका निर्माण किया है।

सर्वक्षत्राविष्कृतवीरशब्दजातोत्सेकाविधेयानां यौधेयानां प्रसह्योत्साहकेन...... शब्दार्थ गांधर्वन्यायाद्यानां विद्यानां महतीनां मारणधारणविज्ञानप्रयोगावाप्तं विपुलकीर्तिना......स्फुटलघुमधुरचित्रकांतशब्दसमयोदारालंकृतगद्यपद्यस्व......।

—आर्क्योलाजिकल सर्वे आव वेस्टर्न इंडिया, भाग २, पृ० १२८

भरतकृत 'नाट्यशास्त्र' में भी अनुवंश श्लोकों के रूप में रस एवं नाटक आदि के संबंध में पूर्ववर्ती आचार्यों के मत प्राप्त होते हैं, जिनका उल्लेख 'नाट्यशास्त्र' में अनेक स्थानों पर हुआ है। संप्रति 'नाट्यशास्त्र' ही भारतीय काव्यशास्त्र का प्राचीनतम ग्रंथ उपलब्ध होता है, किंतु उसके पूर्व भी हमारे देश में काव्यशास्त्रीय विवेचन के स्रोत प्राचीनतम ग्रंथ 'ऋग्वेद' में भी प्राप्त होते हैं। अतः, संस्कृत काव्यशास्त्र की प्राचीनता असंदिग्ध है।

काव्यशास्त्र (विकास)—भारतीय काव्यशास्त्र का विस्तार ई० पू० द्वितीय शती से लेकर अठारहवीं शती तक है। अद्यावधि उपलब्ध ग्रंथों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में भरत मुनि का 'नाट्यशास्त्र' काव्यशास्त्र का प्राचीनतम ग्रंथ है। भरत मुनि इसके आद्याचार्य के रूप में प्रतिष्ठित हैं और विश्वेश्वर पंडित अंतिम प्रौढ़ आचार्य हैं। लगभग दो सहस्र वर्षों तक निरंतर प्रवहमान भारतीय-काव्यशास्त्र का इतिहास चार युगों या कालों में विभाजित है।

प्रारंभिक काल (अज्ञात समय से भामह तक)

रचनात्मक काल (भामह से आनंदवर्द्धन तक)

निर्णयात्मक काल (आनंदवर्द्धन से मम्मट तक)

व्याखया काल (मम्मट से विश्वेश्वर पंडित तक)

कतिपय विद्वान् ध्वनि-सिद्धांत को प्रकाश-स्तंभ मानकर काव्यशास्त्र के इतिहास को तीन भागों में विभक्त करते हैं।

पूर्वध्वनि युग (आरंभ से आनंदवर्द्धन तक)

ध्वनि युग (आनंदवर्द्धन से मम्मट तक)

पश्चात् ध्वनि युग (मम्मट से पंडितराज जगन्नाथ तक)

दो सहस्र वर्षों के अंतराल में साहित्यशास्त्र के इतिहास में छह संप्रदायों का उदय हुआ, जिनके द्वारा विशेष दृष्टि से काव्य या साहित्य के विभिन्न पक्षों का मूल्यांकन किया गया। वे सिद्धांत इस प्रकार हैं—

रस संप्रदाय—भरत

अलंकार संप्रदाय—भामह, दंडी

रीति संप्रदाय—वामन

ध्वनि सप्रदाय—आनंदवर्द्धन

वक्रोक्ति संप्रदाय—कुंतक

औचित्य सप्रदाय—क्षेमेंद्र

अनुमान को काव्य का सर्वस्व मानकर महिमभट्ट ने 'व्यक्ति विवेक' की रचना की और अनुमितिवाद नामक सिद्धांत का प्रवर्त्तन किया। इनके अतिरिक्त चमत्कारवाद के प्रवर्त्तक विश्वेश्वर माने गए हैं, पर यह सिद्धांत अधिक लोकप्रिय नहीं हो सका। अब यहाँ काव्यशास्त्र के प्रमुख आचार्यों का संक्षिप्त विवरण उपस्थित किया जा रहा है। **[प्रत्येक काव्यशास्त्रीय संप्रदाय का विवरण उसके अक्षर के समक्ष देखें—]**

भरत—भरत मुनि या आचार्य भरत भारतीय काव्यशास्त्र या काव्यालोचन के आद्याचार्य हैं और उनका प्रसिद्ध ग्रंथ 'नाट्यशास्त्र' अपने विषय का सर्वोत्तम आकर ग्रंथ है। इसे भारतीय ललितकला एवं काव्यशास्त्र का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विश्वकोश कहा जाता है। 'नाट्यशास्त्र' के प्रणेता के आविर्भाव-काल के संबंध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है; पर अद्यावधि शोधों के आधार पर द्वितीय शती ई० पू० से द्वितीय शती के बीच उनका समय आँका गया है। उनके नाट्य-शास्त्र में ३६ अध्याय हैं। कुछ संस्करणों में ३७ भी, जिनमें नाटक एवं नाट्य-शास्त्र से सबद्ध सभी विषयों का विस्तृत विवेचन है। 'नाट्यशास्त्र' में आनुषंगिक रूप से संगीतशास्त्र, छंदशास्त्र, अलंकारशास्त्र का भी प्रौढ़ एवं प्रामाणिक विवरण प्राप्त होता है। इस ग्रंथ की महत्ता प्राचीनकाल से ही है और इस पर अनेक टीकाएँ प्राप्त होती हैं, जिनमें सर्वाधिक महत्त्व अभिनवगुप्त-रचित 'अभिनव-भारती' का है। 'नाट्यशास्त्र' के अन्य प्रसिद्ध व्याख्याता हैं—उद्भट, लोल्लट, शंकुक, भट्टनायक, राहुल, भट्टयंत्र, कीर्त्तिधर तथा मातृगुप्ताचार्य। 'नाट्य-शास्त्र' की विस्तृत परिधि में काव्यशास्त्र-विषयक अनेक तत्त्वों का उन्मीलन किया गया है। यद्यपि उनका प्रधान प्रतिपाद्य नाटक ही था; किंतु उसके विभिन्न विधि-विधानों के निरूपण में रस, अलंकार, गुण, दोष का भी प्रामाणिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। उन्होंने सूत्ररूप में ही रस के स्वरूप, उसके तत्त्व (विभाव, अनुभाव, सचारी, स्थायी) तथा भेदों का वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया है, जो 'नाट्यशास्त्र' के षष्ठ एवं सप्तम अध्यायों में है। भरत ने आठ नाट्यरसों, चार अलंकारों—उपमा, रूपक, दीपक और यमक, छत्तीस काव्यलक्षणों, दस गुणों एवं दस दोषों का विवेचन किया है।

भामह—भरत के पश्चात् भारतीय काव्यशास्त्र के उल्लेखनीय आचार्य हैं भामह, जिनका समय छठी शती का पूर्वार्द्ध है। इनका एकमात्र ग्रंथ है 'काव्यालंकार', जिस पर उद्भट ने 'भामहविवरण' नामक टीका-ग्रंथ का प्रणयन किया था। यह ग्रंथ छह परिच्छेदों में विभक्त है। प्रथम में (साठ श्लोकों में) काव्य के साधन, लक्षण, काव्य-भेद तथा काव्य-दोषों का निरूपण है। द्वितीय एवं तृतीय परिच्छेदों में अलंकारों का विवेचन है। इनकी श्लोक-संख्या क्रमशः छियानबे एव अट्ठावन है। चतुर्थ परिच्छेद में इक्यावन श्लोक हैं और काव्यदोषों का वर्णन है। पंचम परिच्छेद में उनहत्तर श्लोक हैं तथा विविध प्रकार के दोष वर्णित हैं। षष्ठ परिच्छेद की श्लोक-सखया छियासठ है। उसमें शब्दों की शुद्धाशुद्धि का निरूपण किया गया है।

दंडी—दंडी अलंकारवादी आचार्य हैं। इन्होंने 'काव्यादर्श' नामक काव्यशास्त्रीय ग्रंथ की रचना की है। इनका समय सातवीं शती का पूर्वार्द्ध है। 'काव्यादर्श' में तीन परिच्छेद हैं और श्लोकों की संख्या छह सौ साठ है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रथम परिच्छेद में काव्य-लक्षण, काव्य के भेद, कथा, आख्यायिका, रीति, गुण एवं कवि के आवश्यक गुण वर्णित हैं। द्वितीय में अर्थालंकारों का वर्णन एवं अलंकार के सामान्य लक्षण हैं। तृतीय परिच्छेद में शब्दालंकारों, चित्रबंध तथा दस काव्य-दोषों का वर्णन है। 'काव्यादर्श' पर अनेक टीकाएँ हैं; पर इनमें तरुण वाचस्पति की टीका एवं अज्ञात व्यक्ति की 'हृदयंगमा' नामक टीका अधिक प्रसिद्ध है। इनकी अन्य कृतियाँ हैं—'दशकुमार-चरित' एवं 'अवंतिसुंदरी कथा।'

उद्‌भट—उद्भट अलंकार-संप्रदाय के आचार्य हैं। उनकी प्रसिद्ध रचना है 'अलंकारसारसंग्रह'। उनका समय आठवीं शती का उत्तरार्द्ध है। उन्होंने भामह के 'काव्यालंकार' की 'भामहविवरण' नामक टीका तथा 'कुमार-संभव' नामक काव्य-ग्रंथ की भी रचना की है। 'अलंकारसारसंग्रह' में छह वर्ग हैं और उनासी कारिकाओं में इकतालीस अलंकारों का विवेचन है।

उद्‌भट के प्रसिद्ध टीकाकार हैं प्रतिहारेंदुराज, जिन्होंने 'लघुवृत्ति' नामक टीका लिखी है। इनका समय दसवीं शती का पूर्वार्द्ध है। उद्‌भट के दूसरे टीकाकार राजानक तिलक हैं, जिनकी टीका का नाम 'विवेक' है।

वामन—आचार्य वामन 'रीति-संप्रदाय' के प्रतिष्ठापक एवं 'काव्यालंकार-सूत्रवृत्ति' नामक ग्रंथ के प्रणेता हैं। इन्होंने रीति को काव्य की आत्मा माना है। वामन का समय आठवीं शती का उत्तरार्द्ध है। 'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति' के तीन अंग हैं—सूत्र, वृत्ति और उदाहरण। सूत्र और वृत्ति के रचयिता स्वयं वामन हैं और उदाहरण विभिन्न लेखकों के हैं। उदाहरण के अनेक श्लोक वामन-रचित भी हैं। इस ग्रंथ में सूत्रों की कुल संख्या ३१९ है तथा यह पाँच अधिकरणों एवं बारह अध्यायों में विभक्त है। काव्यालंकारसूत्र-वृत्ति' की दो टीकाएँ हैं—गोपेंद्र तिप्पभूपाल-कृत 'कामधेनु' तथा सहदेव-कृत टीका। महेश्वर ने भी इसकी टीका लिखी है। 'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति' के प्रथम अधिकरण का नाम 'शारीर' है, जिसमें काव्य का प्रयोजन, अधिकारी, काव्य की आत्मा, रीति एवं रीति के प्रकार आदि विषय वर्णित हैं।

द्वितीय अधिकरण की अभिधा है 'दोष-दर्शन'। इसमें पददोष, वाक्यदोष तथा वाक्यार्थदोष का वर्णन है। तृतीय अधिकरण का नाम 'गुण-विवेचन' है। इसमें गुणों का विवेचन एवं अलंकार और गुण का पारस्परिक भेद वर्णित है। 'आलंकारिक' नामक चतुर्थ अधिकरण में शब्दालंकारों एवं अर्थालंकारों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का विवेचन है। अंतिम अधिकरण का नाम है प्रायोगिक, जिसका वर्ण्य-विषय है कवि-प्रयोग की व्याकरणिक-विवेचना। इसमें व्याकरण-संबंधी अशुद्धियाँ दिखलाई गई हैं।

रुद्रट—आचार्य रुद्रट 'काव्यालंकार' नामक ग्रंथ के प्रणेता हैं। इनका समय ८२५ ई० से ८७५ ई० के मध्य है। इस ग्रंथ पर नमिसाधु ने टीका लिखी है। इसके अन्य टीकाकार हैं—वल्लभ देव (रुद्रटालंकार के रचयिता) एवं आशाधर। 'काव्यालंकार' में १६ अध्याय हैं। इसका अधिकांश आर्या छंद में निर्मित है। इसमें कुल ७३४ छंद हैं तथा १४ छंद प्रक्षिप्त हैं। इसमें काव्यशास्त्र के समस्त विषयों का विशद वर्णन है। प्रथम अध्याय में काव्य के प्रयोजन, शक्ति, व्युत्पत्ति एवं अभ्यास (काव्य हेतु) का वर्णन है। द्वितीय अध्याय में काव्यलक्षण, पाँच शब्दालंकारों, चार रीतियों, काव्य की छह भाषाओं एवं वक्रोक्ति, अनुप्रास तथा अनुप्रास की पाँच वृत्तियों का विवेचन है। तृतीय अध्याय में यमक का तथा चतुर्थ एवं पंचम में शब्दालंकार का वर्णन है। षष्ठ में शब्द-दोषों का वर्णन है और सप्तम से दशम अध्याय तक अर्थालंकारों का विस्तृत विवेचन है। सप्तम अध्याय अत्यंत महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि इसमें अलंकारों के वर्गीकरण के चार आधार वास्तव, औपम्य, अतिशय एवं श्लेष निर्धारित किए गए है। ग्यारहवें अध्याय में अर्थदोष एवं उपमा-दोष वर्णित हैं और द्वादश से पंचदश अध्यायों तक रस-निरूपण है। षष्ठदश अध्याय में काव्यरूपों—महाकाव्य आदि—का विवेचन है।

रुद्रभट्ट—इन्होंने 'शृंगार तिलक' नामक ग्रंथ का प्रणयन किया है। इनका समय दसवीं शती है। इस ग्रंथ में तीन परिच्छेद हैं और मुख्यतः शृंगार रस का विवेचन है। प्रथम परिच्छेद में नवरस, भाव एवं नायक-नायिका का तथा द्वितीय में विप्रलंभ शृंगार का वर्णन है। तृतीय परिच्छेद में शृंगारेतर रसों का निरूपण एवं वृत्तियों का विवेचन है।

आनंदवर्द्धन—'ध्वन्यालोक' नामक युगप्रवर्त्तक ग्रंथ के रचयिता एवं ध्वनि संप्रदाय के उद्भावक के रूप में आनंदवर्द्धन का नाम प्रसिद्ध है। इनका समय ८६० से ८९० ई० के मध्य है। इनके द्वारा रचित पुस्तकों के नाम हैं—'अर्जुनचरित', 'विषमबाणलीला', 'देवीशतक' तथा 'ध्वन्यालोक'। इनके अतिरिक्त इन्होंने धर्मकीर्त्ति के 'प्रमाणवार्त्तिक' पर 'धर्मोत्तमा' नामक टीका लिखी थी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'ध्वन्यालोक' के रचयिता के संवध में विद्वानों में मतभेद है। कतिपय विद्वान् कारिका का प्रणेता अज्ञातनामा ध्वनिकार को मानते तथा वृत्ति के रचयिता के रूप में आनंदवर्द्धन का नाम लेते हैं। पर, डॉ० कांतिचंद्र पांडेय [अभिनवगुप्त : ए हिस्टोरिकल एंड फिलोसॉफिकल स्टडी, पृ० १३२-१३३] ने कारिकाकार एवं वृत्तिकार को अभिन्न मानकर दोनों का प्रणेता आनदवर्द्धन को सिद्ध किया है। अभिनवगुप्त ने 'ध्वन्यालोकलोचन' नामक सुप्रसिद्ध टीका-ग्रंथ की रचना की है, जो 'ध्वन्यालोक' की संप्रति एकमात्र उपलब्ध टीका है। इस पर किसी लेखक ने 'चद्रिका' नामक टीका भी लिखी थी। आधुनिक युग में पंडित बदरीनाथ झा ने सुप्रसिद्ध टीका लिखी है, जिसका नाम 'दीधिति" है। 'ध्वन्यालोक' में चार उद्योत हैं। प्रथम उद्योत में ध्वनि की स्थापना, उसका स्वरूप एवं ध्वनि-विरोधी मतों का खंडन है। द्वितीय उद्योत मे ध्वनि के भेदों का विवेचन तथा अलंकार एवं गुणों के पारस्परिक अंतर का स्पष्टीकरण है। तृतीय उद्योत में ध्वनि के कतिपय भेदों का वर्णन तथा गुणीभूत-व्यंग्य का विवेचन है। चतुर्थ उद्योत में काव्यप्रतिभा, काव्य का मुख्य रस आदि विविध विषय वर्णित हैं।

कुंतक—आचार्य कुंतक या कुंतला वक्रोक्तिसिद्धांत के प्रवर्त्तक हैं। इन्होंने 'वक्रोक्तिजीवित' नामक काव्यशास्त्रीय ग्रंथ की रचना की है। इनका समय दशम शती का उत्तरार्द्ध है।

ग्रंथ के तीन विभाग हैं—कारिका, वृत्ति और उदाहरण, जिनमें प्रथम दो कुंतक की रचना है और उदाहरण विभिन्न ग्रंथों से लिए गए हैं। 'वक्रोक्ति-जीवित' में चार उन्मेष हैं। प्रथम उन्मेष में काव्य के स्वरूप, प्रयोजन आदि के अतिरिक्त वक्रोक्ति के छह भेदों का संक्षिप्त परिचय है। द्वितीय उन्मेष में वर्णविन्यासवक्रता, पद पूर्वार्द्धवक्रता एवं प्रत्ययवक्रता का विस्तृत विवेचन है। तृतीय उन्मेष में वाक्यवक्रता एवं अलंकारों का निरूपण तथा चतुर्थ में प्रकरण-वक्रता एवं प्रबंधवक्रता का विस्तृत विवेचन है।

अभिनवगुप्त—इनका समय दशम शतक का उद्धरार्ध है। इन्होंने 'नाट्य-शास्त्र' एवं 'ध्वन्यालोक' पर 'अभिनवभारती' तथा 'ध्वन्यालोकलोचन' नामक व्याख्या ग्रंथों की रचना की है। साहित्यशास्त्री के अतिरिक्त ये महान् दार्शनिक भी हैं। इनके प्रसिद्ध दार्शनिक ग्रंथ हैं—'तंत्रालोक', 'ईश्वर प्रत्य-भिज्ञाविमर्षिणी', 'तत्रसार' आदि।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

राजशेखर—इनका समय दशम शतक का पूर्वार्द्ध है। इन्होंने 'काव्य-मीमांसा' नामक काव्यशास्त्रीय ग्रंथ की रचना की है। इनकी अन्य रचनाएँ हैं—'बालभारत', 'बालरामायण', 'विद्धशालभंजिका' एवं 'कर्पूरमंजरी'। 'काव्यमीमांसा' की रचना १८ अधिकरणों में हुई थी, किंतु संप्रति इसका केवल प्रथम अधिकरण ही उपलब्ध है, जिसका नाम 'कविरहस्य' है। इसमें कवि एवं आलोचक के स्वरूप, काव्यपाठ, काव्यपाक, रीतिनिरूपण आदि विषय वर्णित हैं।

धनंजय एवं धनिक—धनंजय ने 'दशरूपक' नामक नाट्यशास्त्रीय ग्रंथ की रचना की है, जिस पर धनिक की 'अवलोक' नामक टीका है। दोनों ही सहोदर भ्राता थे। 'दशरूपक' में चार प्रकाश हैं। प्रथम प्रकाश में दस प्रकार के रूपक, संधि, विष्कंभक, चूलिका, अंकास्य, अंकावतार तथा प्रवेशक का विवेचन है। द्वितीय प्रकाश में नाटक-नाटिकाओं के लक्षण, विविध भेद तथा वृत्तियों का वर्णन है। तृतीय प्रकाश में पूर्वरंग, भारती-वृत्ति के प्ररोचनादि भेद, अंकविधान, अंकों में पात्रों की संख्या एवं प्रवेश तथा प्रकरण, नाटिका, भाण, प्रहसन, डिम, व्यायोग, समवकार, वीथी, अंक और ईहामृग का वर्णन है। चतुर्थ प्रकाश में रस-निरूपण है। द्वितीय प्रकाश में ही नायिका-भेद वर्णित है।

महिमभट्ट—इनका पूरा नाम राजानक महिमभट्ट है और समय है १००० ई० के लगभग। इन्होंने एकमात्र 'व्यक्तिविवेक' नामक ग्रंथ का प्रणयन किया है जो ध्वनि-सिद्धांत के खंडन के लिए लिखा गया था। महिमभट्ट अनुमितिवादी आचार्य हैं। इनके अनुसार काव्य का जीवनाधायक तत्त्व 'अनुमान' है। इन्होंने ध्वनि के समस्त भेदों का अंतर्भाव अनुमान में करते हुए व्यंजना का खंडन किया है। इनके अनुसार एकमात्र शक्ति अभिधा ही है और लक्षणा तथा व्यंजना का उसीमें अंतर्भाव हो जाता है। 'व्यक्ति-विवेक' में तीन विमर्श हैं। प्रथम विमर्श में ध्वनि की परिभाषा में अनेक दोष दिखलाकर व्यंजना का खंडन किया गया है। द्वितीय विमर्श में अनौचित्य को काव्य का प्रमुख दोष मानते हुए उसके भेदों का विवेचन है। तृतीय विमर्श में 'ध्वन्यालोक' के चालीस उदाहरणों को अनुमान का प्रकार बतलाया गया है। 'व्यक्तिविवेक' पर राजानक रुय्यक की एकमात्र अधूरी टीका उपलब्ध है।

भोज—धारानरेश भोजराज बहुमुखी-प्रतिभासंपन्न व्यक्ति थे। इन्होंने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'शृंगार-प्रकाश' एवं 'सरस्वतीकंठाभरण' नामक दो काव्यशास्त्रीय ग्रंथों की रचना की है। ये महिमभट्ट के समकालीन हैं। द्वितीय ग्रंथ का रचना-काल १०३०-५० ई० के आसपास है। 'शृंगारप्रकाश' काव्यशास्त्र का विशाल ग्रंथ है, जिसमें छत्तीस प्रकाश हैं। इसमें काव्य के सभी अंगों के अतिरिक्त नाट्य का भी विवेचन है। इसका मुख्य विषय रस है। 'सरस्वतीकंठाभरण' में पाँच परिच्छेद हैं। प्रथम में काव्य के स्वरूप, भेद एवं दोषों का वर्णन है एवं द्वितीय में शब्दालंकार तथा तृतीय में अर्थालंकार का विवेचन है। चतुर्थ में उभयालंकार-विवेचन तथा पंचम में रस एवं नायक-नायिका-भेद-वर्णन है। इस पर रत्नेश्वर की 'रत्नायण' टीका है। भोज रसवादी आचार्य हैं।

[दे० रस-संप्रदाय]

क्षेमेंद्र—आचार्य क्षेमेंद्र औचित्य-संप्रदाय के प्रवर्त्तक हैं। इन्होंने काव्य-शास्त्र-विषयक तीन ग्रंथों की रचना की है—'कविकंठाभरण', 'सुवृत्ततिलक' एवं 'औचित्यविचारचर्चा'। इन्होंने विविध विषयों की चालीस पुस्तकें लिखी हैं। इनका समय ग्यारहवीं शती का मध्य है। ये अभिनवगुप्त के शिष्य थे। 'औचित्यविचारचर्चा' में औचित्य को काव्य की आत्मा मानकर उसके सताइस भेदों का निरूपण है। [दे० औचित्य-संप्रदाय] 'कविकंठाभरण' कवि-शिक्षा-विषयक ग्रंथ है तथा 'सुवृत्ततिलक' में छंदों का विवेचन है।

मम्मट—वाग्देवतावतार मम्मट का सुप्रसिद्ध ग्रंथ है 'काव्यप्रकाश'। इनका समय ग्यारहवीं शती का उत्तरार्द्ध है। यह ग्रंथ दस उल्लासों में विभक्त है और कारिकाओं की संख्या एक सौ तैंतालीस के आसपास है। मम्मट का यह ग्रंथ काव्यशास्त्र की प्रौढ़ रचना है, जिस पर सत्तर टीकाएँ प्राप्त होती हैं। इसकी सर्वप्रथम टीका माणिक्यचंद-कृत 'संकेत' (१२१६ संवत्) है। अन्य टीकाओं में गोविंद ठक्कुरकृत 'प्रदीप' तथा वामन झलकीकर की 'बालबोधिनी' अत्यंत प्रसिद्ध हैं। 'प्रदीप' पर नागेश भट्ट ने 'उद्योत' नामक व्याख्या ग्रंथ की रचना की है। मम्मट ध्वनिवादी आचार्य हैं। इन्हें 'ध्वनि-प्रस्थापक परमाचार्य' की उपाधि से विभूषित किया जाता है। 'काव्यप्रकाश' के प्रथम उल्लास में काव्य के प्रयोजन, हेतु, लक्षण तथा उत्तम, मध्यम एवं अधम (अवर) भेदों का कथन है। द्वितीय उल्लास में शब्दशक्तियों का एवं तृतीय में आर्थी व्यंजना का विवेचन है। चतुर्थ उल्लास में ध्वनि के भेदोपभेद, रस का स्वरूप, भेद तथा विविध सिद्धांतों का वर्णन है। पंचम में गुणीभूत व्यंग्य का विवेचन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा व्यंजना का प्रतिपादन है। षष्ठ में चित्रकाव्य का एवं सप्तम में सत्तर काव्यदोषों का निरूपण है। अष्टम उल्लास में गुण-विवेचन तथा नवम में शब्दालंकार का वर्णन है। 'काव्यप्रकाश' के दशम उल्लास में अर्थालंकार एवं मिश्रालंकार वर्णित हैं।

सागरनंदी—इन्होंने नाटक-विषयक सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'नाटकलक्षणकोश' की रचना की है। इनका समय ग्यारहवीं शती के मध्य भाग से पूर्व है।

अग्निपुराण—यह पुराण भारतीय विद्या का विश्वकोश माना जाता है। इसके ३३६ से ३४६ अध्याय तक विविध काव्यशास्त्रीय विषय वर्णित हैं। 'अग्निपुराण' के रचयिता का पता नहीं है। इसके काव्यशास्त्र-संबंधी अध्यायों में ३६२ श्लोक हैं। दस अध्यायों में वर्णित विषयों की तालिका इस प्रकार है—काव्य का लक्षण, भेद, आख्यायिका, महाकाव्य (३३६), नाटक के भेद, प्रस्तावना, अर्थप्रकृति, एवं पंचसंधि (३३७), रस-विवेचन तथा नायक-नायिका-भेद (३३८), चार प्रकार की रीति तथा चार प्रकार की वृत्ति (३३९), नृत्य एवं अभिनय (३४०-३४१), शब्दालंकार—अनुप्रास, यमक एवं चित्र (३४२), अर्थालंकार-निरूपण (३४३-३४४), गुण एवं दोष-वर्णन (३४५-३४६)। इसका रचना-काल १२०० ई० के निकट है।

राजानक रुय्यक—इन्होंने सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'अलंकारसर्वस्व' की रचना कर अलंकारों का वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया है। इनके द्वारा रचित अन्य ग्रंथ हैं—'काव्यप्रकाशसंकेत', 'अलंकारमंजरी', 'अलंकारानुसारिणी', 'साहित्य-मीमांसा', 'नाटकमीमांसा', 'अलंकारवार्त्तिक' तथा 'व्यक्तिविवेक टीका'। रुय्यक की कीर्ति का एक-मात्र आधार 'अलंकार सर्वस्व' है। इस पर जयरथ की 'विमर्शिणी टीका', समुद्रबंध की टीका तथा विद्याधर चक्रवर्त्ती की 'संजीविनी' टीका प्रसिद्ध है। राजानक अलक ने भी इस पर टीका लिखी थी। रुय्यक का समय १२वीं शती का मध्य भाग है। 'अलंकारसर्वस्व' में तिरासी अलंकारों (छह शब्दालंकार, पचहत्तर अर्थालंकार एवं दो उभयालंकार) का विवेचन है। रुय्यक ध्वनिवादी आचार्य हैं।

हेमचंद्र—इनका समय १०८८ ई० से ११७२ ई० है। इन्होंने 'काव्यानुशासन' नामक काव्यशास्त्रीय ग्रंथ का प्रणयन किया था, जो सूत्रात्मक पद्धति पर रचित है। स्वयं लेखक ने इसकी 'विवेक' नामक टीका लिखी है। यह मौलिक न होकर संग्रह-ग्रंथ है। संपूर्ण ग्रंथ में आठ अध्याय हैं। प्रथम में काव्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का प्रयोजन, हेतु, लक्षण तथा शब्द एवं अर्थ के स्वरूप का वर्णन है। द्वितीय में रस-निरूपण एवं तृतीय में दोषों का वर्णन है। चतुर्थ में माधुर्यादि गुण तथा पंचम एवं षष्ठ में क्रमशः छह प्रकार के शब्दालंकार वर्णित हैं। सप्तम अध्याय में नायक-नायिका-भेद एवं अष्टम में काव्य के भेदोपभेद कथित हैं।

रामचंद्र-गुणचंद्र—दोनों लेखकों की संयुक्त रचना का नाम है 'नाट्यदर्पण'। यह नाट्यशास्त्र-संबंधी अत्यंत प्रसिद्ध रचना है, जिसमें चार विवेक या अध्याय हैं। इनमें वर्णित विषय हैं—नाटक, रूपक के भेद, वृत्ति एवं रस। इसकी रचना कारिका-शैली में हुई है, जिस पर स्वयं लेखकों ने वृत्ति की रचना की है। ग्रंथकारों का समय १२वीं शती का मध्य भाग है।

जयदेव—इन्होंने 'चंद्रालोक' नामक अत्यंत लोकप्रिय ग्रंथ की रचना की है। इसमें दस मयूख एवं तीन सौ पचास अनुष्टुप श्लोक हैं। इसके एक ही श्लोक में अलंकारों के लक्षण तथा उदाहरण दिए गए हैं। प्रथम मयूख में काव्य के लक्षण, हेतु तथा शब्दशक्ति का वर्णन है। द्वितीय में काव्यदोष तथा तृतीय में 'लक्षण' का वर्णन है। चतुर्थ में दस गुणों तथा पंचम में पाँच शब्दालंकारों एवं सौ अर्थालंकारों का निरूपण है। षष्ठ में रस, भाव, रीति और वृत्ति तथा सप्तम में व्यंजना एवं ध्वनि के भेद वर्णित हैं। अष्टम में गुणीभूत व्यंग्य तथा अंतिम दो मयूखों में लक्षण और अभिधा का निरूपण है। इस ग्रंथ की छह टीकाएँ प्राप्त होती हैं—दीपिका, शारदशर्वरी, वाजचंद्र की टीका, शरदागम, रमा (वैद्यनाथ पायगुंड) तथा राकागम या सुधा (नागभट्ट या विश्वेश्वरभट्ट)।

विद्याधर—इन्होंने 'एकावली' नामक लोकप्रिय ग्रंथ की रचना की है। इनका समय १३वीं शती का उत्तरार्द्ध है।

संपूर्ण ग्रंथ आठ उन्मेषों में विभक्त है। इस पर 'ध्वन्यालोक', काव्य-प्रकाश' एवं 'अलंकारसर्वस्व' का पूर्ण प्रभाव है। इसकी 'तरला' नामक टीका के रचयिता मल्लिनाथ हैं।

विद्यानाथ—इन्होंने 'प्रतापरुद्र यशोभूषण' नामक ग्रंथ की रचना की है। इसमें नौ प्रकरण हैं और वर्णित विषयों की सूची इस प्रकार है—नायक, काव्य, नाटक, रस, दोष, गुण, शब्दालंकार, अर्थालंकार तथा उभयालंकार। विद्यानाथ ने 'काव्यप्रकाश' के आधार पर इस ग्रंथ की रचना की है। इस पर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मल्लिनाथ के पुत्र कुमारस्वामी की 'रत्नायण' नामक टीका है। विद्यानाथ का समय तेरहवीं शती का अंतिम तथा चौदहवीं शती का प्रथम चरण है।

विश्वनाथ कविराज—इन्होंने 'साहित्यदर्पण' नामक अत्यंत लोकप्रिय एवं प्रसिद्ध ग्रंथ की रचना की है। विश्वनाथ का समय १२०० ई० से १३५० ई० के मध्य है। ये आचार्य के साथ-ही-साथ कवि भी थे। इनकी अन्य रचनाएँ हैं – 'राघवविलास' (महाकाव्य), 'प्रभावतीपरिणय' (नाटिका), 'चंद्रकला नाटिका', 'नरसिंहविजय-काव्य', 'प्रशस्तिरत्नावली' तथा 'कुवलयाश्व-चरित' (प्राकृत भाषा का काव्य)। 'साहित्यदर्पण' दस परिच्छेदों में रचित काव्यशास्त्र का विशाल ग्रंथ है। प्रथम में काव्य का स्वरूप एवं भेद तथा द्वितीय में शब्दशक्तियों का विवेचन है। तृतीय में रस का स्वरूप, रस के भेद एवं नायक-नायिका-भेद तथा चतुर्थ में ध्वनि-निरूपण है। पंचम परिच्छेद में व्यंजना का प्रतिपादन एवं षष्ठ में काव्य के भेद तथा दृश्यकाव्य का वर्णन है। सप्तम एवं अष्टम परिच्छेदों में क्रमशः दोष एवं गुण वर्णित हैं और शेष दो में शब्दालंकार तथा अर्थालंकारों का विवेचन है। लेखक ने 'काव्य प्रकाश दर्पण' नामक काव्यप्रकाश' की टीका भी लिखी है। 'साहित्यदर्पण' की चार टीकाएँ उपलब्ध हैं—मथुरानाथ-कृत टिप्पण तथा गोपीनाथ की 'प्रभा' (दोनों अप्रकाशित), अनंतदास (विश्वनाथ कविराज के पुत्र) की 'लोचन' तथा रामचरण-तर्कवागीश की 'विवृत्ति'। आधुनिक काल में इस पर 'लक्ष्मी' टीका प्रकाशित है। विश्वनाथ रसवादी आचार्य हैं।

शारदातनय—इन्होंने 'भावप्रकाशन' नामक नाट्यशास्त्रीय ग्रंथ की रचना की है। इनका समय तेरहवीं शती का मध्यकाल है। यह ग्रंथ दस अधिकारों में विभक्त है। इसमें वर्णित विषयों की, अधिकार क्रम से, तालिका इस प्रकार है—भाव, रस, रस के भेद, नायक-नायिका, नायिका-भेद, शब्दार्थ-संबंध, नाट्य-इतिहास' एवं शरीर, दशरूपक, नृत्यभेद तथा नाट्य-प्रयोग।

शिंगभूपाल—ये नाट्य एवं संगीत के आचार्य हैं। इन्होंने एतद्विषयक 'रसार्णवसुधाकर' नामक ग्रंथ की रचना की है। यह ग्रंथ तीन उल्लासों में विभक्त है। रंजकोल्लाम में नायक-नायिका के स्वरूप एवं गुण का वर्णन तथा रसिकोल्लास में रस-निरूपण है। भावोल्लास में रूपक का वस्तु-विवेचन है। इनका समय तेरहवीं शती का मध्य है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भानुदत्त—इन्होंने 'रसतरंगिणी' एवं 'रस-मंजरी' नामक दो ग्रंथों की रचना की है। 'रसतरंगिणी' आठ तरंगों में विभक्त है, जिनमें क्रमशः स्थायी-भाव, विभाव, अनुभाव, सात्त्विकभाव, व्यभिचारीभाव एवं रसों का विस्तार के साथ विवेचन है। 'रसमंजरी' में नायक-नायिका-भेद तथा शृंगार रस का वर्णन है। इनका समय तेरहवीं शती का अंत एवं चौदहवीं शती का प्रारंभ है। 'रसमंजरी' पर ग्यारह टीकाएँ मिलती हैं, जिनमें अनंत पंडित-कृत 'व्यंग्यार्थकौमुदी' तथा नागेशभट्ट-कृत 'प्रकाश' का प्रकाशन हो चुका है।

रूपगोस्वामी—गौड़ीय भक्ति-संप्रदाय के सिद्धांत के आधार पर भक्ति-रस का स्वतंत्र चिंतन आचार्य रूपगोस्वामी ने किया है। इन्होंने 'नाटक-चंद्रिका', 'भक्तिरसामृतसिंधु' तथा 'उज्ज्वलनीलमणि' नामक काव्यशास्त्रीय ग्रंथों का प्रणयन किया है। 'नाटकचंद्रिका' में नाट्यशास्त्र-विषयक सभी तत्त्वों का सूक्ष्म विवेचन है। 'भक्तिरसामृतसिंधु' में चार विभाग हैं—पूर्व दक्षिण, पश्चिम एवं उत्तर। प्रत्येक विभाग अनेक लहरियों में विभक्त है। पूर्व विभाग में भक्ति का सामान्य लक्षण देकर उसके तीन प्रकारों—साधन-भक्ति, भावभक्ति तथा प्रेमाभक्ति का बिवेचन है। दक्षिण विभाग में वर्णित विषय हैं—विभाव, अनुभाव, सात्त्विक भाव, व्यभिचारी भाव तथा स्थायी भाव। पश्चिम विभाग में भक्तिरस का निरूपण तथा उसके भेदों—शांतभक्ति, प्रीतिभक्ति, प्रेयोभक्ति, वत्सलभक्ति तथा मधुरभक्ति का वर्णन है। उत्तर विभाग में वीर, करुण आदि रसों तथा रसों की परस्पर मैत्री, विरोध एवं रसाभास का विवेचन है। रूपगोस्वामी भक्तिरस को मूल रस मानकर अन्य रसों को उसकी विकृति स्वीकार करते हैं।

उज्ज्वल नीलमणि—यह 'भक्तिरसामृतसिंधु' का पूरक ग्रंथ है। इसमें भक्तिरस को मधुर रस कहा गया है और उसी का विस्तृत एवं सूक्ष्म विवेचन है तथा नायक, नायिका, सखा, सखी आदि का भी वर्णन है। 'उज्ज्वल नील-मणि' की दो टीकाएँ हैं—लोचन-रोचनी तथा आनंदचंद्रिका। इनके लेखक क्रमशः जीवगोस्वामी (रूपगोस्वामी के भ्राता) तथा विश्वनाथ चक्रवर्ती हैं। रूपगोस्वामी का समय पंद्रहवीं शती का अंत एवं सोलहवीं शती का पूर्वार्द्ध है।

अप्पय दीक्षित—अप्पय दीक्षित ने 'कुवलयानंद', 'चित्र-मीमांसा' एवं 'वृत्तिवार्त्तिक' नामक काव्यशास्त्रीय ग्रंथों की रचना की है। 'वृत्तिवार्त्तिक'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अत्यंत लघु रचना है, जिसमें अभिधा एवं लक्षणा का वर्णन है। 'कुवलयानंद' में एक सौ पचीस अर्थालंकार वर्णित हैं। यह 'चंद्रालोक' से प्रभावित है। 'चित्र-मीमांसा' अलंकार-संबंधी अत्यंत प्रौढ़ ग्रंथ है, जो अधूरे रूप में प्राप्त है और अतिशयोक्ति अलंकार के वर्णन में समाप्त हो जाता है। अप्पय दीक्षित का समय सत्रहवीं शती का अंत तथा अठारहवीं शती का प्रारंभिक काल है।

पंडितराज जगन्नाथ—ये संस्कृत काव्यशास्त्र के अंतिम प्रौढ़ तथा मौलिक आचार्य हैं। ये अप्पय दीक्षित के समकालीन थे। इन्होंने 'रसगंगाधर' नामक युगप्रवर्त्तक ग्रंथ की रचना की है। इसमें काव्य का स्वरूप, उसके भेद (उत्तमोत्तम, उत्तम, मध्यम एवं अवर), रस, भाव, रसाभास, भावोदय, गुण, ध्वनि का विवेचन करने के पश्चात् शब्दशक्तियों एवं अलंकारों का सूक्ष्म निरूपण किया गया है। ग्रंथ में दो आनन हैं। इस पर नागेशभट्ट की 'गुरुमर्म-प्रकाशिका' टीका है। आधुनिक युग में पं० बदरीनाथ झा ने इस पर विस्तृत व्याख्या लिखी है। इनका अन्य ग्रंथ है 'चित्रमीमांसाखंडन'।

विश्वेश्वर पंडित—इनका अत्यंत प्रौढ़ ग्रंथ है 'अलंकार कौस्तुभ'। इसमें 'काव्यप्रकाश' में वर्णित सभी अलंकारों का सूक्ष्म विवेचन है तथा अन्य अलंकारों का अंतर्भाव उन्हीं में (अलंकारों में) किया गया है। पंडितराज के पश्चात् विश्वेश्वर पंडित ही अंतिम प्रौढ़ आचार्य हुए हैं। इनके अन्य ग्रंथ हैं—'अलंकार मुक्तावली', 'रसचंद्रिका', 'अलंकार प्रदीप' एवं 'कवींद्रकठाभरण'। पर, ये सभी ग्रंथ अल्प महत्त्व के हैं।

संस्कृत काव्यशास्त्र के संक्षिप्त पर्यालोचन से सिद्ध होता है कि भरत से विश्वेश्वर पंडित पर्यंत उसकी अविच्छिन्न परंपरा रही है। लगभग दो सहस्र वर्षों की अवधि में कई संप्रदायों एवं विचार-सरणियों का उदय हुआ, जिनमें रस, अलंकार और ध्वनि उसके महनीय काव्य-दर्शन के रूप में उपस्थापित किए गए। भारतीय सौंदर्य-चिंतन के ये तीन महार्घ सोपान हैं। संस्कृत आचार्यों की दृष्टि मुख्यतः काव्य के स्वरूप, प्रयोजन, कारण, भेद, काव्य की आत्मा का अन्वेषण, काव्यगुणों का विवेचन तथा काव्यदोषों के परिशीलन की ओर रही है और इसे ही काव्य का दशांग-वर्णन कहा गया है। काव्यात्मतत्त्व के अन्वेषण के क्रम में वहाँ छह संप्रदायों—रस, अलंकार, रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति एवं औचित्य—का उदय हुआ और प्रत्येक सिद्धांत को ही सर्वोपरि मानकर उसे काव्य के जीवनाधायक तत्त्व के रूप में उपस्थित किया गया;

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

किंतु अंततः रसध्वनि को ही यह पद प्रदान किया गया। ध्वनिकार ने समस्त काव्यीय सिद्धांतों का पुनर्मूल्यांकन करते हुए सबके स्वरूप को व्यवस्थित किया एवं ध्वनि के अंतर्गत सबका अंतर्भाव कर सार्वभौम काव्य-चिंतन के रूप में उसकी (ध्वनि की) स्थापना की।

भरत, आनंदवर्द्धन, महिमभट्ट, कुंतक, मम्मट, पंडितराज एवं विश्वेश्वर पंडित संस्कृत काव्यशास्त्र के महान् ज्योतिस्तंभ हैं, जिनकी मान्यताएँ मौलिक उद्भावना से आपूर्ण एवं काव्यालोचन के नूतन क्षितिज का उद्घाटन करनेवाली हैं।

सहायक ग्रंथ—

सम कंसेप्ट्स ऑफ अलंकारशास्त्र—डॉ० वी० राघवन्
भारतीय साहित्यशास्त्र, भाग, १-२—पं० बलदेव उपाध्याय
संस्कृत पोइटिक्स—डॉ० एस० के० डे
हिस्ट्री ऑफ संस्कृत पोइटिक्स—डॉ० पी० वी० काणे (हिंदी अनुवाद भी)
भारतीय साहित्यशास्त्र—श्री देशपांडे (मराठी से अनूदित)
अलंकारशास्त्र की परंपरा—डॉ० राजवंश सहाय 'हीरा'
भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा—सं० डॉ० नगेंद्र

काव्य-संवाद—भिन्नकर्तृक काव्यों में परस्पर सादृश्य का होना या दिखाई पड़ना काव्य-संवाद है। संवाद का अर्थ है अन्य-सादृश्य। विभिन्न कवियों की रचनाओं में जो पारस्परिक समानता होती है, उसे ही काव्य-शास्त्रियों ने 'काव्य-संवाद' के नाम से अभिहित किया है। इस के तीन प्रकार बताए गए हैं—

अन्ययोनि—जो रचना अन्य कवि के काव्य के आधार पर निर्मित हो।

निह्नुतयोनि—जो काव्य किसी प्राचीन काव्य के आधार पर निर्मित हो; किंतु उसका मूल छिपा रहे। या, वह काव्य, जिसकी उत्पत्ति का ज्ञान न हो।

अयोनि—जिस काव्य को स्वयं कवि उद्भावित करे या जो मौलिक रचना हो। इसके अनेक भेद-प्रभेद हैं, जिनकी संख्या बत्तीस है। अन्ययोनि काव्य दो प्रकार का होता है—प्रतिबिंबकल्प तथा आलेख्यप्रख्य। जो काव्य प्राचीन काव्य का प्रतिबिंब प्रतीत हो या प्राचीन काव्य का अनुकरण हो, उसे प्रतिबिंब-कल्प कहते हैं। राजशेखर के अनुसार जिस काव्य में प्राचीन कवि का सभी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अर्थ ग्रहण कर लिया जाय तथा केवल वाक्यविन्यास में ही अंतर दिखाई पड़े, उसमें तात्त्विक भेद न हो, तो ऐसा काव्य प्रतिबिंबकल्प कहा जाता है।

अर्थः स एव सर्वो वाक्यांतरविरचनापरं यत्र।
तदपरमार्थविभेदं काव्यं प्रतिबिंबकल्पं स्यात्॥

—काव्यमीमांसा, अध्याय १२, पृ० १६१

ऐसा काव्य निंद्य एवं अग्राह्य माना जाता है। जब प्राचीन कवि द्वारा उद्भावित विषयवस्तु को कोई कवि परिष्कृत कर या संस्कार के द्वारा उससे भिन्न रूप में प्रस्तुत करे तो उसे आलेख्यप्रख्य कहा जाता है।

विषयस्य यत्र भेदेऽप्यभेदबुद्धिर्नितांतसादृश्यात्।
तत्तुल्यदेहितुल्यं काव्यं बध्नंति सुधियोऽपि॥

—काव्यमीमांसा, १२ अध्याय, पृ० १६२

प्रतिबिंबकल्प के आठ प्रकार होते हैं—

व्यस्तक—जब पूर्व अर्थ को उत्तर में एव उत्तर अर्थ को पूर्व अर्थ में परिवर्तित कर दिया जाय तो व्यस्तक होता है।

खंड—किसी बृहत् अर्थ में से उसके एक भाग का ही वर्णन किया जाय तो खंड होता है।

तैलबिंदु—जहाँ संक्षिप्त अर्थ का विस्तार किया जाय, वहाँ तैलबिंदु होता है।

नटनेपथ्य—जब कोई कवि प्राचीन कवि से भाव को ग्रहण कर उसकी भाषा परिवर्तित कर दे तो ऐसी रचना को नटनेपथ्य कहते हैं। जैसे संस्कृत से प्राकृत में परिवर्त्तन।

छंदोविनिमय—जब एक ही अर्थ या भाव को छंद में परिवर्तित कर दिया जाय तो छंदोविनिमय भेद होता है।

हेतुव्यत्यय—मूल अर्थ के कारण को बदलकर नए कारण या हेतु की कल्पना करना हेतुव्यत्यय है।

संक्रांतक—एक स्थान पर देखे गए पदार्थ का अन्यत्र संक्रमण करना संक्रांतक है।

संपुट—दो पद्यों के अर्थ को जब एक पद्य में मिलाकर प्रस्तुत किया जाय तो संपुट कहलाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आलेख्यप्रख्य के भी आठ प्रकार हैं—

समक्रम—प्राचीन अर्थ या उक्ति के सदृश रचना करना समक्रम है।

विभूषणमोष—प्राचीन उक्ति या पद्य में विद्यमान अलंकार को अलंकार-रहित करने को विभूषणमोष कहते हैं।

व्युत्क्रम—प्राचीन उक्ति में जिस क्रम से कोई बात कही हो, उसका विपरीत क्रम से कथन व्युत्क्रम है।

विशेषोक्ति—प्राचीन उक्ति में कथित सामान्य बात को विशेष रूप से कहना विशेषोक्ति है।

उत्तंस—गौण भाव से कथित तथ्य को प्रधानभाव से कहना उत्तंस कहा जाता है।

नटनेपथ्य—एक ही अर्थ को भिन्न रूप में प्रकट करना नटनेपथ्य है।

एकपरिकार्य—उपाध अर्थात् अलंकार के एक रहने पर भी अलंकार्य में भेद होने पर एकपरिकार्य होता है।

प्रत्यापत्ति—विकृत रूप से कही गई बात को प्रकृत या स्वाभाविक रूप से कहना प्रत्यापत्ति है।

पूर्वोक्त भेदों (आलेख्यप्रख्य के भेदों) को राजशेखर कवियों के लिए अनुग्राह्य मानते हैं।

निह्नुतयोनि के दो भेद हैं—तुल्यदेहितुल्य एवं परपुरप्रवेश।

तुल्यदेहितुल्य—जिसमें शरीर की भिन्नता होने पर भी दोनों के कथन की आत्मा समान हो। इसके आठ अवांतर भेद हैं—

विषयपरिवर्तन—एक ही पदार्थ की योजना करने पर जहाँ अन्य रूप की प्राप्ति होती है, उसे विषयपरिवर्त्तन कहते हैं।

द्वंद्वविच्छित्ति—दो रूपों में वर्णित प्राचीन उक्ति को एक रूप देना या उसके एक ही रूप का उपादान करना।

रत्नमाला—पूर्व अर्थ का अर्थांतर में परिवर्तन रत्नमाला है।

संख्योल्लेख—पूर्वकथन की संख्या को परिवर्तित करना संख्योल्लेख है।

चूलिका—किसी कथन में पूर्वकथित सम का विषम रूप में एवं विषम का समरूप में कथन चूलिका है।

विधानापहार—निषेध का विधि रूप में उल्लेखन विधानापहार है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

माणिक्यपुंज—बहुत से अर्थों का एकत्र उपसंहार या एक स्थान पर इकट्ठा करना माणिक्यपुंज है।

कंद—मूल अर्थ को अनेक प्रकार से प्रकट करना कंद है।

परपुरप्रवेश—यह अर्थहरण वहाँ होता है, जहाँ मूल में एकता हो; किंतु प्रबंधरचना अत्यंत भिन्न हो।

मूलैक्यं यत्र भवेत्परिकरबंधस्तु दूरतोऽनेकः।
तत्परपुरप्रवेशप्रतिमं काव्यं सुकविभाव्यम्॥

—काव्यमीमांसा, अध्याय १२, पृ० १६३

इसके भी आठ प्रकार हैं—

हुडयुद्ध—एक प्रकार से कथित या निबद्ध वस्तु को जब युक्तिपूर्वक परिवर्तित कर दिया जाय तो हुडयुद्ध होता है।

प्रतिकंचुक—एकरूप में वर्णित वस्तु को अन्यत्र प्रकारांतर से या अन्य प्रकार से कहना प्रतिकंचुक है।

वस्तुसंचार—एक उपमान का अन्य उपमान में परिवर्तन वस्तुसंचार कहा जाता है।

धातुवाद—जब शब्दालंकार को अर्थालंकार के रूप में परिवर्तित कर दिया जाय तो धातुवाद होता है।

सत्कार—किसी पदार्थ का उत्कर्ष के साथ अन्यथाकरण या परिवर्तन सत्कार है।

जीवंजीवक—पहले समान या सदृश रूप में उपस्थित वस्तु को असमान या असदृश रूप में रखना जीवंजीवक है।

भावमुद्रा—प्राचीनों के भाव को ग्रहण कर प्रबंध की रचना करना भावमुद्रा है।

तद्विरोध—प्राचीन कवि की रचना की विरोधिनी वस्तु की रचना करना तद्विरोध है। इसमें प्राचीन कथन के विरुद्ध नवीन कथन का वर्णन होता है।

काव्यहेतु—इसके (काव्यहेतु के) अंतर्गत काव्य-सृजन की विविध प्रक्रियाओं का विवेचन किया जाता है। कवि जिन उपादानों से समन्वित होकर काव्य-रचना में प्रवृत्त होता है, उसे शास्त्रीय शब्दावली में काव्यहेतु की अभिधा प्रदान की गई है। इस विषय का ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर अनेक तथ्य उपलब्ध होंगे। मुख्यतः काव्य के तीन हेतु माने गए हैं—प्रतिभा, व्युत्पत्ति (निपुणता) और अभ्यास। प्रतिभा कवि की नवनवोन्मेषशालिनी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बुद्धि को कहते हैं। अभिनव गुप्त के अनुसार अपूर्व वस्तु के निर्माण में सक्षम बुद्धि प्रतिभा है। इसके कारण कवि नवीन अर्थ से युक्त प्रसन्न पदावली की रचना करता है।

प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता।

—काव्यकौतुक, पृ० २१२ भट्टतौत

प्रतिभा अपूर्ववस्तुनिर्माणक्षमा प्रज्ञा।

—ध्वन्यालोकलोचन, पृ० २९

व्युत्पत्ति बहुज्ञता को कहते हैं। शास्त्र तथा काव्यानुशीलन एवं लोक-व्यवहार का गहन पर्यालोचन करने के पश्चात् कवि में इस गुण का समावेश होता है। काव्य-रचना की पौनःपुन्येन प्रवृत्ति ही अभ्यास है; इसके कारण कवि की रचना प्रौढ़ एवं ऊर्जस्वल बन जाती है।

भारतीय काव्यशास्त्र में काव्य-हेतु के संबंध में अत्यंत अभिनिवेश के साथ विचार किया गया है। इस संबंध में जिन आचार्यों ने अपने मत व्यक्त किए हैं, उनमें भामह, दंडी, वामन, रुद्रट, कुंतक, मम्मट एवं पंडितराज जगन्नाथ प्रसिद्ध हैं। संस्कृत-आचार्यों की काव्यहेतु-विषयक दो प्रकार की विचार-सरणियाँ हैं। एक मत के अनुसार काव्य का कारण केवल प्रतिभा है और व्युत्पत्ति तथा अभ्यास उसके संस्कारक तत्त्व हैं। इस वर्ग के अंतर्गत राजशेखर, हेमचंद्र, वाग्भट (उभय), जयदेव तथा पंडितराज आते हैं। प्रतिभा, अभ्यास तथा व्युत्पत्ति को सम्मिलित रूप से काव्य का कारण माननेवाले आचार्यों में रुद्रट एवं मम्मट का स्थान प्रमुख है। अब यहाँ इस प्रश्न को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखा जाएगा।

भामह—इनके अनुसार प्रतिभा काव्य का अनिवार्य हेतु है और यह विरल है। गुरु के उपदेश से जड़ बुद्धि व्यक्ति भी शास्त्राध्ययन कर सकता है, पर काव्य तो किसी प्रतिभावान् व्यक्ति में कभी-कभी ही प्रस्फुटित होता है। उनके अनुसार व्याकरण, छंद, कोश, अर्थ, इतिहासाश्रित कथा, लोकव्यवहार, तर्कशास्त्र तथा कलाओं का मनन कवि के लिए आवश्यक है। शब्द तथा अर्थ का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर तथा काव्यज्ञों एवं अन्य लेखकों की रचनाओं का अवलोकन करने के उपरांत ही कवि काव्य-प्रणयन में प्रवृत्त हो। भामह के अनुसार प्रतिभा, व्युत्पत्ति एवं अभ्यास—तीनों ही काव्य-रचना के हेतु हैं।

गुरूपदेशादध्येतुं शास्त्रं जडधियोऽप्यलम्।
काव्यं तु जायते जातु कथंचित् प्रतिभावतः॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शब्दश्छंदोऽभिधानार्था इतिहासाश्रयाः कथाः ।
लोको युक्तिः कलाश्चेति मंतव्या काव्यगैर्ह्यमी ।।
शब्दाभिधेये विज्ञाय कृत्वा तद्विदुपासनम् ।
विलोक्यान्यनिबंधांश्च कार्यः काव्य क्रियादरः ।।

काव्यालंकार, १/५,९,१०

दंडी—दंडी ने प्रतिभा, अध्ययन एवं अभ्यास तीनों को सम्मिलित रूप में काव्यहेतु निश्चित किया; पर साथ ही यह भी मत व्यक्त किया कि सामान्य रूप से प्रतिभा के अभाव में भी, अध्ययन तथा अभ्यास के द्वारा, काव्य-रचना संभव है। भामह की भाँति दंडी प्रतिभा की अपरिहार्यता स्वीकार नहीं करते।

नैसर्गिकी च प्रतिभा श्रुतं च बहु निर्मलम् ।
अमंदश्चाभियोगोऽस्याः कारणं काव्यसंपदः ।।
न विद्यते यद्यपि पूर्ववासना गुणानुबंधि प्रतिभानमद्भुतम् ।
श्रुतेन यत्नेन च वागुपासिता ध्रुवं करोत्येव कमप्यनुग्रहम् ।।

—काव्यादर्श, १/१०३-१०४

वामन—वामन काव्यहेतु के लिए काव्यांग शब्द का प्रयोग करते हैं, उनके अनुसार लोक, विद्या तथा प्रकीर्ण—ये तीन काव्य-निर्माण की क्षमता प्राप्त करने के अंग हैं।

लोको विद्या प्रकीर्णं च काव्यांगानि ।

—काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, १/३/१

वामन ने कवित्व का बीज प्रतिभा को माना है; पर वे उसे समुचित महत्त्व नहीं देते। वे काव्य-हेतु के तीन अंगों में लोक तथा विद्या के पश्चात् प्रतिभा को स्थान देकर उसको गौण बना देते हैं।

रुद्रट—रुद्रट के मतानुसार काव्य-संघटना के तीन कारण हैं—प्रतिभा, व्युत्पत्ति एवं अभ्यास। इन्होंने प्रतिभा के दो प्रकार माने हैं—सहजा तथा उत्पाद्या। सहजा प्रतिभा जन्मजात होती है एवं वही काव्य का मूल तत्त्व है। उत्पाद्या प्रतिभा सहजा का संस्कारक कारण होती है।

तस्यासारनिरासात् सारग्रहणाच्च चारुणः करणे ।
त्रितयमिदं व्याप्रियते शक्तिः व्युत्पत्तिरभ्यासः ।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रतिभेत्यपरैरुदिता सहजोत्पाद्या च सा द्विधा भवति ।
पुंसां सहजातत्वादनयोस्तु ज्यायसी सहजा ॥
स्वस्यासौ संस्कारे परमपरं मृग्यते हेतुम् ॥
उत्पाद्या तु कथंचित् व्युत्पत्त्या जन्यते परया ।
नक्तं दिवमभ्यस्येदभियुक्तः शक्तिमान् काव्यम् ॥

—काव्यालंकार, १/१४,१६,१७,२९

आनंदवर्द्धन—काव्यहेतु के निरूपण में शक्ति (प्रतिभा) को अधिक महत्त्व देते हुए आनंदवर्द्धन ने बताया कि प्रतिभा-रहित व्यक्ति कुछ नहीं कर सकता। शक्ति तथा व्युत्पत्ति में से वे शक्ति को महनीय मानते हैं। उनके अनुसार प्रतिभाशाली कवि के पास वर्ण्य विषयों का अभाव नहीं होता; वह प्राचीन वर्णित विषयों में भी नावीन्य (भाव) भर देता है।

अव्युत्पत्तिकृतोदोषः शक्त्या संव्रियते कवेः ।
यस्त्वशक्तिकृतो दोषः स झगित्यवभासते ॥
न काव्यार्थ विरामोऽस्ति यदि स्यात् प्रतिभा गुणः ।
सत्स्वपि पुरातन कविप्रबंधेषु यदि स्यात् प्रतिभागुणः ॥
तस्मिंस्त्वसति न किंचिदेव वस्त्वस्ति ।

—ध्वन्यालोक, ४/६

राजशेखर—राजशेखर ने प्रतिभा तथा व्युत्पत्ति दोनों को ही श्रेयस्कर माना है। प्रतिभा तथा व्युत्पत्ति से युक्त होकर ही कवि कवि बनता है। उभय तत्त्वों के आधार पर कवियों की दो कोटियाँ होती हैं—काव्यकवि एवं शास्त्रकवि।

'प्रतिभाव्युत्पत्ति मिथः समवेते श्रेयस्यौ' इति यायावरीयः। प्रतिभाव्युत्पत्तिमांश्च कविः कविरित्युच्यते। —काव्यमीमांसा, पृ० ३९

राजशेखर ने प्रतिभा के दो प्रकार किए हैं—कारयित्री एवं भावयित्री। कारयित्री प्रतिभा कवि में एवं भावयित्री आचार्य या आलोचक में होती है। कारयित्री प्रतिभा भी तीन प्रकार की होती है—

सहजा—यह प्राक्तन जन्म के संस्कार से उत्पन्न होती है तथा इसमें जन्मांतर संस्कार की अपेक्षा होती है।

आहार्या—इसका प्रस्फुटन इसी जन्म के संस्कार से होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

औपदेशिकी—इसकी उत्पत्ति मंत्र, तंत्र, देवता तथा गुरु आदि के उपदेश से होती है।

कवेरुपकुर्वाणा कारयित्री। साऽपि त्रिविधा—सहजा, आहार्या, औपदेशिकी च। जन्मांतरसंस्कारापेक्षिणी सहजा। जन्मसंस्कारयोनिराहार्या। मंत्रतंत्राद्युपदेशप्रभवा औपदेशिकी। ऐहिकेन कियतापि संस्कारेण प्रथमां तां सहजेति व्यपदिशंति, महता पुनराहार्या। औपदेशिक्याः पुनरैहिक एवोपदेशकालः। ऐहिकश्च संस्कारकालः।

—काव्यमीमांसा, पृ० २९

मम्मट—मम्मट शक्ति (प्रतिभा), निपुणता एवं अभ्यास तीनों को सम्मिलित रूप से काव्य का हेतु मानते हैं।

शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात्।
काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे॥

—काव्यप्रकाश, १/३

"(कवि में रहनेवाली उसकी स्वाभाविक प्रतिभारूप) शक्ति, लोक (व्यवहार) शास्त्र तथा काव्य आदि के पर्यालोचन से उत्पन्न निपुणता और काव्य (की रचनाशैली तथा समालोचना-पद्धति) को जाननेवाले (गुरु) की शिक्षा के अनुसार (काव्य-निर्माण का) अभ्यास, ये तीनों मिलकर (समष्टि रूप से) उस (काव्य) के विकास (उद्भव) के कारण हैं।"

आचार्य मम्मट शक्ति या प्रतिभा को काव्य का बीजभूत संस्कार मानते हैं, जिसके बिना पहले तो काव्य बन ही नहीं सकता; और यदि बन भी गया तो हास्यास्पद हो जाएगा। लोक के अंतर्गत उन्होंने जड़-चेतन पदार्थों के जागतिक व्यवहार को ग्रहण किया है और शास्त्र से उनका तात्पर्य छंद, व्याकरण, कोश, चौंसठ कलाओं, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, हस्ती, अश्व एवं खड्गविषयकशास्त्र तथा महाकवियों-द्वारा विरचित ग्रंथों से है। मम्मट ने उपर्युक्त सभी शास्त्रों एवं ग्रंथों का अनुशीलन, कवि के लिए आवश्यक माना है। काव्य की रचना एवं विवेचना करनेवाले आचार्यों का उपदेश ग्रहण कर अभ्यास करना भी काव्यहेतु है। इस प्रकार सभी सम्मिलित रूप से ही काव्य के हेतु हैं, पृथक्-पृथक् नहीं।

शक्तिः कवित्वबीजरूपः संस्कारविशेषः, यां बिना काव्यं न प्रसरेत्, प्रसृतं वा उपहसनीयं स्यात्। लोकस्य स्थावरजंगमात्मकस्य लोकवृत्तस्य, शास्त्राणां छंदोव्याकरण-अभिधान-कोश-कला चतुर्वर्गगज-तुरग-खड्गादिलक्षणग्रंथानाम् काव्यानां च महाकविसंबंधिनां आदि ग्रहणादितिहासादीनां च विमर्शनाद्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

व्युत्पत्तिः। काव्यं कर्तुं विचारयितुं च ये जानंति तदुपदेशेन करणे योजने च पौनःपुन्येन प्रवृत्तिरिति त्रयः समुदिताः, न तु व्यस्ताः, तस्य काव्यस्योद्भवे निर्माणे समुल्लासे च हेतुर्न तु हेतवः। —काव्यप्रकाश, १/३ वृत्ति

परवर्ती आचार्यों पर मम्मट के ही विचार का प्रभाव रहा। केशव मिश्र ने बताया कि प्रतिभा ही काव्य-निर्माण का कारण है और व्युत्पत्ति तथा अभ्यास उसके उपकारक हैं।

प्रतिभा कारणं तस्य व्युत्पत्तिस्तु विभूषणम्।
भृशोत्पत्तिकृदभ्यासः काव्यस्यैषा व्यवस्थितिः॥

—अलंकारशेखर, पृ० ४

वाग्भट भी प्रतिभा को काव्य का कारण मानकर व्युत्पत्ति तथा अभ्यास को प्रतिभा का संस्कारक मानते हैं।

प्रतिभैव च कवीनां काव्यकारणकारणम्।
व्युत्पत्त्यभ्यासौ तस्या एव संस्कारकौ॥

—अलंकारतिलक, पृ० २

हेमचंद्र ने प्रतिभा को ही काव्य-निर्माण का कारण सिद्ध किया और बताया कि इसके अभाव में तो व्युत्पत्ति तथा अभ्यास व्यर्थ है। यदि कवि में प्रतिभा है तो व्युत्पत्ति एवं अभ्यास के द्वारा उसका संस्कार होगा।

प्रतिभा अस्य हेतुः।

अस्य काव्यस्येदं प्रधानं कारणम्। व्युत्पत्त्यभ्यासौ तु प्रतिभाया एव संस्कारकाविति वक्ष्यते।········अतएव न तौ काव्यस्य साक्षात् कारणम्। दृश्यते हि प्रतिभाहीनस्य विफलौ व्युत्पत्त्यभ्यासौ। —काव्यानुशासन, पृ० ५-६

पंडितराज जगन्नाथ—पंडितराज ने काव्य का एक-मात्र हेतु प्रतिभा को माना है। प्रतिभा के दो प्रकार—भावयित्री एवं कारयित्री—मानते हुए भी उन्होंने केवल कारयित्री प्रतिभा का ही विवेचन किया। केवल प्रतिभा को ही काव्य का कारण मानने से पंडितराज "केवल प्रतिभावादी" कहे जाते हैं—**प्रतिभैवकेवला कारणम्।** प्रतिभा का लक्षण प्रस्तुत करते हुए उन्होंने कहा कि काव्य-रचना के अनुकूल शब्दार्थ की उपस्थिति-मात्र करानेवाली क्षमता को प्रतिभा कहते हैं।

सा च काव्यघटनानुकूलशब्दार्थोपस्थितिः।

—रसगंगाधर, पृ० ६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उन्होंने प्रतिभा के विभाग किए हैं—अदृष्ट, व्युत्पत्ति और अभ्यास। अदृष्ट प्रतिभा की उत्पत्ति देवता, महापुरुष आदि के अनुग्रह तथा वरदान से होती है। किसी-किसी में व्युत्पत्ति और अभ्यास के अभाव में ही शैशवावस्था से काव्य-निर्माण की क्षमता आ जाती है। अतः, व्युत्पत्ति एवं अभ्यास को काव्य का कारण न मानकर एकमात्र प्रतिभा को ही माना जा सकता है। उन्होंने यह भी मत प्रकट किया है कि प्रतिभा के वैविध्य एवं वैलक्षण्य के कारण ही काव्य में विविधता एवं विलक्षणता का समावेश होता है।

तस्याश्च हेतुः क्वचिद् देवतामहापुरुषप्रसादादिजन्यमदृष्टम्। बालादेस्तौ विनापि केवलान्महापुरुष प्रसादादपि प्रतिभोत्पत्तेः॥

—रसगंगाधर, पृ० ९-१०

प्रतिभात्वं च कवितायाः कारणतावच्छेदकं प्रतिभागतं वैलक्षण्यमेव वा विलक्षणकाव्यं प्रतीतिनात्रापि सः। तादृशादृष्टस्य तादृशव्युत्पत्त्यभ्यासयोश्च प्रतिभागतं वैलक्षण्यं कार्यतावच्छेदकं, अतो न व्यभिचारः।

—वही, पृ० १०

पंडितराज प्रतिभा की अनेकरूपता को स्वीकार करते है; क्योंकि सभी कवियों में न तो समान प्रतिभा होती है और न वे एक-सी रचना करते हैं। इनके प्रतिभा-संबंधी मत से असहमति प्रकट करते हुए आचार्य देवेंद्रनाथ शर्मा ने तीन असंगतियाँ निर्दिष्ट की हैं—"पंडितराज का कथन, कि काव्य का हेतु केवल प्रतिभा है, अतिवादी है। एक तो प्रतिभा का उन्होंने जो लक्षण किया, वही अत्यंत संकीर्ण है। क्या काव्य-रचना के अनुकूल शब्द-अर्थ की उपस्थिति-मात्र करानेवाली क्षमता को ही प्रतिभा कहते हैं? प्रतिभा का यह लक्षण केवल काव्य के लिए ही सही हो सकता है, और वहाँ भी अव्याप्ति से मुक्त नहीं है। क्या काव्य में शब्दार्थ की उपस्थिति ही सब कुछ है? काव्य-वस्तु के चयन, निरूपण, विकास, विस्तार आदि का कोई महत्त्व नहीं? यदि कहिए कि काव्य-रचना के वे अनिवार्य अंग हैं; अतः उसी में गतार्थ हो जाते हैं और इनका पृथक् निर्देश अनपेक्षित है तो शब्द-अर्थ क्या काव्य के अंग नहीं हैं? पर उनका तो आपने निर्देश किया ही। वस्तुतः प्रतिभा का चमत्कार और प्रभाव काव्य-वस्तु के चयन से लेकर परिसमाप्ति पर्यंत परिलक्षित होता है। यह अव्याप्ति भट्टतौत या अभिनवगुप्त के लक्षणों में नहीं है। उनमें प्रतिभा का सार्वभौम प्रपंच समाहित हो जाता है। पंडितराज की मान्यता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

की दूसरी निर्बलता है काव्य में व्युत्पत्ति और अभ्यास का कोई योग न स्वीकार करना।

....

पंडितराज की विचार-सरणि में एक तीसरी असंगति भी है और वह है व्युत्पत्ति तथा अभ्यास को प्रतिभा का कारण मानना। प्रतिभा को सब ने जन्मांतरीय संस्कार ही माना है या अधिक-से-अधिक मंत्र, देवानुग्रह आदि का परिणाम, क्योंकि अतिकौशल या आध्यात्मिक विभूतियों में आस्था रखनेवालों के लिए यह द्वितीय कोटि विप्रतिपत्ति का विषय नहीं है। किंतु व्युत्पत्ति तथा अभ्यास-जैसे आहार्य धर्मों से प्रतिभा-जैसी सहज वस्तु की उत्पत्ति कैसे हो सकती है, यह समझ में नहीं आता।"

—काव्यालंकार (हिंदी अनुवाद) की भूमिका, पृ० १५-१६

भारतीय साहित्यशास्त्र में काव्य-हेतु-संबंधी विचारों का सार इस प्रकार है। काव्य-रचना के तीन हेतु माने गए हैं—प्रतिभा, व्युत्पत्ति एवं अभ्यास। प्रतिभा का अन्य नाम है शक्ति एवं व्युत्पत्ति के लिए निपुणता शब्द भी प्रचलित है। प्रतिभा को आचार्यों ने काव्य-सर्जन का मूल कारण मानते हुए भी व्युत्पत्ति एवं अभ्यास को समान महत्त्व दिया है। प्रतिभा के कारण कवि नवीन अर्थों का उन्मेष कर कल्पना-शक्ति को उन्मीलित करता है। इसमें अपूर्व वस्तु के निर्माण करने की क्षमता है। प्रतिभा दो प्रकार की होती है—सहजा एवं उत्पाद्या। सहजा जन्मजात होती है और उत्पाद्या मंत्र, देवानुग्रह आदि से प्राप्त होती है। यह शक्ति उपार्जित या यत्न-साध्य होती है। शिक्षा, अभ्यास अथवा प्रयत्न या परिश्रम से भी कवि काव्य-रचना करने में समर्थ हो सकता है।

निपुणता या व्युत्पत्ति—अध्ययन के द्वारा निपुणता आती है। इसके अंतर्गत शास्त्रों का चिंतन एवं मनन, लोक-निरीक्षण तथा काव्य-परंपरा का अध्ययन आता है। शास्त्र-ज्ञान के द्वारा कवि प्रतिपाद्य विषय को व्यवस्थित एवं कथन को सौंदर्यपूर्ण बनाता है तथा लौकिक अनुभूति के द्वारा अभिव्यंग्य को सम्यक् रूप से प्रस्तुत करता है। भारतीय आचार्य छंदशास्त्र, काव्यशास्त्र, दर्शन, व्याकरण, शब्दकोश, नृत्यादि चौंसठ कलाओं, कामशास्त्र, धर्मशास्त्र, न्याय, धनुर्वेद तथा पशुशास्त्र के ज्ञान को कवि के लिए आवश्यक मानते हैं। काव्यशास्त्र, कोश एवं व्याकरण आदि के अध्ययन से तथा अन्यान्य शास्त्रों के अनुशीलन से कवि की कृति प्रभावोत्पादक एवं सहृदय-हृदयावर्जक होती

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। काव्य-परंपरा का परिचय प्राप्त कर कवि अपनी रचना को अधिक मोहक एवं आकर्षक बना सकता है। लोक तथा शास्त्र की कोई सीमा नहीं है; अतः व्युत्पत्ति की भी कोई इयत्ता नहीं मानी जा सकती।

काव्यशास्त्र में सत्तर प्रकार के दोषों का वर्णन होता है। [दे० काव्यदोष] अतः, उनसे बचने के लिए कवि इस शास्त्र का अध्ययन अवश्य करे। इसी प्रकार अन्य शास्त्रीय दोष भी संभव हैं, जिनका निराकरण तत्तत् शास्त्रों के अनुशीलन से ही संभव है।

अभ्यास—अपनी रचना को सुंदर बनाने के लिए निरंतर या पौनः-पुन्येन अभ्यास आवश्यक है। काव्यज्ञ या काव्य-निर्माण के तत्त्वों को जाननेवाले व्यक्तियों का साहचर्य प्राप्त कर उनके निर्देशन में सतत अभ्यास करना कवि का परम कर्त्तव्य होना चाहिए। इससे रचना व्यवस्थित होकर निखर जाती है। इस प्रकार प्रतिभा, व्युत्पत्ति एवं अभ्यास; तीनों की समष्टि ही काव्य-रचना का हेतु है।

आधार ग्रंथ

काव्यालंकार—(हिंदी टीका) आचार्य देवेंद्रनाथ शर्मा,
रसगंगाधर का काव्यशास्त्रीय अध्ययन—डॉ० प्रेमस्वरूप गुप्त
हिंदी रीति परंपरा के प्रतिनिधि आचार्य —डॉ० सत्यदेव चौधरी
महिम भट्ट—डॉ० ब्रजमोहन चतुर्वेदी
भारतीय काव्यशास्त्र के प्रतिनिधि सिद्धांत—डॉ० राजवंश सहाय 'हीरा'

काव्यादर्श—इसके रचयिता आचार्य दंडी हैं। [दे० दंडी] 'काव्यादर्श' तीन परिच्छेदों में विभक्त है, जिसमें कुल छह सौ साठ श्लोक हैं। प्रथम परिच्छेद में काव्य का लक्षण, काव्यभेद—गद्य, पद्य तथा मिश्र, महाकाव्य का स्वरूप, गद्यकाव्य के भेद—कथा और आख्यायिका, रीति, गुण (दस गुण), वैदर्भी और गौडी-मार्ग, अनुप्रास, कवि के तीन गुण—प्रतिभा, श्रुति और अभियोग का विवेचन है। द्वितीय परिच्छेद में पैंतीस अर्थालंकारों का विस्तृत विवेचन है। इसमें अलंकार का लक्षण तथा उनके भेदोपभेद एवं लक्षणोदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं। वर्णित अलंकारों के नाम हैं—स्वभावोक्ति, उपमा, रूपक, दीपक, आवृत्ति, आक्षेप, अर्थांतरन्यास, व्यतिरेक, विभावना, समासोक्ति, अतिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा, हेतु, सूक्ष्म, लेश, यथासंख्य, प्रेयः, रसवत्, ऊर्जस्वि, पर्यायोक्त, समाहित, उदात्त, अपह्नुति, श्लेष, विशेषोक्ति, तुल्ययोगिता, विरोध, अप्रस्तुतप्रशंसा, व्याजोक्ति, निदर्शना, सहोक्ति, परिवृत्ति, आशीः, संसृष्टि एवं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भाविक। तृतीय परिच्छेद में यमक अलंकार का विस्तृत विवेचन है और उसके तीन सौ पंद्रह भेद वर्णित हैं। इसी परिच्छेद में चित्रालंकार, सोलह प्रकार की प्रहेलिका एवं दस प्रकार के काव्यदोष वर्णित हैं। 'काव्यादर्श' की दो प्राचीन टीकाएँ उपलब्ध हैं—तरुण वाचस्पति-कृत टीका तथा किसी अज्ञात लेखक की 'हृदयंगमा' टीका। इसकी अन्य टीकाओं के भी विवरण प्राप्त होते हैं।

१. **मार्जना टीका**—इसके प्रणेता महा महोपाध्याय हरिनाथ हैं। इनके पिताका नाम विश्वधर एवं अग्रज का नाम केशव है। इस टीका का विवरण भंडारकर ओरियण्टल रिसर्च इंस्टीच्यूट-स्थित राजकीय ग्रंथ-संग्रहालय, ग्रंथ-सूची भाग १२, संख्या २४ में है। इसका प्रतिलिपिकाल संवत् १७४६ है।

२. **काव्यतत्त्वविवेक कौमुदी**—इसके रचयिता कृष्ण किंकर तर्कवागीश हैं, जो गोपालपुर (बंगाल) के निवासी थे। इस टीका का विवरण इण्डिया ऑफिस सूचीपत्र पृ० २२१ में प्राप्त होता है।

३. **श्रुतानुपालिनी टीका**—इसके रचयिता वादिघंघल हैं। इसका विवरण डी० सी० हस्तलिखित ग्रंथ संग्रह, संख्या ३, १९१९-२४ ई०, ग्रंथ-सूची भाग १२, संख्या १२५ में है।

४. **वैमल्यविधायिनी टीका**—जगन्नाथ के पुत्र मल्लिनाथ इस टीका के रचयिता हैं।

५. **विजयानंद कृत व्याख्या,**

६. **यामुन कृत व्याख्या,**

७. **रत्न श्री संज्ञक टीका**—इसके रचयिता रत्न श्री ज्ञान नामक सिंहली विद्वान् हैं।

८. बोथलिंक का जर्मन अनुवाद, १८९० ई० में।

९. मद्रास से प्रकाशित (१९१० ई०) प्रो० रंगाचार्य का संस्करण—इसमें चार परिच्छेद हैं और तृतीय परिच्छेद के दो भाग कर चपुर्थ में दोष-विवेचन है।

१०. श्री व्रजरत्न दास कृत 'काव्यादर्श' का हिंदी अनुवाद।

११. आचार्य रामचंद्र मिश्र कृत 'काव्यादर्श की संस्कृत-हिंदी टीका, चौखंबा वाराणसी से संवत् २०१५ में प्रकाशित।

१२. श्री रणवीर सिंह-कृत-हिंदी-अनुवाद-अनुसंधान-परिषद्, दिल्ली-विश्वविद्यालय से प्रकाशित।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

काव्यालंकार—इसके प्रणेता आचार्य रुद्रट हैं। [दे० रुद्रट] काव्यालंकार सोलह अध्यायों में विभक्त है। इसमें सात सौ अड़तालीस पद्य हैं, जिनमें चार सौ पंचानबे कारिकाएँ हैं और दो सौ तिरपन उदाहरण स्वरूप उद्धृत श्लोक हैं। इसके बारहवें अध्याय के चालीसवें श्लोक के बाद के चौदह श्लोक प्रक्षिप्त हैं, अतः विद्वान् उनकी गणना नहीं करते। संपूर्ण ग्रंथ में अधिकांशतः आर्या छंद है। प्रथम अध्याय में गौरी-गणेश की वंदना के पश्चात् काव्यप्रयोजन, काव्यहेतु तथा कवि-महिमा वर्णित है। इस अध्याय में कुल बाईस श्लोक हैं। द्वितीय अध्याय में काव्यलक्षण, शब्द-भेद, रीति, वक्रोक्ति (श्लेष तथा काकु), अनुप्रास तथा उसके भेद एवं वृत्ति (मधुरा, प्रौढ़ा, परुषा, ललिता तथा भद्रा) का विवेचन है। इस अध्याय में बत्तीस श्लोक प्रयुक्त हैं। तृतीय अध्याय में अट्ठावन श्लोकों में यमक का वर्णन है तथा चतुर्थ एवं पंचम अध्यायों में श्लेष तथा चित्रालंकार का क्रमशः उनसठ तथा पैंतीस श्लोकों में विवेचन है। षष्ठ अध्याय में सैंतालीस श्लोक हैं और इसमें दोषों का वर्णन किया गया है। सप्तम अध्याय में अर्थ का स्वरूप, वाचक शब्द के भेद तथा तेईस अर्थालंकारों का विवेचन है। इसमें वास्तव-वर्ग के अतर्गत तेईस अलंकार हैं—सहोक्ति, समुच्चय, जाति, यथासंख्य, भाव, पर्याय, विषम, अनुमान, दीपक, परिकर, परिवृत्ति, परिसंख्या, हेतु, कारणमाला, व्यतिरेक, अन्योन्य, उत्तर, सार, सूक्ष्म, लेश, अवसर, मीलित और एकावली। इस अध्याय में एक सौ ग्यारह श्लोक हैं। अष्टम अध्याय में औपम्यमूलक इक्कीस अलंकारों का वर्णन एक सौ दस श्लोकों में किया गया है। वे हैं—उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अपह्नुति, संशय, समासोक्ति, मत, उत्तर, अन्योक्ति, प्रतीप, अर्थांतरन्यास, उभयन्यास, भ्रांतिमान्, आक्षेप, प्रत्यनीक, दृष्टांत, पूर्व, सहोक्ति, समुच्चय, साम्य तथा स्मरण। नवम अध्याय में अतिशयमूलक बारह अलंकार वर्णित हैं—पूर्व, विशेष, उत्प्रेक्षा, विभावना, तद्गुण, अधिक, विरोध, विषम, असंगति, पिहित, व्याघात, अहेतु। इस अध्याय में पचपन श्लोक हैं। दशम अध्याय में अर्थश्लेष एवं उसके दस भेदों का विस्तृत विवेचन उनतीस श्लोकों में किया गया है। इन भेदों के नाम हैं—अविशेषश्लेष, विरोधश्लेष, अधिकश्लेष, वक्रश्लेष, व्याजश्लेष, उक्तिश्लेष, असंभवश्लेष, अवयवश्लेष, तत्त्वश्लेष तथा विरोधाभासश्लेष। एकादश अध्याय में छत्तीस श्लोकों में अर्थदोष वर्णित हैं। दोषों के नाम हैं—अपहेतु, अप्रतीत, निरागम, बाधयन्, असंबद्ध, ग्राम्य, विरस, तद्वान्, अतिमात्र तथा उपमादोष। द्वादश अध्याय में श्रोता की दृष्टि से काव्य-प्रयोजन, रससंख्या,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रस-स्वरूप, श्रृंगार-लक्षण, नायक के गुण एवं भेद तथा नायिकाओं के भेद वर्णित हैं। इस अध्याय में सैंतालीस श्लोक हैं। त्रयोदश अध्याय में संभोग-श्रृंगार तथा नवपरिणीता का लक्षण वर्णित है। इस अध्याय में सत्रह श्लोक हैं। चतुर्दश अध्याय में विप्रलंभश्रृंगार तथा उसके भेद, कामदशाएँ, अनुराग, प्रवास, मान, करुण, श्रृंगाराभास तथा रीति-प्रयोग के नियम वर्णित हैं। इस अध्याय में अड़तीस श्लोक हैं। पंचदश अध्याय में वीर, करुण, वीभत्स, भयानक, अद्भुत, हास्य, रौद्र, शांत, प्रेयान् रसों एवं रीति-नियम का वर्णन है। इस अध्याय में श्लोकों की संख्या इक्कीस है। षोडश अध्याय में काव्य के चतुर्वर्ग, काव्यभेद, उत्पाद्यकाव्य, अनुत्पाद्यकाव्य, महाकाव्य, लघुकाव्य, उत्पाद्य महाकाव्य, सर्ग और संधियाँ, कथा, आख्यायिका, लघुकाव्य का वर्णन बयालीस श्लोकों में किया गया है।

'काव्यालंकार' पर तीन टीकाओं का उल्लेख प्राप्त होता है। प्रथम टीका के रचयिता काश्मीर निवासी वल्लभदेव थे। इनकी टीका का नाम 'रुद्रटालंकार' है; पर यह टीका अनुपलब्ध है। द्वितीय टीकाकार हैं नमिसाधु, जो जैन विद्वान् थे। इनका समय १०६८ ई० है। यह टीका काव्यमाला से प्रकाशित हो चुकी है। इसका प्रथम संस्करण १८८६ ई० में काव्यमाला से प्रकाशित हुआ था। तृतीय टीकाकार जैन विद्वान् आशाधर हैं। इनका समय तेरहवीं शती का मध्य है। रुद्रट-कृत 'काव्यालंकार' के दो हिंदी अनुवाद हो चुके हैं।

१. डॉ० सत्यदेव चौधरी कृत व्याख्या—वासुदेव प्रकाशन, दिल्ली, १९६५ ई०

२. नमिसाधु की टीका सहित 'काव्यालंकार' का हिंदी अनुवाद—चौखंबा संस्कृत सीरीज, वाराणसी से, १९६६ ई० टीकाकार पं० रामदेव शुक्ल।

काव्यालंकार—इसके प्रणेता आचार्य भामह हैं। [**दे० भामह**] काव्यालंकार भारतीय काव्यशास्त्र का प्रथम उपलब्ध ग्रंथ है, जिसमें काव्यालोचन के स्वरूप का निरूपण है। इसमें छह परिच्छेद हैं और श्लोकों की संख्या चार सौ है। भामह ने कुल पाँच विषयों का विवेचन किया है—काव्य-शरीर, अलंकार, दोष, न्यायनिर्णय तथा शब्द-शुद्धि। प्रथम परिच्छेद में काव्य-प्रयोजन, कवित्व-प्रशंसा, प्रतिभा का स्वरूप, कवि के ज्ञातव्य विषय, काव्य का स्वरूप तथा भेद, काव्यदोष तथा दोषपरिहार का वर्णन है। द्वितीय परिच्छेद

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के वर्णित विषयों में गुण, शब्दालंकार तथा अर्थालंकार हैं। तृतीय परिच्छेद में अर्थालंकार का और चतुर्थ में दोषों का विवेचन है। पंचम परिच्छेद में न्याय-निर्णय और षष्ठ में व्याकरण-संबंधी अशुद्धियों का वर्णन है। काव्यालंकार के प्रत्येक परिच्छेद में कारिकाओं की संख्या इस प्रकार है—५६+६६+५८+५१+६९+६६=३६६।

भामह ने पुस्तक के वर्ण्यविषयों एवं संबद्ध श्लोकों का विवरण प्रस्तुत किया है—

षष्ट्या शरीरं निर्णीतं शतषष्ट्यात्वलंकृतिः।
पंचाशता दोषदृष्टिः सप्तत्या न्यायनिर्णयः॥
षष्ट्या शब्दस्य शुद्धिः स्यादित्येवं वस्तु पंचकम्।
उक्तं षड्भिः परिच्छेदैर्भामहेन क्रमेण वः॥

—काव्यालंकार, ६/६५,६६

काव्यालंकार में कुल अड़तीस अलंकारों का विवेचन है—अनुप्रास (दो भेद), यमक (पाँच प्रकार), रूपक, दीपक, उपमा (सात उपमादोष), प्रतिवस्तूपमा, आक्षेप, अर्थांतरन्यास, व्यतिरेक, विभावना, समासोक्ति, अतिशयोक्ति, यथासंख्य, उत्प्रेक्षा, स्वभावोक्ति, प्रेय, रसवत्, ऊर्जस्वी, पर्यायोक्ति, समाहित, उदात्त, श्लिष्ट, अपह्नुति, विशेषोक्ति, विरोध, तुल्ययोगिता, अप्रस्तुतप्रशंसा, व्याजस्तुति, निदर्शना, उपमारूपक, उपमेयोपमा, सहोक्ति, परिवृत्ति, ससंदेह, अनन्वय, उत्प्रेक्षावयव, भाविकत्व तथा आशीः।

आधारग्रंथ—

१. 'काव्यालंकार' का प्रथम प्रकाशन श्री के० पी० त्रिवेदी ने 'प्रतापरुद्रीय' के परिशिष्ट के रूप में बी० एस० एस० बंबई से १९०९ ई० में कराया था। इस संस्करण का आधार मद्रास का हस्तलेख (हस्तलिपि सं० १९२०) था।

२. पुनः श्री नागनाथ शास्त्री ने १९२७ ई० में तंजोर से आंग्ल अनुवाद सहित इसका प्रकाशन किया।

३. इसका अन्य संस्करण पंडित बटुकनाथ शर्मा तथा पंडित बलदेव उपाध्याय द्वारा संपादित होकर चौखंबा-संस्कृत-सीरीज, वाराणसी से १९२८ में प्रकाशित हुआ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

४. श्री शैलताताचार्य-रचित संस्कृत-वृत्ति के साथ 'काव्यालंकार' का प्रकाशन श्रीनिवास प्रेस, तिरुवदी से हुआ।

५. श्री शंकरराम शास्त्री द्वारा संपादित 'काव्यालंकार' का संस्करण श्री बालमनोरमा प्रेस, मद्रास से १९५६ ई० में निकला।

६. हिंदी भाष्य एवं विस्तृत काव्यशास्त्रीय भूमिका सहित बिहार राष्ट्र-भाषा-परिषद्, पटना से 'काव्यालंकार' का प्रकाशन १९६२ ई० में हुआ। इसके संपादक एवं व्याख्याकार आचार्य देवेंद्रनाथ शर्मा हैं। 'काव्यालंकार' की प्राचीन टीका उद्भट-रचित 'भामह विवरण' है, जो अधुना अनुपलब्ध है।

काव्यालंकारसार संग्रह—इसके रचयिता आचार्य उद्भट हैं। [दे० उद्भट] 'काव्यालंकारसारसंग्रह' में छह वर्ग एवं उनासी कारिकाएँ हैं। यह मुख्यतः अलंकार-ग्रंथ है, जिसमें इकतालीस अलंकारों का निरूपण है। इसमें अलंकारों का विभाजन वर्गक्रम से किया गया है—

१. *प्रथमवर्ग*—पुनरुक्तवदाभास, छेकानुप्रास, अनुप्रास (परुषा, उपनागरिका तथा कोमला वृत्ति), लाटानुप्रास, रूपक, उपमा, दीपक (आदि दीपक, मध्यदीपक और अंतदीपक) और प्रतिवस्तूपमा।

२. *द्वितीयवर्ग*—अर्थांतरन्यास, व्यतिरेक, विभावना, समासोक्ति और अतिशयोक्ति।

३. *तृतीयवर्ग*—यथासंख्य, उत्प्रेक्षा, स्वभावोक्ति।

४. *चतुर्थवर्ग*—प्रेय, रसवत्, ऊर्जस्वि, पर्यायोक्त, समाहित।

५. *पंचमवर्ग*—अपह्नुति, विशेषोक्ति, विरोध, तुल्ययोगिता, अप्रस्तुत-प्रशंसा, व्याजस्तुति, निदर्शना, उपमेयोपमा, सहोक्ति, संकर (चतुर्विध) और परिवृत्ति।

६. *षष्ठवर्ग*—अनन्वय, ससंदेह, संसृष्टि, भाविक, काव्यलिंग, दृष्टांत।

इसमें उद्भट-रचित 'कुमार संभव' काव्य के सौ उदाहरण दिए गए हैं। 'काव्यालकारसारसंग्रह' की दो टीकाएँ हैं—प्रतिहारेंदुराजकृत 'लघुविवृत्ति' तथा राजानक तिलक-रचित विवृत्ति। 'काव्यालंकारसारमंग्रह' का 'लघुविवृत्ति' के साथ प्रकाशन निर्णयसागर प्रेस, से १९१५ ई० में हुआ था। पुनः बनहट्टी की टिप्पणी एवं अँगरेजी अनुवाद के साथ यह बंबई-संस्कृत-सीरीज से प्रकाशित हुआ। लघुविवृत्ति सहित 'काव्यालंकार' का हिंदी भाष्य, हिंदी साहित्य सम्मेलन से प्रकाशित। भाष्यकार डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

काव्यालंकारसूत्रवृत्ति—इसके रचयिता आचार्य वामन हैं। [**दे० वामन**] 'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति' रीति संप्रदाय का प्रधान ग्रंथ है। इसमें रीति को काव्य की आत्मा माना गया है। [**दे० रीति-संप्रदाय**] यह सूत्रशैली में लिखित भारतीय काव्यशास्त्र का प्रथम ग्रंथ है। इसमें पाँच अधिकरण हैं और प्रत्येक अधिकरण में कई अध्याय हैं, जिनकी संख्या बारह है। ग्रंथ के तीन विभाग हैं—सूत्र, वृत्ति और उदाहरण। सूत्र और वृत्ति के रचयिता वामन हैं और अनेक उदाहरण भी इन्हीं के द्वारा लिखे गए हैं। मंगलश्लोक के द्वारा भी इस तथ्य की पुष्टि होती है—

प्रणम्य परमं ज्योतिर्वामनेन कविप्रिया।
काव्यालंकारसूत्राणां स्वेषां वृत्तिर्विधीयते ॥

'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति' में सूत्रों की कुल संख्या तीन सौ उन्नीस है। प्रथम अधिकरण को 'शारीर अधिकरण' कहा गया है, जिसमें तीन अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में काव्य-लक्षण, काव्य और अलंकार तथा काव्य-प्रयोजन का निरूपण है। द्वितीय अध्याय में काव्य के अधिकारी, कवि के दो प्रकार, कवि और भावक का संबंध, काव्य की आत्मा रीति, रीति का विवेचन तथा वैदर्भी, गौडी और पांचाली रीतियों के लक्षणोदाहरण हैं। तृतीय अध्याय में काव्य के तीन अंग या कारण, शब्दपाक, काव्य के भेद (गद्य, पद्य), गद्य काव्य के तीन भेद, पद्य काव्य के भेद आदि विषयों का वर्णन है। द्वितीय अधिकरण के दो अध्यायों में दोष-विवेचन है, जिसका नाम 'दोष-दर्शन' रखा गया है। इसके प्रथम अध्याय में पद-पदार्थ-दोष का वर्णन है और द्वितीय अध्याय में वाक्य-वाक्यार्थ दोष का विवरण। तृतीय अधिककरण का नाम 'गुण-विवेचन' है। इस अधिकरण में दो अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में शब्द-गुण का और द्वितीय में अर्थ-गुण का वर्णन है। चतुर्थ अधिकरण को वामन ने 'आलंकारिक-अधिकरण' कहा है। इसमें तीन अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में शब्दालंकार तथा द्वितीय में उपमलंकार का वर्णन है। तृतीय अध्याय में उपमा-प्रपंच एवं अन्य पचीस अर्थालंकार वर्णित हैं। पंचम अधिकरण का नाम 'प्रायोगिक अधिकरण' है। इसमें दो अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में काव्य समय का तथा द्वितीय में काव्यशुद्धि का विवेचन है। इस अधिकरण का काव्यशास्त्र के साथ प्रत्यक्ष संबंध नहीं है। इसमें संस्कृत व्याकरण के आधार पर शब्द शुद्धि तथा संदिग्ध शब्दों के प्रयोग पर विचार किया गया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति' पर चार प्राचीन टीकाओं की सूचना प्राप्त होती है—सहदेव, गोपेंद्र, भट्टगोपाल तथा महेश्वर की। मध्ययुग में यह ग्रंथ लुप्त हो गया था, पर मुकुलभट्ट ने कहीं से इनकी एक प्रति प्राप्त कर इसका जीर्णोद्धार किया। इस तथ्य का उद्घाटन वामन के टीकाकार सहदेव ने किया है।

वेदिता सर्वशास्त्राणां भट्टोऽभून्मुकुलाभिधः।
लब्ध्वा कुतश्चिदादर्शभ्रष्टम्नायं समुद्धृतम्॥
काव्यालंकारशास्त्रं यत् तेनैतद्वामनोदितम्।
असूया तन्न कर्त्तव्या विशेषालोकिभिः क्वचित्॥

'काव्यालंकार सूत्रवृत्ति' की सर्वाधिक प्रसिद्ध टीका गोपेंद्रकृत 'कामधेनु' है। इसके दो हिंदी अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं।

१. प्रथम के प्रणेता (हिंदी भाष्यकार) आचार्य विश्वेश्वर हैं; भूमिका-लेखक एवं संपादक डॉ० नगेंद्र।

२. चौखंबा संस्कृत सीरीज, वाराणसी से प्रकाशित (१९७१ ई०); हिंदी अनुवाद, अनुवादक डॉ० बेचन झा।

किलकिंचित—नायिका का स्वभावज अलंकार। [**दे० नायिका के अलंकार**] प्रिय-मिलन, आगमन आदि के कारण उत्पन्न हर्ष से स्मित, अकारण रोदन, हास्य, भय, क्रोध, श्रम आदि के विचित्र मिश्रण को किलकिंचित कहते हैं।

कुट्टमित—नायिका के स्वभाज अलंकार का एक भेद। [**दे० नायिका के अलंकार**] केश, स्तन, अधर आदि के स्पर्श से हर्ष होने पर भी घबराहट प्रदर्शित कर कष्ट का स्वांग भरना या झूठा कष्ट प्रदर्शित करना कुट्टमित है।

कुतूहल—नायिका का स्वभावज अलंकार। [**दे० नायिका के अलंकार**] किसी रमणीय पदार्थ को देखने के लिए मन में कौतूहल का होना कुतूहल है।

कुलक—यह काव्य का एक रूप या भेद है। कुलक में विभिन्न प्रकार के छह छंद प्रयुक्त होते हैं। इस प्रकार का लक्षण 'अग्निपुराण' का है। रुद्रट-कृत 'काव्यालंकार' की टीका में कहा गया है कि 'कुलककाव्य' में पाँच एवं चौदह श्लोकों के बीच वर्ण्यविषय की समाप्ति हो जाती है। अग्निपुराणकार ने कुलक को 'संदानितक' से अभिन्न माना है; पर नमिसाधु के अनुसार इसमें दो पद्य होते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

श्लोकैरनेकैः कुलकं स्यात्संदानितकानितत् ॥

—अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग, १/३६

द्वयोः संदानितकम् । —काव्यालंकार, १६/३६ (टीका)

कुलटा—परकीया नायिका का भेद । [दे० परकीया] अनेक नायकों या पुरुषों से प्रेम करनेवाली नायिका कुलटा कही जाती है। इस नायिका का प्रथम विवेचन भानुदत्त ने किया है और उनके आधार पर रीतिकालीन आचार्यों ने इसका निरूपण किया। यहाँ मतिराम, दास और पद्माकर के मत दिए जा रहे हैं—

कुलटा अप्रकट रूप से अनेक पुरुषों के प्रति अनुराग करती है।

जो चाहत बहुनायकन सरस सुरति पर प्रीति ।
तासों कुलटा कहत हैं लखि ग्रंथन की रीति ॥

—रसराज, ७९

कुलटा बहुमित्रिनी मुदित मुदिता वांछित लहि ॥

—रससारांश, ७९

है बहु लोगन सों जु तिय, राखति रति की चाह ।
कुलटा ताहि बखानहीं जे कबीन के नाह ॥

—जगद्विनोद, १०६

उदाहरण—

क. एते वारिकणान् किरंति पुरुषान् वर्षंति नांभोधराः,
शैलाः शाद्वलमुद्वमंति न सृजंत्येते पुनर्नायकान् ।
त्रैलोक्ये तरवः फलानि सुवते नैवारभंते जनान्,
धातः ! कातरमालपामि कुलटाहेतोस्त्वया किं कृतम् ॥

—रसमंजरी, २६

कोई कुलटा विधाता से कह रही है—"हे ब्रह्मा ! मैं कातर होकर पूछती हूँ कि तूने मेरे लिए क्या किया ? आकाश में ये जो मेघ घिरे हुए हैं, ये केवल जल की ही धारा बरसाते हैं, पुरुषों की नहीं ? ये पर्वत नई दूबों को उगलते हैं, पुरुषों को नहीं बनाते ? तीनों लोक में वृक्ष केवल फलों को ही उत्पन्न करते हैं, नरों का आरंभ नहीं करते अर्थात् मनुष्यों को नहीं जन्म देते ?"

ख. मोह मधुर मुसुकानि सों सबै ग्राम के छैल ।
सकल सैल बन कुंज में तरुनि सुरति की सैल ॥—रसराज, ८१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुलौचित्य—औचित्य का १६वां भेद। [दे० औचित्य के भेद]

कुवलयानंद—इसके रचयिता अप्पय दीक्षित हैं। [दे० अप्पय दीक्षित] यह अलंकार-विषयक ग्रंथ जयदेव-रचित 'चंद्रालोक' के आधार पर रचित है [दे० जयदेव]। 'कुवलयानंद' में 'चंद्रालोक' के सभी अलंकार ज्यों-के-त्यों ले लिए गए हैं और उन पर अप्पय दीक्षित ने विस्तृत भाष्य लिखा है। इसमें 'चंद्रालोक' की शैली अपनाकर दीक्षित ने एक ही श्लोक में लक्षण एवं उदाहरण प्रस्तुत किया है। इसमें वर्णित अलंकारों की संख्या एक सौ तेईस के लगभग है। दीक्षित ने सत्रह नवीन अलंकारों का भी विवेचन किया है—प्रस्तुतांकुर, अल्प, कारकदीपक, मिथ्याध्यवसिति, ललित, अनुज्ञा, मुद्रा, रत्नावली, विशेषक, गूढोक्ति, विवृतोक्ति, युक्ति, लोकोक्ति, छेकोक्ति, निरुक्ति, प्रतिषेध एवं विधि। यद्यपि इन अलंकारों के वर्णन भोज, शोभाकरमित्र तथा यशस्क के भी ग्रंथों में प्राप्त होते हैं; पर इन्हें व्यवस्थित रूप प्रदान करने का श्रेय दीक्षित को ही है। 'कुवलयानंद' अपने विषय का अत्यंत लोकप्रिय ग्रंथ है। इस पर दस टीकाओं की रचना हो चुकी है।

१. *रसिकरंजिनी टीका*—इसके प्रणेता गंगाधर वाजपेयी या गंगाध्वराध्वरी हैं। इनका समय १६५४ से १७११ ई० है। इसका प्रकाशन १८९२ ई० में कुंभकोणम् से हुआ है। इस पर हालास्यनाथ ने टिप्पणी की रचना की है।

२. *अलंकार चंद्रिका*—इसके रचयिता वैद्यनाथ तत्सत् हैं।

३. *अलंकार दीपिका*—इसके प्रणेता आशाधर भट्ट हैं। इसमें केवल कारिका भाग की टीका है।

४. *अलंकारसुधा*—इसके रचयिता प्रसिद्ध वैयाकरण नागोजी भट्ट हैं।

५. *विषमपदव्याख्यानषट्पदानंद*—इसके लेखक भी नागोजी भट्ट हैं। दोनों ही ग्रंथों के उद्धरण स्टेनकोनो-रचित ग्रंथ-सूची में उपलब्ध हैं।

६. *काव्यमंजरी*—इसके रचयिता न्यायवागीश भट्टाचार्य हैं।

७. *कुवलयानंद-टीका*—इसके लेखक मथुरानाथ हैं।

८. *कुवलयानंद-टिप्पण*—इसके रचयिता का नाम कुरवीराम है।

९. *लघ्वलंकार चंद्रिका*—इसके रचयिता देवीदत्त हैं।

१० *बुधरंजिनी*—इसके प्रणेता देवीदत्त हैं।

'कुवलयानंद' का हिंदी अनुवाद (विस्तृत भूमिका-सहित) डॉ० भोलाशंकर व्यास ने किया है, जो चौखंबा-संस्कृत-सीरीज, वाराणसी से प्रकाशित है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुशीलव—नाटक में, वाद्ययंत्रों की व्यवस्था करनेवाले व्यक्तिविशेष।

कुसुंभराग—[दे० पूर्वराग]

केलि—नायिका का स्वभावज अलंकार। [दे० नायिका के अलंकारु] प्रिय के साथ विहार में क्रीड़ा करने को केलि कहते हैं।

केशव मिश्र—इन्होंने 'अलंकारशेखर' नामक ग्रंथ का प्रणयन किया है, जिसमें काव्यशास्त्रीय विषयों का संक्षिप्त विवेचन है। इस ग्रंथ में मिश्र ने लिखा है कि इसकी रचना धर्मचंद्र के पुत्र राजा माणिक्यचंद्र के अनुरोध से हुई थी। श्री कनिंघम के अनुसार राजा माणिक्यचंद्र का राज्यारोहण १५६३ ई० में हुआ था और उन्होंने काँगड़ा की गद्दी पर दस वर्षों तक शासन किया। इस दृष्टि से केशव मिश्र का समय सोलहवीं शती का अंतिम चरण सिद्ध होता है।

'अलंकारशेखर' की रचना कारिकाशैली में हुई है, जिस पर स्वयं लेखक ने वृत्ति लिखी है। ग्रंथ में आठ रत्न या अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय मरीचियों में विभाजित है, जिनकी संख्या बाईस है। इसमें काव्यलक्षण, रीति, शब्दशक्ति, पद-दोष ८, वाक्य दोष १८, अर्थदोष ८, शब्दगुण ५, अर्थगुण ५, दोषों का गुणभाव, शब्दालंकार, अर्थालंकार, रस-निरूपण तथा नायिका-भेद का वर्णन हुआ है। अलंकारशेखर पर काव्यादर्श, काव्यमीमांसा, ध्वन्यालोक एवं काव्यप्रकाश का प्रभाव है।

कैशिकी—यह नाट्यवृत्ति का एक प्रकार है। [दे० वृत्ति] केश से संबद्ध होने के कारण इसका नाम कैशिकी पड़ा है। मधुकैटभ के युद्ध में भगवान् विष्णु ने विचित्र अंगविक्षेपों से अपने केश को बाँधा तो इसकी उत्पत्ति हुई।

> विचित्रै रंगहारैस्तु देवो लीलासमुद्भवैः।
> बबंध यत् शिखापाशं कैशिकी तत्र निर्मिता।
>
> —नाट्यशास्त्र २२/१३

इस वृत्ति का संबंध सौंदर्य और लालित्य उत्पन्न करनेवाले नाट्य-व्यापार से है। इसमें स्त्रियों का प्राधान्य होता है; क्योंकि इसका प्रयोग पुरुषों द्वारा नहीं होता। इसमें स्त्री की प्रत्येक चेष्टा, जिसमें सौंदर्य एवं लालित्य रहता है, प्रदर्शित की जाती है। इसकी उत्पत्ति पार्वती के लास्य नृत्य से मानी जाती है। भरत के अनुसार इस वृत्ति में स्त्री-संयोग अनिवार्य है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

या श्लक्षणनेपथ्य विशेष चित्रा
स्त्रीसंयुता या बहुनृत्तगीता ।
कामोपभोगप्रभवोपचारा
तां कैशिकीं वृत्तिमुदाहरंति ॥

—नाट्यशास्त्र, २२/४७

यत् किंचित् लालित्यं तत् सर्वं कैशिकीविजृंभितम् ।

—अभिनव भारती, पृ० २०-२१

कैशिकी में प्रेम, रति, हास आदि मृदुल भाव प्रदर्शित होते हैं। इसके चार भेद किए गए हैं—नर्म, नर्मस्फूर्ज, नर्मस्फोट तथा नर्मगर्भ ।—

नर्म च नर्मस्फूर्जो नर्मस्फोटोऽथ नर्मगर्भश्च । चत्वार्यंगान्यस्या ।

—साहित्यदर्पण, ६/१२५

१. *नर्म*—प्रिय या प्रिया को प्रसन्न करनेवाला व्यापार या परिहासपूर्ण क्रीड़ा नर्म है ।

वैदग्ध्यक्रीडितं नर्म प्रियोपच्छंदनात्मकम् ।

यह तीन प्रकार का होता है—हास्य से युक्त नर्म, शृंगार से युक्त नर्म और भय से युक्त नर्म । नर्म में अशिष्ट परिहास का निषेध किया जाता है ।

शृंगार नर्म के तीन भेद हैं—आत्मोपक्षेप नर्म, संभोग नर्म और मान नर्म ।

भय नर्म के दो उपभेद हैं—शुद्ध तथा रसांतरांगभूत ।

हास्येनैव सशृंगारभयेन विहितं त्रिधा ।
आत्मोपक्षेपसंभोगमानैः शृंगार्यपि त्रिधा ॥
शुद्धमंग भयं द्वेधा त्रेधा वाग्वेषचेष्टितैः ।
सर्वं सहास्यमित्येवं नर्माष्टादशधोदितम् ॥

—दशरूपक, २/४९-५०

जहाँ नायक तथा नायिका अपने प्रेम को प्रकट करें, वहाँ आत्मोपक्षेप नर्म होता है। संभोगपरक नर्म में संभोग की इच्छा प्रकट की जाती है । जब प्रिय का अनिष्ट कर नायिका मान करे, तो मान नर्म होगा। ये सभी नर्म वाक्, वेष तथा चेष्टा के आधार पर अठारह प्रकार के होते हैं ।

२. *नर्मस्फूर्ज*—जहाँ नायक तथा नायिका को प्रथम मिलन के समय सुख तथा अंत में दुःख हो, वहाँ नर्मस्फूर्ज होता है ।

नर्मस्फिजः सुखारंभो भयांतो नवसंगमे ।

—दशरूपक, २/५१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

३. *नर्मस्फोट*—जब अल्प प्रकाशित भावों से (सात्विकादि भावों से) कुछ-कुछ शृंगार रस सूचित हो तो नर्मस्फोट होता है।

नर्मस्फोटस्तु भावानां सूचितोऽल्परसो लवैः ।

—दशरूपक, २/५१

४. *नर्मगर्भ*—नायक का गुप्त व्यवहार या प्रच्छन्न रूप से विद्यमान नायक के व्यवहार को नर्मगर्भ कहते हैं।

छन्ननेतृप्रतीचारो नर्मगर्भोऽर्थहेतवे ॥ —वही, २/५२

कैशिकी वृत्ति के अंग हास्ययुक्त तथा हास्यरहित, दोनों ही प्रकार के हो सकते हैं।

कोमलावृत्ति—[**दे० वृत्त्यनुप्रास**] वृत्त्यनुप्रास का एक भेद, जिसमें प्रसाद-गुणव्यंजक वर्णों का प्रयोग होता है।

कोष—मुक्तक काव्य का एक भेद। [**दे० मुक्तक काव्य**]

कंचुकी—नाटक या रूपक का एक विशेष पात्र। राजा का एक सेवक, जो वृद्ध ब्राह्मण हुआ करता है तथा राजा के संदेश को अंतःपुर ले जाने में कुशल होता है। यह नपुंसक प्रकृति का पात्र है, जो बौद्धिक दृष्टि से सतर्क है। राजा के अंतःपुर में जिन नपुंसक या स्त्रीभोग पात्रों की नियुक्ति की जाती है, उनमें एक कंचुकी भी है।

कुंतक या कुंतल—आचार्य कुंतक वक्रोक्ति-संप्रदाय के प्रवर्त्तक हैं और इनका प्रधान ग्रंथ 'वक्रोक्ति जीवितम्' काव्यशास्त्र की युगप्रवर्त्तक रचना है। [**दे० वक्रोक्ति-संप्रदाय**] इन्होंने वक्रोक्ति को काव्य का जीवनाधायक (प्राण) तत्त्व माना है। कुंतक ने आनंदवर्द्धन के मत का खंडन किया है और राजशेखर का उल्लेख किया है; अतः इनका दोनों से परवर्ती होना सिद्ध होता है। महिमभट्ट ने कुंतक के सिद्धांत का खंडन किया है; अतः ये उनके पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं।

काव्यकांचनकशाश्ममानिना कुंतकेन निज काव्यलक्ष्मणि ।
यस्य सर्वनिरवेद्यतोदिना श्लोक एष स निर्दशितो मया ॥

—व्यक्तिविवेक, पृ० ५८

महिमभट्ट का समय ग्यारहवीं शती के आस-पास है; अतः कुंतक का काल दशम शतक का अंतिम चरण या एकादश शतक का प्रथम चरण निश्चित होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'वक्रोक्तिजीवित' चार उन्मेषों में विभक्त है। प्रथम उन्मेष में काव्य के प्रयोजन, लक्षण तथा छह प्रकार की वक्रता का विवेचन है। द्वितीय उन्मेष में वक्रोक्ति के छह प्रकारों में से तीन—वर्णविन्यासवक्रता, पदपूर्वार्द्ध वक्रता एवं प्रत्ययवक्रता—की भेदसहित विस्तृत मीमांसा की गई है। तृतीय उन्मेष में वाक्यवक्रता का निरूपण और उसके अंतर्गत अलंकारों का विवेचन है। चतुर्थ उन्मेष में प्रकरणवक्रता तथा प्रबंधकवक्रता का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है। [**दे० वक्रोक्तिजीवित**]

कुंतक वक्रोक्ति को अलंकार का रूप न देकर उसे सामान्य काव्य-दर्शन के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। इन्होंने कवि-कर्म को काव्य कहा है—

कवेः कर्म काव्यम्। —वक्रोक्तिजीवित, १/२

इन्होंने बताया कि अलंकार से युक्त शब्द और अर्थ ही काव्य है।

तत्त्वं सालंकारस्य काव्यता। —वही, १/६

कुंतक ने अलंकारों को काव्यस्वरूपाधायक तत्त्व स्वीकार किया है, वे उसे बाह्य भूषण नहीं मानते। काव्य की परिभाषा देते हुए इन्होंने कहा कि "काव्य-मर्मज्ञों को आनंद देनेवाली सुंदर (वक्र) कवि व्यापार युक्त रचना (बंध) में व्यवस्थित शब्द और अर्थ मिलाकर (सहित रूप में) काव्य कहलाते हैं।"

शब्दार्थौ सहितौ वक्रकविव्यापारशालिनि।
बंधे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाह्लादकारिणि॥

—वक्रोक्तिजीवित, १/७

इन्होंने काव्य के तीन प्रयोजनों का कथन किया है—चतुर्वर्गफलप्राप्ति, व्यवहार-औचित्य का ज्ञान तथा अंतश्चमत्कार की प्राप्ति। [**वक्रोक्तिजीवित, १/३,४,५**] काव्य-हेतु के अंतर्गत इन्होंने शक्ति, व्युत्पत्ति और अभ्यास को मान्यता दी है तथा काव्य का केंद्र-विंदु प्रतिभा को माना है। इसके द्वारा (प्रतिभा) ही कवि शब्द और अर्थ में अपूर्व सौंदर्य का आधान करता है।

कुंतक ध्वनि-विरोधी आचार्यों में आते हैं; क्योंकि 'वक्रोक्तिजीवित' की रचना ध्वनि-सिद्धांत के प्रत्युत्तर के रूप में हुई है। [**विशेष विवरण के लिए दे० ध्वनि-विरोधी आचार्य**] इन्होंने वैदग्ध्यभंगी भणिति-स्वरूप वक्रोक्ति को ही काव्य का जीवन मानकर ध्वनि, रस एवं औचित्य को उसका अंग स्वीकार किया है तथा ध्वनि के अनेक भेदों के उदाहरणों को वक्रोक्ति के भेदों में दर्शाया है। ध्वनिकार ने ध्वनि को व्यंजनावृत्ति द्वारा ही प्रतीयमान माना है; किंतु,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुंतक वक्रोक्ति-तत्त्व को विचित्राभिधा वृत्ति से अभिहित करते हैं। ये ध्वनि को वक्रोक्ति का प्रकारांतर सिद्ध करते हैं और प्रतीयमान अर्थ की सत्ता को स्वतः स्वीकार करते हैं।

इन्होंने वक्रोक्ति को काव्य का मूल तत्त्व (आत्मा) मानते हुए भी रस, औचित्य और ध्वनि की महनीयता पद-पद पर स्थापित की है। पर, इनको महत्त्व देकर भी ये वक्रोक्ति को काव्य का जीवित स्वीकार करते हैं और रस, ध्वनि आदि का अंतर्भाव वक्राक्ति में ही करते हैं। कुंतक ने काव्य के वर्ण्य-विषय के लिए रस की अनिवार्य सत्ता स्वीकार की है और वक्रोक्ति-सिद्धांत के मार्ग-वर्णन में भी रस को समुचित महत्त्व प्रदान किया है। इन्होंने काव्य के भेद, काव्य के वर्ण्य तथा प्रयोजन के अंतर्गत रस की महत्ता प्रतिष्ठित की है। ये ध्वनि-सिद्धांत के समान ही रस को व्यंग्य मानते हैं, वाच्य नहीं। वक्रोक्ति-विवेचन के विभिन्न प्रकरणों में कुंतक ने कई ऐसे तथ्य प्रस्तुत किए हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि इनकी दृष्टि में रस काव्य के लिए एक महनीय वस्तु है। इन्होंने प्रबंध-वक्रता [**दे० प्रबंध वक्रता**] को ही वक्रोक्ति का उत्कृष्ट एवं प्रौढ़ रूप माना है। इनके अनुसार काव्य का श्रेष्ठ रूप प्रबंध है और प्रबंध का जीवन या प्राण रस। काव्य के लक्षण, प्रयोजन एवं वक्रोक्ति के अनेक भेदों के अंतर्गत रस को समुचित महत्त्व देकर भी कुंतक ने काव्य का सर्वस्व वक्रोक्ति को माना है। इनका रस-विवेचन अनौपचारिक या आनुषंगिक है। ये वक्रोक्ति-विहीन काव्य को साधारण बार्त्ता के अतिरिक्त कुछ नहीं मानते। [**इनके वक्रोक्ति-विवेचन के लिए दे० वक्रोक्ति-सिद्धांत**]

कौंकणी—आचार्य भोज-वर्णित अनुप्रास का एक प्रकार। [दे० अनुप्रास] जब किसी रचना में तवर्ग की आवृत्ति हो तो वहां कौंकणी वृत्ति होगी।

—सरस्वतीकंठाभरण, पृ० २३६-३८

कौंकी—आचार्य भोज-वर्णित अनुप्रास का एक भेद। [दे० अनुप्रास] कौंकी में टवर्ग का अनुप्रास होता है अर्थात् जब किसी रचना में टवर्ग का आवर्त्तन हो तो वहाँ कौंकी होगी। यह वृत्त्यनुप्रास का एक भेद है।

—सरस्वतीकंठाभरण, पृ० २३६-३८

कौंतली—आचार्य भोज-वर्णित अनुप्रास का एक भेद। [दे० अनुप्रास] कौंतली में चवर्ग की आवृत्ति होती है अर्थात् ऐसी रचना को कौंतली कहते हैं, जिसमें चवर्ग का अनुप्रास हो। यह वृत्यनुप्रास का एक भेद है।

—सरस्वतीकंठाभरण, पृ० २३६-३८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्रम—यथासंख्य अलंकार का एक नाम। [दे० यथासंख्य]

क्रमुकपाक—जो रचना आदि में उत्तम तथा अंत में मध्यम (अस्वादु) हो उसे क्रमुकपाक की संज्ञा दी जाती है [दे० काव्यपाक]। क्रमुक का अर्थ है सुपारी, इसमें सुपारी के सभी गुण विद्यमान रहते हैं।

आदावुत्तममंते चास्वादु क्रमुकपाकम्।

—काव्यमीमांसा, अध्याय ५ पृ० ५३, चौखंबा-संस्करण

क्रियाकल्प—साहित्यशास्त्र या काव्यशास्त्र का अन्य नाम। [दे० काव्यशास्त्र नामकरण]

क्रियातिपत्ति—शोभाकर मित्र-वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। क्रियातिपत्ति प्रतिभा का विलोम है। [दे० प्रतिभा अलंकार] इसमें असंभाव्यमान अर्थसंबंधी कल्पना का वर्णन होता है अर्थात् असंभाव्यमान अर्थ की कल्पना ही क्रियातिपत्ति अलंकार है।

यद्यर्थोक्तावसंभाव्यमानस्य क्रियातिपत्तिः ॥३६॥ पृ० ५६

उदाहरण से ज्ञात होता है कि इस अलंकार का अंतर्भाव संभावना अलंकार में हो सकता है।

क्रियाविदग्धा—विदग्धा नायिका का भेद। [दे० विदग्धा]

क्रियावैचित्र्यवक्रता—पदपूर्वार्द्धवक्रता का आठवाँ प्रकार।

[दे० क्रियावैचित्र्यवक्रता]

क्रियौचित्य—औचित्य का सातवाँ भेद। [दे० औचित्य के भेद]

क्रोध—रौद्र रस का स्थायी भाव। [दे० रौद्ररस] शत्रुकृत बहुत बड़े अपराध या अवमाननादि के कारण हृदय में उत्पन्न उत्तेजनापूर्ण भाव क्रोध है। इसका सर्वप्रथम विवेचन भरत ने किया है। इनके अनुसार क्रोध की उत्पत्ति औद्धत्य, संघर्ष, कलह, विवाद तथा प्रतिकूल भाव या विरोध के कारण होती है। इसका अभिनय फूले हुए नासापुट, आँख चढ़ाने, होठ चबाने और गंडस्थल के फड़कने आदि अनुभावों द्वारा होना चाहिए।

आधर्षणाक्रुष्टकलहविवादप्रतिकूलादिभिर्विभावैः समुत्पद्यते। अस्य विकृष्टनासापुटोद्वृत्तनयनसंदष्टोष्ठपुटगंडस्फुरणादिभिरनुभावैरभिनयः प्रयोक्तव्यः।

—नाट्यशास्त्र, ७/१५

भरत ने क्रोध के पाँच प्रकारों का कथन किया है—रिपुज, गुरुज, प्रणयीप्रभव, मृत्युज तथा कृत्रिम। शत्रु के प्रति उत्पन्न क्रोध, गुरुजनों के प्रति उत्पन्न

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्रोध, प्रेमी जनों के प्रति उत्पन्न क्रोध, नौकरों के प्रति उत्पन्न क्रोध तथा जालसाजी से उत्पन्न क्रोध।

रिपुजो गुरुजश्चैव प्रणयिप्रभवस्तथा।
भृत्यजः कृतकश्चेति क्रोधः पंचविधः स्मृतः॥

—नाट्यशास्त्र, ७/१५

भरत के अनुसार क्रोध के व्यंजक अनुभाव हैं—भृकुटी टेढ़ी करना, मुख को भयंकर बनाना, होंठ चबाना, ताल ठोकना, सिर तथा छाती को छूना और शस्त्र घुमाना।

भृकुटी कुटिलोत्कटमुखः संदष्टौष्ठस्पृशन्करेणकरम्।
क्रुद्धः स्वभुजप्रेक्षी शत्रौ निर्यंत्रणं रुष्येत्॥

—वही, ७/१७

हेमचंद्र के अनुसार क्रोध की उत्पत्ति शत्रु के प्रति तीक्ष्णता के प्रबोध में होती है।

तैक्ष्ण्यप्रबोधः क्रोधः। —शब्दानुशासन, पृ० १२६

नाट्यदर्पणकार के अनुसार अन्य के अपकार करने तथा अन्य से घृणा करने के कारण उत्पन्न संताप के आवेग को क्रोध कहते हैं।

अपचिकीर्षा जुगुप्साहेतुः परितापावेशः क्रोधः।

—नाट्यदर्पण, पृ० ३३०

विद्यानाथ ने शत्रुकृत अपराध के कारण मन की प्रज्वलित होनेवाली मनोवृत्ति को क्रोध कहा।

शत्रुकृतापराधे न मनः प्रज्वलन क्रोधः।

—प्रतापरुद्रीय, पृ० १६५

विश्वनाथ ने शत्रु के प्रति मन में उत्पन्न प्रतिशोध की भावना को क्रोध कहा है।

प्रतिकूलेषु तैक्ष्ण्यस्यावबोधः क्रोध इष्यते।

—साहित्यदर्पण, ३/१७७

भानुदत्त ने बताया कि प्रमोद या आनंद के प्रतिकूल उस परिमित मनोविकार का नाम क्रोध है, जो अपमान के कारण उत्पन्न होता है।

अवज्ञादिकृतः प्रमोदप्रतिकूलः परिमितो मनोविकारः क्रोधः। प्रमोदप्रतिकूलेतिविशेषणाद्दशमुखवचनावमानितस्य रामस्य वीररसे नातिव्याप्तिः।

—रसतरंगिणी, पृ० २२६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पंडितराज जगन्नाथ ने गुरु तथा बंधु के वध एवं असह्य अपराध के कारण उत्पन्न प्रज्वलन नामक चित्तवृत्ति को क्रोध कहा है।

गुरुबंधु वधादिपरमापराधजन्मा प्रज्वलनाख्यः क्रोधः।

—रसगंगाधर, पृ० ३९

क्रोध की स्थिति में विवेक लुप्त हो जाता है और व्यक्ति को कर्त्तव्या-कर्त्तव्य का ध्यान नहीं रहता।

उदाहरण—

क. चंचद्भुजभ्रमित चंडगदाभिघात
संचूर्णितोरुयुगलस्य सुयोधनस्य।
स्त्यानावनद्धघनशोणितशोणपाणि-
रुत्तंसयिष्यति कचाँस्तव देवि भीमः॥

द्रौपदी के प्रति भीम की उक्ति है—"हे देवि! चंचल भुजाओं के द्वारा घुमाई गई भयंकर गदा के आघात से दुर्योधन की जाँघों को चूर्ण-विचूर्ण कर तथा घनी रुधिर-धारा से हाथ को लिप्त कर यह भीम तुम्हारे केशों को बाँधेगा। यहाँ भीम के कथन में क्रोध-भाव की व्यंजना हुई है।

ख. फारौं बक्ष न अक्ष को, जौ लगि मैं हनुमान।
तौ लौं पलक न लाइहौं कछुक अरुन अँखियान॥

यहाँ क्रोध के कारण हनुमान की आँखों के कुछ लाल हो जाने में क्रोध स्थायी भाव है।

रिपुकृत अपमानादि तें परमित चित्तविकार।
जु प्रतिकूल हिय हरष को वहहि क्रोध निरधार॥

—जगद्विनोद, ५८६

क्लिष्ट—शब्ददोष का चौदहवाँ भेद। [दे० शब्ददोष]

क्षुद्र या लघुकाव्य—यह काव्य का एक प्रकार है। इसमें द्विज, सेवक एवं सार्थवाह नायक के सहायक होते हैं। नायक के साथ इन्हें कवि प्रारंभ में आपद्ग्रस्त दिखाकर अंत में सुखी बना देता है। 'लघुकाव्य' में करुण एवं विप्रलंभ शृंगार रस का परिपाक होता है। कवि पहले अनुराग का प्रदर्शन कर पुनः अंत में नायक के उत्कर्ष का वर्णन करता है।

कुर्यात्क्षुद्रे काव्ये खंडकथायां च नायकं सुखिनः।
आपद्गतं च भूयो द्विजसेवक सार्थवाहादिम्॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अत्र रसं करुणं वा कुर्यादथवा प्रवासशृंगारम् ।
प्रथमानुरागमथवा पुनरंते नायकाभ्युदयम् ॥
—काव्यालंकार (रुद्रट), १६/३३,३४

क्षेमेंद्र—ये औचित्य-संप्रदाय के उन्नायक हैं। [दे० औचित्य-संप्रदाय] इन्होंने काव्यशास्त्र-संबंधी तीन ग्रंथों की रचना की है—'कविकंठाभरण', 'सुवृत्ततिलक' एवं 'औचित्य विचारचर्चा'। ये काश्मीरक थे। इनके पिता का नाम प्रकाशेंद्र तथा पितामह का नाम सिंधु था। इन्होंने अपने ग्रंथों में 'अनंत-राजनृपति' का उल्लेख किया है, जिनका समय १०२८ ई० से १०६३ ई० तक है। 'बृहत्कथामंजरी' के अनुसार ये अभिनवगुप्त के शिष्य थे। इन्होंने 'दशावतार-चरित' नामक ग्रंथ का रचना-काल १०६६ ई० दिया है। उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर क्षेमेंद्र का समय ग्यारहवीं शती का उत्तरार्द्ध निश्चित होता है।

तस्य श्रीमदनंतराजनृपतेः काव्ये किलायं कृतः ।
—औचित्यविचारचर्चा

राज्ये श्रीमदनंतराजनृपतेः काव्योदयोऽयं कृतः ।
—कविकंठाभरण

श्रुत्वाभिनवगुप्ताख्यात् साहित्यं बोधवारिधेः ।
आचार्यशेखररमणेर्विद्याविवृतिकारिणः ॥
—बृहत्कथामंजरी, १९/३७

इनका दूसरा नाम व्यासदास भी था।

श्री व्यासदासान्यतमाभिधेन क्षेमेंद्र नाम्ना विहितः प्रबंधः ॥
—दशावतारचरित, १०/४१

इनके ग्रंथों का विवरण इस प्रकार है।

१. कविकंठाभरण—इसमें कवि-शिक्षा का वर्णन है। 'कविकंठाभरण' में पचपन कारिकाएँ हैं और यह पाँच संधियों में विभक्त है। प्रथम संधि में अकवि को कवित्व-लाभ की शिक्षा का वर्णन कर तीन प्रकार के शिक्षार्थियों का कथन किया गया है—अल्पप्रयत्नसाध्य, कष्टसाध्य तथा असाध्य। इनमें से प्रथम दो के लिए साधन बतलाए गए हैं और अंतिम को अनुपदेश्य कहा गया है। द्वितीय संधि में कवि बनने के लिए व्यावहारिक उपायों तथा तेईस कवि-शिक्षाओं का निर्देश है एवं काव्य-शिक्षा के सौ साधन वर्णित हैं। तृतीय संधि में शिक्षित कवि के लिए काव्य में चमत्कार लानेवाले विधानों का वर्णन कर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चमत्कार को काव्य का अनिवार्य तत्त्व कहा गया है। चतुर्थ संधि में गुण-दोष विभाग का वर्णन एवं पंचम में कवि के लिए लोक-शास्त्र के अनेक पदार्थों के ज्ञान की आवश्यकता पर विचार है।

२. *सुवृत्ततिलक*—यह छंदशास्त्र-संबंधी लघु ग्रंथ तीन विन्यासों में विभक्त है। प्रथम विन्यास में सैंतीस छंदों का वर्णन है और द्वितीय में प्रसिद्ध छंदों के गुण-दोष का वर्णन। तृतीय विन्यास में विविध छंदों के प्रयोग में दक्ष कवियों का उल्लेख कर रस, अवस्था तथा वस्तु के अनुसार छंदःप्रयोग का विधान कथित है।

३. *औचित्यविचारचर्चा*—यह औचित्य-संप्रदाय का ग्रंथ है, जिसमें औचित्य के सत्ताईस भेदों का वर्णन कर उसे काव्य का जीवनाधायक तत्त्व स्वीकार किया गया है। इन्होंने काव्य के अंगोपांग में औचित्य का प्रभाव दिखलाया है। क्षेमेंद्र ने औचित्य के तात्त्विक विवेचन में लोक-मर्यादा को ध्यान में रखा है और इसकी व्याप्ति काव्य के सूक्ष्म तत्त्व पद से लेकर प्रबंध तक में दिखलाई है। [**औचित्य-विषयक मत के लिए दे० औचित्य-सिद्धांत, औचित्य-संप्रदाय और औचित्य के भेद**] क्षेमेंद्र के तीनों ही ग्रंथों के हिंदी अनुवाद हो चुके हैं।

औचित्य-सिद्धांत एवं क्षेमेंद्र के संबंध में विशेष विवरण—डॉ० चंद्रहंस पाठक के शोधप्रबंध 'औचित्य संप्रदाय का हिंदी काव्यशास्त्र पर प्रभाव' में है।

ख

खंड—किसी बृहत् अर्थ में से उसके एक भाग का वर्णन करना खंड है। [**दे० काव्य-संवाद**]

खंडकथा—गद्यकाव्य का एक प्रकार। जब कवि कथा-काव्य में चतुष्पदी का प्रयोग करे तो उसे खंडकथा कहते हैं। [**दे० कथा**] इसका वर्णन 'अग्निपुराण' में मिलता है।

सा कथानाम तद्गर्भे निबंधीयाच्चतुष्पदीम्।
भवेत्खंड कथा। —अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग, १/१७

खंडकाव्य—काव्य का एक प्रकार, जिसमें जीवन का खंड-चित्र प्रस्तुत किया जाता है। यह प्रबंध-काव्य का एक विशेष भेद है। [**दे० काव्य-भेद**]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संस्कृत के पूर्ववर्ती आचार्यों—भामह, दंडी, वामन—आदि ने इसका विवेचन नहीं किया है। सर्वप्रथम आचार्य रुद्रट ने क्षुद्र या लघुकाव्य की अभिधा से एक काव्य का वर्णन किया है। उनके अनुसार लघुकाव्य का नायक अपने सहायकों—द्विज, सेवक, सार्थवाह—के साथ प्रारंभ में आपत्तिग्रस्त दिखाया जाता है और अंत में उसकी आपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं, जिससे उसका सुखमय अंत होता है। इस काव्य में करुणरस या प्रवासगत विप्रलंभ शृंगार का वर्णन कर प्रारंभ में नायक का अनुराग प्रदर्शित किया जाता है और अंत में उसका उत्कर्ष दिखाया जाता है।

कुर्यात्क्षुद्रे काव्ये खंडकथायां च नायकं सुखिनम्।
आपद्गतं च भूयो द्विजसेवकसार्थवाहादिम्॥
अत्र रसं करुणं वा कुर्यादथवा प्रवासशृंगारम्।
प्रथमानुरागमथवा पुनरंते नायकाभ्युदयम्॥

—काव्यालंकार, १६/३३-३४

रुद्रट ने प्रबंधकाव्य के दो प्रकारों का निरूपण किया है—महान् और लघु—

संति द्विधा प्रबंधाः काव्यकथाख्यायिकादयः काव्ये।
उत्पाद्यानुत्पाद्या महल्लघुत्वेन भूयोऽपि॥

—वही, १६/२

सर्वप्रथम खंड-काव्य की परिभाषा विश्वनाथ ने 'साहित्यदर्पण' में प्रस्तुत की है। उनके अनुसार खंडकाव्य में एकदेशीयता होती है या वह एकदेशानुसारी होता है।

खंडकाव्यं भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारि च।

—साहित्यदर्पण, ६/२२८-२२९

विश्वनाथ ने खंडकाव्य को काव्य का एकदेशानुसारी कहा है। उनके मत से काव्य किसी भाषा या उपभाषा में रचित उस रचना को कहते हैं, जो सर्गबद्ध तथा एक कथा का निरूपक हो और उसमें सभी संधियाँ न हों। काव्य के एक अंश का अनुसरण खंडकाव्य में होता है।

भाषाविभाषानियमात्काव्यं सर्गसमुत्थितम्।
एकार्थप्रवणैः पद्यैः संधिसामग्र्यवर्जितम्॥ —वही

विश्वनाथ की परिभाषा में खंडकाव्य का स्वरूप स्पष्ट नहीं होता; पर उससे यह ज्ञात होता है कि महाकाव्य की अपेक्षा इसका आकार लघु हो और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसमें जीवन के एक पक्ष या दृश्य का चित्रण किया जाय। विश्वनाथ खंडकाव्य की विषयगत सीमाओं का ही संकेत करते हैं, उनकी दृष्टि इसकी रूप-विधान-विषयक संभावनाओं की ओर नहीं गई। उनका कथन है कि खंडकाव्य का परिमित विषय सीमित आकार में ही अभिव्यक्त हो।

खंडकाव्य में महाकाव्य की भाँति विषय, शैली एवं पात्र के विचार से वही गरिमा नहीं होती और न इसमें जातीय जीवन का विस्तृत चित्र उपस्थित किया जाता है। सीमित या लघु आकार में रचित कथा-काव्य को ही खंडकाव्य कहा जा सकता है। इसका कथानक ऐतिहासिक, काल्पनिक या मिश्र—कोई भी हो सकता है; पर महाकाव्य की भाँति कथानक की ऐतिहासिकता इसमें अनिवार्य नहीं है। इसमें जीवन के एक अंश का चित्रण होता है, जो अपने में पूर्ण रहता है। इसका अभिप्राय यह है कि किसी महाकाव्य के एक अंश या एक सर्ग को खंडकाव्य नहीं कहा जा सकता। इसमें निहित खंड शब्द जीवन के आंशिक रूप का द्योतक है। कवि, जीवन के संपूर्ण रूप से प्रभावित न होकर उसके आंशिक या खंड-रूप को ग्रहण करता है।

महाकाव्य के वस्तु-संघटन की भाँति नाट्य-संधियों का निर्वाह खंडकाव्य के लिए आवश्यक नहीं है और न इसमें अनेक प्रासंगिक कथाओं का नियोजन होना चाहिए। इसमें मुख्य घटना एक ही होती है और उसमें जटिलता का अभाव होता है। महाकाव्य की तरह इसमें सर्गों का विभाजन आठ से अधिक नहीं होता। विषय के विस्तार और लाघव की दृष्टि से खंडकाव्य का विभाजन अनेक सर्गों में भी हो सकता है और इसका आकार एक सर्ग का भी हो सकता है। इसके लिए सर्गों की संख्या निर्धारित नहीं की जा सकती।

खंडकाव्य में छंद-विधान व्यावहारिक दृष्टि से होना चाहिए। इसमें एक छंद का ही प्रयोग अधिक काम्य है। इसका स्वरूप समाख्यानात्मक होना चाहिए; पर विषय की दृष्टि से यह भावाभिव्यंजक या प्रगीतात्मक भी हो सकता है। उदाहरण के लिए 'मेघदूत' (संस्कृत) एवं 'जयद्रथ वध' (हिंदी) को रखा जा सकता है।

खंडिता—नायिका का अवस्थानुसार भेद। **[दे० नायिका-भेद]** परस्त्री संसर्ग के चिह्नों (सुरतचिह्न) से युक्त नायक (प्रिय या पति) को देखकर ईर्ष्या से कुपित होनेवाली नायिका खंडिता कही जाती है। इसकी चेष्टाएँ हैं—अस्फुटालाप, चिंता, संताप, निःश्वास, तूष्णीभाव तथा अश्रुपात करना। यह भेद मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा, परकीया—तथा गणिका सभी में घटित होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसका सर्वप्रथम निरूपण भरत ने किया है, तत्पश्चात् रुद्रट, भोज, धनंजय, विश्वनाथ, भानुदत्त प्रभृति आचार्यों ने इसका विवेचन किया।

भरत मुनि ने खंडिता का स्वरूप-विमर्श करते हुए बताया कि जिसका प्रिय किसी अन्य नायिका के प्रेम-प्रसंग में उलझ जाने के कारण ठीक समय पर उसके पास न आए और उसके न आने के कारण जो दुःखित हो, ऐसी नायिका खंडिता कही जाती है।

व्यासंगादुचिते यस्या वासके नागतः प्रियः।
तदानागमदुःखार्त्ता खंडिता सा प्रकीर्तिता॥

—नाट्यशास्त्र, २२/२१७

रुद्रट ने बताया कि जिसका प्रिय अन्य स्त्री के साथ सदा गमन कर उसके प्रेम को खंडित कर दे, उसे खडिता कहते हैं।

यस्याः प्रेम निरंतरमन्यासंगेन खंडयेत्कांतः।
सा खंडितेति तस्याः कथाशरीराणिभूयांसि॥

—काव्यालंकार, १२/४४

धनंजय के अनुसार जब नायिका को अपने प्रिय के अन्य स्त्री से संभोग करने के अपराध का पता चल जाए और इससे वह ईर्ष्या से कलुषित हो जाय तो उसे खंडिता कहेंगे।

विश्वनाथ के मत से जिसका नायक किसी अन्य स्त्री से प्रेम संभोग के चिह्नों से युक्त होकर उसके निकट आए और इससे वह अपने प्रिय के प्रति ईर्ष्या से कलुषित हो जाय तो उसे खंडिता कहा जाएगा।

पार्श्वमेति प्रियो यस्या अन्यसंयोगचिह्नितः।
सा खंडितेति कथिता धीरैरीर्ष्याकषायिता॥

—साहित्यदर्पण, ३/७५

परस्त्री संभोग चिह्नों से युक्त होकर प्रातःकाल जिस नायिका के पास उसका पति आए उसे भानुदत्त खंडिता कहते हैं।

अन्योपभोगचिह्नितः प्रातरागच्छति पतिर्यस्याः सा खंडिता।

—रसमंजरी, पृ० १०२

पियतन औरै नारि के रति के चिह्न निहारि।
दुखित होत सो खंडिता बरनत सुकवि बिचारि॥

—रसराज, १२२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनत-रमे रति-चिह्न लखि, पीतम के सुभ गात।
दुखित होइ सो खंडिता, बरनत मति-अवदात ॥
—जगद्विनोद, १५६

उदाहरण—

क. वक्षोज चिह्नितमुरो दयितस्य वीक्ष्य
दीर्घं न निःश्वसिति जल्पति नैव किंचित्।
प्रातर्जलेन वदनं परिमार्जयंती
बालाविलोचनजलानि तिरोदधाति ॥

"जब प्रिय प्रातःकाल आया तो उसके वक्ष पर परस्त्री के स्तन के चिह्नों को देखकर नायिका जोर से साँस छोड़ने लगी और मुख से कुछ भी नहीं कह सकी। प्रिय के इस अपराध को देखकर उसकी आँखों में अश्रु भर आए और वह उन्हें जल लेकर मुख धोने के बहाने हटाने लगी।"

ख. रसिकराज आलस-भरे, खरे दृगन की ओर।
कछुक कोप, आदर कछू, करत भावती भोर ॥
—जगद्विनोद, १६०

खलेकपोतिका न्याय—[दे० समुच्चय अलंकार]

ग

गणना—एक नवीन अलंकार। इसके उद्‌भावक आचार्य केशवदास हैं। जब एक से दस तक प्रयोग में आनेवाले शब्दों का कथन किया जाय तो गणना अलंकार होगा।

गणना गणना सों कहत जिनके बुद्धि प्रकास।—कविप्रिया, ११/१

गति—भोज-वर्णित एक अल्पप्रसिद्ध शब्द का अलंकार। गति अलंकार में कवि की काव्य-रचना-विषयक शक्ति का उल्लेख करते हुए पद्य, गद्य एवं मिश्रवाक्य को अलंकार कहा गया है। जब कवि यथामति, यथाशक्ति एवं यथारुचि काव्य एवं पात्र की रचना में गति प्रदर्शित करे तो वहाँ गति अलंकार होगा।—

पद्यं गद्यं च मिश्रं च काव्यं यत्सा गतिः स्मृता।
अर्थौचित्यादिभिः सापि वागलंकार इष्यते ॥२/८
यथामति यथाशक्ति यथौचित्यं यथारुचि।
कवेः पात्रस्य चैतस्याः प्रयोग उपपद्यते ॥२/११
—सरस्वतीकंठाभरण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गद्य—(गद्य काव्य का एक प्रकार) संस्कृत-आचार्यों ने छंदहीन रचना को गद्य कहा है। विश्वनाथ के अनुसार छंदबंधहीन शब्दार्थ-योजना को गद्य कहते हैं—

वृत्तगंधोज्झितं गद्यं —साहित्यदर्पण, ६/३३०

दंडी ने कहा है कि सुबंत, तिङंत पदसमुदाय में गण-मात्रादि के नियत पाद का न होना गद्य है।

अपादः पदसंतानो गद्यम्। —काव्यादर्श, १/२३

आचार्य वामन ने गद्य काव्य के तीन प्रकार माने हैं—वृत्तगंधि, चूर्ण और उत्कलिकाप्राय—

गद्यं वृत्तगंधि चूर्णमुत्कलिकाप्रायं च ।

—काव्यालंकार सूत्र, १/३/३२

विश्वनाथ ने इन तीन प्रकारों के अतिरिक्त गद्य के एक अन्य भेद मुक्तक का भी वर्णन किया है। इस प्रकार गद्य काव्य के चार भेद माने गए—वृत्तगंधि, चूर्ण, उत्कलिकाप्राय और मुक्तक।

वृत्तगंधोज्झितं गद्यं मुक्तकं वृत्तगंधि च।
भवेदुत्कलिकाप्रायं चूर्णकं च चतुर्विधम् ॥

—साहित्यदर्पण, ६/३३०

विश्वनाथ के मतानुसार समास रहित रचना को मुक्तक कहते हैं—

आद्यं (मुक्तकम्) समास-रहितम्। —साहित्यदर्पण, ६/३३१

वृत्तगंधि में छंदोबंध से युक्त वाक्य रहते हैं और समासरहित तथा ललित पदयुक्त गद्य चूर्ण कहलाता है। उत्कलिकाप्राय में दीर्घ-समास तथा उद्धत पद का प्रयोग होता है। संस्कृत आचार्य गद्य को गद्यकाव्य के रूप में स्वीकार करते हैं।

गद्य काव्य के अन्य प्रकारों में आख्यायिका [दे० आख्यायिका] और कथा [दे० कथा] का भी नाम आता है। इसके अन्य भेदों का कथन आनंदवर्द्धन, अभिनव गुप्त एवं हेमचंद्र ने किया है। आनंदवर्द्धन ने परिकथा, सकलकथा तथा खंडकथा का उल्लेख किया है और अभिनव ने इनकी परिभाषा दी है, अन्य भेदों का उल्लेख नहीं किया। हेमचंद्र ने इसके दस भेदों का वर्णन किया है—आख्यान, निदर्शन, प्रवह्लिका, मतल्लिका, मणिकुल्या, परिकथा, खंडकथा, सकलकथा, उपकथा तथा बृहत्कथा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१. आख्यान—जब किसी प्रबंध के मध्य, दूसरों को समझाने के लिए, ग्रंथिक नलादि के उपाख्यान की भाँति अन्य उपाख्यानों को अभिनय, पाठ या गान के द्वारा कहे तो उपाख्यान होता है। इसका उदाहरण गोविंद है।

प्रबंधमध्ये परप्रबोधनार्थं नलाद्युपाख्यानमिवोपाख्यानमभिनयन् पठन् गायन् यदैको ग्रंथिकः कथयति तद्गोविंदवदाख्यानम्।

—काव्यानुशासन, पृ० ४०६

२. निदर्शन—जिस रचना में पशु-पक्षियों या उनसे इतर प्राणियों की चेष्टाओं के द्वारा कार्याकार्य का निर्णय कराया जाय, उसे निदर्शन कहते हैं। जैसे, पंचतंत्र आदि।

तिरश्चामतिरश्चां वा चेष्टाभिर्यत्र कार्यमकार्यं वा निश्चीयते तत् पंचतंत्रादिवत् धूर्त्तविटकुट्टिनीमतमयूरमार्जारिकादिवच्च निदर्शनम्।

—काव्यानुशासन, पृ० ४०५

३. प्रवह्लिका—प्रधान पात्र का आधार ग्रहण कर जब दो व्यक्तियों में विवाद हो और प्राकृत में रचित हो तो प्रवह्लिका नामक प्रकार होता है। जैसे, चेटक आदि।

प्रधानमधिकृत्य यत्र द्वयोर्विवादः सोऽर्धप्राकृतरचिता चेटकादिवत् प्रवह्लिका॥

—काव्यानुशासन, पृ० ४०७

४. मतल्लिका—प्रेतभाषा या महाराष्ट्र-भाषा में लिखी गई क्षुद्रकथा या लघुकथा को मतल्लिका कहते हैं। जैसे, गोरोचन या अनंगवती। मतल्लिका के लिए कहीं-कहीं मंथल्लिका शब्द का भी प्रयोग होता है। इसकी दूसरी परिभाषा यह है कि जब किसी रचना में किसी नीच पुरोहित या अमात्य आदि द्वारा कोई कार्य प्रारंभ किया जाय और उसकी समाप्ति न होने के कारण उनका उपहास हो तो उसे मतल्लिका कहते हैं।

प्रेतमहाराष्ट्रभाषया क्षुद्रकथा गोरोचनानंगवत्यादिवन्मतल्लिका। यस्यां पुरोहितामात्यतापसादीनां प्रारब्ध निर्वाहे उपहासः साऽपि मतल्लिका।

—वही, पृ० ४०७

५. मणिकुल्या—जिस रचना में पहले वस्तु दिखाई न पड़े; पर आगे चलकर प्रकाशित हो जाय तो ऐसी रचना मणिकुल्या कही जाती है। जैसे—मत्स्यहसित।

यस्यां पूर्वं वस्तु न लक्ष्यते पश्चात्तु प्रकाश्यते सा मत्स्यहसितादिवन्मणिकुल्या।

—वही, पृ० ४०७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

६. *परिकथा*—जिस कथा में पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) में से किसी एक को आधार बनाकर अनंत वृत्तांतों के वर्णन का प्राधान्य हो तो उसे परिकथा कहते हैं। जैसे, शूद्रक।

एकं धर्मादिपुरुषार्थमुद्दिश्य प्रकारवैचित्र्येणानंतवृत्तांतप्रधाना शूद्रकादिवत् परिकथा।

—काव्यानुशासन, पृ० ४०७

७. *खंडकथा*—यदि किसी अन्य ग्रंथ के प्रसिद्ध इतिवृत्त (कथा) को, मध्य या अंत से लेकर वर्णन किया जाय तो वह खंडकथा होगी। जैसे, इंदुमती।

—मध्यादुपांततो वा ग्रंथांतरप्रसिद्धमितिवृत्तं यस्यां वर्ण्यंते सेंदुमत्यादिवत् खंडकथा।

—वही, पृ० ४०७

८. *सकलकथा*—जिस कथा में सभी पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) का वर्णन किया जाय उसे सकलकथा कहते हैं। जैसे, समरादित्य।

—समस्तफलांतेतिवृत्तवर्णनासमरादित्यवत् सकलकथा —वही, पृ० ४०७

९. *उपकथा*—यदि प्रसिद्ध कथांतर का एक चरित्र में उपनिबंधन किया जाय तो उसे उपकथा कहते हैं। जैसे, चित्रलेखा।

—एकतर चरिताश्रयेण प्रसिद्धकथांतरोपनिबंध उपकथा। —वही, पृ० ४०७

१०. *बृहत्कथा*—बृहत्कथा अद्भुत अर्थों से युक्त तथा लंभों से अंकित होती है। उदाहरणस्वरूप, नरवाहनदत्त का चरित—

लंभांकिताद्भुतार्था नरवाहनदत्तादिचरितवद् बृहत्कथा ॥

—वही, पृ० ४०७

'अग्निपुराण' में चरण या पदरहित पद-समूह को गद्य कहा गया है और उसके तीन रूप कहे गए हैं—चूर्णक, उत्कलिका तथा वृत्तसंधि।—

अपदः पदसंतानो गद्यं तदपि गद्यते।
चूर्णकोत्कलिकावृत्तसंधिभेदात् त्रिरूपकम् ॥

इनके स्वरूप इस प्रकार हैं—चूर्णक अल्पाल्प समास से युक्त होता है और इसमें कर्कश शब्दावली प्रयुक्त होती है। उत्कलिका में लंबे-लंबे समासों का प्रयोग होता है। वृत्तसंधि में शब्दावली न तो अत्यंत कर्कश होती है, न अति कोमल तथा उसमें समास भी प्रौढ़ स्तर का नहीं होता। उसमें वृत्त की छाया अति क्षीण होती है।

अल्पाल्पविग्रहं नातिमृदुसंदर्भनिर्भरम्।
चूर्णकं नामतो दीर्घसमासोत्कलिका भवेत् ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भवेन्मध्यमसंदर्भं नातिकुत्सितविग्रहम् ।
वृत्तच्छायाहरं वृत्तसंधि नैतत्किलोत्कटम् ॥

—अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग, १/१०,११

अग्निपुराण में गद्यकाव्य के पाँच प्रकार माने गए हैं—आख्यायिका, कथा, खंडकथा, परिकथा तथा कथानिका। कथानिका में सुखपरक भयानक रस, मध्य में करुण रस तथा अंत में अद्भुत रस का वर्णन होता है। इसका प्रधान-विषय उदात्त नहीं होता; पर उसका सुनियोजित होना आवश्यक है।

भयानकं सुखपरं गर्भे च करुणोरसः ।
अद्भुतोंऽते सुक्लृप्तार्थो नोदात्ता सा कथानिका ॥

—वही, १/२०

संस्कृत गद्यकाव्य के प्रमुख भेदों में कथा, आख्यायिका, परिकथा एवं कथानिका प्रसिद्ध है। वैसे हेमचंद्र ने इसके अनेक ऐसे प्रकारों का वर्णन किया है, जो अधिक प्रचलित नहीं हैं तथा इनका उल्लेख किसी अन्य आचार्य ने भी नहीं किया है। इन भेदों के उदाहरणों को देखकर अनुमान लगाया जाता है कि ऐसे ग्रंथों की रचना अवश्य हुई होगी और उनकी संख्या हेमचंद्र के समय तक पर्याप्त रही होगी। संस्कृत का यह काव्यरूप काफी सशक्त होगा; पर खेद की बात है कि आज ये ग्रंथ उपलब्ध नहीं होते।

आधार ग्रंथ—
भामह कृत काव्यालंकार का हिंदी भाष्य—(भूमिका सहित)—
भाष्यकर्त्ता—आचार्य देवेंद्रनाथ शर्मा
संस्कृत महाकाव्य की परंपरा—डॉ० केशवराव मुसलगाँवकर
भारतीय काव्यालोचन—डॉ० राजवंश सहाय 'हीरा'

गर्भ—संधि का तृतीय भेद। [दे० संधि]

गर्भांक—किसी नाटक के एक अंक के अंतर्गत स्थित दूसरे अंक को गर्भांक कहते हैं। इसमें भी अंक की तरह सूत्रधार-कृत मंगलाचरण एवं प्रस्तावना का विधान किया जाता है तथा बीजरूप इतिवृत्त एवं नायक का प्रयोजन अंशतः उपन्यस्त रहता है।

अंकोदरप्रविष्टो यो रंगद्वारामुखादिमान् ।
अंकोऽपरः स गर्भांक सबीजः फलवानपि ॥

—साहित्यदर्पण, ६/२०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गर्भितता—वाक्यदोष का १६वाँ भेद। [दे० **वाक्यदोष**]

गम्यौपम्य—जब औपम्य (सादृश्य) गम्य (व्यंग्य) रहे अर्थात् सादृश्य की शब्दतः प्रतीति न होकर अर्थबल से (अर्थ द्वारा) हो तो उसे गम्यौपम्य कहते हैं।

गम्यौपम्यमूलक (अलंकार)—ऐसे अलंकार, जिनके मूल में उपमा व्यंग्य रूप से रहती है अर्थात् जहाँ उपमा (सादृश्य) की प्रतीति अर्थ के द्वारा होती है, शब्द से नहीं। जैसे रूपक और प्रतीप आदि।

गर्व—संचारी भाव। [**दे० संचारी भाव**] रूप, गुण, विद्या, धन, बल, ऐश्वर्य आदि के उत्कर्ष के कारण मन में ऐसी भावना का आना, जिससे मनुष्य अपने को सर्वाधिक महनीय व्यक्ति समझने लगे तो गर्व संचारी भाव होता है। इसमें अपने गौरव को समझकर अन्य को अपमानित भी करने का भाव सम्मिलित है।

भरत के अनुसार गर्व ऐश्वर्य, कुल, रूप, यौवन, विद्या, बल, धन तथा लाभ प्रभृति विभावों से उत्पन्न होता है। इसका अभिनय दूसरों का अनादर करने, अवज्ञा, अविनय, अनुत्तर, अभाषण, उपहास, अंगावलोकन, विभ्रम, कटुवाणी, गुरुजनों की अवमानना, अकारण तिरस्कार आदि अनुभावों द्वारा होता है।—

गर्वो नाम—ऐश्वर्यकुलरूपयौवनविद्याबलधनलाभादिभिर्विभावैः समुत्पद्यते। तस्यासूयावज्ञाधर्षणानुत्तरदानासंभाषणांगावलोकनविभ्रमापहसनवाक्यारुष्यगुरुव्यतिक्रमणाधिक्षेपवचनविच्छेदादिभिरनुभावैरभिनयः प्रयोक्तव्यः।

विद्यावाप्ते रूपादैश्वर्यादथ धनागमाद्वापि।
गर्वः खलु नीचानां दृष्ट्यंगविचालनैः कार्यः॥

—नाट्यशास्त्र, ७/६७

धनंजय ने उच्चकुल, लावण्य, बल, ऐश्वर्य आदि के द्वारा उत्पन्न मद को गर्व कहा है। इसके अनुभाव हैं—ऐंठ, तिरस्कार, दूसरों का अपमान तथा अपने अंगों को विलास के साथ देखना।—

गर्वोऽभिजनलावण्यबलैश्वर्यादिभिर्मदः।
कर्माण्याधर्षणावज्ञा सविलासांगवीक्षणम्॥

—दशरूपक, ४/१६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विश्वनाथ प्रभाव, ऐश्वर्य, विद्या तथा कुलीनता आदि के कारण उत्पन्न मद को गर्व कहते हैं, जो दूसरों की अवज्ञा, सविलास अंग-दर्शन तथा अविनय प्रभृति चिह्नों द्वारा प्रकट होता है।—

गर्वोमदः प्रभावश्री विद्यासत्कुलादिजः।
अवज्ञासविलासांगदर्शनाविनयादिकृत्॥

—साहित्यदर्पण, ३/१५४

भानुदत्त के अनुसार ऐसी मनोभावना को गर्व कहते हैं, जिसमें अपने को सर्वाधिक बुद्धिमान तथा दूसरों को मूर्ख समझा जाता है। इसके कारण (विभाव) हैं बल, ऐश्वर्य, उच्चकुलीनता, सौंदर्यादि।—

आत्मनिसर्वाधिकत्वबुद्धिः सर्वस्मिन्नधमबुद्धिर्वा गर्वः। बलैश्वर्याभिजन-लावण्यादयो विभावाः। अनुभावा अवज्ञाभ्रूदृष्टिचेष्टितहसितपौरुषप्रकाशादयः।

—रसतरंगिणी पृ० २६१

पंडितराज जगन्नाथ रूप, धन, विद्या आदि के कारण अपने उत्कर्ष का ज्ञान होने पर दूसरों का तिरस्कार करने की मनोवृत्ति को गर्व कहते हैं।—

रूपधनविद्यादिप्रयुक्तात्मोत्कर्षज्ञानाधीनपरावहेलनं गर्वः।

—रसगंगाधर, पृ० १०४

उदाहरण—

क. धृतायुधो यावदहं तावदन्यैः किमायुधैः।
यद्वा न सिद्धमस्त्रेण मम तत्केन साध्यताम्॥

अश्वत्थामा की उक्ति—"जब तक मेरे पास अस्त्र हैं, तब तक दूसरे शस्त्र-धारियों की क्या आवश्यकता है? जो कार्य मेरे अस्त्रों द्वारा सिद्ध न होगा उसे दूसरे कैसे पूर्ण करेंगे ?"

यहाँ अश्वत्थामा के कथन में बल के आधिक्य के कारण उत्पन्न गर्व का वर्णन है।

ख. कुंभकरन से बंधु मम, सुत प्रसिद्ध सक्रारि।
मोर पराक्रम सुनेसि नहि, जितेउँ चराचर झारि॥—रामायण

—यहाँ रावण की उक्ति में गर्व प्रकट हो रहा है कि 'मेरे समान और कौन है ?'

गर्विता—पति के प्रेम या अपने रूप के कारण गर्व करनेवाली नायिका गर्विता है। इसे वक्रोक्तिगर्विता भी कहते हैं। **[दे० वक्रोक्तिगर्विता]**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ग्लानि—संचारी भाव। [दे० संचारी भाव] मानसिक दुःख (आधि) तथा शारीरिक दुःख (व्याधि), रति, भूख, प्यास, मनस्ताप आदि के कारण उत्पन्न निर्बलता को ग्लानि कहते हैं। इसमें अंग शिथिल हो जाते हैं और कार्य में कोई उत्साह नहीं दिखाया जाता। भरत ने इसके स्वरूप को स्पष्ट करते हुए बताया कि वमन, विरेचन, व्याधि, तप, उपवास, मानसिक चिंता, अति मद्यपान, अति रतिक्रीडा, अधिक व्यायाम, दूर तक यात्रा करने, भूख, प्यास, नींद आदि के कारण ग्लानि उत्पन्न होती है। इसके अनुभाव हैं—मंदस्वर, कांतिहीन नेत्र, वैवर्ण्य, मंद पदक्षेप, शक्तिहीनता, स्वरभेद आदि।

वांतविरिक्तव्याधिषु तपसा जरसा च जायते ग्लानिः।
कार्श्येन साभिनेया मंदभ्रमणेन कंपेन॥

—नाट्यशास्त्र, ७/३१

धनंजय के अनुसार रति-द्वारा उत्पन्न थकावट, भूख-प्यासादि के कारण उत्पन्न निष्प्राणता या दुर्बलता को ग्लानि कहते हैं। इसके अनुभाव वैवर्ण्य, अनुत्साह तथा वाणी और क्रिया का मंद पड़ना है।—

रत्याद्यायासतृट्क्षुद्भिर्ग्लानिर्निष्प्राणतेह च।
वैवर्ण्यकंपानुत्साहक्षामांगवचनक्रियाः॥

—दशरूपक, ४/१०

रामचंद्रगुणचंद्र ने पीड़ा को ग्लानि कहा है। यह वार्द्धक्य तथा श्रम से उत्पन्न होती है।—

ग्लानिः पीडा जराऽऽयासैः, अशक्तिः कार्श्यकंपभाक्।

—नाट्यदर्पण, सूत्र १८४

विश्वनाथ रति, श्रम, मानसिक क्लेश, क्षुधा, प्यास आदि से उत्पन्न दुर्बलता को ग्लानि कहते हैं। इसमें कंप होता है और कार्य करने में उत्साह नहीं रहता।

रत्यायासमनस्तापक्षुत्पिपासादिसंभवा।
ग्लानिर्निष्प्राणताकंपकार्यानुत्साहतादिकृत्॥

—साहित्यदर्पण, ३/१७०

भानुदत्त के अनुसार निर्बलता और श्रम का सहन नहीं करना ग्लानि है। यह रतिश्रम, भूख, प्यास आदि से उत्पन्न होती है और बिना प्रयोजन सूनी दृष्टि का होना इसका अनुभाव है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सग्लानिर्निर्बलता निःसहता वा। तत्र विभावा रत्यायासतृट्क्षुधादयः। अनुभावा निर्व्यापारदृग्भ्रमादयः। —रसतरंगिणी, पृ० ३४२, पंचम तरंग।

पंडितराज जगन्नाथ ने उस दुःखविशेष को ग्लानि कहा है, जिसकी उत्पत्ति आधि-व्याधिजन्य दौर्बल्य से होती है। इसके अनुभाव वैवर्ण्य, अंगशैथिल्य, दृग्भ्रमण आदि हैं।

आधिव्याधिजन्यबलहानिप्रभवोवैवर्ण्य शिथिलांगत्व दृग्भ्रमणादिहेतुर्दुःखविशेषो ग्लानिः। —रसगंगाधर, पृ० ९९

उदाहरण—

क. **शयिता शैवलशयने सुषमाशेषा नवेंदुलेखेव।**
प्रियमागतमपि सविधे सत्कुरुते मधुरवीक्षणैरेव॥

—नूतनचंद्रकला के सदृश, जिसमें सुषमा-मात्र रह गई है, वह शैवाल पर सोई हुई सुंदरी निकट आए प्रिय का स्वागत केवल मधुर दृष्टि से करती है।

यहाँ विरह-जनित पीड़ा से अंग की शिथिलता का वर्णन है।

ख. **सिथिल गात कंपत हियो, बोलत बनत न बैन।**
करी खरी विपरीत कहुँ, कहत रँगीले नैन॥

यहाँ नायक की रतिजन्यग्लानि का वर्णन है।

गाढतारुण्या—प्रगल्भा नायिका का एक भेद। [**दे० प्रगल्भा**] जिस नायिका का तारुण्य (यौवन) अत्यधिक उभार पर हो उसे गाढतारुण्या कहते हैं।

गाढयौवना—प्रगल्भा नायिका का एक भेद। [**दे० प्रगल्भा**] यौवनांधा का अन्य नाम गाढयौवना है। [**दे० यौवनांधा**]

गुण (काव्यगुण)—काव्य या साहित्य का एक तत्त्व। संस्कृत काव्यशास्त्र में सर्वप्रथम आचार्य वामन ने गुण के स्वरूप का वर्णन किया या उसकी परिभाषा प्रस्तुत की। इनके अनुसार काव्य के शोभाकारक धर्म को गुण कहते हैं। गुण नित्य हैं; इनके अभाव में काव्य में सौंदर्याधान नहीं हो सकता या काव्य में शोभा का अभाव हो जायगा।

गुण शब्द तथा अर्थ के धर्म हैं, ये काव्य के शोभाधायक उपादान हैं।

काव्यशोभायाः कर्त्तारो धर्मा गुणाः॥ ३, १, १

ये खलु शब्दार्थयोर्धर्माः काव्यशोभां कुर्वंति ते गुणाः।

ते चौजः प्रसादादयः।''''''ओजः प्रसादादीनां तु केवलानामस्ति काव्यशोभाकरत्वमिति। —काव्यालंकार सूत्रवृत्ति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूर्वेनित्याः। ३, १, ३, पूर्वेगुणा नित्याः। तैर्विना काव्यशोभानुपपत्तेः॥
—वही

वामन ने भरतादि के प्रतिकूल गुण को रस का धर्म स्वीकार न कर शब्दार्थ का धर्म माना और काव्य में उसकी स्वतंत्र और महनीय सत्ता स्वीकार की। इन्होंने गुण को रस का आश्रित न मानकर रस को गुण का अंग अंगीकार किया। इनके मत से रस कांति गुण का अंग है।

ध्वनिवादी आचार्य गुण को रस का धर्म या काव्य के प्रधानभूत तत्त्व रस के आश्रित कहते हैं। ये शरीरभूत शब्दार्थ के धर्म नहीं, आत्मभूत रस के अंग हैं।

तमर्थमवलंबंते येंऽगिनं ते गुणाः स्मृताः॥
—ध्वन्यालोक, २/६

काव्य की आत्मा रस है और गुण रस के धर्म हैं। जिस प्रकार मनुष्य के शरीर में शौर्यादि गुणों की स्थिति होती है, उसी प्रकार काव्य में रस को उत्कर्ष प्रदान करनेवाले धर्म को गुण कहा जाता है। रस के साथ इनकी अचल स्थिति होती है; जहाँ रस नहीं होगा, वहाँ गुण की भी स्थिति संभव नहीं है। गुण रस के शोभाधायक तत्त्व हैं; उसके उपकारक हैं। शूरता एवं वीरता आदि गुणों का संबंध मनुष्य के शरीर से न होकर आत्मा के साथ होता है। यदि आत्मा के साथ इनका संबंध न होकर शरीर के साथ होता तो मृत्यु के पश्चात् भी इन गुणों को शरीर में विद्यमान रहना चाहिए था; किंतु ऐसा नहीं होता। मृत्यु होते ही मनुष्य के गुण तिरोहित हो जाते हैं। अतः, यह सिद्ध होता है कि आत्मा के अभाव में गुणों की स्थिति असंभव है। इसी प्रकार का संबंध रस के साथ काव्यगुणों का भी है। रस काव्य की आत्मा है; अतः इसके साथ गुण का संबंध स्वतः स्थापित हो जाता है। अग्निपुराणकार ने गुण के अभाव में अलंकारयुक्त काव्य को आनंदप्रद नहीं माना। रमणी के शरीर पर सौंदर्यादि गुण के अभाव में हार-जैसे भारस्वरूप प्रतीत होता है, उसी प्रकार अलंकारों से युक्त होकर भी काव्य, गुण के बिना आनंददायक नहीं हो सकता।

अलंकृतमपि प्रीत्यै न काव्यं निर्गुणं भवेत्।
वपुष्यललिते स्त्रीणां हारो भारायते परम्॥
—अग्निपुराण, १०/१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आचार्य भोज ने गुण को उत्कृष्टतर बताते हुए अलंकारयुक्त काव्य को गुण के बिना आनंदरहित माना है। अतः, अलंकारयुक्त होने से काव्य का गुणयुक्त होना ही श्रेयस्कर है।

अलंकृतमपि श्रव्यं न काव्यं गुणवर्जितम्।
गुणयोगस्तयोर्मुख्यो गुणालंकारयोगयोः ॥

—सरस्वतीकंठाभरण

मम्मट के अनुसार यद्यपि मुख्य रूप से गुण रस के धर्म हैं तथापि गौण रूप से वे शब्दार्थ के भी धर्म माने जाते हैं। आत्मा के शौर्यादि गुणों के समान रस के उत्कर्षाधायक एवं अपरिहार्य धर्म गुण हैं। इनकी काव्य में अचल स्थिति होती है।

ये रसस्यांगिनोधर्माः शौर्यादयइवात्मनः।
उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः ॥

—काव्यप्रकाश, ८/६६

गुण के संबंध में रीतिकालीन आचार्य भिखारीदास ने मम्मट का आधार ग्रहण करते हुए भी मौलिक विचार प्रकट किया है।—

ज्यों जीवात्मा में रहै, धर्म सूरता आदि।
त्यों रस ही में होत गुन बरनै गनै सवादि ॥
रस ही के उत्कर्ष को अचल स्थिति गुन होय।
अंगी धरम सुरूपता, अंग धरम नहिं कोय ॥
कहुँ लखि लघु कादर कहै, सूर बड़ो लखि अंग।
रसहि लाज त्यों गुन बिना, अरि सो सुभग न संग ॥

—काव्यनिर्णय, १९/६२-६४

रस कविता को अंग, भूषन हैं भूषन सकल।
गुन सरूप औ रंग, दूषन करे सुरूपता ॥

—वही, १/१३

ज्यों सतजन हिय में नहीं, सूरतादि गुन जाय।
त्यों विदग्ध हिय में रहैं, दस गुन सहज स्वभाव ॥

—वही, १९/२

गुण के स्वरूप-विवेचन का निष्कर्ष यह है कि गुण रस के धर्म हैं और काव्य में इनकी अचल या नित्य स्थिति है। ये रस के उत्कर्षक या काव्य के शोभाधायक तत्त्व हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गुण और अलंकार—गुण और अलंकार के अंतर के संबंध में पूर्ववर्ती आचार्यों के दो प्रकार के मत हैं। उद्‌भट ने अपने 'भामहविवरण' नामक ग्रंथ में उक्त भेद को मिथ्या कल्पना कहकर गुण तथा अलंकार में अभेद संबंध की स्थापना की है। "लौकिक गुण तथा अलंकारों में तो यह भेद किया जा सकता है कि हारादि अलंकारों का शरीरादि के साथ संयोग संवंध होता है, और शौर्यादि गुणों का आत्मा के साथ संयोग संबंध नहीं; अपितु समवाय संबंध होता है, इसलिए लौकिक गुण तथा अलकार में भेद माना जा सकता है। परंतु, काव्य में तो ओज आदि गुण तथा अनुप्रास, उपमा आदि अलंकार; दोनों की ही समवाय-संबंध से स्थिति होती है, इसलिए काव्य में उनके भेद का उपादान नहीं किया जा सकता।"

—हिंदी काव्यप्रकाश—आचार्य विश्वेश्वर, पृ० ३७८

—समवायवृत्त्या शौर्यादयः संयोगवृत्त्या तु हारादयः इत्यस्तु गुणालंकाराणां भेदः, ओजः प्रभृतीनामनुप्रासोपमादीनां चोभयेषामपि समवायवृत्त्या स्थितिरिति गड्डलिकाप्रवाहेणैवेषां भेदः। —काव्यप्रकाश, ८/६७ वृत्ति

उद्‌भट ने (गड्डलिका प्रवाह के द्वारा) यह संकेत किया कि गुण एवं अलंकार में कोई भेद नहीं है, जो लोग इनमें अंतर मानते हैं, वह केवल भेड़ चाल है। दूसरा मत आचार्य वामन का है, जिसके अनुसार काव्यशोभा के उत्पादक धर्म को गुण एवं उस शोभा को अतिशायित करने या बढ़ानेवाले धर्म अलंकार हैं। शब्दार्थ के वे धर्म जो काव्यशोभा को उत्पन्न करनेवाले हैं, उन्हें गुण कहा जाता है, वे ओज एवं प्रसादादि हैं। यमक एवं उपमादि शब्दार्थालंकारों को काव्यशोभा का उत्पादक न होने के कारण गुण नहीं कहा जा सकता। गुण के अभाव में केवल अलंकार ही काव्य के शोभाधायक धर्म नहीं हो सकते; किंतु अलंकार के बिना भी ओजादि गुण काव्य के शोभाधायक धर्म होते हैं। अतः, वे ही काव्य के धर्म कहे जा सकते हैं, अलंकार नहीं। वामन ने अलंकार एवं गुण में दूसरा अंतर यह दिखलाया कि गुण काव्य के नित्य धर्म हैं और अलंकार अनित्य धर्म अर्थात् अलंकार के बिना तो काव्य में काम चल जायगा; किंतु गुणाभाव के कारण उसमें शोभाधान संभव नहीं।

काव्यशोभायाः कर्त्तारो धर्माः गुणाः तदतिशयहेतवस्त्वलंकाराः। ये खलु शब्दार्थयोः धर्माः काव्यशोभां कुर्वंति ते गुणाः। ते च ओजः प्रसादादीनांतु केवलानामस्ति काव्यशोभाकरत्वमिति। तदतिशयहेतवस्त्वलंकाराः।

—काव्यालंकारसूत्र, ३/१, २

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तस्याः काव्यशोभायाः अतिशयस्तदतिशयः, तस्य हेतवः। पूर्वे नित्याः॥ ३/१/३। पूर्वे गुणाः नित्याः तैर्विना काव्यशोभानुपपत्तेः॥—वही

वामन का मत भेदवादी है। इन्होंने दो कारणों से अलंकार एवं गुण के भेद की स्थापना कर दोनों का अंतर स्पष्ट किया है।

क. गुण काव्य के उत्पादक धर्म हैं एव अलंकार काव्यगुणों के द्वारा उत्पादित धर्म का शोभावर्द्धन करते हैं। अतः, गुण को काव्य का स्वरूपाधायक धर्म एवं अलंकार को उत्कर्षाधायक धर्म कहा जा सकता है।

ख. गुण काव्य के नित्य या अनिवार्य तत्त्व हैं; किंतु अलंकारों की स्थिति अनित्य है, वे काव्य के अपरिहार्य अंग नहीं हैं।

आनंदवर्द्धन ने इन दोनों मतों के अतिरिक्त नवीन मत की स्थापना करते हुए गुण को रस का धर्म एवं अलंकार को शब्दार्थ का धर्म स्वीकार किया है। रसध्वनि काव्य में आत्मा की भाँति है; किंतु शब्द और अर्थ अंगादि की तरह हैं। मम्मट ने आनंदवर्द्धन के आधार पर ही अपने मत का प्रतिपादन किया है। उनके अनुसार आत्मा के शौर्यादि गुणों के समान रस के उत्कर्षाधायक एवं अपरिहार्य धर्म गुण हैं तथा काव्य में अलंकारों की स्थिति अंगों के उपकारक हारादि आभूषणों की भाँति है, जो उसे यदाकदा उत्कर्षयुक्त करते हैं।

उपकुर्वंति तं संतं येंऽगद्वारेण जातुचित्।
हारादिवदलंकारास्तेऽनुप्रासोपमादयः॥

—काव्यप्रकाश, ८/६७

निष्कर्ष यह कि अलंकार काव्य के अस्थिर धर्म हैं, रस की भाँति नित्य नहीं। अलंकार और गुण दोनों ही काव्य के उत्कर्षाधायक तत्त्व हैं; किंतु दोनों में अंतर यह है कि जहाँ गुणों के द्वारा काव्य में काव्यात्मकता का सन्निवेश होता है, वहाँ अलंकार उसे केवल उत्कृष्ट बना सकते हैं, उसमें बाह्य चाकचिक्य भर सकते हैं। अभिप्राय यह कि गुण काव्य के आंतर सौंदर्य हैं तो अलंकार बाह्यशोभा-मात्र। अलंकारों के समावेश से काव्य की बाह्यशोभा भले ही बढ़ जाय; परंतु गुणों के द्वारा तो उसकी आंतरिक विभूति प्रकाशित हो उठती है। अलंकारों की स्थिति नीरस काव्य में भी संभव है; किंतु गुण सदा सरल या रसयुक्त काव्य में ही स्थित रहता है। कारण यह कि गुण रस के नित्य धर्म हैं, जहाँ रस होगा वहाँ गुणों की सत्ता अनिवार्य होगी और जब गुण विद्यमान रहेंगे तो रस को उत्कर्ष प्रदान करेंगे ही। गुण सदा रस का उपकार करते हैं; किंतु अलंकारों के घटाटोप में काव्य का स्वारस्य नष्ट हो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जाता है। अलंकार स्वयं शोभा उत्पन्न नहीं कर सकते, उत्पन्न की गई शोभा को बढ़ाते हैं। इसलिए विश्वनाथ ने इन्हें काव्य का अस्थिर धर्म कहा है। इनका अस्तित्व शरीर के कटकादि आभूषणों की भाँति होता है। प्रायः सभी आचार्यों ने गुणों को अचल, नित्य या स्थायी माना है।

गुण और रस—गुण और रस का प्रत्यक्ष संबंध है; क्योंकि रसों को ध्यान में रखकर ही गुणों का प्रयोग किया जाता है। कोमल भाववाले रसों में कोमल और मधुर शब्दों का प्रयोग होना चाहिए, यदि उनके स्थान पर कठोर वर्णों का प्रयोग किया जाय तो रसास्वादन में वाधा उपस्थित हो जायगी। अतः, मधुर भाव को द्योतित करनेवाले रसों के रसत्व को सुरक्षित करने के लिए मधुर एवं कोमल वर्णों का प्रयोग आवश्यक है, इसलिए इन रसों में माधुर्य गुण का व्यवहार होता है। रौद्र, वीभत्स एवं वीर रस में उग्रभावों की व्यंजना होती हैं; अतः इनमें ऐसे शब्दों का गुंफन होना चाहिए, जो उग्रता को प्रकट करने में समर्थ हो सकें। ऐसी स्थिति में उग्रभाववाले रसों की व्यंजना कठोर वर्णों के प्रयोग द्वारा ही संभव है। मधुर एवं उग्र-भावों के अतिरिक्त कवि को शब्दों के संघटन पर भी ध्यान देना पड़ता है। कविता में एक हृदय के भाव को दूसरे हृदय (पाठक) के पास तक पहुँचाना पड़ता है। अतः, कवि इसका ध्यान रखता है कि वह ऐसे शब्दों का प्रयोग करे, जो सरल, सुबोध एवं सर्वजन-सुलभ हों। उसे अप्रचलित एवं क्लिष्ट शब्दों से कविता को बचाना पड़ता है। कविता में केवल रमणीय भावों को ही जागृत करना कवि का अभिप्रेत नहीं होता; अपितु पाठकों के हृदय को अपनी ओर आकृष्ट करना भी होता है। काव्य के श्रवण-मात्र से ही उसका भाव हमारे हृदय में उसी प्रकार व्याप्त हो जाय, जिस प्रकार शुष्क इंधन में अग्नि के लगते ही उसकी सर्वत्र व्याप्ति हो जाती है। इस कार्य के लिए या भाव-प्रसार के लिए कवि को प्रसाद-शैली का अवलंब लेना पड़ता है। ऐसी कविता में प्रसाद गुण का प्रयोग होता है।

गुण के भेद—गुण का भेद-निरूपण व्यापक आधार पर किया गया है। इस संबंध में संस्कृत-आचार्यों के पाँच वर्ग हैं। प्रथम वर्ग उन आचार्यों का है, जिन्होंने भरत का आधार ग्रहण कर गुण को शब्दार्थ का धर्म स्वीकार करते हुए इसके दस प्रकारों का उल्लेख किया। इस वर्ग में भरत, दंडी, वामन, वाग्भट प्रथम, वाग्भट द्वितीय तथा जयदेव आते हैं। इनमें से दंडी और वामन गुण का संबंध क्रमशः मार्ग या रीति से स्थापित करते हैं। वामन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तो एक ही नाम के दस शब्द गुण मानते हैं और दस अर्थ गुण। भरतकृत दस गुणों के नाम हैं—श्लेष, प्रसाद, समता, समाधि, माधुर्य, ओज, पदसुकुमारता, अर्थव्यक्ति, उदारता और कांति।

द्वितीय वर्ग के अंतर्गत आनंदवर्द्धन तथा उनके अनुयायी मम्मट, हेमचंद्र, विद्याधर, विश्वनाथ और जगन्नाथ हैं। ये पूर्वोक्त दस गुणों का अंतर्भाव माधुर्य, ओज और प्रसाद तीन गुणों में कर देते हैं।

तृतीय वर्ग में एकमात्र कुंतक आते हैं। इन्होंने साधारण गुणों के अंतर्गत औचित्य और सौभाग्य तथा विशेष गुणों में माधुर्य, प्रसाद, लावण्य और आभिजात्य का उल्लेख किया है। कुंतक ने मार्ग के अंतर्गत गुणों का निरूपण किया है और तीन मार्गों—सुकुमार, विचित्र और मध्यम—के अंतर्गत इन्हें स्थान दिया है। कुंतक-कृत मार्ग कविस्वभाव पर आश्रित हैं, देशपरक नहीं। [वक्रोक्तिजीवित, १/३०-५०] चतुर्थवर्ग में दो आचार्य आते हैं—भोजराज और विद्यानाथ।

भोज ने गुणों के चौबीस भेद किए और प्रत्येक का बाह्य, आभ्यंतर एवं वैशेषिक रूप में विभाजन कर बहत्तर भेदों का निरूपण किया। इनके प्रमुख चौबीस भेदों में से दस तो भरत-कृत भेद हैं और शेष के नाम हैं—उदात्तता, और्जित्य, प्रेय, सुशब्दता, सौक्ष्म्य, गांभीर्य, विस्तर, संक्षेप, संमितता, भाविकता, गति, रीति, उक्ति और प्रौढ़ि। [सरस्वतीकंठाभरण, १/६०-६५]

पंचम वर्ग के अंतर्गत हेमचंद्र एवं जयदेव द्वारा संकेतित अज्ञातनामा आचार्य हैं, जिन्होंने पाँच या छह गुणों का वर्णन किया है। पाँच गुण हैं—ओज, प्रसाद, मधुरिमा, साम्य तथा औदार्य। छह गुणों में न्यास, निर्वाह, प्रौढ़ि, औचिती, शास्त्रांतररहस्योक्ति और संग्रह आते हैं। [काव्यानुशासन, पृ० २४० तथा चंद्रालोक, ४/१२]

'अग्निपुराण' में गुणों की संख्या अट्ठारह है और उनके तीन विभाग किए गए हैं—शब्दगुण, अर्थगुण तथा शब्दार्थगुण। काव्य के शरीर रूप शब्द पर आश्रित गुणों को शब्दगुण कहते हैं, इनकी संख्या सात है—श्लेष, लालित्य, गांभीर्य, सुकुमारता, उदारता, सत्य और यौगिकी।

> शब्दमाश्रयते काव्यं शरीरं यः स तद्गुणः।
> श्लेषो लालित्यगांभीर्ये सौकुमार्यमुदारता॥
> सत्येव यौगिकी चेति गुणाः शब्दस्य सप्तधा॥
>
> —अग्निपुराण, काव्यशास्त्रीय भाग, १०/५-६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अर्थगुण के छह प्रकार हैं—माधुर्य, संविधान, कोमलता, उदारता, प्रौढ़ि एवं सामयिकत्व। अर्थगुण वहाँ होता है, जहाँ किसी भी प्रकार से प्रस्तुत किए गए विषय में उत्कर्ष का निर्वाह किया जाय। शब्द एवं अर्थ के उपकारक गुण को 'अग्निपुराण' में उभयगुण कहा गया है। इसके छह प्रकार हैं—प्रसाद, सौभाग्य, यथासंख्य, प्रशस्ति, पाक तथा राग।

गुण के वर्गीकरण के संबंध में वामन ने शब्द तथा अर्थ के धर्म होने के कारण उन्हें रीति-चमत्कार कहा है। पर, आनंदवर्द्धन ने उनका संबंध रस से स्थापित कर उन्हें चित्तवृत्ति रूप माना है। इन्होंने रसानुभूति की प्रक्रिया में चित्त की तीन अवस्थाओं—द्रुति, दीप्ति तथा व्याप्ति—के आधार पर तीन गुणों की कल्पना की और माधुर्य (द्रुति), ओज (दीप्ति) और प्रसाद (व्याप्ति) के रूप में उन्हें मान्यता दी। "रसानुभूति की प्रक्रिया में चित्त की केवल ये ही तीन अवस्थाएँ होती हैं, अतएव तीन से अधिक गुणों की कल्पना निराधार है।"—डॉ० नगेंद्र [**हिंदी काव्यालंकारसूत्रवृत्ति—भूमिका, पृ० ७१**]

मम्मट ने वामन-कृत दस शब्दगुणों और दस अर्थगुणों का खंडन कर उन्हें तीन गुणों में अंतर्भूत किया। इनके अनुसार वामनोक्त दस शब्दगुणों में से कुछ तो माधुर्यादि तीन गुणों में अंतर्भूत हो जाते हैं; कुछ दोषाभाव-रूप होते हैं और कुछ दोषरूप हो जाते हैं।

केचिदंतर्भवंत्येषु दोषत्यागात्परे श्रिताः ॥
अन्ये भजंति दोषत्वं कुत्रचिन्न ततो दश ॥

—काव्यप्रकाश, ८/७२

मम्मट ने श्लेष, समाधि, उदारता और प्रसाद को ओज के और माधुर्य को माधुर्य गुण के तथा अर्थव्यक्ति को प्रसाद के अंतर्गत माना है। समता गुण कहीं दोषरूप होने के कारण गुण नहीं हो सकता और सौकुमार्य तथा कांति गुण को कष्टत्व एवं ग्राम्यत्व दोष के परिहार-रूप होने से गुण नहीं माना जा सकता। इस प्रकार माधुर्य, ओज और प्रसाद, तीन गुणों की प्रतिस्थापना हुई। [**दे० माधुर्य, ओज तथा प्रसाद**]

गुणकथन—वियोगदशा का भेद। [**दे० वियोगदशा**] वियोगावस्था में प्रिय के गुणों का वर्णन करना गुणकथन है।

भानुदत्त के अनुसार विरह के समय प्रिय की (प्रिया की) प्रशंसा करना गुणकथन या गुणकीर्त्तन है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विरहकालिककांताविषयकप्रशंसाप्रतिपादनं गुणकीर्तनम् ।

—रसमंजरी, पृ० १२० (चौखंबा)

मतिराम ने विरह के मध्य प्रिय की सुंदरता आदि के सराहने को गुण-वर्णन या गुणकथन कहा है ।

बिरह बीच जो पीव की सुंदरतादि सराह ।
गुनबर्नन तासों कहैं जो प्रबीन कविनाह ।।

—रसराज, ४०९

दास वियोग के समय प्रिय के सौंदर्य का स्मरण कर उसके अंग-अंग के वर्णन को गुणकथन कहते हैं ।

'दास' दसा गुनकथन में सुमिरि-सुमिर तिय पीय ।
अंग अंगनि बरनै सहित रसरंगनि रमनीय ।।

—शृंगारनिर्णय, ३०८

उदाहरण—

क. स्पर्शः स्तनतटस्पर्शो वीक्षणं वक्त्रवीक्षणम् ।
तस्याः केलिकलालापसमयः समयः सखे ।।

हे मित्र, उस प्रिया के उरोजों का स्पर्श ही स्पर्श है, उसके मुख को देखना ही देखना है अन्य प्रकार के स्पर्श या देखने का कोई महत्त्व नहीं है । उसके साथ केलि तथा क्रीड़ा-काल में बातचीत में व्यतीत होनेवाला समय ही समय है, दूसरे समय का कोई मूल्य नहीं ।

ख. होत बिदा गहि कंठ लगावत बाहु बिसाल प्रभा अधिकारी ।
वे सुधि श्रीमनमोहन की मन आनत ही करैं बेसुध भारी ।।

गुणवत्—आचार्य देव-वर्णित एक नूतन अलंकार । जब गुणियों के संसर्ग से गुणहीन (निर्गुणी) भी गुणी हो जाय तो गुणवत् अलंकार होगा ।

गुनवत संग गुनीन के, निगुनी गुननि प्रवीन ।।

—शब्दरसायन, पृ० १७८

गुण विवेचन का इतिहास—गुण-निरूपण भारतीय काव्यशास्त्र में सर्वप्रथम भरत से प्रारंभ होता है। भरत ने गुण को दोषों का विपर्यय कहा है—

गुणविपर्ययाद् एषांमाधुर्यौदार्यलक्षणाः ।
एत एव विपर्यस्तागुणाः काव्येषु कीर्तिताः ।।

—नाट्यशास्त्र, १६/९१,९५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अभिनवगुप्त ने 'विपर्यय' का अर्थ विघात या अभाव माना है। इस शब्द के अर्थ-द्योतन में भी मतवैभिन्य दिखाई पड़ता है और इसके तीन अर्थ किए गए हैं—अभाव, अन्यथाभाव और वैपरीत्य। भरत ने श्लेषादि गुणों की संख्या दस मानी है और वे उसे अर्थांतर आदि दस दोषों से विपर्यस्त स्वीकार करते हैं—

एते दोषास्तु विज्ञेयाः सूरिभिर्नाटकाश्रयाः ॥

—नाट्यशास्त्र, १७/९५

भरत के अनुसार दोष शोभा के विघातक हैं और गुण काव्य-शोभा के विधायक। वे अलंकार तथा गुण को 'रससंश्रयात्मक' कहकर दोनों की समान महत्ता स्वीकार करते हैं। उन्होंने श्लेष, प्रसाद, समता, समाधि, माधुर्य, ओज, पद-सौकुमार्य, अर्थव्यक्ति, उदारता और कांति आदि दस गुणों का वर्णन किया है।

इनके गुण-निरूपण की तीन विशिष्टताएँ हैं—

क. गुण काव्य-शोभा का वर्द्धन करते हैं।

ख. गुण तथा अलंकार का महत्त्व समान है।

ग. रसानुकूल प्रयोग द्वारा ये काव्य-शोभा की वृद्धि करते हैं।

भामह—भामह ने 'काव्यालंकार' के द्वितीय परिच्छेद में गुण का अत्यंत संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया है। इन्होंने भरत की भांति दस गुणों को मान्यता न देकर गुणत्रय—माधुर्य, ओज और प्रसाद—का निरूपण किया। इनके अनुसार माधुर्य में श्रव्यत्व एवं अनतिसमस्तत्व होता है और ओज में समासबाहुल्य। जो श्रवण करने में अच्छा लगे, वह माधुर्य एवं जो स्त्रियों तथा बच्चों की भी समझ में आ जाय, उसे प्रसाद गुण कहते हैं।

माधुर्यमभिवांछंतः प्रसादंच सुमेधसः।
समासवंतिभूयांसि न पदानि प्रयुंजते।
केचिदोजोऽभिधित्संतः समस्यंति बहून्यपि ॥
श्रव्यं नाति समस्तार्थं काव्यं मधुरमिष्यते।
आविद्वदंगनाबाल प्रतीतार्थं प्रसादवत् ॥

—काव्यालंकार, २/१-३

दंडी—दंडी ने गुण के दस भेदों का विवेचन किया है। वे गुण की परिभाषा नहीं देते और अलंकार के संबंध में विचार करते हुए अपना

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गुणविषयक अभिमत प्रकट करते हैं। इनके मतानुसार काव्य के शोभाकारक धर्म अलंकार हैं और गुण वैदर्भ काव्य के प्राण या शोभाकारक धर्म।

एते वैदर्भमार्गस्य प्राणः दश गुणाः स्मृताः —काव्यादर्श, १/४२

श्रवणमात्र से ही जिसका अर्थबोध हो जाय, उसे प्रसाद गुण कहते हैं। समता नामक गुण में काव्यसंघटना को जिस बंध से प्रारभ किया जाता है, उसका अंत भी उसी बध से होता है।

रसव्यंजक वर्ण-रचना को माधुर्य गुण कहते हैं। कोमल या अनिष्ठुर वर्णों की रचना को सुकुमार गुण एवं जिस वाक्य में ऐसे शब्दों का प्रयोग हो, जिससे अभीष्ट अर्थ को जानने में किसी प्रकार का कष्ट न उठाना पड़े, उसे अर्थव्यक्ति गुण कहा जाता है। उदारता को दंडी काव्य का जीवन कहते हैं। जिस वाक्य का प्रयोग करने से उसके द्वारा वर्णित वस्तु से लोकोत्तर चमत्कार की प्राप्ति हो, वह उदार गुण है। ओज गुण में समास का बाहुल्य रहता है। यह गद्य का प्राण है। इसमें कहीं तो लघु-गुरु वर्णों का बाहुल्य होता है और कहीं दोनों प्रकार के वर्णों का मिश्रण। दंडी ओज को शब्दगुण मानते हैं। कांति अर्थगुण है और प्रशंसायुक्त वचन में यह प्रकट होता है। लोकप्रसिद्ध वस्तुओं का अतिक्रमण न करने के कारण जो सर्वलोकप्रिय होता है, उसे कांति-गुण कहते हैं। समाधिगुण काव्य में चमत्कार उत्पन्न करनेवाला होता है। इसे काव्य का जीवन कहा गया है। यह अर्थगुण है। इसमें कवि अप्रस्तुत वस्तु के धर्म को प्रस्तुत वस्तु पर आरोपित कर देता है। एक अर्थ को दूसरे अर्थ पर आरोपित करने के कारण इसे अर्थगुण कहते हैं।

श्लिष्टमस्पष्टशैथिल्यमल्पप्राणाक्षरोत्तरम्।
शिथिलं मालती माला लोलालिकलिता यथा॥
प्रसादवत् प्रसिद्धार्थमिंदोरिंदीवरद्युति।
मधुरं रसवद्वाचिवस्तुन्यपि रसस्थितिः॥
अनिष्ठुराक्षरप्रायं सुकुमारमिहेष्यते।
बंधशैथिल्यदोषोऽपि दर्शितः सर्वकोमले॥
अर्थव्यक्तिरनेयत्वमर्थस्य हरिणोद्धृता।
उत्कर्षवान् गुणः कश्चिद्यस्मिन्नुक्ते प्रतीयते।
ओजः समासभूयस्त्वमेतद्गद्यस्य जीवितम्।
तद्गुरूणां लघूनां च बाहुल्याल्पत्वमिश्रणैः।
उच्चावचप्रकारं तद् दृश्यमाख्यायिकासु च॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कांतं सर्वजगत्कांतं लौकिकार्थानतिक्रमात् ।
तच्च वार्त्ताभिधानेषु वर्णनास्वपि दृश्यते ।
अन्यधर्मस्ततोऽन्यत्र लोकसीमानुरोधिना ।
सम्यगाधीयते यत्र स समाधिः स्मृतो यथा ॥

—काव्यादर्श, १/७३-९३

वामन—वामन ने सर्वप्रथम गुण की सामान्य परिभाषा प्रस्तुत की। इन्होंने काव्य के शोभाकारक धर्म को गुण कहा। इनके अनुसार गुण काव्य का नित्य तत्त्व है और अलंकार अनित्य तत्त्व। (दे० गुण का स्वरूप) वामन ने दस शब्दगुण एवं दस अर्थगुणों का वर्णन किया है—ओज, प्रसाद, श्लेष, समता, समाधि, माधुर्य, सौकुमार्य, उदारता, अर्थव्यक्ति और कांति। गाढ़बंधता या रचना की गाढ़ता ओजगुण है—**गाढबंधत्वमोजः**, ३,१,५ रचना की शिथिलता को प्रसाद कहते हैं—**शैथिल्यं प्रसादः**, ३,१,६ जिसके प्रयोग करने में बहुत से पद एक पद के सदृश मिले हुए दिखाई पड़ें उसे श्लेष गुण कहते हैं—**मसृणत्वंश्लेषः**। ३,१,११ समतागुण में जिस शैली से काव्यरचना का प्रारंभ किया जाता है, उसको अंत तक अक्षुण्ण रखा जाता है—**मार्गाभेदः समता**, ३,१,१२। आरोह तथा अवरोह के क्रम को समाधिगुण कहते हैं—**आरोहावरोहक्रमः समाधि**, ३,१,१३। समासरहित पदों से युक्त रचना को माधुर्यगुण कहते हैं—**पृथक्पदत्वं माधुर्यम्**, ३,१,२१। रचना की अकठोरता सुकुमारता है—**अजरठत्वं सौकुमार्यम्**, ३,१,२२। बंध की विकटता को उदार गुण कहते हैं—**विकटत्वमुदारता**, ३,१,२३। अर्थ की स्पष्टतः प्रतीति का हेतुस्वरूप गुण अर्थव्यक्ति है—**अर्थव्यक्तिहेतुत्वमर्थव्यक्तिः**, ३,१,२४। रचना की नवीनता को कांति कहते हैं—**औज्ज्वल्यं कांतिः**, ३,१,२५। उपर्युक्त सभी शब्दगुण हैं।

—काव्यालंकारसूत्रवृत्ति

अर्थगुण—

अर्थ की प्रौढ़ि को ओजगुण कहते हैं—**अर्थस्य प्रौढिरोजः**, ३,२,२। अर्थ की प्रौढ़ि पांच प्रकार की होती है—

पदार्थे वाक्यवचनं वाक्यार्थे च पदाभिधा ।
प्रौढिर्व्याससमासौ च साभिप्रायत्वमेव च ॥

अर्थ की स्पष्टता प्रसादगुण है—**अर्थवैमल्यं प्रसादः**, ३,२,३। क्रम, कुटिलता, प्रसिद्ध वर्णन की शैली एवं युक्त विन्यास के योग को घटना कहते हैं और यही जब विशेष प्रकार से श्लिष्ट होता है तो उसे अर्थ-श्लेषगुण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कहते हैं—**घटनाश्लेषः, ३,२,४**। अवैषम्य की समता अर्थगुण है—**अवैषम्यं समता, ३,२,५**। उक्तिवैचित्र्य को माधुर्य अर्थगुण कहते हैं—**उक्तिवैचित्र्यं माधुर्यम्, ३,२,११**। सुकोमल या अपरुषता को सुकुमार अर्थगुण कहते हैं—**अपारुष्यं सौकुमार्यम्, ३,२,१२**। उदारता अर्थगुण में ग्राम्यता का अभाव होता है—**अग्राम्यत्वमुदारता, ३,२,१३**। वस्तु के स्वभाव का स्पष्ट रूप से वर्णन करना अर्थव्यक्ति है—**वस्तु-स्वभावस्फुटत्वमर्थव्यक्तिः, ३,२,१४**। जिस बंध में शृंगारादि रस दीप्त होते हैं, उसे कांति कहते हैं। **दीप्तरसत्वंकांतिः, ३,२,१५**।

—काव्यालंकारसूत्र वृत्ति

परवर्ती आचार्यों में आनंदवर्द्धन, मम्मट तथा विश्वनाथ ने गुण को रसाश्रित मानकर इसे रस का धर्म स्वीकार किया। जिस प्रकार शौर्यादि गुण आत्मा के हैं, उसी प्रकार माधुर्य, ओज और प्रसाद गुण भी रस के धर्म हैं। इनके अनुसार रस अंगी (प्रधान) है और गुण अंग या अप्रधान। रसयुक्त रचना में गुण की स्थिति अचल है और रसरहित रचना में गुणाभाव होता है। गुण का कार्य है रस का सदा उत्कर्ष करना।

ये रसस्यांगिनोधर्माः शौर्यादय इवात्मनः।
उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः॥

—**काव्यप्रकाश, ८/६६**; ध्वन्यालोक, २/६ तथा साहित्यदर्पण, ८/१

आनंदवर्द्धन ने गुणत्रयवाद की स्थापना की थी, जिसकी पूर्ण प्रतिष्ठा मम्मट ने की और विश्वनाथ तथा पंडितराज ने इसका अनुमोदन किया।

रसेषु चैतेषु निगदितेषु माधुर्यौजःप्रसादाख्यांस्त्रीन् गुणानाहुः।

—रसगंगाधर, पृ० २३

पंडितराज गुण को रस का धर्म मानते हैं, पर शब्द और अर्थ के साथ भी इनका प्रत्यक्ष संबंध स्वीकार करते हैं।

आनंदवर्द्धन और मम्मट ने गुण को रस का वास्तविक धर्म और शब्द तथा अर्थ का औपचारिक धर्म माना था।

पंडितराज का अपना मत यह है कि गुण उसे कहते हैं, जो चित्त को प्रभावित कर उसे द्रुत, विस्तृत या विकसित करे—द्रुत्यादिचित्तवृत्ति प्रयोजकता—रसगंगाधर, पृ० ५५। इनका कहना है कि चित्त को द्रुत, विस्तृत एवं विकसित करने की शक्ति न केवल रस में है, अपितु शब्द और अर्थ में भी है। अतः, गुण रसगत भी है और शब्द, अर्थ तथा रचनागत भी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रयोजकत्वं चादृष्टादिविलक्षणं शब्दार्थरसरचनागतमेवग्राह्यम् ।

—रसगंगाधर, पृ० ५५

गुणश्रवण—पूर्वानुराग का प्रथम भेद। [दे० पूर्वराग]

उदाहरण—

सुनत कहानी कान्ह की तिया तजी कुलकानि ।
मिलनकाज लागी करन दूतिन सों पहिचानि ॥

—पद्माकर।

गुणीभूत व्यंग्य—मध्यम काव्य का अन्य नाम। [दे० काव्यभेद] जब वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ गौण हो या वाच्यार्थ अधिक चारुताप्रदर्शक हो तो गुणीभूत-व्यंग्य होता है। इसमें व्यंग्यार्थ या तो वाच्यार्थ के समान चमत्कारक होता है या उससे कम।

प्रकारोऽन्यो गुणीभूतव्यंग्यः काव्यस्य दृश्यते ।
यत्र व्यंग्यान्वये वाच्यचारुत्वं स्यात् प्रकर्षवत् ॥

—ध्वन्यालोक, ३/३५

गुणीभूत व्यंग्य के आठ प्रकार होते हैं—अगूढ, अपरांग, वाच्य सिद्ध्यंग, अस्फुट, संदिग्ध, तुल्यप्राधान्य, काक्वाक्षिप्त तथा असुंदर व्यंग्य। [दे० प्रत्येक भेद] 'काव्यप्रकाश' में इन भेदों का उल्लेख इस प्रकार है—

अगूढमपरस्यांगं वाच्यसिद्ध्यंगमस्फुटम् ।
संदिग्धतुल्यप्राधान्ये काक्वाक्षिप्तमसुंदरम् ॥
व्यंग्यमेवं गुणीभूतव्यंग्यस्याष्टौ भिदाः स्मृताः । ५/४५,४६

मम्मट के अनुसार जब व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ की अपेक्षा विशेष चमत्कारक न हो तो गुणीभूतव्यंग्य होता है।

अतादृशि गुणीभूतव्यंग्यं व्यंग्ये तु मध्यमम् ॥

—काव्यप्रकाश, १/५

विश्वनाथ ने कहा कि जब व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ की अपेक्षा अनुत्तम हो तो गुणीभूतव्यंग्य होता है।

अपरं तु गुणीभूतव्यंग्यं वाच्यादनुत्तमे व्यंग्ये ॥

—साहित्यदर्पण, ४/१३

संस्कृत-काव्यशास्त्र में गुणीभूत व्यंग्य की महत्ता स्वीकार की गई है। ध्वनि के अभाव में भी गुणीभूत व्यंग्य की रचना कर के व्यक्ति कवि-पद की प्राप्ति कर सकता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रसन्नगंभीरपदाः काव्यबंधाः सुखावहाः ।
ये च तेषु प्रकारोऽयमेव योज्यः सुमेधसा ॥

—ध्वन्यालोक, ३/३६

इसके (गुणीभूतव्यंग्य के) अंतर्गत उन अलंकृत सूक्तियों का समावेश किया जाता है, जिनमें कोई-न-कोई अलंकार रहा करता है एवं जिसे अलंकारवादी आचार्य किसी अलंकार से युक्त कहकर रह जाते हैं। जिन रचनाओं में व्यंग्य का संस्पर्श मात्र भी रहे तथा जिनमें रूपकादि अलंकार हों, वे सभी काव्य गुणीभूतव्यंग्य के अंतर्गत आ जाते हैं।

वाच्यालंकारवर्गोऽयं व्यंग्यांशानुगमे सति ।
प्रायेणैव परां छायां विभ्रल्लक्ष्ये निरीक्ष्यते ॥

—ध्वन्यालोक, ३/३७

तदेवं व्यंग्यांशसंस्पर्शे सति चारुत्वातिशययोगिनो रूपकादयोऽलंकाराः सर्वे एव गुणीभूतव्यंग्यस्य मार्गः । गुणीभूतव्यंग्यत्वं च तेषां तथाजातीयानां सर्वेषामेवोक्तानुक्तानां सामान्यम् ॥ —वही

ध्वनि में व्यंग्य का प्राधान्य होता है और गुणीभूत व्यंग्य में वह (व्यंग्य) गौण रहता है। (गुणीभूत व्यंग्य के प्रत्येक भेद का विवरण पृथक् देखें)

गुणौचित्य—औचित्य का चौथा भेद। [दे० औचित्य के भेद]

गुप्ता—परकीया नायिका का एक भेद। [दे० परकीया] परपुरुष-संभोग के रतिचिह्नों को छिपानेवाली नायिका गुप्ता कही जाती है। इसका अन्य नाम 'सुरतगोपना' है। सुरतगोपन कार्य के काल-भेद से भिन्न होने के कारण गुप्ता के तीन प्रकार संभव हैं—भूतगुप्ता या वृत्त सुरतगोपना, भविष्यगुप्ता या वृत्तवर्तिष्यमाण सुरतगोपना तथा वर्त्तमानगुप्ता या वर्तिष्यमाण सुरतगोपना।

सुरति छिपावै जो तिया सो गुप्ता उर आनि ।—रसराज, ६७

जब पिय प्रेम छिपावती करि बिदग्धता बाम ।
भूत भविष ब्रतमान सो गुप्ता ताको नाम ॥

—शृंगारनिर्णय, १०२

परपतिरति गोपन करै सखियन सन बर बाल ।
तासों गुप्ता कहत हैं जे कवि बुद्धि बिसाल ॥
ताकौ सुरति छिपाइबौ तीन समय कौ सोय ।
भूत भविष्यत जानिए वर्तमान पुनि होय ॥

—बिहारीलाल भट्ट, साहित्यसागर, भाग २

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१. *भूतगुप्ता*—जो भूतकाल में हुए पर-पुरुष के सुरत-चिह्नों को छिपाती हैं, उसे भूतगुप्ता कहते हैं।

झर झर बरस्यौ मेह मग डर डर भाजी गेह।
धर धर धर धरकत हियौ थर-थर काँपै देह।

—बिहारीलाल भट्ट

२. *भविष्यगुप्ता*—जो भावी प्रेम-व्यापार (रतिचिह्नों) को चतुराई से छिपावे, उसे भविष्यगुप्ता कहते हैं।

उत मोहन मन की करत, इत चुगलिन को चाव।
अब सजनी स्वकियान कौ कैसे होत निभाव॥

—बिहारीलाल भट्ट

३. *वर्तमान गुप्ता*—जो वर्तमान सुरत के चिह्नों को छिपाती है, उसे वर्तमान गुप्ता कहते हैं अर्थात् सुरतकाल में सखियों द्वारा देखी जाने पर प्रेम-व्यापार को तुरत छिपानेवाली नायिका।

चढ़त घाट बिचल्यो सुपग, भरी आनि इन अंक।
ताहि कहा तुम तकि रहीं, या में कौन कलंक॥

—जगद्विनोद, ९०

गुप्ता नायिका का सर्वप्रथम विवेचन भानुदत्त ने किया है। उनके आधार पर रीतिकालीन आचार्यों ने इसका विवेचन किया। यहाँ मतिराम, दास और बिहारीलाल भट्ट (आधुनिक आचार्य) के मत दिए गए हैं।

गुप्तात्रिधा—वृत्तसुरतगोपना, वर्तिष्यमाणसुरतगोपना; वृत्तवर्तिष्यमाण-सुरतगोपना। —रसमंजरी, पृ० ५६

उदाहरण—(तीनों के)

श्वश्रूः क्रुद्ध्यतु विद्विषंतु सुहृदो, निंदंतु वा यातरः,
तस्मिन् किंतु न मंदिरे सखि ! पुनः स्वापो विधेयो मया।
आखोराक्रमणाय कोणकुहरादुत्फालमातन्वती,
मार्जारी नखरैः खरैः कृतवती, कां कां न मे दुर्दशाम्॥२२

—रसमंजरी

"हे सखि ! मेरी सास क्रोध करे, मेरी सखियाँ मुझसे द्वेष करें या देवरानियाँ मेरी निंदा की बात फैलाएँ, तब भी मैं उस घर में सोने के लिए नहीं जाऊँगी। घर के कोने के बिल से निकले हुए चूहे को पकड़ने के लिए उछलती हुई बिल्ली ने अपने तीखे नखों से मेरी कौन-सी दुर्दशा नहीं की।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गुंफ—कारणमाला अलंकार का अन्य नाम [दे० कारणमाला]

गुंफना—भोज-वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध शब्द का अलंकार। शब्द, अर्थ, क्रम, पर्याय, पद, वाक्य की सम्यक् रचना के संयोजन को गुंफना कहते हैं। इसके शब्द, अर्थ, क्रम, पर्याय, पद तथा वाक्य ये छह भेद होते हैं।

वाक्ये शब्दार्थयोः सम्यग्रचना गुंफना स्मृता।
शब्दार्थक्रमपर्यायपदवाक्यकृता च सा ॥

—सरस्वतीकंठाभरण, २/५३

गुरुमान—मान का भेद। [दे० मान]

गूढ़—शोभाकरमित्र-वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। गूढ़ अलंकार में गूढ़ आकांक्षा का निबंधन होता है।

गूढसाकांक्षोपनिबद्धं गूढम् ॥१०२—अलंकाररत्नाकर

गूढ़—भोज-निरूपित एक अल्प-प्रसिद्ध शब्दालंकार। क्रिया, कारक, संबंध, पाद, अभिप्राय और वस्तु का छह प्रकार से गोपन करना गूढ़ है। इसके छह भेद हैं—क्रिया, कारक, संबंध, पाद, अभिप्राय और वस्तु।

क्रियाकारकसंबंधे पादाभिप्रायवस्तुभिः।
गोपितैः षड्विधं प्राहुर्गूढं गूढार्थवेदिनः ॥

—सरस्वतीकंठाभरण, २/१३५

गूढ़भावक—भावक का एक भेद [दे० भावक]

गूढ़व्यंग्या—प्रयोजनवती लक्षणा का भेद। [दे० प्रयोजनवती लक्षणा] जब व्यंग्य इतना गूढ़ हो कि उसे मार्मिक सहृदय ही समझ सकें तो गूढ़व्यंग्या लक्षणा होगी। इसमें व्यंग्य गूढ़ या अस्पष्ट या गंभीर होता है। प्रयोजनवती लक्षणा सदा व्यंग्य-युक्त होती है। इसका (गूढ़व्यंग्या का) व्यंग्य सहृदय-संवेद्य होता है।

मुखं विकसितस्मितं वशितवक्रिमप्रेक्षितं
समुच्छलितविभ्रमा गतिरपास्तसंस्था मतिः।
उरो मुकुलितस्तनं जघनमंसबंधोद्धुरं
बतेंदुवदनातनौ तरुणिमोद्गमो मोदते ॥

"इसके मुख पर मुस्कुराहट खिल रही है, इसकी दृष्टि ने बाँकपन को दास बना लिया है। इसकी चाल में हाव-भाव छलक रहे हैं। इसकी बुद्धि ने समस्त सीमाओं को तोड़ दिया है। वक्षस्थल पर स्तन कली के समान खिले हुए हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसकी जाँघें अवयवों के बंध से उभर रही हैं। इस चंद्रमुखी के शरीर में यौवन का आगमन आनंद ले रहा है।"

यहाँ हँसी का खिलना, नेत्रों को वश में करना, चाल में हाव-भाव का छलकना आदि के कथन में वाच्यार्थ की बाधा है। लक्षणा से इनका अर्थ क्रमशः हँसी की अधिकता, अनुरागाधिक्य तथा मनोहारित्व होगा। यह अर्थ अत्यंत गूढ़ है, जिसे मार्मिक सहृदय ही समझ सकता है।

चाले की बातें चलीं सुनत सखिन के टोल।
गोये हू लोचन हँसत बिहँसत जात कपोल॥

—बिहारी।

आँखों के हँसने तथा कपोल के मुस्कुराने में मुख्यार्थ का बाध है। लक्षणा से बिहँसने का अर्थ उल्लसित होना लिया जाएगा। नायिका मुग्धा तथा हर्ष संचारी का होना व्यंजित हो रहा है। यह व्यंग्य सहृदयसंवेद्य है।

गूढ़ोक्ति—एक गौण अर्थालंकार। जब अन्योद्देश्यक वाक्य को अन्य के प्रति कहा जाय तो गूढ़ोक्ति अलंकार होगा। गूढ़ोक्ति का अर्थ है गूढ़ (रहस्यपूर्ण)+उक्ति (कथन)। रहस्यपूर्ण या छिपाया हुआ कथन। इसमें गूढ़ या रहस्यपूर्ण उक्ति का वर्णन होता है, इसलिए इसे गूढ़ोक्ति कहते हैं। यह गोपन-मूलक अलंकार है।

इसकी प्रथम कल्पना अप्पय दीक्षित ने की है। उनके अनुसार अन्योद्देश्यक बात जब किसी अन्य के प्रति कही जाय तो गूढ़ोक्ति अलंकार होगा। जिस व्यक्ति से कुछ कहना होता है, उसे इस अभिप्राय से कहा जाता है कि उस व्यक्ति के अतिरिक्त कोई अन्य तटस्थ व्यक्ति उस कथन को न समझे; अतः उस व्यक्ति से श्लेष के रूप में उक्ति कही जाती है।

गूढोक्तिरन्योद्देश्यं चेद्यदन्यं प्रति कथ्यते।

—कुवलयानद, १५४

यं प्रति किंचिद्वक्तव्यं तत्तटस्थैर्माज्ञापीति तदेवं तदन्यं कंचित्प्रति श्लेषेणोच्यते चेत् सा गूढोक्तिः। —वही, पृ० २५३

अप्पय दीक्षित ने अप्रस्तुतप्रशंसा एवं श्लेष से गूढ़ोक्ति की भिन्नता प्रदर्शित करते हुए कहा कि अप्रस्तुतप्रशंसा में कारण द्वारा कार्य की एवं कार्य द्वारा कारण की व्यंजना होती है, पर गूढ़ोक्ति में ऐसा नहीं होता। श्लेष में दोनों ही पक्ष प्रबल होते हैं। यहाँ अप्रकृत के द्वारा प्रकृत व्यवहार की विवक्षा होती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस अलंकार में विशेष प्रकार का चमत्कार पाया जाता है, जिसमें अन्य लोगों से छिपाने के निमित्त चमत्कारपूर्ण शब्दों का प्रयोग होता है। [**कुवलयानंद, १५४**] रीतिकालीन आचार्य जसवंत सिंह, सोमनाथ तथा पद्माकर ने दीक्षित की परिभाषा का भावानुवाद किया है।

गूढ़ उक्ति मिस और कें कीजै पर उपदेस ॥

—भाषाभूषण, १८१

मिसु करिकें जहँ और कौ औरहि देत जताइ।
इहि विधि कवि तासों कहों गूढ़ोकति सुषपाइ ॥

—रसपीयूषनिधि, २२/२७२

गूढ़ोकति मिस और के औरहि देइ जनाइ ॥

—पद्माभरण, २५२

मतिराम का अनुवाद अत्यंत स्पष्ट है।

कहिबे जो कछु और सों, कहै और सों बोल।
गूढ़ उक्ति तासों कहत, जिनकी बुद्धि अमोल ॥

—ललितललाम, ३६०

उदाहरण—

क वृषापेहि परक्षेत्रादायाति क्षेत्ररक्षकः ।

"हे बैल ! दूसरे के खेत से हट जाओ, खेत का रखवाला आ रहा है।" यहाँ कोई सखी अपनी सखी के उपपति को सावधान कर रही है, जो उसकी सखी के साथ रमण कर रहा है।

ख. साँझ सखी मैं जाइहौं पूजन देव महेस ॥

—यहाँ उपपति को संध्या समय मंदिर में मिलने का संकेत है।

गूढ़ोत्तर—चित्रालंकार का एक भेद। [**दे० चित्रालंकार**] गुप्त रूप से किसी छंद या श्लोक में उत्तर का रख दिया जाना गूढ़ोत्तर है।

गोष्ठी—उपरूपक का भेद। [**दे० उपरूपक**] इसमें केवल एक अंक होता है तथा दस पुरुषों एवं पाँच या छह स्त्रियों का वर्णन किया जाता है। सभी पात्र साधारण कोटि के होते हैं और कैशिकी प्रधान वृत्ति होती है। इसमें गर्भ और विमर्श संधि नहीं रहती तथा कामश्रृंगार का प्राधान्य होता है। कैशिकी वृत्ति के रहने पर भी गोष्ठी में उदात्त वचनों का प्रयोग नहीं होता। इसका उदाहरण 'रैवतमदनिका' है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्राकृतैर्नवभिः पुंभिर्दशभिर्वाप्यलंकृता।
नोदात्तवचना गोष्ठी कैशिकीवृत्तिशालिनी॥
हीना गर्भविमर्शाभ्यां पंचषड्योषिदन्विता।
कामश्रृंगारसंयुक्ता स्यादेकांकविनिर्मिता॥

—साहित्यदर्पण, ६/२७४-७५

गौणी—नामानुप्रास का द्वितीय प्रकार। [दे० **नामानुप्रास**]

गौणीलक्षणा—प्रयोजनवती लक्षणा का एक भेद। [दे० **प्रयोजनवती-लक्षणा**] जब सादृश्य संबंध या समान गुण या धर्म के कारण लक्ष्यार्थ का बोध (ज्ञान) हो तो गौणीलक्षणा होगी। उदाहरण के लिए मुख-कमल को लिया जा सकता है। मुख का कमल होना संभव नहीं है; अतः इसमें मुख्यार्थ का बाध है। गौणी लक्षणा से मुख एवं कमल के गुणों पर विचार कर मुख को कमल कहा गया है। कमल के गुण सुंदरता और कोमलता मुख में भी विद्यमान हैं; अतः समान गुण के कारण 'मुख कमल के समान है' ऐसा अर्थ किया गया।

मुरलिका कर-पंकज में लसी,
जब अचानक थी बजती कभी।
तब अनूप पियूष-प्रवाह में,
जन-समागम था अवगाहता॥

—प्रियप्रवास

यहाँ 'कर-पंकज' में गौणीलक्षणा है। समान गुण के कारण 'कमल के समान कर' यह अर्थ होगा।

गौणीलक्षणा में उपचार (सादृश्य) होता है, शुद्धा में नहीं।

[दे० **शुद्धालक्षणा**]

गौड़ी—रीति का एक प्रकार। [दे० **रीति-सिद्धांत एवं रीति के प्रकार**] ओज-गुण व्यंजक, दीर्घसमासा, विकट रचना को गौड़ी रीति कहते हैं। इसमें आडंबरपूर्ण बंध (गाढ़बंध) या पद-रचना तथा समासों का बाहुल्य रहता है। गौड़ी रीति में कठोर वर्ण, रेफ, द्वित्त्व वर्ण, संयुक्त वर्ण एवं ट, ठ, ड, ढ, श, ष का प्रयोग होता है। यह रौद्र, वीर एवं भयानक रसों में प्रयुक्त होती है। इसका प्राण ओजगुण है। [दे० **ओज़गुण**]

ओजः प्रकाशकैर्वर्णैः बंध-आडंबरः पुनः।
समास बहुला गौड़ी······॥ —साहित्यदर्पण, ९/३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ओजः कांतिमती गौड़ीया। —काव्यालंकारसूत्र, १,२,१२

उदाहरण—

क. दोर्दंडांचितचंद्रशेखरधनुर्दंडावभंगोद्यत-
ष्टंकारध्वनिरार्यबालचरितप्रस्तावनाडिंडिमः।
द्राक्पर्यस्तकपालसंपुटमिलद्ब्रह्मांडभांडोदर-
भ्राम्यत्पिंडितचंडिमा कथमहो नाद्यापि विश्राम्यति ॥
—महावीरचरितम्, १/१४

(श्री रामचंद्रजी के द्वारा अनायास) हाथ में उठाए हुए (चंद्रशेखर) शिवजी के धनुष के दंड के टूटने से उत्पन्न और आर्य (रामचंद्रजी) के बाल-चरित-रूप (उनकी भावी जीवन की) प्रस्तावना का उद्घोष करनेवाली टंकार-ध्वनि, एकदम काँप उठनेवाले कपाल-संपुटों में सीमित ब्रह्मांड रूप भांड के भीतर घूमने के कारण और अधिक भयंकरता को प्राप्त होकर अब भी शांत नहीं हुई है। यह आश्चर्य है।" —हिंदी काव्यालंकारसूत्र

ख. गूँजे जयध्वनि से आसमान, सब मानव-मानव हैं समान।
निज कौशल मति इच्छानुकूल, सब कर्म निरत हों भेद भूल,
बंधुत्व भाव ही विश्व मूल सब एक राष्ट्र के उपादान ॥ —पंत

ग्राम्य—शब्ददोष का बारहवाँ भेद। [दे० शब्ददोष]

ग्राम्यत्व—अर्थदोष का छठा भेद। [दे० अर्थदोष]

ग्राम्या—रीति का एक प्रकार। [दे० रीति के प्रकार]

घ

घटमान—कवियों का एक प्रकार। [दे० कवि] जो कवि स्फुट रूप से ऊँची रचना करता है; पर प्रबंध-काव्य का निर्माण नहीं करता, उसे घटमान कहते हैं। राजशेखर के अनुसार इसका लक्षण इस प्रकार है—

योऽनवद्यं कवते न तु प्रबध्नाति स घटमानः।
—काव्यमीमांसा, पंचम अध्याय, पृ० ५०

च

चकित—नायिका के स्वभावज अलंकार का भेद। [दे० नायिका के अलंकार] प्रिय के समक्ष अकारण ही डरना या घबराना चकित है। यह स्वभावज अलंकार है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चपलता—संचारी भाव । [**दे० संचारी भाव**] चपलता वह चित्तवृत्ति है, जो राग तथा द्वेष के आधिक्य के कारण उत्पन्न होती है। इसमें चित्त स्थिर नहीं रहता। प्रेम या विरोध के कारण चित्त का अस्थिर होना चपलता है।

भरत के अनुसार चपलता संचारी की उत्पत्ति राग, द्वेष, ईर्ष्या, विरोध तथा मात्सर्य के कारण होती है। इसका अभिनय कठोर वचन, वध, बंधन, प्रहार, ताडन आदि अनुभावों द्वारा होता है।

चपलता नाम—रागद्वेषमात्सर्येर्ष्याप्रतिकूलतादिभिर्विभावैः समुत्पद्यते । तस्याश्च वाक्यपारुष्यनिर्भर्त्सनवधबंधनसंप्रहारताडनादिभिरनुभावैरभिनयः प्रयोक्तव्यः ।

अविमृश्य तु यः कार्यं पुरुषोवधताडनं समारभते ।
अविनिश्चितकारित्वात्स तु खलु चपलो बुधैर्ज्ञेयः ॥

—नाट्यशास्त्र, ७/६०

धनंजय ने मात्सर्य, द्वेष, राग आदि से मन के अस्थिर होने को चापल्य या चपलता कहा है।

मात्सर्यद्वेषरागादेश्चापल्यंत्वनवस्थितिः ।
तत्र भर्त्सनपारुष्यस्वच्छंदाचरणादयः ॥ —दशरूपक, ४/३३

विश्वनाथ ने धनंजय के ही लक्षण को उद्धृत कर दिया है।

मात्सर्यद्वेषरागादेश्चापल्यंत्वनवस्थितिः ।
तत्र भर्त्सनपारुष्यस्वच्छंदाचरणादयः ॥

—साहित्यदर्पण, ३/१६६

भानुदत्त ने निर्बाध होकर स्वतंत्रतापूर्वक शीघ्रता में कार्य करने को चपलता कहा है। यह मात्सर्य, द्वेष, राग प्रभृति विभावों द्वारा उत्पन्न होता है। इसके अनुभाव शत्रुदर्शन, परुषभाषण तथा प्रहार हैं।

इतरेतर क्रियाकरणं क्रियायाः शीघ्रता वा चपलता ।
मात्सर्यद्वेषरागादयो विभावाः । अनुभावा वैरिदर्शनवाक्यपारुष्यप्रहारादयः ।

—रसतरंगिणी, पृ० ३५६, पंचम तरंग

पंडितराज जगन्नाथ अमर्ष आदि से उत्पन्न चित्तवृत्ति को चपलता कहते हैं, जो कठोरता आदि अनुभावों द्वारा प्रकट होती है।

अमर्षादिजन्या वाक्यपारुष्यादिकारणीभूता चित्तवृत्तिश्चपलता ।

—रसगंगाधर, पृ० ११६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उदाहरण—

क. अन्यासु तावदुपमर्दसहासु भृंग
लोलं विनोदय मनः सुमनोलतासु ।
बालामजातरजसं कलिकामकाले
व्यर्थं कदर्थयसि किं नवमल्लिकायाः ?

"हे भ्रमर ! तुम ऐसी पुष्पलताओं के निकट जाकर अपना मनोविनोद करो, जो तुम्हारे मर्दन को सह सकने योग्य हों। अरे मूर्ख। जिन नवमल्लिकाओं की कलियों में अभी रज भी नहीं आया है, उन्हें व्यर्थ क्यों नष्ट कर रहे हो ?"

—यहाँ अल्प वयवाली कुमारी पर आसक्त कामुक की चपलता का वर्णन है।

ख. चकरी लौं सँकरी गलिन, छिन आवति छिन जाति।
परी प्रेम के फंद में, बधू चितावति राति ॥

यहाँ प्रेम के फंदे में पड़ी वधू का चकरी की तरह सँकरी गली में आकर रात बिताने में 'चपलता' है।

चपलातिशयोक्ति—अतिशयोक्ति अलंकार का छठा भेद। [दे० अतिशयोक्ति]

चमत्कार-संप्रदाय—इस सिद्धांत के पुरस्कर्त्ता विश्वेश्वर हैं, जिन्होंने 'चमत्कार चंद्रिका' पुस्तक की रचना कर काव्य के जीवित चमत्कार को सिद्ध किया। उन्होंने इसके सात भेद किए हैं या इसका विभाजन सात प्रकारों में किया है—गुण, रीति, रस, वृत्ति, पाक, शय्या तथा अलंकार। विश्वेश्वर का समय १३३० ई० है और वे 'अलंकार कौस्तुभ' के रचयिता विश्वेश्वर से भिन्न हैं। 'चमत्कार-चंद्रिका' अभी तक अप्रकाशित है और इसकी एक प्रति मद्रास-स्थित 'ओरियंटल मेन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी' में तथा 'इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी' लंदन में है। विश्वेश्वर का सिद्धांत निम्नांकित श्लोक में उपन्यस्त है।

रम्योक्त्यर्थतनूज्ज्वला रसमयप्राणा गुणोल्लासिनी
चेतोरंजकरीतिवृत्तिकवितापाकं वयो बिभ्रती।
नानालंकरणोज्ज्वलादवसती सर्वत्र निर्दोषतां
शय्यामंचति कामिनीव कविता कस्यापि पुण्यात्मनः ॥

—इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी, हस्तलेख, संख्या ३६६६

'चमत्कार-संप्रदाय' के अन्य समर्थक हरिप्रसाद हैं। इन्होंने 'काव्यालोक' नामक ग्रंथ में चमत्कार को विशिष्ट शब्दवाले काव्य की आत्मा कहा है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इनके अनुसार चमत्कार ही काव्य-सर्जन करनेवाली कवि-प्रतिभा की उत्पत्ति-भूमि है।

विशिष्टशब्दरूपस्तु काव्यस्यात्मा चमत्कृतिः।
उत्पत्तिभूमिः प्रतिभा मनागतोपपादितम्॥

हरिप्रसाद का समय १७२९ ई० है। ये माथुर मिश्र गंगेश के पुत्र थे। इन्होंने सात अध्यायों में 'काव्यालोक' की रचना की है।

इन आचार्यों ने पूर्ववर्ती आलंकारिकों के ग्रंथ में चमत्कार का प्रयोग देखकर इसे संप्रदाय का रूप देना चाहा है; पर चमत्कार को स्वतंत्र सिद्धांत न मानकर ध्वनि में ही गतार्थ किया जा सकता है। सर्वप्रथम 'ध्वन्यालोक' में 'चमत्कार' का प्रयोग हुआ है, जो साहित्यिक आस्वाद का वाचक है। अभिनव गुप्त भी इसी अर्थ में, अनेक स्थलों पर, इसका प्रयोग करते हैं। कुंतक ने भी इसी अर्थ में इसका प्रयोग किया है और क्षेमेंद्र ने 'कविकंठाभरण' में इसके दस प्रकारों का उल्लेख किया है—

तत्रदशविधश्चमत्कारः—अविचारितरमणीयः, विचारितरमणीयः, समस्तसूक्तव्यापी, सूक्त्यैकदेशदृश्यः, शब्दगतः, अर्थगतः, शब्दार्थगतः, अलंकारगतः, रसगतः, प्रख्यातवृत्तिगतश्च। —कविकंठाभरण, पृ० १२९ (काव्यमाला)

कविराज विश्वनाथ के वृद्ध प्रपितामह, नारायण कवि तो चमत्कार को ही रस का सार मानते हैं—

रसे सारश्चमत्कारः सर्वत्राप्यनुभूयते।

परंपरा-प्रवाह में प्राप्त चमत्कार-विवेचन के आधार पर ही विश्वेश्वर ने चमत्कार को काव्य की आत्मा स्वीकार किया था और इसके सात विभाग किए थे।

चमत्कारस्तु विदुषामानंदपरिवाहकृत्।
गुणं रीतिं रसं वृत्तिं पाकं शय्यामलंकृतिम्।
सप्तैतानि चमत्कारकारणं ब्रुवते बुधाः॥
—इंडिया ऑफिस मैन्युस्क्रिप्ट, संख्या ३९६६

आधार ग्रंथ—

सम कंसेप्ट्स ऑफ अलंकारशास्त्र—डॉ० वे० राघवन्
ध्वनि-संप्रदाय और उसके सिद्धांत—डॉ० भोलाशंकर व्यास

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चंपू काव्य—काव्य का एक प्रकार। [दे० काव्य-भेद] यह काव्य का वह रूप है, जिसमें वर्ण्यविषय का निरूपण गद्य तथा पद्य की मिश्रित शैली में होता है। सर्वप्रथम इसका लक्षण आचार्य दंडी ने प्रस्तुत किया है।

मिश्राणि नाटकादीनि तेषामन्यत्र विस्तरः।
गद्यपद्यमयी काचिच्चंपूरित्यभिधीयते ॥

—काव्यादर्श, १/३१

आगे चलकर हेमचंद्र ने मिश्रशैली के अतिरिक्त चंपू का सांक एवं सोच्छ्वास होना भी आवश्यक माना।

गद्यपद्यमयी सांका सोच्छ्वासाचंपूः।

—काव्यानुशासन, ८/९

विश्वनाथ के अनुसार भी गद्यपद्यमयी रचना चंपू है।

गद्यपद्यमयं काव्यं चंपूरित्यभिधीयते ॥

—साहित्यदर्पण, ६/३३६

किसी अज्ञात व्यक्ति की परिभाषा में चंपूकाव्य में उक्ति, प्रत्युक्ति एवं विष्कंभ की शून्यता को सम्मिलित किया गया है।

गद्यपद्यमयी सांका सोच्छ्वासा कविगुंफिता।
उक्तिप्रत्युक्तिविष्कंभशून्या चंपूरुदाहृता ॥

इन सारे लक्षणों के आधार पर चंपू की ये विशेषताएँ सूचित की जा सकती हैं—इसकी गद्य-पद्यमयता, सांक होना, उच्छ्वासों में विभाजित होना तथा विष्कंभशून्यता। चंपूकाव्य महाकाव्य की भाँति आठ से अधिक परिच्छेदों में भी रचा जा सकता है और खंडकाव्य की तरह इसमें आठ से भी कम सर्ग हो सकते हैं। यह स्तवक, उल्लास या उच्छ्वास में विभक्त रहता है। इसके मूल स्रोत पुराण होते हैं; पर सामान्य विषयों का भी वर्णन किया जा सकता है। संस्कृत के चंपूकारों ने वर्णन-विस्तार की ओर अधिक ध्यान दिया है, वस्तुविवेचन पर कम।

इसका नायक देवता, गंधर्व, मानव, पक्षी, पशु—कोई भी हो सकता है। इसके एक से अधिक नायक भी हो सकते हैं और उनके गुण लक्षण-ग्रंथों में वर्णित गुणों के ही समान हैं। चंपू काव्य के लिए नायिका का होना आवश्यक नहीं है। इसमें पात्रों की संख्या का कोई नियम नहीं है तथा कवि का ध्यान मुख्य पात्र के चरित्र-निरूपण की ओर ही अधिक रहता है। इसका अंगी रस शृंगार, वीर एवं शांत में से कोई भी हो सकता है और अन्य रसों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का प्रयोग गौण रूप से होता है। चंपू में गद्य-पद्य दोनों में ही अलंकरण की प्रवृत्ति होती है तथा गद्यवाला अंश समास-बहुल होता है। इसमें वर्णिक एवं मात्रिक दोनों ही प्रकार के छंद प्रयुक्त होते हैं और कहीं-कहीं गीतों का भी प्रयोग किया जाता है। महाकाव्य की तरह चंपू-काव्य में भी मंगलाचरण, खल-निंदा एवं सज्जनों की स्तुति होती है। इसमें फलश्रुति एवं भरत-वाक्य या मंगल-वाक्य का भी विधान किया जाता है।

उदाहरण के लिए संस्कृत में त्रिविक्रमभट्ट का 'नलचंपू' रखा जा सकता है। हिंदी में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की 'यशोधरा' चंपूकाव्य का उदाहरण है।

चित्रकार—रंगपीठ तथा रंगमंडप की भीतरी भित्तियों पर चित्र-रचना करनेवाला एक पात्र।

चित्रकाव्य—(काव्य का एक भेद) अधम या अलंकार काव्य को चित्रकाव्य कहते हैं। [दे० **काव्य-भेद**] इसके दो भेद हैं—शब्दचित्र और अर्थचित्र। शब्द-चित्र में शब्दालंकार का प्राधान्य होता है और अर्थचित्र में अर्थालंकार का।

चित्रदर्शन—पूर्वानुराग का द्वितीय भेद। [दे० **पूर्वराग**]

उदाहरण—

हरषि उठति फिर फिर परखि फिरि परखति चख लाइ।
मित्र चित्रपट कों तिया उर सों लेति लगाइ॥

—पद्माकर

चित्रालंकार—शब्दालंकार। [दे० **शब्दालंकार**] जब वर्णों द्वारा पद्म, खड्ग, मुरज आदि के चित्र निर्मित हो जायँ तो वहाँ चित्रालंकार होगा।

इस अलंकार में इस प्रकार का वर्ण-विन्यास होता है, जिससे विविध प्रकार के चित्र बन जाते हैं। वर्ण अमूर्त्त तथा शब्दात्मक होते हैं; किंतु उनकी अभिव्यक्ति लिपियों द्वारा होती है; अतः इस प्रकार की शंका नहीं करनी चाहिए कि उनसे चित्रों की निर्मिति कैसे होगी। चित्रकाव्य को अधम या अवर काव्य [दे० **अधम काव्य**] की संज्ञा देकर आलंकारिकों ने इसकी अवहेलना की है और कहा है कि इसके द्वारा कवि का रचनानैपुण्य भले ही प्रकट हो जाय किंतु रस-सिद्धि नहीं होती। इसमें कवि का ध्यान वर्ण-विन्यास की विचित्रता पर ही केंद्रित रहता है और उसकी दृष्टि न तो शब्द-सौष्ठव की ओर जाती है

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और न अर्थ-सौंदर्य की ओर। उसकी रचना बुद्धि का व्यायाम मात्र बनकर रह जाती है। मम्मट इसे कष्टकाव्य की संज्ञा देते हैं।

शब्दचित्रं वाच्यचित्रमव्यंग्यंत्ववरं स्मृतम् ॥

—काव्यप्रकाश, १/५०

अतः स्थूलबुद्धिलालनीयत्वाद् वाचक शब्दबहिर्भावाच्च नात्र कविभिरादरः कार्य इति मंतव्यम्। —संजीवनी, पृ० ३८

आरोप्य लिपिवर्णानां साम्याद् वाचकवर्णताम्।
खड्गबंधादिकं चित्रं काव्यालंकार इष्यते ॥

—वही, पृ० ३९

कष्टं काव्यमेतदिति, —काव्यप्रकाश, ९/८५, वृत्ति

इस अलंकार का सर्वप्रथम विवेचन आचार्य दंडी ने किया है, तत्पश्चात् रुद्रट, भोज, अग्निपुराणकार, मम्मट, रुय्यक, शोभाकर, जयदेव, विद्याधर, विद्यानाथ एवं विश्वनाथ ने इसका मीमांसन किया। रीतिकालीन आचार्यों में जसवंत सिंह तथा पद्माकर के अतिरिक्त अनेक आचार्यों ने इसका उल्लेख किया है। दंडी ने इसकी सामान्य परिभाषा नहीं दी। रुद्रट ने इसका लक्षण प्रस्तुत करते हुए बताया कि क्रमिक वर्णयोजना के आधार पर जब पदार्थों के चित्र निर्मित हों तो चित्रालंकार होगा। उन्होंने बताया कि इसमें विचित्रता अनिवार्य रूप से विद्यमान रहती है। वर्णों के क्रमिक विन्यास से जब विशेष विच्छित्ति के रूप में चक्र, पद्म आदि वस्तुओं का चित्र तैयार हो जाय तो यह अलंकार होता है।

भंग्यंतरकृततत्क्रमवर्णनिमित्तानि वस्तुरूपाणि।
सांकानि विचित्राणि च रच्यंते यत्र तच्चित्रम् ॥

—काव्यालंकार, ५/१

भोज ने बताया कि इस अलंकार में वर्ण, स्थान, स्वर पद्मादि की आकृति, गति तथा बंध-नियम से वैचित्र्य का सन्निवेश होता है।

वर्णस्थानस्वराकारगतिबंधान्प्रतीहयः।
नियमस्तद्बुधैः षोढा चित्रमित्यभिधीयते ॥

—सरस्वतीकंठाभरण, २/१०९

परवर्ती आचार्यों में मम्मट, रुय्यक, शोभाकर, जयदेव, विद्याधर, विद्यानाथ एवं विश्वनाथ के लक्षण एक समान हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तच्चित्रं यत्र वर्णानां खड्गाद्याकृतिहेतुता ॥

—काव्यप्रकाश, ९/८५

रीतिकालीन आचार्यों ने दंडी तथा भोज से प्रभाव ग्रहण कर चित्रालंकार का वर्णन किया और दास ने भोज एवं केशव को अपना आधार बनाया। चिंतामणि, कुलपति, भूषण, सोमनाथ आदि ने 'काव्यप्रकाश' की परिभाषा का भावानुवाद किया है।

केशव—

केशव चित्र समुद्र में बूड़त परम विचित्र।
ताके बूंदक के वर्ण बरनत हौं सुनि मित्र ॥
अध, ऊरध बिनु बिंदु युत, जति रसहीन अपार।
बधिर अंध गन अगन के गनिय न नगर विचार ॥
केशव चित्र समुद्र में इनके दोष न देख।
अक्षर मोटे पातरे ब व ज य एकै लेख ॥

—कविप्रिया, १६/१, ३

केशव एवं दास ने चित्रालंकार के संबंध में कतिपय तथ्य प्रस्तुत किए, जो इस प्रकार हैं—

क. चित्रालंकार में विसर्ग या अनुस्वार-रहित अक्षर को यदि विसर्ग या अनुस्वारयुक्त कर दिया जाय तब भी दोष नहीं होता। इसी प्रकार इसमें यतिभंग, रसहीन, बधिर, अंध, अगण आदि दोषों का भी विचार नहीं किया जाता।

ख. इसमें दीर्घ को लघु तथा लघु को दीर्घ करने में दोषाधान नहीं होता तथा ब और व, ज और य को एक ही मान लिया जाता है।

दास सुकवि-बानी थकै, चित्र-कवित्तनि माहिं।
चमत्कारहीनार्थं को, इहाँ दोष कछु नाहिं ॥
ब व ज य बर्ननि जानिए, चित्रकाव्य में एक।
अर्धचंद्र को जनि करौ, छूटे लगे बिबेक ॥

—काव्यनिर्णय, २०/१,२

चिंतामणि—

खड्ग आदि ह्वै कर मुरज कामधेनु ह्वै आदि।
चित्रालंकृत बहु विधि, बरनत सुकवि अनादि ॥

—कविकुलकल्पतरु, २/२९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुलपति—

लिखिबे की ही चतुरई, उपजै भेद अनेक।
जहाँ सुचित्र कवित्त है, बहु विधि बंधु विवेक।।

—रसरहस्य, ७/३४

भूषण—

लिखें सुनें अचरज बढ़ै, रचना होइ बिचित्र।
कामधेनु आदिक घने, भषन बरनत चित्र।।

—शिवराजभूषण, ३४४

सोमनाथ—

है सुघराई लिषन की प्रगटें भेद अपार।
तासों चित्र कवित्त कहि वरने रसिक उदार।।

—रसपीयूषनिधि, २१/३६

रीतिकाल में बलवान सिंह एवं ईश्वर कवि ने स्वतंत्र रूप से चित्रालंकार का वर्णन क्रमशः 'चित्रचंद्रिका' तथा 'चित्रचमत्कृतकौमुदी' नामक पुस्तकों में किया है। इन्होंने संस्कृत-आचार्यों से भिन्न पद्धति अपनाकर इस अलंकार का विशद विवेचन किया है। बलवान सिंह ने चित्रालंकार के तीन भेद किए हैं—शब्दचित्र, अर्थचित्र तथा संकरचित्र और इनके भी अनेकानेक भेदों का कथन किया है। शब्दचित्र के भीतर वर्णचित्र, स्थानचित्र, स्वरचित्र, पद्माकारचित्र, गतिचित्र, आकारबंधचित्र एवं गुणबंधचित्र उल्लिखित हैं। अर्थचित्र के अंतर्गत एकाक्षरादि, प्रहेलिका, सूक्ष्मालंकार, गूढ़ोत्तर, अपह्नुति, श्लेष और यमक का वर्णन है। संकर चित्र में पदार्थ सांकर्य्य यमक चित्र का कथन किया गया है। ईश्वर कवि चित्रालंकार का दो भेद मानते हैं—श्रौती एवं दृष्टि। दृष्टि के अंतर्गत गणपतिबंध, कमलबंध एवं खड्गबंधादि का वर्णन करते हैं। दोनों ही ग्रंथ चित्रकाव्य विषयक रीतिकाल की महान् उपलब्धि के रूप में समादृत हैं।

चित्रालंकार के भेद—इस अलंकार के वर्गीकरण के आधार वर्ण, स्थान, स्वर, पद्मादि आकृति, गति एवं बंध हैं। दंडी ने काव्यादर्श में गोमूत्रिका, अर्धभ्रम, सर्वतोभद्र तथा स्वर एवं वर्ण-नियमों के अनुसार अनेक भेदों का वर्णन किया है। [काव्यादर्श, ३/७८, ८०, ८३] रुद्रट ने दंडी का आधार लेकर उपर्युक्त भेदों का कथन किया तथा चक्र, खड्ग, मुसल, शर, शूल, शक्ति, हल, तुरगपदबंध, गजपदबंध आदि विविध बंधचित्रों का भी उल्लेख किया है। इनके अतिरिक्त अनुलोम, प्रतिलोम एवं वर्णविन्यासजन्य वैचित्र्य के रूप

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में भी भेदों का विवेचन है। भोज का चित्रालंकार-वर्णन अत्यंत विस्तृत है। इन्होंने चित्र के अंतर्गत वाकोवाक्य, गूढ़ोत्तर तथा प्रश्नोत्तर को भी स्थान दिया एवं चित्रालंकार के भेदों की संख्या साठ तक पहुँचा दी।

भोजकृत चित्रालंकार के भेद छह श्रेणी में विभक्त हैं—वर्ण, स्थान, स्वर, आकार, गति एवं बंध।

वर्ण के भीतर चतुर्व्यंजन, त्रिव्यंजन, द्विव्यंजन, क्रमानुसार सर्वव्यंजन, छंदाक्षर व्यंजन, षड्जादि स्वरव्यंजन एवं मुरजव्यंजन नामक भेदों का वर्णन है। स्थानचित्र के अंतर्गत चतुःस्थानचित्र, चित्रस्थानचित्र, द्विस्थानचित्र का निरूपण है। इन्हीं में निष्कंठ्य, निस्तालव्य, निर्दंत्य, निरोष्ठ्य तथा निर्मूर्धन्य आदि भेद भी वर्णित हैं। स्वरचित्रों में ह्रस्वैकस्वर, दीर्घैकस्वर, ह्रस्वद्विस्वर, दीर्घद्विस्वर; त्रिस्वरों में ह्रस्वत्रिस्वर; चार स्वरों में दीर्घस्वर तथा प्रतिव्यंजन-विन्यस्तस्वर का विवेचन है। बंधचित्र के अंतर्गत अष्टदलकमलबंध, द्वितीय अष्टदलपद्मबंध, तृतीयअष्टपत्रबंध, चतुष्पत्रककमलबंध, षोडशपत्रपद्मबंध, कविनामांकाष्टपत्रबंध का विधान है।

गतिचित्र के भीतर गतप्रत्यागत, तदक्षरगत, श्लोकांतर, प्रातिलोम्य तथा भाषांतरगत भेद वर्णित हैं। इन भेदों के अतिरिक्त गोमूत्रिका, सर्वतोभद्र, वाकोवाक्य, चित्रोक्ति तथा प्रश्नोत्तर आदि भेदों का विशद विवेचन है।

उदाहरण—पद्मबंध—

क. मारमासुषमा चारुरुचा मारवधूत्तमा।
मात्तधूर्ततमावासा सा वामा मेऽस्तु मा रमा॥

—साहित्यदर्पण

"कामदेव की मा=शोभा के समान सुषमा=सौंदर्यवाली और रमणीय कांति के कारण मारवधू=रति से भी उत्तम एवं धूर्ततमों से जिसका स्थान आक्रांत नहीं है, वह रमणी मुझे मिल जाय, रमा (लक्ष्मी) चाहे न मिले।" यह अष्टदलकमलबंध है। —विमला

ख. छनु दनु जनु तनु प्रानु हनु, भानु मानु हनुमानु।
ज्ञानु मानु जनु ठानु प्रनु, ध्यानु आनु हनुमानु॥

—काव्यनिर्णय, पृ० २०३

यह कमलबंध है—

यह उन्नीस पंखुड़ियों का कमलबंध है। इसके बीच में कोष है। कोष में 'नु' है। चित्र की प्रथम पंखुड़ी के 'छ' को कोष के 'नु' से मिलाकर पढ़ने पर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपर्युक्त दोहा बन जायगा। यहाँ वर्ण इस प्रकार रखे गए हैं, जिससे कमल का चित्र बन जाए।

चिंता—संचारी भाव। [दे० संचारीभाव] हित की अप्राप्ति या इष्ट पदार्थ या व्यक्ति के न मिलने पर उसके कारण उत्पन्न होनेवाले ध्यान को चिंता कहते हैं।

भरत ने चिंता की उत्पत्ति का कारण संपत्तिनाश, अभीष्ट पदार्थ की हानि एवं दरिद्रता को माना है। इसका अभिनय निःश्वास, चिंतन, अधोमुख होने तथा शरीर की कृशता आदि अनुभावों द्वारा होता है।

चितानाम—ऐश्वर्यभ्रंशेष्टद्रव्यापहारदारिद्र्यादिभिर्विभावैरुत्पद्यते। तामभिनयेन्निःश्वसितोच्छ्वसितसंतापध्यानाधोमुखचिंतनतनुकार्श्यादिरनुभावैः।—

ऐश्वर्यभ्रंशेष्टद्रव्यक्षयजा बहुप्रकारा तु।
हृदयवितर्कोपगता नृणां चिंता समुद्भवति॥
सोच्छ्वासैर्निश्वसितैः संतापैश्चैव हृदयशून्यतया।
अभिनेतव्या चिंता मृजाविहीनैरधृत्या॥ —नाट्यशास्त्र, ७/५०

धनंजय ने अहित पदार्थ की प्राप्ति होने पर उसके (इष्ट की अप्राप्ति) संबंध में ध्यान करने को चिंता कहा है।

ध्यानं चिंता हितानाप्तेः शून्यताश्वासतापकृत्।

—दशरूपक, ४/१६

रामचंद्र-गुणचंद्र ने उस मानसिक ताप (आधि) को चिंता कहा है, जो प्रियवस्तु की अप्राप्ति से उत्पन्न होता है।

आधिश्चिंता प्रियानाप्तेः शून्यताश्वासकार्श्ययुक्।

—नाट्यदर्पण, ३/१९०

विश्वनाथ ने धनंजय के लक्षण को ही उद्धृत कर दिया है।—

ध्यानं चिंता हितानाप्तेः शून्यताश्वासतापकृत्।

—साहित्यदर्पण, ३/१७१

भानुदत्त चित्त की एकाग्रता या ध्यान को चिंता कहते हैं। यहाँ ध्यान का अर्थ स्मरण करना न होकर चित्त की एकतानता या एकाग्रता है।

चिंता ध्यानम्। ध्यै चिंतायामित्यनुशासनात्। ध्यानं च न स्मरणात्मकम्, स्मृति भावस्याग्रे पृथक्त्वेन कथनात्, किंतु चित्तैकाग्रता। इष्टानाप्तिप्रभृतयो विभावाः। अनुभावास्तापवैवर्ण्यवाष्पश्वासादयः।

—रसतरंगिणी, पृ० ३५० पंचम तरंग।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पंडितराज जगन्नाथ ने इष्ट पदार्थ की अप्राप्ति तथा अनभीष्ट पदार्थ की प्राप्ति को चिंता कहा है, जिसमें वैवर्ण्य, पृथ्वी पर लिखना, मुख का अधोमुख करना आदि अनुभाव दिखाई पड़ते हैं।

इष्ट प्राप्त्यादिजनितो ध्यानापरपर्यायो वैवर्ण्यभूलेखनाधोमुखत्वादिहेतुश्चित्त-वृत्तिविशेषश्चिता। —रसगंगाधर, पृ० १०१

विभावा यत्र दारिद्र्यमैश्वर्यभ्रंशनं तथा।
इष्टार्थापहृतिः शश्वच्छ्वासोच्छ्वासावधोमुखम्॥
संतापः स्मरणं चैव कार्श्यं देहानुपस्कृतिः।
अधृतिश्चानुभावाः स्युः सा चिंता परिकीर्तिता॥
वितर्कोऽस्याः क्षणे पूर्वे पाश्चात्त्येवोपजायते॥
ध्यानं चिंता हितानाप्तेः संतापादिकरी मता॥ —वही

निष्कर्ष यह कि दरिद्रता, अभिलषित पदार्थ का नष्ट होना या हितवस्तु की अप्राप्ति के कारण उत्पन्न ध्यान को चिंता कहते हैं।

उदाहरण—(नायिका की अप्राप्ति से उत्पन्न चिंता का उदाहरण)

क. अधरद्युतिरस्तपल्लवा, मुखशोभा शशिकांतिलंघिनी।
अकृत प्रतिमा तनुः कृता, विधिना कस्य कृते मृगीदृशः॥

"ब्रह्मा ने इस मृगाक्षी को किसके लिए निर्मित किया है, जिसके अधर की द्युति पल्लवों को जीतनेवाली, मुख की छवि चंद्रमा की कांति को क्षीण बनानेवाली और शरीर अनुपम है।"

ख. दृगन मूँदि भौंहन जुरैं, कर तिय राखि कपोल।
अवधि बिती आए न पिय, सोचत भई अडोल॥

—प्रिय के वियोग में नायिका की दशा के वर्णन में चिंता संचारी है।

चिंता—वियोग दशा का भेद। [दे० **वियोगदशा**] प्रिय-मिलन के साधन या उपाय की खोज करना चिंता है। विश्वनाथ प्रिय-संगम की प्राप्ति के उपाय की खोज का नाम चिंता कहते हैं।

चिंता प्राप्त्युपायादिचिंतनम्। —साहित्यदर्पण, ३/१९१

भानुदत्त के अनुसार सम्यक् रीति से प्रिय-दर्शन तथा संतोष या आनंद प्राप्त करने के प्रकार का अनुसंधान चिंता है।

संदर्शनसंतोषयोः प्रकारजिज्ञासा चिंता।

—रसमंजरी, पृ० ११९ (चौखंबा)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मतिराम के अनुसार मन में प्रिय-दर्शन के सुख की भावना करना चिंता है।

दरसन सुख की भावना करे चित्त की चाह।
चिंता तासों कहत हैं जे प्रबीन रसनाह ॥
—रसराज, ४०३

दास मन से प्रिय-मिलन के संकल्प-विकल्प करने को चिंता कहते हैं।

मनसूबनि तें मिलन को जहँ संकल्प बिकल्प।
ताहि कहैं चिंता दसा जिनकी बुद्धि न अल्प ॥
—शृंगारनिर्णय, ३०४

उदाहरण—

क. मया विधेयो मुहुरद्य तस्मिन् कुंजोपकंठे कलकंठनादः।
राधामधोर्विभ्रममाहवंती कुर्वीत नेत्रोत्पलतोरणानि ॥

श्रीकृष्ण का अपने मित्र के प्रति कथन—"हे मित्र ! आज उस कुंज के पास मुझे बार-बार कोयल की बोली बोलनी चाहिए। राधा उसका श्रवण कर वसंतागमन के भ्रम से चारों तरफ नेत्र-कमलों का बंदनवार सजाएगी अर्थात् चारों ओर देखेगी।" यहाँ श्रीकृष्ण-द्वारा राधिका से मिलने के उपाय का वर्णन है।

ख. काजु कहा कुलकानि सों लोकलाज किन जाय।
कुंजबिहारी कुंज में कहूँ मिलै मुसकाय ॥

चिंतामणि कवि—अर्थापहरणमूलक कवि का एक भेद। [दे० कवि] "जिसके सोचते ही एकमात्र रसभरी तथा विचित्र अर्थवाली कविता, जिसे पुराने अच्छे कवियों ने भी न देखा था, प्रादुर्भूत होती है, उसे चिंतामणि कवि कहते हैं।"

चिंतासमं यस्य रसैकसूतिरुदेति चित्रकृतिरर्थसार्थः।
अदृष्टपूर्वो निपुणैः पुराणैः कविः स चिंतामणिरद्वितीयः ॥
—काव्यमीमांसा, अध्याय बारह, पृ० १६५

चुंबक कवि—अर्थापहरणमूलक कवि का एक प्रकार। [दे० कवि] जो (कवि) अन्य की उक्ति में नया भाव भरकर उसे आकर्षक एवं मनोरम बना दे, उसे चुंबक कवि कहते हैं।

यश्चुंबति परस्यार्थं वाक्येन स्वेन हारिणा।
स्तोकार्पितनवच्छायं चुंबकः स कविर्मतः ॥
—काव्यमीमांसा, अध्याय बारह, पृ० १६५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चूर्णक—गद्यकाव्य का एक भेद। [**दे० गद्य**]

चूलिका—अर्थोपक्षेपक का एक भेद। [**दे० अर्थोपक्षेपक**] नाटकीय घटनाओं की सूचना देनेवाली विशिष्ट विधि या प्रणाली को चूलिका कहते हैं। नेपथ्य या यवनिका में बैठे हुए पात्रों द्वारा नाटकीय वस्तु (कथांश के अरमणीय दृश्यों) की सूचना देना चूलिका है। इसमें कथा की सूचना देनेवाले पात्र निम्न श्रेणी के होते हैं; जैसे मागध, सूत, नंदी आदि। चूलिका का प्रयोग सदा अंक के मध्य में किया जाता है। शिंगभूपाल ने 'खंड चूलिका' नामक इसके एक अन्य प्रकार का भी वर्णन किया है।

अंतर्जवनिकासंस्थैश्चूलिकार्थस्य सूचना॥

—दशरूपक, १/६१

चेट या चेटक—नायक का सहायक। [**दे० सखा**] नायक-नायिका को परस्पर मिलाने में चतुर व्यक्ति चेट कहलाता है।

संधानचतुरश्चेटकः। —रसमंजरी, पृ० १६३

भरत के अनुसार यह कलाप्रिय, वाचाल, विरूप, गंधसेवी एवं मान्यामान्य-विशेषज्ञ होता है।

कलहप्रियो बहुकथो विरूपो गंधसेवकः।
मान्यामान्यविशेषज्ञश्चेटोऽप्येवंविधः स्मृतः॥

—नाट्यशास्त्र, २४/१०२

पद्माकर के मतानुसार चेट दोनों (नायक-नायिका) को मिलाने में चतुर होता है।

दुहुन मिलैबे में चतुर, वहै चेट उर आन॥

—जगद्विनोद, ३४०

उदाहरण—

क. सा चंद्रसुंदरमुखी स च नंदसूनु—
दैवान्निकुंजभवनं समुपाजगाम।
अत्रांतरे सहचरस्तरणौ कठोरे
पानीयपान कपटेन सरः प्रतस्थे॥ ११९ —रसमंजरी

संयोग से चंद्रमा के सदृश सुंदर मुखवाली राधा तथा नंदतनय श्रीकृष्ण दोनों संकेत-स्थल के लताभवन में आ मिले। इसी बीच सूर्य की किरणों के प्रखर हो जाने पर जल पीने का बहाना कर कृष्ण का सहायक चेट तालाब की ओर चला गया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ख. उतन ग्वालि तू कित चली, ये उनये घनघोर।
हौं आयौं लखि तुव घरै, पैठत कारो चोर॥

—जगद्विनोद, ३४४

चेष्टावैशिष्ट्योत्पन्नवाच्यसंभवा—आर्थीव्यंजना का दसवाँ प्रकार। [दे० आर्थीव्यंजना]

च्युतसंस्कार—शब्ददोष का द्वितीय प्रकार। [दे० शब्ददोष]

छ

छंदोविनिमय—एक ही अर्थ या भाव को छंद में परिवर्तित कर देना छंदोविनिमय है। काव्य-संवाद का एक प्रकार। [दे० काव्य-संवाद]

छल—नवीन संचारी भाव। इस संचारी भाव का सर्वप्रथम उल्लेख भानुदत्त ने 'रसतरंगिणी' में किया है। भानुदत्त के अतिरिक्त किसी भी संस्कृत-आचार्य ने इसका वर्णन नहीं किया। रीतिकालीन (हिंदी) आचार्य कवि देव ने 'भावविलास' में छल संचारी का वर्णन किया है। विद्वानों का कहना है कि उनका स्रोत 'रसतरंगिणी' ही है। भानुदत्त के अनुसार किसी क्रिया या तथ्य का गोपन (छिपाना) करने के लिए जो अन्य अनेक क्रियाएँ की जाती हैं, उनसे उत्पन्न मन की विशेष वृत्ति को छल कहते हैं। इसके विभाव हैं अपमान तथा प्रतिपक्षी की कुचेष्टाएँ। इसके अनुभाव हैं—वक्रोक्ति (टेढ़ी तथा व्यंग्य वाणी), निरंतर स्मित, देखना तथा भाव को छिपाना।

संगुप्तक्रियासंपादनं छलम्। विभावा अवमानप्रतिपक्षकुचेष्टादयः। अनुभावा वक्रोक्तिनिभृतस्मितनिभृतवीक्षणप्रकृतिप्रच्छादनादयः।

—रसतरंगिणी, पंचमतरंग, पृ० ३८३

भानुदत्त ने छल संचारी के पक्ष में अपना तर्क दिया है कि शृंगार में, रौद्ररस में इंद्रजाल, हास्यरस में बहाना (व्यपदेश) तथा अन्यापदेश और विशेष शास्त्रों, जैसे गौतम के न्यायसूत्र में छल की स्वतंत्र स्थिति का उल्लेख है। अतः, छल संचारी की सत्ता असंदिग्ध है।

अत्र प्रतिभाति छलमधिको व्यभिचारिभाव इति। तांबूलाहरणच्छलेन रभसाऽश्लेषोऽपि संविघ्नितः इति शृंगारे दर्शनात्। रौद्रे चेंद्रजालादिदर्शनात्। हास्ये च व्यपदेशाऽन्यापदेशयोर्दर्शनात्। वीथी भेदे दर्शनाच्च।—वही, पृ० ३८२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उदाहरण—

क. एकत्रासनसंस्थितिः परिहृता प्रत्युद्गमाद्दूरतः
तांबूलाहरणच्छलेन रभसाऽऽश्लेषोऽपि संविघ्नितः।
आलापोऽपि न मिश्रितः परिजनं व्यापारयंत्या तया
कांत प्रत्युपचारतश्चतुरया कोपः कृतार्थी कृतः॥

"उस चतुर नायिका ने अपने प्रिय से रूठने के कारण अपने मान को छल से छिपाकर उपचार (यथासमय की क्रियाओं) द्वारा अपना क्रोध प्रकट कर दिया। क्योंकि, जब वे गले लगाने चले तो झट नायिका ने पान का बीड़ा हाथ में बढ़ाकर उन्हें गले नहीं लगाने दिया।"

—यहाँ नायिका द्वारा पान का बीड़ा बढ़ाकर नायक को आलिंगन-कार्य से रोकने में छल संचारी है। नायिका ने पान देने की क्रिया-द्वारा अपने क्रोध को छिपाया है।

ख स्याम सयाने कहावत है कहौ आजु को काहि सयानु है दीनो।
देव कहै दुरि टेरी कुटीर में आपनो बैर बधू उहि लीनो।
चूमि गई मुँह औचक ही पटु लै गई पै इन वाहि न चीन्हो।
छैल भले छिनही में छले दिन ही में छबीली भयो छल कीन्हो।

—भावविलास

—यहाँ देव ने अपने अभाव का बदला लेने में 'छल' संचारी भाव माना है।

वस्तुतः छल संचारी का स्वतंत्र अस्तित्व न होकर इसका अंतर्भाव 'अवहित्था' [दे० अवहित्था] में ही हो जाता है। अवहित्था में भी लज्जादि भावों को चतुरता से छिपाने का वर्णन किया जाता है। अतः, छल को उससे भिन्न नहीं माना जा सकता।

छाया—भोज-वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध शब्द का अलंकार। दूसरों के कथन की अनुकृति को छाया कहते हैं। इसके छह भेद हैं—लोकोक्ति, छेकोक्ति, अर्भकोक्ति, पोटोक्ति, मत्तोक्ति और उन्मत्तोक्ति।—

अन्योक्तीनामनुकृतिश्छाया सापीह षड्विधा।
लोकेच्छेकार्भकोन्मत्तपोटामत्तोक्ति भेदतः॥

—सरस्वतीकंठाभरण, २/३९

छेकानुप्रास—शब्दालंकार अनुप्रास का एक प्रकार या भेद। [दे० अनुप्रास] जब अनेक वर्णों की स्वरूप एवं क्रम से, एक बार आवृत्ति हो तो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

छेकानुप्रास होगा। छेक का अर्थ है चतुर। चतुर या विदग्ध जनों को प्रिय होने के कारण इसे छेकानुप्रास कहा जाता है—**छेको विदग्धस्तत्प्रयोज्यत्वादेष छेकानुप्रासः।**—साहित्यदर्पण १०/३ वृत्ति। इसमें अनेक व्यंजनों या व्यंजन-समुदाय की एक ही बार आवृत्ति होती है; पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि वह आवृत्ति स्वरूपतः एवं क्रमतः उभयथा होनी चाहिए। उदाहरण के लिए कमल और कोमल को लिया जा सकता है। इसमें स्वरूप और क्रम का साम्य है; अतः छेकानुप्रास हुआ; पर कमल और कोमल में क्रम-भंग होने से यह अलंकार घटित नहीं होगा।

इस अलंकार का सर्वप्रथम वर्णन उद्भट ने किया है, तत्पश्चात् रुय्यक, जयदेव, विद्याधर, विद्यानाथ एवं विश्वनाथ ने भी इसका वर्णन किया।

उद्भट ने दो-दो पदसमुदाय की, एक ही समय में, सुंदर आवृत्ति को छेकानुप्रास कहा—

छेकानुप्रासस्तु द्वयोर्द्वयोः सुसदृशोक्ति कृतौ ॥

—काव्यालंकारसारसंग्रह, १/३

मम्मट के अनुसार अनेक वर्णों की एक बार आवृत्ति को छेकानुप्रास कहा जाता है—

सोऽनेकस्य सकृत्पूर्वः।—काव्यप्रकाश, ९/१०६

अनेकस्य अर्थात् व्यंजनस्य सकृदेकवारं सादृश्यं छेकानुप्रासः। —वही

रुय्यक ने अपने लक्षण में सर्वप्रथम स्वरूप और क्रम का सन्निवेश कर इसका स्वरूप अधिक स्पष्ट किया।

रुय्यक के अनुसार संख्यानियम या दो व्यंजनसमुदाय के एक बार सादृश्य को छेकानुप्रास कहते हैं। इन्होंने दो व्यंजनसमुदाय के परस्पर स्वरूप एवं क्रम से सादृश्यस्थापन में इस अलंकार की स्थिति मानकर इसके विवेचन का विकास किया।

संख्यानियमे पूर्वं छेकानुप्रासः। द्वयोर्व्यंजनसमुदाययोः परस्परमनेकधा-सादृश्यं संख्यानियमः। पूर्वं व्यंजनमाश्रितम् ॥ —अलंकारसर्वस्व, पृ० १५

जयदेव ने स्वरव्यंजन समुदाय की समता को छेकानुप्रास की संज्ञा दी; पर यह लक्षण इस अलंकार का स्वरूप स्पष्ट नहीं करता और वृत्त्यनुप्रास के साथ इसकी भिन्नता प्रकट नहीं होती। मम्मट, रुय्यक एवं विश्वनाथ के लक्षण पूर्ण हैं और इनके लक्षणों में छेक एवं वृत्तिगत भिन्नता स्पष्ट प्रदर्शित हो जाती है। छेकानुप्रास के स्वरूप-निरूपण में विश्वनाथ का महत्त्वपूर्ण योग है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इन्होंने इसके लक्षण को अधिक स्पष्ट एवं वैज्ञानिक बनाया हैं। इन्होंने अनेक व्यंजनों की एक बार आवृत्ति में स्वरूप एवं क्रम की व्यवस्था की। इन पर रुय्यक का प्रभाव है। विश्वनाथ ने इसके स्वरूप को व्यवस्थित कर बताया कि अनेक व्यंजनों की एक बार स्वरूपतः एवं क्रमतः आवृत्ति में छेकानुप्रास होगा—

स्वरव्यंजनसंदोहव्यूहामंदोहदोहदा छेकानुप्रासभासुरा ॥ —चंद्रालोक, ५/२

छेको व्यंजनसंघस्य सकृत्साम्यमनेकधा। अनेकधेति स्वरूपतः क्रमतश्च। सरः रस इत्यादेः क्रमभेदेन सादृश्यं, नाऽस्यालंकारस्य विषयः।

—साहित्यदर्पण, १०/३

उदाहरण—

आदायबकुलगंधानंधीकुर्वन् पदे पदे भ्रमरान्।
अयमेति मंदमंदं कावेरीवारिपावनःपवनः ॥

"मौलसिरी की गंध लेकर तथा भौंरों को पग-पग पर मतवाला बनाता हुआ कावेरी के जल को स्पर्श करने से पवित्र बना हुआ यह पवन धीरे-धीरे बह रहा है।" यहाँ 'गंधानंधी' में 'न्ध' की, 'कावेरी' 'वारि' में 'वारि' की एवं 'पवन' 'पावन' में प, व, न की स्वरूप एवं क्रम से आवृत्ति हुई है।

बाल-बेलि सूखी सुखद, इहि रूखे रुख धाम।
फेरि डहडही कीजिए, सुरस सींचि घनस्याम ॥ —बिहारी

यहाँ बाल-बेलि में ब, ल की, सुखी सुख में स, ख, की तथा रूखे, रुख में र, ख की स्वरूप एवं क्रम से आवृत्ति होने से छेकानुप्रास हुआ।

राधा के बर बैन सुनि, चीनी चकित सुभाय।
दाख दुखी मिसरी मुरी, सुधा रही सकुचाय ॥

यहाँ दाख-दुखी में द और ख की स्वरूप एवं क्रम से आवृत्ति हुई है।

छेकोक्ति—एक गौण अलंकार। अर्थांतर-गर्भ लोकोक्ति को छेकोक्ति अलंकार कहते हैं। छेकोक्ति का अर्थ है चतुर (छेक) व्यक्तियों का कथन (उक्ति)। इसमें चतुर व्यक्ति किसी लोकोक्ति का प्रयोग इस प्रकार करता है, जिससे अन्य रहस्यपूर्ण अर्थ की व्यंजना होने लगती है। यह गोपनमूलक अलंकार है।

इसे अलंकारत्व प्रदान करने का श्रेय अप्पय दीक्षित को है। उनके पूर्व भोज ने छाया अलंकार के अंतर्गत 'छेकोक्तिच्छाया' नामक भेद का कथन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

किया है; वस्तुतः यही अलंकार दीक्षित की छेकोक्ति का उत्स है। 'अग्निपुराण' में भोज के आधार पर इस अलंकार (छाया) का वर्णन है। केशव मिश्र चतुर जनों की वैदग्ध्यपूर्ण उक्ति को छेकोक्ति कहते हैं।

अन्योक्तीनामनुकृतिच्छाया सापीह षड्विधा।
लोकेच्छेकार्भकोन्मत्तपोटामत्तोक्ति भेदतः ॥

—सरस्वतीकंठाभरण, २/३९

छेका विदग्धावैदग्ध्यं कलासुकुशला मतिः।
तामुल्लिखंती छेकोक्तिश्छाया कविभिरिष्यते ॥

—अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग, ६/२२

छेकोविदग्धस्तस्योक्तिः —अलंकारशेखर, पृ० ८

दीक्षित के अनुसार जब कोई चतुर वक्ता लोकोक्ति के प्रयोग द्वारा किसी गूढ़ अर्थ की व्यंजना करे तो छेकोक्ति अलंकार होगा।

छेकोक्तिर्यत्र लोकोक्तेः स्यादर्थांतरगर्भिता ॥ १५८

—कुवलयानंद

रीतिकालीन आचार्य जसवंत सिंह, मतिराम तथा पद्माकर ने दीक्षित के लक्षण का अनुवाद कर इस अलंकार का वर्णन किया है।

लोक उक्ति कछु अर्थ सों सो छेकोक्ति प्रमानि ॥

—भाषाभषण, १८५

और अर्थ लीन्हें सु जो छेक उक्ति अभिराम ॥

—ललितललाम, ३६६

छेकोकति लोकोक्ति में गर्भित अरथ जु आन ॥

—पद्माभरण, २५८

उदाहरण—

क. भुजंग एव जानीते भुजंग चरणे सखे ॥

सर्प ही सर्प के चरण को जानता है। किसी व्यक्ति द्वारा किसी व्यक्ति का वृत्तांत पूछने पर वह व्यक्ति पास में खड़े उस व्यक्ति को लक्ष्य कर कहता है कि यही इसके वृत्तांत को जानता है।

ख. जमुना तट दृग रावरे लगे लाल मुख ओर।
चोरन की गति को सखी, जानत है जग चोर ॥

यहाँ किसी लक्षिता नायिका (जिसका प्रेम प्रकट हो गया हो) के प्रति चतुर सखी का कथन है कि मैं तुम्हारी सारी रतिक्रीड़ा को जानती हूँ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तुम्हारी आँखें यमुनातट पर प्रिय से लग चुकी हैं। प्रेमी की स्थिति को कोई-कोई ही जान सकता है।

ग. खग जानै खगही की भाषा॥ —रामायण

ज

जड़ता—वियोग दशा [**दे० वियोग दशा**] विरहव्यथा की अधिकता से शरीर का चेष्टारहित हो जाना जड़ता है। विश्वनाथ ने अंगों और मन के चेष्टारहित होने को जड़ता कहा है।

जड़ताहीनचेष्टत्वमंगानां मनसस्तथा।

—साहित्यदर्पण, ३/१९३

भानुदत्त के अनुसार वियोगव्यथा का आविष्कार मात्र ही जब जीवन का परिचायक रह जाय तो उसे जड़ता कहते हैं।

विरहव्यथाऽऽविष्कारमात्रमेव जीवनावस्थानं जडता।

—रसमंजरी, पृ० १२३ (चौखंबा)

मतिराम के अनुसार मिलन की उत्कंठा से चित्त तथा मन का अचल हो जाना जड़ता है।

उतकंठादिक तें जु ह्वै अचल चित्त अरु अंग।
तासों जड़ता कहत हैं कबि कोबिद रसरंग॥

—रसराज, ४२४

दास ने बताया कि जड़ता की स्थिति में निद्रा, बोलना, हँसना, भूख, प्यास आदि सभी आचरण अनायास भूल जाते हैं।

जड़ता में सब आचरन भूलि जात अनयास।
तिमि निद्रा बोलनि हँसनि भूख प्यास रसत्रास॥

—श्रृंगारनिर्णय, ३२६

उदाहरण—

क. विसिनीदलशयनीये निहितं सर्वं सुनिश्चलमंगम्।
दीर्घो निःश्वासभर एष साधयति जीवतीति परम्॥

कमल की शय्या पर पड़ा हुआ शरीर निश्चल है। दीर्घ निश्वास से यह ज्ञात होता है कि वह जीवित है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ख. अनमिष लोचन बाल के यातैं नंदकुमार।
मीच गई जरि बीच ही बिरहानल की झार ।।

जड़ता—संचारी भाव। [दे० संचारी भाव] अभीष्ट लाभ या अनिष्ट दर्शन (अथवा अनिष्ट श्रवण) से मन का विवेकरहित होकर किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाना जड़ता है। इसमें सुख तथा दुःख दोनों ही स्थितियों का मिश्रण होता है। जड़ता की अवस्था में मानसिक या शारीरिक सभी कार्य रुक जाते हैं।

भरत इष्ट और अनिष्ट के दर्शन तथा श्रवण एवं व्याधि प्रभृति विभावों से जड़ता की उत्पत्ति मानते हैं। इसमें सभी प्रकार के कार्यों में प्रवृत्ति होने का अभाव रहता है। इसका अभिनय मौन रहने, अस्पष्ट कथन करने, अप्रतिभ रहने, निर्निमेष देखने एवं परवश होने प्रभृति अनुभावों द्वारा होता है।

जड़ता नाम—सर्वकार्याप्रतिपत्तिः। इष्टानिष्टश्रवणदर्शनव्याध्यादिभिर्विभावैः। समुत्पद्यते। तामभिनयेदकथनाविभाषणतूष्णींभावाप्रतिभाऽनिमेषनिरीक्षणपरवशत्वादिभिरनुभावैः।

इष्टं वाऽनिष्टं वा सुखदुःखे वा न वेत्ति यो मोहात्।
तूष्णीकः परवशगो भवति स जडसंज्ञितः पुरुषः ।।
—नाट्यशास्त्र, ७/६६

धनंजय इष्ट या अनिष्ट पदार्थ के देखने या सुनने से कुछ न कर सकने के भाव को जड़ता कहते हैं। इसके अनुभाव हैं—निर्निमेष देखना तथा मौन रहना।

अप्रतिपत्तिर्जडता स्यादिष्टानिष्टदर्शनश्रुतिभिः।
अनिमिषनयननिरीक्षणतूष्णींभावादयस्तत्र ।। —दशरूपक, ४/१३

विश्वनाथ ने धनंजय के ही लक्षण को उद्धृत कर दिया है।

अप्रतिपत्तिर्जडता स्यादिष्टानिष्टदर्शनश्रुतिभिः।
अनिमिषनयननिरीक्षणतूष्णींभावादयस्तत्र ।।
—साहित्यदर्पण, ३/१४८

भानुदत्त सभी प्रकार के व्यवहारों को करने के ज्ञान की असमर्थता या अक्षमता को जड़ता कहते हैं। इसकी उत्पत्ति इष्ट तथा अनिष्ट के दर्शन आदि विभावों से होती है। इसके अनुभाव हैं—न बोलना, निर्निमेष देखना तथा इष्टानिष्ट का ज्ञान न होना।

सकलव्यवहाराक्षमज्ञानवत्ता जडता। न मूर्च्छापस्मारनिद्रास्वप्नेष्वतिव्याप्तिः ज्ञानविरहात्। न चालस्यभीतित्रासेष्वतिव्याप्तिस्तत्र कतिपय व्यवहारस्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सत्त्वात् । इष्टानिष्टदर्शनादयो विभावा अनुभावा अवभाषणनिर्निमेषप्रेक्षणेष्टानिष्टापरिच्छेदादयः । —रसतरंगिणी, पृ० ३६०, पंचमतरंग

पंडितराज जगन्नाथ चिंता, उत्कंठा, भय, विरह, इष्ट तथा अनिष्ट के दर्शन-श्रवण के कारण उत्पन्न चित्तवृत्ति को जड़ता कहते हैं।

चिंतोत्कंठाभयविरहेष्टानिष्टदर्शनश्रवणादिजन्यावश्यकर्तव्यार्थप्रतिसंधानविकला चित्तवृत्तिर्जडता । —रसगंगाधर, पृ० ११३

कार्याविवेको जडता पश्यतः शृण्वतोऽपि वा ।
तद्विभावाः प्रियानिष्ट दर्शनश्रवणे रुजा ॥ —वही

उदाहरण—

क. यदवधि दयिते विलोचनाभ्यां,
सहचरि ! दैववशेन दूरतोऽभूत् ।
तदवधि शिथिलीकृतो मदीयैरथ
करणैः प्रणयो निजक्रियासु ॥

हे सखि ! जब से मेरे प्रिय दैवयोग से मुझसे दूर हो गए, तब से मेरी इंद्रियों ने अपने कार्य से प्रेम करना छोड़ दिया है। यहाँ विरह-व्यथा के कारण इंद्रियों का कोई कार्य नहीं करना जड़ता है।

ख. जाय समीप राम-छबि देखी ।
रहि जनु कुँवरि चित्र अवरेखी ॥

यहाँ सीता का राम को देखकर चित्रवत् हो जाना जड़ता है।

जनांतिक— [दे० नियतश्राव्य]

जयदेव—इन्होंने 'चंद्रालोक' नामक अत्यंत लोकप्रिय काव्यशास्त्रीय ग्रंथ तथा 'प्रसन्नराघव' नाटक की रचना की है। ये गीतगोविंदकार जयदेव से भिन्न हैं। विश्वनाथ ने 'प्रसन्नराघव' के एक श्लोक (कदली-कदली करभः करभः, साहित्यदर्पण, १/३६) को उद्धृत किया है; अतः ये विश्वनाथ के पूर्ववर्त्ती सिद्ध होते हैं। इन्होंने रुयक के तीन अलंकारों को उन्हीं के शब्दों में वर्णित किया है; अतः इनका समय उनके पश्चात् निश्चित होता है। इस दृष्टि से जयदेव का समय १२०० ई० के निकट है।

'चंद्रालोक' दस मयूखों में विभक्त है और उसमें श्लोकों की संख्या २९४ है। इसमें वर्णित विषयों की सूची मयूख-क्रम से इस प्रकार है—वाग्विचार, दोषनिरूपण, लक्षणनिरूपण, गुणनिरूपण, अलंकारनिरूपण, रसाभावरीतिवृत्तिनिरूपण, शब्दशक्तिनिरूपण, गुणीभूतव्यंग्यनिरूपण। इसमें एक ही श्लोक में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लक्षण एवं उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं। 'चंद्रालोक' पर अनेक टीकाएँ रची गई हैं।

क. शरदागम टीका—इसके प्रणेता प्रद्योतन भट्ट हैं, जिनका समय सोलहवीं शती का अंतिम चरण है।

ख. राकागम टीका—इसके रचयिता का नाम वैद्यनाथ पायगुंड है। ये सत्रहवीं शती के मध्य में हुए थे। 'वाजचंद्रचंद्रिका' नामक 'चंद्रालोक' की एक अन्य टीका के भी ये रचयिता हैं।

ग. 'चंद्रालोक दीपिका' तथा 'निगूढार्थ दीपिका' दो अज्ञात लेखकों की टीकाएँ हैं।

घ. विरूपाक्ष लिखित 'शारदशर्वरी' टीका। आधुनिक युग में 'चंद्रालोक' के कई हिंदी अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं।

(१) पौर्णमासी संस्कृत-हिंदी-टीका (कथाभट्टीया) टीकाकार पंडित नंदकिशोर शर्मा।

(२) श्री विश्वनाथ त्रिपाठी कृत 'चंद्रालोक-सुधा'। (केवल पंचम मयूख पर)

जयदेव अलंकारवादी आचार्य माने जाते हैं। इन्होंने दोषरहित, लक्षण-युक्त, रीति, गुण, अलंकार, रस तथा वृत्ति से युक्त वाणी को काव्य कहा है।

निर्दोषा लक्षणवती सरीतिगुंणभूषणा।
सालंकाररसानेकवृत्तिर्वाक्काव्यनामभाक् ॥

—चंद्रालोक, १/७

इन्होंने आचार्य मम्मट के अलंकार-विषयक मंतव्य का खंडन कर (अनलंकृती पुनः क्वापि) अलंकार-रहित काव्य को उष्णता-रहित अग्नि की भांति निरर्थक माना है। इनके अनुसार अलंकार काव्य का अनिवार्य तत्त्व है। [इनके अलंकार-संबंधी विचार के लिए दे० प्रत्येक अलंकार का स्वरूप]

अंगीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृती ॥ —वही, १/८

'चंद्रालोक' का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंश पंचम मयूख है, जिसमें चार शब्दालंकारों एवं छियासी अर्थालंकारों का निरूपण है। जयदेव ने सत्रह नवीन अलंकारों का भी वर्णन किया है। वे हैं—उन्मीलित, परिकरांकुर, प्रौढोक्ति, संभावना, प्रहर्षण, विषादन, विकस्वर, विरोधाभास, असंभव, उदारसार, उल्लास, पूर्वरूप, अनुगुण, अवज्ञा, पिहित, भाविकच्छवि तथा अत्युक्ति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इन्होंने भरत-कृत छत्तीस काव्य-लक्षणों में से दस का निरूपण किया है—अक्षरसंहित, शोभा, अभिमान, हेतु, प्रतिषेध, निरुक्त, मिथ्याध्यवसाय, सिद्धि, युक्ति एवं कार्य। 'चंद्रालोक' का दोषप्रकरण 'काव्यप्रकाश' से प्रभावित है और गुण-विवेचन पर भरत तथा वामन का ऋण है। इसमें सरल और बोधगम्य शैली में विषय का प्रतिपादन किया गया है। अप्पय दीक्षित-कृत 'कुवलयानंद' 'चंद्रालोक' के अलंकार प्रकरण की विस्तृत व्याख्या है।

जहत्स्वार्था—लक्षणलक्षणा का अन्य नाम। इसमें अन्य अर्थ के ग्रहण करने में अपना अर्थ (मुख्यार्थ) पूर्णतः छूट जाता है अर्थात् मुख्यार्थ का तिरस्कार कर अन्यार्थ को ग्रहण किया जाता है। [दे० **लक्षणलक्षणा**]

जाति—भोज-वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध शब्द का अलंकार। भोज ने जाति में भाषा के औचित्य पर विचार किया है। विभिन्न भाषाओं—संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि—के उपयुक्त प्रयोग को जाति कहते हैं। इस अलंकार में भाषा के देशगत एवं जातिगत प्रयुक्त होनेवाले रूप का उल्लेख है।

तत्र संस्कृतमित्यादिर्भारती जातिरिष्यते।
सा त्वौचित्यादिभिर्वाचामलंकाराय जायते॥

—सरस्वतीकंठाभरण, २/६

जाति—अर्थालंकार। स्वभावोक्ति अलंकार का अन्य नाम जाति भी है। [दे० **स्वभावोक्ति**]

जार—उपपति को जार कहते हैं। यह अन्य स्त्री में अनुरक्त रहता है। [दे० **उपपति**]

जुगुप्सा—वीभत्सरस का स्थायी भाव। [दे० **वीभत्सरस**] घृणोत्पादक पदार्थों के दर्शन, श्रवण एवं स्मरण से चित्त में उत्पन्न घृणा के भाव को जुगुप्सा कहते हैं। इसका सर्वप्रथम निरूपण भरत ने किया है। इन्होंने इसे स्त्री तथा नीच प्रकृति के व्यक्तियों से संबद्ध माना है। भरत के अनुसार, घृणा या जुगुप्सा-भाव की उत्पत्ति अरुचिकर पदार्थों के दर्शन या श्रवण से होती है। इसका अभिनय अंगों के संकोचन, थूकने या नाक सिकोड़ने तथा हृदय के पीड़ित होने आदि अनुभावों-द्वारा होता है।

जुगुप्सा नाम स्त्रीनीचप्रकृतिका। सा चाहृद्यदर्शनश्रवणादिभिर्विभावैः समुत्पद्यते। तस्याः सर्वांगसंकोचनिष्ठीवनमुखविकूणनहृल्लेखादिभिरनुभावैरभिनयः प्रयोक्तव्यः। —नाट्यशास्त्र, पृ० ३५४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नासाप्रच्छादनेनेहगात्रसंकोचनेन च ।
उद्वेजनैः सहृल्लेखैर्जुगुप्सामभिनिर्दिशेत् ॥

—नाट्यशास्त्र, ७/२६

हेमचंद्र के अनुसार संकोचन की मनःस्थिति जुगुप्सा है ।

'संकोचोजुगुप्सा' ।—काव्यानुशासन, पृ० १२६

इस स्थिति में घृणास्पद पदार्थों को देखकर इंद्रियों में संकोचन होता है ।

रामचंद्रगुणचंद्र (नाट्यदर्पणकार) कुत्सित होने के निश्चय को जुगुप्सा कहते हैं ।

कुत्सितत्वाध्यवसायो जुगुप्सा ।—नाट्यदर्पण, सूत्र १८१, पृ० ३३०

विद्यानाथ ने घृणित पदार्थों (रुधिरादि के बहने) के श्रवण या दर्शन के कारण उत्पन्न मनःसंकोच को जुगुप्सा कहा है ।

अर्थानां दोषदर्शनादिभिर्गर्हणा जुगुप्सा ।—प्रतापरुद्रीय, पृ० १६७

विश्वनाथ दोषयुक्त वस्तुओं के दर्शन, श्रवण, स्पर्शन तथा स्मरण के कारण उत्पन्न अपूर्ण मनोविकार को जुगुप्सा कहते हैं ।

दोषेक्षणादिभिर्गर्हा जुगुप्सा विषयोद्भवा ।

—साहित्यदर्पण, ३/१७६

भानुदत्त ने अप्रिय पदार्थों को देखने, सुनने, स्पर्श करने या स्मरण से उत्पन्न अपूर्ण मनोविकार को जुगुप्सा कहा है ।

अप्रियदर्शनस्पर्शनस्मरणजनिता मनोविकृतिरपरिपूर्णा जुगुप्सा ।

—रसतरंगिणी, पृ० २४६

पंडितराज के अनुसार घृणित वस्तुओं के दर्शन से उत्पन्न घृणा नामक चित्तवृत्ति को जुगुप्सा कहा जाता है ।

कदर्यवस्तुविलोकनजन्माविचिकित्साख्यश्चित्तवृत्तिविशेषो जुगुप्सा ।

—रसगंगाधर, पृ० ४०

जुगुप्सा के पोषक संचारी भाव व्याधि, मोह, जड़ता और ग्लानि हैं ।

जहँ घिनाइ की चीज लखि सुमिरि परस मन माह ।
उपजत जो कछु घिन वहै ग्लानि कहत कविनाह ॥

—जगद्विनोद, ५९७

उदाहरण—

क. शार्दूलशावकचटच्चटपाट्यमान-
सारंगशृंगवति भूभृति रामचंद्रः ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वासं चकार न बभार तथा जुगुप्सां
दुःखेषु दुःखमतिरेव न दुःखितानाम् ॥

"श्रीरामचंद्र ने यद्यपि उस पर्वत पर जाकर निवास तो किया, जिसकी श्रेणियों पर सिंह के शावक निरंतर चटाचट हरिणों को मारते और फाड़ते जा रहे थे; पर राम के मन में वैसी जुगुप्सा (घृणा) नहीं हुई; क्योंकि जो मनुष्य स्वयं दुखी हो, उसे अपने दुःख में दुःख की बुद्धि नहीं रहती।"

यहाँ पर 'न तथा' (वैसी नहीं) शब्द के कारण वीभत्सरस अपूर्ण रह गया और जुगुप्सा भाव की व्यंजना हुई है।

ख. लख बिरूप सूरपनखैं, रुधिर चरबि चुचुआत।
सिय हिय मैं घिन की लता, भई सु द्वै द्वै पात ॥

जृंभा—सात्त्विक भाव। [दे० अनुभाव] जृंभा का अर्थ है जँभाई लेना। प्रियवियोग, मोह या आलस्य के कारण जंभाई आना जृंभा है।

जृंभा नामक नवम सात्त्विक भाव का वर्णन भानुदत्त ने किया है।

जृंभा च नवमः सात्त्विको भाव इति प्रतिभाति।

—रसतरंगिणी, पृ० ३३२, चतुर्थ तरंग

उदाहरण—

क. आधाय मौनं रहसि स्थितायाः संभाव्य जृंभामचलात्मजायाः।
चुटत्कृतिं स्मेरमुखो महेशः करांगुलीभिः कलयांचकार ॥

"प्रसन्न मुखवाले शिवजी ने एकांत में चुपचाप बैठी हुई पार्वतीजी को जँभाते देखकर उँगलियों से चुटकी बजा दी।"—यहाँ पार्वती का जँभाई लेना जृंभा है।

ख. राति की जागी प्रभात उठी अँगरात जँभात लजात लगी हिये ॥

ज्ञातयौवना—मुग्धा नायिका का एक भेद। [दे० मुग्धा] जिसके शरीर में यौवन का आगमन हो और उसका उसे ज्ञान हो तो उसे ज्ञातयौवना नायिका कहते हैं।

ज्येष्ठा-कनिष्ठा—स्वकीया नायिका का एक भेद। [दे० स्वकीया एवं नायिका-भेद] जब नायक की दो पत्नियाँ हों तो उनके प्रति प्रेम की अधिकता एवं न्यूनता के आधार पर दो भेद होते हैं—ज्येष्ठा और कनिष्ठा। जिस नायिका पर नायक का प्रेम अधिक रहे, उसे ज्येष्ठा एवं जिस पर उसका प्रेम न्यून हो, उसे कनिष्ठा कहते हैं। यह भेद मध्या एवं प्रगल्भा दोनों में घटित होता है, किंतु मुग्धा में नहीं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मध्या और प्रगल्भा, धीरा और अधीरा तथा धीराधीरा के नाम से (मान की स्थिति में) प्रत्येक तीन-तीन प्रकार की होती है और इस प्रकार इनके छह भेद होते हैं, पुनः ज्येष्ठा-कनिष्ठा के रूप में उनके बारह प्रकार हो जाते हैं।

द्वेधा ज्येष्ठा कनिष्ठा चेत्यमुग्धा द्वादशोदिताः।
मध्याप्रगल्भाभेदानां प्रत्येकं ज्येष्ठा-कनिष्ठात्वभेदेन द्वादश भेदा भवंति। मुग्धा त्वेकरूपैव। —दशरूपक, २/२०

विश्वनाथ ने नायक के प्रेम की कनिष्ठता (न्यूनता) एवं ज्येष्ठता (आधिक्य) का उल्लेख कर ज्येष्ठा-कनिष्ठा का वर्णन किया है।

कनिष्ठ ज्येष्ठरूपत्वान्नायकप्रणयं प्रति।
—साहित्यदर्पण, ३/६४

मतिराम ने नायक की दो पत्नियों में अधिक प्यारी को ज्येष्ठा एवं कम प्यारी को कनिष्ठा कहा है।

पद्माकर पिय प्यारी को ज्येष्ठा एवं अल्प प्यारी को कनिष्ठा कहते हैं।

बरनत जेष्ठ कनिष्ठिका जहँ द्वै ब्याही नारि।
प्रथम पियारी दूसरी घटि प्यारी निरधारि॥
—रसराज, ५५

बरनत जेठ कनिष्ठिका, जहँ ब्याही तिय दोइ।
पिय प्यारी जेठा कही, अति प्यारी लघु सोइ॥
—जगद्विनोद, ७३

बड़ी वहै जापै पिय राजी ताकौ जेष्ठा कहिए।
न्यून सनेह नाह को जापै नाम कनिष्ठा लहिए॥
—साहित्यसागर, भाग २

भानुदत्त का कहना है कि विवाह-संस्कार होने के पश्चात् जो पति का स्नेह अधिक प्राप्त करती है, उसे ज्येष्ठा एवं जिसे कम स्नेह मिलता है, उसे कनिष्ठा कहते हैं।

परिणीतत्वे सति भर्तुरधिकस्नेहा ज्येष्ठा,
परिणीतत्वे सति भर्तुर्न्यूनस्नेहा कनिष्ठा।
—रसमंजरी, पृ० ४४

उदाहरण—

क. दृष्ट्वैकासनसंस्थिते प्रियतमे पश्चादुपेत्यादरा-
देकस्या नयने पिधाय विहित क्रीडानुबंधच्छलः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ईषद्वक्रितकंधरः सपुलकः प्रेमोल्लसन्मानसा-
मंतर्हासलसत्कपोलफलकां धूर्तोऽपरां चुंबति ॥

नायक की दोनों पत्नियाँ एक ही आसन पर बैठी हुई थीं, उन्हें देखकर धूर्त नायक आदर के साथ पीछे से आया और क्रीड़ा के व्याज से उसने एक की आँखें मूँद लीं। इसके बाद गर्दन को घुमाकर प्रेम से पुलकित एवं हँसती हुई दूसरी नायिका का चुंबन किया।

ख. बैठी एक सेज पै सलोनी मृगनैनी दोऊ
आए तहाँ प्रीतम सुधा समूह बरसै।
कबि मतिराम ढिग बैठे मनभावन जू
दुहुँन के हिय-अरबिंद मोद सरसै।
आरसी दै एक सों कह्यो यों निज मुख देखौ
जामे बिधु-बारिज-बिलास बर दरसै।
दरप-सों भरी उन दरपन देख्यो जौलौं
तौलौं प्रान प्यारी के उरोज हरि परसै॥

—रसराज, ५६

शिंगभूपाल की गणना—

धीराधीरादिभेदेन मध्याप्रौढे त्रिधा त्रिधा।
ज्येष्ठा कनिष्ठा भेदेन ताः प्रत्येकं द्विधा द्विधा॥
मुग्धा त्वेकविधा चैवं सा त्रयोदशोधिता।।

—रसार्णवसुधाकर १/१०५

ज्योत्स्नाभिसारिका—अभिसारिका नायिका का एक भेद। इसे शुक्लाभिसारिका भी कहते हैं। जो नायिका श्वेत वस्त्र धारण कर चाँदनी रात में अभिसरण करे (प्रिय के पास संकेत स्थल पर जाए) उसे ज्योत्स्नाभिसारिका कहते हैं। [दे० अभिसारिका]

ड

डिम—रूपक का एक भेद। [दे० रूपक] डिम का अर्थ है विप्लव। इसका कथानक ऐतिहासिक एवं लोकप्रिय होता है अर्थात् इतिहास या पुराणप्रसिद्ध कथावस्तु होती है। इसका नायक धीरोद्धत होता है और देवता, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, भूत, प्रेत, पिशाच, महोरग प्रभृति सोलह नायक होते हैं। डिम

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का अंगीरस रौद्र होता है और श्रृंगार तथा हास्य के अतिरिक्त अन्य रसों का भी परिपाक होता है। इसमें कैशिकी वृत्ति प्रयुक्त नहीं होती और शेष तीन रीतियों—भारती, आरभटी और सात्त्वती—का उपनिबंधन किया जाता है। इसमें चार अंक होते हैं और विमर्श के अतिरिक्त शेष चार संधियाँ होती हैं। इसमें भूकंप, उल्कापात, सूर्य एवं चंद्रग्रहण, युद्ध, द्वंद्वयुद्ध, वाग्युद्ध, छल तथा इंद्रजाल आदि का वर्णन होता है। इसका कथानक व्यापक होता है और अनेक रस प्रयुक्त होते हैं। अभिनवगुप्त के मत से इसमें चार दिनों की घटनाओं का नियोजन होता है।

तेन दिनचतुष्टयवृत्तमेवात्र प्रयोज्यम् ।

—अभिनवभारती, भाग २, पृ० ४४४

अभिनवगुप्त और विश्वनाथ इसमें विष्कंभक और प्रवेशक के प्रयोग के लिए अवकाशाभाव मानते हैं। युद्धादि के वर्णन में चूलिका और अंकमुख का प्रयोग होता है। इसका उदाहरण 'त्रिपुरदाह' है

भरत का मत—

प्रख्यातवस्तुविषयः प्रख्यातोदात्तनायकश्चैव ।
षड्रसलक्षणयुक्तश्चतुरंको वै डिमः कार्यः ।।
श्रृंगारहास्यवर्जः शेषैः सर्वैं रसैः समायुक्तः ।
दीप्तरसकाव्ययोनिर्नानाभावोपसंपन्नः ।।
निर्घातोल्कापातैरुपरागेणेंदुसूर्ययोर्युक्तः ।
युद्धनियुद्धाधर्षण संफेट कृतश्च कर्तव्यः ।।
मायेंद्रजालबहुलो बहुपुस्तोत्थानयोगयुक्तश्च ।
देवभुजगेंद्रराक्षसयक्षपिशाचावकीर्णश्च ।।
षोडशनायक बहुलः सात्त्वत्यारभटिवृत्तिसंपन्नः ।
कार्यो डिमः प्रयत्नान्नानाश्रयभावसंपन्नः ।।

—नाट्यशास्त्र, १८/८४-८८

धनंजय का मत—

डिमे वस्तु प्रसिद्धं स्याद्वृत्तस्य कैशिकीं विना ।
नेतारो देवगंधर्वयक्षरक्षो महोरगाः ।।
भूतप्रेतपिशाचाद्याः षोडशात्यंतमुद्धताः ।
रसैरहास्यश्रृंगारैः षड्भिर्दीप्तैः समन्वितः ।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मायेंद्रजालसंग्रामक्रोधोद्भ्रांतादिचेष्टितैः ।
चंद्रसूर्योपरागैश्चन्याय्ये रौद्ररसेंऽगिनि ॥
चतुरंकश्चतुस्संधिर्निर्विमर्शो डिमः स्मृतः ।

—दशरूपक, ३/५७-६०

रामचंद्र का मत—

अशांतहास्य-शृंगार-विमर्शः ख्यातवस्तुकः ।
रौद्रमुख्यश्चतुरंकः सेंद्रजाल-रणो डिमः ॥
अत्रोल्कापातनिर्घाताश्चंद्रसूर्योपरक्तयः ।
सुरासुरपिशाचाद्याः प्रायः षोडश नायकाः ॥

—नाट्यदर्पणम्, २/८६-८७

विश्वनाथ का मत—

मायेंद्रजालसंग्रामक्रोधोद्भ्रांतादिचेष्टितैः ।
उपरागैश्च भूयिष्ठो डिमः ख्यातेतिवृत्तकः ॥
अंगी रौद्ररसस्तत्र सर्वेऽगानि रसाः पुनः ।
चत्वारोंऽका मता नेह विष्कंभकप्रवेशकौ ॥
नायका देवगंधर्वयक्षरक्षोमहोरगाः ।
भूतप्रेतपिशाचाद्याः षोडशात्यंतमुद्धताः ॥
वृत्तयः कैशिकीहीना निर्विमर्शाश्च संधयः ।
दीप्ताः स्युः षड्रसाः शांतहास्यशृंगारवर्जिताः ॥

—साहित्यदर्पण, ६/२४१-२४४

त

तत्त्वाभिनिवेशी—भावक या आलोचक के एक भेद को तत्त्वाभिनिवेशी कहते हैं। यह काव्य के तत्त्व को समझकर निष्पक्ष दृष्टि से उसका मूल्यांकन करता है। यह सभी भावकों में श्रेष्ठ है। [दे० भावयितृ प्रतिभा] यह आलोचक सहस्रों में एक होता है। राजशेखर ने इसकी महिमा का वर्णन करते हुए कहा है कि यह शब्द-संघटन की विधि या शब्द-रचना के ढंग को अच्छी तरह जानता है, सुंदर उक्ति से आह्लादित होता है, काव्य के सांद्र (घने) रसामृत का पान करता है तथा उसके गूढ़ रहस्य के चिंतन में रत रहता है। ऐसा आलोचक बड़े पुण्य से ही प्राप्त होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शब्दानां विविनक्ति गुंफनविधीनामोदते सूक्तिभिः
सांद्रं लेढि रसामृतं विचिनुते तात्पर्यमुद्रां च यः।
पुण्यैः संघटते विवेक्तृविरहादंतर्मुखं ताम्यतां
केषामेव कदाचिदेव सुधियां काव्यश्रमज्ञो जनः ॥
—काव्यमीमांसा, अध्याय ४, पृ० ३७, चौखंबा-संस्करण

तत्त्वौचित्य—औचित्य का एक प्रकार। [दे० औचित्य के भेद]

तद्गुण—लोकन्यायमूलक अलंकार। अपने गुण का त्याग कर निकटस्थ उत्कृष्ट गुणवाली वस्तु का गुण-ग्रहण करना तद्गुण अलंकार है। 'तद्गुण' का अर्थ है उसका गुण। इस अलंकार में एक वस्तु अपने गुण का त्याग कर निकट-वर्ती अधिक गुणवाली वस्तु का गुण ग्रहण कर लेती है। न्यूनगुणवाले पदार्थ द्वारा अत्युज्ज्वलगुणशाली पदार्थ का गुण ग्रहण करने के कारण इसकी संज्ञा तद्गुण है।

तद्गुण अलंकार का सर्वप्रथम विवेचन आचार्य रुद्रट ने किया है, तत्पश्चात् सभी आचार्यों ने इसका वर्णन किया। इन्होंने तद्गुण के दो प्रकारों का उल्लेख किया है। प्रथम प्रकार में समान गुणवाले पदार्थों में भेद का न रहना वर्णित है। यह लक्षण सामान्य के अधिक निकट है। [दे० सामान्य] दूसरे प्रकार में बताया गया है कि भिन्न गुणवाली उत्कृष्ट वस्तु के गुण को जब अल्पगुणवाली वस्तु ग्रहण कर ले तो तद्गुण अलंकार होगा।

यस्मिन्नेकगुणानामर्थानां योगलक्ष्यरूपाणाम्।
संसर्गे नानात्वं न लक्ष्यते तद्गुणः स इति ॥
असमानगुणं यस्मिन्नतिबहुलगुणेन वस्तुनावस्तु।
संसृष्टं तद्गुणतां धत्तेऽन्यस्तद्गुणः स इति ॥
—काव्यालंकार, ९/२२-२४

कालांतर में रुद्रट-कृत द्वितीय भेद (तद्गुण) के आधार पर इस अलंकार का विकास हुआ। आचार्य मम्मट ने अपने लक्षण में इस अलंकार का पूर्ण एवं व्यवस्थित लक्षण प्रस्तुत किया। इनके अनुसार जब न्यून गुणवाला पदार्थ अपने गुण का त्यागकर निकटवर्ती उत्कृष्ट गुणवाले पदार्थ का गुण ग्रहण करे तो तद्गुण अलंकार होगा। परवर्ती आचार्यों में रुय्यक, शोभाकर मित्र, जयदेव, विद्याधर, विद्यानाथ, विश्वनाथ, अप्पय दीक्षित, पंडितराज जगन्नाथ तथा विश्वेश्वर पंडित ने मम्मट की मान्यता के आधार पर ही इस अलंकार का निरूपण किया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वमुत्सृज्य गुणं योगादत्युज्ज्वलगुणस्य यत्।
वस्तुतद्गुणतामेति भण्यते स तु तद्गुणः ॥

—काव्यप्रकाश, १०/१३७

स्वगुणत्यागादत्युत्कृष्टगुणस्वीकारस्तद्गुणः। यत्र परिमित गुणस्य वस्तुनः समीपवर्तिप्रकृष्टवस्तुगुणस्य स्वीकरणं स तद्गुणः।

—अलंकारसर्वस्व, पृ० २१३

अन्यधर्मस्वीकारस्तद्गुणः।
यदा केनचिदर्थांतरस्य धर्मा गुणादयः स्वीक्रियंते तदा तद्गुणः।

—अलंकाररत्नाकर, पृ० १६८

तद्गुणः स्वगुणत्यागादन्यतः स्वगुणोदयः।

—चंद्रालोक, ५/१०२

अधिकगुणांगीकरणं स्वगुणत्यागेन तद्गुणः कथितः ॥

—एकावली, पृ० ३२१

तद्गुणः स्वगुणत्यागादन्योत्कृष्टगुणाहृतिः।

यत्र न्यूनं स्वगुणं विहाय संनिहितवस्तुनः सकाशादुत्कृष्टगुणः स्वीक्रियंते स तद्गुणालंकारः। —प्रतापरुद्रीय, पृ० २९९

तद्गुणः स्वगुणत्यागादत्युत्कृष्टगुणग्रहः ॥

—साहित्यदर्पण, १०/९०

तद्गुणः स्वगुणत्यागादन्यदीयगुणग्रहः। —कुवलयानंद, १४१

स्वगुणत्यागपूर्वकं स्वसंनिहितवस्त्वंतर संबंधिगुणग्रहणं तद्गुणः।

—रसगंगाधर, पृ० ६१२

परकीयगुणतिरोहितगुणस्य भानं तु तद्गुणः प्रोक्तः। बलवद्वस्त्वंतर गुण-प्रतिबद्धस्वगुण ज्ञातस्य वस्तुनो भानं यत्र स तद्गुणालंकारः।

—अलंकारकौस्तुभ, पृ० ४०२

रीतिकाल में 'काव्यप्रकाश' तथा 'कुवलयानंद' के लक्षण इस अलंकार के स्रोत बने। चिंतामणि तथा कुलपति ने 'काव्यप्रकाश' की परिभाषा का अनुवाद किया तो जसवंत सिंह, मतिराम तथा पद्माकर ने 'कुवलयानंद' के लक्षण को अनूदित कर तद्गुण का लक्षण निर्मित किया।

निजगुन तजि उत्कृष्टगुन गहै आनि कै कोइ।
अलंकार तदगुन सु तौ कविजन संमत होइ ॥

—कविकुलकल्पतरु, ३/१३३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अधिक और गुण जोग तें निज तजि औरहिं लेइ।
सोई तदगुन जानिए, ताको गुण कहि देइ॥
—रसरहस्य, ८/२०१

जहाँ आपुनो रंग तजि लेत और को रंग।
तदगुन तहँ बरनन करत जे कबि बुद्धि उतंग॥
—ललित ललाम, ३३१

तजि निजगुन गुन और को गहै जु तदगुन सोइ॥
—पद्माभरण, २३७

उदाहरण—

क. नीतो नासांतिकं तन्व्या मालत्याः कुसुमोत्करः।
बंधूकभावमानिन्ये रागेणाधरवर्तिना॥

कृशांगी के द्वारा मालती का फूल नाक तक पहुँचकर अधरों के रंग द्वारा बंधूक पुष्प के रंग को प्राप्त कर गया। उसमें बंधूक-पुष्प का रंग आ गया। मालती पुष्प का अधर के द्वारा बंधूकता को प्राप्त करना तद्गुण अलंकार है।

ख. लै चुभकी चलि जात जित, जित जल-केलि अधीर।
कीजत केसर नीर से, तित तित के सरि नीर॥ —बिहारी

सरोवर का अपना रंग छोड़कर नायिका के शरीर में लगे हुए केसर का रंग ग्रहण करना, तद्गुण है।

तद्गुण तथा मीलित—मीलित में एक वस्तु में दूसरी वस्तु के तिरोधान होने का वर्णन होता है; पर तद्गुण में एक वस्तु द्वारा अन्य वस्तु का गुण ग्रहण किया जाता है। मीलित का आधार गुण-साम्य है और तद्गुण का गुणवैभिन्न्य।

उल्लास एवं तद्गुण—तद्गुण में एक वस्तु के गुण को अन्य वस्तु द्वारा ग्रहण किया जाता है; पर उल्लास में एक के गुण से अन्य में नवीन गुण उत्पन्न होने का कथन किया जाता है।

तद्रूपरूपक—रूपक अलंकार का एक भेद। [दे० **रूपक अलंकार**]

तंत्र—शोभाकरमित्र-वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। नाना प्रकार की फल-प्राप्ति के लिए प्रयुक्त किए गए प्रयत्न को तंत्र कहते हैं।

नानाफलप्रयुक्तः प्रयत्नस्तंत्रम्॥ —अलंकाररत्नाकर, ८६

तपन—नायिका के स्वभावज अलंकार का एक भेद। [**दे० नायिका के अलंकार**] प्रिय के वियोग में कामजन्य चेष्टाओं का होना तपन है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तमिस्राभिसारिका—नायिका का भेद-विशेष। इसका अन्य नाम कृष्णाभिसारिका है। [दे० अभिसारिका] जो नायिका काली रजनी में काले रंग का वस्त्र धारण कर अभिसरण करने जाय, उसे तमिस्राभिसारिका कहते हैं। [दे० कृष्णाभिसारिका]

तात्पर्यवृत्ति—वाक्य की वृत्ति या वाक्य की शक्ति। अभिधा एवं लक्षणा द्वारा केवल शब्द के अर्थ की प्रतीति होती है, संपूर्ण वाक्य की नहीं। समस्त वाक्य के अर्थावबोध के लिए जिस अन्य शक्ति की कल्पना की गई है, उसे तात्पर्यवृत्ति कहते हैं। यह अभिधा वृत्ति द्वारा प्रकट किए गए अर्थ को अन्वित कर एक विशेष प्रकार के अर्थ को व्यक्त करती है। इसमें वाच्यार्थ का योग न होकर विलक्षण प्रकार का वाक्यार्थ होता है। तात्पर्यवृत्ति का प्रत्यक्ष संबंध मीमांसा-दर्शन से है। मीमांसकों ने वाक्य-विषयक अनेक विचार-सरणियों का निरूपण किया है, उनमें 'अभिहितान्वयवाद' तथा 'अन्विताभिधानवाद' विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। अभिहितान्वयवाद के समर्थक हैं प्रसिद्ध मीमांसक कुमारिलभट्ट तथा उनके अनुयायी पार्थसारथी मिश्र और अन्विताभिधानवाद के पोषक प्रभाकर गुरु तथा उनके अनुयायी शालिकनाथ मिश्र हैं।

इन सिद्धांतों के स्वरूप-निरूपण के पूर्व वाक्य का लक्षण प्रस्तुत करना आवश्यक है। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ के अनुसार योग्यता, आकांक्षा तथा आसत्ति से युक्त पदसमूह को वाक्य कहा जाता है।

वाक्यंस्याद्योग्यताकांक्षासत्तियुक्तः पदोच्चयः।

—साहित्यदर्पण, २/१

योग्यता का अर्थ है एक वस्तु का दूसरी वस्तु के साथ संबंध स्थापित करने में किसी प्रकार की बाधा का न रहना। उदाहरण के लिए कहा जाय कि 'वह पानी से सींचता है' तो इस वाक्य में योग्यता है, इससे पानी और सींचना दोनों के संबंध में किसी प्रकार की बाधा नहीं होती। पर यदि कहा जाय कि 'आग से सींचता है' तो इसमें योग्यता नहीं रहेगी; क्योंकि अग्नि से सेचन-क्रिया संभव नहीं है।

योग्यतापदार्थानां परस्पर संबंधे बाधाभावः॥

—साहित्यदर्पण, २/१

वाक्य के अर्थ को पूर्ण करने के लिए किसी अन्य पद की जिज्ञासा के बने रहने को आकांक्षा कहते हैं। अभिप्राय यह कि किसी ज्ञान की पूर्त्ति का न होना आकांक्षा है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आकांक्षा प्रतीतिपर्यवसानविरहः ॥

—साहित्यदर्पण, २/१

उदाहरण के लिए 'राम घर जा रहा है' इस वाक्य में यदि 'राम घर' कह दिया जाय तो 'जा रहा' क्रिया के अभाव में वाक्य की पूर्त्ति नहीं होगी। अतः, पद-समूह-मात्र को वाक्य नहीं कहा जा सकता।

प्रकृत पदार्थ की उपस्थिति में व्यवधान का न होना आसत्ति है। **आसत्तिर्बुद्ध्यविच्छेदः;** साहित्यदर्पण, २/१—एक पद के उच्चरित होने पर अन्य अपेक्षित पद के उच्चरित होने में किसी प्रकार का विलंब न होना आसत्ति है। यह व्यवधान दो प्रकार से संभव है—काल-द्वारा तथा अनुपयुक्त शब्द-द्वारा। यदि एक पद या शब्द के कहने के बाद अन्य शब्द के कथन में अधिक विलंब लग जाय तो उसे काल-व्यवधान कहते हैं। जैसे 'राम पढ़ता है' इस वाक्य में 'राम' शब्द का कथन कर दो घंटे के पश्चात् 'पढ़ता है' कहा जाय तो ऐसी स्थिति में दो पदार्थों के संबंध में बाधा उपस्थित हो जाएगी।

अनुपयुक्त व्यवधान वहाँ होता है, जहाँ प्रकरणोपयोगी पद के बीच कोई अनुपयुक्त पद आ जाय या ऐसा पद आ जाय, जिसका प्रकरण से कोई संबंध न हो। जैसे 'पर्वत भोजन किया ऊँचा है देवदत्त ने'—यहाँ दो वाक्य हैं 'पर्वत ऊँचा है' तथा 'देवदत्त ने भोजन किया।' पर, पर्वत के बीच 'भोजन' पद के आ जाने से वाक्य की संगति नहीं बैठती। वाक्य के लिए पदों में पारस्परिक संबंध का होना आवश्यक है।

आचार्य मम्मट ने 'काव्यप्रकाश' के द्वितीय तथा पंचम उल्लास में 'अभिहितान्वयवाद' तथा 'अन्विताभिधानवाद' का उल्लेख किया है।

१. अभिहितान्वयवाद—वाक्यार्थबोध में कुमारिलभट्ट के मतानुयायी अभिहितान्वयवादी कहे जाते हैं। इनके विचार से पदार्थों के पारस्परिक संबंध को व्यक्त करने की समर्थता पदों या शब्दों में नहीं होती। वाक्य में प्रयुक्त पद प्रथमतः अपने-अपने वाच्यार्थ की प्रतीति कराते हैं, तत्पश्चात् योग्यता, आकांक्षा तथा संनिधि के द्वारा उनका परस्पर अन्वय होने पर वाक्यार्थ का बोध होता है। इस अर्थ को वाक्य का वाच्यार्थ न कहकर तात्पर्यार्थ कहा जाता है और इसकी प्रतीति अभिधाशक्ति से न होकर तात्पर्य नामक वृत्ति या शक्ति से होती है। अभिहितान्वयवाद में पहले पदार्थ का बोध होता है और इसके बाद वाक्यार्थ की प्रतीति होती है अर्थात् वाक्य में प्रयुक्त पद पहले अपने वाच्यार्थ का अर्थ प्रकट कर बाद में वाक्यार्थ का बोध कराते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शब्दार्थ से सर्वथा पृथक् एक नवीन अर्थ वाक्यार्थ के रूप में प्रकट होता है। तात्पर्य वृत्ति से वाक्यार्थ का ज्ञान होता है और यह अभिधा, लक्षणा तथा व्यंजना से सर्वथा भिन्न होती है।

२. *अन्विताभिधानवाद*—प्रभाकर या गुरु मत के अनुयायी अन्विताभिधानवादी कहे जाते हैं। इनके विचार से शब्द अन्वित अर्थ का ही अभिधान या कथन करते हैं। ये तात्पर्य-जैसी पृथक् शक्ति को अमान्य घोषित करते हुए कहते हैं कि अभिधाशक्ति से ही वाक्य में अन्वित पदों का अर्थ जाना जाता है। प्रथमतः सभी पद वाक्य में अन्वित होते हैं, बाद में वाक्यार्थ का बोध अभिधा शक्ति द्वारा होता है। ये तात्पर्य शक्ति की स्वतंत्र सत्ता स्वीकार नहीं करते। ये वाक्यार्थ ज्ञान या संकेत-ग्रहण को वाक्य के ही रूप में स्वीकार करते हैं, पदों या शब्दों के रूप में नहीं। शब्द स्वतः किसी अर्थ की प्रतीति नहीं कराता, अर्थबोध केवल वाक्य-द्वारा ही संभव है। प्रभाकर के विचार से वाक्य अखंडार्थबोधक है। अतः, वाक्य ही अर्थ प्रत्यायक है, शब्द नहीं।

ताम्रलिप्तिका—आचार्य भोज-वर्णित वृत्त्यनुप्रास का एक भेद। [दे० अनुप्रास] जब किसी रचना में अंत्यवर्णों (ङ, ञ, ण, न, म) के संयुक्ताक्षर प्रयुक्त हों तो ताम्रलिप्तिका वृत्ति होगी।

—सरस्वतीकंठाभरण, पृ० २३६-३८

तिंतिडोपाक—जो रचना आदि और अंत, दोनों में ही मध्यम स्वाद की हो, उसे तिंतिडीपाक कहते हैं। तिंतिडीक का अर्थ है इमली, इसमें इमली के सभी तत्त्व विद्यमान रहते हैं।

आद्यंतयोर्मध्यमं तिंतिडीकपाकम्।

—काव्यमीमांसा, अध्याय ५, पृ० ५३

तिरस्कार—अलंकार का एक प्रकार। इसके प्रतिष्ठापक पंडितराज जगन्नाथ हैं। जब किसी दोष से युक्त होने पर गुणयुक्त पदार्थ का तिरस्कार किया जाय तो ऐसे वर्णन में तिरस्कार अलंकार होगा।

दोषविशेषानुबंधाद्गुणत्वेन प्रसिद्धस्यापि द्वेष तिरस्कारः।

—रसगंगाधर, पृ० ६८७ (निर्णयसागर प्रेस)

तुल्य—शोभाकरमित्र-वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। एक दोष की निवृत्ति होने पर दोषांतर या अन्य दोष का उदय होना तुल्य अलंकार है।

निवृत्तावन्योदयस्तुल्यम् ॥६९॥ —अलंकाररत्नाकर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तुल्यकथावक्रता—प्रबंधवक्रता का षष्ठ भेद। [दे० प्रबंधवक्रता]

तुल्यप्रधानव्यंग्य—गुणीभूत व्यंग्य का छठा प्रकार।

[दे० गुणीभूत व्यंग्य]

जब व्यंग्यार्थ और वाच्यार्थ, दोनों में समान चमत्कार हो या व्यंग्यार्थ में वाच्यार्थ के समान चमत्कार हो तो तुल्यप्रधान व्यंग्य होता है।

ब्राह्मणातिक्रमत्यागो भवतामेव भूतये।
जामदग्न्यस्तथा मित्रमन्यथा दुर्मनायते ॥

रावण के मंत्री माल्यवान् के प्रति परशुरामजी का संदेश—"ब्राह्मणों के प्रति अपमान का भाव छोड़ने में आपका ही कल्याण है। ऐसा न करने से आपके मित्र परशुराम क्षुब्ध हो जायगे।"—यहां यह व्यंग्य प्रकट होता है कि परशुराम क्षत्रियों की भाँति राक्षसवंश को भी नष्ट कर देंगे। यहाँ 'क्षुब्ध हो जायंगे' वाच्य-अर्थ है। व्यंग्यार्थ तथा वाच्यार्थ में समान चमत्कार होने के कारण यहाँ तुल्यप्रधान व्यंग्य हुआ।

दिन दिन दूनी देखिए भौर साँझ अरु भोर।
प्यारो तेरो वदन लखि दौरत मोर चकोर ॥

नायिका के सौंदर्य का वर्णन करते हुए नायक कहता है कि तुम्हारे मुख को देखकर भौंरे तथा चकोर रात-दिन दुगुनी भीड़ लगाए रहते हैं। यह वाच्यार्थ है। इससे यह व्यंग्य निकलता है कि तुम्हारा मुख चंद्रमा तथा कमल के सदृश सुंदर है। यहाँ वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ में समान सौंदर्य है।

तुल्ययोगिता—सादृश्यमूलक अलंकार। जहाँ अनेक प्रस्तुतों अथवा अनेक अप्रस्तुतों का एक धर्म कहा जाय, वहाँ तुल्ययोगिता अलंकार होता है। तुल्ययोगिता का अर्थ है समानों (तुल्यों) का संबंध (योगिता)। इस अलंकार में अनेक उपमेयों (प्रस्तुत) या अनेक उपमानों (अप्रस्तुत) का धर्मैक्य होता है या एक गुण, क्रिया आदि का वर्णन किया जाता है। इसमें जहाँ उपमेय रहें, वहाँ केवल उपमेय एवं जहाँ उपमान रहें, वहाँ केवल उपमान।

तुल्यधर्मेण योगो जातोऽस्यामित्यन्वर्थनामा तुल्ययोगिता।

—एकावली, पृ० २३९

अनेक प्रस्तुतमात्र संबद्धैकचमत्कारिधर्मानेकाप्रस्तुतमात्रसंबद्धैकधर्मान्यतरत्वं लक्षणं बोध्यम्। —अलंकारचंद्रिका, पृ० ७८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एवं च केवल प्रकृतानां केवलाप्रकृतानां वा गुणक्रियादिरूपैकधर्मान्वयस्तुल्ययोगिता अलंकार इति भावः ॥

—बालबोधिनी, पृ० ६४३

वस्तुतस्तुल्यश्चासौ योगः संबंधश्च अन्वयश्च तुल्ययोगः एकधर्मान्वय इत्यर्थः।

—वही

यह सादृश्यमूलक गम्यौपम्य आश्रय का पदार्थगत अलंकार है। इसमें एक ही वाक्य में अनेक पदार्थों (प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत) का वर्णन कर एक धर्माभिसंबंध स्थापित किया जाता है।

तुल्ययोगिता अलंकार का सर्वप्रथम निरूपण भामह ने किया, तत्पश्चात् विश्वेश्वर पंडित तक इसका विवेचन होता रहा। भामह, दंडी, वामन तथा भोज आदि के लक्षणों में तुल्योगिता का स्वरूप स्पष्ट नहीं हुआ है। मम्मट ने इसके स्वरूप को व्यवस्थित किया। भामह ने बताया कि जब गुण-साम्य को बताने के लिए विशिष्ट (उपमान) के साथ न्यून (उपमेय) के समान कार्य एवं गुण का योग हो तो तुल्ययोगिता अलंकार होगा।

न्यूनस्यापि विशिष्टेन गुणसाम्यविवक्षया।
तुल्यकार्यक्रियायोगादित्युक्ता तुल्ययोगिता ॥

—काव्यालंकार, ३/२७

दंडी ने बताया कि जब प्रस्तुत में विवक्षित गुण से प्रसिद्ध तथा अधिक गुणवाले उपमान के साथ साम्य स्थापित कर प्रस्तुत की स्तुति या निंदा का वर्णन हो तो तुल्ययोगिता होगी।

विवक्षितगुणोत्कृष्टैर्यत् समीकृत्य कस्यचित् ।
कीर्त्तनं स्तुतिनिंदार्थं सा मता तुल्ययोगिता ॥

—काव्यादर्श, २/३३०

वामन ने भामह से प्रभावित होकर बताया कि अधिक गुणवाले उपमान के साथ न्यून गुणवाले उपमेय की समता दिखाने के लिए उन दोनों की एक साथ होनेवाली क्रिया का योग दिखलाना तुल्ययोगिता है।

विशिष्टेनसाम्यार्थमेककालक्रियायोगास्तुल्ययोगिता ॥

—काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, ४,३,२६

उद्भट का लक्षण मम्मटादि के अधिक निकट है। इनके अनुसार उपमान तथा उपमेय की उक्ति से शून्य तथा अप्रस्तुतों एवं प्रस्तुतों का साम्याभिधायी कथन तुल्ययोगिता अलंकार है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपमानोपमेयोक्तिशून्यैरप्रस्तुतैर्वचः ।
साम्याभिधायि प्रस्तावभाग्भिर्वा तुल्ययोगिता ।।

—काव्यालंकारसारसंग्रह, ५/११

मम्मट ने बताया कि जब प्रस्तुतों अथवा अप्रस्तुतों (नियतानाम्) का एक धर्म-कथन किया जाय तो तुल्ययोगिता अलंकार होगा ।

नियतानां सकृद्धर्मः सा पुनस्तुल्ययोगिता ।

—काव्यप्रकाश, १०/१०४

रुय्यक ने तुल्ययोगिता की औपम्यगम्यता या औपम्य की प्रतीयमानता तथा पदार्थगतता पर विचार किया है। इनके अनुसार प्रस्तुतों अथवा अप्रस्तुतों का एक धर्म कथन करना तुल्ययोगिता है।

औपम्यस्य गम्यत्वे पदार्थगतत्वेन प्रस्तुतानामप्रस्तुतानां वा समानधर्माभिसंबंधे तुल्ययोगिता ।

—अलंकारसर्वस्व, पृ० ८९

परवर्ती आचार्यों में विद्याधर तथा विद्यानाथ ने रुय्यक के आधार पर और जयदेव, विश्वनाथ, दीक्षित तथा जगन्नाथ ने मम्मट के अनुसार तुल्ययोगिता का निरूपण किया है।

औपम्यगम्यतायां प्रकृतानां तुल्यधर्मसंबंधे ।
अप्रकृतानामथवा चतुर्विधा तुल्ययोगिता ज्ञेया ।।

—एकावली, ८/१२

प्रस्तुतानां तथाऽन्येषां केवलं तुल्यधर्मतः ।
औपम्यं गम्यते यत्र सा मता तुल्ययोगिता ।।

—प्रतापरुद्रीय, पृ० ३०८

क्रियादिभिरनेकस्य तुल्यत्वे तुल्ययोगिता ।। —चंद्रालोक, ५/५१

पदार्थानां प्रस्तुतानामन्येषां वा यदा भवेत् ।
एकधर्माभिसंबंधः स्यात्तदा तुल्ययोगिता ।।

—साहित्यदर्पण, १०/४७

वर्ण्यानामितरेषां वा धर्मैक्यं तुल्ययोगिता ।। —कुवलयानंद, ४४

प्रकृतानामेवाप्रकृतानामेव वा गुणक्रियादिरूपैकधर्मान्वयस्तुल्ययोगिता ।।

—रसगंगाधर, पृ० ४९२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रकृतानां तादृक्त्वे भिन्नानां वापि तुल्ययोगित्वे। वा शब्दो व्यवस्थित विकल्पार्थः। तथा च प्रकृतानामेव अप्रकृतानामेव वा यत्रैकधर्मान्वयित्वं सा तुल्ययोगिता। तुल्यानां प्राकरणिकाप्राकरणिकान्यतरमात्रनिबंधनसादृश्यवतां-योगिता एकधर्मान्वयित्वं यत्रेति व्युत्पत्तेरित्यर्थः।

—अलंकारकौस्तुभ, पृ० २९५

रीतिकाल में मुख्यतः 'कुवलयानंद' के आधार पर तुल्ययोगिता का निरूपण किया गया। कुलपति ने 'काव्यप्रकाश' का अनुसरण किया; पर इनका लक्षण अभ्रांत नहीं है। जसवतसिंह, मतिराम, दास तथा पद्माकर आदि अप्पय दीक्षित से प्रभावित हैं।

दीपक ही सों भेव यह, नियत एक ही होय।
उपमानै उपमेय कौ तुल्ययोगिता सोय॥

—रसरहस्य, ८/९६

तुल्ययोगिता तीन ये लक्षन क्रम तें जानि।
एक शब्द में हित अहित, बहु मैं एकै बानि॥
बहु सों समता गुनन करि, इहि बिधि भिन्न प्रकार॥

—भाषाभूषण, ७७,७८

जहाँ अवर्ण्यन को धरम कै वर्ण्यन को एक।
तुल्ययोगिता कहत हैं जहाँ सुबुद्धि बिबेक॥

—ललितललाम, १३०

सभ बस्तुनि गनि बोलिये, एक बार ही धर्म।
सम फलप्रद हित अहित कों काहू कों यह कर्म॥

—काव्यनिर्णय, ८/८१

तुल्ययोगिता चौबिधि होई।
बर्न्यन को जहँ धर्म इकैई॥
धर्म इकै जु अबर्न्यन केरौ।
दूजी तुल्ययोगिता हेरौ॥
हित अनहित महँ सम ब्यवहारू।
तुल्यजोगिता त्रितिय निहारू॥
बहुत बड़ेनि सँग बर्न्यहु आनौ।
चौथी तुल्यजोगिता जानौ॥

—पद्माभरण, ७१-७५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भेद—उद्भट ने प्रस्तुतों अथवा अप्रस्तुतों के एकधर्माभिसंबंध के आधार पर दो भेदों का वर्णन किया है। भोज ने अनेक भेदों का उल्लेख किया, जिनमें हित एवं अहित के प्रति समान भाववाले भेद को दीक्षित ने भी स्वीकृति दी। [सरस्वतीकंठाभरण, ४/५४]

रुय्यक ने गुण तथा क्रिया के आधार पर चार भेदों का कथन किया और दीक्षित ने तीन भेद माने, जिन्हें हिंदी के आचार्यों ने भी स्वीकार किया। दीक्षित-कृत तीन भेद हैं—

क. प्रस्तुतों अथवा अप्रस्तुतों का एक धर्माभिसंबंध,
ख. मित्र तथा शत्रु (हिताहित) के प्रति समान व्यवहार का कथन,
ग. श्रेष्ठ गुणवालों के साथ प्रस्तुत की गणना।

१. *प्रथम तुल्ययोगिता*—जब अनेक प्रस्तुतों (उपमेयों) या अनेक अप्रस्तुतों (उपमानों) का एकधर्म कथन हो तो प्रथम भेद होगा।

अनेक प्रस्तुतों का एक धर्म—

क. पांडु क्षामं वदनं हृदयं सरसं तवालसं च वपुः।
आवेदयति नितांतं क्षेत्रियरोगं सखि हृदंतः॥

हे सखि ! तुम्हारा पीला तथा सूखा मुख, स्नेहपूर्ण हृदय और आलस्य-युक्त शरीर तुम्हारे हृदय के असाध्य रोग को बतलाता है। यहाँ मुख का पीलापन, हृदय की सरसता और शरीर के आलस्य का एक ही धर्म है 'आवेदयति'।

ख. मानहु मुख दिखरावनी, दुलहिनि करि अनुराग।
सास सदव मन ललनहू, सौतिन दियो सुहाग॥ —बिहारी

यहाँ सास, ललन और सौत के लिए एक ही धर्म कथित है 'दियो'।

उपमानों का एक धर्माभिसंबंध—

क. कुमुदकमलनीलनीरजालिर्ललितविलासजुषोर्दृशोः पुरः का।
अमृतअमृतरश्मिरंबुजन्म प्रतिहतमेकपदे तवाननस्य॥

प्रिय ! ललित विलास से युक्त तुम्हारी आँखों के समक्ष लालकमल, नीलकमलों का समूह व्यर्थ है। तुम्हारे मुख के समक्ष तो अमृत, चंद्रमा और कमल सभी पराजित हो गए हैं। यहाँ कुमुद, कमल तथा चंद्रमा का एक धर्म है प्रतिहत या पराजित होना।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ख. मंद मंद जब तें भई, चंदमुखी तव चाल।
मन मलीन तब तें भये, मत्त मतंग मराल॥

यहाँ मतंग और मराल का एक धर्म है 'मलीन'।

२. *द्वितीय तुल्ययोगिता*—जब शत्रु और मित्र में एक ही प्रकार की वृत्ति दिखाई जाय तो द्वितीय तुल्ययोगिता होगी।

क. यश्च निंबं परशुना, यश्चैनं मधुसर्पिषा।
यश्चैनं गंधमाल्याद्यैः सर्वस्वं कटुरेव सः॥

जो नीम को फरसे से काटे, जो शहद और घी से इसका सिंचन करे अथवा जो गंध-माला आदि के द्वारा इसकी पूजा करे, उन सब के लिए यह (नीम का वृक्ष) कड़ुवा ही होता है। काटने, सींचने तथा पूजा करने में नीम के एक ही व्यहार के वर्णन में द्वितीय भेद है।

ख. इक पाषान प्रहार कर, इक सिचन जल सेय।
धनि रसाल की रीति यह, फल दोउन को देय॥

यहाँ रसाल को सींचने तथा पत्थर मारनेवाले के प्रति समान व्यवहार (फल देना) के वर्णन में द्वितीय तुल्ययोगिता है।

३. *तृतीय तुल्ययोगिता*—जब प्रस्तुत की उत्कृष्ट गुणवाले के साथ तुलना की जाय तो तृतीय तुल्ययोगिता होगी।

क. लोकपालो यमः पाशी श्रीदः शक्रो भवानपि॥

"यमराज, वरुण, कुबेर, इंद्र और आप (राजा) लोकपाल हैं।" यहाँ राजा को लोकपालों के समान कहने में तृतीय तुल्ययोगिता है।

ख. कामदेव अरु कामतरु, चिंतामनि मन मानि।
चौथो तेरो सुजस हू, हैं मनसा के दानि॥

यहाँ किसी राजा के यश को कामदेव, कल्पतरु तथा चिंतामणि के समान अभीष्ट फलदायक कहने में तृतीय तुल्ययोगिता है।

दीपक और तुल्ययोगिता—दीपक में प्रस्तुतों तथा अप्रस्तुतों का एक धर्म कथित किया जाता है; पर तुल्ययोगिता में समानों या प्रस्तुतों अथवा अप्रस्तुतों का एकधर्माभिसंबंध कथित होता है। तुल्ययोगिता में समानों का योग होता है तो दीपक में असमानों का।

तैलबिंदु—सक्षिप्त अर्थ का विस्तार करना तैलबिंदु है। [दे० काव्य-संवाद]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तौंड्री—आचार्य भोज-वर्णित वृत्त्यनुप्रास का एक भेद। [**दे० अनुप्रास**] जब किसी रचना में सरूप वर्णों की ग्रंथि हो तो तौंड्री वृत्ति होगी।

सरस्वतीकंठाभरण, पृ० २३६-३८

त्रपुसपाक—जो रचना प्रारंभ में उत्तम या सरस एवं अंत में मध्यम हो, उसे त्रपुसपाक कहा जाता है। त्रपुस का अर्थ है ककड़ी, इसमें ककड़ी के गुण विद्यमान रहते हैं। [**दे० काव्यपाक**]

आदावुत्तममंते मध्यमं त्रपुसपाकम्।

—काव्यमीमांसा, अध्याय ५, पृ० ५३

त्रास—संचारी भाव। [**दे० संचारी भाव**] त्रास मन की वह स्थिति है, जिसमें भीषण पदार्थों के दर्शन से चित्त चंचल हो जाता है।

सहसा अनिष्ट की प्राप्ति से चित्त में भय का संचार होना त्रास है।

भरत इसकी उत्पत्ति विद्युतपात, उल्कापात, बिजली चमकने, घनगर्जन, आँधी चलने तथा शक्तिशाली पशुओं के शब्द करने आदि विभावों द्वारा मानते हैं। त्रास का अभिनय अंगों को सिकोड़ने, कंप, स्तंभ, वेपथु, रोमांच, वाणी का गद्गद होना तथा प्रलाप प्रभृति अनुभावों-द्वारा होता है।

त्रासो नाम—विद्युदुल्काशनिपातनिर्घातांबुधर महासत्त्वपशुरवादिभिर्विभावै-रुत्पद्यते। तमभिनयेत्संक्षिप्तांगोत्कंपनवेपथुस्तंभरोमांचगद्गदप्रलापादिभिरनुभावैः।

महाभैरवनादाद्यैस्त्रासः समुपजायते।
त्रस्तांगाक्षिनिमेषैश्च तस्य त्वभिनयो भवेत्॥

—नाट्यशास्त्र, ७/९१

धनंजय मेघगर्जन के कारण उत्पन्न मनःक्षोभ को त्रास कहते हैं। इसके अनुभाव कंप आदि हैं।

गर्जितादेर्मनःक्षोभस्त्रासोऽत्रोत्कंपितादयः॥

—दशरूपक, ४/१६

विश्वनाथ के अनुसार वज्रनिर्घोष, विद्युत्पात तथा उल्कादि के कारण उत्पन्न चित्त की व्यग्रता त्रास है।

निर्घातविद्युदुल्काद्यैस्त्रासः कंपादिकारकः।

—साहित्यदर्पण, ३/१६४

भानुदत्त मन के आकस्मिक क्षोभ को त्रास कहते हैं। विचार के कारण उत्पन्न मन का तीव्र क्षोभ भय है और मन का आकस्मिक क्षोभ त्रास। विक्षोभ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में तीव्र तथा सामान्य, दोनों ही प्रकारों के त्रास का समावेश होता है। इसके विभाव हैं—घोरशब्दश्रवण, घोरप्राणियों के दर्शन आदि। अनुभाव हैं—स्तंभ, स्वेद, रोमांच, गात्र का शिथिल होना आदि।

मनोविक्षोभस्त्रासः। तथा च विचारोत्थ मनःक्षोभोभीतिः। आकस्मिकमनःक्षोभस्त्रास इति विक्षोभेणैवतयोरप्येकत्वेनोपसंग्रहः। विभावा घोरस्वनश्रवणघोरसत्वदर्शनादयः। अनुभावाः स्तंभस्वरभेदरोमांचस्त्रस्तगात्रतादयः।

—रसतरंगिणी, पृ० ३७८, पंचम तरंग

भीरोर्घोरसत्वदर्शनस्फूर्जथुश्रवणादिजन्मा चित्तवृत्तिविशेषस्त्रासः।

—रसगंगाधर, पृ० १०५

अनुभावाश्चास्य रोमांचकंपस्तंभभ्रमादयः।
औत्पातिकैर्मनःक्षेपस्त्रासः कंपादिकारकः॥

—रसगंगाधर, पृ० १०५

पंडितराज के अनुसार भीरु व्यक्ति के मन में उत्पन्न उस चित्तवृत्ति को त्रास कहते हैं, जो भयंकर प्राणियों के दर्शन, वज्रनिर्घोष-श्रवण आदि के कारण होता है।

उदाहरण—

क. आलीषु केलीरभसेन बाला मुहुर्ममालापमुपालपंती।
आरादुपाकर्ण्य गिरं मदीयां सौदामिनीयां सुषमामयासीत्॥

"वह मुग्धा सखियों के साथ क्रीड़ा के वेग में मेरे संबंध का वार्त्तालाप कर रही थी; किंतु दूर से मेरी वाणी सुनकर बिजली की तरह भाग गई।"

यहाँ नायिका का नायक की वाणी सुनकर भाग जाना त्रास है।

ख. देस-देस के पुरुष सब, चलत रावरी बात।
यों काँपत ज्यों बात तें, रूख-रूख के पात॥

किसी राजा की चर्चा से ही शत्रुओं का भय से काँप जाना त्रास संचारी है।

त्रोटक—उपरूपक का एक भेद। [दे० उपरूपक] इसमें पाँच, सात, आठ या नौ अंक होते हैं तथा देवता एवं मनुष्य, दोनों का वर्णन किया जाता है। इसके प्रत्येक अंक में विदूषक की उपस्थिति आवश्यक मानी गई है। त्रोटक में प्रधान रस शृंगार होता है तथा अन्य सारी बातें नाटक के समान होती हैं। [दे० नाटक] इसका उदाहरण महाकवि कालिदास-विरचित 'विक्रमोर्वशीयम्' है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सप्ताष्टनवपंचाकं दिव्यमानुषसंश्रयम् ।
त्रोटकं नाम तत्प्राहुः प्रत्येकं सविदूषकम् ।।

—साहित्यदर्पण, ६/२७३

त्यक्तपुनः स्वीकृत—अर्थदोष का २२वाँ भेद । [दे० अर्थदोष]

द

दक्षिण—नायक का एक भेद । [दे० नायक] सभी नायिकाओं में समान और स्वाभाविक अनुराग करनेवाला नायक दक्षिण होता है । दशरूपककार धनंजय के अनुसार जो नायक पूर्वनायिका के प्रति सहृदय रहे और ज्येष्ठा के प्रति भी हृदय से व्यवहार करे, उसे दक्षिण कहते हैं । वह नवीन नायिका के प्रति अनुरक्त होने पर भी पूर्वनायिका के प्रति सहृदय बना रहता है और अपने आचरण से यह नहीं प्रकट होने देता कि वह उससे उदासीन है । विश्वनाथ के मत से जो नायक एक से अधिक रमणियों से समान अनुराग रखनेवाला हो, उसे दक्षिण कहते हैं ।

दक्षिणोऽस्यां सहृदयः ।—२/७

योऽस्यां ज्येष्ठायां हृदयेन सह व्यवहरति स दक्षिणः ।—दशरूपक

एषु त्वनेकमहिलासु समरागो दक्षिणः कथितः ।।—साहित्यदर्पण, ३/३५

सकलनायिकाविषयकसमसहजानुरागो दक्षिणः ।

—भानुदत्त, रसमंजरी, पृ० १७४

बहु नारिन को रसिक पै सब सों प्रीति समान ।

—भिखारीदास, शृंगारनिर्णय, १६

एक भाँति सब तियन सों जाको होय सनेह ।
सो दच्छिन मतिराम कहि बरतन हैं मतिगेह ।।

—रसराज, १४७

जु बहु तियन को सुखद सम, सो दक्षिन गुनखानि ।

—जगद्विनोद, २८६

जो बहु नारिन सें करै सब मिलि प्रीति समान ।
ताको दक्षिण कहत हैं जे कबि बुद्धि निधान ।।

—साहित्य-सागर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उदाहरण—

क. एतत्पुरः स्फुरति पद्मदृशां सहस्र-
मक्षिद्वयं कथय कुत्र निवेशयामि ।
इत्याकलय्य नयनांबुरुहे निमील्य
रोमांचितेन वपुषा स्थितमच्युतेन ॥

—रसमंजरी १०२

कृष्ण का कथन—

"कमल-सदृश नेत्रोंवाली सहस्रों सुंदरियाँ सामने खड़ी हैं, पता नहीं चलता कि अपनी आँखें कहाँ लगाऊँ ?" ऐसा सोचकर श्रीकृष्ण ने अपने कमलवत् नेत्रों को मूँद लिया और उनका सारा शरीर रोमांचित हो गया ।

ख. एकहि भाँति सदा सब सों रतिरंग अनंग कला सुखदायक ।
मैं बलि द्वारिकानाथ की जो दस सोरह सै नवलान को नायक ॥

—शृंगार निर्णय, १७

ग. लाल आरसी में लखै सबको बदन सनेह ॥

दंडी—इन्होंने 'काव्यादर्श' नामक काव्यशास्त्रीय ग्रंथ की रचना की है । इनका व्यक्तित्व सर्जनात्मक तथा भावात्मक प्रतिभा से संपन्न है। इन्होंने 'दशकुमारचरित' तथा 'अवंतिसुंदरी कथा' नामक गद्यकाव्यों की भी रचना की है । 'काव्यादर्श' का [दे० काव्यादर्श] सिंहली अनुवाद नवम शती में हुआ था; अतः इनका समय सप्तम शती का पूर्वार्द्ध निश्चित होता है । 'काव्यादर्श' में काव्य की परिभाषा, भेद, महाकाव्य, कथा, आख्यायिका, रीति, गुण तथा काव्यकारण का विवेचन है । **[इन विषयों पर दंडी का मत जानने के लिए संबद्ध विषयों को देखें]**

दंडी भामह की तरह अलंकारवादी आचार्य हैं । इन्होंने अलंकार के स्वरूप का विस्तार कर संधि, वृत्ति तथा इनके भेदों को अलंकार-रूप मान लिया है ।

यच्च संध्यंगवृत्त्यंगलक्षणाद्यागमांतरे ।
व्यावर्णितमिदं चेष्टमलंकारतयैव नः ॥ —काव्यादर्श, २/३६७

इन्होंने अलंकार को काव्य में मुख्य स्थान देते हुए भी गुण को महत्त्व दिया है । ये रस को अलंकारों में समाहित करके भी कविता में उसे उच्च स्थान प्रदान करते हैं । इन्होंने गुण को कविता का सार या प्राण कहा है । स्वयं कवि होने के कारण रस के प्रति इनकी सहानुभूति है; अतः रस-विवेचन के क्षेत्र में ये भामह की तरह अनुदार नहीं हैं । इन्होंने प्रकारांतर से रस तथा गुण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के पारस्परिक संबंध को भी स्वीकार किया है। इन्होंने काव्य के दो मार्ग —वैदर्भ एवं गौड़—मानकर वैदर्भ मार्ग को अपनाया है और प्रसाद, समता आदि दस गुणों को उसका प्राण माना है। इसके अंतर्गत मधुर गुण का संबंध रस से है [**काव्यादर्श, १/४०-४२**]। दंडी के अनुसार रसवत् वाक्य ही मधुर होता है; अतः रस और माधुर्य एक ही पदार्थ हैं। इनके अनुसार प्रत्येक अलंकार अर्थ में रस-सिंचन की क्षमता रखता है।

कामं सर्वोऽप्यलंकारो रसमर्थे निषिंचति।

—काव्यादर्श, १/६३

दंडी के रस-विवेचन पर भरत तथा भामह का संयुक्त प्रभाव है। रस को रसवत् अलंकार के अंतर्गत मानने के कारण ये भामह के निकट पहुँचते हैं तो विभावादि का सम्यक् वर्णन करने के कारण भरत की परंपरा को छू लेते हैं। रस का अलंकार के अंतर्गत वर्णन करके भी ये भरत के विपरीत नहीं सोचते और न भामह की भाँति केवल विभाव को ही रस मानते हैं।

अलंकार को काव्य का शोभाधायक धर्म मानकर दंडी ने उसका (अलंकार का) व्यापक अर्थ में प्रयोग किया है और रस, रीति तथा गुण को अलंकार के ही अंतर्गत रखा है। अलंकारवादी होकर भी ये रस, गुण, रीति को महत्त्व देते हैं; पर उनके स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकार न कर उन्हें अलंकार का साधक-मात्र मानते हैं। इनके अनुसार काव्य का अमरत्व या कल्पांतर स्थायित्व सदलंकृति में ही है—**काव्यं कल्पांतरस्थायि जायते सदलंकृति।** १/१९

दंडी ने दोष-रहित काव्य को अधिक महनीय माना है। इनके विचार से छोटा भी दोष काव्य को उसी प्रकार दूषित कर देता है, जिस प्रकार श्वेत कुष्ठ के छोटे चिह्न से भी सुंदर शरीर की कांति नष्ट हो जाती है। [**काव्यादर्श, १/७**] इन्होंने दोष-रहित तथा गुणालंकार युक्त वाणी को कामधेनु मानकर दोषपूर्ण वाणी को मूर्खताद्योतक स्वीकार किया है। इनके अनुसार कवि का काव्यमर्मज्ञ होना आवश्यक है, जो गुण तथा दोष के रहस्य को जानकर काव्य-रचना करे। गुण काव्य की समृद्धि के कारण हैं तथा दोष उसकी विफलता के परिचायक हैं।

दंडी का अलंकार-विवेचन अत्यंत विस्तृत है तथा उनके भेद-प्रभेद के विवेचन में सीमा का अतिक्रमण भी कर दिया गया है। इन्होंने यमक के तीन सौ पंद्रह तथा उपमा के बत्तीस भेदों का उल्लेख किया है। दंडी-कृत उपमा के अनेक भेदों को आधार मानकर परवर्ती आचार्यों ने उन्हें स्वतंत्र अलंकार का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रूप दिया है। इन्होंने भामह द्वारा निषेध किए गए हेतु, सूक्ष्म और लेश को भी अलंकार मान लिया है तथा स्वभावोक्ति और आशी: का भी अलंकारत्व स्वीकार किया है। दीपकालंकार के नवीन भेद 'दीपकावृत्ति' की उद्भावना कर दंडी ने इस अलंकार की सीमा का विस्तार किया, जो कालांतर में स्वतंत्र अलंकार के रूप में मान्य हुआ। स्वभावोक्ति को अलंकारों की प्रथम पंक्ति में स्थान देकर इन्होंने इसकी महत्ता प्रतिष्ठित की और संपूर्ण वाङ्मय को वक्रोक्ति तथा स्वभावोक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया। यमक, चित्र और प्रहेलिका नामक शब्दालंकारों का विस्तृत विवेचन दंडी की महत्ता का परिचायक है। इन्होंने अनुप्रास का वर्णन गुण के अंतर्गत किया है। स्वभावोक्ति का नाम जाति देकर ये शास्त्र तथा काव्य दोनों में ही उसकी महत्ता स्वीकार करते हैं। दंडी अतिशयोक्ति को सभी अलंकारों का मूल मानते हैं; पर उसे पृथक् अलंकार के रूप में भी स्थान देते हैं, जिससे इनका प्रथम विचार युक्तिसंगत नहीं लगता। पुनः ये संसृष्टि अलंकार का उपसंहार करते हुए श्लेषालंकार को सभी वक्रोक्तियों की श्रीवृद्धि करनेवाला मानते हैं। इस प्रकार के कथन से इनके विचार में शैथिल्य आ जाता है। एक ओर तो ये स्वभावोक्ति को अलंकार मानकर उसे वाङ्मय का एक प्रकार स्वीकार करते हैं, पुनः वक्रोक्ति को अलंकार का मूल कहते हैं। स्वभावोक्ति को अलंकार मानने से इनके विचार का शैथिल्य द्योतित होता है।

दत्तावसर—कवि का एक भेद। यह भेद काव्योपासनामूलक है। [दे० कवि] जो कवि जीविकोपार्जन करते हुए काव्य-रचना करे, उसे दत्तावसर कहते हैं। इसके लिए काव्य-रचना का काल निश्चित या नियत होता है। यह अवसर प्राप्त करने पर ही सरस्वती की उपासना में तल्लीन होता है; अतः इसे दत्तावसर कहते हैं।

दरव्रीडा—प्रगल्भा नायिका का एक भेद। [दे० प्रगल्भा] जिस नायिका में रति-लज्जा स्वल्प मात्रा में अवशिष्ट हो, उसे दरव्रीडा (अल्प लज्जावाली) कहते हैं।

दर्शक—नाटक में दर्शक उन व्यक्तियों को कहा जाता है, जो उसे (नाटक) देखकर आनंद प्राप्त करते हैं। इसके अन्य नाम प्रेक्षक और सामाजिक हैं।

दशरूपक—इसके प्रणेता धनंजय हैं। [दे० धनंजय] इस ग्रंथ की रचना भरतकृत 'नाट्यशास्त्र' के आधार पर हुई है। इसमें नाटक-संबंधी तत्त्वों को सुबोध बनाया गया है। दशरूपक की रचना कारिका में हुई है, जिनकी संख्या

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तीन सौ है। इसमें चार प्रकाश हैं। प्रथम प्रकाश में रूपक के लक्षण, भेद, अर्थप्रकृति, अवस्था, संधि, अर्थोपक्षेपक, विष्कंभक, चूलिका, अंकास्य, प्रवेशक, अंकावतार तथा अश्राव्य, श्राव्य एवं नियत श्राव्य नामक कथावस्तु के भेदों का विवेचन है। इस प्रकाश में कुल अड़सठ कारिकाएँ हैं। द्वितीय प्रकाश में नायक-नायिका-भेद, उनके (नायक-नायिका के) सहायक, नायिकाओं के बीस अलंकार, वृत्ति (कैशिकी, सात्त्वती एवं आरभटी) तथा नाटकीय पात्रों की भाषा का वर्णन है। इस प्रकाश में कुल बहत्तर कारिकाएँ हैं। तृतीय प्रकाश में पूर्वरंग, अंकविधान तथा रूपक के दस भेदों का वर्णन है। इसमें कुल छिहत्तर कारिकाएँ हैं। चतुर्थ प्रकाश में रस का स्वरूप, उसके अंग तथा नौ रसों का विस्तृत विवेचन छियासी कारिकाओं में किया गया है। इसमें रसनिष्पत्ति, रसास्वादन के प्रकार तथा शांतरस की अनुपयोगिता पर मौलिक विचार व्यक्त किए गए हैं तथा व्यंजना का खडन भी किया गया है।

'दशरूपक' पर अनेक टीकाएँ रची गई हैं, जिनमें धनिक की 'अवलोक' नामक टीका अधिक लोकप्रिय है। धनिक धनंजय के भ्राता थे। इसके अन्य टीकाकारों के नाम हैं—बहुरूपभट्ट, देवपाणी, क्षोणीधर मिश्र तथा कुरवी राम। संप्रति इसके तीन हिंदी अनुवाद हो चुके हैं। (क) डॉ० गोविंद त्रिगुणायतकृत अनुवाद, (ख) डॉ० भोलाशंकर व्यासकृत अनुवाद (ग) डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदीकृत अनुवाद।

दाक्षिणात्या—प्रवृत्ति का एक भेद। इसका वर्णन भरतकृत 'नाट्यशास्त्र' में है। [दे० **रीतिसंप्रदाय**]

दान—मानमोचन का तृतीय उपाय। [दे० **मान**]

दिव्य—नायक का एक प्रकार। [दे० **नायक**] देवता को दिव्य नायक कहते हैं।

दिव्यादिव्य—नायक का एक प्रकार। [दे० **नायक**] जो देवता मनुष्य का रूप धारण कर काव्य या नाटक में चित्रित हो, उसे दिव्यादिव्य कहते हैं।

दीनता या दैन्य—संचारी भाव। [दे० **संचारी भाव**] दुःख या विरह आदि से उत्पन्न कांतिहीनता को दैन्य या दीनता संचारी कहते हैं।

भरत के अनुसार इसकी उत्पत्ति दुर्गति एवं मनस्ताप प्रभृति विभावों द्वारा होती है। दैन्य का अभिनय अधैर्य, शिथिलता, अन्यमनस्कता तथा विक्षेप आदि अनुभावों द्वारा होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दैन्यं नाम—दौर्गत्यमनस्तापादिभिर्विभावैः समुत्पद्यते। तस्याधृतिशिरोरोग-गात्रगौरवान्यमनस्कतामृजापरिवर्जनादिभिरनुभावैरभिनयः प्रयोक्तव्यः।

चिंतौत्सुक्यसमुत्था दुःखाद्या भवति दीनता पुंसाम्।
सर्वमृजापरिहारैर्विविधोऽभिनयो भवेत्तस्य ॥

—नाट्यशास्त्र, ७/४९

धनंजय ने दरिद्रता तथा अपमानादि के कारण होनेवाली कांतिहीनता को दैन्य कहा है। इसके अनुभाव निस्तेजता एवं वस्त्रों की मलिनता आदि हैं।

दौर्गत्याद्यैरनौजस्यं दैन्यं कार्ष्ण्यमृजादिमत् ॥

—दशरूपक, ४/१४

विश्वनाथ ने दुर्गति आदि के कारण उत्पन्न ओजहीनता को दैन्य कहा है। इसका अनुभाव मुख का मलिन होना है।

दौर्गत्याद्यैरनौजस्यं दैन्यं मलिनतादिकृत्।

—साहित्यदर्पण, ३/१४५

भानुदत्त दुरवस्था या दुःखातिरेक की अवस्था को दैन्य कहते हैं। इन्होंने ऐसे लोगों के मत का खंडन किया है जो उदासी (अनुज्ज्वलता) को दैन्य मानते हैं। उदासी तो शरीर का बाह्य लक्षण है; अतः वह दैन्य का अनुभाव है। दैन्य दरिद्रता आदि विभावों द्वारा उत्पन्न होता है। इसके शारीरिक क्लेश तथा भूख की पाड़ा आदि अनुभाव हैं।

दुरवस्था दुःखातिरेको वा दैन्यम्। अनौज्ज्वल्यमिति केचित्। तन्न, तस्य बहिर्विषयत्वेन तदनुभावकत्वात्। विभावा दारिद्र्यादयः अनुभावाः कायक्लेश-क्षुत्पीडनादयः। —रसतरंगिणी, पृ० ३४९, पंचम तरंग

पंडितराज जगन्नाथ दुःख, दारिद्र्य तथा अपमानजन्य चित्तवृत्ति को दैन्य कहते हैं, जिसमें अपने प्रति हीन शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

दुःख-दारिद्र्यापराधादिजनितः स्वापकर्षभाषणादिहेतुश्चित्तवृत्तिविशेषो दैन्यम्। —रसगंगाधर, पृ० १००

उदाहरण—

क. **हतकेन मया वनांतरे, वनजाक्षी सहसा विवासिता।**
अधुना मम कुत्र सा सती, पतितस्येव परा सरस्वती ॥

सीता के निर्वासन के बाद राम की उक्ति—

हतभागे मैंने उस कमलनयनी सीता को वन में भेज दिया है, अब वह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पतिव्रता मुझे उसी प्रकार नहीं प्राप्त हो सकती, जिस प्रकार पतित पुरुष वेद-वाणी को प्राप्त नहीं करता।

यहाँ राम के परितापपूर्ण वचन में दैन्य भाव की अभिव्यक्ति हुई है।

ख. राम सों कहत पद्माकर पुकारि तुम,
मेरे महापापन को पार हू न पाओगे।
सीता-सी सती को तज्यो झूठोई कलंक सुनि,
साँचोई कलंकी ताहि कैसे अपनाओगे॥

यहाँ कवि निजी पापों के आधिक्य एवं कलंक का उल्लेख कर दैन्य भाव की व्यंजना कर रहा है।

दीपक—सादृश्यमूलक अलंकार। जब प्रस्तुत (उपमेय) एवं अप्रस्तुत (उपमान) का एक धर्म कथन किया जाय तो दीपक अलंकार होगा। इस अलंकार की कल्पना दीपक न्याय पर हुई है। दीपक अलंकार में प्रस्तुत में स्थित साधारण धर्म अप्रस्तुत को भी प्रकाश करता है, इसलिए इसे दीपक कहते हैं। इसमें कुछ पदार्थ प्रस्तुत होते हैं तथा कुछ अप्रस्तुत और दोनों का एकधर्माभिसंबंध कथित होता है।

प्राकरणिकाप्राकरणिकयोर्मध्यादेकत्र निर्दिष्टः समानोधर्मः प्रसंगेनान्योत्रोपकारादीपसादृश्येन दीपकाख्यालंकारोत्थापकः।— अलंकारसर्वस्व, पृ० ९१

दीपक में औपम्य या सादृश्य आर्थ होता है, वह इवादि शब्दों द्वारा सूचित नहीं होता।

दीपक अत्यंत प्राचीन अलंकार है जिसका उल्लेख भरत-कृत 'नाट्यशास्त्र' में है। इसका विवेचन सभी आचार्यों ने किया है। भरत के अनुसार नानाधिकरणों में स्थित शब्दों का एक वाक्य से संयोग होने पर दीपक अलंकार होता है। इन्होंने प्रस्तुताप्रस्तुत की चर्चा नहीं की।

नानाधिकरणार्थानां शब्दानां संप्रकीर्तितम्।
एकवाक्येन संयोगात्तद्दीपकमिहोच्यते॥

—नाट्यशास्त्र, १६/६०

भामह ने दीपक का लक्षण प्रस्तुत न कर उसके तीन भेदों—आदि, मध्य तथा अंत का कथन किया है। इनके अनुसार दीपक में अर्थ का दीपन होता है और सभी भेद क्रिया की भिन्नता के कारण उद्भूत होते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आदिमध्यांतविषयं त्रिधा दीपकमिष्यते ।
एकस्यैव व्यवस्थत्वादिति तद्भिद्यते त्रिधा ॥२/२५
अमूनि कुर्वतेऽन्वर्थामस्याख्यामर्थदीपनात् ।
त्रिभिर्निदर्शनैश्चेदं त्रिधा निर्दिश्यते यथा ॥

—काव्यालंकार, २/२६

दंडी के अनुसार एक ही वाक्य में स्थित जाति, गुण, क्रिया एवं द्रव्यवाची पदों का संपूर्ण वाक्य का उपकार करना दीपक है ।

जातिक्रियागुणद्रव्यावाचिनैकत्रवर्त्तिना ।
सर्ववाक्योपकारश्चेत् तमाहुर्दीपकं यथा ॥

—काव्यादर्श, २/९७

इन्होंने इसके अनेक भेदों का निरूपण कर दीपक के क्षेत्र का विस्तार किया । मालादीपक, विरुद्धार्थदीपक, एकार्थदीपक, श्लिष्टार्थदीपक तथा आवृत्ति-दीपक आदि अनेक भेद माने गए ।

उद्भट ने प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत के एकधर्माभिसंबंध का कथन करते हुए उपमा को दीपक में अंतर्लीन बताया । इनके अनुसार दीपक में सादृश्य का योग रहता है ।

आदिमध्यांतविषयाः प्राधान्येतरयोगिनः ।
अंतर्गतोपमाधर्माः यत्र तद्दीपकं विदुः ॥

—काव्यालंकारसारसंग्रह, १/१४

वामन ने बताया कि दीपक में उपमेय तथा उपमान वाक्यों में एक क्रिया के साथ संबंध दिखाया जाता है ।

उपमानोपमेयवाक्येष्वेकाक्रियादीपकम् ।

—काव्यालंकारसूत्र, ४,३,१८

रुद्रट के अनुसार अनेक वाक्यार्थों के एक ही क्रियापद या कारकपद के सन्निवेश में दीपक होता है ।

यत्रैकमनेकषां वाक्यार्थानां क्रियापदं भवति ।
तद्वत्कारकपदमपि तदेतदिति दीपकं द्वेधा ॥

—काव्यालंकार, ७/६४

मम्मट ने कहा कि जब प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत के धर्म या क्रिया आदि गुण का एक ही बार कथन किया जाय तो दीपक अलंकार होता है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सकृद्वृत्तिस्तुधर्मस्य प्रकृताप्रकृतात्मनाम् ।
सैवक्रिया सुबह्वीषु कारकस्येति दीपकम् ।।

—काव्यप्रकाश, १०/१०३

रुय्यक ने बताया कि दीपक में उपमानोपमेय भाव प्रतीयमान या अभिगम्य होता है। इनके अनुसार प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत के एकधर्मसंबंध को दीपक कहते हैं।

प्रस्तुताप्रस्तुतानां तु दीपकम् ।
तत्र वाद्यप्रयोगादुपमानोपमेयभावोगम्यमानः ।।

—अलंकारसर्वस्व, पृ० ९१

रुय्यक ने वाक्यगत धर्म के आदि, मध्य तथा अंत में प्रवृत्त होने के कारण दीपक के तीन भेदों का कथन किया हैं। परवर्ती आचार्यों में जयदेव, विद्याधर, विद्यानाथ, विश्वनाथ तथा अप्पय दीक्षित ने किसी प्रकार की नवीनता प्रदर्शित नहीं की, सभी मम्मट एवं रुय्यक के ऋणी हैं। सभी ने प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत के एकधर्म-कथन को दीपक माना है।

प्रस्तुताप्रस्तुतानां च तुल्यत्वे दीपकं मतम् ।। —चंद्रालोक, ५/५३
मिलितानां तु तथैषां दीपकमित्युच्यते षोढा ।
एतदलंकृतियुगलं कथितं तावत् पदार्थगत्वेन ।।

—एकावली, ८/१६

प्रस्तुताप्रस्तुतानां तु सामस्त्ये तुल्यधर्मतः ।
औपम्यं गम्यते यत्र दीपकं तन्निगद्यते ।।

—प्रतापरुद्रीय, पृ० ३०९

अप्रस्तुतप्रस्तुतयोर्दीपकं तु निगद्यते ।। —साहित्यदर्पण, १०/४९
वदंति वर्ण्यावर्ण्यानां धर्मैक्यं दीपकं बुधाः ।। —कुवलयानंद, ४८

पंडितराज ने दीपक को तुल्ययोगिता का एक प्रकार मानकर उसका अंतर्भाव तुल्ययोगिता में किया है।

ये प्रकृत तथा अप्रकृत के एक धर्म को दीपक कहते हैं।

प्रकृतानामप्रकृतानां चैकसाधारणधर्मान्वियोदीपकम् ।।

—रसगंगाधर, पृ० ४३१

तुल्ययोगितातो दीपकं न पृथग्भावमर्हति, धर्मसकृद्वृत्तिमूलायाविच्छित्तेरविशेषात् ।.........न च धर्मस्य सकृद्वृत्तेरविशेषेऽपि धर्मिणों प्रकृतत्वाप्रकृतत्वाभ्यां

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रकृताप्रकृतत्वेन च तुल्ययोगिता दीपकस्य विशेष इति वाच्यम् । तत्रापि तुल्ययोगितायां धर्मिणां केवल प्रकृतत्वस्य केवलाप्रकृतत्वस्य च विशेषस्य सत्त्वादलंकारद्वैतापत्तेः ।
—रसगंगाधर, पृ० ४३६

एवं च प्राचीनानां तुल्ययोगितातो दीपकस्य पृथगलंकारतामाचाक्षमाणानां दुराग्रहमात्रमिति नव्याः ।
—वही, पृ० ४३६

विश्वेश्वर पंडित दीपक में ही तुल्ययोगिता का समावेश करना समीचीन मानते हैं ।

इति भगवता भरत मुनिना दीपकस्यांगीकारात् तत्रैव तुल्ययोगितांतर्भावस्यौचित्यादिति दिक् ॥
—अलंकारकौस्तुभ, पृ० २९७

प्रकृताप्रकृतानां यद्येकान्वयितास्ति दीपकं तत्स्यात् । यत्रोपमानोपमेयभूतानांप्राकरणिकाप्राकरणिकानामेकपदोपात्त न गुणक्रियादिना धर्मेणान्वयस्तद्दीपकम् ।
—वही, पृ० २९०

रीतिकालीन आचार्यों ने दीपक अलंकार के निरूपण में दंडी, मम्मट, विद्यानाथ तथा अप्पय दीक्षित का आधार ग्रहण किया है । केशव ने दंडी के लक्षण का भावानुवाद किया तो चिंतामणि और कुलपति ने 'काव्यप्रकाश' का । चिंतामणि ने विद्यानाथ की भी परिभाषा को अनूदित किया है । जसवंतसिंह, मतिराम तथा पद्माकर आदि ने दीक्षित को आधार बनाकर दीपकालंकार का वर्णन किया ।

वाच्यक्रिया गुण द्रव्य को, बरनहु करि इक ठौर ।
दीपक दीपति कहत हैं, केशव कबि सिरमौर ॥
—कविप्रिया, १३/२१

प्रकृत और अप्रकृत की वृत्ति एक ही वार ।
कारक की बहुक्रियन में दीपक उक्ति उदार ॥
—कविकुलकल्पतरु, ३/१८१

प्रकृति अप्रकृति दर्व वहु, एक क्रिया जहँ ठाउं ।
द्रव्य एक व्यौहार बहु, द्वै विधि दीपक नाउं ॥
—रसरहस्य, ८/९१

सो दीपक निज गुनन सों बर्न्य इतर इक भाइ ॥
—भाषाभूषण, ८०

बर्न्यं अबर्न्यंनि को जहाँ धरम होत है एक ।
बरनत हैं दीपक तहाँ कवि करि विमल विवेक ॥
—ललितललाम, १३५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दीपक बन्र्य अबन्र्य को धर्म इकै जु लखाइ ।।

—पद्माभरण, ७६

भेद—दीपक के दो भेद किए गए—दीपक और आवृत्तिदीपक । दीक्षित ने आवृत्तिदीपक के तीन भेदों का वर्णन किया—पदावृत्ति, अर्थावृत्ति और पदार्थावृत्ति ।

क. अमृतस्य चंद्रिकाया ललितायाश्चापि कवितायाः ।
सुजनस्य च निर्माणं जनयति नहि कस्य संतोषम् ।।

अमृत, चाँदनी, सुंदर कविता और सज्जन के निर्माण किसको संतोष नहीं देते ? यहाँ अमृत, चाँदनी (उपमान) सज्जन और कविता (उपमेय) सब का एक धर्म संतोष है ।

ख. चितवनि, भौंह, कमान, गढ़रचना, बरुनी, अलक ।
तरुनि, तुरंगम तान, आधु बँकाई ही बढ़ैं ।।

—बिहारी

यहाँ चितवन, भौंह, कमान आदि का एक धर्म है—बढ़ै ।

आवृत्तिदीपक—जब क्रियापदों की आवृत्ति हो तो आवृत्ति दीपक होता है । इसमें पद या अर्थ या दोनों की आवृत्ति होती है ।

१. *पदावृत्ति*—जब भिन्न-भिन्न अर्थवाले पदों की आवृत्ति हो तो पदावृत्ति होगी ।

क. वर्षत्यंबुदमालेयं वर्षंत्येषा च शर्वरी ।

यह मेघमाला बरस रही है तथा रात के समान आचरण कर रही है । यहाँ 'वर्षति' क्रिया पद की आवृत्ति हुई है तथा दोनों स्थानों पर इसके अर्थ बदल गए हैं ।

ख. घन बरसैं हैं री सखी, निसि बरसैं हैं देख ।।

२. *अर्थावृत्ति*—एक ही अर्थवाले भिन्न-भिन्न पदों की आवृत्ति होने पर अर्थावृत्ति होती है ।

क. उन्मीलंति कदंबानि स्फुटंति कुटजोद्गमाः ।।

"कदंब के पुष्प खिल रहे हैं तथा कुटज की कलियाँ फूल रही हैं ।" यहाँ 'उन्मीलंति' एवं 'स्फुटंति' विभिन्न पदों की दो स्थानों पर आवृत्ति होने से अर्थावृत्ति है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ख. प्रान प्यारे चित में निवास प्रान प्यारी रुखै।
प्रान प्यारो बसत हिये में प्रान प्यारी के ॥

यहाँ 'निवास करें' तथा 'बसत' एक अर्थवाले दो पदों की आवृत्ति हुई है।

३. *पदार्थावृत्ति*—जब पद और अर्थ दोनों की आवृत्ति हो तो पदार्थावृत्ति होती है।

क. माद्यंति चातकास्तृप्ता माद्यंति च शिखाबलाः ॥

"बादल को देखकर चातक तृप्त हो मस्त हो रहे हैं और मयूर भी मस्त हो रहे हैं।" एक पद की एक ही अर्थ में यहाँ आवृत्ति (माद्यंति) होने से पदार्थावृत्ति है।

ख. भलो भलाइहिं पै लहहिं, लहहिं निचाइहिं नीच।
सुधा सराहिय अमरता, गरल सराहिय मीच ॥

'लहहिं' और 'सराहिय' पद और अर्थ दोनों की आवृत्ति के कारण यहाँ पदार्थावृत्ति है।

दुर्मल्लिका—उपरूपक का एक भेद। [दे० उपरूपक] इसकी रचना चार अंकों में होती है और कैशिकी तथा भारती वृत्ति का निबंधन किया जाता है। इसमें गर्भ-संधि का अभाव होता है तथा पात्र कलाकुशल होते हैं। इसका नायक निम्न प्रकृति का व्यक्ति होता है। इसके प्रथम अंक में विट की क्रीडा और छह घड़ी के व्यापार का वर्णन किया जाता है। दूसरे अंक में विदूषक का व्यापार रहता है और दस घड़ी का समय निर्धारित किया जाता है। तीसरे अंक में पीठमर्द का विलास बारह घड़ी तक वर्णित होता है और चौथे अंक में नागरिक पुरुषों की क्रीड़ाएँ प्रदर्शित की जाती हैं तथा बीस घड़ी का समय लगता है। इसका उदाहरण 'विंदुमती' है।

दुर्मल्ली चतुरंका स्यात् कैशिकी भारतीयुता।
अगर्भा नागरनराम्यूननायकभूषिता ॥
त्रिनालिः प्रथमोऽङ्कास्यां विटक्रीड़ामयो भवेत्।
पंचनालिर्द्वितीयोऽङ्को विदूषकविलासवान्।
षण्णालिकस्तृतीयस्तु पीठमर्दविलासवान्।
चतुर्थो दशनालिः स्यादंकः क्रीडितनागरः ॥

—साहित्यदर्पण, ६/३०३-३०५

दुर्वाचनयोग—साहित्यिक मनोविनोद का एक प्रकार। [दे० काव्यगोष्ठी]

दुष्क्रमत्व—अर्थदोष का पाँचवाँ भेद। [दे० अर्थदोष]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दूती—दूतत्व (संदेश-प्रेषण) कार्य में प्रवीण स्त्री। नायक-नायिका का परस्पर मिलन करानेवाली स्त्री दूती है। यह दौत्यकार्य में अत्यंत दक्ष या प्रवीण होती है। इसके कार्य हैं—संघट्टन (नायक-नायिका को मिलाना) और विरह-निवेदन।

भानुदत्त ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है—

दूत्यव्यापारपारंगमा दूती। तस्याः संघट्टन-विरहनिवेदनादीनि कर्माणि।

—रसमंजरी, पृ० १६७-१६८

विश्वनाथ ने सखी, नटी, दासी, धाय की लड़की, पड़ोसिन, बालिका, संन्यासिनी, धोबिन, बढ़ई की स्त्री, नाइन, रंगरेजिन या स्वयं नायिका को दूतियों के अंतर्गत माना है।

दूत्यः सखी नटी दासी धात्रेयी प्रतिवेशिनी।
बाला प्रव्रजिता कारूः शिल्पिन्याद्याः स्वयं तथा॥

—साहित्यदर्पण, ३/१२८

निपुन दूतता में सदा दूती ताहि बखान।
उत्तम मध्यम अधम यों तीनि भाँति सों जान॥

—रसराज, २६९

दूतपने में ही सदा, जो तिय परम प्रबीनि।
उत्तम मध्यम अधम हैं, सो दूती बिधि तीनि॥

—जगद्विनोद, ३५६

दूतियों के गुण की भी चर्चा की गई है। विश्वनाथ के अनुसार कला में कुशलता, उत्साह, भक्ति, परचित्तज्ञान, स्मृति, मधुरता, नर्मनिपुणता एवं वार्त्तालाप में चतुरता दूतियों के गुण हैं और इन्हीं गुणों के आधार पर इनके उत्तमा, मध्यमा और अधमा भेद किए गए हैं।

कलाकौशलमुत्साहो भक्तिश्चित्तज्ञता स्मृतिः।
माधुर्यं नर्मविज्ञानं वाग्मिता चेति तद्गुणाः॥
एता अपि यथौचित्यादुत्तमाधममध्यमाः॥

—साहित्यदर्पण, ३/१२९-१३०

दूती का एक अन्य भेद स्वयंदूतिका है। जो नायिका स्वयं अपना दूतत्व करे, उसे स्वयंदूतिका कहते हैं।

दूती के तीन प्रकार हैं—उत्तमा, मध्यमा और अधमा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तमादूती—मीठी बातें कहकर नायिका का हित-साधन करनेवाली दूती उत्तमा है। [**दे० उत्तमादूती**]

मध्यमादूती—कुछ मीठी और कुछ कठोर (कटु) बातें बोलनेवाली दूती मध्यमा है। [**दे० मध्यमादूती**]

अधमादूती—नायक अथवा नायिका से कठोर वाणी बोलनेवाली दूती अधमा है। [**दे० अधमादूती**]

इनके अतिरिक्त दूतियों के अन्य भेद हैं—निसृष्टार्था, परिमितार्था, पत्रहारी, मूढ़दूती भार्यादूती, मूकदूती, वातदूती। (इनका विवरण अक्षरादि क्रम से देखें)

दृश्य—नाटक या रूपक का वह अंश, जो रसप्रवण या आकर्षक होने के कारण रंग-मंच पर दिखाया जाय, उसे दृश्य कहते हैं। मधुर, उदात्त तथा रस और भाव से निस्यंद कथा के अंश को मंच पर दिखाया जाता है। इस संबंध में धनंजय के विचार द्रष्टव्य हैं—"रंगमंच की दृष्टि से कथा के दो प्रकार हैं—दृश्य और सूच्य। नाटककार अपनी रचना के प्रभावोत्पादक तथा रसमय वस्त्वंश को ही रंगमंच पर प्रदर्शित करता है और नीरस तथा अनौचित्यपूर्ण भाग की सूचना विभिन्न पात्रों द्वारा देता है।

द्वेधा विभागः कर्तव्यः सर्वस्यापीह वस्तुनः।
सूच्यमेव भवेत् किंचिद् दृश्यश्रव्यमथापरम्॥
नीरसोऽनुचितस्तत्र संसूच्यो वस्तुविस्तरः।
दृश्यस्तु मधुरोदात्तरसभावनिरंतरः॥ —दशरूपक, १/५६-५७

दृश्यकाव्य—काव्य का वह भेद, जिसका आनंद चक्षुरिंद्रियों के संनिकर्ष से प्राप्त किया जाय अर्थात् नाटक या रूपक। [**दे० नाटक**]

दृष्टांत—सादृश्यमूलक अलंकार। उपमेय वाक्य, उपमान वाक्य तथा उनके साधारण धर्मों में यदि बिंबप्रतिबिंबभाव हो तो दृष्टांत अलंकार होगा।

'दृष्टांत' का अर्थ है उदाहरण। इसमें किसी बात को कहकर उसकी पुष्टि के लिए तत्समान अन्य बात कही जाती है। इसमें दो वाक्य होते हैं—एक उपमेय वाक्य और दूसरा उपमान वाक्य और दोनों के साधारणधर्म भिन्न होते हैं; किंतु उनमें बिंबप्रतिबिंबभाव होता है या एक प्रकार की समानता होती है। दृष्टांत में सादृश्यवाचक पदों या शब्दों का प्रयोग नहीं होता। इसमें प्रथम वाक्य की छाया द्वितीय वाक्य में पड़ती है अर्थात् प्रथम वाक्य की पुष्टि के लिए द्वितीय वाक्य की योजना की जाती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दृष्टांत अलंकार के प्रस्तोता आचार्य उद्‌भट हैं; तत्पश्चात् सभी आचार्यों ने इसका निरूपण किया। उद्‌भट ने बताया कि जब अभीष्ट पदार्थ का प्रतिपादन करने के लिए इष्ट पदार्थं का बिंबप्रतिबिंब भाव प्रतिष्ठित हो एवं उसमें सादृश्यवाचक पदों (शब्दों) का प्रयोग न किया जाय तो दृष्टांत होगा।

इष्टार्थस्य विस्पष्ट प्रतिबिंबनिदर्शनम्।
यथेवादि पदैः शून्यं बुधैर्दृष्टांत उच्यते॥

—काव्यालंकारसारसंग्रह, ६/८

रुद्रट के अनुसार जब प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत अर्थ किसी अर्थ-विशेष का उपन्यास कर पुनः उसी के समान किसी अन्य अर्थ का उपस्थापन करे तो वहाँ दृष्टांत अलंकार होगा।

अर्थ विशेषं पूर्वं यादृङ् न्यस्तो विवक्षितेतरयोः।
तादृशमन्यं न्यस्येद्यत्र पुनः सोऽत्रदृष्टांतः॥

—काव्यालंकार, ८/९४

इन्होंने विवक्षित और अविवक्षित दो भेदों का वर्णन किया है।

मम्मट ने दृष्टांत अलंकार के स्वरूप को व्यवस्थित किया। इन्होंने कहा कि उपमेय वाक्य, उपमान वाक्य एवं उनके साधारण धर्म में यदि बिंबप्रतिबिंब भाव हो तो दृष्टांत अलंकार होगा। यह साधर्म्य एवं वैधर्म्य, दोनों ही स्थितियों में होता है।

दृष्टांतः पुनरेतेषां सर्वेषां प्रतिबिंबनम्॥

—काव्यप्रकाश, १०/१०२

परवर्ती आचार्यों में रुय्यक, जयदेव, शोभाकर, विद्याधर, विद्यानाथ, विश्वनाथ तथा दीक्षित ने मम्मट के ही विचार का अनुवदन किया है, इनके विवेचन में किसी प्रकार की नवीनता नहीं है।

तस्यापि बिंबप्रतिबिंबभावतया निर्देशे दृष्टांतः। तस्यापीति न केवलमुपमानोपमेययोः तच्छब्देन सामान्यधर्मः प्रत्यवमृष्टः। अयमपि साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां द्विविधः। —अलंकारसर्वस्व, पृ० ९६

चेद्‌बिंबप्रतिबिंबत्वं दृष्टांतस्तदलंकृतिः॥

—चंद्रालोक, ५/५६

वाक्यद्वये धर्मस्य प्रतिबिंबने बिंबप्रतिबिंबभावेनावस्थाने आर्थमौपम्यं दृष्टांतः॥

—अलंकाररत्नाकर, पृ० १९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बिंबप्रतिबिंबत्वं यद्युपमानोपमेययोर्भवति ।
धर्मस्यापि तदानीं दृष्टांतः कथ्यते द्विविधः ॥

—एकावली, ८/१८

यत्र वाक्यद्वये बिंबप्रतिबिंबतयोच्यते ।
समानधर्मोवाक्यज्ञैः स दृष्टांतो निगद्यते ॥

—प्रतापरुद्रीय, पृ० ३११

'कुवलयानंद' में 'चंद्रालोक' का लक्षण उद्धृत है ।

—कुवलयानंद, ५२

दृष्टांतस्तु सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिंबनः ॥

—साहित्यदर्पण, १०/५१

प्रकृतवाक्यार्थघटकानामुपमानादीनां साधारणधर्मस्य बिंबप्रतिबिंबभावे-दृष्टांतः ॥ —रसगंगाधर, पृ० ४५२

रीतिकालीन आचार्यों का दृष्टांत-निरूपण मुखयतः 'काव्यप्रकाश', 'प्रतापरुद्रीय' तथा 'चंद्रालोक' (कुवलयानंद) पर आश्रित है। चिंतामणि ने मम्मट एवं विद्यानाथ, दोनों के लक्षणों से सहायता ली तो कुलपति ने 'काव्यप्रकाश' की परिभाषा का भावानुवाद किया । मतिराम और पद्माकर 'कुवलयानंद' से प्रभावित हैं और दास का लक्षण मौलिक है ।

जहाँ तुलित द्वै वस्तु को शब्द भेद अभिधान ।
सो बिंबप्रतिबिंबमय भाव कहत सज्ञान ॥
अलंकार दृष्टांत में सदृशधर्श को होइ ।
विसेसन हु को होइ पुनि पुनि विसेस्य में होइ ॥

—कविकुलकल्पतरु, ३/९३-९५

उपमानरु उपमेय पुनि साधारण जेहि ठाँउ ।
वाचक सब प्रतिबिंब हैं, सो दृष्टांता नाँउ ॥

—रसरहस्य, ८/८८

सम मुख करि औ विषममुख सो पुनि द्वै विधि होय ॥ —वही
पदसमूह जुग धर्म जहँ जिमि बिबहिं प्रतिबिंब ।
सुकबि कहत दृष्टांत हैं, जे मन दर्पन बिंब ॥

—ललितललाम, १४५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जहाँ बिंबप्रतिबिंब सम दुहूँ वाक्य को धर्म।
ताहि कहत दृष्टांत हैं जे कबि कबिता-बर्म ॥
—पद्माभरण, ८२

लखि बिंब-प्रतिबिंब गति, उपमेयो उपमान।
लुप्त सब्द-बाचक किये है दृष्टांत सुजान ॥
—काव्यनिर्णय, ८/५४

भेद—साधर्म्य एवं वैधर्म्य के आधार पर दृष्टांत के दो भेद किए गए हैं।

१. साधर्म्य—

क. त्वयि दृष्ट एव तस्या निर्वाति मनोभव ज्वलितम्।
आलोके हि हिमांशोर्विकसति कुसुमं कुमुद्वत्याः ॥

"उस नायिका का काम से जला हुआ हृदय तुमको देखते ही शांत हो जाता है। कुमुदिनी चंद्रमा को देखते ही खिल पड़ती है।" यहाँ नायक और चंद्रमा तथा नायिका और कुमुदिनी में बिंबप्रतिबिंब भाव है।

ख. परी प्रेम नंदलाल के मोहि न भावत जोग।
मधुप राजपद पाइकै भीख न मांगत लोग ॥ —मतिराम

यहाँ कृष्ण के प्रेम में अनुरक्त होकर गोपियों को योग का न भाना वैसा ही है, जैसा राजपद पाकर भीख न माँगना। प्रथम उपमेय वाक्य है और द्वितीय उपमान वाक्य तथा प्रथम वाक्य की सत्यता के निश्चय के लिए द्वितीय वाक्य की योजना हुई है।

२. वैधर्म्य—

क. तवाहवे साहसकर्मशर्मणः करं कृपाणांतिकमानिनीषतः।
भटाः परेषां विशरारुतामगुः दधत्यवाते स्थिरतां हि पांसवः ॥

"साहसिक-कर्म करके आनंद प्राप्त करनेवाले आपके हाथ कृपाण के पास बढ़ते ही शत्रुओं के सैनिक छिन्न-भिन्न हो गए। धूलि हवा के न चलने पर ही स्थिर रह सकती है।" यहाँ पांसु तथा भट के पलायन एवं अस्थिरता में बिंबप्रतिबिंबन है।

ख. प्रगट करहिं जिय प्रीति को, जे नर सुजन सुधार।
नहिं कबहूँ कुचला जु ह्वै ताप मिटावन हार ॥

यहाँ पूर्वार्द्ध का वाक्य विधि रूप तथा उतरार्द्ध का निषेध-सूचक है।

दृष्टांत और प्रतिवस्तूपमा—

प्रतिवस्तूपमा में एक साधारण धर्म का भिन्न-भिन्न शब्दों द्वारा कथन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

किया जाता है; किंतु दृष्टांत में दो साधारण धर्म होते हैं और उनमें बिंबप्रतिबिंब-भाव होता है। प्रतिवस्तूपमा में वस्तु-प्रतिवस्तुभाव होता है और दृष्टांत में बिंबप्रतिबिंबभाव। एक ही अर्थ का पृथक्-पृथक् शब्दों-द्वारा कथन ही वस्तु-प्रतिवस्तुभाव है।

देशवैशिष्ट्योत्पन्नवाच्यसंभवा—आर्थीव्यंजना का अष्टम प्रकार। [दे० आर्थीव्यंजना]

देशौचित्य—औचित्य का पंद्रहवाँ भेद। [दे० औचित्य के भेद]

देहरीदीपक—आचार्य भिखारी दास-वर्णित एक नूतन अलंकार। जब बीच में पड़ा हुआ क्रियापद दोनों ओर लगे तो देहरीदीपक अलंकार होगा।

परै एक पद बीच में, दुहुँ दिसि लागै सोइ।
सो है दीपक देहली, जानत है सब कोइ॥
—काव्यनिर्णय, १८/३७

उदाहरण—

हौं रीझी लखि रीझिहौ, छबिहिं छबीले लाल।
सोनजुही-सी होत दुति, मिलत मालती माल॥
—बिहारी

यहाँ 'लखि' पद 'हौं लखि रीझी' तथा 'लखि रीझिहौ'—इन दोनों वाक्यों में अन्वित हुआ है।

जिस प्रकार देहली पर स्थित दीपक उसके आगे-पीछे, दोनों ओर प्रकाश देता है, उसी प्रकार देहरीदीपक में एक ही क्रियापद दोनों ओर के वाक्यों से संबद्ध होता है। [दे० दीपक]

दोष—दोष से अभिप्राय काव्य-दोष का है। संस्कृत-काव्यशास्त्रियों ने व्यापक पैमाने पर काव्यदोषों का निरूपण कर यह सिद्ध किया कि निर्दोषता सफल काव्य की पहली शर्त्त है। दोष-परिहार को काव्य का गुण मान लिया गया है। सभी आचार्यों ने दोष की हेयता प्रदर्शित करने में एक-सा विचार व्यक्त किया है। इस संबंध में उनके दो दल हैं—प्रथम वर्ग में ऐसे आचार्य हैं, जो नितांत निर्दुष्ट रचना को ही काव्य मानने के पक्ष में हैं; किंतु दूसरा दल अपेक्षाकृत अधिक उदार विचार रखता है। प्रथम वर्ग के अंतर्गत भामह, दंडी, रुद्रट, केशव मिश्र और वाग्भट हैं तो दूसरे दल में भरत तथा विश्वनाथ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भरत ने नाटक के विवेचन में दोष पर विचार किया है। उनके अनुसार संसार की कोई भी वस्तु दोष-रहित नहीं है; अतः विद्वानों को इस पर अधिक विचार नहीं करना चाहिए।

न च किंचिद् गुणहीनं दोषैः परिवर्जितं न वा किंचित्।
तस्मान्नाट्यप्रकृतौ दोषा नात्यर्थतो ग्राह्याः॥

—नाट्यशास्त्र, १७/४७

भामह ने दोषयुक्त काव्य को कुपुत्र की भाँति निंदा का पात्र माना है। इन्होंने कहा कि काव्य में एक भी दोषयुक्त शब्द का समावेश न हो। कवि का नहीं लिखना न तो अधर्म है और न व्याधिकारक या दंडदायक; किंतु बुरा काव्य या सदोष काव्य की रचना करना तो साक्षात् मृत्यु है।

सर्वथा पदमप्येकं न निगाद्यमवद्यवत्।
विलक्ष्मणा हि काव्येन दुःसुतेनेव निंद्यते॥
नाकवित्वमधर्माय व्याधये दंडनाय वा।
कुकवित्वं पुनः साक्षान्मृतिमाहुर्मनीषिणः॥

—काव्यालंकार, १/११,१२

दंडी भामह से एक कदम आगे बढ़कर कहते हैं कि दोष-रहित तथा गुण एवं अलंकार से युक्त काव्य कामधेनु की भाँति है; पर दोषयुक्त काव्य तो कवि की मूर्खता प्रकट करता है। जिस प्रकार सुंदर शरीर पर श्वेत कुष्ठ का दाग उसे असुंदर एवं गर्हित बना देता है, उसी प्रकार दोषों के कारण काव्य भी दूषित हो जाता है।

गोर्गोः कामदुधासम्यक् प्रयुक्ता स्मर्यते बुधैः।
दुष्प्रयुक्ता पुनर्गोप्यं प्रयोक्तुः सैव शंसति॥
तदल्पमपिनोपेक्ष्यं काव्ये दुष्टं कथंचन।
स्याद्वपुः सुंदरमपि श्वित्रोनैकेन दुर्भगम्॥

—काव्यादर्श, १/६,७

रुद्रट ने अलंकारशून्य काव्य को निर्दोष होने पर भी मध्यम श्रेणी का माना है।

वाक्यं भवति तु दुष्टं संकीर्णं गर्भितं गतार्थं च।
यत्पुनरनलंकारं निर्दोषं चेति तन्मध्यम्॥

—काव्यालंकार, ६/४०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

केशव मिश्र के अनुसार दोष रस का हानिकारक एवं सर्वथा त्याज्य है।

दोषः सर्वात्मना त्याज्यो रसहानिकरो हि सः ॥

—अलंकारशेखर, पृ० १

वाग्भट दोष को विष तथा दोषाभावको स्वर्ग का सोपान मानते हैं।

—वाग्भटालंकार, २/५,२६

केशव दास दोषयुक्त कविता को हेय मानते हैं।

राजत रंच न दोषयुत कविता वनिता मित्र ॥ —कविप्रिया, ३/५

दोष (स्वरूप-विवेचन)—काव्यास्वाद के वाधक या विघातक तत्त्व को दोष कहा जाता है। अभिप्राय यह कि काव्यास्वादन के समय चित्त में उत्पन्न होनेवाले उद्वेग को दोष कहते हैं। संस्कृत-काव्यशास्त्र में दोष-निरूपण की दो सरणियाँ परिलक्षित होती हैं। ध्वनिवादी आचार्यों ने रसापकर्षक तत्त्वों को दोष की अभिधा प्रदान की तो पूर्ववर्ती आचार्यों ने गुण के विपर्यय को दोष माना। भरत ने गुण का वर्णन करते समय दोष की परिभाषा प्रस्तुत की और बतलाया कि गुण दोष का विपर्यय है।

एत एव विपर्यस्ता गुणाः काव्येषु कीर्तिताः ॥

—नाट्यशास्त्र, १७/९५

दंडी ने गुण को काव्य की संपत्ति और दोष को विपत्ति माना है। इनके मत से गुण के समावेश से काव्य के सौंदर्य में वृद्धि होती है और दोष के कारण उसका सौंदर्य नष्ट हो जाता है।

दोषाः विपत्तये तत्र गुणाः संपत्तये यथा ॥

—काव्यादर्श, पृ० ३७४, प्रभा

भरत के विपरीत वामन दोष को गुण का विपर्यय कहते हैं।

गुणविपर्य्यासात्मानो दोषाः। —काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, २/१,१

अग्निपुराणकार ने दोष को काव्य का उद्वेगजनक तत्त्व माना है। काव्यानंद में उद्वेगजनक सिद्ध होनेवाले तत्त्व को दोष कहते हैं।

उद्वेगजनको दोषः।

आनंदवर्द्धन का दोष-निरूपण रस पर आश्रित है। उन्होंने दोषों के दो विभाग किए—नित्य और अनित्य। नित्यदोष रसापकर्ष के हेतु हैं और अनित्य-दोषों में श्रुतिदुष्ट आदि आते हैं।

श्रुतिदुष्टादयोदोषा अनित्या ये च दर्शिताः ॥

—ध्वन्यालोक, २/११

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आनंदवर्द्धन के विचार से प्रभावित होकर मम्मट ने कहा कि जिससे मुख्य अर्थ का अपकर्ष हो, उसे दोष कहते हैं और काव्य में मुख्य अर्थ तो रस ही होता है।

मुख्यार्थहतिर्दोषो रसश्च मुख्यस्तदाश्रयाद्वाच्याः।
उभयोपयोगिनः स्युश्शब्दाद्यास्तेन तेष्वपि सः॥

—काव्यप्रकाश, ७/४९

कवि का अभिप्रेत अर्थ ही मुख्य अर्थ होता है अर्थात् कवि जिस अभिप्राय से कुछ कहना चाहता है, उसे मुख्यार्थ कहते हैं। इस अर्थ में यदि किसी कारणवश बाधा उपस्थित हो जाय तो उसे दोष कहेंगे। काव्य में मुख्य अर्थ तो रस है; परंतु कभी-कभी उसका आश्रित वाच्य अर्थ भी मुख्य होता है अर्थात् नीरस काव्य में भी दोष होता है। यदि रस में किसी प्रकार से अनौचित्य उपस्थित हो गया तो वहाँ दोष आ जायगा। नीरस काव्य में भी वाक्य अथवा अर्थ में बाधा पहुँचने के कारण दोषाधान होता है। इसी प्रकार रस तथा वाच्य अर्थ—इन दोनों के उपयोग में आनेवाले शब्दों में भी दोष होता है। आचार्य मम्मट ने दोष के तीन विभाग किए हैं—शब्ददोष, अर्थदोष एवं रसदोष। शब्ददोष के भी तीन भेद हैं—पददोष, पदांशदोष तथा वाक्यदोष। काव्य में रस का प्राधान्य होने के कारण रस-दोप की मुख्यता है। रस का बोध अर्थ के द्वारा होता है और अर्थ का ज्ञान शब्द पर आश्रित है। अतः, शब्द और अर्थदोष रसदोष से गौण हैं। शब्द भी पद तथा वाक्य के रूप में उपस्थित होकर अर्थ का उपकारक होता है। पद के किसी भी अंश में दोष संभव है; अतः उसे पदांशदोष कहते हैं। इस प्रकार दोष के पाँच वर्ग हुए—पददोष, पदांशदोष, वाक्यदोष, अर्थदोष तथा रसदोष। दोष की स्थिति तीन प्रकार से संभव है—

क. काव्यास्वाद में व्यवधान होने से,

ख. काव्य की उत्कृष्टता को नष्ट करनेवाली किसी वस्तु के बीच में आ जाने से,

ग. काव्य के आस्वाद में विलंब करनेवाले कारणों की स्थिति हो जाने से।

—रसमंजरी, पृ० ३४६

विश्वनाथ ने मम्मट के मत को स्वीकार करते हुए रसापकर्षक या रस के विघातक तत्त्व को दोष माना।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रसापकर्षका दोषास्ते पुनः पंचधा मताः।
पदे तदंशे वाक्याऽर्थे संभवंति रसेऽपि यत्॥
—साहित्यदर्पण, ७/१

विश्वनाथ रसात्मक वाक्य को काव्य मानते हैं; अतः उनके अनुसार रसापकर्षक तत्त्वों से बढ़कर कोई भी दोष नहीं हो सकता। रसापकर्ष की तीन संभावनाएँ हैं—रस की प्रतीति का अभाव, रस की विलंब से प्रतीति तथा रसबोध में चमत्कार की मात्रा की न्यूनता। इस दृष्टि से काव्य के परम हेय तत्त्व रस-दोष ही हैं। रस आनंदानुभूति के प्रधान साधन माने गए हैं; अतः रसनिष्पत्ति में किसी प्रकार का व्यतिक्रम होना या व्यवधान पड़ना सहृदय के लिए उद्वेग का कारण हो सकता है। दोष किसी भी रूप में रहे, वह सर्वथा त्याज्य है; क्योंकि दोषरहित काव्य ही सहृदयहृदयावर्जक होता है।

काव्य प्रकाश में दोषों की संख्या सत्तर मानी गई है।

शब्ददोष सैंतीस, अर्थदोष तेईस तथा रसदोष दस। [दे० शब्ददोष, अर्थदोष तथा रसदोष]

द्रावक कवि—अर्थापहरणमूलक कवि का एक भेद। [दे० कवि] जो (कवि) अन्य कवियों की उक्तियों को ग्रहण कर अपनी रचना में उनको इस प्रकार उपन्यस्त करता है कि उनके प्राचीन या मूल रूप का पता नहीं चलता और वह मूल वाक्य में नवीनता का संचार कर उन्हें अपने काव्य में मिला देता है, ऐसे कवि को द्रावक कहते हैं।

अप्रत्यभिज्ञेयतया स्ववाक्ये नवतां नयेत्।
यो द्रावयित्वा मूलार्थं द्रावकः स भवेत् कविः॥
—काव्यमीमांसा, अध्याय १२, पृ० १६५

द्राविडी—भोज-वर्णित वृत्त्यनुप्रास का एक भेद। [दे० अनुप्रास] जब किसी रचना में अंतस्थ वर्णों का प्रयाग हो तो वहाँ द्राविडी वृत्ति होगी।
—सरस्वतीकंठाभरण, पृ० २३६-३८

ध

धनंजय—इन्होंने नाट्यसिद्धांत-संबंधी सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'दशरूपक' की रचना की है, जिस पर [दे० दशरूपक] धनिक (धनंजय के भ्राता) की 'अवलोक' नामक टीका है। इनके पिता का नाम विष्णु था। धनंजय राजा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मुंज की गोष्ठी के सदस्य थे। मुंज का समय ९७४ से ९९६ ई० के निकट है; अतः यही समय धनंजय का भी सिद्ध होता है।

विष्णोः सुतेनापि धनंजयेन विद्वन्मनोरागनिबंधहेतुः।
आविष्कृतं मुंजमहीशगोष्ठी वैदग्ध्यभाजा दशरूपमेतत् ॥

—दशरूपक, ४/८६

धनिक ने 'काव्यनिर्णय' नामक काव्यशास्त्रीय ग्रंथ की रचना की थी, जिसके अनेक श्लोक 'दशरूपक' की 'अवलोकटीका' में उद्धृत हैं।

'दशरूपक' में तीन सौ कारिकाएँ हैं और यह चार प्रकाशों में विभक्त है। इसमें दृश्यकाव्य के सभी तत्त्वों तथा रूपक के भेदों के अतिरिक्त रस के संबंध में अनेक मौलिक विचार उपन्यस्त हैं। नाट्यशास्त्रीय ग्रंथ होते हुए भी 'दशरूपक' में प्रसंगानुसार रस, ध्वनि, शब्दशक्ति तथा नायिका-भेद का विवेचन किया गया है। रस-निरूपण के क्रम में रस के स्वरूप, अंग, रस की स्थिति, काव्य के साथ रस का संबंध, नाटक में रस की उपयोगिता, अभिनय की दृष्टि से शांत रस की असिद्धि, रसों के भेद तथा रस-विरोध और उसका परिहार आदि विषयों का सूक्ष्म परिशीलन किया गया है। [**इनके रस-विषयक मत के लिए दे० रससंप्रदाय तथा शांतरस**] धनंजय ध्वनिविरोधी आचार्य हैं। इनके अनुसार प्रतीयमान अर्थ का बोध तात्पर्य वृत्ति से ही होता है। [**इनके ध्वनि-विषयक मत की जानकारी के लिए दे० ध्वनिविरोधी आचार्य**]

धर्म—उपमा का एक अंग। [**दे० उपमा**] धर्म का अर्थ गुण है। जिस गुण या विशेषता के कारण उपमेय की उपमान से तुलना की जाय, उसे धर्म कहते हैं।

धर्मगतलक्षणा—उपमानलक्षणा का एक भेद। [**दे० उपमानलक्षणा**] यदि लक्षणा का फल (प्रयोजन) लक्ष्यार्थ के धर्म में हो तो धर्मगत लक्षणा होगी।

शराफत सदा जागती है वहाँ।
जमीनों में सोता है सोना जहाँ॥—सुदर्शन

'जमीनों में सोना सोता है' इस वाक्य में मुख्यार्थ बाधित है। सोना का सोना संभव नहीं। लक्षणा से इसका अर्थ 'पृथ्वी पर अतुल धनराशि का बिखरना' होगा। यहाँ कवि का प्रयोजन अन्न की उपयोगिता का आधिक्य प्रदर्शित करना है। यह प्रयोजन उपयोगिता के धर्म में है।

—काव्यालोक, पृ० ८६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धर्मिगतलक्षणा—प्रयोजनवतीलक्षणा का एक भेद। [दे० प्रयोजनवती-लक्षणा] जब लक्षणा का फल (प्रयोजन) लक्ष्यार्थ में स्थित हो तो धर्मिगत लक्षणा होगी। इस भेद का वर्णन आचार्य विश्वनाथ ने किया है।

सिर पर प्रलय नेत्र में मस्ती मुट्ठी में मनचाही।
लक्ष्यमात्र मेरा प्रियतम है, मैं हूँ एक सिपाही ॥

'मैं हूँ एक सिपाही' में वक्ता स्वयं सिपाही है। मैं हूँ कहने से ही सिपाही का ज्ञान हो जाता है; अतः सिपाही में अर्थ बाधित हो जाता है। लक्षणा द्वारा इसका अर्थ होगा 'इच्छानुसार कठिन-से-कठिन कार्य करनेवाला।' यहाँ सिपाही शब्द अन्य अर्थ में चला जाता है। —काव्यालोक, पृ० ८५

धीरप्रशांत—नायक का एक भेद। [दे० नायक] यह निरभिमानी, विनयी, न्यायपरायण, कृपालु और नायकोचित सामान्य गुणों से युक्त होता है तथा गुरुजनों की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता। ब्राह्मण और वैश्य धीरप्रशांत नायक के रूप में चित्रित होते हैं।

सामान्य गुणयुक्तस्तु धीरशांतो द्विजादिकः ॥ —दशरूपक, २/४

विनयादिनेतृसामान्यगुणयोगी धीरशांतो द्विजादिक इति विप्रवणिक्सचिवा-दीनां प्रकरणनेतृणामुपलक्षणं, विवक्षितं चैतत्। —अवलोक (वही)

सामान्यगुणैर्भूयान् द्विजादिको धीरप्रशांतः स्यात् ॥

—साहित्यदर्पण, ३/३४

धीरप्रशांताविज्ञेया ब्राह्मणा वणिजस्तथा ॥

—नाट्यशास्त्र, २४

इसका उदाहरण मृच्छकटिक का नायक चारुदत्त है।

धीरललित—नायक का एक प्रकार। [दे० नायक] यह नायक कला-विलासी, निश्चिंत रहनेवाला, (मंत्रियों के ऊपर राज्य-भार देकर स्वयं निश्चिंत रहनेवाला) सुखी और भोगरसिक, रतिप्रिय होता है। इसका स्वभाव कोमल होता है और यह प्रकृति से विलासी तथा शृंगारी होता है। इसका उदाहरण रत्नावली का नायक उदयन है।

निश्चिंतो धीरललितः कलासक्तः सुखीमृदुः ॥

—दशरूपक, २/३

सचिवादिविहितयोगक्षेमत्वाच्चिंतारहितः अतएव गीतादिकलाविष्टो भोग-प्रवणश्च शृंगारप्रधानत्वाच्च सुकुमारसत्त्वाचारो मृदुरिति ललितः।

—वही, अवलोक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निश्चिंतो मृदुरनिशं कलापरो धीरललितः स्यात् ।

—साहित्यदर्पण, ३/३४

राजा का निबंधन धीरललित नायक के रूप में होना चाहिए ।

ललितास्तु नृपाः स्मृता । —नाट्यशास्त्र, २४

धीरा—स्वकीया का एक भेद । नायक से क्रोधित होकर कोप को अस्पष्ट रूप से प्रकाशित करनेवाली । [**दे० स्वकीया**] मान के समय मध्या और प्रगल्भा नायिकाओं के तीन-तीन भेद हो जाते हैं—धीरा, अधीरा और धीराधीरा । ये नायिकाएँ मध्या और प्रौढ़ा में विभक्त होकर छह प्रकार की हो जाती हैं । मध्याधीरा, मध्याअधीरा और मध्याधीराधीरा । प्रौढ़ाधीरा, प्रौढ़ा-अधीरा और प्रौढ़ा धीराधीरा ।

मध्याप्रगल्भे प्रत्येकं मानावस्थायां त्रिविधा, —रसमंजरी पृ० २८

मध्याधीरा—जो नायिका अन्यासक्त नायक पर परिहासयुक्त व्यंग्य से क्रोध प्रकट करे, उसे मध्याधीरा कहते हैं । इस भेद के वर्णन में धनंजय, विश्वनाथ तथा भानुदत्त में समानता दीख पड़ती है ।

प्रियं सोत्प्रासवक्रोक्त्या मध्याधीरा दहेद्रुषा ॥

—साहित्यदर्पण, ३/६१

"मध्याधीरा वाणी से क्रोध को प्रकट करती है अर्थात् वक्रोक्ति के द्वारा उसका कोप व्यंजित होता है, ऐसा मत भानुदत्त का है—

मध्याया धीरायाः कोपस्य गीर्व्यंजिका ।

—रसमंजरी, पृ० २९

मान-समै मध्या त्रिबिध, त्रिधा कहत प्रौढ़ाहि ।
धीरा बहुरि अधीर गनि, धीराधीरा ताहि ॥

—जगद्विनोद, ५३

मतिराम ने वचन की रचना से प्रिय के प्रति कोप प्रकट करनेवाली नायिका को मध्याधीरा कहा है ।

बचननि की रचनानि सों पियहि जनावत कोप ।
मध्याधीरा कहत हैं ताहि सुमति-रस-चोप ॥

—रसराज, ३७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पद्माकर के अनुसार मध्याधीरा व्यंग्ययुक्त कोप प्रकट करती है; पर पति का सम्मान नहीं छोड़ती।

कोप जनावै व्यंग्य सों, तजै न पति-सनमान।
मध्याधीरा कहत हैं, ताकों सुकबि सुजान॥

—जगद्विनोद, ६४

उदाहरण—

क. तदवितथमवादीर्यन्मम त्वं प्रियेति
प्रियजन परिभुक्तं यद्दुकूलं दधानः।
मदधिवसतिमागाः कामिनां मंडनश्री-
र्व्रजति हि सफलत्वं वल्लभालोकनेन॥

"हे प्रियतम! तुमने तो मुझसे सत्य ही कहा था कि मैं ही तुम्हारी एकमात्र प्रिया हूँ। इसीलिए तो अपनी प्रिया के (मेरी सौत के) वस्त्र धारण कर हमारे घर उसे दिखाने के लिए आए थे। क्योंकि, यह बात सत्य है कि प्रियों का शृंगार तभी सुशोभित होता है, जबकि उसे उनकी प्रियाएँ देखें।"

ख. जो जिय में सो जीभ में, रमन रावरे ठौर।
आज-काल्हि के नरन के, जीभ कछू जिय और॥

—जगद्विनोद, ५७

प्रौढ़ाधीरा—जो बाहर से नायक का आदर करे; पर रति से उदासीन हो, उसे प्रौढ़ाधीरा कहते हैं।

प्रगल्भायाः धीरायाश्च रतौदास्यम्। —रसमंजरी, पृ० २६

धनंजय और विश्वनाथ इस बात पर विचार करते हैं कि प्रौढ़ाधीरा दो प्रकार से अपना कोप प्रकट करती है। या तो नायक का अत्यंत आदर कर के या रति से उदासीनता प्रकट कर के।

सावहित्थादरोदास्ते रतौ, धीरेतरा क्रुधा॥ —दशरूपक, २/१६

प्रगल्भा यदि धीरा स्याच्छन्नकोपाकृतिस्तदा॥
उदास्ते सुरते तत्र दर्शयंत्यादरान् बहिः॥

—साहित्यदर्पण, ३/६२

मतिराम के अनुसार जो प्रिय से कोप प्रकट न कर रति से उदास रहे, उसे प्रौढ़ाधीरा कहते हैं। इन्होंने आदर का कथन नहीं किया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पिय सों प्रगट न रिस करै रति ते रहै उदास।
प्रौढ़ा-धीरा जानिये सो निज सुमति बिकास ॥
—रसराज, ४६

पद्माकर ने पति के प्रति अत्यधिक आदर और रति से उदासीनता का कथन किया है।

उर उदास रति तें रहै, अति आदर की खानि।
प्रौढ़ा धीरा नायिका, ताहि लीजिए जानि ॥
—जगद्विनोद, ६४

उदाहरण—

क. नो तल्पं भजसे न जल्पसि सुधाधाराऽनुकारागिरो
दृक्पातं कुरुषे न वा परिजने कोपप्रकाशच्छलात्।
इत्थं केतकगर्भगौरि ! दयिते ! कोपस्य संगोपनं
तत्स्यादेव, न चेत्पुनः सहचरी कुर्वीत साचि स्मितम् ॥

नायक ने परिहास से नायिका से कहा—हे केतक पुष्प के सदृश गोरी प्रिय, तुम जो मेरे साथ सेज पर नहीं बैठती और अमृत की धारा प्रवाहित करनेवाली वाणी से नहीं बोलती, इसका कारण यह है कि तुम्हारा क्रोध प्रकट हो जायगा, इसी व्याज से तुम अपने परिजनों पर दृक्पात नहीं कर रही हो।

ख. दरस दौरि पिय-पग परसि, आदर दियो अछेह।
तेह गेहपति जानिगो, निरख चौगुनो नेह ॥
—जगद्विनोद, ६६

ग. छपत छपायें तऊ छल न छबीली अब,
उर लगिबे की बार हार ना उतार्‌यो तू ॥ —वही, ६५

धीराधीरा—स्वकीया नायिका का, मान की स्थिति में किया गया, एक भेद। [दे० स्वकीया] जिस नायिका का क्रोध कुछ प्रकट रूप से दिखाई पड़े और कुछ अप्रकट हो तो उसे धीराधीरा कहते हैं।

व्यंग्या व्यंग्यकोपप्रकाशा धीराधीरा। —रसमंजरी, पृ० २८

यह भेद मध्या तथा प्रगल्भा या प्रौढ़ा—दोनों में घटता है।

१. मध्याधीराधीरा—यह अपराधी नायक के प्रति रुदन कर अपना क्रोध प्रकट करती है। विश्वनाथ के मतानुसार, जो नायिका रुदन कर प्रिय के प्रति अपना क्रोध प्रकट करे, उसे मध्याधीराधीरा कहते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रियं सोत्प्रासवक्रोक्त्या मध्याधीरा दहेद्रुषा ॥
धीराधीरा तु रुदितैरधीरा परुषोक्तिभिः ।

—साहित्यदर्पण, ३/६१-६२

भानुदत्त ने कहा कि मध्याधीराधीरा वक्रोक्तिपूर्ण रुदन के द्वारा क्रोध प्रकट करती है ।

(मध्याया) धीराधीरायाश्च वचनरुदिते कोपस्य प्रकाशके ।

—रसमंजरी, पृ० २८

मतिराम के मतानुसार प्रिय से कुछ कटु वचन कहकर रुदन के द्वारा रोष प्रकट करनेवाली नायिका मध्याधीराधीरा है ।

मध्याधीराधीर तिय ताहि कहत सब कोय ।
पिय सों कहिकै बचन कछु रोस जतावै रोय ॥

—रसराज, ४३

पद्माकर ने भी रुदन कर क्रोध प्रकट करनेवाली नायिका को मध्याधीराधीरा कहा है ।

धीर बचन कहि कै जो तिय, रोइ जनावै रोष ।
मध्याधीराधीर तिय, ताहि कहत निरदोष ॥

—जगद्विनोद, ६१

उदाहरण—

क. कांतानुरागचतुरोऽसि मनोहरोऽसि
नाथोऽसि किंच नवयौवनभूषितोऽसि ।
इत्थं निगद्य सुदृशा वदने प्रियस्य
निःश्वस्य वाष्पलुलिता निहिता दृगंताः ॥

—रसमंजरी, १४

"हे नाथ, तुम कांता या सुंदरी में अनुराग करने में चतुर हो तथा मनोहर हो । तुम नाथ हो और नवयौवन से विभूषित भी हो । ऐसा कहकर वामनेत्री ने सांस छोड़ते हुए अश्रु से चंचल कटाक्षों को प्रिय के मुख में लगा दिया ।"

ख. करि आदर तिय पीय को, देखि दृगनि अलसानि ।
सुमुख मोरि बरषन लगी, लै उसास अँसुआनि ॥

—जगद्विनोद, ६३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२. प्रगल्भा (प्रौढ़ा) धीराधीरा—भानुदत्त के अनुसार जो नायिका रति से उदासीन हो, तर्जन-ताड़न का प्रयोग कर अपना कोप प्रकट करे, उसे प्रगल्भाधीराधीरा कहते हैं।

धीराधीराया रतौदास्यं तर्जनताडनादि च, कोपप्रकाशकम्।
—रसमंजरी, पृ० २६

विश्वनाथ ने बताया कि प्रगल्भाधीराधीरा तानों और भिड़कियों से नायक को दुःखित करती है।

धीराधीरा तु सोल्लुंठभाषितैः खेदयत्यमुम्॥
—साहित्यदर्पण, ३/६३

मतिराम और पद्माकर दोनों ने रति के प्रति उदासीनता एवं तर्जन द्वारा कोप प्रकट करने का वर्णन किया है।

रति उदास ह्वै नाह कों डर दिखरावै बाम।
प्रौढ़-अधीरा-धीर तिय बरनत कबि मतिराम॥
—रसराज, ५२

रति तें रूखी ह्वै जहाँ, डर जु दिखावै बाम।
प्रौढ़ा धीर-अधीर तिय, ताहि कहत रसधाम॥—जगद्विनोद, ७०

उदाहरण—

क. अनलंकृतोऽपि सुंदर! हरसि मनो मे यतः प्रसभम्।
किं पुनरलंकृतस्य संप्रतिनखरक्षतैस्तस्याः॥ —साहित्यदर्पण

"हे सौम्य! तुम तो बिना शृंगार या सजावट के ही मेरा मन हठात् हर लेते हो! फिर अब क्या कहना है, अब तो तुम्हारी प्रेमिका के नखक्षत की शोभा तुम पर छा रही है।"

ख. आवत उठि आदर कियो बोली बोल रसाल।
बाँह गही नँदलाल जब भए बालदृग लाल॥ —रसराज, ५४

धीरोदात्त—नायक का एक प्रकार। [दे० नायक] यह अति गंभार, महाप्राण, क्षमाशील, स्थिरबुद्धि, आत्मश्लाघा (आत्मप्रशंसा) की भावना से रहित, स्वाभिमानी किंतु विनीत होता है। इसकी रुचि धर्म की ओर होती है और यह अपनी प्रतिज्ञा का अंतिम समय तक निर्वाह करता है। यह लोक-व्यवहार एवं शास्त्र का ज्ञाता तथा शरणागतवत्सल होता है। धीरोदात्त नायक शोक और क्रोध तथा दुःख और सुख में विचलित नहीं होता। समस्त उच्च वृत्तियों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का विकास इस नायक के चरित्र में दिखाई पड़ता है, इसलिए इसे उदात्त कहते हैं। (उच्च वृत्तियों के उत्कर्ष को उदात्त कहते हैं।) संस्कृत-आचार्यों ने राम, जीमूतवाहन, युधिष्ठिर को धीरोदात्त नायक माना है।

महासत्त्वोऽतिगंभीरः क्षमावानविकत्थनः।
स्थिरोनिगूढाहंकारो धीरोदात्तो दृढ़व्रतः॥

—दशरूपक, २/४, ५

अविकत्थनः क्षमावानतिगंभीरो महासत्त्वः।
स्थेयान्निगूढमानो धीरोदात्तो दृढ़व्रतः कथितः॥

—साहित्यदर्पण, ३/३२

सेनापति और मंत्रियों का चित्रण धीरोदात्त के रूप में किया जाता है।

सेनापतिरमात्यश्च धीरोदात्तौ प्रकीर्तितौ॥

—नाट्यशास्त्र, अध्याय २४

धीरोद्धत—नायक का एक प्रकार। [**दे० नायक**]

यह मायावी (मायाछद्मपरायण), छली, अहंकारी, दर्पद्वेषपूर्ण, चंचल, शौर्यादि गर्व से युक्त, क्रूरप्रयोगकर्त्ता तथा स्वप्रशंसी होता है। यह चंचल, चंड (उग्र स्वभाववाला) और बल, वैभव का दर्प रखता है। इसके उदाहरण रावण और दुर्योधन हैं। देवताओं का चित्रण धीरोद्धत के रूप में करना चाहिए।

देवा धीरोद्धता ज्ञेया। —नाट्यशास्त्र, २४

दर्पमात्सर्यभूयिष्ठो मायाछद्मपरायणः।
धीरोद्धतस्त्वहंकारी चलचंडो विकत्थनः।

—दशरूपक, २/५, ६

मायापरः प्रचंडश्चपलोऽहंकारदर्पभूयिष्ठः।
आत्मश्लाघानिरतो धीरैर्धीरोद्धतः कथितः॥

—साहित्यदर्पण, ३/३३

धृति—संचारी भाव। [**दे० संचारीभाव**] आपत्तिकाल में अविचलित बुद्धि को धृति कहते हैं।

भरत ने बताया कि धृति नामक व्यभिचारी (संचारी) भाव की उत्पत्ति शौर्य, आध्यात्मिक ज्ञान, विभव, शौच, आचार, गुरुजनों के प्रति आदर, अत्यधिक अर्थलाभ आदि विभावों द्वारा होती है। इसके अनुभाव हैं—संतोष, हर्ष आदि।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धृतिर्नाम—शौर्यविज्ञानश्रुतिविभवशौचाचारगुरुभक्त्यधिकमनोरथार्थलाभ-क्रीडादिभिर्विभावैः समुत्पद्यते। तामभिनयेत्प्राप्तानां विषयाणामुपभोगादप्राप्तातीतोपहतविनष्टानामननुशोचनादिभिरनुभावैः। —नाट्यशास्त्र, ७/५६

विज्ञानशौचविभवश्रुतिशक्तिसमुद्भवा धृतिः सद्भिः।
भयशोकविषादाद्यै रहिता तु सदा प्रयोक्तव्या॥

—वही, ७/५६

धनंजय ने ज्ञान, शक्ति के कारण बिना किसी व्यग्रता के कर्मभोग भोगने को धृति कहा है।

संतोषो ज्ञानशक्त्यादेर्धृतिरव्यग्रभोगकृत्। —दशरूपक, ४/१२

विश्वनाथ ने तत्त्वज्ञान या अभीष्टप्राप्ति आदि के फलस्वरूप इच्छापूर्त्ति होने को धृति कहा है। इसके अनुभाव संतृप्ति, हर्षयुक्तवचन, उल्लास तथा हास हैं।

ज्ञानाभीष्टागमाद्यैस्तु संपूर्णस्पृहता धृतिः।
सौहित्यवचनोल्लाससहासप्रतिभादिकृत्॥

—साहित्यदर्पण, ३/१६८

भानुदत्त संतोष या दुःख को, दुःख न समझने की प्रवृत्ति को धृति कहते हैं। इसके विभाव हैं ज्ञानशक्ति आदि तथा अनुभाव अव्यग्रभोग (दुःख को दुःख माने बिना भोगना) आदि।

धृतिः संतोषो दुःखेप्यदुःखबुद्धिर्वा। विभावा ज्ञानशक्त्यादयः। अनुभावा अव्यग्रभोगादयः। —रसतरंगिणी, पंचमतरंग, पृ० ३५४

पंडितराज ने लोभ, मोह, शोक, भय आदि से उत्पन्न उस चित्तवृत्ति को धृति कहा है. जो विघ्नों को दूर करनेवाली होती है।

लोभशोकभयादिजनितोपप्लवनिवारणकारणीभूतश्चित्तवृत्तिविशेषोधृतिः।

—रसगंगाधर, पृ० ९९

उदाहरण—

क. संतापयामि हृदयं, धावं धावं धरातले किमहम्।
अस्ति ममशिरसि सततं, नंदकुमारः प्रभुः परमः॥

"मैं व्यर्थ ही इस धरातल पर दौड़-दौड़कर हृदय को क्यों संतापित कर रहा हूँ? जबकि मेरे सिर पर नंदकुमार भगवान् श्रीकृष्ण सदा विराजमान हैं।" यहाँ भगवान् श्रीकृष्ण का आश्रय प्राप्त कर चिंता न होने में धृति है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ख. हय चले हाथी चले संग छोड़ साथ चले।
ऐसी चलाचली मैं अचल हाड़ा ह्वै रह्यो ॥

—घोड़े-हाथी के विचलित होने पर भी हाड़ा का अचल रहना धृति है।

धृष्ट—नायक का एक भेद। [दे० नायक] बार-बार अपराध करने पर भी निडर रहनेवाला एवं बार-बार मना करने पर भी नायिका का विनय करनेवाला नायक धृष्ट कहलाता है। [भानुदत्त]

भूयो निश्शंककृतदोषोऽपि भूयो निवारितोऽपि भूयः प्रश्रयपरायणो धृष्टः।
—रसमंजरी, पृ० १७५

कृत दोषोऽपि निश्शंको वारितश्चाप्यवारितः।
धृष्टः स एव संप्रयोक्तस्त्रपात्यक्तकलेवरः॥ —वही

इति कौस्तुभे।

धनंजय के अनुसार जो नायक अंगविकार (परस्त्री-संभोग के चिह्नों से) युक्त होकर भी ज्येष्ठा नायिका के सम्मुख आने से नहीं डरता, उसे धृष्ट कहते हैं।

व्यक्तांगवैकृतो धृष्टो। —दशरूपक, २/७

विश्वनाथ का कथन है कि जो नायक प्रेम में अपराधी होकर भी, अपनी प्रिया के कोप की परवाह न करे और उसकी डाँट सुनकर भी निर्लज्ज बना रहे तथा स्पष्ट रूप से अपने दोषों के प्रकट होने पर भी असत्य भाषण कर उन्हें छिपाने का प्रयत्न करे, उसे धृष्ट कहते हैं।

कृतागा अपि निःशंकस्तर्जितोऽपि न लज्जितः।
दृष्टदोषोऽपि मिथ्यावाक्कथितो धृष्ट नायकः॥
—साहित्यदर्पण ३/३६

रीतिकालीन आचार्य मतिराम, भिखारीदास और पद्माकर के लक्षणों में धृष्ट नायक का यथार्थ रूप व्यंजित है।

डरै करत अपराध नहिं करै कपट की प्रीति।
बचन-क्रिया में अति चतुर सठ नायक की रीति॥
—रसराज, २५०

लाज'रु गारी मार की छोड़ि दई सब त्रास।
देख्यो दोष न मानई नायक धृष्ट प्रकास॥
—शृंगारनिर्णय, २४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धरै लाज उर में न कछु, करै दोष निरसंक।
टरै न टारें कैसहूँ, कह्यो धृष्ट सकलंक॥
—जगद्विनोद, २९१

उदाहरण—

क. बद्धो हारैः करकमलयोर्द्वारतो वारितोऽपि
स्वापं ज्ञात्वा पुनरुपगतो दूरतो दत्तदृष्टिः।
तल्पोपांते कनकवलयं भ्रष्टमन्वेषयंत्या
दृष्टो धृष्टः, पुनरपि मया पार्श्व एव प्रसुप्तः॥
—रसमंजरी, १०३

नायिका द्वारा अपनी सखी से नायक की धृष्टता का कथन—

"मैंने उसकी धृष्टता से तंग आकर उसके हाथ हारों से जकड़ दिए और देखा कि तब भी अपनी धृष्टता से बाज नहीं आता तो उसे द्वार तक ले जाकर भीतर आने की रोक लगा दी। फिर वह धृष्ट दृष्टि लगाए हुए मुझे दूर से भी सोई जानकर समीप चला आया। जब मैं शय्या के समीप, उसके साथ हाथापाई में निकलकर गिरे हुए अपना कनक-वलय ढूंढ़ने लगी तो उस धृष्ट को मैंने अपने पास ही खर्राटे लेते हुए देखा।"

ख. ठानै मजा अपने मन की उर आनै न रोष हू दोष दिए को।
त्यों 'पद्माकर' जोबन के मद पै मद है मधुपान किए को॥
राति कहूँ रमि आयो घरै उर मानै नहीं अपराध किए को।
गारि दै मारि दै टारत भावती भावतो होत है हार हिए को॥
—जगद्विनोद, २९२

धैर्य—नायिका का अयत्नज अलंकार। [दे० **नायिका के अलंकार**] आत्मश्लाघा (आत्मप्रशंसा) से युक्त स्थिर मनोवृत्ति को धैर्य कहते हैं।

ध्वनि और रस—ध्वनिवादी आचार्य रस को ध्वनि का अंग मानते हैं। उन्होंने ध्वनि के तीन भेद किए हैं—वस्तुध्वनि, अलंकारध्वनि और रसध्वनि। आनंदवर्द्धन ने रस को व्यंग्य कहा है अर्थात् रस तो ध्वनि रूप ही हो सकता है, उसका कथन नहीं किया जा सकता। उनके मत से ध्वनि के बिना रस का अस्तित्व संभव नहीं। आनंदवर्द्धन ध्वनि की दो स्थितियाँ मानते हैं—एक यह कि रस अनिवार्यतः ध्वनि-रूप है और दूसरी यह कि रसध्वनि ही सर्वोत्तम ध्वनि है और वही काव्य की आत्मा है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ध्वनिमत के अनुसार रस पृथक् काव्य-सिद्धांत न होकर असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य नामक ध्वनि का एक भेद है और रसादि की अनुभूति व्यंजना द्वारा होती है, अभिधा द्वारा नहीं; क्योंकि रस व्यंग्य है। अभिप्राय यह कि ध्वनि महाविषय है और रस उसका अंग। इस संबंध में डॉ० नगेंद्र ने अपना यह विचार प्रकट किया है कि "ध्वनि और रस का संबंध और भी अंतरंग है; क्योंकि दोनों की प्रकल्पना सहृदयनिष्ठ है। दोनों में भेद केवल यही है कि रस-सिद्धांत जहाँ कल्पनात्मक भावना को कवित्व का प्राणतत्त्व मानता है, वहाँ ध्वनि-सिद्धांत भावरंजित कल्पना को; और यह भेद वास्तव में इतना सूक्ष्म है कि कालांतर में इसका एक प्रकार से लोप ही हो गया। परंतु यदि दोनों का पृथक् अस्तित्व स्वीकार करना है, तो इसको ध्यान में रखना ही पड़ेगा।"

—रस-सिद्धांत, पृ० ३२८

ध्वनि का स्रोत—ध्वनि-सिद्धांत का स्रोत वैयाकरणों के स्फोटसिद्धांत में सुरक्षित है। ध्वनिकार ने 'सूरिभिः' शब्द के द्वारा ध्वनि का स्रोत वैयाकरणों में माना है। वे व्याकरण को सभी विद्याओं का मूल कहकर इस तथ्य का स्पष्टीकरण करते हैं। वे (वैयाकरण) श्रूयमाण वर्गों को ध्वनि कहते हैं।

प्रथमे हि विद्वांसोवैयाकरणाः; व्याकरणमूलत्वात्सर्वविद्यानाम्। ते च श्रूयमाणेषु वर्णेषु ध्वनिरिति व्यवहरंति। —ध्वन्यालोक, १/१३, वृत्ति

अभिप्राय यह कि साहित्यशास्त्रियों ने ध्वनि शब्द को वैयाकरणों से लिया है। वैयाकरणों के अनुसार स्फोट को अभिव्यक्त करनेवाले वर्णों को ध्वनि कहते हैं। भर्तृहरि का कहना है कि वाक्करणों के संयोग-वियोग (मिलना तथा हटना) से जो स्फोट उपजनित होता है, उसी शब्दज शब्द को विद्वानों ने ध्वनि कहा है।

यः संयोगवियोगाभ्यां करणैरुपजायते।
स स्फोटः शब्दजः शब्दोध्वनिरित्युच्यते बुधैः ॥

—वाक्यपदीय

वैयाकरण स्फोट नामक नित्य शब्द की सत्ता को स्वीकार करते हैं, जो सदा बुद्धि में स्थित रहता है। जिन ध्वनियों को अनित्य कहा जाता है, उनसे उसी स्फोट नामक नित्य शब्द की अभिव्यक्ति होती है। उदाहरण के लिए जब 'कमल' शब्द का उच्चारण किया जाय तो उसमें क्+अ+म्+अ+ल्+अ इन छह वर्णों का उपयोग होता है। इन सभी वर्णों का उच्चारण एक साथ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(एक समय में) न होकर एक के अनंतर दूसरे का होता है अर्थात् एक वर्ण के उच्चारण के पश्चात् उसकी सत्ता विनष्ट हो जाती है। प्रश्न है कि 'कमल' शब्द तथा उसके अर्थ को श्रोता ने कैसे समझा ? नैयायिकों का कहना है कि उच्चरित होने पर वर्ण क्षण भर में ही लुप्त हो जाते हैं, यह बात ठीक है; पर वर्णों का क्रमिक श्रवण नष्ट होकर भी श्रोता के मन में अपना संस्कार छोड़ देता है। इस दृष्टि से पूर्व-पूर्व वर्णों के अनुभव से उत्पन्न संस्कार अंतिम वर्ण तक बना रहता है और तभी संपूर्ण शब्द का चित्र प्रस्तुत होकर श्रोता के लिए अर्थबोध का कारण बनता है।

वैयाकरणों के मतानुसार स्फोट से ही अर्थ का प्रस्फुटन होता है। वे दो प्रकार के शब्द मानते हैं—नित्य तथा अनित्य। वर्ण-रूप में विद्यमान शब्द अर्थात् क+अ+म+अ आदि अनित्य होते हैं और उन्हीं का उच्चारण किया जाता है। इसी अनित्य या उच्चारण किए जानेवाले शब्द से नित्य ध्वनिरूप शब्द प्रकट होता है ; स्फोट नामक नित्य वर्ण ही अनित्य वर्णों को प्रकट करता है। उच्चरित होते ही अनित्य वर्ण भले ही लुप्त हो जाएँ; पर उनके अर्थ की प्रतीति करानेवाला अखंड तथा नित्य शब्द स्फोट रूप में ही विद्यमान रहता है तथा इसीसे अर्थोपस्थिति होती है। यही स्फोटध्वनि का मूल रूप है।

ध्वनि की स्थापना—'ध्वन्यालोक' के प्रारंभ में आनंदवर्द्धन ने तीन संभावित ध्वनि-विरोधी मतों का उल्लेख किया है—अभाववादी, भक्तिवादी एवं अलक्षणीयतावादी। उन्होंने स्वीकार किया है कि काव्यात्मभूत ध्वनि-तत्त्व का विश्लेषण और विवेचन (आनंदवर्द्धन के पूर्व) परंपरा प्रवाह में हो चुका था। ध्वनिकार ने 'नाट्यशास्त्र', 'काव्यालकार' (भामह), 'भामह-विवरण' (उद्भट-कृत काव्यालंकार की टीका), 'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति' तथा रुद्रट-कृत 'काव्यालंकार' के आधार पर उपर्युक्त तीनों मतों का संकेत किया है। [दे० ध्वन्यालोक १/१] 'ध्वन्यालोक' में इन्हें 'तस्याभावं', 'भाक्त' तथा 'वाचांस्थितमविषये' शब्दों-द्वारा अभिहित किया गया है और ये सभी मत उत्तरोत्तर श्रेष्ठ माने गए हैं। अभाववादी मत विपर्ययमूलक है; क्योंकि यह इस मत का पोषक है कि प्राचीन आचार्यों के ग्रंथों में ध्वनि-तत्त्व का अभाव है। ऐसा विचार विपर्यय-ज्ञान या भ्रमपूर्ण-ज्ञान पर आधृत है; अतः इसे विपर्ययमूलक कहा गया है। 'काव्यालंकार' तथा 'भामहविवरण' में 'गुणवृत्ति' शब्द का प्रयोग देखकर ध्वनि को 'भाक्त' या 'लक्षणगम्य' कहा गया है। यह मत ध्वनि का स्पष्टतः निषेध नहीं करता, इसलिए इसे संदेहमूलक कहते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तृतीय मत के अनुसार ध्वनि का लक्षण देना संभव नहीं है; अतः इसे अज्ञान-मूलक स्वीकार किया गया है।

अभाववाद : प्रथम ध्वनिविरोधी मत—अभाववाद के तीन भेद हैं। प्रथम मत के अनुसार काव्य शब्दार्थ शरीरवाला है और इसके (शब्द एवं अर्थ के) शोभाधायक हेतु शब्दालंकार तथा अर्थालंकार हैं। इसी प्रकार शब्दगत सौंदर्य शब्दगुण में आता है और अर्थगत अर्थगुण में। इनके अतिरिक्त वैदर्भी प्रभृति रीतियों तथा उपनागरिका आदि वृत्तियों में काव्य का संघटनागत सौंदर्य निहित रहता है। उपर्युक्त सभी तत्वों के अतिरिक्त काव्यचारुत्व के संपादक अन्य तत्त्व हो ही नहीं सकते, फिर ध्वनि नामक एक अप्रसिद्ध काव्यतत्त्व की कल्पना निरर्थक है।

तत्र च शब्दगताश्चारुत्वहेतवोऽनुप्रासादयः प्रसिद्धा एव। अर्थगताश्चोपमादयः। वर्णसंघटनाधर्माश्च ये माधुर्यादयस्तेऽपि प्रतीयंते। तदनतिरिक्तवृत्तयो वृत्तयोऽपि याः कैश्चिदुपनागरिकाद्याः प्रकाशिताः ताऽपिगताः श्रवणगोचरम्। रीतयश्च वैदर्भी प्रभृतयः। तद्व्यतिरिक्तः कोऽयं ध्वनिर्नामेति।

—ध्वन्यालोक, १/१ की वृत्ति

द्वितीय अभाववादी मत का कहना है कि परंपरा से प्रसिद्ध काव्यमार्ग में कहीं भी ध्वनि का उल्लेख नहीं किया गया है। अतः, उससे भिन्न (प्रसिद्ध मार्ग का अतिक्रमण) किसी नूतन काव्य-मार्ग की स्वीकृति में काव्यत्व की हानि होगी। यदि किसी कल्पित ध्वनि नामक नवीन काव्य-सिद्धांत को मान्यता प्रदान की जाए तो विद्वान् उसमें काव्यचारुत्व का तत्त्व नहीं मानेंगे।

नास्त्येवध्वनिः प्रसिद्धप्रस्थान व्यतिरेकिणः काव्यप्रकारस्य काव्यत्वहानेः। सहृदयहृदयमेवाह्लादिशब्दार्थमयत्वमेव काव्यलक्षणम्। न चोक्तप्रस्थानातिरेकिणो मार्गस्य तत्संभवति। न च तत्समयांतःपातिनः सहृदयान् कांश्चित्परिकल्प्य तत्प्रसिद्धा ध्वनौ काव्यव्यपदेशः प्रवृत्तोऽपि सकलविद्वन्मनोग्राहितामवलंबते।

—ध्वन्यालोक, १/१ प्रवृत्ति

तृतीय अभाववादी मत में ध्वनि की नवीन सत्ता मान्य नहीं है। इनके अनुसार ध्वनि काव्य-सौंदर्य का ही रूप है, तो इसका अंतर्भाव चारुत्व-संपादक अलंकारादि अन्य तत्त्वों में ही क्यों न कर दिया जाए ? यदि यह मत स्वीकार कर लिया जाए कि 'ध्वनि ही काव्य की आत्मा है' तो पूर्ववर्ती सभी काव्य-सिद्धांत काव्यत्वहीन हो जाएँगे। इस संबंध में मनोरथ कवि का मत भी उद्धृत है। उसके अनुसार जिस काव्य में मनःप्रसादक अलंकार-युक्त कोई

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पदार्थ न हो, जो चातुर्ययुक्त सुंदर शब्दों से विरचित नहीं है और जो वक्रोक्ति-रहित है, उसे ही मूर्ख लोग ध्वनि से युक्त काव्य स्वीकार कर उसकी प्रशंसा करते हैं। उन्हें यह ज्ञात नहीं है कि विद्वानों के पूछने पर वे ध्वनि का क्या स्वरूप कहेंगे।

पुनरपरेतास्याभावमन्यथा कथयेयुः—न संभवत्येव ध्वनिर्नामापूर्वः कश्चित्। कामनीयकमनतिवर्त्तमानस्य तस्योक्तेष्वेव चारुत्वहेतुष्वंतर्भावात् तेषामन्यतमस्यैव वा अपूर्वसमाख्यामात्रकरणे यत्किंचनकथनं स्यात्।

—ध्वन्यालोक १/१, वृत्ति

यस्मिन्नस्ति न वस्तु किंचन मनः प्रह्लादि सालंकृति
व्युत्पन्नै रचितं न चैव वचनैर्वक्रोक्तिशून्यं च यत्।
काव्यं तद् ध्वनिना समन्वितमिति प्रीत्या प्रशंसंजडो
नो विद्मोऽभिदधाति किं सुमतिना पृष्टः स्वरूपं ध्वनेः॥ —वही

भाक्तवादी—ध्वनिविरोधी चतुर्थ मत भाक्तवादी है, जिसके अनुसार ध्वनि लक्षणागम्य है अर्थात् उसका अंतर्भाव लक्षणा में ही हो जाता है। इसमें ध्वन्यमान अर्थ को लक्षणा वृत्ति से बोध्य माना जाता है।

अलक्षणीयतावादी—पंचम ध्वनिविरोधा मत अलक्षणीयतावादी के अनुसार ध्वनि का केवल संवेदन होता है, उसका लक्षण प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। यह मत ध्वनि को सहृदयहृदयसंवेद्य मानते हुए भी उसे वाणी से परे या अगोचर कहता है। यही कारण है कि प्राचीन आचार्यों ने इसका कोई लक्षण उपस्थित नहीं किया।

ध्वनिकार ने पूर्वोक्त सभी पक्षों का पूर्वपक्ष के रूप में कथन कर उनका तर्कपूर्ण खंडन किया है। अभाववादियों के मत की आलोचना करते हुए ध्वनिकार का कहना है कि उनका कथन है कि ध्वनि मत की स्थापना के पूर्व काव्य में चारुत्व विद्यमान था और सहृदय उसका आस्वादन करते थे। ध्वनि के काव्यात्मभूत तत्त्व के रूप में प्रतिष्ठित हो जाने पर पूर्ववर्ती सभी काव्यतत्त्व असिद्ध हो जाएँगे। ध्वनिकार के मत से ध्वनि मत की प्रतिष्ठा के पूर्व उसका (ध्वनि का) नामकरण नहीं हुआ था, पर पर्यायोक्ति, अपह्नुति, विशेषोक्ति आदि अलंकारों में व्यंग्यार्थ की विद्यमानता व्यंजना के महत्त्व को प्रमाणित करती थी। इसके अतिरिक्त सभी लोग रस का अस्तित्व तो स्वीकार करते ही थे। ध्वनिवादी रस को व्यंग्य मानते हैं; अतः रस की स्वीकृति में ध्वनि या व्यंग्य का अस्तित्व स्वयसिद्ध है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लक्षण-ग्रंथों में ध्वनि के अनेक उदाहरणों की प्राप्ति इस तथ्य का द्योतक है कि उसका (ध्वनि का) अस्तित्व अवश्य रहा होगा; भले ही उसके सैद्धांतिक पक्ष का स्पष्टीकरण न हो सका हो। ध्वनि का अंतर्भाव अलंकार, गुण, रीति आदि अन्य काव्यतत्त्वों में हो ही नहीं सकता; क्योंकि वे केवल वाच्यवाचकभाव पर आधृत हैं; जब कि ध्वनि में व्यंग्यव्यंजकभाव की प्रधानता है। अलंकारादि का समावेश तो ध्वनि में ही हो जाएगा; वे उसके अंगस्वरूप हैं और ध्वनि अंगी है। आक्षेप, समासोक्ति, पर्यायोक्ति, अपह्नुति, अप्रस्तुतप्रशंसा प्रभृति अलंकारों में ध्वनि का अंतर्भाव असंभव है; क्योंकि ध्वनिकाव्य में व्यंग्यार्थ की प्रधानता रहती है और उक्त अलंकारों में व्यंग्यार्थ अप्रधान रहता है और उनमें वाच्य की चारुता निहित रहती है। ध्वनि महाविषय है, उसकी परिधि अत्यंत विस्तृत है; अतः वाच्य की चारुता पर आश्रित अलंकारादि अन्य काव्यसिद्धांतों का ध्वनि में ही समावेश हो जाता है।

भाक्तवादियों के विचार का खंडन करते हुए ध्वनिकार ने यह विचार प्रकट किया कि ध्वनि का रूप भक्ति या लक्षणा से भिन्न है। उसका उसके (लक्षणा के) साथ अभेदत्व संभव नहीं है। उपचार या गौण प्रयोग को भक्ति कहते हैं और ध्वनि का प्रकाशन वाच्यार्थ से भिन्न व्यंग्यप्रधान स्थल में होता है। अत:, वाचक के आश्रय पर स्थित गुण-वृत्ति या भक्ति व्यंजनामूलक ध्वनि से अभिन्न कैसे हो सकती है ?

भक्त्या विभर्ति नैकत्वं रूपभेदादयं ध्वनिः। —१/१७

वाच्य व्यतिरिक्तस्यार्थस्य वाच्यवाचकाभ्यां तात्पर्येणार्थप्रकाशनं यत्र व्यंग्य-प्राधान्ये स ध्वनिः। —ध्वन्यालोक, १/१७

उपचारमात्रं तु भक्तिः। —वही

अंतिम विरोधी पक्ष का खंडन करते हुए ध्वनिकार का कहना है कि सहृदय-संवेद्य ध्वनि को अलक्षणीय कहना अज्ञान का सूचक है। क्योंकि, जब ध्वनि का सामान्य तथा विशेष लक्षण प्रस्तुत किया गया है तो उसे कैसे अलक्षणीय कहा जा सकता है ? यदि ध्वनि को अलक्षणीय कहा जाएगा तो अलक्षणीयता सभी वस्तुओं में आ जाएगी। ध्वनि-विरोधी अन्य मतों का अत्यंत अभिनिवेश-पूर्वक खंडन आचार्य मम्मट ने 'काव्यप्रकाश' के पंचम उल्लास में किया है।

[**दे० व्यंजना का प्रतिपादन**]

ध्वनि के भेद—ध्वनि के प्रधान भेद दो हैं—लक्षणामूला ध्वनि और अभिधामूला ध्वनि। इन्हें क्रमशः अविवक्षितवाच्यध्वनि और विवक्षितवाच्य-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ध्वनि भी कहते हैं। लक्षणामूला ध्वनि के मूल में लक्षणा होती है; [दे० **लक्षणामूलाध्वनि**] अतः इसे यह नाम दिया जाता है। इसे अविवक्षित वाच्य-ध्वनि इसलिए कहा जाता है, कि इसमें वाच्यार्थ की विवक्षा या आकांक्षा नहीं रहती। [दे० **अविवक्षित वाच्यध्वनि**]। इस ध्वनि में वाच्यार्थ के द्वारा वक्ता के कथन का तात्पर्य नहीं ज्ञात होता। लक्षणामूलाध्वनि के दो भेद किए गए हैं—अर्थांतरसंक्रमितवाच्यध्वनि और अत्यंत तिरस्कृतवाच्यध्वनि। जब वाच्यार्थ अन्य अर्थ में चला जाय या संक्रमित हो जाय तो अर्थांतरसंक्रमित-वाच्यध्वनि होती है। [दे० **अर्थांतरसंक्रमितवाच्यध्वनि**]। इसमें मुख्यार्थ के बाधित होने पर उसका अभिप्राय अन्य अर्थ में बदल जाता है। जिस ध्वनि में वाच्यार्थ का अत्यंत तिरस्कार किया जाता है उसे अत्यंततिरस्कृत वाच्यध्वनि कहते हैं। [दे० **अत्यंततिरस्कृत वाच्यध्वनि**] ये सभी भेद पदगत एवं वाक्यगत होते हैं। अभिधामूलाध्वनि के मूल में अमिधा रहती है और वाच्य विवक्षित होकर अन्यपरक या व्यंग्यार्थ का बोधक होता है। [दे० **अभिधामूलाध्वनि**] इसमें वाच्यार्थ का ज्ञान होने पर ही व्यंग्यार्थ की प्रतीति होती है। अभिधा-मूलाध्वनि दो प्रकार की होती है—असंलक्ष्यक्रमव्यंग्य एवं संलक्ष्यक्रमव्यंग्य। असंलक्ष्यक्रमव्यंग्य में व्यंग्य का क्रम लक्षित नहीं होता अर्थात् वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ की प्रतीति इतनी शीघ्रता से होती है कि उसके पूर्वापर का ज्ञान नहीं होता। [दे० **असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य**] संलक्ष्यक्रम व्यंग्य में वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ के बोध का क्रम पूर्णतः दिखाई पड़ता है या लक्षित होता है। [दे० **संलक्ष्यक्रमव्यंग्य**] असं-लक्ष्यक्रम व्यंग्य के अंतर्गत रसादि ध्वनि का कथन होता है। इसमें भाव, रस, भावोदय, भावाभास, भावसंधि, भावशांति, भावशबलता, रसाभास आदि आते हैं। इन सब को एक ही भेद, रसध्वनि, के अंतर्गत लिया जाता है। संलक्ष्यक्रम-व्यंग्य के तीन प्रकार हैं—शब्द-शक्ति-उद्‌भव-अनुरणन-ध्वनि, अर्थ-शक्ति-उद्‌भव अनुरणन-ध्वनि तथा शब्दार्थोभयशक्ति-उद्‌भव अनुरणन-ध्वनि। शब्दशक्ति-मूलक ध्वनि दो प्रकार की होती है—वस्तु ध्वनि और अलंकार ध्वनि। दोनों के ही पदगत तथा वाक्यगत भेद होते हैं। अर्थशक्ति-उद्‌भव ध्वनि तीन प्रकार की होती है। [दे० **अर्थशक्ति-उद्‌भव अनुरणन-ध्वनि**] स्वतःसंभवी, कवि-प्रौढ़ोक्तिमात्रसिद्ध तथा कविनिबद्धपात्रप्रौढ़ोक्तिमात्रसिद्ध। इनमें से प्रत्येक के चार-चार भेद होने से इसके बारह प्रकार हो जाते हैं और वे भी पदगत, वाक्यगत प्रबंधगत होकर छत्तीस होते हैं। प्रत्येक के भेद वस्तु से अलंकार-रूप में होते हैं। जैसे—वस्तु से वस्तुध्वनि, वस्तु से अलंकारध्वनि, अलंकार

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

से वस्तुध्वनि तथा अलंकार से अलंकारध्वनि। शब्दार्थोभयशक्तिमूलक ध्वनि एक ही प्रकार की होती है। ध्वनियों का संकर होता है और संसृष्टि भी होती है। इस प्रकार कुल मिलाकर ध्वनि के मुख्य भेद इक्यावन होते हैं।

अविवक्षित वाच्य	४
असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य	६
संलक्ष्यक्रम (शब्दशक्तिमूलक)	४
संलक्ष्यक्रम (अर्थशक्तिमूलक)	३६
संलक्ष्यक्रम (उभयशक्तिमूलक)	१
	५१

आचार्यों ने ध्वनि के अनंत भेदों की भी कल्पना की है। ध्वनि के शुद्ध ५१ प्रकार हैं। इनके साथ संकर तथा संसृष्टि के मिश्रण से ध्वनि के १०४०४ भेद होते हैं (मम्मट के अनुसार)। इनमें ५१ (शुद्ध भेदों को) जोड़ने पर १०४५५ भेद आते हैं। ध्वनि के शुद्ध ५१ भेद परस्पर मिलने पर प्रत्येक के ५१ भेद होकर ५१ × ५१ = २६०१ हो जाते हैं और संकर (तीन) तथा संसृष्टि के चार प्रकारों को मिलाने पर इनकी संख्या २६०१ × ४ = १०४०४ होती है। इनमें शुद्ध ५१ भेदों को जोड़ने पर ध्वनि के कुल १०४५५ भेद होते हैं।

ध्वनियों का संकर और संसृष्टि—जब एक ध्वनि में अन्य ध्वनि नीर-क्षीर या तिल-तंडुल की भाँति मिल जाय तो ध्वनियों का संकर और संसृष्टि होती है।

ध्वनियों के संकर के तीन भेद होते हैं—

संशयास्पदसंकर, अनुग्राह्यानुग्राहकसंकर एवं एकव्यंजकानुप्रवेश संकर।

१. संशयास्पद संकर—जब एक से अधिक ध्वनियों में यह संशय बना रहे कि कौन उसका साधक है और कौन बाधक, अर्थात् दो व्यंग्यों में यह या वह, इस प्रकार का संशय बना रहे।

क्षणप्राघुणिका देवर जायया सुभग, किमिति ते भणिता।
रोदिति गृहपश्चाद्भागवलभीगृहेऽनुनीयतां वराकी॥

हे देवर! थोड़ी देर के लिए या उत्सवविशेष पर आई हुई उस स्त्री को तुम्हारी पत्नी ने पता नहीं क्या कह दिया है कि वह घर के पीछेवाले भाग के छज्जे पर बैठकर रोती है, तुम उस बेचारी को जाकर मनाओ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ 'अनुनय' शब्द उपभोग रूप अर्थांतर में संक्रमित हुआ है या संलक्ष्यक्रम-व्यंग्य के अनुसार उपभोग स्वरूप व्यंग्य का व्यंजक है, यह संशय बना रहता है।

सीताहरन तात ! जनि, कहेहु पिता सन जाय।
जौ मैं राम तो कुल-सहित, कहिहि दसानन आय ॥

—रामायण

यहाँ जटायु के प्रति रामचंद्र की उक्ति है। 'जौ मैं राम' अर्थात् जो मैं राम हूँ तो, यह पद 'सूर्यवंशीकुलोत्पन्न राजा दशरथ का अतुलित बलवाला पुत्र राम हूँ।' इस अन्य अर्थ में वदल जाता है। यहाँ अविवक्षित वाच्य अर्थांतर संक्रमित वाच्यध्वनि है। अथवा जो 'मैं राम हूँ तो सीता को चुराने-वाले रावण का शीघ्र संहार कर दूँगा' यह अनुरणन रूप व्यंग्य प्रतीत होने के कारण विवक्षित वाच्य अर्थमूलक ध्वनि है। यहाँ संदेह बना रह जाता है कि दोनों में से कौन ध्वनि है।

२. *अनुग्राहानुग्राहक संकर*—अनेक ध्वनियों में से एक ध्वनि का दूसरी ध्वनि की पोषक होना अनुग्राहानुग्राहक संकर है। गुणीभूत व्यंग्य में एक व्यंग्य दूसरे व्यंग्य का अंग होता है। वह अपनी स्वतंत्र सत्ता न रखकर दूसरी ध्वनि का उत्कर्ष करता है, किंतु इसमें ध्वनि की अपनी स्वतंत्र सत्ता होती है और वह अपनी स्थिति को रखते हुए दूसरी ध्वनि का पोषण भी करती है।

स्निग्धश्यामलकांतिलिप्तवियतो वेल्लद्बलाका घनाः
वाताः शीकरिणः पयोदसुहृदामानंदकेकाः कलाः।
कामं संतु दृढं कठोरहृदयो रामोऽस्मि सर्वं सहे
वैदेही तु कथं भविष्यति हहा हा देवि धीरा भव ॥

स्निग्ध एवं श्यामल कांति से आकाश को रंगते हुए एवं विहार करते हुए बगुलों के समूह से युक्त बादल भले ही उमड़ें, शीतल, मंद वायु भले ही चारों ओर बहती रहे तथा मेघों के मित्र मयूरों की मधुर ध्वनि भले ही चारों ओर गुंजायमान हो, किंतु मैं कठोर हृदय राम हूँ, सब कुछ सह लूँगा, किंतु कोमलहृदया सीता इसे कैसे सहन कर सकेगी ? हाय देवि ! तुम धैर्य रखना।

यहाँ 'लिप्त' एवं 'पयोद सुहृदाम्' इन पदों में अत्यंततिरस्कृतवाच्यों की संसृष्टि है तथा यह अनुग्राह्यानुग्राहक एव एकव्यंजना प्रवेश संकर का भी उदाहरण है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तुम शुद्ध बुद्ध आत्मा केवल
हे चिर पुराण, हे चिर नवीन। —पंत

यहाँ आत्मा, चिर पुराण तथा चिर नवीन शब्द परस्पर विरोधसूचक हैं। इनका मुख्यार्थ बाधित होने से अर्थांतर संक्रमित अविवक्षित वाच्यध्वनि है। पर इन लाक्षणिक प्रयोगों के द्वारा कवि गांधीजी के प्रति अपनी श्रद्धा की भावना भी व्यंजित करता है। पूज्य पुरुष के प्रति रति भाव की व्यंजना से यहाँ रसध्वनि हुई। इस प्रकार यह पद्य अनुग्राह्यानुग्राहक संकर का उदाहरण हुआ।

३. *एकव्यंजनानुप्रवेश संकर*—जब एक ही आधार में या एक पद में कई ध्वनियों का समावेश हो तो वहाँ यह भेद होगा।

मैं नीर भरी दुख की बदली।
विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना।
परिचय इतना इतिहास यही,
उमड़ी कल थी मिट आज चली॥ —महादेवी

यहाँ संलक्ष्यक्रमव्यंग्य तथा असलक्ष्यक्रमव्यंग्य दोनों की व्यंजना एक ही आधार में हुई है। 'मैं नीरभरी दुख की बदली' कहकर बदली का विस्तार एवं अपनी सीमित सीमा दिखाने के लिए विरहिणी से बदली में अधिक गुण प्रकट किया गया है, अतः यहाँ व्यतिरेक अलकार की व्यंजना हुई। बदली विस्तृत आकाश में छाई रहती है, किंतु विरहिणी अपने घर में बैठकर आँसू बहाती रहती है। संपूर्ण गीत में करुण रस की व्यंजना होने से यहाँ असंलक्ष्य-क्रमव्यंग्य भी है।

ध्वनियों की संसृष्टि—जब एक से अधिक ध्वनियाँ अपनी स्वतंत्र सत्ता रखती हुई एक साथ दिखाई जाती हों, तो ध्वनियों की संसृष्टि होती है।

हँसने लगे कुसुम कानन के देख चित्र-सा एक महान।
विकस उठीं कलियाँ डाली में निरख मैथिली की मुसकान।
कौन-कौन से फूल खिले हैं, उन्हें गिनाने लगा समीर।
एक-एक कर गुन-गुन करके जुड़ आई भौंरों की भीर॥
—पंचवटी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क. 'हँसने लगे कुसुम कानन में' अचेतन फूलों का हँसना संभव नहीं है। यहाँ मुख्यार्थ बाधित है। गौणीलक्षणा से इसका अर्थ 'पुष्प खिलने लगे' होगा। यहाँ खिले हुए पुष्पों की रमणीयता व्यंजित हो रही है।

ख. 'विकस उठी कलियाँ डालों में निरखे मैथिली की मुसकान' में मुसकान का आधिक्य व्यंग्य है। 'सीता की मुसकान देखकर कलियों का हँसना' इसमें मुख्यार्थ बाधित है।

ग. 'समीर का पुष्पों को गिनना' इसमें मुख्यार्थ की बाधा है। इसका गौणीलक्षणा से अर्थ हुआ हवा का फूलों को स्पर्श करना। यहाँ समीर के धीरे-धीरे बहने की ध्वनि है। सभी ध्वनियाँ स्वतंत्र हैं, अतः ध्वनियों की संसृष्टि हुई।

ध्वनि-विवेचन का इतिहास—ध्वनि-संप्रदाय के प्रवर्तक आचार्य आनंदवर्द्धन या ध्वनिकार हैं। कतिपय विद्वान् कारिकाकार तथा वृत्तिकार को भिन्न मानकर 'ध्वन्यालोक' का मूल रचयिता अज्ञातनामा ध्वनिकार या 'सहृदय' नामक किसी आचार्य को मानते हैं। पर, अनेक अन्य विद्वान् आनंद-वर्द्धन को ही कारिकाकार और वृत्तिकार मानने के पक्ष में हैं। ध्वनि-संप्रदाय का आधार-ग्रंथ या प्रस्थान-ग्रंथ 'ध्वन्यालोक' है, जिसका प्रणयन नवीं शती के मध्य हुआ था। इस पर अभिनवगुप्त ने 'लोचन' नामक टीका की रचना कर युक्तिपुष्ट प्रमाण के द्वारा ध्वनि-सिद्धांत को पूर्ण एवं व्यवस्थित किया। उन्होंने अनेक प्रमाणों तथा युक्तियों के आधार पर ध्वनिविरोधी आचार्यों के मत का खंडन कर ध्वनि-संप्रदाय को प्रतिष्ठित किया। ध्वनि-संप्रदाय को अनेक विरोधों का सामना करना पड़ा। इसके मुख्य विरोधियों में मुकुलभट्ट, प्रति-हारेंदुराज, भट्टनायक, धनंजय, कुंतक और महिमभट्ट हैं। ध्वनि-समर्थक आचार्यों में भोजराज, मम्मट, रुय्यक, क्षेमेंद्र, वाग्भट प्रथम, हेमचंद्र, राजशेखर, जयदेव, विश्वनाथ, विद्याधर, विद्यानाथ तथा पंडितराज जगन्नाथ हैं।

यहाँ पहले ध्वनि-समर्थक आचार्यों का परिचय दिया जा रहा है, तत्पश्चात् ध्वनि-विरोधी आचार्यों का विवरण दिया जाएगा।

ध्वनिसमर्थक आचार्य—

१. *अभिनवगुप्त*—(९८०-१०२० ई०) इन्होंने 'ध्वन्यालोकलोचन' की रचना कर ध्वनिसिद्धांत का पल्लवन एवं स्थापन किया। इसमें 'ध्वन्यालोक' की केवल व्याख्या न होकर तत्संबंधी अनेक नवीन तथ्यों की उद्भावना भी की गई है। ध्वनि-सिद्धांत के विकास में अभिनव गुप्त का महत्त्वपूर्ण योग है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इन्होंने यह सिद्ध किया कि व्यंजना-व्यापार द्वारा ही रस की महत्ता प्रमाणित होती है और ध्वनि की प्रतिष्ठा रस के कारण ही है। इन्होंने रस तथा ध्वनि का अंतस्संबंध स्थापित कर बताया कि रस-भाव आदि का बोध व्यंजना-द्वारा होता है और उसीके द्वारा रस का रहस्य भी उद्घाटित हो सकता है। अभिनव ने बताया कि वस्तु तथा अलंकार-ध्वनियाँ भी वस्तुतः रस का ही बोध कराती हैं और काव्य, रस के ही कारण जीवित रहता है; उसके (रस के) अभाव में वह (काव्य) काव्य की अभिधा नहीं प्राप्त कर सकता। इन्होंने रस की महत्ता स्थापित करते हुए काव्य में 'शब्दार्थगुणालंकारसंयुक्त-रसात्मकता' की चारुता को अनिवार्य माना; क्योंकि इसके बिना 'गंगायां घोषः' जैसे शुष्क वाक्य भी काव्य की श्रेणी में परिगणित होने लगेंगे। अभिनव ध्वनि को काव्य की आत्मा मानकर भी उसे काव्य का सर्वस्व नहीं स्वीकार करते। वे रसात्मक सौंदर्य-युक्त ध्वनि को ही काव्य मानने के पक्ष में हैं, केवल ध्वनि को नहीं।

२. *भोज*—समय, एकादश शती के मध्य। इन्होंने 'सरस्वतीकंठाभरण' तथा 'शृंगारप्रकाश' नामक दो विशाल ग्रंथों की रचना की है। इनमें काव्य के स्वरूप, गुण, दोष, अलंकार, रस, भाव आदि का विस्तृत विवेचन है। भोज आनंदवर्द्धन के 'ध्वन्यालोक' से पूर्ण परिचित हैं और इन्होंने 'सरस्वतीकंठाभरण' (पंचम परिच्छेद, पृ० ६२८) में 'ध्वन्यालोक' (द्वितीय उद्योत) की चार कारिकाओं को उद्धृत किया है। इन्होंने 'शृंगारप्रकाश' के छठे तथा सातवें प्रकाश में अपने ढंग से ध्वनि का निरूपण किया है।

> तात्पर्यमेव वचसि ध्वनिरेव काव्ये
> सौभाग्यमेव गुणसंपदि वल्लभस्य।
> लावण्यमेव वपुषि स्वदतेऽङ्गनायाः
> शृंगार एव हृदि मानवतो जनस्य ॥
>
> —शृंगारप्रकाश, पृ० १६३, डॉ० राघवन्

३. *मम्मट*—(१०५०-१०० ई०) अभिनवगुप्त के पश्चात् ध्वनि-सिद्धांत के श्रेष्ठ उन्नायक आचार्य मम्मट हैं, जिन्होंने ध्वनिविरोधी समस्त युक्तियों एवं मतों का खंडन कर उसकी (ध्वनि की) ऐकांतिक सत्ता सिद्ध की। इन्हें 'ध्वनिप्रस्थापनपरमाचार्य' की उपाधि प्राप्त है। मम्मट मूलतः ध्वनिवादी आचार्य हैं। इन्होंने व्यंग्य की प्रधानता के अनुपात से काव्य के तीन भेदों का निरूपण किया है—ध्वनिकाव्य (उत्तम काव्य), गुणीभूत व्यंग्य (मध्यम काव्य)

३८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा चित्र काव्य (अधम काव्य)। ध्वनि के स्वरूप का स्पष्टीकरण, ध्वनि का वर्गीकरण तथा ध्वनिकार के मत का समादर कर अलंकार, गुण, दोष का विवेचन मम्मट की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। इन्होंने ध्वनिविरोधी महिमभट्ट के मत का तीव्र विरोध किया है और अपनी युक्तियों-द्वारा उसका खंडन कर ध्वनि-सिद्धांत को नष्ट करनेवाले संकल्प को निर्मूल कर दिया है।

रुय्यक, वाग्भट प्रथम, हेमचंद्र, राजशेखर आदि ध्वनिसमर्थक आचार्यों की कोटि में आते हैं। रुय्यक, विद्यानाथ एवं विद्याधर 'काव्यस्यात्माध्वनिः' इस तथ्य का पूर्ण समर्थन करते हैं।

तस्माद् विषय एव व्यंग्यनाम जीवितत्वेन वक्तव्यः............तस्मात् व्यंग्य एव वाक्यार्थीभूतः काव्यजीवितमिति। एष एव च पक्षः वाक्यार्थविदां सहृदया-नामावर्जकः।

—अलंकारसर्वस्व, पृ० १०

४. *जयदेव*—जयदेव अलंकारवादी आचार्य होते हुए भी ध्वनि का महत्त्व अस्वीकार नहीं करते। इन्होंने 'चंद्रालोक' में काव्य के समस्त अंगों का वर्णन किया है और व्यंजनाशक्ति, गुणीभूत व्यंग्य तथा ध्वनि के भी अस्तित्व को स्वीकार किया है। वे अनलंकृत काव्य को स्वीकार नहीं करते और इसी कारण आचार्य मम्मट के कथन 'अनलंकृतीपुनः क्वापि' का खंडन करते हैं।

५. *विश्वनाथ*—ये रसवादी आचार्य हैं; क्योंकि इन्होंने 'रसात्मकवाक्य' को काव्य कहा है। इन्होंने 'साहित्यदर्पण' में काव्य के दशांगों का वर्णन करते हुए रस और ध्वनि का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है। ये रसवादी होते हुए भी ध्वनिमार्ग के प्रबल समर्थक हैं। इनका ध्वनियों का वर्गीकरण अन्य आचार्यों की अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक है। 'साहित्यदर्पण' के चतुर्थ परिच्छेद में ध्वनि-निरूपण एवं पंचम में व्यंजना का प्रतिपादन है। विश्वनाथ ने व्यंजनाविरोधियों की मान्यताओं का तर्कपूर्ण खंडन किया है।

६. *पंडितराज जगन्नाथ*—ये ध्वनि-समर्थक अंतिम आचार्य हैं। इन्होंने अपने रसगंगाधर' में ध्वनिविषयक अनेक मौलिक विचार प्रकट किए हैं। इनका काव्य-विभाजन ध्वनि-मत पर ही आश्रित है; पर इन्होंने अन्य आचार्यों (ध्वनिसमर्थक) का अंधानुकरण न कर काव्य के चार प्रकार किए हैं—उत्तमोत्तम, उत्तम, मध्यम तथा अधम काव्य। पंडितराज ने ध्वनि के वर्गीकरण में अतिवादी दृष्टिकोण का परित्याग कर यथार्थवादी दृष्टि अपनाई है। ये मम्मटादि की भाँति ध्वनि के १०४५५ भेदों पर विचार नहीं करते। इन्होंने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ध्वनि के प्रथमतः दो भेद किए हैं—अभिधामूला और लक्षणामूला। अभिधामूलाध्वनि के तीन भेद हैं—रस, वस्तु और अलंकारध्वनि। लक्षणामूलाध्वनि के दो भेद हैं—अर्थांतरसंक्रमितवाच्य तथा अत्यंततिरस्कृतवाच्य। पंडितराज ने लक्षणामूलाध्वनियों को भी संलक्ष्यक्रमध्वनियों के अंतर्गत स्वीकार किया है और रसादि ध्वनि को असंलक्ष्यक्रमव्यंग्य के अतिरिक्त संलक्ष्यक्रम मानकर ध्वनिसिद्धांत में नवीन व्यवस्था की है। इन्होंने ध्वनि के अनावश्यक भेदों को हटाकर उसे अधिक व्यावहारिक बनाया है।

ध्वनिविरोधी आचार्य—ध्वनि-सिद्धांत की स्थापना अत्यंत पुष्ट प्रमाणों तथा तर्कसंगत युक्तियों के आधार पर हुई थी, तथापि इसे अनेक विरोधों का भी सामना करना पड़ा। जिन आचार्यों ने ध्वनि पर प्रबल प्रहार किया था, उनमें मुकुलभट्ट, प्रतिहारेंदुराज, भट्टनायक, धनंजय-धनिक, कुंतक एवं महिमभट्ट अधिक प्रसिद्ध हैं।

१. मुकुलभट्ट—मुकुलभट्ट की रचना का नाम 'अभिधावृत्तिमातृका' है। इसमें लेखक ने एकमात्र अभिधा को ही शब्द का व्यापार मानकर उसके दस भेद किए हैं और उन्हीं के अंतर्गत लक्षण के छह प्रकारों का अंतर्भाव किया है। व्यंजना के सभी भेदों को लक्षणा में ही गतार्थ किया गया है। इस प्रकार वे अभिधा के अतिरिक्त अन्य किसी शक्ति को मानने की आवश्यकता का निराकरण कर देते हैं।

लक्षणामार्गावगाहित्वं तु ध्वनेः सहृदयैर्नूतनतयोपवर्णितस्य विद्यत इति दिशमुन्मीलयितुमिदमत्रोक्तम्। —अभिधावृत्तिमातृका, पृ० २१

इत्येतदभिधावृत्तं दशधात्र विवेचितम्। —वही, १३

२. प्रतिहारेंदुराज—ये मुकुलभट्ट के शिष्य हैं। इन्होंने उद्भट-कृत "काव्यालंकारसारसंग्रह' की टीका लिखी है। ये अलंकारवाद के पोषक होने के कारण ध्वनि को अलंकार में ही गतार्थ कर देते हैं तथा आनंदवर्द्धन-द्वारा प्रस्तुत ध्वनि के उदाहरणों को विभिन्न अलंकारों का उदाहरण मान लेते हैं। इन्होंने ध्वनि के तीन भेदों—वस्तु, अलंकार तथा रसध्वनि—को क्रमशः श्लेष, पर्यायोक्ति तथा रसवद् अलंकार में समाविष्ट किया है। इनका प्रधान उद्देश्य अलंकार में ही व्यंजना को अंतर्भुक्त करने का था।

ननु यत्र काव्ये सहृदयहृदयाह्लादिनः प्रधानभूतस्य स्वशब्दव्यापारास्पृष्टत्वेन प्रतीयमानैकरूपस्यार्थस्य सद्भावस्तत्र तथाविधार्थाभिव्यक्तिहेतुः काव्यजीवितभूतः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कैश्चित् सहृदयैर्ध्वनिर्नाम व्यंजकत्वभेदात्मा काव्यधर्मोऽभिहितः। स कस्मादिह नोपदिष्टः। उच्यते। एष्वेवालंकारेष्वंतर्भावात्।

—काव्यालंकारसारसंग्रह, पृ० ७९

इन्होंने ध्वनि के समस्त भेदों को अप्रस्तुतप्रशंसा तथा पर्यायोक्ति अलंकार में ही गतार्थ करने का प्रयास किया है।

एवमेतत् व्यंजकं पर्यायोक्तादिष्वंतर्भावितम्। —वही, पृ० ९२

अतश्च पर्यायोक्ताप्रस्तुतप्रशंसयोरेव यथाक्रमं विवक्षिताविवक्षितवाच्ययोः सर्वध्वनिभेदसामान्यभूतयोर्ध्वनिभेदयोंतर्गतिर्वाच्या। —वही, पृ० ९२

३. *भट्टनायक*—ये रसवादी आचार्य थे; पर इन्होंने ध्वनि का विरोध किया था। इनका प्रसिद्ध ग्रंथ 'हृदय दर्पण', 'ध्वनिध्वंस' के नाम से विख्यात है। भट्टनायक रस को भावना का व्यापार मानते हैं, व्यंजना का नहीं। ये वस्तु एवं अलंकारध्वनि को तो मान्यता देते हैं; पर रसध्वनि को अमान्य ठहराते हैं। किंतु, रस को काव्य की आत्मा मानने के कारण रसध्वनि का खंडन नहीं होता।

४-५. *धनंजय और धनिक*—धनंजय की नाट्यशास्त्रविषयक प्रसिद्ध रचना 'दशरूपक' है, जिस पर धनिक ने 'अवलोक' नामक टीका की रचना की है। दोनों के विचार भाट्टमीमांसकों से प्रभावित हैं। भट्टनायक के भावकत्व-सिद्धांत के प्रति इनकी पूर्ण सहानुभूति है। ये ध्वनि-सिद्धांत का अंतर्भाव तात्पर्य-वृत्ति में करते हैं। इन्होंने अभिधा, लक्षणा और तात्पर्य—तीन ही वृत्तियों को स्वीकार किया है। धनिक ने 'दशरूपक' के चतुर्थ परिच्छेद में ध्वनि-मत का खंडन करते हुए कहा है कि स्थायी भाव या रस विभावादि-द्वारा प्रतीत होने-वाला वाक्यार्थ ही होता है। ध्वनि का खंडन करते हुए धनंजय का कथन है कि "काव्य में प्रतीयमान या व्यंजनीय अर्थ का समावेश तात्पर्य में ही हो जाता है, इसलिए प्रतीयमान अर्थ की प्रतीति तात्पर्य शक्ति के द्वारा ही हो जाती है, फिर इसके लिए व्यंजना-जैसी शक्ति की कल्पना या इस प्रतीयमान अर्थ को ध्वनि कहना ठीक नहीं।"

वाच्या प्रकरणादिभ्यो बुद्धिस्था वा यथाक्रिया।
वाक्यार्थः कारकैर्युक्तः स्थायीभावस्तथेतरैः॥

—दशरूपक, ४/३७

तात्पर्यानतिरेकाच्च व्यंजनीयस्य न ध्वनिः।
किमुक्तं स्यादश्रुतार्थतात्पर्येऽन्योक्तिरूपिणः॥ —वही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इनका कहना है कि काव्य का रस के साथ भाव्यभावकसंबंध होता है, व्यंग्यव्यंजकसंबंध नहीं। काव्य भावक है और रसादि भाव्य हैं। अतः, काव्य न तो व्यंजक है और न रसादि व्यंग्य हैं।

अतो न रसादीनां काव्येन सह व्यंग्यव्यंजकभावः। किंतर्हि भाव्यभावक-संबंधः ? काव्यं हि भावकं, भाव्या रसादयः। ते हि स्वतो भवंत एव भावकेषु विशिष्ट विभावादि मता काव्येन भाव्यंते। —दशरूपक, पृ० २४३

६. *कुंतक*—कुंतक ने वक्रोक्ति सिद्धांत का प्रवर्त्तन कर उसे काव्य का जीवन या प्राण माना है। इनका सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'वक्रोक्तिजीवितम्' है। इन्होंने वक्रोक्ति में ही ध्वनि का समाहार करने का असफल प्रयत्न किया है। ये वक्रोक्ति के विभिन्न प्रकारों में ध्वनि के अधिकांश उदाहरणों को गतार्थ करने का प्रयत्न करते हैं; परंतु उनमें ध्वनि की अनुगूँज सुनाई ही पड़ती है। कुंतक विचित्र अभिधावादी हैं। इनकी अभिधा वृत्ति में लक्षणा तथा व्यंजना, दोनों का निमज्जन हो जाता है। कुंतक ध्वनि को वक्रोक्ति द्वारा अभिधेय मानने के कारण ध्वनि-विरोधी कहे जाते हैं। ये वैदग्ध्यभंगीभणिति वक्रोक्ति को काव्य का प्राण कहकर ध्वनि, रस तथा औचित्य को उसका अंग स्वीकार करते हैं। ध्वनिकार ध्वनि को व्यंजना-वृत्ति-द्वारा प्रतीयमान मानते हैं; पर कुंतक ने वक्रोक्ति तत्त्व को विचित्र अभिधा वृत्ति से ही अभिहित किया है।

कुंतक ने प्रत्यक्ष रूप से ध्वनि-सिद्धांत का खंडन नहीं किया था और न उनका यही साध्य था। ये ध्वनि के खंडन से अधिक महत्त्व वक्रोक्ति की स्वतंत्र सत्ता के मंडन को देते हैं। इन्हें ध्वनिमत के प्रति आस्था थी; पर ये उसे (ध्वनि को) वक्रोक्ति का प्रकारांतर मानते हैं और प्रतीयमान अर्थ का अस्तित्व स्वतः स्वीकार करते हैं।

प्रतीयमानता यत्र वाक्यार्थस्य निबध्यते।
वाच्यवाचकवृत्तिभ्यामतिरिक्तस्य कस्यचित् ॥

—वक्रोक्तिजीवित, १/४०

७. *महिमभट्ट*—ध्वनिविरोधी आचार्यों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान महिमभट्ट का है। अन्य व्यक्तियों ने आनुषंगिक रूप से ध्वनि-सिद्धांत का खंडन किया था; किंतु महिमभट्ट ने इस सिद्धांत का निर्मूलन करने के लिए 'व्यक्तिविवेक' नामक एक स्वतंत्र ग्रंथ की रचना की थी। ग्रंथ के मंगला-चरण में लेखक ने व्यंजना पर प्रबल प्रहार करने की प्रतिज्ञा की है और ध्वनि के सभी प्रकारों को अनुमान में गतार्थ करने का संकल्प किया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनुमानेऽन्तर्भाव सर्वस्यैव ध्वनेः प्रकाशयितुम् ।
व्यक्तिविवेकं कुरुते प्रणम्य महिमा परां वाचम् ।।

—व्यक्तिविवेक, १/१

महिमभट्ट का मूल उद्देश्य ध्वनि को अनुमान का एक प्रकार मानकर उससे उसे (ध्वनि को) अभिन्न सिद्ध करना है । ये अनुमानवादी आचार्य थे । इन्होंने अर्थ के दो प्रकार माने हैं—वाच्य और अनुमेय ।

अर्थोऽपि द्विविधो वाच्योऽनुमेयश्च ।

—व्यक्तिविवेक, पृ० ४७

इनमें वाच्यार्थ शब्द व्यापार का विषय है, इसे मुख्यार्थ भी कहते हैं । अनुमेय अर्थ उसे कहते हैं, जिसकी प्रतीति में वाच्यार्थ कारण बने या वाच्यार्थ से अनुमित कोई अर्थ । यह अनुमेय अर्थ तीन प्रकार का होता है—वस्तुमात्रानुमेय, अलंकारानुमेय तथा रसाद्यनुमेय । महिमभट्ट शब्द की एक ही शक्ति मानते हैं—अभिधा । वे लक्षणा तथा तात्पर्य-शक्ति का निषेध कर उनका समावेश अनुमान में ही करते हैं । इनके अनुसार प्रतीयमान अर्थ की सिद्धि व्यंजना द्वारा न होकर अनुमान से ही होती है । व्यंजनावादियों का खंडन करते हुए महिमभट्ट का कहना है कि "वाच्य तथा उसके ज्ञेय अर्थों में व्यंग्यव्यंजकभाव संबंध नहीं है; क्योंकि उनकी प्रतीति घटप्रदीप के समान साथ-साथ नहीं होती । पक्षधर्मता संबंध व्याप्तिज्ञान द्वारा जैसे वृक्षत्व आम्रत्व तथा धूमअग्नि में अनुमान माना जाता है, वैसे ही अनुमान लक्षण का समन्वय हो जाने पर यहां भी वही मानना उचित है ।"

शब्दस्यैकाभिधाशक्तिरर्थस्यैकैव लिंगता ।
न व्यंजकत्वमनयोः समस्तीत्युपपादितम् ।।१/२६
वाच्यप्रत्येययोर्नास्ति व्यंग्यव्यंजकतार्थयोः ।
तयोः प्रदीपघटवत् साहित्येनाप्रकाशनात् ।।
पक्षधर्मत्वसंबंधव्याप्तिसिद्धिव्यपेक्षणात् ।
वृक्षत्वाम्रत्वयोर्यद्वद् यद्वच्चानलधूमयोः ।।

—व्यक्तिविवेक, १/३३, ३४

महिमभट्ट ने ध्वनि की परिभाषा का परिष्कार करते हुए काव्यविशेष को काव्यानुमान कहना अधिक उपयुक्त माना है । "जहां वाच्य अथवा उससे अनुमित अर्थ किसी दूसरे अर्थ को किसी भी संबंध से प्रकाशित करे, उसे काव्यानुमिति कहा गया है ।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वाच्यस्तदनुमितो वा यत्रार्थोऽर्थांतरं प्रकाशयति।
संबंधतः कुतश्चित् सा काव्यानुमितिरित्युक्ता॥

—व्यक्तिविवेक, १/२५

'व्यक्तिविवेक' में तीन विमर्श हैं। प्रथम विमर्श में ध्वनि का परीक्षण तथा उसके लक्षण का तर्कपूर्ण खंडन है। द्वितीय में शब्द-दोषों का विवेचन कर उन्हें ध्वनि में दर्शाया गया है। तृतीय विमर्श में 'ध्वन्यालोक' के चालीस उदाहरणों की परीक्षा कर उन्हें अनुमान का उदाहरण मान लिया गया है और इस प्रकार ध्वनि के समस्त भेदों को अनुमान में गतार्थ करने का प्रयास किया गया है। महिमभट्ट ने आनंदवर्द्धनकृत ध्वनि की परिभाषा में दस दोषों को दिखलाया है।

आचार्य मम्मट ने 'काव्यप्रकाश' में महिमभट्ट की युक्तियों का तर्कपूर्ण खंडन करते हुए ध्वनि-सिद्धांत की स्थापना की है। महिम ने निम्नांकित गाथा को न्याय की प्रक्रिया के आधार पर अनुमान का उदाहरण मानते हुए व्यंजना का अंतर्भाव अनुमान में किया था, जिसका मम्मट ने अपने ढंग से खंडन किया।

भ्रम धार्मिक विश्वस्तः स श्वाद्यमारितस्तेन।
गोदानदीकच्छकुंजवासिना दृप्तसिंहेन॥

हे धार्मिक, अब आप निश्चित होकर गोदावरी नदी के तट पर भ्रमण करें। क्योंकि, नदी के तीर पर रहनेवाले भयंकर सिंह ने उस कुत्ते को मार दिया।

यहाँ गोदावरी के किनारे फूल तोड़नेवाले भक्त के प्रति किसी नायिका की उक्ति है, जो उपपति के साथ वहाँ आकर चौर्यरत में संलग्न रहती थी। धार्मिक की विद्यमानता के कारण उसकी रतिक्रीड़ा बाधित होती थी। धार्मिक नदी-तीरवर्ती कुत्ते के कारण भयभीत बना रहता था। नायिका कुत्ते की मृत्यु का समाचार सुनाती है कि उसे गोदावरी-कुंज में रहनेवाले भयंकर सिंह ने मार डाला है; अतः आप निडर होकर पुष्प-चयन करें। यहाँ नायिका धार्मिक को चेतावनी देकर उसे हटाने का प्रयास करती है कि बच्चू, तुम शीघ्र ही यहाँ से भाग जाओ, नहीं तो तुम्हारी खैरियत नहीं। पहले तो तुम कुत्ते से ही डरा करते थे, अब सिंह आ गया है। युवती के इस कथन में धार्मिक को डराकर तत्क्षण वन छोड़ने की चेतावनी है, जिससे कि उसका चौर्यरत निर्विघ्न संपन्न हो सके।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

महिमभट्ट यहाँ निषेध-रूप प्रतीयमान अर्थ को अनुमेय स्वीकार करते हैं। यहाँ दो अर्थ हैं—वाच्य और प्रतीयमान। वाच्यार्थ निषेध रूप है तथा धूम और अग्नि की तरह साध्यसाधन-भाव है। वाच्य अर्थ धूम की तरह साधन है और प्रतीयमान अर्थ अग्नि की भाँति साध्य। जिस वाच्य अर्थ में निश्चित होकर आने को कहा गया है, वह न आने को कहने का साधन या हेतु है। जिस प्रकार अग्नि का अनुमान करने के लिए धुएँ की विद्यमानता हेतु है, उसी प्रकार सिंह की उपस्थिति की सूचना देना यहाँ आने के निषेध का हेतु है।

मम्मट ने इसका खंडन करते हुए बताया कि महिमभट्ट द्वारा प्रस्तुत हेतु यहाँ हेत्वाभास है, हेतु नहीं। हेत्वाभास के पाँच प्रकारों में से यहाँ तीन विद्यमान हैं—अनैकांतिक, विरुद्धत्व तथा असिद्धत्व। ऐसा देखने में आता है कि भीरु पुरुष भी प्रभु या गुरु की आज्ञा से या प्रियानुराग के कारण या किसी अन्य हेतु से भय के कारणों के रहने पर भी भयजनक स्थलों पर भ्रमण करता है। अतः, यह हेतु अनैकांतिक हेत्वाभास हुआ। कतिपय व्यक्ति ऐसे भी हैं, जो सिंह से तो नहीं डरते; पर कुत्ते से भयभीत होते हैं। यहाँ कुत्ते से डरने का कारण उनकी भीरुता न होकर उसकी अपवित्रता है। गोदावरी-तट पर सिंह का विद्यमान होना प्रत्यक्ष या अनुमान प्रमाण से पुष्ट नहीं है, वह केवल वचन से सिद्ध है। यहाँ कुलटा नायिका की उक्ति को ही प्रामाणिक माना गया है, जिसे आप्तवाक्य कदापि नहीं कहा जाएगा। फलतः कुंज में सिंह की विद्यमानता के असिद्ध होने से, यहाँ हेतु असिद्ध है। इसलिए तीन-तीन हेत्वाभासों के कारण यहाँ साध्य की सिद्धि असंभव है।

[दे० काव्यप्रकाश, ५वाँ उल्लास]

ध्वनि-संप्रदाय—ध्वनि-संप्रदाय भारतीय काव्यशास्त्र का सर्वाधिक महत्त्वशाली काव्यसिद्धांत है, जिसमें काव्य के आंतरिक सौंदर्य का उद्घाटन किया गया है। इस सिद्धांत में प्रतीयमान या व्यंग्यार्थ की सत्ता सिद्ध कर रस को व्यंजना का विषय बनाया गया है। ध्वनि-सिद्धांत इस विचार का पोषक है कि रस सदा व्यंग्य होता है, वह कदापि वाच्य नहीं हो सकता। ध्वनि-सिद्धांत की स्थापना के पूर्व रस, अलंकार और रीतिसंप्रदाय का प्रतिष्ठापन हो चुका था। ये सभी संप्रदाय एकांगी थे और इनके द्वारा काव्य के बाह्य-सौंदर्य या बहिरंग का विवेचन किया गया था। रस-सिद्धांत भी ऐंद्रिय आनंद को ही काव्य का सर्वस्व मानते हुए बुद्धि एवं कल्पना के प्रति उपेक्षा का भाव रखता था। भरत ने रस की महत्ता दृश्यकाव्य में प्रतिष्ठित की थी;

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पर श्रव्यकाव्य, विशेषतः मुक्तक काव्य, के साथ उसका सामंजस्य स्थापित नहीं हुआ था। प्रबंध काव्य के साथ रस का मेल बैठ जाता था; पर मुक्तक के साथ नहीं। ध्वनि-सिद्धांत में उपर्युक्त सभी त्रुटियों का परिमार्जन किया गया और रस को व्यंग्य मानकर उसकी महत्ता श्रव्य काव्य में घोषित की गई। इस सिद्धांत को काव्य का जीवनाधायक तत्त्व मानकर ध्वनिकार ने अन्य सभी काव्य-सिद्धांतों का ध्वनि में ही अंतर्भाव किया।

ध्वनि-संप्रदाय के प्रवर्त्तक अज्ञातनामा ध्वनिकार या आनंदवर्द्धन हैं और 'ध्वन्यालोक' उनका युगप्रवर्त्तक ग्रंथ है। इस संबंध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है कि 'ध्वन्यालोक' के रचयिता आनंदवर्द्धन हैं या अज्ञातनामा ध्वनिकार। विद्वानों का एक वर्ग इस मत का पोषक है कि ध्वनिकार ने ध्वनि-कारिकाओं का प्रणयन किया था और आनंदवर्द्धन ने उस पर वृत्तियों की रचना की थी। पर, अनेक विद्वान् ध्वनिकार से आनंदवर्द्धन को अभिन्न मानते हैं। आनंदवर्द्धन ने 'ध्वन्यालोक' में ध्वनि-सिद्धांत का सांगोपांग विवेचन किया है। उनके अनुसार ध्वनि की स्थापना के पूर्व इसके सूत्र विद्यमान थे। उन्होंने अपने ग्रंथ में ध्वनिविरोधी तीन मतों की कल्पना की है—अभाववाद, भक्तिवाद तथा अलक्षणीयतावाद और सभी विरोधियों के मत का सयुक्तिक खंडन कर ध्वनिसिद्धांत का निर्भ्रांत रूप प्रस्तुत किया है। उन्होंने बताया कि ध्वनि स्वयं में अत्यंत व्यापक काव्य तत्त्व है, जिसका अंतर्भाव रस, रीति, अलंकार या अन्य काव्य-सरणियों में नहीं किया जा सकता, अपितु उपर्युक्त सभी सिद्धांतों का समाहार ध्वनि में सहज संभाव्य है।

'ध्वन्यालोक' के प्रारंभ में ग्रंथ के उद्देश्य एवं प्रतिपाद्य विषय का उल्लेख करते हुए आनंदवर्द्धन ने बताया कि "काव्य के आत्मभूत जिस तत्त्व को विद्वानलोग ध्वनि नाम से कहते आए हैं, कुछ लोग उसका अभाव मानते हैं। दूसरे लोग उसे भाक्त (गौण, लक्षणागम्य) कहते हैं और कुछ लोग उसके रहस्य को वाणी का अविषय (अवर्णनीय, अनिर्वचनीय) बतलाते हैं। अतएव (ध्वनि के विषय में इन नाना विप्रतिपत्तियों के होने के कारण उनका निराकरण कर ध्वनि-स्थापना द्वारा) सहृदयों (काव्यमर्मज्ञजनों) के मन की प्रसन्नता (हृदयाह्लाद) के लिए हम उस (ध्वनि) के स्वरूप का निरूपण करते हैं।"

काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैर्यः समाम्नातपूर्व-
स्तस्याभावं जगदुरपरे भाक्तमाहुस्तमन्ये।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

केचिद् वाचां स्थितमविषये तत्त्वमूचुस्तदीयं
तेन ब्रूमः सहृदयमनःप्रीतये तत्स्वरूपम् ॥
—ध्वन्यालोक, १/१

आनंदवर्द्धन ने पूर्ववर्ती आचार्यों के ग्रंथों के आधार पर ही ध्वनिविरोधी संभावित मतों की कल्पना की है। यद्यपि ये आचार्य ध्वनि-सिद्धांत से परिचित नहीं थे, तथापि इनके विवेचन में ध्वनि का पूर्वाभास हो चुका था और उनकी स्थापनाएँ ध्वनि के निकट पहुँच चुकी थीं। ध्वनि का स्रोत या मूल उत्स वैयाकरणों के स्फोट सिद्धांत तथा भारतीय दर्शनों में निरूपित व्यंजना-व्यापार में सुरक्षित है। शास्त्रीय ग्रंथों के अतिरिक्त रामायण, महाभारत तथा कालिदास प्रभृति कवियों की रचनाओं तथा अन्य नाट्य ग्रंथों एवं मुक्तक पद्यों में भी ध्वनि के उदाहरण पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होते हैं। स्वयं 'ध्वन्यालोक' में भी इसके शताधिक उदाहरण भरे हुए हैं, जो आनंदवर्द्धन के पूर्व ध्वनि की विद्यमानता के द्योतक हैं।

वाल्मीकि रामायण का 'न स संकुचितः पंथा येन वाली हतो गतः' तथा 'महाभारत' का प्रसिद्ध गृध्रगोमायु-संवाद' ध्वनि के सुंदर उदाहरण हैं।

रामायण-महाभारतप्रभृतिशब्देन आदिकवेः प्रभृतिसर्वैरेव मुनिभिरस्यादरः क्रृतः इति दर्शयति। —लोचन, पृ० १३

पंडितराज जगन्नाथ का कहना है कि ध्वनिकार से भी पूर्व भामह, उद्भट आदि आचार्यों ने ध्वनि, गुणीभूत व्यंग्य आदि शब्दों का प्रयोग न कर समासोक्ति, व्याजस्तुति एवं अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकारों में गुणीभूत व्यंग्य का तथा पर्यायोक्ति अलंकार में समस्त ध्वनिप्रपंच का अंतर्भाव किया है। इससे ज्ञात होता है कि उन्हें ध्वनि का ज्ञान था।

इदं तु बोध्यम्—ध्वनिकारात् प्राचीनैर्भामहोद्भटप्रभृतिभिः स्वग्रंथेषु कुत्रापि ध्वनिगुणीभूतव्यंग्यादिशब्दा न प्रयुक्ता इत्येतावतैव तैर्ध्वन्यादयो न स्वीक्रियंते इत्याधुनिकानां वाचोयुक्तिरयुक्तैव। यतः समासोक्तिव्याजस्तुत्यप्रस्तुतप्रशंसालंकारनिरूपणेन कियंतोऽपि गुणीभूतव्यंग्यभेदास्तैरपि निरूपिताः। अपरश्च सर्वेऽपि व्यंग्यप्रपंचः पर्यायोक्तकुक्षौ निक्षिप्तः। —रसगंगाधर, पृ० ६८-६९

ध्वनि-सिद्धांत के अनुसार काव्य की आत्मा या आत्मभूत तत्त्व ध्वनि है। उसमें वाच्य और प्रतीयमान दो अर्थों में से प्रतीयमान को महत्त्व दिया गया है। वाच्यार्थ में उतना सौंदर्य नहीं होता, जितना प्रतीयमान अर्थ में। जब वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ में अधिक चारुता या चमत्कार होता है तो उसे ध्वनि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कहते हैं। इसमें शब्द तथा अर्थ अपने अभिप्राय को गौण कर किसी विशेष अर्थ को व्यक्त करते हैं अर्थात् शब्द और अर्थ का जो अपना अभिप्राय होता है, उससे भिन्न जो सौंदर्य उनमें निहित रहता है, उसकी अभिव्यक्ति ध्वनि के रूप में होती है। ध्वनि का प्राण व्यंग्य है और व्यंग्यार्थ की महत्ता के अनुपात से ही काव्य के तीन प्रकार माने जाते हैं—उत्तम, मध्यम और अधम। उत्तम काव्य में वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्य अधिक उत्कर्षक होता है और मध्यम में या तो वह व्यंग्य के समान ही चारु होता है या उससे गौण होता है। अधम काव्य में व्यंग्य का अत्यंताभाव होता है और उसमें वाच्यार्थ की ही प्रधानता रहती है। ध्वनि के तीन मुख्य भेद होते हैं—रसध्वनि, अलंकारध्वनि और वस्तुध्वनि। इनमें रसध्वनि को ही काव्य का प्राण माना जाता है। आनंदवर्द्धन ने रस को ध्वनि या व्यंजना द्वारा अनुभूत मानकर उसको (रस को) ध्वनि का अंग स्वीकार किया तथा उसकी व्याप्ति काव्य के सूक्ष्म रूप—वर्ण से लेकर पद, वाक्य एवं प्रबंध-जैसे महान् रूपों में भी दिखलाई। प्रथमतः ध्वनि के दो प्रकार किए गए—अभिधामूला और लक्षणामूला। अभिधामूला के दो प्रकार माने गए—असंलक्ष्यक्रमव्यंग्य तथा संलक्ष्यक्रमव्यंग्य। असंलक्ष्यक्रमव्यंग्य के अंतर्गत रसादि ध्वनि का वर्णन किया जाता है और इसमें रस, भाव, भावशांति, भाव-संधि, भावोदय, भावाभास, भावशबलता एवं रसाभास का वर्णन होता है। ध्वनि के भेदों का विस्तार होता गया और मम्मट तक आकर उनकी संख्या १०४५५ हो गई। [**दे० ध्वनि के भेद-प्रभेद**] लक्षणामूलाध्वनि के दो भेद किए गए—अर्थांतरसंक्रमितवाच्यध्वनि तथा अत्यंततिरस्कृतवाच्यध्वनि। ध्वनि के मुख्य भेदों की संख्या इक्यावन है।

आनंदवर्द्धन ने दो उद्देश्यों की सिद्धि के लिए ही ध्वनि-सिद्धांत का निरूपण किया था—ध्वनि की निर्भ्रांत स्थापना तथा अन्य सिद्धांतों का ध्वनि में समाहार। वे इस कार्य में पूर्णकाम हुए और उन्होंने सार्वभौम काव्य-तत्त्व के रूप में ध्वनि की स्थापना की। इस सिद्धांत की प्रतिष्ठापना से काव्य में कल्पना तत्त्व की प्रतिष्ठा हुई और रस को न केवल नाटक का अपितु गीत, प्रगीत तथा मुक्तक का भी विषय बनाया गया। ध्वनिकार ने रस को व्यंग्य मानकर उसे ध्वनि का एक महत्त्वपूर्ण अंग या स्वरूप सिद्ध किया तथा उसका समावेश ध्वनि-सिद्धांत में करके रस के पृथक् अस्तित्व को असिद्ध कर दिया। पर, इसका अर्थ यह नहीं कि ध्वनि-सिद्धांत में रस को गतार्थ कर ध्वनिकार ने उसका अवमूल्यन कर दिया, वरन् रस के भाववैभव को ग्रहण कर ध्वनि-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सिद्धांत को और भी अधिक समृद्ध किया। रस अनुभूति का वाहक होता है और ध्वनि में उसका समावेश हो जाने से कल्पना (ध्वनि) एवं भावतत्त्व (रस) का सम्यक् सम्मेलन हो जाता है। इस प्रकार काव्य की आत्मा ध्वनि हुई और रस या रसध्वनि को ध्वनि का जीवन प्राण सिद्ध किया गया।

वस्तुतः, रस-सिद्धांत के विशदीकरण या पल्लवन के लिए ही ध्वनि-मत की स्थापना हुई थी। इसके पूर्व रस वाच्य का विषय माना जाता था, व्यंग्य का नहीं और इसीलिए उसकी परिधि परिमित हो गई थी। आनंदवर्द्धन ने स्पष्ट शब्दों में उद्घोषित किया कि रस को ही काव्य का मुख्य विषय बनाकर कवि उन्हीं शब्दों तथा अर्थों का सर्जन करे, जो रस की व्यंजना के अनुरूप हों। रस काव्य तथा नाटक—दोनों का ही प्राण है।

अयमेव हि महाकवेर्मुख्यो व्यापारो यत् रसादीनेव मुख्यतया काव्यार्थीकृत्य तद्व्यक्त्यनुगुणत्वेन शब्दानामर्थानांचोपनिबंधनम्। एतच्च रसादितात्पर्येण काव्य-निबंधनं भरतादावपि सुप्रसिद्धमेवेति।.........रसादयो हि द्वयोरपि तयोः (काव्य-नाट्ययोः) जीवितभूताः।
—ध्वन्यालोक, ३/३१ वृत्ति

वाच्यानां वाचकानां च यदौचित्येन योजनम्।
रसादिविषयेणैतत् कर्म मुख्यं महाकवेः॥ —वही, ३/६२

ध्वनि-सिद्धांत के अंतर्गत अन्य काव्य-सिद्धांतों का भी पुनर्मूल्यांकन कर उनके स्वरूप का स्थिरीकरण किया गया है। ध्वनिकार ने अलंकार, गुण, दोष, रीति, वृत्ति आदि का ध्वनि-सिद्धांत की पीठिका में निरूपण कर काव्या-लोचन के अंतर्गत उनके उचित स्थान का निर्धारण किया। उदाहरणस्वरूप, गुण एवं अलंकार का मूल्यांकन करते हुए प्रथम को काव्य का नित्यधर्म एवं द्वितीय को अनित्यधर्म माना गया है। गुण आत्मा के धर्म हैं और अलंकार शरीर के धर्म। काव्य में अलंकारों का स्थान कटक-कुंडलादि (आभूषणों) की भाँति है; अतः वे उसके बाह्यशोभाधायक धर्म हैं।

ध्वनि-सिद्धांत का स्वरूप इस प्रकार बनाया गया या उसका क्षेत्र इतना विस्तृत किया गया कि उसके अंतर्गत रस, रीति, अलंकार, गुण के अतिरिक्त वक्रोक्ति एवं औचित्य का भी समावेश हो गया। ध्वनिकार ने रस की भाँति गुण, रीति और अलंकार को भी व्यंजना का विषय मानकर यह अभिमत प्रकट किया कि इन सबों की उपस्थिति ध्वनि में ही होती है और इनकी महत्ता अपने स्वरूप के कारण न होकर ध्वनि के ही कारण है। रीति को ध्वनिकार

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ने काव्य का शरीर माना; क्योंकि उसका संबंध शब्द एवं अर्थ से है; अतः उसका स्थान (काव्य में) शरीरावयव की भाँति मान्य है। आनंदवर्द्धन रीति को पदसंघटना कहकर रसानुरूप उसकी तीन विशिष्ट स्थितियाँ स्वीकार करते हैं—असमासा, मध्यमसमासा तथा दीर्घसमासा और संघटन का औचित्य रस, वक्ता एवं वर्ण्यविषय के कारण निश्चित करते हैं। ध्वनिकार ने वृत्तियों का ध्वनि में समावेश करते हुए बताया कि शब्दवृत्ति तथा अर्थवृत्ति—दोनों का उद्देश्य सहृदयानुभवगोचर चमत्कार-विशेष को उत्पन्न करना है और ध्वनि का भी यही प्रयोजन है। अतः, इसके स्वतंत्र अस्तित्व की कल्पना व्यर्थ है। ध्वनिकार ने कहा कि ध्वनि महाविषय है, जिसका स्वरूप वर्ण, पद, वाक्य, प्रबंध, मुक्तक, नाटक से लेकर महाकाव्य की गरिमा तक व्याप्त है। ध्वनि-सिद्धांत की स्थापना के पूर्व मुक्तकपदों के साथ विभावादि के संगठन के ठीक न बैठने के कारण उनको उचित महत्त्व नहीं प्राप्त होता था और अत्यंत उत्कृष्ट कोटि के पद्य भी साहित्यिक गरिमा नहीं प्राप्त करते थे; पर ध्वनि की प्रतिष्ठा के पश्चात् व्यंजना को महत्त्व मिला और मुक्तक पदों को भी उचित गौरव प्राप्त हुआ। वस्तु तथा अलंकार के साथ रस को भी ध्वनि का अंग मानकर उसके पृथक् अस्तित्व को अमान्य ठहरा दिया गया और रस को ध्वनि का महत्त्वपूर्ण रूप माना गया। इस प्रकार समस्त काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों का ध्वनि में समाहार कर उसे सार्वभौम एवं सार्वकालिक काव्य-चिंतन का रूप प्रदान किया गया।

ध्वनि-सिद्धांत : ध्वनि का अर्थ और परिभाषा—'ध्वन्' धातु में 'इ' प्रत्यय के लगने पर ध्वनि शब्द निष्पन्न होता है। साधारण रूप से इसका अर्थ आवाज है; पर काव्यशास्त्र में यह एक विशेष अर्थ का द्योतक है। भारतीय काव्यशास्त्र में ध्वनि एक काव्यीय सिद्धांत या आलोचना-सिद्धांत के रूप में प्रतिष्ठित है, जिसके उद्भावक ध्वनिकार आनंदवर्द्धन हैं। ध्वनि शब्द संस्कृत वांग्मय का अत्यंत प्राचीन शब्द है, जिसका 'अथर्ववेद' में लोकप्रचलित ध्वनि शब्द के रूप में प्रयोग हुआ है।

अंतरेमे नभसी घोषो अस्तु पृथक्ते ध्वनयो यंतु शिभम्।

—अथर्ववेद, ५/२०/७

वैयाकरणों ने भी ध्वनि शब्द को व्यवहृत किया है। पतंजलि ने लोक में प्रतीत ध्वनि को शब्द की संज्ञा दी है तथा 'तपर' सूत्र का भाष्य करते हुए

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्फोटाभिव्यक्ति के पश्चात् उत्पन्न वैकृतध्वनि को भी ध्वनि स्वीकार किया है।

लोके प्रतीत-पदार्थकः ध्वनि शब्दः। —महाभारत

एवं तर्हि स्फोटः शब्दः ध्वनि शब्दगुणः। —वही, १,१,७०

ध्वनिः स्फोटश्च शब्दानां ध्वनिस्तु खलु लक्ष्यते।

अल्पो महांश्च केषांचिदुभयं तत् स्वभावतः॥ —वही

वैयाकरण स्फोट को व्यंग्य मानकर उसके व्यंजक (व्यंग्य स्फोट के) शब्द को ध्वनि कहते हैं।

यः संयोगवियोगाभ्यां करणैरुपजन्यते।

स स्फोटः शब्दजः शब्दो ध्वनिरित्युच्यते बुधैः॥—वाक्यप्रदीप, १

ध्वनति स्फोटं व्यनक्ति इति ध्वनिः। ध्वनति व्यंग्यार्थं प्रकाशयति इति ध्वनिः। —काव्यप्रकाश, प्रथम उल्लास

प्राचीन शास्त्रकारों (विशेषतः वैयाकरणों) के आधार पर काव्यशास्त्रियों ने ध्वनि शब्द को पाँच अर्थों में प्रयुक्त किया है—व्यंजक शब्द, व्यंजक अर्थ, व्यंग्य (रस, वस्तु तथा अलंकार), व्यंजनाव्यापार तथा व्यंग्यप्रधान काव्य।

१. *व्यंजक शब्द*—जो ध्वनित करे, उस व्यंजक शब्द को ध्वनि कहा जाता है।

ध्वनति यः स व्यंजकः शब्दः ध्वनिः।

२. *व्यंजक अर्थ*—उस व्यंजक अर्थ को ध्वनि कहते हैं, जो ध्वनित करे या कराए।

ध्वनति ध्वनयति वा यः स व्यंजकः अर्थः ध्वनिः।

३. *व्यंग्य*—जो ध्वनित हो, उसे ध्वनि कहते हैं। इसके अंतर्गत रस, अलंकार एवं वस्तु, तीनों ही (ध्वनि के रूप में) आ जाते हैं। **ध्वन्यते इति ध्वनिः**। रस, अलंकार तथा वस्तु तीनों ही ध्वनित होते हैं, अतः सभी ध्वनि हैं।

४. *व्यंजना व्यापार*—जिस शक्ति या व्यापार के द्वारा ध्वनि की उत्पत्ति हो, उसे भी ध्वनि कहा जाता है।

५. *व्यंग्यप्रधान काव्य*—उस काव्य को ध्वनि कहते हैं, जिसमें वस्तु, अलंकार तथा रस ध्वनित हों—**ध्वन्यतेऽस्मिन्निति ध्वनिः**। अभिनवगुप्त ने इसका 'लोचन' में कथन किया है—

अर्थो वा शब्दो वा व्यापारो वा। अर्थोऽपिवाच्यो वा ध्वनतीति, शब्दोऽप्येवम्। व्यंग्यो वा ध्वन्यत इति व्यापारो वा शब्दार्थयोर्ध्वननमिति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कारिकया तु प्राधान्येन समुदाय एव काव्यरूपो मुख्यतया ध्वनिरिति प्रतिपादितम् ।

—ध्वन्यालोकलोचन, पृ० १०४-५

तेन वाच्योऽपि ध्वनिः वाचकोऽपि शब्दो ध्वनिः, द्वयोरपि व्यंजकत्वं ध्वनतीति-कृत्वा । संमिश्रयते विभावानुभावसंवलनयेति व्यंग्योऽपि ध्वनिः, ध्वन्यत इति कृत्वा । शब्दनं शब्दः शब्दव्यापारः, न चासावभिधादिरूपः, अपित्वात्मभूतः, सोऽपि ध्वनिः । काव्यमितिव्यपदेश्यश्च योऽर्थः सोऽपि ध्वनिः, उक्तप्रकारध्वनि चतुष्टयमयत्वात् ।

—वही, पृ० १४१-१४२

पंचधाऽपि ध्वनिशब्दार्थें येन यत्रयितो यस्य यस्मै इति ।—वही

आचार्य मम्मट के अनुसार वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ में अधिक चारुता या चमत्कार होने को ध्वनि कहते हैं ।

इदमुत्तममतिशायिनि व्यंग्ये वाच्याद् ध्वनिबुधैः कथितः ।

—काव्यप्रकाश, १/४

ध्वन्यालोककार आनंदवर्द्धन भी वाच्य से अधिक उत्कर्षक व्यंग्य को ध्वनि कहते हैं । वाच्य से व्यंग्य की प्रधानता का अर्थ व्यंग्यार्थ में अधिक चमत्कार या उत्कर्ष का होना है । क्योंकि, चमत्कार के उत्कर्ष पर ही वाच्य एवं व्यंग्य का प्राधान्य निर्भर करता है ।

चारुत्वोत्कर्षनिबंधना हि वाच्यव्यंग्योः प्राधान्यविवक्षा ।।

—ध्वन्यालोक, १/१३, वृत्ति

विश्वनाथ ने भी वाच्य से अधिक चमत्कारक व्यंग्य को उत्तम या ध्वनि-काव्य की संज्ञा दी है ।

वाच्यातिशयिनि व्यंग्ये ध्वनिस्तत्काव्यमुत्तमम् ।।

—साहित्यदर्पण, ४/१

जहाँ वाच्यार्थ में अधिक चारुता हो, वहाँ वाच्यार्थ का प्राधान्य होता है और व्यंग्यार्थ में अधिक उत्कर्ष या चमत्कार हो तो व्यंग्यार्थ की प्रधानता होगी ।

संकेतित अर्थवाले शब्दों से विशेष अर्थ की प्रतीति होने पर ध्वनि होती है । इसका (ध्वनि का) मूलाधार व्यंजना है, जिससे अभिधा तथा लक्षणा से सर्वथा भिन्न एक विलक्षण अर्थ का बोध होता है । व्यंग्य की प्रधानता होने पर ही ध्वनि का आविर्भाव होता है । ध्वनिकार के अनुसार ध्वनि की परिभाषा इस प्रकार है—जहाँ पर अर्थ अपने को और शब्द स्वयं को या शब्द अपने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अभिप्राय की प्रधानता को गौण करके किसी विशेष अर्थ को व्यक्त करे तो ऐसे काव्यविशेष को ध्वनि कहते हैं। ध्वनिकार ने 'काव्यविशेष' को प्रतीयमान या ध्वनि कहा है।

यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृत स्वार्थौ ।
व्यंक्तः काव्यविशेषः ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः ॥

—ध्वन्यालोक, १/१३

यहाँ अर्थ से तात्पर्य वाच्यार्थ का तथा शब्द से अभिप्राय वाचक शब्द का है। ध्वनिकार का कहना है कि प्रतीयमान या ध्वनि महाकवियों की वाणी में उसी प्रकार प्रतिभासित होता है, जिस प्रकार रमणियों के शरीर में उनके विभिन्न अवयवों से भिन्न लावण्य की शोभा होती है।

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव, वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम् ।
यत्तत्प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभातिलावण्यमिवांगनासु ॥

—ध्वन्यालोक, १/४

"ध्वनि से युक्त होकर महाकवियों की वाणी धन्य हो जाती है और उससे अलौकिक सौंदर्य की अभिव्यक्ति होती है। उस आस्वादमय (रसभाव रूप) अर्थतत्त्व को प्रवाहित करनेवाली महाकवियों की वाणी (उनके) अलौकिक, प्रतिभासमान प्रतिभा के वैशिष्ट्य को प्रकट करती है।"

सरस्वती स्वादु तदर्थवस्तु निष्यंदमाना महतां कवीनाम् ।
अलोकसामान्यमभिव्यनक्ति परिस्फुरंतं प्रतिभाविशेषम् ॥

—ध्वन्यालोक, १/६

ध्वनिकार ने ध्वनि या प्रतीयमान अर्थ को ही काव्य की आत्मा माना है। ध्वनि-सिद्धांत यह बतलाता है कि काव्य में जो कुछ शब्दतः प्रकट किया जाता है वही, उसका चरम लक्ष्य न होकर उसमें व्यंजित अर्थ ही उसका प्रधान प्रयोजन है।

ध्वन्यालोक—'ध्वन्यालोक' ध्वनि-संप्रदाय का प्रस्थान ग्रंथ है, जिसके रचयिता आनंदवर्द्धन हैं। [दे० आनंदवर्द्धन] इसमें ध्वनि का सांगोपांग वर्णन है। यह ग्रंथ चार उद्योतों में विभक्त है, जिसमें कुल (१९+३३+४८+१७) १०७ कारिकाएँ हैं। ग्रंथ के तीन विभाग हैं—कारिका, वृत्ति और उदाहरण। प्रथम उद्योत में ध्वनि-विषयक प्राचीन मतों का निर्देश कर तत्संबंधी (ध्वनि-संबंधी) तीन संभावित विरोधी मतों का निराकरण किया गया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसी उद्योत में ध्वनि का लक्षण प्रस्तुत कर, उसे काव्य का एक मात्र प्रयोजक तत्त्व स्वीकार कर बतलाया गया है कि अलंकार, रीति, वृत्ति, गुण आदि में ध्वनि का समाहार नहीं किया जा सकता, प्रत्युत् सभी काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों का समावेश ध्वनि में हो जाता है। द्वितीय उद्योत में ध्वनि के भेद-प्रभेद वर्णित हैं और इसी के एक प्रकार असंलक्ष्यक्रमव्यंग्य ध्वनि के अंतर्गत रस-निरूपण किया गया है। रसवदलंकार तथा रसध्वनि का पार्थक्य प्रदर्शित करते हुए गुण तथा अलंकार का स्वरूप-निदर्शन किया गया है। तृतीय उद्योत इसका सबसे बड़ा अंश है, जिसमें ध्वनि के भेद तथा प्रसंगानुसार रीतियों तथा वृत्तियों का विवेचन है। इसी उद्योत में भाट्ट तथा प्रभाकर प्रभृति तार्किकों एवं वेदांतियों के मतों में ध्वनि की स्थिति दिखलाई गई है और गुणीभूतव्यंग्य तथा चित्रकाव्य का वर्णन किया गया है। चतुर्थ उद्योत में ध्वनि-सिद्धांत की व्यापकता एवं उसका महत्त्व वर्णित कर प्रतिभा के आनंत्य का निदर्शन कराया गया है।

'ध्वन्यालोक' के अन्य नाम भी प्रसिद्ध हैं—सहृदयालोक तथा काव्यालोक। इस पर एकमात्र अभिनवगुप्त की टीका 'लोचन' प्राप्त होती है। [दे० अभिनवगुप्त] आधुनिक युग में आचार्य बदरीनाथ झा ने 'ध्वन्यालोक' पर टीका लिखी है।

'ध्वन्यालोक' के हिंदी अनुवादों तथा भाष्यों का विवरण इस प्रकार है—

क. आचार्य बदरीनाथ झा-कृत हिंदी-टीका— चौखंबा।

ख. आचार्य विश्वेश्वर-कृत हिंदी-भाष्य—ज्ञानमंडल, वाराणसी।

ग. डॉ० रामसागर त्रिपाठी-कृत ध्वन्यालोक तथा लोचन का हिंदी भाष्य (तारावती)—मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।

घ. आचार्य जगन्नाथ पाठक-कृत ध्वन्यालोक तथा लोचन का हिंदी भाष्य—चौखंबा-प्रकाशन।

ङ. ध्वन्यालोक एवं लोचन के प्रथम उद्योत का हिंदी अनुवाद—श्रीमती आशालता।

च. ध्वन्यालोक का अँगरेजी अनुवाद डॉ० कृष्णमूर्ति ने किया है।

छ. डॉ० जैकोबी ने इसका जर्मन-अनुवाद प्रस्तुत किया था।

'ध्वन्यालोक' की प्राचीन टीका 'चंद्रिका' का उल्लेख 'लोचन' में प्राप्त होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न

नट—अभिनेता या अभिनय करनेवाले व्यक्ति को नट कहते हैं। इसकी पत्नी नटी कहलाती है।

नटनेपथ्य—प्राचीन कवि के भाव को ग्रहण कर उसकी भाषा को परिवर्तित कर देने को नटनेपथ्य कहते हैं। [दे० काव्य-संवाद]

नटी—अभिनेता या नट की पत्नी को नटी कहा जाता है।

नति—मानमोचन का चतुर्थ उपाय। [दे० मान]

नरसिंह कवि—इन्होंने 'नंजराजयशोभूषण' नामक काव्यशास्त्रीय ग्रंथ की रचना की है, जो मैसूर राज्य के अधिपति महीसुर (अठारहवीं शती) के मंत्री नंजराज की प्रशस्ति में रचित है। नरसिंह कवि स्वयं भी मैसूरवासी थे। 'नंजराजयशोभूषण' सात विलासों में विभक्त है। इसमें नायक, काव्य, ध्वनि, रस, दोष, नाटक तथा अलंकार का विवेचन है। इसका प्रकाशन गायकवाड ओरियंटल सीरीज से हो चुका है। षष्ठ विलास में नंजराज की स्तुति में एक नाटक ही लिख दिया गया है। इस ग्रंथ की रचना विद्यानाथ-कृत 'प्रतापरुद्रीय' के अनुकरण पर हुई है।

नर्मसचिव—नायक की शृंगारिक-क्रीड़ा के सहायक को नर्म सचिव कहते हैं। नर्म (क्रीड़ा) सचिव (सहायक)। नर्मसचिव चार प्रकार के होते हैं—पीठमर्द, विट, चेटक और विदूषक। मानिनी नायिका का मानमोचन करनेवाला नायक पीठमर्द होता है। [दे० पीठमर्द] सभी कलाओं में चतुर व्यक्ति को विट कहते हैं। [दे० विट] नायक-नायिका को मिलाने में चतुर नायक को चेटक कहते हैं। [दे० चेटक] विकृत वेष एवं चेष्टाओं द्वारा हँसानेवाले व्यक्ति को विदूषक कहते हैं। [दे० विदूषक]

नवयौवना—मुग्धा नायिका का एक भेद। [दे० मुग्धा]

नवल अनंगा—मुग्धा नायिका का एक नाम। [दे० मुग्धा]

नवल वधू—मुग्धा नायिका का एक भेद। [दे० मुग्धा]

नवोढ़ा—नवोढ़ा का अर्थ नई ब्याही हुई है। मुग्धा नायिका का एक भेद। [दे० मुग्धा] जो नववधू लज्जा तथा भय के कारण पति का सगम नहीं चाहती, उसे नवोढ़ा कहते हैं।

नाटक—रूपक का सर्वोत्तम रूप। [दे० रूपक] नाटक की कथा वस्तु ख्यात या ऐतिहासिक होती है। श्री शंकुक के मत से नाटक में केवल इतिहास-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रसिद्ध घटनाओं का ही प्रदर्शन किया जाना चाहिए और अप्रसिद्ध घटनाओं को इसमें स्थान न देना चाहिए। अभिनव गुप्त इस संबंध में यह विचार व्यक्त करते हैं कि नाटक में लोकप्रसिद्ध प्रदर्शनीय घटनाओं का तो वर्णन होना ही चाहिए, साथ ही, घटनाओं से संबद्ध अत्यंत प्रसिद्ध स्थानों में भी या लोकप्रसिद्ध स्थानों में नायक को विद्यमान प्रदर्शित किया जाना चाहिए। [दे० अभिनव-भारती, भाग २, पृ० ४११]

प्रख्याते भारतादौ यद्वस्तु तद्विषयोऽस्य। तत्रापि किंचिदप्रसिद्धं भवति तन्निराकरणाय प्रख्यातोदात्तेति श्रीशंकुकः। एतत्तु प्रख्यातवस्तुविषयोऽस्येति इयत्ता गतार्थतम्, इत्युपाध्याया इत्थमाहुः—इह त्रिविधया प्रसिद्ध्या प्रसिद्धत्वं भवति, अमुक एवंकारी अमुत्र देशे इति।

इनके अनुसार नाटक में लोकप्रसिद्ध नायक को बिना प्रयोजन के अप्रसिद्ध स्थान पर चिर काल तक स्थित नहीं किया जाय। नाटक की कथावस्तु कवि-कल्पित न हो। इसमें भूतकालीन नेता का चरित्र वर्णित हो, वर्तमान चरित्र को नाटक में प्रदर्शित नहीं किया जाय। इसकी रचना प्रसिद्ध चरित्रों के आधार पर होनी चाहिए, यदि वर्त्तमान चरित्रों का वर्णन किया जाए तो तत्काल प्रसिद्धि की बाधा से रसहानि हो जाती है और पूर्व प्रसिद्ध महापुरुषों के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न होने की संभावना होती है।

वर्त्तमाने च नेतरि तत्कालप्रसिद्धिबाधया रसहानिः स्यात्, पूर्वमहापुरुष-चरितेषु च अश्रद्धानं स्यात्। —नाट्यदर्पणम्, पृ० १७, १/५ वृत्ति

नाटक का नायक राजर्षि होना चाहिए या उसमें उच्च वंश के चरित का वर्णन किया जाना चाहिए। अर्थात् इसका नायक उच्च वंश का क्षत्रिय हो; किंतु उसके लिए यह आवश्यक नहीं कि उसका राज्याभिषेक हो चुका हो। दिव्य पात्र को नाटक का नायक न बनाया जाए; क्योंकि वह दिव्य शक्ति के द्वारा अपनी इष्ट वस्तु की सिद्धि करने लगेगा। इसका अन्य कारण यह है कि नाटक का उद्देश्य दुःख को नष्ट करने की शिक्षा देना है और देवता दुःख-शून्य होते हैं; अतः उनके नायकत्व में यह कार्य संपन्न नही हो सकता। किंतु, दिव्य प्राणियों को नायक के सहायक-रूप में प्रदर्शित किया जा सकता है।

राजर्षिवंश्येत्यनेन प्रख्यातमपि यद्वस्तु ऋषितुल्यानां राज्ञां वंशेन साधुनोचितम्, तथा प्रख्यातत्वेऽपि देवचरितं वरप्रभावादिबहुलतया उपायोपदेशायाऽयोग्यमिति नैतदुभयं निबंधनीयमिति फलतः प्रतिषेधोदर्शितः।

—अभिवन भारती, पृ० ४१२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नाटक का नायक धीरोदात्त हो। यदि नाटक के गुण या नाटकीय रस का विरोधी कोई वृत्तांत हो तो उसका (नाटक में) समावेश न किया जाए। नाटक में शृंगार और वीर अंगीरस (प्रधान रस) होते हैं और अन्य रस अंग-रूप में प्रयुक्त होकर उनके परिपाक में सहायक होते हैं। भरत मुनि ने इस प्रकार की व्यवस्था की है कि नाटक में धीरोदात्त, धीरललित, धीरोद्धत एवं धीर-प्रशांत, इन चारों प्रकार के नायकों का चित्रण किया जाए; पर विश्वनाथ और शिंगभूपाल ने केवल धीरोदात्त को नायक-रूप में प्रतिष्ठित करने के पक्ष में मत प्रकट किया है। परंतु, यह विचार समीचीन नहीं है। भरत ने धीरोदात्त के अतिरिक्त अन्य प्रकार के नायकों को भी नाटक के लिए उपयुक्त माना है। नाटक की नायिका दिव्य भी हो तो कोई हानि नहीं; क्योंकि प्रधान मानव-रूप नायक के कारण उसका चरित्र इसमें अंतर्भूत हो जाता है।

नाटक में पाँच से दस तक के अंकों का विधान है। दस अंकवाले नाटक महानाटक कहे जाते हैं। नाटक की रचना गोपुच्छ अग्रभाग के समान होनी चाहिए, अर्थात् उसके अंक क्रमशः छोटे हों। इसमें पंचसंधियों, चौंसठ अंगों तथा अर्थप्रकृतियों का नियोजन होना चाहिए।

नाटक के लिए वर्जित दृश्य की भी योजना की गई है। इसमें कुछ ऐसी बातें हैं, जिनका प्रदर्शन रंगमंच पर न किया जाए। जैसे; दूर की यात्रा, वध, युद्ध, राज्य और देश की क्रांति, पुरी का घेरा डालना, भोजन, स्नान, सुरत, उबटन लगाना, वस्त्रों को पहनना आदि। नाटक के एक अंक में वस्तु की ऐसी योजना हो कि उसमें एक दिन की घटना का वर्णन किया जाए और उसका प्रयोजन एक ही हो या वह एक ही अर्थ से संबद्ध रहे। अंक में नायक समीपस्थ रहे और अधिक पात्रों की भीड़ का प्रवेश न कराया जाए। वहाँ केवल तीन या चार पात्र ही रहें। अंक के अंत में सारे पात्रों का निर्गम करा देना चाहिए। नाटक में भावी भावों की सूचना देने वाले पताकास्थानकों का भी सन्निवेश करना चाहिए। [दे० पताकास्थानक]

भरत का मत—

प्रख्यातवस्तुविषयं प्रख्यातोदात्तनायकं चैव।
राजर्षिवंश्यचरितं तथैव दिव्याश्रयोपेतम्॥
नानाविभूतिभिर्युक्तमृद्धिविलासादिभिर्गुणैश्चैव।
अंकप्रवेशकाढ्यं भवति हि तन्नाटकं नाम॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नृपतीनां यच्चरितं नाना रसभावचेष्टितं बहुधा ।
सुखदुःखोत्पत्तिकृतं भवति हि तन्नाटकं नाम ॥

अस्यावस्थोपेतं कार्यं प्रसमीक्ष्य बिंदुविस्तारात् ।
कर्तव्योऽङ्कः सोऽपि तु गुणान्वितं नाट्यतत्त्वज्ञैः ॥

अंक इति रूढिशब्दो भावैश्च रसैश्च रोहयत्यर्थान्।
नानाविधानयुक्तो तस्मात्तस्मस्माद्भवेदंकः ॥

यत्रार्थस्य समाप्तिर्यत्र च बीजस्य भवति संहारः ।
किंचिदवलग्नबिंदुः सोंऽक इति सदावगंतव्यः ॥

ये नायका निगदितास्तेषां प्रत्यक्षचरितसंभोगः ।
नानावस्थोपेतः कार्यस्त्वंकोऽविकृष्टस्तु ॥
नायकदेवीगुरुजन पुरोहितामात्यसार्थवाहानाम् ।
नैकरसांतरविहितो ह्यंक इति स वेदितव्यस्तु ॥
क्रोधप्रसादशोकाः शापोत्सर्गोऽथविद्रवोद्वाहौ ।
अद्भुत संभव दर्शनमंके प्रत्यक्षजानि स्युः ॥
एकदिवस प्रवृत्तं कार्यस्त्वंकोऽर्थ बीजमधिकृत्य ।
आवश्यककार्याणामविरोधेन प्रयोगेषु ॥
एकांकेन कदाचिद्बहूनि कार्याणि योजयेद्धीमान् ।
आवश्यकाविरोधेन तत्र कार्याणि कार्याणि ॥
रंगं तु ये प्रविष्टाः सर्वेषां भवति तत्र निष्क्रामः।
बीजार्थयुक्तं कृत्वा कार्यं यथार्थरसम् ॥
ज्ञात्वा दिवसावस्थां क्षणयाममुहूर्तलक्षणोपेताम् ।
विभजेत्सर्वमशेषं पृथक्पृथक्कार्यमंकेषु ॥
दिवसावसानकार्यं यद्यंके नोपपद्यते सर्वम् ।
अंकच्छेदं कृत्वा प्रवेशकैस्तद्विधातव्यम् ॥
सन्निहितनायकोऽङ्कः कर्तव्यो नाटके प्रकरणे वा ।
परिजनकथानुबंधः प्रवेशको नामविज्ञेयः ॥
प्रकरणनाटकविषये पंचाद्या दशपरा भवंत्यंकाः ।
अंकांतरसंधिषु च प्रवेशकास्तेषु तावंतः ॥
अंकच्छेदं कृत्वा मासकृतं वर्षसंचितं वापि ।
तत्सर्वं कर्तव्यं वर्षादूर्ध्वं न तु कदाचित् ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यः कश्चित्कार्यवशाद्गच्छति पुरुषः प्रकृष्टमध्वानम् ।
तत्राप्यंकच्छेदः कर्त्तव्यः पूर्ववत्तज्ज्ञैः ।।
अंकांतरानुसारी संक्षेपार्थमधिकृत्य बिंदूनाम् ।
प्रकरणनाटकविषये प्रवेशकः संविधातव्यः ।।
नोत्तममध्यमपुरुषैराचरितो नाप्युदात्तवचनकृतः ।
प्राकृतभाषांचारः प्रयोगमाश्रित्य कर्त्तव्यः ।।
कालोत्थानगतिरसौ व्याख्यासंरंभ कार्यविषयाणाम् ।
अर्थाभिधानयुक्तः प्रवेशकः स्यादनेकार्थः ।।
बह्वाश्रयमपिकार्यं प्रवेशकैः संक्षिपेच्च संधिषु वा ।
बहुचूर्णपदैर्युक्तं जनयति खेदं प्रयोगस्य ।।
यत्रार्थस्य समाप्तिर्न भवत्यंके प्रयोगबाहुल्यात् ।
वृत्तांतस्वल्पकथैः प्रवेशकैः सोऽभिधातव्यः ।।
युद्धं राज्यभ्रंशो मरणं नगरोपरोधनं चैव ।
प्रत्यक्षाणि तु नांके प्रवेशकैः संविधेयानि ।।
अंके प्रवेशके च प्रकरणमाश्रित्य नाटके वापि ।
न वधः कर्तव्यः स्याद्योऽभ्युदयी नायकः ख्यातः ।।
अपसरणमेवकार्यं ग्रहणं वा संधिरेव वा योज्यः ।
काव्यश्लेषैर्बहुभिर्यथारसं नाट्यतत्त्वज्ञैः ।।
न महाजनपरिवारं कर्तव्यं नाटकं प्रकरणं वा ।
ये तत्र कार्यपुरुषाश्चत्वारः पंच वा ते स्युः ।।
काव्यं गोपुच्छाग्रं कर्तव्यं कार्यबंधमासाद्य ।
ये-चोदात्ता भावास्ते सर्वे पृष्ठतः कार्याः ।।
सर्वेषां काव्यानां नानारसभावयुक्तियुक्तानाम् ।
निर्वहणे कर्तव्यो नित्यं हि रसोऽद्भुतस्तज्ज्ञैः ।।

नाट्यशास्त्र, १८/१०-४३

धनंजय का मत—

अभिगम्य गुणैर्युक्तो धीरोदात्तः प्रतापवान् ।।
कीर्त्तिकामो महोत्साहस्त्रय्यास्त्राता महीपतिः ।
प्रख्यातवंशो राजर्षिर्दिव्यो वा यत्र नायकः ।।
तत्प्रख्यातं विधातव्यं वृत्तमत्राधिकारिकम् ।
यत्तत्रानुचितं किंचिन्नायकस्य रसस्य वा ।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विरुद्धं तत्परित्याज्यमन्यथा वा प्रकल्पयेत् ।
आद्यंतमेव निश्चित्य पंचधा तद्विभज्य च ॥
खंडशः संधिसंज्ञांश्च विभागानपि खंडयेत् ।
चतुःषष्टिस्तु तानि स्युरंगानीत्यपरं तथा ॥
पताकावृत्तमप्यूनमेकाद्यै रनुसंधिभिः ।
अंगान्यत्र यथालाभमसंधि प्रकरीं न्यसेत् ॥
आदौ विष्कंभकं कुर्यादंकं वा कार्ययुक्तितः ।
अपेक्षितं परित्यज्य नीरसं वस्तुविस्तरम् ॥
यदा संदर्शयेच्छेषं कुर्याद्विष्कंभकं तदा ।
यदा तु सरसं वस्तु मूलादेव प्रवर्तते ॥
आदावेव तदंकः स्यादमुखापक्षेपसंश्रयः ।
प्रत्यक्षनेतृचरितो बिंदुव्याप्तिपुरस्कृतः ॥
अंको नानाप्रकारार्थसंविधानरसाश्रयः ।
अनुभावविभावाभ्यां स्थायिना व्यभिचारिभिः ॥
गृहीतमुक्तैः कर्त्तव्यमंगिनः परिपोषणम् ।
न चातिरसतो वस्तु दूरं विच्छिन्नतां नयेत् ॥
रसं वा न तिरोदध्याद्वस्त्वलंकारलक्षणैः ।
एको रसोऽङ्गी कर्तव्यो वीरः शृंगार एव वा ॥
अंगमन्ये रसाः सर्वे कुर्यान्निर्वहणेऽद्भुतम् ।
दूराध्वानं वधं युद्धं राज्यदेशादिविप्लवम् ॥
संरोधं भोजनं स्नानं सुरतं चानुलेपनम् ।
अंबरग्रहणादीनि प्रत्यक्षाणि न निर्दिशेत् ॥
नाधिकारिवधं क्वापि त्याज्यमावश्यकं न च ।
एकाहाचरितैकार्थमित्थमासन्ननायकम् ॥
पात्रै स्त्रिचतुरैरंकं तेषामंतेऽस्य निर्गमः ।
पताकास्थानकान्यत्र बिंदुरंते च बीजवत् ॥
एवमंकाः प्रकर्तव्याः प्रदेशादिपुरस्कृताः ।
पंचांकमेतदवरं दशांकं नाटकं परम् ॥

—दशरूपक, ३/२२-३८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रामचंद्रगुणचंद्र का मत—

ख्याताद्यराजचरितं धर्मकामार्थसत्फलम् ।
सांकोपायदशा संधि-दिव्यांगं तत्र नाटकम् ।।
उद्धतोदात्त-ललित-शांता धीरविशेषणा ।
वर्ण्याः स्वभावश्चत्वारो नेतृणां मध्यमोत्तमाः ।।
देवा धीरोद्धता, धीरोदात्ताः सैन्येश-मंत्रिणः ।
धीरशांता वणिग्-विप्राः, राजानस्तु चतुर्विधाः ।।
एकांगिरसमन्यांगमद्भुतांतं रसोर्मिभिः ।
अलंघितमलंकार-कथांगैरगलद्ररसम् ।।
गोपुच्छकेशकल्पानि नाट्यवस्तूनि कल्पयेत् ।
उदात्ता रजका भावाः स्थापनीयाः पुरः पुरः ।।
अयुक्तं च विरुद्धं च नायकस्य रसस्य वा ।
वृत्तं यत् यत् परित्याज्यं प्रकल्प्यमथवाऽन्यथा ।।
आवश्यकाविरोध्यर्थः स्वल्पमात्रः सनिर्गमः ।
पंचसंख्योऽपकर्षेण दशसंख्यः प्रकर्षतः ।।
अभिघातः प्रधानस्य नेतुग्रथ्यो न कुत्रचित् ।
बंधः पलायनं संधिर्योज्यो वा फललिप्सया ।।
दूरध्वयानं पूरोधो राज्यदेशादिविप्लवः ।
रतं मृत्युः समीकादि वर्ण्यं विष्कंभकादिभिः ।।

—नाट्यदर्पणम्, २/५-२२

विश्वनाथ का मत—

नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात् पंचसंधिसमन्वितम् ।
विलासद्धर्यादिगुणवद्युक्तं नानाविभूतिभिः ।।
सुखदुःखसमुद्भूति नानारसनिरंतरम् ।
पंचादिका दशपरास्तत्रांकाः परिकीर्त्तिताः ।।
प्रख्यातवंशो राजर्षिर्धीरोदात्तः प्रतापवान् ।
दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान्नायको मतः ।।
एक एव भवेदंगी शृंगारो वीर एव वा ।
अंगमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्वहणेऽद्भुतः ।।
चत्वारः पंच वा मुख्याः कार्यव्यापृतपूरुषाः ।
गोपुच्छाग्रसमाग्रं तु बंधनं तस्य कीर्तितम् ।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रत्यक्षनेतृचरितो रसभावसमुज्ज्वलः ।
भवेदगूढशब्दार्थः क्षुद्रचूर्णकसंयुतः ॥
विच्छिन्नावांतरैकार्थः किंचित्संलग्नबिंदुकः ।
युक्तो न बहुभिः कार्यैर्बीजसंहृतिमान्न च ॥
नानाविधान संयुक्तो नातिप्रचुरपद्यवान् ।
आवश्यकानां कार्याणामविरोधाद्विनिर्मितः ॥
नानेकदिननिर्वर्त्यकथया सम्प्रयोजितः ।
आसन्ननायकः पात्रैर्युतस्त्रिचतुरैस्तथा ॥
दूराह्वानं वधो युद्धं राज्यदेशादिविप्लवः ।
विवाहो भोजनं शापोत्सर्गौ मृत्युरतं तथा ॥
दंतच्छेद्यं नखच्छेद्यमन्यद्व्रीडाकरं च यत् ।
शयनाधरपानादि नगराद्यवरोधनम् ॥
स्नानानुलेपने चैभिर्वर्जितो नातिविस्तरः ।
देवीपरिजनादीनाममात्यवणिजामपि ॥
प्रत्यक्षचित्रचरितैर्युक्तो भावरसोद्भवैः ।
अंतनिष्क्रांतनिखिलपात्रोऽक इति कीर्त्तितः ॥

—साहित्यदर्पण, ६/७-१९

नाटक का सुंदर उदाहरण महाकवि कालिदास-रचित 'अभिज्ञान-शाकुंतलम्' हैं।

नाटिका—उपरूपक का भेद। [दे० उपरूपक] भरत, धनंजय आदि ने नाटिका को रूपक के अंतर्गत माना है; पर विश्वनाथ इसे उपरूपक का भेद स्वीकार करते हैं। 'विष्णुधर्मोत्तरपुराण' में भी नाटिका को रूपक का भेद माना गया है। प्राचीन परंपरा इसे रूपक मानने की ही है। भरत मुनि इसे नाटी नाम से अभिहित कर इसकी उत्पत्ति नाटक एवं प्रकरण के योग से मानते हैं।

नाटिका की कथावस्तु काल्पनिक होती है और इसमें चार अंकों का विधान किया जाता है। इसमें स्त्री पात्रों का बाहुल्य रहता है और प्रधान रस शृंगार होता है। इसका नायक धीर, ललित कोई राजा होता है और शृंगार रस की प्रधानता के कारण कैशिकी वृत्ति का प्रयोग किया जाता है। इसकी नायिका अंतःपुर की नवानुरागपूर्ण राजवंश की गायन-प्रवीणा कन्या होती है। कैशिकी वृत्ति का प्राधान्य होने के कारण नाटिका में गीत, नृत्य,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वाद्य तथा हास्य का प्राचुर्य रहता है। इसके स्त्री पात्रों में देवी, दूती, सखी, चेटी तथा कन्या आदि का प्रयोग होता है।

इस रूपक में कन्या तथा देवी, दोनों को एक ही साथ नायिका बनाया जाता है। इसमें देवी या महारानी के भय से राजा का कन्या के प्रति प्रेम बाधित होता है; क्योंकि वह पग-पग पर मान करती रहती है और उसी की अनुकंपा पर राजा तथा उनकी नई प्रेमिका का मिलन निर्भर करता है।

नाटिका में अंश मात्र से विमर्श संधि के साथ अन्य चार संधियों की योजना होती है। इसमें देवी वयोवृद्ध, मानिनी, दक्ष एवं चतुर होती है तथा कन्या मुग्धा एवं अपूर्व सुंदरी के रूप में प्रस्तुत की जाती है। नाट्यदर्पणकार ने देवी तथा कन्या के प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध होने पर नाटिका के चार भेदों का निरूपण किया है—

१. देवी अप्रसिद्धा, कन्या प्रसिद्धा।
२. देवी अप्रसिद्धा, कन्या अप्रसिद्धा।
३. देवी प्रसिद्धा, कन्या अप्रसिद्धा।
४. देवी प्रसिद्धा, कन्या प्रसिद्धा।

भरत का मत—

प्रकरणनाटकभेदादुत्पाद्यं वस्तु नायकं नृपतिम्।
अंतःपुरसंगीतक कन्यामधिकृत्य कर्तव्या॥
स्त्रीप्राया चतुरंका ललिताभिनयात्मिका सुविहितांगी।
बहुनृत्तगीतपाठ्या रतिसंभोगात्मिका चैव॥
राजोपचारयुक्ता प्रसादनक्रोधदंभसंयुक्ता।
नायक देवीदूती सपरिजना नाटिका ज्ञेया॥

—नाट्यशास्त्र, १८/५९-६०

धनंजय का मत—

लक्ष्यते नाटिकाप्यत्र संकीर्णान्यनिवृत्तये।
तत्र वस्तु प्रकरणान्नाटकान्नायको नृपः॥
प्रख्यातो धीरललितः शृंगारोंऽगी सलक्षणः।
स्त्रीप्रायचतुरंकादिभेदकं यदि चेष्यते॥
एकद्वित्र्यंकपात्रादिभेदेनानंतरूपता।
देवी तत्रभवेज्ज्येष्ठा प्रगल्भा नृपवंशजा॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गंभीरा मानिनी, कृच्छ्रात्तद्वशान्नेतृसंगमः ।
नायिका तादृशी मुग्धा दिव्या चातिमनोहरा ।।
अंतःपुरादिसंबंधादासन्ना श्रुतिदर्शनैः ।
अनुरागो नवावस्थो नेतुस्तस्यां यथोत्तरम् ।।
नेता तत्र प्रवर्त्तेत देवीत्रासेन शंकितः ।
कैशिक्यंगैश्चतुर्भिश्च युक्तांकैरिव नाटिका ।।

—दशरूपक, ३/४३-४८

रामचंद्र का मत—

चतुरंका बहुस्त्रीका नृपेशा स्त्री-मही-फला ।
कल्प्यार्था कैशिकीमुख्या पूर्वरूपद्वयोत्थिता ।।
अख्याति-ख्यातितः कन्या देव्योर्नाटी चतुर्विधा ।
अत्र मुख्याकृतो योगः पर्यंते नेतुरन्यथा ।।
प्रेमार्द्रो वर्ततेऽन्यस्यां नेता मुख्याभिशंकितः ।
देवी दक्षाऽपरा मुग्धा समाधर्मा द्वयोः पुनः ।।
क्रोध प्रसाद-प्रत्यूह-रतिच्छद्मादि भूरिशः ।

—नाट्यदर्पणम्. २/७०-७३

विश्वनाथ का मत—

नाटिका क्लृप्तवृत्ता स्यात् स्त्रीप्राया चतुरंकिका ।
प्रख्यातो धीरललितस्तत्र स्यान्नायको नृपः ।।
स्यादंतःपुरसंबद्धा संगीतव्यापृताथवा ।
नवानुरागा कन्यात्र नायिका नृपवंशजा ।।
संप्रवर्तेत नेतास्यां देव्यास्त्रासेनशंकितः ।
देवी भवेत्पुनर्ज्येष्ठा प्रगल्भा नृपवंशजा ।।
पदे पदे मानवती तद्वशः संगमो द्वयोः ।
वृत्तिः स्यात्कैशिकी स्वल्पविमर्शाः संधयः पुनः ।।

—साहित्यदर्पण, ६/२६९-२७२

नाटिका का उदाहरण हर्ष-रचित 'रत्नावली' है ।

नाट्यरासक—उपरूपक का भेद । [दे० उपरूपक] इसकी रचना एक अंक में होती है और नायक उदात्त तथा उपनायक पीठमर्द होता है । इसमें हास्य रस की प्रधानता रहती है और उसमें शृंगार का पुट रहता है । इसकी नायिका वासकसज्जा [दे० वासकसज्जा] होती है तथा मुख एवं निर्वहण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संधियों के साथ लास्य के दस अंगों का नियोजन किया जाता है। कुछ आचार्यों के अनुसार इसमें 'प्रतिमुख' संधि नहीं रहती। नाट्यरासक में ताल और लय का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है।

नाट्यरासकमेकांकं बहुताललयस्थिति ॥
उदात्तनायकं तद्वत्पीठमर्दोपनायकम् ।
हास्योऽग्यत्र सश्रृंगारो नारी वासकसज्जिका ॥
मुखनिर्वहणे संधी लास्यांगानि दशापि च ।
केचित्प्रतिमुखं संधिमिह्नेच्छंति केवलम् ॥

—साहित्यदर्पण, ६/२७७-२७९

'नर्मवती' नाट्यरासक की रचना दो संधियों में हुई है।

नाट्यशास्त्र—भरत मुनि-विरचित भारतीय काव्यशास्त्र एवं कलाशास्त्र का सुप्रसिद्ध ग्रंथ। [दे० भरत] नाट्यशास्त्र भारतीय साहित्यशास्त्र एवं कला-दर्शन का प्राचीनतम उपलब्ध ग्रंथ है। इसमें न केवल नाट्य-नियमों का अपितु उससे संबद्ध सभी विषयों का विवेचन है, जिसकी परिधि में नाट्यकला, नृत्यकला, संगीतशास्त्र, छंदःशास्त्र, अलंकार-विधान, रस-निरूपण तथा रंग-निरूपण आदि सभी विषय आ जाते हैं। 'नाट्यशास्त्र' में भी इस तथ्य की स्वीकारोक्ति है—

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला ।
न स योगो न तत्कर्म यन्नाट्येऽस्मिन्न दृश्यते ॥ —१/११६

उपलब्ध 'नाट्यशास्त्र' में छह सहस्र श्लोक एवं तीन रूप—सूत्र, भाष्य तथा कारिका—हैं। इसमें अधिकांश श्लोक अनुष्टुप छंद में हैं और यत्रतत्र—विशेषत: छठे, सातवें एवं सताइसवें अध्यायों में—गद्य का भी प्रयोग किया गया है। षष्ठ अध्याय अर्थात् रसनिरूपणाध्याय में सूत्र के अतिरिक्त गद्यात्मक व्याख्यान भी हैं। भरत मुनि ने अपने मत की पुष्टि के लिए कतिपय आनुवंश्य श्लोकों को भी उद्धृत किया है, जो इनके द्वारा रचित न होकर परंपरा-प्रवाह से ग्रहण किए गए हैं और इनकी रचना मुख्यत: आर्या छंदों में हुई है। अभिनवगुप्त के अनुसार [दे० अभिनवगुप्त] ये सभी शिष्य-परंपरा से प्राप्त हैं।

संप्रति 'नाट्यशास्त्र' के दो संस्करण प्राप्त होते हैं—काव्यमाला-बंबई से प्रकाशित १८९४ ई० का संस्करण एवं चौखंबा-संस्कृत-सीरीज, वाराणसी का १९२९ ई० का संस्करण। चौखंबा संस्करण का संपादन पं० बटुकनाथ शर्मा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एवं पं० बलदेव उपाध्याय ने किया था, जो काव्यमाला-संस्करण से भिन्न दो हस्तलेखों पर आधृत है। उसी वर्ष गायकवाड़ ओरियंटल सीरीज, बड़ौदा से अभिनव भारती-सहित 'नाट्यशास्त्र' का प्रकाशन हुआ, जिसके संपादक श्री रामकृष्ण कवि हैं। यह विशाल ग्रंथ चार खंडों में श्री कवि द्वारा प्रकाशित हो चुका है। १९५० ई० में श्री मनमोहन घोष का एक से सत्ताइस अध्यायों तक का आंग्लानुवाद रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल से प्रकाशित हुआ है। काव्यमाला-संस्करण में सैंतीस अध्याय हैं और चौखंबा-सस्करण के 'नाट्यशास्त्र' में छत्तीस अध्याय। इसमें अंतिम दो अध्यायों को एक साथ मिला दिया गया है। अभिनवगुप्त के साक्ष्य के आधार पर कहा जा सकता हे कि इसमें छह हजार श्लोक थे। अभिनव के साथ-ही-साथ शारदातनय ने भी इसे 'षट्साहस्री' कहा है।

षट्त्रिंशकं भरतसूत्रमिदं विवृण्वन्। —अभिनव भारती, १/२

एवं द्वादशसाहस्रैः श्लोकैरेकं तदर्धतः।
षड्भिः श्लोकसहस्रैर्यो नाट्यवेदस्य संग्रहः॥

—भावप्रकाशन, पृ० २८७

प्राचीन ग्रंथों में नाट्यशास्त्र के दो रूप मिलते हैं—षट्साहस्री और द्वादशसाहस्री, पर संप्रति षट्साहस्री रूप ही उपलब्ध है।

'नाट्यशास्त्र' के प्रतिपाद्य विषयों को सात वर्गों में विभक्त किया जा सकता है।

(१) नाट्य का इतिहास, (२) नाट्यतत्त्व, नाटक के लक्षण और भेद, वस्तु, पात्र, रस और सिद्धि। (३) नाट्यशिल्प—भाषा-प्रयोग, पद-प्रयोग, वृत्ति, प्रवृत्ति, लक्षण-अलंकार आदि। (४) अभिनय, (५) नृत्य, (६) छंद और संगीत, (७) रंगप्रबंध, मंडप-विधान, पूर्वरंग-विधान, भूमिका-रचना।

इसके प्रतिपाद्य विषयों की सूची इस प्रकार है—

नाट्यशास्त्र के प्रथम तथा द्वितीय अध्यायों में नाट्योत्पत्ति एवं नाट्यशाला का और तृतीय अध्याय में रंगदेवता की पूजन-विधि का वर्णन है। चतुर्थ अध्याय में तांडव-विषयक १०८ करण, बानबे प्रकार के अंगहार और चार प्रकार के रेचक वर्णित हैं तथा पंचम में पूर्वरंग की विधि का विवेचन है। षष्ठ और सप्तम अध्यायों में रस का विस्तृत विवेचन तथा अष्टम अध्याय में चार प्रकार के अभिनय—आंगिक, वाचिक, सात्त्विक और आहार्य—वर्णित हैं। नवम अध्याय में हस्ताभिनय तथा दशम में शरीराभिनय का और एकादश

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा द्वादश अध्यायों में चारी तथा मंडप की विधि का वर्णन हैं। त्रयोदश अध्याय में रसानुकूल गति-प्रचार का तथा चतुर्दश, पंचदश एवं षष्ठदश अध्यायों में छंद-निरूपण है। सत्रहवें अध्याय में प्राकृत आदि भाषाओं का तथा अठारहवें अध्याय में दशरूपक का लक्षण है। उन्नीसवें अध्याय में नाट्यसंधियाँ तथा बीसवें में भारती, सात्त्वती, आरभटी और कैशिकी वृत्तियाँ वर्णित हैं। इक्कीसवें अध्याय में आहार्याभिनय का एवं बाईसवें में सामान्याभिनय का विधान है। इसी अध्याय में नायक-नायिका-भेद भी वर्णित है। तेईसवें अध्याय में वेश्या तथा वैशिक लोगों का तथा चौबीसवें में तीन प्रकार के पात्रों—उत्तम, मध्यय एवं अधम—का वर्णन है। पच्चीसवें अध्यय में चित्राभिनय और छब्बीसवें में विकृताभिनय वर्णित हैं। सत्ताईसवें अध्याय में अभिनय की सिद्धि एवं उनके विघ्नों का वर्णन है तथा अट्ठाईसवें से तैंतीसवें अध्याय तक संगीत-शास्त्र का विवेचन है। चौंतीसवें अध्याय में पात्र की प्रकृति का विचार और पैंतीसवें में पारिपार्श्विक एवं विदूषक का वर्णन है। छत्तीसवें या अंतिम अध्याय में नाट्य के भूतल पर आने का वर्णन है।

नाट्यशास्त्र के टीकाकार—नाट्यशास्त्र की अनेक टीकाओं का विवरण प्राप्त होता है; पर संप्रति इसकी एकमात्र टीका अभिनवगुप्त-रचित 'अभिनव-भारती' ही उपलब्ध है। यह टीका चार भागों में बड़ौदा से प्रकाशित है। अद्यावधि नाट्यशास्त्र के नौ टीकाकारों के नाम मिले हैं—उद्भट, लोल्लट, श्रीशंकुक, भट्टनायक, राहुल, भट्टयंत्र, अभिनवगुप्त, कीर्त्तिधर तथा मातृगुप्त।

१. *उद्भट*—इनका उल्लेख 'अभिनवभारती' (६/१०) में प्राप्त होता है—**'निर्देशे चैतत्क्रमव्यव्यासनादित्यौद्भटाः।'**

२. *भट्टलोल्लट*—इनका समय ८वीं शती है। इनके रस-विषयक मत को उत्पत्तिवाद कहते हैं। [**दे० रसनिष्पत्ति**] अभिनवगुप्त ने 'अभिनवभारती' में इनका दस बार उल्लेख किया है तथा मम्मट-कृत 'काव्यप्रकाश' में भी इनके रस-संबंधी मत का विवरण है।

३. *श्रीशंकुक*—इनके मत का उल्लेखन 'अभिनवभारती' तथा 'काव्यप्रकाश' में है। इनका रस-संबंधी मत अनुमितिवाद के नाम से विख्यात है। इनका कोई ग्रंथ प्राप्त नहीं होता। इनका समय ८१३ ई० के आसपास है। इन्होंने 'भुवनाभ्युदय' नामक महाकाव्य की भी रचना की थी।

४. *भट्टनायक*—इन्होंने 'हृदयदर्पण' नामक ग्रंथ का प्रणयन किया था, जो अनुपलब्ध है। इनका रस-विषयक मत भुक्तिवाद के नाम से प्रसिद्ध है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इनके मत का उल्लेख 'अभिनवभारती', 'व्यक्ति-विवेक', 'काव्यप्रकाश', 'अलंकारसर्वस्व' आदि ग्रंथों में है।

५. *राहुल*—'अभिनवभारती' में इनका नामोल्लेख मिलता है। उसके ४/२६७ पृ० १७२ पर राहुल के नाम का एक श्लोक उद्धृत है—

परोक्षेऽपि हि वक्तव्यो नार्यां प्रत्यक्षवत् प्रियः।
सखी च नाट्यधर्मोऽयं भरतेनोदितं द्वयम्॥

६. *भट्टयंत्र*—अभिनवभारती (भाग १, पृ० २०८) में इनका नामोल्लेख है, अन्यत्र नहीं।

७ *कीर्तिधर*—इनका भी नाम अभिनवभारती, भाग १, पृ० २०८ पर उद्धृत है।

८. *अभिनवगुप्त*—इनकी प्रख्यात टीका अभिनवभारती है। [दे० अभिनवगुप्त] 'नाट्यशास्त्र' का हिंदी भाष्य (अध्याय १-७) डॉ० रघुवंश ने किया है, जो मोतीलाल-बनारसीदास, वाराणसी से प्रकाशित है। 'अभिनव भारती' के तीन अध्यायों (१,३,६) का हिंदी भाष्य आचार्य विश्वेश्वर ने किया है।

नाट्यसिद्धांत—संस्कृत नाट्यशास्त्र के अनुसार रूपक के तीन तत्त्व हैं—वस्तु, नेता और रस। वस्तु से अभिप्राय इतिवृत्त या कथावस्तु (कथानक) से है। नेता के अंतर्गत पात्रों अर्थात् नायक-नायिका के विविध प्रकारों का विवेचन होता है तथा रस में भावों एवं नौ रसों का निरूपण किया जाता है। भारतीय आचार्यों ने तीन दृष्टियों से नाट्यालोचन पर विचार किया है—

१. नाटककार की दृष्टि से
२. सूत्रधार के दृष्टिकोण से
३. सामाजिक के दृष्टिकोण से

१. नाटकलेखक की दृष्टि से नाट्यकला में निम्नलिखित विषयों का निरूपण किया जाता है—

क. भाषा।
ख. नाटक या रूपक का इतिवृत्त।
ग. कथावस्तु के विभिन्न अंगों का वर्गीकरण तथा उसका क्रम-विन्यास।
घ. स्थायी भावों का विवेचन।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ङ. नायक-नायिका के विभिन्न भेदों का विस्तार, उनका वर्गीकरण तथा उनके चरित्र-चित्रण की प्रविधि का विश्लेषण।

च. नायक एवं रसों (स्थायी भावों) के आधार पर नाटकीय प्रदर्शनों का वैविध्य।

२. सूत्रधार के दृष्टकोण से—

क. रंगशाला का आकार, रचना एवं उसकी व्यवस्था का वर्णन।

ख. मूल पात्रों की प्रकृति (स्वभाव), रंग, आकृति, नैतिक एवं बौद्धिक क्षमता तथा सामान्य जीवन के अनुसार अभिनेताओं की नियुक्ति।

ग. रंगमंच पर नृत्य तथा संगीत की आवश्यकता और नाट्य-प्रदर्शन के निमित्त आवश्यक सामाजिक वातावरण।

घ. प्रदर्शन-विषयक अपेक्षित सामग्री।

ङ. अभिनेताओं का रहन-सहन।

३. सामाजिक (दर्शक) के दृष्टिकोण से—

क. नाटक का नैतिक उद्देश्य तथा उसकी पूर्त्ति के रूप।

ख. नाट्य प्रदर्शन की सांस्कृतिक पीठिका।

[विशेष विवरण के लिए दे० स्वतंत्र-कलाशास्त्र, पृ० ४००-४०३]

भारत में नाट्यालोचन की विशाल परंपरा रही है और भरत तथा उनके परवर्ती आचार्यों ने इसके विवेचन में महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत की है। भरत ने नाट्यमंडप, रूपक तथा उपरूपक के भेद एवं उनकी प्रविधि, इतिवृत्त-विधान (कथानक), पात्र-विधान, रस एवं भाव, अभिनय-विधान, पूर्वरंग एवं पात्रों की भूमिकाएँ, नाट्याचार्य एवं रंगशिल्पी, नाट्यवृत्ति, प्रवृत्ति, गीतवाद्य, नृत्य आदि विषयों का अत्यंत सूक्ष्म एवं वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया है तथा नाटकीय पात्रों की भाषा एवं छंदों के सैद्धांतिक रूप का निरूपण किया है।

सर्वप्रथम यहाँ इतिवृत्त या वस्तुविधान पर विचार किया जा रहा है।

कथावस्तु या वस्तु—

प्रथमतः कथावस्तु के दो भेद किए गए हैं—आधिकारिक और प्रासंगिक। नाटक की मुख्य या प्रधान कथा को **आधिकारिक** कथा कहते हैं, जिसका संबंध नायक की वांछित फल-प्राप्ति से है। अधिकार कहते हैं नाटक के मूल उद्देश्य या फल के भोग को [दे० अधिकार], जिसका संबंध धर्म, अर्थ और काम से होता है। संस्कृत-नाटकों का उद्देश्य केवल दर्शकों या सामाजिकों का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मनोरंजन करना न होकर समाज के नैतिक स्तर की रक्षा एवं उसका समुन्नयन भी है। इसी दृष्टि से नाटककार नाटक में पुरुषार्थत्रय (धर्म, अर्थ, काम) को (नाटक के) मुख्य फल से नियोजित करता है। संस्कृत-नाटककार पूर्वोक्त पुरुषार्थों में से किसी एक या सब की सिद्धि के लिए नायक को संघर्षरत दिखाता है। नाटक के फल के भोग का नाम **अधिकार** और उसके भोगनेवाले को **अधिकारी** कहते हैं। [**दे० अधिकारी**] इसी अधिकारी से संबद्ध कथा या मूलकथा का नाम आधिकारिक है। [**दे० आधिकारिक**]

इस **आधिकारिक** कथावस्तु की सहायिका कथा को **प्रासंगिक** (कथावस्तु) कहते हैं. जो प्रसंगतः आकर मुख्य कथा को गति देती है। इसका उद्देश्य मुख्य कथा की सौंदर्याभिवृद्धि के अतिरिक्त उसके व्यापार-शृंखला के विकास में सहायता करना है। अभिप्राय यह कि आधिकारिक कथा नाटक या रूपक की मूल या प्रधान कथा है और प्रासंगिक कथा गौण या आनुषंगिक। उदाहरण के लिए रामायण में राम से संबद्ध कथा (राम-रावण युद्ध एवं रावण को मारनेवाली) आधिकारिक है और सुग्रीव एवं विभीषण का वृत्तांत **प्रासंगिक**। [**दे० प्रासंगिक कथा**] प्रासंगिक वृत्त के भी दो भेद हैं—पताका और प्रकरी। [**दे० पताका, प्रकरी**] जो कथा सानुबंध होती है अर्थात् नाटक या रूपक की समाप्ति पर्यंत बराबर चलती रहती है उसे **पताका** कहते हैं। इसके कारण नाटक में रोचकता आती है। जैसे, राम-कथा में सुग्रीव या विभीषण का वृत्त। जो कथावस्तु अल्पकाल तक चलकर समाप्त हो जाए, उसे **प्रहरी** कहते हैं। जैसे, रामायण में जटायु का वृत्त। यह कथा संक्षिप्त होती है और आरंभ होने पर शीघ्र समाप्त हो जाती है। प्रासंगिक कथावस्तु में फल का भोक्ता नायक न होकर अन्य व्यक्ति होते हैं; पर नायक की लक्ष्य-सिद्धि में वह (फल) सहायक साधन का कार्य करता है। जैसे, सुग्रीव की राज्य-प्राप्ति से राम-रावण-युद्ध में गति आती है और उसका लाभ राम को भी होता है।

फल की सिद्धि के लिए कथानक को पांच भागों में विभक्त किया जाता है, जिसे **अर्थप्रकृति** कहते हैं। [**दे० अर्थप्रकृति**] नाटक के अर्थ में प्रदर्शित इन उद्देश्यों (अर्थ, धर्म, काम) की प्राप्ति के लिए जो उपाय किए जाएँ, वे ही अर्थप्रकृति हैं।' इसके पांच प्रकार हैं—बीज, विंदु, पताका, प्रकरी और कार्य। **बीज** से कार्य की उत्पत्ति होती है अर्थात् यह मुख्य फल के हेतु का वह कथांश है, जो क्रमशः विकसित होता है। यहीं से कार्यारंभ होता है। यह कथानक का वह रूप है, जो पौधे को अंकुरित करने में बीज का होता है अर्थात् जो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कार्य बीज करता है, वही कार्य (नाटक में) बीज द्वारा सम्पन्न होता है। इसलिए इसका विकास कई रूपों में होता है। इसे मुख्य फल का हेतु कहा जाता है। उदाहरण के लिए 'रत्नावली' नाटिका में राजा उदयन के लिए राजकुमारी की प्राप्ति के हेतु मंत्री यौगंधरायण की योजना।

जब किसी अन्य घटना के घटित होने पर कथा में विच्छिन्नता आ जाए तो इस विच्छेद को दूर करने तथा घटनाओं को जोड़ने का कार्य **बिंदु** करता है। इसके द्वारा कार्य का प्रसरण होता है और यह समाप्त होनेवाली अवांतर कथा को मुख्य कथा के साथ जोड़ता है। **कार्य** नाटक के प्रधान साध्य या फल को कहते हैं। इसीके लिए (कार्य) नाटक के सभी उपकरण जुटाए जाते हैं और फल की प्राप्ति के पश्चात् नाटक समाप्त हो जाता है। **पताका** और **प्रकरी** का ऊपर विवेचन किया गया है।

नाटक या रूपक की कथावस्तु की पाँच अवस्थाएँ हैं, जिन्हें **कार्यावस्था** कहते हैं। [दे० **कार्यावस्था**] ये हैं—आरंभ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम। **आरंभ** उस स्थिति को कहते हैं जब नायक फल-लाभ के लिए उत्कंठित होता है या लक्ष्य-प्राप्ति के लिए उन्मुख होता है या स्वकीय इच्छा प्रकट करता है। प्रत्येक नाटक का कोई-न-कोई उद्देश्य होता है और उसीको लक्षित कर या उसकी ओर उन्मुख होकर इतिवृत्त का विकास होता है, जिसे **महत्कार्य** कहते हैं। इसी महत्कार्य के संपादन को **आरंभ** कहा जाता है। जब नायक लक्ष्य-सिद्धि के लिए सचेष्ट होकर गंभीर उद्योग करे, तो उसे **प्रयत्न** कहते हैं। आगे की अवस्था में सफलता एवं असफलता का संघर्ष इस स्थिति में पहुँच जाता है, जब लक्ष्य-प्राप्ति की संभावना अधिक हो जाती है अर्थात् उपायादि के द्वारा कार्य-सिद्धि की आशा होने लगती है। इसे **प्राप्त्याशा** कहते हैं। चतुर्थ अवस्था का नाम **नियताप्ति** है, जिसमें फल-प्राप्ति का निश्चय हो जाता है अर्थात् विशिष्ट कठिनाई या बाधा के दूर हो जाने पर सफलता या इष्टसिद्धि नियत (निश्चित) हो जाती है। अंतिम अवस्था का नाम **फलागम** है, जिसमें संपूर्ण फल की प्राप्ति या लक्ष्य की पूर्ण सिद्धि हो जाती है। तदनंतर नाटक की समाप्ति होती है।

नाटकीय इतिवृत्त-विषयक अन्य महत्त्वपूर्ण तत्त्व है **संधि**। [**दे० संधि**] इसके द्वारा कार्यावस्था एवं अर्थप्रकृति की संधि होती है। वस्तु तथा व्यापार के अनुरूप ही इसकी संख्या पाँच है—**मुख, प्रतिमुख, गर्भ, अवमर्श** और **निर्वहण**। संधियों का समुचित संधान होने पर नाटकीय कथावस्तु एवं उसके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

व्यापार में प्रगति आती है और सौंदर्याधान भी होता है। नाटक में संधियों के कारण रोचकता और स्वाभाविकता आती है तथा कथानक ऐसे मोड़ (दिशांतर) को प्राप्त करता है, जहाँ दर्शकों की दृष्टि आकृष्ट हो जाती है। **मुखसंधि** में **बीज** और **आरंभ** का जोड़ होता है, जिसमें प्रतिपाद्य रस (नाटक के रस) के साथ बीज का वपन होता है। **प्रतिमुख संधि यत्न** एवं **बिंदु** को जोड़ती है। इसमें नाटक के प्रधान लक्ष्य को सिद्ध करनेवाला कथानक कभी गुप्त एवं कभी स्पष्ट होता है। यत्न चरमावस्था पर पहुँच जाता है और **मुखसंधि** का बोया हुआ बीज उद्भिन्न (अंकुरित) हो जाता है। **गर्भसंधि** में **प्राप्त्याशा** एवं **पताका** की संधि होती है। इसमें इष्टसिद्धि की प्राप्ति एवं अप्राप्ति (प्राप्त्याशा) की आशंका एवं प्रधान फल का साधक प्रासंगिक कथांश विद्यमान रहता है। **अवमर्शसंधि** में **नियताप्ति** (कार्यावस्था) एवं **प्रकरी** (अर्थप्रकृति) का मेल होता है। इस संधि में फल की प्राप्ति या लक्ष्य-सिद्धि का निश्चय हो जाता है; पर अनेक बाधाएँ भी उपस्थित रहती हैं। अंतिम संधि **निर्वहण** में **फलागम** तथा **कार्य** का मेल होता है। इस स्थिति में कथानक के सभी तत्वों का अन्वय होकर महत्कार्य के फल की सिद्धि हो जाती है।

नाटक की कथावस्तु तीन प्रकार की होती है—**प्रख्यात, उत्पाद्य** एवं **मिश्र**। ऐतिहासिक या पौराणिक कथा को प्रख्यात कहते हैं, जिसका संबंध प्राचीन या ऐतिहासिक व्यक्ति से होता है। **उत्पाद्य** काल्पनिक कथा को कहते हैं, जिसमें नाटककार कल्पित पात्रों का वर्णन करता है। **मिश्र** कथानक में उत्पाद्य तथा प्रख्यात, दोनों का मेल होता है अर्थात् इतिहास एवं कल्पना दोनों का मिश्रण रहता है। इस संबंध में यह विचारणीय है कि नाटककार प्राचीन कथा में ऐसे काल्पनिक तथ्यों का नियोजन न करे, जिससे रसभंग हो जाए या दर्शकों की भावनाओं पर आघात पड़े। उपर्युक्त सभी वृत्तों में **प्रख्यात** को उत्तम माना गया है।

नाटक में कुछ ऐसे अंश होते हैं, जिनका अभिनय किया जाता है या उन्हें रंगमंच पर प्रदर्शित किया जाता है और कुछ अंशों को मंच पर दिखाया नहीं जाता। इस दृष्टि से नाटकीय कथा के दो प्रकार होते हैं—**दृश्य** और **सूच्य**। [दे० **दृश्य तथा सूच्य**] कथावस्तु का वह अंश जो रसप्रवण, आकर्षक तथा चमत्कारपूर्ण होने के कारण सामाजिकों को आकृष्ट करे, उसे रंगमंच पर प्रदर्शित किया जाता है। ऐसे कथानक को **दृश्य** कहते हैं। दृश्य का अर्थ दिखाने-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

योग्य है। **सूच्यकथा** उसे कहते हैं, जिसकी सूचना-मात्र दी जाए। इन कथाओं की सूचना नाटक को अनावश्यक विस्तार से बचाने के लिए दी जाती है तथा वे अंश, जो नीरस या अरोचक होते हैं या जिनका प्रदर्शन रंगमंच की दृष्टि से उचित नहीं होता, उनकी सूचना दे दी जाती है। सूच्यकथाओं की सूचना देनेवाले साधनों को अर्थोपक्षेपक कहते हैं। [दे० **अर्थोपक्षेपक**]

इसके पाँच प्रकार हैं—**प्रवेशक, विष्कंभक,** (विष्कंभ), **चूलिका, अंकास्य** (**अंकमुख**) एवं **अंकावतार**। **प्रवेशक** में निम्नकोटि के पात्रों-द्वारा कथा की सूचना दी जाती है। [दे० **प्रवेशक**] जब भूत या भावी घटनाओं की सूचना मध्यम कोटि के पात्रों द्वारा दी जाए तो उसे **विष्कंभक** कहेंगे। [दे० **विष्कंभक**] नेपथ्य-द्वारा जो सूचना दी जाए, उसे **चूलिका** कहते हैं। [दे० **चूलिका**] जब किसी अंक के समाप्त होने पर उसके अंत में आए पात्र आगे आनेवाले अंक के आरंभ में भी अभिनय कर भावी कथा का निदर्शन करें, तो उसे **अंकमुख** कहा जाएगा। [दे० **अंकमुख**] **अंकावतार** में किसी अंक के अंत में ही भावी कथा की सूचना दे दी जाती है। इसके पात्र आगामी अंक में भी अभिनय करते हैं। अगला अंक पिछले अंक का अवतार-सा होता है, इसलिए इसे **अंकावतार** कहते हैं। [दे० **अंकावतार**]

रंगमंच के अभिनय को दृष्टि में रखकर कथावस्तु के तीन विभाग किए गए हैं—सर्वश्राव्य (प्रकाश), अश्राव्य (स्वगत) तथा नियतश्राव्य। कथा का वह अंश, जिसे रंगमंच पर सभी सुन सकें, सर्वश्राव्य [दे० **सर्वश्राव्य**] कहलाता है अर्थात् सभी पात्रों के सुनने-योग्य कथा को **सर्वश्राव्य** कहते हैं। **अश्राव्य** उसे कहते हैं, जिसे कोई पात्र सुन न सके। यह स्वगत कथन होता है। [दे० **अश्राव्य**] **नियतश्राव्य** उसे कहते हैं, जो चुने हुए पात्रों के लिए सुनने योग्य हो। इसके दो प्रकार हैं—जनांतिक और अपवारित [दे० **नियतश्राव्य**] जब रंगमंच पर अन्य पात्रों के विद्यमान रहने पर भी दो पात्र परस्पर 'त्रिपताकाकर' के द्वारा इस प्रकार मंत्रणा करें कि उसे अन्य पात्र न सुनें तो उसे **जनांतिक** कहते हैं। [दे० **जनांतिक**] **अपवारित** का अर्थ छिपाना है। इसमें मुँह को अन्य ओर करके, कोई पात्र दूसरे पात्र से रहस्य-भरी बात कहता है। [दे० **अपवारित**] जब कोई पात्र आकाश की ओर मुँह कर स्वयं उत्तर-प्रत्युत्तर करे, तो उसे **आकाशभाषित** कहते हैं। [दे० **आकाशभाषित**] नाटक में कुछ ऐसे दृश्य होते हैं, जिनका प्रदर्शन रंगमंच पर निषिद्ध होता है, उन्हें **वर्जितदृश्य** कहते हैं। [दे० **वर्जितदृश्य**] इसमें

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

युद्ध, हत्या, मृत्यु, दूर से पुकारना, भोजन, रतिक्रीड़ा, पान (मदिरापान) हैं। नाटक में चौंसठ **संध्यंगों** का भी नियोजन किया जाता है। [दे० **संध्यंग**]

जब नाटक में आगंतुक वस्तु की पूर्व सूचना अन्योक्ति या समासोक्ति द्वारा दी जाए तो उसे 'पताकास्थानक' कहते हैं। [दे० **पताकास्थानक**]

नेता—नाटक का अन्य महनीय तत्त्व है नेता या पात्र। [दे० **नेता**] नाटक का प्रधान पात्र नेता या नायक की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। नायक का अर्थ है ले चलनेवाला [**'नी' धातु से नायक शब्द बना है**, **जिसका अर्थ ले चलना या आगे बढ़ना है—नीयते इति नायकः**]नायक का अनेक दृष्टियों से विभाजन किया जाता है। स्वभाव की दृष्टि से नाटक में नायकों की संख्या चार मानी गई है—धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित और धीरप्रशांत।

धीरोदात्त नायक—सुशील, सर्वगुण संपन्न, कुलीन, वीर और उदार व्यक्ति धीरोदात्त होता है। [दे० **धीरोदात्त**] **धीरोद्धत** उसे कहते हैं, जो घमंडी, मायावी, मात्सर्य से युक्त तथा आत्मश्लाघा-रत हो। [दे० **धीरोद्धत**] यह प्रतिनायक होता है और कभी स्वयं नायक भी हो सकता है। विलासी, विनोदशील और कलाप्रेमी नायक को **धीरललित** कहते हैं। [दे० **धीरललित**] **धीरप्रशांत नायक** [दे० **धीरप्रशांत**] जन्मना ब्राह्मण या वणिक् होता है। यह सीधासादा, सभ्य व्यक्ति हुआ करता है। कुल के अनुसार नायक के तीन भेद होते हैं—**दिव्य** (देवता), **अदिव्य** (मनुष्य) तथा **दिव्यादिव्य** (अवतारी पुरुष)। व्यवहारानुसार नायक के चार प्रकार होते हैं—**दक्षिण, अनुकूल, शठ** और **धृष्ट**। यह भेद केवल श्रृंगार में होता है। अनेक नायिकाओं के प्रति तुल्यानुराग रखनेवाले नायक को **दक्षिण** कहते हैं। [दे० **दक्षिण**] **अनुकूल** केवल एक ही नायिका में अनुरक्त रहनेवाले नायक को कहते हैं। [दे० **अनुकूल**] **शठ** नायक ऊपर-ऊपर से एक ही स्त्री (पत्नी) के प्रति अनुराग प्रदर्शित करता हुआ भी अनेक नायिकाओं से छिपकर प्रेम करता है। [दे० **शठ**] **धृष्ट** नायक निर्लज्ज होकर अनेक नायिकाओं से प्रेम-संबंध स्थापित करता है। [दे० **धृष्ट**] पूर्वोक्त धीरोदात्तादि नायकों के दक्षिण आदि चार प्रकार के भेद होते हैं और इस प्रकार इनकी संख्या सोलह हो जाती है, ये भी उत्तम, मध्यम एवं अधम के रूप में अड़तालीस प्रकार के हो जाते है। [दे० **नायक**] इनके भी अन्य अनेक भेद होते हैं।

नाट्यशास्त्रियों ने नायक के सहायकों का भी वर्णन किया है और उनके चार भेद किए हैं—**पीठमर्द, चेट, विट** और **विदूषक**। [दे० **नायक के सहायक**]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नायक की पत्नी को नायिका कहते हैं। नायिकाओं के तीन सौ चौरासी भेदों का वर्णन किया गया है। [**दे० नायिका-भेद**] नायिका के प्रधान तीन प्रकार हैं—**स्वकीया,** (पत्नी), **परकीया** (प्रेमिका) एवं **गणिका** (वेश्या)। नायिका के तीन सौ चौरासी भेदों का निरूपण किया गया है। [**दे० नायिका-भेद**] नायिका की सखी, दूती तथा अठाइस अलंकारों का भी नाट्यशास्त्र में विवेचन किया जाता है। [**दे० नायिका के अलंकार**] [**दे० दूती तथा सखी**]

रस—नाटक या रूपक का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व रस है। भारतीय नाटकों का मुख्य उद्देश्य रस-निष्पत्ति ही है। रसों के नौ प्रकार हैं। [**दे० रस-संप्रदाय तथा रस-सिद्धांत**]

वस्तु, नेता और रस के अतिरिक्त वृत्ति का भी नाट्य-मीमांसा में महनीय योग माना जाता है। रसानुकूल प्रभाव उत्पन्न करने के लिए वृत्तियों का विधान किया जाता है। वृत्ति उस चेष्टा-विशेष को कहते हैं, जिससे किसी विशेष रस की उत्पत्ति हो। वृत्तियाँ चार हैं—**कैशिकी, सात्त्वती, आरभटी और भारती।** [**दे० वृत्ति**] [**दे० कैशिकी, सात्त्वती, आरभटी और भारती**]

'नाट्यशास्त्र' में पात्रों के भाषा-प्रयोग-संबंधी नियमों का भी निर्धारण किया गया है। राजा, ब्राह्मण, सेनापति, मंत्री तथा सामान्यतः विद्वानों के लिए संस्कृत भाषा का प्रयोग वांछनीय है। राजमहिषी (महादेवी) तथा मंत्रियों की पुत्रियों के लिए भी संस्कृत का व्यवहार आवश्यक है और परिव्राजिकाएँ, गणि-काएँ तथा शिल्पिनियाँ भी यथावसर संस्कृत का व्यवहार करती हैं। इनके अतिरिक्त युद्ध, संधि तथा शुभाशुभ वर्णन के लिए संस्कृत-प्रयोग का विधान किया गया है। स्त्रियों तथा नीच पात्रों के लिए प्राकृत भाषा के प्रयोग का नियम है; पर आवश्यकतानुसार उत्तम पात्रों के लिए भी प्राकृत का प्रयोग होता है। प्राकृत के अनेक भेदोपभेदों का कथन कर उनके प्रयोग के नियम निर्धारित किए गए हैं। मध्यम तथा अधम वर्ग के व्यक्ति के लिए शौरसेनी, निम्नश्रेणी के पात्र के लिए मागधी, राक्षस एवं पिशाच के लिए पैशाची तथा चांडाल के लिए अपभ्रंश के प्रयोग का विधान है।

नाट्याचार्यों ने पूज्य, कनिष्ठ तथा समान व्यक्तियों के लिए व्यवहारोपयोगी निर्देश-शब्दों का भी निरूपण किया है। सेवक राजा को 'देव' तथा 'स्वामिन्' शब्दों द्वारा संबोधित करते हैं और अधम प्रकृति के व्यक्ति उसे 'भट्ट' कहते हैं। एक राजा दूसरे राजा को 'वयस्य' कहकर संबोधित करता है और विदूषक भी राजा को 'वयस्य' कहकर पुकारता है। ऋषिगण राजा को 'राजन्'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कहते हैं। ब्राह्मण अन्य ब्राह्मण का नाम लेकर संबोधित करता है: पर अन्य व्यक्ति ब्राह्मण को 'आर्य' कहकर पुकारा करते हैं। नटी तथा सूत्रधार परस्पर 'आर्या' शब्द का प्रयोग करते हैं। पारिपार्श्विक सूत्रधार के लिए 'भाव' पद का प्रयोग करता है तो सूत्रधार पारिपार्श्विक को 'मारिष' कहकर पुकारता है। निम्नवर्ग के पात्र परस्पर 'हंडे' कहकर एवं उच्च श्रेणी के लोग 'वयस्य' शब्द का प्रयोग कर एक दूसरे को संबोधित करते हैं। मध्यश्रेणी के व्यक्तियों का संबोधन 'हंहो' शब्द द्वारा हुआ करता है। छोटा भाई बड़े भाई को आर्य कहकर पुकारता है और देव, ऋषि तथा संन्यासी आदि के लिए 'भगवन्' शब्द का प्रयोग होता है। विदूषक रानी और चेटी को 'भवती' शब्द द्वारा आमंत्रित करता है और सूत रथी को 'आयुष्मन्' कहता है। पिता पुत्र को वत्स, पुत्रक, तात, पुकार का नाम एवं गोत्र का नाम लेकर संबोधित करता है और निम्नवर्ग के व्यक्ति अमात्य के लिए 'आर्य' पद का प्रयोग करते हैं। तपस्वी एवं वैरागी का संबोधन 'साधो' कहकर किया जाता है। आचार्य का आमंत्रण-पद 'उपाध्याय' है (शिष्य द्वारा)। छात्र राजा को 'महाराज' कहकर संबोधित करते हैं और युवराज को स्वामिन् कहा जाता है। नीच श्रेणी के लोग राजकुमार को 'भद्र' या भद्रमुख कहकर आमंत्रित करते हैं और प्रजाजन राजकुमारी को 'भर्तृदारिका' कहकर संबोधित करते हैं। समान श्रेणी के स्त्री पात्र परस्पर 'हला' कहकर पुकारते हैं। दासी को 'हंजे' कहकर, वेश्या को 'अंजुका' द्वारा तथा कुट्टनी को 'अंब्र' पद द्वारा आमंत्रित किया जाता है। पूजनीय वृद्धा स्त्री को 'अंब' कहकर पुकारा जाता है। [दे० साहित्यदर्पण, ६/१४४-१५७]

रूपकों में नायिका या उपनायिका के रूप में उपनिबद्ध वेश्या के नाम में दत्ता, सिद्धा या सेना शब्द का प्रयोग किया जाए और वणिकजनों के नाम के अंत में 'दत्त' शब्द लगा रहे। नाटक के नामकरण में इस तथ्य पर विचार किया जाता है कि उसका आंतरिक अभिप्राय प्रकट हो जाए और प्रकरण का नाम नायक तथा नायिका के सम्मिलित नाम पर रखा जाए। नाटिका तथा सट्टक के नाम नायिका के नाम पर रखे जाते हैं।

रूपक और उपरूपक—रूपकों के दस प्रकार होते हैं—नाटक, प्रकरण, भाण, ईहामृग, डिम, व्यायोग, अंक (उत्सृष्टांक), समवकार, वीथी एवं प्रहसन। **[प्रत्येक का विवरण इनके नाम के अक्षर के अंतर्गत देखें]**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपरूपक के अठारह भेद हैं—नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाट्यरासक, प्रस्थानक, उल्लाप्य, काव्य, प्रेंखण, रासक, संलापक, श्रीगदित, शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणिका, हल्लीश, भाणिका। [दे० इनके अक्षर के नाम में इनका (उपरूपकों का) विवरण]

रूपक की रूपरचना—नाटक प्रारंभ करने के पूर्व कतिपय अनुष्ठान या कृत्यों का विधान किया जाता है। भरत मुनि ने बताया है कि सर्वप्रथम नगाड़ा बजाकर नाटक प्रारंभ होने की सूचना दी जाती है, तदनंतर गायक तथा वादक रंगमंच पर आकर अपने यंत्रों को ठीक कर सुर मिलाकर उन्हें बजाते हैं। तत्पश्चात् सूत्रधार रंगमंच पर पुष्प बिखेरता हुआ प्रवेश करता है और उसके साथ एक भृत्य पानी का पात्र लेकर एवं दूसरा इंद्रध्वज लेकर उपस्थित होता है। सूत्रधार जल लेकर अपने ऊपर (पवित्र करने के लिए) छींटता है और ध्वजा को हाथ में लेकर टहलता हुआ स्तुति-पाठ करता है। स्तुति-पाठ का नाम नांदी है। [दे० नांदी] तत्पश्चात् देवता की स्तुति तथा राजा और ब्राह्मण की वंदना करता है। नांदी के समाप्त होते ही रंगद्वार' नामक कार्य आरंभ किया जाता है, जिससे नाटक के आरंभ होने की सूचना प्राप्त होती है। सूत्रधार और विदूषक नाटक के कथानक की सूचना देकर चले जाते हैं और बाद में स्थापक का प्रवेश होता है। इसका रूप-गुण सूत्रधार के ही समान होता है और यह देवताओं की वंदना कर नाटक के विषय, नाटककार के गुण तथा नाटक के नाम का वर्णन कर नाटक को प्रारंभ कराता है।

नाटक में अभिनय का अत्यंत महत्त्व है। नाट्याचार्यों ने इसी क्रम में अभिनय का भी शास्त्रीय विवेचन किया है। अभिनय के चार प्रकार हैं—सात्त्विक, वाचिक, आंगिक एवं आहार्य।

नामकरणवक्रता—प्रबंधवक्रता का पंचम प्रकार। [दे० **प्रबंधवक्रता**]

नामानुप्रास—अनुप्रास का एक भेद। इसका वर्णन आचार्य भोज ने किया है। [दे० **अनुप्रास**] इसके तीन प्रकार हैं—स्वभावतः, गौणी एवं आभीक्षण।

स्वभावतः—इसमें एक ही आकार के शब्दों की आवृत्ति होती है। जैसे—

कुर्वंतोऽमी कलकलं मारुतेन चलाचलाः॥

गौणी—इसमें एक ही शब्द की पुनरुक्ति होती है।

अमृतममृतं चंद्रश्चंद्रस्तथांबुजमंबुजम्।
रतिरपिरतिः कामः कामो मधूनि मधून्यपि॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आभीक्षण—इसमें क्रियापदों की द्विरुक्ति होती है। जैसे—

जयति जयति देवः श्यामकंठः पिनाकी ॥

—सरस्वती कंठाभरण, पृ० २५३-५६

नायक (स्वरूप एवं भेद-विस्तार)—नायक शब्द 'नी' धातु से निष्पन्न है (नी+ण्वुल्) जिसका अर्थ मार्गदर्शक, स्वामी या प्रधान है। काव्यशास्त्र या नाट्यशास्त्र में नायक का अर्थ प्रधान पात्र होता है। नीयते इति 'नायकः'। 'नी' का अर्थ ले चलना या आगे बढ़ना है। जो व्यक्ति कथानक को मुख्य उद्देश्य या फलागम [दे० **फलागम**] की ओर ले चलता है, उसे नायक कहते हैं। काव्यशास्त्र या नाट्यशास्त्र में सामाजिक आधार पर नायक के तीन भेद किए गए हैं—पति, उपपति और वैशिक। जो नायिका का विधिपूर्वक पाणि-ग्रहण करता है, उसे पति कहते हैं। यह अपनी पत्नी (स्वकीया) में अनुरक्त रहता है। [दे० **पति**] परकीया (अन्य स्त्री) में अनुरक्त रहनेवाले नायक को उपपति कहते हैं। जब पति नायक के धर्म को नष्ट करने का कारण बने तो उसे उपपति कहा जाता है। [दे० **उपपति**] वेश्या (सामान्या) में अनुरक्त व्यक्ति को वैशिक कहते हैं। [दे० **वैशिक**] वेश्या के उपभोग में अत्यंत रसिक होने से इसे वैशिक कहते हैं।

नायक कथा-शरीर में सर्वत्र व्याप्त रहता है।

काम-प्रवृत्ति के आधार पर पति (शृंगारी नायक) की चार श्रेणियाँ हैं—अनुकूल, दक्षिण, शठ और धृष्ट।

अनुकूल—जो परस्त्री से सदा विमुख रहकर अपनी स्त्री या पत्नी से प्रेम करे, उसे अनुकूल (नायक) कहते हैं।

दक्षिण—सभी नायिकाओं में समान रूप से अनुराग प्रदर्शित करनेवाले नायक को दक्षिण कहते हैं। यह अनेक नायिकाओं को एक समान प्यार करता है।

शठ—अपराधी होने पर भी नायिका को ठगनेवाला नायक शठ होता है। यह ज्येष्ठा का लुकछिपकर अहित करनेवाला एवं नवीन नायिका से प्रणय-व्यापार चलानेवाला होता है।

धृष्ट—यह कपटी एवं निर्लज्ज होता है और अपराधी होकर भी नायिका को ठगता है। यह ज्येष्ठा नायिका की जानकारी में ही नवीन प्रेयसी से मिलन-कार्य करता रहता है और रति-चिह्नों को देखकर भी लज्जित नहीं होता।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शील की दृष्टि से नायक के चार प्रकार कहे गए हैं—धीरोदात्त, धीरोद्धत धीरललित और धीरप्रशांत।

धीरोदात्त—यह अतिगंभीर, क्रोध-शोक, सुख-दुःख में प्रकृतिस्थ (अनभिभूत), क्षमाशील, अचंचल (स्थिर बुद्धि), निरभिमानी, दृढ़व्रती एवं महाप्राण होता है।

धीरोद्धत—यह घमंडी, ईर्ष्यालु, मायावी, कपटी, चंचल, क्रोधी और आत्मश्लाघी (अपनी प्रशंसा स्वयं करनेवाला) होता है।

धीरप्रशांत—जिसमें सामान्य रूप से नायक के सभी सद्गुण विद्यमान हों, वह गौरवशाली, गुणगरिमा संपन्न व्यक्ति धीरप्रशांत कहलाता है। यह ब्राह्मण, वैश्य या मंत्रिपुत्र होता है।

धीरललित—जो निश्चित, कोमल स्वभाववाला, सुखी तथा कला में आसक्त रहे, उसे धीरललित कहते हैं। यह विलासी, भोगरसिक तथा कलाप्रिय होता है।

भारतीय काव्यशास्त्रियों ने सामान्य रूप से नायक में अनेक गुणों का निर्धारण किया है। वह विनम्र, मधुर, त्यागी, चतुर, प्रियंवद (प्रिय बोलनेवाला), रक्तलोक (लोगों को प्रसन्न करनेवाला), पवित्र मनवाला, वाग्मी (बातचीत में दक्ष), कुलीन, मन से स्थिर या स्थिर बुद्धिवाला तथा युवक होता है। वह बुद्धिमान्, उत्साही और स्मृति, प्रज्ञा, कला तथा मान से युक्त होता है। उसका शूर, तेजस्वी, शास्त्रज्ञाता एवं धार्मिक होना आवश्यक है।—

नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः।
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरो युवा॥
बुध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः।
शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः॥

—दशरूपक, २/१-२

भरत ने नायक के संबंध में यह व्यवस्था दी है कि वह सभी पात्रों में व्यसन और अभ्युदय की तुलना में सर्वाधिक व्यसन और अभ्युदय का भागी हो।

व्यसनी प्राप्य दुःखं वा युज्यतेऽभ्युदयेन यः।
तथा पुरुषमाहुस्तं प्रधानं नायकं बुधाः।

—नाट्यशास्त्र, २४/२१, २२

प्रकृति के अनुसार नायक के उत्तम, मध्यम और अधम—तीन भेद किए गए हैं। उत्तम नायक मधुर, त्यागी, विरागी तथा नायिका के अपमान को

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सहन नहीं करनेवाला होता है। मध्यम नायक नायिका के अल्प रोष को देखकर भी विरक्त होनेवाला तथा समय पर दान देनेवाला होता है। अधम नायक मित्रों के मना करने पर भी, नारी से तिरस्कृत होकर भी, उसके प्रेम में आकुल रहनेवाला होता है। इनके अतिरिक्त नायक के अन्य दो भेद हैं—चतुर और मानी।

इस प्रकार नायक के कुल भेद ४८ हैं। अनुकूलादि ४×धीरोदात्तादि ४×उत्तमादि ३=४८।

कुल, स्वभाव और व्यवहार को आधार बनाकर ही मुख्यतः नायक का वर्गीकरण किया जाता है। कुलानुसार इनके तीन भेद हैं—दिव्य (देवता), अदिव्य (मनुष्य) और दिव्यादिव्य (अवतार)। स्वभावानुसार जिन भेदों की गणना की जाती है, वे हैं—धीरोदात्त, धीरललित, धीरप्रशांत और धीरोद्धत। नायक के व्यवहारानुसार भेद शृंगार में होते हैं—दक्षिण, अनुकूल, शठ और धृष्ट। पद्माकर ने नायक का लक्षण इस प्रकार दिया है—

सुंदर गुन-मंदिर युवा, युवति बिलोकैं जाहि।
कबिता-राग-रसज्ञ जो, नायक कहिये ताहि॥

—जगद्विनोद, २७९

त्रिबिध सुनायक पति प्रथम, उपपति बैसिक और।
जो बिधि सों ब्याह्यो तियनि, सोई पति सब ठौर॥२८२
उपपति ताहि बखानहीं, जु परबधू को मीत।
बारबधुन को रसिक, सो बैसिक अलज अमीत॥

—जगद्विनोद, २९७

सु अनुकूल दक्षिन बहुरि, सठ अरु धृष्ट बिचारि।
कहे कबिन प्रति एक के, भेद पेखि कै चारि॥

—वही, २८५

तरुन सुघर सुंदर सकल कामकलानि प्रबीन।
नायक सो मतिराम कहि कबित मीत रसलीन॥

—रसराज, २३७

तरुन सुघर सुंदर सुचित नायक सुहृद बखानि।

—शृंगार निर्णय, ८

नायक के कुल (४८×३=१४४) १४४ भेद हैं। (उत्तम, मध्यम और अधम के कारण)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नायक के अलंकार—इसे नायक का सात्त्विक गुण भी कहते हैं। भरत का कहना है कि जिस प्रकार सूर्य के साथ उसकी रश्मियों का आलोक प्रतिभासित होता है, उसी प्रकार प्रधान पात्रों की सात्त्विक विभूतियाँ प्रकाशित होती हैं। सात्त्विक गुण नायक के स्वाभाविक गुण हैं। इनकी संख्या आठ है—शोभा, विलास, माधुर्य, गांभीर्य, दीप्ति, लालित्य, औदार्य और धैर्य। इन्हें अयत्नज अलंकार भी कहते हैं। ये सभी गुण नायिकाओं में भी पाए जाते हैं।

शोभा विलासो माधुर्यं गांभीर्यं धैर्यतेजसी।
ललितौदार्यमित्यष्टौ सत्त्वजाः पौरुषा गुणाः॥

—साहित्यदर्पण, ३/५०

१. शोभा—नायक के सात्त्विक गुण शोभा के अंतर्गत शूरता, दक्षता, सत्यवादिता, महान् उत्साह, अनुरागिता, छोटों पर दया तथा बड़ों के प्रति प्रतिस्पर्द्धा आते हैं।

भरत मुनि तथा विश्वनाथ ने शोभा का वर्णन इस प्रकार किया है—

दाक्ष्यं शौर्यमथोत्साहो नीचार्थेषु जुगुप्सनम्।
उत्तमैश्च गुणैः स्पर्धा यतः शोभेति सा स्मृता॥

—नाट्यशास्त्र, २४/३२

शूरता क्षमता सत्यं महोत्साहोऽनुरागिता।
नीचे घृणाधिके स्पर्धा यतः शोभेति तां विदुः॥

—साहित्यदर्पण, ३/५१

२. विलास—नायक की उस सात्त्विक विशेषता को विलास कहते हैं, जिसमें धीरसंचारिणी दृष्टि (दृष्टि में धीरता), गति या चाल में विचित्रता एवं आलाप या बातचीत में मंद हास की आभा छिटकती हो।

स्थिरसंचारिणी दृष्टिर्गतिर्गोवृषभांचिता।
स्मितपूर्वं तथा वाचो विलास इति कीर्तितः॥

—नाट्यशास्त्र, २४/३३

धीरा दृष्टिर्गतिश्चित्रा विलासे सस्मितं वचः।

—साहित्यदर्पण, ३/५२

३. माधुर्य—माधुर्य उसे कहते हैं, जब मानसिक क्षोभ या विकार के कारणों के रहते हुए भी नायक के मन में साधारण विकार आए। इस स्थिति में मन में थोड़ा विकार होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

श्लक्ष्णे विकारो माधुर्यं संक्षोभे सुमहत्यपि ।।

—दशरूपक, २/१२

संक्षोभेष्वप्यनुद्वेगो माधुर्यं परिकीर्तितम् ।।

—साहित्यदर्पण, ३/५२

४. *गांभीर्य*—इस गुण में विकार का सर्वथा अभाव होता है। जब विकार के महान् हेतुओं अर्थात् भय, शोक, क्रोध, हर्ष आदि के कारण उत्पन्न भावावेश में भी नायक विचलित न हो या उसके मन में विकार न आए तो उसे गांभीर्य सात्विक गुण कहते हैं।

यस्य प्रभावादाकारा रोषहर्षभयादिषु ।
भावेषु नोपलभ्यंते गांभीर्यमिति शंसितम् ।।

—नाट्यशास्त्र, २४/३६

गांभीर्यं यत्प्रभावेन विकारो नोपलक्ष्यते ।।

—दशरूपक, २/१२

५. *स्थैर्य (स्थिरता)*—बड़े-बड़े विघ्नों के उपस्थित होने पर भी जब नायक अपने कर्त्तव्य से विचलित न हो तो उसे स्थैर्य सात्त्विक गुण कहते हैं।

धर्मार्थकामसंयुक्ताच्छुभाशुभसमुत्थितात् ।
व्यवसायादचलनं स्थैर्यमित्यभिधीयते ।।

—नाट्यशास्त्र, २४/३५

व्यवसायादचलनं धैर्यं विघ्ने महत्यपि ।।

—साहित्यदर्पण, ३/५३

६. *तेज*—जब नायक अपमान या दूसरे द्वारा किए गए तिरस्कार को मरते दम तक सहन न करे तो उसे तेज कहते हैं।

अधिक्षेपावमानादेः प्रयुक्तस्य परेण यत् ।
प्राणात्ययेऽप्यसहनं तत्तेजः समुदाहृतम् ।।

—नाट्यशास्त्र, २४/३९

अधिक्षेपाद्यसहनं तेजः प्राणात्ययेष्वपि ।।

—दशरूपक, २/१३

७. *लालित्य*—शृंगारपरक स्वाभाविक चेष्टाओं को लालित्य सात्विक गुण कहते हैं। जब प्रेम में नायक की आकृति एवं चेष्टा में स्वाभाविक मधुरता परिलक्षित हो तो उसे लालित्य कहा जाएगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अबुद्धिपूर्वकं यत्तु सुकुमारस्वभावजम् ।
शृंगाराकारचेष्टत्वं ललितं तत् प्रकीर्तितम् ॥

—नाट्यशास्त्र, २४/३७

वाग्वेशयोर्मधुरता, तद्वच्छृंगारचेष्टितं ललितम् ॥

—साहित्यदर्पण, ३/५५

८. औदार्य—औदार्य गुण के अंतर्गत दान, अन्यों का त्राण तथा प्रिय भाषण का भाव होता है। जब नायक गुणज्ञों का उपकार करने एवं प्रिय वचन के साथ दान करने को तत्पर रहे तो उसे औदार्य गुण कहते हैं।

दानमभ्युपपत्तिश्च तथा च प्रियभाषणम् ।
स्वजने वा परेवापि तदौदार्यमिति स्मृतम् ॥

—नाट्यशास्त्र, २४/३८

दानं सप्रियभाषणमौदार्य्यं शत्रुमित्रयोः समता ॥

—साहित्यदर्पण, ३/५५

नायक के उपयुक्त गुण उसके चरित्र को चमत्कारक, आकर्षक एवं आदर्शपूर्ण बनानेवाले हैं। इन्हीं चारित्रिक विशेषताओं के कारण वह अनुकरणीय होता है।

नायक के सखा—नायक के सखा या सहायक पात्र को 'नायक का सखा' कहा जाता है। ये पात्र अपने व्यक्तित्व एवं संस्कार के कारण प्रधान पात्रों की कोटि में परिगणित होते हैं और पुरुषार्थ के साधन में प्रवृत्त नायक के विभिन्न कार्यों में भिन्न-भिन्न रूप से सहयोग प्रदान करते हैं। नायक के सखा चार प्रकार के होते हैं—पीठमर्द, विट, चेट और विदूषक।

पीठमर्द—मानिनी नायिका का मानमोचन कर उसे प्रसन्न करनेवाला व्यक्ति पीठमर्द कहलाता है। इसे पताकानायक भी कहते हैं। यह चतुर, बुद्धिमान् तथा प्रधानपात्र का भक्त एवं अनुचर होता है। [दे० **पीठमर्द**]

विट—कामशास्त्र तथा गीतादि की कला में निपुण व्यक्ति को विट कहते हैं। [दे० **विट**]

चेट या चेटक—नायक-नायिका को परस्पर मिलाने में चतुर व्यक्ति चेट कहा जाता है। [दे० **चेट**]

विदूषक—अपने अंगों को विकृत कर हँसानेवाले व्यक्ति को विदूषक कहते हैं। [दे० **विदूषक**]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नायक के सहायक—नायक के सहायकों की छह कोटियाँ हैं—शृंगार-सहाय, अर्थचिंता-सहाय, धर्म सहाय, दंड-सहाय, अंतःपुर-सहाय और संवाद-सहाय या दूत। शृंगार-सहाय में विट, चेट, पीठमर्द एवं विदूषक की गणना होती है। [इनके विवरण के लिए दे० नायक के सखा]

अर्थ-सहाय के अंतर्गत मंत्री आता है। वह स्वराष्ट्र-संबंधी कार्य एवं परराष्ट्र-संबंधी व्यवहार का निरीक्षक होता है।

धर्म-सहाय में ऋत्विक् (यज्ञकर्त्ता), पुरोहित या कुलगुरु, तपस्वी तथा आत्मज्ञानी आते हैं।

दंड-सहाय का कार्य दुष्टों का दमन है। इनमें सुहृद्, कुमार, आटविक (सीमारक्षक), सामंत तथा सैनिकों का कथन किया जाता है। इनकी नियुक्ति राज्य-व्यवस्था के निमित्त की जाती है।

अंतःपुर-सहाय के अंतर्गत वर्षधर (हिजड़ा), किरात तथा औपस्थायिक आते हैं। ये स्त्रीस्वभावी एवं क्लीव (नपुंसक) होते हैं तथा इनका उपयोग राजा की रतिक्रीड़ा के प्रसंगों में किया जाता है।

संवाद-सहाय में दूतों की गणना होती है। जो विविध कार्यों के लिए यत्र-तत्र भेजा जाय, उसे दूत कहते हैं। ये तीन प्रकार के हैं—निसृष्टार्थ, मितार्थ और संदेशहारक। जो दूत, भेजनेवाले और जिसके पास उसे भेजा जाता है, उन दोनों के मनोभावों को समझकर उत्तर-प्रत्युत्तर देते हुए उत्तम प्रकार से कार्य की सिद्धि करे, उसे निसृष्टार्थ कहते हैं।

मितार्थ दूत वह है, जो अल्प भाषण करते हुए कार्य-सिद्धि करे। वह जिस कार्य के लिए भेजा जाता है, उसे पूर्ण करके आता है।

संदेशहारक उतनी ही बात करता है, जितनी उसे बताई जाती है।

इन विषयों का विश्वनाथ ने इस प्रकार वर्णन किया है—

मंत्री स्यादर्थानां चितायां तद्वदवरोधे।
वामनषंढकिरातम्लेच्छाभीराः शकारकुब्जाद्याः॥
मदमूर्खताभिमानी दुष्कुलतैश्वर्यसंयुक्तः।
सोऽयमनूढाभ्राता राज्ञः श्यालः शकार इत्युक्तः॥
दंडेसुहृत्कुमाराटविकाः सामंतसैनिकाद्याश्च।
ऋत्विक्पुरोधसः स्युर्ब्रह्मविदस्तापसास्तथा धर्मे॥
निसृष्टार्थो मितार्थश्च तथा संदेशहारकः।
कार्यप्रेष्यस्त्रिधा दूतो दूत्यश्चापि तथाविधाः॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उभयोर्भावमुन्नीय स्वयं वदति चोत्तरम् ।
सुश्लिष्टं कुरुतेकार्यं निसृष्टार्थस्तु स स्मृतः ॥
मितार्थभाषी कार्यस्य सिद्धकारी मितार्थकः ।
यावद्भाषितसंदेशहारः संदेशहारकः ॥

—साहित्यदर्पण, ३/४३-४६

नायकाभास—नायक का एक भेद। नायिका की शृंगारिक चेष्टाओं से अनभिज्ञ नायक 'नायकाभास' होता है।

नायिका—[स्वरूप-विश्लेषण एवं भेद] जिस सुंदरी को देखकर हृदय में प्रेमिल भाव उत्पन्न हो, उसे नायिका कहते हैं। नायिका का अर्थ स्वामिनी है (नायक+टाप्+इत्वम्)। पर, काव्यशास्त्र या नाट्यशास्त्र में इसका विशेष अर्थ है रमणी, सुंदरी या प्रधान पात्री। आचार्यों ने शोभा, कांति और दीप्ति से युक्त नवयुवती को नायिका माना है, जो गुणवती हो।

जुवा सुंदरी गुनभरी तीनि नायिका लेखि।
सोभा कांति सुदीप्ति जुत नखसिख प्रभाविसेखि ॥

—शृंगारनिर्णय, २६

सुंदरता बरननु तरुनि सुमति नायिका सोइ।
सोभा कांति सुदीप्ति जुत बरनत है सब कोइ ॥

—रससारांश, १५

रस-सिंगार को भाव उर, उपजत जाहि निहारि।
ताही को कबि नायिका, बरनत विविध बिचारि ॥

—जगद्विनोद, ११

आचार्यों ने नायिका-भेद के कई आधारों का अन्वेषण कर वैज्ञानिक वर्गीकरण प्रस्तुत किया है।

(क) सामाजिक व्यवहार या आचरण के अनुसार तीन भेद—स्वकीया (स्वीया, स्वस्त्री), परकीया और सामान्या (साधारणस्त्री, गणिका, वेश्या)।

(ख) वय के अनुसार तीन भेद—मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा (प्रौढ़ा)।

(ग) मान के अनुसार तीन भेद—धीरा, अधीरा और धीराधीरा।

(घ) मनोदशा के अनुसार—अन्यसुरति दुःखिता, गर्विता।

(ङ) प्रकृति या गुण के अनुसार—उत्तमा, मध्यमा और अधमा।

(च) अवस्था के अनुसार—स्वाधीनभर्तृका (स्वाधीन पतिका), खंडिता, अभिसारिका, कलहांतरिता, विप्रलब्धा, वासकसज्जा, विरहोत्कंठिता।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

छ. पति के प्रेमानुसार—ज्येष्ठा, कनिष्ठा।

सभी आचार्यों ने सामाजिक व्यवहार की दृष्टि से नायिकाओं के तीन भेद किए हैं—स्वकीया, परकीया और सामान्या। विधिवत् विवाहिता स्त्री को स्वकीया या पत्नी (अपनी स्त्री) कहते हैं। स्वकीया में शील, आर्जव आदि गुणों का समावेश होता है और वह पतिव्रता, चरित्रवती, सलज्जा, पतिप्रेम-परायणा तथा व्यवहारनिपुणा होती है। [दे० **स्वकीया**] इसके तीन भेद किए गए हैं—मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा (प्रौढ़ा)।

प्रेमिका को परकीया कहते हैं। यह अन्य की पत्नी होकर अन्य व्यक्ति से प्रेम करती है। परकीया छिपकर परपुरुष से प्रेम करती है। यह अन्य व्यक्ति की पत्नी होती है और अविवाहित भी [दे० **परकीया**]।

वेश्या या गणिका को सामान्या या साधारण स्त्री कहते हैं। यह केवल धन के लिए प्रेम करती है। [दे० **गणिका**] इसके अन्य नाम हैं—साधारणी, रूपाजीवा, पंथकामिनी।

जिस नायिका के शरीर में यौवन का संचार हो रहा हो या नई तरुणाई झलक रही हो, उसे मुग्धा कहते हैं। यह अवस्था बाल्यावस्था से यौवनावस्था में पदार्पण करने की है [दे० **मुग्धा**]। मुग्धा के दो भेद किए गए हैं—ज्ञातयौवना और अज्ञातयौवना। जिसे यौवनागम का ज्ञान हो, उसे ज्ञातयौवना और यौवन का आगम होने पर भी जिसे ज्ञान न हो, उसे अज्ञातयौवना कहते हैं। मुग्धा के अन्य दो भेद भी हैं—नवोढ़ा और विश्रब्धनवोढ़ा। जो अत्यंत डर या अत्यंत लज्जा के कारण रति की चाह न करे उसे नवोढ़ा कहते हैं। जिस नायिका को अपने नायक के विषय में विश्वास हो, उसे विश्रब्धनवोढ़ा कहते हैं। विश्वनाथ ने मुग्धा के अन्य पाँच भेदों का भी वर्णन किया है—

क. प्रथमावतीर्णयौवना—जिसमें नवयौवन की छटा प्रथम-प्रथम विकसित हो।

ख. प्रथमावतीर्णमदनविकारा—जिसमें रतिक्रीड़ा के विलास पहले-पहल प्रकट हुए हों या कामकलाओं के विलास पहले-पहल आविर्भूत हुए हों।

ग. रतिवामा—जो रति में झिझके या संकोच करे।

घ. मानमृदु—जिस नायिका का मान अधिक देर तक न टिके, वह मानमृदु है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ङ. **समधिक लज्जावती**—जो अत्यंत लज्जावती हो या अत्यधिक लज्जा करनेवाली हो।

धनंजय ने मुग्धा की चार स्थितियों का उल्लेख किया है—वयोमुग्धा (वयःसंधि की स्थिति), काममुग्धा (कामविषयक बातों से मुग्ध या अनभिज्ञ रहनेवाली), रतिवामा (सुरत के समय वामवृत्ति का आचरण करनेवाली या डरनेवाली) तथा कोपमृदु (क्रोध करने में कोमल)।

मध्या नायिका में लज्जा और काम, दोनों समान भाव से स्थित रहते हैं। यह यौवन एवं काम, दोनों से पूर्ण होती है। [दे० **मध्या**] साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने मध्या के पाँच भेदों का उल्लेख किया है—विचित्रसुरता, प्ररूढ़स्मरा, प्ररूढ़यौवना, ईषत्प्रगल्भवचना, मध्यमव्रीडिता।

प्रगल्भा—यह कामकलाकोविदा होती है। इसमें लज्जा की मात्रा अत्यल्प रहती है। यह काम-कला में प्रवीण तथा रति में उन्मत्त होती है।

साहित्यदर्पणकार ने इसके छह भेदों का वर्णन किया है—स्मरांधा (जो स्मरक्रीड़ा या रतिकेलि में उन्मत्त होकर अंधी हो जाय), गाढ़तारुण्या (जिसमें यौवन पूरे उभार पर हो), समस्तरतकोविदा (रतिलीला के समस्त कौशल को जाननेवाली), भावोन्नता (जिसमें हाव-भाव पूर्णतः विकसित हो चुके हों), दरव्रीड़ा (जिसमें स्वल्प लज्जा हो), आक्रांतनायका (नायक का अतिक्रमण करनेवाली या रति-क्रीड़ा में नायक को भी पछाड़ देनेवाली)।

प्रौढ़ा के अन्य दो भेद भी हैं—रतिप्रीता और आनंदसम्मोहिता। रतिकाल या प्रिय के साथ समागम के समय आनंद प्राप्त करनेवाली नायिका रतिप्रीता होती है। आनंदसम्मोहिता—इसमें रति के समय आनंद के कारण मूर्च्छा की स्थिति आ जाती है। [दे० **प्रगल्भा**]

मान के समय मध्या और प्रगल्भा के तीन-तीन भेद हो जाते हैं—धीरा, अधीरा और धीराधीरा।

मध्याधीरा—यह अन्यासक्त नायक पर सपरिहास व्यंग्य से क्रोध प्रकट करती है।

मध्या अधीरा—यह क्रोधपूर्वक कटुवचनों से अपने अपराधी पति का निरादर करती है।

मध्याधीराधीरा—यह रुदन कर नायक के समक्ष क्रोध प्रकट करती है।

प्रौढ़ाधीरा—यह बाहर या ऊपर से नायक का आदर कर रति से उदासीन रहती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रौढ़ाअधीरा—अन्यासक्त नायक पर क्रोधित होकर उसका ताड़न एवं तर्जन करनेवाली नायिका प्रौढ़ाअधीरा है।

प्रौढ़ाधीराधीरा—यह व्यंग्य एवं कटु वचनों से अन्यासक्त नायक को दुःखित करती है।

नायक के प्रेम की अधिकता एवं न्यूनता के आधार पर उपर्युक्त नायिकाओं के दो-दो भेद होते हैं। विवाह-संस्कार होने के पश्चात् जो पति का अधिक स्नेह प्राप्त करती है, उसे ज्येष्ठा एवं जिसे कम स्नेह मिलता है, उसे कनिष्ठा कहते हैं।

परकीया के दो भेद हैं—ऊढ़ा और अनूढ़ा या परोढ़ा और कन्यका। ऊढ़ा या परोढ़ा विवाहिता नायिका को कहते हैं। जिसका विवाह अन्य पुरुष से हो और वह अन्य से प्रेम करे। अविवाहिता को अनूढ़ा या कन्यका कहते हैं।

अवस्था-भेद से स्वकीया नायिका के भेद हैं—प्रोषितपतिका, खंडिता, कलहांतरिता, विप्रलब्धा, उत्का (उत्कंठिता), वासकसज्जा, स्वाधीनपतिका, अभिसारिका।

प्रोषितपतिका—जिसका पति कार्यवश दूर देश चला गया हो, वह प्रोषितपतिका है। भावी प्रोषितपतिका (प्रवत्स्यत्प्रेयसी) वह है, जिसका पति विदेश जानेवाला हो। वर्तमानप्रोषितपतिका (प्रवसत्पतिका) वह है, जिसका पति विदेश में हो।

आगतपतिका—जिसका पति विदेश से आनेवाला हो, उसे आगतपतिका कहते हैं।

खंडिता—परस्त्री प्रसंग (संभोग) के चिह्नों को पति के शरीर पर देखकर ईर्ष्या से कुपित होनेवाली नायिका खंडिता कही जाती है।

कलहांतरिता—प्रार्थना करते हुए प्रियतम का निरादर कर पुनः अपने कृत्य पर पश्चात्ताप करनेवाली नायिका कलहांतरिता कही जाती है।

विप्रलब्धा—नियत संकेत स्थल पर नायक को न पाकर अपना अपमान समझनेवाली नायिका विप्रलब्धा है।

उत्का (उत्कंठिता)—देर तक प्रियतम की प्रतीक्षा करने के कारण दुःखित एवं चिंतित होनेवाली नायिका उत्का कही जाती है।

वासकसज्जा—प्रिय का आगमन निश्चय जानकर वस्त्राभूषण से अपने को सजानेवाली नायिका वासकसज्जा होती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वाधीनपतिका—रूपगुण से आकृष्ट होकर जिसका पति नायिका के वश में रहे, उसे स्वाधीनपतिका कहते हैं।

अभिसारिका—जो कामार्त्त होकर संकेत-स्थल (सहेट) पर स्वयं प्रियतम के पास जाय अथवा प्रिय को बुलावे, उसे अभिसारिका कहते हैं। इसके तीन भेद हैं—शुक्लाभिसारिका, कृष्णाभिसारिका एवं दिवाभिसारिका।

शुक्लाभिसारिका—जो चाँदनी रात में अभिसार करे, उसे शुक्लाभिसारिका कहते हैं।

कृष्णाभिसारिका—जो अँधेरी रात में अभिसरण करे, उसे कृष्णाभिसारिका कहते हैं।

दिवाभिसारिका—जो दिन में ही अभिसार करे, उसे दिवाभिसारिका कहा जाता है।

अन्य त्रिविध नायिकाओं में अन्यसंभोगदुःखिता, गर्विता एवं मानवती हैं।

अन्यसंभोगदुःखिता—अपने प्रिय से रमण करनेवाली अन्य नायिका को देखकर जो (नायिका) दुःखित हो, उसे अन्यसंभोगदुःखिता कहते हैं।

गर्विता—अपने सौंदर्य एवं नायक के प्रेम का गर्व करनेवाली नायिका को गर्विता कहते हैं। इसके दो प्रकार हैं—प्रेमगर्विता एवं रूपगर्विता। प्रेम का गर्व करनेवाली प्रेमगर्विता एवं रूप का गर्व करनेवाली नायिका रूपगर्विता होती है।

मानवती—प्रिय से मान करनेवाली नायिका मानवती या मानिनी कही जाती है।

परकीया नायिका के अन्य छह भेद—गुप्ता, विदग्धा, लक्षिता, कुलटा, मुदिता तथा अनुशयना (संकेत विघट्टना)।

परपुरुष-संभोग के चिह्नों को छिपानेवाली नायिका गुप्ता कही जाती है। इसके तीन भेद कहे गए हैं—भूतगुप्ता, भविष्यगुप्ता और वर्त्तमानगुप्ता। इसका अन्य नाम सुरतिगोपना भी है। इसके भेदों के अन्य नाम हैं—वृत्तसुरतगोपना (भूतगुप्ता), वर्तिष्यमाणसुरतगोपना (वर्त्तमानगुप्ता) तथा वृत्तवर्तिष्यमाणसुरतगोपना (भविष्यगुप्ता)। [दे० गुप्ता]

वचन और क्रिया की चतुराई से नायक को अपना प्रेम जतलानेवाली नायिका विदग्धा है। इसके दो भेद कहे गए हैं—वचनविदग्धा (वाग्विदग्धा) और क्रियाविदग्धा। [दे० विदग्धा]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वचन की चातुरी से अपना कार्य सिद्ध करनेवाली नायिका वचन-विदग्धा है।

क्रिया विदग्धा—चातुर्य से मनोवांछित कार्य करनेवाली अर्थात् क्रिया के द्वारा नायक को संकेत करनेवाली नायिका क्रियाविदग्धा कही जाती है।

परपुरुषरति के चिह्नों को छिपाने पर भी जिसका प्रेम सखियों द्वारा लक्षित हो जाय, वह लक्षिता नायिका है। [दे० लक्षिता]

अनेक पुरुषों से प्रेम करनेवाली नायिका को कुलटा कहते हैं।
[दे० कुलटा]

परपुरुष मिलन की मनोनुकूल बातें सुनकर अथवा देखकर जो नायिका हर्षित या आनंदित हो, उसे मुदिता कहते हैं।

संकेतस्थल (मिलन-स्थान) के नष्ट होने से जो नायिका दुखी हो, उसे अनुशयना कहते हैं। इसका अन्य नाम संकेतविघट्टना भी है। [दे० अनुशयना] इसके तीन भेद होते हैं—प्रथम अनुशयना, द्वितीय अनुशयना तथा तृतीय अनुशयना।

वर्त्तमान संकेत स्थल के नष्ट होने से दुखी नायिका प्रथम अनुशयना या वर्तमान संकेत विघट्टना है।

भावी संकेत स्थल के लिए चिंता करने वाला नायिका को द्वितीय अनुशयना या भावी संकेत विघट्टना कहते हैं।

प्रिय (नायक) के संकेत स्थल पर पहुँच जाने पर भी, किसी कारण-वश, स्वयं न जाने से दुखी होनेवाली नायिका तृतीय अनुशयना है।

उपर्युक्त सभी नायिकाएँ सामान्य रूप से तीन प्रकार की कही गई हैं—उत्तमा, मध्यमा और अधमा। प्रिय के दोष को देखकर भी क्रोध न करनेवाली नायिका उत्तमा है। प्रिय के गुण-दोष को देखकर आदर अथवा मान करनेवाली नायिका को मध्यमा कहते हैं। प्रिय के हित करने पर भी क्रोध करनेवाली नायिका अधमा होती है।

सामान्या—धन के लिए सभी प्रकार के पुरुषों के प्रति अनुरक्त होनेवाली नायिका सामान्या कहलाती है। इसके अन्य नाम हैं—साधारण स्त्री, साधारणी, गणिका, वेश्या, पण्यकामिनी, पण्य स्त्री एवं रूपाजीवा आदि। इसका मुख्य उद्देश्य धन की प्राप्ति है।

कामशास्त्रीय ग्रंथों में नायिका के चार प्रसिद्ध भेद वर्णित हैं—पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी तथा हस्तिनी। इन भेदों का वर्णन नारी के शारीरिक गठन,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अंगविन्यास, रुचि एवं यौन-वासना की भिन्नता के आधार पर किया गया है।

पद्मिनी—यह नायिका रूपवती, सुगंधित केशोंवाली तथा स्वर्ण के सदृश अंगोंवाली होती है। वह लज्जाशील, सुंदर बुद्धियुक्त, उदार, कोमल, हँसमुख तथा शरीर और अंग को स्वच्छ रखनेवाली होती है। वह अल्पाहार करती है तथा निद्रा, रोष, मान एवं रति की मात्रा उसमें कम होती है।

चित्रिणी—नृत्य, गीत एवं कविता में इसकी रुचि होती है। इसके शरीर पर रोम अधिक नहीं होते और हृदय स्थिर होता है तथा आँखें चंचल होती हैं। इसके मुख से सुगंध आती है। यह बहिः रति में अनुराग रखती है और चित्रों से प्रेम करती है।

शंखिनी—यह कोपशील, कपट-युक्त, चतुर, सजल तथा लोमों से युक्त शरीरवाली होती है। लालरंग के वस्त्र एवं नखदान में इसकी रुचि होती है। यह निर्लज्ज, निडर और अधीर होती है।

हस्तिनी—हस्तिनी के चरण, अँगुलियाँ, मुख, अधर एवं भृकुटी स्थूल होती है तथा उसकी बोली कटु होती है। वह चंचल चित्त तथा मंदगतिवाली होती है। उसके स्वेद से गजमद की-सी गंध निकलती है एवं केश भूरे होते हैं। इसके लोम तीक्ष्ण एवं अधिक होते हैं।

भेद गणना—मुख्य रूप से नायिकाओं के ३८४ भेद किए गए हैं। भानुदत्त के अनुसार स्वकीया, परकीया और सामान्या के (१३+२+१)=१६ भेद होते हैं। इनके भी स्वाधीनपतिका आदि आठ भेद होकर (१६×८=१२८) कुल १२८ प्रकार हैं, पुनः ये सभी भेद उत्तमा, मध्यमा और अधमा आधार पर ३८४ होते हैं। विश्वनाथ भी इसी गुणनक्रिया से सहमत हैं।

इति साष्टाविंशतिशतमुत्तममध्याधमस्वरूपेण।
चतुरधिकाशीतियुतं शतत्रयं नायिकाभेदाः॥

—साहित्यदर्पण, ३/८७

नायिका के अलंकार—इसके अंतर्गत अंगज, अयत्नज तथा स्वभावज अलंकारों या नायिका के सौंदर्य को बढ़ानेवाली प्राकृतिक अदाओं, भावभंगिमाओं का वर्णन किया जाता है। अंगज तथा अयत्नज अलंकार समान रूप से स्त्री एवं पुरुष में होते हैं, पर स्वभावज अलंकारों की स्थिति केवल स्त्रियों में ही दिखाई पड़ती है। हिंदी के आचार्यों (रीतिकालीन) ने इसे 'हाव' की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संज्ञा दी है और इसके बारह भेदों का उल्लेख किया है; किंतु संस्कृत-काव्याचार्य इसे अलंकार की अभिधा प्रदान करते हैं। अंगज अलंकारों की संख्या तीन है—हाव, भाव और हेला। अयत्नज अलंकार सात हैं—शोभा, कांति, माधुर्य, दीप्ति, प्रगल्भता, औदार्य और धैर्य। स्वभावज अलंकार अट्ठारह हैं—लीला, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम, किलकिंचित, मोट्टायित, कुट्टमित, बिब्बोक, ललित, विहृत, तपन, मुग्धता, विक्षेप, मद, कुतूहल, हसित, चकित तथा केलि। इस प्रकार नायिका के अलंकारों की कुल संख्या अट्ठाइस हुई।

१. *भाव*—निर्विकार चित्त में पहले-पहल विकार के आने को भाव कहा जाता है। अभिप्राय यह कि यौवनारंभ में जो काम-विकार उत्पन्न होते हैं, उन्हें भाव कहा जाता है। धनंजय ने यौवनोद्गम काल में नायिका के निर्विकार चित्त में उत्पन्न काम-विकार को भाव कहा है।

निर्विकारात्मकात्सत्त्वाद्भावस्तत्राद्यविक्रिया ॥

—दशरूपक, २/३३

विश्वनाथ जन्म से ही विकाररहित चित्त में काम-विकार आने को भाव कहते हैं।

निर्विकारात्मके चित्ते भावः प्रथमविक्रिया ॥

—साहित्यदर्पण, ३/९३

उदाहरण—

स एव सुरभिः कालः स एव मलयानिलः।
सैवेयमबला किंतु मनोऽन्यदिव दृश्यते ॥

कवि की इस उक्ति में 'भाव' है—वही वसंतऋतु है और वही सुगंधित वायु भी है तथा सुंदरी भी वही है; पर आज उसका मन और ही प्रकार का हो गया है।

है वही वसंत, अनिल फिर वही दिवा-निशि वन है।
पर नहीं जानती हूँ क्यों मेरा मन यों उन्मन है ॥ —'हीरा'

२. *हाव*—भ्रू तथा नेत्र की चेष्टाओं द्वारा संभोगेच्छा (मिलन की अभिलाषा) व्यक्त करनेवाले मनोविकारों का प्रकट होना 'हाव' है। भरत ने अक्षि, भ्रूविकार प्रभृति शृंगारात्मक चेष्टाओं के अल्प प्रकाश को 'हाव' कहा है।

तत्राक्षिभ्रूविकाराख्यः शृंगाराकारसूचकः।
सग्रीवारेचको ज्ञेयो हावः स्थितसमुत्थितः ॥—नाट्यशास्त्र, २२/१०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विश्वनाथ ने बताया कि भृकुटि तथा नेत्रादि व्यापारों से संभोग की इच्छा को सूचित करनेवाला भाव 'हाव' कहलाता है, जो हृद्गत रतिविकार को अल्प मात्रा में लक्षित करता है।

भ्रूनेत्रादिविकारैस्तु संभोगेच्छाप्रकाशकः।
भाव एवाल्पसंलक्ष्यविकारो हाव उच्यते॥
—साहित्यदर्पण, ३/९४

उदाहरण—
यत्किमपि प्रेक्षमाणां भणमानां रे यथातथैव।
निर्ध्याय स्नेहमुग्धां वयस्य मुग्धां पश्य॥

उस सुंदरी के देखते या बोलते हुए एक ही प्रकार का प्रभाव पड़ता है। मित्र! मेरी बात पर ध्यान देकर स्नेह युक्त भोली-भाली नायिका को देखो। नायिका के दृष्टिपात में 'हाव' है।

पिय परजंक पधारि कै पिया पलोटति पाय।
नै नैनन, भौंहन उकसि, पति रति दई बताय॥

३. *हेला*—कामवासना के भाव जब स्पष्टतः प्रकट हो जाएँ तो हेला होगी। भरत ने बताया है कि 'प्रत्येक व्यक्ति का भाव जो शृंगार-रस-संभव होता है तथा जिसकी अभिव्यक्ति ललित अभिनय द्वारा होती है, उसे हेला कहते हैं।

यो वै हावः स एवैषा शृंगाररससंभवा।
समाख्याता बुधैर्हेला ललिताभिनयात्मिका॥
—नाट्यशास्त्र, २२/११

विश्वनाथ विकारों के अत्यधिक स्फुट रूप से प्रकट होने को हेला कहते हैं।

हेलात्यंत समालक्ष्यविकारः स्यात् स एव तु॥
—साहित्यदर्पण, ३/९५

उदाहरण—
तथा झटित्यस्याः प्रवृत्ताः सर्वांगं विभ्रमाः स्तनोद्भेदे।
संशयितबालभावा भवति चिरं यथा सखीनामपि॥

"उस (सुंदरी) के शरीर में स्तनों के उठते ही सभी अंगों में विलास तथा विभ्रम इस प्रकार प्रवृत्त होने लगे कि उसकी सखियों को उसके बाल-भाव के संबंध में सशंकित होना पड़ा।"

नासा मोर नचाइ दृग, करी कका की सौंह।
काँटे सी कसकत हिए अजौं कटीली भौंह॥ —बिहारी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वभावज अलंकार—

१. *लीला*—प्रिय की वेषभूषा, वाणी एवं चेष्टाओं का नायिका द्वारा अनुकरण करने को लीला कहते हैं। भरत ने बताया कि वाणी, वेषभूषा एवं चेष्टा के आधार पर प्रिय के आचरण का अनुकरण करना लीला है, जो माधुर्य तथा प्रीति से पूर्ण हो।

वागंगालंकारैः शिष्टैः प्रीतियोजितैर्मधुरैः ।
इष्टजनस्यानुकृतिर्लीला ज्ञेया प्रयोगज्ञैः ॥

—नाट्यशास्त्र, २२/१४

विश्वनाथ ने अनुरागाधिक्य के कारण अंग, वेष, अलंकार तथा प्रीतियुक्त वाणी से प्रिय के अनुकरण करने को लीला कहा है।

अंगैर्वेषैरलंकारैः प्रेमभिर्वचनैरपि ।
प्रीतिप्रयोजितैर्लीला प्रियस्यानुकृतिं विदुः ॥

—साहित्यदर्पण, ३/९८-९९

उदाहरण—

तथा दृष्टं तथा भणितं तथा नियतं तथा तथासीनम् ।
अवलोकितं सतृष्णं सविभ्रमं यथा सपत्नीभिः ॥

"उसका देखना, बोलना, नियंत्रण और बैठना उसी प्रकार का है, जैसा कि उसके प्रिय का; इसलिए उसकी सपत्नियाँ (सौतें) उसकी ओर सतृष्ण एवं विलास के साथ देखती हैं।"

तिय बैठी पिय को पहिरि, भूषन, बसन, बिसाल ।
समुझि परत नहिं सखिन को, को तिय को नँदलाल ॥

२. *विलास*—प्रिय को देखकर नायिका की गति, स्थिति, आसन तथा मुख और नेत्रों के व्यापारों में जो विशेषता आती है, उसे विलास कहते हैं। भरत ने नायिका के स्थान, आसन, गमन, भ्रू, नेत्र आदि के व्यापारों के कारण उत्पन्न विशेषता को विलास कहा है।

स्थानासनगमनानां हस्तभ्रूनेत्रकर्मणा चैव ।
उत्पद्यते विशेषो यः श्लिष्टः स तु विलासः स्यात् ॥

—नाट्यशास्त्र, २२/१५

विश्वनाथ ने बताया कि प्रिय के दर्शन, आगमन आदि के कारण चालढाल, उठने-बैठने, आसन-शयन और मुख तथा नेत्र आदि के व्यापारों में आनंद-सूचक विशेषता आने को विलास कहते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यानस्थानासनादीनां मुखनेत्रादिकर्मणाम् ।।
विशेषस्तु विलासः स्यादिष्टसंदर्शनादिना ।

—साहित्यदर्पण, ३/९६

उदाहरण—

अत्रांतरे किमपि वाग्विभवातिवृत्त-
वैचित्र्यमुल्लसितविभ्रममायताक्ष्याः ।
तद्भूरि सात्त्विकविकारविशेषरम्य-
माचार्यकं विजयि मान्मथमाविरासीत् ।।

माधव के दर्शन होते ही उस सुंदरी (मालती) के भाव प्रकट होने लगे, जिनका वर्णन वाणी से असंभव था। विशालाक्षी के विलास तथा विभ्रम की विचित्रताएँ छिटक पड़ीं, जिनसे उसके सात्त्विक भावों की छटा फूट गई और उन्होंने उसे अधीर बना दिया, जिसे काम-कला की शिक्षा का लोकोत्तर प्रकाशन कहा जा सकता है।

छैल छली छिन छिन छकत निरख सदा अनमोल ।
भौंह चलन, चितवन चखन, मंद हँसन मृदु बोल ।।

३. *विच्छित्ति*—सौंदर्य को बढ़ानेवाली अल्पवेष-रचना को विच्छित्ति कहते हैं। भरत ने बताया कि मालाधारण, आभूषण, लेप आदि के न्यून मात्रा में प्रयोग से यदि सौंदर्य की वृद्धि हो तो उसे विच्छित्ति कहेंगे।

माल्याच्छादनभूषणविलेपनानामनादरन्यासः ।
स्वल्पोऽपि परां शोभां जनयति यस्मात्तु विच्छित्ति ।।

—नाट्यशास्त्र, २२/१६

विश्वनाथ के अनुसार सौंदर्य की वृद्धि करनेवाली अल्प वेष-रचना विच्छित्ति है।

स्तोकाप्याकल्परचना विच्छित्तिः कांतिपोषकृत् ।।

—साहित्यदर्पण, ३/१००

उदाहरण—

कर्णार्पितो रोध्रकषायरूक्षे गोरोचनाभेदनितांतगौरे ।
तस्याः कपोले परभागलाभाद् बबंध चक्षूंषि यवप्ररोहः ।।

"पार्वती के कानों पर लटके हुए जौ के अंकुर तथा लोध से पुते तथा गोरोचन लगे हुए गोरे-गोरे गाल इतने सुंदर लगे कि सबकी आँखें हठात् उनकी ओर खिंच जाती थीं।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ज्यौं अति मति भोरी कहत, तुव गोरी मुख इंदु ।
त्यों चित की चोरी करत, यह रोरी कौ बिंदु ।।

४. *विभ्रम*—प्रिय के आगमन के अवसर पर आनंदातिरेक से आभूषणों को, शीघ्रतावश, इधर-उधर धारण कर लेना विभ्रम है। भरत ने बताया कि वाणी, भावभंगी, आभूषण आदि को मद, राग या प्रेम के कारण उलट देना (विपर्यय) विभ्रम है।

विविधानामर्थानां वागंगाहार्यसत्त्वयोगानाम् ।
मदरागहर्षजनितो व्यत्यासो विभ्रमो ज्ञेयः ।।

—नाट्यशास्त्र, २१/१७

विश्वनाथ ने प्रिय के आगमन पर शीघ्रतावश आभूषणों को हर्ष तथा अनुराग के कारण इधर-उधर कर देने को विभ्रम कहा है।

त्वरया हर्षरागादेर्दयितागमनादिषु ।
अस्थाने विभ्रमादीनां विन्यासो विभ्रमो मतः ।।

उदाहरण—

श्रुत्वाऽऽयांतं बहिः कांतमसमाप्तविभूषया ।
भालेऽञ्जनं दृशोर्लाक्षा कपोले तिलकः कृतः ।।

"ज्योंही सुंदरी ने सुना कि उसका प्रिय घर के बाहर आ गया है, उसने शीघ्रता में ललाट पर अंजन, आँख में महावर तथा कपोल पर तिलक लगा लिया।"

पहिरि कंठ बिच किंकिणी, कस्यो कमर बिच हार ।
हरबराय देखन लगी, आवत नंदकुमार ।।

५. *किलकिंचित*—प्रिय के आगमन आदि के कारण उत्पन्न हर्ष की उस अवस्था को किलकिंचित कहते हैं, जिसमें हास, क्रोध, भय, हर्ष तथा रुदन का मिश्रण हो। भरत के अनुसार स्मित, रुदन, हास, भय, गर्व, दुःख, श्रम आदि के मिश्रण की अवस्था किलकिंचित है, जिसकी उत्पत्ति अत्यंत हर्ष के कारण होती है।

स्मितरुदितहसितभयहर्षगर्वदुःखश्रमाभिलाषाणाम् ।
संकरकरणं हर्षादसकृत् किलकिंचितं ज्ञेयम् ।।

—नाट्शास्त्र, २२/१८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विश्वनाथ ने प्रिय-मिलन, आगमनादि से उत्पन्न हर्ष के कारण स्मित, अकारण रोदन, हास्य, भय, क्रोध, श्रम आदि के विचित्र मिश्रण को किलकिंचित कहा है।

स्मितशुष्करुदितहसितत्रासक्रोधश्रमादीनाम् ।
सांकर्यं किलकिंचितमभीष्टतमसंगमादिजाद्धर्षात् ।।
—साहित्यदर्पण, ३/१०१

उदाहरण—

पाणिरोधमविरोधितवांछं भर्त्सनाश्च मधुरस्मितगर्भाः ।
कामिनः स्म कुरुते करभोरुर्हारि शुष्करुदितं च सुखेऽपि ।।

"सुंदरी ने प्रिय की इच्छा का विघात न करते हुए भी, नीवी के खोलने में प्रवृत्त उसके करों को रोका तथा मधुर हास कर उसे मीठी फटकार भी सुनाई और सुख का अनुभव करके भी अनायास रोदन किया।"

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय ।
सौंह करै, भौंहनि हँसै, दैन कहै नटि जाय ।। —बिहारी

६. *मोट्टायित*—प्रिय-विषयक कथावार्त्ता को तल्लीन होकर श्रवण करना मोट्टायित है। भरत के मत से प्रिय व्यक्ति की कथा में लीला, हेला-द्वारा उसी भाव में तन्मय हो जाना मोट्टायित है।

इष्टजनस्य कथायां लीलाहेलादिदर्शने वापि ।
तद्भाव भावनाकृतमुक्तं मोट्टायितं नाम ।।
—नाट्यशास्त्र, २२/१६

विश्वनाथ के अनुसार प्रिय की कथा श्रवण करने पर; उसके प्रेम में तन्मय होकर, जब कामिनी कान खुजलाने का व्यापार करे तो उसे मोट्टायित कहा जाता है।

तद्भावभाविते चित्ते वल्लभस्य कथादिषु ।
मोट्टायितमिति प्राहुः कर्णकंडूयनादिकम् ।।
—साहित्यदर्पण, ३/१०२

उदाहरण—

सुभग, त्वत्कथारंभे कर्णकंडूतिलालसा ।
उज्जृंभवदनांभोजा भिनत्त्यंगानि सांगना ।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नायक के प्रति सखी की उक्ति—'हे सुभग ! तुम्हारी वार्त्ता प्रारंभ करते ही वह (नायिका) कान खुजलाने में रस लेने लगती है और उसका मुख-कमल जँभाई लेने लगता है तथा उसके अंग अंगड़ाई लेने लग जाते हैं।''

कछु धुनि सुनि पिय नाम की, चरचा चलत सुनात।
ह्वै कपाट ढिग कान दै, सुनत चाह सौं बात॥

७. *ललित*—अपने कोमल अंगों को सुचारु रूप से सजाना ललित है। भरत ने स्त्रियों द्वारा हाथ, पैर, भ्रू, नेत्र तथा अधरों के सुंदर विन्यास को ललित कहा है।

हस्तपादांगविन्यासो भ्रूनेत्रोष्ठप्रयोजितः।
सौकुमार्याद्भवेद्यस्तु ललितं तत्प्रकीर्तितम्॥

—नाट्यशास्त्र,२२/२२

विश्वनाथ के मतानुसार सुकुमारियों के अंगों का सुंदर विन्यास ललित है।

सुकुमारतयांगानां विन्यासो ललितं भवेत्।

—साहित्यदर्पण, ३/१०५

उदाहरण—

गुरुतरकलनूपुरानुनादं सललितनर्तितवामपादपद्मा।
इतरदनतिलोलमादधाना पदमथ मन्मथमंथरं जगाम॥

''नूपुर की गंभीर तथा मधुर ध्वनि करती हुई, बाएँ पैर को विचित्र गति से नचाती हुई तथा दाएँ चरण को धीरे-धीरे रखती हुई, वह काम को उदीप्त करनेवाली चाल से चली गई।''

मृदु हँसिबो मृदु बोलिबो अनुपम दृष्टि रसाल।
अंग अंग सुखमा भरे मोहे लख छबि लाल॥

८. *कुट्टमित*—केश, कुच, अधर आदि के स्पर्श से, हर्ष होने पर भी, झूठे ही हाथ उठाकर रोष दिखलाना कुट्टमित है। भरत ने बतलाया कि केश, स्तन, अधर के स्पर्श करने पर आनंदानुभव होने पर भी, घबराकर दुःख का नाट्य करना या झूठा कष्ट प्रदर्शित करना कुट्टमित है।

केशस्तनाधरादिग्रहणादितिहर्षसंभ्रमोत्पन्नम्।
कुट्टमितं विज्ञेयं सुखमपि दुःखोपचारेण॥

—नाट्यशास्त्र, २२/२०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विश्वनाथ ने केश, स्तन तथा अधर आदि के ग्रहण से हर्ष के उत्पन्न होने पर घबराहट दिखाकर नायिका द्वारा हाथ और सिर के झटकने को कुट्टमित कहा।

केशस्तनाधरादीनां ग्रहे हर्षेऽपि संभ्रमात्।
आहुः कुट्टमितं नाम शिरः करविधूननम् ॥

—साहित्यदर्पण, ३/१०३

उदाहरण—

पल्लवोपमितसाम्यसपक्ष दष्टवत्यधरबिंबमभीष्टे।
पर्यकूजि सरुजेव तरुण्यास्तारलोलवलयेन करेण ॥

"पल्लव के समान होंठ को जब प्रिय ने खंडित किया तो युवती ने कंकण सहित हाथ से झनझनाहट उत्पन्न कर कष्ट को सूचित किया।"

रही रूसि छाती छुवत, तानति भौंह कमान।
अति हरषित हिय होत तिय, अजब अनोखी बान ॥

६. *बिब्बोक*—प्रिय के प्रेम को प्राप्त कर, नायिका-द्वारा, अत्यंत गर्व के साथ प्रिय वस्तु के प्रति ऊपर-ऊपर से अनादर प्रकट करना बिब्बोक है।

भरत ने बताया कि प्रिय की प्रीति को प्राप्त कर जब नायिका गर्व तथा अभिमान के कारण अभिलषित वस्तु के प्रति अनादर प्रदर्शित करे, तो बिब्बोक होता है।

इष्टानां भावानां प्राप्तावभिमानगर्वसंभूतः।
स्त्रीणामनादरकृतो बिब्बोको नाम विज्ञेयः ॥

—नाट्यशास्त्र, २२/२१

विश्वनाथ के मतानुसार सौभाग्य तथा गर्व के कारण इष्ट वस्तु के प्रति भी अनादर का भाव प्रकट करना बिब्बोक है।

बिब्बोकस्त्यतिगर्वेण वस्तुनीष्टेऽप्यनादरः ॥

—साहित्यदर्पण, ३/१००

उदाहरण—

सभ्रूभंगं करकिसलयावर्तनैरालपंती
सा पश्यंती ललितललितं लोचनस्यांजनेन।
विन्यस्यंती चरणकमले लीलया स्वैरपातै-
निस्संगीतं प्रथमवयसा नर्तिता पंकजाक्षी ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"उसका भौंहों को नचाकर किसलय-सदृश अंगुलियों को इधर-उधर घुमाकर बोलना, और लोचन के अंचलों से अति मधुर देखना तथा स्वच्छंदता के साथ जाते हुए कमलवत् चरणों का रखना आदि देखकर ऐसा प्रतीत होता है, मानो वह कमलनयनी चढ़ती हुई जवानी के द्वारा बिना संगीत के ही नचाई जा रही है।"

ऐ अहीर वारे ! जोरि कर कोरि-कोरि,
बिनय सुनायो बलि बाँसुरी बजावै जनि।
बाँसुरी बजावै तो बजाव मों बलाय जानें,
बड़ी-बड़ी आँखिन ते एक टक लावै जनि ॥
लावै तो लाव टक, 'तोष' मोसों कहा काम,
बेर-बेर दौरि-दौरि मेरी पौरि आवै जनि।
आवै है तो आव, हम आइबो कबूल्यौ पर,
मोरे गोरे गात में तू कारो गात छ्वावै जनि ॥

१०. *विहृत*—लज्जावश (प्रिय से) बोलने के समय भी बात न कहना विहृत है। भरत ने बताया कि मुग्धत्व, बालस्वभाव या अन्यमनस्कता के कारण स्त्री का प्रिय की बात को सुनकर भी उत्तर न देना विहृत है।

वाक्यानां प्रीतियुक्तानां प्राप्तानां यदभाषणम्।
व्याजात्स्वभावतो वापि विहृतं नाम तद्भवेत् ॥
—नाट्यशास्त्र, २२/२४

विश्वनाथ लज्जा के कारण स्त्री का प्रिय से बोलने के समय भी न बोलने को विहृत कहते हैं।

वक्तव्यकालेऽप्यवचो व्रीडया विहृतं मतम् ॥
—साहित्यदर्पण, ३/१०६

उदाहरण—

दूरागतेन कुशलं पृष्ट्वा नोवाच सा मया किंचित्।
पर्यश्रुणी तु नयने तस्याः कथयांबभूवतुः सर्वम् ॥

"परदेश से आने के पश्चात् जब नायिका से कुशल पूछा तो वह कुछ भी नहीं बोल सकी; पर अश्रुसिक्त नेत्रों से उसने सारा समाचार कह दिया।"

बसी रात ब्रजराज सँग ग्रसी लाज की गोल।
सिसकि थकी छबि में छकी, जकी सकी नहिं बोल ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

११. मद—सौभाग्य तथा यौवन के गर्व से उत्पन्न मनोविकार को मद कहते हैं।

मदो विकारः सौभाग्ययौवनाद्यवलेपजः ॥ —साहित्यदर्पण, ३/१०५

उदाहरण—

मा गर्वमुद्वह कपोलतले चकास्ति
कांतस्त्वहस्तलिखिता मम मंजरीति ।
अन्यापि किं न खलु भाजनमीदृशीनां
वैरी न चेद्भवति वेपथुरंतरायः ॥

यह सौत की उक्ति है—"तू यह जानकर गर्व न कर कि तेरे कपोल के ऊपर प्रिय द्वारा बनाई गई मंजरी की पत्र-रचना सुशोभित हो रही है। अन्य सुंदरी (मेरे) के भाग्य में भी भावावेश के कारण कपोल का कंप ऐसा नहीं होने देता।"

मेरे हँसे हँसत हैं, मेरे बोले बोलत हैं,
मोहीं को जानत तन मन धन प्रान री।
कबि 'मतिराम' भौंह टेढ़ी किए हाँसी हूँ मैं,
छोड़ देत भूषन-बसन खान पान री।
मो तें प्रानप्यारी प्रानप्यारे के न और कोऊ,
तासों रिस कीजै कहौ कहाँ की सयान री।
मैन-कामिनी के मैनका हू के न रूप रीझे,
मै न काहू के सिखाएँ आवों मन मान री ॥

१२. तपन—प्रिय-वियोग में काम-जन्य चेष्टाओं को तपन कहते हैं।

तपनं प्रियविच्छेदे स्मरवेगोत्थचेष्टितम् ॥
—साहित्यदर्पण, ३/१०६

उदाहरण—

श्वासान्मुंचति, भूतले विलुठति, त्वन्मार्गमालोकते,
दीर्घं रोदति, विक्षिपत्यत इतः क्षामां भुजावल्लरीम् ।
किंच, प्राण समान, कांक्षितवती स्वप्नेऽपि ते संगमं,
निद्रां वांछति, न प्रयच्छति पुनर्दग्धो विधिस्तामपि ॥

नायक के प्रति दूती की उक्ति—"वह सुंदरी तुम्हारे वियोग में आहें भरती है, पृथ्वी पर लोट पड़ती है और तुम्हारी राह देखती है। कभी देर तक रोती है और कभी अपनी दुर्बल भुजाओं को इधर-उधर फेंकती है। वह ऐसा इसलिए

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करती है कि कहीं स्वप्न में भी तुम्हारा मिलन हो जाए; अतः वह नींद की इच्छा करती है; पर उसे निद्रा नहीं आती।

तजति साँस रोवति हँसति, परी भूमि बेकरार।
लाल तिहारे बिरह में, बाल-बारि पतझार॥

१३. *मौग्ध्य*—जानी हुई बात को भी प्रिय के समक्ष अनजान की भांति पूछना मौग्ध्य या मुग्धता है।

अज्ञानादिव या पृच्छा प्रतीतस्यापि वस्तुनः।
वल्लभस्य पुरः प्रोक्तं मौग्ध्यं तत्तत्त्ववेदिभिः॥

—साहित्यदर्पण, ३/१०७

उदाहरण—

के द्रुमास्ते क्व वा ग्रामे संति केन प्ररोपिताः।
नाथ ! मत्कंकणन्यस्तं येषां मुक्ताफलं फलम्॥

"हे नाथ ! मेरे कंकण में लगा हुआ जो मुक्ताफल है, वह किस पेड़ का है और उसे किसने किस ग्राम में लगाया है?"

लाल, तिहारे संग मैं, खेलै खेल बलाइ।
मूँदत मेरे नैन हौं, करन कपूर लगाइ॥

१४. *विक्षेप*—प्रिय के समक्ष आभूषणों की अपूर्ण रचना, अकारण इधर-उधर देखना तथा धीरे-धीरे कुछ रहस्य की बातें करना, विक्षेप है।

भूषणानामर्धरचना मिथ्याविष्वगवेक्षणम्।
रहस्याख्यानमीषच्च विक्षेपो दयितांतिके॥

—साहित्यदर्पण, ३/१०८

उदाहरण—

धम्मिल्लमर्धमुक्तं कलयति तिलकं तथासकलम्।
किंचिद्वदति रहस्यं चकितं विष्वग्विलोकते तन्वी॥

"इस सुंदरी के केशपाश पूरे सजे हुए नहीं हैं, इसने अधूरा तिलक लगाया है। यह धीरे-धीरे कुछ गोपनीय बात बोल रही है तथा चकित होकर चारों ओर देख रही है।"

कच कुच कटि आधे खुले, बेंदी आधी भाल।
पिय-सरवनि कछु भेद की, कथा सुनावति बाल॥

१५. *कुतूहल*—रमणीय या मनोहर वस्तु को देखने के लिए मन में कौतूहल का होना कुतूहल है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रम्यवस्तुसमालोके लोलता स्यात्कुतूहलम् ॥
—साहित्यदर्पण, ३/१०६

उदाहरण—

प्रसाधिकालंबितमग्रपादामाक्षिप्य काचिद्द्रवरागमेव ।
उत्सृष्टलीलागतिरागवाक्षादलक्तकांकां पदवीं ततान ॥

'नाइन द्वारा महावर लगाने का काम आधा ही पूर्ण होने पर नायिका ने कुमार अज को देखने के लिए पैर झटक दिया और वातायन पर दौड़ती हुई चली गई। इस प्रकार उसने सारे मार्ग को लाक्षा-रस से अंकित कर दिया।"

करत रसोई कामिनी, सुनि पिय आँगन माँहि।
बलि काकन दैबै मिसहिं, चली चतुर कहँ चाहि॥

१६. *हसित*—यौवनोद्रेक के कारण प्रिय के समक्ष अकारण हँसना हसित है।

हसितं तु वृथाहासो यौवनोद्भेदसंभवः ॥
—साहित्यदर्पण, ३/१००

उदाहरण—

अकस्मादेव तन्वंगी जहास यदियं पुनः।
नूनं प्रसूनबाणोऽस्यां स्वाराज्यमधितिष्ठति॥

"उस तन्वी (क्षीण कमरवाली) का अचानक हँसना ऐसा प्रतीत होता है कि उसके हृदय में कामदेव का अखंड राज्य स्थापित हो गया हो।"

सखियन कीन्ह सिंगरवा, रचि बहु भाँति।
हेरति नैन अरसिया, मुहुँ मुसुकाति॥ —रहीम

१७. *चकित*—प्रिय के निकट अकारण डरना या घबराना चकित है।

कुतोऽपि दयितस्याग्रे चकितं भयसंभ्रमः।
—साहित्यदर्पण, ३/११०

उदाहरण—

त्रस्यंती चलशफरीविघट्टितोरु-
र्वामोरूरतिशयमाप विभ्रमस्य।
क्षुभ्यंति प्रसभमहो विनापि हेतो-
र्लीलाभिः किमु सति कारणे तरुण्यः॥

"जलविहार में संलग्न उस सुंदरी की जांघों से छोटी-सी एक मछली टकरा गई और उसके हृदय में भय समा गया। वह विभ्रम से युक्त होकर तड़प गई।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तरुणियों का तो यह स्वभाव ही है कि वे अकारण लीला से क्षुब्ध हो जाया करती हैं। पर यदि कोई कारण मिल जाए तो उसका क्या कहना ?"

बैठी ही ती पी ढिगै, बील्यौ गच पै काग।
दौरि दुरी पी-गोद मैं, धनि-धनि पी कौ भाग॥

१८. *केलि*—प्रिय के साथ विहार में काम-क्रीड़ा करना केलि है।

विहारे सह कांतेन क्रीडितं केलिरुच्यते॥

—साहित्यदर्पण, ३/११०

उदाहरण—

व्यपोहितुं लोचनतो मुखानिलैरपारयंतं किल पुष्पजं रजः।
पयोधरेणोरसि काचिदुन्मनाः प्रियं जघानोन्नतपीवरस्तनी॥

"जब सुंदरी ने देखा कि उसका प्रिय नेत्रों में लगे हुए पराग को फूँककर निकाल न सका तो उस पीनस्तनी ने अपने पुष्ट पयोधरों से उसे धक्का दे दिया।"

छीपन छापौ अधर को, सुरँग पीक भर लेत।
हँसि-हँसि काम-कलोल मैं, पिय मुख ऊपर देत॥

अयत्नज अलंकार—

१. *शोभा*—रूप, यौवन, सौकुमार्य एवं भोग (रति) से शरीर के सौंदर्य का प्रस्फुटित होना शोभा है।

रूपयौवनलालित्यभोगाद्यैरंगभूषणम्॥
शोभा प्रोक्ता —साहित्यदर्पण, ३/६५

उदाहरण—

असंभृतं मण्डनमंगयष्टेरनासवाख्यं करणं मदस्य।
कामस्य पुष्पव्यतिरिक्तमस्त्रं बाल्यात्परं साऽथ वयः प्रपेदे॥

"पार्वती बाल्यावस्था के बाद यौवनावस्था या उस अवस्था में पहुँचीं, जो नारी की अंग-लता की अनगढ़ आभूषण-संपत्ति होती है, जो आसव न होकर भी मद की उत्पत्ति करती है तथा जो पुष्प न होने पर भी कामदेव का अस्त्र हो जाती है।"

जित देखत तुव अंग दृग तित सुख लहत अपार।
मानो लीन्हौं रूप ही नख सिख ते अवतार॥ —रसलीन

२. *कांति*—स्मर-विलास या कामोन्मेष से बढ़ी हुई शोभा कांति है।

सैव कांतिर्मन्मथाप्यायितद्युतिः। —साहित्यदर्पण, ३/६५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उदाहरण—

नेत्रे खंजनगंजने सरसिजप्रत्यर्थिपाणिद्वयम्
वक्षोजौ करिकुंभविभ्रमकरीमत्युन्नतिं गच्छतः।
कांतिः कांचनचंपकप्रतिनिधिर्वाणी सुधास्यंदिनी
स्मेरेंदीवरदामसोदरवपुस्तस्याः कटाक्षच्छटा॥

"उस रमणी के नेत्र खंजन को परास्त करनेवाले तथा दोनों हाथ कमल के प्रतिद्वंद्वी हैं। उसके पयोधर हाथी के मस्तक के सौंदर्य को धारण करनेवाले तथा अत्यंत उन्नत हैं। उसके शरीर की कांति कचन तथा चंपा-पुष्प की प्रतिनिधि है; उसकी वाणी अमृत की वर्षा करनेवाली और उसकी कटाक्ष की शोभा प्रस्फुटित नील कमल की माला के सदृश सुशोभित हो रही है।"

मुकुर विमलता लहि गहे कमल मधुरता बास।
तौ तुव तन के मिलन की सुवरन राखै आस॥ —रसलीन

३. *दीप्ति*—कांति का अत्यंत विस्तृत रूप दीप्ति है।

कांतिरेवातिविस्तीर्णा दीप्तिरित्यभिधीयते॥
—साहित्यदर्पण, ३/९६

उदाहरण—

तारुण्यस्य विलासः समधिकलावण्यसंपदो हासः।
धरणितलस्याभरणं युवजनमनसो वशीकरणम्॥

"वह नायिका (चंद्रकला) तारुण्य या यौवन का विलास है, अत्यधिक बढ़ी हुई लावण्य-संपदा का कल हास है, पृथ्वीतल का आभूषण है और युवकों के मन का वशीकरण-मंत्र है।"

चंद छानि बिधि मुख रचे तन चपला सों ठानि।
तापरि ओप धरै खरी तौ तूं पूजै आनि॥ —रसलीन

४. *माधुर्य*—सभी दशाओं में रमणीयता का होना माधुर्य है।

सर्वावस्था विशेषेषु माधुर्यंरमणीयता। —साहित्यदर्पण, ३/९७

उदाहरण—

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मींतनोति।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणां मंडनं नाकृतीनाम्॥ —शकुंतला

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

राजा दुष्यंत की उक्ति—

शकुंतला के रूप को देखकर राजा का कथन है कि "सेवार में लिपटा हुआ कमल रमणीय लगता है। चंद्रमा का काला धब्बा भी उसकी शोभा को बढ़ाता है। यह सुकुमारी वल्कल धारण कर भी मनोरम लगती है, सुंदर रूप पर कौन-सी वस्तु विभूषित नहीं होती ?"

कुमति चंद्र प्रति द्यौस बढ़ि मास मास बढ़ि आइ।
तुव मुख मधुराई लखै फीको परि घटि जाइ॥ —रसलीन
बिनु सिंगार तुव मधुरई प्रान देत घटि आनि।
मानो विधि यह तन रच्यौ सुद्ध सुधा सौ सानि॥ —वही

५. *प्रगल्भता*—निर्भयता के भाव को (रतिकाल में) प्रगल्भता कहते हैं।

निःसाध्वसत्त्वं प्रागल्भ्यम्। —साहित्यदर्पण, ३/९७

उदाहरण—

समाश्लिष्टाः समाश्लेषैश्चुंबिताश्चुंबनैरपि।
दष्टाश्च दंशनैः कांतं दासी कुर्वंति योषितः॥

"आलिंगनादि के बदले में स्वयं भी उन्हीं व्यापारों को करके रमणियाँ प्रियतम को दास बना लेती हैं।"

हिए लगावत हिय लगी, चूमत चूमै बाल।
कुच परसत सरसत सदा, बस कीन्हों नँदलाल॥

६. *औदार्य*—सभी स्थितियों में विनम्रतापूर्वक व्यवहार करना औदार्य है।

औदार्यं विनयः सदा॥—साहित्यदर्पण, ३/९७

उदाहरण—

न ब्रूते परुषां गिरं, वितनुते न भ्रूयुगं भंगुरं,
नोत्तंसं क्षिपति क्षितौ श्रवणतः सा मे स्फुटेऽप्यागसि।
कांता गर्भगृहे गवाक्षविवरव्यापारिताक्ष्या बहिः
सख्या वक्त्रमभिप्रयच्छति परं पर्यश्रुणी लोचने॥

"मेरा अपराध प्रकट होने पर भी वह कठोर वाणी नहीं बोलती, न भौंहें बंक करती हैं, और न कानों के गहनों को उतारकर पृथ्वी पर फेंकती है। भीतर घर के वातायन की ओर झांकती हुई वह सुंदरी सखी के मुख की ओर केवल अश्रुपूर्ण नेत्रों से देखती है।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जानत हूँ अपराध कौं, मन नहिं राख्यौ मान।
सुधा-सने सुख बैन-युत, दियौ प्यार सौं पान ।।

७. धैर्य—आत्मश्लाघा से युक्त मन की स्थिर वृत्ति को धैर्य कहते हैं।

उक्तात्मश्लाघना धैर्यं मनोवृत्तिरचंचला ।
—साहित्यदर्पण, ३/६८

उदाहरण—

ज्वलतु गगने रात्रौ रात्रावखंडकलः शशी
दहतु मदनः किंवा मृत्योः परेण विधास्यति ।
मम तु दयितः श्लाघ्यस्तातो जनन्यमलान्वया
कुलममलिनं न त्वेवायं जनो न च जीवितम् ।।

विरहणी का कथन—"प्रत्येक रात में अखंड चंद्रमा जलता या चमकता रहे और काम भी जलाए। मरण से अधिक और क्या कर सकेगा ? मेरे प्रिय तथा माता-पिता संसार में निष्कलंक कुल के हैं। ये कुल निर्मल बने रहेंगे, पर न मैं रहूँगी और न मेरे प्राण बचेंगे।"

हनि हनि मारत मदन सर बैर तियन सों ठानि ।
तऊ सुभट लौ मन डरहिं पकरि खेत कुल कानि ।।

नायिकाभेद—[ऐतिहासिक विकास] संस्कृत में नायिकाभेद का निरूपण नाट्यशास्त्र, कामशास्त्र तथा काव्यशास्त्र में उपलब्ध होता है। आरंभ में नाटकीय पात्रों के शील-निरूपण के निमित्त नायिकाभेद का वर्णन किया जाता था, जिसका उद्देश्य था नाटककार के समक्ष नायक-नायिका के शील एवं मर्यादा का सम्यक् विवेचन। नाट्यग्रंथों में तदनुरूप स्वरूप के औचित्य-पूर्ण निर्वाह के लिए नाटककार को तैयार रहना पड़ता था। कालांतर में जब रसग्रंथों का निर्माण हुआ और सभी रसों में शृंगार को रसराजत्व की संज्ञा दी गई तो उसके (शृंगार के) आलंबन विभाव के अंतर्गत नायक-नायिका भेद का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया। अन्य साहित्य-शास्त्रीय सिद्धांतों की भाँति नायिका भेद का कोई पृथक् वर्ग नहीं बना और न इसे विशेष महत्त्व ही प्राप्त हुआ। इस विषय की मौलिक रूप से आदिचर्चा भरत-कृत 'नाट्य-शास्त्र' में हुई है। अतः, इसके मूल स्रोत का प्रवर्त्तन 'नाट्यशास्त्र' से ही हुआ। वहाँ इसका उल्लेखन अभिनय से संबद्ध है। नायिका-भेद का अभिप्रवेश जिन नाट्यशास्त्रीय ग्रंथों में हुआ है, उनमें चार प्रसिद्ध हैं—भरत-कृत 'नाट्यशास्त्र', धनंजय-विरचित 'दशरूपक', सागरनंदी-प्रणीत 'नाटक-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लक्षणरत्नकोष' तथा रामचंद्र गुणचंद्र का 'नाट्यदर्पण'। इनमें मौलिकता का आग्रह केवल 'नाट्यशास्त्र' में है और शेष ग्रंथों में पूर्ववर्ती काव्याचार्यों के विचारों का प्रभाव परिलक्षित होता है।

जिन काव्यशास्त्रीय ग्रंथों में नायक-नायिका-भेद का निरूपण है, उनके दो वर्ग दिखाई पड़ते हैं; एक तो ऐसे हैं, जिनमें शृंगाररस के आलंबन विभाव के अंतर्गत नायिका-भेद का विवेचन है और दूसरे प्रकार के ग्रंथों में केवल नायक-नायिका-भेद का ही वर्णन है। प्रथम श्रेणी में रुद्रट का 'काव्यालंकार', भोज-कृत 'सरस्वतीकंठाभरण' और 'शृंगारप्रकाश', तथा विश्वनाथ-रचित 'साहित्यदर्पण' हैं। इनके अतिरिक्त अन्य ग्रंथ भी उल्लेख्य हैं, पर उनमें किसी प्रकार का नावीन्य नहीं है। इनमें 'अग्निपुराण', हेमचंद्र का 'काव्यानुशासन', शारदातनय का 'भावप्रकाशन', विद्यानाथ-कृत 'प्रतापरुद्रीय' तथा शिंगभूपाल-रचित 'रसार्णवसुधाकर' हैं। द्वितीय श्रेणी के ग्रंथों में भानुदत्त की 'रसमंजरी' तथा रूपगोस्वामी-विरचित 'उज्ज्वलनीलमणि' विशेष प्रसिद्ध हैं। इस वर्ग में तृतीय रचना अकबर शाह 'बड़ेसाहब' की 'शृंगारमंजरी' को भी महत्त्व प्राप्त है।

जिन कामशास्त्रीय ग्रंथों में नायक-नायिका-भेद-निरूपण है, उनमें चार विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—वात्स्यायन का 'कामसूत्र', कक्कोल का 'रतिरहस्य', कल्याणमल्ल का 'अनंगरंग' और ज्योतिरीश्वर का 'पंचशायक'।

भरत मुनि—नाट्यशास्त्र के बाईसवें, चौवीसवें, पचीसवें तथा चौंतीसवें अध्यायों में नायक-नायिका भेद का विस्तृत विवेचन है। इसमें इस विषय का संबंध नाट्य तथा सामान्याभिनय के साथ है तथा नर-नारी के रति-संबंधों की भी तत्कालीन एवं पूर्ववर्ती कामशास्त्रीय ग्रंथों के आधार पर चर्चा की गई है। भरत नायिकाओं तथा नायकों का वर्गीकरण अनेक आधारों पर करते हैं।

नायक भेद—प्रकृति के आधार पर पुरुष या नायक के तीन भेद वर्णित हैं—उत्तम, मध्यम तथा अधम। दूसरा आधार है शील, जिसके अनुसार नायक के चार प्रकार हैं—धीरोद्धत्त, धीरललित, धीरोदात्त तथा धीरप्रशांत।

स्त्री के प्रति रति-विषयक व्यवहारों के आधार पर नायक के पाँच प्रकार वर्णित हैं—चतुर, उत्तम, मध्यम, अधम तथा संप्रवृद्ध।

[दे० नाट्यशास्त्र, २४/९२, ३४/२,१७ एवं २५/५४]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नायिका स्नेह तथा क्रोध के आवेश में आकर नायक या पुरुष के प्रति जिन संबोधनों का सहारा लेती है, भरत ने उनका भी वर्णन किया है और इनके आधार पर भी नायक के चौदह भेद कथित हैं। स्नेहावेश द्वारा उत्पन्न सात प्रकार—प्रिय, कांत, विनीत, नाथ, स्वामी, जीवित तथा नंदन—वर्णित हैं। क्रोधावेशजन्य संबोधनों के आधार पर भी सात भेद कहे गए हैं—दुश्शील, दुराचार, शठ, वाम, विरूपक, निर्लज्ज तथा निष्ठुर।

[नाट्यशास्त्र २४/२९२,२९३]

नायिका-भेद—नायिका-भेद के भरतसम्मत निम्नांकित आधार हैं—

१. प्रकृति के विचार से नायिकाओं के तीन भेद हैं—उत्तमा, मध्यमा और अधमा।

सर्वासामेव नारीणां त्रिविधा प्रकृतिः स्मृता।
उत्तमा मध्यमा चैव तृतीया चाधमा स्मृता॥

—नाट्यशास्त्र, २२/३१

२. संयोग एवं वियोगावस्था के अनुसार नायिकाओं के आठ भेद हैं—वासकसज्जा, विरहोत्कंठिता, खंडिता, विप्रलब्धा, प्रोषितभर्त्तृका, स्वाधीन-पतिका, कलहांतरिता तथा अभिसारिका। इन भेदों का आधार कामावस्था है।

तत्र वासकसज्जा वा विरहोत्कंठितापि वा।
खंडिता विप्रलब्धा वा तथा प्रोषितभर्तृका॥
स्वाधीनपतिका वापि कलहांतरितापि वा।
तथाभिसारिका चैव इत्यष्टौ नायिकाः स्मृता॥

—नाट्यशास्त्र, २४/२०३,२०४

अभिनय के विचार से नायिकाओं के तीन भेद हैं—कुलस्त्री, वेश्या और प्रेष्या।

वेश्यायां कुलजायां वा प्रेष्यायां वा प्रयोक्तृभिः।
एभिर्भाव विशेषैस्तु कर्त्तव्यमभिसारणम्॥ —वही, २४/२०१

इसका अभिप्राय यह है कि अभिनय के प्रयोग करनेवालों को वेश्या, कुलजा और प्रेष्या को भाव-विशेषों से अभिसरण करना चाहिए।

नायक के प्रति प्रेमोपचार के आधार पर भरत ने नायिकाओं के सात भेद किए हैं—मदनातुरा, अनुरक्ता, विरक्ता, चतुरा, लुब्धा, मानिनी और पंडिता। इन भेदों का आधार नारी की मनोदशा है। यौवनलीला के आधार पर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नायिका चार प्रकार की मानी गई है—प्रथमायौवना, द्वितीयायौवना, तृतीया-यौवना तथा चतुर्थयौवना।

गुण के आधार पर नायिका के भेद-चतुष्टय की कल्पना की गई है—दिव्या, नृपपत्नी, कुलस्त्री तथा गणिका। राजाओं के अंतःपुर में रहनेवाली स्त्रियों के प्रकार हैं—महादेवो, देवी, स्वामिनी, स्थापिता, भोगिनी, शिल्पकारिणी, नाटकीया, नर्त्तिका, अनुचारिका, परिचारिका, संचारिका, प्रेषण-चारिका, महत्तरा, प्रतिहारी, कुमारी, स्थविरा तथा अयुक्तिका। इन नायिकाओं का कार्य राजकीय अंतःपुर के भोग-विलासमय जीवन में कलात्मकता तथा सौंदर्यपूर्ण वातावरण का सृजन करना है।

'नाट्यशास्त्र' में दूती का भी उल्लेख है, जिसका कार्य है कामाग्नि की प्रशांति के लिए नायक अथवा नायिका का संदेश ले जाना। दूती के संबंध में भरत ने बतलाया है कि वह मूर्खा, सुंदरी, धनी या रुग्णा न हो। उसे प्रोत्साहन देने में कुशल, मधुरभाषिणी, अवसर को पहचानकर कार्य-करनेवाली, व्यवहार-निपुणा तथा रहस्य को गुप्त रखनेवाली होना चाहिए। भरत ने उच्च जाति की अपेक्षा, दौत्य कर्म के लिए नीच जाति की नारियों को अधिक उपयुक्त माना है। इनके नाम हैं—सखी, प्रतिवेश्या, कुमारी, कथिनी, लिंगिनी, रंगोपजीविनी, दासी, कारुशिल्पिनी, धात्री, पाखंडिनी और इक्षणिका।

विज्ञान गुणसंपन्ना कथिनी लिंगिनी तथा।
प्रातिवेश्या सखी दासी कुमारी कारुशिल्पिनी॥
धात्री पाखंडिनी चैव तथा रंगोपजीविनी।
प्रोत्साहनेऽथ कुशला मधुरकथा दक्षिणाऽथ कालज्ञा॥
लडहा संवृत्तमंत्रा दूती त्वेभिर्गुणैः कार्या।
तयाप्युत्साहनं कार्यं नाना दर्शित कारणम्॥
तथोक्त कथनं चैव तथा भावप्रदर्शनम्॥

—नाट्यशास्त्र, २३/९-११

भरत ने विट, विदूषक और चेट का वर्णन नाटकीय पात्रों के रूप में किया है, नायक के सखा की भाँति नहीं। कालांतर में ये नायक के सखा के रूप में वर्णित हुए।

रुद्रट—रुद्रट ने अपने 'काव्यालंकार' के बारहवें अध्याय में शृंगाररस के अंतर्गत नायक-नायिका-भेद का वर्णन किया है। इन्होंने इस विषय का इतना सुव्यवस्थित वर्णन किया कि परवर्ती आचार्यों ने इनकी ही भेद-योजना

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

को अपनाकर नायिका-भेद की दीवार खड़ी की। भरत और रुद्रट के मध्य एक सहस्र वर्षों की कालावधि में अवश्य ही अनेक आचार्य हुए होंगे; पर सांप्रतिक शोधों के आधार पर एकमात्र उपलब्ध ग्रंथ काव्यालंकार ही ऐसा है, जिसमें नायक-नायिका-भेद का प्रौढ़ निरूपण प्राप्त होता है। रुद्रट ने नायिकाओं के प्रमुख तीन भेद माने हैं—आत्मीया, परकीया और वेश्या। पुनः आत्मीया के तीन उपभेद किए गए—मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा। मुग्धा को उन्होंने 'नवयौवनजनितमन्मथोत्साहा' कहा है अर्थात् उसमें नवयौवन के कारण उत्पन्न काम का वेग होता है।

मध्या 'आविर्भूतमन्मथोत्साहा' होती है तथा 'किंचिद् धृत-सुरत-चातुर्या' भी। प्रगल्भा रतिकर्मपंडिता होती है। पति-द्वारा-प्राप्त प्रेम के आधार पर मध्या तथा प्रगल्भा के भी दो-दो भेद किए गए हैं—ज्येष्ठा और कनिष्ठा। मान-व्यवहार के आधार पर इन दोनों के भी तीन-तीन भेद हो जाते हैं—धीरा, अधीरा और धीराधीरा। परकीया के दो भेद हैं—कन्या और अन्योढ़ा और वेश्या का एक ही भेद माना गया है। पूर्वोक्त सभी नायिकाएँ कुल मिलाकर सोलह होती हैं। आत्मीया के अन्य दो प्रकार भी हैं—स्वाधीनपतिका और प्रोषितपतिका। पर, ये भेद परकीया और वेश्या के नहीं होते। अभिसारिका तथा खंडिता नामक भेद आत्मीया, परकीया तथा वेश्या के भी होते हैं। इनके अतिरिक्त रुद्रट ने 'अगम्या नारियों' के भी नाम से कुछ भेद किए हैं—संबंधिनी, सखि, श्रोत्रिया, राजदारा, उत्तमवर्णदारा, निर्वसितदारा, भिन्न-रहस्या, व्यंगा (विकृत अंगा) तथा प्रव्रजिता। रुद्रट ने भरत-सम्मत स्वाधीन-पतिका प्रभृति आठ प्रकारों का उल्लेख किया है तथा इनके (नायिकाओं के) उत्तमा, मध्यमा और अधमा भेदों का भी कथन किया है। इस प्रकार रुद्रट-कृत भेदों की संख्या ३८४ पहुँच जाती है (१६ × ८ × ३ = ३८४)। रुद्रट के टीकाकार नमिसाधु इस स्थल को प्रक्षिप्त मानते हैं—

एताश्चतुर्दशार्या मूले प्रक्षिप्ताः। —काव्यालंकार, पृ० १५५

नायिका के प्रति प्रेमव्यवहार के आधार पर रुद्रट ने नायक के चार भेदों का निरूपण किया है—अनुकूल, दक्षिण, शठ तथा धृष्ट। ये नायक के नर्म सचिव (गुप्त या रहस्यपूर्ण बातों के सहायक) के तीन प्रकार मानते हैं—पीठमर्द, विट और सहायक। इन्होंने चेट को स्थान नहीं दिया। संभवतः हीनपात्र होने के कारण चेट को स्थान न दिया गया हो।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भोजराज—भोजराज ने 'सरस्वतीकंठाभरण' तथा 'शृंगारप्रकाश' दोनों ही ग्रंथों में नायक-नायिका-भेद का निरूपण किया है। 'सरस्वतीकंठाभरण' के पंचम परिच्छेद में (रस-विवेचन के अंतर्गत) नायिका-भेद वर्णित है तथा 'शृंगारप्रकाश' के पंचदश परिच्छेद में इस विषय का विवेचन है। इस अध्याय को इन्होंने 'रत्यालंबनविभावप्रकाश' की संज्ञा दी है।

नायक-भेद—(सरस्वतीकंठाभरण के अनुसार) कथावस्तु के आधार पर नायक के छह भेद किए गए हैं—नायक, प्रतिनायक, उपनायक, नायकाभास, उभयाभास और तिर्यगाभास । गुण के आधार पर नायक के तीन भेद हैं—उत्तम, मध्यम और अधम। प्रकृति के आधार पर तीन भेद—सात्त्विक, तामस, रजस। परिग्रह के आधार पर दो भेद—साधारण (अनेकानुरक्त), अनन्यजाति (अनन्यानुरक्त)।

धैर्यवृत्ति अथवा प्रवृत्ति के आधार पर नायक के चार भेद किए गए हैं—उद्धत, ललित, शांत और उदात्त। शृंगार प्रकाश में भी ये ही भेद मान्य हैं और इनकी संख्या एक सौ चार मानी गई है।

नायिका-भेद—'सरस्वती कंठाभरण' में नायिकाओं के वर्गीकरण के दस आधार माने गए हैं—

कथावस्तु के आधार पर नायिकाओं के पाँच भेद किए गए हैं—नायिका, प्रतिनायिका, उपनायिका, अनुनायिका और नायिकाभास। गुण के आधार पर नायिकाएँ तीन प्रकार की मानी गई हैं—उत्तम, मध्यम और अधम। वय तथा कौशल के आधार पर मुग्धा, मध्या एवं प्रगल्भा संज्ञक तीन भेद हैं। धैर्य के आधार पर नायिका के धीरा और अधीरा दो भेद हैं। परिग्रह के आधार पर स्वीया तथा अन्यदीया नामक दो भेदों का कथन किया गया है और अन्यदीया के भी दो उपभेदों—ऊढा और अनूढा का वर्णन है। प्रेम के आधार पर दो भेद हैं—ज्येष्ठा और कनीयसी। मान के आधार पर चार प्रकार माने गए हैं—उद्धता, उदात्ता, शांता और ललिता। वृत्ति के आधार पर सामान्या, पुनर्भू तथा स्वैरिणी नामक भेदों का निरूपण है। आजीविका के आधार पर गणिका, रूपाजीवा तथा विलासिनी नामक भेद होते हैं। अवस्था के आधार पर भरत-सम्मत स्वाधीनपतिका प्रभृति भेदों का कथन है।

'शृंगार प्रकाश' में नायिकाओं के प्रमुख भेदों तथा अवस्थानुसार भेदों का वर्णन है। प्रमुख भेदों की संख्या चार हैं—स्वकीया, परकीया, पुनर्भू तथा सामान्या। गुण के आधार पर तीन भेदों का कथन है—उत्तमा, मध्यमा तथा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कनिष्ठा। परिणाम के आधार पर दो भेद वर्णित हैं—ऊढा और अनूढा तथा धैर्य के आधार पर दो भेदों का कथन है—धीरा और अधीरा। वय के आधार पर तीन भेद माने गए हैं—मुग्धा, मध्यमा तथा प्रगल्भा। पुनर्भू के चार प्रकार किए गए हैं—अक्षता, क्षता, यातायाता और यायावरा। सामान्या के पाँच भेदों का वर्णन है—ऊढा, अनूढा, स्वयंवरा, स्वैरिणी तथा वेश्या। वेश्या के तीन भेद कहे गए हैं—गणिका, विलासिनी और रूपाजीवा।

धनंजय—दशरूपककार धनंजय ने नायिकाओं के तीन भेद किए हैं—स्वकीया, अन्य स्त्री तथा साधारण स्त्री। स्वकीया के तीन भेद हैं—मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा। धनंजय ने मुग्धा के चार भेदों का कथन किया है—वयोमुग्धा, काममुग्धा, रतिवामा तथा कोपमृदु। मध्या के दो प्रकार हैं—यौवनवती तथा कामवती। क्रोध के कारण मध्या के तीन भेद किए गए हैं—मध्याधीरा, मध्या अधीरा तथा मध्या धीराधीरा। पति के न्यूनाधिक प्रेम के आधार पर मध्या तथा प्रगल्भा के दो-दो भेद किए गए हैं—ज्येष्ठा तथा कनिष्ठा। परकीया के इन्होंने दो भेद किए हैं—कन्या (अनूढ़ा) तथा ऊढ़ा। कन्या अविवाहिता को कहते हैं और ऊढ़ा विवाहिता को, जो अपने पति के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति से भी प्रेम करती हो। गणिका को साधारण स्त्री कहा गया है, जो कलाचतुर, प्रगल्भा एवं धूर्त्त होती है। अवस्था के अनुसार धनंजय ने नायिकाओं के आठ भेद किए हैं—स्वाधीनपतिका, वासकसज्जा, विरहोत्कंठिता, खंडिता, कलहांतरिता, विप्रलब्धा, प्रोषितपतिका तथा अभिसारिका। दशरूपककार के अनुसार नायिकाओं की संख्या २९६ होती है। स्वकीया के ३४ भेद, परकीया के दो तथा सामान्या के एक। अवस्थानुसार प्रत्येक के आठ भेद होने पर इनकी संख्या ३७ × ८ = २९६ हो जाती है। धनंजय ने नायक के चार भेदों का कथन किया है—धीरललित, धीरप्रशांत, तथा धीरोद्धत। फिर इनके चार भेद किए गए—अनुकूल, दक्षिण, शठ एवं धृष्ट।

स्वान्या साधारणस्त्रीति तद्गुणा नायिका त्रिधा।
मुग्धामध्याप्रगल्भेति स्वीयाशीलार्जवादियुक्॥
मुग्धानववयःकामा रतौ वामा मृदुः क्रुधि॥
मध्या प्रगल्भाभेदानां प्रत्येकं ज्येष्ठा कनिष्ठा।
अन्यस्त्री कन्यकोढा च नान्योढाऽगिरसेक्वचित्।
कन्यानुरागमिच्छातः कुर्यादंगांगिसंश्रयम्॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

साधारणस्त्री गणिका कलाप्रागल्म्य धौर्त्ययुक् ।
आसामष्टाववस्थाः स्युः स्वाधीनपतिकादिकाः ।।

—दशरूपक, पृ० ९५-११०

विश्वनाथ—विश्वनाथ ने 'साहित्यदर्पण' के तृतीय परिच्छेद में नायिका-भेद का वर्णन किया हैं ।

इनकी विशेषता विषय की सुव्यवस्था एवं सरलता में निहित है । नायक के सामान्य गुणों के अनुसार इन्होंने नायिकाओं के तीन भेद किए हैं—स्वकीया, परकीया और सामान्या ।

ननु नायिका त्रिभेदा स्वऽन्या साधारणस्त्रीति ।
नायक सामान्यगुणैर्भवति यथासंभवैर्युक्ता ।।

—साहित्यदर्पण, श्लोक ३/८१

नायक-नायिका-भेद का निरूपण आलंबन विभाव के अंतर्गत किया गया है । विश्वनाथ ने गुणन रीति से नायक के अड़तालीस तथा नायिकाओं के तीन सौ चौरासी प्रकारों का वर्णन किया है । स्वकीया के तीन भेद किए गए हैं—मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा ।

मुग्धा के पाँच प्रकार हैं—प्रथमावतीर्णयौवना, प्रथमावतीर्ण मदनविकारा, रतिवामा, मानमृदु और समधिकलज्जावती ।

प्रथमावतीर्णयौवनमदनविकाराररतौवामा ।
कथितमृदुश्चमाने समधिक लज्जावती मुग्धा ।।—८३

मध्या के इन्होंने पाँच भेद किए हैं—विचित्रसुरता, प्ररूढस्मरा, प्ररूढ-यौवना, ईषत्प्रगलभवचना तथा मध्यमव्रीडिता ।

मध्याविचित्रसुरता प्ररूढस्मरयौवना ।
ईषत्प्रगलभवचनामध्यमव्रीडिता मता ।। —श्लोक, ८४

प्रगल्भा के छह भेद हैं—स्मरांधा, गाढ़तारुण्या, समस्तरतकोविदा, भावोन्नता, दरव्रीडा और आक्रांता ।

स्मरांधा गाढतारुण्या समस्तरतकोविदा ।
भावोन्नता दरव्रीडा प्रगल्भाक्रांतनायका ।।—८५

नायक के प्रति कुपित होने पर मध्या तथा प्रगल्भा के तीन-तीन भेद किए गए हैं—धीरा, अधीरा और धीराधीरा । पति के प्रेम के आधार पर धीरा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आदि के ज्येष्ठा तथा कनिष्ठा नामक भेदों का भी उल्लेख है। परकीया के दो भेद कथित हैं—परोढा और कन्यका। परोढा का एक भेद कुलटा भी है।

परकीया द्विधा प्रोक्ता परोढा कन्यका तथा।
यात्राऽऽदिनिरताऽन्योढा कुलटागलितत्रपा ॥ —श्लोक, ९१

दशानुसार नायिकाओं के आठ भेद भी वर्णित हैं।

भानुदत्त—भानुदत्त ने 'रसमंजरी' एवं 'रसतरंगिणी' नामक ग्रंथों में नायिका-भेद तथा रस का विवेचन किया है। इनका नायक-नायिका-भेद-निरूपण अत्यंत प्रौढ़ एवं परिष्कृत होते हुए समस्त पूर्ववर्ती परंपरा का विकसित रूप प्रस्तुत करनेवाला है। इन्होंने विषय का स्वतंत्र विस्तार कर उसे सुव्यवस्थित रूप प्रदान किया है। इनका लक्षण संक्षिप्त, पूर्ण एवं संयत है तथा ग्रंथकार ने यथास्थान उसमें अव्याप्ति एवं अतिव्याप्ति दोषों के अभाव का भी संकेत किया है। प्रथमतः नायिका के तीन भेद किए गए हैं—स्वकीया, परकीया और सामान्या।

सा च त्रिविधा स्वीया, परकीया, सामान्याचेति ॥
—रसमंजरी, पृ० ५

(स्वीया) स्वकीया के तीन भेद हैं—मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा।

तत्र स्वामिन्येवानुरक्ता स्वीया। न च परिणीतायां परगामिन्यामव्याप्तिः, अत्र पतिव्रताया एव लक्ष्यत्वात्। —रसमंजरी, पृ० ५

मुग्धा के दो भेद हैं—अज्ञातयौवना तथा ज्ञातयौवना।

स्वीया तु त्रिविधा—मुग्धा, मध्या प्रगल्भा चेति। मुग्धां विभजते सा चाज्ञातयौवना, ज्ञातयौवना च। —वही

पति के प्रति विश्वास के आधार पर मुग्धा के दो भेद हैं—नवोढ़ा एवं विश्रब्ध नवोढ़ा। प्रगल्भा के दो भेद हैं—रतिप्रीता और आनंदसंमोहिता। मान की न्यूनाधिकता के आधार पर मध्या एवं प्रगल्भा के तीन-तीन भेद किए गए हैं—धीरा, अधीरा और धीराधीरा।

परकीया के दो भेद किए गए—परोढ़ा तथा कन्यका। परोढ़ा के अन्य छह भेद हैं—गुप्ता, विदग्धा, लक्षिता, कुलटा, अनुशयना तथा मुदिता।

गुप्ता के तीन भेद हैं—भूतगुप्ता, वर्तमानगुप्ता तथा भविष्यगुप्ता।

विदग्धा के दा भेद हैं—वाग्विदग्धा तथा क्रियाविदग्धा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनुशयना के भी तीन भेद हैं—वर्तमानस्थानविघट्टना, भावीस्थानविघट्टना तथा संकेतस्थलनष्टा। सामान्या या वेश्या के भी इन्होंने दो भेद किए हैं—रक्ता तथा विरक्ता। दशा के अनुसार नायिकाओं के तीन भेद हैं—अन्यसंभोग-दुःखिता, वक्रोक्तिगर्विता तथा मानवती। इनके भी कई उपभेद हैं। वक्रोक्ति-गर्विता दो प्रकार की कही गई है—प्रेमगर्विता तथा रूपगर्विता। मानवती तीन प्रकार की होती है—लघुमानवती, मध्यमानवती और गुरुमानवती। अवस्थानुसार नायिकाओं के आठ भेद कथित हैं—प्रोषितपतिका, वासकसज्जा, विरहोत्कंठिता, खंडिता, कलहांतरिता, अभिसारिका, विप्रलब्धा तथा स्वाधीन-पतिका। अभिसारिका के तीन भेद हैं—शुक्लाभिसारिका (ज्योत्स्नाभि-सारिका), तमिस्राभिसारिका (कृष्णाभिसारिका) तथा दिवाभिसारिका। इन्होंने नायक के सखा तथा नायिका की सखी एवं दूती का भी निरूपण किया है। नायक के तीन भेद माने गए हैं—पति, उपपति तथा वैशिक। प्रथम दो के चार भेद किए गए हैं, जो नायिका के प्रति व्यवहार पर आश्रित हैं—अनुकूल, दक्षिण, धृष्ट और शठ। शठ के अंतर्गत मानी और चतुर नामक भेद भी वर्णित हैं। वैशिक के भी उत्तम, मध्यम तथा अधम के नाम से तीन भेद कथित हैं।

रूपगोस्वामी—इन्होंने 'भक्तिरसामृत-सिंधु' तथा 'उज्ज्वलनीलमणि' नामक ग्रंथों की रचना कर उज्ज्वल या मधुर रस का प्रतिपादन किया है। रूप-गोस्वामी ने मधुररस के आलंबन विभाव के अंतर्गत नायिका-भेद का कथन किया है और नायक-नायिका भेद-विस्तार को श्रीकृष्ण, राधा तथा अन्य गोपिकाओं पर घटित कर इसे धार्मिक रूप प्रदान किया है। 'उज्ज्वल-नीलमणि' में नायक-नायिका-भेद का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। रूप-गोस्वामी ने नायकों के छियानबे प्रकारों का निरूपण किया है। कृष्ण नायक हैं और उन्हें तीन प्रकार का माना गया है—पूर्णतम (व्रज में), पूर्णतर (मथुरा में) तथा पूर्ण (द्वारिका में)। धीरोदात्तादि चार प्रकार के भेद कृष्ण में ही दर्शाए गए हैं और पूर्वोक्त पूर्णादि तीन भेदों से त्रिगुणित होकर उनकी संख्या बारह हो जाती है। पुनः पति एवं उपपति तथा अनुकूलादि चार भेदों के आधार पर (१२×२×४=९६) उनकी संख्या ९६ हो जाती है। रुक्मिणी आदि वल्लभाओं के लिए कृष्ण पति और कुब्जादि के लिए उपपति के रूप में चित्रित हैं। यहाँ वैशिक नामक भेद का सर्वथा परित्याग किया गया है। आलंबनभूत वल्लभाएँ ही नायिका के रूप में वर्णित हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नायिकाओं या वल्लभाओं के दो भेद माने गए हैं—स्वकीया और परकीया। स्वकीया के मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा नामक भेद स्वीकृत हैं तथा मध्या और प्रगल्भा के धीरा, अधीरा और धीराधीरादि भेदों का भी कथन है। पुनः इनके परिस्थिति या अवस्थानुसार आठ भेद वर्णित हैं—अभिसारिका, वासकसज्जा, उत्कंठिता, विप्रलब्धा, खंडिता, कलहांतरिता, प्रोषितभर्तृका, स्वाधीनभर्तृका। पुनः इन सभी नायिकाओं का वर्गीकरण उत्तमा, मध्यमा तथा कनिष्ठा नामक भेदों में किया गया है। गुणन-द्वारा नायिकाएँ ३६० प्रकार की हो जाती हैं। ये सभी भेद लौकिक या प्राकृत नायिकाओं के लिए संभव नहीं हैं; क्योंकि उनमें भक्ति तथा साधना का सर्वथा अभाव होता है। हरिवल्लभाएँ साधनपरा, देवी और नित्य-प्रिया के रूप में तीन प्रकार की मानी गई हैं और इनके भी अनेक भेद स्वीकृत हैं। नायक-नायिकाओं के सहायकों की चर्चा परंपरागत काव्यशास्त्र के अनुकूल है। नायक के सहायकों की संख्या पाँच है—विट, चेटक, विदूषक, पीठमर्द तथा प्रियनर्मसखा। दूती के अनेक नवीन भेद वर्णित हैं। प्रथमतः दूती के दो भेद किए गए—स्वयं-दूतिका तथा आप्ता। आप्ता के तीन भेद हैं—अमितार्था, निसृस्तार्था तथा पत्रहारिका।

इनके भी अनेक भेद वर्णित हैं। रूपगोस्वामी ने मुग्धा, मध्या तथा प्रौढ़ा के अनेक नवीन भेदों का निरूपण किया है।

मुग्धा—नववया, नवकामा, रतौवामा, सखीवशा, सव्रीडरतप्रयत्ना, रोषकृतवाष्पमौना एवं मानेविमुखी।

मध्या—समानलज्जामदना, प्रोद्यत्तारुण्यशालिनी, किंचित्प्रगल्भवचना, मोहांतसुरतक्षमा, मानेकोमला तथा माने कर्कशा।

प्रगल्भा—पूर्णतारुण्या, मदांधा, उरु-रतोत्सुका, भूरिभावोद्गमाऽभिज्ञा, रसाक्रांतवल्लभा, अतिप्रौढ़वचना, अतिप्रौढ़ चेष्टा और मानेऽत्यंतकर्कशा।

संस्कृत काव्यशास्त्र का नायक-नायिका-भेद-विवेचन कामशास्त्र से भी प्रभावित है, यह पूर्व कथित है। कामशास्त्राय ग्रंथों में रतिक्रीड़ा के आधार पर नायिकाओं के कई भेद किए गए हैं, जिनमें शंखिनी, चित्रिणी, हस्तिनी तथा पद्मिनी नामक भेद अधिक प्रसिद्ध हैं।

रीतिकाल में नायक-नायिका-भेद—हिंदी में नायक-नायिका-भेद का विवेचन संस्कृत काव्यशास्त्र की पीठिका पर आश्रित है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रीतिकाव्य की अविच्छिन्न धारा चिंतामणि से प्रारंभ होती है; पर उसके पूर्व भी अनेक प्रसिद्ध ग्रंथों का निर्माण हो चुका था; किंतु उसका पूर्ण विकास बाद में हुआ। चिंतामणि के पूर्व कृपाराम की 'हिततरंगिणी', सूरदास की 'साहित्यलहरी', नंददास-कृत 'रसमंजरी', रहीम-रचित 'बरवै-नायिका-भेद' सुंदर कवि-विरचित 'सुंदर शृंगार' और आचार्य केशव-रचित 'रसिकप्रिया' नामक ग्रंथों में नायक-नायिका-भेद का निरूपण हुआ था। इनमें केशव की 'रसिकप्रिया' का विवेचन अत्यंत प्रौढ़ है।

केशव ने रसिकप्रिया के तृतीय प्रकाश में नायिका-भेद का वर्णन किया है। उनके पूर्व रहीम ने 'बरवै-नायिका भेद' में नायिकाओं का उदाहरण ही प्रस्तुत किया है, उनके स्वरूप का विवेचन नहीं किया। नंददास की 'रसमंजरी' भानुदत्त की 'रसमंजरी' पर आश्रित है। इसमें केवल नायिकाओं के लक्षण प्रस्तुत किए गए हैं, उदाहरण नहीं। अधिकांश परिभाषाएँ भानुदत्त के अनुवाद मात्र हैं। नंददास ने मुग्धा, मध्या तथा प्रौढ़ा भेदों को केवल स्वकीया में न दर्शाकर परकीया और गणिका में भी प्रदर्शित किया है, जो अस्वाभाविक लगता है। मुग्धा के अज्ञातयौवना, ज्ञातयौवना, नवोढ़ा एवं विश्रब्धनवोढ़ा नामक भेद माने गए हैं। नंददास ने धीरादि भेदों का वर्णन किया है; पर ज्येष्ठा-कनिष्ठा का नहीं। 'रसमंजरी' (नंदकृत) में मध्या के किसी भेद का वर्णन नहीं है; पर प्रौढ़ा के दो भेदों का निरूपण है—कोविदा और प्रगल्भा। परकीया के तीन भेदों का वर्णन है—सुरतिगोपना, वाग्विदग्धा तथा लक्षिता। मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा प्रत्येक—के नौ भेद किए गए हैं—प्रोषितपतिका, खंडिता, कलहांतरिता, उत्कंठिता, विप्रलब्धा, वासकसज्जा, अभिसारिका, स्वाधीनपतिका तथा प्रीतम-गमनी।

केशवदास—केशवदास ने जाति के आधार पर नायिकाओं के चार भेद किए हैं—पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी तथा हस्तिनी।

> **प्रथम पद्मिनी चित्रिणी जुवती जाति प्रमान।**
> **बहुरि शंखिनी हस्तिनी, केशवदास बखान॥**
>
> —रसिकप्रिया, ३/२

केशव का आधार प्रसिद्ध कामशास्त्रीय ग्रंथ 'अनंगरंग' रहा है। इन्होंने नायिका के परंपरागत तीन भेद (नायक के आधार पर) माने हैं—स्वकीया, परकीया और सामान्या। स्वकीया के तीन भेद हैं—मुग्धा, मध्या एवं प्रौढ़ा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और मुग्धा के चार उपभेदों का वर्णन है—नवलवधू, नवयौवना, नवल अनंगा मथा लज्जाप्राय रति। मध्या के भी इन्हें चार भेद मान्य हैं—आरूढ़यौवना, प्रगल्भवचना, प्रादुर्भूतमनोभवा तथा सुरतिविचित्रा। प्रौढ़ा के चार भेद वर्णित हैं—समस्तरतकोविदा, विचित्रविभ्रमा, आक्रामति नायिका तथा लुब्धापति। केशव ने परकीया के दो भेदों का प्रतिपादन किया—ऊढ़ा और अनूढ़ा तथा वेश्या (सामान्या) का वर्णन नहीं किया। अवस्था या दशानुसार इन्होंने नायिकाओं के आठ प्रकार माने हैं—स्वाधीनपतिका, उत्का, वासकसज्जा, अभिसंधिता, खंडिता, प्रोषितप्रेयसी, विप्रलब्धा और अभिसारिका। इन अष्ट-विध नायिकाओं को भी प्रकाश तथा प्रच्छन्न के रूप में विभाजित किया गया है। इन्होने प्रकृति के आधार पर पुनः नायिकाओं के तीन भेद किए हैं—उत्तमा, मध्यमा तथा अधमा। इनके द्वारा वर्णित नायिकाओं के कुल तीन सौ साठ भेद होते हैं।

उत्तम मध्यम अधम अरु, तीन तीन बिधि जान।
प्रगट तीन सै साठ तिय, केसवदास बखान॥ —७/३४

केशव ने यह भी स्वीकार किया है कि देश, काल एवं वय के अनुसार इनके अनेक भेद संभव हैं।

इहि बिधि नायक-नायिका, बरनहुँ सहित बिबेक।
जाति काल वय भाव तें, केसव जानि अनेक॥
—रसिकप्रिया, ७/४१

केशव ने कामशास्त्रीय ग्रंथों के आधार पर अगम्या या 'सहवास के अयोग्य' नायिकाओं का भी वर्णन किया है। वे हैं—संबंधी की स्त्री, ब्राह्मण की स्त्री, मित्र की पत्नी, जिसे दुःख में तथा भूखी होने पर भोजन दिया गया हो, अपने से उच्च वर्ण की या नीच वर्ण की स्त्री, शूद्र की स्त्री, दास की पत्नी, विधवा अथवा कोई पूजनीय स्त्री। इस विषय के आधार 'कामसूत्र' एवं 'अनंगरंग' रहे हैं।

तजि तरुनी संबंध की, जानि मित्र द्विजराज।
राखि लेइ दुख भूख तें, ताकी तिय तें भाज॥
अधिक बरन अरु अंग घटि, अंत्यज जन की नारि।
तजि विधबा अरु पूजिता, रमियहु रसिक विचारि॥
—रसिकप्रिया, ७/४२-४३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चिंतामणि—इन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'कविकुलकल्पतरु' में रसप्रकरण के अंतर्गत (विभाव प्रकरण में) नायक-नायिका-भेद का विस्तृत विवेचन किया है, जो 'दशरूपक', 'साहित्यदर्पण' तथा 'रसमंजरी' से प्रभावित है। इन्होंने नायक के चार भेदों का निरूपण किया है—धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित और धीरप्रशांत; तत्पश्चात् अनुकूल, दक्षिण, धृष्ट एवं शठ नामक भेदों का कथन है। इन्होंने सर्वप्रथम नायिका के तीन भेद किए हैं, जो जाति के आधार पर हैं—दिव्या, अदिव्या और दिव्यादिव्या। पुनः भानुदत्त के अनुकरण पर धर्मानुसार नायिकाओं के तीन प्रकार किए गए हैं—स्वकीया, परकीया तथा सामान्या और पुनः स्वकीया के तीन उपभेदों का कथन है—मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा। मुग्धा के छह भेद माने गए—अविदितयौवना, अविदितकामा, विदितकामयौवना, नवोढ़ा, विश्रब्धनवोढ़ा और कोमल कोपा। मध्या के चिंतामणि-कृत चार भेद हैं—आरूढ़यौवना, आरूढ़मदना, विचित्रसुरता और प्रगल्भवचना।

प्रौढ़ा के चार भेद हैं—यौवन प्रगल्भा, मदनमत्ता, रीतिप्रीतिमती एवं सुरतिमोदपरवशा। मान की स्थिति में स्वकीया तीन प्रकार की कही गई है—धीरा, अधीरा तथा धीराधीरा। मुग्धा में ये भेद नहीं होते; किंतु मध्या एवं प्रौढ़ा में इनके भेदों का कथन किया गया है। स्वकीया के अन्य दो भेदों का उल्लेख पति-स्नेह की न्यूनाधिकता के आधार पर—ज्येष्ठा-कनिष्ठा—किया गया है।

भानुदत्त के अनुसार चिंतामणि ने परकीया के दो प्रकारों का वर्णन किया है—ऊढ़ा एवं अनूढ़ा। प्रथम छह प्रकार की होती है—सुरतगोपना, चतुरा, कुलटा, लक्षिता, अनुशयना एवं मुदिता। चतुरा के दो भेद किए गए हैं—वचनचतुरा तथा क्रियाचतुरा और अनुशयना के तीन प्रकार हैं—वर्त्तमान-स्थानविघटिता, भाविस्थानाभाव शंकिता तथा संकेतस्थलगमनासमर्था। सामान्या या वेश्या का पृथक् वर्णन न कर अवस्थानुसार अष्टविध नायिकाओं में इसके आठ उदाहरण दिए गए हैं। इन्होंने नायिकाओं के परंपरागत आठ भेदों का भी उल्लेख किया है—स्वाधीनप्रिया, वासकसज्जा, विरहोत्कंठिता, विप्रलब्धा, खडिता, कलहांतरिता, प्रोषितपतिका और अभिसारिका। गुण के आधार पर इन्होंने नायिकाओं के तीन प्रकार गिनाए हैं—उत्तमा, मध्यमा और अधमा। नायिका-भेद के अंतर्गत इन्होंने नायक के सहायकों, सखी तथा दूती का उल्लेख नहीं किया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मतिराम ने 'रसराज' नामक ग्रंथ में नायक-नायिका-भेद का व्यवस्थित वर्णन किया है। इनका आधार-ग्रंथ भानुदत्त की रसमंजरी है। इन्होंने संबंधानुसार नायिका के तीन भेद किए हैं—स्वकीया, परकीया और गणिका। पुनः स्वकीया के तीन भेदों का वर्णन किया—मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा। मुग्धा के दो भेद वर्णित हैं—ज्ञातयौवना तथा अज्ञातयौवना और पुनः प्रियतम की रति तथा विश्वास के आधार पर उसके दो भेद वर्णित हैं—नवोढ़ा और विश्रब्ध नवोढ़ा। इन्होंने मान की अवस्था में मध्या और प्रगल्भा के धीरादि भेद किए हैं तथा ज्येष्ठा-कनिष्ठा का भी उल्लेख किया है। परकीया के दो भेद किए गए हैं—ऊढ़ा और अनूढ़ा, तत्पश्चात् अन्य छह भेद भी वर्णित हैं—गुप्ता, विदग्धा, लक्षिता, कुलटा, मुदिता, अनुशयना। नायिका के प्रति किए गए प्रिय के प्रेम के आधार पर अन्यसंभोगदुःखिता, गर्विता तथा मानवती भेद किए गए हैं। इन्होंने दशविध नायिकाओं का भी वर्णन किया है—प्रोषित-पतिका, खंडिता, कलहांतरिता, विप्रलब्धा, उत्कंठिता, वासकसज्जा, स्वाधीन-पतिका, अभिसारिका, प्रवत्स्यत्प्रेयसी और आगतपतिका। इन सभी नायिकाओं को मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा, परकीया तथा सामान्या के अंतर्गत विभाजित किया गया है। इन्होंने उत्तमा, मध्यमा तथा अधमा के नाम से भी नायिकाओं के वर्गीकरण किए हैं।

देव—ये नायक-नायिका-भेद-वर्णन की दृष्टि से अधिक विस्तारप्रिय आचार्य हैं। इन्होंने 'भावविलास', 'भवानीविलास' तथा 'सुखसागरतरंग' में इस विषय का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है। देव ने नायिकाओं की कुल संख्या तीन सौ चौरासी बताई है। इन्होंने नायिका भेद के दस आधार माने हैं—वंश, अंश, जाति, कर्म, वपु, काल, देश, गुण, सत्त्व और प्रकृति। इनके भेदों का विवरण इस प्रकार है—

स्वकीया तेरहै भेद करि द्वै जु भेद परनारि।
एक जु वेश्या ये सबै सोरह करौं विचारि॥
एक-एक प्रति सोरहों आठ अवस्था जान।
जोरि सबै ये एक सौ अट्ठाईस बखान।
उत्तम, मध्यम, अधम करि ये सब विविधप्रकार।
चौरासी अरु तीन सै जोरें सब विस्तार॥ —भावविलास

जाति के आधार पर नायिकाओं के चार प्रकार वर्णित हैं—पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी और हस्तिनी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कर्म के अनुसार तीन भेद—स्वकीया, परकीया और सामान्या।

देशानुसार छब्बीस भेद—इसमें भारतवर्ष के विभिन्न प्रांतों की नायिकाओं का वर्णन है। जैसे मध्यदेशवधू, मगधवधू, कौशलवधू, उत्कलवधू आदि।

अवस्था के आधार पर आठ भेद—स्वाधीनपतिका, कलहांतरिता, अभिसारिका, विप्रलब्धा, खंडिता, उत्कंठिता, वासकसज्जा तथा प्रोषितपतिका।

वयक्रमानुसार नायिका के तीन भेद हैं—मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा।

प्रकृति के आधार पर तीन भेद किए गए हैं—कफप्रकृति, पित्तप्रकृति तथा वातप्रकृति।

तत्त्व के आधार पर नौ भेद माने गए—देव, किन्नर, यक्ष, नर, पिशाच, नाग, कपि, गंधर्व और काक।

कामिनी के छह भेद—नागरी, पुरवासिन, ग्रामीण, वनवासिन, सेन्या एवं पथिकतिय।

नागरी तीन प्रकार की होती है—देवल, रावल और राजनगर।

देवल के भी तीन भेद हैं—देवी, पूजनहारी और द्वारपालिका।

रावल के पाँच प्रकार हैं—राजकुमारी, धाय, सखी, दूती और दासी।

राजनगर के तेरह भेद हैं—जौहरिन, छीपिन, पटवनि, सुनारिन, गधिन, तेलिन, तमोलिन, हलवाइन, मोदिन, कुम्हारिन, दरजिन, चूहरी और गणिका।

पुरवासिन के नौ भेद किए गए हैं—ब्राह्मणी, राजपूतनी, खतरानी, बनैनी, कामथिन, शूद्रा, नाइन, मालिन और धोबिन।

ग्रामीण के पाँच भेद हैं—अहीरिन, काछिन, कलारिन, कहारिन तथा नूनेरी।

वनवासिन के तीन भेद हैं—मुनितिया, व्याधतिया और भीलनी।

सेन्या के तीन भेद—वृषली, वेश्या और मुकेरिन।

पथिकतिया के चार भेद—बनजारिन, जोगिन, नटी और कुछेरिन।

देव ने स्वकीया के पाँच भेद किए हैं—देवी, देवगंधर्वी, गंधर्वी, गंधर्व-मानुषी, मानुषी। स्वकीया के ज्येष्ठा और कनिष्ठा—दो भेद माने गए हैं।

परकीया के दो भेद हैं—ऊढ़ा और अनूढ़ा।

ऊढ़ा के इन्होंने छह भेद किए हैं—गुप्ता, विदग्धा, लक्षिता, कुलटा, मुदिता और अनुशयना।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मुग्धा के आठ भेद किए गए हैं—वय:संधि, अज्ञातयौवना, नवलवधू, नवयौवना, नवलअनंगा, नवोढ़ा, सलज्जरति तथा विश्रब्धनवोढ़ा।

मध्या के देव-कृत चार भेद हैं—रूढ़यौवना, प्रकटमनोज, प्रादुर्भूतमनोभवा तथा विचित्रसुरता।

प्रौढ़ा के चार भेद—लब्धापति, रतिकोविदा, आक्रांता तथा सविभ्रमा।

देव ने नायक के पति, उपपति और विसनी (वैशिक) नामक तीन भेदों का कथन कर पुन: पति के अनुकूल, दक्ष, शठ और धृष्ट इन चार भेदों का वर्णन किया है।

सोमनाथ—सोमनाथ ने 'रसपीयूषनिधि' की आठवीं तरंग से लेकर तेरहवीं तरंग तक श्रृंगाररस एवं नायक-नायिका-भेद का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है। इनका आधार भानुदत्त-कृत 'रसमंजरी' है। धर्म, अवस्था, गुण तथा नायकापराधजन्य प्रतिक्रिया के आधार पर इन्होंने नायिकाओं का विभाजन किया है।

धर्म के आधार पर नायिकाओं के तीन भेद किए गए हैं—स्वकीया, परकीया तथा वारवधू (वेश्या)। पुन: स्वकीया के मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा (प्रगल्भा) नामक भेदों का वर्णन है। मुग्धा के दो भेद किए गए हैं—ज्ञात-यौवना और अज्ञातयौवना। स्वकीया के धीरा, अधीरा और धीराधीरा तथा ज्येष्ठा-कनिष्ठा भेदों का कथन कर परकीया के ऊढ़ा और अनूढ़ा भेदों का निरूपण है। अवस्था के आधार पर स्वाधीनपतिका, खंडिता, कलहांतरिता, विप्रलब्धा, उत्कंठिता, वासकसज्जा, अभिसारिका और प्रोषितपतिका आदि आठ भेद कथित हैं। गुण के आधार पर उत्तमा, मध्यमा एवं अधमा तथा जाति के आधार पर दिव्या, अदिव्या और दिव्यादिव्या भेदों का वर्णन किया गया है। सोमनाथ ने पद्मिनी, शंखिनी आदि कामशास्त्रीय भेदों का भी निरूपण किया है। नायक-भेद भी भानुदत्त के आधार पर वर्णित है। पति आदि तीन, अनुकूल, शठ प्रभृति चार तथा उत्तम आदि तीन भेद कहे गए हैं।

भिखारीदास—दास ने 'रससारांश' तथा 'श्रृंगारनिर्णय' में नायक-नायिका-भेद का अत्यंत व्यवस्थित एवं प्रौढ़ वर्णन प्रस्तुत किया है। इनका एतद्विषयक आधार ग्रंथ 'रसमंजरी' है, पर उसमें यत्र-तत्र हिंदी के आचार्यों से भी प्रभाव ग्रहण किया गया है। इन्होंने 'श्रृंगारनिर्णय' में नायक के दो भेदों—पति एवं उपपति—तथा 'रससारांश' में परंपराप्राप्त तीन भेदों का (वैशिक) उल्लेख

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

किया है। पुनः पति तथा उपपति के अनुकूल, दक्षिण, शठ और धृष्ट भेद वर्णित हैं। दास ने उपपति में भी अनुकूल, दक्षिण, धृष्ट और शठ आदि भेदों को दर्शाकर मानव प्रकृति की एकता का समर्थन किया है। इस दृष्टि से इनका वर्गीकरण सर्वथा मनोवैज्ञानिक है। भानुदत्त की भाँति नायिका का उपकार एवं अपकार करने के आधार पर नायक के तीन भेद किए गए हैं—उत्तम, मध्यम और अधम। दास ने नायिका-भेद के कई आधार अपनाए हैं, जिनमें धर्म, गुण, अवस्था एवं कामशास्त्रीय भेदों की प्रमुखता है। राजाओं के अंतःपुर में स्थित अन्य रक्षिताओं को स्वकीया के अंतर्गत परिगणित कर दास ने काव्य-शास्त्रीय दृष्टि से सर्वथा मौलिक विचार प्रकट किया है।

श्रीमाननि के भवन में भोग्य भामिनी और।
तिनहूँ को स्वकियाहु मैं गने सुकबि सिरमौर ॥

—शृंगारनिर्णय, ६२

दास का नायक-नायिका-भेद अत्यंत प्रौढ़ और सुलझा हुआ है। भानुदत्त की रसमंजरी पर आधृत होते हुए भी इसमें उनकी मौलिक उद्भावनाएँ प्रदर्शित की गई हैं।

क. इन्होंने लक्षिता परकीया के दो भेदों का उल्लेख किया है—सुरतिलक्षिता तथा हेतुलक्षिता।

ख. परकीया के दास-कृत पाँच भेद—कामवती, अनुरागिनी, प्रेमासक्ता, उद्बुद्धा और उद्बोधिता—उनकी निजी कल्पनाएँ हैं। पुनः, परकीया उद्बुद्धा के तीन उपभेदों का उल्लेख उनकी मौलिक सूझबूझ का परिचायक हैं। ये भेद हैं—असाध्या, दुःसाध्या तथा साध्या। इनमें असाध्या के पाँच भेद हैं—गुरुजनभीता, दूतीवर्जिता, धर्मसभीता, अतिकांत्या तथा खलवेष्टिता।

ग. इन्होंने प्रोषितभर्तृका के प्रोषितपतिका, आगतपतिका, आगच्छत्पतिका तथा प्रवत्स्यत्प्रेयसी नामक चार भेद किए हैं।

घ. खंडिता नायिका के मानवती प्रभृति चार भेद नवीन हैं।

ङ. दूती-निरूपण में स्वयंदूती, बानदूती तथा अन्य जाति की नारियों का वर्णन 'रसमंजरी' से भिन्न है।

च. इन्होंने स्वकीया के ज्येष्ठा-कनिष्ठा नामक भेद अनुकूलादि सभी नायिकाओं में दर्शाकर स्वकीया के रूप का विस्तार किया है।

छ. गुप्तादि छह परकीयाओं के अंतर्गत कुलटा का वर्णन कर नया विचार प्रस्तुत किया गया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ज. दास ने स्वाधीनपतिका आदि अष्ट-नायिकाओं को दो वर्गों में विभक्त कर नवीन तथ्य प्रकट किया है।

रसलीन—इन्होंने 'रसप्रबोध' नामक ग्रंथ में नायक-नायिका-भेद का निरूपण किया है। इनके वर्णन में विभाजन का विस्तार दिखाई पड़ता है। इनके नायक-नायिका-भेद-वर्णन पर भिखारीदास का पर्याप्त प्रभाव है। रसलीन ने मुग्धा के पाँच भेद किए हैं—अंकुरितयौवना, शैशवयौवना, नवयौवना, नवल-अनंगा और नवलवधू। नवयौवना के दो भेद हैं—अज्ञातयौवना और ज्ञात-यौवना। नवलअनंगा के दो भेद—अविदितकामा तथा विदितकामा। नवलवधू के तीन भेद—नवोढ़ा, विश्रब्धनवोढ़ा तथा सज्जासक्तारतिकोविदा। मध्या के इन्होंने चार भेद किए हैं—उन्मत्तयौवना, उन्नतकामा, प्रगल्भवचना तथा सुरतविचित्रा। स्वकीया नायिका के अंतर्गत इन्होंने तीन प्रकार की दुःखिताओं का वर्णन किया है—मूढ़पति, बालपति तथा वृद्धपतिदुःखिता। रसलीन ने परकीया के दो भेद माने हैं—ऊढ़ा और अनूढ़ा तथा उसे असाध्या एवं सुखसाध्या नामक दो वर्गों में बाँटा है। असाध्या के पाँच तथा सुखसाध्या के दस भेद किए गए। असाध्या—सभीता, गुरुजनसभीता, दूतीवर्जिता, अति-क्रांता एवं खलपृष्ठा। सुखसाध्या—वृद्धवधू, बालवधू, नपुंसकवधू, विधवावधू, गुनीवधू, गुनरिझवती, सेवकवधू, निरंकुश, परतियासक्तपति की स्त्री एवं अति-रोगी की स्त्री। ऊढ़ा और अनूढ़ा के भी दो उपभेद किए गए हैं—उद्भूता तथा उद्भूदिता। विदग्धा के दो उपभेदों की चर्चा की गई है—पतिवंचिता एवं दूतीवंचिता। लक्षिता के तीन उपभेद किए गए हैं—सुरतिलक्षिता, प्रकाश-लक्षिता तथा प्रकाशलक्षिता द्वितीया। स्वकीया और परकीया—प्रत्येक के अन्य तीन उपभेदों का भी वर्णन है—कामवती, अनुरागिनी तथा प्रेमासक्ता। सामान्या के चार प्रकार किए गए हैं—स्वतंत्रा, जननीअधीना, नेमता तथा प्रेमदुःखिता। अष्ट नायिकाओं में गमिष्यत्पतिका, गच्छत्पतिका एवं आगमि-ष्यत्पतिका के उपभेदों की भी चर्चा की गई है तथा दिव्या, अदिव्या एवं दिव्यादिव्या के रूप में भी नायिकाओं का वर्णन किया गया है।

रसलीन ने कुल मिलाकर तेरह सौ बानबे नायिकाओं की संख्या का निर्देश किया है।

इक सुवकीया है परकीया सामान्या मिलि चारि।
अष्ट नायिका मिलि सोई, बत्तिस होत विचारि॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तमादि सो मिलि वहै पुनि छियानबे होत ।
पुनि चौरासी तीन सैं पदुमनि आदि उदोत ॥
तेरह सै बावन बहुरि दिव्यादिक के संग ।
यौ गनना में नायिका बरनी बुद्धि उतंग ॥
—रसप्रबोध, ४८९-४९१

इन्होंने नायक के तीन सौ चौबीस भेद माने हैं ।

चारि भाँति पति है बहुरि उपपति तीनि प्रमान ।
द्वै बैसक मिलि ये सकल नौ बिधि होत निदान ॥
उतमादिक मैं गुनत सो सत्ताइस पुनि होत ।
गुने धीर ललितादि मैं है सत आठ उदोत ॥
गने सकल ये भेद जब दिव्यादिक मैं जात ।
तब चौबिस अरु तीनि सैं सब नायक ठहरात ॥
—रसप्रबोध, ५८९-५९१

पद्माकर—इन्होंने रस एवं नायिका-भेद विषयक प्रसिद्ध ग्रंथ 'जगद्विनोद' की रचना की है। इनका वर्गीकरण व्यवस्थित एवं विशद है। प्रथमतः नायिका के तीन भेद माने गए हैं—स्वकीया, परकीया और गणिका (सामान्या)। स्वकीया के तीन उपभेद वर्णित हैं—मुग्धा मध्या और प्रौढ़ा (प्रगल्भा)। मुग्धा के चार भेद किए गए—ज्ञातयौवना, अज्ञातयौवना, नवोढ़ा और विश्रब्ध-नवोढ़ा। प्रौढ़ा के दो भेद वर्णित हैं—रतिप्रीता और आनंदसम्मोहिता। मान की स्थिति में धीरादि भेदों का वर्गीकरण किया गया है और ये भेद मध्या तथा प्रौढ़ा दोनों में दर्शाए गए हैं।

पति-प्रेम की न्यूनाधिकता के आधार पर इन्होंने ज्येष्ठा-कनिष्ठा भेदों का कथन किया है। परकीया के दो भेद माने गए हैं—ऊढ़ा और अनूढ़ा तथा अन्य छह भेदों का भी वर्णन हैं—गुप्ता, विदग्धा, लक्षिता, कुलटा, मुदिता, अनुशयना। गुप्ता तथा अनुशयना के भी तीन-तीन उपभेद किए गए हैं—भूत, भविष्य और वर्त्तमान के आधार पर। इन सभी नायिकाओं के अन्य तीन भेद किए गए हैं—अन्यसुरति-दुःखिता, मानवती और गर्विता। गर्विता के दो भेद हैं—प्रेमगर्विता और वक्रोक्तिगर्विता। पद्माकर ने दशविध नायिकाओं का वर्णन कर उन्हें मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा, परकीया तथा गणिका में दिखलाया है। नायिकाओं के अन्य भेद उत्तमा, मध्यमा और अधमा रूप में भी वर्णित हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पद्माकर ने नायक, सखा, सखी और दूती का भी स्वच्छ वर्णन प्रस्तुत किया है। इनका मुख्याधार भानुदत्त का प्रसिद्ध ग्रंथ 'रसमंजरी' है।

रीतिकाल के अन्य प्रसिद्ध आचार्यों में वेणीप्रवीण (नवरसतरंग), प्रतापसाहि (व्यंग्यार्थ कौमुदी) तथा ग्वाल (रसरंग) ने नायक-नायिका भेद का विस्तृत विवेचन किया है, पर इनमें किसी प्रकार की नवीनता न होकर भानुदत्त की छाया है। आधुनिक युग में हरिऔध (रसकलश) तथा बिहारी लाल भट्ट (साहित्यसागर १,२) ने भी नायक-नायिका-भेद का निरूपण किया है। श्री कन्हैयालाल पोद्दार (रसमंजरी), बाबू गुलाब राय (नवरस) तथा प्रभुदयाल-मीतल (व्रजभाषा साहित्य का नायक-नायिका-भेद) ने इस विषय पर विचार कर स्वतंत्र ग्रंथों की रचना की है। प्रस्तुत ग्रंथ-लेखक-कृत 'भारतीय काव्यालोचन' में नायक-नायिका-भेद का विवेचन है। डॉ० छैलबिहारी गुप्त तथा डॉ० कृष्णनंदन 'पीयूष' ने नायक-नायिका-भेद विषयक शोध-प्रबंधों की रचना कर इस विषय का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया है।

नायक-नायिका-भेद विषयक निष्कर्ष—

१. काव्यशास्त्र के आरंभिक युग में ही नायक-नायिका-भेद का अनुशीलन प्रारंभ हो गया था और भरत मुनि इसके आद्य प्रवर्त्तक माने जा सकते हैं।

२. प्रारंभ में नायक-नायिका-भेद की चर्चा नाटकों (दृश्यकाव्य) को दृष्टि में रखकर की गई थी; कालांतर में इस विषय का समावेश काव्य में हुआ।

३. रीतिकालीन आचार्यों (हिंदीकाव्याचार्यों) के उपजीव्य चार ग्रंथ रहे—नाट्यशास्त्र, दशरूपक, साहित्यदर्पण तथा रसमंजरी।

४. रीतिकाल में इस विषय का स्वतंत्र और विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया और भेद-विस्तार की प्रवृत्ति बलवती हुई।

५. कलात्मक सौंदर्य-विस्तार की दृष्टि से हिंदी काव्याचार्यों का नायक-नायिका-भेद-निरूपण अधिक प्रौढ़ है।

नारिकेलपाक—जो रचना आदि अंत तक सुस्वादु या सरस बनी रहे, उसे नारिकेल पाक की संज्ञा दी जाती है। नारिकेल का अर्थ है नारियल।

आद्यंतयोः स्वादु नारिकेलपाकमिति।

—काव्यमीमांसा, ५ अध्याय पृ० ५३

नांदी—नाटक के प्रारंभ में आशीर्वचनयुक्त किया गया मांगलिक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनुष्ठान। भरत ने इसके अंतर्गत देवता, ब्राह्मण तथा राजा की स्तुति एवं दर्शक, कवि और प्रयोक्ता के लिए मंगलकामना का वर्णन किया है।

[दे० नाट्यशास्त्र, ५/१०५-१०६]

नांदी के अधिष्ठातृ देव चंद्रमा हैं, जिन्हें इस अनुष्ठान से आनंद की प्राप्ति होती है। विश्वनाथ ने बताया कि नांदी-द्वारा शंख, चक्र, पद्म, चक्रवाक, कैरव प्रभृति मंगलमय पदार्थों की अभिव्यक्ति हो। नांदी का कार्य नटों-द्वारा संपन्न होता है।

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नांदीति संज्ञिता॥
मांगल्यशंखचंद्राब्ज कोककैरवशंसिनी।
पदैर्युक्ताद्वादशभिरष्टाभिर्वा पदैरुत॥

—साहित्यदर्पण, ६/२४-२५

देवतादिनमस्कारमंगलारंभपाठकैः।
या क्रिया नंद्यते नाट्यारंभे नांदीति स स्मृता॥

—भावप्रकाशन, ७वाँ अधिकार

नंदयति देवादीन् स्तुत्या, आनंदयति
स सभ्यान् स्तुतदेवप्रसादादिति नांदी।

निदर्शन—गद्यकाव्य का एक भेद। [दे० गद्य]

निदर्शना—सादृश्यमूलक अलंकार। दो पदार्थों का असंभव या संभव संबंध उनमें सादृश्य की कल्पना कराए तो निदर्शना अलंकार होगा। 'निदर्शना' का अर्थ दृष्टांत या उदाहरण है। इसमें दो भिन्न या असंगत वाक्यों में उदाहरण देकर संगति स्थापित की जाती है। दो असंबद्ध प्रतीत होनेवाले वाक्यों में कवि सादृश्य की योजना कर (उपमा के द्वारा) उन्हें सुसंगत बना देता है। निदर्शना गम्यौपम्यमूलक अलंकार है, जिसमें सादृश्य वाच्य न होकर गम्य या व्यंग्य होता है।

इस अलंकार का सर्वप्रथम वर्णन भामह ने किया है, तत्पश्चात् सभी आचार्यों ने इसका विवेचन किया। भामह ने बताया कि जब क्रिया-द्वारा विशिष्ट अर्थ का प्रदर्शन हो और उसमें सादृश्यसूचक इवादि शब्दों का प्रयोग न हो तो निदर्शना अलंकार होगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्रिययैव विशिष्टस्य तदर्थस्योपदर्शनात् ।
ज्ञेया निदर्शना नाम यथेववतिभिर्विना ॥

—काव्यालंकार, ३/२३

दंडी ने निदर्शना के विवेचन में नया अध्याय जोड़ा । इनके अनुसार यदि अन्य कार्य में प्रवृत्त कर्त्ता-द्वारा उसके अनुरूप सत् या असत् फल का बोध हो तो निदर्शना अलंकार होगा । सत् और असत् कार्य के कारण इन्होंने निदर्शना के दो भेदों का वर्णन किया ।

अर्थांतरप्रवृत्तेन किंचित् तत् सदृशं फलम् ।
सदसद्वा निदर्श्येत यदि तत्स्यान्निदर्शनम् ॥

—काव्यादर्श, २/३८४

उद्भट का लक्षण परवर्ती आचार्यों का स्रोत रहा है । इन्होंने दो पदार्थों में संभव अथवा असंभव संबंध के रहने पर भी उनमें सादृश्य की कल्पना को निदर्शना कहा है ।

अभवन्वस्तुसंबंधो भवन्वा यत्र कल्पयेत् ।
उपमानोपमेयत्वं कथ्यते सा निदर्शना ॥५/१०

—काव्यालंकारसारसंग्रह

वामन 'क्रिया के द्वारा अपना और अपने प्रयोजन के संबंध का बोधन करने' को निदर्शना कहते हैं ।

क्रिययैव स्वतदर्थान्वयख्यापनं निदर्शनम् ।

—काव्यालंकारसूत्र, ४,३,२०

मम्मट ने उद्भट से प्रेरणा ग्रहण कर निदर्शना का वर्णन किया है । इनके अनुसार दो पदार्थों के असंभव संबंध में सादृश्य की परिकल्पना को निदर्शना कहते हैं ।

अभवन् वस्तुसंबंध उपमा परिकल्पकः ॥

—काव्यप्रकाश, १०/९७

रुय्यक ने संभव अथवा असंभव वस्तु-संबंध के द्वारा गम्यमान बिंबप्रतिबिंब का निदर्शना कहा ।

संभवताऽसंभवता वा वस्तुसंबंधेन गम्यमानं प्रतिबिंबकरणं निदर्शना ॥

—अलंकारसर्वस्व, पृ० ७३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परवर्ती आचार्यों में विद्याधर, विद्यानाथ एवं विश्वनाथ ने रुय्यक के आधार पर निदर्शना का निरूपण किया है।

प्रतिबिंबस्यकरणं संभवता यत्र वस्तुयोगेन।
गम्यसंभवता वा निदर्शना सा द्विधाऽभिमता॥

—एकावली, ८/१९

असंभवद्धर्मयोगादुपमानोपमेययोः।
प्रतिबिंबक्रियागम्या यत्र सा स्यान्निदर्शना॥

—प्रतापरुद्रीय, पृ० ३१२

संभवन्वस्तुसंबद्धोऽसंभवन् वाऽपि कुत्रचित्।
यत्रबिंबानुबिंबत्वं बोधयेत्सा निदर्शना॥

—साहित्यदर्पण, १०/५१

जयदेव ने दो समान वाक्यार्थों के अभेदारोप को निदर्शना कहा। इसमें वा, जो, सा आदि शब्दों के द्वारा ऐक्यारोप प्रदर्शित होता है। दीक्षित ने जयदेव के हा लक्षण को उद्धृत कर दिया है।

वाक्यार्थयोः सदृशयोरैक्यारोपो निदर्शना॥

—चंद्रालोक, ५/५८

पंडितराज जगन्नाथ के मत से वर्णित दो पदार्थों का उपमा में पर्यवसित होनेवाला आर्थ-अभेद ही निदर्शना है।

न चास्मदुक्ता वाच्यनिदर्शना, इयं तु प्रतीयमानेति वाच्यम्।.........उपात्तयोर्थयोरार्थभेद औपम्य पर्यवसायी निदर्शना॥

—रसगंगाधर, पृ० ४५६

विश्वेश्वर पंडित ने बताया कि जहाँ परस्पर अन्वय (संबंध) के अयोग्य अर्थ उपमा में पर्यवसित होता है और जहाँ क्रिया के द्वारा कारण-कार्य का अन्वय अवगत कराया जाता है, वहाँ निदर्शना कही जाती है।

उपमापर्यवसन्नो यत्रार्थोऽन्योंतमन्वयानर्हः।
यच्च क्रियया कारणकार्यान्वयधीर्निदर्शना सोक्ता॥

—अलंकारकौस्तुभ, पृ० २६२

रीतिकालीन आचार्यों ने निदर्शना के निरूपण में दंडी, मम्मट, विद्यानाथ तथा दीक्षित को आधार बनाया है। केशवदास दंडी से प्रभावित हैं तो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चिंतामणि और कुलपति 'काव्यप्रकाश' से। जसवंतसिंह, मतिराम और पद्माकर ने 'कुवलयानंद' के लक्षण का भावानुवाद किया है।

कौनहु एक प्रकार ते सत अरु असत समान।
करिए प्रगट निदर्शना समुझत सकल सुजान॥
—कविप्रिया, ११/४६

अनहोनी जग वस्तु को कछु संबंध जु होइ।
उपमा परिकल्पक इतै निदर्सना कहि सोइ॥
—कविकुलकल्पतरु, ३/१६८

अपने अपने हेतु को जो जा संबंध ज्ञान।
होत क्रिया ते निदर्सना ताहू कहत सुजान॥
—वही, ३/२०१

जहाँ संबंध बनै न तब, उपमा में विश्राम।
होत क्रिया करि दोष है निदरसना सुखधाम॥
—रसरहस्य, ८/६६

कहिए त्रिविधि निदर्सना वाक्य अर्थ सम होइ।
एक किए पुनि और गुन और वस्तु में होइ॥
कहिए कारज देखि कछु भलो बुरो फल भाव।
—भाषाभूषण, ८६, ८७

सदृश वाक्य जुग अर्थ को जहाँ एक आरोप।
बरनत तहां निदर्शना कविजन मति अति ओप॥
जहँ बरनत पद अर्थ को बरनत हैं कविराज।
निदरसना यह दूसरी बरनत बिबुध समाज॥
करत असत सत अर्थ को एक क्रिया सौं बोध।
निदरसना यह और हू कहत सुकबि मति सोध॥
—ललितललाम, १५०-१५२

जुसम वाक्य जुग अरथ को करब एकता रोप।
जो सो पदनि निदर्शना ताहि कहत करि चोप॥
वर्न्य धर्म जु अबर्न्य में थपै जु बर्न्यहि नाहि।
धर्म अबर्न्यहि को कहत विय निदर्सना ताहि॥
जु निज अवस्था सों कर भलो बुरो फल-ब्रोध।
सो सदर्थ-असदर्थ जुत यों निदर्सना-सोध॥
—पद्माभरण, ८५, ८७, ८९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भेद—अप्पय दीक्षित ने निदर्शना के तीन भेदों का वर्णन किया, जिसे हिंदी के आचार्यों ने भी मान्यता दी। मम्मट ने वस्तु की संभवता तथा असंभवता के आधार पर दो भेदों का कथन किया है।

१. प्रथम निदर्शना—इसे वाक्यार्थ निबंधना भी कहते हैं।

वाक्यार्थनिबंधना—जब दो असंभव पदार्थों में सादृश्य की कल्पना की जाय तो वाक्यार्थ निबंधना होगी।

क. **क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः।**
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्॥—रघुवंश

"कहाँ तो सूर्य से उत्पन्न वंश और कहाँ मेरी अल्प ज्ञान की बुद्धि? मैं अज्ञानवश दुस्तर समुद्र को छोटी नौका से पार करना चाहता हूँ।" यहाँ सूर्य से उत्पन्न वंश के साथ अल्पज्ञान की बुद्धि का असंभव संबंध है; फिर भी इसे छोटी नौका से सागर पार करने की तरह उपमा में परिणत कर दिया गया है।

ख. **स्वामिधर्म को छोड़ कर, करहिं जे सुख की आस।**
ते नर मूरख पंख बिन, चाहत उड़न अकास॥

"स्वामिधर्म को छोड़कर सुख की आशा करना पंख के बिना आकाश में उड़ने की तरह है।" यहाँ दो असंबद्ध वाक्यों में सादृश्य-स्थापन के कारण निदर्शना हुई।

२. द्वितीय निदर्शना—जब उपमेय के गुण को उपमान में तथा उपमान के गुण को उपमेय में स्थापित किया जाय तो द्वितीय निदर्शना होगी।

उपमेय के गुण का उपमान में स्थापन—

क. **वियोगे गौडनारीणां यो गंडतलपांडिमा।**
अदृश्यत स खर्जूरीमंजरीगर्भरेणुषु॥

"प्रिय-वियोग के समय गौड़ देश की नारियों के कपोलों का पीलापन खर्जूरी तथा मंजरी के पराग में दिखाई पड़ा।"

यहाँ कपोलों (उपमेय) के पीलापन को खर्जूरीलता (उपमान) के पराग में स्थापित करने में द्वितीय निदर्शना है।

ख. **तुव वचनन की मधुरता, रही सुधा महँ छाय।**
चारु चमक चल नैन की, मीनन लई छिनाय॥

यहाँ नायिका के वचन की मधुरता को सुधा में तथा नेत्रों की चंचलता को मछलियों में स्थापित किया गया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपमान के गुण का उपमेय में स्थापन—

क. अंघ्रिदंडो हरेरूर्ध्वमुत्क्षिप्तो बलिनिग्रहे ।
विधिविष्टरपद्मस्य नालदंडो मुदेऽस्तु वः ॥

"दैत्यराज बलि के बंधन के समय ऊपर उठाया हुआ विष्णु का चरण, जो ब्रह्मा के आसनरूपी पद्म का नालदड है, आपलोगों को प्रसन्न करे।" यहाँ विष्णु के चरण (उपमेय) का नालदंड (उपमान) पर आरोप है।

ख. रसवारे प्यारे परम, अरुनारे अति ऐन।
कमलन के गुन गहि रहे, नवनागरि तुव नैन ॥

यहाँ (उपमान) कमलों के गुण को नायिका के नेत्रों (उपमेय) में स्थापित किया गया है।

३. तृतीय निदर्शना—जब अपने सत् या असत् (अच्छे और बुरे) गुण (क्रिया) के द्वारा दूसरों को सत् या असत् का ज्ञान हो तो तृतीय निदर्शना होती है। इसे सदसदर्थ निदर्शना भी कहते हैं।

अपने सत् गुण से दूसरों को सत्गुण का ज्ञान—

क. चूडामणि पदे धत्ते यो देवं रविमागतम्।
सतां कार्याऽऽतिसेवेति बोधयन् गृहमेधिनः ॥

"अपने समीप आए हुए सूर्यदेव को सिर पर धारण करते हुए उदय-पर्वत गृहस्थों को यह शिक्षा देता है कि घर आए व्यक्तियों का आतिथ्य सत्कार करना चाहिए।" यहाँ उदय-पर्वत के द्वारा सत् शिक्षा का वर्णन है।

ख. नीचौ तरुवर ह्वै रह्यौ, यहै सिखावन देत।
चहिय बड़न में नम्रता, तब बड़पन छबि देत ॥

वृक्ष का नीचा होकर बड़ों में विनम्रता की शिक्षा देने के वर्णन में सत्-निदर्शना है।

असद्गुण के द्वारा असद्गुण का बोध—

क. उन्नतं पदमवाप्य यो लघुर्हेलयैव स पतेदिति ब्रुवन्।
शैलशेखरगतः पृषद्गणश्चारुमारुतधुतः पतत्यधः ॥

"पर्वत के शिखर पर पहुँचा हुआ पाषाणकण मद वायु से कंपित होकर यह कहता हुआ नीचे गिरता है कि जो नीच या अल्प बुद्धिवाला है, वह उच्च पद को पाकर सहज ही गिर जाता है।" यहाँ पाषाणकण के नीचे गिरने में अल्प बुद्धिवालों को उच्चपद पाकर नीचे गिरने की शिक्षा दी गई है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ख. पद कंदुक सिखवत सबहिं, सहि सहि लात अघात।
सारहीन संसार में लातन मारे जात ॥

—पैर से ठोकर खाते हुए गेंद द्वारा यह शिक्षा मिलती है कि मूर्ख लोग लात से मारे जाते हैं।

दृष्टांत और निदर्शना—निदर्शना और दृष्टांत दोनों में दो वाक्य होते हैं। दृष्टांत के दोनों ही वाक्य स्वतंत्र होते हैं और अर्थ की सहायता के लिए उनमें पारस्परिक सहायता अपेक्षित नहीं होती; पर निदर्शना के दोनों ही वाक्य परस्पर सापेक्ष होते हैं और उनमें एक दूसरे की सहायता से अर्थ की संगति बैठती है। निदर्शना में बिंबप्रतिबिंबभाव का बोध होने पर अर्थ की प्रतीति होती है; किंतु दृष्टांत में अर्थ-संगति के पश्चात् बिंबप्रतिबिंबभाव की कल्पना की जाती है [**बिंबप्रतिबिंब भाव के लिए दे० दृष्टांत**]।

निद्रा—संचारी भाव। [**दे० संचारी भाव**] श्रम, मद, आलस्य आदि के कारण इंद्रियों के व्यापार का बंद हो जाना या बाह्य विषयों से चित्त की निवृत्ति निद्रा संचारी है।

भरत के अनुसार निद्रा संचारी भाव दुर्बलता, श्रम, क्लम (थकान), मद, आलस्य, चिंता, अति भोजन आदि विभावों द्वारा उत्पन्न होता है। इसका अभिनय मुँह के भारी होने, शरीर को देखने, नेत्रों के घूमने, शरीर के झूमने, जँभाई लेने, उच्छ्वास, शरीर के शिथिल करने, नेत्र मूँदने आदि अनुभावों द्वारा किया जाता है।

निद्रानाम—दौर्बल्यश्रमक्लममदालस्यचिंताऽव्याहारस्वभावादिभिर्विभावैः समुत्पद्यते। तामभिनयेद्वदनगौरवशरीरावलोकन नेत्रघूर्णनगात्रविजृंभणमान्द्योच्छ्वसितसन्नगात्रताऽक्षिनिमीलनादिभिरनुभावैः।

आलस्याद्दौर्बल्यात्क्लमाच्छ्रमाच्चिंतनात्स्वभावाच्च।
रात्रौ जागरणादपि निद्रा पुरुषस्य संभवति ॥
तां मुखगौरवगात्रप्रतिलोलनयनमीलनजडत्वैः।
जृंभणगात्रविमर्दैरनुभावैरभिनयेत्प्राज्ञः ॥

—नाट्यशास्त्र, ७/७१,७२

धनंजय ने मन के संमीलन (क्रियाओं के रुक जाने) को निद्रा कहा है। यह चिंता, आलस्य तथा श्रम के कारण उत्पन्न होती है। इसके अनुभाव हैं—जृंभा (जँभाई लेना), नेत्र निमीलन (आँखों को बंद करना), सोना, अँगड़ाई लेना आदि।

४४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मनस्संमीलनं निद्रा चिंतालस्यक्लमादिभिः ।
तत्र जृंभांगभंगाक्षिमीलनोत्स्वप्नतादयः ॥

—दशरूपक, ४/२३

विश्वनाथ श्रमादि के कारण होनेवाले चित्त के निमीलन को निद्रा कहते हैं। इसके अनुभाव जृंभा, आँखों का मीचना, उच्छ्वास तथा अँगड़ाई लेना है।

चेतः संमीलनं निद्रा श्रमक्लममदादिजा ।
जृंभाक्षिमीलनोच्छ्वासगात्रभंगादिकारणम् ॥

—साहित्यदर्पण, ३/१५७

भानुदत्त ने अंतःकरण की उस विशेष वृत्ति को निद्रा कहा है, जब मन इतर इंद्रियों को छोड़ त्वचा में समा जाता है।

इतरमिंद्रियमपहाय मनस्त्वचि यदा वर्तते तदा निद्रा। सुप्तस्य कारणत्वात्सप्तात्प्राङ्निद्रा भरतेनोक्ता। स्वप्नवहनाडिकायां मनो यदा वर्तते तदा स्वप्नादिसंभवः । तत्र विभावाः स्वभावचिंताऽऽलस्यक्लमादयः। अनुभावाः पार्श्वकरणनयनभ्रूचलनविभ्रमवचनस्वप्नदर्शनादयः ।

—रसतरंगिणी, पृ० ३६४, पंचम तरंग

पंडितराज जगन्नाथ श्रमादि के कारण जायमान चित्त के संमीलन को निद्रा कहते हैं। इसके अनुभाव हैं—नेत्रनिमीलन तथा गात्रनिष्क्रियता।

श्रमादिप्रयोज्य चेतस्संमीलनं निद्रा ।
नेत्रनिमीलनगात्रनिष्क्रियत्वादयोऽस्या अनुभावाः ॥

—रसगंगाधर, पृ० १०४

उदाहरण—

क. सा मदागमनबृंहिततोषा, जागरेण गमिताखिल दोषा।
बोधिताऽपि बुबुधे मधुपैर्न, प्रातराननजसौरभलुब्धैः ॥

"मेरे आगमन से वह अत्यधिक प्रसन्न हुई और उसने सारी रात जागरण में ही व्यतीत कर दी। प्रातःकाल उसके मुख-सौरभ के कारण जब लोलुप मधुपों ने उसे जगाया, तब भी वह जाग नहीं सकी।

यहाँ नायिका की रात्रि जागरण-जनित निद्रा वर्णित है।

ख. अलस गोइ श्रम खोइए नेक सोइयहि सैन।
लाल उनींदे रैन के झँपि-झँपि आवत नैन॥

यहाँ आलस्य तथा श्रम से उत्पन्न निद्रा का वर्णन है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निपातौचित्य—औचित्य का तेरहवां भेद। [दे० औचित्य के भेद]

निपुणता—काव्य-निर्माण के एक हेतु को निपुणता कहते हैं। इसका अन्य नाम व्युत्पत्ति है। [दे० काव्यहेतु] अभिव्यंग्य एवं अभिव्यंजना को निर्दुष्ट एवं आकर्षक बनाने के लिए अध्ययन या निपुणता आवश्यक है। निपुणता का अर्थ है अध्ययन-द्वारा प्राप्त दक्षता। कवि विविध शास्त्रों एवं काव्य-परंपरा का अध्ययन कर अपनी कला को अधिक परिष्कृत कर सकता है।

नियतश्राव्य—नाटकीय वृत्त की अभिव्यक्ति का एक ढंग। जिस कथन (कथोपकथन या संवाद) को कुछ चुने हुए व्यक्ति या रंगमंच पर स्थित पात्र ही सुन सकें, उसे नियतश्राव्य कहते हैं। नियत या परिमित व्यक्तियों के लिए श्राव्य या सुनने-योग्य होने के कारण इसे नियतश्राव्य कहा जाता है। इसके दो भेद हैं—जनांतिक एवं अपवारित।

जब रंगमंच पर अन्य पात्रों के विद्यमान होने पर दो पात्र परस्पर 'त्रिपताकाकर' के द्वारा इस प्रकार मंत्रणा करें कि उसे अन्य पात्र न सुनें तो उसे जनांतिक कहते हैं। 'त्रिपताकाकर' के अंतर्गत अनामिका अंगुली को अंगूठा से दबाकर शेष तीन अंगुलियों को मुँह से लगाकर पात्र बात करता है। इस प्रकार की मुद्रा से अन्य पात्रों का अपवारण कर वार्त्तालाप होता है। जनांतिक को भी सामाजिक सुनता है और उसे सुनाना कवि को अभिप्रेत होता है।

अपवारित का अर्थ छिपाना है। इसमें मुँह को दूसरी ओर फेरकर कोई पात्र अन्य पात्र से गोपनीय बात कहता है।

> द्विधाऽन्यन्नाट्यधर्माख्यं जनांतमपवारितम्।
> त्रिपताकाकरेणान्यानपवार्यांतरा कथाम्॥
> अन्योन्यामंत्रणं यत्स्याज्जनांते तज्जनांतिकम्।
> रहस्यं कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्तापवारितम्॥

—दशरूपक, १/६५-६६

नियताप्ति—नाटकीय कथावस्तु के विकास की चतुर्थ अवस्था।

[दे० कार्यावस्था]

नियम—शोभाकरमित्र-वर्णित एक अल्पप्रसिद्ध अलंकार। अन्य का निषेध कर किसी पदार्थ का विधान करना नियम अलंकार है। यह अलंकार परिसंख्या से अभिन्न है। [दे० परिसंख्या]

अन्यनिषेधार्थोऽपि विधिर्नियमः ॥८३ —अलंकाररत्नाकर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निरर्थक—शब्ददोष का सप्तम भेद। [दे० शब्ददोष]

निरुक्ति—अर्थालंकार का एक प्रकार। इस अलंकार में किसी नाम के प्रसिद्ध अर्थ को छोड़कर व्युत्पत्ति-द्वारा अन्य चमत्कारपूर्ण अर्थ की कल्पना की जाती है। इसमें कवि किसी शब्द का मनमाना, पर युक्तिसंगत अर्थ करता है। निरुक्ति का अर्थ है 'शब्दव्युत्पत्ति' अर्थात् अर्थानुरूप शब्द का व्युत्पत्ति करना। इस अलंकार में शब्द के वास्तविक अर्थ को त्यागकर अन्य काल्पनिक अर्थ का विधान किया जाता है, इसलिए इसे निरुक्ति कहते हैं। इसमें श्लिष्ट शब्दों का प्रयोग कर कवि चमत्काराधान करता है।

इस अलंकार के उद्भावक अप्पय दीक्षित हैं। इनके पूर्व भरत-कृत 'नाट्यशास्त्र' में छत्तीस काव्यलक्षणों के अंतर्गत इसका विवेचन है। जयदेव ने भी इसका वर्णन किया है। इनके अनुसार सत्य या मिथ्या ढंग से शब्दों की व्युत्पत्ति बताना निरुक्त है। इन्होंने इसका वर्णन अलंकार के रूप में न कर 'काव्यलक्षणों' के अंतर्गत किया है। दीक्षित ने बताया कि जब यौगिक अर्थ के द्वारा वस्तुओं के नाम का अन्य अर्थ किया जाय तो निरुक्ति अलंकार होगा।

निरुक्तं स्यान्निर्वचनं नाम्नः सत्यं तथाऽनृतम् ॥

—चंद्रालोक, ३/६

निरुक्तिर्योगतोनाम्नामन्यार्थत्वप्रकल्पनम् ॥

—कुवलयानंद, १६४

रीतिकालीन आचार्यों ने भी इसका वर्णन किया है। मतिराम, दास तथा पद्माकर ने दीक्षित के लक्षण का ही अनुवाद किया।

जहाँ जोग ते नाम की अर्थ कल्पना और।
बरनत तहाँ निरुक्ति है कवि कोबिद सिरमौर ॥

—ललितललाम, ३८४

है 'निरुक्ति' जहँ नाम की अर्थकल्पना आन।

—काव्यनिर्णय, १७/३१

जहाँ नाम के जोग तें कियो अरथ कछु आन।
तहाँ निरुक्त बखानहीं कवि पंडित मतिमान ॥

—पद्माभरण, २७२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उदाहरण—

क. ईदृशैश्चरितैर्जाने सत्यं दोषाकरो भवान् ।:

—कुवलयानंद, १६४

कोई विरहिणी चंद्रमा की निंदा करती हुई कहती है कि इस प्रकार मुझे व्यथित करने से ज्ञात होता है कि चंद्रमा, तुम यथार्थ में दोषाकर या दोषों की खान हो या रात्रि करनेवाले हो [**दोषा = रात्रि, कर = करनेवाला**] यहाँ दोषाकर (चंद्रमा को दोषाकर कहते हैं) इस प्रसिद्ध अर्थ को त्यागकर अन्य अर्थ (दोष की खान) की कल्पना में निरुक्ति अलंकार हुआ ।

ख. छीनी छबि मृग मीन की, कहौं कहाँ की रीति ।
नामहि तें नहि नीति का, करै नयन ये नीति ।। —बिहारी

'नयन' शब्द की निरुक्ति करते हुए कवि कहता है कि जिसमें नय (नीति) न (नहीं) हो, उसे नयन कहते हैं । आँखों ने मृग, मीन की शोभा को छीन लिया है । किसी की वस्तु छीन लेना नीतिविरुद्ध है । आँखों का नयन नाम ही नीतिविरुद्ध कार्य करने का द्योतक है ।

उद्योतकार (नागेश) ने इसे एक विशेष प्रकार का श्लेष मानकर इसका समावेश श्लेष में किया है । [**दे० उद्योत, पृ० ५७६**] पर, यह श्लेष से भिन्न कोटि का अलंकार है; क्योंकि इसमें नामों की विचित्र कल्पना पर बल दिया जाता है और श्लेष में अनेक अर्थों के प्रतिपादन पर ।

निरंगरूपक—रूपक अलंकार का एक भेद । [**दे० रूपक अलंकार**]

निर्वहण—संधि का पंचम प्रकार । [**दे० संधि**]

निर्वेद—शांतरस का स्थायी भाव । [**दे० शांतरस**] संसार की क्षण-भंगुरता या अनित्यता को देखकर सांसारिक पदार्थों के प्रति विराग का होना निर्वेद है । इसे 'शम' भी कहते हैं ।

भरत ने शांत रस को अमान्य ठहरा दिया है; क्योंकि उसका रंगमंच पर अभिनय नहीं होता, अतः वे निर्वेद का भी वर्णन नहीं करते । 'नाट्यशास्त्र' की कतिपय प्रतियों में शांत रस तथा निर्वेद का भी वर्णन है; पर उसे विद्वान् प्रक्षिप्त मानते हैं । भरत निर्वेद को संचारी भावों के अंतर्गत स्थान देते हैं ।

आचार्य रुद्रट के अनुसार शांत रस का स्थायी भाव 'सम्यग्ज्ञान' है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सम्यग्ज्ञानप्रकृतिः शांतो विगतेच्छनायको भवति ।

—काव्यालंकार, १५/१५

आचार्य मम्मट शांतरस का स्थायी भाव निर्वेद को मानते हैं—

निर्वेदस्थायिभावोऽस्तिशांतोऽपि नवमो रसः ।

—काव्यप्रकाश, ४/४७

हेमचंद्र ने शम को शांत रस का स्थायी भाव माना है। उनके अनुसार तृष्णाक्षय या विषयवासना के भाव या इच्छा की सर्वथा निवृत्ति (क्षय) को शम कहते हैं—**तृष्णाक्षयः शमः ।** —काव्यानुशासन, पृ० १२६

रामचंद्रगुणचंद्र (नाट्यदर्पणकार) ने किसी पदार्थ को प्राप्त करने की अभिलाषा के अभाव (निस्पृहता) को शम कहा है ।

निस्पृहत्वंशमः ।—नाट्यदर्पण, दृ० ३३०, (हिंदी अनुवाद)

विद्यानाथ के अनुसार वैराग्यादि से चित्त का निर्विकार होना शम है ।

शमो वैराग्यादिना निर्विकारचित्तत्वम्

—प्रतापरुद्रीय, पृ० १६८

विश्वनाथ इच्छारहित दशा में उत्पन्न चित्त की अंतर्मुखता को शम कहते हैं ।

शमो निरीहावस्थायां स्वात्मविश्रामजं सुखम् ।

—साहित्यदर्पण, ३/१८०

पंडितराज ने शांत रस के स्थायी के रूप में निर्वेद को मान्यता दी है। इनके मत से नित्यानित्य वस्तु के विचार से उत्पन्न विषय के प्रति विरक्ति नामक भाव को निर्वेद कहा जाता है ।

नित्यानित्यवस्तुविचारजन्माविषयविरागाख्यो निर्वेदः ।

—रसगंगाधर, पृ० ३६

निर्वेद का अर्थ तत्त्वज्ञान की प्राप्ति से सांसारिक विषयवासना के प्रति वैराग्य का होना है। शम का अर्थ है शांति । विश्व के आकर्षण या विषय-वासना का शांत या क्षय हो जाना ही शम है ।

उदाहरण—

भोग में रोग बियोग सँयोग सँयोग में काम कलेस कमायो ।
त्यों 'पद्माकर' बेद पुरान पढ्यौ पढ़िकै बहु बाद बढ़ायो ।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दौर्यौ दुरास दास भयो पै कहूँ बिसराम को धाम न पायो।
कायो गमायो सु ऐसे ही जीवन हाय मैं राम को नाम न गायो ॥

यहाँ कवि ने राम-नाम का स्मरण न कर व्यर्थ जीवन व्यतीत करने में निर्वेद भाव का वर्णन किया है।

निर्वेद संचारी और स्थायी दोनों ही भावों में आता है। दोनों में अंतर स्थापित करते हुए आचार्यों का कहना है कि तत्त्वज्ञान से उत्पन्न निर्वेद स्थायी भाव है और इष्टजन वियोग, दरिद्रता, व्याधि के कारण होनेवाले निर्वेद को संचारी में परिगणित किया जाता है।

बिफल श्रमादिक तें जु कछु उर उपजत अति लाज।
सदगति हित निरबेद सो समरस को थिर भाव ॥

—जगद्विनोद, ६०४

निर्वेद—संचारी भाव का प्रथम भेद। [**दे० संचारी भाव**] जब आपत्ति, ईर्ष्या, तत्त्वज्ञान आदि के कारण व्यक्ति अपने को धिक्कारे तो निर्वेद संचारी होता है। केवल तत्त्वज्ञान के कारण उत्पन्न निर्वेद में निर्वेद स्थायी भाव होता है।

भरत ने निर्वेद के स्वरूप का वर्णन करते हुए बताया कि द्रारिद्र्य, व्याधि, अवमान, इष्टजनवियोग, तत्त्वज्ञान आदि के कारण इसकी उत्पत्ति होती है।

दारिद्र्येष्टवियोगाद्यैर्निर्वेदो नाम जायते।
संप्रधारणनिःश्वासैस्तस्य त्वभिनयो भवेत् ॥

—नाट्यशास्त्र, ७/२८

इसका अभिनय रुदन, निःश्वास, उच्छ्वास द्वारा होता है।

धनंजय के अनुसार तत्त्वज्ञान, आपत्ति, ईर्ष्या के कारण अपने को धिक्कारने में निर्वेद संचारी भाव होता है। इसके अनुभाव हैं—चिंता, अश्रु, वैवर्ण्य, उच्छ्वास और दीनता।

तत्त्वज्ञानापदीर्ष्यादेर्निर्वेदः स्वावमाननम्।
तत्र चिंताश्रुनिःश्वासवैवर्ण्योच्छ्वासदीनता ॥

—दशरूपक, ४/९

विश्वनाथ का लक्षण धनंजय से अनुप्राणित है। इनके अनुसार तत्त्वज्ञान, आपत्ति तथा आपत्ति के कारण अपने को धिक्कारना निर्वेद है। इसके अनुभाव दीनता, चिंता, अश्रु, भय, दीर्घश्वास तथा उच्छ्वास हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तत्त्वज्ञानापदीर्ष्यादेर्निर्वेदः स्वावमाननम् ।
दैन्यचिंताश्रुनिःश्वासवैवर्ण्योच्छ्वासितादिकृत् —३/१५२

भानुदत्त ने बतलाया कि अपने को तुच्छ समझना या सांसारिक पदार्थों और विषयों को तुच्छ मानना निर्वेद है। इसके अनुभाव हैं—स्वेद, ज्ञान का प्रकाश, चिंता, अश्रुपात आदि।

स्वावमानं निर्वेदः संसारे हेयत्वबुद्धिर्वा निर्वेदः। तत्र विभावास्तत्त्वज्ञानापदीर्षादयः। अनुभावाः स्वेदप्रकाशचिंताश्रुपातादयः।

—रसतरंगिणी, पृ० ३४१ पंचम तरंग।

आलंबन-भेद के आधार पर पंडितराज जगन्नाथ ने निर्वेद के दो प्रकार किए हैं—नीचपुरुषोत्पन्ननिर्वेद तथा उत्तमपुरुषोत्पन्ननिर्वेद। नीचपुरुषगत निर्वेद आक्रोश, अपशब्द, अपमान, रोग, ताड़न, दरिद्रता, अभीष्ट पदार्थ की अप्राप्ति तथा परसंपत्ति के दर्शन से उत्पन्न होता है। उत्तमप्रकृतिगत निर्वेद की उत्पत्ति अवज्ञा के कारण होती है। दोनों के ही अनुभाव रुदन, दीर्घ निःश्वास और दैन्य हैं।

नीचपुरुषेष्वाक्रोशाधिक्षेपव्याधिताड़नदारिद्र्येष्टविरहपरसंपद्दर्शनादिभिः, उत्तमेषु तत्त्वज्ञानादिभिर्जनिता विषयद्वेषाख्या रोदनदीर्घश्वासदीनमुखतादिकारिणी चित्तवृत्तिर्निर्वेदः॥ —रसगंगाधर, पृ० ११७

उदाहरण—

क. प्राप्ताः श्रियः सकलकामदुघास्ततः किं
दत्तं पदं शिरसि विद्विषतां ततः किम्।
संप्रीणिताः प्रणयिनो विभवैस्ततः किं
कल्पं स्थितं तनुभृतां तनुभिस्ततः किम्॥

"सभी इच्छाओं को पूर्ण करनेवाला यदि ऐश्वर्य ही प्राप्त हो जाय तो क्या? यदि शत्रु के सिर पर पैर रख दिया जाय तो इससे क्या होना है? यदि मित्रों और प्रेमियों को वैभव से परितृप्त कर दिया जाय तो क्या लाभ? यदि मनुष्य के शरीर प्रलय-पर्यंत जीवन धारण करते रहें तो इससे क्या लाभ?" यहाँ सांसारिक वैभव को व्यर्थ मानने में निर्वेद संचारी है।

ख. अब प्रभु कृपा करहु यहि भाँती।
सब तजि भजन करौं दिन राती॥ —रामायण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सब को छोड़कर प्रभु का भजन करने में निर्वेद संचारी है।

निर्हेतुत्व—अर्थदोष का आठवाँ भेद। [दे० अर्थदोष]

निश्चय – महापात्र विश्वनाथ-वर्णित एक नवीन अलंकार। अन्य या उपमान का निषेध कर प्रकृत या उपमेय की स्थापना के वर्णन में निश्चय अलंकार होता है।

> अन्यन्निषिध्य प्रकृतस्थापनं निश्चयः पुनः ॥
>
> —साहित्यदर्पण, १०/३९

यह अलंकार अपह्नुति की श्रेणी का है, जिसमें उपमेय का (मूल वस्तु या सत्य) निषेध कर उपमान (अन्य या असत्य पदार्थ) का स्थापन [दे० अपह्नुति] होता है। पर, निश्चय में अपह्नुति के विपरीत उपमान या अप्रस्तुत पदार्थ का निषेध कर उपमेय की स्थापना की जाती है। विश्वनाथ ने इसका उदाहरण इस प्रकार दिया है—

> वदनमिदं न सरोजं, नयने, नेंदीवरे एते।
>
> इह सविधे मुग्धदृशो भ्रमर, मुधा किं परिभ्रमसि ॥

"हे भौंरे, यह मुख है, कमल नहीं और ये दोनों नेत्र हैं, नील कमल नहीं। तुम इस सुंदरी के पीछे व्यर्थ क्यों चक्कर काटते हो ?" विद्यापति का यह पद्य इसका सुंदर उदाहरण है—

> कत न वेदन मोहि देसि मदना।
>
> हर नहिं बला, मोहि जुवति जना ॥
>
> विभूति भूषण नहिं, चाननक रेनू।
>
> बघछाल नहिं, मोरा नेतक बसनू ॥

निश्चयालंकार की स्वतंत्र सत्ता सिद्ध करते हुए विश्वनाथ कहते हैं कि यह संदेह, भ्रांतिमान् एवं अपह्नुति से भिन्न कोटि का अलंकार है। इसे निश्चयांत संदेहालंकार नहीं कहा जा सकता; क्योंकि उसमें संशय एवं निश्चय एक ही में रहते हैं अर्थात् जिस व्यक्ति को संशय होता है, उसी को अंततः निश्चय हो जाता है; पर निश्चय में संशय एक को होता है और अन्य को प्रारंभ से ही निश्चय रहता है।

नह्ययं निश्चयांतः संदेहः। तत्र संशयनिश्चययोरेकाश्रयत्वेनाऽवस्थानात्। अत्र तु भ्रमरादेः संशयो नायकादेर्निश्चयः। किंच न भ्रमरादेरपि संशयः। तर्हि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भ्रांतिमानस्तु। अस्तु नाम भ्रमरादेर्भ्रांतिः। न चेहतस्याश्चमत्कारविधायित्वम्। अपितु तथाविधनायकाद्युक्तेरेवेति सहृदयसंवेद्यम्। किंचाविवक्षितेपि भ्रमरादेः पतनादौ भ्रांतौ वा नायिका चाद्वादिरूपेणैव संभवति तथाविधोक्तिः। न च रूपकध्वनिरयम्, मुखस्य कमलत्वेनाऽनिर्धारणात्। न चापह्नुतिः प्रस्तुतस्यानिषेधात् इति पृथगेवाऽयमलंकारश्चिरंतनोक्तालंकारेभ्यः।

—साहित्यदर्पण, १०/३६

निषण्ण—कवि का एक प्रकार। यह विभाग या भेद काव्योपासनामूलक है। [दे० कवि] जो कवि रसावेश के समय काव्य-रचना में प्रवृत्त हो, उसे निषण्ण कहते हैं। काव्य-क्रिया में अभिनिवेश होने पर ही वह काव्य-सर्जन करता है।

निषेधाक्षेप—आक्षेप अलंकार का तृतीय भेद। [दे० आक्षेप]

निसृष्टार्था—दूती का एक प्रकार। [दे० दूती] जो नायक-नायिका की मनोभावना को जानकर चतुरता से ठीक-ठीक कार्य करे, उसे निसृष्टार्था दूती कहते हैं।

निहतार्थ—शब्ददोष का पंचम प्रकार। [दे० शब्ददोष]

निह्नुतयोनि—प्राचीन काव्य के अनुकरण पर निर्मित काव्य। [दे० काव्य-संवाद]

नीलीराग—[दे० पूर्वराग]

नेता—काव्य या नाटक के समस्त कार्य-व्यापार का फलभोक्ता नेता कहा जाता है। इसे नायक या अधिकारी भी कहते हैं। नेता का शाब्दिक अर्थ मार्गदर्शक या अगुआ है। नाट्यशास्त्र में यह प्रधान पात्र या नायक का द्योतक है। [दे० नायक]

नेयार्थ—शब्ददोष का तेरहवाँ भेद। [दे० शब्ददोष]

न्यून—अलंकार में न्यून शब्द उपमेय का वाचक है। [दे० भामह-कृत काव्यालंकार, ३/२७]

न्यून अभेद रूपक—रूपक अलंकार का एक भेद। [दे० रूपक अलंकार]

न्यूनतद्रूप रूपक—रूपक अलंकार का एक भेद। [दे० रूपक अलंकार]

न्यूनपदता—वाक्यदोष का पंचम प्रकार। [दे० वाक्यदोष]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प

पठिति—भोज-वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। जब काकु, स्वर, पदच्छेद, भेद, अभिनय एवं कांति के द्वारा किसी वाक्य के अर्थ का परिवर्त्तन हो जाय तो वहाँ पठिति अलंकार होता है।

काकुस्वरपदच्छेदभेदाभिनयकांतिभिः ।
पाठो योऽर्थविशेषाय पठिति सेह षड्विधा ॥

—सरस्वतीकंठाभरण, २/५६

पंडितराज जगन्नाथ—इनका समय सत्रहवीं शती का मध्य है। काव्य-शास्त्रविषयक इनकी दो रचनाएँ प्राप्त होती हैं—'रसगंगाधर' और 'चित्र-मीमांसाखंडन'। ये शाहजहाँ के दरबार में थे और इन्हें आसफ खाँ के दरबार में भी आश्रय प्राप्त हुआ था। इनके पिता का नाम पेरमभट्ट (पेरुभट्ट) तथा माता का नाम लक्ष्मी था। इनका जन्म तैलंग ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। इनके द्वारा रचित ग्रंथों के नाम हैं—'अमृतलहरी', 'आसफ विलास', 'करुणा-लहरी', 'जगदाभरण', 'पीयूषलहरी', 'प्राणाभरण', 'भामिनीविलास', 'यमुना-वर्णन', 'गंगालहरी', 'लक्ष्मीलहरी', 'मनोरमा कुचमर्दन' (व्याकरणग्रंथ), 'चित्रमीमांसाखंडन' (अप्पयदीक्षित-कृत चित्रमीमांसा की आलोचना) तथा 'रसगंगाधर'।

'रसगंगाधर' इनका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है, जिसे संस्कृत काव्यशास्त्र की अंतिम प्रौढ़ रचना कहते हैं। यह दो आननों में विभाजित है। प्रथम आनन में काव्यलक्षण, काव्यहेतु, काव्य के भेद, ध्वनि के भेद, रस, भाव, गुण एवं शब्दशक्तियों का विवेचन है। द्वितीय आनन में सत्तर अलंकारों का विवेचन है, जिनमें तिरस्कार नामक एक नवीन अलंकार भी है। अलंकारों का विवेचन करते समय पूर्ववर्ती आचार्यों के लक्षणों एवं उदाहरणों में दोष दिखलाकर उनका नए ढंग से विश्लेषण किया गया है। पंडितराज ने शब्दालंकारों का वर्णन नहीं किया है। शब्दशक्तियों के अंतर्गत अलंकारों का विवेचन कर पंडितराज ने काव्यशास्त्र के इतिहास में नवीन शृंखला स्थापित की है।

'रसगंगाधर' उत्तरालंकार तक ही प्राप्त होता है। लेखक की असामयिक मृत्यु के कारण यह ग्रंथ अपूर्ण है। इसकी रचना नव्यन्याय की शैली पर हुई

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है, जो अत्यंत गंभीर और दुरूह है। इन्होंने किसी नवीन काव्यशास्त्रीय सिद्धांत की स्थापना न कर पूर्ववर्ती अनेक मान्यताओं का परिमार्जन और प्रतिष्ठापन किया है। काव्य के स्वरूप, भेद तथा हेतु के संबंध में पंडितराज ने नवीन मत व्यक्त किए हैं। [**इनके काव्य-संबंधी मत के लिए दे० काव्य-लक्षण, काव्य-भेद, काव्य हेतु आदि तथा रस-संबंधी विचार के लिए रस-संप्रदाय।**]

इनकी रस विषयक मान्यता अद्वैत वेदांत पर अधिष्ठित है। इन्होंने श्रुति का आधार ग्रहणकर रत्यादि से युक्त आवरणरहित चैतन्य को रस माना है।

'रसगंगाधर' पर नागेश भट्ट ने 'गुरुमर्मप्रकाश'-टीका की रचना की है। पंडित बदरीनाथ झा ने इस पर विस्तृत टीका लिखी है। इसके तीन हिंदी अनुवाद हो चुके हैं।

१. पुरुषोत्तम शर्मा चतुर्वेदी-कृत हिंदी अनुवाद तीन खंडों में—नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

२. पंडित मदनमोहन शास्त्री-कृत हिंदी व्याख्या—(बदरीनाथ झा की संस्कृत टीका के साथ) तीन खंडों में, चौखंबा-संस्कृत-सीरीज, वाराणसी से प्रकाशित।

३. पंडित मधुसूदन शर्मा-कृत संस्कृत-हिंदी टीका (गुरुमर्म प्रकाश के साथ) भाग—१, हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी से प्रकाशित।

पण्यकामिनी—वेश्या या गणिका का नाम पण्यकामिनी है। [**दे० गणिका**]

पण्यस्त्री—पण्य (बाजार) स्त्री का अर्थ है बाजारू औरत। इसे गणिका या वेश्या कहते हैं। [**दे० गणिका**]

पतत्प्रकर्षता—वाक्यदोष का सातवाँ भेद। [**दे० वाक्यदोष**]

पताका—प्रासंगिक कथावस्तु का एक भेद। [**दे० अर्थप्रकृति**]

पताकास्थानक—नाटक में प्रस्तुत अथवा आगंतुक वस्तु की पूर्व सूचना देने का साधन। यह सूचना अन्योक्ति या समासोक्ति द्वारा दी जाती है। 'नाट्य के उस स्थान पर, जहाँ नाटककार किसी एक प्रयोजन या उपाय की चिंता कर रहा है, उसके समान अन्य प्रयोजन अथवा उपाय की अकस्मात् अतर्कित उपस्थिति हो जाय' तो उसे **पताकास्थानक** कहा जाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यत्रार्थे चिंतितेऽन्यस्मिंस्तल्लिंगोऽन्यः प्रयुज्यते ।
आगंतुकेन भावेन पताकास्थानकं तु तत् ।।

——साहित्यदर्पण, ६/४५

पताकास्थानक एक प्रकार के इतिवृत्त को कहते हैं, जिसका उद्देश्य मुख्य कथा में वैचित्र्य का समावेश करना है।

तेन पताकास्थानकमितिवृत्तमेवोच्यते । तत्र वर्ण्यमानं तु जडाजडरूपं पताकासदृशमित्यर्थादुक्तं भवति। स चान्योऽर्थस्तल्लिंगस्तन्मुख्यमर्थं लिंगयति विचित्रयतीति । —अभिनवभारती, १९/३० नाट्यशास्त्र ।

नाटककार प्रासंगिक कथा में चमत्कारपूर्ण धारावाहिकता का समावेश करने के लिए ही 'पताकास्थानक' की योजना करता है। इसका प्रयोग उस स्थिति में होता है, जब करना कुछ और हो और अकस्मात् किसी कारण के उपस्थित हो जाने पर कुछ और ही करना पड़ जाय। 'अर्थात् जहाँ प्रस्तुत भाव एक हो और आगंतुक भाव कुछ और ही कार्य करा डाले, वहाँ पताकास्थानक होता है।' —रूपकरहस्य, पृ० ५३

'पताकास्थानक' के चार प्रकार हैं—

चिंतितार्थपरप्राप्तिर्वृत्ते यत्रोपकारिणी ।
पताकास्थानकं तत्तु चतुर्धा मंडनं क्वचित् ।।

——नाट्यदर्पण, १/३०

१. **प्रथम पताकास्थानक**—जहाँ सहसा, किसी प्रेमयुक्त उपचार से, नायक को अभीष्ट सिद्ध हो जाए, वहाँ प्रथम पताकास्थानक होता है।

सहसैवार्थसंपत्तिर्गुणवत्युपचारतः ।
पताकास्थानकमिदं प्रथमं परिकीर्तितम् ।।

—साहित्यदर्पण, ६/४६

यहाँ सामाजिकों (दर्शकों) को सहसा इष्टसिद्धि का परिचय प्राप्त हो जाता है। उदाहरण के लिए 'रत्नावली' नाटिका (तृतीय अंक) का वह दृश्य, जहाँ राजा उदयन छद्मवेषधारिणी सागरिका को वास्तविक वासवदत्ता समझकर उसे कंठपाश (फाँसी) से मुक्त करने का प्रयत्न करता है; उसे यह जानकर आश्चर्यजनित आनंद होता है कि उसने अपनी प्यारी सागरिका को ही बचा लिया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२. द्वितीय पताकास्थानक—जहाँ प्रस्तुत विषय के वर्णन में इस प्रकार के श्लिष्ट वचन का विन्यास हो, जिससे कि वह अप्रस्तुत के लिए भी उपयुक्त हो जाए, वहाँ द्वितीय पताकास्थानक होगा। इसमें श्लिष्ट वचन प्रयुक्त होते हैं।

वचः सातिशयं श्लिष्टं नानाबंधसमाश्रयम्।
पताकास्थानकमिदं द्वितीयं परिकीर्तितम्॥

—साहित्यदर्पण, ६/४७

जैसे 'शकुंतला' नाटक के द्वितीय अंक में, जहाँ नेपथ्य से यह कथन सुनाई पड़ता है—'चकवी, तू अपने प्रिय से विदा ले।'

यहाँ सामाजिक इसे नायक-नायिका से संबद्ध जानकर आनंदित होता है।

३. तृतीय पताकास्थानक—तृतीय पताकास्थानक वहाँ होता है, जहाँ इस प्रकार के श्लिष्ट प्रत्युत्तर का विधान हो, जिससे शब्द केवल प्रस्तुत अर्थ से ही संबद्ध न होकर, भावी अर्थ को भी सूचित करे।

अर्थोपक्षेपकं यत्तु लीनं सविनयं भवेत्।
श्लिष्टप्रत्युत्तरोपेतं तृतीयमिदमुच्यते॥

—साहित्यदर्पण, ६/४८

उदाहरण के लिए 'वेणीसंहार' नाटक (द्वितीय अंक) में कंचुकी द्वारा दुर्योधन को सूचना देने में—'भीम (वायु) ने आपके रथ की ध्वजा को तोड़ दिया है।' यहाँ भविष्य में भीम द्वारा जंघा तोड़ने की भी सूचना होती है।

४. चतुर्थ पताकास्थानक—जहाँ ऐसे द्व्यर्थक या श्लेषयुक्त वचनों का विन्यास हो, जिसमें प्रधान फल की भी सूचना प्राप्त हो जाए, वहाँ चतुर्थ-पताकास्थानक होगा।

द्व्यर्थो वचनविन्यासः सुश्लिष्टः काव्ययोजितः।
प्रधानार्थांतराक्षेपी पताकास्थानकं परम्॥

—साहित्यदर्पण, ६/४९

जैसे 'रत्नावली' नाटिका में राजा के इस कथन में कि 'आज मैं इस लता को अन्य कामिनी के समान देखता हुआ देवी के मुख को क्रोध से लाल बनाऊँगा' यहाँ श्लिष्ट वचन से आगामी घटना अर्थात् सागरिका के प्रेम के कारण वासवदत्ता के मुख के क्रोध से लाल होने की सूचना दी गई है।

Nepal-Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पति—नायक का एक भेद। यह भेद सामाजिक संबंध के आधार पर किया गया है। [दे० **नायक**] जो नायिका (स्वकीया) का विधिपूर्वक पाणि-ग्रहण करे, उसे पति कहते हैं।

विधिवत्पाणिग्राहकः पतिः। —रसमंजरी, पृ० १७१

स्वभावानुसार इसके चार भेद होते हैं—अनुकूल, दक्षिण, धृष्ट और शठ।

अनुकूल-दक्षिण-धृष्ट-शठभेदात्पतिश्चतुर्धा।

—रसमंजरी, पृ० १७३

रीतिकालीन आचार्यों ने बताया कि जो नायक, पत्नी (स्वकीया) या ब्याही स्त्री में अनुरक्त रहे, उसे पति कहते हैं।

निज ब्याही तिय को रसिक पति ताकों पहिचानि।

—भिखारीदास, शृंगार-निर्णय, १०

बिधि सों ब्याह्यौ पति कह्यो कवि मतिराम सुजान।।

—रसराज, २४०

जो बिधि सों ब्याह्यो तियनि, सोई पति सब ठौर।।

—जगद्विनोद, २८२

उदाहरण—

क. **त्वं पीयूषमयूख ? मुंच शिशिरस्निग्धान्सुधाशीकरान्।**
त्वं भोगींद्र ? विलंबसे किमु फणाभोगैः शनैर्वीजय।
त्वं स्वर्वाहिनि ? किंच सिंच सलिलैरंगैः शिरीषोपमैः
सेयं शैल सुता कठोरमहसः कांत्या पथि क्लाम्यति।।

—रसमंजरी, १००

यहाँ पार्वती को सूर्यातप से पीड़ित देखकर शंकर द्वारा अपने अधीनस्थ व्यक्तियों को आदेश देने का वर्णन है—

"हे अमृत की किरणवाले चंद्रमा, तुम शीतल अमृत के छींटे बरसाओ। हे सर्पराज ! तुम विलंब क्यों कर रहे हो, अपने फणों के पंखे को धीरे-धीरे झलो। हे गंगे, तुम पार्वती को अपने शीतल जल से नहलाओ। क्योंकि, शिरीष के पुष्प के समान कोमलांगी पार्वती मार्ग में सूर्य के कठोर आतप से पीड़ित हो रही है।" यहाँ पार्वती के प्रति शंकर का अनुराग व्यंजित हो रहा है।

ख. **आई चालि सु ससिमुखी, नख-सिख रूप अपार।**
दिन-दिन तिय-जोबन बढ़त, छिन-छिन पिय को प्यार।।

—जगद्विनोद, २८४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पति के चार भेदों का वर्णन रीतिकालीन आचार्यों ने भी किया है।
मतिराम का मत—

चारि भाँति सों बरनिए प्रथम कहत अनुकूल।
दच्छिन गन सठ धृष्ट पुनि रस सिंगार को मूल॥

—रसराज, २४३

अनुकूल—जो अपनी पत्नी से सदा प्रेम करे, उसे अनुकूल कहते हैं। [**दे० अनुकूल**] यह पर-स्त्री से सदा विमुख रहता है।

दक्षिण—अनेक नायिकाओं को एक-समान प्यार करनेवाला नायक दक्षिण है। [**दे० दक्षिण**]

शठ—अपराधी होने पर भी जो तिरस्कृत व्यक्ति नायिका की विनती करे, उसे शठ कहते हैं। [**दे० शठ**]

धृष्ट—यह कपटी एवं निर्लज्ज होता है तथा अपराधी होकर भी नायिका को ठगता है। [**दे० धृष्ट**]

पत्रहारी—दूती का एक प्रकार। [**दे० दूती**] जो (दूती) केवल पत्र पहुँचावे, उसे पत्रहारी कहते हैं।

पथिकवधू—विरहिणी (वियोगिनी) का नाम पथिकवधू है। जिसका प्रिय या पति निश्चित या अनिश्चित अवधि के लिए देशांतर चला जाय और उसके वियोग में वह खिन्न रहे तो उसे पथिकवधू या प्रोषितपतिका कहते हैं।
—[**दे० प्रोषितपतिका**]

पदपरार्धवक्रता—वक्रोक्ति या वक्रता का एक प्रकार, जिसमें पदों के उत्तरार्ध की वक्रता या चमत्कार का विचार किया जाता है। [**दे० वक्रोक्ति-सिद्धांत**] पदपूर्वार्धवक्रना के अंतर्गत पदों के पूर्वार्ध या प्रातिपदिक एवं धातु के चमत्कार या वक्रता का निरूपण किया जाता है। [**दे० पदपूर्वार्धवक्रता**] पदपरार्धवक्रना को प्रत्ययवक्रता के नाम से भी अभिहित करते हैं। इसके छह उपभेद हैं—कालवैचित्र्यवक्रता, कारकवक्रता, संख्यावक्रता, पुरुषवक्रता, उपग्रह-वक्रता एवं प्रत्ययवक्रता।

१. कालवैचित्र्यवक्रता—जब काल या समयविशेष पर चमत्कार आश्रित हो तो उसे कालवैचित्र्यवक्रता कहते हैं। इसमें औचित्य के अनुकूल समय रमणीयता या चमत्कार को प्राप्त करता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

औचित्यांतरतम्येन समयो रमणीयताम् ।
याति यत्र भवत्येषा कालवैचित्र्यवक्रता ।।

—वक्रोक्तिजीवित, २/२६

क. समविसमनिव्विसेसा समंतदो मंदमंदसंचारा ।
अइरो होहिंति पहा मनोरहाणमपि दुल्लंघा ।।

—गाथासप्तशती, ६७५

[समविषमनिर्विशेषाः समंततो मंदमंदसंचाराः ।
अचिराद् भविष्यंति पंथानो मनोरथानामपि दुलंघ्या ।।]

प्रिया के विरह से व्यथित पथिक आगे आनेवाले वर्षाकाल का चित्र प्रस्तुत कर रहा है—यहाँ चारों ओर से ऊँचे-नीचे स्थानों की विशिष्टताओं का भेद मिट गया है तथा धीरे-धीरे चलने-योग्य मार्ग भी मनोरथों के लिए दुर्लंघ्य हो जाएँगे। यहाँ 'हो जाएँगे' इस भविष्यत्कालिक क्रिया की रमणीयता या चमत्कार का कारण या आधार है। इसमें वर्षाकाल के आगमन की संभावना से ही भय का सुंदर वर्णन किया गया है। यदि उसका आगमन हो जाएगा तो भय की स्थिति क्या होगी ? यह भयव्यंजना काल पर आश्रित है।

नासा मोरि नचाय दृग करी कका की सौंह ।
काँटे सी कसकति हियें गड़ी कटीली भौंह ।।

यहाँ 'कसकति' क्रिया में कालगत रमणीयता या चमत्कार है। भौंहें भूत काल में गड़ी थीं; पर वे अब भी कसक रही हैं। यहाँ 'कसकति' क्रिया रूप वर्त्तमान काल ही इस दोहे के चमत्कार का आधार है।

२. **कारकवक्रता**—इसमें कारक की विचित्रता ही रमणीयता या वक्रता का आधार होती है। इस वक्रता में कवि किसी कथन की अभिव्यक्ति के लिए कारकों का विपर्यय कर देता है अर्थात् सामान्य कारक का प्रधान रूप से या प्रधान कारक का सामान्य रूप से कथन कर किसी अपूर्व भंगिमा का प्रतिपादन किया जाय तो कारकवक्रता होती है। यहाँ कर्त्ता को कर्म या करण का रूप दिया जाता है या कर्म या करण को कर्त्ता का।

यत्र कारक सामान्यं प्राधान्येन निबध्यते ।
तत्त्वाध्यारोपणान्मुख्यगुणभावाभिधानतः ।।
परिपोषयितुं कांचिद्भंगीभणितिरम्यताम् ।
कारकाणां विपर्यासः सोक्ता कारकवक्रता ।।

—वक्रोक्तिजीवित, २/२७, २८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क. पाणिः संप्रति मे हठात् किमपरं स्प्रष्टुं धनुर्धावति ।।

'अब मेरा हाथ हठात् धनुष को धारण करने के लिए दौड़ रहा है।'

यहाँ कई दिनों तक समुद्र से मार्ग माँगने के लिए प्रार्थनानिरत राम, अंततः उसकी निष्ठुरता से क्रुद्ध होकर कह रहे हैं।

कवि ने इस श्लोक में हाथ का प्रयोग कर्त्ता कारक के रूप में कर चमत्कार की सृष्टि की है, वस्तुतः उसका प्रयोग करण कारक के रूप में होना चाहिए था।

ख. हर धनुर्भंग को पुनर्वार ज्यों उठा हस्त।

—'निराला'

यहाँ भी 'हस्त' का प्रयोग कर्त्ता के रूप में करके चमत्कार उत्पन्न किया गया है।

३. संख्या (वचन) वक्रता—जब कवि अत्यधिक सौंदर्य-सृष्टि के लिए काव्य में वचन-विपर्यय (इच्छापूर्वक) कर दे तो वहाँ संख्यावक्रता होगी।

कुर्वंति काव्यवैचित्र्यविवक्षा परतंत्रिताः ।
यत्र संख्याविपर्यासं तां संख्या वक्रतां विदुः ।।२/२६

वयं तत्त्वान्वेषान्मधुकर हतास्त्वं खलु कृती।

—शकुंतला

"हे भौंरे, हम तो तत्त्वान्वेषण में ही लगे रहे और तुम कृतार्थ हो गए।"

हम पूछत जातहि पाँति मरे,
धनि रे धनि भौंर कहावत तू।

यहाँ राजा दुष्यंत का अपने लिए एकवचन का प्रयोग न कर विरक्ति के भाव की व्यंजना के लिए बहुवचन 'वयं' (हम) का प्रयोग करना संख्यावक्रता या वचन की रमणीयता है।

४. पुरुषवक्रता—जब कवि वैचित्र्य की सृष्टि के लिए पुरुषों का (उत्तम पुरुष और मध्यम पुरुष) विपर्यय कर दे या विपरीत रूप से प्रयोग करे तो पुरुषवक्रता होती है।

प्रत्यक्तापरभावश्च विपर्यायेन योज्यते ।
यत्र विच्छित्तये सैषा ज्ञेया पुरुषवक्रता ।।

—वक्रोक्तिजीवित, २/३०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क. कौशांबीं परिभूय नः कृपणकैर्विद्वेषिभिः स्वीकृतां
जानाम्येव तथा प्रमादपरतां पत्युर्नयद्वेषिणः ।
स्त्रीणांच प्रियविप्रयोगविधुरं चेतः सदैवात्र मे
वक्तुं नोत्सहते मनः परमतो जानातु देवी स्वयम् ।।

"राजनीति से विद्वेष रखनेवाले महाराज की वैसी लापरवाही (जिसके कारण) मामूली से शत्रुओं के द्वारा हमलोगों को पराजित करके कौशांबी ग्रहण कर ली गई। स्त्रियों का हृदय प्रियतम के वियोग से विह्वल होता ही है; अतः इस विषय में मेरा मन सदा से ही कुछ कह सकने में असमर्थ रहा है। इसके आगे स्वयं देवी जानें कि उन्हें क्या करना चाहिए।"

यहाँ कवि ने 'आप' मध्यम पुरुष के बदले 'देवी' शब्द का प्रयोग कर पुरुष संबंधी वक्रता का उदाहरण प्रस्तुत किया है।

हिंदी में भी ऐसे प्रयोग देखे जाते हैं—

करके ध्यान आज इस जन का निश्चय वे मुसकाये।
फूल उठे हैं कमल, अधर-से ये बंधूक सुहाये ।।

—'साकेत'

यहाँ 'मेरे' के स्थान पर 'इस जन' के प्रयोग में वैचित्र्य या रमणीयता का समावेश हुआ है।

५. **उपग्रहवक्रता**—जब कवि औचित्य के कारण रमणीयता की सृष्टि के लिए आत्मनेपद एवं परस्मैपद में से किसी एक का प्रयोग करे तो उपग्रह-वक्रता होती है।

पदयोरुभयोरेकमौचित्याद् विनियुज्यते ।
शोभायै यत्र जल्पंति तामुपग्रहवक्रताम् ।।

—वक्रोक्तिजीवित, २/३१

क. तस्यापरेष्वपि मृगेषु शरान्मुमुक्षोः
कर्णांतमेत्य बिभिदे निविडोऽपि मुष्टिः ।
त्रासातिमात्रचटुलैः स्मरयत्सु नेत्रैः
प्रौढप्रियानयन विभ्रमचेष्टितानि ।।

"भय के कारण अत्यंत चपल नयनों से प्रिय के नेत्रों के विलास का स्मरण दिलानेवाले दूसरे मृगों पर बाण छोड़ने की इच्छा रखनेवाले राजा (दशरथ)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ने अपनी दृढ मुट्ठी को कान तक ले जाकर भी शिथिल कर दिया।" यहाँ **'बिभिदे'** (शिथिल पड़ गई) आत्मनेपद का प्रयोग अत्यंत चमत्कारक है।

ख. मैं जभी तोलने का करती
उपचार स्वयं तुल जाती हूँ।—कामायनी

'तुल जाती हूँ' का प्रयोग उपग्रहवक्रता के सौंदर्य को व्यक्त करता है।

६. **प्रत्ययवक्रता**—जब कवि प्रत्ययों से भिन्न एक प्रत्यय में अन्य प्रत्यय को लगाकर सौंदर्य की सृष्टि करे तो प्रत्ययवक्रता होती है। इसमें सामान्यतः प्रत्ययों के चमत्कार पर बल दिया जाता है! प्रत्यय जब अपूर्व रमणीयता या सौंदर्य की पुष्टि करे तो यह वक्रता होगी।

विहितः प्रत्ययादन्यः प्रत्ययः कमनीयताम्।
यत्र कामपि पुष्णाति सान्या प्रत्ययवक्रता॥

—वक्रोक्तिजीवित, २/३२

क. **येन श्यामं वपुरतितरां कांतिमापत्स्यते ते**
बर्हेणेव स्फुरितरुचिना गोपवेषस्य विष्णोः॥

—मेघदूत

"हे मेघ! जिसके संपर्क से मोरपुच्छ को धारण करनेवाले गोपवेशधारी श्रीकृष्ण के शरीर के सदृश तुम्हारा श्याम शरीर कांतिमय हो जायगा।" इसमें 'अतितरां' प्रत्ययवक्रता का रूप उपस्थित करता है। यहाँ 'अति' में 'तरप्' प्रत्यय के संयोग से 'अतितरां' पद निर्मित हुआ है। अति में प्रत्यय तो पहले से ही लगा हुआ था, उसमें 'तरप्' को लगाकर सौंदर्य की सृष्टि की गई है।

ख. **पिय सों कहहु सँदेसड़ा, हे भौंरा, हे काग।**
जो धनि बिरहैं जरि मुई, तेहिक धुआँ हम लाग॥— जायसी

यहां 'सँदेसड़ा' में 'ड़ा' प्रत्यय के योग से विरह-व्यंजना में अपूर्व रमणीयता की सृष्टि हुई है।

पदपरार्धवक्रता के अनेक भेद संभव हैं; पर उन सभी प्रकारों का अंतर्भाव उपर्युक्त भेदों में हो जाता है। कुंतक ने पदवक्रता नामक एक अन्य प्रकार का भी वर्णन किया है, जिसमें उपसर्ग एवं निपात के प्रयोग से काव्य में अपूर्व सौंदर्य की सृष्टि होती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रसादिद्योतनं यस्यामुपसर्गनिपातयोः ।
वाक्यैकजीवितत्वेन सापरा पदवक्रता ॥

—वक्रोक्तिजीवित, २/३३

जब उपसर्ग का चमत्कारपूर्ण प्रयोग शब्द एवं अर्थ की रमणीयता का विधायक हो तो उपसर्गवक्रता एवं निपातों के (अवयव-रहित अव्युत्पन्न पद) रसपूर्ण प्रयोग में निपातवक्रता होती है।

क. **अयमेकपदे तया वियोगः प्रियया चोपनतः सुदुःसहो मे ।**

"यह समय प्रिया के सुदुःसह वियोग के सहन करने का आ गया है।" यहाँ 'सु' तया 'दुस्' इन दो प्रत्ययों के प्रयोग के कारण कविता में चमत्काराधान हुआ है।

ख. **मैं त्रिविध-दुःख-विनिवृत्ति हेतु ।** —यशोधरा

यहाँ 'निवृत्ति' में 'वि' उपसर्ग के योग से विशेष भाव द्योतित हुआ है।

निपातवक्रता—

क. **वैदेही तु कथं भविष्यति हहा हा देवि धीरा भव !**

—यहाँ पर 'तु' निपात के कारण रमणीयता आ गई है।

ख. **उसके आशय की थाह मिलेगी किसको ?**
जनकर जननी ही जान न पाई जिसको ॥

—साकेत

यहाँ 'ही' निपात में सौंदर्य है।

[दे० **हिंदी वक्रोक्तिजीवित सं० डॉ० नगेंद्र**],

पदपूर्वार्द्धवक्रता—यह वक्रता या वक्रोक्तिसिद्धांत का द्वितीय प्रकार है। [दे० **वक्रोक्तिसिद्धांत एवं वक्रोक्ति-संप्रदाय**] वक्रता के प्रथम प्रकार में वर्णों के वैचित्र्य का वर्णन किया गया है, जिसे वर्णविन्यासवक्रता कहते हैं। [दे० **वर्णविन्यासवक्रता**] वक्रता के द्वितीय प्रकार में काव्य के अन्य अययव पद की वक्रता या विच्छित्ति का प्रतिपादन किया गया है। पदपूर्वार्द्ध वक्रता में प्रातिपदिक (धातु रूप) या धातु के वैचित्र्य के कारण होनेवाली वक्रता या रमणीयता (विच्छित्ति) का वर्णन होता है। इसके आठ प्रकार किए गए हैं। इसमें मूल शब्द की रमणीयता या वक्रता का विवेचन किया जाता है। आठ भेद इस प्रकार हैं—रूढ़िवैचित्र्यवक्रता, पर्यायवक्रता, उपचारवक्रता, विशेषण-वक्रता, संवृत्तिवक्रता, वृत्तिवक्रता, लिंगवैचित्र्यवक्रता तथा क्रियावैचित्र्यवक्रता।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१. रूढ़िवैचित्र्यवक्रता—जब कवि किसी पदार्थ के अलौकिक तिरस्कार या प्रशंसा की इच्छा से रूढ़ि अर्थ पर किसी रमणीय असंभाव्य अर्थ का अध्यारोप करे या किसी उत्तम धर्म की अतिशयता का गर्भित रूप में आरोप करे तो रूढ़ि वैचित्र्यवक्रता होती है।

यत्र रूढ़ेरसंभाव्यधर्माध्यारोपगर्भता ।
सद्धर्मातिशयारोपगर्भत्वं वा प्रतीयते ॥
लोकोत्तरतिरस्कारश्लाघ्योत्कर्षाभिधित्सया ।
वाच्यस्य सोच्यते कापि रूढ़ि वैचित्र्यवक्रता ॥

—वक्रोक्तिजीवित, २/८-९

इस वक्रता का प्रयोग किसी पदार्थ के लोकोत्तर (अलौकिक) तिरस्कार या उत्कर्ष प्रकट करने के लिए होता है। इसमें कवि अपनी प्रतिभा के बल से रूढ़ अर्थ या परंपरागत अर्थ पर किसी सुंदर असंभाव्य (असंभव) अर्थ का अध्यारोप करता है अथवा उस (रूढ़ अर्थ) पर उत्तम धर्म की अतिशयता का गर्भित रूप से आरोप करता है। इसमें रूढ़ अर्थ किसी अन्य अर्थ में परिवर्त्तित (संक्रमित) हो जाता है। यह प्रकार ध्वनि के अर्थांतर संक्रमित ध्वनि से मिलता-जुलता है। इसमें वाच्यार्थ अन्य अर्थ में संक्रमित हो जाता है (बदल जाता है)। कुंतक ने इसके जो दो उदाहरण प्रस्तुत किए हैं, वे ध्वनिकार-द्वारा उपस्थित अर्थांतरसंक्रमितवाच्य ध्वनि के ही हैं। वस्तुतः, कुंतक ध्वनि के उक्त भेद को इसमें गतार्थ करने के अभिप्राय से ही इसका वर्णन करते हैं।

कामं संतु दृढ़ं कठोरहृदयो रामोऽस्मि सर्वं सहे ।
वैदेही तु कथं भविष्यति हहा हा देवि धीरा भव ॥

मैं तो कठोर हृदय राम हूँ, सब कुछ सहन कर सकूँगा; किंतु वैदेही की क्या दशा होगी ? हा देवि, धैर्य धारण करना।

यहाँ राम एवं 'वैदेही' शब्दों के द्वारा रूढ़ि के वैचित्र्य का संपादन किया गया है। 'राम' शब्द अपने मूल अर्थ से भिन्न दुःख-सहिष्णु राम के अर्थ में प्रयुक्त है। रामत्व पर दुःख सहन करनेवाले गुण का आरोप कर दिया गया है। इसी प्रकार विदेह (जिसे देह की सुधि न हो) की कन्या वैदेही में उनकी कातरता व्यंजित हो रही है। राम पर कठोरता एवं दुःख-सहिष्णुता का आरोप है और वैदेही पर कातरता का। यहाँ राम के रूढ़ अर्थ का चमत्कार-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूर्ण विस्तार करने के कारण रूढ़िवैचित्र्यवक्रता हुई। निम्नांकित दोहा रूढ़िवैचित्र्यवक्रता का सुंदर उदाहरण है।

सीताहरन तात जनि कहहु पिता सन जाइ।
जो मैं राम तो कुल सहित कहिहि दसानन आइ॥ —रामायण

यहाँ राम शब्द के अर्थ का विस्तार होने में अपूर्व रमणीयता का समावेश हुआ है। राम अपने मूल अर्थ को छोड़कर 'कुल सहित रावण का संहारक' अर्थ के रूप में प्रयुक्त है; अतः रूढ़िवैचित्र्यवक्रता हुई।

२. **पर्यायवक्रता**—पर्याय या समानार्थक शब्दों के वैचित्र्य पर आश्रित वक्रता पर्यायवक्रता होती है।

पर्यायवाची शब्दों के कुशल प्रयोग से कवि चमत्काराधान करता है। कुंतक के अनुसार पर्यायवक्रता का स्वरूप इस प्रकार है—जो अभिधेय का अत्यंत अंतरंग, उसके अतिशय का पोषक, जो स्वयं ही अथवा अपने विशेषण के द्वारा रमणीय शोभांतर (दूसरी शोभा) के स्पर्श से वाच्यार्थ को अलंकृत करने में समर्थ अथवा जो विशेषण या बिना विशेषण की सहायता से अपनी कांति या शोभा के उत्कर्ष से मनोहर है तथा जो पर्याय असंभव अर्थ के पात्र होने का अभिप्रायवाला हो और जो अलंकारों के प्रयोग के कारण उत्पन्न मनोहर रचनावाला पर्याय हो और उसके वैचित्र्य के कारण रचना में रमणीयता का समावेश हो तो उसे पर्यायवक्रता कहते हैं। इस प्रकार वर्ण्यमान विषय के अत्यधिक सौंदर्य को प्रकाशित करने के लिए जब कवि विशेष प्रकार के पर्याय का प्रयोग करे तो पर्यायवक्रता होगी। पर्यायवक्रता का छह स्थितियाँ होती हैं—

१. जो पर्याय अभिधेय का अत्यधिक अंतरंग हो अर्थात् अभीष्ट अर्थ को व्यक्त करने में जितना वह पर्याय समर्थ हो, वैसा कोई दूसरा पर्याय नहीं।

२. वह पर्याय, जो वर्ण्य विषय के उत्कर्ष का पोषक हो। वह अपनी स्वाभाविक रमणीयता से प्रतिपाद्य पदार्थ का अलौकिक उत्कर्ष प्रस्तुत कर सहृदयों को आह्लादित करता है।

३. वह पर्याय, जो वक्तव्य वस्तु को अलंकृत करने में समर्थ हो—स्वयं अथवा विशेषण के द्वारा। इसे कुंतक 'शब्दशक्तिमूलानुरणनव्यंग्यपदध्वनि' या 'वाक्यध्वनि' का विषय मानते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एष एव शब्दशक्तिमूलानुरणनरूपव्यंग्यस्य पदध्वनेर्विषयः, बहुषु चैवंविधेषु सत्सु वाक्यध्वनेर्वा।

—वक्रोक्तिजीवित

४. वह पर्याय, जो अपनी कांति के उत्कर्ष से मनोरम हो।

५. जो असंभाव्य या असंभव अर्थ का पात्र होने का अभिप्रायवाला हो।

६. अलंकारों के संस्कार से रमणीय रचनावाला हो।

उदाहरण—

क. संति भूभृति हि नः शरा परे ये पराक्रमवसूनि वज्रिणः॥

"हमारे नृपति के पास ऐसे बाण हैं, जो वज्री इंद्र के भी पराक्रम की निधि हैं।" यहाँ इंद्र के लिए अनेक पर्यायों में 'वज्री' में अधिक चमत्कार है।

ख. कृषक-बालिका के जलधर!

—पंत

यहाँ कृषक-बालिक के साथ जलधर (बादल) का प्रयोग अत्यंत रमणीय है।

३. **उपचारवक्रता**—कुंतक ने उपचारवक्रता की परिभाषा इस प्रकार दी है—"जहाँ किसी अतिशयपूर्ण व्यापार (धर्म) के भाव को प्रतिपादित करने के लिए अत्यधिक व्यवधानवाली वर्ण्यमान वस्तु में दूसरे पदार्थ से किंचिन्मात्र रूप में भी विद्यमान साधारण धर्म का आरोप किया जाता है, वहाँ उपचार-वक्रता होती है। एवं जिसके मूल में होने के कारण रूपकादि अलंकार चमत्कारयुक्त हो जाते हैं वह उपचार की प्रधानतावाली कोई अपूर्व (उपचार)-वक्रता कही जाती है।"

यत्र दूरांतरेऽन्यस्मात्सामान्यमुपचर्यते।
लेशेनापि भवत् कांचिद्वक्तुमुद्रिक्त वृत्तिताम्॥
यन्मूला सरसोल्लेखा रूपकादिरलंकृतिः।
उपचारप्रधानासौ वक्रता काचिदुच्यते॥

—वक्रोक्तिजीवित, २/१३,१४

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार जब दो अत्यंत भिन्न पदार्थों में अतिसादृश्य के कारण भेद-ज्ञान तिरोहित होकर अभेदज्ञान की प्रतीति हो तो उपचार होता है—

अत्यंत विशकलितयोः पदार्थयोः सादृश्यातिशयमहिम्ना, भेदप्रतीतिस्थगनम् उपचारः।

—साहित्यदर्पण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुंतक ने बताया है कि एक पदार्थ के साधारण धर्म का लेश मात्र का संबंध होने पर भी, अन्य पदार्थ पर आरोपित करना उपचार है। प्रस्तुत और अप्रस्तुत एक दूसरे से, स्वभाव से भिन्न होते हैं; तब एक पर अन्य के धर्म का आरोप किया जाता है अर्थात् एक के चेतन एवं अन्य के अचेतन अथवा एक के मूर्त्त और दूसरे के अमूर्त होने पर भी दोनों के धर्म का आरोप हो। अप्रस्तुत धर्म का प्रस्तुत पर इस प्रकार आरोप हो कि दोनों में किसी प्रकार का भेद न रहे। उपचार की वक्रता के कारण काव्य में अपूर्व चमत्कार का समावेश होता है। यही उपचार लक्षणावृत्ति (गौणी) एवं रूपक प्रभृति अलंकारों का मूलाधार है। कुंतक के अनुसार इसके (उपचार के) कारण ही रूपकादि अलंकार सरल होते हैं।

यन्मूला सरसोल्लेखा रूपकादिरलंकृतिः ।।२/१४

कुंतक इसकी पाँच स्थितियों का उल्लेख कर पाँच उदाहरण देते हैं—अमूर्त पर मूर्त्त का आरोप, अचेतन पर चेतन का आरोप, रूपकादि अलंकार का मूलाधारत्व आदि।

क. स्निग्धश्चामलकांतलिप्तवियतो, वेल्लद्बलाकाघना ।
वाता शीकरिणः पयोदसुहृदामानंदकेका कलाः ।।

"अपनी स्निग्ध एवं श्यामल कांति से आकाश को लीपनेवाले बादल, जिनमें बगुलों की पंक्ति क्रीड़ा कर रही हो, आकाश में छाए रहें।" यहाँ अमूर्त्त पदार्थ बादल पर मूर्त्त कार्य (आकाश को लीपना) का आरोप करने में उपचार-वक्रता हुई। लेपन कार्य मूर्त्त है और उसे किसी मूर्त्त आधार पर ही करना संभव है। आकाश अमूर्त्त आधार है और उस पर बादल ऐसे अमूर्त्त पदार्थ का लेपन करना मूर्त्त के धर्म का अमूर्त्त पर आरोप करना है।

ख. पत्रों के आनत अधरों पर सो गया निखिल वन का मर्मर। —पंत

—यहाँ वन के मर्मर में सोने की क्रिया का आरोप अमूर्त्त पर मूर्त्त का आरोप है।

४. **विशेषणवक्रता**—जब क्रिया अथवा कारक स्वरूप पदार्थ का सौंदर्य उसके विशेषण की महिमा या प्रभाव के कारण प्रस्फुटित हो तो विशेषणवक्रता होती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वमहिम्ना विधीयंते येन लोकोत्तरश्रियः ।
रसस्वभावालंकारास्तद् विधेयं विशेषणम् ॥

—वक्रोक्तिजीवित, २/१५

इसमें विशेषण का विवेच्य या प्रतिपाद्य विषय (प्रस्तुत प्रसंग) के अनुकूल और रस, स्वभाव एवं अलंकार का पोषक होना चाहिए । यदि विशेषण रसादि का पोषक नहीं हुआ तो वैसा काव्य भारस्वरूप हो जायेगा ।

एतदेव विशेषणवक्रत्वं नाम प्रस्तुतौचित्यानुसारि सकलसत्काव्यजीवितत्वेन लक्ष्यते, यस्मादनेनैव रसः परां परिपोषपदवीमवतार्यते ॥ —विक्रोक्तिजीवित

विशेषणस्य माहात्म्यात् क्रियायाः कारकस्य वा ।
यत्रोल्लसति लावण्यं सा विशेषणवक्रता ॥ —वही, २/१५

उदाहरण—

क. करांतरालीनकपोलभित्तिर्वाष्पोच्छलत्कूणितपत्रलेखा ।
श्रोत्रांतरे पिंडितचित्तवृतिः शृणोतिगीतध्वनिमत्र तन्वी ॥ ५२

"प्रिय के ध्यान में मग्न विरहिणी यहाँ गीत की ध्वनि को सुन रही है । वह अपने दोनों हाथों के बीच कपोल को दबाए हुई है, जिससे अश्रुओं के प्रवाहित होने के कारण कपोल पर चित्रित पत्रलेखा बिगड़ गई है और उसकी समस्त वृत्तियाँ श्रवण-रंध्र में ही सिमट गई हैं ।" यहाँ 'तन्वी' विशेषण के कारण विरहिणी की मुद्रा के चित्रण में वक्रता या सौंदर्य का समावेश हो गया है ।

ख. तुम पूर्ण इकाई जीवन की जिसमें असार भव-सिंधु लीन ॥ —पंत,

—यहाँ गांधीजी के लिए प्रयुक्त विशेषण 'पूर्ण इकाई' में उनके व्यक्तित्व का सौंदर्य निहित है ।

५. संवृत्तिवक्रता—जब सौंदर्य या वैचित्र्य के प्रतिपादन के लिए सर्वनाम आदि के द्वारा पदार्थ का गोपन या संवरण हो तो संवृत्तिवक्रता होती है । संवृत्ति का अर्थ है छिपाना । इसमें वस्तु के स्वरूप को छिपाने (गोपन) में ही वक्रता का समावेश होता है ।

यत्र संव्रियते वस्तु वैचित्र्यस्य विवक्षया ।
सर्वनामादिभिः कैश्चित् सोक्ता संवृतिवक्रता ॥

—वक्रोक्तिजीवित, २/१६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुंतक ने इसके अनेक प्रकारों की कल्पना की है, जिनमें छह प्रमुख हैं।

क. जब कवि किसी सुंदर वस्तु का वर्णन साक्षात् न कर या उसका प्रत्यक्ष कथन न कर (क्योंकि उसके साक्षात् कथन से उसका उत्कर्ष सीमित हो जाएगा) सर्वनाम आदि के द्वारा उसका गोपन कर दे तो उसमें अधिक सौंदर्याधान होगा।

ख. जब प्रतिपाद्य विषय स्वभाव-सौंदर्य की चरम सीमा पर पहुँच जाए और उसका वर्णन शब्दों द्वारा असंभव हो जाए अर्थात् वह वस्तु अनिर्वचनीय है, ऐसा सिद्ध करने के लिए कवि सर्वनामादि के द्वारा उसका संवरण (गोपन) करे तो यह प्रकार होगा।

ग. जब अतिशय कोमल वस्तु को, उसके कार्यातिशय को कहे बिना ही, संवरण के द्वारा ही रमणीयता के चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिया जाय तो यह प्रकार होगा।

घ. जब कवि अपने अनुभवगम्य वस्तु को वाणी द्वारा अनिर्वचनीय सिद्ध करने के लिए उसका संवरण करे तो यह भेद होगा।

ङ. जब कवि, अन्य के अनुभवसंवेद्य तथ्य या वस्तु का वर्णन करना संभव नहीं है, इसकी सिद्धि के लिए सर्वनामादि के द्वारा उसका गोपन करे तो यह स्थिति होगी।

च. जब कोई पदार्थ स्वभावतः या कवि के वर्णन करने की इच्छा से किसी दोष से युक्त होने के कारण छिपाया जाय या संवृत किया जाए और उसे महापातक के समान अकथ्य किया जाय तो यह प्रकार होगा।

तृतीय स्थिति का उदाहरण—

दर्पणे च परिभोगदर्शिनी पृष्ठतः प्रणयिनो निषेदुषः।
वीक्ष्य बिंबमनुबिंबमात्मनः कानि कानि न चकार लज्जया॥

—कुमारसंभव, ८/११

"आईने में संभोग के चिह्नों को देखकर अपने पीछे की ओर बैठे हुए शंकर के प्रतिबिंब को अपने प्रतिबिंब के पास देखकर लज्जा से पार्वती ने क्या-क्या चेष्टाएँ नहीं कीं।" यहाँ 'क्या-क्या' (कानि-कानि) सर्वनाम के द्वारा पार्वती की चेष्टाओं का संवरण कर वर्णन को रमणीय बना दिया गया है।

६. **वृत्तिवक्रता**—जिस रचना में वृत्ति (अव्ययीभाव आदि समास, तद्धित, कृत् आदि) की विचित्रता या सौंदर्य का कथन किया जाय, वहाँ वृत्तिवक्रता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होती है। यहाँ वृत्ति से अभिप्राय वैयाकरणों की वृत्ति—समास, तद्धित, सुब्धातु आदि से है।—

अव्ययीभाव मुख्यानां वृत्तीनां रमणीयता।
यत्रोल्लसति सा ज्ञेया वृत्तिवैचित्र्यवक्रता॥
—वक्रोक्तिजीवित, २/१९

उदाहरण—

अभिव्यक्तिं तावद् बहिरलभमानः कथमपि
स्फुरन्नंतः स्वात्मन्यधिकतर संमूर्च्छितभरः।
मनोज्ञामुद्वृत्तां परपरिमलस्पंदसुभगा-
महा धत्ते शोभामधिमधु लतानां नवरसः॥

'आश्चर्य है कि मधुमास में किसी भी प्रकार बाहर प्रकाशित होने में असमर्थ, अत्यधिक संमोह के भार से युक्त अपने अंदर ही स्फुरित होने से रमणीय, हृदयावर्जक एवं अत्यधिक सान्न श्री को धारण करता है।''

हिंदी में, निराला की 'राम की शक्ति-पूजा' की पंक्तियाँ समास-वक्रता का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत करती है।

ख. आज का तीक्ष्ण-शर-विधृत-क्षिप्र कर, वेग-प्रखर,
शत शेलसंवरणशील, नीलनभ-गर्जित-स्वर,
प्रतिपल परिवर्त्तित-व्यूह भेद-कौशल-समूह,
राक्षस-विरुद्ध प्रत्यूह, क्रुद्ध-कपि-विषम-हूह।

यहाँ कवि समस्त पदों के द्वारा युद्ध के वातावरण को झंकृत कर देता है।

७. **लिंगवैचित्र्यवक्रता**—जब लिंग के चमत्कारपूर्ण प्रयोग से सौंदर्य की सृष्टि की जाय तो लिंगवैचित्र्यवक्रता होती है। इसकी कई स्थितियाँ होता हैं। जब भिन्न लिंगवाले शब्द एक ही अधिष्ठान में समानाधिकरण्य (समान विभक्त्यंत) के रूप में प्रयुक्त हों तो वहाँ अपूर्व सौंदर्य की सृष्टि होती है। यदि किसी शब्द का अन्य लिंग संभव हो; किंतु स्त्री नाम को अधिक सुंदर मानकर उसका प्रयोग स्त्रीलिंग के ही रूप में किया जाय तो लिंगवक्रता की अन्य स्थिति होती है।

भिन्नयोर्लिंगयोर्यस्यां समानाधिकरण्यतः।
कापि शोभाभ्युदेत्येषा लिंगवैचित्र्यवक्रता॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सति लिंगांतरे यत्र स्त्रीलिंगं च प्रयुज्यते ।
शोभानिष्पत्तये यस्मान्नामैव स्त्रीति पेशलम् ॥

—वक्रोक्तिजीवित, २/१२

अर्थ के औचित्य के अनुसार अन्य लिंग के संभव होने पर भी उसकी अवहेलना कर विशिष्ट लिंग का प्रयोग किया जाय तो वहाँ भी लिंगवैचित्र्य-वक्रता होगी ।

विशिष्टं योज्यते लिंगमन्यस्मिन् संभवत्यपि ।
यत्र विच्छित्तये सान्या वाच्यौचित्यानुसारतः ॥

—वही, २/२३

क. त्वं रक्षसा भीरु यतोऽपनीता तं मार्गमेताः कृपया लता मे ।
अदर्शयन् वक्तुमशक्नुवंत्यः शाखाभिरावर्जित पल्लवानि ॥

—रघुवंश, १३/२४

लंका विजय के पश्चात् पुष्पक विमान से अयोध्या लौटते हुए रामचंद्रजी सीता को मार्ग में मिलनेवाले स्थानों का परिचय कराते हैं ।

"हे भीरु ! राक्षस रावण तुम्हें हरण कर जिस मार्ग से ले जा रहा था, उस मार्ग को, बोलने में भी अक्षम इन लताओं ने अपने मुड़े हुए पत्तों की शाखाओं से कृपापूर्वक मुझे दिखाने का प्रयत्न किया था ।"

यहाँ लताओं द्वारा मार्ग-सूचन में स्त्रीसुलभ सहानुभूति व्यंजित है ।

ख. सिखा दो ना हे मधुप-कुमारि !
मुझे भी अपने मीठे गान । —पंत

'मधुप-कुमार' के द्वारा सिखानेवाले कर्त्तव्य कर्म की पूर्त्ति संभव थी; पर कवि ने भावों की सुकुमारता प्रदर्शित करने के लिए इसका स्त्रीलिंग के रूप में प्रयोग किया है ।

८. **क्रियावैचित्र्यवक्रता**—जब क्रिया की विचित्रता से वाक्य का सौंदर्य खिल उठे तो क्रियावैचित्र्यवक्रता होती है । इसकी चार स्थितियाँ हैं ।

क. क्रिया की कर्त्ता से अत्यंत अंतरंगता—कर्तुरंतरंगत्वम् । इसमें क्रिया कर्त्ता से अभिन्न होती है ।

ख. क्रिया की अन्य कर्त्ताओं से विचित्रता—कर्त्रंतरविचित्रता । जब क्रिया के अन्य कर्त्ता जिस कार्य को न कर सकें, वही कार्य उनसे कराया जाय तो यह भेद होगा ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ग. उपचार मनोज्ञता—जब उपचारसादृश्य संबंध के द्वारा—एक धर्म का दूसरी क्रिया में आरोप के द्वारा—क्रिया में रमणीयता आ जाय तो यह स्थिति होती है।

घ. क्रिया के विशेषण का वैचित्र्य—जब क्रिया का चमत्कार उसके विशेषण की विचित्रता पर आश्रित हो।

कर्तु रत्यंतरंगत्वं कर्त्रं तरविचित्रता।
स्वविशेषणवैचित्र्यमुपचारमनोज्ञता॥
कर्मादिसंवृतिः पंच प्रस्तुतौचित्यचारवः॥
क्रियावैचित्र्यवक्तृत्वप्रकारास्त इमे स्मृताः॥

—वक्रोक्तिजीवित, २/२४-२५

ङ. कर्मादिगुप्ति—जब क्रिया के कर्म आदि के संवरण द्वारा विचित्रता या रमणीयता की सृष्टि की जाय। क्रिया के कर्मों का कथन संभव रहने पर भी कवि सर्वनाम के द्वारा उसका आच्छादन कर अपूर्व सौंदर्य की सृष्टि करता है।

क्रमशः उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

क. कर्त्ता की अंतरंगता—

क्रीड़ारसेन रहसि स्मितपूर्वमिंदो-
र्लेखां विकृष्य विनिबध्य च मूर्ध्नि गौर्या।
किं शोभिताऽहमनयेति शशांकमौलेः
पृष्टस्य पातु परिचुंबनमुत्तरं वः॥

—कुमारसंभव, ३/३३

"प्रणय-क्रीड़ा में गौरी ने शिवजी के शिर पर स्थित चंद्रलेखा को खींचकर एकांत में अपने से मस्तक पर बाँध लिया और शिवजी से पूछा कि क्या इसके धारण करने से मेरा सौंदर्य बढ़ गया है? इस प्रश्न के उत्तरस्वरूप शिवजी ने पार्वती का चुंबन किया, जो हमारी रक्षा करे।" कुंतक का कहना है कि यहाँ पार्वती के लोकोत्तर सौंदर्य की अभिव्यक्ति शिवजी की चुंबन-क्रिया के द्वारा ही संभव थी, अन्य प्रकार से नहीं। यहाँ क्रिया कर्त्ता के अंतरंग रूप में प्रस्तुत है।

ख. कर्त्ता की अन्य क्रियाओं से विचित्रता—

स दहतु दुरितं शांभवो वः शराग्निः॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'शिवजी के बाणों की वह अग्नि तुम्हारे दुःखों को दूर करे।'—यहाँ शराग्नि दुःख न देकर दुःखों को दूर करती है, यही उसकी विचित्रता है। शराग्नि का कार्य दुःख देना है, दुःख दूर करना नहीं। यही क्रिया द्वारा कर्त्ता के वैचित्र्य की सिद्धि हुई।

ग. क्रिया के विशेषण का वैचित्र्य—

इत्युद्गते शशिनि पेशलकांति दूती-
संलापसंवलित लोचनमानसाभिः।
अग्राहि मंडनविधेर्विपरीतभूषा-
विन्यासहासितसखीजनमंगनाभिः॥

'संध्या समय चंद्रोदय होने पर सुंदर कांतियुक्त दूती से बात करने में नयन तथा मन के लग जाने के कारण स्त्रियों ने विपरीत वस्त्राभूषण को पहनकर सखी जनों को हँसाते हुए आभूषण धारण करने के ढंग को ग्रहण किया।' 'विपरीत वेषविन्यास से सखीजनों को हँसाते हुए' यह क्रिया विशेषण ही रमणीयता का आधार है।

घुमा रहे हैं घनाकार जगती का अंबर।

यहाँ 'घुमा रहे हैं' इस क्रिया का विशेषण 'घनाकार' है, जो भयावह दृश्य की उद्भावना कर सौंदर्य की सृष्टि करता है।

घ. उपचार मनोज्ञता—

१. तरंतीवांगानि स्खलदमललावण्यजलधौ
प्रथिम्नः प्रागल्भ्यं स्तनजघनमुन्मुद्रयति च।
दृशोर्लीलारंभाः स्फुटमपवदंते सरलताम्
अहो सारंगाक्ष्यास्तरुणिमनिगाढ़ः परिचयः॥

अहो! इस मृगाक्षी का तरुणावस्था से गाढ़ प्रणय हो गया है। इसके अंग छलकते हुए निर्मल सौंदर्य के सागर में तैर रहे हैं तथा स्तन एवं नितंब स्थूलता के अभिमान को प्रकट कर रहे हैं। इसके नयनों के चंचल विलास स्पष्टतः सरलता की निंदा कर रहे हैं। यहाँ उपचार के कारण ही अंगों के तैरने, स्तनादि के अभिमान को प्रकट करने तथा नेत्रों द्वारा सरलता की निंदा करने में चमत्कार की उद्भावना की गई है।

२. उन्नत वक्षों में आलिंगन-सुख लहरों-सा तिरता॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ङ. कर्मादि-संवृत्ति—

नेत्रांतरे मधुरमर्पयतीव किंचित्
कर्णांतिके कथयतीव किमप्यपूर्वम्।
अंतः समुल्लिखति किंचिदिवायताक्ष्या
रागालसे मनसि रम्यपदार्थ लक्ष्मीः।।

"इस विशालनेत्रा रमणी के रागालस मन में रमणीय पदार्थ की लक्ष्मी मानो कुछ मधुरता अर्पित कर रही है। श्रवण के पास कुछ अश्रुतपूर्व मधुर बात कह रही है, हृदय में मानो कुछ लिख रही है।" यहाँ 'कुछ' सर्वनाम के द्वारा सभी क्रियाओं के कथन का आच्छादन कर अपूर्व चमत्कार उत्पन्न किया गया है। पूर्वार्द्ध वक्रता के अनेक भेद संभव हैं। कुंतक ने प्रत्ययवक्रता एवं भाववक्रता नामक भेदों का भी कथन किया है।

आधार-ग्रंथ—

हिंदी वक्रोक्तिजीवित—अनुवादक—आचार्य विश्वेश्वर

वक्रोक्तिजीवितम्—हिंदी अनुवाद—पं० राधेश्याम मिश्र

भारतीय साहित्यशास्त्र भाग २—पं० बलदेव उपाध्याय

भारतीय काव्यालोचन—डॉ० राजवंश सहाय 'हीरा'

पदार्थनिदर्शना—निदर्शना अलंकार का एक भेद। [दे० निदर्शना]

पदौचित्य—औचित्य का प्रथम भेद। [दे० औचित्य के भेद]

पंथ—रीति का अन्य नाम। भोज ने रीति के लिए मार्ग तथा पंथ का भी प्रयोग किया है। [दे० रीति संप्रदाय, भोज]

परकीया—नायिका का एक प्रकार। [दे० नायिका-भेद] परपुरुष से प्रेम करनेवाली नायिका को परकीया या अन्या (अन्यदीया) कहते हैं। यह प्रेमिका होती है। इसका प्रेम प्रच्छन्न होता है अर्थात् यह छिपकर प्रेम करती है। यह अन्य पुरुष की पत्नी होती है या अविवाहिता कन्या। इस दृष्टि से इसके दो भेद हो जाते हैं—ऊढ़ा (परोढा) और अनूढ़ा (कन्यका)।

आचार्य रुद्रट ने लिखा है कि परकीया विवाहिता (ऊढ़ा) एवं अविवाहिता (कन्या) के भेद से दो प्रकार की होती है। वह नायक का प्रत्यक्ष दर्शन कर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

या उसके विषय में किसी के मुख से सुनकर उसके प्रति अनिवारणीय काम-वासना से पीड़ित होती है।

परकीया तु द्वेधा कन्योढा चेति ते हि जायेते ॥
गुरुमदनार्ते नायकमालोक्याकर्ण्य वा सम्यक् ॥

—काव्यालंकार, १२/३०

धनंजय ने कहा कि नायिका का अन्य प्रकार परकीया का है, जो दो तरह की होती है—किसी की अविवाहिता कन्या तथा किसी की विवाहिता पत्नी। इन्होंने नाटक में प्रधान या अंगी रस के आलंबन के रूप में अन्योढा (अन्य की परिणीता) के वर्णन को अमान्य घोषित किया है, पर कन्या के अनुराग-वर्णन में स्वीकृति प्रदान की है।

अन्यस्त्री कन्यकोढा च नान्योढाऽगिरसे क्वचित्।
कन्यानुरागमिच्छातः कुर्यादंगांगि संश्रयम् ॥

—दशरूपक, २/२०

विश्वनाथ ने परकीया के दो भेदों का कथन किया है—परोढा और कन्यका। परोढा परपरिणीता है और कन्यका अपरिणीता। परोढा यात्रादि में रुचि रखती है या मेला आदि जाने में शौकीन होती है। वह अन्य पुरुषों से प्रेम-स्थापित करती है तथा उसे किसी से बातचीत करने में संकोच नहीं होता। कन्यका नवयुवती, लज्जाशील, अविवाहिता स्त्री है। वह अपने माता-पिता के वश में रहती है।

परकीया द्विधा प्रोक्ता परोढा कन्यका तथा।
यात्रादिनिरताऽन्योढा कुलटागलितत्रपा ॥
कन्या त्वजातोपयमा सलज्जा नवयौवना ॥

—साहित्यदर्पण, ३/६६-६७

भानुदत्त के अनुसार जिस नायिका का परपुरुष में अनुराग प्रकट नहीं होता, उसे परकीया कहते हैं। इन्होंने भी परोढा और कन्यका के रूप में इसका द्विधा विभाजन किया है। परोढा वह है, जो विवाह-संस्कार द्वारा पति को प्राप्त कर भी उसमें अनुरक्त नहीं होती और अन्य व्यक्ति से प्रेम-संबंध स्थापित करती है। अविवाहित स्थिति में ही किसी से प्रेम कर उसी के साथ विवाह की इच्छा रखनेवाली नायिका कन्यका है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अप्रकटपुरुषानुरागा परकीया। सा द्विधा परोढा कन्यका च। सा परकीया परेण सांप्रतमनुरक्तादन्येनोढा परिणीता। कन्यकाऽजातपाणिग्रहणा कंदर्पांकुरणार्हदशां स्पृशंत्येव। कन्यायाः पित्राद्यधीनतया परकीयता।

—रसमंजरी, पृ० ५०-५१

रीतिकालीन आचार्य मतिराम, दास तथा पद्माकर ने भानुदत्त के विचार का अनुकरण करते हुए परकीया का वर्णन किया है।

प्रेम करै परपुरुष सों परकीया सो जान।
दोय भेद ऊढा कहत बहुरि अनूढ़ा मान॥

—रसराज, ५८

ब्याही औरे पुरुष सों औरै सों रसलीन।
ऊढ़ा तासों कहत हैं कबि, पंडित परबीन॥ —वही, ५६

अनब्याही केहु पुरुष सौं अनुरागिनि जो होय।
ताहि अनूढ़ा कहत हैं कबि कोबिद सब कोय॥

—रसराज, ६२

परनायक अनुराग चित परकीया सो लेखि।
चीन्हि चतुर बात क्रिया दृष्टिचेष्टा देखि॥

—रससारांश, ५६

होति अनूढा परकीया बिन ब्याहे रसलीन।
प्रेम अनत ब्याही अनत ऊढ़ा तरुनि प्रबीन॥

—शृंगारनिर्णय, ८१

होइ जु तिय परपुरुष-रत, परकीया सो बाम।
ऊढ़ा प्रथम बखानहीं, बहुरि अनूढ़ा नाम॥

—जगद्विनोद, ७६

जो ब्याही तिय और की, करत और सों प्रीति।
ऊढ़ा ताकों कहत हैं, हिये राखि रस-रीति॥

—जगद्विनोद, ७७

अनब्याहो तिय होति जहँ, सरस पुरुष रसलीन।
ताहि अनूढ़ा कहत हैं, कबि, पंडित, परबीन॥ —वही, ८०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऊढ़ा का उदाहरण—

क. अयं रेवा कुंजः कुसुमशरसेवासमुचितः
समीरोऽयं वेलादरविदलदेला परिमलः।
इयं प्रावृड् धन्या नवजलदविन्यासचतुरा
पराधीनं चेतः सखि ! किमपि कर्तुं मृगयते ॥

—रसमंजरी २१

हे सखि, नर्मदा का यह निकुंज कामदेव की सेवा के लिए उपयुक्त स्थान है। यह हवा नदी के किनारे कुछ-कुछ खिली हुई इलायची की लता का परिमल लेकर बह रही है। यह वर्षा ऋतु का समय धन्य है, जो नए-नए मेघों के विन्यास में कुशल है। यह मेरा चित्त दूसरे के अधीन बनकर कुछ-न-कुछ करने के लिए सोच रहा है।

ख. चढ़ी हिंडोरे हरषि हिय, सजि तिय बसन सुरंग।
तन झूलत पिय-संग में, मन झूलत हरि-संग।।

—जगद्विनोद, ७६

ग. हौं तो स्याम-रंग में चुराइ चित चोराचोरी,
बोरत तौ बोर्‌यो पै निचोरत बनै नहीं ॥ —वही, ७८

अनूढ़ा या कन्यका का उदाहरण—

क. गोपसुता कहै गौरी गुसाइंनि पाय परौं बिनती सुनि लीजै।
दीन दयानिधि दासी के ऊपर नैक सुचित्त दयारस भीजै।
देहि जो ब्याहि उछाह सों मोहनै मात पिताहु को सो मन कीजै।
सुंदर साँवरो नंदकुमार बसै उर जो वह सो वर दीजै ॥

—रसराज, ६३

ख. कुसल करै करतार तौ, सकल संक सियराइ।
यार क्वारपन को जु पै, कहूँ ब्याहि लै जाइ ॥

—जगद्विनोद, ८२

रीतिकालीन आचार्यों ने परकीया के भेद-विस्तार में अधिक रुचि ली है। इनमें दास और रसलीन मुख्य हैं। दास ने उद्‌बुद्धा और उद्‌बोधिता नामक दो भेदों का कथन किया है। जो नायिका परपुरुष को देखकर रीझे उसे उद्‌बुद्धा कहते हैं। उद्‌बोधिता नायिका वह है, जिसकी छबि को देखकर नायक दूती के द्वारा उसे अनुकूल बनाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उद्बुद्धा उद्बोधिता द्वै परकिया बिसेखि।
निज रीझै सुपुरुष निरखि उद्बुद्धा सो लेखि॥
जा छबि पगि नायक कोऊ लावै दूतीघात।
उद्बोधिता सो परकिया असाध्यादि बिख्यात॥

—श्रृंगारनिर्णय, ८४-६२

उद्बुद्धा के दो भेद किए गए हैं—

अनुरागिनी और प्रेमासक्ता तथा उद्बोधिता के असाध्या, साध्या और दुःखसाध्या भेद किए गए हैं।

प्रथम होइ अनुरागिनी प्रेम असक्ता फेरि।
उद्बुद्धा तेहि कहत पुनि परम प्रेम रस घेरि॥

—श्रृंगारनिर्णय, ८६

प्रथम असाध्या सी रहै दुखसाध्या पुनि सोइ।
साध्य भए पर आप ही उद्बोधिता सु होइ॥ —वही, ६१

असाध्या वह है, जिससे किसी का प्रेम-संबंध स्थापित हो चुका हो और उसका मिलना या मिलन संभव न हो। दुःखसाध्या वह है, जिसे दूती विविध प्रकार से समझाकर नायक के अनुकूल बना दे। जो प्रेमी से मिलना चाहे, उसे साध्या कहते हैं।

परकीया के अन्य छह भेद हैं—गुप्ता, विदग्धा, लक्षिता, कुलटा, मुदिता और अनुशयना। [**दे० इनका विवरण इनके नाम के क्रम से**]

परभाग—शोभाकरमित्र-वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। अनुभव के द्वारा अन्य अर्थ की उपलब्धि का वर्णन परभाग अलंकार है। यह विवेक का विलोम है। [**दे० विवेक**]

अनुभूतस्यार्थांतरोपलब्धौ परभागः ॥१०१

—अलंकार रत्नाकर

परंपरितरूपक—रूपक अलंकार का एक भेद। [**दे० रूपक अलंकार**]

परिकथा—गद्य काव्य का एक भेद। [**दे० गद्य**] इसका नायक राज्य का मंत्री, व्यापारी या ब्राह्मण होता है तथा रसों में केवल करुण रस एवं चार प्रकार के विप्रलंभ श्रृंगार होते हैं। इसमें घटना समाप्त कर दी जाती है; पर कथा नामक भेद में घटना अधूरी छोड़ दी जाती है। [**दे० कथा**]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

याऽसौ कथा परिकथा तयोः ।
अमात्यं सार्थकं वाऽपि द्विजं वा नायकं विदुः ।
स्यात्तयोः करुणं विद्धि विप्रलंभश्चतुर्विधः ॥
समाप्यते तयोर्नाद्या सा कथामनुधावति ।

—अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग १/१७-१९

कथा और आख्यायिका के मिश्रित रूप को परिकथा कहते हैं ।

कथाख्यायिकयोर्मिश्रभावात्परिकथा स्मृता ॥ —वही, १/१९

परिकर—अर्थालंकार । जब साभिप्राय विशेषणों के प्रयोग से वर्णनीय पदार्थ के परिपोषण किए जाने का वर्णन हो तो परिकर अलंकार होगा । परिकर का अर्थ उपकरण, उत्कर्षक या शोभाकारक पदार्थ है । इसमें साभिप्राय (अभिप्राययुक्त) या व्यंजक विशेषण शोभाकारक होकर विशेष्य का उपस्कारक होता है ।

परिकरः परिकरणमुपस्करणं विशेषण-व्यंग्यार्थेन वाक्यस्योपस्करणात्परिकर इत्यन्वर्थे संज्ञा । परिकरोति प्रकृतामुपस्करोतीति परिकरः साभिप्राय शब्दः सोऽस्मिन्नस्तीति परिकरः । —बालबोधिनी, पृ० ६९८-९९

यह सादृश्यगर्भ गम्यौपम्याश्रय वर्ग के अंतर्गत विशेषण वैचित्र्य-संबंधी अलंकार है । इसका चमत्कार विशेषणवैचित्र्य पर आश्रित है और उनका (विशेषणों का) साभिप्राय कथन प्रस्तुतार्थ के अनुरूप होता है ।

इस अलंकार के उद्‌भावक रुद्रट हैं, तत्पश्चात् भोज, मम्मट, रुय्यक, जयदेव, शोभाकर, विद्याधर, विद्यानाथ, विश्वनाथ, अप्पयदीक्षित, पंडितराज जगन्नाथ तथा विश्वेश्वर पंडित ने इसका निरूपण किया । रुद्रट के अनुसार जब साभिप्राय विशेषणों के द्वारा कोई विशेष्य विशेषित हो तो परिकर अलंकार होगा । द्रव्य, गुण, क्रिया तथा जाति के आधार पर वे इसके चार प्रकारों का वर्णन करते हैं ।

साभिप्रायैः सम्यग्विशेषणैर्वस्तु यद्विशिष्येत ।
द्रव्यादिभेदभिन्नं चतुर्विधः परिकरः स इति ॥

—काव्यालंकार, ७/७२

भोज परिकर का संबंध क्रिया एवं कारक के साथ स्थापित कर इसे क्रिया-का उपस्कारक कहते हैं । इन्होंने उपमा तथा रूपकादि द्वारा शब्दभंगी से उत्पन्न साधर्म्य में भी परिकर की स्थिति स्वीकार की और क्रिया, कारक,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संबंधी, साध्य तथा दृष्टांत के रूप में इसके पाँच प्रकार माने। वे एकावली को परिकर से अभिन्न मानते हैं।

क्रियाकारकसंबंधिसाम्यदृष्टांतवस्तुषु ।
क्रियापदाद्युपस्कारमाहुः परिकरं बुधाः ॥
उपमारूपकादीनां शब्दार्थोभय भंगिभिः ।
साधर्म्योत्पादनं यत् तमन्ये परिकरं विदुः ॥
एकावलीति या सापि भिन्ना परिकरान्नहि ॥

—सरस्वतीकंठाभरण, ४/२३५-२५६-२६०

मम्मट ने बताया कि जब अनेक सार्थक या अभिप्राययुक्त विशेषणों के द्वारा वर्णनीय पदार्थ का परिपोषण हो तो परिकर अलंकार होगा। इन्होंने इस अलंकार का स्वरूप व्यवस्थित कर दिया और कालांतर में किसी भी आचार्य ने नवीन तथ्य प्रस्तुत नहीं किया। सभी ने मम्मट के ही विचार का अनुसरण कर इस अलंकार का निरूपण किया।

विशेषणैर्यत्साकूतैरुक्तिः परिकरस्तु सः ॥

—काव्यप्रकाश, १०/११८

रुय्यक ने अपनी परिभाषा में साभिप्राय विशेषण का अर्थ प्रतीयमान अर्थ-गर्भता किया। परवर्ती आचार्यों में शोभाकर, विद्याधर तथा विद्यानाथ रुय्यक के मत का पोषण करते दिखाई पड़ते हैं।

विशेषण साभिप्रायत्वं परिकरः।

विशेषणवैचित्र्यप्रस्तावादस्येह निर्देशः। विशेषणानां साभिप्रायत्वं प्रतीयमानार्थ-गर्भाकारः। —अलंकारसर्वस्व, पृ० १२०

साभिप्रायत्वं परिकरः॥ ४५

तस्य च प्रतीयमानस्य वाच्यं प्रत्युपकारत्वाद् गुणीभूतत्वानलंकार्यत्वाभावा-दलंकारता। वाच्यस्यैवोपकार्यत्वेन प्राधान्यादलंकारत्वं युक्तमेव ॥

—अलंकाररत्नाकर, पृ० ८०

विलसति विशेषणानां प्रतीयमानार्थगर्भता यत्र।
सहृदयहृदयाह्लादी परिकरनामा स निर्दिष्टः ॥

—एकावली, ८/२४

विशेषणवैचित्र्यमूलत्वात् परिकर उच्यते ।
यत्राभिप्रायगर्भास्याद्विशेषण परंपरा ॥
तत्राभिप्रायविदुषामसौ परिकरो मतः ॥

—प्रतापरुद्रीय, पृ० ३१४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जयदेव, विश्वनाथ, अप्पय दीक्षित, पडितराज जगन्नाथ तथा विश्वेश्वर पंडित के लक्षण मम्मट से प्रभावित हैं।

अलंकारः परिकरः साभिप्राये विशेषणे ॥ —चंद्रालोक, ५/३६

उक्तिर्विशेषणैः साभिप्रायैः परिकरो मतः ॥

—साहित्यदर्पण, १०/५७

अलंकारः परिकरः साभिप्राये विशेषणे ॥

—कुवालयनंद, ६२

विशेषणानां साभिप्रायत्वं परिकरः ।
तच्च प्रकृतार्थोपपादकं चमत्कारित्वम् ॥

—रसगंगाधर, पृ० ५१७

साभिप्रायविशेषणविन्यासः परिकरः प्रोक्तः ॥

—अलंकारकौस्तुभ, पृ० ३५४

पंडितराज व्यंग्य के आधार पर इसके चार प्रकार मानते हैं—व्यंग्य का कहीं वाच्यसिद्ध्यंग होना एवं कहीं उपस्कारक होना। प्रथम के भी दो प्रकार हैं—वाच्यसिद्ध्यंग-व्यंग्यगर्भ तथा उपस्कारक व्यंग्यगर्भ। इनके भी दो-दो भेद वाच्यमान होने एवं न होने पर संभव हैं।

जहाँ तक परिकर अलंकार के स्वरूप का प्रश्न है, इस पर सभी आचार्य एक मत हैं और साभिप्राय विशेषण के प्रयोग को परिकर कहते हैं; पर इस संबंध में एक प्रश्न को लेकर आचार्यों में मतभेद है। परिकर का अलंकारत्व एक विशेषण की अभिप्रायगर्भता में है या अनेक अभिप्राययुक्त विशेषणों के कारण। रुद्रट, मम्मट, रुय्यक, शोभाकर, विद्याधर, विद्यानाथ तथा विश्वनाथ ने अनेक अभिप्राययुक्त विशेषणों को ही परिकर के लिए उपयुक्त माना है; पर जयदेव, दीक्षित तथा पंडितराज एक साभिप्राय विशेषण के कारण भी इसका अलंकारत्व स्वीकार करते हैं। मम्मट ने अनेक विशेषणों (साभिप्राय) के प्रयोग से अपुष्टार्थ दोष का निराकरण करते हुए बताया कि अभिप्रायरहित विशेषण के प्रयोग में अपुष्टार्थ दोष होगा। पंडितराज ने बताया कि परिकर में एकाधिक विशेषणों के कारण व्यंग्यार्थ के आधिक्य से चमत्कार बढ़ जाता है; किंतु ऐसी बात नहीं है कि एक से अधिक विशेषणों के ही प्रयोग में अलंकारत्व हो, एक विशेषण के प्रयोग में भी परिकर अलंकार देखा जाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यद्यप्यपुष्टार्थस्य दोषताभिधानात्तन्निराकरणेन पुष्टार्थ स्वीकारः कृतः, तथाप्येकनिष्ठत्वेन बहूनां विशेषणानामेवमुपन्यासे वैचित्र्यमित्यलंकारमध्येगणितः ॥

—काव्यप्रकाश, १०/११८

विशेषणानेकत्वं हि व्यंग्याधिक्याधायकत्वाद्विचित्र्यविशेषाधायकमस्तु नाम। न तु प्रकृतालंकारशरीरमेव तदितिशक्यं वक्तुम्।....इति प्रागुक्ते एकस्यैव विशेषणस्य चमत्कारितया अनपह्नवनीयत्वात्।

—रसगंगाधर, पृ० ५१६

रीतिकालीन आचार्यों में चिंतामणि ने मम्मट के लक्षण का तथा जसवंत सिंह, मतिराम और पद्माकर ने 'कुवलयानंद' की परिभाषा का अनुवाद किया है।

साभिप्राय विशेसन कथन सु परिकर जान।

—कविकुलकल्पतरु, ३/२१३

है परिकर आसय लिए जहाँ बिसेसन होहि।
ससिबदनी यह नायिका ताप करति है जोहि ॥

—भाषाभूषण, ९४

साभिप्राय विशेषननि सो परिकर मतिराम।

—ललितललाम, १६४

दास का लक्षण महत्त्वपूर्ण है—

बर्ननीय के साज को, नाम बिसेषन जानि।
सो है साभिप्राय तौ, परिकर भूषन मानि ॥

—काव्यनिर्णय, २२/२८

सो परिकर आसय सहित जहाँ विसेषन ठानि ॥

—पद्माभरण, १००

उदाहरण—

क. महौजसोमानधना धनार्चिता, धनुर्भृतः संयति लब्धकीर्तयः।
न संहतांतस्य न भेदवृत्तयः प्रियाणि वाच्छंत्यसुभिः समीहितुम् ॥

—किरातार्जुनीयम्

युधिष्ठिर के प्रति दूत की उक्ति—

"महाबलशाली, स्वाभिमानी, धन से सत्कृत, युद्ध में यश प्राप्त करनेवाले, न मिले हुए और न परस्पर विरोधी धनुर्धारी दुर्योधन के अभीष्ट कार्यों को प्राण-समर्पण के द्वारा भी पूरा करना चाहते हैं।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ 'महौजसः' तथा 'मानधनाः' आदि विशेषण अभिप्राययुक्त हैं।

ख. **कौन सुने कासों कहों, सुरति बिसारी नाह।**
बदाबदी जिय लेत हैं, ए बदरा बदराह ॥

—बिहारी

यहाँ 'बदराह' (कुमार्गगामी) साभिप्राय विशेषण है जो बादलों के लिए प्रयुक्त है। प्रिय के अभाव में नायिका को बदराह बादल शर्त बाँधकर (बदाबदी) कष्ट दे रहे हैं।

परिकरांकुर—अर्थालंकार का एक भेद। जब साभिप्राय विशेष्य का प्रयोग हो तो परिकरांकुर अलंकार होता है। यह अलंकार परिकर का विलोम है, जिसमें अभिप्राययुक्त विशेषण का वर्णन किया जाता है। [**दे० परिकर**] इस अलंकार में कवि जान-बूझकर, किसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए, अभिप्राय-युक्त विशेष्य (संज्ञा) का प्रयोग करता है।

परिकरांकुर के उद्भावक जयदेव हैं, तत्पश्चात् विद्याधर तथा अप्पय दीक्षित ने इसका वर्णन किया। जयदेव के अनुसार रचना में जब साभिप्राय विशेष्य प्रयुक्त हो तो परिकरांकुर अलंकार होगा।

साभिप्राय विशेष्येतु भवेत् परिकरांकुरः ॥

—चंद्रालोक, ५/४०

विद्याधर विशेष्य की साभिप्रायता के वर्णन को परिकरांकुर मानते हैं।

तादृक किमपि विशेष्यं साभिप्रायत्वमश्नुते यत्र।
स परिकरांकुरनामालंकारः कीर्त्तितः कविभिः ॥

—एकावली, ८/८५

दीक्षित ने जयदेव के लक्षण को उद्धृत किया है; पर इस संबंध में एक नवीन तथ्य प्रस्तुत करते हुए बताया कि अनेक विशेष्यों के प्रयोग में भी यह अलंकार होगा। इस दृष्टि से इन्होंने इसके दो प्रकार किए। प्रथम में साभिप्राय विशेष्य का प्रयोग होता है तो द्वितीय में अनेक अभिप्राययुक्त विशेषणों का विन्यास।

रीतिकालीन आचार्य जसवंत सिंह, मतिराम तथा पद्माकर ने 'चंद्रालोक' के लक्षण का अनुवाद कर परिकरांकुर अलंकार का निरूपण किया।

साभिप्राय विसेष जब परिकर अंकुर नाम ॥

—भाषाभूषण, ६५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

साभिप्राय विशेष्य तें परिकर अंकुर नाम ।।

—ललितललाम, १६४

साभिप्राय विशेष्य तहँ परिकर अंकुर होइ ।।

—पद्माभरण, १०१

दास का लक्षण अत्यंत स्पष्ट है—

बर्ननीय जु विसेष है, सोई साभिप्राय ।
परिकर अंकुर कहत हैं, तिहि प्रबीन कविराय ।।

—काव्यनिर्णय, १६/३०

नागेश एवं विश्वेश्वर पंडित इसे परिकर से अभिन्न मान कर उसी में इसे गतार्थ कर देते हैं । उनके अनुसार साभिप्राय विशेषण के द्वारा विशेष्य का भी ज्ञान हो जाता है ।

अत्र विशेषणैरित्युपलक्षणं विशेष्यापि तेन साभिप्राये विशेष्येऽप्ययम् ।....
एतेन साभिप्राय विशेष्ये परिकरांकुरनामा भिन्नोऽलंकार इत्यपास्तम् ।।

—उद्योत, पृ० ५४२

—अलंकार कौस्तुभ, पृ० ३५६-५७

उदाहरण—

क. फणींद्रस्ते गुणान् वक्तुं लिखितुं हैहयाधिपः ।
द्रष्टुमाखंडलः शक्तः क्वाहमेष, क्व ते गुणाः ।।—कुवलयानंद

कवि का किसी राजा के प्रति कथन—"हे राजन् ! आपका गुणवर्णन करने में शेष समर्थ है, लिखने में सहस्राजुर्न तथा देखने में इंद्र समर्थ हैं । कहाँ मैं इतना तुच्छ एवं और कहाँ आपके इतने अगणित गुण ।" यहाँ 'फणींद्र' 'हैहयाधिप' तथा आखंडल शब्द सहस्र मुखवाले, सहस्रहाथवाले तथा सहस्रनेत्र-वाले के द्योतक हैं । ये सभी विशेष्य अभिप्राययुक्त हैं ।

ख. बाल-बेलि सूखी सुखद, इहि रूखे रुख घाम ।
फेरि डहडही कीजिए, सुरस सींचि घनस्याम ।। —बिहारी

यहाँ 'घनश्याम' शब्द साभिप्राय है, जो बादल तथा श्रीकृष्ण का बोधक है । बादल लताओं को जल वर्षाकर हरी-भरी (डहडही) बनाता है और श्रीकृष्ण प्रेम रस से सींचकर नायिका को सुखी बना दें ।

परिचारिका—राजा के अंत:पुर में स्थित एक दासी । राजा के प्रसाधन की व्यवस्था करनेवाली तथा छत्र धारण करनेवाली सेविका को परिचारिका कहते हैं ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परिणाम—सादृश्यमूलक अलंकार। जब उपमान उपमेय का रूप धारण कर कोई क्रिया करे, तब परिणाम अलंकार होता है। परिणाम का अर्थ है परिवर्तन, परिणति, अवस्थांतर या स्वभाव का बदल जाना। इस अलंकार में किसी कार्य को संपन्न करने में असमर्थ उपमान, उपमेय से एकरूपता स्थापित कर उस कार्य को करने में समर्थ हो जाता है। इसमें उपमान की पूर्वस्थिति में परिवर्तन हो जाता है, इस लिए इसे परिणाम कहते हैं।

विषयनिष्ठायाः प्रकृतकार्योपयोगितायाः
अवच्छेदिका विषयात्मना परिणतिः परिणामः।

—अलंकारचंद्रिका, पृ० २०

इस अलंकार के उद्भावक राजानक रुय्यक हैं, तत्पश्चात् जयदेव, शोभाकर, विद्याधर, विद्यानाथ, विश्वनाथ, अप्पय दीक्षित तथा पंडितराज जगन्नाथ ने इसका वर्णन किया। रुय्यक ने बताया कि आरोप्यमाण (उपमान) के प्रकृतोपयोगी होने पर परिणाम अलंकार होता है। यहाँ इनका अभिप्राय यह है कि उपमान उपमेय के साथ मिलकर कोई क्रिया करे।

आरोप्यमाणस्य प्रकृतोपयोगित्वे परिणामः॥

—अलंकारसर्वस्व, पृ० ५१

जयदेव के अनुसार उपमेय तथा उपमान का पर्यवसान अभेद में हो तथा क्रियापद के साथ उसका उपयोग हो तो परिणाम अलंकार होगा।

परिणामोऽनयोर्यस्मिन्नभेदः पर्यवस्यति॥

—चंद्रालोक, ५/१२

विद्याधर ने इस अलंकार के निरूपण में सर्वथा भिन्न विचार व्यक्त किया है। उनके अनुसार उपमेय प्रकृत कार्योपयोग के लिए आरोप्यमाण के रूप में परिणत हो जाय तो परिणाम अलंकार होगा।

तं परिणामं द्विविधं कथयंत्यारोप्यमाणरूपतया।
परिणमति यत्र विषयः प्रस्तुतकार्योपयोगाय॥

यत्रारोपविषयः प्रकृतकार्यसिद्ध्यर्थमारोप्यमाणात्मतया परिणमति तत्र यथार्थाभिधानः परिणामः॥

—एकावली, ८/७

शोभाकर, विद्यानाथ और विश्वनाथ ने रुय्यक का अनुकरण कर परिणाम अलंकार का निरूपण किया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रकृतार्थानुगुणत्वं नेष्टा प्रकृतोपयोगिता साहि ।
सर्वत्र रूपकेऽस्मिन्साक्षात्कार्यकारिता किंतु ॥

—अलंकाररत्नाकर, पृ० ३९

आरोप्यमाणमारोपविषयात्मतया स्थितम् ।
प्रकृतस्योपयोगित्वे परिणामः उदाहृतः ॥

—प्रतापरुद्रीय, पृ० २७२

विषयात्मतयारोप्ये प्रकृतार्थोपयोगिनि ।
परिणामोभवेत्तुल्यातुल्याधिकरणोद्विधा ॥

—साहित्यदर्पण, १०/३४

दीक्षित ने बताया कि जब विषयी विषय का स्वरूप ग्रहण कर प्रकृत कार्य का उपयोगी हो तो परिणाम अलंकार होगा।

परिणामः क्रियार्थश्चेद्विषयीविषयात्मना ॥

—कुवलयानंद, २१

पंडितराज के अनुसार जब विषयी विषय के रूप से ही प्रकृतोपयोगी हो, स्वतंत्रतापूर्वक नहीं, तो परिणाम अलंकार होगा।

विषयी यत्र विषयात्मतयैव प्रकृतोपयोगी न स्वातंत्र्येण स परिणामः ।

—रसगंगाधर, पृ० ३२९

रीतिकालीन आचार्यों का परिणाम-निरूपण 'प्रतापरुद्रीय', 'साहित्यदर्पण' तथा 'कुवलयानंद' पर आश्रित है। चिंतामणि ने विद्याधर के आधार पर इसके लक्षण का निर्माण किया तो जसवंत सिंह, मतिराम और पद्माकर आदि ने 'कुवलयानंद' की परिभाषा को अनूदित किया।

लखि विषई विषयात्मके करत प्रकृति उपयोग ।
रूपक ते परिणाम जो भिन्न कहत कवि लोग ॥

—कविकुलकल्पतरु, ३/९३

करै क्रिया उपमान ह्वै वर्ननीय परिनाम ।

—भाषाभूषण, ५६

विषयी-विषय अभेद सों जहाँ करत कछु काज ।
बरनत तहँ परिनाम हैं कवि कोविद सिरताज ॥

—ललितललाम, ७५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुलपति ने 'साहित्यदर्पण' के आधार पर परिणाम अलंकार का वर्णन किया है।

लहि अभेद उपमेय सों, करै काम उपमान।
प्रकृति रूप ह्वै परिणमे, सो परिणामा जान।।

—रसरहस्य, ८/५१

सु परिनाम जहँ विषय काज करै उपमान।।

—पद्माभरण, ४०

उद्योतकार नागेश तथा विश्वेश्वर पंडित ने परिणाम के अलंकारत्व का खंडन कर इसे रूपक से अभिन्न सिद्ध किया है। [दे० उद्योत, पृ० ६६४, ६६५ तथा अलंकारकौस्तुभ, पृ० १६०, १६२]

उदाहरण—

क. वनेचराणां वनितासखानां दरीगृहोत्संगनिषक्तभासः।
भवंति यत्रौषधयो रजन्यामतैलपूराः सुरतप्रदीपाः।।

"दरीरूप गृह के मध्य जिनकी किरणें फैली रहती हैं, वे दिव्य औषधियाँ, जिस हिमालय में, प्रिया के साथ रमण करनेवाले वनचरों को बिना तेलवाले सुरत-प्रदीप का काम देती हैं।" यहाँ औषधियों पर दीपकत्व का आरोप कर उन्हें रमण कार्य में उपयोगी सिद्ध करने में परिणाम अलंकार है।

ख. लोचन-कंज बिसाल तें देखत देखौ बाम।।

नेत्र-कमल से नायिका का देखना परिणाम है।

ग. कर-कमलन्हि धनुसायक फेरत।।

रूपक और परिणाम—रूपक में समानता का भाव होता है; पर परिणाम में एकात्मता होती है। परिणाम में उपमान के रूपांतर का ही चमत्कार है। इसमें उपमान उपमेय का ही कार्य करने लगता है, जो कि उसका कर्तव्यकर्म नहीं होता। रूपक में उपमेयोपमान में ताद्रूप्य होता है; उपमान उपमेय के साथ मिलकर क्रिया नहीं करता। रूपक में उपमान कार्य करने की योग्यता स्वयं रखता है, पर परिणाम में वह उपमेय के साथ एकरूपता स्थापित कर क्रिया करने में प्रवृत्त होता है।

परिमितार्था—दूती का एक भेद। [दे० दूती] जो (दूती) केवल एक ओर की बात समझकर कार्य करे, उसे परिमितार्था कहते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परिवर्त्तक कवि—मौलिकता की दृष्टि से कवि का एक प्रकार। जो कवि प्राचीन या पूर्ववर्ती कवियों के भाव को परिवर्तित कर अपने कौशल द्वारा उस पर अपने व्यक्तित्व की छाप दे दे, उसे परिवर्तक कवि कहते हैं। [दे० कवि]

परिवृत्ति—वाक्यन्यायमूलक अर्थालंकार। जब सम अथवा असम पदार्थों के परस्पर विनिमय का वर्णन किया जाय तो परिवृत्ति अलंकार होगा। 'परिवृत्ति' का अर्थ परिवर्तन, अदल-बदल या विनिमय है। इस अलंकार में किसी को एक वस्तु देकर उसके बदले में (विनिमय में) अन्य वस्तु के लेने का वर्णन होता है।

कस्यचिद् वस्तुनो यस्त्वंतरेण परिवर्तनं परिवृत्तिः ।

—लघुवृत्ति (इंदुराज) पृ० ६९

इस अलंकार में दो पदार्थों के भिन्न धर्मों में परस्पर आदान-प्रदान का वर्णन कर कवि चमत्कार की योजना करता है। यदि आदान-प्रदान का वर्णन कवि कल्पित न हो तो वास्तविक विनिमय के निरूपण में अलंकारत्व संभव नहीं है। अर्थात् चमत्कारपूर्ण विनिमय के वर्णन में ही यह अलंकार होगा।

इसका विवेचन भामह से विश्वेश्वर पंडित तक होता रहा है।

भामह के अनुसार अन्य पदार्थ का त्याग कर विशिष्ट पदार्थ के ग्रहण में परिवृत्ति अलंकार होता है, साथ ही इसमें अर्थांतरन्यास का भी अस्तित्व रहता है।

विशिष्टस्य यदादानमन्यापोहेन वस्तुनः ।
अर्थांतरन्यासवती परिवृत्तिरसौ यथा ॥ —काव्यालंकार, ३/४१

यहाँ वस्तु के ग्रहण-त्याग में अलंकारत्व सिद्ध किया गया है।

दंडी ने वस्तुओं के विनिमय में परिवृत्ति अलंकार कहकर इसके स्वरूप का विस्तार किया।

अर्थानां यो विनिमयः परिवृत्तिस्तु सा स्मृता ॥

—काव्यादर्श, २/३५१

उद्भट ने पूर्ववर्ती आचार्यों की अपेक्षा इसके स्वरूप-विश्लेषण में अधिक विस्तार किया। इनके विचार से सम, न्यून तथा अधिक के वैशिष्ट्य से युक्त वस्तुओं के साथ किसी वस्तु के परिवर्त्तन को परिवृत्ति कहते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समन्यून विशिष्टैस्तु कस्यचित् परिवर्तनम् ॥
अर्थानर्थस्वभावं यत् परिवृत्तिरभाणि सा ॥

—काव्यालंकारसारसंग्रह, ५/१६

उद्भट ने इसके तीन भेद किए हैं—समपरिवृत्ति, न्यूनपरिवृत्ति तथा विशिष्टपरिवृत्ति।

समान या असमान पदार्थों के परिवर्तन को वामन परिवृत्ति कहते हैं।

समविसदृशाभ्यां परिवर्तनं परिवृत्तिः ॥

—काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, ४,३,१६

रुद्रट का लक्षण भामह से अनुप्राणित है। इन्होंने दो वस्तुओं के परस्पर एक ही समय त्याग तथा ग्रहण को परिवृत्ति कहा है।

युगपद्दानादाने अन्योन्यं वस्तनोः क्रियते यत्।
क्वचिदुपचार्येते वा प्रसिद्धितः सेति परिवृत्तिः ॥

—काव्यालंकार, ७/७७

मम्मट ने समान अथवा असमान पदार्थों के परस्पर विनिमय को परिवृत्ति कहा। इन्होंने इस अलंकार के निरूपण में विनिमय को महत्त्व देकर दो व्यक्तियों की सत्ता आवश्यक मानी है। यहाँ विनिमय का अभिप्राय एक व्यक्ति द्वारा अपनी किसी वस्तु को देकर अन्य व्यक्ति से, उसके किसी अन्य पदार्थ को ग्रहण करने से है।

परिवृत्तिर्विनिमयो योऽर्थानां स्यात्समासमैः ॥

—काव्यप्रकाश, १०/११३

रुयक ने परिवृत्ति की तीन स्थितियों का उल्लेख किया है—समगुणवाले पदार्थ का त्याग कर उसी प्रकार की वस्तु ग्रहण करना तथा उत्कृष्ट वस्तु को देकर हीन कोटि की वस्तु लेना तथा हीनगुण की वस्तु का त्याग कर उत्कृष्ट गुण की वस्तु का ग्रहण। ये एक वस्तु देकर अन्य के ग्रहण में परिवृत्ति अलंकार मानते हैं।

समन्यूनाधिकानां समाधिकन्यूनैर्विनिमयः परिवृत्तिः। विनिमयोऽत्र किंचित् त्यक्त्वा कस्यचिदादानम्। समेन तुल्यगुणेन त्यजमानेन तादृशस्यैवादानम्। तथाधिकेनोत्कृष्टगुणेन दीयमानेन न्यूनगुणस्य गुणहीनस्य परिग्रहः। एवं न्यूनेन हीनगुणेन त्यज्यमानेनाधिकगुणस्योत्कृष्टस्य स्वीकारः। तदेषा त्रिप्रकारा परिवृत्तिः।

—अलंकारसर्वस्व, पृ० १९१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जयदेव न्यून तथा अधिक पदार्थों के परस्पर आदान-प्रदान को परिवृत्ति अलंकार कहते है।

परिवृत्तिर्विनिमयो न्यूनाभ्यधिकयोर्मिथः ॥

—चंद्रालोक, ५/९४

परवर्ती आचार्यों में शोभाकर, विद्याधर, विद्यानाथ तथा विश्वनाथ ने मम्मट के ही मत का समर्थन कर इस अलंकार का वर्णन किया।

विनिमयः परिवृत्तिः ॥६०

अन्यत्र दानपूर्वमेवादानं विनिमयः। इह तु क्वचित्यागपूर्वकमपि क्वचित्तु कृते प्रतिकृतिरिति उभयरूपो विनिमयः परिवृत्तिः।

—अलंकाररत्नाकर, पृ० १५५

अधिकन्यूनसमानां न्यूनाधिक तुल्यवस्तुभिर्यत्र।
विनिमय एषा कथिता परिवृत्तिः कोविदैस्त्रिधा ॥

—एकावली, ८/५२

समन्यूनाधिकानां च यदा विनिमयो भवेत्।
साकं समाधिकन्यूनैः परिवृत्तिरसौमता ॥

—प्रतापरुदीय, पृ० ३३७

परिवृत्तिर्विनिमयः समन्यूनाधिकैर्भवेत् ॥

—साहित्यदर्पण, १०/८०

अप्पय दीक्षित ने जयदेव की ही परिभाषा उद्‌धृत कर दी है।

परिवृत्तिर्विनिमयो न्यूनाभ्यधिकयोर्मिथः ॥

—कुवलयानंद, ११२

पंडितराज ने अन्य की वस्तु लेने तथा अपनी वस्तु अन्य को देने में परिवृत्ति अलंकार माना है। इस अलंकार के चार प्रकारों का वर्णन कर इन्होंने इसके स्वरूप का विस्तार किया। पंडितराज कविकल्पित परिवृत्ति या विनिमय में ही इसका अलंकारत्व स्वीकार करते हैं।

परकीययत्किंचिद्वस्त्वादानविशिष्टं परस्मैस्वकीययत्किंचिद्वस्तु समर्पणं परिवृत्तिः ॥

—रसगंगाधर, पृ० ६४८-४९

एषु दानादानव्यवहारः कविकल्पित एव न तु वास्तवः यत्र वास्तवस्तत्र-नालंकारः।

—वही

रीतिकालीन आचार्यों ने परिवृत्ति के विवेचन में 'काव्यप्रकाश' तथा 'कुवलयानंद' को आधार बनाया है। चिंतामणि तथा कुलपति के लक्षण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मम्मटानुसारी हैं और जसवंत सिंह, मतिराम तथा पद्माकर ने 'कुवलयानंद' के लक्षण को अनूदित किया है।

समासम अर्थ को बदलो बरन्यो होइ।
चिंतामनि परिवृत्ति वह, बरनत हैं कवि लोइ।।

—कविकुलकल्पतरु, ३/२९८

अर्थन होइ जहं बदलिबो, विनिमय कहिए सोय।
सम अरु असम के भेद करि, सो पुनिद्वै विध होय।।

—रसरहस्य, ८/१३७

परिबृती लीजै अधिक थोरोई कुछ देइ।।

—भाषाभूषण, १४२

घाटि बाढ़ि द्वै बात को जहाँ पलटिबो होय।
तहाँ कहत परिबृत्ति हैं, कबि कोबिद सब कोय।।

—ललितललाम, २७१

दै थोरो लिय अधिक जहँ, तहँ परिबृत्ति उचारि।
दै बहु थोरो लेत जहँ, परिवृति कहिए ताहि।।

—पद्माभरण, १८६-८७

प्रथम परिवृत्ति के भेद—उद्भट एवं मम्मट ने परिवृत्ति के तीन भेदों का कथन किया है। पंडितराज इसके चार प्रकारों का निरूपण करते हैं। और ये ही भेद मान्य भी हुए। सम परिवृत्ति तथा विषम परिवृत्ति के नाम से दो भेद करने के बाद पंडितराज ने पुनः दोनों के दो-दो भेदों का वर्णन किया।

प्रथम परिवृत्ति—उत्तम या उत्कृष्ट पदार्थ का उत्तम या उत्कृष्ट पदार्थ के साथ विनिमय—

उदाहरण—

क. अंगानि दत्त्वा हेमांगि ! प्राणान्क्रीणासि चेन्नृणाम्।
युक्तमेतन्न तु पुनर्लोचनांबुरुहद्वयम्।।

—रसगंगाधर।

"हे सुवर्णांगि ! तुम शरीर के अंगों को देकर मनुष्यों का प्राण खरीद लेती हो, यह उचित कहा जा सकता है; किंतु नेत्र-स्वरूप दो कमलों को देकर प्राणों का हरण कर लेती हो, यह उचित नहीं है।

४७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ख. बेलि कुसुम कहँ पवन यह, सीख नटन की देत।
भेंट माँहि तिनतें बहुरि, अति सुगंध लै लेत ॥

यहाँ नृत्य की शिक्षा देकर सुगंध लेने में उत्कृष्ट वस्तु का विनिमय है।

द्वितीय परिवृत्ति—जब न्यून पदार्थ का न्यून पदार्थ के साथ विनिमय हो।

उदाहरण—

क. अस्थिमालामयीं दत्त्वा मुंडमालामयींतनुम्।
गृह्यतां त्वत्पुरस्थानां को लाभः स्मरशासन ॥

"कामारि! काशी-निवासियों को क्या लाभ है जबकि वे अस्थिमालामय शरीर देकर मुंडमालायुक्त शरीर प्राप्त करते हैं।"

यहाँ अस्थिमाला (निकृष्टवस्तु) देकर मुंडमाला (निकृष्टवस्तु) के ग्रहण में द्वितीय प्रकार है।

ख. गंगे! कीन्हें कौन तुम मो पै बड़ उपकार।
लै मन को सब मैल अब, तन को दीन्हीं छार ॥

मैल लेकर छार देने में निकृष्ट वस्तु का विनिमय है।

तृतीय परिवृत्ति—उत्कृष्ट वस्तु लेकर निकृष्ट वस्तु के ग्रहण में तृतीय प्रकार होता है।

उदाहरण—

क. गरिमाणमर्पयित्वा लघिमानं कुच युगात् कुरंगदृशाम्।
स्वीकुर्वते नमस्ते यूनां धैर्याय निर्विवेकाय ॥

तरुणों को संबोधित कर कवि का कथन—इनके विवेक-रहित धैर्य को नमस्कार है; क्योंकि वे अपनी गरिमा प्रदान कर मृगाक्षियों के स्तनद्वय की लघुता को स्वीकार करते हैं। अपनी गरिमा देकर (उत्कृष्ट) स्तनद्वय की लघुता स्वीकार करने में तृतीय भेद होगा।

ख. कासों कहिए आपनी, यह अयान जदुराइ।
मन मानिक दीन्हों तुम्हिं, लीन्हीं विरह बलाइ ॥

माणिक्य देकर विरह-बलाय लेने में उत्कृष्ट वस्तु देकर निकृष्ट वस्तु के लेने का वर्णन है।

चतुर्थ परिवृत्ति—निकृष्ट वस्तु देकर उत्कृष्ट वस्तु लेना—

उदाहरण—

क. तस्य च प्रवयसो जटायुषः स्वर्गिणः किमिव शोच्यतेऽधुना?
येन जर्जर कलेवर व्ययात्क्रीतमिंदुकिरणोज्जवलं यशः ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उस जटायु की मृत्यु के लिए क्यों शोक किया जाय, जिसने जर्जर शरीर देकर चंद्रमा की किरणों के सदृश उज्ज्वल तथा निर्मल कीर्ति को खरीद लिया। जर्जर शरीर (निकृष्ट वस्तु) को देकर उज्ज्वल यश (उत्कृष्ट वस्तु) के लेने में चतुर्थ प्रकार हुआ।

ख. इक धतूर फल दै सिवहिं, लिय अमोघ फल चार।

धतूर जैसे (निकृष्ट) फल को देकर शिवजी से चार फल (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—उत्कृष्ट वस्तु) प्राप्त करने में चतुर्थ परिवृत्ति है।

ग. राधे तेरी चतुरता, को न सराहे देत।
दै कँ कठिन कटाच्छ तू, हिय हीरा हरि लेत॥

विश्वेश्वर पंडित का परिवृत्ति-वर्णन—

सदृशासदृशैरर्थैरर्थानां विनिमयस्तु परिवृत्तिः। समेन समस्य, न्यूनेनोत्तमस्य, न्यूनेनन्यूनस्य च विनिमय इति त्रेधा परिवृत्तिः। —अलंकारकौस्तुभ, पृ० ३३३

परिसंख्या—वाक्यन्यायमूलक अलंकार। एक पदार्थ की अन्य स्थानों में स्थिति संभव होने पर भी, अन्यत्र निषेधकर एक स्थान में उसका नियमन या नियंत्रण कर देना परिसंख्यालंकार है। 'परिसंख्या' का अर्थ है 'छोड़कर वर्णन करना।' परि (वर्जन—छोड़कर) संख्या (वर्णनीय गणना) अर्थात् जहाँ दूसरों की भी गणना की जा सकती थी; किंतु उन्हें छोड़कर एक की गणना की गई। इसमें एक वस्तु की स्थिति अनेक स्थलों पर स्थिति संभव होने पर भी उसे उन स्थलों से हटाकर (निषेध कर) अन्य स्थान पर स्थापित कर देने का वर्णन किया जाता है।

परिवर्जने कुत्रचित् संख्यानं वर्णनीयत्वे गणनं परिसंख्या।

—अलंकारसर्वस्व, पृ० १७३

परिसंख्या शब्द पूर्वमीमांसा का है, आलंकारिकों ने वहीं से इसे लिया है। इसमें निषेध का वर्णन कविकल्पनाप्रसूत होना चाहिए। एक स्थान पर निषेध या अन्य स्थान पर स्थापना की क्रिया में एक वाक्यगत संगति रहती है। इसीलिए इसे वाक्यन्यायमूलक अलंकार कहते हैं।

इस अलंकार के पुरस्कर्ता आचार्य रुद्रट हैं, तत्पश्चात् सभी आलंकारिकों ने इसका निरूपण किया। रुद्रट से विश्वेश्वर पंडित पर्यंत परिसंख्यालंकार का विवेचन-प्रवाह अक्षुण्ण रहा। रुद्रट के अनुसार जब किसी पदार्थ का गुण, क्रिया तथा जाति रूप से अन्य स्थान पर स्थित रहने और कहीं उसके अभाव का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वर्णन होने में परिसंख्या अलंकार होता है। यह पृष्ट तथा अपृष्ट दो प्रकार की होती है।

पृष्टमपृष्टं वा सद्गुणादि यत्कथ्यते क्वचित्तुल्यम्।
अन्यत्र तु तदभावः प्रतीयते सेति परिसंख्या ॥
—काव्यालंकार, ७/७९

मम्मट ने रुद्रट के आधार पर ही अपनी परिभाषा प्रस्तुत की है। इनका लक्षण अधिक स्पष्ट है। इनके मतानुसार जब पृष्ट (पूछी गई) एवं अपृष्ट (न पूछी गई) वस्तु शब्दतः प्रतिपादित होकर अंततः अपने सदृश किसी अन्य पदार्थ के निषेध या निराकरण में परिणत हो जाय तो परिसंख्या अलंकार होगा।

किंचित्पृष्टमपृष्टं वा कथितं यत्प्रकल्पते।
तादृगन्यव्यपोहाय परिसंख्या तु सा स्मृता ॥
—काव्यप्रकाश, १०/११२

रुय्यक का लक्षण अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इन्होंने बताया कि एक पदार्थ को अन्य स्थानों से हटाकर उसका एक स्थान पर नियंत्रण या नियमन परिसंख्यालंकार है।

एकस्यानेकप्राप्तावेकत्र नियमनं परिसंख्या। एकं वस्तु यदानेकत्र युगपत्संभाव्यते तदा तस्यैकत्रासंभाव्ये द्वितीय परिहारेण नियमनं परिसंख्या।
—अलंकार-सर्वस्व, पृ० १९३-९५

इन्होंने बताया कि श्लेषयुक्त होने पर यह अलंकार अधिक शोभावर्द्धक होता है।

इत्यादि श्लेषसंपृक्तत्वमस्या अत्यंत चारुत्वनिबंधनम्। —वही

जयदेव ने एक पदार्थ का एक स्थान से निषेध कर अन्य स्थान पर उसे स्थित दिखलाने में परिसंख्या अलंकार माना है।

परिसंख्या निषिध्यैकमन्यस्मिन् वस्तुयंत्रणम् ॥
—चंद्रालोक, ५/९५

विद्याधर तथा विद्यानाथ ने रुय्यक के मत का और विश्वनाथ ने मम्मट के मत का अनुगमन किया है।

एकस्यानेकत्र प्राप्तावेकत्र यो भवेन्नियमः।
ख्याता सा परिसंख्या संख्यावद्भिश्चतुर्भेदा ॥
—एकावली, ८/५३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एकस्य वस्तुनः प्राप्तावनेकत्र कदा यदि ।
एकत्र नियमः साहि परिसंख्या निगद्यते ॥

—प्रतापरुद्रीय, पृ० ३२६

प्रश्नादप्रश्नतो वापि कथिताद्वस्तुनो भवेत् ।
तादृगन्यव्यपोहश्चेच्छाब्द आर्थोऽथवा तदा ॥

—साहित्यदर्पण, १०/८१

अप्पय दीक्षित ने जयदेव का ही लक्षण उद्धृत कर दिया है ।

परिसंख्यानिषिध्यैकमन्यस्मिन् वस्तु यंत्रणम् ।

—कुवलयानंद, ११३

पंडितराज जगन्नाथ के अनुसार सामान्यतः प्राप्त वस्तु का किसी वैशिष्ट्य के कारण अन्य पदार्थों से व्यावृत्ति या पृथक्करण परिसंख्या है ।

सामान्यतः प्राप्तस्यार्थस्य कस्माच्चिद्व्यावृत्तिः परिसंख्या ।………पाक्षिक-प्राप्ति युगपत्प्राप्तिरूपस्यावांतरविशेषस्याविवक्षणात् । अतएव वैयाकरणानां मते परिसंख्यापि नियमशब्देनोच्यते । किंतु कविप्रतिभानिर्मिता या तादृशव्यावृत्तिस्तया ॥

—रसगंगाधर, पृ० ६५२

विश्वेश्वर पंडित का लक्षण मम्मटानुमोदित है ।

पृष्टमपृष्टं चोक्तं यद्व्यंग्यं वापि वाच्यं वा ।
फलतीतरव्यपोहं परिसंख्या सातु संख्याता ॥

—अलंकारकौस्तुभ, पृ० ३५८

रीतिकालीन आचार्यों ने मम्मट, विद्यानाथ, 'चंद्रालोक' तथा 'कुवलयानंद' के आधार पर परिसंख्या का विवेचन किया । चिंतामणि ने मम्मट एवं विद्यानाथ के लक्षग को अपना आधार बनाया और कुलपति ने मम्मट के आधार पर अपनी परिभाषा दी । जसवंत सिंह, मतिराम एवं पद्माकर ने 'चंद्रालोक' के लक्षण का अनुवाद किया है ।

एक वस्तु जो अनेक थल प्राप्त एक ही बार ।
नियमित कीजै एक थल परिसंख्यालंकार ॥

—कविकुलकल्पतरु, ३/२५६

पूछ्यौ अपूछ्यौ कछुक, कह्यौ मानि जहँ लेह ।
वा सम और न करन कौं परिसंख्या कहि देह ॥

—रसरहस्य, ८/१६६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परिसंख्या इक थल बरजि, दूजे थल ठहराइ ।
—भाषाभूषण, १४३

और ठौर ते मेटि कछु बात एक ही ठौर ।
बरनत परिसंख्या कहत कबि कोबिद सिरमौर ।।
—ललितललाम, २७३

करि निषेध इक वस्तु को, थपै जु इक थल माह ।
परिसंख्या तासों कहत, जे सुकबिन के नाह ।।
—पद्माभरण, १८८

भेद—परिसंख्या के चार भेद माने गए हैं। रुद्रट ने दो भेदों का कथन किया और मम्मट ने चार भेद माने। इसके चार भेदों का विवरण इस प्रकार है।

क. प्रश्नपूर्वक प्रतीयमान निषेध—जब प्रश्न करने के बाद निषेध की व्यंजना की जाय।

ख. प्रश्नपूर्वकवाच्यनिषेध—प्रश्न करने के बाद शब्द द्वारा उसका निषेध किया जाय।

ग. प्रश्नरहित प्रतीयमान निषेध—जब बिना प्रश्न किए ही निषेध की व्यंजना हो।

घ. प्रश्नरहितवाच्यनिषेध—इसमें बिना प्रश्न किए ही शब्द द्वारा निषेध किया जाता है।

प्रश्नपूर्वक परिसंख्या—

उदाहरण—

क. किमासेव्यं पुंसां सविधमनवद्यं द्युसरितः
किमेकांते ध्येयं चरणयुगलं कौस्तुभभृतः ।
किमाराध्यं पुण्यं किमभिलषणीयं च करुणा
यदासक्त्या चेतो निरवधि विमुक्त्यै प्रभवति ।।

"मनुष्य के लिए सेवन-योग्य क्या है? गंगा नदी का पवित्र किनारा। एकांत में ध्यान देने-योग्य क्या है? कौस्तुभमणि को धारण करनेवाले भगवान् विष्णु के दोनों चरण। किसकी आराधना करनी चाहिए? पुण्य की। अभिलाषा के योग्य क्या है? करुणा। क्योंकि, ऐसी वस्तुओं में चित्त को लगाने से वह असीम मुक्ति प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ख. सेव्य कहा ? तर सुर सरित, कहा ध्येय ? हरि-पाद।
करन उचित कह ? धर्म नित, चित तजि सकल विवाद ॥

आर्थ निषेध—

कौटिल्ये कचनिचये, कर चरणाधरदलेषु रागस्ते।
काठिन्यं कुचयुगले तरलत्वं नयनयोर्वसति ॥

"हे प्रिय ! तुम्हारे केशों के समूह में कुटिलता, हाथ, पैर एवं अधरों में राग, दोनों स्तनों में काठिन्य तथा आँखों में चंचलता है।" यहाँ केशादि की कुटिलता का कथन कर हृदय आदि की कुटिलता का निषेध है।

ग. किं भूषणं सुदृढमत्र यथो न रत्नं
किं कार्यमार्यचरितं सुकृतः न दोषः।
किं चक्षुरप्रतिहतं धिषणा न नेत्रं
जानाति कस्त्वदपरः सदसद्विवेकम् ॥

"अत्यंत दृढ़ आभूषण क्या है ? यश, न कि रत्न। श्रेष्ठजनों के द्वारा करने योग्य कौन काम है ? पुण्य, न कि दोष। कहीं न ठहरनेवाली दृष्टि कौन है ? बुद्धि, आँख नहीं। आपके अतिरिक्त ऐसा कोई भी नहीं है, जो सत् अथवा असत् के विवेक को जाननेवाला हो।"

घ. शाब्दनिषेध—

भक्तिर्भवे न विभवे व्यसनं शास्त्रे न युवतिकामस्त्रे।
चिंता यशसि न वपुषि प्रायः परिदृश्यते महताम् ॥

महापुरुषों की भक्ति शिवजी में होती है, न कि संपत्ति में; शास्त्रों का व्यसन होता है, न कि काम के अस्त्र युवतियों का; इन्हें अपने यश की चिंता होती है, शरीर की नहीं। ऐसी प्रायः महापुरुषों की स्वाभाविक वृत्ति होती है।

हिंदी उदाहरण—

क. पत्रा ही तिथि पाइए, वा घर के चहुँ पास।
नित प्रति पून्योई रहत, आनन ओप उजास ॥

—बिहारी

—यहाँ तिथि को अन्य स्थानों से हटाकर पत्रा में नियंत्रित कर देने में परिसंख्या है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ख. देह में पुलक, उरों में भार,
भ्रुवों में भंग, दृगों में बाण ।
अधर में अमृत, हृदय में प्यार,
गिरा में लाज, प्रणय में मान ।

पुलक, भार, भंग, बाण, अमृत आदि को अन्य स्थान से हटाकर देह आदि में रखना परिसंख्या है ।

परिहास—नायिका की सखी का एक कार्य । [दे० सखी] हँसी-मजाक करने को परिहास कहते हैं ।

परिहासो नर्मवचः, —रसमंजरी, पृ० १६२

हँसी करब परिहास ॥ —जगद्विनोद, ३५०

उदाहरण—

क. आगारभित्तिलिखितासु निवेदयस्व
कः सप्तमो दशसु मूर्त्तिषु लोकभर्तुः ।
इत्थं सखीजनवचः प्रतिपद्य सद्यः
सीता स्मितद्युतिभिरुत्तरयांचकार ॥

—रसमंजरी, ९५

"सखी ने परिहास में सीता से कहा कि घर की भित्ति पर सारे संसार के स्वामी की जो मूर्त्तियाँ चित्रित हैं, उनमें सातवीं मूर्त्ति किसकी है ? इस प्रकार सखी की बात को समझकर सीता ने मुसकुराहट की चमक द्वारा उत्तर दिया ।"

ख. को तेरो यह साँवरो, यों बूझ्यो सखि आइ ।
मुख तें कही न बात कछु, रही सुमुखि मुख नाइ ॥

—जगद्विनोद, ३५८

ग. प्रभा तरौना लाल की परी कपोलनि आनि ।
कहा छपावत चतुर तिय कंत दंतछत जानि ॥

—रसराज, २९७

परुषा—आचार्य रुद्रट-वर्णित एक प्रकार की वृत्ति । इसे उन्होंने अनुप्रास का एक भेद माना है । [दे० अनुप्रास]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परुषा वृत्ति में सभी वर्णों के साथ सकार संयुक्त होता है तथा सभी वर्णों के ऊपर रेफ भी रहता है और र भी संयुक्त रहता है। जैसे; वर्ग एवं क्रम। इसमें र के साथ ह का या तो ऊपर संयोग होता है या नीचे—जैसे; र्ह, ह्र। इसके अतिरिक्त श और ष के सभी प्रकार के संयुक्त प्रयोग होते हैं—जैसे; परामर्श, श्री।

सर्वैरुपरि सकारः सर्वे रेणोभयत्र संयुक्ताः।
एकत्रापि हकारः परुषायां सर्वथा च शषौ॥

—काव्यालंकार, २/२६

इसका प्रयोग कठोरतासूचक वचनों या ऐसे वचनों के अनुकरण में होता है। अन्य प्रसंगों में इसका प्रयोग वर्जित है। यदि किसी रचना में गति का अभाव उपस्थित होने लगे तो ह्र आदि वर्णों को त्याग कर श, ष का प्रयोग किया जाय। —काव्यालंकार, २/२८

परुषावृत्ति—[दे० **वृत्त्यनुप्रास**] वृत्त्यनुप्रास का एक भेद, जिसमें ओजगुणव्यंजक वर्णों का प्रयोग होता है।

परोढ़ा—परकीया नायिका का एक भेद। [दे० **परकीया**] परोढा अन्यविवाहिता को कहते हैं।

पर्याय—वाक्यन्यायमूलक अलंकार। जब एक वस्तु की क्रमशः अनेक स्थानों में अथवा अनेक वस्तुओं की क्रमशः (कालभेद से) एक स्थान में स्वतः अवस्थिति हो या अन्य द्वारा की जाय तो वहाँ पर्याय अलंकार होता है। 'पर्याय' का अर्थ अनुक्रम या क्रम है—पर्यायोऽवसरे क्रमे।—अमरकोश।

इस अलंकार में एक वस्तु या एक ही आधेय की क्रमशः अनेक आधारों में अथवा अनेक वस्तुओं की एक आधार में, काल-भेद से, स्थिति का वर्णन होता है। यह वर्णन लोक-सिद्ध न होकर कविकल्पना-प्रसूत या चमत्कारपूर्ण होता है। इसमें आधेय, आधार तथा क्रम—तीनों ही काल्पनिक होते हैं, वास्तविक नहीं।

पर्याय अलंकार के उद्भावक आचार्य रुद्रट हैं। कालांतर में इसका निरूपण भोज, मम्मट, रुय्यक, शोभाकर, जयदेव, विद्याधर, विद्यानाथ, विश्वनाथ, अप्पय दीक्षित, पंडितराज जगन्नाथ तथा विश्वेश्वर पंडित ने किया। रुद्रट ने पर्याय के दो प्रकारों का विवेचन किया है। प्रथम भेद में कहा गया है कि विवक्षित वस्तु के प्रतिपादन में समर्थ अर्थ का इस प्रकार कथन किया

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जाता है, जो न तो उसके समान ही हो और न उसका उत्पादक या उससे उत्पन्न हो। इसके द्वितीय प्रकार का लक्षण इस प्रकार है—जब एक वस्तु की (सुख-दुःखादि स्वरूप) या अनेक वस्तुओं की एक ही आधार में स्थिति हो या अन्य के द्वारा कराई जाय। इसमें दो तथ्यों का उद्घाटन किया गया—

क. वर्णनीय वस्तु का सुख-दुःख-स्वभाव से युक्त होना।

ख. अनेक आधारों में एक का या एक आधार में अनेक पदार्थों का क्रमशः वर्णन।

पर्याय का परवर्ती विकास रुद्रट-कृत द्वितीय भेद के आधार पर हुआ। रुद्रट द्वितीय पर्याय के भी दो उपभेद का कथन करते हैं।

वस्तुविवक्षितवस्तुप्रतिपादनशक्तमसदृशं तस्य।
यदजनकमजन्यं वा तत्कथनं यत्स पर्यायः॥
यत्रैकमनेकस्मिन्ननेकमेकत्र वा क्रमेण स्यात्।
वस्तु सुखादि प्रकृतिः क्रियेतवान्यः स पर्यायः॥

—काव्यालंकार, ७/४२-४४

भोज का पर्याय-निरूपण परंपरागत न होकर स्वतंत्र है, जिसकी कोई परंपरा आगे नहीं चली। इनके अनुसार मिस, भंगि के निराकांक्ष या साकांक्ष कथन को पर्याय कहते हैं।

मिषं यदुक्तिर्भंगिर्यावसरो यः स सूरिभिः।
निराकांक्षोऽथ सांकांक्षः पर्याय इति गीयते॥

—सरस्वतीकंठाभरण, ४/८०

मम्मट ने इस अलंकार का व्यवस्थित लक्षण प्रस्तुत किया, जो पश्चाद्वर्ती आचार्यों का आधार बना। इन्होंने पर्याय के दो भेदों की कल्पना की तथा रुद्रट के द्वितीय भेद को आधार बनाकर, उसमें कतिपय संशोधन करते हुए, अपना लक्षण बनाया। इनके अनुसार जब एक वस्तु क्रम से अनेक में हो या की जाय तो पर्याय होगा। दूसरे भेद में बताया गया कि अनेक वस्तुएँ एक ही आधार में स्थित होती हैं या कराई जाती हैं।

एकं क्रमेणानेकस्मिन्पर्यायः।
एकं वस्तु क्रमेणानेकस्मिन्भवति क्रियते वा, स पर्यायः।
अन्यस्ततोऽन्यथा।
अनेकमेकस्मिन्क्रमेण भवति क्रियते वा, सोऽन्यः॥

—काव्यप्रकाश, १०/११७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मम्मट ने बताया कि पर्याय में कहीं तो प्रयोजक का निर्देश नहीं किया जाता और कहीं किया जाता है।

रुय्यक का विवेचन मम्मट पर आधृत है; फिर भी इनकी अपनी विशिष्टताएँ हैं। इन्होंने इसके चार प्रकारों का निरूपण किया है। इनके अनुसार जब एक वस्तु की अनेक में अथवा अनेक वस्तु की एक में क्रमशः स्थिति का वर्णन हो तो वहाँ पर्याय अलंकार होगा।

रुय्यक के चार भेदों का विवरण इस प्रकार है—

क. अनेक विषयक असंहत रूप-आधार,

ख. अनेक विषयक संहत रूप-आधार,

ग. अनेक विषयक असंहत रूप-आधेय,

घ. अनेक विषयक संहत रूप-आधेय,

एकमनेकस्मिन्ननेकस्मिन्क्रमेण पर्यायः।

क्रमप्रस्तावादिदमुच्यते। एकमाधेयमनेकस्मिन्नाधारे यत्तिष्ठति स एकः पर्यायः। नन्वेकमनेकगोचरमिति प्रोक्तेन लक्षणेन विशेषालंकारोत्रोक्तः। तत्किमर्थंमिदमुच्यते इत्याशंक्योक्तम्। इह च क्रमोपादानादर्थात्तत्र यौगपद्यप्रतीतिः। तेनास्य ततो विविक्त विषयत्वम्। एकस्मिन्नाधारेऽनेकमाधेयं यत्स द्वितीयः पर्यायः। तत्रानेकोऽसंहतरूपः संहतरूपश्चेति चत्वारोऽस्य भेदाः॥

—अलंकारसर्वस्व, पृ० ८९-९०

परवर्ती आचार्यों में शोभाकर, जयदेव, विद्याधर, विद्यानाथ तथा विश्वनाथ ने रुय्यक को आधार बनाकर पर्याय अलंकार का वर्णन किया।

क्रमेणैकमनेकत्रान्यथा वा पर्यायः॥ ९१

क्रमेणैकमाधेयमनेकत्रानेकवैकत्र यद्भवति स पर्यायः।

इह क्रम ग्रहणाद्। द्वितीय विशेष समुच्चयोर्यद्यौगपद्यं प्रतीयते तस्माद्विविक्तविषयत्वं तेन युगपदेकमनेकत्र चेद्भवति स द्वितीयो विशेषः। तथैवेकत्रानेकश्चेत्स द्वितीयः समुच्चयः। तस्यैवार्थस्य निवृत्तस्य पुनरागमनं प्रसवः। अर्थांतरस्य तु पर्यायः।''''''अस्य चानेकाधाराधेयरूपतया द्विभेदस्याधाराणां आधेयानां परस्परं वैलक्षण्यमवैलक्षण्यं वेति द्वैधे चत्वारो भेदाः।

—अलंकाररत्नाकर, पृ० १५७

पर्यायश्चेदनेकत्र स्यादेकस्य समन्वयः॥ —चंद्रालोक, ५/९३

एकस्मिन् यदनेकं क्रमादनेकत्र वा भवत्येकम्।

तमलंकारनिरूपणनिपुणः पर्यायमब्रुवत्॥ —एकावली, ८/५१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्रमेणैकमनेकस्मिन्नाधारे वर्तते यदि।
एकस्मिन्नथवानेकं पर्यायालंकृतिर्मता ॥
—प्रतापरुद्रीय, पृ० ३३४

विश्वनाथ का लक्षण रुय्यक से प्रभावित है; पर इनकी भेद-व्यवस्था सर्वथा भिन्न है।

क्वचिदेकमनेकस्मिन्ननेकं चैकगं क्रमात् ।
भवति क्रियते वा चेत्तदा पर्याय इष्यते ॥
—साहित्यदर्पण, १०/८०

विश्वनाथ का भेद-वर्णन—
क. एक वस्तु की अनेक स्थानों पर क्रमशः अवस्थिति,
ख. अनेक वस्तुओं का क्रमशः एकत्र अवस्थान,
ग. एक वस्तु का अनेक स्थानों पर क्रमशः संपादन अथवा विधान,
घ. अनेक वस्तुओं का एकत्र संपादन अथवा विधान-वर्णन ।

दीक्षित ने पर्याय के दो भेदों का उल्लेख किया; पर अपने लक्षण-निर्माण में 'चंद्रालोक' को आधार बनाया।

आधार के उत्तरोत्तर संकुचित होने पर संकोच पर्याय तथा उसके उत्तरोत्तर विकास में विकास-पर्याय माना जायगा। इनके अनुसार जब एक आधार में अनेक वस्तुओं का क्रमशः वर्णन हो तो अन्य भेद होगा।

पर्यायो यदि पर्यायेणैकस्यानेक संश्रयः ॥ —कुवलयानंद, ११०

पंडितराज ने बताया कि जब क्रमशः एक आधेय का अनेक अधिकरणों (आधारों) में वर्णन हो तो प्रथम पर्याय तथा एक अधिकरण में क्रम से अनेक आधेयों की स्थिति में द्वितीय पर्याय होगा।

क्रमेणानेकाधिकरणमेकमाधेयमेकः पर्यायः ।
क्रमेणानेकाधेयकमेकमधिकरणमपरः ॥
—रसगंगाधर, पृ० ६४५

पंडितराज ने आधार, आधेय तथा उनसे संबद्ध विषयों को कवि-कल्पित होना आवश्यक माना है।

यत्राधाराधेयतत्संबंधक्रमेषु क्वचिदपि कविकल्पितनापेक्षातत्रै वायमलंकारः यत्र तु सर्वांशे लोकसिद्धत्वं न तत्र कश्चिदलंकारः ॥ —वही, पृ० ६६८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विश्वेश्वर पंडित ने मम्मट का अनुसरण करते हुए बताया कि एक वस्तु की अनेक में अथवा अनेक की एक में क्रमिक अवस्थिति ही पर्याय है।

एकमनेकमनेकैस्मिन्मक्रतोऽस्ति स पर्यायः।

एकं वस्तु अनेकस्मिन् अनेकं वा क्रमेणैकस्मिन् यदुच्यते स द्विविधः पर्याय इत्यर्थः। तत्रापि प्रयोजकाभिधानभिधानाभ्यां द्वैविध्यमध्यवसेयम् ॥

—अलंकारकौस्तुभ, पृ० ४४६

रीतिकालीन आचार्यों ने 'काव्यप्रकाश', 'चंद्रालोक' तथा 'कुवलयानंद' को आधार बनाकर पर्याय का विवेचन किया। चिंतामणि तथा कुलपति के लक्षण 'काव्यप्रकाश' के भावानुवाद हैं।

क्रम क्रम एक अनेक में एकहु माह अनेक।
द्वै प्रकार पर्जाय यौं सत कवि करत विवेक॥

—कविकुलकल्पतरु, ३/२८७

एक अनेकन में रहै, क्रम परजाय सु और।
सो दूजोऊ अनेक जहं रहत एक ही ठौर॥

—रसरहस्य, ८/१५७

महाराज जसवंत सिंह, मतिराम तथा पद्माकर ने 'कुवलयानंद' के आधार पर पर्याय का वर्णन किया।

द्वै पर्याय अनेक को क्रम सों आश्रय एक।
फिरि क्रम तें जब एक वह आश्रय धरै अनेक॥

—भाषाभूषण, १४०

कै अनेक हैं एक मैं कै अनेक मैं एक।
रहत जहां पर्याय सो, है पर्याय विवेक॥

—ललितललाम, २६७

सु पर्जाय क्रम सों जु इक, आश्रय धरै, अनेक।
बिय पर्जाय अनेक को, क्रम सो आश्रय एक॥

—पद्माभरण, १८४-१८५

भेद—पर्याय के मुख्य रूप से दो ही प्रकार मान्य हुए। प्रथम पर्याय में एक वस्तु की क्रम से अनेक स्थानों में स्थिति का वर्णन होता है और द्वितीय पर्याय में अनेक वस्तुओं की एक आधार में स्थिति का वर्णन किया जाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रथम पर्याय—एक की अनेक स्थानों में क्रमिक स्थिति—

क. बिंबोष्ठ एव रागस्ते तन्वि ! पूर्वमदृश्यत।
अधुनाहृदयेष्वेव मृगशावाक्षि लक्ष्यते ॥

"हे कृशांगी, पहले तो बिंब के सदृश तुम्हारे लाल होंठ में राग दिखाई पड़ता था; पर हे मृगनेत्री, अब वह राग तुम्हारे हृदय में भी दिखाई पड़ता है।"

यहाँ एक ही वस्तु राग की होठ एवं हृदय, दो स्थानों में अवस्थिति के कारण प्रथम पर्याय हुआ।

ख. तुव अधरहिं में हे सखी हुतो जो पूरब राग।
अब तुव हिय में भी अहै, लख्यौ परत बड़ भाग ॥

राग की स्थिति अधर एवं हृदय में कहना प्रथम पर्याय है।

द्वितीय पर्याय—अनेक की एक में स्थिति—

क. प्रथमं श्रितकंजकोरकाभावथ शोभामनुभूय कंदुकानाम्।
अधुनाश्रयितुं कुचौ यतेते दयिते ते करिशाव कुंभलीलाम् ॥

"हे प्रिय, पहले तुम्हारे स्तन कमल की कली की शोभा को धारण करनेवाले थे, पुनः कंदुक की शोभा का अनुभव करते हुए अब वे हाथी के बच्चे की लीला का आश्रय ग्रहण करने के लिए प्रयत्नशील हैं।" यहाँ कमल, कंदुक तथा कलभ की एक आधार कुचद्वय में स्थिति का वर्णन है।

ख. उसी देह में लरिकई पुनि तरुनाई जोर।
बिरधाई आई अजहुं भजि ले नंदकिसोर ॥

यहाँ अनेक आधारों—लरिकाई, तरुनाई एवं बिरधाई—में एक देह को आश्रित दिखाया गया है।

द्वितीय समुच्चय एवं द्वितीय पर्याय—समुच्चय में एक ही आधार में अनेक आधेयों का क्रमपूर्वक संबंध स्थापित नहीं होता; पर पर्याय में अनेक वस्तुओं की एक ही आधार में क्रमशः स्थिति दिखाई जाती है।

विशेष एवं पर्याय—विशेषालंकार में भी एक वस्तु की एक ही समय में अनेक स्थानों में स्थिति प्रदर्शित की जाती है; किंतु पर्याय में एक ही समय में न होकर एक पदार्थ की कई स्थानों में, भिन्न-भिन्न समय में स्थिति का वर्णन होता है। पर्याय में समयांतर, प्रधान तथ्य है; किंतु विशेष में उसका नितांत अभाव रहता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पर्यायबंध—मुक्तक काव्य का एक भेद। [दे० मुक्तक काव्य]

पर्यायवक्रता—पदपूर्वार्द्ध वक्रता का द्वितीय भेद। [दे० पदपूर्वार्द्ध वक्रता]

पर्यायोक्ति—अर्थालंकार का एक भेद। जब इष्टार्थ या अभिलषितार्थ का प्रकारांतर से कथन किया जाय तो पर्यायोक्ति अलंकार होगा। पर्यायोक्ति में पर्याय (प्रकारांतर) और उक्ति (कथन) दो शब्द हैं, जिनका अर्थ प्रकारांतर (अन्य प्रकार से) या भंग्यंतर से कथन है।

अत्र पर्यायेण भंग्यंतरेण प्रकारांतरेण विवक्षितार्थस्य उक्तिः कथनम्, पर्यायोक्तिः।

'पर्यायस्तु प्रकारे स्यान्निर्माणेऽवसरे क्रमे। इति विश्वः ॥

—बालबोधिनी, पृ० ६८०

पर्यायोक्ति का अर्थ हुआ अन्य प्रकार से कथन अर्थात् जिस पदार्थ का जिस प्रकार से कथन किया जाता है, यदि उसे छोड़कर अन्य रीति से उसका प्रतिपादन किया जाय तो वहाँ यह अलंकार होगा। इस अलंकार में वक्ता या कवि का जो वांछितार्थ या विवक्षितार्थ (अभीष्ट अर्थ) है, उसे वह सीधे-सादे ढंग से न व्यक्तकर घुमा-फिराकर कहता है, जिससे कि उसके कथन में चमत्काराधिक्य का समावेश हो सके। इस अलंकार का मूलाधार गोपन है, जिसे किसी के भय से या कौतूहल उत्पन्न करने के लिए प्रकारांतर या अन्य प्रकार से व्यक्त किया जाता है। इसमें किसी व्याज या बहाने से भी अभीष्ट-सिद्धि का वर्णन होता है।

पर्यायोक्ति का सर्वप्रथम निरूपण आचार्य भामह ने किया है। इस अलंकार का वर्णन वामन तथा रुद्रट के अतिरिक्त सभी आलंकारिकों ने किया।

भामह ने बतलाया कि किसी कथन या वक्तव्य को अन्य प्रकार से कहना पर्यायोक्ति अलंकार है। उद्भट ने भामह के ही लक्षण को उद्धृत कर दिया है; पर उन्होंने इस तथ्य का स्पष्टीकरण कर दिया कि व्यंग्य रूप से अवगत होनेवाले अर्थ को अभिधा या वाच्यवाचकभाव से कहा जाता है। इस प्रकार के कथन से भामह का मंतव्य अधिक स्पष्ट हो जाता है।

पर्यायोक्तं यदन्येन प्रकारेणाभिधीयते ॥

—काव्यालंकार, ३/३८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पर्यायोक्तं यदन्येन प्रकारेणाभिधीयते ।
वाच्यवाचकवृत्तिभ्यां शून्येनावगमात्मना ॥
—काव्यालंकारसारसंग्रह, ४/६

दंडी का लक्षण अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट है । इनके अनुसार जब अभीष्ट अर्थ का साक्षात् शब्दों द्वारा कथन न कर चातुर्यव्यंजक भंगी या व्यंजना-द्वारा कथन (व्यक्त) किया जाय तो वहाँ पर्यायोक्ति अलंकार होगा । इस लक्षण के द्वारा संपूर्ण व्यंग्यमूलक काव्य-सौंदर्य पर्यायोक्त सिद्ध हो जाता है ।

इष्टमर्थमनाख्याय साक्षात्तस्यैव सिद्धये ।
यत्प्रकारांतराख्यानं पर्यायोक्तं तदिष्यते ॥
—काव्यादर्श, २/२९५

भोज ने मिस, उक्ति, भंगी एवं अवसर को पर्याय कहा । इन्होंने किसी मिस या बहाने से कार्य-सिद्धि का वर्णन कर नया विचार दिया अर्थात् जब किसी व्याज या बहाने से कार्य का संपादन हो तो पर्यायोक्ति होगी ।

मिषं यदुक्तिभंगिर्यावसरो यः स सूरिभिः ।
निराकांक्षोऽथ साकांक्षः पर्याय इति गीयते ॥
—सरस्वतीकंठाभरण, ४/८०

पर्यायोक्ति का पूर्ण एवं वैज्ञानिक लक्षण प्रस्तुत करने का श्रेय मम्मटाचार्य को है । इन्होंने बताया कि व्यंजना-व्यापार-द्वारा वाच्यार्थ का प्रतिपादन या बोधन ही पर्यायोक्ति अलंकार है । मम्मट अभिधावृत्ति द्वारा व्यंग्य अर्थ के प्रतिपादन का कथन कर इसे ध्वनि से गौण सिद्ध कर देते हैं—

पर्यायोक्तं बिना वाच्यवाचकत्वेन यद्वचः ॥
—काव्यप्रकाश, १०/११५

रुय्यक ने इस अलंकार के विवेचन में नवीन तथ्य प्रकट करते हुए बताया कि प्रतीयमान का अभिधान ही पर्यायोक्ति है । इन्होंने प्रस्तुत कार्य से प्रस्तुत कारण की प्रतीतिमात्र में ही इस अलंकार की स्थिति स्वीकार की । इस दृष्टि से इस अलंकार का स्वरूप या क्षेत्र परिमित हो गया ।

गम्यस्यापि भंग्यंतरेणाभिधानं पर्यायोक्तम् ।
यदेव गम्यत्वं तस्यैवाभिधाने पर्यायोक्तम् ।

गम्यस्य सतः कथमभिधानमिति चेत्, गम्यापेक्षया प्रकारांतरेणाभिधानस्याभावात् । न हि तस्यैव तदैव विच्छित्या गम्यत्वं वाच्यत्वं संभवति । अतः कार्यमुखद्वारेणाभिधानम् । कार्यादेरपि तत्र प्रस्तुतत्वेन वर्णनाहेत्वात् ।
—अलंकारसर्वस्व, पृ० १४१-४२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परवर्ती आचार्यों में विद्याधर, विद्यानाथ तथा विश्वनाथ ने रुय्यक के ही मत का अनुवदन किया—

यत्र व्यंग्यस्य सतो हेतोः कार्याभिधानमंगीभिः ।
स्यादभिधानं सुधियः पर्यायोक्तं विदुस्तदिदम् ॥

—एकावली, २/२८

कारणं गम्यते यत्र प्रस्तुतात् कार्यवर्णनात् ।
प्रस्तुतत्वेन संबद्धं तत् पर्यायोक्तमुच्यते ॥

—प्रतापरुद्रीय, पृ० ३२१

पर्यायोक्तं यदा भंग्या गम्यमेवाभिधीयते ॥

—साहित्यदर्पण, १०/६

इह तु वर्णनीयस्य प्रभावातिशयबोधकत्वेन कार्यमिति कारणवत्प्रस्तुतम् ॥

—वही

जयदेव ने प्रस्तुत कार्य के द्वारा प्रस्तुत कारण की प्रतीति को पर्यायोक्ति कहा—

कार्याद्यैः प्रस्तुतैरुक्ते पर्यायोक्ति प्रचक्षते ॥

—चंद्रालोक, ५/७०

दीक्षित ने जयदेव का अनुकरण न कर रुय्यक के विचार का अनुगमन किया है। इनके अनुसार व्यंग्यार्थ की प्रकारांतर से प्रतीति होने पर पर्यायोक्ति अलंकार होगा। इन्होंने इसके दूसरे प्रकार में किसी सुंदर व्याज से अभीष्ट के संपादन का कथन किया है।

पर्यायोक्तं तु गम्यस्य वचो भंग्यंतराश्रयम् ॥

यदेव गम्यं विवक्षितं तस्यैव भंग्यंतरेण विवक्षितरूपादपि चारुतरेण केनचिद्रूपांतरेणाभिधानं पर्यायोक्तम् ।

—कुवलयानंद, ६८

पर्यायोक्तं तदप्याहुर्यद्व्याजेनेष्टसाधनम् ॥ —वही, ६९

पंडितराज इस अलंकार को वाच्य तथा व्यंग्य की परिधि से हटाकर विवक्षितार्थ का भंग्यंतर या प्रकारांतर से प्रतिपादन करने को पर्यायोक्ति कहते हैं। इस प्रकार के लक्षण से इसका क्षेत्र विस्तृत हो गया और किसी कथन को अन्य प्रकार या घुमा-फिराकर कहने में इसकी सत्ता मान्य हुई।

विवक्षितार्थस्य भंग्यंतरेण प्रतिपादनं पर्यायोक्तम् ॥

—रसगंगाधर, पृ० ५४७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विश्वेश्वर पंडित ने मम्मट के आधार पर अपना लक्षण निर्मित किया है। इनके अनुसार विवक्षित अर्थ को अन्य भंगी से कथन करने का विधान ही पर्यायोक्ति है अर्थात् वाच्य अर्थ (इष्टार्थ) को व्यंग्य रूप में प्रकट करना।

पर्यायोक्तं कथितं वाच्यस्यैवान्यभंग्योक्तिः। वाच्य एवार्थो यत्र व्यंग्यतयोच्यते तत्पर्यायोक्तम्। अतएव न ध्वनित्वम्। तत्र वाच्यव्यंग्योर्भेदात् एवं च व्यंग्यप्रकार-समानाधिकरणप्रकारांतरेणाभिधानं तत्। इति पर्यवस्यति।

—अलंकारकौस्तुभ, पृ० ३४१

रीतिकालीन आचार्यों के पर्यायोक्ति-विवेचन पर मम्मट, विद्यानाथ तथा अप्पय दीक्षित की परिभाषाओं का प्रभाव है। केशव का लक्षण स्वतंत्र है; पर उसपर दंडी की भी छाप है। ये बिना किसी प्रयत्न या अदृष्ट कारण के इष्ट-सिद्धि होने में पर्यायोक्ति मानते हैं।

कौन हु एक अदृष्ट ते अन ही किए जु होय।
सिद्धि आपने इष्ट की, पर्यायोक्ति सोय॥

—कविप्रिया, १२/२६

चिंतामणि ने मम्मट तथा विद्यानाथ दोनों के भाव को ग्रहण किया।

वाच्य जु बाचक भाव की रीति तजै कछु भक्ति।
पेच लिए सो सब कहत पर्यायोकत जुक्ति॥
साम अर्थ जो विंजना सो प्रतिपादित होइ।
पर्यायोकति ताहि को कहत विबुध सब कोइ॥
प्रस्तुति कारज ते जु है प्रस्तुति कारन ज्ञान।
पर्जायोकति कहत यों विद्यानाथ सुजान॥

—कविकुलकल्पतरु, ३/२३३,३४,३६

कुलपति ने मम्मट का भाव लेकर अपना लक्षण निर्मित किया।

शब्द अर्थ मरजाद तें, न्यारो निहचै होय।
करे भाव के जोर ते, परजायोकति सोय॥

—रसरहस्य, ८/१४५

जसवंत सिंह, मतिराम, दास तथा पद्माकर के लक्षण दीक्षित पर आधृत हैं।

पर्यायोक्ति प्रकार द्वै कछु रचना सों बात।
मिस करि कारज साधिए जो है चित्त सुहात॥

—भाषाभूषण, १००

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कहिय लक्षना-रीति लै, कछु रचना सों बैन।
मिसु करि कारज साधिबो, परजायोक्ति सु ऐन॥
—काव्यनिर्णय, १२/४१

पर्यायोक्ति अलंकार के दो भेद माने गए—प्रथम वहाँ होता है, जहाँ प्रकारांतर से कथन को प्रस्तुत किया जाय एवं द्वितीय में किसी बहाने (मिस) से अभीष्ट-सिद्धि का उल्लेख होता है।

प्रथम प्रकार—विवक्षितार्थ का प्रकारांतर से कथन—

क. दशत्यसौ परभृतः सहकारस्य मंजरीम्।
तमहं वारयिष्यामि युवाभ्यामास्यतामिह॥ —काव्यादर्श

प्रिय के निकट बैठी नायिका से उसकी सखी का कथन—"यह कोकिल आम की मंजरी को काट-काटकर गिरा रही है, मैं उसे रोकने के लिए जाती हूँ, तुम दोनों (नायक-नायिका) स्वच्छंदतापूर्वक यहाँ बैठो।" यहाँ सखी ने 'सुरत-सुख का उपभोग करो' ऐसा न कहकर प्रकारांतर से कहा।

ख. टुनहाई सब टोल में रही जु सौति कहाय।
सुत्यौं ऐंचि प्यौ आपु त्यों करो अदोखिल आय॥ —बिहारी

यहाँ सखी नायिका के सौंदर्य की प्रशंसा करती हुई अपने कथन को प्रकारांतर से प्रकट करती है कि वह (नायिका) अपनी सौत से अधिक सुंदरी है; किंतु इसे सीधे ढंग से न कहकर कहा गया है कि तू ने टोना, जादू (टुनहाई) करनेवाली सौत को कलंकमुक्त कर दिया।

द्वितीय प्रकार—व्याज से इच्छित कार्य की सिद्धि—

क. देहि मत्कंदुकं राधे ! परिधान निगूहितम्।
इति विस्रंसयन्नीवीं तस्याः कृष्ण मुदेऽस्तुनः॥
—कुवलयानंद,

कृष्ण कहते हैं कि "हे राधे ! तुम वस्त्र में छिपे हुए मेरे कंदुक को दे दो, ऐसा कहकर राधिका की नीवी को ढीली करते हुए कृष्ण भक्तों पर प्रसन्न हों।" यहाँ गेंद (कंदुक) को ढूँढने के व्याज से कृष्ण का राधिका की नीवी का स्पर्श करना, बहाने से अभीष्ट-सिद्धि है।

ख. फेरि कछुक करि पौंरिते, फिरि चितई मुसक्याय।
आई जामन लेन तिय, नेहै गई जमाय॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

—जामन लेने के बहाने प्रेम उत्पन्न कर नायिका का जाना, बहाने से अभीष्ट-सिद्धि है।

पर्यायोक्ति तथा अप्रस्तुतप्रशंसा—पर्यायोक्ति में वाच्य तथा व्यंग्य दोनों ही अर्थ प्रस्तुत होते हैं, किंतु अप्रस्तुतप्रशंसा में प्रस्तुत वाच्य तथा अप्रस्तुत अर्थ व्यंग्य होता है। पर्यायोक्ति में व्यंग्यार्थ सदा वाच्यार्थ का उपस्कारक होता है; किंतु अप्रस्तुतप्रशंसा में वाच्यार्थ को व्यंग्यार्थपरक माना जाता है।

पांचाली—वामनाचार्य के अनुसार माधुर्य तथा सुकुमार गुणों से युक्त पांचाली रीति होती है। इसमें गाढ़बंध का अभाव होता है तथा शिथिल पद रहते हैं। पांचाली रीति का एक प्रकार है। [दे० **रीति सिद्धांत**] इसमें प्रयुक्त वर्ण न तो माधुर्य के द्योतक होते हैं और न ओज के। वे दोनों के अंतरालवर्ती होते हैं।

माधुर्य सौकुमार्योपपन्ना पांचाली। —काव्यालंकारसूत्र, १,२,१३

पांचाली में पाँच-छह पदों तक के समास होते हैं।

वर्णैः शेषैः पुनर्द्वयोः।
समस्तपंचषपदो बंधः पांचालिका मता॥ —साहित्यदर्पण ९/४

उदाहरण—

क. मधुरया मधुबोधितमाधवीमधुसमृद्धिसमेधितमेधया।
मधुकरांगनया मुहुरुन्मदध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे॥

"मधु अर्थात् वसंत से बोधित (खिलाई हुई) माधवी (वासंतीलता) की मधु समृद्धि (पुष्परस की वृद्धि) से अर्थात् माधवी के पुष्परस का पान करने से जिसकी बुद्धि अथवा मस्ती बढ़ गई है, उस मस्त ध्वनिवाली, मधुर स्वरयुक्त भ्रमरी ने बार-बार दबे हुए अक्षरों में गाना प्रारंभ किया। इस प्रकार गाना प्रारंभ किया, जिसमें अक्षर प्रतीत नहीं होते, केवल गुन-गुनाहट ही सुनाई देती है।" —विमला (साहित्यदर्पण)

ख. देकर निज गुंजार गंध मृदु मंद पवन को।
चढ़ शिविका पर गई मांडवी राज-भवन को॥ —साकेत

पाठांतर—चित्रालंकार का एक भेद। [दे० **चित्रालंकार**] जब वर्णों को लुप्त करके अथवा परिवर्तित करके पढ़ने में चमत्कार उत्पन्न हो तो यह अलंकार होगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पिचुमंद पाक—जो रचना आदि से अंत तक अस्वादु या नीरस हो, उसे 'पिचुमंद' पाक कहते हैं। पिचुमंद का अर्थ है नीम या निंब। [दे० काव्यपाक] यह काव्य नीम की तरह अस्वादु और कटु होता है।

तत्राद्यंतयोरस्वादु पिचुमंद पाकम्।

—काव्यमीमांसा, अध्याय ५

पिहित—अर्थालंकार का एक भेद। यह गोपनमूलक अलंकार है। अन्य व्यक्ति के छिपे हुए रहस्य को जानकर उसे आकार द्वारा सूचित करना पिहित अलंकार है। पिहित का अर्थ है 'आच्छादनपिहित आच्छादिते' या किसी पदार्थ को ढँक लेना। छिपे अभिप्राय को जानकर साभिप्राय-चेष्टा द्वारा उसे प्रकट करने के कारण इसे पिहित कहा जाता है।

इस अलंकार का वर्णन रुद्रट कृत 'काव्यालंकार' में है; पर इसका विकास रुद्रट-प्रवर्तित रूप के आधार पर न होकर जयदेव के लक्षण-द्वारा हुआ। जयदेव के अतिरिक्त अप्पय दीक्षित ने इसका वर्णन किया है। रीतिकालीन (दीक्षित अनुयायी) आचार्य इसका वर्णन करते हैं। ऐसे आचार्यों में जसवंत सिंह, मतिराम, सोमनाथ, दास और पद्माकर हैं। उद्योतकार नागेश ने पिहित का खंडन कर इसका अंतर्भाव सूक्ष्म में किया है।

रुद्रट के अनुसार जब एक ही आश्रय में रहनेवाला कोई गुण अपनी प्रबलता से असमान अन्य पदार्थ का आच्छादन कर ले तो वहाँ पिहित होगा। जयदेव ने बताया कि अन्य के गुप्त वृत्तांत को जानकर अन्य व्यक्ति द्वारा स्पष्ट रूप से उसकी शब्दतः अभिव्यक्ति न कर चेष्टा द्वारा उसकी सूचना देना पिहित अलंकार है।

यत्रातिप्रबलतया गुणः समानाधिकरणमसमानम्।
अर्थांतरं पिदध्यादाविर्भूतमपि तत्पिहितम्॥

—काव्यालंकार, ९/५०

पिहितं परवृत्तांतज्ञातुरन्यस्यचेष्टितम्॥

—चंद्रालोक, ५/१०९

यहाँ अन्य के गुप्त वृत्तांत को जानकर उसे चेष्टा द्वारा छिपाने पर बल दिया गया है। दीक्षित ने जयदेव के ही लक्षण को उद्धृत कर दिया; पर 'अन्यचेष्टितम्' के स्थान पर 'साकूत चेष्टितम्' का विधान किया। इनके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मतानुसार जब किसी के गूढ़ रहस्य को जानकर ज्ञाता साभिप्राय चेष्टा-द्वारा उसे सूचित करे तो पिहित होगा।

पिहितं परवृत्तांतज्ञातुः साकूतचेष्टितम् ॥

—कुवलयानंद, पृ० २४८

जसवंत सिंह, सोमनाथ तथा पद्माकर ने 'चंद्रालोक' के लक्षण का अनुवाद प्रस्तुत कर इस अलंकार का विवेचन किया है।

पिहित छिपी पर बात कों जानि दिखावै भाइ।

—भाषाभूषण, १७९

पिहित लषावै भाव जहँ जानि दुरी पर बात।

—रसपीयूषनिधि, २२/२६९

पिहित समुझि परवृत्त जहँ समुझावै करि काज।

—पद्माभरण, २५०

मतिराम ने 'कुवलयानंद' के लक्षण का अनुवाद किया है।

जानि पराई वृत्ति जहँ, क्रिया सहित आकूत।
तहाँ पिहिति बरनन करत, जे कबि समति सपूत ॥

—ललितललाम, ३५७

नागेश ने पिहित की स्वतंत्र सत्ता का खंडन करते हुए बतलाया कि मम्मटादि द्वारा वर्णित सूक्ष्म अलंकार में ही इसका समावेश हो जाता है।

सूक्ष्मालंकारे पराभिप्रायमवगत्य साकूत चेष्टितेनोत्तरसमर्पणम्।
पिहितालंकारे तु गूढं परवृत्तांतं ज्ञात्वा।
साकूत चेष्टतया तत्प्रकाशमिति भेदो बोध्यः ॥

—अलंकारचंद्रिका पृ० १६९

'कुवलयानंद' की चंद्रिका टीका के रचयिता वैद्यनाथ ने पिहित को सूक्ष्म से भिन्न मानकर इसे पृथक् अलंकार मानने का अभिमत प्रकट किया है। उनके अनुसार सूक्ष्मालंकार में अन्य के अभिप्राय को जानकर संकेतमय उत्तर दिया जाता है। [दे० **सूक्ष्म**] किंतु, पिहित में अन्य व्यक्ति के गूढ़ रहस्य को जानकर उसे चेष्टा-द्वारा प्रकट करते हैं। पिहित में ज्ञाता अन्य व्यक्ति को यह सूचित कर देता है कि उसने उसके रहस्य को जान लिया है और इसीलिए वह अभिप्राययुक्त चेष्टा करता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उदाहरण—

प्रातहिं आए सेज पिय हँसि दाबत तिय पाइ ॥

—भाषाभूषण, १७६

"प्रात:काल जब सौत (सपत्नी) के गृह से प्रिय आया तो नायिका ने हँसकर शय्या बिछा दी और उसके पैरों को दबाने लगी। यहाँ शय्या बिछाना एवं हँसकर प्रिय का पैर दबाना, दोनों चेष्टाएँ साभिप्राय हैं और इनके द्वारा नायिका ने यह बता दिया कि मैंने तुम्हारा सारा रहस्य जान लिया है। नायिका वचन से अभिप्राय प्रकट न कर आकार द्वारा रहस्य की जानकारी देती है।

पीठमर्द—नायक के एक सखा का नाम। [दे० सखा] इसे नर्मसचिव भी कहते हैं। [दे० नर्मसचिव] कुपित स्त्री को मनाकर प्रसन्न करनेवाले व्यक्ति (सखा, सहायक) को पीठमर्द कहते हैं।

कुपितस्त्रीप्रसादकः पीठमर्दः। —रसमंजरी, पृ० १६१

दशरूपककार धनंजय ने पीठमर्द को 'पताकानायक' कहा है। पताका प्रासंगिक वृत्त है। साहित्यदर्पणकार इसे नायक से हीनगुण-युक्त चित्रित करते हैं।

पताका नायकस्त्वन्यः पीठमर्दो विचक्षणः।
तस्यैवानुचरो भक्तः किंचिदूनश्च तद्गुणैः ॥

—दशरूपक, २/८

दूरानुवर्तिनि स्यात्तस्य प्रासंगिकेतिवृत्ते तु।
किंचित्तद्गुणहीनः सहाय एवास्य पीठमर्दाख्यः ॥

—साहित्यदर्पण, ३/३६

उदाहरण—

हौं गोपाल पै भल चहत, तेरोई ब्रजबाल।
चलति क्यों न नंदलाल पै लै गुलाल रंग लाल ॥

—जगद्विनोद, ३३६

पुनरुक्त—अर्थदोष का चौथा प्रकार। [दे० अर्थदोष]

पुनरुक्तप्रतीकाश—जयदेव ने पुनरुक्तवदाभास अलंकार के लिए पुनरुक्त-प्रतीकाश शब्द का प्रयोग किया है। [दे० पुनरुक्तवदाभास]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पुनरुक्तवदाभास—शब्दालंकार का एक प्रकार। जब वास्तविक पुनरुक्ति न होकर उसका आभास मात्र हो तो वहाँ पुनरुक्तवदाभास अलंकार होगा। इसमें विभिन्न स्वरूपवाले शब्दों के अर्थ में सहसा पुनरुक्ति का भान होता है। पुनरुक्तवदाभास का अर्थ है—पुनरुक्ति के समान (वत्) आभास या झलक अर्थात् पुनरुक्ति के समान आभास या झलक का होना। आभास शब्द इस तथ्य का द्योतक है कि इसमें वास्तविक पुनरुक्ति नहीं होती; पर शब्दों का इस प्रकार विन्यास होता है कि पुनरुक्ति-सी प्रतीत होने लगती है। इसमें ऐसे शब्दों का प्रयोग होता है, जो भिन्न रूपवाले होते हैं और भिन्न अर्थवाले भी; किंतु उनमें एकार्थता का आभास होता है। ऊपर-ऊपर से तो पुनरुक्ति मालूम पड़ती है; पर अर्थबोध के उपरांत वह दूर हो जाती है अर्थात् वास्तविक अर्थ की प्रतीति होने पर उसका अंत हो जाता है। इसमें पुनरुक्ति का ज्ञान सत्य न होकर मिथ्या होता है—

पुनरुक्तस्येव पुनरुक्तवत् आभासो ज्ञानमिति पुनरुक्तवदाभासपदनिरुक्तिर्बोध्या। तथा च विभिन्न रूपयोर्वस्तुनोभिन्नार्थकयोरपिशब्दयोरापातत एकार्थकतया प्रतीतिः पुनरुक्तवदाभासस्तन्नामकोऽलंकारः।

—काव्यप्रकाश, बालबोधिनी, पृ० ५३५

पुनरुक्तवदाभास अलंकार का सर्वप्रथम विवेचन उद्भट ने किया है, तत्पश्चात् मम्मट, रुय्यक, शोभाकर, जयदेव, विद्याधर, विद्यानाथ एवं विश्वनाथ ने इसका वर्णन किया।

रीतिकालीन (हिंदी) आचार्यों में चिंतामणि, भूषण, कुलपति तथा भिखारीदास ने भी इसका उल्लेख किया है। उद्भट के अनुसार विभिन्न रूपवाले दो पदों से जब एक अर्थ या अभिन्न अर्थ का आभास हो तो पुनरुक्तवदाभास अलंकार होगा। यहाँ भिन्न अर्थवाले भिन्नरूपात्मक पदों की योजना पर विचार किया गया है। उन्होंने स्पष्ट रूप से यह स्वीकार नहीं किया कि यह शब्दालंकार है या अर्थालंकार या उभयालंकार।

पुनरुक्तवदाभासमभिन्नवस्त्विवोद्भासिभिन्नरूप पदम्॥

—काव्यालंकारसारसंग्रह, १/३

मम्मट इसे उभयालंकर मानकर इसका विवेचन करते हैं; किंतु शब्दवैचित्र्य की उत्कृष्टता को स्वीकार कर शब्दालंकार के अंतर्गत ही स्थान देते हैं। इन्होंने इसकी शब्दनिष्ठता को ही अधिक महत्त्व दिया है। मम्मट

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के अनुसार विभिन्न आकारवाले शब्दों में समानार्थता का आभास होना ही पुनरुक्तवदाभास अलंकार है—

पुनरुक्तवदाभासो विभिन्नाकार शब्दगः ॥ एकार्थतेव ॥

—काव्यप्रकाश, ९/८६

आचार्य रुय्यक के अनुसार जहाँ प्रारंभ में पुनरुक्ति हो; किंतु अंत में उसका अंत हो जाय तो पुनरुक्तवदाभास अलंकार होता है—

आमुखावभासनं पुनरुक्तवदाभासम् ॥३
आमुखग्रहणं पर्यवसानान्यथात्वप्रतिपत्त्यर्थं ।

—अलंकारसर्वस्व, पृ० १३

इन्होंने इसके दो प्रकार किए हैं—अर्थ की पुनरुक्ति का आश्रित होने पर अर्थालंकार एवं स्वर-व्यंजन-समुदाय की पुनरुक्ति से शब्दालंकार। पर, शब्द की पुनरुक्ति में अधिक सौंदर्य न देखकर इन्होंने इसे अर्थ का ही अलंकार स्वीकार किया है—

अर्थपौनरुक्त्यादेवार्थाश्रितत्वादर्थालंकारोऽयम् ।.......... शब्दपौनरुक्त्यं तु व्यंजनमात्र पौनरुक्त्यं स्वरव्यंजनसमुदायपौनरुक्त्यं च । अलंकारप्रस्तावे केवल स्वरपौनरुक्त्यमचारुत्वान्न गण्यत इति द्वैविध्यमुक्तम् ।

—अलंकारसर्वस्व, पृ० २१-२४

रुय्यक एवं उनके टीकाकार जयरथ—दोनों ने इसे अर्थालंकार ही मानना अधिक उपयुक्त समझा है; क्योंकि अर्थपुनरुक्ति का आभास ही इसका प्राण है और इसका चमत्कार अर्थाश्रित है—

अर्थपौनरुक्त्यादेवार्थाश्रितत्वादर्थालंकारत्वं ज्ञेयम् ।

—अलंकारसर्वस्व, पृ० २१

एवकारः शब्दपौनरुक्त्यावच्छेदद्योतकः तेन शब्दस्यापौनरुक्त्यान्नशब्दालंकारो नाप्युभयालंकारोऽयम् ॥

—विमर्शिनी, पृ० २१

शोभाकरमित्र ने आश्रय-आश्रयीभाव के आधार पर इसे शब्दालंकार मानना समीचीन समझा है।

नत्वर्थधर्मः पौनरुक्त्यमलंकार इत्यर्थालंकार वाच्या ॥

—अलंकाररत्नाकर, पृ० १-२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मम्मट ने अन्वय-व्यतिरेक-सिद्धांत के आधार पर [दे० अन्वय-व्यतिरेक] इसे उभयालंकार ही सिद्ध किया है तथा विश्वनाथ भी उनका समर्थन करते हैं।

जयदेव ने इस अलंकार का वर्णन पुनरुक्तप्रतीकाश के नाम से किया है। उनके मत से जहाँ पुनरुक्त अर्थ के समान शब्द हों, वहाँ पुनरुक्तप्रतीकाश अलंकार होगा। विद्याधर एवं विद्यानाथ के विवेचन में किसी प्रकार की नवीनता नहीं है और उन्होंने मम्मट के ही विचार का पुनराख्यान किया है। विश्वनाथ ने बताया कि भिन्न आकारवाले शब्दों के अर्थ में जब आपाततः पुनरुक्ति की प्रतीति हो तो पुनरुक्तवदाभास अलंकार होगा।

आपाततो यदर्थस्य पौनरुक्त्येनभासनम्।
पुनरुक्तवदाभासः स भिन्नाकार शब्दगः॥

—साहित्यदर्पण, १०/२

विश्वनाथ ने बताया कि यह शब्द एवं अर्थ, दोनों का अलंकार है; क्योंकि इसका अस्तित्व शब्दपरिवर्त्तन में भी बना रहता है, इसलिए यह अर्थालंकार है और शब्दपरिवर्त्तन को सहन न करने के कारण इसे शब्दालंकार कहा जायगा।

शब्दपरिवृत्तिसहत्वासहत्वाभ्यामस्योभयालंकारत्वम्।

—साहित्यदर्पण, १०/२, वृत्ति

अतः यह उभयालंकार में परिगणनीय है।

आचार्य मम्मट ने इसके कई प्रकारों का उल्लेख किया है। वे इसके प्रथमतः दो भेद करते हैं—शब्दमात्रगत एवं अर्थमात्रगत। प्रथम के भी दो प्रकार हैं—सभंगशब्दनिष्ठ एवं अभगशब्दनिष्ठ।

रीतिकालीन आचार्यों ने इस अलंकार के निरूपण में मम्मट का ही आधार ग्रहण किया है।

चिंतामणि—

भिन्न पदन मैं एक सो जहाँ अर्थ आभास।
चिंतामनि कवि कहत सो पुनरुक्तवदाभास॥

—कविकुलकल्पतरु, २/३४

कुलपति—

भासै पद पुनरुक्ति सो, पै पुनरुक्ति न सोय।
सो पुनरुक्तवदाभास है, शब्द अर्थ तें होय॥

—रसरहस्य, ७/८२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भूषण—

भासत है पुनरुक्ति सी नहिं निदान पुनरुक्ति ।
पुनरुक्तिवदाभास सों भूषन बरनत युक्ति ।।

—शिवराजभूषण, ३४२

दास—

कहत लगै पुनरुक्त सो, पै पुनरुक्त न होइ ।
पुनरुक्तवदाभास तिहि, कहैं सकल कबि लोइ ।।

—काव्यनिर्णय, १९/१८

उदाहरण—

क. भुजंगकुंडलीव्यक्तशशिशुभ्रांशुशीतगुः ।
जगंत्यपि सदापायादव्याच्चेतोहरः शिवः ।। —साहित्यदर्पण

"सूर्य का कुंडल धारण किए हुए अच्छी तरह से प्रकटित शश (कलंक) वाले श्वेत किरणों से युक्त तथा चंद्रमा से विभूषित शिवजी सदा विघ्नों से संसार की रक्षा करें।" यहाँ 'भुजंग' और 'कुंडली' शब्द दोनों का अर्थ सर्प है; किंतु अंत में 'कुंडली' का अर्थ कुंडल हो जाता है। 'शशि', 'शीतगु' एवं 'शुभ्रांशु' तीनों ही चंद्र अर्थ के बोधक हैं; किंतु उनके अर्थ भिन्न किए गए हैं—शशि का कलंकयुक्त, शुभ्रांशु का स्वच्छ किरणोंवाला तथा शीतांशु का शीतल किरणोंवाला चंद्रमा है।

ख. समय आ रहा और काल है जा रहा ।
सचमुच उलटा भाव भुवन में छा रहा ।। —गुप्तजी

'समय' और 'काल' दोनों का ही अर्थ समय है; किंतु यहाँ काल का अर्थ मृत्यु कर दिया गया है।

ग. अली भौंर गुंजन लगे, होन लगे दल-पात ।
जहँ-तहँ फूले रूख तरु, प्रिय-प्रीतम किमि जात ।। —दास

यमक और पुनरुक्तवदाभास, दोनों ही अलंकारों में भिन्नार्थक शब्द का प्रयोग होता है, यही इनमें साम्य है। यमक में भिन्न अर्थवाले शब्दों का आकार समान होता है और पुनरुक्तवदाभास में भिन्न आकारवाले शब्दों का प्रयोग होता है। यमक में भिन्नार्थक शब्द एक आकारवाले होते हैं और पुनरुक्तवदाभास में भिन्न आकारवाले; यही दोनों में वैषम्य या भिन्नता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसी कारण आचार्यों ने यमक से पार्थक्य प्रदर्शित करने के लिए पुनरुक्तवदाभास के लक्षण में 'भिन्नाकार' या भिन्न आकारवाले विशेषण का प्रयोग किया है।

आचार्यों ने इसके उभयालंकारत्व पर विचार करते हुए बताया है कि अन्वय-व्यक्तिरेक-भाव के अनुसार इसका सौंदर्य शब्दगत एवं अर्थगत अर्थात् उभयाश्रित होता है। मम्मट एवं विश्वनाथ—दोनों ही अपने उदाहरणों में सिद्ध करते हैं कि कहीं तो यह शब्द-परिवर्त्तन को सह लेता है और कहीं इसमें शब्द-परिवर्त्तन संभव नहीं होता। अतः, इसकी प्रकृति उभयाश्रित या शब्द तथा अर्थ दोनों पर आश्रित है। इसमें दोनों ही प्रकार के शब्द प्रयुक्त होते हैं, जो शब्द-परिवर्त्तन को सह भी सकते हैं और नहीं भी। अतः, उभयाश्रित प्रकृति का होने के कारण यह उभयालंकार है।

पुनरुक्तिप्रकाश—शब्दालंकार का एक प्रकार। जहाँ अभीष्ट भाव को सुंदर बनाने के लिए एक शब्द की अनेक बार आवृत्ति हो वहाँ 'पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार' होता है। पुनरुक्ति का अर्थ है एक बार कथित बात की पुनः आवृत्ति या दुहराना। इस अलंकार में कथन को रुचिकर या आकर्षक बनाने के लिए एक शब्द की अनेक बार आवृत्ति की जाती है। इस अलंकार का वर्णन संस्कृत-आचार्यों ने नहीं किया है; पर रीतिकालीन कतिपय आचार्यों ने इसका उल्लेख किया है। भिखारीदास के 'काव्यनिर्णय' में इसका वर्णन इस प्रकार है—

एक अर्थ बहु बार जहँ परै रुचिरता अर्थ।
पुनरुक्ति परकास सो, बरनै बुद्धि समर्थ॥

उदाहरण—

बनि-बनि-बनि बनिता चलीं, गनि-गनि-गनि डग देत।
धनि-धनि-धनि अँखियाँ सुछबि, सनि-सनि-सनि सुख देत॥—दास

यहाँ बनि-बनि, धनि-धनि आदि शब्दों की आवृत्ति के कारण कथन में चारुता का समावेश हुआ है। इस अलंकार का स्रोत भोज-वर्णित नामानुप्रास के एक भेद—आभीक्षण में है, जिसमें क्रियापदों की द्विरुक्ति का कथन होता है—

जयति जयति देवः श्यामकंठः पिनाकी॥

[दे० नामानुप्रास]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पुरुषवक्रता—पदपरार्द्धवक्रता का चतुर्थ भेद। [दे० पदपरार्द्ध वक्रता]

पूर्व—आचार्य रुद्रट-द्वारा उद्‌भावित एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। इसमें कारण के पूर्व कार्य का वर्णन होता है। उत्पन्न पदार्थ का पहले वर्णन कर उत्पादक पदार्थ का पीछे वर्णन करना ही पूर्व अलंकार है।

यत्रातिप्रबलतया विवक्ष्यते पूर्वमेव जन्यस्य।
प्रादुर्भावः पश्चाज्जनकस्य तु तद्‌भवेत्पूर्वम्॥

—काव्यालंकार, ९/३

परवर्ती आलंकारिकों ने इसका अंतर्भाव अत्यंतातिशयोक्ति में किया है, जहाँ कार्य की पूर्वभाविता एवं कारण की परभाविता का उल्लेख होता है।

[दे० अतिशयोक्ति]

पूर्वराग—विप्रलंभश्रृंगार का भेद। [दे० श्रृंगार] इसे पूर्वानुराग भी कहते हैं। समागम के पूर्व नायक तथा नायिका के हृदय में मिलन की उत्कंठा के कारण उत्पन्न व्याकुलता को पूर्वराग कहा जाता है। यह नायक-नायिका के सौंदर्यादि गुणों के दर्शन अथवा श्रवण से उत्पन्न होता है।

श्रवणाद्दर्शनाद्वापि मिथः संरूढरागयोः।
दशाविशेषो योऽप्राप्तौ पूर्वरागः स उच्यते॥

—साहित्यदर्पण, ३/१८८

सो पूरबानुराग जहँ बढ़ै मिले बिन प्रीति।
आलंबन ताको गनै सज्जन दरसन-रीति॥
दृष्टि श्रुतौ द्वै भाँति के दरसन जानौ मित्र।
दृष्टि दरस परतछ सपन छाया माया चित्र॥

—श्रृंगार-निर्णय, २८४,२८५

पूर्वराग के चार प्रकार हैं—गुणश्रवण, चित्रदर्शन, स्वप्नदर्शन और प्रत्यक्ष-दर्शन। दूत, भाट या सखियों-द्वारा नायक-नायिका के सौंदर्यादि गुणों को सुनकर परस्पर अनुरक्त होना गुणश्रवण है। नायक-नायिका के चित्र को देखकर परस्पर आकृष्ट होना चित्रदर्शन है। एक दूसरे को स्वप्न में देखकर जब नायक-नायिका अनुरक्त हों तो चित्र-दर्शन होगा। नायक-नायिका का साक्षात् दर्शन प्रत्यक्ष दर्शन है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

श्रवणं तु भवेत्तत्र दूतवंदीसखीमुखात् ।
इंद्रजाले च चित्रे च साक्षात्स्वप्ने च दर्शनम् ॥

—साहित्यदर्पण, ३/१८९

जो प्रथमहिं देखे सुने बढ़ै प्रेम की लाग ।
बिन मिलाप जो बिकलता सो पूरब अनुराग ॥

—रसराज, ३८२

पूर्वराग के अन्य तीन भेद भी हैं—नीलीराग, कुसुंभराग तथा मंजिष्ठाराग । नीलीराग वह है, जो बाह्य चमक न दिखाए; पर हृदय में सदा स्थित रहे । कुसुंभराग उस प्रेम को कहते हैं, जो बहुत शोभित हो; पर नष्ट भी हो जाए । मंजिष्ठाराग वह प्रेम है, जो नष्ट न हो और खूब शोभित रहे ।

नीली कुसुंभं मंजिष्ठा पूर्वरागोऽपि च त्रिधा ॥
न चातिशोभते यन्नापैति प्रेम मनोगतम् ।
तन्नीलीरागमाख्यातं यथा श्रीरामसीतयोः ॥
कुसुंभरागं तत्प्राहुर्यदपैति च शोभते ।
मंजिष्ठरागमाहुस्तद् यन्नापैत्यति शोभते ॥

—साहित्यदर्पण, ३/१९५-१९७

पूर्वरूप—संगतिमूलक अलंकार । जब कोई पदार्थ अपने गुण को एक बार त्यागकर पुन: उसे प्राप्त कर ले तो पूर्वरूप अलंकार होगा—

स्वगुणत्यागांतरं पुनः स्वगुण प्राप्तिः पूर्वरूपमलंकारः ।

—अलंकारचंद्रिका, पृ० १६१

'पूर्वरूप' का अर्थ है पहले का रूप या गुण । यहाँ रूप गुण के लिए आया है । इस अलंकार की उद्भावना जयदेव ने की है और उनका अनुकरण दीक्षित ने किया है । जयदेव ने बताया कि जब कोई पदार्थ अपने गुण को पुन: प्राप्त कर ले तो वहाँ पूर्वरूप अलंकार होगा ।

पुनः स्वगुण संप्राप्तिर्विज्ञेया पूर्वरूपता । —चंद्रालोक, ५/१०३

दीक्षित ने जयदेव के लक्षण को उद्धृत कर दिया है ।

पुनः स्वगुण संप्राप्तिः पूर्वरूपमुदाहृतम् । —कुवलयानंद, १४२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रीतिकालीन आचार्यों का आधार 'चंद्रालोक' का लक्षण रहा है। महाराज जसवंत सिंह ने इसके स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा कि यदि कोई पदार्थ समीपस्थ वस्तु के गुण को ग्रहण कर उसका त्याग कर दे और पुनः अपने गुण को ग्रहण करे तो पूर्वरूप होगा।

पूर्वरूप लै संग गुन तजि फिरि अपनो लेत ॥ —भाषाभूषण, १६८

मतिराम का लक्षण 'भाषाभूषण' से अनुप्राणित है।

जहां और को रंग तजि बहुरि आपुनौ लेत।
बरनत पूरब रूप तहँ कबि मतिराम सचेत ॥

—ललितललाम, ३३३

भेद—पूर्वरूप के दो भेदों का वर्णन किया गया है—

प्रथम पूर्वरूप—जब एक पदार्थ पहले अपने गुण को छोड़कर पुनः उस रूप को प्राप्त कर ले तो प्रथम पूर्वरूप होगा।

द्वितीय पूर्वरूप—जब किसी पदार्थ के नष्ट हो जाने पर भी उसका कार्य नष्ट न हो।

प्रदीपकार गोविंद ठक्कुर, नागेश भट्ट तथा विश्वेश्वर पंडित पूर्वरूप को स्वतंत्र अलंकार न मानकर तद्गुण में ही इसका अंतर्भाव कर देते हैं।

[दे० रसगंगाधर, पृ० ६९२, प्रदीप, पृ० ५७३, उद्योत, पृ० ५७४ तथा अलंकार कौस्तुभ, पृ० ४०४]

पूर्वरूप और तद्गुण, दोनों भिन्नकोटिक अलंकार हैं। तद्गुण का चमत्कार परगुण-ग्रहण में निहित है तो पूर्वगुण का सौंदर्य परगुण-ग्रहण के अनंतर निज-गुण की पुनर्प्राप्ति में रहता है।

उदाहरण—

क. हरकंठांशुलिप्तोऽपि शेषस्त्वद्यशसा सितः ॥ —कुवलयानंद, १४२

किसी राजा की प्रशंसा करते हुए कवि कहता है कि हे राजन् ! शेषनाग शंकरजी के नीले कंठ से नील कांतिवाले होकर भी आप के यश के कारण पुनः श्वेत हो गए। यहाँ शेष का अपना रंग पुनः प्राप्त करना पूर्वरूप है।

ख. सेष स्याम हो सिव गरें जस तें उज्जल होत ॥

—भाषाभूषण, १६९

शेष अपने रंग को त्यागकर पुनः प्राप्त कर लेते हैं; अतः यह पूर्वरूप का उदाहरण हुआ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूर्वानुराग—समागम के पूर्व नायक-नायिका के हृदय में मिलन की उत्कंठा के कारण उत्पन्न व्याकुलता पूर्वानुराग है। इसे पूर्वराग भी कहते हैं। [दे० पूर्वराग]

पूर्वरंग—नाट्यप्रयोग के शुभारंभ के पूर्व किया गया मांगलिक विधान। नाट्यप्रयोग के पूर्व तथा नाट्यमंडप (रंग) की विघ्नशांति के निमित्त नटों द्वारा किए गए मांगलिक गायनवादनादि को पूर्वरंग कहते हैं। इसमें यवनिका के भीतर गीत, वाद्य, नृत्य तथा पाठ आदि का प्रयोग होता है। चूँकि यह वास्तविक नाटक के प्रारंभ होने के पूर्व संपन्न होता है, इसलिए भरत ने इसे पूर्वरंग की संज्ञा दी है।

'यस्माद्रंगे प्रयोगोऽयं पूर्वमेव प्रयुज्यते।
तस्मादयं पूर्वरंग.......................॥

—नाट्यशास्त्र, ५/७

पूर्वरंग का प्रमुख अनुष्ठान 'नांदीगायन' है। [दे० नांदी]

पाठ्यवस्तुनः पूर्वं रंगविघ्नोपशांतये।
कुशीलवाः प्रकुर्वंति पूर्वरंगः स उच्यते॥

—साहित्यदर्पण, ६/२२

भरत ने पूर्वरंग के उन्नीस अंगों का वर्णन किया है तथा इनके दो विभाग किए हैं। प्रथम वर्ग में यवनिका के भीतर संपन्न नौ पूर्वरंग विधियाँ हैं—

१. प्रत्याहार—(इसमें वाद्ययंत्रों का विधान किया जाता है),

२. अवतरण—(गायक एवं गायिका का निदेशन),

३. आरंभ—(सामूहिक गीत का प्रारंभ),

४. आश्रवणा—(इसके अंतर्गत वाद्य-यंत्रों का संतुलन निर्धारित किया जाता है),

५. वक्त्रपाणि—(इसमें वाद्य-यंत्रों का स्वर-संधान किया जाता है),

६. परिघट्टना—(इसमें तंत्री वाद्यों का स्वर-साधन किया जाता है),

७. संघोटना—(कला-निर्धारण का अभ्यास),

८. मार्गासारित—(भिन्न-भिन्न प्रकार के वाद्ययंत्रों के स्वर का समन्वय),

९. आसारित—(इसके अंतर्गत नर्तकियों के पाद-संचालन की कला एवं लय का निर्धारण होता है),

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यवनिका के बाहर पूर्वरंग की दस प्रयोज्य विधियाँ हैं।

१. गीतक—देव-कीर्तन एवं तांडव की प्रधानता।

२. उत्थापन—इसमें नांदी-पाठ करनेवाले मंगलोत्सव का आरंभ करते हैं।

३. परिवर्तन—सूत्रधार का चार बार परिक्रमा कर इंद्र की वंदना तथा जर्जर की स्तुति करना।

४. नांदी—सूत्रधार का स्तुतिवाचन, आशीर्वचन करना तथा मंगलाशंसा का पाठ करना।

५. शुष्कावकृष्ट—सूत्रधार का जर्जर श्लोक का पाठ करना।

६. रंगद्वार—आंगिक तथा वाचिक अभिनय का प्रथम प्रयोग।

७. चारी—इसमें शृंगार रस का प्रसार होता है।

८. महचारी—रौद्ररस की अभिव्यक्ति।

९. विगत—सूत्रधार, पारिपार्श्विक एव विदूषक का इतिवृत्त-संबंधी कौतूहलपूर्ण संवाद।

१०. प्ररोचना—काव्यवस्तु का परिचय तथा कवि की प्रशंसा कर सामाजिकों में अभिरुचि जगाना।

दे० नाट्यशास्त्र, ५/२१-३० तथा 'भरत और भारतीय नाट्कला', पृं० २९८-२९९

प्रकरण—रूपक का एक भेद। [दे० रूपक] नाट्यदर्पणकार ने प्रकरण के शाब्दिक अर्थ पर विचार करते हुए बताया कि जिसके नेता, फल या आख्यानवस्तु, व्यस्त या समस्त रूप से (पृथक्-पृथक् या एक साथ) कल्पित हों, उसे प्रकरण कहते हैं।

प्रकर्षेण क्रियते कल्प्यते नेता फलं वस्तु वा समस्त व्यस्ततयाऽत्रेति प्रकरणम्।

—नाट्यदर्पणम्, पृ० २०३

यह कल्पना-प्रधान रूपक नाटक से सर्वथा भिन्न एवं स्वतंत्र नाट्यप्रणाली है। इसका कथानक नाटक की तरह ऐतिहासिक न होकर काल्पनिक या कविकल्पनाप्रसूत होता है। [दे० नाटक] प्रकरण के नेता [दे० नेता], साध्य तथा साधन, सभी काल्पनिक होते हैं। नाटक की कथावस्तु ऐतिहासिक या ख्यात होती है। प्रकरण की वस्तु लौकिक हुआ करती है, जब कि नाटक का संविधानक (कथानक) राजचरिताश्रित होता है। भरत के अनुसार

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रकरण का कथानक लोकपरपराश्रित ग्रंथों में निबद्ध कथा के आधार पर रचा जाना चाहिए; जैसे बृहत् कथा आदि अर्थात् भरत इसकी कथावस्तु को उत्पाद्य और अनार्ष मानते हैं; वह पुराणादि की कथा पर आश्रित न रहे। अभिप्राय यह कि इसका कथानक बृहत्कथा या पूर्व निबद्ध काव्यों या नाटकों की कथाओं के आधार पर रचित हो। प्रकरण में वणिक्, विप्र या सचिव की कथा होती है, राजपुरुष की नहीं। इसका नायक धीर-प्रशांत तथा मंत्री, ब्राह्मण या वणिक में से कोई एक होता है। इसमें नायक का चरित्र अत्यंत भव्य न हो और वैभवशाली होने पर भी उसे राजाओं के सदृश भोग-विलास में लिप्त नहीं प्रदर्शित किया जाए। इसमें कंचुकी के स्थान पर एक अनुचर, विदूषक के बदले विट तथा अमात्य की जगह पर श्रेष्ठी को सहायक के रूप में रखा जाए। प्रकरण का नायक धर्म, अर्थ तथा काम की प्राप्ति में तत्पर रहकर अनेक विघ्न-बाधाओं का सामना करते हुए मनोरथ की सिद्धि करता है। इसकी नायिका वेश्या या अद्विजवर्णा स्त्री हो या अन्य प्रसंगों में कुलकन्या या कुलीन रमणी को भी नायिका बनाया जाए। कहीं-कहीं कुलजा रमणी एवं वेश्या दोनों ही नायिकात्व ग्रहण करती हैं। नायिकाओं के समावेश की दृष्टि से प्रकरण के तीन प्रकार होते हैं। शुद्ध, विकृत तथा संकीर्ण। जिसकी नायिका कुलकन्या हो, उसे शुद्ध; जिसकी गणिका हो, उसे विकृत तथा जिसमें दोनों हों, उसे संकीर्ण प्रकरण कहा जाएगा। संकीर्ण प्रकरण में धूर्त्त, द्यूतकार, विट तथा चेट आदि पात्र अधिक संख्या में नियोजित रहते हैं। इसके शेष तत्त्व—रस, संधि, प्रवेशक आदि—नाटक के ही समान होते हैं। उदाहरण के लिए 'मालती माधव' (भवभूति-कृत) शुद्ध, 'पुष्पदूतिका' विकृत तथा 'मृच्छकटिक' संकीर्ण या मिश्रित प्रकरण है।

नाटक में दिव्य पात्रों को भी नायक के सहायक-रूप में प्रदर्शित किया जाता है; पर प्रकरण में दिव्य पात्रों का प्रवेश वर्जित है। प्रकरण के पात्र दुखाढ्य या दुःखदीप्त होते हैं, जब कि दिव्य पात्र सुख-प्रधान। प्रकरण का अंगी या प्रधान रस शृंगार होता है।

प्रकरण के नेता, वस्तु एवं फल के कल्पित होने के कारण सात भेद होते हैं।

एक के कल्पित होने पर तीन भेद—

१. जब नायक केवल कल्पित हो, शेष दो अकल्पित हों।

२. केवल फल कल्पित हो।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

३. कथावस्तु कल्पित हो।

दो के कल्पित होने पर तीन भेद—

४. नायक और फल कल्पित हों।

५. नायक और वस्तु कल्पित हों।

६. फल और वस्तु कल्पित हों।

तीनों के कल्पित होने पर एक भेद—

७. नायक, फल तथा वस्तु तीनों कल्पित हों।

भरत का मत—

यत्र कविरात्मशक्त्या वस्तु शरीरं च नायकं चैव।
औत्पत्तिकं प्रकुरुते प्रकरणमिति तद्बुधैर्ज्ञेयम्॥
यदनार्षमथाहार्यं काव्यं प्रकरोत्यभूतगुणयुक्तम्।
उत्पन्नबीजवस्तु प्रकरणमिति तदपि विज्ञेयम्॥
यन्नाटके मयोक्तं वस्तुशरीरं च वृत्तिभेदाश्च।
तत्प्रकरणेऽपि योज्यं सलक्षणं सर्वसंधिषु तु॥
विप्रवणिक्सचिवानां पुरोहितामात्यसार्थवाहानाम्।
चरितं यन्नैकविधं ज्ञेयं तत्प्रकरणं नाम॥
नोदात्तनायककृतं न दिव्यचरितं न राजसंभोगम्।
बाह्यजनसप्रयुक्तं तज्ज्ञेयं प्रकरणं तज्ज्ञैः॥
दासविटश्रेष्ठियुतं वेशस्त्र्युपचारकारणोपेतम्।
मंदकुलस्त्रीचरितं काव्यं कार्यं प्रकरणे तु॥

—नाट्यशास्त्र, १८/४३-५०

नाट्यदर्पण में नायिका के आधार पर प्रकरण के इक्कीस भेद माने गए हैं।

कुलस्त्री गृहवार्तायां पण्यस्त्री तु विपर्यये।
विट पत्यौ द्वयं तस्यादेकविंशतिधाऽप्यदः॥२/६८

धनंजय का मत—

अथ प्रकरणे वृत्तमुत्पाद्यं लोकसंश्रयम्।
अमात्यविप्रवणिजामेकं कुर्याच्च नायकम्॥
धीरप्रशांत सापायं धर्मकामार्थतत्परम्।
शेषं नाटकवत्संधिप्रवेशक रसादिकम्॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नायिका तु द्विधा नेतुः कुलस्त्री गणिका तथा ।
क्वचिदेकैव कुलजा वेश्या क्वापि द्वयं क्वचित् ।।
कुलजाभ्यंतरा बाह्या वेश्या नातिक्रमोऽन्ययोः ।
आभिः प्रकरणं त्रेधा, संकीर्णं धूर्तसंकुलम् ।।

—दशरूपक, ३/३९-४२

विश्वनाथ का लक्षण—

भवेत्प्रकरणे वृत्तं लौकिकं कविकल्पितम् ।।
श्रृंगारोऽंगी नायकस्तु विप्रोऽमात्योऽथवा वणिक् ।
सापायधर्मकामार्थपरोधीरप्रशांतकः ।।
नायिका कुलजा क्वापि वेश्या क्वापि द्वयं क्वचित् ।
तेन भेदास्त्रयस्तस्य तत्र भेदस्तृतीयकः ।।
कितवद्यूतकारादिविटचेटकसंकुलः ।

—साहित्यदर्पण, ३/२२४-२२७

नाट्यदर्पण का लक्षण—

प्रकरणं वणिग्-विप्र-सचिवस्वाम्यसंकरात् ।
मंदगोत्रांगनं दिव्यानाश्रितं मध्यचेष्टितम् ।।
दास-श्रेष्ठि-विटैर्युक्तं क्लेशाढ्यं तच्च सप्तधा ।
कल्प्येन-फल-वस्तूनामेक-द्वित्रि-विधानतः ।।
कुलस्त्री गृहवार्तायां पण्यस्त्री तु विपर्यये ।
विटे पत्यौ द्वयं तस्मादेकत्रिंशतिधाऽप्यदः ।।
अत्राकल्प्यं पुरा क्लृप्तं यद्वाऽनार्षमसद्गुणम् ।
शेषं नाटकवत् सर्वं कैशिकीपूर्णतां विना ।। —२/६६-६९

प्रकरणवक्रता—वक्रोक्ति-सिद्धांत का एक प्रकार । [दे० वक्रोक्ति-सिद्धांत] अनेक वाक्यों के समूह या प्रबंध के एक देश या अंश को प्रकरण कहते हैं । जब कवि इस प्रकरण का अपनी प्रतिभा से रमणीय या चमत्कारपूर्ण वर्णन करे तो उसे प्रकरणवक्रता कहा जाएगा ।

"जहाँ पर जड़ से लेकर ही असंभावित अंकुरणवाले कवि मनोरथ के प्रस्तुत किए जाने पर एक अनिर्वचनीय और असीम तथा निर्बाध उत्साह के स्फुरण के कारण सुशोभित होनेवाली और अपने आशय की उद्भावना के कारण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मनोहर लगनेवाले व्यवहार करनेवालों की प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है उसे प्रकरणवक्रता कहते हैं।' —वक्रोक्तिजीवित (हिंदी अनुवाद, चौखंबा)

यत्र नियंत्रोत्साहपरिस्पंदोपशोभिनी।
व्यावृत्तिर्व्यवहर्तॄणां स्वाशयोल्लेखशालिनी ॥
अव्यामूलादनाशंक्यसमुत्थाने मनोरथे।
काप्युन्मीलति निःसीमा सा प्रबंधांशवक्रता ॥

—वक्रोक्तिजीवित, ४/१,२

यहाँ कुंतक का अभिप्राय यह है कि जब कवि काव्य-रचना के उत्साह से प्ररित होकर वस्तु-वर्णन में अलौकिक चमत्कार या उत्कर्ष की सृष्टि करे तो प्रकरणवक्रता होगी। समग्र कथा-विधान को प्रबंध एवं उसके एक अंश (एक-देश) को प्रकरण कहते हैं—**प्रबंधस्यैकदेशानां**। जब प्रसंग-विशेष के उत्कर्ष या चमत्कार के कारण संपूर्ण प्रबंध उज्ज्वल हो उठे तो वहाँ प्रकरणवक्रता होगी। 'अर्थात् संपूर्ण प्रबंध को दीप्त करनेवाला प्रबंध के एक देश का चमत्कार प्रकरणवक्रता के नाम से अभिहित होता है।'—डॉ० नगेंद्र, हिंदी वक्रोक्तिजीवित भूमिका, पृ० ९४

कुंतक ने प्रकरण-वक्रता के नौ विशिष्ट प्रकारों का उल्लेख किया है।

१. भावपूर्ण स्थिति की उद्भावना—जब कवि प्रबंध के नायक के चरित्र को दीप्त करने के लिए ऐसी भावपूर्ण स्थिति की उद्भावना करे, जिससे प्रकरण में लालित्य या सौंदर्य की सृष्टि हो तो प्रथम प्रकरणवक्रता होगी। इसके उदाहरण के लिए कुंतक ने रघुवंश महाकाव्य के पंचम सर्ग में वर्णित रघु और कौत्स-संवाद को प्रस्तुत किया है। महर्षि वरतंतु के शिष्य कौत्स राजा रघु के पास, गुरु-दक्षिणा देने के लिए चौदह कोटि द्रव्य के निमित्त आए; पर इसके पूर्व ही राजा विश्वजित् नामक यज्ञ संपन्न करने के कारण अपना सर्वस्व दान कर चुके थे और उनके पास मिट्टी के पात्र के अतिरिक्त कुछ भी शेष नहीं था। जब कौत्स मुनि को यह ज्ञात हुआ तो वे लौटकर जाने लगे। इस पर राजा ने कुबेर पर चढ़ाई कर धन प्राप्त करने की योजना बनाई; किंतु उसी समय कुबेर ने उन्हें आवश्यकता से अधिक धन स्वयं दे दिया। राजा ने समस्त द्रव्य मुनि के समक्ष रख दिया पर; मुनि ने आवश्यकता से अधिक रंच मात्र भी लेना अस्वीकार कर दिया।

साकेतवासी दोनों की यह स्थिति देखकर चकित हो गए। एक ऐसा याचक था, जो आवश्यकता से अधिक ग्रहण करने को तैयार नहीं था और दूसरा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(दाता) आवश्यकता से अधिक दान करने को प्रस्तुत था। यहाँ पर कवि ने इस भावपूर्ण प्रकरण की उद्भावना कर राजा एवं ऋषि के चरित्र को दीप्त कर दिया है, जिससे प्रबंध-कल्पना अधिक सशक्त हो उठी है।

जनस्य साकेतनिवासिनस्तौ
द्वावप्यभूतां अभिवंद्यसत्त्वौ।
गुरुप्रदेयाधिकनिःस्पृहोऽर्थी
नृपोऽर्थिकामादधिकप्रदश्च ॥ —रघुवंश ५/३१

हिंदी में इस प्रकार का उदाहरण डॉ० नगेंद्र ने 'साकेत' से दिया है। लक्ष्मण की मूर्च्छा के अनंतर राम शोकाभिभूत हो प्रलयंकारी युद्ध करने में प्रवृत्त हो जाते हैं; तभी कुंभकर्ण उनके सामने आ जाता है और राम 'भाई का बदला भाई' कहकर उसका वध कर देते हैं। उसी समय रावण को देखकर राम की उत्तेजना शांत हो जाती और वे अपने तथा रावण के बीच शोक-सौहार्द्र का अनुभव करने लगते हैं। राम रावण के पास सहानुभूति प्रदर्शित करने के लिए बढ़ने भी नहीं पाए थे कि रावण पहले ही मूर्च्छित हो जाता है और इसके बाद रामचंद्र भी पृथ्वी पर अचेत होकर गिर पड़ते हैं। इस प्रसंग की उद्भावना से राम की उदारता एवं रावण की सहृदयता का उत्कर्ष व्यंजित होता है और यही प्रबंध के चमत्कार का कारण बनता है।

आ भाई, वह वैर भूलकर, हम दोनों समदुःखी मित्र,
आ जा क्षण भर भेंट परस्पर, कर लें अपने नेत्र पवित्र।
हाय ! किंतु इससे पहले ही मूर्च्छित हुआ निशाचर-राज,
प्रभु भी यह कह गिरे राम से रावण ही सहृदय है आज ॥
—साकेत

२. उत्पाद्य-लावण्य—इसका अर्थ है कल्पना-प्रसूत मधुर उद्भावना। जब कवि इतिहास-प्रसिद्ध कथानक में अपनी कल्पना के द्वारा ऐसे प्रसंगों की उद्भावना करे, जिससे कथा में कुछ सुंदर परिवर्तन हो जाए और उससे संपूर्ण प्रबंध रसपूर्ण हो जाय या अलौकिक सौंदर्य से दीप्त हो उठे। यह दो प्रकार से संभव है—अविद्यमान की कल्पना एवं विद्यमान का संशोधन।

इति वृत्तप्रयुक्तेऽपि कथावैचित्र्यवर्त्मनि।
उत्पाद्यलवलावण्यादन्या भवति वक्रता ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा यथा प्रबंधस्य सकलस्यापि जीवितम्।
भाति प्रकरणं काष्ठाधिरूढरसनिर्भरम् ॥

—वक्रोक्तिजीवित, ४/३,४

अविद्यमान की कल्पना—जब कवि नवीन प्रसंगों की उद्भावना कर अपनी रचना का रसोत्कर्ष बढ़ा दे तो यह प्रकार होगा। उदाहरण के लिए महाकवि कालिदास ने शकुंतला नाटक के चतुर्थ अंक में दुर्वासा के शाप की कल्पना कर राजा दुष्यंत के चरित्रगत दोष का प्रक्षालन किया है। इस प्रसंग के समावेश से संपूर्ण नाटक का उत्कर्ष बढ़ जाता है।

३. **विद्यमान का संशोधन**—जब कवि मूल कथा के किसी अंश में संशोधन कर उसे औचित्यपूर्ण बना दे तो वहाँ यह प्रकार होगा। इसमें कवि इतिवृत्त में विद्यमान अनौचित्ययुक्त अंश को संशोधित कर नए रूप में प्रस्तुत करता है। इसके उदाहरण में कुंतक ने 'उदात्तराघव' नामक नाटक के 'मारीचवध' प्रसंग को लिया है, जिसमें राम के चरित्र को अधिक उदात्त बनाने के लिए मारीच-वध-प्रसंग में किंचित् परिष्कार किया गया है। इसमें दिखाया गया है कि मारीच का वध करने के लिए लक्ष्मण जाते हैं और उनकी प्राण-रक्षा के लिए सीता राम को भेजती हैं। निस्संदेह इस घटना में संशोधन कर देने से राम का चरित्र अधिक उज्ज्वल हो जाता है। 'साकेत', 'प्रियप्रवास' एवं 'कामायनी' में ऐसे अनेक स्थल हैं। उदाहरण के लिए लक्ष्मण के शक्ति लगने का समाचार सुनकर अयोध्यावासियों का समर में जाने के लिए उद्यत होना तथा कैकेयी का पश्चात्ताप।

४. **प्रधान कार्य से संबद्ध प्रकरणों का उपकार्य-उपकारक-भाव**—यह प्रकरण-वक्रता वहाँ होती है, जहाँ कवि प्रधान कार्य से संबद्ध या मुख्य फल की सिद्धि करानेवाले प्रकरणों में परस्पर उपकार्य-उपकारक भाव स्थापित करे। जिसमें प्रत्येक प्रकरण अन्य प्रकरणों से संबद्ध हो एवं अंततः प्रधान कार्य का उपकारक बने, उसे कार्यान्वित कहा जा सकता है।

प्रबंधस्यैकदेशानां फलबंधानुबंधवान्।
उपकार्योपकर्तृत्व परिस्पंदः परिस्फुरन् ॥
असामान्यसमुल्लेखप्रतिभाप्रतिभासिनः।
सूते नूतनवक्रत्वरहस्यं कस्यचित्कवेः ॥

—वक्रोक्तिजीवित, ४/५, ६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसका उदाहरण भवभूति कृत 'उत्तर रामचरित' नाटक में रामचंद्र (प्रथम अंक में) के द्वारा जृंभकास्त्रों का वर्णन है, जो पंचम अंक में लव-द्वारा उनके प्रयोग का उपकारक सिद्ध होकर अंत में राम और सीता के मिलन का साधक होता है।

५. विशिष्ट प्रकरण की अतिरंजना—जब कवि एक ही अर्थ को अपनी प्रौढ़ प्रतिभा के द्वारा बार-बार पृथक्-पृथक् प्रकरणों में नियोजित करे और वह सर्वत्र नवीन अलंकारों तथा रस से युक्त होकर मनोरम या आकर्षक रूप में प्रस्तुत हो तो यह भेद होता है। प्रतिभासंपन्न कवि एक ही विषय को वैचित्र्यपूर्ण रीति से प्रस्तुत कर कथा में नवीन चेतना उत्पन्न कर देता है। उदाहरण के लिए संभोग-वर्णन एवं विरह-व्यथा के बार-बार समावेश से भी कोई प्रबंध सरस बन सकता है। 'साकेत' का उर्मिला का विरह-वर्णन एवं 'कामायनी' का लज्जावर्णन इसके सुंदर उदाहरण हैं। 'रघुवंश' महाकाव्य के नवम सर्ग का दशरथ का मृगया-वर्णन इस प्रकरणवक्रता का रमणीय रूप प्रस्तुत करता है।

प्रतिप्रकरणं प्रौढ़प्रतिभाभोगयोजितः ।
एक एवाभिधेयात्मा बध्यमानः पुनः पुनः ॥
अन्यूननूतनोल्लेखरसालंकरणोज्ज्वलः ।
बध्नाति वक्रतोद्भेदभंगीमुत्पादिताद्भुताम् ॥

—वक्रोक्तिजीवित, ४/७,८

६. जलक्रीड़ा, उत्सव आदि रोचक प्रसंगों का अति विस्तार—जब कवि काव्य के सौंदर्य को बढ़ाने के लिए कथा-वैचित्र्य की सृष्टि करनेवाले जल-क्रीड़ा, प्राकृतिक दृश्य तथा रमणीय स्थल का वर्णन आदि विषयों का समावेश करे तो यह प्रकार होगा। संस्कृत महाकाव्यों में वस्तु-व्यंजना के अंतर्गत संध्या, सूर्य, रजनी, विवाहोत्सव, मद्यपान, जलक्रीड़ा, पर्वत, समुद्र, रति-उत्सव, उद्यान, पुत्रोत्सव, रण-प्रयाण आदि का नियोजन आवश्यक होता है और इनके वर्णन से प्रबंध अधिक समृद्ध हो जाता है।

कथा वैचित्र्यपात्रं तद्वक्रिमाणं प्रपद्यते ।
यदंगं सर्गबंधादेः सौंदर्याय निबध्यते ।

—वक्रोक्तिजीवित, ४/६

इसके उदाहरण के रूप में प्राकृतिक एवं मानवीय दोनों पक्षों के जीवन-व्यापार प्रस्तुत किए गए हैं। जैसे प्राकृतिक व्यापार के अंतर्गत 'रघुवंश'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के सोलहवें सर्ग में निहित कुश की सलिल-क्रीड़ा एवं मानवीय व्यापार के अंतर्गत किरातार्जुनीय का बाहुयुद्ध रखा गया है।

७. प्रधान उद्देश्य की सिद्धि के लिए सुंदर अप्रधान प्रसंग की उद्भावना—प्रधान अर्थ की सिद्धि के लिए जब किसी अप्रधान किंतु सुंदर प्रसंग की कल्पना कर संपूर्ण कथा में वैचित्र्य का समावेश किया जाय तो प्रकरणवक्रता का यह प्रकार होगा।

प्रधान वस्तुनिष्पत्त्यै वस्त्वंतर विचित्रता।
यत्रोल्लसति सोल्लेखा सापराप्यस्य वक्रता॥

—वक्रोक्तिजीवित, ४/११

'मुद्राराक्षस' नाटक में प्रधान उद्देश्य (राक्षस को बंदी बनाना) की सिद्धि के लिए चाणक्य एक ऐसे पुरुष को नियुक्त करता है, जो आत्महत्या का प्रपंच कर राक्षस को आकृष्ट कर लेना है। यहाँ आत्महत्या का प्रपंच राक्षस को बंदी बनानेवाले प्रधान लक्ष्य की सिद्धि करता है।

८. गर्भांक—जब कवि नाटक के अंक के अंतर्गत अन्य नाटक या गर्भांक की योजना करे तो उसे प्रकरणवक्रता का गर्भांक नामक प्रकार कहते हैं। इसमें कवि किसी नाटक के मध्य में अन्य नाटक का समावेश कर प्रकरण के वैचित्र्य को प्रस्तुत करता है।

सामाजिकजनाह्लादनिर्माणनिपुणैर्नटैः।
तद्भूमिकां समास्थाय निर्वर्तितनटांतरम्॥
क्वचित्प्रकरणस्यांतः स्मृतं प्रकरणांतरम्।
सर्वप्रबंध सर्वस्व कलां पुष्णाति वक्रताम्॥

—वक्रोक्तिजीवित, ४/१२, १३

राजशेखर कृत 'बालरामायण' नामक नाटक के तृतीय अंक में 'सीता-स्वयंवर' नामक गर्भांक इसका उदाहरण है।

९. प्रकरणों का पूर्वापर अन्वितिक्रम—पूर्व प्रकरणों का उत्तरवर्ती प्रकरणों के साथ सामंजस्य स्थापित करना ही यह प्रकार है। कथा के विभिन्न प्रसंगों में पूर्वापर अन्विति होनी चाहिए। जिस प्रबंध के प्रत्येक प्रकरण में एकसूत्रता होती है या पौर्वापर्य में किसी प्रकार की असंगति का सर्वथा अभाव रहता है तो उसमें वक्रता या सौंदर्य का होना अनिवार्य है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मुखादिसंधिसंधायि संविधानकबंधुरम् ।
पूर्वोत्तरादिसांगत्यादंगानां विनिवेशनम् ।।
न त्वमार्गग्रहग्रस्तग्रहकांडकदर्थितम् ।
वक्रतोल्लेखलावण्यमुल्लासयति नूतनम् ।।

—वक्रोक्तिजीवित, ४/१४, १५

कुंतक ने 'कुमारसंभव' की विभिन्न घटनाओं के पूर्वापर क्रम को उदाहरण स्वरूप रखा है।

आधार-ग्रंथ—

हिंदी वक्रोक्तिजीवित—संपादक, डॉ॰ नगेंद्र (भूमिका)
वक्रोक्तिजोवितम्—अनुवादक, पं॰ राधेश्याम मिश्र
भारतीय साहित्यशास्त्र भाग २—पं॰ बलदेव उपाध्याय
भारतीय काव्यालोचन—डॉ॰ राजवंश सहाय 'हीरा'

प्रकरणिका—उपरूपक का एक भेद। [दे॰ **उपरूपक**] यह उपरूपक प्रकरण के जोड़ का होता है। इसमें नायक सार्थवाह (सेठ) होता है और उसकी सजातीय स्त्री नायिका होती है। इसमें शेष सारी बातें प्रकरण के समान रहती हैं। [दे॰ **प्रकरण**]

नाटिकैव प्रकरणी सार्थवाहादिनायका ।
समानवंशजा नेतुर्भवेद्यत्र च नायिका ।।

—साहित्यदर्पण, ६/३०६

प्रकरी—प्रासंगिक कथावस्तु का एक भेद। [दे॰ **अर्थप्रकृति**]

प्रकाश—[दे॰ **सर्वश्राव्य**]

प्रकाशितविरुद्धता—अर्थदोष का १९वाँ भेद। [दे॰ **अर्थदोष**]

प्रकृत—उपमेय का अन्य नाम। [दे॰ **उपमेय**]

प्रकृतिविपर्यय—रसदोष का ९वाँ भेद। [दे॰ **रसदोष**]

प्रख्यात—इतिवृत्त या कथा का (वस्तु) एक भेद। [दे॰ **वस्तु**] इसे ऐतिहासिक या पौराणिक कथा कहते हैं।

प्रगल्भवचना—मध्या नायिका का एक भेद। [दे॰ **मध्या**] जो नायिका प्रगल्भ वचनों-द्वारा कामवासना को प्रकट करे, उसे प्रगल्भवचना कहते हैं। प्रगल्भवचना का अर्थ चतुर वचन बोलनेवाली या उद्दंड वचन बोलनेवाली है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रगल्भा—स्वकीया नायिका का एक भेद। [दे० स्वकीया] कामकला-कोविदा नायिका को प्रौढ़ा या प्रगल्भा कहते हैं। इसकी लज्जा काम-द्वारा आक्रांत कर दी जाती है अर्थात् इसमें लज्जा अल्प मात्रा में होती है। यह रति में उन्मत्त और कामकला में प्रवीण होती है।

धनंजय के अनुसार प्रगल्भा यौवन की धारा में अंधी, काम के भाव में उन्मत्त, लज्जा से रहित, ढीठ, सुरतक्रीड़ा के समय प्रिय के अंग में चिपककर विलीन हो जानेवाली और रतिक्रीड़ा के आनंद में अचेत होनेवाली होती है।

यौवनांधा स्मरोन्मता प्रगल्भा दयितांगके।
विलीयमानेवानंदाद्रतारंभेऽप्यचेतना ॥ —दशरूपक, २/१८

विश्वनाथ के अनुसार प्रगल्भा में कामोन्माद वृद्धि पर रहता है। उसका यौवन पूरे उभार पर पहुँच जाता है, उसमें सुरतक्रीड़ा के समस्त कौशल समा जाते हैं, उसके हावभाव पूर्णतः विकसित होते हैं, उसमें रतिलज्जा अल्प मात्रा में बची रहती है और वह कामक्रीड़ा में नायक को भी पराजित कर सकती है।

स्मरांधा गाढतारुण्या समस्तरतकोविदा।
भावोन्नता दरव्रीडा प्रगल्भाक्रांतनायका ॥

—साहित्यदर्पण, ३/६०

भानुदत्त का कथन है कि जो केवल अपने पति की समस्त केलिकलाओं को जानती है, उसे प्रगल्भा कहते हैं।

पतिमात्रविषयककेलिकलाकलापकोविदाप्रगल्भा।

—रसमंजरी, पृ० २२

मतिराम ने भानुदत्त के विचार को अनूदित कर प्रौढ़ा का वर्णन किया है।

निजपति सों रतिकेलि की सकल कलानि प्रबीन।
तासों प्रौढ़ा कहत हैं जे कबिता रसलीन ॥

—रसराज, ३३

पद्माकर ने प्रौढ़ा के वर्णन में कामवासना के बाहुल्य तथा लज्जा की न्यूनता का कथन करते हुए उसे रतिक्रीड़ा की खान कहा है।

ललित लाज कछु मदन बहु, सकल केलि की खान।
प्रौढ़ा ताही सों कहत, सुकबिन की मति मानि ॥

—जगद्विनोद, ४५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

***प्रगल्भा* के भेद**—धनंजय ने प्रगल्भा के तीन भेदों का कथन किया है—यौवनांधा या गाढयौवना (यौवन के प्रवाह में अंधी नायिका), स्मरोन्मत्ता या भावप्रगल्भा (कामविषयक भावों में उन्मत्त या पागल हो जानेवाली) तथा रतप्रगल्भा (सुरतक्रीड़ा की प्रारंभिक अवस्था में अचेत हो जानेवाली)।

विश्वनाथ ने प्रगल्भा के छह भेदों का उल्लेख किया है—स्मरांधा (स्मरोन्माद की वृद्धि के कारण सुरतक्रीड़ा में अंधी हो जानेवाली), गाढ़-तारुण्या (जिसका तारुण्य उभार पर हो), समस्तरतकोविदा (जो कामकला के समस्त कौशल में प्रवीण हो), भावोन्नता (जिसके हाव-भाव अत्यंत या पूर्ण विकसित हों), दरव्रीडा (जिसमें रतिलज्जा की अल्प मात्रा अवशिष्ट हो), आक्रांतनायका (जो रतिक्रीड़ा में नायक को भी परास्त कर दे)।

भानुदत्त ने दो भेदों का वर्णन किया है—रतिप्रीता (संभोग की अवस्था में सुख का अनुभव करनेवाली) एवं आनंदसंमोहिता (रतिक्रीड़ा में आनंद के कारण संमोह या मूर्च्छा को प्राप्त करनेवाली)।

रीतिकाल के अधिकांश आचार्यों ने भानुदत्त के आधार पर दो भेदों का ही निरूपण किया है। रसलीन ने उद्भटयौवना, मदनमदमाती, लुब्धापति तथा रतकोविदा—चार नवीन भेदों का उल्लेख किया। इनके सभी भेद विश्वनाथ के भेदों के नामांतर दीख पड़ते हैं।

रतिप्रीता—प्रियतम के साथ रति-क्रीड़ा में अतिशय रुचि प्रदर्शित करने-वाली नायिका रतिप्रीता कही जाती है। इसका अन्य नाम रतिप्रीतिमती भी है।

> **प्रियतम सँग रति रमण मैं रुचि राखै अत्यंत।**
> **ताहि रतिः प्रीता कहत जे कबि बुद्धि अनंत॥**

—साहित्यसागर, भाग २

उदाहरण—

> क. **संस्पृश्य स्तनमाकलय्य्वदनं संश्लिष्य कंठस्थलं**
> **निष्पीयाधरबिंबमंबरमपाकृष्य व्युदस्यालकम्।**
> **देवस्यांबुजिनीपतेः समुदयं जिज्ञासमाने प्रिये**
> **वामाक्षी वसनांचलैः श्रवणयोर्नीलोत्पलं निह्नुते॥**

—रसमंजरी, १०

प्रिय ने अपनी प्रिया के पयोधर का स्पर्श किया, उसके मुख पर प्रेमपूर्ण दृष्टि डाली तथा कंठग्रहपूर्वक आलिंगन किया, उसके अधरबिंब का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पान कर वस्त्र हटा दिए और भाल पर विकीर्ण केशों को हटाकर पीछे की ओर फेर दिया। तत्पश्चात् प्रिय, भगवान् भास्कर के उदय की चाह करने लगा। इसे देखकर वामाक्षी ने शीघ्र ही आँचल से अपने श्रवण में लगे नील कमलों को ढँक लिया, जिससे प्रिय को ज्ञात न हो सके कि प्रातःकाल हो गया और रतिक्रीड़ा की समाप्ति हो गई।

ख. लै पट प्रीतम के पहिरै पहिराइ पियै चुनि चूनरी खासी।
त्यों 'पद्माकर' साँझ ही तें सिगरी निसि केलि-कला परगासी॥
फूलत फूल गुलाबन के चटकाहट चौंकि चली चपला-सी।
कान्ह के काननि आँगुरी नाइ रही लपटाइ लवंगलता-सी॥

— जगद्विनोद, ४९

२. *आनंदसंमोहिता*—प्रियतम की प्रीति के आनंद में निमग्न रहनेवाली नायिका आनंदसंमोहिता है

प्रियतम प्रीति अनंद में जिहि निमग्न मन होइ।
मोहै सम्यक् भाँति सो आनंदासंमोह॥—साहित्यसागर, भाग २

उदाहरण—

क. नखक्षतमुरःस्थलेऽधरतले रदस्य व्रणं
च्युताबकुलमालिका विगलिता च मुक्तावलिः।
रतांतसमये मया सकलमेतदालोकितं
स्मृतिः क्व ? च रतिः क्व ? च क्व च तवालि ! शिक्षाविधिः ?

—रसमंजरी, ११

"हे सखि ! रति-क्रीड़ा की समाप्ति के पश्चात् मैंने देखा कि मेरे स्तनों पर प्रिय के नख के चिह्न बने हुए हैं और होठों पर उनके दाँतों के घाव बन गए हैं। मौलसिरी की माला टूटकर गिर गई है और मुक्तावली बिखर गई है। जब मैं प्रिय के साथ संभोग में लीन थी तो इन सब की स्मृति ही कहाँ थी ? रतिक्रीड़ा की केलि का ध्यान भी कहाँ था और तुम्हारी मान की शिक्षा भी भूल गई थी।" किसी प्रगल्भा का सखी के प्रति वचन है।

ख. रीति रची बिपरीत रची रति प्रीतम-संग अनंग-झरी में।
त्यों 'पद्माकर' टूटे हरा ते सरासर सेज परे सिगरी में॥
यों करिकेलि बिमोहित ह्वै रही आनँद की सुघरी उघरी में।
नीबी औ बार सँभारिबे की सु भई सुधि नारि कों चारि घरी में॥

—जगद्विनोद, ५१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मान की स्थिति में इसकी तीन स्थितियाँ हो जाती हैं, जिन्हें प्रगल्भाधीरा, प्रगल्भाअधीरा तथा प्रगल्भाधीराधीरा कहते हैं। [दे० धीरा, अधीरा तथा धीराधीरा]

प्रघट्टक—मुक्तक काव्य का एक भेद। [दे० मुक्तककाव्य]

प्रणयमान—मान का भेद। [दे० मान]

प्रत्यक्षदर्शन—पूर्वानुराग का चतुर्थ भेद। [दे० पूर्वराग]

उदाहरण—

> हौं लखि आई लखहुंगी लखै न क्यों ब्रज लोग।
> निसिदिन साँचहु साँमरो दृगनि देखिबे जोग।।
>
> —पद्माकर

प्रत्ययवक्रता—पदपरार्द्ध वक्रता का षष्ठ भेद। [दे० पदपरार्द्ध वक्रता]

प्रतिकूलवर्णता—वाक्यदोष का प्रथम भेद। [दे० वाक्यदोष]

प्रतिनायक—जो पात्र नायक (प्रधान पात्र) का प्रतिपक्षी हो, उसे प्रतिनायक कहते हैं। यह धीरोद्धत्त, लुब्ध (लोभी), दुराग्रही, पापी एवं व्यसनी होता है। प्रतिनायक नायक का शत्रु और फल-प्राप्ति में बाधक या विघ्न डालनेवाला होता है।

> **लुब्धो धीरोद्धतः स्तब्धः पापकृद्व्यसनी रिपुः।**
>
> —दशरूपक, २/९

उदाहरण के लिए राम और युधिष्ठिर के प्रतिनायक क्रमशः रावण और दुर्योधन हैं। प्रतिनायक में नायक के समान ही उत्साह, प्रताप और अभिमान के भाव रहते हैं। इसकी मुख्य विशेषता हैं नायक की योजनाओं का प्रतिरोध करना।

प्रतिप्रसव—शोभाकर मित्र-वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। निवृत्त अर्थ की पुनः प्राप्ति को प्रतिप्रसव अलंकार कहते हैं। इस अलंकार का अंतर्भाव पूर्वरूप में हो सकता है। [दे० पूर्वरूप]

> **प्रत्यापत्तिः प्रतिप्रसवः।। ८५**
> **निवृत्तस्यार्थस्य पुनः प्राप्तिः प्रत्यापत्तिः,**
> **सा प्रतिप्रसवोऽलंकारः।।** —अलंकाररत्नाकर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रतिबिंबकल्प—जो काव्य प्राचीन काव्य का प्रतिबिंब या अनुकरण हो, उसे प्रतिबिंबकल्प कहते हैं। [दे० **काव्य-संवाद**]

प्रतिभा—शोभाकरमित्र-वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। प्रतिभा अलंकार का विकास उल्लेख से हुआ है। इसमें संभाव्यमान अर्थ की कवि-द्वारा अनेकविध कल्पना का वर्णन होता है। इस अलंकार का अंतर्भाव उल्लेखालंकार [दे० **उल्लेख**] में किया जा सकता है।

संभाव्यमानस्य प्रतिभा ॥ ३५

प्रमाणांतरेणावगतस्य तत्तत्प्रस्तावादिकारणवशात्संभाव्यमानस्यार्थस्य कविना प्रतिभाख्येन चक्षुषा परिकल्पनमुल्लेखरूपं प्रतिभा ॥ —अलंकाररत्नाकर, पृ० ५५

प्रतिभा—काव्य या साहित्य-रचना की जन्मजात शक्ति का नाम प्रतिभा है। [दे० **काव्यहेतु**] इस शक्ति से संपन्न होकर कवि नव-नव अर्थों का उन्मेष कर कल्पना-शक्ति को उन्मीलित करता है। यह दो प्रकार की होती है—सहजा और उत्पाद्या। सहजा उस प्रतिभा को कहते हैं, जो कवि में जन्मकाल से दिखाई पड़ती है, अर्थात् जन्मजात होती है। उत्पाद्या या औपाधिक प्रतिभा प्रयत्न-साध्य होती है। इसे उपार्जित शक्ति कहते हैं, जो मंत्र, देवानुग्रह आदि के परिणामस्वरूप प्राप्त होती है। प्रयत्न या शिक्षा अथवा अभ्यास द्वारा अल्प प्रतिभा प्राप्त कर भी मनुष्य जब काव्य-रचना करने लगे तो ऐसी प्रतिभा को उत्पाद्या कहते हैं। प्रतिभा के अन्य दो प्रकार भी हैं—कारयित्री और भावयित्री। काव्य-निर्माण में कवि का उपकार करनेवाली प्रतिभा कारयित्री कही जाती है। इसके कारण कवि अज्ञात या अदृष्ट वस्तु का भी वर्णन करता है। भावयित्रा प्रतिभा भावक या काव्य-विवेचक का उपकार करती है। इससे संपन्न होकर व्यक्ति काव्य के गुण-दोष का विवेचन करता है।

प्रतिमा—शोभाकर मित्र-वर्णित एक अल्पप्रसिद्ध अलंकार। इसमें दो पदार्थों के धर्मों (गुणों) में साम्य प्रदर्शित कर उनके द्वारा किए जानेवाले कार्य का ज्ञान होता है। इसमें इवादि औपम्यवाचक शब्दों का प्रयोग नहीं होता। यह अलंकार उपमा का ही रूप माना जा सकता है।

अन्यधर्मयोगादार्थमौपम्यं प्रतिमा ॥ १३

अत्र हि वस्त्वंतरसंबंधिनोधर्माः प्रकृतसंबंधितयैवोपनिबध्यंते ।

—अलंकाररत्नाकर, पृ० १४

प्रतिमाला—साहित्यिक मनोविनोद का एक प्रकार। [दे० **काव्यगोष्ठी**]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रतिमुख—संधि का द्वितीय भेद। [दे० संधि]

प्रतिवस्तूपमा—सादृश्यमूलक अलंकार। जहाँ उपमेय एवं उपमान वाक्यों का एक ही साधारण धर्म शब्दांतर से कथित हो, वहाँ प्रतिवस्तूपमा अलंकार होता है। 'प्रतिवस्तूपमा' का अर्थ है प्रत्येक वाक्य (प्रतिवस्तु) में उपमा (सादृश्य) अर्थात् प्रत्येक वाक्य में सादृश्य—

प्रतिवस्तु प्रतिवाक्यार्थमुपमा साधारण धर्मोऽस्यामिति व्युत्पत्तेः ॥

—कुवलयानंद, ५१

तेन प्रतिवस्तुप्रतिवाक्यार्थमुपमासामान्यं यस्यां सा प्रतिवस्तूपमा ॥

—प्रतापरुद्रीय, पृ० ३१०

एकस्यैव धर्मस्य पृथक् शब्दाभ्यामुपादानं वस्तुप्रतिवस्तुभावः ॥

—उद्यात, पृ० ४९५

प्रतिवस्तूपमा में वस्तु वाक्यार्थ का बोधक है—

वस्तुशब्दस्य वाक्यार्थ वाचित्वे प्रतिवाक्यार्थमुपमा।

—अलंकारसर्वस्व, पृ० ७१

इस अलंकार में उपमा गम्य या प्रतीयमान होती है, वह सादृश्यवाचक शब्दों द्वारा कथित नहीं होती; अतः इसे गम्यौपम्यमूलक अलंकार कहते हैं। प्रतिवस्तूपमा में उपमेय तथा उपमानस्वरूप दो वाक्य होते हैं और दोनों वाक्यों का एक ही साधारण धर्म होता है, जो भिन्न-भिन्न शब्दों द्वारा (शब्दांतर से) कथित होता है।

इस अलंकार का उल्लेख प्रायः सभी आचार्यों ने किया है। इसके उद्भावक आचार्य भामह हैं, जिन्होंने उपमा के एक भेद के रूप में प्रतिवस्तूपमा का वर्णन किया है। भामह के अनुसार गुण की समता की प्रतीति के कारण समान वस्तु के निर्देश को प्रतिवस्तूपमा कहते हैं, जिसमें यथा, इव आदि उपमावाचक शब्दों का प्रयोग नहीं होता।

समान वस्तुन्यासेन प्रतिवस्तूपमोच्यते।
यथेवानभिधानेऽपि गुणसाम्य प्रतीतितः ॥

—काव्यालंकार, २/३४

दंडी ने भी इसे स्वतंत्र अलंकार का पद न देकर उपमा का एक भेद माना है। जब एक वस्तु (उपमेय) का वर्णन कर तत्सदृश धर्मवाली अन्य वस्तु (उपमान) का वर्णन किया जाय तो प्रतिवस्तूपमा होगी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वस्तु किंचिदुपन्यस्य न्यसनात् तत्सधर्मणः ।
साम्य प्रतीतिरस्तीति प्रतिवस्तूपमा यथा ॥

—काव्यादर्श, २/४६

सर्वप्रथम उद्भट ने इसे स्वतंत्र अलंकार के रूप में वर्णित किया है। इनके अनुसार उपमेय तथा उपमान के प्रसंग में साधारण धर्म का बार-बार उपादान करने को प्रतिवस्तूपमा कहते हैं।

उपमान संनिधाने च साम्यवाच्युच्यते बुधैर्यत्र ।
उपमेयस्य च कविभिः सा प्रतिवस्तूपमा गदिता ॥

—काव्यालंकारसारसंग्रह, १/२२

इन्होंने प्रतिवस्तूपमा में अनेक वाक्यों की योजना पर बल दिया है।

प्राकरणिकेतरत्व स्थित्यैकश्चोपमेयतां लभते ।
उपमानत्वं चापर इत्युपमावाचिशून्यत्वम् ॥ —वही, १/२३

वामन इसे उपमा का भेद मानते हैं।

उपमेयस्योक्तौ समानवस्तुन्यासः प्रतिवस्तु ॥

—काव्यालंकारसूत्र, ४,३,२

रुद्रट ने उभयन्यास के नाम से प्रतिवस्तूपमा का वर्णन किया है।

सामान्यावप्यर्थौ स्फुटमुपमायाः स्वरूपतोऽपेतौ ।
निर्दिश्यते यस्मिन्नुभयन्यासः स विज्ञेयः ॥

—काव्यालंकार, ८/८५

मम्मट ने इस अलंकार की वास्तविक परिभाषा प्रस्तुत कर इसके स्वरूप को व्यवस्थित कर दिया। इनके अनुसार जब एक ही साधारण धर्म उपमेय तथा उपमान वाक्यों में भिन्न-भिन्न शब्दों द्वारा कथित हो तो प्रतिवस्तूपमा अलंकार होगा।

प्रतिवस्तूपमा तु सा ॥ १०/१०१
सामान्यस्य द्विरेकस्य यत्र वाक्यद्वये स्थितिः ॥ —काव्यप्रकाश,

परवर्ती आचार्यों में रुय्यक, जयदेव, विद्याधर, विद्यानाथ, विश्वनाथ तथा अप्पय दीक्षित ने मम्मट के ही मत का अनुगमन कर प्रतिवस्तूपमा का वर्णन किया है। इनके लक्षणों में उपमेय तथा उपमान वाक्यों एवं उनके साधारण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धर्मों को पृथक्-पृथक् शब्दों-द्वारा कथन करने को प्रतिवस्तूपमा कहा गया है और इसकी गम्यौपम्यता तथा वाक्यद्वय की स्थिति पर विचार किया गया है।

वाक्यार्थगतत्वेन सामान्यस्य वाक्यद्वये पृथङ् निर्देशे प्रतिवस्तूपमा ॥

—अलंकारसर्वस्व, पृ० ९४

वाक्ययोरर्थसामान्ये प्रतिवस्तूपमा मता ॥ —चंद्रालोक, ५/५५

यत्र सामान्यनिर्देशः पृथग्वाक्य द्वये यदि ।
गम्यौपम्याश्रिता सा स्यात् प्रतिवस्तूपमा मता ॥

—प्रतापरुद्रीय, पृ० ३१०

प्रतिवस्तूपमा सा स्याद्वाक्ययोर्गम्यसाम्ययोः ।
एकोऽपि धर्मः सामान्यो यत्र निर्दिश्यते पृथक् ॥

—साहित्यदर्पण, १०/४९

वाक्ययोरेकसामान्ये प्रतिवस्तूपमा मता ॥ ५१

यत्रोपमानोपमेयपरवाक्ययोरेकः समानधर्मः पृथङ् निर्दिश्यते सा प्रतिवस्तूपमा ॥ —कुवलयानंद

विश्वनाथ ने इसके तीन भेदों का वर्णन किया है—साधर्म्य, वैधर्म्य तथा मालारूप।

पंडितराज के अनुसार "वस्तु प्रतिवस्तु भावापन्न साधारण धर्म से युक्त दो वाक्यों की अर्थप्राप्त उपमा को प्रतिवस्तूपमा अलंकार कहते हैं।"

वस्तुप्रतिवस्तु भावापन्नसाधारणधर्मकवाक्यार्थयोरार्थमौपम्यं प्रतिवस्तूपमा ॥

—रसगंगाधर, पृ० ४५०

विश्वेश्वर का लक्षण मम्मट से प्रभावित है।

सादृश्य पर्यवसिते यस्मिन्वाक्यद्वये धर्मः ।
एकोऽपि द्विरूपात्तस्तां प्रतिवस्तूपमामाहुः ॥

—अलंकारकौस्तुभ, पृ० २८५

रीतिकालीन आचार्यों ने मम्मट तथा अप्पय दीक्षित को आधार बनाकर प्रतिवस्तूपमा का वर्णन किया है। चिंतामणि तथा कुलपति ने 'काव्यप्रकाश' के लक्षण का भावानुवाद किया तो जसवंत सिंह, मतिराम और पद्माकर ने 'कुवलयानंद' की परिभाषा को आधार बनाकर प्रतिवस्तूपमा का निरूपण किया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सदृस धर्म द्युतक जो शब्द भेद सो होइ।
कथित एक द्वै वाक में प्रतिवस्तूपमे सोइ॥

—कविकुलकल्पतरु, ३/१८६

समता सूचक पद जहाँ, रहै एक द्वै भाँति।
सो है प्रतिवस्तूपमा, पद समूह की कांति॥

—रसरहस्य, ८/२

प्रतिवस्तूपम सो समुझ दोऊ वाक्य समान॥

—भाषाभूषण, ८४

पदसमूह जुगधर्म जहँ भिन्न पदनि सौं एक।
परगट प्रतिवस्तूपमा जहँ कबि कहत अनेक॥

—ललितललाम, १४२

उपमा 'रु उपमेय पर वाक्य दोय को जत्र।
धर्म इकै पद जुदन महँ प्रतिवस्तुपमा तत्र॥

—पद्माभरण, ८०

भेद—साधर्म्य, वैधर्म्य तथा मालारूप इसके तीन भेद माने गए हैं।

१. साधर्म्य—

क. धन्यासि वैदर्भि गुणैरुदारैर्यथा समाकृष्यत नैषधोऽपि।
इतिस्तुतिः का खलु चंद्रिकाया यदब्धिमप्युत्तरली करोति॥ —नैषध

"हे दमयंती, तुम धन्य हो, तुमने अपने उदार गुणों के द्वारा राजा नल को भी आकृष्ट कर लिया है। चंद्रिका की इससे अधिक क्या प्रशंसा की जा सकती है कि वह समुद्र को भी चंचल कर देती है?" यहाँ दमयंती तथा चंद्रिका, दो पदार्थों के साधारण धर्म 'आकर्षण' तथा 'उत्तरलीकरण' हैं, जिन्हें पृथक्-पृथक् शब्दों द्वारा कहा गया है।

ख. राजत मुख मृदु बानि सों, लसत सुधा सों चंद।
निर्झर सों नीको गिरि, मद सो भलो गयंद॥

'मुख मृदु बानि सों राजत' उपमेय वाक्य है और 'लसत सुधा सो चंद' उपमान वाक्य। दोनों का साधारण धर्म राजत एवं लसत है, जिन्हें पृथक्-पृथक् शब्दों द्वारा कहा गया है।

२. वैधर्म्य—

क. चकोर्य एव चतुराश्चंद्रिकाचामकर्मणि।
विनावंतीर्न निपुणाः सुदृशो रतनर्मणि॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चाँदनी को पीने में चकोरी ही चतुर होती है। अवंती बिना सुरत नर्म में कहीं की भा रमणियाँ निपुण नहीं होतीं। 'चतुरता' और 'निपुणता' धर्मों को पृथक्-पृथक् शब्दों द्वारा कहा गया है। पूर्वार्द्ध का वाक्य साधर्म्य है एवं उत्तरार्द्ध का वैधर्म्य।

ख. विज्ञ जनन को अमितश्रम, जानत हैं नर विज्ञ।
प्रसव वेदना दुसह सों, बांझ न होंहि अभिज्ञ॥

प्रथम वाक्य में जानत (धर्म) विधि-रूप है एवं द्वितीय में अभिज्ञ (धर्म) निषेध-रूप। विधि तथा निषेध में यहाँ एक ही साधारण धर्म को पृथक्-पृथक् शब्दों द्वारा कहा गया है।

३. माला—

क. यदि दहत्यनलोऽत्र किमद्भुतं यदि च गौरवमद्रिषु किंतवः।
लवणमंबु सदैव महोदधेः प्रकृतिरेव सतामविषादिता॥

"यदि आग जलाती है तो इसमें आश्चर्य क्या? यदि पहाड़ों में गुरुता है तो इससे क्या? समुद्र का जल सदा ही खारा होता है। सज्जनों का खिन्न न होना उनका स्वभाव है।" यहाँ 'प्रकृतिरेव सतामविषादिता' उपमेय वाक्य है और शेष तीन उपमान वाक्य हैं। आश्चर्य न होना साधारण धर्म को चार वाक्यों में पृथक्-पृथक् शब्दों द्वारा कहा गया है।

ख. बहत जु सर्पन को मलय, धारत काजर दीप।
चंदहु भजत कलंक को, राखहिं लखन महीप॥

यहाँ रखना साधारण धर्म को चार शब्दों द्वारा प्रकट किया गया है— बहत, धारत, भजत तथा राखहिं।

उपमा और प्रतिस्तूपमा—उपमा में साधारण धर्म का एक बार कथन किया जाता है; पर प्रतिवस्तूपमा में दो बार। उपमा में पृथक्-पृथक् शब्दों द्वारा साधारण धर्म का कथन नहीं होता; पर प्रतिवस्तूपमा में होता है। उपमा में एक वाक्य होता है; पर प्रतिवस्तूपमा में दो वाक्य होते हैं। उपमा में वाचक पदों द्वारा सादृश्य का कथन होता है; पर प्रतिवस्तूपमा में इवादि पदों का प्रयोग नहीं होता, इसमें उपमा गम्य होती है।

प्रतिवस्तूपमा और निदर्शना—प्रतिवस्तूपमा में वस्तुप्रतिवस्तु भाव के द्वारा साम्य की प्रतीति होती है तो निदर्शना में बिंबप्रतिबिंब भाव के द्वारा। निदर्शना

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में साधारण धर्म का कथन नहीं किया जाता, श्रोता के द्वारा उसका आक्षेप होता है; पर प्रतिवस्तूपमा में साधारण धर्मों का निर्देश पृथक्-पृथक् शब्दों द्वारा होता है।

प्रतिषेध—एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। प्रसिद्ध निषेध की पुनः चर्चा करने या उसके वर्णन को प्रतिषेध अलंकार कहते हैं। प्रतिषेध का अर्थ निषेध है। इसमें जिस वस्तु का निषेध प्रसिद्ध होता है, उसका पुनः निषेध किया जाता है।

इस अलंकार के पुरस्कर्त्ता अप्पय दीक्षित हैं; पर इनके पूर्व भरत-कृत 'नाट्यशास्त्र', जयदेव-कृत 'चंद्रालोक' तथा यशस्क-कृत 'अलंकारोदाहरण' में इसका उल्लेख हुआ है।

भरत ने काव्यलक्षणों के रूप में इसका वर्णन किया है। इनके अनुसार किसी के द्वारा विपरीत कार्य करने पर उसका निवारण करने के वर्णन में प्रतिषेध होता है।

कार्येषु विपरीतेषु यदिकिंचित्प्रवर्तते।
निवार्यते च कार्यज्ञैः प्रतिषेधः प्रकीर्तितः॥

—नाट्यशास्त्र, १६/२२

जयदेव ने प्रसिद्ध कारणों का निरादर कर अप्रसिद्ध कारणों द्वारा कार्यसिद्धि को प्रतिषेध कहा है।

प्रतिषेधः प्रसिद्धानां कारणानामनादरः॥

—चंद्रालोक, ३५

दीक्षित ने बताया कि जहाँ प्रसिद्ध निषेध का अनुकीर्तन या वर्णन किया जाय तो वहाँ प्रतिषेध अलंकार होगा।

प्रतिषेधप्रसिद्धस्यनिषेधस्यानुकीर्त्तनम्॥

—कुवलयानंद, १६५

दीक्षित ने पूर्ववर्ती आचार्यों से भिन्न लक्षण प्रस्तुत किया है। रीतिकालीन आचार्यों—जसवंत सिंह, मतिराम, भूषण तथा पद्माकर—ने 'कुवलयानंद' के आधार पर प्रतिषेध का वर्णन किया है।

सो प्रतिषेध प्रसिद्ध जो अर्थ निषेध्यो जाय॥

—भाषाभूषण, १९२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जहाँ प्रसिद्ध निषेध को अनुकीरतन प्रकास ।
तहाँ कहत प्रतिषेध हैं कविजन बुद्धि विलास ।।
—ललितललाम, ३८७

जहाँ प्रसिद्ध निषेध कहि औरौ कहत निषेध ।
भूषन ग्रंथनि के मतैं ताहि कहत प्रतिषेध ।।
—शिवराजभूषण, ३२०

जो प्रसिद्ध प्रतिषेध है ताको बहुरि निषेध ।
अभिप्राय हित ठानिबो, यहै समुझि प्रतिषेध ।।
—पद्माभरण, २७४

क. न द्यूतमेतत्कितव ! क्रीडनं निशितैः शरैः ।।

"हे धूर्त्त ! यहाँ जुआ नहीं, यह तीखे बाणों का खेल है ।" यहाँ जुआ खेलनेवाले के प्रति कथित वाक्य में प्रसिद्ध कथन का निषेध कर उसकी हँसी उड़ाई गई है ।

ख. छुटी न गाँठि जु राम सों, तियन कह्यो तेहि ठाँहि ।
सिय कंकन को छोरिबो धनुष तोरिबो नाँहि ।।

यहाँ धनुष तोड़ने का निषेध कर स्त्रियाँ राम के प्रति कहती हैं कि "आप केवल युद्धकला में प्रवीण और सांसारिकता से कोसों दूर हैं ।"

प्रतीप—लोकन्यायमूलक अलंकार। यदि प्रसिद्ध उपमान का तिरस्कार किया जाय या उसे उपमेय रूप में कल्पित किया जाय तो प्रतीप अलंकार होगा ।

'प्रतीप' का अर्थ है विपरीत, विलोम, उलटा या तिरस्कार । इस अलंकार में उपमेय एवं उपमान के स्वाभाविक संबंध को उलट दिया जाता है, इसलिए इसे प्रतीप कहते हैं । उपमान की उपमेय रूप में कल्पना ही विपरीत या उलटा भाव है। इसमें उपमान का तिरस्कार करने के लिए ही उसे उपमेय का रूप दिया जाता है। 'उपमान को उपमेय बनाकर और उसका अतिशयत्व प्रकट करते हुए भी इस अलंकार का मूल कार्य उपमेय का ही उत्कर्ष प्रकट करना होता है, उपमान बने हुए उपमेय का नहीं।' इसमें उपमेय के उत्कर्ष के साथ ही उपमान का अपकर्ष भी निहित रहता है। उपमान का अपकर्षबोधन ही प्रतीप का मूल उद्देश्य है—

उपमानापकर्षबोधानुकूलो व्यापारः प्रतीपम् । काव्यप्रकाशविस्तारिका ।
—परमानंद चक्रवर्त्ती, बालबोधिनी, पृ० ७३५ से उद्धृत

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रतीप अलंकार के उद्भावक आचार्य रुद्रट हैं। इनके अनुसार उपमेय का आधिक्य या अतिशयता सूचित करने के लिए, उपमान के साथ समता दिखाकर, उसकी प्रशंसा या निंदा करने को प्रतीप अलंकार कहते हैं।

यत्रानुकंप्यते समुपमाने निंद्यते वापि।
उपमेयमतिस्तोतुं दुरवस्थमिति प्रतीपं स्यात्॥

—काव्यालंकार, ८/७६

रुद्रट के पूर्व आचार्य दंडी ने 'विपर्यासोपमा' नामक उपमा के एक प्रकार के उदाहरण में नायिका के मुख के सदृश विकसित कमल को कहा है।

इस उदाहरण में प्रतीप का स्रोत है।

त्वदाननमिवोन्निद्रमरविंदमभूदिति।
सा प्रसिद्धिविपर्यासाद्विपर्यासोपमेष्यते॥

—काव्यादर्श, २/१७

भोज ने भी उपमा के एक प्रकार के रूप में विपर्यासोपमा का कथन किया है और अपने उदाहरण में इंदीवर या कमल को रमणी के नेत्र के समान कहा है।

विपर्यासोपमा तासु प्रथमा चोभयोपमा।
अथोत्पाद्योपमा नाम तुरीयानन्वयोपमा॥

—सरस्वतीकंठाभरण, ४/२३

यत्त्वन्नेत्रसमानकांति सलिले मग्नं तदिंदीवरम्॥

—वही, पृ० ४१२

आचार्य मम्मट ने प्रतीप की वैज्ञानिक परिभाषा प्रस्तुत की। इनके लक्षण में दो बातों पर बल दिया गया है—उपमान का आक्षेप (तिरस्कार) तथा उपमान के उपमेय-रूप की कल्पना। इन्होंने बताया कि जब उपमान का तिरस्कार या निंदन हो या उसकी हीनता प्रदर्शित करने के लिए उपमेय-रूप में उसकी (उपमान की) कल्पना की जाय तो प्रतीप अलंकार होगा।

आक्षेप उपमानस्य प्रतीपमुपमेयता।
तस्यैव यदि वा कल्प्या तिरस्कारनिबंधनम्॥

—काव्यप्रकाश, १०/१३३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परवर्ती आचार्यों में रुय्यक, शोभाकर, जयदेव, विद्याधर, विद्यानाथ तथा विश्वनाथ पर मम्मट का ऋण है। रुय्यक ने कहा कि उपमान का तिरस्कार कर उपमेय-रूप में उसके वर्णन को प्रतीप कहते हैं।

उपमानस्याक्षेप उपमेयतःकल्पनं वा प्रतीपम्। उपमेयस्यैवोपमानभारोद्वहन सामर्थ्याद्दुपमानस्य कैमर्थक्येनाक्षेप आलोचनं क्रियते, तदेकं प्रतीपम्। उपमान प्रतिकूलत्वादुपमेयस्य प्रतीपमिति व्यपदेशः। यद्युपमानतया प्रसिद्धस्योपमानांतर-प्रतिष्ठापयिषयानादरणार्थमुपमेयत्वं कल्प्यते, तत्पूर्वोक्तगत्या द्वितीयं प्रतीपम्॥

—अलंकारसर्वस्व, पृ० २०७

जयदेव उपमान में उपमेय से हीनता-प्रतिपादन को प्रतीप कहते हैं।

प्रतीपमुपमानस्य हीनत्वमुपमेयतः॥ —चंद्रालोक, ५/१००

शोभाकर ने अधिकगुणवाले उपमान का उपमेय रूप में वर्णन तथा उपमेय द्वारा उपपान के तिरस्कार को प्रतीप माना।

अधिक गुणस्यानादरः प्रतीपम्। अधिकगुणस्योपमानस्यान्यस्य वा न्यक्कारेण तुल्यत्वापादनेन वानादरतिरस्कारः प्रतीपम्। न चाधिकगुणत्वाख्यकारणसद्-भावेऽपि कार्यस्यादरस्यानुत्पत्यादिनाविशेषोक्त्यादिः।

—अलंकाररत्नाकर॥२४॥

विश्वनाथ ने प्रसिद्ध उपमान को उपमेय कल्पित कर उसके निष्फलत्व के वर्णन को प्रतीप कहा। यहाँ निष्फलता का अभिप्राय उपमान की व्यर्थता एवं अनादर से है।

प्रसिद्धस्योपमानस्योपमेयत्वप्रकल्पनम्।
निष्फलत्वाभिधानं वा प्रतीपमिति कथ्यते॥

—साहित्यदर्पण, १०/६०

अप्पय दीक्षित ने विश्वनाथ की शब्दावली ग्रहण कर उनके विचार को व्यक्त किया। वे प्रसिद्ध उपमान को उपमेय का रूप देने को प्रतीप मानते हैं।

प्रतीपमुपमानस्योपमेयत्वप्रकल्पनम्॥
प्रसिद्धोपमानोपमेयभावः प्रातिलोम्यात्प्रतीपम्॥

—कुवलयानंद, १२

पंडितराज प्रसिद्ध उपमान की उपमेय-रूप में तथा उपमेय की उपमान-रूप में कल्पना को प्रतीप मानते हैं। इन्होंने इसे स्वतंत्र अलंकार का रूप देते

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हुए भी इसके प्रथम तीन प्रकारों का अंतर्भाव आक्षेप में किया है। इनका कहना है कि प्रतीप में उपमा से कोई विलक्षणता नहीं होती।

प्रसिद्धोपमानोपमेयभावः प्रातिलोम्यात्प्रतीपम् ।।

—रसगंगाधर, पृ० ६६७

विश्वेश्वर पंडित का लक्षण मम्मट से अनुप्राणित है—

उपमानानर्थक्यं प्रतीपमस्योपमेयत्वम्। उपमानकार्यस्योपमैव निर्वाहाद्यत्रो- पमानवैयर्थ्योक्तिः उपमानस्योपमेयकल्पनं चेति द्विविधं प्रतीपम्।

—अलंकारकौस्तुभ, पृ० ३९०-९१

रीतिकालीन आचार्यों का प्रतीप-निरूपण 'काव्यप्रकाश', 'चंद्रालोक', 'साहित्यदर्पण' तथा 'कुवलयानंद' पर आश्रित है। चिंतामणि और कुलपति का आधार 'काव्यप्रकाश' है।

यह रचि कै क्यों ऐ रचे ऐसी कहि कुछ बात।
जु वाक्षेप उपमान कौ सो प्रतीप कहि जात।।
उपमानो उपमेय यह करै अनादर काज।
यहाँ प्रतीपै कहत हैं, पंडित सब कविराज।।

—कविकुलकल्पतरु, ३/२३९

जहँ लघुता उपमान की, सो प्रतीप द्वै भेव।
प्रथम निरादर कीजिए पुनि कीजै उपमेय।।

—रसरहस्य, ८/२९

महाराज जसवंत सिंह, मतिराम तथा पद्माकर ने 'कुवलयानंद' से सहायता ली है।

सो प्रतीप उपमेय कों कीजै जब उपमान।

—भाषाभूषण, ४७

जहँ प्रसिद्ध उपमान कौ पलटि कहत उपमेय।
बरनत तहाँ प्रपीप हैं कबिजन जगत अजेय।।

—ललितललाम, ५७

सो प्रतीप उपमान कों जहँ कीजै उपमेय।।

—पद्माभरण, २८

भेद—रुद्रट से लेकर पंडितराज जगन्नाथ तक प्रतीप के भेदों का विस्तार हुआ और उनकी संख्या दो से पांच तक पहुँच गई। रुद्रट ने दो भेदों का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उल्लेख कर दो उदाहरण दिए हैं और मम्मट तथा रुय्यक ने चार प्रकार माने। विश्वनाथ ने तीन भेदों का कथन किया और शोभाकर ने पाँच का। अप्पय दीक्षित ने मम्मट को आधार मानकर पाँच भेदों का निरूपण किया। पंडितराज ने भी प्रतीप के पाँच भेद किए। हिंदी के आचार्यों को दीक्षित-कृत भेद ही मान्य हुए और पाँच भेदों को स्वीकृति प्राप्त हुई। पंडितराज के पाँच भेद दीक्षित से भिन्न हैं—

क. प्रथम प्रतीप में प्रसिद्ध उपमेय का विपरीतता से वर्णन किया जाता है।

ख. द्वितीय प्रतीप में किसी गुण के कारण उपमान की अद्वितीयता के उत्कर्ष को मिटाने के लिए किसी दूसरे के प्रदर्शन द्वारा उठाया जानेवाला सादृश्य कथित रहता है।

ग. उपमेय की अद्वितीयता के उत्कर्ष का परिहार करने के लिए अन्य के प्रदर्शन द्वारा उठाया जानेवाला सादृश्य।

घ. उपमान की किमर्थता।

ङ. सादृश्य का विघटन।

दीक्षित के भेदों का विवरण इस प्रकार है—

प्रथम प्रतीप—जब उपमान को निकृष्ट सिद्ध करने के लिए उसे उपमेय का रूप दिया जाय।

सो प्रतीप उपमान कों जहँ कीजै उपमेय ॥

—पद्माभरण, २८

इसमें प्रसिद्ध उपमान को उपमेय कल्पित कर उपमान के निरादर या तिरस्कार का वर्णन होता है।

क. किं जल्पसि मुग्धतया हंत ममांगं सुवर्णवर्णमिति।
यद्यपि पतति हुताशे तदा हताशे तवांगवर्णं स्यात् ॥

"तुम भोलेपन के कारण ही यह कह रही हो कि ओह ! मेरा अंग सोने के रंग का है। हे निराशे ! यदि स्वर्ण अग्नि में गिरे तभी तुम्हारे अंग के रंग का हो सकता है।" यहाँ स्वर्ण के आधिक्य का निरादर कर (उपमान का) अंग की अधिकता (उपमेय की) बतलाई गई है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ख. मैथिली आनन सों अरविंद, कलाधर आरसि जानि परैं हैं।

सीता के मुख के समान कमल, चंद्रमा एवं आईने के कथन में प्रथम प्रतीप है।

द्वितीय प्रतीप—प्रसिद्ध उपमान को उपमेय कल्पित कर वास्तविक उपमेय का तिरस्कार करने में द्वितीय प्रतीप होता है। उपमान द्वारा उपमेय के अनादर में भी उपमान के ही तिरस्कार का भाव रहता है।

अन्योपमेयलाभेन वर्ण्यस्यानादरश्च ॥

—कुवलयानंद, १३

अन आदर उपमान तें जु उपमेय को होत॥

—पद्माभरण, २६

क. गर्वमसंवाह्यमिमं लोचनयुगलेन किं वहसि भद्रे।
संतीदृशानि दिशि सरःसु ननु नीलनलिनानि ॥

"हे सुंदरि ! तुम अपनी आँखों से इस प्रकार का असह्य गर्व क्यों वहन कर रही हो, तुम्हें यह नहीं समझना चाहिए कि तुम्हारे नेत्रों के समान संसार में अन्य वस्तुएँ हैं ही नहीं। देखो, तालाबों में उसी प्रकार के अनेक नील कमल खिले हुए हैं।"

यहाँ नेत्र (उपमेय) के अनादर में भी नीलकमलों (उपमान) के ही तिरस्कार का भाव है।

ख. का घूँघट मुख मूँदै अबला नारि।
चंद सरग पै सोहत, यहि अनुहारि॥

यहाँ कवि नायिका के मुख के सदृश चंद्रमा को कहकर मुख का निरादर कराता है।

तृतीय प्रतीप—जब उपमेय को उपमान बनाकर उपमान का तिरस्कार किया जाय तो तृतीय प्रतीप होता है।

वर्ण्योपमेयलाभेन तथान्यस्याप्यनादरः ॥—कुवलयानंद, १४

उपमानहु उपमेय तें आदर जबै लहै न॥ —पद्माभरण, ३०

क. अहमेव गुरुः सुदारुणानामिति हालाहल ! तात ! मा स्म दृप्यः।
ननु संति भवादृशानि भूयो भुवनेस्मिन्वचनानि दुर्जनानाम् ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"हे विष ! तुम्हें इस बात का गर्व नहीं करना चाहिए कि संसार के सभी दारुण या कठोर पदार्थों में तुम बढ़कर हो। हे भाई ! इस संसार में तुम्हारे ही समान अत्यंत दारुण दुष्टों के वचन हैं।"

विष (अवर्ण्य) को दुर्जनों के वचन द्वारा तिरस्कृत करने में तृतीय प्रतीप है।

ख. गरब करत कत चाँदनी, हीरक छीर समान।
फैली इती समाजगत, कीरति सिवा खुमान॥

यहाँ शिवाजी के यश के समक्ष चाँदनी का तिरस्कार किया गया है।

चतुर्थ प्रतीप—जब उपमान उपमेय की उपमा के अयोग्य हो जाय तो वहाँ चतुर्थ प्रतीप होता है।

वर्ण्येनान्यस्योपमाया अनिष्पत्तिवचश्च ॥

—कुवलयानंद, १५

जु उपमान उपमेय की समता जोग न होत।

—पद्माभरण, ३१

क. अयि एहि तावत् सुंदरि ! कर्णं दत्त्वा शृणुष्व वचनीयम्।
तव मुखेन कृशोदरि ! चंद्र उपमीयते जनेन॥

"हे सुंदरी ! इधर कान लगाकर इस निंदा की बात को सुनो तो। हे कृशोदरि ! देखो तुम्हारे मुख से लोग चंद्रमा की उपमा देते हैं।" यहाँ मुख द्वारा चंद्रमा का तिरस्कार कर उसकी अयोग्यता सिद्ध की गई है।

ख. बहुरि बिचार कीन्ह मन माँहीं।
सीय बदन सम हिमकर नाहीं॥ —रामायण

यहाँ 'सीता के मुख के समान चंद्रमा नहीं है' ऐसा कहकर उसकी अयोग्यता सिद्ध की गई है।

पंचम प्रतीप—जब उपमेय के समक्ष उपमान व्यर्थ सिद्ध हो जाय तो वहाँ पंचम प्रतीप होता है। इसमें उपमान का कैमर्थ्य (व्यर्थता) सिद्ध किया जाता है।

प्रतीपमुपमानस्य कैमर्थ्यमपि मन्यते॥

—कुवलयानंद, १६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लखि उपमेयहि को जहाँ, वृथा होत उपमान ।।

—पद्माभरण, ३२

क. तदोजसस्तद्यशसः स्थिताविमौ वृथेति चित्ते कुरुते यदा यदा।
तनोतिभानोः परिवेष कैतवात्तदा विधिः कुंडलनां विधोरपि ।।

—नैषध, १/४४

राजा नल के प्रताप एवं यश के होने पर सूर्य तथा चंद्रमा का अस्तित्व व्यर्थ है। जब कभी ब्रह्मा के मन में इस प्रकार का विचार आता है, तब वे सूर्य और चंद्रमा को व्यर्थ बतानेवाली रेखा को परिधि के बहाने खींच देते हैं।

यहाँ नल के प्रताप तथा यश के समक्ष सूर्य और चंद्रमा को व्यर्थ सिद्ध करना पंचम प्रतीप है।

ख. अमिय झरत चहुँ ओर को, नयन ताप हरि लेत।
राधा जू के बदन अस, चंद उदित केहि हेत।।

नायिका की आभा के समक्ष कुमुद, कौमुदी (चाँदनी) और आरसी को व्यर्थ सिद्ध करने में पंचम प्रतीप हुआ।

प्रतीप और व्यतिरेक—दोनों में ही उपमेय के उत्कर्ष एवं उपमान के अपकर्ष का वर्णन होता है। प्रतीप में उपमेय तथा उपमान के क्रम को उलट दिया जाता है; पर व्यतिरेक में ऐसा नहीं होता। प्रतीप में अनादर वाच्य होता है और व्यतिरेक में व्यंग्य। दोनों में ही उपमान का अनादर रहता है। व्यतिरेक का मूलाधार है उपमेय का उत्कर्ष; पर प्रतीप का प्रधान लक्ष्य उपमान की व्यर्थता सिद्ध करना है। प्रतीप में सादृश्य का स्थापन होता है और व्यतिरेक में उसका निषेध किया जाता है। व्यतिरेक में उपमेय की प्रधानता दिखाई जाती है; किंतु प्रतीप में उपमान का प्रत्याख्यान किया जाता है। प्रतीप साधर्म्यमूलक अलंकार है तो व्यतिरेक वैधर्म्यमूलक।

प्रतीप और उपमान—उपमा का चमत्कार दो वस्तुओं के सादृश्य-प्रतिपादन में निहित है तो प्रतीप का सौंदर्य उपमान के अनादर में पर्यवसित होता है। उपमा में सादृश्य वाच्य होता है और प्रतीप में व्यंग्य। प्रतीप उपमा का विलोम या उलटा है। इसमें उपमा का उपमानोपमेय भाव उलट जाता है।

प्रतीयमान—व्यंग्यार्थ का नाम प्रतीयमान अर्थ है। ध्वनिकार ने ध्वनि के लिए भी प्रतीयमान शब्द का प्रयोग किया है। —ध्वन्यालोक, १/४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रतीयमान अर्थ वाच्यार्थ के द्वारा कभी वस्तुध्वनि के रूप में, कभी अलंकारध्वनि के रूप में और कभी रसध्वनि के रूप में प्रकट होकर नाना प्रकार का स्वरूप ग्रहण करता है; पर वह सभी रूपों में वाच्यार्थ से सर्वथा भिन्न होता है। [दे० ध्वनिसिद्धांत]

प्रत्यनीक—लोकन्यायमूलक अलंकार। अपने बलवान् शत्रु का तिरस्कार करने में अशक्य किसी व्यक्ति के द्वारा यदि उसके संबंधी का तिरस्कार किया जाय तो वहाँ प्रत्यनीक अलंकार होता है। 'प्रत्यनीक' (प्रति+अनीक) का अर्थ है सेना के प्रति। [प्रति—प्रतिनिधि तथा अनीक—सेना] इसका शाब्दिक अर्थ हुआ सेना का प्रतिनिधि। इसमें लक्षणा से अनीक का अर्थ शत्रु लिया जाता है। इस अलंकार में इस आशय का वर्णन किया जाता है कि कोई अपने बलवान् शत्रु पर विजय प्राप्त करने में असमर्थ होने के कारण उसके संबंधी या पक्षधर का तिरस्कार करने में सफल हो। प्रत्यनीक में वास्तविक तिरस्कार का वर्णन न होकर कविकल्पनाप्रसूत तिरस्कार या चमत्कारपूर्ण तिरस्कार का वर्णन होना चाहिए।

अनीकं सैन्यं तस्य प्रतिनिधिप्रत्यनीकम्। तत्सादृश्यादलंकारोऽपि प्रत्यनीकमितिव्यपदेशमलभत्। यथा अनीकमभिभवितुमनीश्वरेणकेनापि तत्प्रतिनिधिभूतमन्यद्व्यामोहादभिभूयते तथात्र बलवति परिपंथिनि तदीयमल्पबलं कोऽपि परिमंथयतीत्यर्थः। अत्र प्रत्यर्थिप्रकर्षे प्रयोजनम्। —एकावली, पृ० ३१६

प्रत्यनीकमित्यत्र प्रतिशब्दः प्रतिनिध्यर्थकः 'प्रतिनिधौ वीप्सालक्षणादौ प्रयोगतः" इत्यमरात् "प्रतिनिधि प्रतिदानयोः' १/४/९२। इतिपाणिनिस्मृतेश्च अनीकं सैन्यम्। "अनीकोऽस्त्री रणे सैन्ये" इति मेदिनी। तथा च प्रत्यनीक शब्देन सैन्यप्रतिनिधिरुच्यते तस्माच्च प्रकृतार्थे लक्षणया प्रयोग इत्यर्थः। एवं च प्रत्यनीकमिति लाक्षणिकमिदमलंकारनामेति फलितम्॥

—बालबोधिनी, पृ० ७२५

प्रत्यनीक अलंकार का सर्वप्रथम विवेचन आचार्य रुद्रट ने किया है। तत्पश्चात् मम्मट, रुय्यक, जयदेव, विद्याधर, विद्यानाथ, विश्वनाथ, अप्पय्यदीक्षित, पंडितराज जगन्नाथ तथा विश्वेश्वर पंडित ने इसका विवेचन किया। रुद्रट ने अपने लक्षण में बताया कि जब उपमेय की उत्तमता को व्यक्त करने की इच्छा से अर्थात् उसकी विजय के लिए उसके विरोधी उपमान की कल्पना की जाय, तो वहाँ प्रत्यनीक अलंकार होगा। इनके लक्षण में उपमेयोपमान भाव की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समावेश के कारण प्रत्यनीक अलंकार का वास्तविक स्वरूप स्फुट नहीं हो सका। वस्तुतः मम्मट की परिभाषा में ही इस अलंकार के वास्तविक स्वरूप की व्यंजना हुई है।

वक्तुमुपमेयमुत्तममुपमानं तज्जिगीषया यत्र।
तस्य विरोधीत्युक्त्वा कल्पयेत् प्रत्यनीकं यत् ॥

—काव्यालंकार, ८/९२

मम्मट के अनुसार प्रतिपक्षी का तिरस्कार करने में असमर्थ व्यक्ति जब उसकी (प्रतिपक्षी की) स्तुति के लिए उससे संबद्ध पदार्थं का तिरस्कार करे तो वहाँ प्रत्यनीक अलंकार होगा।

प्रतिपक्षमशक्तेन प्रतिकर्तुं तिरस्क्रिया।
या तदीयस्य तत्स्तुत्यै प्रत्यनीकं तदुच्यते ॥

—काव्यप्रकाश, १०/१२९

इन्होंने इसी क्रम में एक बात यह कही कि प्रतिपक्षी के संबंधी दो प्रकार के होते हैं—साक्षात्संबंध से एवं अन्य परपरासंबंध से। जिन परवर्ती आचार्यों ने मम्मट के मत का अनुमोदन किया है, वे हैं—रुय्यक, विद्याधर, विद्यानाथ, विश्वनाथ, पंडितराज तथा विश्वेश्वर।

जयदेव ने अपनी स्वतंत्र परिभाषा में बताया कि बलशाली शत्रु के संबंधी के प्रति पराजित शत्रु का पराक्रम-प्रदर्शन प्रत्यनीक है।

प्रत्यनीकं बलवतः शत्रोः पक्षे पराक्रमः ॥

—चंद्रालोक, ५/९९

रुय्यक ने मम्मट के ही मत का अनुसरण करते हुए कहा कि प्रतिपक्षी का तिरस्कार करने में असमर्थ व्यक्ति या पदार्थ यदि उसके संबंधी का तिरस्कार करे तो वहाँ प्रत्यनीक अलंकार होगा।

प्रतिपक्षतिरस्काराशक्तौ तदीयस्य तिरस्कार प्रत्यनीकम्। यत्र बलवतः प्रतिपक्षस्य दुर्बलेन प्रतिपक्षेण प्रतीकारः क्रियते, तत्प्रत्यनीकम्।·········यथा अनीकेऽभियोक्तव्ये तत्रासामर्थ्यात् तत्प्रतिनिधिभूतमन्यद् व्यामोहेनाभियुज्यते, तद्वदिह प्रतिपक्षे विजये दुर्बलतदीयतिरस्करणमित्यर्थः। प्रतिपक्षगतत्वेन बलवत्त्वख्यापनं प्रयोजनम् ॥

—अलंकारसर्वस्व, पृ० २०६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बलिनं जेतुमनीशः कोऽपि तदीयं कृशं तिरस्कुरुते ।
अन्यं कमपि जघन्यो यत्राहुः प्रत्यनीकमिदम् ॥

—एकावली, ८/६१

बलिनः प्रतिपक्षस्य प्रतीकारे सुदुष्करे ।
यस्तदीय तिरस्कारः प्रत्यनीकं तदुच्यते ॥

—प्रतापरुद्रीय, पृ० ३३३

बली शत्रु का प्रतीकार दुष्कर होने पर उसके संबंधी का प्रतीकार करने में प्रत्यनीक होगा।

प्रत्यनीकमशक्तेन प्रतीकारे रिपोर्यदि ।
तदीयस्य तिरस्कारस्तस्यैवोत्कर्षसाधकः ॥

—साहित्यदर्पण, १०/८६

शत्रु का तिरस्कार करने में अशक्त से यदि उसके किसी संबंधी का तिरस्कार किया जाय, जिससे शत्रु का उत्कर्ष दिखाई पड़े तो प्रत्यनीक है।

दीक्षित ने जयदेव का ही लक्षण ले लिया है।

प्रत्यनीकं बलवतः शत्रोः पक्षे पराक्रमः ॥

—कुवलयानंद, ११९

दीक्षित ने प्रत्यनीक के दूसरे प्रकार में अपनी स्वतंत्र प्रवृत्ति प्रदर्शित की है। इन्होंने इस संबंध में नया मत यह दिया कि प्रबल प्रतिपक्ष का अहित करने में असमर्थ व्यक्ति जब अपने शत्रु को स्वयं पीड़ित करे तो वहाँ साक्षात् शत्रु के प्रति पराक्रम-प्रदर्शन में प्रत्यनीक होगा।

एवं बलवति प्रतिपक्षे प्रतिकर्तुमशक्तस्य तदीय बाधनं प्रत्यनीकमिति स्थिते साक्षात्प्रतिपक्षे पराक्रमः प्रत्यनीकमिति कैमुतिकन्यायेन फलति ।

—कुवलयानंद, ११९

पंडितराज के अनुसार प्रतिपक्ष के संबंधी के तिरस्कार को प्रत्यनीक कहते हैं। इन्होंने इसकी नवीन व्युत्पत्ति प्रकट करते हुए कहा कि अनीक के सदृश को प्रत्यनीक कहा जाता है। लोक में प्रतिपक्षी को तिरस्कृत करने के लिए सेना की सहायता ली जाती है; परंतु प्रतिपक्षी का तिरस्कार करने की शक्ति के अभाव में व्यक्ति उसके संबंधी का तिरस्कार करता है और इस तिरस्कार को सेना की भाँति प्रयुक्त किया जाता है या काम में लाया जाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रतिपक्षसंबंधिनस्तिरस्कृतिः प्रत्यनीकम् । अनीकेन सदृशं प्रत्यनीकम् । सादृश्यस्य यथार्थत्वे नैव संग्रहे पुनः सादृश्यग्रहणाद्गुणीभूतेऽपि सादृश्येऽव्ययीभावः । लोकेप्रतिपक्षस्य तिरस्कारायानीकं प्रयुज्यते । तदशक्तौ प्रतिपक्ष संबंधिनः कस्यचित्तिरस्कारः क्रियते । सा चानीकसदृशतया प्रयुज्यमानत्वात्प्रत्यनीकमुच्यते । अत्र च प्रतिपक्षगतं बलवत्त्वम्, आत्मगतं दुर्बलत्वं च गम्यते । संबंधी च तदुपजीव्योपजीवकमित्रादिभेदादनेकविधः । —रसगंगाधर, पृ० ६६६

विश्वेश्वर पंडित के लक्षण पर मम्मट का प्रभाव है ।

आत्मापकारजनकप्रत्यपकारासमर्थेन ।
तत्संबंध्यपकारे प्राज्ञतमै प्रत्यनीकमित्युक्तम् ॥

यत्र साक्षात्स्वविपक्षं विजेतुमशक्तेन विपक्षसंबंधिनोऽपकारः कथ्यते तत्प्रत्यनीकम् । संबंधित्वं च द्वेधा । साक्षातपरंपरया च ॥

—अलंकार कौस्तुभ, पृ० ३८०

रीतिकालीन आचार्यों ने 'काव्यप्रकाश' तथा 'चंद्रालोक' को उपजीव्य बनाकर प्रत्यनीक अलंकार का विवेचन किया है । चिंतामणि एवं कुलपति ने 'काव्यप्रकाश' के लक्षण का अनुवाद किया तथा मतिराम और पद्माकर ने 'चंद्रालोक' को आधार बनाया ।

जाइ लियो नहि बैर जहं पर सौं प्रबल विचारि ।
एकै को अपकार जो सो प्रत्यनीक निरधारि ॥

—कविकुलकल्पतरु, ३/३०१

कछू न करि सक शत्रु को, वाके को सुख लेइ ।
होइ बड़ाई बरन ली, प्रत्यनीक पद लेइ ॥

—रसरहस्य, ८/१९५

प्रबल सत्रु के पक्ष पर जहं विक्रम उल्लास ।
प्रत्यनीक तासों कहत कबिजन बुद्धि-विलास ॥

—ललितललाम, २८५

प्रत्यनीक दुख देत जहं सु अरि पक्ष को कोइ ॥

—पद्माभरण, १९८

सोमनाथ ने 'कुवलयानंद' का आधार ग्रहण कर प्रत्यनीक का वर्णन किया है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जब अरि सों न बसाइ तब वाके कौं दुष देइ।
प्रत्यनीक तासों कहें सुनत श्रवन दुष देइ॥
—रसपीयूषनिधि, २२/२६५

भेद—साक्षात् तथा परंपरागत संबंध के आधार पर प्रत्यनीक के दो प्रकार किए गए हैं।

१. साक्षात् संबंध—जब प्रतिपक्षी के साथ प्रत्यक्ष संबंध रखनेवाले का तिरस्कार किया जाय तो यह भेद होता है।

२. परंपरागत संबंध—शत्रु के संबंधी के साथ संबंध रखनेवाले के तिरस्कार में परंपरागत संबंध होता है।

पंडितराज ने उपजीव्य, उपजीवक एवं मित्रादि के आधार पर इसके कई प्रकारों का उल्लेख किया है।

उदाहरण—साक्षात् संबंध,

क. मध्येन तनु मध्या मे मध्यं जितवतीत्ययम्।
इभ कुंभौ भिनत्यस्याः कुच कुंभनिभौ हरिः॥

"इस क्षीण कटिवाली ने अपनी कमर से मेरी कमर को पराजित कर दिया है, यह सोचकर इस सुंदरी के कुचकलशों के समान हाथी के मस्तक को सिंह फाड़ रहा है।" यहाँ सुंदरी को कष्ट देने में असमर्थ सिंह का हाथी के मस्तक को फाड़ना प्रत्यनीक है।

ख. मारि-मारि दृगबान, जीत्यौ कामहिं स्याम तुम।
तातें वह दुख मान, तव राधा को देत दुख॥

कृष्ण के कटाक्ष से पराजित होकर कामदेव का राधा को दुख देना प्रत्यनीक है। वह कृष्ण से बदला लेने में असमर्थ होने से उनकी प्रेमिका राधा को कष्ट दे रहा है।

परपरागत संबंध—

तो मुख छबि सों हारि जग भयो कलंक समेत।
सरद इंदु अरबिंदमुखि! अरबिंदनि दुख देत॥

नायिका के मुख-कमल से पराजित होकर चंद्रमा उसको दु:खित करने में अपने को असमर्थ पाकर कमलों को पीड़ित करता है। मुख-कमल के समान कमलों को दुःख देना परंपरागत संबंध है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रत्यादेश—शोभाकर मित्र-वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। किसी कारण-विशेष या निमित्त से स्थित या स्थापित पदार्थ की अन्य हेतु से निवृत्ति या प्रवृत्ति का वर्णन प्रत्यादेश अलंकार है।

स्थितस्यान्यथापत्तिः प्रत्यादेशः ॥ —अलंकाररत्नाकर, ७४

प्रत्युक्ति—आचार्य देव-वर्णित एक नूतन अलंकार। उक्ति-प्रत्युक्ति के वर्णन को प्रत्युक्ति अलंकार कहते हैं। देव ने इसका लक्षण उपस्थित न कर केवल उदाहरण दिया है।

जान दे गोरस, दास कहा को,
न दान लिए बन जान न दैहों ॥ —शब्दरसायन, पृ० १८२

प्रत्यूह—शोभाकरमित्र-वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। किसी कारण से प्राप्त पदार्थ का प्रतिबंध प्रत्यूह अलंकार है।

प्राप्तस्य प्रतिबंधः प्रत्यूहः ॥ —अलंकाररत्नाकर, ७२

प्रथमावतीर्णमदनविकारा—मुग्धा नायिका का एक भेद। [**दे० मुग्धा**] जिसके शरीर में रति-क्रीड़ा के विकार का प्रथम-प्रथम उन्मेष हो रहा हो, उसे प्रथमावतीर्णमदनविकारा कहते हैं।

प्रथमावतीर्णयौवना—मुग्धा नायिका का एक भेद। [**दे० मुग्धा**]। जिसमें नवयौवन का रूप पहले-पहल विकसित हुआ हो, उसे प्रथमावतीर्णयौवना कहते हैं।

प्रबंधध्वनि—[**ध्वनि का भेद**] जब संपूर्ण प्रबंध में ध्वनि हो तो उसे प्रबंधगत ध्वनि कहते हैं।

अलं स्थित्वा श्मशानेऽस्मिन्गृध्रगोमायुसंकुले ।
कंकालबहुले घोरे सर्वप्राणिभयंकरे ॥
न चेह जीवितः कश्चित् कालधर्ममुपागतः ।
प्रियो वा यदि वा द्वेष्यः प्राणिनां गतिरीदृशी ॥

—महाभारत, शांतिपर्व, अध्याय १५३

किसी मृतक बालक को श्मशान में देखकर उसके मांस को खाने की इच्छा से गृध्र उसके संबंधियों से कहता है—"इस श्मशान में ठहरना व्यर्थ है, जहाँ गिद्ध एवं शृगाल भरे हुए हैं, जो नरकंकाल से पूर्ण है तथा सभी संबंधियों के लिए भयंकर है। मरा हुआ व्यक्ति, चाहे किसी का कितना भी प्रिय क्यों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न हो, वह जीवित नहीं हो सकता। सभी जीवधारियों की यही गति होती है।"

—यहाँ गिद्ध यह कहना चाहता है कि मृतक शिशु के संबंधी दिन में ही उसे छोड़कर चले जाएँ, अन्यथा रात्रि में उसे देखना संभव नहीं है। उसका अभिप्राय पुरुषों को विदा करने का है।

गिद्ध की इस बात को सुनकर निकट में बैठा हुआ श्रृगाल बोलता है। उसका अभिप्राय है बालक के संबंधियों को किसी प्रकार संध्या तक रोकना। रात होते ही गिद्ध को दिखाई नहीं पड़ेगा और सूर्यास्त के बाद बालक के मांस का भक्षण श्रृगाल सरलतापूर्वक कर सकेगा। ऐसा सोचकर वह कहता है—

अमुं कनकवर्णाभं बालमप्राप्तयौवनम्।
गृध्र वाक्यात्कथं मूढास्त्यजध्वमविशंकिताः॥
आदित्योऽयं स्थितो मूढाः स्नेहं कुरुत सांप्रतम्।
बहुविघ्नो मुहुर्त्तोऽयं जीवेदपि कदाचन॥

"अरे मूर्खो! सोने के समान कांतिवाले तथा यौवन को नहीं प्राप्त किए हुए बालक को तुमलोग गिद्ध के कहने से शंका-रहित होकर क्यों छोड़ रहे हो? अभी जब तक सूर्य स्थित है, तब तक तुमलोग इसे प्यार करो, संध्या-काल का यह मुहूर्त्त बहुत प्रकार के विघ्नों से युक्त है, हो सकता है इस मुहूर्त्त के व्यतीत होने पर यह बच्चा जी उठे।"

रात में मांस खाने में समर्थ श्रृगाल के इस वचन से यह ध्वनित होता है कि तुमलोग इसे छोड़कर न जाओ। यह ध्वनि पूरे प्रबंध के वाक्यों से ध्वनित होती है।

गीध स्यार कंकाल युत है यह घोर मसान।
अतिहि भयंकर वा समय रहिबो इत अज्ञान॥
प्रानि मात्र की गति यही प्रिय वा अप्रिय होइ।
या जग में मरिकै कवौ जीवित है नहिं कोइ॥

श्रृगाल का वचन—

अथ्यो न रवि लखियतु अजौं विघन रूप यह काल।
रहहु निकट ही जिय परै फिरि कदाचि यह बाल॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भई न याकी तरुन बय सुवरन वरन समान।
तजत याहि क्यों मूढ़ जन ! गीध बचन तुम मान।।

—पूर्वोक्त श्लोक का अनुवाद, रसमंजरी

प्रबंधवक्रता —वक्रोक्ति-सिद्धांत का अंतिम प्रकार। इसके अन्य भेद हैं—वर्णविन्यासवक्रता, पदपूर्वार्द्ध वक्रता, पदपरार्द्ध वक्रता, वाक्यवक्रता, प्रकरण-वक्रता एवं प्रबंधवक्रता। [**विशेष विवरण के लिए दे० वक्रोक्ति-सिद्धांत**] प्रबंध-वक्रता के अंतर्गत महाकाव्य, खंडकाव्य एवं नाटक का समस्त वस्तु-कौशल आ जाता है; इसमें प्रबंध-कल्पना की समग्र वक्रता अंतर्निहित है। कुंतक ने इसके छह प्रकारों का कथन किया है।

१. मूल रस-परिवर्त्तन—जब कवि अपनी मौलिक प्रतिभा के बल से कथा के मूल रस में परिवर्त्तन कर सहृदयाह्लाद की सृष्टि के लिए नवीन रस को प्रस्तुत करे तो प्रबंधवक्रता का यह भेद होगा। प्रसिद्ध कथा के मूल रस को परिवर्त्तित करने के कारण संपूर्ण कथा के विधान में आमूल परिवर्तन कर कवि अलौकिक सौंदर्य की सृष्टि करता है। इसमें समस्त कथा का निर्माण प्रधानभूत रस के ही अनुकूल किया जाता है।

इतिवृत्तान्यथावृत्तरससंपदुपेक्षया।
रसांतरेण रम्येण यत्र निर्वहणं भवेत् ।।
तस्या एव कथामूर्तेरामूलोन्मीलितश्रियः।
विनेयानंदनिष्पत्त्यै सा प्रबंधस्यवक्रता ।।

—वक्रोक्तिजीवित, ४/१६-१७

उदाहरण के लिए 'उत्तर-रामचरित' एवं 'वेणीसंहार' नाटकों को लिया जा सकता है। उत्तर-रामचरित का आधार रामायण एवं वेणीसंहार का स्रोत महाभारत है। दोनों में मूलग्रंथों के रसों को परिवर्त्तित कर प्रस्तुत किया गया है। रामायण एवं महाभारत के मूल रस शांत हैं, पर उत्तर-रामचरित में करुणरस का एवं वेणीसंहार में वीररस का प्राधान्य है।

२. नायक के चरित्र का उत्कर्ष करनेवाली चरम घटना पर कथा का उपसंहार—जब कवि कथा के अंतिम भाग की नीरसता को दूर करने के लिए नायक के चरित्र को एक विशेष सीमा पर पहुँचते ही कथा की परिसमाप्ति कर दे तो यह प्रकार होगा। इसमें इतिहास-प्रसिद्ध कथा को विशेष स्थान या प्रकरण पर ही समाप्त कर नायक के चरित्र को उज्ज्वल बनाने के लिए कथा का समापन या उपसंहार कर दिया जाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

त्रैलोक्याभिनवोल्लेखनायकोत्कर्षपोषिणा ।
इतिहासैकदेशेन प्रबंधस्य समापनम् ॥
तदुत्तरकथावर्तिविरसत्वजिहासया ।
कुर्वीत यत्र सुकविः सा विचित्रास्यवक्रता ॥

—वक्रोक्तिजीवित, ४/१८-१९

'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य को ही इस प्रसंग के उदाहरणस्वरूप रखा गया है। इसके आरंभिक वर्णनों से ज्ञात होता है कि कवि दुर्योधन के नाश तथा युधिष्ठिर के राज्याभिषेक तक की घटना का वर्णन कर रहा है। पर, ऐसा होता नहीं। इसके चरितनायक अर्जुन किरातरूपधारी शिव को द्वंद्व युद्ध में परास्त कर उनसे पाशुपतास्त्र प्राप्त करते हैं और जब यहाँ नायक का चरित्र चरमोत्कर्ष को प्राप्त करता है, तभी कथा की समाप्ति हो जाती है। इस प्रकार कथा के शेष नीरस भाग का परिहार हो जाता है।

३. कथा के मध्य में ही किसी अन्य कार्य द्वारा प्रधान कार्य की सिद्धि—जब प्रतिभावान् कवि कथा की किसी अन्य घटना को महत्त्व देकर मूल कथा का बीच में ही विच्छेद कर प्रधान कार्य की सिद्धि कर दे तो यह प्रकार होगा। इस प्रकार प्रधान कार्य की अप्रत्याशित सिद्धि से प्रबंध में अपूर्व कौशल का समावेश हो जाता है।

प्रधानवस्तुसंबंधतिरोधानविधायिना ।
कार्यांतरांतरायेण विच्छिन्नविरसा कथा ॥
तत्रैव तस्य निष्पत्तेर्विनिबंधरसोज्ज्वलाम् ।
प्रबंधस्यानुबध्नाति नवां कामपि वक्रताम् ॥

—वक्रोक्तिजीवित ४/२०-२१

इसका उदाहरण 'शिशुपाल-वध' महाकाव्य है। इसमें महाभारत के 'राजसूय' यज्ञ की घटना वर्णित है। इसका प्रधान कार्य युधिष्ठिर-कृत 'राजसूय' की पूर्त्ति है; पर 'शिशुपाल वध' महाकाव्य में कवि ने प्रधानकार्य (राजसूय) का बीच में ही विच्छेद कर शिशुपाल के वध की घटना का प्राधान्य प्रदर्शित किया है। 'शिशुपाल-वध' की घटना को उत्कर्ष प्रदान करने के कारण मूल कथा उच्छिन्न हो गई है, फिर भी इससे प्रबंध का कथा-विधान चमत्कृत हो जाता है और नाटकीय ढंग से यज्ञ की सिद्धि भी हो जाती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

४. नायक-द्वारा अनेक फलों की प्राप्ति—जब प्रभूत यशःसमृद्धि का पात्र प्रबंध का नायक अपने माहात्म्य के कारण अनेक फलों की प्राप्ति करे तो वहाँ अपूर्व चमत्कार की सृष्टि होगी।

यहाँ कवि चरित्रनायक को एक फल की प्राप्ति में निरत दिखाकर उसके समान अन्य अनेक कार्यों या फलों की सिद्धि करता हुआ प्रदर्शित करता है।

> यत्रैकफलसंपत्तिसमुद्युक्तोऽपि नायकः।
> फलांतरेष्वनंतेषु तत्तुल्यप्रतिपत्तिषु ॥
> धत्ते निमित्ततां स्फारयशःसंभारभाजनम्।
> स्वमाहात्म्यचमत्कारात् सापरा चास्यवक्रता ॥

—वक्रोक्तिजीवित, ४/२२-२३

'नागानंद' नाटक में इसका उदाहरण प्राप्त होता है। इसका नायक जीमूतवाहन मुख्यरूप से अपने पिता की सेवा के निमित्त वन में जाता है; पर उसे वहाँ मलयवती के प्रेम की प्राप्ति होती है और तदनंतर उसके साथ उसका विवाह संपन्न होता है। पुनः वह शंखचूड़ नामक नाग के प्राण को बचाकर संपूर्ण नागजाति की रक्षा करता है और इस कार्य में अपने प्राणों तक का उत्सर्ग कर देता है। इस प्रकार यहाँ नायक पितृभक्ति, प्रेम एवं लोककल्याणमयी भूमा की प्राप्ति करने में समर्थ होता है।

५. प्रधान कथा का द्योतक नाम—प्रतिभावान् कवि न केवल प्रबंध-विधान के द्वारा, अपितु प्रतिपाद्य वस्तु के सौंदर्य को द्योतित करनेवाले प्रबंध के नामकरण में भी अपूर्व कौशल प्रदर्शित करता है। प्रबंध का नामकरण इस प्रकार किया जाय कि उससे उसका (कथा का) मूल उद्देश्य प्रकट हो जाय तो यह प्रकार होगा।

> आस्तां वस्तुषु वैदग्ध्यं काव्ये कामपि वक्रताम्।
> प्रधानसंविधानांकनाम्नापि कुरुते कविः ॥

—वक्रोक्तिजीवित, ४/२४

'अभिज्ञानशाकुंतल', 'मुद्राराक्षस', 'प्रियप्रवास', 'साकेत' आदि प्रबंधों के नाम मुख्यकथा के रहस्य को प्रकट करनेवाले हैं।

६. एक ही मूल कथा पर आश्रित प्रबंधों का वैचित्र्य-वैविध्य—एक ही मूल कथा पर आश्रित प्रबंध काव्यों में कवि अपनी मौलिक प्रतिभा के द्वारा एक दूसरे से विलक्षण काव्य-रूप प्रकट करे तो यह वक्रता होगी। यद्यपि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

काव्य, नाटक आदि का स्रोत एक ही रहता है; फिर भी कुशल कवि उसमें विलक्षण कौशल का विधान कर भिन्न रूप में प्रकट करता है।

अप्येककक्ष्यया बद्धाः काव्यबंधाः कवीश्वरैः ।
पुष्णंत्यनर्घामन्योऽन्यवैलक्षण्येन वक्रताम् ॥

—वक्रोक्तिजीवित, ४/२५

उदाहरणस्वरूप 'रामायण' की कथा पर आश्रित संस्कृत एवं हिंदी के अनेक काव्यों तथा नाटकों को रखा जा सकता है, जिनके उद्देश्य सर्वथा भिन्न हैं। जैसे, संस्कृत के 'रघुवंश', 'भट्टि काव्य', 'उत्तर-रामचरित', 'रामाभ्युदय' आदि एवं हिंदी के 'रामचरितमानस', 'रामचंद्रिका', 'साकेत' आदि।

आधारग्रंथ—
हिंदी वक्रोक्तिजीवित—संपादक, डॉ० नगेंद्र।
वक्रोक्तिजीवितम्—पंडित राधेश्याम मिश्र (अनुवादक)
भारतीय काव्यालोचन—डॉ० राजवंश सहाय 'हीरा'

प्रबंधौचित्य—औचित्य का तृतीय भेद। [दे० **औचित्य के भेद**]

प्रयोगातिशय—प्रस्तावना का तृतीय भेद। रूपक या नाटक के आमुख को प्रस्तावना कहते हैं। [दे० **प्रस्तावना**]

प्रयोजनवतीलक्षणा—जब किसी विशेष प्रयोजन या फल (उद्देश्य) के कारण लक्षणा की जाय तो प्रयोजनवतीलक्षणा होती है। इसे फललक्षणा भी कहते हैं।

इसका उदाहरण है 'गंगायां घोषः'—गंगा में गाँव है। गंगा में गाँव का होना असंभव है; क्योंकि जल-प्रवाह में वह बह जाएगा। 'गंगा में गाँव' कहने से मुख्यार्थ में बाधा आ जाती है अर्थात् वक्ता के कथन से उसका अभिप्राय स्पष्ट नहीं होता। पर, जब गंगा-किनारे गाँव या तट पर गाँव अर्थ लिया जाय तो मुख्यार्थ की बाधा दूर हो जायगी और प्रयोजनवतीलक्षणा होगी। यहाँ वक्ता किसी विशेष उद्देश्य से ही गंगा में गाँव बताता है। उसका प्रयोजन गाँव की पवित्रता और शीतलता प्रकट करना है। गंगा में गाँव—मुख्यार्थ का बाध, गंगा के तट पर गाँव—मुख्यार्थ का योग, गाँव की पवित्रता एवं शीतलता बताना—प्रयोजन।

पिघल-पिघलकर चू पड़ते हैं दृग से क्षुभित विवश अंतस्तल।

—दिनकर, काव्यालोक, पृ० ६७ से उद्धृत

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नेत्रों से अंतस्तल चू पड़ने के कथन में मुख्यार्थ की बाधा है। यहाँ लक्षणा से अर्थ होगा फूट-फूटकर रोना। मर्मांतक पीड़ा प्रकट करना प्रयोजन है। प्रयोजनवती लक्षणा के दो प्रकार हैं—गौणी और शुद्धा। गौणी के दो प्रकार हैं—सारोपा, साध्यवसाना। शुद्धा के भी दो भेद हैं—उपादान लक्षणा तथा लक्षण लक्षणा। इनके भी सारोपा और साध्यवसाना नामक भेद हैं।

प्ररूढ़यौवना—मध्या नायिका का एक प्रकार। [दे० मध्या] जिस नायिका का यौवन उभार पर हो, उसे प्ररूढ़यौवना कहते हैं।

प्ररूढ़स्मरा—मध्या नायिका का एक भेद। [दे० मध्या] जो बढ़ी हुई कामपिपासावाली नायिका हो, उसे प्ररूढ़स्मरा कहते हैं।

प्रलय—सात्त्विक भाव। [दे० अनुभाव] प्रलय का अर्थ किसी वस्तु में तल्लीन होकर सुधबुध खो देना है। सुख-दुःख के कारण किसी वस्तु में तल्लीन होने से चेष्टारहित हो जाना प्रलय है।

परिश्रम, मूर्च्छा, मद, निद्रा, चोट तथा मोहजनित निश्चेष्टता को को भरत प्रलय कहते हैं। इसमें निश्चेष्टता, निष्कंप, श्वासावरोध आदि चिह्न प्रकट होते हैं।

श्रममूर्च्छामदनिद्राभिघातमोहादिभिः प्रलयः।
निश्चेष्टोनिष्प्रकंपत्वादव्यक्तश्वसितादपि ॥
महीनिपातनाच्चापि प्रलयाभिनयो भवेत् ॥

—नाट्यशास्त्र, ७/९९-१००

विश्वनाथ ने सुख-दुःख के आधिक्य से उत्पन्न ज्ञानशून्यता को प्रलय कहा है—

प्रलयः सुखदुःखाभ्यां चेष्टाज्ञाननिराकृतिः।

—साहित्यदर्पण, ३/१३९

भानुदत्त ने शरीर से संबंध बना रहने पर भी उस दशा को प्रलय कहा है, जिसमें चेष्टारहितता रहती है। प्रलय की अवस्था राग तथा उत्कंठा से उत्पन्न होती है।

शारीरत्वे सति चेष्टानिरोधः प्रलयः। शारीरत्वे सतीतिविशेषणान्निद्रादौ नातिव्याप्तिः। स्तंभादयः शरीरधर्मास्तेषां साहचर्यकथनेन प्रलयोऽपि शरीरधर्म एव। तेत्राऽत्र चेष्टापदेन शरीरचेष्टैवाऽभिमता। मनसस्तु कर्म भवति न तु चेष्टा अतएव चेष्टाश्रयः शरीरमिति शास्त्रीयं लक्षणम्। अस्य विभावा रागोत्कंठ्यादयः।

—रसतरंगिणी, पृ० ३३१, चतुर्थतरंग

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उदाहरण—

क. तनुस्पर्शादस्या दरमुकुलिते हंत ! नयने
उदंचद्रोमांचं व्रजति जडतामंगमखिलम् ।
कपोलौ घर्मार्द्रौ ध्रुवमुपरताशेषविषयं
मनः सांद्रानंदं स्पृशति झटिति ब्रह्मपरमम् ।।

हमारे गात्र के स्पर्श के कारण इस सुंदरी के नेत्रकमल कुछ-कुछ खिले हुए दिखाई पड़ रहे हैं तथा इसका शरीर पुलकित हो रहा है, इसके सभी अंग चेष्टाशून्य हो गए हैं तथा कपोलों पर स्वेदबिंदु छा गए हैं। ऐसा भास रहा है कि इसका मन अन्य विषयों से विमुख होकर ब्रह्मानंदस्वरूप प्रेमानंद में लीन है।

यहाँ मन का अन्य विषयों से हटकर ब्रह्मानंद में लीन होना प्रलय है। यह स्वेद तथा रोमांच का भी उदाहरण है।

ख. केहरि कटि, पटपातधर, सुषमासीलनिधान।
देखि भानु-कुलभूषनहिं, बिसरा सखिन अपान ।।

—रामायण

यहाँ श्रीरामचंद्र को देखकर आनंदाधिक्य के कारण सखियों का चेष्टारहित हो जाना प्रलय है।

प्रलाप—वियोग दशा। [दे० वियोग-दशा] प्रिय-वियोग में व्याकुल होकर निरर्थक बातें करना प्रलाप है। विश्वनाथ चित्त के बहकने से उत्पन्न व्यर्थ की बातों को प्रलाप कहते हैं।

अलक्ष्यवाक्प्रलापः स्याच्चेतसो भ्रमणाद्भृशम् ।

—साहित्यदर्पण, ३/१९२

भानुदत्त ने प्रिय के संबंध में निरर्थक चर्चा को प्रलाप कहा है। इसके मूल में उत्कंठा निहित है।

प्रियाश्रितकाल्पनिकव्याहारः प्रलापः। कल्पनायाः कारणमंतःकरणविक्षेपः। तस्य च निदानमुत्कंठा। —रसमंजरी, पृ० १२० (चौखंबा)

मतिराम ने प्रिय-मिलन की उत्कंठा के कारण 'मोहमय बैन' कहने को प्रलाप कहा है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उतकंठा ते कहत हैं जहां मोहमय बैन।
बरनत तहां प्रलाप हैं जे प्रबीन रस ऐन॥

—रसराज, ४१५

पद्माकर के अनुसार विरहीजनों का निरर्थक बातें करना प्रलाप है।

बिरहीजन जहं कहत कछु निरखि निरर्थक बैन।
तासों कहत प्रलाप हैं कबि कबिता के ऐन॥

—जगद्विनोद, ६६३

उदाहरण—

क. अद्विसंवीक्षणं चक्षुरद्विसंमीलनं मनः।
अद्विसंस्पर्शनः पाणिरद्य मे किं करिष्यति॥

"हे मित्र! प्रिय के अतिरिक्त किसी अन्य को न देखनेवाले मेरे नयन, प्रिय के अतिरिक्त किसी अन्य की भावना से रहित मेरा मन तथा प्रिय के अतिरिक्त किसी अन्य को स्पर्श न करनेवाला मेरा हाथ आज क्या करे।

ख. निरखत घन घनस्याम के भेटन उठति जु बाम।
बिकल बीच ही करत तन करि कमनैती काम॥

प्रवत्स्यत्प्रेयसी—अवस्थानुसार नायिका का भेद। [दे० नायिका-भेद] इसे प्रवत्स्यत्पतिका भी कहते हैं। जिसका पति या प्रिय विदेश जानेवाला हो, ऐसी नायिका प्रवत्स्यत्प्रेयसी कही जाती है। भानुदत्त ने इसका वर्णन स्वतंत्र रूप से किया है। इनके अनुसार जिसका पति अग्रिम क्षण में देशांतर जायगा ही, ऐसी नायिका प्रवत्स्यत्पतिका कही जाती है।

यस्याः पतिरग्रिमक्षणे देशांतरं यास्यत्येव सा प्रवत्स्यत्पतिका।

—रसमंजरी, पृ० १५२

इसकी चेष्टाएँ हैं काकु या व्यंग्य वाणी-द्वारा प्रिय को बार-बार कोसना, दैन्य भाव से कातर होकर उसे देखना, उसकी यात्रा में विघ्नों की कल्पना करना तथा निर्वेद, संताप, संमोह, निश्वास एवं अश्रु प्रवाहित करना।

अस्याश्चेष्टाः काकुवचन-कातरप्रेक्षण-गमन-विघ्नोपदर्शन-निर्वेद-संताप-संमोह-निश्श्वासवाष्पादयः।

—वही, पृ० १५३

इसका रूप मुग्धा, मध्या प्रौढ़ा, परकीया एवं सामान्या में भी दर्शाया गया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मतिराम के अनुसार प्रिय के भावी विरह (प्रवासजन्य) से विकल होनेवाली नायिका प्रवत्स्यत्प्रेयसी कही जाती है ।

होनहार प्रिय के विरह विकल होय जो बाल ।
ताहि प्रवच्छतिप्रेयसी बरनत बुद्धि-बिसाल ॥

—रसराज, २०५

पद्माकर के मत से, जिसका प्रिय परदेश जानेवाला हो, उसे प्रवत्स्यत्प्रेयसी कहते हैं ।

चलन चहै परदेस कों, जा तिय कों जब कंत ।
ताहि प्रबत्स्यत्प्रेयसी, कहत सुकबि मतिमंत ॥

—जगद्विनोद, २४५

दोनों ने इसे स्वतंत्र रूप से मान्यता दी है । दास ने इसे प्रोषितपतिका का एक भेद स्वीकार कर इसका वर्णन किया है !

कहिए प्रोषित भर्तृका पति परदेसी जानि ।
चलत रहत आवत मिलत चारि भेद उनमानि ॥
प्रथम प्रवत्स्यत्प्रेयसी प्रोषितपतिका फेरि ।
आगच्छतपतिका बहुरि आगतपतिका हेरि ॥

—शृंगारनिर्णय, १९७-९८

उदाहरण—मुग्धा प्रवत्स्यत्पतिका का—

क. प्राणेश्वरे किमपि जल्पति निर्गमाय
क्षामोदरी वदनमानमयांचकार ।
आली पुनर्निभृतमेत्य लतानिकुंज-
मुन्मत्तकोकिलकलध्वनिमाततान ॥

—रसमंजरी, ८४

"प्राणेश्वर ने विदेश प्रवास के लिए कुछ कहा ही था कि क्षीण कटिवाली नायिका ने अपना सिर झुका लिया । तत्क्षण उसकी सखी धीरे-धीरे लताकुंज में जाकर उन्मत्त कोकिल की बोली बोलने लगी ।" भाव यह कि मुग्धा होने के कारण जब नायिका कुछ न बोल सकी तो सखी ने कोयल की बोली बोलकर वसंतागम को जना दिया कि ऐसे समय में प्रवास नहीं करना चाहिए ।

ख. बोलति बोल न बलि बिकल, थरथरात सब गात ।
नवयौवन के आगमन, सुनि प्रिय-गमन प्रभात ॥

—जगद्विनोद, २४७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रवर्त्तक—प्रस्तावना का चतुर्थ भेद। रूपक या नाटक के आमुख को प्रस्तावना कहते हैं। [दे० प्रस्तावना]

प्रवसत्पतिका—अवस्थानुसार नायिका का प्रकार। [दे० प्रोषितपतिका] जिस नायिका का प्रिय या पति देशांतर (विदेश) जा रहा हो, उसे प्रवसत्पतिका कहते हैं।

उदाहरण—

लागि गरे तें बाल के, निकसे ज्यों ब्रजराज।
त्यों मोतिन सों कै दियो, नैनन मारग साज॥

प्रवह्लिका—गद्यकाव्य का एक भेद। [दे० गद्य]

प्रवासविप्रलंभ—विप्रलंभ का भेद। [दे० शृंगाररस] कार्यवश, शापवश या भयवश नायक के देशांतर गमन को प्रवास कहते हैं। यह भावी, वर्तमान एवं भूत के नाम से तीन प्रकार का होता है।

प्रवासो भिन्नदेशित्वं कार्याच्छापाच्च संभ्रमात्।
× × ×
भावी भवंभूत इति त्रिधा स्यात्तत्र कार्यजः॥

—साहित्यदर्पण, ३/२०४-२०८

प्रवेशक—अर्थोपक्षेपक का एक भेद। [दे० अर्थोपक्षेपक] नाटकीय कथा की सूचना देनेवाला विशिष्ट साधन। इसमें प्रायः निम्न श्रेणी के पात्रों का प्रयोग किया जाता है, जो प्राकृत भाषा बोलते हैं। यदि विट या ब्राह्मण पात्र हों तो संस्कृत भाषा का भी प्रयोग संभव है। इसका प्रयोग नाटक तथा प्रकरण, दोनों में ही किया जाता है। प्रवेशक-द्वारा भूत या भावी घटनाओं की सूचना दी जाती है तथा इसकी योजना दो अंकों के मध्य होती है।

तद्वदेवानुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः।
प्रवेशोऽकद्वयस्यांतः शेषार्थस्योपसूचकः॥

—दशरूपक, १/६०-६१

प्रवृत्ति—रीति का अन्य नाम। भरत ने रीति के लिए प्रवृत्ति का ही प्रयोग किया है। [दे० रीति-संप्रदाय] प्रवृत्ति के तीन भेद हैं—दाक्षिणात्या, अवंती और उड्र-मागधी।

प्रशस्ति—अग्निपुराण में वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। अन्य व्यक्तियों के हृदय या मर्म को द्रवित करनेवाले कर्म का नाम प्रशस्ति है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रशस्ति कथन दो प्रकार से होता है या इसकी दो शैलियाँ हैं—प्रेमोक्ति एवं स्तुति। जब प्रिय के संबंध में सामान्य कथन हो तो प्रेमोक्ति तथा उसके गुण-कीर्त्तन को स्तुति कहते हैं।

प्रशस्तिः परवन्मर्मद्रवीकरणकर्मणः।
वाचोयुक्तिर्द्विधा सा च प्रेमोक्तिस्तुतिभेदतः॥
प्रेमोक्तिस्तुतिपर्यायौ प्रियोक्तिगुणकीर्तने॥
—अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग, ९/३-४

प्रशस्ति काव्य—यह काव्य का ऐसा भेद या रूप है, जिसमें राजकुल का यशोगान किया जाता है। इसका उल्लेख रुद्रट-कृत 'काव्यालंकार' में है।

अन्यद्वर्णकमात्रं प्रशस्तिकुलकादिनाटकाद्यन्यत्॥
—काव्यालंकार, १६/३६

तत्र यस्यामीश्वरकुलवर्णनं यथार्थं क्रियते सा प्रशस्तिः।
—नमिसाधु-कृत टीका

प्रश्नोत्तर—चित्रालंकार का एक भेद। [दे० चित्रालंकार] जब अनेक प्रश्नों का एक उत्तर हो तो प्रश्नोत्तर होगा।

प्रसंग—शोभाकर मित्र-वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। किसी के द्वारा किए गए प्रयत्न से प्रसंगवश अन्य कार्य संपन्न हो जाय तो 'प्रसंग' अलंकार होगा।

प्रसंगादन्यार्थः प्रसंगः॥ —अलंकाररत्नाकर, ८७

प्रसादगुण—काव्यगुण का एक प्रकार। [दे० गुण] प्रसाद का अर्थ है प्रसन्नता या विकसित होना। इसके मूल में व्याप्ति या चित्त का व्यापकत्व निहित है। श्रवण-मात्र से ही जो रचना चित्त में व्याप्त हो जाय, उसे प्रसाद गुण कहेंगे। यह गुण सूखे इंधन में अग्नि की भाँति तथा श्वेत वस्त्रों में जल की तरह तत्क्षण व्याप्त हो जाता है। इसका प्रयोग सभी रसों में होता है। सरलता, सर्वजनसुलभता तथा सहजग्राह्यता इसकी विशेषताएँ हैं।

भरत ने स्वच्छता, सरलता तथा सहजग्राह्यता (श्रवण-मात्र से ही अर्थ की प्रतीति) को प्रसाद गुण का प्रधान तत्त्व कहा है। [नाट्यशास्त्र, १७/९८] भामह ने अर्थ-सुलभत्व तथा अनतिसमस्तत्व को प्रसाद गुण के लिए आवश्यक माना है [काव्यालंकार, २/३]। वामन ने बंधरचना के शैथिल्य को प्रसाद

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कहा—शैथिल्यंप्रसादः । —काव्यालंकारसूत्र, ३,१,६ । आनंदवर्द्धन ने कहा कि प्रसाद गुण में सभी रसों के प्रति समर्पकत्व है । इसकी स्थिति सभी रचनाओं एवं सभी रसों में होती है ।

समर्पकत्वं काव्यस्य यत्तु सर्वरसान् प्रति ।
स प्रसादो गुणो ज्ञेयः सर्वसाधारणक्रियः ॥

—ध्वन्यालोक, २/१०

मम्मट ने कहा कि सूखे इंधन में अग्नि के सदृश या धुले वस्त्र में स्वच्छ जल के समान जो सहसा चित्त में व्याप्त हो जाय, वह सभी रसों और सभी रचनाओं में रहनेवाला प्रसाद गुण है । इसमें ऐसे शब्द प्रयुक्त होते हैं, जिनके श्रवण-मात्र से ही अर्थ की प्रतीति हो जाती है ।

शुष्केंधनाग्निवत् स्वच्छजलवत्सहसैव यः ।
व्याप्नोत्यन्यत् प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहित स्थितिः ॥

—काव्यप्रकाश, ८/७०,७१

विश्वनाथ ने मम्मट के ही विचार को प्रकारांतर से कहा—

चित्तं व्याप्नोति यः क्षिप्तं शुष्केंधनमिवानलः ॥
स प्रसादः समस्तेषु रसेषु रचनासु च ।
शब्दास्तद्व्यंजकाः अर्थबोधकाः श्रुतिमात्रतः ॥

—साहित्यदर्पण, ८/७,८

रीतिकालीन आचार्य चिंतामणि ने मम्मट के ही लक्षण को अनूदित कर प्रसाद गुण का वर्णन किया है ।

सूखे इंधन आग ज्यों स्वच्छ नीर की रीति ।
झलकै अक्षर-अर्थ जो सो प्रसाद गुन नीति ॥

—कविकुलकल्पतरु, १/१७

उदाहरण—

क. सूचीमुखेन सकृदेव कृतव्रणस्त्वं
मुक्ताकलाप, लुठसि स्तनयोः प्रियायाः ।
बाणैः स्मरस्य शतशो विनिकृत्तमर्मा
स्वप्नेऽपि तां कथमहं न विलोकयामि ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"हे मुक्ताहार ! एक तुम ऐसे हो, जो मात्र एक बार सुई की नोक से बिंध-कर प्रिया के वक्षस्थल पर सर्वदा लोटते रहते हो; किंतु, एक मैं हूँ, जो कामदेव के अगणित बाणों से शत बार मर्माहत होकर भी सपने में भी प्रिया को देख नहीं पाता।" यहाँ सरल पदों के द्वारा प्रसाद गुण की व्यंजना हुई है।

ख. विकसते मुरझाने को फूल,
उदित होता छिपने को चंद।
शून्य होने को भरते मेघ,
दीप जलता होने को मंद ॥
यहाँ किसका अनंत यौवन, अरे अस्थिर यौवन। —महादेवी

प्रसिद्ध—आचार्य केशवदास-वर्णित एक नूतन अलंकार। जब एक के साधन साधने पर उसका फल या सिद्धि अनेक को प्राप्त हो तो प्रसिद्ध अलंकार होगा।

साधन साधै एक भव भोगैं सिद्धि अनेक।
तासों कहत प्रसिद्ध सब, केशव सहित विवेक ॥
—कविप्रिया, १३/७

प्रसिद्धिविरुद्धता—अर्थदोष का ९वाँ भेद। [दे० अर्थदोष]

प्रसिद्धिविरोध—वाक्यदोष का १७वाँ भेद। [दे० वाक्यदोष]

प्रस्तावना—रूपक के आमुख को प्रस्तावना कहते हैं। इसमें नटी या विदूषक या पारिपार्श्विक (नट के समान व्यक्ति) सूत्रधार के साथ इस प्रकार वार्त्तालाप करते हैं, जिससे काव्यार्थ का परिचय या विवरण प्रस्तुत हो जाए। वे वक्रोक्ति या स्पष्टोक्ति द्वारा संबद्ध काव्य के विषय का संपादन करते हैं।

नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा।
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते ॥
चित्रवाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनापि सा ॥
—साहित्यदर्पण, ६/३१-३२

प्रस्तावना के पाँच भेद हैं—उद्घातक, कथोद्घात, प्रयोगातिशय, प्रवर्त्तक तथा अवगलित।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१. उद्घातक—जब सामाजिक (दर्शक) स्थापक-द्वारा प्रयुक्त अनिश्चितार्थक शब्दों को जोड़कर अभीष्ट अर्थ की प्रतीति कराए तो उद्घातक होगा।

२. कथोद्घातक—सूत्रधार के वचन या उसके प्रयुक्त वाक्य को कहते हुए या उसके अर्थ (भाव) को लेकर कोई पात्र रंगमंच पर प्रवेश करे तो कथोद्घातक होगा।

३. प्रयोगातिशय—जब सूत्रधार यह कहकर कि वह आ रहा है' किसी पात्र का प्रवेश कराए तो उसे प्रयोगातिशय कहते हैं।

४. प्रवर्तक—जब सूत्रधार किसी ऋतु का वर्णन कर उसी की समानता के आधार पर (श्लेष द्वारा) किसी पात्र के प्रवेश की सूचना दे, तो प्रवर्तक होगा।

५. अवलगित—जब सूत्रधार अपने एक प्रयोग में किसी प्रकार की समानता की कल्पना कर किसी पात्र के प्रवेश की सूचना दे तो अवलगित होगा।

उद्घात(त्य)कः कथोद्घातः प्रयोगातिशयस्तथा।
प्रवर्तकावलगिते पंच प्रस्तावनाभिदाः॥
पदानि त्वगतार्थानि तदर्थगतये नराः।
योजयंति पदैरन्यैः स उद्घात्य(त)क उच्यते॥
सूत्रधारस्य वाक्यं वा समादायार्थमस्य वा।
भवेत्पात्रप्रवेशश्चेत्कथोद्घातः स उच्यते॥
यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगोऽन्यः प्रयुज्यते।
तेन पात्रप्रवेशश्चेत्प्रयोगातिशयस्तदा॥
कालं प्रवृत्तमाश्रित्य सूत्रधृग्यत्र वर्णयेत्।
तदाश्रयश्च पात्रस्य प्रवेशस्तत्प्रवर्तकम्॥
यत्रैकत्र समावेशात्कार्यमन्यत्प्रसाध्यते।
प्रयोगे खलु तज्ज्ञेयं नाम्नावलगितं बुधैः॥

—साहित्यदर्पण, ६/३३-३८

प्रस्ताववैशिष्ट्योत्पन्नवाच्यसंभवा—आर्थीव्यंजना का सप्तम प्रकार। [दे० आर्थीव्यंजना]

प्रस्तुत—उपमेय का अन्य नाम। [दे० उपमेय]

प्रस्तुतांकुर—गोपनमूलक अलंकार। जब प्रस्तुत वृत्तांत से अन्य प्रस्तुत वृत्तांत की व्यंजना हो तो प्रस्तुतांकुर अलंकार होगा। प्रस्तुत से प्रस्तुत के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अंकुरित या प्रस्फुटित होने के कारण इसे प्रस्तुतांकुर कहते हैं। प्रस्तुतांकुर अलंकार में वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ दोनों ही प्रस्तुत होते हैं। इसमें एक प्रस्तुत वृत्तांत से दूसरा प्रस्तुत वृत्तांत अंकुर की भाँति प्रकट होता है। यह अप्रस्तुतप्रशंसा की जाति का अलंकार है।

इस अलंकार के उद्भावक अप्पय दीक्षित हैं। पंडितराज जगन्नाथ, नागेश तथा विश्वेश्वर पंडित इसे अप्रस्तुतप्रशंसा से भिन्न नहीं मानते। रीतिकालीन आचार्य जसवंतसिंह, मतिराम, सोमनाथ, दास तथा पद्माकर भी इसका विवेचन करते हैं। दीक्षित के अनुसार जब प्रस्तुत वाच्यार्थ के द्वारा कवि अभीष्ट अन्य प्रस्तुत अर्थ की व्यंजना करे तो प्रस्तुतांकुर होगा।

प्रस्तुतेन प्रस्तुतस्य द्योतने प्रस्तुतांकुरः॥

—कुवलयानंद, ६७

रीतिकालीन आचार्यों ने 'कुवलयानंद' की परिभाषा का अनुवाद कर दीक्षित के मत का समर्थन किया है।

प्रस्तुत अंकुर है किए प्रस्तुत में प्रस्ताइ॥

—भाषाभूषण, ६६

प्रस्तुत करि प्रस्तुत जहाँ प्रकट होत 'मतिराम'
प्रस्तुत अंकुर कहत हैं, तहाँ बुद्धि के धाम॥

—ललितललाम, १७५

प्रस्तुत में प्रस्ताइ जहं प्रस्तुत अंकुर सोइ।

—रसपीयूषनिधि, २२/१२०

प्रस्तुत करि प्रस्तुत फुरै प्रस्तुत अंकुर होइ।

—पद्माभरण, १२२

पंडितराज जगन्नाथ ने इसे स्वतंत्र अलंकार न मानकर अप्रस्तुतप्रशंसा से अभिन्न सिद्ध करते हुए बतलाया कि जहाँ वाच्यार्थ एवं व्यंग्यार्थ, दोनों ही प्रस्तुत होते हैं, वहाँ भी कवि का मुख्य अभिप्रेत एक ही पक्ष होता है। वे दोनों ही वृत्तांतों के प्रस्तुत होने में भी अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार स्वीकार करते हैं। [दे० रसगंगाधर, पृ० ५४२]

प्रस्तुतांकुर अप्रस्तुतप्रशंसा से सर्वथा भिन्न अलंकार है। इसका मुख्य अभिप्रेत प्रस्तुत होता है और कवि इसका प्रयोग मुख्यतः उपालंभ के अर्थ में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करता है। इसके खंडनकर्त्ताओं का यह कथन कि प्रस्तुतांकुर में कवि की प्रधान विवक्षा एक ही प्रस्तुत के प्रति होती है, अतः वह प्रधान एवं अन्य गौण होकर क्रमशः प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत भाव को द्योतित करता है, उपयुक्त नहीं माना जा सकता। कवि की प्रधान विवक्षा होने पर भी प्रस्तुत ही रहेगा, वह अप्रस्तुत कदापि नहीं हो सकता। अतः, इसके स्वतंत्र अस्तित्व पर प्रश्न-वाचक चिह्न नहीं लगाया जा सकता।

उदाहरण—

किं भृंग, सत्यां मालत्यां केतक्या कंटकेद्धया ॥

—कुवलयानंद, ६७

कहा भयो अलि केवरें छाड़ि सुकोमल गात ॥

नायक के प्रति नायिका की उक्ति। "अरे भौंरे, जब मालती विद्यमान है तो काँटों से भरी इस केतकी से क्या ?" यहाँ भ्रमर-वृत्तांत तथा कामुक-वृत्तांत दोनों ही प्रस्तुत हैं—प्रथम वाच्य है और द्वितीय व्यंग्य।

प्रस्थानक—उपरूपक का एक भेद। [दे० उपरूपक] इसमें दो अंक होते हैं और नायकों की संख्या दस तक रहती है। इसका नायक भृत्य होता है और उपनायक उससे भी हीन कोटि का पात्र। इसकी नायिका कोई दासी हुआ करती है और भारती तथा कैशिकी वृत्तियों का प्रयोग होता है। इसमें लय तथा ताल आदि संगीतात्मक विलास का आधिक्य रहता है तथा वर्णित विषय की समाप्ति मदिरा-पान के विनोद में हुआ करती है।

प्रस्थाने नायको दासो हीनः स्यादुपनायकः।
दासी च नायिका वृत्तिः कैशिकी भारती तथा ॥
सुरापानसमायोगादुद्दिष्टार्थस्य संहृतिः।
अंकौ द्वौ लयतालादिर्विलासो बहुलस्तथा ॥

—साहित्यदर्पण, ६/२८०-२८१

प्रहर्षण—संगीतमूलक अलंकार। जब बिना किसी यत्न के ही वांछितार्थ (इष्टार्थ) की प्राप्ति का वर्णन किया जाय तो प्रहर्षण अलंकार होगा। 'प्रहर्षण' का अर्थ है प्रकृष्ट हर्ष (प्र+कृष्ट, हर्षण, हर्ष) या अत्यंत हर्ष। इसमें अत्यंत हर्षकारक पदार्थों की प्राप्ति का वर्णन होता है या बिना यत्न के ही अभीष्ट पदार्थ की प्राप्ति का उल्लेख किया जाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस अलंकार का सर्वप्रथम निरूपण जयदेव ने किया है; यह अपेक्षाकृत नवीन अलंकार है। तत्पश्चात् अप्पय दीक्षित एवं पंडितराज जगन्नाथ ने इसका निरूपण किया। उद्योतकार नागेश तथा विश्वेश्वर पंडित इसे स्वतंत्र अलंकार स्वीकार न कर समाधि में गतार्थ कर देते हैं। जयदेव के अनुसार बिना यत्न के ही वांछित (इच्छित) अर्थ (पदार्थ) से अधिक की प्राप्ति के वर्णन में प्रहर्षण अलंकार होता है।

वांछितादधिकप्राप्तिरयत्नेन प्रहर्षणम्। —चंद्रालोक, ५/४६

दीक्षित का प्रहर्षण-विवेचन प्रकारांतर से जयदेव पर आश्रित है। इन्होंने बिना यत्न के उत्कंठित पदार्थ की सिद्धि के वर्णन में प्रहर्षण माना है।

उत्कंठितार्थसंसिद्धिर्विना यत्नं प्रहर्षणम्॥

—कुवलयानंद, १२९

दीक्षित ने तीन प्रकारों का उल्लेख कर प्रहर्षण के स्वरूप का विस्तार किया। पंडितराज के अनुसार अभीष्ट अर्थ की प्राप्ति के उद्देश्य से साक्षात् यत्न के अभाव में भी यदि अभीष्ट का लाभ हो जाय तो वहाँ प्रहर्षण अलंकार होगा।

साक्षात्तदुद्देश्यकयत्नमंतरेणाप्यभीष्टार्थलाभः प्रहर्षणम्।

—रसगंगाधर, पृ० ६८०

रीतिकालीन आचार्यों ने जयदेव तथा दीक्षित के लक्षणों के आधार पर प्रहर्षण अलंकार का वर्णन किया है। महाराज जसवंतसिंह, मतिराम तथा पद्माकर ने 'कुवलयानंद' की परिभाषा का अनुवाद किया है। भूषण ने जयदेव का आशय ग्रहण कर अपना लक्षण निर्मित किया; पर उसमें पूर्णता नहीं है।

तीन प्रहर्षन जतन बिन बांछित फल जौ होइ।

—भाषाभूषण, १५७

जहं उत्कंठित अर्थ की बिन उपाय ही सिद्धि।
तहां प्रहर्षन कहत हैं, जे कबिजन मति सिद्धि॥

—ललितललाम, ३०२

बांछित फल सिधि जतन बिन प्रथम प्रहर्षन होइ॥

—पद्माभरण, २१८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भेद—दीक्षित तथा पंडितराज ने प्रहर्षण के तीन भेदों का निरूपण किया है। रीतिकालीन आचार्य भी दीक्षित के मत का अनुसरण कर तीन प्रकारों का उल्लेख करते हैं।

प्रथम प्रहर्षण—बिना यत्न के ही अभीष्ट अर्थ की सिद्धि में प्रथम प्रहर्षण होता है।

उत्कंठितार्थं संसिद्धिर्विना यत्नं प्रहर्षणम् ॥

—कुवलयानंद, १२५

तीन प्रहर्षण जतन बिन बांछित फल जो होइ ॥

—भाषाभूषण, १५७

उदाहरण—

क. तिरस्कृतो रोषवशात्परिष्वजन्
प्रियो मृगाक्ष्या शयितः परांग्मुखः।
किं मूर्च्छितोऽसाविति कांदिशीकया
कयाचिदाचुंब्य चिराय सस्वजे ॥ —रसगंगाधर

"किसी मृगाक्षी ने आलिंगन करते हुए प्रियतम का क्रोधवश तिरस्कार किया। तब प्रियतम मुख को फेरकर सो गया। किंतु क्या प्रिय मूर्च्छित हो गया? ऐसा सोचकर घबराई हुई उस नायिका ने चुंबन कर बहुत देर तक उसका आलिंगन किया।" यहाँ बिना किसी यत्न के नायिका के द्वारा प्रियतम का चुंबित होना प्रथम भेद है।

ख. जाको रूप अनूप लखि, सखि न गयो धरि धीर।
आपुहि ते गैयो दुहन, आयो वही अहीर ॥

जिसके रूप को देखकर नायिका का धैर्य छूट गया था, वह अहीर अपने आप ही गाय दुहने के लिए आ गया। यहाँ बिना प्रयास के नायक का दर्शन होना, प्रथम प्रहर्षण है।

द्वितीय प्रहर्षण—वांछित अर्थ से अधिक की प्राप्ति के वर्णन में द्वितीय प्रहर्षण होता है।

वांछितादधिकार्थस्य संसिद्धिश्च प्रहर्षणम्।

—कुवलयानंद, १३०

बांछित हू तें अधिक फल श्रम बिनु लहिए सोइ ॥

—भाषाभूषण, १५७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उदाहरण—

क. केलीमंदिरमागतस्य शनकैरालीरपास्येंगितैः
सुप्तायाः सरुषः सरोरुहदृशः संजीवनं कुर्वतः ।
जानंत्याप्यनभिज्ञयेव कपटव्यामीलिताक्ष्या सखि,
श्रांतासीत्यभिधाय वक्षसि तया पाणिर्मयाधीयत ।।

"नायिका की सखियों को संकेत से धीरे-धीरे हटाकर मैं रति-मंदिर में गया और वहाँ क्रोध करके सोई हुई मानिनी को, जिसकी आँखें कमल के समान थीं, व्यजन करने लगा। तब सुंदरी ने जानबूझकर न जानती हुई की तरह छल से आँखें बंदकर ही कहा कि हे सखि ! तुम थक गई हो। ऐसा कहकर उसने मेरे हाथ को अपने वक्षस्थल पर रख लिया।"

यहाँ मानिनी के क्रोध को हटाने के लिए किए गए यत्न पर स्वयं उसके द्वारा प्रिय के हाथों को स्तनों पर रखना क्रोध को दूर करने से भी बढ़कर सुखद है ! यहाँ द्वितीय प्रहर्षण हुआ ।

ख. धरहु धीर ह्वैहैं सुत चारी ।
त्रिभुवन बिदित जगतभयहारी ।। —रामायण

राजा दशरथ के एक पुत्र मांगने पर चार उत्कृष्ट पुत्रों की प्राप्ति के वर्णन में अभीष्ट से अधिक का लाभ वर्णित है ।

तृतीय प्रहर्षण—उपाय की खोज में साक्षात् फल के लाभ का वर्णन तृतीय प्रहर्षण है ।

यत्नादुपायसिद्ध्यर्थात् साक्षाल्लाभः फलस्य च ।।
—कुवलयानंद, १३१

सोधत जाके जतन कौं बस्तु चढ़ै कर सोइ ।।
—भाषाभूषण, १५८

उदाहरण—

क. तद्दर्शनोपायविमर्शनार्थं मया तदालीसदनं गतेन ।
तत्रैव सा लक्ष्यत पक्ष्मलाक्षी दाक्षायणीमर्चयितुं प्रयाता ।।

नायक का कथन—"नायिका को देखने के लिए यत्न करने के विचार से मैं उसकी सखी के घर गया; वहीं पर पार्वती की पूजा करने के लिए गई हुई वह पक्ष्मलाक्षी दिखाई पड़ी।" यहाँ नायिका के दर्शन के लिए यत्न करने में स्वयं उसके दर्शन का लाभ होना, तृतीय प्रहर्षण है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ख. हर की सुधि करि राधिका, चली अली के भौन ।
हँसत बीच ही मिलि गए, बरनि सकै सुख कौन ।।

कृष्ण की सुधि कर उनसे मिलने के लिए राधिका का सखी के घर जाने पर कृष्ण का बीच ही रास्ते में मिल जाना, तृतीय प्रहर्षण है ।

प्रहर्षण का खंडन कर उसके तीनों भेदों को समाधि अलंकार के अंतर्गत मानकर नागेश ने इसके अलंकारत्व को अमान्य ठहरा दिया है । उनका कहना है कि अकस्मात् अभीष्ट की प्राप्ति, वांछित का सिद्धि के लिए किए गए यत्न से अधिक का लाभ तथा उपाय की सिद्धि के यत्न से साक्षात् फल की प्राप्ति का होना प्रहर्षण के तीनों ही भेदों में प्रकारांतर से कार्य की सुगमता का निर्देश हुआ है । कार्य-सौकर्य में समाधि अलंकार होता है, अतः इसे पृथक् अलंकार नहीं माना जा सकता ।

अत्र कारणांतर योग इत्युपलक्षणम् । तेनाकस्मादीप्सितार्थलाभस्य वांछित-सिद्ध्यर्थयत्नादधिकलाभस्योपायसिद्ध्यर्थयतात्साक्षात् फललाभवर्णनस्य च समाधि-त्वमेव । सौकर्यस्यानायासेन सिद्ध्यादिरूपस्येवाऽऽकस्मिकत्वादिरूपस्यापिग्रहात् । एतेनेदृशे विषये प्रहर्षणं भिन्नोऽलंकार इत्यपास्तम् ।।

—उद्योत, पृ० ५५४, अलंकार-कौस्तुभ, पृ० ३६९

प्रहसन—रूपक का एक भेद । [दे० रूपक] । यह हास्योत्पादक उक्तियों से युक्त रूपक का एक भेद है । इसमें हास्य का प्रदर्शन कर कवि मूर्खों एवं स्त्रियों को आकृष्ट करता है या नाटक के प्रति उनके मन में अभिरुचि उत्पन्न करता है । इसमें आरभटी वृत्ति, [दे० आरभटी वृत्ति] विष्कंभक तथा प्रवेशक [दे० विष्कंभक तथा प्रवेशक] का प्रयोग नहीं होता । प्रसहन के द्वारा पाखंडी आदि के चरित को जानकर मनुष्य उनसे विमुख हो जाते हैं और पुनः उनके निकट नहीं आते । इसका इतिवृत्त कवि-कल्पित होता है ।

पात्रों के चारित्रिक वैशिष्ट्य के आधार पर प्रहसन के दो प्रकार किए गए हैं—शुद्ध तथा संकीर्ण । शुद्ध प्रहसन में नायक के रूप में भागवत, तापस, पाखंडी, संन्यासी, तपस्वी या पुरोहित का प्रदर्शन होता है और इनके संलाप परिहासात्मक उक्तियों से आपूर्ण होते हैं । इसमें चेट, विट, चेटी आदि निम्न-स्तर के पात्र भी रहते हैं । शुद्ध प्रहसन में मिथ्याचारी नायक सुसंस्कृत भाषा का प्रयोग कर, धार्मिक कार्यों को सूक्ष्म विस्तार के साथ संपन्न करते हुए, प्रदर्शित किया जाता है । केवल एक व्यक्ति के चरित्र का हास्यास्पद प्रदर्शन करने के कारण इसके 'प्रहसन' नाम की सार्थकता सिद्ध होती है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संकीर्ण प्रहसन में धार्मिक तथा दंभी व्यक्ति को वेश्याओं से संबद्ध दिखाकर न केवल मिथ्याचारी नायिका को अपितु उसके सहायकों को भी हास्यास्पद बना दिया जाता है। इसमें अनेकानेक चरित्रों का मिश्रण रहता है और स्वैरिणी, दास, वेश्या, धूर्त्त, पाखंडी विप्र, भट प्रभृति पात्र विकृत वेश धारण कर विकृत भाषा का प्रयोग करते हुए प्रदर्शित किए जाते हैं। अभिनवगुप्त के मतानुसार शुद्ध प्रसहन एकांकी होता है और धार्मिक मिथ्याचारी, वेश्या आदि के बाहुल्य के कारण संकीर्ण प्रहसन में अनेक अंक होते हैं। संकीर्ण प्रहसन का नायक धूर्त्त होता है और उसमें परिहास का वैशिष्ट्य दिखाया जाता है। इसमें प्रपंच, छल, अधिबल (स्पर्धायुक्त बात) नालिका (अव्यक्तार्थ परिहास-वचन), असत्प्रलाप (व्यर्थ की बातें), व्याहार (हँसी उड़ाना) तथा मृदव (गुण को अवगुण तथा अवगुण को गुण के रूप में दिखाना) वीथ्यंगों का व्यवहाराधिक्य होता है।

इसमें हास्य रस की प्रधानता रहती है; अतः लास्यांग का अल्प प्रयोग होता हैं। श्रृंगार रस का नियोजन न होने से इसमें कैशिकी वृत्ति नहीं रहती, केवल भारती वृत्ति व्यवहृत होती है। भाण की तरह इसमें केवल मुख तथा निर्वहस संधियाँ प्रयुक्त होती हैं। [दे० भाण] प्रहसन का एक अन्य भेद विकृत भी है, जिसमें नपुंसक, कंचुकी तथा तपस्वी कामुकों का वेष धारण कर उन्हीं के सदृश बातें करते प्रदर्शित किए जाते हैं।

भरत का मत—

भगवततापसविप्रैरन्यैरपि हास्यवादसंबद्धम्।
कापुरुषसंप्रयुक्तं परिहासाभाषणप्रायम्॥
अविकृतभाषाचारं विशेष भावोपन्नचरितपदम्।
नियतगतिवस्तुविषयं शुद्धं ज्ञेयं प्रहसनं तु॥
वेश्याचेटनपुंसकविटधूर्तबंधकी च यत्र स्युः।
अनिभृतवेषपरिच्छदचेष्टितकरणैस्तु संकीर्णम्॥
लोकोपचारयुक्ता या वार्त्ता यश्च दंभसंयोगः।
स प्रहसने प्रयोज्यो धूर्तंप्रविवादसंपन्नः॥
वीथ्यंगैः संयुक्तं कर्त्तव्यं प्रहसनं यथायोगम्।

—नाट्यशास्त्र, १८/१०३-१०७

प्रहसनस्यांकनियमानभिधानात् शुद्धमेकांकं संकीर्णं त्वनेकांकं वेश्यादिचरितसंख्याबलादिति केचित्। —अभिनवभारती, भाग-२, पृ० ४४६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धनंजय का मत—

तद्वत्प्रहसनं त्रेधा शुद्धवैकृतसंकरैः ।
पाखंडिविप्रप्रभृतिचेटचेटीविटाकुलम् ॥
चेष्टितं वेषभाषाभिः शुद्धं हास्यवचोन्वितम् ।
कामुकादिवचोवेषैः षंढकंचुकितापसैः ॥
विकृतं संकराद्वीथ्या संकीर्णं धूर्तसंकुलम् ।
रसस्तु भूयसा कार्यः षड्विधो हास्य एव तु ॥

—दशरूपक, ३/५४-५६

रामचंद्र का मत—

वैमुख्यकार्यं वीथ्यंगि ख्यातकौलीनदंभवत् ।
हास्यांगि भाणसंध्यंक वृत्ति प्रहसनं द्विधा ॥
निंद्यपाखंडि विप्रादेरश्लीलासभ्यवर्जितम् ।
परिहासवचःप्रायं शुद्धमेकस्य चेष्टितम् ॥
संकीर्णमुद्धताकल्प-भाषाचार-परिच्छदम् ।
बहूनां बंधकी-चेट-वेश्यादीनां विचेष्टितम् ॥

—नाट्यदर्पण, २/८३-८५

विश्वनाथ का मत—

भाणवत्संधिसंध्यंगलास्यांगांकैर्विनिर्मितम् ।
भवेत्प्रहसनंवृत्तं निंद्यानां कविकल्पितम् ॥
अत्र नारभटी, नापि विष्कंभकप्रवेशकौ ।
अंगी हास्यरसस्तत्र वीथ्यंकानां स्थितिर्न वा ॥
तपस्विभगवद्विप्रप्रभृतिष्वत्र नायकः ।
एको यत्र भवेद्धृष्टो हास्यं तच्छुद्धमुच्यते ।
आश्रित्य कंचन जनं संकीर्णमिति तद्विदुः ॥
वृत्तं बहूनां धृष्टानां संकीर्णं केचिदूचिरे ।
तत्पुनर्भवति द्व्यंकमथवैकांक निर्मितम् ॥
विकृतं तु विदुर्यत्र षंढकंचुकितापसः ।
भुजंगचारणभटप्रभृतेर्वेषवाग्युताः ॥

—साहित्यदर्पण, ३/२६४-२६८

शुद्ध प्रहसन का उदाहरण 'कंदर्प-केलि' तथा सकीर्ण का उदाहरण 'धूर्तचरित' है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रहेलिका—शब्दालंकार। प्रहेलिका अलंकार वहाँ होता है, जहां किसी बात को (किसी प्रकार) छिपाकर वर्णन किया जाय। प्रहेलिका का शाब्दिक अर्थ है पहेली या बुझौवल। [प्र+हिल्+इन्, प्रहेलि+कन्+टाप्=प्रहेलिका] इस अलंकार में किसी तथ्य को छिपाने के लिए पहेली बुझाई जाती है। इसे कूटप्रश्न भी कहा जाता है। विदग्ध मुख-मंडन में इसकी परिभाषा इस प्रकार है—

व्यक्तीकृत्य कमप्यर्थं स्वरूपार्थस्य गोपनात्।
यत्र बाह्यांतरावर्थो कथ्यते सा प्रहेलिका ॥

—आप्टे, संस्कृत-हिंदी-कोश, पृ० ६८३

आचार्यों ने इसे काव्यालंकार न मानकर गोष्ठियों का चमत्कार कहा है, जो मनोरंजन या मनोविनोद का साधन है। गोष्ठी में किसी को मूर्ख सिद्ध करने या चक्कर में डालने, क्रीड़ागोष्ठी के विनोद के निमित्त या गोपनीय तथ्य को छिपाकर रखने के लिए इस अलंकार का प्रयोग होता है। आचार्यों ने रस-बोध में बाधक मानकर इसकी अवहेलना की है तथा इसे 'रसपरिपंथी' कहा है। इसके प्रयोग से काव्य दुरूह या दुर्बोध हो जाता है।

इस अलंकार का प्रथम उल्लेख भामह ने 'काव्यालंकार' में किया है, तत्पश्चात् दंडी ने चित्रालंकार के अंतर्गत इसका विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया। रुद्रट, भोज, अग्निपुराणकार तथा विश्वनाथ ने भी इस अलंकार का वर्णन किया है। रीतिकालीन आचार्यों में केशव ने इसका विवेचन किया है। भामह ने बताया कि किसी रामशर्मा नामक व्यक्ति ने प्रहेलिका का वर्णन किया था। यमक अलंकार के एक प्रकार 'हेय यमक' में भामह ने इसका वर्णन किया है। इनके अनुसार जहां नाना प्रकार के अप्रसिद्ध धातु से उत्पन्न दुर्बोध शब्दों का व्यवहार किया जाय, वहाँ हेय यमक होता है और निकृष्ट यमक को ही प्रहेलिका कहते हैं। भामह इसे निकृष्ट वस्तु मानते हैं। इसके उदाहरण रामशर्मा-कृत 'अच्युतोदर' नामक काव्य में भरे पड़े हैं।

नानाधात्वर्थगंभीरा यमकव्यपदेशिनी।
प्रहेलिका सा ह्युदिता रामशर्माच्युतोदरे ॥
काव्यान्यपि यदीमानि व्याख्यागम्यानि शास्त्रवत्।
उत्सवः सुधियामेव हंत दुर्मेधसो हताः ॥

—काव्यालंकार, २/१९-२०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दंडी ने प्रहेलिका का विशद विवेचन करते हुए इसके अनेक प्रकारों का निरूपण किया और इसे स्वतंत्र अलंकार का पद प्रदान किया। प्रहेलिका अलंकार का परवर्ती विवेचन दंडी पर ही आधृत है। दंडी के अनुसार प्रहेलिका वहाँ होती है, जहाँ पदों में संधि हो जाने पर अभीष्ट अर्थ का बोध न हो सके और उसमें गूढ़ार्थता का समावेश हो जाय।

क्रीडागोष्ठी विनोदेषु तज्ज्ञै राकीर्णमंत्रणे।
परव्यामोहने चापि सोपयोगा प्रहेलिका ॥
आहुः समागतां नाम गूढार्था पदसंधिना।
वंचितान्यत्र रूढेन यत्र शब्देन वंचना ॥

—काव्यादर्श, ३/९७-९८

रुद्रट ने भामह तथा दंडी के ही समान मात्राच्युतक, बिंदुच्युतक, प्रहेलिका, कारकगूढ़, क्रियागूढ़ तथा प्रश्नोत्तर आदि को मनोरंजन का साधन मात्र कहा।

मात्राबिंदुच्युतके प्रहेलिका कारकक्रिया गूढे।
प्रश्नोत्तरादि चान्यत्क्रीडामात्रोपयोगमिदम् ॥

—काव्यालंकार, ५/२४

भोज ने दंडी के ही लक्षण को उद्धृत कर दिया है।

प्रहेलिका सकृत्प्रश्नः सापि षोडाच्युताक्षरा।
दत्ताक्षरोभयं मुष्टिबिंदुमत्यर्थवत्यपि ॥

—सरस्वतीकंठाभरण, २/१३३

विश्वनाथ का प्रहेलिका-वर्णन भोज से प्रभावित है। उन्होंने बताया कि प्रहेलिका में काव्य की आत्मा रस के बोध में विघ्न आ जाता है, इसलिए इसे अलंकार नहीं मानना चाहिए।

क्रीडागोष्ठी विनोदेषु तज्ज्ञै राकीर्णमंत्रणे।
परव्यामोहने चापि सोपयोगा प्रहेलिका ॥

—सरस्वतीकंठाभरण, २/१३४

रसस्य परिपंथित्वान्नालंकारः प्रहेलिका।
उक्तिवैचित्र्यमात्रं सा च्युतदत्ताक्षरादिका ॥

—साहित्यदर्पण, १०/१३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

केशवदास के अनुसार जब किसी प्रकार, किसी बात को छिपाकर वर्णन किया जाय तो प्रहेलिका अलंकार होगा।

बरनिय वस्तु दुराय जहं, कौन हु एक प्रकार।
तासों कहत प्रहेलिका, कविकुल बुद्धि उदार॥

—कविप्रिया, १३/३०

भेद—दंडी ने प्रहेलिका के प्रधान सोलह एवं चौदह गौण भेदों का निरूपण किया है—

१. **समागता प्रहेलिका**—जब पदों की संधि के कारण अभीष्ट अर्थ छिप जाय या गूढ़ हो जाय तो समागता प्रहेलिका होगी।

२. **वंचिता**—विवक्षितार्थ की प्रतीति होने पर भी प्रसिद्ध पद के द्वारा जब वंचना की जाय तो वहाँ वंचिता प्रहेलिका होगी।

३. **व्युत्क्रांता**—असंबद्ध पदों से व्यवहित संबद्ध पदों के द्वारा अर्थ-बोध में बाधा आने पर व्युत्क्रांता नामक भेद होता है।

४. **प्रभुषिता**—जिसके पदसमुदाय दुर्बोध हों तथा उनका अर्थ अत्यंत कठिनता के साथ ज्ञात हो सके तो प्रभुषिता प्रहेलिका होगी।

५. **समानरूपा**—गौण अर्थ में आरोपित पदों से युक्त एवं सादृश्यमूलक होने से समानरूपा प्रहेलिका होती है।

६. **परुषा**—शास्त्रीय सूत्रों से सिद्ध होने से अर्थ-बोध में कठिनाई का होना परुषा प्रहेलिका है।

७. **संख्याता**—वर्णगणना या संख्या-वाचक पदों (शब्दों) के प्रयोग से बुद्धि का भ्रमित हो जाना संख्याता है।

८. **परिकल्पिता**—जिस अर्थ का ज्ञान पहले हो जाय और अंत में उससे भिन्न अर्थ की प्रतीति हो तो परिकल्पिता होगी।

९. **नामांतरिता**—जब अनेकार्थक शब्दों के द्वारा नाम में अनेक अर्थों की कल्पना की जाय तो नानांतरिता होगी।

१०. **निभृतार्था**—इसमें प्रकृत तथा अप्रकृत साधारण धर्म प्रतिपादक शब्दों द्वारा प्रकृत अर्थ के गोपन का वर्णन किया जाता है।

११. **समानशब्दा**—प्रयुक्त शब्दों में पर्यायवाची शब्दों द्वारा प्रहेलिका के बन जाने में समानशब्दा नामक भेद होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१२. **संमूढा**—वाचक पदों के द्वारा अर्थ का निर्देश होने पर, अर्थ का बोध न हो एवं तब भी श्रोता मूढ़ हो जाय तो वहाँ संमूढ़ा प्रहेलिका होती है।

१३. **परिहारिका**—एक-एक रूढ़ अर्थ को बताने के लिए यौगिक शब्दों की माला का प्रयोग होने पर परिहारिका होगी।

१४. **एकच्छन्ना**—जब आधेय का स्पष्ट कथन किया जाय और आधार गुप्त रहे तो एकच्छन्ना प्रहेलिका होगी।

१५. **उभयच्छन्ना**—आश्रय एवं आश्रित जब दोनों ही गुप्त रहें तो उभयच्छन्ना प्रहेलिका होगी।

१६. **संकीर्णा**—एकाधिक प्रहेलिकाओं के लक्षणों का एक साथ दिखाई पड़ना संकीर्णा नामक भेद है।

इनके अतिरिक्त चौदह दुष्ट प्रहेलिकाओं का भी वर्णन किया गया है।

[दे० काव्यादर्श, ३/९८-१०७]

भोज ने प्रहेलिका के छह प्रकार माने हैं—च्युताक्षरा, दत्ताक्षरा, च्युतदत्ताक्षरा, अक्षरमुष्टिका, बिंदुमती तथा निर्भेद। इनके अतिरिक्त क्रियागुप्त, कारकगुप्त, संबंधगुप्त, पादगुप्त, अभिप्रायगुप्त तथा वस्तुगुप्त नामक अन्य छह भेद भी वर्णित हैं।

उदाहरण—

क. कूजंति कोकिलाः साले यौवने फुल्लमंबुजम्।
किं करोतु कुरंगाक्षी वदनेन निपीड़िता॥ —साहित्यदर्पण

साल पर कोकिलाएँ कूक रही हैं और यौवन में कमल खिले हैं। वदन से निपीड़ित यह मृगनयनी क्या करे? यहाँ 'रसाले' कहना चाहिए था, पर उसे छोड़कर 'साले' का व्यवहार किया गया। 'र' को छोड़ देने से यह उदाहरण च्युताक्षरा का हुआ।

ख. केसव ताके नाम के आखर कहिए दोय।
सूधे भूषन मित्र के उलटे दूषन होय॥ —कविप्रिया, १३/३५

इसमें कहा गया है कि एक ऐसा पदार्थ है, जिसमें दो अक्षर हैं। सीधा बाँचा जाय तो वह मित्र के लिए भूषण तथा उलटा पढ़ने पर मित्र का दूषण हो जाता है। इसका उत्तर राज है। सीधा पढ़ने पर यह मित्र के लिए सुखदायक तथा उलटा 'जरा' पढ़ने पर दुःखदायक हो जायगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्राकरणिक—अलंकारशास्त्र में उपमेय को प्राकरणिक कहते हैं।
[दे० उपमेय]

प्रागल्भ्य—नायिका का अयत्नज अलंकार। [दे० नायिका के अलंकार] निर्भयता का होना प्रागल्भ्य है।

प्राप्त्याशा—नाटकीय कथावस्तु के विकास की तृतीय अवस्था।
[दे० कार्यावस्था]

प्रायोजनिक—कवि का एक प्रकार। यह भेद काव्योपासनामूलक है। जो कवि किसी विशेष प्रयोजन के कारण काव्य की रचना करे, उसे प्रायोजनिक कहते हैं। [दे० कवि] यह विशेष अवसर पर काव्य-सृष्टि कर अपने लक्ष्य की पूर्त्ति करता है।

प्रासंगिक—कथावस्तु या कथानक (वस्तु) का एक भेद। जो कथा नाटक या काव्य में अंग-रूप से या गौण रूप से उपनिबद्ध होती है, उसे प्रासंगिक कथा कहते हैं। यह कथा आधिकारिक कथा या मुख्य कथा [दे० आधिकारिक] के अंग रूप में या उपकथा के रूप में निबद्ध की जाती है। इसका उद्देश्य मुख्य कथा को गति देना होता है। उदाहरण के लिए 'रामायण' में विभीषण एवं सुग्रीव का वृत्तांत गौण या प्रासंगिक कथा है, जो प्रसंगवश आकर राम एवं सीता की कथा को गति देता है। प्रासंगिक वृत्त का संबंध गौण फल (उद्देश्य) से होता है एवं मुख्य वृत्त का मुख्य फल से। यह कथा आधिकारिक कथा के प्रयोजन के लिए होती है और प्रसंगवश इसका भी उद्देश्य सिद्ध होता है। उदाहरण के लिए सुग्रीव की कथा में बालि-वध एवं राज्यप्राप्ति—दो प्रयोजनों की सिद्धि होती है।

प्रासंगिकं परार्थस्य स्वार्थो यस्य प्रसंगतः।

—दशरूपक, १/१३

तत्राधिकारिकं मुख्यमंगं प्रासंगिकं विदुः॥

—वही, १/११

प्रासंगिक कथा के दो भेद हैं—पताका और प्रकरी। जो कथा दूर तक चलती है उसे पताका [दे० पताका] एवं जो एक ही प्रदेश तक चले, उसे प्रकरी कहते हैं। [दे० प्रकरी]

प्रेंखण—[दे० प्रेंखण]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रेक्षक—नाटक में प्रेक्षक का अर्थ दर्शक है। जो नाटक को देखकर उसका रसास्वादन करे, उसे प्रेक्षक कहते हैं।

प्रेक्ष्य—भोज-वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध शब्दालंकार। जब वस्तुएँ वचन द्वारा प्रस्तुत न होकर केवल देखी जाएँ तो वहाँ प्रेक्ष्य अलंकार होता है। इसके भेद हैं—लास्य, तांडव, छलिका, संपा, हल्लीसक।

> यदांगिकैकनिर्वर्त्यमुज्झितं वाचिकादिभिः।
> नर्त्तकैरभिधीयेत प्रेक्षणाक्ष्वेडिकादि तत्॥
>
> —सरस्वतीकंठाभरण, २/१४२

प्रेमगर्विता—वक्रोक्तिगर्विता या गर्विता नायिका का एक भेद।

[दे० वक्रोक्तिगर्विता]

प्रेमालंकार—अलंकार का एक प्रकार। इसके उद्भावक आचार्य केशवदास हैं। जब कपटरहित मनोभाव का वर्णन किया जाय तो प्रेमालंकार होगा।

> कपट निपट मिटि जाय जहं उपजै पूरण क्षेम।
> ताही सों सब कहत हैं, केशव उत्तम प्रेम॥
>
> —कविप्रिया, ११/२७

प्रेयस्—एक प्रकार का अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। इसका प्रथम संकेत भामहकृत 'काव्यालंकार' में है। वहाँ प्रेयस् का लक्षण न देकर केवल उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। दंडी इसकी परिभाषा इस प्रकार देते हैं—जब प्रियतर आख्यान का कथन किया जाय तो प्रेयस् अलंकार होगा।

> प्रेयो गृहागतं कृष्णमवादीद्विदुरो यथा।
> अद्य या मम गोविंद जाता त्वयि गृहागते॥
>
> —काव्यालंकार, ३/५

> प्रेयः प्रियतराख्यानं रसवत् रसपेशलम्।
> ऊर्जस्वि रूढाहंकारयुक्तोत्कर्षं च तत् त्रयम्॥
>
> —काव्यादर्श, २/७५

उद्भट ने बताया कि जब एक भाव अन्य भाव का अंग हो जाय तो वहाँ प्रेयस् अलंकार होगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रत्यादिकानां भावानामनुभावादि सूचनैः ।
यत्काव्यं बध्यते सद्भिस्तत्प्रेयस्वदुदाहृतम् ।।

—काव्यालंकारसारसंग्रह, ४/२

रीतिकालीन आचार्य पद्माकर का लक्षण इसी प्रकार का है।

भाव अंग रस-भाव को जहं, तहं प्रेयस ठान ।।

—पद्माभरण, २६०

प्रेंखण—उपरूपक का एक भेद। [दे० उपरूपक] इसमें एक अंक होता है और नीच प्रकृति का नायक चित्रित किया जाता है। गर्भ तथा विमर्श के अतिरिक्त अन्य तीन संधियों की योजना की जाती है। इसमें सूत्रधार, विष्कंभक और प्रवेशक नहीं होते तथा नांदी एवं प्ररोचना को नेपथ्य से पढ़ा जाता है। इसमें द्वंद्वयुद्ध तथा संफेट (सरोष भाषण) आवश्यक होते हैं और सभी वृत्तियों का प्रयोग किया जाता है। इसका उदाहरण 'बालिवध' है।

गर्भविमर्शरहितं प्रेंखणं हीननायकम् ।
असूत्रधारमेकांगमविष्कंभप्रवेशकम् ।।
नियुद्धसंफेटयुतं सर्ववृत्तिसमाश्रितम् ।
नेपथ्ये गीयते नांदी तथा तत्र प्ररोचना ।।

—साहित्यदर्पण, ६/२८६-२८७

प्रोषितपतिका—अवस्थानुसार नायिका का भेद। [दे० नायिका भेद] (प्रिय के देशांतर गमन से खिन्न रहनेवाली नायिका) जिसका पति या प्रिय परदेश चला गया हो, उसे प्रोषितपतिका कहते हैं। इसके अन्य नाम हैं—प्रोषितप्रेयसी, प्रोषितप्रिया एवं प्रोषितभर्तृका। प्रोषित का अर्थ है परदेश या विदेश में रहनेवाला। पति के दूरदेश जाने के कारण प्रोषितपतिका, मिलन के अभाव में, विरहदुःख से कातर या विकल रहा करती है। इसका सर्वप्रथम विवेचन भरत मुनि ने किया है। उनके अनुसार नानाविध कार्यों में व्यस्त रहने के कारण जिसका प्रिय (पति) विदेश या परदेश में रहे और उसकी पत्नी विरह से उदास होकर जीवन व्यतीत करे, उसे प्रोषितभर्तृका कहते हैं।

नानाकार्याणि संधाय यस्या वै प्रोषितः प्रियः ।
सा रूढालककेशांता भवेत् प्रोषितभर्तृका ।।

—नाट्यशास्त्र, २२/२१६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रुद्रट ने प्रोषितपतिका की तीन स्थितियों का उल्लेख किया है—

क. जिसका पति निश्चित या अनिश्चित अवधि के लिए विदेश चला जाए।

ख. जो विदेश जानेवाला हो, जा रहा हो।

ग. जो विदेश से आ रहा हो।

सा स्यात्प्रोषितपतिका यस्या देशांतरं पतिर्यातः।
नियतानियतावधिको यास्यति यात्येत्युपैष्यति च ॥

—काव्यालंकार, १२/४६

धनंजय ने बताया कि जिस नायिका का प्रिय किसी कार्यवश दूर देश चला गया हो, उसे प्रोषितप्रिया कहते हैं।

दूरदेशांतरस्थे तु कार्यतः प्रोषितप्रिया ॥ —दशरूपक, /२७

विश्वनाथ के मत से अनेक कार्यवश जिसका पति दूर देश चला जाए तो वह कामपीड़िता नायिका प्रोषितपतिका होगी।

नानाकार्यवशाद्यस्या दूरदेशं गतः पतिः।
सा मनोभवदुःखार्ता भवेत्प्रोषितभर्तृका ॥

—साहित्यदर्पण, ३/८४

भानुदत्त के अनुसार जिसका प्रिय किसी कारण से देशांतर (परदेश) चला गया हो और उसके विरह-संताप से जो व्याकुल हो, उसे प्रोषितभर्तृका कहते हैं। इसे विरहिणी या पथिकवनिता भी कहते हैं। [प्रोषितः देशांतरं गतः भर्ता कांतः यस्याः सा प्रोषितभर्तृका]

देशांतरगते प्रेयसि संतापव्याकुला प्रोषितभर्तृका ॥

—रसमंजरी, पृ० ९४

इन्होंने इसे मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा, परकीया और सामान्या के रूप में प्रदर्शित किया है।

रीतिकाल में प्रोषितपतिका के तीन भेद—भूत, भावी और वर्तमान के आधार पर किए गए।

क. जिसका पति (प्रिय) परदेश गया हो, वह भूतप्रोषितपतिका है।

ख. जिसका प्रिय या पति विदेश जानेवाला हो, वह भावी प्रोषितपतिका या प्रवत्स्यत्प्रेयसी है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ग. जिसका प्रिय विदेश जा रहा हो, वह वर्तमान प्रोषितपतिका या प्रवसत्पतिका है।

इसके एक अन्य भेद आगतपतिका का भी निर्देश किया गया है, जिसे प्रिय के देशांतरागमन का आभास हो जाय या जिसका प्रिय आ जाय।

चिंतामणि ने इसके तीन भेदों का उल्लेख किया है—प्रवत्स्यत्पतिका, प्रवसत्पतिका एवं प्रोषितपतिका।

—कविकुलकल्पतरु, ५/२/१८८

मतिराम का कहना है कि प्रिय के परदेश में रहने के कारण जो नायिका विरह में व्याकुल हो, उसे प्रोषितपतिका कहते हैं।

जाको पिय परदेस में बिरह बिकल तिय होय।
प्रोषितपतिका नायका ताहि कहत सब कोय॥

—रसराज, १११

मतिराम, पद्माकर प्रभृति रीतिकालीन आचार्य भानुदत्त से प्रभावित होकर प्रोषितपतिका का विवेचन स्वतंत्र नायिका के रूप में करते हैं।

पिय जाको परदेस में, प्रोषितपतिका सोइ।
उदित उदीपन तें जु तन, संतापित अति होइ॥

—जगद्विनोद, १४३

दास ने प्रोषितपतिका के चार उपभेदों का उल्लेखन किया है—प्रवत्स्यत्प्रेयसी, प्रोषितपतिका, आगच्छत्पतिका तथा आगतपतिका।

कहिए प्रोषितभर्तृका पति परदेसी जानि।
चलत रहत आवत मिलत चारि भेद उनमानि॥
प्रथम प्रबत्स्यतप्रेयसी प्रोषितपतिका फेरि।
आगच्छतपतिका बहुरि आगतपतिका हेरि॥

—शृंगारनिर्णय, १९७-१९८

उदाहरण—

क. मेघदूत से—

तां जानीथाः परिमित कथां जीवितं मे द्वितीयं
दूरीभूते मयि सहचरे चक्रवाकीमिवैकाम्।
गाढोत्कंठां गुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सु बालां
जातां मन्ये शिशिरमथितां पद्मिनीं वान्यरूपाम्॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"हे मेघ ! उस अल्पभाषिणी को मेरा प्राणाधार समझना। मैं उसका सहचर आजकल उससे दूर हो गया हूँ; अतः वह चक्रवाकी की तरह व्याकुल होगी। विरह के कारण आजकल लंबे होनेवाले इन दिनों में प्रगाढ़ उत्कंठा से दुःखित कोमलांगी उस बाला को शिशिर ऋतु के पाले और ठंडी हवा से व्यथित कमलिनी की भाँति कुछ और ही प्रकार की हो गई मानता हूँ।"

ख. प्रोषितपतिका—

बहू दूबरी होत क्यों, यौं जब बूझ्यौ सास।
ऊतर कढ्यौ न बाल-मुख, ऊँचे लेत उसास॥

प्रवत्स्यत्पतिका—

क्यों सहिहै सुकुमारि वह, पहिलो बिरहु गुपाल।
जब वाके चितहित भयो, चलन लगे तब लाल॥

प्रवसत्पतिका—

लागि गरे तें बाल के, निकसे ज्यों ब्रजराज।
त्यों मोतिन सों कँ दियो, नैनन मारग साज॥

आगतपतिका—

बिछुरि मिले पिय तीय कों, निरखति सुमुखि सरूप।
कछु उराहनो देन कों, फरकत अधर अनूप॥

प्रोषितप्रिया—नायिका का एक भेद। जिसका पति परदेश (दूर देश) में हो, उसे प्रोषितप्रिया कहते हैं। इसके अन्य नाम हैं—प्रोषितप्रेयसी, प्रोषितपतिका एवं प्रोषितभर्तृका। [दे० **प्रोषितपतिका**]

प्रोषितप्रेयसी—नायिका का एक भेद। जिसका पति परदेश में हो, उसे प्रोषितप्रेयसी कहते हैं। [दे० **नायिकाभेद**]

प्रोषितभर्तृका—नायिका का एक भेद-विशेष। जिसका पति दूर देश चला गया हो, उसे प्रोषितभर्तृका कहते हैं। इसका अन्य नाम प्रोषितपतिका भी है। [दे० **प्रोषितपतिका**]

प्रौढ़ा—एक प्रकार की वृत्ति, जिसका वर्णन आचार्य रुद्रट ने किया है। उन्होंने इसे अनुप्रास का एक भेद माना है। [दे० **अनुप्रास**]

प्रौढ़ा वृत्ति में टवर्ग एवं वर्गों के अंतिम वर्ण (ङ, ञ, ण, न, म) नहीं प्रयुक्त होते तथा शेष वर्णों के ऊपर रेफ रहता है और त, क तथा प के साथ संयुक्त होता है। जैसे, गुप्त, युक्त आदि।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अंत्यटवर्गान्मुक्त्वा वर्ग्ययणा उपरि रेफ संयुक्ताः ।
कपयुक्तश्च तकारः प्रौढाया कस्तयुक्तश्च ॥
—काव्यालंकार, २/२४

प्रौढ़ा—स्वकीया नायिका का एक भेद । [दे० स्वकीया] जो नायिका सकल काम-कला में प्रवीण हो, उसे प्रौढ़ा कहते हैं । इसे रतिक्रीड़ा का पूर्ण अनुभव रहता है । इसका अन्य नाम प्रगल्भा है । [दे० प्रगल्भा] इसके दो भेद हैं— रतिप्रीता और आनंदसंमोहिता ।

ललित लाज कछु मदन बहु, सकल केलि की खानि ।
प्रौढ़ा ताही सों कहत, सुकबिन की मति मानि ॥
—जगद्विनोद, ४५

उदाहरण—

लपटानी अति प्रेम सों दै उर उरज उतंग ।
घरी एक लौं छुटेहु पर रही लगी-सी अंग ॥
—रसराज, ३५

मान की स्थिति में इसके तीन भेद हो जाते हैं—प्रौढ़ा धीरा, प्रौढ़ा अधीरा तथा प्रौढ़ा धीराधीरा । [दे० धीरा, अधीरा, तथा धीराधीरा]

प्रौढ़ा अधीरा—स्वकीया नायिका का एक भेद । [दे० अधीरा]

प्रौढ़ाधीरा—स्वकीया नायिका का एक भेद । [दे० प्रौढ़ा तथा धीरा]

प्रौढ़ाधीराधीरा—स्वकीया नायिका का एक भेद । [दे० धीराधीरा]

प्रौढ़ोक्ति—एक गौण अलंकार । जो उत्कर्ष का (किसी वस्तु के) हेतु न हो, उसे ही उसका कारण कल्पित करने में प्रौढ़ोक्ति अलंकार होता है । प्रौढ़ोक्ति का अर्थ है प्रौढ़ या प्रवृद्ध (बढ़ी हुई) कथन (उक्ति) । इस अलंकार में उत्कर्ष के अहेतु को उसका कारण मानना स्वतः एक प्रौढ़ उक्ति या कथन है । यह अतिशयमूलक अलंकार है अर्थात् इसमें अतिशयता का भाव प्रबल रहता है । इसमें किसी पदार्थ में जितनी कार्यक्षमता नहीं होती, उससे अधिक क्रिया-कारिता की कल्पना करना कवि का लक्ष्य होता है ।

प्रौढ़ोक्ति अलंकार के जनक जयदेव हैं, तत्पश्चात् अप्पय दीक्षित तथा पंडितराज ने इसका वर्णन किया । जयदेव ने इसकी परिभाषा में बताया कि किसी कार्य की सिद्धि में अयोग्य पदार्थ को उस कार्य के योग्य सिद्ध करने में प्रौढ़ोक्ति अलंकार होगा ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रौढ़ोक्तिस्तदशक्तस्य तच्छक्तत्वावकल्पनम् ॥

—चंद्रालोक, ५/४७

दीक्षित का लक्षण इससे भिन्न है। इनके अनुसार किसी के उत्कर्ष के अहेतु को उसका कारण मानना प्रौढ़ोक्ति है।

प्रौढ़ोक्तिरुत्कर्षाहेतौ तद्धेतुत्वप्रकल्पनम् ॥

—कुवलयानंद, १२५

पंडितराज के अनुसार किसी पदार्थ में किसी धर्म के कारण, अतिशय के प्रतिपादन की इच्छा से, जिसमें वह धर्म प्रसिद्ध है उसके साथ इस पदार्थ के संसर्ग का उद्‌भावन (उत्पन्न करना) प्रौढ़ोक्ति है।

कार्यातिशयाहेतौ तद्धेतुत्व प्रकल्पनं प्रौढोक्तिः। कस्मिंश्चिदर्थे किंचिद्धर्मकृतातिशयप्रतिपादयिषयाप्रसिद्धतद्धर्मवता संसर्गस्योद्भावनं प्रौढोक्तिः।

—रसगंगाधर, पृ० ६७१

रीतिकालीन आचार्य जसवंत सिंह, मतिराम, भूषण एवं पद्माकर ने 'कुवलयानंद' के आधार पर प्रौढ़ोक्ति अलंकार का निरूपण किया।

प्रौढ़ोकति बर्नन बिषै अधिकाई अधिकार ॥

—भाषाभूषण, १५३

जो अहेतु उत्कर्ष को ताहि बखानत हेत।
प्रौढ़ोकति तासों कहत, जे कबि सुमति सचेत॥

—ललितललाम, २९४

जहिं उतकरष अहेत कों बरनत हैं करि हेत।
प्रौढ़ उक्ति तासों कहत भूषण कबि करि नेत॥

—शिवराजभूषण, २४४

जु न कारन उतकर्ष को कियो सु कलिपत हेतु।
पद्माकर कबि कहत इमि प्रौढ़ोकति है चेतु॥

—पद्माभरण, २११

उदाहरण—

क. कचाः कलिंदजातीरतमालस्तोममेचकाः ॥

—कुवलयानंद, १२५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नायिका के केश यमुना-तट पर उत्पन्न तमाल वृक्षों के समान नीले हैं। यहाँ कमलों की नीलता का हेतु यमुना के तीर पर उत्पन्न होना कल्पित किया गया है।

ख. केस अमावस रैनि घन सघन तिमिर के तार॥

यहाँ नायिका के केश को निबिड़ अंधकार का तार कहकर कवि केशों की कालिमा के उत्कर्ष की सिद्धि के लिए अहेतु की कल्पना करता है।

फ

फललक्षणा—प्रयोजनवती लक्षणा का अन्य नाम। [दे० **प्रयोजनवती-लक्षणा**]

फलागम—नाटकीय कथावस्तु के विकास की पंचम अवस्था। [दे० **कार्यावस्था**]

ब

बदरपाक—आदि में नीरस एवं अंत में रसयुक्त रचना को बदरपाक कहते हैं। बदर का अर्थ बैर (फल) है। यह काव्य बैर की तरह प्रारंभ में नीरस एवं अंत में मध्यम कोटि का होता है। [दे० **काव्यपाक**]

आदावस्वादु परिणामे मध्यमं बदरपाकम्।

—काव्यमीमांसा, अध्याय, ५ पृ० ५३

बहिर्लापिका—चित्रालंकार का एक भेद। [दे० **चित्रालंकार**] जब छंदों में दिए गए प्रश्नों के उत्तर बाहर से दिए जाएँ या निश्चित किए जाएँ तो बहिर्लापिका होगी।

बाणवासिका—भोज-वर्णित वृत्त्यनुप्रास का एक भेद। [दे० **अनुप्रास**] जब किसी रचना में पवर्ग की आवृत्ति हो तो बाणवासिका वृत्ति होगी।

—सरस्वतीकंठाभरण, पृ० २३६-३८

ब्राह्मणश्रमणन्याय—[दे० **अलंकार्य और अलंकार**]

बिंदु—[दे० **अर्थप्रकृति**]

बिंदुच्युतक—चित्रालंकार का एक भेद। [दे० **चित्रालंकार**] जब किसी श्लोक या पद्य में निहित अनुस्वार को हटा देने से उसका अर्थ बदल जाय तो बिंदुच्युतक होगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बिंदुमती—चित्रालंकार का एक भेद। [दे० **चित्रालंकार**] जब किसी श्लोक या पद्य में से सभी अक्षरों को हटाकर केवल बिंदु को रख दिया जाय और कवि पुनः हटाए गए अक्षरों की पूर्ति करे तो बिंदुमती नामक भेद होगा। इसमें बिंदुओं के स्थान पर कवि को उन्हीं अक्षरों की पूर्त्ति करनी पड़ती है, जो हटाए गए हैं।

बिब्बोक—नायिका के स्वभावज अलकार का एक भेद। [दे० **नायिका के अलंकार**] सौभाग्य तथा गर्व के कारण प्रिय पदार्थ के प्रति अनादर का भाव दिखलाना बिब्बोक है।

बिंबप्रतिबिंबभाव—[दे० **दृष्टांत**]

बीज—[दे० **अर्थ प्रकृति**]।

बीभत्स रस—घृणित या घृणोत्पादक पदार्थों के दर्शन या श्रवण से बीभत्स रस उत्पन्न होता है। भरत ने इसका वर्णन करते हुए बताया कि बीभत्स रस जुगुप्सा स्थायी भावात्मक होता है। यह अहृद्य, अपवित्र, अप्रिय एवं अनिष्ट के दर्शन, श्रवण और परिकीर्त्तन आदि विभावों से उत्पन्न होता है। इसका अभिनय सभी अंगों को सिकोड़ने, मुख को संकुचित करने, वमन करने, थूकने तथा शरीर के अंगों को हिलाने आदि अनुभावों द्वारा होता है। इसके व्यभिचारी या संचारी भाव हैं—अपस्मार, उद्वेग, आवेग, मोह, व्याधि मरण आदि। बीभत्स का स्थायी भाव जुगुप्सा है।

अथ बीभत्सो नाम जुगुप्सास्थायिभावात्मकः। स चाहृद्याप्रियाचोष्यानिष्ट-श्रवणदर्शनकीर्तनादिभिर्विभावैरुत्पद्यते। तस्य सर्वांगसंहारमुखविकूणनोल्लेखन-निष्ठीवनोद्वेजनादिभिरनुभावैरभिनयः प्रयोक्तव्यः। भावाश्चास्यापस्मारोद्वेगा-वेगमोहव्याधिमरणादयः।

—नाट्यशास्त्र, ७/७३

बीभत्स रस का रंग नीला है और महाकाल देवता हैं। दुर्गंधयुक्त मांस, रुधिर, चर्बी आदि इसके आलंबन हैं।

जुगुप्सा स्थायिभावस्तु बीभत्सः कथ्यते रसः।
नीलवर्णो महाकालदैवतोऽयमुदाहृतः॥
दुर्गंधमांसरुधिरमेवांस्यालंबनं मतम्।
तत्रैव क्रमिपाताद्यमुद्दीपनमुदाहृतम्॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निष्ठीवनास्यवलननेत्रसंकोचनादयः ।
अनुभावास्तत्र मतास्तथा स्युर्व्यभिचारिणः ।।
मोहोऽपस्मार आवेगो व्याधिश्च मरणादयः ।

—साहित्यदर्पण, ३/२३९-२४२

भरत बीभत्स रस के दो भेदों का उल्लेख करते हैं—क्षोभज (शुद्ध) तथा उद्वेगी (अशुद्ध) । रुधिरादि से जिसकी उत्पत्ति हो, उसे क्षोभज कहते हैं और विष्ठा एवं कृमि से उत्पन्न बीभत्स को उद्वेगी कहा जाता है ।

बीभत्सः क्षोभजः शुद्ध उद्वेगी स्याद् द्वितीयकः ।
विष्ठाकृमिभिरुद्वेगी क्षोभजो रुधिरादिजः ।।

—नाट्यशास्त्र, ७/८१

धनंजय के अनुसार सुंदरी के जघन, स्तन आदि के प्रति वैराग्य के कारण उत्पन्न घृणा शुद्ध बीभत्स है ।

वैराग्याज्घनस्तनादिषु घृणा शुद्धोऽनुभावैर्वृतो ।

—दशरूपक, ४/७३

बीभत्स रस में केवल श्मशान, शव, रक्त, मांस या सड़े-गले पदार्थों का ही वर्णन नहीं किया जाता, वरन् ऐसी वस्तुएँ भी इसके अंतर्गत आ जाती हैं, जिनके प्रति मन में अरुचि, हिचक या घृणा का भाव हो ।

उदाहरण—

क. नखैर्विदारितांत्राणां, शवानां पूयशोणितम् ।
आननेष्वनुलिप्यंति, हृष्टा वेतालयोषितः ।।

"हर्षित होकर वेतालों की स्त्रियाँ मृतक की अँतड़ियों को विदीर्ण कर रुधिर तथा मवाद का मुँह में लेप कर रही हैं ।" यहाँ स्थायी भाव जुगुप्सा है और आलंबन शव, उद्दीपन हैं—अँतड़ियों को फाड़ना रुधिर और पीब को मुँह में लगाना । अनुभाव हैं रोमांच तथा दृष्टि-निकोच (आक्षेप से) ।

ख. सिर पर बैठ्यो काग आँख दोउ खात निकारत,
खींचत जीभहिं स्यार अतिहि आनँद उर धारत ।
गिद्ध जाँघ को खोदि-खोदि कै मांस उपारत,
स्वान आँगुरिन काटि-काटि कै खात बिदारत ।।
बहु चील नोचि लै जात तुच मोद भर्‌यो सबको हियौ ।
मनु ब्रह्म भोज जिजमान कोउ आज भिखारिन कहँ दियौ ।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आलंबन—श्मशान का दृश्य। स्थायी भाव—जुगुप्सा। उद्दीपन—काक आदि का अंग खींचना। संचारी—मोह, स्मृति। अनुभाव—इन दृश्यों को देखकर राजा हरिश्चद्र का इनका वर्णन करना।

बृहत्कथा—गद्य काव्य का एक भेद। [दे० गद्य]

बोधव्यवैशिष्ट्योत्पन्नवाच्यसंभवा—आर्थीव्यंजना का द्वितीय भेद। [दे० आर्थीव्यंजना]

ब्याजस्तुति—अर्थालंकार का एक भेद। जब निंदा के बहाने स्तुति अथवा स्तुति के बहाने निंदा का वर्णन हो तो ब्याजस्तुति अलंकार होता है। ब्याजस्तुति का अर्थ है बहाने (ब्याज) से स्तुति (प्रशंसा)। इसका अर्थ कपटपूर्ण स्तुति भी है या अवास्तविक स्तुति। इसमें दो तत्त्व प्रधान होते हैं—स्तुतिपर्यवसायिनी निंदा तथा निंदामुखेनस्तुति। ब्याजस्तुति में आपाततः निंदा का भाव व्यक्त होता है एवं उसका पर्यवसान स्तुति में होता है। निंदा तथा स्तुति के मिस तद्विपरीत के प्रतिपादन में इस अलंकार का चमत्कार निहित है।

मुखे निंदावगतौ यत्स्तुतौ पर्यवसानं स्तुतेर्वा मुखेऽवगमो निंदायां पर्यवसानं तद्व्याजस्तुतिपदवाच्यम् ॥ —काव्यप्रकाश, पृ० ५२२

इस अलंकार का प्रथम विवेचन भामह ने किया, तत्पश्चात् रुद्रट के अतिरिक्त सभी आलंकारिकों ने इसे स्थान दिया। भरत ने 'नाट्यशास्त्र' में ३६ आभूषणों के अंतर्गत 'ग्रहणा' नामक आभूषण का उल्लेख किया है, जिसमें गुणातिपात अथवा दोषातिपात के कारण दोष का संकीर्त्तन होने तथा उससे गुण का प्रदर्शन होने का वर्णन है। यहाँ किसी की स्तुति से निंदा की व्यंजना होना वर्णित है और यही लक्षण ब्याजस्तुति अलंकार का स्रोत है।

यत्र संकीर्तयन् दोषं गुणमर्थेन दर्शयेत्।
गुणातिपाताद् दोषाद्वा गर्हणं नाम तद्भवेत् ॥

—नाट्यशास्त्र, १६/३१

भामह ने अत्यधिक गुणशाली की प्रशंसा करते हुए अन्य व्यक्ति की निंदा करने को ब्याजस्तुति कहा है।

ये निंदा के बहाने की जानेवाली स्तुति में ही इस अलंकार का अस्तित्व मानते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दूराधिक गुणस्तोत्रव्यपदेशेन तुल्यताम् ।
किंचिद्विधित्सोर्या निंदाव्याजस्तुतिरसौ यथा ।।

—काव्यालंकार, ३/३१

दंडी ने व्याजस्तुति में 'श्लेषानुविद्धता' का समावेश कर नया विचार दिया। इन्होंने बताया कि श्लेष के कारण ही इस अलंकार में अधिक चमत्काराधान संभव है। इनके अनुसार निंदा की स्थिति में स्तुति की प्रतीति होने में व्याजस्तुति होती है। इस अलंकार में गुण का इस प्रकार कथन होता है कि वे दोष के समान ज्ञात होते हैं।

यदि निंदन्निवस्तौति व्याजस्तुतिरसौ स्मृता ।
शेषा भाषा गुणा एव लभंते ह्यत्र सन्निधिम् ।।
श्लेषानुविद्धानामन्येषांचोपलक्ष्यताम् ।
व्याजस्तुतिप्रकाराणामपर्यंतस्तु विस्तरः ।।

—काव्यादर्श, २/३४३-३४६

उद्‌भट के लक्षण में अन्य सभी तथ्य तो भामह के ही समाविष्ट किए गए; पर शब्दशक्ति का उल्लेख नवीनता का सूचक है। इन्होंने बताया कि शब्दों की अभिधाशक्ति से जहाँ निंदा की प्रतीति हो, पर उससे निकलनेवाले वाच्यार्थ में स्तुति का प्राधान्य हो तो व्याजस्तुति होगी।

शब्दशक्तिस्वभावेन यत्र निंदेव गम्यते ।
वस्तुतस्तु स्तुतिः श्रेष्ठा व्याजस्तुतिरसौ मता ।।

—काव्यालंकारसारसंग्रह, ५/९

वामन ने बताया कि किसी विशिष्ट पुरुष के द्वारा करने योग्य कार्य के न करने पर स्तुति के लिए जो निंदा की जाती है, उसे व्याजस्तुति कहते हैं।

संभाव्यविशिष्टकर्माकरणान्निदास्तोत्रार्था व्याजस्तुतिः। [अत्यंतगुणाधिको विशिष्टः तस्य च कर्म विशिष्टकर्म, तस्य संभाव्यस्य कर्तुं शक्यस्याकरणान्निदा विशिष्टसाम्यसंपादनेन स्तोत्रार्थं व्याजस्तुतिः—काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, ४,३,२४

मम्मट ने इसके दो भेदों का उल्लेख करते हुए बताया कि इसमें न केवल स्तुतिपर्यंवसायिनी निंदा का ही प्राधान्य होता है, अपितु निंदा पर्यंवसायिनी स्तुति भी कवि के लिए मान्य है।

व्याजस्तुतिर्मुखे निंदा स्तुतिर्वा रूढिरन्यथा ।।

—काव्यप्रकाश, १०।११२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मम्मट के पूर्व भोज ने व्याजस्तुति का वर्णन उभयालंकार के अंतर्गत करते हुए इसे लेश से अभिन्न स्वीकार किया। भोज ने निंदा से स्तुति तथा स्तुति से निंदा के वर्णन में व्याजस्तुति माना।

दोषस्य यो गुणीभावो दोषीभावो गुणस्य यः।
स लेशः स्यात्ततोनान्या व्याजस्तुतिरपीष्यते ॥

—सरस्वतीकंठाभरण, ४/५६

परवर्ती आचार्यों ने मम्मट के ही लक्षण को अपना आधार बनाकर इस अलंकार का विवेचन किया, फलतः इसके (मम्मटोत्तर) निरूपण में एकरूपता बनी रही।

रुय्यक ने कहा कि स्तुति से निंदा अथवा निंदा से स्तुतिपरक अर्थ की व्यंजना में व्याजस्तुति होती है।

स्तुतिनिंदाभ्यां निंदास्तुत्योर्गम्यत्वे व्याजस्तुतिः।

—अलंकारसर्वस्व, पृ० १४२

जयदेव, विश्वनाथ, दीक्षित, पंडितराज तथा विश्वेश्वर पंडित के लक्षण पर मम्मट की छाप है।

उक्तिर्व्याजस्तुतिर्निंदास्तुतिभ्यां स्तुतिनिंदयोः ॥

—चंद्रालोक, ५/७१

उक्ता व्याजस्तुतिः पुनः
निंदास्तुतिभ्यां वाच्याभ्यां गम्यत्वे स्तुतिनिंदयोः ॥

—साहित्यदर्पण, १०/६०

यत्र प्रक्रांतायां स्तुतौ कथंचित् प्रतीयते निंदा।
निंदायां स्तुतिरथवा सेयं व्याजस्तुतिर्द्विधा ॥

—एकावली, ८/३०

दीक्षित ने व्याजस्तुति की परिभाषा तो जयदेव की ग्रहण की; पर इसके पांच प्रकारों का वर्णन कर नवीन तथ्य प्रस्तुत किया। इन्होंने 'व्याजनिंदा' नामक एक स्वतंत्र अलंकार का भी निरूपण किया, जिसमें एक व्यक्ति की निंदा से अन्य व्यक्ति की निंदा की व्यंजना होती है। दीक्षित-वर्णित इसके पांच भेद इस प्रकार हैं—

क. एकविषयक निंदा से स्तुति की व्यंजना,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ख. एकविषयक निंदा से निंदा की व्यंजना,

ग. भिन्नविषयक निंदा से स्तुति की व्यंजना,

घ. भिन्नविषयक स्तुति से निंदा की व्यंजना और

ङ. भिन्नविषयक स्तुति से स्तुति की व्यजना ।

उक्तिर्व्याजस्तुतिनिंदास्तुतिभ्यां स्तुतिनिंदयोः ।
निंदयानिंदयाव्यक्तिर्व्याजनिंदेति गीयते ॥

—कुवलयानंद, ७०/७२

पंडितराज ने दीक्षित-कृत उपर्युक्त पाँच प्रकारों का खंडन कर कहा कि इनका (भेदों का) अंतर्भाव व्यंग्य में हो जाता है ।

आमुखप्रतीताभ्यांनिंदास्तुतिभ्यांस्तुतिनिंदयोः क्रमेण पर्यवसानं व्याजस्तुतिः ।

—रसगंगाधर, पृ० ५५७

व्याजस्तुतिर्विपर्ययपर्यवसानेऽस्तुतिस्तुत्योः ।
व्याजेनस्तुतिर्व्याजरूपा वा स्तुतिरिति व्युत्पत्तेरित्यर्थः ॥

—अलंकारकौस्तुभ, पृ० ३२७

रीतिकालीन आचार्यों ने व्याजस्तुति तथा व्याजनिंदा दोनों ही अलंकारों का वर्णन किया है । केशव के लक्षण पर दंडी, मम्मट एवं रुय्यक का प्रभाव है । इन्होंने व्याजस्तुति तथा व्याजनिंदा का पृथक्-पृथक् विवेचन किया है ।

स्तुतिनिंदा मिस होत जहँ, स्तुति मिस निंदा जान ।
व्याजस्तुतिनिंदा वहै केशवदास बखान ॥

—कविप्रिया, १२/२२

चिंतामणि तथा कुलपति ने मम्मट के लक्षण का भावानुवाद करते हुए व्याजस्तुति का निरूपण किया है ।

स्तुति निंदा मिस करै अस्तुति निंदा होइ ।
चिंतामनि कवि कहत हैं व्याजस्तुति है सोइ ॥

—कविकुलकल्पतरु, ३/२१८

निंदा तें अस्तुति जहाँ, स्तुति तें निंदा होय ।
मिस सों बरनत दोय विधि, व्याजस्तुति है सोय ॥

—रसरहस्य, ८/१२९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मतिराम एवं पद्माकर के लक्षण दीक्षित पर आधृत हैं।

निंदा मैं स्तुति पाइए, स्तुति में निंदा होय।
ब्याजस्तुति सो कहत हैं कबि कोबिद सब कोय ॥
निंदा सों जहं और की निंदा प्रगटित होय।
तहां ब्याजनिंदा कहत कबि कोबिद सब कोय ॥

—ललितललाम, १८२,१८५

दास ने व्याजस्तुति का ही वर्णन किया और व्याजनिंदा का स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकार न कर उसे व्याजस्तुति का ही भेद माना।

स्तुतिनिंदा के ब्याज कहुँ, निंदा स्तुति के ब्याज।
अस्तुति अस्तुति ब्याज कहुँ, निंदा निंदा साज ॥

—काव्यनिर्णय, १२/२४

निंदा में स्तुति है जहाँ स्तुति में निंदा यत्र।
अन्य स्तुति में अन्य की स्तुति भाषत हैं तत्र ॥
जहं इक की निंदा कियें निंद्य औरहू होत।
कहत व्याजनिंदा तहाँ जे कवियन के गोत ॥

—पद्माभरण, १२५-१३०

व्याजस्तुति के दो प्रकार हैं—स्तुतिपर्यवसायिनीनिंदा (जहाँ स्तुति से निंदा का बोध हो) एवं निंदापर्यवसायिनीस्तुति (निंदा से स्तुति की प्रतीति)।

१. स्तुतिपर्यवसायिनीनिंदा—

क. साधु इति ! पुनः साधु कर्त्तव्यं किमतः परम्।
यन्मदर्थे विलूनासि दंतैरपि नखैरपि ॥ —कुवलयानंद

"हे दूति ! तू धन्य है, तूने बहुत ही अच्छा कार्य किया। इससे बढ़कर तुम्हारा कोई कर्त्तव्य नहीं था कि तूने अपने को दांतों तथा नखों से कटवा डाला।" यहाँ दूती की प्रशंसा करने में उसके आचरण की निंदा है।

ख. नारद सन सिवगन कहत, धन्य रावरो रूप।
राजकुंवरि के जोग वर को अस और अनूप ॥ —रामायण

यहाँ स्तुति के बहाने नारद के रूप की निंदा की गई है।

२. निंदापर्यवसायिनी स्तुति—

क. स्तनयुगमुक्ताभरणाः कंटककलितांगयष्टयो देवः।
त्वयि कुपितेऽपि प्रागिव विश्वस्ता द्विट्स्त्रियो जाताः ॥

—साहित्यदर्पण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"हे राजन् ! आपके कुपित होने पर शत्रु की स्त्रियाँ पूर्व की भाँति निश्चित हैं। उनके पयोधर (स्तन) अब भी पूर्व की भाँति मुक्ताभरण हैं (पहले मुक्ता या मोती के आभरण—गहनों—से युक्त थे, इस समय आभरणों से मुक्त या रहित हैं) और उनके अंग अब भी पहले की भाँति 'कंटक कलित' हैं अर्थात् पहले रोमांचयुक्त थे, अब काँटों से युक्त हैं।" यहाँ राजा के शत्रुओं की निंदा एवं उनकी स्तुति प्रतीत होती है। पहले तो राजा की निंदा है; क्योंकि उन्होंने शत्रुओं का कुछ भी नहीं बिगाड़ा; पर बाद में शत्रु-नारियों की दुर्दशा प्रकट होने पर (श्लेष से) उनकी (राजा की) प्रशंसा व्यक्त होती है।

ख. लाल तिहारे रूप की, कहौ रूप यह कौन।
जासौं लागै पलक दृग, लागत पलक पलौ न।। —बिहारी

यहाँ कवि ने रूप की निंदा की है; पर उससे प्रशंसा का भाव प्रकट होता है कि 'प्रिय की आँखें जिस पर लग जाती हैं, उसे चैन नहीं।'

व्याजस्तुति तथा पर्यायोक्ति—दोनों ही अलंकारों में दो अर्थ वाच्य तथा व्यंग्यस्वरूप रहते हैं तथा दोनों में वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ की प्रतीति होती है। दोनों में अंतर यह है कि जहाँ पर्यायोक्ति में वाच्यार्थ तथा व्यंग्यार्थ में कार्य-कारण संबंध या अन्य संबंध को दर्शाया जाता है, वहाँ व्याजस्तुति में निंदास्तुति अथवा स्तुतिनिंदा का संबंध होता है।

भ

भक्तिरस—ईश्वर-विषयक प्रेम के कारण भक्तिरस उत्पन्न होता है। इसके आलंबन भगवान् (ईश्वर) हैं या राम, कृष्ण आदि अन्य अवतार। ईश्वरानुराग भक्तिरस का स्थायी भाव है और औत्सुक्य, हर्ष, निर्वेद, मति आदि संचारी भाव हैं। अलौकिक ईश्वरीय कार्य, भक्त-सत्संग तथा भगवद्-महिमा का गान भक्तिरस के उद्दीपन विभाव हैं।

भक्तिरस को रसत्व प्रदान करने का श्रेय सुप्रसिद्ध गौड़ीय वैष्णव आचार्य रूपगोस्वामी को है। उन्होंने 'भक्तिरसामृतसिंधु' तथा 'उज्ज्वलनीलमणि' नामक ग्रंथों का प्रणयन कर इसे शास्त्रीय रूप प्रदान किया। वे भक्ति-भावना का प्राबल्य सिद्ध करते हुए इसे मूलरस मानते हैं और अन्य सभी रसों को भक्तिरस में ही अंतर्निविष्ट कर देते हैं। रूपगोस्वामी भक्तिरस को उज्ज्वल या मधुर रस की अभिधा प्रदान करते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भक्तिरस

संस्कृत काव्यशास्त्र में आचार्यों ने भक्ति को स्वतंत्र रस का स्वरूप प्रदान न कर इसे 'भाव' कहा है। उदाहरण के लिए देवता, राजा तथा गुरु आदि के प्रति रति या अनुरक्ति को अपूर्णरस या भाव की संज्ञा प्रदान की गई थी। पर, कतिपय आचार्यों ने विवेचन-क्रम में अपने ग्रंथों में भक्तिरस का प्ररोह लगा दिया था या उसका बीज-वपन किया था, जो कालांतर में गौड़ीय आचार्यों द्वारा क्रमशः पल्लवित, पुष्पित एवं फलित हुआ। सर्वप्रथम भक्तिरस का संकेत दंडी ने 'प्रायोलंकार' के विवेचन के अंतर्गत किया था। वे इसके उदाहरण में कृष्ण के प्रति विदुर एवं महेश्वर के प्रति रातवर्म नामक राजा के प्रीतिपूर्ण वचन को प्रस्तुत करते हैं—

भक्तिमात्रसमाराध्यः सुप्रीतश्च ततो हरिः।

—काव्यादर्श, २/२७७

वे ऐसा कहकर भक्तिरस को स्थापित कर देते हैं और देवता-विषयक रति से इसे सर्वथा स्वतंत्र मानकर भक्ति और प्रीति को पर्याय रूप में ग्रहण करते हैं। दंडी शृंगार रस का स्थायी भाव रति को मानकर उसे प्रीति से भिन्न स्वीकार करते हैं।

प्राक् प्रीतिर्दर्शिता सेयं रतिः शृंगारतां गता।

—वही, २/२८१

भामह ने भी 'प्रेयस' को प्रीति से संबद्ध मानकर 'प्रेयः प्रियतराख्यानम्' के रूप में इसके मधुर स्वरूप का संकेत किया है। सर्वप्रथम रुद्रट ने 'प्रेयान्' नामक नवीन रस की कल्पना कर इसके स्थायी भाव के रूप में स्नेह को स्थान दिया [दे० **काव्यालंकार, १६/१८**] तथा मधुसूदन सरस्वती ने भक्तिरस को शास्त्रीय रूप प्रदान किया। भक्ति का शास्त्रीय विवेचन 'शांडिल्यभक्तिसूत्र' तथा 'नारदभक्तिसूत्र' में प्राप्त होता है। शांडिल्य के अनुसार ईश्वर में परम अनुरक्ति का नाम भक्ति है—'सापरानुरक्तिरीश्वरे।' इन ग्रंथों के अतिरिक्त 'गीता' तथा 'श्रीमद्भागवत' में भी शास्त्रीय स्तर पर भक्तितत्त्व की मीमांसा प्रस्तुत की गई है। भारतीय साहित्य में भक्ति-काव्य की प्रचुर परिमाण में रचना हुई है; अतः भक्ति को रसत्व प्रदान करना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। वैष्णव आचार्यों ने भक्ति या मधुर रस की स्थापना की और मधुसूदन सरस्वती ने पूर्णानंदमय होने के कारण भक्तिरस को वास्तविक रस माना और अन्य रसों को इससे निम्न कोटि का सिद्ध किया। उनके अनुसार शृंगारादि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रसों का भक्तिरस से वही अंतर है, जिस प्रकार सूर्य के साथ खद्योतों का होता है।

परिपूर्णरसा क्षुद्ररसेभ्यो भगवद्रतिः।
खद्योतेभ्यः इवादित्यप्रभेव बलवत्तरा॥
—भगवद्भक्तिरसायन, २/७८

मधुसूदन सरस्वती के अनुसार भक्ति ब्रह्मानंद के समान है।

'समाधिसुखस्येव भक्तिसुखस्यापि स्वतंत्रपुरुषार्थत्वात्····तस्मात्····भक्तियोगः पुरुषार्थः परमानंदरूपत्वादिति निर्विवादम्। —वही, १/६

रूपगोस्वामी ने भक्ति को कर्म एवं ज्ञानयोग से श्रेष्ठ माना है तो मधुसूदन ने इसे ब्रह्मानंद के समतुल्य सिद्ध किया। रूपगोस्वामी ने भक्ति-प्राप्त व्यक्ति को मोक्ष के प्रति उदासीन कहकर इसे मोक्ष से भी उत्कृष्टतर कहा।

भक्तिरस का विरोध—अभिनवगुप्त तथा धनंजय ने भक्ति को भावों में परिगणित किया है। अभिनवगुप्त चार पुरुषार्थों के आधार पर ही रसों की उपयोगिता मानते हुए नौ रसों को ही मान्यता प्रदान करते हैं। उन्होंने इसे (भक्ति को) शांतरस के अंनर्गत मानते हुए इसका अंतर्भाव धृति, मति, स्मृति तथा उत्साह में किया है [दे० **अभिनवभारती, भाग १, पृ० ३४१**]। धनंजय ने भी भक्ति को भाव मानकर इसे हर्ष, उत्साह आदि में समाविष्ट किया है। पंडितराज ने पहले तो भक्तिरस की स्वतंत्र स्थिति को स्वीकार किया; पर पुनः उसे अस्वीकार कर दिया। उनके अनुसार भागवत आदि पुराणों के श्रवण से भक्तों को भक्ति का स्पष्टतः अनुभव होता है। अतः, भक्तिरस स्वीकार करने योग्य है। इसका स्थायी भाव भगवान् के विषय में प्रेमरूप भक्ति है। पंडितराज शांतरस में भक्तिरस के अंतर्भाव का विरोध करते हैं; क्योंकि दोनों के स्थायी भावों में भिन्नता के कारण एकत्व-स्थापन संभव नहीं। भक्तिरस का स्थायी भाव अनुराग है और शांतरस का वैराग्य या निर्वेद। पुनः इन्होंने देवतादिविषयक रति को भाव मानते हुए परंपरागत विचार का समर्थन कर भक्तिरस को भाव कहा है।

"तात्पर्य यह है कि देवता आदि के विषय में जो रति (प्रेम) होती है, उसी को भक्ति कहते हैं। अतः, वह भाव है, रस नहीं; क्योंकि देवता आदि के विषय में होनेवाली रति और व्यंजना-वृत्ति से ज्ञात हुए व्यभिचारी भाव 'भाव' कहलाते हैं और अनुचित रीति से प्रवृत्त रस तथा भाव क्रमशः 'रसाभास' और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'भावाभास' कहलाते हैं।............इस तरह भरत आदि मुनियों को व्यापक व्यवस्थापक मान लेने पर दशम 'भक्ति-रस' को स्वीकार करना ही उचित है, अन्यथा भरत मुनि ने बहुत सोच-समझकर जो रसों की संख्या नौ बतलाई है, वह असंगत हो जायगी।''

—रसगंगाधर, भाग १, पृ० १७५-१७६

शांतरस में भक्तिरस के अंतर्भाव का प्रयास किया गया है; किंतु वैष्णव आचार्यों ने उसे अमान्य ठहरा दिया। मधुसूदन सरस्वती दोनों में अंतर स्थापित करते हुए कहते है कि इनमें अनुराग और वैराग्य का भेद है। शांत रस मूलतः ज्ञानप्रधान होता है और उसका लक्ष्य है मोक्ष की कामना या अपुनर्भव ; किंतु भक्ति में भाव की प्रधानता है। शांतरस में आत्मज्ञान का होना अनिवार्य है, जब कि भक्ति के लिए वह आवश्यक नहीं। भक्ति में श्रद्धा एवं विश्वास की प्रमुखता होती है। भक्ति का मार्ग सर्वजन सुलभ एवं सहजाराध्य है, जब कि शांत की भाव-प्रतीति संयमित एवं नियंत्रित होती है। शांतरस निर्गुणोपासना पर आश्रित है; पर भक्तिरस का आधार है सगुणोपासना।

इस संबंध में आचार्य पं० रामदहिन मिश्र का विचार ध्यातव्य है। ''व्यापकता और उत्कृष्टता की दृष्टि से शांतरस से भक्तिरस बढ़ा-चढ़ा है। वह भक्तिरस सामान्य चित्तवृत्ति से भिन्न होने के कारण स्वतंत्र रूप से व्यक्त होता है। भक्ति और शांत दोनों भिन्न रस हैं और अपने-आप में पूर्ण हैं। भक्तिरस का शांतरस में अंतर्भाव नहीं हो सकता।''

— काव्यदर्पण, पृ० २८३

भक्तिरस या मधुररस की निष्पत्ति के संबंध में रूपगोस्वामी का मत भरतानुमोदित है। साक्षात् कृष्ण के दर्शन से ही भक्तिरस उदित होता है। भरत की भाँति (प्रपानकरस की तरह) रस-निष्पत्ति को स्पष्ट करते हुए उन्होंने (रूपगोस्वामी ने) दध्यादि द्रव्य, शक्कर, मिर्च आदि के मेल से बने रसालरस का उदाहरण प्रस्तुत किया है। भक्तिरस में भक्त को ही रसानुभूति होती है। भक्त के हृदय में प्रेम की अभिव्यक्ति होने के कारण इनका मत अभिनवगुप्त के निकट है।

यथा दध्यादिकं द्रव्यं शर्करामरिचादिभिः।
सयोजनविशेषेण रसालाख्यो रसो भवेत् ॥
तदत्र सर्वथा साक्षात् कृष्णाद्यनुभवाद्भुतः।
प्रौढानंदचमत्कारो भक्तैः कोऽप्यनुरस्यते ॥

—हरिभक्तिरसामृतसिंधु, २/५/६४-६५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भक्ति रस के आलंबन कृष्ण हैं और आश्रय हरिवल्लभाएँ। वे सदैव पति-रूप में कृष्ण की सेवा करती रहती हैं। इसके उद्दीपन हैं—वसंतागम, मेघगर्जन, चांदनी एवं रूपलावण्य आदि। मधुररस में परकीया भाव की ही प्रधानता है। इसका स्थायी भाव श्रीकृष्ण विषया रति है। मधुरभक्ति रस का स्थायी भाव मधुरा रति है। [दे० **उज्ज्वलनीलमणि, पृ० ३८८**]

भक्तिवाद—ध्वनि-विरोधी मत। भक्ति का अभिप्राय लक्षणा से है। आलंकारिकों के अनुसार भक्ति लक्षणा को कहते हैं और मीमांसक इसे गौणी शक्ति कहते हैं। आनंदवर्द्धन ने ध्वन्यालोक' में तीन ध्वनि-विरोधी मतों की कल्पना कर उनका खंडन किया है। [**दे० ध्वनि की स्थापना**] भक्तिवादियों के अनुसार ध्वनि लक्षणागम्य या लक्षणा से अभिन्न है; अतः स्वतंत्र काव्यसिद्धांत के रूप में इसकी सत्ता अमान्य है। यह संदेह के कारण ध्वनि का अपह्नव करता है।

भग्नप्रक्रमता—वाक्यदोष का १८वाँ भेद। [**दे०वाक्यदोष**]

भट्टतौत—ये अभिनव गुप्त के गुरु थे। [**दे० अभिनव गुप्त**] इन्होंने 'काव्यकौतुक' नामक ग्रंथ का प्रणयन किया था, जो संप्रति अनुपलब्ध है। इनका समय ९६० से ९९० ई० है। 'काव्यकौतुक' रसविषयक ग्रंथ था, जिसमें शांतरस को श्रेष्ठ रस घोषित किया गया था; क्योंकि उसी के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है। इनके मत का उल्लेख 'अभिनव भारती' तथा हेमचंद्र-कृत 'काव्यानुशासन' में है।

मोक्षफलत्वेन चायं (शांतो रसः) परम पुरुषार्थनिष्ठत्वात्सर्वरसेभ्यः प्रधानतमः। स चायमस्मदुपाध्याय भट्टतौतेन काव्यकौतुके अस्माभिश्च तद्विकरणे बहुतरकृतनिर्णयः पूर्वपक्ष सिद्धांत इत्यलं बहुना।

—लोचन, पृ० २२१, कारिका, ३/२६

इनके मत से जब कवि चित्रण की विचित्र कला-द्वारा विषय का प्रत्यक्षीकरण करता है, तभी पाठक को रसानुभूति होती है। इन्होंने बताया कि केवल नाटक से ही नहीं, अपितु काव्य के द्वारा भी रस की प्रतीति होती है और वर्णन-शैली के विस्तार एवं प्रौढ़ता प्राप्त कर लेने के कारण काव्य में चित्रित उद्यान, कांता, चंद्रमा, भाव प्रत्यक्ष की नाईं स्पष्टतः प्रतीत होते हैं।

रससमुदायो हि नाट्यम्। न नाट्य एव रसाः काव्येऽपि नाट्यमान एव रसः। काव्यार्थ विषये हि प्रत्यक्षकल्पसंवेदनोदये रसोदय इत्युपाध्यायाः। यदाहुः काव्यकौतुके—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रयोगत्वमनापन्नेकाव्येनास्वादसंभवः। इति
वर्णनोत्कलिकाभोगप्रौढोक्त्या सम्यगर्पिताः।
उद्यान-कांता-चंद्राद्या भावाः प्रत्यक्षवत् स्फुटाः॥

इनका कथन है कि रस-सिद्ध कवि के लिए दर्शन तथा वर्णन, दोनों ही अत्यंत आवश्यक हैं। इसी से कवि को ऋषि का पद प्राप्त होता है और उसे वर्णन में नैपुण्य की प्राप्ति होती है। साधारणीकरण-सिद्धांत को गति देकर भट्टतौत ने बताया कि रस की पूर्णता में कवि, नायक एवं सहृदय, तीनों का रस एक श्रेणी का हो जाता है अर्थात् रस की पूर्ण स्थिति में तीनों का ही साधारणीकरण होता है।

भट्टनायक—भरत-कृत 'नाट्यशास्त्र' के व्याख्याता तथा रसवादी आचार्य। भट्टनायक ध्वनि-सिद्धांत के प्रबल विरोधी माने जाते हैं। [इनके ध्वनि-संबंधी (खंडनात्मक) विचार के लिए दे० **ध्वनि-विरोधी आचार्य**] इनका सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'हृदय दर्पण' या 'ध्वनिध्वंस' है, जिसकी रचना ध्वनि-सिद्धांत के खडन के लिए हुई थी। यह ग्रंथ संप्रति अनुपलब्ध है; पर इसके उद्धरण 'अभिनव भारती', 'ध्वन्यालोकलोचन', 'अलंकारसर्वस्व', 'काव्यप्रकाश' की माणिक्यचंद्र-कृत टीका तथा हेमचंद्र के 'काव्यानुशासन' में यत्र-तत्र प्राप्त होते हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि उक्त ग्रंथ की रचना मुख्य रूप से ध्वनि-सिद्धांत के निर्मूलन के लिए हुई थी और रस-विवेचन उसका एक अंग मात्र था।

भट्टनायक का रस-विषयक मत मुक्तिवाद है। इन्होंने साधारणीकरण-सिद्धांत की स्थापना कर साहित्यशास्त्र के इतिहास में नूतन विचार-सरणि का उद्योतन किया है। [दे० **रसनिष्पत्ति तथा साधारणीकरण**] ये रस को भावना का व्यापार मानते हैं, व्यंजना का नहीं। इन्होंने शब्दशक्तियों में अभिधा, भावकत्व एवं भोजकत्व को मान्यता दी है। अभिनवगुप्त ने इनके मत का निरास कर ध्वनि-सिद्धांत की स्थापना की है और इनके व्यापारत्रय को (अभिधा, भावकत्व एवं भोजकत्व) अशास्त्रीय तथा परंपरा-विमुख बतलाया है। महिमभट्ट ने अपने ग्रंथ (व्यक्तिविवेक) में 'हृदयदर्पण' का उल्लेख किया है। उन्होंने लिखा है कि उनकी बुद्धि बिना 'दर्पण' देखे ही सहसा यशोपलब्धि-स्वरूप अभिसार के लिए उद्यत हो गई।

सहसा यशोऽभिसर्तुं समुद्यतादृष्टदर्पणा मम धीः।
स्वालंकारविकल्पप्रकल्पने वेत्ति कथमिवावद्यम्॥

—व्यक्तिविवेक, १/४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भट्टनायक रसचर्वणा को ही काव्य की आत्मा मानते हैं; पर ध्वनि को यह पद नहीं देते।

भणिति—भोज-वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध शब्द का अलंकार। कवि के उक्ति-प्रकार या सुंदर अभिव्यक्ति को भणिति कहते हैं। इसके छह भेद हैं—संभव, असंभव, विशेषण, संवृत्ति, आश्चर्य तथा कल्पना भणिति।

उक्ति प्रकारो भणितिः संभवोऽसंभवो च सा।
विशेष संवृत्त्याश्चर्यकल्पनासु च कल्प्यते ॥

—सरस्वतीकंठाभरण, २/५२

भद्रा—आचार्य रुद्रट-वर्णित एक प्रकार की वृत्ति, जिसका वर्णन अनुप्रास के एक भेद के रूप में किया गया है।

भद्रावृत्ति में शेष चारों (मधुरा, प्रौढ़ा, परुषा, ललिता) वृत्तियों में न गिनाए गए वर्णों का प्रयोग होता है तथा वे या तो संयुक्त होते हैं या असंयुक्त। श्रवणसुखदता इन वर्णों की प्रधान विशेषता है। [दे० मधुरा, प्रौढ़ा, परुषा एवं ललिता]

—काव्यालंकार, २/२६

भय—भयानक रस का स्थायी भाव। [दे० भयानक रस] भीषण या भयंकर पदार्थ की भीषणता को देखकर चित्त में उत्पन्न होनेवाले मनोविकार को भय कहते हैं।

इसका सर्वप्रथम विवेचन भरत ने किया है। वे भय को स्त्रियों तथा नीच व्यक्तियों की प्रकृति से संबद्ध मानते हैं। यह गुरुजनों तथा राजा के प्रति किए गए अपराध, हिंसक पशु, शून्य गृह, गहन वन-पर्वत, हस्ति-सर्प-दर्शन तथा भयप्रद ध्वनि के श्रवण से उत्पन्न होता है।

भयं नाम स्त्रीनीच प्रकृतिकम्। गुरुराजापराधश्वापदशून्यागाराटवीपर्वत-गहनगजादिदर्शननिर्भर्त्सनकांतारदुर्दिननिशांधकारोलूकनक्तंचरारावश्रवणादिभिर्वि-भावैः समुत्पद्यते।

—नाट्यशास्त्र, पृ० ३५३

भरत मुनि के अनुसार भय स्थायी भाव का अभिनय हाथ-पैर के कँपाने, हृदय के धड़कने, स्तंभित होने, मुख के सूखने, स्वेद, वेपथु, त्रास, रक्षा की खोज करने, दौड़ने तथा जोर से चिल्लाने आदि अनुभावों द्वारा होना चाहिए।

तस्य प्रकंपितकरचरणहृदयकंपनस्तंभमुखशोषजिह्वापरिलेहनस्वेदवेपथुत्रास-परित्राणान्वेषणधावनोत्क्रुष्टादिभिरनुभावैरभिनयः प्रयोक्तव्यः।

—वही, पृ० ३५३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गुरुराजापराधेन रौद्राणां चापि दर्शनात्।
श्रवणादपि घोराणां भयं मोहेन जायते॥
गात्रकंपनवित्रासैर्वक्त्रशोषण संभ्रमैः।
विस्फारितेक्षणैः कार्यमभिनेयक्रियागुणैः॥
सत्त्ववित्रासनोद्भूतं भयमुत्पद्यते नृणाम्।
स्रस्तांगाक्षिनिमेषैस्तदभिनेयं तु नर्तकैः॥

—नाट्यशास्त्र, ७/२२-२४

हेमचंद्र के मतानुसार विकलता की स्थिति को भय कहते हैं।

वैक्लव्यं भयम्। —काव्यानुशासन, पृ० १२६

विद्यानाथ ने भयानक पदार्थों के देखने या भयंकर शब्दों के सुनने के कारण उत्पन्न अनर्थ की आशंका से मन की चंचलता को भय कहा है।

रौद्रसंदर्शनादिभिरनर्थाशंकनं भयम्। —प्रतापरुद्रीय, पृ० १६७

विश्वनाथ रौद्र की शक्ति (भयंकर वस्तु की भीषणता) से उत्पन्न चित्त के भाव को भय कहते हैं।

रौद्रशक्त्या तु जनितं चित्त वैक्लव्यदं भयम्।

—साहित्यदर्पण, ३/१७८

भानुदत्त के अनुसार अपराध होने पर, किसी के मुँह से भयंकर रव (आवाज) सुनकर या भयानक जीव-जंतुओं को देखकर उत्पन्न होनेवाले मनोविकार को भय कहते हैं।

अपराध-विकृतरव-विकृतसत्त्वादिजनितोऽपरिपूर्णो मनोविकारो भयम्।

—रसतरंगिणी, पृ० २४२

पंडितराज जगन्नाथ ने व्याघ्रादि हिंसक जन्तुओं के दर्शन से अत्यंत अनर्थ उत्पन्न करनेवाली मन की विह्वलता को भय कहा है।

व्याघ्रदर्शनादिजन्मा परमानर्थविषयको वैक्लव्याख्यः स भयम्।

—रसगंगाधर, पृ० ३६

विकृति भयंकर के डरन जु कछु चित्त अकुलात।
सो भय थाई भाव है कछु ससंक जहँ गात॥

—जगद्विनोद, ५९५

भय के संचारी भाव ग्लानि, शंका, चिंता, त्रास, दीनता आदि हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उदाहरण—

क. तार्क्ष्यपक्षपवनोपसेवितं वीक्ष्यवीक्ष्य यदुनंदनं पुरः।
भीतभीत इव तत्र कालियो मंदमंदमुपसर्तु मुद्यतः॥

"गरुड़ के पंखों से सुसेवित श्रीकृष्ण को सामने देख-देखकर अत्यंत भयभीत की भाँति कालिय नाग धीरे-धीरे किसी-किसी प्रकार उनके पीछे-पीछे चलने को बढ़ने लगा।"

ख. तीन पंग पुहमी दई, प्रथमहिं परम पुनीत।
बहुरि बढ़त लखि बामनहिं, भे बलि कछुक सभीत॥

भयानक रस—भयानक रस की उत्पत्ति भयावह दृश्य के देखने या बलवान् व्यक्तियों के अपराध करने से होती है। इसका स्थायी भाव भय होता है। भरत ने भयानक रस का वर्णन करते हुए बताया कि विकृत ध्वनियों से, पिशाच प्रेत के दर्शन से, शृगाल एवं उलूक से, त्रास तथा उद्वेग से, शून्य घरों, वनगमन, स्वबंधुजनों के वध या बंधन के देखने, सुनने या चर्चा करने आदि कारणों या विभावों से यह उत्पन्न होता है।

अथ भयानको नाम भयस्थायि भावात्मकः। स च विकृतरवसत्त्वदर्शन-शिवोलूकत्रासोद्वेगशून्यागारारण्यगमनस्वजनबधबंधदर्शनश्रुतिकथादिभिर्विभावैरुत्पद्यते।
—नाट्यशास्त्र, ७/६९

इसके व्यभिचारी या संचारी भाव हैं—स्तंभ, स्वेद, गद्गद होना, रोमांच, वेपथु, स्वर-भेद, वैवर्ण्य, शंका, मोह, दैन्य, आवेग, चपलता, जड़ता, त्रास, अपस्मार और मरण। भयानक रस के अनुभाव हैं हाथ-पैर का काँपना, नेत्रों की चपलता, रोमांच, मुखवैवर्ण्य, स्वर-परिवर्तन आदि। जिससे भय की उत्पत्ति होती हो, वह भयानक रस का आलंबन होता है और स्त्री तथा नीच पुरुष इसके आश्रय होते हैं। भयानक रस का रंग श्याम माना गया है और काल देवता कहे गए हैं।

भयानको भयस्थायिभावः कालाधिदैवतः।
स्त्रीनीचप्रकृतिः कृष्णो मतस्तत्त्वविशारदैः॥
यस्मादुत्पद्यते भीतिस्तत्रालंबनं मतम्।
चेष्टा घोरतरास्तस्य भवेदुद्दीपनं पुनः॥
अनुभावोऽत्र वैवर्ण्यगद्गदस्वरभाषणम्।
प्रलयस्वेदरोमांचकंपदिक्प्रेक्षणादयः॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जुगुप्सावेगसंमोहसंत्रासग्लानिदीनताः ।
शंकापस्मारसंभ्रांति मृत्य्वाद्याव्यभिचारिणः ॥

—साहित्यदर्पण, ३/२३५-२३८

भयानक का विभाजन स्वनिष्ठ तथा परनिष्ठ के रूप में किया जाता है। जब अपराध स्वनिष्ठ हो तो भयानक स्वनिष्ठ होगा और परनिष्ठ भयानक अन्य जनों की क्रूरता आदि के कारण उत्पन्न होगा। परनिष्ठ भयानक यदा-कदा भयद ध्वनि के श्रवण करने तथा कभी क्रूर कर्म के देखने से उत्पन्न होता है।

उदाहरण—

क. श्येनमंबरतलादुपागतं, शुष्कदाननबिलोबिलोकयन् ।
कंपमानतनुराकुलेक्षणः स्पंदितुं नहि शशाक लावकः ॥

"लवा पक्षी ने ज्योंही झपट्टा मारते हुए बाज को देखा, त्योंही उसका मुख सूख गया, उसका शरीर काँपने लगा, आँखें आकुल हो गईं और वह हिल भी नहीं सका।" यहाँ किसी दर्शक ने लवा पक्षी के ऊपर झपटते हुए बाज का वर्णन किया है। इसमें रस-सामग्री इस प्रकार है—आलंबन बाज, उसका झपटना उद्दीपन, लवा पक्षी के मुख का सूखना अनुभाव तथा दीनता संचारी है। लवा का भयभीत हो जाना भय स्थायी है।

ख. रानी अकुलानी सब डाढ़त परानी जाहिं,
सकैं न बिलोक भेष केसरी-कुमार को ।
मीजि-मीजि हाथ धुनि माथ दसमाथ तिय,
'तुलसी' तिलौ न भयौ बाहिर अगार को ॥
सब असबाब डारौ, मैंन काढ़्यौ तैंन काढ़्यौ,
जिय की परी सँभारैं सहन-भँडार को ।
खीझति मँदोवै सविषाद देखि मेघनाद,
बयो लुनियत सब याही डाढ़ीजार को ॥

यह लंका-दहन का प्रसंग है। स्थायी भाव है—मंदोदरी का घबराना, आलंबन हैं हनुमान तथा उनका विकराल वेष, गृह की सामग्रियों का जलना उद्दीपन है और हाथ मींजना, मेघनाद को गाली देना अनुभाव। विषाद, चिंता आदि संचारी हैं।

भरत—ये भारतीय नाट्यालोचन, काव्यशास्त्र एवं कलादर्शन के आद्याचार्य के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इनका एतद्विषयक सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'नाट्यशास्त्र'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भारतीय काव्यालोचन एवं कलाशास्त्र का विश्वकोश है। [दे० नाट्यशास्त्र] भरत मुनि के व्यक्तित्व एवं काल-निर्णय के संबंध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है और अभी तक इस संबंध में कोई सुनिश्चित मत निर्धारित नहीं हो सका है। डॉ० मनमोहन घोष ने 'नाट्यशास्त्र' के अँगरेजी अनुवाद की भूमिका (१९५० में रायल एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल से प्रकाशित) में यह विचार व्यक्त किया है कि भरत एक काल्पनिक व्यक्ति हैं। इस मत के पोषक विद्वानों के अनुसार जो नटगण स्वांग भरते थे, उन्हें भरत कहा जाता था और कालांतर में उन्हीं के आधार पर आदिपुरुष के रूप में भरत की कल्पना कर ली गई। पर, इस मत के विपरीत प्राचीन ग्रंथों में ऐसे प्रमाण मिलते हैं, जिनसे भरत ऐतिहासिक पुरुष के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं। 'मत्स्यपुराण' के २४वें अध्याय (२४ से ३२ श्लोकों तक) में भरत मुनि का कई बार नामोल्लेख प्राप्त होता है। महाकवि कालिदास ने भरत मुनि को नाट्यालोचक के रूप में स्मरण किया है।

मुनिना भरतेन यः प्रयोगोभवतीष्वष्टरसाश्रयः प्रयुक्तः।
ललिताभिनयं तमद्य भर्ता मरुतां द्रष्टुमनाः सलोकपालः॥

—विक्रमोर्वशीय, २/१८

संस्कृत नाटकों की समाप्ति का भरत वाक्य में होना तथा अभिनयगुप्त प्रभृति लेखकों द्वारा उन्हें 'नाट्यशास्त्र' के लेखक के रूप में स्वीकार करना, भरत के ऐतिहासिक व्यक्तित्व का पोषक है।

भरत के काल-निर्णय के संबंध में भी विभिन्न प्रकार के मत व्यक्त किए गए हैं। इनका समय ५०० विक्रमपूर्व से लेकर विक्रम की प्रथम शती के मध्य निर्धारित किया जाता है। अश्वघोष के 'सारिपुत्रप्रकरण' नामक ग्रंथ पर 'नाट्यशास्त्र' का प्रभाव देखकर एवं महाकवि कालिदास की साक्षी के आधार पर भरत को ईसापूर्व तृतीय या चतुर्थ शती में रखा जाता है। महाकवि कालिदास का समय ई० पूर्व द्वितीय शती का मध्य माना गया है।

'नाट्यशास्त्र' मुख्यतः नाटकीय विधि-विधानों के लिए निर्मित किया गया था; पर उसमें आनुषंगिक रूप में काव्यशास्त्रीय अंगों—रस, अलंकार गुण, दोष, नायक-नायिका-भेद—का भी विवेचन किया गया है। इसका प्रधान विषय रूपक एवं उससे संबद्ध विषयों का प्रतिपादन है। इसके षष्ठ ए

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सप्तम अध्यायों में रस-निरूपण किया गया है। पंडितों का ऐसा अनुमान है कि भरत के पूर्व रस-सिद्धांत का रूप स्थिर हो गया था और भरत ने पूर्वाचार्यों की मान्यताओं का उपयोग कर अपने विवेचन को पूर्ण बनाया। इसमें रस के स्वरूप, अंग, भेद, भाव तथा रस-निष्पत्ति का वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है और प्रत्येक रस के वर्ण एवं देवता का भी उल्लेख है। भरत-कृत रस-मीमांसा नाटक या दृश्य-काव्य पर आधृत है, जिसका उद्देश्य प्रेक्षकों के मन में रस का संचार कर उन्हें आनंदमग्न करना है। नाटक के तीन तत्त्वों—वस्तु, नेता और रस—में रस प्रमुख है और अन्य तत्त्व तो उसके उपकारक-मात्र हैं। इन्होंने भाव तथा रस के संबंध में कई प्रश्नों का तर्कपूर्ण समाधान प्रस्तुत किया है, जैसे; भाव और रस का संबंध तथा भाव से रस की उत्पत्ति मानकर दोनों को अन्योन्याश्रित बतलाया है। [**दे० रस-संप्रदाय तथा रस-विवेचन का इतिहास**]

नाट्यशास्त्र के 'सामान्याभिनय अध्याय' या २४वें अध्याय में नायक-नायिका-भेद का वर्णन है तथा ३४वें अध्याय में भी संबद्ध विषय का विवेचन है। इन्होंने प्रकृति, शील, नारी के प्रति नायक के व्यवहार के आधार पर नायक के भेदों का वर्णन किया है और सामाजिक व्यवहार, नायक के साथ संयोग-वियोग, नायक के प्रति प्रेम, प्रकृति, यौवन-लीला, गुण तथा राजाओं के अंतःपुर में स्थिति के अनुसार नायिका-भेद का निरूपण किया है। [**दे० नायक-नायिका-भेद**]

'नाट्यशास्त्र' में नाट्यालंकार और काव्यालंकार, दोनों का विवेचन है। नाट्यालंकार के अंतर्गत उपमा, रूपक, दीपक और यमक—चार अलंकार आते हैं [**दे० उपमा, रूपक, दीपक और यमक**] तथा काव्यालंकारों में ३६ काव्यलक्षणों का वर्णन है। इन्होंने कतिपय काव्य-दोषों—गूढ़ार्थ, अर्थांतर, अर्थहीन, भिन्नार्थ, एकार्थ, अभिलुप्तार्थ, न्यायापेत, विसंधि तथा शब्दच्युत—का भी वर्णन किया है।

भरत ने दोष का लक्षण उपस्थित नहीं किया; पर इनके गुण-वर्णन में दोष-विषयक संकेत प्राप्त होते हैं। दोषों के प्रति परवर्ती आलंकारिकों की तरह इनका दृष्टिकोण उग्र न होकर उदार है। इनके अनुसार संसार की कोई भी वस्तु गुण-हीन या दोषरहित नहीं है; अतः विद्वान दोषों के प्रति अधिक संवेदनशील न बनें। [**दे० काव्यदोष**]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न किंचिद् गुणहीनं दोषैः परिवर्जितं न वा किंचित् ।
तस्मान्नाट्यंप्रकृतौ दोषा नात्यर्थतो ग्राह्याः ।।

—नाट्यशास्त्र, १७/४७

भरत काव्यगुणों की संख्या दस मानते हैं—श्लेष, प्रसाद, समता, समाधि, माधुर्य, ओज, पदसौकुमार्य, अर्थव्यक्ति, उदात्तता तथा कांति । इन्होंने दोषों के विपर्यय को गुण कहा है । इनके अनुसार दोष काव्य-शोभा-विघातक हैं तो गुण काव्य-शोभा-विधायक । इन्होंने गुण और अलंकार, दोनों को 'रससंश्र-यात्मक' कहकर इन्हें समान महत्त्व का अधिकारी माना है । [दे० **काव्यगुण**]

भरत ने नाट्यालोचन-संबंधी सार्वभौम सिद्धांत की स्थापना की है, जिसमें उनके गहन चिंतन एवं मौलिक विवेचन का प्रकाश है। इनके द्वारा निर्मित नाट्यकला का रचनात्मक रूप भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है । नाटक के इतिवृत्त, पात्र, रस, रंगमंच, रंगविधान, रंगशिल्प, अभिनय, भाषा-प्रयोग, प्रवृत्ति-वृत्ति तथा संगीत का 'नाट्यशास्त्र' में वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है । नाट्यप्रयोग के अंतर्गत अभिनय का सर्वाधिक महत्त्व होता है । भरत-कृत आंगिक, वाचिक, सात्त्विक तथा आहार्याभिनय का विवेचन अत्यंत सूक्ष्म, विशद और तात्त्विक है । नाट्य के अंगों के रूप में नृत्य का भी विधान है । इन्होंने पूर्वरंग के अंग-रूप में नृत्य का विधान किया है । [दे० **नाट्यालोचन तथा रूपक**]

[विशेष विवरण के लिए दे० 'भरत और भारतीय नाट्यकला' नामक ग्रंथ]

भरतवाक्य—नाटक के अंत में नायक (नेता) द्वारा की गई भगवान की वंदना को भरतवाक्य कहते हैं । फल की प्राप्ति होने पर नायक इष्टदेव से वरदान माँगते हुए प्रार्थना करता है । कालांतर में इसी को (प्रार्थना को) भरतवाक्य कहा गया । यह नियम 'नाट्यशास्त्र' के प्रणेता भरत के नाम पर बना था, जिसमें नाटककार तत्कालीन नृपति, समाज, देश आदि को आशीर्वाद देता था । भरतवाक्य एक प्रकार की ईश-वंदना है ।

भविष्यगुप्ता—गुप्ता नायिका का भेद । [दे० **गुप्ता**]

भाण—रूपक का एक भेद । [दे० **रूपक**] जिसमें नायक आकाशभाषित-द्वारा अपने तथा अन्यों के धूर्ततापूर्ण वृत्त को प्रकाशित करे, उसे भाण कहते हैं—

भण्यते व्योमोक्त्या नायकेन स्वपरवृत्तं प्रकाश्यतेऽत्रेति भाणः ।

—नाट्यदर्पण, २/८१ वृत्ति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भाण में एक अक एवं एक ही पात्र का विधान किया जाता है अर्थात् एक ही अभिनेता-द्वारा रूपक का संपूर्ण कथानक प्रदर्शित किया जाता है। वह अपने तथा दूसरों के वृत्त को या अपने तथा दूसरों के अनुभवों को, अन्य पात्रों के भाषणों को, रंगमंच पर प्रस्तुत करता है। इसका प्रधान पात्र बुद्धिमान् विट होता है, जो किसी कल्पित पात्र के साथ, मुँह को आकाश की ओर उठाकर, वार्तालाप करता है। वह सुनने का नाटक करते हुए कल्पित व्यक्ति के कथनों को स्वयं दुहराता हुआ उसका उत्तर देता है। इसमें विट के अतिरिक्त अन्य कोई पात्र नहीं होता और वही उक्ति-प्रत्युक्ति, संबोधन तथा शृंगार रस-सूचक सौभाग्य आदि की आकाशभाषित-द्वारा सूचना देता है। इस रूपक का उद्देश्य विट, धूर्त्त तथा वेश्या आदि के कथानक का सन्निवेश कर जन साधारण का मनोरंजन करना है। शौर्य और सौंदर्य का वर्णन करने के कारण इसमें वीर तथा शृंगार रस का प्राधान्य रहता है और कहीं-कहीं हास्यरस का भी नियोजन किया जाता है। इसमें भारती वृत्ति की प्रधानता होती है और यत्र-तत्र कैशिकी वृत्ति का भी आश्रय लिया जाता है। [दे० **भारती तथा कैशिकी**] भाण में अंगों-सहित मुख तथा निर्वहण संधियां होती हैं और लास्य के दस अंगों का भी समावेश किया जाता है। लास्य के दस अंग हैं—गोपपद, स्थित, पाठ्य, पुष्पगंडिका, प्रच्छेदक, त्रिगूढ, सैंधव-नामक द्विगूढक, उत्तमोत्तमक, उक्त एवं प्रत्युक्त। इसका कथानक काल्पनिक होता है।

भाण के दो रूप होते हैं—

१. आत्मानुभूत का शंसन—इसमें नायक अपने अनुभवों का स्वयं वर्णन करता है।

२. परस्थ अनुभव का वर्णन—इसमें नायक दूसरों के अनुभवों का साभिनय वर्णन करता है। अभिनवगुप्त के मतानुसार भाण में 'सविस्मय' का प्राधान्य होता है और इसके अधिकारी मूर्ख होते हैं।

उत्सृष्टांक प्रहसनभाणस्तु करुणहास्यविस्मय प्रधानत्वात् रंजक रस-प्रधानाः। ततएवात्र स्त्रीबालमूर्खादिरधिकारी।

—अभिनवभारती, भाग २, पृ० ४५१

भावप्रकाशनकार शिंगभूपाल ने भाषा तथा कथानक के आधार पर इसके नौ भेदों का कथन किया है। भाषा-भेद से भाण तीन प्रकार का होता है—

क. शुद्ध—जिसमें केवल संस्कृत भाषा का प्रयोग किया जाय।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ख. संकीर्ण—जब संस्कृत तथा प्राकृत, दोनों भाषाओं का प्रयोग हो।

ग. विचित्र—जब विभिन्न भाषाओं का प्रयोग किया जाए।

कथावस्तु के आधार पर भाण के तीन भेद संभव हैं—उद्धत, ललित और ललितोद्धत। इस प्रकार इसके नौ भेद हुए—शुद्ध उद्धत, शुद्ध ललित, शुद्ध ललितोद्धत; संकीर्ण उद्धत, संकीर्ण ललित, संकीर्ण ललितोद्धत; विचित्र उद्धत, विचित्र ललित, विचित्र ललितोद्धत। [भावप्रकाशन, नवम अधिकार]

भरत का मत—

आत्मानुभूतशंसी परसंश्रय वर्णनाविशेषस्तु।
विविधाश्रयो हि भाणो विज्ञेयस्त्वेकहार्यश्च॥
परवचनमात्मसंस्थं प्रतिवचनैरुत्तरोत्तरग्रथितैः।
आकाशपुरुषकथितैरंगविकारैरभिनयैश्चैव॥
धूर्तविट संप्रयोज्यो नानावस्थांतरात्मकश्चैव।
एकांको बहुचेष्टः सततं कार्यो बुधैर्भाणः॥

—नाट्यशास्त्र, १८/८-१०

धनंजय का मत—

भाणस्तु धूर्तं चरितं स्वानुभूतं परेण वा।
यत्रोपवर्णयेको निपुणः पंडितो विटः॥
संबोधनोक्तिप्रत्युक्ती कुर्यादाकाशभाषितैः।
सूचयेद्वीरश्रृंगारौशौर्यसौभाग्यसंस्तवः॥
भूयसा भारती वृत्तेरेकांके वस्तु कल्पितम्।
मुखनिर्वहणे सांगे लास्यांगानि दशापि च॥

—दशरूपक, ३/४९-५१

रामचंद्र गुणचंद्र का मत—

भाणः प्रधानश्रृंगारो-वीरो मुख-निर्वाहवान्।
एकांको दशलास्यांगः प्रायो लोकानुरंजकः॥
एको विटो वा धूर्तो वा वेश्यादेः स्वस्य वा स्थितिम्।
व्योमोक्त्या वर्णयेदत्र वृत्तिर्मुख्या च भारती॥

—नाट्यदर्पण, २/८१-८२

विश्वनाथ का मत—

भाणः स्याद्धूर्तचरितो नानावस्थांतरात्मकः।
एकांकः एक एवात्र निपुणः पंडितोविटः॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रंगे प्रकाशयेत्स्वेनानुभूतमितरेण वा ॥
संबोधनोक्तिप्रत्युक्ती कुर्यादाकाशभाषितैः।
सूचयद्वीरशृंगारौ शौर्यसौभाग्यवर्णनैः॥
तत्रेतिवृत्तमुत्पाद्यं वृत्तिः प्रायेण भारती।
मुख निर्वहणेसंधी लास्यांगानि दशानि च॥

—साहित्यदर्पण, ३/२२७-२३०

संस्कृत में चार भाण प्रसिद्ध हैं—'पद्मप्राभृतक', 'धूर्तविट-संवाद', 'उभयाभिसारिका', तथा 'पदताडितकम्'।

यह व्यंग्यविनोद-प्रधान एकांकी रूपक है। इसका पात्र 'विट' ऊपर की ओर मुँह कर 'क्या कहते हो' (किंब्रवीषि) कहकर स्वयं प्रश्न एवं उत्तर देकर दर्शकों का मनोविनोद करता है।

भाणिका—उपरूपक का एक भेद। [दे० उपरूपक] इसमें एक अंक होता है और मुख तथा निर्वहण संधियाँ रहती हैं। इसमें कैशिकी तथा भारती वृत्तियों का निबंधन किया जाता है। इसका नायक नीच वंश का व्यक्ति हुआ करता है और नायिका उदात्त प्रकृति की रमणी होती है। भाणिका में सात अंग होते हैं—उपन्यास (प्रसंगानुसार कार्य का कीर्तन करना), विन्यास (निर्वेदसूचक वाक्य), विबोध, साध्वस (असत्य बात), समर्पण, निवृत्ति, संहार। इसका उदाहरण 'कामदत्ता' है। इसमें सुन्दर नेपथ्य-रचना की आवश्यकता पड़ती है।

भाणिका श्लक्ष्णनेपथ्या मुखनिर्वहणान्विता।
कैशिकी भारतीवृत्तियुक्तैकांकविनिर्मिता॥
उदात्त नायिका मंदनायकात्रांगसप्तकम्।
उपन्यासोऽथ विन्यासो विबोधः साध्वसं तथा॥
समर्पणं निवृत्तिश्च संहार इति सप्तमः।
निर्वेदवाक्यव्युत्पत्तिर्विन्यास इति स्मृतः॥
भ्रांतिनाशो विबोधः स्यान्मिथ्याख्यानं तु साध्वसम्।
सोपालंभवचः कोपपीडयेह समर्पणम्॥
निदर्शनस्योपन्यासो निवृत्तिरिति कथ्यते।
संहार इति च प्राहुर्यत्कार्यस्य समापनम्॥

—साहित्यदर्पण, ६/३०८-३१२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भानुदत्त—इन्होंने 'रसमंजरी' तथा 'रसतरंगिणी' नामक रस-विषयक दो ग्रंथों का प्रणयन किया है। 'रसमंजरी' नायक-नायिका-भेद का ग्रंथ है और 'रसतरंगिणी' में रस, उसके भेद तथा तत्संबधी अन्य विषयों का विशद विवेचन है। लेखक ने 'रसमंजरी' के अंतिम श्लोक में अपना परिचय दिया है, जिसके अनुसार ये मैथिल थे और इनके पिता का नाम गणेश्वर था। इनका समय तेरहवीं शती का अंतिम तथा चौदहवीं शती प्रारंभिक चरण है।

तातो यस्य गणेश्वरोकविकुलालंकारचूडामणि-
र्देशो यस्य विदेहभूः सुरसरित् कल्लोलकीर्मीरिता ॥

गणेश्वर प्रसिद्ध मंत्री हो चुके हैं, जिनके पुत्र चंडेश्वर ने 'विवादरत्नाकर' की रचना की थी। चंडेश्वर ने १३१५ ई० में सुवर्ण से अपना तुलादान कराया था। 'रसमंजरी' की गोपाल आचार्य-कृत 'विकास' नामक टीका १४२८ ई० की है। इस दृष्टि से भानुदत्त का उपर्युक्त समय निश्चित होता है।

'रसमंजरी' में नायक-नायिका-भेद का सुव्यवस्थित वर्णन है। इसमें मुख्यतः नायिका के तीन भेद माने गए हैं—स्वीया, परकीया और सामान्या। पुनः स्वीया के तीन भेद किए गए—मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा। मुग्धा के चार भेद हुए—ज्ञातयौवना, अज्ञातयौवना तथा नवोढ़ा और विश्रब्ध-नवोढ़ा। प्रगल्भा के दो भेद हैं—रतिप्रीतिमती तथा आनंदसंमोहवती। मानावस्था में मध्या और प्रगल्भा के तीन-तीन भेद माने गए हैं—धीरा, अधीरा और धीरा-धीरा। पति-प्रेम के आधार पर इनके ज्येष्ठा और कनिष्ठादि भेदों का कथन किया गया है।

परकीया के दो भेदों का वर्णन है—परोढा एवं कन्यका। और इसके (परकीया के) अंतर्गत विदग्धा, कुलटा, लक्षिता, गुप्ता, अनुशयना, मुदिता आदि भेदों का विवेचन है। इन्होंने कुल मिलाकर ३८४ नायिकाओं का वर्णन किया है। स्वकीया के १३, परकीया के दो तथा सामान्या के एक भेद को मिलाकर कुल १६ नायिकाएँ होती हैं और इनका विभाजन उत्तमा, मध्यमा तथा अधमा के रूप में किया गया है। पुनः, स्वाधीनरतिका प्रभृति आठ भेदों में विभक्त कर देने पर इनकी संख्या ३८४ हो जाती है।

'रसमंजरी' की रचना सूत्र-शैली में हुई है, जिस पर स्वयं विशद व्याख्या लिखकर लेखक ने अपने विचार को स्पष्ट किया है। इस पर ग्यारह टीकाओं की रचना हुई है, जिनमें अनंत पंडित-कृत 'व्यंग्यार्थकौमुदी' तथा नागेशभट्ट-रचित

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'प्रकाश' का प्रकाशन हो चुका है। 'रसमंजरी' का हिंदी-अनुवाद पं० जगन्नाथ पाठक ने किया है, जो चौखंबा संस्कृत सीरीज, वाराणसी से प्रकाशित है।

'रसतरंगिणी' में विस्तारपूर्वक रस-विवेचन किया गया है। यह आठ तरंगों में विभक्त है, जिनमें भाव, विभाव, अनुभाव, सात्त्विकभाव, व्यभिचारी-भाव, शृंगाररस तथा अन्य रसों का व्यवस्थित वर्णन हुआ है। इस पर नौ टीकाएँ लिखी गई थीं, जिनमें गंगाराम की 'नौका' प्रकाशित हो गई है। इसका हिंदी भाष्य आचार्य सीताराम चतुर्वेदी ने किया है।

'रसतरंगिणी' में रस के संबंध में अनेक नवीन तथ्य प्रस्तुत किए गए हैं। लेखक ने रसानुकूल विकार को भाव कहा है और भावों को प्रथम स्थान देने के हेतु का कथन करते हुए बताया है कि वे रस के कारण हैं।

रसस्य हेतवो भावादयः। तेन रसेभ्यः पूर्वं भावादय एव निरूप्यंते। रसानुकूलो विकारो भावः। —रसतरंगिणी, पृ० ६

विकार के दो प्रकार माने गए हैं—आंतर और शारीर। आंतर के भी दो भेद किए गए हैं—स्थायी और व्यभिचारी। इन्होंने शरीर-विकार के अंतर्गत सात्त्विक भावों को परिगणित किया है। भानुदत्त ने रस के दो भेद किए हैं—लौकिक और अलौकिक। लोक के संनिकर्ष से उत्पन्न रस लौकिक है और अलौकिकसन्निकर्षजन्मा रस को अलौकिक कहते हैं। लौकिक रस में शृंगारादि रसों का समावेश किया गया है।

भानुदत्त ने शांतरस को मान्यता दी है, पर उसकी व्याप्ति नाटक में नहीं स्वीकार की। इन्होंने 'मायारस' नामक नवीन रस की कल्पना की है। इनके अनुसार जब निवृत्ति-परायण शांत रस को स्वतंत्र-रस स्वीकार किया जा सकता है तो कोई कारण नहीं कि मिथ्याज्ञान से उत्पन्न मायारस को रस न माना जाय। भानुदत्त ने वात्सल्य, लौल्य, भक्ति और कार्पण्य रस को क्रमशः करुण, हास्य, शांत तथा हास्य रस में समाविष्ट किया है और इन्हें स्वतंत्र रस स्वीकार नहीं किया। [**दे० रस संप्रदाय**] इन्होंने छल नामक चौंतीसवें संचारी भाव का वर्णन किया है। [**रसतरंगिणी का हिंदी-अनुवाद-सहित प्रकाशन वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई से हुआ है**]

इनकी अलकार शास्त्र-विषयक एक अन्य रचना 'अलंकार तिलक' भी है, जिसमें गुण, दोष, रीति, अलंकार तथा काव्य-प्रभेद का पाँच परिच्छेदों में वर्णन किया गया है। इसमें ४८ अलंकारों का निरूपण है। [**इनके नायिका-भेद-संबंधी विशेष विवरण के लिए दे० नायिका-भेद**]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भामह

भामह—ये अलंकारवादी आचार्य हैं। इनकी काव्यशास्त्रीय रचना 'काव्यालंकार' है। [दे० काव्यालंकार] भारतीय काव्यशास्त्र का क्रमबद्ध इतिहास भामह से ही प्रारंभ होता है; क्योंकि भरत के 'नाट्यशास्त्र' में मुख्यतः नाटक का ही विवेचन था, काव्यांगों का निरूपण गौण रूप से किया गया था और वह भी नाटक को दृष्टि में रखकर। भामह ने अपने ग्रंथ में काव्यांगों को स्वतंत्र रूप से प्रतिष्ठित कर काव्यशास्त्र को पृथक् शास्त्र का रूप प्रदान किया। अभिप्राय यह कि भरत ने नाट्यालोचन की परंपरा का प्रवर्त्तन किया था; किंतु काव्यालोचन की स्वतंत्र परंपरा के प्रवर्त्तक भामह थे।

इनके संबंध में विशेष विवरण प्राप्त नहीं होता। इन्होंने अपने पिता का नाम 'रक्रिलगोमी' दिया है। [काव्यालंकार, ६/६४] इनका समय छठी शती का मध्य है।

भामह ने 'काव्यालंकार' में काव्य के लक्षण, भेद, काव्य के साधन, काव्य के प्रयोजन, महाकाव्य, आख्यायिका, कथा, गाथा, काव्यदोष, गुण तथा अलंकार का विवेचन किया है। [**इनके संबंध में भामह के विचार संबद्ध विषयों में देखें**]

अलंकार-संप्रदाय के विकास में भामह का महत्त्वपूर्ण योग है। इनके 'काव्यालंकार' से ज्ञात होता है कि इनके पूर्व अनेक आचार्यों ने अलंकारों का विवेचन किया था और भामह ने संपूर्ण परंपरा की उपलब्धियों को उपन्यस्त कर अलंकारों का निरूपण किया। इन्होंने अनुप्रास तथा यमक एवं रूपक, दीपक ग्राम्यानुप्रास, लाटीय अनुप्रास और प्रहेलिका को पूर्ववर्ती आचार्यों से ग्रहण किया था। [दे० काव्यालंकार, २/४,५,८,११ तथा ३/५८] इन्होंने दो शब्दालंकारों और ३६ अर्थालंकारों का वर्णन किया है। [दे० अलंकार-संप्रदाय]

इन्होने गुण, दोष और अलंकार का लक्षण नहीं दिया है। भरत-द्वारा निरूपित दस गुणों के स्थान पर तीन गुणों—माधुर्य, ओज और प्रसाद—की प्रतिष्ठा कर इन्होंने सारग्राहिणी बुद्धि का परिचय दिया है। इनके द्वारा स्थापित गुणत्रय की अखंड परंपरा काव्यशास्त्र में प्रतिष्ठित हुई और परवर्ती आचार्यों ने बिना किसी झिझक के इनके मत को अंगीकार किया। इन्होंने वक्रोक्ति को काव्य के अनिवार्य तत्त्व के रूप में स्थापित कर नवीन काव्य-प्रणाली के रूप में उसकी महत्ता स्थापित की, जो आगे चलकर कुंतक द्वारा स्वतंत्र काव्य-सिद्धांत के रूप में विकसित हुई।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अलंकार-सिद्धांत का पोषक होने के कारण ये रस-सिद्धांत के विरोधी थे। इनके अनुसार उत्तम काव्य के लिए अलंकार एक आवश्यक तत्त्व है। रस की सीमा को परिमित कर इन्होंने उसे कतिपय अलंकारों—प्रेयस्, रसवत् और ऊर्जस्वी—में समाहित कर दिया है। [दे० काव्यालंकार, ३/६] रसवत् अलंकार वहाँ होता है, जहाँ शृंगारादि रस स्पष्ट रूप से दिखाए जाएँ। फिर भी महाकाव्य के विवेचन में [दे० महाकाव्य] ये रस के महत्त्व को स्वीकार करते हैं और उसमें समस्त रसों के विधान की अनिवार्यता सिद्ध करते हैं। इन्होंने अलंकार के माध्यम से काव्य के कल्पना-पक्ष पर अधिक बल दिया, इसलिए भाव से संबंध रखनेवाले रस-तत्त्व की उपेक्षा हो गई। भामह ने अलंकार का मूल अतिशयोक्ति को माना है। उसके (अतिशयोक्ति के) अभाव में किसी भी अलंकार में चमत्काराधान नहीं हो सकता, इसीलिए इन्होंने हेतु, सूक्ष्म और लेश को अलंकार नहीं माना। दोष-राहित्य को इन्होंने काव्य के लिए आवश्यक माना है और इसके लिए किसी प्रकार का समझौता नहीं किया। कुकविता को इन्होंने साक्षात् मरण की संज्ञा दी है।

भारती वृत्ति—यह नाट्य-वृत्ति का प्रथम प्रकार है। [दे० वृत्ति] भारती वृत्ति की उत्पत्ति वाणी या भारती से मानी जाती है। विष्णु भगवान के साथ, संग्राम के अवसर पर, मधुकैटभ ने जिस वाग्बहुल वाणी का प्रयोग किया था, उसीसे इस वृत्ति का निर्माण हुआ। धनंजय के अनुसार भरतों (नटों) के वाग्विन्यास पर आश्रित होने के कारण इसका नाम भारती हुआ। विश्वनाथ ने पुरुष पात्रों-द्वारा प्रयुक्त संस्कृत वाणी को भारती की संज्ञा दी है। उनके अनुसार भारती 'नराश्रय' वाग्व्यापार है।

भारती संस्कृतप्रायो वाग्व्यापारो नटाश्रयः ॥

—दशरूपक, ३/५

भारती संस्कृतप्रायो वाग्व्यापारो नराश्रयः ॥

—साहित्यदर्पण, छठा परिच्छेद

भरत मुनि के अनुसार पुरुषों-द्वारा प्रयुक्त संस्कृत वाणी को भारती कहते हैं। इस वृत्ति में स्त्रियाँ वर्जित रहती हैं। इसका प्रयोग सदा (नटों) भरतों द्वारा होता है।

या वाग्प्रधाना पुरुष-प्रयोज्या,
स्त्रीवर्जिता संस्कृतवाक्ययुक्ता।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वनामधेयैर्भरतैः प्रयुक्ता,
सा भारती नाम भवेत्तु वृत्तिः]।
—नाट्यशास्त्र, २२/२५

इसका प्रयोग करुण एवं अद्‌भुत रसों में होता है। यह वृत्ति पाठ्यप्रधाना है; इसमें शब्दों की प्रधानता होती है।

भारती चापि विज्ञेया करुणाद्‌भुतसंश्रया।
—नाट्यशास्त्र, २२/२६

भारती वाग्वृत्तिः पाठ्यप्रधाना भारती॥
—अभिनवभारती पृ० २०-२१

भारती वृत्ति वाग्चेष्टा पर आश्रित होती है; इसमें वचन या पाठ्य का प्राधान्य होता है। इसका संबंध शब्द-प्रयोग से माना जाता है। करुण और अद्‌भुत रस से इसका संबंध स्थापित कर आचार्यों ने इसकी विशिष्टता प्रदर्शित की है। करुण रस में सहज़ ही वाग्विलाप देखा जाता है। प्रिय की मृत्यु के कारण विलाप करना स्वाभाविक है। अतः, व्यक्ति अनर्गल बातों का प्रयोग कर अपने भावों को प्रकट करता है। अद्‌भुत रस में आश्चर्यजनक घटना वर्णित होती है, जिसे देखकर मनुष्य आश्चर्यचकित होकर निरर्थक बातें कहने लगता है। कतिपय आचार्य भारती का प्रयोग प्रत्येक रस में उपयुक्त मानते हैं—**वृत्तिः सर्वत्र भारती**—भावप्रकाशन, पृ० १२। चूँकि इसका प्रयोग भरतों या नटों द्वारा हुआ है; अतः यह शब्दप्रधाना वृत्ति भारती के नाम से अभिहित की गई। इसके चार प्रकार माने गए हैं—प्ररोचना, आमुख, बीथी और प्रहसन। **[दे० प्ररोचना, आमुख, बीथी और प्रहसन]**

भार्यादूती—दूती का एक भेद। **[दे० दूती]** जब नायक की पत्नी नायक के वशीभूत होकर स्वयं उसका दूतत्व करे तो उसे भार्यादूती कहते हैं।

भाव—एक प्रकार का अप्रसिद्ध अलंकार, जिसकी उद्‌भावना आचार्य रुद्रट ने की है। उनके अनुसार इसकी परिभाषा इस प्रकार है—"जिसका विकार जिस अनियत कारण से उत्पन्न होता हुआ उसके (कार्य-कारण-संबंध-रूप) अभिप्राय तथा उस (कार्य-कारण-संबंध-रूप) प्रतिबंध का बोध कराए, वह भाव नामक अलंकार होता है।"

यस्य विकारः प्रभवन्नप्रतिबद्धेन हेतुना।
गमयति तदभिप्रायं तत्प्रतिबंधं च भावोऽसौ॥
—काव्यालंकार, ७/३८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रुद्रट ने इसके दो भेदों का वर्णन किया है—

अभिधेयमभिदधानं तदेवसदृशं सकलगुणदोषम्।
अर्थांतरमवगमयति वाक्यं सोऽपरो भावः ॥

काव्यालंकार, ७/४०

इनके दोनों ही प्रकार उक्तिवैचित्र्य से संबद्ध न होकर भाव या मनोविकार के निकट हैं। मनोविकार को भाव कहा जाता है; अतः इसे स्वतंत्र अलंकार का रूप नहीं दिया जा सकता। इसके (भाव के) दोनों भेदों में मनोविकारों का ही स्पष्टीकरण है।

रुय्यक ने भावालंकार के दोनों ही भेदों को गुणीभूतव्यंग्य के अंतर्गत माना है। अलंकारसर्वस्व, पृ० ६-८

उद्योतकार नागेश ने भी रुद्रट-द्वारा उद्‌भावित भाव एवं पिहित अलंकार का अंतर्भाव सूक्ष्म में किया है।

अनुभावालंकारमाहरुद्रटः। नव्योक्त पिहितालंकारोऽप्यत्रैवांतर्भूतः ॥

—उद्योत, पृ० ५५१

भाव—मन के विकार को भाव कहते हैं—भावो मनसोविकारः—भरत।

इसका वर्णन भरत के 'नाट्यशास्त्र' में मिलता है। उनके अनुसार भावित करनेवाले (होनेवाले) को भाव कहते हैं। संकुचित अर्थ में भाव अपूर्ण या अपुष्ट रस का बोधक है और व्यापक अर्थ में मन के विकार का।

भावा इतिकस्मात् ? किं भवंतीति भावाः, किं वा भवयंतीति भावाः। उच्यते—वागंगसत्त्वोपेतान्काव्यार्थान्भावयंतीति भावा इति।

—नाट्यशास्त्र, पृ० ४०४-४०५, अध्याय ७

भरत, भावना करनेवाले को भाव की संज्ञा देते हैं। वाग्, अर्थ तथा सत्त्व से युक्त काव्यार्थों को भावित करनेवाले को भाव कहा जाता है। भाव शब्द भू धातु से करण अर्थ में होता है। इसके समानार्थी शब्द हैं भावित, वासित और कृत। भरत ने भाव का प्रयोग तीन अर्थों में किया है—काव्यार्थ के वाचक के रूप में, काव्य की वर्णना के अंतर्गत काव्य कौशल द्वारा विभिन्न अभिनयों के माध्यम से सहृदय तक काव्यार्थ को पहुँचाने के अर्थ में तथा रसप्रतीति के योग्य बनानेवाली विभिन्न विशिष्ट चित्तवृत्ति के रूप में। भाव से मुख्यतः भरत का अभिप्राय रसव्यंजक सामग्री से है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विभावेनाहृतो योऽर्थो ह्यनुभावैस्तु गम्यते ।
वागंगसत्त्वाभिनयैः स भाव इति संज्ञितः ।।
वागंगमुखरागेण सत्त्वेनाभिनयेन च ।
कवेरंतर्गतं भावं भावयन्भाव उच्यते ।।
नानाभिनयसंबद्धान्भावयंतिरसानिमान् ।
यस्मात्तस्मादमी भावा विज्ञेया नाट्ययोक्तृभिः ।।

'जो अर्थ विभावों द्वारा प्रस्तुत होकर अनुभावों तथा वाचिक, आंगिक और सात्त्विक अभिनयों के द्वारा प्रतीति-योग्य बनता है, वह भाव कहा जाता है। वचन, अंग तथा मुख-राग के द्वारा और सात्त्विक अभिनय के द्वारा कवि के अंतर्निहित भाव को भावित (अभिव्यक्त या व्याप्त) करने के कारण भाव कहा जाता है। अभिनय से संबद्ध अनेक रसों की भावना करने के कारण नाट्याचार्यों के द्वारा इनको भाव नाम से जाना जाता है।'

भरत मुख्य रूप से तीसरे अर्थ को ही ग्रहण करते हैं अर्थात् जो रस का भावन करे, उसे भाव कहते हैं। भाव के अंतर्गत उन्होंने स्थायी, संचारी, विभाव और अनुभाव का वर्णन किया है।

काव्यशास्त्र में भाव का प्रयोग व्यापक तथा विशेष अर्थ में होता है। व्यापक अर्थ के अंतर्गत सारी रससामग्री एवं रस का समावेश होता है। भाव की परिपक्वावस्था को रस कहते हैं। पर, विशेष अर्थ में यह अपूर्ण रस का बोधक है। विश्वनाथ के अनुसार 'प्रधानता से प्रतीयमान निर्वेदादि संचारी तथा देवता-गुरु आदि के विषय में अनुराग एवं सामग्री के अभाव में रस रूप को अप्राप्त उद्बुद्ध मात्र रति, हास आदि स्थायी ये सब भाव कहलाते हैं।' विशेष अर्थ में भाव के तीन अर्थ हुए—

क. प्रधानता से व्यंजित निर्वेदादि संचारी,

ख. देवादिविषयक रति,

ग. उद्बुद्धमात्र स्थायी भाव।

प्रधानता से व्यंजित संचारी—जब निर्वेदादि संचारी भाव की प्रधानता से प्रतीति हो तो उसे भाव कहा जाता है। अभिप्राय यह कि जब रस की अपेक्षा संचारी भाव ही प्रधान रूप से प्रतीत हों तो वे रस की पूर्णता को प्रकट नहीं करने के कारण भाव कहे जाते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

देवादिविषयक रति—जब देवता, गुरु, मुनि, राजा, पुत्र आदि के प्रति रति अर्थात् भक्ति, प्रेम, पूज्यभाव, वात्सल्य, स्नेह हो तो इनकी प्रधानता के कारण इन्हें भाव कहते हैं।

उद्बुद्धमात्र स्थायी—जब रति आदि स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव, संचारी आदि से पुष्ट न हों तो वे भाव कहे जाते हैं और पुष्ट होने पर उनकी परिणति रस-रूप में होती है। स्थायी भाव अपुष्ट अवस्था में भाव कहलाते हैं।

संचारिणः प्रधानानि देवादिविषयारतिः ।
उद्बुद्धमात्रः स्थायी च भाव इत्यभिधीयते ॥

—साहित्यदर्पण, ३/२६०

व्यापक अर्थ में भाव रस-सामग्री का द्योतक है—विभाव, अनुभाव, संचारी और स्थायी भाव का। आचार्य शुक्ल के अनुसार 'भावों से अभिप्राय संवेदना के स्वरूप की व्यंजना से है।' डॉ० नगेंद्र का कहना है कि भरत भाव का अभिप्राय रस के भावन से लेते हैं। 'जो रस का भावन करें, वे भाव हैं—अर्थात् भाव से उनका अभिप्राय रसव्यंजक सामग्री का ही है, जिसके अंतर्गत स्थायी, संचारी के साथ विभाव और अनुभाव भी आ जाते हैं।'

—रस-सिद्धांत, पृ० २१८

भावों की परिपक्वावस्था ही रस है। रस के चार अंग हैं—विभाव, अनुभाव, संचारी भाव और स्थायी भाव। इन्हें दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—भाव और विभाव। विभाव रस का कारण है। [दे० **विभाव**] इसके अंतर्गत सारा विश्व आ जाता है—मानव तथा मानवेतर प्रकृति भी। विभाव के दो भेद हैं—आलंबन और उद्दीपन। जहाँ भाव टिकता या स्थित रहता है, उसे आलंबन कहते हैं। [दे० **आलंबन**] जो भाव को उद्दीप्त करता है या जगाता है, उसे उद्दीपन कहते हैं। [दे० **उद्दीपन**] उद्दीपन के अंतर्गत आलंबन की चेष्टाएँ भी आती हैं। बाह्य परिस्थिति एवं वातावरण को उद्दीपन के अंतर्गत रखा जाता है।

भाव के दो भेद हैं—स्थायी और अस्थायी।

स्थायी भाव वे हैं, जो रस में प्रारंभ से अंत तक विद्यमान रहते हैं। [दे० **स्थायी भाव**] ये रस के मूल हैं। अस्थायी भाव के भीतर संचारी या व्यभिचारी भाव को परिगणित किया जाता है। रस में इनकी स्थिति क्षणिक होती है और इनका उद्देश्य स्थायी भाव को गति प्रदान करना होता है। [दे०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संचारी भाव] अनुभाव ऐसे भावों को कहते हैं, जिनसे रस की प्रतीति या बोध होता है। ये रस के कार्य हैं। आंतरिक भावों की बाह्य अभिव्यक्ति को अनुभाव कहा जाता है।

भाव—नायिका के अंगज अलंकार। [दे० नायिका के अलंकार] निर्विकार चित्त में (यौवनारंभ में) पहले-पहल विकार या काम-विकार का आना भाव है।

भावक—आलोचक को भावक कहा जाता है। यह काव्य या साहित्य के वैशिष्ट्य का उद्घाटन कर उसकी महत्ता सिद्ध करता है। भावक की उपकारिका भावयित्री प्रतिभा होती है, जिसके द्वारा कवि के परिश्रम एवं अभिप्राय का मूल्यांकन होता है। राजशेखर का कहना है कि भावक के ही आश्रय से कवि का काव्य-व्यापाररूपी वृक्ष फलता है और उसके बिना वह बंध्य हो जाता है। संस्कृत-आचार्यों ने इसके चार प्रकार किए हैं—अरोचकी, सतृणाभ्यवहारी, मत्सरी एवं तत्त्वाभिनिवेशी। अरोचकी विवेकी को कहते हैं और सतृणाभ्यवहारी अविवेकी को। पक्षपातपूर्ण आलोचना करनेवाला भावक मत्सरी कहा जाता है। काव्य के तत्त्व को ठीक से समझकर जो आलोचक पक्षपात-रहित होकर उसका मूल्यांकन करे, उसे तत्त्वाभिनिवेशी कहते हैं। भावक के अन्य भेद भी हैं—हृदयभावक, वाक्भावक एवं गूढ़भावक। जो काव्य-रस का आस्वादन कर उसके गुण को हृदय में ही धारण करे, उसे व्यक्त न करे तो उसे हृदयभावक कहते हैं। वाक्भावक काव्य के गुण-दोष को शब्दतः प्रकट कर देता है। जो भावक काव्य के गुण को सात्त्विक या आंगिक अनुभावों द्वारा व्यक्त करे, वह गूढ़ है।

भावप्रगल्भा—प्रगल्भा नायिका का एक भेद। [दे० प्रगल्भा] स्मरोन्मत्ता का अन्य नाम भावप्रगल्भा है। [दे० स्मरोन्मत्ता]

भावयित्रीप्रतिभा—भावक या आलोचक का उपकार करनेवाली प्रतिभा भावयित्री है। इसके द्वारा भावक काव्य या कवि के गुण-दोषों का विवेचन करता है। राजशेखर ने कहा है कि इससे कवि की कविता-लता सफल होती है तथा इसके विना काव्य निष्फल हो जाता है। उन्होंने (राजशेखर ने) भावक के चार प्रकार किए हैं—अरोचकी, सतृणाभ्यवहारी, मत्सरी एवं तत्त्वाभिनिवेशी। अरोचकी उसे कहते हैं, जिसे किसी की उत्कृष्ट रचना अच्छी न लगे। अच्छी या बुरी, सभी प्रकार की रचनाओं की प्रशंसा करनेवाला भावक सतृणाभ्यवहारी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। मत्सरी उसे कहते हैं, जो ईर्ष्यावश किसी की रचना को पसंद नहीं करता। सभी रचनाओं में कुछ-न-कुछ गुण-दोष निकालनेवाला भावक तत्त्वाभिनिवेशी कहा जाता है।

भावकस्योपकुर्वाणा भावयित्री। सा हि कवेः श्रममभिप्रायं च भावयति। तथा खलु फलितः कवेर्व्यापारतरुः। अन्यथा सोऽवकेशी स्यात्।........'चतुर्धा' इति यायावरीयः।

—काव्यमीमांसा, अध्याय ४

तत्त्वाभिनिवेशी भावक काव्य के तत्त्व को समझकर उसे पक्षपात-शून्य होकर प्रकट करता है। सभी भावकों में यह श्रेष्ठ है।

भाव-शबलता—जब एक भाव के साथ अन्य अनेक भावों की एकत्र स्थिति हो तो भाव-शबलता होती है। 'शबलता' का अर्थ है अनेक रंगों का मेल या चितकबरापन। इसमें पूर्व-पूर्व निबद्ध भाव उत्तरोत्तर निबद्ध भावों की रगड़ खाया करते हैं और इसमें अद्भुत चमत्कार निहित रहता है।

उदाहरण—

क. क्वाकार्यं शशलक्ष्मणः क्व च कुलं, भूयोऽपि दृश्येत सा
दोषाणां प्रशमाय मे श्रुतमहो, कोपेऽपि कांतं मुखम्।
किं वक्ष्यंत्यपकल्मषाः कृतधियः स्वप्नेऽपि सा दुर्लभा
चेतः स्वास्थ्यमुपैहि, कः खलु युवा धन्योधरं धास्यति॥

विरही राजा पुरूरवा की उक्ति—"कहाँ यह मेरा निकृष्ट प्रेम-कार्य और कहाँ श्रेष्ठ चंद्रवंश में मेरा जन्म ? किंतु आह ! क्या ही अच्छा होता यदि वह (उर्वशी) पुनः मिल जाती ! पर, नहीं, यह बुरा कार्य है, मैंने पाप को नष्ट करनेवाले वेदों तथा धर्मशास्त्रों का अध्ययन किया है। किंतु कुपित होने पर भी उसका मुख कितना आकर्षक था ? विद्वान् लोग मेरे इस कुकर्म को देखकर क्या कहेंगे ? किंतु, वह सुंदरी मेरे लिए अब स्वप्न में भी दुर्लभ हो गई ! हे मन ! धीरज धारण करो, व्यथित मत हो; पर इससे क्या ? कौन युवा धन्य होगा, जो उसका प्रेमी बनकर अधरों का पान करेगा ?" यहाँ वितर्क, औत्सुक्य, मति, स्मृति, शंका, दैन्य, धृति तथा चिंता की शबलता (मिश्रण) है।

ख. ऋषिहि देखि हरषै हियो, राम देखि कुम्हिलाय।
धनुष देखि डरपै महा, चिंता चित्त डोलाय॥

—केशवदास

—यहाँ हर्ष, विषाद, भय एवं चिंता की शबलता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भावशांति—पूर्व स्थित किसी भाव की व्यंजना के समय उसी क्षण किसी अन्य विरोधी भाव की भी व्यंजना होने से पूर्व भाव की समाप्ति में चमत्कार का आना भावशांति है ।

उदाहरण—

क. सुतनु ! जहिहि कोपं पश्य पादानतं मां
न खलु तव कदाचित्कोप एवंविधोऽभूत ।
इति निगदति नाथे तिर्यगामीलिताक्ष्या
नयनजलमनल्पं मुक्तमुक्तं न किंचित् ॥
—अमरुक शतक

मानिनी के प्रति अपराधी नायक का कथन—"हे सुंदरी ! कोप का त्याग करो, मैं तुम्हारे चरणों पर अवनत हो गया हूँ । तुम तो पहले इतनी रुष्ट नहीं हुई थीं । नायक के ऐसा कहने पर उस सुंदरी के अधखुले नेत्रों से आँसुओं की धारा बहने लगी और उसके मुख से एक शब्द भी नहीं निकला ।" यहाँ ईर्ष्या भाव की शांति का रमणीय वर्णन है ।

ख. अतीव उत्कंठित ग्वालबाल हो,
सवेग जाते रथ के समीप थे ।
परंतु होते अति ही मलीन थे,
न देखते थे जब वे मुकुंद को ॥ —प्रियप्रवास

रथ से उद्धवजी को आता देखकर ब्रज के ग्वालबालों के हृदय में श्रीकृष्ण का आगमन समझकर हर्ष हुआ; पर कृष्ण को न देखकर उनके मन में हर्ष की शांति विषाद के रूप में हुई ।

भाव-संधि—जब एक साथ समान चमत्कारवाले दो भावों की संधि हो तो भाव-संधि होती है ।

उदाहरण—

क. नयनयुगासेचनकं मानसवृत्त्यापि दुष्प्रापम् ।
रूपमिदं मदिराक्ष्या मदयति हृदयं दुनोति च मे ॥

"मेरे नेत्र-युगल का सिंचन करनेवाला एवं मन की वृत्ति की पहुँच से भी परे उस मदिराक्षी का रूप मेरे हृदय को मतवाला भी बना रहा है ।" अभिप्राय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यह कि आनंदित भी कर रहा है तथा टीस भी पैदा करता है। यहाँ पर हर्ष तथा विषाद दो भावों की संधि है।

ख. छुटै न लाज न लालचौ, प्यौ लखि नैहर गेह।
सटपटात लोचन खरे, भरे सँकोच सनेह ॥ —बिहारी

यहाँ मायके में प्रिय-मिलन की आकांक्षा में स्नेह तथा गुरुजनों के कारण न मिलने में लज्जा भाव की संधि है। स्नेह तथा लज्जा—दोनों के वर्णन में समान चमत्कार है।

भावाभास—भाव का अनौचित्यपूर्ण वर्णन भावाभास है। विश्वनाथ ने वेश्या आदि के लज्जा-प्रदर्शन को भावाभास कहा है।

भावाभासो लज्जादिके तु वेश्यादिविषये स्यात्।
—साहित्यदर्पण, ३/२६६

भाविक—गूढ़ार्थप्रतीतिमूलक अलंकार। भूत अथवा भावी (भविष्य) का प्रत्यक्षवत् (वर्तमान की भाँति) वर्णन भाविक अलंकार है। 'भाविक' का अर्थ है सत्तावाला (भू=सत्ता, इक=वाला) या सत्ता की रक्षा (भू=सत्ता, इक=रक्षा)। इस अलंकार में भूत एवं भविष्य का वर्तमान की भाँति वर्णन कर उनकी सत्ता की रक्षा की जाती है, इसलिए इसे भाविक कहते हैं। भाविक नाम की सार्थकता इस अर्थ में भी है; क्योंकि इसमें पाठक या श्रोता को भूत एवं भावी पदार्थों का प्रत्यक्ष की भाँति अनुभव होता है।

भावायसाक्षात्काराय प्रभवतीति भावितम् ॥

आशाधर—कुवलयानंद कारिकाव्याख्या, श्री गजेंद्र गडकर-कृत काव्य-प्रकाश की व्याख्या पृ० ३६९।

शब्दार्थ-योजना या भाषा की अनाकुलता या सद्यः अर्थबोधकता एवं विषय की विस्मयजनकता दोनों ही भाविक अलंकार की सफलता के आवश्यक तत्त्व हैं।

इस अलंकार का सर्वप्रथम विवेचन भामह ने किया है, तत्पश्चात् वामन, रुद्रट एवं पंडितराज जगन्नाथ के अतिरिक्त सभी आचार्यों ने इसका निरूपण किया। भामह ने भाविक की परिगणना प्रबंध गुण के अंतर्गत की है। उनके अनुसार यह प्रबंधगत अलंकार है अर्थात् इसकी स्थिति केवल प्रबंध काव्य में ही संभव है। जब भूत तथा भावी पदार्थ प्रत्यक्ष की भाँति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दिखाई पड़ें तो वह भाविकत्व होता है। इसके निष्पादक कारण हैं—अर्थ की चित्रता, उदात्तता, अद्‌भुतता, कथा की अभिनेयता तथा शब्दों की स्वच्छता।

भाविकत्वमिति प्राहुः प्रबंधविषयं गुणम्।
प्रत्यक्षा इव दृश्यंते यत्रार्थाभूतभाविनः॥
चित्रोदात्ताद्‌भुतार्थत्वं कथायाः स्वभिनीतता।
शब्दानाकुलताचेति तस्य हेतुं प्रचक्षते॥

—काव्यालंकार, ३/५३-५४

दंडी का भाविक-विवेचन भामह से अनुप्राणित है। इन्होंने भी इसे प्रबंधगत अलंकार माना है। प्रबंध-महाकाव्य, नाटक, आख्यायिका आदि में वर्णित कवि के चमत्कारपूर्ण भाव का नाम भाविक है।

तद्‌भाविकमितिप्राहुः प्रबंधविषयं गुणम्।
भावः कवेरभिप्रायः काव्येष्वासिद्धि संस्थितः॥
परस्परोपकारित्वं सर्वेषां वस्तु पर्वणाम्।
विशेषणानां व्यर्थानामक्रियास्थानवर्णना।
व्यक्तिरुक्तिक्रमबलाद् गंभीरस्यापि वस्तुनः।
भावायत्तमिदं सर्वमिति तद्‌भाविकं विदुः॥

—काव्यादर्श, २/३६४-३६६

सर्वप्रथम उद्‌भट ने इसे (भाविक को) काव्यालंकार का नाम दिया। इनके मतानुसार भूत या भावी आश्चर्यजनक पदार्थ जब सुबोध शब्दों में प्रत्यक्ष की तरह वर्णित हों तो भाविक अलंकार होगा। इस अलंकार का विकास इसी लक्षण के अनुसार हुआ।

प्रत्यक्षा इव यत्रार्थाः दृश्यंते भूतभाविनः।
अत्यद्‌भुताः स्यात्तद्वाचामनाकुल्येनभाविकम्॥

—काव्यालंकारसारसंग्रह, ६/६

भोज ने स्वाभिप्रायकथन, अन्य-भावना और अन्यापदेश को भाविक कहा।

स्वाभिप्रायस्य कथनं यदिवाप्यन्यभावना।
अन्यापदेशो वा यस्तु त्रिविधं भाविकं विदुः॥

—सरस्वतीकंठाभरण, ४/८६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मम्मट ने उद्‌भट का आधार ग्रहण कर इस अलंकार के स्वरूप को व्यवस्थित कर दिया। इनके अनुसार जब कवि भावना-द्वारा भूत एवं भावी पदार्थों को प्रत्यक्षवत् प्रदर्शित करे तो भाविक अलंकार होगा।

प्रत्यक्षा इव यद्भावाः क्रियंते भूतभाविनः।
तद्भाविकम्। भावः कवेरभिप्रायोऽत्रास्तीतिभाविकम्॥

—काव्यप्रकाश, १०/११४

रुय्यक ने कहा कि जब अतीत तथा अनागत का प्रत्यक्ष के समान वर्णन किया जाय तो भाविक अलंकार होगा। ये अर्थ की विस्मयजनकता एवं भाषा का प्रासादिकता पर बल देकर इसकी परिधि विस्तृत कर देते हैं।

अतीतानागतयोः प्रत्यक्षमाणत्वं भाविकम्।
अतीतानागतयोर्भूतभाविनोरर्थयोरलौकिक-
त्वेनात्यद्भुतप्रत्यक्षायमाणत्वं भाविकम्॥

—अलंकारसर्वस्व, पृ० २२३-२४

शोभाकरमित्र ने भाविक के तीन प्रकारों का उल्लेख किया है—देश विप्रकृष्ट (भूत तथा भावी), कालविप्रकृष्ट एवं स्वभाव विप्रकृष्ट। इनके अनुसार तीनों विप्रकृष्टों का प्रत्यक्षवत् वर्णन भाविक अलंकार है।

विप्रकृष्टस्य प्रत्यक्षायमाणत्वं भाविकम्। देशकालाभ्यां स्वभावेन विप्रकृष्टार्थस्य साक्षाद् ग्रहणयोग्यस्यापि सामग्रीबलेन प्रत्यक्षायमाणत्वं स्फुटतया पुरः स्फुरद्रूपत्वेनैव प्रतीतिर्भाविकम्, इह प्रत्यक्षेणैव अर्थः स्फुटतया। तत्र शब्दादपि सामग्रीवशेन पुनः स्फुरद्रूपतमैवावगतिर्भाविकम्॥ —अलंकाररत्नाकर, पृ० १८६

परवर्ती आचार्यों में जयदेव, विद्याधर, विद्यानाथ, विश्वनाथ और दीक्षित के विवेचन पर मम्मट और रुय्यक का प्रभाव है।

भाविकं भूतभाव्यर्थसाक्षाद्दर्शनवर्णनम्॥ —चंद्रालोक, ५/११३

विलसति सुतरामेतन्निगद्यते भाविकं कविभिः।

—एकावली, ८/७३

अत्यद्भुतार्थकथनाद्भाविकं तदुदाहृतम्। यत्राद्भुतचरितोपवर्णनात् भूतभाविनोर्वस्तुनोः प्रत्यक्षायमाणत्वं भवति स भाविकालंकारः।

—प्रतापरुद्रीय, पृ० ३३२

अद्भुतस्य पदार्थस्य भूतस्याथ भविष्यतः।
यत्प्रत्यक्षायमाणत्वं तद्भाविकमुदाहृतम्॥

—साहित्यदर्पण, १०/९३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भाविकं भूतभाव्यर्थसाक्षात्कारस्य वर्णनम् ॥

—कुवलयानंद, १६१

विश्वेश्वर पंडित का भाविकनिरूपण परंपरागत है। इन्होंने बताया कि अतीत तथा अनागत (ध्वंस से युक्त एवं प्रागभाव से युक्त) का प्रत्यक्ष की भाँति वर्णन हो तो भाविक अलंकार होगा।

भाविकमध्यक्षं स्यात्सध्वंसप्रागभावानाम्। सध्वंसा अतीता सप्रागभावा भाविनः प्रतियोगित्वस्य साहित्यार्थतया विवक्षितत्वात्। तथा च भूतानां भाविनां यल्लौकिकप्रत्यक्षविषयत्वमुच्यते तद्भाविकम्। न चातीतानागतानां सन्निकर्ष-विरहेण लौकिक प्रत्यक्षानुपपत्तिः स्वरूपातिशयमाहात्म्येन तत्कृतोत्कर्षवत्ताया विवक्षितत्वात् ॥ भावः कवेरभिप्रायोऽस्त्यस्येति।

—अलंकारकौस्तुभ, पृ० ३३५

रीतिकाल का भाविक-विवेचन 'काव्यप्रकाश', 'चंद्रालोक' तथा 'कुवलयानंद' पर आधृत है। चिंतामणि और कुलपति ने मम्मट के लक्षण का भावानुवाद किया है और महाराज जसवंतसिंह, मतिराम तथा पद्माकर ने 'चंद्रालोक' या 'कुवलयानंद' के लक्षण का भावानुवाद कर इस अलंकार का वर्णन किया।

जहँ करियै परतक्ष सम भावी भूत जु बात।
अलंकार करता कहत स्वाभाविक कहि जात ॥

—कविकुलकल्पतरु, ३/२८३

बीती होनी बात जहँ, कहत प्रगट सी होय।
भाव तहाँ कवि हृदय को भाविक कहिए सोय ॥

—रसरहस्य, ८/१४०

भाविक भूत भविष्य जो परतिछ होइ बनाइ ॥

—भाषाभूषण, १८८

जहाँ भयो भावी अरथ बरनत हैं परतच्छ।
तहँ भाविक सब कहत हैं, जिनकी मति है अच्छ ॥

—ललितललाम, ३७४

भाविक भूत भविष्य जहँ, करि परतच्छ बखान ॥

—पद्माभरण, २६३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भेद—भूत और भविष्य के प्रत्यक्षवत् वर्णन के आधार पर भाविक के दो प्रकार किए गए हैं—(१) भूत का प्रत्यक्ष या वर्त्तमानवत् वर्णन और (२) भविष्य का प्रत्यक्षवत् वर्णन।

उदाहरण—

आसीदंजनमत्रेति पश्यामि तव लोचने।
भाविभूषणसंभारां साक्षात्कुर्वेतवाकृतिम् ॥

"प्रिय ! मैं तुम्हारी उन आँखों को देख रहा हूँ, जिनमें अंजन लगा हुआ था। मेरे नेत्रों में तुम्हारा वह रूप दिखाई पड़ रहा है, जो आगे चलकर आभूषणों को धारण करने से चमकेगा।"

यहाँ पूर्वार्द्ध में भूत का तथा उत्तरार्द्ध में भविष्य का वर्त्तमान की तरह वर्णन है।

भूत का वर्तमानवत् वर्णन—

यों दलिमलियत निरदई ! दई कुसुम से गात।
कर धर देखो धरहरा, अजों न उर तें जात ॥

—बिहारी

यहाँ नायक-द्वारा नायिका को किए गए विगत आलिंगन का वर्तमान की भाँति वर्णन है।

भविष्य का प्रत्यक्षवत् वर्णन—

मत चलाइए चलन की, चरचा स्याम सुजान।
मैं देखति हौं वाहि यह, बात सुनत बिन प्रान ॥

—मतिराम

प्रिय के प्रवास से नायिका का शरीर प्राणरहित हो जायगा। यहाँ कवि उसकी भावी निष्प्राणता का प्रत्यक्ष की भाँति वर्णन कर रहा है।

भाविक और स्वभावोक्ति—भाविक तथा स्वभावोक्ति, दोनों में ही यथार्थ वर्णन के कारण साम्य है। भाविक में विस्मयजन्य (भूत अथवा भविष्य) वस्तुओं का वर्णन किया जाता है तथा स्वभावोक्ति में किसी पदार्थ की क्रिया या रूप का वर्णन होता है। दोनों में अंतर यह है कि स्वभावोक्ति में जहाँ लौकिक पदार्थ के सूक्ष्म स्वभाव या धर्म का यथावत् चित्रण किया जाता है, वहाँ भाविक में अदृश्य या अप्रत्यक्ष पदार्थ का दृश्यवत् या प्रत्यक्षवत् वर्णन होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भावोदय—एक भाव की शांति के पश्चात् दूसरे भाव के उदय में चमत्कार का प्रदर्शन भावोदय कहलाता है।

उदाहरण—

क. चरणपतनप्रत्याख्यानात्प्रसादपराङ्मुखे
निभृतकितवाचारेत्युक्त्या रुषा परुषीकृते।
व्रजति रमणे निःश्वस्योच्चैः स्तनस्थितहस्तया
नयन सलिलच्छन्ना दृष्टिः सखीषु निवेशिता॥

—अमरुकशतक

"जबकि पैरों पर भी गिरने पर दुत्कार मिली, (प्रेमिका की) प्रसन्नता की कोई भी आशा नहीं दीख पड़ी और 'तुम छिपे कपटी हो' आदि की फटकार सुननी पड़ी, तब वह प्रेमी क्या करता? चल पड़ा। किंतु जैसे ही उस सुंदरी ने उसे लौटते देखा वैसे ही अपनी छाती पर हाथ रखकर गहरी साँस ली और सखियों पर आँसू-भरी निगाहें डाल दीं।" यहाँ विषाद व्यभिचारी भाव का उदय वर्णित है।

ख. पिय के पाँव परावती मानवती रिसियाति।
ह्वै निरास पिय जात लखि पुनि पाछे पछिताति॥

—उपर्युक्त श्लोक का अनुवाद

"प्रिय के लाख मनाने पर भी जब नायिका नहीं मानती और उसका ईर्ष्या भाव नहीं मिटता तो प्रिय निराश होकर चला जाता है, तभी नायिका के हृदय में विषाद का उदय होता है।" यहाँ विषाद के उदय में चमत्कार के कारण भावोदय है।

भावोन्नता—प्रगल्भा नायिका का एक भेद। [दे० प्रगल्भा] जिस नायिका के हावभाव अत्यंत या पूर्ण विकसित हों, उसे भावोन्नता कहते हैं।

भुक्तिवाद—[दे० रस-निष्पत्ति] [भट्टनायक का रस-विषयक मत]

भूतगुप्ता—गुप्ता नायिका का भेद। [दे० गुप्ता]

भेद—मानमोचन का द्वितीय भेद। [दे० मान]

भेद—भोज-वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध अर्थालंकार। भेद अलंकार व्यतिरेक से साम्य रखता है। स्वयं भोज ने इसे स्वीकार किया है—भेदश्च व्यतिरेकश्च कथ्यते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शब्दोपात्तेप्रतीते वा सादृश्ये वस्तुनोर्द्वयोः ।
भेदाभिधानं भेदश्च व्यतिरेकश्च कथ्यते ॥

—सरस्वतीकंठाभरण, ३/३२

[दे० व्यतिरेक]

भेदकातिशयोक्ति—अतिशयोक्ति अलंकार का द्वितीय भेद ।

[दे० अतिशयोक्ति]

भ्रांतिमान्—सादृश्यमूलक अलंकार। अत्यधिक सादृश्य के कारण जब प्रस्तुत में अप्रस्तुत की निश्चयात्मक भ्रांति हो तो भ्रांतिमान् अलंकार होगा। भ्रांतिमान् का अर्थ भ्रमपूर्ण ज्ञान है। इसमें उपमान के सदृश उपमेय को देखकर उसमें उसकी निश्चयात्मक भ्रांति होती है। भ्रांतिमान् में भ्रम का कविकल्पनाप्रसूत या चमत्कारपूर्ण वर्णन होना चाहिए ।

भ्रांतिश्चित्तधर्मः स विद्यते यस्मिन् भणितिप्रकारे स भ्रांतिमान् ।

—अलंकारसर्वस्व, पृ० ६८

सादृश्येऽपि कविप्रतिभोत्थापितस्यैवालंकारत्वं न पुनः स्वारसिकस्य ।

—विमर्शिनी, पृ० ५३

इस अलंकार के उद्भावक आचार्य रुद्रट हैं; पर इनके पूर्व दंडी ने मोहोपमा के रूप में भ्रांतिमान् का स्रोत प्रस्तुत किया है ।

शशीत्युत्प्रेक्ष्य तन्वंगि ! त्वन्मुखं त्वन्मुखाशया ।
इंदुमप्यनुधावामीत्येषा मोहोपमा स्मृता ॥

—काव्यादर्श, २/२५

दंडी के इस उदाहरण में भ्रांतिमान् की स्थिति का संकेत है ।

रुद्रट ने बताया कि एक पदार्थ के समान अन्य पदार्थ को देखकर उसमें उसके निश्चयात्मक भ्रम होने को भ्रांतिमान् कहते हैं ।

अर्थविशेषं पश्यन्नवगच्छेदन्यमेव तत्सदृशम् ।
निस्संदेहं यस्मिन्प्रतिपत्ता भ्रांतिमान्स इति ॥

—काव्यालंकार, ८/८७

भोज ने विपर्यय-ज्ञान को भ्रांति कहा है तथा इसके दो प्रकार किए गए हैं—अतत्त्वे तत्त्वरूपा तथा तत्त्वे अतत्त्वरूपा ।

भ्रांतिर्विपर्ययज्ञानं द्विधा सापि प्रयुज्यते ।
अतत्त्वे तत्त्वरूपा च तत्त्वे चातत्त्वरूपिणी ॥

—सरस्वतीकंठाभरण, ३/३५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भ्रांतिमान्

मम्मट ने तुल्य पदार्थ को देखकर अन्य वस्तु की बुद्धि को भ्रांतिमान् कहा है।

भ्रांतिमानन्यसंवित्तुल्यदर्शने ।। १०/१३२

तदिति अन्यत् अप्राकरणिकं निर्दिश्यते, तेन समानम् (अर्थादिह) प्राकरणिकं (आश्रीयते) तस्य तथाविध्यस्य इष्टौ सत्यां, यत् अप्राकरणिकतया संवेदनम्, स भ्रांतिमान् ।।

—काव्यप्रकाश

रुय्यक ने सादृश्य के कारण वस्त्वंतर की प्रतीति को भ्रांतिमान् अलंकार कहा है।

सादृश्याद्वस्त्वंतरप्रतीतिर्भ्रांतिमान् ।।

सादृश्यहेतुकापि भ्रांतिर्विच्छित्त्यर्थं कविप्रतिभोत्थापितैवगृह्यते । यथोदाहृतं न स्वरसोत्थापिता शुक्तिकारजतवत् एवं स्थाणुर्वा स्यात्पुरुषो वा स्यादिति संशयोऽपि बोद्धव्यम् ।

—अलंकारसर्वस्व, पृ० ५५-५८

शोभाकरमित्र ने सादृश्येतर संबंध में भी भ्रांतिमान् की स्थिति स्वीकार कर सर्वथा नवीन एवं परंपराविरुद्ध लक्षण प्रस्तुत किया। इनके अनुसार किसी पदार्थ का अन्य रूप में निश्चय ही भ्रांतिमान् अलंकार है।

अन्यरूपस्य निश्चयः भ्रांतिमान् ।।

यदि च सादृश्याद्वस्त्वंतरप्रतीतिर्भ्रांतिमान् इत्यव्यापकं लक्षणं तर्हि व्यापकं लक्षणांतरं विधेयम् । न त्वालंकारांतरमुपसंख्येयम् । सादृश्यव्यतिरिक्तनिमित्तोत्थापितायां च भ्रांतौ विच्छित्तिविशेषसंभवे कथं नामालंकारता ।।

—अलंकाररत्नाकर, पृ० ५३

विद्याधर, विद्यानाथ तथा विश्वनाथ का भ्रांतिमान्-निरूपण रुय्यक पर आधृत है। विद्यानाथ और विश्वनाथ ने अपने लक्षणों में 'कविसंमतसादृश्यात्' एवं 'प्रतिभोत्थितः' का समावेश कर चमत्कारपूर्ण भ्रांति के वर्णन में भ्रांतिमान् का अलंकारत्व स्वीकार किया है।

वस्त्वंतरप्रतीतिर्विलसति सादृश्यहेतुका यत्र ।
तं भ्रांतिमंतमेतं ब्रुवतेऽलंकारपारदृश्यवानः ।।—एकावली, ८/९

कविसंमतसादृश्याद्विषये पिहितात्मनि ।
आरोप्यमाणानुभवो यत्र स भ्रांतिमान् मतः ।।

—प्रतापरुद्रीय, पृ० ३८०

साम्यादतस्मिंस्तद्बुद्धिर्भ्रांतिमान् प्रतिभोत्थितः ।।

—साहित्यदर्पण, १०/३६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अप्पय दीक्षित ने 'कुवलयानंद' में नाम-मात्र का लक्षण दिया है, जो 'चंद्रालोक' से लिया गया है।

स्यात्स्मृतिभ्रांतिसंदेहैस्तदंकालंकृतित्रयम् ॥

—कुवलयानंद, २४

पंडितराज ने भ्रांतिमान् अलंकार के निरूपण में कई नवीन तथ्यों का उद्‌घाटन किया। इनके अनुसार किसी समान वस्तु को देखकर उसके साथ तादात्म्य से, अन्य वस्तु का सादृश्य द्वारा होनेवाला निश्चय यदि चमत्कारपूर्ण हो तो वहाँ अलंकारशास्त्र में भ्रांति है एवं पशु-पक्षी आदि को होनेवाली भ्रांति, जिस वाक्य या संदर्भ में आए, वहाँ भ्रांतिमान् अलंकार होगा। इन्होंने इस संबंध में नवीन विचार यह दिया कि भ्रांतिमान् अलंकार में कवि के भ्रम का वर्णन न होकर कविनिबद्ध पात्र या पशु-पक्षी के भ्रम का वर्णन होता है।

सदृशे धर्मिणि तादात्म्येन धर्म्यंतरप्रकारकोऽनयाहार्यो निश्चयः सादृश्यप्रयोज्यश्चमत्कारीप्रकृतेभ्रांतिः। सा च पशुपक्ष्यादिगता यस्मिन्वाक्संदर्भेऽनूद्यते-स भ्रांतिमान् ॥

—रसगंगाधर, पृ० ३५४

विश्वेश्वरपंडित—

तदभाववति मतिस्तत्प्रकारिका भ्रांतिमान्भवति। चंद्रत्वाद्यभाववतिमुखादौ चंद्रत्वादिप्रकारकं ज्ञानं यत्र भवति स भ्रांतिमान् ॥

—अलंकारकौस्तुभ, पृ० ३८७

रीतिकालीन आचार्यों ने मुख्यतः 'काव्यप्रकाश' तथा 'कुवलयानंद' के आधार पर भ्रांतिमान् अलंकार का वर्णन किया। चिंतामणि और कुलपति मम्मट के ऋणी हैं तो जसवंतसिंह, मतिराम और पद्माकर आदि ने 'कुवलयानंद' के लक्षण का अनुवाद किया है।

जहाँ होतु है प्रकृति मैं अप्रकृतिहि कों ज्ञान।
भ्रांतिमान यासों कहत पंडित सुकवि सुजान ॥

—कविकुलकल्पतरु, ३/६८

भेद ज्ञानहु भ्रमबहुत, ऐसे रूप समान।
जहाँ रसिक उपमेय कौ भ्रांतिमान् सो जान ॥

—रसरहस्य, ८/५६

सुमिरन भ्रम संदेह ये लक्षन नाम प्रकास ॥

—भाषाभूषण, ५६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भूषण ने 'साहित्यदर्पण' के आधार पर अपना लक्षण प्रस्तुत किया है; पर इनका लक्षण साधारण भ्रांतिमान् का है, अलंकार का नहीं।

आन बात को अनुमए होत जहाँ भ्रमु आन।
तासों भ्रम भूषन कहत भूषन कबि मतिमान ॥
—शिवराजभूषण, ७१

उदाहरण—

क. कपाले मार्जारः पय इति कराँल्लेढिशशिनः
तरुच्छिद्रप्रोतान् विसमिति करी संकलयति।
रतांते तल्पस्थान् हरति बनिताऽप्यंशुकमिति
प्रभामत्तश्चंद्रो जगदिदमहो विप्लवयति ॥

"नर-कपाल में चंद्रमा की किरणों के पड़ने से बिल्ली उसे दूध समझकर चाट रही है। पेड़ के छेदों से निकलती हुई चाँदनी को हाथी कमल का नाल समझ लेता है। सुरत के बाद शय्या पर पड़ी हुई चाँदनी को श्वेत वस्त्र समझकर स्त्री उसे समेट रही है। इस प्रकार प्रभा से मत्त चंद्रमा संसार को भ्रम में डाल रहा है।" यहाँ चंद्रमा की किरणों को देखकर बिल्ली, हाथी तथा स्त्री को क्रमशः दूध, कमल और श्वेत वस्त्र का निश्चयात्मक भ्रम होने का वर्णन है।

ख. पाय महावर देन को, नाइन बैठी आय।
फिरि-फिर जानि महावरी, एँडी मीड़त जाय ॥ —बिहारी

यहाँ नाइन की नायिका की स्वाभाविक लाल एड़ी में महावर का भ्रम होने का वर्णन है।

भ्रांतिमान् और रूपक—भ्रांतिमान् में अवास्तविक ज्ञान का वर्णन होता है तो रूपक में वास्तविक ज्ञान का। दोनों ही अभेद प्रधान अलंकार हैं और इनमें प्रस्तुत में अप्रस्तुत के निश्चयात्मक ज्ञान का वर्णन होता है। रूपक में उपमेय तथा उपमान, दोनों का ज्ञान होता है तो भ्रांतिमान् में केवल अप्रस्तुत की प्रतीति होती है।

भ्रांतिमान् और उल्लेख—भ्रांतिमान् का ज्ञान भ्रमात्मक होता है और उल्लेख का सत्य। उल्लेख में भ्रम नहीं रहता, पर भ्रांतिमान् में भ्रम रहता है।

भ्रांतिमान् और मीलित—मीलित में दो पदार्थ पृथक्-पृथक् होते हुए भी एक हो जाते हैं, पर भ्रांतिमान् में पदार्थ एक ही रहता है, किंतु उसे दूसरा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समझ लिया जाता है। मीलित में दोनों ही पदार्थ समानधर्मा होते हैं; पर भ्रांतिमान् में एक ही पदार्थ ज्ञाता का विषय होता है और भ्रम के कारण उसमें अन्य वस्तु का भान होता है।

भ्रामक कवि—अर्थापहरणमूलक कवि का एक प्रकार। [दे० कवि] जो (कवि) प्राचीन कवियों के भावों का वर्णन कर पाठकों में अपनी मौलिकता का भ्रम उत्पन्न करे, उसे भ्रामक कवि कहते हैं।

तन्वानोऽनन्य दृष्टत्वं पुराणस्यापि वस्तुनः।
योऽप्रसिद्ध्यादिभिर्भ्राम्यत्यसौ स्याद् भ्रामकः कविः॥

—काव्यमीमांसा, अध्याय १२, पृ० १६४

म

मंगलाचरण—काव्य या नाटक की रचना करने के पूर्व, ग्रंथ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए, कवि इष्टदेव या भगवान् की वंदना करता है, इसे ही मंगलाचरण कहते हैं। यह वंदना ग्रंथारंभ में होती है। मंगलाचरण तीन प्रकार का होता है—आशीर्वादात्मक, वस्तुनिर्देशात्मक और मंगलवाची। आशीर्वादात्मक मंगलाचरण में कवि अपने आश्रयदाता को आशोर्वाद देता है अर्थात् इष्टदेव की वंदना करते हुए आश्रयदाता को आशीर्वाद देता है। वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण में पुस्तक की कथावस्तु का निर्देश होता है और मंगलाचरण में जय या विजय (कल्याण) की कामना की जाती है।

मंडन—सखी का एक कार्य। [दे० सखी] मंडन से अभिप्राय सजाने का है। नायिका के अंगों को विविध प्रकार के सुंदर श्रृंगार से सजाना मंडन है।

मंडनमलंकरणं नायिकायाः प्रसाधनम्।

—रसमंजरी, पृ० १६२

मंडन तियहिं सिंगारिबो, —जगद्विनोद, ३५०
मंडन साजै अंग मैं सुरुचि श्रृंगार सजोत।

—साहित्य-सागर।

उदाहरण—

क. स्तनकनकमहीधरोपकंठे प्रियकरपल्लवमुल्लसत्प्रमोदम्।
रहसि मकरिकामिषाल्लिखंतीं कमलमुखी कमलैः सखीं जघान॥

—रसमंजरी, ९२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"प्रसाधन करती हुई सखी एकांत में नायिका के स्तन रूपी सुवर्ण-पर्वत के तट पर मकरिका बनाने के बहाने नायक के रोमांच से भरे पाणि-पल्लव का चित्र बनाने लगी, तब कमल के समान मुखवाली नायिका ने उस सखी का कर-स्थित लीलाकमलों से ताडन किया।"

ख. सखी प्रिया की देह में सजे सिंगार अनेक।
कजरारी अँखियान में भूली काजर एक॥
—रसराज, २९१

ग. कहा करौं जौ आँगुरिन, अनी घनी चुभि जाइ।
अनियारे चख लखि, सखी कजरा देत डराइ॥
—जगद्विनोद, ३५२

मंजिष्ठाराग—[दे० पूर्वराग]

मणिकुल्या—गद्यकाव्य का एक भेद। [दे० गद्य]

मत—आचार्य रुद्रट-द्वारा उद्भावित एक नूतन अलंकार। यह अल्प-प्रसिद्ध अलंकारों की श्रेणी में आता है। जब वक्ता दूसरे के मत से सिद्ध उपमेय का अर्थात् अन्य के अभीष्ट उपमेय का कथन कर अपने अभिप्रेत उपमान का वर्णन करे या उसका न्यास करे तो मत अलंकार होगा।

तन्मतमिति यत्रोक्त्वा वक्तान्यमतेनसिद्धमुपमेयम्।
ब्रूयादथोपमानं तथा विशिष्टं स्वमतसिद्धम्॥
—काव्यालंकार, ८/६९

इसमें वक्ता दूसरे के अभिप्राय से सिद्ध उपमेय का उपन्यास कर अन्य उपमान का प्रतिपादन करता है। इस अलंकार में कोई विचित्रता नहीं है, बल्कि किसी पदार्थ से संबद्ध अन्य व्यक्तियों के मत का प्रतिपादन किया जाता है।

मतल्लिका—गद्यकाव्य का एक भेद। [दे० गद्य]

मति—संचारी भाव। [दे० संचारी भाव] भ्रम का कारण रहने पर भी शास्त्रादि के विचार का अनुसरण करने पर यथार्थ ज्ञान का बना रहना मति है।

भरत के अनुसार अनेक शास्त्रों के चिंतन तथा अन्य अनेक विषयों के ऊहापोह से मति की उत्पत्ति होती है। इसका अभिनय शिष्योपदेश, अर्थनिर्णय तथा संशय दूर करने प्रभृति अनुभावों-द्वारा होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मतिर्नाम—नानाशास्त्रविचिंतनोहापोहादिभिर्विभावैः समुत्पद्यते। तामभिनयेच्छिष्योपदेशार्थविकल्पनसंशयच्छेदादिभिरनुभावैः।

—नाट्यशास्त्र, ७/८२

धनंजय ने भ्रांतिनाश और उपदेश के कारण तत्त्वज्ञान की वृद्धि को मति कहा है।

भ्रांतिच्छेदोपदेशाभ्यां शास्त्रादेस्तत्त्वधीर्मतिः।

—दशरूपक, ४/२७

विश्वनाथ ने नीतिमार्ग का अनुसरण कर वस्तु तत्त्व का निश्चय करने को मति कहा। इसके अनुभाव हैं—मुस्कुराहट, धृति, संतोष तथा आत्मसम्मान।

नीतिमार्गानुसृत्यादेरर्थनिर्धारणं मतिः।
स्मेरता धृतिसतोषौ बहुमानश्च तद्भवाः॥

—साहित्यदर्पण, ३/१६३

भानुदत्त ने किसी विषय का यथार्थ ज्ञान होने को मति कहा है। इसके विभाव (कारण) हैं शास्त्रादि का अध्ययन आदि तथा शिष्योपदेश, हाथ-भौंह चलाना, चतुरता प्रदर्शित करना अनुभाव हैं।

यथार्थज्ञानं मतिः। अत्रविभावाः शास्त्रचिंतनादयः।
अनुभावाः शिष्योपदेशभ्रूक्षेपकरचालनचातुर्यादयः॥

—रसतरंगिणी, पृ० ३७१, पंचमतरंग।

पंडितराज जगन्नाथ शास्त्र तथा लोकरीति के विचार से उत्पन्न निर्णयात्मक चित्तवृत्ति को मति कहते हैं।

—रसगंगाधर, पृ० १०४

उदाहरण—

क. असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः।
सतां हि संदेहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमंतःकरणप्रवृत्तयः॥

"शकुंतला को देखकर राजा दुष्यंत कहता है कि यह तपस्वी की कन्या निश्चय ही क्षत्रिय के साथ विवाह करने योग्य है। नहीं तो मेरा आर्य मन इसकी ओर आकृष्ट क्यों होता? सज्जनों के हृदय में संदेह उत्पन्न होने पर उसका अंतःकरण ही उसे दूर कर देता है।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ख. भयो जु मेरो शुद्ध मन, अभिलाषी या माँहि ।
ब्याहन छत्री जोग यह, संसय नेकहु नाँहि ।।
होत कछू संदेह जब, सज्जन के हिय आय ।
अंतःकरण प्रवृत्ति ही, देति ताहि मिटाय ।।

यहाँ दुष्यंत के यथार्थ ज्ञान के बने रहने में मति संचारी है ।

मत्सरी—भावक का एक प्रकार (तृतीय भेद) । [दे० भावक]

मद—नायिका के स्वभावज अलंकार का एक भेद । [दे० नायिका के अलंकार] सौभाग्य तथा यौवन आदि के गर्व के कारण उत्पन्न मनोविकार को मद कहते हैं ।

मद—संचारी भाव । [दे० संचारी भाव] मदिरा आदि मादक वस्तुओं के सेवन के अतिरिक्त सुंदरता, ऐश्वर्य, राजमद, धन तथा शक्ति के आधिक्य के कारण उत्पन्न हर्ष को मद कहते हैं ।

भरत के अनुसार मद की उत्पत्ति मदिरा-सेवन से होती है । उन्होंने इसके तीन प्रकारों तथा पाँच भावों का निरूपण किया है । तीन प्रकार हैं—तरुण, मध्य और अवकृष्ट । उत्तम प्रकृति के व्यक्ति मदिरापान कर सो जाते हैं, मध्यम प्रकृतिवाले हँसते हैं और अधम व्यक्ति परुष वाणी बोलते हैं तथा रोते हैं । तरुण मद को उत्तम प्रकार का मद माना गया है । इसका अभिनय स्मित वचन, मधुर राग, आनंदपूर्ण शरीर, कुछ स्खलित वचन तथा सुकुमार अस्थिर गति-द्वारा होता है । मध्यम प्रकृति के मद का अभिनय मदोन्मत्त तथा आघूर्णित नेत्र, बाहुविक्षेप, चरणों की कुटिल तथा अस्थिर गति-द्वारा होता है । निकृष्ट श्रेणी के मद को अधम प्रकृति के व्यक्तियों में देखा जाता है । इसके अनुभाव हैं—स्मृतिनाश, वमन के कारण चलने में असमर्थता, मुँह से गाज आदि का निकलना आदि ।

ज्ञेयस्तुमदस्त्रिविधस्तरुणो मध्यस्तथावकृष्टश्च ।
करणं पंचविधं स्यात्तस्याभिनयः प्रयोक्तव्यः ।।
कश्चिन्मत्तो गायतिरोदिति कश्चित्तथा हसति कश्चित् ।
परुषवचनाभिधायी कश्चित्कश्चित्तथा स्वपिति ।।
उत्तमसत्त्वः शेते हसति च गायति च मध्यमः प्रकृतिः ।
परुषवचनाभिधायी रोदित्यपि चाधमप्रकृतिः ।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्मितवचनमधुररागो हृष्टतनुः किंचिदाकुलितवाक्यः ।
सुकुमाराविद्धगतिस्तरुणमदस्तूत्तमप्रकृतिः ॥
स्खलिताघूर्णितनयनः स्रस्तव्याकुलितबाहुविक्षेपः ।
कुटिलव्याविद्धगतिर्मध्यमदो मध्यमप्रकृतिः ॥
नष्टस्मृतिर्हतगतिश्छर्दित हिक्काकफैः सुबीभत्सः ।
गुरुसंजामानजिह्वो निष्ठीवति चाधमप्रकृतिः ॥

—नाट्यशास्त्र, ३८-४३

धनंजय मद्यपान के कारण उत्पन्न हर्ष को मद कहते हैं । इन्होंने भी इसके तीन भेदों का वर्णन किया है ।

हर्षोत्कर्षो मदः पानात्स्खलदंगवचोगतिः ।
निद्रा हासोऽत्र रुदितं ज्येष्ठमध्याधमादिषु ॥

—दशरूपक, ४/२१

विश्वनाथ संमोह तथा आनंद के मिश्रण को मद कहते हैं । इसकी उत्पत्ति मद्यपान से होती है ।

संमोहानंदसंमेदो मदो मद्योपयोगजः ॥
अमुना चोत्तमः शेते मध्यो हसति गायति ।
अधमप्रकृतिश्चापि परुषं वक्ति रोदिति ॥

—साहित्यदर्पण, ३/१४६-१४७

भानुदत्त हर्षाधिक्य को मद कहते हैं । पूर्णतः दुःख से रहित जो सुख की अनुभूति है, उसके आधिक्य में मद होता है । इसका उद्दीपन विभाव मादक द्रव्यों का सेवन है ।

हर्षोत्कर्षो मदः । दुःखासंभिन्नसुखानुभवः उत्कर्षः । तत्र विभावः पानम् । अनुभाव उत्तमानां निद्रा, मध्यमानां हसितम्, अधमानां रोदनम ।

—रसतरंगिणी, पृ० ३४५, पंचम तरंग

पंडितराज जगन्नाथ ने मदिरादि के सेवन से उत्पन्न उल्लास नामक चित्तवृत्ति को मद कहा है ।

मद्याद्युपयोगजन्मा उल्लासाख्यः शयनहसितादिहेतुश्चित्तविशेषो मदः ।

—रसगंगाधर, पृ० ११६, भावध्वनिप्रकरण

अधिकांश आचार्यों ने मद संचारी भाव के अंतर्गत मदिरापान से उत्पन्न उल्लास या हर्ष का वर्णन किया है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उदाहरण—

क. मधुरतरं स्मयमानः स्वस्मिन्नेवालपन् शनैः किमपि ।
कोकनदयंस्त्रिलोकीमालंबनशून्यमीक्षते क्षीवः ॥

"मदमत्त मनुष्य अत्यंत सुंदर तरीके से मंद-मंद हँसता हुआ और अपने आप से धीरे-धीरे कुछ बातें करता हुआ तथा मद के कारण अरुण-नयन-कांति से त्रिलोकी को रक्त-कमल-सा बनाता हुआ शून्य की ओर देख रहा है अर्थात् उसके देखने का कोई लक्ष्य नहीं।" यहाँ मदिरापान के कारण बोलने में 'मद' संचारी हुआ।

ख. डोलति मंद गयंद गति अति गरबीली भाँति ।
करी रूप·मद प्रेम·मद, सोभा मद सों भाँति ॥
छकि रसाल सौरभ सने मधुर माधवी गंध ।
ठौर·ठौर झूमत झँपत भौंर झौंर मधु अंध ॥ —बिहारी

यहाँ भ्रमरों के झूमने में 'मद' संचारी है।

मधुरा—आचार्य रुद्रट-वर्णित एक प्रकार की वृत्ति। इसका वर्णन अनुप्रास के भेद के अंतर्गत किया गया है। [दे० अनुप्रास] मधुरावृत्ति में कवर्गादि पाँचों वर्गों के वर्णों का अपने-अपने वर्ग के अंतिम वर्णों के साथ आगे की ओर संयोग होता है तथा संयुक्त लकार एवं ह्रस्व स्वर के बाद रेफ एवं णकार का प्रयोग होता है।

निजवर्गांत्यैर्वर्ग्याः उपरि संति मधुरायाम् ।
तद्युक्तश्च लकारो रणौ ह्रस्वस्वरांतरितौ ॥
—काव्यालंकार, २/२०

तत्र यथाशक्ति रणौ द्विस्त्रिर्वा युक्तितो लकारं च ।
पंचम्यो न कदाचिद् वर्ग्यानूर्ध्वं प्रयुंजीत ॥ —वही, २/२१

मध्यम काव्य—काव्य का एक भेद, जिसमें वाच्यार्थ एवं व्यंग्यार्थ में समान सौंदर्य हो। [दे० काव्य-भेद]

मध्यम नायक—प्रकृति के अनुसार किया गया नायक का एक भेद। [दे० नायक] इसमें न तो अत्यंत उत्कृष्ट और न अत्यंत अपकृष्ट गुण पाए जाते हैं।

मध्यम मार्ग—यह मार्ग या रीति का तृतीय भेद है। इस भेद का वर्णन आचार्य कुंतक ने किया है। उनके अनुसार मध्यम मार्ग में वैचित्र्य तथा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सौकुमार्य, दोनों का समन्वय होता है। [**दे० रीति-संप्रदाय के अंतर्गत कुंतक का विवेचन**] मध्यम मार्ग में सहज एवं आहार्य शोभा के उत्कृष्ट रूपों का समन्वय होता है।

—वक्रोक्तिजीवित, १/४९-५२

मध्यममान—मान का भेद। [**दे० मान**]

मध्यमव्रीडिता—मध्या नायिका का एक भेद। [**दे० मध्या**] जिस नायिका में काम और व्रीड़ा (लज्जा) समान हों, उसे मध्यम व्रीडिता कहते हैं।

मध्यमा—नायिका का भेद-विशेष। [**दे० नायिका-भेद**] प्रिय के दोष-गुण को देखकर मान अथवा आदर करनेवाली नायिका मध्यमा है। भानुदत्त के अनुसार प्रिय के हित करने पर हित करनेवाली तथा अहित करने पर अहित चेष्टा करनेवाली नायिका को मध्यमा कहते हैं।

हिताहितकारिणि प्रियतमे हिताहितचेष्टावती मध्यमा।

—रसमंजरी, पृ० १५६

मतिराम के विचार से प्रिय के हित करने पर हित एवं अहित करने पर मान या कोप करनेवाली नायिका मध्यमा है।

पिय सों हित तें हित करै अनहित कीने मान।
ताहि मध्यमा कहत हैं कवि मतिराम सुजान॥

—रसराज, २३१

उदाहरण (रसमंजरी से)

क. कांते सागसि कंचुकस्पृशिसाचीकृतग्रीवया
मुक्ताः कोपकषायमन्मथशरक्रूराःकटाक्षांकुराः।
साकूते दरहासकेसरवचोमाध्वीकधारालसा
प्रीतिः कल्पलतेव काचन महादीनाकृता सुभ्रुवा॥

"जब अपराधी प्रिय ने कंचुक का स्पर्श किया तो नायिका ने अपनी ग्रीवा टेढ़ी करके कोप से भरे और कामदेव के बाणों के समान क्रूर कटाक्ष के अंकुरों से आघात किया। जब उसके प्रिय ने अनुनय का अभिप्राय व्यक्त किया, तब उसने कल्पलता की भाँति अपनी विलक्षण प्रीति को ईषद्हास के केसर से मिली हुई वाणी की माध्वीक-धारा के साथ महादान के रूप में अर्पित किया।"

ख. रह्यो मान मन को मनहि, सुनत कान्ह के बैन।
बरजि-बरजि हारी तऊ, रुके न गरजी नैन॥

—जगद्विनोद, २७५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रुद्रट—

आलोच्य दोषमल्पं कुप्यत्यधिकं प्रसीदति चिरेण ।
स्निग्धापि कारणेन च महीयसा मध्यमा सेयम् ॥
—काव्यालंकार, १२/४०

मध्यमा दूती—दूती का एक भेद । [दे० दूती] जो दूती कुछ हित की बात या मधुर बात करे और कुछ अहित की या कठोर बात, तो उसे मध्यमा कहते हैं ।

कछू बचन हित के कहै बोलै अहित कछूक ।
मध्यम दूती कहत हैं तासों सुकवि अचूक ॥
—रसराज, ३०३

कछुक मधुर कछु-कछु परुष, कहै बचन जो आइ ।
ताही कों कवि कहत हैं, मध्यम दूती गाइ ॥
—जगद्विनोद, ३६३

उदाहरण—

कुंजभवन लौं भावते, कैसे सकहि सु आय ।
जावक-रंग-भारनि भटू, मग में धरति न पाय ॥
—जगद्विनोद, ३६५

मध्या—स्वकीया नायिका का एक भेद । [दे० स्वकीया] जिस नायिका में लज्जा और काम समान रूप से विद्यमान रहे, उसे मध्या कहते हैं । धनंजय के अनुसार मध्या यौवन एवं कामवासना—दोनों से पूर्ण होती है और रतिक्रीड़ा को मोह के अंत तक सहन करने में समर्थ होती है ।

मध्योद्यद्यौवनानंगामोहांतसुरतक्षमा ॥ —दशरूपक, २/१६

विश्वनाथ ने मध्या की पाँच स्थितियों का उल्लेख किया है—जो रंग-बिरंगी (विचित्र) सुरतलीला में प्रवीण हो, जिसमें कामपिपासा बढ़ती दिखाई पड़े, जिसका यौवन उभार पर हो, जो प्रेमालाप में न झिझके तथा जिसकी रति-लज्जा अधिक न रहे ।

मध्या विचित्रसुरता प्ररूढ़स्मरयौवना ।
ईषत्प्रगल्भवचना मध्यमव्रीडिता मता ॥
—साहित्यदर्पण, ३/५९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भानुदत्त के मतानुसार जिसमें लज्जा और काम समान हों, उसे मध्या (नायिका) कहते हैं।

समानलज्जामदना मध्या। —रसमंजरी, पृ० १६

धनंजय ने यौवनवती, कामवती तथा मोहांत सुरतक्षमा मध्या के तीन भेदों का कथन किया है तथा विश्वनाथ ने इसके पाँच भेद किए हैं—विचित्रसुरता (रंग-बिरंगी सुरतलीला में निपुण), प्ररूढ़स्मरा (बढ़ी हुई कामपिपासावाली), प्ररूढ़यौवना (उभरे हुए यौवनवाली), ईषत्प्रगल्भवचना (प्रेमालाप में हिचक नहीं करनेवाली) तथा मध्यमव्रीडिता (काम और लज्जा में समान)।

रसलीन ने विश्वनाथ के आधार पर मध्या के चार भेदों का वर्णन किया है—उन्नतयौवना (उभरे हुए यौवनवाली) उन्नत कामा (जिसमें काम अधिक झलके), प्रगल्भवचना (प्रगल्भवचनों द्वारा काम को प्रकट करनेवाली), सुरत विचित्रा (रंग-बिरंगे सुरत में प्रवीण)। एक अन्य भेद लघुलज्जा का भी उल्लेख किया गया है, जिसमें अल्प मात्रा में लज्जा रहे।

उदाहरण—

क. स्वापे प्रियाननविलोकन हानिरेव
स्वापच्युतौ प्रियकरग्रहणप्रसंगः।
इत्थं सरोरुहमुखी परिचिंतयंती
स्वापंविधातुमपिहातुमपिप्रपेदे ॥ —रसमंजरी, ९

आँखें बंद कर सो जाने पर प्रिय के मुख को न देखने से हानि होती है और यदि आँखें खोलती हूँ तो जगी हुई समझकर प्रिय हाथ पकड़ने का कार्य करता है, ऐसा सोचकर कमलमुखी निद्रा का ग्रहण एवं त्याग करने के लिए भी प्रवृत्त हो गई।

ख. केलि भवन की देहरी खरी बाल छबि नौल।
कामकलित हिय को लहै लाजकलित दृग कौल ॥
—रसराज, ३२

ग. लाज बिराजि रही अँखियान में प्रान में कान्ह जुबान में नाहीं ॥
—जगद्विनोद, ४३

पद्माकर-कृत मध्या का लक्षण—

इक समान जब ह्वै रहत, लाज मदन ये दोइ।
जा तिय के तन में तबहिं, मध्या कहिए सोइ ॥
—जगद्विनोद, ४२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मान की स्थिति में मध्या के तीन भेद हो जाते हैं—मध्याधीरा, मध्या-अधीरा, मध्याधीराधीरा।

मध्याधीरा अन्यासक्त नायक पर परिहासयुक्त व्यंग्य से क्रोध प्रकट करती है। [दे० धीरा] मध्या अधीरा क्रोधित होकर कठोर वचनों से अपराधी पति का निरादर करती है। [दे० अधीरा] मध्याधीराधीरा रुदन कर नायक के समक्ष क्रोध प्रकट करती है। [दे० धीराधीरा]

मध्याअधीरा—स्वकीया नायिका का एक भेद। [दे० अधीरा]

मध्याधीराधीरा—स्वकीया नायिका का एक भेद। [दे० धीराधीरा]

मध्याधीरा—स्वकीया नायिका का एक भेद। [दे० धीरा]

मम्मट—ये वाग्देवतावतार तथा ध्वनिप्रस्थापनपरमाचार्य के रूप में विख्यात हैं। इन्होंने 'काव्यप्रकाश' नामक अत्यंत प्रौढ़ (काव्यशास्त्रीय) ग्रंथ की रचना की है, जिसमें शतियों से प्रवाहित काव्यशास्त्रीय विवेचन का सार प्रस्तुत कर उसे व्यवस्थित किया गया है और तद्विषयक अनेक भ्रांतियों का निराकरण कर उसे नवीन दिशा प्रदान की गई है। [दे० काव्यप्रकाश]

इनके जीवन से संबंधित कोई प्रामाणिक सामग्री प्राप्त नहीं होती। अंतः साक्ष्य के आधार पर ये भोज और क्षेमेंद्र के परवर्ती तथा रुय्यक के पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं। इन्होंने 'काव्यप्रकाश' में (उदात्त अलंकार के उदाहरण में) भोजराज की दानशीलता का उल्लेख किया है, जिससे इनका रचनाकाल १०५४ ई० के पश्चात् सिद्ध होता है। राजानक रुय्यक (११२८-११४९ ई०) द्वारा 'काव्य-प्रकाश' का उल्लेख करने एवं काव्यप्रकाश' की प्रथम टीका 'संकेत' (माणिक्य-चंद्र-कृत) के निर्माणकाल ११५९-६० ई० होने के कारण इनका समय ग्यारहवीं शती का उत्तरार्द्ध निश्चित होता है। 'काव्यप्रकाश' में काव्य-प्रयोजन, काव्य-हेतु, काव्यलक्षण, काव्य-भेद, शब्द-शक्ति, ध्वनि एवं उसके भेद-प्रभेद, गुणीभूत-व्यंग्य, रस, व्यंजना का प्रतिपादन, काव्यदोष, गुण एवं अलंकार (शब्दालंकार, अर्थालंकार और मिश्रालंकार) का वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। [पूर्वोक्त विषयों से संबद्ध मम्मट के मत की जानकारी के लिए तत्तत् प्रसंग को देखें]

मम्मट मूलतः ध्वनिवादी आचार्य हैं। इन्होंने सर्वप्रथम ध्वनि-विरोधी मतों का खंडन कर उसे व्यवस्थित एवं पूर्ण बनाया है। इनकी समस्त मान्यताएँ 'ध्वन्यालोक' से प्रभावित हैं; अतः इन्हें ध्वनि-समर्थक आचार्यों में शीर्षस्थान

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्राप्त है। [दे० **ध्वनि-संप्रदाय तथा ध्वनि समर्थक आचार्य**] इन्होंने ध्वनि-विरोधी आचार्य महिमभट्ट की उक्तियों की धज्जी उड़ाकर उनके ध्वनि-सिद्धांत को निमूल करनेवाले संकल्प को नष्ट कर दिया है। 'काव्यप्रकाश' की विशेषता विचारों की पूर्णता एवं संक्षिप्तता में है तथा इसमें काव्यालोचन-संबंधी सभी तथ्यों का विवेचन है। उनके समय तक संस्कृत साहित्यशास्त्र में जो कुछ भी सिद्धांत स्थापित किए जा चुके थे और उनके संबंध में जो कुछ कहा जा चुका था, उसे सर्वप्रथम व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय मम्मट को ही है।

मम्मट ने दोष, गुण और अलंकार के स्वरूप का निर्धारण कर काव्य में उनकी उपयोगिता पर विचार किया। इन्होंने गुण को रस का धर्म माना और रस को ही मुख्य अर्थ मानने हुए 'मुख्यार्थहति' या मुख्यार्थ के विघातक तत्त्व को दोष कहा। अभिप्राय यह कि रसास्वाद या रसप्रतीति में बाधक तत्त्व को दोष कहते हैं। ये अलंकारों को आत्मस्थानीय रस का उपकारक मानते हैं। इन्होंने ध्वनि के अंतर्गत ही रस का विवेचन कर रस को ध्वनि का अंग स्वीकार किया है। इनका महत्त्व रस-संबंधी किसी नवीन सिद्धांत के प्रतिपादन के कारण न होकर उसके (रस के) निर्भ्रांत विवेचन के कारण है। इन्होंने अभिनवगुप्त के रस-विषयक मत को महत्त्व देकर उनके विचारों का सार प्रस्तुत किया है और उसी के अनुरूप रस-मीमांसा की है। मम्मट काव्य के प्रयोजन के रूप में आनंद तत्त्व की प्रतिष्ठा कर रस की ही महत्ता प्रदर्शित करते हैं और उसे (रस को) काव्य का सर्वातिशायी तत्त्व मानते हैं। [**इनके रस-संबंधी मत के लिए दे० रस-संप्रदाय**] गुण को रस का पोषक मानकर इन्होंने उसे काव्य के नित्य या अनिवार्य तत्त्व के रूप में मान्यता दी है। इन्हें गुणत्रय—माधुर्य, ओज और प्रसाद—का ही सिद्धांत मान्य है और दंडी आदि के दस गुणों का अंतर्भाव ये तीन गुणों में ही करते हैं। [दे० **गुण या काव्य-गुण**] ये अलंकारों को अंग या शरीर के हारादि की भांति मानकर काव्य में उनके स्थान का निर्धारण करते हैं और विनोक्ति, सम, सामान्य तथा अतद्गुण नामक चार नवीन अलंकारों की उद्भावना करते हैं। शब्दालंकार एवं अर्थालंकार के विभाजक तत्त्व का अन्वेषण कर इन्होंने अलंकारों के विकास में नवीन शृंखला जोड़ दी है। इनके अनुसार जब शब्द-परिवर्तन के पश्चात् भी अलंकार की स्थिति अक्षुण्ण रहे तो अर्थालंकार और शब्द-परिवृत्ति के बाद अलंकार का सौंदर्य नष्ट हो जाय तो शब्दालंकार होगा। इन्होंने ध्वनि की प्रधानता और अप्रधानता के आधार

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पर काव्य के तीन भेद किए हैं—उत्तम, मध्यम और अवर या अधम। [**दे० काव्य भेद**]

मरण—संचारी भाव। [**दे० संचारी भाव**] मृत्यु के सदृश कष्ट होने को मरण कहते हैं। इसमें मृत्यु के पूर्व उस स्थिति का वर्णन किया जाता है, जब प्राण के रहने पर भी शरीर मृत की तरह चेष्टारहित रहता है।

भरत मृत्यु का वर्णन दो प्रकार से करते हैं—व्याधिजन्य मृत्यु तथा आघातजनित मृत्यु। व्याधिजन्य मृत्यु रोग के कारण होती है और आघात-जन्य मृत्यु शस्त्र, सर्पदंश, हिंसक जंतुओं के आक्रमण, गज, अश्व तथा रथ से गिरने के कारण होती है।

मरणं नाम—व्याधिजमभिघातजंच। तत्र यदांत्रयकृच्छूलदोषवैषम्यगंड-पिटकज्वरविषूचिकादिभिरुत्पद्यते तद्व्याधिप्रभवम्। अभिघातजं तु शस्त्राहिदंश-विषपानश्वापदगजतुरगरथपशुयानपातविनाशप्रभवम्। एतयोरभिनयविशेषान्व-क्ष्यामः तत्र व्याधिजं विषण्णगात्राण्यायतांगविचेष्टितनिमीलितनयनहिक्काश्वासो-पेतानवेक्षितपरिजनाव्यक्ताक्षरकथनादिभिरनुभावैरभिनयेत्। अभिघाते तु नानाप्रकारा अभिनयविशेषाः शस्त्रक्षताहिदष्टविषपीतगजादिपतितश्वापदहताः। यथा तत्र शस्त्रक्षते तावत्सहसा भूमिपतन-वेपनस्फुरणादिभिरभिनयः प्रयोक्तव्यः। अहिदष्टविषपीतयोर्विषवेगो यथाकार्श्यवेपथुविदाहहिक्काफेनस्कंधभंगजडतामरणा-नीत्यष्टौ विषवेगाः।

—नाट्यशास्त्र, ७/८६-८८

विश्वनाथ ने बाण आदि लगने से प्राण निकल जाने को मरण कहा है। इसमें शरीरपात होता है।

शराद्यैर्मरणं जीवत्यागोऽगपतनादिकृत्।

—साहित्यदर्पण, ३/१५५

भानुदत्त प्राण निकल जाने को निधन या मरण कहते हैं। उन्होंने बताया कि इसके विभावानुभाव स्पष्ट हैं।

प्राणनिष्क्रमणं निधनम्। विभावानुभावौ स्पष्टौ।

रसतरंगिणी, पृ० ३७७, पंचम तरंग।

पंडितराज जगन्नाथ वास्तविक मृत्यु का वर्णन न कर मृत्यु के पूर्व हुई मूर्च्छा को मरण कहते हैं। रोगादि के पूर्व होनेवाली मूर्च्छा की अवस्था ही मरण है।

रोगादिजन्या मूर्च्छारूपा मरणप्रागवस्थामरणम्।

—रसगंगाधर, पृ० ११०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मरण के संबध में आचार्यों में मतैक्य नहीं है। धनंजय ने मरण का वर्णन नहीं किया है; क्योंकि नाटक में मृत्यु का प्रदर्शन वर्जित है। धनिक के अनुसार शृंगाररस में मृत्यु का वास्तविक वर्णन न होकर उसका आभास-मात्र वर्णित हो; पर अन्य रसों में कवि इच्छानुसार मरण का वर्णन करे।

मरणं सुप्रसिद्धत्वादनर्थत्वाच्चनोच्यते। —दशरूपक, ४/२०

इत्यादिवच्छृंगाराश्रयालंबनत्वेन मरणे व्यवसायमात्रमुपनिबंधनीयम्। अन्यत्र कामचारः।

—वही

पंडितराज के अनुसार मरण चित्तवृत्ति नहीं है। मरण से अभिप्राय वास्तविक मृत्यु का न होकर, मृत्युतुल्य पीड़ा या मरण के पूर्व उत्पन्न मूर्च्छावस्था का है।

उदाहरण—

क. दयितस्य गुणाननुस्मरंती, शयने संप्रति या विलोकिताऽऽसीत्।
अधुना खलु हंत! सा कृशांगी, गिरमंगीकुरुते न भाषिताऽपि॥

"जिसे अभी प्रिय के गुणों को याद करते देखा गया था, वह कृशांगी संप्रति चेष्टारहित होकर पड़ी है। वह बुलाने पर भी नहीं बोलती, उसके बोलने की शक्ति नष्ट हो चुकी है।" यहाँ प्रिय के वियोगाधिक्य के कारण उत्पन्न नायिका की निश्चेष्टता एवं पीड़ा की अधिकता में मृत्युतुल्य कष्ट का वर्णन है।

ख. वाके निदान कै प्राण रहे कढ़ि औषधि मूरि करोर करी रही।
चेति मरू करिके चितई जब चारि घरी लौं मरी सी धरी रही॥

यहाँ नायिका की वियोगजनित पीड़ा मृत्युतुल्य दिखाई गई है।

मरण—वियोगदशा। [दे० **वियोगदशा**] प्राणत्याग ही मरण है; पर साहित्यशास्त्र में वास्तविक मृत्यु का वर्णन न कर मृत्युतुल्य कष्ट या पीड़ा का वर्णन होता है। आचार्यों ने अमंगलकारक समझकर मृत्यु का उदाहरण नहीं दिया है।

निधनस्यामंगलत्वान्नोदाहृतिरुदाहृता।

—रसमंजरी, पृ० १२३,

विश्वनाथ का कहना है कि मृत्यु रस का विच्छेद कर देती है; अतः मरणतुल्य दशा का वर्णन करना चाहिए। शीघ्र ही पुनर्जीवित होने के लिए मरण का वर्णन होना चाहिए। मृत प्रेमी के पुनर्जीवित होने में दोष नहीं होता।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रसविच्छेदहेतुत्वान्मरणं नैव वर्ण्यते ॥
जातप्रायं तु तद्वाच्यं चेतसाकांक्षितं तथा ॥
वर्ण्यतेऽपि यदि प्रत्युज्जीवनं स्याददूरतः ॥
—साहित्यदर्पण, ३/१९३-१९४

दास ने सभी प्रकार से निराश होकर मृत्यु होने को मरण कहा है। वे मृत्यु को रसभंग का कारण मानते हैं।

मरन दसा सब भाँति सों ह्वै निरास मरि जाइ।
जीवनमृत कै बरनिए तहँ रसभंग बराइ ॥
—शृंगारनिर्णय, ३२८

उदाहरण—

क. शेफालिकां विदलितामवलोक्य तन्वी
प्राणान्कथंचिदपि धारयितुं प्रभूता।
आकर्ण्य संप्रति रुतं चरणायुधानां
किं वा भविष्यति न वेद्मि तपस्विनी सा ॥

"वह कोमलांगी शेफालिका को विकसित विलोककर किसी प्रकार प्राण धारण कर सकी है। शेफालिका के पुष्प अर्द्धरात्रि में खिलते हैं, उन्हें देखकर वह उस समय तक तुम्हारी प्रतीक्षा करती है और उसने प्राण धारण भी किया है। प्रातःकाल में मुरगों की ध्वनि श्रवण कर वह कैसी दशा में होगी ?"

ख. बात को बोलिबो गात को डोलिबो हेरें को दास उसासउ थाकी।
सीरी ह्वै आई तताई सिधाई कहो मरिबे में कहा रह्यौ बाकी ॥

महाकथा—यह गद्यकाव्य का एक प्रकार है, जिसका वर्णन रुद्रट-कृत 'काव्यालंकार' में है। महाकथा के प्रारंभ में (श्लोकों में) कवि अपने गुरुओं एवं इष्टदेव की वंदना कर अपने वंश का संक्षिप्त वर्णन करता है। इसकी रचना अनुप्रासहित तथा लघु अक्षर-युक्त गद्य में होती है। इसमें नगर आदि का वर्णन होता है तथा प्रारंभ में अन्य कथा का भी विधान किया जाता है, जिसमें मुख्य कथा अच्छी तरह संकेतित रहती है। इसकी रचना इस प्रकार हो कि मुख्य कथा शीघ्र ही प्रस्तुत हो जाय। इसमें शृंगाररस के सभी रूपों का विन्यास होता है और फल के रूप में कन्या-प्राप्ति या राज्य-प्राप्ति का विधान किया जाता है। कवि इसकी रचना संस्कृत गद्य में करता है; पर प्राकृत अथवा अपभ्रंश में पद्यबद्ध रचना की जाती है और गाथा-छंद का विन्यास किया जाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सानुप्रासेन ततो भूयो लघ्वक्षरेण गद्येन ।
रचयेत् कथाशरीरं पुरेव पुरवर्णक प्रभृतीन् ॥
आदौ कथांतरं वा तस्यांन्यस्येत् प्रपंचितं सम्यक् ।
लघुतावत्संधानं प्रक्रांतकथावताराय ॥
कन्यालाभफलां वा सम्यग्विन्यस्तसकलश्रृं गाराम् ।
इति संस्कृतेन कुर्यात्कथागद्येन चान्येन ॥

—काव्यालंकार, १६/२१-२३

महाकवि—कवियों का एक प्रकार। [दे० कवि] राजशेखर के अनुसार जो कवि श्रेष्ठ प्रबंधकाव्य की रचना में निपुण या प्रवीण हो, उसे महाकवि कहते हैं—योऽन्यतरप्रबंधे प्रवीणः स महाकविः।—काव्यमीमांसा, पंचम अध्याय, पृ० ५०, चौखंबा संस्करण (हिंदी अनुवाद)।

भारतीय आचार्यों ने प्रबंध काव्य की रचना को मुक्तक की अपेक्षा कठिन मानकर उसके रचयिता को महाकवि के पद से विभूषित किया है।

महाकाव्य—काव्य का एक प्रकार (सर्वश्रेष्ठ काव्यरूप), जिसमें जीवन का सर्वांगीण रूप विशाल पटभूमि पर प्रस्तुत किया जाता है। [दे० काव्य के भेद] संस्कृत-साहित्यशास्त्र में महाकाव्य का सर्वप्रथम वर्णन आचार्य भामह ने किया है, तत्पश्चात् दंडी, रुद्रट, आनंदवर्द्धन, कुंतक, अग्निपुराण एवं कविराज विश्वनाथ ने इसके स्वरूप का मीमांसन किया।

'महाकाव्य' शब्द महत् और काव्य इन दो शब्दों के समास से निष्पन्न है। काव्यशास्त्रीय ग्रंथों से पूर्व इसका प्रयोग आदि काव्य 'बाल्मीकि रामायण' में किया गया है। राम ने लवकुश से इस प्रकार (उत्तरकांड में) प्रश्न किया है—

किं प्रमाणमिदं काव्यं का प्रतिष्ठा महात्मनः।
कर्त्ता काव्यस्य महतः क्व चासौ मुनिपुंगवः॥

—उत्तरकांड, ९४/२३

यहाँ बताया गया है कि काव्य का प्रमाण कितना है अर्थात् वह कितना बड़ा काव्य है और महात्मा की प्रतिष्ठा क्या है? इस महत् या महान् काव्य के कर्त्ता मुनिपुंगव (श्रेष्ठ) कहाँ हैं? विद्वानों ने इस श्लोक में प्रयुक्त 'महत्' एवं 'काव्य' शब्द को ही महाकाव्य का स्रोत माना है। 'महाभारत' में भी कतिपय ऐसे विशेषण प्रयुक्त हुए हैं, जिनमें महाकाव्य का रूप प्रतिबिंबित है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

व्यासजी ने ब्रह्मा से निवेदन करते हुए कहा है कि मैंने श्रेष्ठ काव्य की रचना की है, जिसमें वेदों, शास्त्रों, इतिहासों और पुराणों का रहस्य भरा है और जिसमें पुरुषार्थ-चतुष्टय—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में से मोक्षरूप 'पुरुषार्थ एवं शांतरस' को मुख्य रूप से सूचित किया गया है। इस पर ब्रह्माजी ने उत्तर दिया कि ऐसे श्रेष्ठ काव्य को लिखने के लिए गणेशजी-जैसे श्रेष्ठ लेखक का होना आवश्यक है। इसी प्रकरण में महाकाव्य के विषय, बाह्यांगवर्णन एवं लक्ष्य की ओर इंगित किया गया है।

कृतं मयेदं भगवन् काव्यं परम पूजितम्।
ब्रह्मन् वेदरहस्यं च यच्चान्यत् स्थापितं मया।
इतिहास पुराणानामुन्मेषं निर्मितं च यत्।
काव्यस्य लेखनार्थाय गणेशः स्मर्यतां मुने।

—महाभारत, आदिपर्व, अनुक्रमणिका,
प्रथम अध्याय, ६१, ६२, ६३, ७३

अलंकृतं शुभैः शब्दैः समयैर्दिव्यमानुषैः।
छंदो वृतैश्च विविधैरन्वितं विदुषां प्रियम्।।

—वही/१२८

भामह-कृत महाकाव्य का लक्षण इस प्रकार है—

महाकाव्य सर्गबद्ध होता है। यह महान् चरित्रों से संबद्ध, आकार में बृहत्, ग्राम्य शब्दों से रहित एवं गंभीर विषय से युक्त होता है। इसका नायक धीरोदात्त गुण से युक्त रहता है और यह अर्थसौष्ठव-संपन्न, अलंकारयुक्त एवं सदाश्रित या सत्पुरुषाश्रित होता है। मंत्रणा, दूतप्रेषण, प्रयाण (अभियान), युद्ध, नायक का अभ्युदय, पंच संधियों से युक्त, समृद्धि अर्थात् ऋतु, चंद्रोदय, पर्वत, संध्या, रात्रि, विवाह, जलक्रीड़ा, पुष्पावचय, पुत्रजन्म आदि का इसमें वर्णन किया जाता है। पूर्वोक्त सभी विषयों के वर्णन से युक्त होने पर भी महाकाव्य अव्याख्येय या दुर्बोध नहीं होता। इसमें चतुर्वर्गों का प्रतिपादन हो अर्थात् धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष का वर्णन किया जाय और अर्थनिरूपण की प्रधानता हो। इसमें लौकिक आचार तथा सभी रसों का समावेश होना चाहिए। महाकाव्य में नायक के वंश, बल, ज्ञान आदि का प्रारंभ से अंत तक वर्णन हो और प्रतिनायक का उत्कर्ष प्रदर्शित करने के लिए नायक का वध वर्णित न किया जाय। यदि नायक का महाकाव्य में व्यापक ढंग से वर्णन न हो तो प्रारंभ में उसकी प्रशंसा व्यर्थ है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भामह के विचार से महाकाव्य के प्रधान तत्त्व हैं—सर्गबद्धता, महान् एवं गंभीर विषय, नायक की उदात्तता, चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष) का प्रतिपादन, नायक का उत्कर्ष, सत्पुरुषाश्रितत्व, पंचसंधि या नाटकीय गुणों का समावेश, लोक-स्वभाव, विविध रसों की प्रस्तुति तथा चंद्रोदय, ऋतु आदि का वर्णन।

सर्गबंधो महाकाव्यं महतां च महच्च यत् ।
अग्राम्यशब्दमर्थं च सालंकारं सदाश्रयम् ॥
मंत्रदूतप्रयाणाजिनायकाभ्युदयैश्च यत् ।
पंचभिः संधिभिर्युक्तं नातिव्याख्येयमृद्धिमत् ॥
चतुर्वर्गाभिधानेऽपि भूयार्थोपदेशकृत् ।
युक्तं लोकस्वभावेन रसैश्च सकलैः पृथक् ॥
नायकं प्रागुपन्यस्य वंशवीर्यश्रुतादिभिः ।
न तस्यैव वधं ब्रूयादन्योत्कर्षाभिधित्सया ।
यदि काव्यशरीरस्य न स व्यापितयेष्यते ।
न चाभ्युदयभाक्तस्य मुधादौ ग्रहणं स्तवे ॥

—काव्यालंकार, १/१९-२३

भामह की परिभाषा में सर्गों की संख्या, वर्णनीय विषयों की सूची, नायक या अन्य पात्रों के गुणावगुण की सूची, छंद तथा मंगलाचरण आदि के स्पष्ट निर्देश नहीं हैं।

आचार्य दंडी ने अपने ग्रंथ में भामह की अपेक्षा महाकाव्य का समन्वित लक्षण प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है।

महाकाव्य सर्गबद्ध रचना है। इसके प्रारंभ में आशीर्वाद, नमस्कार (स्तुति) एवं कथावस्तु के निर्देश का विधान किया जाता है। महाकाव्य की कथावस्तु इतिहासाश्रित होती है या सज्जनों के चरित्र पर आधृत। इसमें चतुर एवं उदात्त चरित्रवाले नायक का वर्णन होता हैं और चतुर्वर्ण या धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष का समावेश। महाकाव्य में नगर, समुद्र, पर्वत, षड्ऋतु, चंद्रोदय, सूर्योदय, चंद्रास्त एवं सूर्यास्त, उद्यान-क्रीड़ा, मधुपान तथा संभोग का वर्णन होना चाहिए। इसमें विप्रलंभ, विवाह, कुमारजन्म, मंत्रणा, दूतप्रेषण, प्रयाण (अभियान) तथा नायक के अभ्युदय का वर्णन हो। यह अलंकृत, विस्तृत एव रसभाव से पूर्ण हो तथा इसके सर्ग अति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विस्तृत न हों और कथा श्रव्यवृत्तों एवं पंचसंधियों से युक्त हो। महाकाव्य के सर्गांत में छंद-परिवर्त्तन हो, यह लोकरंजक, कल्पांत तक स्थायी एवं अलंकृत हो। इसमें जितने वर्णनीय विषय कहे गए हैं, यदि उनमें से कुछ का वर्णन न किया जाय और जिन विषयों का समावेश किया गया है, उनसे ही पाठक को रसबोध हो तो यह उसकी न्यूनता नहीं मानी जायगी। महाकाव्य में पहले नायक के अभ्युदय का वर्णन किया जाय, तत्पश्चात् प्रतिनायक का वर्णन हो। महाकाव्य में ऐसा भी होता है कि नायक के वंशादि के वर्णन के पूर्व प्रतिनायक के कुल, पराक्रम आदि के उत्कर्ष का वर्णन किया जाय और पीछे नायक का वर्णन कर उसके द्वारा प्रतिनायक का संहार कराया जाय। दंडी को अंतिम रूप ही अधिक काम्य है।

सर्गबंधो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम्।
आशीर्नमस्क्रियावस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्॥
इतिहासकथोद्भूतमितरद्वा सदाश्रयम्।
चतुर्वर्गफलायत्त चतुरोदात्तनायकम्॥
नगरावर्णशैलर्त्तु चंद्रार्कोदयवर्णनैः।
उद्यानसलिलक्रीडामधुपानरतोत्सवैः॥
विप्रलंभैर्विवाहैश्च कुमारोदयवर्णनैः।
मंत्रदूतप्रयाणाजिनायकाभ्युदयैरपि॥
अलंकृतमसंक्षिप्तं रसभावनिरंतरम्।
सर्गैरनतिविस्तीर्णैः श्रव्यवृत्तैः सुसंधिभिः॥
सर्वत्र भिन्नवृत्तांतैरुपेतं लोकरंजकम्।
काव्यं कल्पांतरस्थायि जायते सदलंकृति॥
न्यूनमप्यत्र यैः कैश्चिदंगैः काव्य न दुष्यति।
यद्युपात्तेषु संपत्तिराराधयति तद्विदः॥
गुणतः प्रागुपन्यस्य नायकं तेन विद्विषाम्।
निराकरणमित्येष मार्गः प्रकृतिसुंदरः॥
वंशवीर्यश्रुतादीनि वर्णयित्वा रिपोरपि।
तज्जयान्नायकोत्कर्षकथनं च धिनोति नः॥

—काव्यादर्श, १/१४-२२

रुद्रट ने महाकाव्य का स्वरूप निरूपित करते हुए उसके व्यापक तत्त्वों का आख्यान किया। इन्होंने पूर्ववर्ती आचार्यों-द्वारा उल्लिखित तत्त्वों में से अनेक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का समावेश अपनी परिभाषा में किया तथा अनावश्यक तत्त्वों को त्याग दिया। इनके द्वारा निर्मित तत्त्व इस प्रकार हैं—

महाकाव्य में श्रेष्ठ नगरी का वर्णन करने के पश्चात् उस नगरी के नायक के वंश की प्रशंसा होती है। इसका नायक त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम)-प्राप्ति में संलग्न, शक्तित्रय (प्रभावशक्ति, मंत्रशक्ति एवं उत्साहशक्ति) से युक्त, सर्वगुणसंपन्न, विजय की इच्छा करनेवाला तथा सर्वजनप्रिय हो। कवि नायक को राज्य के पालनकर्त्ता के रूप में विधिवत् प्रस्तुत करे तथा उसके (नायक के) द्वारा प्राप्त विविध ऋतुओं के आनंद का उल्लेख करे। नायक का प्रतिनायक कुलीन एवं गुणवान् चित्रित हो तथा वह अपने स्वार्थ या मित्र के प्रयोजन को सिद्ध करते हुए प्रदर्शित किया जाय।

नायक गुप्तचर या प्रतिपक्षी के दूत अथवा किसी स्रोत से अपने शत्रु के कार्यों को सुनकर राज्यसभा में क्रुद्ध होकर अपने सहायक राजाओं को शत्रु के विरुद्ध उत्तेजित करे। वह मंत्रियों के साथ मंत्रणा करके शत्रु की दंडसाध्यता का निश्चय करे और उसके ऊपर चढ़ाई करे अथवा वाक्पटु दूत भेजे। तदनंतर नायक के प्रयाण के समय नागरिकों के धैर्य, देश, पर्वत, नदी, अटवी, कानन, सरोवर, मरुभूमि, समुद्र, द्वीप, भुवन, छावनी की स्थापना, युवकों के समाज की क्रीड़ा, सूर्यास्त के समय अंधकारयुक्त संध्या, चंद्रोदय, रात्रि, संगीत, पान-गोष्ठी तथा श्रृंगार का प्रसंगानुकूल वर्णन कर कथा का विस्तार किया जाय। कवि नायक के समान ही प्रतिनायक का वर्णन करे तथा आक्रमण के उद्देश्य से उसकी नगरी पर घेरा डालने का भी वर्णन करे। 'प्रातःकाल युद्ध करना है; अतः कहीं हमारी मृत्यु न हो जाय' इस प्रकार की शंका करनेवाले सैनिकों के पास सुंदरियों द्वारा संदेश भिजवाए एवं पानगोष्ठी का भी प्रबंध करे। नायक युद्ध के लिए सन्नद्ध होकर, व्यूह-रचना करते हुए तथा प्रतिनायक के साथ घोर युद्ध कर अंततः कष्टपूर्वक विजय-लाभ करते हुए दिखाया जाय। महाकाव्य की योजना सर्गबद्ध हो एवं उसमें संधियों का भी प्रयोग किया जाय तथा सभी प्रकरण परस्पर सुसंबद्ध हों।

तत्रोत्पाद्ये पूर्वं सन्नगरीवर्णनं महाकाव्ये।
कुर्वीत तदनु तस्यां नायकवंशप्रशंसां च ॥
तत्र त्रिवर्गसक्तं समिद्धशक्तित्रयं च सर्वगुणम्।
रक्तसमस्तप्रकृतिं विजिगीषुं नायकं न्यस्येत् ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विधिवत्परिपालयतः सकलं राज्यं राजवृत्तं च ।
तस्य कदाचिदुपेतं शरदादि वर्णयेत्समयम् ॥
स्वार्थं मित्रार्थं वा धर्मादि साधयिष्यतस्तस्य ।
कुल्यादिष्वन्यतमं प्रतिपक्षं वर्णयेद् गुणिनम् ॥
स्वचरात् तद्दूताद्वा कुतोऽपि वा शृण्वतोऽरिकार्याणि ।
कुर्वीत सदसि राज्ञां क्षोभं क्रोधेद्धचित्तगिराम् ॥
संमंत्र्य समं सचिवैर्निश्चित्य च दंडसाध्यतां शत्रोः ।
तं दापयेत्प्रयाणं दूतं वा प्रेषयेन्मुखरम् ॥
अथनायक प्रयाणे नागरिकाक्षोभजनपदाद्रिनदीः ।
अटवीकाननसरसीमरुजलधिद्वीपभुवनानि ॥
स्कंधावारनिवेशं क्रीडां यूनां यथायथं तेषु ।
रव्यस्तमयं संध्यां संतमसमथोदयं शशिनः ॥
रजनीं च तत्र यूनां समाजसंगीतपानशृंगारान् ।
इति वर्णयेत्प्रसंगात्कथां च भूयो निबध्नीयात् ॥
प्रतिनायकमपि तद्वत्तदभिमुखममृष्यमाणमायांतम् ।
अभिदध्यात् कार्यवशान्नगरीरोधस्थितं वापि ॥
योद्धव्यं प्रातरिति प्रबंधमधुपीति निशि कलत्रेभ्यः ।
स्ववधं विशंकमानान् संदेशान् दापयेत् सुभटान् ॥
संनह्य कृतव्यूहं सविस्मयं युध्यमानयोरुभयोः ।
कृच्छ्रेण साधु कुर्यादभ्युदयं नायकस्यांते ॥
सर्गाभिधानि चास्मिन्नवांतरप्रकरणानि कुर्वीत ।
संधीनपि संश्लिष्टांस्तेषामन्योन्यसंबंधात् ॥

—काव्यालंकार, १६/७-१९

आनंदवर्द्धन ने ध्वनि-सिद्धांत का प्रतिपान करते समय महाकाव्य में रस-नियोजन पर विचार किया है। उन्होंने एतद्विषयक पाँच तथ्यों का उन्मीलन किया—

क. विभाव, भाव, अनुभाव तथा संचारी के औचित्य से सुंदर ऐतिहासिक या कल्पित कथावस्तु का निर्माण या निर्धारण।

ख. ऐतिहासिक दृष्टि प्राप्त कथांश का, रस के प्रतिकूल होने पर, त्याग करना चाहिए तथा बीच में अभीष्ट रस के अनुकूल नवीन कल्पना के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्वारा कथा का संस्कार अर्थात् कथानक में रसानुकूल संशोधन होना चाहिए।

ग. न केवल शास्त्रीय विधान के परिपालन के विचार से, अपितु रसाभिव्यक्ति की दृष्टि से संधि तथा संध्यंगों का विधान किया जाय।

घ. अवसरानुकूल रसों का उद्दीपन, प्रशमन एवं प्रधान रस का अनुसंधान हो।

ङ. रसोत्कर्ष विधायक अलंकारों की योजना की जाय।

विभावभावानुभावसंचार्यौचित्यचारुणः।
विधिः कथाशरीरस्य वृत्तस्योत्प्रेक्षितस्य वा॥
इतिवृत्तवशायातां त्यक्त्वाऽननुगुणां स्थितिम्।
उत्प्रेक्ष्याप्यंतराभीष्ट रसोचितकथोन्नयः॥
संधिसंध्यंगघटनं रसाभिव्यक्त्यपेक्षया।
न तु केवलया शास्त्रस्थितिसंपादनेच्छया॥
उद्दीपनप्रशमने यथावसरमंतरा।
रसस्यारब्धविश्रांतेरनुसंधानमंगिनः॥
अलंकृतीनां शक्तावप्यानुरूप्येण योजनम्।
प्रबंधस्य रसादीनां व्यंजकत्वे निबंधनम्॥

—ध्वन्यालोक, ३/१०-१४

भोज ने भामह तथा दंडी के विचारों को अपनाते हुए 'सरस्वतीकंठाभरण' में महाकाव्य का विवेचन किया। इन्होंने बताया कि महाकाव्य में रस तथा अलंकार का औचित्यपूर्ण नियोजन हो। इसका नायक चतुरोदात्त हो और उसका उद्देश्य चतुर्वर्ग-फल की प्राप्ति हो। महाकाव्य में नाटक की पंचसंधियों—मुख, प्रतिमुख, गर्भ, अवमर्श और निर्बहण—का समावेश होना चाहिए। महाकाव्य न तो अति विस्तृत हो और न संक्षिप्त। इसमें कर्णसुखद छंद प्रयुक्त हों ओर सर्गांत में छंद बदल दिए जाएँ। इसमें पुर, उपवन, राष्ट्र एवं देश की संपत्ति, समुद्र और आश्रम आदि के इस प्रकार चित्रांकन किए जाएँ, जिससे रसोत्कर्ष हो। महाकाव्य में ऋतु, रात्रि, दिवस, तथा सूर्य-चंद्रमा के उदयास्त के वर्णनों-द्वारा काल के चित्रण में रस की पुष्टि होती है। राजकुमार, राजकुमारी, नारी, सेना तथा सेना के अंगों, उद्यान-क्रीड़ा, जल-क्रीड़ा, मधुपान, रतोत्सव, विप्रलंभ, विवाह, श्रृंगारी चेष्टाओं, मंत्र, दूतगमन, युद्ध तथा नायक के अभ्युदय आदि का वर्णन महाकाव्य में होना चाहिए।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसमें प्रतिनायक के वंश, पराक्रम आदि का भी वर्णन होना चाहिए; क्योंकि ऐसे प्रतिनायक को पराजित करने से ही नायक का महत्त्व बढ़ता है। इसमें नायक द्वारा प्रतिनायक का निराकरण होता है।

वाक्यवच्च प्रबंधेषु रसालंकार संकरान्।
निवेशयंत्यनौचित्य परीहारेण सूरयः ।।
चतुर्वर्त्यंगसंपन्नं चतुरोदात्तनायकम्।
चतुर्वर्गफलं को न प्रबंधं वांधवीयति ।।
मुखं प्रतिमुखं गर्भोऽवमर्शश्च मनीषिभिः ।
स्मृता निर्बहणां चेति प्रबंधे पंचसंधयः ।।
अविस्तृतमसंक्षिप्तं श्रव्यवृत्तं सुगंधि च।
भिन्न सर्गांतवृत्तं च काव्यं लोकोऽभिनंदति ।।
पुरोपवनराष्ट्रादिसमुद्राश्रमवर्णनैः ।
देश संपत्प्रबंधस्य रसोत्कर्षाय कल्पते ।।
ऋतुरात्रिदिवार्केंदूदयास्तमयकीर्तनैः ।
कालः काव्येषु संपन्नो रसपुष्टिं नियच्छति ।।
राजकन्या कुमारस्त्रीसेनासेनांगभंगिभिः ।
पात्राणां वर्णनं काव्ये रसस्रोतोऽधितिष्ठति ।।
उद्यानसलिलक्रीडा मधुपानरतोत्सवाः ।
विप्रलंभा विवाहाश्च चेष्टाः काव्ये रसावहाः ।।
मंत्रदूतप्रयाणाजिनायकाभ्युदयादिभिः ।
पुष्टिः पुरुषकारस्य रसं काव्येषु वर्षति ।।
नावर्णनं नगर्यादिर्दोषाय विदुषां मतम् ।
यदि शैलर्तु रात्र्यादेर्वर्णनेनैव तुष्यति ।।
गुणतः प्रागुपन्यस्य नायकं तेन विद्विषाम्।
निराकरणमित्येष मार्गः प्रकृतिसुंदरः ।।
वंशवीर्यश्रुतादीनि वर्णयित्वा रिपोरपि।
तज्जयान्नायकोत्कर्षकथनं च धिनोति नः ।।

—सरस्वतीकंठाभरण, ५/१२६-१३७

भोज के पश्चात् वाग्भट तथा हेमचंद्र ने महाकाव्य के संबंध में विचार किया, पर इनमें किसी प्रकार की मौलिकता न होकर पूर्ववर्ती आचार्यों-द्वारा निर्दिष्ट लक्षणों की ही पुनरावृत्ति हुई है। वाग्भट ने तीन नवीन तथ्यों का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समावेश किया है—महाकाव्य के एक सर्ग में दुष्कर चित्रबंध काव्य की योजना, प्रत्येक सर्ग के अंत में कवि के अभिप्रेत अर्थ का अंकन; उदाहरण के लिए श्री, लक्ष्मी, विष्णु आदि शब्दों का समावेश, संस्कृत के अतिरिक्त प्राकृत, अपभ्रंश आदि ग्राम्य भाषाओं में भी महाकाव्य की रचना करना।

तत्र प्रायः संस्कृतप्राकृतापभ्रंशग्राम्यभाषाविबद्धभिन्नांत्यवृत्तसर्गाश्वासकसंध्यवस्कंधकबंधनम्, मुखप्रतिमुखगर्भविमर्शनिर्बहण रूपसंधिपंचकोपेतम्, असक्षिप्तग्रंथम्, अविषमबंधम्, अनतिविस्तीर्णं परस्परसंबद्धसर्गम्, आशीर्नमस्क्रियावस्तुनिर्देशोपक्रमयुतम्, वक्तव्यवस्तुप्रतिज्ञाततप्रयोजनोपन्यासकविप्रशंसासज्जनदुर्जनचितादिवाक्योपेतम्, दुष्करचित्राद्येकसर्गांकितम्, स्वाभिप्रेतवस्त्वांकितसर्गांतम्, चतुर्वर्गफलोपेतम्, चतुरोदात्तनायकम्, प्रसिद्धनायकचरितम्, नगनगरसागरर्तुचंद्रार्कोदयास्तसमयोद्यानजलकेलिमधुपानसुरतमंत्रदूतसैन्यावासप्रयाणाजिनायकाभ्युदयविवाहविप्रलंभाश्रमनद्यादिवर्णनोपेतम् महाकाव्यम्। —काव्यानुशासन

हेमचंद्र ने अन्य सारी बातें तो पूर्ववर्ती परंपरा की ग्रहण की हैं; पर कुछ नवीन सूत्र जोड़कर महाकाव्य के स्वरूप का निरूपण किया है। ये 'समस्तलोकरंजकता' को महाकाव्य का प्रधान उद्देश्य मानते हैं। इनकी द्वितीय मान्यता यह है कि संस्कृत महाकाव्यों में सर्ग के स्थान पर आश्वासक में भी कथा का विभाजन हो। समस्त महाकाव्य में इन्होंने एक ही छंद के प्रयोग पर बल दिया है अर्थात् संपूर्ण रचना यदि एक छंद में लिखी जाय तो दोष नहीं माना जायगा। इनकी चौथी नवीनता यह है कि महाकाव्य की मूल कथा में नगर, सागर, पर्वत आदि विषयों का समावेश न हो सके तो अवांतर कथाओं के रूप में इनका वर्णन कर इस अभाव की पूर्त्ति की जा सकती है।

अर्थवैचित्र्यं यथा चतुर्वर्गफलोपायत्वं, चतुरोदात्तनायकत्वं, रसभावनिरंतरम्, विधिनिषेधव्युत्पादकत्वं, सुसूत्रसंविधानकत्वं, नगराश्रमशैलसैन्यावासार्णवादिवर्णनम्, ऋतुरात्रिदिवार्कास्तमयचंद्रोदयादिवर्णनम्, नायकनायिकाकुमारवाहनादिवर्णनम्, मंत्रदूतप्रयाणसंग्रामाभ्युदयादिवर्णनम्, वनविहारजलक्रीडामधुपानमानापगमरतोत्सवादिवर्णनमिति, उभयवैचित्र्यं यथा—रसानुरूपसंदर्भत्वं, अर्थानुरूपछंदत्वं, समस्तलोकरंजकत्वं, सदलंकारवाक्यत्वं, देशकालपात्रचेष्टाकथांतरानुषंजनं मार्गद्वयानुवर्तनं चेति। प्रायो ग्रहणात् संस्कृतभाषयाऽप्याश्वासकबंधो हरिप्रबोधादौ न दुष्यति। प्रायो ग्रहणादेव रावणवध-हरविजय-सेतुबंधेष्वादितः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समाप्तिपर्यंतमेकमेव छंदो भवतीति। गलितकानि तु तत्र कैरपि विदग्धमानिभिः क्षिप्तानि इति तद्विदो भाषंते ॥ —हेमचंद्र, काव्यानुशासन, आठवाँ अध्याय

महाकाव्य की विस्तृत और स्पष्ट परिभाषा आचार्य विश्वनाथ (१४वीं शती) की है। इन्होंने पूर्ववर्ती आचार्यों की विशेषताओं का समावेश कर अपने महाकाव्य-विषयक मत का व्याख्यान किया है। इनका लक्षण इस प्रकार है—

महाकाव्य की कथा सर्गबद्ध होती है। इसका नायक कोई देवता या धीरोदात्त गुणोपेत सद्वंशोद्भव क्षत्रिय होता है। एकवंश में उत्पन्न अनेक राजा भी महाकाव्य के नायक हो सकते हैं। महाकाव्य में शृंगार, वीर और शांत, इन तीन रसों में से एक प्रधान होता है और अप्रधान रूप से सभी रस प्रयुक्त होते हैं। इसमें नाटक की सभी संधियों का समावेश होता है। इसका कथानक ऐतिहासिक अथवा किसी सज्जन से संबद्ध रहता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चतुर्वर्गों में से कोई एक महाकाव्य का फल होना चाहिए। इसके प्रारंभ में नमस्कारात्मक, वस्तुनिर्देशात्मक या आशीर्वाद के रूप में मंगलाचरण का विधान होता है।

कहीं-कहीं खलनिंदा एवं सज्जनों का शंसन (प्रशंसा) हो। महाकाव्य में न तो अत्यंत बड़े और न अत्यंत छोटे आठ से अधिक सर्ग रहें और प्रत्येक सर्ग में एक ही छंद का प्रयोग किया जाय; किंतु सर्गांत में छंद बदल दिया जाय। कहीं-कहीं एक सर्ग में अनेक छंदों का भी विधान किया जाता है। प्रत्येक सर्ग के अंत में भावी (आनेवाले) सर्ग की कथा की सूचना होनी चाहिए। महाकाव्य में संध्या, सूर्य, चंद्रमा, रात्रि, प्रदोष, अंधकार, दिन, प्रातःकाल, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, ऋतु, वन, सागर, संयोग, वियोग, मुनि, स्वप्न, नगर, यक्ष, युद्ध, प्रयाण (युद्धयात्रा), विवाह, मंत्रणा, पुत्रोत्सव आदि का यथावसर सांगोपांग वर्णन होना चाहिए। इसका नामकरण कवि, वर्ण्यविषय या नायक-नायिका या किसी पात्र के नाम के आधार पर हो तथा सर्गों के नाम सर्ग में वर्णित कथा के आधार पर रखे जायँ—

सर्गबंधो महाकाव्यं तत्रैकोनायकः सुरः।
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः ॥
एकवंशभवाभूपाः कुलजा बहवोऽपि वा।
शृंगारवीरशांतानामेकोंऽगी रस इष्यते ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अंगानि सर्वेऽपि रसाः सर्वेनाटकसंधयः ।
इतिहासोद्भवं वृत्तं अन्यद्वा सज्जनाश्रयम् ।।
चत्वारस्तस्यवर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत् ।
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा ।।
क्वचिन्निंदा खलादीनां सतां च गुणकीर्त्तनम् ।
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः ।
नातिस्वल्पाः नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह ।।
नाना वृत्तमयः क्वाऽपि सर्गः कश्चन दृश्यते ।
सर्गांते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत् ।।
संध्यासूर्येंदुरजनीप्रदोषध्वांतवासराः ।
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तु वनसागराः ।।
संयोगविप्रलंभौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः ।
रणप्रयाणोपयममंत्रपुत्रोदयादयः ।।
वर्णनीया यथायोगं सांगोपांगा अमी इह ।
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा ।।
नामास्य सर्गोपादेयकथया सर्गनाम तु ।
अस्मिन्नार्षे पुनः सर्गाः भवंत्याख्यानसंज्ञकाः ।।

—साहित्यदर्पण, ६/३१५-३२८

उपर्युक्त आचार्यों की विवेचना के आधार पर महाकाव्य-विषयक भारतीय दृष्टिकोण का सामान्य रूप प्रस्तुत किया जा सकता है और उसके प्रमुख तत्त्वों की मीमांसा की जा सकती है ।

कथानक—महाकाव्य की कथावस्तु ऐतिहासिक या सज्जनाश्रित होती है । यह इतिहास और पुराण पर आश्रित या प्रख्यात हो और सज्जनाश्रित रहे । रुद्रट ने उत्पाद्य या कविकल्पना-प्रसूत कथा पर भी बल दिया है । उनके अनुसार यदि कथानक का ढाँचा ऐतिहासिक या पौराणिक भी रहे तो कवि अन्य बातों को कल्पना से पूर्ण कर उसके स्वरूप को सुगठित बनाए । कथावस्तु उत्पाद्य (काल्पनिक) हो या अनुत्पाद्य, उसमें कल्पना का आग्रह आवश्यक है । महाकाव्य में कवि जीवन के व्यापक तथा गंभीर तत्त्वों का समावेश करने के लिए अवांतर कथाओं का भी नियोजन करे । इस प्रकार का मत रुद्रट और हेमचंद्र का है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सभी आचार्यों ने वस्तुव्यंजना के रूप में प्राकृतिक दृश्यों तथा जीवन की विविध परिस्थितियों के सांगोपांग चित्रण पर बल देकर ऐसे विषयों की विस्तृत सूची प्रस्तुत की है। उनके अनुसार संध्या, सूर्य, रजनी, अंधकार, मध्याह्न, दिवस, षड्ऋतु, प्रातः, सागर, नगर, पर्वत, युद्ध, युद्धयात्रा, पुत्रोत्सव, विवाह, आखेट, उद्यान-विहार, पुष्पावचय, जलक्रीड़ा, मद्यपान, गोष्ठी, रतोत्सव, संयोग-वियोग, देश, वापी, तड़ाग, दूतत्व, मान, यज्ञ, मुनि, मंत्रणा, स्कंधावार, नगरावरोध, नागरिक-क्षोभ आदि का यथावसर विस्तृत वर्णन (महाकाव्य के लिए) आवश्यक है।

रुद्रट एवं विश्वनाथ ने महाकाव्य में अतिप्राकृत या अलौकिक तत्त्वों के समावेश पर भी विचार किया है। इसीलिए विश्वनाथ देवता या सुर का भी महाकाव्य का नायक होना स्वीकार करते हैं। रुद्रट ने इस संबंध में यह व्यवस्था दी कि महाकाव्य में अलौकिक कार्य मानव-द्वारा संपादित न कराकर देवता, राक्षस, गंधर्व आदि के द्वारा संपन्न कराए जाएँ।

महाकाव्य का प्रारंभ मंगलाचरण से हो, जो आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक एवं वस्तुनिर्देशात्मक हो। रुद्रट ने महाकाव्य के प्रारंभ में सन्नगरी-वर्णन तथा नायक के वंशविस्तार-वर्णन को आवश्यक माना है। वाग्भट और हेमचंद्र के मत से महाकाव्य के प्रारंभ में विषयवस्तु के प्रतिज्ञान तथा रचना के उद्देश्य या प्रयोजन का व्याख्यान अनिवार्य है। महाकाव्य में खल-निंदा तथा सज्जन-शंसन की अनिवार्यता पर सभी बल देते हैं।

शैली—सभी आचार्य नाट्यसंधियों के समावेश पर बल देकर उसमें नाटकीयता के नियोजन को आवश्यक मानते हैं। इस तत्त्व के समावेश से कथानक सुगठित रहता है और उसमें बिखराव नहीं आता।

कथानक का विभाजन अनेक सर्गों में होता है। ये सर्ग न तो अति स्वल्प और न अति दीर्घ हों तथा उनकी संख्या आठ से अधिक रहे। प्रत्येक सर्ग का नामकरण उस सर्ग में वर्णित विषय के आधार पर भी हो सकता है। एक सर्ग में एक ही छंद का प्रयोग किया जाय और सर्गांत में छंद परिवर्तित कर दिया जाय। कभी-कभी संपूर्ण महाकाव्य की रचना एक ही छंद में होती है; किंतु इसे दोष नहीं माना जा सकता। सर्ग के अंत में भावी सर्ग की कथा की सूचना होनी चाहिए।

भामह ने महाकाव्य की प्रौढ़ शैली का समर्थन कर अग्राम्य शब्दमयी भाषा के प्रयोग को आवश्यक माना है। अग्निपुराणकार के मत से महाकाव्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में समस्त रीति (वैदर्भी, गौड़ी तथा पांचाली), गुण (माधुर्य, ओज और प्रसाद) तथा अलंकारयुक्त भाषा के प्रयोग को समीचीन माना गया है। भामह साहित्यिक भाषा को महाकाव्य के लिए उपयुक्त मानकर ग्राम्य शब्दों के अप्रयोग का विधान करते हैं। भोज ने भाषा का प्रसंगानुकूल तीनों शक्तियों—अभिधा, लक्षणा और व्यंजना—से युक्त होना स्वीकार किया है। हेमचंद्र के अनुसार महाकाव्य में ऐसी भाषा का प्रयोग हो, जिससे वह लोक-रंजक बने। ये प्रसादगुणयुक्त भाषा को महाकाव्य के लिए उचित समझते हैं। महाकाव्य के लिए दुष्कर चित्रबंध को भी वांछनीय माना गया है। अभिप्राय यह कि महाकाव्य की भाषा प्रौढ़ हो और उस पर कवि का असाधारण अधिकार रहे। वह प्रसंगानुकूल सरल एवं बोधगम्य भाषा का प्रयोग कर अभिव्यक्ति-सौकर्य की क्षमता प्रदर्शित करे।

महाकाव्य में महद् उद्देश्य, महान् भाषा, महान् आयोजन और महान् चरित की योजना की गई है। इसमें शृंगार, वीर, शांत में से एक रस अंगी होता है और शेष रस अंग-रूप में प्रयुक्त होते हैं।

इससे यह सिद्ध होता है कि महाकाव्य में जीवन की समग्रता होनी चाहिए और उसका चित्रण विराट् पटभूमि पर हो। इसमें धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष में से किसी एक को उसका उद्देश्य माना गया है। कतिपय आचार्य चतुर्वर्ग को ही महाकाव्य का फल मान लेते हैं। निष्कर्ष यह कि महदुद्देश्य से प्रेरित होकर ही महाकाव्य की रचना हो। आचार्यों ने (विशेषतः ध्वनिकार ने) रसोत्कर्षविधायक अलंकारों की योजना पर बल दिया है और रसप्रधान महाकाव्य को ही उत्तम माना है। ध्वनिकार ने महाकाव्य के दो प्रकार किए हैं—रसप्रधान और इतिवृत्तप्रधान।

पात्र—भारतीय आचार्य महाकाव्य के नायक के लिए चरित की उदात्तता को आवश्यक मानकर महान् चरित की योजना को स्वीकार करते हैं। नायक सद्वंशोद्भव क्षत्रिय या देवता हो। उसका धीरोदात्त होना आवश्यक है। एक वंश में उत्पन्न कुलीन अनेक राजाओं को भी महाकाव्य का नायक बनाया जा सकता है। नायक की महत्ता प्रदर्शित करने के लिए प्रतिनायक का भी महत्त्वपूर्ण होना आवश्यक है। रुद्रट ने बताया कि महाकाव्य का प्रतिनायक वीरतापूर्ण कार्यों को प्रदर्शित करते हुए नायक के हाथ से पराजित हो। उसके (प्रतिनायक के) कार्यकलाप ऐसे हों, जिससे नायक की क्रोधाग्नि भड़क उठे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

महाकाव्य का नायक अंत में विजयी दिखाया जाय और उसकी पराजय या मृत्यु न दिखाई जाय। उसको सर्वगुणोपेत, शक्तिशाली, नीतिज्ञ और प्रजा-पालक होना चाहिए। नायक और प्रतिनायक के अतिरिक्त अन्य अनेक पात्रों का भी वर्णन होता है, जिनमें मंत्री, सहायक, दूत, सेना, राजा, रानी, दास, दासी आदि आते हैं।

महाकाव्य में पांडित्य-प्रदर्शन, विविध ज्ञानवर्णन तथा अनेकविध वस्तुओं के विवरण को भी स्थान दिया गया है। इसका नामकरण वर्ण्यवस्तु, नायक-नायिका एवं अन्य पात्रों के नाम के आधार पर होता है। उपर्युक्त लक्षणों के आधार पर महाकवि कालिदास-कृत 'रघुवंश' एवं गोस्वामी तुलसीदास-रचित 'रामचरितमानस' महाकाव्य के अंतर्गत आते हैं।

आधार-ग्रंथ—

१. हिंदी महाकाव्य का स्वरूप-विकास—डॉ० शंभुनाथ सिंह
२. संस्कृत महाकाव्य का उद्भव और विकास—डॉ० केशव मुसलगांवकर
३. भारतीय काव्यालोचन—डॉ० राजवंश सहाय 'हीरा'
४. संस्कृत साहित्यकोश—डॉ० राजवंश सहाय 'हीरा'
५. आधुनिक हिंदी काव्य का स्वरूप-विधान—डॉ० निर्मला जैन

महाराज भोज—धारानरेश महाराज भोज ने 'सरस्वतीकंठाभरण' तथा 'शृंगारप्रकाश' नामक दो विशालकाय काव्यशास्त्रीय ग्रंथों की रचना की है। भोज बहुमुखी प्रतिभा-संपन्न थे। इन्होंने विविध विषयों पर ८४ ग्रंथों का प्रणयन किया है। 'सरस्वती कंठाभरण' पाँच परिच्छेदों में विभक्त है। इसके प्रथम परिच्छेद में १६ पददोषों, १६ काव्यदोषों, १६ वाक्यार्थ दोषों, २४ शब्द-गुणों तथा २४ वाक्यार्थ गुणों का वर्णन है। द्वितीय परिच्छेद में २४ शब्दालंकारों, तृतीय में २४ अर्थालंकारों तथा चतुर्थ में २४ उभयालंकारों का निरूपण है। पंचम परिच्छेद में रस, नायक-नायिका-भेद, पंचसंधि तथा चार वृत्तियों का निरूपण है। इस पर रत्नेश्वर नामक मैथिल विद्वान् ने 'रत्नदर्पण' टीका की रचना की है (समय चौदहवीं शती)।

'शृंगारप्रकाश' काव्यशास्त्र का सर्वाधिक विशाल ग्रंथ है, जिसके ३६ प्रकाशों में काव्यालोचन के सभी विषयों का विस्तृत विवेचन है। संप्रति संपूर्ण ग्रंथ प्रकाशित नहीं है। इस पर डॉ० वेंकट राघवन् ने विस्तृत शोधप्रबंध की रचना कर उसके सभी विषयों का विवेचन करते हुए मूल ग्रंथ से प्रभूत

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उद्धरण दिया है। [**भोज के रस एवं अलंकार-संबंधी विचारों को जानने के लिए दे० अलंकार एवं रससंप्रदाय तथा शृंगाररस**]

भोज ने रस, अलंकार, शब्दशक्ति, गुण तथा दोष के संबंध में अनेक नवीन तथ्य प्रकट किए हैं। इनकी प्रतिभा मौलिक न होकर संग्राहिका थी। इन्होंने निर्दोष, गुणयुक्त, अलंकार से अलंकृत तथा रसपूर्ण रचना को काव्य कहा है तथा वाङ्मय के तीन विभाग कर—स्वभावोक्ति, वक्रोक्ति और रसोक्ति—रसोक्ति को काव्य का उत्तम रूप माना है। शृंगाररस के संबंध में प्रस्तुत इनका मत अत्यंत मौलिक एवं मनोवैज्ञानिक भित्ति पर आधृत है। इन्होने अलंकारों के विवेचन में नवीन सरणि उपस्थापित की है और कतिपय ऐसे अलंकारों का उल्लेख किया है, जिनकी कोई परंपरा नहीं है।

महिमभट्ट—ये अनुमानवाद के पोषक तथा ध्वनि-सिद्धांत के प्रबल विरोधी हैं। इन्होंने 'व्यक्तिविवेक' नामक महनीय ग्रंथ की रचना कर ध्वनि-सिद्धांत का खंडन किया है। ग्रंथारंभ में लेखक ने ध्वनि के सभी भेदों को अनुमान में गतार्थ करने की प्रतिज्ञा की है और वैदुष्यपूर्ण तर्क उपस्थित कर ध्वनि-सिद्धांत की धज्जियाँ उड़ा दी हैं। [**दे० व्यक्तिविवेक**] ये न्याय की पद्धति से ध्वनि के संपूर्ण भेदों को अनुमान में अंतर्भुक्त कर काव्य का मूलतत्त्व अनुमिति या अनुमान को सिद्ध करते हैं।

इनका पूरा नाम राजानक महिमभट्ट था, जिससे ये काश्मीरक सिद्ध होते हैं। इनके पिता का नाम श्रीधैर्य तथा गुरु का नाम श्यामल था। इनकी एकमात्र रचना 'व्यक्तिविवेक' उपलब्ध है, जिसका उद्देश्य (व्यक्ति) व्यंजना का समीक्षण (विवेक) है। इन्होंने 'तत्त्वोक्तिकोश' नामक ग्रंथ का भी प्रणयन किया था; किंतु संप्रति वह अनुपलब्ध है। इनका समय ग्यारहवीं शती का मध्य है। इन्होंने आनंदवर्द्धन और कुंतक के मत का खंडन किया था। कुंतक का समय दशम शती का अंतिम चरण है; अतः महिमभट्ट का समय ग्यारहवीं शती के निकट सिद्ध होता है। राजानक रुय्यक ने 'व्यक्ति-विवेक' की टीका लिखी है और आचार्य मम्मट ने इनके मत का खंडन किया है। अतः, ये दोनों के पूर्ववर्ती हैं। इन्होंने साहित्य-जगत् में सहसा यशोपलब्धि के लिए ही ध्वनि-सिद्धांत का खंडन किया था।

सहसा यशोऽभिसतुं समुद्यतादृष्टदर्पणा मम धीः।
स्वालंकारविकल्पप्रकल्पने वेत्ति कथमिवावद्यम्॥

—व्यक्तिविवेक, १/४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'व्यक्तिविवेक' की रचना तीन विमर्शों में हुई है। प्रथम विमर्श में ध्वनिकार-द्वारा प्रस्तुत ध्वनि के लक्षण में दस दोष दिखलाकर प्रतीयमान अर्थ को अनुमिति-ग्राह्य माना गया है। द्वितीय में शब्द दोषों का वर्णन कर तृतीय विमर्श में ध्वन्यालोक के चालीस उदाहरणों का परीक्षण कर उनका समावेश अनुमान में किया गया है। महिमभट्ट का मूल उद्देश्य ध्वनि-सिद्धांत का खंडन करना था और इसमें वे पूर्णकाम हुए हैं। इन्होंने आनुषंगिक रूप से काव्यशास्त्र के अन्य तथ्यों पर भी विचार किया है। काव्यहेतु के रूप में प्रतिभा (शक्ति) और व्युत्पत्ति को इन्होंने अधिक महत्त्व दिया है। ये रसानुरूप शब्दार्थ की योजना के प्रति जागरूक कवि की प्रज्ञा को प्रतिभा कहते हैं और इसे भगवान् शिव का तृतीय नेत्र मानते हैं। [दे० व्यक्तिविवेक, २/११७-११९] इनके अनुसार कवि का विभावादि संयोजनात्मक वह व्यापार काव्य है, जिसमें अनिवार्यतः रसाभिव्यक्ति होती है।

कविव्यापारो हि विभावादिसंयोजनात्मा रसाभिव्यक्त्यव्यभिचारी काव्यम्।

—व्यक्तिविवेक, पृ० ९५

ये कवि के शब्दार्थ-विषयक व्यापार को काव्य कहते हैं। अलंकारों के संबंध में महिमभट्ट का मत है कि ये रस पर आश्रित रहते हैं और विभावादि की वैचित्र्योक्ति (भंगीभणिति) को अलंकार कहा जाता है। रसाश्रित होने के कारण काव्य में इनका स्थान गौण हो जाता है; अतः चारुता के लिए इच्छुक कवि स्वयं अलंकारों के विधान और निषेध की कल्पना करें।

रसस्यांगं विभावाद्याः साक्षान्निष्पादकत्वतः।
तद्वैचित्र्योक्तिवपुषोऽलंकारास्तु तदाश्रयाः॥

—वही, २/७९, तथा पृ० ३४३

इन्होंने शब्द की एकमात्र शक्ति के रूप में अभिधा को प्रतिष्ठित किया है। अभिधा के अतिरिक्त शब्द की अन्य शक्तियाँ नहीं हो सकतीं; क्योंकि सभी शक्तियों में परस्पर निरपेक्षता दिखाई पड़ती हैं; जैसे कि अग्नि में दाहकता, पाचकता एवं प्रकाश आदि शक्तियाँ परस्पर भिन्न नहीं होतीं।

शब्दस्यैकाभिधा शक्तिरर्थस्यैकैवलिंगता।
न व्यंजकत्वमनयोः समस्तीत्युपपादितम्॥ —वही, १/२७

महिम ने अर्थ के दो प्रकार माने हैं—वाच्य और अनुमेय। शब्दशक्ति से प्रतीत होनेवाला अर्थ वाच्य कहा जाता है और इसे मुख्य अर्थ कहते हैं। श्रवणमात्र से ही इसमें अर्थावबोध होता है। अनुमेयार्थ की प्रतीति यत्नपूर्वक होती है

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और यह अमुख्यार्थ कहा जाता है। इसके तीन प्रकार हैं—वस्तुमात्र, अलंकार और रस। इनमें से प्रथम दो तो वाच्य भी होते हैं; पर अंतिम अनुमेय होता है। महिमभट्ट प्रतीयमान को अनुमेय मानकर उसे काव्यानुमिति नाम देते हैं।

श्रुतिमात्रेण यत्रास्य तादर्थ्यमवसीयते ।
तं मुख्यमर्थं मन्यंते गौणं यत्नोपपादितम् ॥

—हिंदी व्यक्तिविवेक, पृ० ४७

वाच्यस्तदनुमितो वा यत्रार्थोऽर्थांतर प्रकाशयति ।
संबंधतः कुतश्चित् सा काव्यानुमितिरित्युक्ता ॥

—वही, १/२५

इन्होंने परार्थानुमान को महाविषय मानकर उसमें ध्वनि का अंतर्भाव किया है। ध्वनि-विरोधी होते हुए भी महिमभट्ट काव्य में रस को महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान करते हैं; पर उसे अनुमेय स्वीकार करते हैं। इनके मतानुसार रस व्यंग्य न होकर अनुमिति का विषय है। रस का अभाव ही अनौचित्य है और यही काव्य का प्रमुख दोष है। इन्होंने रस को कविता का प्राण कहा है और सभी प्रकार के काव्यों में उसकी महत्ता सिद्ध की है। रस को काव्य की आत्मा मानने में इन्हें किसी प्रकार की आपत्ति नहीं है; किंतु इनका विरोध इस अर्थ में है कि रस व्यंग्य है। इन्होंने रसौचित्य के अंतर्गत सभी दोषों का समावेश किया है और उसकी अनुमानात्मक व्याख्या प्रस्तुत कर विभाव तथा स्थायी भाव में कार्य-कारण संबंध की स्थापना की है। ये सहृदय में ही रस की स्थिति स्वीकार करते हैं, पर उसे उसके (सहृदय के) चित्त में वासना-रूप में विद्यमान नहीं मानते। नट के द्वारा रंगमंच पर प्रदर्शित स्थायी भाव ही सहृदय के चित्त में प्रतिबिंबकल्प होते हैं। सहृदय ही स्थायी भावों का रस-रूप में आस्वाद लेता है। [**महिम भट्ट के ध्वनि-विषयक मत के लिए दे० ध्वनि-विरोधी आचार्य**]

आधार ग्रंथ—

१. स्वतंत्र कलाशास्त्र—डॉ० कांतिचंद्र (भाग १)
२. ध्वनि संप्रदाय और उसके सिद्धांत—डॉ० भोलाशंकर व्यास
३. भारतीय काव्यशास्त्र के प्रतिनिधि सिद्धांत—डॉ० राजवंश सहाय 'हीरा'
४. महिमभट्ट—डॉ० ब्रजमोहन चतुर्वेदी

मागधी—रीति का एक प्रकार। इसका वर्णन राजशेखर ने किया है। [**दे० रीति के प्रकार**] भोज के अनुसार मागधी खंड रीति है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मात्सी—आचार्य भोज-वर्णित वृत्त्यनुप्रास का एक भेद। [दे० अनुप्रास] जब किसी रचना में एक वर्ग के वर्णों की आवृत्ति हो तो मात्सी वृत्ति होगी।

—सरस्वतीकंठाभरण, पृ० २३६-३८

मार्ग—रीति का अन्य नाम [दे० रीतिसंप्रदाय] आचार्य कुंतक ने रीति के लिए मार्ग शब्द का प्रयोग किया और इसके तीन भेद किए—सुकुमार, विचित्र और मध्यम। इनके अनुसार मार्ग का अभिप्राय कवि के आंतरिक गुणों की अभिव्यक्ति से है। [दे० रीतिसंप्रदाय के अंतर्गत कुंतक] कुंतक ने बताया कि जिस मार्ग या विधि का आश्रय ग्रहण कर कवि काव्य-रचना में प्रवृत्त हो, उसे मार्ग कहते हैं। उन्होंने मार्ग के वर्गीकरण का आधार कवि-स्वभाव को माना है, प्रादेशिक सीमा को नहीं।

मात्राच्युतक—चित्रालंकार का एक भेद। [दे० चित्रालंकार] मात्रा के हटा देने पर जब किसी पद्य या श्लोक का अर्थ बदल जाय तो मात्राच्युतक होगा।

माथुरी—आचार्य भोज-वर्णित वृत्त्यनुप्रास का एक भेद। [दे० अनुप्रास]

माधुर्य—नायिका का अयत्नज अलंकार। [दे० नायिका के अलंकार] सभी दशाओं में रमणीयता का होना माधुर्य है।

माधुर्य गुण—गुण या काव्यगुण का एक प्रकार। [दे० गुण] जिस काव्य-रचना में मधुरत्व या मधुरता का प्राधान्य हो एवं जिसके अध्ययन से चित्त या अंतःकरण आनंद से द्रवीभूत हो जाय, उसे माधुर्य गुण कहते हैं। अंतःकरण के द्रवीभूत होने का अर्थ है चित्त का पिघल जाना। चित्त की द्रवित अवस्था को माधुर्य कहा जाता है। जब शृंगारादि रसों की अनुभूति से चित्त में आर्द्रता का संचार होने लगे तो उसे माधुर्य गुण कहते हैं। इसमें मधुरता-व्यंजक पदों का प्रयोग होता है और परुष या कठोर वर्ण एवं लंबे-लंबे समासों का अभाव होता है। अभिप्राय यह कि मनोहारी पदविन्यास एवं असमस्तता को माधुर्य गुण कहेंगे। माधुर्यगुण में मधुर वर्ण, सानुनासिक वर्ण (ङ, ञ, ण, न, म) तथा छोटे-छोटे समासों का प्रयोग होता है। इसमें आह्लादकता होती है और शृंगार रस में द्रवित करने की विशेषता। इसकी अभिव्यक्ति शृंगार, करुण एवं शांत रस में होती है। संस्कृत काव्यशास्त्रियों ने इसे विभिन्न रूपों में ग्रहण किया है। भरत के अनुसार श्रुतिमधुरता ही माधुर्य की विशेषता है (नाट्यशास्त्र, १७/१०१) तो दंडी के मत से रसमयता को माधुर्य कहते हैं। उन्होंने माधुर्य का तात्पर्य सरलता, शिष्टता तथा सुसंस्कृतता से लिया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मधुरं रसवद् वाचि वस्तुन्यपि रसस्थितिः ।
येन माद्यंति धीमंतो मधुनेव मधुव्रताः ।।

—काव्यादर्श, १/५१

भामह श्रव्यत्व और अनतिसमस्तत्व को माधुर्य कहते हैं ।

श्रव्यं नातिसमस्तार्थं काव्यं मधुरमिष्यते ।

—काव्यालंकार, २/३

वामन ने अर्थगुण के रूप में माधुर्य का अभिप्राय उक्तिवैचित्र्य से लिया है और रचना में पदों की पृथकता या समासरहित शब्दों के प्रयोग को माधुर्य कहा है। पृथक्पदत्वं माधुर्यम् । काव्यालंकारसूत्र, ३,१,२१। ध्वनिवादी आचार्य मन की आर्द्रता को माधुर्य कहते हैं । मम्मट ने चित्त को द्रवीभूत बनानेवाले आह्लाद को माधुर्य की संज्ञा दी है ।

शृंगारे विप्रलंभाख्ये करुणे च प्रकर्षवत् ।
माधुर्यमार्द्रतां याति यतस्तत्राधिकं मनः ।।

—ध्वन्यालोक, २/८

आह्लादकत्वं माधुर्यं शृंगारे द्रुतिकारणम् ।
करुणे विप्रलंभे तच्छांते चातिशयान्वितम् ।।
मूर्ध्नि वर्गान्त्यगाः स्पर्शा अटवर्गा रणौ लघू ।
अवृत्तिर्मध्यवृत्तिर्वा माधुर्ये घटना तथा ।।

—काव्यप्रकाश, ८/६८,७४

रीतिकालीन आचार्य चिंतामणि ने 'काव्यप्रकाश' के आधार पर माधुर्य गुण का निरूपण किया है ।

जो संयोग सिंगार में सुखद द्रवावै चित्त ।
सो माधुर्य बखानियै यह इ तत्त्व कवित्त ।।
सो संयोग सिंगार तें करुणमध्य अधिकाइ ।
बिप्रलंभ अरु सांतरस तामें अधिक बनाइ ।।

—कविकुलकल्पतरु, १/१४-१५

इस प्रकार माधुर्य गुण की विशेषताएँ हुईं—असमस्तता, मनोहारिपद-विन्यास, मधुरता, सुकुमारता, श्रुतिसुखदता, उक्तिवैचित्र्यता, चित्त की द्रवता, भाव या रसमयता तथा आह्लादता ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उदाहरण—

क. अनंगरंगप्रतिमं तदंगं भंगीभिरंगीकृतमानतांग्याः।
कुर्वंति यूनां सहसा यथैताः स्वांतानि शांतापरचिंतनानि ॥

स्तनों के भार से सन्नतांगी उस नायिका के कामदेव की रंगशाला के समान उस अलौकिक शरीर को हावभावमयी चेष्टाओं ने इस प्रकार अपने अधीन कर लिया है, जिससे ये (भंगिमाएं) युवकों के चित्तों को सहसा ही अन्य विषयों की चिंता से रहित कर देती हैं।

ख. कंकन किंकिनि नुपुर धुनि सुनि।
कहत लखन सन राम हृदय गुनि ॥
मानहु मदन दुंदुभी दीनी।
मनसा बिस्व-बिजय कहँ कीनी ॥ —रामायण

इसमें श्रृंगार रस है तथा मधुर एवं कोमल वर्ण प्रयुक्त हुए हैं।

मान—विप्रलंभ या वियोगश्रृंगार का एक भेद। [दे० श्रृंगार] मान का अर्थ कुपित होना या क्रोध करना है। नायक-नायिका (पति-पत्नी) में से किसी एक के अपराध से मान होता है अर्थात् प्रिय-अपराध का सूचक मान है। संभोगकाल में मिलन के अभाव को 'मान' कहते हैं। यह दो प्रकार का होता है—ईर्ष्यामान और प्रणयमान। जब नायक अन्य स्त्री से अनुरक्त हो जाय, तब ईर्ष्यामान होता है अर्थात् नायक को अन्य नायिका से आसक्त जानकर नायिका का कुपित होना ईर्ष्यामान है। प्रेमाधिक्य के कारण उत्पन्न मान को प्रणयमान कहते हैं।

विश्वनाथ ने इसका इस प्रकार वर्णन किया है—

मानः कोपः सतु द्वेधा प्रणयेर्ष्यासमुद्भवः।
द्वयोः प्रणयमानः स्यात्प्रमोदे सुमहत्यपि ॥
प्रेम्णः कुटिलगामित्वात्कोपो यः कारणं विना।
—साहित्यदर्पण, ३/१९८-१९९

सूचक पिय अपराध को इंगित कहिए मान।
त्रिबिध मान सो मानिए लघुमध्यमगुरु आन ॥

ईर्ष्यामान तीन प्रकार का होता है—लघुमान, मध्यममान और गुरुमान।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पति या प्रिय-द्वारा अन्य नारी के प्रति आसक्ति को देखने, अनुमान करने तथा किसी के मुँह से सुनने से ईर्ष्यामान होता है। यह तीन कारणों से होता है—

क. नायक के (स्वप्न में) अन्य नायिका के विषय में कुछ कहने या बड़बड़ाने से,

ख. परस्त्रीजन्य रतिचिह्नों को नायक के शरीर पर देखने से और

ग. गोत्रस्खलन से अर्थात् अनायास किसी नायिका का नाम नायक के मुख से निकल जाने से।

पत्युरन्यप्रियासंगे दृष्टेऽथानुमिते श्रुते ॥
ईर्ष्यामानो भवेत्स्त्रीणां तत्र त्वनुमितिस्त्रिधा।
उत्स्वप्नायितभोगांक गोत्रस्खलनसंभवा ॥

—साहित्यदर्पण, ३/१९९-२००

१. लघुमान—अन्य नारी (परस्त्री) के दर्शन-दोष से होनेवाला अल्प कोप लघुमान है। यह अल्प समय तक रहता है।

परतिय दरसन दोष तें करै जु तिय कछु रोष।
सो लघुमान पिछानिये होत ख्याल ही तोष ॥

—जगद्विनोद, ६३२

उदाहरण—

अहो रसीले लाल तुम सकल गुनन की खानि।
सुन्यौ हुत्यौं सखियान पै सो देख्यौं अँखियान ॥ —दास

२. मध्यममान—पति या प्रिय के मुख से अन्य स्त्री का नाम निकलने से मध्यममान होता है। यह लघुमान की अपेक्षा अधिक समय तक रहता है।

और तिया को नाम कहुँ पियमुख तें कढ़ि जाइ।
होत मान मध्यम मिटै सौंहनि किए बनाइ ॥

—जगद्विनोद, ६३६

उदाहरण—

आन आन तिय नाम लै तुम जु बुलावत स्याम।
लैन कह्यो नहि नाह कों निज तिय को जो नाम ॥ —पद्माकर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

३. **गुरुमान**—नायक के शरीर पर परस्त्री-संभोग के चिह्नों को देखकर जब नायिका मान करे तो उसे गुरुमान कहते हैं। यह मान अधिक समय तक रहता है।

आनतियारत पीव लखि होत मान गुरु आइ।
पाइ परें भूषन भरें छूटत कहूँ बराइ॥
—जगद्विनोद, ६३८

उदाहरण—

स्याम पिछौरी छोर में पेखि स्यामता लागि।
लगे महाउर आँगुरिन लगी महा उर आगि॥

मानमोचन—आचार्यों ने मान को दूर करने के उपायों का भी वर्णन किया है, जिसे 'मानमोचन विधान' कहते हैं। ये साधन या उपाय छह प्रकार के हैं—साम, भेद, दान, नति, उपेक्षा तथा रसांतर।

१. **साम**—मानिनी नायिका के प्रति प्रियवचन बोलना साम है। नायिका को समझा-बुझाकर नायक उसे अनुकूल बना लेता है।

२. **भेद**—नायिका की सखियों को नायक द्वारा अपनी ओर मिला लेना भेद कहलाता है।

३. **दान**—नायिका को आभूषणादि देकर प्रसन्न करना दान है।

४. **नति**—नायिका के पैरों पर नायक का गिरना नति है।

५. **उपेक्षा**—मानमोचन के सभी साधनों के असिद्ध हो जाने पर नायक-द्वारा नायिका का अनादर करना उपेक्षा है।

६. **रसांतर**—भय, हर्ष, धृष्टता प्रभृति भावों के प्रदर्शन से नायिका का मन अन्य भावों की ओर लगकर मान को भूल जाना रसांतर है।

साम भेदोऽथ दानं च नत्युपेक्षे रसांतरम्।
तद्भंगाय पतिः कुर्यात्षडुपायानिति क्रमात्॥
तत्र प्रियवचः साम, भेदस्तत्सख्युपार्जनम्।
दानं व्याजेन भूषादेः, पादयोः पतनं नतिः॥
सामादौ तु परिक्षीणे स्यादुपेक्षावधीरणम्।
रभसत्रासहर्षादेः क्रोपभ्रंशो रसांतरम्॥
—साहित्यदर्पण, ३/२०१-२०३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

साम बुझाइबो दान है दीबो औ भेद जु बात बनै अपनावै।
पाय परै नति भै डरुपैबो उपेक्षा जु औरियै रीति जनावै॥
ताहि प्रसंगविध्वंस कहैं जहं छाड़ि प्रसंग सुकाज बनावै।
मानप्रबर्जन की यों उपाइ करै बहु रीति सु 'दास' कहावै॥

—रससारांश, ३७८

उदाहरण—

साम—

उनको बहुरत प्रान है तुम्हैं न तनकौ ज्यान।
नेकु निहारौ कान्ह पै सुधाभरी अँखियान॥ —दास

दान—

अहे चाह सों पहिरिकै हरिकर गुंथित फूल।
सब सोभा सुख लूटि लै दै सौतिन कों सूल॥ —दास

भेद—

तेरे मान किए हियें, लगी हितुन कें लाइ।
हरि सों हँसि हांती करै तौ हीती ह्वै जाइ॥
कहा भयो बिहर्‌यो कहूँ लालन तजि तूँ बाल।
चहती पाइ उपाइ कै सौति सज्यो निज माल॥ —दास

प्रणति—

अहे कहै चाहति कहा कियो इतैइ तमाम।
जगभूषन सिरभूषनहि पगभूषन करि बाम॥ —दास

भय—

प्रफुलित निरखि पलास बन परिहरि मानिनि मान।
तेरे हेत मनोज खलु लियो धनंजय-बान॥ —दास

उपेक्षा—

ज्यों राखै जिय मान त्यों अब राखौ पिय मान।
जानि परै जिहि मानिनी दोहुन को परिमान॥
डसे रावरी बेनिहीं परे अधसँसे स्याम।
तिन्हें ज्याइबो रावरे अधरन ही को काम॥ —दास

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रसंगविध्वंस—

दिन परिहै चिनगी चुनें बिरह-बिकलता जोर।
पाइ पियूष मयूखणी पी भरि निसा चकोर॥ —दास

[३७९ से ३८८ संख्या तक सभी उदाहरण 'रससारांश' से लिए गए हैं]

मानमोचन—कुपित नायिका को मनानेवाले साधन या उपाय को मान-मोचन कहते हैं। [दे० मान]

मानमृदु—मुग्धा नायिका का एक प्रकार। [दे० मुग्धा] जिस नायिका का मान या कोप अधिक देर तक न ठहरे, उसे मानमृदु कहते हैं।

मानवती—प्रिय से मान या कोप करनेवाली नायिका। [दे० मान]

मानसिक अनुभाव—अनुभाव का एक भेद। [दे० अनुभाव] अंतः-करण की वृत्ति से उत्पन्न प्रमोदादि भाव मानसिक अनुभाव हैं।

मानसी कला—साहित्यिक मनोविनोद का एक प्रकार।
[दे० काव्यगोष्ठी]

मानिनी—प्रिय से मान करनेवाली नायिका। [दे० नायिका-भेद] इसे मानवती भी कहते हैं। जो नायिका प्रिय से मान (कोप) करे, उसे मानिनी कहते हैं। [दे० मान]

पिय सों करै जु मान तिय, वहै मानिनी जान।
—जगद्विनोद, १३०

और तजे तौरहु तजे, भूषन अमल अमोल।
तजन कह्यो न सुहाग में, अंजन तिलक तमोल।
—वही, १३२

यह प्रिय को अन्य स्त्री की ओर आकर्षित जानकर ईर्ष्यापूर्वक मान करती है।

स्वप्रियकर्तृकत्वस्वेतरांगनाकर्मकत्वाभ्यां नायिकाविशिष्टसंभोगबोधकव्यापार-बोध्यक्रोधवत्त्वं मानिनीत्वम्।
—रसमंजरी, पृ० ७८

मालादीपक—शृंखलामूलक अलंकार। जब पूर्व-पूर्व में वर्णित पदार्थ के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्वारा उत्तरोत्तर वर्णित पदार्थ के उपकार का वर्णन किया जाए तो मालादीपक अलंकार होगा। इस अलंकार में दो तथ्य प्रधान होते हैं—

क. कई पदार्थों का एक ही धर्म से संबद्ध होना,

ख. प्रत्येक पूर्व कथित पदार्थ का उत्तरोत्तर कथित पदार्थ के विशेषण-रूप में आना।

मालादीपक में एक गुण अनेक वस्तुओं के साथ उसी प्रकार संबद्ध रहता है, जिस प्रकार माला में अनेक पुष्प एक ही सूत्र में गुंफित रहते हुए माला-रूप में प्रस्तुत हो जाते हैं।

इस अलंकार का प्रारंभ दंडी से होता है। अन्य आचार्यों में मम्मट, रुय्यक, शोभाकर, जयदेव, विद्याधर, विद्यानाथ, विश्वनाथ तथा अप्पय दीक्षित ने इसका वर्णन किया है। पंडितराज इसे एकावली से अभिन्न सिद्ध करते हैं।

दंडी ने मालादीपक की परिभाषा न देकर उसका उदाहरण प्रस्तुत किया है। —काव्यादर्श, २/१०७-१०८

कुंतक तथा भोज ने इसका वर्णन दीपक के भेद के अंतर्गत किया है। कुंतक के विचार से दीपक के दो प्रकार हैं—केवलदीपक तथा पंक्तिस्थदीपक (मालादीपक)। भोज दीपक के आठ प्रकारों में मालादीपक का उल्लेख करते हैं। —वक्रोक्तिजीवित, ३/१८, सरस्वतीकंठाभरण, ४/७८

मम्मट के अनुसार पूर्व-पूर्व में कथित वस्तु का उत्तरोत्तर वर्णित (कथित) वस्तु के उपकारक-रूप में वर्णन को मालादीपक कहते हैं।

मालादीपकमाद्यम् चेद्यथोत्तरगुणावहम् ॥

—काव्यप्रकाश, १०/१०४

रुय्यक ने बताया कि पूर्व-पूर्व कथित पदार्थों के उत्तरोत्तर उत्कर्ष-निबंधन में मालादीपक होता है।

पूर्वस्यपूर्वस्योत्तरोत्तरगुणावहत्वे मालादीपकम्।

—अलंकारसर्वस्व, पृ० १७८-१८९

विश्वनाथ अनेक पदार्थों का उत्तरोत्तर एक धर्म से संबंध स्थापित करने में मालादीपक मानते हैं।

तन्मालादीपकं पुनः।
धर्मिणामेकधर्मेणसंबंधो यद्यथोत्तरम् ॥

—साहित्यदर्पण, १०/७७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जयदेव तथा दीक्षित, दोनों ही दीपक तथा एकावली के मिश्रण में मालादीपक मानते हैं। दीक्षित ने जयदेव के ही लक्षण को उद्धृत कर दिया है।

दीपकैकावलीयोगान्मालादीपकमुच्यते ॥ —चंद्रालोक, ५/८९
दीपकैकावलीयोगान्मालादीपकमुच्यते ॥ —कुवलयानंद, १०७

पंडितराज ने इसे एकावली का भेद मानकर इसके स्वतंत्र रूप का खंडन किया है। इनके अनुसार मालादीपक में दीपक के दोनों ही तत्त्वों—सादृश्य तथा प्रकृताप्रकृतात्मकता—का अभाव रहता है।

एतद् दीपकमेव न शक्यं वक्तुं सादृश्यसंपर्काभावात्। किंत्वेकावलीप्रभेदः।
—रसगंगाधर, पृ० ५१८

केशवदास मालादीपक को दीपक का ही एक भेद मानते हैं, स्वतंत्र अलंकार नहीं।

दीपक रूप अनेक हैं, मैं बरनौं द्वै रूप।
मणि, माला, तिन सों कहैं, केशव सब कबि रूप ॥

चिंतामणि और कुलपति ने मम्मट का आधार ग्रहण कर इस अलंकार का वर्णन किया है।

पूरब-पूरब करै जो उत्तर को उपकार।
मालादीपक होत यह समुझौ बुद्धि उदार ॥
—कविकुलकल्पतरु, ३/१८६

अगले-अगले जोग जहाँ, प्रथम अधिक गुन होय।
मालादीपक कहत हैं, ताहि सबैं कबि लोय ॥
—रसरहस्य, ८/९४

जसवंत सिंह, मतिराम, दास तथा पद्माकर प्रभृति आचार्यों ने 'कुवलयानंद' की परिभाषा को आधार बनाकर अपने लक्षणों का निर्माण किया।

दीपक एकावलि मिलैं मालादीपक नाम ॥
—भाषाभूषण, १३७

जहँ दीपक एकावली होत दुहुन को जोग।
मालादीपक नाम तहँ बरनत सब कबि लोग ॥
—ललितललाम, २६१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दीपक एकावलि मिले, मालादीपक जानि ॥

—काव्यनिर्णय, १८/४२

मिलि दीपक एकावली मालादीपक होत ॥

—पद्माभरण, १७८

मालादीपक और एकावली—एकावली और मालादीपक, दोनों भिन्न अलंकार हैं। मालादीपक में पूर्व-वर्णित वस्तु उत्तर-वर्णित वस्तु के विशेषण-रूप में आकर चमत्कारक होती है; पर एकावली का अलंकारत्व उत्तर-स्थित पदार्थों का पूर्व-कथित पदार्थों के विशेषण-रूप में स्थित होने में रहता है। मालादीपक में अनेक पदार्थ एक धर्म से संबद्ध होते हैं; किंतु एकावली में ऐसा नहीं होता।

उदाहरण—

क. त्वयि संगर संप्राप्ते धनुषासादिताः शराः।
शरैररिशिरस्तेन भूस्तयात्वं त्वया यशः ॥

"हे राजन् ! आपके युद्ध-क्षेत्र में आने पर धनुष ने शर प्राप्त किया और शरों ने शत्रुओं का सिर प्राप्त किया। शत्रुओं के सिर ने पृथ्वी को और पृथ्वी ने आपको पाया तथा आपने अपनी कीर्ति प्राप्त की।" यहाँ प्राप्त करना धर्म, अनेक धर्मियों से संबद्ध है और वह अनेक धर्मियों का एक धर्म से उत्तरोत्तर संबंध बताता है।

ख. भू-मंडल में ब्रज बसत, ब्रज में सुंदर स्याम।
सुंदर स्याम-सरूप में, मो मन आठो जाम ॥

यहाँ एक ही धर्म बसत का संबंध भूमंडल, ब्रज तथा कवि के साथ उत्तरोत्तर वर्णित है।

मालोपमा—सादृश्यमूलक अलंकार। जब एक उपमेय का अनेक उपमानों से साम्य-स्थापन हो या एक उपमेय के अनेक उपमान कहे जायँ तो मालोपमा अलंकार होगा। 'मालोपमा' का अर्थ है उपमा की माला। इसमें उपमा की माला होती है; अतः इसे मालोपमा कहते हैं। उपमालंकार में उपमेय की समता एक उपमान के साथ स्थापित की जाती है; पर मालोपमा में एक उपमान को उपमेय के उपयुक्त न मानकर कवि अनेक उपमानों की योजना करता है। अनेक उपमानों की समता अनेक धर्मों के कारण की जाती है अर्थात् अनेक उपमानों की योजना का आधार धर्मों की अनेकता, एकता या लोप है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मालोपमा को स्वतंत्र अलंकार मानने का श्रेय आचार्य रुद्रट को है, तत्पश्चात् भोज, मम्मट, जयदेव तथा विश्वनाथ ने इसका विवेचन किया। दंडी ने बहूपमा नामक उपमा के एक भेद में मालोपमा का स्रोत प्रस्तुत किया है।

पूष्ण्यातप इवाह्नीव पूषा व्योम्नीव वासरः।
विक्रमस्त्वय्यधाल्लक्ष्मीमिति मालोपमा मता॥
चंदनोदकचंदांशु चंद्रकांतादि शीतलः।
स्पर्शस्तवेत्यतिशेयं बोधयंती बहूपमा॥

—काव्यादर्श, २/४२,४०

रुद्रट के अनुसार जब अनेक साधारण धर्मों के कारण एक उपमेय की समता अनेक उपमानों के साथ हो या एक धर्म की समता के कारण एक उपमेय के अनेक उपमान कहे जायँ तो मालोपमा होगी।

मालोपमेति सेयं यत्रैकं वस्त्वनेकसामान्यम्।
उपमीयेतानेकैरुपमानैरेक सामान्यैः॥

—काव्यालंकार, ८/२५

भोज ने प्रपंचोपमा के भेदों के रूप में मालोपमा का निर्देश किया है; वे इसे स्वतंत्र अलंकार नहीं मानते।

मालोपमा तृतीया स्याच्चतुर्थी रसनोपमा॥

—सरस्वतीकंठाभरण, ४/२१

मम्मट इसे उपमा के भेदों में ही अंतर्भूत करना अधिक उपयुक्त मानते हैं। फिर भी इन्होने इसके दो भेदों का कथन कर रुद्रट के विवेचन को गति दी। इनके अनुसार साधारण धर्म की भिन्नता के कारण एक उपमेय के अनेक उपमान कहे जायँ तो मालोपमा होगी। इन्होंने इसके दो भेदों का कथन किया है।

इत्यभिन्नेसाधारणेधर्मे। इति भिन्ने च तस्मिन् एकस्यैव बहूपमा नोपादाने मालोपमा।............न लक्षिता एवंविधवैचित्र्यसहस्रसंभवात् उक्तभेदानतिक्रमाच्च॥

—काव्यप्रकाश, १०/२६

जयदेव भी मम्मट की भाँति इसका समावेश उपमा में करते हैं।

माला परंपरा चैषां भूयसामनुकूलके।
मनुष्ये भवतः क्वापि ह्यलंकारांगतांगते।

—चंद्रालोक, ५/१२१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विश्वनाथ के अनुसार जब एक उपमेय के अनेक उपमान कहे जायँ तो मालोपमा अलंकार होगा।

मालोपमा यदेकस्योपमानं बहु दृश्यते ॥

—साहित्यदर्पण, १०/२६

रीतिकाल में मालोपमा का निरूपण स्वतंत्र अलंकार के रूप में किया गया और इसके तीन भेद माने गए। चिंतामणि ने मम्मट के आधार पर और मतिराम तथा पद्माकर ने विश्वनाथ के अनुसार मालोपमा का वर्णन किया।

जियत कहिव उपमेय जहँ सो उपमान अनेक।
सो मालोपम जांनियै भिन्नधर्म कै एक ॥
इत साधारन धर्म बुधजन द्वै भांति गनाइ ॥

—कविकुलकल्पतरु, ३/१४,१७

जहाँ एक उपमेय कौं होत बहुत उपमान।
तहाँ कहत मालोपमा कवि मतिराम सुजान ॥

—ललितललाम, ४८

मालोपम उपमेय इक ताके बहु उपमान ॥

—पद्माभरण, २२

भेद—मालोपमा के तीन प्रकार हैं—भिन्नधर्मा, एकधर्मा तथा लुप्तधर्मा मालोपमा।

१. भिन्नधर्मामालोपमा—जहाँ अनेक उपमानों के भिन्न-भिन्न साधारण धर्म हों, वहां भिन्नधर्मा मालोपमा होती है।

सफरी से चंचल घने मृग से पीन सु ऐन।
कमलपत्र से चारु ये राधा जू के नैन ॥

यहाँ राधिका के नेत्र के तीन उपमान हैं—मछली, मृग एवं कमल। और, इनके धर्म हैं—चंचलता, पीनता एवं चारुता। अतः, भिन्नधर्मामालोपमा हुई।

२. समानधर्मा या एकधर्मा—जब अनेक उपमानों का एक साधारण धर्म हो तो एकधर्मामालोपमा होगी।

पछतावे की परछाईं सी, तुम भूपर छाई हो कौन।
दुर्बलता की अंगड़ाई सी, अपराधी सी भय से मौन ॥ —पंत

यहाँ छाया के चार उपमान हैं और इनका एक ही धर्म है 'छाई'।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

३. लुप्तधर्मामालोपमा—जब साधारण धर्मों का लोप हो तो लुप्तधर्मा-मालोपमा होगी।

घन से, तम से, तार से, खंजन की अनुहारि।
अलि से मावस रैन से, बाला तेरे बार॥

यह सुंदरी के केश के उपमान हैं—घन, तम, तार, खंजन, अलि, अमावस्या की रात, पर साधारण धर्मों का लोप है।

संस्कृत उदाहरण—

वारिजेनेव सरसी शशिनेव निशीथिनी।
यौवनेनेव वनिता नयेन श्रीर्मनोहरा॥

कमल से तालाब सुंदर लगता है और चंद्रमा से रात्रि मनोरम लगती है। यौवन से स्त्री सुशोभित होती है और सुनीति से राजलक्ष्मी मनोहर लगती है। यहाँ एक राजश्री के अनेक उपमान कथित हैं।

मिथ्याध्यवसिति—एक गौण अर्थालंकार। जहाँ किसी मिथ्या या असत्य अर्थ को सिद्ध करने के लिए किसी अन्य मिथ्या अर्थ की कल्पना की जाय, वहाँ मिथ्याध्यवसिति अलंकार होता है। मिथ्याध्यवसिति का अर्थ है असत्य (मिथ्या) का निश्चय (अध्यवसिति)। इस अलंकार में मिथ्यार्थ का निश्चय होता है अर्थात् एक असत्य बात (अर्थ) की सिद्धि के लिए अन्य असत्य अर्थ का परिकल्पन किया जाता है। इसमें इस तथ्य पर ध्यान रखना पड़ता है कि जिस प्रकार के मिथ्यात्व की सिद्धि करनी हो, उससे साम्य रखनेवाली अन्य मिथ्या बात की कल्पना की जाय, अन्यथा वहाँ अलंकारत्व घटित नहीं होगा। यह गोपनमूलक अलंकार है।

इस अलंकार के उद्भावक अप्पय दीक्षित हैं; पर इनके पूर्व भरत के 'नाट्यशास्त्र' में छत्तीस लक्षणों के अंतर्गत 'मिथ्याध्यवसाय' का उल्लेख हुआ है और वही इस अलंकार का स्रोत है।

अभूतपूर्वैर्यत्रार्थैस्तुल्यार्थस्य निर्णयः।
स मिथ्याध्यवसायस्तु प्रोच्यते काव्यलक्षणम्॥

—नाट्यशास्त्र, १६/१६

जयदेव ने भी काव्य-लक्षणों के अंतर्गत मिथ्याध्यवसाय का वर्णन किया है। इनके मत से जहाँ कार्य तथा कारण की मिथ्या कल्पना कर कार्यसिद्धि का वर्णन किया जाय, वहाँ मिथ्याध्यवसाय होगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्यान् मिथ्याध्यवसायश्चेदसती साध्यसाधने।
चंद्रांशुसूत्रग्रथितां नभः पुष्पस्रजं वहन् ॥ —चंद्रालोक, ३/७

दीक्षित के अनुसार मिथ्याध्यवसिति अलंकार वहाँ होता है, जहाँ किसी मिथ्यात्व को सिद्ध करने के लिए दूसरे मिथ्यात्व की कल्पना की जाय।

किंचिन्मिथ्यात्वसिद्ध्यर्थं मिथ्यांतरकल्पनम्।
मिथ्याध्यवसितिर्वेश्यां वशयेत्खस्रजं वहन् ॥

—कुवलयानंद, १२७

रीतिकालीन आचार्यों में जसवंत सिंह, मतिराम, भूषण तथा पद्माकर आदि ने दीक्षित के ही लक्षण का अनुवाद प्रस्तुत किया है।

मिथ्याध्यवसित झूँठ हित कहैं जु झूँठी रीति।
करैं जु माला नभ कुसुम करैं जु नर तिय प्रीति ॥

—भाषाभूषण, पृ० १२०

एक झुठाई सिद्धि कों झूँठो बरनत और।
तहँ मिथ्याध्यवसाय को कहत सुकवि मतिदौर ॥

—ललितललाम, २९८

झूठ अरथ की सिद्धि कौं झूठो बरनत आन।
मिथ्याध्यवसिति ताहि कों भूषन कहत सुजान।

—शिवराजभूषण, २४८

मिथ्याध्यवसिति अनृत सिधि हित भनि मिथ्या आन ॥

—पद्माभरण, २१५

पंडितराज जगन्नाथ तथा विश्वेश्वर पंडित मिथ्याध्यवसिति को स्वतंत्र अलंकार स्वीकार न कर इसका अंतर्भाव क्रमशः प्रौढोक्ति एवं तृतीय अतिशयोक्ति में करते हैं। पंडितराज ने प्रौढोक्ति अलंकार के प्रकरण में दीक्षित के मत का खंडन कर बताया कि एक मिथ्या अर्थ की सिद्धि के लिए दूसरे मिथ्यात्व की कल्पना प्रौढोक्ति का ही विषय है।

इत्यादावेकस्य मिथ्यात्वसिद्ध्यर्थं मिथ्याभूतवस्त्वंतरकल्पनं मिथ्याध्यवसित्याख्यमलंकारांतरमिति न वक्तव्यम्, प्रौढोक्त्यैव गतार्थत्वात्।

—रसगंगाधर, पृ० ६७३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विश्वेश्वर पंडित ने इसका अंतर्भाव असंबंधेसंबंधरूपा अतिशयोक्ति में किया है—

यत्तु असंबंधेसंबंधरूपातिशयोक्तितः किंचिन्मिथ्यात्वसिद्ध्यर्थं मिथ्यांतरकल्पना विच्छित्तिविशेषेण मिथ्याध्यवसितेर्भिन्नत्वमिति तदसत् । यद्यर्थोक्तिरूपातिशयोक्ते- विशेषस्यदुर्वचत्वात् ।

—अलंकारकौस्तुभ, पृ० २८४

उदाहरण—

क. दीक्षित के उदाहरण में कहा गया है कि आकाशकुसुम की माला धारण करनेवाला ही वेश्या को वश में कर सकता है ।

मिथ्याध्यवसितिर्वेश्यां वशयेत्खस्रजं वहन् ॥

—कुवलयानंद, १२७

आकाशकुसुम की माला एक मिथ्या अर्थ (तथ्य) है, इसकी सिद्धि के लिए अन्य मिथ्यात्व वेश्या को वशीभूत करने की कल्पना की गई है ।

ख. जो आँजे नभ कुसुम रस, लखै सो अहि के कान ॥

यहाँ 'अहि के कान' का मिथ्यात्व सिद्ध करने के लिए दूसरे मिथ्यात्व नभ के कुसुमरस की कल्पना की गई है ।

ग. ससा-सींग के धनुज लिय, गगन-कुसुम धरि माल ।
खेलत बंध्यासुतन सँग, तुव अरिगन छितिपाल ॥

मिश्र—इतिवृत्त (वस्तु) का एक भेद । [दे० वस्तु]

मीलित—लोकन्यायमूलक अलंकार । उत्कृष्ट गुणवाली (समीपवर्ती) वस्तु में तादृशवस्तु के छिप जाने पर किसी प्रकार की भिन्नता का न रहना मीलित अलंकार है । 'मीलित' का अर्थ मिल जाना, छिप जाना या अंतर्धान होना है । सादृश्य के कारण एक वस्तु में दूसरी वस्तु इस प्रकार मिल जाय कि दोनों में किसी प्रकार का भेद-ज्ञान न रहे तो वहाँ मीलित अलंकार होगा । इसमें प्रबल वस्तु में गौणवस्तु का तिरोधान होता है ।

मीलित अलंकार का सर्वप्रथम विवेचन आचार्य रुद्रट ने किया है । इनके पूर्व दंडी ने अतिशयोक्ति अलकार के प्रकरण में मीलत का संकेत उसके उदाहरण के रूप में किया है । संभव है, वही उदाहरण इस अलंकार के विवेचन का स्रोत रहा हो । [काव्यादर्श, २१५] रुद्रट ने बताया कि जब हर्ष, कोप, भय आदि के चिह्नों को तत्तुल्य हर्षादि के द्वारा विस्मृत कर दिया जाय तो वहाँ मीलित अलंकार होगा । इस लक्षण में शारीरिक चिह्नों के तिरोधान को

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ही मीलित कहा गया है। इस अलंकार का परवर्ती विकास इस परिभाषा के आधार पर नहीं हुआ। रुद्रट ने पिहित अलंकार के विवेचन में मीलित का स्वरूप स्पष्ट किया है और वही इसके भावी विकास का आधार रहा है। इन्होंने बताया कि जब प्रबल गुणवाली वस्तु के द्वारा समान गुणवाली वस्तु छिप जाय तो वहाँ मीलित अलंकार होगा।

तन्मीलितमिति यस्मिन्समानचिह्नेन हर्षकोपादि।
अपरेणतिरस्क्रियते नित्येनागंतुकेनापि ॥
यत्रापि प्रबलतया गुणः समानाधिकरणमसमानम्।
अर्थांतरं पिदध्यादाविर्भूतमपि तत् पिहितम् ॥

—काव्यालंकार, ७/१०६, ९/५०

भोज ने मीलित के अंतर्गत पिहित, अपिहित, तद्गुण एवं अतद्गुण अलंकार को मिला दिया है। इनके अनुसार जब उत्कृष्ट गुणवाली वस्तु अपकृष्ट गुण-वाली वस्तु के साथ मिलकर एकरूप हो जाय तो मीलित अलंकार होगा।

वस्त्वंतरतिरस्कारो वस्तुना मीलितं स्मृतम्।
पिहितापिहिते चैव तद्गुणातद्गुणौ च तत् ॥

—सरस्वतीकंठाभरण, ३/४१

मीलित अलंकार के वास्तविक स्वरूप का निरूपण मम्मट ने किया। इनके मत से जब अपने स्वाभाविक या आगंतुक चिह्नों के द्वारा कोई प्रबल वस्तु अन्य पदार्थ को अपने में तिरोहित कर ले तो वहाँ मीलित अलंकार होगा। इन्होंने इसके दो प्रकारों का उल्लेख किया है।

समेन लक्ष्मणावस्तु वस्तुना यन्निगहते।
निजेनागंतुना वापि तन्मीलितमिति स्मृतम् ॥

—काव्यप्रकाश, १०/१३०

सहजमागंतुकं वा किमपि साधारणं यत् लक्षणं तत्द्वारेण यत्किंचित् केन-चिद्वस्तु वस्तुस्थितत्यैव बलीयस्तया तिरोधीयते तन्मीलितमिति द्विधा स्मरंति।

—वही

रुय्यक ने मम्मट के आधार पर ही इस अलंकार का वर्णन किया है। इन्होंने स्वाभाविक धर्म तिरोधान तथा आगंतुक धर्म-द्वारा तिरोधान—इसकी दो स्थितियों के आधार पर दो भेदों का उल्लेख किया है। इन्होंने अपनी परिभाषा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में बताया कि जब उत्कृष्ट वस्तु के गुण में निकृष्ट वस्तु का निगूहन (तिरोधान) हो जाय तो वहाँ मीलित अलंकार होगा। यहाँ एक वस्तु द्वारा अन्य वस्तु के निगूहन को मीलित कहा गया है।

वस्तुना वस्त्वंतरनिगहनं मीलितम्। सहजेनागंतुकेन लक्ष्मणा यद्वस्त्वंतरेण वस्त्वंतरं निगूह्यते तदन्वर्थाभिधानं मीलितम्।····अस्य तूत्कृष्टगुणेन निकृष्ट-गुणस्य तिरोधानमिति महानयोर्विशेषः।

—अलंकारसर्वस्व, पृ० २१२-१३

जयदेव ने अत्यंत सादृश्य के कारण दो वस्तुओं में भेद नहीं दिखाई पड़ने को मीलित कहा है। यह लक्षण अत्यंत संतुलित है।

मीलितं बहुसादृश्याद् भेद एव न लक्ष्यते॥

—चंद्रालोक, ५/३४

विद्याधर, विद्यानाथ और विश्वनाथ ने मम्मट एवं रुय्यक के आधार पर इस अलंकार का वर्णन किया है; इनके विवेचन में किसी प्रकार की नवीनता नहीं है।

स्वाभाविकमागंतुकमथवावस्त्वंतरं तिरोधत्ते।
यस्मिन् किंचन वस्तु ज्ञेयं तन्मीलितं द्विविधम्॥

—एकावली, ८/६३

मीलनं वस्तुना यत्र वस्त्वंतरनिगूहनम्॥

—प्रतापरुद्रीय, पृ० २९८

मीलितं वस्तुनो गुप्तिः केनचित्तुल्यलक्ष्मणा॥

—साहित्यदर्पण, १०/८९

शोभाकर ने नवीन तथ्य जोड़ते हुए बताया कि मीलित में केवल चिह्न ही नहीं, गुण-क्रियादि की एकता भी दो पदार्थों के आच्छादन में सहायक होती है।

धर्मसाम्याद्भेदाप्रतीतिर्मीलितम्।
यत्रगुणक्रियादेर्धर्मस्य समानतयार्थस्यार्थांतरेणाच्छादितत्वाद्भेदमाप्रतिपत्ति-स्तन्मीलितम्॥

—अलंकाररत्नाकर, पृ० १९६

दीक्षित ने जयदेव का ही लक्षण उद्धृत कर दिया है।

मीलितं यदि सादृश्याद्भेद एव न लक्ष्यते।

—कुवलयानंद, १४६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पंडितराज जगन्नाथ के लक्षण में बताया गया कि "प्रत्यक्ष वस्तु के लिंगों से (अनुमेय वस्तु) के लिंगों के भेद का ज्ञान न होने के कारण अप्रत्यक्ष वस्तु के प्रकाशित न होने को मीलित कहते हैं।"

स्फुटमुपलभ्यमानस्य कस्यचिद्वस्तुनो लिंगैरतिसाम्याद्भिन्नत्वेनागृह्यमाणानां वस्त्वंतरलिंगानां स्वकारणानुमापकत्वं मीलितम्। —रसगंगाधर, पृ० ६६४

विश्वेश्वर पंडित का लक्षण मम्मट से प्रभावित है। इनके मत से सादृश्य के कारण सहज और निमित्त धर्म से एक पदार्थ में अन्य का तिरोहित हो जाना ही मीलित है।

सहजनिमित्तजधर्मात्सदृशादन्येनवस्तुना वस्तु।
अपिधीयते तदेतन्मीलितमाहुर्विशेषज्ञाः ॥

अत्र धर्म्यंतरवृत्तिधर्मसमेन धर्मेण यस्य पदार्थांतरस्य तिरोधानं तन्मीलितमिति लक्षणम्। —अलंकारकौस्तुभ, पृ० ३८३

रीतिकालीन आचार्यों ने 'काव्यप्रकाश' एवं 'चंद्रालोक' (कुवलयानंद) के लक्षण को अनूदित किया। कुलपति का आधार 'काव्यप्रकाश' है; पर इनका लक्षण स्पष्ट नहीं है।

आयें करके सहज के कहि मिलिते अति ठोर ॥

—रसरहस्य, पृ० ११७

महाराज जसवंत सिंह, मतिराम और पद्माकर ने 'चंद्रालोक' के लक्षण का सुबोध अनुवाद प्रस्तुत किया है।

मीलित सो सादृश्य तें भेद जबै न लखाइ।

—भाषाभूषण, १७२

एक रूप ह्वै जाति मिलि, जहाँ होत नहिं भेद।
बरनत मीलित हैं तहाँ, जिनकी बानी बेद ॥

—ललितललाम, ३४१

सो मीलित सादृश्य तें भेद न जान्यो जाइ ॥

—पद्माभरण, २४२

भेद—सहज और आगंतुक कारणों के आधार पर मीलित के दो प्रकार किए गए हैं।

स्वाभाविक (सहज) कारण—

क. लक्ष्मीवक्षोजकस्तूरीलक्ष्मवक्षस्थले हरेः।
ग्रस्तं ना लक्षि भारत्या भासानीलोत्पलाभया ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"लक्ष्मी के स्तन की कस्तूरी का चिह्न विष्णु के वक्षस्थल पर लगा देखकर सरस्वती को उसका पता न चला; क्योंकि वह नीले कमल के सदृश भगवान के शरीर की कांति में एकरूप हो रहा था।" यहाँ विष्णु के शरीर की नीली कांति में कस्तूरी के लेप का मिल जाना वर्णित है।

ख. बरन बास सुकुमारता, सब बिधि रही समाय।
पँखुरी लगी गुलाब की, गाल न जानी जाय ॥ —विहारी

रस, सुगंध तथा कोमलता की समानता के कारण नायिका के कपोल पर लगी गुलाब की पंखुड़ी का ज्ञान न होना मीलित है ।

आगंतुक धर्म का तिरोभाव—

क. सदैव शोणोपलकुंडलस्य यस्यां मयूखैररुणीकृतानि
कोपोपरक्तान्यपि कामिनीनां मुखानि शंका विदधुर्नयूनाम् ॥

जहाँ लाल रत्नों से जटित कुंडलों की किरणों से कामिनियों का मुख सदा लाल रहने के कारण क्रोध से आरक्त होने पर भी युवकों में शंका नहीं उत्पन्न करता।

लाल रत्नों की लालिमा से मुख के लाल रहने से क्रोध की लालिमा छिप जाता है।

ख. केसरिया पट कनक तन, कनकाभरन सिंगार।
गत केसर केदार में, जानी जात न दार ॥ —दास

यहाँ स्त्री और केदार पुष्प में अंतर नहीं दिखाया गया है।

तद्गुण और मीलित—दोनों में दो पदार्थों का वर्णन होता है, जहाँ बलीयस पदार्थ (बलवान्) गौण पदार्थ को अभिभूत करता है। तद्गुण में स्वगुणत्याग एव अन्यदीयगुण-ग्रहण का वर्णन होता है तो मीलित में उत्कृष्ट गुणवाली वस्तु में अल्पगुणवाली वस्तु का तिरोधान होता है। मीलित में दोनों ही पदार्थ समतुल्य (तुल्य गुणवाले) होते हैं; पर तद्गुण में दो भिन्न गुणवाले (प्रबल एवं गौण) पदार्थों का वर्णन होता है।

मीलित और सामान्य—मीलित में प्रधान या बलवत्तर पदार्थ गौण या निर्बल पदार्थ को अपने में तिरोहित कर लेता है; किंतु सामान्य में दो पदार्थों में (गुण-साम्य के कारण) तादात्म्य-स्थापन होता है। मीलित में दोनों पदार्थ एक दूसरे को इस प्रकार आच्छादित कर लेते हैं कि उनका प्रत्यक्ष ज्ञान

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नहीं होता; पर सामान्य में दोनों ही पदार्थ प्रत्यक्ष होते हैं, किंतु उनमें भेद का भान नहीं होता।

मुकुल भट्ट—ध्वनि-विरोधी आचार्य। [दे० ध्वनि-संप्रदाय के अंतर्गत ध्वनि-विरोधी आचार्य] इनकी एकमात्र रचना 'अभिधावृत्ति-मातृका' है, जिसमें कुल पंद्रह कारिकाएँ हैं। इस पर वृत्ति की रचना स्वयं मुकुल भट्ट ने की है। प्रतिहारेंदुराज [उद्भट-कृत काव्यालंकारसारसंग्रह के टीकाकार] ने इन्हें अपना गुरु माना है; अतः मुकुल भट्ट का समय नवम शती में पड़ता है। मुकुल ने अपने को भट्टकल्लट का पुत्र कहा है—'भट्टकल्लटपुत्रेण मुकुलेन-निरूपिता'। 'राजतरंगिणी' के अनुसार भट्टकल्लट अवंतिवर्मा के समसामयिक माने गए हैं।

अनुग्रहाय लोकानां भट्टाः श्रीकल्लटादयः।
अवंतिवर्मणः काले सिद्धा भुवमवातरन्॥ —५/५६

अवंति वर्मा का काल ८५५-८८४ ई० है। मुकुल ने अपने ग्रंथ में आनंदवर्द्धन, उद्भट और विज्जका आदि का नामोल्लेख किया है। प्रतिहारेंदुराज के अनुसार मुकुल भट्ट 'मीमांसाशास्त्र' के प्रकांड विद्वान् थे और व्याकरण, तर्क तथा साहित्यशास्त्र में उनकी असाधारण गति थी। 'अभिधावृत्तिमातृका' में एकमात्र अभिधा को शब्द की शक्ति मानकर उसके अंतर्गत लक्षणा और व्यंजना का अंतर्भाव किया गया है। इसमें अभिधा के दस भेद किए गए हैं और उन्हीं में लक्षणा के छह भेदों को गतार्थ किया गया है तथा व्यंजना के सभी प्रकार लक्षणा में ही समाविष्ट कर दिए गए हैं।

लक्षणामार्गावगाहित्वं ध्वनेः सहृदयैर्नूतनतयोपवर्णितस्य विद्यत इति दिशमुन्मीलयितुमिदमत्रोक्तम्। —अभिधावृत्तिमातृका, पृ० २१

इत्येतदभिधावृत्तं दशधात्र विवेचितम्।
—वही कारिका, १३

मुक्तक—(काव्य) काव्य का एक प्रकार, जिसके सभी पद्य स्वतंत्र होते हैं। मुक्तक शब्द मुक्त में कन् प्रत्यय के योग से निष्पन्न है, जिसका अभिप्राय अपने आप में पूर्ण या अन्य-निरपेक्ष वस्तु से है—मुक्तकमन्येनालिंगितं तस्य संज्ञायां कन्-(ध्वन्यालोकलोचन ३/७)। इससे ऐसी रचना का बोध होता है, जो स्फुट, निबंध एवं पूर्वापर-निरपेक्ष हो।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संस्कृत में मुक्तक काव्य की परिभाषा सर्वप्रथम 'अग्निपुराण' में प्रस्तुत की गई है, जिसके अनुसार ऐसे श्लोकों को मुक्तक कहते हैं, जिनमें अर्थद्योतन की स्वतः शक्ति हो अर्थात् जो अर्थबोध करने में स्वतः समर्थ हों।

मुक्तकं श्लोक एकैकश्चमत्कारक्षमः सताम्।

—अग्निपुराण, ३३७/३३

भामह ने काव्य का विभाग सर्गबंध, अभिनेय, आख्यायिका, कथा और अनिबद्ध के रूप में किया है। अनिबद्ध से उनका अभिप्राय ऐसी रचना से है, जिसमें प्रबंधात्मकता का अभाव हो। उन्होंने बताया है कि गाथा और श्लोक मात्र को निबद्ध कहते हैं। उन्होंने इसे वक्रोक्ति एवं स्वभावोक्ति से युक्त माना है।

अनिबद्धं पुनर्गाथा श्लोकमात्रादि तत्पुनः।
युक्तं वक्रस्वभावोक्त्या सर्वमेवैतदिष्यते ॥

—काव्यालंकार, १/३०

दंडी ने मुक्तक, कुलक, कोश और संघात आदि को प्रबंध का ही अंग मानकर, इनका विशेष विवेचन नहीं किया। ये सभी सर्गबंधात्मक महाकाव्य के अंग हैं।

मुक्तकंकुलकं कोषः संघात इति तादृशः।
सर्गबंधांशरूपत्वादनुक्तः पद्यविस्तरः ॥

—काव्यादर्श, १/१३

वामन ने मुक्तक काव्य में चारुता का अभाव मानकर प्रबंध की अपेक्षा इसे हीन कोटि की रचना कहा है। जिस प्रकार अग्नि के परमाणु पृथक्-पृथक् नहीं चमकते—मिलकर ही प्रकाश करते हैं, उसी प्रकार असंकलित मुक्तक काव्यों में चारुता नहीं होती, प्रबंध काव्य ही चमकते हैं।

असंकलितरूपाणां काव्यानां नास्ति चारुता।
न प्रत्येकं प्रकाशंते तैजसाः परमाणवः ॥

—काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, १/३/२९ का संग्रह-श्लोक २९

आनंदवर्द्धन ने मुक्तक को महत्त्व देते हुए प्रबंध की भाँति उसमें भी रसोद्बोध की क्षमता स्वीकार की है। उनका कथन है कि प्रबंध के समान मुक्तकों में भी रसाभिनिवेश करनेवाले कवि दृष्टिगोचर होते हैं। उदाहरण-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वरूप उन्होंने अमरुक कवि का नाम लिया है, जिसके श्लोकों में प्रबंधकाव्य के सदृश शृंगार रस की धारा प्रवाहित हुई है।

तत्र मुक्तकेष रसबंधाभिनिवेशिनः कवेस्तदाश्रयमौचित्यम्।........मुक्तकेषु प्रबंधेष्विव रसबंधाभिनिवेशिनः कवयो दृश्यंते। यथा ह्यमरुकस्य कवेर्मुक्तकाः शृंगाररसस्यंदिनः प्रबंधायमानाः प्रसिद्धा एव।

—ध्वन्यालोक, ३/७ वृत्ति

अभिनवगुप्त ने ध्वनिकार के मत का समर्थन करते हुए बताया है कि पूर्व-पश्चात् (पूर्वापर) के पद्यों से जिसका संबंध न हो और वह अपने विषय को अभिव्यक्त करने में स्वतः समर्थ हो, उसे (ऐसे पद्य को) मुक्तक कहते हैं। यह निराकांक्ष अर्थद्योतन में समर्थ रहते हुए भी प्रबंध के मध्य सन्निविष्ट हो सकता है। अभिनवगुप्त ने इस संबंध में एक प्रश्न उठाया है कि प्रबंध के अंतर्गत मुक्तक के अंग-रूप से समाविष्ट होने की संभावना दिखाई पड़ती है; पर उसकी स्थिति अनिवार्य नहीं मानी जा सकती।

तेन स्वतंत्रतया परिसमाप्तनिराकांक्षार्थमपि प्रबंधमध्यवर्तीमुक्तकमित्युच्यते।........पूर्वापरनिरपेक्षेणापि हि येन रसचर्वणा क्रियते तदेव मुक्तकम्।

—ध्वन्यालोक लोचन, उद्योत पृ० १४३-१४४

राजशेखर ने विषय के आधार पर काव्य के दो भेद किए हैं—प्रबंध और मुक्तक—स पुनर्द्विधा मुक्तकप्रबंधविषयत्वेन—काव्यमीमांसा, ९। दोनों के ही विषयगत भेद पाँच हैं—शुद्ध, चित्र, कथोत्थ, संविधानक तथा आख्यानकवान्।

हेमचंद्र ने 'काव्यानुशासन' काव्य के दो भेद माने हैं—प्रेक्ष्य एवं श्रव्य। पुनः श्रव्यकाव्य के दो प्रकार किए गए हैं—निबद्ध तथा अनिबद्ध। मुक्तक को उन्होंने अनिबद्ध काव्य के अंतर्गत रखा है और बताया है कि पूर्वापर निरपेक्ष रचना को मुक्तक कहते हैं। —काव्यानुशासन ८/२-६ पृ० ४४९

विश्वनाथ ने मुक्तक को श्रव्यकाव्य के अंतर्गत रखा है। उनके अनुसार जो काव्य मुक्त या अन्य पद्य से निरपेक्ष या स्वतंत्र हो, उसे मुक्तक कहते हैं।

छंदोबद्धपदं पद्यं तेन मुक्तेन मुक्तकम्।

—साहित्यदर्पण, ६/३१४

संस्कृत-आचार्यों ने मुक्तक या अनिबद्धकाव्य के भेदों का भी कथन किया है। दंडी ने इसके चार भेदों का उल्लेख किया है—मुक्तक, कुलक, कोश एवं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संघात। ध्वन्यालोककार ने इसके छह भेद बताए हैं—मुक्तक, संदानितक, विशेषक, कलापक, कुलक और पर्यायबंध। अग्निपुराण में इसके छह भेद वर्णित हैं—कलाप, पर्यायबंध, विशेषक, कुलक, मुक्तक तथा कोष। हेमचंद्र ने इसके जिन भेदों का कथन किया है, वे हैं—मुक्तक, संदानितक, विशेषक, कलापक, कुलक, कोश, प्रघट्टक, विकीर्णक एवं संघात (काव्यानुशासन, ८/१०)। विश्वनाथ कविराज ने अनिबद्ध काव्य के अंतर्गत इन भेदों का कथन किया है—मुक्तक, युग्मक, संदानितक, कलापक, कुलक, कोश तथा व्रज्या।

उपर्युक्त भेद संख्या, आकार एवं विषय के आधार पर बने हैं। भेदों का विवरण इस प्रकार है—

१. **मुक्तक**—जब एक ही छंद में वाक्य समाप्त हो जाय तो उसे मुक्तक कहते हैं—

एकेन छंदसा वाक्यार्थसमाप्तौ मुक्तकम्। —काव्यानुशासन ८/१०

२. **संदानितक**—दो छंदों या श्लोकों में जब वाक्य समाप्त हो तो ऐसी रचना को संदानितक कहते हैं—

द्वाभ्यां क्रिया समाप्तौ संदानितकम्। —ध्वन्यालोक, पृ० १७४

विश्वनाथ इसके स्थान पर युग्मक शब्द का प्रयोग करते हैं—

द्वाभ्यां तु युग्मकम्। —साहित्यदर्पण, ६/३१४

३. **विशेषक**—तीन श्लोकों में समाप्त होनेवाले वाक्य या तीन श्लोकों की रचना विशेषक है। विश्वनाथ ने इसे संदानितक कहा है—

संदानितकं त्रिभिरिष्यते। —साहित्यदर्पण, ६/३१३

४. **कलापक**—चार श्लोकों की रचना को कलापक कहते हैं—

कलापकं चतुर्भिश्च। —साहित्यदर्पण, ६/३१५

५. **कुलक**—पाँच या छह छंदों का जिसमें प्रयोग हो, उसे कुलक कहते हैं। 'अग्निपुराण' में छह विभिन्न छंदोंवाली रचना को कुलक कहा गया है। इसका उसमें संदानितक नाम भी दिया गया है। विश्वनाथ पाँच या उससे अधिक श्लोकों में समाप्त होनेवाले वाक्य को कुलक कहते हैं—

श्लोकैरनेकैः कुलकं स्यात्संदानितकानि तत्।

—अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग, १/३६

पंचभिः कुलकं मतम्। —साहित्यदर्पण, ६/३१५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

६. **पर्यायबंध**—वसंतादि एक विषय का जिसमें वर्णन हो, वह पर्यायबंध है। इसमें बीच में ही वाक्य के समाप्त हो जाने पर भी वसंतादि का वर्णन होता है—

अवांतरक्रियासमाप्तावपि वसंतवर्णनीयोद्देशेन प्रवृत्तः पर्यायबंधः।

—ध्वन्यालोक, ३/७, पृ० १७४

७. **कोष**—ऐसे श्लोकों के संग्रह को कोष कहा जाता है, जिसके श्लोक परस्पर निरपेक्ष हों—

कोषः श्लोकसमूहस्तु स्यादन्योन्यानपेक्षकः।

—साहित्यदर्पण, ६/३२९

हेमचंद्र ने एक अथवा अनेक कवियों के मुक्तक छंदों के संग्रह को कोष कहा है—

स्वपरकृतसूक्तिसमुच्चयः कोशः सप्तशतकादिः।

८. **प्रघट्टक**—एक कवि-द्वारा रचित मुक्तकों के समुच्चय को प्रघट्टक कहते हैं।

९. **संघात या पर्यायबंध**—एक कवि द्वारा एक विषय पर लिखे गए मुक्तकों के समूह को संघात कहा जाता है।

१०. **विकर्णक**—अनेक कवियों-द्वारा रचित छंदों के संग्रह का नाम विकर्णक है।

संस्कृत-काव्यशास्त्रियों-द्वारा निर्मित मुक्तक या अनिबद्ध काव्य की निम्नांकित विशेषताएँ हैं—

क. मुक्तक ऐसी रचना को कहते हैं, जिसके पद्य या छंद परस्पर निरपेक्ष हों एवं उसमें पौर्वापर्य संबंध का अभाव हो।

ख. इसमें रस का पूर्ण प्रवाह हो अर्थात् मुक्तक काव्य रस से आपूर्ण हो।

ग. इसमें उक्ति-वैचित्र्य या अभिव्यक्ति-सौंदर्य का विधान किया गया हो।

घ. इसमें कवि का आत्मानुभव व्यक्त होता है अर्थात् जब कवि अपनी विशेष क्षण की अनुभूति को अत्यंत तीव्रता के साथ अभिव्यक्त करता है तो उसमें आत्मनिष्ठता का समावेश हो जाता है। ऐसी ही आत्माभिव्यंजक रचना मुक्तक काव्य है।

ङ. मुक्तक में भाव-वैभव एवं कलात्मक संपत्ति का सम्यक् योग रहता है। इसमें रस परिपाक के अतिरिक्त कवि का ध्यान चमत्कार-प्रदर्शन की ओर भी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रहता है। कवि रागात्मक आवेग से भरकर हृद्गत भावों की व्यंजना करता है; अतः उसमें पाठकों के मनोवेगों को तरंगित करने की अधिक शक्ति होती है।

च. मुक्तककार रचना-चातुरी का प्रदर्शन कर पाठकों के हृदय में रसाभिव्यक्ति के अवसर पर रस की धारा प्रवाहित कराने की अपेक्षा छोटे-छोटे छीटे ही उठाने में अपना कर्त्तव्य-कर्म मान लेता है।

मुख—[दे० **संधि**] संधि का प्रथम भेद।

मुख्यार्थ—वाच्यार्थ का दूसरा नाम मुख्यार्थ भी है। शब्द के श्रवण मात्र से जो अर्थ निकलता है, उसे मुख्य अर्थ कहते हैं। [दे० **अभिधाशक्ति**]

मुग्धा—स्वकीया नायिका का एक भेद। [दे० **स्वकीया**] जिस नायिका के शरीर में नवयौवन का प्रवेश हो रहा हो, उसे मुग्धा कहते हैं। मुग्धा नायिका में लज्जा पर्याप्त मात्रा में रहती है। यह रति-क्रीड़ा से भय खाती है और क्रोध में मृदु होती है या सरलतापूर्वक प्रसन्न हो जाती है। इसके शरीर में यौवन का संचार होता है; अतः इसे अंकुरित यौवना भी कहते हैं।

मुग्धा नायिका अवस्था एवं कामवासना दोनों में नई होती है और रति से कतराती है। [दे० **धनंजय**]

मुग्धा नववयः कामा रतौ वामा मृदुः क्रुधि।

—दशरूपक, २/१६

प्रथमावतीर्णयौवन मदनविकारा रतौ वामा।
कथिता मृदुश्च माने समधिक लज्जावती मुग्धा॥

—साहित्यदर्पण, ३/५८

तत्रांकुरितयौवना मुग्धा। —रसमंजरी, पृ० ७

अभिनव जौबन-आगमन, जाके तन में होय।
तासों मुग्धा कहत हैं कबि कोविद सब कोय॥

—रसराज, १४

झलकति आवै तरुनई, नई जासु अँग-अंग।
मुग्धा तासों कहत हैं, जे प्रबीन रस-रंग॥

—जगद्विनोद, २१

उदाहरण—

क. **आज्ञप्तं किल कामदेव धरणीपालेन काले शुभे**
वस्तुं वास्तुविधिं विधास्यति तनौ तारुण्यमेणीदृशः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दृष्ट्या खंजनचातुरी मुखरुचा सौधाधरी माधुरी
वाचा किंच सुधासमुद्रलहरीलावण्यमामंत्र्यते ॥

शुभ घड़ी में कामदेवरूपी नृप ने नवयौवन को निवास करने का आदेश दिया, तब उसने मृगनयनी के शरीर में गृहनिर्माण का कार्य प्रारंभ कर दिया। इधर दृष्टि ने खंजन के चातुर्य को, मुख की दीप्ति ने चंद्र की सरसता को तथा वाणी ने सुधासागर की लहरियों के लावण्य को आमंत्रण दिया।

ख. अभिनव जौबन जोति सों जगमग होत बिलास।
तिय के तन पानिप बढ़ै पिय के नैननि प्यास ॥

—रसराज, १६

मुग्धा की चेष्टाओं का निरूपण करते हुए विश्वनाथ ने कहा है कि वह प्रिय को देखकर लज्जित हो जाय तथा उससे नेत्र न मिला सके। वह प्रिय को किसी वस्तु की ओट से देखे या घूमते हुए अथवा दूर निकल जाने पर उसे देखती रह जाय। जब प्रिय उससे बहुत पूछताछ करे, तब वह सिर झुकाए रहे अथवा धीरे-धीरे कुछ बोले। अन्य व्यक्तियों द्वारा की गई प्रिय की बात को सावधानी से श्रवण करे, पर अपनी दृष्टि अन्यत्र रखे।

दृष्ट्वा दर्शयति व्रीडां सम्मुखं नैव पश्यति।
प्रच्छन्नं वा भ्रमंतं वातिक्रांतं पश्यति प्रियम् ॥
बहुधा पृच्छ्यमानापि मंदमंदमधोमुखी।
सगद्गदस्वरं किंचित्प्रियं प्रायेण भाषते ॥
अन्यैः प्रवर्तितां शश्वत्सावधाना च तत्कथाम्।
शृणोत्यन्यत्र दत्ताक्षी प्रियबालानुरागिणी ॥

—साहित्यदर्पण, ३/१११-११३

मुग्धा के मुख्य दो भेद किए गए हैं—अज्ञातयौवना और ज्ञातयौवना। इसके अन्य दो भेद भी हैं—नवोढ़ा और विश्रब्धनवोढ़ा। इस प्रकार का वर्गीकरण भानुदत्त का है और उनके आधार पर रीतिकालीन आचार्यों ने भी इसके (मुग्धा के) भेद का वर्णन किया है।

सा च अज्ञात यौवना, ज्ञात यौवना च।
सैव क्रमशो लज्जाभयपराधीनरतिर्नवोढा।
सैव क्रमशः सप्रश्रया विश्रब्ध नवोढा।

—रसमंजरी, पृ० ७-८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धनंजय तथा विश्वनाथ ने मुग्धा के क्रमशः चार एवं पाँच भेदों का कथन किया है—

प्रथमावतीर्णयौवना—जिसके शरीर में नवयौवन का आगमन हो चुका हो।

प्रथमावतीर्णमदनविकारा—जिसके मन में कामविकार का उन्मेष प्रारंभ हो जाय।

रतिवामा—जो रतिलीला से झिझके।

मानमृदु—जिसका मान या कोप अधिक देर तक न टिके।

समधिक लज्जावती—जो अत्यधिक लज्जा के कारण अपने प्रेम को प्रकट न कर सके।

धनंजय के अनुसार मुग्धा चार प्रकार की होती है—वयोमुग्धा, काममुग्धा, रतिवामा तथा कोपमृदु।

वयोमुग्धा वय:संधि की अवस्था में होती है अर्थात् इसके शरीर में शैशव एवं यौवन का मेल या संधि होती है। जो नायिका काम-संबंधी विचारों से अनभिज्ञ हो, उसे काममुग्धा कहते हैं। रतिवामा सदा सुरत-क्रीड़ा से डरती रहती है और कोपमृदु अपराधी पति पर भी क्रोध नहीं करती अर्थात् उसका कोप कोमल या हलका होता है।

१. रसलीन (रीतिकालीन कवि) ने मुग्धा के पांच भेदों का वर्णन किया है—अंकुरितयौवना (जिसके शरीर में तारुण्य का अंकुर प्रकट हो), शैशवयौवना (वय:संधि की स्थिति या शैशव-यौवन का मेल), नवयौवना (जिसमें शिशुता घट रही हो और यौवन वृद्धि पर हो), इसके दो भेद हैं—ज्ञातयौवना और अज्ञातयौवना। नवल अनंगा (इसके दो भेद हैं—अविदित-कामा और विदितकामा) तथा नवलवधू (इसके दो भेद हैं—नवोढ़ा—काम-क्रीड़ा में पति से डरनेवाली, विश्रब्ध नवोढ़ा—पति पर कुछ-कुछ विश्वास रखनेवाली)।

है नवोढ़ पति संग जो सोवति अधिक डराइ।
अरु विश्रब्ध नवोढ़ जो पति कौ नेकु पत्याइ॥

—रसप्रबोध, १००

१. **अज्ञातयौवना**—जिसमें यौवन का आगमन हो जाय और उसका उसे ज्ञान न हो, उसे अज्ञातयौवना कहते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जब यौवन को आगमन, जानि परत नहिं जाहि ।
सो अज्ञात यौवन तिया, भाषत सुकवि सराहि ।।

—जगद्विनोद, २७

क. नीरात्तीरमुपागता श्रवणयोःसीम्निस्फुरन्नेत्रयोः
श्रोत्रे लग्नमिदं किमुत्पलमिति ज्ञातुं करं न्यस्यति ।
शैवालांकुरशंकया शशिमुखी रोमावलीं प्रोच्छति
श्रांताऽस्मीति मुहुः सखीमविदितश्रोणीभरा पृच्छति ।।

—रसमंजरी, ५

"मुग्धा नायिका स्नान करके सरोवर से निकली तो कर्णालंबित अपनी आँखों पर संदेह से हाथ फेरने लगी कि स्नान के समय कमल तो उसके कान पर लगकर नहीं आ गया है। अपने शरीर की रोमावली को शैवाल समझकर पोंछने लगी। नितंब के भार से थक जाने पर वह अपनी सखी से बार-बार पूछने लगी कि मैं थक जाती हूँ ?"

ख. काह कहौं दुख कौन सों, मौन गहौं किहि भाँति ।
घरी-घरी यह घाँघरी, परति ढीलियै जाति ।।

—जगद्विनोद, ३०

२. जिसे यौवन के चिह्नों का ज्ञान हो, उसे ज्ञातयौवना कहते हैं।
तन में यौवन-आगमन, जाहिर जब जिहि होत ।
ज्ञातयौवना नायिका, ताहि कहत कबिगोत ।।

—जगद्विनोद, ३३

क. स्वयंभूः शंभुरंभोजलोचने ! त्वत्पयोधरः ।
नखेन कस्य धन्यस्य चंद्रचूडो भविष्यति ।। —रसमंजरी, ६

"अयि कमललोचने ! शिव की तरह स्वयं उत्पन्न होनेवाला तुम्हारा स्तन किस धन्य पुरुष के द्वारा चंद्रचूड़ होगा अर्थात् इन स्तनों पर कौन पुरुष नखक्षत करेगा, इनका उपयोग करेगा।"

ख. इतै उतै सचकित चितै चलत डुलावत बाँह ।
दीठि बचाइ सखीन की छिनक निहारति छाँह ।।

—रसराज, २३

नायक से परिचित होने की स्थिति के आधार पर मुग्धा के अन्य दो भेद किए गए हैं—नवोढ़ा और विश्रब्ध-नवोढ़ा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नवोढ़ा—जो नववधू लज्जा एवं भय के कारण पति का संगम नहीं चाहती, उसे नवोढ़ा कहते हैं।

सैव क्रमशो लज्जाभयपराधीनरतिर्नवोढा।

—रसमंजरी, पृ० ८

मुग्धा जो भय लाज जुत रति न चहै पतिसंग ॥
ताहि नवोढ़ा कहत हैं जे प्रबीन रसरंग ॥

—रसराज, २४

क. हस्ते धृताऽपि शयने विनिवेशिताऽपि
क्रोडकृताऽपि यतते बहिरेव गंतुम्।
जानीमहे नववधूरथ तस्य वश्या
यः पारदं स्थिरयितुं क्षमते करेण ॥

—रसमंजरी, ७

नायक किसी मित्र से नवोढ़ा नायिका की चेष्टा का वर्णन कर रहा है—"हाथ से धरने, बिछावन पर बैठाने तथा गोद में दबा लेने पर भी वह निकलने का प्रयास करती है। हमें ऐसा लगता है कि वही पुरुष नववधू को वश में कर सकता है, जो पारे को हाथ में स्थिर कर लेने में समर्थ हो।"

ख. ज्यों-ज्यों परसत लाल तन त्यों-त्यों राखै गोय।
नवलबधू डर लाज तें इंद्रबधू सी होय ॥

—रसराज, २६

विश्रब्धनवोढ़ा—जो नायिका अपने हृदय में पति का कुछ विश्वास करने लगे, उसे विश्रब्धनवोढ़ा (विश्वास करनेवाली नववधू) कहते हैं—नायक के विषय में जिसे कुछ विश्वास हो।

सैव क्रमशः सप्रश्रया विश्रब्धनवोढा। —रसमंजरी, पृ० ८

पति की कछु परतीति, उर धरै नवोढ़ा नारि।
सो विश्रब्धनवोढ़ तिय, बरनत बिबुध बिचारि ॥

—जगद्विनोद, ३९

क. दरमुकुलितनेत्रपालिनीवी
नियमित बाहुकृतोरुयुग्मबंधम्।
करकलितकुचस्थल नवोढा
स्वपिति समीपमुपेत्य कस्य यूनः ॥

—रसमंजरी, ८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

किसी नायिका को देखकर कोई नायक अपने मित्र से कह रहा है—"यह नवोढ़ा आंखों को कुछ-कुछ बंद करके अपनी नीबी पर हाथ रखकर एवं दोनों जाँघों को सटाकर दोनों हाथों से स्तनों को बचाते हुए किस युवक के पास जाकर सोती है ?"

ख. केलि कै राति अघाने नहीं दिन ही मैं लला पुनि घात लगाई ।
प्यास लगी कोउ पानी दै जाइयो भीतर बैठि कै बात सुनाई ।
जेठी पठाई गई दुलही हँसि हेरि हरे मतिराम बुलाई ।
कान्ह के बोल में कान न दीनो सुगेह की देहरी पै धरि आई ॥

—रसराज, २८

मुदिता—परकीया नायिका का भेद । [दे० परकीया] चौर्यरत के लिए अनुकूल अवसर पाकर मुदित होनेवाली नायिका मुदिता कहलाती है । यह परपुरुष मिलन की मनोनुकूल बातें सुनकर या देखकर आनंदित होती है, इसलिए इसे मुदिता कहते हैं । इस नायिका का सर्वप्रथम वर्णन भानुदत्त ने किया है ओर उनके ही आधार पर रीतिकालीन आचार्यों ने इसका निरूपण किया । यहाँ मतिराम, पद्माकर तथा बिहारीलाल भट्ट के मत दिए जा रहे हैं ।

चित चाही सुन बात लखि मुदित होय जो बाल ।
तासों मुदिता कहत हैं कबि मतिराम रसाल ॥

—रसराज, ८२

सुनत लखत चित चाह की बात-घात अभिराम ।
मुदित होइ जो नायिका, ताको मुदिता नाम ॥

—जगद्विनोद, १०९

पुरुष दूसरे मिलन की चित चाही कछु बात ।
होय मुदित देखं सुनै सो मुदिता विख्यात ॥

—साहित्यसागर, भाग २

उदाहरण—

क. गोष्ठेषु तिष्ठति पतिर्बधिरा ननंदा
नेत्रद्वयस्य न हि पाटवमस्ति यातुः ।
इत्थं निशम्य तरुणी कुचकुंभसीम्नि
रोमांचकंचुकमुदंचितमाततान ॥ —रसमंजरी, ३०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"जब नवयुवती ने यह सुना कि उसका पति बराबर खेत में रहता है, ननद बहरी है और जेठानी की दोनों आंखें धुंध से भरी हैं तो उसके स्तनों के चारों ओर कंचुक के रूप में रोमांच छा गया।

ख. सास कह्यौ जैयो तुम्हीं गोरस बेचन काज।
मन झुलसी ननदी निठुर सुनि हुलसी हिय बाल॥
—बिहारीलाल भट्ट

मुद्रा—भोज-निरूपित एक अल्प-प्रसिद्ध शब्द का अलंकार। इसमें किसी विशेष अभिप्राय से युक्त कवि के वाक्य का विनिवेशन या प्रदर्शन होता है। पाठकों को मुद या प्रसन्न करने के कारण इसे मुद्रा कहते हैं। इसके छह प्रकार कहे गए हैं—पद, वाक्य, विभक्ति, वचन, समुच्चय तथा संवृत्ति।

साभिप्रायस्यवाक्ये यद्वचसो विनिवेशनम्।
मुद्रां तां मुत्प्रदायित्वात्काव्यमुद्राविदो विदुः॥
सास्मिन्पदस्यवाक्यस्य विभक्तेर्वचनस्य च।
समुच्चयस्य संवृत्या षोढा न्यासेन जायते॥
—सरस्वतीकंठाभरण, २/४०-४१

मुद्रा—अलंकार। प्रस्तुत अर्थ को सूचित करनेवाले पदों के द्वारा सूचनीय अर्थ की सूचना देने के वर्णन को मुद्रालंकार कहते हैं। 'मुद्रा' नामांकित मुहर या चिह्न को कहते हैं। जिस प्रकार मुहर से किसी व्यक्ति का संबंध सूचित होता है, उसी प्रकार इस अलंकार (मुद्रा) से प्रस्तुतार्थ को सूचित करनेवाले पदों के द्वारा विशेष सूचनीय अर्थ की सूचना प्राप्त होती है, जिसमें किसी व्यक्ति या स्थान का नाम आ जाता है। मुद्रा और श्लेष, दोनों में ही शब्दों के एकाधिक अर्थ होते हैं; पर श्लेष में दोनों ही अर्थ प्रस्तुत होते हैं और मुद्रा में एक अर्थ प्रस्तुत होता है तथा दूसरा अप्रस्तुत।

मुद्रा अलकार के उद्भावक अप्पय दीक्षित हैं, पर इनके पूर्व भोज ने 'सरस्वतीकंठाभरण' में शब्दालंकार के रूप में इसका वर्णन किया है। उन्होंने अभिप्राय-युक्त वचन के संनिवेश को मुद्रालंकार कहा है। सहृदयों को मुदित करने के कारण ही इसका नाम मुद्रा है।

दीक्षित के अनुसार मुद्रा अलंकार वहाँ होता है, जहाँ प्रस्तुत अर्थ के सूचक पदों के द्वारा सूच्य अर्थ की भी सूचना दी जाए।

सूच्यार्थसूचनं मुद्रा प्रकृतार्थपरैः पदैः॥ —कुवलयानंद, १३९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रीतिकाल में 'कुवलयानंद' के आधार पर मुद्रालंकार का वर्णन किया गया। पद्माकर का लक्षण अत्यंत स्पष्ट है—

प्रकृत अरथ पर पद जहाँ सूच्य अरथ के ताहि।
सूचन करै सु होत है मुद्रा भरन तहाँ हि॥

—पद्माभरण, २३४

उदाहरण—

क. नितंबगुर्वी तरुणी दृग्युग्मविपुला च सा॥

—कुवलयानंद, १३९

"उस नायिका के नितंब भारी हैं और आँखें कान तक लंबी हैं।" यहाँ 'युग्मविपुला' शब्द संस्कृत के अनुष्टुप छंद का एक भेद है, इसकी सूचना पद से प्राप्त होती है।

ख. कत लपटइयत मोगरे, सोन जुही निसिसैन।
जिहि चंपकबरनी किए गुल्लाला रँग नैन॥ —बिहारी

यहाँ लपटा, मोगरा, सोनजुही, निसिसैन (रजनीगंधा) चंपा तथा गुल्लाला आदि फूलों के नाम आ गए हैं।

मूकदूती—दूती का एक भेद। जो (दूती) बिना कुछ कहे ही नायिका को वशीभूत कर ले, उसे मूकदूती कहते हैं। [दे० दूती]

मूढदूती—दूती का एक प्रकार। जो (दूती) यह बताकर अपना अभीष्ट सिद्ध करे कि वह नायक की पत्नी है, उसे मूढ दूती कहा जाएगा। [दे० दूती]

मूलरस-परिवर्त्तनवक्रता—प्रबंधवक्रता का प्रथम भेद। [दे० प्रबंधवक्रता]

मृद्वीकापाक—प्रारंभ में नीरस एवं अंत में सरस रचना को मृद्वीकापाक कहते हैं। मृद्वीका का अर्थ है द्राक्षा। [दे० काव्यपाक]

आदावस्वादु परिणामे स्वादु मृद्वीकापाकम्।

—काव्यमीमांसा, अध्याय, ५ पृ० ५३

मैथिली—रीति का एक प्रकार। इसमें अर्थातिशय या अर्थचमत्कार के होते हुए भी जगन्मर्यादा का अतिक्रमण नहीं किया जाता। इसमें कोरी अत्युक्तियों का परिहार हो जाता है। [दे० रीति के प्रकार]

मोट्टायित—नायिका के स्वभावज अलंकार का एक भेद। [दे० नायिका के अलंकार] प्रिय-विषयक कथा-वार्त्ता को तन्मय होकर श्रवण करना मोट्टायित है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मोह—संचारी भाव। [दे० संचारी भाव] भय, वियोग, दुःख, विपत्ति, आवेश आदि के कारण उत्पन्न चित्त के विक्षेप को मोह कहते हैं। इस स्थिति में मनुष्य को वस्तु का यथार्थ ज्ञान नहीं होता।

भरत इसकी उत्पत्ति दुर्घटना, आपत्ति, रोग, भय, आवेग तथा पूर्व-शत्रुता के स्मरण आदि विभावों (कारणों) द्वारा मानते हैं। इसका अभिनय निश्चेष्टता, पतन, आघूर्णन (झुकना), देखना आदि अनुभावों द्वारा होता है।

मोहोनाम—दैवोपघातव्यसनाभिघातव्याधिभयावेगपूर्ववैरानुस्मरणादिभिर्विभावैः समुत्पद्यते। तस्य निश्चैतन्यभ्रमणपतनाघूर्णनादर्शनाभिरनुभावैरभिनयः प्रयोक्तव्यः।

अस्थाने तस्करान्दृष्ट्वा त्रासनैर्विविधैरपि।
तत्प्रतीकारशून्यस्य मोहः समुपजायते॥
व्यसनाभिघातभयपूर्ववैरसंस्मरणरोगजो मोहः।
सर्वेंद्रियसम्मोहात्तस्याभिनयः प्रयोक्तव्यः॥

—नाट्यशास्त्र, ७/५२-५३

धनंजय भय, दुःख, आवेश तथा चिंता के कारण उत्पन्न चित्त की अस्त-व्यस्तता को मोह कहते हैं। इसके अनुभाव अज्ञान, भ्रम, आघात, सिर चकराना तथा अदर्शन आदि हैं।

मोहोविचित्रता भीतिदुःखावेशानुचिंतनैः।
तत्राज्ञानभ्रमाघातघूर्णनादर्शनादयः॥

—दशरूपक ४/२६

विश्वनाथ ने धनंजय के मत का अनुसरण कर उनके लक्षण को उद्धृत किया है।

मोहो विचित्रता भीतिदुःखावेगानुचिंतनैः।
मूर्च्छनाज्ञानपतनभ्रमणादर्शनादि कृत्॥

—साहित्यदर्पण, ३/१५०

भानुदत्त वैचित्य या सुधबुध खोने को मोह कहते हैं, जो भय, आवेग तथा चिंतन आदि कारणों (विभावों) से उत्पन्न होता है। इस स्थिति में कर्त्तव्या-कर्त्तव्य का विचार नहीं रहता। इसके अनुभाव हैं—स्तंभ, पात (गिरना), घूर्णन (सिर चकराना), अदर्शन (कुछ न दिखाई पड़ना) तथा विस्मरण।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'मोहो वैचित्यम्। मुह वैचित्य इति धातोर्मोहनं मोह इति भावव्युत्पन्नो मोह शब्दः। वैचित्यं कार्याकार्यापरिच्छेदः। तस्य विभावा भीत्यावेगानुचिंतनादयः। अनुभावाः स्तंभपातघूर्णनादर्शनविस्मरणादयः।'

—रसतरंगिणी, पंचम तरंग, पृ० ३५१

पंडितराज जगन्नाथ ने भय, वियोग आदि के कारण उत्पन्न चित्त की व्याकुलता को मोह कहा है। इस स्थिति में किसी पदार्थ का वास्तविक ज्ञान नहीं रहता।

भयवियोगादिप्रयोज्या वस्तुतत्त्वानवधारिणी चित्तवृत्तिर्मोहः।

—रसगंगाधर, पृ० ९८

दुःखाधिक्य ही मोह का कारण है। यह ऐसा मनोविकार है, जो भय, विपत्ति, वियोग आदि के कारण उत्पन्न होता है। इस स्थिति में मानसिक व्याकुलता के कारण चित्त में जड़ता आ जाती है।

—दे० भारतीय काव्यशास्त्र के प्रतिनिधि सिद्धांत, पृ० ३२८

उदाहरण—

क. तीव्राभिषंगप्रभवेण वृत्तिं मोहेन संस्तंभयतेंद्रियाणाम्।
अज्ञातभर्तृव्यसना मुहूर्तं कृतोपकारेव रतिर्बभूव॥

कामदेव की मृत्यु के कारण मोह उत्पन्न होने से रति चेष्टारहित हो गई। उसकी इंद्रियाँ जड़ीभूत हो गईं। ऐसा ज्ञात हुआ कि न तो उसे पति की मृत्यु का ध्यान है और न उसके मन में कोई पीड़ा है। कामदेव की मृत्यु के कारण रति की निश्चेष्टता के वर्णन में मोह संचारी है।

ख. निरखो पीरो पट धरैं, कारो कान्ह अहीर।
वह कारो पीरो लखै तब तें ब्याकुल बीर॥

यहाँ कृष्ण को देखकर उत्पन्न व्याकुलता में मोह है।

मोहांत सुरतक्षमा—मध्या नायिका का एक भेद।, [दे० मध्या] जो नायिका सुरतक्रीडा को मोह के अंत तक सहन करे, उसे मोहांत सुरतक्षमा कहते हैं।

मौग्ध्य—नायिका का स्वभावज अलंकार। [दे० नायिका के अलंकार] जानी हुई वस्तु को भी प्रिय के समक्ष अनजाने की भाँति पूछना मौग्ध्य स्वभावज अलंकार है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

य

यत्न—नाटकीय कथावस्तु के विकास की द्वितीय अवस्था। [दे० **कार्यावस्था**]

यथासंख्य—वाक्यन्यायमूलक अलंकार। यदि पूर्वोद्दिष्ट पदार्थों के क्रम का उसी क्रम से अंत तक निर्वाह किया जाय तो यथासंख्य अलंकार होगा। 'यथासंख्य' का अर्थ है संख्यानुसार या पूर्व क्रम। इस अलंकार में पूर्वकथित पदार्थों के क्रम का उसी क्रम से अंत तक निर्वाह करने का वर्णन होता है। इसके क्रम-निर्वाह में औचित्य एवं संगति दिखाई पड़ती है। कतिपय आचार्य इसे क्रमालंकार भी कहते हैं। यथासंख्य में कवि पूर्वकथित पदार्थों तथा पश्चात्कथित पदार्थों में क्रमिक संबंध स्थापित कर चमत्कार की सृष्टि करता है। इसे संख्यान भी कहा जाता है।

यथासंख्य का उल्लेख सर्वप्रथम 'भट्टिकाव्य' में किया गया है। भामह ने अपने पूर्ववर्ती मेधाविन् नामक आचार्य को यथासंख्य का उन्नायक माना है। भामह से विश्वेश्वर पंडित तक इस अलंकार का विवेचन-प्रवाह अक्षुण्ण रहा है। —भट्टिकाव्य, १०/४४

भामह ने बताया कि जब विभिन्न धर्मवाले पूर्वनिर्दिष्ट अनेक पदार्थों का उसी क्रम से निर्देश हो तो यथ संख्य अलंकार होगा।

भूयसामुपदिष्टानामर्थानामसधर्मणाम्।
क्रमशो योऽनुनिर्देशो यथासंख्यं तदुच्यते॥

—काव्यालकार, २/८९

दंडी ने भामह के विचार का अनुकरण करते हुए भी नया विचार दिया। इन्होंने उपमानोपमेय भाव में भी यथासंख्य की स्थिति स्वीकार की। इनके अनुसार पूर्वोद्दिष्ट पदार्थों के क्रम का पश्चात् कथित पदार्थों के साथ अन्वय-स्थापन करने में यथासंख्य या संख्यान अलंकार होता है।

उद्दिष्टानां पदार्थानामनुद्देशो यथाक्रमम्।
यथासंख्यमितिप्रोक्तं संख्यान क्रम इत्यपि॥—काव्यादर्श, २/२७६

उद्भट ने भामह का ही लक्षण उद्धृत कर दिया है।

भूयसामुपदिष्टानामर्थानामसधर्मणाम्।
क्रमशो योऽनुनिर्देशो यथासंख्यं तदुच्यते।

—काव्यालंकारसारसंग्रह, ३/२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वामन ने उपमान एवं उपमेयों के क्रमिक वर्णन को यथासंख्य कहा।

उपमेयोपमानानां क्रमसंबंधः क्रमः ॥

—काव्यालंकारसूत्र, ४,३,१७

भामह से वामन तक यथासंख्य के निरूपण में अन्यालंकार मिश्रण की स्थिति दिखाई पड़ती है और उदाहरणों में व्यतिरेक अलंकार का रूप प्रदर्शित होता है। रुद्रट ने इस विसंगति को दूर कर इसके स्वरूप का परिष्कार किया। इनके अनुसार नाना पदार्थ जिस क्रम से पहले निर्दिष्ट किए गए हों, यदि उसी क्रम से पूर्व के विशेषण-विशेष्य भाव से गृहीत हों तो यथासंख्य होगा।

निर्दिश्यंते यस्मिन्नर्था विविधा यथैव परिपाट्या।
पुनरपि तत्प्रतिबद्धास्तथैव तत्साद्ययथासंख्यम् ॥

—काव्यालंकार, ७/३४

मम्मट के अनुसार क्रम से कथित पदार्थों का उसी क्रम से वर्णन करने को यथासंख्य कहते हैं।

यथासंख्यं क्रमेणैव क्रमिकाणां समन्वयः ॥

—काव्यप्रकाश, १०/१०८

रुय्यक इसमें वाक्य-विधान के वैशिष्ट्य के कारण चमत्कार मानते हैं। उन्होंने इसे वाक्यन्यायमूलक अलंकार कहा है। वे शाब्द एवं आर्थ के नाम से इसके दो प्रकारों का वर्णन करते हैं। उनके मतानुसार पूर्वोद्दिष्ट पदार्थों का पश्चात् निर्दिष्ट पदार्थों के साथ उसी क्रम से संबंध-निर्देश करने को यथासंख्य कहते हैं।

उद्दिष्टानामर्थानां क्रमेणानुनिर्देशो यथासंख्यम्।........तच्च यथासंख्यं शाब्दमार्थं चेति द्विधा।

—अलंकारसर्वस्व, पृ० १८७

जयदेव दो प्रकार के कारक एवं क्रिया के क्रमशः कारक एवं क्रियाओं के साथ संबंध स्थापित करने में यथासंख्य मानते हैं।

यथासंख्यं द्विधार्थाश्चेत् क्रमादेकैकमन्विताः ॥

—चंद्रालोक, ५/९२

परवर्ती आचार्यों ने किसी प्रकार का नवीन तथ्य प्रस्तुत न कर मम्मट के ही मत का अनुसरण किया है। विश्वनाथ, अप्पय दीक्षित, पंडितराज तथा विश्वेश्वर के लक्षण मम्मटानुयायी हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यथासंख्यमनुद्देश उद्दिष्टाणां क्रमेण यत् ॥

—साहित्यदर्पण, १०/७९

यथासंख्यं क्रमेणैव क्रमिकानां समन्वयः ॥

—कुवलयानंद, १०९

उपदेशक्रमेणार्थानां संबंधो यथासंख्यम् ।

—रसगंगाधर, पृ० ६४३

निर्देशक्रमतो यदि समन्वयस्तद्यथासंख्यम् । येन क्रमेण पदार्था निर्दिष्टास्तेषां यदि क्रमनिर्दिष्टपदार्थांतरैः सह क्रमेणैव संबंधस्तद्यथासंख्यम् ।

—अलंकार-कौस्तुभ, पृ० ३१७

पंडितराज जगन्नाथ उपदेश-क्रम से अर्थों के संबंध को यथासंख्य कहते हैं।

रीतिकालीन आचार्यों ने मम्मट एवं दीक्षित के लक्षण का अनुवाद प्रस्तुत किया है। चूँकि दीक्षित ने मम्मट के ही लक्षण को उद्धृत किया है; अतः इस युग का यथासंख्य-निरूपण मुख्यतः मम्मट पर आश्रित है। केशवदास का लक्षण स्पष्ट नहीं है—

आदि अंत भरि बरनिए, सो क्रम केशवदास।

—कविप्रिया, ११/१

चिंतामणि, कुलपति, महाराज जसवंत सिंह, मतिराम तथा पद्माकर के लक्षण स्पष्ट हैं—

क्रमकन को अन्वय जहाँ बरन्यौ क्रम क्रम होइ।
यथासंख्य सो अलंकृत, सुमति कहत सब कोइ॥

—कविकुलकल्पतरु, ३/२५२

क्रम अर्थन को जो गहै, क्रम ही सो पुनि होय।
संख्या क्रम चूके नहीं, यथासंख्य है सोय॥

—रसरहस्य, ८/११५

यथासंख्य बर्नन किए बस्तु अनुक्रम संग॥

—भाषाभूषण, १३९

यथासंख्य क्रम सौं कहैं क्रमहि बहुरि बखान॥

—ललितललाम, २६५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जहँ क्रम सों बर्नितन को क्रम सों अन्वय घाल ॥

—पद्माभरण, १८३

उदाहरण—

क. एकस्त्रिधा वसति चेतसि चित्रमत्र
देव द्विषां च विदुषां च मृगीदृशां च ।
तापं च सम्मदरसं चरितं च पुष्णन्
शौर्योष्मणा च विनयेन च लीलया च ॥

"हे राजन् ! आप एकाकी शत्रुओं, विद्वानों और मृगनयनी स्त्रियों के मन में क्रमशः शूरता की प्रखरता, विनम्रता एवं विलास के द्वारा संताप, आनंद रस एवं रति उत्पन्न कर रहे हैं, यह अत्यंत आश्चर्य की बात है।" यह वर्णन क्रमानुसार है।

ख. अमिय, हलाहल, मद भरे, सेतु, स्याम, रतनार।
जिअत, मरत, झुकिझुकि परत, जेहि चितवत इक बार ॥

—रसलीन

यहाँ अमिय (अमृत), हलाहल (विष) तथा मद (शराब) के रंग एवं गुण क्रमशः वर्णित हैं।

यमक—शब्दालंकार। सार्थक अथवा निरर्थक, भिन्न अर्थवाले, स्वर-व्यंजनसमुदाय की आवृत्ति या पुनःश्रवण में यमक अलंकार होता है।

यमक का अर्थ है दो या युग्म या जोड़ा—'यमौ द्वौ समजातौ तत्प्रतिकृतियमकम्।' अर्थात् यम अथवा जुड़वें उत्पन्न दो जीव की प्रतिकृति अर्थात् चित्ररचना (बालबोधिनी) पृ० ५०१। इस अलंकार में तुल्याकार भिन्नार्थक दो शब्दों की आवृत्ति होती है। इसके लिए आवश्यक है कि तुल्याकार आवृत्त वर्णों की भिन्नार्थकता के साथ-ही-साथ उनकी क्रमशः आवृत्ति हो, अन्यथा इसके बिना यमक की स्थिति संभव नहीं है।

[यमक—यम+स्वार्थे कन्] यमकालंकार में सार्थक तथा निरर्थक उभय प्रकार के वर्णों का आवर्तन होता है। यह आवश्यक नहीं कि सभी वर्ण-समुदाय सार्थक हों। सभी वर्णों के निरर्थक होने पर किसी प्रकार की द्विधा नहीं होती, उनके सार्थक होने पर यह नियम निर्धारित किया जाता है कि उनका भिन्नार्थक होना आवश्यक है। इस अलंकार की विशेषताएँ ये हैं—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क. यमक में स्वरव्यंजनसमुदाय या वर्णसंघात की आवृत्ति होती है।

ख. सर्वत्र भिन्नार्थक सार्थक वर्णसमूह की आवृत्ति।

ग. सर्वत्र निरर्थक वर्णों का आवर्त्तन।

घ. कहीं निरर्थक तथा कहीं सार्थक वर्णों की आवृत्ति।

ङ. ममक में वर्णों का आवर्त्तन पूर्वक्रम से हो अन्यथा सर एवं रस में भी यह अलंकार होने लगेगा। इसीलिए आचार्यों ने इसके लक्षण में पुनःश्रुति या 'पुनःश्रवण' का प्रयोग किया है।

च. अर्थवैषम्य यमक का आवश्यक तत्त्व है, समानार्थक शब्दों की आवृत्ति में यमक नहीं हो सकता।

छ. इसमें कहीं-कहीं पदों की आवृत्ति होती है और कहीं संपूर्ण वाक्य की, और उनके अर्थ भी परिवर्त्तित हो जाते हैं।

ज. यमक में डकार, लकार तथा वकार एक अर्थवाले समझे जाते हैं।

यमक अत्यंत प्राचीन अलंकार है, जिसका उल्लेख 'नाट्यशास्त्र' में मिलता है। भरत से लेकर विश्वनाथ तक इस अलंकार का विवेचन-प्रवाह अक्षुण्ण रहा है। रीतिकालीन आचार्यों में दीक्षित के अनुयायी आचार्यों ने इसका वर्णन नहीं किया है जैसे मतिराम, पद्माकर आदि।

आचार्यों ने यमक के प्रयोग के संबंध में अत्यंत सावधानी रखने पर विचार किया है। इस संबंध में दंडी, रुद्रट, आनंदवर्धन, कुंतक, विद्याधर तथा कुलपति ने विशेष ध्यान दिया है। दंडी कहते हैं कि यमक का अकेला प्रयोग मधुर नहीं होता। ध्वनिकार ने शृंगारादि रसों में यमक का विधान प्रतिकूल माना है। रुद्रट ने बतलाया कि कवि यमक के सभी प्रकारों का पर्यवेक्षण करने के उपरांत ही अपनी रचनाओं में इसे स्थान दे। इसमें प्रसिद्ध शब्दों का शब्दभंग सम्यक् रूपेण न हो तथा महाकाव्य में ही इसका प्रयोग हो; नाटक, आख्यायिका एवं कथा आदि में इसे कम-से-कम स्थान दिया जाय।

> तत्तुनैकांतमधुरम्। —काव्यादर्श, १/६६
>
> ध्वन्यात्मभूते शृंगारे यमकादिनिबंधनम्।
> शक्तावपि प्रमादित्वं विप्रलंभे विशेषतः॥
>
> —ध्वन्यालोक, २/१५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इति यमकमशेषं सम्यगालोचयद्भिः
सुकविभिरभियुक्तैर्वस्तु चौचित्यविद्भिः।
सुविहित पदभंगं सुप्रसिद्धाभिधानं
तदनुविरचनीयं सर्गबंधेषु भूम्ना॥

—काव्यालंकार, ३/५९

रस पोषक कविता न ए जाको कहैं बखानि।

—रसरहस्य, ७/१८

भरत ने यमक का लक्षण उपस्थित करते हुए इसे 'शब्दाभ्यास' कहा एवं विकल्प रूप से पाद का भी उल्लेख किया। पाद के आदि या अन्य स्थान में भी शब्दावृत्ति होने पर यमक होगा। भरत ने इसके दस भेदों का कथन किया है—पादांत यमक, कांची, समुद्ग, विक्रांत, चक्रवाल, संदष्टक, पादादि-यमक, आम्रेडित, चतुर्व्यवलित एवं माला यमक।

शब्दाभ्यासस्तु यमकं पादादिषु विकल्पितम्।
विशेषदर्शनं चास्य गदतो मे निबोधत॥
पादांतयमकं चैव कांचीयमकमेव च।
समुद्गयमकं चैव विक्रांतयमकं तथा॥
यमकंचक्रवालं च संदष्टयमकं तथा।
पादादियमकं चैव तथाम्रेडितमेव च॥
चतुर्व्यवस्थितं चैव मालायमकमेव च।
एतद्दशविधं ज्ञेयं यमकं नाटकाश्रयम्॥

—नाट्यशास्त्र, १६/५९-६३

भामह ने बताया कि परस्पर भिन्नार्थक तथा तुल्यश्रुतिवर्णों की आवृत्ति यमक है। यहाँ भिन्न अर्थवाले समान वर्णसमूह को यमक कहा गया है। यहाँ 'समानश्रुति' एवं 'भिन्नार्थक' दो नवीन तथ्य प्रस्तुत किए गए हैं, जिससे भरत-कृत लक्षण में जो अभाव था, वह दूर हो गया। भामह ने यमक के पाँच भेदों का कथन किया है—आदि यमक, मध्यांत यमक, पादाभ्यास, आवली तथा समस्तपाद यमक।

तुल्यश्रुतीनां भिन्नानामभिधेयैः परस्परम्।
वर्णानां यः पुनर्वादो यमकं तन्निगद्यते॥

—काव्यालंकार, २/१७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दंडी ने यमक की परिभाषा प्रस्तुत करते हुए कहा कि व्यवधानरहित या व्यवधानसहित वर्ण-समुदाय की बार-बार आवृत्ति ही यमक है, जो श्लोक के आदि, मध्य तथा अंत में होता है। दंडी ने अपने लक्षण में स्थान-नियमों का उल्लेख कर नूतन तथ्य प्रस्तुत किया; पर इसके प्रसिद्ध तत्त्व भिन्नार्थक शब्दों की आवृत्ति का समावेश नहीं किया।

अव्यपेतव्यपेतात्मा व्यावृत्तिर्वर्णसंहतेः।
यमकं तच्च पादानामादिमध्यांतगोचरम्॥
एकद्वित्रिचतुष्पादयमकानां विकल्पनाः।
आदिमध्यांतमध्यांतमध्याद्याद्यंतसर्वतः॥
अत्यंत बहवस्तेषां भेदाः संभेदयोनयः।
सुकराद्दुष्कराश्चैव दर्श्यंते तेऽत्र केचन॥

—काव्यादर्श, ३/१, २, ३

वामन के अनुसार स्थान-नियम के साथ अनेकार्थक पदों अथवा अक्षरों की आवृत्ति ही यमक है। इन्होंने बताया कि पदभंग के द्वारा यमक अधिक सुंदर होता है। यमक के विकास में वामन का भंगनियम नए बढ़ाव का द्योतक है।

पदमनेकार्थमक्षरं वाऽऽवृत्तं स्थाननियमे यमकम्॥ ४, १, १

पदमनेकार्थं भिन्नार्थकमेकमनेकं वा, तद्वदक्षरमावृत्तं स्थाननियमे सति यमकम्। पादः पादस्यैकस्यानेकस्य चादिमध्यांतभागाः स्थानानि। ४, १, २। भंगादुत्कर्षः। ४, १, ३। उत्कृष्टं खलु यमकं भंगाद् भवति।

—काव्यालंकारसूत्रवृत्ति।

रुद्रट का यमक-निरूपण भामह, दंडी एवं वामन से प्रभावित होते हुए भी नवीन तथ्यों से युक्त है। इनके अनुसार समान श्रुति एवं भिन्नार्थक वर्णों की आवृत्ति ही यमक है, जिसमें वर्णों का समान क्रम हो। यहाँ तुल्यश्रुति वर्णों की आवृत्ति, क्रम की समानता तथा आवृत्त वर्णों की अर्थभिन्नता पर विचार किया गया है।

तुल्य श्रुतिक्रमाणामन्यार्थानां मिथस्तु वर्णानाम्।
पुनरावृत्तिर्यमकं प्रायश्छंदांसि विषयोऽस्य॥

—काव्यालंकार, ३/१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भोज ने दंडी से प्रभाव ग्रहण कर यमक का विवेचन किया।

विभिन्नार्थैकरूपाया या वृत्तिर्वर्णसंहतेः।

—सरस्वतीकंठाभरण, २/५८

परवर्ती आचार्यों में मम्मट, हेमचंद्र एवं विश्वनाथ-कृत लक्षण समान हैं तथा रुय्यक, जयदेव, विद्याधर एवं विद्यानाथ ने एक ही प्रकार की परिभाषाएं प्रस्तुत की हैं।

मम्मट ने बताया कि अर्थ होने पर भी, भिन्न अर्थवाले वर्णसमुदाय की उसी क्रम से पुनःश्रुति या आवृत्ति को यमक कहते हैं। इस लक्षण में चार बातों का समावेश किया गया है।

क. वर्णसमुदाय की आवृत्ति।

ख. अर्थ होने पर भी भिन्नार्थक वर्णसमुदाय की आवृत्ति। सार्थक होने पर, भिन्नार्थक होना।

ग. भिन्नार्थकवर्णों की आवृत्ति।

घ. वर्णसमुदाय की आवृत्ति या पुनःश्रुति का पूर्व क्रमानुसार होना।

अर्थे सत्यर्थभिन्नानां वर्णानां सा पुनःश्रुति।
यमकम्॥ —काव्यप्रकाश, ९/८३

रुय्यक ने स्वरव्यंजन समुदाय की पुनरुक्ति को यमक कहा। इनके लक्षण में 'अर्थवैषम्य' का उल्लेख नहीं है।

स्वरव्यंजनसमुदायपौनरुक्त्यं यमकम्।

—अलंकारसर्वस्व, पृ० २६

शोभाकर, जयदेव एवं विद्यानाथ के लक्षण किसी नवीन तथ्य का विवेचन नहीं करते।

तुल्यरूपसमुदायावृत्तिर्यमकम्।
तुल्यरूपत्वं स्वरव्यंजनसमुदायागतस्य क्रमस्य तुल्यत्वे भवति।

—अलंकाररत्नाकर, पृ० २

यमकं प्रथमाधुर्यमाधुर्यवचसो विदुः॥ —चंद्रालोक, ५/८

यमकं पौनरुक्त्यं तु स्वरव्यंजनयुग्मयोः॥

—प्रतापरुद्रीय, पृ० २४९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सत्यर्थे पृथगर्थायाः स्वरव्यंजन संहतेः।
क्रमेण तेनैवावृत्तिर्यमकं विनिगद्यते ॥

—साहित्यदर्पण, १०/८

विद्याधर ने यमक-विवेचन में ड तथा ल, र और ल, ब एवं व, श और ष, न और ण, सविसर्ग और अविसर्ग तथा बिंदुसहित और बिंदुरहित वर्णों में अंतर नहीं माना है। —एकावली, ७/७

रीतिकालीन आचार्यों का यमक-निरूपण दंडी तथा मम्मट से प्रभावित है। चिंतामणि, जसवंत सिंह, कुलपति, भूषण, सोमनाथ तथा दास के लक्षण मम्मट से अनुप्राणित हैं तथा केशव और देव ने दंडी का विचार अपनाया है।

केशव—

एक पदं नाना अरथ जिनमें जेतो बित्तु।
तामें ताको काढ़िए यमक माहि दै चित्त ॥

—कविप्रिया, १५/११

चिंतामणि—

अरथ होत अन्यारथक, बरनन को जहँ होइ।
फेर श्रवन सो जमकहि बरनत यों सब कोइ ॥

—कविकुलकंठाभरण, २/२१

कुलपति—

अर्थ होय भिन्नै जहाँ, शब्द एक अनुहार।
जमक कहत तासों सबै, भेद अनंत विचार ॥

—रसरहस्य, ७/१६

भूषण—

भिन्न अरथ फिरि-फिरि जहाँ वैई अच्छर वृंद।
आवत तासों जमक कहि, बरनत बुद्धि बिलंद ॥

—शिवराजभूषण, ३४०

दास—

वहै सब्द फिरि-फिरि परै, अर्थ औरई और।
सो जमकानुप्रास है, भेद अनेकनि ठौर ॥

—काव्यनिर्णय, १६/५४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सोमनाथ—

> शब्द एक ही भाँति अरु, अर्थ और ही होइ।
> जमक ताहि पहिचानियौं, सुनत हिये सुख भोइ ॥
>
> —रसपीयूषनिधि, २१/३०

यमक के भेद—यमक अलंकार के वर्गीकरण के आधार हैं, वर्णसंघटन (वर्णव्यवस्था) एवं स्थान नियम। किसी श्लोक या पद्य के प्रारंभ, मध्य एवं अंत में निबद्ध होनेवाले पदों के आधार पर भी यमक के भेदों की कल्पना की गई है। यमक अलंकार के दस भेदों का उल्लेख आचार्य भरत ने किया था और भामह ने आवली प्रभृति पाँच प्रकारों का उल्लेख किया। भामह-कृत भेद हैं—आदि यमक, मध्यांत यमक, पादाभ्यास, आवली तथा समस्तपाद। आदि-यमक में श्लोक के आदि या प्रथम पद की एवं पद्य के मध्यांत में स्थित पद की आवृत्ति होती है। पादाभ्यास में संपूर्ण पद की आवृत्ति होती है और आवली (शृंखला) में बिना किसी स्थाननियम के ही अनेक यमक प्रयुक्त होते हैं। समस्तपादयमक में प्रत्येक पाद में एक ही पाद की आवृत्ति होती है और हेय यमक में प्रसिद्ध धातुओं के द्वारा निष्पन्न गूढ़ या दुर्बोध शब्दों का प्रयोग होता है।

दंडी का यमक-भेद-निरूपण सर्वाधिक विस्तृत है। इन्होंने इसके ३१५ भेदों का उल्लेख किया है। इन्होंने प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ पाद में स्थित यमक के अनेक भेद किए हैं। परवर्ती सभी आचार्यों के भेद-निरूपण पर दंडी का ऋण है। मम्मट ने प्राचीन आचार्यों का अनुसरण करते हुए यमक के ग्यारह भेदों का उल्लेख किया—मुख, संदंश, आवृत्ति, गर्भ, संदष्टक, पुच्छ, पंक्ति, युग्मक, परिवृत्ति, समुद्ग तथा महायमक।

मम्मट के पश्चात् आलंकारिकों का ध्यान यमक के भेद-विस्तार की ओर नहीं गया। रीतिकाल में देव ने 'सिंहावलोकन' नामक नए भेद का वर्णन किया, जिसे दास ने मुक्तपदग्राह्य कहा है। जब पूरे वाक्य की आवृत्ति हो तो वाक्यावृत्ति नामक यमक होता है। भागावृत्ति यमक में चरण के आधे भाग की अथवा तृतीय और चतुर्थ भाग की आवृत्ति होती है। जब किसी छंद के प्रथम चरण के अंतिम शब्द को उसके द्वितीय चरण के आदि में ग्रहण कर लिया, जाय तो उसे सिंहावलोकन या मुक्तपदग्राह्य कहते हैं। जिस प्रकार सिंह चलते समय दोनों तरफ देखता है, उसी प्रकार इस अलंकार में चरण के दोनों ओर शब्द पड़ जाते हैं। पद्य के अंतिम चरण में स्थित शब्द को द्वितीय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चरण में ग्रहण कर लिया जाता है, इसलिए इसे मुक्तपदग्राह्य कहते हैं अर्थात् पद्य के अंतिम चरण में छोड़े गए शब्द को पुनः ग्रहण करना।

उदाहरण—

क. नव पलाश पलाशवनं पुरः स्फुटपरागपरागतपंकजम्।
मृदुलतांतलतांतमलोकयत्ससुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः॥
—शिशुपालवध

"पलाशों का वन नई पत्तियों (पलाश) से युक्त है। कमल में नव पराग लिप्त (परागत) हो गए हैं। लताओं के प्रांत (लतांत)कोमल एवं झुके हुए हो गए हैं। इस प्रकार पुष्पों के आधिक्य से सुगंधित रैवतक पर्वत को कृष्ण ने देखा।

यहाँ पलाश तथा सुरभि सार्थक वर्णों की आवृत्ति हुई है और इनके अर्थ भी बदल गए हैं।

ख. अंगना मैं दिखाती तऊ अंगना
अंगना हमरी उनई सी परैं।

यहाँ अंगना (अंग नहीं), अंगना (स्त्रियाँ) अंगना (आंगन) की आवृत्ति में यमक है।

ग. वाक्यावृत्ति—

ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहनवारी,
ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहाती हैं।
कंद मूल भोग करें कंद मूल भोग करें,
तीन बेर खातीं सो तो तीन बेर खाती हैं॥

घ. सिंहावलोकन—

लाल है भाल सिंदूर भरो मुख सिंधुर
चारु औ भाल बिसाल है।
साल है सत्रुन को कवि 'देव'
विराजत सोम कला धरे भाल है॥

यहाँ 'विशाल' और 'साल' में सिंहावलोकन है।

चरन अंत अरु आदि के जमक कुंडलित होइ।
सिंह-बिलकोन है उहै, मुक्तक-पद-ग्रस सोइ॥
—काव्यनिर्णय, १९/८१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मूल है न भाग की, प्रवाह सो दुकूल है ।
दुकूल है उज्यारो 'देव' प्यारो अनुकूल है ॥

—शब्दरसायन, पृ० १४०

यावदर्थता—अग्निपुराण में वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार । जब शब्द और वर्ण्य विषय या वस्तु की अन्यूनाधिकता हो अर्थात् न तो अधिक और न न्यून रूप में ही प्रस्तुत किया जाए तो वहाँ यावदर्थता अलंकार होगा ।

अन्यूनाधिकता शब्दवस्तुनोर्यावदर्थता ॥

—अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग, ९/६

युक्त—आचार्य केशवदास-वर्णित एक नूतन अलंकार । जिसका जैसा रूप-बल हो, यदि उसका वैसा ही वर्णन किया जाय तो युक्त अलंकार होगा । यह स्वभावोक्ति से भिन्न नहीं है । [दे० स्वभावोक्ति]

जैसो जाको रूप बल, कहिए ताही रूप ।
ताको कवि कुल युक्त कहि, बरणत विविध सरूप ॥

—कविप्रिया, १२/३१

युक्ति—भोज-वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध शब्द का अलंकार । परस्पर अयुज्यमान शब्द या अर्थ की योजना करने को युक्ति कहते हैं । इसके छह प्रकार हैं—पद, पदार्थ, वाक्य, वाक्यार्थ, प्रकरण और प्रबंध युक्ति ।

अयुज्यमानस्य मिथः शब्दार्थस्य वा पुनः ।
योजना क्रियते यासौ युक्तिरित्युच्यते बुधैः ॥

—सरस्वतीकंठाभरण, २/४४

युक्ति—अलंकार । क्रियाचातुरी के द्वारा गुप्त रहस्य को छिपाकर दूसरे की वंचना करना युक्ति अलंकार है । युक्ति का अर्थ उपाय है । इस अलंकार में किसी उपाय या क्रिया-द्वारा अपने मर्म और रहस्य का गोपन कर दूसरे की वंचना करने का वर्णन होता है । यह गोपनमूलक अलंकार है ।

यद्यपि युक्ति को दीक्षित ने अलंकारत्व प्रदान किया, तथापि इसका वर्णन भरत, भोज तथा जयदेव आदि के भी ग्रंथों में किया गया है । भरत ने काव्य-लक्षण के रूप में युक्ति का वर्णन किया है । भोज के अनुसार जब 'अयुज्यमान' शब्द अथवा अर्थ की परस्पर योजना की जाय तो युक्ति अलंकार होगा । इन्होंने इसका वर्णन शब्दालंकार के रूप में किया है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अयुज्यमानस्य मिथः शब्दार्थस्य वा पुनः ।
योजना क्रियते यासौ युक्तिरित्युच्यते बुधैः ॥

—सरस्वतीकंठाभरण, २/४४

'अग्निपुराण' में भोज के लक्षण के आधार पर इस अलंकार का वर्णन हुआ है।

अयुक्तोरिव मिथो वाच्यवाचकयोर्द्वयोः ।
योजनायै कल्पमाना युक्तिरुक्तामनीषिभिः ॥

—अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग, ६/२९

जयदेव ने युक्ति नामक एक स्वतंत्र अलंकार का वर्णन किया है, जो दीक्षित से सर्वथा भिन्न है। इनके अनुसार उपमान की अपेक्षा उपमेय में चमत्कारी अर्थ की सिद्धि का होना युक्ति अलंकार है।

युक्तिर्विशेष सिद्धिश्चेद्विचित्रार्थांतरान्वयात् ॥

—चंद्रालोक, ३/९

दीक्षित ने बताया कि जब अपने रहस्य को छिपाने के लिए, किसी चेष्टा से दूसरे की वंचना की जाय तो युक्ति अलंकार होगा।

युक्तिः परातिसंधानं क्रिययामर्मगुप्तये ॥

—कुवलयानंद, १५६

व्याजोक्ति से इसका पार्थक्य सिद्ध करते हुए दीक्षित ने बताया कि व्याजोक्ति में उक्ति द्वारा गोपन-कार्य होता है और युक्ति में क्रिया-द्वारा।

रीतिकालीन आचार्यों में जसवंत सिंह, मतिराम, दास तथा पद्माकर ने दीक्षित के आधार पर इस अलंकार का वर्णन किया है।

यहै जुक्ति कीन्हें क्रिया मर्म छिपायो जाइ ॥

—भाषाभूषण, १८३

मर्म छिपावन कौं जहाँ क्रिया आन संधान ।
तहाँ जुक्ति बरनन करत कबि कोबिद सज्ञान ॥

—ललितललाम, ३६४

क्रिया चातुरी सों जहाँ मरम राखियत गोय ।
भूषन ताहि बखानहीं युक्ति सयाने लोय ॥

—शिवराजभूषण, २९७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्रिया चातुरी सों जहाँ करैं बात को गोप।
ताहि जुक्ति भूषन कहैं जिन्हैं काव्य की चोप॥

—काव्यनिर्णय, १६/९

जुक्ति क्रिया करि जुक्ति की मरम दुरावै कोय॥

—पद्माभरण, २५६

सभी परिभाषाओं में क्रिया-द्वारा मर्म-गोपन का उल्लेख है। नागेश तथा विश्वेश्वर पंडित ने युक्ति अलंकार के स्वतंत्र अस्तित्व का खंडन कर इसका अंतर्भाव व्याजोक्ति में किया है—

अत्रापि व्याजोक्तिरेव। उक्ति पदस्य व्यापारमात्रपरत्वात्। एतेन—

युक्तिः परातिसंधानं क्रियया मर्म गुप्तये।
इति युक्तिनामाऽत्रालंकार इत्यपास्तम्॥ —उद्योत, पृ० ५४४

व्याजोक्तौ वचसा गोपनं, इह तु क्रियया इति द्वयोर्भेद इति। तन्न व्याजोक्ति लक्षणे। व्याजोक्ति लक्षणस्योभयसाधारणत्वात्। तत्रोक्तिनिवेशस्य गौरव-पराहतत्वात्। अन्यथा प्रकारांतरेण गोपनस्थलेऽलंकारांतरप्रसंगात्। तत्राप्युक्त-क्रियान्यत्वनिवेशस्य सुवत्वादिति दिक्।

—अलंकारकौस्तुभ, पृ० ३५८

उदाहरण—

क. पीव चलत आँसू चले पोंछत नैन भाइ॥

जँभाई या क्रिया द्वारा अपने रहस्य को छिपाने में यहां युक्ति अलंकार है।

योगरूढ़ि—[दे० अभिधाशक्ति]।

यौगिक—[दे० अभिधाशक्ति]।

योग्यता—वाक्य का एक अंग। [दे० तात्पर्यवृत्ति]

यौवनवती—मध्या नायिका का एक भेद। [दे० मध्या] जो नायिका यौवन से पूर्ण हो, उसे यौवनवती कहते हैं। इसे देखते ही कामोद्दीपन हो जाता है।

यौवनांधा—प्रगल्भा नायिका का एक प्रकार। [दे० प्रगल्भा] जो नायिका यौवन के प्रवाह में अंधी हो जाय, उसे यौवनांधा कहते हैं। इसका अन्य नाम गाढ़यौवना भी है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

र

रजक—पात्रों के वस्त्र को रंगनेवाला व्यक्ति ।[दे० नाट्यशास्त्र, ३५/८२]

रति—श्रृंगार रस का स्थायी भाव । [दे० श्रृंगार रस] रति का अर्थ है—अनुरक्ति या प्रीति तथा रमणक्रीड़ा या नर-नारी का संभोग । साहित्य-शास्त्र में यह शब्द श्रृंगाररस के स्थायी भाव का द्योतक है । स्त्री-पुरुष का पारस्परिक अनुराग ही रति है । आचार्यों ने देवता, राजा, मुनि, गुरु आदि के प्रति उत्पन्न रति या प्रीति को स्थायी भाव न मानकर केवल 'भाव' कहा है । आचार्य मम्मट के अनुसार प्रधानता से व्यंजित संचारी, देवता आदि के प्रति व्यक्त हुई रति तथा केवल उद्बुद्ध हुआ स्थायी भाव अर्थात् रसावस्था को नहीं पहुँचा हुआ स्थायी, सभी भाव कहे जाते हैं । कांता के प्रति व्यक्त रति ही श्रृंगार का स्थायी भाव है ।

रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथांजितः । भावः प्रोक्तः ।

—काव्यप्रकाश, ४/३५

आदि शब्दान्मुनिगुरुनृपपुत्रादि विषया । कांताविषया तु व्यक्ता रतिः श्रृंगारः । —वही

विश्वनाथ ने भी इस कथन का अनुमोदन किया है ।

संचारिणः प्रधानानि देवादिविषया रतिः ।
उद्बुद्धमात्रस्थायी च भाव इत्यभिधीयते ।।

—साहित्यदर्पण, ३/३६०

रति का लक्षण सर्वप्रथम 'नाट्यशास्त्र' में मिलता है । भरत ने बताया कि रति की उत्पत्ति इष्ट पदार्थ की प्राप्ति से होती है । इसका अभिनय मधुर वाणी एवं आंगिक चेष्टाओं-द्वारा होता है ।

इष्टार्थ विषयप्राप्त्या रतिरित्युपजायते ।
सौम्यत्वादभिनेया सा वाङ्माधुर्यंगचेष्टितैः ।।

—नाट्यशास्त्र, ७/९

अपने विचार का विस्तार करते हुए भरत ने कहा कि रति का मूलाधार प्रमोद या आनंद है । इसका उद्भव ऋतु, माला, लेप, आभरण, भोजन, श्रेष्ठ-भवन तथा अनुकूल भावों के कारण होता है । रति का अभिनय स्मित वदन, मधुर कथन, भ्रूक्षेप तथा कटाक्षादि अनुभावों द्वारा होना चाहिए ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रतिर्नाम प्रमोदात्मिका ऋतुमाल्यानुलेपनाभरणभोजनवरभवनानुभवना-प्रातिकूल्यादिभिर्विभावैः समुत्पद्यते। तामभिनयेत् स्मितवदनमधुरकथनभ्रूक्षेप-कटाक्षादिभिरनुभावैः। —नाट्यशास्त्र, पृ० ३५०

भोज ने मनोनुकूल पदार्थों या विषयों में सुख-संवेदन (अनुभव) होने को रति माना। हेमचंद्र नायक-नायिका के परस्पर आस्थाबंध होने में रति भाव मानते हैं। विश्वनाथ के अनुसार मनोनुकूल (प्रिय)वस्तु के प्रति अत्यंत उत्कट उन्मुखता का होना रति है। पंडितराज जगन्नाथ ने स्त्री तथा पुरुष की पारस्परिक प्रेम नामक चित्तवृत्ति को रति कहा।

मनोनुकूलेष्वर्थेषु सुखसंवेदनं रतिः॥ —सरस्वतीकंठाभरण,

तत्र परस्परास्थाबंधात्मिका रतिः॥

—काव्यानुशासन, पृ० १२६

रतिर्मनोनुकूलेऽर्थे मनसः प्रवणायितम्॥

—साहित्यदर्पण, ३/१७६

स्त्रीपुंसयोरन्योन्यालंबनः प्रेमाख्यचित्तवृत्तिविशेषोरतिस्थायिभावः।

—रसगंगाधर, पृ० ३६

विद्यानाथ के अनुसार स्त्री तथा पुरुष के संभोग की इच्छा का नाम रति है।

तत्र संभोगविषय इच्छाविशेषो रतिः॥

—प्रतापरुद्रीय, पृ० १६३

उपर्युक्त विवेचन से रति स्थायी भाव के निम्नांकित तत्त्व दृष्टिगोचर होते हैं।

क. कांताविषयक अनुरक्ति ही रति है, जो शृंगार रस का साध्य है।

ख. प्रिय वस्तु के प्रति मन की उत्कट अभिलाषा का नाम रति है।

ग. नर-नारी की पारस्परिक प्रेमात्मक चित्तवृत्ति का नाम रति है।

घ. पुरुष तथा स्त्री की परस्पर रमणेच्छा रति है।

सुप्रिय चाह तें होत जौ सुमन अपूरन प्रीति।
ताहीं सों रति कहत हैं रसग्रंथन की रीति॥

—जगद्विनोद, ५८०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उदाहरण—

जासु बिलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मन छोभा ।।
सो सब कारन जान बिधाता। फरकहिं सुभग अंग सुनु भ्राता ।।

—रामायण

यहाँ जनकवाटिका में सीता की अनुपम छवि को देखकर राम के मन में क्षोभ होने तथा अंगों के फड़कने में रति-भाव की अभिव्यक्ति हुई है। "किसी नारी के प्रति किसी पुरुष का चित्त चंचल हो उठे और वह उसके प्रति अपनी कामना प्रकट करे और वह कामना या आकर्षण साधारणीकृत हो तो भी उसे रति कहना ठीक नहीं। वह तो रत्याभास है। जब स्त्री और पुरुष परस्पर अपने को एकात्मक-भाव से ग्रहण करते हैं; अर्थात् वे आदर्श रूप से संबद्ध होते हैं, तभी उनके परस्पर प्रकाशित भावों के आस्वाद को यथार्थ रति कहते हैं।"

—काव्यदर्पण, पृ० १७२

अभिप्राय यह कि नायक-नायिका का पारस्परिक प्रेम-भाव ही रति है।

स्त्री-पुंसयोरास्थाबंधापरपर्यायोऽन्योन्यमभिष्वंगो 'रतिः'।

—नाट्यदर्पण, ३/१२६ पृ० ३३०

रतिप्रीता या रतिप्रीतिमती—प्रगल्भा या प्रौढ़ा नायिका का एक प्रकार। [दे० प्रगल्भा]

रतिवामा—मुग्धा नायिका का एक भेद। [दे० मुग्धा] जो नायिका रति-क्रीड़ा से झिझकती है, उसे रतिवामा कहते हैं। इसे रति-क्रीड़ा में झिझक होती है।

रत्नावली—विरोधमूलक अलंकार। इसमें ऐसे प्राकरणिक अर्थों का क्रमशः वर्णन होता है, जिनका एक साथ कहा जाना प्रसिद्ध हो। 'रत्नावली' का अर्थ रत्नों का समूह है। इस अलंकार में रत्नों के समूह की तरह प्राकरणिक अर्थों का कथन किया जाता है। श्री कन्हैयालाल पोद्दार ने अपने लक्षण में कहा कि जिनका साथ कहा जाना प्रसिद्ध हो, ऐसे प्राकरणिक अर्थों के क्रमानुसार वर्णन को रत्नावली अलंकार कहते हैं।

रत्नावली अलंकार के उद्भावक अप्पय दीक्षित हैं। भोज ने गुंफना अलंकार के एक प्रकार के रूप में (क्रमकृतागुंफना) रत्नावली अलंकार का स्रोत प्रदर्शित किया है। इसमें कहा गया है कि जब एक वाक्य में शब्दों की आनुपूर्वेण रचना हो तो यह क्रमकृतागुंफना होती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वाक्ये शब्दार्थयोः सम्यग्रचना गुंफना स्मृता ।
शब्दार्थक्रमपर्यायपदवाक्यकृता च सा ॥

—सरस्वतीकंठाभरण, २/५३

भोज ने यह भी संकेत किया है कि इस अलंकार में वर्णित क्रम बुधजन-प्रसिद्ध अथवा विभिन्न शास्त्रादि में प्रसिद्ध होता है। दीक्षित ने 'सरस्वती-कंठाभरण' के उदाहरण को ही रत्नावली के उदाहरण के रूप में उद्धृत किया है।

दीक्षित के अनुसार प्रस्तुत अर्थों को प्रसिद्ध क्रम के अनुसार रखना रत्नावली अलंकार है।

क्रमिकं प्रकृतार्थानां न्यासं रत्नावलीं विदुः ॥

—कुवलयानंद, १४०

रीतिकालीन आचार्यों—जसवंत सिंह, मतिराम तथा पद्माकर ने 'कुवलयानंद' के लक्षण को अनूदित कर रत्नावली अलंकार का विवेचन किया।

रत्नावलि प्रस्तुत अरथ क्रम तें औरहु नाम ॥

—भाषाभूषण, ११६

प्रस्तुत अर्थनि को जहाँ क्रम तें थापन होय ।
तहाँ कहत रत्नावली कबिरसबुद्धि समोय ॥

—ललितललाम, ३२९

रत्नावलि क्रम सों कहब प्रकृत पदारथ बृंद ॥

—पद्माभरण, २२६

उदाहरण—

क. चतुरास्यः पतिर्लक्ष्म्याः सर्वज्ञस्त्वं महीपते !

हे राजन् ! तुम चतुर मनुष्यों में ब्रह्मा, विष्णु और महादेव हो। यहाँ ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव का कथन प्रसिद्ध क्रम के अनुसार हुआ है।

ख. रसिक चतुरमुख लक्ष्मीपति, सकल ज्ञान के धाम ॥

—पूर्व श्लोक का अनुवाद।

रशनोपमा—सादृश्यमूलक अलंकार। यदि पूर्व-पूर्व में कथित उपमेय उत्तरोत्तर उपमान बनता जाय और उपमेयों तथा उपमानों की लड़ी बन जाय तो रशनोपमा अलंकार होगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'रशना' का अर्थ है—करधनी या शृंखला। जिस प्रकार शृंखला या करधनी की एक लड़ी दूसरी से जुड़ी रहती है, उसी प्रकार इस अलंकार में उपमेयों और उपमानों की शृंखला प्रस्तुत की जाती है। इसमें अनुक्रम (शृंखला) तथा सादृश्य दो तत्त्व होते हैं।

रशनोपमा की उद्भावना या प्रथम विवेचन का श्रेय आचार्य रुद्रट को है, तत्पश्चात् भोज, मम्मट, विश्वनाथ और पंडितराज ने इसका वर्णन किया।

रुद्रट ने कहा कि जब अनेक पदार्थों में सादृश्य होने पर पूर्ववर्ती पदार्थ उत्तरवर्ती पदार्थ का उपमान होता चले तो रशनोपमालंकार होता है।

अर्थानामौपम्ये यत्र बहूनां भवेद्यथापूर्वम्।
उपमानमुत्तरेषां सेयं रशनोपमेत्यन्या॥

—काव्यालंकार, ८/२७

भोज प्रपंचोपमा के एक भेद के रूप में रशनोपमा को स्थान देते हैं।

स्यात्समस्तोपमा तद्वदेकदेशोपमा परा।
मालोपमा तृतीया स्याच्चतुर्थी रशनोपमा॥

—सरस्वतीकंठाभरण, ४/२१

मम्मट के अनुसार पूर्व-पूर्व उपमेय का उत्तरोत्तर उपमान होता जाना रशनोपमा है। इन्होंने इसके दो प्रकारों का कथन किया है—भिन्न धर्म तथा अभिन्न-धर्म के आधार पर।

यथोत्तरमुपमेयस्योपमानत्वे पूर्ववदभिन्नभिन्न धर्मत्वे……इत्यादिका रशनोपमा च। —काव्यप्रकाश, पृ० ४५५, १०/६०

मम्मट इसे उपमा के भेद के रूप में मान्यता देने के पक्ष में हैं। विश्वनाथ के अनुसार जब उपमेय उत्तरोत्तर उपमान के रूप में परिणत हो तो रशनोपमा होगी।

यथोर्ध्वमुपमेयस्य यदि स्यादुपमानता।
कथिता रशनोपमा……॥ साहित्यदर्पण, १०/२४

पंडितराज ने कहा—"यदि उपमेय अपने-अपने उपमान न होकर अन्य के उपमान हों तो रशनोपमा होगी। इन्होंने मम्मट-कृत दो भेदों को स्वीकार किया है।

उपमेयानां स्वस्वोपमानानामुपमेयतायां रशनोपमा।

—रसगंगाधर, पृ० २४४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क. चंदायते शुक्लरुचापि हंसो, हंसायते चारुगतेन कांता।
कांतायते स्पर्शसुखेन वारि वारीयते स्वच्छतया विहाय ॥

उजली कांति से युक्त हंस चंद्रमा के सदृश लगता है और सुंदर गति के कारण सुंदरी हंस के सदृश ज्ञात होती है। स्पर्श सुखदायक होने के कारण जल स्त्री के समान लग रहा है और स्वच्छता के कारण आकाश जल के सदृश लग रहा है। यहाँ हंस प्रथम वाक्य में उपमेय एवं द्वितीय वाक्य में उपमान बन गया तथा जल उत्तरार्ध के प्रथम वाक्य में उपमेय था; पर वह आकाश का उपमान बन गया।

ख. बच-सी मधुरी मूरती, मूरति-सी कल कीति।
कीरति लौं सब जगत में छाइ रही तव नीति ॥

मूर्त्ति प्रथम वाक्य में वचन का उपमेय तथा द्वितीय वाक्य में कीर्त्ति का उपमान बन गई है।

रीतिकालीन आचार्यों का रशनोपमा-विवेचन मम्मट तथा विश्वनाथ से प्रभावित है। चिंतामणि, मतिराम और पद्माकर ने 'साहित्यदर्पण' के अनुसार रशनोपमा का वर्णन किया तो कुलपति ने 'काव्यप्रकाश' को आधार बनाया।

प्रथमहि जो उपमेय वह पुनि उपमान जु होइ।
वस्तु और कौ क्रम जु यह रसनोपम है सोइ ॥

—कविकुलकल्पतरु, ३/२२

जहाँ प्रथम उपमेय सो होत जात उपमान।
तहाँ कहत रसनोपमा, कबि मतिराम सुजान ॥

—ललितललाम, ५७

रसनोपम उपमेय जहँ होत जात उपमान ॥

—पद्माभरण, २४

आगे आगे कीजिए उपमेयो उपमान।
वैसे ही रसनोपमा, सोऊ द्वै विधि जान ॥

—रसरहस्य, ८/१९

दास ने उपमा एवं एकावली के मेल को रशनोपमा कहकर नया विचार प्रस्तुत किया है।

उपमा कौ एकावली कौ संकर जहँ होइ।
ताही कौं रसनोपमा कहैं सुमति सब कोइ ॥

—काव्यनिर्णय, १८/१४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रस और सौंदर्यबोध—रस-सिद्धांत भारतीय काव्यालोचन की अत्यंत महत्त्वपूर्ण देन है। इसीके समकक्ष पाश्चात्य साहित्यशास्त्र एवं दर्शनशास्त्र में कला-दर्शन या सौंदर्य-मीमांसा (सौंदर्यशास्त्र) का स्थान है और दोनों की स्थापनाओं और निष्कर्षों में आश्चर्यजनक साम्य है। कला-दर्शन तथा रसदर्शन दोनों का ही लक्ष्य आनंदानुभूति प्रदान करना है और दोनों ही काव्यजन्य आनंद को कल्पनाजन्य आनंद स्वीकार करते हैं। दोनों का ही विचार है कि सामान्य जीवन के भाव कलाकृति में आनंददायक बन जाते हैं। पाश्चात्य सौंदर्यशास्त्रियों के अनुसार कलानुभूति का आधार शुद्ध भावात्मक है, इसका आस्वादन तर्क-बुद्धि की देन नहीं है। कलानुभूति के समय मनुष्य स्वार्थ-भाव से परे होकर, वस्तु की उपयोगिता या हानि-लाभ से ऊपर उठ जाते हैं। [दे० **रस-सिद्धांत**] पश्चात्य सौंदर्य-दर्शन भी रस-सिद्धांत की भांति रसानुभूति या सौंदर्यानुभूति को अखंड मानता है। रस-सिद्धांत के अंतर्गत 'साधारणीकरण' के द्वारा रस-बोध की स्थिति में स्वार्थ-भाव से मुक्ति या निर्वैयक्तिकता और सहजानुभूतिजन्य तादात्म्य-संबंधी विचारों की स्थापना की जाती है और यही मत कलानुभूति का भी है। अभिप्राय यह कि रसानुभूति सौंदर्यानुभूति या सौंदर्य-बोध के अत्यंत निकट है। यहाँ पश्चात्य सौंदर्य-दर्शन का संक्षिप्त रूप प्रस्तुत किया जा रहा है।

'सौंदर्यशास्त्र' आंग्ल भाषा के एस्थेटिक्स (Aesthetics) शब्द का हिंदी पर्याय है, जो ग्रीक भाषा के 'एस्थेसिस' शब्द से बना है जिसका अर्थ है, 'इंद्रियानुभव' या 'ऐंद्रिय बोध-संबंधी या संवेदना-संबंधी'। आधुनिक अर्थ में इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग जर्मन लेखक अलेग्जेंडर वामगार्टन ने अपने 'शोध-प्रबंध' 'एस्थेटिका' (१७६० ई०) में किया था। यद्यपि उसके पूर्व भी सौंदर्यशास्त्र का विवेचन हो चुका था और इसे लोग सौंदर्यदर्शन या कलादर्शन कहते थे; पर इसे वामगार्टन ने ही आधुनिक अर्थवत्ता प्रदान की। उसके अनुसार "प्रकृति और कला की सुंदरता, स्वभाव तथा अवस्थाओं और नियमानुकूलता का ज्ञान ही सौंदर्यशास्त्र का विषय है।" अभिप्राय यह कि वह सौंदर्यानुभव से प्रकृति, काव्य और कल्पना के सौंदर्यानुभव का अर्थ ग्रहण करता है। आगे चलकर हीगल ने सौंदर्य का अर्थ 'ललित कला का दर्शन' किया—Philosophy of fine arts। सामान्य रूप से सौंदर्यशास्त्र का अर्थ कला और प्रकृति का सामान्य सिद्धांत है। (Theory of beautiful in general, wheather in art or nature—Comparative Aesthetics vol, II. page. 1.) सौंदर्य-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शास्त्र कला में निहित आनंद-तत्त्व का विवेचन करता है अर्थात् वह सौंदर्य का शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत करता है। कला का उद्देश्य है आनंदानुभूति और कलागत आनंद दो प्रकार का है—बाह्य एवं आंतर। इस आनंदोपलब्धि के तीन उपादान हैं—कला, प्रकृतिजगत् एवं मानवजगत्। सौंदर्यशास्त्र इन तीनों उपादानों में निहित सौंदर्यानुभूति को बुद्धिगम्य बनाता है।

सौंदर्य के तीन भेद हैं—

वर्णों एवं ध्वनियों का सौंदर्य—इसे नेत्र तथा कर्णेंद्रिय-द्वारा ग्रहण किया जाता है।

आकार सौंदर्य—यह ज्यामिति के चित्रों, रेखाकृतियों एवं पदार्थों के आकार-मात्र में पाया जाता है।

अभिव्यक्ति सौंदर्य—इसे व्यंजनागत सौंदर्य कहते हैं, जो कला में पाया जाता है। इनके अतिरिक्त सौंदर्य के अन्य दो भेद और हैं—सुंदर (Beautiful) और उदात्त (Sublime)। फूल, झरना आदि छोटी वस्तुओं में सुंदरता की अनुभूति होती है तथा आकाश, समुद्र, पर्वत आदि की विशालता में उदात्त-तत्त्व विद्यमान रहता है। उदात्त में असीम विस्तार एवं उन्नत भाव वर्त्तमान है अर्थात् किसी वस्तु की भव्यता में उदात्त-तत्त्व निहित है।

"निस्संदेह सौंदर्यशास्त्र प्रकृति और शिल्प के विभिन्न उपादानों में सौंदर्य की सत्ता स्वीकार करता है; किंतु वह अपना संबंध केवल ललित कलाओं तक ही सीमित रखता है।........सौंदर्यशास्त्र की परिधि में केवल वे ही रूप आ सकते हैं, जो मानव के द्वारा अनुभूत होकर लिपिबद्ध रूप में सुलभ हो गए हों। दूसरे शब्द में सौंदर्यशास्त्र प्रकृति एवं बाह्य जगत् का अध्ययन सीधे रूप में और उनके प्रकृत रूप में न करके कलाओं के माध्यम से उनके संवेदित रूप का ही अध्ययन करता है।........अतः, इस दृष्टि से सौंदर्यशास्त्र केवल कलाशास्त्र ही है और कलाओं में भी केवल ललितकलाओं से ही उसका संबंध है।"

—रस-सिद्धांत का पुनर्विवेचन, पृ० १२३

सौंदर्य-शास्त्र ललित कलाओं के भी केवल दार्शनिक या सैद्धांतिक पक्ष का ही निरूपण करता है, व्यावहारिक पक्ष का नहीं। वह वास्तव में कला-दर्शन है।

सौंदर्य-चिंतन का ऐतिहासिक विकास—अन्य शास्त्रों के विवेचन के साथ यूनान में सौंदर्य-शास्त्र का भी चिंतन होने लगा था। वहाँ के आचार्यों ने नीति-शास्त्र तथा दर्शन से सौंदर्य-शास्त्र का पृथक् अस्तित्व स्वीकार नहीं किया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उनके अनुसार सुंदर वही है, जो नैतिक के साथ-साथ तात्त्विक भी हो। उन्होंने सौंदर्य को ऐंद्रिय अनुभूति कहा है। प्लेटो विश्व के समस्त सौंदर्य को ईश्वर का रूप मानकर सौंदर्यानुभूति को दिव्य अध्यात्म-साधना के समतुल्य स्वीकार करते हैं। उन्होंने सौंदर्य के महत्त्व को स्वीकार करते हुए भी उसका संबंध शिवत्व के साथ जोड़ दिया है। प्लेटो ने 'रिपब्लिक' के दशम खंड में कवियों एवं कलाकारों की निकृष्टता का विस्तारपूर्वक वर्णन करते हुए बतलाया कि उनका कार्य निरर्थक एवं अनुत्तरदायित्वपूर्ण है। उन्होंने कहा कि दृश्य-जगत् तात्त्विक जगत् की छाया है; अतः दृश्य-जगत् वास्तविक जगत् की अपेक्षा कम तात्त्विक है। कला इसी दृश्य जगत् की अनुकृति होने के कारण तात्त्विक जगत् से दूर है। चूंकि कवि और कलाकार भावुक होते हैं और अवास्तविक के अनुकर्त्ता; अतः ऐसे व्यक्तियों के लिए ग्रीक गणतंत्र में स्थान नहीं होना चाहिए। प्लेटो ने अनुकरण-सिद्धांत, काव्य के एकांत ऐहिक मनोरंजनपरक मूल्यों का निषेध तथा काव्य या कला में लोकमंगल के नैतिक मूल्यों की स्थापना कर सौंदर्य-चिंतन के क्षेत्र में महार्घ योगदान किया।

अरस्तू का सौंदर्य-विवेचन प्लेटो की अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक है। कला और सौंदर्य का विवेचन करते हुए उसने सुंदर वस्तुओं के तीन तत्त्वों पर विचार किया—व्यवस्था (Order), समता (Symmetry) और निश्चित सीमा (Definite limitation)। उसने कला को प्रकृति की अनुकृति (Imitation) मानते हुए भी सौंदर्य के बाह्यरूप को प्रमुखता दी। प्रकृति में जो पदार्थ दिखाई पड़ते हैं, उनमें सौंदर्य का अंश वर्त्तमान रहता है। मनुष्य को उसमें जो अभाव दिखाई पड़ता है, उसकी पूर्त्ति कलाकार कला के रूप में कर देता है। अतः, कला अनुकरणमात्र न होकर कलाकार के भावों का रंग भी है। अरस्तू ने कलाकार को अनुकरणशील बताते हुए भी प्लेटो की भाँति उसे हेय नहीं समझा। उसके अनुसार कवि को केवल उन्हीं विषयों का अनुकरण करना चाहिए, जो मनुष्य के जीवन में संभव एवं आवश्यक हों। इस प्रकार का अनुकरण त्रासदी में होता है; अतः वही काव्य का श्रेष्ठ रूप है।

लोंजाइनस (तीसरी शती) ने सौंदर्यशास्त्र के विवेचन में उदात्त तत्त्व (Sublime) का समावेश कर नवीन शृंखला जोड़ दी। मानव-जीवन की पीड़ा को आनंद के रूप में परिवर्त्तित करने को उदात्त कहते हैं। उसने उदात्त के स्वरूप का विवेचन करते हुए बताया कि हम उसे ही उत्कृष्ट कोटि का सौंदर्य कह सकते हैं, जो हमारी वृत्तियों को रोककर स्थगित कर दे। उसने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आत्मा की महानता के चित्र को उदात्त कहा, जिसकी अनुभूति से मनुष्य ईश्वर की महत्ता के निकट पहुँच जाता है। उसने उदात्त के आधारभूत तत्त्वों का विश्लेषण कर अभिव्यक्ति की विशिष्टता और उत्कृष्टता का विवेचन किया।

नव अफलातूनवाद—इस युग के प्रमुख दार्शनिक प्लोटिनस (२०५-२७०ई०) ने सौंदर्य को अवर्णनीय प्रकाश कहकर सत्य के अनेक रूपों का स्रोत एक अखंड परम तत्त्व को स्वीकार किया। उसके अनुसार "सौंदर्य इहलोक की प्रत्यक्ष वस्तुओं में कुछ धुँधला दिखाई देता है; किंतु उस पार संतप्त मानव-आत्मा को रिझाता है।" उसने बतलाया कि वस्तु-जगत् की छायामात्र होने के कारण ही कला अग्राह्य नहीं है; वह तो गोचर जगत् में छिपे हुए बुद्धितत्त्व की अभिव्यक्ति है। सौंदर्य बुद्धि का धर्म है और कला के माध्यम से उसे बुद्धिगम्य बनाया जाता है।

प्रसिद्ध दार्शनिक प्लूटार्क के अनुसार सौंदर्य की सुंदरता वस्तु में निहित रहती है और सुंदर अनुकरण का महत्त्व अभिव्यंजना के कारण है। कलाकृति के चित्रण में बुद्धि के कौशल के कारण सुख की प्राप्ति होती है। प्लूटार्क कला में अनुकृति के अतिरिक्त बुद्धि-कौशल को भी महत्त्व देता है।

आधुनिक युग—वस्तुतः सौंदर्यशास्त्र के वास्तविक स्वरूप का विवेचन आधुनिक युग से प्रारंभ हुआ। प्राचीन युग में यह स्वतंत्र शास्त्र का रूप नहीं प्राप्त कर सका था। आधुनिक युग के प्रारंभ होते ही यह स्वतंत्र शास्त्र के रूप में विकसित हुआ, जिसका श्रेय प्रसिद्ध जर्मन कलाशास्त्री वामगार्टेन को है। उन्होंने अनुभववाद का आधार ग्रहण कर ऐंद्रिय ज्ञान के रूप में सौंदर्यशास्त्र को विकसित किया।

लेसिंग—यह यूनानी विचारकों से प्रभावित था। इसने वामगार्टेन के उस सिद्धांत को अस्वीकार कर दिया, जिसके अनुसार कलाकृति का तथ्य सत्याभास है। यह शुद्ध प्राकृतिक सत्य को ही कलाकृति का तथ्य मानता है। इसने रेचन-सिद्धांत की भी व्याख्या की है। इसके मत में "भावों का नीतिपूर्ण विचारभंगिमा (Virtuous disposition) में परिणाम ही रेचन है।" यह कलाकृति को सोद्देश्य मानता है। इसके अनुसार कला का लक्ष्य है नीति अथवा श्रेय के प्रति प्रेम उत्पन्न कराना।

बर्क—यह प्रसिद्ध अँगरेज विचारक और वक्ता था। बर्क सौंदर्य का संबंध नर-नारी के पारस्परिक सौंदर्य एवं सामाजिक जीवन से मानता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उसके उदात्त-संबंधी विचार महत्त्वपूर्ण हैं। उदात्त की अनुभूति का संबंध है दुःख और भय की भावना से; किंतु सौंदर्य आनंद एवं सामाजिक भावना से संबद्ध है। इसके अनुसार उदात्त की अनुभूति के आधार हैं बल-प्रयोग के द्वारा आत्म-रक्षा एवं सौंदर्य के आधार हैं सामाजिकता एवं संभोग की प्रवृत्ति।

वीसो—यह इटली का निवासी था। इसके विचारों का प्रभाव क्रोचे पर पड़ा है। यह कला को कल्पनाप्रधान तथा शास्त्र को विचारप्रधान मानता है। कल्पना विचार से भिन्न है। कला विशेषोन्मुख है और तर्क सामान्योन्मुख। संवेदन, भाव और कल्पना से युक्त कला जितनी ही विशेषोन्मुख होगी, उतना ही उसका स्वरूप निखरेगा।

कांट—प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक कांट के सौंदर्यशास्त्रीय विचार अत्यंत प्रौढ़ हैं। उसने 'निर्णय बुद्धि की परीक्षा' (Critique of Judgment) नामक एतद्विषयक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ की रचना की। उसने सौंदर्यात्मक ज्ञान को ऐंद्रिय सुख एवं नैतिक संतोष से पृथक् मानकर उसे प्रमेय (Concept) के बिना ही सुखदायक एवं ऐंद्रिय सुख के बिना ही आनंददायक सिद्ध किया। उसने बताया कि सौंदर्य प्रयोजन-रहित होने पर भी पूर्ण तथा सार्वभौम सुख की वस्तु है। सुंदर वस्तु मात्र व्यक्ति के लिए ही नहीं, सबके लिए सुंदर है। अतः वह व्यक्तिगत न होकर सार्वभौम है। सौंदर्यानुभव को कलाकार अपने अंदर नहीं समेटता, बल्कि दूसरों में भी संक्रांत करता है। सौंदर्य आत्मगत होता है; क्योंकि सौंदर्यद्रष्टा के अतिरिक्त उसका कहीं भी अस्तित्व नहीं होता; किंतु वह आत्मनिष्ठता व्यक्तिगत न होकर मानव समुदाय की होती है। कांट ने उदात्त और सौंदर्य के संबंध में विचार प्रकट करते हुए बतलाया कि सुंदर की अपेक्षा उदात्त में आत्मनिष्ठता के तत्त्व अधिक होते हैं। सुंदर वस्तु आकारयुक्त होती है; किंतु उदात्त में आकार का अभाव होता है। सुंदर वस्तु को देखकर मनुष्य के अंदर उल्लास एवं आह्लाद का भाव जागता है; किंतु उदात्त की उपस्थिति के कारण मानव के अंदर भय, गौरव एवं प्रशंसा के भाव जाग्रत होते हैं।

कला के संबंध में विचार करते हुए कांट ने उसे प्रकृति की सहयोगिनी एवं उससे अधिक महत्त्वपूर्ण बतलाया है। उसने बताया कि कला प्राकृतिक और आध्यात्मिक, दोनों लोकों को मिलाती है। चेतन लोक के ज्ञान, अनुभव एवं स्वतंत्रता को विभिन्न रूपों में ग्रहण कर कला उन्हें जड़ता के लोक में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पहुँचा देती हैं। कांट ने अभिव्यक्ति के आधार पर ही कला का वर्गीकरण कर, काव्य को उसका श्रेष्ठ रूप माना है; क्योंकि उसमें अभिव्यक्ति की सबसे अधिक शक्ति है।

शिलर (१७५६-१८५७ ई०)—शिलर जर्मनी का महान् विचारक और कवि था। वह कला के अनुकृति-सिद्धांत को स्वीकार करता है तथा कल्पना-शक्ति-द्वारा अनुकृति से भी वही आनंद प्राप्त करने की बात कहता है, जो आनंद उसे प्रकृति में मिलता है। शिलर कांट का अनुयायी था और कला का उद्देश्य केवल आनंद की प्राप्ति मानता था। उसके अनुसार सुंदर पदार्थ आनंद का कारण होता है, यदि उसमें उपयोगिता के तत्व नहीं भी रहें तो कोई बात नहीं; आनंद का रहना आवश्यक है। कला का उद्देश्य आनंदोपलब्धि एवं सौंदर्य की सृष्टि में ही निहित है। शिलर सौंदर्यानुभूति को सार्वभौम मानता है।

शेलिंग—(१७७५-१८४५ ई०) यह प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक था। इसने ससीम में असीम की झाँकी पाने को सौंदर्य कहा है। कला में सौंदर्य की अभिव्यक्ति होती है और सौंदर्य मनुष्य को अनंत की ओर उन्मुख करता है। सौंदर्य के अभाव में कला का अस्तित्व नहीं रह सकता। यह कलात्मक अनुभूति को दर्शन से भी श्रेष्ठ मानता है।

हीगल—पाश्चात्य सौंदर्यशास्त्रियों में हीगल के विचार बहुत ही व्यवस्थित एवं पूर्ण हैं। उसकी सबसे बड़ी विशेषता है कला का उपयुक्त वर्गीकरण। उसके अनुसार यह विश्व पूर्ण प्रत्यय (Absolute idea) की अभिव्यक्ति है। प्रकृति और कला में इसी पूर्ण प्रत्यय की सौंदर्य के रूप में अभिव्यक्ति होती है और उसका श्रेष्ठ रूप कला में दिखलाई पड़ता है। प्रकृति के विस्तृत एवं भव्य सौंदर्य को कला सूक्ष्म उपादान में बाँधकर उसे अधिक चमत्कारपूर्ण बना देती है और कला के माध्यम से प्रत्यय-तत्त्व अधिक स्पष्ट रूप में अभिव्यक्त होता है।

उसने ललित कला को कई भागों—वास्तुकला, मूर्त्तिकला, चित्रकला, संगीतकला और काव्यकला में विभाजित किया है। आधार की मूर्त्तता एवं अमूर्त्तता के अनुसार इन कलाओं की श्रेष्ठता निर्धारित की गई है। जिस कला का आधार जितना ही मूर्त्त होगा, वह कला उतनी ही निकृष्ट कोटि की होगी। इस प्रकार वास्तुकला आधार की मूर्त्तता के कारण निकृष्ट एवं काव्य-कला

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आधार की सूक्ष्मता के कारण श्रेष्ठ है। हीगल के कला-विभाजन का दूसरा आधार है आईडिया के विकास की अवस्था। इसके अनुसार वह कला को तीन भागों में विभक्त करता है—प्रतीकवादी, शास्त्रीय और रोमानी। अस्पष्ट मानसिक स्थिति में जो अभिव्यक्ति होती है, हीगल उसे ही प्रतीकात्मकता कहता है। इस प्रकार की कला आदिम सभ्यता की देन है। प्राचीन हिंदू-कला प्रतीकात्मक कला का उदाहरण है। इस कला को आइडिया के भौतिक रूप में प्रकट होने के लिए असफल संघर्ष करना पड़ता है और इस अवस्था में आइडिया की अभिव्यक्ति बेडौल और भद्दी होती है। शास्त्रीय कला सभ्यता के द्वितीय सोपान की स्थिति का द्योतक है। इसमें विचार, भाव एवं मानव संबंधों की स्पष्ट रूप में अभिव्यक्ति होने लगती है। इसके उदाहरण ग्रीक वास्तुकला एवं मूर्त्ति कला हैं। रोमानी कला में आइडिया का आधार भौतिक पदार्थ न होकर बुद्धि हो जाती है। वह शास्त्रीय कला की प्रतिक्रिया-स्वरूप विकसित हुई है। उसमें प्राचीन आदर्शों और नियमों का विरोध एवं मानवीय आत्मा की वेगपूर्ण स्वच्छ अभिव्यक्ति होती है तथा विचार-तत्त्व के साथ ही भाव एवं कल्पना तत्त्वों का भी सामंजस्य होता है। शास्त्रीय कला में जहाँ वस्तुपरकता की प्रधानता होती है, वहाँ रोमानी कला आत्मनिष्ठ (Subjective) होती है। चित्रकला, संगीतकला एवं काव्यकला रोमानी वर्ग के उदाहरण हैं। हीगल ने कला को अभिव्यक्ति मानकर सभी आध्यात्मिक अभिव्यक्तियों में कला का महत्त्व प्रदर्शित किया है।

शापेनहावर—यह निराशावादी, प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक था। इसने जीवन में वेदना का महत्त्व स्वीकार कर उसे जीवन की इच्छा (Will to live) कहा। उसके अनुसार जीवन में निराशा और पीड़ा का राज्य बना रहता है। जीवन और मृत्यु के सनातन संघर्ष में मृत्यु की विजय होती है और जीवन को पराजित होना पड़ता है। मानव के इस चिरंतन दुःख से छुटकारा पाने के दो ही उपाय हैं—आध्यात्मिक चिंतन तथा कला की उपासना। इन दोनों की आराधना कर मनुष्य जीवन की महावेदना को भुला सकता है। कला मनुष्य को इस दुःखमय जगत् से उठाकर ऐसे लोक में ले जाती है, जहाँ कल्पना और भावना का प्राधान्य रहता है। शापेनहावर सभी कलाओं में संगीत को ही अधिक सशक्त मानता है; क्योंकि उसमें ऐसी शक्ति है, जिससे मनुष्य अपनी वेदना को विस्मृत कर मोहक भावलोक में पहुँच जाता है। इस प्रकार की क्षमता अन्य कलाओं में नहीं है। प्रत्येक कला अपनी चरमावस्था

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में संगीत हो जाती है। अन्य कलाएँ विचारों और भावों को व्यक्त करती हैं, किंतु संगीत विचारों की भूमिका में स्थित इच्छा को सुशोभित करता है। मनुष्य की इच्छा की परितृप्ति कभी नहीं होती; किंतु संगीत के द्वारा उसकी इच्छा थोड़े समय के लिए संतुष्ट हो जाती है। अतः, वह (संगीत) अन्य कलाओं से अधिक महत्त्वपूर्ण है। सौंदर्यानुभूति का वर्णन करते हुए वह कहता है कि इस स्थिति में मनुष्य जीवन की वास्तविकता से ऊपर उठकर वेदना के भार से मुक्त हो जाता है। प्रत्येक प्रतिभाशाली कलाकार में ऐसी क्षमता होती है, जिससे वह सांसारिक स्वार्थों से मनुष्य को ऊपर उठा दे।

स्पेंसर—यह आंग्ल मनोवैज्ञानिक था। इसके अनुसार सुख ही जीवन का मुख्य उद्देश्य है और जीव का स्वभाव है सुख की प्राप्ति। उसने सौंदर्यानुभूति को निरुद्देश्य क्रिया माना है। शिलर की तरह स्पेंसर भी कला को एक प्रकार की क्रीड़ा मानता है। सौंदर्यानुभूति में जितनी ही अधिक इंद्रियाँ व्याप्त होंगी, मनुष्य को उतना ही अधिक आनंद प्राप्त होगा। इसने बताया कि जीवन की अन्य वस्तुओं का उपयोग होता है; किंतु सौंदर्यानुभूति का कोई उपयोग नहीं होता।

प्रयोगात्मक सौंदर्यशास्त्र—इसके प्रवर्त्तक जी० टी० फेकनर हैं। इन्होंने १८७१ में 'सौंदर्यात्मक प्रयोग' नामक लेख के द्वारा सौंदर्यशास्त्र के क्षेत्र में एक नया अध्याय प्रारंभ किया, जिसमें प्रयोगशाला के सिद्धांतों के अनुसार सौंदर्य की छानबीन करने की बात कही गई थी। इस सिद्धांत के अनुसार पदार्थों की सुंदरता का मापदंड मनुष्य है और सौंदर्य का मापदंड उसकी अनुभूति एवं अनुभव पर आश्रित होता है। इसमें अधिकांश प्रयोग की विधि प्रभाव में आश्रित होती है और पात्र वस्तु के प्रभाव को व्यक्त करता है।

निर्देशक उससे विभिन्न वस्तुओं के संबंध में प्रश्न करता है कि अमुक वस्तु अच्छी है या बुरी? इसी प्रकार कई रंगों में कौन अधिक आकर्षक है? इनके उत्तर में पात्र अपनी भावनाओं को लिपिबद्ध करता है। इस प्रकार की विधि लगातार बढ़ती गई है और कई देशों में प्रयोगशालाएँ भी स्थापित हो गई हैं तथा संगीत, चित्र-कला और काव्य पर प्रयोगात्मक अनुसंधान किए गए हैं। इस संबंध में ज्ञान के विविध क्षेत्रों से सहायता ली गई है; जैसे—भाषाविज्ञान, ध्वनिशास्त्र, शरीरविज्ञान तथा मनोविज्ञान।

बेनेदितो क्रोचे (१८६६-१९५४ ई०)—आधुनिक युग के सौंदर्यशास्त्रियों में इटली के महान् विचारक क्रोचे विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनका

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'सौंदर्यशास्त्र' (Aesthetics) नामक ग्रंथ एक युगांतकारी रचना है। इनकी दार्शनिक अवधारणा मानस दर्शन के नाम से विख्यात है। क्रोचे के अनुसार सभी कलाएँ अभिव्यक्ति हैं, अतएव सभी अभिव्यक्ति कला है। इन्होंने बताया कि विश्व की प्रत्येक वस्तु के दो तत्त्व होते हैं—द्रव्य (Matter) और रूप (Form)। संसार में जो कुछ भी दिखाई पड़ता है, सब द्रव्य है और उसके द्वारा मनुष्य की आत्मा प्रकट रूप में क्रिया को प्रकाशित करती है। क्रोचे रूप को सौंदर्य का आधार मानते हैं। इनके अनुसार, 'यह रूप ही अभिव्यंजना है।' ये सौंदर्य को मानसिक या आध्यात्मिक तत्त्व मानते हैं। इनके अनुसार सौंदर्य वस्तु में न होकर मनुष्य की सौंदर्यात्मक क्रिया में होता है।

क्रोचे आत्मवादी दार्शनिक हैं। इन्होंने आत्मा की दो क्रियाएँ मानी हैं—विचारात्मक और व्यवहारात्मक। विचारात्मक क्रिया को ज्ञान भी कहते हैं, जिसके दो रूप हैं—सहजानुभूति (Intution) और तर्क (Concept)। विचारात्मक क्रिया के भी दो भेद हैं—आर्थिक और नैतिक। क्रोचे ने सहजानुभूति को ही अभिव्यंजना कहा है। उन्होंने उक्ति के ही सौंदर्य को सौंदर्य मानकर काव्यानुभूति को अखंड एवं विलक्षण स्वीकार किया। क्रोचे की मान्यताओं के आधार पर पाश्चात्य सौंदर्य-चिंतन के अंतर्गत कलावाद का जन्म हुआ, जिसका समर्थन रोजरफ्राइ, क्लाइबबेल, ए० सी० ब्रेडले, वाल्टर पेटर और आर० जी० कॉलिंगवुड आदि विचारकों ने किया।

पाश्चात्य सौंदर्य-चिंतन की लगभग ढाई हजार वर्षों की परंपरा में अनेक विचार-सरणियों का आविर्भाव हुआ, जिन्हें अध्यात्मवाद, उपयोगितावाद, बुद्धिवाद, भाववाद, रूपवाद, साहचर्यवाद एवं मूल्यवाद कहा गया है। अध्यात्मवादी चिंतकों में प्लेटो, प्लाटिनस तथा हीगल मुख्य हैं। इन्होंने सौंदर्य को ईश्वर का रूप कहकर सौंदर्यानुभूति को दिव्य अध्यात्म-साधना का रूप प्रदान किया। उपयोगितावादी सौंदर्यशास्त्रियों के अनुसार सौंदर्य का संबंध नीति एवं उपयोगिता से है। इन्होंने सौंदर्य की समाजपरक व्याख्या प्रस्तुत की है। इन्होंने बताया कि देश और काल-भेद के अनुसार सौंदर्यात्मक दृष्टि में परिवर्तन होता है और सौंदर्य सामाजिक परिस्थितियों और दृष्टिकोण पर आधृत रहता है। मार्क्सवादी चिंतकों का यही मत है। एडमंड बर्क, जॉन रस्किन और काडवेल आदि ऐसे ही विचारक हैं। बुद्धिवादी चिंतकों में सेंटथामस, जॉनलॉक, कांट आदि आते हैं। इनके अनुसार सौंदर्य स्वच्छंद कल्पना-द्वारा प्रस्तुत वह विचार है, जो चिंतन को प्रवाहित करे। भाववादी चिंतकों ने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कलागत सौंदर्य का विश्लेषण किया है। ऐसे विचारकों में टालस्टाय, आई० ए० रिचार्ड्स, जार्ज सँतायना, आर० जी० कॉलिंगवुड आदि आते हैं। मूल्य-वादी सिद्धांत के अनुसार किसी वस्तु का सौंदर्य मूल्य-संबंधी ऐसी धारणा है, जो देश-काल की परिस्थिति के अनुसार परिवर्त्तित होती रहती है। इस वर्ग में आई० ए० रिचार्ड्स, गैरिट्ट आदि आते हैं। इन्होंने कला के नैतिक एवं सौंदर्यात्मक मूल्य का प्रतिपादन किया है।

पाश्चात्य सौंदर्यशास्त्रियों ने काव्य या कला का लक्ष्य आनंदानुभूति प्रदान करना माना है। उनके अनुसार काव्यजन्य आनंद कल्पनाजन्य आनंद है। उन्होंने बताया कि सामान्य जीवन के भाव कलाकृति में आनंददायक बन जाते हैं। रस-सिद्धांत और सौंदर्यशास्त्र की अनेक अवधारणाएँ एक दूसरे के निकट हैं। रस का मूल उद्देश्य ऐंद्रियबोध, अनुभूति और भाव की व्याख्या करना है और एस्थेटिक्स शब्द ऐंद्रियबोध का वाचक है। सौंदर्यशास्त्र का विषय-क्षेत्र ललित कलाओं तक परिमित है, उसमें उपयोगी कलाओं की प्रविधि का विवेचन नहीं होता। भारतीय रसशास्त्र भी दृश्यकाव्य, नृत्य, अभिनय, चित्र तथा काव्य से संबद्ध है। वस्तुतः इसका भी संबंध ललितकलाओं से ही है। अतः, विषय-क्षेत्र की दृष्टि से दोनों में साम्य है।

मूल लक्ष्य के विचार से भी दोनों की अवधारणाओं में समता दिखाई पड़ती है। सौंदर्यशास्त्र का उद्देश्य सौंदर्य का उद्घाटन करना है, जो सामान्य न होकर शुद्ध कलात्मक लालित्य है। रसानुभूति भी कलानुभूति है। सौंदर्य-शास्त्र के अंतर्गत कलासृष्टि की प्रक्रिया, कला के आस्वाद का स्वरूप, कला की विषय-वस्तु का सामाजिक की दृष्टि से महत्त्व आदि का भी विचार किया जाता है और ये सारे विषय रस-सिद्धांत में भी विवेचित होते हैं। डॉ० कांतिचंद्र पांडेय ने रस को कलागत भावात्मक सौंदर्य का रूप माना है। [**दे० इंडियन एस्थेटिक्स, पृ० ३५**] सौंदर्य-शास्त्रियों ने भाव को ही कला का आधारभूत तत्त्व मानकर उसके अंतर्गत भाव-चित्रण, भावाभिव्यक्ति, भाव-प्रेषण और भावोद्दीपन की क्षमता का विवेचन किया है। भारतीय रसाचार्य भी भावों की परिपक्वावस्था को रस कहते हैं। उनके अनुसार रस-निष्पत्ति का मूलाधार स्थायी भाव है, जो विभावादि भावों से परिपुष्ट होकर रसास्वादन करने में समर्थ होता है।

रसाचार्यों ने रसानुभूति को ऐंद्रिय-मानसिक आनंद माना है। उनके अनुसार रसानंद आत्मिक आनंद है। काव्यानंद (रसानुभूति) कल्पना का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आनंद है और वह सभी प्रकार के लौकिक और आध्यात्मिक आनंद से भिन्न एक विलक्षण प्रकार का निरपेक्ष आनंद है। डॉ० गणपतिचंद्र गुप्त ने भारतीय रस-सिद्धांत और सौंदर्यशास्त्र का तुलनात्मक अध्ययन कर दोनों की तालिका प्रस्तुत की है—

भारतीय मत	पाश्चात्य मत
ऐंद्रिय-बोध	ऐंद्रिय-बोध
अर्थ-बोध	अर्थ-बोध
भावना	बिंब-ग्रहण
साधारणीकरण	निर्वैयक्तिकता या तादात्म्य
आस्वादन	स्वतंत्र बिंबों का उदय
अभिव्यक्ति	सामंजस्य (विभिन्न अंतर्वृत्तियों में पारस्परिक समन्वय)।

आधार ग्रंथ

History of Aesthetics	B. Bosanquet
Aesthetics	B. Croce
Theory of Beauty	E. F. Carriate
Western Aesthetics	Dr. K. C. Pandey
रस-सिद्धांत और सौंदर्यशास्त्र	डॉ० निर्मला जैन
रस-सिद्धांत का पुनर्विवेचन	डॉ० गणपतिचंद्र गुप्त
सौंदर्यशास्त्र की पाश्चात्य-परंपरा	श्री राजेंद्र प्रताप सिंह

रस की पुनः पुनः दीप्ति—रसदोष चौथा प्रकार। [दे० रसदोष]

रसदोष—रसास्वाद में बाधा या विघ्न उपस्थित करनेवाले तत्त्व रसदोष कहे जाते हैं। यदि रसास्वाद में किसी प्रकार का व्यवधान आ गया तो वहाँ स्थिति उद्वेगजनक हो जाती है। कतिपय आचार्यों ने रसापकर्ष को ही दोष का सामान्य लक्षण मान लिया है। भारतीय काव्यशास्त्र में रस-विघ्न या रसभंग का विवेचन, स्रष्टा एवं भोक्ता, दोनों की ही दृष्टियों से हुआ है। आनंदवर्द्धन, मम्मट एवं विश्वनाथ ने वैज्ञानिक ढंग से रसदोषों का विवेचन किया है। मम्मट-कृत रसदोषों का विवेचन इस प्रकार है—

(१) व्यभिचारी भाव, रस तथा स्थायी भावों का स्वशब्द से कथन,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(२) अनुभाव और विभाव की कष्टकल्पना से अभिव्यक्ति, (३) प्रतिकूल विभावादि का ग्रहण, (४) रस की पुनः-पुनः दीप्ति, (५) अकांडप्रथन, (६) अकांड छेदन, (७) अंग रस का अत्यधिक विस्तार, (८) अंगी का अननु-संधान या प्रधान रस को भूल-जाना, (९) प्रकृति-विपर्यय, (१०) अनंग कथन।

व्यभिचारिरसस्थायिभावानां शब्दवाच्यता।
कष्टकल्पनयाव्यक्तिरनुभावविभावयोः ।।
प्रतिकूलविभावादिग्रहोदीप्तिः पुनः पुनः ।
अकांडे प्रथनच्छेदौ अंगस्याप्यतिविस्तृतिः ।।
अंगिनोऽननुसंधानं प्रकृतीनां विपर्ययः ।
अनंगस्याभिधानं च रसे दोषाः स्युरीदृशाः ।।

—काव्यप्रकाश, ७/६१-६२

मम्मट का रसदोष-निरूपण 'ध्वन्यालोक' पर आश्रित है—

विरोधिरससंबंधि विभावादिपरिग्रहः ।
विस्तरेणान्वितस्यापि वस्तुनोऽन्यस्यवर्णनम् ।।
अकांड एव विच्छित्तिरकांडे च प्रकाशनम् ।
परिपोषं गतस्यापि पौनःपुन्येन्य दीपनम् ।।
रसस्य स्याद्विरोधाय वृत्त्यनौचित्यमेव च ।

—ध्वन्यालोक, ३/१८-१९

विश्वनाथ ने मम्मट के सभी दोषों को स्वीकार कर अनौचित्य दोष नामक एक भेद को बढ़ाया है।

अनौचित्यमन्यच्च दोषा रसगता मताः।

—साहित्यदर्पण, ७/१५

१. स्वशब्द वाच्यता—रस, स्थायी भाव या संचारी भावों को उनके वाचक शब्दों द्वारा कथन करना स्वशब्द-वाच्यता दोष है। इसके लिए तर्क दिया जाता है कि रस या भावों की व्यंजना होनी चाहिए, स्पष्ट शब्दों में कथन नहीं। रस-व्यंग्य होता है, अभिधा-द्वारा इसकी अभिव्यक्ति नहीं होती; अतः किसी रस या भाव का नाम ले लिया जाय तो वहाँ रसदोष हो जाएगा।

व्यभिचारि भाव का स्वशब्द से कथन—

जाता लज्जावतीमुग्धाप्रियस्य परिचुंबने ।।

"प्रियतम के द्वारा चुंबन करने पर वह मुग्धा लज्जावती हो गई।" यहाँ 'लज्जा' संचारी का नाम आ जाना स्वशब्दवाच्यत्व दोष है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जानि गौरि अनुकूल, सिय हिय हर्ष न जात कहि ।

यहाँ हर्ष संचारी का शब्द-द्वारा कथन होने में स्वशब्दवाच्यता दोष है ।

स्थायीभाव—

अजायत रतिस्तस्य त्वयि लोचनगोचरे ॥

यहाँ 'रति' स्थायी का शब्द से कथन है ।

मुख सूखहिं लोचन स्रवहिं, सोक न हृदय समाय ।
मनहु करुन रस कटक लै, उतरा अवध बजाय ॥

यहाँ 'शोक' स्थायी का शब्दतः कथन होने से दोष है ।

रस—

तामुद्वीक्ष्य कुरंगाक्षीं रसो नः कोप्यजायत ।
चंद्रमंडलमालोक्य शृंगारे मग्नमंतरम् ॥

"उस मृगनयनी को देखते ही हमलोगों को अपूर्व रस का अनुभव हुआ । चंद्रमंडल को देखकर हृदय शृंगार में मग्न हो गया ।" यहाँ रस एवं शृंगार का शब्दतः कथन किया गया है ।

हौं बलि चलि वाको छिनक लीजै आजु निहार ।
उमगत है चहुँ ओर छबि मानहु रस शृंगार ॥

यहाँ रस एवं शृंगार शब्दों के कथन में दोष है ।

२. विभाव-अनुभाव की कष्टकल्पना—रस में विभावानुभाव की योजना स्वाभाविक रीति से होनी चाहिए, यदि कष्टकल्पना से रस में इनकी प्रतीति हो तो दोष हो जाएगा । रसबोध में विभाव-अनुभाव की स्पष्ट प्रतीति आवश्यक है; यदि इनकी प्रतीति में विघ्न उपस्थित हो जाय तो वहाँ दोष होगा ।

कष्टकल्पना से अनुभाव की अभिव्यक्ति—

कर्पूरधूलिधवलद्युतिपूरधौत
दिङ्मंडले शिशिररोचिषि तस्य यूनः ।
लीलाशिरोंऽशुकनिवेशविशेषक्लृप्ति-
व्यक्तस्तनोन्नतिरभून्नवयौवना सा ॥

"कर्पूर की धूलि के सदृश उज्ज्वल चंद्रिका से दिशाओं को भर देनेवाले चंद्रमा के उदित होने पर वह नायिका, जिसके सिर के वस्त्र के लपेटने के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विशेष ढंग से उसके स्तनों का उभार प्रकट हो रहा था, उस तरुण की दृष्टि में आई।" यहाँ चंद्रमा, शिरोंशुक उद्दीपन विभावों की विद्यमानता का वर्णन है और नायिका भी विद्यमान है; किंतु तरुण पुरुष के अनुभावों का स्पष्ट कथन नहीं किया गया है। यह कष्ट-कल्पना से प्रतीत होता है।

कीन्ह धवल छबि चंद्रमा, भुवि मंडल दिवि लोकु।
भ्रू विलास कछु हासयुत, रमनी मुख अवलोकु॥

—यहाँ आलंबन नायिका एवं उद्दीपन चंद्रोदय का वर्णन है; किंतु नायक के अनुभावों का उल्लेख नहीं किया गया है।

३. परिपंथिरसांगपरिग्रह—प्रतिकूल विभावादि का ग्रहण अर्थात् जिस रस की जो सामग्री हो, उसके विरोधी रस की सामग्री के वर्णन में यह दोष होता है। करुण, रौद्र, वीभत्स, वीर, भयानक एवं शांत रस शृंगार रस के विरोधी हैं और हास्य के विरोधी हैं भयानक एवं करुण। हास्य और शृंगार करुण के विरोधी हैं। हास्य, भयानक और शृंगार रौद्र रस के विरोधी हैं। हास्य, शृंगार, वीर, रौद्र एवं शांत भयानक रस के विरोधी हैं। शांत रस के विरोधी हैं—शृंगार, हास्य, रौद्र, भयानक और वीर। शृंगार रस वीभत्स का विरोधी है और वीर रस के विरोधी हैं भयानक तथा शांत।

निभृत रमणे लोचन पथे पतिते गुरुजनमध्ये।
सकल परिहारहृदया वनगमनमेवेच्छतिवधूः॥

"गुरुजनों के मध्य उपपति के दिखलाई पड़ने पर वह वधू सारे कार्यों को छोड़कर वन जाना चाहती है।" सब कुछ को छोड़कर वन जाना शृंगार तथा शांत, दोनों का अनुभाव है, अतः दोष है। शृंगार के प्रतिकूल शांत रस के अनुभाव का वर्णन हो जाने से दोष है; किंतु यदि नायिका ईंधन आदि लाने के लिए वन जाना चाहती है तो वहाँ शृंगार ही होगा, शांत नहीं।

इस पार प्रिये तुम हो मधु है, उस पार न जाने क्या होगा?

यहाँ प्रथम चरण में शृंगार का तथा द्वितीय चरण में अज्ञात लोक की वेदना का कथन है। प्रेमिका से अज्ञात लोक की चर्चा करने में दोष है।

४. रस की पुनः दीप्ति—रस के कुछ ऐसे दोष हैं, जो मुक्तक काव्य में न होकर केवल प्रबंध काव्य एवं नाटक में होते हैं। अभी तक जिन दोषों का वर्णन किया गया है, वे मुक्तक के हैं या उनकी स्थिति किसी पद्य में देखी जा सकती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जब किसी रस का बार-बार उद्दीपन या दीप्ति हो तो रस की पुनर्दीप्ति दोष होता है। एक ही रस का बार-बार वर्णन करने में दोष आ जाता है। रस के प्रसंग की समाप्ति होने पर भी उसके बार-बार वर्णन में दोषाधान होता है। उदाहरण के लिए महाकवि कालिदास-कृत 'कुमारसंभव' को रखा जा सकता है, जिसमें बार-बार रति का विलाप रस की पुनर्दीप्ति का रूप उपस्थित करता है।

५. अकांडप्रथन—जब अनुचित स्थान में किसी रस का विस्तार दिखलाया जाय तो अकांडप्रथन दोष होगा। अकांड प्रथन का अर्थ 'असमय में कथन' है। उदाहरण के लिए 'वेणीसंहार' नाटक के द्वितीय अंक में युद्ध के अवसर पर, दुर्योधन एवं उसकी पत्नी भानुमति की प्रणय-लीला का वर्णन—यहाँ युद्ध के अवसर पर शृंगार का वर्णन अनुचित है।

६. अकांडछेदन—अकांडछेदन का अर्थ है 'असमय में विच्छेद।' जब असमय में किसी रस का विच्छेद (भंग) हो जाय, तो अकांडछेदन दोष होगा। जैसे 'महावीर-चरित' नाटक के द्वितीय अंक में रामचंद्र तथा परशुराम के वीर रसात्मक विवाद को बीच में भंग कर रामचंद्र के इस कथन में कि 'कंकणमोचनाय गच्छामि' वीर रस के विच्छेद के कारण दोष हैं।

७. अंगभूत रस का अति विस्तार—जब किसी गौण रस (अंगभूत) का अत्यंत विस्तार के साथ वर्णन किया जाय तो यह दोष होगा। जैसे महाकवि भारवि के 'किरातार्जुनीय' महाकाव्य के अष्टम सर्ग में अप्सराओं की रति-क्रीड़ाओं का विस्तृत वर्णन।

यह महाकाव्य वीर रस प्रधान है, इसमें शृंगार का अधिक विस्तार दोषपूर्ण है।

८. अंगी का अननुसंधान—अंगी के अननुसंधान का अर्थ है काव्य के नायक या नायिका की विस्मृति। रस का अनुभव आलंबन तथा आश्रय पर निर्भर करता है, यदि उन्हीं को विस्मृत कर दिया जाय तो रसास्वाद में विघ्न उपस्थित हो जायगा। उदाहरणस्वरूप श्रीहर्ष की 'रत्नावली' नाटिका को रखा जा सकता है। इसके चतुर्थ अंक में बाभ्रव्य-द्वारा सागरिका की विस्मृति में अंगी का अननुसंधान दोष है। सागरिका इस नाटिका की प्रधान नायिका है।

९. प्रकृतिविपर्यय—जब काव्य में निरूपित नायक के भेदों का विपरीत वर्णन किया जाय तो प्रकृतिविपर्यय दोष होगा। काव्य या नाटक में तीन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रकार के नायक वर्णित हैं—दिव्य. अदिव्य और दिव्यादिव्य। इन्हें क्रमशः देवता, मनुष्य तथा देवावतार कहते हैं। यदि इनकी प्रकृति के विपरीत वर्णन किया जाय तो प्रकृतिविपर्यय दोष होगा।

१०. **अनंग वर्णन**—ऐसे रस का वर्णन किया जाय, जो वर्णन का अंग न हो तो अनंग वर्णन दोष होगा।

जैसे, 'कर्पूर मंजरी' में विभ्रमलेखा नायिका एवं राजा चंद्रसेन-द्वारा प्रस्तुत किए गए वसंत-वर्णन का तिरस्कार कर बंदीजन द्वारा किए गए वसंत-वर्णन की राजा द्वारा प्रशंसा। इनके अतिरिक्त अन्य रसदोष भी हैं, जिनमें देश, काल, वर्ण तथा शास्त्र-विरोधी बातों का समावेश किया जाता है।

देशविरुद्ध—पृथ्वी पर अमृत पान तथा स्वर्ग में वृद्धत्व और व्याधि का वर्णन।

कालविरुद्ध—ग्रीष्म ऋतु में अग्नि-सेवन और शीत ऋतु में जल-विहार का वर्णन।

वर्ण-विरुद्ध—ब्राह्मण का आखेट करना, क्षत्रिय का दान लेना।

आश्रम-विरुद्ध—ब्रह्मचारी का स्त्री-सेवन।

रस विरोध का परिहार—रसों का पारस्परिक विरोध तीन कारणों से होता है—

१. किन्हीं दो रसों का एक ही आलंबन होना—उदाहरण के लिए वीर अथवा श्रृंगार रस का एक ही आलंबन होना। यदि दो रसों का एक ही आलंबन हो तो रस दोष हो जायगा।

२. यदि दो रसों का एक ही आश्रय हो तो रस-विरोध का कारण होगा। जैसे वीर और भयानक रसों का एक ही आश्रय होना।

३. रसों का नैरंतर्य से वर्णन होना—जैसे शांत और श्रृंगार का नैरंतर्य से वर्णन।

इन तीनों के विरोध का परिहार इस प्रकार संभव है। आलंबन और आश्रय की एकता के कारण विरोध होने पर उन विरोधी रसों का वर्णन आलंबन अथवा आश्रय के भेद से करने पर विरोध का परिहार हो जाता है। जहाँ कालिक या नैरंतर्य के कारण विरोध हो, वहाँ उसका परिहार व्यवधान से वर्णन करने से होता है। आचार्य मम्मट ने इस संबंध में अपना विचार इस प्रकार दिया है, जिस पर ध्वनिकार का प्रभाव है—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Publio Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आश्रयैक्ये विरुद्धो यः स कार्यो भिन्न संश्रयः ।
रसांतरेणांतरितो नैरंतर्येण यो रसः ।।

—काव्यप्रकाश, ७/६४

रसांतरांतरितयोरेकवाक्यस्थयोरपि ।
निवर्तते हि रसयोः समावेशे विरोधिता ।।

—ध्वन्यालोक, ३/२७

मम्मटाचार्य रसविरोध-परिहार के लिए अन्य तीन साधन भी बताते हैं—

क. विरोधी रस का स्मर्यमाण रूप में वर्णन करना ।

ख. प्रकृत रस के साथ किसी रस का साम्य-भाव से वर्णन ।

ग. एक रस का दूसरे रस का अंगी बन जाना ।

स्मर्य्यमाणोविरुद्धोऽपि साम्येनाथ विवक्षितः ।
अंगिन्यं गत्वमाप्तौ यौ तौ न दुष्टौ परस्परम् ।।

—काव्यप्रकाश, ७/६५

यदि प्रधान रस के साथ किसी विरोधी रस का स्मृति रूप में समावेश किया जाय तो वहाँ रसविरोध मिट जाता है ।

क. रस का साम्यभाव से विवक्षित होना—या दो रसों में समानतापूर्वक वर्णन की इच्छा का होना ।

ख. प्रधानभूत तृतीय रस के अंगभूत रसों में अविरोध का होना । इसमें विरोधी रसों में कोई प्रधान न होकर दोनों ही किसी तीसरे रस के अंग होते हैं ।

रसध्वनि—ध्वनि का एक भेद । [दे० ध्वनि-सिद्धांत] रसध्वनि असंलक्ष्यक्रमव्यंग्यध्वनि का भेद है । [दे० असंलक्ष्यक्रमव्यंग्यध्वनि] इसके अंतर्गत सभी रस, भाव, भावाभास, भावोदय, भावशांति, रसाभास, भावसंधि तथा भावशबलता की परिगणना की जाती है । ध्वनि के सभी भेदों में रसध्वनि श्रेष्ठ है। अभिनवगुप्त ने मात्र रसध्वनि को ही काव्य की आतमा माना है और वस्तु तथा अलंकारध्वनि को इसी में (रसध्वनि में) पर्यवसित (अंतर्भूत) कर दिया है । रसध्वनि तथा ध्वन्यमान रस में कोई अंतर नहीं है । वस्तु एवं अलंकारध्वनि वाच्यार्थ से उत्कृष्ट हैं; अतः इन्हें सामान्यतः काव्य का प्राण मान लिया जाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स एवेति प्रतीयमान मात्रेऽपि प्रक्रांते तृतीय एव रस-ध्वनिरिति मंतव्यम्। तेन रस एव वस्तुतः आत्मावस्त्वलंकारध्वनि तु सर्वथा रसं प्रति पर्यवस्यते इति वाच्यादुत्कृष्टौ तावित्यभिप्रायेणध्वनिः काव्यस्यात्मेति सामान्येनोक्तम्।

—ध्वन्यालोक, १/५ पर लोचन

पंडितराज जगन्नाथ ने भी रसध्वनि को ही काव्य का आत्मत्व प्रदान किया है। इनके अनुसार ध्वनि के सभी भेदों में रसध्वनि परम रमणीय है; क्योंकि इसी में परमाह्लाद रूप रस का बोध होता है।

पंचात्मके ध्वनौ परमरमणीयतया रसध्वनेस्तदात्मा रसस्तावदभिधीयते।

—रसगंगाधर, पृ० ३७

रस-निष्पत्ति—रस-निष्पत्ति का अभिप्राय रस की उत्पत्ति से है। इसके अंतर्गत इस तथ्य का प्रतिपादन किया गया है कि रस की उत्पत्ति कहाँ होती है अर्थात् रसानुभव या रस-बोध किसे होता है। भरत ने 'नाट्यशास्त्र' के रसाध्याय (षष्ठ अध्याय) में सूत्र-रूप में बतलाया है कि विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी (भाव) के संयोग से रस की निष्पत्ति या उत्पत्ति होती है—

विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।

रस-निष्पत्ति-संबंधी भरत-सूत्र की व्याख्या करते हुए भट्टलोल्लट, श्रीशंकुक, भट्टनायक तथा अभिनवगुप्त ने रस-विषयक चार मतों का प्रवर्त्तन किया—उत्पत्तिवाद (आरोपवाद), अनुमितिवाद, भुक्तिवाद (भोगवाद) और अभिव्यक्तिवाद। इन आचार्यों में से केवल अभिनवगुप्त का ग्रंथ 'अभिनव भारती' ही उपलब्ध है और अन्य आचार्यों की रचनाएँ अप्राप्य हैं। 'ध्वन्यालोकलोचन', 'काव्यप्रकाश' तथा 'काव्यानुशासन' में भी उपर्युक्त आचार्यों के विचार संक्षिप्त रूप में प्राप्त होते हैं। कहा जाता है कि लोल्लट, श्रीशंकुक तथा भट्टनायक (हृदय दर्पण) ने नाट्यशास्त्र की टीकाएँ लिखी थीं और उनमें अपनी रस-विषयक अवधारणाओं को प्रस्तुत किया था। अभिवनगुप्त ने 'अभिनव भारती' तथा 'लोचन' में इनके विचारों को पूर्वपक्ष के रूप में उद्धृत कर उनका खंडन किया है। विद्वानों का कहना है कि ये उद्धरण इन आचार्यों की विचार-सरणि का वास्तविक रूप उपस्थित न कर अभिनवगुप्त की दृष्टि से रखे गए हैं, जिसकी पुष्टि भट्टलोल्लट के 'काव्यप्रकाश' में उद्धृत मत तथा अभिनव भारती के उद्धरण की भिन्नता से होती है।

भट्टलोल्लट का उत्पत्तिवाद—भट्टलोल्लट के जीवन-संबंधी किसी तथ्य का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पता नहीं चलता। डॉ० कांतिचंद्र पांडेय के अनुसार ये काश्मीरी दार्शनिक कल्लट के समसामयिक थे। (नवीं शती)। [स्वतंत्र कलाशास्त्र, पृ० ६८]

'नाट्यशास्त्र' के प्रथम व्याख्याता होने के कारण इनकी मान्यताओं का भरतमत के साथ अधिक साम्य है। साथ ही ,इनके विवेचन में कतिपय नवीन संकेत भी हैं। 'अभिनवभारती' में भट्टलोल्लट का मत इस प्रकार है—

अत्र भट्टलोल्लटप्रभृतयस्तावदेवं व्याचख्युः—विभावादिभिः संयोगोऽर्थात् स्थायिनस्ततो रसनिष्पत्तिः। तत्र विभावश्चित्तवृत्तेः स्थाय्यात्मिकाया उत्पत्तौ कारणम्। अनुभावाश्च न रसजन्या अत्र विवक्षिताः, तेषां रसकारणत्वेन गणनानर्हत्वात्। अपितु भावानामेव येऽनुभावाः। व्यभिचारिणश्च चित्तवृत्त्यात्मकत्वात् यद्यपि न सहभाविनः स्थायिना, तथापि वासनात्मनेह तस्य विवक्षिताः। दृष्टांतेऽपि व्यंजनादिमध्ये कस्यचिद्वासनात्मकता स्थायिवत् अन्यस्योद्भूतता व्यभिचारिवत्। तेन स्थाय्येव विभावानुभावादिभिरुपचितो रसः। स्थायी त्वनुपचितः। स चोभयोरपि। मुख्यया वृत्त्या रामादावनुकार्ये, अनुकर्तरि च नटे रामादिरूपतानुसंधानबलादिति।

—अभिनवभारती, प्रथम भाग पृ० २७२

'भट्टलोल्लट आदि [**व्याख्याताओं**] ने [**इस सूत्र की**] इस प्रकार व्याख्या की है कि विभावादि का जो संयोग अर्थात् स्थायिभाव के साथ [**विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारि भावों का संयोग**] उससे रस की निष्पत्ति (अर्थात् उत्पत्ति) होती है। उन [**विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारिभावों**] में से विभाव स्थायीभाव-रूप चित्तवृत्ति की उत्पत्ति में कारण होते हैं। अनुभाव शब्द से यहाँ रसजन्य [**कटाक्षादि रूप**] अनुभाव विवक्षित नहीं हैं; क्योंकि उन [**रसजन्य अनुभावों**] की गणना रस के कारणों में नहीं की जा सकती [**वे तो रस के कार्यभूत होते हैं**]। अपितु [**यहाँ रस के कारणभूत अनुभवों में रत्यादि स्थायी**] भावों के ही जो [**पीछे उत्पन्न होने के कारण**] अनुभाव हैं [**उनका ग्रहण विवक्षित है**]। और [**निर्वेद आदि**] व्यभिचारिभाव चित्तवृत्ति-स्वरूप होने से [**'युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिंगम' इस नियम के अनुसार रति-रूप तथा निर्वेदादि रूप दो प्रकार की चित्तवृत्तियाँ एक समय में नहीं हो सकती हैं, इसलिए**] यद्यपि स्थायिभाव के साथ नहीं रह सकते हैं; किंतु यहाँ उस [**स्थायि भाव**] के संस्कार रूप से विवक्षित हैं। [**इसलिए रस रूप से स्थित रत्यादि स्थायिभावों के साथ संस्कार रूप में निर्वेदादि व्यभिचारिभाव रह सकते हैं**]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

[रस के उपपादन के लिए आगे दिए जानेवाले व्यंजनादि रूप] दृष्टांत में भी व्यंजनादि के बीच में किसी [रस] की स्थायिभाव के सामने अनुद्‍भूत [वासनात्मक] रूप में स्थिति होती है, और दूसरे की व्यभिचारिभाव के समान उद्‍भूत रूप में। इसलिए 'विभाव-अनुभाव आदि से परिपुष्ट किया हुआ स्थायिभाव ही रस है।' और अपरिपुष्ट [स्थायिभाव रस से भिन्न] स्थायि-भाव [कहलाता] है। [यह रस तथा स्थायिभाव का भेद है]। वह [रस, अनुकार्य रामादि तथा अनुकर्त्ता नट] दोनों में रहता है। मुख्य रूप से [जिसका अनुकरण नट करता है उस] अनुकार्य रामादि में रहता है। तथा रामादिरूपता की प्रतीति होने के कारण [गौणरूप से] नट में भी रस की प्रतीति होती हैं।'

—हिंदी अभिनवभारती, पृ० ४२२-२३

'ध्वन्यालोकलोचन' में उद्‍धृत भट्टलोल्लट का मत—

तथाहि पूर्वावस्थायां यः स्थायी स एव व्यभिचारिसंपातादिना प्राप्तपरि-पोषोऽनुकार्यंगत एव रसः। नाट्ये तु प्रयुज्यमानत्वान्नाट्यरस इति केचित्।

अर्थात्—पूर्वावस्था में जो स्थायी वही व्यभिचारी के संपात् इत्यादि के द्वारा परिपोष को प्राप्त होकर अनुकार्यगत ही रस होता है। नाट्य में प्रयुक्त होने के कारण इसे कुछ लोग नाट्यरस कहते हैं।

मम्मट द्वारा उद्‍धृत मत—

विभावैर्ललनोद्यानादिभिरालंबनोद्दीपनकारणैः रत्यादिको भावो जनितः; अनुभावैः कटाक्षभुजाक्षेपप्रभृतिभिः कार्यैः प्रतीतियोग्यः कृतः; व्यभिचारिभिर्नि-र्वेदादिभिः सहकारिभिरुपचितो; मुख्ययावृत्त्या रामादावनुकार्ये; तद्रूपतानु-संधानान्नर्त्तकेऽपि प्रतीयमानो रस इति भट्टलोल्लटप्रभृतयः।

—काव्यप्रकाश, चतुर्थ उल्लास

विभाव अर्थात् ललना आदि आलंबन और उद्यान आदि उद्दीपन कारणों द्वारा जो रति आदि भाव उत्पन्न होता है, अनुभाव अर्थात् कटाक्ष, भुज फड़कना आदि कार्यों से प्रतीति-योग्य किया जाता है, व्यभिचारी भाव अर्थात् निर्वेद आदि सहकारियों द्वारा पुष्ट (उपचित) किया जाता है और साक्षात् रूप से (मुख्यया वृत्त्या) अनुकार्य (जिसका अनुकरण या अभिनय किया जाता है उस नायक) में रहता है, किंतु नर्त्तक (नट) में भी रामादिरूपता का अनु-भव होने के कारण वह (स्थायी) उसमें भी प्रतीत होता है, वही रस है।

—काव्यप्रकाश, हिंदी अनुवाद, पृ० १०६-७ अनु० डॉ० हरिदत्त शास्त्री।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अभिनव तथा मम्मट के माध्यम से उपलब्ध भट्टलोल्लट का मत दो रूपों में प्रस्तुत किया गया है तथा दोनों की उपस्थापन-दृष्टि में अंतर है। अभिनव गुप्त द्वारा उद्धृत मत के अनुसार स्थायी भाव ही रस-निष्पत्ति के कारणों से परिपुष्ट होकर रस-रूप में परिणत होता है अर्थात् विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारी से जब स्थायी भाव पुष्ट होता है, तभी रस की निष्पत्ति होती है। अतः, स्थायी और रस में मात्रागत भेद है, जातिगत नहीं। लोल्लट के अनुसार भरतसूत्र के अंतर्गत 'निष्पत्ति' का अर्थ हुआ स्थायी भाव का कारण-सामग्री से युक्त होकर परिपुष्ट होना तथा रस-रूप में परिणत हो जाना। इन्होंने विभावादि को रस का कारण मानकर स्थायी भाव के साथ उसका उत्पाद्य-उत्पादक-भाव-संबंध स्वीकार किया। अनुभावों का संबंध अनुमाप्य एवं अनुमापक भाव का है तथा व्यभिचारी का पोष्य-पोषक-भाव का। इन्होंने बताया कि रस तथा भाव दोनों ही साक्षात् रूप से अनुकार्य (रामादि मूल पात्रों) में रहते हैं और उनका अनुभाव अनुकर्त्ता (नट) को होता है अर्थात् अभिनय-कौशल के द्वारा अनुकर्त्ता नटों में भी रामादि पात्रों की रूपता का अनुसंधान करने के कारण रस विद्यमान रहता है।

भट्टलोल्लट के इस मत में सामाजिक (दर्शक) का प्रत्यक्षतः उल्लेख नहीं है और अभिनय-कौशल के कारण ही अनुकर्त्ता में रस की स्थिति स्वीकार की गई है। इनके अनुसार अनुकार्य में रस की प्रतीति प्रधान रूप से और उसका अनुकरण करने के कारण अनुकर्त्ता में गौण-रूप से होती है। मूलपात्रों में (अनुकार्य में) रस की उत्पत्ति मानने के कारण इनके मत की अभिधा उत्पत्तिवाद है। ऐतिहासिक पात्रों का अभिनेता पर आरोप करने के कारण इसे आरोपवाद भी कहा गया है। लोल्लट ने सूत्रगत 'संयोग' शब्द का अर्थ वही किया है, जो भरत को मान्य था अर्थात् स्थायी भाव के साथ संयोग। यहाँ स्थायी भाव के आश्रय रामादि हैं (अनुकार्य)। नट को अनुसंधानकर्त्ता मानकर अनुसंधान के बल से उसमें भी रस की उत्पत्ति मानी गई है। संस्कृत आचार्यों ने 'अनुसंधान' शब्द के कई अर्थ किए हैं—(१) आरोप, (२) अभिमान, (३) योजन। यहाँ आरोप का अर्थ नट-द्वारा अपने में 'रामत्वादि' का आरोप है तो अभिमान का अर्थ नट का अभिनय-काल में अपने को रामादि समझना तथा अभिमान और योजन का अर्थ होगा कि 'पहले जो मैं नट था, वही अब मैं राम हूँ' (अशुद्धानुसंधान) और तत्पश्चात् 'मैं राम हूँ' (शुद्धानुसंधान)। [दे० हिंदी काव्यप्रकाश—डॉ० सत्यव्रत सिंह, पृ० ६८] डॉ० नगेंद्र के अनुसार

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तीनों ही शब्द "तादात्म्य के मात्रा-भेद के ही द्योतक है : 'आरोप' में तादात्म्य बहुत कुछ बाह्य; 'अभिमान' में आंतरिक हो जाता है—कदाचित् वह शैव-दर्शन के 'अशुद्धानुसंधान' तक ही पहुँच पाता है और 'योजन' में पूर्ण हो जाता है, अर्थात् शैव-दर्शन के 'शुद्धानुसंधान' की कोटि तक पहुँच जाता है।"

—रस-सिद्धांत, पृ॰ १४२

मम्मट के उद्धरण का दृष्टिकोण भिन्न है और 'प्रतीयमान' कहकर सामाजिक की स्थिति का निर्देश किया गया है। इसमें बताया गया है कि मुख्यतः रस अनुकार्य में होता है और उनके (अनुकार्य के) स्वरूप का अनुसंधान करने के कारण वह नट में भी प्रतीयमान होता है। 'काव्यप्रकाश' के टीकाकार गोविंद ठक्कुर ने 'प्रतीयमान' शब्द की व्याख्या करते हुए बताया है—'नट में रामादि अनुकार्य की तुल्यता के अनुसंधान के कारण सामाजिक उन्हीं पर रामादि का आरोप कर लेता है। परिणामस्वरूप, सामाजिक चमत्कृत होकर आनंद का अनुभव करता है।"

नटे तु तुल्यरूपतानुसंधानवशादारोप्यमाणः सामाजिकानां चमत्कारहेतुः।

—काव्यप्रदीप, पृ० ८८

दोनों मतों की भिन्नता को देखकर विद्वानों ने अभिनवगुप्त के ही उद्धरण को प्रामाणिक माना है। [**डॉ० नगेंद्र : रस-सिद्धांत, पृ० १४३**]

भट्टलोल्लट की नवीन स्थापनाएँ—

क. इनका मत भरत के मूल विचार के अति निकट है।

ख. भरत ने रस-सूत्र में विभाव, अनुभाव और संचारी (व्यभिचारी) भाव का ही उल्लेख किया था, स्थायी भाव का नहीं। इससे सूत्र में यह स्पष्ट नहीं था कि रस की निष्पत्ति इन तीनों अवयवों के पारस्परिक संयोग से ही होती है या इनका संबंध किसी अन्य तत्त्व से होता है, जिससे रस-निष्पत्ति होती है। भरत ने, अवश्य ही, अन्यत्र स्थायी भाव का उल्लेख किया था; पर सूत्र में उसका स्पष्ट निर्देश न होने के कारण स्थायी भाव की स्थिति स्पष्ट नहीं हो सकी थी। लोल्लट ने इस दोष को दूर कर बताया कि विभावादि का स्थायी भाव से संयोग होने पर ही रस-निष्पत्ति होती है।

ग. भरत ने विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी का उल्लेख सामान्य रूप में किया था; पर उनके क्रम, महत्त्व तथा योगदान पर विचार नहीं किया था अर्थात् विभावादि का रस के साथ कैसा संबंध होता है, इस पर वे मौन थे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लोल्लट ने रस-निष्पत्ति में प्रत्येक अवयव के योगदान पर दृष्टि डालते हुए बतलाया कि विभाव रस की उत्पत्ति के कारण, अनुभव उसके प्रकाशक, व्यभिचारी भाव उसके पोषक एवं स्थायी भाव उसका मूल है। स्थायी भाव ही विभावादिकों से परिपुष्ट होकर रस का रूप धारण करता है। इन्होंने विभाव का रस के साथ उत्पाद्य-उत्पादक-भाव का, अनुभाव के साथ गम्य-गमक-भाव का तथा संचारी के साथ पोष्य-पोषक-भाव का संबंध मानकर रस में उनकी स्थिति को स्पष्ट किया।

घ. इन्होंने रस का आश्रय अनुकार्य को माना अर्थात् रस की स्थिति मूल अनुकार्यों या ऐतिहासिक पात्रों में स्वीकार की और अनुकर्त्ता (नट या अभिनेता) में भी उसकी प्रतीति को अंगीकार किया, जिसका साधन है अनुसंधान या नट में रामत्व का आरोप। अनुकार्य में रस की अवस्थिति मानकर इन्होंने काव्य या नाटक का प्रत्यक्ष संबंध मूल पात्रों के साथ स्थापित किया, जिससे यह सिद्ध हुआ कि काव्य का मूल सौंदर्य उसकी कथावस्तु या मूल विषय में ही सन्निहित है।

ङ. इन्होंने रस की व्यक्तिपरक व्याख्या कर व्यक्ति की सत्ता को प्रतिष्ठित किया और अभिनेता में रसानुभूति का अनुसंधान कर नाट्यकला में नए अध्याय का समारंभ किया।

भट्टलोल्लट की दार्शनिक पृष्ठभूमि—भट्टलोल्लट की रस-व्याख्या का आधार मीमांसा-दर्शन को मानकर उन्हें मीमांसक बतलाया गया है। 'अभिनवभारती' के एक उद्धरण के साक्ष्य पर डॉ० पा० वा० काणे उन्हें पूर्व मीमांसक मानते हैं। [**हिस्ट्री ऑफ संस्कृत पोएटिक्स, पृ० ४९**]। 'काव्यप्रकाश' की बालबोधिनी टीका के रचयिता वामन झलकीकर (१७४७ ई०) ने सर्वप्रथम भट्टलोल्लट को भट्टमतोपजीवी मीमांसक बतलाया था, जिसके आधार पर सेठ कन्हैयालाल पोद्दार, डॉ० श्यामसुंदर दास, पं० रामदहिन मिश्र और बाबू गुलाब राय इन्हें मीमांसक मानते रहे। आचार्य विश्वेश्वर ने 'काव्यप्रकाश' के हिंदी भाष्य में मीमांसा का अर्थ उत्तर मीमांसा मानकर इनकी व्याख्या को वेदांत-सम्मत स्वीकार किया।

" 'मीमांसा' से यहाँ 'उत्तर मीमांसा' अर्थात् 'वेदांत' का अर्थ ग्रहण करना चाहिए। वेदांत में जगत् की आध्यात्मिक प्रतीति मानी गई है। जैसे रज्जु में सर्प की आध्यात्मिक या आरोपित प्रतीति के समय सर्प के विद्यमान न होने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पर भी सर्प की प्रतीति और उससे भयादि कार्यों की उत्पत्ति होती है, इसी प्रकार अभिनयादि के समय रामादिगत सीता-विषयिनी अनुरागादिरूपा रति के विद्यमान न होने पर भी, नट में विद्यमान-रूप से उसकी प्रतीति और उसके द्वारा सहृदयों में चमत्कारानुभूति आदि कार्यों की उत्पत्ति होती है। इसी सादृश्य के कारण इस सिद्धांत को मीमांसा अर्थात् 'उत्तर मीमांसा' या 'वेदांत' का अनुगामी सिद्धांत कहा जा सकता है।'' पृ० १०१-१०२

डॉ० के० सी० पांडेय ने अपने शोध प्रबंध 'इंडियन एस्थेटिक्स' में भट्ट-लोल्लट को 'स्पंदकारिका' की वृत्ति का रचयिता मानकर इनकी व्याख्या को शैवदर्शनपरक सिद्ध किया है। उन्होंने 'अनुसंधान' शब्द का 'योजन' अर्थ कर उसकी संगति शैवाद्वैत से स्थापित की है। पर, डॉ० नगेंद्र इस विकल्प को विश्वस्त प्रमाण के अभाव में संदिग्ध मानते हैं। [दे० रस-सिद्धांत, पृ० १४९] डॉ० तारकनाथ बाली ने स्थायी भाव के आधार पर लोल्लट की रस-मीमांसा को असत्कार्यवाद से संबद्ध माना है, जिसे डॉ० नगेंद्र अधिक प्रामाणिक नहीं कहते और उपलब्ध सामग्री के अभाव में लोल्लट की दार्शनिक पीठिका संदिग्ध स्वीकार कर उसे व्यावहारिक और मनोवैज्ञानिक बतलाते हैं। [रस-सिद्धांत, पृ० १४९-५०]

भट्टलोल्लट के मत की आलोचना—इनके रस-सिद्धांत का खंडन करते हुए कहा गया कि इन्होंने सामाजिकों के साथ रस के संबंध का उल्लेख नहीं किया है। संपूर्ण नाटक और काव्य में रस की सार्थकता सामाजिक के लिए ही होती है; पर लोल्लट उसके संबंध में मौन हैं। इनके मत में इस दृष्टि से भी त्रुटि दिखाई पड़ती है कि इन्होंने रस की दो प्रकार की स्थितियों का वर्णन किया है—मुख्य और गौण। रस की स्थिति मूल पात्रों में मानने पर सामाजिक को आनंद कैसे प्राप्त होगा? इसका निराकरण भट्टलोल्लट ने नहीं किया। अनु-कर्त्ता में रस की गौण स्थिति मानने पर भी उससे सामाजिक या दर्शक को आनंदो-पलब्धि नहीं होगी। इन्होंने मूलपात्र में रस की उत्पत्ति मानकर यह स्पष्ट नहीं किया कि मूलपात्र का अभिप्राय ऐतिहासिक या वास्तविक पात्र से है या कवि-निबद्धपात्र से। ये रस की उत्पत्ति अनुकार्य में मानकर रसास्वाद का अधिकारी प्रेक्षक या दर्शक को स्वीकार करते हैं; पर कार्य-कारण-सिद्धांत के अनुसार यह मत खंडित हो जाता है। कारण और कार्य में समानाधिकरण(एकनिष्ठता) होना चाहिए; पर इस मत से कारण-कार्य की एकनिष्ठता समाप्त हो जाती है। कारण या रस की सत्ता अनुकार्य में होती है और कार्य या रसास्वाद प्रेक्षक को होता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। मूल ऐतिहासिक पात्रों में रस की उत्पत्ति मानने पर एक और उलझन पैदा हो जाती है कि मूल पात्रों के संसार में न रहने के कारण अभिनेता उनका अभिनय नहीं कर सकता; अतः उस अभिनय से रस की निष्पत्ति नहीं हो सकती। इसी प्रकार अनुकर्त्ता नट में भी रस की उत्पत्ति संभव नहीं है। गौण रस का अनुभव (जो अभिनेता में होता है) रत्यादि भावों का सीधा अनुभव न होकर अन्य के अनुभव का कल्पनात्मक अनुभव है और इसी कारण वह (डॉ० नगेंद्र के शब्दों में) अपरागत या सेकेंडहैंड है।

श्रीशंकुक का अनुमितिवाद—इन्होंने 'नाट्यशास्त्र' की टीका लिखी थी, जो संप्रति अनुपलब्ध है, पर इनके रस-संबंधी विचार 'अभिनवभारती', 'ध्वन्यालोक' तथा 'काव्यप्रकाश' में बिखरे हुए हैं।

'अभिनवभारती' में उद्धृत मत—

तस्मात् हेतुभिर्विभावाख्यैः, कार्यैरनुभावात्मभिः, सहचारिरूपैश्च व्यभिचारिभिः प्रयत्नार्जिततया कृत्रिमैरपि तथानभिमन्यमानैः, अनुकर्तृस्थत्वेन लिंगबलतः प्रतीयमानः स्थायिभावो मुख्यरामादिगतस्थाप्यनुकरणरूपः। अनुकरणत्वादेव च नामांतरेण व्यपदिष्टो रसः। विभावा हि काव्यबलानुसंधेया। अनुभावाः शिक्षातः। व्यभिचारिणः कृत्रिमनिजानुभावार्जनबलात्। स्थायी तु काव्यबलादपि नानुसंधेयः। 'रतिशोकः' इत्यादयो हि शब्दा रत्यादिकमभिधेयीकुर्वंत्यभिधानत्वेन तु वाचिकाभिनयरूपतयाऽवगमयंति। × × × × × अतएव स्थायिपदं सूत्रे भिन्नविभक्तमपि नोक्तम्। तेन 'रतिनुक्रियमाणा शृंगारः' इति तादात्मकत्वं तत्प्रभवत्वं चायुक्तम्। अर्थक्रियापि मिथ्याज्ञानदृष्टा—

मणिप्रदीपप्रभयोर्मणिबुद्ध्याभिधावतोः।
मिथ्याज्ञानाविशेषोऽपि विशेषोऽर्थक्रियां प्रति।। इति

न चात्र नर्तक एव सुखीति प्रतिपत्तिः। नाप्ययमेव राम इति। न चाप्ययं न सुखीति। नापि रामः स्याद्वा न वायमिति। नापि तत्सदृश इति। किंतु सम्यङ्-मिथ्यासंशयसादृश्यप्रतीतिभ्यो विलक्षणा चित्रतुरगादिन्यायेन, यः सुखी रामः असावयमिति प्रतीतिरस्तीति। —अभिनवभारती भाग १, पृ० २७२-७३

इसलिए विभावरूप कारण, अनुभावरूप कार्य—तथा व्यभिचारी भावरूप सहचारियों द्वारा प्रयत्नपूर्वक अर्जित होने के कारण कृत्रिम होने पर भी विभाव, अनुभाव तथा संचारी के द्वारा अनुकर्त्ता में स्थित होने के कारण अनुमान के बल से प्रतीयमान मुख्य रूप से रामादिगत स्थायी भाव का यह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनुकरण रूप है। अनुकरण रूप होने के कारण यह (स्थायी भाव) भिन्न रस के नाम से बोधित होता है।

विभावों का काव्य के द्वारा, अनुभावों का शिक्षा के द्वारा तथा व्यभिचारी भावों का अपने कृत्रिम अनुभावों के अर्जन द्वारा अनुसंधान (प्रतीति) होता है। स्थायी भाव की तो काव्य-द्वारा प्रतीति नहीं की जा सकती। रति तथा शोक आदि शब्द रति तथा शोक आदि विषयों का अभिधा के द्वारा अभिधान (कथन) करते हैं, वाचिक अभिनय के रूप में उनका बोध नहीं कराते। जिस प्रकार अंगों-द्वारा किया गया अभिनय आंगिक कहलाता है, न कि अंग; उसी प्रकार वाणी नहीं, वरन् वाणी-द्वारा किया जानेवाला अभिनय वाचिक कहलाता है।

यहाँ नर्तक ही सुखी है, यह प्रतीति नहीं होती, और यह राम है, इस प्रकार की प्रतीति भी नहीं होती, न 'यह सुखी नहीं है' यह प्रतीति होती है और न ही 'यह राम है या नहीं' इस प्रकार की प्रतीति होती है। किंतु सम्यक्, मिथ्या, संशय तथा सादृश्य-रूप समस्त प्रतिपत्तियों (प्रतीतियों) से विलक्षण चित्रतुरग (आलिखित घोड़ा) न्याय से 'जो सुखी राम है, वह यह है', इस प्रकार की प्रतीति होती है।

—डॉ० रघुवंश, नाट्यशास्त्र पृ० २७६-७८ (हिंदी अनुवाद)

'ध्वन्यालोकलोचन' में श्री शंकुक का मत—

'लोचन' में शंकुक का बिना नामोल्लेख के ही उनका मत उद्धृत है।

अन्ये तु अनुकर्तरि यः स्थाय्यवभासोऽभिनयादिसामग्र्यादिकृतो भित्ताविव हरितालादिना अश्वावभासः, स एव लोकातीततयास्वादापरसंज्ञया प्रतीत्या रस्यमानो रस इति नाट्यादिरसा नाट्यरसाः। —ध्वन्यालोकलोचन, पृ० १८६

"दूसरे लोग तो (यह कहते हैं) अनुकर्ता में जो अभिनय इत्यादि सामग्री से उत्पन्न किया हुआ स्थायी का अवभास (होता है), जैसा कि भित्ति पर हरिताल इत्यादि के द्वारा अश्व का अवभास होता है, वही आस्वाद लोकातीत होने के कारण इस दूसरी संज्ञावाली प्रतीति से आस्वाद-गोचर होनेवाला रस होता है, इस प्रकार नाट्य के रस होने के कारण नाट्यरस (कहलाता है)।"

डॉ० रामसागर त्रिपाठी-कृत हिंदी 'काव्यप्रकाश' का उद्धरण।

राम एवायं अयमेव राम इति रामोऽयमित्यौत्तरकालिकेबाधे रामोऽयमिति रामः स्याद्वा न वाऽयमिति रामसदृशोऽयमिति च सम्यङ् मिथ्यासंशयसादृश्यप्रतीतिभ्यो विलक्षणया चित्रतुरगादिन्यायेन रामोऽयमिति प्रतिपत्त्या ग्राह्यो नटे—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

काव्यानुसंधानबलाच्छिक्षाभ्यासनिर्वर्तितस्वकार्यप्रकटनेन च नटेनैव प्रकाशितैः कारणकार्यसहकारिभिः कृत्रिमैरपि तथाऽनभिमन्यमानैर्विभावादिशब्दव्यपदेश्यैः 'संयोगात्' गम्यगमकभावरूपात्, अनुमीयमानोऽपि वस्तुसौंदर्यबलाद्रसनीयत्वेनान्यानुमीयमानविलक्षणः स्थायित्वेन संभाव्यमानो रत्यादिभावस्तत्रासन्नपि सामाजिकानां वासनया चर्व्यमाणो रस इति श्री शंकुकः।

श्री शंकुक का मत है—'यह राम नहीं है' या 'यही राम है' इस प्रकार की (इति) सम्यक् प्रतीति; यह राम नहीं है, इस ज्ञान से बाद में (औत्तरकालिक) बाध हो जाने पर 'यह राम है' इस प्रकार की मिथ्या प्रतीति, 'यह राम है या नहीं' ऐसी संशय-प्रतीति तथा 'यह जैसा है' इस प्रकार की सादृश्य-प्रतीति (इन चार प्रकार के ज्ञानों) से विलक्षण प्रतीति-द्वारा चित्रतुरगन्याय से नट में 'यह राम है' ऐसी प्रतीति हो जाती है।

'सेयम्' इत्यादि (संभोग शृंगार) अथवा दैवात् इत्यादि (विप्रलंभ शृंगार) (अथवा अन्य रस-संबंधी) काव्य के अर्थ का साक्षात् अनुभव करने के कारण (अनुसंधान बलात्) और (स्वयं) नट के ही द्वारा शिक्षा एवं उसके अभ्यास से संपादित (निर्वर्तित) अपने नाट्यकार्य से प्रकाशित कारण, कार्य तथा सहकारी के द्वारा—जो कि कृत्रिम होते हुए भी वैसे नहीं समझे जाते और विभावादि नाम से कहे जाते हैं। व्याप्तिरूप संबंध से (नट में सामाजिकों-द्वारा) रति आदि भाव अनुमीयमान होता है। और वह (स्थायी रति भाव आदि) अनुमित होते हुए भी अपने सौंदर्य के कारण आस्वादन-योग्य होने से अन्य अनुमीयमान वस्तु (धूम द्वारा अग्नि आदि की अपेक्षा) विलक्षण प्रकार का होता है, वह (रति आदि भाव) नट में न होता हुआ भी उसमें स्थित प्रतीत होता है तथा सामाजिकों की वासना-द्वारा आस्वाद्यमान होकर (वही स्थायी) रस कहलाता है।''

—हिंदी काव्यप्रकाश—अनु० डॉ० हरिदत्त शास्त्री, पृ० १०८-९

श्री शंकुक के अनुसार सूत्रगत 'निष्पत्ति' शब्द का अर्थ है अनुमिति और 'संयोगात्' का अनुमाप्य-अनुमापक भाव। इन्होंने न्यायदर्शन के अनुमानप्रमाण के आधार पर रस की व्याख्या करते हुए बताया कि रस की उत्पत्ति नहीं होती, उसका अनुमान किया जाता है। शंकुक ने सामाजिक की सत्ता को मान्यता देकर कहा कि उसको ही रसबोध होता है या रस की प्रतीति होती है। वह (सामाजिक या दर्शक) अभिनेताओं को ही राम-सीता मानकर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नाटकीय पात्रों के साथ उनकी अभिन्नता का अनुभव कर लेता है। सामाजिकों के इसी अनुमानजन्य ज्ञान को रसानुभूति का कारण माना गया है। इनका कहना है कि विभावादि के संयोग से ही रत्यादि स्थायी भावों का अनुमान किया जाता है। 'अभिनव भारती' में उद्धृत मत के अनुसार श्री शंकुक मानते हैं कि रस की स्थिति अनुकार्य (मूलपात्र) में ही होती है; किंतु सामाजिक, नट या अभिनेता में उसका अनुमान कर आनंदित होता है। ये विभाव को रस का कारण, अनुभाव को कार्य तथा संचारी को सहकारी-रूप मानते हैं, जिनके सहयोग से अनुकार्यगत स्थायी भाव प्रयत्नपूर्वक अर्जित होता है और नट अपने अभिनय-कौशल-द्वारा रामादि (अनुकार्य) के भावों को इस प्रकार प्रदर्शित करता है कि वे कृत्रिम होते हुए भी प्रेक्षक को अनुकार्य के ही भाव ज्ञात होते हैं। दर्शक उसे मिथ्या नहीं समझकर यह अनुमान करता है कि नट में रस की स्थिति है और इसी कारण उसे आनंदोपलब्धि होती है। सामाजिक, अनुकार्य के साथ अभिनेता का अभिन्न संबंध स्थापित कर उसमें ही रस का अनुमान कर लेता है और उसे 'चित्रतुरगन्याय' से ही नट में दुष्यंतादि का ज्ञान होता है जो संशय, मिथ्या तथा सादृश्य-ज्ञान से सर्वथा भिन्न एवं विलक्षण होता है। जिस प्रकार चित्र में आलिखित तुरग को देखकर हमें यह ज्ञान होता है कि घोड़ा है और वह दौड़ रहा है (वस्तुतः वह घोड़ा नहीं होता; किंतु हम उसे मान लेते हैं कि वह घोड़ा है), उसी प्रकार सामाजिक भी नट को ही वास्तविक दुष्यंत और शकुंतला मानकर रस की अनुभूति करता है।

अभिनव तथा मम्मट के उद्धरणों में शंकुक के रस-सिद्धांत की विशेषताएँ—

क. शंकुक रस की स्थिति अनुकार्य में मानते हैं। रस की स्थिति अनुकार्य में होती है, पर सामाजिक (दर्शक) अनुकर्त्ता (नट) में उसका अनुमान कर प्रसन्नता प्राप्त करता है।

ख. इन्होंने स्थायी के साथ विभावादि के संबंध पर विचार करते हुए विभाव को कारण, अनुभाव को कार्य तथा संचारी को सहकारी के रूप में वर्णित किया।

ग. शंकुक ने अनुकार्य के स्वरूप को स्पष्ट किया और नाटक में कवि-निबद्ध पात्र को ही अनुकार्य माना। लोल्लट ने मूल पात्र तथा कवि-निबद्ध पात्र के बीच अनुकार्य के स्वरूप-निरूपण में भ्रांति उपस्थित कर दी थी, जिसे इन्होंने स्पष्ट कर दिया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

घ. इन्होंने रस-निरूपण में प्रेक्षक के पक्ष को ग्रहण कर नाटक की भूमिका में उसके व्यक्तित्व को उचित महत्त्व प्रदान किया। जब समस्त नाट्य-प्रपंच का विधान प्रेक्षक के ही लिए है तो उसकी उपेक्षा कैसे की जा सकती है ? लोल्लट ने प्रेक्षक का कहीं उल्लेख नहीं किया था।

ङ. शंकुक ने अनुकरण और अनुमान के आधार पर अपने रस-विवेचन को निश्चित दार्शनिक पीठिका पर प्रतिष्ठित किया।

च. इनकी स्थापना है कि नट शिक्षा, अभ्यास एवं अभिनय-चातुरी के कारण विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भाव का सफलतापूर्वक अभिनय करता है और प्रेक्षक उन कृत्रिम भावों को मिथ्या न समझकर यह अनुमान करता है कि ये भाव अनुकार्य के ही हैं।

छ. रस-बोध में 'चित्रतुरगन्याय' का सहारा लेकर इन्होंने इसे सम्यक्, मिथ्या, संशय या सादृश्य रूप समस्त ज्ञानों से भिन्न बताया अर्थात् रस-प्रतीति को उपर्युक्त सभी ज्ञानों से विलक्षण मानकर शंकुक ने सामान्य ज्ञान (प्रतीति) से कलात्मक ज्ञान को ऊपर उठा दिया।

ज. जिस प्रकार चित्रांकित अश्व वास्तविक अश्व न होकर उसका अनुकरण है, उसी प्रकार नट आदि वास्तविक रामादि न होकर उनके अनुकरण मात्र हैं। जैसे चित्रित अश्व को देखकर उसकी चाल आदि का अनुमान कर आनंद की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार नट को देखकर उसमें रामादि के अनुमान से प्रेक्षक को आनंदानुभूति होती है।

अभिनव गुप्त ने नट-द्वारा अभिनीयमान रस का ही वर्णन किया है; पर मम्मट सामाजिक द्वारा अनुमीयमान रस की व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। अभिनव तथा मम्मट-द्वारा उपस्थापित श्रीशंकुक के रस-सिद्धांत में यही अंतर है।

झ. श्रीशंकुक ने रस-निष्पत्ति एवं उसके स्वरूप की व्याख्या करते हुए दो मौलिक व्यापारों—अनुकृति एवं अनुमिति—का उल्लेख किया। नट-द्वारा विभावादि के अनुकरण की पूर्णता एवं निर्दोषता के कारण ही प्रेक्षक को नट में अनुकार्य के स्थायी भाव का अनुमान होता है। इनके दोनों ही व्यापार अन्योन्याश्रित हैं। अनुकृति की पूर्णता में ही सामाजिक की अनुमिति निहित है; अपूर्ण एवं निर्दोष अनुकरण के कारण दर्शक को रसानुभूति नहीं हो सकती।

श्रीशंकुक के रस-विवेचन की सीमा—इनके मत का खंडन अभिनव गुप्त के गुरु भट्टतौत ने किया है और अभिनव ने अपने गुरु के माध्यम से ही श्रीशंकुक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

की आलोचना की है। प्रेक्षक की दृष्टि से इनके मत का खंडन करते हुए बताया गया कि स्थायी भाव के अनुकरण की प्रतीति नहीं हो सकती। विभावादि के अनुकरण का बोध इंद्रियों-द्वारा होता है; किंतु स्थायी भाव के अनुकरण का ज्ञान मन या आत्मा से ही होता है। अतः, मूर्त्त विभावादिकों के ज्ञान के द्वारा अमूर्त्त स्थायी भावों की मानसिक प्रतीति की कल्पना युक्तिसंगत नहीं है। अनुकरण केवल वेशभूषा का ही हो सकता है, स्थायी भाव का नहीं। अनुमान के द्वारा रसानुभूति की कल्पना असंभव है; क्योंकि उसमें मिथ्या के आधार पर सत्य की प्रतीति कराई जाती है, जो असंभव है। किसी को भोजन करते देखकर किसी का पेट नहीं भर सकता। आनंद प्रत्यक्ष अनुभव का विषय होता है, अनुमान का नहीं। रति आदि भावों का अनुमान-द्वारा अनुभव संभव नहीं है। अतः, अनुमान द्वारा न तो नट में रस की स्थिति संभव है और न सामाजिकों को आनंदोपलब्धि ही हो सकती है। किसी व्यक्ति में उत्पन्न रसास्वाद को अन्य व्यक्ति अनुमान द्वारा नहीं प्राप्त कर सकता और किसी भी वस्तु का अनुमान द्वारा प्रत्यक्ष की भाँति ज्ञान नहीं होता और न आनंद की ही प्राप्ति होती है। अतः, अनुमिति के आधार पर रसास्वादन का उपपादन असमीचीन है। इन दोषों के होते हुए भी श्रीशंकुक ने अनेक दृष्टियों से भट्टलोल्लट के रस-विवेचन को आगे बढ़ाकर रस-विमर्श को निश्चित दार्शनिक चिंतना से युक्त किया, जो कालांतर में रस-दर्शन के रूप में प्रतिष्ठित हुआ।

भट्टनायक का भुक्तिवाद—इनका रस-विषयक मत भुक्तिवाद या भोगवाद के नाम से विख्यात है। [दे० भट्टनायक] भट्टनायक का मत 'अभिनवभारती', 'ध्वन्यालोकलोचन' और 'काव्यप्रकाश' में उद्धृत है।

'अभिनवभारती' में उद्धृत मत—

भट्टनायकस्त्वाह—रसो न प्रतीयते नोत्पद्यते नाभिव्यज्यते। स्वगतत्वेन हि प्रतीतौ करुणे दुःखित्वं स्यात्। न च सा प्रतीतिर्युक्ता। सीतादेरविभावत्वात्। स्वकांता स्मृत्यसंवेदनात्। देवतादौ साधारणीकरणायोग्यत्वात्। समुद्रलंघनादेरसाधारण्यात्। न च तद्वतो रामस्यस्मृतिरनुपलब्धत्वात्। न च शब्दानुमानादिभ्यस्तत्प्रतीतौ लोकस्य सरसतायुक्ता प्रत्यक्षादिव। नायक युगलावभासे हि प्रत्युत लज्जाजुगुप्सास्पृहादिस्वोचितवृत्त्यंतरोदयः। अव्यग्रतया कास्रसत्वमपि स्यात्। तन्न प्रतीतिरनुभवस्मृत्यादिरूपा रसस्य युक्ता। उत्पत्तावपि तुल्यमेतद् दूषणम्।

शक्ति रूपत्वेन पूर्वं स्थितस्य पश्चादभिव्यक्तौ विषयार्जन तारतम्यापत्तिः। स्वगतपरगत्वादि च पूर्ववद् विकल्प्यम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तस्मात् काव्यं दोषाभावगुणालंकारमयत्वलक्षणेन, नाट्ये चतुर्विधाभिनयरूपेण निविडनिजमोहसंकटतानिवारणा विभावादिसाधारणीकरणात्मना, अभिधातो द्वितीयेनांशेन भावकत्वव्यापारेण भाव्यमानो रसो, अनुभवस्मृत्यादिविलक्षणेन रजस्तमोऽनुवेधवैचित्र्यबलाद् द्रुतिविस्तारविकासलक्षणेन सत्त्वोद्रेकप्रकाशानंदमयनिजसंविद्विश्रांतिलक्षणेन परब्रह्मास्वादसविधेन भोगेन परं भुज्यत इति ॥

—अभिनवभारती भाग १, पृ० २७३-७४

भट्टनायक ने तो यह कहा है—"रस न तो प्रतीत होता है, न उत्पन्न होता है, न उसकी व्यंजना ही होती है। 'स्वगत रूप से प्रतीति होती है' ऐसा मान लेने पर करुण रस में (सामाजिक को) दुःख की प्रतीति होनी चाहिए।"

"यह प्रतीति संगत नहीं है। सीता आदि के विभाव-रूप में प्रतीत न हो सकने से, अपनी पत्नी आदि की नाट्यप्रसंग में स्मृति न रहने से, देवता आदि के साधारणीकरण के अयोग्य होने से और समुद्र-लंघन आदि कार्यों के असाधारण होने से प्रेक्षक के लिए स्वगत रूप में रस की प्रतीति करना संभव नहीं है, और न उससे (विभाव आदि से) युक्त राम की स्मृति होती है; क्योंकि पहले वे उपलब्ध नहीं हैं। शब्द और अनुमान-प्रमाणों से उस (राम) की प्रतीति मानने पर प्रत्यक्ष ज्ञान के समान सरसता नहीं हो सकती। (प्रत्यक्ष) नायक-नायिकाओं के अनुभव से रस के स्थान पर लज्जा, जुगुप्सा तथा स्पृहा आदि दूसरे प्रकार की चित्तवृत्तियों का उदय होगा। एकाग्रता के अभाव में आकाश-रस (आकाश-पुष्प के समान) रूपी रस-प्रतीति का अभाव होगा। अतः, अनुभव, स्मृति (प्रत्यक्ष तथा परोक्ष) आदि रूपों में रस की प्रतीति मानना उचित नहीं है। रस की उत्पत्ति मानने में ये समस्त दोष समान हैं। शक्तिरूप में पूर्वस्थित रस की अभिव्यक्ति मानने पर विषयों की प्राप्ति के साथ तारतम्य (न्यूनाधिक) संबंधी आपत्ति होगी। फिर, पहले के समान विचारणीय प्रश्न है कि वह अभिव्यक्ति स्वगत है अथवा परगत। अतः, काव्य में दोषाभाव, गुण तथा अलंकाररूप और नाटक में चार प्रकार के अभिनय-रूप अपने निबिड़ निजत्व मोह तथा संकट का निवारण करनेवाले एवं विभावादि के साधारणी-करण-रूप अभिधा शक्ति से तथा पुनः (दूसरे अंश पर) भावकत्व के द्वारा भाव्यमान रस अनुभव तथा स्मृति आदि से भिन्न विलक्षण रजोगुण तथा तमोगुण के अनुवेध (मिश्रण) के वैचित्र्य-बल से वृद्धि, विकास तथा विस्तार-स्वरूप सत्त्वगुण के प्राधान्य से प्रकाशमान आनंदमय साक्षात्कार में संकल्प-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विकल्प से भिन्न (विलक्षण) परब्रह्म के आस्वाद के सदृश भोजकत्व व्यापार के द्वारा अनुभव किया जाता है।''

—डॉ० रघुवंश, नाट्यशास्त्र, पृ० २८७-९१ (हिंदी-अनुवाद)

'काव्यप्रकाश' में उद्धृत मत—

न ताटस्थ्येन नात्मगतत्वेन रसः प्रतीयते, नोत्पद्यते, नाभिव्यज्यते अपि तु काव्ये नाट्ये चाभिधातो द्वितीयेन विभावादि साधारणीकरणात्मना भावकत्व-व्यापारेण भाव्यमानः स्थायी, सत्त्वोद्रेकप्रकाशानंदमयसंविद्विश्रांतिसतत्वेन भोगेन भुज्यते।

—काव्यप्रकाश का चतुर्थ प्रकाश

''न तो तटस्थ अर्थात् उदासीन (नट तथा नायक) के संबंध से (अर्थात् उसमें) और न ही आत्मगत (सामाजिक) रूप से रस की प्रतीति होती है, न उत्पत्ति होती है, न अभिव्यक्ति होती है, अपितु काव्य या नाटक में अभिधा (तथा लक्षणा) से भिन्न (द्वितीयेन) एक भावकत्व नामक व्यापार होता है, जिसका स्वरूप विभावादि का साधारणीकरण करना है, उसके द्वारा साधारणीकृत स्थायी भाव (रत्यादि) उस भोग (आस्वाद या भोजकत्व व्यापार) के द्वारा भोगा जाता है; सत्त्व के उद्रेक (रज और तम को दबाकर ऊपर उठने) से होनेवाली प्रकाशात्मिका तथा आनंदात्मिका अनुभूति ही जिस (भोग) का स्वरूप है।''

—काव्यप्रकाश (हिंदी अनुवाद) डॉ० हरिदत्त शास्त्री, पृ० १११

भट्टनायक के अनुसार, सूत्रगत 'संयोग' का अर्थ भोज्य-भोजक-संबंध एवं 'निष्पत्ति' का अर्थ भोग या भुक्ति है। इन्होंने सांख्य दर्शन के आधार पर अपनी 'रस-मीमांसा' प्रस्तुत की है। संक्षेप में इनका सिद्धांत इस प्रकार है। इन्होंने काव्य को शब्दात्मक व्यापार मानकर तीन शक्तियों का निरूपण किया— अभिधा, भावकत्व और भोजकत्व। अभिधा, शब्द की वह शक्ति है, जिसके द्वारा काव्य में शब्दार्थ की प्रतीति होती है अर्थात् काव्य के पाठक तथा नाटक के प्रेक्षक को अभिधा-शक्ति-द्वारा ही अर्थावबोध होता है। इसकी व्याप्ति काव्य, इतिहास, पुराण और शास्त्रादि में समान रूप से होती है, द्वितीय शक्ति भाव-कत्व की सत्ता केवल काव्य तथा नाटक में ही स्वीकार की गई है। इसके द्वारा (भावकत्व व्यापार से) व्यक्तिविशेष में उत्पन्न रत्यादि भाव व्यक्ति-संबंध से रहित होकर साधारणी-कृत हो जाते हैं अर्थात् राम और सीता या दुष्यंत और शकुंतला जो काव्य या नाटक में व्यक्तिविशेष या नायक-नायिका के रूप में चित्रित होते हैं, वे व्यक्तिगत संबंध से शून्य होकर सामान्य नायक-नायिका के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रूप में उपस्थित होते हैं। चूँकि दुष्यंतादि की प्रेम-कथा का, वैयक्तिक तत्त्व की विद्यमानता के कारण, पाठक या सामाजिक के साथ सामंजस्य नहीं बैठता; क्योंकि अभिधा-द्वारा प्रस्तुत प्रेम-कथा-विशेष नायक-नायिका की कहानी के ही रूप में उपस्थित होती है; अतः भावकत्व व्यापार के द्वारा विभावादि के साधारणीकृत होने या सामान्य धरातल पर अधिष्ठित हो जाने के कारण वह कथा सामान्य दांपत्य प्रेम के रूप में प्रतीत होने लगती है, जिससे पाठक और दर्शक को उसका रसास्वादन करने में विसंगति का अनुभव नहीं होता और वे उसके साथ मानसिक सामंजस्य स्थापित कर लेते हैं। तदनंतर भोजकत्व व्यापार द्वारा सहृदय (भावकत्व द्वारा सिद्ध किए गए) रस का भोग करने लगता है और इस स्थिति में तमोगुण और रजोगुण का तिरोभाव होकर सत्त्व-गुण का प्रादुर्भाव होता है, जिससे सहृदय या सामाजिक ब्रह्मास्वादसहोदर या आनंदस्वरूप रस का आस्वादन करता है। उस समय इस भावित रस का आस्वाद सामान्य लौकिक भोग से विलक्षण होकर ब्रह्मानंद के सदृश ज्ञात होता है। सतोगुण से युक्त आनंदस्वरूप ज्ञान को भोग कहते हैं, जिससे तमोगुण और रजोगुण तिरोभूत हो जाते हैं। यह ज्ञान (आस्वादन) अन्य ज्ञान से रहित होने के कारण सांसारिक ज्ञान सर्वथा भिन्न अलौकिक अनुभव है, जहाँ वेद्यांतर का संपर्क टिक नहीं पाता और स्व-पर का भेद मिटकर अखंड आनंद का आस्वादन होने लगता है।

भट्टनायक की देन—इन्होंने भुक्तिवाद की स्थापना कर भट्टलोल्लट और श्रीशंकुक के रस-विवेचन में दो प्रधान दोष दिखलाए—आत्मगतत्व एवं पर-गतत्व। दोनों ने रस को अनुकार्यगत माना था, जिसमें यह स्पष्ट नहीं होता था कि दिव्य तथा आदरास्पद पात्रों के प्रति दर्शक (सामाजिक) की रति कैसे उत्पन्न हो सकती है। साथ ही रस की अनुकार्यगत स्थिति स्वीकार करने से नट और प्रेक्षक के साथ (रस का) कोई संबंध स्थापित नहीं हो पाता था। फलतः, नाटक के विधान में प्रेक्षक और सामाजिक तटस्थ रहने की चेष्टा करते अर्थात् सामाजिक रस को परगत जानकर न तो उसके आरोप या अनुमान की इच्छा करते और न नट को परगत भावों के प्रदर्शन में ही सफलता प्राप्त होती तथा उस ओर उसकी प्रवृत्ति या रुचि भी नहीं होती। थोड़ी देर के लिए यह मान भी लिया जाय कि आर्थिक लोभ या काव्यानुशीलनादि के कारण नट की उस ओर रुचि हो भी तो प्रेक्षक स्वभावतः उससे तटस्थ रहेगा। अतः, तटस्थ व्यक्ति से रसास्वाद की आशा करना व्यर्थ है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आत्मगतत्व दोष में यह त्रुटि थी कि रस की उत्पत्ति सामाजिक में स्वीकार करने पर वह संभव नहीं दिखाई पड़ती थी। कारण कि ऐसे दृश्यों के साथ जहाँ सामाजिक के मन में पूज्य और आदर का भाव था अर्थात् जहाँ सीता और पार्वती के प्रति राम और शंकर का प्रेम प्रदर्शित किया गया था, वहाँ सामाजिक उन्हें अपनी रति के रूप में ग्रहण नहीं कर सकता था। इसके अतिरिक्त शोकांत नाटकों में भी दर्शक को आनंदोपलब्धि का कारण नहीं दिखाई पड़ता था। इन्हीं विसंगतियों का निराकरण करने के लिए भट्टनायक ने दोनों के मत का खंडन कर भुक्तिवाद की स्थापना की।

साधारणीकरण सिद्धांत की कल्पना इनकी महनीय देन है। भट्टनायक ने भावकत्व व्यापार की कल्पना कर काव्य में व्यक्ति-बोध की बाधा को हटाकर व्यक्तित्व-शून्य-बोध की उपस्थापना की। उन्होंने बताया कि अभिधा के व्यक्ति-बोध-द्वारा दर्शकों के मन में जो उदासीनता आती है, वह भावकत्व व्यापार से दूर हो जाती है और पाठक या दर्शक व्यक्ति-विशेष को विस्मृत कर उसके हाव-भाव को सामान्य रूप में ग्रहण करने लगता है। शकुंतला और दुष्यंत की जो प्रेम-कथा अभिधा वृत्ति के द्वारा रस-बोध में व्यवधान उपस्थित करती थी, अब सामान्य प्रेम-कथा के रूप में प्रस्तुत होकर रसास्वादन कराने लगी। इसे ही भट्टनायक ने साधारणीकरण का व्यापार कहा। इस स्थिति में सीता आदि नायिकाएँ अपने व्यक्तिगत संबंध से दूर हटकर सामान्य नायिका के रूप में उपस्थित हो जाती हैं और दुष्यंत तथा शकुंतला का प्रेम सामान्य दांपत्य प्रेम के रूप में झलकने लगता है। साधारणीकरण के पश्चात् दर्शक या प्रेक्षक उस कथा के साथ अपना संबंध स्थापित कर अपनी रुचि के अनुरूप अपने को उक्त कथा का पात्र समझने लगता है और यहाँ अपने-पराए का भेद हट जाता है। "भावकत्व ही एकमात्र वह शक्ति है, जो व्यक्ति को संवेद्य-हृदय बनाए रहती है। उसी के कारण अभिधा में विलक्षणता आती है और वही रस-आस्वाद के लिए मन को तैयार करती है।"—रस-सिद्धांत, स्वरूप-विश्लेषण, पृ० ७८-७९

साधारणीकरण-द्वारा करुण रस की आनंदरूपता की सिद्धि हुई और उसे (रस को) आत्मानंद माना गया।

भट्टनायक के रस-विवेचन की दार्शनिक पीठिका—इनका भुक्तिवाद सांख्य-शास्त्रानुमोदित है। 'सत्त्वोद्रेक' तथा 'भोग' शब्दों के कारण इसे सांख्य-दर्शन से संबद्ध किया गया है। सांख्यदर्शन में पुरुष तथा प्रकृति की सत्ता मानकर प्रकृति को त्रिगुणात्मिका कहा गया है, जिससे परुष भी अनुप्राणित होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण ही त्रिगुण हैं, जो क्रमशः प्रीति, अप्रीति एवं विषाद के द्योतक हैं। सत्त्व प्रीतिमय होने के कारण सुखकर है तथा रजोगुण और तमोगुण दुःखकारक और विषादात्मक हैं। सांख्यशास्त्र मनुष्य को त्रिगुणात्मक बंधन से मुक्त करने का साधन बतलाता है, जिसका एकमात्र उपाय रजोगुण एवं तमोगुण पर विजय प्राप्त कर सत्त्वगुण की उपलब्धि है।

प्रीत्यप्रीतिविषादात्मकाः प्रकाशप्रवृत्तिनियमार्थाः ।
अन्योन्याभिभवाश्रय जननमिथुनवृत्तयश्च गुणाः ॥
सत्वंलघुप्रकाशकमिष्टमुपष्टंभकं चलं च रजः ।
गुरु वरणकमेव तमः प्रदीपवच्चार्थतो वृत्ति ॥

—सांख्यकारिका, १२, १३

[दे० सांख्यकारिका, १९]

सत्त्वोद्रेक द्वारा ही मनुष्य कैवल्य (मुक्ति) पद को प्राप्त कर सकता है और वह अवस्था (कैवल्यावस्था) सत्त्व, रज और तम से परे मुक्ति की अवस्था है। भट्टनायक के भोजकत्व व्यापार की स्थिति में सत्त्वोद्रेक होने पर ही रसानुभूति होती है, जिसमें स्व-पर का भेद तिरोहित हो जाता है। यह अवस्था परमानंद की होती है, जहाँ सतोगुण के उदय से रसानंद प्राप्त होता है।

भट्टनायक की सीमा—भट्टनायक के रस-विवेचन के अंतर्गत कतिपय ऐसे तथ्य प्रकट हुए हैं, जिनका सार्वकालिक महत्त्व है, तथापि उनमें कई असंगतियाँ हैं, जिनकी ओर आचार्यों का ध्यान गया है। अभिनवगुप्त ने इनके द्वारा उद्भावित भावकत्व एवं भोजकत्व व्यापार को शास्त्रीय प्रमाण के अभाव में निराधार माना और बताया कि भावना-व्यापार का कार्य लक्षण से ही चल जाता है। ये शक्तियाँ नाम से ही व्यंजना से भिन्न हैं। अभिनव के मतानुसार शब्द की व्यंजकता-द्वारा विभावना-व्यापार स्वतः उद्भूत होता है और उससे ही विभावादि का साधारणीकरण हो जाता है; अतः दोनों ही शक्तियाँ व्यर्थ हैं। पर, इससे भट्टनायक का महत्त्व कम नहीं होता और साधारणीकरण के रूप में काव्यास्वादन का इनका मौलिक सिद्धांत विश्व आलोचनाशास्त्र की महनीय देन के रूप में प्रतिष्ठित होता है। इस संबंध में डॉ० नगेंद्र का कथन ध्यातव्य है—"काव्यास्वादन का मौलिक प्रश्न यह है कि काव्य में अभिव्यक्त व्यक्ति के भाव कवि या कवि-निबद्ध पात्र के—सहृदय के—आस्वाद्य किस प्रकार बन जाते हैं, एक सहृदय के ही नहीं, समस्त सहृदय समाज के? इसका समाधान सर्वप्रथम भट्टनायक ने साधारणीकरण-सिद्धांत की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उद्भावना-द्वारा किया। यह प्रश्न वास्तव में साहित्यालोचन का मूल आधार है। भट्टनायक ने इसका समाधान प्रस्तुत कर आलोचनाशास्त्र के इतिहास में अभूतपूर्व सिद्धि प्राप्त की। मेरी धारणा है कि विश्व के आलोचनाशास्त्र में भट्टनायक के पूर्व इस मूल प्रश्न का ऐसा प्रामाणिक समाधान किसी आचार्य ने प्रस्तुत नहीं किया।"

—रस-सिद्धांत, पृ० १७०

अभिनवगुप्त का अभिव्यक्तिवाद 'अभिनव भारती' में वर्णित रस-सिद्धांत—

तत्काव्यार्थो रसः। × × × काव्यात्मकादपि शब्दादधिकारिणोऽधिकास्ति प्रतिपत्तिः। अधिकारी चात्र विमलप्रतिभाशालिहृदयः। तस्य च 'ग्रीवाभंगाभिरामम्' इति (शाकु० १), 'उमापि नीलालक' इति (कुमार० ३-६२), 'हरस्तुकिंचित्'(कुमार० ३-६७) इत्यादि वाक्येभ्यो वाक्यार्थप्रतिपत्तेरनंतरं मानसी साक्षात्कारात्मिका अपहसिततत्तद्वाक्योपात्तकालादिविभागा तावत्प्रतीतिरुपजायते।

तस्यां च यो मृगपोतकादिर्भाति तस्य विशेषरूपत्वाभावाद् भीत इति, त्रासकस्यापारमार्थिकत्वाद् भयमेव परं देशकालाद्यनालिंगितं, तत एव 'भीतोऽहं भीतोऽयं शत्रुर्वस्यो मध्यस्थो वा इत्यादिप्रत्ययेभ्यो दुःखसुखादिकृतबुद्ध्यंतरोदय-नियमवत्तया विघ्नबहुलेभ्यो विलक्षणं निर्विघ्नप्रतीतिग्राह्यं, साक्षादिव हृदये निविशमानं, चक्षुषोरिव विपरिवर्तमानं, भयानको रसः। तथाविधे हि भये नात्मात्यंतं तिरस्कृतो, न विशेषत उल्लिखितः। एवं परोऽपि।

तत एव न परिमितमेव साधारण्यमपि तु विततम्। व्याप्तिग्रह इव धूमाग्न्योर्भयकंपयोरिव वा। तदत्र साक्षात्कारायमाणत्वेन परिपोषिका नटादि-सामग्री। यस्यां वस्तुसतां काव्यार्पितानां च देशकालप्रमात्रादीनां नियमहेतूना-मन्योन्यप्रतिबंधबलादत्यंतमपसारणे स एव साधारणीभावः सुतरां पुष्यति। अतएव सर्वसामाजिकानामेकघनतयैव प्रतिपत्तिः सुतरां रसपरिपोषाय। सर्वेषाम-नादिवासनाचित्रीकृतचेतसां वासनासंवादात्। सा चाविघ्ना संवित् चमत्कारः। × × × सर्वथा रसनात्मकवीतविघ्नप्रतीतिग्राह्यो भाव एव रसः। तत्र विघ्नापसारका विभावप्रभृतयः।

—हिंदी अभिनवभारती, पृ० ४७०-४७३

"अर्थात् वही काव्यार्थ रस है। × × × काव्यात्मक वाक्य से भी [काव्य से] अधिकारी सहृदय व्यक्ति को [सामान्यवाक्यार्थज्ञान-मात्र से] अधिक ही [रसात्मक व्यंग्यार्थ की] प्रतीति होती है।

यहाँ निर्मल प्रतिभाशाली हृदयवाला (सहृदय) पुरुष [काव्यार्थ ज्ञान का] 'अधिकारी' है। और उसको [कालिदास के शंकुतला नाटक में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आए हुए] 'ग्रीवाभंगाभिरामम्', [कुमार संभव में आए हुए] 'उमापि नीलालक' इत्यादि तथा 'हरस्तु किंचित्' इत्यादि श्लोक-वाक्यों से वाक्यार्थ की प्रतीति के बाद उस-उस वाक्य में गृहीत कालादि के विभाग की उपेक्षा (साधारणीकरण) करनेवाली, मानसी एवं साक्षात्कारात्मिका प्रतीति उत्पन्न होती है।

और, उस प्रतीति में जो मृगशावक आदि विषय-रूप से भासता है, उसके [साधारणीकरण हो जाने से] विशेष रूप न होने से [मृगपोत] विषयक 'यह भीत है' यह ज्ञान तथा [भय के कारण] त्रासक [दुष्यंतादि] के वास्तविक न होने [अर्थात् कल्पित होने] से भय ही, देशकाल आदि से बिल्कुल असंबद्ध [रूप में भासता है], इसीलिए मैं भीत हूँ, अथवा यह भीत है, अथवा वह शत्रु, मित्र या मध्यस्थ है इत्यादि सुख-दुःख आदि को देनेवाले, अन्य ज्ञानों को नियम से उत्पन्न करनेवाले, अतएव विघ्न-बहुल ज्ञानों से भिन्न, निर्विघ्न प्रतीति से [ग्राह्य भय रूप स्थायिभाव ही] साक्षात् हृदय में प्रविष्ट होता हुआ-सा, आँखों के सामने घूमता हुआ-सा, 'भयानक रस' होता है। उस प्रकार के भय में [सामाजिक का] आत्मा न अत्यंत अपेक्षित होता है, और न विशेष रूप से उल्लिखित होता है। इसी प्रकार अन्य [रस] भी होते हैं।

इसलिए उन विभावादि का उसी देश-काल में परिमित रूप से ही साधारणीकरण नहीं होता है, अपितु धूम और अग्नि के व्याप्तिगृह में, अथवा भय और कंप आदि के व्याप्तिगृह के समान अत्यंत विस्तृत रूप में [साधारणीकरण] होता है। और, इसमें साक्षात्कारात्मक रूप से परिपोषिका नटादि सामग्री होती है, जिसमें वास्तव में विद्यमान और काव्य में वर्णित देश, काल, प्रमाता आदि को नियामक हेतुओं के [नियम के] बंधन से अत्यंत अलग कर देने पर वह साधारणीकरण व्यापार अत्यंत पुष्ट हो जाता है। इसलिए समस्त सामाजिकों को एक रूप से ही प्रतीति होती है, जो रस के लिए अत्यंत परिपोषक हो जाती है।

अनादि संस्कारों द्वारा चित्रित चित्तवाले सारे सामाजिकों की एक-जैसी वासना होने के कारण [सबको एक-जैसी ही रस-प्रतीति होती है] और वह विघ्नों से सर्वथा रहित प्रतीति चमत्कार कहलाती है। × × × × प्रत्येक दशा में [सर्वथा] आस्वादात्मक एवं निर्विघ्न प्रतीति से ग्राह्य 'भाव' ही रस है। उसमें आनेवाले विघ्नों के अपसारक विभावादि होते हैं।"

—हिंदी अभिनवभारती

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ध्वन्यालोकलोचन—

तस्मादनुत्थानोपहतः पूर्वपक्षः। रामादिचरितं तु न सर्वस्य हृदयसंवादीति महत्साहसम्। चित्रवासनादि विशिष्टत्वाच्चेतसः। यदाह—"तासामनादित्वं आशिषो नित्यत्वात्। जातिदेशकालव्यवहितानामप्यानंतर्यं स्मृतिसंस्कारयोरेक-रूपत्वात्।" इति। तेन प्रतीतिस्तावद्रसस्य सिद्धा। सा च रसनारूपा प्रतीति-रुत्पद्यते। वाच्यवाचकयोस्तत्राभिधादिविविक्तो व्यंजनात्मा ध्वननव्यापार एव। भोगीकरणव्यापारश्च काव्यस्य रसविषयो ध्वननात्मैव, नान्यत्किंचित्। भावक-त्वमपि समुचितगुणालंकारपरिग्रहात्मकमस्माभिरेव वितत्य वक्ष्यते। किमेतद-पूर्वम्? काव्यं च रसान् प्रति भावकमिति यदुच्यते, तत्र भवतैव भावनादुत्पत्ति-पक्ष एव प्रत्युज्जीवितः। न च काव्यशब्दानां केवलानां भावकत्वम्, अर्थपरिज्ञाने तदभावात्। न च केवलानामर्थानाम्, शब्दांतरेणार्प्यमाणत्वे तदयोगात्। द्वयोस्तु भावकत्वमस्माभिरेवोक्तम्। 'यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थं व्यंक्तः' इत्यत्र। तस्माद्-व्यंजकत्वाख्येन व्यापारेण गुणालंकारौचित्यादिकयेतिकर्त्तव्यतया काव्यं भावकं रसान् भावयति, इति त्र्यंशायामपि भावनायां करणांशे ध्वननमेव निपतति। भोगोऽपि न काव्य शब्देन क्रियते, अपितु घनमोहांध्यसंकटतानिवृत्ति द्वारेणास्वादा-परनाम्नि अलौकिके द्रुतिविस्तरविकासात्मनि भोगे कर्तव्ये लोकोत्तरे ध्वनन-व्यापार एव मूर्धाभिषिक्तः। तच्चेदं भोगकृत्वं रसस्य ध्वननीयत्वे सिद्धे दैव-सिद्धम्। रस्यमानतोदितचमत्कारानतिरिक्तत्वाद् भोगस्येति। सत्वादीनां चांगां-गिभाववैचित्र्यस्यानंत्याद् द्रुत्यादित्वेनास्वादगणना न युक्ता। परब्रह्मास्वाद सब्रह्मचारित्वं चास्त्वस्य रसास्वादस्य। व्युत्पादनं च शासनप्रतिपादनाभ्यां शास्त्रे-तिहासकृताभ्यां विलक्षणम्। यथा रामस्तथाहमित्युपमानातिरिक्तां रसास्वादो-पायस्वप्रतिभाविजृंभारूपां व्युत्पत्तिमंते करोतीति कमुपालभामहे। तस्मात्स्थित-मेतत्—अभिव्यज्यंते रसाः प्रतीत्यैव च रस्यंत इति।

—ध्वन्यालोकलोचन—पृ० १८७-१९०,

"अर्थात्, पूर्वपक्ष अनुत्थान रूप में ही उपहत हो गया। यही तो महान् साहस है कि राम इत्यादि का चरित्र सबके हृदय से मेल नहीं खाता। क्योंकि, चित्त में विचित्र प्रकार की वासनाओं की विशिष्टता होती है। जैसा कि कहा गया है—'उनका अनादित्व होता है; क्योंकि आकांक्षाएँ नित्य होती हैं। जाति, देश और काल से व्यवहितों को भी आनंतर्य होता है, क्योंकि स्मृति और संस्कार एकरूप होते हैं।' इससे रस की प्रतीति तो सिद्ध हो गई। वह प्रतीति आस्वादन रूप में उत्पन्न होती है। वाच्य-वाचक का तो वहाँ पर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अभिधा से पृथक्भूत व्यंजनात्मक ध्वनन व्यापार ही होता है। काव्य का भोगकरण व्यापार रस-विषयक ध्वन्यात्मक ही होता है; और कुछ नहीं। भावकत्व भी सचमुच गुणालंकारपरिग्रहात्मक [ही होता है जिसको] हम ही विस्तृत कर कहेंगे। यह अपूर्व क्या है ? जो यह कहा जाता है कि काव्य रसों के प्रति भावक होता है, उससे आपने ही भावन के कारण उत्पत्ति पक्ष को प्रत्युज्जीवित कर दिया। केवल काव्यशब्दों का ही भावकत्व नहीं होता; क्योंकि अर्थ के न जानने पर वह होता ही नहीं। केवल अर्थों का भी नहीं होता; क्योंकि दूसरे शब्दों से अर्पण करने पर वह नहीं होता। दोनों का भावकत्व तो हमने ही कहा—'जहाँ अर्थ और शब्द उस अर्थ को व्यक्त करते हैं,' वहाँ पर। अतएव व्यंजकत्व नाम के व्यापार से गुण तथा अलंकार के औचित्यवाली इतिकर्त्तव्यता से भावक काव्य-रसों को भावित करता है। इस प्रकार तीन अंशोंवाली भावना में करण अंग में ध्वनन ही आ जाता है। भोग भी काव्य शब्द से नहीं किया जाता। अपितु 'घने मोहरूपी अंध संकट से निवृत्ति के द्वारा आस्वाद' इस दूसरे नामवाले अलौकिक द्रुति, विस्तार और विकासात्मक भोग के अलौकिक कर्तव्य में ध्वनन व्यापार भी मूर्धाभिषिक्त होता है। और, वह भोगकृत्व रस के ध्वननीय सिद्ध होने पर दैव सिद्ध हो जाता है। क्योंकि भोग, रस्यमानता से उत्पन्न चमत्कार से अतिरिक्त नहीं होता। सत्व इत्यादि के अंगांगिभाव-वैचित्र्य की अनंतता के कारण द्रुति इत्यादि के रूप में आस्वाद की गणना उचित नहीं है। इस रसास्वादन का परब्रह्मास्वाद सादृश्य हो जाय। शास्त्र और इतिहास से उत्पन्न शासन और प्रतिपादन से [रस का] व्युत्पादन विलक्षण होता है। जैसे राम वैसा मैं हूँ—इस उपमान के अतिरिक्त रसास्वाद के उपाय अपनी प्रतिभा के विजृंभण-रूप व्युत्पत्ति को अंत में कर देता है, इसके लिए हम किसको उपालंभ दें। इससे यह स्थित है—रस अभिव्यक्त ही होते हैं और प्रतीति के द्वारा ही आस्वादगोचर होते हैं।"

—ध्वन्यालोकलोचन की 'तारावती' हिंदी व्याख्या, पृ० ३९५-३९८

'काव्यप्रकाश' में उद्‌धृत मत—

लोके प्रमदादिभिः स्थाय्यनुमानेऽभ्यासपाटववतां काव्ये नाट्ये तैरेव कारणत्वादिपरिहारेण विभावनादिव्यापारवत्त्ववदलौकिकविभावादि शब्द व्यवहार्यैर्ममैवैते, शत्रोरेवैते, तटस्थस्यैवैते, न ममैवैते, न शत्रोरेवैते, न तटस्थस्यैवैते, इति संबंधविशेषस्वीकारपरिहारनियमानध्यवसायात् साधारण्येन प्रतीतैरभिव्यक्तः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सामाजिकानां वासनात्मतया स्थितः स्थायी रत्यादिको, नियतप्रमातृगतत्वेन स्थितोऽपि साधारणोपायबलात् तत्कालविगलितपरिमितप्रमातृभाववशोन्मिषित-वेद्यांतरसंपर्कशून्यापरिमितभावेन प्रमात्रा सकलहृदयसंवादभाजा साधारण्येन स्वाकार इवाभिन्नोऽपि गोचरीकृतश्चर्व्यमाणतैकप्राणो विभावादिजीवितावधिः पानकरसन्यायेन चर्व्यमाणः पुर इव परिस्फुरन्, हृदयमिव प्रविशन्, सर्वांगीण-मिवालिंगन् अन्यत्सर्वमिव तिरोदधत् ब्रह्मास्वादमिवानुभावयन् अलौकिक चमत्कारी शृंगारादिको रसः।

—काव्यप्रकाश, चतुर्थ उल्लास

"लोक में प्रमदा आदि [अर्थात् प्रमदा, उद्यान, कटाक्ष आदि विभाव, अनुभावादि के देखने] से [उन प्रमदादि में रहनेवाले रति आदि रूप] स्थायी [भावों] के अनुमान करने में निपुण सहृदयों का, काव्य तथा नाटक में कारणत्व [कार्यत्व तथा सहकारित्व] आदि को छोड़कर विभावन आदि व्यापार [रत्यादिनामास्वादयोग्यतानयनरूपाविर्भावनं विभावनम्। अर्थात् रत्यादि को आस्वादयोग्य रूप प्रदान करना 'विभावना व्यापार' कहलाता है। आदि पद से 'अनुभावन' तथा 'व्यभिचारण' व्यापार का भी संग्रह होता है। इस प्रकार के आस्वाद-योग्य रत्यादि को अनुभव का विषय बनाना 'अनुभावन' तथा शरीर में रति आदि के प्रभाव का संचारण व्यभिचारण व्यापार है] से (जो) 'वे मेरे ही हैं' या 'शत्रु के ही हैं' या 'तटस्थ के ही हैं' अथवा 'ये न मेरे ही हैं, न शत्रु के ही हैं', इस प्रकार के संबंध-विशेष को स्वीकार अथवा परिहार करने के नियम निश्चय न होने से, साधारण [अर्थात् व्यक्तिविशेष के संबंध से रहित] रूप से प्रतीत होनेवाले [उक्त विभावादि] से ही अभिव्यक्त होनेवाला और प्रमाता [अर्थात् विशिष्ट एक सामाजिक] में स्थित होने पर भी, साधारणोपाय [अर्थात् व्यक्तिविशेष के संबंध के बिना प्रतीत होनेवाले विभावादि] के बल से उसी [रसानुभव] काल में [मैं ही इसका आस्वादनकर्त्ता हूँ, या ये विभावादि मेरे ही हैं, इस प्रकार के व्यक्तिगत भावनाओं रूप] परिमित प्रमातृभाव के नष्ट हो जाने से वेद्यांतर के संपर्क से शून्य और अपरिमित प्रमातृभाव जिससे उदित हो गया है इस प्रकार के [प्रमाता] सामाजिक के द्वारा, समस्त [सामाजिकों] हृदयों के साथ समान रूप से [व्यक्तिविशेष संबंध से रहित साधारण्य से] अपनी आत्मा के समान [आस्वाद से] अभिन्न होने पर भी, [आस्वाद का] विषय होकर, [अर्थात् जैसे आत्म-साक्षात्कार में चिद्रूप से अभिन्न आत्मा को भी साक्षात्कार का 'विषय' माना जाता है, इसी प्रकार रसानुभूति में अनुभूति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के अभिन्न होने पर भी रस को 'विषय' कहा जा सकता है], आस्वाद मात्र स्वरूप [**चर्व्यमाणतैकप्राणः**] विभावादि के स्थितिपर्यंत ही रहनेवाला [**इलायची, काली मिर्च, शक्कर, इमली, आम्र आदि को मिलाकर तैयार किए गए प्रपाणक अर्थात्**] पीने के रस के समान [**अर्थात् प्रपाणक की घटक-सामग्री के रस से विलक्षण रस के समान**] आस्वाद्यमान, साक्षात् प्रतीत होता हुआ-सा, हृदय में प्रविष्ट होता हुआ-सा, ब्रह्म साक्षात्कार का अनुभव करता हुआ-सा अलौकिक आनंद को प्रदान करनेवाला [**चमत्कारी**] शृंगार आदि 'रस' होता है।

—काव्यप्रकाश (हिंदीभाष्य), आचार्य विश्वेश्वर, पृ० १०८-१०९

पूर्वोक्त ग्रंथों में निरूपित अभिनवगुप्त के रस-विषयक मत का सार इस प्रकार है।

इन्होंने 'शैवाद्वैत' में प्रतिपादित आनंदवाद को ही अपने रस-सिद्धांत का आधार मानकर अभिव्यक्तिवाद की स्थापना की और उसे आनंदस्वरूप सिद्ध किया। भरतसूत्र के अंतर्गत आए 'संयोग' तथा 'निष्पत्ति' शब्द की व्याख्या करते हुए इन्होंने उनका अर्थ क्रमशः व्यंग्य-व्यंजक-संबंध या प्रकाश्य-प्रकाशक-संबंध तथा अभिव्यक्ति (निष्पत्ति) किया। इनके अनुसार रस भावना का व्यापार न होकर व्यंजना का परिणाम है। अभिनय ने भट्टनायक के साधारणी-करण सिद्धांत को भी स्वीकार किया; पर उसे परिष्कृत रूप में ग्राह्य माना। इनके अनुसार काव्यानुभूति न तो अभिधा का विषय है और न लक्षणा का, वह तो एकमात्र व्यंग्य हो सकती है। इन्होंने बतलाया कि रति आदि स्थायी भाव सामाजिकों के हृदय में वासना रूप में विद्यमान होते हैं तथा वे वासनात्मक संस्कार के रूप में सुषुप्तावस्था में रहते हैं। नष्ट-संस्कार व्यक्ति को रसास्वादन नहीं प्राप्त होता, अपितु जिनके हृदय का संस्कार जितना ही अधिक जागरूक होता है, वे उतना ही अधिक रसबोध प्राप्त करने में सक्षम होते हैं। सहृदयों के हृदय में वासना रूप से वर्त्तमान रत्यादि स्थायी भाव काव्य के पढ़ने तथा नाटक के देखने से विभावादि का संपर्क प्राप्त कर व्यंजना वृत्ति के विभावन व्यापार द्वारा अभिव्यक्त होकर रस का रूप धारण करते हैं अर्थात् सामान्यावस्था में दबे हुए स्थायी भाव अनुकूल अवसर के आते ही उद्बुद्ध हो जाते हैं और उनकी परिणति रस-रूप में हो जाती है। उदाहरण के लिए, जिस प्रकार मिट्टी के घट में गंध पहले से ही विद्यमान रहती है अर्थात् उसकी पूर्वस्थिति होती है और जल के संयोग से वह प्रकट

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हो जाती है, उसी प्रकार सहृदयों या सामाजिकों के चित्त में स्थित स्थायी भाव भी काव्यादि के अध्ययन तथा नाटकादि के दर्शन से अभिव्यक्त होकर रसास्वाद के योग्य बन जाते हैं। अभिनव ने रस को व्यंग्य मानकर उसे ब्रह्मस्वादसहोदर कहा और रस की सहृदयनिष्ठता स्वीकार की। इन्होंने रसबोध के लिए लौकिक अनुभव, विमलप्रतिभाशालिहृदय तथा वीतविघ्नता को आवश्यक माना तथा वासना की विद्यमानता में भी रस-प्रतीति के हेतु सहृदय के लिए काव्यानुशीलन के अभ्यास को परम आवश्यक बतलाया। इनके मतानुसार रस तो वीतविघ्नप्रतीति है; अतः रसबोध के मार्ग में आनेवाली बाधाओं को दूर करना आवश्यक है; क्योंकि रसविघ्न के उन्मूलन के बिना रसास्वाद कल्पनातीत है। उन्होंने रस को एक विलक्षण सृष्टि मानकर उसे अलौकिक आनंद से युक्त कहा।

[रसविघ्नों को जानने के लिए दे० अभिनवगुप्त]

शैवानंदवाद के पुष्ट धरातल पर रस की व्याख्या कर अभिनव ने उसे आनंदमय माना; क्योंकि शैवदर्शन (यह अद्वैतवादी दर्शन है) में 'परम शिव' को परम सत्ता स्वीकार कर उसे अरूप, असीम और अव्यक्त कहा गया है। शिव तथा शक्ति में इस स्थिति में अभेद हो जाता है। अभिनवगुप्त का रस-सिद्धांत मनोवैज्ञानिक एवं दार्शनिक मान्यताओं से संपुष्ट आधुनिक विचारों के निकट है और इनके मत की अधुनातन मान्यता इसका प्रमाण है। इन्होंने सामाजिक से रस को संबद्ध कर उसे व्यावहारिक बनाया; क्योंकि सारा नाट्य-तंत्र सामाजिक के लिए ही होता है; अतः उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। स्थायी भाव को वासनागत जीवन संस्कार के रूप में मानकर इन्होंने उसकी नित्यता सिद्ध की और साधारणीकरण को व्यंजना का व्यापार स्वीकार कर भट्टनायक के मत को संशोधित किया। "इस प्रकार वासनागत संस्कार, विघ्न और उसका नाश, साधारणीकरण की व्यापकता, आनंद-प्राप्ति में विभावादि का योग आदि कई बातों पर अभिनव ने पूर्ण मौलिक ढंग से विचार करके एक नवीन और संगत सिद्धांत की स्थापना की है।"

—रस-सिद्धांत : स्वरूपविश्लेषण, पृ० ९९

[दे० साधारणीकरण]

रसवत्—एक प्रकार का अलंकार, जिसका वर्णन भामह ने किया है। जब एक रस अन्य रस का अथवा भाव, रसाभास एवं भावाभास का अंग हो जाय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तो रसवत् अलंकार होता है। इसका वर्णन भामह, दंडी, उद्भट, रुय्यक विश्वनाथ, दीक्षित एवं पद्माकर ने किया है।

> **रसभावौ तदाभासौ भावस्य प्रशमस्तथा।**
> **गुणीभूतत्वमायांति यदालंकृतयस्तदा ॥**
> **रसवत्प्रेय ऊर्जस्वि समाहितमिति क्रमात् ॥**
>
> —साहित्यदर्पण, १०/९५,९६

विश्वनाथ के मतानुसार रस आदि का किसी का अंग हो जाना ही रसवत् है। इसके उद्भावक भामह हैं। उनके अनुसार जब शृंगारादि रस स्पष्ट रूप से दिखाए जाएँ तो रसवत् होता है; पर दंडी रस से रमणीय कथन को रसवत् मानते हैं। उद्भट ने भामह की शब्दावली उद्धृत कर दी है।

> **रसवद्दर्शितस्पष्टशृंगारादि रसं यथा ॥**
>
> —काव्यालंकार, ३/६, काव्यालंकारसारसंग्रह, ४/३

विश्वनाथ रस का किसी का अंग हो जाने में रसवत् स्वीकार करते हैं और यही मत रीतिकालीन आचार्य पद्माकर का भी है—

> **सो रस जहँ अँग और को, है रसवत तिहि ठाम ॥**
>
> —पद्माभरण २८८

रसवत्-वर्ग के अलंकारों के अंतर्गत रसवत् प्रेयस, ऊर्जस्वी एवं समाहित आते हैं।

रसविरोध—रसविरोध के अंतर्गत रसों की पारस्परिक मैत्री एवं विरोध का वर्णन किया जाता है। इस विषय का विवेचन विश्वनाथ तथा पंडितराज जगन्नाथ ने सुंदर ढंग से किया है। कुछ रस तो ऐसे हैं, जो स्वभावतः परस्पर विरोधी हैं। उदाहरण के लिए करुण, बीभत्स, रौद्र तथा भयानक शृंगार के विरोधी हैं। करुण एवं भयानक हास्यरस के शत्रु हैं और करुणरस के अमित्र या विरोधी रस हास्य और शृंगार हैं। हास्य, शृंगार तथा भयानक रस के साथ रौद्ररस का विरोध है। शांत रस के शत्रुरसों में वीर, रौद्र, भयानक, शृंगार तथा हास्य रसों के नाम आते हैं। बीभत्स रस की शत्रुता केवल शृंगार के साथ है तथा अद्भुत का विरोध किसी के साथ नहीं है। भयानक रस के शत्रुरसों में शृंगार, वीर, रौद्र, हास्य और शृंगार हैं। विश्वनाथ ने रसों के पारस्परिक विरोधाविरोध के तीन आधारों की कल्पना की है—कुछ रस तो ऐसे होते हैं, जो एक आलंबन में विरुद्ध होते हैं, कुछ आश्रय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में विरुद्ध होते हैं तथा कुछ एक दूसरे के बाद, आगे-पीछे, बिना व्यवधान के आने के विरुद्ध होते हैं।

आद्यः करुणबीभत्सरौद्रवीरभयानकैः ॥
भयानकेन करुणेनापि हास्यो विरोधभाक् ।
करुणो हास्यशृंगाररसाभ्यामपि तादृशः ॥
रौद्रस्तु हास्यशृंगार भयानकरसैरपि ।
भयानकेन शांतेन तथा वीररसः स्मृतः ॥
शृंगारवीररौद्राख्यहास्यशांतैर्भयानकः ।
शांतस्तु वीरशृंगाररौद्रहास्य भयानकैः ॥
शृंगारेण तु बीभत्स इत्याख्याता विरोधिता ।
कुतोऽपि कारणात्क्वापि स्थिरतामुपयन्नपि ॥
उन्मादादिर्न तु स्थायी न पात्रे स्थैर्यमेति यत् ॥

—साहित्यदर्पण, ३/२५४-२५९

रसों के विरोधाविरोध की कल्पना औचित्यपूर्ण तथा मनोविज्ञान-सम्मत है। अनुभव के आधार पर यह कहा गया है कि चित्तवृत्तियाँ परस्पर अनुकूल या प्रतिकूल हुआ करती हैं। एक समय में, मन में एक ही भाव का प्राधान्य रह सकता है। यह भी अनुभव-सिद्ध विषय है कि अनुकूल भाव आपस में एक दूसरे को गति देते हैं एवं विरोधी या प्रतिकूल भावों द्वारा एक दूसरे का खंडन होता है। अतः, यह कहा जा सकता है कि भावों की अनुकूलता या प्रतिकूलता के आधार पर अथवा साम्य एवं वैषम्य पर अधिष्ठित रसों के शत्रु-मैत्री भाव की कल्पना सर्वथा समीचीन एवं युक्तिसंगत है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से रसों के विरोधाविरोध के दो आधार स्वीकृत हैं—विषयगत तथा विषयिगत। विषयगत आधार के अंतर्गत काव्य में ऐसे भावों का वर्णन होना चाहिए, जो जीवन के सामान्य अनुभव के अनुकूल हों। अभिप्राय यह कि काव्य वस्तु के संदर्भ में तथा जीवनानुभव के आधार पर यह निश्चित होता है कि एक ही व्यक्ति के प्रति किसी के मन में एक ही साथ रति एवं क्रोध अथवा रति और शोक भाव की उद्‌बुद्धि नहीं हो सकती। अतः, "आलंबन-ऐक्य की दृष्टि से रस-विरोध के निर्णय का आधार विषयगत है।"

—रस-सिद्धांत, पृ० २७६

विषयिगत आधार का अभिप्राय रस के विरोधाविरोध निर्णय की कल्पना प्रमाता की अनुभूति के अनुसार है। प्रमाता के मन में एक ही समय रति और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शोक तथा जुगुप्सा या रति-भाव की सृष्टि नहीं हो सकती और न शम या क्रोध-भाव का उद्रेक हो सकता है। अतः, रस-संबंध-निर्णय का आधार प्रमाता के रसास्वादन के अनुरूप होना चाहिए।

वीर रस, अद्भुत रस एवं रौद्र रस परस्पर मित्र हैं। शृंगार, अद्भुत और हास्य रसों की परस्पर मैत्री है और भयानक तथा बीभत्स भी आपस में मित्र हैं।

रस-विघ्न—रस-प्रतीति में उपस्थित होनेवाले विघ्नों की संज्ञा रस-विघ्न है। ये सात प्रकार के होते हैं। अभिनवगुप्त ने रस को वीतविघ्न प्रतीतिग्राह्य कहकर उक्त भेदों का कथन किया है। ये हैं—

संभावनाविरह, स्वपरगतदेशकालविशेषाविशेष, निजसुखादिविवशीभाव, प्रतीत्युपायवैकल्य, स्फुटत्वाभाव, अप्रधानता तथा संशययोग। [इनके विषय में विस्तृत जानकारी के लिए दे० अभिनवगुप्त]

रस-संख्या—रस-संख्या के संबंध में भारतीय काव्याचार्यों में प्रारंभ से ही मतभेद रहा है। भरत मुनि ने रसों की संख्या केवल आठ मानी है—शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स और अद्भुत। रसों की उपर्युक्त संख्या का निर्धारण स्वयं भरत ने नहीं किया था, वरन् उनके पूर्ववर्ती द्रुहिण नामक किसी आचार्य ने इस संबंध में अपना निर्णय दिया था।

एते ह्यष्टौ रसाः प्रोक्ता द्रुहिणेन महात्मना॥

—नाट्यशास्त्र, ६/१७

भरत के पश्चात् दंडी ने भी आठ ही रसों का उल्लेख किया है; पर उद्भट ने रसों की संख्या नौ मानने पर बल दिया। उन्होंने शांत नामक नवें रस का नामोल्लेख किया है।

शृंगारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः।
बीभत्साद्भुतशांताश्च नव नाट्ये रसाः स्मृताः॥

—काव्यालंकारसारसंग्रह, ४/४

रुद्रट ने रसों की स्वीकृत संख्या में 'प्रेयान्' नामक रस को बढ़ा दिया। उन्होने शांत रस का भी वर्णन किया है; पर वे इसका स्थायी भाव 'शम' या 'निर्वेद' न मानकर 'सम्यक्ज्ञान' को कहते हैं।

सम्यग् ज्ञान-प्रकृतिः शांतो विगतेच्छनायको भवति।
सम्यग्ज्ञानं विषयो तमसो रागस्य चापगमात्॥

—काव्यालंकार, १६/१५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रुद्रट ने प्रेयान् या प्रेयोरस का स्थायी भाव स्नेह को माना—

स्नेहः प्रकृति प्रेयान् । —वही, १५/१७

उनके अनुसार यह रस माता-पिता का पुत्र के प्रति स्नेह एवं दो मित्रों में भी परस्पर पाया जाता है ।

अन्योऽन्यं प्रति सुहृदोर्व्यवहारोऽयं मतस्तत्र । —वही, १५/१८

प्रेयोरस की कल्पना रुद्रट ने की थी; पर विद्वानों-द्वारा इसे मान्यता प्राप्त नहीं हुई । उनके समकालीन आचार्य रुद्रभट्ट ने अपने ग्रंथ 'शृंगारतिलक' में केवल नौ रसों का ही निरूपण किया है ।

'नाट्यशास्त्र' के प्रसिद्ध व्याख्याता अभिनवगुप्त ने किसी पाठ के आधार पर भरत-सम्मत शांत रस का भी विवेचन किया था, पर उनकी कल्पना प्रमाणपुष्ट नहीं है । भरत ने अभिनय की दृष्टि से आठ ही रसों का निरूपण किया था और इसी विचार से उन्होंने स्थायी, संचारी और अनुभावों की संख्या उनचास निर्धारित की थी । [८,स्थायी ८ सात्त्विक तथा ३३ संचारी] भरत का यह निर्णय पूर्ववर्ती परंपरा से पुष्ट था, यह उनकी अपनी उद्‌भावना नहीं थी ।

'अभिनवभारती' में 'लौल्यरस' का उल्लेख है, जिसका स्थायी भाव गर्ध (तृष्णा) माना गया है । लौल्यरस में हीन पात्रों या प्रतिनायक की ऐसी इच्छा का वर्णन होता या ऐसे लालच का कथन किया जाता है कि जिसकी प्राप्ति के वह सर्वथा अयोग्य है । उदाहरण के लिए, सीता के प्रति रावण की वासनात्मक उक्ति को लौल्यरस में स्थान दिया जा सकता है, पर शास्त्रीय दृष्टि से ऐसे उदाहरण रसाभास के अंतर्गत आ जाते हैं । स्वयं अभिनवगुप्त ने भी गर्ध का समावेश हास या रति में किया है और शार्ङ्गदेव अनौचित्यविषयक तृष्णा को लौल्य कहकर इसे हास्य रस का कारण मानते हैं ।

एष गर्ध (न्ध) स्थायिकस्य लौल्यरसस्य प्रत्याख्याने सरणिर्मंतव्या । हासे वा रतौ वान्यत्र पर्यवसानात् । एवं भक्तावपि वाच्यम् इति ॥

—अभिनवभारती, पृ० ३४१

अनौचित्य-विषया तृष्णा लौल्यं तद्‌हास्यकारणम् ।

—संगीतरत्नाकर, पृ० ८३६

धनंजय ने नाटक के लिए आठ ही रसों को उपयुक्त माना और शांत को अनभिनेय समझकर उसका खंडन किया । काव्य में उन्हें भी नौ रसों की स्थिति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मान्य है; पर नाटक में वे उसकी (शांत की) पुष्टि नहीं करते । धनंजय ने प्रेयान् और भक्ति रसों को अमान्य ठहराकर मृगया एवं अक्ष का भी खंडन किया ।

शममपि केचित्प्राहुः पुष्टिर्नाट्येषु नैतस्य ।

—दशरूपक, ४/३५

प्रीतिभक्त्यादयो भावा मृगयाक्षादयो रसाः ।
हर्षोत्साहादिषु स्पष्टमंतर्भावान्न कीर्तिताः ।। —वही, ४/८३

वे हर्ष और उत्साह में ही मृगया और अक्ष रस का अंतर्भाव करते हैं ।

विस्तारवादी भोज ने प्रेयान्, शांत, उदात्त और उद्धत नामक रसों का वर्णन किया है । उदात्त का स्थायी भाव मति एवं उद्धत का गर्व है । उदात्त को ही उन्होंने ऊर्जस्विन् भी कहा है । इन रसों के अतिरिक्त वे साध्वस, विलास, अनुराग तथा संगम रसों की भी उद्‌भावना करते हैं । भोज सभी भावों—स्थायी, सात्त्विक एवं संचारी के रसत्व की कल्पना करते हैं अर्थात् सभी भाव रसत्व को प्राप्त होते हैं । ये रस मुख्यतः स्वभाव-भेद को प्रदर्शित करते हैं, इन्हें रस नहीं माना जा सकता । स्वयं भोज भी नायक-भेद के आधार पर शांत, उदात्त आदि भेदों की सत्ता स्वीकार करते हैं ।

न च अष्टावेवेति नियमः, यतः शांतं प्रेयांसं उद्धतं ऊर्जस्विनं च केचिद्रसमाचक्षते । तन्मूलाश्च किल नायकानां धीरशांत-धीरललित-धीरोद्धतधीरोदात्तव्यपदेशः ।। —नंबर ऑफ रसाज्, पृ० १२२ पर उद्‌धृत

विश्वनाथ ने प्रकट चमत्कारक होने के कारण वत्सल रस का निरूपण किया है ।

स्फुटं चमत्कारितया वत्सलं च रसं विदुः ।

—साहित्यदर्पण, ३/२५१

रामचंद्रगुणचंद्र ने लौल्य तथा स्नेह रसों के अतिरिक्त व्यसन, दुःख और सुख को भी रस का स्वरूप प्रदान किया है । व्यसन का स्थायी भाव आसक्ति है और दुःख का अरति । सुख का स्थायी भाव संतोष है ।

संभवंति त्वपरेऽपि यथागर्धं स्थायी लौल्यः,
आर्द्रतास्थायी स्नेहः, आसक्तिस्थायि व्यसनम्,
अरतिस्थायि दुःखम्, संतोषस्थायि सुखमित्यादि ।

—नाट्यदर्पण, पृ० १६७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हरिपाल-कृत 'संगीत सुधाकर' में तेरह रस माने गए हैं। इनमें ब्राह्म, संभोग तथा विप्रलंभ ये—तीन नवीन रस हैं।

> शृंगारो हास्य-नामा च बीभत्सः करुणस्तथा।
> वीरो भयानकाह्वानो रौद्राख्योऽद्भुतसंज्ञकः ॥
> शांतो ब्रह्माभिधः पश्चात् वात्सल्याख्यमतःपरम्।
> संभोगो विप्रलंभः स्याद्रसास्त्वेते त्रयोदशः ॥
>
> —संगीतसुधाकर, अध्याय ४

इनके अनुसार ब्राह्म रस का स्थायी भाव आनंद है। यह सांसारिक सभी प्रपंचों से परे होने के कारण नित्य और स्थिर है।

> ब्राह्मोनाम रसः सर्वप्रपंचोत्तीर्णरूपकः।
> नित्यः स्थिरोऽतएवायं पार्थक्येन प्रकीर्तितः॥ —वही, पृ० १८

हरिपाल ने ब्राह्म रस को शांत से भिन्न माना है; क्योंकि शांत अनित्य और अस्थिर है। शांत का स्थायी भाव निर्वेद है। उन्होंने शांत का संबंध मोक्ष से स्वीकार नहीं किया है।

'अनुयोगद्वार सूत्र' नामक जैन-ग्रंथ में 'व्रीडनक रस' का निरूपण है। टीकाकार के अनुसार, जो लज्जा को उत्पन्न करे, उसे व्रीडनक रस कहते हैं। इसकी उत्पत्ति लज्जनीय पदार्थों के दर्शन से होती है।

व्रीडयति लज्जामुत्पादयति लज्जनीयवस्तुदर्शनादिप्रभवो मनोव्यलीकतादि-स्वरूपो व्रीडनकः। अस्य स्थाने भयजनक संग्रामादि-वस्तु-दर्शनादिप्रभवः भयानको रसः पठ्यतेऽन्यत्र। स च रौद्र-रसांतर्भावविवक्षणात् पृथङ्नोक्तः।

—अनुयोगद्वार सूत्र की टीका, पृ० १२४

इसका (भयानक का) अंतर्भाव रौद्र रस में हो जाता है; क्योंकि लोगों ने व्रीडनक के स्थान पर भयोत्पादक संग्राम आदि के दर्शन से होनेवाले भयानक रस को स्वीकार किया है। ब्राह्म रस का अंतर्भाव शांत में ही हो जाता है, उसमें और ब्राह्म में कोई अंतर नहीं है। शांत रस का भी उद्देश्य मोक्षप्राप्ति है और वही ध्येय ब्राह्म का भी है।

भानुदत्त ने दो नवीन रसों की कल्पना की है—कार्पण्य एवं माया रस। कार्पण्य रस का स्थायी भाव स्पृहा है। उन्होंने वात्सल्य, लौल्य और भक्ति रस के साथ कार्पण्य का भी उल्लेख किया है; पर यह उल्लेख मात्र है। उन्हें कार्पण्य रस की स्थिति अमान्य है; क्योंकि वे स्पृहा को भी व्यभिचारी भाव मात्र मानते

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हैं, स्वतंत्र स्थायी नहीं। कार्पण्य को हास्य रस का व्यभिचारी माना जा सकता है। यदि दैन्य किसी अनुपयुक्त पात्र के प्रति प्रकट किया जाय तो वह पाठकों के लिए हास्य का कारण बनेगा—

ननु वात्सल्यं, लौल्यं, भक्तिः, कार्पण्यं वा कथं न रसः। आर्द्रताऽभिलाष-श्रद्धास्पृहाणां स्थायिभावानां सत्त्वादिति चेन्न। तेषां व्यभिचारिरत्यात्मकत्वात्।
—रसतरंगिणी, पृ० १२५

माया रस में मिथ्याज्ञान की वासना ही पुष्ट होकर रसत्व प्राप्त करती है। इसका स्थायी भाव मिथ्याज्ञान है और सांसारिक भोगों के उत्पादक धर्माधर्म विभाव हैं। पुत्र, कलत्र, विजय और साम्राज्य आदि इसके अनुभाव हैं। उन्होंने प्रवृत्ति और निवृत्ति—दो प्रकार की चित्तवृत्तियों का कथन किया है। निवृत्ति से शांत रस होता है तो प्रवृत्ति से माया रस।

चित्तवृत्तिः द्विधा—प्रवृत्तिर्निवृत्तिश्चेति। निवृत्तौ यथा शांतरसः, तथा प्रवृत्तौ मायारस इति प्रतिभाति। एकत्र रसोत्पत्तिरपरत्र नेति वक्तुमशक्यत्वात्।
—रसतरंगिणी, पृ० १६४

रस की संख्या-वृद्धि में महत्त्वपूर्ण प्रयास वैष्णव-आचार्यों का हुआ। रूप-गोस्वामी ने अपने दो ग्रंथों—'हरिभक्तिरसामृतसिंधु' तथा 'उज्ज्वलनीलमणि'—में भक्ति रस का विवेचन किया। उन्होंने काव्यशास्त्रियों के इस सिद्धांत का खंडन किया कि भक्ति केवल भाव है। [दे० भक्तिरस] इस प्रकार के खंडन-मंडन के बीच इन रसों का अस्तित्व मान्य हुआ—शृंगार, हास्य, वीर, करुण, अद्भुत, भयानक, रौद्र, बीभत्स, शांत, वत्सल और भक्ति रस या मधुर रस।

रस-संप्रदाय—रस-संप्रदाय या रस-सिद्धांत भारतीय काव्य-चिंतन का वह पक्ष है, जिसमें रस को काव्य का जीवनाधायक तत्त्व या आत्मा माना गया है। यह भारतीय सौंदर्य-कल्पना का अप्रतिम रूप है। इस सिद्धांत के स्वरूप-निर्माण में न केवल रसवादी आचार्यों ने अपितु अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि तथा औचित्य-समर्थक आचार्यों ने भी महत्त्वपूर्ण योग दिया है। 'रस' (शब्द) भारतीय साहित्य का अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं प्राचीन शब्द है, जिसका उल्लेख वेदों में है। संप्रति रस-सिद्धांत का प्रतिपादक प्राचीनतम ग्रंथ भरत-कृत 'नाट्यशास्त्र' उपलब्ध है। [दे० नाट्यशास्त्र] पर उसके पूर्व भी इसके विवेचन की स्वस्थ परंपरा रही है, जिसका साक्ष्य 'नाट्यशास्त्र' के 'आनुवंश्य' श्लोकों में है। वेदों में रस का प्रयोग वनस्पतियों के द्रव्य के लिए हुआ था,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तत्पश्चात् यह सोमरस, आनंद, चमत्कार तथा तन्मयता का वाचक बना। उपनिषदों में यह अत्यंत सूक्ष्म अर्थ ग्रहण कर ब्रह्मानंद एवं आत्मानंद का वाहक बना। [दे० **रस-सिद्धांत**] वेदों में कहीं-कहीं इसे वाक्यरस या काव्यरस का भी आवरण दिया गया है; किंतु वहाँ यह शास्त्रीय रूप में प्रयुक्त न होकर व्यावहारिक रूप में ही उपस्थित हुआ है। रामायण-महाभारत तथा सूत्र-ग्रंथों से होता हुआ यह वात्स्यायन के 'कामसूत्र' में रति एवं भाव का बोधक बन सका।

रसो रतिः प्रीतिर्भावो रागो वेगः समाप्तिरिति रतिपर्यायः।

—कामसूत्र, २-१-६५

तदिष्टभावलीलानुवर्तनम्। —वही, ६-२-३५

नायकस्य शृंगारादिषु य इष्टो रसो भावः स्थायिसंचारिसात्त्विकेषु, लीलाचेष्टितानि तेषामनुवर्तनम्। —जयमंगला टीका।

इस प्रकार इसकी यात्रा मूर्त्त से अमूर्त्त की ओर होती रही और अंततः भरत के 'नाट्यशास्त्र' में यह शास्त्रीय अर्थ का वाचक बना।

भरत—भरत का नाट्यशास्त्र पूर्वाचार्यों की रस-विषयक उपलब्धियों को अपने में सँजोए हुए हैं। विभिन्न ग्रंथों में प्राक् भरतीय आचार्यों का उल्लेख है, जिनमें वासुकि, सदाशिव, अगस्त्य, व्यास, नंदिकेश्वर, वृद्ध भरत आते हैं। स्वयं 'नाट्यशास्त्र' में भी शांडिल्य, वात्स्य, दत्तिल तथा भरत-पुत्रों के नाम रसाचार्यों के रूप में लिए गए हैं। जनश्रुति नंदिकेश्वर को रसाचार्य एवं भरत को नाट्याचार्य स्वीकार करती है। राजशेखर-कृत काव्यमीमांसा' से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है—

रूपकनिरूपणीयं भरतः, रसाधिकारिकं नंदिकेश्वरः।

—अध्याय १, पृ० ४

भरत ने 'नाट्यशास्त्र' के षष्ठ एवं सप्तम अध्यायों में रस का सांगोपांग वर्णन किया है। [दे० **भरत**] ये नाटक को वाङ्मय का श्रेष्ठ रूप मानकर उसका प्राण रस को स्वीकार करते हैं। इनके अनुसार कोई भी नाट्यांग रस के बिना नहीं चल सकता—

तत्र रसानेव तावदादावभिव्याख्यास्यामः। न हि रसाद् ऋते कश्चिदर्थः प्रवर्तते। —६/३१ का गद्य भाग

'नाट्यशास्त्र' में रस के अवयव, रस की प्रक्रिया, रस-संख्या, रस के अधिकारी, रस का स्वरूप तथा रसों के पारस्परिक संबंध, वर्ण और देवता का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विशद विवेचन है। इनके अनुसार रसों की संखया आठ है—शृंगार, हास्य, करुण, बीभत्स, वीर, रौद्र, अद्भुत और भयानक। इनसे क्रमशः हास्य, करुण, अद्भुत और भयानक रस की उत्पत्ति होती है।

शृंगारादि भवेद्धास्यो रौद्राच्च करुणो रसः।
वीराच्चैवाद्भुतोत्पत्ति बीभत्साच्च भयानकः॥

—नाट्यशास्त्र, ६/३९

रस के वर्णों का वर्णन करते हुए कहा गया कि शृंगार का श्याम, हास्य का श्वेत, करुण का कपोतवर्ण, रौद्र का रक्त, वीर का गौर, भयानक का काला, बीभत्स का नीला एवं अद्भुत का रंग पीला होता है। शृंगार के देवता विष्णु, हास्य के प्रमथ, रौद्र के रुद्र, करुण के यम, बीभत्स के महाकाल, भयानक के काल, वीर के महेंद्र तथा अद्भुत के ब्रह्मा हैं।

भरत मुनि ने मुख्यतः रस का विवेचन नाट्य-रस के रूप में किया है और यह भी स्वीकार किया है कि नाट्य की परिणति रस है। उन्होंने रस को काव्य या नाटक का सारभूत तत्त्व माना है और उसको ही आधार मानकर परवर्ती आचार्यों ने इसे काव्य की आत्मा कहा। इन्होंने नाटक में रस की निष्पत्ति तथा प्रेक्षक द्वारा उसके आस्वाद्य पर भी विचार किया है। इनके अनुसार विभावानुभाव और व्यभिचारी के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है।

विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रसनिष्पत्तिः।

—नाट्यशास्त्र, ६/३२

भरत ने आचार्य द्रुहिण द्वारा समर्थित आठ रसों को मान्यता देकर आठ स्थायी, तैंतीस व्यभिचारी एवं आठ सात्त्विक भावों (कुल ४९) का निरूपण किया है। इन्होंने अन्य भावों के साथ स्थायी भाव का संबंध राजा एवं उसके सहचरों जैसा माना है। जिस प्रकार नरों में नृपति एवं शिष्यों में गुरु का स्थान होता है, उसी प्रकार सभी भावों में स्थायी भाव की महत्ता है।

यथा नराणां नृपतिः शिष्याणां च यथा गुरुः।
एवं हि सर्वभावानां भावः स्थायी महानिह॥

—नाट्यशास्त्र, ७/८

कवि के आंतरिक भावों या मानसिक आवेगों को भाव कहा गया है। इनके अनुसार वाचिक, आंगिक एवं सात्त्विक अभिनयों-द्वारा सामाजिक के हृदय में काव्यार्थ का भावन करानेवाले (आस्वाद-योग्य बनानेवाले) को भाव कहते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भावयंतीति भावाः। उच्यते वागंगसत्त्वोपेतान्काव्यार्थान्भावयंतीति-भावाः इति।

—नाट्यशास्त्र, ७/१

विभाव को रस का कारण मानकर नाटक में वाचिक, आंगिक तथा सात्त्विक अभिनय का विशेष रूप से ज्ञान करानेवाले तत्त्व को इन्होंने विभाव कहा है। इन्होंने सात्त्विक भावों को भी भाव की संज्ञा दी है, जबकि परवर्ती आचार्य इसे अनुभाव के अंतर्गत मानते हैं। भरत ने रस की ऐसी परिभाषा दी, जो काल के प्रवाह की गति को तोड़कर आज भी उसी रूप में समादृत है। जिस प्रकार अनेक भाँति के व्यंजनों से संस्कृत अन्न को खानेवाले व्यक्ति अन्न के रस का आस्वादन करते हैं, उसी प्रकार नाना भाँति के भावों एवं अभिनयों के द्वारा किए गए वाचिक, आंगिक तथा सात्त्विक अभिनयों से युक्त स्थायी भावों का सामाजिक आनंद प्राप्त करते हैं। इन्होंने रसास्वाद को लौकिक स्वाद के अनुरूप मानकर उसकी तुलना व्यंजनों के आस्वाद से की है। भरत का रस-निरूपण दर्शन-निरपेक्ष एवं व्यावहारिक भित्ति पर आधृत है। रस के विभिन्न अंगों का विवेचन आधुनिक मनोविज्ञान की प्रक्रिया से साम्य रखता है। इनकी रस-मीमांसा दार्शनिक न होकर नीतिशास्त्रीय सिद्धांतों के अनुकूल है और उसमें लौकिकता तथा सामाजिकता के बीज विद्यमान हैं। इनके विवेचन में दार्शनिक पूर्वाग्रह नहीं दिखाई पड़ता, जबकि परवर्ती रस-मीमांसा दार्शनिक मान्यताओं पर ही अधिष्ठित रही। पाकरस के समान नाट्यरस की व्याख्या कर इन्होंने वस्तुवादी दृष्टि का परिचय दिया है। भरत ने सामाजिक में भी विशेष प्रकार की योग्यता का अनुभव कर उसका सुमनस् होना आवश्यक माना है अर्थात् उसे काव्यरस के नियमों से परिचित होना चाहिए।

अलंकारवादी धारा—भरत के पश्चात् शतियों तक रस-विवेचन की धारा अवरुद्ध रही और इस दिशा में कोई ठोस कार्य संपन्न न हो सका। ध्वनि-संप्रदाय के उदय की कालावधि तक पाँच महत्त्वपूर्ण आचार्य आते हैं—भामह, दंडी, उद्भट, वामन और रुद्रट। इनमें से प्रथम तीन अलंकारवादी हैं और वामन रीतिवादी। रुद्रट की स्थिति रस और अलंकार, दोनों के मिलन-विंदु की है। इनकी अवधारणाएँ समान नहीं हैं, तथापि इनके रस-विषयक दृष्टिकोण में साम्य है।

भामह—भामह ने अलंकार को काव्य का महत्त्वपूर्ण तत्त्व मानकर रस का उसमें अंतर्भाव किया है। ये रस-सिद्धांत के विरोधी हैं और उसकी सीमा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

को परिमित कर उसका अंतर्भाव प्रेयस्, रसवत् और ऊर्जस्वी-जैसे अलंकारों में करते हैं—जहाँ शृंगारादि रस स्पष्ट रूप से दिखाए गए हों, वहाँ रसवत् अलंकार होता है।

रसवद्दर्शितस्पष्टशृंगारादिरसं यथा।
देवी समागमद्धर्ममस्करिण्यतिरोहिता ॥

—काव्यालंकार, ३/६

फिर भी, महाकाव्य के विवेचन में भामह रस की महत्ता स्वीकार कर उसके लिए समस्त रसों के नियोजन की अनिवार्यता सिद्ध करते हैं। महाकाव्य के अन्य अंगों—जैसे सर्गबद्धता, शब्दार्थ-सौष्ठव, पंचसंधियों का गठन तथा अलंकारों के सुंदर प्रयोग—के अतिरिक्त इन्हें सभी रसों का समावेश भी मान्य है। फिर भी, समग्रतः इनकी दृष्टि रस-विरोधी है—

युक्तं लोकस्वभावेन रसैश्च सकलैः पृथक्।

—काव्यालंकार, १/१२१

इन्होंने रसवत् अलंकार के उदाहरण में विभाव को ही रस मान लिया है और काव्य में रस-भावादि को शब्दार्थ-चमत्कार की परिधि में ग्रहण कर उसमें (काव्य में) आलंकारिक सौंदर्य की महत्ता स्वीकार की है, जिससे रस का स्थान गौण हो गया है।

दंडी—दंडी ने अपेक्षाकृत उदार दृष्टि का परिचय देकर माधुर्यादि गुणों का विस्तृत विवेचन किया है। ये रसों को अलंकार में समाहित करते हैं; पर कविता में गुण की महत्ता भी स्वीकार करते हैं। इनके अनुसार कविता का सार गुण है। इन्होंने भरत-वर्णित आठ रसों के सुंदर उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। गुणों को काव्य की आत्मा मानकर इन्होंने काव्य में रस को समान महत्त्व दिया है तथा मधुर गुण का संबंध रसों से माना है और वाक् के साथ वस्तु में भी रस की स्थिति स्वीकार की है।

मधुरं रसवद्वाचि वस्तुन्यपि रसस्थितिः।

—काव्यादर्श, १/५१

इनके अनुसार रसवत् वाक्य ही मधुर होता है, अतएव रस एवं माधुर्य एक ही पदार्थ हैं। इन्हें यह विचार मान्य है कि प्रत्येक अलंकार रस-सिंचन की क्षमता रखता है।

कामं सर्वोऽप्यलंकारो रसमर्थे निषिंचति।

—वही, १/६३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दंडी को रस-प्रक्रिया का पूर्ण ज्ञान है तथा ये स्थायी भाव और रस के अंतर को भी समझते हैं। इन्होंने विभावानुभाव एवं संचारी से पुष्ट स्थायी को ही रस मानकर उदाहरण प्रस्तुत किए हैं, जिनमें रस-प्रक्रिया का पूर्ण वैभव प्रदर्शित होता है। श्रृंगार रसवत् की मीमांसा करते हुए इन्होंने बताया कि विभावादि सामग्री का प्राचुर्य ही स्थायी भावों को रस की स्थिति तक पहुँचा देता है।

प्राक्प्रीतिर्दर्शिता सेयं रतिः श्रृंगारतां गता।
रूपबाहुल्ययोगेन तदिदं रसवद्वचः ॥

—काव्यादर्श, २/२८१

दंडी के रस-विवेचन पर भरत और भामह की अवधारणाओं का संयुक्त प्रभाव है। रस का रसवत् अलंकार में समावेश कर ये भामह के निकट पहुँचते हैं तो विभावादि का सम्यक् वर्णन करने के कारण ये भरत की परंपरा को छू देते हैं।

उद्भट—ये अलंकारवादी आचार्य होकर भी रस के समर्थक हैं। इन्होंने रसवत्, प्रेयस्, ऊर्जस्वी के अतिरिक्त समाहित नामक अलंकार का भी वर्णन किया है। इनके अनुसार समाहित अलंकार में भाव, रसाभास, भावाभास की शांति का तो उल्लेख होता है; पर अन्य रसों के अनुभाव का वर्णन नहीं होता।

रसाभावतदाभासवृतेः प्रशमबंधनम् ।
अन्यानुभावनिश्शून्यरूपं यत्तत् समाहितम् ॥

—काव्यालंकारसारसंग्रह, ४/७

इन्होंने शांत रस को भी नाटक में अनुभव-योग्य माना है—'नवनाट्ये रसाः स्मृताः' तथा रसवत् अलंकार का वर्णन करते हुए विभाव, स्थायी, संचारी, अभिनय एवं स्वशब्द का भी वर्णन किया है।

रसवद्दर्शितस्पष्टश्रृंगारादिरसोदयम् ।
स्वशब्दस्थायिसंचारिविभावाभिनयास्पदम् ॥

—वही, ४/३

इनके अनुसार जब स्थायी भाव रसावस्था को न पहुँचे तो वहाँ प्रेय अलंकार होगा और काम, क्रोध आदि के अनौचित्यपूर्ण वर्णन में ऊर्जस्वी अलंकार कहा जायगा। इन्होंने नाटक का आधार रस को मानकर भी काव्य का आधार उक्तिचारुत्व को स्वीकार किया। इनके मतानुसार रस, काव्य में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अंग-रूप से प्रयुक्त होकर उक्ति चारुत्व की सहायता करता हुआ काव्योत्कर्ष में योगदान करता है।

वामन—ये रीतिवादी आचार्य हैं और काव्य की आत्मा रीति को स्वीकार करते हैं। इन्होंने गुण का वर्णन करते हुए रस को उसका आवश्यक अंग माना है और 'कांति' गुण में रस का समावेश किया है—

दीप्तरसत्वं कांतिः। —काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, ३, २, १५

जिस काव्यबंध में श्रृंगारादि रस दीप्त हों, वहाँ कांतिगुण (अर्थगुण) होता है। वामन समस्त काव्य-भेदों में नाटक को श्रेष्ठ मानकर प्रकारांतर से रस की महत्ता प्रतिष्ठित करते हैं—

संदर्भेषु दशरूपकं श्रेयः।—काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, १, २, ३०

गुण को काव्य का नित्यधर्म स्वीकार कर वामन ने रस की महत्ता मान ली है। कुल मिलाकर इनका रस-विवेचन संतोषप्रद नहीं कहा जा सकता; क्योंकि इनके मत से काव्य का मूल तत्त्व रीति है और रीति का प्राण है गुण। और, रस का संबंध गुण के साथ है। इनका महत्त्व इस रूप में अवश्य है कि इन्होंने रस को अलंकार के फंदे से निकालकर गुण से संबद्ध कर दिया। इनके विचार से काव्य का अंगभूत तत्त्व रीति है और रस अंगी-स्वरूप है अर्थात् उसका स्थान गौण है।

रुद्रट—रुद्रट अलंकारवादी आचार्य हैं; पर रस के प्रति भी सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण रखते हैं। इन्होंने 'काव्यालंकार' के चार अध्यायों में स्वतंत्र रूप से रस का विवेचन किया है तथा इस क्षेत्र में कतिपय महत्त्वपूर्ण उद्भावनाएँ भी की हैं। इन्होंने भरत-कृत आठ रसों के स्थान पर दस रसों का वर्णन किया और प्रेयान् नामक नवीन रस का निरूपण किया। नवम रस में ये शांत को स्थान देते हैं। इनकी रस-मीमांसा काव्य की दृष्टि से हुई है। इन्होंने बताया कि रस के बिना कोई भी काव्य शास्त्र की नाईं नीरस हो जाता है; अतः कविगण रस का निरूपण सतर्क होकर करें। रस को काव्य का सर्वाधिक उपयोगी तत्त्व मानकर रुद्रट ने कहा कि इसके समावेश से काव्य मोहक बन जाता है, जिससे पुरुष उसमें रमण करने लग जाते हैं। [**काव्यालंकार, १२/१, २**] इनके मत से वही काव्य कल्पपर्यंत यश का विस्तार करता है, जिसमें अलंकार की दीप्ति, दोषाभाव एवं श्रृंगारादि रसों का समावेश हो। [**काव्यालंकार, १/४**] [**दे० रुद्रट तथा काव्यालंकार**] रुद्रट ने रस को अलंकार, गुण अथवा रीति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में अंतर्भूत न कर उसका विवेचन स्वतंत्र रूप से किया। इन्होंने सभी रसों का वर्णन करते हुए भी श्रृंगार को अधिक विस्तार दिया और उसके स्वरूप, अंग एवं भेदों के अतिरिक्त मान तथा मानमोचन की विधि के साथ-ही-साथ नायक-नायिका-भेद का भी विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया। इन्होंने विप्रलंभ श्रृंगार के चार भेदों—प्रथमानुराग, मान, प्रवास और करुण—का निरूपण किया है। इनके अनुसार शांत रस का स्थायी भाव सम्यक् ज्ञान है। [विशेष विवरण के लिए दे० रुद्रट]

रुद्रभट्ट—इन्होंने 'श्रृंगारतिलक' नामक ग्रंथ में रस का निरूपण किया है। [दे० रुद्रभट्ट] इसमें नवरसों एवं नायिका-भेद का बड़े अभिनिवेश के साथ वर्णन है। इन्होंने काव्य में रस की स्थिति को स्वीकार कर उसके बिना वाणी को अशोभन माना है और काव्य की सार्थकता रस से ओतप्रोत होने में सिद्ध की है।

तस्माद्यत्नेन कर्त्तव्यं काव्यं रसनिरंतरम्।

—श्रृंगारतिलक, १/८

ध्वनि-काल—रस-विवेचन की दृष्टि से अलंकारवादी आचार्यों का कोई विशेष योग नहीं माना जा सकता। इन्होंने नाटक के अतिरिक्त प्रबंध एवं मुक्तक के अंतर्गत रस की व्याख्या करने का प्रयत्न किया है। अलंकारवादी आचार्य रसतत्त्व की ओर आकृष्ट होकर भी काव्य का मूल तत्त्व अलंकार को मानते रहे; पर अंततः उन्होंने रस की उपयोगिता स्वीकार की, जिसकी परिणति रुद्रट के विवेचन में हुई। भारतीय साहित्यशास्त्र के इतिहास में ध्वनिसंप्रदाय का उदय एक आश्चर्यजनक घटना है, जिसकी कालावधि आनंदवर्द्धन से मम्मट तक अर्थात् ८५० ई० से १०५० ई० तक है।

इस युग की विशेषता रस-सिद्धांत के गंभीर विवेचन, तर्क-वितर्क द्वारा उसका स्थापन एवं उसके स्वरूप के स्थिरीकरण में निहित है। आनंदवर्द्धन, भट्टनायक, भट्टतौत, कुंतक, अभिनवगुप्त, धनंजय, महिमभट्ट, क्षेमेंद्र, भोज तथा मम्मट प्रभृति आचार्यों ने अपनी मान्यताओं द्वारा रस-सिद्धांत के विवेचन में अभूतपूर्व क्रांति लाकर उसे महनीय काव्य-चिंतन का रूप दिया।

आनंदवर्द्धन—इन्होंने ध्वनि-सिद्धांत की स्थापना कर मुख्यतः रस-सिद्धांत की ही महनीयता सिद्ध की है। आनंदवर्द्धन रस का अंतर्भाव ध्वनि में करते हैं; पर ध्वनि का प्राण रसध्वनि को स्वीकार कर प्रकारांतर से रस

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

की महत्ता प्रतिष्ठित करते हैं। इन्होंने ध्वनि के तीन प्रकारों—वस्तुध्वनि, अलंकारध्वनि एवं रसध्वनि—में रसध्वनि को ही काव्य का उत्तम रूप माना है। इन्होंने 'ध्वन्यालोक' में रस का पृथक् विवेचन नहीं किया है; पर ध्वनि के एक भेद असंलक्ष्यक्रमव्यंग्य के अंतर्गत रस का निरूपण किया है। इन्होंने रसास्वादन की प्रक्रिया, उसके स्वरूप एवं व्याप्ति तथा रसदोषों का वैज्ञानिक विवेचन किया है। इनके अनुसार अलंकार, गुण, रीति और वृत्ति सभी रस के सहायक हैं। अलंकार की रचना रसाक्षिप्त हो, उसका प्रयत्नसाध्य प्रयोग हेय है; क्योंकि इसका मुख्य लक्ष्य रस-सिद्धि में गति प्रदान करना है। रस को लौकिक भित्ति पर अधिष्ठित कर आनंदवर्द्धन ने उसमें नैतिकता का समावेश किया। प्रबंध अथवा मुक्तक-काव्य में रस-विरोध के परिहार का नियम-निर्धारण एवं कवि को उसके प्रति सचेष्ट रहने के लिए कहकर इन्होंने उक्त तथ्य का निदर्शन किया है। अनवसर में रस-प्रकाश करने को ध्वनिकार ने रस-दोष मानकर उसे असामाजिक करार दिया है और अनौचित्य को रस-भंग का प्रधान कारण माना है। आनंदवर्द्धन श्रव्य तथा दृश्य—दोनों ही—काव्यों के लिए रस-निबंधन आवश्यक मानते हैं और (दोनों ही प्रकार के काव्यों में) रसों का अंगांगिभाव से समावेश कर सौंदर्यातिशय्य के लिए एक ही रस की प्रधानता की व्यवस्था करते हैं।

रसभावतदाभासतत्प्रशांत्यादिरक्रमः ।
ध्वनेरात्मांऽगिभावेन भासमानो व्यवस्थितः ॥२/३
रसाक्षिप्ततया यस्य बंधः शक्यक्रियोभवेत् ।
अपृथग्यत्ननिर्वर्त्यः सोऽलंकारो ध्वनौ मतः ॥२/१६
प्रबंधे मुक्तके वापि रसादीन्बंधुमिच्छता ।
यत्नः कार्यः सुमतिना परिहारे विरोधिनाम् ॥
प्रसिद्धेऽपि प्रबंधानां नानारसनिबंधने ।
एको रसोंऽगीकर्तव्यस्तेषामुत्कर्षमिच्छता ॥३/२१

—ध्वन्यालोक

प्रबंधध्वनि के अंतर्गत पांच तथ्यों पर विचार करते हुए इन्होंने निम्नांकित नियम-निर्धारित किए—

क. विभाव, भाव, अनुभाव तथा संचारी के औचित्य पर ही ऐतिहासिक अथवा काल्पनिक कथा का सर्जन।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ख. ऐतिहासिक दृष्टि से सत्य होने पर भी यदि रस-दृष्टि से कथा में प्रतिकूल स्थिति का समावेश हो जाय तो विवक्षित रस के अनुकूल कथा में नवीन कल्पना कर उसे परिष्कृत किया जाय।

ग. नाटक एवं प्रबंध-काव्यों में केवल शास्त्रीय विधान के परिपालन-हेतु ही संधि तथा संध्यंगों का नियोजन न करके उनकी रचना रसाभिव्यक्ति की दृष्टि से हो।

४. प्रबंधों में यथास्थान रसों के उद्दीपन, प्रशमन एवं विश्रांति होने पर प्रधान रस का सदा स्मरण किया जाय।

५. प्रबंध में रसानुरूप अलंकारों का प्रयोग हो। [दे० ध्वन्यालोक ४/१०-१४] आनंदवर्द्धन ने रस को व्यंजनागम्य माना है अर्थात् रस की प्रकृति व्यंजनामूलक है। इन्होंने रसध्वनि के साथ अलंकार, रीति, औचित्य आदि काव्य के इतर तत्त्वों का समन्वय कर इसकी व्यापकता सिद्ध की है और काव्यसौंदर्यविधायक समग्र तत्त्वों का रस में अंतर्भाव कर इसे असीम गौरव प्रदान किया है। इस प्रकार रस-सिद्धांत का व्यापक विवेचन प्रस्तुत कर उसमें कल्पनातत्त्व, रमणीय-तत्त्व, नैतिक विचार, चित्रणतत्त्व, काव्यादर्श एवं परिस्थिति आदि की योजना कर आनंदवर्द्धन ने रस के स्वरूप को अधिक पूर्ण, व्यापक एवं वैज्ञानिक बनाया। इतना होने पर भी ध्वनिकार अप्रत्यक्ष रसवादी सिद्ध होते हैं, क्योंकि इनका मूल उद्देश्य ध्वनि-सिद्धांत का निर्भ्रांत विवेचन कर उसमें रस का अंतर्भाव करना था। [**भट्टतौत एवं भट्टनायक के रस-संबंधी मत के लिए दे० भट्टतौत एवं रस-निष्पत्ति**]

कुंतक—ये वक्रोक्तिवादी आचार्य होकर भी रस की महत्ता सिद्ध करते हैं तथा काव्य के लक्षण, प्रयोजन एवं वक्रोक्ति के अनेक भेदों—जैसे प्रबंधवक्रता—में रस को समुचित महत्त्व देते हैं। इनका उद्देश्य वक्रोक्ति को काव्य का सर्वस्व मानना था। अतः, इनका रस-विवेचन अनौपचारिक एवं आनुषंगिक है।

वक्रोक्ति-सिद्धांत के वर्णन-क्रम में कुंतक ने कई ऐसे तथ्य प्रस्तुत किए हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि इनकी दृष्टि में काव्य के लिए रस एक महनीय तत्त्व है। इन्होंने काव्य का श्रेष्ठ रूप प्रबंध काव्य (प्रबंधवक्रता) को मानकर उसका प्राण रस को स्वीकार किया। [वक्रोक्तिजीवित, ४/११] ये ध्वनिवादी आचार्यों की भांति रस को व्यंग्य मानते हैं, वाच्य नहीं।

चतुर्वर्गफलास्वादमप्यतिक्रम्य तद्विदाम्।
काव्यामृतरसेनांतश्चमत्कारो वितन्यते॥ १/५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"काव्यामृत का रस उसको समझनेवाले (सहृदयों) के अंतःकरण में चतुर्वर्गरूप फल के आस्वाद से भी बढ़कर चमत्कार उत्पन्न करता है।'—वक्रोक्तिजीवित। इन्होंने रस के स्वशब्दवाच्यत्व का प्रबल विरोध करते हुए कहा कि इससे यह अभिप्राय प्रकट होता है कि शृंगारादि रस स्वशब्द से कथित होकर तथा श्रवण से गृहीत होकर सहृदयों को आनंद प्रदान कर सकते हैं। इस दृष्टि से घृतपूर आदि भोज्य पदार्थ भी नाम लेने मात्र से ही भोजन का आनंद दे सकते हैं। [वक्रोक्ति जीवित, ३/११ की वृत्ति]

इन्होंने काव्य के वर्ण्य-विषय को रसस्वरूप मानकर उसे रस पर निर्भर करते हुए चित्रित किया है।

निरंतर रसोद्गारगर्भसंदर्भनिर्भराः।
गिरः कवीनां जीवंति न कथामात्रमाश्रिताः ॥

—वक्रोक्तिजीवित, ४/११

कुंतक ने काव्य की कथावस्तु को जड़ तथा चेतन-रूप में स्वीकार कर द्वितीय (चेतन) को प्रमुखता दी है और उसके लिए रस का परिपोष आवश्यक माना है। इन्होंने वक्रोक्ति-सिद्धांत के मार्ग-वर्णन में भी रस को समुचित महत्त्व प्रदान किया है।

अभिनवगुप्त—इनका रस-विवेचन शैवाद्वैत में प्रतिपादित आनंदवाद पर आधृत है। [**इनके मत को जानने के लिए दे० रस-निष्पत्ति**] रस-निरूपण के क्रम में अभिनव ने सात रस-विघ्नों का निरूपण किया है, जो अपने में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

अभिनव रस को वीतविघ्नप्रतीतिग्राह्य [दे० **संभावना-विरह**] मानकर उसे अलौकिक सिद्ध करते हैं। इनके अनुसार जब श्रोता या पाठक वर्ण्य-विषय को असंभव समझ ले तो उसे रस-बोध नहीं होगा। अभिप्राय यह कि रस-प्रतीति के लिए वर्ण्य-विषय की असंभवता विघ्न है और विषय को असंभव समझने पर रस-निष्पत्ति में बाधा की उपस्थिति 'संभावना विरह' है।

स्वपरगत देशकाल विशेषावशेष—यदि नाटक के अवलोकन के समय प्रस्तुत प्रसंग से सामाजिक को अपने सुख-दुःख का ध्यान हो जाय तो रसानुभूति में बाधा उपस्थित हो जायगी। परगत भाव से रस की प्रतीति होने पर भी रस-बोध में बाधा आ जाती है।

निज सुखादिविवशी भाव—अपने सुख-दुःख से ग्रसित भाववाले ग्राहक या सामाजिक की रसानुभूति बाधित हो जाती है अर्थात् वैयक्तिक सुख-दुःख से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आविष्ट व्यक्ति न तो नाटक का आनंद उठा सकता है और न काव्य का रसास्वादन कर सकता है।

प्रतीत्युपाय वैकल्य—अर्थात् प्रतीति के उपाय की विफलता और उसका स्फुट न होना। जिन साधनों या उपकरणों से रस की प्रतीति होती है, यदि वे अपूर्ण या अधूरे हों अथवा वे उपाय अस्फुट रहें तो रसानुभूति में बाधा उपस्थित हो जाएगी।

स्फुटत्वाभाव—रस-सामग्री का स्फुट न होना ही स्फुटत्वाभाव है।

अप्रधानता—यदि प्रधान वस्तु के स्थान पर अप्रधान को ही काव्य या नाटक में महत्त्व दिया जाय या उसका विस्तार कर दिया जाय तो रसानुभूति में विघ्न उपस्थित हो जायगा अर्थात् नाटक या काव्य में स्थायी भावों की अपेक्षा विभाव, अनुभाव और संचारी भाव की प्रमुखता होने पर यह विघ्न होता है।

संशययोग—रस के अवयवों की वास्तविकता के संबंध में संशय उपस्थित होना ही संशय योग है। विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों का स्थायी भाव के साथ निश्चित संबंध का अभाव ही इस विघ्न का कारण होता है।

धनंजय—इनका 'दशरूपक' [दे० **दशरूपक**] नाट्यशास्त्रीय ग्रंथ है; पर प्रसंगानुसार उसमें रस तथा नायिका-भेद का भी विवेचन किया गया है। 'दशरूपक' के चतुर्थ प्रकाश में रस-निरूपण है और रस के स्वरूप, उसके अंग, रस की स्थिति, काव्य के साथ रस का संबंध, नाटक में रस की उपयोगिता, अभिनय की दृष्टि से शांत रस की असिद्धि, रस के भेद तथा रस-विरोध और उसके परिहार का वर्णन है। धनंजय और उनके टीकाकार धनिक—दोनों ही ध्वनि-विरोधी एवं रस-सिद्धांत के प्रबल समर्थक हैं। उन्होंने भट्टनायक के रस-संबंधी मत का समर्थन कर काव्य एवं रस में भाव्य-भावक-संबंध को स्वीकार किया है; इन्हें काव्य एवं रस का व्यंजक-भाव मान्य नहीं है। काव्य भाव है और रसादि भाव्य हैं तथा विभावादि के साथ रस का भाव्य-भावक-भाव संबंध होता है।

अतो न रसादीनां काव्येन सह व्यंग्यव्यंजकभावः, तर्हि भाव्यभावकसंबंधः। काव्यं हि भावकं, भाव्याः रसादयः। —दशरूपक, ४/३७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इन्होंने रस का लक्षण प्रस्तुत करते हुए बताया कि विभाव, अनुभाव, सात्त्विक एवं व्यभिचारी भावों के द्वारा जब स्थायी भाव आस्वाद्य बनता है तो उसे रस कहते हैं।

विभावैरनुभावैश्च सात्त्विकैर्व्यभिचारिभिः ।
आनीयमानः स्वाद्यत्वं स्थायी भावो रसः स्मृतः ।।

—दशरूपक, ४/१

धनंजय मन की चार अवस्थाओं के आधार पर चार प्रधान रसों की कल्पना करते हैं—चित्त का विकास, चित्त का विस्तार, चित्त का क्षोभ एवं चित्त का विक्षेप। इनसे क्रमशः शृंगार, वीर, बीभत्स और रौद्र रस उत्पन्न होते हैं। इनके अनुसार काव्यार्थ के संपर्क से आत्मा में उत्पन्न होनेवाला आनंद ही स्वाद है और वही उपर्युक्त चार प्रकारों में होकर चार प्रधान रसों को उत्पन्न करता है।

स्वादः काव्यार्थ संभेदादात्मानंदसमुद्भवः ।
विकारविस्तरक्षोभविक्षेपैः स चतुर्विधः ।।
शृंगारवीरबीभत्सरौद्रेषु मनसः क्रमात् ।
हास्याद्भुतभयोत्कर्ष करुणानां त एव हि ।।

—दशरूपक, ४/४३,४४

रसोत्पत्ति के संबंध में धनंजय ने शंकुक के मत का समर्थन किया है। जिस प्रकार शिशु मिट्टी के बने घोड़े-हाथियों को वास्तविक घोड़ा-हाथी समझकर उनके साथ क्रीड़ा करते हैं, उसी प्रकार सामाजिक भी अवास्तविक अर्जुन आदि पात्रों (नट के रूप में) को ही वास्तविक पात्र समझकर उनसे आनंद प्राप्त करते और अभिनेता के उत्साह से स्वयं उत्साहित होते हैं।

क्रीडतांमृण्मयैर्यद्वद् बालानां द्विरदादिभिः ।
स्वोत्साहः स्वदते तद्वच्छ्रोतॄणामर्जुनादिभिः ।।

—दशरूपक, ४/४१,४२

भट्टनायक के साधारणीकरण सिद्धांत [दे० **साधारणीकरण**] को अपनाकर इन्होंने बताया कि काव्य में वर्णित रामादि अपने विशेष व्यक्तित्व का त्याग कर साधारण पुरुष के रूप में उपस्थित होते हैं, तभी सहृदयों के मन में रस-प्रतीति कराने के कारण बनते हैं।

त एव च परित्यक्तविशेषा रसहेतवः । —वही, ४/४१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नर्तक के रसास्वाद को इन्होंने स्वीकार किया है और रसानुभूति दर्शक में मानी है।

काव्यार्थभावानास्वादो नर्तकस्य न वार्यते। ४/४२

इन्होंने बताया कि रस की स्थिति रसिक-सहृदय में ही होती है, अनुकार्य अर्थात् राम या सीता आदि में नहीं।

रसः स एव स्वाद्यत्वाद्रसिकस्यैव वर्तनात्।
नानुकार्यस्य वृत्तत्वात्काव्यस्यातत्परत्वतः॥ —वही, ४/३८

काव्य तथा रस की सीमा का निर्धारण करते हुए इन्होंने अत्यंत महत्त्वपूर्ण बात कही है, कि काव्य तथा नाटक में रस का इतना प्रामुख्य न हो जाय कि वह कथा को ही आच्छादित कर ले और कथावस्तु विच्छिन्न हो जाय तथा नाटकीय लक्षणों के घटाटोप या अलंकार या वस्तु के कारण रस तिरोहित हो जाय।

न चातिरसतो वस्तु दूरं विच्छिन्नतां नयेत्।
रसं वा न तिरोदध्याद्वस्त्वलंकार लक्षणैः॥ —दशरूपक, ३/३२

महिमभट्ट—ये ध्वनि-विरोधी आचार्य होकर भी रस के समर्थक हैं। इन्होंने अनुमान की प्रक्रिया के द्वारा रस को अनुमेय [-दे० महिमभट्ट] सिद्ध कर उसे (रस को) कविता का प्राण माना है। रस को काव्य की आत्मा मानने में इन्हें किसी प्रकार की आपत्ति नहीं है; किंतु इनका विरोध इस अर्थ में है कि रस व्यंग्य है, ये उसे अनुमेय मानते हैं।

काव्यस्यात्मनि संज्ञिनि रसादिरूपे न कस्यचिद्विमतिः।
—व्यक्तिविवेक, पृ० १०५

अनौचित्य दोष का वर्णन करते हुए इन्होंने रसाभाव को उसका रूप मानकर रस की महत्ता सिद्ध की है। रस की प्रतीति में बाधा का होना ही इनकी दृष्टि में प्रधान दोष है। —वही, पृ० १३३

इन्होंने रस की स्थिति सहृदय में स्वीकार की है; पर उसे सहृदय के चित्त में वासना-रूप में विद्यमान नहीं माना तथा विभाव और स्थायी भाव में कार्य-कारण-संबंध स्वीकार किया।

महाराज भोज—इन्होंने 'सरस्वतीकंठाभरण' तथा 'शृंगारप्रकाश' नामक ग्रंथों में रस का विशद विवेचन किया है। इनके अनुसार शृंगार अभिमान और अहंकार से अभिन्न है और रस सुख-दुःखात्मक होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भोज एकमात्र रस शृंगार की कल्पना कर उसे अहंकार और अभिमान से अभिन्न स्वीकार करते हैं। अहंकार को शृंगार मानते हुए भोज ने कहा कि कवि उसके अस्तित्व के कारण ही सरस रचना करता है। यह अहंकार रसात्मक, अन्य रसों का मूल एवं विशेष प्रकार के अहंकार का द्योतक है, जिसे मनुष्यों को सुख-दुःख की चरम सीमा तक पहुँचाने तथा उसे पूर्ण बनाने के कारण शृंगार कहा जाता है। आत्मा का अहंकार शृंगार ही सहृदयों द्वारा रस्यमान होकर रस-रूप में परिणत हो जाता है। वस्तुतः एकमात्र रस शृंगार ही है, अन्य रस तो उसीमें अंतर्भूत हो जाते हैं।

शृंगारवीरकरुणाद्भुतरौद्रहास्यबीभत्सवत्सलभयानकशांतनाम्नः।
आम्नासिषुर्दश रसान्सुधियो वयं तु शृंगारमेव रसनाद्रसमामनामः ॥

—शृंगारप्रकाश, भाग २, पृ० ३६८, डॉ० राघवन्

भोज का महत्त्व शृंगार रस को दार्शनिक तथा मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान कर उसे सुदृढ़ सैद्धांतिक रूप देने में है। वे एक रस के सिद्धांत के उन्नयन में शैवदर्शन की पीठिका के आधार पर ही अहं तत्त्व को मूलतत्त्व स्वीकार करते हैं; क्योंकि वही (अहं तत्त्व) सुखादि अनुभूतियों का मूल है और उसी के आधार पर वे एक रस के सिद्धांत को स्थापित करते हैं।

क्षेमेंद्र—औचित्य-संप्रदाय के उन्नायक क्षेमेंद्र [दे० क्षेमेंद्र] ने औचित्य तथा रस के संबंध पर विचार कर रस को काव्य का प्राण और औचित्य को उसका जीवभूत तत्त्व स्वीकार किया है। औचित्य को रस का पोषक तत्त्व मानकर इन्होंने उसका (औचित्य का) प्राण रस को स्वीकार किया तथा रस के अभाव में औचित्य को अकल्पनीय सिद्ध किया।

औचित्यस्य चमत्कार-कारिणश्चारु-चर्वणे।
रसजीवितभूतस्य विचारं कुरुतेऽधुना ॥
औचित्यं रससिद्धस्य स्थिरं काव्यस्य जीवितम्।

—औचित्यविचारचर्चा, ३, ५

क्षेमेंद्र ने काव्य में रस की सत्ता को स्वीकार कर ही औचित्य-सिद्धांत की कल्पना की और शृंगारादि रसों से काव्य को सिद्ध माना।

मम्मट—मम्मट ने रस-विषयक किसी नवीन सिद्धांत की स्थापना न कर उसका निर्भ्रांत विवेचन प्रस्तुत किया और इनका महत्त्व इसी रूप में स्वीकार किया गया। इनकी रस-संबंधी अवधारणा अभिनव-गुप्त के मत का सार एवं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उन्हीं के अनुरूप है। [दे० मम्मट] इन्होंने 'काव्य प्रकाश' में [दे० काव्य-प्रकाश] ध्वनि के एक भेद के रूप में रस का निरूपण किया है। काव्य में रस का प्राधान्य स्वीकार करते हुए ये रस-विघातक तत्त्व को काव्य-दोष मानते हैं और गुण को रस का पोषक कहकर काव्य में उसकी अनिवार्य स्थिति की घोषणा करते हैं।

मुख्यार्थहतिर्दोषो रसश्च मुख्य तस्तदाश्रयाद्वाच्यः ॥७/४९
ये रसस्यांगिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः।
उत्कर्ष हेतवस्तेस्युरचलस्थितयो गुणाः ॥

—काव्यप्रकाश, ८/६६

इन्होंने काव्य-प्रयोजन का निरूपण करते हुए आनंद को उसका प्रधान लक्ष्य मानकर प्रकारांतर से रसतत्त्व की ही प्रतिष्ठा की है और उसे काव्य का सर्वातिशायी तत्त्व माना है। इनका रस का लक्षण ध्वनिवादी आचार्यों, (विशेषतः अभिनव गुप्त) के विचारों का सार है। इनके अनुसार लोक में रति आदि स्थायी भाव के जो कारण, कार्य और सहकारी होते हैं, वे ही काव्य एवं नाटक में विभाव अनुभाव एवं व्यभिचारी भाव कहे जाते हैं और उन्हीं विभावादि के द्वारा व्यक्त होकर स्थायी भाव रस कहा जाता है।

कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च।
रत्यादेः स्थायिनोलोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययोः ॥
विभावाअनुभावास्तत् कथ्यंते व्यभिचारिणः।
व्यक्तस्स तैर्विभावाद्यैस्स्थायी भावोरसः स्मृतः ॥

—काव्यप्रकाश, ४/२७-२८

अग्निपुराण—'अग्निपुराण' में काव्य का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व रस को मानकर उसे उसका प्राण कहा गया है।

वाग्वैदग्ध्यप्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम्।

—अग्निपुराण, ३३७/३३८

इसमें महाकाव्य के लिए व्यर्थ के अलंकारों का त्यागकर उसे रसयुक्त होने का निर्देश है तथा रस के अभाव में वाणी को दान के बिना लक्ष्मी की भांति अशोभन कहा गया है।

लक्ष्मीरिव विनात्यागान्न वाणी भाति नीरसा ॥

—वही, ३३९/९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसके रस-विवेचन पर भोज का पर्याप्त प्रभाव है। इसमें रस को परब्रह्म परमेश्वर एवं अक्षय कहकर उसे समस्त सृष्टि में व्याप्त माना गया है। उसे वेदांत में चैतन्यज्योति एवं सामर्थ्यवान् कहा गया है, जिसका आनंद सहज है और उसकी अभिव्यक्ति यदा-कदा होती है। उसी अभिव्यक्ति का नाम रस या चैतन्य चमत्कार है। उस ब्रह्म के आद्य विकार को अहंकार कहते हैं, जिससे अभिमान का जन्म होता है, जिसमें तीनों लोक व्याप्त हैं। अभिमान से रति उत्पन्न होती है और उसी को (रति को) व्यभिचारी आदि भावों से पुष्ट होने पर शृंगार रस कहते हैं।

अक्षरं परमं ब्रह्म सनातनमजं विभम् ।
वेदांतेषु वदंत्येकं चैतन्यं ज्योतिरीश्वरम् ॥
आनंदः सहजस्तस्यव्यज्यते स कदाचन ।
व्यक्तिः सा तस्य चैतन्यचमत्काररसाह्वया ॥
आद्यस्तस्य विकारो यः सोऽहंकार इति स्मृतः ।
ततोऽभिमानस्तत्रेदं समाप्त भुवनत्रयम् ॥
अभिमानाद्रतिः सा च परिपोषमुपेयुषी ।
व्यभिचार्यादिसामान्याच्छृंगार इति गीयते ॥

—अग्निपुराण, ३३९/१-४

'अग्निपुराण' के अनुसार भाव के द्वारा ही रस का भावन होता है तथा भाव ही रस को प्रतीतियोग्य बनाते हैं।

न भावहीनोऽस्ति रसो न भावो रसवर्जितः ।
भावयंति रसानेभिर्भाव्यंते च रसा इति ॥

—वही, ३३९/१२

'अग्निपुराण' में नवों रसों का वर्णन है तथा रत्यादि भावों के स्वरूप का सम्यक् निरूपण है। यहाँ 'आनंद' को ही रस का मूल तत्त्व स्वीकार किया गया है और अहंकार को उसका (रस का) मूल कारण मानकर सांख्य दर्शन से प्रभाव ग्रहण किया गया है।

रामचंद्रगुणचंद्र—दोनों लेखकों की सम्मिलित कृति 'नाट्यदर्पण' में रस-विषयक अनेक नवीन तथ्यों का उद्घाटन हुआ है। यह नाट्यशास्त्रीय ग्रंथ है और इसमें नाटक को ही दृष्टि में रखकर रस-निरूपण किया गया है। रस की सुख-दुःखात्मकता, रसों के क्रम का निर्धारण, शृंगार को कामप्रधान

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मानकर उसकी प्रमुखता, शांत रस की अभिनेयता तथा अनेक नवीन रसों की उद्भावना 'नाट्यदर्पण' की नवीन उपस्थापनाएँ हैं।

इसमें लौल्य, स्नेह, व्यसन, दुःख तथा सुख को रस के रूप में एवं क्षुत्, तृष्णा, मैत्री, मुदिता, श्रद्धा, दया, उपेक्षा, रति, संतोष, क्षमा, मार्दव, आर्जव और दाक्षिण्य को नवीन संचारियों के रूप में वर्णित किया गया है।

रसों के क्रम-निर्धारण में 'नाट्यदर्पण' की देन महत्त्वपूर्ण है। सर्वप्रथम शृंगार की गणना इसलिए की जाती है कि वह कामप्रधान है। यह सर्वसुलभ तत्त्व होने के कारण सभी प्राणियों में पाया जाता है। शृंगार का अनुगामी हास्य है; अतः इसके बाद उसे स्थान मिलता है। करुण हास्य का विरोधी है, इसलिए उसे तृतीय स्थान प्राप्त है।

रौद्ररस को अर्थज या अर्थप्रधान मानकर काम के साथ इसका निकट संबध स्थापित करते हुए इसे चतुर्थ स्थान प्रदान किया गया है। वीररस धर्मप्रधान रस माना गया है और धर्म की उत्पत्ति काम और अर्थ से मानकर इसे पंचम स्थान पर अधिष्ठित किया गया है। भयभीतों को अभय करना वीररस का कार्य है; अतः वीररस के पश्चात् भयानकरस का स्थान है, भयानक के बाद बीभत्स का। सात्त्विक प्रकृति के व्यक्तियों द्वारा भय की निंदा करने के कारण भय के बाद बीभत्स का स्थान आता है। बीभत्स का नाश विस्मय-द्वारा होता है; अतः इसके बाद अद्भुत रस आता है। शम को धर्म का मूल कारण मानकर अंत में शांत रस को ग्रहण किया जाता है। यहाँ प्रकारांतर से इस तथ्य की पुष्टि की गई है कि कामप्रधान शृंगार ही मूल रस है।

नाट्यदर्पणकार ने नाटक का एकमात्र आधार रस को मानकर इसकी महत्ता प्रदर्शित की है—

पंथाः नाट्यस्य रसकल्लोलसंकुलः। —नाट्यदर्पण, पृ० ३

इन्होंने रस को काव्य की आत्मा मानकर नाटक का एकमात्र उद्देश्य रस-निष्पत्ति को स्वीकार किया है। इन्होंने शब्द और अर्थ को काव्य का शरीर और रस को उसमें प्राण-संचार करनेवाला तत्त्व माना है।

अर्थशब्दवपुः काव्यं रसैः प्राणैर्विसर्पति।
अंजसा तेन सौहार्दं रसेषु कविमानिनाम्॥

—नाट्यदर्पण, ३/२१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विश्वनाथ—इन्होंने 'साहित्यदर्पण' नामक लोकप्रिय काव्यशास्त्रीय ग्रंथ में रस का अत्यंत विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है। इन्होंने रस को काव्य की आत्मा मानकर उसे इसका (काव्य का) सर्वातिशायी तत्त्व स्वीकार किया है—'**वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।**' विश्वनाथ रस की स्वतंत्र सत्ता मानकर इसका वर्णन पृथक् रूप से करते हैं, ध्वनि के अंतर्गत नहीं। इनके रस-विवेचन पर भट्टनायक तथा अभिनव गुप्त के विचारों की छाया है। [**दे० रसनिष्पत्ति**] वेदांतदर्शन के आधार पर रस की व्याख्या करते हुए इन्होंने बताया कि मन में तमोगुण तथा रजोगुण को दबाकर सत्त्वगुण का उद्रेक एवं प्राबल्य होने पर ही रस का साक्षात्कार या अनुभव होता है। इन्होंने रस को प्रकाशपूर्ण, आनंदस्वरूप एवं चमत्कारमय माना है [**दे० रस-सिद्धांत**] तथा वत्सल नामक नवीन रस की उद्भावना की है। [**दे० वत्सल रस**] [**विश्वनाथ के रस-संबंधी मत को जानने के लिए दे० साधारणीकरण**] इन्होंने करुण रस की सुखात्मकता सिद्ध करते हुए बताया कि लोक में शोक से दुःख होता है; किंतु काव्य अथवा नाटक में शोक से भी आनंदानुभूति होती है। नाटकादि के देखने से करुण-कथा के कारण जो अश्रुपात होता है, वह भी सुख के कारण और उससे चित्त में द्रुति होती है। दे० साहित्यदर्पण, ३/४-५-६ तथा ८

विभावादि का साधारणीकरण मानकर विश्वनाथ ने काव्य के व्यंग्य-व्यंजक संबंध को स्वीकार किया है। इनके अनुसार साधारणीकरण व्यंजना का व्यापार है। [**दे० साधारणीकरण**] रस-सिद्धांत के विकास में इन्होंने महत्त्वपूर्ण योग दिया है।

शारदातनय—इनका 'भावप्रकाशन' नाट्यशास्त्रीय ग्रंथ है, जिसके प्रतिपाद्य विषय हैं—भाव, रस, शब्दार्थ संबंध और रूपक। [**दे० शारदातनय**] इसमें स्थायी भाव, संचारी, अनुभाव तथा नायक-नायिका-भेद के संबंध में अनेक नवीन तथ्य प्रस्तुत किए गए हैं। शारदातनय नाटक को काव्य का प्रतीक मानकर उसे सर्वरसाश्रय कहते हैं और प्रेक्षक, नट तथा कवि तीनों के लिए मुक्ति-भुक्ति-प्रद मानते हैं।

इत्थमुक्तक्रमोपेतं नाट्यं सर्वरसाश्रयम्।
प्रेक्षकस्य प्रयोक्तुश्च कवेस्याद् भुक्तिमुक्तिदम्॥

—भावप्रकाशन, पृ० ३१३

भानुदत्त—इन्होंने 'रसतरंगिणी' तथा 'रसमंजरी' नामक ग्रंथों में रस और नायक-नायिका-भेद का विशद विवेचन किया है। [**दे० भानुदत्त**] इनके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनुसार विभाव, अनुभाव, सात्त्विक तथा व्यभिचारी भावों के द्वारा अपनीयमान (पुष्ट होकर) परिपूर्ण स्थायी ही रस्यमान होने पर रस कहा जाता है। रस की आनंदरूपता पर विचार करते हुए इनका कथन है कि जहाँ सहृदय भाव (स्थायी भाव), विभाव अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों के द्वारा मनोविश्राम करें, वहाँ रस होता है। इनकी रस की तीसरी परिभाषा यह है कि सहृदयों के हृदय में वासनारूप में स्थित स्थायी भाव ही प्रबुद्ध होकर रस का रूप धारण करता है। रस के प्रबोधक हैं विभाव, अनुभाव और व्यभिचारीभाव तथा भाव के प्रधान एवं रस के अप्रधान होने पर भावमुख होता है। [दे० **रसतरंगिणी, षष्ठतरंग, पृ० ११५-१२०**]

इन्होंने रस के दो प्रकार माने हैं—लौकिक एवं अलौकिक। लोकसन्निकर्ष से उत्पन्न रस लौकिक एवं अलौकिक सन्निकर्षजन्य रस अलौकिक होता है। लौकिक रस के अंतर्गत शृंगारादि रसों को रखा गया है। भानुदत्त ने माया रस का वर्णन किया है और प्रवृत्ति तथा निवृत्ति के रूप में चित्तवृत्ति के दो भेद करके निवृत्ति के अंतर्गत शांत और प्रवृत्ति के भीतर मायारस का समावेश किया है। ये काव्य में शांत रस की स्थिति स्वीकार करते हैं; पर नाटक में नहीं।

अलौकिक रस के तीन प्रकार किए गए हैं—स्वाप्निक, मानोरथिक और औपनायिक। अलौकिक सन्निकर्ष से स्वप्न में उत्पन्न होनेवाली रसानुभूति को स्वाप्निक कहा गया है तथा भावकों के मन में उत्पन्न मनोरथों के कारण उद्भूत रसानुभूति मानोरथिक कही गई है। उपनयजन्य (अनुभवों का इच्छा-निरपेक्ष भावना) रसानुभूति मानोरथिक है। भानुदत्त का यह विभाजन पारस्परिक रस-मीमांसा से मेल नहीं खाता ; क्योंकि जब सभी रस अलौकिक और ब्रह्मास्वाद सहोदर कहे गए हैं तो उन्हें लौकिक कैसे कहा जा सकता है। इन्होंने 'छल' नामक नए संचारी भाव का वर्णन किया है।

रूपगोस्वामी—इन्होंने रसविषयक दो महत्त्वपूर्ण ग्रंथों का प्रणयन किया है—'हरिभक्तिरसामृतसिंधु तथा उज्ज्वलनीलमणि'। [दे० **रूपगोस्वामी**] महाप्रभु चैतन्य के 'अचिंत्यभेदाभेद' नामक दार्शनिक अवधारणा पर इनका रस-विवेचन आधृत है, जिसे भक्तिरस या मधुर रस कहा गया है। रस-सिद्धांत के विकास में रूपगोस्वामी का महत्त्वपूर्ण योग है। इन्होंने रस-तत्त्व में आध्यात्म्य एवं धार्मिकता का समावेश कर उसे नई पीठिका प्रदान की है। पाँच प्रकार की भक्ति के आधार पर पाँच प्रकार के रसों की प्रकल्पना की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गई है—शांत, दास्य (प्रीति), सख्य या प्रेयस्, वात्सल्य तथा माधुर्य। इन्होंने भक्तिरस को मधुर या उज्ज्वल रस की अभिधा प्रदान कर उसे मूल रस कहा है। [**दे० भक्तिरस**] 'हरिभक्तिरसामृतसिंधु' में भक्ति रस को परम तत्त्व मानकर श्रृंगारादि रसों को इसका विकार माना गया है तथा हास्य, अद्भुत, वीर, करुण, रौद्र, भयानक और बीभत्स को गौण रसों की श्रेणी में रखा गया है। इस प्रकार गौड़ीय वैष्णव रसशास्त्र के अनुसार कुल बारह रस हैं और इनका मूलभाव या आधार भगवद्रति है, जिसका चरम परिपाक मधुर भाव में दिखलाया गया है। मधुर रस अत्यंत दुरूह है तथा केवल निवृत्त व्यक्तियों के लिए उपयोगी है। इसके आलंबन कृष्ण और कृष्णप्रिया हैं तथा उद्दीपन के अंतर्गत मुरली का निःस्वन है। अनुभावों में नेत्र के कोर से देखना तथा स्मित आते हैं। इसका स्थायी भाव मधुरा रति है और आलस्य तथा उग्रता के अतिरिक्त सभी संचारियों का समावेश होता है। इसके दो प्रकार हैं—विप्रलंभ और संभोग तथा प्रथम के पूर्वराग, मान और प्रवास आदि भेद किए गए हैं। रूपगोस्वामी के रस-निरूपण में प्राचीन रसशास्त्रीय ग्रंथों के प्रति आस्था का भाव परिलक्षित होता है, साथ ही उनकी अपनी मौलिकता भी है।

पंडितराज जगन्नाथ—पंडितराज जगन्नाथ की रस-मीमांसा वेदांत पर आधृत है। इन्होंने रस को आनंदमय मानकर उसके समर्थन में वैदिक मंत्र को उद्धृत किया है। ये काव्य-रस को आत्मानंद के समतुल्य मानते हैं तथा अभिनवगुप्त एवं मम्मट की रसविषयक अवधारणा को परिवर्तित कर उसे (अद्वैत) वेदांत-सम्मत रूप प्रदान करते हैं। इन्होंने मम्मट की भाँति रस का विवेचन असंलक्ष्यक्रमव्यंग्य के अंतर्गत किया है। इस प्रकार ये ध्वनि में ही रस का अंतर्भाव कर देते हैं। पंडितराज की रस-संबंधी स्थापनाएँ अत्यंत महत्त्व-पूर्ण हैं। ये अभिनवगुप्त के मत को प्रस्तुत करने में अपनी ओर से कुछ नवीनता प्रदर्शित करते हैं अर्थात् उनके द्वारा कथित वासनाओं को तद्वत् स्वीकार करके भी वेदांत के आधार पर आत्मा की अज्ञानावृत्त दशा को मान्यता देते हैं। इन्होंने 'श्रुति' का आश्रय ग्रहण कर रत्यादियुक्त आवरण-रहित चैतन्य को रस माना है। इनके अनुसार अंतःकरण की वृत्ति का आनंद-मय हो जाना ही रसचर्वणा है अर्थात् चैतन्य के आवरण का निरावृत हो जाना ही रसास्वादन है। इन्होंने रस-चर्वणा को परब्रह्म के आस्वाद-रूप समाधि से विलक्षण माना है। [**पंडितराज के रस-संबंधी विशेष विवरण के लिए दे० साधारणीकरण**]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संस्कृत-काव्यशास्त्र में रससिद्धांत के विवेचन का सर्वेक्षण करने पर इसके तीन सोपान दिखाई पड़ते हैं। (१) प्राक्भरतीय वस्तुपरक व्याख्या, (२) नाट्यशास्त्र के व्याख्याताओं द्वारा प्रस्तुत शैवाद्वैत के आधार पर रस की आत्मपरक व्याख्या तथा वेदांत एवं नव्यन्याय के आलोक में उसका पुनराख्यान। (३) गौड़ीय वैष्णव आचार्यों की भक्तिपरक व्याख्या से संवलित मधुर रस की प्रकल्पना। इन सब में शैवाद्वैत पर आधृत आत्मपरक व्याख्या ही अधिक मान्य हुई और वस्तुपरक धारणा एक प्रकार से लुप्त हो गई और वैष्णवों का मधुर रस केवल भक्तिसंप्रदायों के परिमित क्षेत्र में स्वीकार्य हुआ।

आधुनिक भारतीय भाषाओं—विशेषतः हिंदी, बँगला, मराठी और गुजराती के अतिरिक्त अँगरेजी में भी रससिद्धांत के संबंध में अनेक मौलिक विचार प्रस्तुत किए गए हैं। रीतिकालीन आचार्यों (हिंदी आचार्यों) ने भारतीय काव्यशास्त्र को हिंदी में उतारने का प्रयास किया और रस के ऊपर विपुल ग्रंथराशि का निर्माण किया, फिर भी इस क्षेत्र में इनका कोई मौलिक योगदान नहीं हुआ। आधुनिक युग में हिंदी आचार्यों ने अत्यंत अभिनिवेश के साथ रस-सिद्धांत का आख्यान, पुनराख्यान एवं मूल्यांकन किया और आधुनिक मनोविज्ञान, समाजविज्ञान तथा पाश्चात्य आलोचनाशास्त्र के आलोक में रस-मत का अनुशीलनपूर्ण अध्ययन प्रस्तुत किया। इस क्षेत्र में आचार्य रामचंद्र शुक्ल, बाबू गुलाब राय, डॉ० छैलबिहारी गुप्त, पं० रामदहिन मिश्र, आचार्य नंददुलारे वाजपेयी तथा डॉ० नगेंद्र की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल की 'रस-मीमांसा' और डॉ० नगेंद्र का 'रस-सिद्धांत' हिंदी रस-विवेचन के दो महत्त्वपूर्ण प्रकाशस्तंभ हैं। हिंदी के अनेक विद्वानों ने रस को शोध का विषय बनाकर अनेक अनुसंधानपूर्ण ग्रंथरत्न प्रस्तुत किए हैं। ऐसे विद्वानों में डॉ० आनंदप्रकाश दीक्षित डॉ० तारकनाथ बाली, डॉ० गणपतिचंद्र गुप्त, डॉ० रामस्वारथ चौधरी, डॉ० प्रेमस्वरूप गुप्त, डॉ० सच्चिदानंद चौधरी, डॉ० निर्मला जैन तथा डॉ० रामलखन शुक्ल हैं।

आधारग्रंथ—

रस-मीमांसा—आचार्य रामचंद्र शुक्ल

नवरस—बाबू गुलाब राय

काव्यदर्पण—पं० रामदहिन मिश्र

रस-सिद्धांत—डॉ० नगेंद्र

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रस-सिद्धांत : स्वरूप विश्लेषण—डॉ० आनंदप्रकाश दीक्षित
रस की दार्शनिक एवं नैतिक व्याख्या—डॉ० तारकनाथ बाली
साधारणीकरण— ,, ,,
रस-सिद्धांत का पुनर्विवेचन—डॉ० गणपतिचंद्र गुप्त
मधुर रस—डॉ० रामस्वारथ चौधरी
रसगंगाधर का काव्यशास्त्रीय अध्ययन—डॉ० प्रेमस्वरूप गुप्त
वैष्णव हिंदी कवियों की रसपरिकल्पना— ,, ,,
रस-विमर्श—डॉ० राममूर्त्ति त्रिपाठी
हिंदी काव्यशास्त्र में रस—डॉ० सच्चिदानंद चौधरी
रस-सिद्धांत और सौंदर्यशास्त्र—डॉ० निर्मला जैन
साधारणीकरण का विवेचन—डॉ० रामलखन शुक्ल

रस-सिद्धांत—रस-सिद्धांत के अंतर्गत रस के स्वरूप, उसके अंग एवं उसकी विशेषताओं का वर्णन किया जाता है। रस शब्द 'रस्यते-आस्वाद्यते' इसी व्युत्पत्ति से निष्पन्न है, जिसका अर्थ है आस्वाद्यमान या जिसका आस्वादन किया जाय। संस्कृत व्याकरण के अनुसार इसकी कई व्युत्पत्तियाँ हैं—**रस्यते-आस्वाद्यते इति रसः, रस्यते अनेन इति रसः, रसति रसयति वा रसः, रसनं रसः आस्वादः;** [दे० **काव्यात्म-मीमांसा, पृ० १२-१३**] प्रथम व्युत्पत्ति के अनुसार रस शब्द परमात्म रूप रस, मधु, सोम, गंध, मधुर, आदि अर्थ का द्योतक है तथा द्वितीय व्युत्पत्ति से रस शब्द गुण, वीर्य, राग, देह आदि का वाचक। तृतीय व्युत्पत्ति में रस शब्द धातु, पारद, द्रव, जल आदि अर्थों का बोधक होता है और चतुर्थ व्युत्पत्ति के अनुसार यह शृंगारादि रसों के अर्थ को व्यक्त करता है। इस प्रकार रस मुख्यतः आस्वादन के अर्थ को सूचित करता है, अभिप्राय यह कि जिसके द्वारा भावों का आस्वादन हो, उसे रस कहते हैं—**आस्वाद्यत्वाद्रसः।** भरत मुनि ने रस को काव्यगत या कलागत तत्त्व मानकर इसे आस्वाद्य पदार्थ कहा था, जो कालांतर में 'आस्वाद की अनुभूति' का वाचक बना। काव्य के संदर्भ में यह काव्यास्वाद की अनुभूति का पर्याय बना और कला के पक्ष में कलानुभूति का वाचक हुआ। "काव्य के संदर्भ में रस काव्यास्वाद की अनुभूति का पर्याय है तो कला के संदर्भ में इसे 'कलास्वाद की अनुभूति' या संक्षेप में 'कलानुभूति' भी कह सकते हैं। सौंदर्यशास्त्र एवं मनोविज्ञान की शब्दावली में 'कलानुभूति' को ही 'सौंदर्यानुभूति' कहा जाता है—अतः, इस दृष्टि से रस = काव्यानुभूति = कलानुभूति = सौंदर्यानुभूति अर्थात् रस का व्यापक अर्थ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सौंदर्यानुभूति (Aesthetic Experience) सिद्ध होता है।''—रस-सिद्धांत का पुर्नविवेचन, पृ० ३८८

भावों की परिपक्वावस्था को रस कहते हैं। भरत मुनि के अनुसार विभावानुभाव और व्यभिचारी के संयोग से रस की निष्पत्ति या उत्पत्ति होती है—**विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः** —नाट्यशास्त्र, अध्याय ६।

इसकी व्याख्या करते हुए उन्होंने बताया कि ''जिस प्रकार अनेक प्रकार के व्यंजनों तथा औषधि आदि के संयोग से रस की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। जैसे गुड़ आदि द्रव्यों और व्यंजनों तथा औषधि आदि से षाडव (पानक रस) आदि के रस उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार अनेक भावों के उपगत होने से स्थायी भाव रसत्व को प्राप्त होता है। रस से किस पदार्थ का कथन किया जाता है? आस्वाद्य होने के कारण (रस) कहा जाता है। रस का आस्वादन किस प्रकार किया जाता है? जिस प्रकार नाना भाँति के व्यंजनों से संस्कृत अन्न को खाकर रसास्वादन करते हुए सुमना पुरुष हर्ष को प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार अनेक प्रकार के भावों और अभिनयों-द्वारा व्यक्त किए गए वाचिक, आंगिक तथा सात्त्विक अभिनयों से युक्त, स्थायी भाव का सहृदय प्रेक्षक आस्वाद करते हैं और आनंद प्राप्त करते हैं।''

—नाट्यशास्त्र [हिंदी अनुवाद, डॉ० रघुवंश पृ० ३१४-३१६

यथाहि नानाव्यंजनौषधिद्रव्यसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः (भवति) तथा नानाभावोपगमाद्रसनिष्पत्तिः। यथाहि गुडादिभिर्द्रव्यैर्व्यंजनैरौषधिभिश्च षाडवादयो रसा निर्वर्त्यंते तथा नानाभावोपगता अपि स्थायिनो भावा रसत्वमाप्नुवंतीति। अत्राह—रस इति कः पदार्थः। उच्यते आस्वाद्यत्वात्। कथमास्वाद्यते रसः। यथा हि नानाव्यंजनसंस्कृतमन्नं भुंजाना रसानास्वादयंति सुमनसः पुरुषा हर्षादींश्चाधिगच्छंति तथा नानाभावाभिनयव्यंजितान् वागंगसत्वोपेतान् स्थायिभावानास्वादयंति सुमनसः प्रेक्षकाः हर्षादींश्चाधिगच्छंति। —नाट्यशास्त्र, ६/२

रस के स्वरूप पर विचार करते हुए भरत ने जिन तथ्यों का प्रतिपादन किया है, उन्हें इस प्रकार सूत्रित किया जा सकता है।

क. रस अनुभूति का विषय या आस्वाद्य है, स्वयं अनुभूति नहीं।

ख. रस में विभिन्न भावों का विलीनीकरण होता है अर्थात् भावों (विभाव, अनुभावादि) के विभिन्न अवयव अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखते हुए भी इसमें विलीन हो जाते हैं और रस की उपस्थिति एक स्वतंत्र इकाई के रूप में होती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ग. विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों एवं त्रिविध अभिनयों (आंगिक, वाचिक और सात्त्विक) द्वारा संयुक्त होकर स्थायी भाव ही रस के रूप में परिणत होता है।

घ. जिस प्रकार अनेक व्यंजनों एवं औषधियों के संयोग से पाक रस उत्पन्न होता है, उसी प्रकार अनेक भावों के संयोग से रस की उत्पत्ति होती है।

ङ. रस का आस्वाद्य लौकिक है अर्थात् जिस प्रकार नाना भाँति के व्यंजनों से संस्कृत अन्न को खाकर रसास्वादन करते हुए व्यक्ति आनदित होता है, उसी प्रकार अनेक भावों और अभिनयों-द्वारा व्यक्त वाचिक, आंगिक एवं सात्त्विक अभिनयों से युक्त स्थायी भाव का आस्वादन कर दर्शक या सामाजिक को आनंदानुभूति होती है।

भरत के अनुसार रसानुभूति सुखमय होती है और रसास्वाद आनंदमय होता है। उनके पश्चात् आचार्य मम्मट ने रस का वैज्ञानिक लक्षण प्रस्तुत करते हुए बतलाया कि लौकिक व्यवहार में रति आदि चित्तवृत्ति-विशेष के जो कारण, कार्य और सहकारी कारण होते हैं, वे ही काव्य तथा नाटक में वर्णित होकर रति आदि स्थायी भावों के विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव कहे जाते हैं और उन विभावादि के द्वारा स्थायी भाव रस कहा जाता है।

कारणान्यथकार्याणि सहकारीणि यानि च।
रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययोः॥
विभावा अनुभावास्तत् कथ्यंते व्यभिचारिणः।
व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रसः स्मृतः॥

—काव्यप्रकाश, ४/२७,२८

यहाँ यह बताया गया है कि सहृदयों के मन में रति प्रभृति स्थायी भाव सदा वासना-रूप से विद्यमान रहते हैं अर्थात् वे व्यक्त दशा में न होकर संस्कार रूप में सूक्ष्मरूपेण विराजमान रहते हैं। वे ही आलंबन एवं उद्दीपन विभाव द्वारा आविर्भूत एवं उद्दीप्त होकर अनुभाव-द्वारा प्रतीतियोग्य बन जाते हैं और व्यभिचारी भाव उन्हें परिपुष्ट करते हैं। इस प्रकार इन सब के संयोग से स्थायी भाव, व्यंजनावृत्ति द्वारा व्यक्त होकर, आस्वादन-योग्य बन जाता है और विद्वान् इसे ही रस कहते हैं।

आचार्य विश्वनाथ ने रस की अत्यंत सरल परिभाषा देकर बतलाया कि भावों की परिपक्वावस्था को रस कहते हैं। इनके विचारानुसार जब विभाव,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनुभाव और संचारी भावों के द्वारा सहृदयों के हृदय में वासना-रूप में स्थित स्थायी भाव पूर्ण परिपक्वावस्था को प्राप्त हो जाय तो उसकी संज्ञा रस होगी।

विभावेनानुभावेन व्यक्तः संचारिणा तथा।
रसतामेति रत्यादिः स्थायी भावः सचेतसाम् ॥

—साहित्यदर्पण, ३/११

रस आस्वादन का वाचक है, पर उसका अभिप्राय 'चखना' न होकर 'चखकर आनंद लेना' है। जिसका आस्वादन किया जाय, स्वाद लिया जाय, वह रस है, इसमें भावों का आस्वादन होता है। इसका आस्वादन सहृदय सामाजिक को ही प्राप्त होता है, जो विशेष प्रकार के पुण्य के कारण रसास्वादन के योग्य बनते हैं।

भारतीय आचार्यों ने इसे समस्त विघ्नों से विनिर्मुक्त संविति, चमत्कार, निर्वेश, रसन, आस्वादन, भोग, समापत्ति, लय, विश्रांति आदि विशेषताओं से युक्त माना है।

लोके सकलविघ्नविनिर्मुक्ता संवित्तिरेव चमत्कारनिर्देशरसनास्वादनभोग-समापत्तिलयविश्रांत्यादिशब्दैरभिधीयते।

—अभिनवभारती, भाग १, पृ० २८०

आचार्य विश्वनाथ ने रस की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए उसे सत्त्वोद्रेक, अखंड, स्वप्रकाशानंद, चिन्मय, वेद्यांतर स्पर्शशून्य, ब्रह्मास्वादसहोदर, लोकोत्तर, चमत्कारप्राण, स्वकारावत् अभिन्न तथा आस्वाद-रूप कहा।

सत्त्वोद्रेकादखंडस्वप्रकाशानंदचिन्मयः।
वेद्यांतरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदरः ॥
लोकोत्तरचमत्कारप्राणः कैश्चित्प्रमातृभिः।
स्वाकारावदभिन्नत्वेनायमास्वाद्यते रसः ॥

—साहित्यदर्पण, ३/२,३

पूर्वोक्त श्लोक में वर्णित रस की विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

क. सत्त्वोद्रेक—रस का उदय या जन्म रजोगुण तथा तमोगुण से रहित मन में होता है, जहाँ सतोगुण का उद्रेक होता है। सतोगुण की स्थिति में व्यक्ति लौकिक रागद्वेष से मुक्त होकर उससे परे हो जाता है अर्थात् रसास्वादन के पश्चात् व्यक्ति उदारचेता, विशाल हृदय एवं परिष्कृत रुचिवाला हो जाता है। रसास्वाद ऐंद्रिय उत्तेजना-रहित तथा सात्त्विक होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ख. अखंड—रस अखंड होता है अर्थात् रसबोध के समय विभाव, अनुभाव तथा संचारी भावों का पृथक्-पृथक् अनुभव न होकर सब का एकीकरण हो जाता है। विभावादि सभी भाव रस के साथ मिलकर अपनी स्वतंत्र सत्ता को उसमें लय कर देते हैं और सब की अनुभूति एक साथ होने लगती है।

ग. स्वप्रकाशानंदचिन्मयः—इसका अभिप्राय यह है कि रस का प्रकाशन आत्मचैतन्य से होता है। यह मन की ऐसी स्थिति है, जहाँ आनंद या सुखानुभूति के अतिरिक्त और कुछ भी ज्ञात नहीं होता। यह आनंद ऐंद्रिय आनंद से सर्वथा भिन्न अलौकिक (आनंद) है। यह स्वप्रकाश, आनंदमय और चिन्मय है।

घ. लोकोत्तर चमत्कार—रसानंद लोकोत्तर चमत्कार का प्राण या ऐंद्रिय आनंद से भिन्न अर्थात् अलौकिक या अलोकसामान्य है। वह (रस) लौकिक वस्तु से विलक्षण होता है।

ङ. वेद्यांतरस्पर्शशून्य—रसानुभव अन्य ज्ञान से शून्य या रहित होता है अर्थात् आत्मा की पूर्ण तन्मयावस्था में अन्य ज्ञान की प्रतीति नहीं होती। रसबोध की अवस्था पूर्ण तन्मय भाव की स्थिति का द्योतक है अर्थात् रसानुभव के समय प्रमाता (सहृदय) स्व एवं पर (अपने-पराए) की भावना से मुक्त होकर प्रस्तुत प्रसंग के साथ इस प्रकार तन्मय हो जाता है कि उसे अन्य ज्ञान का बोध नहीं होता। वह स्थान एवं काल की परिधि में आबद्ध न होकर पूर्णतः आत्मलीन हो जाता है अर्थात् देश और काल की सीमाएँ उसे प्रभावित नहीं करतीं।

च. ब्रह्मास्वाद सहोदरः—रसानंद ब्रह्मानंद के समतुल्य है। वह ऐंद्रिक आनंद (विषयानंद) से नितांत भिन्न एवं चिदानंद का विषय है; आत्मा का विषय है, इंद्रियों का नहीं। रसानुभूति को विषयानुभूति से भिन्न मानकर अलौकिक अनुभूति कहा गया है। तथापि रसानंद को वास्तविक ब्रह्मानंद नहीं कहा जा सकता; क्योंकि ब्रह्मानंद स्थायी है और रसानंद अस्थायी। ब्रह्मानंद में लौकिक विषय तिरोभूत हो जाते हैं; किंतु रसानंद लौकिक विषयों से रहित नहीं हो पाता। रसबोध की स्थिति में ऐंद्रिय भोग का अभाव होता है और चैतन्य आत्मानंद का सद्भाव। रस वस्तुतः काव्य का स्वाद है, जो आनंदमय होता है और इस आनंदमयी चेतना में ऐंद्रिय सुख का अनुभव नहीं होता।

रस के चार अंग हैं—विभाव, अनुभाव, संचारी भाव (व्यभिचारी) एवं स्थायी भाव। इन्हें क्रमशः रस का कारण कार्य और सहकारी कारण कहा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जाता है। [**इनमें केवल विभाव, अनुभाव और संचारी की परिगणना होती है, स्थायी की नहीं**] रस की अभिव्यक्ति विभाव, अनुभाव तथा संचारी भावों द्वारा व्यक्त स्थायी भाव से होती है। यहाँ व्यक्त होने का अभिप्राय दूसरे रूप में परिणत हो जाना है।

सामाजिकों (सहृदयों) के अंतःकरण में रति प्रभृति स्थायी भाव (मनोविकार) संस्कार-रूप से (वासना-रूप से) पहले से ही विद्यमान रहते हैं; पर जब उनके साथ विभावानुभाव तथा संचारी का संयोग होता है, तब वे रूपांतरित होकर रस-रूप में परिणत हो जाते हैं। उदाहरण के लिए, मिट्टी के नवीन बर्त्तन (घट) में विद्यमान गंध की पूर्व स्थिति का ज्ञान नहीं होता; पर जल के छींटों के पड़ने पर उसकी गंध प्रकट हो जाती है ; उसी प्रकार सहृदयों के हृदय में पूर्वानुभूत रति, क्रोध आदि मनोविकार अव्यक्तावस्था में रहते हैं; पर काव्य के अध्ययन करने या नाटकादि के देखने से मन के भाव उद्‌बुद्ध हो जाते हैं और उन्हें आनंदानुभूति होने लगती है। रस का मूल स्थायी भाव होता है, जो अन्य भावों के संयोग से रस का रूप धारण करता है। [**दे० स्थायी भाव**] विभाव, रति आदि चित्तवृत्तियों के उत्पादक होने के कारण रस के कार्य कहे जाते हैं। इसके (विभाव के) दो प्रकार हैं—आलंबन और उद्दीपन। [**दे० विभाव**] जिससे चित्तवृत्तियाँ उत्पन्न हों अर्थात् जिसपर आश्रित रहें, उसे विभाव कहते हैं। रस की विशेष प्रकार से प्रतीति कराने के कारण इसे विभाव कहा जाता है। आलंबन रत्यादि भावों के उत्पादक होते हैं ; इन्हें भाव का विषय कहते हैं अर्थात् उन्हीं पर अवलंबित होकर रत्यादि भाव जाग्रत होते हैं। [**दे० आलंबन**] इसके भी दो प्रकार हैं—आलंबन और आश्रय। जिसपर रस टिकता है या स्थित होता है, उसे आलंबन कहते हैं और जिसे रस का अनुभव होता है या जिसमें रस की उत्पत्ति होती है, उसे आश्रय कहा जाता है। रस को उद्दीप्त या तीव्र करनेवाले विभाव को उद्दीपन कहते हैं। [**दे० उद्दीपन**] इसके अंतर्गत नायिकादि की त्रिविध चेष्टाएँ, आभूषण, वस्त्र तथा मानवेतर प्रकृति आती है। भावों की सूचना देनेवाला या भावों का भावन करनेवाला अनुभाव है। ये मनोगत भावों के साक्षात् अभिव्यंजक उपादान हैं। रति आदि मनोविकारों के सहायक या उपकारक भाव को संचारी भाव कहते हैं। [**दे० संचारी भाव**] ये अस्थायी मनोविकार हैं तथा अल्प क्षण के लिए उत्पन्न होकर स्थायी भावों को गति देते हैं। विभावानुभाव तथा संचारी की प्रतीति कारण, कार्य एवं सहकारी कारण के रूप में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रस-बोध की प्रथमावस्था में होती है; पर रसोद्रेक की स्थिति में उनके पृथक् अस्तित्व का लोप हो जाता है। रसानुभव के समय तीनों ही भाव अपने पार्थक्य को त्यागकर समूह रूप से रस में व्यक्त हो जाते हैं। जैसे, प्रपानक रस में चीनी, मिर्च, हींग, नमक तथा जीरे का स्वाद जल डालने के पूर्व भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है; पर जल के संयोग से सब का स्वाद भिन्न न रहकर विलक्षण प्रकार का रूप धारण करता है, उसी प्रकार विभावादि के मेल से स्थायी भाव अखंड रस-रूप में परिणत हो जाता है। अभिप्राय यह कि विभावादि के सम्मिलित होने पर ही उनके व्यंजनीय रस की व्यंजना हो सकती है, केवल विभाव, अनुभाव तथा संचारी भाव स्वतंत्रतया किसी रस की व्यंजना नहीं कर सकते।

रस को विभावादि समूहालंबनात्मक कहा जाता है।

इसमें अनेक भाव एक साथ प्रतीत होते हैं। समूहालंबन ज्ञान उसे कहते हैं, जिसमें एक साथ अनेक पदार्थों की प्रतीति हो। यहाँ एक प्रश्न विचारणीय है कि क्या विभाव, अनुभाव, संचारी और स्थायी भाव पृथक्-पृथक् रूप से रस हो सकते हैं या नहीं? कहीं-कहीं ऐसा भी देखा जाता है कि अनुभाव या संचारी के अभाव में केवल विभाव से या कहीं संचारी या अनुभाव से ही रस की व्यंजना हो जाती है। तो ऐसी स्थिति में यह माना जाय कि विभाव, अनुभाव अथवा संचारी पृथक् रूप से रस माने जा सकते हैं या ऐसे स्थलों में, जहाँ एक भाव अथवा दो भाव विद्यमान होते हैं और उन्हीं के कारण जो रस की अभिव्यक्ति होती है, उसे ऐसा नहीं समझना चाहिए कि केवल विभाव अथवा अनुभाव से ही रस की व्यंजना हो रही है। वहाँ भी विभावादि तीनों के समूह द्वारा ही रस की व्यंजना होती है अर्थात् वहाँ विभावादि में से जो एक रहता है, वह अन्य दो भावों का आक्षेप कर लेता है, केवल विभाव के रहने पर भी अनुभाव एवं संचारी भाव का ज्ञान विभाव के ही द्वारा कराया जाता है।

भारतीय आचार्यों ने रस को अलौकिक कहा है अर्थात् रसानंद ब्रह्मानंद है। इस संबंध में विचारणीय तथ्य है कि विभाव, अनुभाव और संचारी जो लौकिक हैं, उनसे रस-जैसे अलौकिक पदार्थ की सृष्टि कैसे हो सकती है? आलंकारिकों का उत्तर है कि जब ये लौकिक विभाव आदि काव्य या नाटक में वर्णित होते हैं तो इनमें अलौकिक विभावन व्यापार का समावेश हो जाता है। अतः, अलौकिक विभावादि के कारण उनसे उत्पन्न रस भी अलौकिक होता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। यहाँ अलौकिक का अभिप्राय लोक से असामान्य या बढ़कर है। रसाचार्यों ने रस को अलौकिक सिद्ध करने के लिए जो तर्क दिए हैं यहाँ उनका वर्णन किया जा रहा है।

क. दुष्यंत और शकुंतला की रति अपने में साधारण थी और उसमें किसी प्रकार की विलक्षणता का अभाव था; उसमें अलौकिकता नहीं थी। पर, जब उसका काव्य या नाटक में वर्णन किया गया तो वह अलौकिक होकर सबके आनंद का कारण बन गई। लोक में किसी की रति-क्रीड़ा को देखकर लज्जा या घृणा हो सकती है, पर वही रति शकुंतला आदि नाटकों में दिखाई जाती है तो वह लज्जास्पद न होकर आनंदप्रद हो जाती है। वह रति विभावन के अलौकिक व्यापार द्वारा स्व-पर का भेद हटाकर रसास्वादन कराती है।

ख. शकुंतला और दुष्यंत की रति उनमें सीमित थी और उत्पत्ति-काल में उनके ही अंतर्गत थी। पर, नाटक या काव्य में उसका वर्णन करने से उसका क्षेत्र विस्तृत हो जाता है और उससे अनेक दर्शक और श्रोता लाभान्वित होते हैं। अतः, अपरिमित होने के कारण रस अलौकिक है।

ग. सांसारिक वस्तुएँ दो प्रकार की होती हैं—कार्यरूप और ज्ञाप्यरूप। जिसका ज्ञान अन्य वस्तु के द्वारा हो, वह ज्ञाप्य है और जिसके द्वारा किसी अन्य पदार्थ का ज्ञान हो उसे ज्ञापक कहते हैं। जो किसी कारण से उत्पन्न होता है, उसे कार्य कहते हैं। जो वस्तु पूर्वसिद्ध नहीं होती और कारण के व्यापार के बाद उसकी उत्पत्ति होती है तो उसे कार्य कहा जाता है। सभी अनित्य पदार्थ या तो कार्य हो सकते हैं या ज्ञाप्य; पर रस न तो ज्ञाप्य है और न कार्य। कार्य-पदार्थ अपने निमित्त के नष्ट हो जाने पर भी विद्यमान रहते हैं; जैसे कुंभकार के मर जाने पर भी उसके द्वारा निर्मित घट विद्यमान रहता है। पर, रस अपने कार्य-रूप विभावादि के बिना नहीं रहता अर्थात् विभावादि के अभाव में (नष्ट हो जाने पर) रस की प्रतीति नहीं हो सकती। अतः, रस कार्य नहीं है। ज्ञाप्य पदार्थ ज्ञान होने के पूर्व भी विद्यमान रहता है और ज्ञान होने के पश्चात् भी बना रहता है। पर, रस न तो अनुभव के पूर्व बना रहता है और न उसकी सत्ता अनुभव के बाद होती है। अतः 'कार्य' और 'ज्ञाप्य' इन दोनों से भिन्न होने के कारण रस अलौकिक है और उसकी स्थिति आस्वाद काल में ही रहती है।

घ. रस न तो सविकल्पक ज्ञान है और न निर्विकल्पक ज्ञान। जिसमें वस्तु के स्वरूप के अतिरिक्त उसके नाम तथा जाति का भी ज्ञान हो, उसे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सविकल्पक ज्ञान कहते हैं अर्थात् इनके स्वरूप का ज्ञान होने पर इनके नाम, रूप तथा जाति का भी पता चल जाता है। पर, रस स्वसंवेदन-मात्र होने के कारण, आस्वाद रूप है, वह सविकल्पक ज्ञान का विषय नहीं हो सकता। स्वसंवेदन रूप होने से उसके नाम, जाति आदि का स्पष्टतः ज्ञान नहीं होता। निर्विकल्पक ज्ञान के द्वारा वस्तु-मात्र का ज्ञान होता है, उसके नाम, जाति, विशेषण-विशेष्य-भाव का भान नहीं होता। रस का ग्रहण निर्विकल्पक ज्ञान के द्वारा संभव नहीं है; क्योंकि उसमें विभावादि के संबंध का प्राधान्य होता है। रस का ज्ञान समूहालंबनात्मक होता है; अतः वह निर्विकल्पक ज्ञान का विषय नहीं हो सकता।

ङ. लोक में शोक और हर्ष की घटनाओं से दुःख और आनंद होता है; पर काव्य तथा नाटक में शोक और दुःख की घटनाओं के वर्णन से आनंदानुभूति होती है। अतः, लोक से विलक्षण होने के कारण रस की अलौकिकता सिद्ध होती है।

च. रस को नित्य नहीं कहा जा सकता। विभावादि की प्रतीति के पूर्व रस का ज्ञान नहीं होता; पर नित्य पदार्थ अपने ज्ञान के पूर्व भी वर्त्तमान रहते हैं। रस को इसलिए नित्य नहीं कहा जा सकता; क्योंकि यह अपने ज्ञान के समय ही रहता है, उसके पूर्व नहीं।

छ. लौकिक पदार्थ कार्य-रूप होते हैं; पर रस कार्य नहीं होता; वह विभावादि-समूहालंबनात्मक होता है। यदि वह कार्य होता तो विभावादि के ज्ञान को ही उसका कारण माना जाता। कारण से कार्य की उत्पत्ति होती है। रस की उत्पत्ति विभावादि के ज्ञान के बाद ही होती है। कारण और कार्य-ज्ञान एक साथ नहीं होता, पर रस-बोध के समय भी विभावादि की प्रतीति हुआ करती है, विभावादि के समूहालंबनात्मक ज्ञान से ही रस का बोध होता है, अतएव विभावादि के ज्ञान को रस का कारण नहीं माना जा सकता।

ज. लौकिक पदार्थ या तो भूत होते हैं या वर्त्तमान अथवा भविष्यत्; पर रस इन तीनों में से एक की भी कोटि में नहीं आता। यदि वह भूत होता तो उसमें बीती हुई बातों का साक्षात्कार कैसे होता? उसे भविष्यत् भी नहीं कहा जा सकता। वह आनंदमय, प्रकाशरूप साक्षात् अनुभव का विषय होने के कारण भविष्यत् नहीं हो सकता। रस वर्त्तमान भी नहीं है; क्योंकि वर्त्तमान वस्तु या तो ज्ञाप्य होती है या कार्य। रस न तो ज्ञाप्य है और न कार्य।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

झ. रस का ज्ञान न तो परोक्ष है और न प्रत्यक्ष। उसका साक्षात्कार होता है; अतः वह परोक्ष नहीं हो सकता। काव्यादि के शब्दों-द्वारा उत्पन्न होने के कारण यह अपरोक्ष भी नहीं है। वह दृश्य नहीं होता, उसकी व्यंजना होती है। इस प्रकार लौकिक पदार्थों से सर्वथा भिन्न होने के कारण रसानंद अलौकिक और अनिर्वचनीय है।

रस मन की आनंदमयी चेतना है। इसके द्वारा आनंदानुभूति होती है और यह मनुष्य को लौकिक भावभूमि से ऊपर उठाकर लोक-विलक्षण स्थिति में ला देता है। आधुनिक युग में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने मनोवैज्ञानिक आधार पर रस के अलौकिकत्व और ब्रह्मानंदसहोदरत्व को अस्वीकार कर दिया है। वे रस को लौकिक मानते हैं; अलौकिक नहीं, पर इसे हृदय की मुक्तावस्था स्वीकार कर उसे वैयक्तिक अनुभूतियों की भूमि से ऊपर उठाकर उसके सामाजिक स्वरूप को मान्यता देते हैं। "जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान-दशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रस-दशा कहलाती है।"

—चिंतामणि, भाग १, पृ० २२७

"लोक-हृदय में हृदय के लीन होने की दशा का नाम रस-दशा है।"

—वही,

रस को कलानुभूति या सौंदर्यानुभूति कह सकते हैं। [**दे० रस और सौंदर्य-बोध**]

रसांतर—मानमोचन का छठा साधन। [**दे० मान**]

रसाभास—इसके अंतर्गत रसों के अनौचित्यपूर्ण प्रयोग पर विचार किया जाता है। रसाभास का अभिप्राय [रस+आभास (छाया)] रसों के अनुचित वर्णन से है। ध्वनिकार ने अनौचित्य को रसभंग का मूलाधार माना है तथा औचित्य ही रस के परिपोष का रहस्य है।

अनौचित्यादृते नान्यद्रसभंगस्य कारणम्।
औचित्योपनिबंधस्तु रसस्योपनिषत्परा॥ —ध्वन्यालोक, ३

रसाभास में सीपी में रजत की भाँति रस का वास्तविक बोध न होकर उसके बिंब (छाया) की प्रतीति होती है। अभिनवगुप्त के अनुसार औचित्य के साथ प्रवृत्त स्थायी भाव का आस्वाद रस कहा जाता है, व्यभिचारी भाव का आस्वाद भाव कहलाता है और अनौचित्यरूप से प्रवृत्त होने पर स्थायी भाव रसाभास तथा व्यभिचारी का अनौचित्य भावाभास कहा जाता है अर्थात् अनुचित रूप से प्रवृत्त स्थायी भाव के आस्वाद को रसाभास कहते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

औचित्येन प्रवृत्तौ चित्तवृत्तेरास्वाद्यत्वे स्थायिन्या
रसो, व्यभिचारिण्याभावः, अनौचित्येन तदाभासः ।
—ध्वन्यालोकलोचन, पृ० १४५ (हिंदी अनुवाद)

मम्मट ने रस तथा भावों के अनुचित प्रवर्त्तन को रसाभास एवं भावाभास माना है। पंडितराज के अनुसार रस का अनुचित आलंबन विभाव रसाभास है।

तदाभासा अनौचित्यप्रवर्तिता । —काव्यप्रकाश, ४/३६

अनुचितविभावालंबनत्वं रसाभासत्वम् ।
—रसगंगाधर, पृ० ३३५ (चौखंबा)

विश्वनाथ ने रसाभास का निरूपण सामाजिक तथा नैतिक आधार पर किया है। वे मम्मट की तरह रस तथा भावों के अनौचित्यपूर्ण वर्णन को रसाभास एवं भावाभास कहते हैं। जब रस-भावादि के लक्षण पूर्णतः संगत न प्रतीत हों अर्थात् विभावादि की सामग्री में न्यूनता प्रदर्शित हो तथा वे रस के एक ही अंग से संबद्ध हों तो वहाँ अनौचित्य के कारण रस या भाव आदि का आभासमात्र दिखलाई पड़ता है। अतः, ऐसे स्थलों में रसाभास या भावाभास होगा।

अनौचित्यप्रवृत्तत्व आभासो रसभावयोः ।
—साहित्यदर्पण, ३/६६२

अनौचित्यं चात्र रसानां भरतादिप्रणीतलक्षणानां सामग्रीरहितत्वे सत्येक-देशयोगित्वोपलक्षणपरं बोध्यम् । —वही

शृंगाररसाभास—उपनायक या अन्य पुरुष में नायिका का अनुराग होना, पशु-पक्षियों के प्रेम का वर्णन, निरिंद्रियों—जैसे नदी आदि—के संभोग का वर्णन, गुरुपत्नी में रति का वर्णन, नायक-नायिका का एकांगी प्रेम, नीच व्यक्ति में प्रेम का वर्णन—ये सभी शृंगाररसाभास के द्योतक हैं।

करुणरसाभास—विरक्त या संन्यासी में शोक का होना करुणरसाभास का उदाहरण है।

रौद्ररसाभास—पूज्य व्यक्तियों के प्रति क्रोध का प्रदर्शन रौद्ररसाभास है।

वीररसाभास—नीच व्यक्तियों में उत्साह के वर्णन को वीररसाभास कहते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भयानकरसाभास—उत्तम व्यक्तियों में भय का होना भयानकरसाभास है।

बीभत्सरसाभास—यज्ञ के बलिपशु में ग्लानि का दिखाई पड़ना बीभत्सरसाभास है।

अद्‌भुतरसाभास—ऐंद्रजालिक कार्यों में आश्चर्य या विस्मय का होना अद्‌भुतरसाभास है।

शांतरसाभास—नीच व्यक्ति में निर्वेद या शम की स्थिति का वर्णन शांतरसाभास है।

> उपनायकसंस्थायां मुनिगुरुपत्नीगतायां च।
> बहुनायकविषयायां रतौ तथानुभयनिष्ठायाम् ॥
> प्रतिनायकनिष्ठत्वे तद्वदधमपात्रतिर्यगादिगते।
> शृंगारेऽनौचित्यं रौद्रे गुर्वादिगत कोपे ॥
> शांते च हीननिष्ठे गुर्वाद्यालंबने हास्ये।
> ब्रह्मवधाद्युत्साहेऽधमपात्रगते तथा वीरे ॥
> उत्तमपात्रगतत्वे भयानके ज्ञेयमेवमन्यत्र।

—साहित्यदर्पण, ३/२६३-२६६

रसाभास का निरूपण कर रसशास्त्रियों ने रस के सामाजिक महत्त्व को प्रतिष्ठित किया है। विश्वनाथ के विवेचन से यह ध्वनि निकलती है कि सामाजिक नियमों की अवहेलना करनेवाला साहित्य समाज के लिए घातक है। समाज के नैतिक पक्ष की अवहेलना करने पर सामाजिकों के चित्त में काव्य के प्रति आकर्षण नहीं हो सकता और वह अपने लक्ष्य से च्युत हो जाता है।

रस-सिद्धांत लोकशास्त्रानुयायी औचित्य तत्त्व का ग्राहक है। इसमें ऐसे तत्त्वों की उपेक्षा की गई है, जिसके वर्णन से समाज में उच्छृंखलता आ जाय या उसके (समाज के) नैतिक मूल्यों का ह्रास हो। यदि लौकिक अथवा शास्त्रीय मूल्यों के विरुद्ध किसी विषय का वर्णन किया जाय तो ऐसा काव्य सहृदय के लिए आकर्षण का कारण न बनकर काव्यास्वाद में बाधक सिद्ध होगा। वस्तुतः रसाभास की कल्पना समाज के स्थायी नैतिक मूल्यों के प्रति आदर के भाव से संपृक्त है।

रसौचित्य—औचित्य का छठा भेद। [**दे० औचित्य के भेद**]

राजशेखर—इन्होंने कवि-शिक्षा-विषयक प्रसिद्ध ग्रंथ 'काव्यमीमांसा' की रचना की है। [**दे० काव्यमीमांसा**] ये नाटककार, कवि एवं काव्यशास्त्री हैं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जो यायावर कुलोत्पन्न महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे। इन्हें 'यायावरीय' भी कहा गया है। इनके प्रपितामह अकालजलद सुप्रसिद्ध कवि और विद्वान् हो चुके हैं। इनके पिता का नाम दुर्दक और माता का नाम शीलवती था। राजशेखर का विवाह चौहानवंशीय क्षत्रिय कन्या अवंतिसुंदरी के साथ हुआ था, जो संस्कृत एवं प्राकृत की पंडिता थीं।

तदामुष्यमाणस्य महाराष्ट्र चूडामणेरकालजलदस्य चतुर्थो दौर्दकिः शीलवती सूनुरुपाध्याय श्री राजशेखर इत्यपर्याप्तं बहुमानेन।

—बालरामायण, १/१३

चाहुमानकुलमौलिमालिका राजशेखर कवींद्रगेहिनी।
भर्तुः कृतिमवंतिसुंदरी सा प्रयोक्तुमेवमिच्छति॥

—कर्पूरमंजरी, १/११ (संस्कृत अनुवाद)

राजशेखर ने चार नाटकों की रचना की है—'बालरामायण', 'बालमहाभारत', 'बिद्धशालभज्जिका' तथा 'कर्पूरमंजरी' (सट्टक)। ये प्रतिहारवंशी कन्नौज-नरेश महेंद्रपाल और उनके पुत्र महीपाल के गुरु थे। दोनों ने क्रमशः ९०७ तथा ९१७ ई० तक राज्य किया था। इस दृष्टि से राजशेखर का समय दशम शती का पूर्वार्द्ध सिद्ध होता है। राजशेखर ने अवंतिसुंदरी का मत 'काव्यमीमांसा' में उद्‌धृत किया है, जिससे काव्यशास्त्र-विषयक उनकी मौलिक चिंतना का पता चलता है। इन्होंने कवि, उसके भेद, प्रतिभा, काव्य-लेखन की विविध प्रक्रिया, काव्यपाक, काव्यपाठ, शब्दहरण, अर्थहरण, भावक आदि के संबंध में विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। [**इनके संबद्ध विषयों पर विचार जानने के लिए दे० कवि, भावक, प्रतिभा, कवि-भेद, अर्थहरण, काव्यपाक, काव्यपाठ आदि**]

राजानक रुय्यक—इन्होंने 'अलंकारसर्वस्व' नामक महनीय ग्रंथ की रचना की है। [**दे० अलंकारसर्वस्व**] ये ध्वनिवादी आचार्य हैं। इनकी उपाधि 'राजानक' इनके कश्मीरी होने का प्रमाण प्रस्तुत करती है। इन्होंने 'काव्यप्रकाश' की 'संकेत' नामक टीका लिखी थी; अतः ये मम्मट के परवर्ती सिद्ध होते हैं। उद्‌भट-कृत 'काव्यालंकारसारसंग्रह' के टीकाकार एवं 'उद्‌भटविवेक' के रचयिता राजानक तिलक इनके पिता थे। रुय्यक ने अपने शिष्य मंखक के 'श्रीकंठचरित' काव्य के पाँच श्लोक 'अलंकारसर्वस्व' में उदाहरणस्वरूप उद्‌धृत किए हैं। 'श्रीकंठचरित' का लेखनकाल ११४५ ई० है; अतः रुय्यक का समय बारहवीं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शती का मध्य सिद्ध होता है। इनके द्वारा रचित ग्रंथों में 'काव्यप्रकाशसंकेत', 'व्यक्तिविवेकविचार' (महिमभट्ट के व्यक्तिविवेक की टीका, जो द्वितीय विमर्श के मध्य तक प्राप्त होती है), 'नाटकमीमांसा', 'अलंकारसारिणी', 'साहित्य-मीमांसा', 'सहृदयलीला', 'अलंकारमंजरी' एवं 'अलंकारवार्त्तिक' प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त 'हर्षचरितवार्त्तिक', 'श्रीकंठस्तव' तथा 'वृहती' नामक ग्रंथ भी इनके द्वारा रचित बतलाए जाते हैं। इन्होंने व्यंग्य को काव्य का प्राण तथा गुण और अलंकार को उसके चारुत्व का हेतु कहा है।

रुय्यक की प्रसिद्धि एकमात्र 'अलंकारसर्वस्व' के कारण है, जिसमें अलंकारों का वैज्ञानिक विवेचन किया गया है। यह अपने विषय की अत्यंत प्रौढ़ कृति है। इसमें काव्यशास्त्र के रस, ध्वनि, वक्रोक्ति, रीति-प्रभृति संप्रदायों की उद्भावना की गई है। 'अलंकारसर्वस्व' में ६ शब्दालंकारों, ७५ अर्थालंकारों तथा संकर-संसृष्टि का विवेचन है। [**रुय्यक के संबंध में विशेष जानकारी के लिए दे० डॉ० रामचंद्र द्विवेदी का शोधप्रबंध 'अलंकार-मीमांसा'**] रुय्यक ने अर्थालंकारों के वैज्ञानिक वर्गीकरण की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

रासक—उपरूपक का एक भेद। [**दे० उपरूपक**] यह एक अंक का उपरूपक है, जिसमें पात्रों की संख्या पाँच होती है। इसमें मुख तथा निर्वहण संधियाँ प्रयुक्त होती हैं और भारती तथा कैशिकी वृत्तियों की योजना की जाती है। इसमें विभिन्न प्रकार की प्राकृतों (भाषा) का प्रयोग होता है। इसकी नायिका कोई प्रसिद्ध रमणी होती है और नायक मूर्ख होता है तथा उत्तरोत्तर उदात्त भावों का प्रदर्शन किया जाता है। इसमें सूत्रधार नहीं रहता। किसी-किसी आचार्य के मत से इसमें प्रतिमुख संधि भी होती है। इसका उदाहरण 'मेनकाहित' है।

रासकं पंचपात्रं स्यान्मुखनिर्वहणान्वितम्।
भाषाविभाषाभूयिष्ठं भारतीकैशिकीयुतम्॥
असूत्रधारमेकांकं सवीथ्यंगं कलान्वितम्।
श्लिष्टनांदीयुतं ख्यातनायिकं मूर्खनायकम्॥
उदात्तभावविन्याससंश्रितं चोत्तरोत्तरम्।
इह प्रतिमुखं संधिमपि केचित्प्रचक्षते॥

—साहित्यदर्पण, ६/२८८-२९०

रीति—भोज-वर्णित एक अल्प प्रसिद्ध शब्द का अलंकार। चित्र के विकास, विक्षेप, संकोच एवं विस्तार को रीति कहा गया है तथा इसके कैशिकी,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आरभटी, भारती, सात्वती, मध्यमारभटी और मध्यम कैशिकी नामक छह भेद माने गए हैं। यहाँ चित्तवृत्ति को ही अलंकार मान लिया गया है।

या विकासेऽथ विक्षेपे संकोचे विस्तरे तथा।
चेतसो वर्तयित्री स्यात्सा वृत्तिः सापि षड्विधा॥

—सरस्वतीकंठाभरण, २/३४

रीति और अलंकार—अलंकार-सिद्धांत के अनुसार काव्य के सौंदर्य का मूल तत्त्व है अलंकार और उसके कारण ही काव्य (शब्द और अर्थ) में सौंदर्य का समावेश होता है। अलंकारवादी आचार्यों ने सामान्य अलंकार के अंतर्गत काव्य के विषयगत सौंदर्य का वर्णन किया है और संधि, संध्यंग, वृत्ति, लक्षण आदि को भी अलंकार का रूप दिया है। उनके अनुसार अलंकार की विस्तृत सीमा में गुण, रीति आदि भी समाविष्ट हो जाते हैं अर्थात् काव्य का शैलीगत सौंदर्य विशिष्ट अलंकार के अंतर्गत आ जाता है। वामन ने भी काव्य के सौंदर्य-तत्त्व के रूप में अलंकार को स्थान दिया है। उनके अनुसार अलंकार सौंदर्य से अभिन्न है। वे शब्द और अर्थ में ही काव्य का सौंदर्य निविष्ट मानते हैं; पर अलंकार के प्रति उनकी दृष्टि भिन्न है। रीति-सिद्धांत में काव्य का नित्य तत्त्व है गुण और अलंकार उसके अनित्य धर्म हैं। गुण काव्य के शोभाकारक धर्म हैं और अलंकार उसको अतिशायित करनेवाला या सौंदर्य को बढ़ानेवाला होता है। इस प्रकार रीति-सिद्धांत में अलंकार का क्षेत्र संकुचित हो जाता है और वे काव्य के उत्कर्षवर्द्धक तत्त्व के रूप में प्रस्तुत किए जाते हैं। वामन के अनुसार केवल गुण के कारण ही काव्य शोभा-संपन्न हो सकता है; पर गुणाभाव में, अलंकारों के कारण भी, काव्य शोभित नहीं हो सकता। कहने का तात्पर्य यह कि अलंकार अंगी है और रीति अंग। अलंकार उक्तिवैचित्र्य का वाचक है तो रीति वस्तुगत शैली का पर्याय।

रीति और ध्वनि—रीति-सिद्धांत और ध्वनि-सिद्धांत में पर्याप्त दृष्टि-भेद है। एक देहवादी काव्य तत्त्व है तो दूसरा आत्मवादी। रीति-सिद्धांत की स्थापना ध्वनिवाद के पूर्व हो चुकी थी। ध्वनि-समर्थक आचार्यों के अनुसार अर्थ वक्रोक्ति के स्वरूप-निर्धारण में व्यंजना की स्पष्टतः स्वीकृति है—सादृश्याल्लक्षणा वक्रोक्तिः। विद्वानों ने रीति-गुण के विवेचन में ध्वनि के संकेत प्राप्त किए हैं। उनके अनुसार शब्द-गुणों में वर्ण-ध्वनि की तथा अर्थ-गुण में ओज के अंतर्गत अर्थप्रौढ़ि के कतिपय रूपों में भी ध्वनि की स्वीकृति हुई है। इसी प्रकार अर्थगुण कांति में भी ध्वनि के एक प्रकार असंलक्ष्यक्रमव्यंग्य का प्रत्यक्ष

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संकेत प्राप्त होता है। ध्वनि-सिद्धांत समन्वयवादी काव्यचिंतन है, जिसमें समस्त भारतीय काव्य-सिद्धांतों का समाहार किया गया है। रीति का भी ध्वनि में अंतर्भाव हो जाता है। रीति के तत्त्व वर्ण-योजना एवं समास का अंतर्भाव वर्ण ध्वनि तथा रचना-ध्वनि में हो जाता है। ध्वनिकार दस गुणों को तीन गुणों में समाविष्ट कर उनका असंलक्ष्यक्रम व्यंग्यध्वनि रस के साथ स्थापित कर देते हैं। रीति-सिद्धांत में रीति को गुणात्मक स्वीकार करते हुए भी रीति को प्रधान तत्त्व का रूप दिया गया है; पर ध्वनिवादी उसे संघटना का रूप प्रदान कर उसकी स्थिति गौण बना देता है। रीति गुणाश्रित है और रस में गुण की स्थिति अचल होती है। संघटना चल है तो गुण अचल।

रीति और रस—रस-सिद्धांत की स्थापना रीति-सिद्धांत के पूर्व हो चुकी थी; अतः रस-तत्त्व से वामन का परिचित होना स्वाभाविक था। पर, वामन ने रस को उतना महत्त्व नहीं दिया, जितने का वह अधिकारी था। विशिष्ट पदरचना को काव्य का सर्वोपरि तत्त्व मानकर रीति-सिद्धांत में रस का स्थान कांति नामक अर्थगुण के अंतर्गत निर्धारित किया गया; फलतः, उसकी न केवल पूर्ण उपेक्षा हुई, अपितु रस का अवमूल्यन भी किया गया। फलतः रीति-संप्रदाय में रस का अत्यंत गौण स्थान निर्धारित किया गया। कालांतर में ध्वनि एवं रसवादी आचार्यों ने रस-ध्वनि को काव्य का आत्म-स्थानीय पद देकर रति को अंग-संस्थान या शरीरावयव के रूप में प्रतिष्ठित किया और रस के कारण ही रीति का महत्त्व सिद्ध किया गया। विश्वनाथ प्रभृति रसवादी आचार्यों ने शृंगार, वीर एवं शांत रस के आधार पर वैदर्भी, गौडी एवं पांचाली रीतियों का स्वरूप-निर्धारण किया। इस प्रकार रस काव्य की आत्मा एवं रीति उसकी अभिव्यक्त का साधन मानी गई। रीति-सिद्धांत देहात्मवादी काव्य-सिद्धांत है, जिसने प्राण की अपेक्षा शरीर को अधिक महत्त्व दिया है। वह शरीर को ही काव्य का परम तत्त्व मानता है; पर रसवादी आचार्य रस को काव्य की आत्मा मानकर प्राण तत्त्व का प्राधान्य स्वीकार करते हैं। अतः, रीति काव्य के बहिरंग तत्त्व के रूप में प्रतिष्ठित है तो रस अंतरंग स्वरूप का निर्धारक। रीति रस की अभिव्यक्ति का साधन है। काव्य का मूल तत्त्व नहीं।

रीति के तत्त्व—रीति-सिद्धांत के ऐतिहासिक विकास के क्रम में रीति के मूल तत्त्व पर अनेकधा विचार व्यक्त किए गए हैं। इसके मूल तत्त्वों में गुण, समास, अनुप्रास, वर्ण-व्यापार, वर्ण-संघटना या वर्ण-गुंफ हैं। दंडी के अनुसार गुण रीति के मूल तत्त्व हैं तथा शब्द एवं अर्थ-सौंदर्य के प्रतीक भी। वामन ने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रीति को पद-रचना मानकर गुणों का ही उसका मूलाधार स्वीकार किया है। उन्होंने रीति को काव्य का सर्वोच्च तत्त्व सिद्ध कर शब्द-गुंफ को उसका (रीति का) बहिरंग तत्त्व एवं गुण, रस, अर्थालंकार तथा दोषाभाव को अंतरंग तत्त्व माना है। रुद्रट ने समास को मूल तत्त्व सिद्ध कर लघु, मध्यम तथा दीर्घ समासों के आधार पर रीति के भेदों का निरूपण किया—पांचाली, लाटीया और गौड़ीया। वैदर्भी को उन्होंने असमासा कहा। आनंदवर्द्धन ने रीति को रसाभिव्यक्ति का साधन मानकर गुण को उसका अंतरंग तत्त्व एवं समास को बाह्य मूलाधार कहा है। परवर्ती तीन आचार्यों—राजशेखर, भोज एवं अग्नि-पुराणकार—ने इस प्रश्न पर विचार किया। राजशेखर ने (काव्यमीमांसा में) समास के अतिरिक्त अनुप्रास को रीति का मूलतत्त्व बताया है। वैदर्भी में समासाभाव तथा स्थानानुप्रास विद्यमान रहता है और पांचाली में समास और अनुप्रास अल्पमात्रा में रहते हैं। गौड़ीया में अनुप्रास और समास का प्राचुर्य रहता है। उन्होंने रीति के नए आधारों की भी उद्भावना की। उनके अनुसार वैदर्भी की योगवृत्ति, पांचाली का उपचार एवं गौड़ीया की योगवृत्ति-परंपरा, तीन रीतियों के तीन आधार तत्त्व हैं। भोज ने राजशेखर का अनुकरण करते हुए गुण एवं समास को रीति का मूलाधार माना तथा योगवृत्ति प्रभृति आधारों का और भी अधिक विस्तार किया। 'अग्निपुराण' में रीति के तीन मूलाधार बताए गए—समास, उपचार (लाक्षणिक प्रयोग एवं अलंकार) तथा मार्दव की मात्रा। उत्तर-ध्वनिकाल में मम्मट तथा विश्वनाथ ने इस प्रसंग पर नवीन ढंग से प्रकाश डाला। मम्मट वृत्ति या रीति को वर्णव्यापार मानकर वर्ण-संघटन या वर्णगुंफ का गुण के साथ नियत संबंध स्थापित करते हैं; वे गुण-व्यंजक वर्ण-संघटन को रीति का मूलाधार मानते हैं। विश्वनाथ ने वर्ण-संयोजना एवं शब्द-गुंफ को रीति का मूल तत्त्व स्वीकार कर समास का भी समावेश किया है। अंततः रीति काव्य के अंगसंस्थान के रूप में प्रतिष्ठित हुई और उसका मुख्य व्यापार हुआ रस का उपकार करना या रसाभिव्यक्ति का साधन बनना। गुण उसका अंतरंग तत्त्व सिद्ध हुआ और वर्ण संयोजन, पद-रचना (शब्द-गुंफ) एवं समास उसके बहिरंग तत्त्व के रूप में मान्य हुए।

रीति के नियामक—वामन ने रीति को काव्य का आत्मविधायक तत्त्व मानकर उसकी सर्वतंत्र सत्ता का आख्यान किया था; अतः उनके समक्ष इसके (रीति के) नियमन या नियंत्रण का प्रश्न ही नहीं था। किंतु, जब कालांतर में उसकी यह स्थिति परिवर्त्तित हो गई तो आचार्यों ने इसके नियमन एवं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नियामक हेतुओं पर विचार किया। रीति का प्रयोग किन-किन स्थितियों में होना चाहिए तथा उसके रचनागत विविध काव्य-साधनों का परीक्षण कैसे किया जाय, इस तथ्य का निरूपण आचार्य आनंदवर्द्धन-द्वारा किया गया। ध्वनिकार ने रीति का प्रमुख नियामक हेतु रस को माना तथा अन्य तीन हेतुओं का भी उल्लेख किया—वक्तृ-औचित्य, वाच्य-औचित्य एवं विषय-औचित्य।

तन्नियमे हेतुरौचित्यं वक्तृवाच्ययोः।
विषयाश्रयमप्यन्यदौचित्यं तां नियच्छति ॥
काव्यप्रभेदाश्रयतः स्थिताभेदवती हि सा ॥ —ध्वन्यालोक, ३/६७

१. **वक्तृ-औचित्य**—इसका अभिप्राय यह कि वक्ता के स्वभाव या प्रकृति के अनुरूप ही रीति का निर्धारण हो। यदि ओजोमयी वाणी को प्रकट करना हो तो उसके लिए विकट बंध का निबंधन आवश्यक है अर्थात् ऐसी रचना में समस्त पद एवं कठिन शब्दों का प्रयोग होना चाहिए। उग्र भाव की अभिव्यक्ति विकट बंध में एवं सुकुमार भाव का प्रकाशन माधुर्यमूलक पदों में अपेक्षित है। उग्र भावों के लिए मध्यमसमासा एवं दीर्घसमासा रचना का प्रयोग वांछनीय होता है।

२. **वाच्यौचित्य**—वाच्य से अभिप्राय वर्ण्यविषय का है। इसके द्वारा ही रीति का नियमन होता है अर्थात् कवि विषय वस्तु के अनुसार रीति का प्रयोग करे। कोमल विषय के वर्णन में शैली का मार्दव तथा कठोर विषयों में परुष-शैली स्वाभाविक है।

३. **विषयौचित्य**—विषय का अर्थ यहाँ वर्ण्यविषय से न होकर काव्य-रूपों से है। इसका अभिप्राय यह है कि काव्य के विभिन्न प्रकारों—गद्य-पद्य, श्रव्य, दृश्य, कथा, आख्यायिका, मुक्तक, प्रबंध, परिकथा—के रूप-भेद उनकी शैली की भिन्नता के परिचायक हों अर्थात् महाकाव्य, कथा, मुक्तक आदि की शैली में सूक्ष्म भेद का होना आवश्यक है।

४. **रसौचित्य**—रस के औचित्य पर ही रीति का सौंदर्य आश्रित है। रीति मुख्यतः रसाश्रित होती है तथा विभिन्न रसों के अनुरूप ही रीति-विन्यास अपेक्षित होता है। कवि रसानुकूल वर्ण-विन्यास या रीति-प्रयोग पर ध्यान देकर ही या रसानुरूप शैली का विधान कर रचना को सुंदर या आकर्षक बना सकता है। यदि रस के विपरीत या अनभीष्ट शैली का प्रयोग किया जाय तो वहाँ सौंदर्य नष्ट हो जाएगा और रस-विघातक तत्त्व प्रस्तुत होकर रचना के स्वारस्य को बिगाड़ेंगे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रीति के प्रकार—भामह ने 'काव्य' के नाम से रीति के दो भेदों का निरूपण किया है— वैदर्भ तथा गौड़ीय। दोनों में पार्थक्य प्रदर्शित करते हुए उन्होंने बताया कि वैदर्भ में ऋजुता एवं पेशलता आदि गुणों की अवस्थिति होती है तो गौड़ीय में अलंकार आदि की। उनके वर्णन से ज्ञात होता है कि तत्कालीन विद्वान वैदर्भी को संमानित दृष्टि से देखकर गौड़ीय का निरादर करते थे, पर स्वयं भामह के अनुसार न तो वैदर्भ सत्काव्य का वाचक है और न गौड़ीय असत्काव्य का बोधक। वे काव्य के मूलभूत गुणों के संयोग के कारण तथा अपने गुणों के सम्यक् प्रयोग के द्वारा दोनों में ही सत्काव्य की संभावना व्यक्त करते हैं अर्थात् दोनों ही सत्काव्य हो सकते हैं। दंडी ने 'मार्ग' की संज्ञा प्रदान करते हुए वैदर्भ-मार्ग एवं गौड़ीय-मार्ग का विवेचन किया। उन्होंने बताया कि वैदर्भ-मार्ग समस्त शोभन गुणों से युक्त होने के कारण अर्थात् दस गुणों से अलंकृत होने से श्रेष्ठ एवं अक्षराडंबर से विमंडित होने के कारण गौड़मार्ग निकृष्ट है। दंडी के युग तक प्रथम सौंदर्य एवं सौकुमार्य का वाहक होने के कारण कविजनों के लिए आदर का पात्र था तो दूसरा औद्धत्य एवं उग्रता को व्यंजित करने के कारण निरादृत हो गया था। वामन ने रीति का सर्वप्रथम प्रयोग कर इसके तीन प्रकारों का कथन किया—वैदर्भी, गौड़ीया और पांचाली। उनके पश्चात् रुद्रट ने चार रीतियों का उल्लेख किया। उन्होंने उपर्युक्त तीन रीतियों के अतिरिक्त 'लाटीया' नामक चतुर्थ रीति की कल्पना की। उन्होंने समास को आधार बनाकर रीति के दो वर्ग किए—प्रथम वर्ग में वैदर्भी एवं पांचाली का वर्णन किया गया और द्वितीय में गौड़ी तथा लाटीया का। वैदर्भी में समासाभाव होता है तो पांचाली लघु समासा होती है अर्थात् इसमें दो-तीन समास रहते हैं। लाटीया को उन्होंने मध्यय समासा कहा अर्थात् यह पाँच या सात समासों से युक्त होती है। रुद्रट ने रीति का रस से स्पष्ट संबंध बताते हुए कहा कि श्रृंगार, अद्भुत, करुण एवं भयानक रसों का समावेश वैदर्भी में एवं लाटीया में रौद्र रस का होता है। अवशिष्ट चार रसों का रीति-विषयक कोई निश्चित नियम नहीं है। राजशेखर ने भी तीन रीतियों को मान्यता दी, पर एक अन्य रीति 'मागधी' का उल्लेख 'कर्पूरमंजरी' में किया। भोज ने छह रीतियों का विवेचन किया है, जिनमें अवंतिका नामक नवीन रीति है। राजशेखर-कृत 'बालरामायण' में चतुर्थ रीति मैथिली का भी उल्लेख है। मैथिली में अर्थातिशय या अर्थ-चमत्कार के होते हुए जगन्मर्यादा का अतिक्रमण नहीं किया जाता अर्थात् इसमें कोरी अत्युक्तियों का परिहार हो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जाता है। भोज ने जिन छह रीतियों का वर्णन किया है, वे हैं—वैदर्भी, पांचाली, लाटीया, गौड़ीया, अवंतिका और मागधी। आगे चलकर मम्मट ने वामन-सम्मत तीन रीतियों को ही स्वीकार किया।

ध्वनिवादी आचार्यों की दृष्टि, विस्तार की ओर न जाकर व्यवस्था एवं नियमन की ओर थी। अतः, रीति के तीन प्रमुख भेद मान्य हुए—वैदर्भी, गौड़ी और पांचाली। कुंतक ने कवि-स्वभाव के आधार पर रीति के तीन प्रकार किए हैं—सुकुमार, विचित्र और मध्यम। रीति का विभाग-त्रय अत्यंत संतुलित एवं संयत है। कोमल, परुष एवं मध्यम स्वभाव के आधार पर ये तीन भेद निर्मित हैं। मानव-स्वभाव की तीन प्रवृत्तियाँ ही इनके विभाजन का आधार हैं। इनके बाह्य आधार हैं—समास एवं वर्ण-गुंफ। रचना में समासों की स्थिति तीन प्रकार की दिखाई पड़ती है—असमासा (लघुसमासा), मध्यम समासा एवं दीर्घसमासा। इसी प्रकार वर्णों की भी तीन स्थितियाँ हैं—मधुर, परुष एवं मध्यम अर्थात् न अति कोमल, न अति परुष, यह स्थिति मध्यम-होती है तथा इसमें दोनों गुणों का सम्यक् योग रहता है। रीति का यह वर्गीकरण मनोवैज्ञानिक आधार से पुष्ट है; अतः वामन का त्रेधा विभाजन मान्य है। वैदर्भी में माधुर्य, गौड़ी में ओज एवं पांचाली में सामान्य गुण या संतुलन का योग है। [**उपर्युक्त तीनों रीतियों का विवेचन उनके नामों के अक्षरों में देखिए**]

रीति-संप्रदाय—रीति-संप्रदाय के प्रवर्त्तक आचार्य वामन हैं, जिन्होंने 'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति' नामक ग्रंथ का प्रणयन कर रीति को काव्य का जीवनाधायक तत्त्व या आत्मा माना है। पर, रीति का प्रवर्त्तन करते हुए भी ये उसके उद्भावक नहीं माने जा सकते; क्योंकि इनके पूर्ववर्ती आचार्यों ने भी परंपरा-प्रवाह के रूप में इसका उल्लेख किया है। भारतीय काव्यशास्त्र के अन्य तत्त्वों की भाँति 'ऋग्वेद' में 'रीति' शब्द अनेक स्थलों में प्रयुक्त हुआ है। वहाँ रीति शब्द का प्रयोग धारा के अर्थ में किया गया है। 'रीङ' स्रवणे धातु से निष्पन्न होकर यह शब्द धारा के अर्थ का बोधक है।

महीवरीतिः शवसासरत् पृथक्। —ऋग्वेद १,२८,१४

अन्य स्थानों पर 'रीङगतौ' धातु से निष्पन्न होकर गमन अर्थ में भी इस शब्द का प्रयोग किया गया है।

घातेवाजुर्यानद्य‍ेवरीतिः —वही, २,३९,५

कई स्थानों में रीति का अर्थ गमयिता, गति तथा अर्थस्वभाव भी है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वामन से पूर्व भरत ने प्रवृत्ति एवं भामह तथा दंडी ने मार्ग के रूप में रीति-शब्द का प्रयोग किया था। वस्तुतः काव्यशास्त्रोक्त 'रीति' शब्द का स्रोत भरत-कृत 'नाट्यशास्त्र' की 'प्रवृत्ति' है। भरत के अनुसार पृथ्वी के नाना देशों के वेश, भाषा तथा आचार की वार्त्ता को व्यक्त करनेवाले को प्रवृत्ति कहते है।

पृथिव्यां नानादेशवेशभाषाचारवार्त्ताः ख्यापयतीति प्रवृत्तिः।

भरत ने तत्कालीन प्रचलित चार प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है—आवंती, दाक्षिणात्य, पांचाली तथा उड्रमागधी।

चतुर्विधा प्रवृत्तिश्च प्रोक्तानाट्यप्रयोगतः।
आवंती दाक्षिणात्या च पांचाली चौड्रमागधी॥

—नाट्यशास्त्र, १४/३६

भारत के पश्चिमी खंड में आवंती, दक्षिण भाग में दाक्षिणात्या, पूर्व भाग (उड़ीसा एवं मगध) में औड्रमागधी एवं मध्यदेश (पांचाल) में पांचाली प्रवृत्ति प्रचलित थी। भरत की प्रवृत्ति अपेक्षाकृत व्यापक अर्थ में प्रयुक्त हुई है। रीति का अर्थ भाषा-प्रयोग है; पर प्रवृत्ति जीवन-चर्या या रहन-सहन के ढंग का वाचक है। भरत के इस विवेचन से स्पष्ट होता है कि उनके समय में एवं उनसे पूर्व भी प्रदेश की भिन्नता से भाषा-प्रयोग एवं आचार-व्यवहार की भिन्नता भी समाज में प्रचलित हो गई थी। प्रवृत्ति की भाँति रीति के विकास का प्रारंभिक युग भी भौगोलिक आधार का था अर्थात् रीति का संबंध विभिन्न भूभागों से था।

भरत के पश्चात् बाणभट्ट के 'हर्षचरित' में इस विषय का उल्लेख है। उन्होंने अपने समय में प्रचलित चार भूभागों की चार शैलियों का वर्णन किया है। उत्तर भारत के व्यक्ति श्लेष को, पश्चिम खंड के लोग अर्थगौरव को, दाक्षिणात्य उत्प्रेक्षा को एवं गौड़ या पूर्व भारत के लोग अक्षराडंबर को महत्त्व देते हैं। पर, उनकी संमति में चारों शैलियों का एकत्र प्रयोग काव्य के महनीय रूप का द्योतक है।

श्लेष प्रायमुदीच्येषु प्रतीच्येष्वर्थमात्रकम्।
उत्प्रेक्षा दाक्षिणात्येषु, गौडेष्वक्षरडंबरः॥
नवोऽर्थो, जातिरग्राम्या, श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटोरसः।
विकटाक्षरबंधश्च कृत्स्नमेकत्र दुर्लभम्॥

—हर्षचरित-प्रस्तावना १/७, १/८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संस्कृत-काव्यशास्त्र में रीति के विकास की चार अवस्थाएँ दिखाई पड़ती हैं। प्रथम अवस्था में रीति का संबंध भौगोलिक आधार पर निर्मित काव्यसमीक्षा से था अर्थात् विभिन्न भूखंडों के निवासी साहित्यकार तत्तत् भागों में प्रचलित रीति का व्यवहार करते थे। बाणभट्ट एवं उनके पूर्व भरत तक का समय इसी अवस्था का द्योतक है। द्वितीय युग में रीति या शैली-निर्धारण की भौगोलिक सीमाएँ खंडित हो गईं और विषय की दृष्टि से तथा अन्य काव्य-गुणों के आधार पर रीति का स्वरूप निर्धारित किया गया। तृतीय युग कुंतक के आविर्भाव से प्रारंभ होता है, जब रीति का संबंध कवि-स्वभाव के साथ स्थापित हुआ। रीति का चतुर्थ युग वामन, रुद्रट एवं आनंदवर्द्धन से माना जा सकता है। इस अवस्था में रीति का मूलाधार समास, गुण एवं रस ठहराए गए और उसे वामन द्वारा काव्य का जीवनाधायक तत्त्व स्वीकार किया गया। ध्वनिवादी आचार्यों का विवेचन रीति के अवमूल्यन एवं उसके व्यवस्थित स्वरूप-निर्धारण का काल था, जबकि वह रसाभिव्यक्ति का साधन मानी गई। अंततः रीति को काव्य का परम तत्त्व न मानकर रस का उपकारक स्वीकार किया गया और वह काव्य के चरम तत्त्व आत्मा के गौरव से च्युत होकर अंगसंस्थान के रूप में प्रतिष्ठित हुई।

भामह ने अपने ग्रंथ 'काव्यालंकार' में दो मार्गों का उल्लेख किया है—वैदर्भ एवं गौड़ीय। तत्कालीन लोक-रूढ़ि में वैदर्भ को श्रेष्ठ एवं गौड़ीय को निकृष्ट मार्ग माना जाता था। पर, भामह ने इस भेद को मिटाकर दोनों के पार्थक्य को अनावश्यक बतलाया तथा इस मत को अंध गतानुगतिकता कहा। उनके अनुसार वैदर्भी अपनी सीमा का अतिक्रमण करे तो वह भी अवांछनीय हो जा सकती है तथा गौड़ी अपनी सीमा में रहकर (काव्य-गुणों से संयुक्त होने से) सर्वथा श्लाध्य बन जाती है।

अपुष्टार्थमवक्रोक्तिप्रसन्नमृजुकोमलम्।
भिन्नं गेयमिवेदं तु केवल श्रुतिपेशलम्॥ १/३४
अलंकारवदग्राम्यम् अर्थ्यं न्याय्यमनाकुलम्।
गौड़ीयमपि साधीयः, वैदर्भमपि नान्यथा॥

—काव्यालंकार, १३५

दंडी का रीति-विवेचन अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने सर्वप्रथम रीति को गौरव का पद प्रदान किया, जिससे विद्वान उन्हें रीतिवादी आचार्य कहते हैं। उन्होंने रीति के लिए मार्ग शब्द का प्रयोग किया है। भामह ने तीन गुणों का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कथन किया था, पर दंडी ने दस गुणों का वर्णन कर सब का समावेश वैदर्भी-मार्ग में किया। उन्होंने गुण एवं मार्ग में अन्योन्याश्रय संबंध स्थापित कर इसके विवेचन को गति दी। उनके अनुसार श्लेष, प्रसाद, समता, माधुर्य, सुकुमारता, अर्थव्यक्ति, उदारता, ओज, कांति एवं समाधि, ये दस गुण वैदर्भी-मार्ग के प्राण हैं। गौड़ी में सभी गुणों का अभाव रहता है, इसीलिए उन्होंने गौड़ी की निंदा की।

उनके मतानुसार यह पौरस्त्य काव्य पद्धति है, जिसमें अनुप्रास एवं अर्थालंकारडंबर रहता है। गौड़ी के उक्त दोनों ही गुण श्लेष एवं समता गुण के विरोधी हैं। दंडी गौड़ी को हीनतर मार्ग स्वीकार करते हुए भी काव्य-मार्ग मानते हैं।

> इतिमार्गद्वयं भिन्नं तत्स्वरूपनिरूपणात्।
> तद्भेदास्तु न शक्यंते, वक्तुं प्रतिकविस्थिताः ॥ १/१०१
>
> श्लेषः प्रसादः समता माधुर्यं सुकुमारता।
> अर्थव्यक्तिरुदारत्वमोजः कांतिसमाधयः ॥
> इति वैदर्भ मार्गस्य प्राणाः दश गुणाः स्मृताः।
> एषां विपर्ययः प्रायो दृश्यते गौडवर्त्मनि ॥
> —काव्यादर्श, १/४१,४२
>
> अनुप्रासधिया गौडेस्तदिष्टं बंधगौरवात्। १/४४
> इत्यनालोच्य वैषम्यमर्थालंकारडंबरम्।
> अवेक्ष्यमाणा ववृधे पौरस्त्या काव्यपद्धतिः ॥ —वही, १/५४

रीति-निरूपण के इतिहास में वामन का स्थान प्रवर्त्तक का है। उन्होंने ही प्रथमतः रीति को काव्य की आत्मा बतलाया और विशिष्ट पदरचना को रीति की संज्ञा दी।

> रीतिरात्माकाव्यस्य। —काव्यालंकार सूत्र, १/२,६
> विशिष्ट पदरचना रीतिः। —वही, १/२,७

विशिष्ट पदरचना का अभिप्राय गुणसंपन्न काव्य शोभाकारक धर्म से है। अतः, काव्य शोभाकारक या सम्यक् पदरचना का नाम रीति है। वामन ने भी गुणों के साथ रीति के घनिष्ठ संबंध की कल्पना की और गुण को काव्य शोभाकारक नित्य धर्म से विभूषित किया। उन्होंने शब्दगुणों से अधिक अर्थ-गुणों को महत्त्व दिया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वामन ने शब्दगुणों की अपेक्षा अर्थगुणों को अधिक महत्त्व दिया है। उनके अनुसार अर्थगुणों के समावेश से ही रीति को उत्कर्ष प्राप्त होता है। समस्त रसों का समावेश कांति नामक अर्थगुण में किया गया है; क्योंकि उसमें रस की दीप्ति होती है—'दीप्तरसत्वं कांतिः।' वामन ने रीति के तीन भेद किए हैं—वैदर्भी, गौड़ी और पांचाली। वैदर्भी में समग्र गुणों की स्फुट रूप से विद्यमानता होती है। उसमें गुणस्फुटत्व (गुणों की विशदता) एवं गुण-साकल्य (गुणों की समग्रता) का विधान होता है—समग्रगुणा वैदर्भी। १, २, ११। वामन ने दंडी की भाँति गौड़मार्ग को निकृष्ट नहीं माना है। उनके मतानुसार गौड़ी में गुण का विपर्यय नहीं होता, इसमें ओज और कांतिगुणों का समावेश होता है—ओजः कांतिमती गौडीया, १/२/१२। गौड़ी में ओज और कांतिगुण के कारण ही ओजस्विता विद्यमान रहती है और अति उल्बण पदों तथा समासबाहुल्य का सद्भाव होता है। पांचाली में ओज तथा कांतिगुणों का अभाव और माधुर्य तथा सौकुमार्य गुणों की अनिवार्यता रहती है।

रुद्रट—रुद्रट के आविर्भाव से रीति-विवेचन के इतिहास में नया मोड़ आता है। इन्होंने रीति के विभाजन की नवीन आधार-भूमि प्रस्तुत की—पदों की समस्तता और असमस्तता। इन्होंने लघुसमास, मध्यसमास और दीर्घ-समास के आधार पर रीति के तीन भेद किए—पांचाली, लाटीया तथा गौड़ीया और समासाभाव में वैदर्भी की स्थिति स्वीकार की।

रुद्रट ने रीतियों की संख्या चार कर लाटीया नामक नवीन भेद की कल्पना की। वैदर्भी एवं पांचाली माधुर्य तथा सुकुमार गुण से युक्त होती हैं; अतः इनका प्रयोग शृंगार, करुण, भयानक, प्रेयान् एवं अद्भुत रसों में होता है। गौड़ी और लाटीया में ओज गुण होता है; अतः ये रौद्र रस में उपयोगी होती हैं। ओज एवं बंधगाढ़ता ही इनका प्राण है। अन्य रसों के संबंध में रीति का कोई नियम नहीं होता और कवि इच्छानुरूप शैली का प्रयोग करने में स्वतंत्र होता है।

> वैदर्भीपांचाल्यौ प्रेयसि करुणे भयानकाद्भुतयोः।
> लाटीयागौडीये रौद्रे कुर्याद् यथौचित्यम्॥
>
> —काव्यालंकार, १५/२०

रुद्रट ने सर्वप्रथम रसौचित्य के आधार पर रीतियों के प्रयोग और चुनाव की बात कहकर रस एवं रीति के घनिष्ठ संबंध का प्रतिपादन किया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पांचाली लाटीया गौडीया चेतिनामतोऽभिहिताः ।
लघुमध्यायतविरचनसमासभेदादिमास्तत्र ॥
द्वित्रिपदा पांचाली लाटीया पंच सप्त वा यावत् ।
शब्दाः समासवंतो भवति यथाशक्ति गौडीया ॥

—वही, २/४, ५

आनंदवर्द्धन—इन्होंने रीति को रसाभिव्यक्ति का साधन मानकर उसे रस की उपकारिणी कहा है। इन्होंने सर्वप्रथम रीति के चार नियामक निर्धारित किए—वक्त्रौचित्य, वाच्यौचित्य, विषयौचित्य तथा रसौचित्य। आनंद ने रीति को संघटना की अभिधा प्रदान कर इन्हें गुणाश्रित माना और वर्गीकरण में समास के आधार को भी स्वीकार किया। इन्होंने रीति के आत्मत्व की असंगति प्रदर्शित कर बताया कि इसमें ध्वनि अस्फुट रूप से विद्यमान रहती है।

गुणानाश्रित्य तिष्ठंती माधुर्यादीन् व्यनक्ति सा ।
रसान्···· ···· ···· । —ध्वन्यालोक, ३/६

असमासा समासेन मध्यमेन च भूषिता ।
तथा दीर्घसमासेति त्रिधासंघटनोदिता ॥ —वही, ३/५

अस्फुट स्फुरितं काव्यतत्त्वमेतद् यथोदितम् ।
अशक्नुवद्‌भिर्व्याकर्तुं रीतयः संप्रवर्तिताः ॥ —वही, ३/४७

राजशेखर—इन्होंने रीति, प्रवृत्ति एवं वृत्ति में घनिष्ठ संबंध स्थापित करते हुए वेषविन्यास क्रम को प्रवृत्ति, विलासविन्यासक्रम को वृत्ति एवं वचन-विन्यासक्रम को रीति कहा। इनके अनुसार गौड़ी रीति में समासयुक्त, अनुप्रासयुक्त तथा योगवृत्तिपरंपरागर्भ वचन का समावेश होता है तो अल्पसमास, अल्पानुप्रासयुक्त एवं उपचारगर्भ वचन का विन्यास पांचाली रीति में। गौड़ी दीर्घसमासा होती है। राजशेखर ने मागधी एवं मैथिली रीति का भी नामोल्लेख किया है।

कुंतक—आचार्य कुंतक ने रीति के लिए मार्ग शब्द का प्रयोग किया और सुकुमार, विचित्र और मध्यम नामक इसके तीन भेद किए। इन्होंने रीति के भौगोलिक आधार को समाप्त कर कवि स्वभाव के आधार पर मार्गों का विभाजन किया। कुंतक के अनुसार मार्ग का देश से कोई संबंध न होकर कवि के आंतरिक गुणों एवं अभिव्यक्ति से है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संप्रति तत्र ये मार्गाः कविप्रस्थान हेतवः ।
सुकुमारो विचित्रश्च मध्यमश्चोभयात्मकः ॥

—वक्रोक्तिजीवित, १/४

कुंतक रीतियों को उत्तम, मध्यम एवं अधम मानने के विरोधी हैं। सुकुमार-मार्ग में चार असाधारण गुण होते हैं—माधुर्य, प्रसाद, लावण्य एवं आभिजात्य तथा औचित्य एवं स्वभाव—ये साधारण गुण भी समाविष्ट होते हैं। इस मार्ग में काव्य के परम तत्त्व रस की प्रमुखता है। विचित्र मार्ग में अलंकाराधिक्य के कारण बाह्य चमत्कार अधिक रहता है। इसी मार्ग का जीवन-प्राण वक्रोक्ति-वैचित्र्य है। मध्यम मार्ग में वैचित्र्य एवं सौकुमार्य, दोनों का समन्वय होता है।

भोज—भोज ने रीति के लिए एक ही साथ मार्ग, पंथ एवं रीति शब्दों का प्रयोग किया है। इनके अनुसार रीति का अर्थ है 'कवि-गमन-मार्ग', जो कुंतक का कवि-प्रस्थान-हेतु है। विस्तारवादी भोज ने रीति की संख्या बढ़ाकर छह—वैदर्भी, पांचाली, गौड़ीया, आवंतिका, लाटीया और मागधी—कर दी है। इन्होंने गुण एवं समास को मूलाधार मानकर रीति का वर्गीकरण किया है। आवंतिका रीति पांचाली तथा वैदर्भी की अंतरालवर्त्तिनी होती है तथा लाटीया में सभी रीतियों का सम्मिश्रण होता है। मागधी खंड रीति होती है, जिसमें पूर्व रीतियों में से किसी एक को स्थान देकर अंततः उसका निर्वाह नहीं किया जाता। पहले जिस रीति को स्थान दिया जाता है, बाद में उसे छोड़कर अन्य रीति ग्रहण कर ली जाती है।

तत्रासमासा निःशेषश्लेषादिगुणगुंफिता ।
विपंचीस्वर-सौभाग्या वैदर्भी रीतिरिष्यते ॥
समस्त पंचषपदामोजः कांति-विवर्जिताम् ।
मधुरां सुकुमारां च पांचाली कवयो विदुः ॥
समस्तात्युद्भटपदामोजः कांतिगुणान्विताम् ।
गौडीयेति विजानंति रीतिं रीति-विचक्षणाः ॥

—सरस्वतीकंठाभरण, २, ५३-५५

आनंदवर्द्धन के रीति-विवेचन का अनुसरण करते हुए मम्मट, विश्वनाथ आदि ने इसे रस का उपकारक मानकर काव्य-संघटना की उपाधि दी। मम्मट ने स्वयं रीति का विवेचन नहीं किया; पर उपनागरिका आदि वृत्तियों का अवश्य ही उल्लेख किया है। वे वृत्ति और रीति को अभिन्न मानते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विश्वनाथ ने रीति को काव्यशरीर का अवयव-संस्थान कहकर इसे रस की उपकर्त्री माना है। ये वैदर्भी, गौड़ी, पांचाली और लाटी—चार रीतियों का वर्णन करते हैं। मम्मट के अनुसार रीति का समावेश वृत्ति में हो जाने से और विश्वनाथ द्वारा रस के उपकारक के रूप में उपस्थापित किए जाने के कारण रीति का स्वरूप स्थिर हो गया और यह काव्य के अंगसंस्थान के रूप में प्रतिष्ठित हुई तथा इसका आत्मसंस्थानीय रूप लुप्त हो गया। पंडितराज ने मम्मट की भाँति वैदर्भी आदि रीतियों को उपनागरिका प्रभृति वृत्तियों से अभिन्न मानकर रीति के महत्त्व को उन्मूलित कर दिया और रीति का उत्तरोत्तर ह्रास होता गया।

केषाचिदेता वैदर्भी-प्रमुखा रीतियो मताः ॥

—काव्यप्रकाश, ९/८७

पदसंघटनारीतिरंगसंस्था-विशेषवत्। उपकर्त्रीरसादीनाम्।

—साहित्यदर्पण, ९/१

सा पुनः स्याच्चतुर्विधा। वैदर्भी चाथ गौडी च पांचाली लाटिका मता ॥

—वही, ९/२-६,

—रसगंगाधर, पृ० ११७

रीति-संप्रदाय के ऐतिहासिक पर्यालोचन से ज्ञात होता है कि रीति को काव्य की आत्मा मानने का जो प्रयत्न वामन द्वारा प्रारंभ हुआ था, वह अंततः अक्षुण्ण न रह सका और काव्यशास्त्र के अंतिम आचार्य पंडितराज के समय तक यह काव्य के अंगसंस्थान के रूप में मान्य हुई। अंतिम खेवे के एक अप्रसिद्ध आचार्य अमृतानंद योगी ने पुनः इसे आत्मस्थानीय मानने का असफल प्रयत्न किया था; पर वे इसमें कृतकार्य न हो सके।

रीतिरात्माकाव्यस्य कथ्यते सा चतुर्विधा।

—अलंकारसारसंग्रह, ५/१

अंततः, रीति रसात्मा की उपकर्त्री सिद्ध हुई और इसका गुणों के साथ अत्यंत निकटता का संबंध स्थापित हुआ। ध्वनिवादी आचार्यों के अनुसार गुण को रस का धर्म स्वीकार किया गया और रीति रसाभिव्यक्ति के साधन या माध्यम के रूप में मान्य हुई, यद्यपि वामन द्वारा उपस्थापित इसकी परिभाषा में किसी प्रकार का अंतर नहीं हुआ तथा इसे वह महत्त्व नहीं मिला जो वामन ने दिया था। रीति को शब्द एवं अर्थ का आश्रित रचना-चमत्कार का पद प्राप्त हुआ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आधार-ग्रंथ—

१. हिंदी काव्यालंकारसूत्रवृत्ति—भूमिका —डॉ० नगेंद्र

२. भारतीय साहित्यशास्त्र, भाग-२ —पं० बलदेव उपाध्याय

३. काव्यात्म-मीमांसा —डॉ० जयमंत मिश्र

रीति-सिद्धांत—यह भारतीय काव्यशास्त्र या साहित्यशास्त्र का एक प्रसिद्ध सिद्धांत है, जिसके अनुसार रीति ही काव्य की आत्मा या प्राणतत्त्व है—रीतिरात्मा काव्यस्य—काव्यालंकारसूत्रवृत्ति १/१/१। इस संप्रदाय के प्रवर्त्तक आचार्य वामन हैं, जिन्होंने 'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति' नामक ग्रंथ में रीति को काव्य का जीवन-प्राण सिद्ध किया है। भोज ने अपने लक्षण में रीति की व्युत्पत्ति देते हुए बताया है कि यह रीङ् मतौ गत्यर्थक रीङ् धातु से क्तिन प्रत्यय के संयोग से निष्पन्न है; जिसका अर्थ है—मार्ग, गति और प्रस्थान तथा पद्धति, विधि, आदि इसके समानार्थी हैं।

वैदर्भादिकृतः पंथाः काव्यमार्ग इति स्मृतः।
रींगताविति धातोः सा व्युत्पत्त्या रीति रुच्यते ॥

—सरस्वतीकंठाभरण २/५१

वामन के पूर्ववर्ती आचार्य दंडी ने तथा परवर्ती कुंतक ने रीति के लिए मार्ग शब्द व्यवहृत किया है। वामन ने रीति की परिभाषा प्रस्तुत करते हुए इसे विशिष्ट पद रचना कहा—विशिष्टपदरचना रीतिः, काव्यालंकारसूत्र, १/२/७। यहाँ विशिष्ट से अभिप्राय गुणसंपन्नता या गुणयुक्तता का है—विशेषोगुणात्मा, वही १,२,८। गुण काव्यशोभाकारक शब्द एवं अर्थ के धर्म को कहते हैं। इस प्रकार वामनाभिमत रीति की परिभाषा हुई 'काव्यशोभाकारक शब्द और अर्थ के धर्मों से युक्त पद-रचना।' शोभाकारक से अभिप्राय है चमत्कार या सौंदर्य का। अतः शब्द एवं अर्थ के शोभाकारक धर्म का अर्थ हुआ शब्द एवं अर्थ का सौंदर्य या चमत्कार या शब्द-सौंदर्य या अर्थ-सौंदर्य। संक्षेपतः, सुंदर पदरचना को ही रीति कहते हैं और यह चमत्कार (सौंदर्य) शब्द एवं अर्थ-विषयक होता है। परवर्ती आचार्यों में आनंदवर्द्धन ने रीति को 'संघटना' की संज्ञा दी, जिसका अभिप्राय पदों की सम्यक् या शोभन घटना या रचना से है। वामन ने शब्द एवं अर्थ को ही काव्य का चरम मानदंड स्वीकार कर शब्द एवं अर्थगत सौंदर्य पर बल दिया था, पर आनंदवर्द्धन ने रस को काव्य का चरम मानदंड मानकर सम्यक् या यथोचित पद-रचना में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रीति का स्वरूप निर्धारित किया। उनके मतानुसार रीति रसाश्रयी है। आनंदवर्द्धन रीति को रस-स्वरूप सौंदर्य का साधन मानते हैं—व्यनक्ति सा रसादीन्—ध्वन्यालोक ३/५। उन्होंने समास को आधार मानकर संघटना के तीन प्रकार किए हैं—असमासा, मध्यसमासा तथा दीर्घसमासा।

असमासा समासेन मध्यमेन च भूषिता।
तथा दीर्घसमासेति त्रिधा संघटनोदिता॥—ध्वन्यालोक, ३/५

आनंदवर्द्धन ने रीतिविषयक तीन तथ्यों का व्याख्यान किया है—

क. रीति या संघटना का स्वरूप समास पर आधृत है अर्थात् समास के आधार पर रीतियों का विभाजन संभव है।

ख. रीति गुणों पर आश्रित है या गुणाश्रयी है।

ग. वह रसाभिव्यक्ति का साधन है।

वामन के उपरांत किसी भी प्रसिद्ध आचार्य ने रीति को काव्य की आत्मा स्वीकार नहीं किया। कालांतर में जब रस ध्वनि काव्य की आत्मा मानी गई तो रीति को काव्य की शैली, देह या अंगसंस्थान का रूप प्राप्त हुआ; फलतः यह बाह्यांग के रूप में प्रतिष्ठित हुई। विश्वनाथ ने वर्ण-संयोजन एवं पदरचना को रीति स्वीकार कर इसे रस की उपकर्त्री सिद्ध किया। वामन ने इसे पूर्ण स्वतंत्र काव्य-सिद्धांत का रूप दिया था; पर आगे चलकर इसे परतंत्र बनना पड़ा। रीति-सिद्धांत में काव्य के शैली-पक्ष को प्रधान स्वीकार कर भाव तत्त्व या रस को गौण बना दिया गया है; फलतः विपरीत स्थिति उत्पन्न कर देने के कारण इसका पतन हुआ। रस का अवमूल्यन ही रीति-सिद्धांत के निश्शेष होने का प्रधान कारण है। वह पद-रचना को काव्य का चरम तत्त्व मानकर रस को शैली का अंग या अत्यंत गौण अंग स्वीकार करता है। वामन ने रस का समावेश कांति गुण में करके उसके महत्त्व को घटा दिया है। फिर भी, इसकी कतिपय उपलब्धियाँ महत्त्वपूर्ण हैं। यह काव्य में सौंदर्य तत्त्व पर अधिक बल देता है और अलंकार या सौंदर्य के समावेश के कारण ही काव्य की उपादेयता सिद्ध करता है। डॉ० नगेंद्र ने रीति-सिद्धांत के शैलीगत एवं विषयगत तत्त्वों का उद्घाटन करते हुए बतलाया है कि अभिव्यंजना-कला की दृष्टि से रीति-सिद्धांत की देन महनीय है। रीति-सिद्धांत में आदर्श काव्य के मूल तत्त्व निम्नांकित हैं—

शैलीगत—अर्थवैमल्य (आनुगुणत्व), उक्ति-वैचित्र्य, प्रक्रम, अर्थ प्रौढ़ि अर्थात् समास-शक्ति व्यास-शक्ति तथा साभिप्राय विशेषण-प्रयोग।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विषयगत—अर्थ-गौरव, रस, परिष्कृत (अग्राम्यत्व) तथा स्वाभाविकता।

—डॉ० नगेंद्र, काव्यालंकारसूत्र की भूमिका पृ० १८८

रीति-सिद्धांत में शैली-तत्त्व या अभिव्यंजना-प्रणाली का महत्त्व अक्षुण्ण है। इसमें गुण एवं अलंकार से युक्त या भूषित शब्द एवं अर्थ को काव्य की संज्ञा दी गई है—

काव्य शब्दोऽयं गुणालंकारसंस्कृतयोः शब्दार्थयोर्वर्तते।

इसमें दोषों के अभाव एवं अलंकार तथा गुण के सद्भाव से ही सौंदर्य का समावेश होना बताया गया है—**स दोषगुणालंकारहानादानाभ्याम्** १/१/३। रीति-सिद्धांत काव्य में गुण की स्थिति अनिवार्य मानता है और अलंकार की वैकल्पिक। काव्य में शोभा उत्पन्न करनेवाले धर्म को गुण कहते हैं और उस शोभा को अतिशय बढ़ानेवाले तत्त्व हैं अलंकार। गुण के होने पर भी अलंकार के अभाव में काव्य की शोभा-वृद्धि हो सकती है, पर गुण का अभाव होने पर, अलंकार के सद्भाव में भी काव्य सुशोभित नहीं हो सकता। अतः, गुण काव्य-शोभा के उत्पादक हैं तो अलंकार उस शोभा की वृद्धि के हेतु।

काव्यशोभायाः कर्तारो धर्मा गुणाः। ३,१,१
तदतिशयहेतवस्त्वलंकारः। ३/१/२
पूर्वे नित्याः। ३/१/३ —काव्यालंकारसूत्र

रीति-सिद्धांत में काव्य के दो प्रयोजन बतलाए गए हैं—प्रीति और कीर्त्ति। वह कवि को आनंद (प्रीति) तथा कीर्त्ति एवं पाठक को आनंद देनेवाला है—वह कवि को ऐहिक एवं आमुष्मिक फल देता है अर्थात् कवि अपने जीवन-काल में तो यश अर्जित करता ही है; किंतु मृत्यु के उपरांत उसे पुष्कल यश की प्राप्ति होती है। स्मरण रहे कि ये फल सुंदर या सत् काव्य के हैं।

काव्यं सद् दृष्टादृष्टार्थं प्रीतिकीर्तिहेतुत्वात्।

—काव्यालंकारसूत्र, १,१,५

रीति-सिद्धांत में प्रतिभा को ही कवित्व का बीज माना जाता है। इसके बिना काव्य नहीं बन सकता और बने भी तो उपहासास्पद हो जाता है।

कवित्वबीजं प्रतिभानाम्। —वही, १/३/१६

इसमें बताया गया है कि गद्य कवियों की कसौटी है अर्थात् पद्य की अपेक्षा गद्य-रचना कठिन है। मुक्तक एवं प्रबंध में प्रबंध श्रेष्ठतर है; क्योंकि मुक्तक का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्फुट कलेवर काव्य के समस्त सौंदर्य के प्रकाशन में अक्षम है, वह (मुक्तक) प्रबंध का सोपान-मात्र है। काव्य का श्रेष्ठतम रूप है नाटक; क्योंकि यह मिश्र-कला है। इसमें काव्य के अन्य भेदों—प्रबंध, कथा, आख्यायिका का समावेश हो जाता है। नाटक में काव्य, संगीत, नृत्य, रंग-शोभा के चित्रविचित्र वैभव दृष्टिगोचर होते हैं। रीति-सिद्धांत कवि का गौरव प्रबंध-रचना में स्वीकार करता है। यह (रीति) वस्तु और रीति (शैली) में पद-रचना या शैली को अपनाकर काव्य का मूल तत्त्व शैली को मानता है।

सहायक ग्रंथ—

१. हिंदी काव्यालंकार सूत्र—सं० डॉ० नगेंद्र (भूमिका)

२. भारतीय साहित्यशास्त्र, भाग-२—आचार्य बलदेव उपाध्याय

रुद्रट—इनकी एक मात्र कृति 'काव्यालंकार' है, जो काव्यशास्त्र की प्रौढ़ रचना मानी जाती है। [**दे० काव्यालंकार**] इनके जीवन-विषयक तथ्य ज्ञात नहीं है। नाम के आधार पर इनका काश्मीर-निवासी होना माना गया है। इनके पिता का नाम भट्टवामुक था। नमि साधु ने 'काव्यालंकार' की टीका में रुद्रट का अन्य नाम शतानंद दिया है तथा इनके पिता का नामोल्लेख किया है।

शतानंदपराख्येन भट्टवामुकसूनुना।
साधितं रुद्रटेनेदं सामाजा धीमता हितम् ॥

—काव्यालंकार की टीका, ५/१२-१४

इनका समय ८२५ ई० के आसपास माना गया है। 'काव्यालंकार' में काव्यशास्त्रीय विषयों को विस्तृत पृष्ठाधार पर प्रस्तुत किया गया है। इसके वर्ण्य-विषयों में काव्य-लक्षण, काव्य-प्रयोजन, काव्यहेतु, काव्य-भेद—प्रबंधकाव्य, महाकथा, आख्यायिका, अलंकार, दोष, रस, नायक-नायिका-भेद हैं। [**उपर्युक्त विषयों के संबंध में रुद्रट का मत जानने के लिए संबद्ध विषयों को देखें**] रुद्रट अलंकारवाद के प्रतिनिधि आचार्य होते हुए भी रस-सिद्धांत के प्रबल पोषक हैं। अन्य प्राचीन आचार्यों की अपेक्षा इनके रस-निरूपण की अपनी विशिष्टता है। इन्होंने रस का स्वतंत्र रूप से विवेचन कर उसमें नायिका-भेद का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है। इन्होंने भरत-वर्णित रस के आठ भेदों के अतिरिक्त शांत और प्रेयान् (रस) को भी स्थान दिया है। इनकी रस-मीमांसा नाट्याश्रित न होकर काव्य की दृष्टि से निर्मित है। काव्य में रस का महत्त्व प्रतिष्ठित करते हुए इन्होंने कहा कि रस के अभाव में कोई भी काव्य शास्त्र की भाँति नीरस हो जाता है; अतः कवि बड़े यत्न से रसपेशल काव्य की रचना करे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तस्मात्तत्कर्त्तव्यं यत्नेन महीयसा रसैर्युक्तम् ।
उद्वेजनमेतेषां शास्त्रवदेवान्यथा हि स्यात् ॥

—काव्यालंकार, १२/२

रस को महत्त्व देते हुए भी रुद्रट उसके स्वरूप, विभावानुभाव, संचारीभाव तथा रस-निष्पत्ति ऐसे आवश्यक विषयों पर विचार नहीं करते, जो इनकी तरह आचार्य के लिए आश्चर्य की बात है।

इन्होंने नायक-नायिका-भेद-प्रसंग को रस का अंग माना है अर्थात् उसे शृंगार रस के अंतर्गत स्थान दिया है। इनका यह प्रसंग (नायक-नायिका-भेद) इतना प्रौढ़, विस्तृत और व्यवस्थित है कि परवर्ती आचार्यों ने इनके वर्गीकरण का ही अनुकरण किया। नायिका के स्वकीया, परकीया और गणिका नामक भेदों का उल्लेख इन्होंने ही किया था, जिसे आगे के आचार्यों ने भी मान्यता दी। चार प्रकार के नायकों—अनुकूल, दक्षिण, शठ एवं धृष्ट—तथा अगम्या नायिकाओं का भी इन्होंने निरूपण किया है। [दे० **रस-संप्रदाय तथा नायक-नायिका-भेद**] विप्रलंभ शृंगार के चार भेदों—प्रथमानुराग, मान, प्रवास और करुण—का कथन कर इन्होंने काम की दस दशाओं को प्रथमानुराग में स्थान दिया है। शृंगार रस के अंतर्गत इन्होंने उल्लेखनीय विचार यह व्यक्त किया कि एकपक्षीय प्रेम शृंगाराभास है, प्रेम नहीं। और, ऐसा वर्णन उत्तम प्रकृति के पात्रों के लिए उचित नहीं माना जाता।

शृंगाराभासः स तु यत्र विरक्तेऽपि जायते रक्तः ।
एकस्मिन्नपरोऽसौ नामाप्येषु प्रयोक्तव्यः ॥

—काव्यालंकार, १४/३६

अलंकार-विवेचन की दिशा में इनका महनीय योग है। अलंकारों के चार वर्गों—वास्तव, औपम्य, अतिशय और श्लेष—का निर्माण कर उनके वैज्ञानिक विभाजन का प्रयास, इनकी सूक्ष्म दृष्टि का परिचायक है। इन्होंने अनेक नवीन अलंकारों की उद्भावना की है [दे० **अलंकार-संप्रदाय**] तथा पदगत छह, वाक्यगत तीन, अर्थगत नौ और चार उपमादोषों को मिलाकर कुल बाईस दोषों का विवेचन किया है। इन्होंने दोष-निरूपण के अंतर्गत दोष-परिहार की भी तीन व्यवस्था की है।

कतिपय विद्वान इनके अलंकार-विवेचन की मौलिकता, वर्णन-विस्तार एवं अलंकार-संख्या-वृद्धि के आधार पर इन्हें अलंकारवादी आचार्य मानने के पक्ष

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में हैं; पर इनके रस-निरूपण-संबंधी नवीन दृष्टिकोण और काव्य में उसकी महत्ता के प्रतिपादन को देखकर इन्हें रसमत के अधिक निकट माना जा सकता है। इन्होंने अलंकारवादी आचार्यों की भाँति रस को अलंकार, गुण या रीति में अंतर्भुक्त नहीं किया, अपितु उसका स्वतंत्र रूप से विवेचन किया। रुद्रट का आविर्भाव ऐसे संक्रांति काल में हुआ था, जब अलंकार, गुण और रीति मतों की तूती बोलती थी तथा ध्वनि-मत-विकास के गर्भ में अँगड़ाई ले रहा था। ऐसे समय में इनकी रस-मीमांसा-संबंधी उपपत्तियाँ आधारभूत दृढ़ता की परिचायक हैं। यह कम आश्चर्य की बात नहीं कि इन्होंने परस्पर विरोधी प्रतीत होनेवाले रस और अलंकार-सिद्धांत में समन्वय स्थापित कर दोनों के बीच पड़ी हुई गहरी खाई को सम्यक् रूप से पाटने का प्रयत्न किया है और काव्य के अनिवार्य तत्त्वों में दोनों को समान महत्त्व दिया है।

रुद्रभट्ट—इन्होंने 'शृंगार तिलक' नामक रस तथा नायिका-भेद-संबंधी ग्रंथ का प्रणयन किया है। हेमचंद्र ने 'शृंगारतिलक' के मंगलश्लोक को उद्धृत कर उसका खंडन किया है; अतः इनका समय दसवीं शती से पूर्व नहीं स्थिर किया जा सकता। 'काव्यालंकार' के रचयिता रुद्रट और रुद्रभट्ट को बहुत दिनों से अभिन्न माना जाता था। पर, अब यह बात अमान्य हो गई है। विषय की भिन्नता एवं समय के अंतर के कारण दोनों में भिन्नता सिद्ध होती है। 'शृंगारतिलक' में नौ रसों की विवेचना है; पर रुद्रट 'प्रेय' नामक एक नवीन रस की उद्भावना कर रसों की संख्या दस कर देते हैं। रुद्रभट्ट ने चार नाट्यवृत्तियों का वर्णन किया है, जबकि रुद्रट पाँच वृत्तियों का उल्लेख करते हैं—मधुरा, प्रौढ़ा, परुषा, ललिता और भद्रा। रुद्रभट्ट ने विस्तारपूर्वक वेश्या (नायिका के तृतीय प्रकार) या गणिका का वर्णन किया है; किंतु रुद्रट ने दो श्लोकों में उसका केवल उल्लेख मात्र किया है। रुद्रट का समय नवम शती का प्रथम चरण माना गया है।

'शृंगारतिलक' की रचना तीन परिच्छेदों में हुई है। प्रथम परिच्छेद में रस, भाव तथा नायक-नायिका-भेद का निरूपण है और द्वितीय परिच्छेद में विप्रलंभशृंगार, खंडिता के अनुनय के छह भेद एवं वियोग की दस दशाएँ वर्णित हैं। तृतीय परिच्छेद में शृंगार के अतिरिक्त अन्य रसों तथा चार वृत्तियों—कैशिकी, सात्त्वती, आरभटी और भारती—का विवेचन है। रुद्रभट्ट ने ग्रंथारंभ में बताया है कि भरत ने नाट्य-संबंधी रस का विवेचन किया था; किंतु ये काव्य-विषयक रस का निरूपण करते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रायो नाट्यं प्रति प्रोक्ता भरताद्यै रसस्थितिः ।
यथामति मयाप्येषा काव्यं प्रति निगद्यते ।।

—शृंगारतिलक, १/५

[**इनके रस-संबंधी मत के लिए दे० रस-संप्रदाय**] 'शृंगारतिलक' का हिंदी अनुवाद सहित प्रकाशन प्राची प्रकाशन, वाराणसी से हुआ है।

रूढ़ि—[दे० अभिधा शक्ति]।

रूढ़िलक्षणा—लक्षणा शक्ति का प्रथम भेद। [**दे० लक्षणा**] जब रूढ़ि (प्रचलित परंपरा) के कारण मुख्यार्थ को छोड़कर उससे संबद्ध (मुख्यार्थ) दूसरा अर्थ ग्रहण किया जाय तो रूढ़िलक्षणा होगी। अभिप्राय यह कि मुख्यार्थ में बाध या व्यवधान होने पर जब रूढ़ि के कारण उससे (मुख्यार्थ से) संबंध रखनेवाला अन्य अर्थ गृहीत हो तो रूढ़िलक्षणा होती है। जैसे कहा जाय कि 'कलिंगः साहसिकः' या कलिंग साहसी है। या पंजाब लड़ाका है तो यहाँ 'कलिंगः' तथा 'पंजाब' शब्द में लक्षणा (रूढ़ि) होगी।। कलिंग और पंजाब व्यक्ति न होकर स्थान या देश हैं। अतः, उनका साहसी या लड़ाका होना संभव नहीं है। यहाँ मुख्यार्थ में बाधा आ जाती है। यदि कलिंग और पंजाब से संबंध रखनेवाला कलिंग-निवासी या पंजाबी अर्थ किया जाय तो बाधा दूर हो जाती है। समाज में पंजाबी को पंजाब तथा कलिंग-निवासी को कलिंग कहने का प्रचलन या रिवाज भी है। अतः, दोनों उदाहरणों में रूढ़िलक्षणा होगी।

क्वणद्विरेफावलिनीलकंकणं, प्रसार्यशाखाभुजमाम्रवल्लरी ।
कृतोपगूढा कलकंठकूजितैरनामयं पृच्छति दक्षिणानिलम् ।।

आम्रलता, झण-झण शब्द करते हुए द्विरेफों की पंक्ति के नीले कंकण-वाली शाखारूपी बाहु को फैलाकर, (वायु के द्वारा) आलिंगित किए जाने पर दक्षिण वायु को कोकिला की कुहू के द्वारा कुशल पूछ रही है।

यहाँ 'द्विरेफ' शब्द में रूढ़िलक्षणा है, जिसका अर्थ भ्रमर लिया गया है।

डिगत पानि डिगुलात गिरि, लखि सब ब्रज बेहाल ।
कंप किसोरी दरस तें, खरे लजाने लाल ।।

—बिहारी

यहाँ 'ब्रज' शब्द में रूढ़िलक्षणा है, जिसका अर्थ 'ब्रजवासी' किया गया है। 'देखकर ब्रज बेहाल हो गया' का अर्थ होगा कि 'ब्रज के निवासी बेहाल हो गए।'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रूढ़िवैचित्र्यवक्रता—पदपूर्वार्द्धवक्रता का प्रथम भेद। यह कुंतक के वक्रोक्ति-सिद्धांत के अंतर्गत वर्णित पदपूर्वार्द्ध वक्रता का एक भेद है।

[दे० पदपूर्वार्द्ध वक्रता]

रूपक—सादृश्यमूलक अलंकार। उपमेय पर उपमान के निषेधरहित आरोप को 'रूपक' कहते हैं। रूपक का अर्थ 'रूप का आरोप' है। इस अलंकार में एक वस्तु पर अन्य वस्तु का आरोप कर दोनों में अभेद-स्थापन होता है या एकरूपता की स्थापना होती है। अभेद का अर्थ 'तादात्म्य-प्रतीति' है अर्थात् एक वस्तु में दूसरी वस्तु इस प्रकार रखी जाय कि दोनों में किसी प्रकार का अंतर न रह जाय। रूपक अलंकार में उपमेय उपमान का रूप ग्रहण कर लेता है या उपमेय को उपमान का रूप प्रदान किया जाता है। अपह्नुति अलंकार से पार्थक्य प्रदर्शित करने के लिए परिभाषा में निषेध-रहित आरोप का कथन किया गया है। अपह्नुति में भी उपमेय पर उपमान का आरोप होता है; पर वह निषेध सहित होता है और रूपक में निषेध-रहित। यह सादृश्यगर्भ अभेद-प्रधान आरोपमूलक अलंकार है।

रूपयत्येकतां नयतीति रूपकमिति व्युत्पत्तिः। रूपवत्करोतीति रूपयतीति [या] रूपको लक्षणविशेषः रूपयुक्तं करोतीत्यर्थः।

—आशाधरभट्ट, बालबोधिनी (काव्यप्रकाश), पृ० ५९३

रूपक अलंकार का वर्णन सभी आचार्यों ने किया है। भरत-कृत 'नाट्य-शास्त्र' इसका प्रथम विवेचन मिलता है। आचार्यों ने रूपक के विवेचन में ताद्रूप्य, अभेद, आरोप, उपरंजकता या उपरंजन का प्रयोग कर इसके स्वरूप का वर्णन किया है।

भरत ने बताया कि केवल गुण के ही आश्रय से किंचित् सादृश्य को अपने विकल्प से रूप प्रदान करना रूपक है। यहाँ इन्होंने सादृश्य (गुणसाम्य) के आधार पर एक वस्तु को अन्य वस्तु का रूप प्रदान करने को रूपक माना है।

नानाद्रव्यानुषंगाद्यैर्यदौपम्यं गुणाश्रयम्।
रूपनिर्वणना युक्तं तदरूपकमिति स्मृतम्॥

स्वविकल्पैर्विरचितं तुल्यावयवलक्षणम्।
किंचित् सादृश्यसंपन्नं यद्रूपं रूपकं तु तत्॥

—नाट्यशास्त्र, १६/५७, ५८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भामह की परिभाषा स्पष्ट है। इनके मतानुसार गुणसाम्य के आधार पर उपमेय में उपमान के रूपण (आरोप) को रूपक कहते हैं। यहाँ गुणसाम्य तथा उपमेयोपमान के अभेदत्व को रूपक का प्रधान तत्त्व स्वीकार किया गया है।

उपमानेन यत्तत्वमुपमेयस्यरूप्यते ।
गुणानां समतां दृष्ट्वा रूपकं नाम तद्विदुः ॥

—काव्यालंकार, २/२१

दंडी ने रूपक के स्वरूप-निर्माण में नया विचार यह दिया कि जब उपमेय और उपमान में भेद का तिरोधान हो जाय या उपमा में भेद का तिरोधान हो तो रूपक होगा। यहाँ ताद्रूप्यप्रतीति को रूपक का मुख्याधार माना गया है।

उपमैव तिरोभूतभेदा रूपकमुच्यते ।

—काव्यादर्श, २/३६

रूपक के स्वरूप-निरूपण में उद्भट की महनीयता असंदिग्ध है। इन्होंने बताया कि जब एक पद (शब्द) का अन्य पद के साथ अभिधा व्यापार के द्वारा श्रुतिसंबंधराहित्य स्थापन होने पर गुणवृत्ति या लक्षणा व्यापार की सहायता से संबंध स्थापित हो तो रूपक अलंकार होगा।

श्रुत्यासंबंधविरहाद्यत्पदेन पदांतरम् ।
गुणवृत्तिप्रधानेन युज्यते रूपकं तु तत् ॥

—काव्यालंकारसारसंग्रह, १/११

वामन ने भरत तथा भामह के लक्षणों का सार प्रस्तुत कर रूपक का वर्णन किया।

उपमानोपमेयस्यगुणसाम्यात् तत्त्वारोपोरूपकम् ।

—काव्यालंकारसूत्र, ४, ३, ६

रुद्रट ने अपनी परिभाषा में बताया कि उपमेय तथा उपमान में गुणसाम्य के कारण अभेद की कल्पना की जाय और उसमें सामान्यधर्म का निर्देश न हो तो रूपक अलंकार होगा।

यत्रगुणानां साम्ये सत्युपमानोपमेययोरभिदा ।
अविवक्षित सामान्या कल्प्यत इति रूपकं प्रथमम् ॥

—काव्यालंकार, ३/३८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुंतक अपने लक्षण में उपचारवक्रता या सादृश्यमूला गौणीलक्षणा को रूपक का प्रधान तत्त्व स्वीकार करते हैं। इनके अनुसार जब सादृश्य के कारण उपमान उपमेय को अपना स्वरूप अर्पित कर दें तो रूपक अलंकार होगा। यहाँ उपमेय पर उपमान के आरोप को रूपक माना गया है।

उपचारैकसर्वस्वं यत्र (वस्तु) तत् साम्यमुद्वहत् ।
यदर्पयति रूपं स्वं वस्तु तद् रूपकं विदुः ॥

—वक्रोक्तिजीवित, ३/२०

भोज अपने लक्षण में रूपक के लिए गौणीवृत्ति या लक्षणा का महत्त्व स्वीकार करते हैं। इनके मत से उपमान के वाचक शब्दों का गौणीवृत्ति या लक्षणा के आश्रय से उपमेय के अर्थ में प्रयोग हो तो रूपक अलंकार होगा।

यदोपमानशब्दानां गौणवृत्तिव्यपाश्रयात् ।
उपमेये भवेद् वृतिस्तदा तद्रूपकं विदुः ॥

—सरस्वतीकंठाभरण, ३/२०

आचार्य मम्मट के विचार से उपमान और उपमेय के अभेदारोप को रूपक कहते हैं। यहाँ अत्यंत सादृश्य के कारण उपमेयोपमान के अभेदारोप का निरूपण है।

तद्रूपकमभेदोपमानोपमेययोः ॥ —काव्यप्रकाश, १०/९३
अतिसाम्यादनपह्नुतभेदयोरभेदः । —वही, वृत्ति

अग्निपुराणकार ने सादृश्य अलंकार के अंतर्गत रूपक का निरूपण किया है। ये उपमेयोपमान के सादृश्य-विषयक अभेद को रूपक मानते हैं।

उपमानेन यत्तत्त्वमुपमेयस्य रूप्यते ।
गुणानां समतां दृष्ट्वा रूपकं नाम तद्विदुः ॥

—अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग, पृ० ७४

रुय्यक का लक्षण मम्मट से अनुप्राणित है। इन्होंने अभेद तथा आरोप, दोनों का समन्वय कर रूपक का विवेचन किया। इन्होंने अभेद की प्रधानता होने पर ही आरोप की स्थिति स्वीकार की। इसमें आरोप के नियम का निषेध नहीं होता।

साधर्म्यंत्वनुगतमेव ।
अभेदप्राधान्ये आरोपे आरोप विषयमानपह्नवे रूपकम् ॥

—अलंकारसर्वस्व, पृ० ४३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जयदेव उपमान-द्वारा उपमेय को अपने रंग में रंजित कर देने को रूपक मानते हैं। इनका अभिप्राय उपमेयोपमान की अभिन्नता सिद्धि से है।

यत्रोपमानचित्रेण सर्वथाप्युपरज्यते।
उपमेयमयी भित्तिस्तत्र रूपकमिष्यते॥ —चंद्रालोक, ५/१८

विद्याधर के लक्षण पर मम्मट का प्रभाव है।

प्रथमं निरूप्यमाणस्तत्राप्यारोपगर्भितास्तावत्।
तद्रूपकमारोपे यत्रापह्नूयते तद्विषयः॥ —एकावली, ८/६

विद्यानाथ उपमान का (आरोप्यमान) तिरोधानरहित होकर उपमेय (आरोप-विषय) को अपने रंग में उपरंजित करने को रूपक मानते हैं।

आरोपविषयस्य स्यादतिरोहितरूपिणः।
उपरंजकमारोप्यमाणं तद्रूपकं मतम्॥

—प्रतापरुद्रीय, पृ० २६९

शोभाकर ने सर्वथा नवीन एवं पूर्ववर्ती मान्यता के विरुद्ध रूपक का लक्षण प्रस्तुत किया। इनके मत से उपमेयोपमान के सादृश्यसंबंध के अभाव में भी कार्यकारण के सद्भाव में रूपक होता है। इन्होंने आरोप को ही रूपक माना है।

आरोपोरूपकम्॥२६

न च तस्याः सादृश्ये संबंधांतरे वा कश्चिद्विशेषः ये नैकत्रालंकारतापरत्र तद्भाव इति स्यात्। न च संबंधांतर निमित्त आरोपोऽलंकारतया ललितः''''।

सादृश्यसंबंधनिबंधनाया अलंकृतित्वं यदि लक्षणायाः।
साम्येपि सर्वस्व परस्य हेतोः संबंध भेदेऽपि तथैव युक्तम्॥

—अलंकाररत्नाकर, पृ० ३३

विश्वनाथ बिना किसी निषेध के विषय (उपमेय) पर विषयी (उपमान) के आरोप को रूपक कहते हैं।

रूपकं रूपितारोपाद्विषयेनिरपह्नवे॥ —साहित्यदर्पण, १०/२८

इन्होंने रूपक के सादृश्य को शाब्द न कहकर आर्थ या व्यंग्य कहा है। रूपक के विवेचन में यही इनका नया विचार है।

रूपकादिषुसाम्यस्य व्यंग्यत्वम्॥ —वही, १०/१४, वृत्ति

दीक्षित ने 'चित्रमीमांसा' एवं 'कुवलयानंद' दोनों ग्रंथों में रूपक का विवेचन किया है। 'चित्रमीमांसा' का लक्षण इस प्रकार है—जब बिंब और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रतिबिंबभाव से रहित (बिंबाविशिष्ट) होकर शब्दतः निर्दिष्ट एवं अनिह्नुत अर्थात् जिसका निषेध नहीं किया गया हो, ऐसे विषय को (उपमेय को) यदि विषयी (उपमान) अपने रंग में रंग दे तो रूपक अलंकार होगा ।

बिंबाविशिष्टे निर्दिष्टे विषये यद्यनिह्नुते ।
उपरंजकतामेति विषयी रूपकं तदा ॥

—चित्रमीमांसा, पृ० ५६

'कुवलयानंद' की परिभाषा में कहा गया कि जब विषय तथा विषयी के अभेद एवं ताद्रूप्य का वर्णन किया जाय तो रूपक होगा ।

विषय्यभेदताद्रूप्यरंजनं विषयस्य यत् ।
रूपकं तत्रिधाधिक्य न्यूनत्वानुभयोक्तिभिः ॥

—कुवलयानंद, १७

पंडितराज ने कहा कि उपमेय-तावच्छेदक (मुखत्व) को आगे रखकर शब्द-द्वारा निश्चित की जानेवाली, उपमेय में उपमान की एकरूपता ही रूपक है। यदि यह रूपक उपस्कारक या शोभाधायक हो तो रूपक अलंकार होगा ।

उपमेयतावच्छेदकपुरस्कारेणोपमेये शब्दान्निश्चीयमानमुपमानतादात्म्यं रूपकम् । तदेवोपस्कारकत्वविशिष्टमलंकारः । —रसगंगाधर, पृ० २६७

विश्वेश्वर पंडित ने उपमेयोपमान की अभेदता को रूपक कहा है। इनके मत से उपमेयोपमान की भेद-प्रतीति होने पर भी कवि आहार्य-क्रिया के द्वारा उनमें अभेदता का स्थापन करे और दोनों की भिन्नता (अधिक सादृश्य के कारण) दूर हो जाय तो रूपकालंकार होगा ।

तद्रूपकं त्वभेदः स्यादुपमानोपमेययोर्यत्र ।

—अलंकारकौस्तुभ, २०२,३

सत्यामेवभेदप्रतीतौ अतिसादृश्यवशेन यत्र भेदमपह्नुत्योपमानेन सममुपमेयस्याभेदः सारोपलक्षणया प्रतीयते तद्रूपकमित्यर्थः ॥ —वही

रीतिकालीन आचार्यों ने रूपकालंकार के निरूपण में दंडी, मम्मट, विश्वनाथ तथा अप्पयदीक्षित को अपना उपजीव्य बनाया है। केशवदास ने दंडी के लक्षण का छायानुवाद किया तो चिंतामणि और कुलपति मम्मट के ऋणी बने। कुलपति ने विश्वनाथ के मत का भी समावेश किया और चिंतामणि ने विद्यानाथ से भी प्रभाव ग्रहण किया। मतिराम तथा पद्माकर ने 'कुवलयानंद'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के लक्षण का भावानुवाद किया है। दास ने अपने लक्षण में रूपक का मौलिक रूप प्रस्तुत किया है।

उपमा ही के रूप सों, मिल्यो बरनिये रूप।
ताही सो सब कहत हैं, केशव रूपक रूप॥

—कविप्रिया, १३/१२

जहँ विषई अरु विषय को, बरन्यौं होइ अभेद।
अलंकार रूपक तहाँ, समुझौ सुजन अखेद॥
जो अतिरोहित विषय को, उपरंजक जो होइ।
विषई सों रूपक बरन, यों बरनत कवि कोइ॥

—कविकुलकल्पतरु, ३/७७-७८

उपमा अरु उपमेय कौं, भेद परै नहिं जानि।
समता व्यंग्य रहै जहाँ, रूपक ताहि बखानि॥

—रसरहस्य, ८/३६

बरनत विषयी विषय कौं, करि अभिन्नतद्रूप।
अधिक हीन सम उक्ति सों, रूपक त्रिबिध अनूप॥

—ललितललाम, ६८

उपमेय' रु उपमान कों, इक करि कहब जु रूप।
सो रूपक द्वै भाँति को मिलि अभेद तद्रूप॥

—पद्माभरण, ३३

उपमा अरु उपमेय तें, बाचक धर्म मिटाइ।
एकै कै आरोपिये, सो रूपक कबिराइ॥
कहुँ कहिये यह दूसरो, कहुँ राखिये न भेद।
अधिक हीन सम त्रिबिध पुनि, ते तद्रूप अभेद॥

—काव्यनिर्णय, १०/१४,१३

भेद-व्यवस्था—रूपक के भेद-वर्णन में मम्मट तथा अप्पय दीक्षित का विशेष योग है। मम्मट ने इसके तीन प्रधान भेद माने—सांग (सावयव), निरंग (निरवयव) एवं परंपरित रूपक। सांगरूपक के दो भेद किए गए—समस्तवस्तु विषयक तथा एकदेशविवर्ती। निरंगरूपक भी दो प्रकार का है—शुद्ध तथा मालारूप। परंपरित रूपक के दो प्रकार किए गए—श्लिष्ट तथा अश्लिष्ट, पुनः इनके भी शुद्ध तथा माला रूपों की कल्पना की गई।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अप्पय दीक्षित ने (कुवलयानंद में) रूपक के प्रधान दो भेदों का वर्णन किया—अभेदरूपक और तद्रूपरूपक। जब उपमान और उपमेय बिना किसी निषेध के अभेदरूप से कहे जाएँ तो अभेद रूपक होता है। इसके भी तीन भेद हैं—सम अभेद, अधिक अभेद और न्यून अभेद रूपक। बिना किसी न्यूनाधिकता के उपमेय में उपमान के आरोप को सम अभेद रूपक कहते हैं। उपमेय में उपमान का आरोप होने पर उसमें गुणाधिक्य का कथन अधिक अभेद रूपक है। उपमेय पर उपमान का आरोप करने पर उपमेय में न्यूनता का वर्णन न्यून अभेद रूपक है अर्थात् उपमेय में उपमान से न्यूनता दिखाकर अभेद स्थापित करना न्यून अभेद रूपक है। इन्होंने सम अभेद के तीन भेदों का कथन किया है—सांग, निरंग और परंपरित।

तद्रूपरूपक—जब उपमान उपमेय का रूप धारण कर ले; पर दोनों की एकता न हो तो तद्रूप रूपक होगा। तद्रूप का अर्थ है उसका रूप। इसमें उपमेय उपमान का रूप धारण करता है, पर वह उससे एक नहीं होता। इसके भी तीन प्रकार माने गए हैं—सम, अधिक और न्यून।

समतद्रूपरूपक—जहाँ उपमेय और उपमान में समरूपता होने पर तद्रूपता दिखाई जाय।

अधिकतद्रूपरूपक—जहाँ उपमेय में उपमान से कुछ अधिक गुण होने पर भी दोनों को एकरूप कहा जाय।

हीनतद्रूपरूपक—उपमेय में उपमान से कम गुण होने पर भी एकरूपता दिखाई पड़े तो हीनतद्रूप रूपक होगा।

मम्मट-कृत भेदों का विवरण

सांगरूपक—जब अंगों सहित उपमेय में उपमान का आरोप हो तो सांगरूपक होता है।

सखि ! नील नभस्सर में उतरा यह हंस अहा तरता-तरता।
अब तारक-मौक्तिक शेष नहीं, उतरा जिनको चरता-चरता ॥

यहाँ आकाश में सरोवर का आरोप है और यह आरोप अंगों-सहित है। सरोवर के अंग हैं—हंस और मौक्तिक तथा आकाश के सूर्य और तारक।

इसके दो प्रकार हैं—समस्तवस्तु-विषय एवं एकदेशविवर्त्ती।

क. समस्तवस्तुविषय—जब समस्त विषयों—आरोप्यमाण तथा आरोप्य के विषय—का शब्दतः (स्पष्ट रूप में) कथन किया जाय तो समस्तवस्तु विषय होता है। इसमें सभी आरोप शब्द द्वारा कथित होते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समस्तानि वस्तून्यारोप्यमाणानि शब्दोपात्तानि यत्र तत्समस्तवस्तुविषयम् ।

—रसगंगाधर, पृ० ३०६

क. सुविमल मौक्तिकतारे धवलांशुकचंद्रिका चमत्कारे ।
वदन परिपूर्ण चंद्रे सुंदरि राकाऽसि नात्र संदेहः ॥

अत्यंत विमल मुक्तास्वरूप तारोंवाली, श्वेत वस्त्ररूपी चंद्रिका से युक्त पूर्णिमा के चाँद के समान मुखवाली सुंदरी, तुम वास्तव में राका (पूर्णिमा) हो, इसमें कुछ संदेह नहीं । यहाँ उपमेय रूप सुंदरी में पूर्णिमा का अंगों सहित अभेद दिखलाया गया है । सुंदरी पर राका का आरोप शब्दतः होने से यहाँ समस्तवस्तुविषय हुआ ।

ख. नारि-कुमुदिनी अवध-सर, रघुवर-विरह दिनेस ।
अस्त भये विकसित भईं, निरखि राम राकेस ॥ —रामायण

यहाँ नारी को कुमुद, अवध को सर (तालाब), रामचंद्र के विरह को सूर्य तथा राम को चंद्रमा का रूप दिया गया है । उपमान तथा उपमेय, दोनों का अंग-सहित अभेदत्व प्रदर्शित होने से यहाँ सांग रूपक हुआ और यह वर्णन शब्दतः कथित होने से समस्तवस्तुविषय हुआ ।

एकदेशविवर्त्ती—जब कुछ आरोप शब्दतः कथित हों और कुछ आर्थ हों या कुछ का ज्ञान अर्थबल से हो तो एकदेशविवर्त्ती होगा ।

केचिदारोप्यमाणाः शब्दोपात्ताः केचिदर्थसामर्थ्यादवसेयाः इत्येकदेशविवर्त्तनात् एकदेशविवर्तिनः ॥ —काव्यप्रकाश, १०/९४

क. यस्य रणांतःपुरे करे कुर्वतो मंडलाग्रलताम् ।
रणसंमुख्यपि सहसा पराङ्मुखी भवति रिपुसेना ॥

जिस (राजा) के युद्धरूपी अंतःपुर में खड्गलता को (नायिका को) हाथ में लेते ही क्रोध से भरी हुई (या प्रेमाविष्ट) शत्रु की सेना सहसा युद्ध से हट जाती है (या प्रतिनायिका प्रिय-प्रसंग से हट जाती है) इस श्लोक में रणभूमि में अंतःपुर का शब्दतः आरोप किया गया है; पर असिलता में नायिकात्व का और शत्रु-सेना में शत्रु का ज्ञान तो अर्थ द्वारा होता है; अतः एकदेशविवर्त्तीरूपक हुआ ।

ख. शिशुता की निशा सिरानी, उग आया यौवन-दिनकर ।
छविविलसित तन-सरवर में दो सरसिज लसे मनोहर ॥

—नूरजहाँ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ शिशुता में निशा का, यौवन में दिनकर का तथा तन में तालाब का आरोप शब्दतः किया गया है; पर सरसिज के साथ स्तन का आरोप शब्दतः कथित न होकर अर्थ-बल से ज्ञात होता है ।

निरंगरूपक—इसमें एक उपमेय में एक उपमान के आरोप का वर्णन होता है। जब अंग से रहित उपमेय में उपमान का आरोप हो तो निरंग-रूपक होगा ।

निरवयं तु तदुक्तं यथ्येकारोपसाधकं नान्यत्—जैसे चंद्रमुख ।

—अलंकारकौस्तुभ, पृ० २१६

इसके दो प्रकार हैं—शुद्ध या केवल तथा मालारूप ।

शुद्धनिरंगरूपक—एक उपमेय में एक उपमान का आरोप होने पर शुद्ध निरंगरूपक होता है ।

क. कुरंगीवांगानि स्तिमितयति गीतध्वनिषु यत्
सखीं कांतोदंतं श्रुतमपि पुनः प्रश्नयति यत् ।
अनिद्रं यच्चांतः स्वपिति तदहो वेदम्यभिनवां
प्रवृत्तोऽस्याः सेक्तुं हृदि मनसिजः प्रेमलतिकाम् ॥

—"यह बाला गीत की ध्वनि सुनते ही कुरंगी के सदृश अपने अंगों को निश्चल कर देती है तथा प्रिय के श्रवण किए गए वृत्तांत को भी सखी से पूछकर पुनः सुनती है। वह बिना निद्रा के ही घर के भीतर शयन करती है, इससे पता चलता है कि निश्चय ही कामदेव ने इसके हृदय में प्रेमलतिका का सिंचन प्रारंभ कर दिया है।" 'प्रेमलतिकाम्' में यहाँ शुद्ध निरंगरूपक है, लता पर प्रेम का आरोप होने पर ।

ख. नयन की नीलम तुला पर मोतियों का प्यार तोला ।
कर रहा व्यापार कब से मृत्यु से यह प्राण भोला ॥

यहाँ नयन के ऊपर नीलम-तुला का आरोप है; अतः शुद्धनिरंगरूपक हुआ ।

मालारूप निरंगरूपक—जब एक उपमेय में अंग-रहित अनेक उपमानों का आरोप हो तो मालारूप निरंगरूपक होगा ।

क. निर्माणकौशलं धातुश्चंद्रिका लोकचक्षुषाम् ।
क्रीड़ागृहमनंगस्य सेयमिंदीवरेक्षणा ॥

"वह नीलकमलनेत्री ब्रह्मा के निर्माण-कौशलस्वरूप लोगों के नेत्रों की ज्योत्स्ना एवं अनंग के क्रीड़ा-गृहस्वरूप है ।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ कमलनयनी नायिका पर अनेक उपमानों के आरोप से मालारूप निरंगरूपक हुआ।

ख. धूम धुँआरे काजर कारे, हम ही विकरारे बादर।
मदनराज के वीर बहादर, पावस के उड़ते फणिधर ॥ —पंत

यहाँ एक उपमेय (बादल) पर अनेक उपमानों का आरोप है।

परंपरित रूपक—जब एक आरोप दूसरे आरोप का कारण हो तो परंपरित रूपक होगा। परंपरित का अर्थ है परंपरा या शृंखला। इसमें कई आरोपों की शृंखला होती है; अतः इसे परंपरित रूपक कहते हैं।

यत्र कस्यचिदारोपः परारोपणकारणम्।
तत्परंपरितं श्लिष्टाश्लिष्टशब्दनिबंधनम् ॥

—साहित्यदर्पण, १०/२६

राम नाम सुंदर करतारी। संसय बिहग उड़ावनहारी ॥

—रामायण

इसके दो प्रकार हैं—एकरूप तथा मालारूप।

एकरूप परंपरित—जब एक आरोप दूसरे आरोप का कारण हो तो परंपरित रूपक होगा।

पांतु वो जलदश्यामाः शाङ्र्गज्याघातकर्कशाः।
त्रैलोक्यमंडपस्तंभाश्चत्वारो हरिबाहवः ॥

"मेघ के सदृश श्याम, धनुष की डोरी के आघात के कारण कठोर तथा तीनों लोकरूप मंडप के स्तंभरूप भगवान् विष्णु के बाहु-चतुष्टय आप-लोगों की रक्षा करें।" यहाँ त्रैलोक्य में मंडपत्व का आरोप है, जो भगवान् की बाहुओं में स्तंभत्व के आरोप का कारण है।

ख. प्यासी मछली-सी आँखें थीं विकल रूप के जल में ॥ —आँसू

यहाँ आँख में मछली का आरोप है और यह (आरोप) रूप में जाल के रूपक का कारण है।

मालारूप—जब एक से अधिक आरोपों की शृंखला बन जाय तो माला-रूप परंपरितरूपक होगा।

क. मनोजराजस्य सितातपत्रं श्रीखंडचित्रं हरिदंगनायाः।
विराजते व्योमसरः सरोजं कर्पूरपूरप्रभमिंदुबिंबम् ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"कपूर के महापिंड के समान यह चंद्रबिंब, कामदेव-रूपी राजा के श्वेतछत्र-स्वरूप, पूर्व-दिशारूपी सुंदरी के चंदन-तिलकस्वरूप तथा आकाशरूपी तालाब का कमलस्वरूप, सुशोभित हो रहा है।" यहाँ कामदेव आदि में राजत्व आदि का जो आरोप किया गया है, वह चंद्रबिंब के सितातपत्रत्व आदि आरोपों का कारण है।

ख. महामोह घन-पटल-प्रभंजन। संसय बिपिन-अनल सुर-रंजन॥

—रामायण

यहाँ मोह में घन-पटल (मेघसमूह) का आरोप किया गया है, जो राम में प्रभंजन के आरोप का कारणस्वरूप उपस्थित है। उत्तरार्द्ध में संशय में विपिन का आरोप राम में अग्नि के आरोप का कारण है। यहाँ मालारूप परंपरित हुआ।

रूपक और उत्प्रेक्षा—उत्प्रेक्षा में संभावना का प्राधान्य होता है और रूपक में आरोप का। रूपक में उपमेय पर उपमान का जो आरोप किया जाता है, उसमें निश्चितता होती है; पर उत्प्रेक्षा में अनिश्चय का भाव रहता है।

रूपक और संदेह—रूपक में कवि की मनःस्थिति निश्चित रहती है; पर संदेह में अनेक पक्षों में दोलायमान रहा करती है।

रूपक और स्मरण—रूपक में एक वस्तु पर अन्य वस्तु का आरोप होता है; किंतु स्मरण में किसी वस्तु के समान अन्य वस्तु को देखकर उस वस्तु की याद होने का वर्णन होता है। रूपक में आरोप का प्राधान्य होता है तो स्मरण में स्मृति का।

रूपक और रूपकातिशयोक्ति—रूपक में अभेद या ताद्रूप्य की प्रधानता होती है; किंतु रूपकातिशयोक्ति में अध्यवसाय का प्राधान्य रहता है। रूपक में उपमेय तथा उपमान शब्दतः कथित होते हैं; किंतु रूपकातिशयोक्ति में उपमेय को छिपाकर उपमान के द्वारा ही उसका (उपमेय का) ज्ञान कराया जाता है।

रूपक और उल्लेख—निरंगमालारूपरूपक तथा उल्लेख दोनों में ही एक पदार्थ का अनेक प्रकार से कथन होता है। निरंगमालारूप में एक पदार्थ में अनेक वस्तुओं का आरोप मात्र होता है, अनेकधा कथन नहीं; पर उल्लेख में एक वस्तु की विभिन्न परिस्थितियों के कारण अनेक रूपों में अवस्थिति का कथन होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रूपक—दृश्यकाव्य का भेद। रूपक शब्द का प्रयोग काव्य के उपरूप के लिए किया जाता है, जिसका आनंद चक्षुरिंद्रियों के सन्निकर्ष से प्राप्त किया जाए अर्थात् रंगमंच पर जिसे देखा जाए, उसे रूपक कहते हैं। इसमें प्रदर्शक या नट वर्णित चरित्रों के रूप को अपने में आरोपित कर प्रदर्शित करता है। काव्यशास्त्र में ऐंद्रिय माध्यम के द्वारा काव्य के दो भेद किए गए हैं—दृश्य और श्रव्य। रूपक का संबंध दृश्यकाव्य से है। रूपक का अभिप्राय रूप के आरोप से है।

अत्यंत प्राचीन समय से रूपक का प्रयोग नाट्य के अर्थ में होता रहा है। भरतमुनि ने 'दशरूप' का प्रयोग नाट्य की दस विधाओं के लिए किया है तथा धनंजय ने इसका (रूपक का) स्पष्टीकरण करते हुए रूप का आरोप होने से नाट्य को रूपक की अभिधा प्रदान की है। विश्वनाथ के अनुसार रूपक में रूप का आरोप होता है।

दश रूपविधाने तु पाठ्यं योज्यं प्रयोक्तृभिः। —नाट्यशास्त्र

रूपं दृश्यतयोच्यते। रूपकं तत्समारोपात्। —दशरूपक, १/७

दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम्।
दृश्यं तत्राभिनेयं तद्रूपारोपात्तु रूपकम्॥

—साहित्यदर्पण, ६/१

नाट्यदर्पणकार ने रूपित किए जाने के कारण नाटक आदि को रूपक की संज्ञा दी है।

रूप्यंते अभिनीयंते इति रूपाणि नाटकादीनि। —नाट्यदर्पण, पृ० २३

भरत ने रूपक के दस भेदों का वर्णन किया है, जिसे परवर्ती नाट्यशास्त्रियों ने भी मान्यता दी है। वे हैं—नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, अंक, वीथी तथा प्रहसन—

नाटकमथ प्रकरणं भाणव्यायोगसमवकार डिमाः।
ईहामृगांकवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश॥

—साहित्यदर्पण, १/३

१. नाटक—ऐतिहासिक या पौराणिक वृत्त से युक्त, पाँच से दस तक अंक, पंचसंधियों का विधान, धीरोदात्त नायक, श्रृंगार या वीर रस का प्राधान्य तथा कैशिकी या सात्त्वती वृत्ति का समावेश। [दे० नाटक]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२. **प्रकरण**—नायक धीरप्रशांत, पांच से दस तक अंक, नायिका वेश्या, कथावस्तु कल्पित, शृंगार रस की प्रधानता, कैशिकी वृत्ति एवं पंचसंधियों से युक्त। [दे० **प्रकरण**]

३. **भाण**—कथानक कल्पित तथा धूर्त्तचरित से संबद्ध, नायक कलाविद् तथा एक अंक का विधान, वीर एवं शृंगार रस और एक पात्र की उक्ति-प्रत्युक्ति।

४. **प्रहसन**—एक ही अंक, कथानक कल्पित, हास्यरस का प्राधान्य एवं धूर्त्त, कामुक, पाखंडी आदि पात्रों का समावेश।

५. **डिम**—चार अंकों का विधान, चार संधियों (विमर्श का अभाव) से युक्त इतिवृत्त, पौराणिक कथा, नायक धीरोद्धत, शृंगार तथा हास्य के अरिरिक्त छह रस, सात्त्वती और आरभटी वृत्तियां। [दे० **डिम**]

६. **व्यायोग**—कथानक पौराणिक, केवल तीन संधियाँ (गर्भ और विमर्श से रहित), नायक धीरोद्धत, सात्त्वती एवं आरभटी वृत्तियाँ। एक अंक, पुरुष पात्रों का बाहुल्य। [दे० **व्यायोग**]

७. **समवकार**—पौराणिक कथानक जिसमें देव तथा दैत्यों की कथा, चार संधियां (विमर्श से रहित), तीन अंक, नायकों की संखया बारह, जो धीरोदात्त एवं धीरोद्धत हों, वीर रस तथा सात्त्वती और आरभटी वृत्ति। [दे० **समवकार**]

८. **वीथी**—कल्पित कथानक, नायक शृंगारी, एक अंक, कैशिकी वृत्ति तथा शृंगार रस। [दे० **वीथी**]

९. **अंक**—एक अंक, पौराणिक कथानक, प्राकृत पुरुष नायक, सात्त्वती वृत्ति एवं करुण रस का प्राधान्य। [दे० **अंक**]

१०. **ईहामृग**—कथानक मिश्रित, तीन संधियाँ, गर्भ तथा विमर्श का अभाव, चार अंकों का विधान, धीरोद्धत नायक तथा शृंगार रस। [दे० **ईहामृग**]

रूपगर्विता—सौंदर्यगर्विता नायिका का अन्य नाम।

[दे० **वक्रोक्तिगर्विता**]

रूपकातिशयोक्ति—अतिशयोक्ति अलंकार का प्रथम भेद।

[दे० **अतिशयोक्ति**]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रूपगोस्वामी—चैतन्य महाप्रभु-द्वारा जिस भक्ति-मार्ग का प्रवर्त्तन हुआ था, उससे प्रभावित होकर वैष्णव-भक्तों (गौड़ीय वैष्णव भक्तों) ने मधुर रस की प्रतिष्ठापना की थी। इसमें गौड़ीय भक्ति-सिद्धांत के आलोक में रस-मीमांसा हुई है तथा उसके सैद्धांतिक मंतव्य को रस-रूप में विवेचित कर भक्तिरस (मधुररस) की महत्ता प्रतिपादित की गई है। भक्तिरस के उन्नायकों में रूपगोस्वामी मूर्धन्य हैं। ये चैतन्य महाप्रभु के शिष्य थे और उनसे प्रेरित होकर वृंदावन में आ बसे थे। इनके पिता का नाम कुमार तथा पितामह का नाम मुकुंद था। इनका समय पंद्रहवीं शती का अंतिम चरण तथा सोलहवीं शती का प्रारंभ है। इन्होंने सर्जनात्मक तथा विवेचनात्मक, दोनों ही प्रकार के ग्रंथों की रचना की है, जिनकी संख्या सत्रह है। इनके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं—हंसदूत-काव्य, उद्धवसंदेशकाव्य, विदग्धमाधव नाटक ललितमाधव नाटक दानकेलिकौमुदी भाषिका, भक्ति रसामृतसिंधु, उज्ज्वलनीलमणि (दोनों ही रसशास्त्रीय ग्रंथ हैं) तथा नाटकचंद्रिका (नाट्यशास्त्रीय ग्रंथ)।

भक्तिरसामृतसिंधु—यह विशालकाय ग्रंथ गौड़ीय वैष्णव भक्ति की प्रकल्पनाओं के आधार पर रचित रस-सिद्धांत का स्वरूप प्रस्तुत करता है। संपूर्ण ग्रंथ में चार विभाग हैं—पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर तथा प्रत्येक विभाग अनेक लहरियों में विभक्त है। पूर्व विभाग चार लहरियों में बँटा हुआ है। प्रथम लहरी में भक्ति का लक्षण, भक्ति का उत्कर्ष, भक्ति की प्रशंसा, त्रिधाभक्ति, भक्ति की उत्पत्ति तथा रुचि का वर्णन है। द्वितीय से चतुर्थ लहरी पर्यंत भक्ति के तीन विशिष्ट प्रकार वर्णित हैं—साधनाभक्ति, भावभक्ति तथा प्रेमाभक्ति। इसमें सभी भक्तियों के भेदोपभेद भी निरूपित हैं। दक्षिण विभाग पाँच लहरियों में विभाजित है। प्रथम में भक्ति रस के आश्रय तथा उत्पत्ति-प्रकार, आठ गुण और पाँच प्रकार के भक्तों का वर्णन है। द्वितीय में अनुभाव का स्वरूप एवं उसके दो प्रकार—शीत तथा क्षेपण—वर्णित हैं। तृतीय तथा चतुर्थ लहरियों में क्रमशः सात्त्विक तथा व्यभिचारी भावों का वर्णन है और पंचम लहरी में स्थायी भाव का विवेचन है। पश्चिम विभाग मे पाँच लहरियाँ हैं और इनमें क्रमशः शांतरस, प्रीतिभक्तिरस, प्रेयोभक्तिरस, वत्सलभक्तिरस तथा मधुरभक्तिरस का सांगोपांग वर्णन है अर्थात् इनके स्थायी, विभाव, उद्दीपन एवं अनुभावों का निरूपण है। उत्तर-विभाग नौ लहरियों में विभाजित है, जिनमें क्रमशः हास्यभक्तिरस, अद्भुतभक्तिरस, वीरभक्तिरस, करुणभक्तिरस, रौद्रभक्तिरस, भयानकभक्तिरस, वीभत्सभक्तिरस तथा रसाभास का विवेचन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। इसमें रसों की परस्पर मैत्री और विरोध का भी वर्णन किया गया है। 'भक्तिरसामृतसिंधु' का रचना-काल १५४१ ई० (१४६३ शकसंवत्) है। इस पर रूपगोस्वामी के भ्रातृपुत्र जीवगोस्वामी की 'दुर्गमसंगमिनी' टीका प्रसिद्ध है। उपर्युक्त टीका के साथ इस ग्रंथ का प्रकाशन अच्युत ग्रंथमाला, काशी से १९८८ संवत् में हुआ था। इसके दो हिंदी अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। प्रथम के अनुवादक हैं आचार्य विश्वेश्वर सिद्धांतशिरोमणि (अनुसंधान परिषद्, दिल्ली विश्वविद्यालय से प्रकाशित) तथा द्वितीय अनुवाद डॉ० श्यामनारायण पांडेय-कृत है।

उज्ज्वल नीलमणि—यह 'भक्तिरसामृतसिंधु' का पूरक ग्रंथ है, जिसमें उज्ज्वल या मधुर श्रृंगार रस का विस्तृत विवेचन है। इसमें उज्ज्वल रस के विभिन्न अंगों, नायक, नायक के सहायक, हरिप्रिया, राधा, नायिका यूथेश्वरी भेद, दूती, सखी तथा कृष्ण के सखा का वर्णन है।

मधुररस के स्थायी, अनुभाव, विभाव, सात्त्विक, उद्दीपन तथा संयोग-वियोग की अनेकविध दशाएँ भी वर्णित हैं। 'उज्ज्वलनीलमणि' में श्रृंगाररस का स्थायी भाव प्रमारति को मानकर उसके छह भेद किए गए हैं—स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग और भाव। इसमें नायक-नायिका-भेद का भी विस्तृत विवेचन है। 'उज्ज्वलनीलमणि' की दो टीकाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं—जीवगोस्वामी-कृत 'लोचनरोचनी' तथा विश्वनाथ चक्रवर्त्ती-रचित 'आनंद-चंद्रिका।' दोनों का प्रकाशन काव्यमाला-९५ बंबई से १९१३ ई० में हो चुका है। [**हिंदी अनुवाद डॉ० श्यामनारायण पांडेय-कृत**]

नाटकचंद्रिका—यह नाट्यशास्त्र-विषयक रचना है, जिस पर भरत एवं शिंगभूपाल के विचारों का प्रभाव है। इसमें नाटक का लक्षण तथा उसके विविध तत्त्वों का विवेचन कर वैष्णव-भक्ति की दृष्टि से मधुरास्वादनात्मा भक्ति की रस-निष्पत्ति का भी संकेत है। [**नाटकचंद्रिका का हिंदी अनुवाद सहित प्रकाशन, चौखंबा संस्कृत सीरीज, वाराणसी से हो चुका है, अनुवादक हैं पंडित बाबूलाल शुक्ल**]

रूपगोस्वामी ने रस-मीमांसा के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योग दिया है, जिसमें प्राचीन रसशास्त्रीय ग्रंथों के प्रति आस्था का भाव है, साथ ही इनकी अपनी मौलिकता भी है। इनकी स्थापनाएँ नवीन भी हैं। रस-सिद्धांत के इतिहास में रूपगोस्वामी का विवेचन नया मोड़ उपस्थित कर रसतत्त्व में आध्यात्मिकता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एवं धार्मिकता का समावेश करता है। माधुर्य रस का विवेचन लौकिक दृष्टि से न कर भक्तिपरक भावना से किया गया है, जिसे इन्होंने भक्ति-रस की संज्ञा दी है। [इनके रस-विषयक मत के लिए दे० रस-संप्रदाय]

रूपाजीवा—वेश्या या गणिका को रूपाजीवा कहते हैं। आचार्य भोज ने सामान्या (गणिका) नायिका के लिए रूपाजीवा का प्रयोग किया है। जो नायिका रूप या सौंदर्य के द्वारा जीवन-यापन करे, उसे रूपाजीवा कहते हैं। [दे० गणिका]

रोमांच—सात्त्विक भाव। [दे० अनुभाव] हर्ष, भय, क्रोध, शीत (ठंडक), आनंद, विस्मय आदि के कारण शरीर के रोम-समूहों का उठ जाना रोमांच है। भरत स्पर्श, भय, शीत, हर्ष, क्रोध आदि के कारण रोमांच की उत्पत्ति मानते हैं। इस स्थिति में शरीर के रोम-समूह खड़े हो जाते हैं।

स्पर्शभयशीतहर्षात् क्रोधद्रोगाच्च रोमांच।

—नाट्यशास्त्र, ७/६८

विश्वनाथ हर्ष, विस्मय, भय आदि के कारण रोम-समुदाय के खड़े होने को रोमांच कहते हैं।

हर्षाद्भुतभयादिभ्यो रोमांचो रोमविक्रिया।

—साहित्यदर्पण, ३/१३७

भानुदत्त शीत लगने, प्रिय या प्रिया का आलिंगन करने, हर्ष, भय या क्रोध के कारण शरीर के रोंगटे खड़े हो जाने को रोमांच कहते हैं।

विकारसमुत्थरोमोत्थानं रोमांचः।
अस्य विभावाः शीतालिंगनहर्षभयक्रोधाः॥

—रसतरंगिणी, पृ० ३२५, चतुर्थ तरंग

उदाहरण—

क. बकुलमुकुलकोषरोषनिर्यन्मधुकरकूजितभाजि कुंजभूमौ।
पुलकयति कपोलपालिमालि! स्मितसुभगः कथमद्य नंदसूनुः॥

"हे सखी! मौलसिरी के फूलों से झुंझलाकर निकलते हुए भौंरों के गुंजार से गूँजती हुई कुंजभूमि में खड़े हुए और अपनी मुसकान से प्यारे-प्यारे लगने-वाले नंद-नंदन को देखकर मेरे गालों पर कैसी सिहरन दौड़कर रोंगटे खड़ी किए डाल रही है।" यहाँ कृष्ण को निकट देखकर हर्षित नायिका का सखी के प्रति उक्ति है। यहाँ नायिका के गालों पर रोमांच होने का उल्लेख है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ख. पुलकित गात अन्हात यों, अरी खरी छबि देत।
उठे अंकुरे प्रेम के, मनहु हेम के खेत ॥

यहाँ प्रसन्नता के कारण हुए रोमांच का वर्णन है।

रौद्ररस—शत्रु-कृत अपकार, मानभंग, गुरुजनों की निंदा, शत्रु की चेष्टा आदि के कारण रौद्ररस की उत्पत्ति होती है। इसका स्थायी भाव क्रोध है। [**दे० क्रोध**] रौद्ररस का वर्ण लाल है और देवता रुद्र हैं। शत्रु इसका आलंबन है और उसकी चेष्टाएँ उद्दीपन होती हैं। अनुभावों के अंतर्गत नेत्रों का क्रोध से लाल होना, त्योरी चढ़ना, होठ चबाना, कंप तथा मुख का लाल होना आदि हैं। इसके संचारी भाव हैं—अमर्ष, मद, स्मृति, चपलता, जड़ता आदि।

भरत के अनुसार रौद्र रस संग्राम हेतुक तथा क्रोध स्थायीभावात्मक होता है। यह राक्षस, दानव और उद्धत मनुष्यों के आश्रित रहता है। भरत क्रोध की उत्पत्ति पर विचार करते हुए कहते हैं कि वह आघर्षण अर्थात् स्त्रियों का तिरस्कार, अधिक्षेप (देश, कुल, जाति आदि की निंदा), अनृत (असत्य वचन), उपघात (घर के सेवकों का उत्पीड़न), परुषवाक्य कथन, अभिद्रोह तथा मात्सर्य आदि से उत्पन्न होता है। इसके अनुभावों में मारना, फाड़ना, पीड़ा देना, काटना, भेदन, शस्त्र का उठाना और प्रहार करना, रुधिर निकालना आदि हैं।

अथ रौद्रो नाम क्रोध स्थायिभावात्मको रक्षोदानवोद्धतमनुष्यप्रकृतिः संग्राम-हेतुकः। स च क्रोधाघर्षणाधिक्षेपानृतवचनोपघातवाक्यारुष्याभिद्रोहमात्सर्यादिभि-र्विभावैरुत्पद्यते। तस्य च ताडनपाटनपीडनच्छेदनभेदन प्रहरणाहरणशस्त्रसंपात-संप्रहाररुधिराकर्षणाद्यानि कर्माणि। पुनश्च रक्तनयनभ्रुकुटीकरणदंतोष्ठपीडन-गंडस्फुरणहस्ताग्रनिष्पेषादिभिरनुभावैरभिनयः प्रयोक्तव्यः।

—नाट्यशास्त्र, ६/६४

क्रोध का पूर्णतः प्रस्फुटन होने पर रौद्र रस होता है।

उदाहरण—

क. नवोच्छलित यौवनस्फुरदखर्व गर्वज्वरे,
मदीय गुरुकार्मुकं गलितसाध्वसं वृश्चति।
अयं पततु निर्दयं दलितदृप्तभूभृत्कुल-
स्खलद्रुधिरघस्मरो मम परश्वधो भैरवः ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शिव-धनुष के टूटने पर परशुराम की उक्ति—"नए उछलते हुए यौवन के कारण तथा अत्यंत बढ़े हुए गर्व रूप ज्वर से युक्त होकर किसी ने निर्भय होकर मेरे गुरुदेव के धनुष को तोड़ दिया है। अब मेरा फरसा, जिसने संग्राम में अभिमानी राजाओं के गले को काट लिया है तथा जो राजाओं के गले से चूते हुए रुधिर का पान करनेवाला है, वह उसके ऊपर निर्दय होकर गिरे।"

यहाँ शिव-धनुष को तोड़नेवाला व्यक्ति (राम) आलंबन, भयंकर शब्द को सुनकर परशुराम का अनुमान करना कि निश्शंक होकर किसी ने धनुष को तोड़ा है, यह उद्दीपन है। कटु वचन अनुभाव है और गर्व तथा उग्रता संचारी हैं।

ख. बौरौं सबै रघुबंस कुठार की धार मैं बारन बाजि सरत्थहिं।
बान की बायु उड़ाय कैं लच्छन लच्छ करौं अरिहा समरत्थहिं॥
रामहिं बाम समेत पठै बन कोप के भार मैं भूजौं भरत्थहिं।
जो धनु हाथ धरै रघुनाथ तो आज अनाथ करौं दसरत्थहिं॥

—केशवदास

यहाँ राम के ऊपर परशुराम का क्रोध करना क्रोध स्थायी भाव है। राम आलंबन हैं और परशुराम का रघुवंश को नाश करने की बात कहना अनुभाव। गर्व, अमर्ष, उग्रता आदि संचारी हैं। राम का शिव-धनुष तोड़ना परशुराम के क्रोध का उद्दीपन है।

ल

लक्षक (शब्द)—जो शब्द लक्षणाशक्ति [दे० लक्षणा] द्वारा लक्ष्यार्थ या लाक्षणिक अर्थ [दे० लक्ष्यार्थ] को (अन्य अर्थ को) लक्षित कराए उसे लक्षक या लाक्षणिक शब्द कहते हैं। जिन शब्दों से लाक्षणिक अर्थ प्रकट हो, उसे लक्षक (शब्द) कहा जायगा। उदाहरण के लिए, किसी मूर्ख को कहा जाय कि 'वह गधा है' तो वह 'गधा' लक्षक या लाक्षणिक शब्द होगा। लक्षणा शक्ति द्वारा लक्षक शब्द का मुख्यार्थ से भिन्न अन्य अर्थ लक्षित होता है। 'गधा' का मुख्य अर्थ है एक जानवर-विशेष। किसी व्यक्ति को गधा कहने पर उसके मुख्य अर्थ में बाधा उपस्थित हो जाती है अर्थात् गधा शब्द व्यक्ति का अर्थ नहीं बताता। अतः, लक्षणा शक्ति के द्वारा मुख्यार्थ से संबंध रखनेवाला अन्य अर्थ अर्थात् मूर्ख ग्रहीत होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लक्षणलक्षणा—शुद्धालक्षणा का एक प्रकार। जब वाक्यार्थ की सिद्धि के लिए मुख्यार्थ को छोड़कर लक्ष्यार्थ का ग्रहण हो तो लक्षणलक्षणा होती है। इसमें मुख्यार्थ अपना अर्थ छोड़कर भिन्न अर्थ या अन्यार्थ को ग्रहण करता है। इसका अन्य नाम जहत्स्वार्था है। जो अपने अर्थ (स्व+अर्थ) को छोड़ दे उसे जहत् (अग्रहण) स्वार्था कहते हैं। लक्षणलक्षणा में मुख्यार्थ का तिरस्कार किया जाता है। विश्वनाथ का लक्षण इस प्रकार है—[दे० शुद्धालक्षणा]

अर्पणं स्वस्य वाक्यार्थे परस्यान्वयसिद्धये।
उपलक्षणहेतुत्वादेषा लक्षणलक्षणा॥ —साहित्यदर्पण, २/७

"वाक्यार्थ में मुख्यार्थ से भिन्न अर्थ के अन्वयबोध के लिए जहाँ कोई शब्द अपने स्वरूप का समर्पण कर दे अर्थात् मुख्य अर्थ को छोड़कर लक्ष्य अर्थ का उपलक्षण मात्र बन जाय, उस लक्षण को लक्षणलक्षणा कहते हैं; क्योंकि यह उपलक्षण का ही हेतु होती है, इसमें मुख्यार्थ का वाक्य में अन्वय नहीं होता।"

—विमला, पृ० ४५ द्वितीय-संस्करण

यदि कहा जाय कि 'पेट में चूहा कूद रहा है' या 'पेट में आग लगी है' तो ऐसे उदाहरण में लक्षणलक्षणा होगी। 'पेट में चूहा कूदना' या 'पेट में आग लगना' ऐसे वाक्यों में मुख्यार्थ में बाध है; अतः लक्षणा शक्ति से यहाँ 'जोर की भूख लगना' अर्थ किया जाएगा। इस अर्थ में मुख्यार्थ का पूर्ण तिरस्कार है या उसे छोड़कर अन्यार्थ को ग्रहण किया गया है।

उपकृतं बहु तत्र किमुच्यते सुजनता प्रथिता भवतान्वयम्।
विदधदीदृशमेव सदा सखे, सुखितमास्व ततः शरदांशतम्॥

यहाँ कोई सहृदय अपकार करनेवाले किसी कुटिल के प्रति कहता है—"हे मित्र! तुमने मेरा इतना उपकार किया कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। हे मित्र, तुम इस प्रकार करते हुए सौ वर्ष तक जीवित रहो। यहाँ उपकृतं, सुजनता, सखे, सुखितं आदि शब्द विपरीत अर्थ अर्थात् 'अपकार करनेवाले, दुर्जनता, शत्रु तुम दुःखी रहो' के द्योतक हैं।

कच समेट कर भुज उलटि, खए सीस पट-टारि।
काको मन बाँधै न यह, जूरो बाँधनिहारि॥ —बिहारी

यहाँ मन बाँधै (मन को बाँधती है) में लक्षणलक्षणा है। मन कोई वस्तु नहीं है, जिसे बाँधा जाय; अतः मुख्यार्थ में बाध है। लक्षणा शक्ति से इसका अर्थ 'मन को आसक्त करना' किया गया, जिससे अभिप्राय यह प्रकट हुआ कि यह जूड़ा बाँधनेवाली किसके मन को आसक्त नहीं करती?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जब वाक्यार्थ मुख्य अर्थ से अन्वित रहे तो उपादान लक्षणा होगी और जब मुख्यार्थ से उसका अन्वय न हो तो लक्षणलक्षणा होगी।

लक्षणा—शब्द की एक शक्ति। [दे० शब्दशक्ति] मुख्यार्थ का बाध होने पर रूढ़ि अथवा प्रयोजन के कारण जिस शक्ति द्वारा मुख्यार्थ से संबद्ध अन्य अर्थ की प्रतीति हो तो उसे लक्षणा शक्ति कहते हैं। लक्षणा शक्ति द्वारा लाक्षणिक अर्थ या लक्ष्यार्थ [दे० लक्ष्यार्थ] का ज्ञान होता है और जिन शब्दों से लक्ष्यार्थ का बोध होता है, उन्हें लक्षक या लाक्षणिक शब्द कहते हैं। [दे० लक्षक]

मुख्यार्थबाधे तद्योगे रूढ़ितोऽथप्रयोजनात्।
अन्योऽर्थो लक्ष्यते यत् सा लक्षणारोपिता क्रिया॥

—काव्यप्रकाश, २/६

मुख्यार्थबाधे तद्युक्तो ययाऽन्योऽर्थः प्रतीयते।
रूढ़ेः प्रयोजनाद्वासौ लक्षणा शक्तिरर्पिता॥

—साहित्यदर्पण, २/५

कभी-कभी ऐसा होता है कि किसी प्रसंग में मुख्यार्थ की संगति नहीं बैठती अर्थात् उसका प्रत्यक्ष विरोध हो जाता है, तो ऐसी स्थिति में मुख्यार्थ से संबंध रखनेवाला अन्य अर्थ ग्रहण किया जाता है। इस प्रकार का अर्थ-ग्रहण या तो लौकिक व्यवहार (रूढ़ि) के कारण होता है या वक्ता की किसी इच्छा-विशेष (प्रयोजन) के कारण। ऐसे अर्थ को लक्ष्यार्थ कहते हैं और इसके बोधक व्यापार या शक्ति को लक्षणा।

लक्षणा में तीन बातें मुख्य हैं—

१. मुख्यार्थ का बाध या व्यवधान (बाधा)

२. मुख्यार्थ का योग और

३. रूढ़ि या प्रयोजन।

१. **मुख्यार्थ का बाध**—जब मुख्य अर्थ (वाच्यार्थ) की प्रतीति (बोध) में व्यवधान पड़ जाय या प्रत्यक्ष विरोध हो अर्थात् वक्ता का अभिप्राय मुख्यार्थ से प्रकट न होता हो तो उसे मुख्यार्थ का बाध कहते हैं।

२. **मुख्यार्थ का योग**—मुख्यार्थ के योग का अर्थ है मुख्य अर्थ का संबंध। मुख्यार्थ में बाधा या व्यवधान होने पर जो अन्य अर्थ ग्रहण किया जाता है,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वह ऐसा होता है, जिसका मुख्यार्थ के साथ संबंध होता है। इसे ही मुख्यार्थ का योग कहते हैं।

३. **रूढ़ि या प्रयोजन**—रूढ़ि का अर्थ है लौकिक व्यवहार या लौकिक प्रचलन या लोक-प्रसिद्धि। समाज में किसी बात को विशेष ढंग से कहने की रूढ़ि (रिवाज) होती है। जैसे, मूर्ख को गधा कहने की समाज में रूढ़ि है। प्रयोजन कहते हैं फल-विशेष या उद्देश्य को। वक्ता किसी अभिप्राय से ही लाक्षणिक अर्थ का प्रयोग करता है। इस प्रकार लक्षणा के लिए मुख्यार्थ का बाध तथा मुख्यार्थ-लक्ष्यार्थ-संबंध का होना अनिवार्य है; किंतु रूढ़ि या प्रयोजन में से एक का होना आवश्यक है। उदाहरण के लिए, कहा जाय कि 'वह गधा है' तो यहाँ गधा शब्द से मूर्ख का अर्थ प्रकट नहीं होता। वक्ता का अर्थ स्पष्ट नहीं होता, अतः गधा से संबद्ध अन्य अर्थ ग्रहण करना पड़ता है—मूर्ख। मूर्खता गधे और मूर्ख दोनों में समान है। समाज में मूर्ख को गधा कहने की प्रसिद्धि या रिवाज है। इसलिए 'वह गधा है' इस वाक्य में लक्षणा हुई। यह उदाहरण रूढ़िलक्षणा का हुआ। यदि किसी ने कहा कि 'मेरा घर गगा में है' (गंगायां घोषः) तो यहाँ प्रयोजनवती लक्षणा होगी। गंगा में घर कहने से वक्ता के कथन में बाधा उपस्थित हो जाती है; क्योंकि गंगा के प्रवाह में घर का होना संभव नहीं है; अतः यहाँ मुख्यार्थ का बाध हुआ। जब गंगा से संबद्ध गंगा-तट अर्थ किया जाय तो यहाँ अन्य अर्थ (गंगा-तट) का प्रथम अर्थ गंगा में घर से योग हो जायगा अर्थात् गंगा के तट पर घर है। यहाँ वक्ता घर की पवित्रता और शीतलता बतलाने के लिए गंगा में घर की बात कहता है; अतः यहाँ प्रयोजन हुआ। इस प्रकार 'गंगा में घर है' इस वाक्य में प्रयोजनवती लक्षणा हुई।

लक्षणा के भेद—सर्वप्रथम रूढ़ि और प्रयोजन के आधार पर लक्षणा के दो भेद किए गए—रूढ़ि और प्रयोजनवती लक्षणा। आचार्य मम्मट ने प्रयोजनवती लक्षणा के छह भेद माने हैं—गौणी और शुद्धा, पुनः गौणी के दो भेद माने—सारोपा तथा साध्यवसाना। शुद्धा के दो भेद हैं—उपादानलक्षणा और लक्षण-लक्षणा। इनके भी सारोपा और साध्यवसाना नामक दो-दो भेद किए गए। पुनः व्यंग्य और अव्यंग्य के रूप। इनके दो-दो भेद करने पर लक्षणा के बारह भेद हुए।

जब रूढ़ि के कारण मुख्यार्थ को छोड़कर अन्यार्थ की प्रतीति हो या रूढ़ि या प्रचलित परंपरा के कारण लक्षणा की जाय तो रूढ़िलक्षणा [दे० रूढ़ि-लक्षणा] होगी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रयोजनवती लक्षणा वहाँ होती है जहाँ किसी विशेष प्रयोजन या फल के कारण लक्षणा की जाय [दे० **प्रयोजनवती लक्षणा**] प्रयोजनवती लक्षणा के छह भेद किए गए हैं—

- प्रयोजनवती लक्षणा
  - गौणी
    - सारोपा
    - साध्यवसाना
  - शुद्धा
    - उपादानलक्षणा
      - सारोपा
    - लक्षणलक्षणा
      - साध्यवसाना

जब सादृश्य संबंध के कारण लक्षणा की जाय तो गौणी लक्षणा होगी। [दे० **गौणीलक्षणा**]

शुद्धालक्षणा में सादृश्य के अतिरिक्त किसी अन्य संबंध से लक्ष्यार्थ की प्रतीति होती है। [दे० **शुद्धालक्षणा**]

उपादानलक्षणा में प्रयोजनप्राप्त अर्थ की सिद्धि के लिए अन्य अर्थ के ग्रहण किए जाने पर भी मुख्यार्थ बना रहता है। [दे० **उपादानलक्षणा**]

लक्षणलक्षणा वहाँ होती है, जहां प्रयोजनीय अर्थ की सिद्धि के लिए मुख्यार्थ को त्यागकर लक्ष्यार्थ को ग्रहण किया जाय। [दे० **लक्षणलक्षणा**] जिस लक्षणा में आरोप्यमाण (विषयी, उपमान) एवं आरोप के विषय दोनों का शब्दतः कथन हो तो वहाँ सारोपालक्षणा होगी। [दे० **सारोपालक्षणा**] साध्यवसानालक्षणा में लक्षणा के विषय का शब्दतः कथन न होकर आरोप्यमाण का ही कथन किया जाता है। [दे० **साध्यवसानालक्षणा**]

प्रयोजनवती लक्षणा के गूढ़व्यंग्या एवं अगूढ़व्यंग्या नामक भेदों का भी विवेचन किया गया है। गूढ़व्यंग्या वहाँ होती है, जहां व्यंग्य का आनंद मार्मिक सहृदय ही प्राप्त करे। इसमें व्यंग्य गूढ़ या अप्रकट रहता है। [दे० **व्यंग्यालक्षणा**] अगूढ़व्यंग्या का व्यंग्य स्पष्टतः प्रकट हो जाता है। [दे० **अगूढ़व्यंग्या लक्षणा**] विश्वनाथ ने धर्मिगतलक्षणा तथा धर्मगतलक्षणा का भी निरूपण किया है। जब लक्षणा का फल उसके लक्ष्यार्थ में स्थित रहता है तो उसे धर्मिगतलक्षणा कहते हैं। [दे० **धर्मिगतलक्षणा**] धर्मगतलक्षणा में लक्ष्यार्थ का फल उसके धर्म में स्थित रहता है। [दे० **धर्मगतलक्षणा**]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लक्षणा के भेद-निरूपण में संस्कृत-आचार्यों में मतैक्य नहीं है। मम्मट मुकुलभट्ट का अनुकरण करते हुए लक्षणा के छह भेदों का वर्णन करते हैं—लक्षणा तेन षड्विधा। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने इसके अस्सी भेदों का विवेचन किया है। लक्षणा के दो भेद किए गए—रूढ़िलक्षणा तथा प्रयोजनवती लक्षणा। इन दोनों के दो-दो भेद माने गए—उपादान लक्षणा तथा लक्षण-लक्षणा। पुनः इन चारों के सारोपा तथा साध्यवसाना के नाम से दो-दो भेद होकर कुल आठ प्रकार हुए। इनके भी शुद्धा तथा गौणी नामक भेदों के आधार पर सोलह प्रकार हुए।

प्रयोजनवती के गूढ़ एवं अगूढ़व्यंग्या के रूप में विभाजन करने पर सोलह प्रकार और इनके भी धर्मिगत तथा धर्मगत भेद होने पर बत्तीस भेद हुए। इनमें रूढ़िलक्षणा के आठ भेदों को जोड़ने पर लक्षणा के चालीस प्रकार हुए और प्रत्येक के पदगत तथा वाक्यगत होने पर भेदों की संख्या अस्सी हुई। विश्वनाथ-वर्णित लक्षणा के भेदों का विवरण इस प्रकार है—

मुख्यार्थस्येतराक्षेपो वाक्यार्थेऽन्वयसिद्धये।
स्यादात्मनोऽप्युपादानादेषोपादानलक्षणा ॥
अर्पणं स्वस्य वाक्यार्थे परस्यान्वयसिद्धये।
उपलक्षणहेतुत्वादेषा लक्षणलक्षणा ॥
आरोपाध्यवसानाभ्यां प्रत्येकं ता अपि द्विधा।
विषयस्यानिगीर्णस्यान्यतादात्म्यप्रतीतिकृत् ॥
सारोपा स्यान्निगीर्णस्य मता साध्यवसानिका।
व्यंग्यस्यगूढागूढत्वाद् द्विधा स्युः फललक्षणा ॥
धर्मिधर्मगतत्वेन फलस्यैता अपि द्विधा।
तदेवं लक्षणा भेदाश्चत्वारिंशन्मता बुधैः ॥
पदवाक्यगतत्वेन प्रत्येकं ता अपि द्विधा।

—साहित्यदर्पण, २/६-१२

लक्षणामूलाध्वनि—ध्वनि का प्रथम प्रकार। [दे० ध्वनि के भेद] इसका अन्य नाम अविवक्षितवाच्यध्वनि भी है। इसके मूल में लक्षणा होती है, इसलिए इसे लक्षणामूलाध्वनि कहते हैं। अविवक्षित वाच्यध्वनि कहने का अभिप्राय यह है कि इसमें वाच्यार्थ की विवक्षा नहीं रहती, उसकी उपयोगिता नहीं समझी जाती। लक्षणामूला ध्वनि में वाच्यार्थ बाधित होकर लक्ष्यार्थ की प्रतीति कराता हुआ व्यंग्यार्थ का भी बोधन करता है। इसमें व्यंग्यार्थ गूढ़

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होता है और सहृदयसंवेद्य हुआ करता है। लक्षणामूलाध्वनि में प्रयोजनवती गूढ़व्यंग्या लक्षणा होती है, रूढ़िलक्षणा नहीं। इसमें वाच्यार्थ का पूर्ण तिरस्कार होता है, क्योंकि वाच्यार्थ के द्वारा वक्ता का अभिप्राय स्पष्ट नहीं होता। इसका व्यंग्यार्थ लक्ष्यार्थ की अपेक्षा अधिक चारुताप्रकर्षक होता है। इसके दो भेद किए गए हैं—अर्थांतर संक्रमित वाच्यध्वनि तथा अत्यंततिरस्कृत वाच्यध्वनि। इस संबंध में ध्वनिकार तथा मम्मट के विचार ध्यातव्य हैं—

> **अर्थांतरे संक्रमितमत्यंतं वा तिरस्कृतम्।**
> **अविवक्षितवाच्यस्य ध्वनेर्वाच्यं द्विधा मतम्॥**

—ध्वन्यालोक, २/१

> **अविवक्षितवाच्यो यस्तत्र वाच्यं भवेद् ध्वनौ।**
> **अर्थांतरे संक्रमितमत्यंतं वा तिरस्कृतम्॥**

—काव्यप्रकाश, ४/२४

अर्थांतरसंक्रमितवाच्यध्वनि में वाच्यार्थ अन्य अर्थ में चला जाता है या संक्रमित हो जाता है। [दे० **अर्थांतरसंक्रमितवाच्यध्वनि**] अत्यंततिरस्कृत वाच्यध्वनि में वाच्यार्थ या मुख्य अर्थ का अत्यंत तिरस्कार कर भिन्न अर्थ को ग्रहण किया जाता है। [दे० **अत्यंततिरस्कृतवाच्यध्वनि**]

लक्षणामूला व्यंजना—व्यंजना का एक भेद। [दे० **व्यंजना**] जिस प्रयोजन की सिद्धि के लिए लक्षणा का आश्रय लिया जाता है, उस प्रयोजन की प्रतीति जिस शक्ति से हो, उसे लक्षणामूला व्यंजना कहते हैं।

आचार्य मम्मट के अनुसार इसकी परिभाषा इस प्रकार है—

> **यस्य प्रतीतिमाधातुं लक्षणा समुपास्यते।**
> **फले शब्दैकगम्येऽत्र व्यंजनान्नापरा क्रिया॥**
> **नाभिधा समयाभावाद् हेत्वभावान्न लक्षणा॥**

—काव्यप्रकाश, २/१४,१५

जिस शैत्यपावनत्वादि प्रयोजन की प्रतीति को उत्पन्न करने के लिए लक्षणा का आश्रय लिया जाता है, इस फल की प्रतीति में जो कि लाक्षणिक शब्द का ही विषय है, व्यंजना के अतिरिक्त कोई अन्य व्यापार नहीं। समय अर्थात् संकेत न होने के कारण (प्रयोजन की प्रतीति में अभिधा नामक शब्द व्यापार (समर्थ) नहीं है) 'गंगायां घोषः' इत्यादि स्थलों पर तट आदि में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पवित्रता आदि धर्म (प्रयोजन रूप में) प्रतीत होते हैं, उनमें गंगादि शब्द का संकेत नहीं किया गया है।

—डॉ० हरिदत्तशास्त्री, काव्यप्रकाश (हिंदी टीका) पृ० ७२-७३

आचार्य मम्मट का अभिप्राय यह है कि प्रयोजन की प्रतीति व्यंजनाशक्ति से ही होती है, अभिधा से नहीं। अभिधा द्वारा मुख्यार्थ का बोध संकेत के कारण होता है अर्थात् अभिधा शक्ति उसी अर्थ का बोध कराती है, जिस शब्द में संकेत होता है। लक्षणा शक्ति से लक्ष्यार्थ का हो ज्ञान होता है, फिर प्रयोजन की प्रतीति किस शक्ति से हो? अतः, मम्मट प्रयोजन की प्रतीति व्यंजना से बताते हैं अर्थात् व्यंजना के अतिरिक्त कोई भी व्यापार प्रयोजन का बोध नहीं करा सकता। उदाहरण के लिए 'गंगायां घोषः' इस वाक्य को लिया जाय (गंगा में आभीरों की बस्ती है) तो इसका मुख्य अर्थ होगा 'गंगा का प्रवाह'। गंगा की धारा में घोष का होना असंभव है; अतः मुख्यार्थ बाधित है। यहाँ सामीप्य संबंध से 'गंगातटे घोषः' या 'गंगा तट' अर्थ करना पड़ेगा। यह गंगा शब्द का लाक्षणिक अर्थ हुआ। 'गंगायां घोषः' कहने में वक्ता का विशेष प्रयोजन है, बस्ती की पवित्रता या शीतलता प्रकट करना। यह अर्थ या प्रयोजनीय अर्थ व्यंजना-द्वारा प्रतीत होता है। 'गंगा का प्रवाह' का ज्ञान अभिधा से, 'गंगा तट' अर्थ की प्रतीति लक्षणा से और शीतलता तथा पावनता का बोध व्यंजना से होता है। पवित्रता आदि अर्थ का ज्ञान केवल व्यंजना-व्यापार से ही संभव है। अभिप्राय यह कि लक्षणा में जो प्रयोजन या व्यंग्यार्थ होता है, वह न तो अभिधा-द्वारा और न लक्षणा-द्वारा ही प्रतीत होगा, उसका ज्ञान तो केवल लक्षणामूलाव्यंजना से ही होगा।

लक्ष्यसंभवा—आर्थीव्यंजना का भेद। [दे० **आर्थीव्यंजना**] मुख्यार्थ का बाध होने पर लक्षणावृत्ति के द्वारा लक्ष्यार्थ का बोध होने पर उससे (लक्ष्यार्थ से) जो अन्य व्यंग्य अर्थ प्रतीत होता है, वहाँ लक्ष्यसंभवा आर्थी व्यंजना होती है।

लक्षिता—परकीया नायिका का भेद। [दे० **परकीया**] जिसका रतिचिह्न अन्यों द्वारा लक्षित हो जाय (अच्छी तरह प्रकट हो जाय), उसे लक्षिता कहते हैं। परपुरुष-संभोग के चिह्नों को छिपाने पर भी इसका प्रेम लक्षित हो जाता है।

इसका सर्वप्रथम विवेचन भानुदत्त ने किया है और उनके ही आधार पर रीतिकालीन आचार्यों ने लक्षिता का वर्णन किया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होत लखाय सखीन कों पिय सों जाको प्रेम।
ताहि लक्षिता कहत हैं कबि कोबिद करि नेम॥

—रसराज, ७६

लक्षिता सु जाको सुरत-हेत प्रगट ह्वै जात।
सखी व्यंगि बोलै कहै निज धीरज धरि बात॥

—शृंगारनिर्णय, १०७

जा तिय को जिय आन-रत, जानि कहै तिय आन।
ताहि लक्षिता कहत हैं, जे कबि कला-निधान॥

—जगद्विनोद, १०२

उदाहरण—

क. यद् भूतं तद् भूतं यद्भूयात्तदपि वा भूयात्।
यद्भवति तद्भवति वा विफलस्तव कोऽपि गोपनायासः॥

—रसमंजरी, २५

किसी नायिका की गुप्त रति को जाननेवाली सखी की उक्ति—"जो तुमने परनायक से मिलन किया वह तो होने ही वाला था, तो हो चुका; और जो होनेवाला है, वह भी हो; और जो हो रहा है, वह भी हो; किंतु यह जो तू मुझसे इस रहस्य के गोपन का प्रयत्न करती है वह व्यर्थ है, मुझे तो सब कुछ मालूम हो गया है।"

ख. कौन रीति यह रावरी भई बावरी बाल।
सब निरखैं नंदलाल तन, तूं निरखै उर लाल॥

लक्ष्यार्थ—अर्थ का एक प्रकार। लक्षणाशक्ति की सहायता से जिस अर्थ का ज्ञान हो, उसे लक्ष्यार्थ कहते हैं। [दे० लक्षणा] इससे मुख्यार्थ के बाधित होने पर उससे संबद्ध अन्यार्थ का बोध होता है। लक्ष्यार्थ की प्रतीति लक्षणा शक्ति से होती है और जिन शब्दों से लक्ष्यार्थ प्रकट होता है, उन्हें लक्षक कहते हैं। [दे० लक्षक]

लक्ष्योपमा—सादृश्यमूलक अलंकार। जब उपमा के सादृश्य का ज्ञान शब्दबल से न होकर अर्थ पर अवलंबित रहे तो ऐसी स्थिति में लक्ष्योपमालंकार होता है। सादृश्य का ज्ञान लक्षणा द्वारा होने के कारण इसे लक्ष्योपमा कहते हैं। इसे ललितोपमा भी कहते हैं, जिसमें उपमेय उपमान के साथ होड़ लगाता है या बहस करता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लघुकाव्य—काव्य का एक भेद। [दे० क्षुद्रकाव्य]

लघुमान—मान का भेद। [दे० मान]

ललित—अलंकार। जहाँ वर्णनीय वृत्तांत का वर्णन न कर उसके प्रतिबिंब (छाया) का वर्णन हो तो ललित अलंकार होगा। ललित शब्द का अर्थ है सुंदर, ईप्सित या इच्छित। यह लल् धातु से निष्पन्न है। [ललितः—लल+क्तः सुंदरः, ईप्सितः इति मेदिनी, शब्दकल्पद्रुम चतुर्थो भागः, पृ० २०८] इस अलंकार में ईप्सित या वर्णनीय वृत्तांत की छाया का कथन किया जाता है, इसलिए इसे ललित कहते हैं। यह गोपनमूलक अलंकार है; वास्तविक तथ्य का गोपन कर उसकी छाया के वर्णन करने के कारण।

इस अलंकार के उद्भावक अप्पय दीक्षित हैं तथा पंडितराज ने भी इसका वर्णन किया है। नागेश तथा विश्वेश्वर पंडित इसे स्वतंत्र अलंकार न मानकर इसका अंतर्भाव निदर्शना में कर देते हैं।

दीक्षित के अनुसार वर्ण्य-विषय के उपस्थित होने पर भी उसके धर्म का वर्णन न कर उसके प्रतिबिंबभूत अन्य वृत्तांत का वर्णन करना ललित अलंकार है।

वर्ण्ये स्याद्वर्ण्यवृत्तांत प्रतिबिंबस्य वर्णनम् ॥

—कुवलयानंद, १२८

पंडितराज जगन्नाथ का कथन है कि प्रकृतधर्मी के प्रकृतव्यवहार का उल्लेख न कर निरूपण किए जानेवाले अप्रकृत व्यवहार के संबंध को ललित अलंकार कहते हैं।

प्रकृत धर्मिणि प्रकृतव्यवहारानुल्लेखेन निरूप्यमाणोऽप्रकृतव्यवहारसंबंधो-ललितालंकारः। —रसगंगाधर, पृ० ६७३

रीतिकालीन आचार्य जसवंत सिंह, मतिराम तथा पद्माकर ने 'कुवलयानंद' के लक्षण का अनुवाद प्रस्तुत किया है।

ललित कह्यौ कछु चाहिये ताही को प्रतिबिंब ॥

—भाषाभूषण, १५६

बर्न्यवाक्य के अर्थ को जहँ केवल प्रतिबिंब।
प्रस्तुत में बरनत ललित निर्मल मति बुधिबिंब ॥

—ललितललाम, ३००

कहहि जोग प्रस्तुत विषै जु कछु, कहै नहिं जाहि।
कहै तासु प्रतिबिंब कछु, ललित कही जनु ताहि ॥

—पद्माभरण, २१६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नागेश और विश्वेश्वर पंडित ने ललित का खंडन कर इसे निदर्शना से अभिन्न मान लिया है। इस संबंध में दोनों के तर्क समान हैं। विश्वेश्वर पंडित ने 'अलंकारकौस्तुभ' के 'निदर्शना प्रकरण' में इस विषय का सविस्तर विवेचन प्रस्तुत करते हुए बताया कि जहाँ एकधर्मी प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों के व्यवहारों को ग्रहण किया जाता है, वहाँ निदर्शना होती है। वाक्यार्थ निदर्शना में दो व्यवहारों के धर्मी में अभेद-प्रदर्शन से उनके व्यवहारों में अभेदता का आक्षेप हो जाता है। निदर्शना में ललित का अंतर्भाव करते हुए वे कहते हैं कि प्रस्तुत अर्थ का शब्दानुपादान करने पर भी यदि आर्थ अभेद हो तो वहाँ ललित अलंकार न होकर निदर्शना ही होगी।

यद्यप्येकधर्मिकप्रस्तुताप्रस्तुतव्यवहार द्वयोपादाननिबंधना निदर्शनेत्यत्र विवादाभावः। तथापि व्यवहारद्वयवद्धर्म्यभेदप्रतिपादनाक्षिप्तो व्यवहारद्वयाभेद इति वाक्यार्थ निदर्शना स्वरूपम्। तत्र च प्रतिपादनं श्रौतमेवेत्यत्र नाग्रहः; किंतु प्रतिपादन मात्रम्। एवं च प्रस्तुतार्थस्य शब्दानुपादानोऽपि आर्थं तदादायैव निदर्शनामेवतदंतर्भाव उचितः। —अलंकारकौस्तुभ, पृ० २६८, उद्योत, पृ० ४८१

दीक्षित तथा पंडितराज ने ललित को निदर्शना से भिन्न सिद्ध कर इसे स्वतंत्र अलंकार के रूप में स्थान दिया है। निदर्शना में उपमा व्यंग्य होती है; किंतु ललित में उपमा नहीं होती। जब कवि प्रस्तुत विषय का वर्णन करते हुए उससे संबद्ध धर्म का कथन न कर उसके प्रतिबिंबस्वरूप अन्य धर्म का वर्णन करता है तो वैसी स्थिति में स्वभावतः निदर्शना से भिन्न अलंकार की कल्पना करनी पड़ती है; अतः ललिता की स्वतंत्र सत्ता सिद्ध हुई।

उदाहरण—

क. अनायिदेशः कतमस्त्वयाद्य वसंत मुक्तस्य दशां वनस्य।
त्वदाप्तसंकेततया कृतार्था श्राव्यापि नानेन जनेन संज्ञा॥—नैषध

दमयंती नल से पूछती है कि बताओ कि वह कौन-सा देश है, जिसे तुमने उस वन की दशा की भाँति बना दिया है, जिसे वसंत ने छोड़ दिया हो। क्या तुम्हारे द्वारा प्राप्त संकेत रूप नाम को वह व्यक्ति नहीं सुन सकता या इस व्यक्ति के द्वारा सुनने योग्य नहीं है? यहाँ 'तुम किस देश से आ रहे हो' इस प्रस्तुत अर्थ का कथन न कर वसंत के द्वारा छोड़े गए वन की दशा को पहुँचाने का वर्णन किया गया है। यह प्रतिबिंबस्वरूप अप्रस्तुत वृत्तांत है।

ख. लिखत सुधाकर गा लिखि राहू।
बिधि गति बाम सदा सब काहू॥ —रामायण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

राम का राज्याभिषेक न होकर वनवास होना इस प्रस्तुत वृत्तांत का कथन न कर उसके प्रतिबिंब भूत (राहु) विषय (घटना) के वर्णन में ललित अलंकार हुआ। राहु-सुधाकर वृत्तांत प्रस्तुत का प्रतिबिंबभूत वृत्तांत है।

ललित अलंकार अप्रस्तुतप्रशंसा, समासोक्ति एवं निदर्शना से भिन्न है। अप्रस्तुतप्रशंसा में वाच्यार्थ अप्रस्तुत होता है और ललित में प्रस्तुत। समासोक्ति में प्रस्तुत की प्रतीति होती है और ललित में अप्रस्तुत का बोध न होकर उसके प्रतिबिंब का वर्णन होता है। निदर्शना से यह इस अर्थ में भिन्न है कि निदर्शना में प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत की एकता का आरोप होता है और ललित में प्रस्तुत के प्रतिबिंब का कथन किया जाता है। [**दे० निदर्शना, अप्रस्तुतप्रशंसा तथा समासोक्ति**]

ललित—नायिका के स्वभावज अलंकार का एक भेद। [**दे० नायिका के अलंकार**] सुंदरियों के अंगों का सुंदर विन्यास ही ललित है अर्थात् सुकुमार अंगों को सुंदर ढंग से सजाने को ललित कहते हैं।

ललिता—आचार्य रुद्रट-वर्णित एक प्रकार की वृत्ति, जिसका वर्णन अनुप्रास के भेद के अंतर्गत किया गया है। [**दे० अनुप्रास**] ललिता में लघु, घ, ध, भ, रेफ तथा दूसरे वर्णों से असंयुक्त ल का प्रयोग होता है।

ललितायां घधभरसा लघवो लश्चापरैरसंयुक्तः।
परिशिष्टाभद्रायां पृथगथवा श्रव्यसंयुक्ताः॥

—काव्यालंकार, २/२९

ललितोपमा—लक्ष्योपमा का अन्य नाम। इसमें उपमेय का उपमान के साथ होड़ लगाने या बहस करने का वर्णन होता है। [**दे० लक्ष्योपमा**]

लाक्षणिक (शब्द)—लक्षक शब्द को लाक्षणिक शब्द कहा जाता है। [**दे० लक्षक, लक्ष्यार्थ तथा लक्षणा**] शब्द तीन प्रकार के होते हैं—वाचक, लक्षक और व्यंजक। वाचक शब्द से अभिधा शक्ति द्वारा वाच्यार्थ का ज्ञान होता है। लक्षणाशक्ति के द्वारा लक्ष्यार्थ का बोध होता है और ऐसे शब्द, जिनसे लक्ष्यार्थ की प्रतीति होती है, उन्हें लक्षक कहते हैं। व्यंग्यार्थ शब्द से व्यंजनाशक्ति के द्वारा व्यंग्यार्थ का ज्ञान होता है। [**दे० व्यंजना**]

वाचक ते वाच्यार्थ कहि, लक्षक ते लक्ष्यार्थ।
तीनि भाँति सो जानिये, विंजक तें विंग्यार्थ॥

—प्रतापसाहि, काव्यविलास, २/११

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लाटानुप्रास—अनुप्रास का एक भेद (शब्दालंकार)। [दे० अनुप्रास]

शब्द एवं अर्थ की अभिन्नता में भी तात्पर्यमात्र के भेद को लाटानुप्रास कहते हैं। लाट गुजराज का एक प्राचीन नाम है, अतः लाट देश के निवासियों को प्रिय होने के कारण इसे लाटानुप्रास कहते हैं—

लाटजन-वल्लभत्वाच्च लाटानुप्रासः ।

—काव्यप्रकाश, ९/८१, वृत्ति

इस अलंकार में शब्द और अर्थ एक ही रहते हैं और दोनों (शब्द और अर्थ) की आवृत्ति भी होती है; पर अन्वय करने पर उनका तात्पर्य बदल जाता है। लाटानुप्रास के विवेचन में सभी आलंकारिकों ने समान विचार व्यक्त किए हैं ; अतः इसका स्वरूप प्रारंभ से ही व्यवस्थित रहा है। उद्‌भट, भोज, मम्मट, रुय्यक एवं विश्वनाथ आदि की परिभाषाएँ समान हैं और इनमें तीन तत्त्वों पर विचार किया गया है—शब्दावृत्ति, अर्थसादृश्य तथा तात्पर्यमात्र का भेद। इसके मूल में शब्द एवं अर्थ-सादृश्य दोनों ही विद्यमान रहते हैं। शब्दपौनरुक्त्य, अर्थपौनरुक्त्य एवं तात्पर्यमात्र का भेद, लाटानुप्रास के ये ही तीन तत्त्व हैं।

उद्‌भट आदि ने इसे स्वतंत्र अलंकार माना है; पर अन्य आचार्य अनुप्रास के भेद के रूप में इसका वर्णन करते हैं। लाटानुप्रास का उल्लेख भामह के 'काव्यालंकार' में भी है; पर उन्होंने इसके स्वरूप का स्पष्टीकरण नहीं किया। उन्होंने इतना मात्र कहा कि अनुप्रास के प्रसंग में अन्य व्यक्तियों ने लाटानुप्रास को भी स्वीकार किया है।

लाटीयमप्यनुप्रासमिहेच्छंत्यपरे तथा ॥

—काव्यालंकार, २/८

उद्‌भट ने बताया कि शब्दों एवं पदों की पुनरुक्ति में लाटानुप्रास होता है, जिसमें शब्द और अर्थ के अभिन्न होने पर भी तात्पर्य बदल जाता है।

स्वरूपार्था विशेषेऽपि पुनरुक्तिफलांतरात् ।
शब्दानां वा पदानां वा लाटानुप्रास इष्यते ॥

—काव्यालंकारसारसंग्रह, १/८

मम्मट इसे शब्दानुप्रास कहते हैं। इन्होंने बताया कि शब्द और अर्थ के एक होने पर तात्पर्यमात्र का भेद होने से लाटानुप्रास होता है। मम्मट ने इसके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पाँच प्रकारों का उल्लेख किया है—अनेकपदगत लाटानुप्रास, एकपदगत, समासगत, भिन्नसमासगत एवं समास-असमासगत ।

शाब्दस्तुलाटानुप्रासो भेदे तात्पर्यमात्रतः । ९/८१

शब्दगतोऽनुप्रासः शब्दार्थयोरभेदेऽप्यन्वयमात्रभेदात् ।
पदानां सः पदस्यापि वृत्तवन्यत्र तत्र वा ।
नाम्नः स वृत्त्यवृत्त्योश्च तदेवं पंचधा मतः ।।

—काव्यप्रकाश, ९/८२

रुय्यक ने बतलाया कि लाटानुप्रास तात्पर्ययुक्त होता है । इसमें शब्द एवं अर्थ का स्वरूप नहीं बदलता; पर तात्पर्य बदल जाता है ।

तात्पर्यभेदवत्तु लाटानुप्रासः ।
तात्पर्यमन्यपरत्वम् । तदेव भिद्यते, न तु शब्दार्थयोः स्वरूपम् ।

—अलंकारसर्वस्व, पृ० २८

जयदेव ने कहा कि जब पुनरुक्त पद भिन्न-भिन्न अभिप्राय प्रकाशित करें तो लाटानुप्रास होगा ।

लाटानुप्रासभिन्नाभिप्राया पुनरुक्तता ।।

—चंद्रालोक, ५/४

विश्वनाथ के अनुसार शब्दार्थ के पौनरुक्त्य में तात्पर्यमात्र के भेद को लाटानुप्रास कहते हैं ।

शब्दार्थयोः पौनरुक्त्यं भेदे तात्पर्यमात्रतः ।
लाटानुप्रास इत्युक्तो ।। —साहित्यदर्पण, १०/७

लाटानुप्रास पदगत एवं वाक्यगत, दो प्रकार का होता है । पदगत लाटानुप्रास में अर्थांतर संक्रमित वाच्यध्वनि [दे० **अर्थांतर संक्रमित वाच्यध्वनि**] का रूप दिखाई पड़ता है । इसमें वाक्यांतर्गतनिबद्ध शब्दों की आवृत्ति होने पर उनके अर्थ में भी परिवर्त्तन हो जाता है और शब्द सामान्य अर्थ को प्रकट करता है तो दूसरा विशेष अर्थ को । उदाहरण के लिए कहा जाय कि 'लड़का तो लड़का ही है' तो यहाँ प्रथम लड़का पद लड़के के सामान्य अर्थ का वाचक है; किंतु द्वितीय विशिष्टार्थ या लड़के की रूप-गुणशीलादि विशिष्टता का सूचक । अर्थांतरसंक्रमित वाच्यध्वनि में भी वाच्यार्थ अन्य अर्थ में संक्रमण कर जाता है या बदल जाता है । वाक्यगत लाटानुप्रास में शब्द एवं अर्थ के अभिन्न

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होने पर भी तात्पर्यमात्र के भेद से उनका आशय बदल जाता है। इसमें दोनों ही वाक्यों में शब्द तथा अर्थ एक ही होते हैं; किंतु अन्वय करने पर उनमें भिन्नता आ जाती है या उनका तात्पर्य बदल जाता है।

उदाहरण—

क. यस्य न सविधे दयिता दवदहनस्तुहिनदीधितिस्तस्य।
यस्य स सविधे दयिता दवदहनस्तुहिनदीधितिस्तस्य॥

—साहित्यदर्पण

जिसके पास प्रिया नहीं है, उसके लिए चंद्रमा दावाग्नि के सदृश है और जिसके पास प्रिया है, उसके लिए दावानल भी चंद्रमा की तरह शीतल है।

ख. तीरथव्रत साधन कहा बिनु निसि दिन हरि गान।
तीरथव्रत साधन कहा जो निसि दिन हरि गान॥

यहाँ शब्द और अर्थ तो दोनों एक ही हैं; पर अन्वय करने पर अर्थ में भिन्नता आ जाती है कि बिना भगवान् के भजन के तीर्थ-व्रत आदि साधन व्यर्थ हैं और जो रात-दिन भगवान् का भजन करता है उसके लिए तीर्थाटन एवं व्रत बेकार हैं।

पदों की आवृत्ति का उदाहरण—

नंद-चख-चंद, व्रजचंद-नभ-चंद,
व्रजचंद-मुख चंद पै अनेक चंद बारौं मैं॥

यहाँ 'चंद' शब्द की आवृत्ति हुई है, उसका अर्थ भी एक ही है; पर सभी शब्दों के साथ अन्वय करने पर इसका अभिप्राय भिन्न हो जाता है।

लाटीया—रीति का एक भेद। पाँच या सात समासों से युक्त रीति को लाटीया कहते हैं। वामन इसे मध्यमसमासा कहते हैं। [दे० रीति के प्रकार] इसमें रौद्ररस का समावेश होता है।

लिंगवैचित्र्यवक्रता—पदपूर्वार्द्ध वक्रता का सातवाँ प्रकार।

[दे० लिंगवैचित्र्यवक्रता]

लिंगौचित्य—औचित्य का ९वाँ भेद। [दे० औचित्य के भेद]

लीला—नायिका का स्वभावज अलंकार। प्रिय की वाणी, वेश-भूषा एवं चेष्टाओं का नायिका-द्वारा अनुकरण किए जाने को लीला कहते हैं।

[दे० नायिका के अलंकार]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लेख—आचार्य देव (रीतिकालीन) वर्णित एक नूतन अलंकार। जब गुण को दोष एवं दोष को गुण के रूप में वर्णित किया जाय तो लेख अलंकार होगा। यह अलंकार 'लेशालंकार' का ही रूप है, जिसे 'लेख' के नाम से अभिहित किया गया है।

गुन दोषन के दोष गुन, लेख सु कहौं बखानि ॥

—शब्दरसायन, पृ० १७८

लेश—अर्थालंकार का एक प्रकार। जब गुण को दोष-रूप में अथवा दोष को गुण में कल्पित किया जाय तो लेश अलंकार होता है। लेश शब्द का अर्थ है अंश या भाग। गुण में दोष का होना या दोष में गुण का होना ही इस अलंकार का विषय है। इसमें गुणयुक्त पदार्थ के अंशविशेष में दोष या दोष-युक्त वस्तु के अल्प भाग में भी गुण की कल्पना की जाती है।

लेश अलंकार का संकेत भामह ने किया है, जिसे वे वक्रोक्ति के अभाव में अलंकारत्व प्रदान नहीं करते। सर्वप्रथम इसे दंडी ने अलंकार के रूप में स्वीकृति दी—

हेतुश्च सूक्ष्मलेशोऽथ नालंकारतया मतः।
समुदायाभिधानस्य वक्रोक्त्यनभिधानतः ॥

—काव्यालंकार, २/८६

परवर्ती आचार्यों में रुद्रट, भोज, अप्पय दीक्षित तथा पंडितराज जगन्नाथ ने इसका निरूपण किया। दंडी ने बताया कि जब कुछ-कुछ (स्वल्प मात्र) प्रकट होते हुए पदार्थ के रूप को छिपा लिया जाय तो वहाँ लेशालंकार होता है। इसके द्वितीय प्रकार का लक्षण प्रस्तुत करते हुए दंडी ने कहा कि स्तुति के बहाने निंदा अथवा निंदा के बहाने स्तुति के वर्णन में द्वितीय लेश होगा। दंडी इसे काव्य का उत्तम भूषण मानते हैं—

हेतुश्च सूक्ष्मलेशौ च वाचामुत्तमभूषणम् ॥
लेशो लेशेन निर्भिन्नवस्तुरूपनिगूहनम्।
लेशमेके विदुर्निंदां स्तुतिर्वा लेशतः कृताम् ॥

—काव्यादर्श, २/२३५,२६५,२६८

दंडी के लक्षण द्वारा इस अलंकार का आधुनिक रूप प्रकट नहीं हुआ है, उनके प्रथम प्रकार में व्याजोक्ति का एवं द्वितीय में व्याजस्तुति का रूप प्रकट हुआ है। लेश के वास्तविक स्वरूप का निर्धारण सर्वप्रथम रुद्रट-द्वारा हुआ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उनके अनुसार गुण को दोष के रूप में तथा दोष को गुण के रूप में ग्रहण करना लेश अलंकार है। रुद्रट इसके दो प्रकारों का कथन करते हैं।

दोषीभावो यस्मिन्गुणस्य दोषस्य वा गुणीभावः।
अभिधीयते तथाविध कर्मनिमित्तः स लेशः स्यात् ॥

—काव्यालंकार, ७/१००

भोज ने रुद्रट के ही मत को अपनाकर लेश अलंकार का वर्णन किया; पर व्याजस्तुति को इससे अभिन्न माना।

दोषस्य यो गुणीभावो दोषीभावो गुणस्य यः।
स लेशः स्यात्ततो नान्य व्याजस्तुतिरपीष्यते ॥

—सरस्वतीकंठाभरण, ४/५६

अप्पय दीक्षित रुद्रट से प्रभावित हैं। इनके अनुसार दोष तथा गुण को क्रमशः गुण तथा दोष के रूप में कल्पित करना लेश अलंकार है।

लेशः स्याद्दोषगुणयोर्गुणदोषत्वकल्पनम् ॥

—कुवलयानंद, १३८

पंडितराज के अनुसार गुण के अनिष्ट का साधन होने के कारण दोष-रूप में एवं दोष के अभीष्ट का साधन होने के कारण गुण-रूप में वर्णन करना लेशालंकार है।

गुणस्यानिष्टसाधनतया दोषत्वेन, दोषस्येष्टसाधनतया गुणत्वेन च वर्णनं लेशः।

—रसगंगाधर, पृ० ६९०

रीतिकालीन आचार्यों में केशव ने दंडी से तथा जसवंतसिंह, मतिराम एवं पद्माकर ने दीक्षित से प्रभाव-ग्रहण कर लेशालंकार का वर्णन किया है।

चतुराई के लेश ते, चतुर न समझैं लेश।
बरनत कबि कोबिद सबै, ताको केशव लेश ॥

—कविप्रिया, ११/४७

गुन में दोष'रु दोष में गुन कल्पन सो लेस।

—भाषाभूषण, १६४

जहाँ दोष गुन होत है, जहाँ होत गुन दोष।
तहाँ लेश यह नाम कहि, बरनत कवि मति-कोष ॥

—ललितललाम, ३२४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लेश अलंकृत दोइ बिधि, है जहँ गुन में दोष ।
दोषहिं में गुन होत यों, कहत सुकबि लहि तोष ॥
—पद्माभरण, १३२

नागेश तथा विश्वेश्वर पंडित लेशालंकार को स्वतंत्र अलंकार न मानकर इसका अंतर्भाव क्रमशः विशेषालंकार (दे० विशेष) एवं व्याघात (दे० व्याघात) में करते हैं ।

एवं किंचित्सौकर्यं दृष्ट्वा दोषस्य गुणत्वकल्पनं गुणस्य वा दोषत्वकल्पनमपि सः । एतेनैतादृशविषये लेशनामापृथगलंकारइत्यपास्तम् ॥

—उद्योत, पृ० ५७२; अलंकारकौस्तुभ, पृ० ४०७-८

भेद—लेश अलंकार के दो भेद माने गए हैं । प्रथम प्रकार में गुण का दोष-रूप में कथन किया जाता है एवं द्वितीय में दोष का गुण रूप में वर्णन होता है ।

प्रथम लेश—गुण का दोषी भाव

क. अपि बत गुरु गर्वं मा स्म कस्तूरि यासी-
रखिलपरिमलानां मौलिना सौरभेण ।
गिरिगहनगुहायां लीनमत्यंतदीनं
स्वजनकमुनैव प्राणहीनं करोषि ॥ —रसगंगाधर

—कस्तूरी के प्रति कवि कहता है कि हे कस्तूरि ! सभी सुगंधित पदार्थों में सर्वोच्च होने के कारण तुम्हें अधिक गर्व नहीं करना चाहिए, तुम इसी सौरभ के कारण पहाड़ की गहन कंदरा में छिपे हुए अत्यंत दीन मृगों को, जो तुम्हारे जनक हैं, प्राणहीन कर देते हो । यहाँ कस्तूरी का गुण दोषवत् वर्णित है ।

ख. कैद होत सुक सारिका, मधुरी बानि उचारि ॥

मीठी वाणी बोलकर शुक (सुग्गा) एवं सारिका (मैना) का बंदी हो जाना, गुण में दोषत्व का वर्णन है ।

द्वितीय लेश—दोष का गुणवत् वर्णन

क. नैर्गुण्यमेव साधीयो धिगस्तु गुणगौरवम् ।
शाखिनोऽन्ये विराजंते खंड्यंते चंदनद्रुमाः ॥

"दोष ही अच्छा है, गुणों के गौरव को धिक्कार है । अन्य वृक्ष विराजते रहते हैं और गुण के ही कारण चंदन के वृक्ष काटे जाते हैं ।" दोष के कारण अन्य वृक्षों का विराजमान होना द्वितीय प्रकार है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ख. 'रहिमन' विपदा हू भली, जो थोरे दिन होय।
हित अनहित या जगत में जानि परत सब कोय॥

विपत्ति के स्वागत में यहाँ दोष का गुण-वर्णन किया गया है।

लेश एवं उल्लास का अंतर—उल्लास में एक के गुण-दोष से दूसरे में गुण तथा दोष प्राप्त होने का वर्णन होता है; किंतु लेश में गुण-दोष को या दोष-गुण को उनके विपरीत वर्णन करते हैं।

लेश एवं अवज्ञा—अवज्ञा में उत्कट गुण की लालसा से दोषयुक्त वस्तु की अभिलाषा करने का वर्णन होता है, जब कि लेश में दोषयुक्त वस्तु में गुण की एवं गुणयुक्त पदार्थ में दोष की कल्पना की जाती है।

लोकोक्ति—एक गौण अलंकार। जब प्रसंग-प्राप्त किसी लोकोक्ति (मुहावरा) का प्रयोग किया जाय तो लोकोक्ति अलंकार होगा। 'लोकोक्ति' का अर्थ लोककथन या कहावत है। यदि किसी प्रसंग में लोकप्रसिद्ध कहावत का प्रयोग किया जाय और उससे कथन में चमत्काराधान हो तो वहाँ यह अलंकार होगा।

इसे अलंकार का रूप देने का श्रेय अप्पय दीक्षित को है; पर भोज ने भी इसका वर्णन किया है और उनके आधार पर 'अग्निपुराण' तथा केशवमिश्र के 'अलंकारशेखर' में भी लोकोक्ति का निरूपण है। भोज ने 'छाया' नामक शब्दालंकार के अंतर्गत 'लोकोक्तिच्छाया' का वर्णन किया है। छाया के छह भेदों में एक 'लोकोक्तिच्छाया' भी है। जब काव्य में कवि-द्वारा लोकोक्ति का प्रयोग हो तो लोकोक्तिच्छाया होती है।

अन्योक्तीनामनुकृतिश्छाया सापीहषड्विधा।
लोकच्छेकार्भकोन्मत्तपोटामत्तोक्तिभेदतः॥

—सरस्वतीकंठाभरण, २/३८

'अग्निपुराण' में अन्य की उक्ति के अनुकरण को छाया कहा गया है और इसके चार प्रकार माने गए हैं—लोकोक्ति, छेकोक्ति, अर्भकोक्ति तथा मत्तोक्ति।

तत्रान्योक्तेरनुकृतिश्छाया साऽपि चतुर्विधा।

—अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग, ६/२१

आभाषको हि लोकोक्तिः। यानुधावति लोकोक्तिश्छायामिच्छंति तां बुधाः॥

—अलंकारशेखर, ६/२२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दीक्षित की लोकोक्ति का स्रोत भोज-कृत लोकोक्ति ही है। इन्होंने भोज के उदाहरण में निहित 'लोचनेमीलयित्वा' लोकोक्ति को भी ग्रहण कर लिया है। दीक्षित के अनुसार, जब काव्य में लोकप्रवाद या लोकोक्ति का अनुसरण किया जाय तो लोकोक्ति अलंकार होगा।

लोकप्रवादानुकृतिर्लोकोक्तिरिति भव्यते।
सहस्व कतिचिन्मासान् मीलयित्वा विलोचने ॥

—कुवलयानंद, १५७

रीतिकालीन आचार्यों में जसवंतसिंह, मतिराम तथा पद्माकर ने दीक्षित के लक्षण को अनूदित कर इस अलंकार का वर्णन किया है।

लोक उक्ति कछु बचन जो लीन्हें लोकप्रवाद।

—भाषाभूषण, १८४

जहँ कहनावति अनुकरन, लोक उक्ति मतिराम ॥

—ललितललाम, ३६६

लोकोक्ति जहँ लोक की कहनावति ठहराउ ॥

—पद्माभरण, २५७

उद्योतकार नागेश ने चमत्काराभाव के कारण इसे अलंकारत्व नहीं प्रदान किया है। —उद्योत, पृ० ५४४

उदाहरण—

क. सहस्व कतिचिन्मासान् मीलयित्वा विलोचने ॥

—यहाँ नायक के द्वारा विरहिणी के संदेश का वर्णन है। आँखें मूँदकर (मींचकर) कुछ महीने और व्यतीत कर लो। 'लोचनेमीलयित्वा' लोकोक्ति है।

ख. बृथा मरहु जनि गाल बजाई, मनमोदकनि कि भूख बुझाई ॥

—रामायण

यहाँ 'गाल बजाना' तथा 'मनमोदक से भूख का न मिटना' दो कहावतों का प्रयोग है।

व

वक्तृवैशिष्ट्योत्पन्नवाच्यसंभवा—आर्थी व्यंजना का प्रथम प्रकार।

[दे० आर्थीव्यंजना]

वक्रोक्ति (शब्द एवं आर्थ)—एक प्रकार का अलंकार। भारतीय काव्याचार्यों ने वक्रोक्ति शब्द का प्रयोग तीन पृथक्-पृथक् अर्थों में किया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रथम अर्थ में इसका प्रयोग सामान्य चमत्कार या अतिशयोक्ति (सामान्य कथन) के रूप में होता है। इस अर्थ में इसके प्रथम प्रयोक्ता आचार्य भामह हैं। इन्होंने बताया कि वक्रोक्ति के बिना न तो अलंकार में और न उक्ति में ही रमणीयता का समावेश हो सकता है।

सैषा सर्वैव वक्रोक्तिरनयार्थोविभाव्यते।
यत्नोऽस्यां कविना कार्यः कोऽलंकारोऽनया विना॥

—काव्यालंकार, २/८५

इसका प्रयोग काव्यसर्वस्व या काव्यसिद्धांत-विशेष के अर्थ में आचार्य कुंतक ने किया। उन्होंने वक्रोक्ति सिद्धांत की स्थापना कर इसे काव्य का प्राण या जीवित स्वीकार किया। [दे० **वक्रोक्तिसिद्धांत**] वक्रोक्ति का तीसरा प्रयोग अलंकार के अर्थ में किया जाता है और इस दृष्टि से यह कहीं तो शब्दालंकार और कहीं अर्थालंकार के रूप में मान्य है।

वक्ता-द्वारा अन्य अभिप्राय से कथित वाक्य का, श्लेष अथवा काकु से, जब श्रोता अन्यार्थ कल्पित करे तो वहाँ वक्रोक्ति अलंकार होता है। वक्रोक्ति में दो शब्द हैं—वक्र और उक्ति अर्थात् टेढ़ा कथन। इसमें वक्ता द्वारा भिन्न अभिप्राय से कथित वाक्य का श्रोता भिन्न अर्थ कर लेता है, जो वक्ता के आशय से नितांत भिन्न होता है। वक्तोक्ति में भिन्न अर्थ की योजना दो प्रकार से संभव है—काकु या श्लेष से। काकु का अर्थ कंठ का ध्वनिविकार है। इसके द्वारा या कंठ ध्वनि-परिर्त्तन से वक्ता का अभिप्राय बदल जाता है। श्लिष्ट शब्द से अभिप्राय अनेकार्थवाची शब्द से है अर्थात् ऐसे शब्द, जिनका एकाधिक अर्थ हो, उसे श्लिष्ट शब्द कहा जाएगा। [दे० **श्लेषालंकार**] श्लेष अथवा काकु के आधार पर वक्रोक्ति के दो प्रकार होते हैं—श्लेष वक्रोक्ति एवं काकु वक्रोक्ति। वक्रोक्ति—शब्द और आर्थ, दोनों ही प्रकार की होती है अर्थात् शब्दवक्रोक्ति और अर्थवक्रोक्ति। यह प्रयोग पर निर्भर करता है। जब किसी रचना में भिन्नार्थवाची शब्दों के द्वारा अर्थांतर (अन्य अर्थ) किया जाय तो वहाँ शब्दवक्रोक्ति होगी; किंतु एकार्थप्रतिपादक शब्दों अर्थात् अर्थश्लेष के कारण निष्पन्न वक्रोक्ति अर्थवक्रोक्ति होगी। जब वक्रोक्ति श्लेषाश्रित हो तो श्लेष वक्रोक्ति एवं काकु के बल पर स्थित वक्रोक्ति काकुवक्रोक्ति होगी। श्लेषवक्रोक्ति भी दो प्रकार की होती है—अभंगपदश्लेषवक्रोक्ति एवं भंगपदश्लेषवक्रोक्ति। वक्रोक्ति का चमत्कार श्लेषाश्रित होता है या इसके मूल में श्लेष का सौंदर्य निहित है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वक्रोक्ति अलंकार का वर्णन शब्दालंकार एवं अर्थालंकार, दोनों के ही अंतर्गत किया गया है। रुय्यक, शोभाकर, जयदेव एवं अप्पय दीक्षित ने इसे अर्थालंकार माना है और रुद्रट, हेमचंद्र तथा वाग्भट इसे शब्दालंकार स्वीकार करते हैं। मम्मट और विश्वनाथ, दोनों ने ही इसे शब्दालंकार एवं अर्थालंकार में स्थान दिया है। पर, आलंकारिकों का बहुमत इसे अर्थालंकारत्व प्रदान करने में है। रीतिकालीन आचार्यों में चिंतामणि, कुलपति, सोमनाथ एवं दास इसे शब्दालंकार का रूप देते हैं और जसवंत सिंह, मतिराम, भूषण तथा पद्माकर प्रभृति ने इसका वर्णन अर्थालंकार के रूप में किया है।

पहले ही कहा जा चुका है कि भामह ने वक्रोक्ति का उल्लेख सौंदर्य या सामान्य अलंकार के रूप में किया है। रुद्रट ने बताया कि जब वक्ता-द्वारा विशेष अभिप्राय से कथित बात का उत्तरदाता, पदभंगी के द्वारा, जानबूझकर अन्य उत्तर दे तो वहां वक्रोक्ति अलंकार होता है। रुद्रट ने इसके दो प्रकारों का कथन किया है—श्लेषवक्रोक्ति एवं काकुवक्रोक्ति ।

वक्ता तदन्यथोक्तं व्याचष्टे चान्यथा तदुत्तरतः।
वचनं यत्पदभंगैर्ज्ञेया सा श्लेषवक्रोक्तिः॥
विस्पष्टं क्रियमाणादक्लिष्टा स्वरविशेषो भवति।
अर्थांतरप्रतीतिर्यत्रासौ काकुवक्रोक्तिः॥

—काव्यालंकार, २/१४,१६

मम्मट ने अपनी परिभाषा में वक्रोक्ति का स्वरूप अधिक व्यवस्थित किया। उनके सनुसार जब वक्ता द्वारा अन्य अभिप्राय से कथित वाक्य श्रोता-द्वारा श्लेष अथवा काकु से या कंठ के ध्वनि-विकार से अन्यथा या अन्य अर्थ में योजित कर दिया जाय तो वहां वक्रोक्ति अलंकार होगा।

यदुक्तमन्यथा वाक्यमन्यथाऽन्येन योज्यते।
श्लेषेण काक्वा वा ज्ञेया सा वक्रोक्तिस्तथा द्विधा॥

—काव्यप्रकाश, ९/७८

वक्रोक्ति का परवर्ती विवेचन रुद्रट या मम्मट पर ही आधृत है और इसके स्वरूप में किसी प्रकार का अंतर नहीं आया। विश्वनाथ ने बताया कि किसी अन्यार्थक वाक्य का श्लेष अथवा काकु के द्वारा अन्य व्यक्ति अन्य अर्थ कर दे तो वहां वक्रोक्ति होती है। काकु और श्लेष के आधार पर इसके दो भेदों का भी वर्णन किया गया—काकुवक्रोक्ति और श्लेषवक्रोक्ति ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अन्यस्यान्यार्थकं वाक्यमन्यथा योजयेद्यदि ।
अन्यः श्लेषेण काक्वा वा सा वक्रोक्तिस्ततो द्विधा ॥

—साहित्यदर्पण, १०/६

रीतिकालीन आचार्य चिंतामणि एवं कुलपति ने काव्यप्रकाश के ही लक्षण को अनूदित कर दिया है। दास का लक्षण स्पष्ट है, पर सोमनाथ ने काकु एवं श्लेष का, अपने लक्षण में उल्लेख नहीं किया।

चिंतामणि—

और भाँतिको बचन जो और लगावै कोइ।
कै श्लेष कै काकु सो ब्रक्रोकति है सोइ ॥

—कविकुलकंठाभरण, २/५

कुलपति—

कहै बात औरे कछू, अर्थ करै कछु और।
वक्र उक्ति ताकों कहैं, श्लेष 'काकु' द्वै ठौर ॥

—रसरहस्य, ७/४

सोमनाथ—

शब्द कछू औरै कहै, कढ़ै और ही अर्थ।
ताही को वक्रोक्ति कहि, बरनै सुकवि समर्थ ॥

—रसपीयूषनिधि, २१/१८

दास—

द्वर्थ काकु तें अर्थ को फेरि लगावै तर्क।
वक्र उक्ति तासों कहैं, जे बुधि अंबुज अर्क ॥

—काव्य-निर्णय, १६/१४

अर्थवक्रोक्ति का विवरण

अर्थ वक्रोक्ति का वर्णन करते हुए रुय्यक ने बताया कि अन्यार्थक वाक्य का काकु अथवा श्लेष से अन्यार्थ कल्पित करना वक्रोक्ति है। इनके मत का अनुसरण जयदेव, विद्याधर, विद्यानाथ तथा दीक्षित ने किया है। रीतिकालीन आचार्य जसवंत सिंह, मतिराम, भूषण, देव एवं पद्माकर ने कुवलयानंद की परिभाषा का ही अनुवाद प्रस्तुत किया है।

अन्यथोक्तस्य वाक्यस्य काकुश्लेषाभ्यामन्यथायोजनं वक्रोक्तिः ।

—अलंकारसर्वस्व, पृ० २१६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वक्रोक्तिः श्लेषकाकुभ्यां वाच्यार्थांतरकल्पनम् ॥

—चंद्रालोक, ५/१११

वक्रोक्तिः श्लेषकाकुभ्यामपरार्थं प्रकल्पनम् ॥

—कुवलयानंद, १५६

जसवंत सिंह—

बक्र उक्ति स्वर श्लेष सों अर्थ फेर जौ होइ ॥

—भाषाभूषण, १८६

मतिराम—

श्लेष काकु सों अर्थ की रचना और जु होय ।
वक्र उक्ति सो जानिये ज्ञान सलिल मति धोय ॥

—ललितललाम, ३६६

भूषण—

जहाँ श्लेष कै काकु सों अर्थ लगावै और ।
बक्रोक्ती तासों कहत भूषन कबि सिरमौर ॥

—शिवराजभूषण, ३०२

देव—

काकु बचन अश्लेष करि, और अरथ ह्वै जाइ ।
सो बक्रोक्ति सुबरनिये, उत्तम काव्य सुभाइ ॥

—भावविलास, पृ० १४८

पद्माकर—

श्लेषहिं सों कै काकु सों और अरथ के ताँहि ।
कलपन कीन्हें होत है, बक्रोकति ही ठाँहि ॥

—पद्माभरण, २५६

वक्रोक्ति का भेद-निरूपण

श्लेष अथवा काकु के आधार पर वक्रोक्ति अलंकार के दो प्रकार माने गए हैं—श्लेष और काकुवक्रोक्ति । पुनः श्लेष के भी भंगपद श्लेष एवं अभंगपद-श्लेषवक्रोक्ति नामक दो उपविभाग किए गए । इस प्रकार वक्रोक्ति के तीन भेद हुए—भंगपदश्लेषवक्रोक्ति, अभंगपदश्लेष वक्रोक्ति तथा काकुवक्रोक्ति । रुद्रट ने दो ही प्रकारों—श्लेष एवं काकु—का वर्णन किया है; पर मम्मट और विश्व-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

-नाथ ने पूर्वोक्त तीन भेदों का निरूपण किया। रुय्यक ने इसके चार भेद किए हैं और मम्मटादि के तीन प्रकारों के अतिरिक्त उभयमूलवक्रोक्ति का भी कथन किया है।

भंगपदश्लेषवक्रोक्ति—जब श्लिष्ट पदों या शब्दों के अनेक टुकड़े कर वक्ता के कथन का श्रोता अन्य अर्थ करे तो यह प्रकार होगा—

उदाहरण—

क. **नारीणामनुकूलमाचरसि चेज्जानासि कश्चेतनो**
वामानां प्रियमादधाति हितकृन्नैवाबलानां भवान् ॥
युक्तं किं हितकर्तनं नु बलाभावप्रसिद्धात्मनः
सामर्थ्यं भवतः पुरंदरमतच्छेदं विधातुं कुतः ॥

—काव्यप्रकाश

यदि तुम नारियों के अनुकूल चलते हो तो बुद्धिमान हो (यहाँ वक्ता का उत्तर श्रोता देता है) कौन ऐसा बुद्धिमान व्यक्ति है जो शत्रुओं का प्रिय करता है ? अर्थात् कोई भी समझदार व्यक्ति शत्रुओं का प्रिय नहीं करता। इसपर वक्ता का कथन है कि क्या आप अबलाओं के हितकारी नहीं हैं ? तब श्रोता अबला शब्द का अर्थ निर्बल करते हुए उत्तर देता है कि निर्बलों का हित करनेवाले नहीं हैं। वक्ता कहता है कि बल के स्वरूप के अभाव के लिए प्रसिद्धजनों अर्थात् दुर्बलों का हित विनाश करना क्या उचित है ? अर्थात् नहीं। इसपर श्रोता 'बलाभावप्रसिद्धात्मनः' का अर्थ 'बल नामक राक्षस को मारने के लिए प्रसिद्ध व्यक्ति' अर्थात् इंद्र करता है। उसके अनुसार इसका अर्थ यह हुआ कि आप में इंद्र के विनाश की शक्ति नहीं है।

इस श्लोक में 'नारीणाम्', 'वामानाम्', 'हितकृत्', 'अबलानाम्' आदि शब्द श्लिष्ट या द्व्यर्थक हैं एवं उनके टुकड़े कर अन्य अर्थों का (जैसे, न+अरीणाम्) विधान किया गया है।

ख. **अयि गौरवशालिनि प्यारि हमारी सुधास्मित क्यों बरसाती नहीं।**
निज कामिनी को प्रिय गौ अबसा अलिनी हु कहूँ कहि जाती कहीं ॥

यहाँ वक्ता (शिवजी) ने अपनी प्रिया पार्वती के लिए 'गौरवशालिनी' विशेषण का प्रयोग किया है, जिसे श्रोता (पार्वती) ने कई टुकड़ों में करके वक्ता के अभीष्ट अर्थ का विपरीत अर्थ कर दिया—गौ (गाय), अवशा (पति के वश में न रहनेवाली) एवं अलिनी (भ्रमरी की भाँति अनेक पुरुषों से संपर्क स्थापित करनेवाली)।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अभंगपद श्लेषवक्रोक्ति—जब श्लिष्ट या अनेकार्थवाची शब्दों (पदों) के खंड या टुकड़े किए बिना ही अन्यार्थ का विधान किया जाय तो अभंगपद-श्लेषवक्रोक्ति होगी।

उदाहरण—

क. अहो केनेदृशी बुद्धिर्दारुणा तव निर्मिता।
त्रिगुणा श्रूयते बुद्धिर्न तु दारुमयी क्वचित् ॥ —काव्यप्रकाश

वक्ता का कथन है कि अरे! बड़े आश्चर्य की बात है कि किसने तुम्हारी बुद्धि इतनी निर्दय बना दी? इस पर श्रोता ने 'दारुणा' का अर्थ लकड़ी करते हुए कहा कि बुद्धि तो तीन गुणों—सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण—से युक्त सुनी जाती है, उसे काठ की बनी नहीं कहते। यहाँ 'दारुणा' शब्द के दो अर्थ किए गए हैं—कठोर तथा काष्ठमयी और ये अर्थ इसको बिना तोड़े ही किए गए हैं।

काकुवक्रोक्ति—जब काकु या कंठ-ध्वनिविकार से वक्ता के कथन का श्रोता-द्वारा अन्यार्थ कल्पित कर दिया जाय तो काकुवक्रोक्ति होगी।

उदाहरण—

क. गुरुजन परतंत्रतयादूरतरं देशमुद्यतो गंतुम्।
अलिकुलकोकिलललिते नैष्यति सखि सुरभि समयेऽसौ ॥

—काव्यप्रकाश

नायिका सखी को संबोधित कर कहती है कि वे (प्रिय) गुरुजनों (माता-पिता) के अधीन होने के कारण विदेश जाने को उद्यत (तैयार) हैं। क्या भ्रमर-समूह एवं कोकिलों से सुहावने इस वसंत में नहीं आएँगे? यहाँ कंठध्वनि की भिन्नता से यह अर्थ प्रकट होता है कि वे अवश्य आएंगे।

ख. 'बल्लभ' विचारि कै सुनु री सयानी अली
ऐसे समय नाथ परदेस तें न आएँगे ॥

यहाँ कंठध्वनि-विकार से यह अर्थ निकलता है कि नाथ या प्रिय 'परदेस' से अवश्य आएँगे।

ग. मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू। तुम्हिं उचित तप मों कहँ भोगू ॥

—रामायण

यहाँ सीता के इस कथन में कि मैं सुकुमारी हूँ और आप वन के योग्य हैं, आप के लिए तप उचित है और मेरे लिए भोग। यह वाक्य कंठ ध्वनि की भिन्नता से अन्य अर्थ में परिवर्त्तित हो जाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

श्लेष एवं वक्रोक्ति में भेद—वक्रोक्ति एवं श्लेष, दोनों का ही सौंदर्य अनेकार्थं वाची शब्दों के प्रयोग में निहित रहता है, यही इनका साम्य है। दोनों में अंतर यह है कि वक्रोक्ति में जहाँ एक अर्थ वक्ता कहता है और दूसरा अर्थ श्रोता, वहाँ श्लेष में वक्ता के ही दोनों अर्थ होते हैं।

छेकापह्नुति एवं वक्रोक्ति—दोनों में ही यथार्थ या वास्तविक तथ्य या बात का गोपन कर अवास्तविक तथ्य की स्थापना की जाती है। इनमें अंतर यह है कि छेकापह्नुति में अपने ही कथन को छिपाकर उसका अर्थ बदल दिया जाता है; पर वक्रोक्ति में अन्य व्यक्ति की उक्ति को उलटकर श्रोता भिन्न अर्थ कर देता है।

काकुवक्रोक्ति एवं काक्वाक्षिप्त व्यंग्य—काकुवक्रोक्ति में अन्य के कथन का भिन्नार्थ कल्पित किया जाता है, अपनी उक्ति का नहीं। पर, काक्वाक्षिप्त व्यंग्य में अपने कथन का भिन्नार्थ किया जाता है।

वक्रोक्ति और अभिव्यंजना—कुंतक के वक्रोक्तिवाद के साथ क्रोचे (इटली के प्रसिद्ध दार्शनिक एवं कलाशास्त्री, जिन्होंने सौंदर्यशास्त्र (एस्थेटिक्स) नामक ग्रंथ का प्रणयन किया है। समय १८६६-१९५४ ई०) के अभिव्यंजनावाद की चर्चा हिंदी के आलोचकों ने की है। सर्वप्रथम आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अभिव्यंजनावाद को वक्रोक्तिवाद का विलायती उत्थान कहा था, तभी से इस विषय पर विद्वानों का ध्यान गया। शुक्लजी के इस कथन का खंडन बाबू गुलाब राय, डॉ० नगेंद्र तथा आचार्य बलदेव उपाध्याय प्रभृति विद्वानों ने किया है। इस संबंध में डॉ० नगेंद्र का कहना है कि "शुक्लजी की इस उक्ति को भी हम साधारण अर्थवाद के रूप में ही ग्रहण कर सकते हैं। इससे आगे नहीं। क्योंकि, इन दोनों में कोई प्रत्यक्ष संबंध मानना अर्थात् क्रोचे को किसी प्रकार भी कुंतक का ऋणी मानना हास्यास्पद होगा"—रीति-काव्य की भूमिका, पृ० १०८

कुंतक और क्रोचे के विचारों का तुलनात्मक विवेचन करने के पूर्व अभिव्यंजनावाद (Expressionism) को समझना आवश्यक है। क्रोचे मूलतः दार्शनिक हैं और कुंतक काव्यमीमांसक। कुंतक ने जहाँ काव्य में कवि-व्यापार का प्रधानता प्रदर्शित की है, वहाँ क्रोचे ने अभिव्यंजना-व्यापार को काव्य का प्रधान तत्त्व स्वीकार किया है।

क्रोचे का दर्शन 'मानसदर्शन' कहा जाता है। उसने आत्मा की दो क्रियाएँ मानी हैं—विचारात्मक एवं भावात्मक।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विचारात्मक क्रिया भी दो प्रकार की है—सहजानुभूति तथा तर्क। सहजानुभूति को स्वयंप्रकाश्य ज्ञान या कल्पना-द्वारा प्राप्त ज्ञान कहते हैं। व्यवहारात्मक क्रिया के दो भेद हैं—आर्थिक तथा नैतिक। कला का प्रत्यक्ष संबंध सहजानुभूति के साथ होता है और सहजानुभूति केवल अभिव्यंजना ही है। अभिव्यंजना के अतिरिक्त कला का कोई रूप नहीं होता। अभिव्यंजना मूल रूप से आध्यात्मिक क्रिया है और कलाकृति उसका मूर्त्त भौतिक रूप। अभिव्यंजना का आधार कल्पना है और असफल अभिव्यंजना को कला नहीं कहा जा सकता। सौंदर्य अभिव्यंजना की सफलता का नाम है और उसकी श्रेणियाँ नहीं होतीं। क्रोचे ने अभिव्यंजना को एक स्वतंत्र इकाई का रूप दिया है, जिसे वर्गों में विभाजित नहीं किया जा सकता; उसमें अलंकार तथा अलंकार्य में भेद नहीं माना जा सकता। क्रोचे ने अनुवाद को भी व्यर्थ माना है अर्थात् उसके अनुसार अनुवाद असंभव है; क्योंकि अनुवादक की सहजानुभूति कवि की सहजानुभूति नहीं हो सकती। वह शैली तथा कवि के व्यापार की भी स्वतंत्र सत्ता नहीं मानता और काव्य में वस्तु तथा अभिव्यंजना में अभेद स्वीकार करता है। अभिव्यंजना केवल एक अविभाज्य रूप है।

कुंतक और क्रोचे के सिद्धांत-साम्य—कुंतक और क्रोचे दोनों ने अभिव्यंजना को काव्य का जीवनाधायक तत्त्व माना है। कुंतक की वैदग्ध्यभंगीभणिति या वक्र उक्ति मूल रूप से अभिव्यंजना ही है। दोनों ने काव्य में वस्तु की अपेक्षा अभिव्यंजना की महत्ता स्थापित की है; क्योंकि इनके अनुसार सफल अभिव्यंजना में ही सौंदर्य निहित रहता है। दोनों ने सौंदर्य की श्रेणियों को अमान्य ठहरा दिया है; क्योंकि सफल अभिव्यंजना की कोई श्रेणी नहीं होती। कुंतक ने काव्य में हृदयोल्लास उत्पन्न करनेवाले तत्त्व को ही वक्रोक्ति कहा है।

न च रीतीनाम् उत्तमाधममाध्यम भेदेन वैविध्यम् व्यवस्थापयितुम् न्याय्यम्।

The beautiful does not possess degree, for there is no conceiving a beautiful that is more beautiful, an expressive that is more expressive and an adequate that is more adequate.

दोनों को काव्य में कल्पना-तत्त्व का प्राधान्य मान्य है। कुंतक कविव्यापार तथा उत्पाद्य-लावण्य के द्वारा कल्पना की प्रधानता घोषित करते हैं। क्रोचे की सहजानुभूति कल्पनाश्रित है। दोनों ही कलावादी चिंतक हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वैषम्य—अभिव्यंजनावाद में अभिव्यक्ति के अतिरिक्त उसका कोई उद्देश्य नहीं होता। अभिव्यंजना की सफलता में ही उसका उद्देश्य निहित रहता है अर्थात् अभिव्यंजना का उद्देश्य अपने आप है, वह कला कला के लिए है, इस विचार का पोषक है। वह आनंद को ही अपना मुख्य लक्ष्य मानता है। वक्रोक्तिवाद में उक्तिवक्रता की प्रमुखता है तो अभिव्यंजनावाद में केवल उक्ति की।

कुंतक और क्रोचे दोनों की विचारधाराएँ भिन्न हैं। उनके विचारों में साम्य की अपेक्षा वैषम्य अधिक है। एक दार्शनिक है और दूसरा अलंकार-शास्त्री; अतः दोनों के दृष्टिकोण में मौलिक अंतर है। कुंतक का लक्ष्य है—लोकोत्तरचमत्कारकारी वैचित्र्य की सिद्धि के लिए अलंकारशास्त्र की रचना करना और क्रोचे का उद्देश्य कला-दर्शन का निर्माण कर अलंकारशास्त्र का निषेध करना है। कुंतक ने कवि-व्यापार को काव्य का सर्वस्व माना है तो क्रोचे ने सहजानुभूति को उसका (काव्य का) प्राण स्वीकार किया है। वक्रोक्ति-वाद अलंकार को महत्त्व देता है; पर अभिव्यक्तिवाद में उसके अस्तित्व को अमान्य ठहरा दिया गया है।

क्रोचे के विवेचन का मुख्य आधार उक्ति है; वहाँ वक्रता तथा वार्त्ता में अंतर नहीं माना गया है; पर कुंतक चमत्कारपूर्ण उक्ति (वक्रता) तथा चमत्काररहित उक्ति (वार्त्ता) में अंतर स्थापित करते हैं। वे अनेक प्रसिद्ध अलंकारों को इसलिए स्वीकार नहीं करते, क्योंकि उनमें चमत्काराभाव है। कुंतक ने आनंद को सौंदर्य की सिद्धि तथा उसका कारण भी माना है; जबकि क्रोचे सौंदर्य एवं उसके स्वरूप अभिव्यंजना का उद्देश्य अपने आपको मानते हैं। कुंतक ने आह्लादकत्व को सौंदर्य का निर्णायक गुण माना है अर्थात् अर्थ की रमणीयता उसके सहृदय आह्लादकत्व में सन्निहित है। क्रोचे ने काव्य का उद्देश्य माना है आत्मा का विशदीकरण; पर कुंतक चतुर्वर्गफल-स्वाद से भी अधिक आनंद को महत्त्व देते हैं। इस प्रकार अभिव्यंजनावाद का वक्रोक्ति-सिद्धांत के साथ प्रत्यक्ष साम्य नहीं है।

वक्रोक्ति और अलंकार—आचार्यों ने अलंकार को काव्य की चारुता का हेतु मानकर इसे बहिरंग निरूपक तत्त्व के रूप में मान्यता प्रदान की है। कुंतक वक्रोक्ति को काव्य का प्राण या जीवन मानते हुए भी इसे अलंकार का पद देते हैं। इस प्रकार यह अलंकार-सिद्धांत का ही रूपांतर सिद्ध होता है। वक्रोक्ति को विचित्राभिधा कहकर उसमें काव्य-कौशल के उपादान को

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रतिष्ठित किया गया है अर्थात् उसका सौंदर्य अभिधागत है। अलंकार का चमत्कार भी अभिधाश्रित होता है; अतः दोनों में साम्य दिखाई पड़ता है। अलंकार का तत्त्व है विच्छित्ति या वैचित्र्य—वैचित्र्यमलंकारः—और वक्रोक्ति भी विलक्षण या विचित्राभिधा होती है, फलतः दोनों एक ही तत्त्व के दो रूप सिद्ध होते हैं। पर, विचार करने से दोनों में भिन्नता परिलक्षित होती है। यद्यपि अलंकार और वक्रोक्ति दोनों में ही उक्तिवैचित्र्य को परम तत्त्व माना गया है। वक्रोक्ति को अलंकार-सिद्धांत का रूपांतर नहीं स्वीकार किया जा सकता। वक्रोक्ति में रस की महत्ता स्वीकार कर उसे परम तत्त्व या उपादान का पद दिया गया है, जब कि अलंकार-सिद्धांत रस को अलंकार का अंग मानता है अर्थात् रसवत् को अलंकार्य न मानकर अलंकार माना गया है। वक्रोक्ति-सिद्धांत 'रसवत्' को अलंकार्य स्वीकार करता है। वक्रोक्ति की परिधि अत्यंत व्यापक है और उसकी व्याप्ति काव्य के सूक्ष्म तत्त्व वर्ण से लेकर पद, प्रत्यय, वाक्य, प्रकरण एवं प्रबंध जैसे महान् अवयव में दिखाई पड़ती है। अलंकार-संप्रदाय में स्वभावोक्ति को निकृष्ट तत्त्व के रूप में स्वीकृति मिली हैं, जबकि वक्रोक्ति-सिद्धांत उसे अलंकार्य-रूप में प्रतिष्ठित कर उसे उत्कृष्ट एवं काम्य मानता है। अलंकार काव्य के बाह्य शोभाधायकत्व तक ही सीमित है, जबकि वक्रोक्ति काव्य के अंतरंग उपादान के रूप में प्रस्तुत की गई है। वक्रोक्ति-सिद्धांत अलंकार की अपेक्षा सूक्ष्म, पूर्ण एवं उदारवादी है। उसका प्रवेश काव्य के सूक्ष्मतम अवयव से लेकर महत्तम अवयव तक है, जब कि अलंकार काव्य के बाह्य चाकचिक्य या चमत्कृति में ही उलझकर रह जाता है।

वक्रोक्ति और औचित्य—वक्रोक्ति-सिद्धांत में औचित्य को अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया गया है। औचित्य के प्रति कुंतक ने पद-पद पर समादर का भाव प्रदर्शित किया है। काव्य के लक्षण तथा वक्रोक्ति के भेदों में औचित्य का आधार ग्रहण कर उसकी महत्ता प्रतिष्ठित की गई है। कुंतक ने स्पष्टतः स्वीकार किया है कि औचित्य का किंचिन्मात्र अभाव भी सहृदय की आह्लादकता में बाधा उपस्थित करनेवाला है—

उचिताभिधानजीवितत्वात् वाक्यस्याप्येकदेशेऽप्यौचित्यविरहात् तद्विदाह्लादकारित्वहानिः। —१/५७ की वृत्ति।

वक्रोक्ति के भेदों के वर्णन में पद, वाक्य, प्रबंध, गुण, अलंकार, क्रिया, कारक, लिंग, वचन, विशेषण आदि में औचित्य की स्थिति मानी गई है। कुंतक औचित्य को वक्रोक्ति का अनिवार्य तत्त्व मानते हैं; पर वे इसे वक्रोक्ति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का पर्याय नहीं कहते। उनके अनुसार काव्य के सौंदर्य को अक्षुण्ण रखने में औचित्य की भूमिका अनिवार्य तत्त्व के रूप में मान्य है। कुंतक एवं क्षेमेंद्र; दोनों ने ही यथानुरूप कथन को औचित्य का मूलाधार माना है। औचित्य को वक्रोक्ति का जीवन-प्राण स्वीकार कर उसका महत्त्व दर्शाया गया है। दोनों के दृष्टि-कोण में अंतर यह है कि वक्रोक्तिवाद में रोमानी काव्यरूप की प्रतिष्ठा है तो औचित्य में विचारगत सौष्ठव पर बल दिया जाता है। कुंतक और क्षेमेंद्र दोनों ही काव्य के सूक्ष्मतम तत्त्व से लेकर महत्तम तत्त्व तक अपने सिद्धांत की परिधि विस्तृत करते हैं।

वक्रोक्ति और ध्वनि—वक्रोक्तिसिद्धांत का उदय ध्वनिसिद्धांत के प्रत्युत्तर में हुआ था। यद्यपि कुंतक ने ध्वनि-सिद्धांत के खंडन के लिए ही 'वक्रोक्ति-जीवित' की रचना की थी और ध्वनिविरोधी शीर्ष आचार्यों में उनकी गणना होती है; पर उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से ध्वनि की आलोचना नहीं की है। उन्होंने आनंदवर्द्धन द्वारा प्रस्तुत ध्वनि के अनेक उदाहरणों को वक्रता का उदाहरण मानकर ध्वनि का अंतर्भाव वक्रोक्तिसिद्धांत में करने का प्रयास किया था। वक्रोक्ति और ध्वनि के लक्षण में साम्य दिखलाई पड़ता है। कुंतक के अनुसार प्रसिद्ध कथन से भिन्न विलक्षण वर्णन-प्रकार या विचित्र अभिधा ही वक्रोक्ति है, जो प्रतीयमान अर्थ के निकट आ जाती है। ध्वनि में वाच्यार्थ से भिन्न व्यंग्यार्थ या प्रतीयमान अर्थ पर वल दिया जाता है। आनंदवर्द्धन ने 'उपसर्जनी कृतस्वार्थों' शब्दार्थ को ध्वनि का रूप दिया है तो कुंतक 'शास्त्रादिप्रसिद्ध शब्दार्थोपनिबंध व्यतिरेकि' में वक्रोक्ति का रूप मानते हैं। दोनों में वैचित्र्य तत्त्व पर समभाव से बल दिया जाता है। कुंतक की 'विचित्राभिधा' ध्वनिकार के 'अन्यदेववस्तु' का ही प्रतिरूप है।

दोनों में अंतर यह है कि ध्वनिवादी का वैचित्र्य व्यंजनागत है तो कुंतक ने उक्ति-वैचित्र्य को अभिधागत माना है।

वक्रोक्ति के भेद-प्रभेद—आचार्य कुंतक ने वक्रोक्ति या वक्रता के भेदों का निरूपण अत्यंत वैज्ञानिक ढंग से किया है। उनके अनुसार वक्रता के प्रमुख छह प्रकार हैं और उनके भी अनेक प्रभेद हैं। मुख्य भेद हैं—वर्णविन्यास-वक्रता, पदपूर्वार्द्ध वक्रता, पदपरार्द्ध वक्रता, वाक्यवक्रता, प्रकरणवक्रता एवं प्रबंधवक्रता। इन भेदों का प्रतिपादन क्रमिक एवं वैज्ञानिक पद्धति पर हुआ है, जिसमें काव्य के सूक्ष्मतम अवयव वर्ण से लेकर उसके महत्तम रूप प्रबंध तक में उसकी व्याप्ति दिखलाई गई है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१. **वर्णविन्यासवक्रता**—जब एक, दो या अनेक वर्णों की आवृत्ति व्यवधान से या अव्यवधान से हो तो वर्णविन्यासवक्रता होती है। इस वक्रता का संबंध वर्णों के विन्यास या अक्षरों के सामान्य प्रयोग करने के ढंग से है। इसके अंतर्गत कुंतक ने अनुप्रास एवं यमक का अंतर्भाव किया है।

२. **पदपूर्वार्द्ध वक्रता**—पद अनेक वर्णों के समुदाय को कहते हैं। प्रातिपदिक सुबंत होने पर एवं धातु तिगंत होने पर पद की संज्ञा प्राप्त करते हैं। पद के दो अग हैं—प्रकृति तथा प्रत्यय। कुंतक प्रकृति को पदपूर्वार्द्ध तथा प्रत्यय को पदपरार्ध की संज्ञा प्रदान करते हैं। पदपूर्वार्द्ध की वक्रता में प्रातिपदिक की वक्रता होती है। इसमें प्रातिपदिक या धातु के वैचित्र्य के कारण उत्पन्न होनेवाली वक्रता का वर्णन होता है। इसके आठ उपभेद हैं—रूढ़िवैचित्र्यवक्रता, पर्यायवक्रता, उपचारवक्रता, विशेषणवक्रता, संवृत्तिवक्रता, वृत्तिवक्रता, लिंगवैचित्र्यवक्रता एवं क्रियावैचित्र्यवक्रता।

३. **पदपरार्द्ध वक्रता**—इसे प्रत्ययवक्रता भी कहा जाता है। इसमें प्रत्यय की वक्रता या रमणीयता का वर्णन होता है। इसके छह प्रकार हैं—कालवैचित्र्यवक्रता, कारकवक्रता, वचनवक्रता, पुरुषवक्रता, उपग्रहवक्रता और प्रत्ययवक्रता।

४. **वाक्यवक्रता**—जब संपूर्ण वाक्य के कारण रमणीयता या विच्छित्ति (वक्रता) का आधान किया जाय तो वाक्यवक्रता होती है। इसके अंतर्गत कुंतक ने समस्त अर्थालंकारों को समाविष्ट किया।

५. **प्रकरणवक्रता**—जब किसी प्रबंध के एक देश या कथा के एक अंश (प्रकरण) के कारण सौंदर्याधान हो तो प्रकरणवक्रता होती है। प्रबंध के किसी प्रकरण-विशेष में वैचित्र्य होने पर यह भेद होता है। इसकी भी कई स्थितियाँ होती हैं। भावपूर्ण स्थिति की उद्‌भावना, उत्पाद्यलावण्य-प्रधान कार्य से संबद्ध प्रकरणों का उपकार्य-उपकारक भाव, विशिष्ट प्रकरण की अतिरंजना, जलक्रीड़ा प्रभृति रमणीय (रोचक) प्रसंगों का सविस्तर वर्णन, प्रधान उद्‌देश्य की सिद्धि के लिए सुंदर अप्रधान प्रसंग की उद्‌भावना, गर्भांक तथा प्रसंगों का पूर्वापर अन्विति-क्रम।

६. **प्रबंधवक्रता**—इसके अंतर्गत महाकाव्य, नाटक आदि के वास्तु-कौशल का वर्णन होता है। इसमें प्रबंध के समस्त सौंदर्य का समावेश हो जाता है। इसके छह प्रकार किए गए हैं—

क. मूलरस-परिवर्त्तनवक्रता,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ख. समापनवक्रता,

ग. कथाविच्छेदवक्रता,

घ. आनुषंगिकफलवक्रता,

ङ. नामकरणवक्रता,

च. तुल्यकथावक्रता।

[वक्रोक्ति के सभी भेदों का विस्तृत विवेचन उन भेदों के अक्षरों के सम्मुख अन्यत्र देखें]

वक्रोक्ति और रस—कुंतक ने वक्रोक्ति को रस का जीवित स्वीकार करते हुए भी रस को महत्त्व दिया है। उनकी प्रकरण-वक्रता एवं प्रबंध-वक्रता का मूलाधार रस ही है अर्थात् रस के अभाव में इन प्रकारों की कल्पना असंभव है। काव्य के स्वरूप, प्रयोजन, एवं गुण का वर्णन करते हुए रस को यथेष्ट स्थान प्रदान किया गया है। काव्य के लक्षण के अतर्गत रस का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए कुंतक का कहना है कि उसे सहृदयहृदयाह्लादकारी होना चाहिए।

शब्दार्थौ सहितौ वक्र कविव्यापारशालिनि।
बंधे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाह्लादकारिणि॥

—वक्रोक्तिजीवितम् १/१०

काव्य के प्रयोजन का निरूपण करते हुए कुंतक कहते हैं कि सहृदयों के हृदय में धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षस्वरूप फल को तिरस्कृत करनेवाला काव्य का रस अलौकिक आनंद देनेवाला है।

चतुर्वर्गफलास्वादमप्यतिक्रम्यतद्विदाम्।
काव्यामृत रसेनांतश्चमत्कारो वितन्यते॥ —वही, १/५

काव्य का सर्वोत्कृष्ट रूप प्रबंधवक्रता है और उसका प्राणतत्त्व है रस। कुंतक के मतानुसार निरंतर रस की धारा बहानेवाले संदर्भों से पूर्ण कवियों की गिरा कथा मात्र का आश्रय प्राप्त कर जीवित नहीं रह सकती।

निरंतररसोग्दारगर्भसंदर्भनिर्भराः।
गिरः कवीनां जीवंति न कथामात्रमाश्रिताः॥ —वही, ४/११

कुंतक रस को व्यंग्य मानते हैं, अन्य अलंकारवादी आचार्यों की भाँति वाच्य नहीं। अलंकार संप्रदाय के आचार्यों की भाँति वे रसवत् को अलंकार स्वीकार न कर अलंकार्य के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रस को परम तत्त्व मानते हुए भी कुंतक ने वक्रोक्ति को ही काव्य का जीवनाधायक तत्त्व स्वीकार किया है। इसका कारण यह है कि वे वक्रोक्ति को अलंकार के रूप में स्वीकार न कर काव्यकला या कविकौशल का पर्याय मानते हैं। उन्हें वक्रोक्ति के तत्त्व के रूप में ही रस की महत्ता मान्य है अर्थात् वे वक्रोक्ति को कला का रूप देकर उसके अन्य तत्त्वों—जैसे शब्द, अर्थ, वाक्य आदि—की भाँति रस को भी उसकी समृद्धि का एक प्रमुख उपादान स्वीकार करते हैं। उन्हें रस की महत्ता वक्रोक्ति की सीमा में ही मान्य है, उससे पृथक् नहीं। काव्य का जीवन है वक्रोक्ति और उसकी प्राणचेतना रस है अर्थात् वक्रोक्ति की जीवन-शक्ति रस से प्राप्त होती है। कुंतक वक्रोक्ति के अभाव में रस की स्थिति को स्वीकार नहीं करते अर्थात् रस का महत्त्व वक्रोक्ति के ही कारण है, उसे वक्रोक्ति के अधीन ही रहना पड़ता है। वक्रता काव्य का अनिवार्य उपादान है, उसके बिना काव्य की कल्पना नहीं की जा सकती; किंतु रस के अभाव में भी काव्य में प्राण-चेतना का संचार हो सकता है। इस प्रकार वे रस की स्थिति को अपेक्षाकृत गौण मान लेते हैं।

वक्रोक्ति और रीति—रीति-सिद्धांत में रीति को काव्य की आत्मा माना गया है; किंतु वक्रोक्ति-सिद्धांत के अनुसार वक्रोक्ति ही काव्य का जीवित या प्राण है। वक्रोक्ति सिद्धांत के अंतर्गत रीति वक्रोक्ति का एक प्रकार मानी गई है। कुंतक रीति के लिए संघटना शब्द प्रयुक्त करते हैं तथा सुकुमार, विचित्र एवं मध्यम उसके तीन भेदों का उल्लेख करते हैं। मार्ग को कविप्रस्थान हेतु या काव्य-रचना का कारण माना गया है—**संप्रति तत्र ये मार्गाः कविप्रस्थानहेतवः**, वक्रोक्तिजीवितम् १/२४। कुंतक के अनुसार जिस मार्ग या विधि का आश्रय ग्रहण कर कवि काव्य-रचना में प्रवृत्त हो, उसे मार्ग कहा जाता है। वे मार्ग के वर्गीकरण का आधार कवि-स्वभाव को मानते हैं, प्रादेशिक सीमा को नहीं।

दोनों ही सिद्धांत संस्कृत में देहवादी तत्त्व के रूप में मान्य हैं। उनके आधार भूत-सिद्धांतों में अंतर पड़ता है। वक्रोक्ति-सिद्धांत कवि-स्वभाव को प्रमुखता देकर काव्य में व्यक्तित्त्व की प्रतिष्ठा करता है, जबकि रीतिवाद रचनानैपुण्य को ही काव्य का सर्वस्व स्वीकार कर व्यक्तित्त्व को उपेक्षित कर देता है। वक्रोक्ति-सिद्धांत में रस एवं ध्वनि दोनों के प्रति अधिक निष्ठा प्रदर्शित की गई है; किंतु रीति-सिद्धांत गुण के बीस प्रकारों में से अर्थकांति नामक गुण का अंग रस को मानकर उसको गौण स्थान दे देता है। दोनों सिद्धांतों के तुलनात्मक विवेचन के पश्चात् यह निष्कर्ष निकलता है कि रीति की अपेक्षा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वक्रोक्ति का क्षेत्र अधिक विस्तृत है। रीति केवल पद-रचना तक परिमित है, किंतु वक्रोक्ति का साम्राज्य वर्ण, पद, वाक्य, प्रकरण एवं प्रबंध तक प्रसारित है।

वक्रोक्तिगर्विता—नायिका का भेद-विशेष। [दे० **नायिका-भेद**] पति के प्रेम अथवा अपने रूप के कारण गर्व करनेवाली नायिका गर्विता या वक्रोक्ति-गर्विता है। भानुदत्त ने इसे वक्रोक्ति-गर्विता कहा है। यह अपने सौंदर्य तथा नायक के प्रेम का गर्व करती है और उसे वक्रोक्ति द्वारा व्यक्त करती है।

स्वतादात्म्यस्ववक्रोक्तिप्रकाश्यप्रेमसौंदर्यान्यतरप्रयोज्यगर्वाभिधिचित्तवृत्ति-विशेषवत्त्वाभ्यां नायिकाविशिष्टत्वं वक्रोक्तिगर्वितात्वम्। —रसमंजरी, पृ० ७८

रीतिकालीन आचार्यों ने इसे गर्विता कहा है। वक्रोक्तिगर्विता के दो भेद माने गए हैं—प्रेमगर्विता और रूप या सौंदर्यगर्विता।

वक्रोक्तिगर्विता द्विविधा—प्रेमगर्विता सौंदर्यगर्विता च।

—रसमंजरी, पृ० ७८

वह बक्रोकति-गर्विता, द्विबिध कहत रस-धाम।
प्रेमगर्विता एक पुनि, रूप-गर्विता नाम॥

—जगद्विनोद, १३३

१. **प्रेमगर्विता**—अपने ऊपर पति के प्रेम (प्रेमातिशय) के कारण गर्व करनेवाली नायिका प्रेमगर्विता है।

निज नायक के प्रेम कों गरब जनावै बाल।
प्रेमगरबिता कहते हैं तासों सुमति-रसाल॥ —रसराज, १०१

उदाहरण—

क. वपुषि तव तनोति रत्नभूषां
प्रभुरिति धन्यतमाऽसि किं ब्रवीमि।
सखि ! तनुनयनांतरालभीरुः
कलयति मे न विभूषणानि कांतः॥

—रसमंजरी, ३४

"हे सखि ! सचमुच तू धन्य है; क्योंकि तुम्हारा प्रिय तुम्हें रत्नों का आभूषण बनाकर देता है। किंतु, मुझमें इतनी शक्ति कहाँ है, जो मैं तुम्हारी बड़ाई करूँ। मेरा प्रिय इसलिए मेरे लिए रत्नाभूषण नहीं बनवाता, क्योंकि वे (गहने) मेरे शरीर और उसकी दृष्टि के बीच परदा बन जाते हैं।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ख. मेरे हँसे हँसत हैं मेरे बोले बोलत हैं
　　　　मोही कों जानत तन मन धन प्रान री ।
कबि मतिराम भौंह टेढ़ी किये हासीहू में
　　　　छोड़ देत भूषन बसन खान पान री ॥
मोतें प्रानप्यारी प्रानप्यारे के न और कोऊ
　　　　तासों रिस कीजै कहौ कहाँ की सयान री ।
मैन कामिनी के मैन काहू के न रूप रीझे
　　　　मैं न काहू के सिखाएँ आनो मन मान री ॥

—रसराज, १०२

२. सौंदर्य या रूपगर्विता—अपने सौंदर्य या रूप का गर्व करनेवाली नायिका सौंदर्यगर्विता होती है ।

जाकें अपने रूप को अति ही होय गुमान ।
रूपगरबिता कहत हैं तासों परम सुजान ॥

—रसराज, १०४

उदाहरण—

क. कलयति कमलोपमानपक्ष्णोः
　　　　प्रथयति वाचि सुधारसस्य साम्यम् ॥
कथय सखि ! किमाचरामि कांते
　　　　समजनि तत्र सहिष्णुतैव दोषः ॥ ३५

"हे सखि ! तू ही बता मैं अपने प्रिय के विषय में क्या करूँ ? वह मेरी आँखों को कमल के सदृश कहता है और वाणी में अमृत रस की समता प्रकट करता है। मैं यह सब कुछ जो सहन करती चली जा रही हूँ, यही मेरा भारी दोष है, नहीं तो मैं उसे अवश्य ही इसके लिए दंड देती ।"

ख. नेह-भरी बतियाँ कहि कै नित सौतिन की छतियाँ दहिबो करौ ।
　　चंद-मुखी कहें होती दुखी तौ न कोऊ कहैगो सुखी रहिबो करौ ॥

—जगद्विनोद, १३८

वक्रोक्तिजीवित—यह वक्रोक्ति-संप्रदाय का प्रस्थान ग्रंथ है, जिसके रचयिता आचार्य कुंतक या कुंतल हैं। [दे० कुंतक] 'वक्रोक्तिजीवित' चार उन्मेषों में विभक्त है और इसके तीन विभाग हैं—कारिका, वृत्ति तथा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उदाहरण। कारिका और वृत्ति के रचयिता स्वयं कुंतक हैं; पर उदाहरण विभिन्न ग्रंथों से ग्रहण किए गए हैं। प्रथम उन्मेष में काव्य का प्रयोजन, लक्षण तथा ग्रंथ के प्रतिपाद्य अर्थात् छह प्रकार की वक्रता का निरूपण है। द्वितीय उन्मेष में षड्विध वक्रताओं में से तीन—वर्णविन्यासवक्रता, पदपूर्वार्द्ध-वक्रता तथा प्रत्ययवक्रता—का विस्तृत विवेचन है। तृतीय उन्मेष में वाक्यवक्रता का मीमांसन कर उसीके अंतर्गत अलंकारों का अंतर्भाव किया गया है। चतुर्थ उन्मेष में वक्रोक्ति के शेष दो भेदों—प्रकरणवक्रता और प्रबंधवक्रता का भेदों-सहित विवेचन किया गया है। 'वक्रोक्तिजीवित' की कोई प्राचीन टीका प्राप्त नहीं होती। इसका प्रथम प्रकाशन कलकत्ता ओरियंटल सीरिज से १९२३ ई० में (डॉ० एस० के० डे द्वारा संपादित) हुआ था। पुनः आचार्य विश्वेश्वर-कृत हिंदी अनुवाद तथा डॉ० नगेंद्र की विस्तृत भूमिका के साथ 'वक्रोक्ति-जीवित' का प्रकाशन हुआ। इसका दूसरा हिंदी अनुवाद पं० राधेश्याम मिश्र ने किया है, जो चौखंबा संस्कृत सीरिज, वाराणसी से प्रकाशित है।

वक्रोक्ति-संप्रदाय—वक्रोक्ति-संप्रदाय का उन्नायक होने का श्रेय कुंतक को है; किंतु उसका रूप पूर्ववर्ती आचार्यों के ग्रंथों में विद्यमान है। कुंतक ने विचार-परंपरा से प्राप्त विवेचन को नवीन काव्य-चिंतन के रूप में प्रतिष्ठित कर वक्रोक्ति को सिद्धांत का स्वरूप प्रदान किया। 'अथर्ववेद' में वक्र एवं वक्रा शब्द का प्रयोग कुटिल अर्थ में प्राप्त होता है—

अयंयोवक्रोविपरुर्व्यङ्गो मुखानिवक्रा वृजिना कृणोषि।

७/५८/४

महाकवि कालिदास के 'मेघदूत' में 'वक्रः पंथा' शब्द टेढ़ा के अर्थ का द्योतक है—

वक्रः पंथा यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशाम्।

—पूर्वमेघ २९

न केवल आचार्यों ने, अपितु संस्कृत के कवियों ने भी वक्रोक्ति के व्यापक अर्थ की कल्पना की थी। महाकवि बाणभट्ट ने वाक्छल, क्रीडालाप, परिहास-जल्पित प्रभृति अर्थों में वक्रोक्ति का व्यवहार किया है—

'वक्रोक्ति-निपुणेन—विलासिजनेन', वक्रोक्ति-निपुणेन आख्यायिकाख्यान-परिचय चतुरेण।

—कादंबरी पूर्व, पृ० ८७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इन अर्थों के अतिरिक्त बाण चमत्कारक शैली एवं वचनविदग्धता के अर्थ में भी वक्रोक्ति का प्रयोग करते हैं। अमरुक कवि ने वक्रोक्ति को परिहास-कथन के रूप में प्रयुक्त किया है—

सा पत्युः प्रथमापराधसमये सख्योपदेशं विना,
नो जानाति स विभ्रमांग वलना वक्रोक्ति संसूचकम् ॥

—शतक, २३

भामह—वक्रोक्ति का सर्वप्रथम काव्यशास्त्रीय रूप आचार्य भामह की रचना में मिलता है।

वे उसे समस्त अलंकारों की चारुता का हेतु मानते हुए कवि-द्वारा इसके समावेश की चर्चा करते हैं। वे वक्रोक्ति का अभिप्राय शब्द एवं अर्थ की वक्रता से लेते हैं—

वाचां वक्रार्थं शब्दोक्तिरलंकाराय कल्पते ॥

—काव्यालंकार ५/६६

सैषा सर्वैव वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते ।
यत्नोऽस्यां कविना कार्यः कोऽलंकारोऽनया बिना ॥

—वही, २/८५

भामह के अनुसार वक्रोक्ति अतिशयोक्ति का पर्याय है। उन्होंने समस्त अलंकारों का जीवनाधायक तत्त्व स्वीकार कर वक्रोक्ति की महत्ता प्रदर्शित की तथा साथ-ही-साथ कुंतक की मीमांसा का सबल स्रोत उपस्थित किया। वक्रोक्ति के अभाव के कारण भामह हेतु, सूक्ष्म और लेश के अलंकारत्व पर प्रश्नवाचक चिह्न लगा देते हैं। उनके अनुसार वक्रोक्ति में ही काव्य का समस्त सौंदर्य निहित है। वे न केवल स्फुट अलंकारों में अपितु काव्य के समस्त रूपों—विशेषतः अलंकार एवं नाटक—में वक्रोक्ति का साम्राज्य या चमत्कार पाते हैं। युक्तं वक्रस्वभावोक्त या सर्वमेवैतदिष्यते १/३०। वक्रोक्ति से रहित कथन को भामह ने 'वार्ता' की संज्ञा दी है। उपर्युक्त कथन के आधार पर भामह की वक्रोक्ति-विषयक धारणाएँ तीन प्रकार की दिखाई पड़ती हैं—

क. वक्रोक्ति का मूल गुण है शब्द एवं अर्थ की विचित्रता

ख. अर्थ का विचित्र रूप से भावन ही इसका प्रयोजन है।

ग. वक्रोक्ति का महत्त्व—इसके बिना अलंकार चमत्कार-शून्य हो जाते

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हैं; अतः इसका महत्त्व सर्वव्यापी है। वक्रोक्ति से रहित वाक्य में काव्यत्व आता ही नहीं और वह 'वार्त्ता' मात्र हो जाता है। भामह वक्रोक्ति को काव्य-सौंदर्य से अभिन्न मानकर उसमें रस, अलंकार तथा स्वभाव-कथन का अंतर्भाव कर देते हैं।

दंडी—दंडी का वक्रोक्ति-निरूपण भामह से साम्य रखते हुए भी भिन्न है। उन्होंने इसके स्वरूप को अपेक्षाकृत संकीर्ण बनाते हुए इसमें स्वभाव-कथन का अंतर्भाव नहीं किया। दंडी ने वक्रोक्ति एवं स्वभावोक्ति को 'आद्य अलंकृति' से विभूषित कर वाङ्गमय के दो प्रकार माने हैं—वक्रोक्ति एवं स्वभावोक्ति।

द्विधा भिन्नं स्वभावोक्तिवक्रोक्तिश्चेति वाङ्गमयम्।—काव्यादर्श, २/२६२

स्वभावोक्तिश्च जातिश्चेत्याद्या सालंकृतिर्यथा॥ —वही, २/८

स्वभावोक्ति का साम्राज्य तो शास्त्रों में है और वक्रोक्ति में सहज वर्णन न होकर चमत्कारपूर्ण उक्ति होती है। इसमें उपमादि सभी अलंकार आ जाते हैं और इसके सभी प्रकार किसी-न-किसी रूप में श्लेष से अनुप्राणित होते हैं।

शास्त्रेष्वस्यैव साम्राज्यं। २/१३

श्लेषो सर्वाषु पुष्णाति प्रायः वक्रोक्तिषु श्रियम्॥ २/३६३

वक्रोक्ति शब्देन उपमादयः संकीर्णपर्यंता अलंकार उच्यंते। हृदयंगमा टीका

इस प्रकार दंडी भी भामह की भाँति वक्रोक्ति को अतिशयोक्ति से अभिन्न स्वीकार करते हैं। वे इसे व्यापक अर्थ में प्रस्तुत करते हुए अलंकार-सामान्य मानते हैं और वक्रोक्ति को सर्वालंकार आधारभूत तत्त्व के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। दंडी के मतानुसार वक्रोक्ति का काव्य में रहना अनिवार्य है। यह स्वभावोक्ति से सर्वथा भिन्न है; क्योंकि वह शास्त्रों का ही सहज माध्यम है, जबकि वक्रोक्ति काव्य का अनिवार्य माध्यम।

वामन—वामन ने वक्रोक्ति को विशिष्ट अलंकार के रूप में वर्णित किया। इनके अनुसार यह सामान्य अलंकार नहीं है। वे इसे अर्थालंकार मानते हैं, शब्दालंकार नहीं। उनके अनुसार सादृश्य 'निबंधनालक्षणा' ही वक्रोक्ति है—

सादृश्याल्लक्षणा वक्रोक्तिः। —काव्यालंकारसूत्र, ४,३८

अर्थात् सादृश्य को लेकर चलनेवाली लक्षणा ही वक्रोक्ति है। वे असादृश्य-निबंधनालक्षणा को वक्रोक्ति नहीं मानते। इस प्रकार वामन की वक्रोक्ति-कल्पना भामह एवं दंडी से सर्वथा पृथक् मार्ग का अनुसरण करती है। इस प्रकार वक्रोक्ति की परिधि परिमित हो जाती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रुद्रट—रुद्रट ने वक्रोक्ति को वाक्छल पर आश्रित शब्दालंकार का स्वरूप प्रदान किया और वह सामान्य अलंकार के पद से च्युत हो गई। उन्होंने इसके दो प्रकार किए—काकुवक्रोक्ति एवं भंगश्लेषवक्रोक्ति। रुद्रट का वक्रोक्ति-विवेचन नवीन अध्याय का सूचक है और इसके द्वारा अलंकारशास्त्र के इतिहास में नवक्रांति का स्फुरण हुआ।

आनंदवर्द्धन—आनंदवर्द्धन ने वक्रोक्ति का स्वतंत्र रूप से विवेचन न कर भामह की ही तद्विषयक स्थापना का समर्थन किया है। वे इसे अतिशयोक्ति से अभिन्न तथा सर्वालंकाररूपा स्वीकार करते हैं। वे इसका चमत्कार कवि-प्रतिभाप्रसूत मानते हैं तथा इसका प्रयोग विषयानुसार करने के पक्ष में हैं। वे इसका नियामक विषय का औचित्य निश्चित करते हैं।

भोज—भोज ने 'सरस्वतीकंठाभरण' एवं 'शृंगारप्रकाश'; दोनों ही ग्रंथों में वक्रोक्ति-विषयक पूर्ववर्ती विवेचनों का सार ग्रहण किया है। वे वचन और काव्य में अंतर स्थापित करते हुए शास्त्र तथा लोक के अवक्रवचन को 'वचन' एवं अर्थवाद आदि की वक्रता को काव्य कहते हैं।

यदवक्रं वचः शास्त्रे लोके च वच एव तत्।
वक्रं यदर्थवादौ तस्य काव्यमिति स्मृतिः॥

—शृंगारप्रकाश, ८/६

वे इसे सर्वालंकाररूपा भी मानते हैं—

इत्येतदपि सर्वालंकार साधारणं लक्षणं अनुसर्तव्यम्। अस्मिन् सति सर्वालंकारजातयो वक्रोक्त्यभिधानवाच्या भवंति। —वही,

भोज ने वाङ्मय के तीन विभाग किए हैं—स्वभावोक्ति, वक्रोक्ति एवं रसोक्ति तथा इन तीनों में रसोक्ति को ही महनीय सिद्ध किया है।

वक्रोक्तिश्च रसोक्तिश्च स्वभावोक्तिश्चेति वाङ्मयम्।
सर्वासु ग्राहिणीं तासु रसोक्ति प्रतिजानते॥

—सरस्वतीकंठाभरण, ५/८

भोज के विवेचन में रस को अधिक महत्त्व मिला और वक्रोक्ति की सीमा क्रमशः संकीर्ण होती गई। आचार्य मम्मट ने शब्दालंकार के रूप में इसका वर्णन कर इसके महत्त्व को कम कर दिया। उनके अनुसार अभिप्रायांतर से कथित वाक्य का यदि श्लेष अथवा काकु-उक्ति के द्वारा अन्यथा योजन हो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तो वहाँ वक्रोक्ति होगी। इसके दो भेद किए गए—श्लेष-वक्रोक्ति एवं काकु-वक्रोक्ति। परवर्ती आचार्यों ने मम्मट का अनुकरण करते हुए वक्रोक्ति की सीमा शब्दालंकार के ही रूप में निर्धारित की और इसका महत्त्व सर्वथा न्यून हो गया। हेमचंद्र, जयदेव, विद्याधर, विद्यानाथ, विश्वनाथ आदि आचार्यों की दृष्टि में वक्रोक्ति शब्दालंकार ही है। रुय्यक एवं अप्पय दीक्षित ने इसे अर्थालंकार भी माना; अतः वक्रोक्ति शब्दालंकार एवं अर्थालंकार के रूप में मान्य हुई।

अन्यथोक्तस्य वाक्यस्य काकुश्लेषाभ्यास् अन्यथायोजनं वक्रोक्तिः।

—अलंकारसर्वस्व, ७७

[वक्रोक्ति के अलंकारत्व के लिए दे० वक्रोक्ति अलंकार]

इस प्रकार वक्रोक्ति काव्य-सौंदर्य के मूलाधार के पद से च्युत होकर अंततः अलंकार के रूप में समादृत हुई। यही वक्रोक्ति के स्खलन का इतिहास है।

वक्रोक्ति-सिद्धांत का उदय ऐसे समय में हुआ ,जब ध्वनि एवं व्यंजना की काव्य में स्थापना हो चुकी थी और इन्हें महत्तर स्थान प्राप्त हो चुका था। ध्वनिवादी आचार्यों ने रस, रीति, अलंकार प्रभृति काव्य-सिद्धांतों का समाहार करते हुए ध्वनि को व्यापक काव्य-चिंतन का स्वरूप प्रदान किया था। उसी समय ध्वनिविरोधी मान्यताओं के रूप में कुंतक का वक्रोक्ति-सिद्धांत एवं महिमभट्ट के अनुमितिवाद की स्थापना हुई। महिमभट्ट ने समस्त ध्वनि-प्रपंच का अंतर्भाव 'अनुमान' में कहते हुए प्रतीयमान या व्यंग्य अर्थ को अनुमेय (गम्य) सिद्ध किया। कुंतक ने भी अप्रत्यक्ष रूप से ध्वनि-सिद्धांत पर प्रहार करने के निमित्त ही वक्रोक्ति-सिद्धांत की उद्भावना की थी और उसके सभी भेदों के अंतर्गत ध्वनि के समस्त भेद-प्रभेदों का अंतर्भाव किया था। यह एक विचित्र संयोग था कि महिमभट्ट एवं कुंतक दोनों ही समसामयिक थे और दोनों ने एकमात्र अभिधा को ही शक्ति मानकर लक्षणा एवं व्यंजना को अभिधा में गतार्थ कर दिया था। कुंतक भी अभिधावादी हैं और उनकी वक्रोक्ति विचित्र प्रकार की अभिधा है। कुंतक ने वक्रोक्ति को व्यापक काव्य-सिद्धांत का रूप देकर उसे ही काव्य की आत्मा सिद्ध किया है। वक्रोक्ति-सिद्धांत की स्थापना अलंकार-सिद्धांत के मंडन एवं ध्वनि-सिद्धांत के खंडन के लिए हुई थी। यह दूसरी बात है कि इसे उतना महत्त्व नहीं प्राप्त हो सका, जितने का यह अधिकारी था। वक्रोक्ति की कल्पना में कवि-कौशल

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

या कवि-व्यापार को अधिक महत्ता प्रदान की गई है; अतः यह अलंकार-सिद्धांत के अति निकट है। ध्वनि-सिद्धांत में अनुभूति एवं कल्पना, दोनों का समन्वय है तो वक्रोक्ति में कलाकारिता एवं रमणीयता (विच्छित्ति) पर बल दिया गया है; फिर भी भारतीय साहित्यशास्त्र की यह एक महनीय देन के रूप में प्रतिष्ठित है। वक्रोक्ति-सिद्धांत में रस, ध्वनि एवं औचित्य का महत्त्व पदे-पदे स्वीकृत है और रस तथा औचित्य तो उसके प्राणतत्त्व के रूप में प्रतिष्ठित हैं; पर इतना होने पर भी कुंतक वक्रोक्ति को ही काव्य का प्राणतत्त्व स्वीकार करते हैं। कुंतक के मतानुसार वक्रोक्ति एक व्यापक काव्य-तत्त्व है; अतः उसके अभाव में काव्य की कल्पना असंभव है। रसादि से रहित होने पर भी कोई रचना वक्रोक्ति के कारण प्राणवंत एवं रमणीय हो सकती है। कुंतक-जैसे प्रतिभाशाली आचार्य के द्वारा विमंडित होकर भी वक्रोक्ति-सिद्धांत कालांतर में अपने पद से स्खलित हो गया और उसे केवल अलंकार का स्थान प्राप्त हुआ।

वक्रोक्ति-सिद्धांत—वक्रोक्ति-सिद्धांत या वक्रोक्ति-संप्रदाय भारतीय आलोचनाशास्त्र या काव्यशास्त्र का नितांत मौलिक एवं प्रौढ़ काव्यसिद्धांत या काव्यचिंतन है, जिसके प्रवर्त्तक या पुरस्कर्त्ता आचार्य राजानक कुंतल या कुंतक हैं। इन्होंने 'वक्रोक्तिजीवित' नामक महनीय ग्रंथ का प्रणयन कर वक्रोक्ति को काव्य की आत्मा घोषित करते हुए नवीन संप्रदाय की स्थापना की है। कुंतक का कृतित्वकाल दशम शती के उत्तरार्द्ध का प्रारंभ है। इनकी एकमात्र रचना 'वक्रोक्तिजीवित' है, जो संप्रति खंडित रूप में उपलब्ध है। कुंतक ने इसे मौलिक और व्यापक काव्य-सिद्धांत के रूप में प्रस्तुत कर उसकी व्याप्ति काव्य के लघुतम अवयव वर्ण से लेकर महत्तम स्वरूप महाकाव्य तक दिखलाई है। वस्तुतः इनका प्रयास वक्रोक्ति को सार्वभौम काव्य-सिद्धांत के रूप में प्रतिष्ठित करने का रहा है और ये उसमें पूर्णकाम सिद्ध हुए हैं। ऐसा कहा जाता है कि वक्रोक्ति-संप्रदाय की स्थापना ध्वनि-सिद्धांत के विरुद्ध हुई थी और कुंतक ने प्रकारांतर से आनंदवर्द्धन द्वारा उपन्यस्त ध्वनि के समस्त उदाहरणों का अंतर्भाव वक्रोक्ति के विभिन्न प्रकारों में कर ध्वनि-सिद्धांत का खंडन किया था ; पर उनका यह कार्य प्रत्यक्ष न होकर परोक्ष है। कुंतक वक्रोक्ति या वक्रता को कवि-कौशल या काव्य-सौंदर्य से अभिन्न मानते हैं; फलतः उन्होंने कवि-कौशल के समस्त प्रसाधनों को वक्रोक्ति में समाहित किया है। 'कवि प्रतिभा के बल पर अपनी कृति में चमत्कार उत्पन्न करने के लिए

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सहज या सचेष्ट रूप में जिन साधनों-प्रसाधनों का उपयोग करता है, वे सभी वक्रोक्ति के भेद हैं। अतएव कुंतक की वक्रोक्ति का साम्राज्य वर्ण-विन्यास से लेकर प्रबंध-कल्पना तक और उधर उपसर्ग, प्रत्यय आदि पदावयवों से लेकर महाकाव्य तक विस्तृत है।"—डॉ० नगेंद्र, वक्रोक्तिजीवित की भूमिका, पृ० ५४

'वक्रोक्तिजीवित' में वक्रोक्ति के छह भेद किए गए हैं—वर्णविन्यासवक्रता, पदपूर्वार्द्धवक्रता, पदपरार्द्धवक्रता, वाक्यवक्रता, प्रकरणवक्रता और प्रबंध-वक्रता। उपर्युक्त सभी भेदों का विस्तार वैज्ञानिक पद्धति पर किया गया है तथा उनमें क्रमबद्धता भी दिखाई पड़ती है। [**समस्त भेदों के विवरण के लिए दे० वक्रोक्ति और उसके प्रकार**]

'वक्रोक्तिजीवितम्' नामक ग्रंथ चार उन्मेषों में विभक्त है। इसके प्रथम उन्मेष में वक्रोक्ति का सामान्य लक्षण, काव्य का स्वरूप एवं वक्रोक्ति के सभी भेदों का संक्षिप्त विवेचन है। द्वितीय उन्मेष में वर्णवक्रता, पदपूर्वार्द्धवक्रता, पदपरार्द्धवक्रता आदि भेदों का विस्तृत निरूपण एवं उनके भेद-प्रभेद कथित हैं। तृतीय उन्मेष में वाक्यवक्रता तथा चतुर्थ में प्रकरणवक्रता एवं प्रबंधवक्रता का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

वक्रोक्ति-सिद्धांत का प्रबल खंडन महिमभट्ट ने किया है। उनका कहना है कि शास्त्र आदि में प्रसिद्ध शब्द और अर्थ के प्रयोग से विलक्षण जिस वैचित्र्य रूप वक्रता को कुंतक काव्य का जीवित मानते हैं, वह समीचीन नहीं है। "क्योंकि, प्रसिद्ध व्यवहार व्यतिरेकित्व का पर्यवसान शब्द-अर्थ के औचित्यमात्र में होगा या प्रसिद्ध वाच्यार्थ से भिन्न प्रतीयमान की अभिव्यक्ति में; क्योंकि प्रसिद्ध मार्ग से भिन्न शब्दार्थ प्रयोग-वैचित्र्य का तीसरा कोई प्रकार ही नहीं है" (काव्यात्ममीमांसा पृ० २५२)। वे इसे ध्वनि का ही प्रकारांतर मानकर वक्रोक्तिवाद का अंतर्भाव अनुमिति में करते हैं। कुंतक ने वक्रोक्ति के वे ही भेद-प्रभेद तथा उदाहरण प्रस्तुत किए हैं, जो ध्वनि के हैं। द्वितीय पक्ष को स्वीकार करने पर वक्रोक्ति ध्वनि से अभिन्न सिद्ध हो जाती है—

तेनध्वनिवदेषापिवक्रोक्तिरनुमानिकम्। —व्यक्तिविवेक, १/७०

विश्वनाथ ने तो एक ही वाक्य में वक्रोक्ति की धज्जी उड़ा दी और इसे अलंकार का ही एक प्रकार सिद्ध किया—

एतेन 'वक्रोक्तिः काव्यजीवितम्' इति वक्रोक्तिजीवितकारोक्तमपि, परास्तम्। वक्रोक्तेरलंकाररूपत्वात्।

—साहित्यदर्पण पृ० २३, विमला, १/२ वृत्ति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वक्रोक्ति-सिद्धांत का स्वरूप—कुंतक के अनुसार वक्रोक्ति काव्य का व्यापक एवं सार्वभौम संप्रदाय है। वे इसे अलंकार के रूप में वर्णित न कर प्रसिद्ध काव्यचिंतन के पद पर अधिष्ठित करते हैं। वक्रोक्ति की परिभाषा प्रस्तुत करते हुए उनका कहना है—"वक्रोक्ति प्रसिद्ध कथन से भिन्न विचित्र अभिधा या वर्णन-शैली (विचित्र प्रकार का कथन) है। वह वैदग्ध्यपूर्ण (वैचित्र्यपूर्ण) भंगिमा द्वारा प्रस्तुत की गई उक्ति है। वैदग्ध्य का अर्थ है विदग्धता या कवि-कर्म-कौशल की भंगिमा या शोभा (विच्छित्ति) एवं उसके द्वारा उक्ति।"

वक्रोक्तिः प्रसिद्धाभिधानव्यतिरेकिणी विचित्रैवाभिधा। कीदृशी—वैदग्ध्यभंगीभणितिः। विदग्ध्यं विदग्धभावः कविकर्मकौशलं तस्य भंगी विच्छित्तिः, तया भणितिः विचित्रैवाभिधा वक्रोक्तिरित्युच्यते ॥ —वक्रोक्तिजीवितम्. १/१०

वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्यभंगीभणितिरुच्यते ॥ —१/१०

कुंतक की इस उक्ति से निम्नांकित तथ्य प्रकट होते हैं—

१. वक्रोक्ति विचित्राभिधा या विचित्र उक्ति या कथन है।

२. वह प्रसिद्ध कथन से भिन्न है अर्थात् शास्त्रादि में प्रयुक्त शब्दार्थ के सामान्य प्रयोग से सर्वथा भिन्न या पृथक् है। वह सामान्य व्यवहार में प्रयुक्त होनेवाले कथन से पृथक् है। इसका अभिप्राय यह कि शास्त्र एवं सामान्य व्यवहार की शैली से वक्रोक्ति नितांत पृथक् होती है।

३. वक्रोक्ति निपुण कवि के काव्य-निर्माण के कौशल की भंगी या शोभा है।

४. कुंतक ने वक्र, विचित्र, चारु आदि का समान अर्थ के रूप में प्रयोग किया है। विचित्र से उनका अभिप्राय है विदग्धतापूर्ण चारुता से संपृक्त या युक्त। वैदग्ध्य से वे कवि-कर्म-कौशल का अर्थ ग्रहण करते हैं। इस प्रकार वैदग्ध्यजन्य चारुता से उनका अभिप्राय 'कविकौशलजन्य चारुता' से है।

५. वक्रोक्ति को विचित्राभिधा कहते हुए कुंतक ने अपने ग्रंथ में विचित्र का अर्थ तीन स्थलों पर प्रकट किया है।

(क) शास्त्रादि के प्रसिद्ध शब्दार्थ से भिन्न अर्थ में प्रयुक्त होनेवाली शैली ही वक्रोक्ति है अर्थात् शास्त्र में शब्द और अर्थ का जो साधारण प्रयोग है, उससे भिन्न प्रयोग को वक्रोक्ति कहा जायगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(ख) कवि व्यापार की वक्रता अर्थात् लोक या शास्त्रादि में प्रयुक्त प्रसिद्ध प्रस्थान से भिन्न एवं वैचित्र्य से युक्त वक्रभाव।

(ग) प्रसिद्ध व्यवहार-सरणि से अतिरिक्त कथन अर्थात् साधारण व्यवहार में प्रयुक्त होनेवाली उक्ति या शैली से भिन्न उक्ति।

शास्त्रादि-प्रसिद्ध-शब्दार्थोपनिबंध-व्यतिरेकी। —१/७ पर वृत्ति
प्रसिद्ध प्रस्थान-व्यतिरेकि वैचित्र्यम्। —१/१८ वृत्ति
प्रसिद्ध प्रस्थानातिरेकिणा वैचित्र्येण। —१/१८
अतिक्रांत-प्रसिद्ध-व्यवहार-सरणि॥ —वक्रोक्तिजीवितम्॥

कहने का अभिप्राय यह कि कवि सामान्य जन के कथन से भिन्न जब लोकोत्तर चमत्कारपूर्ण उक्ति का सहारा लेकर रचना करे तो उसे वक्रोक्ति कहते हैं। अभिनवगुप्त ने अपने 'ध्वन्यालोकलोचन' नामक ग्रंथ में शब्द और अर्थ की वक्रता से अर्थ लिया है उनका लोकोत्तर रूप से अवस्थित होना—

शब्दस्य हि वक्रता अभिधेयस्य हि वक्रता लोकोत्तीर्णेन रूपेणावस्थानमिति।
पृ० २०८

जब कवि शास्त्र या व्यवहार में प्रसिद्ध शब्दार्थ से भिन्न विलक्षण प्रकार की उक्ति का प्रयोग करे तो उसे वक्रोक्ति कहेंगे। महिमभट्ट ने वक्रोक्ति के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए बतलाया कि जब शास्त्रादि के प्रसिद्ध मार्ग के अतिरिक्त वैचित्र्य या चमत्कार की सिद्धि के लिए अन्य ढंग से अर्थ का प्रतिपादन किया जाय तो वक्रोक्ति होगी।

प्रसिद्धमार्गमुत्सृज्य यत्र वैचित्र्य-सिद्धये।
अन्यथैवोच्यते सोऽर्थः सा वक्रोक्तिरुदाहृता॥
—व्यक्तिविवेक, १/६६

कुंतक ने कवि-प्रतिभा पर आश्रित कर्म को कवि-व्यापार कहा है—

शब्दार्थौ सहितौ वक्र कवि व्यापारशालिनि॥
—वक्रोक्तिजीवित, १/७

प्रतिभा का विवेचन करते हुए उन्होंने बतलाया कि पूर्वजन्म (प्राक्तन) एवं इह जन्म (अद्यतन) के परिपाक के कारण प्रौढ़ कविशक्ति को प्रतिभा कहते हैं—

प्राक्तनाद्यतन-संस्कार-परिपाकप्रौढ़ाप्रतिभा काचिदेव कविशक्तिः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कवि-कौशल उस व्यापार को कहते हैं, जो पूर्वजन्म एवं इस जन्म के संस्कारों के कारण प्राप्त प्रौढ़ कवि-शक्ति से प्रेरित हो। कुंतक ने वक्रोक्ति के लिए एक अनिवार्य शर्त रखी है—तद्विदाह्लादकारित्वं अर्थात् सहृदय के मनः-प्रसादन की अनिवार्य क्षमता। इस प्रकार वे वक्रोक्ति में तीन गुणों या आवश्यक तत्त्वों का सन्निवेश करते हैं—

क. लोकव्यवहार तथा शास्त्र में रूढ़ शब्द-अर्थ-प्रयोग से भिन्नता,

ख. कवि-प्रतिभा-जन्य चमत्कार,

ग. सहृदय के मनःप्रसादन की क्षमता।

उपर्युक्त गुणों के आधार पर वक्रोक्ति उस कथन-शैली या उक्ति को कहते हैं, जिसमें लोकव्यवहार एवं शास्त्र में प्रयुक्त शैली से भिन्न, कवि-प्रतिभाप्रसूत चमत्कार के कारण सहृदय को आह्लादित करने की क्षमता हो।

आधार-ग्रंथ—
हिंदी वक्रोक्ति जीवित (भूमिका)—सं० डॉ० नगेंद्र
वक्रोक्तिजीवित—अनु० राधेश्याम मिश्र
काव्यात्म-मीमांसा—डॉ० जयमंत मिश्र
भारतीय काव्यालोचन—डॉ० राजवंश सहाय 'हीरा'
भारतीय साहित्यशास्त्र, भाग २—आ० बलदेव उपाध्याय

वचनविदग्धा (वाग्विदग्धा)—विदग्धा नायिका का भेद।

[दे० विदग्धा]

वचनौचित्य—औचित्य का १०वां भेद। [दे० औचित्य के भेद]

वत्सल रस—माता-पिता का पुत्र के प्रति स्नेह, वत्सल रस का विषय है। इसमें कवि अपत्य-स्नेह का वर्णन करता है। आचार्य विश्वनाथ ने इस रस का वर्णन किया है। उनके अनुसार प्रकट चमत्कार होने के कारण कतिपय आचार्य वत्सल रस भी मानते हैं। इसका स्थायी भाव वात्सल्य स्नेह है और पुत्रादि आलंबन हैं। विद्या, शूरता, दया तथा पुत्रादि की चेष्टाएँ वत्सल रस के उद्दीपन विभाव हैं। आलिंगन, अंगस्पर्श, सिर चूमना, देखना, रोमांच, आनंदाश्रु आदि इसके अनुभाव हैं और अनिष्ट की आशंका, हर्ष, गर्व आदि संचारी।

स्फुटं चमत्कारितया वत्सलं च रसं विदुः।
स्थायी वत्सलता स्नेहः पुत्राद्यालंबनं मतम्॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उद्दीपनानि तच्चेष्टा विद्याशौर्यंदयादयः ।
आलिंगनांगसंस्पर्शशिरश्चुंबनमीक्षणम् ॥
पुलकानंदवाष्पाद्या अनुभावाः प्रकीर्तिताः ।
संचारिणोऽनिष्टशंकाहर्षगर्वादयो मताः ॥
पद्मगर्भच्छविर्वर्णो दैवतं लोकमातरः ॥

--साहित्यदर्पण, ३/२५१-२५४

वत्सल रस का रंग कमलगर्भ के सदृश तथा इसकी अधिष्ठात्री देवियाँ ब्राह्मी आदि माताएँ हैं ।

उदाहरण—

क. यदाह धात्र्या प्रथमोदितं वचो ययौ तदीयामवलंब्य चांगुलिम् ।
अभूच्च नम्रः प्रणिपातशिक्षया पितुर्मुदं तेन ततान सोऽभंकः ॥

"बालक रघु धाई द्वारा कहे हुए वचन को शीघ्र कह देता था और उसकी अँगुली पकड़कर चलता था । प्रणाम करने को कहने पर वह तुरत ही नम्र हो जाता था और इससे वह अपने पिता के आनंद को बढ़ाता था ।"

ख. जसोदा हरि पालनै झुलावै ।
हलरावै दुलराइ मल्हावै जोइ-सोई कछु गावै ।:
मेरे लाल को आउ निंदरिया काहे न आनि सुवावै ।
तू काहे न बेगि-सी आवै तोको कान्ह बुलावै ॥
कबहुँ पलक हरि मूँद लेत हैं कबहुँ अधर फरकावै ।
सोवत जानि मौन ह्वै रहि-रहि करि-करि सैन बतावै ॥
इहि अंतर अकुलाइ उठे हरि जसुमति मधुरे गावै ।
जो सुख 'सूर' अमर मुनि दुरलभ सो नँदभामिनि पावै ॥

श्रीकृष्ण के प्रति यशोदा का वात्सल्य स्नेह स्थायी भाव है । बालक कृष्ण आलंबन हैं और यशोदा आश्रय । कृष्ण का पलक मूँदना, अधर फड़काना उद्दीपन हैं और हलराना, दुलराना आदि अनुभाव । हर्ष संचारी भाव है ।

वर्जित दृश्य —नाटक या रूपक के ऐसे अंश, जिनका रंगमंच पर प्रदर्शन वर्जित हो । नाट्याचार्यों ने ऐसी घटनाओं या दृश्यों के प्रदर्शन का निषेध किया है, जो दर्शकों के मन में जुगुप्सा या घृणा का भाव उत्पन्न करें या जो अरंजक (विरस) हों । ऐसे विषयों की सूची इस प्रकार है—दूर से किसी को जोर से पुकारना (दूराह्वान), वध, युद्ध, राज्यविप्लव, देशविद्रोह,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विवाह, भोजन, शाप, मलमूत्रत्याग, मृत्यु, रतिक्रीड़ा, दंतक्षत, नखक्षत, अन्यान्य लज्जास्पद-विषय, अधरपान, नगर एवं पुरी का उपरोध (घेरा), स्नान, अनुलेपन आदि ।

दूराह्वानं वधो युद्धं राज्यदेशादिविप्लवः ।
विवाहो भोजनं शापोत्सर्गौ मृत्यु रतं तथा ॥
दंतच्छेद्यं नखच्छेद्यमन्यद्व्रीडाकरं च यत् ।
शयनाधरपानादि नगराद्यवरोधनम् ॥
स्नानानुलेपनेचैभिर्वर्जितो नास्तिविस्तरः ।

—साहित्यदर्पण, ६/१६-१७,१८

नाट्यशास्त्रियों ने यह नियम बनाया है कि नाटक में नायक या अधिकारी का वध नहीं दिखाया जाए और न नायक या नायिका की मृत्यु की सूचना दी जाए ।

वर्णकमात्र—यह काव्य का एक रूप या भेद है, जिसका वर्णन रुद्रट-कृत 'काव्यालंकार' में है । इसमें वर्ण-सौंदर्य का प्राधान्य होता है । ऐसे काव्य में श्लेषप्रधान, अनुप्रासप्रधान, यमकप्रधान तथा वक्रोक्तिप्रधान काव्य आते हैं ।

अन्यद्वर्णकमात्रं प्रशस्तिकुलकादिनाटकाद्यन्यत् ॥

—काव्यालंकार, १६/३६

वर्णविन्यासवक्रता—वक्रोक्ति-सिद्धांत के छह प्रमुख प्रकारों में से प्रथम प्रकार । इसके अंतर्गत वर्णों (व्यंजन) के सौंदर्य-विषयक सभी भेदों का कथन किया गया है। कुंतक के अनुसार वर्णविन्यासवक्रता का लक्षण इस प्रकार है—[दे० वक्रोक्ति-सिद्धांत]

एक द्वौ बहवो वर्णा बध्यमानाः पुनः पुनः ।
स्वल्पांतरास्त्रिधा सोक्ता वर्णविन्यासवक्रता ॥

—वक्रोक्तिजीवित, २/१

जहाँ एक, दो या बहुत-से वर्णों (व्यंजनों) का थोड़े-थोड़े व्यवधान (अंतर) से बार-बार उसी रूप में संयोजन (ग्रथन) हो तो वहाँ वर्णविन्यासवक्रता या वर्ण-रचना की वक्रता होती है । वर्णविन्यासवक्रता तीन प्रकार की होती है—एक वर्ण की, दो वर्णों की एवं अनेक वर्णों की पुनः-पुनः योजना या आवृत्ति । कुंतक की वर्णविन्यासवक्रता अन्य आचार्यों का अनुप्रास अलंकार ही है । इस भेद के अंतर्गत यमक का भी समावेश हो जाता है । स्वयं कुंतक भी इस तथ्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का उद्घाटन कर देते हैं—एतदेव वर्णविन्यासवक्रत्वं चिरंतनेष्वनुप्रास इति प्रसिद्धम् । इसके तीन प्रकारों का अन्य ढंग से भी विवेचन किया गया है—(१) "वर्ण्यमान वस्तु के औचित्य से शोभित होनेवाले (अपने-अपने) वर्ग के अंत (अंतिम वर्ण) से युक्त (क से म पर्यंत के) स्पर्श (वर्ण) (२) दो बार कहे गए (द्विरुक्त) त, ल, एवं न आदि (वर्ण) एवं (३) र आदि (वर्णों) से संयुक्त शेष सभी वर्ण (पुनः-पुनः आवृत्त होकर इस वर्णविन्यासवक्रता के अन्य तीन भेद कर देते) हैं ।"—वक्रोक्तिजीवित, पृ० १७४ (चौखंबा-संस्करण)

इसके तीन भेदों के विवरण इस प्रकार हैं—

क. जब वर्गांतयोगी स्पर्शवर्णों की आवृत्ति हो ।

ख. जब त, ल, न प्रभृति वर्णों का द्वित्व रूप में आवर्त्तन हो ।

ग. जब इन दोनों वर्णों के अतिरिक्त वर्णों की रेफ आदि से संयुक्त रूप में आवृत्ति हो । (हिंदी वक्रोक्ति जीवित की भूमिका, डॉ० नगेंद्र, पृ० ५६)

कुंतक ने अनुप्रास तथा उसके प्रकारों—यमक, यमकाभास, माधुर्यादि गुण, उपनागरिका, परुषा एवं कोमल। प्रभृति वृत्तियों एवं वैदर्भी, गौड़ी तथा पांचाली आदि रीतियों का अंतर्भाव वर्णविन्यासवक्रता में ही किया है ।

वृत्तिवैचित्र्ययुक्तेति सैव प्रोक्ता चिरंतनैः ।। २/५

यमकं नाम कोऽप्यस्याः प्रकारः परिदृश्यते ।। २/६

वर्ण-संयोजन के लिए कुंतक ने अनेक प्रकार के प्रतिबंधों की भी व्यवस्था की है ।

क. वर्ण-योजना सदा वर्ण्यमान वस्तु के अनुकूल हो । वह प्रस्तुत विषय के औचित्य से सुशोभित हो, न कि वर्ण-साम्य के व्यसन-मात्र से ही वर्णों का नियोजन हो ।

ख. वर्ण विन्यासवक्रता हठपूर्वक या अत्यंत आग्रहपूर्वक विरचित न हो तथा उसमें अपेशल या असुंदर वर्णों का निबंधन न हो ।

ग. इसमें वैचित्र्य का होना आवश्यक है तथा पूर्वावृत्त वर्णों का त्याग कर नवीन वर्णों की आवृत्ति से मनोहरता का समावेश किया जाए ।

घ. यमकादि की वर्ण-योजना में शब्द-सौकुमार्य (श्रुतिपेशलता) एवं प्रसाद गुण का होना आवश्यक है । वैसे सामान्य रूप से भी वर्ण-योजना में प्रासादिकता या शीघ्र अर्थबोधकता होनी चाहिए; पर यमक में विशेष रूप से इसका आधान हो । यमक का औचित्यपूर्ण होना भी आवश्यक है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ङ. वर्ण-संयोजन को प्रत्येक स्थिति में श्रुतिपेशल एवं औचित्यपूर्ण होना चाहिए।

च. प्रस्तुत रसादि के अनुकूल वर्ण-योजना वर्णविन्यासवक्रता का अनिवार्य तत्त्व है।

जातिनिबंध विहिता नाप्यपेशलभूषिता ।
पूर्वावृत्त-परित्याग नूतनावर्त्तनोज्ज्वला ॥
समानवर्णमन्यार्थं प्रसादि श्रुतिपेशलम् ।
औचित्य युक्तमाद्यादिनियतस्थानशोभि यत् ॥

—वक्रोक्तिजीवित, २/४६

वर्णच्छायानुसारेण गुणमार्गानुवर्तिनी ।
वृत्तिवैचित्र्ययुक्तेति सैवा प्रोक्ता चिरंतनैः ॥ —वही, २/५

आधार-ग्रंथ—

हिंदी वक्रोक्तिजीवित—सं०, डॉ० नगेंद्र (भूमिका)
वक्रोक्तिजीवितम्—हिंदी अनुवादक, पं० राधेश्याम मिश्र (चौखंबा)
काव्यात्म-मीमांसा—डॉ० जयमंत मिश्र
भारतीय साहित्यशास्त्र, भाग २—पं० बलदेव उपाध्याय
भारतीय काव्यालोचनं—डॉ० राजवंश सहाय 'हीरा'
अलंकारशास्त्र की परंपरा—डॉ० राजवंश सहाय 'हीरा'

वर्णानुप्रास—शब्दालंकार। मम्मट-कृत अनुप्रास का एक भेद। [दे० अनुप्रास]

वर्ण्य—उपमेय का अन्य नाम। [दे० उपमेय]

वर्तिष्यमाणसुरतगोपना—गुप्ता नायिका का एक भेद। [दे० गुप्ता] परकीया (नायिका) के अंतर्गत गुप्ता नामक नायिका के एक भेद को वर्तिष्यमाणसुरतगोपना कहते हैं। जो नायिका वर्त्तमान सुरत के चिह्नों को छिपाता है, उसे वर्तिष्यमाणसुरतगोपना कहा जाता है। इसका अन्य नाम वर्त्तमान-गुप्ता है।

वर्त्तमान गुप्ता—गुप्ता नायिका का भेद। [दे० गुप्ता]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वर्धमानक—शोभाकरमित्र-वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। रूप या धर्म के द्वारा आधिक्य की प्राप्ति वर्धमानक अलंकार है। इसका अंतर्भाव 'सार' में संभव है। [दे० सार]

रूपधर्माभ्यामाधिक्यं वर्धमानकम् ॥

—अलंकाररत्नाकर, ६३

वस्तु—कथावस्तु या कथानक को वस्तु कहते हैं। इसके दो प्रकार हैं—आधिकारिक [दे० आधिकारिक] या मुख्य-कथा एवं प्रासंगिक [दे० प्रासंगिक] या गौण कथा। इसे (वस्तु को) इतिवृत्त भी कहते हैं। इतिवृत्त के अन्य तीन प्रकार हैं—प्रख्यात, उत्पाद्य (काल्पनिक) एवं मिश्र। इतिहास तथा पुराण से जो कथा गृहीत होती है, उसे प्रख्यात वृत्त कहते हैं। जो कथा कवि-कल्पित हो वह उत्पाद्य है और दोनों ही प्रकार की कथाओं (ऐतिहासिक तथा काल्पनिक) के मिश्रण को मिश्रकथा कहते हैं।

प्रख्यातोत्पाद्यमिश्रत्वभेदात्त्रेधापि तत्त्रिधा।
प्रख्यातमितिहासादेरुत्पाद्यं कविकल्पितम् ॥
मिश्रं च संकरातास्याम्……। —दशरूपक, १/१५,१६

वस्तुध्वनि—ध्वनि का एक भेद, जिसमें अलंकार-शून्य वस्तु की ध्वनि होती है। इसका आधार या तो कोई शब्द होता है या कोई अर्थ। [दे० संलक्ष्यक्रमव्यंग्यध्वनि] वस्तुध्वनि में किसी तथ्य-कथन की अभिव्यंजना होती है।

वस्तुप्रतिवस्तुभाव—एक ही अर्थ का पृथक्-पृथक् शब्दों द्वारा कथन वस्तुप्रतिवस्तुभाव कहलाता है। प्रतिवस्तूपमालंकार में वस्तुप्रतिवस्तुभाव होता है। [दे० प्रतिवस्तूपमा]

वाक् भावक—भावक का एक भेद। [दे० भावक]

वाकोवाक्य—भोज-वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध शब्दालंकार। उक्ति-प्रत्युक्ति से युक्त वाक्य को वाकोवाक्य कहते हैं। इसके छह भेद हैं—ऋजूक्ति, वक्रोक्ति, वैयात्योक्ति, गूढ़ोक्ति, प्रश्नोत्तरोक्ति तथा चित्रोक्ति।

उक्तिप्रत्युक्ति यद्वाक्यं वाकोवाक्यं विदुर्बुधाः ॥

—सरस्वतीकंठाभरण, २/१३१

वाक्य—योग्यता, आकांक्षा और आसत्ति या सन्निधि से युक्त पद-समूह को वाक्य कहते हैं। [दे० तात्पर्यवृत्ति]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वाक्यदोष—आचार्य मम्मट ने वाक्य-विषयक २१ दोषों का उल्लेख किया है—(१) प्रतिकूलवर्णता, (२) उपहत-विसर्गता, (३) विसंधि (४) हतवृत्तता, (५) न्यूनपदता, (६) अधिकपदता, (७) कथितपदता, (८) पतत्प्रकर्षता, (९) समाप्त-पुनरात्तता, (१०) अर्द्धांतरैकवाचकता, (११) अभवन्मत संबंध, (१२) अमतयोग, (१३) अनभिहितवाच्यता, (१४) अस्थानपदता, (१५) अस्थान समासता, (१६) संकीर्णता, (१७) गर्भितता, (१८) प्रसिद्धिविरोध, (१९) भग्नप्रक्रमता, (२०) अक्रमता, (२१) अमतपरार्थता ।

प्रतिकूलवर्णमुपहतलुप्तविसर्गं विसंधि हतवृत्तम् ।
न्यूनाधिककथितपदं पतत्प्रकर्षसमाप्तपुनरात्तम् ॥
अर्द्धांतरैकवाचकमभवन्मतयोगमनभिहितवाच्यम् ।
अपदस्थपदसमासं संकीर्णं गर्भितं प्रसिद्धिहतम् ॥
भग्नप्रक्रममक्रममतपरार्थं च वाक्यमेव तथा ॥

—काव्यप्रकाश, ७/५३,५४

१. प्रतिकूल वर्णता—रस के विरुद्ध वर्णों के प्रयोग में प्रतिकूलवर्णता दोष होता है। इसमें रसानुकूल वर्णों का प्रयोग न होकर उनके विपरीत (रस-विरुद्ध) वर्णों का प्रयोग किया जाता है।

रसानुगुणत्वं वर्णानां वक्ष्यते तद्विपरीतं प्रतिकूल वर्णम् ॥

—काव्यप्रकाश, ७/५३ वृत्ति

अकुंठोत्कंठया पूर्णमाकंठं कलकंठिमाम्।
कंबुकंठ्याः क्षणं कंठे कुरु कंठार्त्तिमुद्धरः ॥

नायिका के समागम के लिए उत्सुक नायक सखी के प्रति कह रहा है—"हे कलकंठि ! प्रबल उत्सुकता से कंठ तक पूर्ण हुए मुझको शंख के समान कंठवाली उस नायिका के कंठ से थोड़ी देर के लिए मिला दो तथा मेरे कंठ को बचाओ अर्थात् मुझे कष्ट से बचाओ।" यहाँ शृंगार रस के प्रतिकूल वर्ण प्रयुक्त हुए हैं।

झटकि चढ़ति उतरति अटा, नैक न थाकति देह ।
भई रहति नट की बटा, अटकी नागर नेह ॥

यहाँ टवर्गीय वर्णो की रचना शृंगार रस के प्रतिकूल है।

२. उपहतविसर्गता—जब अनेक विसर्गों का रूप उत्व या ओत्व हो जाय तो उपहतविसर्गता दोष होगा। इसमें कहीं तो विसर्ग का 'ओ' (ओत्व) हो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जाता है और कहीं उसका लोप हो जाता है। यह दोष केवल संस्कृत में होता है, हिंदी में नहीं।

धीरो विनीतो निपुणो वराकारो नृपोऽत्र सः ।
यस्य भृत्या बलोत्सिक्ता भक्ता बुद्धिप्रभाविताः ॥

"वही नृप धीर, विनीत, निपुण एवं सुंदर आकृतिवाला होता है, जिसके भृत्य बल के गर्व से युक्त, सेवा में लगे हुए तथा बुद्धि से प्रभावित होते हैं।" यहाँ धीरो, विनीतो, निपुणो तथा नृपो में विसर्ग का 'ओ' रूप हो गया है।

३. विसंधि—विसंधि संधि की विरूपता या भद्दापन को कहते हैं। इसके तीन प्रकार हैं—संधि का विश्लेष, अश्लीलता और कष्टता। (यह महत्त्वपूर्ण दोष नहीं है)।

४. हतवृत्त—छंदोभंग होना हतवृत्त दोष है। इसमें छंदःशास्त्र के अनुसार छांदसिक नियमों का पालन नहीं किया जाता तथा रस के प्रतिकूल छंद प्रयुक्त होते हैं।

५. न्यूनपद—अभीष्ट अर्थ के वाचक पद का प्रयोग न होना न्यूनपद दोष है।

तथाभूतां दृष्ट्वा नृपसदसि पांचालतनयां
वने व्याधैः साधं सुचिरमुषितं वल्कलधरैः ।
विराटस्यावासे स्थितमनुचितारंभनिभृतं
गुरुः खेदं खिन्ने मयि भजति नाद्यापि कुरुषु ॥

युधिष्ठिर से खिन्न भीमसेन की उक्ति—"राजाओं की सभा में द्रौपदी की वैसी स्थिति को देखकर एवं हम सभी भाइयों का वल्कल धारण कर कोल-किरात की भाँति रहना एवं विराट के यहाँ अनुचित कार्य करते हुए रहना देखकर भी राजा हमारे ऊपर खिन्न हैं और कौरवों पर नहीं।" यहाँ तीनों चरणों में 'अस्माभिः' पद एवं चतुर्थ चरण में 'खिन्ने' पद के पूर्व 'इत्थ' पद की न्यूनता है।

पानी पावक पवन प्रभु, ज्यों असाधु त्यों साधु ॥

यहाँ पदों की न्यूनता से यह अर्थ नहीं निकलता कि पानी, अग्नि, हवा प्रभु, साधु तथा असाधु के प्रति समान व्यवहार करते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

६. अधिकपदता—जब कविता में अनावश्यक पद का प्रयोग हो तो अधिकपदता दोष होगा।

स्फटिकाकृतिनिर्मलः प्रकामं प्रतिसंक्रांतनिशातशास्त्रतत्त्वः।
अविरुद्धसमन्वितोक्तियुक्तः प्रतिमल्लास्तमहोदयः सकोऽपि॥

"स्फटिक के सदृश निर्मल, कठिन शास्त्रों का तत्त्व जिसके हृदय में वर्त्तमान है, जिसकी उक्ति एवं तर्क अविरुद्ध एवं परस्पर समन्वित हैं, ऐसे विद्वान से प्रतिपक्षियों का नाश हो जाता है, वह कोई महापुरुष ही है।" यहाँ 'आकृति' शब्द अधिक है।

लपटी पुहुप पराग पट सनी स्वेद मकरंद।
आवत नारि नवोढ़ लौं सुखद वायु-गति मंद॥

यहाँ 'पुहुप' शब्द अनावश्यक है।

७. कथितपदता—जब एक बार कथित या कहे गए शब्द (पद) का बिना किसी प्रयोजन के पुनः प्रयोग हो तो कथितपदता दोष होता है।

अधिकरतलतल्पं कल्पितस्वापलीला
परिमिलननिमीलत्पांडिमा गंडपाली।
सुतनु कथय कस्य व्यंजयत्यंजसैव
स्मर नरपतिलीला यौवराज्याभिषेकम्॥

"हे कृशांगी, तुम्हारी करतल-रूपी शय्या पर सोने के कारण जिसका पीलापन हट गया है, ऐसा तुम्हारा कपोल जिस कामरूपी नृपति की लीला के युवराज के आसन पर शीघ्र ही किसी युवराज के अभिषेक होने की सूचना देती है।" यहाँ 'स्वापलीला' तथा 'स्मरनरपतिलीला' में दो बार प्रयुक्त लीला पद कथित पददोष का उदाहरण है।

जो तिय मो मन लै गई कहाँ गई वह तीय॥

यहाँ 'तीय' शब्द का दो बार प्रयोग होने से कथित पद दोष हुआ।

८. पतत्प्रकर्ष—किसी पदार्थ की उत्कृष्टता प्रदर्शित कर फिर उसका ऐसा वर्णन किया जाय, जिससे उसकी न्यूनता सूचित हो तो वहाँ पतत्प्रकर्ष-दोष होगा।

पतन् ह्रसन् प्रकर्ष उत्कर्षो यत्र (वाक्ये) तदित्यर्थः। अलंकारकृतस्य [वा प्रकर्षस्य यत्रोत्तरं पातो अपकर्ष इतिभावः। —बालबोधिनी, पृ० ३४३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कः कः कुत्र न घुर्घुरायित घुरीघोरो घुरेत्शूकरः
कः कः कं कमलाकरं विकमलं कर्तुं करी नोद्यतः।
के के कानि वनान्यरण्यमहिषानोन्मूलयेयुर्युतः
सिंहस्नेह विलासबद्धवसतिः पंचाननो वर्त्तते ॥

"जब सिंहिनी के प्रेम के आनंद में निबद्ध सिंह एक स्थान में बँध गया है, तब नाक से घुरघुर शब्द करता हुआ कौन सूअर भयावना शब्द नहीं करेगा, और कौन हाथी कमलों को नष्ट करने के लिए तैयार नहीं होगा तथा कौन बनैला महिष वन को नष्ट नहीं कर देगा ?"

इस श्लोक के प्रथम चरण में जिस प्रकार की सानुप्रासिक कठोरता दिखाई गई है, वह अंत तक नहीं रह सकी। यहाँ शूकर-वर्णन, गज-वर्णन, महिष-वर्णन एवं सिंह-वर्णन में उत्तरोत्तर शैथिल्य प्रकट हुआ है। अतः, पतत्प्रकर्ष दोष हुआ।

कान्ह, कृष्ण, केसव कृपा सागर राजिव नैन ॥

ककार के क्रम का अंत तक निर्वाह न करने के कारण यहाँ पतत्प्रकर्ष दोष हुआ।

९. **समाप्तपुनरात्त**—जब वाक्य के समाप्त होने पर शब्द का प्रयोग हो तो समाप्तपुनरात्त दोष होगा।

क्ँकारः स्मरकार्मुकस्य सुरतक्रीडा पिकीनां रवो
झंकारो रतिमंजरीमधुलिहां लीलाचकोरी ध्वनिः।
तन्व्याः कंचुलिकापसारणभुजाक्षेपस्खलत्कंकण-
क्वाणः प्रेम तनोतु वोनववयोलास्याय वेणुस्वनः ॥

"कृशांगी की चोली खोलने के लिए (आपके प्रयत्न करने पर लज्जावश उसे रोकने के लिए नायिका का जो भुजाक्षेप) हाथ चलाने से हिलते हुए कंकणों का शब्द जो कामदेव के धनुष का टंकार या सुरतक्रीड़ा-रूप कोकिलों की कूक, या रतिरूप मंजरी के भौंरों की झंकार, अथवा लीलारूप चकोरी की ध्वनि, अथवा नवयुवकों को नचाने के लिए बाँसुरी की ध्वनि है, वह (तुम दोनों के) नवयौवन के (उद्दाम) नृत्य के लिए तुम लोगों के प्रेम को खूब बढ़ावे।"

इस श्लोक में 'कंकार' से लेकर 'प्रेमतनोतुवो' तक वाक्य समाप्त हो जाता है, पुनः 'क्वाणः' के विशेषण-स्वरूप 'नववयोलास्याय वेणु स्वनः' का प्रयोग विशेषण के उत्कर्ष के अतिरिक्त और कुछ नहीं सूचित करता।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नासत है घन तिमिर को विरहिन को दुख देत ।
रजनीकर के कर अहो ! कुमुदन को सुख देत ॥

यहाँ चंद्रोदय-वर्णन तीसरे वाक्य तक समाप्त हो जाता है; किंतु चौथे वाक्य में चंद्रमा का एक और विशेषण जोड़ देने से समाप्तपुनरात्त दोष हो गया।

१०. अर्द्धांतरैकपदता—जब किसी पद्य के पूर्वार्द्ध का शब्द (पद) उत्तरार्द्धं में कहने के लिए रह जाय तो वहाँ अर्धांतरैकपदता नामक दोष होगा।

मसृणचरणपातं गम्यतां भूः सदर्भा
विरचय सिचयांतं मूर्ध्नि घर्मः कठोरः ।
तदिति जनकपुत्री लोचनैरश्रुपूर्णैः
पथिपथिकवधूभिर्वीक्षिता शिक्षिता च ॥

राजा जनक से सुमंत्र कहते हैं—"मार्ग में पथिक जनों के साथ चलनेवाला स्त्रियों ने आँखों में अश्रु भरकर कहा और समझाया कि कुशों से भरी हुई भूमि पर हलके-हलके पैर रखकर चलना, घाम तीखा है, अतः सिर पर साड़ा डाल लो।" तृताय चरण में तत् पद पूर्वार्द्ध का भाग है, इसी पद के उत्तरार्द्ध में प्रयोग से उक्त दोष हुआ।

रजनीकर को सुभ्रकर सजनी करत जु गौर ।
जग को, तज अब मान तू पीतम करत निहोर ॥

यहाँ 'जग को' पद पूर्वार्द्ध का है, जो उत्तरार्द्ध में प्रयुक्त हुआ है; अतः उक्त दोष हुआ।

११. अभवन्मतयोग—वाक्य में वर्णित पदों में इष्ट संबंध का विद्यमान न होना अभवन्मतयोग दोष है।

संग्रामांगणमागतेन भवता चापे समारोपिते
देवाकर्णय येन येन सहसा यद्यत्समासादितम् ।
कोदंडेन शराः शरैररिशिरस्तेनापि भूमंडलं
तेन त्वं भवता च कीर्त्तिरतुला कीर्त्या च लोकत्रयम् ॥

"हे देव ! रणक्षेत्र में आपके आने पर एवं धनुष का संधान करने पर जिस-जिसने जो-जो पाया, वह सुनिए। आपके धनुष ने बाण पाया, बाणों ने शत्रुओं का सिर प्राप्त किया, उस सिर ने भूमि को पाया अर्थात् वह पृथ्वी पर गिर पड़ा, भूमंडल ने आपको पाया, आपने कीर्त्ति पाई एवं कीर्त्ति ने तीनो लोकों को पाया।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क. यहाँ आकर्णन या सुनना क्रिया में (कोदंड आदि का) कर्मरूप से अन्वय करने पर (द्वितीया विभक्ति में) 'कोदंडं शरान्' इत्यादि (प्रयोग) प्राप्त होता है।

ख. (समस्त) वाक्यार्थ का कर्मरूप से अन्वय करने पर (प्रथमा विभक्ति में) 'कोदंडः शराः' इत्यादि प्रयोग प्राप्त होता है।

ग. और 'कोदंड' आदि न तो 'यत्' शब्द का अर्थ है।

घ. नहीं उसका विशेषण है तथा यहाँ 'केन-केन' यह प्रश्न भी नहीं है।

—काव्यप्रकाश (हिंदी अनुवाद) पृ० ३०३
अनुवादक—डॉ० हरप्रसादशास्त्री

तेरे परत कटाक्ष जे तब स्मर छोड़त बान ॥

यहाँ जे का अन्वय तब के साथ नहीं होता। जे के स्थान पर जब होना चाहिए था।

१२. अनभिहितवाच्य—जिसका कहना आवश्यक हो यदि ऐसे पद (शब्द) का कथन न किया जाय तो अनभिहितवाच्य दोष होगा।

अप्राकृतस्य चरितातिशयैश्चदृष्टै-
रत्यद्भुतैरपहतस्य तथापि नास्था।
कोऽप्येष वीरशिशुकाकृतिरप्रमेय-
सौंदर्यसारसमुदायमयः पदार्थः ॥

"इस असामान्य व्यक्ति के देखे हुए तथा श्रवण किए हुए अद्भुत चरित से मैं प्रभावित हो गया हूँ, फिर भी मुझे ऐसा विश्वास नहीं होता कि राम ने धनुष को तोड़ा है। ऐसा लगता है कि इस वीर शिशु की आकृति में अनुपम सौंदर्य के समुदा का कोई अद्भुत पदार्थ है।" यहाँ "उत्तर वाक्य में तथापि शब्द का प्रयोग होने से पूर्ववाक्य में 'यद्यपि' पद का प्रयोग तो अनिवार्य नहीं है; परंतु तथापि शब्द का प्रयोग द्वितीय वाक्य में ही किया जा सकता है, इसलिए प्रथम वाक्य की स्थिति तो अलग होनी ही चाहिए। उसको अलग करने के लिए 'अपहृतोऽस्मि' इस प्रकार का प्रयोग करना उचित था। इस अवश्यवाच्य प्रथमा विभक्ति के प्रयोग के अभाव में यहाँ वाक्य में 'वाच्यस्यानभिधानं' नामक वाक्यदोष हो गया है।"

—आचार्य विश्वेश्वर, पृ० ३१५

तो ही में रत नित रहौं विरत न होहुँ कदापि।
कहा दोष को लेश तू लखि मुहि तजत तथापि ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ 'लेश' के साथ 'भी' का होना आवश्यक है। 'भी' के बिना इस प्रकार का अर्थ होता है कि तुमने मेरा कोई बहुत बड़ा दोष देखा है।

१३. अस्थानपद—अयोग्य स्थान पर शब्द या पद का होना अस्थानपद दोष है।

प्रियेण संग्रथ्य विपक्षसन्निधावुपाहितां वक्षसि पीवरस्तने।
स्रजं न काचिद्विजहौजलाविलां वसंति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुषु॥

"सौत के संमुख प्रिय द्वारा गूँथी हुई स्थूल रत्नावली माला को पुष्ट पयोधरों पर धारण करके पानी से भींग जाने पर भी उसने नहीं उतारा; क्योंकि गुण वस्तु में न रहकर प्रेम में ही रहता है।"

यहां काचिद् के बाद न का प्रयोग नहीं करने के कारण अस्थानपदता-दोष हुआ।

मेरे जीवन की एक प्यास होकर सिकता में एक बंद॥

यहाँ बंद के पूर्व एक न होकर सिकता के पूर्व होना चाहिए था।

१४. गर्भिता—जब एक वाक्य का पद दूसरे वाक्य में प्रवेश कर जाय तो गर्भिता दोष होगा।

आचार्य मम्मट के अनुसार, जब एक वाक्य के मध्य में दूसरा वाक्य आ जाय तो यह दोष होगा।

गर्भितं यत्र वाक्यस्य मध्ये वाक्यांतरमनुप्रविशति॥

—काव्यप्रकाश, ७/५४ वृत्ति

परापकारनिरतैर्दुर्जनैः सह संगतिः।
वदामि भवतस्तत्त्वं न विधेया कदाचन॥

"मैं आपसे यह तथ्य की बात कह रहा हूँ कि आप दूसरे के अपकार में संलग्न व्यक्तियों का साथ कभी भी न करें।" यहाँ तृतीय चरण, जो पृथक् वाक्य है, द्वितीय वाक्य में प्रवेश कर गया है।

काटूँ कैसे अब दिवस ये हे प्रिय सोच तू मैं
छाई सारी दिशि घनघटा देख वर्षाऋतु में।

यहाँ 'हे प्रिय सोच तू' यह वाक्य प्रथम वाक्य में आ गया है।

१५. संकीर्णता पद—अन्य वाक्य के पद का अन्य वाक्य में प्रवेश कर जाना संकीर्णता पद दोष है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यत्र वाक्यांतरस्यपदानि वाक्यांतरमनुप्रविशंति । —काव्यप्रकाश, ७/५४

किमिति न पश्यसि कोपं पाकगतं बहुगुणं गृहाणेयम् ।
ननु मुंच हृदयनाथं कंठे मनस्तमोरूपम् ॥

"पैर पर गिरे हुए अपने 'अधिक गुणवान्' प्रिय को क्यों नहीं देखती हो ? तुम मन के अंधकाररूपी मान का त्याग करो और इन्हें गले से लगाओ ।"

यहाँ 'पादगतं बहुगुणं हृदयनाथं किमपि न पश्यसि' प्रथम वाक्य है। इसका हृदयनाथं पद तृतीय वाक्य में प्रवेश कर गया है और तृतीय वाक्य का 'कोप' शब्द पहले वाक्य में आ गया है।

धरो प्रेम से राम को पूजो प्रतिदिन ध्यान ।

यहाँ 'ध्यान धरो' एक वाक्य है। प्रथम वाक्य का ध्यान पद द्वितीय वाक्य में चला गया है, अतः संकीर्ण दोष हुआ।

१६. प्रसिद्धि-विरुद्धता—जब कवि संप्रदाय में प्रसिद्ध प्रयोगों के विरुद्ध किसी शब्द का प्रयोग किया जाय तो प्रसिद्धि-विरुद्धता दोष होगा।

विश्वनाथ ने इसका नाम 'प्रसिद्धित्याग' दिया है।

महाप्रलयमारुतक्षुभितपुष्करा वर्त्तक-
प्रचंडघनगर्जित प्रतिरुतानुकारी मुहुः ।
रवः श्रवणभैरवः स्थगितरोदसीकंदरः
कुतोऽद्य समरोदधेरयमभूतपूर्वः पुरः ॥

"यह अभूतपूर्व रव सम्मुख ही समर-सागर से उत्पन्न होकर कहाँ से आ रहा है। महाप्रलय मारुत से क्षुभित, पुष्कर एवं आवर्त्तक नाम के प्रचंड घनों की गर्जना का बार-बार अनुकरण करनेवाला तथा कानों के लिए भयंकर एवं स्वर्ग तथा पृथ्वी को पूर्ण करनेवाला है।" यहाँ 'रव' शब्द कविप्रसिद्धियों के विरुद्ध है। मेढक आदि के लिए ही 'रव' का प्रयोग होता है। सिंहनाद के रूप में यह कवि-प्रसिद्धियों में प्रसिद्ध नहीं है।

कूजि उठे गोकरन सब, जसुमति सावक देखि ।

'कूजना' शब्द पक्षियों के लिए व्यवहृत होता है, पर यहाँ उसका प्रयोग हाथियों के लिए किया गया है। 'शावक' का प्रयोग मृग के बच्चे के लिए होता है; किंतु यहाँ यशोदा के सुत के लिए 'शावक' पद प्रयुक्त है, जो परंपरागत कविप्रसिद्धि के विरुद्ध है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१७. भग्नप्रक्रम—जहाँ प्रारंभ किए हुए प्रस्ताव का क्रम अंत तक बना न रहे, वहाँ भग्नप्रक्रम दोष होता है। इसमें जिस ढंग से जो बात कही जाती है, उसका वह क्रम अंत तक नहीं रहता, टूट जाता है।

नाथे निशाया नियतेर्नियोगादस्तंगते हंत निशाऽपि याता।
कुलांगनानां हि दशानुरूपं नातःपरं भद्रतरं समस्ति॥

"भाग्यवश चंद्रमा के डूब जाने पर रात भी नष्ट हो गई। यह दुःख की बात है। पर, पतिव्रताओं के लिए इससे अच्छी कोई भी दशा नहीं हो सकती है। यहाँ 'गतानिशापि' पाठ होना चाहिए था। 'याता' का प्रयोग भग्नप्रक्रमता-दोष है।

रमा, उमा, बानी सदा विधि हरि हर के संग।

यहाँ रमा, उमा और वाणी की तरह विधि तथा हरि, हर का क्रम नहीं चल सका है।

१८. अक्रम—जहाँ क्रम विद्यमान न रहे, वहाँ अक्रम दोष होता है। इसमें जिस पद के अनंतर जिस पद का रखना उचित हो, उसको वहाँ न रखकर अन्यत्र रखा जाता है।

द्वयं गतं संप्रति शोचनीयतां समागमप्रार्थनया कलापिनः।
कला च सा कांतिमती कलावतः त्वमस्य लोकस्य च नेत्रकौमुदी॥

इस समय कपाली शिव के समागम की अभिलाषावाली दो वस्तुएँ दुःख की अवस्था को प्राप्त कर गई हैं, एक तो चंद्रमा की कला एवं दूसरी तुम जो संसार की आँखों की कौमुदी हो। यहाँ 'त्वं' शब्द के बाद चकार का प्रयोग होना चाहिए था।

कुछ हो मैं न संभालूँगा, इस मधुर भार को जीवन के॥

यहाँ 'जीवन का मधुर भार' ऐसा क्रम होना चाहिए था।

१९. अमतपरार्थता—किसी वाक्य में प्राकरणिक रस के विरुद्ध रसव्यंजक अन्य अर्थ का कथन करना अमतपरार्थता दोष होता है।

राममन्मथशरेणताडिता दुःसहेन हृदये निशाचरी।
गंधवद्रुधिरचंदनोक्षिता जीवितेशवसतिं जगाम सा॥

राम रूपी कामदेव के बाण से हृदय में ताड़ित होकर दुर्गंधपूर्ण लहू के चंदन से लिपटकर वह यमपुरी (प्राणनाथ की पुरी) को चली गई। यहाँ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बीभत्स रस के विरोची शृंगार रस की व्यंजना दूसरे अर्थ के रूप में होने से अमतपरार्थता दोष है।

राम-मदन-सर-हत हृदय निसिचरि मनहु सकाम।
गई रुधिर चंदन लगा जीवितेस के धाम।।

पूर्व श्लोक का अनुवाद।

वाक्यवक्रता—यह वक्रोक्ति-सिद्धांत का एक प्रकार है। [दे० वक्रोक्ति-सिद्धांत] कुंतक ने वक्रता की स्थिति को वर्ण, पद, वाक्य एवं प्रबंध में दिखलाया है। पद की वक्रता के पश्चात् दूसरी वक्रता वाक्य की है। इसके भी अनंत भेद किए गए हैं और मुख्यतः समस्त अलंकार-प्रपंच को वाक्यवक्रता के अंतर्गत मान लिया गया है।

वाक्यस्य वक्रभावोऽन्यो भिद्यते यः सहस्रधा।
यत्रालंकारवर्गोऽसौ सर्वोऽप्यंतर्भविष्यति।।

—वक्रोक्तिजीवितम्, १/२०

'वक्रोक्तिजीवित' के तृतीय उन्मेष में वाक्यवक्रता का विवेचन है। कुंतक ने वाक्य, वस्तु या वस्तु की वक्रता को समानार्थी माना है। अतः, वाच्यवक्रता का ही दूसरा नाम वस्तुवक्रता या वाक्यवक्रता है।

उदारस्वपरिस्पंदसुंदरत्वेन वर्णनम्।
वस्तुनोवक्रशब्दैकगोचरत्वेन वक्रता।। —वक्रोक्तिजीवितम् ३/१

'वस्तु का उत्कर्ष-युक्त स्वभाव से सुंदर रूप में केवल शब्दों-द्वारा वर्णन अर्थ अथवा वाच्य की वक्रता कहलाती है।'

वस्तु या वाच्य की वक्रता दो प्रकार की होती है—सहजा और आहार्या।

सैषा सहजाहार्यभेदभिन्ना वर्णनीयस्य वस्तुनो द्विप्रकारस्यवक्रता।

—(वक्रोक्तिजीवित ३/२ की वृत्ति)

सहज के अंतर्गत वस्तु के स्वभाव का स्वाभाविक रूप से सुंदर वर्णन आता है। सहज या स्वाभाविक शक्ति द्वारा उत्पन्न वस्तु सहज कहलाती है। आहार्यवस्तु व्युत्पत्ति एवं शिक्षाभ्यास से अर्जित होती है और यह अर्थालंकार से अभिन्न है।

इस प्रकार वस्तुवक्रता दो प्रकार की हुई—वस्तु की सहज (स्वाभाविक) शोभा का वर्णन तथा अर्थालंकार। कुंतक पूर्ववर्ती आलंकारिकों-द्वारा स्वीकृत अलंकारों में से केवल बीस को ही मान्यता देते हैं—रूपक, अप्रस्तुतप्रशंसा,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पर्यायोक्त, व्याजस्तुति, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, उपमा, श्लेष, व्यतिरेक, दृष्टांत, अर्थांतरन्यास, आक्षेप, विभावना, ससंदेह, अपह्नुति, संसृष्टि एवं संकर। उन्होंने तीन अन्य अलंकारों को भी परिष्कृत रूप में स्वीकृत किया है अर्थात् पूर्वाचार्यों द्वारा निरूपित उनके लक्षणों का खंडन कर अपनी ओर से नवीन लक्षण प्रस्तुत किए हैं, वे हैं—रसवद्, दीपक और सहोक्ति। कुंतक ने १९ अलंकारों की अलंकारता का खंडन किया है और इनका अंतर्भाव पूर्वोक्त बीस अलंकारों में ही कर दिया है। वे हैं—प्रेयस्, ऊर्जस्विन्, उदात्त, समाहित, प्रतिवस्तूपमा, उपमेयोपमा, तुल्ययोगिता, अनन्वय, निदर्शना, परिवृत्ति, विरोध, समासोक्ति, यथासंख्य, आशीः, विशेषोक्ति, हेतु, सूक्ष्म, लेश और उपमारूपक।

वाक्यार्थ निदर्शना—निदर्शना अलंकार का प्रथम भेद। [**दे० निदर्शना**]

वाक्यवैशिष्ट्योत्पन्नवाच्यसंभवा—आर्थी व्यंजना का चतुर्थ प्रकार। [**दे० आर्थीव्यंजना**]

वाक्यौचित्य—औचित्य का द्वितीय भेद। [**दे० औचित्य के भेद**]

वाग्भट—ये जैन-आचार्य हैं। इनका काव्य-शास्त्रीय ग्रंथ 'वाग्भटालंकार' है। इनका संबंध अनहिलवाड़ के अधिपति चालुक्यवंशीय नरेश जयसिंह के साथ था। महाराज जयसिंह का समय १०९३ ई० से ११४३ ई० तक है और यही समय वाग्भट का भी है।

'वाग्भटालंकार' में पाँच परिच्छेद हैं और २६० श्लोकों में काव्यशास्त्र के विषयों का संक्षिप्त निरूपण है। प्रथम परिच्छेद में काव्य के स्वरूप तथा काव्यहेतु के अंतर्गत प्रतिभा, व्युत्पत्ति एवं अभ्यास का वर्णन है। द्वितीय परिच्छेद में काव्य के विविध भेद और पद, वाक्य तथा अर्थ-दोषों का निरूपण किया गया है। तृतीय में दस गुण, चतुर्थ में चार शब्दालंकार और ३५ अर्थालंकार तथा दो प्रकार की रीतियों—गौड़ी और वैदर्भी—का वर्णन है। पंचम परिच्छेद में नौ रस एवं नायक-नायिका-भेद वर्णित हैं। इस पर आठ टीकाओं की रचना हुई है, जिनमें दो प्रकाशित हो चुकी हैं—क्षेमहंसगणि-कृत समानान्वय टिप्पण तथा अनंतभट्ट के पुत्र गणेश-कृत विवरण। 'वाग्भटालंकार' का प्रकाशन काव्यमाला सं० ४८, १९१६ ई० में हो चुका है।

वाग्भट द्वितीय—इनकी पुस्तक का नाम 'काव्यानुशासन' है। ये जैन आचार्य थे। इनके पिता का नाम नेमकुमार था। इन्होंने अपने ग्रंथ में प्रथम

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वाग्भट का नामोल्लेख किया है; अतः इनका समय चौदहवीं शती के निकट माना जा सकता है। इनकी अन्य दो रचनाएँ भी हैं—'ऋषभदेवचरित' तथा 'छंदोनुशासन'। 'काव्यानुशासन' पाँच अध्यायों में विभक्त है। इसकी रचना सूत्रशैली में हुई है, जिस पर स्वयं ग्रंथकार ने 'अलंकारतिलक' नामक वृत्ति की रचना की है। इसके प्रथम अध्याय में काव्य-प्रयोजन, काव्यहेतु, कविसमय तथा काव्य के विविध भेदों का वर्णन है। द्वितीय अध्याय में १६ प्रकार के पददोष, तथा १४ प्रकार के वाक्य एवं अर्थदोष वर्णित हैं। इसी अध्याय में दस गुणों का भी वर्णन है, जो दंडी-सम्मत है; पर लेखक गुणत्रय का समर्थक है। तृतीय अध्याय में ६३ अर्थालंकारों तथा चतुर्थ में ६ शब्दालंकारों का निरूपण है। पंचम अध्याय में रस एवं नायक-नायिका-भेद का विवेचन है। इस अध्याय में रसदोष का भी कथन किया गया है। 'काव्यानुशासन' का प्रकाशन काव्यमाला (सं० ४३) में १८९४ ई० में हुआ था।

वाचक—उपमा का एक अंग। सादृश्य-सूचक शब्दों को वाचक कहा जाता है। [दे० **उपमा**] जिन शब्दों की सहायता से उपमेय की उपमान के साथ तुलना की जाय या समता स्थापित हो, उसे वाचक कहा जाता है। इसे उपमावाचक भी कहते हैं।

वाचक—साक्षात् संकेतित अर्थ के बोधक शब्द को वाचक कहा जाता है।

साक्षात्संकेतितं योऽर्थमभिधत्ते स वाचकः।

—काव्यप्रकाश, २/७

वाचक शब्द से अभिप्राय ऐसे शब्द का है, जिसके श्रवणमात्र से ही अर्थ का बोध हो। वाचक शब्द से वाच्यार्थ की प्रतीति होती है और वाच्यार्थ का ज्ञान करानेवाली शक्ति को अभिधा [दे० **अभिधा**] कहते हैं। वाचक शब्द का अर्थ वस्तुओं के संबंध-ज्ञान पर आश्रित रहता है। संसार के सभी शब्द वाचक कहे जाते हैं और वाचक शब्द के अर्थ का ग्रहण 'संकेतग्रह' या वस्तुओं के 'संबंध-ज्ञान' द्वारा होता है। [दे० **संकेतग्रह**]

वाचक शब्द चार प्रकार के होते हैं—जातिवाचक, गुणवाचक, क्रिया-वाचक और यदृच्छावाचक।

१. जातिवाचक—जिस शब्द से जाति का ज्ञान होता है या जो शब्द अपनी समस्त जाति का बोध कराए, उसे जातिवाचक कहते हैं। जैसे—पुस्तक, नदी आदि।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२. **गुणवाचक**—गुणवाचक शब्द विशेषण होते हैं और ये किसी वस्तु की विशेषता प्रकट करते हैं। जैसे—काली गाय, हरी घास आदि। यहाँ 'काली' शब्द गाय की विशेषता बतलाता है और 'हरी' घास की।

३. **क्रियावाचक**—जो शब्द क्रिया का निमित्त बनकर प्रयुक्त हो, उसे क्रियावाचक कहते हैं। जैसे—पाठक, पाचक, वाहक आदि। 'पाचक' का अर्थ भोजन (पाक) बनानेवाला है, जो 'पाक' क्रिया का निमित्त है।

४. **यदृच्छावाचक**—जो किसी एक व्यक्ति का बोध कराए, उसे यदृच्छा-वाचक शब्द कहते हैं। इसमें व्यक्ति अपनी इच्छा से किसी का नाम रखता है। जैसे—महेश, गिरिधारी आदि।

इस संबंध में आचार्य भिखारीदास का मत ध्यातव्य है।

> **जाति यदिच्छा गुनक्रिया, नाम जु चारि प्रमान।**
> **सबकी संज्ञा जाति गनि, वाचक कहैं सुजान॥**
> **जाति नाम जदुनाथ अरु, कान्ह जदिच्छा धारि।**
> **गुन तें कहिये स्याम अरु, क्रिया नाम कंसारि॥**
>
> —काव्यनिर्णय, २/२, ३

वाच्यसंभवा—आर्थी व्यंजना का भेद। [दे० **आर्थीव्यंजना**] शब्द की मुख्य वृत्ति से मुख्यार्थ की प्रतीति के पश्चात् उससे जो अन्य अर्थ का, प्रकरणादि के द्वारा ज्ञान हो, उसे वाच्यसंभवा आर्थी व्यंजना कहते हैं।

वाच्यसिद्ध्यंगव्यंग्य—गुणीभूत व्यंग्य का तृतीय प्रकार। [दे० **गुणीभूत-व्यंग्य**] इसमें व्यंग्य वाच्यार्थ की सिद्धि करनेवाला होता है। वाच्यसिद्ध्यंग-व्यंग्य में बिना व्यंग्य अर्थ के वाच्य अर्थ की सिद्धि संभव नहीं है। अपरांग व्यंग्य में वाच्य की सिद्धि व्यंग्य के बिना भी होती है। [दे० **अपरांगव्यंग्य**]

> **भ्रमिमरतिमलसहृदयतां प्रलापं मूर्च्छां तमः शरीरसादम्।**
> **मरणं च जलदभुजगजं प्रसह्य कुरुते विषं वियोगिनीनाम्॥**

मेघरूपी सर्प से उत्पन्न विष (जल या हलाहल) वियोगिनी को हठात् चक्कर, बेचैनी, विषयों में अरुचि (अरति), अलसहृदयता (उदासीनता), निश्चेष्टता (प्रलाप), मूर्च्छा, अँधेरापन, शरीर की कृशता एवं अंततः मरण करने में समर्थ है।

यहाँ 'विष' शब्द से हालाहल-रूपी व्यंग्यार्थ प्रकट होता है, जो भुजंगरूपी वाच्यार्थ की सिद्धि करता है। विष शब्द अनेकार्थक है, जिसके अर्थ हैं जल

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और गरल। पर इसका मुख्य अर्थ जल-रूप में नियंत्रित हो गया है, अतएव हालाहल-रूप अर्थ व्यंग्य है।

खेलन सिखए अलि भले चतुर अहेरी मार।
काननचारी नैन मृग नागर नरन सिकार॥ —बिहारी

यहाँ नेत्रों के ऊपर मृगों का गुण आरोपित है। काननचारी का अर्थ है, 'कानों तक पहुँचनेवाला' तथा 'वन में विचरण करनेवाला'। जब तक कानों तक पहुँचनेवाला अर्थ नहीं किया जाता, तब तक रूपक असिद्ध रहेगा। कानों तक पहुँचा हुआ अर्थ व्यंग्यार्थ है, उससे ही रूपक की सिद्धि होती है। यहाँ जब तक व्यंग्यार्थ की सिद्धि नहीं होती, तब तक वाच्यार्थ उत्पन्न नहीं होता।

वाच्यवैशिष्ट्योत्पन्नवाच्यसंभवा—आर्थी व्यंजना का पंचम प्रकार। [दे० आर्थीव्यंजना]

वाच्यार्थ—अर्थ का एक प्रकार [दे० अभिधा तथा शब्दशक्ति] वाच्य अर्थ या वाच्यार्थ का ज्ञान अभिधा शक्ति से होता है। वाचक शब्द से अभिधा-शक्ति के द्वारा जिस अर्थ का ज्ञान हो, उसे वाच्यार्थ कहते हैं। [दे० वाचक]

ऐसे शब्दन्ह सौं फुरै संकेतित जो अर्थ।
ताको वाच्यारथ कहें, सज्जन सुमति समर्थ।
—भिखारीदास, काव्यनिर्णय, २/५

इसके अन्य नाम हैं—मुख्यार्थ तथा अभिधेयार्थ। लक्ष्यार्थ तथा व्यंग्यार्थ से पूर्व वाच्यार्थ का ही ज्ञान होता है; अतः इसे मुख्यार्थ कहते हैं। अभिधा-शक्ति का व्यापार होने के कारण इसे अभिधेयार्थ कहा जाता है।

वातदूती—दूती का एक भेद। जो (दूती) गूढ़ या द्वयर्थक वाणी से अपना इष्ट साधन करे, उसे वातदूती कहते हैं। [दे० दूती]

वामन—ये रीति-संप्रदाय के उन्नायक [दे० रीति-संप्रदाय] तथा 'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति' नामक ग्रंथ के रचयिता हैं। [दे० काव्यालंकारसूत्रवृत्ति] इनके जीवन एवं तत्संबंधी अन्य तथ्यों का विशेष विवरण प्राप्त नहीं होता। ये काश्मीर-नरेश जयादित्य के मंत्री थे, इस बात की पुष्टि 'राजतरंगिणी' से होती है।

मनोरथः शंखदत्तश्चरकः संधिमांस्तथा।
बभूवुः कवयस्तस्य वामनाद्याश्च मंत्रिणः॥ —४/४९७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जयादित्य का शासन-काल ७८९ ई० से ८१३ ई० तक है, अतः इनका समय ८०० ई० के आस-पास निश्चित होता है।

वामन ने सर्वप्रथम छंद के बंधन से मुक्त कर काव्यशास्त्र को विवेचन की ओर उन्मुख किया। 'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति' सूत्रशैली में रचित भारतीय काव्यालोचन की प्रथम कृति है। आचार्य वामन ने विवेचन-क्षेत्र के अंतर्गत काव्य के स्वरूप, प्रयोजन, अधिकारी, काव्य-हेतु, काव्य की आत्मा तथा काव्यरूपों को स्थान दिया है; पर विशेषतः इनकी दृष्टि रीति, गुण, अलंकार एवं दोषों के विस्तृत विवेचन की ओर रही है। अर्थात् ये काव्य के बहिरंग तत्त्व को ही अपने विवेचन का विषय बनाते हैं, अंतरंग तत्त्व को नहीं; फिर भी अंतरंग तत्त्वों के रूप में गुण को महनीय स्थान देते हैं।

भारतीय साहित्यशास्त्र के विकास में वामन का स्थान प्रथम सौंदर्यवादी आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित है। इन्होंने काव्य के सौंदर्यवादी तत्त्व का अन्वेषण किया है अर्थात् इनका काव्य-विवेचन सौंदर्य-विवेचन पर आधृत है। इनके सौंदर्य को शिल्प से उद्भूत सौंदर्य माना गया है। इन्होंने अलंकार को काव्य का सौंदर्याधायक तत्त्व मानकर उसके कारण ही (अलंकार के कारण) उसे (काव्य को) ग्राह्य माना। इनके मत से अलंकार ही सौंदर्य है अर्थात् अलंकार सौंदर्य का वाचक है। दोषों के बहिष्कार और गुणालंकार के समावेश से काव्य में सौंदर्याधान होता है।

काव्यं ग्राह्यमलंकारात्। १, १, १

काव्यं खलु ग्राह्यमुपादेयं भवति, अलंकारात्। काव्यशब्दोऽयं गुणालंकार-संस्कृतयोः शब्दार्थयोर्वर्तते। भक्त्या तु शब्दार्थमात्रवचनोऽत्र गृह्यते। सौंदर्यमलंकारः। १, १, २

स दोषगुणालंकार हानादानाभ्याम्। १, १, ३

—काव्यालंकारसूत्रवृत्ति।

वामन ने काव्य का नित्य धर्म गुण को मानकर उसे उसका अनिवार्य तत्त्व स्वीकार किया। अलंकार और गुण का सीमा-निर्धारण इनकी महत्त्वपूर्ण देन है। इन्होंने अलंकार को काव्य का अनित्य तत्त्व एवं गुण को नित्य तत्त्व माना अर्थात् गुण काव्य का अनिवार्य तत्त्व है और अलंकार वैकल्पिक। रीतिवादी वामन ने रीति को काव्य की आत्मा या जीवनाधायक तत्त्व कहा है। इनके मतानुसार विशिष्ट पद-रचना को रीति कहते हैं, जिसका अभिप्राय गुण-संपन्न पद-रचना से है अर्थात् गुणयुक्त पद-रचना ही काव्य का प्राण है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

[इनके काव्य-लक्षण, काव्य-प्रयोजन, काव्य-भेद, गुण, अलंकार और रीति-विषयक मत के लिए तत्तत् प्रसंगों को देखें ।]

वार्त्ताकपाक—जो रचना पहले कुछ कम मधुर एवं अंत में अत्यंत नीरस हो, उसे वार्त्ताकपाक कहते हैं। [दे० काव्य-पाक] वार्त्ताक का अर्थ है बैंगन। इस पाक में बैंगन के सभी गुण विद्यमान होते हैं।

आदौ मध्यममंते चास्वादु वार्त्ताकपाकम् ।

—काव्यमीमांसा, ५ अध्याय पृ० ५३, चौखंबा संस्करण

वासकसज्जा—नायिका का अवस्थानुसार भेद। [दे० नायिका-भेद] प्रिय का स्वागत करने के लिए अपने को सजानेवाली नायिका वासकसज्जा है। प्रियतम का आगमन निश्चय जानकर वस्त्राभूषण से अपने को सजानेवाली नायिका को वासकसज्जा कहते हैं। यह नायिका मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा, परकीया और गणिका के रूप में भी विभक्त होती है। इसका सर्वप्रथम वर्णन भरत मुनि ने किया है, तत्पश्चात् रुद्रट, धनंजय, भोज, विश्वनाथ, भानुदत्त प्रभृति ने इसका निरूपण किया।

भरत के अनुसार जो नायिका रतिसंभोगलालसा से, उचित रूप से अपना मंडन कर, उल्लसित होती है, उसे वासकसज्जा कहते हैं। इनके अनुसार वासक का अर्थ मिलनरात्रि का प्रेमोपचार है। इन्होंने छह वासकों का उल्लेख किया है।

उचिते वासके या तु रतिसंभोगलालसा ।
मंडनं कुरुते हृष्टा सा वै वासकसज्जिका ॥

—नाट्यशास्त्र, २२/२१३

परिपाट्यां फलार्थे वा नवे प्रसव एव वा ।
दुःखे चैव प्रमोदे च षडेते वासकाः स्मृताः ॥
उचिते वासके स्त्रीणामृतुकालेऽपि वा बुधैः ।
द्वेष्याणामथवेष्टानां कर्त्तव्यमुपसर्पणम् ॥

—वही, २२/२०९,२१०

रुद्रट ने बताया कि प्रिय के आगमन को निश्चय जानकर स्वकीय (अपने) गृह, शरीर तथा शयन को सजाकर उसकी प्रतीक्षा में द्वार का पालन करनेवाली नायिका वासकसज्जा है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निश्चितदयितागमना सज्जितनिजगेहदेहशयनीया ।
ज्ञेया वासकसज्जा प्रियप्रतीक्षेक्षितद्वारा ॥

—काव्यालंकार, १२/४०

धनंजय ने कहा कि जो प्रिय के आने के समय को जानकर प्रसन्न हो अपने को तथा अपने घर को सजाए, उसे वासकसज्जा कहते हैं ।

मुदा वासकसज्जा स्वं मंडयत्येष्यतिप्रिये ॥

—दशरूपक, २/२४

विश्वनाथ ने कहा कि प्रिय के समागम को जाननेवाली वासकसज्जा है, जिसे सुसज्जित गृह में सखी सजाती हो ।

कुरुते मंडनं यस्याः सज्जिते वासवेश्मनि ।
सा तु वासकसज्जास्याद्विदितप्रियसंगमा ॥

—साहित्यदर्पण, ३/८५

भानुदत्त के अनुसार नायिका मन में निश्चय करे कि आज प्रिय के आगमन का दिन है, जो नायिका संभोग की सामग्री सजाए, उसे वासकसज्जा कहते हैं ।

इनके अनुसार इसकी चेष्टाएँ हैं—प्रियदर्शन की अभिलाषा, सखी परिहास, दूतीप्रश्न, सामग्री को ठीक करना, प्रिय के पथ की ओर दृष्टिपात करना आदि ।

अद्य मे प्रियवासर इति निश्चित्य या सुरतसामग्रीं सज्जीकरोति, सा वासकसज्जा । अस्याश्चेष्टा मनोरथ सखीपरिहास दूतीप्रश्न सामग्रीसंपादन-मार्गविलोकनादयः । —रसमंजरी, पृ० १२८

भोज ने वासक का अर्थ वासगृह करते हुए प्रिय का आगमन निश्चय जानकर सुरतसामग्री, वासगृह एवं शरीर को सजाकर उसकी (प्रिय की) प्रतीक्षा करनेवाली नायिका को वासकसज्जा कहा है ।

सा तु वासकसज्जा स्यात् सज्जिते वासवेश्मनि ।
प्रियमास्तीर्णपर्यंके भूषिता यां प्रतीक्षते ॥

—सरस्वतीकंठाभरण, ४

मतिराम ने भानुदत्त के लक्षण को अनूदित किया है ।

ऐहैं प्रीतम आजु यों निश्चय जाने बाम ।
साजे सेज सिंगार सुख बासकसज्जा नाम ॥

—रसराज, १६७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

साजहि सेज-सिंगार तिय, पिय-मिलाप के काज।
बासकसज्जा नायिका, ताहि कहत कबिराज॥

—पद्माकर, जगद्विनोद, २०२

उदारहण—

क. विदूरे केयूरे कुरु, कर युगे रत्नवलयै-
रलं, गुर्वी ग्रीवाभरणलतिकेयं किमनया।
नवामेकामेकावलिमयिमयि त्वं दिरचये-
र्न नेपथ्यं पथ्यं बहुतरमनंगोत्सवविधौ॥

"हे सखी, बिजाइठ को दूर करो, रत्नजटित कंकणों का हाथ में कोई काम नहीं है। गर्दन में पहननेवाला आभूषण भारी है, इसकी क्या आवश्यकता? तू एक लड़ीवाला मोतियों का हार मेरे गले में पहना दे। अनंगोत्सव के समय बहुत-से आभूषण अच्छे नहीं होते।"

ख. मध्या वासकसज्जा का उदाहरण—

सजि ब्रजबाल नंदलाल सों मिलै के लिए
लगनि लगालगि में लमकि-लमकि उठै।
कहै 'पद्माकर' चिराग-ऐसी चाँदनी-सी,
चार्यो ओर चौकन में चमकि-चमकि उठै॥
झुकि-झुकि झूमि-झूमि झिलि-झिलि झेलि-झेलि,
झरहरि झापन में झमकि-झमकि उठै।
दर-दर देखौ दरिखानन में दौरि-दौरि,
दुरि-दुरि दामिनी-सी दमकि-दमकि उठै॥

—जगद्विनोद, २०५

भानुदत्त ने वासकसज्जा को मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा, परकीया और गणिका के रूप में भी दर्शाया है।

विकर्णक—मुक्तक काव्य का एक भेद। [दे० मुक्तक काव्य]

विकल्प—वाक्यन्यायमूलक अलंकार। तुल्यबलवाले दो परस्पर विरोधी पदार्थों में, एक ही काल में, एकत्र स्थिति में, विरोध का होना विकल्प अलंकार है। 'विकल्प' का अर्थ है विरुद्ध कल्पना—विरुद्धः कल्पः विकल्पः। इसका अभिप्राय यह वा वह से भी है या दोनों में से एक। इसमें समकोटिक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(समान बलवाले) दो पदार्थों के परस्पर विरोध का वर्णन होता है तथा दो में से एक की स्थिति दिखाई जाती है। यह समुच्चय अलंकार का प्रतिपक्षी है। [दे० समुच्चय] इसमें औपम्यगर्भत्व के कारण चमत्कार उत्पन्न होता है। समुच्चय अलंकार में तुल्य बलवालों की एक काल में एकत्र स्थिति का वर्णन होता है तो विकल्प में तुल्य बलवालों का एक काल में एक स्थिति में होना असंभव होता है। समुच्चय में दो का नियम नहीं है, पर विकल्प में दो का नियम है।

इस अलंकार के प्रवर्त्तक आचार्य रुय्यक हैं। परवर्ती आचार्यों में शोभाकर, जयदेव, विद्याधर, विद्यानाथ, विश्वनाथ, अप्पय दीक्षित और पंडितराज जगन्नाथ ने इसका वर्णन किया है। रुय्यक ने इसका लक्षण प्रस्तुत करते हुए बताया कि तुल्य बलवाले पदार्थों में परस्पर विरोध का होना विकल्प है। इन्होंने इस अलंकार के लिए औपम्यगर्भता तथा श्लेषोत्थापित औपम्यगर्भत्व को आवश्यक माना है। लोकसिद्ध या लौकिक विकल्प के वर्णन में अलंकारत्व संभव नहीं है।

तुल्यबलविरोधोविकल्पः।

विरुद्धयोस्तुल्यप्रमाणविशिष्टत्वात्तुल्यबलयोरेकत्र युगपत्प्राप्तौ विरुद्धत्वादेव यौगपद्यासंभवे विकल्पः। औपम्यगर्भत्वाच्चात्र चारुत्वम्। क्वचिच्छ्लेषावष्टंभेनाप्ययं दृश्यते।''''''तस्मात्समुच्चयप्रतिपक्षभूतो विकल्पाख्योऽलंकारः।

—अलंकारसर्वस्व, पृ० १९७-९८

इस अलंकार का परवर्ती विकास रुय्यक की ही स्थापनाओं के आधार पर हुआ। शोभाकर के अनुसार दो विरोधी तुल्य बलवाले पदार्थों के पाक्षिकत्व में (दो में से एक) में विकल्पालंकार होगा।

विरुद्धयोस्तुल्यत्वे पाक्षिकत्वं विकल्पः।

—अलंकाररत्नाकर, पृ० १५१

सर्वस्वकार के विचार का अनुवदन करते हुए जयदेव ने कहा कि वचनचातुरी से समान बलवाले दो विरोधी पदार्थों का एक साथ वर्णन करना विकल्पालंकार है।

विकल्पस्तुल्यबलयोर्विरोधश्चातुरीयुतः॥

—चंद्रालोक, ५/९६

विद्याधर, विद्यानाथ, विश्वनाथ, दीक्षित तथा पंडितराज, रुय्यक की ही मान्यताओं से प्रभावित हैं, इनके विवेचन में किसी प्रकार का नावीन्य नहीं है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तुल्यप्रमाण वैशिष्ट्यात् प्राप्तावेकत्र यौगपद्येन।
उभयोः समान बलयोः स्फुरति विरोधे विकल्प इत्युक्तः ॥

—एकावली, ८/५७

विरोधे तुल्य बलयोर्विकल्पालंकृतिर्मता ॥

—प्रतापरुद्रीय, पृ० ३२८-२९

विकल्पस्तुल्यबलयोर्विरोधश्चातुरीयुतः ॥

—साहित्यदर्पण, १०/८३

विरोधे तुल्यबलयोर्विकल्पालंकृतिर्मता ॥

—कुवलयानंद, ११४

विरुद्धयोः पाक्षिकी प्राप्तिर्विकल्पः ॥

एकस्मिन्धर्मिणि स्वस्वप्रापक प्रमाणप्राप्तयोरतएव तुल्यबलयोर्विरुद्धयोर्विरुद्धत्वादेव युगपत्प्राप्तेरसंभवात्पाक्षिक्ये प्राप्तिः पर्यवसन्ना।

—रसगंगाधर, पृ० ६५७

रीतिकालीन आचार्यों ने 'चंद्रालोक' तथा 'कुवलयानंद' के लक्षणों का अनुवाद किया है।

मतिराम और पद्माकर ने 'कुवलयानंद' के लक्षण को अनूदित कर विकल्पालंकार का वर्णन किया।

समबल युत द्वै बात को बरनत जहां विरोध।
कबिकोबिद सब कहत हैं तहँ बिकल्प श्रुतिसोध ॥

—ललितललाम, २७५

द्वै सम बल युत को विरुध जहँ सु विकल्प बखान ॥

—पद्माभरण, १९१

जसवंतसिंह तथा दास ने दो में से एक के वृत्तांत-वर्णन को विकल्प कहा है।

है विकल्प यह है वहै इहि विधि को वृत्तंत ॥

—भाषाभूषण, १४४

है 'विकल्प' यह है वहै, यह निसचै जहँ राज ॥

—काव्यनिर्णय, पृ० ४१७

नागेशभट्ट ने विकल्पालंकार का अंतर्भाव संदेह (अलंकार) में करते हुए इसके अलंकारत्व का खंडन किया है। —उद्योत, पृ० ४६४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उदाहरण—

क. पतत्यविरतंवारि नृत्यंति च कलापिनः ।
अद्य कांतः कृतांतो वा दुःखस्यांतं करिष्यति ।।

—कुवलयानंद

वियोगिनी का कथन—"इस वर्षा-ऋतु में लगातार जल बरस रहा है और मोरगण नाच रहे हैं। ऐसे समय में मेरे वियोग-दुःख का अंत दो ही कर सकते हैं—या तो प्रिय या यमराज।" यहाँ पति-समागम तथा मृत्यु दो विरोधी पदार्थों (समान बलवाले) का वर्णन है।

ख. दिसि-दिसि कूजति कोकिला, फूले रुचिर रसाल ।
दूरि करेगा बिरह दुख, कै गोपाल कै काल ।।

यहाँ गोपाल या काल दो विरोधी वस्तुओं (समान बलवाले) के वर्णन में विकल्प है।

ग. जनम कोटि लगि रगर हमारी ।
बरौं संभु न तु रहौं कुमारी ।। —रामायण

विकल्पाभास—शोभाकर मित्र-वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। यह विकल्प [दे० विकल्प] का विरोधी है और इसमें विकल्प के आभास का वर्णन होता है। इस अलंकार को विकल्प से भिन्न नहीं माना जा सकता।

विकल्पितयो विकल्पाभासः ।। ५१—अलंकाररत्नाकर, पृ० ८६

विकस्वर—एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। जब विशेष का सामान्य से समर्थन कर पुनः उसका विशेष से समर्थन किया जाए तो विकस्वर अलंकार होगा। 'विकस्वर' का अर्थ विकसनशील है। इस अलंकार में विशेष कथन का सामान्य कथन से समर्थन करने पर उसका पुनः विशेष-द्वारा समर्थन किया जाता है और यह समर्थन दो प्रकार से होता है—उपमा के द्वारा या अर्थांतर-न्यास से।

इस अलंकार के उद्‌भावक जयदेव हैं और अप्पय दीक्षित ने उनका अनुकरण कर इसका वर्णन किया है। जयदेव ने विशेष, सामान्य और विशेष अर्थ की उपस्थिति में विकस्वर (अलंकार) माना है।

यस्मिन् विशेषसामान्यविशेषः स विकस्वरः ।।

—चंद्रालोक, ५/६९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दीक्षित ने जयदेव के ही लक्षण को उद्धृत किया और अपनी ओर से इसका विशेष रूप से स्पष्टीकरण कर उपमा तथा अर्थांतरन्यास विधि के द्वारा समर्थन की बात कही है।

यत्र कस्यचिद्विशेषस्य समर्थनार्थं सामान्यं विन्यस्य तत्प्रसिद्धावप्यपरितुष्यता कविना तत्समर्थनाय पुनर्विशेषांतरमुपमानरीत्यर्थांतरन्यासविधया वा विन्यस्यते तत्र विकस्वरालंकारः।

—कुवलयानंद, १५०

पंडितराज ने इस अलंकार का खंडन कर इसे उपमा एवं अर्थांतरन्यास की संसृष्टि कहा है। दीक्षित उपमा-विधि तथा अर्थांतरन्यास-विधि के आधार पर इसके दो भेदों की कल्पना करते हैं और पंडितराज प्रथम भेद को उदाहरण के अंतर्गत (उपमाविधि को) एवं द्वितीय को अर्थांतरन्यास में गतार्थ कर विकस्वर के स्वतंत्र अलंकारत्व का खंडन करते हैं।

एवं चार्थांतरन्यासस्य तस्य चार्थांतरन्यासप्रभेदयोश्च संसृष्टे्यवोदाहरणे त्वदुक्तानां गतार्थत्वे नवीनालंकारस्वीकारानौचित्यत्वात्। अन्यथोपमादिप्रभेदानामनुग्राह्यानुग्राहकतया संनिवेशितेऽप्यलंकारांतरकल्पनापत्तेः।

—रसगंगाधर, पृ० ६३९-४०

रीतिकालीन आचार्यों ने 'चंद्रालोक' के लक्षण का अनुवाद कर विकस्वर अलंकार का वर्णन किया; किसी भी आचार्य ने दीक्षित का अनुकरण नहीं किया। जसवंत सिंह, मतिराम तथा पद्माकर के लक्षण जयदेव से प्रभावित हैं।

विकस्वर होत विशेष जब फिरि सामान्य विशेष॥

—भाषाभूषण, १५२

कहि विसेष सामान्य पुनि, कहिए बहुरि विसेष।
कहत विकस्वर नाम तहँ, जे कवि अति मति लेष॥

—ललितललाम, २९२

प्रथम बिसेष बखान करि, पुनि सामान्य उचारि।
फिरि बिसेष सु समर्थिबो, सु बिकस्वर उर धारि॥ —पद्माभरण, २०६

भेद—उपमा-विधि तथा अर्थांतरन्यास-विधि के आधार पर विकस्वर के दो भेद किए गए हैं।

१. उपमाविधि—

क. अनंतरत्नप्रभवस्य यस्य हिमं न सौभाग्यविलोपिजातम्।
एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतींदोः किरणेष्विवांकः॥

—कुमारसंभव

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"हिमालय अनेक रत्नों का उत्पत्ति-स्थान होते हुए भी बर्फ के कारण ह्रास का कारण न बन सका। जिस प्रकार चंद्रमा में कलंक छिप जाता है, उसी प्रकार अनेक गुणों में एक दोष भी छिप जाता है।"

ख. रत्नजनक हिमवान के कहियत हिम न कलंक।
छिपत गुणन में दोष इक ज्यों ससि-किरन ससंक ॥

"बहुत-से रत्नों को उत्पन्न करनेवाले हिमालय में बर्फ कलंक का कारण नहीं बन सकता।" यह विशेष कथन है और इसका समर्थन सामान्य कथन के द्वारा किया गया है "कि बहुत-से गुणों में एक दोष छिप जाता है।" पुनः इसका समर्थन विशेष कथन (उपमा की रीति) से किया गया है; जैसे—चंद्रमा की किरणों में कलंक छिप जाता है।

२. अर्थांतरन्यासविधि—

क. मालिन्यमब्जशशिनोर्मधुलिट्कलंकौ
धत्ते मुखे तु तव दृक्तिलकाब्जनाभाम्।
दोषावितः क्व च न मेलनतो गुणत्वं
वक्तुर्गुणौ हि वचसि भ्रमविप्रलंभौ ॥

"हे सुंदरी, कमल एवं चंद्रमा में भ्रमर तथा कलंक-मलिनता को धारण कर लेते हैं तथा तुम्हारे मुँह में आँख एवं तिलकांजन शोभा को धारण कर लेते हैं। कभी ऐसा होता है कि दो दोष मिलाकर गुण हो जाते हैं। वक्ता के बोलने की शक्ति में भ्रम एवं विप्रलंभ भी गुण हो जाते हैं।"

ख. काक ! कर्णकटु-शब्दरहित तू बैठा रह स्वच्छंद अभी।
आम्रलता मकरंद पान कर, पिक समझेंगे तुझे सभी ॥
स्थल प्रभाव से सभी वस्तु क्या धन्य नहीं हो जाती है।
नृप ललाट पर पंक-बिंदु मृगमद की जानी जाती है ॥

विक्षेप—नायिका के स्वभावज अलंकार का एक भेद [दे० नायिका के अलंकार] प्रिय के निकट आभूषण की आधी रचना, अकारण इधर-उधर देखना एवं धीरे से कुछ रहस्य की बात करना विक्षेप है।

विचित्र—विरोधमूलक अलंकार। इष्ट फल की प्राप्ति के लिए उसके विरुद्ध प्रयत्न करने को विचित्र अलंकार कहते हैं। 'विचित्र' का अर्थ अद्भुत है। इस अलंकार में अभीष्ट-सिद्धि के लिए उसके प्रतिकूल क्रिया का अनुष्ठान

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

किया जाता है। अभीष्ट के प्रतिकूल आचरण करने में विरोध का भाव निहित है। अतः, इसके मूल में विरोध रहता है। इस अलंकार में इच्छा के विपरीत प्रयत्न-स्वरूप विचित्रता का भाव सन्निहित है, जिसमें विरोध और असंभव के भाव भी विद्यमान हैं।

विचित्र अलंकार के उद्भावक आचार्य रुय्यक हैं, तत्पश्चात् शोभाकर, जयदेव, विद्याधर, विद्यानाथ, विश्वनाथ, अप्पय दीक्षित तथा पंडितराज जगन्नाथ ने इसका वर्णन किया। नागेश और विश्वेश्वर पंडित इसे स्वतंत्र अलंकार स्वीकार न कर इसके अलंकारत्व का खंडन करते हैं।

रुय्यक ने बतलाया कि जब अभीष्ट के विपरीत फल की प्राप्ति के लिए प्रयत्न किया जाए तो विचित्र अलंकार होगा। इसके विचित्र नाम पड़ने का कारण यह है कि इसमें आश्चर्यप्रतीति का कारण रहता है।

स्वविपरीत फलनिष्पत्तये प्रयत्नो विचित्रम्। यस्य हेतोर्यत्फलं तस्य तदा तद्विपरीतं भवति तदातद्विपरीतफलनिष्पत्त्यर्थं कस्यचित्प्रयत्न उत्साहो विचित्रालंकारः। आश्चर्य प्रतीतिहेतुत्वात्। —अलंकारसर्वस्व, पृ० १६८

शोभाकर के अनुसार, कायिक, वाचिक या मानसिक—किसी प्रकार का विपरीत प्रयत्न करने में 'विचित्र' होता है। इन्होंने इसके अनेक भेदों का वर्णन किया है। ये अभीष्ट-सिद्धि के लिए किए गए विफल प्रयत्न को विचित्र कहते हैं।

विफलः प्रयत्नो विचित्रम्॥ ६२॥

कायिकस्य वाचिकस्य मानसस्य प्रवृत्ति-रूपस्य निवृत्त्यात्मकस्य वा प्रयत्नस्य विफलत्वं विचित्रम्। विफलत्वं च यस्य प्रयत्नस्य यत्प्रसिद्धं कार्यं तद्विरुद्धकार्यत्वमेकम्। —अलंकाररत्नाकर, पृ० १०६

जयदेव, विद्याधर और विद्यानाथ कोई नया विचार न देकर रुय्यक के मत का अनुसरण करते हैं। जयदेव के विचार से वह प्रयत्न, जो विपरीत फल प्रदान करे, उसे विचित्र कहते हैं। विद्याधर कारण के विपरीत फलोत्पत्ति के लिए प्रयत्न किए जाने में विचित्रालंकार की स्थिति स्वीकार करते हैं। विद्यानाथ ने अपने विरुद्ध फल की प्राप्ति के निमित्त किए गए उद्योग को विचित्र अलंकार कहा है।

विचित्रं चेत्प्रयत्नः स्यात् विपरीतफलप्रदः॥

—चंद्रालोक, ५/८२

कारण विपरीत फलोत्पत्तौ यत्नो विचित्रमित्युक्तम्॥

—एकावली, ८/३६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विचित्रं स्वविरुद्धस्य फलस्याप्त्यर्थमुद्यमः ।।

—प्रतापरुद्रीय, पृ० ३०६

विश्वनाथ अभीष्ट फल की प्राप्ति के लिए उसके विरुद्ध अनुष्ठान करने को विचित्र कहते हैं।

विचित्रं स्वविरुद्धस्य कृतिरिष्टफलाय चेत् ।।

—साहित्यदर्पण, १०/७२

दीक्षित ने विपरीत फल की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करने को विचित्र कहा है।

विचित्रं तत्प्रयत्नश्चेद्विपरीतः फलेच्छया ।। —कुवलयानंद, ६४

पंडितराज जगन्नाथ के मत से यदि अभीष्ट की इच्छा रखनेवाला व्यक्ति इष्ट की सिद्धि के निमित्त उसके (इष्ट के) विपरीत प्रयत्न करे तो विचित्रालंकार होगा।

इष्टसिद्ध्यर्थमिष्टैषिणाक्रियामाणमिष्टविपरीताचरणं विचित्रम् ।।

—रसगंगाधर, पृ० ६०८

रीतिकालीन आलंकारिकों ने विद्यानाथ, विश्वनाथ और अप्पय दीक्षित के आधार पर विचित्रालंकार का निरूपण किया।

चिंतामणि ने विद्यानाथ की परिभाषा को अनूदित किया तो सोमनाथ ने विश्वनाथ को आधार बनाया।

कहि विचित्र सुविरुद्ध फल पावन को उद्योग।
अलंकार सुनवीन यह बरनत पंडित लोग ।।

—कविकुलकल्पतरु, ३/१६५

जतन करत विपरीत जह इच्छा फल के काज।
तह विचित्र पहिचानियें, कहत सुकवि सिरताज ।।

—रसपीयूषनिधि, २२/१६८

जसवंत सिंह एवं मतिराम ने 'कुवलयानंद' के आधार पर अपने लक्षण प्रस्तुत किए हैं।

इच्छा फल विपरीत की कीजै जतन बिचित्र ।।

—भाषाभूषण, १२५

जहाँ करत उद्यम कछू, फल चाहत विपरीत।
बरनत तहाँ विचित्र कहि, जे कहत रस-प्रीति ।।

—ललितललाम, २३४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नागेश और विश्वेश्वर पंडित विचित्र को स्वतंत्र अलंकार स्वीकार न कर इसका अंतर्भाव विषम में करते हैं। [दे० विषम]

नागेश के मत से इष्टाभिलाषी द्वारा इष्ट-सिद्धि के लिए किए गए विपरीत प्रयत्न में भी विषम ही होता है।

एवमिष्टसिद्ध्यर्थमिष्टैषिणा क्रियमाणमिष्टविपरीताचरणमपि विषममेव···· एतेनात्र विचित्रालंकारः पृथगित्यपास्तम् ॥

—उद्योत, पृ० ५५८, अलंकारकौस्तुभ, पृ० ३७४

भेद—शोभाकर ने मुख्य तीन भेदों तथा कायिक, मानसिक प्रभृति अनेक भेदों का कथन किया है। पंडितराज भी विचित्रालंकार के भेदों का वर्णन करते हैं; पर कालांतर में ये भेद मान्य नहीं हुए।

विषम और विचित्र में अंतर स्थापित करते हुए पंडितराज का कहना है कि विषम में व्यक्ति के प्रयत्न का वर्णन नहीं किया जाता; पर विचित्र में अभीष्ट के विरुद्ध किए गए प्रयत्न का कथन किया जाता है। इनमें दूसरा अंतर यह है कि विषम में कार्य तथा कारण की विचित्रता के आधार पर भेदों का निर्णय होता है; पर विचित्र में विपरीत फल की प्राप्ति के लिए स्वयं व्यक्ति के यत्न को स्थान देते हैं।

उदाहरण—

क. प्रणमत्युन्नति हेतोर्जीवितहेतोर्विमुंचति प्राणान् ।
दुःखीयति सुखहेतोः को मूढः सेवकादन्यः ॥

"सेवक से बढ़कर दूसरा कौन मूर्ख है, जो उन्नति के लिए प्रणाम करता है, अपने जीवन के लिए प्राणों को त्यागता है और अपने सुख के लिए दुःख की इच्छा करता है।" यहाँ उन्नति के लिए प्रणाम करना, सुख के लिए दुःख चाहने में इच्छा के विपरीत प्रयत्न का वर्णन है।

ख. अमर होन हित समर में जूझत पुरुष पुनीत ॥

अमर होने के लिए मरने में विचित्र अलंकार है।

विचित्राभिधा—कुंतक के वक्रोक्ति-सिद्धांत का अन्य नाम। विचित्राभिधा से कुंतक का अभिप्राय विचित्र कथन या वक्र-उक्ति से है। [दे० **वक्रोक्ति-सिद्धांत**]

विचित्र मार्ग—यह मार्ग या रीति का द्वितीय भेद है। इसका वर्णन आचार्य कुंतक ने किया है। उनके अनुसार विचित्र मार्ग में अलंकाराधिक्य के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कारण बाह्य चमत्कार अधिक होता है। वक्रोक्तिवैचित्र्य ही इसका जीवन-प्राण है।

कुंतक के अनुसार इसकी विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

क. शब्द और अर्थ का प्रतिभात चमत्कार,

ख. अलंकारों का चाकचिक्य,

ग. कथन या उक्ति की विचित्रता या वाच्यवैचित्र्य,

घ. वाक्यार्थ की प्रतीयमानता का चमत्कार,

ङ. वक्रोक्तिवैचित्र्य या उसकी (वक्रोक्ति की) अतिरंजना।

—वक्रोक्तिजीवित, १/३४-४३

विचित्रसुरता—मध्या नायिका का एक भेद, जो रंग-बिरंग की सुरत-लीला में निपुण हो, उसे विचित्रसुरता कहते हैं। [दे० मध्या]

विच्छित्ति—नायिका का स्वभावज अलंकार। [नायिका के अलंकार] सौंदर्य या कांति को बढ़ानेवाली अल्प वेष-रचना को विच्छित्ति कहते हैं।

विट—नायक का एक सहायक। [दे० सखा एवं नर्मसचिव] काम-शास्त्र एवं गीत आदि की कला में निपुण व्यक्ति विट कहलाता है।

कामतंत्रकलाकोविदोविटः। —रसमंजरी, पृ० १६२

विट प्रधान रूप से नायक-नायिका के पास एक दूसरे का संदेश पहुँचाता है। भरत ने इसे रूपवान्, उज्ज्वल वेश, मेधावी, वेश्योपचार-कुशल, मधुर, दक्षिण, कवि और चतुर कहा है।

वेश्योपचारकुशलो मधुरो दक्षिणः कविः।
ऊहापोहक्षमोवाग्मी चतुरश्च विटोभवेत्॥

—नाट्यशास्त्र, २४/१०१-१०३

दशरूपककार इसे एकविद्य और साहित्यदर्पणकार कलैकदेशज्ञ कहते हैं। विश्वनाथ का कहना है कि विट वेश्याओं के साथ सुखभोग में अपनी सारी संपत्ति लुटा चुका रहता है तथा मधुर स्वभाव से युक्त एवं वेश्योपचारचतुर होता है। यह नायक का सेवक, अत्यंत भक्त तथा उसको प्रसन्न रखने के लिए गीत, नृत्य एवं वाद्यादि का ज्ञाता होता है। इसका धूर्त एवं वाचाल होना भी कहा गया है।

एकविद्योविटश्चान्यो। —दशरूपक, २/६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संभोगहीनसंपद्विटस्तु धूर्त्तः कलैकदेशज्ञः ।
वेश्योपचारकुशलो वाग्मी मधुरोऽथ बहुमतोगोष्ठ्याम् ॥

—साहित्यदर्पण, ३/४१

सु विट बखानत हैं सुकवि, चातुर सकल कलान ।

—जगद्विनोद, ३४०

उदाहरण—

हरि को मीत पछीत इमि, गायो बिरह-बलाय ।
परत कान तजि मान तिय, मिली कान्ह सों जाय ॥

—जगद्विनोद, ३४२

वितर्क—संचारी भाव । [दे० संचारीभाव] शंकानिवारण के लिए मन में विचार का उत्पन्न होना वितर्क है ! भरत संदेह, विमर्श तथा मतभेद आदि विभावों से वितर्क की उत्पत्ति मानते हैं। इसका अभिनय नाना प्रकार के प्रश्न, सिर तथा भौंहों के चलाने आदि अनुभावों द्वारा होता है ।

वितर्को नाम—संदेहविमर्शविप्रतिपत्त्यादिभिर्विभावैरुत्पद्यते । तमभिनयेद्विविधविचारितप्रश्नसंप्रसारणमंत्रसंगूहनादिभिरनुभावैः ।

विचारणादिसंभूतः संदेहातिशयात्मकः ।
वितर्कः सोऽभिनेयस्तु शिरोभ्रूक्षेपकंपनैः ॥

—नाट्यशास्त्र, ७/६२

धनंजय ने संदेह के कारण उत्पन्न विचार को वितर्क कहा है ।

तर्को विचारः संदेहाद्भ्रूशिरोंगुलिनर्तकः ।

—दशरूपक, ४/२८

इसके अनुभाव हैं भौं, सिर तथा अंगुली का नचाना ।

विश्वनाथ ने धनंजय का ही लक्षण उद्धृत कर दिया है ।

तर्कोविचारः संदेहाद् भ्रूशिरोंगुलिनर्तकः ।

—साहित्यदर्पण, ३/१७०

भानुदत्त ने किसी विषय पर अच्छी तरह विचार करने को वितर्क कहा है । इन्होंने वितर्क के चार प्रकार माने हैं—विचारात्मा, संशयात्मा, अनध्यवसात्मा तथा विप्रतिपत्त्यात्मा । इसके विभाव हैं—अनिश्चयता, संदेह, साधक एवं बाधकपरिस्थितियाँ तथा मन का उद्भावन ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विचारो वितर्कः। विभावा विप्रतिपत्तिसंशयसाधकबाधकमानसमुद्भावादयः। अनुभावाः शिरःकंपभ्रूचालनादयः। वितर्कश्चतुर्विधः विचारात्मा संशयात्माऽनध्यवसायात्मा त्रिप्रतिपत्त्यात्मा चेति। —रसतरंगिणी, पंचमतरंग पृ० ३७९

पंडिराज जगन्नाथ संदेह आदि के पश्चात् उत्पन्न ऊह को वितर्क कहते हैं।

संदेहाद्यनंतरं जायमान ऊहो वितर्कः।

—रसगंगाधर, पृ० १११

उदाहरण—

क. यदि सा मिथिलेंद्रनंदिनी, नितरामेव न विद्यतेभुवि।
अथ मे कथमस्ति जीवितं, न विनाऽऽलंबनमाश्रितस्थितिः॥

यदि वह मिथिलेशपुत्री सीता पृथ्वी पर नहीं है अर्थात् वह जीवित नहीं है तो मेरा जीवन कैसे विद्यमान है? क्योंकि बिना आधेय के आधार रह नहा सकता। अभिप्राय यह कि राम के जीवित रहने पर सीता का जीवित रहना सिद्ध होता है। यहाँ राम के वितर्क का वर्णन है।

ख. लंका निसिचर-निकर निवासा।
इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा॥ —रामायण

यहाँ लंका में विभीषण के भवन को देखकर हनुमान के मन में संदेह दूर करने के लिए विचार का उत्पन्न होना वितर्क है।

वितर्क—भोज-वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध अर्थालंकार। वितर्क, संशय या संदेह अभिन्न हैं। इसमें मिथ्याप्रतीति वर्णन होता है।

ऊहो वितर्कः संदेहनिर्णयांतरधिष्ठितः॥

—सरस्वतीकंठाभरण, ३/३९

विदर्भी—आचार्य भोज-वर्णित अनुप्रास (वृत्त्यनुप्रास) का एक भेद। [दे० अनुप्रास] जब किसी रचना में दो वर्गों के वर्णों की आवृत्ति हो तो विदर्भी वृत्ति होती है। —सरस्वतीकंठाभरण, पृ० २३६-३८

विदग्धा—परकीया नायिका का एक प्रकार। [दे० परकीया] जो हृदयगत भावों को वाणी या क्रिया द्वारा प्रकट करे, उसे विदग्धा कहते हैं। यह वचन और क्रिया की चतुराई से नायक को अपना प्रेम जतला देती है, इसलिए इसे विदग्धा या चतुर नायिका कहते हैं। इसके दो प्रकार होते हैं—वाग्विदग्धा एवं क्रियाविदग्धा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विदग्धा च द्विविधा—वाग्विदग्धा क्रियाविदग्धा च।

—रसमंजरी, पृ० ५८

इस नायिका का वर्णन प्राचीन आचार्यों—भरत, रुद्रट, धनंजय, विश्वनाथ—ने नहीं किया। इसका सर्वप्रथम निरूपण भानुदत्त ने किया है। उसके आधार पर रीतिकालीन आचार्यों ने विदग्धा का वर्णन किया है।

द्विविध विदग्धा कहत हैं कवि करि विमल विवेक।
वचन विदग्धा एक है क्रिया विदग्धा एक॥

—रसराज, ७०

द्विविध विदग्धा जानिए, वचन विदग्धा एक।
क्रिया विदग्धा दूसरी, भाषत विदित विवेक॥

—जगद्विनोद, ९३

१. वचन विदग्धा या वाग्विदग्धा—जो वचन की चातुरी से नायक को अपना प्रेम बताकर कार्य सिद्ध करे, उसे वचनविदग्धा कहते हैं।

करै बचन सों चातुरी वचन विदग्धा जान।

—रसराज, ७१

बचनन की रचनान सों, जो साधै निज काज।
बचन-बिदग्धा नायिका, ताहि कहत कविराज॥

—जगद्विनोद, ९४

बचनन की रचनान कर आपुन साधे काम।
बचन विदग्धा नायिका ताहि कहत बुधि धाम॥

—साहित्यसागर, भाग २

उदाहरण—

क. निविडतमतमालवल्लिवल्ली विचकिलराजिविराजितोपकंठे।
पथिक! समुचितस्तवाद्य तीव्रे, सवितरि तत्र सरित्तटे निवासः॥

—रसमंजरी, २३

"हे पथिक! दोपहर के समय सूर्य की किरणों के तीव्र हो जाने पर आज तुम्हें नदी के किनारे ठहरना चाहिए; क्योंकि उसके ही समीप लताएँ तमाल-वन के चारों ओर घिरी हुई हैं और वहीं पर मालती की लता भी शोभ रही है।" यहाँ पथिक को स्थान बताने के बहाने रतिक्रिया के लिए आमंत्रण दिया गया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ख. करु करील की कुंज में, रह्यो अरुझि मो चीर ।
ये बलवीर अहीर के, हरत न क्यों यह पीर ॥

—जगद्विनोद, ९७

२. क्रियाविदग्धा—क्रिया के चातुर्य से मनोवांछित कार्य करनेवाली अर्थात् क्रिया के द्वारा नायक को संकेत करनेवाली नायिका क्रियाविदग्धा होती है ।

करै क्रिया सों चातुरी, क्रिया विदग्धा मान ॥

—रसराज, ७१

जो तिय साधै काज निज, करि कछु क्रिया सुजान ।
क्रिया विदग्धा नायिका, ताहि लीजिए जान ॥

—जगद्विनोद, ९९

करै क्रिया कर चातुरी साधै निज मन काम ।
क्रियाविदग्धा नायिका ताहि कहत रसधाम ॥

—साहित्यसागर, भाग २

उदाहरण—

क. वासाय भवननाथे बदरीमपनेतुमादिशति ।
हेमंते हरिणाक्षी पयसि कुठारं विनिक्षिपति ॥

—रसमंजरी, २४

"घर का मालिक नौकर को बैर के पेड़ को काटने की आज्ञा देता है; किंतु मृगनयनी माघ में कुठार को जल में डाल देती है ।"

बैर का जंगल नायिका का संकेतस्थल है, जहाँ वह परपुरुष से मिलने के लिए जाती है । अपने पति के आज्ञा देने पर कि नौकर जाकर उसे पूर्णतः काट डाले, वह इसीलिए बावड़ी के ठंडे जल में कुठार को डाल देती है कि जाड़े में जल से कुठार को निकालने की किसी की हिम्मत नहीं पड़ेगी, जिससे उसका रतिकार्य चलता रहेगा ।

ख. करि गुलाल सों घूँघरित, सकल ग्वालिनी ग्वाल ।
रोरी मीड़न के सु मिस, गोरी गह्यो गोपाल ॥

—जगद्विनोद, १०१

विदूषक—(नाटक में हास्य उत्पन्न करनेवाला एक पात्र) नायक का सखा । [दे० सखा] अपने अंगों को विकृत कर एवं विकृत वेश धारण कर हँसानेवाला व्यक्ति विदूषक कहा जाता है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अंगादिवैकृत्यैर्हास्यकारी विदूषकः। —रसमंजरी, पृ० ११

यह ब्राह्मण जाति का होता है और प्रकृति से परिहासप्रिय। नाटक इसका प्रयोग हास्य-उत्पादन के लिए किया जाता है। भरत ने इसे वि कहा है। यह वामन (बौना), दंतुर (बड़े दाँतोंवाला), कुब्ज (कुबड़ा विकृतानन, खल्वाट तथा पिंगलाक्ष (पीली आँखोंवाला) होता है। अभिप्र यह कि विदूषक की आकृति ऐसी है कि उसे देखते ही हास्य उत्पन्न हो जाए भरत ने धीरोद्धत, धीरललित, धीरोदात्त और धीरप्रशांत प्रभृति नायक भेदों के आधार पर विदूषक के भी चार वर्ग किए हैं—लिंगी, द्विज, राजजी और शिष्य।

वामनो दंतुरः कुब्जो द्विजिह्वो विकृताननः ॥
खल्वाटः पिंगलाक्षश्च स विधेयो विदूषकः ।

—नाट्यशास्त्र, २४/१९-२

भरत के अनुसार दिव्य नायक का विदूषक लिंगी, ब्राह्मण का शिष्य, रा का राजजीवी तथा सेनापति के लिए द्विज होता है। शारदातनय ने चा प्रकार के विदूषकों के गुणों का वर्णन करते हुए बताया है कि देवताओं व विदूषक सत्यवादी, भूत, भविष्य एवं वर्तमान का ज्ञाता, कृत्याकृत्य का विशेष तर्कवितर्क करनेवाला तथा यथार्थ दृष्टिवाला होता है। राजाओं का विदूष शिष्ट परिहास करनेवाला, अर्थ तथा स्त्रियों में शुद्ध चित्तवाला तथा देवी औ परिचारिकाओं का अत्यंत प्रिय होता है। यह अंतःपुर में भ्रमण करनेवाला त ईर्ष्यालु, कलहयुक्त और प्रणय-कोप में देवी को प्रसन्न करनेवाला होता है।

अमात्य के विदूषक में निम्नांकित विशेषताएँ होती हैं—वह अश्ली वाक्य बोलनेवाला, दंपति के अपराधों को प्रकट करनेवाला तथा भक्ष्याभक्ष्यप्रि होता है। यह सदा दूसरों का दोषदर्शी, परिहासयुक्त वचन बोलनेवाला त परिहासकथा में रस प्राप्त करनेवाला होता है। इसके अंग एवं वेष विकृ होते हैं।

वणिक् का विदूषक शठ होता है और उसके अंग, वेष, वचन तथा परिहा सभी विरूप होते हैं।

एतेषां तु पुनर्ज्ञेयाश्चत्वारस्तु विदूषकाः ॥
लिंगी द्विजो राजजीवी शिष्यश्चेति यथाक्रमम् ।
देवक्षितिभृतामात्यब्राह्मणानां प्रयोजयेत् ॥

—नाट्यशास्त्र, २४/१६-२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्निग्धा धीरोद्धतादीनां यश्चौचित्यं वियोगिनाम् ।
लिंगी द्विजो राजजीवी, शिष्याश्चैते विदूषकाः ॥

उचितश्च लिंगी देवतानाम्, ब्राह्मणस्य शिष्यः, राज्ञां तु शिष्यवर्जास्त्रः, एवं ...गादेरपि । —नाट्यदर्पण, पृ० १७८

अ... नायकानामथैतेषां चत्वारः स्युर्विदूषकाः ।
हो... विदूषकस्तु देवानां सत्यवाक् च त्रिकालवत् ॥
कृत्याकृत्य विशेषज्ञ ऊहापोहविशारदः ।
यथार्थदृष्टवादी च नाट्यवत् परिहासकः ॥
विदूषकस्तु भूपानामग्राम्यपरिहासकः ।
अर्थेषु स्त्रीषुशुद्धश्च देवीपरिजनप्रियः ॥
ईर्ष्याकलहकारी स्यादंतःपुरचरः सदा ।
नमवत् प्रणयक्रोधे देव्याकिंचित् प्रसादकः ॥
विदूषकश्च भूपानामेवादिगुणो भवेत् ।

—भावप्रकाशन, पृ० २८१

उद... अश्लीलवाक्यदंपत्योरपराधं व्यनक्ति च ।
भक्ष्याभक्ष्यप्रियो नित्यं....नर्मवक्ति च ॥
परिहासवचः प्रायः वाक्यः परिहास कथारुचिः ॥
एवमादिरमात्यादेर्विदूषकं गुणक्रमः ।
शठोविरूपवेषश्च विरूपांगवचः क्रमः ॥
मृग... विरूपपरिहासश्च विरूपाभिनयान्वितः ।
इत्यादिभिर्गुणैर्युक्तो वणिजश्च विदूषकः ॥

लि... —भावप्रकाशन, पृ० २८२

डा... विदूषक के भाषा-प्रयोग पर भी विचार किया गया है । भरत ने स्पष्टतः जर... निर्देश किया है कि विदूषक प्राच्य-प्राकृत का ही प्रयोग करे । नाट्य-र्पणकार और सागरनंदिन् भी इस बात का उल्लेख करते हैं कि विदूषक भाषा प्राकृत हो । नाट्यदर्पणकार इसे निम्नकोटि के पात्रों में स्थान हैं ।

प्राच्या विदूषकादीनाम् । —नाट्यशास्त्र, १८/३८
शौरसेनीमथप्राच्यामवंतीं कर्हिचेत् पठेत् ।
स... एता एव वणिक् श्रेष्ठि बालकाश्च विदूषकाः ॥
हैं... —नाटकलक्षणरत्नकोष

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नीचा विदूषका क्लीबशकार-विट-किंकराः।

—नाट्यदर्पण, पृ० १

शारदातनय, विश्वनाथ तथा रामचंद्र-गुणचंद्र ने विदूषक के नामकरण भी विचार किया है। शारदातनय ने बताया है कि इसका नान 'वात्स्याय 'शाकल्य', 'मौद्गल्य', 'वसंतक' तथा गालव हो। विश्वनाथ विदूषक के 'कुसुम' और 'वसंतक' नामों को उपयुक्त समझते हैं और शिंगभूपाल 'वसंत और 'कापिलेय' नामों का उल्लेख करते हैं।

वात्स्यायनश्च शाकल्यो मौद्गल्यश्च वसंतकः।
गालवश्चेत्येवमादि। —भावप्रकाशन, पृ० २९३
कुसुमवसंताद्यभिधः कर्मवपुर्वेषभाषाद्यैः।
हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकः स्यात् स्वकर्मज्ञः॥

—साहित्यदर्पण, ३/

वसंतकः कापिलेय इत्याख्यो विदूषकः।

—रसार्णवसुधाकर, पृ० ३/५३

—वही, ३

उपर्युक्त विवेचन से सिद्ध होता है कि विदूषक के नामकरण कु ऋतु अथवा गोत्र से संबद्ध होते थे। पद्माकर का लक्षण इस प्रकार है—

स्वाँग ठानि ठानै जु कछु, हाँसी बचन-विनोद।
कह्यो बिदूषक सो सखा, कबिन मानि मन मोद॥

—जगद्विनोद, ३

उदाहरण—

कटि हलाइ हलकाइ कछु, अद्भुत ख्याल बनाइ।
अस को जाहि न फाग में, परगट दियो हँसाइ॥

विद्याधर—इन्होंने 'एकावली' नामक काव्यशास्त्रीय ग्रंथ की की है। इनका रचनाकाल १२८५ से १३२५ ई० के मध्य है। ये दक्षिण भ के निवासी थे। इन्होंने उत्कलनरेश नरसिंह की प्रशस्ति में 'एकावली रचना की है और उसके सभी उदाहरण राजा की प्रशंसा में प्रस्तुत किए 'एकावली' में आठ उन्मेष हैं तथा काव्य के स्वरूप, वृत्ति, ध्वनि, गुणी व्यंग्य, गुण एवं रीति, शब्दालंकार तथा अर्थालंकार का विवेचन है। इस 'काव्यप्रकाश' और 'अलंकारसर्वस्व' का अत्यधिक प्रभाव है। 'एकावली

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ल्लनाथ (१४वीं शती) ने 'तरला' नामक टीका की रचना की है। ग्रंथ रचना के संबंध में लेखक ने अपना मंतव्य इस प्रकार प्रकट किया है—

एवं विद्याधरस्तेषु कांतासंमितलक्षणम् ।
करोमि नरसिंहस्य चाटुश्लोकानुदाहरन् ॥ —एकावली

विद्याधर ध्वनिवादी आचार्य हैं।

विद्याविरुद्ध—अर्थ-दोष का १०वाँ भेद। [दे० अर्थदोष]

विद्यानाथ—इन्होंने 'प्रतापरुद्रयशोभूषण' नामक काव्यशास्त्रीय ग्रंथ का यन किया है। इस ग्रंथ की रचना आंध्रप्रदेश के काकतीयवंशी राजा ापरुद्र की प्रशस्ति के रूप में हुई है अर्थात् इसके सभी उदाहरण प्रशस्ति-गान रूप में रचित हैं। प्रतापरुद्र के शिलालेख १२९८ से १३१७ ई० तक के त होते हैं और यही समय विद्यानाथ का भी है।

प्रतापरुद्रदेवस्य गुणानाश्रित्य निर्मितः ।
अलंकार प्रबंधोऽयं संतः कर्णोत्सवोऽस्तु वः ॥

—प्रतापरुद्रयशोभूषण, १/९

'प्रतापरुद्रीय' नौ प्रकरणों में विभक्त है और नायक, काव्य, नाटक, रस, , गुण, शब्दालंकार, अर्थालंकार एवं मिश्रालंकार का विवेचन है। इस पर व्यप्रकाश' और 'अलंकारसर्वस्व' का अत्यधिक प्रभाव है। 'प्रतापरुद्रीय' पर ल्लनाथ के पुत्र कुमारस्वामी ने 'रत्नापण' नामक टीका की रचना की है। की 'रत्नशाण' नामक एक अन्य टीका भी है, जो अधूरी है। इसमें छह ब्दालंकार, छियासठ अर्थालंकार तथा संकर और संसृष्टि नामक मिश्रालंकारों वर्णन है। अलंकारों के विवेचन में स्पष्टता अधिक है।

विधि—विरोधमूलक अलंकार। पूर्वसिद्ध वस्तु का पुनः विधान करना धि अलंकार है। यह प्रतिषेध का विलोम है, जिसमें प्रसिद्ध निषेध के पुनः ध किए जाने का वर्णन होता है। [दे० प्रतिषेध] 'विधि' का अर्थ विधान इस अलंकार में जिस वस्तु का विधान पूर्वसिद्ध हो चुका है, उसीका पुनः न किया जाता है।

विधि अलंकार के उद्भावक अप्पय दीक्षित हैं। उनके पूर्व शोभाकर मित्र इसका वर्णन किया है; किंतु वह दीक्षित की विधि से भिन्न है। शोभाकर ने ी असंभाव्य हेतु के प्रति चेष्टा की विवक्षा को विधि कहा है।

असंभाव्य हेतुफलप्रेषणं विधिः ॥ —अलंकाररत्नाकर, ८२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दीक्षित के अनुसार जब पूर्व सिद्ध वस्तु का विधान किया जाय तो विधि अलंकार होगा।

सिद्धस्यैव विधानं यत्तमाहुर्विध्यालंकृतिम् ॥

—कुवलयानंद, १६६

रीतिकाल के आलंकारिकों ने 'कुवलयानंद' के लक्षण को अनूदित कर विधि अलंकार का निरूपण किया है। महाराज जसवंत सिंह, मतिराम, दास और पद्माकर के लक्षण 'कुवलयानंद' के अनुवाद हैं।

अलंकार बिधि सिद्ध जो अर्थ साधिए फेर ॥

—भाषाभूषण, १९३

जहाँ सिद्धि की बात को करत प्रसिद्ध बखान।
बिधि भूषन तहँ कहत हैं सकल सुकबि सज्ञान ॥

—ललितललाम, ३८६

अलंकार बिधि सिद्धि कौं फेरि कीजिए सिद्धि ॥

—काव्यनिर्णय, १५/५३

बिधि जु सिद्ध अर्थहिं बहुरि सिद्धि कीजियतु जित्त ॥

—पद्माभरण, २७८

भेद—शोभाकर ने अपने विधि-वर्णन में दो भेदों का कथन किया है—असंभाव्यहेतुप्रेषण तथा असंभाव्यफलप्रेषण, पर दीक्षित ने भेदों का कथन नहीं किया।

उदाहरण—

क. पंचचोदंचने काले कोकिलः कोकिलोऽभवत् ॥

पंचम स्वर में बोलने के समय ही कोयल कोयल हो जाती है। यहाँ प्रथम कोकिल का अर्थ पक्षी है; किंतु दूसरे कोकिल में अभिप्रायांतर है। कवि ने कोकिल के अर्थ को पुनः सिद्ध किया है। दूसरे कोकिल का अर्थ वसंत में बोलनेवाला है। प्रथम कोकिला का अर्थ सिद्ध है तथा अभिप्रायांतर के द्वारा 'वसंत-ऋतु में बोलनेवाला' अर्थ कर सिद्ध अर्थ का विधान किया गया है।

ख. कोकिल है कोकिल जबै रितु में करि है टेर ॥

—श्लोक का अनुवाद

विधि—शोभाकर मित्र-वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। असंभाव्य हेतु या कारण से फल-प्रेषण को विधि अलंकार कहते हैं।

असंभाव्यहेतुफलप्रेषणं विधि ॥ —अलंकाररत्नाकर, ८२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विध्ययुक्त—अर्थ-दोष का बीसवाँ भेद। [दे० अर्थ-दोष]

विध्याभास—शोभाकर मित्र-वर्णित एक अल्पप्रसिद्ध अलंकार। अनिष्ट का विधान करना ही विध्याभास अलंकार है। इसका विकास आक्षेप (दे० आक्षेप) से हुआ है। वैशिष्ट्य प्रतिपादन के लिए अनिष्ट अर्थ का विधान न होने पर भी उसका विधान करना विध्याभास है। इस अलंकार का अंतर्भाव आक्षेप में किया जा सकता है।

अनिष्टविधानं विध्याभासः ।। ४९ ।।

यत्र विशेष प्रतीत्यर्थमनिष्टस्यार्थस्यविधानानर्हस्य विधानं बाधित्वादाभासो भवति स विध्याभासः ।

—अलंकाररत्नाकर, पृ० ८६

विनोक्ति—अलंकार। जब एक वस्तु के बिना अन्य वस्तु शोभित या अशोभित वर्णित हो तो विनोक्ति अलंकार होता है। 'विनोक्ति' का अर्थ है 'विना-र्थक शब्द का कथन या बिना शब्द के अर्थ का कथन।' इस अलंकार में एक वस्तु के बिना अन्य वस्तु के शोभित या अशोभित होने का वर्णन किया जाता है; अतः इसे विनोक्ति कहते हैं। विनोक्ति अलंकार में बिना के पर्यायवाची शब्द रहित, हीन आदि का भी प्रयोग होता है।

विनाभावस्य (विना शब्दार्थस्य) उक्तिर्विनोक्तिरित्यन्वर्थेयं संज्ञा ।।

—बालबोधिनी पृ० ६७४

अत्रापि विना शब्दार्थ एव विवक्षितः। तेन नञ्-निर् वि-अंतरेण-ऋते-रहिते विकलेत्यादि प्रयोगेऽपीयमेव ।।

—उद्योत, पृ० ५२४

इस अलंकार का सर्वप्रथम विवेचन आचार्य मम्मट ने किया; तत्पश्चात् रुय्यक, जयदेव, शोभाकर, विद्याधर, विद्यानाथ, अप्पय दीक्षित, पंडितराज जगन्नाथ तथा विश्वेश्वर पंडित ने इसका वर्णन किया। मम्मट ने बताया कि जब एक के बिना दूसरा अर्थ न सुंदर हो और न असुंदर तो विनोक्ति अलंकार होगा।

विनोक्तिः सा विनान्येन यत्रान्यः सन्ननेतर ।।

—काव्यप्रकाश, १०/११३

परवर्ती आचार्यों में रुय्यक, विद्याधर, विद्यानाथ तथा विश्वनाथ ने मम्मट के ही मत का अनुकरण किया।

विना कंचिदन्यस्य सदसत्त्वाभावो विनोक्तिः ।।

—अलंकारसर्वस्व, पृ० १०५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ब्रूमोऽधुना सहोक्ति प्रतिभटभूतं विनोक्त्यलंकारम् ।
एकेन विना किंचिद्यत्रान्यत् स्यात् सतोऽसतो यद्वा ॥

—एकावली, ८/२२

विना संबंधि यत्किंचिद्यत्रान्यस्यपराभवेत् ।
अरम्यता रम्यता वा सा विनोक्तिरिति स्मृता ॥

—प्रतापरुद्रीय, पृ० २१०

जयदेव ने किसी पदार्थ के बिना प्रस्तुत में हीनता की प्रतीति को विनोक्ति कहा ।

विनोक्तिश्चेद्विना किंचित्प्रस्तुतं हीनमुच्यते ॥ —चंद्रालोक, ५/६१

शोभाकर ने बताया कि जिसके अभाव में शोभनता या जिसके भाव में अशोभनता हो, वहाँ विनोक्ति होगी ।

विनाकिंचित्सदसत्वे विनोक्तिः ॥ ४१

केनचिद्विना कस्यचिदसन्निधानेऽर्थांतरस्य सत्त्वं शोभनत्वमसत्वं अशोभनत्वं वा विनोक्तिः ।

—अलंकाररत्नाकर, पृ० ६१

दीक्षित ने जयदेव का ही लक्षण उद्धृत किया है ।

विनोक्तिश्चेद्विना किंचित्प्रस्तुतं हीनमुच्यते ॥ —कुवलयानंद, ५९

पंडितराज के अनुसार 'नित्य संबंधवालों के असंबंध कथन' को विनोक्ति कहते हैं । इन्होंने इसके तीन प्रकारों का वर्णन किया है—अरमणीय, रमणीय तथा दोनों का मिश्रण (रमणीयारमणीय) ।

नित्यसंबंधानामसंबंधवचनं विनोक्तिः —रसगंगाधर, पृ० ४६२

विश्वेश्वर पंडित ने मम्मट के अनुसार विनोक्ति का वर्णन किया है ।

यत्रान्येन विनान्योऽसाधुः सन्वा विनोक्तिः सा ।
यत्र केनचिद् विनाकस्यचिदप्राशस्त्यं वोच्यते सा विनोक्तिरित्यर्थः ॥

—अलंकारकौस्तुभ, पृ० ३३१-३२

रीतिकालीन आचार्यों ने मम्मट, विद्यानाथ, विश्वनाथ, जयदेव तथा अप्पय दीक्षित को आधार बनाकर विनोक्ति अलंकार का वर्णन किया । चिंतामणि ने विद्यानाथ के लक्षण का अनुवाद किया तो जसवंतसिंह ने 'चंद्रालोक' तथा 'कुवलयानंद' को आधार बनाया । मतिराम ने 'साहित्यदर्पण' के लक्षण को अनूदित किया और कुलपति ने 'काव्यप्रकाश' को आधार बनाया ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जहाँ कछू बिन होत कछु रम्य अरम्य सुबात ।
बुधजन मत सो बिन उकति अलंकार कहि जात ॥

—कविकुलकल्पतरु, ३/१२८

है बिनोक्ति द्वै भाँति की प्रस्तुत कछु बिन छीन ।
अरु सोभा अधिको लहै प्रस्तुत कछु बिन हीन ॥

—भाषाभूषण, ९१

जहँ प्रस्तुत कछु बात बिन, कै नीको कै हीन ।
बरनत तहाँ बिनोक्ति हैं, कवि 'मतिराम' प्रबीन ॥

—ललितललाम, १५९

और अर्थ बिन अर्थ जहँ, भलो बुरो नहिं होय ।
वहाँ विनोक्ति जानिए, है पुनि द्वै विध सोय ॥

—रसरहस्य, ८/१३४

प्रस्तुत कछु बिन हीन कै कछु बिन छबि अधिकाइ ।
यों विनोक्ति द्वै विधि कहत पद्माकर चित लाइ ॥

—पद्माभरण, ९७

भेद—मम्मट ने शोभन एवं अशोभन के आधार पर विनोक्ति के दो प्रकारों का वर्णन किया है ।

१. किसी वस्तु के बिना अशोभन की विनोक्ति—

क. अरुचिर्निशया विना शशी शशिना सापि विना महत्तमः ।
उभयेन विना मनोभवस्फुरितं नैव चकास्ति कामिनोः ॥

रात के बिना चंद्रमा सौंदर्यहीन हो जाता है तथा चंद्रमा के बिना रात भी अंधकारमयी हो जाती है। उन दोनों के बिना कामिनी तथा कामिनियों की काम-क्रीड़ा शोभायमान नहीं होती ।

ख. ससि बिनु नीक न यामिनी, रस बिन वचन न मोह ।
छबि बिनु रूप न राजही, कबि बिनु सभा न सोह ॥

यहाँ चंद्रमा के बिना रात, रस के बिना वाणी, शोभा के बिना रूप कवि के बिना सभा की अशोभनता का वर्णन होने से अशोभन की विनोक्ति है ।

२. शोभन की विनोक्ति—

क. मृगलोचनया बिना विचित्रव्यवहार प्रतिभा प्रगल्भः ।
अमृतद्युतिसुंदराशयोऽयं सुहृदा तेन बिना नरेंद्र सूनुः ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"यह राजपुत्र मृगनयनी के बिना विचित्र व्यवहार की प्रतिभा में चतुर हो जाता है और उस मित्र के बिना चंद्रमा के समान सुंदर या शुद्ध हृदयवाला हो जाता है।"

ख. बिन घन निर्मल सरद नभ, राजत है निज रूप।
अरु रागादिक द्वेष बिनु, मुनि मन विमल अनूप॥

यहाँ मेघ के बिना शरद् कालीन नभ और रागादि द्वेषों के बिना मुनियों के मन को शोभित कहा गया है।

विनोद—शोभाकर मित्र-वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। अन्य आसंग या संपर्क से उत्पन्न कौतुक को विनोद अलंकार कहते हैं।

अन्यासंगात्कौतुकविनोदोविनोदः ॥२०॥

—अलंकाररत्नाकर, पृ० २३

विपर्यय—शोभाकर मित्र-वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। धर्मिधर्म भाव से धर्म के विनिमय का वर्णन विपर्यय अलंकार है। इसके मूल में मानव-स्वभाव का परिवर्त्तन निहित है।

धर्मिधर्मभावस्य धर्माणां विनिमयोविपर्ययः ॥५७॥

—अलंकाररत्नाकर, पृ० १००

विपरीत—आचार्य केशवदास-वर्णित एक नूतन अलंकार। जब साधक का साधन कार्य में बाधक बन जाय तो विपरीत अलंकार होगा अर्थात् जिस साधन से कार्य की सिद्धि हो, वही उसे नष्ट कर दे।

कारज साधक को जहां, साधन बाधक होय।
तासों सब विपरीत कहि, कहत सयाने लोय॥

—कविप्रिया, १३/६

विप्रलब्धा—नायिका का अवस्थानुसार भेद। [दे० नायिका-भेद] विप्रलब्धा का शाब्दिक अर्थ है—जो निराश की गई हो, जिसे धोखा दिया गया हो, जो वंचिता हो। नियत संकेतस्थल पर नायक को न पाकर अपना अपमान समझनेवाली नायिका विप्रलब्धा है। नायक संकेतस्थल पर आने का आश्वासन देकर न आवे और नायिका वहाँ जाकर उसे न पाकर दुःखित हो तो उसे विप्रलब्धा कहते हैं। भानुदत्त ने इसे मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा, परकीया और गणिका के रूप में विभक्त किया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसके स्वरूप का सर्वप्रथम विवेचन आचार्य भरत ने किया है। इनके अनुसार जिसका प्रिय दूती-प्रेषण कर और आने (मिलने) का संकेत देकर भी न आए तो ऐसी नायिका विप्रलब्धा कही जाती है।

यस्याः दूतीं प्रियः प्रेष्य दत्त्वा संकेतमेव वा।
नागतः कारणेनेह विप्रलब्धा तु सा भवेत् ॥

—नाट्यशास्त्र, २२/२१८

रुद्रट ने बताया कि विप्रलब्धा वह है, जिसका प्रिय स्वयं संकेत देकर उस नायिका के संकेतस्थल पर आने पर भी नहीं आता।

यस्या जीवितनाथः संकेतमात्मनैव दत्त्वापि।
नायात्युपागतायां तस्यामिति विप्रलब्धेयम् ॥

—काव्यालंकार, १२/४०

धनंजय के अनुसार संकेतस्थल पर दत्त-संकेत नायक की प्रतीक्षा कर उसके अनागम से अपने आपको अपमानित समझनेवाली नायिका विप्रलब्धा है।

विप्रलब्धोक्तसमयप्राप्तेऽतिविमानिता ॥ —दशरूपक, २/२६

विश्वनाथ के मत से संकेत देकर भी जिसके पास प्रिय न आए, वह अति अपमानित स्त्री विप्रलब्धा है।

प्रियः कृत्वापि संकेतं यस्या नायाति संनिधिम्।
विप्रलब्धा तु सा ज्ञेया नितांतमवमानिता ॥

—साहित्यदर्पण, ३/८३

भानुदत्त के अनुसार विप्रलब्धा उसे कहते हैं, जो संकेत-स्थान पर प्रिय को न देखकर व्याकुल हृदय होकर दुःखित होती है।

संकेतनिकेतने प्रियमनवलोक्य समाकुलहृदया विप्रलब्धा।

—रसमंजरी, पृ० ११५

इसकी चेष्टाएँ हैं—निर्वेद, निःश्वास, संताप, आलाप, भय, सखीजनों को उपालंभ देना, चिंता, अश्रुपात और मूर्च्छा।

रीतिकालीन आचार्यों ने मुख्यतः भानुदत्त के मत का अनुवदन किया है। यहाँ मतिराम और पद्माकर के लक्षण प्रस्तुत हैं—

मिलन आस करि जाय तिय मिले न पिय संकेत।
बिप्रलब्ध सो जानिए बिरह बिकल बिन चेत ॥

—रसराज, १४४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रिय-बिहीन संकेत लखि, जो तिय अति अकुलाय।
ताहि बिप्रलब्धा कहत, सुकबिन के समुदाय॥

—जगद्विनोद, १८०

उदाहरण—

क. उत्तिष्ठ दूति यामो यामो यातस्तथापि नायातः।
याऽतः परमपि जीवेज्जीवितनाथो भवेत्तस्याः॥ —दशरूपक।

हे दूती उठ, यहाँ से चल। पहर व्यतीत हो गया; किंतु वह नहीं आया। जो इसके बाद भी जीवित रहेगी, उसके वह प्राणनाथ होंगे।

ख. आई फाग खेलन गुबिंद सो अनंद-भरी,
जा को लसै लंक मंजु मखतूल-ताग-सो।
कहै 'पद्‌माकर' तहाँ न ताहि मिल्यो स्याम,
छिन में छबीली कों अनंग दह्यो दाग-सो॥
कौन करै होरी कोऊ गोरी समुझावै कहा,
नागरी कों रा1 लग्यो बिष-सो बिराग-सो।
कहर-सी केसरि कपूर लाग्यो काल-सम,
गाज-सो गुलाब लग्यो अरगजा आग-सो॥

—जगद्विनोद, १८५

विबोध—संचारी भाव। [दे० संचारी भाव] निद्रा-भंग होने पर चैतन्यलाभ करना विबोध है। भारतीय काव्यशास्त्र में इसके लिए प्रबोध तथा विबोध दोनों ही शब्द प्रयुक्त हुए हैं। वाग्भट, अग्निपुराणकार एवं शिंगभूपाल ने प्रबोध शब्द का प्रयोग किया है।

भरत भोजन के परिणाम, स्वप्न एवं निद्रा की समाप्ति, तीव्र शब्दश्रवण तथा स्पर्श आदि को विबोध का कारण मानते हैं। इसके अनुभाव हैं—जृंभा (जँभाई लेना), अक्षिमर्दन (आँख मलना) तथा शयनमोक्षण (बिछावन से उठना) आदि।

विबोधो नाम—आहारपरिणामनिद्राच्छेदस्वप्नतीव्रशब्दस्पर्शश्रवणादिभिरनुभावैः समुत्पद्यते। तमभिनयेज्जृंभणाक्षिपरिमर्दनशयनमोक्षणादिभिरनुभावैः।

आहारविपरिणामाच्छब्दस्पर्शादिभिश्च संभूतः।
प्रतिबोधस्त्वभिनेयो जृंभणवदनाक्षिपरिमर्दैः॥

—नाट्यशास्त्र, ७/७९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धनंजय ने निद्रा-भंग होने को विबोध कहा है। इसके अनुभाव जँभाई लेना और आँख मलना हैं।

विबोधपरिणामादेस्तत्र जृंभाक्षिमर्दने। —दशरूपक, ४/२३

विश्वनाथ निद्रा-भंग होने के कारणों से हुए चैतन्य-लाभ को विबोध कहते हैं।

निद्रापगमहेतुभ्यो विबोधश्चेतनागमः।

जृंभांगभंगनयनमीलनांगवलोककृत् ॥ —साहित्यदर्पण, ३/१५२

भानुदत्त ने ज्ञानेंद्रियों को सचेष्ट करके उठने को विबोध कहा है। इसका विभाव है निद्रानाश एवं अनुभाव अँगड़ाई लेना, आँख मलना और अँगुली फोड़ना आदि हैं।

इंद्रियाणां प्रथम प्रकाशो विबोधः। निद्राच्छेदो विभावः। अनुभावा अंगाकुष्टिजृंभाऽक्षिमर्दनांगुलीमोडनादयः। —रसतरंगिणी, पंचमतरंग, पृ० ३६६

पंडितराज जगन्नाथ निद्रानाश के पश्चात् जायमान (उत्पन्न) बोध को विबोध कहते हैं।

निद्रानाशोत्तरं जायमानो बोधो विबोधः। निद्रानाशश्च तत्पूर्त्ति-स्वप्रांत-बलवच्छब्दस्पर्शादिभिर्जायत इति त एवात्र विभावाः। अक्षिमर्दनगात्रमर्दनाद्योऽनुभावाः। —रसगंगाधर, पृ० १०७

उदाहरण—

क. चिररतिपरिखेदप्राप्तनिद्रासुखानां

चरममपि शयित्वा पूर्वमेव प्रबुद्धाः।

अपरिचलितगात्राः कुर्वते न प्रियाणा-

मशिथिलभुजचक्राश्लेषभेदं तरुण्यः ॥ —शिशुपालवध

"रमणियों ने अधिक देर तक रतिक्रीड़ा में संलग्न रहने के कारण निद्रा के सुख को प्राप्त किया तथा पति के बाद सोने पर भी उनसे पहले उठने पर भी उनकी नींद टूट जाने के डर से आलिंगन-पाश शिथिल नहीं किया।"

यहाँ रतिक्रीड़ा के पश्चात् निद्रा त्यागकर उठने में विबोध है।

ख. उठे लखन निसि विगत सुनि,

अरुन-सिखा धुनि कान।

गुरु तें पहिले जगतपति,

जागे राम सुजान ॥ —रामायण

यहाँ निद्रा के बाद राम तथा लक्ष्मण के जागने में विबोध है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विभाव—रस का एक अंग। [**दे० रस का स्वरूप**] विभाव रस का कारण या हेतु है। विभाव का अर्थ विशेष (वि) प्रकार का भाव है। रसशास्त्र में यह हेतु, निमित्त या कारण का वाचक है। रति आदि स्थायी भावों की उत्पत्ति के निमित्त या कारण होने से इसे विभाव कहते हैं। ये रस की विशेष रूप से अनुभूति कराते हैं। विश्वनाथ ने विभाव को स्थायी भावों का उद्बोधक कहा है।

रत्याद्युद्बोधका लोके विभावाः काव्यनाट्ययोः ॥

—साहित्यदर्पण, ३/२९

सहृदय के चित्त में स्थित रति आदि स्थायी भावों को उद्दीप्त (उद्बुद्ध) करना ही विभाव का कार्य होता है। भरत के अनुसार विभाव का अर्थ विज्ञान है। यह स्थायी तथा व्यभिचारी भावों का विशेष प्रकार से प्रतीति कराता है और इसका विभावन अभिनय द्वारा होता है। अभिप्राय यह कि वाचिक तथा आंगिक अभिनयों पर आश्रित अनेक अर्थों को विभावित या विशिष्ट रूप से ज्ञान कराने के कारण इसे विभाव कहते हैं।

विभावो विज्ञातार्थः। विभावः कारणं निमित्तं हेतुरिति पर्यायाः। विभाव्यंतेऽनेन वागंगसत्त्वाभिनया इत्यतो विभावः। यथा विभावितं विज्ञातमिति अर्थांतरम्।

वहवोऽर्था विभाव्यंते वागंगाभिनयाश्रयाः।
अनेन यस्मात् तेनायं विभाव इति संज्ञितः ॥

—नाट्यशास्त्र, ७/४०९-१०

हेमचंद्र ने स्थायी तथा व्यभिचारी चित्तवृत्तियों को वागादि अभिनयों द्वारा विशेष रूप से ज्ञापित करने के कारण इसे विभाव कहा है।

वागाद्यभिनयसहिताः स्थायिव्यभिचारिलक्षणाः चित्तवृत्तयोः विभाव्यंते विशिष्टतया ज्ञायंते यैः ते विभावाः ॥ —काव्यानुशासन, पृ० ८८

विभाव द्वारा वासना रूप में अतिसूक्ष्मरूप से अवस्थित रति आदि स्थायी भाव आस्वादन योग्य बनते हैं। अतः विभाव की दो विशेषताएँ हुईं—चित्तवृत्ति का उद्बोधन करना और स्थायी भाव को रसास्वादनीय बनाना। विभाव के दो प्रकार हैं—आलंबन तथा उद्दीपन। भाव का विषय आलंबन कहलाता है। चित्तवृत्ति-विशेष के विषयभूत विभाव का आलंबन कहा जाता है। आलंबन विभाव का अवलंबन करके ही स्थायी भाव जाग्रत होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विश्वनाथ के अनुसार काव्य-नाट्य में वर्णित नायकादि आलंबन कहे जाते हैं; क्योंकि इन्हीं के द्वारा सहृदयों के चित्त में रस का संचार होता है। जिस पर रस आश्रित होता है या टिकता है, उसे आलंबन कहते हैं। जैसे : शृंगार रस में नायक और नायिका तथा वीर रस में शत्रु आलंबन है। जिसमें रस की उत्पत्ति होती है या जो रस का अनुभव करता है, उसे आश्रय कहते हैं। आलंबन के भी दो भेद हैं—आलंबन और आश्रय।

आलंबनं नायकादिस्तमालंब्य रसोद्गमात् ॥

—साहित्यदर्पण, ३/२९

आचार्य रामचंद्र शुक्ल का कहना है कि "पर काव्य में विभाव ही मुख्य है। भावों के प्रकृत आधार या विषय का कल्पना द्वारा पूर्ण और यथातथ्य प्रत्यक्षीकरण कवि का सबसे पहला और सबसे आवश्यक काम है। इसके अंतर्गत दो पक्ष होते हैं—१. आलंबन (भाव का विषय), २. आश्रय (भाव का अनुभव करनेवाला)। इनमें प्रथम तो मनुष्य से लेकर कीट, पतंग, वृक्ष, नदी, पर्वत आदि सृष्टि का कोई भी पदार्थ हो सकता है, किंतु दूसरा हृदय-संपन्न मनुष्य ही होता है।"

—रस-मीमांसा, पृ० ८७

"रस के संयोजक जो विभावादि हैं, वे ही कल्पना के प्रधान क्षेत्र हैं। कवि की कल्पना का पूर्ण विकास उन्हीं में देखना चाहिए।" —वही, पृ० ९५

रस को उद्दीप्त या तीव्र करनेवाले विभाव को उद्दीपन कहा जाता है। इसकी सीमा में नायक-नायिकादि की विविध चेष्टाएँ, आभूषण, वस्त्र तथा देश-काल आदि आते हैं। उद्दीपन की संख्या अनंत है। इसके अंतर्गत सारी प्रकृति (शृंगार रस में) चंद्रमा, चंद्रिका, दूत-दूती, उनके वचन, उपवन, षड्ऋतु, पुष्प, पेड़, पर्वत, समुद्र, मलयानिल सभी आ जाते हैं।

उद्दीपन विभावास्ते रसमुद्दीपयंति ये।
आलंबनस्य चेष्टाद्या देशकालादयस्तथा ॥

—साहित्यदर्पण, ३/२२

रुद्रभट ने (शृंगार तिलक में) उद्दीपन के चार प्रकार माने हैं—आलंबन के गुण, उसकी चेष्टाएँ, उनका अलंकरण तथा तटस्थ। गुण के भीतर नायक-नायिका के रूप एवं यौवन, चेष्टा में उनके हावभावादि, अलंकरण में आभूषण एवं प्रसाधन के साधन, अंगराग आदि तथा तटस्थ में चंद्रमा, मलयानिल प्रभृति आते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शारदातनय ने प्रत्येक रस की विशिष्टताओं के आधार पर उद्दीपन के आठ प्रकारों का वर्णन किया है—ललित, ललिताभास, स्थिर, चित्र, रूक्ष, खर, निंदित और विकृत। चित्त को आह्लादित करनेवाले, संबद्ध इंद्रियों से दिखाई पड़नेवाले शृंगार रस के उत्कर्षक उद्दीपन विभाव ललित हैं। हास्योत्पादक दृष्ट, श्रुत अथवा स्मृत और सूचित विभाव ललिताभास हैं। स्थिरता प्रदान करनेवाले एवं वीर रस के उत्कर्षक श्रुत, दृष्ट या स्मृत विभाव स्थिर हैं। चित्र उद्दीपन के अंतर्गत विचित्रता के अनुभावक एवं अद्भुत रस के ऐश्वर्यविधायक विभाव हैं। करुण रस के स्थापक रूक्ष हैं और रौद्ररस के उत्कर्षक विभाव खर। वीभत्स रस के विभाव निंदित हैं और भयानक रस के विकृत।

उद्दीपन विभाव देशकाल के आश्रित हैं और तदनुरूप प्रभाव डालते हैं।

विभावन-व्यापार—रत्यादि भावों को आस्वादयोग्य रूप प्रदान करना विभावन व्यापार है।

विभावना—विरोधमूलक अलंकार। प्रसिद्ध कारण के अभाव में कार्योत्पत्ति के चमत्कारपूर्ण वर्णन को विभावना अलंकार कहते हैं। विभावना का अर्थ है विशेष (वि) प्रकार की कल्पना (भावना)। कारण के अभाव में कार्य के होने का वर्णन विशेष प्रकार की भावना या कल्पना है।

प्रसिद्धकारणाभावेऽपि कार्योत्पत्तिर्हि कारणांतरं कल्पयति। एवं च प्रसिद्धकारणनिषेधेऽपि तत्कार्यरूपफलस्य व्यक्तिप्रकाशनंकथनंविभावनालंकार इत्यर्थः॥

—बालबोधिनी, पृ० ६५६

कारण के अभाव में कार्य के सद्भाव के वर्णन में विभावना का अलंकारत्व है। इस अलंकार में लौकिक नियम की प्रतिकूलता प्रदर्शित करने के कारण विरोध का भी भाव दिखाई पड़ता है; पर यहाँ वास्तविक विरोध नहीं होता और कवि प्रसिद्ध कारण के अभाव में अप्रसिद्ध कारण का नियोजन कर विरोध का शमन कर देता है।

विभावना अत्यंत प्रसिद्ध अलंकार है, जिसका विवेचन सभी आचार्यों ने किया है। भामह सर्वप्रथम इसका निरूपण करते हैं। इनके अनुसार क्रिया का निषेध होने पर फल का कथन करना विभावना है।

क्रियायाः प्रतिषेधे या तत्फलस्य विभावना।
ज्ञेया विभावनैवासौ समाधौ सुलभे सति॥

—काव्यालंकार, २/७७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दंडी ने इसके स्वरूप को अधिक स्पष्ट किया। इन्होंने बताया कि जब प्रसिद्ध कारण के बिना अन्य कारण की कल्पना की जाय तो विभावना अलंकार होगा।

प्रसिद्ध हेतुव्यावृत्त्या यत् किंचित् कारणांतरम्।
यत्र स्वाभाविकत्वं वा विभाव्यं सा विभावना॥

—काव्यादर्श, २/१६६

वामन ने भामह के ही विचार को प्रस्तुत किया है।

क्रियाप्रतिषेधे प्रसिद्ध तत्फलव्यक्तिर्विभावना॥

—काव्यालंकारसूत्र, ४, ३, १३

रुद्रट के अनुसार बिना कारण के दृश्यमान पदार्थ का कथन विभावना है। इन्होंने इसके तीन प्रकारों का कथन किया है। [दे० भेद]

सेयं विभावनाख्या स्यामुपलभ्यमानमभिधेयम्।
अभिधीयते यतः स्यात्तत्कारणमंतरेणैव॥

—काव्यालंकार, ६/१६

कुंतक ने (सौंदर्य-सिद्धि के लिए) वर्ण्य विषय की कांति-सिद्धि के लिए कारण के अभाव में कार्य के वर्णन को विभावना कहा है।

वर्णनीयस्य केनापि विशेषेण विभावना।
स्वकारणपरित्यागपूर्वकं कांतिसिद्धये।

—वक्रोक्तिजीवित, ३/४१

मम्मट हेतुरूप क्रिया के निषेध में भी तत्फलप्रकाशन को विभावना कहते हैं।

क्रियायाः प्रतिषेधेऽपि फलव्यक्तिर्विभावना।

—काव्यप्रकाश, १०/१०७

रुय्यक ने कारण के अभाव में कार्योत्पत्ति को विभावना माना है। कारणाभाव में कार्य का सद्भाव प्रस्तुत कारण का परिहार कर अप्रस्तुत कारण की कल्पना है।

कारणाभावे कार्यस्योत्पत्तिर्विभावना।

—अलंकारसर्वस्व, पृ० १५७

परवर्ती आचार्यों में जयदेव, शोभाकर, विद्याधर, विद्यानाथ तथा विश्वनाथ का विभावना-विवेचन रुय्यक से अनुप्राणित है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हेत्वभावे फलोत्पत्तिर्विभावना ।

—अलंकाररत्नाकर, ५३

विभावना विनापि स्यात् कारणं कार्यजन्म चेत् ।।

—चंद्रालोक, ५/७७

असति प्रसिद्ध हेतौ कार्योत्पत्तिर्विभावना भवति ।।

—एकावली, पृ० २८०

कारणेन बिना कार्यस्योत्पत्तिः स्याद्विभावना ।

—प्रतापरुद्रीय, पृ० ३०५

विभावना बिना हेतु कार्योत्पत्तिर्यदुच्यते ।
उक्तानुक्तनिमित्तत्वाद् द्विधा सा परिकीर्त्तिता ।।

—साहित्यदर्पण, १०/६६

विभावना अलंकार के निरूपण में अप्पय दीक्षित का महत्त्वपूर्ण योग है। इन्होंने छह भेदों का वर्णन कर इसके स्वरूप का विस्तार किया और हिंदी के आचार्यों ने भी उसे उसी रूप में ग्रहण किया। दीक्षित के भेदों का विवरण इस प्रकार है—

क. प्रसिद्ध कारण के बिना कार्योत्पत्ति का वर्णन,
ख. अपूर्ण कारण से कार्योत्पत्ति,
ग. प्रतिबंधक के होने पर भी कार्य की उत्पत्ति,
घ. अहेतु से कार्य की उत्पत्ति,
ङ. विरुद्ध कारण से कार्योत्पत्ति,
च. कार्य से ही कारण की उत्पत्ति।

विभावना विनापि स्यात् कारणं कार्यजन्म चेत् ।
हेतूनामसमग्रत्वे कार्योत्पत्तिश्च सा मता ।।
कार्योत्पत्तिस्तृतीया स्यात् सत्यपि प्रतिबंधके ।
अकारणात् कार्यजन्म चतुर्थीस्याद्विभावना ।।
विरुद्धात् कार्यसंपत्तिर्दृष्टा काचिद्विभावना ।
कार्यात् कारणजन्मापि दृष्टा काचिद्विभावना ।।

—कुवलयानंद, ७७-८२

पंडितराज के लक्षण में कहा गया कि कारण के निषेध के साथ प्रतिपाद्यमान कार्योत्पत्ति को विभावना कहते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कारणव्यतिरेकसामान्याधिकरण्येन प्रतिपाद्यमाना कार्योत्पत्तिर्विभावना। अत्र कारणव्यतिरेकसामान्याधिकरण्येन कार्योत्पत्तौ निबध्यमानायामापाततो विरोधः प्रतिभासमानोऽपि तदितरकारणकल्पनया निवर्तते। —रसगंगाधर, पृ० ५७८

इन्होंने विभावना के एक ही प्रकार को मान्यता दी और दीक्षित के सभी भेदों का खंडन किया।

तस्माद् येन प्रकारेण प्रकारांतराणामालीढत्वात् षट्प्रकारा इत्यनुपपन्नमेव।
—वही, पृ० ६९०

पंडितराज का कहना है कि कारण के अभाव में कार्य की उत्पत्ति के वर्णन में विरोध का भाव निहित है, पर वह वास्तविक विरोध नहीं होता; क्योंकि अन्य कारण की योजना कर उसकी निवृत्ति की जाती है।

विश्वेश्वर पंडित के विभावना-वर्णन में रुय्यक तथा पंडितराज जगन्नाथ दोनों का संमिलित प्रभाव है।

हेतुं विनापि कार्यं यत्रोक्तं स्याद्विभावना सा तु। यत्र प्रसिद्धकारणनिषेधेऽपि तत्कार्याविर्भावो वर्ण्यते सा विभावना। विशिष्टा कारणनिरपेक्षा भावना कार्योत्पत्तिर्यत्रेति व्युत्पत्तेरित्यर्थः। न च कारणाभावे कार्योत्पत्त्यनुपपत्तिः। तदतिरिक्तहेत्वाक्षेपेण तदभावात् न चैवमपि कारणात्प्रागेव कार्योत्पत्तिरूपायामतिशयोक्तौ तदंतभावेष्विति वाच्यम्। —अलंकारकौस्तुभ, पृ० ३११

रातिकालीन आचार्यों के विभावना-वर्णन पर दंडी, जयदेव, मम्मट एवं अप्पय दीक्षित का ऋण है। केशव दास ने दंडी के आधार पर विभावना का वर्णन किया तो चिंतामणि ने 'काव्यप्रकाश' के लक्षण का अनुवाद किया। जसवंत सिंह, मतिराम और पद्माकर 'कुवलयानंद' से प्रभावित हैं।

कारज को बिनु कारणहि, उदौ होत जेहि ठौर।
तासों कहत विभावना, केशव कवि शिरमौर॥

—कविप्रिया, ९/१३

कारज उतपति की जहाँ कारन की प्रतिषेध।
सो सब कहत विभावना पंडित सुकबि सुमेध॥

—कविकुलकल्पतरु, ३/१५६

होति छः भाँति विभावना कारन बिन ही काज।
हेतु अपूरन तें जबै कारज पूरन होइ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रतिबंधक के होत हू कारज पूरन मानि।
जबै अकारन बस्तु तें कारज प्रगटत होत ॥
काहू कारन तें जबै कारज होहि बिरुद्ध।
पुनि कछु कारज तें जबै उपजै कारन रूप ॥

—भाषाभूषण, १०८-११३

भेद—विभावना अलंकार के भेदों का क्रमशः विकास होता गया है। दंडी ने स्वाभाविक तथा कारणांतर नामक दो प्रकारों का कथन किया और रुद्रट ने तीन भेद माना। मम्मट ने भेदों का कथन नहीं किया और रुय्यक तथा विश्वनाथ ने उक्तनिमित्ता तथा अनुक्तनिमित्ता नामक दो भेदों का वर्णन किया। दीक्षित तक आकर इसके छह प्रकार हो गए।

प्रथम विभावना—जब बिना कारण से ही कार्योत्पत्ति का वर्णन हो तो प्रथम विभावना होगी।

क. कुसुमितलताभिरहताऽप्यधत्तरुजमलिकुलैरदष्टापि।
परिवर्त्ततेस्म नलिनी लहरीभिरलोलिताप्यघूर्णत सा ॥

"वह खिली हुई लताओं से ताड़ित नहीं की हुई भी पीड़ा का अनुभव कर रही थी, भौंरों से न काटी जाने पर भी लोट रही थी और कमलिनियों से युक्त लहरों के चक्कर में न पड़कर भी चक्कर खाती थी।"

यहाँ भ्रमरों के न काटने तथा लताओं की चोट के न होने पर भी नायिका का दुखी होना कारण के अभाव में कार्य का होना है।

ख. बिन सुगंध लावत लली, आवत अंग सुबास।
बिना पान अधरान पै, लाल जु लहत प्रकास ॥

सुगंधि के अभाव में नायिका के शरीर से सुवास का निकलना तथा पान के बिना भी होठों में लाली प्रकाशित होना, कारण के अभाव में कार्य का होना है।

द्वितीय विभावना—अपूर्ण कारण से कार्योत्पत्ति का वर्णन द्वितीय विभावना है।

क. अस्त्रैरतीक्ष्णकठिनैर्जगज्जयति मन्मथः ॥

तीक्ष्णतारहित एवं कोमल अस्त्रों से भी कामदेव संसार को जीत लेता है।

कोमल बाणों से काम का संसार पर विजय प्राप्त करना, अपूर्ण कारण से कार्योत्पत्ति का वर्णन है।

ख. काम कुसुमधनु-सायक लीन्हें।
सकल भुवन अपने बस कीन्हें ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तृतीय विभावना—प्रतिबंधक के होते हुए भी कार्य का होना तृतीय विभावना है।

क. नरेंद्रानेव ते राजन् दशत्यसिभुजंगमः ॥

"हे राजन् आपका तलवार-रूपी भुजंग नरेंद्रों (विषवैद्यों) को ही डसता हैं, काटता है।" सर्प का विषवैद्यों को डसना प्रतिबंधक के होने पर भी कार्य का होना है।

ख. नैना नैकु न मानहीं, कितै कहौं समुझाय।
ये मुँहजोर तुरंग लौं, ऐंचत हू चलि जायँ॥ —बिहारी

रोकने पर भी नेत्रों के न मानने में प्रतिबंधक के होने पर भी कार्य होने का वर्णन है।

चतुर्थ विभावना—अहेतु या अकारण से कार्योत्पत्ति का वर्णन चतुर्थ विभावना है। जो जिसका कारण नहीं है, उसे भी उसका कारण मानने में यह भेद होता है।

क. तिलपुष्पात्समायाति वायुश्चंदनसौरभः।
इंदीवरयुगाच्चित्रं निःसरंति शिलीमुखाः॥

"यह अत्यंत आश्चर्य की बात है कि तिल-पुष्प से चंदन की सुगंधवाली हवा निकल रही है तथा दो नील कमलों से बाण निकलते हैं। तिल-पुष्प से चंदन की गंध निकलना अकारण को कारण बतलाना है। यहाँ नायिका की नासिका तिल-पुष्प है और श्वास सौरभ।

ख. हँसत बाल के बदन में, यों छबि कछू अतूल।
फूली चंपक बेलि तें झरत चमेली फूल॥ —बिहारी

चंपा की बेलि से चमेली के फूल का झरना अकारण से कार्य का होना है।

पंचम विभावना—जब विरुद्ध कारण से कार्योत्पत्ति का वर्णन किया जाय तो पंचम विभावना होगी।

क. सितांशुकिरणास्तन्वीं हंतसंतापयंति ताम्॥

"दुःख की बात है कि उस कोमलांगी को चंद्रकिरणें जला रही हैं। चंद्रकिरणों का जलाना विरुद्ध कारण से कार्य का होना है।"

ख. विरह-निवारन को सखी, कौन कहौं अब बात।
सीतल चंदन चंदहू, लगे जरावन गात॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चंद्रमा और चंदन का शरीर को जलाना विरुद्ध कारण से कार्य का होना है।

षष्ठ विभावना—जब कार्य से ही कारण की उत्पत्ति हो तो षष्ठ विभावना होगी।

क. जाता लता हि शैले जातु लतायां न जायते शैलः।
संप्रति तद्विपरीतं कनकलतायां गिरिद्वयं जातम् ॥

"पर्वत पर लता उत्पन्न होती है, लता कभी भी पर्वत उत्पन्न नहीं करती। किंतु, हमने आज ऐसा विपरीत देखा कि स्वर्णलता में दो पर्वत उत्पन्न हो गए हैं।" लता से पर्वत का उत्पन्न होना कार्य से कारण की उत्पत्ति है। यहाँ लता का अर्थ नायिका का अंग है और पर्वत स्तनों का द्योतक है।

ख. चंद तें लजात जलजात जग जानत है।
आज जलजात तें लजात चंद देखौ मैं ॥

कमल (नायक के नेत्र) से चंद्रमा (नायिका का मुख) का लज्जित होना, कार्य (कमल) से कारण (चंद्रमा) की उत्पत्ति है।

असंगति और विभावना—दोनों ही विरोधमूलक अलंकार हैं और दोनों में विरोध का परिहार होता है। विभावना में प्रसिद्ध कारण के बिना कार्योत्पत्ति का वर्णन किया जाता है और असंगति में एक स्थल पर स्थित कारण-कार्य को भिन्न स्थान पर स्थापित किया जाता है।

विशेषोक्ति और विभावना—दे० विशेषोक्ति।

विभ्रम—नायिका का स्वभावज अलंकार। [दे० नायिका के अलंकार] प्रिय के आगमन पर हर्षातिरेक के कारण शीघ्रता में आभूषणों को इधर-उधर लगा लेना विभ्रम है।

वियोगदशा—वियोग या विप्रलंभ शृंगार में [दे० विप्रलंभ शृंगार] वियोगजन्य दस कामदशाओं का वर्णन किया जाता है। इन्हें वियोगदशा भी कहते हैं। ये कामदशाएँ विरहियों (वियोगिनी या वियोगी) के जीवन में क्रमशः घटित होती हैं। विश्वनाथ ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है—

अभिलाषाश्चिंतास्मृतिगुणकथनोद्वेगसंप्रलापाश्च।
उन्मादोऽथव्याधिर्जडतामृतिरिति दशात्र कामदशाः ॥

कामदशाओं के दस भेद हैं—अभिलाषा, चिंता, स्मरण (स्मृत), गुण-कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता, मरण।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१. **अभिलाषा**—वियोगावस्था में प्रिय-मिलन की कामना या इच्छा को अभिलाषा कहते हैं। [दे० अभिलाषा]

२. **चिंता**—प्रिय-मिलन के साधन की खोज करना चिंता है। [दे० चिंता]

३. **स्मरण**—विरहावस्था में प्रिय के संभोग-सुखों तथा उसकी बातों का स्मरण करना स्मरण है। [दे० स्मरण]

४. **गुणकथन**—वियोगावस्था में प्रिय के गुणों का वर्णन करना गुणकथन है। [दे० गुणकथन]

५. **उद्वेग**—प्रिय के वियोग में व्याकुल हो जाने पर किसी विषय में किसी प्रकार भी चित्त का न लगना उद्वेग है। [दे० उद्वेग]

६. **प्रलाप**—प्रिय-वियोग में व्याकुल होकर निरर्थक बातें करना प्रलाप है। [दे० प्रलाप]

७. **उन्माद**—वियोगजनित व्यथा से दुःखित होकर विरही का जड़-चेतन के विवेक को खो देना तथा उन्मत्त की तरह कार्य करना उन्माद है। [दे० उन्माद]

८. **जड़ता**—विरहव्यथा की अधिकता से शरीर का चेष्टा-रहित हो जाना जड़ता है। [दे० जड़ता]

९. **व्याधि**—वियोगजन्य पीड़ा के कारण शरीर का रोग-ग्रस्त होकर पीला पड़ जाना व्याधि है। [दे० व्याधि]

१०. **मरण**—प्राण-त्याग ही मरण है; पर काव्यशास्त्र में मृत्यु का वर्णब न होकर मृत्युतुल्य पीड़ा का वर्णन होता है। [दे० मरण]

विरह-निवेदन—दूती का एक कार्य। [दे० दूती] नायक अथवा नायिका की विरह-व्यथा को एक दूसरे के पास जाकर (निवेदन करने) कहने को विरह-निवेदन कहते हैं।

बिरह बिथानि सुनाइबो बिरह-निवेदन जानि ॥

—जगद्विनोद, ३७०

उदाहरण—

याही छिन वाही सों न मोहन मिलौगे जो पै,
लगनि लगाइ एती अगिनि अबाती-सी ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रावरी दुहाई तौ बुझाई ना बुझैगी फेरि
नेह-भरी नागरी की देह दिया-बाती-सी ॥

—जगद्विनोद, ३७१

को जियावतो आजु लौं, बाढ़े बिरह-बलाय।
होती जु पै न तोहि-सी, ता की नेक सहाय ॥ —वही, ३७२

विरहिणी—नायिका। प्रिय या पति के विरह (वियोग) में खिन्न रहनेवाली नायिका विरहिणी है। इसे प्रोषितपतिका [दे० **प्रोषितपतिका**] या पथिकवधू भी कहते हैं। इसकी वियोगजन्य दस दशाएँ होती हैं—अभिलाषा, चिंता, स्मरण, गुण-कथन, प्रलाप, उद्वेग, उन्माद, व्याधि, जड़ता, मरण। [दे० **वियोगदशा**]

विरहोत्कंठिता—उत्कंठिता या उत्का नायिका का अन्य नाम। [दे० **उत्का**]

विरुद—काव्य का एक प्रकार। इसका साधारण अर्थ घोषणा करना या जोर से चिल्लाना है। [दे० **आप्टे संस्कृत-हिंदी कोष पृ० ९४९**] काव्यशास्त्र में 'विरुद' का प्रयोग एक विशेष अर्थ अर्थात् गद्य-पद्यमय राजस्तुति के लिए होता है। विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण (६/३३७) में राजस्तुतिपरक कविता या गद्यपद्यमयी रचना को विरुद कहा है।

गद्यपद्यमयी राजस्तुतिर्विरुदमुच्यते ॥

विरुद्धमतिकृत्—शब्ददोष का १६वाँ भेद। [दे० **शब्द-दोष**]

विरोध (विरोधाभास)—विरोधमूलक अलंकार। जहाँ वास्तविक विरोध न होकर विरोध का आभास-मात्र हो, वहाँ विरोधाभास अलंकार होता है। विरोधाभास का अर्थ 'विरोध की झलक' है। इस अलंकार में वास्तविक विरोध न होकर उसकी छाया या आभास होता है अर्थात् इसमें वर्णित पदार्थों में स्पष्टतः विरोध दिखाई पड़ता है ; किंतु वह वास्तविक न होकर असत्य या आभास-मात्र होता है। वास्तविक विरोध के वर्णन में दोष उपस्थित हो जाएगा या इसका (विरोधाभस का) अलंकारत्व खंडित हो जाएगा। अर्थ-बोध के पूर्व ज्ञात होता है कि वर्णित पदार्थों में विरोध है; पर अर्थ-प्रतीति के पश्चात् विरोध का शमन हो जाता है। विरोधाभास में जाति, गुण, क्रिया और द्रव्य में विरोध दिखाया जाता है।

इस अलंकार का सर्वप्रथम विवेचन भामह ने किया ; कालांतर में विश्वेश्वर पंडित पर्यंत सभी आलंकारिकों ने इसका वर्णन किया। भामह के मता-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नुसार गुण या क्रिया के विरुद्ध अन्य क्रिया के वर्णन में विरोध अलंकार होता है। उद्भट ने भामह के ही लक्षण को किंचित् शब्द-परिवर्त्तन के साथ ग्रहण कर लिया है।

गुणस्य वा क्रियाया वा विरुद्धान्यक्रियाभिधा।
या विशेषाभिधानाय विरोधं तं विदुर्बुधाः ॥

—काव्यालंकार, ३/२५

गुणस्य वा क्रियाया वा विरुद्धान्यक्रियावचः।
यद्विशेषाभिधानाय विरोधं तं प्रचक्षते ॥

—काव्यालंकारसारसंग्रह, ५/६

दंडी ने प्रस्तुत के उत्कर्ष-प्रदर्शन के लिए विरोधी पदार्थों के एकत्रावस्थान को विरोध कहा है।

विरुद्धानां पदार्थानां यत्रसंसर्गदर्शनम्।
विशेषदर्शनायैव स विरोधः स्मृतो यथा ॥

—काव्यादर्श, २/३३३

वामन ने विरोध के आभास को विरोधाभास कहा है।

विरुद्धाभासत्वं विरोधः। ४,३,१२
अर्थस्य विरुद्धस्येवाभासत्वं विरोधः ॥ —काव्यालंकारसूत्र

रुद्रट ने वास्तवमूलक अलंकारों के अंतर्गत विरोध का वर्णन किया है। इनके अनुसार एक ही वाक्य में जब दो ऐसे पदार्थों का समावेश हो जो विरोधी न होते हुए भी विरुद्ध से प्रतीत हों तो वहाँ विरोधाभास अलंकार होता है।

यस्मिंद्रव्यादीनां परस्परं सर्वथा विरुद्धानाम्।
एकत्रावस्थानं समकालं भवति स विरोधः ॥
स इति विरोधाभासो यस्मिन्नर्थद्वयं पृथग्भूतम्।
अन्य वाक्यं गमयेदविरुद्धं स विरुद्धमिव ॥

—काव्यालंकार, ९/३, १०/२२

भोज ने भी भामह, दंडी प्रभृति आचार्यों की भाँति वास्तविक विरोध में ही विरोधाभास का अलंकारत्व स्वीकार किया है। पदार्थों में परस्पर संगति का न होना विरोध है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विरोधस्तु पदार्थानां परस्परमसंगतिः ॥

—सरस्वतीकंठाभरण, ३/२४

मम्मट ने विरोधाभास के स्वरूप का व्यवस्थित वर्णन करते हुए बताया कि दो पदार्थों में विरोध होते हुए भी उनमें वास्तविक विरोध का न होना या विरोध का आभास-मात्र होना ही विरोध है।

विरोधः सोऽविरोधेऽपि विरुद्धत्वेन यद्वचः ॥

—काव्यप्रकाश, १०/११०

मम्मट ने इसके दस भेदों का वर्णन किया, जो जाति, गुण, क्रिया तथा द्रव्य के आधार पर निर्मित हैं।

रुय्यक के विवेचन पर मम्मट का प्रभाव है। इनके अनुसार जहाँ विरोध का आभास दिखाई पड़े, वहाँ विरोध होता है। इन्होंने वास्तविक विरोध के वर्णन में दोष की स्थिति स्वीकार की। विरोधालंकार में विरोध के शमन की स्थिति को अनिवार्य मानकर रुय्यक ने नया विचार प्रस्तुत किया। मम्मट की तरह इन्होंने भी दस भेदों का उल्लेख किया है।

विरुद्धाभासत्वं विरोधः।

इह जात्यादीनां चतुर्णां पदार्थानां प्रत्येकं तन्मध्य एव सजातीयाविजातीयाभ्यां विरोधिभ्यां संबंधे विरोधः। स च समाधान विना प्ररूढ़ोदोषः। स तु समाधान प्रमुख एवाभासमानत्वाविरोधाभासः। —अलंकारसर्वस्व, पृ० १५४

परवर्ती आचार्यों में विद्याधर, विद्यानाथ तथा विश्वनाथ ने रुय्यक का प्रभाव ग्रहण कर इस अलंकार का वर्णन किया।

विलसति विरोधगर्भं ब्रूमोऽलंकारवर्गमधुनातु।
स्फुरति विरोधाभासे भवति विरोधाभिधो दशधा ॥

—एकावली, ८/३३

आभासत्वे विरोधस्य विरोधालंकृतिर्मता ॥

—प्रतापरुद्रीय, पृ० ३००

जातिश्चतुर्भिर्जात्याद्यैर्गुणो गुणादिभिस्त्रिभिः।
क्रिया क्रियाद्रव्याभ्यां यद् द्रव्येण वा मिथः ॥
विरुद्धमेव भासेत विरोधोऽसौ दशाकृतिः ॥

—साहित्यदर्पण, १०/६७-६८

जयदेव ने विरोध तथा विरोधाभास नामक दो स्वतंत्र अलंकारों की स्थिति स्वीकार की है। इनके मतानुसार श्लेषादि के कारण विरोध की प्रतीति होने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पर विरोधाभास होता है। विरोध अलंकार के लक्षण में कहा गया कि इसमें गुण, द्रव्य, क्रिया और जातिवाचक पदों में परस्पर विरोध रहता है।

विरोधोऽनुपपत्तिश्चेद् गुणद्रव्यक्रियादिषु ।
श्लेषादिभूर्विरोधश्चेद् विरोधाभासता मता ॥

—चंद्रालोक, ५/७४-७५

'अग्निपुराण' में बताया गया कि विरोध अलंकार में परस्पर विरोधी पदार्थों का विरोधी रूप प्रदर्शित कर उनमें युक्तिपूर्वक संगति स्थापित की जाती है।

संगतीकरणं युक्त्या यदसंगच्छमानयोः ।
विरोधपूर्वकत्वेन तद्विरोध इति स्मृतम् ॥

—अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग, ७/२८

शोभाकर विरोधाभास को विरोध मानते हैं। इन्होंने इसके २१ भेदों का उल्लेख किया है। जाति के साथ जाति का विरोध छह प्रकार, जाति का गुण के साथ विरोध पांच प्रकार, क्रिया के चार, धर्म के तीन, द्रव्य के साथ द्रव्य का दो तथा भाव और अभाव में एक।

विरोधाभासत्वं विरोधः ॥५२॥

जातिगुणक्रियाधर्ममात्रद्रव्याभावानां सजातीयेन विजातीयेन वा समाधानाद्विरोधाभासः स विरोधालंकारः।

—अलंकाररत्नाकर

दीक्षित ने बताया कि जब वास्तविक विरोध न होकर विरोध के आभासमात्र का वर्णन हो तो विरोधाभास अलंकार होगा।

अभासत्वे विरोधस्य विरोधाभास इष्यते ॥

—कुवलयानंद, ७६

पंडितराज के अनुसार एक अधिकरण (आधार) में असंबद्ध से प्रसिद्ध दो वस्तुओं का एकाधिकरणसंबद्धत्व के रूप में प्रतिपादन विरोध कहलाता है। इन्होंने इसके दो भेदों का कथन किया—शुद्ध तथा श्लेषमूलक—तथा दशधा भेद-व्यवस्था का खंडन किया।

एकाधिकरणासंबद्धत्वेन प्रसिद्धयोरेकाधिकरणसंबद्धत्वेन प्रतिपादनं सः। एकाधिकरणसंबद्धत्वेन प्रतिपादितयोरर्थयोर्भासमानैकाधिकरणसंबद्धत्वम्, एकाधिकरणसंबद्धमानं वा विरोधः ॥

—रसगंगाधर, पृ० ५७२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विश्वेश्वर पंडित मम्मट के मत का अनुसरण करते हैं।

अविरोधेऽपि विरोधो यत्रोक्तः स्याद्विरोधः सः।
स्याज्जातेर्गुणकर्मद्रव्याणां स्वस्वपरयोगात् ।।

—अलंकारकौस्तुभ, पृ० ३२१

रीतिकालीन आचार्यों ने दंडी, मम्मट, जयदेव तथा अप्पय दीक्षित को अपना आधार बनाकर विरोधालंकार का वर्णन किया। केशव का विरोध-वर्णन दंडी पर आश्रित है। इन्होंने विरोध तथा विरोधाभास, दोनों का वर्णन किया है।

केशवदास विरोधमय रचियत बचन बिचारि।
तासों कहत बिरोध सब, कबिकुल सुबुधि सुधारि ।।

—कविप्रिया, ९/१९

बरनत लगैं विरोध सो, अर्थ सबै अविरोध।
प्रगट विरोधाभास यह, समुझत सबै सुबोध ।। —वही, ९/२२

चिंतामणि और कुलपति ने मम्मट के आधार पर इस अलंकार का वर्णन किया है।

सु जो जाति गुन क्रिया अरु, द्रव्य मांह सज्ञान।
यों विरोध दश भाँति सों, मम्मट गए बखानि ।।

—कविकुलकल्पतरु, ३/३८

सो विरोध अविरुद्ध मैं जहँ विरोध अभिधान ।। —वही, ३/३७

है न विरोध विरोध सों, बातन मांझ लखाय।
जाति क्रिया गुन नाम करि, सो विरुद्ध दस भाव ।।

—रसरहस्य, ८/१२४

जसवंतसिंह, मतिराम तथा पद्माकर ने 'कुवलयानंद' के लक्षण को अनूदित किया है।

भासै जबै विरोध सो वहै विरोधाभास ।।

—भाषाभूषण, १०७

जहँ विरोध सौं लगत है, होत न सांच बिरोध।
कहत बिरोधाभास तहँ, बुधजन बुद्धि बिबोध ।।

—ललितललाम, १९४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भेद—भामह ने विरोध के एक ही प्रकार का उल्लेख किया है; पर दंडी ने क्रियाविरोध, वस्तुगत गुणविरोध तथा श्लेषमूलक भेदों का वर्णन किया। भोज-कृत भेद हैं—शुद्धग्रथित, असंगति, प्रत्यनीक, अधिक तथा विषम। मम्मट ने जाति, गुण, क्रिया और द्रव्य के विरोध के आधार पर दस भेदों का निरूपण किया तथा रुद्रट ने तेरह भेदों की कल्पना की। [काव्यालंकार, ६/३१-३३] शोभाकर इक्कीस भेदों का वर्णन करते हैं। पंडितराज ने दो भेदों का उल्लेख कर दस भेदों का खंडन किया। मम्मट-कृत भेदों का विवरण इस प्रकार है—जाति का जाति, गुण, द्रव्य और क्रिया के साथ विरोध होने के कारण चार, गुण का गुण, क्रिया एवं द्रव्य से विरोध होने पर तीन, क्रिया का क्रिया एवं द्रव्य से विरोध होने पर दो तथा द्रव्य का द्रव्य से विरोध होने पर एक भेद होता है।

कालांतर में इसके एक ही भेद को मान्यता मिली।

क. अभिनवनलिनीकिसलयमृणालवलयादिदवदहनराशिः।
सुभग कुरंगदृशोऽस्या विधिवशतस्त्वद्वियोगविपाते॥

हे सुभग, भाग्यवश इस मृगनयनी के ऊपर तुम्हारे वियोग का वज्रपात होने के कारण नई कमलिनी के किसलय तथा कमल की डंडी आदि इसके लिए दावानल के सदृश हो गए हैं। यहाँ 'नलिनीत्व' आदि जातियों का विरोध 'दवदहन' के साथ प्रदर्शित किया गया है।

ख. या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिं कोय।
ज्यों-ज्यों बूड़ै स्याम रंग, त्यों-त्यों उज्ज्वल होय॥ —बिहारी

'काले रंग में डूबने से उजला होना' यह विरोध-कथन है; पर इस विरोध का परिहार हो जाता है कि भक्त ज्यों-ज्यों श्रीकृष्ण के प्रति अनुराग करेगा, त्यों-त्यों उसमें सात्त्विक भाव भरता जायगा।

विरोधाभास एवं विभावना—दोनों में ही विरोध का कथन रहता है और उसके परिहार की भी योजना होती है अर्थात् इनमें वास्तविक विरोध का वर्णन नहीं होता। विरोधाभास का विरोध विस्तृत होता है तो विभावना में कार्य-कारणगत होने से परिमित। विभावना में कार्यकारणगत विरोध की प्रधानता होती है तो विरोधाभास में द्रव्य, गुण, क्रिया तथा जातिगत विरोध प्रदर्शित किया जाता है।

विरोधाभास और असंगति—दोनों ही अलंकारों में विरोध का कथन किया जाता है। इनमें अतर यह है कि असंगति में एक स्थान पर अवस्थित वस्तु

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भिन्न-भिन्न स्थानों पर स्थित दिखाई जाती है; पर विरोधाभास में भिन्न-भिन्न स्थानों में अवस्थित पदार्थ का एक स्थान पर स्थित होना दिखाया जाता है। असंगति में कार्यकारणगत विरोध का वर्णन होने से इसकी सीमा संकुचित हो जाती है; पर विरोधाभास का क्षेत्र विस्तृत होता है ; क्योंकि उसमें कार्य-कारण के अतिरिक्त सभी प्रकार के विरोध को स्थान दिया जाता है।

विरोधाभास एवं विषम—विषम का विरोध वास्तविक होता है और विरोधाभास का अवास्तविक। विषम में अनमिल पदार्थों का संबंध प्रदर्शित किया जाता है; पर विरोधाभास में आपाततः विरुद्ध वस्तुओं को संबद्ध दिखलाया जाता है।

विलास—नायिका का स्वभावज अलंकार। [**दे० नायिका के अलंकार**] प्रियवस्तु के दर्शन से गति, स्थिति, आसन, मुख एवं नेत्रों के व्यापारों में जो विशेषता आती है, उसे विलास कहते हैं।

विलासिका—उपरूपक का एक भेद। [**दे० उपरूपक**] इसकी रचना एक अंक में की जाती है और श्रृंगार रस की प्रधानता होती है। इसका कथानक ख्यात होता है और कैशिकी वृत्ति का नियोजन किया जाता है। इसमें गर्भ तथा विमर्श संधियाँ नहीं रहतीं तथा विदूषक, विट, पीठमर्द आदि का चरित्र चित्रित किया जाता है। इसका नायक हीन गुण का व्यक्ति होता है; पर वह सुंदर वेश से सुसज्जित रहता है। इसमें लास्य के दसों अंगों की योजना की जाती है।

> **श्रृंगारबहुलैकांका दशलास्यांगसंयुता।**
> **विदूषकविटाभ्यां च पीठमर्देनभूषिता॥**
> **हीनगर्भविमर्शाभ्यां संधिभ्यां हीननायका।**
> **स्वल्पवृत्ता सुनेपथ्या विख्याता सा विलासिका॥**
>
> —साहित्यदर्पण, ६/३०१-३०२

विवक्षित वाच्यध्वनि—अभिधामूलाध्वनि का अन्य नाम।

[**दे० अभिधामूला ध्वनि**]

विवृतोक्ति—एक गौण अर्थालंकार। जब उक्ति चातुर्य से गुप्त रहस्य को कवि स्वयं प्रकट कर दे तो विवृतोक्ति अलंकार होगा। 'विवृतोक्ति' शब्द का अर्थ है खुला हुआ या उद्घाटित। इसमें कवि श्लिष्ट शब्दों के द्वारा कहे हुए गुप्त रहस्य को स्वयं खोल देता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस अलंकार के उद्भावक अप्पय दीक्षित हैं। रीतिकालीन आचार्यों ने भी इसका वर्णन किया है और दीक्षित के लक्षण का ही अनुवाद किया है। दीक्षित के अनुसार जब कवि श्लिष्ट गुप्त वस्तु को स्वयं उद्घाटित कर दे तो विवृतोक्ति अलंकार होगा। महाराज जसवंत सिंह, मतिराम, दास और पद्माकर ने भी इसका निरूपण किया है।

विवृतोक्तिः श्लिष्टगुप्तं कविनाविष्कृतं यदि ॥

—कुवलयानंद, १५५

स्लेष छप्यो परगट किये विवृतोक्ति ऐन।

—भाषाभूषण, १८२

जहाँ श्लेष सों गुप्त को सुकवि प्रकासत अर्थ।
विवृतोक्ति तहँ कहत हैं जे कवि सुमति समर्थ ॥

—ललितललाम, ३६२

जहाँ अर्थ गूढ़ोक्ति को, कोऊ करै प्रकास।
बिबृतोक्ति तासों कहैं, सकल सुकवि जन दास ॥

—काव्यनिर्णय, १६/२०

उदाहरण—

क. वृषापेहिपरक्षेत्रादिति वक्ति ससूचनम् ।

'हे बैल, दूर भागो' इस प्रकार कोई सूचना दे रहा है।

ख. तजै निकुंजहिं इत कढ़त, जब तब स्याम भुजंग।
यों कहि सखि सिख दै सबनि, रखी चतुर तिय संग ॥

यहाँ कवि सूचित करता है कि सखियों के बीच कृष्ण की प्रेमिका को देखकर चतुर सखी ने कहा कि कृष्ण या काला सर्प आ रहा है। कृष्ण के दो अर्थ हैं।

विवेक—शोभाकर मित्र-वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। दो पदार्थों में गुणसाम्य के कारण अभेद-प्रतीति होने पर भी, किसी निमित्त से, विलक्षणता के कारण अभेद न होने के वर्णन में विवेक अलंकार होता है। यह अतद्गुण अलंकार से अभिन्न है। [दे० अतद्गुण]

तस्यां कुतश्चिद्विवेको विवेकः ॥

गुणसाम्याद्भेदाप्रतीतौ सत्यामपि केनचिन्निमित्तेन वैलक्षण्यावगतेर्विवेको विवेकः ॥

—अलंकाररत्नाकर, पृ० १७१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विशिष्ट—अलंकार में विशिष्ट का अर्थ उपमान है। [दे० भामहकृत काव्यालंकार, ३/२७]

विशेष—अल्पदेशव्यापी। [दे० अर्थांतरन्यास] जिसका विस्तार परिमित हो।

विशेष—विरोधमूलक अलंकार। जब प्रसिद्ध आधार के बिना आधेय की स्थिति का वर्णन किया जाय तो विशेष अलंकार होगा। 'विशेष' का अर्थ विलक्षण या असाधारण है। इस अलंकार में आधार के बिना आधेय का वर्णन ही असामान्य या विलक्षण स्थिति का द्योतक है। इसकी तीन स्थितियों का वर्णन होता है—

१. आधार के बिना आधेय का होना।

२. एक वस्तु की, एक ही साथ, अनेक स्थानों में अवस्थिति।

३. एक कार्य करते हुए किसी अन्य अशक्य कार्य की भी सिद्धि।

इस अलंकार के पुरस्कर्ता आचार्य रुद्रट हैं, तत्पश्चात् मम्मट, रुय्यक, शोभाकर, जयदेव, विद्याधर, विद्यानाथ, विश्वनाथ, अप्पय दीक्षित, पंडितराज जगन्नाथ तथा विश्वेश्वर पंडित ने इसका विवेचन किया। रुद्रट से लेकर विश्वेश्वर पंडित तक विशेषालंकार का स्वरूप अपरिवर्तित रहा है। प्रायः सभी आचार्यों ने विशेषालंकार की तीन स्थितियों का उल्लेख कर तीन भेदों का वर्णन किया है। रुद्रट के अनुसार इसका वर्णन इम प्रकार है—

क. यदि बिना आधेय के निश्चित आधारवाली वस्तु का वर्णन हो तो प्रथम विशेष होगा। आधार के बिना आधेय का कथन।

ख. एक वस्तु की अनेक आधारों में एक साथ स्थिति।

ग. कर्त्ता द्वारा किसी कार्य को करते हुए किसी अशक्य कार्य का संपादन। परवर्ती आचार्यों में जयदेव ने एक ही भेद का कथन किया है और मम्मट तथा पंडितराज के अतिरिक्त किसी के विवेचन में कोई नवीनता नहीं है।

किंचिदवश्याधेयं यस्मिन्नभिधीयते निराधारम्।
तादृगुपलभ्यमानं विज्ञेयोऽसौ विशेष इति॥
यत्रैकमनेकस्मिन्नाधारे वस्तु विद्यमानतया।
युगपदभिधीयतेऽसावतान्यः स्याद्विशेष इति॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यत्रान्यत्कुर्वाणो युगपत्कार्यांतरं च कुर्वीत ।
कर्तुमशक्यः कर्त्ता विज्ञेयोऽसौ विशेषोऽन्यः ॥

—काव्यालंकार, ९/५, ७, ९

मम्मट ने प्रसिद्ध आधार के अभाव में आधेय की स्थिति का कथन कर वास्तविक आधार को हटा दिया। यहाँ प्रसिद्ध आधार से उनका अभिप्राय कविकल्पित या काल्पनिक आधार से है। द्वितीय प्रकार में कहा गया कि एक ही वस्तु का एक ही रूप में अनेक स्थानों में विद्यमानता का वर्णन होता है। तृतीय भेद में मम्मट का कथन है कि वेगपूर्वक किसी कार्य को संपादित करने वाले कर्त्ता-द्वारा उसी प्रयत्न से अन्य अशक्य कार्य को सिद्ध करने का वर्णन होता है।

बिना प्रसिद्धमाधारमाधेयस्य व्यवस्थितिः ।
एकात्मा युगपद्वृत्तिरेकस्यानेकगोचरा ॥
अन्यत्प्रकुर्वतः कार्यमशक्यस्यान्यवस्तुनः ।
तथैव करणं चेति विशेषस्त्रिविधः स्मृतः ॥

—काव्यप्रकाश, १०/१३५-३६

रुय्यक ने एक ही साथ तीनों स्थितियों का वर्णन करते हुए कहा कि बिना आधार के आधेय, एक पदार्थ की अनेक स्थानों पर गोचरता तथा एक कार्य करते हुए अशक्य अन्य कार्य की सिद्धि में विशेषालंकार होता है।

अनाधारमाधेयमेकमनेकगोचरमशक्यवस्त्वंतरकरणं विशेषः।

—अलंकारसर्वस्व, पृ० १७१

इहाधारमंतरेणाधेयं न वर्तते इति स्थितावपि यस्तत्परिहारेणाधेयस्योपनिबंधः स एको विशेषः, यच्चैकं वस्तु परिमितं युगपदनेकधावर्तमानं क्रियते स द्वितीयो विशेषः। यच्च किंचिदारभमाणस्य संभाव्यवस्त्वंतरकरणं स तृतीयो विशेषः॥

—वही, पृ० १७१-७२

अनाधारमाधेयमनेकगोचरं संभावितादधिकस्य विरुद्धस्य वा संपत्तिश्च विशेषः॥

—अलंकाररत्नाकर ६३

विशेषः ख्यातमाधारं विनाप्याधेय वर्णनम् ॥

—चंद्रालोक, ५/८५

आधेयमनधिकरणं युगपद्येकप्यनेकत्र ।
यदसंभावितवस्त्वंतरकरणं च त्रिधा विशेषोऽसौ ॥

—एकावली, ८/४१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आधाररहिताधेयमेकं चानेकगोचरम् ।
अशक्यवस्तुकरणं विशेषालंकृतिस्त्रिधा ।।

—प्रतापरुद्रीय, पृ० ३०३

यदाधेयमनाधारमेकं चानेकगोचरम् ।
किंचित्प्रकुर्वतः कार्यमशक्यस्येतरस्ततः ।।
कार्यस्य करणं दैवाद्विशेषस्त्रिविधस्ततः ।।

—साहित्यदर्पण, १०/७४

विशेषः ख्यातमाधारं विनाप्याधेयवर्णनम् ।
विशेषः सोऽपि यद्येकं वस्त्वनेकत्र वर्ण्यते ।।
किंचिदारंभतोऽशक्यवस्त्वंतर कृतिश्च सः ।।

—कुवलयानंद, ९९-१०१

प्रसिद्धमाश्रयं विना आधेयं वर्ण्यमानमेकोविशेष प्रकारः । यच्चैकमाधेयंपरिमितियत्किंचिदाधारगतमपि युगपदनेकाधारगतया वर्ण्यते सोऽपरोविशेष प्रकारः । यच्च किंचित्कार्यमारभमाणस्यासंभाविताशक्यवस्त्वंतर निर्वर्तनं स तृतीयोविशेषप्रकारः ।

—रसगंगाधर, ६१४

स्थितिराधाराभावेवृत्तिरनेकेषुयुगपदेकस्य ।
एक करणेन दुष्करकार्यांतरसिद्धिरितिविशेषः ।।

आधार पदस्य संबंधि सापेक्षतया स्थितिराधेयस्य । सर्वथैवाधाराभावेकार्यंस्यावस्थानासंभवाच्च । आधार पदं प्रसिद्धाधारपरम् तथा च । प्रसिद्धमाधारमंतरेणाप्याधेयस्य सिद्धिर्यत्रोक्ता स एको विशेषः इति पर्यवस्यति । यत्र चैकमेववस्तु युगपदनेकत्र वर्तते स द्वितीयः । यत्र चैक कार्यारंभयत्नेन दुष्करकार्यांतरमपि समारभ्यते स तृतीयः ।।

—अलंकारकौस्तुभ, पृ० ३९९-४००

रीतिकालीन आचार्यों के मुख्याधार मम्मट और अप्पय दीक्षित रहे हैं। चिंतामणि ने मम्मट के आधार पर तथा जसवंत सिंह, मतिराम आदि ने 'कुवलयानंद' के आधार पर विशेषालंकार का वर्णन किया है।

बिना प्रसिद्ध आधार को करत आधेय बखानि ।
एक ही की इक बार जो थित अनेक थल आनि ।।
एक वस्तु के करत जो होय असक्यौ और ।
त्रिविध विसेष विचार कै कहत कवी सिर मौर ।।

—कविकुलकल्पतरु, ३/१४९-१५०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तीन प्रकार बिसेष हैं अनाधार आधेय।
थोरो कछु आरंभ जब अधिक सिद्धि कों देय ॥
एक वस्तु कों कीजिए बर्नन ठौर अनेक ॥

—भाषाभूषण, १३०-१३१

जहं आधेय बखानिए बिन प्रसिद्ध आधार।
कबि जन तहाँ बिशेष कहि बरनत बुद्धि उदार ॥
जहं अनेक थल मैं कछू बात बखानत एक।
तहं बिसेष औरो कहत कबि जन बुद्धि ब्रिबेक ॥
करत कछू आरंभ ते जहं असक्य कछु और।
तहं बिसेष औरो कहत कबि कोबिद-सिरमौर ॥

—ललितललाम, २४५-२४९

भेद—विशेषालंकार के तीन भेद हैं—

१. प्रथम विशेष—प्रसिद्ध आधार के बिना आधेय का वर्णन प्रथम विशेष है।

क. दिवमप्युपयातानामाकल्पमनल्पगुणायेषाम्।
रमयंति जगंति गिरः कथमिव कवयो न ते वंद्याः ॥

स्वर्ग चले जाने पर भी जिन कवियों की अत्यधिक गुणों से पूर्ण काव्य-रूप वाणी प्रलय तक समस्त विश्व को आनंद प्रदान करती हुई रहती है, वे कवि इस संसार में वंदनीय क्यों नहीं हो सकते ? यहाँ कवि आधार है और वाणी आधेय। यहाँ कविस्वरूप आधार के अभाव में ही उसकी वाणी की स्थिति में प्रथम विशेष हुआ।

ख. वंदनीय केहि के नहीं, ये कविंद मतिमान।
स्वरग गए हू काव्य रस, जिनको जगत जहान ॥

पूर्व श्लोक का अनुवाद

२. द्वितीय विशेष—एक पदार्थ की एक समय में एक ही रीति से अनेक स्थानों की अवस्थिति का वर्णन द्वितीय विशेष है।

क. सा वसति तव हृदये सैवाक्षिषु सा च वचनेषु।
अस्मादृशीनां सुंदर ! अवकाशः कुत्र पापानाम् ॥

"हे सुंदर ! वह आपके हृदय में निवास करती है और वही आँखों और वचनों में रहती है। हमारी-जैसी पापिनी के लिए वहाँ स्थान कहाँ है ?" यहाँ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सौत का एक ही साथ कई स्थानों—नेत्र, हृदय, वाणी—में विद्यमान रहने का कथन है ।

ख. गोपिन सँग निसि सरद की रमत रसिक रस रास ।
लहाछेह अति गतिन की, सबहि लखे सब पास ॥ —विहारी

यहाँ श्रीकृष्ण की स्थिति एक ही समय में अनेक स्थलों पर दिखाई गई है ।

३. तृतीय विशेष—एक कार्य करते हुए किसी दूसरे अशक्य कार्य की सिद्धि में तृतीय विशेष होता है ।

क. गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रिय शिष्या ललिते कलाविधौ ।
करुणाविमुखेन मृत्युना हरता त्वां वत किं न मे हृतम् ॥

"हे इंदुमती ! निष्करुण मृत्यु ने तुम्हें मारकर मेरा क्या नहीं हरण कर लिया ? तुम मेरी गृहिणी, सचिव, सखी एवं ललित कलाओं की प्रिय शिष्या थीं ।" यहाँ मृत्यु द्वारा इंदुमती के हरण करने से कई अन्य अशक्य पदार्थों—गृहिणी, सखी आदि—के भी हरण का कथन है ।

ख. तिय तुव तरल कटाक्ष सर, सहें धीर उर धारि ।
सही मानियो तिन सहे, तुपक, तीर, तरवारि ॥ —दास

कटाक्ष सहकर तीर, तलवार आदि सहना एक कार्य करते हुए अन्य अशक्य कार्य भी करना है ।

विशेष और पर्याय—पर्याय तथा विशेषालंकार के द्वितीय प्रकार में एक वस्तु का अनेक स्थानों पर अवस्थान होने का वर्णन किया जाता है । दोनों में अंतर यह है कि पर्याय में एक वस्तु की अनेक स्थानों में स्थिति क्रमशः या एक के बाद दूसरे की होती है; पर विशेष में क्रम नहीं रहता, एक समय में एक वस्तु की अनेक स्थानों पर स्थिति दिखलाई जाती है ।

विशेषक—मुक्तक काव्य का एक भेद । [दे० मुक्तक काव्य]

विशेषक—लोकन्यायमूलक अलंकार । दो पदार्थों में सादृश्य के कारण, तादात्म्य होने पर भी, किसी कारण-विशेष से भेद की प्रतीति का होना विशेषक अलंकार है । 'विशेषक' का अर्थ पृथक् है । इस अलंकार में कारण-विशेष से (सादृश्य होने पर भी) प्रस्तुत में अप्रस्तुत से भिन्नता या पृथकता दिखाई पड़ती है । यह सामान्य का विलोम है । सामान्य में गुण-साम्य के कारण प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत में अभेद-ज्ञान होता है । उसमें सादृश्य-भेद की प्रतीति नहीं होती; पर विशेषक में सादृश्य के होने पर भी, किसी कारण से वैशिष्ट्य का भान होने लगता है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस अलंकार के उद्भावक अप्पय दीक्षित हैं। इसका स्रोत शोभाकर-रचित 'अलंकाररत्नाकर' के 'उद्भेद' अलंकार में है। निगूढ़ पदार्थ में किसी प्रकार से प्रतिभेद का प्रकट हो जाना उद्भेद है।

निगूढ़स्य प्रतिभेद उद्भेदः ॥ —अलंकाररत्नाकर, १०१

दीक्षित ने बताया कि जब सामान्य अलंकार में किसी प्रकार के वैशिष्ट्य का बोध हो तो विशेषक अलंकार होगा।

भेद वैशिष्ट्योः स्फूर्तावुन्मीलितविशेषकौ ॥

—कुवलयानंद, १४८

तथा सामान्यरीत्या विशेषास्फुरणे प्राप्ते कुतश्चित्कारणाद्विशेषस्फूर्तौ तत्प्रतिद्वंद्वी विशेषकः।

—वही

रीतिकालीन आचार्यों ने 'कुवलयानंद' के ही लक्षण का अनुवाद कर विशेषक का वर्णन किया। जसवंत सिंह ने 'कुवलयानंद' का आधार लेकर विशेषक का वर्णन किया तो मतिराम और पद्माकर ने दीक्षित के लक्षण का शब्दानुवाद प्रस्तुत किया।

यहै बिसेस बिसेस पुनि फुरै जु समता मांझ ॥

—भाषाभूषण, १७५

जहँ मीलित सामान्य में पैयत भेद बिसेख।
उन्मीलित सबिसेष कबि बरनत मति उल्लेख ॥

—ललितललाम, ३४५

सुबिसेषक सामान्य तें जहँ बिसेष को ज्ञान ॥

—पद्माभरण, २४६

भूषण का लक्षण अत्यंत स्पष्ट है। इन्होंने सदृश पदार्थों में कुछ विशेष भिन्नता के प्रतिपादन को विशेष कहा।

भिन्न रूप जहि सदृस में लहियै कछुक बिसेष।
ताहि बिसेषक कहत हैं भूषन सुमति उलेख ॥

—शिवराजभूषण, २८३

पंडितराज जगन्नाथ, नागेश तथा विश्वेश्वर पंडित विशेषक के अलंकारत्व का खंडन कर इसका अंतर्भाव क्रमशः अनुमान एवं सामान्य में करते हैं। [दे० रसगंगाधर, पृ० ६९७ तथा उद्योत पृ० ५६९]

सामान्य और विशेष में अंतर यह है कि सामान्य में गुण-साम्य के कारण दो पदार्थ इतने अधिक घुलमिल जाते हैं कि उनके वैशिष्ट्य का ज्ञान नहीं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होता ; पर विशेषक में दो वस्तुओं के घुलमिल जाने पर भी उनकी विशेषता का ज्ञान हो जाता है।

उदाहरण—

क. काकः कृष्णः पिकः कृष्णः को भेदः पिककाकयोः।
वसंत समये प्राप्ते काकः काकः पिकः पिकः ॥

कौआ काला है और कोयल भी काली है। कौआ और कोयल में क्या भेद है ? वसंत ऋतु में कौआ कौआ हो जाता है और कोयल कोयल।

यहाँ वसंत ऋतु के कारण काकत्व पिकत्व की विशेषता के प्रदर्शन में विशेषक हुआ।

ख. तिय मुख अरु पंकज लखें, ससिदर्सन तें साँझ ॥

—भाषाभूषण, १७५

नायिका के मुख तथा कमल में अत्यंत समानता के कारण पहले तो भेद नहीं दिखाई पड़ा, पर चंद्र-दर्शन के कारण दोनों में स्पष्ट अंतर हो गया। चंद्रमा का उदित होना एवं कमल का मुरझा जाना दो कारण-विशेष से नायिका के मुख तथा कमल में अंतर स्थापित हो जाता है।

विशेषणवक्रता—पदपूर्वार्द्ध वक्रता का चतुर्थ भेद।

[दे० पदपूर्वार्द्ध वक्रता]

विशेषणौचित्य—औचित्य का ग्यारहवाँ भेद। [दे० औचित्य के भेद]

विशेषनिबंधना—अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार का एक भेद।

[दे० अप्रस्तुत-प्रशंसा]

विशेषपरिवृत्तता—अर्थदोष का १४वाँ भेद। [दे० अर्थ-दोष]

विशेषोक्ति—विरोधमूलक अलंकार। अखंड या पर्याप्त कारण के होते हुए भी कार्याभाव का वर्णन विशेषोक्ति अलंकार है। 'विशेषोक्ति' का अर्थ विशेष प्रकार की उक्ति या असाधारण उक्ति (कथन) है। पुष्ट या परिपूर्ण कारण के सद्भाव में भी कार्याभाव का वर्णन एक असाधारण उक्ति है। इस तथ्य के वर्णन के कारण इसे विशेषोक्ति कहते हैं।

विशेषस्यनवीनप्रकारस्योक्तिर्विशेषोक्तिररिति कुवलयानंदकारिकाव्याख्यायामाशाधरभट्टः।

—बालबोधिनी, पृ० ६५८

अथ कथमपि विशेषं प्रकाशयितुं सत्यमप्येतस्यां कार्यानुत्पत्तिरूपनिबध्यते तदाविशेषणप्रतिपादनायोक्तिररिति यौगिकत्वमप्यसावाश्रयति।

—एकावली, पृ० २८१-२८२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस अलंकार में कवि अधिक चमत्कार उत्पन्न करने के लिए अभिप्रायगर्भ विशेष कथन का नियोजन करता है।

विशेषोक्ति अलंकार का सर्वप्रथम विवेचन भामह ने किया है, तत्पश्चात् सभी आचार्यों ने इसका वर्णन किया। भामह के अनुसार विशेषता की अभिवृद्धि के लिए एक गुण की हानि होने पर भी, दूसरे गुण का वर्णन करना विशेषोक्ति है। यहाँ अपूर्ण कारण से कार्योत्पत्ति का वर्णन किया गया है।

एकदेशस्य विगमे या गुणांतरसंस्थितिः।
विशेषप्रथनायासौ विशेषोक्तिर्मता यथा॥

—काव्यालंकार, ३/२३

दंडी ने विशेषोक्ति के पाँच प्रकारों का वर्णन कर इसके विवेचन को आगे बढ़ाया—गुणवैकल्यविशेषोक्ति, जातिवैकल्य, क्रियावैकल्य, द्रव्यवैकल्य, जातिवैकल्य, द्रव्यवैकल्य तथा हेतुविशेष विशेषोक्ति। उनके अनुसार वर्णनीय वस्तु के अतिशय बल को बतलाने के लिए गुण, जाति, क्रिया आदि के कार्य की सिद्धि का न होना विशेषोक्ति है।

गुणजातिक्रियादीनां यत्तु वैकल्यदर्शनम्।
विशेषदर्शनायैव सा विशेषोक्तिरिष्यते।

—काव्यादर्श, २/३२३

उद्भट का लक्षण अर्वाचीन आचार्यों के निकट है। प्राचीनों में सर्वप्रथम इन्होंने ही विशेषोक्ति के वास्तविक रूप का निरूपण किया। इन्होंने कारण की समग्रता में भी फलानुत्पत्ति (कार्याभाव) को विशेषोक्ति माना।

यत्सामग्र्येऽपि शक्तीनां फलानुत्पत्तिबंधनम्।
विशेषस्याभिधित्सातस्तद्विशेषोक्तिरुच्यते॥

—काव्यालंकारसारसंग्रह, ५/४

इन्होंने दो भेदों का वर्णन किया है—१. कारण के दर्शित होने, तथा २. कारण के दर्शित न होने में।

वामन का लक्षण भामह से प्रभावित है। इन्होंने एक गुण के अभाव में शेष गुणों के साथ साम्य की दृढ़ता को विशेषोक्ति कहा। वामन ने नया विचार यह दिया कि विशेषोक्ति रूपक से अनुप्राणित होती है।

एकगुणहानिकल्पनायां साम्यदार्ढ्यं विशेषोक्तिः॥

—काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, ४, ३, २३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मम्मट के विशेषोक्ति-विवेचन पर उद्भट का ऋण है। इन्होंने अखंड या पूर्ण कारण के होने पर भी कार्य के न होने को विशेषोक्ति कहकर इसके स्वरूप को व्यवस्थित कर दिया। मम्मट ने इसके तीन भेदों का कथन किया— उक्तनिमित्ता, अनुक्तनिमित्ता तथा अचिंत्यनिमित्ता।

विशेषोक्तिरखंडेषु कारणेषु फलावचः ॥

—काव्यप्रकाश, ५/४

विशेषोक्ति का परवर्ती विकास मम्मट के लक्षण के आधार पर हुआ। रुय्यक, शोभाकर, जयदेव, विद्याधर, विद्यानाथ, विश्वनाथ, अप्पय दीक्षित, पंडितराज जगन्नाथ और विश्वेश्वर पंडित ने मम्मट को उपजीव्य बनाकर विशेषोक्ति का वर्णन किया।

कारणसामग्र्ये कार्यानुत्पत्तिर्विशेषोक्तिः।

इह समग्राणि कारणानि नियमेन कार्यमुत्पादयंतीति प्रसिद्धम्। अन्यथा समग्रत्वस्यैवाभावप्रसंगात्। यत्तु सत्यपि सामग्र्ये न जनयति कार्यं सा कंचिद्विशेषमभिव्यंक्तुं प्रयुज्यमाना विशेषोक्तिः।

—अलंकारसर्वस्व, पृ० १६०-१६१

हेतु साकल्येफलानुत्पत्तिर्विशेषोक्तिः।

नावश्यं कारणानि कार्यवंति भवंतीति न्यायेनासमग्राणां कारणानां कार्यजनकत्वं समग्राणि तु जनयंत्येवान्यथा समग्रत्वाभावात्। एवं स्थिते समग्राणामपि हेतूनां कयाचिद्भंग्या कार्यस्यानुपादानकतोपनिबंधे विशेषोक्तिः।

—अलंकाररत्नाकर, पृ० ६४

विशेषोक्तिरनुत्पत्तिः कार्यस्य सति कारणे ॥

—चंद्रालोक, ५/७८

यदि कारण साकल्ये कार्यासिद्धिस्तदा विशेषोक्तिः ॥

—एकावली, ८/३६

तत्सामग्र्यामनुत्पत्तिर्विशेषोक्तिर्निगद्यते ॥

—प्रतापरुद्रीय, पृ० ३०५

सतिहेतौ फलाभावे विशेषोक्तिस्तथाद्विधा ॥

—साहित्यदर्पण, १०/६७

कार्याजनि विशेषोक्तिः सति पुष्कल कारणे ॥

—कुवलयानंद, ८३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तत्र सत्यपि कारणसमवधाने कार्यस्यानुत्पत्तौ विरोधः प्रतिभासमानः प्रसिद्धेतरकारणवैकल्यधिया निवर्त्तते ॥ —रसगंगाधर, पृ० ५८६-८७

हेतौ सत्यपि कार्यानुत्पत्तिः स्याद्विशेषोक्तिः ।

सत्यां सामग्र्यां कार्यानुत्पादो विशेषोक्तिः । न चासामग्र्याः फलोपधानव्याप्यतया तदनुपपत्तिः । प्रतिबंधकांतरस्य सत्त्वेन तदविरोधात् । तदभावातिरिक्तसकलकारणसमवधानस्यैवात्र सामग्री पदार्थत्वात् ॥

—अलंकारकौस्तुभ, पृ० ३१५

रुय्यक ने कारण की समग्रता में भी कार्य की अनुत्पत्ति को विशेषोक्ति कहा । इन्होंने इसके दो प्रकार माने—उक्तनिमित्ता तथा अनुक्तनिमित्ता और अचित्यनिमित्ता का अनुक्तनिमित्ता में अंतर्भाव किया ।

विश्वनाथ हेतु के होने पर भी कार्य के अभाव या कार्य की अनुत्पत्ति को विशेषोक्ति कहते हैं ।

पंडितराज ने प्रसिद्ध कारणकलाप की विद्यमानता में भी कार्य की अनुत्पत्ति के वर्णन को विशेषोक्ति कहा ।

रीतिकाल में मम्मट, जयदेव और अप्पय दीक्षित के लक्षण को अनूदित कर विशेषोक्ति का विवेचन किया गया । केशव, चिंतामणि तथा कुलपति ने 'काव्यप्रकाश' को आधार बनाया तो जसवंतसिंह, मतिराम और पद्माकर दीक्षित के ऋणी बने ।

विद्यमान कारण सकल, कारज होत न सिद्ध ।
सोई उक्ति विशेषमय, केशव परम प्रसिद्ध ॥

—कविप्रिया, पृ० २४५

जो अखंड कारन मिले कारज कछू न होय ।
तासों विसेषोकति कहत, पंडित सत कवि कोय ॥

—कविकुलकल्पतरु, ३/१६१

सब कारण कारजन तें उक्ति विशेष सुजान ॥

—रसरहस्य, पृ० १६०

बिसेषोक्ति जौ हेतु सौं कारज उपजै नाहिं ॥

—भाषाभूषण, ११४

जहँ परिपूरन हेतु ते प्रगट होत नहिं काज ।
विशेषोक्ति तहँ कहत हैं सकल सुकवि सिरताज ॥

—ललितललाम, २०६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विशेषोक्ति कारण प्रबल, तातें काज जहाँ न ।।

—पद्माभरण, १४३

भेद—विशेषोक्ति के मम्मट-कृत तीन भेद आधुनिक युग में भी मान्य हुए हैं। वे इस प्रकार हैं—

१. उक्तनिमित्ता—जब पर्याप्त कारण के होते हुए भी कार्य की अनुत्पत्ति के हेतु (कारण) का कथन किया जाय तो उक्तनिमित्ता होगी।

क. कर्पूर इव दग्धोऽपि शक्तिमान् यो जने-जने ।
नमोऽस्त्ववार्यवीर्याय तस्मै मकरकेतवे ।।

उस अकुंठित पराक्रमवाले कामदेव को प्रणाम है, जो कपूर की भाँति भस्म हो जाने पर भी प्रत्येक मनुष्य के लिए शक्तिशाली हो गया है। यहाँ कामदेव का भस्म होने पर भी शक्तिमान् होना प्रथम प्रकार है। यहाँ अकुंठित (अवार्यवीर्यत्व) शक्ति के द्वारा कारण का कथन है।

ख. नेह न नैननि को कछू, उपजी बड़ी बलाय।
नीरभरे नितप्रति रहैं, तऊ न प्यास बुझाय ।। —बिहारी।

जल में नित्यप्रति रहने पर भी नेत्रों की प्यास नहीं बुझना विशेषोक्ति है। यहाँ बड़ी बलाय या रोग का वर्णन कारण का कथन है।

२. अनुक्तनिमित्ता—जब कार्य की अनुत्पत्ति का कारण न कहा जाय तो अनुक्तनिमित्ता होगी।

क. निद्रानिवृत्तावुदिते द्युरत्ने सखीजने द्वारपदं पराप्ते।
श्लथीकृताश्लेषरसे भुजंगे चचाल नालिंगनतोऽङ्गना सा ।।

"नींद खुल जाने पर सूर्य के उदित होते ही शयन-गृह के द्वार पर सखियों के आ जाने तथा प्रेमी द्वारा आलिंगन के आनंद को शिथिल कर देने पर भी वह स्त्री बाहुपाश से नहीं हटी।" आलिंगनपाश के सारे साधनों के विद्यमान होते हुए भी नायिका द्वारा उसका त्याग नहीं होता। यहाँ इसका कारण कथित नहीं है।

ख. सोवत जागत सपन बस, रसरिस चैन कुचैन।
सुरति स्याम घन की सुरति, बिसराये बिसरै न ।। —बिहारी।

यहाँ कृष्ण की याद को भुला देने पर भी न भूलने में बिसराने का कारण कथित नहीं है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

३. अचिंत्यनिमित्ता—यदि कार्य की अनुत्पत्ति का कारण अचिंत्य या अज्ञात हो तो अचिंत्यनिमित्ता होगी।

क. स एक स्त्रीणि जयति जगंति कुसुमायुधः।
हरताऽपि तनुं यस्य शंभुना न बलं हृतम् ॥

"फूलों के अस्त्र को धारण करनेवाला कामदेव एकाकी तीनों लोकों को विजित कर लेता है, जिसके शरीर को हरकर भी शिवजी उसकी शक्ति को नष्ट न कर सके।" यहाँ काम के बल-नाश न किए जाने का कारण अज्ञात है।

ख. जदपि चवायनि चीकनो, चलति चहूँ दिसि सैन।
तऊ न छोड़त दुहुन के, हँसी हँसीले नैन ॥

यहाँ नेत्रों की संलग्नता का कारण अज्ञात है।

विशेषोक्ति और विभावना—दोनों में ही विरोध की छाया एवं कारण-कार्यभाव का संबंध रहता है। इनमें अंतर यह है कि विभावना में कारण के अभाव में भी कार्य की उत्पत्ति का वर्णन होता है तो विशेषोक्ति में पर्याप्त कारण के होने पर भी कार्य के न होने का वर्णन किया जाता है।

विश्रब्धनवोढ़ा—मुग्धा नायिका का एक भेद। [दे० मुग्धा] भय तथा लज्जा के भाव के हट जाने पर पति की ओर आकृष्ट होनेवाली नायिका विश्रब्धनवोढ़ा कही जाती है।

विश्रब्धनवोढ़ा का अर्थ है पति पर कुछ-कुछ विश्वास करनेवाली। ऐसी नवविवाहिता स्त्री, जिसके मन में पति के प्रति कुछ-कुछ विश्वास जम रहा हो, प्रेम होने लगा हो।

विश्वेश्वर पंडित—ये संस्कृत काव्यशास्त्र के अंतिम प्रौढ़ आचार्य हैं। इन्होंने 'अलंकारकौस्तुभ' नामक अत्यंत महत्त्वपूर्ण अलंकार-ग्रंथ की रचना की है। ये अल्मोड़ा जिले के पारिया नामक ग्राम के निवासी थे। इनका समय अठारहवीं शती का अंतिम चरण है। 'अलंकारकौस्तुभ' की रचना नव्यन्याय की गंभीर शैली में हुई है। इसमें लेखक ने अलंकारों की बाढ़ को रोकने का प्रयत्न किया है और रुय्यक, जयदेव, शोभाकर मित्र, विश्वनाथ, अप्पय दीक्षित तथा पंडितराज जगन्नाथ प्रभृति आचार्यों-द्वारा बढ़ाई गई अलंकारों की संख्या को कम कर दिया है। विश्वेश्वर ने तर्कपुष्ट प्रमाणों द्वारा महत्त्वहीन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अलंकारों का खंडन कर मम्मट-सम्मत ६१ अलंकारों को मान्यता प्रदान की है तथा शेष का अंतर्भाव इन्हीं अलंकारों में किया है। स्वयं लेखक ने इस तथ्य को स्वीकार किया है—

अन्यैरुदीरितमलंकरणांतरं यत्
काव्यप्रकाशकथितं तदनुप्रवेशात्।
संक्षेपतो बहुनिबंधविभावनेना-
लंकारजातमिह चारुमयान्यरूपि ॥—अलंकारकौस्तुभ, पृ० ४१६

लेखक ने स्वयं इस ग्रंथ की टीका भी लिखी है जो रूपकालंकार तक ही प्राप्त होती है। 'अलंकारकौस्तुभ' में अलंकारों का विशद एवं गंभीर विवेचन रसगंगाधरी शैली में प्रस्तुत किया गया है। इनके अन्य ग्रंथ भी हैं—'अलंकारमुक्तावली', 'अलंकार प्रदीप' तथा 'रसचंद्रिका' और सभी ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं; पर वे अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। विशेश्वर महान् नैयायिक और वैयाकरण भी थे। इनके पिता लक्ष्मीधर कवि थे और लेखक के विद्यागुरु भी।

विष्कंभक—अर्थोपक्षेपक का एक भेद। [दे० अर्थोपक्षेपक] नाटक या रूपक की भूत या भावी घटनाओं या वस्त्वंशों की सूचना देनेवाली एक प्रणाली को विष्कंभक कहते हैं। इसका उद्देश्य स्मृति-द्वारा रूपक या नाटक के कथाभाग को पुष्ट बनाना है। इसमें भूत या भावी कथा की सूचना मध्यम श्रेणी के पात्रों द्वारा दी जाती है। इसका प्रयोग पुरोहित, मंत्री तथा कंचुकी प्रभृति मध्यम कोटि के पात्र करते हैं तथा नाटक की मुख संधि में इसका नियोजन किया जाता है। विष्कंभक के द्वारा दो अंकों के मध्य के कथाभाग को जोड़कर कथासूत्र को अविच्छिन्न कर दिया जाता है। इसके दो प्रकार होते हैं—शुद्ध और संकीर्ण। शुद्ध विष्कंभक में केवल मध्यम श्रेणा के पात्र रहते हैं और वे या तो संस्कृत भाषा का प्रयोग करते हैं या शौरसेनी प्राकृत का। संकर या संकीर्ण विष्कंभक में मध्यम तथा अधम दोनों ही वर्ग के पात्र रहते हैं और वे केवल प्राकृत भाषा में वार्त्तालाप करते हैं। विष्कंभक का प्रयोग अंक के प्रारंभ में या दो अंकों के बीच में होता है।

धनंजय का मत—

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
संक्षेपार्थस्तु विष्कंभो मध्यपात्रप्रयोजितः॥
एकानेककृतः शुद्धः संकीर्णो नीचमध्यमैः॥—दशरूपक, १/५९,६०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विषम—विरोधमूलक अलंकार। दो अननुरूप (विसदृश) पदार्थों के परस्पर संघटन को विषम अलंकार कहते हैं। 'विषम' का अर्थ है बेमेल, विरूप या अननुरूप। इस अलंकार में ऐसे पदार्थों के संबंध का वर्णन होता है, जो विसदृश या बेमेल होते हैं।

इस अलंकार का सर्वप्रथम वर्णन रुद्रट ने किया है। तत्पश्चात् मम्मट, रुय्यक, शोभाकर मित्र, जयदेव, विद्याधर, विद्यानाथ, विश्वनाथ, अप्पय दीक्षित, पंडितराज जगन्नाथ तथा विश्वेश्वर पंडित ने इसका निरूपण किया। रुद्रट ने 'काव्यालंकार' के सप्तम तथा नवम अध्यायों में विषम अलंकार का विस्तृत विवेचन किया है। वे इसे वास्तव तथा अतिशय दोनों ही वर्गों में उपस्थापित करते हैं। इन्होंने बताया कि जब कारण और कार्य के गुण और क्रिया में विरोध दिखाई पड़े तो विषम अलंकार होगा। वास्तव-वर्ग में इसके अनेक प्रकार कहे गए हैं।

कार्यस्य कारणस्य च यत्र विरोधः परस्परं गुणयोः।
तद्वत् क्रिययोरथवा संजायेतेति तद्विषमम्॥

—काव्यालंकार, ९/४५

विषम इति प्रथितोऽसौ वक्ता विघटयति कमपि संबंधम्।
तत्रार्थयोरसंतं परमतमाशंक्य तत्सत्त्वे॥
अभिधीयते सतो वा संबंधस्यार्थयोरनौचित्यम्।
यत्र स विषमोऽन्योन्यं यत्रासंभाव्यभावो वा॥
तदिति चतुर्धा विषमं यत्राण्वपि नैव गुर्वपि च कार्यात्।

—काव्यालंकार, ९/४७-५१

रुद्रट के अनेक प्रकारों में वर्णित भाव को तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है—

क. दो विसदृश पदार्थों के संबंध का वर्णन।

ख. किसी कार्य में प्रवृत्त होने पर उसकी समाप्ति के समय कर्त्ता को न केवल क्रिया के फल की ही अप्राप्ति हो, बल्कि अनिष्ट का लाभ हो।

ग. कार्य और कारण के संबंध में गुण और क्रियागत विरोध का होना।

मम्मट का विषम-निरूपण रुद्रट से प्रभावित है। इन्होंने इसकी सामान्य परिभाषा न देकर चार भेदों का वर्णन किया है।

क, अत्यंत विलक्षणता के कारण दो संबंधियों का संबंध स्थापित न हो सके।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ख. कर्त्ता को केवल क्रिया की ही फल-प्राप्ति न हो, अपितु उसे अनर्थ या अनिष्ट का भी लाभ हो।

ग. कार्य की क्रिया से कारण की क्रिया विपरीत हो।

घ. कार्य के गुण से कारण के गुण विरुद्ध हों।

क्वचिद्यतिवैधर्म्यान्न न श्लेषोघटनामियात्।
कर्त्तुः क्रियाफलाव्याप्तिर्नैवानर्थश्च यद्भवेत्॥
गुणक्रियाभ्यां कार्यस्य कारणस्य गुणक्रिये।
क्रमेण च विरुद्धे यत्स एष विषमो मतः॥

—काव्यप्रकाश, १०/१२६-१२७

रुय्यक ने विषम का सामान्य लक्षण प्रस्तुत करते हुए कहा कि अननुरूप या अनमिल पदार्थों के संसर्ग को विषम कहते हैं। इन्होंने तीन स्थितियों के आधार पर विषम के तीन भेदों का वर्णन किया है।

विरूपकार्याऽनर्थयोरुत्पत्तिर्विरूपसंघटना विषमम्।

विरोधप्रस्तावेनेह लक्षणम्। तत्रकारणगुणप्रक्रमेण कार्यमुत्पद्यत इति प्रसिद्धो यद्विरूपं कार्यमुत्पद्यमानं दृश्यते तदेकं विषमम्। तथा कथंचिदर्थसाधयितुमुद्यतस्य न केवलं तस्यार्थस्याप्रतिलंभो यावदनर्थप्राप्तिरपीतिद्वितीयं विषमम्। अत्यंताननुरूपसंघटनयोर्धिरूपयोश्च संघटनं तृतीय विषमम्। अननुरूपसंसर्गो हि विषमम्॥

—अलंकारसर्वस्व, पृ० १६५

परवर्ती आचार्यों में जयदेव, शोभाकर, विद्याधर, विद्यानाथ तथा विश्वनाथ ने रुय्यक के आधार पर विषम अलंकार का विवेचन किया।

विषमं यद्यनौचित्यादनेकान्वयकल्पनम्॥ —चंद्रालोक, ५/८०

अनर्थोत्पत्तिर्विरूपकार्योत्पत्तिर्विरूपसंघटनमसाकल्यं च॥

—अलंकाररत्नाकर, ६०

विषमंविरूपघटना विसदृशकार्यानभीष्टयोजनम्॥

—एकावली, ८/३८

विरुद्धकार्यस्योत्पत्तिर्यत्रानर्थस्य वा भवेत्।
विरूपघटनाचासौ विषमालंकृतिस्त्रिधा॥

—प्रतापरुद्रीय, पृ० ३०७

गुणौ क्रिये वा चेत्स्यातां विरुद्धहेतु कार्ययोः।
यदारब्धस्य वैकल्यमनर्थस्य च संभवः॥
विरूपयोः घटना या च तद्विषमं मतम्॥

—साहित्यदर्पण, १०/६९-७०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अप्पय दीक्षित तथा पंडितराज भी रुय्यक से प्रभावित हैं। रुय्यक की भेद-व्यवस्था में नवीनता है, जिसे हिंदी के विद्वानों ने भी मान्यता दी है। पंडितराज ने वास्तविक या लोकसिद्ध विषम-संबंध में अलंकारत्व स्वीकार न कर कवि प्रतिभा से कल्पित पदार्थों के वर्णन को विषम अलंकार माना।

विषमं वर्ण्यते यत्र घटनाऽननुरूपयोः ॥ —कुवलयानंद, ८८

अननुरूप संसर्गो विषमम्।

इत्यादौ वस्तुकथनमात्रे विषमालंकार प्रसंगः। न चेष्टापत्तिः। वस्तुवृत्तय लोकसिद्धत्वेनालंकारत्वायोगात्। यतो बहिरसंतः कविप्रतिभामात्रकल्पिता अर्थाः काव्येऽलंकारपदास्पदम्॥ —रसगंगाधर, पृ० ६०३

संबंधानुपपत्तौ इष्टार्थानाप्त्यनिष्ट संप्राप्तौ।
जन्यजनकोभयगुणक्रियाविरोधे च विषमः स्यात्॥
—अलंकारकौस्तुभ, पृ० ३७३

रीतिकाल में 'काव्यप्रकाश' और 'कुवलयानंद' के आधार पर विषम अलंकार का विवेचन किया गया।

चिंतामणि और कुलपति ने 'काव्यप्रकाश' के लक्षण का भावानुवाद किया तो जसवंत सिंह, मतिराम और पद्माकर ने 'कुवलयानंद' का।

जो संजोग द्वै बात को जथाजोग नहिं होइ।
विषम अलंकृत कहत यह कवि पंडित सब कोइ॥
कर्त्ता कौन क्रिया फलै पुनि अनर्थ कछु कोइ।
जो कारन गुण क्रिया ते कीजे और विधि सोइ॥
यो विरुद्धता देखि कै विषम कहत कवि नाह।
अलंकार करतान के देख्यौ ग्रंथन माह॥
—कविकुलकल्पतरु ३/१६८-१७१

अति विरुद्ध गुन जोग तें, मिलि न बनै नहिं आनि।
काम किए को फल नहीं, उलटि अनरथहि जानि॥
कारन कारज भावहू, गुन अरु क्रिया विरुद्ध।
जोइ यहाँ सो विषम है, चारि भाँति सु प्रसिद्ध॥
—रसरहस्य, ८/१८७-१८८

विषम अलंकृत तीन बिधि अनमिलते को संग।
कारन को सँग और कछु कारज औरे रंग॥
और भलो उद्दिम किए होत बुरो फल आइ॥
—भाषाभूषण, १२०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जहाँ न हैं अनुरूप द्वै, तिनकी घटना होय।
विषम तहाँ बरनन करत कबि-कोबिद सब कोय ॥
जहाँ बरनिए हेतु जे उपजत काज विरूप।
और विषम तहँ कहत हैं कवि मतिराम अनूप ॥
इष्ट अर्थ उद्यमहिं ते जहँ अनिष्ट ह्वै जाय।
और विषम बरनत तहाँ ते कबि कोबिद राय ॥

—ललितललाम, २२२-२२६

भेद—विषम के तीन भेद प्रसिद्ध हैं। इन भेदों का वर्णन अप्पय दीक्षित ने किया है।

१. प्रथम विषम—अननुरूप या विसदृश दो पदार्थों के संबंध-संघटन को प्रथम विषम कहते हैं।

क. शिरीषादपि मृद्वंगी केयमायतलोचना।
अयं क्व च कुकूलाग्निकर्कशो मदनानलः ॥

"शिरीष के पुष्प से भी अधिक कोमल अंगोंवाली कहाँ यह विशालनेत्रा नायिका और भूसे की आग के समान दुस्सह कहाँ यह कामाग्नि!" यहाँ कामाग्नि तथा कोमलांगी नायिका दो अनमिल पदार्थों का संबंध दिखाया गया है।

ख. कहँ गुलाब, कंटक कहाँ, पंकहु कहाँ सरोज।
चतुरानन की चूक है, मृदु उर कठिन उरोज ॥

गुलाब और काँटा, कीचड़ और कमल तथा हृदय और स्तन के बेमेल संबंध के वर्णन में प्रथम विषम हुआ।

२. द्वितीय विषम—जब कारण और कार्य के गुण तथा क्रिया एक दूसरे के विरुद्ध हों तो द्वितीय विषम होगा।

क. सद्यः करस्पर्शमवाप्यचित्रं रणेरणे यस्य कृपाणलेखा।
तमालनीलाशरदिंदुपांडुयशस्त्रिलोक्याभरणं प्रसूते ॥

"प्रत्येक युद्ध में जिस राजा के हाथ के स्पर्श को प्राप्तकर उसी समय तमाल के सदृश तलवार की धारा शरद् कालीन चंद्रमा के सदृश उज्ज्वल तीनों लोक के आभूषण-रूप यश को उत्पन्न करता है।" यहाँ कारण के विरुद्ध गुण का वर्णन है।

ख. आनंदममंदमिमं कुवलयदललोचने, ददासि त्वम्।
विरहस्त्वयैव जनितस्तापयतितरां शरीरं मे ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"हे कमलदल के समान नेत्रवाली प्रिय ! तुम तो अत्यंत आनंद देनेवाली हो, किंतु तुम्हारे द्वारा उत्पन्न वियोग मेरे शरीर को अत्यंत संतप्त करता है।"

क्रिया वैषम्य—

ख. रावन तू सीता समक्ष, आदि सक्ति विख्यात ।
याहि हरें से बदन तुम, पीरो परत दिखात ॥

यहाँ रावण के हरे बदन से पीला बदन होने की क्रिया विरुद्ध है।

गुण वैषम्य—

स्याम गौर दुइ मूरति लछिमन राम ।
इनते भइ सित कीरति अति अभिराम ॥

राम और लक्ष्मण के काले और गोरे शरीर से उज्ज्वल कीर्ति के प्रकाशित होने में गुण की विषमता है ।

३. तृतीय विषम—

क. सिंहिकासुत संत्रस्तः शशः शीतांशुमाश्रितः ।
जग्रसे साश्रयं तत्र तमन्यः सिंहिकासुतः ॥

"सिंहिनी के पुत्र के डर से खरगोश ने अपने प्राण की रक्षा के लिए चंद्रमा का आश्रय लिया; किंतु यहाँ दूसरी सिंहिनी के लड़के अर्थात् राहु ने उसे चंद्रमा सहित ग्रस लिया, आश्रय के साथ निगल लिया।"

ख. लोने मुख दीठी न लगै, यों कहि दीन्हों ईठि ।
दूनो ह्वै लागन लगी, दियो दिठौना दीठि ॥ —बिहारी

"नायिका के सुंदर मुख पर किसी की नजर न लगे, ऐसा सोचकर उसने ललाट पर दिठौना (काजल का टीका) लगा दिया; पर इससे उसका सौंदर्य और भी अधिक बढ़ गया और देखनेवालों का भीड़ लग गई।" यही अभीष्ट के विरुद्ध अनिष्ट की प्राप्ति का वर्णन है।

विरोध और विषम—विरोध में वास्तविक विरोध न होकर विरोध का आभास होता है और उसमें विरोधशमन का पूर्ण अवकाश रहता है; पर विषम का विरोध वास्तविक होता है। विषम का विरोध अर्थ-बोध के बाद भी बना रहता है, पर विरोधाभास में अर्थ-प्रतीति के पश्चात् विरोध हट जाता है।

विषय—उपमेय का अन्य नाम। [दे० उपमेय]

विषयी—उपमान का अन्य नाम। [दे० उपमान]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विषाद—संचारी भाव। [**दे० संचारी भाव**] किसी कार्य की सिद्धि में उपाय के अभाव से उत्पन्न पुरुषार्थ-हीनता को विषाद कहते हैं। विषाद में दो प्रकार के विचार दृष्टिगोचर होते हैं—अपने प्रयत्नों की असफलता तथा दैवयोग से विपत्ति का आना। भरत ने दो कारणों से ही विषाद की उत्पत्ति स्वीकार की है—आरंभ किए गए कार्य में सफलता प्राप्त न होना तथा दैवयोग से प्रतिकूलता की प्राप्ति। इन्होंने उत्तम-मध्यम तथा अधम प्रकृति के व्यक्तियों के विषादजन्य अनुभावों का उल्लेख किया है। उत्तम व्यक्ति सहायकों की खोज करता है और उपाय के संबंध में अपनी चिंता व्यक्त करता है। मध्यमश्रेणी के व्यक्ति अनुत्साह, अनुताप तथा निःश्वास-द्वारा विषाद को प्रकट करते हैं। अधम व्यक्तियों के अनुभाव हैं—भागना, अधोमुख देखना, मुख का सूखना, निद्रा तथा निःश्वास।

विषादो नाम—कार्यानिस्तरणदैवव्यापत्तिसमुत्थः। तमभिनयेत्सहायान्वेषणोपाय चिंतनोत्साहविघातवैमनस्यनिःश्वसितादिभिरनुभावैरुत्तममध्यमानाम्। अधमानां तु विपरिधावनालोकनमुखशोषणसृक्कपरिलेहनानिद्रानिःश्वसितध्यानादिभिरनुभावैः।

—नाट्यशास्त्र, ७/६८

कार्यानिस्तरणाद्वा चौर्याभिग्रहणराजदोषाद्वा।
दैवादर्थविपत्तेर्भवति विषादः सदा पुंसाम्॥
वैचित्र्योपायचिंताभ्यां कार्य उत्तममध्ययोः।
निद्रानिःश्वसितध्यानैरधमानां तु योजयेत्॥

—वही, ७/६८-६९

धनंजय ने प्रारब्ध (प्रारंभ किए गए) कार्य की सिद्धि न होने पर, व्यक्ति के सत्त्व तथा बल के मंद पड़ जाने (संक्षय) को विषाद कहा है। इसके अनुभाव हैं—निःश्वास, उच्छ्वास, हृत्ताप तथा सहायक की खोज करना।

प्रारब्धकार्यासिद्ध्यादेर्विषादः सत्त्वसंक्षयः।
निःश्वासोछ्वासहृत्तापसहायान्वेषणादिकृत्॥

—दशरूपक, ४/३१

विश्वनाथ ने उपाय के अभाव में उत्पन्न पुरुषार्थहीनता को विषाद कहा है।

उपायाभावजन्मा तु विषादः सत्त्वसंक्षयः।
निःश्वासोच्छ्वासहृत्तापसहायान्वेषणादिकृत्॥

—साहित्यदर्पण, ३/१६७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भानुदत्त के अनुसार इष्ट की प्राप्ति से संशय या अनिष्ट की जिज्ञासा (चिंता) में विषाद होता है। इसके विभाव हैं—अपराध करना तथा धन का नाश होना।

इष्टसंशयोऽनिष्टजिज्ञासा वा विषादः। इष्टपदेन जीवनधनयशःशरीरपुत्र-कलत्रादयः। विभावा अपराधधनगमनादयः। —रसतरंगिणी, पृ० ३६२ पंचमतरंग।

पंडितराज जगन्नाथ ने इष्ट की असिद्धि एवं राजा तथा गुरुजनों के अपराध से उत्पन्न मानसिक अनुताप को विषाद कहा है।

इष्टासिद्धिराजगुर्वाद्यपराधादिजन्योऽनुतापो विषादः।

—रसगंगाधर, पृ० ११२

उदाहरण—

क. भास्करसूनावस्तं याते जाते च पांडवोत्कर्षे।
दुर्योधनस्य जीवित ! कथमिव नाद्यापि निर्यासि ?

"सूर्यपुत्र कर्ण की मृत्यु हो जाने तथा पांडवों की विजय की सिद्धि के होने पर हे मेरे प्राण ! अब भी तुम क्यों नहीं निकलते ?" यहाँ दुर्योधन की उक्ति में विषाद की व्यंजना है।

ख. करी चैत की चाँदनी, खरी चेत की हानि।
भई सून संकेत की, केतकीउ दुखदानि ॥

—यहाँ नायक से न मिलने के उपाय के अभाव में नायिका के विषाद का वर्णन है। विषाद मन की ऐसी वृत्ति है, जिसमें अत्यधिक प्रयास के बाद भी इष्ट की सिद्धि नहीं होती।

विषादन—संगतिमूलक अलंकार। जब वांछित अर्थ के विपरीत लाभ का वर्णन हो तो विषादन अलंकार होता है। विषादन का अर्थ विशेष दुःख है। इसमें अभीष्ट अर्थ के विपरीत लाभ होने से दुःख होने का वर्णन होता है। यह प्रहर्षण अलंकार का विलोम है। [दे० प्रहर्षण]

इस अलंकार के उद्भावक जयदेव हैं। अप्पय दीक्षित तथा पंडितराज जगन्नाथ ने भी इसका वर्णन किया है तथा उद्योतकार नागेश और विश्वेश्वर पंडित ने इसका खडन करके इसे विषम से अभिन्न माना है।

जयदेव के अनुसार, अपनी इच्छा के विपरीत फल की प्राप्ति होने के वर्णन में विषादन होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इष्यमाणविरुद्धार्थसंप्राप्तिस्तु विषादनम् ।।

—चंद्रालोक, ५/५०

दीक्षित ने जयदेव का ही लक्षण उद्धृत कर दिया है ।

इष्यमाणविरुद्धार्थसंप्राप्तिस्तु विषादनम् ।।

—कुवलयानंद, १३२

पंडितराज ने बताया कि अभीष्ट अर्थ के विरुद्ध लाभ होने को विषादन अलंकार कहते हैं ।

अभीष्टार्थविरुद्धलाभो विषादनम् ।। —रसगंगाधर, पृ० ६८२

पंडितराज ने विषम एवं विषादन में अंतर स्थापित करके बताया कि इच्छित वस्तु की प्राप्ति के लिए कारण का प्रयोग नहीं करने में विषम होता है। विषम का विषय विरुद्ध लाभ है और अभीष्ट अर्थ में प्रयुक्त होनेवाले कारण के संसर्ग के अननुरूपत्व रूपी अंश । विषादन में अभीष्टार्थ की इच्छा करने पर ही उसके विपरीत पदार्थ के लाभ का कथन होता है ।

—रसगंगाधर, पृ० ६८२

रीतिकालीन आचार्यों ने 'चंद्रालोक' के ही लक्षण का अनुवाद किया है । जसवंतसिंह, मतिराम तथा पद्माकर ने 'चंद्रालोक' के लक्षण को अनूदित किया ।

सो विषाद चितचाह तें उलटो कछु ह्वै जात ।

—भाषाभूषण, १६०

मन इच्छित के अर्थ की प्रापति जहाँ विरुद्ध ।
तहाँ विषादहि कहत हैं, जे कबिजन मति सुद्ध ।।

—ललितललाम, ३१०

जु विपरीत चितचाह तें ताको मिलब जहाँहि ।
कहत विषादन नाम को अलंकार तिहि ठाँहि ।।

—पद्माभरण, २२१

नागेश ने विषादन को विषम से अभिन्न मानते हुए इसके अलंकारत्व का खंडन किया । इनके अनुसार अभीष्ट के विपरीत अर्थ की प्राप्ति में विषम ही होता है । —उद्योत, पृ० ५५८

अलंकार कौस्तुभ (विश्वेश्वर का मत) पृ० ३७८

उदाहरण—

क. रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पंकजश्रीः ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इत्थं विचिंतयति कोशगते द्विरेफे
हा हंत-हंत नलिनीं गज उज्जहारः ॥

"भौंरा सोचता है कि रात बीत जाएगी और सुप्रभात होगा। सूर्योदय होगा और कमल खिल जाएगा। कमल-कोश में बंद हुआ भौंरा सोच ही रहा था कि उसी समय, दुःख की बात है, किसी हाथी ने आकर कमल को उजाड़ दिया।"—यहाँ भ्रमर के अभीष्ट के विरुद्ध फलप्राप्ति के वर्णन में विषादन अलंकार हुआ।

ख. कन देबो सौंप्यो ससुर, बहू थुरहथी जानि।
रूप रहँचटे लगि लग्यो, माँगन सब जग आनि ॥

—बिहारी

"दुलहिन को छोटे हाथवाली (थुरहथी) जानकर उसके ससुर ने उसे भिक्षा देने (कन देबो) का भार सौंपा कि यह भिक्षुकों को छोटे हाथ के कारण थोड़ा दे सकेगी; किंतु उसके रूप के लालची (रूप रहँचटे) सारे संसार ने आकर माँगना प्रारंभ कर दिया।"—यहाँ ससुर की इच्छा के विपरीत फलप्राप्ति के वर्णन में विषादन अलंकार हुआ।

विस्मय—अद्भुत रस का स्थायी भाव। [दे० अद्भुत रस] किसी आश्चर्यजनक वस्तु या अलौकिक पदार्थ के देखने से जो आश्चर्य होता है, उसे विस्मय कहते हैं। भरत ने इसका सर्वप्रथम विवेचन किया है। उन्होंने बताया कि विस्मय माया, इंद्रजाल, मनुष्य के असाधारण कार्य, उत्कृष्ट चित्र तथा शिल्प आदि विभावों द्वारा उत्पन्न होता है। इसका प्रदर्शन नेत्रों के विस्फारित करने, निर्निमेष दृष्टि से देखने, भ्रूचालन, रोमांच, सिर का काँपना तथा साधुवाद प्रभृति अनुभावों द्वारा किया जाता है।

विस्मयो नाम—मायेंद्रजालमानुषकर्मातिशयचित्रपुस्तशिल्पविद्यातिशयादिभिर्विभावैः समुत्पद्यते। तस्य नयनविस्तारोनिषेधप्रेक्षितभ्रूक्षेपरोमहर्षणशिरःकंपसाधुवादादिभिरनुभावैरभिनयः प्रयोक्तव्यः। —नाट्यशास्त्र, ७/२७

कर्मातिशयनिर्वृत्तो विस्मयो हर्षसंभवः।
सिद्धिस्थाने त्वसौ साध्यः प्रहर्षपुलकादिभिः ॥ —वही, ७/२७

नाट्यदर्पणकार रामचंद्र ने उत्कृष्ट होने के निश्चय को विस्मय कहा है।

उत्कृष्टत्वाध्यवसायो विस्मयः ॥

—नाट्यदर्पण, (हिंदी अनुवाद) ३३०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विद्यानाथ लोकसीमा को अतिक्रांत करनेवाली वस्तुओं के दर्शन से उत्पन्न मन के भाव को विस्मय कहते हैं।

अपूर्वार्थदर्शनाच्चित्तविस्तारो विस्मयः ॥—प्रतापरुद्रीय, पृ० १६८

विश्वनाथ ने लोकसीमा का उल्लंघन करनेवाले अलौकिक शक्ति से युक्त पदार्थों को देखने के कारण उत्पन्न चित्त के विस्तार को विस्मय कहा है।

विविधेषु पदार्थेषु लोकसीमातिवर्तिषु।
विस्तारश्चेतसो यस्तु स विस्मय उदाहृतः ॥

—साहित्यदर्पण, ३/१७९

भानुदत्त के मतानुसार किसी चमत्कारपूर्ण पदार्थ या दृश्य के दर्शन, श्रवण तथा स्पर्श के कारण उत्पन्न अपूर्ण मनोविकार को विस्मय कहते हैं।

चमत्कार दर्शनस्पर्शनश्रवणजनितोऽपरिपूर्णो मनोविकारो विस्मयः।

—रसतरंगिणी, पृ० २५०

पंडितराज जगन्नाथ अलौकिक वस्तु के दर्शन या श्रवण के कारण उत्पन्न विकास नामक मानसिक वृत्ति को विस्मय कहते हैं।

अलौकिक वस्तुदर्शनादिजन्मा विकासाख्योविस्मयः।

—रसगंगाधर, पृ० ३९

विस्मय के संचारी भाव हैं—जड़ता, दैन्य, चिंता, वितर्क, हर्ष, चपलता आदि। इसमें आश्चर्यजनक पदार्थों का ऐसा वर्णन होता है, जो लोकसीमा का अतिक्रमण कर चित्त को चमत्कृत कर देता है।

उदाहरण—

क. युध्यंतमर्जुनं वीक्ष्य के वा देवा न विस्मिताः।
न मेने बहु गोविंदो दृष्टकर्णपराक्रमः ॥

"अर्जुन को युद्ध करते देखकर कौन देवता विस्मित नहीं हुआ; पर कर्ण के पराक्रम को देखनेवाले श्रीकृष्ण ने अर्जुन की वीरता को अधिक नहीं समझा।" यहाँ 'नहीं समझा' (न मेने) में अद्भुत रस की अपूर्णता एवं विस्मय स्थायी की व्यंजना है।

ख. सुर नर सब सचकित रहे, पारथ को रन देखि।
पै न गिन्यो जदुनाथ अति, करन कराक्रम पेखि ॥
दरसि परसि सुनि सुमिरि जहँ कौनहु अजब चरित्र।
होइ जु चित बिस्मित कछु सो आचिरज पवित्र ॥

—जगद्विनोद, ६०१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विसंधि—वाक्यदोष का तृतीय भेद । [दे० वाक्यदोष]

विहृत—नायिका के स्वभावज अलंकार का एक भेद । [दे० नायिका के अलंकार] लज्जावश प्रिय से बोलने के समय भी न बोलना या बात न कहना विहृत है ।

वीररस—प्रताप, विनय, अध्यवसाय, धैर्य, हर्ष, विस्मय, विक्रम आदि विभावों से उत्साह स्थायी के परिपक्व होने पर वीररस उत्पन्न होता है। भरत ने वीररस का स्थायी भाव उत्तम प्रकृति के स्थायी भाव को माना है। यह असंमोह, अध्यवसाय, नीति, विनय, बल, पराक्रम, शक्ति, प्रताप तथा प्रभाव आदि विभावों से उत्पन्न होता है ।

अथ वीरो नामोत्तमप्रकृतिरुत्साहात्मकः । स चासंमोहाध्यवसाय-नय-विनय-बल-पराक्रम-शक्ति-प्रतापप्रभावादिभिर्विभावैरुत्पद्यते । —नाट्यशास्त्र, ६/५१

शारदातनय ने सभी कार्यों को करने के लिए मन में विशेष प्रकार की सत्वर क्रिया के सजग होने को उत्साह कहा है।

उत्साह सर्वकृत्येषु सत्वरा मानसी क्रिया ।

—भावप्रकाशन, पृ० ३५

भानुदत परिपूर्णतः प्रकट होनेवाले उत्साह या संपूर्ण इंद्रियों के प्रहर्ष को वीररस कहते हैं ।

परिपूर्ण उत्साहः सर्वेंद्रियाणां प्रहर्षो वा वीरः ॥

—रसतरंगिणी, पृ० १५२

वीररस का आश्रय उतम पात्र में होता है। इसके देवता इंद्र हैं और रंग सुवर्ण के सदृश है। इसके आलंबन हैं शत्रु या जीतने-योग्य व्यक्ति और उनकी चेष्टाएँ उद्दीपन विभाव हैं। युद्ध के सहायक का अन्वेषण इसका अनुभाव है तथा धैर्य, गति, गर्व, स्मृति, तर्क, रोमांच आदि इसके संचारी भाव हैं। वीररस चार प्रकार का होता है—दानी वीर, दया वीर, युद्ध वीर और धर्म वीर। सभी भेदों के आलंबन और उद्दीपन भिन्न-भिन्न होते हैं ; पर स्थायी भाव सबका उत्साह ही है ।

उत्तमप्रकृतिर्वीरः उत्साहस्थायिभावकः ।
महेंद्रदैवतो हेमवर्णोऽयं समुदाहृतः ॥
आलंबनविभावास्तु विजेतव्यादयो मताः ।
विजेतव्यादिचेष्टाद्यास्तस्योद्दीपनरूपिणः ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनुभावास्तु तत्र स्युः सहायान्वेषणादयः ।
संचारिणस्तु धृतिमतिगर्वस्मृतितर्करोमांचाः ॥
स च दानधर्मयुद्धैर्दयया च समन्वितश्चतुर्धा स्यात् ॥

—साहित्यदर्पण, ३/२३२-२३४

युद्धवीर का उदाहरण—

क. रणे दीनान् देवान् दशवदन ! विद्राप्य वहति,
प्रभावप्रागल्भ्यं त्वयि तु मम कोऽयं परिकरः ।
ललाटोद्यज्ज्वाला कवलित जगज्जाल विभवो,
भवो मे कोदंडच्युत विशिखवेगं कलयतु ॥

"हे रावण ! पराक्रम से रहित देवताओं को रणक्षेत्र से भगाकर अत्यंत बलशाली बननेवाले तुम्हारे लिए मेरी तैयारी क्या हो सकती है ? जिसके ललाट से अग्नि की ज्वालाएँ निकलकर संपूर्ण विश्व के विभाव को जला डालती हैं, देवताओं के देव वे महादेवजी मेरे बाणों के वेग को सँभालें ।"—भाव यह कि मैं तो तुम्हें कुछ भी नहीं समझता, हाँ, महादेवजी अवश्य ही मेरी शक्ति को देखकर चकित हो जा सकते हैं । यह कथन रावण के प्रति राम की है । यहाँ रावण आलंबन, युद्ध-दर्शन उद्दीपन, रावण का तिरस्कार अनुभाव और राम का गर्व संचारी भाव है । उत्साह स्थायी भाव है ।

ख. क्रुद्ध दशानन बीस भुजानि सो लै कपिरीछ अनी सर टूटत ।
लच्छन तच्छन रत्त किए दृग लच्छ विपच्छन के सिर कट्टत ।
मार मछार पुकारु दुहूँ दल दंड झपट्टि दपट्टि लपट्टत ।
रुंड लरै भट मत्थनि लुट्टत जोगिन खप्पर ठट्टनि ठट्टत ।।

रावण के हृदय में लड़ने का भाव उत्साह स्थायी है । बंदर-भालू आलंबन हैं और उनकी युद्धविषयक लीलाएँ उद्दीपन । मारना, पछारना अनुभाव है और उग्रता, अमर्ष संचारी ।

वीथी—रूपक का एक भेद । [दे० रूपक] यह एकांकी रूपक है । इसमें एक दिवस प्रयोज्य वृत्त अर्थात् एक दिन की घटना का वर्णन होता है । इसका नायक उत्तम, मध्यम या अधम कोई पुरुष हो सकता है और पात्रों की संख्या एक या दो होती है । इसमें श्रृंगाररस की बहुलता रहती है और आकाश-भाषित द्वारा उक्ति-प्रत्युक्ति का विधान किया जाता है । श्रृंगाररस की बहुलता के कारण वीथी में सर्वत्र कैशिकी वृत्ति प्रयुक्त होती है । इसमें जब एक पात्र रहता है तो आकाशभाषित द्वारा उत्तर-प्रत्युत्तर का ग्रंथन किया जाता है

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और दो पात्रों की विद्यमानता में, उक्ति-प्रत्युक्ति के माध्यम से, नाटकीय कथोपकथन का विधान होता है। शिंगभूपाल के अनुसार वीथी की नायिका सामान्या या परकीया होती है, जिसका अनुरागिनी होना आवश्यक है। सागरनंदी ने बताया कि वीथी में तीन पात्र होते हैं। धनंजय और शारदातनय के अनुसार वीथी में शृंगाररस की प्रधानता होती है; पर रामचंद्र (नाट्यदर्पणकार) के अनुसार यह (वीथी) 'सर्वस्वाभिरसा' है। वे इसे सभी रूपकों का सार मानते हैं। इसमें मुख और निर्वहण—दो संधियाँ होती हैं और पाँचों अर्थप्रकृतियों तथा वीथ्यंगों का समावेश किया जाता है।

भरत का मत—

वीथी स्यादेकांका तथैकहार्या द्विहार्या वा ।।
अधमोत्तममध्याभिर्युक्ता स्यात्प्रकृतिभिस्त्रिसृभिः ।
उद्घात्यकावलगितावस्पंदितनाल्यसत्प्रलापाश्च ।।
वाक्केल्यथ प्रपंचो मृदवाधिबलेछलं त्रिगतम् ।
व्याहारोगंडश्च त्रयोदशांगान्युदाहृतान्यस्याः ।।

—नाट्यशास्त्र, १८/११२-११५

धनंजय का मत—

वीथी तु कैशिकीवृत्तौ सन्ध्यंगांकैस्तु भाणवत् ।
रसः सूच्यस्तु शृंगारः स्पृशेदपि रसांतरम् ।।
युक्ता प्रस्तावनाख्यातैरंगैरुद्घात्पकादिभिः ।
एवं वीथी विधातव्या द्व्येकपात्रप्रयोजिता ।।

—दशरूपक, ३/६८-७०

रामचंद्र का मत—

सर्वस्वामि-रसा वीथी त्वेकांका द्व्येकपात्रिका ।
मुखनिर्वाहसंधिः स्यात्, सर्वरूपोपयोगिनी ।।

विश्वनाथ का मत—

वीथ्यामेको भवेदंकः कश्चिदेको ऽत्र कल्प्यते ।
आकाशभाषितैरुक्तैश्चित्रां प्रत्युक्तिमाश्रितः ।।
सूचयेद्भूरि शृंगारं किंचिदन्यान्रसान् प्रति ।
मुखनिर्वहणे संधी अर्थप्रकृतयोऽखिलाः ।।

—साहित्यदर्पण, ६/२५३-२५४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वीप्सा—शब्दालंकार। जहाँ अत्यंत आदर, आश्चर्य, उत्साह, घृणा, शोक, हर्षादि को प्रदर्शित करने के लिए शब्द की पुनः-पुनः आवृत्ति या द्विरुक्ति हो, वहाँ वीप्सा अलंकार होता है। वीप्सा का अर्थ है दुहराना या शब्द द्विरुक्ति। इसमें हर्ष, शोकादि भावों के बाहुल्य को प्रकाशित करने के लिए शब्दों की पुनरुक्ति होती है या उन्हें दुहराया जाता है। वीप्सा शब्द वि+ईप्सा अर्थात् विशिष्ट इच्छा का परिद्योतक है। किसी भाव को अधिक प्रभावपूर्ण वनाने के लिए कवि पुनरुक्ति का सहारा लेकर उसे प्रभावोत्पादक बना देता है। इस अलंकार का उल्लेख 'सरस्वतीकंठाभरण' (भोज) में है, अन्य काव्यशास्त्रीय ग्रंथों में नहीं। इसका सर्वप्रथम विवेचन रीतिकालीन आचार्य भिखारीदास ने किया है। इनके अनुसार जब अत्यंत आदर के साथ एक शब्द की अनेक बार आवृत्ति हो तो वहाँ वीप्सा अलंकार होगा।

एक शब्द बहु बार जहँ, अति आदर सों होइ।
ताहि बीपसा कहत हैं, कवि कोविद सब कोइ॥

—काव्यनिर्णय, १९/५२

इस अलंकार का स्रोत भोज-कृत 'सरस्वतीकंठाभरण' के अनुप्रासनिरूपण में सुरक्षित है, जहाँ 'द्विरुक्ति अनुप्रास' के उपभेद के रूप में वीप्सा का कथन किया गया है।

स्वभावतश्च गौण्या च वीप्साभीक्ष्ण्यादिभिश्च सा।
नाम्ना द्विरुक्तिभिर्वाक्ये तदनुप्रास उच्यते॥

—सरस्वतीकंठाभरण, २/६९

उदाहरण—

शैले शैले न माणिक्यं मौक्तिकं न गजे गजे।
देशे देशे न विद्वांसश्चंदनं न वने वने॥

—सरस्वतीकंठाभरण, २३०

पर्वत-पर्वत पर माणिक्य नहीं होता और न प्रत्येक हाथी में मुक्ता होती है। देश-देश में विद्वान् नहीं मिलते और न प्रत्येक वन में चंदन मिलता है।

दासकृत इसका उदाहरण—

जानि जानि आयो प्यारो प्रीतम बिहार भूमि,
छानि छानि फूले फूल सेजहि सँवारती।
'दास' दृग कंजनि बंदनवार ठानि ठानि,
मानि मानि मंगल सिंगारन सिंगारती॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ जानि-जानि, छानि-छानि आदि में शब्दों की द्विरुक्ति हुई है।

वेपथु—सात्त्विक भाव। [दे० अनुभाव] वेपथु का अर्थ कंप है। शीत, भय, हर्ष, क्रोध, आनंद आदि के कारण शरीर का काँपना वेपथु है। इसे कंप भी कहते हैं। भरत शीत, भय, हर्ष, रोष, स्पर्श आदि के कारण कंप की उत्पत्ति मानते हैं। आदि से तात्पर्य जरा और रोग का है।

शीतभयहर्षरोषस्पर्शजरारोगजः कंपः।

—नाट्यशास्त्र, ७/९६

विश्वनाथ राग, द्वेष, परिश्रम आदि के कारण शरीर के कंपन को वेपथु कहते हैं।

रागद्वेषश्रमादिभ्यः कंपो गात्रस्य वेपथुः।

—साहित्यदर्पण, ३/१३८

भानुदत्त के अनुसार कोई भाव होने पर शरीर का काँप जाना वेपथु है। यह कंप आलिंगन, हर्ष या भय के कारण होता है।

भावत्वे सति शरीर निस्पंदो वेपथुः। भावत्वे सतीति विशेषणदानात् सूचक स्पंदादौ नाऽतिव्याप्तिः। शरीरपदं चेष्टाश्रयमात्रपरम्, तेन शरीरावयवकंपे नातिऽव्याप्तिः। अस्य विभावा आलिंगनहर्षभीत्यादयः।

—रसतरंगिणी, पृ० ३२७, चतुर्थतरंग

उदाहरण—

क. कथय कथमुरोजदामहेतोर्यदुपतिरेष चिनोतु चंपकानि।
भवति करतले यदस्य कंपः प्रिय सखि ! मत्स्मृतिरेव मत्सपत्नी॥

'हे प्रिय सखि ! तुम यह तो बताओ कि उरोज के ऊपर माला बनाने के लिए यदुपति श्रीकृष्ण चंपे के कुसुम को कैसे चुन सकेंगे। क्योंकि, मेरी स्मृति ही सौत बनकर उनके हाथ को कंपित कर देती है। यहाँ श्रीकृष्ण के हाथ का कंपित होना वेपथु है।

ख. चकित भीत अचेतन-सी बनी, कँप उठी सिगरी जन-मंडली।
कुटिलता करके सुधि कंस की, प्रबल और हुई उर वेदना॥

—प्रियप्रवास

कंस की कुटिलता का स्मरण कर ब्रजवासियों का कंपित होना वेपथु है।

वेषकर—नाटक में पात्रों की वेष-रचना करनेवाला एक गौण पात्र।

[दे० नाट्यशास्त्र, ३५/३३]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वैदर्भी—रीति का एक प्रकार। रीति-सिद्धांत के प्रवर्त्तक आचार्य वामन ने मधुर, परुष एवं प्रसन्न स्वभाव के आधार पर रीति के तीन प्रकार किए हैं—वैदर्भी, गौड़ी एवं पांचाली। [दे० रीतिसिद्धांत] वैदर्भी रीति में माधुर्य-गुणव्यंजक शब्दावली प्रयुक्त होती है अर्थात् इसका मूलाधार माधुर्यगुण है। [दे० माधुर्यगुण] इसमें तीन बातें मुख्य हैं—माधुर्यगुण व्यंजक वर्ण, ललितपद एवं अल्प समास या समास का अभाव (विश्वनाथ)

माधुर्यव्यंजकैर्वर्णैः रचनाललितात्मिका।
अल्पवृत्तिरवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते॥

—साहित्यदर्पण, ९/२

वैदर्भी में सानुनासिक वर्ण, कोमल वर्ण एवं असमस्त पद प्रयुक्त होते हैं। इसका व्यवहार श्रृंगार, करुण एवं शांत रसों में होता है। वामन ने बताया है कि विदर्भादि देशों में आविर्भूत होने के कारण इसका नाम वैदर्भी है। यह समस्त गुणों से युक्त होती है। **विदर्भादिषु दृष्टत्वात् तत्समाख्या।** १,२, १०

समग्रगुणवैदर्भी। १,२,११,

—काव्यालकारसूत्र वृत्ति।

वामन ने वैदर्भी का प्रशंसा करते हुए बताया है कि यह दोषों की मात्रा से रहित, समग्र गुणों से युक्त तथा वीणा के स्वरों के समान मधुर होती है।

अस्पृष्टा दोषमात्राभिः समग्रगुणगुंफिता।
विपंचीस्वरसौभाग्या वैदर्भी रीतिरिष्यते। —वही, १,२, ११

वैदर्भी की प्रशंसा अनेक कवियों ने की है। नैषधकार श्रीहर्ष का कहना है कि वैदर्भी रीति धन्य है, जिसने नैषध (काव्य एवं राजा नल) को अपने उदार गुणों से आकृष्ट कर लिया है। चाँदनी की इससे अधिक क्या प्रशंसा या स्तुति की जा सकती है कि वह सागर को भी अधिक चंचल बना देती है?

धन्यासि वैदर्भि गुणैरुदारैर्यया समाकृष्यत नैषधोऽपि।
इतः स्तुतिः का खलु चंद्रिकाया, यदब्धिमप्युत्तरली करोति॥

—नैषध, ३/११६

उदाहरण—

क. अनंगरंगप्रतिमं तदंगं भंगीभिरंगीकृतमानतांग्याः।
कुर्वंति यूनां सहसा यथैता स्वांतानि शांतापरचिंतनानि॥

उस सुंदरी का अंग कामदेव के रंगस्थल के सदृश है। वह मनोरम वेष से इस प्रकार अलंकृत है कि यह सज्जा युवकों के हृदय में स्थित अन्य चिंताओं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

को सहसा शांत कर देती है। इस श्लोक में सानुनासिक वर्णों एवं मधुर पदावली का बाहुल्य है।

ख. आई मोदपूरिता सोहागवती रजनी
चाँदनी का आँचल संभालती सकुचती,
गोद में खेलाती चंद्र चंद्र-मुख चूमती,
झिल्ली रव गूँजा चलीं मानो वनदेवियाँ
लेने को बलैया निशारानी के सलोने की ॥

—आर्यावर्त्त, वियोगी

वैधर्म्य—शोभाकरमित्र-वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। उद्दिष्ट प्रतिपक्षता के द्वारा अनुनिर्देश का होना वैधर्म्य है। इसमें पूर्वकथित वस्तु की अपेक्षा प्रतिपक्षीस्वरूप अन्य पदार्थ का पश्चात् निर्देश होता है। इस अलंकार का विकास विरोधी भावना से हुआ है।

उद्दिष्टस्यप्रतिपक्षतयानुनिर्देशोवैधर्म्यम् ॥

—अलंकाररत्नाकर, पृ० २५

वैधर्म्य—साधर्म्य का विरोधी वैधर्म्य है। इसमें असमानता का कथन किया जाता है। [दे० साधर्म्य]

वैवर्ण्य—सात्त्विक भाव। [दे० अनुभाव] वैवर्ण्य का अर्थ है मुँह या शरीर के रंग का बदल जाना। विषाद, क्रोध, मद, भय आदि के कारण मुख की कांति का बदल जाना वैवर्ण्य है।

भरत शीत, क्रोध, भय, श्रम, रोग, थकावट तथा ताप से वैवर्ण्य की उत्पत्ति मानते हैं। इस स्थिति में मुख का रंग बदल जाता है।

शीतक्रोधभयश्रमरोगक्लमतापजं च वैवर्ण्यम्।

—नाट्यशास्त्र, ७/९८

विश्वनाथ के अनुसार विषाद, भय तथा रोषादि के कारण शरीर के रंग का बदल जाना वैवर्ण्य है।

विषादमदरोषाद्यैर्वर्णान्यत्वं विवर्णता।

—साहित्यदर्पण, ३/१३९

भानुदत्त किसी विकार के कारण शरीर के स्वाभाविक रंग बदल जाने को वैवर्ण्य कहते हैं। यह मोह, भय, क्रोध, शीत, ताप तथा श्रम के कारण उत्पन्न होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विकारप्रभवप्रकृतवर्णान्यथाभावो वैवर्ण्यम् ।
अस्य विभावा मोहभयक्रोधशीततापश्रमाः ।।

—रसतरंगिणी, पृ० ३२८, चतुर्थ तरंग ।

उदाहरण—

क. कुक्कुटे कुर्वति क्वाणमाननं श्लिष्टयोस्तयोः ।
दिवाकरकराक्रांतशशिकांतिमिवादधौ ।।

कुक्कुट (मुर्गा) के बोलते ही (प्रातःकाल होने की सूचना प्राप्तकर) नायक-नायिका के परस्पर सश्लिष्ट (सटे हुए) कपोल (वियोग की आशंका से) इस प्रकार पीले हो गए, जैसे सूर्य की किरणों के प्रकाश से चंद्रमा फीका पड़ जाता है । यहाँ नायक-नायिका के कपोलों का पीला पड़ जाना वैवर्ण्य है ।

ख. कहि न सकत कछु लाज तें, अकथ आपनी बात ।
ज्यों-ज्यों निसि नियरात है, त्यों-त्यों तिय पियरात ।।

रात्रि समाप्ति की सूचना से नायिका का मुख वियोगजन्य दुःख की भावी आशंका से पीला पड़ जाता है ।

वैशिक—नायक का एक भेद । [दे० नायक] वेश्या में अनुरक्त व्यक्ति को वैशिक कहते हैं । भानुदत्त के अनुसार जो नायक वेश्या के उपभोग में अत्यंत रसिक हो, उसे वैशिक कहते हैं ।

बहुलवेश्योपभोगरसिको वैशिकः । —रसमंजरी, पृ० १६६

प्रीति करै गनिकान सों बैसिक ताको जानि ।।

—रसराज, २५६

बारबधुन को रसिक सो, बैसिक अलज अभीत ।।

—जगद्विनोद, २६७

भानुदत्त ने वैशिक के तीन भेदों का वर्णन किया है—उत्तम, मध्यम और अधम । जो नायक वेश्या के बार-बार कोप करने पर भी उसमें अनुरक्त रहे, उसे उत्तम वैशिक कहते हैं ।

दयितायां भूयः प्रकोपेऽप्युपचारपरायण उत्तमः ।

—रसमंजरी, पृ० १८०

जो नायक वेश्या की प्रीति या कोप को प्रकट रूप से प्रकाशित न होने देकर चेष्टा द्वारा उसके मनोभाव को ग्रहण करे, उसे मध्यम वैशिक कहते हैं ।

प्रियायाः कोपमनुरागं न प्रकटयति, चेष्टया मनोभावं गृह्णाति स मध्यमः ।

—रसमंजरी, पृ० १८१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अधम वैशिक उसे कहते हैं, जो नायिका से भीत नहीं होता, अपने दुराचार से लज्जित नहीं होता, दया से रहित तथा काम-क्रीड़ा में कार्याकार्य का विचार नहीं करता।

भयलज्जाकृपाशून्यः कामक्रीडायामकृतकृत्याकृत्यविचारोऽधमः।

—रसमंजरी, पृ० १८२

उदाहरण—

लोचन-पानिप ढिग सजी लट-बंसी परवीन।

मो मन बारिबिलासिनी फाँसि लियो मनु मीन॥ —रसराज, २६१

वृत्तगंधि—गद्यकाव्य का एक भेद। [दे० भेद]

वृत्तवर्तिष्यमाणसुरतगोपना—गुप्ता नायिका का एक भेद। परकीया (नायिका) के अंतर्गत गुप्ता नायिका के एक भेद को वृत्तवर्तिष्यमाणसुरत-गोपना कहते हैं। जो नायिका होनेवाले अर्थात् भविष्य के परपुरुषसंभोगजन्य चिह्नों को छिपाती है, उसे वृत्तवर्तिष्यमाणसुरतगोपना कहा जाता है। इसका अन्य नाम भविष्यगुप्ता भी है। [दे० गुप्ता एवं भविष्यगुप्ता]

वृत्तसुरतगोपना—परकीया नायिका के उपभेद गुप्ता का एक प्रकार। गुप्ता के तीन भेद हैं—भूतगुप्ता, भविष्यगुप्ता और वर्तमानगुप्ता। भूतगुप्ता का अन्य नाम वृत्तसुरतगोपना है। [दे० गुप्ता] जो नायिका भूतकाल में हुए परपुरुष के रतिचिह्न को छिपाती है, उसे वृत्तसुरतगोपना कहते हैं।

वृत्ति—यह शब्द वृत् धातु में 'क्तिन्' प्रत्यय के संयोग से निष्पन्न होता है, जिसके अनेक अर्थ हैं; जैसे अस्तित्व, अवस्था, व्याख्या, दशा, जीविका आदि। पर, काव्यशास्त्र में यह विशिष्ट अर्थ का वाचक है। वहाँ यह तीन विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त होती है—१. शब्दशक्ति के रूप में, अर्थात् अभिधा, लक्षणा, तात्पर्य एवं व्यंजना के लिए [दे० शब्दशक्ति] वृत्ति शब्द का प्रयोग किया जाता है। इसका दूसरा प्रयोग उपनागरिका, परुषा एवं कोमला नामक अनुप्रास के प्रकारों के लिए तथा तीसरा कैशिकी, आरभटी, भारती एवं सात्त्वती आदि नाट्यवृत्तियों के लिए होता है।

वृत्त वर्त्तन धातु से क्तिन् प्रत्यय के द्वारा निर्मित वृत्ति शब्द का अर्थ है जीविका या जीवन की सहायिका। वर्त्तन का अर्थ जीवन है और वृत्ति उसकी (जीवन) जीविका। इस प्रकार वृत्ति पुरुषार्थ के साधक व्यापार का बोधक है। अभिनवगुप्त ने इसे पुरुषार्थ सहायक व्यापार माना है; वे इसे काव्य की माता भी कहते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तस्माद् व्यापारः पुमर्थसाधकोवृत्तिः। स च सर्वत्र वर्ण्यतो वृत्तिः काव्यस्य मातृका इति। न किंचित् व्यापारशून्यं वर्णनीयमस्ति। —अभिनवभारती

अभिनवगुप्त के अनुसार काव्य का कोई भी वर्णन व्यापाररहित नहीं होता। उन्होंने वृत्ति की परिभाषा देते हुए बतलाया कि नाटक के पात्रों एवं काव्य के नायकों की काय, मन एवं वचन की विचित्रता से आपूर्ण चेष्टा ही वृत्ति है—

कायवाङ्मनसां चेष्टा एव सह वैचित्र्येण वृत्तयः।

अभिनवगुप्त के इस कथन का स्पष्टीकरण कल्लिनाथ ने 'संगीतरत्नाकर' की व्याख्या में किया है—

वृत्तिर्नाम वाङ्मनः कायजा चेष्टा पुमर्थोपयोगिनीति सामान्य लक्षणम्।

ध्वन्यालोककार के अनुसार वृत्ति व्यापार रूप है—

तद्व्यापारात्मिका वृत्तिः।

अभिप्राय यह कि काव्य अथवा नाटक के पात्रों की चेष्टा ही वृत्ति है और नेता के व्यापार के अनुसार ही उसका निबंधन किया जाता है। भरत मुनि वृत्तियों को काव्य एवं नाट्य की माता कहते हैं।

सर्वेषामेव काव्यानां वृत्तयो मातृकाः स्मृताः।

—नाट्यशास्त्र, २०/४

काव्यशास्त्र में वृत्तियों के दो प्रकार हो जाते हैं—काव्यवृत्ति एवं नाट्य-वृत्ति। काव्यवृत्ति के अंतर्गत उपनागरिका, परुषा और कोमला मुख्य हैं तो नाट्यवृत्तियों में कैशिकी, सात्वती, भारती और आरभटी। काव्य अथवा नाट्यवृत्तियों की योजना मुख्यतः रस को दृष्टि में रखकर की गई है। नाट्यवृत्तियों का प्रधान उद्देश्य दर्शकों या सामाजिकों के हृदय में रस एवं भाव का संचार करना है। नाटक का प्रधान लक्ष्य रस-निष्पत्ति या रसोद्रेक है और शेष साधन गौण होते हैं। कवि का अभिप्रेत नाटक के माध्यम से दर्शकों के हृदय में रसोन्मीलन करना ही होता है और इस कार्य की साधिका वृत्तियाँ होती हैं। कैशिकी वृत्ति [दे० **कैशिकी**] का प्रयोग शृंगार और हास्य रस में तथा सात्वती का उपयोग वीर, रौद्र एवं अद्भुत रसों में होता है। [दे० **सात्वती**] भारती करुण एवं अद्भुत रसों में प्रयुक्त होती है। [दे० **भारती**] और आरभटी का प्रयोग भयानक एवं बीभत्स रसों में किया जाता है [दे० **आरभटी**]

शृंगारे चैव हास्ये च, वृत्तिः स्याद् कैशिकीति सा।
सात्वती नाम सा ज्ञेया, वीररौद्राद्भुताश्रया॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भयानके च बीभत्से, रौद्रे चारभटी भवेत् ।
भारती चापि विज्ञेया, करुणाद्भुतसंश्रया ॥

—नाट्यशास्त्र, २२/६५-६६

'नाट्यशास्त्र' में वृत्तियों के उद्भव की मनोरंजक घटना का वर्णन कर इसका संबंध मधुकैटभ नामक असुर के वध से दिखलाया गया। जब भगवान विष्णु क्षीरसागर में शेषशय्या पर योग-निद्रा में सो रहे थे, तभी मधुकैटभ नामक असुरों ने उन्हें युद्ध के लिए ललकारा। ब्रह्मा-द्वारा जगाए जाने पर विष्णु ने अपने अद्भुत पराक्रम से दोनों का विनाश किया। इस युद्ध के अवसर पर विष्णु द्वारा प्रदर्शित चेष्टाओं से ही वृत्तियों की उत्पत्ति बताई गई हैं।

युद्ध के समय विष्णु-द्वारा जोर से पैर रखने पर पृथ्वी के ऊपर अत्यधिक भार पड़ा और इसी भार के कारण भारती वृत्ति का उदय हुआ। धनुषधारी विष्णु की तीव्र, दीप्तिकर, बलयुक्त एवं भयरहित वीरतापूर्ण चेष्टाओं से सात्त्वती वृत्ति का जन्म हुआ तथा विचित्र, ललित तथा लीलायुक्त आंगिक अभिनयों के द्वारा विष्णु के शिखा-बंधन से कैशिकी वृत्ति निर्मित हुई। सरंभ एवं आवेगपूर्ण चारी (पैंतरा) बाँधकर विचित्र युद्ध करके विष्णु ने आरभटी वृत्ति को उत्पन्न किया। उपर्युक्त वृत्तियों का संबंध वाचिक तथा आंगिक अभिनय से दिखाया गया है। भरत सभी वृत्तियों का संबंध वेद से प्रदर्शित करते हैं। उनके मतानुसार भारती की उत्पत्ति ऋग्वेद से, सात्त्वती की यजुर्वेद से, कैशिकी की सामवेद से एवं आरभटी की अथर्ववेद से हुई है।

भूमिसंस्थानसंयोगैः पदन्यासैस्तदा हरेः ।
अतिभारोऽभवद् भूमेर्भारती तत्र निर्मिता ॥
वल्गितैः शार्ङ्गधनुषस्तीव्रैर्दीप्तिकरैरथ ।
सात्त्विकै रसभ्रांतैस्सात्वती तत्र निर्मिता ॥
विचित्रै रंगहारैस्तु, देवो लीलासमुद्भवैः ।
बबंध यच्छिखापाशं, कैशिकी तत्र निर्मिता ॥
सरंभावेगबहुलैर्नानाचारी समुत्थितैः ।
नियुद्धकरणैश्चित्रै निर्मिताऽऽरभटी ततः ॥
ऋग्वेदाद् भारतीवृत्तिर्यजुर्वेदात्तु सात्त्वती ।
कैशिकी सामवेदाच्च, शेषा चाथर्वणात्तथा ॥

—नाट्यशास्त्र, २२/११-१४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

काव्य वृत्ति—काव्य में वृत्ति का वर्णन अनुप्रासालंकार के अंतर्गत किया जाता है। [विशेष विवरण के लिए दे० अनुप्रास] रसानुकूल वर्ण-निबंधन या रस-व्यंजक वर्ण-संघटन को वृत्ति कहते हैं। आचार्य मम्मट के अनुसार नियत वर्णों में निहित रसव्यंजना-संबंधी व्यापार को वृत्ति कहते हैं—

वृत्तिर्नियतवर्णगतो रसविषयो-व्यापारः।

—काव्यप्रकाश, ९/७९ वृत्ति

वृत्तियाँ तीन प्रकार की मानी जाती हैं—उपनागरिका, परुषा एवं कोमला। माधुर्यगुणव्यंजक वर्ण-रचना को उपनागरिका वृत्ति कहते हैं। इसमें श्रृंगार, हास्य एवं करुण रसों का प्रयोग होता है। उपनागरिका वृत्ति में वर्ण-निबंधन माधुर्यगुण के आधार पर होता है। इसमें कोमल, सानुनासिक एवं अनुस्वारयुक्त वर्णों का प्रयोग होता है तथा ट, ठ, ड, ढ आदि कठोर वर्ण एवं लंबे-लंबे समास प्रयुक्त नहीं होते। ओजगुण प्रकाशक वर्णों से युक्त रचना को परुषावृत्ति कहते हैं। इसमें कठोर वर्ण, द्वित्व वर्ण, लंबे-लंबे समास तथा संयुक्त वर्णों का विधान किया जाता है। यह वीर, रौद्र एवं भयानक रसों में प्रयुक्त होती है।

कोमलावृत्ति में प्रसादगुणव्यंजक वर्ण-संघटन होता है और यह मुख्यतः शांत, अद्भुत एवं बीभत्स रसों में प्रयुक्त होती है।

आधारग्रंथ—

भारतीय साहित्यशास्त्र भाग २—पं० बलदेव उपाध्याय

अलंकारानुशीलन—डॉ० राजवंश सहाय 'हीरा'

वृत्तिवक्रता—पदपूर्वार्द्धवक्रता का छठा प्रकार। [दे० पदपूर्वार्द्ध वक्रता]

वृत्त्यनुप्रास—शब्दालंकार और अनुप्रास का एक प्रकार। [दे० अनुप्रास] वृत्तिगत एक वर्ण या अनेक वर्ण-समुदाय की अनेक बार आवृत्ति हो तो वृत्त्यनुप्रास होता है। इस अनुप्रास की योजना रसानुकूल वर्ण-विधान के कारण होती है; अतः विभिन्न रसों के अनुकूल वर्ण-रचना में वृत्त्यनुप्रास होगा। रस-व्यंजक वर्ण-निबंधन को वृत्ति कहते हैं।

वृत्ति के अनुकूल वर्ण-रचना होने के कारण इसे वृत्त्यनुप्रास कहा जाता है। [दे० वृत्ति]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपनागरिका वृत्ति—माधुर्यगुणव्यंजक वर्ण-रचना को उपनागरिका वृत्ति कहते हैं। इसमें शृंगार, हास्य एवं करुण रसों का प्रयोग होता है। इसमें माधुर्य गुण के आधार पर [दे० माधुर्य गुण] वर्णनिबंधन होता है तथा कोमल, सानुनासिक एवं अनुस्वारयुक्त वर्ण प्रयुक्त होते हैं। उपनागरिका वृत्ति में ट, ठ, ड, ढ, ड़, ढ़, आदि कठोर वर्ण एवं लंबे-लंबे समासों का प्रयोग नहीं होता।

उदाहरण—

रस सिंगार मज्जन किए कंजनु भंजनु दैन।
अंजन रंजन हू बिना, खंजन गंजन नैन॥ —बिहारी

माधुर्यव्यंजकैर्वर्णैरुपनागरिकोच्यते। —काव्यप्रकाश, ९/८०

परुषावृत्ति—ओजगुण प्रकाशक वर्णों से युक्त रचना को परुषावृत्ति कहते हैं। [दे० ओज गुण]इसमें कठोरवर्ण, द्वित्व वर्ण, लंबे-लंबे समास तथा संयुक्त वर्णों का विधान किया जाता है। यह वीर, रौद्र एवं भयानक रसों में देखी जाती है।

ओजः प्रकाशकैस्तैस्तु परुषा। —काव्यप्रकाश, ९/८०

उदाहरण—

प्रलंब आतंक-प्रसू उपद्रवी, अतीव मोटा यम-दीर्घ दंड-सा।
कराल आरक्तिक-नेत्रवान औ, विषाक्त-फूत्कार-निकेत सर्प था॥
—प्रियप्रवास, १३/४१

कोमलावृत्ति—माधुर्य एवं ओजव्यंजक वर्णों से भिन्न वर्ण-संघटन में कोमला वृत्ति का विधान किया जाता है अर्थात् इसमें प्रसादगुण-व्यंजक वर्णों का प्रयोग होता है। यह मुख्यतः शांत, अद्‌भुत एवं बीभत्स रसों में प्रयुक्त होती है।

कोमला परैः। —काव्यप्रकाश, ९/८०

जपमाला छापातिलक, सरै न एकौ काम।
मन कांचै नाचै वृथा, सांचै रांचै राम॥ —बिहारी

वृत्यनुप्रास के स्वरूप-निदर्शन में आलंकारिकों में मतवैभिन्य नहीं है, सभी ने वृत्तियों के आधार पर ही इसका निरूपण किया है। उद्‌भट एवं रुय्यक ने वृत्तियों के अनुकूल वर्ण-विधान को आधार बनाकर इस अलंकार का स्वरूप-निदर्शन किया तथा रसानुकूल वर्ण-विन्यास की ओर भी संकेत किया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सरूपव्यंजनन्यासं तिसृष्वेतासु वृत्तिषु ।
पृथक् पृथगनुप्रासमुशंति कवयः सदा ॥

—काव्यालंकारसारसंग्रह, १/७

उद्भट के व्याख्याता इंदुराज ने वृत्त्यनुप्रास का स्वरूप स्पष्ट करते हुए बताया कि—

त्रिष्वेतेषु यथायोगं रसाद्यभिव्यक्त्यनुगुणेषु वर्णव्यवहारेषु यः सरूपाणां व्यंजनानां पृथक् पृथगुपनिबंधस्तमनुप्रासं कवयदेच्छंतीति । अतस्तावद् वृत्तयो रसाद्यभिव्यक्त्यनुगुणवर्णव्यवहारात्मिका........ताश्च तिस्रः परुषोपनागरिका-ग्रामत्वभेदात् ।

—वही, पृ० ७

आचार्य रुय्यक ने वृत्तियों के अनुरूप रचना को वृत्त्यनुप्रास कहा, जिसमें रसानुकूल वर्णों का प्रयोग होता है ।

अन्यथा तु वृत्त्यनुप्रासः । केवलव्यंजनसादृश्यमनेकधा समुदायसादृश्यं त्र्या-दीनां च परस्य रससादृश्यमन्यथा भावः । वृत्तिस्तु रसविषयो व्यापारः । तद्वती-पुनर्वर्णरचनेह वृत्तिः । सा च परुषकोमलमध्यवर्णारब्धत्वात् त्रिधा । तदुपलक्षितो ऽयमनुप्रासः ।

—अलंकारसर्वस्व, पृ० १६

मम्मट, जयदेव तथा विश्वनाथ एक अथवा अनेक वर्णों की आवृत्ति में वृत्त्यनुप्रास की स्थिति स्वीकार करते हैं । इनमें विश्वनाथ का विवेचन महनीय है। उन्होंने वृत्त्यनुप्रास की पाँच स्थितियों का वर्णन कर इसके स्वरूप का निरूपण किया है । विद्याधर तथा विद्यानाथ पर रुय्यक का प्रभाव है ।

एकस्याप्यसकृत्परः । —काव्यप्रकाश, ९/७९

एकस्य अपि शब्दादनेकस्य व्यंजनस्य द्विर्बहुकृत्वो वा सादृश्यं वृत्त्यनुप्रासः ।

—वही,

आवृत्तवर्ण संपूर्णं वृत्त्यनुप्रासवद्वचः ॥ —चंद्रालोक, ५/३

जयदेव एक वर्ण की या अनेक वर्ण की अनेक बार आवृत्ति में वृत्त्यनुप्रास मानते हैं ।

विश्वनाथ ने बताया कि अनेक व्यंजनों की एक बार आवृत्ति केवल स्वरूप से (क्रम से नहीं) अथवा अनेक वर्णों की अनेक बार (स्वरूप एवं क्रम से) एक वर्ण की एक बार या एक वर्ण की अनेक बार आवृत्ति होने पर वृत्त्यनुप्रास होता है ।

अनेकस्यैकधासाम्यमसकृद् वाप्यनेकधा ।
एकस्य सकृदप्येष वृत्त्यनुप्रास उच्यते ॥ —साहित्यदर्पण, ४/१०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एकधा स्वरूपत एव, न तु क्रमतोऽपि । अनेकधा स्वरूपतः क्रमतश्च । सकृदपीत्यपिशब्दादसकृदपि । —वही, वृत्ति

वृत्त्यनुप्रास की पांच स्थितियाँ इस प्रकार हैं ;

क. अनेक व्यंजनों की एक बार स्वरूपतः आवृत्ति ;

ख. अनेक व्यंजनों की अनेक बार स्वरूप एवं क्रम से आवृत्ति ;

ग. अनेक व्यंजनों की स्वरूपतः अनेक बार आवृत्ति ;

घ. एक व्यंजन की एक बार आवृत्ति ;

ङ. एक व्यंजन की अनेक बार आवृत्ति ।

उदाहरण—

१. उन्मीलन्मधुगंधलुब्धमधुपव्याधूतचूतांकुर-
क्रीडत्कोकिलकाकली कलकलैरुद्गीर्णकर्णज्वराः ।
नीयंते पथिकैः कथंकथमपि ध्यानावधानक्षणः
प्राप्तप्राणसमासमागमरसोल्लासैरमी वासराः ॥ —साहित्यदर्पण

उदित हुए मधु की गंध से लुभाए हुए भौंरों से कांपती हुई आम की नूतन मंजरी पर खेल करते हुए कोयलों की मीठी वाणी से जिनके कानों में टीस उत्पन्न हो रही है, ऐसे वे वियोगी पथिक वसंत ऋतु के इन दिनों में मन में प्रातःकाल अपनी प्रिया का स्मरण कर जैसे-तैसे समय व्यतीत कर रहे हैं। यहाँ 'कीडत्कोकिलकाकलीकलकलैः' में 'क' की अनेक बार आवृत्ति हुई है तथा 'रसोल्लासैरमी' में 'र' एवं 'स' का एक बार साम्य है। यहाँ केवल रूप की समता है, क्रम की नहीं।

२. तरणि के ही संग तरल तरंग में।
तरणि डूबी थी हमारी ताल में ॥ —पंत

'त' की अनेक बार आवृत्ति।

व्रीडा—संचारी भाव। [दे० संचारी भाव] अपनी प्रशंसा, गुरुजनों की मर्यादा, पराभव, प्रतिज्ञा-भंग तथा दुराचरण आदि से संकुचित होने को व्रीड़ा कहते हैं। व्रीड़ा का अर्थ लज्जा है। भरत व्रीडा का मूल कारण अनुचित कार्य को मानते हैं। यह गुरुजनों के विपरीत आचरण, प्रतिज्ञा-भंग, अनादर तथा पश्चात्ताप आदि विभावों द्वारा उत्पन्न होती है। इसका अभिनय मुँह को छिपाने, सिर नीचा करने, चिंतन करने, पृथ्वी पर रेखा खींचने, वस्त्र तथा अंगूठी के स्पर्श करने तथा नख काटने आदि अनुभावों द्वारा होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

व्रीडा नाम—अकार्यंकरणात्मिका सा च गुरुव्यतिक्रमणावज्ञानप्रतिज्ञाता-निर्वहणपश्चात्तापादिभिर्विभावैः समुत्पद्यते। तां निगूढवदनाधोमुखविंचिंतनो-र्वीलिखनवस्त्रांगुलीयस्पर्शनखनिकृंतनादिभिरनुभावैरभिनयेत्।

किंचिदकार्यंकुर्वन्नेवं यो दृश्यते शुचिविरन्यैः।
पश्चात्तापेन युतो व्रीडित इति वेदितव्योऽसौ॥
लज्जानिगूढवदनो भूमिं विलिखन्नखांश्च विनिकृंतन्।
वस्त्रांगुलीयकानां संस्पर्शं व्रीडितः कुर्यात्॥

—नाट्यशास्त्र, ७/५८-५६

धनंजय दुराचरण से व्रीडा की उत्पत्ति मानते हैं तथा यह धृष्टता के अभाव से भी उत्पन्न होती है। इसके अनुभाव हैं मुँह को टेढ़ाकर अंगों को छिपाना, वैवर्ण्य तथा अधोमुख करना आदि।

दुराचारादिभिर्व्रीडा धार्ष्ट्याभावस्तमुन्नयेत्।
साचीकृतांगावरणवैवर्ण्याधोमुखादिभिः॥ —दशरूपक, ४/२४

विश्वनाथ धृष्टता के अभाव को व्रीडा कहते हैं, जिसकी उत्पत्ति दुराचार से होती है। इसके अनुभाव मुँह का झुकाना आदि हैं।

धार्ष्ट्याभावोव्रीडा वदनानमनाविकृद् दुराचाराद्॥

—साहित्यदर्पण, ३/१६५

भानुदत्त ने स्वच्छंदतापूर्वक कुछ न कर सकने को व्रीडा कहा है। इसके विभाव (कारण) दुराचार आदि हैं और सिर झुकाना, मुँह तथा नाक को ढक लेना अनुभाव हैं।

स्वच्छंदक्रियासंकोचो व्रीडा। न च शंकायां त्रासे चातिव्याप्तिस्तत्र क्रिया-विरह एव न तु क्रियासंकोचः। अत्र विभावादुराचारादयः। अनुभावाः शिरोन-मनवदननयनप्रच्छादनादयः। —रसतरंगिणी, पृ० ३५५, पंचम तरंग

पंडितराज जगन्नाथ ने स्त्रियों-द्वारा पुरुषों का मुख देखने, पुरुष-प्रतिज्ञा-भंग तथा पराभव आदि के कारण उत्पन्न चित्तवृत्ति को व्रीडा कहा है।

स्त्रीणां पुरुषमुखावलोकनादेः, पुंसां च प्रतिज्ञाभंगपराभवादेरुत्पन्नो वैवर्ण्या-धोमुखत्वादिकारणीभूतश्चित्तवृत्तिविशेषो व्रीडा। —रसगंगाधर, पृ० ९७

उदाहरण—

क. कुचकलशयुगांतर्मामकीनं नखांकं
सपुलकतनुमंदंमंदमालोकमाना।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विनिहित वदनं मां वीक्ष्य बाला गवाक्षे
चकितनतनतांगी सद्म सद्यो विवेश ॥

"कलश के समान अपने दोनों उरोजों के ऊपर मेरे द्वारा किए गए नखक्षतों को रोमांचित होकर देखती हुई उस मुग्धा ने ज्योंही खिड़की से मुझे देखा कि अवलोकन मात्र से ही चकित तथा अंगों को सिकोड़कर भागकर भीतर चली गई।" नायिका के भीतर भागने तथा अंगों के सिकोड़ने में यहाँ व्रीडा है।

ख. गुरुजन-लाज-समाज बड़, देखि सीय सकुचान।
लगी बिलोकन सखिन तन, रघुबीरहि उर आन ॥

व्यक्ताक्षेप—आक्षेप अलंकार का द्वितीय भेद। [दे० **आक्षेप**]

व्यंग्यसंभवा—आर्थी व्यंजना का एक भेद। [दे० **आर्थीव्यंजना**]
जब व्यंग्यार्थ से ही अन्य व्यंग्य अर्थ का बोध हो तो व्यंग्यसंभवा आर्थी व्यंजना होती है।

व्यंग्यार्थ—अर्थ का एक भेद। [दे० **व्यंजना**] जो अर्थ व्यंजना शक्ति से प्रतीत हो, उसे व्यंग्यार्थ कहते हैं।

व्यंजक—शब्द का एक प्रकार। [दे० **व्यंजना**] व्यंजक शब्द वि+अञ्ज (धातु) से बना है, जिसका अर्थ है व्यक्त करना या खोलकर कहना। जो शब्द व्यंजना शक्ति द्वारा वाच्यार्थ तथा लक्ष्यार्थ से भिन्न अर्थ की प्रतीति कराए, उसे व्यंजक (शब्द) कहते हैं।

व्यंजना—शब्द की तीसरी शक्ति को व्यंजना कहते हैं। प्रथम एवं द्वितीय शक्तियाँ हैं, क्रमशः अभिधा और लक्षणा। 'व्यंजना' में वि और अंजना दो शब्द हैं, जिसका अर्थ है विशेष प्रकार का अंजन। काव्य के गूढ़ या छिपे हुए अर्थ को प्रकट करने के कारण इसे व्यंजना कहते हैं। जब अभिधा और लक्षणा अपना-अपना अर्थ द्योतित कर विरत (शांत) हो जाएँ और जिस शक्ति से अन्य अर्थ या व्यंग्यार्थ का ज्ञान हो तो उसे व्यंजना कहते हैं। व्यंजना शक्ति से व्यंग्यार्थ का ज्ञान होता है और ऐसे शब्दों को व्यंजक कहते हैं। जब अभिधा शक्ति [दे० **अभिधा**] शब्द के अर्थ को बतलाने में असमर्थ हो जाती है तो लक्षणा के द्वारा उसका अर्थ निकलता है [दे० **लक्षणा**]; पर कुछ ऐसे भी अर्थ होते हैं, जिनकी प्रतीति अभिधा तथा लक्षणा-द्वारा नहीं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होती और ऐसी स्थिति में एक अन्य या तृतीय शक्ति की कल्पना करनी पड़ती है। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार इसका लक्षण इस प्रकार है—

विरतास्वभिधाद्यासु ययार्थो बोध्यते परः।
सा वृत्तिर्व्यंजना नाम शब्दस्यार्थादिकस्य च ॥

—साहित्यदर्पण, २/१२-१३

अभिधा तथा लक्षणा से व्यंजना का क्षेत्र विस्तृत है। उन दोनों का व्यापार केवल शब्दों में होता है, पर व्यंजना का संबंध शब्द तथा अर्थ दोनों से रहता है। व्यंजना शक्ति के द्वारा काव्य के वास्तविक लावण्य की अभिव्यक्ति होती है। आचार्य हेमचंद्र के अनुसार "अभिधा शक्ति के द्वारा प्रतीत अर्थ सहृदय श्रोता की प्रतिभा की सहायता से एक नवीन अर्थ को द्योतित करता है। इस नवीन अर्थ को द्योतित करनेवाली शक्ति व्यंजना है।"

तच्छब्दस्युरजनितार्थावगमपवित्रितमप्रतिपत्तृप्रतिभासहायार्थद्योतनशक्तिर्व्यंजकत्वम्।

—काव्यानुशासन १,२० पृ० ५९

उदाहरण के लिए 'गंगा में गाँव है' इस वाक्य को लिया जाय, गंगा में गाँव की स्थिति संभव नहीं है, अतः लक्षणा शक्ति द्वारा गंगा से तट का अर्थ ग्रहण किया गया, जिसका अर्थ गंगा के तट पर गाँव हुआ। पर, वक्ता का अभिप्राय गाँव की शीतलता एवं पवित्रता व्यक्त करने का है, अतः लक्षणा शक्ति इस अर्थ को प्रकट करने में असमर्थ है, इसका कारण यह है कि शब्द, बुद्धि और कर्म तीनों के ही व्यापार एक ही बार होते हैं। एक बार उच्चरित शब्द एक ही बार अपने अर्थ का बोध कराकर समाप्त हो जाता है, उससे पुनः अर्थ का बोधन नहीं होता। अभिप्राय यह कि कोई भी शक्ति एक से अधिक अर्थ व्यक्त नहीं कर सकती। फलतः, गाँव की शीतलता तथा पवित्रता बतलानेवाली अन्य शक्ति की कल्पना करनी पड़ेगी। यह अर्थ व्यंजना शक्ति द्वारा ही प्रकट होता है। इसके अन्य उदाहरण में कहा जाय कि 'बत्तियाँ गुल हो गईं'' तो इसका अर्थ होगा कि सभी लोग सो गए।

व्यंजना के दो भेद हैं—शाब्दी व्यंजना और आर्थी व्यंजना [दे० आर्थी-व्यंजना] शाब्दी व्यंजना भी दो प्रकार की होती है—अभिधामूला व्यंजना [दे० अभिधामूला व्यंजना] तथा लक्षणामूलाव्यंजना [दे० लक्षणामूला व्यंजना]

व्यंजना की स्थापना—ध्वनि-सिद्धांत का मूलाधार व्यंजना है। इसका अनेक आचार्यों ने खंडन करने का प्रयास किया है। मम्मटाचार्य ने 'काव्य-प्रकाश' के पंचम उल्लास में व्यंजना की अपरिहार्यता का सविस्तर वर्णन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

किया है। व्यंजना-विरोधी आचार्यों में अभिधावादी, तात्पर्यवादी, लक्षणावादी तथा अनुमानवादी (आचार्य) आते हैं; और, मीमांसकों, वैयाकरणों तथा वेदांतियों ने भी इसकी आलोचना की है। आचार्य मम्मट ने व्यंजना-विरोधी उक्त सभी मतों को पूर्वपक्ष के रूप में उद्धृत कर उनका तर्कपूर्ण निरास किया है।

व्यंजना-वृत्ति का महत्त्व एकमात्र साहित्यशास्त्र में ही है। ध्वनिसमर्थक काव्याचार्यों के मतानुसार व्यंजना के बिना साहित्य के अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती। अभिधावृत्ति का आश्रय लेकर यदि, काव्य में, कोई बात सीधे-सादे ढंग से कही जाए तो उसमें चारुत्व का समावेश नहीं हो सकता। साहित्यशास्त्र का मुख्य लक्ष्य सहृदयों को रसास्वादन कराना है और सहृदय-परितृप्ति रसास्वादन से ही संभव है। व्यंजना रस का एक अनिवार्य तत्त्व है, क्योंकि रस व्यंग्य होता है। रस-बोध व्यंजना-द्वारा ही होता है, स्वप्न में भी रस वाच्य नहीं हो सकता।

रसादिलक्षणस्त्वर्थः स्वप्नेऽपि न वाच्यः ॥

—काव्यप्रकाश, ५ पृ० २१७

रसप्रतीति के लिए व्यंजना की अनिवार्यता—यदि रस को वाच्य माना जाय तो उसकी प्रतीति शृंगारादि शब्दों से ही होनी चाहिए; परंतु व्यवहार में ऐसा नहीं होता। रसादि अर्थात् रस, भाव, रसाभास आदि किसी भी स्थिति में शब्दविशेष या अर्थविशेष-द्वारा व्यक्त नहीं हो सकते, वे सदा ध्वनित या सूचित होते हैं; अभिधा वृत्ति द्वारा उन्हें प्रकट नहीं किया जा सकता। यदि यह मान लिया जाय कि अभिधावृत्ति द्वारा ही रसादि की अभिव्यक्ति होती है, तो रस, भाव के नाम, जैसे शृंगार आदि से ही इनका बोध होना चाहिए; पर ऐसा नहीं होता। जहाँ रस, शृंगार आदि शब्दों का प्रयोग हो; किंतु उनके व्यंजक विभाव, अनुभाव, संचारी आदि का वर्णन न हो तो वहाँ रसानुभूति नहीं हो सकती। पर, शृंगार आदि शब्दों के प्रयोग न होने पर केवल विभावादि के वर्णन में ही रस की स्वाभाविक रूप से प्रतीति हो जाती है। अतः रसबोध के लिए व्यंजना एक अपरिहार्य तत्त्व है।

स हि रसादिशब्देन शृंगारादिशब्देन वाऽभिधीयते। न चाभिधीयते। तत्प्रयोगेऽपि तस्याऽप्रतिपत्तेस्तदप्रयोगेऽपि विभावादिप्रयोगे तस्य प्रतिपत्तेश्चेत्यन्वय-व्यतिरेकाभ्यां विभावाद्यभिधानद्वारेणैव प्रतीयते, इति निश्चीयते। तेनाऽसौ व्यंग्य एव।

—काव्यप्रकाश, पृ० ५/२१७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लक्षणामूलाध्वनि में व्यंजना की अनिवार्यता—रसादि की लक्षणा द्वारा भी प्रतीति असंभव है। लक्षणा के तीन हेतु हैं—मुख्यार्थबाध, मुख्यार्थ का योग और रूढ़ि तथा प्रयोजन। आनंदवर्द्धन ने लक्षणामूला ध्वनि के दो भेद किए हैं—अर्थांतर संक्रमित तथा अत्यंत तिरस्कृत वाच्यध्वनि। प्रथम में वाच्यार्थ प्रकरण से अनुपयुक्त होने के कारण अर्थांतर में संक्रमित हो जाता है (बदल जाता है) और द्वितीय में वाच्यार्थ अनुपपद्यमान होकर अन्यार्थ का बोध कराता है, इसमें वाच्यार्थ का अत्यंत तिरस्कार किया जाता है। इन दोनों ही ध्वनियों में प्रयोजनविशेष व्यंग्य होता है और वह अभिधा या लक्षणा द्वारा द्योतित नहीं होता। प्रयोजन के बिना लक्षणा वृत्तिहीन हो जाती है, फलतः वस्तुमात्र रूप व्यंग्य के बिना लक्षणा नहीं हो सकती। अतः, वस्तु-रूप अर्थ का बोध व्यंजना-द्वारा ही संभव है।

अर्थांतरसंक्रमितात्यंततिरस्कृतावाच्ययोवस्तुमात्ररूपं व्यंग्यं विना लक्षणैव न भवतीति प्राक् प्रतिपादितम्। —काव्यप्रकाश, पृ० २१७/५ उल्लास

अभिधामूला संलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि तथा व्यंजना—अभिधामूला संलक्ष्यक्रम व्यंग्यध्वनि के तीन प्रकार हैं—शब्दशक्ति-उद्भव-अनुरणनध्वनि, अर्थशक्ति-उद्भव-अनुरणनध्वनि और उभयशक्ति-उद्भव-अनुरणनध्वनि। इनमें प्रथम में अनेकार्थक शब्द का प्रकरणवश एकार्थ में नियंत्रण हो जाने पर अन्यार्थ का बोध होता है। यहाँ अभिधा के एक अर्थ में नियंत्रित होने पर अन्यार्थ की प्रतीति उसके-द्वारा (अभिधा द्वारा) नहीं हो सकती; अतः व्यंजना-वृत्ति की स्वीकृति आवश्यक है। अर्थशक्तिमूला ध्वनि में भी व्यंग्यार्थ की प्रतीति के पूर्व वाच्यार्थ की उपस्थिति आवश्यक होती है, उसमें वाच्यार्थ की प्रतीति के बाद ही व्यंग्यार्थ-बोध होता है। वाक्य से अर्थ की प्रतीति का विचार मुख्यतः मीमांसाशास्त्र में किया जाता है। अर्थशक्ति-उद्भव ध्वनि के निरूपण में वाक्यार्थ ज्ञान की पहले आवश्यकता होती है। मम्मट ने इस क्रम में मीमांसकों के मत का खंडन किया है। मीमांसकों के दो संप्रदाय हैं—अभिहितान्वयवाद तथा अन्विताभिधानवाद। अभिहितान्वयवाद में वाक्यार्थ की प्रतीति (बोध) तात्पर्य-शक्ति से होती है, अभिधा-द्वारा नहीं। उसमें अभिधाशक्ति से वाक्यार्थ-ज्ञान संभव नहीं है; अतः इस स्थिति में व्यंग्यार्थ की प्रतीति के लिए व्यंजना की स्वीकृति परमावश्यक है। जब वाक्यार्थ ही वाच्य या अभिधेय नहीं तो उसके बाद प्रतीत होनेवाला व्यंग्यार्थ कैसे वाच्य होगा? "विशेष में संकेतग्रह करना जहाँ संभव नहीं है, और जाति-रूप पदार्थों का परस्पर संसर्ग-रूप

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विशेष अर्थ स्वयं पदों से उपस्थित न होकर आकांक्षा, सन्निधि और योग्यता के कारण उपस्थित होता है, उस अभिहितान्वयवाद में व्यंग्यार्थ की अभिधेयता की बात ही क्या है ?"
—हिंदी काव्यप्रकाश, पृ० २१६

अन्विताभिधानवाद में व्यंग्यार्थ अभिधेय नहीं है। उसके अनुसार अभिधा-वृत्ति के परस्पर अन्वित पदार्थों का ही बोध होता है। सामान्य रूप से ही विशेष पदार्थ संकेत के विषय होते हैं। वहाँ अति विशेष पदार्थ की प्रतीति अभिधा-द्वारा संभव नहीं है। अतः अन्विताभिधानवाद में भी व्यंजना की स्वीकृति अनिवार्य है।

मीमांसकों का खंडन—मीमांसकों के अनुसार 'नैमित्तकानुसारेण निमित्तानि कल्प्यंते'—अर्थात् नैमित्तिक या कार्य के अनुसार निमित्त या कारण की कल्पना की जाती है। इस मत से व्यंजनावादी का व्यंग्यार्थ शब्द से प्रतीत होता है; और शब्द के अतिरिक्त उसका कोई और निमित प्राप्त नहीं होता; अतः शब्द को ही उसका निमित्त मानना पड़ेगा। शब्द में अर्थ का बोध अभिधाशक्ति-द्वारा होता है; शब्द से जो व्यंग्यार्थ की प्रतीति होती है, वह भी अभिधा-द्वारा ही होती है। अतः व्यंजना की कल्पना निरर्थक है। इसका उत्तर व्यंजनावादियों ने दिया है कि शब्द से प्रतीत होनेवाले व्यंग्यार्थ में उसका केवल ज्ञापकत्व निमित्तत्व ही बनता है। वह भी (ज्ञापकत्व रूप निमित्तत्व) तब होता है, जब शब्द का उस अर्थ के साथ संकेतग्रह हो। इसलिए शब्द का विशेष के साथ संकेत जब तक न माना जाय, तब तक विशेष अर्थ की प्रतीति ही कैसे हो सकती है ? इसलिए नैमित्तिक (कार्य) के अनुसार निमित्त (कारण) की कल्पना की जाती है, यह कहना अविवेकपूर्ण है।
—हिंदी काव्यप्रकाश, पृ० २२६

भट्टलोल्लट का खंडन—भट्टलोल्लट आदि ने अभिधाव्यापार को ही बाण की भाँति 'दीर्घदीर्घतर' माना है। जिस प्रकार एक ही बाण कवचच्छेदन, उरोविदारण तथा प्राणविमोचन का कार्य संपन्न करता है, उसी प्रकार एकमात्र अभिधावृत्ति से ही वाच्य, लक्ष्य एवं व्यंग्य अर्थों की प्रतीति होती है। अभिप्राय यह कि अभिधा के अतिरिक्त अन्य शक्तियों का अस्तित्व अमान्य है। इस कथन की सिद्धि के निमित्त भट्टलोल्लट ने 'यत्परः शब्दः स शब्दार्थः' इस शास्त्रीय वाक्य को उद्धृत किया है। इसके अनुसार 'जिस तात्पर्य का शब्द होता है, वह उस शब्द का ही अर्थ है।' इस दृष्टि से व्यंग्यार्थ भी अभिधागम्य है। उनके अनुसार सभी प्रकार के अर्थ अभिधा-द्वारा ही प्रकट होते हैं ; अतः किसी भी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अर्थ के ज्ञान के लिए व्यंजना आदि शक्तियों की आवश्यकता नहीं पड़ती। मम्मट का कहना है कि उन लोगों ने इस वाक्य का अर्थ ठीक से नहीं समझा है। इसका अभिप्राय है विधि-वाक्य में मुख्य रूप से क्रिया का विधान होने से। 'जिस अप्राप्त अंश के बोधन में विधि-वाक्य का तात्पर्य होता है, वही उस विधि-वाक्य का प्रतिपाद्य अर्थ है।' वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ की भिन्नता आठ कारणों से है—संख्या, स्वरूप, काल, आश्रय, निमित्त, व्यपदेश, कार्य तथा विषय।

स्वरूप-संख्या-निमित्त-कार्य-प्रतीति-कालानाम् ।
आश्रय-विषयादीनां भेदाद् भिन्नोऽभिधेयतो व्यंग्यः ।

—साहित्यदर्पण, परिच्छेदः ५

वाच्यार्थ सभी ज्ञाताओं के प्रति एक-सा ही होता है; कारण यह कि उसका स्वरूप निश्चित है, पर संबद्ध वाक्य में वक्ता, बोद्धा (श्रोता) आदि की सहायता से व्यंग्यार्थ भिन्न-भिन्न हो जाता है। वाच्यार्थ तथा व्यंग्यार्थ में स्वरूपगत भेद होता है। वाच्यार्थ कहीं विधिपरक होता है और व्यंग्यार्थ निषेधपरक और कहीं इसके प्रतिकूल स्थिति भी होती है। वाच्यार्थ के बोध के पश्चात् व्यंग्यार्थ-बोध में कालगत भेद भी होता है।

आश्रयभेद—वाच्यार्थ केवल शब्दाश्रित होता है; पर व्यंग्यार्थ शब्द, उसके अंश, अर्थ, वर्ण, संघटन आदि पर भी आश्रित रहता है।

निमित्त-भेद—वाच्यार्थ-बोध का हेतु शब्दानुशासन का ज्ञान है; पर व्यंग्यार्थ की प्रतीति में प्रकरण, प्रतिभा तथा सहृदयत्व (नैर्मल्य) प्रभृति अनेक कारण होते हैं। वाच्यार्थ का ज्ञाता केवल बोद्धा या श्रोता होता है; पर व्यंग्यार्थ का ज्ञाता विदग्ध।

कार्य-भेद—वाच्यार्थ-ज्ञान केवल प्रतीति-मात्र का अनुभव करानेवाला होता है; पर व्यंग्यार्थ का ज्ञान चमत्कार का जनक होता है। संख्याभेद भी वाच्य तथा व्यंग्य का भेद-साधक है। वाच्यार्थ एकरूप होता है और व्यंग्यार्थ अनेकरूप। विषय का भेद भी दोनों के पार्थक्य का साधक है। कभी वाच्यार्थ के कथन का विषय कुछ होता है और व्यंग्यार्थ का विषय भिन्न।

अतः यह सिद्ध होता है कि व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ से सर्वथा भिन्न है तथा उसके बोधन के लिए व्यंजना-शक्ति की स्थिति अनिवार्य है।

व्यंग्यार्थ तात्पर्य से भी भिन्न है। कितने ऐसे उदाहरण प्राप्त होते हैं, जिनमें तात्पर्य विषयीभूत अर्थ नहीं होता; पर व्यंग्यार्थ का बोध तो होता ही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। उदाहरण के लिए 'असुंदर व्यंग्य' नामक गुणीभूत व्यंग्य के उदाहरण में व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ की अपेक्षा असुंदर होता है, यद्यपि उसकी (व्यंग्यार्थ की) प्रतीति तो होती ही है। फलतः ऐसे उदाहरणों में व्यंग्यार्थ किसी शब्द से कथित या अभिहित न होकर प्रतीत-मात्र होता है। प्रश्न है कि यह प्रतीति किस व्यापार का आश्रय ग्रहण कर रही है? अतः व्यंजना की स्वीकृति आवश्यक है। इसे ही अतात्पर्य विषयीभूत अर्थ की व्यंग्यता कहते हैं।

व्यंजना की लक्षणागम्यता का खंडन—ध्वनिवादियों (विशेषतः मम्मट) ने लक्षणा से व्यंग्य को सर्वथा पृथक् सिद्ध करते हुए निम्नांकित तर्क प्रस्तुत किए हैं। व्यंजना-विरोधी (लक्षणावादी) लक्ष्यार्थ में ही व्यंग्यार्थ को अंतर्भूत करते हैं या उन्हें व्यंग्यार्थ की लक्षणागम्यता अभिप्रेत है। इसका निषेध व्यंजनावादियों ने किया है—

व्यंजना को लक्षणा से अभिन्न मानते हुए लक्षणावादियों का कहना है कि जिस प्रकार मुख्यार्थ की संगति न होने पर उपचार से लक्ष्यार्थ का ग्रहण होता है, उसी प्रकार मुख्यार्थ की बाधा होने पर व्यंग्यार्थ का बोध होता है। अतः, व्यंग्यार्थ लक्ष्यार्थ का ही एक प्रकार है। इस संबंध में लक्षणावादियों के तर्क इस प्रकार हैं—

क. व्यंजना को पृथक् वृत्ति सिद्ध करने के लिए व्यंजनावादियों का यह तर्क कि वाच्यार्थ निश्चित रूप से एक होता है; किंतु व्यंग्यार्थ अनेक प्रकार के होते हैं, व्यर्थ है। क्योंकि यही तथ्य लक्ष्यार्थ के साथ भी संलग्न है। उदाहरण के लिए—'रामोऽस्मि सर्वं सहे' 'मैं कठोर हृदय राम हूँ, सब कुछ सह लूँगा'—इस श्लोक में राम शब्द का वाच्यार्थ तो एक ही है; पर लक्ष्यार्थ 'कठोर हृदय राम' तथा 'मिथ्या प्रेम का दंभ भरनेवाला राम' होते हैं। अतः, यह सिद्ध होता है कि लक्ष्यार्थ में भी व्यंग्यार्थ की तरह नानात्व विद्यमान है।

ख. वाच्यार्थ की प्रतीति शब्द-द्वारा होती है और व्यंग्यार्थ का बोधन शब्द तथा अर्थ दोनों से ही होता है। इस अर्थ की प्रतीति शाब्दी तथा आर्थी व्यंजना के द्वारा शब्द एवं अर्थ दोनों से संभव है। इसपर लक्षणावादी कहता है कि यह बात लक्ष्यार्थ पर भी सत्य उतरती है, लागू होती है। लक्ष्यार्थ का बोध भी शब्द तथा अर्थ दोनों से हो सकता है। अतः, लक्ष्यार्थ से पृथक् व्यंजना का अस्तित्व अमान्य है।

ग. प्रकरण आदि का सहायता से व्यंग्यार्थ का बोध होता है; अतः वह वाच्यार्थ से सर्वथा पृथक् है। लक्षणावादियों के मत से यह विशेषता लक्षणा में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भी प्राप्त होती है। ऐसी दशा में व्यंजना का सारा कार्य लक्षणा से ही संपन्न हो सकता है; अतः उसके पृथक् अस्तित्व की कल्पना निरर्थक है।

व्यंजनावादी का उत्तर—आचार्य मम्मट ने लक्षणा से भिन्न व्यंजनासाधक युक्तियाँ प्रस्तुत की हैं—

१. लक्षणावादियों के अनुसार लक्षणीय अर्थ अनेक प्रकार का होने पर भी अनेकार्थक शब्दों के वाच्यार्थ के समान नियत संबंधवाला ही होता है; पर प्रतीयमान अर्थ तीन प्रकार का है—नियतसंबंधवाला, अनियतसंबंधवाला तथा संबद्धसंबंधवाला। मुख्यार्थ के साथ संबंध नहीं रखनेवाला अर्थ लक्षणा-द्वारा बोधित नहीं किया जा सकता; पर व्यंग्यार्थ की अभिव्यक्ति प्रकरणादि की विशेषता के कारण नियत संबंध से, अनियत संबंध से तथा कहीं परंपरित संबंध से होती है। अतः, व्यंग्यार्थ लक्ष्यार्थ से अभिन्न नहीं है।

२. मुख्यार्थ के बिना लक्ष्यार्थ की प्रतीति हो ही नहीं सकती; पर व्यंग्यार्थ का बोध तो मुख्यार्थ के बिना भी संभव है।

३. लक्षणा में भी प्रयोजन की प्रतीति के लिए व्यंजना का आश्रय लेना पड़ता है।

४. लक्षणा अभिधा की 'पुच्छभूत' होती है अर्थात् जिस प्रकार अभिधा में संकेतग्रह की अनिवार्यता है, उसी प्रकार लक्षणा में भी मुख्यार्थ-बाध, मुख्यार्थ-लक्ष्यार्थ का योग तथा रूढ़ि या प्रयोजन की आवश्यकता होती है। उपर्युक्त तीन संबंधों के अभाव में लक्षणा का बोध नहीं हो सकता; अतः वह अभिधा की 'पुच्छभूत' कही जाती है। इसका अर्थ यह हुआ कि जिस प्रकार मुख्यार्थ-बाध आदि पर आश्रित होने से लक्षणा अभिधा से सर्वथा पृथक् है, उसी प्रकार मुख्यार्थ आदि की अनपेक्षा के कारण व्यंजना को भी लक्षणा से भिन्न मानना चाहिए।

यथा च समय सव्यपेक्षाऽभिधा। तथा मुख्यार्थबाधादित्रयसमयविशेषव्यपेक्षा लक्षणा, अतएवाभिधापुच्छभूता सेत्याहुः।

—आचार्य विश्वेश्वर-कृत हिंदी (काव्यप्रकाश, पंचम उल्लास) व्याख्या, पृ० २५१

५. व्यंग्यार्थ का बोध लक्ष्यार्थ के साथ न होकर उसके बाद होता है। इससे यह तथ्य प्रकट होता है कि व्यंग्यार्थ लक्ष्यार्थ से भिन्न है।

६. व्यंग्यार्थ लक्षणामूलक होता है और अभिधामूलक भी। अतः, वह लक्ष्यार्थ से स्वतंत्र वृत्ति है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

७. व्यंजना की प्रतीति कहीं निरर्थक वर्णों द्वारा भी होती है ; अतः यह न तो अभिधा की अनुगामिनी है और न लक्षणा की।

८. व्यंजना शब्द पर ही निर्भर नहीं होती, वरन् वह कटाक्षादि या संकेत आदि के द्वारा भी व्यक्त होती है।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर व्यंजना की लक्षणागम्यता का निषेध हो जाता है और वह स्वतंत्र वृत्ति या शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित होती है।

अनुमानवादी और व्यंजना—नैयायिक महिमभट्ट ने व्यंजना का खंडन करने के लिए 'व्यक्तिविवेक' नामक ग्रंथ का प्रणयन किया है। [दे० **ध्वनिविरोधी आचार्य**] उन्होंने न्याय की प्रक्रिया के आधार पर व्यंजना को अनुमान में गतार्थ करने का प्रयास किया है। उनके मत से शब्द की एकमात्र शक्ति अभिधा है और प्रतीयमान अर्थ की सिद्धि अनुमान से होती है, व्यंजना से नहीं। उनका कहना है कि "वाच्य से असंबद्ध अर्थ तो प्रतीत नहीं होता; क्योंकि जिस किसी भी शब्द से जो कोई भी अर्थ प्रतीत होने लगेगा। इस प्रकार व्यंग्य और व्यंजक का संबंध अनिवार्य होने से व्यंग्य-व्यंजकभाव व्याप्ति के बिना निश्चय ही नहीं हो सकता है। इसलिए, व्याप्तियुक्त और नियतधर्मी में रहने से तीन रूपोंवाले लिंग से लिंगी का जो अनुमान होता है, उसी रूप में व्यंग्यव्यंजक-भाव का भी पर्यवसान हो जाता है।"

—आचार्य विश्वेश्वर-हिंदी काव्यप्रकाश, पृ० २५८

महिमभट्ट ने 'गाथा सप्तशती' (२/७५) का प्रसिद्ध गाथा 'भ्रमधार्मिक' में न्याय की प्रक्रिया के आधार पर व्यंजना को अनुमान में अंतर्भूत कर, निषेध-रूप प्रतीयमान अर्थ को अनुमेय माना है। मम्मट का कहना है कि महिमभट्ट-द्वारा प्रस्तुत हेतु यहाँ हेतु न होकर हेत्वाभास है। ऐसा देखा गया है कि भीरु व्यक्ति भी प्रभु या गुरु के आदेश से या प्रिया की प्रीति के कारण या किसी अन्य हेतु से भय के कारण के विद्यमान रहने पर भी भयजनक स्थलों में भ्रमण करता है। अतः यह हेतु अनैकांतिक हेत्वाभास है। कतिपय व्यक्ति ऐसे भी हैं, जो अपने शौर्य के कारण सिंह से नहीं डरते; पर कुत्ते से भयभीत हो जाते हैं। अतः यह विरुद्ध हेत्वाभास हुआ। तीसरा दोष यह है कि गोदावरी के तीर पर सिंह की विद्यमानता में प्रत्यक्ष और अनुमान का निश्चय नहीं हुआ है; किंतु वचन से है और अर्थ के साथ वचन का प्रतिबंध न होने से वचन का प्रामाण्य नहीं है। अतः, पक्ष में हेतु के न होने से सरूपा-सिद्ध हेत्वाभास भी है। इस प्रकार तीन-तीन हेत्वाभासों के रहने से साध्य की सिद्धि संभव

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नहीं। अतः, यहाँ भ्रमण-निषेध रूप व्यंग्यार्थ को अनुमान का विषय स्वीकार करना व्यर्थ है। आचार्य मम्मट ने सभी प्रकार की युक्तियों के द्वारा व्यंजना-वृत्ति की स्थापना कर विरोधियों के तर्कों का सयुक्तिक खंडन किया है।

व्यतिरेक—सादृश्यमूलक अलंकार। उपमान की अपेक्षा उपमेय के गुणोत्कर्ष-वर्णन को व्यतिरेक अलंकार कहते हैं। 'व्यतिरेक' का अर्थ है विशेष प्रकार (वि) का अतिरेक या आधिक्य।

व्यतिरेको विशेषेणातिरेकः आधिक्यम्। —प्रदीप, पृ० ५०२

इसमें गुण-विशेष के कारण उपमेय के उत्कर्ष या आधिक्य का वर्णन किया जाता है अर्थात् कवि उपमान की अपेक्षा उपमेय को अधिक सबल और प्रौढ़ सिद्ध करता है। इसके निम्नांकित तत्त्व हैं—

क. उपमेय के उत्कर्ष का प्रतिपादन तथा उपमान के अपकर्ष की सिद्धि।

ख. उपमेय का उत्कर्ष बताने के लिए हेतु की कल्पना या उपमान की न्यूनता बताने के लिए हेतु का निर्देश।

ग. सादृश्य का शाब्द न होकर आर्थ या व्यंग्य होना।

घ. वैधर्म्य की कल्पना के द्वारा उपमेय तथा उपमान में भेद की प्रतीति।

व्यतिरिच्यते उपमानाद्व्यावर्त्यते अनेन उपमेयमिति व्युत्पत्तेरित्यर्थः॥

—अलंकारकौस्तुभ, पृ० २९७

व्यतिरेक अलंकार का विवेचन सभी आचार्यों ने किया है। इसका सर्वप्रथम निरूपण भामह ने किया। भामह ने उपमान की अपेक्षा उपमेय के गुणोत्कर्ष-वर्णन को व्यतिरेक कहा है। उपमेय के विशेष निदर्शन को इन्होंने व्यतिरेक माना है।

उपमानवतोऽर्थस्य यद्विशेषनिदर्शनम्।
व्यतिरेकं तमिच्छंति विशेषापादनाद्यथा॥

—काव्यालंकार, २/७५

दंडी ने व्यतिरेकालंकार का विस्तार करते हुए उसके चार प्रकारों का उल्लेख किया है। इनके अनुसार यदि दो वस्तुओं (उपमेय तथा उपमान) का सादृश्य शब्दतः कथित हो या प्रतीतिमात्र हो तो दोनों में भेद दिखाई पड़ने पर व्यतिरेक अलंकार होगा।

शब्दोपात्ते प्रतीते वा सादृश्ये वस्तुनोर्द्वयोः।
तत्र यद्भवेद् कथनं व्यतिरेकः स कथ्यते।

—काव्यादर्श, २/१८०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दंडी ने श्लेष को व्यतिरेक का आधार माना है। इसके भेदों का वर्णन इस प्रकार है—

क. उपमेय का उत्कर्ष तथा उपमान का अपकर्ष-वर्णन।

ख. उपमान का अपकर्ष-कथन।

ग. उपमेय का उत्कर्ष-वर्णन।

घ. उभयानुपादान या दोनों प्रकार की स्थिति।

उद्भट उपमेय तथा उपमान दोनों के वैशिष्ट्य-प्रतिपादन को व्यतिरेक कहते हैं—

विशेषापादनं यत्स्यादुपमानोपमेययोः।
निमित्ता दृष्टिदृष्टिभ्यां व्यतिरेको द्विधा तु सः॥

—काव्यालंकारसारसंग्रह, २/६

वामन ने उपमेय के गुणाधिक्य-वर्णन को व्यतिरेक कहा है।

उपमेयस्य गुणातिरेकित्वं व्यतिरेकः।

उपमेयस्य गुणातिरेकित्वं गुणाधिक्यं यद् अर्थादुपमानात् स व्यतिरेकः॥

—काव्यालंकारसूत्र, ४,३,२२

रुद्रट उपमेय अथवा उपमान, दोनों के ही अतिरेक या आधिक्य-वर्णन में व्यतिरेक मानते हैं। इन्होंने इसके चार भेदों का वर्णन किया है।

क. उपमेय का गुण-कथन एवं उपमान के दोष की अनुक्ति।

ख. उपमान का दोष-कथन तथा उपमेय के गुण की अनुक्ति।

ग. उपमेय के गुण और उपमान के दोष का वर्णन।

घ. उपमान के गुण तथा उपमेय के दोष का वर्णन। रुद्रट को उपमेय तथा उपमान दोनों का गुणाधिक्य अभीष्ट है।

यो गुण उपमेये स्यात्तत्प्रतिपंथी च दोष उपमाने।
व्यस्तसमस्तन्यस्तौ तौ व्यतिरेकं त्रिधा कुरुतः॥
यो गुण उपमाने वा तत्प्रतिपंथी च दोष उपमेये।
भवतो यत्र समस्तौ स व्यतिरेकोऽयमन्यस्तु॥

—काव्यालंकार, ७/८७

मम्मट ने अत्यंत विस्तार के साथ व्यतिरेक का वर्णन कर इसके चौबीस भेदों का निरूपण किया। इन्होंने उपमान की अपेक्षा उपमेय के गुणाधिक्य-वर्णन को व्यतिरेक माना है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपमानाद्यन्यस्य व्यतिरेकः स एव सः ।
अन्यस्योपमेयस्य व्यतिरेक आधिक्यम् ॥
हेत्वोरुक्तावनुक्तीनां त्रये साम्ये निवेदिते ।
शब्दार्थाभ्यामथाक्षिप्ते श्लिष्टे तद्वत्त्रिरष्ट तत् ॥

—काव्यप्रकाश, १०/१०५,१०६

रुय्यक ने बताया कि भेद के प्राधान्य के कारण उपमान से उपमेय के आधिक्य अथवा न्यूनत्व के वर्णन में व्यतिरेकालंकार होगा। इन्होंने दो भेदों का कथन किया है—उपमान की अपेक्षा उपमेय का उत्कर्ष तथा उपमान में न्यूनता का प्रदर्शन।

भेद प्राधान्ये उपमानादुपमेयस्याधिकगुणत्वे विपर्यये वा भावात् । विपर्ययो न्यूनगुणत्वम् ॥

—अलंकारसर्वस्व, पृ० १०१

रुय्यक का अनुकरण विद्याधर, विद्यानाथ तथा विश्वनाथ ने किया।

उपमानादुपमेयं तत्राधिकस्य गोचरी भवति ।
सतिभेदप्राधान्ये व्यतिरेकोऽयं समाख्यातः ॥

—एकावली, ८/२०

भेद प्राधान्यसाधर्म्यमुपमानोपमेययोः ।
आधिक्याल्पत्वकथनाद् व्यतिरेकः स उच्यते ॥

—प्रतापरुद्रीय, पृ० ३१३

आधिक्यमुपमेयस्योपमानान्न्यूनताऽथवा । व्यतिरेकः ॥

—साहित्यदर्पण, १०/५२

जयदेव तथा अप्पय दीक्षित दोनों ही उपमान तथा उपमेय के परस्पर वैलक्षण्य-निरूपण को व्यतिरेक कहते हैं। दीक्षित ने जयदेव का ही लक्षण उद्धृत किया है।

व्यतिरेको विशेषश्चेदुपमानोपमेययोः ॥ —चंद्रालोक, ५/५९

—कुवलयानंद, ५७

दीक्षित ने तीन भेदों का निरूपण किया है।

क. उपमेयाधिक्य पर्यवसायी व्यतिरेक।

ख. उपमेय का न्यूनत्व।

ग. अनुभय पर्यवसायी व्यतिरेक।

पडितराज के अनुसार किसी विशेष प्रकार के गुण से समन्वित होने पर जब उपमान से उपमेय का उत्कर्ष दिखलाया जाय तो व्यतिरेक अलंकार होगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपमानादुपमेयस्य गुणविशेषवत्त्वेनोत्कर्षो व्यतिरेकः ॥

—रसगंगाधर, पृ० ४६७

विश्वेश्वर पंडित ने मम्मट का अनुकरण करते हुए व्यतिरेक का वर्णन किया है।

उभयोः साम्यप्रोक्तौ विशेष उपमेयगे व्यतिरेकः। यत्र केनचिद्धर्मेणोपमानापेक्षया उपमेयस्य वैलक्षण्यं वर्ण्यते स व्यतिरेकः।

—अलंकारकौस्तुभ, पृ० ४६४

रीतिकालीन आचार्यों का व्यतिरेक-वर्णन दंडी, मम्मट, विश्वनाथ तथा अप्पय दीक्षित पर आश्रित रहा। केशव ने दंडी का भावानुवाद कर इस अलंकार (व्यतिरेक) का वर्णन किया है। चिंतामणि और कुलपति के आधार मम्मट रहे हैं और जसवंत सिंह, मतिराम तथा पद्माकर ने 'कुवलयानंद' के लक्षण का अनुवाद किया है।

तामें आनै भेद कछु होयँ जु बस्तु समान।
सो व्यतिरेक जु भाँति द्वै, युक्ति सहज परमान॥

—कविप्रिया, १०/७८

अधिक जहाँ उपमेय कबि घट बरनत उपमान।
तहँ वितरेक बनाइकै बरनत सुकवि सुजान॥

—कविकुलकल्पतरु, ३/२०३

जहाँ अधिक उपमान तें कहियत है उपमेय।
सो व्यतिरेक बखानिए, उँच नीच गुन भेय॥
गुन कहिए उपमेय को, अरु औगुन उपमान॥

—रसरहस्य, ८/९८-९९

व्यतिरेक जु उपमान तें उपमे अधिकै देखि॥

—भाषाभूषण, ८९

जहाँ होत उपमान ते उपमेय मैं विसेख।
तहाँ कहत व्यतिरेक हैं, कबिजन मति उल्लेख॥

—ललितललाम, १५५

जहँ अबर्न्य अरु बर्न्य में कछु बिसेष व्यतिरेक।
अधिक न्यून सम भेद सों त्रिविध कहत कवि नेक।

—पद्माभरण, ९३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भेद—व्यतिरेक के चार भेद माने गए हैं।

१. प्रथम व्यतिरेक—जब उपमेय के उत्कर्ष एवं उपमान के अपकर्ष का कारण-सहित वर्णन हो तो प्रथम व्यतिरेक होगा—

क. असिमात्र सहायस्य प्रभूतारिपराभवे ।
अन्य तुच्छजनस्येव न स्मयोऽस्य महाधृतेः ॥

"अत्यंत धैर्यवान् तलवार-मात्र को धारण किए हुए तथा अत्यधिक शत्रुओं को पराजित करने पर भी इस वीर को अन्य व्यक्तियों की भाँति गर्व नहीं होता।" यहाँ राजा उपमेय एवं अन्य जन उपमान हैं। उपमेय के उत्कर्ष का निमित्त 'महाधैर्य' तथा उपमान के अपकर्ष का निमित्त 'तुच्छता' दोनों का कथन करने में प्रथम भेद हुआ।

ख. सम सुबरन सुखमाकर, सुखद न थोर।
सीय अंग सखि कोमल कनक कठोर ॥ —तुलसीदास

सीता के अग को स्वर्ण से भी बढ़कर बताने में कारण का निर्देश है—कोमलता। यहाँ उपमान के अपकर्ष का कारणसहित वर्णन हुआ है। कारण है—कठोरता।

२. द्वितीय व्यतिरेक—जब उपमेय के उत्कर्ष का कारणसहित वर्णन हो तो द्वितीय व्यतिरेक होगा—

नयनन नीरज में सखी, समता सब दरसात।
बंक बिलोकन दृगन मैं, यह गुन अधिक दिखात ॥

यहाँ नेत्रों में कमलों से गुणाधिक्य (बंकविलोकन) का कारणसहित वर्णन है।

३. तृतीय व्यतिरेक—उपमान का कारण-सहित अपकर्ष-वर्णन तृतीय व्यतिरेक है—

क. क्षीणः क्षीणोऽपि शशी भूयोभूयोऽभिवर्धते सत्यम् ।
विरम प्रसीद सुंदरि, यौवनमनिवर्ति यातं नु ॥

"चंद्रमा बार-बार क्षीण होकर भी बार-बार बढ़ता है; पर गया हुआ यौवन पुनः लौटकर नहीं आता। इसलिए हे सुंदरि! तुम मान न करो, प्रसन्न हो जाओ।"—यहाँ उपमेय रूप यौवन की अस्थिरता के आधिक्य का कथन करते हुए कारण भी कथित है—वह है उपमान (चंद्रमा) का बार-बार घटना-बढ़ना।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ख. जनम सिंधु पुनि बंधु विष दिन मलीन सकलंक।
सिय-मुख समता पाव किमि चंद बापुरो रंक ॥

—रामायण

यहाँ सीता के मुख से चंद्रमा की हीनता का कारणसहित वर्णन है—सिंधु में जन्म लेना, कलंकी होना।

४. **चतुर्थ व्यतिरेक**—जब उपमेय के उत्कर्ष तथा उपमान के अपकर्ष का कारण न कहा जाय तो चतुर्थ व्यतिरेक होगा—

क. अकलंकं मुखं तस्या न कलंकी विधुर्यथा।

"उसका कलंकरहित मुख कलंकी चंद्रमा की तरह नहीं है।" यहाँ चंद्र की हीनता तथा मुख की श्रेष्ठता का कारण नहीं कहा गया है।

ख. जिसके जस प्रताप के आगे।
ससि मलीन रबि सीतल लागे ॥ —रामायण

यश और प्रताप के समक्ष चद्रमा तथा सूर्य को हीन कहने में चतुर्थ भेद है।

व्यतिरेक एवं प्रतीप—दोनों में ही उपमेय के उत्कर्ष तथा उपमान के अपकर्ष का वर्णन होता है। प्रतीप में या तो उपमान को उपमेय बना दिया जाता है या उपमान की व्यर्थता सिद्ध की जाती है; पर व्यतिरेक में उपमेय के गुणविशेष का वर्णन कर उपमान के अपकर्ष का प्रतिपादन किया जाता है। प्रतीप केवल साधर्म्य में ही होता है; किंतु व्यतिरेक की स्थिति साधर्म्य तथा वैधर्म्य दोनों में ही देखी जाती है। प्रतीप में उपमान की भर्त्सना की जाती है; पर व्यतिरेक में ऐसा नहीं होता।

व्यक्ति विवेक—इसके रचयिता महिमभट्ट हैं। [दे० महिमभट्ट] इस महनीय ग्रंथ की रचना ध्वनि-सिद्धांत के खंडन के लिए हुई थी। इसमें महिम-भट्ट ने किसी नवीन सिद्धांत का प्रतिपादन न कर ध्वनि-मत की मान्यताओं का निरासकर उसे अनुमान में गतार्थ किया है। ग्रंथ में तीन विमर्श हैं। प्रथम विमर्श में आनंदवर्द्धन कृत ध्वनि की परिभाषा की आलोचनाकर उसमें दस दोष प्रदर्शित किए गए हैं। इसी क्रम में अर्थ के वाच्य एवं प्रतीयमान भेदों का उल्लेखकर प्रतीयमान अर्थ को अनुमितिग्राह्य माना गया है। द्वितीय विमर्श में पाँच शब्ददोषों का नामोल्लेखकर दोष की सामान्य परिभाषा प्रस्तुत की गई है। महिम ने अनौचित्य को मुख्य दोष मानकर उसके दो प्रकार कहे हैं—अंतरंग और बहिरंग। बहिरंग दोष शब्द तथा अर्थ-विषयक होते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बहिरंग अनौचित्य के पाँच प्रकार माने गए हैं—विधेया विमर्श, प्रक्रमभेद, क्रमभेद, पौनरुक्त्य तथा वाच्यावचन। इसी विमर्श में श्लेष, उपमा, समासोक्ति तथा स्वभावोक्ति अलंकार के संबंध में नवीन विचार प्रस्तुत किए गए हैं। तृतीय विमर्श में ध्वनिकार-द्वारा उदाहृत ४० उदाहरणों में अनुमानसिद्धि की गई है अर्थात् उन्हें ध्वनि का उदाहरण न मानकर अनुमान का उदाहरण स्वीकार किया गया है। 'व्यक्तिविवेक' पर रुय्यक-कृत संस्कृत टीका प्राप्त है, जो द्वितीय विमर्श के मध्य तक ही समाप्त हो जाती है। इसका हिंदी अनुवाद प्रकाशित है। अनुवादक हैं—डॉ० रेवाप्रसाद द्विवेदी (१९६४ ई०)।

व्यत्यास—शोभाकरमित्र-वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। इसमें देश-काल के भेद से दोष का गुण एवं गुण का दोष हो जाने का कथन होता है। इस अलंकार का अंतर्भाव 'लेशालंकार' में हो जाता है, जिसमें दोष का गुणभाव एवं गुण के दोषीभाव का उल्लेख होता है।

> दोषगुणयोरन्यथात्वं व्यत्यासः ॥६६॥
>
> यत्र दोषस्य गुणत्वं गुणस्य दोषत्वं च भवति स व्यत्यासः।
>
> —अलंकाररत्नाकर, पृ० ११६

व्यधिकरणोक्ति—आचार्य केशवदास-वर्णित एक अलंकार। और (अन्य) के गुण-दोष को और में प्रकट करना व्यधिकरणोक्ति अलंकार है।

> औरहिं में कीजै प्रगट, औरहिं के गुण दोष।
> उक्ति यहै व्यधिकरण की, सुनत होत संतोष ॥
>
> —कविप्रिया, १२/८

व्यभिचारी भाव—इसका नाम संचारी भाव भी है। व्यभिचारी या संचारी भाव रस का सहकारी कारण माना जाता है। [दे० रस का स्वरूप] मन के क्षणस्थायी भाव को व्यभिचारी भाव कहते हैं। ये संचरणशील या अस्थिर मनोविकार (चित्तवृत्ति) हैं, जो स्थायीभाव के उपकारक होते हैं और उन्हें रस-दशा तक पहुँचाते हैं। इनकी विशेषता अस्थायी रहने में ही है। ये स्थायी भाव का भाँति रस की सिद्धि तक स्थिर नहीं रहते अर्थात् विशेष अवस्था में उत्पन्न होकर और अपने प्रयोजन की सिद्धि कर लुप्त हो जाते हैं। ये नदी में तरंग की भाँति एवं जल में बुलबुले की नाईं अल्प समय के लिए मन में उत्पन्न होकर पुनः विलीन हो जाते हैं। संचारी भाव में संचरण या चलने का भाव है। ये भावों के संचालक, गतिकर्त्ता तथा स्थायी के उपकारक हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संचारयति भावस्य गतिमिति संचारी। विशेषेण आभिमुख्येन स्थायिनं प्रति चरति इति व्यभिचारी।' —साहित्यकौमुदी, ४/७

'व्यभिचारी' शब्द वि+अभि+चर् के रूप में व्युत्पन्न है। यहाँ 'वि' विविधता का, अभि आभिमुख्य एवं 'चर्' संचरण का द्योतक या बोधक है। विविध प्रकार के रसों की ओर उन्मुख होकर संचरणशील होने के कारण इन्हें संचारी भाव कहा जाता है।

उच्यते वि अभि इत्येतावुपसर्गौ। चर इति गत्यर्थो धातुः। विविधमाभिमुख्येन रसेषु चरंतीति व्यभिचारिणः। वागंगसत्त्वोपेताः प्रयोगे रसान्नयंतीति व्यभिचारिणः। —नाट्यशास्त्र, ७/२७

संचारी का संचरण वाक्, अंग तथा सत्त्वादि के द्वारा होता है। विविध प्रकार की रसानुभूति के समय प्रेक्षक के अभिमुख (सम्मुख) होने के कारण इसे व्यभिचारी कहा जाता है!

धनंजय ने समुद्र में लहरों की भाँति उठते और डूबते भावों को व्यभिचारी भाव कहा है। ये स्थायी में उसी प्रकार उन्मग्न और निमग्न होते हैं, जिस प्रकार लहरें समुद्र में उठती और गिरती हैं। स्थायी के अनुकूल ही व्यभिचारी भाव का आविर्भाव तथा तिरोभाव हुआ करता है। अभिप्राय यह कि रस के उपकारक होकर तरंगों की भाँति उठने तथा गिरनेवाली चित्त की अस्थिर चित्तवृत्ति को संचारी या व्यभिचारी भाव कहते हैं। संचरण (फैलने) का द्योतक संचारी भाव है।

विशेषादाभिमुख्येन चरंतो व्यभिचारिणः।
स्थायिन्युमग्ननिर्मग्नाः कल्लोला इव वारिधौ॥

—दशरूपक, ४/७

विश्वनाथ के अनुसार जो भाव-विशेष उत्कटता अथवा अनुकूलता से रत्यादि स्थायी भावों को रसास्वाद में परिणत कर उन्हें स्थायी भावों के सागर में बुद्बुद की नाईं उन्मज्जित या निमज्जित करते हों, उन्हें व्यभिचारी भाव कहते हैं।

विशेषादाभिमुख्येन चरणाद्व्यभिचारिणः।
स्थायिन्युन्मग्ननिर्मग्नास्त्रयस्त्रिंशच्च तद्भिदाः॥

—साहित्यदर्पण, ३/१४०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रसप्रदीपकार इसे स्थायी का उपकारक कहते हैं।

ये तूपकुर्वन्तु आयांति स्थायिनं रसमुत्तमम्।
उपकृत्य च गच्छंति ते मता व्यभिचारिणः ॥

—रसप्रदीप, पृ० १८

शिंगभूपाल ने पूर्वोक्त सभी मतों का सार प्रस्तुत कर व्यभिचारी भाव का वर्णन किया है।

व्यभी इत्युपसर्गौ द्वौ विशेषाभिमुखत्वयोः।
विशेषेणाभिमुख्येन चरंति स्थायिनं प्रति ॥
वागंगसत्वयुक्ता ये ज्ञेयास्ते व्यभिचारिणः।
संचारयंति भावस्य गतिं संचारिणोऽपि ते ॥
उन्मज्जंतो निमज्जंतः स्थायिन्यंबुनिधाविव।
ऊर्मिवद्वर्द्धयंत्येनं यांति तद्रूपतां च ते ॥

—रसार्णवसुधाकर, द्वितीय विलास

संचारी भाव की तीन विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं—

१. स्थायी भाव का उपकारक होकर उनको दीपित करना तथा उन्हें रस-दशा तक पहुँचाना।

२. स्थायी भाव के साथ इनका संबंध सागर तथा लहर की भाँति होता है।

३. स्थिर न रहना इनका स्वाभाविक गुण है।

संचारियों की ३३ संख्या है; पर आचार्य यह भी स्वीकार करते हैं कि इनका सीमा-निर्धारण संभव नहीं है। भानुदत्त ने 'छल' नामक चौंतीसवें संचारी का वर्णन किया है। आचार्य शुक्ल विरोधाविरोध के विचार से संचारियों के चार विभाग करते हैं—सुखात्मक, दुःखात्मक, उभयात्मक और उदासीन।

(क) सुखात्मक—गर्व, औत्सुक्य, हर्ष, आशा, मद, संतोष, चपलता, मृदुलता, धैर्य।

(ख) दुःखात्मक—लज्जा, असूया, अमर्ष, अवहित्था, त्रास, विषाद, शंका, चिंता, नैराश्य, उग्रता, मोह, आलस्य, उन्माद, असंतोष, ग्लानि, अपस्मार, मरण और व्याधि।

(ग) उभयात्मक—आवेग, स्मृति, विस्मृति, दैन्य, जड़ता, स्वप्न, चित्त की चंचलता।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(घ) उदासीन—वितर्क, मति, श्रम, निद्रा, विबोध।

भरत ने मुख्यतः संचारियों का निरूपण अभिनय की दृष्टि से किया है, उन्होंने इनके मनोवैज्ञानिक रूप को गौण कर दिया है। डॉ० राकेश गुप्त ने मनोवैज्ञानिक आधार को अपनाकर इनके चार वर्ग बनाए हैं—

१. मनोविकार के आधार पर १३ संचारी—निर्वेद, शंका, हर्ष, दैन्य, चिंता, त्रास, असूया, अमर्ष, गर्व, व्रीडा, आवेग, विषाद, औत्सुक्य।

२. ज्ञानात्मक अनुभव—धृति, मति, वितर्क, अवहित्था। ये मनोवेग नहीं हैं।

३. शारीरिक संवेदन मात्र—ग्लानि, श्रम, आलस्य, मद, मोह।

४. मानसिक अनुभव—स्मृति, स्वप्न, निद्रा, विबोध, जड़ता, चपलता, अपस्मार, व्याधि, उन्माद, मरण।

संचारियों के अंतर्गत केवल मनोवेगों अथवा मनोविकारों की ही परिगणना नहीं हुई है; अपितु उन शारीरिक तथा मानसिक अवस्थाओं का भी समावेश किया गया है, जिनका संबंध आठ रसों के साथ है। यह संबंध अभिनय की दृष्टि से है। अतएव प्रत्येक संचारी को शुद्ध भाव-रूप या चित्तवृत्ति-रूप नहीं माना जा सकता। संचारियों के विवेचन में आचार्यों ने शुद्ध मनोवैज्ञानिक आधार को नहीं अपनाया है।

साधारणतः संचारियों की संख्या तैंतीस मानी गई है—निर्वेद, ग्लानि, शंका, असूया, मद, श्रम, आलस्य, दैन्य, चिंता, मोह, स्मृति, धृति, व्रीडा, चपलता, हर्ष, आवेग, जड़ता, गर्व, विषाद, औत्सुक्य, निद्रा, सुप्ति, अपस्मार, विबोध, अमर्ष, अवहित्था, उग्रता, मति, वितर्क, व्याधि, उन्माद, त्रास तथा मरण। [प्रत्येक संचारी भाव का विवेचन उसके नाम के अक्षर के सम्मुख देखें]

आचार्यों का मत है कि संचारियों का सीमा-निर्धारण संभव नहीं। अनेक आचार्य सात्त्विक अलंकार, सात्त्विक-भाव, समस्त अनुभाव तथा कामदशाओं तक को संचारी मान लेते हैं। भोज ने सात्त्विक भावों को बाह्य संचारी में स्थान दिया है—

तत्र आभ्यंतरा व्यभिचारिषु चित्तौत्सुक्यावेगवितर्कादयः बाह्याः स्वेद-रोमांचाश्रु वैवर्ण्यादयः।

—शृंगारप्रकाश, ११

वे अपस्मार तथा मरण के स्थान पर ईर्ष्या एवं शम को रखना उपयुक्त समझते हैं। भोज ने 'सरस्वतीकंठाभरण' में स्नेह और धृति को स्थान दिया

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। हेमचंद्र ने दंभ, उद्वेग, क्षुत्, तृष्णा को नवीन संचारी के रूप में मान्यता दी है और रामचंद्रगुणचंद्र क्षुत्, तृष्णा, मैत्री, मुदिता, श्रद्धा, दया, उपेक्षा, अरति, संतोष, क्षमा, मार्दव, आर्जव और दाक्षिण्य को संचारी मानते हैं। अग्निपुराणकार ने केवल इकतीस संचारियों का वर्णन किया है। वे निद्रा, सुप्ति और मरण को स्थान नहीं देते। सागरनंदी ने 'शौच' नामक नवीन संचारी भाव का उल्लेख किया है। भानुदत्त 'छल' नामक नवीन संचारी का वर्णन करते हैं। रूपगोस्वामी ने (हरिभक्तिरसामृतसिंधु) में तैंतीस व्यभिचारी भावों के अतिरिक्त मात्सर्य, उद्वेग, दंभ, ईर्ष्या, विवेक, निर्णय, क्लैव्य, क्षमा, कुतुक, उत्कंठा, विनय, संशय तथा धार्ष्ट्य नामक तेरह नवीन संचारी भावों की कल्पना की है। आधुनिक युग में आचार्य शुक्ल ने चकपकाहट, उदासीनता, क्षोभ, अनिश्चय, आशा, नैराश्य, विस्मृति, अधैर्य, संतोष, असंतोष और चपलता को संचारी माना है। इसी प्रकार आचार्य पं० रामदहिन मिश्र भी आशा, निराशा, पश्चात्ताप, विश्वास और दया-दाक्षिण्य को संचारी में परिगणित करते हैं। उपर्युक्त सभी नवीन संचारी पूर्वोक्त तैंतीस संचारियों में ही अंतर्भुक्त हो जाते हैं।

आधार ग्रंथ—

१. रस-मीमांसा—आचार्य रामचंद्र शुक्ल
२. रसमंजरी—सेठ कन्हैयालाल पोद्दार
३. काव्यदर्पण—पं० रामदहिन मिश्र
४. रस-सिद्धांत: स्वरूप-विश्लेषण—डॉ० आनंदप्रकाश दीक्षित

व्यस्तक—[दे० काव्य-संवाद] जब कवि पूर्व अर्थ को उत्तर अर्थ में तथा उत्तर अर्थ को पूर्व अर्थ में परिवर्तित कर दे तो व्यस्तक होगा।

व्यस्तसमस्तोत्तर—चित्रालंकार का एक प्रकार। [दे० चित्रालंकार] जब किसी पद्य या श्लोक में अंतिम उत्तर जंजीर की कड़ियों की भाँति हो तो व्यस्तसमस्तोत्तर होगा। इसमें आदि वर्ण में एक-एक के जोड़े जाने पर एक-एक प्रश्न का उत्तर हो जाता है।

व्याघात—विरोधमूलक अलंकार। जिस साधन के द्वारा कोई व्यक्ति किसी कार्य को संपादित करता है, यदि उसी साधन से अन्य व्यक्ति उस कार्य को अन्यथा सिद्ध कर दे तो व्याघात अलंकार होगा। 'व्याघात' का अर्थ है विशेष (वि) प्रकार का आघात या चोट। इसमें किसी व्यक्ति-द्वारा सिद्ध किए गए कार्य को अन्य व्यक्ति अपने आघात या प्रहार के द्वारा विपरीत या

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

असिद्ध कर देता है। इसके मूल में विरोध विद्यमान रहता है ; क्योंकि एक क्रिया के दो प्रतिकूल साधन वर्णित होते हैं।

व्याहन्यते अन्याभिमतकार्यकारणभावोऽनेनेति व्युत्पत्तेः।

—अलंकारकौस्तुभ, पृ० ४०६

व्याघात अलंकार का सर्वप्रथम निरूपण आचार्य रुद्रट ने किया है। कालांतर में मम्मट, रुय्यक, शोभाकर, जयदेव, विद्याधर, विद्यानाथ, विश्वनाथ, अप्पय दीक्षित, पंडितराज जगन्नाथ तथा विश्वेश्वर पंडित ने इसका विवेचन किया।

रुद्रट ने बताया कि अन्य कारणों के विरोधी न होते हुए भी जहाँ कारण-कार्य का जनक नहीं होता, वहाँ व्याघात अलंकार होता है। स्पष्ट है कि इस परिभाषा में व्याघात का वास्तविक रूप प्रकट नहीं हुआ है।

अन्यैरप्रतिहतमपिकारणमुत्पादनं न कार्यस्य।
यस्मिन्नभिधीयेत व्याघातः स इति विज्ञेयः॥—काव्यालंकार, ९/५२

इस अलंकार का विकास मम्मट द्वारा प्रवर्तित लक्षण के आधार पर हुआ; अतः इसके स्वरूप को व्यवस्थित करने का श्रेय मम्मट को ही है। उनके (मम्मट के) अनुसार जिस साधन के द्वारा किसीसे कोई कार्य सिद्ध होता है, यदि उसी साधन से (अन्य व्यक्ति द्वारा) वह असिद्ध कर दिया जाय तो वहाँ व्याघात अलंकार होगा।

यद्यथा साधितं केनाप्यपरेण तदन्यथा।
तथैव यद्विधीयेत स व्याघातः इति स्मृतः॥

—काव्यप्रकाश, १०/१३९

रुय्यक ने मम्मट का आधार ग्रहण करते हुए भी कई नवीन तथ्यों का समावेश किया है। इन्होंने व्याघात के मूल में व्यतिरेक अलंकार की स्थिति स्वीकार की तथा इसके एक अन्य प्रकार का भी उल्लेख किया, जिसमें किसी के द्वारा निष्पादित कार्य को कोई सुगमतापूर्वक अन्यथा कर देता है। रुय्यक के अनुसार सिद्ध किए गए कार्य को अन्य के द्वारा अन्यथा कर दिए जाने के वर्णन को व्याघात अलंकार कहते हैं।

यथा साधितस्य तथैवान्येनान्यथाकरणं व्याघातः। यं कंचिदुपायविशेषमवलंब्य केनचिद्यन्निष्पादितं वस्तु ततोऽन्येन केनचित्तत्प्रतिद्वंद्विना तेनैवोपायविशेषेण यदन्यथा क्रियते स निष्पादितवस्तुव्याहतिहेतुत्वाद्व्याघातः।

—अलंकारसर्वस्व, पृ० १७३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सौकयण कार्यविरुद्धक्रियाव्याघातः किंचित्कार्यं निष्पादयितुं संभाव्यमानः कारणविशेषस्तत्कार्यविरुद्धनिष्पादकत्वेन यत्समर्थ्यते सोऽपि संभाव्यमान कार्यव्याहृतिनिबंधनत्वाद्व्याघातः ।

—वही, पृ० १७५

शोभाकर ने बताया कि जब एक ही उपाय से व्युत्पत्ति एवं विनाश का वर्णन किया जाय तो व्याघात होगा । इन्होंने उत्पत्ति के कारण विनाश तथा विनाश के कारण उत्पत्ति के वर्णन में व्याघात के दो प्रकारों का उल्लेख किया है । शोभाकर वृत्ति में रुय्यक के ही मत को स्वीकार कर लेते हैं ।

उत्पत्तिविनाशयोरेकोपायत्वे व्याघातः ।। ६४

यत्र येनोपायेन किंचिन्निष्पद्यते तेनैव चान्यथाभवति स व्याघातः । अस्योत्पत्तिकारणाद्विनाशः विपर्यय वेति द्वे भेदौ । —अलंकाररत्नाकर, पृ० ११३

जयदेव का व्याघात-निरूपण मम्मटादि से सर्वथा भिन्न है । इन्होंने कहा कि जब किसी कार्य के साधन रूप में प्रसिद्ध पदार्थ के द्वारा उस पदार्थ के विरुद्ध क्रिया करने का वर्णन हो तो व्याघात होगा ।

स्याद्व्याघातोऽयथाकारि वस्त्वन्यक्रियमुच्यते ।।

—चंद्रालोक, ५/८६-

विद्याधर, विद्यानाथ तथा विश्वनाथ ने रुय्यक का अनुकरण कर व्याघात अलंकार का वर्णन किया है ।

किंचित् केनापि विहितं तद्वस्तुतत्रातोऽन्येन ।
क्रियतेऽन्यथा तथैव व्याघातोऽयं समाख्यातः ।।
सौकर्येण निबद्धाकार्यविरुद्धाक्रियाभवेद्यत्र ।
ख्याताऽभिमतव्याहतिहेतुर्व्याघात एषोऽपि ।।

—एकावली, ८/४२-४३

येन यत् साधितं वस्तु तेनैव क्रियतेऽन्यथा ।
अन्येन तदलंकारो व्याघात इति कथ्यते ।।

—प्रतापरुद्रीय, पृ० ३२४

व्याघातः सतु केनापि वस्तु येन यथाकृतम् ।
तेनैव चेदुपायेन कुरुतेऽन्यस्तदन्यथा ।।
सौकर्येण च कार्यस्य विरुद्धं क्रियते यदि ।।

—साहित्यदर्पण, १०/७५

दीक्षित ने जयदेव तथा रुय्यक दोनों के मत को ग्रहण कर व्याघात के तीन भेदों का कथन किया । इन्होंने जयदेव के लक्षण को प्रथम भेद के रूप में तथा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रुय्यक के दो प्रकारों को द्वितीय एवं तृतीय भेद के रूप में प्रकट किया। व्याघात की परिभाषा में इन्होंने बताया कि जो पदार्थ संसार में किसी कार्य-विशेष के साधन-रूप में प्रसिद्ध हो और यदि उसके विरुद्ध कोई क्रिया करे तो व्याघात अलंकार होगा।

सौकर्येणनिबद्धापि क्रियाकार्यविरोधिनी ॥

स्याद्व्याघातोऽन्यथाकारि तथाऽकारि क्रियेत चेत्। यद्यत्साधनत्वेन लोकेऽवगतं तत् केनचितद्विरुद्धसाधनं क्रियेत चेत्सव्याघातः। यद्वायत् साधनतया केनचिदुपात्तं तदन्येन तत्प्रतिद्वंद्विना तद्विरुद्धसाधनं क्रियेत चेत्सोऽपि व्याघातः।

—कुवलयानंद, १०२-१०३

पंडितराज का व्याघात-वर्णन रुय्यक से प्रभावित है। इनके अनुसार "जहाँ एक कर्त्ता ने जिस कारण से किसी कार्य को किया हो या निष्पन्न करने की अभिलाषा करता हो, यदि वही कार्य अन्य कर्त्ता के द्वारा उसी कारण से ही उस कार्य के विरुद्ध कार्य को बाधित कर दिया जाय तो वहाँ व्याघात अलंकार होगा।"

यत्रह्येकेन कर्त्ता येन कारणेन कार्यं किंचिन्निष्पादितं निष्पादयिषितं वा तदन्येन कर्त्ता तेनैव कारणेन तद्विरुद्धकार्यस्य निष्पादनेन निष्पिपादयिषया वा व्याहन्यते स व्याघातः। अत्र व्याघाते पूर्वकत्रपेक्षया कर्त्तंतरस्य वैलक्षण्य प्रत्ययव्यतिरेक सिद्धिः फलम्।

—रसगंगाधर, पृ० ६१७

विश्वेश्वर पंडित का व्याघात-वर्णन मम्मटानुसारी है।

कार्यांतरहेतुतयान्येनाभिमताद्विरुद्धकार्यं चेत्।
क्रियते परेण तस्याद्व्याघातोऽयं समाख्यातः ॥

—अलंकारकौस्तुभ, पृ० ४०६

रीतिकालीन आचार्यों का व्याघात-वर्णन मम्मट तथा अप्पय दीक्षित के मत से प्रभावित है। चिंतामणि और कुलपति ने मम्मट के लक्षण को अनूदित किया तो जसवंत सिंह, मतिराम, दास तथा पद्माकर ने 'कुवलयानंद' की परिभाषा का अनुवाद प्रस्तुत किया।

जा उपाय काहू करी कछु जु अन्यथा बात।
ता उपाइ जो तैसियै करै क्रिया व्याघात ॥

—कविकुलकल्पतरु, ३/२८५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एक करै जेहि बिधि कछू, वाही विधि कछु और।
वाहि जीतिबे कों करै, है व्याघात सु ठौर॥

—रसरहस्य, ८/२०५

व्याघात जु कछु और तें कीजै कारज और।
बहुरि बिरुद्धो तें जबै काज ल्याइयै ठौर॥

—भाषाभूषण, १३३

जो जैसो करतार, सो बिरुद्धकारी जहां।
बरनत सुमति उदार, तहाँ कहत व्याघात हैं॥

—ललितललाम, २५१

जाहि तथाकारी गनै, करै अन्यथा सोउ।
काहू सुद्ध बिरुद्ध ही, है व्याघातै दोउ॥

—काव्यनिर्णय, १३/२७

सु व्याघात करता जु जस, सु बिरुधकारी होइ।
हेतु कौनहू तें जु कछु, कोऊ थपै जु बात॥

—पद्माभरण, १६६-१६८

भेद—व्याघात के भेदों का उल्लेख रुद्रट, मम्मट, जयदेव तथा विद्यानाथ ने नहीं किया। रुय्यक ने इसके दो भेदों का निरूपण किया, जिसका अनुकरण शोभाकर, विद्याधर, विश्वनाथ, दीक्षित, पंडितराज आदि ने किया। इसके दो भेद मान्य हुए—प्रथम व्याघात तथा द्वितीय व्याघात।

१. प्रथम व्याघात—जिस साधन से किसी व्यक्ति द्वारा जो क्रिया की जाय, यदि उसी साधन से अन्य व्यक्ति द्वारा उसे अन्यथा कर दिया जाय तो वहाँ प्रथम व्याघात होगा।

क. दृशा दग्धं मनसिजं जीवयंति दृशैव यः।
विरूपाक्षस्य जयिनीस्ताः स्तुवे वामलोचनाः॥

"शिवजी के नेत्र से जले हुए कामदेव को जो आँखों से ही जीवित कर देती हैं, शिवजी को जीतनेवाली ऐसी वामलोचनाओं की हम स्तुति करते हैं।" यहाँ शिवजी द्वारा नेत्र से जो काम किया गया है, उसे वामलोचनाएँ उसी साधन से (नेत्र से) अन्यथा कर देती हैं।

ख. दृग सों जर्‌यौ जु काम तिहि दृग सों ज्यावत जोइ।
सिवहू की जितवार तिय ताहि भजौ सब कोइ॥

—पूर्व श्लोक का अनुवाद

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२. द्वितीय व्याघात—किसी व्यक्ति द्वारा सुगमतापूर्वक कार्य को उलट देना द्वितीय व्याघात है।

क. लुब्धो न विसृजत्यर्थं नरो दारिद्र्यशंकया।
दातापि विसृजत्यर्थं तयैव ननु शंकया॥

जिस धन को लोभी दरिद्र होने की शंका से दान नहीं करता, उसे दाता उसी शंका (अर्थात् उसे दरिद्र न होना पड़े) से दान कर देता है। यहाँ लोभी के कार्य का दाता-द्वारा अन्यथा किए जाने का वर्णन है।

ख. दुख दारिद के संक सों लोभी स्वधन न देत।
दातहु ताही संक सों, सरबस देत सहेत॥

—श्लोक का अनुवाद

व्याधि—संचारी भाव। [दे० संचारी भाव] मानसिक या शारीरिक क्लेश से व्याधि उत्पन्न होती है। वियोगादि के कारण (रोग, ज्वर) उत्पन्न होनेवाला मानसिक संताप व्याधि है। इसके अनुभाव कंप और आर्त्त स्वर हैं। व्याधि का अर्थ शारीरिक रोग है। व्याधि संचारी में शारीरिक रोग की-सी स्थिति हो जाती है।

भरत के अनुसार वात, पित्त और कफ के संघर्ष से उत्पन्न अवस्था व्याधि है। भरत ने व्याधि के अंतर्गत ज्वर का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है।

व्याधिर्नाम—वातपित्तकफसन्निपातप्रभवः। तस्याः ज्वरादयो विशेषाः।

—नाट्यशास्त्र, ७/८३

धनंजय सन्निपात आदि रोग को व्याधि कहते हैं। इन्होंने इसका विशेष विवरण आयुर्वेद ग्रंथों में देखने का संकेत किया है।

व्याधयः सन्निपाताद्यास्तेषामन्यत्र विस्तरः।

—दशरूपक, ४/२९

विश्वनाथ वात, पित्त, कफ से उत्पन्न ज्वरादि को व्याधि कहते हैं। इसके अनुभाव हैं—पृथ्वी पर लोटने की इच्छा का होना तथा कंप।

व्याधिर्ज्वरादिर्वाताद्यैर्भूमीच्छोत्कंपनादिकृत्।

—साहित्यदर्पण, ३/१६४

भानुदत्त ने ज्वरादि शारीरिक ताप एवं मानसिक व्यथा को व्याधि कहा है। यह वात, पित्त, कफ के कुपित होने से और भय, काम तथा क्लेश प्रभृति विभावों से उत्पन्न होता है। इसके अनुभाव हैं—अभिलाषा, स्मृति, चिंता, मरण, गुणकीर्त्तन, प्रलाप, उन्माद, जड़ता, उपद्रव।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१२६५

व्याधि

ज्वरादिविकाराख्यो व्याधिः। कुपितधातुभयकामक्लेशादयो विभावाः। अनुभावा दशोपद्रवाः।
—रसतरंगिणी, पंचमतरंग पृ० ३७४

पंडितराज जगन्नाथ ने रोग एवं विरह आदि से उत्पन्न मानसिक संताप को व्याधि कहा है। इसके अनुभाव गात्रशैथिल्य एवं श्वासादि हैं।

रोगविरहादिप्रभवो मनस्तापो व्याधिः।

—रसगंगाधर, पृ० १०५

उदाहरण—

क. हृदये कृतशैवलानुषंगा, मुहुरंगानि यतस्ततः क्षिपंती।
तदुदंतपरे मुखे सखीनामतिदीनामियमादधाति दृष्टिम्॥

"विरह ताप से बेचैन उस नायिका के शरीर पर सखियाँ शैवाल रखती हैं कि उसका ताप शमित हो जाय; पर वह बार-बार अपने अंगों को इधर-उधर पटकती है। अन्य कोई उपाय न देखकर सखियों ने जब उसके प्रिय की चर्चा की तो वह प्रिय-कथा को सुनानेवाली सखियों की ओर कातर दृष्टि से देखने लगी।" यहाँ विरह-व्यथा-जन्य व्याधि का वर्णन है। नायिका का अंगों को इधर-उधर पटकना अनुभाव है।

ख. कब को अजब अजार में, पड़ी बाम तव छाम।
तित कोऊ मत लीजियो, चंदोदय को नाम॥

यहाँ नायिका की विरहदशा के वर्णन में व्याधि है।

व्याधि—वियोगदशा। [दे० वियोगदशा] वियोगजन्य पीड़ा के कारण शरीर का रोगग्रस्त होकर पीला पड़ जाना व्याधि है।

विश्वनाथ ने पांडुता, दीर्घनिःश्वास तथा दुर्बलता को व्याधि कहा है।

व्याधिस्तु दीर्घनिःश्वासपांडुताकृशतादयः।

—साहित्यदर्पण, ३/१९२

भानुदत्त ने काम-पीड़ा से उत्पन्न संताप के कारण प्रेमी के अंग का दुर्बलता (कृशता) आदि दोष को व्याधि कहा है।

मदनवेदनासमुत्थसंतापकार्श्यादिदोषो व्याधिः।

—रसमंजरी, पृ० १२२ (चौखंबा)

मतिराम ने काम-पीड़ा के कारण शरीर के कृश होने तथा पीला पड़ जाने को व्याधि कहा है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कामपीर तें पियरई ताप दूबरी होय।
तासों व्याधि बखानहीं कबि कोबिद सब कोय ।।

—रसराज, ४२१

दास ने व्याधि-दशा में विरहताप से शरीर की दुर्बलता तथा श्वांस चलने का वर्णन किया है, जिसके कारण व्यर्थ की बातें कर नायिका घर के लोगों को परेशान कर देती है।

ताप दुबरई स्वास अति व्याधि दसा में लेखि।
आहि-आहि बकिबो करै त्राहि-त्राहि सब देखि ।।

—शृंगारनिर्णय, ३९३

उदाहरण—

क. पांडु क्षामं वदनं हृदयं सरसं तवालसं च वपुः ।
आवेदयति नितांतं क्षेत्रियरोगं सखि हृदंतः ।।

"हे सखि! तुम्हारा पीला तथा दुर्बल चेहरा, सरस हृदय और ढीला शरीर, तुम्हारे हृदय में स्थित असाध्य रोग के सूचक हैं।"

ख. देखि परै नहिं दूबरी सुनियो स्याम सुजान ।
जान परै परजंक मैं अंग आँच अनुमान ।।

व्याजोक्ति—गूढ़ार्थप्रतीतिमूलक अलंकार। गुप्त रहस्य के प्रकट होने पर उसे किसी बहाने से छिपाने के वर्णन में व्याजोक्ति होती है। 'व्याजोक्ति' का अर्थ है व्याजेन उक्ति या कपटपूर्ण कथन या बहाने की उक्ति। इस अलंकार में छिपे हुए रहस्य या गोपनीय बात को, किसी प्रकार प्रकट होने पर, छलपूर्वक या किसी बहाने से छिपाया जाता है। इसके मूल में रहस्य-गोपन का भाव विद्यमान है तथा वास्तविकता का निगूहन किया जाता है। व्याजोक्ति में वक्रता स्पष्टतः प्रतिभासित होती है और गुप्त रहस्य के प्रकट होने पर किसी बहाने से उसे छिपाने का प्रयत्न किया जाता है।

इस अलंकार के पुरस्कर्ता आचार्य वामन हैं। कालांतर में मम्मट, रुय्यक, शोभाकर, जयदेव, विद्याधर, विद्यानाथ, विश्वनाथ, अप्पय दीक्षित तथा विश्वेश्वर पंडित ने इसका विवेचन किया।

इस अलंकार का स्रोत दंडी-वर्णित लेशालंकार में सुरक्षित है। इसके लक्षण में दंडी ने बताया है कि जब किंचित् प्रकट होते हुए वस्तुरूप का चतुरतापूर्वक निगूहन हो तो लेश होगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लेशो लेशेन निर्भिन्नवस्तुरूपनिगूहनम्।
उदाहरण एवास्य रूपमाविर्भविष्यति ॥

—काव्यादर्श, २/२६५

वामन के अनुसार किसी व्याज या असत्य के बहाने सत्य के सादृश्य-प्रतिपादन में व्याजोक्ति अलंकार होता है।

व्याजस्य सत्यसारूप्यं व्याजोक्तिः ॥
व्याजस्य छद्मना सत्येन सारूप्यं व्याजोक्तिः।
या मायोक्तिरित्याहुः।

—काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, ४,३,२५

व्याजोक्ति का परवर्त्ती विकास मम्मट-कृत लक्षण के आधार पर हुआ। इन्होंने बताया कि जब स्पष्टतया स्फुट (स्पष्टतः प्रकट किए गए) वस्तुस्वरूप का कपट से गोपन किया जाय तो व्याजोक्ति अलंकार होगा। इस परिभाषा के द्वारा व्याजोक्ति का स्वरूप स्पष्ट हो गया। मम्मट के लक्षण में इस तथ्य का स्पष्टीकरण किया गया कि यदि स्पष्टतः प्रकट हुई वस्तु को किसी बहाने या कपट से छिपाया जाय तो व्याजोक्ति अलंकार होगा।

व्याजोक्तिश्छद्मनोद्भिन्नवस्तुरूपनिगहनम् ॥

—काव्यप्रकाश, १०/११८

रुय्यक ने प्रकटित वस्तु को किसी प्रकार से छिपाने में व्याजोक्ति अलंकार माना।

उद्भिन्नवस्तुनिगूहनं व्याजोक्तिः।

यत्र निगूढं वस्तु कुतश्चिन्निमित्तादुद्भिन्न प्रकटतां गतंसद् वस्त्वंतर प्रक्षेपेण निगूह्यते अपलप्यते, सा वस्त्वंतरप्रक्षेपरूपस्य व्याजस्य वचनाद् व्याजोक्तिः। अलंकारसर्वस्व, पृ० २१८

शोभाकर ने चेष्टा तथा वचन के द्वारा सत्य या प्रकट तथ्य को छिपाने को व्याजोक्ति कहा। इन्होंने इसके चार भेदों का वर्णन किया है।

उद्भेदप्रच्छादनं व्याजोक्तिः।

यत्रशंक्यमानस्योद्भेदस्योत्पन्नस्य वा वचनेन चेष्टादिना वा प्रच्छादनं सा चतुर्विधा व्याजोक्तिः ॥ —अलंकाररत्नाकर, पृ० १७९

जयदेव के अनुसार संदेह करनेवाले व्यक्तियों से छल के द्वारा वास्तविकता को छिपाने में व्याजोक्ति होती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

व्याजोक्तिः शंकमानस्य छद्मना वस्तुगोपनम् ।

—चंद्रालोक, ५/११०

विद्याधर, विश्वनाथ, अप्पय दीक्षित तथा विश्वेश्वर के विवेचन पर मम्मट का ऋण है।

यत्रोद्भिन्नं किंचिद्वस्तु कुतश्चिन्निगूह्यते भूयः ।
वस्त्वंतरनिक्षेपाद् व्याजोक्ति तामुशत्येताम् ॥

—एकावली, ८/७०

व्याजोक्तिर्गोपनं व्याजादुद्भिन्नस्यापि वस्तुनः ॥

—साहित्यदर्पण, १०/९२

व्याजोक्तिरन्यहेतूक्त्वा यदाकारस्यगोपनम् ।

—कुवलयानंद, १५३

व्याजोक्तिर्विशदीभवदर्थस्यापह्नुतिर्मिषतः ॥

—अलंकारकौस्तुभ, पृ० ३५७

दीक्षित ने अन्य हेतु का कथनकर आकार के गोपन को व्याजोक्ति कहा है।

रीतिकाल में 'काव्यप्रकाश' तथा 'कुवलयानंद' के लक्षण अनूदित हुए। चिंतामणि और कुलपति ने 'काव्यप्रकाश' के लक्षण का भावानुवाद किया तो जसवंतसिंह, मतिराम और पद्माकर ने 'कुवलयानंद' के लक्षण का अनुवाद किया।

प्रगटित वस्तु छपाइए जो बनाइ कछु काज ।
व्याजोक्ति तासों कहत पंडित सुकवि समाज ॥

—कविकुलकल्पतरु, ३/१२४

कियो काम दुरिकैं कछू कछुक परगट होय ।
ताहि दुरावै छलवचन व्याजोकति है सोय ॥

—रसरहस्य, ८/१६३

व्याज उक्ति कछु और बिधि कहै दुरै आकार ॥

—भाषाभूषण, १८०

और हेतु वचननि जहाँ आकृति गोपन होय ।
व्याज उक्ति तहँ कहत कबि ग्रंथ समुद्र बिलोय ॥

—ललितललाम, ३५८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

व्याजोक्ति आकार जहँ दुरै हेतु करि आन।

—पद्माभरण, २५१

दास ने वचन-चातुरी के द्वारा गोपनकार्य को व्याजोक्ति कहकर अपना स्वतंत्र लक्षण प्रस्तुत किया।

बचन चातुरी सों जहाँ कीजै काज दुराउ।
सो भूषन व्याजोक्ति है, सुनो सुमति समुदाय॥

—काव्यनिर्णय, १६/२४

उदाहरण—

क. सखि पश्य गृहारामपरागैरस्मिधूसरा।

"हे सखि! देख, मैं घर के बगीचे की धूलि में धूमिल हो गई हूँ।" यहाँ कुलटा नायिका ने रति-क्रिया के कारण धूमिल हुई साड़ी को अन्य भाँति से छिपाया है।

ख. ललन चलन सुनि पलन में अँसुआ झलके आय।
भई लखाइ न सखिनहू, झूठे ही जमुहाय॥

—बिहारी

"नायक के विदेश जाने की बात सुनकर नायिका के नेत्रों में जल भर गया, किंतु सखियों से इस रहस्य को छिपाने के लिए वह झूठी जँभाई लेने लगी।" यहाँ अँगड़ाई के द्वारा नेत्रों के अश्रु को छिपाने में व्याजोक्ति है।

व्याजोक्ति और छेकापह्नुति—छेकापह्नुति में वचन को अन्य प्रकार से स्पष्ट कर सत्य का गोपन किया जाता है; किंतु व्याजोक्ति में अन्य हेतु के कथन के द्वारा आकार को छिपाया जाता है। छेकापह्नुति में गुप्त रहस्य को पहले अपने से ही प्रकट कर बाद में उसे छिपाया जाता है, जबकि व्याजोक्ति में किसी प्रकार प्रकट हुए रहस्य को पुनः छिपाया जाता है।

व्याप्ति—शोभाकरमित्र-वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। किसी पदार्थ के संभव या असंभव होने का निबंधन ही व्याप्ति अलंकार है। जहाँ अनेक या समस्त पक्ष का आश्रय ग्रहण करने पर भी किसी पदार्थ के संभव या असंभव होने का वर्णन किया जाय तो समस्त पक्ष में व्याप्त होने के कारण व्याप्ति अलंकार होगा।

सर्वथा संभवोऽसंभवो वा व्याप्तिः ॥७७॥

यत्र समग्रपक्षावलंबनेऽपि कस्यचिदर्थस्य संभवः असंभवो वा निबध्यते सा समग्रपक्षव्यापनाद् व्याप्तिः ॥

—अलंकाररत्नाकर, पृ० १३२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

व्यायोग—रूपक का एक भेद। [दे० रूपक] यह एकांकी रूपक है। इसका कथानक ख्यात या पुराण-इतिहास-प्रसिद्ध होता है। इसका नायक लोक-प्रसिद्ध ऐतिहासिक पुरुष या धीरोद्धत राजर्षि या दिव्य पुरुष होता है। इसके सभी पात्र पुरुष होते हैं और स्त्री पात्रों की अल्पता होती है या एक भी स्त्री नहीं रहती। व्यायोग में एक अंक होता है और एक दिन का ही वृत्तांत वर्णित रहता है। इसमें युद्ध का वर्णन होता है; पर वह युद्ध स्त्री के कारण नहीं होता। व्यायोग में शस्त्रयुद्ध, द्वन्द्वयुद्ध, वीरताजन्य ईर्ष्या आदि का वर्णन होता है और अंगी रस (प्रधान रस) वीर और रौद्र होते हैं। इसमें गर्भ तथा अवमर्श संधियाँ नहीं होतीं और कैशिकी वृत्ति का अभाव रहता है। इसमें नायकों की संख्या तीन से दस तक होती है। विश्वनाथ इसके नायक के रूप में प्रख्यात धीरोद्धत राजर्षि या दिव्य पुरुष को मान्यता देते हैं। इन्होंने हास्य, शृंगार और शांत को छोड़कर सभी को व्यायोग का अंगी रस माना है।

भरत का मत—

व्यायोगस्तु विधिज्ञैः कार्यः प्रख्यातनायकशरीरः ।
अल्पस्त्रीजनयुक्तस्त्वेकाहकृतस्तथा चैव ॥
बहवश्च तत्र पुरुषा व्यायच्छंते यथा समवकारे ।
न तु तत्प्रमाणयुक्तः कार्यस्त्वेकांक एवायम् ॥
न च दिव्यनायककृतः कार्यो राजर्षिनायकनिबद्धः ।
युद्धनियुद्धाघर्षणसंघर्षकृतश्च कर्तव्यः ॥
एवंविधस्तु कार्यो व्यायोगो दीप्त काव्यरसयोनिः ॥

—नाट्यशास्त्र, १८/९०-९३

धनंजय का मत—

ख्यातेतिवृत्तो व्यायोगः ख्यातोद्धतनराश्रयः ॥
हीनो गर्भविमर्शाभ्यां दीप्ताः स्युर्डिमवद्रसाः ।
अस्त्रीनिमित्तसंग्रामो जामदग्न्यजये यथा ॥
एकाहाचरितैकांको व्यायोगो बहुनिर्भरैः ।

—दशरूपक, ३/६०-६२

रामचंद्र का मत—

एकाहचरितैकांको गर्भामर्श विवर्जितः ।
अस्त्रीनिमित्तसंग्रामो नियुद्धस्पर्धनोद्धतः ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वल्पयोषिज्जनः ख्यातवस्तुर्दीप्तरसाश्रयः ।
अदिव्यभूपतिस्वामी व्यायोगो नायिकां विना ॥

—नाट्यदर्पणम्, २/७४, ७५

विश्वनाथ का मत—

ख्यातेतिवृत्तो व्यायोगः स्वल्पस्त्रीजनसंयुतः ।
हीनो गर्भविमर्शाभ्यां नरैर्बहुभिराश्रितः ॥
एकांकश्च भवेदस्त्रीनिमित्तसमरोदयः ।
कैशिकीवृत्तिरहितः प्रख्यातस्तत्र नायकः ॥
राजर्षिरथ दिव्यो वा भवेद्धीरोद्धतश्च सः ।
हास्यश्रृंगारशांतेभ्य इतरेऽवांगिनो रसाः ॥

—साहित्यदर्पण, ३/२३१-२३३

इसका उदाहरण 'सौगंधिकाहरण' है।

व्यासंग—शोभाकर मित्र-वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। यह विनोद नामक अलंकार का प्रतिपक्षी है। [दे० विनोद] अनुभव, स्मृति आदि के प्रत्यूह को व्यासंग कहते हैं।

अनुभवस्मृत्यादिप्रत्यूहोव्यासंगः ॥

—अलंकाररत्नाकर, पृ० २५

व्याहत—अर्थदोष का तृतीय प्रकार। [दे० अर्थदोष]

व्याहृतार्था—चित्रालंकार का एक भेद। [दे० चित्रालंकार]

जब असामान्य विशेषणों के द्वारा अर्थ स्वयं ध्वनित हो तो व्याहृतार्था नामक भेद होगा।

व्युत्पत्ति—काव्य-निर्माण का एक हेतु। [दे० काव्यहेतु] इसका अन्य नाम निपुणता भी है। कवि के लिए आवश्यक है कि वह लोकनिरीक्षण, शास्त्रों का मनन एवं चिंतन तथा काव्य-परंपरा का अध्ययन करते हुए अपनी रचना को सुंदर बनाए। व्युत्पत्ति या निपुणता अध्ययन-द्वारा प्राप्त होती है और इससे कवि की कला में सौंदर्य एवं व्यवस्था का आधान होता है। [दे० निपुणता] व्युत्पत्ति बहुज्ञता को कहते हैं। राजशेखर ने उचितानुचित के विवेक को व्युत्पत्ति कहा है।

व्रतौचित्य—औचित्य का १७ वाँ भेद। [दे० औचित्य के भेद]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

श

शकार—नायक का सहायक पात्र। भरत ने इसकी गणना नायक के सखाओं में की है। इसकी विशेषताओं का निरूपण करते हुए कहा गया है कि यह उज्ज्वल-वस्त्राभरण धारण करनेवाला, अकारण क्रोध तथा हर्ष प्रकट करनेवाला, मगध भाषाभाषी, विकारयुक्त एवं अधम प्रकृति का पात्र होता है।

—नाट्यशास्त्र, २४/१०२-१०४

साहित्यदर्पणकार (विश्वनाथ) के अनुसार शकार मद्यप (शराबी), मूर्ख, घमंडी, नीच कुलोत्पन्न, धन-संपन्न तथा राजा की अनूढ़ा प्रेमिका का भाई होता है, जिसे लोग साला (श्यालक) कहकर संबोधित करते हैं।

मदमूर्खताभिमानी दुष्कुलतैश्वर्यसंयुक्तः ।
सोऽयमनूढाभ्राता राज्ञः श्यालः शकार इत्युक्तः ॥

—साहित्यदर्पण, ३/४४

शक्ति—काव्य-रचना की नैसर्गिक क्षमता या जन्मजात प्रतिभा को शक्ति कहते हैं। इसका अन्य नाम प्रतिभा भी है। [दे० काव्यहेतु] इसे काव्य का मूल कारण कहा जाता है। इससे संपन्न होकर कवि नव-नव अर्थों का उन्मेष कर अपनी कल्पना-शक्ति को उन्मीलित करता है। [दे० प्रतिभा]

शक्तिग्रह—संकेतग्रह को शक्तिग्रह कहते हैं। [दे० संकेतग्रह] शब्दार्थ संबंध-ज्ञान का नाम शक्तिग्रह है।

शंका—संचारी भाव। [दे० संचारी भाव] विषम अनिष्ट या इष्टहानि के विचार को शंका कहते हैं। इसमें अन्य की क्रूरता तथा स्वदोष से भावी अनिष्ट की कल्पना का वर्णन किया जाता है। इसकी अभिव्यक्ति शरीरकंप, मुँह का सूखना, वैवर्ण्य, स्वरभंग आदि अनुभावों द्वारा होती है।

भरत के अनुसार शंका की उत्पत्ति स्त्री तथा नीच प्रकृति के पात्रों में होती है। इसका आधार संदेह है। शंका की उत्पत्ति चौर्यादि भय, नृप अपराध तथा पापकर्म प्रभृति विभावों या कारणों से होती है। इसका अभिनय बार-बार देखना, अवकुंठन, मुख का सूखना, वैवर्ण्य, वेपथु, स्वर-भेद आदि अनुभावों द्वारा होता है।

शंका नाम संदेहात्मिका स्त्रीनीचप्रभवा। चौर्यादिभिर्ग्रहणनृपापराधपापकर्मकरणादिभिर्विभावैः समुत्पद्यते। तस्या मुहुर्मुहुरवलोकनावकुंठनमुखशोषणजिह्वापरिलेहनमुखवैवर्ण्यस्वरभेदवेपथुशुष्कोष्ठायासस्साधर्म्यादिभिरनुभावैरभिनयः प्रयोक्तव्यः।

—नाट्यशास्त्र, ७/३३ पृ० ३५८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चौर्यादिजनिता शंका प्रायः कार्या भयानके ।
प्रियव्यलीकजनिता तथा शृंगारिणी मता ॥

—वही, ७/३३

धनंजय अन्य की क्रूरता तथा अपने दुर्नय से होनेवाली अनर्थ की आशंका को शंका कहते हैं।

अनर्थप्रतिभाशंका परक्रौर्यात्स्वदुर्नयात् ।
कंपशोषाभिवीक्षादिरत्र वर्णस्वरान्यता ॥

—दशरूपक, ४/११

विश्वनाथ ने अनर्थ की चिंता या तर्कणा को शंका कहा है, जो क्रूराचरण तथा आत्मदोष से उत्पन्न होती हैं। इसकी अभिव्यक्ति वैवर्ण्य, कंप, स्वरभंग, मुखशोष प्रभृति अनुभावों द्वारा होती है।

परक्रौर्यात्मदोषाद्यैः शंकाऽनर्थस्य तर्कणम् ।
वैवर्ण्यकंपवैस्वर्यपार्श्वालोकास्य शोषकृत् ॥

—साहित्यदर्पण, ३/१६१

भानुदत्त ने किसी भयंकर भावी विपत्ति के आभास या किसी अभीष्ट पदार्थ की हानि होने के विचार को शंका माना है। इसके विभाव अन्य व्यक्ति की कुटिल नीति या क्रूरता हैं और अनुभाव हैं कंप एवं किसी क्रिया को छिपाना।

उत्कटकोटिकाविष्टप्रतिसंधानमिष्टहानिविचारो वा शंका। तत्र दुर्नयपरक्रौर्यादयो विभावाः। अनुभावाः कंप क्रियाप्रच्छादनादयः।

—रसतरंगिणी, पृ० ३४३ पंचमतरंग

पंडितराज जगन्नाथ इस प्रकार मन में सोचने को शंका कहते हैं कि 'मेरा क्या अनिष्ट होगा।' उन्होंने बताया कि शंका चिंता से भिन्न है; क्योंकि शंकाजन्य भय से शरीर में कंप होता है; पर चिंता में ऐसा नहीं होता।

किमनिष्टं मम भविष्यतीत्याकारश्चित्तवृत्तिविशेषः शंका। इयंतु भयाद्युत्पादनेन कंपादिकारिणी, न तु चिंता। —रसगंगाधर, पृ० ९९

उदाहरण--

क. विधिवंचितया मया न यातं, सखि संकेतनिकेतनं प्रियस्य।
अधुना बत किं विधातु कामो मयि कामो नृपतिः पुनर्न जाने ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"हे सखि ! विधाता द्वारा वंचित मैं प्रिय के संकेत स्थल पर न जा सकी। मुझे भय लगता है कि काम नृपति मेरे विषय में क्या करना चाहते हैं।" यहाँ संकेतस्थल पर न पहुँचने (अपने दोष के कारण) से भावी आशंका के कथन में शंका संचारी है।

ख. लगै न कहुँ ब्रजगलिन में, आवत जात कलंक।
निरखि चौथ को चाँद यह, सोचति सुमुखि ससंक ॥

शठ—नायक का एक भेद। [दे० नायक] अपराधयुक्त होने पर भी नायिका को ठगनेवाला नायक शठ होता है। भानुदत्त। विश्वनाथ के मतानुसार जो नायक दूसरी नायिका से प्रेम कर अपनी प्रथम नायिका से बाह्य प्रीति प्रदर्शित कर छिपे-छिपे उसका अहित करे, उसे शठ कहते हैं।

धनंजय ने बताया कि जो नायक ज्येष्ठा नायिका का छिप-छिपकर बुरा करे, उसे शठ कहते हैं।

शठोऽयमेकत्र बद्धभावो यः।
दर्शितबहिरनुरागो विप्रियमन्यत्र गूढमाचरति ॥
—साहित्यदर्पण, ३/३७

गूढविप्रियकृच्छठः। —दशरूपक, २/३७

कामिनीविषयककपटपटुः शठः। —रसमंजरी पृ० १७६

निज मुख चतुराई करै सठता ठहरै न्यान।
व्यभिचारी कपटी महा नायक सठ पहचान ॥
—शृंगारनिर्णय, २१

भिखारीदास—

डरै करत अपराध नहिं करै कपट की प्रीति।
बचन-क्रिया में अति चतुर सठ नायक की रीति ॥
—रसराज, २५०

मतिराम—

सहित काज मधुरै-मधुर, बैननि कहै बनाय।
उर अंतर घट कपटमय, सो सठ नायक आय ॥
—जगद्विनोद, २६४

उदाहरण—

क. मौलौ दाम विधाय भालफलके व्यालिख्य पत्रावलीं
केयूरे भुजयोर्निधायकुचयोर्विन्यस्य मुक्तास्रजम्।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विश्वासं समुपार्जयन् मृगदृशः कांची निवेशच्छला-
न्नीवीग्रंथिमपाकरोति मृदुना हस्तेन वामभ्रुवः ॥

—रसमंजरी, १०४

धूर्त नायक ने नायिका के सिर पर माला लगा दी और उसके ललाट पर पत्रावली (मकरादि पत्र-भंग) लगा दी, तत्पश्चात् उसके हाथों में बिजायठ पहनाया और उसके स्तनों पर मोती की माला डाल दी। इस प्रकार नायिका के मन में विश्वास उत्पन्न कर उस धूर्त ने उसकी कटि में करधनी पहनाने के बहाने हल्के हाथ से उस कुटिलनेत्री नायिका का नीवीबध खोल दिया।

ख. हौं न कियो अपराध बलि, वृथा तानियतु भौंह।
तुव उरसिज-हर परसि कैं, करत रावरी सौंह॥

—जगद्विनोद, २९६

शतपत्रभेदनन्याय—[दे० असंलक्ष्यक्रमव्यंग्य ध्वनि]

शब्दचित्र—चित्रकाव्य का एक भेद। [दे० चित्रकाव्य]

शब्ददोष—मम्मट ने सोलह प्रकार के शब्ददोषों का निरूपण किया है। (१) श्रुतिकटु, (२) च्युतसंस्कार, (३) अप्रयुक्त, (४) असमर्थ, (५) निहतार्थ, (६) अनुचितार्थ, (७) निरर्थक, (८) अवाचक, (९) अश्लील, (१०) संदिग्ध, (११) अप्रतीत, (१२) ग्राम्य, (१३) नेयार्थ, (१४) क्लिष्ट, (१५) अविमृष्ट-विधेयांश, (१६) विरुद्धमतिकृत्।

दुष्टं पदं श्रुतिकटुच्युतसंस्कृत्यप्रयुक्तमसमर्थम्।
निहतार्थमनुचितार्थनिरर्थकमवाचकं त्रिधाऽश्लीलम्॥
संदिग्धमप्रतीतं ग्राम्यनेयार्थमथभवेत्क्लिष्टम्।
अविमृष्ट विधेयांशं विरुद्धमतिकृत्समासगतमेव॥

—काव्यप्रकाश, ७/५०,५१

१. श्रुतिकटु—कर्णकटु या कानों को कठोर लगनेवाली रचना को श्रुति-कटु दोष कहते हैं—श्रुतिकटुपरुषवर्णरूपं दुष्टं—काव्यप्रकाश। विश्वनाथ इसे 'दुःश्रवत्व' कहते हैं। इनके अनुसार अक्षर कठोर होने के कारण कानों को खटके तो दुःश्रवत्व दोष होगा—

परुषवर्णतयाश्रुतिदुःखावहत्वं दुःश्रवत्वम्॥

—साहित्यदर्पण, ७/२

अनंगमंगलगृहापांगभंगितरंगितैः।
आलिंगितः स तन्वंग्या कातार्थ्यं लभते कदा॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वह युवक कामदेव के मंगलगृहरूपी कटाक्षों की भंगिमा की तरंगों से कृशांगी नायिका से कब आलिंगित होकर कृतार्थ होगा। यहाँ 'कातार्थ्य' शब्द श्रुतिकटु है।

कवि के कठिनतर कर्म की करते नहीं हम धृष्टता।
पर क्या न विषयोत्कृष्टता करती विचारोत्कृष्टता॥

यहाँ 'विषयोत्कृष्टता' और 'विचारोत्कृष्टता' शब्द कर्णकटु हैं। श्रुतिकटु दोष को कर्णकटु भी कहा जाता है। यदि रौद्र, वीर आदि रसों की रचना हो तो वहाँ कर्णकटु शब्दों का प्रयोग आवश्यक है और ऐसे शब्द दोष न होकर गुणरूप होंगे। शृंगार, हास्य आदि रसों में कठोर वर्णों का प्रयोग होने पर श्रुतिकटु दोष होता है।

जैसे—

बक्र-बक्र करि पुच्छ करि, रुष्ट रिच्छ कपि गुच्छ।
सुभट-ठट्ट घन घट्ट-सम, मर्दहि रच्छन तुच्छ॥

यहाँ बक्र प्रभृति कठोर वर्णों के समावेश के कारण वीर रस की कविता में सौंदर्य आ गया है, जो गुण है, दोष नहीं।

२. च्युतसंस्कृति—व्याकरण-विरुद्ध शब्दों के प्रयोग में च्युतसंकृति दोष होता है। च्युतसंस्कृति का अर्थ है संस्कार या व्याकरण-लक्षण से च्युत होना, गिर जाना या व्याकरण-नियमों के विरुद्ध होना।

च्युतसंस्कृतिव्याकरणलक्षणहीनं यथा।

—काव्यप्रकाश, ७/५०

एतन्मंदविपक्वतिंदुकफलश्यामोदरापांडुर-
प्रांतंहंत पुलिंदसुंदरकरस्पर्शक्षमं लक्ष्यते।
तत् पल्लीपतिपुत्रि! कुंजरकुलं कुंभाभयाभ्यर्थना-
दीनं त्वामनुनाथते कुचयुगं पत्रावृतं मा कृथाः॥

"हे पल्लीपति की पुत्रि! यह तुम्हारा स्तन अल्प पके हुए तिंदुक फल के सदृश मध्य में काला एवं चारों तरफ गौर वर्ण है, जो शबर युवक के मर्दन के योग्य दिखलाई पड़ता है, यह अत्यंत ही प्रसन्नता की बात है। अतएव अपनी कनपट्टी की रक्षा के लिए हाथियों का दल भीख माँग रहा है कि तुम अपने स्तनों को पत्तों से आच्छादित न करो।" यहाँ 'अनुनाथते' पद व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध है, 'अनुनाथति' पाठ होना चाहिए।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रेम-शक्ति से चिर निरस्त्र हो जावेगी पाशवता ।—यहाँ 'पाशवता' प्रयोग व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध है, पशुता होना चाहिए। गँवारी भाषा के काव्य में प्रयुक्त होने पर च्युतसंस्कृति दोष नहीं माना जाता।

३. अप्रयुक्त—व्याकरण, कोष आदि के द्वारा सिद्ध होने पर भी ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जाय, जो काव्य में अप्रचलित हों तो अप्रयुक्त दोष होगा।

अप्रयुक्तं तथाऽऽम्नातमपिकविभिर्नादृतम् ।

—काव्यप्रकाश, ७/५०

यथाऽयं दारुणाचारः सर्वदैव विभाव्यते ।
तथा मन्ये दैवतोऽस्य पिशाचो राक्षसोऽथवा ।

यह व्यक्ति सर्वथा कठोर आचरण करनेवाला दिखाई पड़ता है, इससे यह पता चलता है कि इसका इष्टदेव कोई राक्षस या पिशाच है। 'दैवतः' शब्द का यहाँ पुल्लिग में प्रयोग अप्रयुक्त है। यद्यपि अमरकोश में 'दैवतानि पुंसिवा' इस शब्द का प्रयोग विकल्प से पुल्लिग में करने का विधान है, फिर भी किसी कवि ने इसका प्रयोग पुल्लिग में नहीं किया है।

देवेस संभ्रम पटांत उघारि कैसे ।
नारी नई कुचनि तें प्रिय-हस्त जैसे ॥

यहाँ कुच का प्रयोग स्त्रीलिंग में हुआ है, जो अप्रयुक्त दोष है। यमक आदि की योजना में अप्रयुक्त दोष नहीं माना जाता।

४. असमर्थ—किसी अर्थ को प्रकट करने के लिए जिस शब्द का प्रयोग किया जाय, उससे उस अर्थ की प्रतीति न हो तो वहाँ असमर्थ दोष होता है।

असमर्थयत्तदर्थपठ्यते न च तत्रास्य शक्तिः ॥

—काव्यप्रकाश, ७/५०

तीर्थांतरेषु स्नानेन समुपार्जितसंस्कृतिः ।
सुरस्रोतस्विनीमेष हंतिसंप्रति सादरम् ॥

"अन्य तीर्थों में पुण्य अर्जित कर यह व्यक्ति आदर के साथ अब गंगा में स्नान करने के लिए जाता है। यहाँ 'हंति' पद का गमन-अर्थ में प्रयोग असमर्थ दोष है। धातु-पाठ में हन् धातु का गति भी अर्थ होता है (हन् हिंसागत्योः); पर वह अन्य उपपदों के योग में होता है।"

सीय स्वयंवर में जुरे, नरपति सुभग बिसाल ।
धनु न टर्‌यौ बोल्यो निरखि, तब अनंग महिपाल ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'अनंग' शब्द' का अर्थ है कामदेव, विदेह नहीं। यहाँ अनंग शब्द से राजा जनक का अर्थ करना असमर्थ दोष है।

५. निहतार्थ—दो अर्थवाले शब्द का अप्रसिद्ध अर्थ में प्रयुक्त होना निहतार्थ दोष है।

निहतार्थं यदुभयार्थमप्रसिद्धेऽर्थे प्रयुक्तम्। —काव्यप्रकाश, ७/५०

यावकरसार्द्रपादप्रहारशोणितकचेन दयितेन।
मुग्धा साध्वसतरला विलोक्यपरिचुंबिता सहसा॥

"महावर से आर्द्र चरण के प्रहार से जिसके केश लाल हो गए हैं, ऐसे नायक ने उस मुग्धा नायिका को भय से व्याकुल देखकर चूम लिया।"

'शोणित' शब्द का रुधिर अर्थ अधिक प्रसिद्ध है। इस श्लोक में उज्ज्वलता लिए हुए अर्थ में इसका प्रयोग हुआ है, जो रुधिर अर्थ से दब जाता है।

पयोधर का वह खारा नीर, बना है क्योंकर देव अपेय ?

यहाँ 'पयोधर' शब्द का प्रयोग समुद्र के अर्थ में हुआ है। पय (जल) को धारण करने के कारण समुद्र को भी पयोधर कहते हैं; किंतु वह बादल या स्तन के लिए रूढ़ हो गया है।

६. अनुचितार्थ—जब किसी शब्द का प्रयोग करने से अभीष्ट अर्थं का तिरस्कार हो तो वहाँ अनुचितार्थ दोष होता है।

तपस्विभिर्या सुचिरेणलभ्यते प्रयत्नतः सत्रिभिरिष्यते च या।
प्रयांतिताmाशुगतिं यशस्विनो रणाश्वमेधेपशुतामुपागताः॥

"जिस गति को तपस्वी लोग अनेक जन्म के बाद प्राप्त करते हैं और जिसे याज्ञिक लोग प्रयत्नपूर्वक प्राप्त करने की अभिलाषा करते हैं, उस गति को रणरूपा अश्वमेध में पशु बने हुए वीर शीघ्र ही पा जाते हैं।"

—यहाँ 'पशु' पद वीरता के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यह कातरता का द्योतक है, इसलिए वीरता के अर्थ में अनुचित है।

ह्वै के पशु रण यज्ञ में अमर होंहि जग शूर॥

७. निरर्थक—छंद की पूर्ति के लिए अनावश्यक शब्दों के विन्यास (रखे जाने) को निरर्थक दोष कहते हैं।

निरर्थकं पादपूरणमात्रप्रयोजनं चादिपदम्।

—काव्यप्रकाश, ७/५०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्फुल्लकमलकेसरपरागगौरद्युते ! मम हि गौरि ।
अभिवांछितं प्रसिद्ध्यतु भगवति ! युष्मत्प्रसादेन ।।

"प्रफुल्लित कमल के पराग के सदृश गोरे अंगोंवाली भगवती पार्वती, आपकी कृपा से मेरा अभीष्ट पूर्ण हो जाय।"

यहाँ 'हि' पद निरर्थक है जो पादपूर्त्ति के लिए प्रयुक्त है।

देव होकर तुम सदा मेरे रहो।
और देवी ही मुझे रक्खो अहो ।।

यमक या श्लेष में 'निरर्थक' दोष नहीं माना जाता।

८. अवाचक—जिस अभीष्ट अर्थ के लिए किसी शब्द का प्रयोग हो और उससे वह अर्थ न निकले तो वहाँ अवाचक दोष होता है।

अवंध्यकोपस्य विहंतुरापदां भवंति वश्याः स्वयमेव देहिनः।
अमर्षशून्येन जनस्य जंतुना न जातहार्देन न विद्विषादरः ।।

"जिसका क्रोध निष्फल नहीं होता और जो दूसरों की विपत्ति का नाश करता है, उसके वश में मनुष्य अपने आप हो जाते हैं। जिसे कभी क्रोध नहीं आता, उससे न तो शत्रु को भय होता है और न उसका मित्र बनने से कोई उसे आदर ही देता है।"—यहाँ 'जंतु' पद दान नहीं करनेवाले के अर्थ में विवक्षित है; किंतु इससे इस अर्थ का बोध नहीं होता।

अधिक अँधेरी रात हू तव दरसन दिन होय ।।

यहाँ 'प्रकाश' के अर्थ में 'दिन' का प्रयोग हुआ है, पर वह अभीष्ट अर्थ का वाचक नहीं है।

९. अश्लील—लज्जासूचक, घृणाप्रदर्शक अथवा अमंगलवाची शब्दों के प्रयोग में अश्लील दोष होता है।

त्रिधेति व्रीडाजुगुप्साऽमंगलव्यंजकत्वाद्।

—काव्यप्रकाश, १०/५०-५१

साधनं सुमहद्यस्य यन्नान्यस्य विलोक्यते।
तस्य धीशालिनः कोऽन्यः सहेतारालितांभ्रुवम् ।।

"जिस राजा का साधन (सेना या लिंग) इतना बड़ा है कि उसके समान दूसरे का नहीं दिखाई पड़ता है, क्रोध से टेढ़ी उसकी भौंह को कौन सह सकता है?"

यहाँ साधनशब्द पुरुषलिंग का वाचक होने से लज्जास्पद प्रयोग है

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

छुटी हवा, काम पीड़ा थी ? एकाकी को चैन कहाँ ।
किंतु देवि, तेरा विनाश, हो जाने पर मैं गया वहाँ ।।

यहाँ वायु बहने के अर्थ में प्रयुक्त 'छुटी हवा' अपान वायु का बोधक है । यह प्रयोग घृणास्पद है । उतरार्द्ध में 'विनाश' शब्द अमंगलसूचक है ।

१०. संदिग्ध—जिससे वांछित तथा अवांछित, ये दोनों अर्थ प्रतीत हों, ऐसे शब्दों के प्रयोग में संदिग्ध दोष होता है ।

आलिंगितस्तत्र भवान् संपराये जयश्रिया ।
आशीः परंपरांवन्द्यां कर्णेकृत्वा कृपां कुरु ।।

"रणभूमि में विजयलक्ष्मी से आलिंगित आप प्रशंसा या आशीर्वाद की परंपरा का श्रवण कर हमलोगों पर दया करें ।"

यहाँ 'वन्द्यां' शब्द बलपूर्वक हरी गई सुंदरी के अर्थ का द्योतक है या वंदनीय के अर्थ का, इसमें संदेह बना रहता है ।

एक मधुर वर्षामधु गति से बरस गई मेरे अंबर में ।।

यहाँ अंबर शब्द के दो अर्थ हैं—आकाश और वस्त्र । यही संदेह बना रहता है कि वर्षा कहाँ हुई । व्याजस्तुति अलंकार में यह दोष नहीं माना जाता ।

११. अप्रतीत—किसी शास्त्र के पारिभाषिक शब्द का जब काव्य में प्रयोग हो (जो लोक में अप्रचलित हो) तो अप्रतीत दोष होगा ।

अप्रतीतं यत्केवलेशास्त्रे प्रसिद्धम् ।
—काव्यप्रकाश, ७/५०-५१

सम्यग्ज्ञानमहाज्योतिर्दलिताशयताजुषः ।
विधीयमानमप्येतन्न भवेत्कर्मबंधनम् ।।

तत्त्वज्ञान के महाप्रकाश में जिसके संस्कार नष्ट हो गए हैं, उसके द्वारा किया गया कर्मबंधन का कारण नहीं होता ।

यहाँ 'आशय' शब्द योगदर्शन में प्रयुक्त 'वासना' के अर्थ का द्योतक है, जो काव्य में प्रचलित नहीं है ।

कर्म और आशय का होता नाश जभी है ।
मिटता है संसार, चमकता मनुज तभी है ।।

यहाँ कर्म, आशय तथा संसार का शास्त्रीय प्रयोग किया गया है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१२. ग्राम्य—केवल गँवार व्यक्तियों में व्यवहृत होनेवाले शब्दों का प्रयोग किया जाय तो वहाँ ग्राम्य दोष होता है।

ग्राम्यं यत्केवले लोके स्थितम् ; —काव्यप्रकाश, ७/५०-५१
राकाविभावरीकांतसक्रांतद्युति ते मुखम् ।
तपनीयशिलाशोभा कटिश्च हरते मनः ॥

"प्रिय तुम्हारा मुँह, जिसमें पूर्णिमा की रात के चंद्रमा की छवि प्रतिबिंबित हो रही है, और तुम्हारी कमर (कटि) जिसमें सोने की शिला के सदृश शोभा है, मेरे मन को हरते हैं।"—यहाँ 'कटि' का प्रयोग ग्रामीण है।

लचकती कैसी सुघर, मन हर रही यह कमर।

यहाँ 'कमर' शब्द ग्राम्य है।

१३. नेयार्थ—लक्षणा शक्ति के असंगत होने में नेयार्थ दोष होता है।

निरूढा लक्षणाः काश्चित् सामर्थ्यादभिधानवत् ।
क्रियंते सांप्रतं काश्चित् काश्चिन्नैवत्वशक्तितः ॥

—काव्यप्रकाश, ७/५० वृत्ति,

कुछ रूढ़ लक्षणाएँ होती हैं, जो वाचक शब्द (अभिधान) के समान सामर्थ्य से (अर्थ का बोध कराती हैं) और कुछ इस समय (प्रयोजनवश) की जाती हैं। ये दोनों रूढ़ि तथा प्रयोजनवती लक्षणाएँ तो उचित हैं ; परंतु रूढ़ि तथा प्रयोजन के अभाव में स्वेच्छापूर्वक कोई लक्षणा अशक्ति के कारण नहीं करनी चाहिए (इस प्रकार की लक्षणा के करने पर नेयार्थ दोष हो जाता है)।

शरत्कालसमुल्लासि पूर्णिमा शर्वरी प्रियम् ।
करोति ते मुखं तन्वि चपेटापातनातिथिम् ॥

—आचार्य विश्वेश्वरकृत काव्यप्रकाश का हिंदी भाष्य, पृ० २७४

'हे कृशांगि ! तुम्हारा मुँह शरद ऋतु के चंद्रमा के मुख में भी थप्पड़ लगा रहा है।"—यहाँ थप्पड़ लगाने से अर्थ है तिरस्कृत कर देने का।

तेरे मुख ने चंद्र के दई लगाय चपेट।

१४. क्लिष्ट—जब अर्थप्रतीति विलंब से हो तो क्लिष्ट दोष होगा। इसमें ऐसे शब्द प्रयुक्त होते हैं; जिनसे अर्थबोध में कठिनाई होती है।

भरत ने इसे 'नाट्यशास्त्र' में गूढार्थ नाम दिया है।

—नाट्यशास्त्र, १७/८९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्लिष्टं यतोऽर्थप्रतिपत्तिर्व्यवहिता ॥

—काव्यप्रकाश, ७/५१

अत्रिलोचनसंभूतज्योतिरुद्गमभासिभिः ।
सदृशं शोभतेऽत्यर्थं भूपाल तव चेष्टितम् ॥

"हे भूमिपाल ! आपकी कीर्त्ति अत्रि की आँख से उत्पन्न ज्योति अर्थात् चंद्रमा के द्वारा विकसित होनेवाली अर्थात् कुमुदिनी के सदृश शोभायमान है।" —'यहाँ अत्रि मुनि की आँख से उत्पन्न ज्योति के द्वारा विकसित होनेवाली' यह अर्थ बहुत कठिनाई से लगता है।

अहि-रिपु-पति-तिय सदन है मुख तेरो रमनीय ॥

अहि = सर्प, रिपु = गरुड़, पति = विष्णु, उनकी पत्नी = लक्ष्मी, उनका निवास = कमल अर्थात् कमल के समानमुख। यहाँ कमल का ज्ञान कष्ट-कल्पना से होता है।

१५. अविमृष्टविधेयांश—जब विधेय अर्थ अर्थात् अभीष्ट अर्थ के अंश की प्रधानता पर विचार न किया जाय तो वहाँ अविमृष्ट विधेयांश दोष होता है। अर्थ-पद में जिस पदार्थ का प्रधान रूप से वर्णन होना चाहिए, उसको समास के द्वारा अथवा अन्य प्रकार से गौण कर देना अविमृष्ट विधेयांश है।

अविमृष्टः प्राधान्येनानिर्दिष्टो विधेयांशो यत्र तत् ॥

—काव्यप्रकाश, ७/५१

रक्षांस्यपि पुरः स्थातुमलं रामानुजस्य मे ।

—"मेरे सम्मुख राक्षस ठहरेंगे ? मैं रामानुज हूँ !"

यहाँ लक्ष्मण वक्ता हैं, जो अपनी विशेषता राम के कारण बता रहे हैं। राम शब्द की षष्ठी विभक्ति का यहाँ लोप कर उसे समास में डाल दिया गया है, जिससे उसकी प्रधानता नष्ट हो गई है। अतः यहाँ उक्त दोष हुआ। यहाँ रामस्य पद को पृथक् रूप से रखना चाहिए था।

मैं रामानुज हूँ अरे ! गरज डरावत काहि ॥

१६. विरुद्धमतिकृत—प्रकृत विषय के विरुद्ध अर्थ की प्रतीति हो तो वहाँ विरुद्धमतिकृत् दोष होगा। इसमें ऐसे शब्द प्रयुक्त होते हैं, जिनसे अभीष्ट अर्थ के विपरीत अर्थ का बोध होता है।

सुधाकरकराकारविशारदविचेष्टितः ।
अकार्यमित्रमेकोऽसौ तस्य किं वर्णयामहे ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चंद्रमा की किरणों के सदृश जिसका आचरण स्वच्छ एवं निःस्वार्थ है, वैसा मित्र तो एक ही है, उसके गुणों का क्या वर्णन किया जाय ?

यहाँ अभीष्ट अर्थ है 'बिना स्वार्थ का मित्र' किंतु 'अकार्य मित्र' पद के द्वारा 'बुरे कार्य में मित्र है' ऐसा विरुद्ध अर्थ सिद्ध हो जाता है।

सरदचंद्र-सम विमल हो सदा उदार चरित्र।
गुन-गन कहे न जातु हैं आप अकारज मित्र।।

शब्दवक्रोक्ति—शब्दालंकार का एक भेद। जब वक्ता के अन्यार्थक वाक्य का श्रोता, काकु या श्लेष के द्वारा अन्यार्थ कल्पना करे तो शब्दवक्रोक्ति होगी। [दे० वक्रोक्ति]

शब्दव्यापार—साहित्यशास्त्र में शब्दव्यापार का अर्थ शब्दशक्ति है। [दे० शब्दशक्ति] इसे व्यापार भी कहते हैं।

शब्दशक्ति—शब्द तथा अर्थ के संबंध को शक्ति या शब्दशक्ति कहते हैं। इसका दूसरा नाम व्यापार भी है। शब्द में निहित अर्थ-संपत्ति को प्रकट करने-वाला तत्त्व शब्द-व्यापार या शब्द-शक्ति है। शब्दशक्तियाँ साधन के रूप में समादृत हैं। शब्द कारण है और अर्थ कार्य और शब्दशक्तियाँ साधन या व्यापार-रूप हैं। शब्दशक्ति के बिना शब्द के अर्थ का ज्ञान संभव नहीं है। अतः, शब्द तथा अर्थ के संबंध में विचार करनेवाले तत्त्व को शब्दशक्ति कहते हैं। शब्द की तीन शक्तियाँ हैं—अभिधा, लक्षणा और व्यंजना। एक अन्य शक्ति तात्पर्य भी है, जो शब्द का व्यापार न होकर वाक्य का व्यापार है। शब्द तीन प्रकार के होते हैं—वाचक, लक्षक और व्यंजक तथा इनसे क्रमशः तीन प्रकार के अर्थ प्रकट होते हैं वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ। इन तीनों अर्थों की प्रतीति तीन प्रकार की शक्तियों—अभिधा, लक्षणा और व्यंजना-द्वारा होती है।

संस्कृत-साहित्य में शब्द-विषयक विवेचन, साहित्यशास्त्र के अतिरिक्त व्याकरण, न्याय तथा मीमांसा इन तीन शास्त्रों में व्यवस्थित ढंग से उपलब्ध होता है। शब्दशक्ति का अनुशीलन पूर्व मीमांसा के 'शाबरभाष्य' एवं कुमारिल भट्ट के 'तंत्रवार्त्तिक' नामक ग्रंथ में किया गया है। कालांतर में न्याय तथा व्याकरण में इसके संबंध में विशेष ऊहापोह किया गया। साहित्य-शास्त्र का शब्दशक्ति-विवेचन प्रायः इन्हीं स्रोतों से अपनी सामग्री ग्रहण करता है। किंतु, इनमें भी उसकी मान्यताएँ, मुख्यतः व्याकरण से ही अधिक अनु-प्राणित रही हैं। जहाँ कहीं भी साहित्यशास्त्र में कोई विवादास्पद प्रसंग

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपस्थित होता है तो उसके निराकरण के लिए साहित्यशास्त्री व्याकरण को ही अपना आधार मान लेता है।

आनंदवर्द्धन या मम्मट सभी मूर्धन्य आचार्य तत्संबंधी विषयों के निरूपण में वैयाकरणों के प्रति श्रद्धा के भाव व्यक्त करते हैं। साहित्यशास्त्र पर व्याकरण का ऋण है, यह निर्विवाद है और इसी कारण साहित्यशास्त्र व्याकरण का पुच्छ कहा जाता है।

> **अर्थो वाच्यश्च लक्ष्यश्च व्यंग्यश्चेति त्रिधा मतः।**
> **वाच्योऽर्थोऽभिधया बोध्यो लक्ष्यो लक्षणया मतः।**
> **व्यंग्यो व्यंजनया ताः स्युस्तिस्रः शब्दस्य शक्तयः॥**
>
> —साहित्यदर्पण, २/२-३

> **जहाँ शब्द में रचित है निज अर्थहि को बोध।**
> **शक्ति लक्षणा व्यंजना वृत्य तीनि बिधि सोध॥**
>
> —प्रतापसाहि, काव्यविलास, २/६

शब्दशक्ति-उद्भव अनुरणनध्वनि—संलक्ष्य क्रमव्यंग्य ध्वनि का भेद। [**दे० ध्वनि के भेद**] वाच्यार्थ का बोध होने के पश्चात् जिस शब्द से व्यंग्यार्थ का बोध हो, उसको बताने की शक्ति केवल उसी शब्द में हो, उसके पर्यायवाची शब्द में नहीं, तो शब्दशक्ति-उद्भव अनुरणनध्वनि होती है।

यह दो प्रकार की होती है—वस्तुध्वनि और अलंकारध्वनि।

जिस ध्वनि में कोई अलंकार न हो और जहाँ किसी बात की व्यंजना होती हो, उसे वस्तुध्वनि कहते हैं।

जब व्यंग्यार्थ में कोई अलंकार ध्वनित हो तो उसे अलंकारध्वनि कहा जाता है। दोनों के ही पदगत और वाक्यगत—दो-दो भेद होते हैं।

वस्तु ध्वनि—

> **पांथ, नात्र स्रस्तरमस्ति मनाक् प्रस्तरस्थले ग्रामे।**
> **उन्नत पयोधरं प्रेक्ष्य यदि वससि तद् वस॥**

"हे पथिक! इस पहाड़वाले ग्राम में पत्थर (बिछावन या शास्त्र) (स्रस्तर) तो एकदम नहीं है। यदि उठे हुए पयोधरों (स्तन, बादल) को देखकर यहाँ रहना चाहते हो तो रह जाओ।" यह कथन पथिक के प्रति स्वयंदूतिका नायिका [**दे० स्वयंदूतिका**] का है—वाच्यार्थ से यह अर्थ प्रकट होता है कि यह पहाड़ी ग्राम हैं, यहाँ बिछावन नहीं मिलेगा। यदि उठे हुए बादलों को देखकर रहना चाहते हो तो रह जाओ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस अर्थ की प्रतीति के पश्चात् 'सत्थर' (स्रस्तर) तथा 'पयोधर' शब्दों के द्वारा यह व्यंग्यार्थ प्रतीत होता है कि यहाँ परस्त्रीगमन-संबंधी शास्त्रीय दोषों का कोई विचार नहीं करता, यदि तुम उभरे हुए मेरे स्तनों (पयोधर) को देखकर रुकना चाहते हो तो रुक जाओ। यह व्यंग्यार्थ शब्दाश्रित है और स्रस्तर तथा पयोधर के बदले इनका पर्यायवाची शब्द रख दिया जाए तो व्यंग्यार्थ की प्रतीति नहीं होगी। इस व्यंग्यार्थ में कोई अलंकार नहीं है; अतः वस्तुध्वनि हुई। वाच्यार्थ का बोध होने पर ही व्यंग्यार्थ का बोध होता है, इसलिए यह अनुरणनध्वनि हुई।—

पत्थर थल हैं पथिक ! इत सत्थर कहुँ न लखायं।
उठे पयोधर देखि जो रह्यो चहतु रहि जायँ॥

—ऊपर के श्लोक का अनुवाद

अलंकार ध्वनि—

निरुपादानसंभारमभित्तावेव तन्वते।
जगच्चित्रं नमस्तस्मै कलाश्लाघ्याय शूलिने॥
उपादान-संभार बिनु जगत चित्र, बिनु भीत।
कलाकार हर ने रच्यो बंदौं उन्हें विनीत॥

चतुर चित्रकार तूलिका आदि उपकरणों-द्वारा दीवार आदि आधार पर चित्र का निर्माण करता है; किंतु शिवजी ने बिना किसी सामग्री और आधार के इस संसार का निर्माण किया है। यहाँ शिवजी में सामान्य चित्रकार से विशिष्टता प्रदर्शित करने में व्यतिरेक अलंकार की ध्वनि है। 'चित्र' और 'कला' शब्दों के कारण ध्वनि उत्पन्न हुई है। इनके समानांतर शब्दों से ध्वनि नहीं निकल सकती।

शब्दश्लेष—शब्दालंकार का एक प्रकार। [दे० श्लेष] जब श्लिष्ट या अनेकार्थक शब्दों के द्वारा अनेक अर्थों का कथन किया जाय तो शब्दश्लेष होता है।

शब्दानुप्रास—शब्दालंकार। मम्मट-कृत अनुप्रास का एक भेद। इसे लाटानुप्रास कहा गया है। [दे० अनुप्रास]

शब्दस्तु लाटानुप्रासो। —काव्यप्रकाश, ९/८१

शब्दार्थोभयशक्ति उद्भव अनुरणनध्वनि—जब कतिपय शब्दों (पदों) का परिवर्त्तन कर उनके पर्यायवाची शब्दों के द्वारा व्यंग्य प्रकट हो एवं कुछ पदों का परिवर्तन न होने पर भी व्यंग्य की प्रतीति हो तो वहाँ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शब्दार्थोभयशक्तिमूलक ध्वनि होती है। इसका केवल वाक्यगत भेद ही होता है, पदगत, पदांशगत एवं प्रबंधगत नहीं।

अतंद्रचंद्राभरणा समुद्दीपित मन्मथा।
तारकातरला श्यामा सानंदं न करोति कम् ॥

—इसके दो अर्थ हैं। प्रथम अर्थ में श्यामा रात्रि के पक्ष में है और द्वितीय श्यामा नायिका के पक्ष में।

"जिसका आभूषण चंद्रमा है, जो काम की शक्ति को बढ़ानेवाली है एवं जो कहीं-कहीं कुछ ताराओं से युक्त है—तारकातरला—ऐसी श्यामा (रात्रि) सुशोभित हो रही है।"

नायिका के पक्ष में—

"जो चंद्रहार से युक्त है, काम की भावना को बढ़ानेवाली है तथा जो चंचल आँखोंवाली है, ऐसी श्यामा नायिका शोभित हो रही है।" यहाँ स्त्री के समान रात शोभती है या चाँदनी रात के समान सुंदरी शोभ रही है, यह उपमालंकार व्यंग्य हैं। इसमें चंद्र, तारक एवं श्यामा शब्दों के पर्यायवाची शब्दों को रख दिया जाय तो इनके दो अर्थ संभव नहीं हैं। यह इस उदाहरण की शब्दशक्तिमूलक ध्वनि का रूप है। इसी प्रकार आभरण, अतंद्रा, समुद्दीपित एवं मन्मथ के स्थान पर इनके अर्थबोधक शब्दों के रखने पर भी ध्वनि में किसी प्रकार का अंतर नहीं आता। यह इसकी अर्थमूलकता है। इस प्रकार यहाँ शब्द तथा अर्थ दोनों शक्तियों के द्वारा व्यंग्यार्थ की प्रतीति होने से यह शब्दार्थोभयशक्तिमूलक ध्वनि हुई।

सोहत चंद्राभरन जुत, मनमथ प्रबल बढ़ातु।
तरलतारका कलित यह श्यामा ललित सुहातु ॥

—उक्त श्लोक का अनुवाद।

शब्दालंकार—शब्द में चमत्कार होने पर शब्दालंकार होता है। अतः, जो शब्द का अलंकरण करे, उसे शब्दालंकार कहते हैं। जब शब्द-परिवर्त्तन के बाद किसी अलंकार का सौंदर्य नष्ट हो जाय तो शब्दालंकार होगा अर्थात् इस अलंकार में शब्द-परिवर्त्तन के कारण इसका चमत्कार नष्ट हो जाता है। इसमें ऐसे अलंकार आते हैं, जिनमें एक ही शब्द का अनेक बार प्रयोग हो और उनका अर्थ परिवर्त्तित हो जाय या अनेकार्थवाची शब्द का प्रयोग हो। शब्दालंकार के आठ प्रकार हैं—अनुप्रास, यमक, श्लेष, वक्रोक्ति, पुनरुक्तवदाभास, वीप्सा, प्रहेलिका और चित्र। अन्य प्रकारों में पुनरुक्ति प्रकाश एवं भाषासम का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भी नाम आता है। [दे० प्रत्येक अलंकार का पृथक् विवेचन उनके नाम के प्रथम अक्षर में]

शब्दालंकार में शब्द-परिवर्त्तन संभव नहीं होता अर्थात् जिस शब्द के कारण चमत्कार उत्पन्न होता है, यदि उसको हटाकर उसका पर्याय (शब्द) रख दिया जाय तो चमत्कार नष्ट हो जायगा। उदाहरण के लिए—'बंदउँ गुरु पद पदुम परागा' को लिया जा सकता है, यदि पद पदुम और परागा के स्थान पर उनके पर्याय रख दिये जाएँ तो इसका सौंदर्य नष्ट हो जाएगा। पद, कमल, पराग में छेकानुप्रासगत सौंदर्य नहीं रहेगा, भले ही इस शब्द के कारण इसके अर्थ में किसी प्रकार का अंतर नहीं पड़े। पद, पदुम के कारण ही यहाँ छेकानुप्रास निष्पन्न होता है। आचार्य मम्मट ने अन्वयव्यतिरेक-सिद्धांत को ही शब्दालंकार और अर्थालंकार का नियामक माना है। [दे० अर्थालंकार] शब्दालंकार का सौंदर्य श दाश्रित या शब्द पर ही निर्भर करता है और उसमें उसका ही (शब्दगत सौंदर्य का) प्राधान्य है।

शम—शांतरस का स्थायी भाव। [दे० शांतरस] शम का अर्थ है शांति। विषयवासना के प्रति मन की शांति या निवृत्ति को शम कहते हैं। इसका स्थायी भाव के रूप में हेमचंद्र, रामचंद्र-गुणचंद्र, विद्यानाथ तथा विश्वनाथ ने वर्णन किया है। [दे० निर्वेद]

शय्या—भोज-निरूपित एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। प्रस्तुताप्रस्तुत पदार्थों की परस्पर घटना को शय्या कहा जाता है। इसके प्रक्रांत, अप्रक्रांत, अतिक्रांत, पद, वाक्य तथा प्रकीर्ण घटना आदि भेद हैं। यह शब्दालंकार के अंतर्गत है।

शय्येत्याहुः पदार्थानां घटनायां परस्परम् ॥

—सरस्वतीकंठाभरण, २/५४

शांतरस—तत्त्व-ज्ञान तथा वैराग्य के कारण शांत रस उत्पन्न होता है। इसका स्थायी भाव निर्वेद है। [दे० निर्वेद] शांत रस के आलंबन हैं—अनित्य रूप संसार का ज्ञान तथा परमार्थ-चिंतन आदि। इसके उद्दीपन पुण्याश्रम, तीर्थस्थान, रमणीय वन और सत्संग आदि हैं। संचारी भाव हैं—धृति, निर्वेद, मति, स्मृति, हर्ष आदि। अनुभाव रोमांच आदि। शांत रस का रंग शुक्ल माना गया है और देवता लक्ष्मीनारायण हैं। विश्वनाथ के शब्दों में इसका वर्णन इस प्रकार है—

शांतः शमस्थायिभाव उत्तमप्रकृतिर्मतः ॥
कुंदेंदुसुंदरच्छायः श्रीनारायणदैवतः ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनित्यत्वादिनाऽशेषवस्तुनिःसारता तु या ॥
परमात्मनः स्वरूपं वा तस्यालंबनमिष्यते ।
पुण्याश्रमहरिक्षेत्रतीर्थरम्यवनादयः ।
महापुरुष संगाद्यास्तस्योद्दीपनरूपिणः ॥
रोमांचाद्या अनुभावास्तथा स्युर्व्यभिचारिणः ॥
निर्वेदहर्षस्मरण मतिभूतदयादयः ॥

—साहित्यदर्पण, ३/२४५-२४८

आचार्य मम्मट शांत रस का स्थायी भाव निर्वेद को मानते हैं; पर विश्वनाथ ने शम (स्वात्मविश्रांति रूप) को इसका स्थायी भाव स्वीकार किया है। हेमचंद्र और रामचंद्र (नाट्यदर्पणकार) भी शम को ही शांत का स्थायी भाव मानते हैं। हेमचंद्र ने शम का अर्थ 'तृष्णाक्षय' किया है।

निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शांतोऽपि नवमो रसः ॥

—काव्यप्रकाश, ४/३५

वैराग्यादिविभावो यमाद्यनुभावो धृत्यादिव्यभिचारी शमः शांतः। वैराग्य संसारभीरुतातत्त्वज्ञानवीतरागपरिशीलनपरमेश्वरानुग्रहादिविभावो यमनियमाध्यात्मशास्त्रचिंतनाद्यनुभावो धृतिस्मृतिनिर्वेदमत्यादिव्यभिचारी तृष्णाक्षयरूपः शमः स्थायिभाव प्राप्तः शांतो रसः। —काव्यानुशासन, २/१७

[नाट्यदर्पण, ४/१२२]

भरत ने अपने 'नाट्यशास्त्र' में केवल आठ ही रसों का वर्णन किया है और शांत को अनभिनेय मानकर उसका निरूपण नहीं किया। महाकवि कालिदास भी भरत-सम्मत आठ रसों का ही उल्लेख करते हैं।

मुनिना भरतेन यः प्रयोगो भवतीष्वष्टरसाश्रयो नियुक्तः ।
ललिताभिनयं तमद्य भर्ता मरुता द्रष्टुमनाः सलोकपालः ॥

—विक्रमोर्वशीयम्, २/८

भरत के पश्चात् दंडी ने भी आठ रसों का उल्लेख किया है—

इह त्वष्टरसायत्ता रसवत्ता स्मृता गिराम् ॥

—काव्यादर्श, १/२९२

सर्वप्रथम उद्भट ने नौ रसों का वर्णन किया है—

शृंगारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः ।
बीभत्साद्भुतशांताश्च नव नाट्ये रसाः स्मृताः ॥

—काव्यालंकारसारसंग्रह, ४/४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भरत से पूर्व भी परंपरा से आठ ही रस प्रसिद्ध थे। स्वयं भरत ने भी इसकी पुष्टि कर अपने पूर्ववर्ती द्रुहिण नामक आचार्य का नाट्यशास्त्र में उल्लेख किया है।

एते ह्यष्टौ रसाः प्रोक्ता द्रुहिणेन महात्मना ॥

—नाट्यशास्त्र, ६/१७

अभिनव गुप्त शांत रस के पक्षधर हैं। उन्होंने 'अभिनवभारती' में शांत रस की रसनीयता पर विशद विवेचन प्रस्तुत किया है। उनके पूर्व काव्य-शास्त्रियों में शांत रस की मान्यता के संबंध में मतभेद था और यह अत्यंत विवाद-ग्रस्त विषय भी था। अभिनव ने अकाट्य प्रमाणों के द्वारा शांत रस की श्रेष्ठता सिद्ध की और अपने पक्ष की पुष्टि के लिए नाट्यशास्त्र का ही मत उद्धृत किया। उन्होंने नाट्यशास्त्र के किसी संस्करण से भरत-वर्णित शांत रस-विषयक कुछ अंश प्राप्त किए और उन पर अपनी व्याख्या लिखी।

क्वचिद्धर्मः क्वचित् क्रीडा क्वचिदर्थः क्वचित् शमः ॥

अथ शांतो नाम शमस्थायिभावात्मको मोक्षप्रवर्त्तकः। स तु तत्त्वज्ञान वैराग्याशयशुद्ध्यादिभिर्विभावैः समुत्पद्यते। तस्य यमनियमाध्यात्मध्यानधारणो-पासनसर्वभूतदयालिंगग्रहणादिभिरनुभावैरभिनयः प्रयोक्तव्यः। व्यभिचारिण-श्चास्य निर्वेदस्मृतिधृतिसर्वाश्रमशौचस्तंभरोमांचादयः।

—नाट्यशास्त्र, ६/१-५ प्रक्षिप्त अंश

"शांतरस शम स्थायी भाववाला एवं मोक्ष-प्रवर्त्तक होता है। उसकी उत्पत्ति तत्त्वज्ञान, वैराग्य एवं चित्तशुद्धि आदि विभावों के द्वारा होती है। उसका अभिनय यम, नियम, अध्यात्मध्यान, धारणा, उपासना, सभी प्राणियों के प्रति दया आदि अनुभावों के द्वारा होता है। निर्वेद, स्मृति, धृति, सर्वाश्रम शौच, स्तंभ, रोमांच आदि उसके व्यभिचारी भाव हैं। शांत रस मोक्ष एवं आध्यात्मिक ज्ञान में प्रवृत्त करनेवाला तथा तत्त्वज्ञान के कारणों से युक्त होता है।"

—नाट्यशास्त्र की हिंदी व्याख्या, डॉ० रघुवंश, पृ० ३६१

यह मत प्रक्षिप्त है; क्योंकि 'नाट्यशास्त्र' के दो स्थलों पर भरत ने आठ रसों की ही स्वीकृति प्रदान की है। भरत रसप्रकरण के अंत में भी (नाट्य-शास्त्र में) यह कहते हैं कि लक्षणों द्वारा आठ रसों को ही जानना चाहिए—

एवमेते रसा ज्ञेयास्त्वष्टौलक्षणलक्षिताः। ६/८३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शांतरस के समर्थक आचार्य इसकी परंपरा की प्राचीनता सिद्ध करते हुए 'महाभारत' को भी शांतपरक ग्रंथ मानते हैं। शांतरस के विपक्ष में निम्नांकित तर्क दिए गए हैं—

क. इसे भरत ने स्वीकृति प्रदान नहीं की है या यह भरत-सम्मत नहीं है।

ख. यह नाट्य में अप्रयोजनीय है; क्योंकि इसका अभिनय नहीं हो सकता। यह सार्वजनीन नहीं है।

ग. शांतरस में राग-द्वेष बाधक सिद्ध होते हैं, पर संसार राग-द्वेष-रहित नहीं है; अतः इसके साथ हृदय-संवाद संभव नहीं।

घ. शांत रस को वीर या बीभत्स रस में गतार्थ किया जा सकता है।

धनंजय आठ स्थायी को मान्यता देते हुए नवें स्थायी शम को तथा उसके शांतरस को नाटक में स्थान नहीं देते। यह रूपकों के अनुपयुक्त है। उनका मत है कि नाट्याचार्य भरत ने अन्य रसों के विभावादिकों का तो वर्णन किया है; पर उन्होंने न तो शांतरस के साधनों का ही वर्णन किया है और न इसका लक्षण प्रस्तुत किया। अतः, शांतरस को स्वतंत्र रूप से रस मानना प्रस्थानविरुद्ध एवं भरत के विचार के प्रतिकूल है।

पूर्व मत के अनुसार तो शांत की स्थिति केवल नाटक में ही अमान्य है, पर द्वितीय मतावलंबी शम के अस्तित्व को अव्यावहारिक समझकर उसका वास्तविक अभाव मानते हैं। इनके अनुसार शांत रस की स्थिति तभी संभव है, जब व्यक्ति में राग-द्वेष का नाश हो जाय। पर, राग-द्वेष की निवृत्ति संभव नहीं; क्योंकि यह अनादि काल से मानव-मन में परिव्याप्त है और जब राग-द्वेष का नाश नहीं हो सकता तो फिर यह रस कैसे पुष्ट होगा?

कतिपय व्यक्ति शांतपरक चित्तवृत्ति को स्वीकार करके भी उसे पृथक् स्थायी भाव नहीं मानते। उनके मत से शम को वीर तथा बीभत्स रसों में अंतर्भुक्त किया जा सकता है। धनिक ने शांतरस-विरोधी तीन पक्षों का कथन कर अपना अभिमत यह दिया कि शम स्थायी रूपक के सर्वथा अनुपयुक्त है। नाटकादि रूपकों की आत्मा अभिनय है और 'शम' में व्यक्ति की समस्त लौकिक प्रक्रियाओं का लोप हो जाने के कारण उसका अभिनय नहीं किया जा सकता। अतः अभिनय की अशक्यता के कारण नाटकादि में शम की स्थिति स्वीकार्य नहीं है। कुछ व्यक्ति हर्ष-विरचित 'नागानंद' नाटक में शांत रस का प्राधान्य मानकर उसका स्थायी भाव 'शम' मानते हैं। पर, संपूर्ण प्रबंध में जीमूतवाहन और मलयवती के प्रेम का निर्वाह होने से अंत में उसे विद्याधर-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चक्रवर्तित्व प्राप्त होता है जो शम के विरुद्ध है। शम की स्थिति में अनुराग का वर्णन और लौकिक सुख की प्राप्ति, दोनों ही विरोधी हैं। अतः, नागानंद का स्थायी भाव उत्साह है और रति अर्थात् मलयवती का प्रेम उसका अंग होकर आया है।

धनंजय का कहना है कि निर्वेदादि स्थायी भाव की शर्तें पूरी नहीं करते अर्थात् ये (निर्वेद और शम) विरुद्ध या अविरुद्ध भावों से विच्छिन्न न होने से स्थायी भावों की श्रेणी में नहीं आते। यदि काव्य या नाटक में इनकी पुष्टि हो, तो भी ये रसविकार या वैरस्य उत्पन्न करेंगे।

रत्युत्साहजुगुप्साः क्रोधो हासः स्मयो भयं शोकः।
शममपि केचित्प्राहुः पुष्टिर्नाट्येषु नैतस्य॥
निर्वेदादिरताद्रूप्यादस्थायी स्वदते कथम्।
वैरस्यायैव तत्पोषस्तेनाष्टौ स्थायिनो मताः॥

[दे० दशरूपक के उक्त श्लोकों पर धनिक की व्याख्या]

—दशरूपक, ४/१५, १६

उपर्युक्त मतों के विरुद्ध भी शांतरस के पक्ष में अकाट्य तर्क प्रस्तुत किए गए हैं—

क. यह आवश्यक नहीं कि शांत रस को भरत-द्वारा मान्यता प्राप्त हो ही, आस्वाद या रसन के योग्य होने पर इसे स्वतंत्र रस माना जा सकता है। स्वयं भरत ने भी निर्वेद के दो प्रकारों में एक को तत्त्वज्ञान कहा है, संभवतः वे इसके द्वारा शांत रस का निर्देश करना चाहते हैं। व्यावहारिक दृष्टि से भी शांतरसपरक रचनाओं के आधार पर इसकी मान्यता आवश्यक है।

ख. रंगमंच की दृष्टि से शांतरस को अनुपयोगी एवं अव्यावहारिक माननेवाले आचार्यों, विशेषतः धनंजय एवं धनिक का कहना है कि शांत रस के स्थायी भाव शम में सभी व्यापारों का लय हो जाता है। चूँकि अभिनय में व्यापार की ही प्रधानता रहती है, अतः व्यापारलय के कारण शांतरस का अभिनय नहीं हो सकता।

सर्वथा नाटकादावभिनयात्मनि स्थायित्वमस्माभिः शमस्य निषिध्यते। तस्य समस्त व्यापारप्रविलयरूपस्याभिनययोगात्।

—धनिक की टीका, दशरूपक, ४/३५

विचार करके देखा जाय तो शांत रस का उद्देश्य चेष्टाओं का उपराम नहीं लगता। अनेक रस ऐसे हैं, जिनकी कतिपय चेष्टाओं को रंगमंच पर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रदर्शित नहीं किया जाता और 'नाट्यशास्त्र' में उन्हें वर्जित दृश्य के अंतर्गत माना गया है। जैसे, शृंगार के अंतर्गत चुंबन, आलिंगन आदि। रौद्र रस के अंतर्गत मरण या हत्या के दृश्य को भी रंगमंच पर नहीं दिखाया जाता। "इसी प्रकार शांत रस में भी क्रियाओं के पूर्ण शमन के प्रदर्शन की आवश्यकता नहीं है। अपितु स्वभावगत लौकिक सुख-दुःख के प्रति विराग के प्रदर्शन से ही काम चलाया जा सकता है। पात्र के अंतःसंघर्ष को प्रकट करते हुए सत्य-प्राप्ति अथवा आत्मज्ञानोपलब्धि के लिए किए गए प्रयत्नों का दिग्दर्शन-मात्र ही शांतरस को उपस्थित कर सकता है। इस बात को स्वीकार कर लेने पर यह आपत्ति भी निरर्थक सिद्ध हो जाती है कि शांत में संचारी आदि की अनिवार्यता के कारण रसत्व स्वीकार नहीं किया जा सकता; क्योंकि यदि शांतरस नाट्यादि में सर्वेंद्रिय-व्यापारोपराम के रूप में वर्ण्य नहीं माना गया है, तो उसके संचार्यादि अवश्य माने जा सकते हैं।"

—रससिद्धांत : स्वरूपविश्लेषण, पृ० २५८-२५६

ग. शांतरस के विरोधियों को उत्तर देते हुए विश्वनाथ का कहना है कि स्थायी भाव 'शम' युक्त (ब्रह्मध्यानमग्न) अथवा वियुक्त (सिद्ध) अवस्थाओं में विद्यमान रहता है। अतएव ऐसी स्थिति में इसमें संचारी भावों के पोषण की चर्चा युक्तियुक्त है। शांतरस उस समुद्र की भाँति है, जिसमें दयावीर आदि रस सभी प्रकार के अहंकार के भावों से मुक्त हो जाने पर इसमें डूबने-उतराने लगे। [दे० साहित्यदर्पण, ३/२५०-२५१]

घ. सभी रस सभी व्यक्तियों के लिए उपयुक्त नहीं होते। शांतरस सार्वजनीन नहीं हो सकता; फिर भी वीतराग पुरुषों के लिए इसका महत्त्व स्वीकार्य है। इस दृष्टि से तो रसराज शृंगार भी सार्वजनीन नहीं हो सकता। योगियों, महात्माओं अथवा वृद्धों के लिए शृंगार का महत्त्व कुछ भी नहीं है; फिर भी उसे रसराज माना गया है। अतः, कतिपय व्यक्तियों के लिए महत्त्वपूर्ण होने के कारण, विशेषतः वीतराग पुरुषों के लिए, शांतरस आस्वादनीय एवं संवेद्य माना जा सकता है।

ङ. शांत रस का अंतर्भाव वीर या बीभत्स रस में संभव नहीं। वीर रस में किसी-न-किसी रूप में अहंकार की प्रधानता रहती है और शांतरस में वैराग्य की ही महत्ता होती है। अतः, दोनों की भिन्न दिशाएँ होने के कारण वीर में शांतरस को गतार्थ नहीं किया जा सकता और इसकी महत्ता इन आक्षेपों के होने पर भी कम नहीं हो सकती।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शांतरस के भेद—

रुद्रभट्टकृत 'रसकलिका' में शांतरस के चार भेद किए गए हैं—वैराग्य, दोषनिग्रह, संतोष और तत्त्व-साक्षात्कार।

उदाहरण—

क. मलयानिलकालकूहयो रमणीकुंतलभोगिभोगयोः।
श्वपचात्मभुवोनिरंतरा ममजाता परमात्मनि स्थितिः॥

"मलय पर्वत के पवन और विष में कामिनियों के केशकलाप और सर्प की फणा में एवं चांडाल तथा ब्रह्मा में तुल्य अर्थात् भेद-रहित मेरी स्थिति परमात्मा में सो गई है।" यहाँ आलंबन है सारा संसार तथा अनुभाव, सभी पदार्थों में समदृष्टि है। संचारी मति आदि हैं और स्थायी निर्वेद है।

ख. बन बितान रबि ससि दियो, फल भख सलिल-प्रबाह।
अवनि-सेज पंखा-पवन, अब न कछू परवाह॥

स्थायीभाव—निर्वेद, आलंबन—संसार की अनित्यता का कथन, उद्दीपन—वन, अनुभाव—अब न कछू परवाह की उक्ति, संचारी—मति, धृति, हर्ष आदि।

शाब्दी व्यंजना—व्यंजना का एक भेद। [**दे० व्यंजना**] वाचक शब्द तथा लक्षक शब्द के आधार पर शाब्दी व्यंजना के दो भेद किए गए हैं—अभिधामूलाव्यंजना [**दे० अभिधामूलाव्यंजना**] तथा लक्षणामूलाव्यंजना [**दे० लक्षणामूलाव्यंजना**]।

शारदातनय—इनका प्रसिद्ध नाट्यशास्त्रीय ग्रंथ 'भावप्रकाशन' है। इसमें रस-संबंधी अनेक मौलिक एवं महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रस्तुत किए गए हैं। शिंगभूपाल (१३२० ई०) ने इनका उल्लेख किया है, अतः ये १३वीं शती के मध्य हुए होंगे। 'भावप्रकाशन' में अनेक अज्ञात रसाचार्यों की रस-विषयक मान्यताओं को प्रस्तुत कर लेखक ने ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। ऐसे आचार्यों में वृद्धभरत, वासुकि, पद्मभू तथा नारद हैं, जिनके मत उद्धृत किए गए हैं और नाटक के प्रकरण में कोहल का नामोल्लेख है।

['भावप्रकाशन' गायकवाड़ ओरियंटल सीरीज संख्या ४५, १९३० ई० में प्रकाशित हो चुका है।]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शारदातनय ने अपने ग्रंथ के निर्माण में भोजकृत 'शृंगारप्रकाश' तथा 'काव्यप्रकाश' से प्रभूत सहायता ग्रहण की है और इनके अनेक उद्धरण प्रस्तुत किए हैं। 'भावप्रकाशन' में रस, अनुभाव तथा भाव के संबंध में नवीन स्थापनाएं हुई हैं। इसके प्रतिपाद्य विषय हैं—भाव, रस, शब्दार्थसंबंध तथा रूपक। ग्रंथ दस अधिकार या अध्यायों में विभक्त है, जिसमें क्रमशः भाव, रस का स्वरूप, रस-भेद, नायक-नायिका, नायिकाभेद, शब्दार्थ-संबंध, नाट्य-इतिहास और शरीर, दशरूपक, नृत्य-भेद और नाट्यप्रयोग का विवेचन है। 'भावप्रकाशन' का रस-निरूपण भट्टनायक से अनुप्राणित है। इनके अनुसार रस का अनुभविता सहृदय है।

रसालंबनभावानामुक्ताः साधारणा गुणाः ।
सुखेप्सवस्तु सर्वेऽपि भोगस्तत्सुखसाधनम् ।।

—भावप्रकाशन, ४/१

शारदातनय ने बताया है कि विभिन्न प्रकार के व्यक्ति विभिन्न दृष्टियों एवं रुचि के अनुसार नाटक का रसास्वादन करते हैं।

इन्होंने रस तथा उनके आधारभूत भावादि का वर्णन विस्तारपूर्वक करते हुए नाट्य तथा नाट्यांगों का विवेचन रस के आधाररूप में किया है; अन्य नाट्याचार्यों की भाँति रस को नाटक का अंग नहीं माना। भावप्रकाशन-कार ने ध्वनि की संक्षिप्त चर्चा कर परंपरानुरोध से उसे उत्तम काव्य माना है; पर उसे तात्पर्य-शक्ति के अंतर्गत स्वीकार कर उसका अवमूल्यन कर दिया है। रस को असंलक्ष्यक्रमव्यंग्य का भेद मानकर भी ये उसका विवेचन ध्वनि-प्रकरण के अंतर्गत नहीं करते और उसे उससे पूर्व स्वतंत्र अध्याय में स्थान देते हैं। उनके इस कार्य से ध्वनि तथा रसवादी आचार्यों के दृष्टिकोण का पार्थक्य प्रकट हो जाता है। इन्होंने भाव, अनुभावादि के संबंध में अनेक नवीन तथ्य प्रस्तुत किए हैं। उद्दीपन के आठ प्रकार माने गए हैं—ललित, ललिताभास, स्थिर, चित्र, खर, रुक्ष, निंदित तथा विकृत। शृंगार तथा हास्य के उद्दीपन ललित तथा ललिताभास हैं, वीर और अद्भुत के स्थिर तथा चित्र, रौद्र एवं करुण के खर और रुक्ष, भयानक का विकृत और बीभत्स का उद्दीपन निंदित है। अनुभावों के नामकरण तथा विवेचन में भी नावीन्य प्रदर्शित किया गया है। इसके चार प्रकार हैं—मनारंभानुभाव, वागारंभानुभाव, गात्रारंभानुभाव और बुद्ध्यारंभानुभाव। मानसिक अनुभाव को मनारंभानुभाव कहा गया है तथा गात्र और मन को स्त्रियों से संबद्ध मानकर दोनों के दस-दस भेद

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

किए गए हैं। मनारंभ के अंतर्गत हाव, भाव, हेला, शोभा, कांति, दीप्ति, माधुर्य, प्रागल्भ्य, धैर्य और औदार्य को तथा गात्रारंभानुभाव में लीला, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम, किलकिंचित्, मोट्टायित, कुट्टमित, विव्वोक, ललित तथा विहृत को स्थान दिया गया है। ये सभी भावों को सत्त्वज मानकर उन्हें सात्त्विक भाव कहते हैं।

> भावानामपि सर्वेषां यैः स्वसत्ता विभाव्यते।
> ते भावाः सत्त्वजन्मानः सात्त्विका इति दर्शिता ॥
>
> —भावप्रकाशन, पृ० ३८

करुणा, हास्य, रौद्र आदि रसों के विविध भेदों का कथन कर रसाभास और रसास्वाद के संबंध में भी नया विचार प्रकट किया गया है। इन्होंने करुणरस के तीन भेद किए हैं—मानस, वाचिक और कर्म; शृंगार के वाचिक, नैपथ्यात्मा और क्रियात्मा; वीररस के युद्धवीर, दानवीर एवं दयावीर; अद्भुत के मानसाद्भुत, आंगिकाद्भुत एवं वाचिकाद्भुत आदि भेदों का उल्लेख किया गया है। इनके अनुसार अंगीरसों की अप्रधानता ही रसाभास है। जब अंगीरस का एक अंश एवं अंगरस का दो भाग प्रयुक्त हो जाय तो वहाँ रसाभास होगा। शृंगाररसाभास हास्य से प्रभावित होता है और हास्य एवं बीभत्स के मिश्रण से हास्यरसाभास उत्पन्न होता है। वीर और भयानक के मिश्रण से वीर-रसाभास और अद्भुत तथा करुण के मेल से अद्भुतरसाभास होता है। शोक और भय के मिश्रण से रौद्ररसाभास होता है और हास्य तथा शृंगार से मिश्रित करुणरस करुणरसाभास है। अद्भुत तथा शृंगार के मिश्रित बीभत्स को बीभत्सरसाभास कहते हैं तथा रौद्र और वीररस के संयोग से भयानक रसाभास होता है। [दे० भावप्रकाशन, पृ० १३३] शारदातनय नाटक को काव्य का प्रतीक मानकर, उसे सर्वरसाश्रय तथा प्रेक्षक, नट और कवि तीनों के लिए मुक्ति-भुक्तिप्रद मानते हैं।

> इत्थमुक्तक्रमोपेतं नाट्यं सर्वरसाश्रयम्।
> प्रेक्षकस्य प्रयोक्तुश्च कवेः स्याद् भुक्तिमुक्तिदम् ॥
>
> —भावप्रकाशन, पृ० ३१३

शास्त्रकवि—राजशेखर-द्वारा निर्धारित कवियों का एक प्रकार। इस प्रकार का वर्गीकरण काव्य के विषय की दृष्टि से किया गया है। जो कवि काव्यतत्त्व में शास्त्र का समावेश करे, उसे शास्त्र कवि कहते हैं। राजशेखर के अनुसार इसके तीन प्रकार होते हैं—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क. जो विभिन्न प्रकार के छंदों में शास्त्र का विधान करे।

ख. जो शास्त्र की रचना करते समय उसमें काव्य के मनोरम तत्त्व का सन्निवेश करे।

ग. जो काव्य में शास्त्र का सन्निवेश करे। [दे० कवि]

तत्र त्रिधा शास्त्रकविः। यं शास्त्रं विधत्ते, यश्च शास्त्रे काव्यं संविधत्ते, योऽपि काव्ये शास्त्रार्थं निधत्ते।

—काव्यमीमांसा, पंचम अध्याय, पृ० ४४,
चौखंबा-संस्करण (हिंदी अनुवाद)

शिक्षा—नायिका की सखी का एक कार्य। [दे० सखी]। हित-कार्य में प्रवृत्त होने (करने) और अहित कार्य में निवृत्त करने के उपदेश को शिक्षा कहते हैं। नायिका को सिखाना शिक्षा है।

शिक्षा हिताहितप्रवृत्तिनिवृत्त्युपदेशः

—रसमंजरी, पृ० १६२

सिक्षा बिनय-बिलास। —जगद्विनोद, ३५०

उदाहरण—

क. सानंदमालि ? वनमालिविलोकनाय
निर्गच्छ कुंजमिति किंतु विचारयेथाः।
झंकारिणो मधुलिहो दिवसे भ्रमंति
रात्रौ पुनश्चपलचंचुपुटाश्चकोराः॥

—रसमंजरी, ९४

"हे सखी (राधा)! वनमाली (कृष्ण) को देखने के लिए आनंद के साथ कुंज की ओर जाओ। पर, दो बातों का ध्यान रखना कि दिन में झंकार से मुखर भ्रमरगण भ्रमण करते रहते है और रात्रि में चपल चोंचवाले चकोर घूमते रहते हैं।

ख. बहति लाज बूड़त सुमन, भ्रमत नैन तेहि ठाँव।
नेह-नदी की धार में, तू न दीजियो पांव॥

—जगद्विनोद, ३५४

शिंगभूपाल—इन्होंने नाटक एवं संगीत-विषयक शास्त्रीय ग्रंथों की रचना की है। इनका प्रसिद्ध ग्रंथ 'रसार्णवसुधाकर' है, जो नाट्यशास्त्र एवं रस का प्रौढ़ ग्रंथ माना जाता है। इन्होंने 'संगीतरत्नाकर' नामक संगीतशास्त्रीय ग्रंथ की टीका लिखी है, जिसके प्रणेता शार्ङ्गधर थे। 'रसार्णवसुधाकर' की पुष्पिका

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में लेखक ने अपना परिचय दिया है, जिसके अनुसार ये आंध्रमंडलाधीश्वर (अन्नपोत) आंध्रपोत के पुत्र थे। इनका समय सत्रहवीं शती है। 'रसार्णव-सुधाकर' तीन उल्लासों में विभक्त है—रंजकोल्लास, रसिकोल्लास तथा भावोल्लास। इनमें नायक-नायिका-भेद, रस तथा रूपकों का विवेचन है। इसका प्रकाशन अनंतशयन-ग्रंथमाला (सं० ५०) में १९१६ ई० में हुआ है।

शिल्पक—उपरूपक का एक भेद। [**दे० उपरूपक**] इसमें चार अंक होते हैं और चारों वृत्तियों का प्रयोग किया जाता है। इसका नायक ब्राह्मण होता है तथा उपनायक कोई निम्न श्रेणी का व्यक्ति। इसमें शांत तथा हास्य के अतिरिक्त सभी रसों का प्रयोग किया जाता हैं तथा श्मशान एवं शव का वर्णन होता है। शिल्पक में २७ अंग होते हैं—आशंसा (आशा), तर्क, संदेह, ताप, उद्वेग, प्रसक्ति (आसक्ति), प्रयत्न, ग्रथन, उत्कंठा, अवहित्था, प्रतिपत्ति, विलास, आलस्य, वमन, प्रहर्ष, अश्लील, मूढ़ता, साधनानुगमन, उच्छ्वास, विस्मय, प्राप्ति, लाभ, विस्मृति, संफेट, वैशारद्य, प्रबोधन तथा चमत्कृति। इसका उदाहरण 'कनकावतीमाधव' है।—

चत्वारः शिल्पकेऽङ्काः स्युश्चतस्रो वृत्तयस्तथा।
अशांतहास्याश्च रसा नायको ब्राह्मणो मतः॥
वर्णनात्र श्मशानादेर्हीनः स्यादुपनायकः।
सप्तविंशतिरंगानि भवंत्येतस्य तानि तु॥
आशंसातर्कसंदेहतापोद्वेगप्रसक्तयः।
प्रयत्नग्रथनोत्कंठावहित्थाप्रतिपत्तयः॥
विलासालस्यवाष्पाणि प्रहर्षाश्वासमूढ़ताः।
साधनानुगमोच्छ्वासविस्मयप्राप्तयस्तथा॥
लाभविस्मृतिसंफेटा वैशारद्यं प्रबोधनम्।
चमत्कृतिश्चेत्यमीषां स्पष्टत्वाल्लक्ष्म नोच्यते॥

—साहित्यदर्पण, ६/२९६-३००

शुद्धालक्षणा—प्रयोजनवती लक्षणा का एक भेद। [**दे० प्रयोजनवती लक्षणा**] जब सादृश्य-सबंध (समान गुण या धर्म) के अतिरिक्त अन्य संबंध से लक्ष्यार्थ का ज्ञान हो तो शुद्धालक्षणा होगी। शुद्धालक्षणा में एक सौ संबंधों की कल्पना की गई है—जैसे सामीप्यसंबंध, आधाराधेयसंबंध, तात्कर्म्यसंबंध, कार्यकारणसंबंध, साहचर्य और अंगांगिभाव आदि। विश्वनाथ ने इस संबंध में अपना विचार प्रकट करते हुए कहा है—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सादृश्येतर संबंधाः शुद्धास्ताः सकला अपि।
सादृश्यात्तु मता गौण्यस्तेन षोडशभेदिता ॥

—साहित्यदर्पण, २/९, १०

कर के मीड़े कुसुम लौं गई विरह कुम्हिलाय।
सदा समीपिन सखिन हूँ, नीठि पिछानी जाय ॥

—बिहारी

यहाँ अंगांगिभाव संबंध से लक्षणा है। कर से मर्दित कुसुम के समान विरह-मलिन नायिका की समता करने में शुद्धा लक्षणा है। कुसुम कर से मर्दित न होकर कराग्र से होता है, या उँगलियों से। उँलियों को कर कहने के कारण यहाँ मुख्यार्थ में बाधा है। पर, अंगांगिभाव संबंध से कर का लक्ष्यार्थ उँगली किया गया। यहाँ कवि का प्रयोजन नायिका को अति मलिन बताना है।

शुद्धा लक्षणा के दो भेद हैं—उपादानलक्षणा और लक्षणलक्षणा। इनके भी सारोपा और साध्यवसाना नामक दो-दो प्रकार होते हैं।

शैशवयौवना—मुग्धा नायिका का एक नाम। शैशव और यौवन की संधि जिसमें प्रकट हो। [दे० मुग्धा]

शोक—करुण रस का स्थायी भाव। [दे० करुणरस] इष्ट पदार्थ या प्रिय वस्तु के नष्ट होने से उत्पन्न चित्त की व्याकुलता को शोक कहते हैं। इसका सर्वप्रथम निरूपण भरत ने किया है। इनके अनुसार इष्टजन के वियोग, धन या विभव का नाश, प्रिय व्यक्ति की मृत्यु एवं प्रियजन के कारावास से उत्पन्न दुःख को शोक कहते हैं।

शोकोनाम — इष्टजनवियोगविभवनाशवधबंधदुःखानुभवनादिभिर्विभावैः समुत्पद्यते। तस्याश्रुपात परिदेवितविलपितवैवर्ण्यस्वरभेदस्रस्तगात्रताभूमिपतनसस्वनरुदिताक्रंदितदीर्घनिःश्वसितजडतोन्मादमोहरणादिभिरनुभावैरभिनयः प्रयोक्तव्यः।

—नाट्यशास्त्र, ७/११, पृ० ३५१

आनंदेर्प्यार्तिकृतं त्रिविधं रुदितं सदा बुधैर्ज्ञेयम्।
तस्य त्वभिनययोगान्विभावगतितः प्रवक्ष्यामि ॥
हर्षोत्फुल्लकपोलं सानुस्मरणादपांगविसृताश्रम्।
रोमांचगात्रमनिभृतमानंदसमुद्भवं भवति ॥
पर्याप्तविमुक्तास्रं सस्वनमस्वस्थगात्रगतिचेष्टम्।
भूमिनिपातनिर्वाततविलपितमित्यार्जितं भवति ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रस्फुरितौष्ठकपोलं सशिरःकंपं तथा सनिःश्वासम्।
भ्रूकुटीकटाक्षकुटिलं स्त्रीणामीर्ष्याकृतं भवति॥
स्त्रीनीचप्रकृतिष्वेष शोको व्यसनसंभवः।
धैर्येणोत्तममध्यानां नीचानां रुदितेन च॥

—नाट्शास्त्र, ७/११-१४

भरत ने बताया कि शोक भाव का अभिनय अश्रुपात, परिताप, विलाप करने, मुँह के फीका पड़ने, स्वरभंग होने, अंगों के शिथिल पड़ने, भूमि पर गिरने, सस्वर रुदन करने, उच्छ्वास लेने, जड़ता, मोह एवं मरण प्रभृति अनुभावों द्वारा होना चाहिए।

शोक के क्रम में रुदन के तीन प्रकार माने गए हैं।

आनंद से उत्पन्न, आर्तभाव जनित तथा ईर्ष्याभाव से उत्पन्न।

विद्यानाथ ने इष्टजनों के वियोग तथा अपने दुःख की अधिकता के कारण शोक की उत्पत्ति बताई है।

इष्टजनवियोगादिनात्मनि दुःखातिभूमिः शोकः।

—प्रतापरुद्रीय, पृ० १६४

नाट्यदर्पणकार के मतानुसार निर्वेद से युक्त दुःख शोक है।

निर्वेदानुविद्धं दुःखं शोकः। —नाट्यदर्पण, पृ० ३३०

विश्वनाथ ने इष्टनाश के कारण उत्पन्न विकलता को शोक कहा है।

इष्टनाशादिभिश्चेतोवैक्लव्यं शोकशब्दभाक्।

—साहित्यदर्पण, ३/१७७

भानुदत्त के अनुसार "अपने किसी प्रियजन के वियोग से उत्पन्न होनेवाले रतिस्पर्श से रहित परिमित मनोविकार को शोक स्थायी भाव कहते हैं।

इष्टजनविश्लेषजनितो रत्यालिंगितः परिमितो मनोविकारः शोकः। न चेष्टविश्लेषजनित विप्रलंभश्रृंगारस्य करुणरसत्वापत्तिः। तस्य रत्यालिंगितत्वात्।

न च रतिः प्रीतः तया विनाशोकोऽपि नोत्पद्यते इति तथा चासंभव इति-वाच्यम्, इष्टसमीहाजनितमनोविकृतेरेव रतेरुक्तत्वात्।.......तत्र-तत्र बाध-निश्चयादिष्टवस्तु समीहाया अभावात्। यत्र च मृते जीविताशा तत्र श्रृंगार एव रसः बाधसंदेहस्य ग्राह्यसंदेहपर्यवसितया समीहा अप्रतिबंधकत्वात्। तथा च यूनोरेकतरस्मिन् मृते प्रलापः करुण रसः, जीवितोर्विशिष्टयोः प्रलाप श्रृंगारः।

—रसतरंगिणी, पृ० ११४-११५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस संबंध में भानुदत्त का कहना है कि प्रियजन के वियोग से उत्पन्न विप्रलंभ शृंगार का शोक करुण रस को उत्पन्न नहीं कर सकता, क्योंकि उसमें (वियोग शृंगार में) रति भाव विद्यमान रहता है। रति का अर्थ प्रीति है। प्रीति के अभाव में शोक की उत्पत्ति नहीं हो सकती ; क्योंकि शोक कभी भी प्रीतिरहित (रत्यालिंगित) नहीं हो सकता।

पंडितराज जगन्नाथ ने इष्टजनवियोग के अतिरिक्त पुत्रादि की मृत्यु के कारण उत्पन्न चित्त की व्याकुलता को शोक कहा है—

पुत्रादि वियोगमरणादिजन्मा वैक्लव्याख्यचित्तवृत्तिविशेषः शोकः।

—रसगंगाधर, पृ० ३९

उपर्युक्त आचार्यों के मतानुसार 'शोक' नामक स्थायी भाव की उत्पत्ति अभीष्ट वस्तु के नाश, प्रियजन के वियोग, धननाश, पुत्रादि की मृत्यु तथा प्रियजनों के कारागार में बंद हो जाने के दुःख से होती है। नायक-नायिका के वियोग के कारण उत्पन्न व्याकुलता में विप्रलंभ शृंगार होगा, करुण रस नहीं। जब प्रेमपात्र की मृत्यु ही जाय, तभी करुण रस होगा और वहीं शोकस्थायी की स्थिति परिलक्षित होगी।

रिपुकृत अपमानादि तें परिमित चित्त बिकार।
जु प्रतिकूल हिय हरष को वहहि क्रोध निरधार ॥

—जगद्विनोद, २८९

उदाहरण—

क. देशे-देशे कलत्राणि देशे-देशे च बांधवाः।
तं देशं नैव पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः ॥

"देश-देश में स्त्रियाँ मिल सकती हैं और देश-देश में बंधु भी प्राप्त हो सकते हैं; पर ऐसा देश नहीं दिखाई देता, जहाँ सहोदर भ्राता मिल सके।" यहाँ लक्ष्मण के मूर्च्छित होने पर राम की विकलता में 'शोक' है।

ख. काम-बाम की खसम की भसम लगावत अंग।
त्रिनयन के नैननि जग्यो कछु करुना को रंग ॥

शिवजी के नेत्र से थोड़ा आँसू निकलना शोक भाव का व्यंजक है।

शोभा—नायिका का अयत्नज अलंकार। [दे० **नायिका के अलंकार**] रूप, यौवन, लालित्य, सुखभोग आदि से उत्पन्न शरीर की सुंदरता को शोभा कहते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शोभाकरमित्र—इन्होंने 'अलंकार रत्नाकर' नामक अलंकार-विषयक ग्रंथ की रचना की है, जिसमें १११ अलंकारों का वर्णन है। 'अलंकार रत्नाकर' का उल्लेख जयरथ (अलंकारसर्वस्व के टीकाकार), अप्पय दीक्षित तथा पंडितराज जगन्नाथ ने किया है। ग्रंथ की रचना सूत्र-शैली में हुई है और उसपर स्वयं मित्र ने वृति लिखी है तथा यत्र-तत्र परिकर श्लोक के रूप में लेखक ने अपने मत का सार प्रस्तुत कर विषय को अधिक बोधगम्य बनाया है। 'अलंकार रत्नाकर' में रूपक, स्मरण, संदेह तथा अपह्नुति अलंकार के संबंध में परंपरा-विरोधी मत प्रकट किए गए हैं और अनेक अलंकारों के भेद-प्रस्तार में नावीन्य प्रदर्शित किया गया है। शोभाकर ने लगभग ३६ नवीन अलंकारों का निरूपण किया है। वे हैं—अचित्य, अतिशय, अनादर, अनुकृति, अवरोह, अशक्य, असम, उद्भेद, आदर, आपत्ति, उदाहरण, क्रियातिपत्ति, गूढ़, तंत्र, तुल्य, निश्चय, परभाग, प्रतिप्रसव, प्रतिभा, प्रत्यादेश, प्रत्यूह, प्रसंग, वर्द्धमानक, व्याप्ति, व्यासंग, संदेहाभास, सजातीय, व्यतिरेक, विकल्पाभास, विध्याभास, विनोद, वैधर्म्य, विपर्यय, विवेक, व्यत्यास तथा समता।

शोभाकरमित्र रुय्यक के परवर्ती तथा हेमचंद्र और जयदेव के पूर्ववर्ती हैं। इन्होंने संसृष्टि अलंकार का खंडन किया है—

न संसृष्टिः पूर्वहानच्चारुत्वाभावाच्च सूत्रं १११

इनका उल्लेख काश्मीरी कवि रत्नकंठ ने किया है, जिनका समय सत्रहवीं शती है।

श्रीशोभाकरसूत्रार्थस्वल्पोहामात्रघट्टनम्।
निर्मितं रत्नकंठेन देवीस्तोत्रेऽस्वारणि ॥

शोभाकर मित्र का अलंकार-निरूपण अत्यंत प्रौढ़ है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन्होंने रुय्यककृत 'अलंकारसर्वस्व' से होड़ करने के लिए सूत्रशैली में अपना अलंकार-विषयक ग्रंथ लिखा था।

श्रम—संचारी भाव [दे० संचारी भाव] व्यायाम करने, मार्ग चलने, रतिक्रिया अथवा किसी प्रकार के परिश्रम से उत्पन्न थकावट को श्रम कहते हैं।

भरत के अनुसार मार्ग चलने तथा व्यायामादि से श्रम संचारी उत्पन्न होता है। इसका अभिनय गात्रपरिमर्दन (शरीर के मलने से), निःश्वास एवं श्रमजनित खेद प्रभृति अनुभावों द्वारा होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

श्रमो नाम—अध्वव्यायामसेवनादिभिर्विभावैः समुत्पद्यते । तस्य गात्रपरिमर्दनसंवाहननिःश्वसितविजृंभितमंदपदोत्क्षेपणनयनवदनविकूणनसीत्काराविभिरनुभावैरभिनयः प्रयोक्तव्यः । —नाट्शास्त्र, ७/४७

नृत्ताध्वव्यायामान्नरस्य संजायते श्रमो नाम ।
निःश्वासखेदगमनैस्तस्याभिनयः प्रयोक्तव्यः ॥ —वही, ७/४७

धनंजय ने मार्गगमन या रति के कारण उत्पन्न खेद को श्रम कहा है। इसके अनुभाव स्वेद और मर्दन हैं ।

श्रमः खेदोध्वरत्यादेः स्वेदोऽस्मिन्मर्दनादयः ।

—दशरूपक, ४/१२

विश्वनाथ मार्गगमन एवं रतिप्रसंग के कारण उत्पन्न खेद या थकावट को श्रम कहते हैं। इसके अनुभाव हैं—श्वास का चलना और नींद आना ।

खेदो रत्यध्वगत्यादेः श्वासनिद्राविकृच्छ्रमः ।

—साहित्यदर्पण, ३/१४६

भानुदत्त ने किसी प्रकार के श्रम से उत्पन्न थकावट को श्रम कहा है। इसके विभाव रति कर्म आदि हैं और अनुभाव हैं—स्वेद तथा थकावट को न सहना ।

आयासप्रभवः पराभवश्रमः । तस्य विभावारत्यध्वगत्यादयः । अनुभावाः स्वेदनिस्सहतादयः । —रसतरंगिणी, पृ० ६४७, पंचम तरंग

पंडितराज ने अत्यंत शारीरिक कार्य के कारण उत्पन्न खेद नामक चित्तवृत्ति को श्रम कहा है। इसके अनुभाव हैं—निःश्वास, अंगड़ाई लेना तथा निद्रा ।

बहुतरशारीरव्यापारजन्मा निश्वासांगसंमर्दनिद्रादिकारणीभूतः खेदविशेषः श्रमः । —रसगंगाधर, पृ० १०३

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह सिद्ध होता है कि मानसिक तथा शारीरिक दोनों ही प्रकार की थकावट (खेद) को श्रम कहते हैं। अंगावसाद तथा मनःखेद दोनों को ही श्रम की सीमा में रखा जा सकता है।

उदाहरण—

क. सद्यः पुरीपरिसरेऽपि शिरीषमृद्वी
सीता जवात् त्रिचतुराणिपदानि गत्वा ।
गंतव्यमस्ति कियदित्यसकृद् ब्रुवाणा
रामाश्रुणः कृतवती प्रथमावतारम् ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"शिरीष के फूल के समान कोमल अंगवाली सीता अयोध्या के निकट तीन-चार पग ही चली कि वह रामचंद्रजी से बार-बार पूछने लगी कि अभी कितनी दूर और जाना होगा। ऐसा सुनकर राम की आँखों में पहले-पहल आँसुओं का चलना प्रारंभ हो गया।"—यहाँ मार्गजनित श्रम का वर्णन है।

ख. पुरतें निकसी रघुबीर बधू धरि धीर दये मग में डग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनी जल की पुट सूखि गए मधुराधर वै॥
फिरि बूझती हैं चलनो अब केतिक पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै।
तिय की लखि आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै॥

—कवितावली

श्रव्य—भोज-वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध शब्दालंकार। इसके अंतर्गत नाटक एवं अभिनय का वर्णन कर उन्हें शब्दालंकार मान लिया गया है। श्रव्य में श्रुतिसुखदता को प्रधानता दी गई है, जिसके छह प्रकार किए गए हैं—आशीः, नांदी, नमस्कृति, वस्तुनिर्देश, आक्षिप्तिका एवं ध्रुवा।

श्रव्यं तत्काव्यमाहुर्यन्नेक्ष्यतेनाभिधीयते।
श्रोतयोरेव सुखदं भवेत्तदपि षड्विधम्॥

—सरस्वतीकंठाभरण, २/१४०

श्रीगदित—उपरूपक का एक भेद। [दे० उपरूपक] इसकी रचना एक अंक में की जाती है और प्रख्यात तथा धीरोदात्त प्रकृति के नायक का चरित्र वर्णित होता है। इसका कथानक प्रख्यात या प्रसिद्ध होता है और नायिका भी प्रख्यात हुआ करती है या वह कुलांगना होती है। गर्भ तथा विमर्श के अतिरिक्त इसमें सभी संधियों का समावेश किया जाता है और भारती वृत्ति का प्राधान्य रहता है। कतिपय विद्वानों के अनुसार इसमें नटी, लक्ष्मी का वेष धारण कर, रंगमंच पर गाना गाती है; इसीलिए इसे श्रीगदित (लक्ष्मी द्वारा गाया गया) कहते हैं। इसमें नायिका अपनी सखी के समक्ष प्रिय के शौर्य, धैर्यादि गुणों का गायन करती है और विप्रलब्धा के रूप में किसी गीत के द्वारा उसे उलाहना देती है। इसका उदाहरण 'क्रीडारसातल' है।

प्रख्यातवृत्तमेकांकं प्रख्यातोदात्तनायकम्।
प्रसिद्धनायिकं गर्भविमर्शाभ्यां विवर्जितम्॥
भारतीवृत्तिबहुलं श्रीतिशब्देन संकुलम्।
मतं श्रीगदितं नाम विद्वद्भिरुपरूपकम्॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

श्रीरासीना श्रीगदिते गायेत्किंचित्पठेदपि ।
एकांको भारतीप्राय इति केचित्प्रचक्षते ॥
—साहित्यदर्पण, ६/२९३-२९५

श्रीरिव दानवशत्रोर्यस्मिन् कुलांगना पत्युः ।
वर्णयति शौर्य-धैर्य-प्रभृतिगुणानग्रतः सख्याः ॥
पत्या च विप्रलब्धा, गातव्ये तं क्रमादुपालभते ।
श्रीगदितमिति········॥ —नाट्यदर्पण, पृ० १६१

श्रुतिकटु—शब्ददोष का प्रथम प्रकार । [शब्ददोष]

श्रुत्यनुप्रास—शब्दालंकार । अनुप्रास का एक भेद [दे० अनुप्रास] । जब कंठ, तालु आदि एक ही स्थान से उच्चरित वर्णों (व्यंजनों) की आवृत्ति या समानता हो तो श्रुत्यनुप्रास होता है । इस अलंकार में एक स्थान से उच्चार्यमाण वर्ण प्रयुक्त होते हैं । इसका सर्वप्रथम उल्लेख भोजकृत 'सरस्वतीकंठाभरण' में है । उन्होंने इसकी प्रशंसा करते हुए बतलाया कि यह सभी अनुप्रासों में श्रेष्ठ है तथा इसका प्रयोग प्रतिभाशाली कवि द्वारा ही संभव है । भोज ने इसके अनेक भेद वर्णित किए हैं—मसृण, वर्णमसृण, वर्णोत्कट, वर्णानुत्कट आदि ।

प्रायेण श्रुत्यनुप्रासस्तेष्वनुप्रासनामकः ।
सनाथैव हि वैदर्भी भाति तेन विचित्रता ॥
निवेशयति वाग्देवी प्रतिभानवतेः कवेः ।
पुण्यैरमुमनुप्रासं ससमाधिनि चेतसि ॥
—सरस्वतीकंठाभरण, २/७२,७३

विश्वनाथ इसे अनुप्रास का भेद मानते हैं । उन्होंने कहा कि तालु, कंठ आदि में से किसी एक स्थान पर उच्चरित वर्णों (व्यंजनों) की समता को श्रुत्यनुप्रास कहते हैं ।

उच्चार्यत्वाद्यदेकत्र स्थाने तालु-रदादिके ।
सादृश्यं व्यंजनस्यैव श्रुत्यनुप्रास उच्यते ॥
—साहित्यदर्पण, १०/५

एक ही स्थान पर उच्चरित वर्णों के प्रयोग के कारण इसमें श्रुतिसुखावहता का सन्निवेश होता है ।

एष सहृदयानामतीव श्रुतिसुखावहत्वाच्छ्रुत्यनुप्रासः ।
—साहित्यदर्पण, १०/५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उदाहरण--

क. दृशां दग्धं मनसिजं जीवयंति दृशैव याः।
विरूपाक्षस्य जयिनीस्ताः स्तुमोवामलोचनाः ॥

नेत्रों-द्वारा जले हुए कामदेव को जो नेत्रों से ही जिला देती हैं, इस प्रकार की वामलोचनाओं की हम स्तुति करते हैं, जो शिव पर भी विजय प्राप्त करनेवाली हैं।

यहाँ 'जीवयंति' 'याः' तथा 'जयिनी' में यकार जकार आदि तालव्य वर्ण प्रयुक्त हुए हैं।

ख. तुलसिदास सीदत निसि वासर, लखि तुम्हार निठुराई।

यहाँ अधिकतर दंत्य वर्ण प्रयुक्त हुए हैं।

झाँक न झंझा के झोंके में, झुककर खुले झरोखे से ॥

—गुप्तजी, पंचवटी

इस कविता में तालव्य वर्ण—झकार की आवृत्ति हुई है।

श्रृंखला—शोभाकर मित्र-वर्णित एक अलंकार। इस अलंकार के अंतर्गत एकावली, कारणमाला एवं मालादीपक को स्थान दिया गया है।

उत्तरोत्तरस्य पूर्वपूर्वानुबंधित्वं विपर्ययोवा श्रृंखला ॥

—अलंकार रत्नाकर, ६६

श्रृंगार रस—'श्रृंगार' शब्द 'श्रृंग' और 'आर' इन दो शब्दों के योग से निर्मित हुआ है, जिसका अर्थ है कामोद्रेक (श्रृंग) की प्राप्ति (आर) या वृद्धि। विश्वनाथ ने कामदेव के उद्भेद (अंकुरित होने) को 'श्रृंग' कहा है और उसकी उत्पत्ति का कारण, अधिकांश उत्तम प्रकृति से युक्त रस 'श्रृंगार' कहा जाता है। इसके आलंबन विभाव हैं परस्त्री तथा अनुराग-रहित वेश्या के अतिरिक्त अन्य नायिकाएँ एवं दक्षिण आदि नायक। चंद्रमा, चंदन, भ्रमर, रात्रि आदि इसके उद्दीपन विभाव हैं और अनुरागयुक्त भृकुटिभंग तथा कटाक्ष आदि इसके अनुभाव हैं। उग्रता, मरण, आलस्य तथा जुगुप्सा के अतिरिक्त अन्य सभी इसके संचारी भाव होते हैं और 'रति' इसका स्थायी भाव हैं। श्रृंगार रस का वर्ण श्याम है और इसके देवता विष्णु भगवान् हैं।

श्रृंगं हि मन्मथोद्भेदस्तदागमनहेतुकः।
उत्तमप्रकृतिप्रायो रसः श्रृंगार इष्यते ॥
परोढ़ां वर्जयित्वा तु वेश्यां चाननुरागिणीम्।
आलंबनं नायिकाः स्युर्दक्षिणाद्याश्च नायकाः ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चंद्रचंदनरोलंबरुताद्युद्दीपनं मतम् ।
भ्रूविक्षेपकटाक्षादिरनुभावः प्रकीर्तितः ।।
त्यक्त्वौग्र्यमरणालस्यजुगुप्सा व्यभिचारिणः ।
स्थायिभावो रतिः श्यामवर्णोऽयं विष्णुदैवतः ।।

—साहित्यदर्पण, ३/१८३-१८६

जब कामीजनों के हृदय में रति स्थायी भाव रसावस्था को प्राप्त कर काम की वृद्धि करे, तो उसे शृंगार कहते हैं। भरत के अनुसार "रति स्थायी भाव से उत्पन्न होनेवाला एवं उज्ज्वल वेषात्मक शृंगार रस होता है। संसार में जो कुछ भी शुचि, पवित्र, उज्ज्वल एवं दर्शनीय होता है, उसकी उपमा शृंगार के साथ दी जाती हैं। उज्ज्वल वेष धारण करनेवाला व्यक्ति ही शृंगारवान् कहा जाता है। जिस प्रकार गोत्र, कुल एवं आचार आदि से उत्पन्न तथा आप्तोपदेश से सिद्ध पुरुषों के नाम होते हैं उसी प्रकार इन रसों, भावों और नाट्याश्रित अर्थों के आचार से उत्पन्न तथा आप्तोपदेश से सिद्ध नाम होते हैं। इस प्रकार यह मनोहर उज्ज्वलवेषात्मक होने के कारण व्यवहार-सिद्ध शृंगार रस होता है। यह स्त्री एवं पुरुष के द्वारा उत्पन्न होता है और उत्पन्न यौवन की प्रकृति के अनुकूल रहता है।"

तत्र शृंगारो नाम रतिस्थायिभावप्रभवः। उज्ज्वलवेषात्मकः। यत्किंचिल्लोके शुचि मेध्यमुज्ज्वलं दर्शनीयं वा तच्छृंगारेणोपमीयते। यथा च गोत्रकुलाचारोत्पन्नान्याप्तोपदेशसिद्धानि पुंसां नामानि भवंति। तथैवैषां रसानां भावानां च नाट्याश्रितानां चार्थानामाचारोत्पन्नान्याप्तोपदेशसिद्धानि नामानि। एवमेष आचारसिद्धो हृद्योज्ज्वलवेषात्मकत्वाच्छृंगारो रसः। स च स्त्रीपुरुषहेतुक उत्तमयुवप्रकृतिः।

—नाट्यशास्त्र, ६/४५

शृंगार रस की परिभाषा देते हुए भरत ने कहा कि सुखप्राय, प्रिय वस्तुओं से युक्त ऋतु एवं माल्यादि का सेवन करनेवाले स्त्री-पुरुष से युक्त रस को शृंगार कहते हैं।

सुखप्रायेषु संपन्नः ऋतुमाल्यादिसेवकः
पुरुषः प्रमदायुक्तः शृंगार इति संज्ञितः ।।

—नाट्यशास्त्र, ६/४६

धनंजय के अनुसार परस्पर अनुरक्त युवा नायक-नायिका के हृदय में रम्य, देश, काल, वेष, भोग इत्यादि के सेवन से आत्मा का प्रमुदित होना

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रति है। जब यही रति (स्थायी भाव) नायक या नायिका के अंगों की मधुर चेष्टाओं द्वारा पुष्ट होती है तो शृंगार रस की उत्पत्ति होती है।

रम्यदेशकलाकालवेषभोगादिसेवनैः।
प्रमोदात्मा रतिः सैव यूनोरन्योन्यरक्तयोः।
प्रहृष्यमाणाश्शृंगारो मधुरांगविचेष्टितैः॥ —दशरूपक, ४/४८

शृंगार के भेद—नायक-नायिका के संबंधों की कल्पना के आधार पर शृंगार के दो भेद किए गए हैं—संयोग (संभोग) तथा वियोग (विप्रलंभ)। नायक-नायिका के मिलन और बिछुड़न के आधार पर इन भेदों की कल्पना की गई है। भरत ने सर्वप्रथम इन भेदों का वर्णन किया था।

तस्यद्वे अधिष्ठाने, संभोगो विप्रलंभश्च।

—नाट्यशास्त्र, ६/४५

धनंजय ने शृंगार के तीन भेदों का निरूपण किया है—अयोग, विप्रयोग और संभोग। जब नायक-नायिका परस्पर आकृष्ट होकर भी परतंत्रता या दैवयोग से मिल न सकें तो अयोग शृंगार होगा। इसमें कतिपय कारणों से नायक-नायिका के संगम का न होना वर्णित होता है।

अयोगो विप्रयोगश्च संभोगश्चेति स त्रिधा।
तत्राऽयोगोनुरागेऽपि नवयोरेकचित्रयोः॥
पारतंत्र्येण दैवाद्वा विप्रकर्षादसंगमः॥

—दशरुपक, ४/४९-५०

जब नायक-नायिका परस्पर संयोग-सुख का अनुभव करें या एक साथ रहकर दर्शन, स्पर्श एवं प्रेमालाप आदि सुखों का आनंदानुभव करें तो वहाँ संयोग शृंगार होता है। वियोग शृंगार वहाँ होता है, जब नायक-नायिका एक दूसरे से दूर होकर मिलन के अभाव में दुखी होते हैं। संयोगावस्था में वे एक साथ रहकर संयोग-सुख का उपभोग करते हैं; किंतु वियोग में वे एक-दूसरे के निकट न होकर पृथक्-पृथक् रहते हैं।

संयोगावस्था में उनकी वृत्तियाँ बहिर्मुखी होती हैं और वियोग में अंतर्मुखी। संयोग में प्रेम का उपभोग होता है, किंतु वियोग में वह राशिभूत हो जाता है। वियोग को प्रेम की कसौटी कहते हैं; क्योंकि प्रेम की परख वियोग की स्थिति में ही होती है। वियोग शृंगार का शृंगार है। वियोग-काल में भी पुरुष और स्त्री में परस्पर उत्कट प्रेम या अनुराग रहता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विश्वनाथ के अनुसार उत्कट अनुराग के विद्यमान रहने पर भी प्रियसमागम का न होना विप्रलंभ श्रृंगार है।—

यत्र तु रतिः प्रकृष्टा नाभीष्टमुपैति विप्रलंभोऽसौ ।
स च पूर्वरागमानप्रवासकरुणात्मकश्चतुर्धा स्यात् ।।

—साहित्यदर्पण, ३/१८७

भानुदत्त के मतानुसार युवक-युवती का परस्पर परिपूर्ण प्रमोद (आलब) ही श्रृंगार रस है, इसका स्थायी भाव रति है। नायक-नायिका का परस्पर अनुकूल दर्शन, स्पर्श तथा आलिंगन आदि के अनुभव से प्राप्त होनेवाला सुख संयोग कहलाता है। इस संयोग का संबंध बहिरिंद्रिय से होता है। यह संबंध तभी श्रृंगार के अंतर्गत मान्य होगा, जब उभयपक्ष या नायक-नायिका दोनों से स्वीकृत हो। एक पक्ष में रति का आधिक्य या बलात्कार के सदृश अनुचित संयोग अथवा रति का न्यूनाधिक वर्णन श्रृंगार-रसाभास कहलाता है। पंचेंद्रिय के संबंध का अभाव वियोग श्रृंगार है।—

तत्र दर्शनस्पर्शनसंलापादिभिरितरेतरमनुभूयमानं सुखं परस्पर संयोगेनोत्पद्यमान आनंदो वा संयोगः। संयोगो बहिरिंद्रियसंबंधः। यूनोः परस्परं परिपूर्णः प्रमोदः सम्यक्संपूर्णरतिभावो वा श्रृंगारः। यूनोरेकत्र प्रमोदस्य रतेर्वाधिक्ये न्यूनतायां व्यतिरेके वा परिपूर्तेरभावात् रसाभासत्वमिति। यूनोरन्योन्यं मुदितानां पंचेंद्रियाणां संबंधाभावोऽभीष्टाप्राप्तिर्वा विप्रलंभः।

—रसतरंगिणी, षष्ठ तरंग

संयोग श्रृंगार के भेदों की कल्पना आरंभकर्त्ता, प्रकाशन एवं स्तर-भेद के विचार से की गई है। आरंभकर्त्ता के विचार से संयोग के दो प्रकार हैं—नायकारब्ध एवं नायिकारब्ध। जब संभोग-क्रिया नायक द्वारा आरंभ की जाय तो उसे नायकारब्ध कहते हैं और नायिका द्वारा आरब्ध (आरंभ किया गया) संयोग नायिकारब्ध कहा जाता है। जब आरंभकर्त्ता का निश्चित संकेत प्राप्त न हो तो उसे उभयारब्ध कहते हैं। प्रकाशन के विचार से इसके प्रच्छन्न एवं प्रकाश अर्थात् गुप्त और प्रकट—दो भेद किए गए हैं। केशवदास ने प्रिय, प्रिया तथा अंतरंग सखी की जानकारी तक परिमित श्रृंगार को प्रच्छन्न कहा है और जिसे सभी अपने-अपने चित्त में जानें, उसे प्रकाश कहा है। [दे० रसिकप्रिया, पृ० ११] शिंगभूपाल तथा शारदातनय ने स्तर-भेद से श्रृंगार के प्रकारों का उल्लेख किया है—संक्षिप्त, संकीर्ण, संपन्नतर तथा समृद्धिमान। शील-संकोच तथा लज्जादि के कारण मनोभावों की अभिव्यक्ति में संक्षिप्त,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

त्रुटि के कारण संकोचवश भावों के प्रकाशन में संकीर्ण, भय, त्रुटि तथा संकोच से रहित भावों की अभिव्यक्ति में संपन्नतर एवं बार-बार संभोगेच्छा के प्रकाशन में समृद्धिमान होता है।

विप्रलंभ के भेद—

विप्रलंभ शृंगार के विभाजन में आनंदवर्द्धन ने अभिलाष, ईर्ष्या, विरह, प्रवास, देश-काल, आश्रय एवं अवस्था को आधार माना है तथा उसे अपरिमेय भी कहा है।

[ध्वन्यालोक, पृ० २१७]

भानुदत्त ने देशांतरगमन, गुरुजनाज्ञा, अभिलाष, ईर्ष्या, शाप, समय, देव तथा उपद्रव के विचार से वियोग शृंगार के आठ भेदों का निरूपण किया है। मम्मट के अनुसार विप्रलंभ अभिलाष, ईर्ष्या, प्रवास तथा शापहेतुक होता है।

[दे० रसतरंगिणी, पृ० १३९ तथा काव्यप्रकाश तृतीय उल्लास]

विश्वनाथ ने पूर्वानुराग, मान, प्रवास तथा करुणात्मक के नाम से वियोग शृंगार के चार भेदों का वर्णन किया है। मिलन के पूर्व नायक-नायिका के मन में मिलन की उत्कंठा के कारण उत्पन्न व्याकुलता को पूर्वानुराग या पूर्वराग कहते हैं। पूर्वानुराग चार प्रकार से होता है—चित्रदर्शन, गुणश्रवण, स्वप्न-दर्शन और प्रत्यक्ष दर्शन से। सौंदर्यादि गुणों को दूती आदि से सुनकर जब नायक-नायिका परस्पर आकृष्ट या अनुरक्त हों तो उसे गुणश्रवण कहते हैं। नायक-नायिका का एक दूसरे का चित्र देखकर अनुरक्त होना चित्र-दर्शन है। स्वप्न में एक-दूसरे को देखकर परस्पर अनुराग का होना स्वप्नदर्शन है। साक्षात् दर्शन को प्रत्यक्ष दर्शन कहते हैं। [दे० पूर्वानुराग] कोप करने को मान कहते हैं। नायक-नायिका में से किसी एक के अपराध से मान होता है। [दे० मान] मान के दो भेद हैं—ईर्ष्यामान तथा प्रणयमान। प्रेमातिरेक के कारण उत्पन्न मान प्रणयमान कहलाता है। जब नायक को परस्त्री में आसक्त जानकर नायिका मान करे तो उसे ईर्ष्यामान कहते हैं। यह अन्य-स्त्री के प्रति अपने नायक की आसक्ति के दर्शन, श्रवण या अनुमान करने से होता है। ईर्ष्यामान तीन कारणों से संभव है—जब नायक स्वप्न में परस्त्री के संबंध में कुछ कहे और उसे सुनकर नायिका मान करे। परस्त्री-संभोग के चिह्नों को नायक के शरीर पर लगा देखकर नायिका मान करती है। नायिका का प्रिय के मुख से अन्य स्त्री का नाम सुनकर मान करना—गोत्रस्खलन कहलाता है।

ईर्ष्यामान के तीन भेद हैं—लघुमान, मध्यममान तथा गुरुमान। अन्य स्त्री के दर्शन-दोष से होनेवाला मान लघुमान है। यह अल्पक्षण-स्थायी होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रिय के मुख से अन्य नायिका का नाम सुनकर मध्यममान होता है, जो अपेक्षाकृत अधिक समय तक विद्यमान रहता है। नायक के शरीर पर अन्य स्त्री-संभोग के चिह्नों को देखकर होनेवाला मान गुरुमान कहलाता है। यह अधिक समय तक टिकनेवाला होता है। आचार्यों ने मान-मोचन के छह साधन बतलाए हैं—साम, भेद, दान, नति, उपेक्षा तथा रसांतर। [दे० मानमोचन] प्रियवचन के द्वारा मान-भग होना या नायिका को मीठी बातों से प्रसन्न करना साम है। नायिका की सखियों को नायक अपनी ओर मिलाकर नायिका को प्रसन्न करने का प्रयास करे तो उसे भेद कहते हैं। आभूषणादि देकर नायिका को प्रसन्न करना दान है। नायिका के चरणों पर गिर जाना नति है। सभी साधनों के असिद्ध हो जाने पर नायिका का अनादर करना उपेक्षा है और भय, हर्ष, धृष्टता आदि भावों का प्रदर्शन कर नायिका के मन को अन्यत्र खींचकर मान को भुलाने का प्रयास करना रसांतर कहलाता है।

प्रवास विप्रलंभ—[दे० **प्रवास**] जब नायक कार्यवश, शापवश या भय के कारण अन्य स्थान पर चला जाय तो उसे प्रवास कहते हैं। यह भावी, वर्त्तमान तथा भूत के नाम से तीन प्रकार का होता है। करुणात्मक विप्रलंभ वहाँ होता है, जब नायक-नायिका का परस्पर किसी कारण से मिलन नहीं हो पाता। इस स्थिति में मिलन की आशा के क्षीण हो जाने पर भी दोनों के मन में रति भाव विद्यमान रहता है। यदि दोनों में से किसी एक की मृत्यु हो जाय तो वहाँ करुणविप्रलंभ न होकर शुद्ध करुण हो जाएगा। [दे० **करुणविप्रलंभ**] विप्रलंभ-शृंगार के अंतर्गत दस काम-दशाओं का वर्णन किया जाता है। ये दशाएँ क्रमशः वियोगियों के जीवन में घटित होती हैं। दशाएँ हैं—अभिलाषा, चिंता स्मरण, गुण-कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, जड़ता, व्याधि, मरण। [दे० **काम-दशा**] विरहावस्था से मिलन की उत्कंठा का होना अभिलाषा है।

प्रिय-मिलन के उपाय की खोज करना चिंता है। विरह-दशा में प्रिय के संभोग-सुखों तथा प्रेमालापों का स्मरण दशा है। विरह-दशा में प्रिय के गुणों का वर्णन करना गुण-कथन कहलाता है। प्रिय-वियोग में व्याकुल होने से किसी विषय में मन का न लगना उद्वेग कहलाता है। विरह-व्यथा से दुखी होकर विरहियों का निरर्थक बातें कहना प्रलाप है। वियोगजन्य व्यथा से व्यथित होकर विरही का जड़चेतन के विवेक को खो देना और उन्मत्त की तरह कार्य करना उन्माद कहलाता है। वियोगाधिक्य से शरीर का चेष्टारहित हो जाना जड़ता है। विरहजन्य पीड़ा के कारण शरीर का रोगग्रस्त होकर दीर्घश्वास

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लेना, पीला पड़ना एवं दुर्बल हो जाना व्याधि है। मृत्यु-तुल्य पीड़ा का होना मरण है। काव्यशास्त्र में मृत्यु का वर्णन नहीं होता।

उदाहरण—

क. शून्यं वासगृहं विलोक्य शयनादुत्थाय किंचिच्छनै-
निद्राव्याजमुपागतस्य सुचिरं निर्वर्ण्यपत्युर्मुखम्।
विस्रब्धं परिचुंब्य जातपुलकामालोक्य गंडस्थलीं
लज्जानम्रमुखी प्रियेण हसता बाला चिरं चुंबिता॥

शयन-गृह को सूना जानकर वह नवोढ़ा स्त्री धीरे-धीरे शय्या से उठी और नींद का बहाना बनाकर उसने सोये हुए पति के मुँह को उघारा और उसे अच्छी तरह देखा। जब वह पूर्ण रूप से आश्वस्त हो गई कि उसका पति सो गया है तो उसने उसका चुंबन किया; पर कपोलों पर हर्ष का रोमांच देखकर वह लज्जा से अपना सिर झुकाकर खड़ी हो गई, तभी उसके पति ने हँसते हुए बहुत देर तक उसका चुंबन किया।

उदाहरण संयोग शृंगार का है।

ख. आपुस में रस में रहसैं बिहसैं बनि राधिका कुंज बिहारी।
स्यामा सराहति स्याम की पागहिं स्याम सराहत स्यामा की सारी।
एकहि दर्पन देखि कहैं तिय नीके लगो पिय प्यौ कहैं प्यारी।
'देव' सुबालम बाल को बाद बिलोकि भई बलि हौं बलिहारी॥

यहाँ राधा-कृष्ण की संयोगावस्था का वर्णन है।

शृंगाररस का महत्त्व—शृंगार रसों का राजा या रसराज है। भरत इसे उज्ज्वल, पवित्र तथा उत्तम मानकर इसका रसराजत्व सिद्ध करते हैं। आचार्य भोज के अनुसार तो एकमात्र रस शृंगार ही है। इसकी व्यापकता, महत्ता तथा प्रभावान्विता ही इसकी रसराजता का कारण है। शृंगार रस का प्रभाव जड़-चेतन, चर-अचर सभी पर देखा जाता है। अन्य रसों का क्षेत्र इतना विस्तृत नहीं है, जितना कि शृंगार का। इसमें चार संचारियों के अतिरिक्त उग्रता, मरण, आलस्य और जुगुप्सा—सभी का समावेश हो जाता है। भेद-विस्तार की दृष्टि से तो शृंगार की सीमा अपरिमित है। संयोग और वियोग के अतिरिक्त नायक-नायिका-भेद का विचार किया जाय तो इसके अनंत भेद हो जाएँगे। [दे० नायक-नायिका-भेद] संयोग और वियोग के भी अनेक अंतर्विभाग होते हैं। उद्दीपन के विचार से भी शृंगार की व्यापकता मान्य है। अन्य रसों के उद्दीपन केवल मानुषी होते हैं, पर शृंगार के उद्दीपन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के अंतर्गत, मानव, मानवेतर प्रकृति, देवता, जड़, चेतन—सभी आ जाते हैं। सभी ऋतुएँ, नदी, वन, पर्वत, पवन, दिवस, रात, संध्या, प्रातः, समुद्र, सभी शृंगार के उद्दीपन हैं। अनुभावों की दृष्टि से भी शृंगार रस श्रेष्ठ है। अन्य रसों की अपेक्षा इसके अधिक अनुभाव होते हैं। सभी हावों या नायिका के अलंकारों की परिगणना भी शृंगार रस के अनुभावों में होती है। इसके आलंबन नायक-नायिका हैं और इनके अनेक भेद वर्णित हैं। शृंगार रस मनुष्य की प्रबल भूख 'काम' का प्रतिनिधित्व करता है। साहित्य में शृंगार रस कोरी विलासिता या कामुकता का प्रदर्शन न कर यथार्थ के आधारफलक पर अधिष्ठित है और उसका संबंध उत्तम प्रकृति के स्त्री-पुरुषों से है। आचार्यों ने इसका देवता विष्णु को मानकर शृंगार के विश्वकल्याणपरक व्यक्तित्व को उजागर किया है। वस्तुतः साहित्य का शृंगार तभी उपयोगी एवं ग्राह्य हो सकता है, जब वह सामाजिक दृष्टि से मान्य हो। धर्माविरुद्ध काम ही शृंगार-रस का सहायक हो सकता है। जब कामोद्रेक उत्तमता के शृंग पर चढ़ जाय अर्थात् काम का समाजोपयोगी एवं उत्तम रूप प्रस्तुत किया जाय, तभी वह शृंगार की भावनाओं को पूर्ण कर सकेगा। शृंगार में प्रेम का सहज, स्वस्थ एवं उदात्त रूप चित्रित होना चाहिए, इनके विपरीत वर्णन में वह रस न होकर रसाभास की श्रेणी में परिगणित होने लगेगा। इसी दृष्टि से शृंगार का रंग काला माना गया है और वही रंग प्रेम का भी है। स्वस्थ प्रेम के वर्णन में ही शृंगार का रसत्व निहित है।

भोज सभी रसों का समावेश शृंगार में ही करते हैं।

> शृंगारवीरकरुणाद्भुतरौद्रहास्य-
> बीभत्सवत्सलभयानकशांतनाम्नः।
> आम्नासिषुर्दश रन्सासुधियो वयं तु
> शृंगारमेव रसनाद्रसमामनामः॥

—शृंगारप्रकाश, पृ० ३६८, राघवन्

वे शृंगार को अभिमान तथा अहंकार से अभिन्न मानकर इसे सुख-दुःखात्मक कहते हैं। इनके अनुसार मन की अनुकूल प्रतीति ही सुख है और वही सुखादि अनुभूति के अनुभव का जो कारण है, उसे 'अभिमान तत्त्व' कहते हैं। चैतन्य जगत् को इसी आधार-भूमि पर सुख की अनुभूति होती है। इसी अभिमान या अहंकार तत्त्व को रस कहते हैं। और वह तो शृंगार ही है। भोज ने एक रस के सिद्धांत के उन्नयन में शैवदर्शन के आधार पर अहं तत्त्व

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

को मूलतत्त्व माना है। वही अहं सुखादि अनुभूतियों का मूल है। उसी एक तत्त्व के आधार पर ही उन्होंने एक रस के सिद्धांत को स्थापित किया है। उनके अनुसार शृंगार ही एकमात्र रस है और रत्यादि सभी भाव हैं। यह जो कहा जाता है कि विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी के संयोग से स्थायी भाव ही रसत्व को प्राप्त होता है, सर्वथा असंगत है। विभाव एवं भावों के द्वारा आनंद के रूप में परिणत होकर अहंकार ही रसत्व प्राप्त करता है और वही (अहंकार ही) शृंगार रस है। अहंकार ही विभावादि द्वारा उद्दीप्त होता है और उसी से वह रसत्व की अवस्था को प्राप्त करता है। भोज ने शृंगार को ही चतुर्वर्ग का कारण कहा है। [दे० शृंगारप्रकाश, पृ० ३५५]

—डॉ० राघवन् का शोध-प्रबंध

श्रौती उपमा—उपमा का एक प्रकार। [दे० **उपमा के भेद**]

श्लेष (शाब्द एवं आर्थ)—अलंकार का एक भेद। इसकी गणना शब्दालंकार एवं अर्थालंकार, दोनों में ही होती है। श्लिष्ट या अनेकार्थवाची शब्दों के द्वारा अनेक अर्थ के अभिधान में शब्दश्लेष अलंकार होता है। जब स्वाभाविक एकार्थप्रतिपादक शब्दों के द्वारा अनेक अर्थ का विधान किया जाय तो अर्थश्लेष होगा।

श्लेष शब्द श्लिष् धातु से निष्पन्न या उत्पन्न है, जिसका अर्थ है चिपकना या सटना। श्लेषः [श्लष्+घञ्] आलिंगन, चिपकना, मिलाप, संगम। (आप्टे संस्कृत-हिंदी-कोश, पृ० १०४०)। शब्दश्लेष में ऐसे शब्द प्रयुक्त होते हैं, जिनके एकाधिक अर्थ हों। अनेक अर्थवाले को श्लिष्ट कहते हैं। शब्दश्लेष में ऐसे शब्दों का प्रयोग होता है, जिनके अनेक अर्थ होते हैं। श्लेष दो प्रकार का होता है—शब्दश्लेष एवं अर्थश्लेष। शब्द पर आश्रित श्लेष शब्दश्लेष है और अर्थाश्रित श्लेष को अर्थश्लेष कहते हैं। शब्दश्लेष में शब्द-परिवर्त्तन संभव नहीं होता अर्थात् यदि श्लिष्ट शब्द के स्थान पर उसका पर्यायवाची शब्द रख दिया जाय तो वहाँ अलंकारत्व खंडित हो जायगा। अर्थश्लेष में शब्द-परिवर्त्तन की पूर्ण क्षमता होती है तथा यदि उसमें श्लिष्ट शब्द का पर्यायवाची शब्द रख दिया जाय तब भी उसका सौंदर्य बना रहेगा।

शब्दश्लेष में श्लिष्ट शब्द दो प्रकार के होते हैं—सभंग और अभंग। जब अनेकार्थक शब्दों के कई खंड या टुकड़े किए जायँ तो सभंगपद एवं शब्द के बिना खंड किए ही अनेकार्थ-निबंधन में अभंगपद श्लेष होगा। अर्थश्लेष में शब्दश्लेष की भाँति न तो अनेकार्थक पदों की योजना होती है और न भंग

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

या अभंग पदों का विधान किया जाता है। श्लेष अत्यंत प्राचीन अलंकार है, जिसका विवेचन भामह से विश्वेश्वर पंडित तक होता रहा। इसके संबंध में संस्कृत आचार्यों ने मुख्यतः दो बातों पर विचार किया है—

क. श्लेषालंकार शब्दालंकार है या अर्थालंकार?

ख. यह स्वतंत्र अलंकार है या नहीं अर्थात् श्लेष एवं अन्यालंकार मिश्रित श्लेष की पारस्परिक स्थिति क्या है?

श्लेष के शब्दालंकारत्व एवं अर्थालंकारत्व के संबंध में आचार्यों में मतैक्य नहीं है। रुद्रट, मम्मट, विश्वनाथ प्रभृति आचार्य इसे शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों में ही परिगणित करते हैं। इनके अनुसार श्लेष के शब्दगत एवं अर्थगत चमत्कार में पर्याप्त भेद है। उद्भट ने इसे अर्थालंकार माना है और रुय्यक सभंगश्लेष को शब्दालंकार तथा अभंग को अर्थालंकार मानते हैं।

श्लेष अलंकार का प्रथम विवेचन भामह ने किया; पर इनके पूर्व भरत ने इसे गुण में स्थान दिया था। भरत का यही श्लेष समयांतर में अलंकार के रूप में मान्य हुआ। भरत के अनुसार अभीष्ट अर्थसमूह के द्वारा परस्पर अनुबद्ध पदों की श्लिष्टता को श्लेष कहते हैं। उन्होंने इसकी अन्य परिभाषा में बताया कि जहाँ स्वाभाविक रूप से स्फुटता एवं गहन विचार हो तथा शब्दों में सुप्रतिबद्धता हो तो वहाँ भी श्लेष होता है।

ईप्सितेनार्थजातेन संबद्धानुपरस्परम्।
श्लिष्टता या पदानां हि श्लेष इत्यभिधीयते॥
विचारगहनं यत्स्यात् स्फुटं चैव स्वभावतः।
स्वतः सुप्रतिबद्धं च श्लिष्टं तत्परिकीर्तितम्॥

—नाट्यशास्त्र, १६/९८-९९

भामह ने श्लेष का वर्गीकरण शब्द एवं अर्थ के रूप में किया; पर इनकी प्रवृत्ति अर्थश्लेष की ओर रही। इनके अनुसार गुण, क्रिया एवं नाम के कारण उपमेय का उपमान के साथ तादात्म्य या अभेदस्थापन हो तो श्लेष होगा। इनके लक्षण में उपमेय तथा उपमान की तादात्म्यसिद्धि पर बल दिया गया है। भामह को स्वतः इस परिभाषा पर संदेह उत्पन्न हो गया और रूपक में इसकी अतिव्याप्ति की शंका होने लगी, फलतः उन्होंने स्पष्ट किया कि श्लेष में उपमेय एवं उपमान का एक साथ प्रयोग होना आवश्यक है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि रूपक में शब्दों का अनेकार्थत्व आवश्यक नहीं, पर श्लेष का तो यह एक अनिवार्य तत्त्व है। इनके विवेचन की दो महार्घताएँ हैं—श्लेष की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सादृश्यमूलकता तथा रूपक एवं श्लेष का पारस्परिक अंतर और दोनों का सीमा-निर्धारण।

उपमानेन यत्तत्त्वमुपमेयस्य साध्यते।
गुणक्रियाभ्यां नाम्ना च श्लिष्टं तदभिधीयते।।
लक्षणं रूपकेऽपीदं लक्ष्यते काममत्र तु।
इष्टः प्रयोगो युगपदुपमानोपमेययोः।।

—काव्यालंकार, ३/१४-१५

दंडी ने श्लेष को उपमानोपमेयभाव से हटाकर इसके स्वरूप को परिष्कृत किया। इनके अनुसार एक रूप से स्थित होकर भी जब वाक्य अनेकार्थ का प्रतिपादन करे, तब श्लेष अलंकार होगा। दंडी के लक्षण में दो तत्त्वों का समावेश है—

श्लेष में एकरूपान्वित वचन का प्रयोग होता है और उससे अनेक अर्थ की प्रतीति होती है।—

श्लिष्टमिष्टमनेकार्थमेकरूपान्वितं वचः।—काव्यादर्श, २/३१०

उद्भट ने श्लेष के स्वरूप, प्रकार एवं क्षेत्र का निर्धारण कर इसकी वैज्ञानिक परिभाषा प्रस्तुत की। भामह और दंडी ने अर्थश्लेष का निरूपण किया था; पर उद्भट ने इसके दोनों (शब्दगत एवं अर्थगत) ही रूपों का पृथक्-पृथक् विवेचन किया। इनके अनुसार जहाँ प्रयत्नोच्चार्यमाण शब्द प्रयुक्त हों, वहाँ अर्थश्लेष और उन शब्दों की छाया धारण करनेवाले शब्दों के प्रयोग में शब्दश्लेष होगा। उद्भट ने यह भी बताया कि जहाँ श्लेष के साथ अनेक अलंकार हों, वहाँ श्लेष प्रधान होगा और अन्य अलंकार गौण होंगे। श्लेष के हट जाने पर अन्य अलंकारों का सौंदर्य नष्ट हो जाता है।—

एक प्रयत्नोच्चार्याणां तच्छाया चैव बिभ्रताम्।
स्वरितादिगुणैर्भिन्नैर्बंधः श्लिष्टमिहोच्यते।।
अलंकारांतरगतां प्रतिभा जनयत्पदैः।
द्विविधैरर्थशब्दोक्तिविशिष्टं तत्प्रतीयताम्।।

—काव्यालंकारसारसंग्रह, ४/९-१०

वामन ने भामह के ही मत का अनुमोदन किया है।

स च धर्मेषु तंत्रप्रयोगे श्लेषः। ४,३,७
उपमानोपमेयस्य धर्मेषु गुणक्रियाशब्दरूपेषु तत्त्वारोपः।।

—काव्यालंकारसूत्रवृत्ति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रुद्रट ने शब्दश्लेष तथा अर्थश्लेष का वर्णन पृथक् अध्यायों में किया है। शब्दश्लेष का लक्षण बताते हुए इन्होंने कहा कि जब शिलष्ट, अशिलष्ट एवं विविध पदों की संधि से युक्त अनेक ऐसे वाक्यों की रचना एक साथ हो, जो एकाधिक अर्थ की प्रतीति कराएँ तो वहाँ शब्दश्लेष होगा। रुद्रट ने इसके इन प्रकारों का उल्लेख किया है—वर्ण, पद, लिंग, भाषा, प्रकृति, प्रत्यय, विभक्ति तथा वचनश्लेष। अर्थश्लेष वहाँ होगा, जब अनेकार्थक पदों के द्वारा रचित एक वाक्य अनेक अर्थों को द्योतित करे।

इन्होंने अर्थश्लेष एवं शब्दश्लेष में पार्थक्य प्रदर्शित करते हुए बताया कि शब्दश्लेष में अनेक वाक्य होते हैं और अर्थश्लेष में एक ही वाक्य का विधान किया जाता है।

वक्तुं समर्थमर्थं सुश्लिष्टाक्लिष्टविविधपदसंधि।
युगपदनेकं वाक्यं यत्र विधीयते स श्लेषः॥
वर्णपदलिंग भाषाप्रकृतिप्रत्ययविभक्तवचनानाम्।
अत्रायं मतिमद्भिर्विधीयमानाऽष्टधाभवति॥
यत्रैकमनेकार्थैर्वाक्यं रचितं पदैरनेकस्मिन्।
अर्थे कुरुते निश्चयमर्थश्लेषः स विज्ञेयः॥

—काव्यालंकार, ४/१-२,१०/१

भोज ने शब्द एवं अर्थ—दोनों ही श्लेषों का पृथक्-पृथक् विवेचन किया है। इनका लक्षण भामह एवं दंडी से प्रभावित है। इनके अनुसार एक शब्द से अनेक अर्थों के कथन में श्लेष होता है।

एकरूपेणवाक्येन द्वयोर्भणनमर्थयोः।
तंत्रेण यत्सशब्दज्ञैः श्लेष इत्यभिशब्दितः॥

—सरस्वतीकंठाभरण, २/६८

श्लेषोऽनेकार्थकथनं पदेनैकेन कथ्यते।
पदक्रियाकारकैः स्याद्भिन्नाभिन्नैः स षड्विधः॥

—वही, ४/८-५

मम्मट ने पूर्ववर्ती विवेचनप्रवाह का समाहार करते हुए श्लेषालंकार का वैज्ञानिक रूप प्रस्तुत किया और शब्दश्लेष तथा अर्थश्लेष को दो स्वतंत्र अलंकारों के रूप में मान्यता दी। शब्दश्लेष के लक्षण में कहा गया कि अर्थ-भेद होने पर भिन्न होकर भी शब्द जब एक साथ उच्चारण के कारण परस्पर मिलकर एक रूप हो जायँ तो वहाँ यह अलंकार होगा। शब्दश्लेष में भिन्नार्थक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शब्दों के द्वारा अनेक अर्थ की योजना की जाती है। जब एकार्थप्रतिपादक शब्दों के द्वारा अनेक अर्थ का कथन किया जाय तो अर्थश्लेष होगा। इन्होंने बताया कि शब्दश्लेष में शब्दपरिवृत्तिसहत्व लागू नहीं होता अर्थात् जिस शब्द के कारण चमत्कार उत्पन्न होता है, यदि उसके स्थान पर उसका समानार्थी शब्द रख दिया जाय तो वहाँ श्लेष का सौंदर्य नष्ट हो जायगा। पर अर्थश्लेष में शब्दपरिवर्त्तन संभव है। मम्मट ने शब्द एवं अर्थश्लेष का निर्णायक तत्त्व अन्वयव्यतिरेकभाव को माना है।

वाच्यभेदेन भिन्ना यद् युगपद्भाषणस्पृशः।
श्लिष्यंति शब्दः, श्लेषोऽसावक्षरादिभिरष्टधा ॥

—काव्यप्रकाश, ९/८४

श्लेषः स वाक्ये एकस्मिन् यत्रानेकार्थता भवेत्।

—वही, १०/९६

एकार्थप्रतिपादकानामेव शब्दानां यत्रानेकोऽर्थः स श्लेषः ॥

दोषगुणालंकाराणां शब्दार्थगतत्वेन यो विभागः सोऽन्वयव्यतिरेकाभ्यामेव व्यवतिष्ठते।

—वही, पृ० ५२४

यत्र हि पर्यायांतरवृत्तिसहत्वं नास्ति तस्य शब्दगतत्वं, यत्र तु तत् सहत्वं तत्रार्थगतत्वम्।

—काव्यप्रकाश, पृ० ५२४

रुय्यक ने इस अलंकार को अर्थालंकार माना है। इन्होंने श्लेष के दो प्रकारों—सभंग एवं अभंग—का वर्णन किया और प्रथम की गणना शब्दालंकार में की तथा द्वितीय को अर्थालंकार में परिगणित किया। इन्होंने बताया कि विशेष्य तथा विशेषण दानों के शब्द-साम्य को श्लेष कहते हैं। समासोक्ति के साथ श्लेष का पार्थक्य बतलाते हुए रुय्यक ने कहा कि समासोक्ति में केवल विशेषण का साम्य होता है और श्लेष में विशेष्य तथा विशेषण—दोनों का। दो प्रस्तुत, दो अप्रस्तुत तथा दो प्रस्तुताप्रस्तुत का श्लिष्ट पदों के साथ निबंधन होने को श्लेष कहते हैं।

विशेष्यस्यापि साम्ये द्वयोर्वोपादाने श्लेषः।
केवल विशेषणसाम्यं समासोक्तावुक्तम्।
विशेष्ययुक्तविशेषणसाम्यं त्वधिकृत्येदमुच्यते ॥

—अलंकारसर्वस्व, पृ० १२१

जयदेव ने अर्थश्लेष का वर्णन किया है। इन्होंने खंडश्लेष तथा भंगश्लेष नामक दो अन्य श्लेषों का भी उल्लेख किया। जब प्रत्येक वाक्यार्थ के पदों का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पृथक् अर्थ या दो अर्थ हो तो खंडश्लेष होता है। जब पदसमूहों द्वारा अनेक अर्थों का बोध हो तो भंगश्लेष होगा। अर्थश्लेष में केवल अर्थ का ही, अनेक पदार्थों से संबद्ध अर्थ के प्रतिपादन का, वर्णन होता है।

खंडश्लेषः पदानां चेदेकैकं पृथगर्थता ॥६३

भंगश्लेषः पदस्तोमस्तस्यैव पृथगर्थता ॥६४

अर्थश्लेषोऽर्थमात्रस्य यद्यनेकार्थ संश्रयः ॥६५

—चंद्रालोक, ५

विश्वनाथ के श्लेष-निरूपण पर मम्मट की पूर्ण छाप है। इन्होंने शब्द एवं अर्थश्लेष का पृथक्-पृथक् विवेचन किया है।

श्लिष्टैः पदैरनेकार्थाभिधाने श्लेष इष्यते।

—साहित्यदर्पण, १०/११

शब्दैः स्वभावादेकार्थैः श्लेषोऽनेकार्थवाचनम्। —वही, १०/५७

श्लिष्टशब्दों के द्वारा अनेक अर्थ के अभिधान या कथन को शब्दश्लेष कहते हैं। स्वाभाविक एकार्थक शब्दों के द्वारा अनेक अर्थों के प्रकट होने में अर्थश्लेष होता है।

दीक्षित के अनुसार अनेकार्थशब्दविन्यास को श्लेष कहते हैं। इन्होंने सभंग तथा अभंग दोनों ही प्रकारों को अर्थालंकार माना है। इन्होंने कहा कि जब नानार्थक शब्दों का प्रयोग वर्ण्य, अवर्ण्य एवं वर्ण्यावर्ण्य अनेक अर्थों से अन्वित हो तो श्लेष होगा।

नानार्थसंश्रयः श्लेषो वर्ण्यावर्ण्योभयाश्रितः।

—कुवलयानंद, ६४

अनेकार्थशब्दविन्यासः श्लेषः। —वही, पृ० ९८

पंडितराज ने परंपरागत विचार को अपनी शैली में व्यक्त कर श्लेष का स्वरूप-निदर्शन किया। जब एक श्रुति से अनेक अर्थों का कथन या प्रतिपादन हो तो श्लेष होगा। यह प्रकृत, अप्रकृत एवं प्रकृताप्रकृत के आश्रय से तीन प्रकार का होता है।

श्रुत्यैकयानेकार्थप्रतिपादनं श्लेषः। तच्च द्वेधा। अनेकधर्मपुरस्कारेणैकधर्मपुरस्कारेण च। आद्यं द्वेधा। अनेक शब्द प्रतिभान द्वारा एक शब्द प्रतिभान द्वारा चेति त्रिविधः श्लेषः।

—रसगंगाधर, पृ० ५२३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संस्कृत काव्यशास्त्र के अंतिम प्रौढ़ आचार्य विश्वेश्वर पंडित ने मम्मट के आधार पर ही अपना विवेचन प्रस्तुत किया और इसे अर्थालंकार माना।

उभय विशेष्यान्वितयोरेकेनप्रोक्तिरर्थयोः श्लेषः। अयं च श्लेषो द्विधा—सभंगोऽभंगश्च। अभिन्नानुपूर्वीकशब्दप्रतिसंधान बोध्यार्थांतरकत्वं सभंगत्वम्। समानानुपूर्वीकशब्दप्रतिसंधानबोध्यार्थांतरकत्वमभंगत्वम्। आद्यश्चाष्टधा—वर्णपद-लिंगभाषाप्रकृतिप्रत्ययविभक्तिवचनभेदात्। —अलंकारकौस्तुभ, पृ० २४१-४२

मम्मट तक आकर श्लेषालंकार का स्वरूप व्यवस्थित हो गया और इसमें किसी प्रकार का विकास न हो सका। रीतिकालीन आचार्यों का श्लेष-निरूपण दंडी, मम्मट, जयदेव तथा अप्पय दीक्षित से अनुप्राणित है। केशव ने इस अलंकार का वर्णन मौलिक ढंग से किया है। इनके अनुसार जहां दो, तीन या अधिक अर्थ स्फुरित हों तो श्लेषालंकार होगा। इन्होंने 'पांच अर्थबोधक' पदों का विन्यास कर इस अलंकार का निरूपण किया है। भेदों के वर्णन में केशव ने दंडी का प्रभाव ग्रहण किया है।

दोय तीनि अरु भाँति बहु आवत जामें अर्थ।
श्लेष नाम तासों कहत, जिनकी बुद्धि समर्थ॥

—कविप्रिया, ११/२६

जसवंतसिंह, भूषण तथा देव ने 'चंद्रालोक' के लक्षण का भावानुवाद किया है; पर केवल अर्थश्लेष का ही कथन किया, अन्य भेदों का नहीं। चिंतामणि, कुलपति ने मम्मट के आधार पर इस अलंकार का वर्णन किया। सोमनाथ और दास केवल शब्दश्लेष का ही कथन करते हैं; अर्थश्लेष का नहीं।

स्लेष अलंकृत अर्थबहु एक सब्द तें होय।

—भाषाभूषण, ६६

एक बचन में होत जहँ बहु अरथन को ज्ञान।
स्लेष कहत हैं ताहि सो भूषन सुकवि सुजान॥

—शिवराजभूषण, १४७

एकवाक्य बहु अर्थ पद, जहँ सुश्लेष बखानि।

—शब्दरसायन, पृ० १६५

पद अभिन्न भिन्नारथक कहत जहाँ अश्लेष।

—कविकुलकल्पतरु, २/२४

एक वाक्य में होत है जा थल अर्थ अनेक।
ताकौ अर्थ सलेष कहि, कविजन करत विवेक॥—वही, ३/२११

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कहि जहि अर्थ अनेक को, रहै एक ही रूप ।
शब्द तहाँ सुसलेश है, आठ भाँति सु अनूप ।।

—रसरहस्य, ७/२७

अर्थ अनेकै अर्थ कै जहाँ सु अर्थ सलेष ।
शब्द एक ही अर्थ को, रहै फिरै बहु भेष ।। —वही, ८/६२

एक शब्द के होत जहं अर्थ अनेक सुभाइ ।
श्लेष कवित्त सु जानिए प्रगट कह्यो समुझाइ ।।

—रसपीयूषनिधि, २१/३२

दोइ तीनि कै भाँति बहु, जहाँ प्रकासत अर्थ ।
सो स्लेषालंकार है, बरनत बुद्धि समर्थ ।।

मतिराम तथा पद्माकर ने 'कुवलयानंद' के आधार पर इस अलंकार का वर्णन किया है ।

स्लेष कहावत है जहाँ उपजत अर्थ अनेक ।
प्रकृत अप्रकृत मिलि त्रिबिध प्रकृताप्रकृत विवेक ।।

—ललितललाम, १६८

उपजत अर्थ अनेक जहँ स्लेष कहावै सोइ ।
बर्न्य अबर्न्यऽरु दुहुँन मिलि, तीनि भाँति को होइ ।।

—पद्माभरण, १०२

भेद-वर्णन—

श्लेष का भेद-प्रस्तार व्याकरणशास्त्र पर आश्रित रहा । दंडी ने सभिन्न एवं अभिन्न के नाम से दो भेदों का निर्देश किया, जो परवर्ती आचार्यों के सभंग तथा अभंग पदश्लेष का समानार्थक है। उन्होंने अभिन्नक्रियश्लेष, अविरुद्धक्रियश्लेष, सनियम, नियमाक्षेपरूपोक्ति, अविरोधी, विरोधी नामक भेदों का भी कथन किया है । —काव्यादर्श, २/३१२-१५

श्लेष के सर्वाधिक भेदों का कथन रुद्रट ने किया है । शब्दश्लेष के आठ तथा अर्थश्लेष के दस भेद कहे गए । शब्दश्लेष के भेद हैं—वर्ण, पद, लिंग, भाषा, प्रकृति, प्रत्यय, विभक्ति तथा वचन और अर्थश्लेष के अविशेष, विरोध, अधिक, वक्र, व्याज, उक्ति, असंभव, अवयव, तत्त्व तथा विरोधाभास भेद हैं ।

मम्मट को आचार्य रुद्रट-कृत शब्दश्लेष के सभी आठ भेद मान्य हैं। इन्होंने अभंग नामक नवम भेद का भी वर्णन किया है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उदाहरण—

क. अलंकारः शंकाकरनरकपालं परिजनो
विशीर्णांगी भंगी वसु च वृष एको बहुवयाः ।
अवस्थेयं स्थाणोरपि च भवति सर्वामरगुरो—
विधौ वक्रे मूर्ध्नि स्थितवति वयं के पुनरमी ॥

''शिवजी के सिर पर जब वक्र चद्रमा के स्थित होने से सभी देवों में श्रेष्ठ शिवजी की यह स्थिति हो जाती है तथा उनका सेवक जिससे कि भयद मनुष्य की खोपड़ी ही उनका आभूषण बन जाती है तथा गले हुए अंगोंवाला भृंगी उनका सेवक हो जाता है, संपत्ति के रूप में केवल एक बूढ़ा बैल रहता है तो फिर भाग्य के टेढ़ा होने पर हम (संसारी जीव) लोग क्या हैं ?" यहाँ 'विधौ' शब्द में शब्दश्लेष है, जिसका अर्थ चंद्रमा तथा विधि या भाग्य है।

ख. अर्थश्लेष—

स्तोकेनोन्नतिमायाति स्तोकेनायात्यधोगतिम् ।
अहो सुसदृशी वृत्तिस्तुलाकोटेः खलस्य च ॥

"थोड़े में ही ऊंचा चढ़ जाता है और थोड़े में ही नीचे आ जाता है। तुला (तराजू) और खलों की वृत्ति एक ही प्रकार की होती हैं।"

'उन्नतिम्' तथा 'अधोगतिम्' यहाँ दो विशेषण तुला और खल पर लग जाते हैं। यदि इनके बदले इनके पर्याय रख दिए जाएं तो भी अर्थ में किसी प्रकार की बाधा नहीं होगी।

ग. रंचहिं सों ऊँचो चढ़े, रंचहिं सो नमि जाय।
तुला कोटि खल दुहुन की, यहै रीति दिखलाय ॥

—श्लोक का अनुवाद

शब्दश्लेष के अन्य उदाहरण—

१. अभंगपदश्लेष—पदों एवं शब्दों को बिना भंग किए ही कई अर्थ किया जाना।

तुम्हारा पी मुख वास तरंग, आज बौरे भौंरे सहकार ।—पंत

यहाँ बौरे के दो अर्थ हैं—पागल एवं आम की मंजरी।

२. सभंगपदश्लेष—जब पदों के टुकड़े कर अनेक अर्थ का विधान हो।

बहुरि सक्र सम बिनवौं तेही ।
संतत सुरानीक हित जेही ॥—रामायण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ 'सुरानीक' में सभंगपदश्लेष है। खलों की वंदना करते समय कवि उनकी तुलना शक्र या इंद्र से करता है जिन्हें सुरा (शराब) नीक है— अच्छी है, वे खल। इंद्र के पक्ष में हुआ सुर (देवता)+अनीक (सेना) अर्थात् देवताओं की सेनावाले।

श्लेष का शब्दालंकारत्व—श्लेष के शब्दालंकारत्व एवं अर्थालंकारत्व को लेकर संस्कृत काव्यशास्त्रियों में पर्याप्त मतभेद है। रुद्रट, मम्मट, विश्वनाथ प्रभृति आचार्यों ने इसे शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों माना है। भामह, उद्भट आदि ने इसे अर्थालंकार में परिगणित किया है और रुय्यक के अनुसार सभंगश्लेष शब्दालंकार है और अभंग अर्थालंकार। आचार्य मम्मट ने गुण, अलंकार एवं दोष की शब्दनिष्ठता एवं अर्थनिष्ठता का निर्णायक तत्त्व अनन्वय-व्यतिरेक को माना है। इसके अनुसार जब किसी शब्द के परिवर्त्तन के पश्चात् गुण, दोष अथवा अलंकार का अस्तित्व नष्ट हो जाय अर्थात् यदि उस शब्द का पर्यायवाची शब्द रख दिया जाय और अलंकारादि का सौंदर्य नष्ट हो जाय तो यह निश्चय होगा कि अलंकार, गुण आदि शब्दाश्रित हैं अर्थात् उनकी शब्दनिष्ठता सिद्ध होगी। यदि शब्द-परिवर्त्तन के पश्चात् भी किसी गुण, दोष या अलंकार का अस्तित्व अक्षुण्ण रहे तो यह सिद्ध होगा कि तत्तत् अलंकार, गुण, दोष अर्थाश्रित हैं। इसका अभिप्राय यह हुआ कि शब्दनिष्ठ अलंकारादि में शब्दपरिवृत्तिसहत्व संभव नहीं होता और अर्थनिष्ठ में शब्द-परिवर्त्तन संभव है। मम्मट ने श्लेष के दोनों ही प्रकारों—सभंग और अभंग—को शब्दाश्रित माना है। किसी के रहने पर किसी की सत्ता का रहना अन्वय एवं किसी के अभाव में किसी की सत्ता का न रहना व्यतिरेक है।

श्लेष और ध्वनि—श्लेष में श्लिष्ट शब्दों के जितने भी अर्थ स्फुट या प्रकाशित होते हैं, वे सभी वाच्यार्थ होते हैं, पर ध्वनि में वाच्यार्थ का प्राधान्य न होकर व्यंग्यार्थ की प्रधानता होती है। ध्वनि में एक अर्थ वाच्य होता है और दूसरा व्यंग्य, पर श्लेष में दोनों ही अर्थ वाच्य होते हैं।

अर्थश्लेष और अभिधामूला शाब्दीव्यंजना—श्लेष में दोनों ही अर्थ अभिधेय होते हैं, पर अभिधामूला शाब्दीव्यंजना में एक अर्थ वाच्य होता है और दूसरा व्यंग्य।

श्लेष और समासोक्ति—श्लेष में दो अर्थ होते हैं और दोनों ही प्रस्तुत होते हैं, किंतु समासोक्ति में एक अर्थ प्रस्तुत होता है और दूसरा अप्रस्तुत। समासोक्ति में प्रस्तुत से अप्रस्तुत की प्रतीति होती है, अतः इसमें प्रस्तुत वाच्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होता है और अप्रस्तुत व्यंग्य। किंतु श्लेष में दोनों ही अर्थ प्रस्तुत होते हैं। समासोक्ति में श्लिष्ट विशेषणों का प्रयोग होता है, उसमें विशेष्य श्लिष्ट नहीं होता; पर श्लेष में विशेष्य-विशेषण दोनों ही श्लिष्ट होते हैं।

श्लेषवक्रोक्ति—[वक्रोक्ति अलंकार का एक प्रकार] जब श्लिष्ट (अनेकार्थवाची शब्द) शब्दों के द्वारा कथित वक्ता के कथन को श्रोता अन्यार्थ कल्पित करे तो श्लेषवक्रोक्ति होगी। [दे० वक्रोक्ति]

स

संकर—मिश्रालंकार या उभयालंकार का एक भेद। नीर-क्षीरन्याय के अनुसार परस्पर मिले हुए अलंकारों को संकर कहा जाता है। 'संकर' का अर्थ है मिला हुआ। इसमें अनेक अलंकार दूध और पानी की तरह परस्पर इस प्रकार मिले रहते हैं कि उन्हें पृथक् नहीं किया जा सकता।

इस अलंकार का सर्वप्रथम विवेचन उद्भट ने किया है। तत्पश्चात् रुद्रट, मम्मट, रुय्यक, शोभाकर, विद्याधर, विद्यानाथ, विश्वनाथ, अप्पय दीक्षित और विश्वेश्वर पंडित ने इसका वर्णन किया।

उद्भट ने संकर अलंकार का सामान्य लक्षण न देकर इसके चार प्रकारों का उल्लेख किया, जिससे इसका स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। इन चार प्रकारों के नाम हैं—संदेह संकर, शब्दार्थवत्यलंकार संकर, एकशब्दाभिधानसंकर एवं अंगांगिभावसंकर।

अनेकालंक्रियोल्लेखे समं तद्वृत्य संभवे।
एकस्य च गृहेन्यायदोषाभावे च संकरः॥
शब्दार्थवत्यलंकारा वाक्य एकत्र भासिनः।
संकरोवा एकवाक्यांश प्रवेशाद्वाभिधीयते॥
परस्परोपकारेण यत्रालंकृतयः स्थिताः।
स्वातंत्र्येणात्मलाभं नो लभंते सोपि संकरः॥

—काव्यालंकारसारसंग्रह, ५/११-१३

रुद्रट के लक्षण में संकर तथा संसृष्टि दोनों का मिश्रण हो गया है। इनके अनुसार तिल-तंडुल तथा नीरक्षीर की भाँति अनेक अलंकारों के मिश्रण को संकर कहते हैं।

योगवशादेतेषां तिलतंडुलवच्चदुग्धजलवच्च।
व्यक्ताव्यक्तांशत्वात्संकर उत्पद्यते द्वेधा॥

—काव्यालंकार, १०/२५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मम्मट ने बताया कि दो या दो से अधिक अलंकार परस्पर सापेक्षभाव से एक स्थान पर रहें तो संकर होगा। इन्होंने इसके तीन प्रकारों का उल्लेख किया है—अंगांगिभावसंकर, एकपदानुप्रवेशसंकर तथा संदेहसंकर।

अविश्रांतिजुषामात्मन्यंगांगित्वं तु संकरः।

अतएव यदात्मन्यनासादितस्वतंत्रभावाः परस्परमनुग्राह्यानुग्राहकतां दधति, स एषां संकीर्यमाणस्वरूपत्वात्संकरः। —काव्यप्रकाश, १०/१४

रुय्यक ने नीरक्षीर की भाँति अनेक अलंकारों के मिश्रण को संकर कहा। इन्होंने इसके तीन प्रकार माने हैं।

नीरक्षीरन्यायेन तु संकरः॥ —अलंकारसर्वस्व, पृ० २४८

मिश्रत्व इत्येव। अनुत्कटभेदत्वं च संकरः। तच्च मिश्रत्वमंगांगिभावेन संशयेन एकवाचकानुप्रवेशेन च त्रिधा भवत् संकरं त्रिभेदमुत्थापयति॥ —वही

परवर्ती आचार्यों में शोभाकर, विद्याधर, विद्यानाथ, विश्वनाथ तथा दीक्षित के लक्षण रुय्यक से प्रभावित हैं।

अंगत्वे तु संकरः। —अलंकाररत्नाकर, ११२

कथितस्तु संकरोऽयं त्रिविधो यः क्षीरनीरवद्भवति। —एकावली, ८/७६

क्षीरनीरनयाद्यत्र संबंधः स्यात् परस्परम्।
अलंकृतीनामेतेषां संकरः स उदाहृतः॥

—प्रतापरुद्रीय, पृ० ३४१

अंगांगित्वेऽलंकृतीनां तद्वदेकाश्रयस्थितौ।
संदिग्धत्वे च भवति संकरस्त्रिविधः पुनः।

—साहित्यदर्पण, १०/९८

नीरक्षीरन्यायेनास्फुटभेदालंकारमेलने संकरः॥

—कुवलयानंद, पृ० २८५

दीक्षित ने चार भेदों का वर्णन किया है, तीन तो मम्मटादि के आधार पर और चौथा स्वतंत्र है, जिसे वे समप्रधान संकर कहते हैं। जब एक ही काव्य में अनेक समकोटिक अलंकारों का प्रयोग किया जाय तो समप्रधान संकर अलंकार होगा।

रीतिकालीन आचार्यों ने 'काव्यप्रकाश' तथा कुवलयानंद' के आधार पर संकर अलंकार का निरूपण किया। चिंतामणि ने 'काव्यप्रकाश' के लक्षण का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनुवादन किया और भिखारीदास तथा पद्माकर ने 'कुवलयानंद' को आधार बनाया।

संकर पुनि इनकी इतै अंगंगिता बखानि।
आपुहि कौ विश्राम को पावत जे नहिं आनि ॥

—कविकुलकल्पतरु, ३/३१३

द्वै कि तीन भूषण मिलै, क्षीरनीर के न्याय।
अलंकार संकर कहैं, तिहि प्रवीन कबिराय ॥

—काव्यनिर्णय, ३/४६

नीरक्षीर के न्याय सों संकर कहत सुजान।
जहाँ जुदे न लखे परैं नीरक्षीर सो आय ॥

—पद्माभरण, ३३१-३३३

भेद—संकर के तीन प्रकार माने गए हैं—अंगांगिभावसंकर, एकवाचकानुप्रवेशसंकर तथा संदेहसंकर।

१. अंगांगिभावसंकर—जहाँ अनेक अलंकार अन्यान्योश्रित भाव से रहें, वहाँ अंगांगिभावसंकर होता है। अंग का अर्थ है गौण या अप्रधान और अंगी का अर्थ प्रधान होता है। इसमें एक अलंकार दूसरे का उपकारक होता है तथा एक की सिद्धि पर अन्य की सिद्धि आश्रित रहा करती है।

क. अनुरागवतीसंध्या दिवसस्तत्पुरःसरः।
अहो दैवगतिश्चित्रा तथापि न समागमः ॥

संध्या अनुराग से भरी है और दिन उसके आगे स्थित है, पर दैव की गति विचित्र है, इतने पर भी दोनों का समागम नहीं होता है। संध्या तथा दिन पर नायिका और नायक के व्यवहार का आरोप होने से यहाँ समासोक्ति अलंकार है, जो विशेषोक्ति का अंग है। संध्या में अनुराग रहने और दिवस का उसके सम्मुख उपस्थित रहने पर भी दोनों का मिलन नहीं होता। यहाँ पर्याप्त कारण के होने पर भी मिलन या कार्य नहीं होता, अतः समासोक्ति और विशेषोक्ति में अंगांगिभावसंकर हुआ।

ख. खल-बढ़ई बल करि थके, कटै न कुबत-कुठार।
आल-बाल उर-झालरी, खरी प्रेमतरु डार ॥ —बिहारी

खल-बढ़ई के जोर लगाकर थक जाने पर भी बदनामी रूपी कुठार कट नहीं सका, फिर भी थाला रूपी हृदय में प्रेम रूपी उत्तम डाल लहलहा उठी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ रूपक और विशेषोक्ति का संकर है तथा रूपक द्वारा ही विशेषोक्ति की सिद्धि होती है।

२. एकाश्रयानुप्रवेश (एकवाचकानुप्रवेश) संकर—जब एक ही शब्द या आश्रय में अनेक अलंकार स्थित रहें तो एकवाचकानुप्रवेश संकर होगा।

क. स्पष्टोल्लसत्किरणकेसरसूर्यबिंब विस्तीर्णकर्णिकमथो दिवसारविंदम्।
श्लिष्टाष्टदिग्दलकलापमुखावतारबद्धांधकारमधुपावलि संचुकोच॥

तत्पश्चात् दिवस-कमल संकुचित हो गया। उसकी स्पष्ट रूप से निकली हुई किरणें ही केसर हैं और सूर्यमंडल विस्तीर्ण बीजकोष है। उसमें परस्पर बँधी हुई आठ दिशारूपी पंखुड़ियों से पूर्ण रात्रि के प्रारंभ के कारण भौंरों का समूह बंद हो गया है। यहाँ 'किरण-केसर' में अनुप्रास तथा रूपक दो अलंकार एक ही आश्रय में हैं।

ख. डर न टरै नींद न परै, हरै न काल-विपाक।
छिन छाकै उछकै न फिरि, खरौ विषम छबि-छाक॥—बिहारी।

यहाँ 'छबि-छाक' एक ही पद में अनुप्रास और रूपक दो अलंकार हैं।

३. संदेहसंकर—जब अनेक अलंकारों में से एक अलंकार का निर्णय न हो तो संदेहसंकर अलंकार होता है।

त. नयनानंददायींदोर्बिबमेतत्प्रसीदति।
अधुनापि विरुद्धाशमविशीर्णमिदं तमः॥

नयनों को आनंदित करनेवाला यह चंद्रमंडल चमक रहा है, किंतु दिशाओं को ढकनेवाला यह अंधकार अभी भी नष्ट नहीं हुआ है। काम के उद्दीपन का समय मानने पर प्रकारांतर से बात कहने पर यहाँ पर्यायोक्ति है, या मुख चंद्रबिंब के रूप में अध्यवसान के कारण अतिशयोक्ति। अनेक अलंकारों में से एक का निर्णय न होने के कारण यहाँ पर्यायोक्ति एवं अतिशयोक्ति का सदेह-संकर हुआ।

ख. सुनि मृदु बचन मनोहर पिय के।
लोचन-नलिन भरे जल सिय के॥—रामायण।

यहाँ लोचन-नलिन में उपमा है या रूपक इसका निर्णय नहीं हो पाता।

संदेहसंकर में अनेक अलंकारों के संदेह का निर्णय साधक-बाधकभाव के आधार पर होता है। जिस बात के द्वारा किसी अलंकार के निर्णय में सहायता मिलती हो, उसे उसका साधक कहा जाता है और जिस तथ्य के कारण किसी अलंकार का निर्णय न हो, वह उसका बाधक कहा जाएगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संकीर्ण—आचार्य देव-वर्णित एक नूतन अलंकार। यह विकल्प अलंकार का विरोधी है। इसमें 'बहुलक्ष्य' (अनेक लक्ष्य) की पूर्त्ति का वर्णन होता है।

संकीरन बहुलक्ष।

—शब्दरसायन, पृ० १८०

संकीर्णता—वाक्यदोष का १५वाँ भेद। [दे० वाक्यदोष]

संकेतग्रह (संकेतग्रहण)—शब्द तथा अर्थ के संबंध ज्ञान को संकेतग्रह कहते हैं। [दे० वाचक] संकेतग्रह या शब्दार्थ-संबंध का ज्ञान लोकव्यवहार से भी होता है, पर इसके अन्य आठ साधन भी बताए गए हैं—व्याकरण, उपमान, कोष, आप्तवाक्य, व्यवहार, प्रसिद्ध पद का सान्निध्य, वाक्यशेष तथा निवृत्ति। इस संबंध में मुक्तावली का श्लोक (शब्दखंड) प्रसिद्ध है।

—सिद्धांतमुक्तावली, दिनकरी, पृ० ३५९

शक्तिग्रहं व्याकरणोपमानात्
कोषाप्तवाक्याद् व्यवहारतश्च।
सान्निध्यतः सिद्धपदस्य धीराः
वाक्यस्य शेषाद्विवृतेर्वदंति॥

१. व्याकरण—व्याकरण से शब्द के 'प्रकृतिप्रत्यय' का बोध होता है। व्याकरण यह बतलाता है कि किस धातु (प्रकृति) से कौन-सा शब्द बना है और उसमें कौन प्रत्यय लगा है। उदाहरण के लिए सांसारिक और वैयाकरण शब्द का अर्थ संसार में उत्पन्न तथा व्याकरण जाननेवाला, व्याकरणशास्त्र से ही ज्ञात होता है।

२. उपमान—उपमान का अर्थ है सादृश्य या समानता। इसमें एक पदार्थ के समान दूसरे पदार्थ को बताकर संकेत-ग्रहण किया जाता है। जैसे, किसी ने जई नहीं देखी हो तो उसे जौ दिखाकर कहा जाएगा कि जौ के समान जई होती है। इस प्रकार यहाँ उपमान या सादृश्य के द्वारा जई का ज्ञान हो जाता है।

३. कोष—कोष से शब्दों के निश्चित अर्थ का बोध होता है। उदाहरण के लिए कहा जाय कि 'मार' को शंकर ने जलाया तो यहाँ कोष की सहाया से मार का अर्थ कामदेव होगा।

मदनोमन्मथोमारो —अमरकोष

४. आप्तवाक्य—आप्तवाक्य का अर्थ है प्रामाणिक व्यक्ति का कथन। कोई प्रसिद्ध विद्वान् या अधिकारी व्यक्ति किसी बात को कहे तो उसका कथन प्रामाणिक मान लिया जायगा। जैसे, किसी बालक को उसका पिता किसी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

घोड़े को दिखाकर कहे कि यह घोड़ा है तो बच्चा आप्तवाक्य के द्वारा घोड़े का अर्थ चार पैर का पशु जान जायगा।

५. व्यवहार—व्यवहार द्वारा वास्तविक संकेतग्रहण होता है। जैसे, छोटे शिशु को मां के द्वारा अनेक वस्तुओं का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

६. प्रसिद्धपद का सान्निध्य—किसी शब्द के साथ किसी प्रसिद्ध शब्द (पद) के रहने से उसके अर्थ का बोध (ज्ञान) होता है। उदाहरण के लिए 'रामकृष्ण आ रहे हैं' इस वाक्य में कृष्ण प्रसिद्ध पद है, अतः कृष्ण के साथ रहने के कारण राम का अर्थ बलराम होगा, सीतापति राम नहीं।

७. विवृति—विवृति का अर्थ है व्याख्या, टीका, विवरण या स्पष्टीकरण। यहाँ समानार्थक पद से संकेतग्रहण होगा। जैसे 'कलश' कहने से 'घट' का संकेत टीका द्वारा होगा।

८. वाक्यशेष—जब किसी दूसरे वाक्य से एक वाक्य के शब्द का संकेत ग्रहण किया जाय तो वहाँ वाक्यशेष होता है। उदाहरण के लिए 'यव से चरु बनता है' में यव का अर्थ आर्यों के लिए यव तथा म्लेच्छों के लिए कंगु है। किंतु एक वाक्य के अनुसार कि 'वसंत में सब शस्यों के पत्ते गिर जाते हैं, पर जौ फैले हुए रहते हैं' इसके अनुसार 'जौ' का संकेतग्रह होगा।

संकेतग्रह का विषय—शक्तिग्रह किसमें होता है, यह प्रश्न संकेतग्रह से संबद्ध है। संस्कृत में इस प्रश्न पर वैयाकरणों, मीमांसकों तथा नैयायिकों ने स्वतंत्र रूप से विचार किया है और उनके मत भिन्न-भिन्न हैं। आचार्य मम्मट ने 'काव्यप्रकाश' (द्वितीय उल्लास) में इस प्रश्न को उठाते हुए कहा कि संकेतित अर्थ जाति, गुण, क्रिया तथा यदृच्छा के रूप से चार प्रकार का होता है अथवा वह मीमांसकों के अनुसार केवल जाति में ही होता है। वैयाकरणों के मत से संकेतग्रह जाति, गुण, क्रिया और द्रव्य चारों में ही संभव है, अतः उनके अनुसार इसके पूर्वोक्त चार भेद होते हैं। मीमांसक जाति नामक केवल एक ही भेद को मानते हैं, जबकि नैयायिकों के अनुसार संकेत जातिविशिष्ट व्यक्ति में सन्निहित है। बौद्ध 'अपोह' में संकेत स्वीकार करते हैं। इस संबंध में साहित्य-शास्त्रियों को वैयाकरणों का ही मत मान्य है।

आचार्य मम्मट ने पूर्वपक्ष के रूप में इस विषय का विवेचन करते हुए बताया कि कोई जाति में संकेत मानता है तो कोई व्यक्ति में तथा किसी के अनुसार जातिविशिष्टव्यक्ति में संकेत होता है। साधारणतः किसी व्यक्ति में ही जीवन के व्यवहार सिद्ध होने से संकेतग्रह व्यक्ति में ही होता है। यदि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

व्यक्ति में ही संकेतग्रह माना जाय तो इसमें दो प्रकार के दोषों—आनंत्य तथा व्यभिचार—की संभावना होगी। नियम यह है कि 'जिस शब्द का जिस अर्थ से संकेतग्रह होता है, उस शब्द से उसी अर्थ की प्रतीति होती है।' अतः, यदि व्यक्ति में संकेतग्रह हुआ तो उस शब्द से केवल उसी व्यक्तिविशेष का ज्ञान होगा तथा अन्य व्यक्तियों के लिए पृथक्-पृथक् सकेतग्रह के मानने की आवश्यकता होगी। ऐसी स्थिति में एक 'गो' शब्द का ज्ञान करानेवाले सभी 'गो' व्यक्तियों में पृथक्-पृथक् संकेतग्रह मानने की आवश्यकता पड़ेगी और इस प्रकार अनंत शक्तियों को मानना पड़ेगा। इस प्रकार का दोष 'आनंत्य' दोष कहा जाता है। आनंत्यदोष से मुक्त होने के लिए व्यभिचार दोष की कल्पना करनी पड़ती है। 'व्यभिचार' का अर्थ 'नियम का उल्लंघन' है, जिसके अनुसार कुछ व्यक्तियों में व्यवहार द्वारा ही संकेतग्रह हो जाता है और शेष व्यक्तियों का ज्ञान संकेतग्रह के न होने पर भी होता है। इस प्रकार यदि 'गो' शब्द के द्वारा बहुत-से 'गो' व्यक्तियों का ज्ञान बिना संकेत के होने लगे तो वहाँ निगम भंग हो जाता है; क्योंकि नियमानुसार शब्द के अर्थ का ज्ञान संकेतग्रह द्वारा ही होता है। आनंत्य और व्यभिचार दोष व्यक्ति में ही संकेत-ग्रह मानने के कारण होते हैं, अतः व्यक्ति में संकेतग्रह नहीं मानना चाहिए।

महाभाष्यकार ने शब्दों के चार प्रकार माने हैं—जाति, गुण, क्रिया तथा यदृच्छाशब्द। केवल व्यक्ति में संकेत मानने पर शब्दों के चार विभाग नहीं बन सकते। ऐसी स्थिति में गौः, शुक्लः, चलः, डित्थः आदि शब्द व्यक्ति अर्थ को ही बोधित करने लगेंगे। इसलिए व्यक्ति में संकेत न मानकर जाति, गुण, क्रिया तथा यदृच्छा, जो व्यक्ति के उपाधि-रूप ही हैं, आदि धर्मों में ही संकेत-ग्रह मानना ठीक होगा।

वैयाकरणों तथा मीमांसकों, दोनों ने ही स्वीकार किया है कि व्यक्ति में शब्द का संकेत नहीं होता। प्रश्न है कि किसमें सकेत होता है? इस प्रश्न पर दोनों (वैयाकरण तथा मीमांसक) में भिन्नता है। मीमांसक शब्द को केवल जाति का संकेत करनेवाला मानते हैं तो वैयाकरणों ने उपाधि में संकेत स्वीकार किया है।

वैयाकरणों का मत—वैयाकरण उपाधिवादी हैं तो मीमांसक जाति-वादी। उपाधि से अभिप्राय किन्हीं वस्तुओं के ऐसे सामान्य धर्म से है, जो उन्हें अन्य वस्तुओं से पृथक् करते हैं। उपाधि के शब्द-भेद चार प्रकार के हैं—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

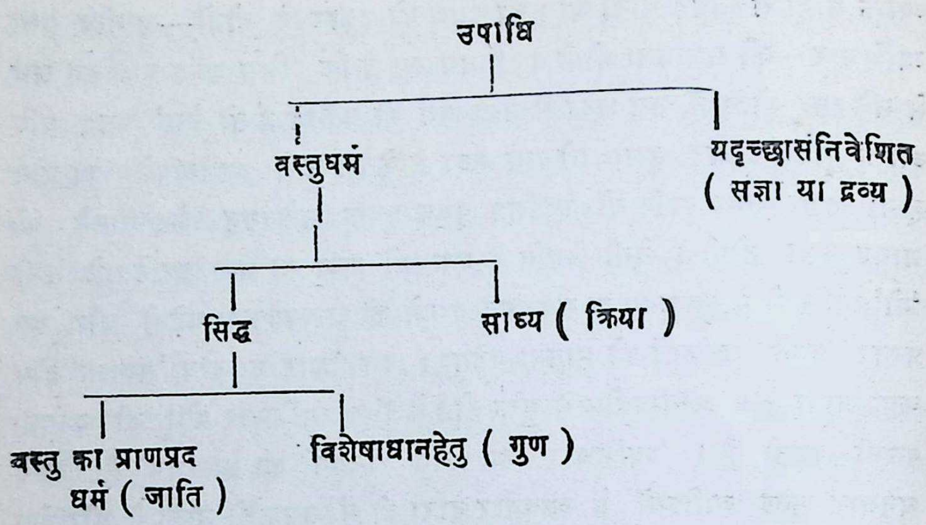

उपाधि दो प्रकार की होती है—वस्तुधर्म तथा यदृच्छासंनिवेशित। व्यक्ति में मूल रूप से पाए जानेवाले धर्म वस्तुधर्म हैं। यह वस्तु में स्वतः सिद्ध होता है। कुछ धर्म ऐसे होते हैं, जो व्यक्ति पर इच्छानुसार आरोपित कर दिए जाते हैं। इसे यदृच्छ संनिवेशित धर्म कहते हैं। यह संज्ञारूप होता है। वस्तुधर्म के भी दो भेद हैं—सिद्ध एवं साध्य। सिद्धधर्म भी दो प्रकार का होता है—वस्तु का प्राणप्रद धर्म, जो वस्तु की योग्यता का निर्वाहक होता है। यह धर्म जाति है। दूसरा, विशेषाधानहेतुकधर्म वह होता है, जो व्यवहार-योग्य व्यक्ति की विशेषता प्रकट करता है। 'वाक्यपदीय' में भर्तृहरि ने कहा है कि गौ इसलिए गौ नहीं है कि उसका आकार या रंग गौ का है, बल्कि वह गोत्व जाति के संबंध के कारण ही गौ है। इस प्रकार के ज्ञान को उसका धर्म 'गोत्व' ही बताता है। इस प्रकार जाति के धर्म द्वारा उस व्यक्ति का 'विशेष' प्रकट होता है। विशेष का अर्थ है सजातीय पदार्थ को एक दूसरे से पृथक् करनेवाला या सजातीयव्यावर्त्तकधर्म। जातिधर्म वस्तु के स्वरूप में ही वर्त्तमान रहता है; अतः वह उसका स्वरूपाधायक धर्म है और गुण वस्तु में विशेषता उत्पन्न करनेवाला धर्म अर्थात् जिस व्यक्ति का जातिधर्म सिद्ध हो चुका हो, उसको सजातीय धर्म से पृथक् करनेवाले धर्म को गुण कहते हैं। वैयाकरणों की तीसरी उपाधि क्रिया-रूप होती है, उसे साध्य कहते हैं। इसके पहले होनेवाले अंश तथा बाद में होनेवाले क्रमिक होते हैं।

यदृच्छा वस्तु की चतुर्थ उपाधि है। यह वस्तु का धर्म न होकर व्यवहार के लिए कल्पित संज्ञा-मात्र होती है और जाति, गुण तथा क्रिया से भिन्न

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होती है। इस प्रकार वैयाकरण जाति, गुण, क्रिया और यदृच्छा चार उपाधियों में संकेत मानते हैं।

मीमांसकों का मत—मीमांसकों ने केवल जाति में ही संकेत माना है। प्रत्येक पदार्थ जाति या सामान्य का ही वाचक होता है। 'गुण, क्रिया तथा यदृच्छा शब्दों में भी जाति का अनुसधान करते हैं।' मीमांसक इससे सहमत नहीं हैं कि शुक्लादि गुण सभी वस्तुओं में एक ही होते हैं। पदार्थों के भिन्न आधार होने पर भी उनका शुक्लादि गुण एक ही होता है। मीमांसकों के अनुसार हिम, पय एवं शंख में स्थित शुक्लादि गुण भिन्न-भिन्न होते हैं। उन्हें एक स्वीकार कर उनमें संकेतग्रहण नहीं हो सकता। विभिन्न शुक्ल में विद्यमान गुणों या शुक्लत्व को जाति ही मानना चाहिए। उसी शुक्लत्व जाति में ही संकेत-ग्रहण सम्भव है। इसी प्रकार गुड़ एवं चावल आदि पदार्थों की पाकक्रिया में अंतर होता है; किंतु उनमें पाकत्व जाति तो सामान्य है। ऐसे ही विभिन्न व्यक्तियों द्वारा उच्चरित या बालक, वृद्ध और तोते के द्वारा कथित 'डित्थ' आदि शब्द में डित्थत्व सामान्य होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि समस्त पदार्थों का प्रवृत्तिनिमित्त या संकेत-विषय जाति ही है।

नैयायिकों का मत—नैयायिकों के मतानुसार संकेत-ग्रहण न तो जाति में मान्य है और न व्यक्ति में ही, बल्कि वह जातिविशिष्ट व्यक्ति में ही होता है। 'न्यायसूत्र' के अनुसार पद का अर्थ व्यक्ति, आकृति एवं जाति सभी से है—**व्यक्त्याकृतिजातयस्तु पदार्थः**—न्यायसूत्र, २,२,६८। अतः केवल व्यक्ति या जाति में शक्तिग्रह न मानकर जाति एवं आकृति से विशिष्ट व्यक्ति में माना जा सकता है। नैयायिकों का कहना है कि केवल व्यक्ति में शक्तिग्रह माना जाय तो 'आनंत्य' एवं 'व्यभिचार' दोष आ जाएंगे। इसी प्रकार जाति में संकेतग्रहण करने पर व्यक्ति की प्रतीति नहीं हो सकती। अतएव, जाति-विशिष्ट व्यक्ति में ही संकेतग्रह मानना चाहिए।

बौद्धमत (अपोहवाद)—संकेतग्रहण के संबंध में बौद्ध दार्शनिकों का अपोहवाद अधिक महत्त्व रखता है। उनका इस विषय के संबंध में अपना पृथक् विचार है। अपोह का अर्थ है—अतद्व्यावृत्ति या तद्भिन्नभिन्नत्व। इसका अर्थ इस प्रकार है—किसी व्यक्ति द्वारा 'गाय' शब्द कहने पर संसार की सभी वस्तुओं का, केवल गाय को छोड़कर, निराकरण कर दिया जाता है। इसे ही अतद्व्यावृत्ति कहते हैं, जिसमें उस वस्तु का निराकरण न कर उससे भिन्न सभी पदार्थों का निराकरण कर दिया जाता है। बौद्धदर्शन 'क्षणभंगुरवाद'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

को मानता है ; अतः क्षणिकवादी सिद्धांत के विपरीत होने के कारण वे जाति या सामान्य को स्वीकार नहीं करते। यदि वे 'जाति' या 'सामान्य'-जैसे पदार्थ को स्वीकार कर लें तो उन्हें स्थिर पदार्थ की सत्ता को स्वीकार करना पड़ेगा। उनके अनुसार आत्मा क्षणिक और परिवर्त्तनशील है, स्थिर नहीं। अतः वे जाति में संकेतग्रह न मानकर अपोह में ही मानते हैं।

साहित्यशास्त्र में न तो मीमांसा का सिद्धांत मान्य है और न न्याय का। वहाँ केवल वैयाकरणों का ही विचार मान्य है, जिसके अनुसार जाति, गुण, क्रिया एवं यदृच्छा चारों में ही शाब्दबोध होता है। [दे० काव्यप्रकाश, २/८]

संकेतविघट्टना—परकीया नायिका का एक भेद। इसका अन्य नाम अनुशयना है। संकेत स्थल या सहेट के नष्ट होने पर जो नायिका दुःखित हो, उसे संकेतविघट्टना कहते हैं। [दे० अनुशयना]

संकेतस्थल—उस स्थल को संकेत कहते हैं, जहाँ नायक-नायिका छिपकर अभिसार करते हैं। इसे सहेट भी कहा जाता है। अभिसरण के स्थान का वर्णन करते हुए विश्वनाथ ने कहा हैं कि खेत, बगीचा, टूटा देवालय, दूतीगृह, वन, शून्यस्थान, श्मशान तथा नदी का तट, ये आठ स्थान उपयुक्त हैं। इनके अतिरिक्त कोई भी अंधकारावृत स्थान अभिसरण के लिए उपयुक्त हो सकता है।

क्षेत्रं वाटी भग्नदेवालयो दूतीगृहं वनम्।
मालापंचः श्मशानं च नद्यादीनां तटी तथा॥
एवं कृताभिसाराणां पुंश्चलीनां विनोदने।
स्थानान्यष्टौ तथा ध्वांतच्छन्ने कुत्रचिदाश्रये॥

—साहित्यदर्पण, ३/८०-८१

संकेत स्थान—नायक-नायिका के मिलन का गुप्त स्थान, संकेत स्थान कहा जाता है। इसे सहेट या संकेतस्थल भी कहते हैं। [दे० संकेतस्थल]

संक्रामयिता—कवियों का एक प्रकार। [दे० कवि] जब कोई मंत्रसिद्ध कवि मंत्र के बल से कन्या, कुमार एवं बालक-बालिकाओं में काव्य-रचना की शक्ति भर दे या सरस्वती का संक्रमण करा दे तो उसे संक्रामयिता कहते हैं।

यः कन्याकुमारादिषु सिद्धमंत्रः सरस्वतीं संक्रामयति स संक्रामयिता।

—काव्यमीमांसा, पंचम अध्याय, पृ० ५१
चौखंबा-संस्करण (हिंदी अनुवाद)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संक्षेप—अग्निपुराण में वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। अल्प शब्दों द्वारा जब अधिक अर्थ का बोध हो तो संक्षेप अलंकार होगा।

संक्षेपो वाच्यकैरल्पैर्बहोरर्थस्य संग्रहः ॥

—अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग, ९/४

संख्यान्—यथासंख्य अलंकार का एक नाम। [दे० यथासंख्य]

संख्यावक्रता—पदपरार्धवक्रता का तृतीय भेद। [दे० पदपरार्धवक्रता]

संघट्टन—दूती का कार्य। [दे० दूती] संघट्टन का अर्थ है मिलाना। नायक और नायिका को परस्पर मिलाना संघट्टन है।

दोउन को जु मिलाइबो, सो संघट्टन मानि ॥

—जगद्विनोद, ३७०

उदाहरण—

क. अंजति रजनिरुदंचति तिमिरमिदं चंचति मनोभूः।
उक्तं न त्यज युक्तं विरचय रक्तं मनस्तस्मिन् ॥

—रसमंजरी, ९८

यहाँ कोई दूती नायिका को उपदेश दे रही है। इस समय रात अत्यंत शोभायमान है और अंधकार बढ़ रहा है तथा कामदेव उल्लसित हो रहा है। अतः, तुम्हारे लिए उचित है कि तुम स्वयं की हुई नायक के अनुसरण की प्रतिज्ञा का त्याग न करो और उसके विषय में मन को अनुरागयुक्त बनाओ अर्थात् अभिसार के लिए उपयुक्त इस समय का त्याग न करो।

ख. गोरी कों जु गोपाल कों, होरी के मिस ल्याइ।
बिजन साँकरी खोरि में, दोऊ दिये मिलाइ ॥

—जगद्विनोद, ३७४

संघात—मुक्तक काव्य का एक भेद। [दे० मुक्तककाव्य]

संचारीभाव—[दे० व्यभिचारीभाव]

संदिग्ध—अर्थदोष का सातवाँ भेद। [दे० अर्थदोष]

संदिग्ध—शब्ददोष का दसवाँ भेद। [दे० संदिग्ध]

संदिग्धप्रधानव्यंग्य—गुणीभूतव्यंग्य का पंचम प्रकार। [दे० गुणीभूत-व्यंग्य] इसमें इस बात का संदेह बना रहता है कि वाच्यार्थ तथा व्यंग्यार्थ, किसमें चमत्काराधिक्य है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हरस्तु किंचित्परिवृत्तधैर्यश्चंद्रोदयारंभ इवांबुराशिः ।
उमामुखे बिंबफलाधरोष्ठे व्यापारयामास विलोचनानि ॥

चंद्रमा के उदय के प्रारंभकाल में समुद्र की भाँति स्खलित धैर्यवाले शिवजी बिंबाफल के सदृश अधरोष्ठयुक्त पार्वती के मुख की ओर आँख को फेरने लगे। यहाँ नेत्र घुमाना वाच्यार्थ है और मुख चूमना व्यंग्यार्थ। यहाँ दोनों में कौन प्रधान है, इसका पता नहीं चलता।

थके नयन रघुपति छबि देखी।
पलकन हूँ परिहरी निमेखी॥
अधिक सनेह देह भइ भोरी।
सरद ससिहि जनु चितव चकोरी॥ —रामायण

"जिस प्रकार शरत्कालीन चंद्रमा को देखकर चकोरी स्नेह-विह्वल हो जाती है, उसी प्रकार सीताजी रामचंद्र के रूप को देखकर विह्वल हो गईं।" यह वाच्यार्थ है। 'देह भइ भोरी' में व्यंजित जड़ता संचारी व्यंग्यार्थ है। दोनों में कौन प्रधान है, इसमें संदेह बना रहता है।

संभव—भोज उद्भावित एक अल्प-प्रसिद्ध अर्थालंकार। इसका लक्षण उत्प्रेक्षा से मिलता-जुलता है, अतः, संभव का अंतर्भाव उत्प्रेक्षा में किया जा सकता है। [दे० उत्प्रेक्षा]

प्रभूतकारणालोकात्स्यादेवमितिसंभवः।
स विधौ वा निषेधे वा द्वये वा न द्वयेऽपि वा॥

—सरस्वतीकंठाभरण, ३/२५

भूयांसि कारणानि दृष्ट्वा कार्यमुत्पत्स्यते नापिदैवात् कदाचिन्न स्यादिति ज्ञानसंभवः। —रत्नेश्वर-कृत टीका, ३४२

संभावना—अलंकार। जहाँ संभावितार्थ की सिद्धि का वर्णन हो, वहाँ संभावना अलंकार होता है। संभावना का अर्थ कल्पना है। इस अलंकार में किसी कार्य को सिद्ध करने के लिए इस प्रकार की कल्पना की जाती है कि 'ऐसा हो तो ऐसा होगा।' यह अतिशयमूलक अलंकार है।

संभावना अलंकार के उद्भावक जयदेव हैं। इनके मत से अन्य कार्य की सिद्धि के लिए 'यदि ऐसा हो तो ऐसा होगा' इस प्रकार का तर्क या अनुमान करना संभावना है। दीक्षित ने जयदेव के ही लक्षण को उद्धृत कर दिया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संभावना यदीत्थं स्याद्विव्यूहोऽन्य प्रसिद्धये।

—चंद्रालोक, ५/४८

संभावना यदीत्थं स्यादिव्यूहोऽन्य सिद्धये॥

—कुवलयानंद, १२६

रीतिकालीन आचार्यों ने 'चंद्रालोक' के लक्षण को अनूदित कर संभावना का वर्णन किया है। जसवंत सिंह, मतिराम, दास तथा पद्माकर आदि के लक्षण इसके प्रमाण हैं।

जौ यों होइ तौ होइ यों संभावना विचार॥

—भाषाभूषण, १५४

जो यों होय तु होय यों जहँ संभावन होय।
संभावन तासों कहत विमल ज्ञान मति धोय॥

—ललितललाम, २६६

जौ यों होइ तौ होइ यों संभावना सुजान॥

—काव्यनिर्णय, १५/२६

जु यों होइ तौ होइ यों यह संभावन जान॥

—पद्माभरण, २१३

नागेश एवं विश्वेश्वर पंडित संभावना के स्वतंत्र अस्तित्व का खंडन कर इसे असंबंधेसंबंधरूपा अतिशयोक्ति में गतार्थ कर देते हैं। उनके अनुसार यदि, चेत् शब्दों द्वारा असंभव अर्थ का द्योतन करनेवाली अतिशयोक्ति से संभावनालंकार पृथक् नहीं है।

इति संभावनालंकारो यद्यर्थोक्तौ च कल्पनामित्यतिशयोक्त्या गतार्थः।

—उद्योत, पृ० ५४४

दे० अलंकार कौस्तुभ पृ० २८३

उदाहरण—

क. जु कहुँ पावतो आप में द्वै अरविंद अमंद।
तौ तेरे मुख चंद की उपमा लहतो चंद॥ —पद्माकर

यहाँ चंद्रमा में दो कमलों के होने की संभावना कर मुख की समता बनाई गई है। इस प्रकार की कल्पना में संभावनालंकार हुआ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संलक्ष्यक्रमव्यंग्य ध्वनि—अभिधामूलाध्वनि का भेद।

[दे० अभिधामूलाध्वनि]

जब वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ का पूर्वापर-क्रम स्पष्टतः दिखाई पड़े तो संलक्ष्यक्रमव्यंग्य ध्वनि होती है। इसमें वाच्यार्थ की प्रतीति के उपरांत व्यंग्यार्थ का बोध होता है। इसमें अनुरणन (झंकार) या अनुस्वान के समान व्यंग्यार्थ का क्रम होता है। जिस प्रकार घड़ावल के बजने पर पहले जोर का टंकार होता है, तदनंतर अनुरणन या झंकार होती है, उसी प्रकार टंकार के समान वाच्यार्थ का बोध होने पर झंकार की भाँति इस ध्वनि में व्यंग्य अर्थ की ध्वनि निकलती है। जैसे टंकार की अपेक्षा झंकार मधुर होती है, उसी प्रकार वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ मधुर होता है और जैसे टंकार का झंकार के साथ पौर्वापर्य का क्रम स्पष्ट जाना जाता है, उसी प्रकार वाच्यार्थ के अनंतर प्रतीत होनेवाले व्यंग्यार्थ का पौर्वापर्य क्रम इस ध्वनि में स्पष्ट प्रतीत होता है।

—रसमंजरी. पृ० २५७ ५८

इसके तीन भेद हैं—शब्दशक्तिउद्भव अनुरणन ध्वनि, अर्थशक्तिउद्भव-अनुरणन ध्वनि और उभयशक्तिउद्भव अनुरणन ध्वनि।

शब्दशक्ति उद्भव अनुरणन ध्वनि—वाच्यार्थ का बोध होने के पश्चात् व्यंग्यार्थ की प्रतीति जिस शब्द के द्वारा होती है, उसको बताने की शक्ति उसके पर्यायवाची शब्द में न होकर केवल उसी शब्द में होती हो तो वहाँ ध्वनि का यह भेद होता है। इसके भी दो प्रकार होते हैं—वस्तुध्वनि और अलंकार ध्वनि।

[दे० शब्दशक्ति उद्भव अनुरणनध्वनि]

अर्थशक्ति उद्भव अनुरणन ध्वनि—जिस ध्वनि में शब्द-परिवर्त्तन के बाद भी व्यंग्यार्थ का बोध हो अर्थात् शब्द के पर्याय द्वारा भी व्यंग्यार्थ की प्रतीति हो तो वहाँ अर्थशक्ति उद्भव अनुरणन ध्वनि होती है। इसमें ध्वनि शब्दाश्रित न होकर अर्थाश्रित होती है। इसके तीन भेद हैं—स्वतःसंभवी, कवि प्रौढ़ोक्तिमात्र सिद्ध तथा कवि-निबद्ध पात्र प्रौढ़ोक्तिसिद्ध। इनमें प्रत्येक के चार-चार भेद होकर कुल बारह प्रकार होते हैं। इन तीनों में वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ कहीं वस्तुरूप और कहीं अलंकार रूप होते हैं। प्रत्येक के चार-चार भेद इस प्रकार हैं—वस्तु से वस्तुध्वनि, वस्तु से अलंकारध्वनि, अलंकार से वस्तुध्वनि और अलंकार से अलंकारध्वनि। [दे० अर्थशक्ति-उद्भव अनुरणन ध्वनि]

शब्दार्थ उभयशक्तिउद्भव अनुरणन ध्वनि—इसमें कुछ शब्दों का परि-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वर्त्तन कर उनके पर्यायवाची शब्दों द्वारा व्यंग्य निकलता है एवं कुछ शब्दों को बदल देने पर भी व्यग्य की प्रतीति होती है।

[दे० शब्दार्थोभयशक्ति उद्भव अनुरणन ध्वनि]

संलापक—उपरूपक का एक भेद। [दे० उपरूपक] इसकी रचना तीन या चार अकों में होती है। इसका नायक पाखंडी होता है और शृंगार तथा करुण रस के अतिरिक्त सभी रस प्रयुक्त होते हैं; पर उनमें से एक रस अंगी (प्रधान) होता है। भारती तथा कैशिकी के अतिरिक्त अन्य दो वृत्तियाँ (आरभटी और सात्त्वती) प्रयुक्त होती हैं और नगरोपरोध, छल, संग्राम, भ्रम-संभ्रम, विद्रव (भगदड़) आदि का वर्णन किया जाता है। इसका उदाहरण 'मायाकापालिक' है।

संलापकेऽङ्काश्चत्वारस्त्रयो वा नायकः पुनः।
पाषंडः स्याद्रसस्तत्रशृंगारकरुणेतरः॥
भवेयुः पुरसंरोधच्छलसंग्रामविद्रवाः।
न तत्र वृत्तिर्भवति भारती न च कैशिकी॥

—साहित्यदर्पण, ६/२९१-२९२

संवर्गक कवि—मौलिकता की दृष्टि से कवि का एक प्रकार। [दे० कवि] संवर्गक का अर्थ है डाकू या बटमार। जो कवि अन्य की रचना को भी बिना किसी हिचक के अपनी रचना कह दे, उसे संवर्गक कवि कहते हैं। यह बलपूर्वक अन्य की रचना को अपनी कृति कहकर अपने यश का मिथ्या प्रचार करता है।

संवृत्तिवक्रता—पदपूर्वार्द्ध वक्रता का पंचम प्रकार।

[दे० पदपूर्वार्द्ध वक्रता]

संसृष्टि—मिश्रालंकार या उभयालंकार का एक भेद। तिल-तंडुलन्याय से परस्पर निरपेक्ष अनेक अलंकारों की एकत्र संस्थिति को संसृष्टि कहते हैं। 'संसृष्टि' का अर्थ संयोग या मेल है। जब तिल एवं चावल की भाँति दो से अधिक अलंकार एक साथ मिले हों और वहाँ उनकी स्वतंत्र रूप से (एकत्र) स्थिति हो तो वहाँ संसृष्टि अलंकार होता है।

इस अलंकार का प्रथम उल्लेख आचार्य भामह ने किया है, तत्पश्चात् दंडी, उद्भट, वामन, रुद्रट, भोज, मम्मट, रुय्यक, जयदेव, विद्याधर, विद्यानाथ, विश्वनाथ, अप्पय दीक्षित तथा विश्वेश्वर पंडित ने इसका वर्णन किया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भामह अनेक अलंकारों के मिश्रण या योग को संसृष्टि कहते है। यहाँ इन्होंने संकर और संसृष्टि में स्पष्ट भिन्नता नहीं प्रदर्शित की है।

वराविभूषा संसृष्टिर्वह्वलंकार योगतः।
रचितारत्नमालेव सा चैवमुदिता यथा ॥

—काव्यालंकार, ३/४९

दंडी अनेक अलंकारों के एकत्रावस्थान को संसृष्टि कहते हैं। इन्होंने इसकी दो स्थिति मानी है—प्रथम में एक अलंकार प्रधान होता है और दूसरा गौण (अंगांगिभाव से अलंकारों का योग) तथा द्वितीय में सभी अलंकारों की स्थिति तुल्यभाव से होती है।

नानालंकारसंसृष्टिः संसृष्टिस्तु निगद्यते।
अंगांगिभावास्थानं सर्वेषां समकक्षता ॥
इत्यलंकार संसृष्टेर्लक्षणीया द्वयी गतिः ॥

—काव्यादर्श, २/२५९-२६०

वामन ने एक अलंकार के साथ अन्य अलंकार के कार्य-कारण-भाव-संबंध होने को संसृष्टि कहा।

अलंकारस्यालंकारयोनित्वं संसृष्टिः ॥

—काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, ४,३,३०

भोज ने भी भामह और दंडी की भांति संकर और संसृष्टि के स्वरूप को स्पष्ट नहीं किया।

संसृष्टिरिति विज्ञेया नानालंकार संकरः।
सातु व्यक्ता तथाव्यक्ता व्यक्ताव्यक्तेति च त्रिधा ॥
तिलतंडुलवद्युक्ता छायादर्शवदेव च।
अव्यक्ताक्षीरजलवत्पांसुपानीयवच्च सा ॥

—सरस्वतीकंठाभरण, ४/८९-९०

संसृष्टि और संकर के स्वरूप को पृथक् करने का श्रेय उद्भट को है। इन्होंने बताया कि जब बहुत-से निरपेक्ष अलंकारों का एक ही स्थान पर उपनिबंधन हो तो संसृष्टि होगी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अलंकृतीनां बह्वीनां द्वयोर्वापि समाश्रयः।
एकत्र निरपेक्षाणां मिथः संसृष्टिरुच्यते ॥

—काव्यालंकारसारसंग्रह, ६/४

मम्मट ने उद्भट का अनुसरण करते हुए इस अलंकार के स्वरूप को व्यवस्थित किया। इनके मत से जब अलंकारों की परस्पर निरपेक्ष भाव से एकत्र अवस्थिति हो तो संसृष्टि होती है।

सैषा संसृष्टिरेतेषां भेदेन यदिह स्थितिः ॥

एतेषां समंतरमेवोक्तस्वरूपाणांयथासंभवमन्योन्यनिरपेक्षतया यदेकत्र शब्द-भागे एव अर्थविषये एव उभयत्रापि वा अवस्थानं सा एकार्थसमभावस्वभावा संसृष्टि ॥

—काव्यप्रकाश, १०|१३९

रुय्यक ने 'तिलतंडुल न्याय' का समावेश कर इस अलंकार के स्वरूप को अधिक स्पष्ट किया। इनके अनुसार तिल-तंडुल की तरह अनेक अलंकारों की स्वतंत्र स्थिति को संसृष्टि कहते हैं।

एषां तिलतंडुलन्यायेन मिश्रत्वं संसृष्टिः ॥

—अलंकारसर्वस्व, पृ० २४१

जयदेव संकर और संसृष्टि को स्वतंत्र अलंकार न मानकर अनेक अलंकारों का मिश्रण कहते हैं।

एतेषामेवविन्यासान्नालंकारांतराण्यमी ॥

—चंद्रालोक, ५/११९

दीक्षित ने रुय्यक के विचार को ग्रहण कर संसृष्टि के निरूपण में तिल-तंडुल-न्याय का समावेश किया।

तत्र तिलतंडुलन्यायेनस्फुटावगम्यभेदालंकारमेलने संसृष्टिः ॥

—कुवलयानंद, ११८

विश्वेश्वर के संसृष्टि विवेचन पर मम्मट का प्रभाव है।

संसृष्टिस्तु परस्परमनपेक्ष्यस्थितिरनेकस्य ॥

—अलंकारकौस्तुभ, पृ० ४०८

रीतिकाल में मम्मट और रुय्यक दोनों की परंपराएँ चलीं और मुख्य तः 'काव्यप्रकाश' तथा 'कुवलयानंद' को उपजीव्य मानकर संसृष्टि का वर्णन किया

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गया। चिंतामणि ने 'काव्यप्रकाश' का अनुवाद किया तो दास और पद्माकर ने 'कुवलयानंद' का।

एक कवित्त में अलंकृत भासैं भिन्न अनेक।
कै निरपेक्ष्य जु परस्पर है संश्लिष्ट विवेक॥

—कविकुलकल्पतरु, ३/३१०

एक छंद में जहँ परैं अलंकार बहु दृष्टि।
तिलतंदुल से हैं मिले, ताहि कहैं संसृष्टि।

—काव्यनिर्णय, ३/४६

तिलतंदुल के न्याय सों है संसृष्टि बखान।
जुदे-जुदे जाने परैं सो तिलतंदुल न्याय॥

—पद्माभरण, ३३२-३३३

संकलकथा—गद्यकाव्य का एक प्रकार। [दे० गद्य]

सखी—नायिका की सखी। विश्वास एवं विश्राम करानेवाली सहचरी को नायिका की सखी कहते हैं—

विश्वासविश्रामकारिणीपार्श्वचारिणी सखी।

—रसमंजरी, पृ० १६२

पद्माकर के अनुसार जिनसे नायक-नायिका दुराव (भेद, रहस्य) न रखें उन्हें सखी कहते हैं। सखी सदा नायिका के साथ रहती है और स्वभाव, बुद्धि तथा वय में उसके समान होती है। यह नायक-नायिका की हितकारिणी और अंतरंग होती है।

जिनसों नायक-नायिका, राखैं कछु न दुराव।
सखी कहावैं ते सुघर, सांची सरल सुभाव।

—जगद्विनोद, ३४८

तिय पिय की हितकारिनी अंतरवर्तिनि होइ।
और विदग्धा सहचरी सखी कहावै सोइ॥

—रससारांश, २२६

इनके चार कार्य हैं—मंडन, शिक्षा, उपालंभ और परिहास।

अस्यामंडनोपालंभशिक्षापरिहासप्रभृतीनिकर्माणि।

—रसमंजरी, पृ० २६१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

काज सखिन के चारि ये, मंडन सिक्षादान।
उपालंभ परिहास पुनि, बरनत सुकबि सुजान॥

—जगद्विनोद, ३४९

मंडन तियहि सिंगारिबो, सिक्षा विनय-बिलास।
उपालंभ सो उरहनो, हँसी करब परिहास॥

—वही, ३५०

मंडन—नायिका के सजाने को मंडन कहते हैं। [दे० मंडन]

कहा करौं जौ आँगुरिन, अनी घनी चुभि जाइ।
अनियारे चख लखि सखी, कजरा देत डराइ॥

—जगद्विनोद, ३५२

शिक्षा—नायिका को सिखाना शिक्षा है। [दे० शिक्षा]

उपालंभ—नायक को नायिका की ओर से उलाहना देना उपालंभ है। [दे० उपालंभ]

परिहास—हँसी-मजाक करने को परिहास कहते हैं। [दे० परिहास]

जा तिय सों नहिं नायका कछू छिपावे बात।
तासों बरनत कह सखी सब कवि मति अवदात॥
मंडन अरु सिच्छाकरन उपालंभ परिहास।
काज सखी के जानियो औरो बुद्धि-बिलास॥

—रसराज, २८८-२८९

केशवदास ने सखियों के अंतर्गत धाई, नाइन, नटी, पड़ोसिन, मालिन, बरइन, दासी (जनी), चितेरिन (शिल्पिनी), चुड़िहारिन, रामजनी (जिसके पिता का पता न हो), संन्यासिनी, चतुर तथा पटहारिन का उल्लेख किया है।

धाइ, जनी, नाइन, नटी, प्रगट परोसिन नारि।
मालिन, बरइनि, सिलिपनी, चुरिहेरिनो सुनारि॥
रामजनी, संन्यासिनी, पटु पटुवा की बाल।
केशव नायक नायिका, सखी करहि सब काल॥

—रसिकप्रिया, १२/१-२

उक्त स्त्रियाँ ही सखी का कार्य संपादित करती हैं।

मंडन संवरसन हँसी संघट्टन सुभ धर्म।
मानप्रवर्जन पत्रिका दान सखिन के कर्म॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपालंभ सिक्षा स्तुती बिनय जदृक्षा उक्ति ।
विरहनिवेदन जुत सुकबि बरनत हैं बहु जुक्ति ।

सट्टक—उपरूपक का एक भेद । [दे० उपरूपक] इसकी रचना प्रारंभ से अंत तक प्राकृत भाषा में होती है । इसमें अद्‌भुत रस की प्रधानता रहती है और प्रवेशक तथा विष्कंभक नहीं रहते । इसके अंकों का नाम जवनिका होता है, शेष सारी विशेषताएँ नाटिका की भाँति होती हैं । [दे० नाटिका] इसका उदाहरण 'कर्पूरमंजरी' है ,

सट्टकं प्राकृताशेषपाठ्यं स्यादप्रवेशकम् ।
न च विष्कंभकोऽप्यत्र प्रचुरश्चाद्‌भुतो रसः ॥
अंका जवनिकाख्याः स्युः स्यादन्यन्नाटिकासमम् ॥

—साहित्यदर्पण, ६/२७६-२७७

सतृणाभ्यवहारी—भावक का दूसरा भेद । [दे० भावक]

सदसदर्थनिदर्शना—निदर्शना अलंकार का तृतीय भेद । [दे० निदर्शना]

सनियमपरिवृत्तता—अर्थदोष का बारहवाँ भेद । [दे० अर्थदोष]

संदानितक—मुक्तक काव्य का एक भेद । [दे० मुक्तक काव्य]

संदेह—सादृश्यमूलक अलंकार । सादृश्य के कारण उपमेय में उपमान के संशय को संदेह अलंकार कहते हैं । इस अलंकार में संशय या संदेह का चमत्कारपूर्ण वर्णन होना आवश्यक है । इसकी सादृश्यमूलकता अलंकारत्व की पहली शर्त है अर्थात् जहाँ संदेह का आधार सादृश्य होगा, वहीं अलंकार होगा, उसके अभाव में नहीं ।

यह अत्यंत प्रसिद्ध अलंकार है, जिसका विवेचन सभी आचार्यों ने किया है । इसके पुरस्कर्त्ता आचार्य भामह माने जाते हैं ; उन्होंने इसे ससंदेह कहा है । भामह के मत से जब उपमेय की प्रशंसा के निमित्त उसे उपमान से भिन्न या अभिन्न वर्णित किया जाय तो संदेह अलंकार होगा । यहाँ उपमेयोपमान की भिन्नता एवं अभिन्नता के निश्चय न होने को संदेहालंकार कहा गया है ।

उपमानेन तत्त्वं च भेदं च वदतः पुनः ।
ससंदेहं वचः स्तुत्यै ससंदेहं विदुर्यथा ॥

—काव्यालंकार, ३/४३

दंडी ने संदेहालंकार का स्वतंत्र अलंकार के रूप में वर्णन न कर इसे उपमा के एक भेद 'संशयोपमा' के रूप में उल्लिखित किया है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मम दोलायते चित्तमितीयं संशयोपमा ॥

—काव्यादर्श, २/२६

उद्‌भट ने संदेहालंकार के दो भेदों का कथन किया है—निश्चयगर्भ तथा शुद्ध संदेह।

प्रथम भेद के लक्षण (निश्चयगर्भ) में तो इन्होंने भामह की ही परिभाषा उद्‌धृत कर दी है; पर द्वितीय भेद (शुद्ध) में अपना नया विचार दिया है। इसमें कहा गया है कि जब दो वस्तुओं में संदेह न रहे, तब भी कवि अपनी प्रतिभा के बल से उनमें संदेह का वर्णन करे तो संदेह का शुद्ध भेद होगा।

उपमानेन तत्त्वं च भेदं च वदतः पुनः।
ससंदेहं वचः स्तुत्यै ससंदेहं विदुर्बुधाः ॥
अलंकारांतरच्छायां यत्कृत्वा धीषुबंधनम्।
असंदेहेऽपि संदेहरूपं सदेह नाम तत् ॥

—काव्यालंकारसारसंग्रह, ६/२, ३

वामन ने बताया कि अतिशय चमत्कार-प्रदर्शन के लिए उपमेय में उपमान के संशय को संदेहालंकार कहते हैं।

उपमानोपमेयसंशयः संदेहः। ४, ३, ११
उपमानोपमेययोरतिशयार्थं यः क्रियते संशयः स संदेहः ॥

—काव्यालंकारसूत्रवृत्ति

रुद्रट ने तीन भेदों का कथन कर संदेहालंकार के क्षेत्र का विस्तार किया। ये भेद हैं—शुद्ध, निश्चयगर्भ तथा निश्चयांत। इन्होंने बताया कि जहाँ किसी वस्तु के संबंध में अनेक वस्तुओं का संबंध हो जाय एवं सादृश्य के कारण अनिश्चितता बनी रहे तो संदेहालंकार होगा।

वस्तुनि यत्रैकस्मिन्ननेकविषयवस्तुभवति संदेहः।
प्रतिपत्तुः सादृश्यादनिश्चयः संशयः स इति ॥

—काव्यालंकार, ८/५९

भोज ने बताया कि जब दो पदार्थों में अत्यंत साम्य के कारण मन एक स्थान पर न टिककर दोलायमान होता रहे, तो संदेहालंकार होगा। इन्होंने एकविषयक तथा अनेकविषयक—दो भेदों का वर्णन किया है।

अर्थंतोरतिसादृश्याद्यत्र दोलायते मनः।
तमेकानेकविषयं कवयः संशयं विदुः ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यत्र कविषयोऽनेको यस्मिन्नेकत्र शंक्यते ।
यस्मिन्नेकमनेकत्र सोऽनेक विषयः स्मृतः ॥

—सरस्वतीकंठाभरण, ४/४१-४२

मम्मट ने भामह एवं उद्भट के मत का सार उपस्थित करते हुए कहा कि उपमेय के साथ उपमान के संशय को संदेह कहते हैं। उक्ति एवं अनुक्ति के कारण इसके दो प्रकार होते हैं और प्रथम के भी दो भेद किए गए हैं—निश्चयगर्भ तथा निश्चयांत।

ससंदेहस्तु भेदोक्तौ तदनुक्तौ च संशयः ॥

—काव्यप्रकाश, १०/९२

रुय्यक के अनुसार प्रकृत में अप्रकृत का संदेह ही संदेहालंकार है। इन्होंने कविकल्पनाप्रसूत संदेह को ही संदेहालंकार कहा है।

विषयस्य संदिह्यमानत्वे संदेहः ।

तेन प्रकृताप्रकृतगतत्वेन कविप्रतिभोत्थापितेसंदेहे संदेहालंकारः ॥

—अलंकारसर्वस्व, पृ० ५३

शोभाकर ने परंपरागत मत के विपरीत सादृश्येतर संबंध-निबंधन में भी संदेहालंकार की स्थिति स्वीकार की है। सादृश्य के बिना भी कविकल्पित संदेह के वर्णन में संदेहालंकार होता है, ऐसा इनका मत है।

तस्यार्थे संदिह्यमानत्वे संदेहः ॥३०

तेन साधर्म्यं विहायापि निमित्तांतरमवलंब्य कविप्रतिभोत्थापितः संदेहालंकार एव ॥ —अलंकाररत्नाकर, पृ० ४४,४५

विद्याधर, विद्यानाथ तथा विश्वनाथ ने रुय्यक के आधार पर संदेहालंकार का वर्णन किया है।

किसलयति कविः प्रतिभावशतः प्रकृतार्थं निमित्तके यत्र ।
संशयमप्रकृतेऽर्थे संदेहोऽयं समाख्यातः ॥ —एकावली, ८/८

विषयोविषयी यत्र सादृश्यात् कवि सम्मतात् ।
संदेहगोचरौ स्यातां संदेहातांकृतिश्च सा ॥

—प्रतापरुद्रीय, पृ० २७४

संदेहः प्रकृतेऽन्यस्य संशय प्रतिभोत्थितः ॥

—साहित्यदर्पण, १०/३५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जयदेव ने संदेह का नाममात्र का लक्षण दिया है और दीक्षित ने उसे 'कुवलयानंद' में उद्‌धृत कर दिया।

स्यात् स्मृतिभ्रांतिसंदेहैस्तदेवालंकृतित्रयम् ॥

—चंद्रालोक, ५/३२

—कुवलयानंद, २४

दीक्षित ने 'चित्रमीमांसा' में इसका लक्षण प्रस्तुत करते हुए कहा कि "जिस सादृश्यमूलक बुद्धि में एक दूसरे को सब प्रकार से हटाते हुए अनेक पदार्थों का अनुभव हो तथा जो 'वा' अर्थ का स्पर्श करे, उसे संदेहालंकार कहते हैं।"

बुद्धिः सर्वात्मनान्योन्यक्षेपिनानार्थसंश्रया ।
सादृश्यमूला वार्थस्पृक्संदेहालंकृतिर्मता ॥

—चित्रमीमांसा, पृ० ७३

पंडितराज के मतानुसार ऐसे ज्ञान को संदेहालंकार कहते हैं, जो सादृश्य-ज्ञान के कारण उत्पन्न होनेवाला परस्पर विरोधभासित तथा समान बलवाली नाना कोटियों का अवगाहन करनेवाला और चमत्कारयुक्त हो।

सादृश्यमूला भासमानविरोधका समबलानानाकोट्यवगाहिनी धी रमणीया ससंदेहालंकृतिः ॥

—रसगंगाधर, पृ० ३४०

विश्वेश्वर ने सादृश्य के आधार पर प्रकृत में अप्रकृत की निश्चयभिन्न बुद्धि को संदेह कहा।

प्रकृते तदन्यविषया सादृश्यज्ञानजन्या या ।
बुद्धिर्निश्चयभिन्ना तमाचख्युः ससंदेहम् ॥

—अलंकारकौस्तुभ, पृ० १९६

रीतिकालीन आचार्यों ने 'प्रतापरुद्रीय', 'काव्यप्रकाश' तथा 'चंद्रालोक' के आधार पर संदेहालंकार का वर्णन किया। कुलपति ने 'काव्यप्रकाश' के लक्षण का भावानुवाद किया तो जसवंतसिंह मतिराम और पद्माकर ने 'चंद्रालोक' को आधार बनाकर नाममात्र का लक्षण प्रस्तुत किया।

जहाँ विषै विषई सुभग कवि सम्मत मत ताहि ।
संदेहास्पद होत है कवि संदेह तहांहि ॥

—कविकुलकल्पतरु, ३/१५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'भेद, अभेद उक्ति में संशय हो, उसको संदेह कहते हैं।'

—रसरहस्य, पृ० ६२

सुमिरन भ्रम संदेह ये लक्षन नाम प्रकाश ॥

—भाषाभूषण, ५६

एक वस्तु लखि आन को सुमरन-भ्रम-संदेह ॥

—ललितललाम, ८०

स्मरन भ्रांति संदेह तिहुँ लच्छन इनके नाम ॥

—पद्माभरण, ४३

भेद—संदेहालंकार के तीन भेद माने गए हैं—शुद्धसंदेह, निश्चयगर्भ तथा निश्चयांत।

१. शुद्धसंदेह—जब संशय में ही वर्णन की समाप्ति हो या अंत-अंत तक संशय बना रहे तो संदेहालंकार होगा।

यत्र संशय एव पर्यवसानं स शुद्धः —साहित्यदर्पण

क. मरकतमणिमेदिनीधरो वा तरुणतरस्तरुरेष वा तमालः।
रघुपतिमवलोक्य तत्र दूरादृषिनिकरैरितिसंशयः प्रपेदे ॥

"रामचंद्र को दूर ही से देखकर ऋषि-समूह को यह संशय हुआ कि यह मरकतमणि का पर्वत है अथवा अत्यंत यौवन से पूर्ण यह तमाल का पेड़ है।"

यहाँ राम में तमालवृक्ष का संशय अंत तक बना हुआ है।

ख. विरह है अथवा यह वरदान।

२. निश्चयमध्य—जब आदि और अंत में संदेह रहे, किंतु मध्य में निश्चय की स्थिति बनी रहे तो निश्चयमध्य होगा।

यत्रादावंते च संशय एव, मध्येनिश्चयः स निश्चयमध्यः।

—साहित्यदर्पण

अयं मार्तंडः किं स खलु तुरगैः सप्तभिरितः
कृशानुः किं सर्वाः प्रसरति दिशोनैष नियतम्।
कृतांतः किं साक्षान्महिषवहनोऽसाविति पुनः
समालोक्याजौ त्वां विदधति विकल्पान् प्रतिभटाः ॥

"क्या यह सूर्य है? किंतु वह तो सात घोड़ों से युक्त रहता है। तो क्या यह अग्नि है? किंतु अग्नि तो सभी दिशाओं में नियम से प्रसरित नहीं होती।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तो क्या यह साक्षात् यम या काल तो नहीं है? पर, यम तो भैंस पर चढ़ता है। हे राजन्! आपको रण में देखकर आपके बैरी इस प्रकार का संदेह प्रकट करते हैं।" इसमें मध्य में सूर्यादि का निश्चय हो जाता है, किंतु पुनः यह पता नहीं चलता कि वे कौन हैं।

ख. कहूँ मानवी यदि मैं तुमको तो वैसा संकोच कहाँ?
कहूँ दानवी तो उसमें है यह लावण्य की लोच कहाँ?
वन-देवी समझूँ तो वह तो होती है भोली-भाली।
तुम्हीं बताओ अतः कौन तुम हे रंजित रहस्यवाली॥

—पंचवटी।

यहाँ लक्ष्मण को शूर्पणखा में दानवी तथा वनदेवी का संदेह होता है; किंतु अंत में उन्हें निश्चय हो जाता है कि यह इनमें से कोई नहीं है। यहाँ आदि और अंत में संदेह तथा मध्य में निश्चय की स्थिति है।

३. निश्चयांत—जब प्रारंभ में संशय रहे और अंत में निश्चय हो जाय तो निश्चयांत होगा।

यत्राऽऽदौ संशयोऽन्ते च निश्चयः स निश्चयांतः। —साहित्यदर्पण

क. किं तावत् सरसि सरोजमेतदारा-
दाहोस्विन्मुखमवभासते तरुण्याः।
संशय्य क्षणमिति निश्चिकाय कश्चिद्
बिब्बोकैर्बकसहवासिनां परोक्षैः॥

"तालाब में क्या यह कमल है? या किसी युवती का मुख शोभ रहा है? कटाक्षादि विलासों के द्वारा इस प्रकार संदेह करने पर किसी ने कटाक्षादि विलासों द्वारा यह समझ लिया कि यह तरुणी है।"

यहाँ अंत में तरुणी का निश्चय हो जाता है। अतः, निश्चयांत हुआ।

ख. घनच्युत चपला कै लता, संशय भयो निहारि।
दीरघ स्वासनि लखि कपी, किय सीता निरधारि॥

"हनुमान को सीता में मेघ से गिरी बिजली या लता का संदेह हुआ; पर दीर्घ निश्वासों से उन्हें विश्वास हुआ कि ये सीता हैं।" यहाँ प्रारंभ में संशय तथा अंत में निश्चय है।

संदेह और भ्रांतिमान्—भ्रांतिमान् में निश्चयात्मक भ्रम होता है; पर संदेह में सत्यासत्य का निश्चय नहीं होता। भ्रांतिमान् में अवास्तव को वास्तव

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

था सत्य मान लिया जाता है। संदेह में उपमेय में उपमान का संशय होता है तो भ्रांतिमान् में उपमेय में उपमान की भ्रांति।

संदेहसंकर—[दे० संकर]

सन्निधि—आसत्ति का दूसरा नाम सन्निधि है। [दे० तात्पर्यवृत्ति] यह वाक्य का एक अंग है।

संदेहाभास—शोभाकर मित्र-वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। इस अलंकार का विकास संदेहालंकार [दे० संदेह] से हुआ है। इसमें संदेह होने पर अपने कथन से एक ओर अपना मत प्रकट करने का वर्णन रहता है। संदेह होने पर एक पक्ष के प्रति अपना तात्पर्य प्रकट करने की इच्छा का वर्णन ही संदेहाभास है। यह अलंकार संदेह से भिन्न नहीं है; अतः इसका उसमें (संदेह में) अंतर्भाव होना उचित है।

संदिह्यमानयोरेकत्र तात्पर्यच्छा संदेहाभासः ॥

—अलंकाररत्नाकर, पृ० ८८

संधि—नाटक या रूपक में कार्यावस्था एवं अर्थ-प्रकृति को मिलानेवाला तत्त्व संधि है अर्थात् किसी एक प्रयोजन से संबद्ध कथांशों को किसी दूसरे प्रयोजन से संबद्ध करनेवाले संबंध का नाम संधि है। कथांशों का संबंध एक ओर अर्थप्रकृति से होता है तो दूसरी ओर कार्यावस्था से। भरत ने पाँच अर्थप्रकृतियों [दे० अर्थप्रकृति] तथा पाँच कार्यावस्थाओं [दे० कार्यावस्था] के मेल से पंचसंधियों की परिकल्पना की है। इसके अंतर्गत एक प्रधान इतिवृत्त के साथ अन्य अवांतर इतिवृत्त-खड का मेल होता है।

अर्थप्रकृतयः पंच पंचावस्था समन्विताः ॥
यथासंख्येन जायंते मुखाद्याः पंच संधयः।
अंतरैकार्थसबंधः संधिरेकान्वये सति ॥

—दशरूपक, १/२२,२३

एकेन प्रयोजनेनान्वितानां कथांशामवांतरैक प्रयोजनसंबंधः संधिः ॥

—अवलोक, पृ० १७

यथासंख्यमवस्थाभिराभिर्योगात्तु पंचभिः।
पंचधैवेतिवृत्तस्य भागाः स्युः पंचसंधयः ॥

—साहित्यदर्पण, ६/८४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संधियों के पाँच भेद हैं—मुख, प्रतिमुख, गर्भ, अवमर्श और निर्वहण। संधि का अर्थ संधान करना है। नाटक में इनका कार्य इतिवृत्त (कथावस्तु) का औचित्यपूर्ण संधान है।

मुखं प्रतिमुखं चैव गर्भो विमर्श एव च।
तथा निर्वहणं चेति नाटके पंचसंधयः॥

—नाट्यशास्त्र, १९/३७

१. मुख संधि—मुखसंधि में नाना रसों एवं भावों के योग से बीज उत्पन्न होता है। यह 'बीज' नामक अर्थप्रकृति तथा 'आरंभ' नामक कार्यावस्था का संयोग कराकर अनेक अर्थ तथा रस को व्यंजित करती है। इस संधि के द्वारा रूपक के बीज की सूचना प्राप्त होती है और प्रारंभावस्था के मेल से अनेक अर्थ तथा रस अभिव्यंजित होते हैं। अवस्थाएँ कार्य या रूपक की व्यापार-शृंखला की सूचक हैं और अर्थप्रकृतियों के द्वारा इतिवृत्त के तत्त्वों की सूचना प्राप्त होती है तथा संधियों द्वारा नाटक की रचना के विभागों का निदर्शन होता है। इस संधि (मुख) में मुख्य कथावस्तु को फल-हेतु बीज के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। उदाहरण के लिए, 'शकुंतला' नाटक में प्रथम अंक से लेकर द्वितीय अंक के उस स्थल तक मुखसंधि है, जहाँ सेनापति प्रस्थान करता है। इसके बारह अंग हैं। [दे० संध्यंग]

मुखं बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरससंभवा।
अंगानि द्वादशैतस्य बीजारंभसमन्वयात्॥

—दशरूपक, १/२४,२५

यत्र बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरससंभवा।
काव्ये शरीरानुगता तन्मुखं परिकीर्तितम्॥

—नाट्यशास्त्र, १९/३९

२. प्रतिमुख-संधि—प्रतिमुख संधि में कथानक 'दृष्ट' तथा 'नष्ट' की स्थिति में रहता है। अनुकूल वातावरण को पाकर फलाभिमुख बीजरूप कथानक उद्घाटित होता हुआ-सा प्रतीत होकर दृश्य ज्ञात होता है; पर अवरोधक शक्ति के कारण (प्रतिनायक के प्रभाव से) नष्ट होता हुआ-सा प्रतीत होता है। इसमें (प्रतिमुख) 'प्रयत्न' (यत्न) नामक अवस्था तथा 'बिंदु' नामक अर्थप्रकृति का मेल होकर कथा-शृंखला अग्रसर होती है। प्रतिमुख-संधि में, मुखसंधि के फल या प्रधान लक्ष्य का किंचित् विकास होता है। अभिप्राय यह कि मुख-संधि में जिस बीज का वपन होता है, वह उचित पोषण प्राप्त

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कर प्रतिमुख-संधि में अंकुरित होने लगता है; पर वह अस्पष्टावस्था में रहता है। 'शकुंतला' नाटक में विदूषक से राजा का शकुंतला-विषयक अनुराग को स्वीकार करनेवाले स्थल से लेकर तृतीय अंक की कथा तक प्रतिमुख-संधि है।

बीजस्योद्घाटनं यत्र दृष्टनष्टमिव क्वचित् ।
मुखन्यस्तस्य सर्वत्र तद्वै प्रतिमुखं स्मृतम् ॥

—नाट्यशास्त्र, १९/४०

लक्ष्यालक्ष्यतयोद्भेदस्तस्य प्रतिमुखं भवेत् ।
बिंदुप्रयत्नानुगमादंगान्यस्य त्रयोदशः ॥ —दशरूपक, १/३०

३. गर्भ-संधि—गर्भ संधि में पताका, अर्थप्रकृति तथा प्राप्त्याशा कार्यावस्था का मिश्रण होता है। इसमें नाटक का प्रधान फल गर्भित होता है, इसलिए इसे गर्भ-संधि कहते हैं। इसमें प्राप्ति, अप्राप्ति एवं पुनः अन्वेषण का भाव रहता है। नायक का संबंध प्राप्ति से तथा प्रतिनायक का संबंध अप्राप्ति से हुआ करता है और इसी के कारण अन्वेषण होता है। इसमें बीज के दिखाई पड़ने के पश्चात् पुनः उसके नष्ट होने पर उसका बार-बार अन्वेषण किया जाता है। 'शकुंतला' नाटक में चतुर्थ अंक से उस स्थल तक गर्भ-संधि है, वहाँ गौतमी शकुंतला के मुँह पर से अवगुंठन हटाती है; पर उस समय दुर्वासा का शाप राजा की स्मृति को नष्ट कर देता है।

उद्भेदस्तस्य बीजस्य प्राप्तिरप्राप्तिरेव वा ।
पुनश्चान्वेषणं यत्र स गर्भं इति संज्ञितः ॥

—नाट्यशास्त्र, १९/४१

४. अवमर्श (विमर्श) संधि—भरत ने इसके लिए विमर्श शब्द का प्रयोग किया है; पर भरतोत्तर आचार्यों ने इसे अवमर्श कहा है। इसमें 'प्रकरी' नामक अर्थप्रकृति एवं 'नियताप्ति' नामक कार्यावस्था का मिश्रण होता है। विमर्श-संधि में अपेक्षाकृत (गर्भ से) बीज का अधिक विस्तार हो जाता है; पर उसके फलोन्मुख होने में नाना प्रकार की बाधाएँ भी उपस्थित हो जाती हैं।

'शकुंतला' नाटक में राजा की चिंता से संबद्ध स्थल से प्रारंभ होकर छठे अंक की कथा में विमर्श संधि है।

गर्भनिर्भिन्नबीजार्थो विलोभनकृतोऽपि वा ।
क्रोधव्यसनजो वापि स विमर्श इति स्मृतः ॥

—नाट्यशास्त्र, १९/४२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसमें क्रोध, व्यसन या लोभ (विलोभन) के कारण फल-प्राप्ति के संबंध में विचार या विमर्श किया जाता है तथा गर्भ संधि के द्वारा बीज को प्रकट कर दिया जाता है।

क्रोधेनावमृशेद्यत्र व्यसनाद्वा विलोभनात्।
गर्भनिर्भिन्नबीजार्थः सोऽवमर्श इति स्मृतः ॥

५. निर्वहण-संधि—इस संधि में कार्य नामक अर्थप्रकृति एवं फलागम नामक कार्यावस्था का योग होता है। इस संधि में सभी प्रयोजनों की सिद्धि होकर मुख्य फल की प्राप्ति होती है। निर्वहण-संधि में, सभी संधियों में यत्र-तत्र उपन्यस्त बीज-रूप कथांश प्रधान फल की प्राप्ति में सहायक सिद्ध होते हैं। 'शकुंतला' नाटक में शकुंतला के पहचानने की घटना के बाद भी सारी कथा निर्वहण-संधि है।

समानयनमर्थानां मुखाद्यानां सबीजिनाम् ।
नाना भावोत्तराणां यद् भवेन्निर्वहणं तु तत् ॥

—नाट्यशास्त्र, १९/४३

बीजवंतो मुखाद्यार्था विप्रकीर्णा यथायथम्।
एकार्थमुपनीयंते यत्र निर्वहणं हि तत् ॥

—साहित्यदर्पण, ६/८०

संध्यंग—संधि (नाटकीय संधि) के उपविभाग को संध्यंग कहा जाता है। [दे० संधि] संधियों के विधायक अंग होने के कारण इनकी संज्ञा संध्यंग है अर्थात् संधि के उपविभागों का शास्त्रीय नाम संध्यंग है। इनका मुख्य प्रयोजन लेखक तथा अभिनेता द्वारा सुगमतापूर्वक नाटकीय वस्तु का प्रदर्शन कर दर्शक को समझाना है। नाट्यशास्त्रीय ग्रंथों में संध्यंग के ६ प्रयोजन या फल बतलाए गए हैं—इष्टवस्तु की रचना, आश्चर्यलाभ या आश्चर्य की प्राप्ति, वृत्तांत या कथा का विस्तार, अनुराग की उत्पत्ति, प्रयोग के गोपनीय अंशों का गोपन एवं प्रकाश्य अंशों का प्रकाशन।—

इष्टार्थरचनाश्चर्यलाभो वृत्तांतविस्तरः ।
रागप्राप्तिः प्रयोगस्य गोप्यानां गोपनं तथा ।
प्रकाशनं प्रकाश्यानामंगानां षड्विधं फलम् ॥

—साहित्यदर्पण, ६/११६-११७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जिस प्रकार अंगहीन व्यक्ति काम करने में असमर्थ होता है, उसी प्रकार अंगहीन काव्य प्रयोग के अयोग्य होता है। संधि के अंगों का संपादन नायक या प्रतिनायक को करना चाहिए; इनके अभाव में पताका नायक अथवा इनके अभाव में अन्य व्यक्ति करें।—

अंगहीनो नरो यद्वन्नैवारंभक्षमो भवेत् ।
अंगहीनं तथा काव्यं न प्रयोगाय युज्यते ॥
संपादयेतां संध्यंगं नायकप्रतिनायकौ ।
तदभावे पताकाद्यास्तदभावे तथेतरत् ॥

—वही, ६/११८,११९

संध्यंगों का सन्निवेश रसव्यक्ति के अनुसार होना चाहिए, इनके अभाव में रस की अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। केवल शास्त्र की मर्यादा का संपादन करने के लिए अंगों का निवेश नहीं किया जाता।

रसव्यक्तिमपेक्ष्यैषामंगानां सन्निवेशनम् ।
न तु केवलया शास्त्रस्थितिसंपादनेच्छया ॥

—साहित्यदर्पण, ६/१२०

अंगों की संख्या ६४ है। मुखसंधि [दे० मुखसंधि] के बारह अंग होते हैं— उपक्षेप, परिकर, परिन्यास, विलोभन, युक्ति, प्राप्ति, समाधान, विधान, परिभव (परिभावना), उद्भेद, करण तथा भेद।

१. **उपक्षेप**—बीज के सदृश सूक्ष्म प्रस्तुत कथा की सूचना का संक्षेप में निर्देश करना उपक्षेप है अर्थात् बीज के न्यास को उपक्षेप कहते हैं।

बीजन्यासः उपक्षेपः। —दशरूपक, १/२७

२. **परिकर**—बीज विन्यास का बाहुल्य या सूक्ष्म इतिवृत्त के विषय का विस्तार, परिकर है।

तद् बाहुल्यं परिक्रिया। —वही

३. **परिन्यास**—बीज की निष्पत्ति (सिद्धि) या वर्ण्य विषय की सिद्धि को परिन्यास कहते हैं।

तन्निष्पत्तिः परिन्यासः। —वही

इसमें पात्र को फल-प्राप्ति की, क्रियासिद्धि की सूचना दी जाती है।

४. **विलोभन**—गुणकथन को विलोभन कहते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गुणाख्यानं विलोभनम्। —दशरूपक,१/२७

इसमें फल से संबद्ध किसी वस्तु का गुणाख्यान (गुणकथन) किया जाता है।

५. युक्ति—इसमें प्रकाश्य अर्थ का प्रकाशन होता है या प्रयोजन का सम्यक् निर्णय किया जाता है।

संप्रधारणमर्थानां युक्तिः। —वही, १/२८

६. प्राप्ति—सुख का मिलना या सुख के आगम को प्राप्ति कहते हैं।

प्राप्तिः सुखागमः। —वही, १/२८

७. समाधान—बीज के आगमन को समाधान कहते हैं।

बीजस्यागमनं यत्तु तत्समाधानमुच्यते।

—साहित्यदर्पण, ३/८५

८. विधान—सुख-दुःख का मिश्रित अर्थ विधान कहलाता है।

सुखदुःखकृतो योऽर्थस्तद्विधानमिति स्मृतम्॥ —वही, ६/८५

९. परिभव—आश्चर्यजनक दृश्य को देखकर कुतूहलयुक्त बात कहना परिभव कहलाता है।

कुतूहलोत्तरावाचः प्रोक्ता तु परिभावना।

—साहित्यदर्पण, ६/८६

१०. उद्भेद—बीज की तरह छिपी हुई बात को खोलना या प्रकट करना उद्भेद है।

बीजार्थस्य प्ररोहः स्यादुद्भेदः॥ —वही

११. करण—कथा के अनुरूप प्रस्तुत अर्थ (कार्य) का आरंभ करण कहलाता है।

करणं प्रकृतारंभः। —दशरूपक, १/२९

१२. भेद—प्रोत्साहन को भेद कहते हैं अर्थात् जब पात्र को बीज के प्रति प्रोत्साहित किया जाय।

भेदः प्रोत्साहना मता॥ —वही

प्रतिमुख-संधि—[दे० प्रतिमुख-संधि] इसके १३ अंग हैं—विलास, परिसर्प, विधूत, शम, नर्म, नर्मद्युति, प्रगमन, निरोध, पर्युपासन, वज्र, पुष्प, उपन्यास तथा वर्णसंहार।

१. विलास—रति की इच्छा करना विलास है। इसमें आनंददायक वस्तु की अभिलाषा की जाती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समीहा रतिभोगार्था विलास इति कथ्यते ॥

—साहित्यदर्पण, ६/८६

२. परिसर्प—पहले से दृष्ट एवं पुनः दिखाई देने पर नष्ट हो जानेवाले पदार्थ का अन्वेषण करना परिसर्प कहलाता है। इसमें खोई हुई अभीष्ट वस्तु की खोज की जाती है।

इष्टनष्टानुसरणं परिसर्पश्च कथ्यते। —वही, ६/६०

३. विधूत—इसमें अरति (रति का विधूनन) या सुखद पदार्थों के तिरस्कार का वर्णन होता है।

विधूतं स्यादरतिः। —दशरूपक, १/३३

४. शम—अरति की शांति को शम कहते हैं।

तच्छमः शमः। —वही, १/३३

५. नर्म—परिहासपूर्ण वचन नर्म है।

परिहासवचो नर्म। —वही, १/३३

६. नर्मद्युति—परिहास से उत्पन्न आनंद (द्युति) को नर्मद्युति कहते हैं।

धृतिस्तज्जा द्युतिर्मता ॥ —वही, १/३३

७. प्रगमन—पात्रों के परस्पर उत्तर-प्रत्युत्तर के उत्कृष्ट वचन को प्रगमन कहते हैं।

उत्तरावाक्प्रगमनम् ॥ —दशरूपक, १/३४

८. निरोध—हितकर पदार्थ की बाधा (रुकावट) या रोध होने में निरोध होता है।

हितरोधो निरोधनम् ॥ —दशरूपक, १/३४

इसके अंतर्गत नायकादि को अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति से रोक दिया जाता है।

९. पर्युपासन—जब प्राप्तव्य वस्तु की अप्राप्ति पर उसका अवरोध करने के लिए नायक अनुनय-विनय करे, तो पर्युपासन होगा।

पर्युपास्तिरनुनयः। —वही, १/३४

१०. पुष्प—विशेष अनुराग उत्पन्न करनेवाले वचन को पुष्प कहते हैं।

पुष्पंवाक्यं विशेषवत्। —वही, १/३४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

११. उपन्यास—उपाययुक्त वाक्य को उपन्यास कहते हैं। विश्वनाथ ने प्रसन्न करने को उपन्यास कहा है।

उपन्यासस्तु सोपायम्। —दशरूपक, १/३५

उपन्यासः प्रसादनम् ॥ —साहित्यदर्पण, ३/९३

१२. वज्र—जब नायकादि के प्रति कोई पात्र कठोर वचन का प्रयोग करे, तो उसे वज्र कहते हैं।

वज्रं प्रत्यक्षनिष्ठुरम्। —दशरूपक, १/३५

१३. वर्णसंहार—जहाँ चारों वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) का सम्मेलन हो, उसे वर्णसंहार कहते हैं।

चातुर्वर्ण्योपगमन वर्णसंहार इष्यते ॥ —दशरूपक, १/३५

गर्भसंधि—[दे० गर्भसंधि] इसके १२ अंग होते हैं—अभूताहरण, मार्ग, रूप, उदाहरण, क्रम, संग्रह, अनुमान, तोटक, अधिबल, उद्वेग, संभ्रम और आक्षेप।

१. अभूताहरण—छद्म या कपट वचन को अभूताहरण कहा जाता है।

अभूताहरणं छद्म। —दशरूपक, १/३८

२. मार्ग—तत्त्वार्थ का कीर्तन या सत्य बात का कथन मार्ग है।

मार्गस्तत्त्वार्थकीर्तनम् ॥ —वही, १/३८

३. रूप—नायकादि द्वारा तर्क-वितर्कयुक्त वाक्यों का प्रयोग रूप कहा जाता है।

रूपं वितर्कवद्वाक्यम्। —वही, १/३९

४. उदाहरण—उत्कर्ष या उन्नतियुक्त वचन को उदाहरण कहते हैं।

सोत्कर्षं स्यादुदाहृतिः ॥ —वही, १/३९

५. क्रम—इष्ट वस्तु का चिंतन तथा उसकी प्राप्ति के वर्णन में क्रम होता है अथवा किसी के भाव का यथार्थ ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

क्रमः संचिन्त्यमानाप्तिः। भावज्ञानमथापरे। —दशरूपक, १/३९

भावस्तत्त्वोपलब्धिस्तु क्रमः स्यात्। —साहित्यदर्पण, ६/९७

६. संग्रह—साम, दाम-युक्त वचन को संग्रह कहते हैं।

संग्रहः साम दानोक्तिः। —दशरूपक, १/४०

जब नायकादि अनुकूल कार्य करने पर किसी पात्र को साम या दान से प्रसन्न करें तो संग्रह होगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

७. अनुमान—जब नायकादि पात्र किसी हेतु या चिह्न के द्वारा किसी तथ्य का अनुमान करें तो वहाँ अनुमान होता है।

अभ्यूहोलिंगतोऽनुमा। —दशरूपक, १/४०

८. अधिबल—जब कोई पात्र नायकादि का अभिप्राय जान जाए तो उसे अधिबल कहते हैं।

अधिबलमभिसंधिः। —दशरूपक, १/४०

९. तोटक—क्रोधपूर्ण वचन को तोटक कहा जाता है।

संरब्धं तोटकं वचः। —दशरूपक, १/४०

१०. उद्वेग—शत्रुकृत भय को उद्वेग कहते हैं।

उद्वेगोऽरिकृता भीतिः। —वही, १/४२

११. संभ्रम—शंका, भय और त्रास को संभ्रम कहते हैं।

शंकात्रासौ च संभ्रमः। —वही, १/४२

१२. आक्षेप—जब गर्भ का बीज स्पष्ट हो जाए तो उसे आक्षेप कहा जाता है।

गर्भबीजसमुद्भेदादाक्षेपः परिकीर्तितः॥ —दशरूपक, १/४२

अवमर्शसंधि—[दे० अवमर्श संधि] अवमर्शसंधि के तेरह अंग होते हैं—अपवाद, संफेट, विद्रव, द्रव, शक्ति, द्युति, प्रसंग, छलन, व्यवसाय, विरोधन, प्ररोचना, विचलन तथा आदान।

१. अपवाद—दोष का कथन अपवाद है। किसी पात्र के दोष-वर्णन में यह अंग होता है।

दोषप्रख्यापवादः स्यात्। —दशरूपक, १/४५

२. संफेट—रोष-युक्त वचन को संफेट कहते हैं।

संफेटो रोषभाषणम्। —वही, १/४५

३. विद्रव—किसी पात्र का वध, बंधन या पलायन (भय से भागना) विद्रव है।

विद्रवो वधबंधादिः। —वही, १/४५

४. द्रव—गुरुजनों का जहाँ तिरस्कार या अपमान वर्णित हो, वहाँ द्रव होता है।

द्रवो गुरुतिरस्कृतिः॥ —वही, १/४५

५. शक्ति—विरोध का शमन या शांति शक्ति है।

विरोधशमनं शक्तिः। —वही, १/४६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

६. द्युति—किसी पात्र को डाँटना (तर्जन) तथा फटकारना (उद्वेजन) द्युति है।

तर्जनोद्वेजने द्युतिः। —वही, १/४६

७. प्रसंग—जहाँ गुरुजनों (पूज्यव्यक्तियों) का कीर्त्तन (वर्णन) हो वहाँ प्रसंग होता है।

गुरुकीर्तनं प्रसंगः। —वही, १/४६

८. छलन—जब कोई पात्र किसी अन्य पात्र का अपमान (अवमान) करे तो छलन अग होगा।

छलनं चावमाननम्। —वही, १/४६

९. व्यवसाय—अपनी शक्ति (सामर्थ्य) का कथन करना व्यवसाय है।

व्यवसायः स्वशक्त्युक्तिः। —वही, १/४७

१०. विरोधन—जब क्रुद्ध पात्र परस्पर स्वशक्ति को प्रकट करें तो विरोधन होगा।

संरब्धानां विरोधनम्। —वही, १/४७

११. प्ररोचना—जब कोई व्यक्ति भावी अर्थ-सिद्धि की सूचना दे तो उसे प्ररोचना कहते हैं। इसमें कोई सिद्ध पुरुष भावी घटना की इस इस प्रकार सूचना देता है, जैसे वह सिद्ध हो जाए।

सिद्धमंत्रणतो भाविदर्शिका स्यात्प्ररोचना॥ —वही, १/४७

१२. विचलन—जब कोई पात्र आत्मश्लाघा करे तो उसे विचलन कहते हैं।

विकत्थना विचलनम्। वही, १/४८

१३. आदान—जब नाटककार रूपक या नाटक के कथानक को समेटने का प्रयत्न करे तो उसे आदान कहेंगे।

आदानं कार्यसंग्रहः। —वही, १/४८

निर्वहण-संधि—[दे० निर्वहण-संधि] इसके चौदह अंग होते हैं—संधि, विबोध, ग्रथन, निर्णय, परिभाषण, प्रसाद, आनंद, समय, कृति, भाषा, उपगूहन, पूर्वभाग, उपसंहार तथा प्रशस्ति।

१. संधि—जब बीज की उद्भावना की जाए तो संधि होगी।

संधिर्बीजोपगमनम्। —दशरूपक, १/५१

२. विबोध—नायक द्वारा छिपे हुए कार्य की पुनः खोज करना विबोध है।

विबोधः कार्यमार्गणम्। —वही, १/५१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

३. ग्रथन—कार्य के उपसंहार (उपक्षेप) को ग्रथन कहते हैं।

४. निर्णय—अनुभव-कथन को निर्णय कहा जाता है। जब नायकादि अपने द्वारा किए गए कार्यों का वर्णन करें या अपना अनुभव कहें, तो निर्णय अंग होगा।

अनुभूताख्या तु निर्णयः ॥ —दशरूपक, १५१

५. परिभाषण—पात्रों के परस्पर जल्प (बातचीत) को परिभाषण कहा जाता है। इसमें पात्र कार्य-सिद्धि के संबंध में परस्पर बातचीत करते हैं।

परिभाषा मिथो जल्पः। —वही, १/५२

६. प्रसाद—यदि कोई पात्र कुछ कहकर नायकादि का प्रसादन करे, (प्रसन्न करे) तो प्रसाद अंग होगा।

प्रसादः पर्युपासनम्। —वही, १/५२

७. आनंद—अभीष्ट अर्थ (वस्तु) की प्राप्ति को आनंद कहा जाता है।

आनंदो वांछितावाप्तिः। —वही, १/५२

८. समय—नायकादि पात्रों के दुःख-नाश को समय कहते हैं।

समयो दुःखनिर्गमः ॥ —दशरूपक, १/५२

९. कृति—लब्ध अर्थ का शमन कृति है अर्थात् शोकादि के द्वारा उत्पन्न अस्थिरता का शमन कृति है।

कृतिलब्धार्थशमनम्। —वही, १/५३

१०. भाषण—नायकादि के मान (सम्मान) को प्रकट करनेवाले वाक्य को भाषण कहा जाता है।

मानाद्याप्तिश्च भाषणम्। —वही, १/५३

११. उपगूहन—नायकादि को अद्भुत वस्तु का मिलना उपगूहन है।

१२. पूर्वभाग—कार्य के दर्शन को पूर्वभाग कहते हैं।

कार्यदृष्ट्यद्भुतप्राप्ती पूर्वभावोपगूहने ॥ —दशरूपक, १/५३

१३. काव्यसंहार—नायकादि को वरदान की प्राप्ति का होना काव्य-संहार है।

वराप्तिः काव्यसंहारः। —वही, १/५४

१४. प्रशस्ति—शुभ की आशा करना प्रशस्ति है। इसे आशीर्वाद कहा जाता है।

प्रशस्तिः शुभशंसनम्। —वही, १/५४

इसे ही भरतवाक्य कहते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जो वृत्तांत इतिहास-प्रसिद्ध होने पर भी रसाभिव्यक्ति में बाधक हो, उसे या तो कवि बिलकुल छोड़ दे या बदल दे। मुख्य रूप से कवि को रसाभिव्यक्ति के लिए ही अंगों का प्रयोग करना चाहिए, शास्त्रीय नियमों के पालन के लिए नहीं।

अविरुद्धं तु यद्वृत्तं रसाविव्यक्तयेऽधिकम् ।
तदप्यन्यथयेद्धीर.ान्न वदेद्वा कदाचन ॥

—साहित्यदर्पण, ६/१२१

सम—विरोधमूलक अलंकार। अनुरूप पदार्थों के परस्पर योग्य संबंध के वर्णन को सम अलंकार कहते हैं। 'सम' का अर्थ समान, बराबर या यथायोग्य है। इस अलंकार में समानों के यथायोग्य संबंध का वर्णन होता है। समालंकार में श्रेष्ठ तथा रुचिकर पदार्थों का एक साथ तथा निकृष्ट पदार्थों का तत्सदृश वस्तुओं के साथ संबंध स्थापित किया जाता है।

इस अलंकार का प्रथम विवेचन आचार्य मम्मट ने किया है। कालांतर में रुय्यक, शोभाकर, जयदेव, विद्याधर, विद्यानाथ विश्वनाथ, अप्पय दीक्षित, पंडितराज जगन्नाथ तथा विश्वेश्वर पंडित ने इसका वर्णन किया।

मम्मट के पूर्व रुद्रट ने 'साम्य' नामक अलंकार का वर्णन किया है, जिसमें इस अलंकार (सम) के बीज विद्यमान हैं। रुद्रट के अनुसार जब अर्थक्रिया के द्वारा उपमान को उपमेय में समता दिखाई जाय तो वहाँ साम्य अलंकार होगा। यह साम्य सामान्य गुण आदि के कारण होता है।

अर्थक्रियया यस्मिन्नुपमानस्यैतिसाम्यमुपमेयम् ।
तत्सामान्यगुणादिक कारणया तद्भवेत्साम्यम् ॥

—काव्यालंकार, ५/१०८

मम्मट ने बताया कि जब यथायोग्य संबंध का वर्णन किया जाय तो सम अलंकार होगा। यह संबंध उत्तम पदार्थ का उत्तम के साथ तथा अधम का अधम वस्तु के साथ होता है।

समं योग्यतया योगो यदि संभावितः क्वचित् ॥

—काव्यप्रकाश, १०/१२५

रुय्यक ने सम को विषम अलंकार का विलोम कहा और इसके दो प्रकारों का कथन किया। अनुरूप पदार्थों के परस्पर संबंध में सम होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तद्विपर्ययः समम् ।

विषमवैधर्म्यादिह प्रस्तावः । यद्यपि विषमस्य भेदत्रयमुक्तं तथापि तच्छब्देन संभवादंत्यो भेदः परामृष्यते । पूर्वभेदद्वयविपर्ययस्यानलंकारत्वात् । अंत्यभेदविपर्ययस्तु चारुत्वात्समाख्योऽलंकारः । स चाभिरूपानभिरूपविषयत्वेन द्विविधः ॥

—अलंकारसर्वस्व, पृ० १६७

उचित रीति से अनेक योग्य वस्तुओं के संबंध-वर्णन को जयदेव सम कहते हैं।

समम्औचित्यतोऽनेकवस्तुसंबंधवर्णनम् ॥

—चंद्रालोक, ५/८१

विश्वनाथ के अनुसार अनुरूप पदार्थों के श्लाघनीय संबंध में सम होता है।

समं स्यादानुरूप्येण श्लाघा योग्यस्य वस्तुनः ॥

—साहित्यदर्पण, १०/७१

दीक्षित ने समालंकार के तीन भेदों का वर्णन किया है। इन्होंने परस्पर दो अनुरूप पदार्थों के वर्णन को सम (अलंकार) कहा।

समं स्याद्वर्णनं यत्र द्वयोरप्यनुरूपयो ॥

—कुवलयानंद, ९१

पंडितराज के अनुसार अनुरूप संसर्ग के वर्णन में सम होता है। इन्होंने उत्तमों के श्लाघनीय संबंध एवं अधम वस्तुओं के निंदनीय संबंध को सम माना है।

अनुरूप संसर्गः समम् । संसर्गः पूर्वं द्विविधः । संयोगादि लक्षणस्यानुरूपता-द्वेधा—स्तुतिपर्यवसायिनीर्निंदापर्यवसायिनी ॥

—रसगंगाधर, पृ० ६०४, ६०७

शोभाकर, विद्याधर, विद्यानाथ तथा विश्वेश्वर पंडित के विवेचन में किसी प्रकार की नवीनता न होकर रुय्यक तथा मम्मट के मत का प्रभाव है।

तद्विपर्ययः समम् ॥ ६१

तच्छब्देन त्रयाणां विषमभेदानां परामर्शः । कविना विच्छित्तिविशेषोपनिबद्धं कार्यकारणयोरानुरूप्यमनुरूप संयोगः सामग्री साकल्यं च समम् ।

—अलंकाररत्नाकर, पृ० १०७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अस्य प्रथमभिदायाः सममिति कविभिर्विपर्यये कथितम्। विषमवैधर्म्यादिहास्याभिधानम्। अस्य विषमस्यविरूपसंघटनारूपायाः प्रथमाभिदाया विपर्ययोऽनुरूपसंघटनारूपश्चारुत्वहेतुत्वादलंकारत्वेन गणितः। इतर भेदद्वयविपर्ययस्य तु तदभावान्नालंकारत्वम्। अनुरूप समागमस्तु प्रस्तूयतेऽत्रे ति समम्।

—एकावली पृ० २६०

सा समालंकृतिर्योगे वस्तुनोरनुरूपयोः ॥

—प्रतापरुद्रीय, पृ० ३०८

अन्योन्यसंगमाहो संबध्यते यदा समं तत्स्यात्। यत्र परस्पर प्रतियोगिकसंबंधानुरूपयोः संबंध उच्यते तत्समम्। संबंधानुरूप्यं द्विविधं। सतोरसतोश्च।

—अलंकारकौस्तुभ, पृ० ३७२

रीतिकालीन आचार्यों में चिंतामणि और कुलपति ने मम्मट के लक्षण को अनूदित कर समालंकार का वर्णन किया है।

होत समालंकार सो जो कछु जोग संजोग।
द्विविध सुवरन ते सत असत जोग कहत कवि लोग॥

—कविकुलकल्पतरु, ३/१७६

सम सम जहाँ संभव हो वह अनुमान॥

—रसरहस्य, पृ० ११५

जसवंत सिंह, मतिराम और दास ने 'कुवलयानंद' के लक्षण का अनुवाद किया है और पद्माकर-कृत परिभाषा पर 'चंद्रालोक' का प्रभाव है।

अलंकार सम तीन बिधि जथा जोग को संग।
कारज में सब पाइये कारन ही को अंग॥

—भाषाभूषण, १२२

जहाँ दुहूँ अनुरूप को कबिजन करत बखान।
तहाँ समुझि सम कहत हैं, जे सुरंग रस ज्ञान॥

—ललितललाम, २२८

जाकों जैसो चाहिए, ताकों तैसोई संग।
है विषमालंकार कौ प्रतिद्वंदी सम मित्त॥

—काव्यनिर्णय, पृ० ३८६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जथा जोग सम बरनिबो सम भाषत कवि लोग ॥

—पद्माभरण, १५२

भेद—समालंकार के तीन भेद माने गए हैं। मम्मट और रुय्यक ने दो भेदों का वर्णन किया था; पर दीक्षित और पंडितराज तक आकर इसके तीन भेद स्थिर हुए। हिंदी के आधुनिक तथा रीतिकालीन आचार्यों ने भी (दीक्षितानुयायी) तीन प्रकारों को मान्यता दी।

प्रथम सम—जब अनुरूप वस्तुओं के यथायोग्य संबंध का वर्णन किया जाय तो प्रथम सम होगा। इसके भी दो उपविभाग हैं—सत् योग एवं असत् योग। सत्योग में उत्तम वस्तुओं के श्लाघ्य सबध का वर्णन होता है और असत्योग में निकृष्ट वस्तुओं के निंदनीय सबंध का कथन किया जाता है।

सत् योग—

क. धातुशिल्पातिशय निकषस्थानमेषा मृगाक्षी
रूपे देवोऽप्ययमनुपमो दत्तपत्रः स्मरस्य।
जातं दैवात् सदृशमनयोः संगतं यत्तदेतत्
शृंगारस्योपनतमधुना राज्यमेकातपत्रम् ॥

यह मृगाक्षी ब्रह्मा के निर्माण-शिल्प के उत्कर्ष की कसौटी है तथा अनुपम सौंदर्ययुक्त इस राजा ने भी कामदेव को चुनौती दे दी है। सौभाग्य से इन दोनों का जो मिलन हुआ है, इससे अभी शृंगार का एकच्छत्र साम्राज्य स्थापित हो गया है। यहाँ राजा तथा मृगनयनी दोनों के सुंदर संबध का वर्णन है।

ख. सोहन संग समान को, इहै कहत सब लोग।
पान पीक ओठन बनै, काजर नैनन जोग ॥

यहाँ पान की पीक का अधर पर तथा काजल का नैनों के साथ परस्पर योग्य संबंध का वर्णन किया गया है।

असत् योग—

क. चित्रं चित्रं बत बहुमहच्चित्रमेतद्विचित्रम्
जातो दैवादुचितरचना संविधाता विधाता।
यन्निंबानां परिणतफलस्फीतिरास्वादनीया
यच्चैतस्याः कवलनकलाकोविदः काकलोकः ॥

यह आश्चर्य है, बहुत बड़ा, क्योंकि विधाता दैवयोग से योग्य रचना करनेवाला हो गया है। नीम के पके फलों में भी स्वाद आ गया है और उसका

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वाद लेने में चतुर काक पक्षी भी बनाए गए हैं। यहाँ निब और काक के असत् (दो असत् पदार्थों के) संबंध का वर्णन है।

ख. कह 'रसाल' कबि फबति अति, मित्र नीच हित नीच।
सोहत है मंडूक को, कारो कलुषित कीच॥

यहाँ मेढक और कीच दो निकृष्ट पदार्थों का संबंध वर्णित है।

२. द्वितीय सम—जब कारण के अनुकूल कार्य के गुण का वर्णन हो तो द्वितीय सम होगा।

क. दवदहनादुत्पन्नोधूमो घनतामवाप्य वर्षैस्तम्।
यच्छमयति तद्युक्तं सोऽपि दवमेव निर्दहति॥

दावाग्नि से उत्पन्न धुआँ बादल बनकर उसे बुझा देता है। यह उचित है, क्योंकि दावाग्नि भी वन से उत्पन्न होकर उसे जला डालती है। यहाँ कारण के अनुरूप कार्य या स्वभाव का वर्णन है।

ख. करत लाल मनुहारि पै, तू न लखत इहि ओर।
ऐसो उर जु कठोर तौ, उचित हि उरज कठोर॥

यहाँ स्तनों (उरोज) के कठिन होने से हृदय का कठिन होना वर्णित है।

३. तृतीय सम—जब बिना अनिष्ट के ही अभीष्ट फल की प्राप्ति का वर्णन किया जाय तो तृतीय सम होगा।

क. नितरां धनमाप्तुमर्थिभिः क्षितिप ! त्वां समुपास्य यत्नतः।
निधनं समलंभि तावकी खलु सेवा जनवांछितप्रदा॥

"हे राजन् ! धन चाहने के लिए याचकों ने प्रयत्न से आपकी अत्यंत सेवा करके निधन (नितरांधन+मृत्यु) प्राप्त किया, आपकी सेवा निश्चय ही मनुष्य के मनोरथ पूर्ण करनेवाली है। राजा की सेवा करने पर अधिक धन की प्राप्ति में तृतीय सम है।"

ख. जाहि मिलन सिय सजि चली,
मिल्यो सु आपहिं आय॥

राम से मिलने के लिए सीता का शृंगार करके चलने पर स्वयं राम का मिल जाना, तृतीय सम है।

सम अभेदरूपक—रूपक अलंकार का एक भेद। [दे० रूपक अलंकार]

समतद्रूपरूपक—रूपक अलंकार का एक भेद। [दे० रूपक अलंकार]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समता—शोभाकरमित्र-वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। जब दोष का उसी के गुण से एवं गुण का उसी के दोष से समाधान हो, तब समता अलंकार होता है।

तदन्याभ्यां समाधानं समता ॥६७॥
दोषगुणयोरित्यनुषक्तम्।

—अलंकाररत्नाकर, पृ० ११७

समधिकलज्जावती—मुग्धा नायिका का एक प्रकार। [दे० मुग्धा] जो नायिका अत्यधिक लज्जाशील हो अर्थात् जो लज्जाशीलता के कारण अपने प्रेम का प्रकाशन करने में विवश रहे, उसे समधिकलज्जावती कहते हैं।

समवकार—रूपक का एक भेद। [दे० रूपक] समवकार की कथावस्तु पुराणप्रसिद्ध तथा देव एवं असुरों से संबद्ध होती है। इसके नायक देव या दैत्य होते हैं, जिनकी संख्या बारह रहती है। इसके प्रत्येक नायक का पृथक्-पृथक् फल होता है। समवकार में वीर रस की प्रधानता होती है और अन्य रस गौण रूप से या अंग रूप से निबद्ध होते हैं तथा सभी वृत्तियों का प्रयोग होता है। इसमें कैशिकी वृत्ति का थोड़ा या मंद प्रयोग वांछनीय है। इसमें तीन अंक होते हैं और तीन दिन की घटना का वर्णन किया जाता है। समवकार में तीन शृंगार—धर्मशृंगार, अर्थशृंगार और कामशृंगार; तीन कपट—स्वाभाविक, दैवी और कृत्रिम, तथा त्रिविद्रव होते हैं अर्थात् तीन प्रकार के उपद्रव (विद्रव) होते हैं—चेतनकृत, अचेतनकृत तथा चेतनाचेतन कृत। चेतन से अभिप्राय मनुष्यकृत उपद्रव से है, जैसे—शत्रु के नगर को घेरना; अचेतन का अर्थ जल, वायु, अग्नि आदि के उपद्रव से है और चेतनाचेतन के अंतर्गत हाथी आदि के उपद्रव आते हैं।

समवकार में विमर्श के अतिरिक्त शेष समस्त संधियों का निबंधन होता है। इसके प्रथम अंक में मुख तथा प्रतिमुख [दे० मुख तथा प्रतिमुख] द्वितीय में गर्भ तथा तृतीय में निर्वहण संधि की योजना की जाती है। नाटक की तरह इसमें आमुख द्वारा पात्रों का परिचय प्रस्तुत किया जाता है। कवि हास्य सहित संक्षिप्त शृंगार तथा देव एवं दानवों के बैर का वर्णन करता है। इसमें लौकिक युक्तियों से रहित माया, इंद्रजाल, शत्रु के पुतले गिराना और उछल-कूद करने का वर्णन होता है। नाट्यदर्पणकार के मत से समवकार का प्रदर्शन नौ मुहूर्तों में हो। प्रथम अंक में ६ मुहूर्त, द्वितीय में दो मुहूर्त तथा तृतीय में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एक मुहूर्त का समय लगे। भरत ने समवकार के लिए गायत्री और उष्णिक छंदों को तथा नाट्यदर्पणकार ने स्रग्धरा एवं शार्दूलविक्रीड़ित को उपयुक्त माना है। इसके तीन अंकों में से प्रथम में हास्योत्पादक वस्तु का प्रदर्शन हो। जिस दिन देवमूर्त्ति की रथ-यात्रा होती हो, उसी दिन समवकार का प्रदर्शन करना चाहिए।

विश्वनाथ ने धीरोदात्त देवता तथा मनुष्य को इसका नायक माना है, पर धनंजय एवं शारदातनय उदात्त चरित्रवाले देव और दानवों को ही समवकार का नायक मानते हैं।

भरत का मत--

देवासुरबीजकृतः प्रख्यातोदात्तनायकश्चैव।
त्र्यंकस्तथा त्रिकपटस्त्रिविद्रवः स्यात्त्रिशृंगारः॥
द्वादशनायकबहुलो ह्यष्टादशनाडिका प्रमाणश्च।
वक्ष्याम्यस्यांकविधिं यावत्यो नाडिका यत्र॥
अंकस्तु सप्रहसनः सविद्रवः सकपटः सवीथीकः।
द्वादशनाडीविहितः प्रथमः कार्यः क्रियोपेतः॥
कार्यस्तथा द्वितीयः समाश्रितो नाडिकाश्चतस्रस्तु।
वस्तु समापनविहितो द्विनाडिकः स्यात्तृतीयस्तु॥
नाडी संज्ञा ज्ञेया मानं कालस्य यन्मुहूर्तार्धम्।
तान्नाडिकाप्रमाणं यथोक्तमंकेषु संयोज्यम्॥
या नाडिकेति संज्ञा कालविभागे क्रियाभिसंपन्ना।
कार्या च सा प्रयत्नाद्यथाक्रमेणैव शास्त्रोक्ता॥
अंकोऽङ्कस्त्वन्यार्थः कर्तव्यः काव्यबंधमासाद्य।
अर्थं हि समवकारे ह्यप्रतिसंबंधमिच्छंति॥
युद्ध जलसंभवो वा वाय्वग्निगजेंद्रसंभ्रमकृतो वा।
नगरोपरोधजो वा विज्ञेयो विद्रवस्त्रिविधः॥
वस्तुगतक्रमविहितो दैववशाद्वा परप्रयुक्तो वा।
सुखदुःखोत्पत्तिकृतस्त्रिविधः कपटोऽत्र विज्ञेयः॥
त्रिविधश्चात्र विधिज्ञैः पृथक् पृथक्कार्ययोग विहितार्थः।
शृंगारः कर्त्तव्यो धर्मे चार्थे च कामे च॥
यस्मिन् धर्मप्रापकमात्महितं भवति साधनं बहुधा।
व्रतनियमतपोयुक्तो ज्ञेयोऽसौ धर्मशृंगारः॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अर्थस्येच्छायोगाद्बहुधा चैवार्थतोऽर्थभृ ंगारः ।
स्त्रीसंप्रयोगविषयेष्वर्थार्था वा रतिर्यत्र ।।
कन्याविलोभनकृतं प्राप्तौ स्त्रीपुंसयोस्तु रम्यं वा ।
निभृतं सावेगं वा यस्य भवेत्कामभृ ंगारः ।।
उष्णिग्गायत्र्याद्यान्यन्यानि च यानि बंधकुटिलानि ।
वृत्तानि समवकारे कविभिस्तानि प्रयोज्यानि ।।

—नाट्यशास्त्र, १८/६३-७६

धनंजय का मत—

कार्यं समवकारेऽपि आमुखं नाटकादिवत् ।।
ख्यातं देवासुरं वस्तु निर्विमर्शास्तु संधयः ।
वृत्तयो मंदकैशिक्यो नेतारो देव दानवाः ।।
द्वादशोदात्त विख्याताः फलं तेषां पृथक्पृथक् ।
बहुवीररसाः सर्वे यद्वदंभोधिमंथने ।।
अंकैस्त्रिभिस्त्रिकपटस्त्रिभृ ंगारस्त्रिविद्रवः ।
द्विसंधिरंकः प्रथमः कार्यो द्वादशनालिकः ।।
चतुर्द्विनालकावंत्यौ नालिका घटिका द्वयम् ।
वस्तुस्वभावदैवारिकृताः स्युः कपटास्त्रयः ।।
नगरोपरोधयुद्धे च वाताग्न्यादिकविद्रवाः ।
धर्मार्थकामैः भृ ंगारो नात्र विंदुप्रवेशकौ ।।
वीथ्यंगानि यथालाभं कुर्यात्प्रहसने यथा ।

—दशरूपक, ३/६२-६८

रामचंद्र का मत—

विज्ञेयः समवकारः ख्यातार्थो निर्विमर्शकः ।
उदात्तदेव-दैत्येशो वीथ्यंगी वीर-रौद्रवान् ।।
अत्र द्वादश नेतारः फलं तेषां पृथक्-पृथक् ।
अंकास्त्रयः त्रिभृ ंगाराः त्रिकपटा त्रिविद्रवाः ।।
षड्-युग्मैकमुहूर्ताः स्युः निष्ठितार्थाः स्वकार्यतः ।
महावाक्ये च संबद्धाः क्रमाद् द्वि-एकैकसंधयः ।।
भृ ंगारस्त्रिविधो धर्मकामार्थफलहेतुकः ।
बंध्य-बंचक-दैवेभ्यः, संभवी कपटस्त्रिधा ।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जीवाजीवोभयोत्थः स्याद् विद्रवस्त्रिरमीषु च ।
प्रत्येकमंकेष्वेकैकः पद्यं च स्रग्धराविकम् ॥

—नाट्यदर्पणम्, २/७६-८०

विश्वनाथ का मत—

वृत्तं समवकारे तु ख्यातं देवासुराश्रयम् ।
संधयो निर्विमर्शास्तु त्रयोऽङ्कास्तत्र चादिमे ॥
संधी द्वावत्ययोस्तद्वदेक एको भवेत्पुनः ।
नायका द्वादशोदात्ताः प्रख्याता देवमानवाः ॥
फलं पृथक्पृथक्तेषां वीरमुख्योऽखिलो रसः ।
वृत्तयो मंदकैशिक्यो नात्र विंदुप्रवेशकौ ॥
वीथ्यंगानि च तत्र स्युर्यथालाभं त्रयोदश ।
गायत्र्युष्णिङ् मुखान्यत्रच्छंदांसि विविधानि च ॥
त्रिश्रृंगारस्त्रिकपटः कार्यश्चायं त्रिविद्रवः ।
वस्तु द्वादशनालीभिर्निष्पाद्यं प्रथमांकगम् ॥
द्वितीयेऽङ्के च तिसृभिर्द्वाभ्यामंके तृतीयके ।
धर्मार्थकामैस्त्रिविधः श्रृंगारः कपटः पुनः ॥
स्वाभाविकः कृत्रिमश्च दैवजो विद्रवः पुनः ।
अचेतनैश्चेतनैश्च चेतनाचेतनैः कृतः ॥

—साहित्यदर्पण, ३/२३४-२४०

समवकार का उदाहरण 'समुद्रमंथन' है ।

समस्तरतकोविदा—प्रगल्भा नायिका का एक भेद । [दे० प्रगल्भा] जो नायिका कामकला के समस्त कौशल में प्रवीण हो, उसे समस्तरतकोविदा कहते हैं ।

समस्तवस्तुविषय—रूपक अलंकार का एक भेद । [दे० रूपक अलंकार]

समाधि—संगतिमूलक या वाक्यन्यायमूलक अर्थालंकार । इसका दूसरा नाम समाहित भी है । आकस्मिक कारणांतर के योग से कार्य का सुगमतापूर्वक सिद्ध हो जाने के वर्णन को समाधि या समाहित अलंकार कहते हैं । 'समाधि' का अर्थ है कार्य का सुगमतापूर्वक संपन्न होना । इसका अर्थ सौकार्य भी है ।

समाधीयते कार्यमनेन इति व्युत्पत्तेः ।

—अलंकार-कौस्तुभ, पृ० ३६९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सम्यक् आधिः आधानम् उत्पादनं समाधिः ।

—बालबोधिनी, पृ० ७१६-१७

सौकर्यं च कार्यस्यानायासेन सिद्ध्या सांगसिद्ध्या च बोध्यम् ।

—उद्योत, पृ० ५५४

इस अलंकार में अन्य कारण के अचानक आ पड़ने से कार्य का सुगमतापूर्वक संपन्न होना वर्णित होता है। समाधि अलंकार के मूल में 'काकतालीयन्याय' की कल्पना की गई है। ताल वृक्ष पर कौवे के बैठने से अकस्मात् ताल-फल के गिर जाने के समान किसी घटना की अचानक उपस्थिति को 'काकतालीयन्याय' कहते हैं।

तेन काकागमनमिव तालपतनमिवकालतालमितीवार्थे। यदाह भगवान् भाष्यकारः। एवं तर्हि द्वाविवार्थौ काकागमनमिव तालपतनमिव काकतालं काकतालमिव काकतालीयम्। —प्रतापरुद्रीय, पृ० ३३१

इस अलंकार में दो कारण होते हैं—एक पहले से वर्त्तमान रहता है, दूसरा आनेवाला होता है। इसका चमत्कार अचानक उपस्थित होनेवाले कारण द्वारा कार्य की सिद्धि में निहित रहता है।

समाधि अलंकार का सर्वप्रथम विवेचन भामह ने किया है, तत्पश्चात् सभी आचार्यों ने इसका निरूपण किया। भरत-कृत 'नाट्यशास्त्र' में समाधि का वर्णन गुण के रूप में किया गया है।

अभियुक्तैर्विशेषस्तु योऽर्थस्यैवोपलभ्यते ।
तेन चार्थेन संपन्नः समाधिः परिकीर्त्यते ॥

—नाट्यशास्त्र, १६/०२

भामह ने इसे समाहित की संज्ञा दी है; पर इसका लक्षण उपस्थित नहीं किया। उनके उदाहरण में समाधि अलंकार की व्याप्ति होती है।

समाहितं राजमित्रे यथा क्षत्रिययोषिताम् ।
रामप्रसत्त्यै यांतीनां पुरोऽदृश्यत नारदः ॥

—काव्यालंकार, ३/१०

दंडी ने भी इसे समाहित कहा है। अपने लक्षण में इन्होंने बताया कि प्रारंभ किए गए कार्य की बिना किसी यत्न के ही यदि दैव-योग से सिद्धि हो जाय तो वहाँ समाहित होगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

किंचिदारभमाणस्य कार्यं दैववशात् पुनः ।
तत्साधनं समापत्तिर्या तदाहुः समाहितम् ।।

—काव्यादर्श, २/९८

वामन का लक्षण नितांत भिन्न है । इनके अनुसार जिस वस्तु का सादृश्य दिखाना अभीष्ट हो, उसी की प्राप्ति में समाहित अलंकार होता है ।

यत्सादृश्यं तत्संपत्तिः समाहितम् ।।

—काव्यालंकार-सूत्रवृत्ति, ४,३, २९

भोज ने बताया कि यदि किसी कार्य के प्रारंभ करने पर, उसकी सिद्धि के लिए दैवी अथवा अदैवी साधन अचानक या पूर्वनिर्धारित रूप से प्रकट हो जायँ तो वहाँ समाहित अलंकार होगा ।

कार्यारंभे सहायाप्तिर्दैवादैव कृतेह या ।
आकस्मिकी बुद्धिपूर्वोभयी वा तत्समाहितम् ।।

—सरस्वतीकंठाभरण, ३/३४

भोज ने उभयालंकार के अंतर्गत समाधि नामक एक अन्य अलंकार का वर्णन किया है, जो परंपरागत समाधि से नितांत भिन्न है । यह दंडी के समाधि गुण का प्रतिरूप है ।

समाधिमन्यधर्माणामन्यत्रारोपणं विदुः —वही, ४/४४

समाधि अलंकार का प्रथम वैज्ञानिक विवेचन मम्मट ने किया । इनके अनुसार कारणांतर के योग से कार्य का सुकर या सुगम हो जाना समाधि है ।

समाधिः सुकरं कार्यं कारणांतरयोगतः ।।

—काव्यप्रकाश, १०/१२५

रुय्यक की परिभाषा पर मम्मट का प्रभाव परिलक्षित होता है; पर इन्होंने 'काकतालीयन्याय' का समावेश कर नया विचार दिया । कारणांतर के योग से कार्य की सुगमतापूर्वक सिद्धि समाधि है ।

कारणांतरयोगात्कार्यस्य सुकरत्वं समाधिः ।

केनचिदारब्धमानस्य कार्यस्य कारणांतरयोगात्सौकार्यं यत्, स सम्यगाधानात्समाधिः । अन्यस्तु सौकर्याय काकतालीय नापतति तत्र समाधिर्वक्ष्यते ।।

—अलंकारसर्वस्व, पृ० ९१-९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परवर्ती आचार्यों में जयदेव, विद्याधर, विद्यानाथ, विश्वनाथ एवं अप्पय-दीक्षित ने मम्मट तथा रुय्यक को ही आधार बनाकर समाधि अलंकार का वर्णन किया।

समाधिः कार्यसौकर्यं कारणांतरसन्निधेः ॥

—चंद्रालोक, ५/९८

हेत्वंतर संबंधात् स्फूर्जति कार्यस्य यत्र सौकर्यम् ।
स समुच्चयसादृश्यात् समाधिर्नामात्र निर्दिष्टः ॥

—एकावली, ८/५६

एकस्मिन् कारणे कार्यसाधनेऽन्यत् परापतेत् ।
काकतालीयनयतः स समाधिरुदीर्यते ॥

—प्रतापरुद्रीय, पृ० ३३१

समाधिः सुकरे कार्ये दैवाद्वस्त्वंतरागमात् ॥

—साहित्यदर्पण, १०/८५

समाधिः कार्यसौकर्यं कारणांतरसन्निधेः ॥

—कुवलयानंद, ११८

पंडितराज एक हेतु से उत्पन्न होनेवाले कार्य में कारणांतर के अकस्मात् उपस्थित होने पर जो (उस कार्य में) सुगमता होती है, उसे समाधि कहते हैं।

एक कारणजन्यस्य कार्यस्याकस्मिककारणांतरसमवधानाहितसौकर्यं समाधिः ।

—रसगंगाधर, पृ० ६६४

विश्वेश्वर पंडित का समाधि-विवेचन मम्मट से प्रभावित है।

भवति समाधिः सुकरे हेत्वंतरसमवधानतः कार्ये ।

चिकीर्षितस्यकार्यस्य सिद्ध्यर्थमभिमतो यो हेतुस्तदतिरिक्तहेतुना कार्यस्य सौकर्यं समाधिः ।

—अलंकार-कौस्तुभ, पृ० ३६६

रीतिकालीन आचार्यों ने दंडी, मम्मट एवं जयदेव के आधार पर समाधि अलंकार का वर्णन किया। केशव ने दंडी से प्रभाव ग्रहण करते हुए भी स्वच्छंदता प्रदर्शित की है।

होत न क्यों हू होय जहँ, दैवयोग ते काज ।
ताहि समाहित नाम कहि, बरनत कवि सिरताज ॥

—कविप्रिया, १३/१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुलपति मिश्र का लक्षण 'काव्यप्रकाश' पर आश्रित है।

दूजो कारण मिलत ही हू जु सुख को काम सो समाधि ॥

—रसरहस्य, पृ० ११५

जसवंत सिंह, मतिराम तथा पद्माकर ने 'चंद्रालोक' के लक्षण को अनूदित किया है।

सो समाधि कारज सुगम और हेतु मिलि होत ॥

—भाषाभूषण, १४८

और हेतु के मिलन ते सुकर होत जहँ काज।
बरनत तहाँ समाधि है, सकल सुकबि सिरताज ॥

—ललितललाम, २८३

और हेतु मिलि सुकर जहँ, काज समाधि बखान ॥

—पद्माभरण,

दास ने समाधि के विवेचन में 'काकतालीयन्याय' का उल्लेख किया है।

क्यों हूँ कारज को जतन, निपट सुगम ह्वै जाइ।
तासों कहत समाधि लखि काकताल को न्याइ ॥

—काव्यनिर्णय, १५/११

भोज तथा पंडितराज ने इसके भेदों का निरूपण किया है। भोज इसके छह प्रकार मानते हैं और पंडितराज तीन भेदों का कथन करते हैं—शुद्ध समाधि, संकीर्ण समाधि और सांगतासिद्ध।

उदाहरण—

क. मानमस्या निराकर्तुं पादयोर्मे पतिष्यतः।
उपकाराय दिष्ट्येदमुदीर्णं घनगर्जितम् ॥

नायक की उक्ति—जब तक मैं उस मानिनी के मान को हटाने के लिए पैर पर पड़ना चाहता था कि उसी समय भाग्य से मेरे उपकार के लिए मेघों ने गरजना प्रारंभ कर दिया। यहाँ मेघ-गर्जन से नायिका का मान-भंग होना कारणांतर के योग से कार्य-सिद्धि है।

ख. प्रान प्रिया लखि पिय-गमन, कहे न कछु सकुचाय।
औचक ही घन गगन में, गरजे बरसे आय ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ बादल के अनायास बरसने से नायक का यात्रा रुक जाने के वर्णन में अन्य कारण के योग से कार्य-सिद्धि हुई।

समाधि और समुच्चय—दोनों में ही कार्य-संपादन अनेक कारणों के योग से होता है। इनमें अंतर यह है कि समुच्चय में कारणों का समूह या समुच्चय होता है; अतः उसमें सभी कारणों का वर्णन युगपत् या एक साथ होता है। पर, समाधि में जब एक कारण कार्य-संपादन करता है तो अन्य कारण अचानक आकर उसे सुगम बना देता है। समाधि की भाँति समुच्चय में एक के बाद दूसरे का आगमन नहीं होता। समाधि में कारण-समुदाय नहीं होता। समुच्चय में सभी कारण प्रधान होते हैं, जबकि समाधि में एक कारण प्रधान होता है और आगंतुक गौण। समुच्चय में कारणों में स्पर्द्धा का भाव होता है; किंतु समाधि में वास्तविक कारण एक रहता है और अन्य कारण अकस्मात् आते हैं, अतः इसी कारण उनमें स्पर्द्धा का भाव नहीं रहता। समाधि में 'काकतालीय-न्याय' से कारणांतर का योग वर्णित होता है तो समुच्चय में 'खलेकपोतिका-न्याय' से एक के पश्चात् अन्य अनेक कारणों का जमाव होता है।

समापनवक्रता—प्रबंधवक्रता का द्वितीय भेद। [दे० प्रबंधवक्रता]

समाप्तपुनरात्तता—वाक्यदोष का ८वाँ भेद। [दे० वाक्यदोष]

समासोक्ति—अर्थालंकार का एक प्रकार। जब प्रस्तुत वृत्तांत के द्वारा अप्रस्तुत वृत्तांत की प्रतीति हो तो समासोक्ति अलंकार होता है। समासोक्ति का अर्थ है संक्षिप्त (समास) कथन (उक्ति)। यहाँ संक्षिप्त उक्ति का अभिप्राय प्रस्तुत के वर्णन से अप्रस्तुत की प्रतीति से है, अतः संक्षेपतः प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत दोनों वृत्तांतों की व्यंजना होने के कारण इसे समासोक्ति कहते हैं। एक के वर्णन से दो का ज्ञान होना संक्षेप कथन है।

समासोक्तिः संक्षिप्तार्थतया। —काव्यालंकार, २/७९

उक्तिः संक्षेपरूपत्वात् समासोक्तिः। —काव्यादर्श, २/२०५

संक्षेपेण उपमानोपमेयलक्षणार्थद्वितीयाभिधानात् समासोक्तिः।

—लघुवृत्ति, पृ० ३९

समासेन संक्षेपेणार्थद्वयकथनात् समासोक्तिः। —काव्यप्रकाश, १०/९७

इस अलंकार में सादृश्य या उपमा व्यंग्य होती है, अतः यह गम्यौपम्य-मूलक अलंकारों की कोटि में आता है; किंतु विशेषण वैचित्र्य प्रदर्शित किए जाने के कारण इसे गम्यौपम्यविशेषण वैचित्र्यमूलक अलंकार माना गया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसमें प्रस्तुत वाच्य रूप से एवं अप्रस्तुत व्यंग्य रूप से रहता है, क्योंकि प्रस्तुत से ही अप्रस्तुत की व्यंजना होती है, जो (व्यंजना) लिंगसाम्य तथा विशेषण-साम्य द्वारा संभव है। इसमें प्रस्तुत का विशेषण या तो श्लिष्ट होता है या साधारण और विशेष्य सदा अश्लिष्ट होता है। इस अलंकार का सौंदर्य विशेषण-वैचित्र्य में निहित है। पर इसमें मुख्यतः गोपन का भाव रहता है, अतः यह गोपनमूलक अलंकार भी माना जाता है।

इस अलंकार का विवेचन सभी आलंकारिकों ने किया है और इसका विवेचन-प्रवाह भामह से विश्वेश्वर पंडित तक अक्षुण्ण रहा है। भामह ने विशेषणसाम्य के कारण एक वस्तु (प्रस्तुत) के कथन से अन्य (अप्रस्तुत) की प्रतीति को, समास उक्ति के कारण, समासोक्ति कहा है।

यत्रोक्ते गम्यतेऽन्योर्थस्तत्समानविशेषणः।
सा समासोक्तिरुद्दिष्टा संक्षिप्तार्थतया यथा।

—काव्यालंकार, २/७९

दंडी ने एक वस्तु के कथन से तत्तुल्य अन्य वस्तु की प्रतीति को समासोक्ति अलंकार माना है। ये प्रकारांतर से भामह के ही विचार को व्यक्त करते हैं। प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत का स्पष्ट कथन न होने के कारण इस लक्षण की संगति अप्रस्तुतप्रशंसा में भी हो जाती है।

वस्तु किंचिदभिप्रेत्य तत्तुल्यस्यान्यवस्तुनः।
उक्तिः संक्षेपरूपत्वात् सा समासोक्तिरिष्यते॥

—काव्यादर्श, २/२०५

उद्भट ने प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत का स्पष्ट कथन कर भामह तथा दंडी के दोषों का परिष्कार किया। इनका लक्षण भामह से प्रभावित होते हुए भी प्रकृत (प्रस्तुत) के कथन से अप्रकृत (अप्रस्तुत) की प्रतीति के निर्देश के कारण पूर्ण है और इस अलंकार का स्पष्ट रूप अंकित करता है।

प्रकृतार्थेन वाक्येन तत्समानैर्विशेषणैः।
अप्रस्तुतार्थकथनं समासोक्तिरुदाहृता॥

—काव्यालंकारसारसंग्रह, २/१०

वामन का लक्षण सर्वथा भिन्न एवं भ्रामक है। इनके अनुसार उपमेय का कथन न करने पर भी उपमान या तत्समान वस्तु के वर्णन को समासोक्ति कहते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनुक्तौ समासोक्तिः । ४,३-२
उपमेयस्यानुक्तौ समानवस्तुन्यासः समासोक्तिः ।
संक्षेपवचनात् समासोक्तिरित्याख्या ।

—काव्यालंकारसूत्रवृत्ति

रुद्रट ने बताया कि सकल समान विशेषणों से युक्त उपमान के द्वारा उपमेय की प्रतीति में समासोक्ति होती है। यह लक्षण भ्रांत है।

सकलसमानविशेषणमेकं यत्राभिधीयमानं सत् ।
उपमानमेवगमयेदुपमेयं सा समासोक्तिः ।।

—काव्यालंकार, ८/६७

भोज का लक्षण भी इसी प्रकार की भ्रांत धारणा से युक्त है, जो अप्रस्तुत-प्रशंसा का रूप प्रकट करता है। इनके अनुसार प्रसिद्ध उपमान के द्वारा उपमेय की प्रतीति ही समासोक्ति है।

यत्रोपमानादेवैतदुपमेयं प्रतीयते ।
अतिप्रसिद्धेस्तामाहुः समासोक्ति मनीषिणः ।।

—सरस्वतीकंठाभरण, ४/४६

मम्मट ने अपने लक्षण में इस अलंकार का निर्दुष्ट एवं पूर्ण लक्षण प्रस्तुत किया। इनके अनुसार श्लिष्ट विशेषणों के द्वारा प्रस्तुत से अप्रस्तुत अर्थ की प्रतीनि समासोक्ति है। इन्होंने श्लिष्ट विशेषण का सन्निवेश कर नया विचार दिया है। इनके मतानुसार इस अलंकार में विशेषण सदा श्लिष्ट होते हैं, विशेष्य नहीं; क्योंकि श्लेषालंकार से अंतर स्थापित करने के लिए ही ऐसा कहा गया है। श्लेष में विशेष्य श्लिष्ट होता है।

परोक्तिर्भेदकैः श्लिष्टैः समासोक्तिः ॥१०/९७

प्रकृतार्थप्रतिपादकवाक्येन श्लिष्ट विशेषणमाहात्म्यात् न विशेषणस्य सामर्थ्यादपि यत् अप्रकृतार्थस्याभिधानं सा समासेन संक्षेपणार्थद्वयकथनात्समासोक्तिः ॥

—काव्यप्रकाश

रुय्यक ने बताया कि विशेषणसाम्य के कारण अप्रस्तुत का गम्य होना समासोक्ति है। इन्होंने इस अलंकार के निरूपण में विशेषण वैचित्र्य को अधिक महत्त्व दिया है। प्रस्तुत और अप्रस्तुत के कहीं वाच्य और कहीं गम्य होने से इसके दो प्रकार होते हैं और वाच्यत्व श्लेष के प्रयोग एवं अप्रयोग के कारण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दो प्रकार का होता है। विशेषणसाम्य श्लिष्ट शब्दों के कारण साधारण एवं औपम्यगर्भता से तीन प्रकार का होता है। इस प्रकार समासोक्ति पाँच प्रकार की हो जाती है। रुय्यक प्रस्तुत पदार्थ के व्यवहार में अप्रस्तुत पदार्थ के व्यवहार के समारोप का कथन कर नया तथ्य प्रकट करते हैं।

विशेषणानां साम्यादप्रस्तुतस्य गम्यत्वे समासोक्तिः। इह प्रस्तुताप्रस्तुतानां क्वचिद्वाच्यत्वं क्वचिद्गम्यत्वमिति द्वैविध्यम्। वाच्यत्वं च श्लेषनिर्देशभंग्या पृथगुपादानेन वेत्यपि द्वैविध्यम्। एतद्द्विभेदमपि श्लेषालंकारस्य विषयः। अप्रस्तुतनिष्ठं तु समासोक्तिविषयः। तत्र निमित्तं विशेषणसाम्यम्। विशेष्यापि साम्ये श्लेषप्राप्तेः। विशेषण साम्याद्धि प्रतीयमानप्रस्तुतं प्रस्तुतावच्छेदकत्वेन प्रतीयते। अवच्छेदकत्वं च व्यवहारसमारोपो न तु रूपसमारोपः। रूपसमारोपे-त्ववच्छादित्वेन प्रकृतस्य तद्रूपरूपित्वाद्रूपकमेव। ततश्च विशेषणसाम्यं श्लिष्टया-साधारण्येनोपगर्भत्वेन त्रिधा भवति।

—अलंकारसर्वस्व, पृ० १०७-६

अन्य आचार्यों में शोभाकर, विद्याधर तथा विद्यानाथ ने रुय्यक के आधार पर ही इस अलंकार का विवेचन किया है।

विशेषणानां साम्यादप्रस्तुतधर्मावच्छेदः समासोक्तिः ॥४३
ततश्चाप्रस्तुतव्यवहारसमारोपः।
न तु रूपसमारोपः। —अलंकाररत्नाकर, पृ० ७१

साधारणधर्मवशाद्गम्येनाप्रस्तुतेन चारुत्वम्।
प्रस्तुतमुपैतिवाच्यं परस्यामेषा समासोक्तिः ॥

—एकावली, ८/२३

विशेषणानां तौल्येन यत्रप्रस्तुतवर्तिनाम्।
अप्रस्तुतस्य गम्यत्वं सा समासोक्तिरिष्यते ॥

—प्रतापरुद्रीय, पृ० २६१

जयदेव प्रस्तुत वृत्तांत से अप्रस्तुत वृत्तांत के स्फुरित होने में समासोक्ति मानते हैं।

समासोक्तिः परिस्फूर्तिः प्रस्तुतेऽप्रस्तुतस्य चेत् ॥

—चंद्रालोक, ५/६२

विश्वनाथ ने इस अलंकार के निरूपण में विशेषणसाम्य के अतिरिक्त कार्य तथा लिंगसाम्य का भी समावेश कर नया विचार प्रस्तुत किया। इन्होंने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बताया कि "जिस वाक्य में प्रस्तुत और अप्रस्तुत में समान रूप से अन्वित कार्य, लिंग और विशेषण के द्वारा प्रस्तुत में अप्रस्तुत के व्यवहार का समारोप हो, वहाँ समासोक्ति होती है।" इन्होंने रुय्यक की भाँति विशेषणसाम्य के तीन रूप माने—प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत के विशेषण का श्लिष्ट होना, दोनों में ही विशेषण की साधारणता तथा औपम्यगर्भत्व।

समासोक्तिः समैर्यत्र कार्यलिंगविशेषणैः।
व्यवहारसमारोपः प्रस्तुतेऽन्यस्यवस्तुना॥

—साहित्यदर्पण, १०/५६

दीक्षित जयदेव का ही लक्षण उद्धृत कर देते हैं।

समासोक्तिः परिस्फूर्तिः प्रस्तुतेऽप्रस्तुतस्य चेत्॥

—कुवलयानंद, ६१

पंडितराज प्रस्तुत वस्तु के व्यवहार पर अप्रस्तुतवस्तु के व्यवहार से प्रकृत पर अप्रकृत के आरोप का वर्णन करते हैं और वाच्यार्थ की प्रधानता स्वीकार करते हुए अप्रस्तुत व्यवहार को प्रधान न मानकर उपस्कारक मात्र मानते हैं।

यत्रप्रस्तुतर्धार्मिको व्यवहारः साधारणविशेषणमात्रोपस्थापिताप्रस्तुतर्धार्मिकव्यवहाराभेदेनभासते सा समासोक्तिः॥ —पृ० ४६३

समासोक्तौ व्यज्यमानस्याप्रकृतव्यवाहारोपस्कारकत्वमेव, न प्राधान्यम्। तदुपस्कृत वाच्यस्यैव तु प्राधान्यमित्युक्तम्॥

—रसगंगाधर, पृ० ५०८

विश्वेश्वर पंडित मम्मट के ही मत का अनुवर्त्तन करते हुए समासोक्ति का निरूपण करते हैं।

तत्र प्रकारवाचकपदमात्रं व्यंग्यवाच्य सामान्यम्।
तच्छक्तेरप्रकृतार्थोक्तिः सोक्ता समासोक्तिः॥

—अलंकारकौस्तुभ, पृ० २५२

रीतिकालीन आचार्यों ने इस अलंकार के विवेचन में मम्मट, विद्यानाथ तथा अप्पय दीक्षित का अनुसरण किया है। चिंतामणि और कुलपति ने 'काव्यप्रकाश' के लक्षण को अनूदित किया। प्रथम (चिंतामणि) ने विद्यानाथ से भी प्रभाव ग्रहण किया है।

श्लेष विशेषन बल उकुत जो कछु और की होइ।
याहि समासोकति कहत पंडित मम्मट कोइ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रस्तुतवर्ग विशेषनन कहो जा थल होइ ।
अप्रस्तुतिगमिता समासोक्ति कहै ए कोइ ॥

—कविकुलकल्पतरु, ३/११६-११८

गुन श्लेष पद अर्थ द्वै, कहै मुख्य इक भाव ।
समासोक्ति जानि यह, नहिं प्रधान प्रस्ताव ॥

—रसरहस्य, ८/६४

जसवंत सिंह, मतिराम तथा पद्माकर आदि ने 'कुवलयानंद' के लक्षण का अनुवाद किया है ।

समासोक्त्यप्रस्तुत फुरै प्रस्तुत बर्नन माँझ ॥

—भाषाभूषण, ६३

जहँ प्रस्तुत मैं होत है अप्रस्तुत को ज्ञान ।
समासोक्ति तहँ कहत हैं कबिजन परम सयान ॥

—ललितललाम, १६२

समासोक्ति प्रस्तुतबिषै अप्रस्तुत को ज्ञान ॥

—पद्माभरण, ६६

दास ने मम्मट एवं दीक्षित दोनों के विचार का समावेश किया है ।

जहँ प्रस्तुत में पाइये, अप्रस्तुत को ज्ञान ।
कहुँ वाचक कहुँ स्लेष तें समासोक्ति पहिचान ॥

—काव्यनिर्णय, ११/१६

प्रस्तुत से अप्रस्तुत की व्यंजना—

समासोक्ति में प्रस्तुत से अप्रस्तुत की व्यंजना तीन प्रकार से संभव है ।

क. समान विशेषण से (विशेषणसाम्यत्व) अर्थात् प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत दोनों के ही विशेषण समान हों ।

ख. समान कार्य—प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत के कार्य समान हों ।

ग. लिंग साम्य—प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत में लिंग की समानता हो ।

समान विशेषण का उदाहरण—

क. लब्ध्वा तव बाहुस्पर्शं यस्याः स कोऽप्युल्लासः ।
जयलक्ष्मीस्तव विरहे न खलूज्ज्वला दुर्बला ननु सा ॥

"हे वीर तुम्हारी बाहु के स्पर्श को प्राप्त कर जिसे विशेष प्रकार का आनंद मिलता है, वह जयलक्ष्मी तुम्हारे विरह में प्रसन्न न होकर दुर्बल हो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गई है।" यहाँ 'जयलक्ष्मी' केवल कांता का बोधक न होकर नायिका का भी द्योतक है।

ख. पूरन चंद प्रकास प्रिय निरखि नैन सुख दैन ।
प्रगट्यौ चारु चकोर के चित्त चौगुनो चैन ।।

यहाँ पूर्ण चंद्र को देखकर, चकोर का उल्लसित होना प्रस्तुत अर्थ है, इससे एक अप्रस्तुत अर्थ की भी प्रतीति होती है कि कोई नायिका नायक को देखकर प्रसन्न हुई ।

श्लिष्ट विशेषण से—

ग. तु ही साँच द्विजराज है, तेरी कला प्रमाण ।
तो पै सिव किरपा करी, जानत सकल जहान ।।

यह दोहा चंद्रमा तथा भूषण कवि दोनों पर लगता है। द्विजराज में श्लेष है—चंद्रमा तथा भूषण कवि, ब्राह्मण ।

समासोक्ति तथा श्लेष—दोनों में ही श्लिष्ट या अनेकार्थक शब्दों का प्रयोग होता है, यही साम्य है। इनमें भेद यह है कि श्लेष में विशेषण तथा विशेष्य दोनों ही श्लिष्ट होते हैं; पर समासोक्ति में केवल विशेषण ही श्लिष्ट होता है। श्लेष में दोनों ही अर्थ (प्रायः) प्रस्तुत होते हैं ; पर समासोक्ति में एक प्रस्तुत होता है और दूसरा अर्थ अप्रस्तुत । श्लेष के दोनों ही अर्थ वाच्य होते हैं और समासोक्ति में प्रस्तुत अर्थ वाच्य होता है तथा अप्रस्तुत व्यंग्य ।

समासोक्ति और रूपक—रूपक में प्रकृत पर अप्रकृत के स्वरूप का आरोप होता है और समासोक्ति में प्रकृत में अप्रकृत के कार्य का आरोप किया जाता है। रूपक में प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत दोनों ही वाच्य होते हैं ; किंतु समासोक्ति में प्रस्तुत वाच्य होता है और अप्रस्तुत व्यंग्य ।

समासोक्ति और अप्रस्तुत प्रशंसा—[दे० अप्रस्तुतप्रशंसा] दोनों में ही दो अर्थों की व्यंजना होती है और एक वाच्य होता है तथा दूसरा अर्थ व्यंग्य । यही दोनों में साम्य है। इनमें अंतर यह है कि समासोक्ति में प्रस्तुत अर्थ वाच्य होता है और अप्रस्तुत व्यंग्य तथा अप्रस्तुत प्रशंसा में अप्रस्तुत अर्थ वाच्य रहता है तथा प्रस्तुत व्यंग्य ।

समाहित—सार अलंकार का अन्य नाम । [दे० सार]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समुच्चय—वाक्यन्यायमूलक अलंकार। किसी कार्य की सिद्धि के लिए एक साधक के होते हुए भी साधकांतर का कथन करना समुच्चय अलंकार है। समुच्चय का अर्थ है समूह या एक साथ जुट जाना, एकत्र होना। इस अलंकार में अनेक भावों, गुणों, क्रियाओं तथा कारणों के समूह एक स्थान पर जुट जाते हैं या किसी कार्य को संपादित करने के लिए अनेक साधकों का समूह इकट्ठा हो जाता है। समुच्चय में कार्य-सिद्धि के लिए कारण-समुदाय की कल्पना 'खलेकपोतिकान्याय' से की जाती है। यह विकल्प अलंकार का विलोम है, जिसमें तुल्यबलवाले पदार्थों की एक ही काल में, एकत्र स्थिति में विरोध होता है। [दे० विकल्प] जिस प्रकार खलिहान में एक कबूतर के आ जाने पर बहुत से कबूतर स्वतः पहुँच जाते हैं, उसी प्रकार समुच्चय अलंकार में एक साधक के होते हुए भी अन्य अनेक साधक जुट जाते हैं।

यथा खले शाल्याद्येकदेशग्रहणार्थमभिसंधिपूर्वकं बहवः कपोता युगपदुपनिपतंति, तद्वदेककार्यनिष्पादनोद्देशेन बहूनां हेतूनामुपस्थापनं समुच्चयस्य विषयः।

—समुद्रबंधवृत्ति, पृ० १८२

इह च खलेकपोतवत्सर्वेषां कारणानां साहित्येनावतारः। समाध्यलंकारे त्वेककार्यंप्रति साधके समग्रेऽप्यन्यस्य काकतालीयन्यायेनापतनमिति भेदः।

—साहित्यदर्पण, १०/८४

समुच्चय अलंकार के उद्‌भावक आचार्य रुद्रट हैं। कालांतर में सभी आलंकारिकों ने इसका वर्णन किया। रुद्रट ने इसकी परिभाषा में बताया कि एक आधार में द्रव्य, गुण, क्रिया रूप अनेक वस्तुओं के शोभन या दुःखावह वर्णन में समुच्चय अलंकार होता है।

यत्रैकत्रानेकं वस्तु परं स्यात्सुखावहाद्येव।
ज्ञेयः समुच्चयोऽसौ त्रेधान्यः सदसतोर्योगः॥

—काव्यालंकार, ७/१९

इन्होंने इसके सत्, असत् एवं सदसत् के योग से तीन प्रकारों का उल्लेख किया है। मम्मट ने रुद्रट का आधार ग्रहण करते हुए इस अलंकार के स्वरूप का परिष्कार किया। इनके अनुसार प्रस्तुत कार्य की सिद्धि के लिए एक कर्त्ता या साधक के होते हुए भी अन्य कारण की साधकता के वर्णन में समुच्चय अलंकार होता है। इन्होंने इसके दूसरे प्रकार में गुण एवं क्रियाओं के यौगपद्य का वर्णन किया है अर्थात् एक काल में गुण-क्रियाओं के समुच्चय में इसका द्वितीय प्रकार होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तत्सिद्धिहेतावेकस्मिन् यत्रान्यत्करं भवेत् समुच्चयोऽसौ ॥

—काव्यप्रकाश, १०/११६

तस्य प्रस्तुतस्य कार्यस्य एकस्मिन्साधके स्थिते साधकांतराणि यत्र संभवति स समुच्चयः । —वही,

सत्वन्यो युगपत् वा गुणक्रियः ॥ —वही,

रुय्यक ने बताया कि जब अनेक गुण-क्रियाओं का एक स्थान पर समुच्चय हो तो यह अलंकार होगा।

गुणक्रियायौगपद्यं समुच्चयः ।

गुणानां वैमल्यादीनां यौगपद्येनावस्थानम्, तथैव च क्रियाणां समुच्चयोऽलंकारः । एकस्य सिद्धिहेतुत्वेऽन्यस्य तत्करत्वं च ।

—अलंकार-सर्वस्व, पृ० ९०-९१

इन्होंने इसके दूसरे प्रकार में बताया कि किसी कार्य की सिद्धि के लिए समर्थ कारण के होने पर भी यदि उसकी सिद्धि के लिए परस्पर स्पर्द्धा करते हुए अन्य कारण भी आ जाएँ तो समुच्चय होगा। रुय्यक ने 'खले कपोतिका-न्याय' का समावेश कर इस अलंकार के स्वरूप को अधिक स्पष्ट किया।

यत्र खलेकपोतिकया बहूनामवतरस्तत्रायं समुच्चयः ।

—वही, पृ० ९१

परवर्ती आचार्यों में विद्याधर एवं विद्यानाथ ने रुय्यक के मत का तथा विश्वनाथ ने मम्मट के विचार का अनुगमन किया।

यदि भवति यौगपद्यं गुणक्रियाणां समुच्चयः स स्यात् ।
एषोऽदर्शि विकल्प प्रतिभटभूतो द्विधाऽस्माभिः ॥

—एकावली, ८/५७

गुणक्रियायौगपद्यं समुच्चय उदाहृतः ॥
खलेकपोतन्यायेन बहूनां कार्यसाधने ।
कारणानां समुद्योगः स द्वितीयः समुच्चयः ॥

—प्रतापरुद्रीय, पृ० ३२९-३०

समुच्चयोऽयमेकस्मिन्सति कार्यस्य साधके ।
खलेकपोतिकान्यायात्तत्परः स्यात् परोऽपि चेत् ॥
गुणौ क्रिये वा युगपत्स्यातां यद्वा गुणक्रिये ॥

—साहित्यदर्पण, १०/८४-८५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जयदेव ने गुण एवं क्रिया का एक साथ वर्णन करने को समुच्चय अलंकार कहा है।

भूयसात्मेक संबंधभाजां गुंफः समुच्चयः ।।

—चंद्रालोक, ५/६७

अप्पय दीक्षित ने जयदेव तथा रुय्यक के मतों का समन्वय कर समुच्चय का लक्षण प्रस्तुत किया। इन्होंने इसके दो प्रकारों का कथन किया है।

इनके अनुसार अनेक गुण-क्रियाओं के समुदाय के गुंफन को समुच्चय कहते हैं।

बहूनां युगपद्भावभाजां गुंफः समुच्चयः ।
अहं प्राथमिकाभाजामेककार्यान्वयेऽपि सः ।।

—कुवलयानंद, ११५-११६

पंडितराज ने वस्तुओं के युगपत् या एक साथ संबंध को समुच्चय कहा है। इन्होंने बताया कि इस अलंकार में वस्तुओं के संबंध में किसी प्रकार का क्रम अपेक्षित नहीं है, अतः काल-भेद के कारण भी इसका अलंकारत्व खंडित नहीं होता। अभिप्राय यह कि अनेक साधनों का एकसाथ वर्णन न होकर यदि कुछ विलंब करके भी हो तो वहाँ समुच्चय अलंकार होगा।

युगपत्पदार्थानामन्वयः समुच्चयः ।

युगपदिति क्रमव्यावृत्त्यर्थम्, न त्वेकक्षणप्रतिपत्त्यर्थम् । तेन किंचित्कालभेदेऽपि न समुच्चयभंगः । —रसगंगाधर, पृ० ३६०-६१

विश्वेश्वर पंडित ने मम्मट के आधार पर समुच्चयालंकार का वर्णन किया।

एकस्मिन्सति हेतौ हेत्वंतरगीः समुच्चयः कथितः । प्रकृतकार्यनिर्वाहके सत्यपि यत्र खलेकपोतन्यायेन कारणांतराणामपि तत्कार्यसाधकतयोपादानं समुच्चय इत्यर्थः । अतएव नेतरहेतूपादानवैयर्थ्यम् । युगपदेव यत्रावतारेण केन कस्य वैयर्थ्यमित्यनवधारणात् ।.......... —अलंकार-कौस्तुभ, पृ० ३४७-४८

रीतिकालीन आचार्यों ने मम्मट, जयदेव तथा अप्पय दीक्षित का आधार ग्रहण कर समुच्चय अलंकार का वर्णन किया है।

चिंतामणि एवं कुलपति ने 'काव्यप्रकाश' की परिभाषा को अनूदित कर समुच्चय का वर्णन किया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एक कर संग मिलि औरो साधक होइ।
होइ अनेक समुच्चय या अलंकार यह होइ ॥

—कविकुलकल्पतरु, ३/२७५

मूल अर्थ की सिद्धि जहं, एक अर्थ तें होय।
औरो पोषक होय बहु, बरनि समुच्चय सोय ॥

—रसरहस्य, ८/१०८

जसवंतसिंह एवं मतिराम ने 'कुवलयानंद' के लक्षण का भावानुवाद किया है और दास ने मम्मट का अनुसरण किया।

दोइ समुच्चयभाव बहु कहुँ उपजै इक संग।

—भाषाभूषण, १४५

बहुत भए इक बारगी, तिन को गुंफ जु होय।
ताहि समुच्चय कहत हैं कबिकोबिद सब कोय ॥

—ललितललाम, २७७

एकै करता सिद्धि को, औरै होंहि सहाइ।
बहुत होंहि इक बार कै द्वै अनमिल इक भाइ।

—काव्यनिर्णय, १५/३२

भेद—समुच्चय अलंकार के दो प्रकार मान्य हुए—प्रथम एवं द्वितीय। प्रथम समुच्चय—इसमें एक कार्य की सिद्धि में एक साधक के होते हुए भी अन्य साधक का कथन किया जाता है।

उदाहरण—

क. दुर्वाराः स्मरमार्गणाः प्रियतमो दूरे मनोऽप्युत्सुकं,
गाढ़ं प्रेम नवं वयोऽतिकठिनाः प्राणाः कुलं निर्मलम्।
स्त्रीत्वं धैर्यविरोधि मन्मथ सुहृत् कालः कृतांतोऽक्षमो,
नो सख्यश्चतुराः कथं नु विरहः सोढव्यइत्थं शठः ॥

विरहिणी की उक्ति—कामदेव के बाण दुर्वार हैं, प्रिय दूर है और मन मिलन के लिए उत्कंठित हो रहा है। प्रेम गाढ़ा, अवस्था नई, प्राण अत्यंत कठोर तथा कुल निर्मल है। हमारा स्त्री होना धैर्य धारण करने में बाधक है तथा यह काल कामदेव की सहायता करनेवाला है अर्थात् वसंतऋतु आ गई है और हमारे प्राण को हरण करने में यमराज भी असमर्थ हैं। हमारी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सखियाँ भी चतुर नहीं हैं। अतः इस प्रकार के शठ विरह को कैसे सहा जाय ? यहाँ एकमात्र काम के बाण ही विरह को असह्य बना देने के लिए पर्याप्त हैं, किंतु अन्य साधनों की भी चर्चा की गई है।

प्रथम समुच्चय के तीन उपविभाग किए गए हैं और साधन तीन प्रकार के किए गए हैं—सद्योग, असद्योग, सदसद्योग।

क. सद्योग—जहाँ सभी उत्तम साधनों का वर्णन किया जाय, वहाँ यह प्रकार होता है—

> **भृकुटी मटकनि पीतपट चटक लटकती चाल।**
> **चल चख चितवनि, चोरि चित लियो बिहारीलाल॥**

यहाँ गोपियों को रिझानेवाले अनेक उत्तम साधनों—कृष्ण की भृकुटी का मटकाना, पीतांबर की चमक एवं मदमाती चाल का वर्णन है।

ख. असद्योग—इसमें बुरे या अनुत्तम साधनों का वर्णन किया जाता है।

> **ग्रह ग्रहीत पुनि बातबस, तेहि पुनि बीछी मार।**
> **ताहि पियाइय बारुनी, कहिय कौन उपचार॥**

यहाँ ग्रह का प्रभाव, बाई होना, बिच्छू का मारना आदि अनेक अनुत्तम साधन वर्णित हैं।

क. सदसद्योग—जब सत् और असत् (अच्छे और बुरे) साधनों का वर्णन किया जाय तो यह प्रकार होगा।

> **दिन को दुतिमंद सु चंद सरोवर को अरविंद बिहीन लखावै।**
> **खल रात सभा गत सातहु ये लखि कंटक लौं हिय में चुभि जावैं॥**

द्वितीय समुच्चय—जब अनेक गुण या क्रियाओं तथा गुण और क्रियाओं का एक साथ वर्णन हो तो द्वितीय समुच्चय होगा।

उदाहरण—

> **क' अरुणे च तरुणि नयने तव, मलिनं च प्रियस्य मुखम्।**
> **मुखमानतं च सखि ते ज्वलितश्चास्यांते स्मरज्वलनः॥**

हे तरुणि ! तुम्हारे नेत्रों के लाल होते ही तुम्हारे प्रिय का मुख पीला पड़ जाता है, और तुम्हारे मुख के नीचा होने पर या क्रोध शांत हो जाने पर उनके हृदय में काम की अग्नि प्रज्ज्वलित हो जाती है। यहाँ पूर्वार्द्ध में अरुणिमा तथा मलिनता इन दो गुणों का समुच्चय है और उत्तरार्ध में ᵖमन् तथा ज्वलन् दो क्रियाओं का।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्वितीय समुच्चय के तीन प्रकार हैं—गुणसमुच्चय, क्रियासमुच्चय और गुणक्रियासमुच्चय ।

क. **गुणसम्मुच्चय**—जब अनेक गुणों का एक साथ वर्णन किया जाय तो गुणसमुच्चय होता है ।

पावस के आवत भये, स्याम मलिन नभ-थान ।
रक्त भये पथिकन हृदय, पीत कपोल तियान ।।

यहाँ स्याम, रक्त और पीत इन तीन गुणों के एक साथ वर्णन में गुण-समुच्चय हुआ ।

ख. **क्रियासमुच्चय**—जब अनेक क्रियाओं का वर्णन किया जाय तो क्रिया-समुच्चय होगा ।

हँसि-हँसि हेरति नवल तिय, मद के मद उमदाति ।
बलकि-बलकि बोलति बचन, ललकि ललकि लपटात ।।

यहाँ हेरति, उमदाति, बलकि आदि अनेक क्रियाएँ एक साथ वर्णित हैं ।

ग. **गुण-क्रियासमुच्चय**—जब अनेक गुणों एवं क्रियाओं का एक साथ समुच्चय हो तो यह भेद होता है ।

सित-पंकज-दल छबिमयी, कोप भरे तुव नैन ।
सत्रु दलन पर परतु हैं, और कलुष दुख दैन ।।

यहाँ परतु क्रिया तथा कलुष गुण का समुच्चय है ।

द्वितीय समुच्चय एवं कारक दीपक—दोनों में ही अनेक क्रियाएँ एक साथ वर्णित होती हैं । इनमें अंतर यह है कि समुच्चय में सभी क्रियाओं का एक साथ वर्णन होता है, पर कारक दीपक में क्रियाओं का वर्णन क्रमिक या क्रमशः होता है ।

समुच्चयोपमा—सादृश्यमूलक अलंकार । जब अनेक साधारण धर्मों का जमाव या समुच्चय हो तो समुच्चयोपमा अलंकार होता है । समुच्चय का अर्थ समूह है । इस अलंकार में उपमेय तथा उपमान की समता कई साधारण धर्मों के कारण होती है, अतः इसे समुच्चयोपमा कहते हैं ।

चंपक कलिका सी अहै, रूप, रंग अरु बास ।।

यहाँ सुंदरी की उपमा चंपा के तीन साधारण धर्मों—रूप, रंग और बास—के कारण दी गई है, अतः समुच्चयोपमा हुई ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संबंधातिशयोक्ति—अतिशयोक्ति अलंकार का तृतीय भेद। [दे० अतिशयोक्ति]

सर्वतोभद्र—चित्रालंकार का एक प्रकार। [दे० चित्रालंकार] सर्वतोभद्र का अर्थ है सभी ओर से ग्राह्य। जब श्लोक या पद्य को किसी ओर से पढ़ा जाय और उसमें काव्यगत चमत्कार रहे तो सर्वतोभद्र होगा।

सर्वश्राव्य—नाट्य के अनुरोध से नाटकीय कथावस्तु का किया गया एक विभाग। नाटक का वह कथोपकथन या संवाद (वार्त्तालाप), जो सभी पात्रों के सुनने योग्य हो या सबको सुनाई पड़े, उसे सर्वश्राव्य कहते हैं। इसे प्रकाश भी कहते हैं। यह वृत्त गोपनीय न होकर रंगमंच पर उपस्थित पात्रों के सुनने योग्य होता है।

नाटक की प्रकृति का निरीक्षण करके या नाट्य के अनुरोध से नाटकीय कथावस्तु के तीन भेद किए गए हैं—सर्वश्राव्य (प्रकाश), नियतश्राव्य एवं अश्राव्य (स्वगतकथन)।

नाट्यधर्ममपेक्ष्यैतत्पुनर्वस्तु त्रिधेष्यते ॥
सर्वेषां नियतस्यैव श्राव्यमश्राव्यमेव च।
सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यादश्राव्यं स्वगतं मतम् ॥
द्विधाऽन्यन्नाट्यधर्माख्यं जनांतमपवारितम्।

—दशरूपक, १/६३, ६४, ६५

सहकारपाक—जो रचना प्रारंभ में मध्यम तथा अंत में सुस्वादु हो, उसे सहकार या आम्रपाक कहते हैं। सहकार का अर्थ है आम। [दे० काव्यपाक]

आदौ मध्यमंते स्वादु सहकारपाकम्।

—काव्यमीमांसा, ५ अध्याय, पृ० ५३,
चौखंबा संस्करण

सहचरभिन्न—अर्थदोष का १८वाँ भेद। [दे० अर्थदोष]

सहेट—संकेत-स्थल या नायक-नायिका के मिलन का गुप्त स्थान सहेट है। [दे० संकेत-स्थल]

सहोक्ति—सादृश्यमूलक अलंकार। सहार्थक शब्द के योग से एक शब्द का अनेक अर्थ का बोधक होना सहोक्ति है। 'सहोक्ति' का अर्थ है एक साथ (सह) कहना (उक्ति) या सहार्थक शब्द की उक्ति या सहभाव का कथन। इस अलंकार में सह, साथ, साकं, सार्धं आदि सहार्थक शब्दों के द्वारा एक शब्द

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनेक अर्थों का बोधक होता है। सहोक्ति का प्राणभूत तत्त्व अतिशयोक्ति है अर्थात् चमत्कारपूर्ण सहार्थ-संबंध के वर्णन में ही सहोक्ति अलंकार होता है।

एकं पदं यत् सहार्थस्य सहसमंसाकंसार्धमित्यादिशब्दार्थान्वयस्य बलात् सामर्थ्यात् द्विवाचकम् अनेकार्थाभिधायकम् (यथाकथंचित्तद्बोधकं) सा सहोक्ति-रित्यर्थः। तत्रैकस्यार्थस्य वाचकमन्यस्यार्थस्याक्षेपकमिति बोध्यम् ॥

—बालबोधिनी, पृ० ६७२

सहोक्ति अलंकार का सर्वप्रथम विवेचन भामह ने किया है, तत्पश्चात् सभी आचार्यों ने इसका निरूपण किया। भामह ने बताया कि जब एक ही समय में रहनेवाली तथा एक ही समय में घटित होनेवाली क्रियाएँ एक ही पद से कथित हों तो सहोक्ति अलंकार होगा।

तुल्यकाले क्रिये यत्र वस्तुद्वय समाश्रिते।
पदेनैकेन कथ्यंते सा सहोक्तिर्मता सताम् ॥

—काव्यालंकार, ३/३९

दंडी के अनुसार गुण तथा क्रिया का सहभाव से कथन सहोक्ति है।

सहोक्तिः सहभावेन कथनं गुणकर्मणाम् ॥

—काव्यादर्श, २/३५१

उद्भट और वामन ने भामह के ही मत का अनुसरण करते हुए सहोक्ति का वर्णन किया है। उद्भट ने भामह की परिभाषा को उद्धृत कर दिया है।

तुल्यकाले क्रिये यत्र वस्तुद्वय समाश्रिते।
पदेनैकेन कथ्यंते सा सहोक्तिर्मता सताम् ॥

—काव्यालंकारसारसंग्रह, ५/२९

वस्तुद्वयक्रियोस्तुल्यकालयोरेकपदाभिधाना सहोक्तिः ॥

—काव्यालंकारसूत्र, ४, ३, २८

रुद्रट ने वास्तव तथा औपम्य दो वर्गों में सहोक्ति का वर्णन किया है। वास्तव वर्ग में बताया गया कि दो पदार्थों के एक साथ कथन में सहोक्ति होती है। औपम्यवर्ग के अनुसार प्रसिद्ध अर्थ एवं अत्यधिक क्रियावाले उपमान के साथ उसीके सदृश उपमेय के कथन में सहोक्ति होती है।

भवति यथारूपोऽर्थः कुर्वन्नेवापरं तथाभूतम्।
उक्तिस्तस्य समाना तेन समं या सहोक्तिः सा ॥७/१३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यो वा येन क्रियते तथैव भवता च तेन तस्यापि ।
अभिधानं यत्क्रियते समानवन्यासहोक्तिः सा ॥७/१५
सा हि सहोक्तिर्यस्यां प्रसिद्धदूराधिकक्रियो योऽर्थः ।
तस्य समानक्रिय इति कथ्येतान्यः समेतेन ॥

—काव्यालंकार, ८/९९

भोज ने बताया कि क्रियाओं में अन्यों के साथ कर्त्तादि के समावेश को सहोक्ति कहते हैं। इन्होंने इसे उभयालंकार माना है।

कर्त्रादीनां समावेशः सहान्यैर्यः क्रियादिषु ।
विविक्तश्चाविविक्तस्य सहोक्तिः सा निगद्यते ॥

—सरस्वतीकंठाभरण, ४/१८१

मम्मट ने पूर्ववर्त्ती आचार्यों के लक्षणों का समाहार करते हुए कहा कि जब सह शब्द के बल से एक पद दो अर्थों का बोधक हो तो सहोक्ति अलंकार होगा।

सा सहोक्तिः सहार्थस्य बलादेकं द्विवाचिकम् ॥

—काव्यप्रकाश, १०/११२

रुय्यक का सहोक्ति-विवेचन अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इन्होंने व्याकरणिक आधार की प्रतिष्ठा कर सहोक्ति की औपम्यमूलकता सिद्ध की। रुय्यक के मतानुसार सहोक्ति का प्राण अतिशयोक्ति है। इन्होंने बताया कि यदि उपमान और उपमेय दोनों में से एक की प्रधानता का निर्देश करने पर दूसरे के साथ सह अर्थ का संबंध हो तो सहोक्ति अलंकार होगा। इन्होंने इसके चार भेदों का वर्णन किया है—कार्यकारणप्रतिनियमविपर्ययरूपा, अभेदाध्यवसायरूपा, द्वितीय कहीं श्लेषप्रधान और कहीं श्लेषरहित होता है।

उपमानोपमेययोरेकस्य प्राधान्यनिर्देशेऽपरस्य सहार्थसंबंधे सहोक्तिः।........ तत्रनियमेनातिशयोक्तिमूलत्वमस्याः। सा च कार्यकारणप्रतिनियमविपर्ययरूपा अभेदाध्यवसायरूपा च। अभेदाध्यवसायश्च श्लेषभित्तिकोऽन्यथा ॥

—अलंकारसर्वस्व, पृ० १०३-१०४

विद्याधर, विद्यानाथ और विश्वनाथ की मान्यताएँ रुय्यक से प्रभावित हैं।

प्राधान्ये निबद्धं यद्युपमानोपमेययोरेकम् ।
अन्यत् सहार्थसहितं भवति सहोक्तिस्तदाख्याता ॥

—एकावली, ८/२२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सहार्थेनान्वयो यत्र भवेदतिशयोक्तितः ।
कल्पितौपम्यपर्यंता सा सहोक्तिरितीष्यते ॥

—प्रतापरुद्रीय, पृ० २८६

सहार्थस्य बलादेकं यत्र स्याद्वाचकं द्वयोः ।
स सहोक्तिर्मूलभूतातिशयोक्तिर्यदा भवेत् ॥

—साहित्यदर्पण, १०-५४

जयदेव ने दो पदार्थों के चमत्कारपूर्ण सहभाव-वर्णन को सहोक्ति कहा और दीक्षित ने इनके लक्षण को ग्रहण किया।

सहोक्ति सहभावश्चेद् भासते जनरंजनः ॥

—चंद्रालोक, ५/६०

—कुवलयानंद, ५८

पंडितराज ने गौण तथा प्रधान दो अर्थों के 'साथ' शब्द के अर्थ के संबंध को सहोक्ति कहा है। इनके अनुसार सहोक्ति का चमत्कारपूर्ण होना आवश्यक है। इन्होंने सहादि शब्द के अभाव में सहोक्ति की कल्पना की है।

गुणप्रधानभावावच्छिन्नसहार्थसंबंधः सहोक्तिः ।
हृद्यत्वं चालंकारसामान्यलक्षणागत सकलालंकारसाधारणमेवेत्यसकृदुक्तम् ।
.........सहादिशब्दप्रयोगाभावेऽप्येषा संभवति ॥ —रसगंगाधर, पृ० ४८३

विश्वेश्वर पंडित के लक्षण पर मम्मट तथा रुय्यक दोनों का संयुक्त प्रभाव है।

सहादिपदसंनिधानाद्यत्र धर्मवाचकपदस्य विशेष्यविशेषणोभयान्वितार्थबोधकत्वं सा सहोक्तिः । उभयनिष्ठधर्मस्यसहैवोक्तिर्यत्रेति व्युत्पत्तेरित्यर्थः ॥

—अलंकारकौस्तुभ, पृ० ३३०

रीतिकालीन आचार्यों ने मुख्यतः दंडी, मम्मट, जयदेव या अप्पय दीक्षित को आधार बनाकर सहोक्ति अलंकार का विवेचन किया है। केशव ने दंडी के आधार पर और चिंतामणि तथा कुलपति ने मम्मट के अनुसार अपने लक्षण निर्मित किए हैं। जसवंतसिंह और भूषण ने 'कुवलयानंद' के लक्षण को अनूदित किया है।

हानि वृद्धि शुभ अशुभ कछु, कहिय गूढ़ प्रकास ।
होय सहोक्ति सु साथ ही, वरणत केशवदास ।

—कविप्रिया, १०/२०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संग अर्थ के शब्दबल द्वै बाचक पद एक।
तहाँ सहोकति होति है यों कबि करत विवेक ॥

—कविकुलकल्पतरु, ३/१२६

एकारथ पद अर्थ द्वै कहे साथ के जोर।
तहाँ सहोकति जानिये, अलंकार तेहि ओर ॥

—रसरहस्य, ८/१३२

सो सहोक्ति सब साथ ही बरनै रस सरसाइ ॥

—भाषाभूषण, ९०

वस्तुन को भासत जहाँ जनरंजन सह भाउ।
ताहि कहत सह उक्ति हैं भूषण जे कवि राउ ॥

—शिवराजभूषण, १३६

उदाहरण—

क. सह दिवसनिशाभिः दीर्घाः श्वासदंडाः
सह मणिवलयैर्वाष्पधारा गलंति।
तव सुभग वियोगे तस्याः उद्विग्नायाः
सह च तनुलतया दुर्बला जीविताशा ॥

हे सुंदर ! तुम्हारे वियाग से बेचैन उस नायिका के रात और दिन के साथ श्वासदंड भी बढ़ते जा रहे हैं। मणि-कंकण के साथ आँसुओं की धारा भी गिर रही है तथा देह-लता के साथ उसके जीवन की आशा भी क्षीण हो रही है। यहाँ रात और दिन के साथ श्वासदंड आदि के बढ़ने में सहोक्ति है।

ख. सकुच संग कुच युग उठत, कुटिल भृकुटि दृग संग।
मन्मथ संग नितंब बढ़ि, भूषित तरुनी अंग ॥

यहाँ बढ़ना क्रिया का संग शब्द की सहायता से सबमें लगना सहोक्ति है।

तुल्ययोगिता और सहोक्ति—दोनों में अनेक वस्तुओं के धर्म का कथन होता है। इनमें अंतर यह है कि तुल्ययोगिता में वर्णित पदार्थों का संबंध प्रधान रूप से होता है अर्थात् उसमें दोनों ही पदार्थ प्रधान होते हैं, पर सहोक्ति में एक प्रधान होता है और दूसरा गौण।

सांगरूपक—रूपक अलंकार का एक भेद। [दे० रूपक अलंकार]

साकांक्ष—अर्थदोष का १६वाँ भेद। [दे० अर्थदोष]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सागरनंदी—ये नाट्यशास्त्र के आचार्य हैं। इन्होंने 'नाटकलक्षणरत्नकोश' नामक ग्रंथ की रचना की है। इनका समय ग्यारहवीं शती का मध्य है। सागरनंदी का वास्तविक नाम सागर था; पर नंदी वंशोद्भव होने के कारण ये सागरनंदी कहे जाते हैं। 'नाटकलक्षणरत्नकोश' की रचना 'नाट्यशास्त्र' के आधार पर हुई है और उसमें अनेक स्थलों पर भरत के श्लोक उद्धृत किए गए हैं। इसमें भरत के अतिरिक्त श्रीहर्ष, राहुल, कात्यायन, गर्ग, अश्मकुट्ट, नखकुट्ट, बादरायण, मातृगुप्त आदि आचार्यों के मंतव्य भी प्रस्तुत हैं; अतः ऐतिहासिक दृष्टि से इस ग्रंथ का महत्त्व असंदिग्ध है। लेखक ने आचार्य कोहल की रसविषयक स्थापनाओं का उल्लेख कर उन्हीं के अनुसार वृत्तियों का विभाजन किया है। इनके ग्रंथ की विशेषता नाट्यसिद्धांत को तुलनात्मक मतों के साथ संक्षेप में प्रस्तुत करने में है। नाट्यकला से संबद्ध सभी विषयों का इसमें सुंदर विवेचन है और तत्संबंधी कतिपय नवीन तथ्य प्रकट किए गए हैं; जैसे वर्त्तमान नरपति के चरित्र को नाटक का विषय बनाना। अभिनवगुप्त ने इस मत को समीचीन नहीं माना है।

'नाटकलक्षणरत्नकोश' का उद्धार सुप्रसिद्ध फ्रेंच विद्वान सिलवाँलेवी ने किया है। उन्हें १९२२ ई० में नेपाल में इसकी तालपत्र पर लिखित एक प्रति प्राप्त हुई और उन्होंने इस ग्रंथ की सूचना १९२३ ई० में 'जर्नल एशियाटिका' में प्रकाशित की। तत्पश्चात् श्री ए० डिल्लन् ने (लेवी की प्रति की प्रतिलिपि कराकर) १९३७ ई० में इसे लंदन से प्रकाशित कराया। प्रो० बाबूलाल शुक्ल शास्त्री ने हिंदी अनुवाद के साथ 'नाटकलक्षणरत्नकोश' का परिशुद्ध संस्करण तैयार किया है, जो चौखंबा संस्कृत सीरीज, वाराणसी से १९७२ ई० में प्रकाशित हुआ है।

सात्त्वती—यह नाट्यवृत्ति का द्वितीय प्रकार है। [दे० वृत्ति] सात्त्वती शब्द सत्त्व से बना है। सत्त्वशाली व्यक्तियों द्वारा प्रयुक्त होने से इसकी अभिधा सात्त्वती है। नाटक के सत्त्व गुणशाली व्यक्ति ही इसका प्रयोग करते हैं। इसमें सत्त्वगुण का प्राधान्य रहता है तथा न्याय संपन्न वृत्त का विधान। यह हर्ष से उत्कट एवं शोकरहित है। इसमें वीर, रौद्र एवं अद्भुत रसों का प्राचुर्य रहता है; क्योंकि उद्धत पुरुषों का संघर्ष ही (इसमें) वर्णित होता है। सात्त्वती के चार अंग हैं—उत्थापक, परिवर्त्तक, संलापक एवं संघातक। इस वृत्ति का संबंध सात्त्विक अभिनय से होता है। अभिनवगुप्त इसे मनोव्यापार-रूपा कहकर इसका संबंध मनवाची सत्त्व शब्द से स्थापित करते हैं। इसमें

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

युद्ध एवं शौर्यपूर्ण कार्य वर्णित होते हैं, यह धर्मवीर, सत्यपराक्रम धीरोदात्त से संबद्ध होती है ।

मनोव्यापाररूपा सात्त्विकी । सदिति प्रख्या रूपं संवेदनं, तद् यत्रास्ति तत् सत्त्वं मनः । तस्येयमिति ।

—अभिनवभारती, पृ० २०-२१

या सात्त्वतेनेह गुणेन युक्ता,
न्यायेन वृत्तेन समन्विता च ।
हर्षोत्कटा संहृतशोकभावा,
सा सात्त्वती नाम भवेत्तु वृत्तिः ॥

—नाट्यशास्त्र, २२/३८

वीराद्भुतरौद्ररसा, विज्ञेया ह्यल्पकरुणशृंगारा ।
उद्धत पुरुषप्राया परस्पराघर्षणकृता च ॥ —वही, २२/४०

सात्त्वती के अंग—

विशोका सात्त्वती सत्त्वशौर्यत्यागदयार्जवैः ।
संलापोत्थापकावस्यां सांघात्यः परिवर्तकः ॥

—दशरूपक, २/५३

१. संलाप (संलापक)—पात्रों के नाना प्रकार के भाव तथा रसपूर्ण गंभीर उक्ति या वार्त्तालाप को संलापक कहते हैं ।

संलापकोगभीरोक्तिर्नानाभावरसा मिथः ॥

—दशरूपक, २/५४

२. उत्थापक—जब नायक या पात्र एक दूसरे को युद्ध के लिए उभाड़ें तो उत्थापक होगा ।—

उत्थापकस्तु यत्रादौ युद्धायोत्थापयेत्परम् ॥ —वही, २/५४

३. सांघात्य—जब मंत्र, धन या दैवी शक्ति के द्वारा शत्रु के संघात या समाज में भेदभाव (फूट) डाला जाय, तो सांघात्य होगा ।

मंत्रार्थदैवशक्त्यादेः सांघात्यः संघभेदनम् ॥

—वही, २/५५

४. परिवर्त्तक—किसी आरंभ किए गए (आरब्ध) कार्य को छोड़कर अन्य कार्य को किया जाए तो परिवर्त्तक होगा ।

प्रारब्धोत्थानकार्यान्यकरणात्परिवर्त्तकः ॥

—दशरूपक, २/५५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सात्त्विक अलंकार—नायक अथवा नायिका के स्वाभाविक गुणों को सात्त्विक अलंकार कहते हैं। इनकी संख्या आठ है—शोभा, विलास, माधुर्य, गांभीर्य, दीप्ति (तेज), लालित्य, औदार्य और धैर्य। [दे० **नायक के गुण**] इन्हें अयत्नज अलंकार भी कहते हैं।

सात्त्विक भाव—[दे० **अनुभाव**] स्वतः स्फुरित शारीरिक अंग-विकार को सात्त्विक भाव कहते हैं। भरत ने ४९ भावों का वर्णन करते हुए आठ सात्त्विक भावों का स्वतंत्र रूप से पृथक् विवेचन किया है। उनके अनुसार "यहाँ सत्त्व मन से उत्पन्न (संभव होनेवाला) स्वीकार किया गया है। उसकी उत्पत्ति समाहित मन से कही गई है। मन की एकाग्रता से सत्त्व की निष्पत्ति होती है। उसका भावों के अनुरूप रोमांच, अश्रु, वैवर्ण्य आदि लक्षणवाला जो स्वभाव है, उसका दूसरे मन के द्वारा (अथवा अन्यमनस्क भाव से) अनुकरण नहीं किया जा सकता।"

इह हि सत्त्वं नाम मनः प्रभवम्। समाहितमनस्त्वादुच्यते। मनसः समाधौ सत्त्वनिष्पत्तिर्भवति। तस्य च योऽसौ स्वभावो रोमांचाश्रुवैवर्ण्यादिलक्षणो यथाभावोपगतः स न शक्योऽन्यमनसा कर्तुमिति। —नाट्यशास्त्र, ७/९४

स्तंभः स्वेदोऽथ रोमांचः स्वरभेदोऽथ वेपथु।
वैवर्ण्यमश्रु प्रलय इत्यष्टौ सात्त्विका मताः॥ —वही,

भरत के अनुसार सात्त्विक भाव आठ हैं—स्तंभ, स्वेद, रोमांच, स्वर-भंग, कंप (वेपथु), वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय। विश्वनाथ सत्त्व के उद्रेक से उत्पन्न मनोविकार को सात्त्विक भाव कहते हैं। सत्त्व अंतःकरण के धर्मविशेष को कहा जाता है। इसके द्वारा सामाजिकों के हृदय में वासनारूप से विराजमान रत्यादि भावों का उद्‌बोधन हुआ करता है।

विकाराः सत्त्वसंभूताः सात्त्विकाः परिकीर्तिताः॥

—साहित्यदर्पण, ३/१३४

सत्त्वं नाम स्वात्मविश्रामप्रकाशकारी कश्चनांतरो धर्मः। सत्त्वमात्रोद्भवात्तेभिन्ना अप्यनुभावतः। गोबलीवर्दन्यायेन इति शेषः।—साहित्यदर्पण, ३/१३४

सत्त्व आंतर धर्म है; अतः उससे उत्पन्न भाव भी आंतर हैं। सात्त्विक भाव को अनुभावों की श्रेणी में परिगणित किया जाता है। ये शरीर में अनायास ही उत्पन्न होते हैं। इनका विवरण इस प्रकार है—

१. स्तंभ—हर्ष, भय, क्रोध, लज्जा आदि के कारण शरीर के अंगों का संचालन बंद हो जाना स्तंभ है। [दे० **स्तंभ**]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२. **स्वेद**—हर्ष, क्रोध, रतिप्रसंग, मानसिक संताप आदि के कारण रोमकूपों से जलविंदु का प्रकट होना स्वेद है। [दे० **स्वेद**]

३. **रोमांच**—हर्ष, भय, क्रोध, शीत, आनंद, विस्मय आदि के कारण शरीर के रोमकूपों का उठ जाना रोमांच है। [दे० **रोमांच**]

४. **स्वरभंग**—भय, मद, क्रोध, आनंद आदि के कारण स्वाभाविक वाणी का बदल जाना स्वरभंग है। [दे० **स्वरभंग**]

५. **वैवर्ण्य**—विषाद, क्रोध, मद, भय आदि के कारण मुख की कांति का बदल जाना वैवर्ण्य है। [दे० **वैवर्ण्य**]

६. **कंप** (**वेपथु**)—रोग, हर्ष, शीत, रोष, प्रिय-स्पर्श आदि से शरीर का काँपना कंप है। [दे० **कंप**]

७. **अश्रु**—हर्ष, शोक, भय, क्रोध आदि के कारण नेत्रों से जल टपकना अश्रु है। [दे० **अश्रु**]

८. **प्रलय**—सुख-दुःख के कारण किसी वस्तु में तल्लीन होने से चेष्टारहित हो जाना प्रलय है। [दे० **प्रलय**]

सादृश्यलक्षणा—लक्षणाशक्ति का एक भेद। [दे० **लक्षणाशक्ति** तथा **वक्रोक्ति-सिद्धांत**]

साधर्म्य—साम्य या समानता को साधर्म्य कहते हैं। यह उपमा का तत्त्व है। [दे० **उपमा**]

साधारणी—वेश्या या गणिका को साधारणी कहते हैं। [दे० **गणिका**]

साधारणीकरण—रस-निष्पत्ति के साथ साधारणीकरण-सिद्धांत का निकट संबंध है। [दे० **रस-निष्पत्ति**] इसके द्वारा काव्यास्वाद के महत्त्वपूर्ण प्रश्न का मनोवैज्ञानिक समाधान प्रस्तुत किया जाता है। 'साधारणीकरण' शब्द व्याकरणिक दृष्टि से 'साधारण + च्वि + करण' के संयोग से निष्पन्न है, जिसका अर्थ है असाधारण को साधारण करने की क्रिया। तदनुसार असाधारण या विशिष्ट को साधारण, सर्वसामान्य या सार्वजनीन बनाने की क्रिया का नाम साधारणीकरण है। [दे० **साधारणीकरण : एक शास्त्रीय अध्ययन पृ० १३३-१३४**] काव्यशास्त्र में साधारणीकरण-सिद्धांत का अपना महत्त्व है, जिसके अनुसार काव्य में वर्णित दुष्यंतादि पात्रों के भाव किस प्रकार सर्वसाधारण के द्वारा ग्राह्य होते हैं, इसी तथ्य का निरूपण किया जाता है अर्थात् काव्यानुशीलन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

या नाट्यप्रेक्षण के समय सहृदय या सामाजिक को किस प्रकार कवि-निबद्ध भावों की अनुभूति होती है, उस प्रक्रिया का ज्ञान साधारणीकरण द्वारा ही होता है।

भारतीय साहित्यशास्त्र में इस सिद्धांत के प्रवर्त्तक भट्टनायक माने जाते हैं, पर विद्वानों ने इसके प्ररोह का अनुसंधान भरत-कृत 'नाट्यशास्त्र' में किया है। डॉ० नगेंद्र के अनुसार इस सिद्धांत का संकेत भरत के इस कथन से होता है कि जब इन भावों को सामान्य रूप से प्रस्तुत किया जाता है तो रस की निष्पत्ति होती है—

एभ्यश्च सामान्यगुणयोगेन रसा निष्पद्यंते ॥

—नाट्शास्त्र, काव्यमाला, पृ० १०६

[दे० रस-सिद्धांत, पृ० १६५]

डॉ० प्रेमस्वरूप गुप्त का मत है कि भट्टनायक ने पूर्व उद्भावित साधारणीकरण-सिद्धांत को परिमार्जित किया था, वे उसके उद्भावक नहीं हैं। पर, डॉ० गुप्त का यह मत मान्य नहीं है और इस सिद्धांत के एकमात्र पुरस्कर्त्ता भट्टनायक ही स्वीकार किए गए हैं। भट्टनायक के पूर्व साधारणीकरण-सिद्धांत की स्थापना की कोई प्रमाणपुष्ट परंपरा प्राप्त नहीं होती; अतः उसके अभाव में इसकी उद्भावना का सारा श्रेय भट्टनायक को ही दिया जा सकता है। **[दे० 'रसगंगाधर का शास्त्रीय अध्ययन', पृष्ठ १५५ तथा 'रस-सिद्धांत', पृष्ठ १६७ फुटनोट]**

संस्कृत-काव्यशास्त्रियों ने साधारणीकरण-सिद्धांत की स्थापना में परस्पर मतवैभिन्य प्रदर्शित किया है। इस विषय का जिन आचार्यों ने विवेचन किया है, उनमें भट्टनायक, अभिनवगुप्त, धनंजय, विश्वनाथ तथा पंडितराज जगन्नाथ हैं। हिंदी के आलोचकों ने भी इस प्रश्न का अत्यंत अभिनिवेश के साथ समाधान प्रस्तुत किया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल, डॉ० श्यामसुंदरदास, पं० केशवप्रसाद मिश्र, डॉ० नगेंद्र, आचार्य नंददुलारे वाजपेयी तथा बाबू गुलाबराय ने साधारणीकरण के संबंध में मौलिक विचार प्रकट किए हैं तथा कतिपय अनुसंधायकों ने इस विषय पर स्वतंत्र पुस्तकों की भी रचना की है। यहाँ क्रमानुसार सभी के मत प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

भट्टनायक के अनुसार "काव्य में दोषाभाव, गुण तथा अलंकाररूप और नाटक में चार प्रकार के अभिनय रूप अपने निविड़ निजत्वमोह तथा संकट

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का निवारण करनेवाले एवं विभावादि के साधारणीकरण रूप अभिधाशक्ति से तथा पुनः (दूसरे अंश पर) भावकत्व के द्वारा भाव्यमान रस अनुभव तथा स्मृति आदि से भिन्न विलक्षण रजोगुण तथा तमोगुण के अनुवेध (मिश्रण) के वैचित्र्य बल से वृद्धि, विकास तथा विस्तारस्वरूप सत्त्वगुण के प्राधान्य से प्रकाशमान् आनंदमय साक्षात्कार में संकल्प-विकल्प से भिन्न (विलक्षण) परब्रह्म के आस्वाद के सदृश भोजकत्व व्यापार के द्वारा अनुभव किया जाता है।" [नाट्यशास्त्र—हिंदी अनुवाद, डॉ० रघुवंश, पृ० २९१]

तस्मात्काव्ये दोषाभावगुणालंकारमयत्वेलक्षणेन नाट्ये चतुर्विधाभिनयरूपेण निबिडनिजमोह संकटकारिणा विभावादिसाधारणीकरणात्मनाऽभिधातो द्वितीयांशेन भावकत्व व्यापारेण भाव्यमानो रसोऽनुभवस्मृत्यादि विलक्षणेन रजस्तमोऽनुवेधा-वैचित्र्यबलाद्द्रुतिविस्तारविकासलक्षणेन सत्त्वोद्रेकप्रकाशानंदमयनिजसंविद्विश्रांति-लक्षणेन परब्रह्मास्वादविधेन भोगेन परं भुज्यते........।

—अभिनवभारती, भाग १, पृष्ठ २७७

क. भट्टनायक के मतानुसार विभावादि का निविड़ निजत्व मोह से मुक्त होना ही साधारणीकरण है।

ख. साधारणीकरण भावकत्व व्यापार द्वारा ही सिद्ध होता है। अभिप्राय यह कि काव्य में वर्णित राम-सीता या दुष्यंत-शकुंतला अपने निजी व्यक्तित्व या रामत्व या दुष्यंतत्व-संबंध का त्याग कर सामान्य पुरुष-स्त्री के रूप में उपस्थित होते हैं। उस समय प्रेक्षक उन्हें दुष्यंत या शकुंतला के रूप में न देखकर सामान्य पुरुष-स्त्री के रूप में तथा उनके द्वारा प्रदर्शित रत्यादि स्थायी भावों को सामान्य रत्यादि भाव के रूप में अनुभव करते हैं। इस स्थिति में दुष्यंतादि का व्यक्तित्व विशिष्टता का परित्याग कर सामान्य रूप में प्रतीत होने लगता है।

ग. भट्टनायक के मत से विभावादि का ही साधारणीकरण होता है अर्थात् स्थायी, संचारी, विभाव, अनुभाव, सभी का साधारणीकरण होता है।

घ. भावकत्व व्यापार द्वारा भाव्यमान स्थायी भाव की परिणति रस-रूप में होती है। विभाव का साधारणीकरण पहले होता है और स्थायी का बाद में।

अभिनवगुप्त ने भट्टनायक के साधारणीकरण-सिद्धांत को संशोधित रूप में स्वीकार किया तथा इसे व्यापक परिवेश प्रदान कर देशकालादि की परिधि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

से परे मान लिया। इनके अनुसार वाक्यार्थ-प्रतीति के पश्चात् मानसी साक्षात्कारात्मिका के बोध होने पर देशकालादि के विभाग मिट जाते हैं। उस स्थिति में मृग आदि का ज्ञान जो विषय-रूप में होता है, वह विशेष न रहकर भय मात्र रह जाता है। उस समय 'मैं भीत हूँ, यह भीत है; शत्रु, मित्र या मध्यस्थ भीत-हैं' आदि विशेष संबंध की प्रतीति न होने से सुख-दुःखादि रहित निर्विघ्न प्रतीति होती है, जिससे वह स्थायी भाव नेत्रों के सम्मुख नाचता हुआ-सा भासित होने लगता है और उसी का रस-रूप में बोध होता है। इस प्रकार के भय से न तो सामाजिक की आत्मा तिरस्कृत होती है और न विशेष रूप से महत्त्व ही प्राप्त करती है।

वाक्यार्थप्रतिपत्तेरनंतरं मानसी साक्षात्कारात्मिकाऽपहसिततत्तद्वाक्योपात्त-कालादिविभागा तावत्प्रतीतिरूपजायते। तस्यां च यो मृगपोतकादिर्भाति तस्य विशेष रूपत्वाभावाद्भीत इति त्रासकस्यापारमार्थिकत्वाद्भयमेव परं देशकाद्यना-लिंगितम्। तत एव 'भीतोऽहं भीतोऽय शत्रुर्वयस्यो मध्यस्थो वा' इत्यादि प्रत्ययेभ्यो दुःखसुखादिकृत्हानादिबुध्यनतरोदयनियमवत् तथा विघ्न बहुलेभ्यो विलक्षणं निर्विघ्नप्रतीतिग्राह्यं साक्षादिव हृदये निविशमानं चक्षुषोरिव विपरि-वर्त्तमानं भयानको रसः। तथाविधे हि भये नात्माऽत्यंततिरस्कृतो न विशेषतः उल्लिखितः। —अभिनवभारती, भाग १, पृ० २७९

अभिनवगुप्त के मत की विशेषताएँ—

क. इनके मतानुसार न केवल विभावादि का अपितु स्थायी भाव का भी साधारणीकरण होता है। स्थायी भाव के साधारणीकरण का अभिप्राय है देशकालादि की परिधि का टूटना या बंधन से मुक्ति। ऐसी स्थिति में व्यक्ति-संसर्ग तिरोहित हो जाता है और सुख-दुःख की भौतिक चेतना नष्ट हो जाती है।

ख. साधारणीकरण की अवस्था में सामाजिक या दर्शक भावमुक्त होकर एकाग्रचित्त से रस का अनुभव करता है अर्थात् भाव का साधारणीकरण वैयक्तिक क्रिया नहीं है, वह कला के क्षेत्र में सामूहिक क्रिया है। परिणामतः साधारणीकरण का मूल स्थायी भाव का ही साधारणीकरण है।

ग. अभिनव साधारणीकरण के दो स्तरों को स्वीकार करते हैं—एक स्थिति में विभावादि के विशेष संबंध का तिरोहित हो जाना तथा दूसरी स्थिति में सामाजिक के व्यक्तित्वबंधन का नष्ट होना। अभिप्राय यह कि विभावादिकों के साथ स्थायी भाव के साधारणीकरण होने से सामाजिक की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनुभूति का साधारणीकरण होना। अभिनव ने वासना-रूप में स्थायी भाव की स्थिति को मान्यता देकर उसका साधारणीकरण स्वीकार किया है।

घ. स्थायी भाव का साधारणीकरण मानने पर ही संबंधों का परिहार संभव है। इन्होंने कवि के समस्त व्यापार का साधारणीकरण स्वीकार किया है अर्थात् साधारणीभूत सहृदय प्रथमतः कवि के साथ तादात्म्य स्थापित कर प्रकारांतर से नायक (काव्य या नाटक) के साथ तादात्म्य स्थापित करता है।

धनंजय रस की अवस्थिति सामाजिक में स्वीकार करते हैं। साधारणीकरण-सिद्धांत को अपनाते हुए इन्होंने कहा कि काव्य में वर्णित रामादि अपने विशेष व्यक्तित्व का त्याग कर साधारण पुरुष के रूप में उपस्थित होते हैं। धनंजय नर्तक के रसास्वाद को भी स्वीकार करते हैं अर्थात् अभिनय करते समय नट को भी रसास्वाद होता है।

त एव च परित्यक्तविशेषा रसहेतवः।

—दशरूपक, ४/४१

काव्यार्थभावनास्वादो नर्तकस्य न वार्यते॥

—वही, ४/४२

रसोत्पत्ति के संबंध में इन्होंने शंकुक के ही मत का समर्थन किया है। जिस प्रकार शिशु मिट्टी के घोड़े-हाथियों को वास्तविक घोड़ा-हाथी समझकर उनके साथ क्रीड़ा करता है, उसी प्रकार प्रेक्षक भी अवास्तविक अर्जुन आदि पात्रों (नट के रूप में) को ही वास्तविक पात्र मानकर उनसे आनंद प्राप्त करते हैं, अभिनेता के उत्साह से स्वयं उत्साहित होते हैं।

क्रीडतां मृण्मयैर्यद्वद् बालानां द्विरदादिभिः।

सोत्साहः स्वदते तद्वच्छ्रोतृणामर्जुनादिभिः॥

—दशरूपक, ४/४१

रस रसिक सहृदय में ही होता है, अनुकार्य में नहीं। उसकी अनुभूति अनुकार्य या राम-सीता को नहीं होती, रसिकों, दर्शकों या सामाजिकों को होती है।

रसः स एव स्वाद्यत्वाद्रसिकस्यैव वर्तनात्।

नानुकार्यस्य वृत्तत्वात्काव्यस्याततपरत्वतः॥

द्रष्टुः प्रतीतिव्रीडेर्ष्यारागद्वेषप्रसंगतः।

लौकिकस्य स्वरमणीसंयुक्तस्येव दर्शनात्॥

—वही, ४/३८-३९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आचार्य मम्मट ने साधारणीकरण के संबंध में अपना कोई विचार प्रकट न कर अभिनवगुप्त के ही मत को स्वीकार किया है। इनके टीकाकार गोविंद-ठक्कुर के अनुसार भावकत्व को साधारणीकरण कहते हैं, जिसके द्वारा विभाव तथा स्थायी भाव का साधारणीकरण हो जाता है। इस स्थिति में (साधारणी-करण में) सीतादि विशेष स्त्री पात्रों को कामिनी रूप में समझ लिया जाता है। स्थायी तथा अनुभाव आदि के साधारणीकरण-संबंध का अर्थविशेष बंधन से मुक्ति है।

भावकत्वं साधारणीकरणम्। तेन हि व्यापारेण विभावादयः स्थायी च साधारणीक्रियंते। साधारणीकरणंचैतदेव यत् सीतादीनां कामिनीत्वादि सामान्येनो-पस्थितिः। स्थाय्यनुभावादीनां च संबंधिविशेषानवच्छिन्नत्वेन।

—प्रदीपोद्योत, पृ० ९५

इस मत के अनुसार विभाव (आलंबन, आश्रय और उद्दीपन), अनुभाव, स्थायी एवं संचारी सभी का साधारणीकरण होता है।

आचार्य विश्वनाथ ने स्थायी तथा विभावादि का साधारणीकरण माना है। इनका कथन है कि रसास्वाद के समय इस विशेष संबंध का परिहार नहीं होता कि ये (विभावादि) मेरे हैं अथवा मेरे नहीं हैं—अन्य के हैं अथवा अन्य के नहीं हैं।

श्रृंगारादि रसों के रति आदि स्थायी भाव की काव्य या नाटक में सामान्य रूप से प्रतीति होती है। यही साधारणीकरण विभावादि का विभावन व्यापार कहा जाता है। इसीके प्रभाव से उस समय प्रमाता (द्रष्टा या श्रोता) अपने को समुद्र पार करनेवाले हनुमान आदि से अभिन्न समझने लगता है। यद्यपि समुद्र-लंघन मनुष्य के लिए संभव नहीं है, तथापि हनुमानादि के साथ अभेद-स्थापन के द्वारा सामाजिकों के चित्त में वैसा ही उत्साह उत्पन्न हो जाता है। विश्वनाथ प्रमाता के साथ आश्रय के तादात्म्य का वर्णन साधारणीकरण के ही कारण करते हैं। साधारणीकरण व्यापार की विशेषता आश्रय के साथ प्रमाता का अभेद-स्थापित होने में ही है। विश्वनाथ विभावों का साधारणीकरण मानते हैं और उसी के साथ पाठक या दर्शक का आश्रय के साथ तादात्म्य भी उन्हें मान्य है—

साधारण्येन रत्यादिरपि तद्वत्प्रतीयते।
परस्य न परस्येति ममेति न ममेति च॥
तदास्वादे विभावादेः परिच्छेदो न विद्यते।—साहित्यदर्पण, ३/१२-१३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

व्यापारोऽस्ति विभावादेर्नाम्ना साधारणीकृतिः ॥
तत्प्रभावेण यस्यासन्पाथोधिप्लवनादयः ।
प्रमाता तदभेदेन स्वात्मानं प्रतिपद्यते ॥
उत्साहादिसमुद्बोधः साधारण्याभिमानतः ।
नृणामपि समुद्रादिलंघनादौ न दुष्यति ॥

—वही, ३/९-११

विश्वनाथ ने विभावादि के साधारणीकरण को स्वीकार किया है, साथ ही उन्हें स्थायी का भी साधारणीकरण मान्य है। वे प्रमाता के साथ नायक के अभेदत्व की स्थापना करते हैं। उनके मतानुसार न तो प्रमाता विभावादि के संबंध का स्वीकार ही करता है और न उनका परिहार करता है।

पंडितराज जगन्नाथ ने साधारणीकरण के संबंध में अपना मौलिक चिंतन प्रस्तुत किया है। ये सामान्य रूप से साधारणीकरण को स्वीकार नहीं करते और किसी दोष की कल्पना कर उसके द्वारा ही (दोषात्मक कल्पना से) प्रमाता की आत्मा में दुष्यंतादि के साथ अभेद स्थापित करते हैं। प्रमाता की आत्मा कल्पित दुष्यंतत्व से आच्छादित हो जाती है अर्थात् वह अपने को दुष्यंत समझ लेता है, तब उसे अपने को शकुंतला का प्रेमी समझने में कोई बाधा नहीं रह जाती। "उस दोष के कारण कल्पित दुष्यंतत्व से आच्छन्न आत्मा में कल्पित शकुंतलाविषयक रति भी भासित होने लगती है, जैसे दूरत्व आदि दोषों के कारण जब सीप के टुकड़े अज्ञान से ढक जाते हैं—वास्तविक रूप में नहीं समझ पड़ते, तब उन टुकड़ों में भी चाकचिक्य दोष से चाँदी के टुकड़े उत्पन्न हो जाते हैं—अर्थात् वे सीप के टुकड़े चाँदी के टुकड़े प्रतीत होने लगते हैं, यद्यपि न हम में शकुंतला आदि की रति वास्तविक रूप में रहती है, न सीप के टुकड़ों में चाँदीपन तथापि साक्षी आत्मा उसका भान करा देती है।

इसी क्रम में प्राचीनों के इस मत को अमान्य घोषित करते हुए पंडितराज कहते हैं—यद्यपि विभावादि के साधारणीकरण का कथन प्राचीन आचार्यों ने किया है, तथापि उनका किसी भी दोष की कल्पना किए बिना सिद्ध होना कठिन है। क्योंकि, काव्य में शकुंतलादि बोधक शब्दों के द्वारा पुनः कांता आदि के रूप में उनका बोध कैसे संभव है अर्थात् काव्य में शकुंतला आदि के वर्णन से उनका ज्ञान शकुंतला आदि के ही रूप में होता है, मात्र स्त्री के ही रूप में नहीं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यदपि विभावादीनां साधारण्यं प्राचीनैरुक्तं तदपि काव्येन शकुंतलादि शब्दैः शकुंतलात्वादिबोधजनकैः प्रतिपाद्यमानेषु शकुंतलादिषु दोषविशेषकल्पनं विना दुरुपपादम्।

—रसगंगाधर, प्रथम आनन, पृ० १०५ (चौखंबा)

काव्ये नाट्ये च, कविना नटेन च प्रकाशितेषु विभावादिषु, व्यंजनव्यापारेण दुष्यंतादौ शकुंतलादिरतौ गृहीतायामनंतरं च सहृदयतोल्लासितस्य भावना-विशेषरूपस्य दोषस्य महिम्ना, कल्पित दुष्यंतत्वावच्छादिते स्वात्मन्यज्ञानावच्छिन्ने शुक्तिकाशकल इव रजत-खंडः समुपद्यमानोऽनिर्वचनीयः साक्षिभावस्य शकुंतलादि-विषयकरत्यादिरेव रसः।

—वही, पृ० १०१-१०२

पंडितराज अभिनवगुप्त की भाँति व्यंजना-शक्ति के द्वारा विभावादि का साधारणीकरण स्वीकार करते हैं। दोषात्मक भावना की कल्पना कर इन्होंने साधारणीकरण के मत को वेदांत की पीठिका पर अधिष्ठित किया है। पर, यह विचार किसी दार्शनिक (वेदांती) को ही मान्य हो सकता है, इससे सहृदय को आनंदोपलब्धि नहीं हो सकती।

पंडितराज के पश्चात् संस्कृत-काव्यशास्त्र में मौलिक चिंतन की परंपरा निःशेष हो गई और आधुनिक भारतीय भाषाओं ने रिक्थ के रूप में इसे ग्रहण किया। हिंदी आलोचकों में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने साधारणीकरण-सिद्धांत का विवेचन एवं पुनराख्यान किया। उन्होंने 'चिंतामणि' एवं 'रस-मीमांसा' में इस प्रश्न को नए सिरे से उठाकर इसका अपने ढंग से समुचित समाधान प्रस्तुत किया। शुक्लजी के शब्दों में इसका विवेचन इस प्रकार है—

१. जब तक किसी भाव का कोई विषय इस रूप में नहीं लाया जाता कि वह सामान्यतः सबके उसी भाव का आलंबन हो सके, तबतक उसमें रसोद्-बोधन की पूरी शक्ति नहीं आती। इसी रूप में लाया जाना हमारे यहाँ साधारणीकरण कहलाता है।

२. (क) काव्य का विषय सदा विशेष होता है, सामान्य नहीं, वह व्यक्ति सामने लाता है, जाति नहीं।

(ख) साधारणीकरण का अभिप्राय यह है कि पाठक या श्रोता के मन में जो व्यक्ति-विशेष या वस्तु-विशेष आती है, वह जैसे काव्य में वर्णित 'आश्रय' के भाव का आलंबन होती है, वैसे ही सब सहृदय पाठकों या श्रोताओं के भाव का आलंबन हो जाती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ग. जिस व्यक्ति-विशेष के प्रति किसी भाव की व्यंजना कवि या पात्र करता है, पाठक या श्रोता की कल्पना में वह व्यक्ति-विशेष ही उपस्थित रहता है।

३. कल्पना में मूर्ति तो विशेष की ही होगी; पर वह मूर्ति ऐसी होगी, जो प्रस्तुत भाव का आलंबन हो सके, जो उसी भाव को पाठक या श्रोता के मन में जगाए, जिसकी व्यंजना आश्रय अथवा कवि करता है। इससे सिद्ध हुआ कि साधारणीकरण आलंबनत्व धर्म का होता है।

—चिंतामणि, भाग १, पृ० २२७-२३०

४. व्यक्ति तो विशेष ही रहता है; पर उसमें प्रतिष्ठा ऐसे सामान्य धर्म की रहती है, जिसके साक्षात्कार से सब श्रोताओं या पाठकों के मन में एक ही भाव का उदय थोड़ा या बहुत होता है। × × × × 'विभावादि सामान्य रूप से प्रतीत होते हैं। इसका तात्पर्य यही है कि रसमग्न पाठक के मन में यह भेद-भाव नहीं रहता कि यह आलंबन मेरा है या दूसरे का। थोड़ी देर के लिए पाठक या श्रोता का हृदय लोक का सामान्य हृदय हो जाता है।' --वही

५. साधारणीकरण में आलंबन द्वारा भाव की अनुभूति प्रथम कवि में चाहिए, फिर उसके वर्णित पात्र में और फिर श्रोता या पाठक में। विभाव द्वारा जो साधारणीकरण कहा गया है, वह तभी चरितार्थ होता है।

—रस-मीमांसा, पृ० ९९

शुक्लजी के अनुसार कवि, विभाव तथा सहृदय, तीनों में ही साधारणीकरण के तत्त्व विद्यमान हैं। इनके मत से वही रसानुभूति उत्तम है, जिसमें तीन तत्त्वों का साधारणीकरण होता है।

डॉ० रामलाल सिंह का कहना है कि "साधारणीकरण-सिद्धांत के प्रतिपादन में उन्होंने आलंबनत्व धर्म के साधारणीकरण पर विशेष बल देकर काव्य में लोक-धर्म की आवश्यकता एवं महत्ता विशेष रूप से प्रतिपादित की है।"

—आचार्य शुक्ल के समीक्षा-सिद्धांत, पृ० २०२

शुक्लजी आलंबनत्व धर्म के साधारणीकरण तक ही अपने को परिमित न कर सहृदय के साथ तादात्म्य की भी स्वीकृति देते हैं। आलंबनत्व धर्म के साधारणीकरण से उनका अभिप्राय यह है कि साधारणीकरण आलंबन के उन सामान्य गुणों का होता है जिसके कारण शकुंतला दुष्यंत को प्रिय लगती है। "कवि आलंबन का इस प्रकार वर्णन करता है कि वह अपने वैशिष्ट्य की रक्षा करते हुए भी साधारण धर्मों के कारण सभी पाठकों के मन में वैसा ही भाव

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उद्बुद्ध करता है, जैसा कि काव्यप्रसंग के अंतर्गत आश्रय के मन में आता है।'[१]
शुक्लजी भाव के साधारणीकरण को स्वीकार करते हुए भी आलंबनत्व धर्म के साधारणीकरण पर अधिक बल देते हैं।

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी के अनुसार "साधारणीकरण का अर्थ रचयिता और उपभोक्ता (कवि और दर्शक) के बीच भावना का तादात्म्य है। साधारणीकरण वास्तव में कवि-कल्पित समस्त व्यापार का होता है, केवल किसी पात्रविशेष का नहीं।" —नया साहित्य, नए प्रश्न, पृ० १२२

वाजपेयीजी ने कवि-कल्पित समस्त व्यापार का साधारणीकरण स्वीकार किया है, केवल किसी पात्रविशेष का नहीं। वे सहृदय की दृष्टि से ही काव्य-व्यापार का साधारणीकरण स्वीकार करते हैं, कवि और सहृदय के साधारणी-करण पर विचार नहीं करते। देवताओं या पूज्य व्यक्तियों के रति-भाव के साथ दर्शक का किस प्रकार साधारणीकरण होगा, इसपर विचार करते हुए उन्होंने कहा कि कवि या रचनाकार के लिए भी वे पात्र उतने ही पूज्य होते हैं, जितने कि दर्शक या प्रेक्षक के लिए; अतः ऐसी स्थिति में कवि-द्वारा वर्णित पूज्य व्यक्तियों के प्रति रति-भाव दर्शक के मन में भी उसी भाव की सृष्टि करेगा, जैसा कि नाटककार या कवि के मन में उस भाव का अनुभव हुआ होगा। वाजपेयीजी रचनाकार तथा उपभोक्ता (प्रेक्षक एवं सहृदय) के बीच भावना के तादात्म्य को ही साधारणीकरण कहते हैं।

शुक्लजी के मत की आलोचना पंडित केशवप्रसाद मिश्र ने की है, जिसे डॉ० श्यामसुंदरदास ने अपने 'साहित्यालोचन' में उद्धृत किया है। संस्कृत-काव्यशास्त्रियों (विशेषतः अभिनवगुप्त) के मत के विरुद्ध पड़ने के कारण आचार्य मिश्र शुक्लजी के मत को भ्रामक कहते हैं। उन्होंने बिना नाम लिए ही शुक्ल के कथन का खंडन किया है।

"साधारणीकरण से यहाँ यह अर्थ लिया गया है कि विभाव, अनुभाव आदि को साधारण रूप देकर सामने लाया जाय। विभाव, अनुभाव आदि का साधारण अथवा लोक-सामान्य होना दो अर्थों में माना जा सकता है। एक तो स्वरूपतः सामान्य होना और दूसरे परिणाम अथवा उद्देश्य में सामान्य होना। स्वरूपतः सामान्य होने का आग्रह करना ठीक न होगा; क्योंकि उस अवस्था में विभाव, अनुभाव आदि सीमित और शृंखलाबद्ध हो जाएँगे और काव्य की व्यापकता नष्ट हो जायगी। परिणामतः या अंतिम ध्येय में सामान्यता (साधारणीकरण) मानने के भी दो प्रकार हो सकते हैं। एक तो बौद्धिक या

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्वैतवादी, जिसमें काव्य को नैतिक और अनैतिक के द्वंद्वों के भीतर देखा जाता है और नैतिक पक्ष का रसास्वाद किया जाता है और दूसरा मनोवैज्ञानिक, ध्वन्यात्मक अथवा कलात्मक, जिसमें नैतिकता का प्रश्न पृथक् नहीं रहता, 'ध्वनि' में अवसित हो जाता है। इनमें पहला प्रकार भट्टनायक के भुक्तिवाद के अनुकूल पड़ता है और दूसरा अभिनवगुप्त के ध्वनिवाद से संबंधित है। कहने की आवश्यकता नहीं कि उक्त विद्वान् पहले प्रकार के समर्थक हैं, किंतु हम आचार्य अभिनवगुप्त का मत मानते हैं। साधारणीकरण तो कवि अथवा भावुक की चित्तवृत्ति से संबंध रखता है। चित्त के एकतान और साधारणीकृत होने पर उसे सभी कुछ साधारण प्रतीत होने लगता है।"

—साहित्यालोचन, पृ० २८४-८५ (सं० १९९९)

यहाँ आचार्य मिश्र ने अभिनवगुप्त के मतानुसार साधारणीकरण का अर्थ चित्तवृत्तियों के साधारणीकरण का ग्रहण किया है। वे भाव के साधारणीकरण को वास्तविक एवं पूर्ण मानकर विभाव के साधारणीकरण को एकांगी बतलाते हैं। विभाव के साधारणीकरण को मिश्रजी ने बौद्धिक और नैतिक माना है। शुक्लजी की विभावनिष्ठ दृष्टि तथा नैतिक चेतना को भट्टनायक के द्वैत-सिद्धांत के सन्निकट सिद्ध कर उन्होंने उसकी आलोचना की है। [दे० रस-सिद्धांत, पृ० २०४] डॉ० नगेंद्र का कहना हैं कि शुक्लजी की स्थापनाएँ कई दृष्टियों से भट्टनायक से भी भिन्न हैं। जैसे—(१) भट्टनायक ने सभी का साधारणीकरण माना है, केवल आलंबन पर बल नहीं दिया (२) निजकांतास्मृति की सत्ता को उन्होंने रसास्वाद की प्रक्रिया में सर्वथा अस्वीकृत कर दिया है। पर, शुक्लजी विकल्प रूप में यह भी मान लेते हैं कि 'यदि किसी पाठक या श्रोता का किसी सुंदरी से प्रेम है तो शृंगाररस की फुटकल उक्तियाँ सुनने के समय रह-रहकर आलंबन-रूप में उसकी प्रेयसी की मूर्त्ति ही उसकी कल्पना में आएगी और (३) भट्टनायक करुणादि समस्त रसों की अनुभूति को आनंदमयी मानते हैं; परंतु शुक्लजी की रस-कल्पना हृदय की मुक्तावस्था का ही पर्याय है अर्थात् वह भट्टनायक के भावकत्व-व्यापारजन्य 'निजमोहसंकटतानिवारण' पर ही समाप्त हो जाती है—'भोग' तक गहीं पहुँच पाती।

—रस-सिद्धांत, पृ० २०४

साधारणीकरण के संबंध में परंपरागत विचार यह है कि आलंबन, उद्दीपन, आश्रय, अनुभाव, व्यभिचारी तथा स्थायी सभी रस-तत्त्वों का साधारणीकरण होता है; पर शुक्लजी ने केवल आलंबनत्व धर्म के साधारणी-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करण की बात कहकर अपनी एकांगी दृष्टि का परिचय दिया। वे आश्रय के साथ तादात्म्य को भी मान लेते हैं। अंत में उन्होंने विभावातिरिक्त रसोपादानों के सामंजस्य की भी बात कही—"भाव और विभाव दोनों पक्षों के सामंजस्य के बिना पूरी और सच्ची रसानुभूति नहीं हो सकती।" [रस-मीमांसा, पृ० २६७] शुक्लजी ने रसानुभूति की एक हीन कोटि भी स्वीकार की है, जो रसाभास तथा भावाभास से भिन्न नहीं है। वे कवि, आश्रय (पात्र) और सहृदय इन तीनों के साधारणीकरण का भी कथन करते हैं। उन्होंने पाश्चात्य व्यक्ति-वैचित्र्यवाद के साथ साधारणीकरण-सिद्धांत की तुलना कर नवीन तथ्य प्रस्तुत किया है, इस दृष्टि से उनके व्यापक-दृष्टिकोण का ज्ञान होता है।

डॉ० श्यामसुंदरदास ने 'साहित्यालोचन' में आचार्य केशव प्रसाद मिश्र के उद्धरण के आधार पर साधारणीकरण का विवेचन किया है। इनके अनुसार—"जब तक सांसारिक वस्तुओं का हमें अपर प्रत्यक्ष होता रहता है, तब तक शोचनीय वस्तु के प्रति हमारे मन में दुःखात्मक शोक अथवा अभिनंदनीय वस्तु के प्रति सुखात्मक हर्ष उत्पन्न होता है। परंतु, जिस समय हमको वस्तुओं का परप्रत्यक्ष होता है, उस समय शोचनीय अथवा अभिनंदनीय सभी प्रकार की वस्तुएँ हमारे केवल सुखात्मक भावों का आलंबन बनकर उपस्थित होती हैं। उस समय दुःखात्मक क्रोध, शोक आदि भाव भी अपनी लौकिक सुखात्मकता को छोड़कर अलौकिक सुखात्मकता धारण कर लेते हैं।" साहित्यालोचन, पृ० २७६। बाबूसाहब ने इसे अभिनवगुप्त का साधारणीकरण कहा है। उन्होंने मधुमती भूमिका तथा साधारणीकरण के अभिन्नत्व का कथन कर अत्यंत महत्त्वपूर्ण बात कही है। साधारणीकरण के संबंध में उनके विचार-सूत्र अधोलिखित हैं—

क. रसानुभूति मधुमती भूमिका में होती है और मधुमती भूमिका में परप्रत्यक्ष होता है।

ख. चित्तवृत्ति की इसी एकतानता का नाम साधारणीकरण है।

ग. इस रस-दशा में सभी प्रकार की वस्तुएँ हमारे सुखात्मक भावों का आलंबन बन जाती हैं।

घ. रसानुभूति कवि तथा सहृदय दोनों को होती है।

इन्होंने कवि या भावक की चित्तवृत्ति के साथ साधारणीकरण को संबद्ध कर अत्यंत महत्त्वपूर्ण कथ्य प्रस्तुत किया है। इनका विचार परंपरा-समर्थित है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

डॉ० गुलाब राय ने 'सिद्धांत और अध्ययन' नामक ग्रंथ में साधारणीकरण का विवेचन किया है। इन्होंने व्यक्ति का नहीं, अपितु उसके संबंधों का साधारणीकरण माना है तथा कवि, पाठक एवं भावों के साधारणीकृत होने की बात कही है। "साधारणीकरण व्यक्ति का नहीं (आलंबन के सामान्य बन जाने के कारण उसका कोई अस्तित्व नहीं रह जाता है) वरन् उसके संबंधों का होता है। जल, वायु, नीलाकाश की भाँति उसपर किसी का विशेषाधिकार नहीं रहता। उसमें न ममत्वजन्य दुःख और न परत्वजन्य ईर्ष्यादि भावों की गुंजायश रहती है। कवि भी अपने निजी व्यक्तित्व से ऊँचा उठकर साधारणीकृत हो जाता है। वह लोक का प्रतिनिधि होकर भावाभिव्यक्ति करता है। पाठक का साधारणीकरण इस अर्थ में होता है कि वह अपने व्यक्तित्व के क्षुद्र बंधनों को तोड़कर लोकसामान्य की भावभूमि में आ जाता है, उसका हृदय कवि और लोक-हृदय के साथ प्रतिस्पंदित होने लगता है। अपने व्यक्तित्व की अनुभूति रसास्वाद में बाधा मानी गई है।"

—सिद्धांत और अध्ययन पृ० २१५-२१७

"भावों का साधारणीकरण इस अर्थ में होता है कि उनको "अयं निजः परो वा" की भावना जाती रहती है और इस कारण उनमें लौकिक अनुभव की स्थूलता, कटुता, तीक्ष्णता और रूक्षता नहीं रहती।" —वही, पृ० २१८

रायजी साधारणीकरण को मानव की सामान्य प्रवृत्ति मानकर यह कहते हैं कि कवि अपने को व्यापक बनाने के लिए ही काव्य-रचना में प्रवृत्त होता है। वह साधारणीकरण के उद्देश्य से ही काव्य की रचना करता है। वे उपयोगिता की दृष्टि से ही साधारणीकरण पर विचार करते हैं और स्वीकार करते हैं कि इससे सहानुभूति का विस्तार होता है और भावों का परिष्कार भी।

डॉ० नगेंद्र ने साधारणीकरण के संबंध में 'रीतिकाव्य की भूमिका' तथा 'रस-सिद्धांत' नामक ग्रंथों में अत्यंत मौलिक विचार व्यक्त किए हैं। उनकी तत्संबंधी मान्यता को लेकर हिंदी-आलोचकों ने पक्ष एवं विपक्ष में अनेकशः मत प्रकट किए हैं। डॉ० साहब के विचार अत्यंत सुगठित और व्यवस्थित हैं। इन्होंने साधारणीकरण-सिद्धांत की विविक्ति करते हुए दो तथ्यों पर विचार किया है—साधारणीकरण किसका होता है और साधारणीकरण किसे होता है?

क. साधारणीकरण का अर्थ है काव्य के भावन द्वारा पाठक या श्रोता का भाव की 'सामान्य' भूमि पर पहुँच जाना—दुष्यंत को शकुंतला के प्रति रति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का भावन करते हुए भाव की उस अवस्था पर पहुँच जाना, जहाँ यह रति शकुंतला के प्रति दुष्यंत की रति न रहकर पुरुष की स्त्री के प्रति साधारण रति-मात्र रह जाती है। —रीतिकाव्य की भूमिका, पृ० ४४

ख. साधारणीकरण कवि की अपनी अनुभूति का होता है अर्थात् जब कोई व्यक्ति अपनी अनुभूति की इस प्रकार अभिव्यक्ति कर सकता है कि वह सभी के हृदयों में समान अनुभूति जगा सके तो पारिभाषिक शब्दावली में हम कहते हैं कि उसमें साधारणीकरण की शक्ति वर्तमान है। अनुभूति सभी में होती है, सभी व्यक्ति उसे यत्किंचित् व्यक्त भी कर लेते हैं; परंतु साधारणीकरण करने की शक्ति सब में नहीं होती। इसीलिए तो अनुभूति और अभिव्यक्ति के होते हुए भी सब कवि नहीं होते! कवि वह होता है, जो अपनी अनुभूति का साधारणीकरण कर सके, दूसरे शब्दों में 'जिसे लोक-हृदय की पहचान हो।'

ग. साधारणीकरण भाषा या काव्य-भाषा का धर्म है, साधारणीकरण का मूलाधार मानव-सुलभ सहानुभूति है, जो सभी मनुष्यों के हृदय में एकतार अनुस्यूत है।

घ. अतएव साधारणीकरण का आधार है भाषा का भावमय प्रयोग। भाषा का भावमय प्रयोग प्रयोक्ता की अपनी भाव-शक्ति पर निर्भर रहता है, और प्रयोक्ता के भावों की संवेदन-शक्ति का आधार है—मानव-सुलभ सहानुभूति। ('रीति काव्य की भूमिका' से उद्धृत)

डॉ० नगेंद्र के अनुसार, कवि की अनुभूति का साधारणीकरण होता है और कवि की अनुभूति के प्रतीक विभाव (आश्रय और आलंबन) हैं। इन्होंने साधारणीकरण का अभिप्राय तादात्म्य से लिया है। साधारणीकरण किसे होता है? इसके उत्तर में उनका कहना है कि सहृदय और सामाजिक तथा कवि साधारणीकरण करते हैं। वे मूल नायक का साधारणीकरण नहीं मानते, नटों और नटियों का साधारणीकरण होता है। उन्होंने कवि के समस्त काव्य-व्यापार का साधारणीकरण होना स्वीकार किया है अर्थात् कवि के समस्त काव्य-व्यापार तथा अनुभूति का साधारणीकरण होता है।

साधारणीकरण-सिद्धांत काव्यास्वाद के सार्वभौम तत्त्व को प्रस्तुत करने-वाला भारतीय काव्य-चिंतन का मधुर नवनीत है, जिसमें सहस्रों वर्षों की चिंतना समाहित है। इसका संबंध काव्य-संप्रेषण की प्रक्रिया से है, जिसके अंतर्गत यह विचार किया जाता है कि किस प्रकार काव्य-निबद्ध विशिष्ट

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनुभूति सहृदय वर्ग की अनुभूति बन जाती है। इस स्थिति में कवि के भाव 'स्व' और 'पर' की चेतना से मुक्त होकर सहृदय की चेतना के साथ तादात्म्य स्थापित करते हैं। यह ऐसी भावना है, जिससे मानव-मानव के बीच रागात्मक संबंध स्थापित होता है अर्थात् इस भावभूमि पर आकर मानव दूसरों के सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख मान लेता है। साधारणीकरण व्यापार के द्वारा कवि का आत्मविस्तार एवं आत्म-प्रसारण होता है और उसकी अनुभूति सबकी अनुभूति हो जाती है। काव्यास्वाद की अवस्था में सहृदय या सामाजिक समाहित चित्त एवं तन्मयता की अवस्था में पहुँचकर व्यक्तिगत भावनाओं से निर्मुक्त हो जाता है। काव्यास्वाद में तादात्म्य की स्थिति में सहृदय की व्यक्तिगत सत्ता तिरोहित हो जाती है; उसकी आत्मसत्ता का विलयन हो जाता है।

साधारणीकरण का मूल उद्देश्य है कवि के मूल भावों के साथ दर्शक या श्रोता का संबंध स्थापित होना। कवि कल्पना द्वारा उद्‌बुद्ध भावों को जब काव्य के रूप में रूपायित करता है तो उसकी सिद्धि उसके भावों को उसी रूप में ग्रहण करने में होती है अर्थात् कवि के भावों का यदि सामाजिक निरवच्छिन्न रूप से अनुभव करे तो यही दोनों की प्रसन्नता का कारण है। साधारणीकरण की अवस्था में देश-काल के बंधन टूट जाते हैं। रस की अनुभूति को पाठक तक पहुँचाकर कवि उसके हृदय की रसानुभूति को जगाकर स्वयं अखंडानंद की प्राप्ति करता है और पाठक को भी आनंदार्णव में निमज्जित करा देता है।

आधार ग्रंथ—

रस-मीमांसा—आचार्य रामचंद्र शुक्ल

चिंतामणि, भाग १—आचार्य रामचंद्र शुक्ल

साहित्यालोचन—डॉ० श्यामसुंदर दास

सिद्धांत और अध्ययन—डॉ० गुलाब राय

आधुनिक साहित्य—आचार्य नंददुलारे वाजपेयी

नया साहित्य : नए प्रश्न—आचार्य नंददुलारे वाजपेयी

रीति काव्य की भूमिका—डॉ० नगेंद्र

रस-सिद्धांत—डॉ० नगेंद्र

रस-सिद्धांत : स्वरूप विश्लेषण—डॉ० आनंद प्रकाश दीक्षित

हिंदी काव्यशास्त्र में रस-सिद्धांत—डॉ० सच्चिदानंद चौधरी

साधारणीकरण : एक शास्त्रीय अध्ययन—डॉ० रामलखन शुक्ल

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रस-विमर्श—डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी

रस-सिद्धांत और सौंदर्य शास्त्र—डॉ० निर्मल जैन

भारतीय काव्यशास्त्र के प्रतिनिधि-सिद्धांत—डॉ० राजवंश सहाय 'हीरा'

आचार्य शुक्ल के समीक्षा-सिद्धांत—डॉ० रामलाल सिंह

हिंदी की सैद्धांतिक समीक्षा—डॉ० रामाधार शर्मा

काव्य-दर्पण—पंडित रामदहिन मिश्र

साधारणस्त्री—गणिका या वेश्या का अन्य नाम साधारणस्त्री है। [दे० गणिका]

साध्यवसाना—प्रयोजनवती लक्षणा का एक भेद। [दे० प्रयोजनवतीलक्षणा] जिस लक्षणा में आरोप के विषय का शब्दतः कथन न होकर आरोप्यमाण (विषयी) का कथन हो तो साध्यवसानालक्षणा होगी। इसमें विषयी द्वारा विषय का निगरण कर लिया जाता है या विषयी (उपमान) विषय (उपमेय) को आत्मसात् कर लेता है।

विषय्यंतः कृतेऽन्यस्मिन् सा स्यात् साध्यवसानिका ॥

—काव्यप्रकाश, २/११

जैसे कहा जाय कि 'चाँद का टुकड़ा देखो' तो यहाँ साध्यवसानालक्षणा होगी। यहाँ चाँद के द्वारा मुख का ज्ञान होता है। रूपकातिशयोक्ति के मूल में साध्यवसाना लक्षणा होती है। [दे० रूपकातिशयोक्ति]

पगली हाँ संभाल ले कैसे छूट पड़ा तेरा अंचल।
देख बिखरती है मणिराजी, अरी उठा बेसुध चचल ॥

—कामायनी।

यहां 'मणिराजी' से 'आकाश' तथा 'तारागण' के समूह का अर्थ प्रकट होता है। 'मणिराजी' (विषयी) के द्वारा आकाशादि (विषय) का ज्ञान होने से साध्यवसानालक्षणा हुई।

साम—मानमोचन का प्रथम प्रकार। [दे० मान]

सामाजिक—नाटक में सामाजिक का अर्थ दर्शक है। जिसे रस का या नाटक का आनंद प्राप्त हो, वह सामाजिक कहा जाता है।

सामान्य—लोकन्यायमूलक अलंकार। समान गुण के कारण प्रस्तुत की अप्रस्तुत के साथ तादात्म्य-(एकरूपता) प्रतिपादन को सामान्यालंकार कहते हैं। 'सामान्य' का अर्थ है समानता, सादृश्य या समान गुण-निबंधन। इसमें समान गुण या धर्म के कारण प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत में अभेद-प्रतीति होती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समानस्य भावः समानमिति व्युत्पत्त्या उभयोरेकधर्मवत्ता प्रतिपादनादित्यर्थः।

—अलंकार-कौस्तुभ, पृ० ३६४

समानयोर्भावः सामान्यमिति व्युत्पत्तिः ॥ —बालबोधिनी, पृ० ७३६

सामान्य अलंकार के उद्भावक आचार्य मम्मट हैं। परवर्ती आचार्यों में रुय्यक, जयदेव, विद्याधर, विद्यानाथ, अप्पय दीक्षित एवं पंडितराज जगन्नाथ ने इसका विवेचन किया। मम्मट से पूर्व रुद्रट ने तद्गुण अलंकार के प्रथम प्रकार में इस अलंकार का पूर्वाभास प्रस्तुत किया है। जब समान गुणवाले पदार्थों में भेद का न रहना दिखाया जाय तो तद्गुण होता है। यह लक्षण सामान्य के अधिक निकट है। अतः, मम्मट-द्वारा उद्भावित सामान्य का स्रोत यहाँ सुरक्षित है।

यस्मिन्नेकगुणानामर्थानां योगलक्ष्यरूपाणाम् ।
संसर्गे नानात्वं न लक्ष्यते तद्गुणः स इति ॥

—काव्यालंकार, ९/२२

मम्मट के अनुसार प्रस्तुत का अप्रस्तुत के योग में गुण-साम्य की विवक्षा के कारण, जो दोनों के ऐकात्म्य का वर्णन होता है, उसे सामान्य कहते हैं। यहाँ प्रस्तुत में अप्रस्तुत का एकता-प्रतिपादन वर्णित है।

प्रस्तुतस्य यदन्येन गुणसाम्यविवक्षया ।
ऐकात्म्यं बध्यते योगात्तत्सामान्यमिति स्मृतम् ॥

—काव्यप्रकाश, १०/१३४

इन्होंने ऐसी स्थिति में भी सामान्य स्वीकार किया है, जहाँ प्रकृत तथा अप्रकृत में उत्तरकाल में भेद का ज्ञान होने पर भी पूर्वज्ञात अभेद भासित होने का वर्णन हो।

अतादृशमपि तादृशतया विवक्षितुं यत् अप्रस्तुतार्थेन संपृक्तमपरित्यक्तनिजगुणमेव तदेकात्मतया निबध्यते तत्समानगुणनिबंधनात् सामान्यम् ।

—काव्यप्रकाश, वृत्ति १०/१३४

रुय्यक ने मम्मट का आधार ग्रहण करते हुए भी नवीनता का समावेश किया है। इन्होंने गुण-साम्य या समान गुण के कारण प्रकृत और अप्रकृत में एकात्मता स्थापित करने को सामान्य कहा।

प्रस्तुतस्यान्येन गुणसाम्यादैकात्म्यं सामान्यम्। यत्र प्रस्तुतस्य वस्तुनोऽप्रस्तुतेन साधारणगुणयोगादैकात्म्यं भेदानध्यवसायादेकरूपत्वं निबध्यते तत्समानगुणयोगात् सामान्यम् ।

—अलंकारसर्वस्व, पृ० ९४-९५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परवर्ती आचार्यों में जयदेव, विद्याधर, विद्यानाथ, विश्वनाथ और दीक्षित मम्मट से प्रभावित हैं, इनके विवेचन में किसी प्रकार की नवीनता नहीं है। जयदेव सादृश्य के कारण दो पदार्थों में किसी प्रकार के भेद न होने में सामान्य मानते हैं।

सामान्यं यदि सादृश्याद् भेद एव न लक्ष्यते ॥

—चंद्रालोक, ५/३४

साधारणगुणयोगाद्यत्र प्रकृतस्य वस्तु संवलितम् ।

—एकावली, ८/६४

न विभाजयितुं शक्यं तत् सामान्यं समाख्यातम् ॥

सामान्यं गुणसाम्येन यत्र वस्त्वंतरैकता ॥

—प्रतापरुद्रीय, पृ० २९९

विश्वनाथ ने जयदेव की तरह अत्यंत सादृश्य के कारण प्रस्तुत पदार्थ का अप्रस्तुत पदार्थ के साथ एकत्व-प्रतिपादन में सामान्य माना है।

सामान्यं प्रकृतस्यान्यतादात्म्यं सदृशैर्गुणैः ॥

—साहित्य-दर्पण, १०/८९

दीक्षित ने अल्प संशोधन के साथ जयदेव के ही लक्षण को उद्धृत कर दिया है।

सामान्यं यदि सादृश्याद्विशेषेनोपलक्ष्यते ॥

—कुवलयानंद, १४७

पंडितराज ने कहा कि प्रत्यक्ष दिखाई पड़नेवाले पदार्थ का बलवान सजातीय ज्ञान के कारण उससे भिन्न ज्ञात न होना सामान्य है।

प्रत्यक्षविषयस्यापिवस्तुनो बलवत्सजातीयग्रहणकृतं तद्भिन्नत्वेनाग्रहणं सामान्यम् ॥ —रसगंगाधर, पृ० ६९६

विश्वेश्वर पंडित ने पंडितराज के ही लक्षण से प्रभावित हो, सामान्य अलंकार की परिभाषा प्रस्तुत की।

स्वगुणसजातीयगुणाश्रयैकरूप्यं तु सामान्यम् ।

अलंकार कौस्तुभ, पृ० ३९३

रीतिकालीन आचार्यों ने 'काव्य प्रकाश' और 'कुवलयानंद' के आधार पर अपने लक्षण निर्मित किए। चिंतामणि ने 'काव्यप्रकाश' के लक्षण को अनूदित

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

किया और जसवंतसिंह, मतिराम तथा पद्माकर आदि ने 'कुवलयानंद' का अनुवाद किया।

प्रस्तुत में जहं और सों गुन के साम्य निहारि।
एकरूपता बरनियै सो सामान्य बिचारि॥

—कविकुलकल्पतरु, ३/१३१

सामान्य जु सादृस्य तें जानि परै न बिसेष।

—भाषाभूषण, १७३

भिन्न रूप हू में जहाँ पैए कछु न बिसेष।
तहाँ कहत सामान्य हैं पंडित लोग असेष॥

—ललितललाम, ३४३

सु सामान्य सादृस्य तें समुझि बिसेष परै न॥

—पद्माभरण, २४३

उदाहरण—

क. मल्लिकाचितधम्मिल्लाश्चारुचंदनर्चाचितः।
अविभाव्याः सुखं यांति चद्रिकास्वभिसारिकाः॥

मालती की कलियों को केशों में सजाकर और शरीर में चंदन का लेप लगाकर अभिसारिकाओं का चाँदनी रात में अभिसार करने पर किसी की पहचान में न आना सामान्यालंकार है।

ख. लखिए पिय निसि में नवल, कौतुक सुख सरसात।
हिमकर अरु तिय वदन में, अंतर लह्यौ न जात॥

चंद्रिका तथा नायिका के मुख में भेद का न होना सामान्य है।

सामान्य और तद्गुण—दोनों में ही किसी पदार्थ का भेदाग्रह होता है। तद्गुण में स्वगुण त्याग एवं अन्यदीय गुण-ग्रहण का कथन होता है; पर सामान्य में बिना निजगुण का त्याग किए ही अभेद का बोध होता है। सामान्य में दोनों ही पदार्थ तुल्यबलवाले होते हैं; पर तद्गुण में दो पदार्थों में अंगांगिभाव होता है।

मीलित और सामान्य—दोनों में ही दो पदार्थों में गुण-साम्य के कारण अभिन्नता का वर्णन होता है। मीलित में एक पदार्थ में (उत्कृष्ट-गुणशाली)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अन्य पदार्थ (अल्पगुणशाली) का तिरोधान होता है तो सामान्य में दो पदार्थों में तादाम्य या अभेद-प्रदर्शन।

रूपक और सामान्य—रूपक में उपमेय को उपमान का रूप दिया जाता है; किंतु सामान्य में उपमान तथा उपमेय में ऐकात्म्य-प्रतिपादन किया जाता है।

सामान्य—विस्तृत देशव्यापी पदार्थ को सामान्य कहते हैं। [दे० अर्थांतरन्यास]

सामान्यनिबंधना—अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार का एक भेद। [दे० अप्रस्तुतप्रशंसा]

सामान्या या गणिका—वेश्या का नाम सामान्या है। यह केवल धन के लिए प्रेम करती है तथा कलाचतुर, प्रगल्भा और धूर्त्त होती है। गणिका रतिकला कुशल तथा संगीतादि कलाओं में दक्ष होती है। जिन व्यक्तियों से सरलतापूर्वक धन लिया जा सके, ऐसे व्यक्तियों से; मूर्ख, आजाद, घमंडी तथा नपुंसक के प्रति, वेश्या इस प्रकार का व्यवहार करती है, जिससे पता चलता है कि वह वास्तविक प्रेम करती है; पर ज्योंही उनका धन समाप्त हो जाता है, वह उन्हें घर से बाहर करा देती है। विश्वनाथ ने चोर, छिपे कामुक एवं संन्यासी को भी वेश्या का प्रेमी कहा है।

धनंजय एवं विश्वनाथ के विचार समान हैं।

साधारणस्त्री गणिका कलाप्रागल्भ्यधौर्त्ययुक्।।
छन्नकामसुखार्थज्ञस्वतंत्राहंयुपंडकान्।
रक्तेव रंजयेदाढ्यान्निःस्वान्मात्राविवासयेत्।।

—दशरूपक, २/२१-२२

धीरा कलाप्रगल्भा स्याद्वेश्या सामान्यनायिका।।
निर्गुणानपि न द्वेष्टि न रज्यति गुणिष्वपि।
वित्तमात्रं समालोक्य सा रागं दर्शयेद्वहिः।।
कामसंगीकृतमपि परिक्षीणधनं नरम्।
मात्रा निःसारयेदेषा पुनः संधानकांक्षया।।
तस्कराः पंडका मूर्खाः सुखप्राप्तधनास्तथा।
लिंगिनश्छन्नकामाद्या अस्याः प्रायेण वल्लभाः।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एषापि मदनायत्ता क्वापि सत्यानुरागिणी।
रक्तायां वा विरक्तायां रतमस्यां सुदुर्लभम्॥
—साहित्यदर्पण, ३/६७-७१

कभी-कभी वेश्या कामातुर होकर किसी-किसी व्यक्ति के साथ वास्तविक प्रेम स्थापित करती है।

पद्माकर ने धन के लिए अन्य या अनेक व्यक्तियों से प्रेम करनेवाली नायिका को गणिका कहा है।

करै और सों रति रमनि, इक धन ही के हेत।
गनिका ताहि बखानहीं जे कबि सुमति-निकेत॥
—जगद्विनोद, १२१

पद्माकर का लक्षण भानुदत्त से प्रभावित है।

वित्तमात्रोपाधिकसकलपुरुषानुरागा सामान्यवनिता।
—रसमंजरी, पृ० ७३

उदाहरण—

क. दृष्ट्वा प्रांगणसन्निधौ बहुधनं दातारमभ्यागतं।
वक्षौजौ तनुतः परस्परमिवाश्लेषं कुरंगीदृशः॥
आनंदाश्रु पयांसि मुंचति मुहुर्मालामिषात्कुंतलो।
दृष्टिः किंच धनागमं कथयितुं कर्णांतिकं गच्छति॥
—रसमंजरी, ३२

"धनी तथा दाता को आँगन के निकट पहुँचे हुए देखकर भृंगाक्षी के दोनों वक्ष प्रसन्नता से आपस में आलिंगित होने लगे, उसकी केशराशि में गुंफित माला गिरने लगी, मानो वह माला के व्याज से आनंदाश्रु बहा रही हो। उसकी दृष्टि धन की प्राप्ति का आगम जानकर कान तक पहुँचने लगी।

ख. तन सुबरन सुबरन बसन, सुबरन उकति उछाह।
धनि सुबरन-मै ह्वै रही, सुबरन ही की चाह॥
—जगद्विनोद, १२३

शिंगभूपाल ने सामान्या के दो भेदों का उल्लेख किया है—अनुरक्ता और विरक्ता।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

साम्य—भोज-वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध उभयालंकार। यह एक अलंकार न होकर अनेक साम्यमूलक अलंकारों का समुदाय है, जिसमें दृष्टांतोक्ति, प्रपंचोक्ति एवं प्रतिवस्तूपमा का समावेश है। इसमें औपम्य अर्थ की चातुर्यपूर्ण उक्ति का कथन होता है।

द्वयोर्यत्रोक्तिचातुर्यादौपम्यार्थोऽवगम्यते।
उपमारूपकान्यत्वे साम्यमित्यामनंति तत्॥
तदानंत्येन भेदानामसंख्यं तस्य तूक्तयः।
दृष्टांतोक्तिः प्रपंचोक्तिः प्रतिवस्तूक्तिरेव च॥

—सरस्वतीकंठाभरण, ४/३४-३५

साम्य—आचार्य रुद्रट-द्वारा उद्भावित एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। जब उपमेय सामान्य गुण आदि एवं अर्थव्यापार के कारण उपमान की समता प्राप्त करे तो साम्य अलंकार होगा। इसके दो भेद कहे गए हैं। द्वितीय भेद में उपमेय के उत्कर्ष को प्रदर्शित करने के लिए उपमान के साथ उसके सर्वात्मना साम्य का कथन किया जाता है।

अर्थक्रियया यस्मिनुपमानस्यैति साम्यमुपमेयम्।
तत्सामान्यगुणादि कारणया तद्भवेत् साम्यम्॥
सर्वाकारं यस्मिन्नुभयोरभिधातुमन्यथा साम्यम्।
उपमेयोत्कर्षकरं कुर्वीत विशेषमन्यत्तत्॥

—काव्यालंकार, ८/१०५-१०७

सार—शृंखलामूलक अलंकार। जहाँ वर्णनीय वस्तु का उत्तरोत्तर उत्कर्ष या अपकर्ष-वर्णन, धारावाहिक रूप से, चरम सीमा तक किया जाय तो सार अलंकार होगा।

सार का शाब्दिक अर्थ सत्त्व या उत्कर्ष है। इसमें पूर्व-पूर्व में वर्णित (कथित) पदार्थों की अपेक्षा उत्तरोत्तर वर्णित पदार्थों के उत्कर्ष या अपकर्ष का वर्णन अंत तक किया जाता है। इसमें पदार्थों के उत्तरोत्तर उत्कर्षापकर्ष की शृंखला प्रस्तुत की जाती है; अतः इसे शृंखलामूलक अलंकार कहते हैं। सार अलंकार में वस्तु के उत्कर्षापकर्ष का वर्णन किसी अभिप्राय-विशेष से ही होता है। अतः, इसमें दो तत्त्व दिखाई पड़ते हैं—अनुक्रम (शृंखला) एवं अभिप्रायगर्भता।

इस अलंकार के उद्भावक आचार्य रुद्रट हैं। परवर्ती आचार्यों में भोज, मम्मट, रुय्यक, जयदेव, विद्याधर, विद्यानाथ, विश्वनाथ, अप्पय दीक्षित,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पंडितराज जगन्नाथ एवं विश्वेश्वर पंडित ने इसका वर्णन किया है। रुद्रट के अनुसार "समुदाय में से एक देश को क्रम से पृथक् करके गुण-संपन्न होने से उसकी उत्कृष्टता की चरमसीमा निश्चित की जाती है, उसे सार कहते हैं।" यहाँ पदार्थों के उत्कर्ष की चरमसीमा का कथन किया गया है।

यत्र यथा समुदायाद्यथैकदेशं क्रमेण गुणवदिति।
निर्धार्यते परावधि निरतिशयं तद्भवेत्सारम्॥

—काव्यालंकार, ७/९६

संस्कृत-काव्यशास्त्र में इस अलंकार के तीन नाम आए हैं—सार, उदार (रुय्यक) तथा उत्तर (भोज)।

भोज ने इसे उत्तर अलंकार के नाम से अभिहित किया। इनके मतानुसार पदार्थों का सार ही उत्तर है, जो धर्मिरूप, धर्मरूप तथा उभयरूप से तीन प्रकार का होता है।

पदार्थानां तु यः सारस्तदुत्तरमिहोच्यते।
स धर्मधर्मिरूपाभ्यां व्यतिरेकाच्च भिद्यते॥

—सरस्वतीकंठाभरण, ३/२३

मम्मट ने अपनी परिभाषा में सार अलंकार का रूप अत्यंत स्पष्ट कर दिया। इनके जनुसार किसी पदार्थ का चरमसीमा तक उत्कर्षन-वर्णन करने में सारालंकार होता है।

उत्तरोत्तरमुत्कर्षो भवेत्सारः परावधिः॥

—काव्यप्रकाश, १०/१२३

उत्कर्ष का वर्णन किसी पद्य या वाक्य के अंत तक करने में सार की स्थिति स्वीकार करते हैं।

रुय्यक इसे उदार के नाम से अभिहित करते हैं। इन्होंने पूर्व की अपेक्षा उत्तरोत्तर उत्कर्ष के वर्णन में सार या उदार अलंकार माना।

उत्तरोत्तरमुत्कर्षणमुदारः।
पूर्वापूर्वापेक्षयोत्तरोत्तरस्योत्कर्षनिबंधनत्वमुदाराख्योलंकारः।

—अलंकारसर्वस्व, पृ० १०९

विद्याधर, विद्यानाथ तथा विश्वनाथ का सार-विवेचन रुय्यक से प्रभावित है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वस्तुस्पृहणीयत्वे विश्रांति चेद्यथोत्तरं तनुते ।
सारो नाम तदानीं कथितोऽलंकारसारज्ञैः ॥

—एकावली, ४/४८

उत्तरोत्तरमुत्कर्षः सारालंकार उच्यते ॥

—प्रतापरुद्रीय, पृ० ३३९

उत्तरोत्तरमुत्कर्षो वस्तुनः सार उच्यते ॥

—साहित्यदर्पण, १०/७८

जयदेव सार तथा उदारसार दो अलंकारों का वर्णन करते हैं।

इनके मतानुसार उत्तरोत्तर पदोत्कर्ष-वर्णन में सार् अलंकार होता है। उदारसार अलंकार उसे कहते हैं, जब उत्कृष्ट गुण में भिन्नता होने पर भी उसमें अभिन्नता दिखलाई जाय।

सारो नाम पदोत्कर्षः सारतायाँयथोत्तरम् ।

—चंद्रलोक, ५/६०

उदारसारश्चेद्भाति भिन्नोऽभिन्नतया गुणः ॥

—वही, ५/६१

दीक्षित ने उदारसार को स्वतंत्र अलंकार न मानकर इसका समावेश सार में ही कर दिया है।

—कुवलयानंद, १०८

दीक्षित ने सार अलंकार के क्षेत्र को विस्तृत करते हुए बताया कि न केवल उत्तरोत्तर उत्कर्ष-वर्णन में ही सार होगा, अपितु उत्तरोत्तर अपकर्ष-वर्णन में भी इसकी स्थिति मान्य होगी।

उत्तरोत्तरमुत्कर्षः सार इत्यभिधीयते ।
अश्लाघ्य गुणोत्कर्षो यथा ॥ —कुवलयानंद, १०८

पंडितराज जगन्नाथ ने बताया कि उत्कृष्ट तथा अपकृष्ट पदार्थों की शृंखला को सार कहते हैं।

सैवं संसर्गस्योत्कृष्टापकृष्टभावरूपत्वे सारः ।
तत्रापि पूर्वापूर्वापेक्षयोत्तरोत्तरस्योत्कर्षापकर्षाभ्यां द्वैविध्यम् ।

—रसगंगाधर, पृ० ६२६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तरोत्तर उत्कर्ष तथा अपकर्ष के वर्णन में पंडितराज इसके दो भेद स्वीकार करते हैं। रीतिकाल में सार अलंकार का वर्णन मम्मट और अप्पय दीक्षित की परिभाषाओं के आधार पर हुआ। चितामणि और कुलपति ने 'काव्यप्रकाश' की कारिका का अनुवाद किया है और जसवंतसिंह, मतिराम और पद्माकर ने 'कुवलयानंद' के लक्षण का अनुवाद किया।

जहाँ कौन हू बात में कछु बनिए सार।
सो उत्तर उत्कर्षं यों सुनियै सार विचार॥

—कविकुलकल्पतरु, ३/३०५

अधिक बड़ाई अंत तक आगे-आगे होय।
पिछले तें जहं सार करि सार कहावे सोय॥

—रसरहस्य, ८/१८१

एक-एक तें सरस जब अलंकार यह सार॥

—भाषाभूषण, १३८

उत्तर-उत्तर उतकरष सार कहत सज्ञान॥

—ललितललाम, २६४

गुन ही सों कै दोष सों कै दुहु सों जिहि थान।
एक-एक तें अधिक भनि त्रिविध सार यों जान॥

—पद्माभरण, १७६

भेद—दीक्षित ने सार अलंकार के तीन भेद किए हैं—श्लाध्य गुणोत्कर्ष, अश्लाध्य गुणोत्कर्ष तथा उभयरूप। पंडितराज ने उत्तरोत्तर उत्कर्ष एवं अपकर्ष के वर्णन में दो प्रकारों का निरूपण किया है। पुनः इन्होंने इसके अन्य दो भेद भी किए—एक-विषयक एवं अनेक-विषयक। पद्माकर ने दीक्षित के आधार पर तीन भेदों का कथन किया है।

विश्वेश्वर पंडित ने मम्मट के मत का अनुसरण करते हुए इस अलंकार का वर्णन किया है।

सारस्तुपूर्वपूर्वादुत्कर्षाण्युत्तरे प्रोक्ते।
यत्रोत्तरोत्तरस्य पूर्वपूर्वप्रतियोग्यमुत्कर्षवत्त्वं कथ्यते स सारालंकारः॥

—अलंकार कौस्तुभ, पृ० ३६५

उदाहरण—

१. **प्रथम सार**—जब वस्तुओं के उत्तरोत्तर उत्कर्ष का वर्णन किया जाय तो प्रथम सार होगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क. राज्ये सारं वसुधा वसुधायामपि पुरे सौधम् ।
सौधे तल्पं तल्पे वरांगनानंगसर्वस्वम् ॥

"राज्य का सार वसुधा है तथा वसुधा का सार नगर, नगर का सार प्रासाद, प्रासाद का सार पलंग और पलंग का सार कामदेव की सर्वस्वरूपा सुंदरी है।"

ख. मखमल तें कोमल महा कदलिगरभ को पात ।
ताहू तें कोमल अति, प्यारी तेरो गात ॥

२. **द्वितीयसार**—जब उत्तरोत्तर अपकर्षक का वर्णन किया जाय तो द्वितीय सार होगा।

उदाहरण—

क. तृणाल्लघुतरस्तूलस्तूलादपि च याचकः ।
वायुना किं न नीतोऽसौ मामयं प्रार्थयेदिति ॥

"रुई तिनके से भी हलकी होती है और याचक उससे भी हलका होता है। यद्यपि बड़ा हलका होता हैं, फिर भी हवा उसे इसलिए उड़ाकर नहीं ले जाती कि कहीं यह मुझसे याचना न करने लगे।"

ख. तृण ते लघु है तूल, तूलहु ते लघु माँगनो ॥

रुई से भी लघु याचना या माँगना को माना गया है।

सारस्वत—कवि का एक प्रकार। [दे० **कवि**] जिस कवि की वाणी में प्रतिभा जन्मांतर-सस्कार से ही प्रवृत्त हो, उसे सारस्वत कहते हैं। यह बिना किसी अभ्यास के ही काव्य-रचना करने लग जाता है।

जन्मांतरसंस्कारप्रवृत्तसरस्वतीकोबुद्धिमान्सारस्वतः ।

—काव्यमीमांसा, अध्याय ४, पृ० ३२

सारस्वत कवि स्वतंत्र होकर रचना करता है।

सारूप्यनिबंधना—अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार का एक भेद। [दे० **अप्रस्तुत प्रशंसा**]

सारोपालक्षणा—प्रयोजनवती-लक्षणा का एक भेद। [दे० **प्रयोजनवती-लक्षणा**] जब आरोप्यमाण (विषयी, उपमान) एवं आरोप के विषय दोनों का शब्दतः कथन हो तो ऐसी लक्षणा को सारोपा कहते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विषयस्यानिगीर्णस्यान्यतादात्म्य प्रतीतिकृत् ।।

—साहित्यदर्पण, २/८

आचार्य मम्मट का कथन है कि जहाँ आरोप्यमाण एवं आरोप के विषय का भेद छिपाया नहीं जाता, उन दोनों का समानाधिकरण्य से निर्देश किया जाता है, वहाँ सारोपा लक्षणा है।

सारोपान्या तु यत्रोक्तौ विषयीविषयस्तथा।

आरोप्यमाणः आरोपविषयश्च यत्रानपह्नुतभेदौ सामानाधिकरण्येन निर्दिश्येते सा लक्षणा सारोपा ।।

—काव्यप्रकाश, २/११

जैसे कहा जाय कि 'मोहन शेर है' तो यहाँ सारोपालक्षणा होगी; क्योंकि इसमें मोहन पर शेर का आरोप किया गया है। सारोपालक्षणा में विषयी के साथ विषय का अभेद ज्ञान होता है।

मोहन मो दृग पूतरी, वा छबि सिगरी प्रान।
सुधा चितौनि सुहावनी, मीच बाँसुरी तान ।।

यहाँ दृग पर पूतरी का, छवि पर प्राण का, चितवन पर सुधा का तथा बाँसुरी पर मृत्यु का आरोप है। मोहन को आँख की पुतली, छवि को प्राण, चितवन को अमृत और वंशी की ध्वनि को मृत्यु कहने में मुख्यार्थ का बाध है। लक्षणा से इनका अर्थ अत्यंत प्रिय, आनंददायक तथा पीड़ादायक होगा।

—दे० काव्यालोक, पृ० ७६

साहित्यविद्या—काव्यशास्त्र या आलोचनाशास्त्र का नाम। [काव्यशास्त्र नामकरण]

साहित्यशास्त्र—काव्यशास्त्र या आलोचनाशास्त्र का नाम। [दे० काव्यशास्त्र नामकरण]

सुकुमारमार्ग—मार्ग या रीति का प्रथम भेद। इस भेद का वर्णन आचार्य कुंतक ने किया है। [दे० रीति-संप्रदाय] इसमें रस की प्रधानता होती है। कुंतक के अनुसार सुकुमार मार्ग की निम्नांकित विशेषताएँ हैं—

क. कवि की सहज या स्वाभाविक प्रतिभा का स्फुरण

ख. स्वाभाविक सौंदर्य

ग. आहार्य कौशल का तिरस्कार

घ. रसादि के तत्त्वज्ञों के मनोनुरूप सरसता का वर्णन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ङ. अलौकिक तथा अविचारित वैदग्ध्य

च. शब्दार्थ की स्वाभाविक चमत्कृति

छ. स्वतःस्फुरित परिमित अलंकारों का समावेश।

—वक्रोक्तिजीवित, १/२५-२६

सुरतविचित्रा—मध्या नायिका का एक भेद। [दे० मध्या] जो नायिका रंग-बिरंगे सुरत में प्रवीण हो, उसे सुरतविचित्रा कहते हैं।

सुरतिगोपना—परकीया नायिका का एक भेद। इसे गुप्ता भी कहते हैं। सुरतिचिह्नों को सखियों से गुप्त रखनेवाली या छिपानेवाली नायिका को सुरतिगोपना कहते हैं। [दे० गुप्ता]

सुसिद्ध—आचार्य केशवदास वर्णित एक नूतन अलंकार। साधन कोई करे और सिद्धि की प्राप्ति किसी और को हो तो सुसिद्ध अलंकार होगा। केशव के अनुसार साधन करते-करते कोई मर जाय, पर सिद्धि को और ही भोगे तो सुसिद्ध अलंकार होगा।

साधि साधि औरै मरैं, औरै भोगैं सिद्धि।
तासों कहत सुसिद्धि सब, जिनके बुद्धि समृद्धि॥

—कविप्रिया, १३/४

सूक्ष्म—गूढ़ार्थप्रतीतिमूलक अलंकार। आकार अथवा चेष्टा-द्वारा संलक्षित सूक्ष्म अर्थ का किसी युक्ति से प्रकाशित होना सूक्ष्मालंकार है।

'सूक्ष्म' का अर्थ है महीन या बारीक। जिस प्रकार कोई सूक्ष्म पदार्थ साधारण बुद्धिवाले व्यक्ति के द्वारा जाना नहीं जाता, उसी प्रकार सूक्ष्मालंकार भी सहृदय एवं तीक्ष्ण बुद्धिवाले व्यक्ति द्वारा संवेद्य होता है। इस अलंकार में आकार अथवा चेष्टा के द्वारा पहचानने योग्य कोई सूक्ष्म वस्तु किसी अन्य उपाय से प्रकाशित हो जाती है। इसमें दो बातें देखी जाती हैं—(प्रथम यह कि) किसी की चेष्टा या आकार को देखकर कोई व्यक्ति उसके रहस्य के भेद को जान जाता है और (द्वितीय) जाने हुए रहस्य को इंगित द्वारा प्रकट कर उस व्यक्ति को इसकी सूचना दे देता है कि उसने उसके संकेत को जान लिया है।

इस अलंकार का उल्लेख भामह ने किया है ; पर वे उक्ति-वैचित्र्य का अभाव होने के कारण इसे अलंकार का पद नहीं देना चाहते।

हेतुश्च सूक्ष्मलेशौ च नालंकारतया मतः॥

—काव्यालंकार, २/८६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दंडी ने इसे वाणी का उत्तम भूषण मानकर इसके स्वरूप का विवेचन किया, तत्पश्चात् रुद्रट, भोज, मम्मट, रुय्यक, शोभाकर, विद्याधर, विद्यानाथ, विश्वनाथ, अप्पय दीक्षित एवं विश्वेश्वर पंडित ने इसका निरूपण किया। दंडी ने बताया कि इंगित तथा आकार द्वारा सूक्ष्म अज्ञेय अर्थ के ज्ञान को सूक्ष्म अलंकार कहते हैं।

हेतुश्च सूक्ष्मलेशौ च वाचामुत्तमभूषणम्।
इंगिताकारलक्ष्योऽर्थः सौक्ष्म्यात् सूक्ष्म इति स्मृतः ॥

—काव्यादर्श, २/२३५,२६०

रुद्रट का लक्षण सर्वथा भिन्न है। इनके अनुसार जब शब्द अपने प्रतिपाद्य अर्थ में न बैठे और वह अपने अर्थ से संबद्ध अन्य अर्थ का बोध करावे तो वहाँ सूक्ष्मालंकार होगा।

यत्रायुक्तिमदर्थो गमयति शब्दो निजार्थसंबद्धम्।
अर्थांतरमुपपत्तिमदिति तत्संजायते सूक्ष्मम् ॥

—काव्यालंकार, ७/९८

भोज ने दंडी का विचार अपनाते हुए कहा कि इंगित तथा आकार द्वारा प्रकाशित अर्थ ही सूक्ष्म है। इन्होंने वाच्य तथा प्रतीयमान नामक इसके दो प्रकारों का कथन किया है।

इंगिताकारलक्ष्योऽर्थः सूक्ष्मः सूक्ष्मगुणात्तु सः।
वाच्यः प्रतीयमानश्च सूक्ष्मोऽत्र द्विविधो मतः ॥

—सरस्वतीकंठाभरण, ३/२१-२२

मम्मट ने इस अलंकार के स्वरूप को व्यवस्थित करते हुए कहा कि किसी हेतु-द्वारा आकार अथवा चेष्टा से लक्षित सूक्ष्म अर्थ असाधारण धर्म के द्वारा दूसरों पर प्रकट हो तो वहाँ सूक्ष्म अलंकार होगा।

कुतोऽपि लक्षितः सूक्ष्मोऽप्यर्थोऽन्यस्मै प्रकाशते।
धर्मेण केनचिद्यत्र तत्सूक्ष्मं परिचक्षते ॥

—काव्यप्रकाश, १०/१२२

सूक्ष्म का परवर्ती विवेचन मम्मट की परिभाषा पर आधृत रहा। रुय्यक के अनुसार इंगित अथवा आकार-द्वारा संलक्षित अर्थ का विदग्ध के प्रति प्रकाशन को सूक्ष्मालंकार कहते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संलक्षितसूक्ष्मार्थप्रकाशनं सूक्ष्मः ।

इह सूक्ष्मः स्थूलमतिभिरसंलक्ष्यो योऽर्थः, स यदा कुशाग्रमतिभिरिंगिताकाराभ्यां संलक्ष्यते तदा तस्य संलक्षितस्य विदग्धंप्रतिप्रकाशनं सूक्ष्ममलंकारः ।

—अलंकारसर्वस्व, पृ० २१७

विद्याधर, विद्यानाथ तथा विश्वनाथ ने मम्मट के ही विचार को अपनाया ।

अथ वल्गद्गूढार्थप्रतीत्यलंकार लक्षणं भावि ।
गदितमिदं संलक्षित सूक्ष्मार्थस्य प्रकाशनं सूक्ष्मम् ।।

—एकावली, ८/५६

असंलक्षितसूक्ष्मार्थप्रकाशः सूक्ष्म उच्यते ।।

—प्रतापरुद्रीय, पृ० ३३५

संलक्षितस्तु सूक्ष्मोऽर्थ आकारेणेंगितेन वा ।
कयापि सूच्यते भंग्या यत्र सूक्ष्मं तदुच्यते ।।

—साहित्यदर्पण, १०/६१

दीक्षित के अनुसार अन्य के रहस्य को जानकर उसके प्रति साभिप्राय चेष्टा करने को सूक्ष्म कहते हैं ।

सूक्ष्मं पराशयाभिज्ञेतर साकूत चेष्टितम् ।।

—कुवलयानंद, १५१

विश्वेश्वर ने आकार तथा इंगित के द्वारा प्रतिभासित अर्थ को अन्य पर प्रकट करने को सूक्ष्म कहा ।

प्रतिभातिशयाज्ज्ञातो यद्याकारेंगितादर्थः ।
विशदीक्रियतेऽन्यस्मै तथैव तत्सूक्ष्ममित्युक्तम् ।।

—अलंकारकौस्तुभ, पृ० ३६४

रीतिकाल में दंडी, मम्मट तथा दीक्षित ही इस अलंकार के मूलाधार रहे हैं ।

केशव ने दंडी के आधार पर सूक्ष्म का विवेचन किया और चिंतामणि ने मम्मट का अनुकरण किया ।

कौनहु भाव प्रभाव तें जानै जिय की बात ।
इंगित तें आकार तें, कहि सूछम अवदात ।।

—कविप्रिया, ११/४५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होइ जु कौनौ अर्थ तें सूछम अर्थ प्रकास ।
सूछम नाम प्रसिद्ध यह अलंकार सुखबास ॥

—कविकुलकल्पतरु, ३/३०३

जसवंत सिंह, मतिराम आदि दीक्षित से प्रभावित हैं ।

सूछम परआसय लखें सैनन में कछु भाइ ॥

—भाषाभूषण, १७८

जानि पराए चित्त की ईहा जो आकूत ।
हो जहाँ सूच्छम तहाँ, कहत सुकबि पुरहूत ॥

—ललितललाम, ३५४

भेद—आकार अथवा चेष्टा के आधार पर सूक्ष्म के दो प्रकार किए गए हैं । दंडी, मम्मट, विश्वनाथ आदि ने दो भेदों का निरूपण किया है ।

प्रथम सूक्ष्म—जब सूक्ष्म रहस्य को आकार द्वारा प्रकट किया जाय ।

द्वितीय सूक्ष्म—जब चेष्टा द्वारा सूक्ष्म रहस्य प्रकट हो ।

प्रथम सूक्ष्म—

उदाहरण—

क. वक्त्रस्यंदिस्वेदबिंदुप्रबंधैर्दृष्ट्वा भिन्नं कुंकुमं क्वापि कंठे ।
पुंस्त्वं तन्व्या व्यंजयंती वयस्या स्मित्वा पाणौ खड्गलेखां लिलेख ॥

किसी सुंदरी ने अपनी सखी के मुख पर गिरी स्वेदबिंदु की रेखाओं से उसके कंठ के कुंकुम को दो भागों में विभक्त देखकर हँसकर उसके हाथ पर तलवार का चित्र खींच दिया, जिससे उसका पुरुषत्व सूचित हो गया । यहाँ सखी-द्वारा रति-क्रिया की जानकारी का वर्णन है ।

ख. परतिय दोष पुरान सुनि, लखि मुलकी सुखदानि ।
कसु करि राखी मिसिरहू मुख आई मुसुकानि ॥ —बिहारी

यहाँ पंडितजी के परस्त्री-प्रेम के रहस्य को सभा में उपस्थित उनकी प्रेमिका द्वारा जानने और पंडितजी को उसकी सूचना होने का वर्णन है

चेष्टा द्वारा लक्षित अर्थ—

क. संकेतकालमनसं विं ज्ञात्वा विदग्धया ।
हसन्नेत्रार्पिताकूतं लीलापद्मं निमीलितम् ॥

चतुर नायिका ने प्रेमी को मिलन का समय जानने के लिए उत्सुक देखकर हँसती हुई आँखों के द्वारा अपना आशय बताते हुए लीला कमल को

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संकुचित कर दिया। यहाँ लीलाकमल को बंद कर उसने संध्या समय मिलन का समय सूचित किया।

ख. लखि गुरुजन बिच कमल सों, सीस छुवायो स्याम।
हरि सम्मुख करि आरसी, हिए लगाई बाम ॥ —बिहारी

कमल से कृष्ण का शीश स्पर्श करने में यह भाव है कि हे राधे, मैं तुम्हारे कमलवत् चरण को प्रणाम करता हूँ। आरसी को हृदय से लगाकर स्त्री यह लक्षित कर रही है कि मेरे स्वच्छ हृदय में तुम विराजमान हो।

सूच्य—नाटक का वह अंश, जो नीरस होता है और उसका, रंगमंच पर, प्रदर्शन नैतिकता की दृष्टि से उपयुक्त नहीं माना जाता; उसकी केवल सूचना दे दी जाती है। इसे संसूच्य भी कहते हैं। [दे० दृश्य]

सूत्रधार—समस्त नाट्य-प्रयोग को संचालित करनेवाला व्यक्ति सूत्रधार कहा जाता है। यह स्थापना या प्ररोचना के द्वारा नाटक का आरंभ करनेवाला व्यक्ति है, जो यथासमय स्वयं भी रंगमंच पर उपस्थित होता है (पात्र के रूप में)। समस्त नाट्य-प्रयोग सूत्रधार की प्रेरणा तथा कल्पना पर आश्रित रहकर विकसित होता है। भरत ने इसके गुणों का वर्णन करते हुए इसे नाट्य-प्रयोग-कुशल, शास्त्रज्ञ, वाद्यवादन में प्रवीण, नाना प्रकार के गीत, छंदविधान तथा ग्रहनक्षत्र का ज्ञाता कहा है। यह शास्त्रार्थों का निर्णायक, राजवंश में जन्म लेनेवाला, स्मृतिवान्, बुद्धिमान्, स्मितभाषी, नीरोग, मधुर, क्षमाशील, सत्यवादी तथा वेश्याओं के उपचार में प्रवीण होता है। यह नाटक में रंगमंच पर प्रस्तुत होकर कवि और काव्य का परिचय देता है।

नाट्यप्रयोगकुशलः नानाशिल्पसमन्वितः।
पादच्छंदविधानज्ञः सर्वशास्त्रविचक्षणः।।
स्मृतिमान् मतिमान् धीर उदारः स्थितवाक् कवि।
अरोगो मधुरः क्षांतो दांताचैव प्रियंवदः ।।

—नाट्यशास्त्र, ३५/४५-५२

सेविता—कवियों का एक प्रकार। [दे० कवि] जो कवि प्राचीन कवियों में से किसी सर्वश्रेष्ठ कवि की रचना की छाया ग्रहण कर काव्य-रचना में प्रवृत्त हो उसे सेविता कहते हैं। कवियों का यह प्रकार अवस्थागत है। इस प्रकार का वर्गीकरण राजशेखर ने किया है।

यः प्रवृत्तवचनः पौरस्त्यानामन्यतमच्छायामभ्यस्यति स सेविता।
—काव्यमीमांसा, पंचम अध्याय, पृ० ५०, चौखंबा-संस्करण (हिंदी अनुवाद)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सौंदर्यगर्विता—वक्रोक्तिगर्विता या गर्विता नायिका का एक भेद। [**दे० वक्रोक्तिगर्विता**]

स्तंभ—सात्त्विक भाव का प्रथम भेद। [**दे० अनुभाव**] स्तंभ का अर्थ है जड़ीभूत होना या शरीर की गति का बंद हो जाना। हर्ष, भय, क्रोध, लज्जा आदि के कारण शरीर के अंगों का संचालन बंद हो जाना या रुक जाना स्तंभ है। इस स्थिति में हाथ-पैर आदि अंगों में आंतरिक गति होने पर भी बाह्य-क्रियाशीलता का अभाव रहता है। शरीर में जड़ता का आना ही स्तंभ है।

भरत हर्ष, भय, शोक, विषाद, विस्मय, रोष आदि से स्तंभ की उत्पत्ति मानते हैं।

हर्षभयशोकविस्मयविषादरोषादिसंभवः स्तंभः ॥

—नाट्यशास्त्र, ७/९६

विश्वनाथ भय, हर्ष, रोग आदि के कारण शरीर के अंगों की चेष्टा के प्रतिघात को स्तंभ कहते हैं।

स्तंभश्चेष्टाप्रतीघातो भयहर्षभयादिभिः ॥

—साहित्यदर्पण, ३/१३६

भानुदत्त ने शरीर के धर्म या गति के रुक जाने को स्तंभ कहा है। यह हर्ष, राग, भय, विषाद, विस्मय और क्रोध के कारण उत्पन्न होता है।

शरीरधर्मत्वे सति गतिनिरोधः स्तंभः।
तस्य विभावा हर्षरागभयदुःखविषादविस्मयक्रोध ॥

—रसतरंगिणी, पृ० ३२२, चतुर्थ तरंग

उदाहरण—

क. श्रोणी पीनतरा तनुः कृशतरा भूमीधरात्पीवरा
वक्षोजस्य तटी कुतो निजकुटी मातर्मया गम्यताम्।
इत्युद्भाव्य कदंबकुंजनिकटे निविश्य मंदस्मितं
गोविन्दं समुदीक्ष्य पक्ष्मलदृशा स्तंभस्तिरोधीयते ॥

"हे मां! मुझसे अपनी कुटी में जाया नहीं जाता; क्योंकि मेरी श्रोणी (नितंब) अत्यंत पुष्ट है और शरीर अत्यंत कृश (दुर्बल) और आगे की ओर ये दोनों स्तन पर्वत की तरह कठिन और भारयुक्त हो गए हैं। ऐसा कहकर मंद-मंद मुस्कुरानेवाले श्रीकृष्ण को अच्छी तरह देखकर उल्लसित हो जानेवाली सुंदरी कदंब-कुंज के पास जाकर बैठ गई और उसने अपने स्तंभ के भाव को छिपा दिया।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यहाँ प्रिय को देखकर हर्ष से शारीरिक क्रियाओं के प्रतिघात में स्तंभ है।

ख. पियहिं परखि तिय थकि रही, बूझेउ सखिन निहारि।
चलति न क्यों ? क्यों चलहु मग, परत न पग रँगभार ॥

यहाँ प्रिय-दर्शन से प्रेमानंद के कारण नायिका के पैरों का न चलना स्तंभ है।

स्थापक—सूत्रधार का सहायक। यह सूत्रधार के समान ही गुणज्ञ एवं आकृतिवाला पात्र है। [दे० सूत्रधार]

स्थापना—सूत्रधार-द्वारा पूर्वरंग-विधान के पश्चात् रंगमंच से हट जाने पर, स्थापक (सूत्रधार के समकक्ष एक नट) आकर काव्य की स्थापना करता है या नाट्य-प्रयोग की स्थापना करता है, इसे ही स्थापना कहते हैं। स्थापक का नाटकीय वस्तु की सूचना देना स्थापना है। जो सामाजिकों के समक्ष नाटकीय वस्तु की, रंगमंच पर आकर, स्थापना करे, उसे स्थापक कहते हैं। यदि वस्तु (नाटक की कथा) दिव्य हो तो देवता का रूप धारणकर, यदि अदिव्य हो तो मनुष्य का वेष बनाकर और मिश्र हो तो दोनों में से किसी एक का रूप रचकर स्थापक आता है और इतिवृत्त, पात्र एवं बीज, मुख आदि का परिचय देता है।

पूर्वरंगं विधायैव सूत्रधारो निवर्तते।
प्रविश्य स्थापकस्तद्वत्काव्यमास्थापयेत्ततः ॥
दिव्यमर्त्यें च तद्रूपो मिश्रमन्यतरस्तयोः।
सूचयेद्वस्तुबीजं वा मुखं पात्रमथापि वा ॥

—साहित्यदर्पण, ६/२६-२७

इसमें भारती वृत्ति का प्रयोग होना चाहिए ,जिससे दर्शकों का मन आह्लादित हो जाय।

स्थायी भाव--रस का प्रमुख अंग। [दे० रस का स्वरूप] रस के मूल भाव को स्यायी भाव कहते हैं। यह सहृदय के हृदय में वासना-रूप में स्थित रहता है और विरोधी तथा अविरोधी भावों-द्वारा न तो छिपाया जाता है और न दबाया जाता है। यह रस में प्रारंभ से अन्त तक विद्यमान रहता है। यह चित्त का स्थिर मनोविकार है, जो विरोधी अथवा अविरोधी, प्रतिकूल अथवा अनुकूल दोनों प्रकार की स्थितियों में निरंतर विराजमान रहता है। स्थायी भाव शत्रु और मित्र-भावों को अंतर्निहित कर आत्म-भाव प्राप्त करता है,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दोनों (विरोधी तथा अविरोधी) को मिला लेता है। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार, जिसे अविरोधी या विरोधी भाव अपने में तिरोहित करने में अक्षम होते हैं और जो आस्वाद का मूल होता है, उसे स्थायी भाव कहते हैं।

अविरुद्धाविरुद्धा वा यं तिरोधातुमक्षमाः ।
आस्वादांकुरकंदोऽसौ भावः स्थायीति सम्मतः ॥

—साहित्यदर्पण, ३/१७४

अभिनव गुप्त स्थायी भाव को वासना रूप से सभी में विद्यमान मानते हैं। सभी का अभिप्राय सभी प्राणियों से है।

जात एव हि जंतुरियतीभिः संविद्भिः परीतो भवति ॥

—अभिनवभारती, पृ० २८२

न एव हि एतच्चित्तवृत्ति वासनाशून्य प्राणी भवति ॥ —वही

वासनात्मना सर्वजंतूनां तन्मयत्वेन उक्तत्वात् । —वही

स्थायी भाव की प्रधानता सिद्ध करते हुए भरत ने कहा कि "बहुत से आश्रितों के कारण स्थायी भाव स्वामियों के समान होते हैं। इसी प्रकार स्थानीय पुरुषों (अधिकारियों) के गुण-रूप में अन्य भाव (विभाव, अनुभाव तथा संचारी) स्थायी भावों का अवलंबन करते हैं और स्थायी भाव रसत्व अर्थात् रसरूप अभिव्यक्ति को प्राप्त होते हैं। स्थायी भाव ही रसत्व को (रस-प्रतीति) प्राप्त होते हैं। व्यभिचारी भाव परिजनों के समान हैं। जिस प्रकार राजा के अनेक नौकर-चाकर होते हैं, पर नाम केवल उसी का होता है, कोई अन्य कितना ही महान् पुरुष क्यों न हो, इसी प्रकार विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों से घिरे (युक्त) स्थायी भाव ही रस नाम को प्राप्त करते हैं।" (हिंदी) नाट्यशास्त्र—डॉ० रघुवंश, पृ० ४१५-१६

बह्वाश्रयत्वात्स्वामिभूताः स्थायिनो भावाः तद्वत्स्थानीयपुरुषगुणभूता अन्ये भावास्तान्गुणतयाश्रयंते। स्थायिभावा रसत्वमाप्नुवंति। परिजनभूता व्यभिचारिणोभावाः। अत्राह—को दृष्टांत इति। यथा नरेंद्रो बहुजन परिवारोऽपि स एव नाम लभते नान्यः सुमहानपि पुरुषः तथा विभावानुभावव्यभिचारिपरिवृतः स्थायी भावो रस नाम लभते।

यथा नराणां नृपतिः शिष्याणां च यथा गुरुः ।
एवं हि सर्वभावानां भावः स्थायी महानिह ॥

—नाट्यशास्त्र, ७/८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भरत का कहना है कि जिस प्रकार समान शारीरिक अवयववाले व्यक्ति कुल, शील, विद्या, कर्म एवं शिल्प-विचक्षण होने के कारण राजा हो जाते हैं और अन्य अल्प-ज्ञानयुक्त होने के कारण अनुचर, उसी प्रकार विभावादि भी स्थायी भाव के आश्रित रहते हैं।

अत्राह—यदि काव्यार्थसंश्रितैर्विभावानुभावव्यंजितैरेकोनपंचाशद्भावैः सामान्यगुणयोगेनाभिनिष्पद्यंते रसास्तत्कथं स्थायिन एव भावा रसत्वमाप्नुवंति। उच्यते—यथाहि समानलक्षणास्तुल्यपाणिपादोदरशरीराः समानांगप्रत्यंगा अपि पुरुषाः कुलशीलविद्याकर्मशिल्पविचक्षणत्वाद्राजत्वमाप्नुवंति तथैव चान्येऽल्पबुद्धयस्तेषामेवानुचरा भवंति तथा विभावानुभावव्यभिचारिणः स्थायिभावानुपाश्रिता भवंति। —नाट्यशास्त्र, ७/८ पृ० ४१४ (हिंदी)

साहित्यकौमुदीकार के अनुसार स्थायी भाव सुराजा की भाँति प्रतिष्ठित है।

सुराजेव विराजेत सः स्थायी भाव उच्यते ॥

—साहित्यकौमुदी, ४/७

स्थायी भाव विरोधी या शत्रु-भाव के द्वारा न तो नष्ट होता है और न मित्र-भाव उसे अपने में मिला सकते हैं। यह उन्हें आत्मसात् कर लेता है। यह स्वयं अन्य भावों को दबा देता है, उनके द्वारा दबाया नहीं जाता। यह अन्य भावों को उसी प्रकार आत्मीय बना लेता है, जिस प्रकार विभिन्न सरिताओं के मधुर जल को लवणाकर अपने में मिलाकर लोना बना देता है।

आत्मभावं नयत्यन्यान् स स्थायी लवणाकरः।

—दशरूपक, ४/३४

चिरं चित्तेऽवतिष्ठंते संबध्यंतेऽनुबंधिभिः।
रसत्वं ये प्रपद्यंते प्रसिद्धाः स्थायिनोऽत्र ते ॥

—सरस्वतीकंठाभरण, ५/१६

रस में स्थायी भाव का अविच्छिन्न प्रवाह रहता है।

अविच्छिन्नप्रवाहाः स्थायिभावाः ॥

—काव्यप्रकाश, वामन झलकीकर, पृ० ८६

पंडितराज के अनुसार आप्रबंध-स्थित रहने के कारण इसे स्थायी भाव की संज्ञा प्राप्त हुई है।

तत्र आप्रबंधं स्थिरत्वादमीषां भावानां स्थायित्वम्।

—रसगंगाधर, पृ० ३०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रसावस्था तक पहुँचने का श्रेय स्थायी भाव को ही है, अन्य भाव रसत्व को नहीं प्राप्त कर सकते। "मनुष्य के अंतर में रति आदि भाव वासना रूप से दबे पड़े रहते हैं। समय पाकर वही अंतस्थ सुप्त भाव काव्य के श्रवण और नाटक-सिनेमा के दर्शन से उद्बुद्ध हो जाते हैं, तब आनंद का अनुभव होने लगता है। यही दशा स्थायी भाव की रस-दशा कहलाती है।"

—काव्यदर्पण, पृ० ११९ (द्वितीय संस्करण)

पंडित रामदहिन मिश्र ने स्थायी भाव की पाँच विशेषताओं का उल्लेख किया है—आस्वाद्यत्व, उत्कटत्व, सर्वजन सुलभत्व, पुरुषार्थोपयोगित्व तथा उचित विषय-निष्ठत्व या औचित्य।

क. **आस्वाद्यत्व**—रसत्व की प्राप्ति की पहली कसौटी आस्वाद्यत्व है और आस्वादन स्थायी भाव का ही होता है।

ख. **उत्कटत्व**—भाव की प्रबलता ही उत्कटत्व है। किसी भाव के प्रबल होने पर ही उसका मन पर प्रभाव पड़ता है।

ग. **पुरुषार्थोपयोगिता**—रति, शोक, भय आदि स्थायी भाव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पुरुषार्थोपयोगी हैं।

घ. **सर्वजन सुलभत्व**—जो भाव सर्वसाधारण में सुलभ हो, वह स्थायी हो सकता है।

ङ. **उचितविषय-निष्ठत्व**—भावना को तीव्र रूप में आस्वादयोग्य बनाने के लिए उचित विषय का ग्रहण आवश्यक है।

च. **मनोरंजन की आवश्यकता**—स्थायित्व के लिए आवश्यक है कि उसमें मनोरंजन की मात्रा अधिक हो।

संस्कृत काव्यशास्त्रियों के विवेचन के आधार पर स्थायी भाव के निम्नांकित तत्त्व हैं—

१. स्थायी भाव वासना रूप से सभी प्राणियों में विद्यमान रहता है। यह जन्मजात होता है।

२. यह सजातीय एवं विजातीय भावों को आत्मसात् कर लेता है। इसे अन्य भाव न तो दबा सकते हैं और न अपना सकते हैं।

३. इसमें आप्रबंध स्थायित्व, अविच्छिन्न प्रवाहमयता तथा चिरकाल-स्थायित्व होता है।

४. स्थायी भाव चर्वणा-योग्य एवं मनोरंजक होते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्थायी के भेद—प्रत्येक रस के पृथक्-पृथक् स्थायी भाव हैं और उनकी संख्या नौ है। जैसे, श्रृंगार का रति, हास्य का हास, करुण का शोक, वीर का उत्साह, भयानक का भय, अद्भुत का विस्मय, बीभत्स का जुगुप्सा, रौद्र का क्रोध और शांतरस का निर्वेद या शम। कालांतर में वत्सल और भक्तिरस की प्रतिष्ठा होने पर वात्सल्य और देव-विषयक रति को स्थायी का पद प्राप्त हुआ। [प्रत्येक स्थायी भाव का विवरण उसके नाम के अक्षर पर देखें]

भोज ने उद्धत, प्रेयस्, शांत और उदात्त नामक रसों की कल्पना कर गर्व, स्नेह, धृति और मति को स्थायी भाव के रूप में स्थान दिया है। आचार्यों ने ऐसा भी विचार व्यक्त किया है कि स्थायी भाव विशेष दशा में संचारित्व प्राप्त कर लेते हैं। जैसे, हास स्थायी श्रृंगार रस में संचारी भाव हो जाता है, रति और हास करुण तथा शांत रस में संचारी का रूप ग्रहण करते हैं, भय और शोक करुण एवं श्रृंगार में संचारित्व प्राप्त करते हैं। क्रोध स्थायी वीर रस में, जुगुप्सा भयानक में तथा उत्साह और विस्मय सभी रसों में संचारी हो जाते हैं।

स्थायिनोऽपि व्यभिचरंति। हासः श्रृंगारे। रतिः शांतकरुणहास्येषु। भयशोकौ करुणश्रृंगारयोः। क्रोधो वीरे। जुगुप्सा भयानके। उत्साहविस्मयौ सर्वरसेषु व्यभिचारिणौ। —रसतरंगिणी, पंचमतरंग।

स्नातक—नाटक का एक गौण पात्र। राजा के अंतःपुर में स्थित एक नपुंसक पुरुष। यह वेदाध्ययन पूर्ण कर राजप्रासाद में रहता है तथा धार्मिक एवं सामाजिक विषयों से पूर्णतः अवगत होता है।

स्पष्ट प्रच्छन्नार्था—चित्रालंकार का एक भेद। [दे० चित्रालंकार] जब स्पष्ट होते हुए भी अर्थ गूढ़ या प्रच्छन्न हो तो स्पष्ट प्रच्छन्नार्था नामक भेद होगा।

स्फुटानुप्रास—अंत्यानुप्रास का अन्य नाम। [दे० अंत्यानुप्रास]

स्फुटानुप्रास—शब्दालंकार। श्रुत्यनुप्रास का अन्य नाम, जिसका वर्णन जयदेव-कृत 'चंद्रालोक' ५/५ में है। यह अनुप्रास के एक भेद के रूप में वर्णित है। [दे० श्रुत्यनुप्रास]

स्मरण—वियोगदशा का भेद। [दे० वियोगदशा] विरहावस्था में प्रिय के संभोगसुखों तथा उसकी बातों का स्मरण करना स्मरण है।

भानुदत्त प्रिय या प्रिया की अनुभूत पूर्व-चेष्टाओं द्वारा उद्‌बोधित संस्कार से उत्पन्न ज्ञान को स्मृति कहते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रियाश्रितचेष्टाद्युद्बोधितसंस्कारजन्यं ज्ञानं स्मृतिः।

मतिराम के अनुसार प्रिय की देखी तथा सुनी हुई बात का मन में स्मरण होना स्मृति या स्मरण है।

लखी सुनी पिय बात को जो सुमरन मन होय।
स्मृति तासों कबि कहत हैं सब रसग्रंथ बिलोय॥

—रसराज, ४०६

दास ने एकाग्रचित्त से प्रिय का ध्यान करने को स्मृति कहा है।

जहँ इकाग्रचित करि करै मनमोहन को ध्यान।
सुमृति दसा तेहि कहत हैं लखि लखि बुद्धि निधान॥

—शृंगारनिर्णय, ३१०

उदाहरण—

क. रामो लक्ष्मणदीर्घदुःखचकितो नाविष्करोति व्यथां
श्वासं नोष्णतरं जहाति सलिलं धत्ते न वा चक्षुषि।
वातावर्तविवर्तमानदहनक्रूरैरनंगज्वरैः
क्षामः किंतु विदेहराजतनयां भूपः स्मरन् वर्तते॥

राम अपने मन की वियोगजन्य व्यथा को इस भय से प्रकट नहीं करते कि लक्ष्मण उन्हें दुखी जानकर व्यथित हो जाएँगे। ऐसा सोचकर वे न तो उष्णश्वास लेते हैं और न नेत्रों में अश्रु लाते हैं। पर, पवन के आवर्त्त से जोर से जलनेवाली अग्नि के सदृश क्रूर कामज्वर से क्षीण होकर वे बार-बार सीता की याद करते हैं।

ख. राधिका आधक नैननि मूँदि हिये ही हिये हरि की छबि हेरति।
मोरपखा मुरली बनमाल पितंबर पावँरी में मनु फेरति॥
गाइ चराइ हिये ही हिये लखि साँझ समै घरघाइ कों घेरति।
'दास' दसा निज भूले प्रकास हरे ही हरे ही हियो हियो टेरति॥

स्मरण—सादृश्यमूलक अलंकार। पूर्वानुभूत पदार्थ के सदृश अन्य पदार्थ को देखकर उसकी स्मृति का होना स्मरण अलंकार है। स्मरण का अर्थ स्मृति है। यह सादृश्यगर्भ भेदाभेद प्रधान अलंकार है। इस अलंकार में किसी वस्तु को देखकर तत्सदृश अन्य वस्तु में स्मरण होने का चमत्कारपूर्ण वर्णन किया जाता है। स्मरण अलंकार में उपमान को देखकर उपमेय या उपमेय को देखकर उपमान की याद आने का वर्णन होता है। इसमें उत्कृष्ट को देखकर निकृष्ट के भी स्मरण का कथन किया जाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस अलंकार का प्रथम विवेचन आचार्य रुद्रट ने किया है, तत्पश्चात् सभी आचार्यों ने इसका निरूपण किया। रुद्रट ने बताया कि किसी वस्तु को देखकर कालांतर में तत्सदृश अनुभूत पदार्थ के स्मरण में यह अलंकार होता है।

वस्तुविशेषं दृष्ट्वा प्रतिपत्ता स्मरति यत्र तत्सदृशम्।
कालांतरानुभूतं वस्त्वंतरमित्यदः स्मरणम्॥

—काव्यालंकार, ८/१०९

भोज सादृश्य के अतिरिक्त चिंता तथा अदृष्ट को भी स्मरण का आधार मानते हैं।

सदृशादृष्ट चिंतादेरनुभूतार्थवेदनम्।
स्मरणं प्रत्यभिज्ञानस्वप्नाद्यपि न तद्बहिः॥

—सरस्वतीकंठाभरण, ३/४२

मम्मट ने पूर्वानुभूत पदार्थ के समान अन्य पदार्थ को देखकर उसकी याद आने को स्मरण कहा। ये जन्मांतर के अनुभूत पदार्थ के स्मरण को भी अलंकारत्व प्रदान करते हैं।

यथानुभवमर्थस्य दृष्टे तत्सदृशे स्मृतिः स्मरणम्॥

—काव्यप्रकाश, १०/१३२

रुय्यक ने स्मरण अलंकार के विवेचन-क्रम में सादृश्यानुभव को अधिक महत्त्व दिया। इनके मत से सादृश्यानुभव से अन्य पदार्थ की स्मृति को स्मरण कहते हैं। सादृश्य के अभाव में इन्हें स्मरण अलंकार की स्थिति मान्य नहीं है।

सदृशानुभवाद्वस्त्वंतरस्मृतिः स्मरणम्॥

—अलंकारसर्वस्व, पृ० ४०

शोभाकर, विद्याधर, विद्यानाथ तथा विश्वनाथ रुय्यक से प्रभावित हैं।

सादृश्यानुभवात् स्मरणे स्मृतिः॥

—अलंकाररत्नाकर, पृ० २३

सदृशं सदृशानुभवाद्यत्र स्मर्यंत तत् स्मरणम्॥

—एकावली, पृ० २१०

सदृशानुभवादन्यस्मृतिः स्मरणमुच्यते॥

—प्रतापरुद्रीय, पृ० ३७०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सदृशानुभवाद्वस्तुस्मृतिः स्मरणमुच्यते ।।

—साहित्यदर्पण, १०/२७

जयदेव और अप्पय दीक्षित ने नाममात्र का लक्षण प्रस्तुत किया है।

स्यात् स्मृतिभ्रांतिसंदेहैस्तदेवालंकृतित्रयम्। —चंद्रालोक, ५/३१

—कुवलयानंद, २४

स्मृतिः सादृश्यमूला सा वस्त्वंतरसमाश्रया ।। —वही, २४

'चित्रमीमांसा' में दीक्षित ने बताया कि यदि सादृश्य के कारण अन्य वस्तु का स्मरण हो और वह व्यंग्य न होकर वाच्य रहे तो स्मरण अलंकार होगा।

स्मरणालंकृतिः सा स्यादव्यंग्यत्वविशेषिता ।।

—चित्रमीमांसा, पृ० ५०

पंडितराज के अनुसार सादृश्य ज्ञान के द्वारा उद्‌बुद्ध संस्कार से किसी वस्तु की स्मृति को स्मरण अलंकार कहते हैं।

सादृश्यज्ञानोद्‌बुद्धसंस्कारप्रयोज्यं स्मरणं स्मरणालंकारः।

—रसगंगाधर, पृ० २८७

रीतिकालीन आचार्यों ने 'काव्यप्रकाश', 'प्रतापरुद्रीय', 'चंद्रालोक' तथा 'कुवलयानंद' के आधार पर स्मरण अलंकार का वर्णन किया। चिंतामणि और कुलपति के आधार मम्मट और विद्यानाथ हैं तथा जसवंतसिंह, दास आदि के जयदेव।

सदृश वस्तु अनभे सदृश वस्त्वंतर को ज्ञान।
स्मरन बोलत विवुध जन समुझो सुकवि सुजान ।।

—कविकुलकल्पतरु, ३/७५

जहं देखत उपमान कौं, सुधि आवे उपमेय।
ताही सों सुमिरन कहत, जे कवि जानत भेय ।।

—रसरहस्य, ८/५८

सुमिरन भ्रम संदेह ये लक्षन नाम प्रकास ।। —भाषाभूषण, ५६

सुमिरन भ्रम संदेह यह, लक्षन प्रगटे नाम ।।

—काव्यनिर्णय, ६/३२

कछु लखि कछु सुनि सुधि करो, सो सुमिरन सुखकंद ।।

—वही, ६/३३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भेद—मम्मट तथा विश्वनाथ ने स्मरण के दो भेदों का वर्णन किया है। मम्मट इस जन्म तथा जन्मांतर के आधार पर दो भेदों का कथन करते हैं तो विश्वनाथ सादृश्य तथा वैसादृश्य के आधार पर।

सादृश्य—

क. अरविंदमिदं वीक्ष्य खेलत्खंजन मंजुलम्।
स्मरामि वदनं तस्याश्चारु चंचल लोचनम्॥

खेलते हुए कमनीय खंजनों से युक्त कमल को देखकर मुझे चंचल नेत्रों से युक्त (प्रिया के) मुख का स्मरण होता है। यहाँ कमल को देखकर मुख की याद आने में स्मरण अलंकार हैं।

ख. मैं पाती हूँ मधुर ध्वनि में कूजने में खगों के।
मीठी तानें परमप्रिय की मोहिनी वंशिका की॥

—प्रियप्रवास।

खगों के मधुर कूजन में वंशी की याद का वर्णन, स्मरण है।

वैसादृश्य—

क. शिरीषमृद्वी गिरिषु प्रपेदे यदा यदा दुःखशतानि सीता।
तदा तदास्याः सदनेषु सौख्यलक्षाणि दध्यौ गलदश्रु रामः॥

शिरीष पुष्प के सदृश कोमलांगी सीता जब-जब पर्वतों पर सैकड़ों दुःख झेलती थी, तब-तब रामचंद्रजी राजमहल में होनेवाले असंख्य सुखों का स्मरण कर आँसू बहाते थे। यहाँ विरुद्ध अनुभव से उत्पन्न स्मरण का वर्णन है।

ख. थूहर पलास देखि देखि के बबूर बुरे,
हाय-हाय मेरे वे तमाल सुधि आवै हैं।

पलाश तथा बुरे बबूलों को देखकर तमालों की स्मृति के वर्णन में वैसादृश्य का स्मरण है।

स्मरांधा—प्रगल्भा नायिका का एक भेद। [दे० प्रगल्भा] कामोन्माद (स्मरोन्माद) की वृद्धि के कारण जो नायिका सुरतक्रीड़ा में अंधी हो जाय, उसे स्मरांधा कहते हैं।

स्मरोन्मत्ता—प्रगल्भा नायिका का एक भेद। [दे० प्रगल्भा] जो नायिका कामविषयक भावों में उन्मत्त या पागल हो जाय, उसे स्मरोन्मत्ता कहते हैं। इसका अन्य नाम भावप्रगल्भा है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्मृति—संचारी भाव। [दे० संचारी भाव] पूर्वानुभूत पदार्थ को देखकर तत्सदृश पदार्थ का ज्ञान होना स्मृति है।

भरत इसे सुखात्मक तथा दुःखात्मक दोनों ही प्रकार के भावों में परिगणित करते हैं। यह रोग, रात्रिजागरण, निद्राभंग, समान व्यक्ति या वस्तु के दर्शन, चिंता आदि विभावों द्वारा उत्पन्न होता है। इसका अभिनय सिर का कांपना, नीचे की ओर देखना तथा भौंहों को ऊपर-नीचे करना आदि अनुभावों द्वारा होता है।

'स्मृति नाम—सुखदुःखकृतानां भावानामनुसरणम्। सा च स्वास्थ्यजघन्यरात्रिनिद्राच्छेदसमानदर्शनोदाहरणचिंताभ्यासादिभिर्विभावैः समुत्पद्यते। तामभिनयेच्छिरःकंपनावलोकनभ्रूसमुन्नमनादिभिरनुभावैः।'

सुखदुःखमतिक्रांतं तथा मतिविभावितं यथावृत्तम्।
चिरविस्मृतं स्मरति यः स्मृतिमानिति वेदितव्योऽसौ॥
स्वास्थ्याभ्याससमुत्था श्रुतिदर्शनसंभवा स्मृतिर्निपुणैः।
शिर उद्वाहनकंपैर्भ्रूक्षेपैश्चाभिनेतव्या॥

—नाट्यशास्त्र, ७/५४-५५

धनंजय के अनुसार पूर्वानुभूत पदार्थ के सदृश अन्य पदार्थ को देखकर संस्कार द्वारा उसका (पदार्थ का) जो रूप स्थिर होता है, उसे स्मृति कहते हैं।

सदृशज्ञानचिंताद्यैः संस्कारात्स्मृतिरत्र च।
ज्ञातत्वेनार्थभासिन्यां भ्रूसमुन्नयनादयः॥

—दशरूपक, ४/२०

विश्वनाथ सदृश वस्तु के दर्शन तथा चिंतन के कारण पूर्वानुभूत वस्तु के स्मरण-ज्ञान को स्मृति कहते हैं। इसकी अभिव्यक्ति भौंहों की उन्नति में दिखाई पड़ती है।

सदृशज्ञानचिंताद्यैर्भ्रूसमुन्नयनादिकृत्।
स्मृतिः पूर्वानुभूतार्थविषयज्ञानमुच्यते॥

—साहित्यदर्पण, ३/१६२

भानुदत्त संस्कारजन्य ज्ञान को स्मृति कहते हैं। संस्कारजन्य ज्ञान दो रूपों में प्रकट होता है—प्रत्यभिज्ञा (पहचान) या स्मृति के रूप में। स्मृति में दोनों के ही गुण का समावेश हो जाता है। प्रत्यभिज्ञा तथा स्मरण के विभाव

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हैं—पूर्वस्मरण को उद्बुद्ध करनेवाली समानता तथा अदृष्टचिंता। भ्रूसमुन्नयन (भौंहों की उन्नति) आदि इसके अनुभाव हैं।

संस्कारजन्यं ज्ञानं स्मृतिः। संस्कारजन्यं ज्ञानं प्रत्यभिज्ञारूपं स्मरणरूपं च, संस्कारजन्यत्वेनोभयसंग्रहः। अन्यथा प्रत्यभिज्ञायाः पृथग्भावापत्तेः। प्रत्यभिज्ञास्मृत्योर्विभावाः संस्कारोद्बोधकाः सदृशतादृष्टचिंताद्याः।

—रसतरंगिणी, पृ० ३५३, पंचमतरंग

पंडितराज जगन्नाथ ने किसी वस्तु के श्रवण अथवा दर्शन आदि के कारण उत्पन्न संस्कारजन्य ज्ञान को स्मृति कहा है।

'संस्कारजन्यं ज्ञानं स्मृतिः। —रसगंगाधर, पृ० ६५

उदाहरण—

क. मयि सकपटं किंचित्क्वापि प्रणीतविलोचने
किमपि नयनं प्राप्ते तिर्यग्विजृंभिततारकम्।
स्मितमुपगतामालीं दृष्ट्वा सलज्जमवांचितं
कुवलयदृशः स्मेरं स्मरामि तदाननम्॥

मैंने उसके पास जाकर किसी ब्याज से उसकी ओर देखा तो उसने मेरा ओर तिरछी आंखों से देखा। उसके इस भाव से उसकी सखी मुस्कुरा उठी और उसने लज्जित होकर अपना सिर झुका दिया। उस कमलनेत्री का स्मित आनन क्षण-क्षण स्मरण होता रहता है।

यहाँ नायिका के स्मित वदन का नायक को स्मरण होने में स्मृति है।

ख. सघन कुंज छाया सुखद सीतल मंद समीर।
मन ह्वै जात अजौं वहै, वा जमुना के तीर॥

—बिहारी

यमुना के निकटस्थ निकुंजों में जाने पर कृष्ण की स्मृति होने में स्मृति है।

स्वकीया—पत्नी या अपनी स्त्री को स्वकीया कहते हैं। इसके अन्य नाम स्वा, स्वीया, स्वस्त्री भी हैं। जो स्त्री मन, वचन और कर्म से पति-प्रेम करे उसे स्वकीया कहते हैं। इसमें शील, आर्जव आदि गुण होते हैं। यह पतिव्रता, चरित्रवती, लज्जाशीला एवं पतिसेवापरायणा होती है।

बिश्वनाथ के अनुसार विनय, सरलता आदि गुणों से युक्त, घर के कर्म में तत्पर पतिव्रता नायिका स्वकीया कहलाती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विनयार्जवादियुक्ता गृहकर्मपरा पतिव्रता स्वीया।

—साहित्यदर्पण, ३/५७

तत्र स्वामिन्येवानुरक्ता स्वीया। —रसमंजरी, पृ० ५

लाजवती निसिदिन पगी, निज पति के अनुराग।
कहत स्वकीया सीलमय ताको पति बड़भाग॥

—रसराज, १०

कुलजाता कुलकामिनी सुकिया-लक्षन चारु।
पतव्रता उद्धारिजो माधुर्जालंकारु॥

—शृंगारनिर्णय, ६२

निज पति ही के प्रेममय, जाको मन बच काय।
कहत स्वकीया ताहि सों, लज्जासील सुभाय॥

—जगद्विनोद, १७

उदाहरण—

क. लज्जापर्याप्त प्रसाधनानि परभर्तृनिष्पिपासानि।
अविनय दुर्मेधांसि धन्यानां गृहे कलत्राणि॥

लज्जा ही जिसका पर्याप्त भूषण है, जो पर-पुरुष की तृष्णा से रहित है जो अविनय करना जानती ही नहीं, ऐसी सौभाग्यवती स्त्री किसी धन्यपुरुष के घर में होती है।

ख. जानति सौति अनीति है जानति सखी सुनीति।
गुरुजन जानत लाज है प्रीतम जानत प्रीति॥

—रसराज, १२

स्वकीया के तीन भेद किए गए हैं—मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा या प्रगल्भा। इस प्रकार का वर्गीकरण अवस्थानुसार है।

साऽपि कथिता त्रेधा मुग्धा मध्या प्रगल्भेति।

—साहित्यदर्पण, ३/५७

एक स्वकीया की कही, कबिन अवस्था तीनि।
मुग्धा इक, मध्या बहुरि, पुनि प्रौढ़ा परबीनि॥

—जगद्विनोद, २०

जिस नायिका के शरीर में नई तरुणाई (नवयौवन) झलक रही हो, उसे मुग्धा कहते हैं। यह अवस्था बाल्यावस्था से यौवनावस्था में पदार्पण करने की है। [दे० मुग्धा]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जिस नायिका में लज्जा और काम समान हों, उसे मध्या कहते हैं।

[दे० मध्या]

जो नायिका कामकलाकोविदा हो, उसे प्रौढ़ा या प्रगल्भा कहते हैं।

[दे० प्रौढ़ा]

मान की स्थिति में स्वकीया नायिका के धीरा, अधीरा और धीरा-धीरा भेद होते हैं। ये भेद केवल मध्या और प्रौढ़ा के ही होते हैं, मुग्धा के नहीं। इस प्रकार स्वकीया के छह भेद होते हैं—

मध्याधीरा, मध्या अधीरा और मध्याधीराधीरा।
प्रौढ़ाधीरा, प्रौढ़ा अधीरा और प्रौढ़ाधीराधीरा॥

एक नायक की जब दो पत्नियाँ हों तो प्रेम की अधिकता एवं न्यूनता के आधार पर ज्येष्ठा-कनिष्ठा नामक भेद होता है।

स्वगत—नाटकीय वृत्त की अभिव्यक्ति का एक ढंग। [दे० अश्राव्य]

स्वगुण—आचार्य भिखारीदासवर्णित एक नूतन अलंकार। जब पदार्थ पुनः अपना गुण प्राप्त कर ले या पूर्वरूप में रह जाय तो स्वगुण अलंकार होगा। यह पूर्वरूप अलंकार से स्वतंत्र है।

पाए पूरब-रूप फिरि, स्वगुन सुमति कहि देत॥

—काव्यनिर्णय, १४/२८

स्वभावज अलंकार—नायिका की स्वाभाविक भंगिमा या अदा को स्वभावज अलंकार कहते हैं। इनकी संख्या १८ है।

[दे० नायिका के अलंकार]

लीला विलासो विच्छित्तिर्बिब्बोकः किलकिंचितम्।
मोट्टायितं कुट्टमितं विभ्रमो ललितं मदः॥
विहृतं तपनं मौग्ध्यं विक्षेपश्च कुतूहलम्।
हसितं चकितं केलिरित्यष्टादशसंख्यकाः॥

—साहित्यदर्पण, ३/९१-९२

लीला, विलास, विच्छित्ति, बिब्बोक, किलकिंचित, मोट्टायित, कुट्टमित, विभ्रम, ललित, मद, विहृत, तपन, मौग्ध्य, विक्षेप, कुतूहल, हसित, चकित और केलि। स्वभाव-सिद्ध होने के कारण इन्हें स्वभावज कहा जाता है।

स्वभावतः—नामानुप्रास का प्रथम भेद। [दे० नामानुप्रास]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वभावोक्ति—गूढ़ार्थप्रतीतिमूलक अलंकार। किसी पदार्थ की जाति, गुण, क्रिया या स्वरूप का तद्वत् वर्णन ही स्वभावोक्ति अलंकार है। 'स्वभावोक्ति' का अर्थ स्वभाव का कथन है। इसमें किसी की जातिगत या स्वभावगत विशेषता का वास्तविक एवं चमत्कारपूर्ण वर्णन होता है; इसलिए इसे स्वभावोक्ति कहते हैं। स्वभावोक्ति अलंकार के लिए कवि-प्रतिभा का समुचित प्रदर्शन, सूक्ष्म पर्यवेक्षणक्षमता एवं अभिव्यक्तिपटुता अपेक्षित है। इस अलंकार में शिशु तथा पशु आदि की चेष्टाओं का चित्रण, रूप या सौंदर्य का यथातथ्य वर्णन, प्राकृतिक दृश्यों का यथार्थ अंकन तथा नीच पात्रों एवं मुग्धा नारियों की भंगिमाओं का तद्वत् वर्णन किया जाता है।

इस अलंकार का वर्णन भामह से विश्वेश्वर पंडित पर्यंत सभी आचार्यों ने किया है। संस्कृत काव्यशास्त्र में इसके दो नाम मिलते हैं—स्वभावोक्ति और जाति। वामन तथा पंडितराज जगन्नाथ ने इस अलंकार का वर्णन नहीं किया। स्वभावोक्ति की महिमा का बखान करते हुए दंडी ने कहा कि इसका साम्राज्य शास्त्र तथा काव्य दोनों में ही है।

शास्त्रेष्वस्यैव साम्राज्यं काव्येष्वप्येतदीप्सितम्॥

—काव्यादर्श, २/१३

भामह ने अपने पूर्ववर्त्ती किसी आचार्य के मत का उल्लेख करते हुए कहा कि 'स्वभावोक्ति भी एक अलंकार है, ऐसा कुछ लोग मानते हैं, जिसमें किसी पदार्थ का उसी रूप में या किसी पदार्थ की यथावत् स्थिति का वर्णन होता है। भामह के कथन से ज्ञात होता है कि वे इसे अलंकारत्व प्रदान करना नहीं चाहते।

स्वभावोक्तिरलंकार इति केचित्प्रचक्षते।
अर्थस्य तदवस्थत्वं स्वभावोऽभिहितो यथा॥

—काव्यालंकार, २/९३

दंडी ने बताया कि जब नानावस्था में स्थित वस्तु के रूप को साक्षात् रूप से दिखाया जाय तो स्वभावोक्ति अलंकार होगा। यहाँ वस्तु के स्वरूप को प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित करने को स्वभावोक्ति कहा गया है।

नानावस्थं पदार्थानां रूपं साक्षाद्विवृण्वती।
स्वभावोक्तिश्च जातिश्चेत्याद्या सालंकृतिर्यथा॥

—काव्यादर्श, ८/८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पदार्थ की जाति, क्रिया, गुण एवं द्रव्य के आधार पर दंडी ने इसके चार प्रकारों का निरूपण किया है।

जातिक्रियागुणद्रव्यस्वभावाख्यानमीदृशम्।
शास्त्रेष्वस्यैव साम्राज्यं काव्येष्वप्येतदीप्सितम्॥

—काव्यादर्श, २/१३

उद्भट ने बालकों तथा पशुओं की चेष्टाओं के यथावत् वर्णन को स्वभावोक्ति अलंकार कहा है।

क्रियायां संप्रवृत्तस्य हेवाकानां निबंधनम्।
कस्यचिन्मृगडिंभादेः स्वभावोक्तिरुदाहृता॥

—काव्यालंकारसारसंग्रह, ३/५

रुद्रट के अनुसार शिशु, मुग्ध, कातर, पशु, पक्षी या संभ्रांत व्यक्तियों एवं नीच श्रेणी के व्यक्तियों के काल और अवस्थोचित वर्णन में इस अलंकार का सौंदर्य अधिक प्रस्फुटित होता है। इसमें किसी वस्तु के रूप, क्रिया या अवयव का यथावत् वर्णन होता है।

संस्थानावस्थानक्रियादि यद्यस्य सदृशं भवति।
लोके चिरप्रसिद्धं तत्कथनमनन्यथा जातिः॥
शिशुमुग्धयुवतिकातरतिर्यक्संभ्रांतहीनपात्राणाम्।
सा कालावस्थोचितचेष्टासु विशेषतोरम्या॥

—काव्यालंकार, ७/३०, ३१

दंडी, रुद्रट और भोज इसे जाति के नाम से अभिहित करते हैं। भोज ने बताया कि जहाँ कोई पदार्थ स्वाभाविक रूप से नाना अवस्थाओं में दिखाई पड़े तो उसका उसी रूप में वर्णन करना जाति है। इन्होंने वस्तु के स्वभाव के अंतर्गत वस्तु-स्वरूप, वस्तुसंस्थान, वस्तुअवस्थान, वेष, व्यापार आदि का समावेश किया है।

नानावस्थासु जायंते यानि रूपाणि वस्तुनः।
स्वेभ्यः स्वेभ्योनिसर्गेभ्यस्तानि जातिं प्रचक्षते॥
अर्थव्यक्तेरियं भेदमियता प्रतिपद्यते।
जायमानं प्रियं व्यक्तिरूपं सा सार्वकालिकम्॥
स्वस्वमाश्रयो हेतुरिति तद्भेवहेतवः।
ये संस्थानादयस्तेषु सा विशेषेण शोभते॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तत्र स्वरूपं संस्थानमवस्थानं तथैव च।
वेषोऽव्यापार इत्याद्यैः प्रभेदैर्बहुधा स्थितम् ॥
मुग्धांगनार्भकस्तिर्यङ नीचपात्राणि चाश्रयः।
देशः कालश्च शक्तिश्च साधनानि च हेतवः॥

—सरस्वतीकंठाभरण, ३/४-८

भोज का विवेचन दंडी तथा रुद्रट से प्रभावित है। इन्होंने स्वभावोक्ति के निरूपण में कविप्रतिभा का महत्त्वपूर्ण हाथ माना है।

मम्मट ने बालकादि की स्वाश्रित या आत्मगत क्रिया एवं रूप आदि के वर्णन को स्वभावोक्ति कहा। इन्होंने बालकादि के स्वनिष्ठ व्यापार को ही स्वभावोक्ति के अंतर्गत माना है।

स्वभावोक्तिस्तु डिंभादेः स्वक्रियारूपवर्णनम्।

—काव्यप्रकाश, १०/१११

रुय्यक ने इस अलंकार के विवेचन में कविप्रतिभामात्र संवेद्य वस्तु के स्वभाव-चित्रण को महत्त्व दिया। कविप्रतिभा द्वारा वर्णित वस्तु के यथावत् वर्णन को ही स्वभावोक्ति कहा जायगा।

सूक्ष्मवस्तुस्वभाव यथावद्वर्णनं स्वभावोक्तिः। इह वस्तुस्वभाववर्णनमात्रं नालंकारः। तत्त्वे सति सर्वकाव्यमलंकारि स्यात्। नहि तत्काव्यमस्ति यत्र न वस्तुस्वभाववर्णनम्। तदर्थं सूक्ष्मग्रहणम्। सूक्ष्मः कवित्वमात्रस्य गम्यः। अतएव तन्निर्मित एव यो वस्तुस्वभावस्तस्य यथावदन्यूनानतिरिक्तत्वेन वर्णन स्वभावोक्तिरलंकारः। —अलंकारसर्वस्व, पृ० २२३

परवर्ती आचार्यों ने मम्मट के आधार पर ही इस अलंकार का निरूपण किया। शोभाकर ने स्थूल वस्तु के वर्णन में अलंकार न मानकर, सूक्ष्म-वस्तु-वर्णन को अलंकारत्व प्रदान किया। इसमें किसी वस्तु के स्वभाव का सम्यक् वर्णन अपेक्षित है।

सम्यक् स्वभाववर्णनं स्वभावोक्तिः॥

द्विविधो वस्तुनः स्वभावः स्थलः सूक्ष्मश्च। तत्र कवितृमात्रगोचरः स्थूलः। तस्य वर्णनं न कश्चिदलंकारः। सर्वस्य काव्यस्य स्वभावोक्तिप्रसंगात् सम्यग्वर्ण्यमानस्तु स्वभावः सूक्ष्मः स महाकविगोचरः। तस्य सम्यग्वर्ण्यमानस्यान्यूनानतिरिक्तत्वेन स्वभावोक्तिः। न तु साधारणस्य रूपक्रियादेस्तत्तद्बलादिगतस्य शब्देन प्रतिपादनमपि तु यथैव वस्तु तथैव प्रतिपादनमिति वस्तु संवादिनी यत्र शब्दात्प्रतिपत्तिर्भवति तत्रैवालंकारः॥ —अलंकाररत्नाकर, पृ० १८४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जयदेव किसी वस्तु की जाति, गुण क्रिया आदि में स्थित स्वभाव के तद्वत् वर्णन को स्वभावोक्ति कहते हैं।

स्वभावोक्तिः स्वभावस्य जात्यादिषु च वर्णनम् ॥

—चंद्रालोक, ५/११२

विद्याधर, विद्यानाथ, विश्वनाथ तथा विश्वेश्वर ने मम्मट के लक्षण से प्रभाव ग्रहण किया है और दीक्षित ने जयदेव की परिभाषा को उद्धृत कर दिया।

स्वभावोक्तिरसौचारु यथावद्वस्तुवर्णनम् ॥

—प्रतापरुद्रीय, पृ० २९७

वस्तुस्वभाव उच्चैर्यः सूक्ष्मो यथावदेतस्य ।
यद्वा वर्णनमेषा कथिता कविभिः स्वभावोक्तिः ॥

—एकावली, ८/७२

स्वभावोक्तिर्दुरूहार्थस्वक्रियारूपवर्णनम् ॥

—साहित्यदर्पण, १०/९२

स्वभावोक्तिः स्वभावस्य जात्यादिस्थस्य वर्णनम् ॥

—कुवलयानंद, १६२

यो वस्तुनः स्वभावस्तस्य निरुक्तिः स्वभावोक्तिः ।

—अलंकारकौस्तुभ, पृ० ३२६-२७

रीतिकालीन आचार्यों ने रुय्यक, जयदेव एवं अप्पय दीक्षित को उपजीव्य बनाकर स्वभावोक्ति का वर्णन किया है।

केशव का लक्षण परंपरागत है।

जाको जैसो रूपगुण कहिए ताही साज ।
तासों जानि स्वभाव सब, कहि बरणत कविराज ॥

—कविप्रिया, ९/८

चिंतामणि, जसवंत सिंह, मतिराम और पद्माकर आदि जयदेव से अनुप्राणित हैं।

जाको रूप स्वभाव अरु क्रिया जु जैसी होइ ।
ताको तैसोई कथन सु स्वभावोक्ति कहि कोइ ॥

—कविकुलकल्पतरु, ३/११२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सुभावोक्ति वह जानिए, बर्नन जाति सुभाइ ॥

—भाषाभूषण, १८७

जाको जैसो होय सो, बरनत तहाँ सुभाव।
तहाँ जाति यह नाम कहि, बरनत सब कविराव ॥

—ललितललाम, ३७२

स्वभावोक्ति बरनत जहाँ, केवल जाति-सुभाव ॥

—पद्माभरण, २६२

स्वभावोक्ति का खंडन—स्वभावोक्ति अलंकार का खंडन करते हुए कुंतक ने समस्त आलंकारिक परंपरा का विरोध किया है। इनके अनुसार यह अलंकार न होकर अलंकार्य है। अलंकार अलंकार्य को अलंकृत करता है। स्वभावोक्ति को अलंकार मानने पर इसका अलंकार्य क्या होगा ? किसी वस्तु के स्वभाव-कथन को अलंकार्य कहते हैं, न कि अलंकार। यदि स्वभाव-कथन को काव्य माना जायगा तो जनसामान्य के कथन भी काव्य की कोटि में परिगणित होने लग जायँगे।

शरीरं चेदलंकारः किमलंकुरुते परम् ।
आत्मेव नात्मनः स्कंधं क्वचिदप्यधिरोहति ॥
भूषणत्वे स्वभावस्य विहिते भूषणांतरे ।
भेदावबोधः प्रकटस्तयोरप्रकटोऽथवा ॥
स्पष्टे सर्वत्र संसृष्टिरस्पष्टे संकरस्ततः ।
अलंकारांतराणां च विषयो नावशिष्यते ॥

—वक्रोक्तिकाव्यजीवित, १/११-१५

कुंतक के इस कथन की आलोचना महिम भट्ट ने की और अपने प्रबल तर्कों के द्वारा स्वभावोक्ति का अलंकारत्व सिद्ध किया। इन्होंने कहा कि स्वभावोक्ति में केवल स्वभाव का ही वर्णन नहीं होता। वस्तु के दो प्रकार होते हैं—सामान्य रूप एवं विशिष्ट रूप। सामान्य रूप का ग्रहण सभी करते हैं, पर विशिष्ट रूप तो किसी प्रतिभासंपन्न कवि द्वारा ही ग्रहण किया जा सकता है।

स्वभावोक्ति अलंकार में विशिष्ट स्वभाव का ही वर्णन किया जाता है तथा कवि वस्तु के विशिष्ट रूप का सौंदर्योद्घाटन सूक्ष्म दृष्टि से करता है। इसमें कवि कल्पना-प्रसूत चित्र ही प्रस्तुत किए जाते हैं। इसलिए चमत्कार-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूर्ण कविकल्पना संपन्न चित्रों को प्रस्तुत करने के कारण स्वभावोक्ति के अलंकारत्व पर संदेह नहीं किया जा सकता।

कथं तर्हि स्वभावोक्तेरलंकारत्वमिष्यते।
नहि स्वभावमात्रोक्तौ विशेषः कश्चनानयोः॥
उच्यते वस्तुनस्तावत् द्वैरूप्यमिह विद्यते।
तत्रैकमत्र सामान्यं यद्विकल्पैकगोचरः॥
स एव सर्वशब्दानां विषयः परिकीर्त्तितः।
अतएवाभिधेयं ते सामान्यं बोधयंत्यलम्॥
विशिष्टस्य च यद्रूपं तत् प्रत्यक्षस्य गोचरः।
स एव सत्कविगिरां गोचरः प्रतिभाभुवाम्॥
यतः—रसागुणशब्दार्थचितास्तिमितचेतसः।
क्षणं स्वरूपस्पर्शोत्था प्रज्ञैव प्रतिभा कवेः॥
सा हि चक्षुर्भगवतस्तृतीयमितिगीयते।
येन साक्षात्करोत्येष भावांस्त्रैकाल्यवर्तिनः॥
इत्यादि प्रतिभातत्त्वमस्माभिरुपपादितम्।
शास्त्रे तत्त्वोक्तिकोशाख्य इति नेह प्रपंचितम्॥
अर्थस्वभावोक्तिर्या सालंकारतया मता।
यतः साक्षादिवाभांति तत्रार्थाः प्रतिभार्पिताः॥

—व्यक्तिविवेक, २/११३-१२०

कवि की प्रज्ञा ही प्रतिभा है, जो रसानुकूल शब्दार्थयोजना द्वारा निश्चल-चित्त होने पर ही प्रस्फुटित होती है। यह शंकर का तृतीय नेत्र है, जिसमें भूत एवं भावी का प्रत्यक्षीकरण करने की शक्ति होती है। स्वभावोक्ति में इसी प्रतिभा के द्वारा पदार्थों का चित्रण होता है, जो साक्षात् की भांति दिखाई पड़ते हैं।

उदाहरण—

क. तौ सम्मुखप्रचलितौ सविधे गुरूणां
मार्गप्रदानरभसस्खलितावधानौ।
पार्श्वोपसर्पणमुभावपि भिन्नदिक्कं
कृत्वा मुहुर्मुहुरुपासरतां सलज्जम्॥

—कुवलयानंद

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नायक-नायिका गुरुजनों के पास एक-दूसरे की ओर चलते हैं, किंतु एक-दूसरे को मार्ग देने में शीघ्रता करने के कारण सावधान नहीं रह पाते। इसके कारण उनके विपरीत अंग बाएँ और दाहिने परस्पर बार-बार टकरा जाते हैं और वे लज्जित होकर वहाँ से भाग जाते हैं। यहाँ लज्जाशील दंपति के स्वभाव के तद्वत् चित्रण में स्वभावोक्ति है।

ख. नासा मोरि, नचाइ दृग, करी कका की सौंह।
काँटे सी कसकति हियैं, गड़ी कटीली भौंह॥ —बिहारी

यहाँ कवि ने नायिका की मुद्रा का स्वाभाविक चित्र खींचा है।

ग. सीस मुकुट, कटि काछनी, कर मुरली उर माल।
यहि बानक मो मन बसो, सदा बिहारीलाल॥

यहाँ कृष्ण के स्वाभाविक रूप-चित्रण में स्वभावोक्ति अलंकार है।

स्वप्न—संचारी भाव। [दे० संचारी भाव] चिंता, आलस्य, श्रम आदि के कारण जब मन की क्रियाएँ रुक जायँ तो उसे निद्रा कहते हैं और निद्रा-निमग्न व्यक्ति द्वारा विषयों के अनुभव को स्वप्न कहा जाता है।

भरत इसे 'सुप्त' के नाम से अभिहित करते हैं। उनके अनुसार स्वप्न की उत्पत्ति निद्रा से होती है। यह निद्रा, विषयों के अनुभव, मोहित करने, भूमि-शयन, शरीर को फैलाने तथा सिकोड़ने आदि विभावों से उत्पन्न होती है। इसका अभिनय उच्छ्वास, निःश्वास, मंद-मंद आँखें बंद करने, निश्चेष्टता, समस्त इंद्रियों के सम्मोहित होने आदि अनुभावों द्वारा होता है।

सुप्तं नाम—निद्राभिभवविषयोपगमनमोहनक्षितितलशयनप्रसारणानुकर्षणादिभिर्विभावैः समुत्पद्यते निद्रासमुत्थम्। तदुच्छ्वसितसन्नगात्राक्षिनिमीलनसर्वेन्द्रियसम्मोहनोत्स्वप्नायितादिभिरनुभावैरभिनयेत्।

निद्राभिभवेंद्रियोपरमणमोहनैर्भवेत्सुप्तम्।
अक्षिनिमीलोच्छ्वसनैः स्वप्नायितजल्पितैः कार्यः॥
सोच्छ्वासैर्निःश्वासैर्मंदाक्षिनिमीलनेन निश्चेष्टः।
सर्वेंद्रियसम्मोहात्सुप्तं स्वप्नैश्च युंजीत॥

—नाट्यशास्त्र, ७/७५-७६

धनंजय भी इसे सुप्त कहते हैं, जो निद्रा के कारण उत्पन्न होता है।

सुप्तं निद्रोद्भवं तत्र श्वासोच्छ्वासक्रिया परम्॥

—दशरूपक, ४/२२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विश्वनाथ ने निद्रानिमग्न व्यक्ति द्वारा विषयों के अनुभव को स्वप्न कहा है। इसके अनुभाव कोप, आवेग, भय, ग्लानि, सुख तथा दुःख हैं।

स्वप्नो निद्रामुपेतस्य विषयानुभवस्तु यः ।
कोपावेगभयग्लानिसुखदुःखादिकारकः ॥

—साहित्यदर्पण, ३/१५२

भानुदत्त ने निद्रा का वर्णन किया है। इनके अनुसार जब मन अन्य इंद्रियों को छोड़कर त्वचा में समा जाय तो उसे निद्रा कहते हैं। इसकी उत्पत्ति स्वाभाविक चिंता, आलस्य तथा थकावट से होती है। इसके अनुभाव करवट बदलना, आंख तथा भौंह चलाना, बर्राना और स्वप्न देखना हैं।

इतरदिंद्रियमपहाय मनस्त्वचि यदा वर्तते तदा निद्रा। सुप्तस्य कारणत्वात्सुप्तात्प्राङ् निद्रा भरतेनोक्ता। स्वप्नवहनाडिकायां मनो यदा वर्तते तदा स्वप्नादि संभवः। तत्र विभावाः स्वभावचिंताऽऽलस्यक्लमादयः। अनुभावाः पार्श्वकरणनयनभ्रूचलनविभ्रमवचनस्वप्नदर्शनादयः।

—रसतरंगिणी, पंचमतरंग, पृ० ३६४

पंडितराज जगन्नाथ निद्रा विभाव से उत्पन्न ज्ञान को सुप्त कहते हैं।

निद्राविभावोत्थज्ञानं सुप्तम्। —रसगंगाधर, पृ० १०३

मेघदूत से—

उदाहरण—

क. मामाकाश प्रणिहितभुजं निर्दयाश्लेषहेतो-
लंब्धायास्ते कथमपि मया स्वप्नसंदर्शनेन।
पश्यंतीनां न खलु बहुशो न स्थली देवतानां
मुक्तास्थूलास्तरुकिसलयेष्वश्रुलेशाः पतंति ॥

हे मेघ! तुम मेरी प्रिया से कहना कि विरह-व्यथा के कारण मुझे अत्यंत कष्ट से निद्रा आता है। सपने में तुम्हें देखकर जब मैं तुम्हारे आलिंगन के निमित्त अपने दोनों करों को फैलाता हूँ तो उन्हें आकाश की ओर फैला देखकर तथा मेरे दुःख से दुखी होकर वनदेवता मोती की तरह आंसुओं को वृक्षों की पत्तियों पर गिराने लगते हैं। यक्ष की चेष्टाओं में यहाँ स्वप्न का वर्णन है।

ख. क्यों करि झूठी मानिए, सखि सपने की बात।
जु हरि हर्यो सोवत हिया, सो न पाइयत प्रात ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वप्नदर्शन—पूर्वानुराग का तृतीय भेद। [दे० पूर्वराग]

उदाहरण—

सुंदरि सपने में लख्यो निसि में नंदकिसोर।
होत भोर लै दधि चली पूछत सँकरी खोर॥

—पद्माकर

स्वयंदूती (स्वयंदूतिका)—दूती का एक भेद। जो स्वयं अपना दूतत्व (दूतपन) करे, उसे स्वयंदूतिका कहते हैं।

आपुहि अपनो दूतपन, करै जु अपने काज।
ताहि स्वयं दूती कहत, ग्रंथन में कबिराज॥

—जगद्विनोद, ३७५

उदाहरण—

क. पथिक, पिपासित इव लक्ष्यसे यासि तत्किमन्यत्र।
न मनागपि वारक इहास्ति गृहे घनरसं पिबताम्॥

अरे बटोही ! तुम तो प्यासे-से लग रहे हो। भला इस हालत में और कहीं जाने से क्या लाभ? यहाँ कोई रोक-टोक नहीं, जी भरकर घनरस (वर्षाजल किंवा संभोग-सुख) का पान कर लो।

ख. मोही सों किन भेंटि लै, जौ लौं मिलै न बास।
सीतभीत तेरो हियो, मेरो हियो हमाम॥

—जगद्विनोद, ३७७

स्वस्त्री—स्वकीया (नायिका) का नाम स्वस्त्री (पत्नी) है।
[दे० स्वकीया]

स्वरभंग—सात्त्विक भाव। [दे० अनुभाव] स्वरभंग का अर्थ बोली का बदल जाना, तीव्र या मंद होना या गद्गद हो जाना है। भय, मद, क्रोध, आनंद आदि के कारण स्वाभाविक वाणी का बदलना स्वरभंग है। इस स्थिति में गला भर्रा जाता है या स्वाभाविक ध्वनि में परिवर्त्तन होता है। भरत ने बतलाया है कि भय, हर्ष, क्रोध, जरा, रूक्षता, मद्यपान तथा रोगादि से स्वरभंग होता है। इसका प्रदर्शन ध्वनि के गद्गद होने तथा बदल जाने में होता है।

स्वरभेदोभयहर्षक्रोधजरारौक्ष्यरोगमदजनितः।

—नाट्यशास्त्र, ७/९९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विश्वनाथ मद, हर्ष, पीड़ा आदि के कारण गले के गद्गद होने को स्वर-भंग या स्वरभेद कहते हैं।

मदसंमदपीडाद्यैर्वैस्वर्यं गद्गदं विदुः ।

—साहित्यदर्पण, ३/१३८

भानुदत्त ने बताया कि क्रोध, भय, हर्ष तथा मद के कारण स्वरभंग होता है। इसमें स्वाभाविक स्वर बदल जाता है।

गद्गदत्वप्रयोजकीभूतस्वरस्वभाववैजात्यं स्वरभंगः ।
अस्य विभावाः क्रोधभयहर्षमदाः ।

—रसतरंगिणी, पृ० ३२६, चतुर्थ तरंग

उदाहरण—

क. व्यक्तिः स्यात्स्वरभेदस्य कोपादुक्तिः क्रियेत चेत् ।
इति पत्युः पुरो राधा मौनमाधाय तिष्ठति ।।

राधा इसी कारण प्रिय के समक्ष मौन धारण कर बैठी हुई है कि यदि वह क्रुद्ध होकर बोल पड़ी तो स्वर-भेद हो जायगा, गला भर्रा उठेगा अर्थात् क्रोध के स्थान पर प्रेम प्रकट हो जायगा। यहाँ राधा के प्रेमजन्य स्वरभंग का वर्णन है।

ख. हौं जानत जो नाह तुम, बोलत अध-अखरान ।
संग लगे कहुँ और के, करि आए मद पान ।।

यहाँ मदपान के कारण स्वर बदलने का वर्णन है।

स्वरूप—अग्निपुराण में वर्णित एक अल्प-प्रसिद्ध अलंकार। वस्तु-स्वभाव का तद्वत् वर्णन स्वरूप अलंकार है। इसके दो भेद हैं—निज एवं आगंतुक। स्वाभाविक वर्णन को निज तथा कारणवश वर्णन को आगंतुक कहते हैं। इसका लक्षण स्वभावोक्ति का ही है। [दे० स्वभावोक्ति]

स्वभाव एव भावानां स्वरूपमभिधीयते ।
निजमागंतुकं चेति द्विविधं तदुदाहृतम् ।।
सांसिद्धिकं निजं नैमित्तिकमागंतुकं तथा ।।

—अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग, ८/३, ४

स्वा—नायिका का एक प्रकार। काव्यशास्त्र में 'स्वा' का अर्थ स्वकीया या पत्नी है। [दे० स्वकीया]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वाधीनपतिका—नायिका का अवस्थानुसार भेद। [दे० नायिका भेद] इसे स्वाधीनभर्तृका भी कहते हैं। जिसका पति रूप-गुण से आकृष्ट होकर सदा नायिका के निकट, उसके प्रेम-पाश में बँधकर रहे या उसके वश में रहे, उसे स्वाधीनपतिका या स्वाधीनभर्तृका कहते हैं। भानुदत्त ने इसकी चेष्टाओं में वनविहार एवं जलविहार, मदनमहोत्सव मनाना, मन में उत्कृष्ट मात्रा में हर्ष का होना तथा प्रिय को वशीभूत करने के गुण को अपने में जानकर अभिमान व्यक्त करने का उल्लेख किया है।

—सदा साऽऽकूताज्ञाकर-प्रियतमा स्वाधीनपतिका। निरंतराज्ञाकरप्रियत्वमित्यर्थः। अस्याश्चेष्टा वनविहारादि-मदनमहोत्सव-मदाहंकार-मनोरथावाप्ति-प्रभृतयः। मदो हर्षोत्कर्षः।

—रसमंजरी, पृ० १३४

यह भेद मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा, परकीया और सामान्या—सभी में घटित होता है। इसका सर्वप्रथम विवेचन भरत ने किया है, तत्पश्चात् उनके आधार पर रुद्रट, भोज, धनंजय, विश्वनाथ तथा भानुदत्त ने इसका निरूपण किया।

भरत ने बताया कि स्वाधीनपतिका का प्रिय सदा उसके प्रेम के रस में आबद्ध होकर समस्त प्रेम-प्रसंग से आनंद प्राप्त करता हुआ नायिका के निकट बना रहता है।

सुरतादिरसैर्बद्धो यस्याः पार्श्वगतः प्रियः।
सामोदे गुणसंयुक्ता भवेत् स्वाधीनभर्तृका॥

—नाट्यशास्त्र, २४/२०७

रुद्रट के अनुसार जिसका पति सुरत के विलास से आकृष्ट होकर सदा नायिका के निकट रहे, वह विविध प्रकार की क्रीड़ा में आसक्त रहनेवाली नायिका स्वाधीनभर्तृका है।

यस्याः सुरतविलासैराकृष्टमनाः स्थितः पार्श्वे।
विविधक्रीडासक्ता स्वाधीनपतिर्भवेत्तत्र॥

—काव्यालंकार, १२/४०

भोज ने बताया कि जिसका पति चित्रविचित्र सुरतक्रीड़ा रसास्वादन के लोभ से सदा नायिका के निकट रहे, उसका साथ कभी न छोड़े तो उसे स्वाधीनपतिका कहा जायगा।

स्वाधीनपतिका सा तु यस्याः पार्श्वं न मुंचति।
प्रियश्चित्ररतक्रीडासुखास्वादेन लोलुपः॥

—सरस्वतीकंठाभरण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धनंजय के अनुसार जिसका पति या नायक उसके पास रहकर उसके अधीन रहे तो प्रिय की समीपता के कारण प्रसन्न रहनेवाली नायिका स्वाधीन-पतिका होती है।

आसन्नायत्तारमणा हृष्टा स्वाधीनभर्तृका ॥—दशरूपक, २/२४

विश्वनाथ ने कहा कि जिसका प्रिय रतिगुण से आकृष्ट होकर उसका साथ न छोड़े, वह विचित्र विलासों से युक्त नायिका स्वाधीनभर्तृका होती है।

कांतोरतिगुणाकृष्टो न जहाति यदंतिकम्।
विचित्रविभ्रमासक्ता सा स्यात्स्वाधीनभर्तृका ॥

—साहित्यदर्पण, ३/७४

सदा रूपगुन रीझि पिय जाके रहे अधीन।
स्वाधीनपतिका तियै बरनत कबि परबीन ॥

—मतिराम, रसराज १८७

जा तिय के आधीन ह्वै, पीतम रहै हमेस।
सु स्वाधीनपतिका कही, कबिन नायिका बेस ॥

—जगद्विनोद, २१३

उदाहरण—

क. मा गर्वमुद्वह कपोलतले चकास्ति
कांतस्वहस्तलिखिता मम मंजरीति।
अन्यापि किं न सखि भाजनमीदृशानां
वैरी न चेद्भवति वेपुथरंतरायः ॥ —दशरूपक

"हे सखि! मेरे कपोल के ऊपर प्रिय के अपने करों से रचित पत्रावली वर्त्तमान है, यह जानकर गर्व न करो, यदि प्रिय के निकट रहने से स्पर्शजन्य कंप शत्रु बनकर न आए तो क्या अन्य नारियाँ ऐसी पत्रावली का पात्र नहीं बन सकती?" भाव यह कि दूसरी नायिकाओं के कपोल पर इसलिए पत्रावली नहीं बन पाती, क्योंकि कंप के कारण नायक उसे लिख नहीं पाता।

मुग्धा स्वाधीनपतिका का उदाहरण—

ख. आपुने हाथ सों देत महावर आप ही बार सँवारत नीके।
आपुन ही पहिरावत आनि कै हाथ सँवारिकै मौरसिरी के।
हौं लखि लाजनि जात मरी मतिराम सुभाव कहा कहौं पी के।
लोग मिलैं घर घैरु करैं अबही ते ये चेरे भए दुलही के ॥

—रसराज, १७९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भरत ने स्वाधीनभर्तृका की विशेषताओं एवं छवि का वर्णन करते हुए कवियों एवं नाटककारों को निर्दिष्ट किया है कि वे उसे विचित्र उज्ज्वल वेष से युक्त, आनंदोद्योतित मुँहवाली एवं विवर्धित शोभा से युक्त चित्रित करें।

विचित्रोज्ज्वलवेषा च प्रमोदोद्योतितानना ।
उदीर्णशोभातिशया कार्या स्वाधीनभर्तृका ॥

—नाट्यशास्त्र, २४/२१७

रुद्रट ने अन्यत्र भी स्वाधीनपतिका का वर्णन किया है—

यस्याः पतिरायत्तः क्रीडासु तया समं रतौ मुदितः ।
सा स्यात्स्वाधीनपती रतिमंडनलालसासक्ता ॥

—काव्यालंकार, १२/४५

जिस स्त्री का पति उसके वश में होकर उसके साथ रति-क्रीड़ा में मुदित रहता है, रति के मंडन (आभूषण) स्वरूप लालसाओं में आसक्त वह नायिका स्वाधीनपतिका होती है।

स्वाधीनभर्तृका—नायिका का एक भेद-विशेष। जिस नायिका का पति सदा उसके अधीन रहे, उसे स्वाधीनभर्तृका कहते हैं। इसका अन्य नाम स्वाधीनपतिका भी है। [दे० **स्वाधीनपतिका**] स्वाधीनभर्तृका का अर्थ है पति को अधीन रखनेवाली।

स्वाधीनभर्तृका—स्वाधीनपतिका नायिका का अन्य नाम [दे० **स्वाधीनपतिका**]

स्वीया—स्वकीया (पत्नी) नायिका का अन्य नाम। [दे० **स्वकीया**]

स्वेद—सात्त्विक भाव का एक भेद। [दे० **अनुभाव**] स्वेद का अर्थ है पसीना चलना। हर्ष, क्रोध, श्रम, रतिप्रसंग, मानसिक संताप आदि के कारण रोमकूपों से जलबिंदु का प्रकट होना स्वेद है।

भरत क्रोध, भय, हर्ष, लज्जा, दुःख, श्रम, रोग, घात, व्यायाम, थकावट, गर्मी के कारण स्वेद की उत्पत्ति मानते हैं।

क्रोधभयहर्षलज्जादुःखश्रमरोगतापघातेभ्यः ।
व्यायामक्लमघर्मैः स्वेदः संपीडनाच्चैव ॥

—नाट्यशास्त्र, ७/९५

विश्वनाथ रति, घर्म (गर्मी या धूप) तथा श्रम आदि के कारण शरीर से जलस्राव होने को स्वेद कहते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वपुर्जलोद्गमः स्वेदो रतिघर्मश्रमादिभिः ।

—साहित्यदर्पण, ३/१३६

शरीर से पसीना निकलने को भानुदत्त ने स्वेद कहा है। यह मानसिक संताप, हर्ष, लज्जा, क्रोध, भय, श्रम, पीडा, आघात तथा मूर्च्छा (विभाव) के कारण उत्पन्न होता है।

वपुषि सलिलोद्गमः स्वेदः। अस्य विभावा मनस्तापहर्षलज्जाक्रोधभयश्रम-पीडाघातमूर्च्छा ।

—रसतरंगिणी, पृ० ३२४, चतुर्थतरंग

उदाहरण—

क. कांते तव कुचप्रांते राजंते स्वेदबिंदवः ।
हृष्यता मदनेनेव कृता कुसुमवृष्टयः ।।

"हे प्रिय ! तुम्हारे स्तनों पर स्वेद की बूँदें ऐसी सुशोभित हो रही हैं, मानो कामदेव ने प्रसन्न होकर फूलों की वर्षा कर दी है।" यहाँ नायक को देखकर नायिका के स्तनों पर स्वेद का प्रकट होना स्वेदसात्त्विक अनुभाव है ।

ख. रहौ गुही बेनी लख्यौ गुहिबे कै त्यौ नार ।
लागे नीर चुवान जे नीठि सुखाये बार ।। —बिहारी

नायक द्वारा नायिका का केश बाँधने में हाथ से पसीना का आना स्वेद है ।

ह

हतवृत्तता—वाक्यदोष का चतुर्थ भेद । [दे० वाक्यदोष]

हल्लीश—उपरूपक का एक भेद। [दे० उपरूपक] इसमें एक ही अंक होता है और सात, आठ या दस स्त्री पात्र होते हैं। इसका नायक उदात्त वाणी बोलनेवाला एक पुरुष होता है और कैशिकी वृत्ति की प्रधानता रहती है। इसमें गान, ताल और लय का आधिक्य होता है तथा मुख और निर्वहण दो ही संधियाँ रहती हैं। इसका उदाहरण 'केलिरैवतक' है।

हल्लीश एक एवांकः सप्ताष्टौ दश वा स्त्रियः ।
वागुदात्तैकपुरुषः कैशिकीवृत्तिरुज्ज्वला ।
मुखांतिमौ तथा संधी बहुताललयस्थितिः ।।

—साहित्यदर्पण, ६/३०७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हर्ष—संचारी भाव। [दे० संचारी भाव] अभीष्ट वस्तु का प्राप्ति से मन का प्रफुल्लित होना हर्ष है।

भरत के अनुसार हर्ष मनोरथ की पूर्त्ति, प्रियजन के आगमन, मानसिक परितोष, देवता, राजा तथा गुरु की प्रसन्नता आदि विभावों-द्वारा उत्पन्न होता है। इसका अभिनय नेत्र एवं मुख की चमक, प्रसन्नता, प्रियभाषण, आलिंगन, रोमांच, पुलक, अश्रु, स्वेद प्रभृति अनुभावों-द्वारा होता है।

हर्षोनाम—मनोरथलाभेष्टजनसमागमनमनःपरितोषदेवगुरुराजभर्तृप्रसादभोजनाच्छादनलाभोपभोगादिभिर्विभावैः समुत्पद्यते। तमभिनयन्नयनवदनप्रसादप्रियभाषणालिंगनकंटकितपुलकितास्रस्वेदादिभिरनुभावैः।

अप्राप्ये प्राप्ये वा लब्धेऽर्थे प्रियसमागमेवाऽपि।
हृदयमनोरथलाभे हर्षः संजायते पुंसाम्॥
नयनवदनप्रसादप्रियभाषालिंगनैश्च रोमांचैः।
ललितैश्चांगविहारैः स्वेदाद्यैरभिनयस्तस्य॥

—नाट्यशास्त्र, ७/६१-६२

धनंजय के अनुसार, उत्सव (प्रिय व्यक्ति का आगमन) या पुत्रजन्म के कारण उत्पन्न चित्त की प्रसन्नता को हर्ष कहते हैं। अश्रु, स्वेद तथा गद्गद होना इसके अनुभाव हैं।

प्रसक्तिरुत्सवादिभ्यो हर्षोऽश्रुस्वेदगद्गदाः।

—दशरूपक, ४/१४

विश्वनाथ इष्ट पदार्थ की प्राप्ति के कारण उत्पन्न मनःप्रसादन को हर्ष कहते हैं, जो स्वेद, आनंदाश्रु तथा गद्गद स्वर द्वारा व्यक्त होता है।

हर्षस्त्विष्टावाप्तेर्मनःप्रसादोऽश्रुगद्गदादिकरः।

—साहित्यदर्पण, ३/१६५

भानुदत्त ने चित्त की प्रसन्नता को हर्ष कहा है। यह प्रियदर्शन, पुत्रोत्पत्ति, मंगल के अवसर प्रभृति विभावों-द्वारा उत्पन्न होता है। इसके अनुभाव रोमांच, अश्रु तथा स्वरभंग हैं।

चेतः प्रसादो हर्षः। प्रियदर्शनपुत्रजननादयो विभावाः। अनुभावाः पुलकस्वेदाश्रुस्वरभेदादयः। —रसतरंगिणी, पृ० ३५७, पंचमतरंग

पंडितराज जगन्नाथ ने अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति के कारण उत्पन्न सुखविशेष को हर्ष कहा है।

इष्टप्राप्त्यादिजन्मा सुखविशेषो हर्षः।—रसगंगाधर, पृ० ९५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

देवभर्तृ गुरुस्वामिप्रसादः प्रियसंगमः ।
मनोरथाप्तिरप्राप्यमनोहरधनागमः ।।
तथोत्पत्तिश्च पुत्रादेर्विभावो यत्र जायते ।
अश्रु स्वेदादयश्चानुभावा हर्षं तमादिशेत् ।

—वही, पृ० ९५

निष्कर्ष यह कि चित्त की प्रसन्नता ही हर्ष है, जो इष्टलाभ (प्रियमिलन आदि) के कारण उत्पन्न होता है।

उदाहरण—

क. समीक्ष्यपुत्रस्य चिरात्पिता मुखं
निधानकुंभस्य तथैव दुर्गतः ।
मुदाशरीरे प्रबभूव नात्मनः
पयोधिरिंदूदयमूर्च्छितो यथा ।।

पुत्रप्राप्ति के कारण यहाँ राजा दिलोप के हर्ष का वर्णन है। —"जिस प्रकार कोई निर्धन स्वर्णमुद्रा से पूरित घट को देखकर उल्लसित होता है या चंद्रोदय के कारण समुद्र प्रसन्न होकर बढ़ने लगता है, उसी प्रकार परिणतवय में पुत्र का मुँह देखकर राजा हर्षाधिक्य से प्रफुल्लित हो उठे।"

ख. तुमहिं बिलोकि बिलोकिए, हुलसि रहे यों गात ।
आँगी में न समात उर, उर में मुद न समात ।।

यहाँ प्रिय के आगमन के कारण नायिका के हर्ष का वर्णन है।

हसित—नायिका का स्वभावज अलंकार। [दे० नायिका के अलंकार] यौवनोद्गम के कारण प्रिय के समक्ष अकारण हँसने को हसित कहते हैं।

हाव—अंगज अलंकार। [दे० नायिका के अलंकार] भौंह तथा नेत्र की चेष्टाओं से संभोग की अभिलाषा सूचित करनेवाले मनोविकारों का कुछ प्रकट होना हाव है।

हास—हास्यरस का स्थायी भाव। [दे० हास्यरस] विकृत वेषभूषा अथवा वचन के विकार से उत्पन्न आनंद के कारण हँसी का आना हास है। इसका प्रथम विवेचन आचार्य भरत ने किया है। उन्होंने बताया कि हास्य की उत्पत्ति अन्य व्यक्तियों की चेष्टा के अनुकरण से होती है। हास्य स्थायी का अभिनय या प्रदर्शन स्मित, हास्य या अतिहास्य के रूप में होना चाहिए।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसकी उत्पत्ति में अन्य व्यक्तियों की चेष्टाओं का अनुकरण, असंबद्ध प्रलाप तथा मूर्खता आदि कारण बनते हैं।

परचेष्टानुकरणाद्धासः समुपजायते।
स्मितहासातिहसितैरभिनेयः स पंडितैः॥

—नाट्यशास्त्र, ७/१०

हासो नाम परचेष्टानुकरणकुहकासंबद्धप्रलापपौरोभाग्यमौर्ख्यादिभिर्विभावैः समुत्पद्यते। तमभिनयेत्पूर्वोक्तैर्हसितादिरनुभावैः।

—वही, पृ० १२६

हेमचंद्र ने चित्त के विकास को हास कहा है—

चेतसो विकासो हासः।

—काव्यानुशासन, पृ० १२६

रामचंद्र-गुणचंद्र रंजन (मन की प्रसन्नता) तथा उन्माद से उत्पन्न मनोदशा को हास कहते हैं।

रंजनोन्मादानुविद्धश्चित्तस्य विकासो हासः

—नाट्यदर्पणम्, ३/१२६, पृ० ३३०

विश्वनाथ के अनुसार वाणी, रूप आदि की विकृति के दर्शन से चित्त का विकसित होना हास है।

वागादिवैकृतैश्चेतोविकासो हास इष्यते॥

—साहित्यदर्पण, ३/१७६

पंडितराज ने अन्यों के वचन, अंग और वेष में विकृति के दर्शन से उत्पन्न विकास नामक चित्तवृत्ति को हास कहा।

वागंगादिविकासदर्शनजन्मा विकासाख्योहासः

—रसगंगाधर, पृ० ३६

हास स्थायी भाव में हास्य की केवल व्यंजना होती है, हास्य की पूर्णता नहीं होती। यदि हास्य की पूर्णता हो जाए तो वह स्थायी भाव न होकर रस हो जाएगा। विद्यानाथ अपने या दूसरों की विकृति को देखकर उत्पन्न होनेवाले मनोविकार को हास कहते हैं।

विकृतिदर्शनादिजन्यो मनोविकारो हासः

—प्रतापरुद्रीय, पृ० १६४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अपने अथवा दूसरों के वेष, वाणी (भाषा), आकृति, भाषण आदि के विकार से हास उत्पन्न होता है।

भानुदत्त ने कुतूहल उत्पन्न करनेवाले विकृत वचन, बेष तथा चेष्टा के दर्शन-श्रवण से उत्पन्न होनेवाले विनोदपूर्ण मनोविकार को हास कहा है।

कुतूहलकृतवचनवेषचेष्टावैसादृश्यकृतो विनोदपूर्णः मनोविकारः हासः।

—रसतरंगिणी, पृ० २०१

कुतूहलकृतवचनवेषवैसादृश्यकृतो मनोविकारः परिमितो हासः। वचनभेद वेषभेदकृते भयक्रोधे नातिव्याप्तिः। तत्र कुतूहलकृतत्वाभावात्।

—वही, पृ० २००

शारदातनय के अनुसार चित्त के आनंद का विशेष विकास हास है।

प्रीतेर्विशेषश्चित्तस्य विकासो हास उच्यते ॥

—भावप्रकाशन, द्वितीय अधिकार

उदाहरण—

क. शिक्षितापि सखिभिर्ननु सीता रामचंद्रचरणौ न ननाम।
किं भविष्यति मुनीशवधूवद् भालरत्नमिह तद्रजसेति ॥

"सखियों-द्वारा सिखाने पर भी सीता ने रामचंद्र के चरणों में सिर नहीं नवाया। उन्हें भय था कि रामचंद्र के चरणों का रज मस्तक पर लगे हुए रत्न से लगकर कहीं अहल्या के समान कोई नारी न बन जाय।

यहाँ सीता की भावना में हास का पुट है।

ख. मोहन मालिनि रूप रचि, लै कर चंपक हार।
ओठन भीतर ही तनिक, लखि मुसकानी दार ॥

मोहन के मालिन रूप को देखकर नायिका का होठ के भीतर थोड़ा हँसना 'हास' स्थायी भाव है।

बचन रूप को रचन तें कछु उर लहै विकास।
तातें परमित जो हसनि वहै कहीजत हास ॥

—जगद्विनोद, ५८३

हास्यरस—विकृत आकार, चेष्टा, वेष एवं वाणी आदि के वर्णन से हास्यरस की उत्पत्ति होती है। भरत ने इसके मूल में विकृति को ही अवस्थित माना है। यह हास स्थायी भावात्मक रस है अर्थात् इसका स्थायी भाव हास

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। [दे० हास] हास्यरस के आलंबन हैं—विकृत वेष-भूषा तथा वचन आदि और उद्दीपन हैं—अनुपयुक्त वचन तथा हास्योत्पादक चेष्टाएँ। इसके अनुभाव हैं—मुख, नासिका, अधर का फैलना, आँखों का मींचना आदि तथा संचारी भावों में निद्रा, आलस्य, चपलता, उत्सुकता, अवहित्था आदि। इसका वर्ण शुक्ल है और अधिष्ठातृ देवता प्रमथ (शिवगण) कहे गए हैं। भरत ने इसका विवरण इस प्रकार दिया है—

अथ हास्यो नाम हासस्थायिभावात्मकः। स च विकृतपरवेषालंकारधार्ष्ट्य-लौल्यकुहुकासत्प्रलापव्यंगदर्शनदोषोदाहरणादिभिर्विभावैरुत्पद्यते। तस्योष्ठनासा-कपोलस्पंदनदृष्टिव्याकोशाकुंचनस्वेदास्यरागपार्श्वग्रहणादिभिरनुभावैरभिनयः प्रयो-क्तव्यः। व्यभिचारिणश्चास्यावहित्थालस्यतंद्रानिद्रास्वप्नप्रबोधासूयादयः। द्विविध-श्चायमात्मस्थाः परस्थश्च। यदा स्वयं हसति तदाऽऽत्मस्थः। यदातु परं हासयति तदा परस्थः।

—नाट्यशास्त्र, ६/४८

यह आत्मस्थ और परस्थ के नाम से दो प्रकार का होता है। जब व्यक्ति स्वयं हँसे तो आत्मस्थ एवं दूसरे को हँसाए तो परस्थ हास्य होगा।

भरत ने हास्यरस के मूल में विकृति का भाव माना है और इसे सभी रसों से अधिक सुखात्मक कहा है। इसका जन्म शृंगार से माना गया है। पंडितराज जगन्नाथ ने उक्त भेदों की अन्य प्रकार से व्याख्या की है। हास्य-विषय को देखकर हास्य का उत्पन्न होना आत्मस्थ है और दूसरे को हंसता देखकर स्वयं हँसना परस्थ। वस्तुतः पंडितराज का लक्षण ही अधिक वैज्ञानिक है।

आलंकारिकों में सर्वप्रथम रुद्रट ने हास्य रस का विवेचन किया है। उनके पूर्व भामह, दंडी, उद्भट तथा वामन ने इसे अलंकार तथा गुण (वामन) के अंतर्गत स्थान दिया था। उन्होंने भरत के विकृति-सिद्धांत के अतिरिक्त अधोगति-सिद्धांत को अपनाकर हास्यरस का निरूपण किया। रुद्रट ने दूसरों के विकृत अंग, चेष्टा, वेष आदि से हास्यरस की उत्पत्ति बताई और उसे नीच, स्त्री और बालक से संबद्ध माना। उत्तम पात्रों के नेत्र और कपोल हास्य के समय विकसित हो जाते हैं और कुछ दांत दिखाई पड़ते हैं। मध्यम पात्रों का हास्य के समय मुँह खुल जाता है और नीच पात्र अट्टहास करते हैं, जिससे उनके नेत्रों में जल आ जाता है। रुद्रट ने शिष्टता और अशिष्टता के आधार पर हास्य का वर्गीकरण कर इसे सर्वप्रथम सामाजिक परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास किया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हास्यो हासप्रकृतिर्हासो विकृतांगवेषचेष्टाभ्यः ।
भवति परस्थाभ्यः स च भूम्ना स्त्रीनीचबालगतः ॥
नयनकपोलविकासी किंचिल्लक्ष्यद्विजोऽप्यसौ महताम् ।
मध्यानां विवृतास्यः सशब्दवाष्पश्च नीचानाम् ॥

—काव्यालंकार, १६/११, १२

हास्य के विवेचन में अभिनवगुप्त का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे सभी रसों के आभास से हास्य की सिद्धि स्वीकार करते हैं। अभिनव हास्य की उत्पत्ति न केवल शृंगार से, अपितु शोक से भी मानते हैं।

उन्होंने बताया कि अबंधु (शत्रु) के प्रति शोक का भाव हास्य में परिणत हो जाता है। अभिनव ने अनौचित्य तथा आभास की आधार-भूमि पर हास्य को अधिष्ठित कर नवीन दृष्टि का उन्मेष किया।

एवं यो यस्य न बंधुस्तच्छोके करुणोऽपि हास्य एवेति सर्वत्र योज्यम्।

—अभिनवभारती, भाग १, पृ० २९६

इनके अनुसार शृंगार एवं करुणरस के स्थायी भावों के द्वारा सजातीय प्रतीति उत्पन्न नहीं होती, जबकि हास्य रस का स्थायी भाव सजातीय प्रतीति को उत्पन्न करने में पूर्णतः समर्थ होता है। शृंगाररस के स्थायी भाव रति के द्वारा उत्पन्न रस की प्रतीति सुखात्मक होती है और करुणरस के स्थायी भाव शोक से उत्पन्न प्रतीति सुखात्मक न होकर दुःखात्मक होती है। दोनों रसों के स्थायी भाव विजातीय प्रतीति को उत्पन्न करते हैं; किंतु हास्यरस का स्थायी भाव हास सजातीय प्रतीति को उत्पन्न करता है। करुण तथा शृंगाररस के विभावादि असाधारण होते हैं, जबकि हास्यरस के साधारण। शृंगार तथा करुण काव्य या नाटक में आनंद की प्रतीति कराते हैं, लोक में नहीं। उदाहरण के लिए रति आदि क्रीड़ाओं को देखकर लज्जा या संकोच का भाव उत्पन्न होता है; किंतु काव्य तथा नाटक में इसके द्वारा आनंदानुभूति होती है। हास्यरस के विभाव न केवल काव्य में, बल्कि लोक में भी हास्योत्पादक होते हैं।

भरत ने हास्यरस के अन्य छह भेदों का भी कथन किया है—स्मित, हसित, विहसित, अवहसित, अपहसित और अतिहसित। इनमें स्मित तथा हसित उत्तम प्रकृति के पुरुषों में, विहसित और अवहसित मध्यम प्रकृति के व्यक्तियों में तथा अपहसित एवं अतिहसित अधम प्रकृति के मनुष्यों में होते हैं। उपर्युक्त सभी भेदों में हास्य की मात्रा क्रमशः बढ़ती जाती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उदाहरण—

क. गुरोर्गिरः पंच दिनान्यधीत्य
वेदांतशास्त्राणि दिनत्रयं च।
अमी समाघ्राय च तर्कवादान्
समागतः कुक्कुटमिश्रपादाः।।

यहाँ विद्वन्मंडली में वस्त्रादि आडंबर से पूर्ण किसी मूर्ख को देखकर किसी की उक्ति है—"यह कुकुक्ट मिश्रजी आ गए हैं, सामने से हट जाओ। इन्होंने प्रभाकर गुरु के मीमांसा-दर्शन को पाँच ही दिनों में पढ़ लिया है और वेदांत-दर्शन को तीन ही दिनों में साफ कर दिया है। आपने न्याय-दर्शन के सभी तर्क-वादों को सूँघ डाला है।"

ख. विधि हरि संग हर हिम के भवन ठाढ़े,
कुँवर कलेऊ कों दिगंबर सुभेष कैं।
कहत 'बिहारी' सजी पन्नग लँगोटी एक,
जानकैं मृजाद राजभवन विशेष कैं।।
तौलौं गए गरुड़ विलोकि सो भुजंग भाज्यो,
संभु सकुचाने हँसे साथी प्रभा पेखि कैं।
ब्रह्मा हँसे रारी दै दै विष्णु हँसे तारी दै दै,
नारी हँसी सारी दै दै दूल्हा देख-देख कै।।

—बिहारीलाल भट्ट

शिवजी को नग्न देखकर लोगों का हँसना हास स्थायी है। शिवजी आलंबन हैं और उनका नग्न रूप तथा गरुड़ को देखकर लँगोटी बने सर्प का खिसकना उद्दीपन विभाव है। नग्न महादेव को देखकर ब्रह्मा-विष्णु आदि का ताली बजाकर हँसना और नारियों का वस्त्र देकर हँसना अनुभाव है और हर्ष, चपलता आदि संचारी हैं।

हृदय कवि—कवियों का एक भेद। [दे० कवि] जो कवि काव्य की रचना करके भी, संकोचवश, उसे प्रकाशित न करे और अपने हृदय तक ही उसे सीमित रखे, उसे हृदय कवि कहते हैं। राजशेखर ने कवि का यह प्रकार अवस्था की दृष्टि से किया है।

यो हृदय एव कवते निह्नुते च स हृदयकविः।।

—काव्यमीमांसा, पंचम अध्याय, पृ० ५०
चौखंबा-संस्करण (हिंदी अनुवाद)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हृदय भावक—भावक का एक भेद। [दे० भावक]

हेतु—संगतिमूलक अलंकार। जब कारण और कार्य का एक साथ कथन किया जाय या कारण और कार्य में अभेद दिखलाया जाय तो हेतु अलंकार होता है। हेतु का अर्थ कारण है। इसमें या तो कारण और कार्य का अभेद-कथन किया जाता है या कारण और कार्य का एक साथ वर्णन होता है। इस अलंकार में कारण और कार्य के जन्य-जनक-संबंध को हटाकर दोनों में एकत्व स्थापित किया जाता है।

हेतु अलंकार का उल्लेख भामह ने किया है। तत्पश्चात् दंडी, रुद्रट, भोज, अग्निपुराणकार, विश्वनाथ एवं अप्पय दीक्षित ने इसका निरूपण किया।

भामह ने वचनवक्रता के अभाव में हेतु, सूक्ष्म और लेश के अलंकारत्व को अमान्य घोषित किया था।

हेतुश्च सूक्ष्मो लेशोऽथ नालंकारतया मतः।
समुदायाभिधानस्य वक्रोक्त्यनभिधानतः॥

—काव्यालंकार, २/८६

दंडी ने काव्य का उत्तम भूषण मानकर हेतु अलंकार का वर्णन किया है। इनके अनुसार कारण और कार्य की सहस्थिति का नाम हेतु है। दंडी ने इसके सोलह भेदों का उल्लेख किया है—प्रवृत्तिकारक निवृत्तिकारक, कर्मार्थं संपादक, विकार्य, प्राप्य, ज्ञापक, प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अन्योन्याभाव, अत्यंताभाव, अभावप्रतियोगिक, दूरकार्य, सहज, कार्यांतरज, सहज, अयुक्तकार्य तथा युक्तकार्य हेत्वलंकार।

हेतुश्च सूक्ष्मलेशौ च वाचामुत्तमभूषणम्।
कारकज्ञापकौ हेतू तौ चानेकविधौ यथा॥ २/२३५

गतस्मर्को भातीन्दुर्यांति वासाय पक्षिणः।
इतीदमपि साध्येव कलावस्थानिवेदने॥

—काव्यादर्श, २/२४४

रुद्रट ने कारण-कार्य के अभेद-वर्णन को हेतु कहा।

हेतुमता सह हेतोरभिधानमभेदकृद्भवेद्यत्र।
सोऽलंकारो हेतुः स्यादन्येभ्यः पृथग्भूतः॥

—काव्यालंकार, ७/८२

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भोज ने हेतु के सामान्य लक्षण का कथन किया। इनके अनुसार क्रिया के कारण को हेतु कहते हैं। भोज ने इसके अनेक भेदों का वर्णन किया है। मुख्य भेद हैं—कारक, ज्ञापक, अभाव एवं चित्र। इनके भी अनेक प्रकार वर्णित हैं।

क्रियायाः कारणं हेतुः कारको ज्ञापकश्च सः।
अभावश्चित्तहेतुश्च चतुर्विध इहेष्यते ॥

—सरस्वतीकंठाभरण, ३/१२

'अग्निपुराण' में अर्थ के साधक को हेतु कहा गया है और कारक तथा ज्ञापक नामक इसके दो भेदों का वर्णन है।

सिसा (षा) धयिषितार्थस्य हेतुर्भवति साधकः।
कारको ज्ञापक इति द्विधा सोऽप्युपजायते ॥

—अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग, ८/२९,३०

विश्वनाथ पर रुद्रट का प्रभाव है। इन्होंने कार्य के साथ कारण के अभेद-कथन को हेतु कहा।

अभेदेनाभिधाहेतुर्हेतोर्हेतुमता सह ॥

—साहित्यदर्पण, १०/६३

अप्पय दीक्षित ने पूर्ववर्ती आचार्यों के विवेचन का समाहार करते हुए हेतु अलंकार की दो स्थितियों का निरूपण किया। इन्होंने कार्य के साथ कारण के वर्णन को हेतु कहा। इसके द्वितीय प्रकार में दीक्षित ने कारण और कार्य के अभेद-कथन का वर्णन किया।

हेतोर्हेतुमता सार्धं वर्णनं हेतुरुच्यते ॥ १६७
हेतुहेतुमतोरैक्यं हेतुं केचित्प्रचक्षते ॥ —कुवलयानंद, १६८

रीतिकालीन आचार्यों का हेतु-विवेचन दंडी तथा दीक्षित (कुवलयानंद) पर आश्रित है। केशवदास ने दंडी का प्रभाव ग्रहण किया है। इन्होंने इसके सभाव, अभाव और सभाव-अभाव नामक तीन प्रकारों का उल्लेख किया है।

हेतु होत हैं भाँति द्वै, बरनत सब कबिराय।
केशवदास प्रकास करि, बरनि सभाव अभाव ॥

—कविप्रिया, ९/१५

महाराज जसवंतसिंह, मतिराम एवं पद्माकर ने 'कुवलयानंद' के लक्षण का भावानुवाद कर हेतु अलंकार का विवेचन किया।

हेतु अलंकृत दोइ जब कारन कारज संग।
कारन कारज ये जबै बस्तु एक ही संग ॥—भाषाभूषण, १९४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जहाँ हेतुमत साथ ही कीजे हेतु बखान ।
तहाँ हेतु भूषन कहत कबि मतिराम सुजान ।।

—ललितललाम, ३६१

हेतुहेतुमत साथ ही हेतु कह्यौ तिहिठाम । —२७६
इकता कारज हेतु की हेतु कहत सुकबिद ।।

—पद्माभरण, २८०

मम्मट ने चमत्काराभाव के कारण हेतु में अलंकाराभाव माना है। वे इसका अंतर्भाव काव्यलिंग में करते हैं।

'हेतुमतासहहेतोरभिधानमभेदतो हेतु'रिति हेत्वलंकारो न लक्षितः। आयुर्घृतमित्यादिरूपो ह्यथं न भूषणतां कदाचिदर्हति वैचित्र्याभावात् ।।

—काव्यप्रकाश, १०/१२०

भेद—रुद्रट, विश्वनाथ ने एक भेद का और अप्पय दीक्षित ने हेतु के दो भेदों का वर्णन किया है। इसके दो भेद माने गए—

प्रथम हेतु—इसमें कारण एवं कार्य का एक साथ वर्णन होता है।

द्वितीय हेतु—इसमें कारण और कार्य में अभेद स्थापित किया जाता है।

१. प्रथम हेतु—

उदाहरण—

क. एष ते विद्रुमच्छायो मरुमार्ग इवाधरः।
कस्य नो तनुते तन्वि ! पिपासाकुलितं मनः ?

"हे सुंदरि ! मरुभूमि के समान विद्रुमच्छाय (विद्रुममणि के समान लाल, पेड़ों की छाया से रहित) तुम्हारा अधर किसके मन को प्यास से बेचैन नहीं करता ?" यहाँ पद्मराग मणि के सदृश अधर (कारण) तथा उसे देखकर चुंबनादि की इच्छा (कार्य) के होने का एक साथ वर्णन में प्रथम हेतु हुआ।

ख. घर घर डोलत दीन ह्वै जनु जनु जाचत जाइ।
दियें लोभ चसमा चखनु लघु पुनि बड़ो लखाइ ।।

—बिहारी।

यहाँ लोभरूपी चश्मा कारण है और छोटे को बड़े की तरह देखना कार्य। दोनों का एक साथ वर्णन प्रथम हेतु है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२. द्वितीय हेतु—

उदाहरण—

क. लक्ष्मीविलासा विदुषां कटाक्षा वेंकटप्रभोः ।

"वेंकटराज के कटाक्ष विद्वानों के लिए लक्ष्मी के विलास हैं ।" इसमें कटाक्ष हेतु और लक्ष्मी का विलास कार्य है । कवि ने कटाक्ष को ही विद्वानों का विलास कहकर दोनों में एकत्व स्थापित किया है ।

ख. कोऊ कोरिक संग्रहौ, कोऊ लाख हजार ।
मो संपति जदुपति सदा, बिपति बिदारनहार ॥ —बिहारी

संपत्ति कार्य है और यदुपति कारण । कवि ने कृष्ण (यदुपति) को ही संपत्ति कहकर कारण और कार्य के ऐक्य का वर्णन किया है ।

रूपक और हेतु—रूपक में उपमान तथा उपमेय के अभेदत्व का कथन किया जाता है; पर हेतु में कारण और कार्य की अभेदता का वर्णन होता है ।

हेमचंद्र—ये प्रसिद्ध जैन-आचार्य, वैयाकरण और काव्यशास्त्री थे । इन्होंने 'काव्यानुशासन' नामक काव्यशास्त्रीय ग्रंथ की रचना की है, जो सूत्रशैली में रचित है । इस पर स्वयं लेखक ने 'अलंकारचूड़ामणि' नामक वृत्ति तथा 'विवेक' संज्ञक टीका की रचना की है । हेमचद्र का समय १०८८ से ११७२ ई० तक है । इनका जन्म गुजरात के अहमदाबाद जिले के अंतर्गत धुंधुक ग्राम में हुआ था । कहा जाता है कि अनहिलपट्टन के चालुक्य-नरेश सिद्धराज (१०९३ से ११४३ ई०) के अनुरोध पर हेमचंद्र ने 'सिद्धहेम' नामक व्याकरण-ग्रंथ का प्रणयन किया था । 'काव्यानुशासन' मौलिक ग्रंथ न होकर संकलनग्रंथ है, जिसमें 'काव्यमीमांसा', 'काव्यप्रकाश', 'ध्वन्यालोक', 'अभिनव-भारती' के उद्धरण हैं । ये उद्धरण बिना किसी रचयिता के नाम के अंकित हैं । 'काव्यानुशासन' आठ अध्यायों में विभक्त है, जिसमें काव्य के लक्षण, प्रयोजन, रस, दोष, गुण, शब्दालंकार, अर्थालंकार, नायक-नायिका-भेद तथा काव्य-भेद का निरूपण है । पंचम अध्याय में छह शब्दालंकारों—अनुप्रास, यमक, चित्र, श्लेष, वक्रोक्ति तथा पुनरुक्तवदाभास—का वर्णन है । षष्ठ अध्याय में केवल उनतीस अर्थालंकारों का विवेचन है और संकर में संसृष्टि का, दीपक में तुल्ययोगिता का, परिवृत्ति एवं पर्याय का परावृत्ति में तथा निदर्शना में प्रतिवस्तूपमा तथा दृष्टांत का समावेश किया गया है । इन्होंने उपमेयोपमा और अनन्वय का समावेश उपमा में किया है ।

हेला—नायिका के अंगज अलंकार । [दे० नायिका के अलंकार] कामवासना के भावों का स्पष्ट रूप से प्रकट होना हेला है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu